Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080586

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080586

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

जनवरी : 1988

मूल्य : 7 रुपये

सारिका

080586

- गांव की नदी
  ■ रमेशचंद्र शा
- खारिज
  ■ से. रा. यात्री
- पार
  ■ प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय
- माइनस सेव
  ■ मनमोहन च
- भगदत्त का ह
  ■ संजय

080586

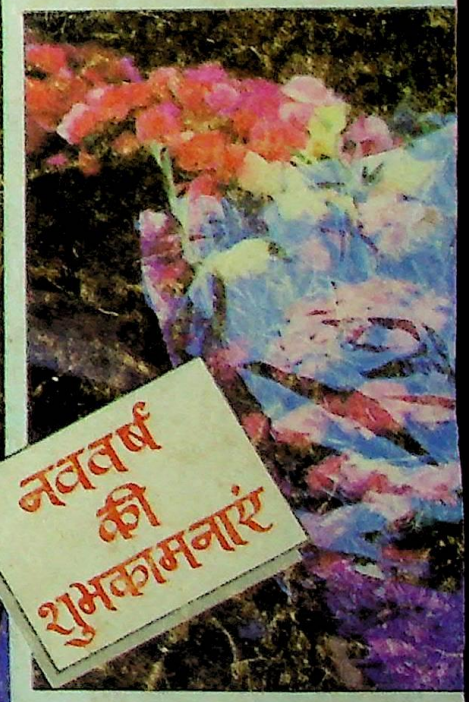

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

हर अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे आपके नित्य जीवन का अभिन्न अं

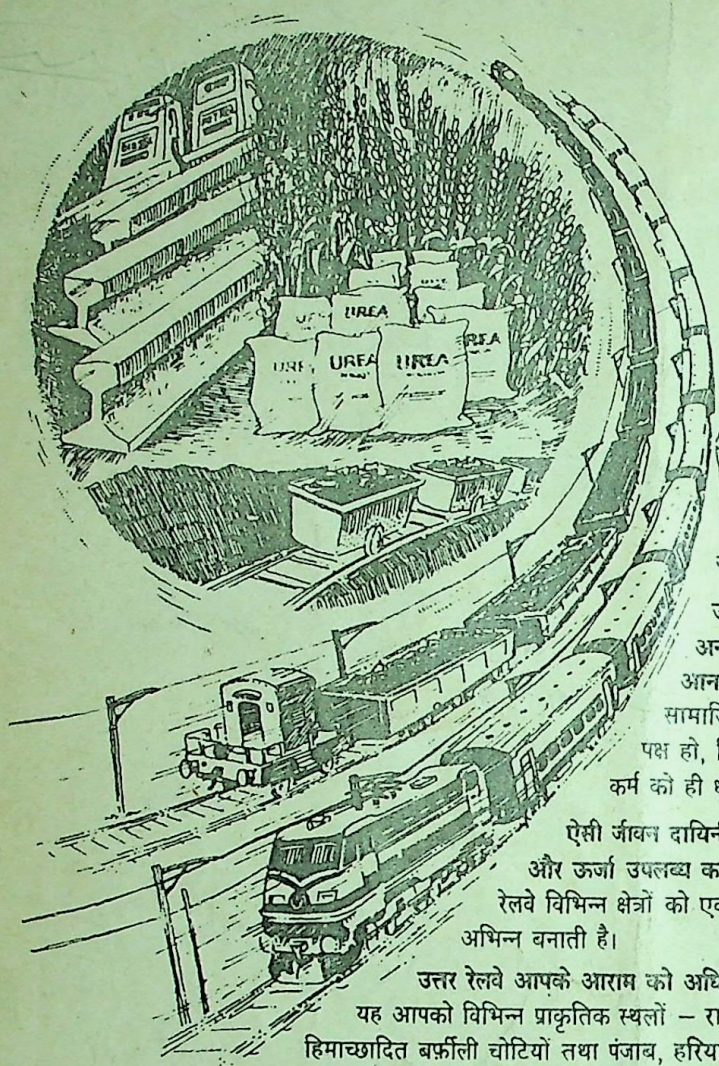

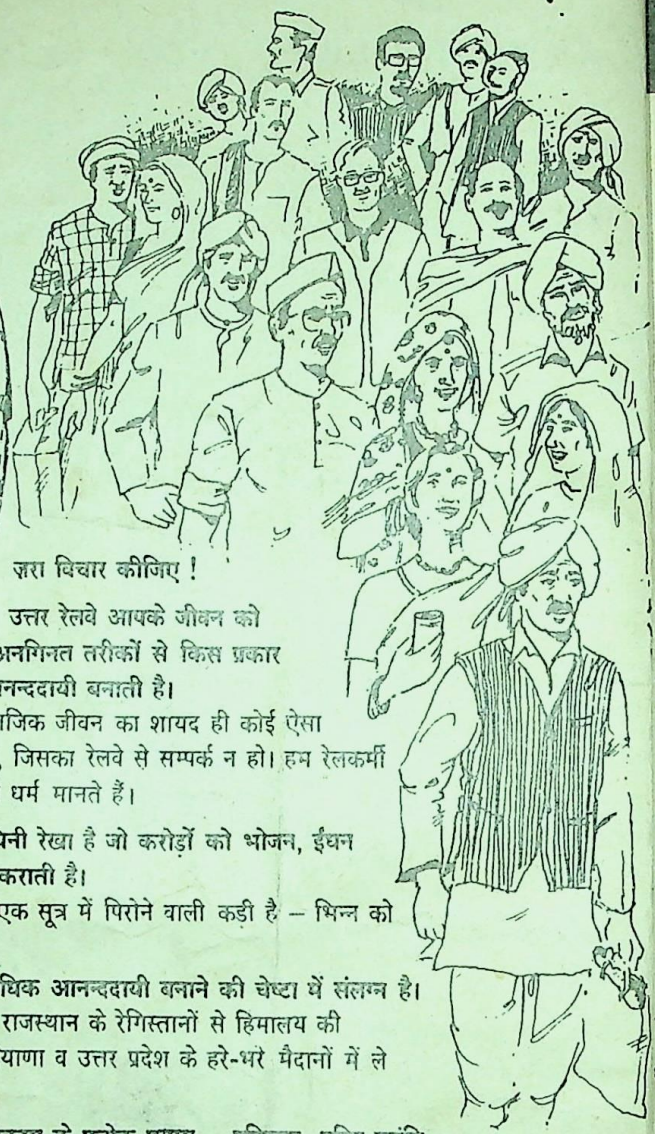

ज़रा विचार कीजिए !

उत्तर रेलवे आपके जीवन को अनगिनत तरीकों से किस प्रकार आनन्ददायी बनाती है।

सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका रेलवे से सम्पर्क न हो। हम रेलकर्मी कर्म को ही धर्म मानते हैं।

ऐसी जीवन दायिनी रेखा है जो करोड़ों को भोजन, ईंधन और ऊर्जा उपलब्ध कराती है।

रेलवे विभिन्न क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी है – भिन्न को अभिन्न बनाती है।

उत्तर रेलवे आपके आराम को अधिक आनन्ददायी बनाने की चेष्टा में संलग्न है।

यह आपको विभिन्न प्राकृतिक स्थलों – राजस्थान के रेगिस्तानों से हिमालय की हिमाच्छादित बर्फ़ीली चोटियों तथा पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के हरे-भरे मैदानों में ले जाती है।

उत्तरी भारत में रेलवे लगभग सवा सौ वर्षों से राष्ट्रीय विकास के प्रत्येक प्रयास – परिवहन, हरित क्रांति, ऊर्जा उत्पादन, तीव्र औद्योगीकरण आदि में सक्रिय योगदान दे रही है।

उत्तर रेलवे प्रतिदिन 900 मेल/एक्सप्रेस एवं सवारी गाड़ियों में 11 लाख यात्रियों का वहन करती है। साथ ही प्रतिदिन 2 लाख टन माल ढोया जाता है।

उत्तर रेलवे की दैनिक गतिविधियों में शामिल हैं –

- 47,000 टन अनाज का उत्तर के उपजाऊ क्षेत्र से देश के विभिन्न भागों को परिवहन.
- 62,000 टन कोयला, उद्योगों के लिए पहुँचाना.
- 15,000 टन पेट्रोलियम पदार्थों का यातायात.
- 17,000 टन खाद ढोना.

ये सब देश में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की भावना की जागृति लाने में सहायक हैं।

रेल पटरियों का जाल, जीवन दायिनी शिराओं और धमनियों की भांति काम कर रहा है।

उत्तर रेलवे करोड़ों देश वासियों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में

भारतीय रेल

उत्

उत्तरी क्षितिज में स्थिर और निरंतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

क्रिकेट प्रेमी
एक सुनहरा अवसर हाथ से न जाने दें

क्रिकेट वर्ल्ड कप

मुफ्त
रिलायन्स वर्ल्ड कप uptodate रिकार्ड सहित

प्राप्त करने के लिये

अपने घर में अपनी लायब्रेरी योजना के सदस्य बनिये!

और 24/- की पुस्तकें 20/- में घर बैठे प्राप्त करें और पहली वी०पी० में 10/- की पुस्तक क्रिकेट वर्ल्ड कप मुफ्त पायें। तरीका बहुत आसान है। 5/- सदस्यता शुल्क मनीआर्डर व डाक टिकट से भेजकर नीचे लिखा फार्म हमें भेज दें। हम आपको सदस्य बना लेंगे और 24/- की पुस्तकें 20/- की हर माह वी०पी० द्वारा भेजते रहेंगे।

इस माह के नये उपन्यास

विमल सीरीज' का नया उपन्यास

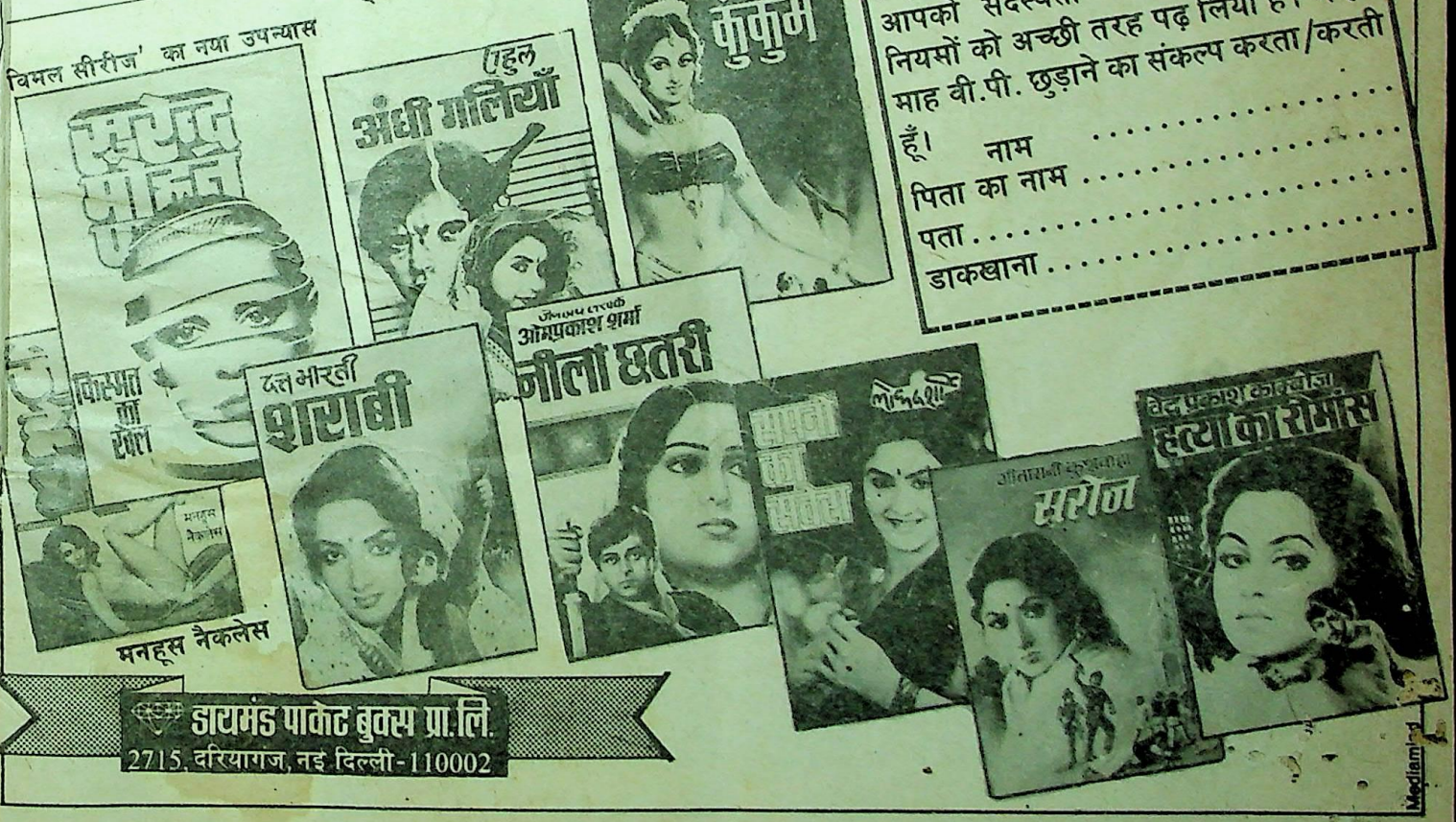

सदस्यता कूपन

मुझे अपने घर में अपनी लाइब्रेरी योजना का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनीआर्डर/डाक टिकट के साथ भेजा जा रहा है (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम .....
पिता का नाम .....
पता .....
डाकखाना .....

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

वक्त के साथ तो बदलना ही चाहिए मालिक, नहीं तो वक्त आगे निकल जायेगा और हम पीछे छूट जायेंगे!

वक्त और उसकी रफ्तार का एहसास कराती उपेंद्रनाथ अश्क, वीरेंद्र मेंहदीरत्ता, सुदर्शन नारंग, नफीस आफरीदी, केशव, शैलेंद्र सागर, तेजेंद्र शर्मा, भगवतीशरण मिश्र, हसन जमाल और विनय बिहारी सिंह की कथा रचनाएं.

...हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता

जाने-माने कथाकार और 'सारिका' के भूतपूर्व संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार का प्रख्यात कथाकार यशपाल जी पर आत्मीय संस्मरण.

....और साथ में

फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, कृतियां, धारा के विरुद्ध, कथा-दर्शन, हलचल, सारिका कथा-पहेली, आपकी बात, अपनी बात, चलते-चलते, लघुकथाएं व बोलती तस्वीर.

लोकप्रिय साहित्य पर विशिष्ट खंड

- ☐ लोकप्रिय साहित्य की दुनिया के अनोखे रंग.
- ☐ एक लोकप्रिय साहित्यकार की पत्नी के संस्मरण.
- ☐ ट्रेडमार्क लेखकों के प्रकाशकों से बातचीत व अन्य संग्रहणीय सामग्री.

हर महीने एक जरूरी मुलाकात सारिका जिंदगी की बेहतर किताब

सारिका
फरवरी 1988

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

नये रूपाकार, साज-सज्जा और बढ़े हुए पृष्ठों के साथ 'सारिका' का यह अंक आपको अवश्य पसंद आया होगा और भविष्य में भी आप 'सारिका' नियमित रूप से पढ़ना चाहेंगे. आपकी सुविधा के लिए हमने 'सारिका' की वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक चंदे की रियायती दरें निर्धारित की हैं. आप केवल नीचे दिये गये कूपन के साथ अपने वार्षिक/अर्द्धवार्षिक चंदे की राशि बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा हमें भेज दें, आपको 'सारिका' डाक से नियमित मिलने लगेगी.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक :67 रुपये

अर्द्धवार्षिक :34 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम .....

पता .....

.....

.....

हस्ताक्षर .....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

प्रसार अधिकारी
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथाजगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28, अंक : 429, जनवरी, 1988

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञानसिंह

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

आवरण पारदर्शियां :
नोवले, एस. के. शर्मा
आवरण सज्जा : सुधीर गुप्ता
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

उपहार अंक

कथा रचनाएं

10. भगदत्त का हाथी :
सृंजय
22. सिर्फ पैसा :
जयनंदन
31. गांव की नदी :
रमेशचंद्र शाह
37. पार :
प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय
48. खारिज :
से. रा. यात्री
56. माइनस सेवन :
मनमोहन चड्ढा
60. पोखर :
नवीन कुमार नैथानी
64. पवन पुत्र :
भगवतीशरण मिश्र

विशेष आयोजन

24. वह इबारत दुरूह नहीं :
से. रा. यात्री
46. ग्राम गंध की छाया में :
रमाकांत
70. सवालों के आईने में हिंदी कहानी के सौ वर्ष : दो
परिचर्चा आयोजक : अरविंद त्रिपाठी

लघु रचनाएं

12. दृष्टि सीमा :
सुरेंद्र सुकुमार
14. आप हार गयीं :
दुर्गा शंकर त्रिवेदी
16. व्यवसाय :
प्रवासी विनय कृष्ण
32. साक्ष्य :
सत्य प्रकाश हिंदवान
34. मुक्ति :
रमाकांत
36. उस्ताद वंदे अली खान :
राजकुमार गौतम
38. यह कैसा प्रतिरोध:
दीप चंद्रा
42. सावन के अंधे :
बलबीर त्यागी
50. चोर :
हरित बंधु
58. ज्ञान की परीक्षा :
बलबीर सिंह
62. टेलीफोन की अर्जी :
सुखबीर
67. गजल :
सुखबीर विश्वकर्मा

अन्य आकर्षण

6. आपकी बात
7. उल्लेखनीय
9. आपनी बात
55. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी
69. धारा के विरुद्ध :
राजेंद्र राव
73. कृतियां :
नरेंद्र मोहन, रमेश उपाध्याय
76. नयी पौध
76. सारिका कथा पहेली

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-**700062**

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंवले मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

कलेजा मुंह को आ गया

सुभाष पंत की कहानी 'म्यान से निकली तलवार' क्षेत्रवाद और जातिवाद के आधार पर हिंसा का चिराग जलाने वालों पर जोरदार प्रहार है. कहानी में वर्णित विकृत विचारधाराएं ही मानवता की जड़ कुतरकर सामाजिक अव्यवस्था और अविश्वास के स्वाभाविक वातावरण का निर्माण करती हैं. कुछ स्वघोषित बुद्धिजीवी 'रमजानी की हत्या' जैसी प्रतिक्रियां कर अपने को वातावरण के प्रति पूर्ण सजग महसूस करते हैं.

मधुकर सिंह की 'सपने के गलियारे में आग' सच के बहुत करीब है. दरअसल ऐसा लगता है मानो व्यवस्था के सुधार के रास्ते ही बंद कर दिए हैं. भगवतीशरण मिश्र की कहानी 'किससे कहें?' पढ़कर कलेजा मुंह को आ जाता है. क्या यह रचना विपत्ति में हमें एक दूसरे को सहायता करने की सीख दे सकती है? या इससे 'बाढ़ के समय आश्रित परिवारवालों' जैसे लोग सीख लेना चाहेंगे. अन्य सभी रचनाएं भी बहुत अच्छी लगीं.

● दिवाकर झा, देवघर, बिहार

याद आती रही नीरजा

'कथा उत्सव अंक: एक' से जितनी निराशा हाथ लगी थी अंक दो से उतनी ही नयी उम्मीद बनी, नयी आशाएं जागृत हुई. कहने की जरूरत नहीं कि यह अंक अपने आप में एक महान उपलब्धि है. बड़े पैमाने पर हो रहे राजनीतिक अत्याचार ही आज जग जाहिर है और न जाने कितनी कहानियों में लिखे जा चुके हैं, लिखे जा रहे हैं मगर निम्न स्तर पर 'शर्माओं' (आम जनता) को किस तरह राजनीति का कूड़ा ढोना पड़ रहा है, इसका लाजवाब चित्र 'दो अक्तूबर उन्नीस सौ...' (राजेंद्र राव) में बन पड़ा है. मेनहॉल (राजनीति) से गंदगी (भ्रष्टाचार) निकालने के लिए जो एक कसक जनता में नये सिरे से जन्म ले रही है, उसे बड़े ही कायदे से राव जी ने रखकर 'आम वर्ग' पर अपनी पकड़ तीव्र होने का पुख्ता प्रमाण दिया है.

इसके बाद तीन कहानियां लगभग एक स्तर की हैं जो अपनी उपस्थिति का आभास दिलाती हैं—मुआवजा' (चित्रा मुद्गल), 'मजदूर' (भैरव प्रसाद गुप्त), 'बच्चे' (प्रियंवद). 'मुआवजा' निसंदेह चित्राजी की महान उपलब्धि है. लेकिन इसे पढ़ते हुए लगातार 'नीरजा' की याद आती रही. कहानी में वर्णित अनेक स्थितियां नीरजा के जीवन वृत्त से हू-ब-हू मिलती हैं. कहीं उसी की कहानी तो नहीं! पूंजीपति वर्ग के पुत्रों की मानसिकता में जिस तरह मजदूरों, गरीबों के प्रति घृणा, कट्टरता का समावेश हो रहा है इसके बारीक विश्लेषण में गुप्तजी अत्यंत सफल रहे हैं. कहानी की संक्षिप्तता प्रभावोत्पादक रही है. इसी तरह सशक्तता से वर्णित कहानी 'बच्चे' ने बच्चों की मानसिकता का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया

प्रथम पुरस्कृत पत्र

'खामोशी' और 'मुआवजा' में अंतर

'सारिका' का 'कथा उत्सव अंक-2' पढ़ा जिसमें वरिष्ठ पीढ़ी के कथाकारों ने कहानी की यात्रा के प्रसंग में अपनी पीढ़ी के कृतित्व को उत्कर्ष कहा है और उसके बाद के पड़ावों को 'खद्योत सम्'.

इसी अंक में चित्रा मुद्गल की कहानी 'मुआवजा' भी पढ़ने को मिली जिसने पिछले ही अंक में सारिका में छपी द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी 'खामोशी' की याद दिला दी. 'खामोशी' और 'मुआवजा' इन दोनों कहानियों को आमने-सामने रखते हुए मैं अपनी बात कहना चाहूंगा.

खामोशी के जरिये निर्गुण जी ने सामाजिक मान्यताओं की उस व्यवस्था को अनावृत किया है जिसकी स्वीकृति और वर्जनाएं भले ही बहुत लकदक सिद्धांतों से निकलती हुई प्रतीत हों, मूलत: लाभ हानि के गणित पर आधारित होती हैं. इस गणित के तहत, इस कहानी में, पारंपरिक परिवार की व्यवस्था में एक विवाहिता के विवाह पूर्व प्रेमी और प्रेम संबंधों को स्थापना मिल जाती है 'मुआवजा' के केंद्र में भी वही पारंपरिक परिवार है, उन्हीं वर्जनाओं, स्वीकृति, और गणित से लैस. इसमें भी उस विवाहिता के पति परिवार को, उसकी मौत के बाद उसकी उसी स्वच्छंदता का पुरस्कार और मुआवजा राशि मिलती है, जिस स्वच्छंद संज्ञा के तहत उसे पति परिवार द्वारा त्याग दिया गया था. इस कहानी में भी आर्थिक प्रलोभन का दबाव व्यवस्था पर कारगर होता दिखाया जाता है, जिसके कारण बरसों बाद दिवंगत विवाहिता का पति परिवार संबंध की परिभाषा जुटाता और मुआवजे की दावेदारी करता नजर आता है. अपनी-अपनी जमीन पर दोनों रचनाएं लगभग एक-सी स्थिति को छूती हैं. फिर भी इनकी रचनावृत्ति के कुछ मूलभूत अंतर हैं. 'खामोशी' कहानी की समूची सौंदर्य शक्ति उसकी संवेदय अभिव्यक्ति में है और इसके बाहर रचना कहीं भी उस स्त्री को अपने निजी निर्णय में अस्तित्वमान नहीं होने देती, जिसके चारों ओर व्यवस्था को अपना जाल बुनने की सुविधा प्राप्त है, रचना के कलेवर से ऐसा लगता है कि रचनाकार को स्वयं उस स्त्री को खामोशी में, उसके सब कुछ सहते चले जाने में एक सौंदर्य नजर आया है जिस के लिये वह उस स्त्री का यूं यातना से गुजरते जाना स्वीकार करता चलता है. शायद यही सौंदर्य रचना का अभीष्ट भी है.

मैं समझता हूं कि सौंदर्य का यह मूल-तत्व केवल मिश्रजी की रचना का निजी अवयव नहीं हैं, बल्कि उनकी पीढ़ी के सोच का मानदंड है, वरना इतना निर्मम अंत देने की बजाय निर्गुणजी नायिका को यह हक देते कि वह अपने उस प्रेमी की मौत पर अधिकार पूर्वक रो सकती, जिसके पैसे को उसके परिवार ने विचारपूर्वक एक सिद्धांत देकर स्वीकार कर लिया है. लेकिन वह एक लड़ाई की स्थिति होती जिसमें स्त्री बहरहाल परिवार की व्यवस्था को मात देती नजर आती. सो, इस कहानी में वह होती कैसे?

व्यवस्थाा से वह लड़ाई 'मुआवजा' में है. पहले मोर्चे पर अपनी निजी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिये एयर होस्टेस पति परिवार से अलग होकर उनके दोहरे मानदंडों को चुनौती देती है. और दूसरे मोर्चे पर नजर आता है उसका पिता परिवार. उनकी यह लड़ाई नितांत सैद्धांतिक और निष्प्रलोभन है. यह सात्विक-सी चुनौती कि वह अब अपनी दिवंगत बेटी के पति परिवार को केवल आर्थिक लाभ के लिये, सहजतापूर्वक संबंध में लौटने की सुविधा नहीं जुटाने देंगे. और इस तरह वह व्यवस्था को यह एहसास करायेंगे कि उसका गिरगिटपन कभी कठिन भी हो सकता है.

चित्राजी की कहानी की यह युयुत्सा वस्तुत: शोषण चक्र में पिस रही स्त्री वर्ग को ताकत और निगाह देने का एक प्रयोजन है और इसलिये यह ''बस, यूं ही खाली मूली...'' नहीं वरन् रचनात्मक कृति है.

मैं विनम्रता पूर्वक कहना चाहता हूं कि 'खामोशी' और 'मुआवजा' का अंतर महज दो कहानियों का अंतर नहीं, वरन् मील के दो पत्थरों के बीच की दूरी का आंकड़ा है. चित्राजी मेरी पीढ़ी की कहानीकार हैं. और इस पीढ़ी के सामने उसके आदमी के सुख-दुख से मूल सरोकार आइने की तरह साफ हैं. वह दर्द की तड़प रचकर उसमें खूबसूरती नहीं ढूंढती, बल्कि दर्द के कारण ढूंढती हैं और उन कारणों का संधान करती हैं. इस नाते उसकी रचना की जमीन उतनी ही ठोस है जितनी पैर तले की असली जमीन. असली जमीन. जाहिर है यह संकेत अग्रगामी है.

● अशोक गुप्ता, फरीदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. प्रियंवद ने अपनी लेखन शैली के अनुरूप कथानक का ताना-बाना इस तरह बुना है कि वे लेखकों की 'भीड़' से अलग खड़े दिखते हैं. बधाई.

'अपने लिए' (रामदरश मिश्र) कहानी में कोई नयापन नहीं है लेकिन इसकी बुनावट इतनी सशक्त है कि पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कर देती है. प्रस्तुत कहानी यह भी स्पष्ट करती है कि सीमित शब्दों से कहानी की संप्रेषणीयता में किस तरह वृद्धि होती है. अन्यथा आज ऐसे विषय पर लंबी-लंबी मगर ऊबाऊ कहानियां ही पढ़ने को मिलती हैं. रामेश्वर शुक्ल अंचल जिस तरह की कहानियों को अपनी कलम से परिचय प्रदान करते हैं, 'मलंगबुआ' उसके इतर नहीं है. 'किससे कहें' (भगवतीशरण मिश्र) कहानी आज की स्वार्थवादिता का खुलासा करती है. आज के व्यक्तिवादी हो रहे समाज की परिणति इस रूप में हो सकती है, इसे सभी महसूस करते हैं, समझते हैं मगर एक अजीब-सा उदासीपन इस स्थिति को भयानक ही बनाता जा रहा है. क्या आगे एक मानव दूसरे की मानवता को आंकने का प्रयास करना ही छोड़ देंगे.

'सपने के...' (मधुकर सिंह) एवं 'अग्निराग' (शैवाल) तमाम संभावनाओं के बावजूद प्रभावित करने में असफल रहीं. जरूरत है 'नरेश बाबू' जैसे पात्रों को ग्रामीण परिवेश में आंकने के लिए नये संदर्भ खोजने की. शैवाल आजकल कहानी कम शब्दजाल अधिक बुनने दीख रहे हैं. 'म्यान से...' (सुभाष पंत) की नींव अविश्वसनीय प्रतीत होती है. मुद्राराक्षस की 'कटोरी देवी' विस्तार से ग्रसित, एक सोची-समझी योजना के तहत लिखी हुई प्रतीत होती है. जिससे कहानी अपनी मौलिकता खो देती है एवं एक सूत्रबद्धता में पाठक के साथ कहानी इस प्रकार चलती है जैसे उसकी बागडोर लेखक के पास हो न कि कहानी के पात्र अथवा घटना के पास.

परिचर्चा रोचक रही. 'हिंदी कहानी के सौ वर्ष' में कृष्णदत्त पालीवाल ने जिस निर्भीकता से कहानी एवं कहानीकारों की बखिया उधेड़कर सार्थक समीक्षा की तलाश की है वह स्तुत्य है. समीक्षक ने कहानी के वर्तमान बहाव को सही आंका है.

इवान तुर्गनेव की लघुकथा 'भिखारी' काफी समृद्ध है. प्रस्तुति के लिए भूपेश जी को साधुवाद.

एक अनुरोध है, कृपया स्तंभों को यथाशीघ्र प्रकाशन रूप प्रदान करें. व्यंग्य का अभाव बेहद खलता है. कुल मिलाकर इस अंक के लिए आपने जो परिश्रम किया है, इसे भुलाया जाना असंभव है. संपादकीय परिवार को बधाई एवं साधुवाद.

● मृत्युंजय कुमार सिंह 'मुन्ना', पो. महेंद्रू पटना

मुखपृष्ठ

पिछले अंक के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित पारदर्शी के छायाकार हैं फाल.एस. गिरोटा.

उल्लेखनीय

लेखक-निर्देशक की सीमा रेखा

तुलनात्मक रूप से बंगाली, मराठी और मलयालम के मुकाबले हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर आधारित कम फिल्में ही बनी हैं. परंतु पिछले कुछ वर्षों से टेलीवजन सीरियलों के प्रचलन तथा फार्मूला फिल्मों की असफलता के कारण कई फिल्मकार अब साहित्यकारों के पास उनके उपन्यासों या कहानियों के अधिकार लेने भी आने लगे हैं.

कापीराइट एक्ट की धारा ५७ के अनुसार किसी कृति के रचयिता होने का दावा तो लेखक का है ही, इसके साथ-साथ (अ) कथित रचना में कोई विकृति, क्षति या अन्य परिवर्तन उपस्थित करने पर या (ब) उक्त रचना के संदर्भ में किसी ऐसे व्यवहार की दशा में, जो लेखक की मान-प्रतिष्ठा पर आंच लगने का कारण हो, प्रतिबंध लगाने या हरजाने का दावा करने का अधिकार भी लेखक का है.

अब इसी कापीराइट की धारा ५७ तथा ६२ के अंतर्गत प्रसिद्ध उपन्यासकार योगेश गुप्त ने 'अंतहीन' फिल्म के निर्देशक दिनेश लखनपाल और अन्यों के विरुद्ध दिल्ली की जिला अदालत में याचिका प्रस्तुत की हैं. योगेश गुप्त के वकील श्री अरविंद जैन के अनुसार फिल्मकार ने न केवल श्री गुप्त के उपन्यास 'उनका फैसला' के साथ न्याय नहीं किया है बल्कि फिल्मकार उपन्यास के पात्रों के अंर्तसंबंधों को समझने में भी असमर्थ रहा है और उसने उपन्यास के अंत को उलट-पलट दिया है.

योगेश गुप्त हिंदी के सुपरिचित साहित्यकार हैं. उनके अब तक हिंदी में ग्यारह उपन्यास और चार कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. तथा दो कहानी संग्रह अंग्रेजी में प्रकाशित हुए हैं. उन के उपन्यासों में 'उनका फैसला', 'उपसंहार', 'अनायास', 'अकारण' और 'अंधेरा और अंधेरे' विशेष चर्चित रहे हैं. 'उनका फैसला' पहली बार सन् १९७७ में प्रकाशित हुआ था. तब इस उपन्यास पर प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने लिखा था, ''उनका फैसला' उस सामंती पूंजीवादी व्यवस्था के कायदे कानून पर एक करारी चोट है जो गरीब को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करती है. यह उपन्यास निम्न मध्यवर्गीय कुंठा का मार्मिक दस्तावेज है. योगेश गुप्त की यह कथाकृति पढ़ने के लिए ही नहीं बल्कि सोचने के लिए भी विवश करती है.''

'उनका फैसला' के लेखक के अनुसार 'अंतहीन' फिल्म के अंत में यह दिखाया गया है कि नायक सुरेश की पत्नी आर्थिक स्थितियों से तंग आकर अपने तीन बच्चों के साथ आग लगाकर आत्महत्या कर लेती है और नायक को उसके लिए फांसी की सजा हो जाती है, जो कानून की दृष्टि से गलत है. इस तरह फिल्म का यह अंत कानून का मजाक उड़ाने वाला बन गया है और इस अंत का उपन्यास से कोई साम्य नहीं है, क्योंकि उपन्यास में तो नायक पर अपनी पत्नी और बच्चे की हत्या का आरोप लगाया जाता है और इसी की सजा उसे मृत्युदंड के रूप में मिलती है. नायक इस सजा को केवल इसलिए स्वीकार करता है क्योंकि वह उन आत्महत्याओं के लिए स्वयं को नैतिक रूप से दोषी मानता है.

योगेश गुप्त के अनुसार सन् १९८२ में दिनेश लखनपाल ने इस उपन्यास पर फिल्म बनाने की इच्छा प्रकट की और लेखक से उपन्यास के फिल्मीकरण के अधिकार देने का अनुरोध किया. योगेश गुप्त द्वारा अनुमति देने के बाद दिल्ली में मार्च अप्रैल १९८४ में इस फिल्म की शूटिंग हुई.

परंतु लेखक और फिल्मकार के बीच पैसे के लेन-देन संबंधी करार तेरह मई १९८६ को हो पाया. इस करार में योगेश गुप्त को पच्चीस हजार रुपये देने का वादा किया गया है परंतु अब तक उन्हें केवल दो हजार पांच सौ रुपये ही दिये हैं.

अब 'अतहीन' फिल्म के वीडियो अधिकार भी बेच दिये गये हैं और ये वीडियो कैसेट बाजार में उपलब्ध हैं. 'अंतहीन' फिल्म के वीडियो कैसेट के कवर पर तथा प्रचार-पोस्टरों में, कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि यह फिल्म योगेश गुप्त के उपन्यास 'उनका फैसला' पर आधारित है. योगेश गुप्त का कहना है कि इस तरह से उन के नाम का उल्लेख न होने पर उनकी प्रतिष्ठा को आघात लगा है. उन्होंने अपने रिश्तेदारों और मित्रों से कहा था कि फिल्म 'अंतहीन' उनके उपन्यास पर आधारित है, परंतु कैसेट के कवर पर नाम न होने के कारण लोग उन्हें झूठा ठहरा रहे हैं. कैसेट के कवर पर दी सूचनाओं से तो यही भान होता है कि इस फिल्म के लेखक और निर्देशक दिनेश लखनपाल ही हैं.

इन्हीं सब तथ्यों को आधार बनाकर योगेश गुप्त के वकील श्री अरविंद जैन ने अदालत से 'अंतहीन' फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगाने की प्रार्थना की है.

मुकद्दमे की पहली सुनवाई २२ दिसंबर, १९८७ को हुई. इसमें एडीशनल सेशन्स जज श्री एस. एम. अग्रवाल ने अगली तारीख १४ जनवरी, १९८८ तक के लिए फिल्म की रिलीज और टेलीकास्ट पर रोक लगा दी है और फाल्कन वीडियो सर्विसेज को आदेश दिया है कि वे यह हिसाब दें कि वह अब तक कितने कैसेट्स बेच चुके हैं.

मनमोहन चड्ढा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूनतम समय में अपना धन दुगुना करें

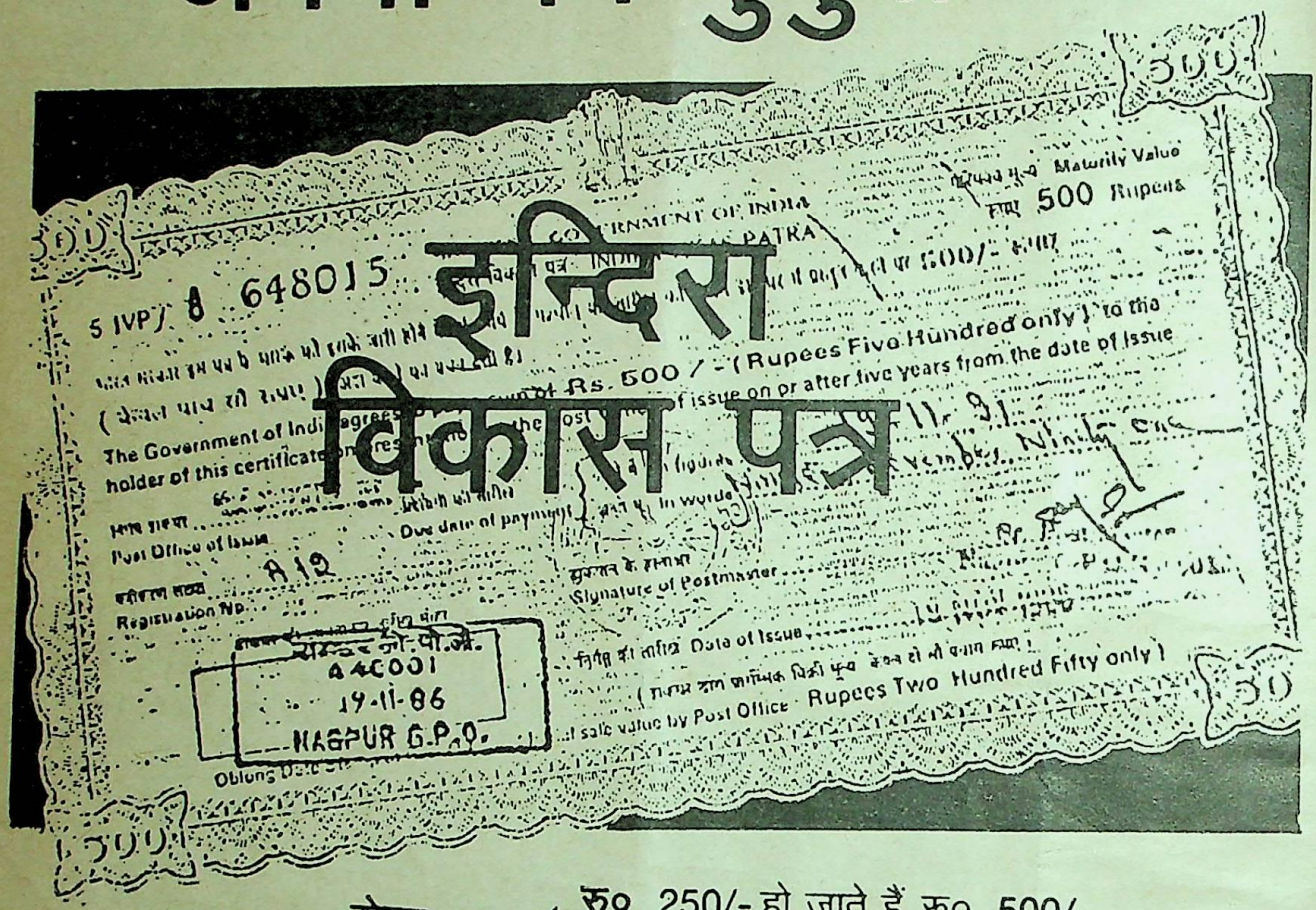

केवल 5½ वर्ष में

रु० 250/- हो जाते हैं रु० 500/-
रु० 500/- हो जाते हैं रु० 1,000/-
रु० 2,500/- हो जाते हैं रु० 5000/-

विशेष आकर्षण

- आवेदन पत्र की आवश्यकता नहीं
- अधिकतम सीमा नहीं
- जिसे चाहें, आप दे सकते हैं
- खराब हो जाने अथवा कट-फट जाने के स्थिति में दोबारा भी मिल सकते हैं

ग्रामीण जनता तथा आयकर न देने वालों के लिए सबसे सुविधाजनक सरकारी बचत योजना

किसी भी डाकघर से खरीदें

राष्ट्रीय बचत संगठन
भारत सरकार

252/87/362

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

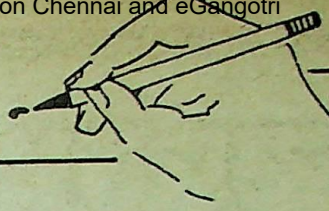

अपनी बात

खिले हुए गुलाब और मुरझाए चेहरे...

आज स्थितियां ऐसी हो गयी हैं कि सामान्य जन न किसी जन्म-दिन पर न नववर्ष के आगमन पर और न ही किसी उत्सव पर दिल में खुशियां महसूस कर पाता है. इस बार के नववर्ष पर भी हम खिले हुए गुलाब और मुरझाए चेहरे आने वाले 365 दिनों की ओर देख रहे हैं. यह स्थिति इस अंक के आवरण से ही स्पष्ट है बीते हुए वर्ष से ही सूखे का सिलसिला शुरू हुआ है और हम नहीं जानते कि इस वर्ष में कब तक चलेगा जहां अनिश्चय के साये घिरे हुए हों वहां खुशियों का इजहार हो भी कैसे सकता है और यदि होगा भी तो वह मुखौटा भर होगा. मंहगाई के बोझ से दबा घुटा आदमी उत्सव नहीं मना पाता.

बीते हुए वर्ष ने सामान्य जन की जिंदगी को जितना त्रासद बनाया है उससे कई गुना अधिक त्रासदियां साहित्य जगत में भर दी हैं. 1987 ने कई यशस्वी और मूर्धन्य रचनाकारों को हमसे छीन लिया है. पिछले लगभग पांच दशकों से हिंदी कविता को लगातार प्रभावित किये रहने वाले और हिंदी उपन्यास लेखन पर अनेक प्रश्न चिन्ह और विवाद खड़े करने वाले नई शैली के सृष्टा अज्ञेयजी पार्थिव रूप में हमारे बीच से हमेशा के लिए चले गये. छायावादी युग की गरिमामयी धरोहर महादेवी जी यशःशेष हो गयी. अपने आपको गंवई मानने वाले और अपने नाटकों, उपन्यासों तथा कहानियों में माटी की सौंधी गंध बिखेरते रहने वाले रचनाकार डा. लक्ष्मीनारायण लाल की निश्छल मुस्कान अब कभी नजर नहीं आयेगी. तेज तर्रार पत्रकार जिनकी पहचान ब्लिट्ज के लास्ट पेल के रूप में बन गयी थी और जिन्होंने भारतीय कहानी और भारतीय सिनेमा को वर्षों तक प्रभावित किये रखा वह ख्वाजा अहमद अब्बास भी अब हमारे बीच नहीं रहे. इसी तरह फिक्र तौंसवी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, देवराज दिनेश, आदवन सुंदरम. डी.आर.मनकेकर, पुरुषोत्तम प्रतीक और कमर मुरादाबादी आदि छोटे-बड़े कई रचनाकार हमसे छिन गये.

1987 में प्रकाशन जगत से जुड़ी कीमतों और पाठकों के अंतर्संबंधों पर भी प्रश्न चिन्ह लगे हैं. लगभग हर वर्ष पुस्तक मेले आयोजित किये जाते हैं लेकिन उन मेलों में आने वालों और खरीदने वालों की संख्या का अनुपात क्या रहता है? यह एक विचारणीय सवाल है. इस सवाल के ही तहत दूसरे सवाल भी हमारे सामने खड़े हो जाते हैं. यदि पुस्तक मेलों से पहले या मेलों को दौरान उन सवालों पर विचार कर लिया जाए और कोई हल निकालने की प्रक्रिया शुरू की जाए तो संभव है पुस्तकों की बिक्री के लिये सरकारी खरीद का मुंह न देखना पड़े. सबसे बड़ा और अहम सवाल पाठकों की गिरती हुई संख्या का है. कमोबेश इसी से जुड़े हुए सवाल हैं- लिखे शब्द के प्रति अनास्था और अरुचि. यह स्थिति कब और कैसे पैदा हुई, इसके पीछे कौन से तत्व काम कर रहे थे, या कर रहे हैं. उनसे कैसे बचा या जूझा जा सकता है? इन्हीं से जुड़ा एक सवाल और भी उठता है और वह है- ऐसे मेलों की उपयोगिता और उपादेयता. इस वर्ष के मेले के संबंध में सूखे की स्थिति देखते हुए यह सवाल और भी जरूरी हो जाता है. ये मेले प्रकाशकों और एन.बी.टी. के लिये किसी अंश तक भले ही उपयोगी हों लेकिन पाठकों से इसका क्या संबंध बन पाता है.

इन मेलों की सार्थकता और उपयोगिता तभी बन सकती है, जब इनका आयोजन करने वाली संस्था एन.बी.टी. की कोई सार्थकता पाठकों की दृष्टि में बने. अभी स्थिति तो यह है, कि आम पाठक यह तक नहीं जानता कि एन.बी.टी. नाम की कोई चिड़िया होती भी है. और वह कौन से जंगलों में पाई जाती है. सच्चाई तो यह है, कि एन.बी.टी. ने सरकारी बाग की हरी घास चरने के अलावा प्रकाशन जगत में कोई सार्थक भूमिका नहीं निभायी है. जबकि यह संस्था ईमानदारी, लगन और मेहनत से कुछ करे तो बहुत बड़ी और सार्थक भूमिका निभा सकती है. नये और अनुभवी निदेशक से हम नयी और सार्थक शुरूआत की आशा कर सकते हैं. और इसीलिये हम चाहते हैं, कि इस मेले से पहले ही बहुत-सी स्थितियां स्पष्ट हो जाएं और बहुत से सवालों के जवाब भी मिल जाएं. इस संबंध में 'सारिका' अपने अगले अंक से कुछ और भी पहल करेगी.

हमने इस उपहार अंक से तीन नये नितांत रूप से पाठकों के स्तंभ शुरू किये हैं. हालांकि ये स्तंभ सारिका में पहले भी रहे हैं, लेकिन इस बार से इनकी नयी ही शुरूआत मानी जा सकती है. ये स्तंभ हैं 'नई पौद', 'नए हस्ताक्षर' और 'सारिका कथा पहेली' अगले अंक में हम तीन और स्तंभों की शुरूआत कर रहे हैं. वे होंगे- 'बोलती तस्वीर', 'अनजानी प्रेम कथाएं', और 'सारिका कहानी मंच' से... 'नवांकुर'. हमें विश्वास है, कि ये नये स्तंभ सारिका में पाठकों की रचनात्मक हिस्सेदारी बढ़ाएंगे और वे इन्हें पसंद भी करेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 25 जनवरी, 1961
संप्रति : दूर-संचार अभियंता
संपर्क : 240 डी, अरूण लॉज, दक्षिण धादका,
आसनसोल-713302
सारिका में यह पहली कहानी

संजय

भगदत्त का हाथी

सदानंद पंडित ने समय का अनुमान लगाया....सूरज देवता कोनसिया घर के मुंडेर पर ताड़ भर ऊंचा रह गये थे. नींम की छाया पूरबी चरन तक सरक आयी थी. ''अढ़ाई से ऊपर हो गया जजमान! बारात तो छिनेगांव से बारह-साढ़े बारह बजे ही निकल पड़ी होगी. इमलिया घाट पर उनका पड़ाव भी डल चुका होगा.'' मानो वे संजय की तरह दूर बैठे-बैठे सारे दृश्य देख रहे हों, ''अब इधर भी बिनौकी मंगवाने की तैयारी होनी चाहिए, उधोसिंह जी! मेहरारूओं से कह दें कि यहां का लोकाचार जल्द फरिया लें. इमलिया घाट कोई लंका कोस नहीं जो आने में देर लगे. छव बजते न बजते बारात जनवासे पर आ लगेगी.''

उद्धव सिंह ने कुम्हारिन के माथे से भरुका का खांचा शीघ्रता से उतरवाते हुए बड़े लड़के से कहा, ''रामजवाहिर! ई चीज-बस्त का हिसाब-किताब बाद में. माई के पास जाके कहो कि पंडिज्जी बिनौकी मंगवाने के लिए हुकुम दे रहे हैं.''

रामजवाहिर गांव-जवार से इम्दाद में आये खाट-खटोले, चादर-तोशक पर 'कठपिनसिन' से निशान लगाकर लिस्ट बना रहा था. उसने 'कठपिनसिन' कान पर खोंसी और कापी कांख से दबाते हुए भीतर चला गया. औरतें पहले से ही तैयार थीं. रासमणि को पियरी साड़ी पहनायी गयी, सिंदूर और काजल की एक के बाद एक खिची सात लकीरों वाली पीली पट्टी ललाट पर चिपकायी गयी. उसने मुंह में सुपारी रखी, एक हाथ में कजरौटा और दूसरे हाथ में खोइया फैलाया. उद्धव बहू ने बेटी के घुटने और कुहनी पर हल्दी लगाते हुए ग्यारह रुपए व पांच लच्छे कच्चे-पीले सूत से खोइया भर दिया. रासमणि टोले-मुहल्ले की ओर बढ़ चली. उसके साथ-साथ औरतों का गिरोह झूमर गाते हुए चलने लगा :

बाग में मिलSS ना, बगइया में मिलSS ना,
कब होइहें मिलनवा मेरो रे गुंइया...

रासमणि का दिल बाग-बाग हो रहा था. झूमर के प्रत्येक बोल के साथ जैसे वह अपने 'गुंइया' से अभिसार करने लगी हो और कितना ही मिलने के बावजूद प्रीत की गगरी भरने से बाकी रह जा रही हो. हाय, प्रीत तो वही....बार-बार जिसे पाकर भी मन न अघाय, हृदय का कलश छलक-छलक कर खाली ही रह जाय. न जाने कैसे होंगे वह? सदानंद पंडित और बाबूजी के बीच वर और घर से संबंधित बातचीत को वह किवाड़ों की ओट होकर कितने चाव से सुनती थी. पंडितजी जैसे रूप-गुण का बखान करते वह तो रासमणि की कल्पनाओं से मेल ही खाता था. उमर तनिक ज्यादा है तो क्या हुआ? अपनी कौन कम है. चौबीस की तो इस माघ में हो गयी. बाप रे, गांव-गंवई में चौबीस बरस की धिया कुंवारी रह जाये. कितने तो ताने सुनने पड़ते थे रासमणि को. सखी-सहेलर भी हमदर्दी के बचन बोलते व्यंग्य-बाण छोड़ जातीं. दादी तो उठते-सुनते पचास गंडे बातों से परिछावन करती रहती. अपने जाने रासमणि ने किसी पखेरू तक का रोयां न दुखाया, किसी काम से 'ना' नहीं कहा, लेकिन थोड़े परिश्रम के बाद ही सीने में धड़का होने लगता. दम फूल-फूल जाता. बाबूजी ने ओझा-गुणी, वैद-हकीम किसी को नहीं छोड़ा, फिर भी वह आये दिन बेहोश हो जाती. सदर अस्पताल के डाक्टर से दिखाया गया तब कहीं जाकर असल रोग का पता चला. कैसे तो उसने बताया था, कलेजे में चार-चार ठो कबजा रहता है, जिसमें से दो ठो जाम हो गया है और यह दो बार लंबा बेहोश हो चुकी है, यदि तीसरी बार हुई तो बचेगी नहीं. डाक्टर ने कड़ा काम करने से साफ मना कर दिया था, लेकिन उसे क्या पता कि खेती-बाड़ी वाले घर में कोई लड़की का 'सिरजना' लेकर आये और कान न करे. उसकी दवाई चलती रही

...''मरजाद की रक्षा हर हाल में होनी चाहिए...बेटे वालों के पास जो गया वह लौटने से तो रहा...'' कैसी है यह मरजाद रक्षा, जिसके प्रश्न पर गांव वालों में अनोखी एकता पैदा हो गयी...? युवा-कथाकार की ''सारिका'' में पहली कहानी

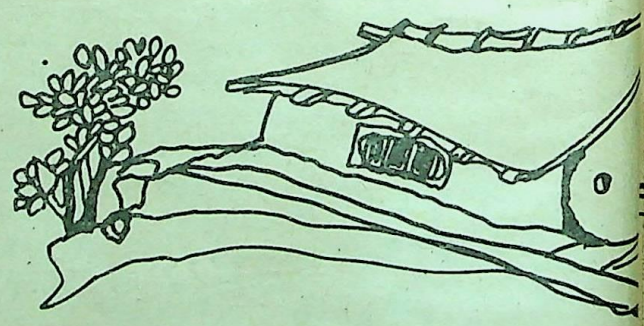

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसी के साथ चंद्रलोचन गुनिया के बताए अनुसार वह और बाबूजी केतु ग्रह का जाप भी करते रहे. उनमें से ही किसी का अकबाल कि पिछले कुछ सालों से ठीक चली आ रही है. वैसे हलका-फुलका काम भी करने से धड़का तो होता है, लेकिन तीसरी बेहोशी नहीं हो पायी, अन्न भी लगने लगा, देह बहाल हो आयी. घर के लोग जान चले थे, रासमणि आज नहीं तो कल मर जायेगी. यही सोचकर बाबूजी उसका विवाह नहीं करना चाहते थे, लेकिन वह तो मरजिया हो गयी...मर-मर के जी उठनेवाली. विवाह की कही 'साइत' बैठती भी तो जलनेवाले मोखालिफ लगी-लगायी काट देते अथवा कौन जाने...उसका नसीब ही बांक हो उठता! बाबूजी ने हार-थक कर बात चलानी छोड़ दी. इस पर भी चैन कहां?

लोगों के ऊंच-नीच समझाने पर, मां के उकसाने पर बाबूजी सदानंद पंडित की शरण में गये. अंततः उन्होंने उबार लिया. कहते हैं, पंडितजी यदि चाहें तो खाट-पलंग का आपस में कोहबर रच जाये, वह तो मानुष ठहरी. छिनेगांव के एक लड़के से बात पक्की ठहरी. रासमणि के सोये भाग जगे, ढीली लगन चरचरायी. लेकिन एक बात पर उसकी बुद्धि खौल उठती है....हाथ इतनी सकेत रहते हुए भी बाबूजी को पैंतीस हजार तिलक में चढ़ाने पड़े. दक्खिनभर वाले नाभ खेत पर स्याही पोतनी पड़ी. उस दिन बाबूजी कितना डहंके थे, बेटी के कारण महतारी जैसी भूमि से दगा करना पड़ा. लेकिन करें भी क्या? दबाव ही ऐसा था कि अधेला-पाई भर भी कम हुआ तो तुम जानो तुम्हारा काम जाने.

वह अपने अतीत की नींव पर भविष्य का महल तामीर करती हुई एक घर से दूसरे घर की ओर बढ़ी जा रही थी. गांव की दादी, चाची और लजौहीं भौजाइयां खोइचा भर देतीं और वह आगे बढ़ जाती. सब की सब आंखें मूंदकर असीसतीं कि भगवान ने जैसे इसके दिन लौटाये वैसे आगे भी निबाहें. सुमेसर बो भौजी के घर के नजदीक आते-आते अचानक रासमणि को लगा कि छाती में हिलकोर उठा है. तेज लुतकी के जलने जैसी चिलक हुई बायीं तरफ. उसने समझा शायद दिन भर के उपवास के कारण ऐसा हुआ है. कुछेक डग आगे बढ़ी तो गला सूखता-सा लगा. वह मां के कान में फुसफुसायी, "माई रे, कसैली मुंह से निकाल दूं?"

"ना, ऐसा ना करना," मां घबरायी, "बस थोड़ी देर की बात है."

वह चुप लगा गयी. तब तक सुमेसर बो भौजी ने अंकवार भेंट कर बिनौकी दी और वह लड़खड़ाते कदमों से आगे बढ़ी. तेज प्यास महसूस हुई तो उसने मां को फिर बताया.

"इतनी तेज धूप है." मां ने दुलार से समझाया, "धमायी हुई हो, बुचिया! गटागट पानी पीने से लग जायेगा. बस दो-चार घर ही तो और रह गये हैं. घर चल के दही का शरबत पी लेना." मां ने उसके चेहरे पर

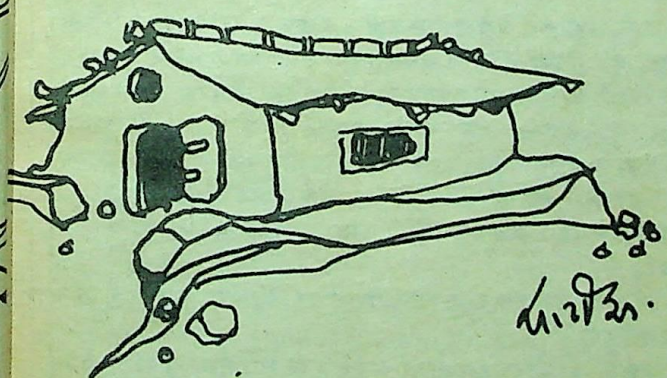

नये हस्ताक्षर

किसी भी उम्र और वर्ग के ऐसे रचनाकारों के लिए यह स्तंभ प्रारंभ किया जा रहा है जो स्तरीय लेखन के बावजूद अब तक किसी बड़ी पत्रिका में प्रकाशित नहीं हो सके हैं.

चुहचुहाए पसीने को पोंछ दिया.

इनसे बेखबर साथ की औरतों का उछलना, कूदना और गाना जारी था. गीत-गवनई की मस्ती में वे कभी झूमरं, सोहर तो कभी मांगलिक गाली उठा लेतीं. सुनरी भाटिन ने एक नया ही गीत छेड़ दिया:

रासमणि को बर्दाश्त करना कठिन लगनें लगा, जैसे वह एक बहुत बड़े पिंजरे में घिर गयी हो, उसके सामने हरे नहीं, बल्कि चितकबरे सुग्गे उड़ने लगे, न जाने कैसी भयावह खबर देने को आतुर सुग्गे. जी घबराने-मिचलाने लगा, कपाट में कुम्हार के चाक जैसा कुछ घूमने लगा. वह गश खाकर बैठ गयी. मुंह में रखी सुपारी गुलेल की गोली की तरह 'फक' से निकल पड़ी. हाथ का कजरौटा दूर जा गिरा, खोइचा के रुपए और सूत के लच्छे धूल में जा मिले और उसकी आंखें भी सुपारी की तरह जमकर ठोस हो गयीं.

गीत अचानक थम गया, जैसे उफनते दूध पर पानी के छींटे पड़ गये हों. सब औरतें प्रश्नाकुल हो गयीं. किसी ने उसका सिर गोद में रखा, कोई आंचल से हवा देने लगी. थोड़ी देर बाद रासमणि ने जरा-सी पलकें खोलीं...दृष्टि सामने की छान पर अटक गयी...वहां कुछ नहीं था या क्या पता कुछ था भी. रासमणि ने अस्फुट स्वर में कुछ कहा भी, लेकिन वाक्य पूरा न हो पाया.

न जाने किस केतकी वन के अजगर का फुफकार आया और सब कुछ झांवर कर गया. बहिनी-भौजाइयां कटे रूख की भांति गिर पड़ीं. सदमे की बाढ़ सबकी जड़ों तले की मिट्टी बहा ले गयी. काल के आघात ने आखिर मानुष को ही कलंकी बनाया. सुनरी भाटिन जीभ काट-काटकर फुसफुसाने लगी, "मैंने देखा है सुमेसर बो को अपनी चोली के पखुवा (बगल) से भभूत की पुड़िया निकालते हुए."

"ई कलजिब्भी. मेरा रोंवा दागने लगी, रे दैया!" सुमेसर बो भौजी रोने लगी.

"जाने दो. अपनी आंख से नहीं देखा तो तुमको कैसे कहूं?" सफाई देते-देते उद्धव बहू की दांती लग गयी. अनुभवी सयानियों ने कजरौटे की डांटी से दांती छुड़ायी तो सावन की पुरवैया की तरह रूलाई हहराने लगी. सब छाती पीटकर हाय-हाय करने लगीं.

अभी-अभी जहां हंसी-खुशी की लहरें ठाठें मार रही थीं वहा चीख-पुकार का ज्वालामुखी फूट पड़ा. गांव भर के कलेजे पर फफोले उठ आये. अशुभ संवाद सुनकर दुश्मनों तक ने आहें भर लीं, हित-कुटुंब की तो बात ही और थी. उद्धव सिंह बार-बार मुंह में गमछा ठूंस लेते, लेकिन वियोग था कि हिचकी के रूप में निकल ही आता. खारे आंसुओं के अजस्र रिसाव से पपोटे जलने लगे: "हाय रे दैव! किस जनम के पाप का फल मिला." वे विलाप कर उठे. मर्द एक तो रोते नहीं, मगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वे अछुदाह होकर बिलखने लगे तो सुननेवालों का हिया चीथ गया.

हित मित्रों ने जी कड़ाकर उनको समझाना चाहा, "धीरज धरो, उधो भाई! यह मृत्युभुवन है. यहां किसी का वश नहीं चलता. जीवन और मृत्यु तो रात-दिन के समान हैं, एक के बाद दूसरे का चक्कर चलता ही रहता है."

"भाई हो, ऐसी असमय मौत पर तो..." उद्धव सिंह मर्माहत होकर बोले, लेकिन उनकी आवाज टूट गयी.

सदानंद पंडित बहुत उदास हो चले थे. कांपती आवाज में कहा उन्होंने, उनकी माया के आगे जीव की एक नहीं चलती. जिस तरह मेघ बंजर और उपजाऊ का खयाल नहीं करता उसी तरह मृत्यु समय-असमय का ध्यान नहीं करती. हिरण्यकशिपु ने किसी भी समय न मरने का वरदान पाया था, लेकिन मृत्यु ने उनके लिए समय निकाल ही लिया." उन्होंने उद्धव सिंह को कंधों से पकड़ा और खाट पर बिठा दिया, "जजमान! जैसे हो उसे सहना पड़ेगा. बोझ या तो बरद पर पड़ता है या मरद पर. मरद की छाती सूखी इसीलिए होती है कि वह माया का भार वहन कर सके. भगवान ने लुगाइयों की छाती में रस देकर यह भार सहने की क्षमता हर ली है. सो जब आप ही ऐसा करेंगे तो उन अबलाओं का क्या हाल होगा? उनका बल पुरुष होता हे. आप धीरज धरें और घर की दुखियारियों को ढाढ़स बंधायें."

"मैं कमजोर हूं, महाराजजी!...मैं अभागा हूं....इतना कठकरेजी मैं नहीं बन सकता..." वे फफक कर रोने लगे, "यह भार कैसे सहूं?"

शोक किसी संक्रामक रोग की तरह सबको लपेट चुका था. लोग अभी पीड़ा की उत्ताल लहरों में गोते खा ही रहे थे कि प्रबल तूफान की तरह हांफते नन्हकू हज्जाम एक विचित्र संदेशा ले आये, "कुछ बाराती शामियाने के पासवाले पोखरे पर पहुंच गये हैं और कपड़े-लत्ते बदल रहे हैं."

"आहि दादा, अब क्या हो?" सांप के मुंह से किसी तरह छूट गये भयातुर लंगड़े मेंढक की तरह उद्धव सिंह तड़फड़ाने लगे, "ई कोइला लगा मुंह लेकर किधर भागूं, ए भाई?" उन्होंने सदानंद पंडित के पैरों पर अपना सिर पटक दिया. पंडितजी की ठेसाह छिंगुनी भी कुचल गयी, लेकिन उन्होंने दर्द को चिरायते के घूंट की तरह पी लिया.

उद्धव सिंह ने हज्जाम को सुनाया, "नन्हकू, बारातियों से जाकर कह दो कि अब यहां क्या रखा है. आप लोग लौट जायें...जाओ भाई!"

हठात् रामजस काका उठे और दोनों बाहों को निषेध की मुद्रा में उठाते हुए कहने लगे, "ई का कहते हो, उधो? इस तरह बारात लौटाने का मतलब जानते हो?...जिन्नगी भर की बदनामी."

"हांSSS....बदनामी!" रामजस काका की बात पर सभी सोचने को बाध्य हुए, "जरूर बदनामी होगी, जब आ गये हैं तो जलपान वगैरह करवा दिया जाय."

"होनी को कौन टाल सकता है?...और हमारा दोष भी क्या है?" रामनरेश सिंह बोले, "लड़के का बाप आ जायें तो उनको सारी बातें समझा दी जायेंगी."

उद्धव सिंह मतिभ्रमों-सा चिल्लाने लगे, "अब तो खड़े-खड़े इज्जत चली जायेगी, मेरे पंचो! अब मैं क्या करूं? कोई मुझे अकिल सुझाए. समधी मुझे कोस-कोस कर मुआ देगा. जब ऐसी लड़की थी तो धोखा क्यों दिया?" वह औचट में खड़ा हुए तो ओसारे के पट्टडेहर से टकरा गये. कुछ पल के लिए आंखों के आगे अंधेरा छा गया.

"यह करम विपच्छ नहीं तो और क्या है!" रामनरेश सिंह ने दुख प्रकट किया, "आज तक इस गांव से किसी की बारात नहीं लौटी है...फू अSS...अ." उन्होंने अफसोस का एक लंबा निःश्वास छोड़ा, "हे दइब! ऐसा बेदिन किसी को मत करना."

"जब भगवान ने ही हमें हीन कर दिया तो क्या करें?" रामजस काका ने सिर ठोंक लिया, "ना तो किसकी मजाल थी जो यहां से बारात लौटा ले जाता."

उद्धव सिंह कुहर कर बोले, "काका हो! मैं पहिले ही कहता था कि रासमणि का विवाह करना ठीक नहीं...मुझे पता था, एक-न-एक दिन ऐसा होना है, लेकिन आप लोगों ने ही उकताकर, भोंक-भोंककर मुझे ऐसे फेर में डाल दिया."

"किसे पता था, भई, इस अनहोनी के बारे में?"

नन्हकू हज्जाम तभी से कुछ बोलना चाह रहे थे. रह-रहकर उनके होंठ हिल पडते थे, लेकिन वे हिचकवश चुप लगा जाते थे. रोकना मुश्किल जान पड़ा तो बोले, "राम नरेश भाई, बात न धरें तो कुछ मैं भी बोलूं?"

"कहो न, कौन रोकता है." आज्ञा रामजस काका ने दी.

नन्हकू सकपकाते-से बोले, "मेरा लड़का राज इनर कह रहा था कि उसके साहेब कि हां एक बार बरिआत आयी थी. इधर बरिआत आयी उधर लड़की अपने कौनो छैला-जार के साथ भाग गयी. दोनों शायद पहिले से ही आपस में लटपटाये हुए थे. बाकिर साहेब बड़ा चतुर था, उसने भनक न लगने दी और अपनी कुंवारी साली को उसी लड़के के साथ ब्याह दिया. आखिर ऊहो का करे? दहेज में 'इरिज-फिरिज' और न जाने का-का दे दिया था. बाद में खूब हो-हल्ला हुआ. बाकिर ऊ कहावत है न...भइल विवाह मोरा करबS का?"

"हूं ऊं ऊं..." नन्हकूकी बात पर एक ने सोचा तो सबने सोचना शुरू किया.

"बारात आ जाये तो दुआरे भी लग जाये." एक आवाज आयी.

"दुआरे?" उद्धव सिंह ने कहनेवाले की ओर अचकचा कर देखा, "झूठ-मूझ का दुआरे लगाकर क्या होगा, भाई?"

"खैर, अभी तो इस कुसंवाद को किसी तरह पता नहीं चलने देना है." रामनरेश सिंह ने चुप का इशारा होंठों पर उंगली रखकर किया तो सबके ऊपर सोच की एक अदीठी चादर-सी तन गयी.

"भला ऐसी बात छुप सकेगी?" कई शंकालु स्वर उभरे.

दृष्टि सीमा

सुरेंद्र सुकुमार

परमात्मा ने मनुष्य को पृथ्वी पर भेजा और कहा, "संपूर्ण पृथ्वी तुम्हारे भोग के लिए है जाओ और आनंद करो." पृथ्वी पर आकर मनुष्य के मन में एक विचार उठा वो पुनः परमात्मा के पास गया बोला, "प्रभो मैं एक छोटी-सी वस्तु मांगना चाहता हूं" परमात्मा ने कहा, "सब कुछ तुम्हारा है फिर क्या मांगना चाहते हो?"

मनुष्य बोला, "प्रभो बातों से मत बहलाइए".

परमात्मा ने कहा, "व्यर्थ के झंझट में मत पड़ो."

मनुष्य जिद पर अड़ गया परमात्मा ने कहा, "नहीं मानते तो मांगो"

"प्रभो जहां तक मैं देख सकूं वहां तक जमीन पैरों से नाप कर लेना चाहता हूं" मनुष्य ने चालाक बनते हुए कहा. परमात्मा ने एक बार और सोचने को कहा पर मनुष्य नहीं माना. अंत में परमात्मा ने कहा, "तथास्तु!" तब से लगातार मनुष्य आंख की सीमा तक की जमीन नाप रहा है सीमा बढ़ती जाती है मनुष्य दौड़ रहा है, आनंद उससे बहुत दूर है. स्वामी जी ने गंभीर स्वर में यह तथ्य बताया.

चलते समय धनवान शिष्य ने पूछा, "स्वामी जी मेरे योग्य कोई सेवा?"

"हां गंगा के किनारे भगवान का मंदिर बनवाना चाहता हूं कुछ दान दीजिए."

"स्वामी जी मंदिर बनवाकर भगवान को क्यों सीमा में बांध रहे हैं 'संबहि भूमि गोपाल की" कह कर शिष्य ने अपनी राह पकड़ी□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बिलकुल छुपेगी," सदानंद पंडित बहुत सहजता के साथ बोले, "शास्त्रों में कहा गया है, जिस तरह काग अपने मैथुन कर्म को, बिलार अपनी विष्ठा को सबसे छुपा लेता है, उसी तरह बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह बुरी मृत्यु की घटना को किसी के सामने उद्घाटित न करे." पंडितजी ने उद्धव सिंह को झकझोर कर सचेत किया, "जजमान, रामनरेशजी बुद्धिमानी की बात कर रहे हैं. आप शांत मन से इस पर विचार कीजिए, फिर मुझसे कहिए. मैं सब संभाल लूंगा." उन्होंने अपनी लुटिया-डोर उनके आगे बढ़ायी, "जाइए कुल्ला-कलाली कर आइए और इस दरद को छाछ की तरह पी जाइए."

"पंडिज्जी," वे व्यथित हो गये, "मेरी साध अधूरी रह गयी." उन्होंने मन का उत्ताप निकाला, "मेरो मन कछु और है, करता के कछु और."

"अरे भाई," पंडितजी ने हौसला बढ़ाया, "समझिए तो कि आत्मा नहीं मरती, सिर्फ चोला बदलती है. आप भी इस रुआंसी सूरत को उतार कर उसी तरह प्रसन्न मन होइए, जिस तरह नागराज केंचुल उतारकर प्रमुदित हो जाते हैं."

उद्धव सिंह कातर होकर बोले, "आप लोग मुझसे क्या चाहते हैं? किस रास्ते पर ले जाना चाहते हैं मुझे?"

"रास्ता है." रामजस काका चट्टानी स्वर में बोले. वे तभी से नन्हकू हज्जाम और रामनरेश सिंह से गुपचुप सलाह-मशविरा कर रहे थे. "रास्ते की झलक नन्हकू ने दे दी है. फरक इतना है कि अबकी शादी रासमणि की नहीं, किसी दूसरी की होगी, लेकिन बारात खाली नहीं लौटेगी....बोलिये पंडिज्जी!" काका ने लोगों पर सरसरी निगाह डाली.

सभी आश्चर्य के मारे कुछ कदम पीछे हट गये, "हं-क्...आं...?"

अपनी बात का मोल लगते देखकर नन्हकू का चेहरा गर्वोन्नत हो गया. उद्धव सिंह अभी भी लोगों की ओर मर्माहत होकर देख रहे थे, "यहां तो भर मुंह खून फैला है, काका! ऐसे में चुटकी बजाते शादी के लिए कौन लड़की तैयार होगी? इस हादसे को कैसे दबाया जायेगा? आखिर रासमणि के मरने की खबर मिलेगी ही."

राम नरेश सिंह पूछ बैठे, "काका, मैं तनिक शामियाने तक जाऊं?"

"जाओ, लेकिन अंडबंड कुछ बोलना मत." काका ने सिर हिलाया, फिर कुछ समझते हुए से बोले, "एक काम करो, अकेले न जाकर दो-तीन आदमियों को साथ ले लो और वहां बारातियों को किसी तरह बझाए रखो. गांव के किसी बुतरू-बच्चे को पास मत फटकने देना."

"यदि वे द्वाराचार वगैरह के लिए उकतायें, तो हम क्या जवाब देंगे?" साथ जाने वाले में से एक ने पूछा. काका दुविधा में पड़ गये.

पंडितजी तनिक रुष्ट हुए, "कहोगे क्या!" फिर तुरंत ठंडा होकर उन्होंने ही उपाय निकाला, "बहाना बना दोगे कि सीवान पर के इनार में हमारे ही पुरखे का एक सांड़ गिर गया है. अधिकांश लोग उसे निकालने चले गये हैं. उनके आते ही यहां विधि शुरू हो जायेगी."

"अभी पूरी बारात आयी भी नहीं है. सबके आते-आते काफी देर लगेगी." नन्हकू ने बताया.

उद्धव सिंह बेचैनी में कभी खड़ा होते तो कभी बैठ जाते थे. चित्त को सामान्य करने में उन्हें कठिनाई हो रही थी. एक तरफ बेटी की मौत की पीड़ा और दूसरी तरफ गांव का पानी उतर जाने का अंदेशा...इन दोनों के बीच की रस्साकशी में वे झूलने को अभिशप्त थे. उन्हें कहीं कोई आधार नहीं मिलता था, जैसे कोई पतंग धागे से कटकर हिचकोले खाती हुई उड़ी जा रही हो, अचानक वह किसी बबूल के पेड़ पर जा गिरी हो और हवा के झोंके से उसमें कांटे बिंध जाते हों हर बार एक नयी चिंदी उखड़ जाती हो. उन्होंने फरियादी मुद्रा में कहा, "जो काम होने जा रहा है, बहुत जोखिम है उसमें. मुझे तो उलझन इसी में है कि 'मरनी' को दबाया कैसे जाय? ऊपर से आप लोग शादी किसी और कैसे करेंगे?" वे भग्नोत्साह होकर बैठ गये.

काका बुरी तरह झुंझलाये, "लदनी घोड़ी की नाईं बारंबार थसकने से काम नहीं चलने को. अरे कड़ा बनो, कड़ा." उन्होंने आंखें मीसते हुए कहा, "देखा किसे नहीं है? मैं जो बोल रहा हूं तो क्या मुझे तकलीफ नहीं होती? लेकिन क्या करूं?" आंखों को जबरिया मीसने से काका के भी दो-चार बूंद आंसू निचुड़ ही आये.

"काका हो! एक दो आदमी की बात रहती तो मैं कहता दबा लो, लेकिन इतने लोगों को भुलवाया कैसे जाय?" वे फिर सिसकने लगे, "हे भैरो बाबा! मेरे ऊपर गाज गिरा दो कि इस जंजाल से छुटकारा पा लूं."

कुछ और लोगों के मन में भी अंदेशा था, "सबसे कठिन है स्त्रियों को मनाना."

पंडितजी झल्ला पड़े, "दुत्त मर्दे! आप सबों से इतनी छोटी-सी बात नहीं दबती?" उन्होंने कहने वाले की ओर उपहास से देखा, "और राजा भगदत्त ने अपने हाथी को दबाकर अक्षौहिणी सेना को चकमा दे दिया था."

"हाथी को दबा लिया था?...कौन?" दुखी लोगों में पंडितजी के लहजे ने एकबारगी औत्सुक्य-सृष्टि कर दी, "वह कैसे?"

पंडितजी ने अंगुलियां चटखायीं और आत्मविश्वास संजोकर बोले, "प्राग्ज्योतिषपुर के राजा थे भगदत्त. उनके पास ऐरावत कुल का एक ऐसा चतुर्दंत हाथी था, मानो मंदर सो देखत नर डरई; योजन ऊपर पांव सो धरई...दंत विशाल कहत नहीं आवै; मनहुं श्रृंग कैलाश सुहावै. हाथी ने पांडव दल को तुरई के खेत की तरह रौंद दिया. एक बार तो राजा भगदत्त ने कृष्ण और अर्जुन दोनों को मूर्च्छित कर दिया. भगदत्त को यह वरदान प्राप्त था कि जब तक हाथी मारा नहीं जाये, तब तक उनके शरीर पर खरोंच नहीं आ सकती. मूर्च्छा टूटने पर अर्जुन ने ग्लानिवश प्रण ठान लिया कि एक ही बाण में हाथी को मार गिराऊंगा, अन्यथा धनुष न छुऊंगा. भगदत्त ने भी डपटकर कहा कि तुम्हारे बाण से यदि हाथी गिर गया तो समझ लो मैंने हार मान ली. अर्जुन ने कान तक खींचकर ब्रह्मबाण मारा तो सही, लेकिन क्या मजाल कि हाथी को कुछ हुआ हो, सिवाय तनिक चिंघाड़ने के. बाण के मस्तक से टकराने के बाद भी हाथी न हिला, न डुला, न आगे बढ़ा, न पीछे हटा, न तिलमिलाया और न गिरा." वह रुक गये और लोगों के चेहरे पर आये भाव पढ़ने लगे. उनकी दोहा-चौपाई मिश्रित कथा कहने की शैली ने कल्पनातीत प्रभाव डाला. ऐसी कठिन परिस्थिति में भी लोग हाथी के बल से बुरी तरह प्रभावित-से हो गये.

सबने विस्मय से मुंह बा लिया, "अरे, ऐसा बली था वह हाथी!"

"उससे भी बली थे राजा भगदत्त!" पंडितजी कान खुजलाते हुए बोले, "सच कहूं तो हाथी कब का मर चुका था...छुट्यउ प्राण गिरन गज चहयो; तब भगदत्त जंघ सो गहयौ." उन्होंने अपनी पृथुल जांघों पर थपकी देनी शुरू की, "राख्यो साधि झुकन नहीं पायो; सकल सैन चकित ह्वै जायो." पंडितजी उद्धव सिंह को अंदर तक टोहने लगे, "राजा भगदत्त की वाहवाही होने लगी. दोनों ओर की फौज विस्मित खड़ी थी कि राजा ने क्या गजब कर दिया! अर्जुन धरती में गड़े जा रहे थे, अब कौन-सा मुंह लेकर युद्ध करते वह?"

इसी बीच एक नौजवान शामियाने से लौटा. लोग अचानक उसकी ओर मुड़े. उसके ललछौंहे चेहरे से लगा कि वह काफी उत्तेजित है. उद्धव सिंह ने आंखों के द्वारा उससे प्रश्न किया, मानो मुंह से बोल फूटते ही अनर्थ हो जाएगा. नौजवान तैश में आ गया, "सारे सब, द्वाराचार के लिए रामनरेश चाचा पर कुंकिया रहे हैं और कटुबोल भी बोल रहे हैं कि तुम्हारे गांव में सांड़ भी होते हैं. पहली बार मालूम हुआ. यहां तो सब गऊमुंहे दिखाई देते हैं." लड़के ने उलाहना दिया, "रामजस काका ने मना कर दिया था, सो मैं चुप रह गया, वरना उनको निकाल कर दिखा देता कि देखो हमारे गांव में कैसे सांड़ हैं."

पंडितजी ने हस्तक्षेप किया, "ओ-हो-हू! जबान खराब मत कीजिए. उनका पद है मसखरी करने का. यह तो खुश होने की बात है." उन्होंने हड़बड़ाहट दिखाते हुए कहा, "चलिए...सब लोग चलें....द्वाराचार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था की जाये."

रामजस काका ने उसी आवेग में अलंगनी से मलमल का कुरता उतारा और उसे हवा में दो-तीन बार झटकारते हुए पहन लिया. "रहमत मियां, आप लोग शहनाई-नफीरी 'इस्टाट' कीजिए." रोशन चौकी बजाने वालों को आदेश देते हुए वे पग्गड़ तहिया कर सिरपेंच बनाने लगे.

"काका, औरतें तो रो ही रही हैं."

"सात औरतों से भी ज्यादा कदराही तुम्हारे अंदर है. तुम्हारे इस लच्छन से तो लगता है पूरे गांव का पानी उर जायेगा." काका बिगड़ गये, "जाकर औरतों को मना नहीं करना है."

किसी ने खबर दी, "आंगन में हुजूम लगा है. वे समझाने पर मान थोड़े रही हैं. कुछ बोलने पर लाश से चिपटकर रुलाई और तेज कर देती हैं."

पंडितजी का मुंह व्यंग्य से टेढ़ा हो गया, "औरतें सुहराने से नहीं मानती हैं जी! उनको दबाना पड़ता है. मानी पुरुष पहले बातों से पुचकारते हैं जरूर, मगर नहीं मानने पर ताड़ना का सहारा भी लेते हैं. उधो सिंह जी, आप भीतर जाकर उनको रोकिए तो..."

"हां-हां, जो नहीं मानती, उसे हुमचकर दो-चार चटकन लगाओ, आप सटक जायेगी."

"बिलकुल," पंडितजी ने उकसाया, "ईख, आटा और स्त्रियों का मर्दन करना ही उचित होता है. आपद् धर्म में सब कुछ जायज है."

रहमत मियां ने नफ़ीरी शुरू की तो लोगों ने एक विचित्र अनुभूति-सी रेंग गयी.

कई मर्द लुगाइयों को चुप कराने चले. रासमणि की 'मिट्टी' को घेरकर वे कारन कर रही थीं. मर्द बमकने लगे, "अब रोना-धोना बंद करो. बहुत हो चुका सियापा."

उन लोगों ने रासमणि की मृत देह को उठाया और भूसेवाले कमरे में बंद कर आये.

उद्धव सिंह पत्नी को आगे की योजना से अवगत करा रहे थे. पहले तो वह सन्न रह गयी. पूरी बात सुनने के पहले ही उसने सिर पर आसमान उठा लिया, "ओ रे मेरो पंचो! एक तो ऐसा अशुभ हुआ...घर से लाश अभी निकली नहीं..." उसने पति की ओर अंगुली उठायी, "...और ये कह रहे हैं कि किसी दूसरी बेटी का विवाह होगा." वह लयबद्ध रोने लगी, "इनका दिमाग तो नहीं घूम गया? अरे कोई पंडिज्जी को बुलाए. ई विवाह कैसे होगा?...सबकी मति कैसे मारी गयी, रे दइया!"

पंडितजी द्वाराचार के लिए दूब बाछा रहे थे. वे वहीं से समझाने लगे, "शांत भी रहोगी, जजमानिन! अपने आप में कुछ भी शुभ-अशुभ नहीं होता. मनुष्य के फायदे के लिए जो कुछ भी हो वह शुभ होता है. युवतियां पीड़ा सहकर भी नाक-कान छिदवा लेती है, क्यों? आभूषण पहनकर सुंदर लगने के लिए, जार को रिझाने के लिए ही न!"

"एक बार तो ऐसा असगुन हुआ, यदि फिर कहीं कुछ..."

"जजमानिन, आग से जले घर में फिर आग लग जायेगी, इसकी आशंका से कोई चूल्हा जलाना बंद नहीं कर देता." उन्होंने उनसे उलझना छोड़कर सीधे उद्धव सिंह के कान में कहा, "मैं जितना समझाता जा रहा हूं यह उतना ही सिकहर चढ़ती जा रही है."

वे आगे बढ़े और पत्नी को एक तेज धक्का दिया, "मुंह की ठेपी (ढक्कन) खुल जाये तो बंद होने का नाम नहीं लेती, ना? अपना ठोर बंद करोगी कि नहीं? तभी से वकील-मुख्तार की तरह जिरह कर रही हो,"

स्त्रियां मारे डर के पीछे खिसक गयीं. उनकी घिग्घी बंध चली थी.

लोग मंत्रणा करने लगे. ठीक तो है...मरजाद ही रक्षा हर हाल में होनी चाहिए. बारात लौटाने की बदनामी से भी बड़ा है पैंतीस हजार रुपयों का डूब जाना. बेटावालों के पास जो गया वह लौटने से तो रहा. इससे भला कि किसी का विवाह हो जाये. मरजाद रक्षा के प्रश्न पर गांववालों में एक अनोखी एकता पैदा हो गयी. लोग इसके लिए कोई भी उपाय करने को तैयार थे. मगर अभी भी एक मुश्किल थी कि विवाह किस कन्या का हो.

जगमोहन सिंह बगलें झांकने लगे तो शिवकुमार सिंह से पूछा गया, "सावित्री के बाद मनोरमा भी तो ब्याहने लायक हो चली है. न हो तो उसी को..."

शिवकुमार सिंह भी तीन-पांच करने लगे. अपनी बारी आते देख कुलभूषण सिंह खुद बोल उठे, "वैसे मेरी सूरजकांति भी चौदहवां बरिस में गोड़ रखा रही है, लेकिन इनको तैयार करना पड़ा मुश्किल है."

"कुच्छो मुश्किल नहीं है."

"मौत हो गयी है न काका! लड़कियों को तो जानते हैं, शुभ-अशुभ के पचड़े में वे कुछ अधिक ही रहती हैं. पत्नियों को डराया-धमकाया भी जा सकता है, लेकिन बेटिया परायी अमानत...सब अपना-अपना भाग लेकर आयी हैं. इन पर दबाव डालना मैं ठीक नहीं समझता." कुलभूषण सिंह ने किसी तरह समझाना चाहा.

"हां भई, डायन भी अपना सगुन मनाती है." जगमोहन सिंह दबी जुबान में बोले.

रामनरेश सिंह के कोई बेटी नहीं थी, इसलिए वे कड़ककर बोलने लगे, "अशुभ का खौफ लगता है सबके मन पर छा गया है. समझाना-बुझाना व्यर्थ हो रहा है. लेकिन यों नकारने से भी काम नही चलेगा. मेरी बेटी रहती तो मैं किसी का मुंह नहीं जोहता, सबसे पहले तैयार होता. अरे भाई, कोई तो आगे आये."

सब चुपचाप सुन रहे थे, लेकिन अपनी बेटी देने का साहस किसी में नहीं था. सन्नाटा-सा छा गया इस समस्या पर. अचानक कौलेजिया रमेसर बोला, "क्यों नहीं शिवदानी काकी की बेटी जानकी को ब्याह दिया जाय?"

"अरे राम, वह तो बाल विधवा है!"

"उससे क्या?" रमेसर ने भरसक खंडन किया, "पति को छूये बिना गवने के पहले ही वह विधवा हो गयी है. सिर्फ एक बार सिंदूर पड़ जाने से क्या उसका स्त्रीत्व ही खत्म हो गया? देखिए, मुझे तो इस विकट समस्या से उबरने का एक यही उपाय दीखता है."

"विधवा विवाह हमारे यहां बारन (निषेध) जो है." रामजस काका

आप हार गयीं

आचार्य श्री रामचंद्र शुक्ल की मितभाषिता बहुत प्रसिद्ध थी. वे थोड़े से थोड़े शब्दों में अपनी बात गंभीरता से समझाने की अभूतपूर्व क्षमता के स्वामी थे.

तभी एक नवोदित कहानी लेखिका ने अपनी समकालीन एक कवयित्री से कहा कि वह आचार्य जी से एक बार में कम से कम पांच छह शब्द कहलवा सकती हैं.

कवयित्री ने कहा, "शुक्लजी आपके कहे अनुसार कह जरूर देंगे. पर वे कम से कम शब्दों से काम चला लेने में माहिर हैं. वे मितभाषिता का रंग यहां भी जरूर बतलायेंगे."

कहानी लेखिका ने तभी उससे अच्छी खासी रकम की शर्त लगा ली. दोनों ही आचार्य जी के पास गईं तो कहानी लेखिका कुछ बेधड़क बनने का प्रयत्न करती हुई बोली, "बाबूजी, आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है. आज मैंने शर्त बदी है कि मैं एक बार में कम से कम पांच शब्द आपके श्रीमुख से कहलवा लूंगी."

बाबूजी ने मंद-मंद मुस्कराते हुए दोनों को देखा और फिर कहानी लेखिका से कह उठे, "तुम हार गयीं."

...और वे दोनों ही ठहाका लगाउठीं. बाबूजी की मुख मुद्रा और मितभाषिता के सम्यक प्रयोग पर.

दुर्गाशंकर त्रिवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यह राय कुछ जंची नहीं. उनके होश में ही कई औरतें विधवा हुई हैं, इसी गांव में, लेकिन दुबारा विवाह तो किसी का नहीं हुआ. उन्होंने पंडितजी से राय मांगी, "रीति-सम्मत है यह."

"ऐसी कुरीति नान्ह जातियों में है." पंडितजी ने निरुत्साहित ही किया, "लेकिन बड़े लोगों में भी ऐसा होने लगे तो इस दुनिया के रामजी मालिक हैं."

"इसे कुरीति कहेंगे, पंडितजी? बल्कि असल पुण्य का काम यही है. अभी जानकी की उमर ही क्या हुई? तिस पर घर में किसी मर्द का साया नहीं...मा भी रांड है उसकी. एक दुखियारी की जिंदगी संवर जायेगी."

असहमति के साथ-साथ लोगों में खुसर पुसर भी चलने लगी. अपनी बेटियों के लिए अपशकुन माननेवालों को इससे बेहतर मौका न मिलता. यदि यह बला जानकी के सिर टले तो आप भी बचो और गांव की नाक भी बचा लो. जगमोहन सिंह, शिवकुमार सिंह और कुलभूषण सिंह प्रकट तो, कुछ बोले नहीं, लेकिन जगमोहन सिंह ने रमेसर को हौले से उकसाया, "तुम्हीं ऐसा करा सकते हो, रमेसर!"

"भई, उस लड़के को भी देखना होगा. क्या वह किसी विधवा को वरण करने के लिए तत्पर है?" पंडितजी ने पांसा फेंका.

"उसकी राय का प्रश्न कहां उठता है?" रमेसर ने चिढ़ते हुए पैर पटक कर विरोध किया, "लड़के की मानी जाये तो किसी भी लड़की से बलात् विवाह की गुंजाइश नहीं ठहरती."

"ठीक है. लड़के की राय नहीं तो कम-से-कम जानकी की राय तो लेनी चाहिए."

"इसका जिम्मा मैं लेता हूं...अभी आया." रमेसर दौड़कर एक औरत के पास चला गया और जानकी के बारे में पूछ-ताछ करने लगा. औरत ने बताया कि शादी वाले घर में भला वह कैसे आती. हां, रासमणि की 'मरनी' सुनकर आयी थी, फिर चली गयी.

रमेसर जानकी के घर चला गया. वह गगवर मिट्टी से बाल धो रही थी. वह उसकी अनछुई जवान कद-काठी और अखरे मांग को देखकर सिर धुनने लगा. अपनी सहानुभूति को सच्चाई में बदलने के लिए उसने जल्दी-जल्दी में सब कुछ बताया.

जानकी ने शीघ्रता से बाल धो लिये. अंगोछे से पानी झाड़ते हुए सिसक-सिसक कर कहने लगी, "भइया रमेसर, मजाक करने को मैं ही मिली? मेरे करम की रेख ऐसी ही रहती तो आज मैं यों दुत्कारी जाती? उससे मत बोलो, ऐसे मत हंसो, तीखा-चटपटा मत खाओ, सिंगार-पटार मत करो, तेल-साबुन के बदले मिट्टी लगाओ, किसी के शुभ काज-परोजन में छाया मत दिखाओ...जहां इतने चटपटे रिवाज हों, वहां मेरे विवाह की बात कैसे उठी, भैया? लोग मुझे नेत-धरन में रहते देखना चाहते हैं, लेकिन गली-खोरी में कहीं अकेले मिल गयी तो मटकी (सैन) मारने से भी बाज नहीं आते." वक्त की मार ने उसे असमय प्रौढ़ और सशंक बना दिया था, "लोग इसे पचाँ पायेंगे?"

"कोई दूसरा अवसर रहता तो सच में नहीं पचा पाते, मगर आज परिस्थिति ही विकट है. उन्हें किसी लड़की का ब्याह कर देना है, बस!" रमेसर उसका हौसला बढ़ाने लगा, "तुझे देखकर कसक उठती है रही! इस मौके का फायदा उठा ले. बस, एक बार 'हां' कह दे."

"मेरे कहने या न कहने से क्या होनेवाला है. मैं 'ना' भी कहूं तो गांववाले मुझे जबरदस्ती ब्याह सकते हैं...मैं यदि 'हां' ही कहूं तो लोग मेरी शिकायत ही करेंगे." जानकी के भीतर सोच-विचार की एक लहर-सी चलने लगी. एक तरफ लोक-लाज, दूसरी तरफ भाग-साज.

रमेसर अपनी सफलता की रास थामे जा पहुंचा लोगों के पास उसने स्वीकृति की बात बतायी तो किसी को विश्वास नहीं हुआ.

"एक बोली में ही तैयार हो गयी?" रामजस काका को अभी भी प्रतीति नहीं थी.

"कहीं रमेसर उसे जबरिया तो तैयार नहीं करवा रहा है?" पंडितजी को खटका हुआ.

रमेसर क्रुद्ध हो उठा. वह चीख पड़ा, "आप लोग खुद चलकर पूछ क्यों नहीं लेते?"

जानकी के अंदर वह एक आशा जगा गया था. आईना हाथ में लिये वह प्रमोहन भाव से अपनी सूनी मांग निरख रही थी.

इतने लोगों को एक साथ आते देखकर वह बरसा में भीगी बेंत की छड़ी की तरह झुक गयी. उसके हाथ से आईना सरक गया और कांच की किरचें बिखर गयीं. अलग-अलग टुकड़ों में उसकी खंड-खंड छवि झलमलाने लगी.

"कलजुग कहना भी ठीक नहीं होगा. घोर भठजुग है यह." पंडितजी छान लगे घोड़े-सा ऐंठ कर रह गये, "गोसाईं जी ठीक ही कह गये हैं—सौभागिनी विभूषण हीना; विधवन के श्रृंगार नवीना."

रमेसर उनको कड़ी फटकार देना चाहता था, लेकिन क्रोध को दबा लेना अवसर की मांग थी. वह अधिकार भरे स्वर में बोला, "जानकी दीदी, जरा इनके सामने हां कह दे. ये लोग मुझे झूठा मान रहे हैं."

पंडितजी को मौका मिल गया, "सुनो लोगों! जानकी सतवंती धिया है. ऐसी-तैसी नहीं कि विवाह के लिए झट से तैयार हो जाये. बाल विधवा में महारानी आदिशक्ति का वास होता है. उससे बरजोरी करना अनिष्टकारी भी हो सकता है."

जानकी पंडितजी को अजीब निगाहों से घूरने लगी. उन पीड़ित आंखों की भस्मकारी लपट को झेल पाना पंडितजी के लिए कठिन था. चेहरा घुमाकर वह बोले, "यदि आंतरिक इच्छा है तो सबके सामने स्वीकार तो

रामजस काका निष्ठुर भाव से पूछने लगे, "सच में तैयार हो तुम? हो तो लाज-शरम त्याग कर बोलो. अलपा का माड़ो (अल्पना के लिए बना कमजोर दिखावटी मंडप) बनने से नहीं चलेगा."

एक ही बात बार-बार पूछने पर उसने कछुए की तरह अपना चेहरा घुटनों में गाड़ लिया. प्रश्न उसके कानों के पास हथौड़े बजाने लगा. मन की इच्छा मन में ही रह गयी. लाज के मारे वहां रहना भी दूभर हो गया. वह आईने के नुकीले टुकड़ों को रौंदती घर में भाग गयी और दरवाजा अंदर से बंद कर लिया. तलुवे से चूते खून की लंबी धारा पसर गयी.

रमेसर पागलों की तरह सांकल खटखटाने लगा, "तू सबके सामने बोली क्यों नहीं? यही तो चाहते हैं ये कि तुम चुप लगा जाओ."

मगर दरवाजा चरमराया तक नहीं. सांकल खटखटाना नाकामयाब रहा.

रमेसर झींकने लगा, "अब मैं किसी का विवाह नहीं होने दूंगा." वह लपककर शामियाने की दिशा में जाने लगा,

उद्धव सिंह ने दौड़कर लंगड़ी मारते हुए उसे नीचे गिरा दिया. उसकी छाती पर असवारी कसते हुए वह दहाड़ने लगे, "अभी तुम्हारे बराबर जांगर है मेरे अंदर, बेशी भीखनई करोगे तो तुम्हें बैंगन का चोखा बना डालूंगा."

"बड़ा बिषहर लड़का है! इसका भी हाथ-पैर बांधकर इसी कमरे में बंद कर दो." पंडितजी बोले, "न जाने कब कैसी पगलेटई कर बैठे."

बंधन की यातना से रमेसर डर गया. उद्धव सिंह उसको अभी भी दबाये हुए थे. उसने जगमोहन सिंह की तलाश की. वे न जाने कब खिसक गये थे. अब जहां इतने बलेसर वहां एक रमेसर क्या कर लेगा, यह सोचकर वह मुंह न खोलने की कसमें खाने लगा.

सबको लगा कि एक बहुत बड़ा अनर्थ होने से टल गया.

भेद तो छुप गया, लेकिन अब? उद्धव सिंह को लगा कि प्रत्येक आदमी उनसे यही सवाल कर रहा है, अब क्या करोगे उद्धव सिंह? बेटी के बदले नेती कहां पाओगे? उनकी हताशा और व्यग्रता परवान चढ़ने लगी. "ओखली में जब मेरी मूंडी पड़ी है, तब मूसल की मार मुझे ही सहनी पड़ेगी." वह पंडितजी की ओर घूमते हुए बोले, "महाराजजी, अपनी भागमणि का ब्याह कर दे रहा हूं."

"ये ल्लो! अब तक किसी को सूझा ही नहीं."

"यह तो अति उत्तम है." पंडितजी ने पूरे जोशोखरोश के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थन किया, "बेटी के रजस्वला होने के पहले जो पिता कन्यादान कर दे, अवश्य वह बैकुंठ का अधिकारी होता है."

उद्धव बहू ने सुना तो आपा खोकर चिकरने लगी, "हाय मोरे दइया! आठ बरस की अनबूझ मोरी बिटिया, इसे बिहिटि पहिनने तक लूर नहीं इतने बड़जेठ दुलहे से कैसे ब्याही जायेगी? कोई तो रोके इसे." उसने पंडितजी के पैर पकड़ लिये,

उद्धव सिंह ने पत्नी की गर्दन दबोच ली, "बस, बहुत नखरा हो गया, राम जवाहिर की माई! अब बेशी नगरनाच जन दिखाओ, नहीं दो जान दह लूंगा." उन्होंने इतने जोर से गर्दन दबायी कि पीड़ा से वह अधमरी हो चली. पत्नी उनकी बांहों पर झूल गयी तब उनकी समझ में आया कि अभी-अभी जो गर्दन उन्होंने पकड़ी हुई है वह किसी गौरैया की गर्दन है. उन्होंने पकड़ ढीली की और डांटने लगे, "समझ ले...अब कलुवाबीर की ओझाई की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए. क्या भागमणि के लिए मुझे मोह नहीं है? फिर भी दस भाई जो कहें वह मानना पड़ता है."

गर्दन दब जाने से वह खांसने लगी थी. किसी तरह उसने अपनी कसक निकाली, "बाकिर ई विवाह कैसे होगा? न इसके नाम से सगुन उठा, न कोई मंगल हुआ?"

"कहा गया है," पंडितजी बोले, "शास्त्र अंचितित पुनि-पुनि देखे. शास्त्रों में जिस पर चिंतन नहीं हुआ है, उसे भी अपनी समझ-बूझ पर जांच-परखकर कर लेना चाहिए. मंगल तो छनभर में हुआ जाता है, जजमानिन! जो पंडित जनमपत्री लिखता है वही श्राद्ध भी करवाता है और विवाह भी. आप मेरे बताये शुरू तो करें."

मर्दों ने समवेत स्वर में धमकाना शुरू किया, "खाली चुप रहने से नहीं होगा. अब जल्दी-जल्दी मंगल-गीत भी गाओ, नहीं तो कपाट रंग दिया जायेगा."

मारे भय के औरतों के कंठ से गीत के खरज बोल फूटे :

कोरी नंदिया में दहिया तS अमरीत जोरन
ए से हो दहिया खइहें रासमणि देई होइहें अछय अमSSS र...

गीत एकाएक थम गया. रोकते-रोकते रासमणि का ही नाम उचर गया गीत में...पिछली आदत के तहत. औरतों के लिए यह अंतहीन विडंबना थी. एक तो मौत, दूसरे रोने-धोने की छूट तक नहीं, ऊपर से मंगल-गीत गाने का खौफनाक दबाव. औरतें अपनी भूल पर आप चिहुंक कर फिर सिसकने लगीं.

उद्धव सिंह ने पत्नी को खा जाने वाली दृष्टि से देखा. वह बांस के कोंपल की तरह कांपते हुए भंडार घर में भाग गयी. उन्होंने भीतर जाकर पत्नी को कसकर चांटा मारा, "ससुरी, नाकबुद्धि! ठीक कहते है कि मेहरारूओं के नाक न हो तो गू खा ले. अभी भी तेरे छोटे माथे में नहीं समाया कि विवाह भागमणि का...एक बार फिर सुन ले...भागमणि का..." उन्होंने फिर चांटा मारा, "दूसरा गीत शुरू कर बदमाश! नहीं तो कोइरी के देवता की तरह चुपचाप पड़ी रह."

वह भाव शून्य हो गयी. दो-दो थप्पड़ इतने जोर से लगे कि कान झन्ना गये. गाल और कनपट्टी पर उंगलियों के नील पड़ गये. दुख, त्रास और चोट के सम्मिलित संघात ने खड़ा रहने में भी लाचार कर दिया. वह मैदेवाले कनस्तर का सहारा लेकर उझक गयी.

औरतों ने उस अधूरे गीत के बदले दूसरा गीत शुरू किया :

शुभ बोलु...शुभ बोलु...शुभ बोलु ए ब्राम्हन
शुभ ले बाहर भइली भागमणि शुभवा...अंचरन्ह ढांकि ले ली
जे सिन्होरा ले बाहर भइले शुभ दुलहा

आखिर विवाह का कार्यक्रम इस मंगल गीत के साथ शुरू कर ही दिया गया. लोगों में उत्साह आया, शहनाई-नफीरी में जान आयी, गीतों ने लय पकड़ी और सारे तामझाम में शोक रामजस काका के मलमल के नये कुरते के नीचे दबी फटी-चीकट गंजी की तरह ढंक गया.

कुशल यही थी कि शामियाना गांव से दूर बाग में पोखरे के पास गड़ा था. यहां के टंट घंट वहां सुनाई न पड़ते थे और गांव वालों ने भी इस मामले में अद्भुत मिलाप का परिचय दिया.

द्वाराचार की विधि जल्द निबटायी गयी. बाराती पुनः शामियाने में जाकर बैठे. पहले जलपान की व्यवस्था दुआर पर निश्चित थी, लेकिन दूरी बरतने के लिए तश्तरियां अब वहीं भिजवा दी गयीं. उद्धव सिंह ने समधी के सामने पटोर से ढंका पानी भरा लोटा रखकर 'आज्ञा' मांगी. समधी अपना समधियाव दिखाने लगे, "मुझे पता नहीं था कि आप लोग अतिथि-सत्कार में इतने लापरवाह हैं, पहले लगा था कि एक महीन पानीदार घर में संबंध करने जा रहा हूं, लेकिन..." वे त्रुटियां गिनाने लगे, "कभी से हम बैठे हुए हैं, लेकिन कोई झूठे मुंह भी पूछने नहीं आया कि हंकासे हो या पियासे हो. हमारा पौनी दुआर पर जाने लगा तो उसे भी रोका गया. यह लोटा-पटोर ले जाइए. हमें आज्ञा की जरूरत नहीं है."

इधर के सयाने-परबीन हथजोरी करने लगे. मान-मनौबल का क्रम कुछ लंबा खिंचा तो समधी एक बाल सिंह जरा नरम पड़ गये, "ऐसे ही बहुत विलंब हो गया है. दस-एगारह बजे तक समूची बारात का भोजन हो जाना चाहिए, तभी हम डाल-दौरा मंडवे में भेजो."

अंधे को जैसे आंख मिली, बेटीवालों ने रीति के मुताबिक 'आप जैसा कहें वैसा हो' कहकर समधी को तुष्ट कर लिया. जनवासे का इंतजाम कुछ व्यवहारपटु लोगों पर छोड़कर बाकी लोग घर लौटे.

मगर समस्यायें अनगिनत थीं. भागमणि को औरतों ने जब सिंगार करने के लिए उठाया तो वह कुहराम मचाने लगी, "दीदी के दुलहे से मेरा ब्याह नहीं होगा."

रामजवाहिर ने बहन को पुचकारा, "काहे री? अब तो ई तेरा दुलहा हुआ."

वह सुबकने लगी, "ना, ई दीदी का दुलहा है, दीदी का दुलहा अच्छा नहीं है."

रामजवाहिर ने दुलार में धमकी को भी शामिल कर लिया, "तू का जानती है री कि दुलहा कैसा है और कैसा नहीं?"

"दादी जब खिसियाती थी दीदी पर," वह नाक सिकोड़ने लगी, "तब नहीं कहती थी कि इस करमजली का एक तो कहीं ब्याह नहीं होगा, यदि होगा भी तो दुलहा इसी के जैसा सकपकाह मिलेगा."

"बड़ी पदबिच्छी (तेज डंकवाला बिच्छू) बाडू ए बबुई." दादी बड़बड़ाने लगी, "बेसी पकठप्रान जन बनS हमरा प लांछन लगा के."

व्यवसाय

प्रवासी विनयकृष्ण

सुविख्यात साहित्यकार व दार्शनिक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने एक बार किसी फोटोग्राफर से कुछ फोटो खिंचवाये. यथासमय दो सौ पौंड का बिल आया. शॉ ने फोटोग्राफर को दस-दस पौंड के बीस चेक हस्ताक्षर करके दे दिये.

फोटोग्राफर ने अचरज से पूछा, "हजूर, दो सौ पौंड का एक ही चेक देने की बजाय आप मुझे दस-दस पौंड के बीस चेक क्यों दे रहे हैं?"

शॉ ने हंसकर कहा, "तुम व्यवसाय जरूर करते हो, पर तुम्हारी व्यावसायिक सूझबूझ संदिग्ध है. भई, सीधी-सी बात है कि आजकल मेरा हर हस्ताक्षर पच्चीस पौंड में बिक रहा है. तुम सारे चेक बेचकर पांच सौ पौंड कमा सकते हो. और जो आदमी ये चेक खरीदेगा, वह मेरे हस्ताक्षर के लिए उन्हें अपने पास ही सुरक्षित रखेगा. बैंक में न भुनने से ये चेक मुझे भी दो सौ पौंड का फायदा कराएंगे—समझ गए न!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दत्त मरबिगौनी दुलहा बड़ा नीक है." औरतें मुंह में पल्लू ठूंसकर सूखी हंसी हंसते हुए बोलीं, "आग नियर गोरा और पान के पत्ते नियर ढुरहुर दुलहा है."

"ना, मेरा ब्याह मेरे दुलहे से होगा?" वह इतराने लगी.

दूसरे लोग भी समझा रहे थे, "बुचिया, विवाह करोगी तो मिठाई मिलेगी, नया कपड़ा मिलेगा." भागमणि को मिठाई दी गयी. दो-चार मिठाइयां खाने के बाद उसने हठ त्याग दिया और नया कपड़ा मांगने लगी. अचानक लोगों को होश आया कि इसके लिए शादी का जोड़ा तो बना ही नहीं, बने भी कैसे? अब क्या किया जाये? 'इत्ती बूटी' लड़की पंचगजी साड़ियों में डूबकर रह जायेगी. तो क्या रासमणि की साड़ियां फाड़कर छोटी कर ली जायें? लेकिन फटी साड़ी में और बहुरुपिया जैसी लगेगी भागमणि. लोग नीरू बज्जाज के पास दौड़े. यदि उसके पास कपड़े मिल गये तो उसके भाई बीकू दर्जी से सिलवा लिया जायेगा.

लाख सावधानियों के बावजूद समधी को रासमणि की मौत की खबर मिल गयी. लोगों को रमेसर पर शक था. लेकिन उसने तो कसम खायी थी, उसे शामियाने के पास जाते हुए भी किसी ने नहीं देखा था. रामनरेश सिंह उस पर ताबड़तोड़ घूंसे बरसाने लगे, "जानता कि तू ऐसा कुलबोरन निकलेगा तो पैदा होते ही तुझको नून चटा दिया होता मैंने. अब से मुझे बाप मत कहना. तू मेरी बूंद का है ही नहीं.

आंख-मुंह सुजाकर ही वह वहां से हट पाया.

एकबाल सिंह छनमना कर रह गये. मरनी को दबाकर आठ-नौ साल की बच्ची से विवाह करने की गुप्त योजना पर वे क्रोध से सुलग रहे थे. उन्होंने साफ-साफ बात कर लेना उचित समझा. ऐसा न कि बतानेवाला झूठ बोल गया हो. वैसे बेटीवालों का हावभाव संदेहास्पद भी था और नहीं भी. उन्होंने चचेरे भाई मंगलेश्वर सिंह से राय ली. वह भी बेचैन हो गये. उनका स्वर क्रमशः उग्र होता गया, "तब तो बहुत बड़ा फरेब हुआ हमारे साथ. द्वाराचार में भरसक अबेर हुई थी! इनार में सांड़ गिरने का तो बहाना था. सांड के साथ क्या सब गांववाले भी गिर गये थे? ठहरिए, मैं पूछता हूं उधउआ से. सिर्फ देखने में 'सोझबक' लगता है, लेकिन है एक नंबर का चिड़ीमार."

एकबाल सिंह ने उनका कंधा हौले से दबाया, "तुमसे कुछ कहने का मतलब नगर-ढिंढोरा सुनना होता है. कायदे से ही कोई सुराग ढूंढ़ा जाता है. गुरुहस्त के समय हम दोनों चलेंगे और लड़की दिखाने के लिए बाध्य करेंगे. वैसे मुझे यकीन नहीं होता. यदि कुछ हुआ रहता तो ये इस तरह हंस-बोल पाते?"

"औरतें भी गीत-गैनई कर रही हैं. मरनी होने पर वे जरूर रोती-चिलकतीं. खुशी हो या गमी उनसे ही तो पता चलता है." मंगलेश्वर सिंह भी सांय-सांय बोलने लगे.

तब तक हज्जाम बुलावा लेकर आया, वरपक्ष के आठ-दस लोग गुरुहस्त कराने चले. समधी ने उद्धव सिंह को एकांत में ले जाकर कहा, "मैं जरा दुलहिन को देखना चाहता हूं."

"त-त-तो अभी क-कैसे देखिएगा?" मारे घबराहट के वे हकलाने लगे, "प-पहले तो आपने क-कुछ कहा नहीं?"

एकबाल सिंह ने सीधे ढंग से अपनी शंका व्यक्त कर दी कि उन्हें कुछ अनाप-सनाप सुनने को मिला है. उद्धव सह बदहवास हो गये. उन्होंने पंडितजी को बताया. वे ढुलकते हुए आये और समधी को तोष देने लगे, "सरकार की चिंता बेवजह है, किसी चुगले ने आपका कान तो नहीं भर दिया? तभी आप ऐसे अधीर हो रहे हैं. मुझे तो जानते हैं न. एक तरह से मैं ही सूत्रधार हूं इस विवाह का. मैंने दोनों तरफ से अगुवई की है. आपने जितना कहा, उतना दहेज भी दिलवा दिया. आप मुझ पर आंख मूंद कर भरोसा करें."

उद्धव सिंह बेतहाशा दोनों हथेलियां रगड़ रहे थे. पंडितजी ने उनको आदेश दिया, "जजमान! गुरुहस्त के बाद लड़की दिखा दीजिए." उन्होंने कोनसिया घर की ओर इशारा करते हुए कहा, "इसी कोठरी में दिखा दीजिएगा. जब संबंध कायम करना है तो आपस के सारे शक मिट जाने चाहिए." वे समधी की ओर उन्मुख हुए, "अभी की विधि तो संपन्न हो ले."

एकबाल सिंह मान गये. गुरुहस्त करने की आज्ञा देते हुए वह गहने की पेटी में से सिर से लेकर एड़ी तक के आभूषण खुद निकालकर देने लगे. मंड़वा सोने-चांदी के गहनों की चमक से गहगह करने लगा. औरतें गाली गाने लगीं :

समधी करार कइले सोने का गहना, पीतर के नइखे ठिकाना जी

गाली सुनकर समधी की की बांछें खिल गयीं. वे दुगुने उल्लास में गहनों को साफे की कोर से पोंछ-पोंछ कर झमकाने लगे. औरतों को सुनाने के खयाल से वे ऊंची आवाज में बोले, "ये समूचे गहने मैंने सेठ बसंतलाल चमनलाल के यहां से निखालिस सोने के लिये हैं. समधिन जी को इसकी पक्की रसीद दे रहा हूं. वे जरा जतन से अपनी फुफुती में संभाल कर रखेंगी."

गुरुहस्त की समाप्ति पर उन्होंने अपना इरादा दुहराया.

"दूसरे लोगों को जाने दीजिए. आप रह जाइए. लड़की देखने में गोहार की जरूरत तो है नहीं." राम नरेश सिंह बोले.

समधी को दुआर पर छोड़ बाकी लोग शामियाने में चले गये. रामजस काका उनके बगल में बैठते हुए बड़े मधुर स्वर में बोले, "सरकार, गुरुहस्त तो हो गया. आपने कहा था न कि एगारह बजते-बजते बिजे हो जाना चाहिए. अब तो केवल दस मिनट बाकी है बारह बजने में. यदि हुकुम हो तो बारात को जीमा दिया जाये..."

"कोई बात नहीं. आराम से बिजे करवाइए. मैं इसके बाद ही देखूंगा." समधी जी ने भले मन से साथ दिया.

बेटीवाले कुछ देर के लिए ही चिंता मुक्त हो सके...बस, बारात खिलाने में जितना समय लगा उतने भर के लिए. अब तो बखेड़ा बढ़ के रहेगा. उद्धव सिंह की सांस तेज चलने लगी, नदी को तैर कर पार करनेवाला किनारे से थोड़ी ही दूर पर हांफ गया हो जैसे.

काका बेतरह चिढ़ गये. उन्होंने आंगन में जाकर आक्रोश निकाला, "वह अभी भी मलूकदास की तरह बैठा हुआ है. दिखाने के बहाने कोठरिया में बुलाओ और न हो तो हाथ में आईना पकड़ाकर बंद कर दो उसी में. जब तक शादी नहीं हो जाती, ससुर अपना ही मुंह निरखता रहे रातभर."

मन ही मन तय हो गया कि आगे क्या करना है. समधी को बुलाया गया. वे बेधड़क कोठरी में घुसे और खाट पर आसन मार ली. काफी देर तक इनकी ओर से कोई सुगबुगाहट न हुई. समधी उकता गये, "अब देरी किस बात की?"

"आं...देरी?" कई लोगों ने दरवाजा घेर लिया, "लड़की आप देखेंगे ही?"

वे तनिक रोष में बोले, "तब क्या आपको देखूंगा? नाहक शक को बढ़ावा दे रहे हैं."

"छोड़िए...मत देखिए. हमारी बात पर भरोसा कीजिए. लड़की हर तरह से जोग है." एक आदमी ने कुभाव से कहा, "लड़की दिखाने का हमारे यहां रिवाज भी नहीं है."

"जोग है तो दिखाते क्यों नहीं?" समधी के संदेह की पुष्टि होने लगी.

"नहीं मानियेगा तो..." रामजस काका ने आव देखा न ताव, दुलकते हुए गये और भागमणि को गोद में उठा लाये. वह छलुवा कबूतर की तरह बेखलायी हुई-सी टबर-टबर ताक रही थी. उसका ताकना देखकर सबका कलेजा दरक गया.

समधी को जैसे ततैया ने डंक मारा हो, वे ढेंकी की तरह उछल पड़े, "अरे बापं रे! ऐसा धोखा? बहुत बड़े मक्कार हो तुम लोग. पहले तो रोगी लड़की के साथ विवाह ठीक किया, जब वह मर गयी तो इस बच्ची को हमारे गले मढ़ रहे हो. यह विवाह कभी नहीं होगा." उन्होंने चीखते हुए-से उद्धव सिंह की बांह पकड़ ली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामजवाहिर को लगा कि वे बाप को पटखनी देनेवाले हैं. उसने लाठी तान ली, "बहुत हो चुका अब खाट पर चुपचाप बैठे रहिए. बेसी टंडेलई किये तो समूची लाठी नाभी तक हुलकार दूंगा."

समधी का तो मानो खून सूख गया...तो मीठी-मीठी बातें करते हुए कोठरी में बुलवाकर इन लोगों ने चक्रव्यूह में फंसा लिया है. वे बिफरने लगे, "मुझे क्या उठौवा-चलौवा जान लिया है या मेरे लड़के को आपने कीन लिया है? जो चाहेंगे उसे मैं क्या मानता जाऊं? हरगिज नहीं..." वे क्रोध में हाथ भांजने लगे, "अकेला निहत्था पाकर आप लोग बाघ बन रहे हैं? मर्दानगी दिखानी है तो 'रन' में चलिए." वे सबको ललकारते हुए बाहर खिसकने लगे, "नतीज़ा बड़ा खराब होगा, वरना सीधेमन से मुझे जाने दीजिए."

"आं...हां, किधर चले आप?" दो-तीन आदमियों ने उनको बलपूर्वक बैठा दिया.

"ए भाई, यहां तनिक भी दया-माया नहीं है क्या?" समधी ने गुहार मचायी, "यहां कोई मुखिया भी नहीं है?"

एक आदमी आगे निकल आया, "यह मैं हूं यहां का मुखिया, इसवर दयाल चउबे. बोलिए, क्या चाहते हैं?"

"आप मुखिया होकर भी यह अन्याय देख रहे हैं?" एकबाल सिंह ने न्याय की दुहाई देकर उनके विवेक को जगाना चाहा.

"कोई अन्याय नहीं करता." मुखिया जी ने प्रतिवाद किया, "विवाह के लिए तैयार होइए और तब देखिए मेरा इंसाफ...एकदम दूध का दूध और पानी का पानी...दोनों अलग."

"मुखिया ऐसे हैं तो सरपंच कैसा होगा?"

"हुकुम सरकार! मैं हूं सरपंच, तिरलोचन ठाकुर. दरकार हो तो कहिए पूरी पंचायत बुला दूं." सरपंच जी ने आंखें मटकायीं, "यह मामला सुन कर ही तो हम आये हैं. हमारा फैसला यही है कि आप चुपचाप मान जाइए."

"मैं फौजदारी मुकद्दमा दायर करूंगा आप लोगों पर." समधी चिल्लाये.

"चुप रहो चांडाल कहीं के! यहां से जाने पाओगे तब न...." कई लोग एक साथ बोलने लगे, "जानते हो पुलिस थाना यहां से अट्ठारह कोस दूर है, इस दियारे में हमारा ही कानून चलता है."

समधी अपमान से पटुवा गये. उन्हें लगा कि धरती उलट गयी है, तिरसठ का छत्तीस हो गया है. कहां बेटेवाले लड़की को जीतकर ले जाते थे और आज?

"आप लोगों को शुभ-अशुभ से भी डर नहीं लगता? इसी लच्छन से बेटी मरी है आपकी. और फिर विवाह करना चाहते हैं. आखिर मेरा भी लड़का है. उसे कहीं कुछ हो-हवा गया तो...." समधी जी डबडबा गये. अचानक उन्हें पंडितजी का स्मरण हुआ. वे पुकारने लगे, "पंडिज्जी कहां गये? उनके चलते ही मैंने इस घर में विवाह की हामी भरी थी. जो जानता कि ऐसी अगुवई करेंगे तो कभी 'हां' नहीं करता. कहां हैं पंडिज्जी? सामने तो आइए...."

पंडितजी इस लंका कांड से निरपेक्ष से हो गये थे. उन्हें मार-पीट से क्या लेना-देना! पंडित का काम सिर्फ मंत्रणा देना होता है. मगर बुलाहट होने पर आये. पंडितजी को देखते ही समधी अल्लाने लगे, "आपके रहते मेरी ऐसी दुर्गति हो? अगुवा हैं तो आप मेरी ओर से भी हुए. इन लोगों को समझाइए जरा..."

"मैं यहां का शहरकोतवाल नहीं हूं कि लोग मेरी धौंस मानेंगे." पंडितजी बोले, "इस तरह गंवारपन क्यों करते हैं आप लोग? यदि यह अड़ जायें कि विवाह नहीं करना है तो आप लोग इनका क्या उखाड़ लेंगे? आप सभी बाहर जाइए तो, मैं जरा इनसे बतिया लूं."

पंडितजी के इस परिवर्तन पर सबको विस्मय हुआ, लेकिन उनकी कोई नयी चाल समझकर सभी उनके अदब में हट गये.

एकांत पाते ही एकबाल सिंह ने दुखी होकर कहा, "पंडिज्जी, आप भी चाहते हैं कि मैं जिंदा माछी जबरदस्ती निगल लूं?"

"इसमें जबरदस्ती और जिंदा माछी निगलने की कौन-सी बात है?"

"एक कमसिन लड़की उतने बड़े मेरे बेटे के साथ जोग कैसे बैठेगी?"

"अब आपको भी दुनियादारी सिखानी पड़ेगी? अरे लड़की के जोबन और जांघ की होनहारी देखी जाती है न कि उमर. कुबजा कौन डापुट स्त्री थी...सात टेढ़े टेढ़...लेकिन कृष्ण भगवान अपनी तन्वंगी पटरानियों को छोड़कर उसी पर जान छिड़कते थे." पंडितजी ने देखा कि तर्कों का सहारा बहुत दूर तक मदद न करेगा. वे असली मुद्दे पर आ गये, "सब समझ रहा हूं कि आप झूठ-मूठ की तरंग क्यों बांध रहे हैं. अब और एक पैसा नहीं मिलेगा. यदि आपकी पोल खोल दूं तो कहीं का नहीं रहेंगे. बेटे का कहीं ब्याह नहीं हो रहा था और जब मैंने ठीक करवा दिया तो नौटंकी दिखाने लगे? पूरे पैंतीस हजार नगद चेटियाते वक्त नौटंकी दिखाते, तब जानता आपको?"

"उसमें से पांच हजार बभनौती तो आपने ही ले ली है."

"मेरा लेना इतना अखरता है तो मैं लौटाए दे रहा हूं." पंडितजी रुष्ट हो गये, "मगर आप भी सारे रुपए लौटा दीजिए. मैं भी नहीं चाहता कि आप माछी निगलें." पंडितजी समधी को सोचने-समझने का मौका दिये बिना वहीं से चिल्लाने लगे, "उधो सिंह जी, इनको जाने दिया जाये. ये विवाह नहीं करेंगे. मगर हां, अपने पूरे रुपए वसूल लीजिए इनसे. लगनपत्री का 'भैलू' हैंडनोट से कम नहीं होता."

"रुपया?" समधी शशोपंज में पड़ गये. रुपया तो सांप के गले का छछूंदर बन गया....निगलते बने न उगलते. उन्होंने एक नयी चाल चली. हाथ-पैर कंपाते हुए वे मुंह से अजीब-सी ध्वनि निकालने लगे.

लोगों ने घबड़ाकर उनको पकड़ा, "मिरगी आती है, क्या?"

"आप लोगों को भगवान से भी डर नहीं लगता?" समधी हांफते हुए अंगदी बंदर की तरह किट-किट करने लगे, "मुझे इस तरह दिक किये जा रहे हैं...आप लोगों को पता आप लोगों को पता होना चाहिए कि मैं हनुमान जी का भक्त हूं. उनकी असवारी आती है मुझ पर."

"हां, इतना खयाल रखिएगा, समधी जी!" उद्धव सिंह बोले, "मैं भी राहु-केतु का जाप करता हूं. राहु केतु को तो आप जानते हैं न? गरहण के दिन किस तरह वे चान-सूरज तक का भास बिगाड़ देते हैं.?

रामजस काका ने भी ठोंका लगाया, "ई भी सोच लीजिएगा, अगर आपके हनुमानजी ने ना-नुकर किया तो हमारे राहु केतु उनका लंगूर उखाड़ लेंगे."

"अं-हं-ह...." पंडितजी ने हस्तक्षेप किया, "हनुमानजी सबके हैं. बेकार की हरिनिंदा मत कीजिए." उन्होंने कानों पर हथेली की छोप-सी लगा ली.

अपने हनुमानजी की ऐसी-तैसी पर समधी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी. उन्हें सारे देवी-देवता याद आने लगे. अब तो किसी तरह लाज बचानी थी. वे हथजोरी करने लगे, "आसपास यदि हनुमान जी का मंदिर हो तो राह बता दें. मैं जाकर पूछ लूं."

मुखिया जी ने जैसे खतरा ताड़ लिया हो, बोले, "और उधर से फरार हो गये तो?"

"ना...ना. अब ये कहीं नहीं जा सकते. भगत आदमी इतना सतवादी जरूर होता है." पंडितजी बोले. फिर भी पांच-सात लोगों के घेरे में उन्हें मंदिर ले जाया गया. वे काफी देर तक मंदिर के भीतर बैठे रहे.

राम जाने हनुमानजी और उनके बीच क्या मंत्रणा हुई, मगर जब वे बाहर निकले तो उनके चेहरे पर कांईयापन कौंध रहा था. कई बार टोकने पर उनकी झल्लाहट फूटी, "हां, हनुमानजी की आयसु हुई है कि विवाह करने में कोई हर्ज नहीं है. लेकिन पतोहू को काग बोलने के पहले ही विदा करा लेना."

उद्धव सिंह ने अजिजी से कहा, "आप की इच्छा सर्वोपरि है, समधी जी!"

"मेरी कि हनुमानजी की?" समधी ने काट खाने की मुद्रा बना ली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अजी उनकी ही. हम धियावालों का सिर हरदम नीचे. ब्याहता पर आपका अधिकार है, चाहे उसे लिवा जायें, चाहे रहने दें." उद्धव सिंह नतमस्तक हो गये.

समधी एकबाल सिंह ने पूर्ण समर्पण कर दिया. बड़ी खातिरदारी के साथ वे मंडवे के पास बैठा ले गये.

शामियाने में बैठे-बैठे मंगलेश्वर सिंह ऊभचूभ हो रहे थे. लड़की देखने में भाई ने इतनी देर क्यों लगायी? बेचैनी सीमा लांघ गयी तो उन्होंने गांव के कुछ मेठों से मन की खटाई बता दी. समूची बारात की आन चढ़ गयी, "लहाश बिछा देंगे, देह की कुट्टी बना देंगे, लेकिन विवाह नहीं होगा. बेरीवालों की मर्जी कब चली है, जो आज चलेगी."

यह आफत अजानी तो न थी. पहले से तैयार मोटे-मोटे लट्ठ लिये मुस्टंडों ने पूरा शामियाना घेर लिया, "कोई हिले-डुले नहीं."

"क्या सबको ब्याह दोगे, अपनी बेटी-बहिनियों के साथ?"

"बकवांद मत करो. जिसके हाथ में अच्छत डाला उसीसे वास्ता है."

रार बढ़ी तो शोर बढ़ा. समधी को ढाल बनाये लोग पहुंच गये. समधी ने अपने गांवदारों को शांत करना शुरू किया, "गांव-जवार के भाइयो! जब मैं राजी हूं तो आप लोगों को मानने में अंडस कैसी?"

"राजी हो?" पूरी बारात जैसे सकते में आ गयी. लोग मंगलेश्वर सिंह को खोजने लगे, "सार, झूठ-मूठ का बवंडर करता है!"

"मरनी की बात सही है और दूसरी बेटी से शादी की बात भी." एकबाल सिंह ने सबका कोपभाजन बनते भाई का बचाव करते हुए कहा, "गुस्सा मुझे भी आया था. मैं भला इन पिद्दियों की धौंस में आता, लेकिन मेरे हनुमानजी का अनुशासन हो गया. इष्टदेव की बानी के आगे झुक जाना पड़ा."

"पाद का बहाना खांसी. जो मन में आये सो करो. भयवंद (भ्रातृत्व) के चलते हमें बोलना पड़ा." गांववालों ने अपने को इस परपंच से साफ हिलगा लिया.

समधी बेटे को समझाने लगे कि वह भी राजी-खुशी स्वीकार कर ले.

लड़के ने सुना तो दिल थाम लिया. जब हाड़ में पहली हल्दी लगी उसी बखत सपनों की बारात सजा वह जा पहुंचा दुलहिन के पास और अहसास के हाथों उसकी मांग में सिंदूर रच दी थी. तब से तो जो ललाई चढ़ी कि बाल सूरज की पहली जोत फीकी पड़े. सारी दुनिया रंगीन हो उठी, चौफेर रक्तवर्णी गुलाल-कुंकुमे उड़ने लगे थे... 'लाल गलइचा, लाली पलंगिया, लाली रे तकिया.' हर रात बिला नागा ख्वाबों की सेज लूटता रहा वह. उमंगों के पंख पर सवार राम जाने वह किस-किस दुनिया के अजायब का दीदार कर आया. माया के सरोवर में रोज कंवल खिलते और अपने हाथों वह उनका दल उघाड़ता. लेकिन भाग्य और संयोग से गज और ग्राह ने कुछ यूं घमासान मचाया कि सारे के सारे कंवल कीचड़ में लोट गये, पूरे सरोवर में डामर घुल गया.

बहुतेरे जतन के बाद कांपती आवाज में बोला वह, "जिससे गणना बैठी, लगन उचरी, वह राम-द्वारे सिधार गयी. मेरा भी तो मानुष का कलेजा है, कोई बरद नहीं हूं कि मउवार जिस-तिस नाद पर खूंटा गाड़ कर बांध दे." मन की कदराई काट वह शान बघारने लगा, "अपने पैर में कुल्हाड़ी मत मारें. यदि बरजोरी विवाह हुआ भी तो मैं लड़की को खूब तंग करूंगा. गोबर पथवाऊंगा इससे. छोड़ दूंगा तो भर जिंदगी करम धुनती रहेगी."

रामजवाहिर ने लपक कर उसकी काकुल पकड़ ली, "अपने घर इसे चूरा भी बना डालोगे तो हमारा क्या जायेगा? अब तो यह तुम्हारी बेकति हुई."

"कुआं उड़हनी बेटी बिअहनी...यानी इसके बाद आप लोगों को तनिक भी मतलब न रहेगा अपनी बेटी से?"

"तुम हरदम उज्जडपना करते हो, रामजवाहिर!" पंडितजी ने दुलहे को छुड़वा दिया और उसे अलग ले जाकर सीख देने लगे, मतलब तो खूब रहेगा बचना. बेटी तो हमेशा लेती है नैहर से. ऐसी ससुराल तुम्हें दीया लेकर ढूंढने से भी न मिलेगी. उधोसिंह बड़ा सखरज आदमी हैं. तीज-तेवहार पर कुछ-न-कुछ देते ही रहेंगे, हर-हमेस. बुढ़ा जाओगे तब भी इस घर में दामाद का मान-आदर घटनेवाला नहीं."

"वह तो शाम से देख ही रहा हूं, ऐसा खातिर बांस!" दुलहा जल भुल गया, "खातिर रह गयी और बांस ठेल दिया इन लोगों ने महमंड तक."

"हां बेटा, चुपचाप सिंदूर दान कर दो." समधी ने बेटे को उकसाया, "मैं अगाड़ी-पिछाड़ी खूब सोचकर ऐसा कह रहा हूं."

"आप भी ऐसा चाहते हैं बाबूजी?" लड़के को आश्चर्यमिश्रित दुख हुआ.

"मैं कौन हूं चाहनेवाला?" इस बार वह प्यार से बोले, "जब हनुमानजी ही ऐसा चाहते हों तो..."

लड़का चीखा, "शादी के बाद मैं कहीं भाग जाऊंगा."

"उफर (नष्ट) पड़ जाओ." समधी ने टका-सा जवाब दिया, "खेत बघार का एक भुरकुस ढेला तक न दूंगा तुम्हें. ऐसा जान लूंगा कि बेटे ने 'मुंह करखी' लगा ली या पतोहू ही विधवा हो गयी."

बेटीवालों को खुशी हो रही थी. अब तो समधी ही उनके प्रवक्ता बन गये हैं. पंडितजी ने कसकर कोर दबा रखी थी उनकी. बाराती चुप्पी मार गये थे...इधर से ध्यान हटाकर सब नाच देखने में खप गये थे.

दुलहे ने आखिरी कोशिश की, "जिसके साथ मन बसाया वही साथ तोड़ गयी. मन तो कोई जिस नहीं कि लासा लगाकर किसी के साथ साट दिया जाये. ऐसी 'अनेत' मत कीजिए...बेमन का ब्याह कनपट्टी पर सेनूर."

"स्तनपान दाहिने का किया जाये या बायें का, दूध की मिठास में कोई फर्क नहीं पड़ता." पंडितजी रसीली बातें करके दुलहे के सूखे मन को गलबलाना चाहते थे, "तरकुल बराबर कद के बड़े तो हो गये, पाहुन जी! लेकिन अकल के मामले में मोथा ही रहे. सिंदूर मांग में दररो या मनपट्टी पर, खाट उसी काम के लिए चरमरायेगी, जिसके लिए विवाह का विधान है."

"वह जब तक सयानी होगी, तब तक मैं ढलान उतर रहा होऊंगा." वह पस्त-सा हो चला, "पता नहीं आप सरीखा ग्यानी आदमी इस बेमेल जोग को कैसे स्वीकार रहा है?"

"लगता है तुम्हें वात्स्यायन मुनि की पोथी भी पढ़ानी पड़ेगी." पंडितजी की खिचड़ी मूंछों तले चिकनी मुस्कराहट फूट पड़ी, "गृहस्थाश्रम का भेद न मालूम होने से ऐसा बोल रहे हो. अरे, मरद की मणि परसते ही लड़कियां भक से जवान हो जाती हैं कीकर-करील की झाड़ की तरह. हृष्ट-पुष्ट तुमसे छोटी बेकति रहेगी तो बेमारी-हेमारी में सेवा-सहाय भी खूब करेगी."

"दूध पीती बच्ची मेरी सेवा क्या फोद करेगी." लड़के की नसें तन गयीं. वह सिर खुजलाने लगा, "उलटे उसके लिए ही मुझे गाय पालनी पड़ेगी."

एकबाल सिंह के कान खड़े हो गये. उन्होंने पंडितजी और बेटे को एक तरफ घसीट कर ले जाते हुए कहा, "कभी-कभी तेरे दिमाग से भी अलबेली जुगत फूट पड़ती है! भली याद दिलायी! अच्छा मौका है—गाय के लिए अड़ जाओ, कहो कि इसके लिए मैं दूध कहां से लाऊंगा?" वे सदानंद पंडित पर भी दबाव डालने लगे, "देखिए पंडिज्जी, सिर्फ आपके कहने से मैं थूका चाट रहा हूं. सिर्फ विवाह का रस्म पूर ले और पतोहू घर चली जाये इसके बाद तो उद्धव सिंह को आप मालूम पड़ जायेगा कि बाघ के दांत गिनने में कितना सुख मिलता है. लेकिन इसके पहले एक गाय दिलवा दीजिए, वरना मैं फिर मुकर जाऊंगा."

"यदि लड़की को कुछ हुआ तो आपको खपड़ी में भीख मंगवा दूंगा, एकबाल सिंह जी! मैं भी ब्राह्मण का बच्चा हूं और लड़की भी किसी डोम-धरिकार की नहीं है." पंडितजी की नाक लाल हो गयी.

"अरे-रे-रे ब्राम्हन-देवता, नराज न होइए. मैं तो खीस-पिरित में बोल गया ऐसा. वरना लड़की से मेरा कैसा बैर?" एकबाल सिंह अच्छी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह जानते थे गांव जवार में पंडितजी के रसूख को. वे खुशामद पर उतर आये, "लेकिन, महाराज जी, मुझे एक गाय जरूर दिलवा दीजिए."

"गजब कफनघसीटू हैं आप भी!" पंडितजी कुटिलता से बोले, "आप के कहे अब ये भेंड़े का बाल तक नहीं देंगे." वे लड़के की आंख में अपनी तिरछी नजर घोंपते हुए उसका मन टोने लगे, "हां, दुलहा तैयार हो और मांगे तो मैं दिलवा सकता हूं."

एकबाल सिंह ने भकुआये खड़े बेटे को चिकोटी काटी, "मांगता काहे नहीं रे, उजबक का सार?"

उसका तो 'स्व' जैसे निचुड़ गया था. अपने बाप के गुन-गोरख से वह परिचित था, अब ससुरालवाले भी जबरजंग मिल गये. उसने खुद को परिस्थितियों के हवाल कर दिया. भागते भूत को जो मिले, कुनमुनाते हुए उसने गाय की फरमाइश कर दी.

उद्धव सिंह ने सुना तो लगा जैसे पैरों तले घी की गगरी ढुलक गयी हो. वे बेचैन होकर चक्कर काटने लगे, "अभी पिछले साल ही तो ददरी से चार हजार में गाय खरीदी है. अब यह नया बखेड़ा किसने लगाया?"

पंडितजी उनको वक्त की नजाकत समझाने लगे, "बौरहपना मत कीजिए. दुलहा तैयार नहीं हो रहा था. गाय के नाम पर किसी तरह मनवा सका हूं. चार हजार का नाम सुनकर कांखने लगे. इसी लड़की का कहीं दूसरी जगह विवाह तय करेंगे तो चालीस हजार लगेगा. अगर आप गज बचाने के लिए थान हारना चाहते हैं तो मैं अलग हट जाता हूं."

उद्धव सिंह ने बड़ी बेदिली से दहेज में गाय देना स्वीकार किया.

दुलहे के सामने पालकी रखी गयी. मंत्रबिद्ध-सा बैठते हुए वह सिंदूर-दान के लिए चल पड़ा.

मंगलेश्वर सिंह मन मंसोसकर बैठ गये...चुपचाप, ऊपरले होंठ से निचले को दबाये. बारातियों की हालत देखकर तरस खाने लगे. गांना और दारू पी-पीकर सब की आंखें उबलने-उबलने को हो रही थीं. उनके मुंह से निकले चिलम और सिगरेट के धूंए का भभूका चारों ओर बिसांयध गंध फैला रहा था. सभी रंडियों के उत्तेजक नाच देखने और दुअर्थी गीत सुनने में मदहोश थे. पूरी बारात उन्हें किसी ऐय्याश फौज की तरह लगी जिसका सेनापति शत्रुओं से ठगा जा चुका हो और फौज को अपनी विलासिता के सामने जीत-हार का तनिक भी मलाल न हो.

पंडितजी ने खुशी-खुशी 'अंबे-अंबा-अंबालिके' के मंत्र-पाठ से विवाह-प्रक्रिया आरंभ की. पूरी विधि लगभग ढाई-तीन घंटे चली. कोई ऐसे-वैसे कर्मकांडी थोड़े थे सदानंद पंडित, काशी के आचार्य थे. कोई घंटे भर तो वे रासमणि की आत्मा को ही साधते रहे थे, ताकि भविष्य में किसी उत्पाद की आशंका न रहे.

अंतिम विधि के रूप में उन्होंने वर-कन्या को ध्रुवतारा देखने का निर्देश दिया. भागमणि पिसान की गंठरी की तरह पीढ़े पर पसरी जा रही थी. पंडितजी ने हिला-डुलाकर उसे सचेत करना चाहा. वे उसका चेहरा बार-बार आसमान की तरफ उठा रहे थे, लेकिन उनींदी आंखें धरती की ओर ही झुक जाती थीं. उन्होंने उकताहट महसूस की, "पाहुनजी, आप ही देख लीजिए. दोनों में से किसी एक के देखने से भी चलेगा. यह जो ध्रुवतारा है न...इस विवाह का साक्षी है. यह तारा इसके अटल होने का आशीर्वाद दे रहा है." वह वर से विशेष रूप में समझाते हुए बोले, "इस विवाह को अटल बनाने का पूरा भार अब आपके ऊपर है. सप्तपदी के वख्त आपने जितनी शपथें खायी हैं, उन सबों को जीवनपर्यंत मानना पड़ेगा. नहीं माननेवालों को पाप का भागी बनना पड़ता है."

इसी के साथ उन्होंने सात बार शंख ध्वनि करके पूरे विवाह का शुभांत कर दिया.

शाम से ही चमक बिखेरते रहे तारे अब धीरे-धीरे औचक होने लगे हैं. आसमान के पूरबी भाल पर रात की आखिरी सौगात लिये 'सुकवा' झलकता है. समधी हड़बोंग मचाते हैं, "सुकवा उग गया है. अब विदाई हो जानी चाहिए. हनुमानजी के हुकुम के मुताबिक भिनसार में काग बोलने के पहले ही."

औरतें अब तक की पीड़ा और मेहनत से बोझिल हुई तनिक कमर सीधी ही करने वाली थीं कि विदाई की सुनगुन शुरू हो जाती है. बड़ी कठिन साबित हो रही है विदाई...कल के अघट से भी कठिन.

भागमणि सो गयी है मां की गोद में. झकझोर कर जगाया जाता है उसे, "माया तज बबुनी! विदा होना है."

कहां विदा होना है? क्यों विदा होना है? मां की गोद से चिपक कर बिसुरने लगती है भागमणि. क्या समझे वह नादान...

डरी हुई पनियारी आंखें पूछती हों जैसे, मां, मैं तो तुम्हारी गोद में सो रही थी, सहसा नींद उचट गयी. यह किसके दरवाजे पर बाजा बजा, किसका विवाह रचा गया?

अनभल जग की अजब यह रीत, बलात् बनावे किसी को मीत. यहां पाप है दिल से दिल का नाता, रिश्ता वही जो जग को भाता. मानुश दिल को लिये बेचारा, फिरता जग में मारा मारा.

कल तो केवल आदमी रोया था, आज माटी रोती है, हवा रोती है, दसों दिशाएं रोती हैं. बैल, गाय, चरन, इनार, बाग-बगइचा, फूल, पत्ते रोते हैं...कुल-परिवार, सारा गांव रोता है. कुंहकार सुनकर नीम का पेड़ जैसे कांपने लगता है और उस पर रैनबसेरा डाली चिरई-चुनमुन 'किचपिच-किचपिच' कर रोने लगती हैं.

उद्धव सिंह बेटी को छाती से लगा लेते हैं, "बबुनी होSS...ओS...."

"बाबूजी, तू हमरा साथ ना चलबSS...?", पतले-पतले होंठ कांपते हैं भागमणि के.

"वहां अकेले जाना होता है, बेटी!" वे बाहर तक छलक आयी रुलाई को किसी तरह रोक पाते हैं

काका हड़बड़ाते हुए आते हैं, "उधो, देर मत करो. बेला बीती जा रही है. इसकी तैयारी का जिम्मा मेहरारूओं पर छोड़ दो. चलो, समधी से भेंट लिया जाये." उनका गला भी भर्रा जाता है. चुपके से भागमणि के सिर पर हाथ फेरने लगते हैं. नन्हें-नन्हें हाथ उनके गले से चिपटते हैं, "तुहुं साथ ना चलबSS...? केहु नइखे जात हमरा साथ. सभे हमरे के भेजल चाहता."

जंगाली बहू लउंड़ी बनकर साथ जानेवाली हैं. वह भागमणि को खींचकर अलग करती है. मां अपनी तरफ खींचती है, भौजी अपनी तरफ, चाची अपनी तरफ...इनके बीच सेमल के गाले की तरह फहर-फहर उड़ती है भागमणि.

धोती, धान और धन से भरा डाल लिये बेटीवाले मिलनी कारस्म पूर रहे हैं. बराती अपने-अपने ऊंचे आसन पर जम गये हैं. घराती अपनी-अपनी उमर और रिश्ते के हिसाब से गले मिलते हैं. खूंट में धान बंधी धोती पैरों पर रख दी जाती है, धन हाथ में थमा दिया जाता है और दोनों पक्ष परस्पर अंकवार बांधकर हुमच-हुमच कर मिल रहे हैं. सबसे आखिर में उद्धव सिंह समधी के गले लगते हैं तो समधी उन्हें कसकर चिपटाते हुए जकड़ लेते हैं, "कल तो बड़ा बाघ बन रहे थे, जोड़ीदार! अब आज फरिया लिया जाये कि किसकी छाती में कितनी पसली है."

सारा गिला जाता रहा और लोग मुस्करा पड़ते हैं. उद्धव सिंह फफकते हुए उनके पैरों पर झुक पड़ते हैं, "कुछ भूल-चूक हुई हो तो माफी मांगता हूं. अपनी आंख की पूतरी सौंप रहा हूं आपको, चाहे जैसे रखें."

गंभीर हंसी हंसते हैं समधी, "बेफिक्र रहिए. पतोहू मेरी जायी के समान रहेगी."

"कौन बाप बेफिक्र रह सकता है, समधी जी?" अचानक उद्धव सिंह की नजर डगर की ओर उठ जाती है.

भागमणि की डोली गांव की कुलदेवी के चौरे तक पहुंच गयी है. नीचे उतार कर कुलदेवी के चरणों पर उससे मत्था टेकवाया जा रहा है...जहां जाये, देवी मां सहाय!

उद्धव सिंह देखकर भी उधर नहीं देखना चाहते.

कारज संपन्न हो गया है. सारा कुछ एक चक्रवात की तरह गुजरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है....एक अदम्य वेग में सबने उड़ान भरी है...एक निश्चित ऊंचाई छूकर फिर लौट आये हैं. सब एक जगह मंड़वे का भोर अपने-आप में सारा अर्थ खोलता है—सब कुछ बह गया, सिर्फ गाद रह गयी है.

कोई नीम की जड़ पर बैठा, कोई चरन पर, कोई जमीन पर ही टाट-चटाई घसीट कर आड़े-तिरछे पसर गया है. जंभाइयां लेकर, बदन तड़काकर गत शौर्य की विरुदावली गायी जाने लगी है—किसने कब, क्या कहा, कैसा बर्ताव किया, किसने ऐन मौके पर ऐसा न किया होता तो क्या हो जाता.

हरारत मेटने के लिए रामजस काका चिलम सुलगा लेते हैं. पीठ पर चरन की टेक लगाकर परम तृप्ति के भाव से काका गहरा कश खींचते हैं, "अब जाके तनिक जी में जी पड़ा, पंडिज्जी! उधो की कदराही देखकर मुझे तो बड़ा डर लग रहा था, लेकिन हनुमानजी की किरपा से सब नीके-नीक पार लग गया."

उद्धव सिंह की ओर बदन घुमाते हुए सदानंद पंडित गदगद होकर बोले, "जजमान की कदराही क्षणिक थी, वीरोचित थी. यह तो राजा भगदत्त से भी बली निकले."

उद्धव सिंह थकान से चूर-चूर हो रहे हैं, पूरी देह पिरा रही है. मगर प्रशंसा सुनकर चौकन्ना हो जाते हैं, देखें और क्या-क्या कहते हैं पंडितजी. उनकी थकान और दर्द की तासीर भी बदल जाती है.

"अजी...हां," हठात रामजस काका को याद आता है, "ए पंडिज्जी, उस हाथी का क्या हुआ?"

"बताया तो था."

"पूरा बताने का मौका कहां मिला?" जगमोहन सिंह बताते हैं, "सिर्फ इतना कि अर्जुन ने धनुष डाल दिया और मरा हाथी भी जस का तस खड़ा रह गया."

"अच्छा-अच्छा!" पंडितजी थलथला कर हंसते हुए कथा-सूत्र जोड़ने लगते हैं, "राजा भगदत्त अपनी चातुरी से रहस्य को छुपाकर मंद-मंद मुस्करा रहे थे. तब तक कृष्ण भगवान ने हतशौर्य हो चले अर्जुन की पीठ थपथपायी, 'साधु-साधु अर्जुन! अब उठा भी लो गांडीव.' अर्जुन मलिन-मुख हो बोले, 'नहीं भगवन! प्रतिज्ञा के अनुसार अब मैं पराजय स्वीकारता हूं.' कृष्ण भगवान ने हौले से भेद खोला,

कहेउ कृष्ण पारथ सुनहु, प्राण तज्यो गजराज.
राख्यो है नृप जंघ गहि, अस्त्र तज्यो केहि काज?"

रामजवाहिर को यह बात अविश्वसनीय-सी लगी तो हिचकते हुए वह शंका करता है, "हाथी भला जांघों के बल टिक पायेगा?"

रामजवाहिर का प्रश्न रमेसर को बड़ा अच्छा लगता है. वह पंडितजी से उलझ पड़ता है, "आप भी क्या बात करते हैं पंडितजी! किसी भी अच्छे ग्रंथ में यह कभी नहीं लिखा होगा कि सब कुछ आंख मूंद कर मानते चलो."

पंडितजी का मन व्यंग्य से कसैला हो उठता है. फिर भी संदेह की बात उठ ही गई तो उसका निराकरण न करना उनकी पूरी पंडिताई के लिए चुनौती है. झुंझलाकर वे रामजवाहिर से कहते हैं, "इसे ऐसे बूझो....तुम अपनी साइकिल से बिना उतरे सिर्फ पैर रोपकर उसे खड़ा नहीं कर देते हो? राजा भगदत्त क्या तुम लोगों की तरह पिलपिला आदमी थे...लेकिन बरिआर खां नाम. जांघ पर हाथी टिका लेना उनके लिए कौन बड़ी बात थी?"

"न जाने कब तक ये लोग मेरे हाथी से चिपके रहेंगे और उसका हौवा खड़ा कर दूसरों को भी डराते रहेंगे." रमेसर घायल चीते-सा गुर्राता है, "यह कथा-पुराण ही होता रहेगा? रासमणि का प्रवाह नहीं करना है, क्या?" वह अकेले उठ कर जाने लगता है.

रामजवाहिर शंका प्रकट करके फेर में पड़ गया है. वह क्षमा मांगने के अंदाज में कहता है, "आप सुनाइए पंडिज्जी! मैं बूझ गया हूं."

पंडितजी पुराने ढर्रे पर लौट आते हैं, "हां...तो, भगदत्त की पोल खुलते ही अर्जुन ने एक अर्द्धचंद्राकार बाण से उनका मस्तक काट डाला. मृतक गयंद सहित नृप परेऊ; झलकत मुकुट जरावन जरेऊ. अर्जुन रण कीन्हीं यह करणी; योजन तीनि पर्‌यो गज धरणी." दार्शनिकों की तरह गंभीर होकर कहते हैं पंडितजी, "प्रभु की लीला भी विचित्र है! वही हाथी कौरव दल को अब तक त्राण दिलाता आ रहा था, लेकिन उसका मृत शरीर जब धरती पर गिरा तो तमाशा देखती कौरव सेना के कितने ही महत्वपूर्ण वीर चींटियों की तरह कुचल कर मर गये."

"मरा हाथी गिरा भी तो अपने ही आदमियों को कुचलते हुए...." रमेसर जोर-जोर से हंसने लगता है. वह रासमणि की लाश पीठ पर टांग लाया है.

अचकचा देखने लगते हैं लोग...हतप्रभ हो चले लोग, मौन, स्थिर जैसे अपनी-अपनी जगहों पर कील दिये गये हों सभी.

पीठ पर रासमणि की कठान लादे किसी कापालिक की तरह लग रहा है रमेसर.

लाश अकड़ गयी है, चेहरा ऐंठकर विकृत हो चला है. हल्दी-उबटन से पीली हुई देह पर काले-भूरे पेटाढ़े रेंग रहे हैं. तेल चुपड़े बालों में भूसा सट गया है. तनिक भी हिल जाने पर चिनगारी की तरह झरझर झड़ रहा है भूसा. चूहे-छछूंदर जैसे जीवों ने रासमणि के नाक-कान का मांस नोच लिया है, साड़ी-ब्लाउज तक कुतर डाला है. साड़ियों के गुंझल में फंसी एक चुहिया लद से गिरती है और 'चीं-चीं-ई' करती हुई एक तरफ भाग जाती है.

उद्धव सिंह विस्फारित आंखों से देखते रह जाते हैं बेटी को. लगता है, उनकी बायीं आंख से भागरमणि निकल कर भाग रही है. उनकी दायीं आंख से रासमणि. □

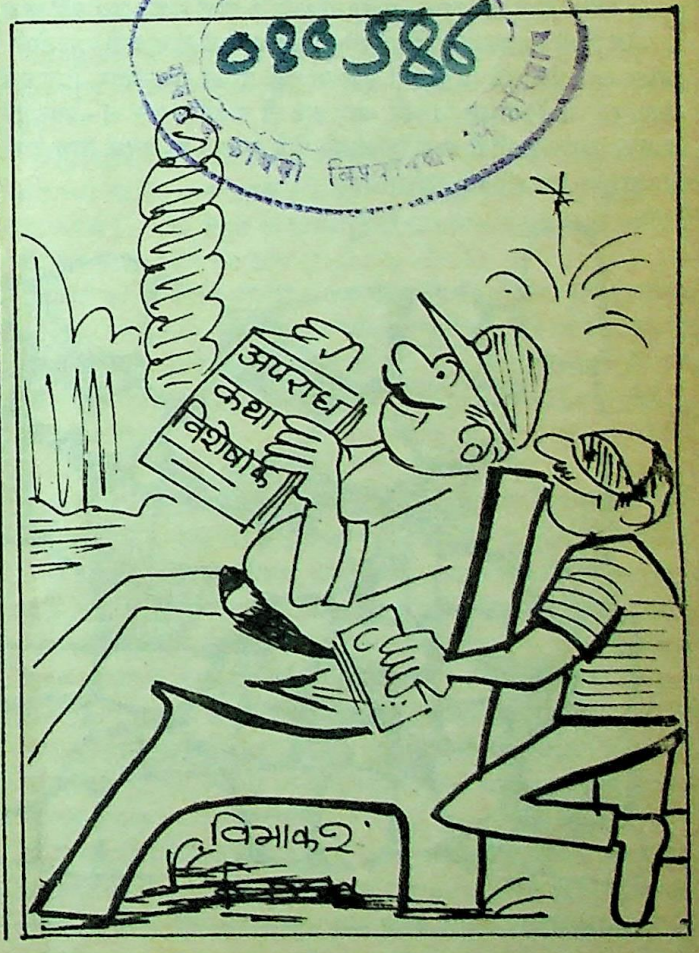

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

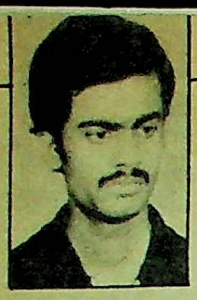

जन्म : 26 फरवरी, 1956
संप्रति : टिस्को मेंटिनेंस शॉप में कार्यरत
सारिका में आते हुए लोग स्तंभ में प्रकाशित व प्रकाशनार्थ तैयार कहानी संग्रह 'किरचों में विभक्त'
संपर्क : द्वारा संजय प्रिंटिंग प्रेस, प्रो. गम्हरिया, जमशेदपुर (बिहार)

जयनंदन

सिर्फ पैसा

दरअसल जब तक पीड़ा और कष्ट टुकड़ों में विभक्त रहेंगे, तब तक प्रखर और सार्वजनिक विरोध का वातावरण तैयार नहीं होगा. लेकिन कोई भी पीड़ा जब आम हृदयों की अनुभूति बन जायेगी तो उसी रोज बगावत शुरू हो जायेगी.

मेरी कहानी यहीं पर समाप्त होती है कि मेरी कहानी में न पात्र है और न पात्र में कहानी. यहां सिर्फ पैसा है. वैसा पैसा जिसके उपार्जन में भावना, अस्तित्व, नैतिकता, संवेदना सब दांव पर लग चुकी हैं. लेकिन कहानी के लिए तो मानसिक धरातल को छूने वाली इन अनुभूतियों की सख्त जरूरत है न? ज़बकि औद्योगिक क्षेत्र में बसे मेरी कहानी के पात्र पैसा कमाने के लिए जीते हैं या जीने के लिए पैसा कमाते हैं.

आप कह सकते हैं कि हर आदमी यही करता है तो मैं इसे नहीं मानता. मान लिया जाये कि सिर्फ जीने के लिए पैसा कमाना है और पैसे के लिए जीवन जीना है तो फिर मान, प्रतिष्ठा, गौरव, गरिमा, अहम्, स्वाभिमान आदि शब्द कहां से आ गये हैं? इसका मतलब है कि पैसा कमाते हुए भी इन्हें बचाया जा सकता है.

मैं यही कहना चाहता हूं कि मेरे कहानी के पात्रों में यह सब नहीं बचा है. और जिसमें यह सब नहीं बचा है उसकी भला कोई कहानी क्या होगी. अगर आप मेरे इस विचार से सहमत नहीं हैं, तो मेरे उदार, प्रिय एवं कहानियों के नियमित पाठक! आप खुद ही तजवीज कर लें—क्या मेरे पात्र में कोई कहानी है या मेरी काहनी में वैसा पात्र है जिसके साथ दया, सहानुभूति एवं सौहार्द्र उपजते हों?

नमस्कार!

लीजिए हडबड़ी में भागते हुए त्रिपुरारी का अभिवादन स्वीकार कीजिए. सुबह की पाली में छः बजे से उसे ड्यूटी पकड़नी है और बेचारा सात मील से साइकिल खींचता हुआ आ रहा है. समय से दो-चार मिनट पहले पहुंचने पर गेट की दुकानों में चाय-पान कर लिया करता है. लेकिन आमूमन ऐसा मौका कम ही मिलता है. आप फर्ज कीजिए कि उसे कितना पहले बिस्तर छोड़ देना पड़ता होगा. अगर कायदे से वह नित्य क्रिया-कर्म से निवृत होना चाहे तो उसके लिए एक घंटा और रख लीजिए. लेकिन ज्यादातर इसे भी छोड़ना ही पड़ता है.

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि प्रेशर आया रहता है और उसे ड्यूटी के लिए तेजी से भागना पड़ता है. आज ही देख लीजिए न! सवा पांच पर उसकी नींद खुली. घड़ी देखी. फटाफट कपड़ा व जूता पहना. मुंह में दातुन दबायी और सायकिल पर सवार हो गया.

लाख ताबड़-तोड़ पैडल मारे लेकिन गेट पर पहुंचने से पहले साली सीटी बज ही गयी. सब लोग ट्रिड्डे की तरह फर्र-फर्र उड़ने लगे. किसी की चाय पीते-पीते जीभ जल गयी, कोई आधी ही चाय पी सका, कोई खुचरा

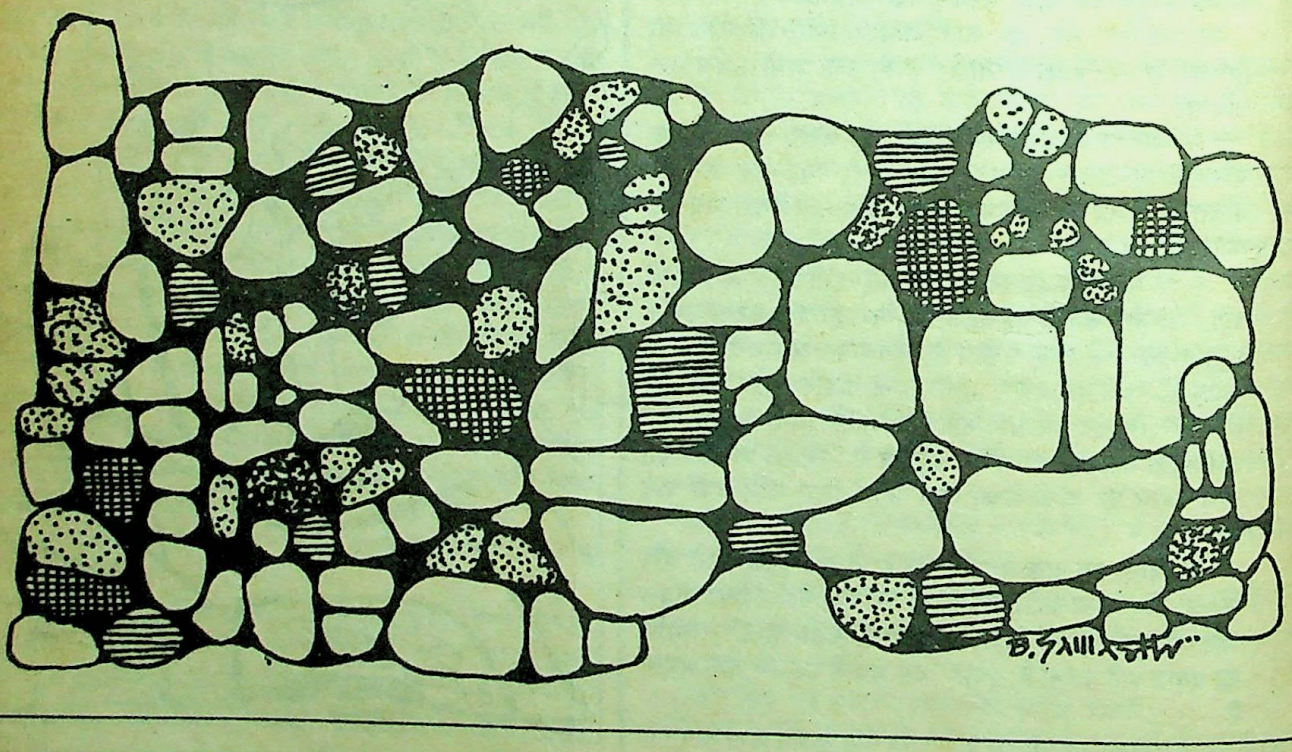

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैसा भी न ले पाया, किसी का सिगरेट धरते हुए हाथ जल गया. त्रिपुरारी तो गेट पर रुका ही नहीं. चूंकि सीटी भी बज गयी थी और लैट्रीन का प्रेशर भी जान मारे जा रहा था. टाइम ऑफिस पहुंचते-पहुंचते दो मिनट लेट हो ही गया. बड़ा घिघिया-उघिया कर टाइम कीपर को मनाया. साइकिल लॉक करके जॉब पर जाने लगा तो रास्ते में ही सुपरिंटेंडेंट खट्टा साहब भेंटा गया. लो साले इसको भी चेकिंग में आज ही आना था.

फिर क्या? दो मिनट के लेट में दस मिनट की धुआंधार फायरिंग शुरू. त्रिपुरारी चुपचाप सुनता रहा. सोचा—कुछ बोलने से वह और झाड़ने लगेगा. जल्दी छोड़ देगा तो पहले प्रेशर से निजात पाना जरूरी है. बेचारा बेदम-बेदम हो रहा था. लगता था कि अब पेट फटा कि तब.

जब मि. खट्टा का जी-भर गया तो त्रिपुरारी लगभग दौड़कर शौचालय पहुंचा. तब तक बेचारे का अंडरवियर अंशतः खराब हो चुका था. वहां भी वह जल्दी-जल्दी निपटाकर अंडरवियर धो-पोंछकर अपनी मशीन पर आया. नसीब देखिए, यहां भी फोरमैन ने उसे लपक लिया. लगभग गाली-गलौज की भाषा उसे फिर सुननी पड़ी.

आप सोच रहे होंगे—यह सब उसके लेट उठने के कारण हुआ. हां यह ठीक है. तो क्या वह जान-बूझकर लेट उठा. अरे भाई! कान के पास अलार्म लगाकर सोया था. तब भी नींद नहीं खुली. कैसे खुलेगी नींद? एक तो वह रात ग्यारह बजे ओवर टाइम करके लौटा. खा-पीकर बिस्तर पर जाते-जाते बारह बज गये. बच्चे की तबीयत भी बहुत जोरों की खराब थी. वह कल ओवर टाइम में नहीं रुकना चाहता था. लेकिन खट्टा साहब सर पर सवार हो गया—कोई बहाना नहीं चलेगा. जॉब अर्जेंट है रुकना ही पड़ेगा. रुक गया. नहीं तो अनुशासनात्मक कारवाई होती.

बदन के पोर-पोर पर थकान के पर्वत लादे बारह बजे सोया. पत्नी भी बच्चे की बीमारी के कारण करीब-करीब जागती ही रही. सुबह के समय उसे भी नींद आ गयी. बस बेचारे की बन गयी आज की यात्रा.

फोरमैन से काम समझ-बूझकर ड्राइंग-रूटकार्ड देख-वेख लिया. उसने बताया कि एक काम वेरी-वेरी अर्जेंट है. जिसके लिए प्रोडक्शन मैनेजर एक घंटे बाद आने वाले हैं. त्रिपुरारी ने क्रेन बुलाया. जॉब बांधा. लेथ चक को 800 आर.पी.एम. पर तथा टूल कैरेज को 1.2 एम.एम. प्रति रिवोल्यूशन पर सेट करके काम शुरू कर दिया. ओ.डी. फिनिश करने के बाद ड्रिल, बोर और थ्रेडिंग किया. फिर क्रेन से जॉब रिवर्स करके फिनिश कर दिया. काम करने की उसकी रफ्तार देखने से लगता था कि वह मशीन का ही कोई पार्ट है.

मैनेजर आया. जॉब का इंस्पेक्शन हुआ. पता चला ओ.डी. में .08 एम.एम. मैटीरियल डाउन हो गया है. अर्जेंट रिक्वायरमेंट और जॉब रिजेक्ट. और क्या होगा? सुबह-सुबह ही तो मूड चौपट कर दिया गया. मैनेजर का लताड़ पुनः शुरू. लो अब चार्जशीट मिलने का इंतजाम हो गया. पकड़ो यूनियन का पैर.

चाय-नाश्ता के लिए सीटी बजी. अनमनेपन से त्रिपुरारी कैंटीन पहुंचा. 15 मिनट का समय. लंबी लाइन. सात मिनट गुजर गये तो उसका नंबर आया. दो प्याजी, एक इडली और दो जलेबी लेकर बैठा. चखकर देखा—सब ठंडे और बेस्वाद. सोचा—इडली खा लेते हैं. आधी खाया तब तक सीटी बज गयी. देर होगी तो फिर डांटेगा. बिना चाय चखे ही वापस चला आया. फिर काम में भिड़ गया.

लंच हुआ तो मूड बेतरह उखड़ा था. कैंटीन में थोड़ा-सा भात-दाल खाकर मैदान में अकेले ही सुस्ताने चला आया. सोचा—आज भी अगर ओवर टाइम के लिए रुकना पड़ा तब बड़ी आफत हो जायेगी. पता नहीं पत्नी बच्चे को अकेले आज भी हॉस्पिटल ले गयी होगी या नहीं. उसकी आंख थोड़ी-थोड़ी लगने लगी. तब ही ऑफिस के क्लर्क शिवदयाल की आवाज उसे सुनायी पड़ी.

"भाई त्रिपुरारी! मालूम हुआ नये मुख्यमंत्री का शपथ ग्रहण हो गया."

त्रिपुरारी यों चौंका जैसे सप्ताह-भर की नींद से जागा हो. नया मुख्यमंत्री! तो पुराना मुख्यमंत्री जगदीश कब हटा?

"मालूम है, कौन आया है इस बार? शशिशेखर सिंह." उत्साह में शिवदयाल बोलता जा रहा था.

"ठीक ही है." टालने के अंदाज में त्रिपुरारी ने कहा.

"सिर्फ ठीक ही है? अरे यार तुममें तो कुछ फर्क ही नहीं पड़ा. स्साला इतना भ्रष्ट और निकम्मा मुख्यमंत्री से पिंड छूटा और उसकी जगह आशा की नयी किरण लेकर दूसरा आदमी आया और तुममें कोई हर्ष-विषाद नहीं."

शिवदयाल झुंझलाकर कैंटीन की ओर बढ़ गया, "तुम लोग साले वर्कर के वर्कर ही रहोगे."

त्रिपुरारी सोचता रह गया—सचमुच वह वर्कर का वर्कर ही रह गया. कारखाने के अंदर भी और बाहर भी. घर में रेडियो है, अखबार है लेकिन उसे पता तक नहीं कि राज्य का मंत्रिमंडल बदल गया. काम करने से जितना परेशान त्रिपुरारी नहीं हुआ था उससे ज्यादा पस्त वह शिवदयाल के इस वाक्य से हो गया.

लेकिन दूसरे ही क्षण उसे यह सोचकर थोड़ा भरोसा हुआ कि इधर सप्ताह भर से वह ओवर टाइम एवं बच्चे की तबीयत को लेकर ज्यादा व्यस्त रहा. इसीलिए उसे पता नहीं चला. लेकिन उसके साथ के और वर्कर तो जानते ही होंगे. चलो, हरजीत, शिवनाथ, रामबालक, इब्राहिम, थॉमस आदि से पूछकर पता कर ही लेते हैं. ये लोग समसामयिक विषय की खूब जानकारी रखते हैं. जैसे—आस्ट्रेलिया में आज भारत ने कितने रन बनाये—कोई इनसे पूछ ले, तुरंत बता देंगे. हॉलीवुड में कबीर बेदी ने किस फिल्म में एक्टिंग की. इन्हें पूरा पता है. इंग्लैंड में फैशन के लेटेस्ट कौन-कौन से डिजाइन प्रचलित है, इन्हें जुबानी याद है. फिर महज राज्य की एक राजनीतिक उथल-पुथल का समाचार तो इन्हें ज्ञात होगा ही.

परंतु त्रिपुरारी भौंचक रह गया यह जानकर कि अत्यंत जागरूक एवं चालाक कहे जानेवाले इन लोगों को भी इसकी कोई जानकारी नहीं थी. वह महसूसता है कि शिवदयाल ने ठीक ही कहा कि हम वर्कर के वर्कर ही रहेंगे.

ओवरटाइम के चक्कर से बचकर वह तीन बजे घर पहुंचा. उसे ऐसा लग रहा था कि आज वह ड्यूटी करने की जगह सौ-पचास जूते खाकर घर आया हो. थकावट से तो बदन टूट ही रहा था—प्रताड़ना और हया से भी मन बुझा-बुझा-सा था.

पत्नी कंपनी की डिस्पेंसरी से दवा ले आयी थी. लेकिन बुखार ज्यों का त्यों था. उसने दवा देखी तो चार पुड़िया फंकी थी और शीशी में लाल मिक्चर. इसी को कहते हैं इलाज की सुविधा. उसका मिजाज बौखला गया. उसने सारी दवा उठाकर घर से बाहर फेंक दी—और दारू भट्टी की ओर बढ़ गया.

वर्कर का वर्कर बने रहने की यथास्थिति से उबरने के लिए त्रिपुरारी में एक बेचैनी समा गयी. वर्कर का वर्कर बने रहने में जीवन सचमुच एकरस, बोझल, कठिन एवं ऊबाउ हो गया है. हमें वर्कर होने के बावजूद कुछ और होना चाहिए, कुछ अतिरिक्त सोचना, समझना चाहिए. तब ही कोई और आयाम मिलेगा, हर्ष-विषाद का टाइप बदलेगा. देश-दुनिया के विषयों पर मंत्री, अधिकारी या उससे संबद्ध कर्मचारी के अलावा जरूरी है कि हर आदमी उस पर अपनी एक राय बनाये, एक प्रतिक्रिया व्यक्त करे. तब ही जन-जागरण का सही वातावरण बनेगा. तब ही कोई भी परिणाम पर आम आदमी के सोच का प्रभाव पड़ेगा.

त्रिपुरारी एक विचार बनाता है—अब वह अच्छी-अच्छी पुस्तकों एवं स्वस्थ स्तरीय पत्रिकाओं का अध्ययन करेगा. वह रिक्रियेशन क्लब जाने लगा. कॉलोनी कैम्पस में कंपनी द्वारा खोला गया रिक्रियेशन क्लब. ड्यूटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद के समय को बिताने का ठिकाना.

उसने रीडिंग-रूम में बैठकर देखा—एक से एक स्तरीय एवं सशक्त पत्रिकाएं.

त्रिपुरारी ने देखा—हरजीत, त्रिलोचन, शिवनाथ बैठे थे. सब कोई न कोई पत्रिका में उलझे थे. भाई वाह! मानना होगा, इन लोगों की पसंद तो बेहद उच्च स्तरीय है. त्रिपुरारी में ढेर सारा उत्साह उमड़ आया. तब भी साला शिवदयाल हम लोगों को वर्कर का वर्कर समझता है. जरा अब कोई चीज पूछकर देख लेना. साले ऑफिस में काम करते हैं तो बाबू हो गये. उसे बड़ा फख्र हुआ अपने दोस्तों पर. उसने उचककर देखा कि देखें सब लोग क्या पढ़ रहे हैं.

हरजीत की आंखें किसी फिल्मी मासिक में अर्द्धनग्न नायिका की रंगीन तस्वीर घूर रही थीं. त्रिलोचन किसी साप्ताहिक में अपना भाग्य-फल देख रहा था. शिवनाथ की नजर चुटकुले पर टिकी थी.

त्रिपुरारी का सारा हौसला पस्त हो गया. साला शिवदयाल ठीक ही कहता है. निराश मन उसने भी एक कुर्सी संभाली और सामने एक साप्ताहिक खींच लिया. जिसके आवरण पर लिखा था—'असम समस्या का उग्र रूप-जन जीवन अस्त-व्यस्त'. क्या हो गया भई असम को. वह इसकी उलट-पलट करने लगा.

कुछ ही देर बाद थॉमस, इब्राहिम, रामबालक आ गये. हरजीत, त्रिलोचन आदि सस्वर खड़े हो गये—'चलो भाई चलो, आ गया सब, आ गया.'

दो मिनट रुकने का इशारा करके वे लोग भी पत्रिका उलटने लगे. त्रिपुरारी ने गौर किया कि रामबालक ने गैस और अपच की डॉक्टरी सलाह ढूंढ लिया था. थॉमस किसी सत्यकथा में बलात्कार प्रकरण की फोटो देखने लगा था तो इब्राहिम सबको यहां से हटने के लिए कह रहा था.

"अरे भाई! बंद करो इन पोथी-पत्रों को. पढ़ने के इतने शौकीन थे तो लोहा कूटने क्यों आ गये?"

"चलो भाई, चलो!"

"हां भाई चलो!"

सब लोग अंदर चले गये.

उनमें से कुछ ताश खेलने लगे तो कुछ कैरम बोर्ड. त्रिपुरारी ने लक्ष्य किया कि और जो पच्चीस-पचास वर्कर थे उनमें से ज्यादातर खेल-कूद में ही जुटे थे. दो चार लोग जो मैगजिन पढ़ रहे थे—उनमें से कोई क्रिकेट समीक्षा पढ़ रहा था, कोई फिल्म समीक्षा, कोई घरेलू व्यंजन बनाने की विधियां, तो कोई वैवाहिक विज्ञापन.

त्रिपुरारी ने असम समस्या से संबंधित सारी सामग्री पढ़ जाने का मंसूबा बनाया. और घंटे-डेढ़ घंटे में उसने सचमुच ही पढ़ लिया.

दुःख एवं आश्चर्य से वह दोहरा हो उठा कि असम की समस्या कितनी भीषण हो उठी है और इसके बारे में उसे नहीं के बराबर ही खबर थी. आदमी के कूपमंडूकता की भी हद हो गयी. स्साली दिन-दुनिया से कोई मतलब ही नहीं है.

उसे बड़ी बेसब्री महसूस होने लगी कि काश दो-चार दिलचस्प आदमी मिलते जिनके साथ बैठकर वह इस विषय पर कुछ बातें करता. नजरें घुमा कर उसने देखा तो कोई फुर्सत में नहीं था. सब शतरंज, ताश, टेबलटेनिस और कैरम में लीन थे.आखिर क्या राष्ट्रव्यापी समस्यायें इन्हें आंदोलित नहीं करती हैं? अगर करती हैं तो क्या ये सोने के समय जोरू के साथ इस पर बहस करते होंगे?

त्रिपुरारी एकाएक सोच लेता है कि यहां जो कुछ भी हो रहा है—भला या बुरा, ईश्वर की कृपा से बहुत है. नहीं तो इतने आलसी, मनमौजी, आत्मलीन और लगभग अचेत आदमियों की भीड़ में तो सब कुछ चौपट हो जाना चाहिए. आम लोगों की मानसिकता कितनी तटस्थ हो गयी है कि वे खेलकूद, फिल्म, व्यंजन एवं स्वास्थ्य चर्चाओं को ही स्वस्थ रुचि मानने लगे हैं.

उसका मन मचल उठता है—लगता है वह कॉलेज की उम्र को जीने लगा हो. काश! अभी शिवदयाल ही मिल गया होता तो असम के विषय में कुछ बातें होतीं तो शंकाओं का और समाधान हो जाता.

बहुत देर तक राह तकने पर भी जब शिवदयाल नहीं आया तो वह उसके क्वार्टर की तरफ ही निकल गया.

शिवदयाल घर पर ही मौजूद था. त्रिपुरारी को देखते ही उसने गर्म जोशी से स्वागत किया.

"आओ भाई. आओ. कैसे रास्ता भूल गये?"

"मैंने क्लब में तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा की."

"मैंने क्लब जाना ही छोड़ दिया."

"क्यों कुछ बात हुई क्या?"

दोनों बैठ गये.

"यार वहां की ऊटपटांग बातचीत मुझसे सही नहीं जाती. लोग रीडिंग रूम में बैठकर ब्लू फिल्म की बातें करने लगते हैं, कलकत्ता के सोनागाछी की गप्पें हांकने लगते हैं, कभी-कभी तो खुद अपने मां-बाप को ही गाली बकने लगते हैं. कमीनगी की सीमा पार हो गयी है. यह सब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता."

"आखिर कुछ सुनाओगे भी."

"सुनोगे? दो माह पूर्व की घटना है. रीडिंग रूम में तुम्हारे ग्रुप के सारे लोग थे. रामबालक, शिवनाथ, हरजीत, थॉमस, त्रिलोचन, इब्राहिम तथा दीनदयाल वेल्डर, करमसिंह मेकेनिक, सिद्धनाथ बनर्जी गेज मेकर. और रूपराम नंदी मार्कर के कॉलेजिएट सुपुत्रगण. वेस्टइंडीज में भारत की हार पर थॉमस एवं त्रिलोचन ने कपिलदेव की भर्त्सना की. इस पर दो-तीन कॉलेजिएट कटु प्रहार करते हुए अपभ्रंश बकने लगे और लगा कि अब वे हाथ छोड़ने पर उतारू होने वाले हैं.

"प्रसंग तुरंत बदला और फिल्म की चर्चा छिड़ गयी. किसी ने राज बब्बर की आलोचना की. इस पर दो-तीन आदमी बुरी तरह आग-बबूला हो उठे.

"प्रसंग बदला. किसी ने सरदारजी का कार्टून देखकर अटकलबाजी की कि यह फोटो राष्ट्रपति का है और उन्हें बेवकूफ कहते हुए गंदी गाली दे डाली.

"मेरा पक्का विश्वास था कि इस पर सबके-सब उखड़ जायेंगे. चूंकि जो आदमी कपिलदेव की भर्त्सना बर्दाश्त नहीं कर सकते. राज बब्बर की तौहीन नहीं सुन सकते, वे भला राष्ट्रपति पर कोई आक्षेप कैसे सह लेंगे?

"लेकिन मैं अपना-सा मुंह लेकर रह गया कि किसी ने चूं तक नहीं किया. यहां तक कि मैं भी यह बताने की हिम्मत नहीं जुटा पाया कि राष्ट्रपति के ऊपर कार्टून या व्यंग्य करने की मनाही है. मैं आदमी में बढ़ रही दुष्टता पर हक्का बक्का रह गया."

"देश की शासन-व्यवस्था का नामधारी ही सही, लेकिन सर्वोच्च पद के प्रति, जिसके नाम से देश का पुर्जा-पुर्जा संचालित होता है, लोगों में यह विरक्ति, यह जड़ता क्यों समाती आ रही है? क्या यह भी सिखाने की बात है कि राष्ट्रपति किसी भी देश के लिए सम्मान एवं गौरव-गरिमा का द्योतक होता है. फिर उसके प्रति भी लोगों के मन में आदर का लोप क्यों होता जा रहा है? यह आचरण कौन से भविष्य का संकेतक है? मुझे लगा यह गाली तीर की तरह मुल्क के कलेजे पर चलती हुई हर नागरिक की मर्दानगी को चुनौती देने लगी है."

"मैं चुपचाप घर आ गया और क्लब कभी नहीं जाने की कसम खा ली."

"आज क्लब में बैठकर लोगों की पसंद और दिलचस्पी के स्तर का जायजा मैंने भी लिया. मैं खुद शर्मिंदा और पशेमान हूं कि पैसा कमाने के लिए जैसे-तैसे ड्यूटी कर लेने के बाद घर और परिवार से परे हम किसी और चिंता के प्रति गंभीर नहीं होते. यही कारण है कि हम सब के दुःखों और तकलीफों का कोई अंत नहीं है. दरअसल जब तक पीड़ा और कष्ट टुकड़ों में विभक्त रहेंगे तब तक प्रखर और सार्वजनिक विरोध का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरण तैयार नहीं होगा. लेकिन कोई भी पीड़ा जब आम हृदयों की अनुभूति बन जायेगी तो उसी रोज बगावत शुरू हो जायेगी और फिर इसका निदान भी. देखो न! असम की आग आज आसमान छू रही है और मुझे धुआं भी दिखाई नहीं पड़ा. जबकि जरूरत थी कि उसकी आंच से हम भी तिलमिला उठते."

"तो असम के बारे में तुम्हें कब मालूम हुआ."

"आज ही पढ़कर जाना."

"तब तो उम्मीद करते हैं कि पंजाब और श्रीलंका के बारे में तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं होगा?"

"यकीनन नहीं."

"हद हो गयी यार. लगता है धीरे-धीरे आदमी इतना एकनिष्ठ और खुदगर्ज होता जा रहा है कि किसी की जवान बेटी घर से भाग जायेगी और उसे एकाध साल के बाद पता चलेगा."

शिवदयाल ठीक ही कहता है. लोगों की मानसिकता कितनी बौनी होती जा रही है. भारत की क्रिकेट में जीत हुई तो फुलझड़ी और पटाखे छूटे. अमिताभ बच्चन बीमार पड़ा तो लाखों ने दुआएं मांगी. मलखान सिंह ने सरेंडर किया तो लोगों ने दद्दा कहकर उनकी जय-जयकार में नारे लगाये. लेकिन जब असम समस्या का समाधान नहीं हो रहा है तो किसी को कोई चिंता नहीं है. पंजाब और श्रीलंका में क्या गड़बड़ी हो गयी है इसकी कोई उग्र चर्चा नहीं है, इधर कोई आक्रोश नहीं है.

त्रिपुरारी को अपने-आप पर बेहद खीज हुई. टेलीविजन और रेडियो के इस युग में भी हम इतना आत्मलीन और बेखबर हैं तो फिर हमें आदमी, विशेषकर प्रजातंत्र का नागरिक होने का क्या अधिकार है?

शिवदयाल पर त्रिपुरारी को बहुत गर्व होता है—भाई आदमी हो तो ऐसा कांशस कि देश-दुनिया की हर आहट उस तक पहुंचती हो. हालांकि ग्रेजुएट शिवदयाल का पगार कारखाने के अनपढ़ स्वीपर से भी कम होगा. लेकिन स्तर के दृष्टिकोण से शिवदयाल का तो कोई जोड़ ही नहीं है.

चाय आ गयी थी. दोनों सिप करने लगे. अचानक शिवदयाल को एक बात याद आ गयी.

"अच्छा त्रिपुरारी एक बताओ भाई! आजकल थॉमस, त्रिलोचन, रामबालक, नंदी तथा बनर्जी का लड़का मिलकर कॉलोनी में चंदा किस चीज का इकट्ठा कर रहे हैं?"

"अरे तुम्हें मालूम नहीं है, मोहिंद्र अमरनाथ यहां आनेवाला है. उसके अभिनंदन की तैयारी हो रही है."

"लेकिन यह मोहिंद्र अमरनाथ है कौन."

सुनकर त्रिपुरारी हैरत से भर उठा, "क्या तुम मोहिंद्र अमरनाथ को भी नहीं जानते? अरे महान क्रिकेटर लाला अमरनाथ का महान् क्रिकेटर बेटा मोहिंद्र अमरनाथ—जिसने विश्वकप में भारत की जीत में सबसे जबर्दस्त योगदान दिया."

"तो क्या भारत ने विश्वकप जीत लिया है?"

हे भगवान! त्रिपुरारी अवाक् देखता रह गया. उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि यह प्रश्न शिवदयाल पूछ रहा है.

"तुम्हें यह तो पता है न शिवदयाल कि पिछले दिनों भारत में ओलंपिक का आयोजन हुआ था?"

"अरे हां भई यह पता है. जिसमें हर देश के खिलाड़ियों ने हिस्सा लिया था."

चलो फख्र है कि तुम्हें यह पता है. लेकिन जो भी हो साले पोल खुल गयी तुम्हारी. लगता है तुम सिर्फ पॉलिटिकल चटनी ही चाटते हो. तुम भी क्लर्क के क्लर्क ही रह गये. इसके आगे इस कारखाने के कर्मचारी कुछ बन ही नहीं सकते. आठ घंटे की डांट-फटकार, बदसलूकी और हीनताबोध ने तुम्हारे सोच को पंगु बना दिया है...तुम्हें सीमित कर दिया है."

चाय पीकर त्रिपुरारी निराश-सा मुंह बनाकर यह कहते हुए चल पड़ा, "जाओ शिवदयाल! तुम्हारा भी मुखौटा उतर गया. बेटे! तुम भी अपनी ही लकीर को पीटते रह गये."

उसे अपने-आप पर थोड़ा भरोसा हुआ—चलो उसे विश्वकप की जीत एवं ओलंपिक (?) के विषय में तो जानकारी थी.

वाह रे जानकारी! एशियाड और ओलंपिक में भी कोई फर्क नहीं.

उस रोज शाम के पहर एक दुर्घटना घट गयी. सड़क पर खेल रही त्रिलोचन की पांचवर्षीया बेटी को ट्रक वाले ने कुचल दिया. काफी भीड़ जुट गयी. ट्रक का मालिक भी साथ था. पुलिस और पब्लिक की मार से बचने के लिए ट्रकवाला हजार रुपये लेकर त्रिलोचन के पैर पर गिर पड़ा.

महीने का अंतिम सप्ताह था. बेहद कड़की का सप्ताह. इस समय दो हजार कमाने वाले की भी हालत यहां खस्ता रहती है. त्रिलोचन तो खैर हजार ही कमाता था और उस पर भी पहले से ही तमीज है या नहीं कि हजार भी कमाने पर हमेशा तंगी ही बनी रहती है. त्रिलोचन का हाल यूं था कि पगार पॉकेट में रखा भी नहीं कि महाजन तगादे में घेरकर खड़े हो जाते थे.

उसे जब एक मुश्त हजार रुपये आने की आस बंधी तो बेटी की दर्दनाक मौत की टीस अचानक कम हो गयी. अरे जो होना था सो तो हो ही गया अब जो मिल रहा है उसे ठुकराना चालाकी तो नहीं होगी. एक प्रेशर कुकर खरीदने एवं पलंग बनवाने की योजना कब से टल रही है. चलो इस बार पूरी हो जायेगी.

त्रिलोचन ने एक हजार रुपये में सुलह कर ली.

मामला सुलट गया जानकर भीड़ टलने लगी. तब ही शंभु शरण आ गये. शंभुशरण—जो यूनियन चलाने का व्यवसाय करते हैं. यानी यूनियन के प्रेसीडेंट हैं. उन्होंने त्रिलोचन को एकांत में बुलाया और कहा, "भाई मामला सुलट गया, अच्छा हुआ. लेकिन मुझे भी पुलिस और मैनेजमेंट को जवाब देना होगा कि एक्सीडैंट कैसे हो गया."

त्रिलोचन समझ गया. पॉकेट से पांच सौ रुपये निकालकर अरिया कर दिया. मन तो हुआ कह दे—हां साले दोगला, बेटी मेरी मरी और जवाब तुम दोगे जैसे कि मैंने जानबूझकर मार दिया हो. परंतु उसने कुछ नहीं कहा—वह जानता है कि यूनियन के नाम से वर्करों पर गुंडागर्दी और मैनेजमेंट की चमचागीरी की जाती है. पलंग के बजट को खटाई में डालता हुआ घर की ओर वह बढ़ गया.

घर में ही बेटी का शव था. अब ले जाकर दफना देना चाहिए. बीवी बड़ा रोना-धोना कर रही होगी. चुपके-से कान में प्रेशर कुकर के लिए इस पांच सौ रुपये की बात बता देगा. फिर जरूर उसका भी ढाढ़स बंध जायेगा.

त्रिलोचन इन्हीं मंसूबों के साथ चला जा रहा था. अभी वह घर भी नहीं पहुंच पाया था कि उसके साथ काम करनेवाले महाजनों ने उसे घेर लिया, "भाई, पगार का तो तुम्हारा बंधा-बंधाया खर्चा है. अभी ही मौका है. कुछ हम लोगों का वसूल कर दो."

उसकी उम्मीद पर मानों पहाड़ टूट पड़ा. अब सचमुच उसकी तबीयत रोने को करने लगी...और यह क्या, वह सचमुच रो पड़ा. पता नहीं मासूम बेटी की बुरी मौत पर या रुपयों के हाथ से निकलने पर. उसने बहाने के कई तरीके अपनाये. लेकिन उन लोगों पर कोई असर नहीं पड़ा. आखिरकार उसे पांचों सौ रुपये से हाथ धोना ही पड़ा.

बहुत निराश मन लेकर वह घर लौटा. पत्नी विलाप कर रही थी. त्रिलोचन के मन में बार-बार पलंग और प्रेशर कुकर घूम रहा था. काश! हजार रुपया और मिल जाता. इस विचार के साथ ही उसकी नजर अचानक छोटी बेटी पर टिक जाती है और फिर अपने टुच्चेपन पर वह खुद ही हैरान रह जाता है.

त्रिलोचन को चार्जशीट मिली. बस! वर्कर से कुछ और बनने के उसके सारे इरादे धुंधले पड़ गये. सुबह-शाम यूनियन के व्यापारी के तलुवे सहलाने का सौदा शुरू करना पड़ा. वहां पैरवी में जब-तब उसकी पत्नी भी जाती हुई देखी गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनेंद्र जी के जन्म दिन (2 जनवरी) पर विशेष

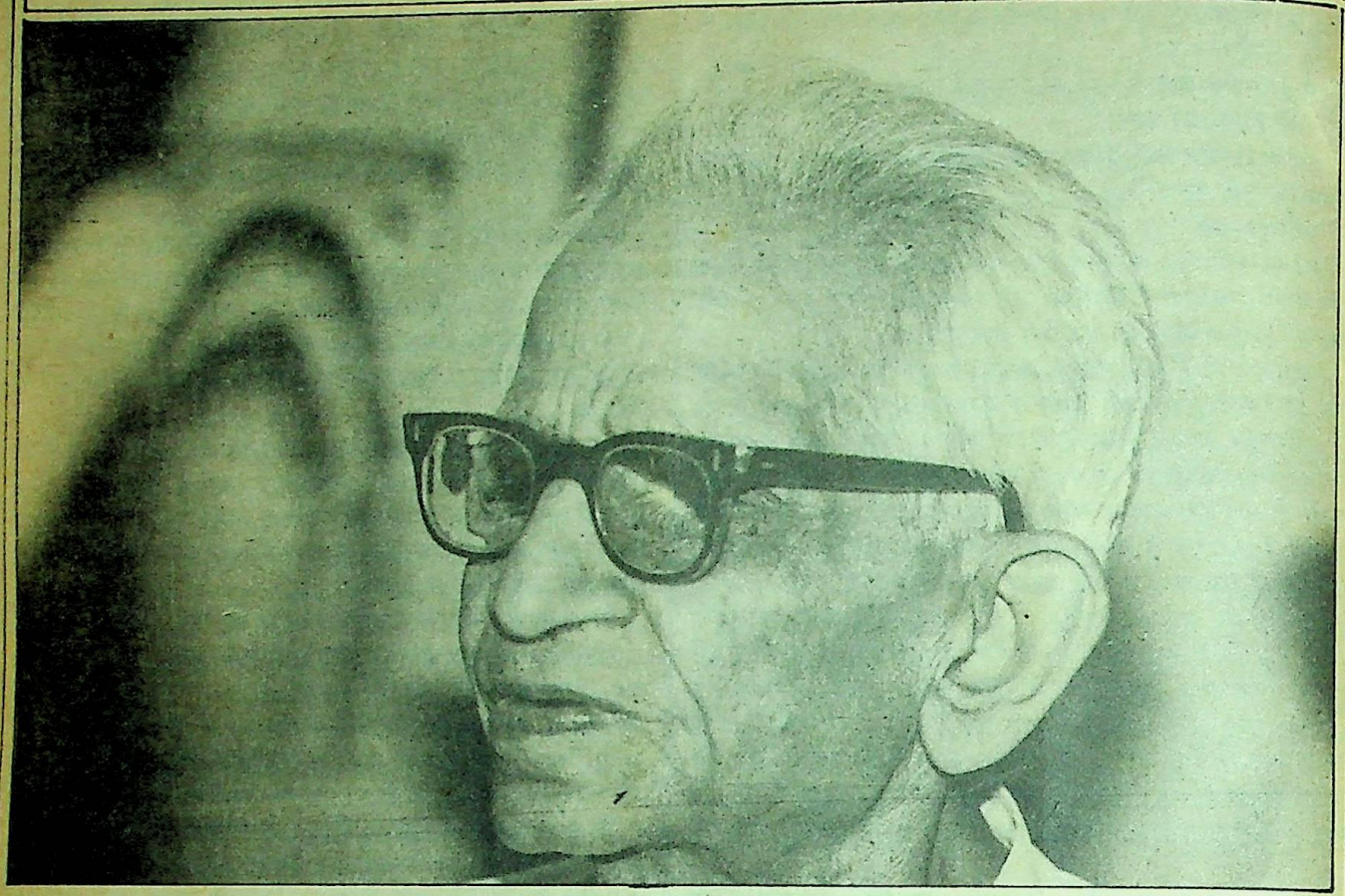

छाया : पवन महेंदू

वह इबारत दुरूह नहीं

से.रा. यात्री

यह उन्नीस सौ तिरपन जून महीने की बात है. मैंने उस वर्ष बी.ए. की परीक्षा दी थी और किसी परिचित की शादी में पहली बार दिल्ली गया था. भयानक लू-लपट का मौसम था—शादी में सम्मिलित होने की उत्सुकता नाम को भी नहीं थी. लेकिन जैनेंद्रजी से मिलने का आकर्षण बहुत प्रबल था और यही वजह थी कि मैं बाराती बनकर उस विवाह में शामिल हो गया था.

अपनी बात को थोड़ा और साफ करने के लिए मुझे थोड़ा पीछे लौटना पड़ेगा जिससे कि जैनेंद्रजी से जुड़ने की प्रक्रिया पर सम्यक प्रकाश पड़ सके.

मैं एन.आर.ई.सी. कालेज खुर्जा का विद्यार्थी था. खुर्जा तब एक छोटा-सा तहसीली कस्बा था. आबादी भी ज्यादा नहीं थी.

एन.आर.ई.सी. कालेज का पुस्तकालय प्रत्येक विषय की पुस्तकों से भरा पूरा था. विशाल लायब्रेरी में कतार दर कतार सैकड़ों

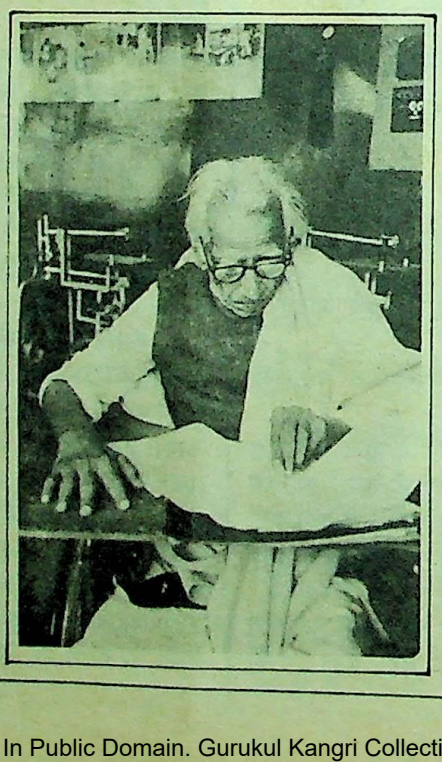

अलमारियां थीं जिनमें विविध विषयों की हजारों पुस्तकें उपलब्ध थीं.

मैंने इंटर में आते ही लायब्रेरी में घंटों बैठक लगानी शुरू कर दी थी. हिंदी के सभी आधुनिक कवियों की तब तक की प्रकाशित कृतियां पढ़कर खड़ी बोली के महान कवियों से परिचय प्राप्त कर लिया था. कथा साहित्य के महारथियों में केवल मुंशी प्रेमचंद ही ऐसे थे जिन्हें मैं कालेज में प्रवेश पाने से पहले ही काफी कुछ पढ़ चुका था.

आधुनिक कवियों के बाद कथा साहित्य के जिन बड़े लेखकों की रचनाएं मेरे हाथ लगी थीं उनमें भगवतीचरण वर्मा तथा वृंदावन लाल वर्मा प्रमुख थे. वर्मा द्वय के उपन्यासों में अद्भुत कथा रस था. और उनकी कृतियां पर्याप्त संख्या में कालेज की लायब्रेरी में उपलब्ध थीं. इन्हीं दिनों अलमारियों से पुस्तकें टटोलते हुए 'सुनीता' मेरे हाथ पड़ गयी. पुस्तक के लेखक का नाम जैनेंद्र कुमार था. इस नाम से तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पूर्णतया अपरिचित था.

मैं कालेज लायब्रेरी में ही खिड़की के पास कुर्सी खींचकर 'सुनीता' पढ़ने बैठ गया. उपन्यास की भाषा बाकी उपन्यास लेखकों की जानी-पहचानी भाषा से एकदम अलग थी. उपन्यास में मैं ऐसा रम गया कि बाकी दुनिया से पूरी तरह बेखबर हो गया.

सुनीता पढ़ने के बाद मैं गहरी उलझन में पड़ गया. मैं तब सत्रह साल का वयःसंधि छूता लड़का था. उस कच्ची उम्र में मुझे सुनीता का आचरण एकदम विचित्र और विस्फोटक लगा. मैंने तब तक किसी नायिका को ऐसा आचरण करते नहीं देखा था कि पति के मित्र के प्रणयानुरोध से आग बबूला होकर अपने वस्त्र उतारकर फेंकने लगे.

हिंदी के उपन्यास तो मैंने तब तक कम ही पढ़े थे पर बंगला के सैकड़ों उपन्यास पढ़ चुका था. रवींद्र और शरत् की पुस्तकों से तो अलमारियां भरी ही रहती थीं. बंगला उपन्यासों की नायिका तो हाड़ मांस की बनी हुई लगती ही नहीं थी. नायक-नायिका घंटों तक एक दूसरे के नजदीक रहते थे पर क्या मजाल है कि उनकी उंगलियां भी परस्पर छू जायें. उन अनोखी सुंदरियों से प्यार तो भरपूर किया जा सकता था पर उनका स्पर्श वर्जित था. मेरी उम्र भी इतनी लजीली थी कि ब्यूटी इज ट्रू सी नाट टु टच (सौंदर्य निहारने के लिये है छूने के लिये नहीं है) की उक्ति पर मुझे कोई संदेह नहीं होता था. लेकिन सुनीता के आचरण ने मुझे भरपूर चौंका दिया. उपन्यास की भाषा भी अपनी तरह की और एकदम अलग-थलग थी. जैनेंद्र का यह उपन्यास अलग तरह का यथार्थ रेखांकित करता दिखलाई पड़ा.

जैनेंद्रजी के सुनीता के बाद मैंने कालिज की लायब्रेरी से उनके दूसरे उपन्यास खोज-खोज कर पढ़े. कल्याणी, त्याग पत्र, परख, सुखदा. सभी उपन्यास मुझे वहां मिल गये और उनके लेखक को जानने-देखने की भूख भी निरंतर बढ़ती चली गयी. धीरे-धीरे अगले दो-तीन वर्षों में किसी से यह भी पता चल गया कि जैनेंद्रजी दिल्ली के दरियागंज मौहल्ले में रहते हैं.

बी.ए. की परीक्षा देते-देते मैं कुछ-कुछ बयस्क भी हो चला था और एक शादी में दिल्ली जाने का सुयोग भी मेरे हाथ आ गया था.

दिल्ली पहुंचते ही मैंने अपनी अटैची जनवासे में पटकी और जैनेंद्रजी की खोज में निकल पड़ा.

जैनेंद्रजी पैंतीस वर्ष पहले भी उसी मकान में किरायेदार थे जहां आज भी उनकी रिहायश है. बस इतना बदलाव जरूर आया है कि तब ऊपर तल्ले तक पहुंचने के लिये एक खूब खुला-खुला अहाता पार करना होता था और अब उस अहाते को घेर-घारकर खूब संकरा कर दिया गया है तथा कुछ मशीनें वगैरह लगाकर छोटा-मोटा उद्योग खड़ा कर लिया गया है. मशीनों के चलने से काफी शोर भी होता रहता है. युग परिवर्तन की संकेतात्मकता इस बदली हुई स्थिति में पूरी तरह मौजूद दीख पड़ती है.

उस जून की भयानक दोपहरी में मैं ट्राम तांगे वगैरह से दरियागंज पहुंच गया. कुछ देर टक्करें मारने के बाद उनका मकान भी मिल गया. मैंने बंद द्वार पर दस्तक दी. एक सात-आठ साल के लड़के ने दरवाजा खोल दिया. मैंने उस गोरे चिट्टे-गदबदे और तीखे नाक नक्श वाले बच्चे से पूछा कि क्या जैनेंद्र जी घर में हैं. उसने बतला दिया कि उस समय जैनेंद्रजी घर में नहीं होते हैं बल्कि पूर्वोदय प्रकाशन के कार्यालय में मिलते हैं.

मैंने बच्चे से उसका नाम पूछा तो उसने अपना नाम प्रदीप बतलाया और वह परम उत्साह से मुझे जैनेंद्रजी के पास ले जाने के लिये तैयार हो गया.

एक जीने की सीढ़ियां चढ़कर मैं एक कमरे में पहुंच गया. एक अधेड़ वयस का भला सा मानस दिखाई देने वाला व्यक्ति चटाई पर बैठा अंग्रेजी की कोई मोटी-सी किताब पढ़ने में दत्तचित्त था. उस कमरे में कुछ ज्यादा सामान नहीं था—कहीं कोई तस्वीर वगैरह भी नजर नहीं आ रही थी. काठ की एक चौकी उस व्यक्ति के सामने रखी थी और दीवार से लगा एक तख्त पड़ा था जिस पर सफेद चादर बिछी हुई थी और शायद एकाध गोल तकिया भी पड़ा था.

उस व्यक्ति ने खद्दर की धोती और घर की सिली खद्दर की ही बनियाइन पहन रखी थी. देहयष्टि ज्यादा मजबूत तो नहीं लगती थी पर दुर्बल भी नहीं कही जा सकती थी. मैं उस उम्र में था कि किसी बड़े या बुजुर्ग की सही उम्र का अनुमान नहीं लगा सकता था. जैनेंद्रजी तब पचास के भी नहीं रहे होंगे. होंगे भी तो बस खींच तानकर ही पर वह मुझे बहुत गंभीर और बड़े लगे.

मुझे सामने देखकर उन सज्जन ने अपना चेहरा किताब से हटाकर मेरी ओर उठाया और किताब सामने की चौकी पर टिकाकर मेरी ओर देखा. खुले मस्तक पर चिंता की रेखाएं कुछ ठहर गयी-सी लगती थीं. पहली ही नजर में वह चेहरा और आंखें उस व्यक्ति को साधारण से कुछ अलग घोषित करती थीं.

धोती के छोर से हाथ में पकड़ा हुआ चश्मा साफ करते हुए वह बोले, "आइये, बैठिये," और प्रदीप की तरफ साभिप्राय निगाह उठाई.

प्रदीप ने कोने में रखी सुराही से पानी का गिलास भरा और मुझे लाकर दे दिया.

इतनी देर में मैं यह पूरी तरह समझ चुका था कि वह जैनेंद्रजी ही थे. उनके कहने से मैं उनके सामने चटाई पर ही बैठ गया. मैंने अपने नाम और शहर का उल्लेख करके लगभग गड़बड़ाते हुए उनसे मिलने की इच्छा बतलाई और उनकी तब तक की पढ़ी हुई पुस्तकों का हवाला भी दिया.

अब वह लगभग पैंतीस वर्ष पुरानी बात हो चुकी है इसलिए मैं बहुत विश्वास के साथ नहीं कह सकता कि मेरी उनसे बातचीत किस प्रसंग को लेकर आरंभ हुई थी. हां यह जरूर है कि उनमें किसी प्रकार का द्वैध या असमंजस नहीं था — न कोई मुलम्मा था, इसलिए मेरे जैसे निपट लड़के से वह अपनापे के साथ कितनी ही देर तक बातें करते रहे.

उन्हीं दिनों जैनेंद्रजी की दो पुस्तकें पूर्वोदय प्रकाशन से प्रकाशित हुई थीं. उन उपन्यासों के नाम 'विवर्त' और 'व्यतीत' थे. उन्होंने प्रदीप से अथवा उस दौरान वहां आ जाने वाले किसी अन्य कर्मचारी से दोनों उपन्यास मंगवाये तथा प्रिय-राम यात्री के लिए भेंट करने से पहले एक सूक्ति भी लिख दी: 'स्वयं को न रखना दे डालना ही मुझे आत्मोपलब्धि का उपाय मालूम हुआ है.'

उपन्यास तो पता नहीं इतने वर्षों में न जाने कहां जा पहुंचे होंगे पर वह सूक्ति मैं कभी विस्मृत नहीं कर पाया. जब भी कोई खोटा कर्म हो जाने का जाने-अनजाने दुयोग आ जुटता है तो खुद से निगाह बचाने की शर्म जैनेंद्रजी के प्रथम बार के साक्षात्कार को मेरे मानस नेत्रों में उजागर कर देती है और आत्मोपलब्धि की कुंजी का रहस्य खोल देती है.

मैं देर तक बोलकर चुप हो गया तो उन्होंने अपनी चिंता जतलाई कि मैं जिस स्थान पर ठहरा हूं वहां तक कैसे पहुंचूंगा. क्या मुझे रास्ते का ठीक ज्ञान है वगैरह.

मैंने अपने कुर्ते की जेब से विवाह का निमंत्रण पत्र निकाला और उन्हें दिखला दिया. जैनेंद्रजी ने सही मार्ग का निर्देशन किया और फिर मिलने के लिए कहा.

मैंने तब तक किसी बड़े लेखक को इतने निकट से नहीं देखा था. जैनेंद्रजी के पास घंटे-डेढ़ घंटे बैठने के बाद मेरा सिर किसी विचित्र से नशे से झूम उठा. उनकी दी हुई दो पुस्तकें लेकर चला तो पांव हवा में उड़ने से लगे, मैं जीने से उतरते हुए बेखुदी में यही सोचता रहा कि जब मैं ये पुस्तकें, जिन पर जैनेंद्रजी ने अपने हस्ताक्षर ही नहीं किये हैं बल्कि एक सूक्ति भी लिखी है, अपने सहपाठियों को दिखलाऊंगा तो वे चमत्कृत हो उठेंगे.

जैनेंद्रजी के माथे की चिंतापरक सिलवटें और धोती के खूंट से कई बार चश्मे के कांच पोंछने की क्रिया बराबर मेरे मानस नेत्रों में बरकरार बनी रही और उनके उपन्यास के ही एक पात्र का सिगार सुलगाने के लिए गाऊन की जेबों को थपथपाकर माचिस खोजने का प्रयास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारांतर से जैनेंद्रजी के चश्मा पोंछने के समानांतर लगता रहा.

जैनेंद्रजी से यही मेरा प्रथम साक्षात्कार था और इस भेंट ने मुझे बंगला के लेखकों से विलग कर हिंदी उपन्यासों के पठन की ओर उकसा दिया था.

'विवर्त' और 'व्यतीत' के कई बरसों बाद तक जैनेंद्रजी का फिर कोई नया उपन्यास पढ़ने को नहीं मिला. जैनेंद्रजी उतनी तेजी से उपन्यास लिखते भी नहीं थे.

हां बीच में जैनेंद्रजी से भेंट करने का एक अवसर और आया. यह उन्नीस सौ चौवन की बात है. मैं एम.ए. हिंदी का विद्यार्थी था और कालिज की साहित्यिक-राजनीतिक गति-विधियों को संचालित करने वाले स्टडी सर्किल का मंत्री था. स्टडी सर्किल में प्रायः विचारकों और साहित्यकारों को आमंत्रित किया जाता था. दिल्ली में रहने वालों तथा बाहर से दिल्ली आने वाले प्रसिद्ध साहित्यकारों को प्रायः माह में एक बार बुलाया जाता था. मैं स्वयं अथवा अन्य किसी विद्यार्थी को दिल्ली भेज देता था और आमंत्रित सज्जन मेरे अथवा अन्य किसी के साथ आ जाते थे. दो वर्ष की अल्पावधि में आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, लोहियाजी, अशोक मेहता, रघुकुल तिलक, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सेठ दामोदरदास, प्रोफेसर मुकुट बिहारी, सुचेता कृपलानी तथा अन्य राजनीतिक-विचारक खुर्जा कालिज में पधार चुके थे. इसी क्रम में सबसे पहले जैनेंद्रजी को आमंत्रित किया गया तो उन्होंने अपनी स्वीकृति भेज दी.

निश्चित तिथि को मैं उन्हें दिल्ली लेने चला गया. मैं जानता था कि इतने बड़े साहित्यकार को ट्रेन या बस से लाना कठिन है इसलिए स्टडी सर्किल की ओर से उन्हें टैक्सी में लाने की स्वीकृति दे दी गयी.

मैं सीधा पूर्वोदय प्रकाशन पहुंच गया और उनसे पूछा कि कैसे चलना पसंद करेंगे. उन्होंने दुविधाहीन होकर कहा, "जैसे भी ले चलोगे—मुझे तो कुछ पता नहीं है."

मैंने कहा मैं तो बस से आया हूं और बस स्टैंड की जगह तो जानता हूं. आप चाहें तो टैक्सी से भी चल सकते हैं पर मुझे तो टैक्सी कहां मिलेगी यह मालूम नहीं है.

वह कुछ क्षण सोचकर पूछने लगे, "क्या बस से मीटिंग के समय तक पहुंचा जा सकता है?"

अभी कुल ग्यारह बजे थे—मीटिंग का समय तीन बजे का तय हुआ था. तुरंत चल देने पर बावन मील की यात्रा तीन घंटे में मजे में तय हो सकती थी. मैंने उन्हें यह बात बतलाई तो वह बोले, "टैक्सी का भाड़ा सौ रुपये से तो क्या कम होगा? यों भी रोज मर्रा बस तांगे वगैरह से ही इधर-उधर आना-जाना होता है—आज ही टैक्सी से क्यों चलें? चलिये फिर बस से ही चलते हैं."

चलने से पहले उन्हें कोई तैयारी नहीं करनी थी—बस उठे और खूंटी पर से सदरी उतारकर पहन ली और तख्त पर रखे शाल को कंधे पर डाल लिया. जो भी व्यक्ति वहां था उससे मेरे साथ खुर्जा जाने की बात कहकर अविलंब चल पड़े.

मैंने पहली बार अनुभव किया कि कोई बड़ा व्यक्ति भी इतना प्रस्तुत मिल सकता है. जैनेंद्रजी से पहले मैं जितने भी लोगों को दिल्ली से लेने गया था उनमें से शायद ही कोई सभा के निश्चित समय पर पहुंचा हो. कुछ के लिए तो श्रोताओं को कई घंटों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी.

चार सवारी वाले तांगे में दो सवारियां पहले से सवार थीं—बाकी मैं और जैनेंद्रजी हो गये. मैं बराबर सकोच में डूबा रहा कि जैनेंद्रजी को असुविधा में डालकर साथ ले जा रहा हूं पर जैनेंद्रजी ने इस ओर संभवतः कोई ध्यान ही नहीं दिया.

जैनेंद्रजी मीटिंग के समय से कुछ पहले ही सभास्थल पर पहुंच गये. चाय पान के बाद वह बोलने को तैयार हो गये. उन्होंने अपनी शाल उतारकर कुर्सी की पीठ पर डाल दी और कुर्सी पर आराम से बैठकर बोले, "मुझे बैठकर ही बातचीत करने में सुविधा होती है. आप लोग प्रश्न पूछेंगे तो मैं कुछ कह सकूंगा." बात की बात में श्रोताओं की ओर से पर्चियां आनी शुरू हो गयीं और जैनेंद्रजी एक-एक पर्ची को पढ़कर बोलते चले गये.

इस तरह का कोई वक्ता पहले कालिज में नहीं आया था—यह एक अलग तरह का कार्यक्रम बन गया था. जैनेंद्रजी से पचासों प्रश्न

ओखला प्रवास के दौरान जैनेंद्र जी अज्ञेय जी के साथ — छाया : प्रदीप

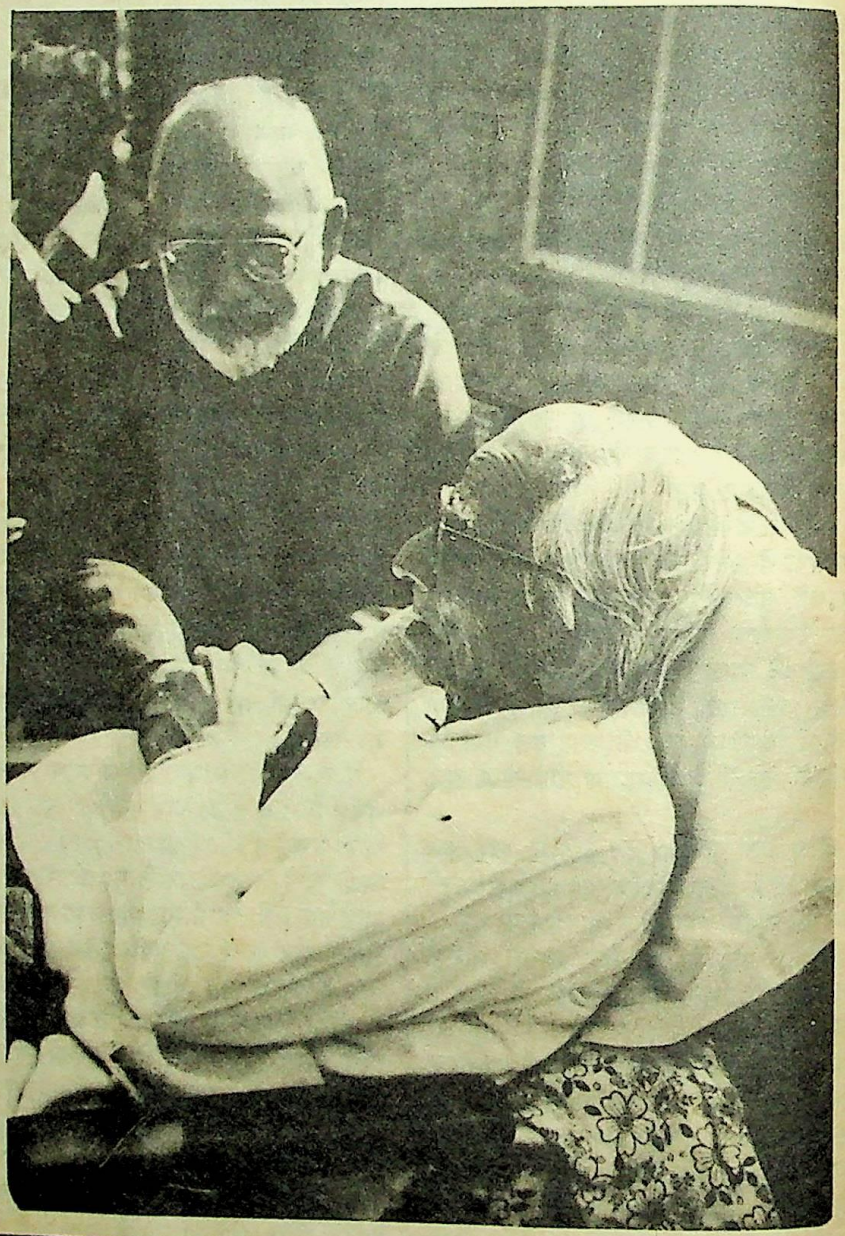

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछे गये जिनमें से एक साहित्येतर प्रश्न मुझे आज भी याद है – 'हिंदी के साहित्यकार इतने दुबले क्यों होते हैं?'

शायद यह बात श्रोता ने जैनेंद्रजी का दुबला शरीर देखकर ही पूछी होगी.

जैनेंद्रजी ने किंचित मुस्कराकर पूछा, "क्या आपने निराला जी को देखा है?"

निराला को उस नगर में किसी ने नहीं देखा था इसलिए कोई उत्तर नहीं आया.

सभा विसर्जित होने के बाद भी जैनेंद्रजी काफी देर तक विद्यार्थियों और अध्यापकों के साथ रहे और चलते समय उन्हें पांच सेर घी की एक कनस्तरी भेंट की गयी. घी की भेंट से वह कुछ चकित हुए और पूछने लगे, "क्या इसको खाकर मुझे अपनी दुर्बलता दूर करनी होगी?"

उनकी जिज्ञासा पर हम सब हंस पड़े और एक अध्यापक बोले, "यह घी आपकी दुर्बलता तो दूर नहीं कर पायेगा पर इतना तो होगा ही कि खुर्जा घी का घर है—बड़ी मंडी है—यहां की कोई प्रसिद्ध चीज आपके साथ चली जायेगी तो आपको हमारी याद बनी रहेगी."

खुर्जा कालिज की भेंट के बाद फिर चार वर्ष निकल गये. मैं एम.ए. करने के बाद एक-दो वर्ष इधर-उधर भटका और फिर सागर विश्वविद्यालय में रिसर्च करने चला गया लेकिन रिसर्च भी मुझसे नहीं चल पाई और छोड़कर मैं एक महाविद्यालय में एक डेढ़ वर्ष काटने के पश्चात नौकरी छोड़कर दिल्ली चला आया.

दिल्ली की भीड़-भाड़ मेरे कस्बाई मन के अनुकूल नहीं थी पर कहीं भी रहकर कुछ काम-धाम करना ही था इसलिये मैं एक कुंआरे मित्र के साथ रहने लगा. मित्र किसी दफ्तर में क्लर्की करता था और मैं लोदी रोड पर उसके कमरे में लिखने-पढ़ने का काम करता था. अखबारों में विज्ञापन तलाश करके इधर-उधर आवेदन भेजता रहता था.

दिल्ली के एक छोर से दूसरे छोर तक भटकने के क्रम में मैं एक दिन दरियागंज जा पहुंचा. जैनेंद्रजी से 1954 में जो भेट हुई थी उसे लगभग पांच वर्ष बीत चुके थे. मैंने सोचा अब तक तो शायद वह मुझे भूल चुके होंगे.

मैं पूर्वोदय प्रकाशन के जीने की सीढ़ियां चढ़ने के बाद कमरे में दाखिल हुआ तो मैंने देखा कि जैनेंद्रजी दीवार से पीठ लगाये तख्त पर बैठे किसी से बातें कर रहे हैं. उनके सामने कुर्सी पर बैठे एक सज्जन सिगरेट पी रहे थे और सिगरेट की राख फर्श पर ही झाड़ते जा रहे थे. मैंने इधर-उधर देखा और जैनेंद्रजी के नजदीक जाकर खड़ा हो गया. जैनेंद्रजी मुझे पहचानने की कोशिश करते रहे पर वह इस बीच मुझे भूल चुके थे.

मैंने अपना नाम बतलाया तो वह तुरंत पहचानकर पूछने लगे, "हां-हां पिछली दफा मैं आपके साथ आपके कालिज में गया था—अब कहां हो, कब आये हो?"

मैंने पिछले कुछ वर्षों की कैफियत उन्हें संक्षेप में बतला दी और उनके सामने बैठे उस निर्द्वंद्व व्यक्ति को देखने लगा जो जैनेंद्रजी से उम्र में बहुत छोटा होकर भी उनके साथ बराबरी का संबंध बनाये हुये मालूम पड़ रहा था.

जैनेंद्रजी ने मुझसे कुर्सी पर बैठने के लिये कहा और ऊंची बाड़ की टोपी लगाये बैठे सज्जन का परिचय दिया, "यह रांगेय राघव हैं – आगरे में रहते हैं."

मैंने उस गौर वर्ण के तीखे नाक नक्श वाले नौजवानी की उम्र पार करते आदमी को जरा ध्यान से देखा. उसकी मुख-मुद्रा को देखकर गौतमबुद्ध का चेहरा बेसाख्ता ध्यान में आता था. बस उसकी ऊंची बाड़ की गांधी टोपी ही एक व्यवधान उपस्थित करती थी बाकी तो पूरा चेहरा-मोहरा बुद्ध की प्रतिमा से मेल खाता था.

उन दोनों लेखकों की बातें मैं गहरी दिलचस्पी के साथ सुनता रहा. उम्र का फर्क उन दोनों के बीच कहीं आड़े नहीं आता था. रांगेय राघव में कहीं कोई कच्चापन नहीं आता था. वह गहरे आत्मविश्वास के साथ बोलते थे.

उस रोज मैं लगभग दो घंटे पूर्वोदय प्रकाशन में रहा. जब चलने लगा तो जैनेंद्रजी ने सहजता से कहा, "दिल्ली में हैं तो कभी-कभी आते रहिये."

मुझे दिल्ली में कोई टिकाऊ नौकरी नहीं मिली और मैंने प्रायः दो वर्ष इधर-उधर भटकने में ही निकाल दिये. जब भी मौका मिलता मैं जैनेंद्रजी के पास चला जाता था. मैं नये लेखकों से भी ज्यादा परिचित नहीं था. इसलिये उनके पास आनेवालों को अधिक नहीं जान पाया—हां हिमांशु जोशी जो नये-नये दिल्ली आये थे और जैनेंद्रजी के पास पहुंचते रहते थे उनसे मैं थोड़ा-बहुत परिचित हो गया था.

जैनेंद्रजी अपने उपन्यास-कहानी बोलकर ही लिखाते थे. मेरे नजदीक यह एक जबरदस्त चमत्कारिक प्रक्रिया थी. वह उपन्यास इस तरह से बोलते थे गोया वह उन्हें मुंह जबानी याद हो और उनका उच्चारण स्वतः ही होता चला जा रहा हो. उनके बोलने में सोच की गंभीरता होती थी जो अपने अनुरूप भाषा का स्वरूप ग्रहण कर लेती थी. जैनेंद्रजी के बोलने में उनके भावों में गुंथी वैचारिकता अपनी पूर्ण लाक्षणिक तत्परता के साथ उभरती थी.

मैंने उनसे एक बार पूछा भी था—क्या आप पहले से ही सारी औपन्यासिक स्थितियों को मन में बुन संवार लेते हैं?

जैनेंद्रजी ने हल्के से मुस्कराकर कहा था, "नहीं भाई, मैं तो लिखने से पहले यह तक भी नहीं जान पाता हूं कि मुझे बोलना क्या है. मेरे मन में लिखने से पहले एक क्षण पहले तक भी कोई कहानी या उपन्यास नहीं होता है. मैं भीतर से पूरी तरह खाली होता हूं और जो भी लिखने को तत्पर दीख पड़ता है उसे लिखना शुरू कर देता हूं. कोई लिखने वाला न आये तो मुझे वैसी कोई उलझन भी नहीं होती है. कुछ लिखने अथवा लिखाने का वैसा कोई आग्रह भी मेरे भीतर नहीं होता है. सच पूछो तो मैं लेखक हूं ही कहां."

जैनेंद्रजी पूरे सोच से बनने वाली जहनियत के लेखक हैं. देह जैसी पूरी रचना और उसमें निर्मित होने वाली मांस पेशियां धमनियां तथा उनमें प्रवाहित होने वाला रुधिर सब कुछ अनाम तरीके से उनके सोच और लेखकीय स्वरूप में समाहित है. मैंने गत तीस पैंतीस सालों में उन्हें बोलकर ही लिखाते पाया है. पूरेपन का समष्टि भाव उनके भीतर न होता तो शायद पिछले साठ वर्षों तक वह इतना सब कुछ बोलकर न लिखते चले जाते. उपन्यास, कहानी, निबंध, विचार सभी उनके साहित्य को जबरदस्त विविधता प्रदान करते हैं.

मैं अनेक वर्षों तक उनके पास जाकर बातें करता रहा हूं और बीच में कभी कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ है. मैं और भी बहुत से बड़े लेखकों के पास भी जब तब जाता हूं पर ऐसा हमेशा नहीं होता कि वह मेरे लिये ही प्रस्तुत हों और सब तरफ से फुर्सत में हों. जायसी के अनुसार 'नागमती यह दुनिया धंधा' के रज्जु में सभी थोड़े बहुत बंधे ही मिलते हैं मगर जैनेंद्रजी तो जैसे सब तरफ से निफराम ही मिलते हैं. बेटा बहू उनसे कुछ भी ऐसा पूछने नहीं आते कि वह बातें छोड़कर उधर व्यस्त हो उठें. इतने वर्षों में उन्हें सूचना पहुंचाकर कभी नहीं मिलना पड़ा. मैंने मिलने से पहले कभी खत लिखकर समय नहीं मांगा. ना ही कभी फोन वगैरह के जरिये उन्हें सूचना भेजी.

गत पंद्रह बीस वर्षों में तो बीच में चाय-वाय आने लगी है बाकी बहुत दिनों तक तो हम दोनों के मध्य कुछ भी ऐसा नहीं आता था जिसे व्यवधान की संज्ञा दी जा सके. बहुत दिनों तक मेरे लिये यह कल्पना भी दुरूह थी कि वह एक सांसारिक जीव भी हैं. उन्होंने भी बच्चों का पालन पोषण किया है और शादी ब्याह के जटिल प्रसंग भी देखे-भुगते हैं.

वह सही अर्थों में मितव्ययी और अपरिग्रही हैं. उन्होंने स्थितियां भी तदनुरूप ही चुनी हैं. कभी कोई नौकरी नहीं की—किसी दरबारीपन में नहीं पड़े. फलस्वरूप वह किसी के लिये जरूरी गैर-जरूरी वांछित-अवांछित भी नहीं हुये. परिवार में कभी कोई विग्रह या द्वंद्व की दरार नहीं आयी. हां ऐसा संभव नहीं है पर उन्होंने निवृत्ति मार्गी का अनुसरण करते हुये ही प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया है. आज हम हिंदी के लेखक की पचास साठ साल पहले की सही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिक परिस्थितियों का अनुमान नहीं लगा सकते जब बरसों बरस लिखते-छपते चले जाने पर भी टकों के दर्शन नहीं होते थे और लेखक साधुवाद-धन्यवाद के सहारे जीवित रहता था. प्रकाशक पूरी पुस्तक पर पचास रुपये भी कहां देते थे? कहानी का दो रुपये पारिश्रमिक भी गनीमत समझा जाता था. आज जैनेंद्रजी को बड़े पुरस्कार और सम्मान मिल रहे हैं. यह सही है पर इन उपलब्धियों को उन्होंने अपने लेखन से कभी नहीं जोड़ा और अपने व्यक्तित्व को इन चीजों से प्रभावित भी नहीं होने दिया.

मैं जैनेंद्रजी के पास जब भी जा निकला हूं उनसे लंबी बातचीत हुई है. कभी कोई विशेष विषय नहीं होता है. यों ही चर्चा चल निकलती है, देश, समाज, नीति, राजनीति, धर्म तथा साहित्य पर घंटों निर्बाध हम दोनों संलाप करते रहते हैं. बीच में वह कभी उठकर किसी काम से नहीं जाते. इतने वर्षों में हम दोनों जान गये हैं कि हम दोनों के बीच जो भी संवाद हो रहा है वह अपने आप में ही एक उद्देश्य हेतु उसे कहीं हाई लाईट होने की मजबूरी नहीं है.

विदेशी लेखकों की जैनेंद्रजी से कई बार चर्चा हुई है. विदेशी लेखकों में टालस्टाय और दोस्तोवस्की दो ऐसी महान विभूतियां हैं जिन पर बातें करना जैनेंद्रजी को विशेष रुचिकर लगता रहा है. इन दोनों के बारे में बातें करते हुये उनकी वाणी खास तौर से मुखर हो उठती है. हमेशा यही लगता है जैसे वह उन दोनों से निजता के स्तर पर जुड़े हुये हों. उनका मनसतत्व खूब उभरकर सामने आया है. ऐसी ही एक चर्चा के दौरान मैंने एक बार उनसे पूछा था, "टालस्टाय और दोस्तोवस्की में से आपको कौन अधिक प्रभावित करता है?"

जैनेंद्रजी संभवतः इस प्रश्न से अपने मन में अनेक बार आमने-सामने हो चुके थे. वह एक क्षण भी गंवाये बिना बोलने लगे, "निश्चय ही दोस्तोवस्की मुझे ज्यादा यानी सर्वाधिक प्रभावित करता है."

मुझे उनकी बात सुनकर अचरज ही अधिक हुआ. टालस्टाय व्यक्तिगत जीवन में गहरे निष्ठावान, आदर्शवादी और असाधारण रूप से सादगी की ओर प्रवृत्त थे. महान लेखक होने के साथ-साथ जबरदस्त ढंग से आत्यात्तिकतापूर्ण नैतिक थे. जैनेंद्रजी की जीवन पद्धति भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करने वाली थी, जबकि दोस्तोवस्की बाहर से घोर अनुशासनहीन, जुआरी-शराबी, अन्यमनस्क और बीमार आदमी था. मैंने जब यही बात उनसे कही तो वह बोले, "टालस्टाय और दोस्तोवस्की दोनों ही महान आस्थावादी तथा अनन्य रूप से असाधारण कलाकार थे, लेकिन टालस्टाय घोर नैतिक निष्ठावान और आदर्शवादी होकर भी स्वयं को कभी ढीला और मुक्त नहीं कर पाये. संशयहीनता उनसे निभ नहीं पाई. यहां तक कि मरते समय भी तनावहीन और अकुंठित नहीं हो पाये. टालस्टाय-परिवार, पत्नी, संसार किसी को सहज होकर स्वीकार नहीं कर सके. व्यक्तिगत स्तर पर भी गहरे मारक द्वंद्वों में ही नहीं पड़े रहे बल्कि आत्म निर्वासन ही भुगतते चले गये. इसके विपरीत दोस्तोवस्की जागतिक रूप से घोर अनाड़ी और अस्थिर होकर भी गहरी आस्था और भाव प्रवणता में डूबा रहा है."

जैनेंद्रजी को अनायास जैसे अपने मन का विषय मिल गया हो, वह उन दोनों महान विभूतियों के बारे में निर्बाध रूप से अपने विचार प्रकट करते चले गये. "टालस्टाय तो पैदायशी काउंट थे. उन्होंने कभी अर्थाभाव नहीं देखा. पीड़ितों के प्रति गहरी वेदना उनके मन में थी पर उन्हें उबारने की ललक भी कहां पूरी कर पाये. टालस्टाय कभी वह नहीं कर पाये जो कि वह गहरी निष्ठा के साथ कर्तव्यविभूत होकर करना चाहते थे. इसके विपरीत दोस्तोवस्की वयस्क होते ही घोर अर्थाभावों से जूझता रहा. अपने विचारों की पुख्तगी के लिये निर्वासन और फांसी तक भुगतने को तत्पर रहा. लिखने और जीने की जैसी उत्कट जिजीविषा दोस्तोवस्की में दीख पड़ती है वह किसी दूसरे लेखक में मुझे नजर नहीं आयी. अनुभवों का भंडार दोस्तोवस्की का जीवनाधार और धारदार लेखन सामग्री दोनों ही बना रहा. महान कलाकार हों या महान व्यक्ति, दोनों ही अभागे रह जाते हैं. अगर उनके मन की गांठ खुल नहीं पाती. मन को विगलित किये बगैर क्या जीया जा सकता है?"

मैं कभी-कभी हिंदी के लेखकों के संबंध में भी चर्चा छेड़ देता था. जैनेंद्रजी, प्रेमचंद के बारे में बहुत आत्मीयता से बातें करते थे. जो वह मुझे बतलाते थे वह किसी न किसी रूप में हिंदी पाठकों को बहुत कुछ मिल भी चुका है. दूसरे लेखक अज्ञेय ही ऐसे थे जिनको लेकर वह बहुत-सी बातें करते थे. अज्ञेय को लेकर जैनेंद्रजी हमेशा भावुक हो उठते थे. शायद इसका एक कारण तो यही था कि हिंदी में अज्ञेय को परिचित कराने का दायित्व सर्वप्रथम उन्होंने ही वहन किया था. अज्ञेयजी का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन है और वह लाहौर के क्रांतिकारियों में महत्वपूर्ण थे. उन्हें सजा हुई तो उन्हें दिल्ली में रखा गया. अज्ञेय जी ने अपनी कहानियां अपने वास्तविक नाम से जैनेंद्रजी को भेजीं और जैनेंद्रजी ने रचनाओं पर उनका असली नाम न देकर अज्ञेय नाम दिया और इसी नाम से रचनायें प्रकाशनार्थ पत्र-पत्रिकाओं में भेजीं. आगे जाकर वात्स्यायन का नाम अज्ञेय ही हिंदी संसार में प्रतिष्ठित भी हुआ.

अज्ञेयजी लंबे वर्षों तक जैनेंद्रजी के साथ जुड़े रहे. उनके घर में भी रहे, उनके साथ शांतिनिकेतन भी गये और उन्होंने जैनेंद्रजी के उपन्यास 'त्याग-पत्र' का अंग्रेजी में 'दा रिजिग्नेशन' नाम से अनुवाद भी किया. अज्ञेयजी से जैनेंद्रजी को यह शिकायत तो कभी नहीं रही कि अज्ञेय ने उनका अवदान मुखर होकर कभी स्वीकार नहीं किया, हां यह शिकायत जरूर बनी रही कि अज्ञेय अहं से कभी नहीं उबर पाये. और ज्ञेय होने की सहजता उनसे हमेशा दूर रही. एक प्रसंग ऐसा भी आया कि अज्ञेय जैनेंद्रजी से खिचते चले गये. हुआ यह कि 'नदी के द्वीप' की एक प्रति उन्हें शिवदान सिंह चौहान से पढ़ने को मिल गयी.

चौहानजी की प्रति लौटाते समय अपनी सहज प्रतिक्रिया भी लिख भेजी जिसमें उन्होंने यही कहा था कि लेखक के आत्मदान में चूक है. अज्ञेय के उपन्यास के संबंध में जैनेंद्रजी की यह एक सहज प्रतिक्रिया थी और इसे प्रसारित प्रचारित करने का कोई उद्देश्य नहीं था लेकिन चौहानजी ने बार-बार मना करने के बावजूद इसे प्रकाशित कर दिया जिससे जैनेंद्र बहुत आहत हुये और अज्ञेय ने भी इस टिप्पणी को बहुत गंभीरता से लिया.

वैसे अज्ञेय जैनेंद्रजी के घर आते ही रहते थे. जैनेंद्रजी की पत्नी के प्रति परम आदर भाव रखते थे—उनका व्यवहार भी सहज स्नेहपूर्ण होता था. श्रीमती जैनेंद्र भी उन्हें वात्सल्य के स्तर पर स्नेह देती थीं. जैनेंद्रजी के बड़प्पन को अज्ञेयजी भी भीतर तक गहराई से स्वीकार करते थे. मृत्यु से पहले वह जैनेंद्रजी के पास आये थे और उनकी रुग्णता को लेकर काफी द्रवित भी थे.

जैनेंद्रजी अज्ञेय से कितनी गहराई से जुड़े हुये हैं इसका पता इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय की मृत्यु का उन्हें भी आभास नहीं दिया गया.

आज़ लेखक जैनेंद्र की महानता के संबंध में विशेष रूप से कुछ भी कहने की आवश्यकता बाकी नहीं रह जाती है—हिंदी कथा साहित्य के वह अपने अलग ढंग के मूर्धन्य लेखक हैं. दैहिक रूप से वह निश्चय ही अस्वस्थ हैं पर उनके जैसे कर्मरत व्यक्ति को अक्षम देखना सहन नहीं हो पाता. साथ ही साथ यह भी नहीं भूलना चाहिये कि उन्होंने पराजय स्वीकार नहीं की है. वह पस्त नहीं हुये हैं. जीवन के प्रति उनकी ललक उनके आंसुओं के निर्झर से प्रवहमान हो उठती है. तन मन से स्वस्थ होने के लिये वह चिकित्सकों और परिचर्या करनेवालों को भरपूर सहयोग दे रहे हैं. देह की यह लड़ाई कठिन अवश्य है, पर उनके मन में कहीं कोई गांठ नहीं है. इसलिये वहां बिखराव व विभ्रम की कोई गुंजाइश नहीं है.

मैं मन और आत्मा से परम आश्वस्त हूं कि एक बार फिर उनकी वाणी और कलम का निर्झर फूटेगा और उनसे फुर्सत में मुलाकातें और बातें होंगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1937, अल्मोड़ा (उ.प्र.)
कृतियां : 'जंगल में आग', 'कछुए की पीठ पर', 'गोबर गणेश', 'किस्सा गुलाम,'
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : 3/2 प्रोफेसर्स कालोनी, भोपाल

रमेशचंद्र शाह

गांव की नदी

वे दोनों घिर गये. अचानक ही. घर से जिस वक्त निकले थे, आसमान एकदम साफ था. नहीं तो छाता साथ में रख लेते. अचानक बारिश होने लगे और वह भी चीड़ के जंगल में, तो बचने का उपाय क्या है? चीड़ से ज्यादा सुंदर कोई पेड़ नहीं होता. मगर क्या फायदा ऐसी सुंदरता से जो न धूप से बचा सके, न बारिश से.

"अब भीगो प्रेम की छाया में. बहुत प्रेम-प्रेम कर रहे थे," अधेड़ ने हंसते हुए कहा, "तुम्हारी प्रेम कहानी के चक्कर में हम दोनों में से किसी का भी बदलते मौसम की ओर ध्यान ही नहीं गया."

"भाई साहब, ऐसे तो हम और ज्यादा भीगेंगे. इससे तो अच्छा है खुले में जा के भीगें," युवक बोला, "कम से कम रास्ता तो कटेगा. आप दौड़ लगाने को तैयार हों तो हम पांच मिनट में चुंगी पहुंच जायेंगे. वहां चाय भी मिल जायेगी और चूल्हे के पास बैठ के अपने कपड़े भी सुखा लेंगे."

अधेड़ ने इस पर अजीब-सा मुंह बनाया, "मुझे प्रेम में भींगना मंजूर है मगर भागना नहीं. तुम्हारी बात और है. तुम अपने से बीस बरस बूढ़े आदमी को अपने साथ नहीं दौड़ा सकते. समझे? रुको, यहीं कुछ इंतजाम करते हैं. आओ मेरे साथ आओ."

युवक का हाथ पकड़कर अधेड़ नीचे ढलान की ओर उतर गया जहां बीसियों चट्टानें अपनी चोंच फाड़े खड़ी थीं. दोनों एक चट्टान के नीचे जा दुबके. "यह तो मुझे सूझा ही न था," युवक बोला..."अरे भई, तुम्हारा अपना शहर है. तुम्हें कैसे सूझेगा?" अधेड़ खिलखिलाकर हंस पड़ा. "इस 'ग्रेनाइट हिल' की परिक्रमा करते-करते हमें साल भर से भी ऊपर हो गया. तुम्हीं ने चस्का डाला था इसका याद नहीं?"

दो प्रेमी जो बरसों से लगभग रोज ही मिलते रहे हों और खुले में, दिन के प्रकाश में मिलते रहे हों— कल्पना करो कि वे जब पहली बार घुप्प अंधेरे एकांत में दुनिया की नजरों से छिपकर मिलेंगे तो वह मिलना कैसा होगा?

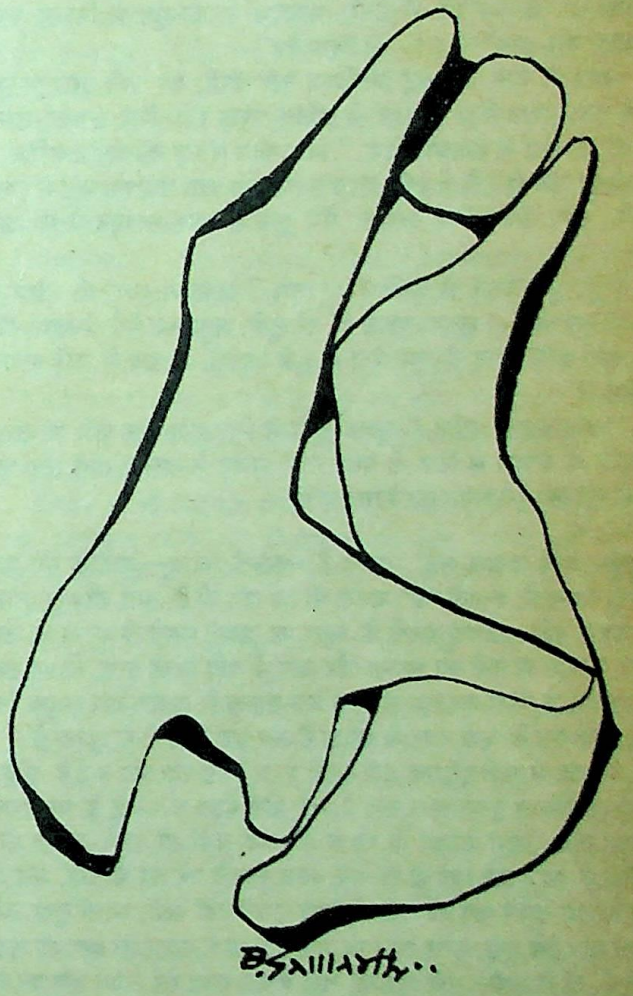

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

युवक मुस्कराने लगा. उसे अचानक याद आया जब वह इस आदमी को लेकर पहली बार यहां आया था तो छूटते ही इसने कहा था, "तुम्हारा यह ग्रेनाइट हिल एक आदमी के चेहरे की तरह है जो रोज दाढ़ी बनाता है, रोज क्लीन शेव करता है, मगर सिर्फ एक तरफ." सचमुच ऐसा ही तो दिखता है यह. मगर ऐसा हो कैसे गया? एक तरफ इतना हरा-भरा जंगल और दूसरी तरफ ऐसा नंगा उजाड़. यहां तक कि ये दैत्याकार चट्टानें भी सब जंगल की ही तरफ हैं. आखिर दूसरी तरफ क्या वज्र गिर गया था, पहाड़ धसक गया? क्या हुआ? क्या सोच रहे हो?" अधेड़ ने पूछा "क्या अब भी उसी..."

युवक के माथे पर सलवटें पड़ गईं. पता नहीं, किस झोंक में आज वह इस आदमी के सामने इस कदर खुल गया. उसे अपने ऊपर ग्लानि-सी होने लगी. क्या हो गया था मुझे आज...उसे एकाएक अधेड़ पर गुस्सा आने लगा. उसी ने तो खोद-खोद कर...नहीं. उसका कोई कसूर नहीं. मैं ही खामखाह बहक गया था—उसने अपने को याद दिलाया.

अधेड़ अनमना-सा दूर दूनागिरि की तरफ देख रहा था. मूसलाधार बारिश की धुंध मे कुछ भी तो नहीं दिखाई दे रहा. न पहाड़, न नदी, न सड़क..."यह जो नदी है ना तुम्हारी, इसे देखकर मुझे हमेशा अपने गांव की नदी याद आ जाती है."

"मगर नदी वहां है कहां?...मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा," युवक धुंध पर अपनी आंखें गड़ाकर नदी को खोजने की कोशिश करने लगा.

अधेड़ ने अपना एक हाथ युवक के कंधे पर रख दिया, "तुम्हें नहीं दिखाई दे रही होगी. मुझे तो दिखाई दे रही है. देखोगे?"

युवक ने चौंककर अधेड़ को गौर से देखा. अधेड़ की आवाज उसे कुछ अजीब-सी, अनपहचानी-सी लगी. एकाएक उसके मुंह से निकल पड़ा, "दादा, क्या आपने भी कभी प्रेम किया है?"

अधेड़ के चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दीखी. वह उसी तरह गुमसुम बना रहा. युवक थोड़ी देर तक तो प्रतीक्षा करता रहा, फिर ऊबकर उसने अधेड़ को जोरों से झकझोर दिया. "किस सोच में पड़ गये दादा? बारिश तो थमने का नाम ही नहीं ले रही. हम कब तक इस तरह यहां इस मांद में दुबके रहेंगे. अभी अंधेरा घिर आयेगा. मैंने सुना है इधर लकड़बग्घे भी आते हैं."

"तुम मुझे डराने की कोशिश मत करो," अधेड़ ने युवक की आंखों में झांकते हुए कहा, "सुनना चाहते हो, तो सुनो. मगर यह मेरी प्रेमकथा नहीं है. वादा करो कि न तो तुम बीच में मुझे टोकोगे, न बाद में कोई सवाल पूछोगे."

"ऑल राइट. एग्रीड," युवक खुशी से चिल्लाया और पीछे की तरफ खिसक के दीवाल से टिक के पसर गया. अधेड़ ने पालथी मारी और ऐसे आंखें मूंद लीं जैसे ध्यान करने जा रहा हो.

यह कोई कहानी नहीं, घटना है—सच्ची घटना—क्योंकि प्रेम एक घटना है, कहानी नहीं. घटना भी यह गांव की है, नगर की नहीं. नगर में घटना नहीं, घटनाएं घटती हैं. नगर का आदमी पहले तो घटना को उस तरह महसूस ही नहीं कर सकता और जान भी जाए किसी तरह, तो वह उसे यथावत् न तो ग्रहण कर सकता है, न बता सकता है. जबकि गांव समूचा एक मुंह से बोलता है, एक नजर से देखता है और एक तरह से ही सुनता है.

मेरे गांव से लगी हुई एक नदी बहती है. नदी पर एक घाट बना है, उतना ही पुराना जितना पुराना मेरा गांव है. नदी कोई बहुत बड़ी नहीं है, पर नहाने लायक पानी उसमें हमेशा ही रहता है. कहीं-कहीं तो डूबने लायक भी. गर्मियों में वह दुबली भले ही हो जाये, मगर सूखती वह तब भी नहीं. मैंने तो कम से कम अपने गांव की नदी को कभी सूखते नहीं देखा. बरसों गुजर गये अपना गांव देखे मुझे, मगर आज भी कोई मुझे आके बताए कि वह नदी सूख चुकी है, तो मैं यकीन नहीं करूंगा. चाहे बताने वाला मेरे अपने गांव का ही क्यों न हो.

घाट के दो हिस्से हैं. एक हिस्सा मर्दों के लिए है और दूसरा औरतों के लिए. दोनों के बीच एक दीवाल है—बहुत ही पुरानी दीवाल—जैसी तुमने शायद ही कहीं देखी होगी. यों दूर से तो उसका पता तक नहीं चलता. एकदम पास पहुंचने पर ही तुम्हारी समझ में आएगा कि अरे, यहां तो दीवार है और खासी दीवार है.

एक लड़का और एक लड़की बचपन से ही इस नदी पर नहाने आया करते हैं. पहले अपने घर के लोगों के साथ, फिर बाद में अपने सखाओं-सहेलियों के साथ. लड़का जाट है और लड़की ब्राह्मण-कन्या है. गांव के पुजारीजी की इकलौती संतान.

पुजारीजी कहने से पुजारीजी का परिचय पूरा नहीं होगा. वे काशी के पढ़े हुए थे. सुना बहुत बड़े विद्वान थे और वहीं विश्वविद्यालय में उन्हें कोई पद भी दिया गया था जो उन्होंने स्वीकार नहीं किया. इसलिए, कि गांव छोड़कर जाना-महज चाकरी करने के लिए—उनके कुलधर्म के विरुद्ध था. उस जमाने के ब्राह्मण ऐसी बातों को बहुत मानते थे और अल्पसंतोषी होते थे. हमारे पुजारीजी का इतना नाम था कि दूर-दूर से लोग उनसे पढ़ने-सीखने को आते थे. वे स्वयं कहीं नहीं जाते थे. जिन्हें आना होता था, उनके पास ही आते थे. पुजारीजी ने घर में ही एक पाठशाला खोल रक्खी थी. पर पाठशाला से भी अधिक उन्हें मंदिर से लगाव था. वह मंदिर की धुरी था. पुजारीजी स्वयं ही सारे उत्सवों का आयोजन करते थे और गांव के बच्चों को, युवकों को उनमें भाग लेते देखकर उन्हें बड़ा आनंद आता था. उन्हें संगीत में, खेल-कूद में, हर चीज में रस था. वे रूखे पंडित नहीं थे. गोपाल उन्हें इसीलिए प्रिय था कि उसका कंठस्वर बहुत ही मधुर था. होली, शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि अवसरों पर गोपाल के गानों की धूम मची रहती. वह बांसुरी भी बहुत अच्छी बजा लेता था.

लघु कथा

साक्ष्य

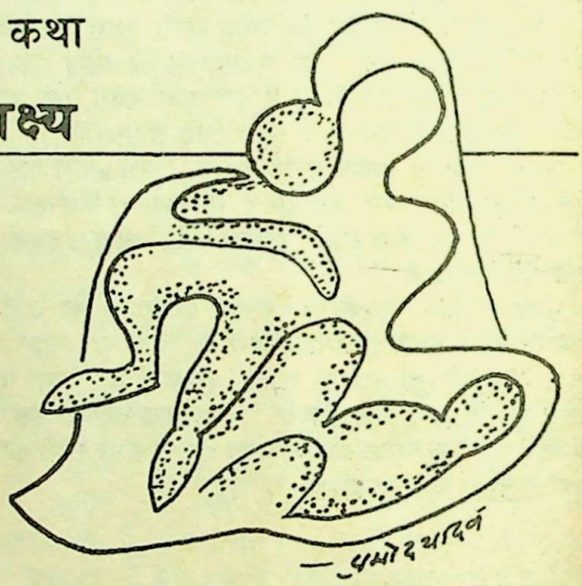

सत्य प्रकाश हिंदवान

बलात्कार की घटना को लेकर कस्बे में आये दिन हड़ताल और बंद हो रहे थे. प्रशासन ने आखिर कुछ लोगों के खिलाफ बलात्कार का मुकदमा दायर कर दिया.

उस महिला को पुलिस कस्टोडी में 'नारी सुधार गृह' भेजने का आदेश दे दिया था. जन आक्रोश शांत हो गया था.

वह पिछले तीन दिनों से पुलिस कस्टडी से चंपत हो जाती थी. रोज बदहवास हालत में उसे दो नये पुलिस वाले फिर पुलिस कस्टडी में लाते रहे थे.

लेकिन एक शाम वह ऐसी चंपत हुई कि पता ही नहीं चला. अब पुलिस गिरफ्तार लोगों के खिलाफ मुकदमे के साक्ष्य जुटाने में परेशान थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुजारीजी की लड़की गोपाल के कंठस्वर की दीवानी थी. जब भी मंदिर में गोपाल का कार्यक्रम होता, वह दौड़कर वहां पहुंच जाती और जितनी देर वह गाता या बजाता रहता, उसे एकटक निहारती रहती. वह खुद गाना सीखना चाहती थी किंतु पुजारीजी चाहते थे वह विदुषी बने. आखिर वह उनके लड़के की जगह थी और बचपन से ही उसकी विलक्षण बुद्धि का सभी लोहा मानने लगे थे. सच बात तो यह है कि संगीत की ओर उसका झुकाव अचानक ही हो गया था और इसका एकमात्र कारण था गोपाल.

पता नहीं बात कहां से शुरू हुई. कहीं से भी शुरू हुई हो, इससे क्या! जब तक घटना नहीं घटी थी, दो-चार लोगों को छोड़कर, किसी को इतनी फुरसत नहीं थी कि उसका पूर्वानुमान लगाने बैठता और जब घटना घट ही गई तो पूरा गांव एक स्वर से कहने लगा कि ऐसी घटनाएं कोई एक जनम से थोड़ी निकलती हैं. यह तो पूर्वजन्म का रिश्ता था, पूर्वजन्म का.

मैं खामखाह आगे बढ़ गया. चलो, पीछे लौट चलें, जहां अभी घटना की छाया तक पड़नी शुरू नहीं हुई.

वे घाट पर ही एक दूसरे से मिलते रहे होंगे, या फिर मंदिर में. नहीं, मंदिरवाला किस्सा तो काफी बाद का किस्सा है. तब फिर, घाट पर ही पहले-पहल उन्होंने एक-दूसरे को देखा होगा. कब? यह तो कौन बता सकता है? गोपाल मेरा नहीं, मेरे बड़े भाई का दोस्त था और बड़ा भाई बड़ा भाई ही होता है. क्या बचपन में पहली बार एक-दूसरे को देख के ही वे दोनों एक-दूसरे पर निछावर हो गये थे? यह मानने को मन जरूर करता है, मगर ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि गोपाल बचपन में न केवल मंदबुद्धि था, बल्कि बेहद शरमीला और डरपोक भी. किसी का भी ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो, ऐसा उसमें कुछ था ही नहीं. दूसरी ओर, वह जो विदुला थी, वह बचपन से ही ऐसी विलक्षण थी—क्या रूप में, क्या बुद्धि में, क्या चाल-ढाल में,—कि पूरे गांव को उस पर गर्व होना स्वाभाविक था. गोपालजी मुखिया के लड़के जरूर थे, मगर पढ़ने-लिखने में उनका बिल्कुल मन नहीं लगता था. इकलौते भी नहीं थे, इसलिए मार भी खूब खाते थे.

कहते हैं, गांव में एक बार नाटक-मंडली आयी तो गोपालजी खाना-पीना सब भूल के दिन रात वहीं पड़े रहने लगे और जब मंडली गांव से विदा हुई तो जाने कैसी सांठ-गांठ उन्होंने उन लोगों के साथ भिड़ाई, कि दूसरे दिन वे भी गांव से गायब हो गये. तब गोपालजी मुश्किल से तेरह-चौदह साल के रहे होंगे. उन्हें ढूंढ़-खोज के वापस लाया भी गया, मगर वे कुछ ही दिन बाद फिर लापता हो गये और जब उनके घरवालों ने उन्हें वापस पाने की सारी उम्मीद छोड़ दी तो वे पूरे साल भर बाद एक दिन अचानक गांव में प्रकट हुए और सीधे घर जाने की बजाय वे पहले कहां पहुंचे? हमारे पुजारीजी के पास. पता नहीं पुजारीजी पर उन्होंने क्या जादू फेरा कि पुजारीजी खुद उन्हें साथ लेकर मुखियाजी के घर गये और कहा, "यह वह गोपाल नहीं है जो आपके घर से भागकर गया था. यह एक दूसरा गोपाल है जो हमारे गांव का नाम उजला करेगा. मुखियाजी, स्कूल की तोता रटंत से क्या होता है? नौकरी करके पेट भरना तो इसको है नहीं. भगवान ने आपको सब कुछ दिया है. अब इस गुणी कलाकार को अपने आश्रय में लीजिए और इसे जतन से रखिए. भगवान जो करते हैं, हमारे भले के लिए ही करते हैं."

बस, गोपालजी पुजारीजी के लाड़ले क्या बने, पूरे गांव के लाड़ले बन गये. अब तो जिधर देखो, उधर गोपालजी. गोपालजी नाटक कर रहे हैं, गोपालजी मुरली बजा रहे हैं, गोपालजी का गायन हो रहा है. घाट पर देखो तो गोपालजी जमे हुए हैं, बाट पर देखो तो गोपालजी रमे हुए हैं. कोई घर ऐसा नहीं, जहां गोपालजी की बुलाहट न हो, कोई स्वर ऐसा नहीं, जो गोपालजी के स्वर का अनुसरण न कर रहा हो.

केवल एक पुजारीजी की कन्या विदुला को छोड़कर. विदुला तक लगता है, गोपालजी की कीर्ति-कथा या तो अभी तक पहुंच ही नहीं पायी थी या फिर वह जानबूझकर उदासीन बनी हुई थी. मैंने बताया ना कि पुजारीजी पुजारीजी ही नहीं थे, आचार्यजी भी थे. और विदुला पुजारीजी की नहीं, आचार्यजी की पुत्री थी. पाठशाला की देखरेख उसी के जिम्मे थी. जिस ज़माने में लड़कियों को लोग स्कूल तक भेजने की कोई जरूरत नहीं समझते थे, उस जमाने में आचार्यजी, यानी हमारे पुजारीजी ने अपनी पुत्री को एक के बाद एक, जाने कितनी परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करवा दी थीं. पुजारीजी के घट में—गांव वालों का यही कहना था—दो-दो जीव बैठे हैं. एक परम ज्ञानी है और दूसरा परम भक्त. कहना न होगा कि गोपालजी के गांव आने के बाद पुजारीजी का परम ज्ञानी रूप कुछ ओझल-सा हो गया था. उसकी जगह पर मानो उसे चांपकर अब वह परम भक्त विराजमान हो गया था.

एक दिन सदा की तरह विदुला अपनी पाठशाला में पढ़ा रही थी. पढ़ाते-पढ़ाते वह अचानक रुक गयी और एकटक देखने लगी सामने के उस पेड़ को, जिसके पत्तों के झुरमुट के बीच उसे एक अजीब-सी हलचल दिखाई दी थी. पहले तो उसे लगा, बंदर होंगे. फिर थोड़ी ही देर में उसे हलचल का कारण समझ में आ गया. उस वक्त पुजारीजी घर में नहीं थे. विदुला ने बच्चों को विदा कर दिया और धीरे-धीरे चलती हुई उस पेड़ के नीचे आकर खड़ी हो गयी. गोपालजी भी धीरे-धीरे उतर के अपराधी की तरह विदुला के सामने सिर झुकाए खड़े हो गये. किंतु ऐसी मुद्रा में वे एक क्षण से अधिक कैसे रह सकते थे. जल्द ही उन्होंने मुंह उठाया और विदुला के रोष भरे मुख मंडल पर आंखें गड़ा दीं और मंद-मंद मुस्कराने लगे. "यहां क्या कर रहे थे गोपाल?" के कड़कीले सवाल पर उनके मुंह से बेसाख्ता निकल गया, "मैं जी, आपको ही देख रहा था. मुझे आपको देखना बहुत अच्छा लगता है. मैं आज से नहीं, कब से आपको इसी तरह देखता आ रहा हूं. जिस दिन आपको नहीं देखता, किसी काम में मन नहीं लगता." गोपालजी एक सांस में जाने क्या-क्या बोल गये और फिर एकाएक शरमाकर चुप हो गये. पहले तो बिदुला को अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हुआ, फिर बहुत ही परेशान होकर उसने पूछा, "और अभी पिताजी देख लेते तो? पिताजी से तुमको क्या डर नहीं लगता?"

गोपालजी की निगाहें उठीं और विदुला के मुख पर टिक गयीं. "लगता तो है. इसीलिए तो..."

"इसीलिए तो...क्या?" विदुला ने जवाब तलब किया. उसके स्वर में अब वह कड़ापन नहीं रह गया था.

"इसीलिए तो...मेरा मतलब है, इसीलिए तो आपको छुपके देखने आता हूं. वैसे तो घाट पर आपको देख ही लेता हूं. पर अक्सर मुझे देर हो जाती है और आप नहाकर जा चुकी होती हैं. तब मैं यहां चला आता हूं और पेड़ पर चढ़कर आपको देखता रहता हूं. उतनी दूर से आप अच्छी तरह दिखाई तो नहीं देतीं. मगर झलक तो पा ही जाता हूं. मन करता है, कितना अच्छा होता अगर मैं यहां पेड़ पर ही टंगे रहने की बजाय वहां आपके सामने आपके बच्चों के बीच ही बैठ सकता."

ढीठपन की भी कोई हद होती है. बेचारी विदुला तो जैसे धरती में गड़ गयी. बमुश्किल उसने अपने को संभाला और कहा, "कैसी मूर्खों जैसी बात कर रहे हो. अब जाओ और आगे से ऐसा मत करना. पिताजी देख लेंगे तो क्या कहेंगे."

गोपालजी लज्जित-सी हंसी हंस दिए. पता नहीं उनके चेहरे पर निगाह पड़ते ही विदुला को भी हंसी आ गयी.

यह सारा किस्सा विदुला ने मंजुला को यानी मेरी बहन को बताया था. हर व्यक्ति का कोई न कोई एक तो ऐसा अंतरंग होता ही है जिससे जी खोला जा सके. मंजुला विदुला की ऐसी ही एकमात्र विश्वासपात्र सहेली थी. गोपालजी का ऐसा कौन था, यह कहना बड़ा मुश्किल है. यों तो वे सबके थे—हमारे भाई साहब तो उनके अंतरंग ही माने जाते थे. मगर मुझे तो विश्वास नहीं होता, उन्होंने अपना यह खास भीतरी भेद किसी के सामने प्रकट किया होगा.

मंजु को विदुला ने बताया कि इस आकस्मिक प्रणय निवेदन के बाद गोपालजी ऐसे गायब हुए कि हफ्तों तक विदुला को उनकी छाया तक नहीं दिखी. घाट पर विदुला की आंखें यहां से वहां कुछ खोजती रहतीं और निराश होकर अपने में ही लौट आतीं. तभी जन्माष्टमी का उत्सव आया. पहली बार विदुला ने गोपाल को आमने-सामने बैठकर सुना. घर पहुंचते ही उसने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पिता से कहा, "बाबूजी, मुझे भी गाना सीखना है."

पुजारीजी एकदम ही चौंक गये. इससे पहले उन्होंनें मंजुला में ऐसी किसी प्रवृत्ति के दर्शन नहीं किये थे. बोले, "गाना सीख के क्या करेगी बेटा. मेरे पास जो असली विद्या थी,वह तो मैंने तुझे दे दी. गाने-वाने में क्या रक्खा है! और...ऐसा है बेटा, आदमी को एक ही काम एकाग्रचित्त से करना होता है तभी विद्या फलती है. बाकी सब बातें विघ्नस्वरूप हैं. ये गाना-बजाना भी."

विदुला को पिता की इस बात से संतोष नहीं हुआ. उसने तत्काल उन्हें टोका, "यदि ऐसा ही है, पिताजी, तो आप गोपाल को इतना महत्व क्यों दिए हुए हैं? पहले तो आप इतना भजन-कीर्तन भी नहीं करते थे, नाटक तो आप कभी देखते ही नहीं थे. जबसे गोपाल आया, आप इन्हीं चीजों के पीछे पड़ गए हैं. पाठशाला में भी तो आप पहले से कम पढ़ाते हैं. और...पहले कितने सारे पंडित आप से चर्चा करने आया करते थे. अब क्यों नहीं आते?"

पुजारीजी भौंचक्के रह गये. उन्हें अपनी पुत्री से ऐसे प्रत्युत्तर की आशा नहीं थी. पुत्री ने अनजाने उनकी दुखती रग पर हाथ रख दिया था. वे अब पाठशाला पर अधिक ध्यान देने लगे. मंदिर उन्होंने गोपालजी को ही सौंप दिया. मगर यह देखकर उनके अचरज का ठिकाना न रहा कि विदुला, जो कि पहले मंदिर की ओर रुख ही नहीं करती थी, अब अक्सर मंदिर जाने लगी है. इतना ही नहीं, वह हर बार उत्सव से लौट के गोपाल की तारीफ के ऐसे पुल बांधती कि पुजारीजी हैरान रह जाते. लड़की में आ रहे परिवर्तन उन्हें चिंतामग्न कर देते. फिर भी उससे कुछ कहने की उन्हें हिम्मत ही नहीं पड़ती. उन्होंने उसे लड़के की तरह पाला था. उसे हर तरह की छूट दी थी. अब उसकी स्वतंत्रता में किसी तरह की बाधा डालने का अर्थ होता—अपनी ही पराजय स्वीकार करना. समूचे गांव में उनकी ऐसी प्रतिष्ठा थी जैसी और किसी की नहीं थी. भला किस की मजाल थी जो उनकी लड़की के बारे में कुछ भी प्रवाद फैलाता. उन्हें पूरा भरोसा था अपनी कन्या पर, कि वह चाहे जितनी छूट ले ले, कोई ऐसा काम नहीं कर सकती जिससे उसकी और उसके पिता की छवि धूमिल हो. फिर भी, यह तो उनकी अनुभवी आंखों से कैसे छिपा रहता कि विदुला ज्यादे से ज्यादा गोपाल का संपर्क चाहने लगी है और पढ़ाई-लिखाई के प्रति उदासीन हो चली है.

उन्होंने इस अप्रत्याशित समस्या को समय रहते हल करने की दिशा में अपना दिमाग दौड़ाना शुरू कर दिया. यह नहीं कि उन्हें विदुला के विवाह की कोई चिंता नहीं थी. वह चिंता तो उन्होंने अपनी समझ से कभी की निपटा ली थी और उस बारे में वे निश्चिंत थे. अपने एक पास ही के गांव के मेधावी छात्र को उन्होंने छात्रवृत्ति दिलवाकर काशी पठा रक्खा था. वह विदुला के साथ ही पढ़ा था और उनका विश्वास था कि विदुला के लिए उससे अधिक सुयोग्य वर कोई दूसरा नहीं मिल सकता. वे मानकर चलते थे कि इसमें विदुला की सहमति तो होगी ही. लड़के के पिता से उन्होंने बातचीत भी कर ली थी और उसे घर-जमाई बनाने की तैयारी उनकी पूरी थी. अभी लड़के की पढ़ाई पूरी होने में तीन वर्ष बाकी थे. कोई और होता उनकी जगह, तो उसकी आलोचना जरूर होती कि इतनी सयानी लड़की का विवाह क्यों नहीं हो रहा है. पर पुजारीजी से पूरे गांव की सहानुभूति थी. विदुला ही उनका एकमात्र सहारा थी. फिर विदुला ने अपने गुणों से पूरे गांव में अपनी धाक जमा रक्खी थी. किसकी मजाल थी जो उस पर उंगली उठा सके.

मगर गांव के समाज में—और विदुला के अब तक के व्यक्तित्व को देखते हुए यह तो एक अनहोनी ही थी. विदुला का उस तरह सारे उत्सवों में बढ़-चढ़कर भाग लेना और किसी न किसी बहाने गोपाल के पास बने रहना...! पुजारीजी से सीधे कहने की तो भला किसको हिम्मत होती. मगर यह भी तो असंभव था कि विदुला और गोपाल को लेकर लोगों की पौराणिक कल्पना बेरोजगार बैठी रहती. गोपाल की मित्र-मंडली भी कम तो नहीं थी. पुजारीजी को पहली बार अपनी पत्नी का न होना बुरी तरह खला. अपनी समझ से उन्होंने विदुला की मां और पिता दोनों की इकट्ठी भूमिका बखूबी निभाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी. अब उनकी समझ में आया कि पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह करने की मित्रों-शुभचिंतकों की सलाह को न मानकर उन्होंने कितनी बड़ी भूल की. पर अब पछताने से क्या हो सकता था. अब तो उस तरह की बात भी सोचना हास्यास्पद और व्यर्थ था.

सोचते-सोचते उन्हें एक तरकीब सूझ ही गयी. उन्होंने विदुला को बुलाकर कहा, "बेटा, तुमने मुझे समय रहते चेता दिया, इसके लिए मैं तुम्हारा कितना कृतज्ञ हूं, मैं बता नहीं सकता. मैं सचमुच भटक गया था. गांधर्व विद्या—इसमें कोई संदेह नहीं एक बहुत ऊंची विद्या है और इसीलिए तो वह देवताओं को भी वश में कर लेती है. किंतु वेद और व्याकरण के सामने वह कितनी हीन वस्तु है, यह विद्वान ही जान सकता है. अब जाकर मेरी समझ में आया कि हमारे पुरखों ने नृत्य और नाटक को इतना महत्व देते हुए भी शिल्पियों-कलाकारों को समाज में बहुत ऊंचा स्थान क्यों नहीं दिया था. वे अच्छी तरह जानते थे कि किसकी जगह कहां है. वे घालमेल से बचना और बचाना चाहते थे. तुम समझ रही हो ना बेटी? यह तो एक व्यसन है—यह नाचना-गाना. इसकी तैयारी और विद्या की साधना के बीच बहुत बड़ा अंतर है. दोनों एक साथ नहीं चल सकते. एक को यदि सिद्ध करना है तो दूसरे को त्यागना ही पड़ेगा. मुझी को देख लो. संस्कार कितने बलशाली होते हैं. मैं ब्राह्मण का लड़का—मुझे नाच-गाने से भला क्योंकर मोह होना चाहिए था! कितनी तपस्या करके विद्या सीखी मैंने. वह भी पिता के पुण्य-प्रताप से. नहीं तो बचपन में कुछ बरस मैं भी अपने रास्ते से भटक गया था. इन्हीं कलाकारों की सोहबत में. वह तो, कहो, सौभाग्य था मेरा, कि समय रहते पिताजी ने मुझे गांव से बाहर भेज दिया. नहीं तो मुझमें और गोपाल में

लघुकथा

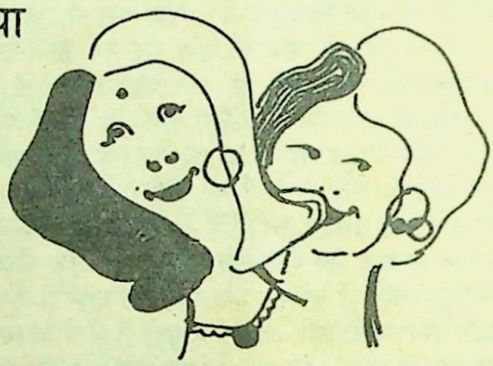

मुक्ति

रमाकांत

मेहतरानी के साथ उसका कुत्ता भी आ जाता. वह उसे बाहर छोड़ देती, लेकिन वह उसके भुड़ते ही चहारदीवारी फांद कर भीतर पहुंच जाता. उसे देखते ही दुर्र...दुर्र का कुहराम मच जाता. एक तो बाहर का कुत्ता, फिर मेहतरानी का. कहां छू दे, कहां मुंह मार दे, क्या ठिकाना! मालकिन मेहतरानी पर गुर्राती और आंगन में जंजीर से बंधी बफादार झबरेली कुतिया कुत्ते पर.

एक दिन मालकिन ने कुत्ते को खदेड़ने के लिए कुतिया की जंजीर खोल दी. कुतिया भौंकती हुई कुत्ते को खदेड़ती बाहर निकल गयी. वह काफी देर तक नहीं लौटी. लोगों ने देखा—दोनों गली में एक-दूसरे को सूंघने लग गये थे.

मेहतरानी मुस्करायी, "बीबी जी, इनके जात नहीं होती! कुत्ते हैं ना!"

"हां री, जभी तो पसू जोनि मिली है, नहीं तो इन्हें भी मानुख जोनि न मिली होती!" मालकिन हिकारत से बड़बड़ायी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अंतर ही क्या था.''

पुजारीजी थोड़ा रुके. अपनी पुत्री की प्रतिक्रिया को भांपने की चेष्टा करते हुए. फिर कहने लगे, ''फिर भी...फिर भी, तुमने स्वयं ही देखा, कि किस तरह अचानक वे मेरे भीतर दबे संस्कार तनिक-सी ढील देते ही कितनी बुरी तरह उभड़ आये. पढ़ने-लिखने से कैसी विरक्ति हो गयी मुझे. वह तो तुम्हारा सहारा था मुझे, नहीं तो मेरी पाठशाला उजड़ते भला कितनी देर लगती. कितने अपयश का भागी होना पड़ता मुझे पंडितों के बीच में. यदि तुम मेरी जगह पर, मेरा काम संभालने को तत्पर नहीं होतीं तो...फिर भी आखिर तुम अकेले कब तक यह दायित्व निभा सकतीं थी. गांव के लोग मेरे पीठ पीछे कितनी निंदा करने लगे थे मेरी—तुम्हें तो पता भी न होगा. मुझे तो ऐसी लत पड़ गयी थी कि सब जानते-बूझते भी मैं उस मोहनी माया से निकल ही नहीं पाता था. तुम्हीं ने मेरी आंखें खोलीं—तुम्हीं ने मुझे समय रहते सावधान किया, तो मैं जागा. आज मुझे वह सब एक दुःस्वप्न-सा लगता है. अचरज होता है मैं कैसे उस माया में इतने दिन लिथड़ा रहा—अपना स्वधर्म छोड़कर.

''तुमने एक बार मुझसे संगीत सीखने की इच्छा प्रकट की थी. मैंने मना कर दिया था तुम्हारे ही हित को ध्यान में रखकर. अब मुझे लगता है, मैंने तुम्हारे प्रति अन्याय किया. आखिर तुम मेरी संतान हो. समूचा गांव एक स्वर से कहता है तुममें और मुझमें कोई अंतर नहीं. माना, मैंने तुम्हें अपना सर्वोत्तम दिया है. फिर भी, मुझमें जो यह दूसरी प्रवृत्ति है, इसकी कोई झलक तुममें प्रकट ही न हो, भला यह कैसे संभव था? आरंभ में वैसे कोई लक्षण तुममें भले न दीखे हों—मैंने ही कब उसे कोई बढ़ावा देना चाहा! अब गोपाल के सान्निध्य से ही सही, तुममें यह रुचि जागी है, तो उसे भी पालना-पोसना मुझे अपना कर्तव्य जान पड़ता है. गोपाल तो मुरली बजाता है जो लड़कियों के अनुकूल नहीं पड़ता. मैं तुम्हें सितार सिखाऊंगा. इस बहाने मुझे भी अपनी भूली-बिसरी विद्या को जगाने का अवसर मिलेगा. क्यों—ठीक है ना बेटी?''

विदुला ने मूक सहमति में सिर हिला दिया. वह और कर ही क्या सकती थी .पुजारीजी फिर कहने लगे, ''तुम्हें गोपाल का गाना अच्छा लगता है, तो जरूर सुनो. मगर उसके लिए उत्सवों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है. वैसे भी तुम्हारा विद्याभ्यास इधर अत्यंत शिथिल हो गया है.पाठशाला में भी—जबसे मैंने फिर से पूरा ध्यान देना आरंभ किया, नये विद्यार्थी बढ़ गये हैं. पुस्तकालय में भी मुझे तुम्हारा अधिक से अधिक सहयोग चाहिए. मैं गोपाल से कह दूंगा, कभी-कभी घर आकर तुम्हें सिखा दिया करेगा—सप्ताह में एकाध बार...''

''नहीं पिताजी, उसकी कोई आवश्यकता नहीं. मुझे सीखना होगा तो आपसे ही सीख लूंगी,'' विदुला के मुंह से निकल पड़ा अचानक ही. उसका आत्म-सम्मान छिड़ गया था—जैसा कि पुजारीजी को भी अभीष्ट था. और आत्म-सम्मान का सुर जब इस तरह छिड़ जाता है तो फिर बाकी सारे सुरों का दबना ही स्वाभाविक है. विदुला अपनी पुरानी दिनचर्या में लौट आयी: मंदिर और उत्सव सब इस तरह उससे छूट गये जैसे कभी रहे ही न हों. पाठशाला और पुस्तकालय का दायित्व उसने पूरी तरह ओढ़ लिया. धीरे-धीरे पुजारीजी भी फिर से मंदिर जाने लगे. गोपालजी भी विदुला की देखा देखी कुछेक माह तक तटस्थ रहे आये, हालांकि घाट पर वे नियम से पहुंचते रहे. एक दिन घाट पर उनको विदुला से या विदुला को उनसे, पता नहीं कैसे क्या संकेत प्राप्त हुए कि उन्होंने फिर से वही वृक्ष-लीला शुरू कर दी. लगता है, विदुला ने उन्हें पिता की उपस्थिति और अनुपस्थिति जताने के ऐसे उपाय खोज लिए थे कि बहुत दिनों तक गोपालजी इसी लुकाछिपी का आनंद निर्विघ्न उठाते रहे.

पुजारीजी को खटका तो था ही. एक दिन आहट पाकर गोपालजी ने नीचे झांका तो क्या देखते हैं, कि विदुला के स्थान पर स्वयं पुजारीजी उन्हें निहार रहे हैं.

''नीचे उतरो बेटा,'' उन्होंने बड़े प्यार से पुकारा, ''मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वजन्म में तुम निश्चय ही ब्राह्मण थे. यह तुम्हारे वही पुराने विद्यानुरागी संस्कार हैं जो तुम्हें छिपके ही सही, पवित्र मंत्रोच्चार सुनने को प्रेरित कर रहे हैं. प्राचीन काल में, जानते हो—आश्रमों के वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी भी वेदमंत्र कंठस्थ कर लिया करते थे. फिर तुमने तो बड़े पुण्य से यह नरदेह पायी है. तुम जन्मजात कलाकार हो—मैंने तुम्हारे पिता से कहा था कि ऐसे कलावंत के लिए स्कूल की पढ़ाई कोई अर्थ नहीं रखती. किंतु मैं मन ही मन कभी से यह अभिलाषा संजोए हुए था कि कैसे तुम्हें देववाणी की ओर आकर्षित करूं. वही तुममें एक बड़ी भारी कमी है गोपाल. बिना ज्ञान के, संगीत ही क्यों, भक्ति भी निरर्थक है. विदुला ने बताया कि किस तरह तुमने एक बार उसकी कक्षा में बैठने की अभिलाषा प्रकट की थी. उसने तभी मुझे बताया था. अस्तु, शुभकार्य में कभी भी विलंब नहीं करना चाहिए. मैं आज ही तुम्हें विधिवत् अपनी पाठशाला में लिए ले रहा हूं. मैं स्वयं तुम्हें पढ़ाऊंगा और विदुला भी. वह तुम्हारी संगीत-कला पर मुग्ध है. मैंने उससे कहा था तुमसे विधिवत संगीत सीखे. पता नहीं क्यों उसे मेरा प्रस्ताव नहीं जंचा. लगता है, तुम्हीं को पहले उसका शिष्यत्व ग्रहण करना है—उससे संस्कृत सीख लेनी है. तभी वह तुम्हें सहर्ष अपना कला-गुरु बनायेगी. तो आओ बेटा, मेरे साथ. आज से तुम्हें नित्य प्रातःकाल दो घंटा नियमित हमारी पाठशाला को देना होगा. क्यों, ठीक है?''

इस तरह गोपालजी के जीवन का एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ. अब यह दूसरी बात है कि वह कितना फलीभूत हो पाया. गांव के लोगों को इस पर पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ. जब हुआ, तो तरह-तरह की टिप्पणियां हवा में तैरने लगीं. कोई कहता, ''धन्य हैं पुजारीजी. ऐसो कोउ उदार जग मांहीं.''...कोई कहता, ''यह उदारता-वुदारता कुछ नहीं. रणनीति है रणनीति...'' कोई गोपाल के भाग्य से ईर्ष्या करता मिलता तो कोई उसे उसकी मूर्खता के लिए कोसता. मुखियाजी ऐसे मग्न थे, जैसे अब गोपाल ही उनकी सात पीढ़ियों को तारने वाला हो. दो-एक मनचले छोकरे भी थे जो खुले आम गोपालजी को 'घर-जमाई' का खिताब देते थे. एक मुसीबत और थी. वही गोपालजी, जो गांव की स्त्रियों के बीच सर्वत्र सराहे जाते रहे थे, अब एकाएक उनके उपहास के विषय बन गये. रास्ता चलते औरतें उन्हें देखकर कुछ ऐसे रहस्यमय अंदाज में मुस्करातीं और ऐसे एक दूसरे को कुहनी मारतीं कि बेचारे गोपालजी जमीन में गड़ जाते.

खैर, यह सब भी गोपालजी किसी तरह झेल ही ले जाते यदि उन्हें सचमुच यह भरोसा हो पाता कि वे पढ़ाई में कुछ भी प्रगति कर पा रहे हैं और विदुला या पुजारीजी की ही निगाह में कुछ ऊंचे उठ पा रहे हैं. दुर्भाग्यवश संस्कृत उन्हें बिल्कुल पल्ले नहीं पड़ रही थी. पुजारीजी और स्वयं विदुला के अथक प्रयत्नों के बावजूद वे अब भी जहां के तहां थे. सच है, विदुला का कैसा भी सामीप्य उन्हें स्वर्ग-सुख की अनुभूति कराता था. किंतु इस अनुभूति को पाने के लिए जो कड़वे घूंट वे निगल रहे थे, इसे उनकी आत्मा ही जानती थी. दूर से जो अभी तक चंद्रमा की तरह शीतल लगती थी पास आकर जैसे वह अग्नि-शिखा बन गयी थी: उतनी ही कमनीय, उतनी ही सुध-बुध भुला देने वाली, किंतु साथ ही मन-प्राणों को एक अजीब तरह से तपाने और झुलसा देने वाली. बेचारी विदुला का भी इसमें क्या दोष देखा जाय! वह भी अपने ढंग से लाचार थी, वह भी अपनी ही आग में झुलस रही थी. उसे कभी गोपालजी की असामर्थ्य पर तरस आता और कभी झुंझलाहट होती. कभी यह झुंझलाहट अपने पिता पर केंद्रित हो जाती. यह सारा नाटक उसे लगता न जाने किस अनर्थ का सूत्रपात कर रहा है, जिसमें उसे भी अकारण और अनचाहे एक ऐसी भूमिका निभानी पड़ रही है जो किसी तरह भी उसके योग्य नहीं है. और यह सामने बैठा हुआ गोबर गणेश—यह सुरों का जादूगर, यह निरक्षर भट्टाचार्य जिसने उसके भीतर आग-सी लगा दी है, उसका सारा सुख-चैन ही छीन लिया है—इस गोबर गणेश का वह क्या करे—जो उसके बावजूद उसकी अपार करुणा और अपार मोह माया, अपार धीरज और अपार क्रोध का निरीह आलंबन बना जा रहा है.

आखिर उससे रहा नहीं गया. एक दिन प्रातःकाल, पढ़ाई आरंभ होने से पहले ही वह अपने पिता के सामने गिडगिडाने लगी, ''बाबूजी...ईश्वर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए, अब तो उस अभागे को इस कारा से मुक्त करिए. आप अच्छी तरह जानते हैं, उसे पढ़ाया नहीं जा सकता. आपके इस विचित्र हठ का दुष्परिणाम तो देखिए—गोपाल का गाना-बजाना सब ठप्प हो गया है. वह हीनता-बोध से ग्रस्त होता जा रहा है. स्वास्थ्य भी उसका चौपट हुआ जा रहा है. उसकी दुर्दशा मुझसे देखी नहीं जाती..." वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई. फूट-फूटकर रोने लगी.

पुजारीजी का मन भी अपनी पुत्री के दुःख से कातर हो आया. वे साधु और संवेदनशील थे. मर्यादा की रक्षा की चिंता उनके लिए जितनी स्वाभाविक थी, उतनी ही अपनी भावना और सहानुभूति की भी. पुरुषार्थ और नियति की सारी सूक्ष्मताओं में उनकी गहरी पैठ थी. मगर यह जो विकट पहेली अप्रत्याशित ही उनके सामने चुनौती की तरह खड़ी हो गई थी, इसे वे किसी भी तरह नहीं सुलझा पा रहे थे. गोपाल से उन्हें सिर्फ सहानुभूति ही नहीं थी, उनका एक अंश तो जैसे सीधे उससे जुड़ा हुआ था. उसी तरह पुत्री से उन्हें जो अंतरात्मिक लगाव था—वही उन्हें सावधान करता था कि यह जो कुछ हो रहा है, उचित नहीं हो रहा है. दोनों के बीच यदि भाई-बहन जैसा संबंध विकसित होता तो उन्हें परम संतोष होता किंतु नियति का यह खेल वे किसी तरह नहीं पचा पा रहे थे. उसमें उन्हें अनिष्ट ही अनिष्ट दिखाई दे रहा था. हां, वे भी अपने ढंग से एक विकट अंतर्द्वंद्व से गुजर रहे थे.

लगता है, दो प्रेमियों के बीच सचमुच कोई बेतार का तार काम करता है. गोपाल को कुछ कहने की नौबत ही नहीं आयी. जिस दिन पिता-पुत्री के बीच उपरोक्त संवाद घटित हुआ, ठीक उसी दिन से गोपाल ने पढ़ने आना बंद कर दिया. उबार लिया गोपाल ने अपने गुरुस्वरूप पुजारीजी को—एक बेहद अटपटी और असमंजसकारी स्थिति से.

पुजारीजी तो उबर गये और कदाचित कुछ समय के लिए किसी सीमा तक विदुला भी. किंतु गोपालजी की हालत दिनों दिन बिगड़ती गयी. घर में उनके पिता ही नहीं, भैया और भौजाई भी उन्हें अपमानित करते रहते. गांव में जिससे भी मिलते, वह सीधे मुंह बात ही नहीं करता. रातोंरात उनके लिए अनेक संबोधन प्रचलित हो गये—पंडितजी, विदुरजी, कन्हैयालाल और जाने क्या-क्या. वही स्त्रियां, जिनकी आंखों से, उन्हें देखते ही शहद चूने लगता था, अब उन्हें देखते ही मुंह फेर लेतीं. जी कड़ा करके गोपालजी ने फिर से अपनी मंदिर-चर्या शुरू कर दी. उनका गाना सुनने के लिए, बांसुरी सुनने के लिए धीरे-धीरे फिर से लोग जुटने लगे. मगर लोगों की भीड़ में गोपालजी विदुला को ही ढूंढ़ते रहते. वे जितना ही अपने को संगीत में झोंकते, उतना ही विदुला उनकी आंखों के आगे खड़ी हो जाती. हो सकता है, यह किस्सा ही हो—गांव के किसी मनचले का ही गढ़ा हुआ मगर किस्से भी तो यूं ही नहीं गढ़ जाते किसी न किसी जड़ से ही फूटते हैं वे भी. पता चला, गोपालजी एक शाम 'विदुला! विदुला!' चीखते हुए एक स्त्री के पीछे दौड़ पड़े. पास पहुंचने पर पता चला, वह तो उनकी ही भौजाई थी.

पता नहीं, घर वालों ने उन्हें घर से ही निकाल दिया या क्या हुआ, कुछ दिनों तक गोपालजी गांव से ही नदारद हो गये. दरअसल वे उसी पुरानी नौटंकी में काम खोजने निकल पड़े थे. शायद उन्होंने सोचा हो नौटंकी की जिंदगी उन्हें विदुला की मोहनी से छुटकारा दिला देगी. मगर उनका भ्रम भ्रम ही निकला. विदुला की मूरत ने वहां भी उनका पीछा न छोड़ा. एक दोपहर गांव में अचानक ही खबर फैली, कि गोपालजी घाट पर बांसुरी बजाते देखे गये. दूसरे दिन लोगों ने सुना, गोपालजी पेड़ पर चढ़के बजा रहे थे—पुजारीजी के घर के सामने ही. कुछ दिन बाद एक खबर यह भी फैली कि गोपालजी किसी तांत्रिक से वशीकरण सीख लाये हैं और छुपे तौर पर मंत्र सिद्ध करने में लगे हैं.

गोपालजी को अब किसी की परवाह नहीं रह गयी थी. वे अपना अधिकांश समय या तो मंदिर में बिताते या फिर घाट पर. मित्र मंडली में भी अब सिर्फ दो ही लोग रह गये थे उनका साथ देने वाले और वही उनके लिए काफी थे.

विदुला के दर्शन उन्हें घाट पर ही होते थे. घाट के अलावा वे और कहीं नहीं मिलते—मिल ही नहीं सकते—ऐसा ज्यादातर लोग मानते थे. कुछ सिरफिरों को छोड़कर, जो उन्हें तांत्रिक-सिद्ध बताते थे. घाट का यह मिलना भी कैसा मिलना होता होगा—तुम खुद कल्पना कर सकते हो. घाट से अधिक खुली जगह और कहां होगी. और प्रेम को क्या चाहिए? थोड़ी-सी आड़-यही ना? मगर, तुम अगर नहीं जानते, तो मैं तो कम से कम जानता हूं और पूरा गांव जानता है कि खुलापन ही सबसे बड़ी आड़ है. लोगों को भरोसा था इसके बावजूद, अपने घाट की उस दीवार पर, जो ज़ाने क्या सोचकर हमारे पुरखों ने उठाई थी और जिसकी कभी एक भी ईंट इधर से उधर नहीं हुई थी.

तो भैया, यह विचित्र प्रेम-प्रसंग इसी तरह चलता रहा और एक दिन अचानक लड़की का घाट पर आना बंद हो गया. क्यों बंद हो गया, इसकी भी एक कहानी है. मैं उसे कहानी ही कहूंगा, क्योंकि जो घटना सबके सामने नहीं घटती, जिसका कोई साक्षी नहीं होता, वह आप से आप कहानी की ढलान पर लुढ़कने लगती है और विश्वसनीय नहीं रह जाती. कहते हैं गोपालजी एक दिन दीवाल फांदकर वहां पहुंच गये जहां विदुला अपनी सहेलियों के साथ नहा रही थी और उसके कपड़े उठाकर भाग गये. अब बताओ, तुम ही इस पर यकीन करोगे? ये सीधे-सादे कहलाने वाले गांव के लोग किस कदर क्रूर हो सकते हैं, इसका तुम्हें अंदाजा नहीं हो सकता. बात की बात में विद्युत्तरंग की तरह यहां से वहां तक बस एक ही मुहावरा फैल गया—"लो अब तो चीरहरण तक मामला पहुंच गया." अब तुम्हीं बताओ अतिरंजना की भी कोई हद होती है! यह क्या कोई विलायत है? हजारों-लाखों लोग गंगा नहाते हैं, यमुना नहाते हैं. हजारों के सामने अधनंगी औरतें अपने गीले कपड़े बदलती देखी जा सकती हैं. कितनी आड़ चाहिए उन्हें, कितनी? मैं पूछता हूं उस अभागे ने आखिर ऐसा क्या जुल्म कर दिया अगर

पृष्ठ 68 पर जारी

उस्ताद बंदे अली खां और उगालदान

निजाम हैदराबाद ने मशहूर बीनकार उस्ताद बंदे अली खां से पूछा, "तो आप ही बंदे अली हैं."

"जी हुजूर, आप बंदेगाने अली हैं और खाकसार बंदे अली है."

बीन सुनाने में ऐसे मस्त हुए कि बजाते-बजाते निजाम के उगालदान में पान की पीक डाल दी. उगालदान सोने का था और उस पर जवाहरात जड़े हुए थे. निजाम ने अपने ए.डी.सी. की ओर देखा और इशारा किया कि यह अब इन्हें ही दे दो. खां साहब का बीन-वादन समाप्त हुआ तो ए.डी.सी. ने कहा कि उगालदान आपको बख्श दिया गया है. ले जाइये. खां साहब ने बहुत घृणा के साथ जवाब दिया, "क्या खुद बंदे अली को बंदेगान अली उगालदान के लायक समझ रहे हैं? मैं हरगिज न ले जाऊंगा! अरे भई, है तो उगालदान ही. लोग क्या कहेंगे कि बंदे अली खां हैदराबाद से बीन सुनाकर उगालदान लाया है." □

अमीक हनफ़ी की पुस्तक 'उस्ताद रजब अली खां' से

प्रस्तुति : राजकुमार गौतम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार

प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय

कहारों में इस बात को लेकर थोड़ी खुसर-फुसर भी होने लगी थी कि छिद्दा पहलवानों में भले ही बाजी मारता रहे लेकिन औलाद का बाप बनने के लिए एक दूसरे किस्म की ताकत चाहिए. उसका पूरा हकदार शायद पहलवान नहीं बन पाया.

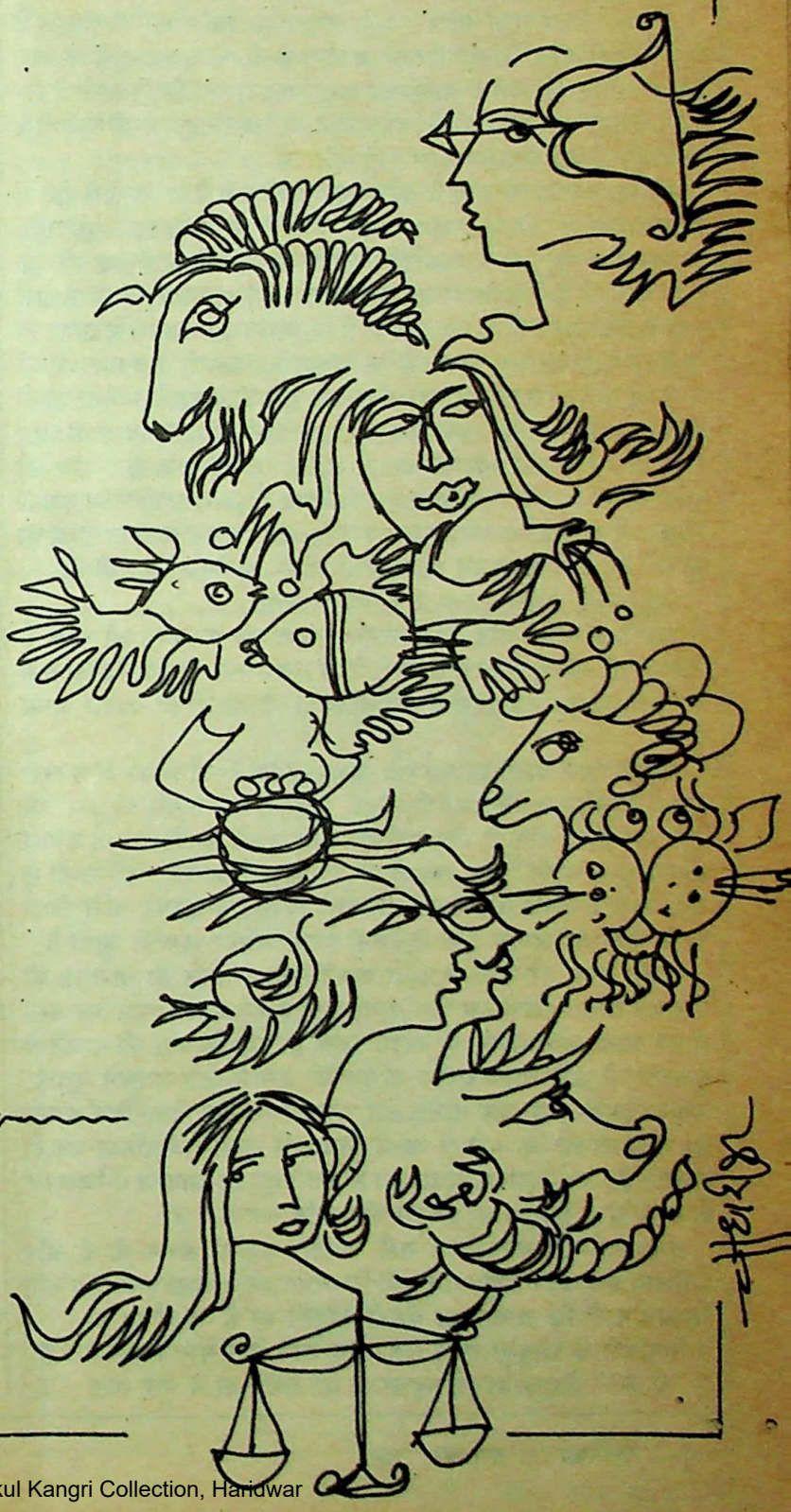

लगता है, छिद्दा भगत नहीं, उसकी लाश पड़ी है. चारपाई की हालत भी इससे बेहतर नहीं है. पायों की चूलों में अब कोई दम नहीं रह गया. नतीजे में कम से कम दो पाये अब कभी भी जवाब दे सकते हैं. इसके अलावा बान की रस्सियां कभी जरूर चुस्त रही ही होंगी लेकिन इस वक्त की हालत देखकर उतना कबूल करना आसान नहीं लगता. ढीली रस्सियों से अब चारपाई एक गढ़ा-सा बन गयी. इस गढ़े में छिद्दा भगत बेसुध पड़ा रहता. इस कदर बेसुध कि कई बार लोगों को गलतफहमी हो जाती कि इस देह में से प्राण पखेरू निकलकर उड़ चुका होगा.

छिद्दा भगत को कई दफा मालूम भी नहीं हो पाता कि जिस्म के ऊपर मक्खियां बुरी तरह भिनभिना रही हैं. वे नाक और कान के कोटरों में, यहां तक कि मुंह खुला होने पर, गले तक पहुंच जातीं. देखनेवाला कोई अगर हुआ तो वह हैरान होता है लेकिन छिद्दा भगत को इन बातों की खबर अक्सर ही नहीं हो पाती. कई बार पहना हुआ अंगोछा कमर से खिसक जाता और अड़ोस-पड़ोस के बच्चे शुरू में तो खी-खी करते, फिर उनमें से कोई छप्पर से एक पुआल खींचकर छेड़खानी शुरू कर देता. तब जाकर कहीं होश लौटता है छिद्दा का. फिर वह एकदम से आंखें खोल मारे गुस्से के जब बौखलाने लगता, गले से निकलती आवाज साथ नहीं देती. आवाज बिखर-सी जाती और तमाशाई बच्चों को बहुत मजा आता.

काशी की घरवाली जमना माथा पीट लेती है तब. ससुर इस तरह नंग-धड़ंग पड़ा हो तो आखिर कोई बहू करे तो क्या करें. सामने जब वह जा नहीं सकती, माथा पीट लेने के अलावा कुछ और मुमकिन नहीं रहता. जमना जब से इस घर में बहू होकर आयी है, कितने ही लोग गुजर गये. कुल ग्यारह बच्चे उसने जने थे. उनमें से पांच बेटियों के अलावा कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

और जिंदा नहीं है. इसके अलावा गांव के कितने लोग इस बीच संसार का मोह-माया छोड़कर चले गये. सारा का सारा जमना को अब याद भी नहीं है. मैके में पहले मां गुजरी थी. उसके पांचेक बरस बाद बाप ने भी आंखें बंद कर लीं. यहां तक कि जमना के पूरे सात पोते-पोतियां सौरी से निकलने से पहले ही या उसके बाद साल भर के अंदर दुनिया से उठ गये. सास को भी गुजरे एक जमाना हो गया. जमना उंगलियों से गिनकर हिसाब नहीं लगा सकती. सिर्फ याद है कि एक अरसा पहले जब तीनेक दिनों के बुखार के बाद सास का जिस्म ठंडा हो गया था, उस साल बघौना में बाढ़ आयी थी. बात इतनी पुरानी है कि ज्यादातर लोगों को उसका अब खास कुछ याद भी नहीं है. जमना इसलिए उस हादसे को भूल नहीं पायी कि जाने क्यों सास उससे बेटी जैसा सलूक करती रही है, उसके गुजरने के हादसे के साथ इस वजह से उसने बाढ़ को यादों की गठरी में बांधकर रख लिया है.

जमना को हर साल क्वार में यही लगता रहा कि मौसम में चौमासे के बाद जैसे ही थोड़ा खिचाव आया, बघौना के दो-चार बड़े-बूढ़ों के साथ छिद्दा भगत भी जरूर आंखें बंद कर लेगा. जमना हैरान होती है कि इतने क्वारों ने तो कितनों को निगल लिया लेकिन छिद्दा के सीने के नीचे छिपे हुए फेफड़े बराबर सांस लेते-देते रहे.

बघौना कहारों का गांव है. लोग यहां डोली ढोते हैं या किसी के खेत में जाकर काम कर लिया. स्कूल जाकर कभी किसी ने किताब नहीं पढ़ी, इस वजह से बहुत आगे तक की गिनती किसी को नहीं आती. यह भी एक खास वजह है कि छिद्दा भगत की उम्र की सही जानकारी किसी के पास नहीं है. वैसे कुछ लोगों का अंदाजा है कि भगत की उम्र सौ से ऊपर ही होगी. वे ऐसा इसलिए सोचते हैं कि छिद्दा कि धखाली ने जब काशी को जना था. उस साल गांव में हैजा, फैला था. हैजे की वजह से बघौना काफी कुछ साफ हो गया था. कुछ बड़े-बूढ़ों को इसलिए वह हादसा याद रह गया है. अब वही काशी कहार खासा रास्ता तय कर उम्र की दहलीज पर है. जबड़ों के दांत, कब के गिरकर धूल-मिट्टी में मिल गये. आंखों की रोशनी भी अब धुंधला गयी है. और इन सबके ऊपर चेहरे की झुर्रियों के साथ बदन की खाल ढीली होकर थुलथुल हो गयी है.

इस काशी कहार का बाप है छिद्दा भगत.

काशी से पहले कोई तेरह संतानें छिद्दा की घरवाली की कोख से निकली थीं. उनमें से चार तो सौरी में ही गुजर गयीं और नौ डेढ़ बरस से ज्यादा जिंदा नहीं रहीं. इसके बाद चौदहवीं औलाद होकर काशी आया था.

काशी पहले डोली उठाता रहा. ब्याह-शादी के मौकों पर लोग खुश होकर जो सौगात देते, जिंदगी अच्छी गुजरती रही उससे. लेकिन अब पसलियों में दर्द होता है और कई बार सांस फूलने लगती. काशी ने फिर अपना धंधा बदल लिया. तब से मजूरी करता है कहार. कभी किसी के यहां खेत में काम कर लिया तो कभी किसी का छप्पर बांध दिया रोटी-पानी का जुगाड़ इसी से किसी तरह आखिर लग ही जाता है.

सुबह काम पर जाने से पहले काशी छिद्दा भगत की चारपाई को उठाकर नीम के नीचे रख देता. भगत फिर बाहर आकर शाम तक उसी में पड़ जाता.अब बोलने की आदत इतनी हो गयी कि कोई भी सामने से गुजरता तो उसे रोककर दीन-दुनिया की तमाम बातें उगलने लगता. भगत बोलता क्या, कई बार समझ पाना नामुमकिन होता. सिर्फ इतना भर पता चलता कि गले से बाहर निकलती आवाज में दुनिया भर के जज्बात हैं. उनके परिणाम हमेशा ही इतने हुए कि आवाज के बिखरने के साथ-साथ छिद्दा का जिस्म भी थर्राने लगता.

तब नजरें बिल्कुल काम नहीं करतीं. रोशनी खत्म-सी है और पुतलियां इस कदर सफेद पड़ गयीं कि भगत की ये आंखें इतना भी नहीं पहचान पातीं कि सामने का चेहरा आदमी का है या औरत का.

बिरादरी के छोकरों में से कई लोग आये दिन मजाक कर देते हैं.

"के है?" छिद्दा भगत पहचानने की कोशिश में पूछ लेता.

"पेचाना नाय भगत? हम गंगा पासी हैं." इतना कहकर वह थोड़ा और नजदीक आता और छिद्दा भगत की चारपाई पर हथेली रख देता.

मारे गुस्से के भगत आग बबूला हो उठता. पासी के पूत ने आकर छू दिया. अब कुआं जाकर नहाए बगैर कोई शुद्ध कैसे होगा?

छेड़ने वाला फिर आहिस्ता से खिसक लेता. न खिसके तो जमना होश ठिकाने लाने में देर नहीं लगायेगी. लेकिन छिद्दा भगत तब तक शांत नहीं होता जब तक उसे नहाने के लिए बहू पानी निकाल नहीं देती. इस प्रकरण में घंटा भर तो गुजर ही जाता है. एक तरफ भगत बड़बड़ाता जाता दूसरी तरफ जमना झुंझलाती रहती. हार-जीत की परवाह शायद किसी को नहीं रहती. आखिर में जमना को कुएं में से पानी निकालने के अलावा कोई चारा नहीं दिखाई पड़ता.

जमना अब नयी-नवेली दुल्हन थी, तब थी.तब मेहनत-मजदूरी करने में कोई कसर नहीं छोड़ी. लेकिन अब उम्र हो गयी है. ऊपरवाले ने लड़कों को छीन लिया. वर्ना यह उम्र तो काम करने की नहीं है. घर में बहुएं होतीं तो पैर पर पैर धर राज करती जमना. लेकिन उसे मालूम है, कहार कुल में कोई पैदा हो तो किस्मत को कोसने के अलावा करने को और कुछ रह नहीं जाता. वही करती है जमना. छिद्दा भगत जब फजीहत करने लगता, तब दोनों हथेलियों से अपना माथ पीटती है यह औरत.

कभी-कभी तो भगत को जैसे अपना होश ही नहीं रहता. बैठे-बैठे चारपाई को गंदा कर देता. दो डग भरो तो खेत ही खेत हैं. लेकिन छिद्दा को जैसे कुछ मालूम ही न हो. ऐसे मौके पर काशी अगर नजदीक हुआ तो वही बाप को चारपाई और अंगोछे के समेत धो-धाकर साफ कर देता. लेकिन कई बार जब वह नजदीक नहीं होता, जमना को ही भंगिन की तरह यह सब करना पड़ता. ऊपर से बिरादरी के किसी मर्द के सामने हाथ जोड़ने पड़ते कि वह भगत को नहला-धुलाकर साफ कर दें. ऐसे में हर बार उसने भगवान से एक ही दुआ मांगी—भगत की इन चरमचराती हड्डियों को अब छुटकारा दिला दो. लेकिन जमना की दुआओं के बावजूद छिद्दा भगत बाखूबी जी रहा है.

यह कैसा प्रतिशोध?

दीपचंद्रा

विश्व विख्यात रूसी लेखक लियो तालस्तोय की बेटी एक दिन पड़ोस के किसी किसान बालक के साथ खेल रही थी. जैसा कि बच्चों के खेल में अक्सर होता है, दोनों में लड़ाई हो गई और किसान बालक ने तालस्तोय की बेटी को पीट दिया. लड़की रोती हुई घर पहुंची और चाबुक खोजने लगी ताकि उस लड़के को मार कर वह अपना बदला ले सके. यह देखकर तालस्तोय ने लड़की को समझाया कि बुराई का बदला बुराई से देने से वह कभी खत्म नहीं होगी, बढ़ती ही जायेगी. बेटी को प्रेम और अहिंसा की शिक्षा देते हुए उन्होंने शरबत का एक गिलास देकर लड़के को दे देने के लिए कहा. बेटी पिता की आज्ञा को टाल न सकी. तालस्तोय और उनकी बेटी के इस व्यवहार से वह लड़का बहुत लज्जित हुआ. उसे पश्चाताप हुआ. उसने तालस्तोय की बेटी को अपनी बहन मान लिया, और वह हमेशा के लिए तालस्तोय-परिवार का भक्त बन गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

छिद्दा भगत ने जवानी में तो कभी हुक्का नहीं गुड़गुड़ाया लेकिन कहारन के गुजरने के बाद जब अक्सर संजीदा रहने लगा तो पड़ोस के बिल्ला कहार ने अपना हुक्का उसे दे दिया था. तब से हुक्का पीता है छिद्दा भगत. होश-हवाश चाहे पूरा न रहे, अच्छे तंबाकू की खूब पहचान है भगत को. आखिर बाप है—इसलिए काशी को इस तंगी के बावजूद बढ़िया तंबाकू ज्यादा पैसों में खरीदकर लाना ही पड़ता.

एक दफा हुक्का गुड़गुड़ाते छिद्दा चारपाई छोड़कर उठा और थोड़े फासले पर दीवार में पीठ टिकाए खड़ा हो गया. जमना ने सुबह अपनी धोती धोकर छप्पर पर डाल दी थी. वह अब तक सूख गयी थी. बस, फिर वही हुआ जो शायद होना ही था, जमना की धोती शुरू में चीलम की आग से जलती रही फिर वही आग बढ़कर छप्पर के पुआल तक पहुंच गयी. आधा घर जल गया था. छिद्दा भगत भी जलकर अगर इसके साथ ही राख हो जाता तो जमना सोचती—देर से सही, ऊपर वाला आखिर सुन ही लेता है. लेकिन उसे हैरानी इस बात पर रही कि इतनी बड़ी तबाही के बावजूद भगत के जिस्म पर एक खरोंच भी नहीं आयी थी. गांव भर के लोग कुएं से पानी निकालकर आग बुझाने में डट गये थे. छिद्दा भगत थोड़े फासले पर खड़ा-खड़ा सब कुछ बेफिक्री से यों घूरता रहा, जैसे यह कोई खेल तमाशा हो.

काशी तब दो दिन के लिए बाहर गया था.

जमना पहले तो बेहद घबरायी. लेकिन बाद में अपना माथा पीटकर रोने लगी थी.

लौटकर काशी हैरान रह गया था. इतनी हैरानगी का तजुर्बा कभी उसे इससे पहले नहीं हुआ था. जिंदगी में सुख के दिन उसे कम ही नसीब हुए हैं लेकिन तमाम तकलीफों के बावजूद इस कदर बेसहारा भी वह आज से पहले कभी नहीं हुआ था.

जमना ने अपने मर्द को देखा और दहाड़ मारने लगी, "अब जाय के कहीं से जहर लाय देव. खाय के सो जांगे हम. इस घर मा अब जिन्न डोल रिया. सब कुछ निगल केई दम लैगा वो."

काशी एकदम चुप.

छिद्दा भगत आसमान की तरफ आंखें किये चारपाई पर बैठा था. जैसे दूर के किसी रहस्य को अब वह समझ ही लेगा. थोड़े ही फासले पर जमना दहाड़ मारती रही लेकिन भगत के चेहरे पर बेफिक्री इस कदर छायी थी कि कोई यकीन नहीं करेगा, उसके कान आंखों की तरह दो सजावटी पुर्जे भर नहीं हैं. थोड़ी देर में छिद्दा ने गर्दन सीधी की, "कै है? बप्पा है का?" काशी कहार को छिद्दा बचपन से ही इस नाम से पुकारती रहा है.

काशी थोड़ा नजदीक आया. उसे अब हैरानी नहीं होती कि आंखों की रोशनी लगभग गायब होने के बावजूद काशी को पहचानने में छिद्दा कभी गलती नहीं करता.

काशी तय नहीं कर पा रहा था कि बात कहां से शुरू की जाये.

"रोटी खाय लेव बप्पा." छिद्दा भगत की आवाज एकदम सपाट थी. सपाट और बिल्कुल निरीह.

काशी ने देखा, भगत की चारपाई के नीचे थाली पड़ी है. थाली पर आधी रोटी अब भी बची थी. काशी कहार के छप्पर की तरह. थाली के पास गिलास गिरा हुआ था. उसके पानी से जमीन का थोड़ा हिस्सा गीला भी हो गया था.

"तुमने रोटी नाय खाई?" तमाम कोशिशों के बावजूद काशी को पूछने लायक कुछ और नहीं मिला.

छिद्दा भगत थोड़ी देर एकदम खामोशी में कुछ सोचता-सा रहा. फिर बहुत जल्दी में बोला, "हमने रोटी नाय खायी बप्पा. बहू अब रोटी नाय देती हम का. तू कै तो दे बहू को. भौत भूख लगो है ह्यां." भगत ने अपने पेट की तरफ इशारा किया.

जमना एकदम से बरस पड़ी, "अब बहू को खाय के खुस होय लेव. जे घर मा अब कुछ और बचा नाय रिया."

छिद्दा भगत ने जमना की आवाज को नजरअंदाज कर दिया. या मुमकिन है, उसे कुछ सुनाई ही न पड़ा हो.

कोई दूसरा वक्त होता तो काशी अपनी घरवाली को समझाने की कोशिश करता. भगत की बातों से अब क्या उलझना. बघौना का हर कोई जानता है, भगत को न तो उत्तर का पता है, न दक्षिण का. रोटी खाकर कुल्ला करने से पहले ही बहू पर इल्जाम लगा देता—"तीन दिन से भूखा-प्यासा बैठा है कोई!" कई बार छिद्दा खासी फजीहत खड़ी कर देता. गला फाड़े बिरादरी में ऐलान कर देता कि काशी की लुगाई उसे पानी तक नहीं देती. शुरू-शुरू में लोग हैरान होते और जमना को समझाने की कोशिश करते. लेकिन फिर थोड़ा अरसे बाद आखिर खुलासा हो ही गया. इसके बावजूद भगत लोगों को यकीन दिलाने की कोशिश में कोई कसर नहीं छोड़ता.

काशी कई बार सोचता रहा कि भगत को बरेली ले जाकर दिमाग का इलाज कराया जाये तो कुछ न कुछ नतीजा जरूर निकलेगा. लेकिन एक तो पैसे की तंगी हमेशा ही किसी भी इरादे के आड़े आयी, दूसरा—बिरादरी के लोगों ने इस प्रस्ताव पर हामी नहीं भरी. आखिर सौ बरस जो शख्स पार कर गया, कितने दिन और जियेगा. अब इस उम्र में शहर तक घसीटकर क्यों किसी को सताया जाये. बाप-दादों की इस देहरी से बाहर परान निकला तो भगत की आत्मा बेसहारा नहीं भटकती फिरेगी? बस, इन बातों के बाद काशी ने फिर कोई पहल नहीं की.

जमना तो खैर थकी ही है, काशी भी अब अंदर से सुस्त पड़ गया. कभी-कभी उसे लगता है—कछुए का प्राण पाया है भगत ने. काशी को कई दफा अपनी मौत नजर आती है. साथ के कई लोग तो दुनिया छोड़कर चले भी गये. वैसे भी अब उसकी चलने लायक उम्र तो हो ही गयी है. लेकिन इसके तुरंत ही बाद काशी कहार हड़बड़ाकर थर्राने लगता. उसने आंखें बंद कर लीं तो जमना बिचारी भगत की वजह से जीते जी मारी जायेगी. कभी-कभी रात को जब अचानक नींद खुल जाती तो काशी को यही फिक्र सताने लगती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पहले-पहल जमना यह सब नहीं समझती थी. अब समझती है लेकिन छाती पर पत्थर रख लेने के अलावा कुछ और नहीं करती.

रात के उस अंधेरे में काशी और जमना के बीच एक घुटन-सी उतर आती. मियां-बीवी दोनों खामोश और थोड़े फासले पर बगल की कोठरी में बिछी चारपाई पर बेसुध पड़ा छिद्दा भगत.

कभी-कभी बाहर एक उल्लू बोल जाता. काशी को लगता, इस परिंदे की आवाज ने उसे बिल्कुल इसी वक्त टूट जाने से बचा लिया है. लेकिन फिर रात भर उसे नींद नहीं आती.

जमना भी करवटें बदलती रहती फिर. और इसी तरह बहुत मुश्किल से पूरब के आसमान से रोशनी फूटती.

लेकिन इस छिद्दा भगत के अतीत में जो शख्स बतौर छिद्दा कहार जिंदा रहा है, उसका इस शख्स के साथ कोई तालमेल ही नहीं है.

छिद्दा कहार बिरादरी का मशहूर पहलवान रहा है. बघौना के कहार छिद्दा की पहलवानी के लिए भी बीस-बीस कोसों तक जाने जाते रहे. बघौना से कोई पांच कोस उत्तर की तरफ बिल्थरा गांव आता है. बिल्थरा का हनुमान मंदिर जमाने से मशहूर रहा है. साल में एक दफा—नवरात्रि में मंदिर के बाहर मेला लगता और दंगल लड़े जाते. छिद्दा कहार हर बार वहां हिस्सा लेता और एक से एक मशहूर पहलवान को पस्त कर देता. अहीरों में और ठाकुरों में कितने ही ऐसे पहलवान हैं जो कभी परास्त नहीं हुए, लेकिन छिद्दा कहार ने हर बार उन सबके ऊपर ही बाजी मार ली.

छिद्दा ने कभी किसी के खेत में मजूरी नहीं की. कहता रहा, "जे तो मर्दन का नाय, औरतन का काम है. छिद्दा पैहलवान जे काम करने को पैदा नाय हुआ." लेकिन दंगल लड़कर रोटी-पानी का जुगाड़ नहीं लगता. पेट के लिए छिद्दा फिर डोली उठाता रहा है. बहुत नामा लगाकर पालकी बनायी थी छिद्दा ने. दूर-दूर से तब उसके बुलावे आते थे. कई बार डोली में लखनऊ तक की मशहूर रंडियां भी बैठी हैं लेकिन छिद्दा कहार का ऐसे मामलों में न तो कभी लेना रहा है, न देना.

एक दफा बीच रास्ते पर डोली उतरी तो छिद्दा थोड़ा फासले पर जाकर बाकी तीन कहारों के साथ बैठ गया कि झोले में से निकालकर चना-चबेना बजरंगबली का प्रसाद मानकर पा लेगा. यह कोई नयी बात नहीं थी. डोली उठाते कहार आखिर पेट में अन्न-पानी डालते ही हैं. बाकी कहारों के दिमाग में तब क्या होता है, वे ही जानें लेकिन छिद्दा कहार को डोली के अंदर बैठी औरत के खयाल ने कभी परेशान नहीं किया. हर बार यही हुआ कि चना-चबेना, जो कुछ भी साथ हुआ, पेट में डालकर बाकी कहारों के साथ वहीं थोड़ा सुस्ता लिया, फिर थोड़ी देर में डोली उठाकर आगे निकल गया.

एक दफा सीतापुर की कोई रंडी बैठी थी. सुनने में यही आता कि लखनऊ तक की रंडियां उसके सामने पानी भरने लायक नहीं थीं. बिल्कुल गोरी-चिट्टी कश्मीरन जैसी थी वह औरत.

छिद्दा कहार पेट में दाना डालकर बगल के शीशम पर पीठ टिकाए थोड़ी झपकी ले रहा था कि एकदम से आंखें खुल गयीं. नानू कहार ने उसे धक्का मारकर जगा दिया था. करता भी क्या नानू. डोली से बाहर निकलकर वह औरत इशारे से छिद्दा को बुला जो रही थी.

छिद्दा कहार थोड़ा परेशान तो हुआ था लेकिन हड़बड़ाया नहीं. आहिस्ता से उठा और रंडी के सामने जा खड़ा हुआ. बोला, "क्या कैना है, कै दो." आवाज में सख्ती भले ही न रही हो, नर्मी भी नहीं थी.

रंडी मुस्करायी थी. कुछ बोली नहीं.

छिद्दा ने महसूस किया, इस औरत के जिस्म से दुनिया भर के फूलों की खुशबू आ रही. वैसे इसका इल्म डोली उठाते ही हो गया था.

"भौत गुस्से मा हो पैलहवान?" थोड़ी देर में रंडी ने पूछ लिया.

इस सवाल से छिद्दा थोड़ा खुश ही हुआ. इसका मतलब यही हुआ कि छिद्दा कहार की पहलवानी की खबर सीतापुर तक पहुंच गयी है.

वह सोच नहीं पा रहा था कि पूछे गये सवाल का क्या जवाब होना चाहिए.

औरत हंस पड़ी थी. खिलखिलाकर इतनी जोर से वह हंसी कि थोड़े फासले पर बैठे बाकी कहार हैरान रह गये थे.

छिद्दा कहार सकपका रहा था. सामने खड़ी औरत उसे इस कदर घूरे जा रही थी कि उसके बदन से खासा पसीना छूट रहा था.

"अब चलना है तो कै दो. डोली उठाय लेत हैं." बहुत मुश्किल से छिद्दा इतना ही बोल पाया था.

नाज-ओ-नखरे में रंडी ने अपनी कलई नमायी तो चूड़ियां खनक उठीं. बोली, "हमें तो कोई जल्दी नाय है, पैलहवान." इस अंदाज से बोली कि कोई दूसरा मर्द यहां होता तो पस्त हो जाता.

अब थोड़ा सख्त हुआ छिद्दा. बोला, "फिर थोड़ा आराम करने देव कहारन को."

"बाकी कहारन की खबर हमरे पास नाय है. हम तो छिद्दा पैहलवान को पैचानते हैं सिरफ." रंडी बड़ी अदा में बोल रही थी.

लेकिन छिद्दा अब संभला और औरत की बात को नजरअंदाज कर दिया.

फिर वह वापस मुड़ा और शीशम की तरफ चलने लगा.

"ठैरो थोड़ा." औरत बोली, "कभी सीतापुर आना तो हमरे कोठे मा जरूर आना. नसीबन जान को पूरा सीतापुर जानता है. तुमने पैहलवान, हमें पैचाना नाय. दमड़ी भर की औरत समझ लिया नसीबन को. लेकिन हमका पतो है, छिद्दा कहार कोई छोटा-मोटा पैहलवान नाय है. जभी तो हमने सोचो है—जे पैहलवान हीरा की कीमत समझाताई होगा." इसके बाद एकदम से ठककर औरत डोली में घुस गयी थी.

छिद्दा की सांस फूलने सी लगी थी.

शीशम के नीचे बैठे तीनों कहार हैरान रह गये थे.

लेकिन यह कहानी फिर वहीं खत्म हो गयी थी. छिद्दा ने डोली उठायी और तेज कदमों से फासला तय करने लगा.

कुछ इत्तफाक ही है, सीतापुर जाने की नौबत छिद्दा पहलवान की कभी आयी ही नहीं. कभी अगर ऐसा मौका आता भी नसीबन जान के दरबाजे तक पहलवान नहीं जाता, यह बिरादरी के लोग अच्छी तरह जानते थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इसके बाद इस डोली में कितनी ही रंडियां बैठीं, उसका हिसाब कहार ने नहीं रखा. उसे इस बात का फर्क नहीं पड़ा कि सवारी रंडी है या जोगन. आखिर बजरंग बली का चेला ठहरा छिद्दा पहलवान. उन्हीं की कृपा है जो दंगल में इस तरह बाजी मारता रहा. हर चीज का आखिर कोई न कोई उसूल तो होता ही है. छिद्दा को मालूम है कि पहलवानी का शौक हो तो आदमी को पाक-साफ हुए बगैर छूटकारा नहीं. कुत्ते की तरह इधर-उधर कोई मुंह मारता रहा तो दो दिन मौज मस्ती भले ही कर ले, लेकिन आखिर में न तो इज्जत पा सकता है,न दंगल जीतकर मैदान ही मार सकता है.

बघौना गांव के कहारों में इस बात की खबर फैली तो छिद्दा कहार का ओहदा जैसे अपने आप ही थोड़ा ऊंचा हो गया. बिरादरी के लोग समझ गये छिद्दा पहलवान कोई टके, दो टके का अखाड़ेबाज नहीं, जो थोड़ा लालच अगर किसी ने दिखाया तो वहीं लार टपकाता फिरे.

छिद्दा कहार एक तरफ तो इतनी शोहरत हासिल करता रहा, दूसरी तरफ उसकी घरवाली कुंती सूखती जा रही थी. जो भी औलाद कोख से निकलती, या तो सौरी में ही खत्म हो जाती, या डेढ़ेक बरस के अंदर वे हैजा या काले बुखार से खप जाते. कुंती ने औलादों की जिंदगी की खातिर कितने ही व्रत उपवास किये, मनौतियां मानीं, लेकिन नतीजा हर बार एक ही निकला है.

कहारों में इस बात को लेकर थोड़ी खुसर-पुसर भी होने लगी थी कि छिद्दा पहलवानों में भले ही बाजी मारता रहे लेकिन औलाद का बाप बनने के लिए एक दूसरे ही किस्म की ताकत चाहिए. उसका पूरा हकदार शायद पहलवान नहीं बन पाया.

जाहिर है, इशारा छिद्दा की मर्दानगी की तरफ था. इस बात को लेकर कायदे से पहलवान तूफान उठा सकता था. मजाल है जो कोई ऐरा-गैरा छिद्दा पहलवान पर कीचड़ उछाले. लेकिन उसने अपनी जबान नहीं खोली. सोचा यही कि यह बदनामी भी बजरंगबली की मर्जी से आयी है. उसकी मर्जी से अगर किसी को इतनी शोहरत हासिल हो सकती है तो थोड़ी बदनामी भी कबूल करनी होगी.

लेकिन आखिर में यह बात बहुत आगे नहीं बढ़ी. बिरादरी के बुजुर्ग आखिर सिरफिरों की शैतानी पर कहां तक खामोशी बरतते? वैसे बिरादरी की इज्जत का भी तो सवाल था. इतना बड़ा पहलवान, जिसने कहारों का नाम रोशन किया हो, इस तरह खामख्वाह अगर बदनाम होता रहा तो कुल मिलाकर बट्टा कहारों पर ही आता है. फिर बुजुर्गों ने पहल की तो मथुरा कहार ने आकर छिद्दा से सबके सामने माफी मांगी ली. थोड़ी-सी अनबन की वजह से मथुरा ने यह बदला लिया था लेकिन बात फिर वहीं की वहीं खत्म हो गयी.

खैर, छिद्दा पहलवान की चौदहवीं औलाद है काशी.

लोग सोचते रहे, साल-डेढ़ साल से ज्यादा टिकने वाला न होगा यह बालक. लेकिन बीच में कई मर्तबा बीमार पड़ने के बावजूद काशी बदस्तूर जिंदा रहा.

कुछ इत्तफाक ही है कि काशी के बाद कुंती का फिर कभी पेट ही नहीं चढ़ा. न चढ़े, इसकी कोई शिकायत उसने नहीं की. वह रोज दुआएं मांगती कि उसका लड़का सही सलामत रहे और कहार कुल का नाम रोशन करें.

काशी जब दसेक बरस का था, कुंती ने जिद की तो छिद्दा ने लड़की ढूंढकर बेटे का ब्याह कर दिया था. गौने के बाद जमना जब ससुराल आयी, कुंती मारे खुशी के फूली न समाती. सास-बहू में इतनी पटती थी कि बिरादरी की औरतें खासी परेशान हो गयी थीं.

वैसे अपनी जबान से भले ही कुछ न बोले, छिद्दा पहलवान भी अंदर से बहुत खुश था. डोली लेकर बाहर जाता तो कई बार बहू के लिए सौगात लेकर लौटता. एक मर्तबा कानों के लिए चांदी के झुमके लाया था. नयी-नवेली दुल्हन मारे खुशी के चहकने लगी थी. भूल गयी थी कि सामने ही ससुर खड़ा है.

लेकिन छिद्दा को जाने क्यों लगता रहा है कि उसकी किस्मत इतनी अच्छी नहीं जो लगातार वह खुशी में डूबा रहे. मलेरिया का बुखार चढ़ा था कुंती को. तीन दिन और तीन रातों के बाद ठीक चौथे दिन अलसुबह वह दुनिया छोड़कर चली गयी.

छिद्दा कहार एकबारगी अकेला हो गया था.

सारा घर ही जैसे सूना हो गया था.

छिद्दा ने पहली बार महसूस किया कि वह सिर्फ दंगल ही लड़ता रहा है. कभी खयाल ही नहीं आया कि घर में जो लुगाई बैठी है, उसके भी अपने अरमान हैं. कुंती ने भी कभी अपना दुखड़ा नहीं रोया. अब, जब वह चली गयी, छिद्दा को बहुत गहराई से लगा, उस औरत के साथ बहुत बेइंसाफी हुई है.

बस, इसके बाद ही छिद्दा पहलवान ने पहलवानी छोड़ दी. शुरू में तो सिर्फ पहलवानी छोड़ी और बाद में काम-धंधा भी. काशी को एक दिन बुलाकर कह दिया, "इस जिसम से अब मजूरी नाय होती, बप्पा. अब तुम सयाने होय गये, सो घर का जिम्मा अब तुम्हरे कंधन पे."

काशी को सलाह मशविरे के लिए नहीं बुलाया था छिद्दा ने. उसे बुलाकर अपने इरादे का ऐलान भर करना था. पूरी दबंगई के साथ पहलवान ने यह कर लिया तो बेटे को यहां से खिसकने की इजाजत दे दी, "अब हयां से जाओ. पर परसान नाय होना. करने वाला सिरफ बजरंगबली है. इत्ती बात भूलियो मति."

काशी फिर हाथ मलता हुआ सामने से खिसक गया था.

उस दिन के बाद छिद्दा पहलवान की जिंदगी में एक और बदलाव आया. धर्म-कर्म में वह अपने लिए कुछ तलाशने लगा. पहले से ही वह हनुमान का भक्त रहा है, अब दुर्गा का भी सेवक हो गया. घर में जमना पहले जाने कैसे एक दुर्गा की तस्वीर आयी थी. धूल-मिट्टी के प्रकोप इस बीच उसके ऊपर इतने हो गये थे कि उस रंगीन तस्वीर के रंगों का पता अब आसानी से नहीं चलता. छिद्दा ने फिर तस्वीर को टांड में पड़े फालतू कनस्तरों और लकड़ियों के बीच से निकालकर बरामदे की दीवार पर चिपका दिया था. तब से वह घंटों तस्वीर के सामने आंखें बंद कर चुप बैठा रहता और दुबोध्य जबान में कुछ बड़बड़ा जाता. उसका कथ्य समझने की कोशिश बिरादरी भर में किसी ने नहीं की. लेकिन सबने यकीन कर लिया कि पहलवान अब भगत बन गया.

तब से छिद्दा पहलवान छिद्दा भगत के नाम से जाना जाता है.

यह बात अब बहुत पुरानी हो गयी, इतनी पुरानी कि बहुत लोग अब भूल ही गये कि बघौना की कहार बिरादरी में एक शेर सरीखी मर्द हुआ करता था. छिद्दा पहलवान.

कुंती की मौत छिद्दा को इस कदर बदल देगी, इसका अंदेशा किसी को नहीं था. शुरू में लोग हैरान तो हुए थे लेकिन बाद में संतोष यह समझकर कर लिया कि सब कुछ ऊपरवाले की मर्जी से ही होता है.

लोगों का खयाल था, अब संसार से जब छिद्दा का मन उचट ही गया, एक दिन जल्द ही दुनिया से मुंह मोड़कर वह चला ही जायेगा. लेकिन ऐसा नहीं हुआ. वक्त के साथ छिद्दा भगत जैसे होड़ लगा रहा था. वक्त घोड़े की तरह दौड़ जाता और उसके साथ ही साथ छिद्दा भी.

लेकिन अब भगत में खासी तब्दीलियां आ गयीं. उसे कहते अब भी लोग छिद्दा भगत ही हैं, लेकिन सौ साल की उम्र पार करने के बाद भगत को न तो अब बजरंगबली का खयाल है, न दुर्गा की फिक्र, सब कुछ विस्मृतियों में आहिस्ता-आहिस्ता खो से गये.

अब जमना को भी कई बार नहीं पहचानता भगत. बिरादरी के लोग भी अब पहचान में नहीं आते. आंखों की रोशनी तो खैर गयी ही है, दिमाग पर भी अब काबू नहीं रहा छिद्दा का. इन सबके बावजूद अपनी औलाद को बखूबी पहचानता है भगत. लोग इससे हैरान जरूर होते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन आखिर में समझ भी जाते कि खून की पहचान बहुत गहरी होती है.

पहले पोतियां अपनी-अपनी ससुराल से जब पीहर आतीं, खुश होता था भगत. पोतियों के संग उनके घरवाले होते, बच्चे होते और घर भर में थोड़े अरसे के लिए रंग जम जाता. लेकिन अब हालात वैसे नहीं हैं. भरी-पूरी गृहस्थी छोड़कर पोतियों को आने के मौके अब कम ही मिलते हैं. पर जब कभी वे आतीं, छिद्दा भगत को इससे रत्ती भर का फर्क नहीं पड़ता. वे अगर कभी भी न आयें भगत को मलाल नहीं होगा. अब पहचान में नहीं आतीं वे लड़कियां.

अभी कोई तीन ही दिन की बात है. भगत अंदर जाकर मटके में से आटा निकाल लाया और उसे पानी में सानकर उपले पाथने लगा.

जमना तब रसोई में थी. थोड़ी देर में लकड़ी लेने बाहर निकली तो मारे गुस्से के जिस्म का खून खौल उठा था. लेकिन करती भी क्या? ससुर को बहू हाथ पकड़कर रोक दे तो बघौना भर में फजीहत होते देर नहीं लगेगी. बिरादरी के लोग फिर रसीले बनाकर इधर-उधर सुनाते रहेंगे. तब कोई नहीं सोचेगा कि भगत की उम्र किस दहलीज पर है.

काशी घर पर नहीं था.

जमना फिर भागी हुई बिल्ला कहार के यहां पहुंची और कहारन को एक ही सांस में सब सुना गयी. कहार घर पर ही था. वह फिर दौड़ा हुआ आया और भगत को रोक लिया.

काशी जब शाम को घर लौटा, छिद्दा भगत एकदम निरीह-सा नीम के नीचे पाल्थी मारे बैठा था. उसे देखते ही जमना ने अपना माथा पीट लिया. काशी कहार के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी. उसे समझने में फिर देर नहीं लगी कि भगत ने आज कोई और ही फजीहत की होगी.

पूरे मामले को जमना ने मिनट भर में बयान कर दिया.

छिद्दा भगत जमीन की तरफ आंखें गड़ाए बैठा था. काशी नजदीक आया तो भगत जैसे आपे में लौटा. बोला, "आय गये बप्पा?"

काशी ने जवाब नहीं दिया. वैसे जवाब की जरूरत थी भी नहीं.

"रोटी खाय लेव." भगत बोला, "हमने रोटी नाय खायी, बप्पा. भौत भूख है पेट मा."

छिद्दा भगत अब बहुत दयनीय लग रहा था.

जमना चिल्लायी, "तुम्हरे पेट मा परेत बैठा है, परेत. सब कुछ खाय गये तुम पर पेट नाय भरा."

काशी ने जमना को नहीं टोका. टोकने से भी वह नहीं रुकती. जितना कहना है, उतना कह लेने के बाद ही वह लेती.

बाहर बरामदे के पास बहुत सारा आटा बिखरा था.

काशी आंखें गड़ाए उस आटे में अपनी किस्मत ढूंढने लगा. इस उम्र में जब बाकी लोग आराम की रोटी खाते हैं, काशी कहार की रोटी-पानी के जुगाड़ में सुबह से लेकर शाम तक पसीना बहाना पड़ता. जिस्म चाहे साथ न भी दे, जिम्मेदारी से छुटकारा नहीं मिलता. ऐसे में कोई अन्न को इस तरह बर्बाद करे तो महसूस यही होता कि जिस्म का सारा खून एक कद्दावर जोंक चूसे जा रहा है.

काशी को गुस्सा तो आया था लेकिन उसने अपनी मुट्ठियां भींच लेने के अलावा और कुछ नहीं किया. लगा, यह भगत एक दिन रात को सचमुच ही प्रेत बनकर अपने बेटे और बहू को निगल जायेगा. सुबह सूरज निकलने पर लोगों को फिर दो जनों की हड्डियां भर घर में बिखरी मिलेंगी.

रात को काशी की नींद उचट गयी.

जमना कोई डरावना सपना देख रही थी शायद. जबान से अधूरी आवाज निकल रही थी. उसे जगाने के लिए काशी ने बदन पर रखा तो चौंक उठा. यह बदन है कि आग का भट्ठा. जमना बुखार में तप कर बेहोश सी थी.

काशी मारे डर के हड़बड़ाने लगा.

इतनी रात गये अब कहां से दवा-दारू जुटा लायेगा. उसने बाहर आकर आसमान की तरफ देखा. लगा नहीं कि चारेक घंटे से पहले अंधेरा छंट पायेगा.

अपनी कोठरी में छिद्दा भगत हुक्का गुड़गुड़ा रहा था. कई बार रात को जब उसे नींद नहीं आती, चीलम के तंबाकू में आग लगाकर वह हुक्के का कश खींचता रहता. जाने कैसे चीलम को सुलगाने का काम वह अपने आप ही बगैर किसी मदद के कर लेता.

काशी को लगा, भगत की जगह इस वक्त कोई दूसरा होता तो आखिर कुछ मदद जरूर हो जाती. यहां तक कि कोई लूला-लंगड़ा भी

लघु व्यंग्य कथा

सावन के अंधे

बलवीर त्यागी

जब से हमारे देश में 'व्यक्ति' का राज खत्म हो 'व्यक्तियों' का राज हुआ है, तब से हर आदेश 'ऊपर' का आदेश होने लगा है. हुआ यह कि सूखे कि स्थिति पर 'ऊपर के आदेश' हुए कि सूखे का युद्ध स्तर पर मुकाबला किया जाये. बस, फिर क्या था, पूरा सरकारी तंत्र चुस्ती में आ गया.

मुख्यालय में कई दिनों तक हंगामी मीटिंग चलती रही. फाइलें इधर-से-उधर दौड़ती रही. ग्राफिक रेखाएं ऊपर-नीचे चढ़-उतर कर किसी पहाड़ी का दृश्य बनाती रहीं.

सरकार के इस जुझारू रूप को देख कर इंद्र देवता थर-थर कांपने लगे. एक दिन जब मीटिंग की कार्रवाई अपने चर्मोत्कर्ष पर थी तो इंद्र ने अपने वर्षा मंत्री वरुण को बुलाकर सख्त आदेश दिये, "बस, बहुत हो चुका. वरुण देव! जब सुंदरी मेनका विश्वामित्र जैसे तपस्वी का तप भंग कर सकती है तो क्या तुम इन पिद्दी से सरकारी अफसरों की हमारे से टक्कर लेने की योजना को चौपट नहीं कर सकते." "क्यों नहीं प्रभु, आप आदेश तो दीजिए. फिर देखना अपने 'वीरवता' वरुण का कमाल."

"जाओ, हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है."

बस, कुछ देर में सारा आकाश काले-काले बादलों से भर गया. बिजली कड़कने लगी. बादल गरजने लगे और मूसलाधार वर्षा जो होने लगी तो थमने का नाम ही न लिया. शहर की सड़कें जल मग्न हो गयी. यातायात ठप्प हो गया. सारे शहर में बाढ़ जैसी स्थिति पैदा हो गयी.

गर्मी में झुलसता शहर ठंडा हो गया और अफसरों की जान में जान आयी. उन्होंने प्रदेश को सूखाग्रस्त घोषित करने की बहस को यह कहकर समाप्त कर दिया कि भारी वर्षा होने के कारण स्थिति में सुधार हुआ है. इसलिए प्रदेश को सूखाग्रस्त घोषित करने की आवश्यकता नहीं. लेकिन अगले दिन दूर-दराज के गांवों के लोग साहब लोगों की कोठी पर प्रदर्शन करने आ धमके. वह चिल्ला रहे थे, "हमें राहत दो. हमारी फसलें सूखे से नष्ट हो गयी हैं. पशु चारे और पानी के लिए तड़प रहे हैं."

लेकिन साहब लोग यह मानने को तैयार नहीं थे. उन्होंने तो पिछले दिन ही 'ऊपर वालों' को अच्छी वर्षा होने की रपट भेज दी थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता तो काशी कहार अपने को इतना बेसहारा नहीं महसूस करता.

काशी आहिस्ते-आहिस्ते चलकर छिद्दा भगत की कोठरी के सामने जा खड़ा हुआ. अंदर का अंधेरा बिल्कुल ठोस था. चीलम की आग भर दिखाई पड़ रही थी. छिद्दा हुक्के के नारियल में होंठ लगाकर कश खींचता तो वह गुड़गुड़ा उठता और चीलम की आग कुछ सुर्ख हो जाती. आग की वह सुर्खी सिर्फ दो-चार घड़ियों भर की होती. उसी से पता लगता कि हुक्के को थामे जो शख्स बैठा है, वह अब जाने किसके श्राप से प्रेत बन गया. जिससे अब किसी भी इंसान को निगलने की ताकत आ गयी उसमें.

अपने ही बाप से काशी इस तरह पहले कभी नहीं डरा था. इतना आखिर वह जानता ही है कि जिस्म की नसों में जो खून बह रहा, वह इस छिद्दा भगत का ही है. लेकिन रात के इस सन्नाटे में अब उसे लगा कि यह प्रेत जमना को निगले बिना नहीं मानेगा.

आखिर में काशी कोठरी के सामने से खिसका और बहुत तेज कदमों से बिल्ला कहार के दरवाजे की तरफ बढ़ने लगा. वह फिर बुरी तरह हांफने लगा था.

इतनी रात गये काशी को अपने दरवाजे पर खड़ा देखकर बिल्ला कहार भी हैरान हो रहा था. काशी ने फिर एक ही सांस में जमना की हालत का बयान किया तो बिल्ला ने अपनी घरवाली को बिस्तर से उठा लिया. कहारन जग ही रही थी. काशी कहार की बातें भी उसने सुन ली थीं. फिर बिल्ला कहार के संग वह काशी के यहां पहुंचकर भगोने में पानी लिया और कपड़े का एक टुकड़ा बार-बार भिगोकर जमना के माथे पर रखने लगी.

यहां से कैथन गांव का फासला चारेक कोस से कम नहीं होगा. वहां दो रुपये दिन के हिसाब से एक अहीर का छोरा दवा देता है. सुई लगानी हो तो तीनेक रुपये से कम में वह नहीं मानता. फासले की बात तो खैर है ही, पैसे की भी बात है. काशी को अच्छी तरह मालूम है, कभी-कभी अहीर उधार पर दवा जरूर दे देता लेकिन मरीज अगर कहारों में से है तो पाई-पाई वसूल किये बगैर खुराक की पुड़ियां नहीं देता.

जमना अंदर कराह रही थी.

काशी कहार बिल्ला के संग नीम के नीचे बैठ गया था.

बिल्ला की घरवाली जमना से शायद कुछ पूछ-पाछ रही थी. लेकिन जवाब कौन दें? जमना कहारन बेहोश होकर जहां खो गयी, वहां तक किसी की आवाज पहुंच नहीं पाती.

बाहर बहुत गहरी चुप्पी थी. लेकिन जमना के कराहने की वजह से सन्नाटा नहीं था. वर्ना छिद्दा भगत की कोठरी के अंधेरे की तरह यहां भी एक ठोस सन्नाटा होता.

बिल्ला कहार ने चुप्पी तोड़ी. "घबराओ मति भइए, सुबह हो जाने दो फिर चलेंगे दोनों डाकटर के यहां. पुड़िया खाय के तो मुर्दे भी चंगे होय गये."

मुर्दे का जिक्र सुनते ही काशी परेशान हो गया. सीने के अंदर जैसे एकदम से तूफान आ गया था.

बिल्ला कहार को रत्ती भर पता नहीं चला कि सामने बैठा काशी किस कदर बहदवास हो रहा है.

एक चिड़िया बोल उठी थी.

उस आवाज से वहां का सन्नाटा बुरी तरह टूटा.

बिल्ला कहार भी शुरू में थोड़ा चौंक उठा था. लेकिन वह बाद में संभवतः और काशी के कंधे पर अपनी हथेली रख दी, "जिन्नगी मा बुरा बखत किस पे नाय आता, भइए? सब परमात्मा का खेल हैं." बात खत्म कर उसने जम्हाई ली खुद वह भी समझ गया, उसकी बातों में कोई दम नहीं था. चुप्पी तोड़ने के लिए कुछ कहना था, सो कह दिया.

मौसम गर्मी का तो खैर नहीं था लेकिन घुटन सी हो गयी थी.

बिल्ला कहार जबरदस्ती फिर खांसने लगा. जैसे इसके सहारे ही थोड़ा रास्ता चला जा सकेगा. खांस लिया तो काशी के कंधे को आहिस्ता से झटका दिया, "तुहरी कहारन को कोई खतरा नाय है. दो दिन मा भली-चंगी होय के डोलती फिरैगी बघौना मा, हां. तब कैना बिल्ला कहार ने झूठ नाय कहा था." बिल्ला फिर कोशिश करके थोड़ा हंस पड़ा था.

"मो को भौत डर लगो है कहार." इतनी देर में काशी ने जबान खोली, "कहारन का कुछ पतो नाय. कब रूठ के चल देगी, राम जाने, हमरी महतारी भी तो भगत को छोड़के का जाने कहां चली गयी."

बिल्ला ने माहौल को संभालने की कोशिश की, "पर जमना कहारन की बात दूसरी है. थोड़ा तपा है जिसम, दो दिन मा एकदम चुस्त बन जावेगी, देखना."

काशी इन लफ्जों के सहारे खुद को बहुत आश्वस्त नहीं कर पाया.

छिद्दा भगत शायद सो गया था. कोठरी की तरफ से अब हुक्के के पानी की गड़गड़ाहट सुनाई नहीं पड़ रही थी. इस वक्त सामने बिल्ला कहार न होता तो काशी कोठरी तक जाकर एक बार और अपने बाप को देखने की कोशिश जरूर करता.

बिल्ला ने गर्दन ऊपर उठायी और आसमान की तरफ देखा. अंधेरा थोड़ा हल्का होता सा लगा.

काशी ने एक गहरी सांस ली.

बिल्ला ने काशी के कंधे को धीरे से झटका दिया, "अब फिकर करियो मति. थोड़ी देर मा सुबह हो जावेगी. चलेंगे तब कैथन के अहीर डाकटर के यहां पुड़िएं लायके कहारन के मुंह मा डाल दो फिर चंगी हो न मा देर नाय लगेगी."

काशी के सीने की धकधकी तेज हो गयी. इस वक्त घर में ढूंढो तो दमड़ी-दो दमड़ी से ज्यादा नहीं निकलने की. पिछले हफ्ते भर घुटनों के जोड़ों में दर्द रहा और काशी कहार काम पर नहीं निकल सका. जमना ने ही रोक दिया था. लेकिन तब कहार को कहां पता था कि कहारन की ही खातिर उसे मजूरी पर निकलने की जरूरत थी.

वैसे यहां सब बिरादरी वाले ही हैं. अच्छे-बुरे दिन सबके आते हैं आखिर अपने लोग ही फिर वक्त पर काम आते हैं. लेकिन जमना की शुरू से ही ऐसी अकड़ रही है कि चाहे चूल्हा न जला हो, उसने किसी के सामने अपनी धोती का पल्लू नहीं फैलाया. घर में चना-चबेना जो निकला, छिद्दा भगत के सामने डाल दिया. और मियां-बीवी दोनों लोटे में से पानी पीकर सो गये.

काशी तय नहीं कर पा रहा था कि अब इस संकट की घड़ी में बिल्ला कहार से कर्जे की दरख्वास्त करे तो कैसे करे? वैसे बिल्ला कहार अपना ही आदमी है. काशी को मालूम है, इस कर्जे की वजह से कभी ताने मारने नहीं आयेगा. फिर भी काशी को लगा, कर्जे की बात कहते ही वह एकदम से नंगा हो जायेगा.

बिल्ला उठने लगा था.

काशी नै उसकी तरफ सवालिए की तरह देखा.

बिल्ला ने गर्दन हिलायी, "ठैरो दो घड़ी. भगौना मा चाय बनाय के लात हैं. फिर पियेंगे बैठकै."

"हमरे लिए बनाना नाय, कहार." काशी बोला,

बिल्ला समझ गया, काशी इस वक्त घड़ी भर के लिए भी अकेला नहीं रहना चाहता. फिर वह बैठकर बीड़ी सुलगा ली और धुआं उगलने लगा.

काशी बीड़ी नहीं पीता. मुंह में तंबाकू और चूना डालकर चूसता रहता है. बरसों की यह आदत है लेकिन इस वक्त अंदर से कोई तकाजा नहीं उठा.

छिद्दा भगत अपनी चारपाई पर खड़ा खांस रहा था. काशी को वह आवाज बहुत विकट लगी.

"भगत जाग रहो है?" बिल्ला ने पूछा. इतनी देर में पहली बार उसे छिद्दा की याद आयी.

काशी कुछ नहीं बोला.

बिल्ला ने सवाल किया तो था और काशी ने कोई जवाब नहीं दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बावजूद उसने कुछ और नहीं पूछा.

सुबह हो रही थी कि बिल्ला की घरवाली भागती सी दरवाजे तक आयी.

बिल्ला लगभग उछलकर खड़ा हो गया था. बोला, "सब ठीक तो है?"

कहारन सुबकियां भरने लगी थी.

काशी कहार फिर एक तरह से छलांग मारकर अंदर आ घुसा था. वह हांफ रहा था और सारा जिस्म मारे डर के थर्राने लगा था. झुककर उसने जमना की कलाई पकड़ी. बहुत कोशिश की लेकिन नब्ज का पता नहीं चला. लेकिन अभी तक जिस्म गर्म था कहारन का.

काशी फिर एकदम बेसहारा सा धप्प से जमीन पर बैठ गया. उसने महसूस किया, उसका समूचा शरीर ठंडा होकर अब बर्फ बन रहा है.

अपनी कोठरी में पड़ा छिद्दा भगत काफी जोर से खांसने लगा था. शायद थोड़ा-सा बलगम सीने में अटक गया था और भगत को सांस लेने में तकलीफ हो रही थी.

काशी बुत सा बैठा था. छिद्दा भगत के खांसने की आवाज अब उसके अंदर नहीं पहुंच पा रही थी.

कहारन के गुजरने के ठीक महीना भर बाद एक और हादसा हो गया. काशी कहार की सबसे छोटी लड़की भगौती की मांग का सिंदूर मिट गया. भगौती सबसे छोटी होने की वजह से बहुत लाड़-प्यार से पली थी. लेकिन उसका नसीब आखिर खोटा ही निकला. ब्याह के बाद ससुराल गयी तो वहां आराम चैन तो दूर, कई बार रोटी तक नहीं नसीब होती. दामाद चार-चार दिन रंडियों के यहां पड़ा रहता और भगौती को अपनी सास और एक विधवा ननद के तानों की शिकार होना पड़ता. शुरू-शुरू में वह मैके में सब कुछ छिपाती रही. लेकिन जब आग लग ही जाये कोई कहां तक छिपाता फिरेगा? बघौना से बर्धनी का फासला ही कितना है? कुल मिलाकर दसेक कोस से ज्यादा नहीं होगा. लोग आखिर आते-जाते ही हैं फिर बर्धनी की खबरें बघौना तक आहिस्ता-आहिस्ता पहुंच ही गयी थीं.

काशी कहार ने सीने पर पत्थर रखकर यह सब कबूल कर लिया था. ऊपर वाले की यह मर्जी है तो यही सही. लेकिन मन के एक कोने में उसे थोड़ी-सी उम्मीद इस बात की थी कि कभी जरूर वक्त बदलेगा और भगौती फिर सुख-चैन के दिन काटेगी.

भगौती की कोख खुली तो एक मरा हुआ लड़का पैदा हुआ था. घर भर में हंगामा हो गया था, इस बात को लेकर. इसके बाद तीन-तीन लड़कियां जनी हैं उसने, इस बात को लेकर सास और ननद ताने देतीं और भगौती चुपचाप सुबकियां भरती रहती.

दामाद पूरा हट्टा-कट्टा जवान था. चिराग लेकर ढूंढो तो भी कहारों में ऐसा खूबसूरत लड़का नहीं मिलेगा. रंडियों के यहां उसके जाने की बात पर काशी के दिल में थोड़ी चोट तो थी लेकिन एक तरह से उसने खुद को समझा लिया था कि मर्द में थोड़ा बहुत ऐब अगर हुआ भी तो कोई तूफान नहीं आ जाता. ऊपर से तो सभी दूध के धुले दिखते हैं लेकिन ऐसे कितने माई के लाल हैं, जो यहां-वहां हाथ लगने पर मुंह न मारकर लौटे हों.

दामाद खेत में मजूरी करता था. कोई पैसे वाला वह था तो नहीं लेकिन काशी कहार अपनी बेटी के लिए इससे बेहतर कुछ और कहां से जुटाता? उसने तसल्ली कर ली थी कि बेटी के नसीब में होगा तो यही आदमी एक दिन सोना-चांदी पर लोटता फिरेगा. आखिर है सब नसीब का ही तो खेल.

लेकिन खेल कुछ ऐसा निकला कि बघौना और बर्धनी भर के लोग हैरान रह गये. खेत की मिट्टी से घास-फूस निकालकर भगौती का आदमी डलिया में डाल ही रहा था कि जाने कहां से गेंहुअन ने आकर डस लिया. शाम को सूरज डूबने से पहले यह हुआ था. अंधेरा उतरने तक वह हट्टा-कट्टा आदमी जहर से नीला होकर खत्म हो गया.

खबर पाकर काशी दौड़ा हुआ बर्धनी गया. लोग बहू को ताने दे रहे थे. काशी चुपचाप सुनता रहा कि इस औरत के नसीब से ही उसका भरा पूरा जवान मर्द दुनिया छोड़कर चला गया.

काशी समझ गया था, भगौती के अन्न पानी का हिसाब अब बर्धनी में खत्म हो गया. फिर बेटी और तीनों ध्योतियों को लेकर वह वापस बघौना आ गया.

काशी कहार हैरान रह गया था. बर्धनी से चलने लगा तो इन बच्चियों को देखकर भी किसी की आंखें नम नहीं हुईं.

तब से भगौती बघौना में है.

छिद्दा भगत को इससे कोई फर्क नहीं पड़ा.

इस घर की बहू जमना की अर्थी थोड़े दिन पहले ही निकली थी

भगत की आंखों में रोशनी भले ही अब खास न बची हो लेकिन कोई अगर एकदम से गैरमौजूद हो गया उसे पता तो चल ही जाता लेकिन इससे उसके भीतर अब कोई हलचल नहीं होती.

काशी कहार बर्धनी गया था तो बिल्ला की घरवाली भगत के सामने थाली लगाकर रोटी पानी रखती रही है. छिद्दा को इससे कोई परेशानी नहीं हुई थी. बिल्ला कहार ने लंबी सांस भरकर कहा था, "शैतान की आंत की तरह ऊपर वाला किसी को इत्ती बड़ी उमर नाय दे." कहकर अदृश्य परमात्मा के प्रति वह हथेलियों को जोड़कर माथे तक ले आया था.

अब, जब से भगौती आयी है, रसोई की जिम्मेदारी उसी के कंधों पर है. काशी का कलेजा चिरता है. एक तो वैसे ही किस्मत की मारी है यह लड़की, ऊपर से पीहर आते ही गृहस्थी की इतनी बड़ी जिम्मेदारी. लेकिन बैठकर ठंडी आहें भरने के अलावा कहार के पास और कुछ बचा नहीं है, इतना वह बखूबी जानता है.

काशी कहार छप्पर बांधने कैथन गया था. अब चाहे घुटनों में दर्द रहे, चाहे सीने में, मजूरी के बिना वक्त नहीं कटने का. छह-छह जनों के पेट का सवाल है अब. कहार अंगोछे में गुड़-चना बांधे तड़के निकल जाता और जब लौटता सूरज डूबने के बाद खासा अंधेरा छा चुका होता.

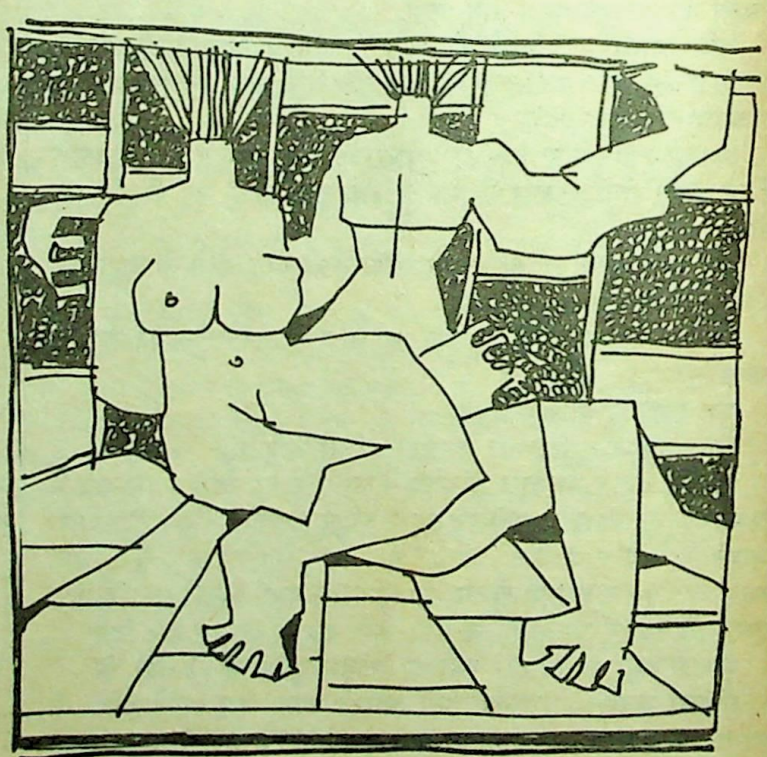

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन घर लौटा तो एकदम हैरान.

भगौती के माथे पर पट्टी बंधी थी. कुप्पी की टिमटिमाती रोशनी के बावजूद अच्छी तरह मालूम हो रहा था. पट्टी पर खून के कतरे जमे हुए हैं. बिल्ला कहार ने फिर सारा मामला बयान कर दिया था.

भगौती ने रोटी की थाली भगत के सामने रखी ही थी कि वह उंगलियों से टटोलकर रोटियां गिनने लगा. एकदम से गुस्सा आ गया था छिद्दा को. बोला था, "जे कम है. पूरे दस लय कै देव."

"जे पैले खाय तो लेव बाबा." भगौती बोली थी.

बस, इतनी सी बात पर मामला बिगड़ गया. भगत ने थाली उठायी और सामने उछाल दी. वह आकर भगौती के माथे से पहले टकरायी, फिर चक्के की तरह खिसककर कुएं में जा गिरी. अभी तक थाली कुएं की ही पेंदी में पड़ी हुई है.

भगौती का चेहरा चोट की वजह से सूज गया था. खासतौर पर दोनों आंखों के नीचे के हिस्से स्याह पड़ गये थे. वह दीवार पर पीठ टिकाये एकदम गुमसुम बैठी थी.

कुप्पी की रोशनी टिमटिमा रही थी. इससे अंधेरा नहीं मिटता. लेकिन काशी कहार को लगा, उसके दिमाग की नसों के अंदर इतनी बड़ी आग जल उठी है कि अब वह अंदर-बाहर सब कुछ देख सकता है. अंधेरा रहे, तो भी.

छिद्दा भगत अपनी कोठरी में था. कहीं से किसी हलचल की आवाज नहीं आयी. काशी समझ नहीं पाया कि भगत सोया हुआ है या घुटनों के बीच सिर छिपाए कुछ सोच-विचार कर रहा है. लेकिन इतना पता करने इस दफा वह कोठरी के सामने नहीं जा खड़ा हुआ. अब तक जहां खड़ा हुआ. अब तक जहां खड़ा था वहीं आहिस्ते से बैठ गया. कंधे पर रखे अंगोछे से चेहरे का पसीना पोंछने लगा फिर.

ढिबरी की रोशनी से बनी भगौती की छाया बहुत बेसहारा-सी लग रही थी. काशी उस तरफ देखकर बिखर सा रहा था. उसने फिर थककर अपनी आंखें बंद कर ली थीं.

तड़के छिद्दा भगत को लेकर काशी निकल गया.

बघौना से कैथन तक बैलगाड़ी से जाना होता है. वहां स्टेशन तक पहुंचने के लिए मोटर गाड़ी मिल जाती. मधई कहार के पास अपनी बैलगाड़ी है. काशी ने उसे कैथन तक छोड़ आने के लिए राजी कर लिया था.

पौ जब तक फटा, काशी कहार छिद्दा भगत के साथ कैथन पहुंच गया था. वहां बाजार में चाट मिठाई की दो-तीन दूकाने हैं. काशी ने छिद्दा के लिए किलो भर मिठाई खरीदी और उसके सामने रख दिया. भगत जिंदगी में कभी इतना खुश शायद इससे पहले नहीं हुआ था. उसका वश चलता तो सिर्फ मुंह से ही नहीं जिस्म के दूसरे हिस्सों से भी इन मिठाइयों को चटकार जाता.

काशी गुमसुम खड़ा यह सब देखता रहा.

लेकिन छिद्दा भगत पावभर निगल जाने के बाद सुस्त पड़ गया.

"और खाओगे नाय?" काशी ने पूछा.

छिद्दा चुप रहा. उसे प्यास लगी थी.

काशी ने सामने लस्सी का गिलास रखा तो भगत पूरा का पूरा गटक गया.

काशी ने फिर भगत के अंगोछे में बाकी बची मिठाइयां बांध दी थीं.

भोजन के बाद छिद्दा भगत कभी भी इससे पहले शायद इतना तृप्त नहीं हुआ था.

काशी को लगा, अब किसी भी घड़ी भगत पूछ लेगा, "यहां किऊं ले आए मो के?"

लेकिन काशी अब हैरान हो रहा था कि बैलगाड़ी से इतनी दूर आने के बावजूद उसने अभी तक कुछ पूछा ही नहीं.

काशी ने फिर एक झोला खरीदा और उसमें चने और गुड़ ले लिए. इसके अलावा उसमें एक नया अंगौछा भी डाल दिया. पैसे नहीं थे, वर्ना भगत को एक नई धोती जरूर खरीद देता.

थोड़ी देर में बस आ गयी.

काशी छिद्दा को लकेर बैठ गयाऔर स्टेशन तक के दो टिकट खरीद लिये.

मोटरगाड़ी के सफर की बजह से बहुत खुश नजर आ रहा था भगत. काशी बार-बार उसके चेहरे की तरफ देखता और जो कुछ अनजान है, समझने की कोशिश करता.

घंटे भर का सफर था.

इस बीच काशी सिर्फ छिद्दा भगत के चेहरे पर आंखें गड़ाए बैठा रहा. जैसे भगत एकदम से कुछ पूछ लेगा और काशी कहार जवाब देने से पहले ही टुकड़ों में बंटकर खत्म हो जायेगा.

स्टेशन के सामने मोटर गाड़ी रुकी तो भगत को काशी ने इस तरह हिफाजत से उतारा गोया वह दुनिया की सबसे कीमती चीज हो.

सामने खासी भीड़ थी.

काशी छिद्दा को बचाकर टिकट की खिड़की के सामने से आया. जैसे किसी से टकराते ही भगत चूर-चूर होकर बिखर जायेगा.

खिड़की से टिकट खरीदकर काशी ने उसे छिद्दा के झोले में डाल दिया. भगत एक बनियाईन पहने तो था लेकिन कोई जेब नहीं ी. टिकट को झोले में डालने के बाद उसे कुछ याद आया तो उसने अंगोछे में एक पांच का नोट और कुछ रिजगारी बांध दिये.

गाड़ी आ गयी थी. मिनट-दो मिनट से ज्यादा कोई गाड़ी यहां नहीं रुकती. लिहाजा काशी कहार ने छिद्दा भगत को एक तरह से गोद में उठाया और सामने वाले डिब्बे में जा घुसा सीटों पर बैठने की कोई जगह ही नहीं थी...लेकिन काशी ने छिद्दा को नीचे बिठा दिया था. बिठाकर उसके घुटनों के बीच कैथन के बाजार से खरीदो झोला डाल दिया.

गाड़ी फिर सीटी देकर चलने लगी थी. काशी कहार एक तरह से कूद कर नीचे उतरा और हांफने लगा यह गाड़ी कहां जायेगी काशी नहीं जानता. उसे सिर्फ इतना भर मालूम है कि छिद्दा भगत अब कभी भी बघोना में नहीं नजर आयेगा. कोई जान भी नहीं पायेगा कि कहार बिरादरी का एक आदमी एकदम से कहां खो गया.

गाड़ी मोड़ पार करते ही आंखों से ओझल हो गयी.

काशी कहार सीना पकड़कर एकदम से बिलखने लगा था फिर. आंखें इस कदर गीली थीं कि सामने का कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था. थोड़े ही फासले पर खड़ी मालगाड़ी भी नहीं. □

चलते-चलते

पत्नी मृतयु शैया पर थी.

उससे पति का दुख न देखा गया, अतः उदार हृदय से उसने पति से कहा, "नाथ, आप अकेले नहीं रह सकेंगे. मेरे बाद आप अवश्य एक नयी जीवन संगिनी ले आयें."

पति कुछ नहीं बोला.

पत्नी ने फिर पूछा, "बोलिये, लायेंगे न!"

पति ने कहा, "प्रिये, यदि यही तुम्हारी अंतिम इच्छा है तो उसे कैसे टाल सकता हूं?"

"हां, मैं तो जानती ही थी कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करते," पत्नी ने उठते हुए कहा, "लेकिन यह भी सुन लो, अब मैं नहीं मरूंगी." वह उसी दिन से ठीक होने लगी. □

—र.का.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बारिश-कुहरे के कारण बढ़ गयी थी, काफी कम है.

बाबा के अहाते में एक मैदान है, पीछे की ओर अम्मा और छोटी पुत्रवधू सरिता ने फल-फूल और सब्जियों की सुंदर बगिया लगा रखी हैं. जाड़ों में दिन के समय और गर्मियों में शाम को बाबा इसी मैदान में निवाड़ों वाले एक पलंग पर बैठते, लेटते हैं या कुछ पढ़ते हैं. आगंतुकों के लिए कुर्सियां, मोढ़े आदि डाल दिये जाते हैं. हम लोग बेतकल्लुफी से पास पड़ी एक और खाट खींच लेते हैं. आज यहीं हुई वह स्मरणीय मुलाकात.

आते ही सभी ने एक स्वर में पूछा था—'अब कैसी तबीयत है?'

बाबा थोड़ी देर पहले लेटे हुए थे. उठकर बैठ गये. अब एकदम ठीक हूं...उन्होंने लोगों को आश्वस्त किया. बातचीत की शुरुआत रामविलास जी ने की.

पूछा, "मुर्गी-वुर्गी खा सकते हो या नहीं?"

नागार्जुन गंभीर होकर, "नहीं, यह मना है. मछली खा सकते हैं."

रामविलास जी, "तब मछली ही खाओ."

नागार्जुन, "यहां अच्छी मिलती नहीं."

रामविलासजी, "फिर मिथिला ही पहुंच जाओ, वहां मछली खाओ." हंसी....

नागार्जुन, "हां, अब फरवरी में जाऊंगा."

नागार्जुन के ठीक सामने की कुर्सी पर बैठे केदारनाथ अग्रवाल कुछ बोल नहीं रहे हैं. पहले से कितने ज्यादा 'पक' गये हैं. गौरवर्ण चेहरे पर असंख्य झुर्रियां उभर आयी हैं. कोई पंद्रह साल पहले न्यूएज प्रेस से बाहर आते समय शाम को उन्हें देखा था. उस साल सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार मिला था उन्हें. साथ में राजीव सक्सेना थे. उन्होंने ही परिचय दिया. साठ की उम्र में भी जवान जैसे दिखे थे. पीछे कढ़े लगभग काले बाल, आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा. सफेद कमीज पैंट में. आश्चर्य हुआ था इस लिबास में देखकर क्योंकि काफी पहले 'नया पथ', 'जनयुग' और कुछ अन्य साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताओं के साथ उनकी एक फोटो देखता आया था...जवानी की अलमस्ती में निराला की तरह नंगे बदन. यही चित्र आंखों में बसा हुआ था. अब चश्मा नहीं लगाते, नजदीक की चीजें जोर लगा कर देख पाते हैं. क्या पंद्रह एक वर्ष आदमी में इतना परिवर्तन कर देते हैं? शायद पत्नी के देहावसान का भी असर है. वे कुछ बोले बगैर नागार्जुन की ओर एकटक देखते मानो उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहे हैं. या उन्हें देखते हुए बहुत पहले नागार्जुन पर लिखी अपनी कविता याद कर रहे हैं:

"आओ, मिथिला के कवि तुम्हें गले लगा लूं..."

और नागार्जुन ने भी तो उन्हें संबोधित कर लिखी थी एक कविता.

इस बीच बातचीत जारी है. शशांक ने काफी कोशिश के बाद टेप रिकार्डर लगा दिया. बाद में पता चला वह बहुत कुछ रिकार्ड ही नहीं कर पाया. हमारी पीढ़ी अच्छी है, वह कैसेट्स की गुलाम नहीं रही. याददाश्त पर ज्यादा भरोसा करती है. नागार्जुन बौद्ध रामायण के दो खंड लिये पढ़ने की कोशिश कर रहे थे...उनके आने के पहले. बिना आतशी शीशा लिये खुद नहीं पढ़ पाते. थोड़ी देर बौद्ध दर्शन, राहुल—नागार्जुन की एक साथ लंबी यात्राओं, आज के हिंसात्मक दौर में बुद्ध के अहिंसा दर्शन की प्रासंगिकता आदि पर दिलचस्प चर्चा चली कुछ देर. किसी गंभीर विवेचन से बचते हुए. नागार्जुनजी के स्वास्थ्य का ध्यान सबसे ज्यादा है लोगों को. इस बात की 'डेलिबरेट' कोशिश थी कि बातचीत इन्हीं तीन महारथियों में चलती रहे. कटे हुए फल, तले हुए मखाने (मिथिला की खास पैदावार) और चाय आयी. बाबा ने एक दो टुकड़े फल के लिये, थोड़ी-सी चाय. केदार और रामविलासजी ने भी बहुत थोड़ी-सी चीजें चखीं. सिर्फ चाय पी. केदारजी कितने ही 'पक' गये हों. रामविलासजी 75 की उम्र में भी ताकतवर और हट्टे-कट्टे हैं. कद्दावर तो हैं ही. अरुणा आसफ अली ने 1981 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार देते समय उन्हें युवा लेखक कहा था जिसे 70 की उम्र में उन्होंने सादर स्वीकार किया था. (खुदा करे वे ऐसे ही युवा रहें) हां, अब आगे के दो-तीन दांत अवश्य अनुपस्थित हैं.

बातचीत ने अनजाने ही एक नाजुक मोड़ ले लिया. केदारजी अब भी बहुत कम बोल रहे थे. 27 दिसंबर को 'जनवादी लेखक संघ' की ओर से उनका सम्मान समारोह आयोजित है.

नागार्जुन से—"वहां आओगे?"

नागार्जुन—"आऊंगा."

"इस हालत में आ सकोगे?"

"आ सकूंगा."

किसी ने कहा, "वहां मैनेजर पांडे आने वाले हैं."

नागार्जुन, उनके पत्र का हवाला देते हुए... "नीं, वे नहीं आयेंगे, जोधपुर जायेंगे."

रामविलास, "वहां जायें या नहीं, ज.ले.सं. में वे आ ही नहीं सकते."

चंद्रबली सिंह ठठा कर हंसते हैं.

अजय तिवारी की केदारनाथ अग्रवाल से साक्षात्कार की एक किताब आयी है. उसकी भूमिका में लिखा है, श्री शिवदान चौहान अमरीकी दूतावास के अनुवाद करते थे. विष्णुचंद्र शर्मा (जो सुबह स्वागतार्थ टहल रहे थे, पर बीच में रूठ कर घर चले गये थे, अब वहां उपस्थित थे) पूछते हैं, "क्या तुम्हारा आरोप सही है?"

अजय, "मैंने किसी व्यक्तिगत रागद्वेष से कुछ नहीं लिखा. यदि शिवदानजी मेरे आरोप का खंडन करें तो मैं अपनी बात गलत मान लूंगा."

"या प्रगतिशील लेखक संघ का इतिहास यह पचा पायेगा?"

चंद्रबली सिंह, "इस पर तो रामविलास ही कुछ कह सकते हैं (उनकी ओर देखते हुए) क्यों भाई?"

रामविलास शर्मा, ज.ले.सं. और प्र.ले.सं. दोनों ही पार्टी के सही इतिहास को तलाशे बिना उसके सांस्कृतिक आंदोलन का इतिहास लिखना चाहते हैं. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने पार्टी के दस्तावेजों का जो संग्रह छापा है उसमें सन् 42 से 48 तक के दस्तावेज शामिल नहीं हैं, जबकि वही पार्टी के सांस्कृतिक कार्य का सबसे महत्वपूर्ण काल था. पार्टी की सोच का एक प्रमाण उस समय पार्टी से संबद्ध उर्दू शायरों...जाफरी, कैफी आदि—की कविताओं में मिल सकता है. तब पाकिस्तान समर्थक कविताएं लिखी जा रही थीं. मैं नहीं जानता कि शिवदान सिंह पार्टी सदस्य थे या नहीं! सन् 53 में मेरे महासचिव काल का जो अंतिम अधिवेशन प्रगतिशील लेखक संघ का दिल्ली में हुआ, उसमें यह सवाल उठा था. दिल्ली पार्टी ने उन्हें अपना सदस्य स्वीकार नहीं किया था.

चंद्रबली सिंह, "अरे भाई नामवर भी तो नहीं थे. जब चुनाव लड़े तब भी नहीं. 53-54 में जब प्र.ले.सं. की बनारस शाखा के सचिव बने तब विश्वविद्यालय में किसी ने उन्हें डरा दिया कि अभी यह सब मत करो. उन्होंने कोई मीटिंग ही नहीं बुलायी लंबे अर्से तक."

रामविलासजी अपने छोटे भाई मुंशी से, "तुम्हें पसीना आ रहा है, कोट उतार दो."

"धूप के कारण नहीं, आप की बातों के कारण" (हंसी) मैं कह देता हूं. नागार्जुन इन बातों में रस नहीं ले पा रहे हैं. वे थककर लेट गये. केदारजी भी चुप ही रहे इस बीच. अब दो बज रहे थे, लोग चलने के लिए उठने लगे. इन महारथियों से भी एक चूक हो गयी. अम्मा (नागार्जुनजी की पत्नी) तैयार होकर पीछे चटाई पर दूसरी ओर मुंह किये बैठी थी. इस बातचीत में उनका हाल पूछने का किसी को अवसर नहीं मिला. सभी लोग सड़क तक आकर गाड़ी में बैठ गये. सेलेब्रिटी होने के बाद अनौपचारिकता में भी वैसी एक औपचारिकता छिपकर घुसपैठ कर जाती है. गाड़ी में बैठकर केदारजी को कुछ खयाल आता है. श्रीकांत जी से कहते हैं, "नागार्जुनजी से कहो, परसों के समारोह में उन्हें आने में कष्ट होगा." नागार्जुन यह सुनते हैं, फिर कहते हैं—"नहीं भाई नहीं, कोई कष्ट नहीं होगा, मैं आऊंगा....जरूर आऊंगा...." □

रमाकांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

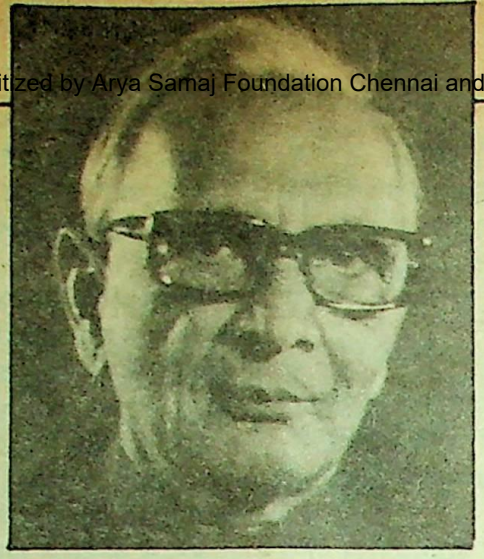

सम्मिलनी

ग्राम गंध की छाया में

नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और डा. रामविलास शर्मा की ऐतिहासिक मुलाकात

बाबा नागार्जुन कहते हैं—सादतपुर में अभी ग्राम गंध शेष है. इसीलिए जब दिल्ली में होते हैं तो एक पिछड़ी हुई बस्ती की तमाम असुविधाओं के बावजूद यहां रहना उन्हें प्रिय लगता है. यहीं उनके तीसरे पुत्र श्रीकांत का मकान है जो बाबा के होने पर मानो साहित्य का तीर्थस्थल बन जाता है. यहां कई लेखक, पत्रकार, साहित्य प्रेमी भी रहते हैं जो बाबा के साथ निरंतर संवादशील होते हैं, अर्थात् बाबा के ही शब्दों में अपने 'गोत्र' के लोगों का अभाव यहां नहीं खलता.

दिल्ली के उत्तर पूर्वी छोर पर तीमारपुर के आगे जमुना पर बजीराबाद पुल पार करने के बाद कोई छः किलोमीटर आगे करावल नगर जानेवाले उपमार्ग पर है सादतपुर. यहां आकर लगता ही नहीं कि यह दिल्ली की ही कोई बस्ती है. यह हिंदुस्तान की कोई भी छोटी-मोटी पिछड़ी हुई बस्ती हो सकती है. सड़क के उस पार है पुराना गांव सादतपुर गूजरान. इसका असर सादतपुर कालोनी की अर्ध-शहरी बस्ती में भी दिखायी देता है. खाली प्लाटों के इर्द-गिर्द अधिकांशतः दो-तीन कमरों के मकान, अहातों में बाग-बगीचों के बीच कहीं-कहीं फैशनेबुल यूकलिप्टस और गुलमोहर भी. कच्चे-पक्के रास्तों पर इक्का-दुक्का मोटरसायकिलों और ट्रैक्टरों के साथ भैंसों के झुंड, चारा काटने वाली मशीनों की छक-छक और गोबर थापती तगड़ी, मेहनतकश गूजर औरतें...सच ही तो कहते हैं बाबा—सादतपुर में ग्राम गंध शेष है. और यह ग्राम गंध ही क्या बाबा की कविता की भी प्राण नहीं है?

यहीं हुई उस दिन साहित्य के तीन महारथियों की मुलाकात.

डायरी : 15-12-86

कल लगभग आठ माह बाद बाबा दिल्ली पहुंचे. पूरा साहित्य-संसार पिछले महीनों उनकी बीमारी की खबरों से चिंतित था. लैंसडाउन (जहरी खाल) से लौट कर पहले पटना में बीमार पड़े, फिर अपनी भूमि मिथिला चले गये जहां दरभंगा मेडिकल कालेज में भर्ती किये गये. खबरें आयी थीं...पूरा दरभंगा मेडिकल कालेज और फिर जन दबाव पर बिहार सरकार अपनी धरती के इस यशस्वी पुत्र के स्वास्थ्य लाभ के लिए जी-जान से जुट गयी थी. यहां सादतपुर के साहित्यकारों ने 22 जून को उनका 75वां जन्मदिवस मनाया था. नागार्जुनजी की पत्नी जिन्हें सभी अम्मा कहते हैं, अभी यहीं थी. बैठक में वे भी आयी थीं.एक ओर मौन बैठी हुई. महेश ने कुछ बोलने के लिए कहा था. मन तो दरभंगा में टंगा है, यहां क्या कहें! श्रीकांत रिजरवेशन करा लाए हैं, जल्द ही बिहार जायेंगी. सभा में नागार्जुन की कविताओं का पाठ हुआ. वक्ताओं ने यह उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि कबीर की परंपरा में अकेले नागार्जुन का नाम इस युग के कवियों में लिया जा सकता है, उनके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ और दीर्घ जीवन की कामना की थी. ...अब उन्हें स्वस्थ देखकर अतीव प्रसन्नता हुई – मात्र यह कहना भाव को पूरी तरह नहीं दर्शाता. यहां सुबह टहलने निकलते हैं तो बारी-बारी से—कभी इन्हें तो कभी उन्हें...हम सभी को अपना स्नेह-आशीर्वाद बांटते हैं. आज यह सौभाग्य मुझे मिला, बाबा अपनी स्वाभाविक मुद्रा में लगे. लेकिन नहीं, पहले की तरह पूर्ण सहज नहीं हो पाते. बीमारी के कारण शारीरिक मुद्राएं कुछ अधिक श्रमसाध्य-सी लगती हैं. इसके पहले शोभाकांत, (बाबा के बड़े पुत्र) से चर्चा हो चुकी है. बताया, वर्षों तपश्चर्या जैसे जीवन के कारण नसें सूख गयी थीं, भयानक रक्ताल्पता थी. बोतलों खून और प्लाज्मा चढ़ाया गया तब स्वस्थ हुए हैं बाबा. अब कुछ महीनों बाद फिर बुलाया है डाक्टरों ने....

बृहस्पतिवार : 26-12-86

आज सादतपुर या राजधानी की ही नहीं बल्कि संपूर्ण साहित्य-जगत की एक ऐतिहासिक घटना घटी. हिंदी साहित्य के तीन महारथी बाबा नागार्जुन, कवि केदारनाथ अग्रवाल और डा. रामविलास शर्मा चालीस वर्ष की परस्पर मैत्री के बाद जीवन के 75वें वर्ष में पहली बार एक साथ इकट्ठा हुए हैं. हाल ही में केदारनाथ अग्रवाल ने भी 75 वर्ष पूरे किये हैं और रामविलासजी ने भी.केदारजी के गृह नगर बांदा में इस उपलक्ष्य में भव्य समारोह हुआ जिसमें देश भर से हिंदी साहित्यकार जमा हुए थे. शायद इस अवसर का अभिषेक करने के लिए ही उन्हें इस वर्ष हिंदी का साहित्य अकादमी पुरस्कार घोषित हुआ है. इसी सिलसिले में वे दिल्ली आये हैं. रामविलासजी अवकाश प्राप्त करने के बाद से दिल्ली में ही रह रहे हैं. नागार्जुन बीमारी के बाद अब दिल्ली में हैं, यह खबर पाकर दोनों ही लोग उनसे मिलने आये हैं, यहां सादतपुर की इस बस्ती में. साथ में हैं आलोचक और जनवादी लेखक संघ के महासचिव चंद्रबली सिंह, और मुंशी (रामशरण शर्मा, रामविलासजी के छोटे भाई). साथ लेकर आये हैं अजय तिवारी—केदारजी की पुत्री गाजियाबाद में रहती हैं, उन्हीं के पुत्र शशांक के साथ उनकी कार में.

वे लोग साढ़े ग्यारह के करीब पहुंचे थे. दिसंबर की धूप खूब खिली हुई है, हवा भी नहीं है और सर्दी पिछले कई दिनों की अपेक्षा जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारिश-कुहरे के कारण बढ़ गयी थी, फिर भी कम है.

बाबा के अहाते में एक मैदान है, पीछे की ओर अम्मा और छोटी पुत्रवधू सरिता ने फल-फूल और सब्जियों की सुंदर बगिया लगा रखी हैं. जाड़ों में दिन के समय और गर्मियों में शाम को बाबा इसी मैदान में निवाड़ों वाले एक पलंग पर बैठते, लेटते हैं या कुछ पढ़ते हैं. आगंतुकों के लिए कुर्सियां, मोढ़े आदि डाल दिये जाते हैं. हम लोग बेतकल्लुफी से पास पड़ी एक और खाट खींच लेते हैं. आज यहीं हुई वह स्मरणीय मुलाकात.

आते ही सभी ने एक स्वर में पूछा था—'अब कैसी तबीयत है?'

बाबा थोड़ी देर पहले लेटे हुए थे. उठकर बैठ गये. अब एकदम ठीक हूं...उन्होंने लोगों को आश्वस्त किया. बातचीत की शुरुआत रामविलास जी ने की.

पूछा, "मुर्गी-वुर्गी खा सकते हो या नहीं?"

नागार्जुन गंभीर होकर, "नहीं, यह मना है. मछली खा सकते हैं."

रामविलास जी, "तब मछली ही खाओ."

नागार्जुन, "यहां अच्छी मिलती नहीं."

रामविलासजी, "फिर मिथिला ही पहुंच जाओ, वहां मछली खाओ." हंसी....

नागार्जुन, "हां, अब फरवरी में जाऊंगा."

नागार्जुन के ठीक सामने की कुर्सी पर बैठे केदारनाथ अग्रवाल कुछ बोल नहीं रहे हैं. पहले से कितने ज्यादा 'पक' गये हैं. गौरवर्ण चेहरे पर असंख्य झुर्रियां उभर आयी हैं. कोई पंद्रह साल पहले न्यूएज प्रेस से बाहर आते समय शाम को उन्हें देखा था. उस साल सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार मिला था उन्हें. साथ में राजीव सक्सेना थे. उन्होंने ही परिचय दिया. साठ की उम्र में भी जवान जैसे दिखे थे. पीछे कढ़े लगभग काले बाल, आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा. सफेद कमीज पैंट में. आश्चर्य हुआ था इस लिबास में देखकर क्योंकि काफी पहले 'नया पथ', 'जनयुग' और कुछ अन्य साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताओं के साथ उनकी एक फोटो देखता आया था...जवानी की अलमस्ती में निराला की तरह नंगे बदन. यही चित्र आंखों में बसा हुआ था. अब चश्मा नहीं लगाते, नजदीक की चीजें जोर लगा कर देख पाते हैं. क्या पंद्रह एक वर्ष आदमी में इतना परिवर्तन कर देते हैं? शायद पत्नी के देहावसान का भी असर है. वे कुछ बोले बगैर नागार्जुन की ओर एकटक देखते मानो उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहे हैं. या उन्हें देखते हुए बहुत पहले नागार्जुन पर लिखी अपनी कविता याद कर रहे हैं:

"आओ, मिथिला के कवि तुम्हें गले लगा लूं...."

और नागार्जुन ने भी तो उन्हें संबोधित कर लिखी थी एक कविता.

इस बीच बातचीत जारी है. शशांक ने काफी कोशिश के बाद टेप रिकार्डर लगा दिया. बाद में पता चला वह बहुत कुछ रिकार्ड ही नहीं कर पाया. हमारी पीढ़ी अच्छी है, वह कैसेट्स की गुलाम नहीं रही. याददाश्त पर ज्यादा भरोसा करती है. नागार्जुन बौद्ध रामायण के दो खंड लिये पढ़ने की कोशिश कर रहे थे...उनके आने के पहले. बिना आतशी शीशा लिये खुद नहीं पढ़ पाते. थोड़ी देर बौद्ध दर्शन, राहुल—नागार्जुन की एक साथ लंबी यात्राओं, आज के हिंसात्मक दौर में बुद्ध के अहिंसा दर्शन की प्रासंगिकता आदि पर दिलचस्प चर्चा चली कुछ देर. किसी गंभीर विवेचन से बचते हुए. नागार्जुनजी के स्वास्थ्य का ध्यान सबसे ज्यादा है लोगों को. इस बात की 'डेलिबरेट' कोशिश थी कि बातचीत इन्हीं तीन महारथियों में चलती रहे. कटे हुए फल, तले हुए मखाने (मिथिला की खास पैदावार) और चाय आयी. बाबा ने एक दो टुकड़े फल के लिये, थोड़ी-सी चाय. केदार और रामविलासजी ने भी बहुत थोड़ी-सी चीजें चखीं. सिर्फ चाय पी. केदारजी कितने ही 'पक' गये हों रामविलासजी 75 की उम्र में भी ताकतवर और हट्टे-कट्टे हैं. कद्दावर तो हैं ही. अरुणा आसफ अली ने 1981 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार देते समय उन्हें युवा लेखक कहा था जिसे 70 की उम्र में उन्होंने सादर स्वीकार किया था. (खुदा करे वे ऐसे ही युवा रहें) हां, अब आगे के दो-तीन दांत अवश्य अनुपस्थित हैं.

बातचीत ने अनजाने ही एक नाजुक मोड़ ले लिया. केदारजी अब भी बहुत कम बोल रहे थे. 27 दिसंबर को 'जनवादी लेखक संघ' की ओर से उनका सम्मान समारोह आयोजित है.

नागार्जुन से—"वहां आओगे?"

नागार्जुन—"आऊंगा."

"इस हालत में आ सकोगे?"

"आ सकूंगा."

किसी ने कहा, "वहां मैनेजर पांडे आने वाले हैं."

नागार्जुन, उनके पत्र का हवाला देते हुए... "नीं, वे नहीं आयेंगे, जोधपुर जायेंगे."

रामविलास, "वहां जायें या नहीं, ज.ले.सं. में वे आ ही नहीं सकते."

चंद्रबली सिंह ठठा कर हंसते हैं.

अजय तिवारी की केदारनाथ अग्रवाल से साक्षात्कार की एक किताब आयी है. उसकी भूमिका में लिखा है, श्री शिवदान चौहान अमरीकी दूतावास के अनुवाद करते थे. विष्णुचंद्र शर्मा (जो सुबह स्वागतार्थ टहल रहे थे, पर बीच में रूठ कर घर चले गये थे, अब वहां उपस्थित थे) पूछते हैं, "क्या तुम्हारा आरोप सही है?"

अजय, "मैंने किसी व्यक्तिगत रागद्वेष से कुछ नहीं लिखा. यदि शिवदानजी मेरे आरोप का खंडन करें तो मैं अपनी बात गलत मान लूंगा."

"या प्रगतिशील लेखक संघ का इतिहास यह पचा पायेगा?"

चंद्रबली सिंह, "इस पर तो रामविलास ही कुछ कह सकते हैं (उनकी ओर देखते हुए) क्यों भाई?"

रामविलास शर्मा, ज.ले.सं. और प्र.ले.सं. दोनों ही पार्टी के सही इतिहास को तलाशे बिना उसके सांस्कृतिक आंदोलन का इतिहास लिखना चाहते हैं. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने पार्टी के दस्तावेजों का जो संग्रह छापा है उसमें सन् 42 से 48 तक के दस्तावेज शामिल नहीं हैं, जबकि वही पार्टी के सांस्कृतिक कार्य का सबसे महत्वपूर्ण काल था. पार्टी की सोच का एक प्रमाण उस समय पार्टी से संबद्ध उर्दू शायरों...जाफरी, कैफी आदि—की कविताओं में मिल सकता है. तब पाकिस्तान समर्थक कविताएं लिखी जा रही थीं. मैं नहीं जानता कि शिवदान सिंह पार्टी सदस्य थे या नहीं! सन् 53 में मेरे महासचिव काल का जो अंतिम अधिवेशन प्रगतिशील लेखक संघ का दिल्ली में हुआ, उसमें यह सवाल उठा था. दिल्ली पार्टी ने उन्हें अपना सदस्य स्वीकार नहीं किया था.

चंद्रबली सिंह, "अरे भाई नामवर भी तो नहीं थे. जब चुनाव लड़े तब भी नहीं. 53-54 में जब प्र.ले.सं. की बनारस शाखा के सचिव बने तब विश्वविद्यालय में किसी ने उन्हें डरा दिया कि अभी यह सब मत करो. उन्होंने कोई मीटिंग ही नहीं बुलायी लंबे अर्से तक."

रामविलासजी अपने छोटे भाई मुंशी से, "तुम्हें पसीना आ रहा है, कोट उतार दो."

"धूप के कारण नहीं, आप की बातों के कारण" (हंसी) मैं कह देता हूं. नागार्जुन इन बातों में रस नहीं ले पा रहे हैं. वे थककर लेट गये. केदारजी भी चुप ही रहे इस बीच. अब दो बज रहे थे, लोग चलने के लिए उठने लगे. इन महारथियों से भी एक चूक हो गयी. अम्मा (नागार्जुनजी की पत्नी) तैयार होकर पीछे चटाई पर दूसरी ओर मुंह किये बैठी थी. इस बातचीत में उनका हाल पूछने का किसी को अवसर नहीं मिला. सभी लोग सड़क तक आकर गाड़ी में बैठ गये. सेलेब्रिटी होने के बाद अनौपचारिकता में भी वैसी एक औपचारिकता छिपकर घुसपैठ कर जाती है. गाड़ी में बैठकर केदारजी को कुछ खयाल आता है. श्रीकांत जी से कहते हैं, "नागार्जुनजी से कहो, परसों के समारोह में उन्हें आने में कष्ट होगा." नागार्जुन यह सुनते हैं, फिर कहते हैं—"नहीं भाई नहीं, कोई कष्ट नहीं होगा, मैं आऊंगा....जरूर आऊंगा...." □

रमाकांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खारिज

से. रा. यात्री

मेरे बचपन का दोस्त विक्रम सिंह अपने सगे बेटे की शादी के मौके पर कन्यापक्ष वालों से रुष्ठ होकर जिस तरह लाल-पीला होकर भाग खड़ा हुआ था उससे सारे बाराती और कन्या पक्ष के लोग बुरी तरह आहत हो गये थे. विक्रम सिंह के बड़े भाई रामपाल सिंह बहुत गंभीर प्रकृति के धैर्यवान व्यक्ति थे इसलिए बात संभल गयी थी और उपेंद्र की शादी निर्विघ्न समाप्त हो गयी थी. पहले मेरा इरादा यह था कि मैं भी बारात के साथ उन लोगों के घर जाऊंगा लेकिन विक्रम का व्यवहार देखकर मेरा मन बुझ गया और मैं बारात के विदा होते ही अपने घर चला गया.

फिर साल डेढ़ साल तक मैं अपने शहर नहीं लौट सका इसलिए मुझे विक्रम सिंह और बाकी लोगों के बारे में कुछ भी पता नहीं चल पाया.

जब मेरा आक्रोश कुछ ढीला पड़ा तो मैंने विक्रम सिंह को एक कार्ड लिखकर उसके हाल-चाल मालूम किये. मैं उम्मीद करता था कि वह भी मुझसे मिलने को उत्सुक होगा और पत्र का उत्तर देगा लेकिन जब पत्र डाले महीनों निकल गये और विक्रम की ओर से कोई जवाब नहीं आया तो मुझे थोड़ी चिंता हुई.

अंततः मैंने एक शनिवार को जाना तय किया.

जब मैं कस्बे के बस स्टैंड पर उतरा तो तीसरा पहर बीत रहा था. जाड़े का मौसम था इसलिए सूरज पेड़ों के पीछे ढलकने लगा था.

मैंने फुर्ती से पीली कोठी के लिए रिक्शा लिया और चल पड़ा. कोठी के सदर दरवाजे पर पहुंचकर मेरा माथा ठनका. लंबा-चौड़ा मेहराबदार गेट कहीं था ही नहीं—हर तरफ ईंटों के चटटे लगे हुए थे. एक ट्रक से सीमेंट के कट्टे उतारे जा रहे थे. बाहर से ही साफ नजर आता था कि अंदर जबरदस्त तोड-फोड़ चल रही है.

मैंने रिक्शेवाले को भाड़ा चुकाया और उस लोहे-लंगड़ के बीच से होते हुए धराशायी पीली कोठी के भीतर चला गया. वहां सैकड़ों मर्द-औरत मजूर काम में लगे हुए थे. मैंने एक आदमी से पूछा कि यह क्या चल रहा है?

वह बोला, "फैटरी का काम चल रयो है बाबूजी."

"फैक्टरी—कैसी फैक्टरी भई? यह तो कुंवर लोगों की कोठी है. इसमें फैक्टरी कौन डालने आ गया?"

वह सीधा-सादा मजदूर यह सब नहीं जानता था. बोला, "मोय पतो नाय के याय कौन बनवात है."

मैंने आगे बढ़कर पूरी कोठी के रकबे का चक्कर लगाया. ऊंची-ऊंची दीवारें सीदायी जा चुकी थीं. सब ओर मलबही मलबा नजर आ रहा था. कहीं कोई कमरा या दीवानखाना बाकी नहीं बचा था. विक्रम का कमरा शुरू में ही पड़ता था, उसका भी पता-निशान मिट चुका था. अब यह कल्पना करना भी कठिन था कि तीस पैंतीस बरसों तक विक्रम लगातार उस जगह रहा था. विद्यार्थी जीवन समाप्त होने के बाद से वह कोठी के बाहरी हिस्से में ही रहता चला आया था.

मजदूरों से कुछ अलग तरह का दिखाई पड़नेवाला एक आदमी उधर से गुजरा तो मैंने उसे रोककर पूछा, "क्यों भाई यहां रहने वाले. कुंवर रामपाल सिंह—विक्रम सिंह वगैरह कहां चले गये?"

वह बोला, "बड़े कुंवर साब तो अपने लड़का के पास के पास नागपुर चले गये. छोटेन ने गांव की हवेली में अड्डो जमाय लियो है."

मैंने परेशानी अनुभव की, "मगर यह कैसे हुआ? यह कोठी तो उनके बाप-दादा के जमाने की थी. अभी तो यह मजबूत भी कम नहीं थी वे लोग इसे कैसे छोड़ गये?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजादी के बाद रजवाड़े और जमींदारियों के दिन लदते चले गये. कुछ समझदार जमींदारों ने अपने आप को नयी परिस्थितियों के अनुकूल ढालना शुरू कर दिया. पर कुछ विक्रम सिंह जैसे भी थे जो अपनी पुरानी हवेली और पुराने रंग-ढंग को छोड़ नहीं पा रहे थे. प्रस्तुत है ऐसे ही एक विक्रम सिंह के समाज से खारिज होते चले जाने की दास्तान....

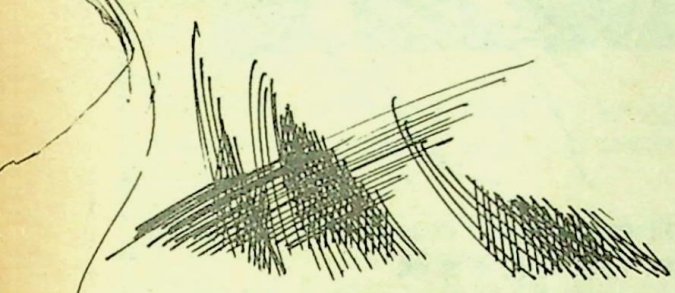

"बाप दादान की निसानी तो है साब पर जब लाखन को कर्जा ना पट पायो तो कहा करते बेचने के सिवा? डाक्टर हन्नाम सिंह के ढिग बंधक थी. मियाद बीत गयी तो कोठी हन्नाम सिंह की है गई. विन्ने जाटिया जी को बेच दई. सुनो है वे माये नालोन का कारखाना डार रये है. चौबीसों घंटा चलेगो—पोलटेक पोलटेक कहयो जाय रयो है याकू."

उस आदमी की बात सुनकर मैं भीतर तक सिहर उठा. लगभग एक पूरी सदी तक कुंवर साहबान की कई पीढ़ियों का पीली कोठी स्थायी निवास बनकर रही थी. उसके दर-दीवारों ने ऐश्वर्य और रंगीनी के अनगिनत रात-दिन देखे थे. और उन एहसासों को जीने वाले सभी लोगों का वहां से नाम निशान तक मिट गया था. वहां कोई जटिया सेठ एक लंबी-चौड़ी फैक्टरी की तामीर करवा रहा था.

विचित्र-सी ऊहा-पोह में मन में अकथ व्यथा अनुभव करते हुए मैं वहां से हट लिया. उस मलबे से बाहर आते हुए कई तरह के विचार मन में उमड़ते-घुमड़ते रहे. मैंने सोचा जब यहां फैक्टरी बन कर तैयार हो जायेगी तो लोग भूल जायेंगे कि यहां कभी कुंवर हीरा सिंह का खानदान रहा करता था. जब फैक्टरी चल निकलेगी तो शायद लोगों को कोई इस फैक्टरी की नींव में सोयी पड़ी पुरानी विरासत के बारे में कोई कुछ बतलाने नहीं आयेगा.

बक्त बदल जाने के साथ मूल्य बदल जाते हैं. पता नहीं यहां कितने परिवारों को रोजी रोटी मिल जायगी. फैक्टर चलेगी तो हो सकता है कि उसमें काम करने वालों के लिए रिहायशी क्वार्टर भी बनवा दिये जाये. कस्बे के दिन भी बदलने लगेंगे. जटिया की देखा-देखी कुछ और भी पूंजीपति कल कारखाने स्थापित करने के बारे में सोच सकते हैं. ऐसी स्थिति में यह अनुमान सर्वथा असंभव नहीं है कि सदियों से ऊंघता हुआ यह कस्बा एक दिन जागकर खड़ा हो जाये.

यही सब सोचते-सोचते मैं चौराहे तक निकल गया. मैंने [illegible] कोई परिचित चेहरा नजर आ जाये तो विक्रम सिंह के बारे में कुछ और मालूम करूं.

मेरी समझ में यह बात किसी भी तरह बैठ नहीं पा रही थी कि कोठी हाथ से चली जाने के बाद तीस-चालीस साल से उपेक्षित पड़ी हवेली में विक्रम रहने का फैसला कर ले और फिर वहीं का होकर रह जाये. वह सन उन्नीस सौ छत्तीस का बार-एट-लॉ था. वकालत करता तो अब तक न जाने कितनी संपत्ति खरीद डालता. मगर...राजपाल सिंह ने निश्चय ही विक्रम से अपने साथ चलने का आग्रह किया है. लेकिन जो विक्रम अपनी पत्नी और बेटे तक से सीधे मुंह बात नहीं करता था वह अपने बड़े भाई के साथ कैसे जा सकता था.

यह हो सकता था कि वह कस्बे में ही कोई छोटी-मोटी रिहायश लेकर पड़ा रहता लेकिन फिर मुझे लगा यह तो एकदम असंभव बात थी. जिस परिवार के पास इतनी विशाल कोठी रही हो कभी-पचासों खवास और नौकर चाकर रहे हों, वह साधारण लोगों के बीच में एक-दो कमरों का मकान लेकर रहने के बारे में तो सोच भी नहीं सकता.

मेरे ऐन सामने एक मैडीकल स्टोर था. सड़क पार करके मैं उधर ही बढ़ गया. काऊंटर पर एक अट्ठाइस-तीस साल का मोटा-सा आदमी खड़ा था. उसने मुझे देखकर नमस्कार की तो मैं उसे पहचानते हुए बोला, "मनोहर लाल अग्रवाल के बेटे हो?"

वह बोला, "हां जी वह मेरे फादर हैं."

कस्बे का पिता अब उसी तर्ज पर फादर में बदल गया था जिस तरह पीली कोठी फैक्टरी में परिवर्तित हो रही थी.

मैंने उससे पूछा, "कुछ कुंवर विक्रम सिंह का अता-पता है तुमको—इन दिनों कहां रह रहे हैं?"

वह अपनी कस्बाई बोली-बानी में ही बतलाने लगा, "छोटे कुमर जी तो कई महीना से गाम की हवेली में चले गये हैं. बड़े वारे तो अपने बेटा सत्तो जी के पास नागपुर पैले ही चले गये थे. उनकी महतारी ठकरानी दादी भी विनके संगई चली गयी हैं."

दो जगह से पक्की तसदी हो गयी कि विक्रम सिंह गांव की हवेली में ही चला गया है तो मैंने सोचा जैसे भी हो मैं आज की रात उससे मिलने वहीं चला जाऊं. लौटना तो रात को हो ही नहीं सकता था लेकिन विक्रम से बिना मिले लौट जाना भी मुझे क्रूरता लगी.

कैमिस्ट को धन्यवाद देकर मैंने एक रिक्शे वाले से सीकरी चलने की बात की.

जब रिक्शा चालक मुझे लेकर सीकरी की ओर चला तो सूरज का गोला पेड़ों के पीछे कहीं दूर क्षितिज में जा छिपा था. कस्बे के बाहर निकलने के बाद सड़क भी नचाट सुनसान पड़ी थी. सड़क के दोनों ओर गेहूं और मटर के खेत फैले हुए थे. बीच-बीच में सरसों के पीले फूल भी नजर आ जाते थे. कहीं-कहीं ईख की ऊंची-ऊंची फसल भी दीख जाती थी.

रास्ते में एक झील मिली जिसमें असंख्य पत्ते तैरते दिखाई पड़े. एक विचित्र-सा सन्नाटा और अभंग शांति का विस्तार फैला नजर आया.

टैना गांव के नजदीक पहुंचकर मैंने रिक्शेवाले से पूछा, "सीकरी तक रिक्शा चला जाता है क्या?"

"रिक्सा तो चलौ जात है पर सगरो रस्ता कच्चौ है."

मैंनं उससे कहा, "तो फिर जहां तक रिक्शा आसानी से जा सकता है वहीं तक चलो—बाद का रास्ता मैं पैदल तय कर लूंगा."

चलते-चलते रिक्शेवाला एक मोड़ पर जाकर रिक्शे से उतर गया. वहां कच्ची पगडंडी के समानांतर एक दूधी की सड़क भी थी लेकिन उसमें जगह-जगह इतने गहरे गड्ढे थे कि उसके मुकाबिले कच्ची पगडंडी कहीं बेहतर थी. इस कच्चे कंकड़ों की सड़क का निर्माण उस युग में हुआ जब डामर की सड़कें बनाने का प्रचलन ही नहीं था.

सड़क के शुरू में एक टूटा-फूटा स्तंभ था जिसकी लखौरी ईंटें धसक गयी थीं और चूने का पलस्तर न जाने कितने सालों पहले धूल मिट्टी बनकर उड़ चुका था. स्तंभ के बीच में एक लाल पत्थर में अंग्रेजी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इबारत खुदी थी-बहुत सिर मारने पर पता चला कि बीसवीं सदी के आरंभ में संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने उस राजसी सड़क का उद्घाटन किया था. पत्थर पर तारीख महीना और साल के साथ-साथ हिज मैजेस्टी वगैरह का ब्यौरा भी अंकित था.

मैंने रिक्शेवाले को वहीं रोक किया. उसके यह कहने के बावजूद कि वह मुझे सीकरी तक पहुंचा देगा. मैंने उसका भाड़ा चुका दिया और पैदल चलने का फैसला कर लिया.

इधर-उधर के गांवों में चूल्हे जलने की वजह से धुआं मोटी परतों में आकाश पर जमने लगा था. खेतों में काम करने वाले किसान मर्द, औरतें गांवों की तरफ लौटने लगे थे.

सीकरी का रास्ता पूछने की मुझे जरूरत ही नहीं पड़ी. दूर से ऊंची हवेली नजर आ रही थी. मैं टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर निर्विघ्न आगे बढ़ता चला गया.

लगभग चालीस मिनट में मैं गांव के सीवान पर पहुंच गया. गांव के शुरू होने से पहले ही एक बहुत पुराना पीपल का पेड़ था जिसके चारों ओर पक्के चबूतरे का घेराव था और दसियों पीपल एक-दूसरे से जुड़े

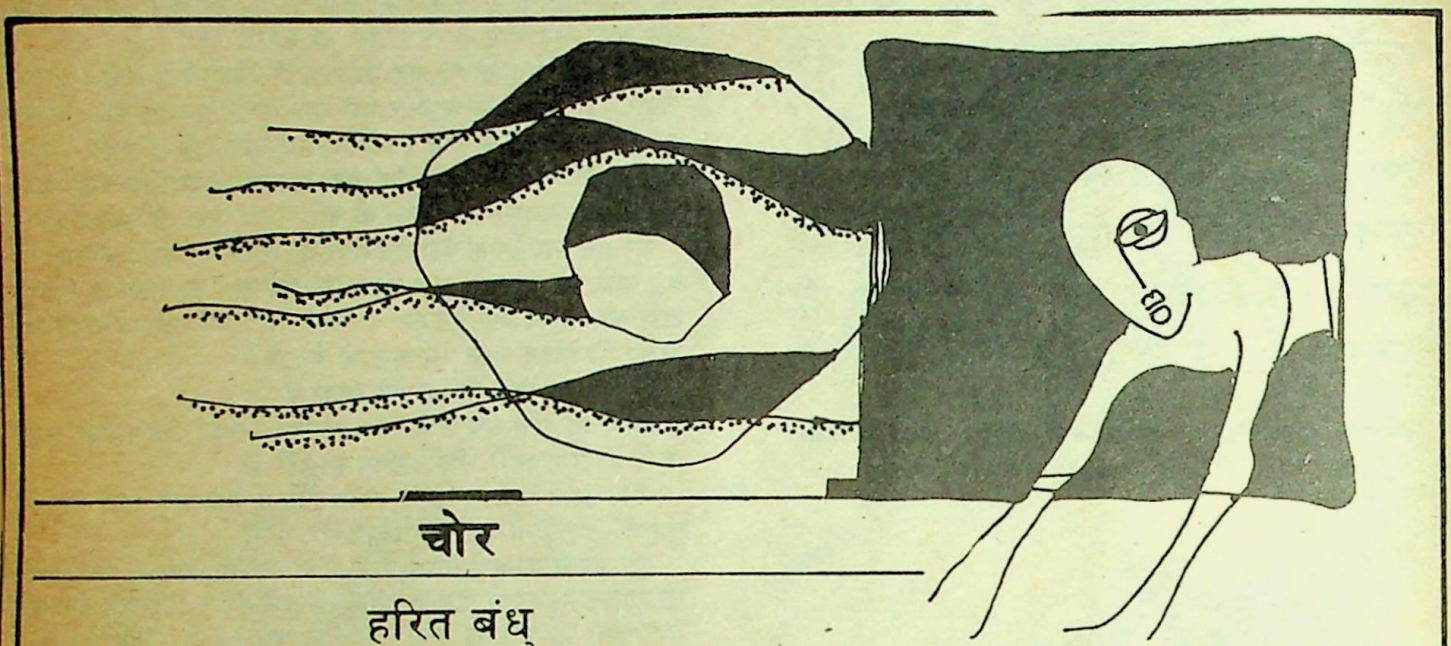

चोर

हरित बंधु

बारात द्वार पर आ चुकी थी. घोड़े से उतर कर दूल्हा साथी युवकों के साथ दरवाजे पर खड़ा हुआ. दुलहिन बनी लड़की सहेलियां 'वरमाला' रस्म को लायीं. दुलहिन के पीछे उसकी भाभी थी. दूल्हे के गले में वरमाला डालकर दुलहिन वापस चली. दूल्हे के साथी युवकों में दुलहिन को देखने का उतावला-पन था. वह उचक-उचक कर दुलहिन को देखने का प्रयास कर रहे थे इस वजह से थोड़ी धक्कम-धक्का थी.

दुलहिन की भाभी दूल्हे की बलइयां लेकर ज्यों ही पीछे मुड़ी, कि अगले ही पल वह चिल्लायी, "मेरा हार...मेरा हार गया." और कहते-कहते हक्की-बक्की हो गयी.

हार गले से गायब तो सब लोगों में सन्नाटा छा गया, आश्चर्य-युक्त निगाहों से सब दुलहिन की भाभी की ओर देखने लगे यह क्या हो गया. हंसी खुशी के माहौल में रंज-दुख...पूरी बारात में बिजली के करंट के समान हार गले से चोरी होने की खबर फैली. एक सज्जन तेज स्वर में बोले, "सब लोग अपनी-अपनी जगह खड़े रहें अभी पता चल जायेगा हार का कि किसने तोड़ा है."

सब जहां के तहां खड़े रहे गये और सबने अपने आसपास देखा कि शायद कोई संदिग्ध व्यक्ति हो. एक व्यक्ति धीरे पीछे खिसका. "आप कहां चले सेठ!" पहले वाले व्यक्ति ने कहा, "आप तो घराती हैं." सबकी निगाहें उस व्यक्ति की ओर उठ गयीं. वह सटपटा कर रह गया. तब ही कोई घराती बोला, "नहीं ये घराती नहीं है आपके ही आदमी होंगे?" इस कथन पर सब बारातियों ने गौर से उस व्यक्ति को देखा, "हमारा आदमी नहीं आपका ही कोई आदमी होगा."

"नहीं! हमारा नहीं!"

"तो...कौन? जेब कट...अरे पकड़ो! पकड़ो! यही है."

बस थोड़ी-सी सावधानी से चोर पकड़ा गया. तीन-चार आदमी उसे मारते पीटते किसी कमरे में ले गये.

"चलो काम शुरू करो देर हो रही उससे तो वह लड़के निबट लेंगे." किसी ने कहा. और फिर दरवाजों की रस्म अदायगी शुरू हो गयी. चर्चा भी चल पड़ी इसी तरह बारात में शामिल होकर लुटेरे आ जाते हैं और जेब काट लेते हैं. देखो अगर जरा सावधानी नहीं बरती जाती तो बाराती-घराती दोनों ओर के लोग मन में एक दूसरे को चोर कहते अच्छा हुआ. पकड़ा गया....

और अभी दरवाजे की रस्म-अदाई पूरी भी नहीं हुई थी कि एक लड़की ने आकर कहा, "मिल गया हार चाची! मिल गया हार."

"उसी पर?"

"किस पर?" लड़की ने चौंककर कहा, "भाभी तो खाट पर ही पड़ा छोड़ आयी थी. जल्दी में वह उसे पहिनना भूल गयी. वहीं खाट पर पड़ा हुआ था, मिल गया.

तो वह कौन है? सब चौंक गये चोर ही होगा. अंदाजा लगा लिया लेकिन खबर उन लड़कों को भी मिल गयी जो पकड़े हुऐ चोर से मार-पीट करते हुए जानकारी करने को तैयार थे. फिर भी उन्होंने उससे पूछा, "सच-सच बता दे स्साले हम तुझे छोड़ देंगे कौन है तू...कहां रहता है?"

बेतहाशा मार खाया हुआ वह कांपता हुआ बोला, "मैं मैं चोर नहीं हूं...मैं एक स्कूल में अध्यापक हूं. पिछले चार महीने से वेतन नहीं मिला है. उधार वगैरह लेकर घर का खर्चा चला रहा हूं. बचत के लिऐ, मैं सड़क से गुजरती बारात में शामिल होकर शाम का खाना खा आता हूं...बारात के आदमी समझते हैं घराती होगा. घराती समझते है कि बाराती होगा.

उस व्यक्ति का बयान सुनकर कोई कुछ नहीं बोल सका. कमरे में सन्नाटा छा गया था... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए थे. इस पीपल से मेल खाता एक मंदिर था जिसकी कमोबेश आधी इमारत तो धराशायी हो चुकी थी मगर मंदिर का द्वार और शिखर अभी तक स्थिर खड़े थे.

मंदिर को पार करते ही ठाकुर हीरासिंह की विशालकाय हवेली थी. हवेली के नजदीक पहुंचकर घिरतें अंधकार के बावजूद उनकी दयनीय स्थिति एक ही नजर में उजागर हो उठती थी. दीवारों में दरारें ही दरारें थीं. पलस्तर का तो कहीं निशान भी दिखलाई नहीं पड़ता था. चालीस पचास सालों से तो हवेली लावारिस ही पड़ी थी.

मैं किसी भी तर्क से यह समझ पाने में समर्थ नहीं हो पा रहा था कि कस्बे से कई मील दूर इस खंडहर और वीरान हवेली में विक्रम क्यों चला आया था? यहीं उसे कौन-सी राहत मिलने वाली थी? उसकी लंबे समय से जो रईसाना आदतें चली आ रही थीं,उनकी पूर्ति की यहां क्या गुंजाइश थी? वह यहां भुतही हवेली में अकेला कैसे रहता होगा और उसका खाना-पीना किस तरह चलता होगा? समय काटने का भी यहां क्या साधन हो सकता है—यहां विक्रम बातचीत भी किसके साथ कर पाता होगा? इसी तरह के पचासों सवाल मेरे जेहन में मक्खियों की तरह भिनभिना रहे थे.

खैर, मैं किसी तरह हवेली की ड्योढ़ी पर पहुंच ही गया. खड़खड़िया साईकिल लिये कुंवरों का बहुत पुराना चाकर मंगल मुझे भीतर से आता दिखाई पड़ा. मुझे देखकर मंगल का सिकुड़ा-सिमटा चेहरा अपूर्व प्रसन्नता से खिल उठा. मुझे यह देखकर संतोष हुआ कि चलो विक्रम के साथ अभी तक मंगल तो है.

मैंने उसकी दुआ-सलाम का जवाब देने के बाद पूछा, "भई कहां हैं तुम्हारे कुंवर बहादुर साहब?"

"कुंमर जी हौल के सामने कूई बैठै हतै. आप उनके ढिग चलौ—मैं अबई बीस मिनट में आवत हूं." उसने चुटकी बजाकर कहा, "न्यौं जावत-आवत हूं तुरत-फुरत."

मैं समझ गया कि वह वाकई उतावली में है. मैंने उसे नहीं रोका और ड्योढ़ी पार करके लंबे-चौड़े सहन को नापते हुए दीवानखाने में पहुंच गया. दीवान खाने में काफी आगे जाकर महोगनी की एक विशालकाय मेज पड़ी हुई थी जिस पर एक जलती हुई लालटेन स्थापित थी. मेज का खंभे से लगा हिस्सा मोटी-मोटी किताबों से भरा हुआ था. मैं बिना देखे भी बता सकता था कि मोरक्को लेदर की जिल्दों की पुश्तों पर सुनहरे अक्षरों में पुस्तकों और लेखकों के नाम खुदे हुए थे. गत पैंतीस-चालीस सालों से विक्रम के पास यही कुछ मूल्यवान धरोहर थी. वह जहां भी होता,यह उसके पास ही रहने वाली थीं.

एक कोने में लगभग जमीन को छूता हुआ एक सोफा पड़ा था. यह भी कुंवरों का एक मूल्यवान प्राचीन अवशेष था. सोफे के पाये मुश्किल से नौ-दस इंच लंबे होंगे मगर उन पर बढ़िया नक्काशी थी. सोफे की पुश्त मेहराबदार थी. वह किसी बादशाह के ताज की शक्ल में कटावदार थी.

दीवानखाने के अलावा बाकी सारे कमरे और कोठरियां बंद पड़ी थीं. ऊपर की मंजिल की भी यही कुछ स्थिति होगी. सहन से पहले जो लंबी-चौडी बारादरी थी उसमें एक चारपाई, हुक्का और थोड़े बहुत बर्तन-भांडे बेतरतीब पड़े थे. जाहिर है वहां विक्रम का सेवक मंगल रहता होगा.

मैंने दीवानखाने की दहलीज पर ठहरकर सहन का दृश्य देखा. सहन में फोर्ड गाड़ी का एक ढांचा पड़ा था जो निश्चय ही विक्रम सिंह के पूर्व पुरुष हीरासिंह की उस जगत प्रसिद्ध कार का था जिसकी हिलती गड़-गड़ाती आत्मा अपने मालिक के साथ ही किसी ऊर्ध्व लोक में विचरण करती घूम रही होगी.

मैं एक पेड़ के भारी-भरकम तने जैसे पत्थर के खंभे के पीछे खड़ा होकर दीवानखाने की सुन-गुन लेने लगा. विक्रम दोनों हाथ पीठ के पीछे बांधे चलहकदमी कर रहा था. उसने अंग्रेजी जमने की कोई सनातन पतलून और फौजी काट के जूते चढ़ा रखे थे. जो बरानकोट उसके घुटनों के नीचे तक फैला हुआ था,वह भी किसी जमने में उसके कर्नल साले की भेंट था. विक्रम गंवई देहात में भी रिटायर्ड साहब बहादुर की तर्ज पर रह रहा था.

विक्रम कभी टहलते लगता था कभी कमर झुकाकर एक दो क्षण के लिये ठहर जाता था. मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह इस तरह कमर न्यौड़ा कर क्यों खड़ा हो जाता था. सहसा हल्की-सी गुड़गुड़ाने के लिए टहलते टहलते बीच में थम जाता था. मेरे लिये यह परम आश्चर्य था. मैंने गत चालीस बरसों में विक्रम को कभी हुक्का पीते नहीं देखा था. वह सिग्रेट और बाज मौके पर सिगार को छोड़कर और कुछ नहीं पीता था. मुझे लगा आर्थिक मजबूरियों की वजह से वह हुक्के पर उतर आया था.

बिजली के तेज प्रकाश की अभ्यस्त उसकी आंखों ने मुझे बिल्कुल नहीं चीन्हा. उस वक्त भी वह मेरी ओर से पूरी तरह बेखबर रहा जब मैं उसके ऐन सामने जाकर खड़ा हो गया.

लालटेन की लौ ही धीमी नहीं थी बल्कि चिमनी भी काफी धूम मंडित थी. और उसकी मटमैली-सी रोशनी में चारों तरफ एक रहस्यात्मक वातावरण घनीभूत होता लग रहा था. दीवारों की खूंटियों पर टंगे बेतरतीब कपड़ों की परछाइयां और दीगर सामान उस नीम उजाले में कुछ का कुछ नजर आ रहा था. एक कोने में एक महाकाय पलंग पड़ा था जिस पर एक रेशमी रजाई चार तह की हुई करीने से रखी हुई थी.

मैं चोर कदमों से चलकर उसके पीछे पहुंच गया. उसने हुक्का गुड़गुड़ाकर पीठ ऊपर उठाई तो उसका कंधा मुझसे टकरा गया.

शायद वह इस औचक टकराहट से सनाका खा गया. उसके मुंह से गोली की धांय जैसी विस्फोटक आवाज निकली, "कौन?"

कई क्षणों तक पूरे दीवानखाने में वह खौफनाक ध्वनि चकफेरी-सी देती रही.

मैंने आगे बढ़कर कहा, "डरो मत—यहां मैं हूं."

वह मेरी आवाज पहचान गया और गुर्राकर बोला, "तुम! तुम कैसे आये?"

"अभी आया हूं और कुछ रिक्शे से,कुछ पैदल पहुंचा हूं."

"चलो, कभी तो तुम्हें मेरी याद आयी. यहां काले पानी में आने की किसकी हिम्मत है?"

"क्यों क्या तुम्हारी सीकरी देश से बाहर है?"

वह भयानक विद्रूपभरी हंसी के बीच बोला, "देश के बाहर जाना अब क्या मुश्किल रह गया है. देश में आना भी टेढ़ा काम हो गया है, सुरजीत."

मैंने उसके शब्दों के पीछे गहराती व्यथा को महसूस किया पर मैंने उसे नजरंदाज करके लापरवाही से कहा, "टेढ़ा काम. मैं तो मजे में आ ही गया."

मैं उसकी आदत से परिचित था. वह मझसे बैठने के लिए भी कहने वाला नहीं था. मैं चमड़े से मढ़ी पीठवाले एक मोढ़े पर बैठ गया और हल्के-पन से पूछ बैठा, "और कहो कैसी कट रही है?"

उसने मेरी बात का जवाब न देकर पूछा, "तुम्हें भूख लगी होगी. मैं अभी चाय बनाता हूं."

मुझे वहीं छोड़कर वह मेज के पास पहुंच गया और एक छोटे से लैंपनुमा स्टोव को जलाने लगा. कालिजों की साइंस लैब में टैस्ट ट्यूब के द्रव परीक्षण के लिये जो स्प्रिट लैंप रखे रहते हैं यह लैंप अथवा स्टोव उसी तरह का लग रहा था.

उसने स्टोव जलाकर एक भगौने में आधा प्याला पानी चढ़ा दिया और मेरी ओर देखकर उंगली से अपना माथा घिसते हुए बोला, "एक मिनट मैं चाय बनती है."

मैंने व्यंग्य किया, "चाय ही क्यों मैं तो समझता हूं इस आलादीन के चिराग पर चुटकी बजाते खाना भी तैयार हो जाता होगा.

उसने मेरे व्यंग्य का कोई उत्तर नहीं दिया. लेकिन मैंने देखा पानी वाकई उबलने लगा था. उसने भगोने में चीनी, चाय की पत्ती और दूध छोड़ा. जरा देर में चाय तैयार हो गयी हो कांच के गिलास में उसे वगैर छाने ही उंडेल दिया. वह हमेशा चाय इसी तरह बनाता था.

चाय की पत्तियां गिलास की तली में बैठ गयीं तो गिलास उठाकर मुझे देते हुए बोला, "जब तक कुछ औ हो इसी को पीओ."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा, "पर तुमने इतनी ठंड में थोड़ी-सी चाय अपने लिए भी क्यों नहीं बना ली?"

उसने आंखें टेढ़ी करके पूछा, "मैं शाम के बाद कभी चाय पीता हूं?"

"लेकिन यहां तुम्हें और मिल भी क्या सकता है?"

"सब कुछ मिल जाता है. बस थोड़ा धीरज रखना पड़ता है."

मैं समझ गया कि वह यहां भी कोई न कोई व्यवस्था जरूर कर लेता होगा. तभी मुझे लबड़धोंधों में साईकिल लेकर दौड़ते मंगल का ध्यान आ गया.

मैं अभी चाय पीने ही लगा था कि मुझे बाहर सहन में साइकिल की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी.

साईकिल कहीं खड़ी करके मंगल सहन में आता दिखाई पड़ा. वह हाथ में एक लंबा-सा झोला लटकाये हुए था. उसे दीवानखाने में घुसते देख कर पूछा, "कहां चले गये थे मंगल?"

"अजी जाता कहां सिरकार. नैक सैर (शहर) लौं नायो हतौ. कुछ सौदा सुलफ लानो हो." और यह कहने के साथ ही मंगल ने झोले से हरे रंग की एक बोतल निकालकर मेज पर रख दी. मैं तत्काल समझ गया यह देसी शराब की बोतल थी. इसके बाद उसने और भी दो-चार पुड़ियां निकालकर मेज पर ही डाल दीं.

झोला लेकर जाते-जाते मंगल ने पूछा, "का खाओगे कुंमर जी. कओ तो आलू-गोबी बनाय लऊं. बस तन्नक सो टेम लगेगो."

विक्रम ने लापरवाही से कहा, "जो मन हो बनाओ पर यह खयाल रखना मेहमान की खातिर में कमी न आने पाये."

उसकी ठसक देखकर मैं हंस पड़ा और बोला, "मंगल से यह सब कहने की जरूरत तुम्हें क्यों महसूस होने लगी?"

इस पर विक्रम ने कुछ नहीं कहा, मंगल ही बोल पड़ा, "अजी कुंमर जी जे तो हमारे खास सिरकार हैं, मैं का जानत नाऊ के जे कौन हैं?" अपनी बात कहकर मंगल के सिकुड़े चेहरे पर हार्दिक उल्लास दीख पड़ा.

बीसियों बरस से मैं देखता चला आ रहा था, मंगल हर अच्छे-बुरे क्षण में विक्रम के साथ इतनी ही सघनता से जुड़ा हुआ था.

शायद विक्रम चक्कर काटते और देर तक खड़ा रहने की वजह से थक गया था, मेरे पास एक खाली मोढ़ा खींचकर बैठते हुए बोला, "और सुनाओ जिंदगी के क्या दौर दौरे हैं?"

"कुछ-नयापन नहीं है. नौकरी का आखिरी बरस चल रहा है."

विक्रम ने आश्चर्य व्यक्त किया, "ऊंय? आखिरी? पर तुम तो दो साल हुए साठ पार कर चुके होंगे."

मैंने हंसकर कहा, "दो-ढाई साल का घपला है दसवीं के सार्टीफिकेट में."

"चलो मुफ्त में फसल काटो और कुछ महीने."

मैंने उस बात को वहीं छोड़कर विक्रम से पूछा, "यह तुमको यहां आ पड़ने की क्या सूझी?"

विक्रम कड़वी हंसी हंसकर बोला, "क्या करता, पंछी चहचहा कर उड़ गये. सब को अपनी अपनी सुख चैन की जिंदगी मिल गयी तो कोई यहां वीरानें में आकर क्यों रहता? बस एक मां थी जो मेरे साथ ही बने रहना चाहती थीं हर हाल में—मगर हमारे रेवरैंड बड़े कुंवर रामपाल सिंह उन्हें भी आखिर में अपने साथ घसीट ले गये."

मैं बोला, "कुछ बुरा तो नहीं किया उन्होंने."

"अच्छा भी क्या खाक किया? इस आखिरी दौर में वह बेचारी न जाने किस किस घाट का पानी पीयेंगी."

फिर विक्रम ने एक लंबी सांस खींचकर कहा, "चलो, जो हो रहा है, ठीक ही हो रहा है, हो."

इसके बाद उसने हुक्के की नगाली अपनी ओर करके गुड़गुड़ की. अब तक चिलम शायद एकदम ठंडी पड़ चुकी थी.

लालटेन की उस धुंधली और वीरान रोशनी में मैंने विक्रम का संजीदा चेहरा देखा. सारे चेहरे और मस्तक पर उलझे हुए धागों जैसी झुर्रियां फैली थीं. मैंने सोचा, कभी यह चेहरा कितना हसीन और दिलकश था.

चुपचाप बैठा देर तक मैं सोचता रहा विक्रम से क्या बातें करूं? वह ठप्प पड़ गयी चिलम के हुक्के को भी बेखयाली में गुड़गुड़ाये जा रहा था. दरअसल वह पिछली ओर घूमनेवाले पहिये जैसा हो गया था. मैंने कुछ भी बोलने की कोशिश में कहा, "तुम्हें अम्मा के चले जाने का अफसोस है लेकिन क्यों यह नहीं सोचते कि वह इस उम्र में गंवई देहात और वीरान हवेली में अपना समय किस तरह काटती?"

मेरी बात का विक्रम के पास कोई जवाब नहीं था. कंधे झटककर उसने मेरी ओर देखा और बेसूद बोल पड़ा, "मैं कब कहता हूं कि यहां मेरे पास आकर रहे? जिसे जहां आराम मिले रहे. मैं अपने हाल में खुश हूं."

बातें एक अंधेरी गुफा की दिशा में जाने लगी थीं इसलिए मैंने चुप रहना ही बेहतर समझा. मैं वैसे भी दिन भर का थका-हारा था. सोचने लगा कि मंगल खाना लाये और मैं खा पीकर सोऊं.

लेकिन मंगल खाने की बजाय कांच के दो गिलास और पानी भरा जग लेकर आया. जग और गिलास मेज पर रखकर वह लौट गया और एक प्लेट में प्याज, अदरक वगैरह लेकर फिर आ गया.

"और कुछ लाऊं कुंमर जी?" कहकर मंगल हाथ बांधकर खड़ा हो गया.

विक्रम बोला, "ठीक है, तुम खाना-वाना बनाओ. किसी चीज की दरकार होगी तो बुला लेंगे."

विक्रम मोढ़ा छोड़कर उठा. उसने देसी शराब की बोतल उठायी और उसे हिला डुलाकर देखने के बाद बोला, "शैंपेन और व्हिस्की तो नहीं पिला सकता दोस्त. आज की रात तो इसी को आबेहयात समझो. पता नहीं इसे पी भी पाओगे या नहीं. इट इज नाटर लिकरआ रोटेम स्टफ."

मैंने कहा, "मेरे लिए व्हिस्की, ब्रांडी, सभी एक जैसी ही है. इसमें वह क्या नहीं है जो बाकी नायाब शराबों में होता होगा. यह मैंने जानने की कभी जरूरत ही नहीं समझी. जाड़े की इस कटरबनी रात में एक दो घूंट जैसी भी मिले. नियामत समझना चाहिये."

वह चहककर बोला, "अरे वाह." विक्रम के चेहरे पर अनायास उल्लास उभर आया और उसने परम उत्साह से बोतल का कार्क उमेंठकर तड़का दिया.

बस फिर क्या था? उसने दबादब गिलास भरने शुरू कर दिये. मैंने अपने मुंह की कड़वाहट पर कोई अभिव्यक्ति नहीं दी और एक लंबी घूंट लेकर प्याज चबाने लगा. पर उसने दो तीन घूंट लेकर गिलास खाली कर दिया. गिलास खाली होते ही उसने फिर से गिलास भर लिया.

एक घंटे से भी कम समय में विक्रम ने पूरी बोतल खाली कर दी और हस्बे मामूल उसे पलंग के नीचे लुढ़का दिया.

पता नहीं कितनी देर बाद खाना खाया गया और खाने के दौरान क्या बातें हुईं. मैंने कच्ची शराब बरसों बाद कभी पी थी. दो तीन पैग ही मुझ पर काफी भारी हो उठे थे. मुझे न खाने का पता चला न उसके स्वाद का.

विक्रम के पास किसी मेहमान के लिए अलग से बिस्तर की व्यवस्था नहीं थी इसलिए जाड़े की वह रात उसी के बिस्तर में काटने के अलावा अन्य कोई विकल्प मेरे सामने नहीं था.

जब मैं और विक्रम बिस्तर पर अगल-बगल होकर लेट गये तो वह शिकायती लहजे में देर तक न जाने क्या बड़बड़ाता रहा. बात आरंभ करते हुए विक्रम के स्वर में गुर्राहट होती थी पर आगे जाकर वह एक दयनीय-सी रिरियाहट में बदल जाती थी.

मंगल चिलम भरकर लाया और उसे नेहचे पर रखकर बोला, "कुंमर जी, चिलम भदई है, पी लेओ."

मंगल से "जा तू अब सो" कहकर विक्रम बातें करते-करते हुक्का गुड़गुड़ाने लगा.

पता नहीं विक्रम की हुक्का पीते-पीते झपकी लग गयी या हुक्के का संतुलन गड़बड़ा गया पर हुआ यह कि चिलम रजाई के ऊपर आकर उलट गयी. वह फुर्ती से उठा और उसने रजाई उठाकर फर्श पर झाड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी चिलम फर्श पर गिरकर फूट गयी और उसके टुकड़े और अंगारे बिखर गये.

इस पर विक्रम एकदम झल्लाकर गालियां बकने लगा और फिर रजाई में घुस गया. मुझे जोर की नींद आ रही थी इसलिए मैंने मुंह से एक भी शब्द नहीं निकाला और बेहोशी की नींद में गर्क हो गया.

यकायक कमरे में भयानक उजाला फैल गया और औतंग सुरती की हालत में लगने लगा कि मैं भट्टी के मुहाने पर बैठा हूं.

मैं चौंककर उठ बैठा. मैंने देखा कि रेशमी रजाई से लपटें उठ रही थीं और रजाई के साथ पांयताने पड़ा कंबल भी जल रहा था. मैंने उसे झिझोड़कर जगाया. "विक्रम उठो, बिस्तर में आग लग गयी है."

बिस्तर जलने की बात सुनते ही वह कूदकर उठ बैठा और पलंग से छलांग लगाकर फर्श पर खड़े-खड़े मूक दर्शक की तरह जलती रजाई और दहकते बिस्तर को देखने लगा.

मैं कुछ सोचूं या कहूं इससे पहले ही विक्रम अत्यंत उत्तेजित होकर बमक उठा. "जलो जलो, तुम भी जलो. भैन के...सब जलो-मरो."

पता नहीं उसे क्या झक सवार हुई कि वह बिस्तर को फुंकते देखकर पैशाचिक हंसी हंसने लगा. इतना ही नहीं बीच-बीच में एक से एक फोहड़ा गाली भी बकता चला गया. इतने बरसों में पहली बार मैं उसे अभद्र और अश्लील गालियां बकते सुन रहा था.

विक्रम ने श्मशान में रुद्र भाव से नाचते कापालिक का स्वरूप धारण कर लिया और बकते-झकते हुए पलंग के नीचे झुक गया. मैं विमूढ़ भाव से उसे देखता रहा.

सहसा उसने पलंग के नीचे से पानी का घड़ा उठाया और उसे जलते बिस्तर पर उंडेल दिया.

खैर आग तो किसी तरह शांत हो गयी लेकिन हड्डियों तक घुसी ठंड को भगाने का अब कोई जरिया हमारे पास नहीं रहा.

विक्रम का नशा पूरी तरह टूट चुका था. शराब की बोतल खाली करके वह पहले ही लुढ़का चुका था.

मैंने लालटेन की लौ बढ़ाकर घड़ी देखी. अभी कुल जमा सवा तीन बजे थे. इतनी बीहड़, लंबी रात को काटने का कोई मौजू साधन हमारे पास नहीं था. अगर कंबल बिस्तर से अलग कहीं इधर-उधर रखा होता तो जलने से बच जाता और हम उसे ओढ़कर बैठ जाते पर अब तो वह आखिरी सहारा भी जलकर भस्मीभूत हो चुका था.

विक्रम ने अपना बरान कोट मेरे ऊपर फेंकते हुए कहा, "इसी को लपेट लो अब. यह मनहूस मादर...रात तो काटनी ही पड़ेगी किसी तरह."

विक्रम ने गिरते पड़ते हुए स्प्रिट लैंप जलाया और बिना दूध की चाय तैयार की. हम दोनों ने मन ही मन एक दूसरे को शत्रु मानकर कुछ समय चाय पीते हुए और बाकी समय सिसियाते हुए वह यमरात्रि काटी.

सुबह मंगल ने दीवानखाने में वह विचित्र लंकाकांड देखा तो वह भौंचक्का होकर हम दोनों की शक्लें और हुलिया देखता रह गया. उस गरीब की हिम्मत कुछ भी पूछने की नहीं हुई.

थोड़ी देर बाद मैं सहन में निकला मंगल दबले स्वर में अपने मन की व्यथा प्रकट करने लगा, "पतो नाय के कुंमर जी पै सनीचर को पैरायो कित्ते बरसन को है. तो कबऊं भले-चंगे ना रै सकत. मोय तो गी ई गनीमत लगें के जरे-जराये तो नाय हैं." फिर उसने स्वयं और भी धीमा करके अपनी जिज्ञासा प्रकट की, "पर सिरकार, लकटी आखर लगी तो कैसे?"

मैंने उसे आग लगने का कारण बतलाया तो वह अपने सिर पर हाथ मारकर बोला, "सत्यानास है गयो. जे रजाई उपंदर भैया (विक्रम का बेटा) की सादी में मिली हती. देख लेआ पैले जाड़े में ही फुंक गयी. पतो नाय के पूरो जाड़ो अब कैसे कटेगो?"

मंगल की बात से मुझे इस बात का पूरी तरह एहसास हो गया कि विक्रम की स्थिति अच्छी नहीं है. जाड़ा अभी बीच में ही था—कम से कम दो महीने तो रजाई के बिना काटे जा सकने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी.

से.रा. यात्री

लंबे समय से रचनारत से.रा. यात्री अपनी सहज किंतु प्रभावपूर्ण कथायात्रा के कारण उन कथाकारों में गिने जाते हैं जो कहानी और उपन्यासों पर समान रूप से काम कर रहे हैं.

संप्रति : अध्यापन

मैंने बाहर से लौटकर विक्रम को देखा तो वह मुझे बहुत चिड़चिड़ा और चीमड़ दिखलाई पड़ा. उसके चेहरे की झुर्रियां और भी सघन हो उठी थीं. एक रात की त्रासदी ने उसे कम से कम चार-छह साल अधिक बूढ़ा बना दिया था.

दीवानखाने का दृश्य तो और भी ज्यादा दुखदायी नजर आता था. सारे फर्श पर चिलम के टूटे हुए ठीकरे और पानी में डूबे कोयले और राख बिखरी पड़ी थी. पूरा दिन निकल आने के बाद भी लालटेन जल रही थी. जैसे पुराने वक्तों में लोग अपना दिवालियापन घोषित करने के उद्देश्य से दिन में ही दिया जला देते थे उसी तर्ज पर यह धुआंती लालटेन विक्रम के हर तरह से दिवालिया हो जाने का उममान बनी हुई थी.

दीवानखाने की उखड़ी-पुखड़ी दीवारों पर मेरी दृष्टि गयी तो उस पृष्ठभूमि में विसंगतियों ने और भी बड़ा विद्रूप उपस्थित कर दिया. सुनहरे बेलबूटेवाले मोटे-मोटे फ्रेमों में कैद लंबे-चौड़े आदमकद तैल चित्र विशालकाय दीवानखाने की सभी दीवारों पर टंगे नजर आ रहे थे. ये सब कुंवर खानदान के पूर्वजों की अनुकृतियां थीं. एक तरफ गलमुच्छों, दाढ़ियों और राजसी वेषभूषा से आवृत रौबीली आकृतियां थीं और दूसरी ओर पलस्तर उखड़ी फटी-नुची दीवारें थीं. नीचे मरघट का दृश्य उपस्थित करता फर्श था जिस पर हर तरफ राख और कोयले फैले पड़े थे.

मंगल चाय बनाकर लाया तो थोड़ी राहत मिली. चाय पीने के बाद मैं सुबह के छोटे-छोटे कामों से फारिग होने के लिए सहन में निकल गया. थोड़ी देर बाद मैं लौटा तो मैंने विक्रम को वहीं चक्कर काटते देखा. वह दोनों हाथ पीठ पर बांधे था और उसकी मुद्रा गंभीर थी.

करीब दस बजे मंगल ने नाश्ता तैयार किया तो मैंने सहन में बिछी चारपाई पर बैठकर चुपचाप उसे अकेले ही निपटाया क्योंकि अभी तक विक्रम अपने भीतरी उद्वेगों से मुक्त नहीं हो पाया था.

पूरे सहन में धूप फैल गयी तो मंगल ने मोढ़े वहीं जाकर डाल दिये. जला हुआ बिस्तर उसने फोर्ड गाड़ी के ढांचे पर लाकर डाल दिया. जला-फुंका बिस्तर और फोर्ड का पिंजर अजीब समानधर्मी लग रहे थे.

मंगल ने हुक्का ताजा करके नयी चिलम भरी और हुक्का विक्रम के सामने लाकर रख दिया.

हर तरफ से थके हुए विक्रम ने गंभीर सोच में डूबे डूबे ही हुक्का गुड़गुड़ाना शुरू कर दिया. मैं चुपचाप उसका चेहरा देखता रहा. उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय एक मरियल-सा खजैला कुत्ता न जाने कहां से आया और हम लोगों मे मोढ़ों के पास आकर पसर गया.

मेरा खयाल था कि विक्रम कुत्ते को देखकर बिगड़ उठेगा और उसमें दो-एक लात जमा देगा पर मैं यह देखकर चकित रह गया कि उसने अपनी पाटदार आवाज में कहा, "मंगू,हीरा को कुछ दो."

जरा देर में ही मंगल तामचीनी की चिलमची में दूध रोटी भिगोकर लाया और उसे कुत्ते के सामने रखकर बोला, "उठ चल रोटी खा."

मैंने किंचित उत्सुकता दिखाई, "यह कुक्कड़ कहां से प्रकट हुआ."

विक्रम ने भौंहे चढ़ाकर मेरी ओर देखा और बोला, "बदजात आदमी को जवाब है यह. इसे टुकड़ा भी नहीं मिलता तब भी यह दरवाजा नहीं छोड़ता."

पता नहीं वह किस-किस अनुपस्थित को जवाब देने की नीयत से यह बात कह रहा था.

हीरा ने चिलमची में मुंह डालकर चप-चप खाना शुरू कर दिया. सहसा विक्रम की निगाह कुत्ते पर चली गयी और क्षणांश में उसका चेहरा तनाव रहित लगने लगा.

मैं ताज्जुब में पड़कर सोचने लगा कि जिस आदमी को किसी से भी संवाद करना पहाड़ मालूम पड़ता है और भौंहों के बल कभी नहीं जाते वह एक खजैले से बुड्ढे कुत्ते के प्रति इतना ममत्वपूर्ण कैसे हो गया?

इसी समय मंगल विक्रम के सामने आकर खड़ा हो गया और पूछने लगा."कुंमर जी मं नेंक सैर (शहर) को काम निबटा आऊं?"

विक्रम बिना जवाब दिये मोढ़े से उठा और दीवानखाने में चला गया. दो मिनट बाद वह लौटकर आया और उसने मंगल के हाथ में कुछ रुपये पकड़ा दिये. इतनी ही देर में उसका चेहरा फिर तनावपूर्ण हो उठा था.

मंगल जाकर दीवानखाने की सफाई में जुट गया तो मैंने विक्रम से आंखें बचाते हुए पूछा, "मैं भी मंगल के साथ न निकल जाऊं?"

जब उसने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया तो मैं बोला, "क्यों न तुम भी थोड़े दिनों के लिएं मेरे साथ निकल चलो—थोड़ा चेंज हो जायेगा."

विक्रम ने गौर से मेरी ओर देखा और कड़वी हंसी हंसकर बोला, "अब कहीं भी जाकर क्या होगा. दुनिया सब जगह एक जैसी ही है."

मैंने आगे एक शब्द भी नहीं कहा. मैं समझ गया कि वह हर तरफ से विरक्त हो उठा है और उसने स्वयं को खारिज कर दिया है. इसके इलावा वह अपने एक मात्र सेवक साथी मंगल को अकेला छोड़कर कहीं भी कैसे जा सकता था.

एकाएक उसने पूछा, "तुम जाओगे कैसे?"

"सड़क तक तो मैं और मंगल बातें करते निकल जायेंगे—फिर दोनों साइकिल पर बैठ लेंगे?"

विक्रम ने एक लंबी सांस ली और कहा, "तो फिर यही सही."

मैंने विक्रम के चेहरे पर तैरती उदासी देखी. उसकी आंखों में भयावह बुझापन था. शायद उत्सुकता और आग्रह उसके दैहिक रसायन से पूरी तरह निकलकर गुम हो चुके थे.

मंगल दीवानखाने की सफाई करके आया और बोला, "अच्छा तो कुंमर जी मैं जाय रयों हूं. तन्नक देर में ई लौट आवंगो. इत्ते में आप नहाओ-धोओ. मैं लौटत हई. खानो बनाय दंगो."

विक्रम ने सिर को हल्का-सा खम देकर अपनी स्वीकृति दे दी.

मैं और मंगल चलने लगे तो वह सिर्फ मोंढ़ा छोड़कर उठ खड़ा हुआ. बाहर तक साथ जाने का उसने उत्साह नहीं दिखाया.

जब मैंने उससे हाथ मिलाया तो उसने अपना मुंह दूसरी तरफ घुमा लिया और दीवानखाने की ओर बढ़ गया. मैंने उसकी पीठ की ओर देखकर कहा, "कभी-कभी अपने हालचाल देते रहा करो."

मेरी ओर बिना मुड़े ही उसने अपना हाथ ऊपर हवा में उठा दिया. मैंने देखा हीरा अपनी दुम हिलाते हुए दीवानखाने की दहलीज पर जाकर खड़ा हो गया.

हवेली से निकलते ही अकस्मात मेरी आंखें फोर्ड गाड़ी के ढांचे और रात में जले बिस्तर की ओर चली गयीं.

मैं मंगल से पहले हवेली से बाहर हो गया. बाद में वह साइकिल के हैंडिल पर झोला टांगे आया.

कुछ कदम चलने के बाद मैंने देखा हीरा भी हम लोगों के पीछे चला आ रहा था.

मंदिर के नजदीर पहुंचकर मंगल ने उसे घुड़का, "चल महतारी के..."

कुत्ते को जैसे मंगल के इन्हीं शब्दों को सुनने का इंतजार था. वह आज्ञाकारी सेवक की मुद्रा में पीछे लौट गया.

गांव के सीमांत पर पहुंचकर मैंने हवेली की ओर मुड़कर देखा. अपनी पूरी ऊंचाई और विस्तार के बावजूद हवेली बहुत अकेली लगी. उसी पल, घने फैले पीपल पर बैठी चील अपना कंठ फाड़कर चीखने लगी, पता नहीं किस अजाने अपशकुन से मेरे सर्वांग में सिहरन दौड़ गयी.

मंगल मुझसे बोला, "बाबूजी आप बाइसिकल पै चढ़ लेते. मैं तो पांव प्यादोई पौंच जावगो. आाप जाय (साईकिल कौं) चुंगी के मुंसी के ढिग रख जइयों और कै दइयो के मंगल ले जायगो."

मैंने कहा, "नहीं मंगल, तुम साईकिल पर निकल जाओ. मैं तो इस गुनगुनी धूप में टहलते हुए निकल जाऊंगा. मुझे गांव देहात में आने का मौका मिलता ही कहां है?"

मंगल मेरे साथ चलते हुए, वास्तविक भावुकता के स्वर में शिकायती तौर पर बोला, "बाबूजी, आप तो कुंमर जी के बालपन के हम जोली ठैरे—दो दिना ठैर जाते तो उनकू कछु सहारो मिलतो —तन्नक दिल ई भैल जातो." फिर वह दुख भरे स्वर में कहने लगा, "पतो नाय इनकी बुढ़ौती कैसे कटेगी. मोय तो सोच-सोच के अपसोस होतो रहयो करै?"

मंगल की चिंता एकदम बाजिब थी. एक भी पैसे की आमदनी का कहीं कोई सहारा नहीं था. इस घोर ग़ंवई देहात में सिर्फ दिन काटे जा सकते थे....वह भी कितने दिन...

सहसा मुझे जले हुए बिस्तर की याद आ गयी. मैं ठहर गया और जेब से पर्स निकालकर बोला, "हां मंगल,यह तो बतलाओ,एक ठीक-सी रजाई कितने रुपयों में बन जाती होगी?"

"मोय तो कुछ अंदाजो है ना बाबूजी,सौ डेढ़ सौ रुपप्या आज्जकल्ल लगई जात हुंगे."

मैंने पर्स से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालकर मंगल की ओर बढ़ाते हुए कहा, "देखो,तुम फौरन साइकिल पर चढ़ो और तुरंत एक रजाई का इंतजाम करो. तुम्हारे कुंवर साहब के पास रात को ओढ़ने का कोई इंतजाम नहीं है."

मंगल ने हिचकते हुए रुपये तो पकड़ लिये मगर संशयपूर्ण स्वर में बोला, "कऊं ऐसो ना होय के कुंमर साब मेरी ऐसी की तैसी ई न कदई. उनको कुछ बी पतो ना चले—कैन लगै के सारे तैने रूपप्पया च्यौं लै लये?"

"उसकी फिक्र बाद में करना. पहले रजाई का खोल खरीदकर उसमें किसी धुने से या मशीन पर रूई भरवाओ."

सहसा मंगल की बूढ़ी थुकी आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी और वह भर्राये गले से बोला, "बाबूजी, हमाये कुंमर जी बिरकुल इकले पर गये हैते. विनकू बिसार मत दीजिये—कबऊ भैरते (बहुरते) रहियो."

मंगल के इस निश्छल आग्रह ने मुझे हिला दिया. मुझे लगा वह विक्रम के भीतर की जुबान बन गया है.

मैंने उसे जबरदस्ती साईकिल पर चढ़ाया और अपने पर्स से विजिटिंग कार्ड निकालकर देते हुए बोला, "जब जरूरत हो, कहीं से भी एक लाइन लिखवा देना."

पता नहीं क्यों अंतिम वाक्य कहते-कहते मेरा स्वर टूट गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सुधीश पचौरी

रूमानी मुद्रा की त्रासदी

साहित्य में एक वक्त ऐसा भी रहा है जब साहित्यकार अपने साहित्य की रचना के लिए इस दुनिया को ठोकर पर रखा करता था. वह अपनी कीमत पर 'रचना' करता था और अपने सिद्धांतों के विरूद्ध समझौता कतई नहीं करता था. हमें नहीं मालूम कि हिंदी साहित्य के इतिहास में ऐसा दौर ठीक-ठाक कब रहा. किंतु इतना तय है कि अपने सिद्धांतों (रचना की स्वतंत्रता) के प्रति इतनी निष्ठा ऐसे दौरों में पैदा होती है जब रचना और जीवन जीने की शर्तें एकमेक हो जाती हैं. यद्यपि रचना और जीवन का ऐसा एकमेवत्व साहित्य की प्रचलित तमाम अवधारणाओं को तोड़फोड़ सकता है और उन्हें फिलहाल छोड़ ही दें तो बेहतर. फिर भी अपने परम रूप में किसी भी रचनाकार के लिए ऐसा एकमेवत्व सिर्फ फंतासी (रचना) की दुनिया में ही संभव है और अत्यंत चुनौतीपूर्ण एवं आकर्षक होते हुए भी यह साहित्य की रूमानी अवधारणा का अंतिम संस्कार है.

इस रूमानी अवधारणा की त्रासदी का अध्ययन साहित्य से अधिक फिल्मों और अब सीरियलों के माध्यम से किया जा सकता है क्योंकि संस्कृति में बड़ी पूंजी के प्रवेश ने इस रूमानी परिकल्पना को या तो करुणाजनक बना दिया है या हास्यास्पद 'मनोरंजन' और 'जिंदगी'. सीरियलों के कुछ खंडों में रूमानी अवधारणा के ऐसे कई रूप नजर आते हैं जो गौरतलब हैं क्योंकि वे एक और रूमानियत को 'क्रांतिकारी' रूप में पेश करते हैं किंतु जिस ढंग से करते हैं वह स्वयं 'क्रांतिकारी संभावनाओं' का तिरस्कार करता है टी.वी. जैसे माध्यम की प्रवृति का भी इस तिरस्कार में योगदान नजर आता है.

'जिंदगी' सीरियल (जिसे अमृता प्रीतम की कुछ प्रख्यात कहानियों एवं उपन्यासों को मिलाकर एक श्रृंखलाबद्ध पटकथा में ढाल कर वेदराही ने बनाया है) में एक प्रसंग यों है: "एक कथाकार सूरज साहित्य को शौकिया (आत्मानुभूति या सहजानुभूति से परिचालित) कर्म समझता है. वह नॉवेल को पैसे से तोलना जुर्म समझता है. पेट भरने के लिए वह प्रूफ पढ़-पढ़ कर गुजारा करता है किंतु ट्रेडमार्क वाले नामों से (वर्तमान उदाहरणों में कर्नल रंजीत) नॉवेल लिखना गुनाह समझता है. प्रकाशक छद्मनाम से लिखने को कहता है किंतु यह गरीब लेखक सूरज (नाम का प्रतीक महत्वपूर्ण) पांच सौ-सात-सौ एडवांस (सन् 1940-50 का जमाना. पांच सौ–पांच दस हजार से कम न होंगे) को भी ठुकरा देता है और प्रकाशक से कहता है, "आपकी मूंछें हिटलर से बहुत मिलती है."

सूरज के इस त्याग, संघर्ष, तपस्या यानी रचना की ईमानदारी (आजकल के शब्द) पर एक अखबार की मालकिन संपादिका फिदा है. वह दर-दर भटकते सूरज को संपादकत्व देना चाहती है (आखिर अखबार की मालकिन को एक मेहनती ईमानदार कलमकार तो चाहिए ही.) किंतु अपनी संघर्षप्रियता (यहां संघर्ष ही संस्कार बन गया है) के चलते वह ठुकरा देता है.

जिन लोगों के लिए हम लिखते हैं वे सस्ता साहित्य पढ़ते हैं. सूरज की इस उलझन को आंटी जी सुलझाती हैं कि "बड़े लेखक ऐसा नहीं लिखते जैसे दूसरे लिखते हैं. शरदचंद्र, प्रेमचंद्र ने जो लिखा वह बढ़िया भी है और आम आदमी के भी काम का है." इस ज्ञान के बाद सूरज कहता है कि "मैं नौकरी करूंगा और जब सुविधा होगी तब लिटरेचर लिखूंगा. जीवन और रचना का यह अनूठा 'एकमेवत्व' एक नये अंतर्विरोध पर टिका है. जीवन जीने के लिए काम-धंधा करना है, पैसा कमाना है किंतु रचना करने के लिए कोई 'समझौता' (एक जिद की तरह) नहीं करना है. पापी पेट के लिए समझौता और रचना के लिए समझौते का विरोध, अंतर्विरोध का यह तेवर अपने रूमान से पूंजीवाद के विरुद्ध अकेले लड़ने की ऐसी आत्मघाती मुद्रा है. जिसे आसानी से प्रगतिशीलता के लक्षणों में गिन लिया जाता है (यद्यपि प्रगतिशील या क्रांतिकारी होने से उसका कोई संबंध नहीं.) यह रूमानियत आज भी क्रांतिकारी रूमानियत में आसानी से घुली-मिली देखी जा सकती है.

'मनोरंजन' सीरियल में भी ऐसी रूमानियत एक नये किस्म के 'डिफीटिज्म' की शिकार होती हैं. एक 'सब कुछ जला डालूंगा' जैसी फार्मूला फिल्म के स्टार कुमार के नखरे, उसकी चौतरफा तानाशाही और फाइनेंसरों से मिली भगत है दूसरी ओर इसी फिल्मोद्योग में 'समझौता विहीन' फिल्म बनाने वाले कला फिल्म वाले अनवर साहब हैं जिनकी एक रील बनाने की रकम की व्यवस्था करने के लिए पटकथा लेखक अपनी किताबें बेच देता है. हीरोइन अपने गहनेजेवर और कला-फिल्मों का अहसानमंद नायक जयविजय अपना कीमती समय कम पैसे में भी दे देता है. फिल्म बनाने का जुनून किस कदर सवार है इन नये लोगों में? नायिका टेक पर टेक देने (और इलाज न करा पाने की वजह से) से बेहोश होती है, उधर सैट डिजाइनर लाइट पकड़ता है कि ट्राली के पहिये में पैर कटता है, किंतु चीख तक नहीं निकलती उसकी. क्यों? क्योंकि शॉट पूरा करना है किसी भी कीमत पर. यह सब होता है किंतु वह एक रील सिर्फ इसलिए पूरी नहीं होती क्योंकि अंत में स्वयं जयविजय भी स्टारडम के ग्लैमर का शिकार हो जाता है. यदि अनवर अपनी कला फिल्म बना भी लेते तो भी क्या कोई क्रांति हो जाती? क्या उनकी परिणति भी जयविजय वाली न होती? उनके या उनके मित्रों की फिल्म बनाने की अटूट लगन अंततः उनके भीतर बैठे कलाकार के 'निजी कलाकारत्व' के दावे की मुद्रा भर नहीं कि वे दिखाना चाहते है कि देखो हम कितने ईमानदार कलाकार हैं कि समझौता कतई नहीं करते? पूंजीवादी दुनिया में, जहां सांस-सांस में समझौता होता है, ये मतवाले इस यथार्थ को अपनी रूमानियत की वजह से अस्वीकार करते हैं जबकि इसका दूसरा अस्वीकार सुसंगत क्रांतिकारी समझ से भी संभव था किंतु जिसकी यहां न तमीज दिखी, न गुंजाइश. □

अमृता प्रीतम

छाया : पवन महेंदू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 30 दिसंबर 1948
'हम लोग' तथा ''अजूबे'' का सहायक निर्देशन. कई कहानियां प्रकाशित.
संप्रति : स्वतंत्रलेखन व फिल्म निर्देशन
संपर्क : 265 सी, पॉकेट-2 मयूर बिहार, दिल्ली

मनमोहन चड्ढा

माइनस सेवन

अब कभी-कभी उसे लगता था कि वह होश में है. तलाक हुए आठ साल हो गये थे और अब वह उन यादों से धीरे-धीरे छूट रहा था.

देवी को लगता है कि जैसे किसी रूष्ट आत्मा ने अपने गुस्से को एक क्षण में उसकी जिंदगी के कई बहूमूल्य वर्ष उससे छीन लिये थे.

शरीर फिर भरने लगा था. चौंतीस की उम्र में 'फिर' का मतलब देवीलाल के लिए बहुत बड़ा था. वैसे भी उसका शरीर इतना भरा-भरा कभी नहीं रहा था. हो सकता हैं, लोगों का यह कहना सही हो कि तीस के बाद शरीर फूलने लगता है. पेशियों की जकड़ ढ़ीली पड़ जाती है. पर अपने शरीर में लौटती ताकत से उसे लगता था, यह शरीर का फूलना नहीं है, खून की दौड़ है.

बीस साल की उम्र में ही देवी का लिखित परीक्षा उत्तीर्ण कर एल.डी.सी. लग जाना देवी के परिवार के लिए एक हादसे की तरह था. मां के चेहरे पर एक नयी रौनक आ गयी थी. आज, दूर से देखने पर, देवी को लगता है जैसे यह सब घटनाएं एक बड़ी दुर्घटना का हिस्सा मात्र थीं. दो साल बाद ही वह दोनों विभागीय परीक्षाएं देकर यू.डी.सी. हो गया था और देवी की प्रसिद्धी घर से निकलकर गली भर में फैल गयी थी. घर से निकलकर जब वह गली में पांव रखता तो प्रशंसा भरी नजरें उसे घेरने लगतीं. इस तीन सौ गज लंबी गली से देवी हर मौसी और ताई की स्नेह और शिकायत भरी निगाह का अपनी नमस्ते से जवाब देते हुए गुजरता. किसी भी निगाह का विनम्रता से जवाब न देने का मतलब था एक नयी अफवाह को जन्म देना. यह निश्चित था कि देवी ने उस गली की परंपराओं को तोड़ा था, उन लोगों के विश्वास को ठेस पहुंचायी थी. क्योंकि तीन बच्चों के पिता ब्रहमदेव मिश्र जब तरक्की पाकर घर लौटे थे और अपने अपर डिवीजन बन जाने का समाचार अपनी पत्नी को सुनाया था तो पत्नी ने खुशी तो जाहिर की लेकिन परंपरा का पालन करने से इनकार कर दिया. परंपरा यही थी कि तरक्की मिलने पर पतिदेव घर आकर शुभ समाचार सुनाते और अगली सुबह पूरी गली में लड्डू बांटे जाते. लड्डू देवी की मां ने भी गली भर में बांटे थे, लेकिन माफी सी मांगते हुए. गली का हर जवान इस मोर्चे पर शहीद हो चुका था जिसे देवी ने पहली बार में ही फतह कर लिया था और दूसरा मोर्चा तो इतना घनघोर था कि लोगों की आंखें चौंधियायी रह गयी थीं. मां जिस घर में प्रवेश करती, लड्डू देते समय, सफाई देना न भूलती. ''भई,हमें तो कुछ पता नहीं, कैसे हुआ यह सब.'' मां के स्वर और शब्दों में दुविधा साफ झलक आती थी.

फिर उस कार का एक समाचार की तरह गली में प्रवेश और देवी के घर के आगे ठहरना. देवी ने मां को हिदायत दी थी, ''बस इतना ध्यान रखना मां, आवाज में ज्यादा ललो-चप्पो न आने पाये.'' मां ने कुछ हंसकर, कुछ नाराजी से उसे टाल दिया था. मां और काका दोनों को ही इस बात पर विश्वास करने का मन नहीं हो रहा था कि देवी की जो इतनी प्रशंसा हो रही है, वह असली है. दो-तीन दिन से मां कुछ ज्यादा मुखर हो उठी थी. ''अरे बोलने का क्या? बोला और हवा में गया, ये सब उड़ती बातें हैं. हम जानते हैं किस तरह रातों को जगाकर पढ़ाया है बेटे को.'' मां ने कहा था और पिता ने हमेशा की तरह मां की हां में हां मिला दी थी, ''और क्या देवी की मां, लोगों को तो आज दिखाई देता है, इस आज को लाने में कितनी मेहनत लगी है, यह किसने देखा है?'' और तब देवी मजाक में इतना ही सोच पाया था कि उसकी मां को मर्द और पिता को औरत होना चाहिए था. पर आज यह सोच ही देवी को कंपकंपा देने के लिए काफी है.

देवी उस पूरी शाम इस बात पर हैरान होता रहा कि यह लड़की उसकी बीवी क्यों है? और देवी उसका पति क्यों है? चपड़ासी क्यों नहीं है? देवी को लगा था कि यह लड़की बुद्धि, विचारों और आकांक्षाओं में उससे बहुत ऊपर खड़ी है और देवी जहां खड़ा था, वहां से उस तक पहुंच पाना संभव नहीं था.

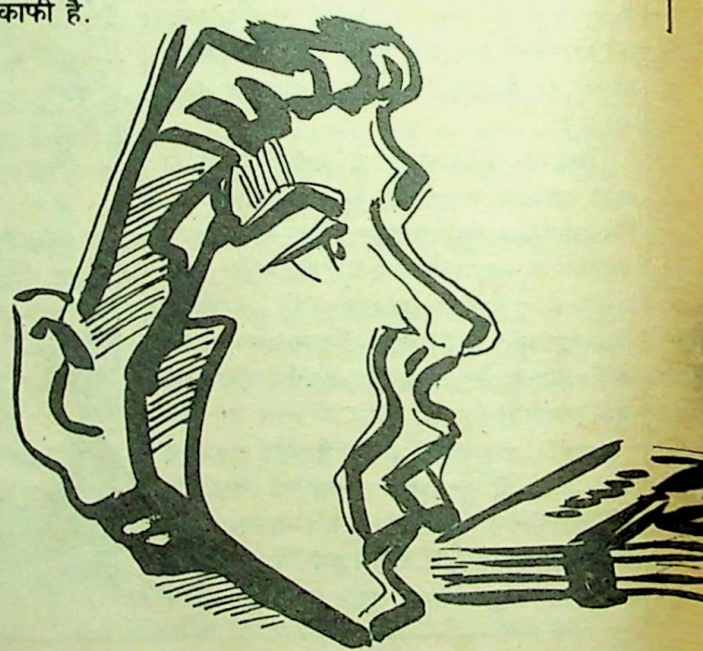

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शहर में आने के बाद देवी को लगा था कि अतीत की इस सोच से वह आसानी से उबर जायेगा. वह किसी के साथ रहा ही कब है और कितने दिन. जो उसे अब अकेला रहने में तकलीफ होगी. और हमेशा की तरह उसका मन इस दुविधा में उलझ जाता है कि उसे तकलीफ है या नहीं. शरीर जो भर रहा है,उससे साफ लगता है कि तकलीफ नहीं है और बिल्कुल नहीं है, पर मन को तो बस देवीलाल का मन ही जानता है. नौ बजे शाम को ही पूरी तरह ऊंघ जाना, सुबह आठ बजे जबरदस्ती बिस्तर से अपने आपको छुड़ाना, जल्दी-जल्दी तैयार होकर साइकिल निकालना और ऑफिस की तरफ चल देना. रास्ते में नाश्ता ले लेना और फिर दिन भर फाइलों में उलझे रहने की कोशिश करना. पिछले डेढ़ साल से, जब से देवी अपने विभाग का सुपरिंटेंडेंट बना है, उसके पास बिल्कुल काम नहीं रह गया है और पिछले नौ साल से दस से पांच तक जमकर काम करने और जवाबदेही की आदत उसे अब परेशान करती रहती है. देवी को लगता है,यही समय है जब घर में एक औरत होनी चाहिए, एकाध बच्चा, ताकि उनके बारे में सोचते हुए सुबह को दोपहर और दोपहर को शाम किया जा सके.

पर अब क्या वह सब दुबारा हो पायेगा. लगता तो नहीं. सिर के आधे बाल तो उस तीन महीने की बीमारी ने खा लिये थे और बाकी के आधे इन बरसों की सोच ने सफेद कर दिये. इस बूढ़े को अब कौन अपनी लड़की देगा और अगर लड़की मिल भी गयी तो क्या देवी उसे संभाल पायेगा? जब वह भरी जवानी में नहीं संभाल पाया.

कई बार मौका मिला है देवी को होम टाउन की ट्रांसफर का. उसे मालूम है, घर गया तो मां आस का वास्ता देकर उसे दूसरी शादी के लिए मजबूर कर देगी. और देवी को भला यहां क्या तंगी है?

तंगी, तो वाकई बिल्कुल नहीं है. लाला का खाना हमेशा लजीज होता है और देवी का तो वह खास खयाल रखता है. एकाध बार उसने सोचा है कि शायद लाला की कोई लड़की हो और लाला को उसका इतिहास मालूम हो. पर यह सब देवी के खाली दिमाग की उपज है, लाला तो सीधा आदमी है, छोटा व्यवसायी. "बाबूजी, आप कुछ बोलते ही नहीं इसलिए खुद ध्यान रखना पड़ता है कि कभी सब्जी खराब भी लगी तो बाबूजी तो कुछ कहेंगे नहीं. इतने अच्छे ग्राहक का कौन ध्यान नहीं रखेगा? जो चिल्ला कर मांग लेते हैं या जरा सी बात पर शिकायत करते हैं, उनका ध्यान रखने की क्या जरूरत है?"

काश, यह बात वह लड़की समझ पाती कि शिकायत वह कर ही नहीं पाता. अच्छी तरह जानते हुए भी कि रोज जो जली हुई रोटी उसे मिल रही है, उसका हकदार वह नहीं है.

लड़का उन्हें होनहार लगा था, कुछ करके दिखाने वाला. तभी तो वे पीछे ही पड़ गये थे. देवी की मां तो खुशी से पागल थी. "अरे कितनी अमीर है देवी की ससुराल, पूछो मत. एक साले का तो बच्चों के खिलौने बनाने का कारखाना है और दूसरा क्रिकेट के बैट बनाता है. पैसा पानी की तरह बरसता है घर में." और शादी के साथ टेलीविजन, सोफा, फ्रिज, देवी के लिए स्कूटर सब कुछ आया था घर में. सब कुछ सिवाय लड़की के.

दसेक दिन रही थी वह देवी के साथ. देवी को कुछ याद सा आता है. वैसे अब तो देवी को लगता ही नहीं कि वह इस सबसे होकर गुजरा था. उसे लगता है जैसे उसने कोई फिल्म देखी थी, जिसमें ऐसी एक लड़की थी.लड़की उसे अच्छी लगी थी या खराब या वह लड़की को कैसा लगा था... इतना सोचने का समय भी तो उसे नहीं मिला था. हां, वह देवी से तरक्की करने का आग्रह करती रही थी. कुछ हिना और पत्थर का उदाहरण-सा देती रही थी.

ग्यारहवें दिन लड़की का भाई आया था, और वह उसके साथ चली गयी थी. अगले हफ्ते उसका एक प्यार भरा खत आया था कि देवी को अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए और पी.सी.एस. का फार्म भर देना चाहिए. देवी को याद आया था कि फार्म कैसे भरना है, कौन से विषय लेने हैं और उसका रिश्ते में एक बड़ा भाई है जो पी.सी.एस. पास करने के बाद अब बड़ा आफिसर है, कितना बड़ा सरकारी बंगला उसे मिला है. आफिस के आधे नौकर घर पर काम करते हैं और कितनी ऊपरी कमाई है. यह सब, वह देवी को उन दस दिनों में बताती रही थी.

देवी पूरी नैतिक ईमानदारी के साथ पी.सी.एस. की तैयारी में जुट गया था. 'यह उसकी पत्नी की एकमात्र इच्छा थी, उसे पूरा करना उसका दायित्व था और दायित्व निभाना देवी अच्छी तरह जानता था.' देवी की अपने ही स्वर की यह कड़वाहट तब तो उसकी कल्पना में भी नहीं थी. उन दिनों तो उसने रात के एक बजे तक जागकर नोट्स तैयार करने और सुबह छह बजे उठकर उन्हें याद करने का नियम बना लिया था. मां जरूर बारह बजे के बाद, देवी को सो जाने और आंखों पर ज्यादा जोर न देने का आदेश देती रहती थी. तब देवी अपने आप से कहा करता, "असल में तो उन लोगों को मालूम है कि तरक्की कैसे की जाती है. हमारा क्या, बस जैसे गुजरी जिंदगी गुजार ली. अब मां को ही देखो, बेटा सारी उम्र चाहे क्लर्क रहे लेकिन चश्मा नहीं लगना चाहिए." इम्तहान पास आने पर देवी शाम को छह से आठ तक, ट्युटोरियल्स में भी जाने लगा था. जहां ऊंची परीक्षा में उत्तीर्ण होने के खास गुर बताये जाते थे.

पहली तारीखों के आसपास जब रोज शाम को घर में पकोड़ों के साथ चाय होती थी. मां ढेर सारे पकौड़े और चाय की पतीली ला बीच में रखती और हरेक का खाली गिलास भरती जाती. काका बीच-बीच में कभी एक आध पकौड़ा उठा लेते थे. देवी को सिर्फ प्याज के पकौड़े पसंद थे इसलिए वह गोभी और आलू के पकौड़ों से बचता हुआ प्याज के पकौड़े चुनता

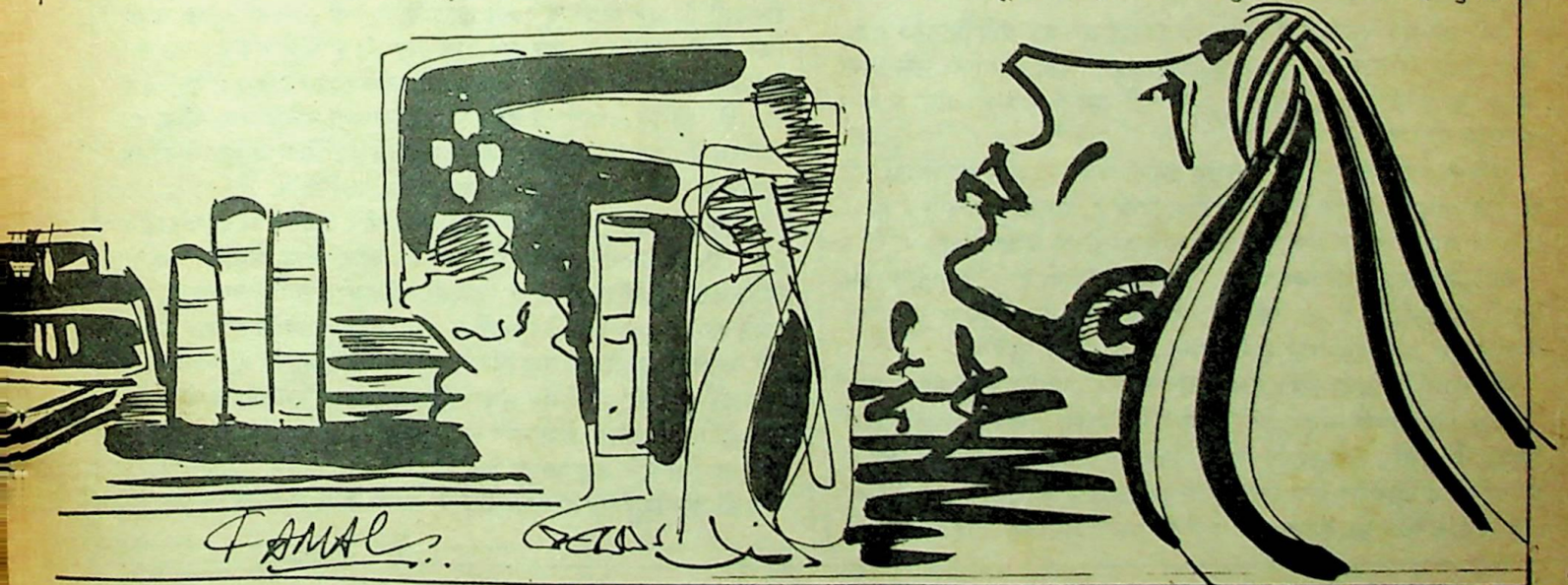

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता. पारो और लक्ष्मी में पकौड़े उसकर मुंह तक एलाने और निगलने की होड़ लगी रहती थी.

काका छोटी पारो को गोद में खींच लेते तो वह छूटने के लिए तड़पने लगती. उस समय उसे पकौड़ों से दूर खींचना ऐसा ही था जैसे किसी मछली को पानी से बाहर खींच लेना. काका कहते, "थोड़ी देर सांस तो ले ले. आदमी जो खाता है, वही हो जाता है. सुबह जब हम देखेंगे कि हमारी पारो गायब है और उसकी जगह पकौड़ों का ढेर लगा है, तब क्या करेंगे?"

पारो तब तक रोने लगती, काका उसे छोड़ देते और उसांस लेते हुए कहते, "बहू बीच में बैठी होती तो कितना अच्छा लगता."

और अचानक देवी को याद आता कि उसकी शादी हो चुकी है.

छह महीने जब यूं ही बीत गये तो काका ने उसे कहा था, "जा, एक बार देख के तो आं वहां क्या कर रही है? आती क्यों नहीं?"

उसे जाने का कोई कारण नहीं लगा था. "क्या कहेगा वह उससे जाकर, और अगर उसने कह दिया कि वह नहीं आयेगी, तब वह क्या करेगा?

लेकिन ऐसी कोई बात नहीं हुई थी. वहां पहुंचने पर उसकी खूब खातिर हुई थी. उसे लगा था कि वह किसी दूसरी दुनिया में आ गया है. लेकिन तीसरे दिन यह तिलिस्म टूट गया था. शाम के समय वह उसे अपने कमरे में ले गयी थी और बहुत देर तक बोलती रही थी. देवी को अब कुछ याद नहीं. सिर्फ इतना याद है कि उसने देवी को समय नष्ट न करने की सलाह दी थी और कहा था कि वह समझ नहीं पा रही है कि परीक्षा इतने पास होते हुए भी देवी बेकार की बातों के बारे में क्यों सोच रहा है? लेकिन देवी उस समय कुछ और ही सोच रहा था उसे लग रहा था कि यह लड़की जो उसे यह सब समझा रही है, उसकी बीवी नहीं हो सकती. क्या सिर्फ इसलिए एक औरत बीवी कहलाने लगती है क्योंकि वह कुछ रातें उसके साथ सोयी है? क्या आज तक वह कभी अपने विचारों को इस प्रकार धाराप्रवाह और तर्कपूर्ण ढंग से व्यक्त कर पाया है?

देवी उस पूरी शाम इस बात पर हैरान होता रहा कि यह लड़की उसकी बीवी क्यों है? और देवी उसका पति क्यों है? चपड़ासी क्यों नहीं है? हीनता भाव के काले घने बादलों ने देवी की आत्मा को पूरी तरह ढक लिया था. देवी को लगा था कि यह लड़की बुद्धि, विचारों और आकांक्षाओं में उससे बहुत ऊपर खड़ी थी और देवी जहां खड़ा था, वहां से उस तक पहुंच पाना असंभव था.

देवी ने जवाब में एक शब्द भी नहीं कहा था.

देवी अकेला लौटा था. काका ने तब पहली बार उसे गाली दी थी. कुछ भी पूछने की जरुरत समझे बगैर उन्होंने कहा था, "एक ये नामर्द पैदा हुए हैं हमारे घर में."

देवी का मन पढ़ने से एकदम उचट गया था. वह घंटों किताब लेकर बैठा रहता, लेकिन मन न जाने कहां भटकता रहता और फिर उसे ध्यान आता कि इतनी देर से उसने कुछ भी नहीं पढ़ा है. बस बेध्यानी में पन्ने पलटता रहा है.

परीक्षा देकर वापस लौटते समय देवी ने महसूस किया था कि छह घंटे की रेल यात्रा ने उसके शरीर को तोड़ दिया है. घर पहुंचकर जब मां के हाथ में उसने बक्सा थमाया तो उसे एक सौ दो बुखार था.

दो महीने तक देवी बिस्तर पर रहा था. उठा था तो अपनी ही शक्ल उससे पहचानी नहीं जा रही थी. इस बीच रिजल्ट निकल चुका था लेकिन देवी का नाम पास होने वालों की सूची में नहीं था.

फिर एक दिन अचानक वह आ गयी थी. दरवाजा मां ने खोला था और उसने झुककर मां के पांव छुए थे. पीछे रिक्शेवाला हाथ में एक खूबसूरत अटैची केस और बिस्तरबंद लिये खड़ा था. उसने रिक्शेवाले को दो रुपये दिये थे और रिक्शेवाला सलाम करता हुआ चला गया था. मां को कुछ अजीब लगा था, स्टेशन के पास ही सब्जी मंडी थी और मां वहां से आने के आठ आने दिया करती थी.

बिस्तर पर लेटा देवी उठकर बैठ गया था. इस लड़की के अब तक न आने की जैसे कोई वजह नहीं थी, हो सकता है इसके अचानक आ जाने की भी कोई खास वजह न हो. देवी उसे देखकर मुस्करा दिया था.

लघुकथा

ज्ञान की परख

बलबीर सिंह

कन्फ्यूशियस विभिन्न इलाकों का भ्रमण करते हुये एक देश में पहुंचे, तो वहां के राजा ने उन्हें अपने दरबार में आमंत्रित किया. उसने उनकी महान विद्वता के बारे में सुना हुआ था और उसे परखना चाहता था. कन्फ्यूशियस के आने पर उसने तीन पिंजरे मंगवा कर उनके सामने रखवाये.

उनमें से एक पिंजरे में एक चूहा था, जिसके सामने उसकी मनपसंद की खाने की चीज़ों का ढेर लगा हुआ था. लेकिन चूहा था कि उनमें से कोई भी चीज खा नहीं रहा था.

दूसरे पिंजरे में एक बिल्ली थी, जिसके सामने दूध-मलाई से भरे कटोरे पड़े थे, लेकिन उसने उन्हें मुंह तक नहीं लगाया था.

तीसरे पिंजरे में एक बाज़ था, जिसके सामने ताज़ा मांस की बोटियां रखी हुई थी, लेकिन उसने उसमें से एक भी नहीं खायी थी.

कन्फ्यूशियस ने यह सब देखा और अपने शिष्यों को संबोधित करते हुये कहा. "देखा, डर कितनी बड़ी चीज़ है! चूहा भूखों मर जायेगा, लेकिन भावी डर के बजाये उसे वर्तमान डर की कहीं अधिक चिंता है. वह यह नहीं सोचता कि जब आगे-पीछे मरना ही है, तो खाकर क्यों न मरे. यही हाल बिल्ली का है. बाज को देखते हुये उसे हर क्षण अपनी मौत नजर आ रही है, और वह खाने के बारे में सोच तक नहीं सकती लेकिन बाज की हालत इन दोनों से निराली है. वह कभी चूहे को खाने के बारे में सोचता है, तो कभी बिल्ली को. उसकी नजर इन दोनों पर ही अटकी हुई है. उसके सामने जो खुराक पड़ी है, उसे वह चूहे और बिल्ली से कम महत्व दे रहा है, जो कि पता नहीं कब उसकी खुराक बनेंगे. यह जीव का स्वभाव है. अगर यह तीनों इसी प्रकार पिंजरों में बन्द एक दूसरे के सामने रहे, तो अन्त में तीनों भूखों मर जायेंगे."

कन्फ्यूशियस एक क्षण के लिए रुके और उन्होंने राजा की ओर देखा. फिर, उन्होंने अपने शिष्यों की ओर मुंह मोड़कर कहना जारी रखा, "और इन तीनों से कहीं अधिक मूर्ख यह राजा है, जो अपने ज्ञान के अहंकार में दूसरों के ज्ञान की परीक्षा लेना चाहता है. ऐसे व्यक्ति की हालत एक दिन उस सपेरे जैसी होती है, जो अपनी बीन की धुन पर सांपों को नचाता हुआ उनका शिकार करता है, लेकिन किसी समय अचानक सुर-ताल से उखड़ कर खुद किसी सांप का शिकार बन जाता है."

तभी कन्फ्यूशियस मुड़े और दरबार में से चले गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीधी-सादी मां को लगा था कि सब कुछ बिल्कुल ठीक हो जायेगा, पहले की तरह. देवी ने देखा था कि मां पूरी तरह इस कोशिश में जुटी है कि बहू को किसी तरह की कोई तकलीफ न हो. क्या मां उन दिनों को वापस लाने की सोच रही थी जो कभी थे ही नहीं?

और देवी? क्या वह सब कुछ जानते समझते हुए भी, एक छोर तक पहुंच चुके इस संबंध को सुधारने के लिए कुछ कर सकता था? शायद इससे समय इन खिसकी ईंटों पर कुछ लीप-पोतकर उन्हें ऐसा कर दे कि बाहर से देखने पर पता भी न लगे कि वे कभी बुरी तरह खिसक गयी थीं.

समझौता, हर साल में समझौता. देवी को लगता है कि आज वह जो कुछ भी है, अच्छा या बुरा, सिर्फ इस एक शब्द की वजह से है.शायद उसके शब्दकोष में दूसरा कोई शब्द ही नहीं है.

पर झुकने का मौका ही नहीं मिला था और समय ने किसी भी तरह की लीपा-पोती करने से इनकार कर दिया था. शायद चौथे या पांचवें दिन जब वह दफ्तर से लौटा था, तब वह सजी-धजी तैयार थी. मां ने देवी से आग्रह किया था कि वह बहू को घुमा लाये. उसने कोशिश की थी कि पारो या लक्ष्मी को साथ ले ले ताकि किसी भी तरह की बात करने की गफलत से बचा जा सके.

एक छोटा-सा पार्क था पत्थर की बेंच पर वह कुछ हटकर बैठा था. थोड़ी ही दूरी पर कुछ बच्चे खेल रहे थे. फिर ठीक वही हुआ जिसे वह टालना चाह रहा था. "देखो, इतनी जल्दी थोड़े ही कोई निराश होता है. तुम तो एकदम हिम्मत हारकर बैठ गये हो. फेल भी तो वही होते हैं जो इम्तहान देते हैं. अब तो तुम्हारी पूरी तैयारी हो चुकी है. मुझे विश्वास है, इस बार तुम जरूर पास हो जाओगे. और फिर...." देवी चुप सुनता रहा था. उसका सारा शरीर तपने लगा था. उसे यूं लगा जैसे किसी ने उसे उठाकर जलती भट्टी में फेंक दिया हो. उसे मालूम था कि उसके पास कोई जवाब नहीं है. पर एक साल और, बीते साल की तरह गुजारने के खयाल भर से उसके रोंगटे खड़े हो गये थे. देवी ने सोचा था कि इस समय जरूर उसे कुछ बोलना चाहिए, अब भी अगर न बोल पाया तो वह अपने आप को इस क्षण के लिए, जीवन भर माफ नहीं कर सकेगा. अत्याचार की किस्में होती हैं, इस लड़की ने पता नहीं अत्याचार के कौन से स्कूल में दीक्षा ली थी पर अब यह सब देवी के लिए असहनीय हो चुका था.

देवी सिर्फ इतना ही कह पाया था, "तुम कहती हो तो मैं जरूर कोशिश करूंगा, लेकिन तुम्हें यहीं रहना होगा, मेरे पास." देवी और भी बहुत कुछ कहना चाहता था कि वह उसके पास रहेगी तो उसे एक प्रेरणा मिलती रहेगी. वह रोज नयी ताकत से मेहनत कर सकेगा वगैरह वगैरह. पर यह सब सुनने का समय उसके पास नहीं था. "छिः छिः मैं तो उसी सरकारी बंगले में रहूंगी जो तुम्हें मिलेगा. यहां तो ये चार दिन भी मैंने बड़ी मुश्किल से काटे हैं. एक गंदी सी बदबू घुसती रहती है नाक में, चौबीस घंटे."—उसने तेजी से कहा था.

देवी को लगा था जैसे किसी ने उसके सिर के अंदर हाथ डालकर उसके दिमाग को निचोड़ दिया हो. फिर देवी का दायां हाथ इतनी तेजी से उसके गाल पर पड़ा कि देवी को भी तब होश आया जब उसे अपने झनझनाते हाथ का खुद पता लगा.

घर आकर आधे घंटे में ही उसने अपना सामान बांध लिया था और गली से एक बच्चे को भेजकर रिक्शा मंगा लिया था.

"बहू....." काका ने शायद पहली बार उसे सीधे संबोधित किया था.

"जाने दीजिए उसे काका." देवी की आवाज बहुत ऊंची उठी थी.

काका ने फिर एक कोशिश की थी. वे स्वयं ही देवी की ससुराल जाने को तैयार हो गये थे. "आखिर पता तो चले, खोट कहीं हमारे ही लड़के में तो नहीं." देवी ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया था, "काका, आप वहां बेइज्जती कराने जा रहे हैं. उन लोगों के सोचने का तरीका हम लोगों से बहुत अलग है." लेकिन काका अगली भोर जल्दी ही निकल गये थे.

मां को भी सारा कुसूर देवी का ही नजर आ रहा था—"मेरे साथ तो जो दो-चार दिन रही, अच्छी तरह बोलती बतियाती रही, तेरे साथ बात करके, पता नहीं उसे क्या हो जाता था."

उन दिनों देवी को यह पता चलना ही बंद हो गया था कि वह होश में जी रहा है या बेहोशी में. देवी दिन में पचास बार सोचता था कि गलती उसी की है और दिन में पचास बार सोचता था कि गलती उसकी बिलकुल नहीं है. सारी रात उसे लगता था कि कोई आकर उसके सिर में बैठ गया है और ढोल पीट रहा है.

अगले दिन शाम को काका लौट आये थे और पूरी शाम चुप बने रहे. मां की प्रश्नातुर निगाहें जरूर उन्हें कोंचती रहीं. सोने से पहले काका ने रुकी बात कह डाली थी—"भई उन्होंने कहा है कि आपके घर में ही कुछ कमी है, जो लड़की दो-तीन दिन से ज्यादा नहीं रह पाती. आपके मना करने पर भी हमने तो सब कुछ इसलिए दिया था, ताकि हमारी लड़की आराम से रह सके. अब वह नहीं रह पाती तो इसमें गलती किसकी है?

दो दिन बाद ही उसका भाई आया था और वे सब चीजें जो उस बांसुरी बजाने वाले जादूगर के पीछे-पीछे एक दिन इस घर में चली आयी थीं, उसी बांसुरी बजाने वाले जादूगर ने पीछे-पीछे इस घर से चुपचाप निकलकर वापस चली गयी थीं. और वह घर जो उन चीजों के आने से पहले भी, बहुत भरा भरा लगता था, उन चीजों के जाने से एकदम खाली हो गया था.

गुस्से और दुःख में काका ने कहा था, "यह अधूरा सच है कि दहेज सिर्फ लड़के वाले ही मांगते हैं और न मिलने पर लड़की की जिंदगी तबाह कर डालते हैं. ऐसा भी तो होता है कि लड़की वाले दहेज मांगें और न मिलने पर लड़के की जिंदगी तबाह कर दें. इस समाज में ताकतवर हमेशा से कमजोर को दबाता आया है. इस बात से क्या फर्क पड़ता है कि आप लड़की वाले हैं या लड़के वाले."

सेपरेशन मिलते ही देवी ने ट्रांस्फर के लिए एप्लाई कर दिया था. सुबह और शाम गली से गुजरते हुए उससे उन मौसियों और ताइयों की सहानुभूति भरी नजर सही नहीं जाती थी, जो कल तक उसे प्रशंसा भरी नजरों से देखा करती थीं.

इस शहर में आकर भी देवी को उस स्मृति से छूटने में वर्षों लग गये हैं. इन सात वर्षों में देवी को मां और काका के कई अनुरोध भरे पत्र मिले हैं. लेकिन हर बार घर लौटने की बात सोचते ही, देवी को लगता है कि समय के जादूगर ने उसके साहस को कैद कर लिया है. शरीर की ताकत तो जरूर लौटने लगी है लेकिन टूटा मन जुड़ने में अभी शायद कुछ वर्ष और लग जायें और तब शायद किसी दिन देवी उस तीन सौ गज लंबी गली से सहज भाव से गुजरकर अपने घर तक पहुंचने की हिम्मत जुटा सके. □

चलते-चलते

पहली बार हवाई सफर करने वाली एक वृद्धा ने जहाज में यह घोषणा सुनी: मैं आपका कप्तान बोल रहा हूं. जहाज का चौथा इंजिन तकनीकी खराबी के कारण बंद कर दिया गया है पर घबराने की कोई बात नहीं है उड़ान तीन इंजनों से भी बदस्तूर जारी रहेगी हम ठीक समय पर लैंड करेंगे. अब कप्तान ने चुटकी ली आप के लिए यह शुभ सूचना है कि जहाज में चार पादरी पहले से मौजूद हैं.

घोषणा सुनकर घबड़ाई वृद्धा महिला ने तत्काल विमान परिचारिका को बुलाया और उससे कहने लगी मेहरबानी करके कप्तान से कह दो कि हमें इंजिन तो चारों चाहिए...पादरी तो तीन भी चलेंगे. □

वीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 13 नवंबर, 1961
आत्मकथ्य : मेरे लिए जिंदगी को जीना उसके हर क्षण को पूरी गहराई के साथ महसूस करना है.
संपर्क : 190 करणपुर, देहरादून (उ.प्र.)

नवीन कुमार नैथानी

पोखर

किसन को लगा कि उसके लिए रजा की जिंदगी के उन्हीं सालों की अहमियत थी जिनमें वह खुद उसके साथ मौजूद था. शायद रजा के लिए भी वही साल महत्वपूर्ण थे. चार घंटे तक वे उन्हीं सालों को टटोलते रहे.

वह फिर से धुंए के बादल के पार चला गया. सत्यवती ने लकड़ी चूल्हे से निकाली. आगे का लंबा हिस्सा लाल खिला हुआ दहक रहा था. उसने उसे लकड़ी से अलग किया. लोटे से हथेली की अंजुरी पर पानी लिया और फिर उस अलग पड़े लाल हिस्से पर छिड़क दिया. छिम्मम्.... एक तेज दबी-सी सरसराहट के साथ हलका धुंआ ऊपर उठा और आहिस्ता से टीन पर बैठ कर घुल गया.

किसन ने बीड़ी दरवाजे से बाहर फेंकी और फिर जोर से खांसा... उसके खांसने की आवाज में एक अजीब तरह का कंपन था जिससे रसोई बुरी तरह कांप गयी. सत्यवती ने सर उठाकर उधर देखा. उस कोने में जंग लगी बाल्टी के नजदीक किसन चुपचाप बैठा बुझी हुई लकड़ी की तरफ देख रहा था. उसकी आंखें थोड़ी बुझी, थोड़ी चमक लिये..,.. कहीं और खोयी हुई-सी लग रही थीं.

"हुंह!" सत्यवती ने हलकी-सी ध्वनि निकाली.

यह एक ध्वनि थी या फिर कोई शब्द था. किसन ने सुना और सत्यवती की तरफ देखा. उसका चेहरा उदासीन था. उसके हाथ चूल्हे से कोयले बाहर निकाल रहे थे. वह थोड़ा आगे सरक आया.

"गाड़ी चली गयी थी." बहुत देर बाद सत्यवती कुछ बोली.

"हां."

"उन्हें जगह मिल गयी थी?"

"हां."

"छोटू हंस रहा था?"

"हां."

"वो उन्हें प्रेशान करेगा."

"बच्चा नहीं है क्या?"

"कै दिन लगेंगे उन्हें पहुंचने में?"

"तीन भी और चार भी. कम अज़ कम तीन दिन."

"नरेन कुछ बोला था?"

"क्या बोलता.... बेचारे बड़ी हड़बड़ाहट में थे. छोटू ने नाक में दम कर दिया!" इस बार किसन ने बड़े हल्के तरीके से कहा और बात को पूर्ण विराम दे दिया. अजीब औरत है! पूछेगी तो पूछती चली जायेगी. आध घंटा हो गया. रोटी के लिए नहीं कहा, पूछा नहीं कि भूख लग रही होगी. बस नरेन कैसा होगा. कैसे जायेंगे. कोई बात है भला... औरत है कि घनचक्कर है.

सत्यवती अपनी ही रौ में बही जा रही थी. वह सिर्फ चूल्हे के नजदीक बैठी भर थी... उसकी मौजूदगी को भूलकर. "क्यूं आग बेकार हो रही है?" वह आवाज में सख्ती लाने की एक नाकामयाब कोशिश कर गया.

"हुंह..." सत्यवती ने फिर एक ध्वनि निकाली. यह ध्वनि थी या फिर कोई शब्द था. वह समझ नहीं पाया. अजीब औरत है. पिछले पांच-छह दिन से एक नयी आदत बना रखी है. जबान जैसे किसी ने सैंत दी है.

"एक हफ्ते की बात थी. रुक जाते तो कौन-सा जुलुम हो जाता." इस बार सत्यवती की आवाज में एक पुराना गीलापन था. किसन ने देखा... आवाज उसकी आंखों को नम करते हुए निकली थी. यह आवाज उसे हमेशा गीला कर देती है. वह खुद गीला हो गया.

"प्रभा की मांजी, अब वो बच्चे थोड़ा ही हैं."

"तुम मुझे टोकते रहते हो!"

"बाबा, जरा अपने भेजे से काम ले."

"हां, हां, मैंने किया क्या है? अपने दीदे फोड़े ना, कौन जनम के कुकरम थे.." अब वह बड़बड़ाने की सीमा के नजदीक आ गयी थी. अजीब ही औरत है. क्या चाहती है.. पता नहीं चलता. हंह.... कुढ़ कुढ़ कर मरेगी... किसन के भीतर गीली तहें कुडुबी सतहों में उभरने लगीं.

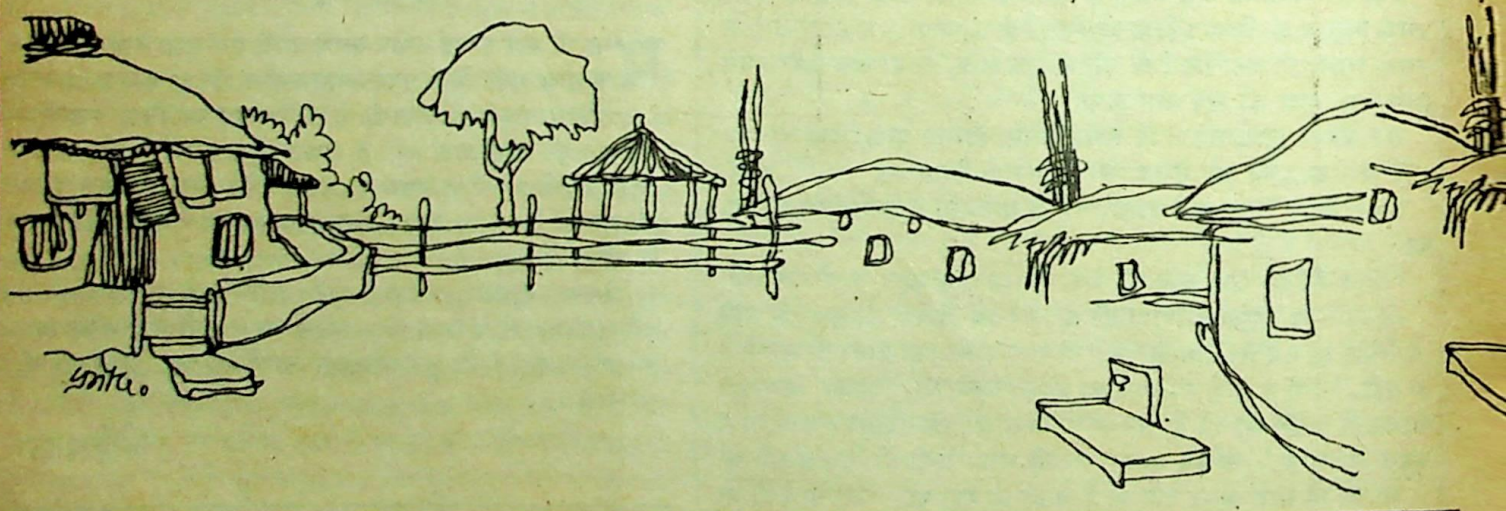

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो, प्रभा की मां, कुकर्म कोई नहीं होते. सब समझने का फेर है."

"हां, हां... मैं हूं ना. मेरा भेजा नहीं है ना... मैं नहीं समझती ना. तुम ही समझदार हो. तीस साल घर के बाहर रहे ना... कौन-सी बड़ी जायदाद खरीद दी.... कौन-सा सुख दे दिया तुमने मुझे."

"तुम सौ जनम में भी सुखी नहीं रह सकतीं."

"बस, तुम हो सुखी, तुम्हारा बेटा है सुखी. पता नी कौन से कुकरम थे... मेरा बेटा ... जैसी-तैसी मां होती तो पांच जूते मार निकालती. मैं तो लालची हूं. नासमझ हूं. पुरानी बुढ़िया हूं. बस तुम हो गये नवेले बुड्ढे."

और अब वह रोने लगी. उसकी आंखों से ढेर सारे आंसू बिना आवाज किये नीचे को लुढ़कने लगे. उसका चेहरा एक ऊबड़-खाबड़ घाटी बन गया जिस पर यहां-वहां कुछ बरसाती नाले उभर आये... वह अब गिलास पर पड़ी घंटा भर पुरानी चाय के घूंट भरने लगी. जैसे-जैसे आंसू उसकी आंखों से निकलते वह फिर-फिर चाय के घूंट ले उन्हें हलक से नीचे उतार लेती. "तुम फिर हमेशा वाला राग छेड़ती हो. आज बच्चे गये तो रोने लगी." फिर किसन उठ गया. इस औरत का यह रोज का चक्कर है.. पता नहीं कौन-सी साईत पैदा हुई. शक था ऐसा जरूर होगा.. किसन आहिस्ता से चलता रसोई से बाहर निकल गया.

बाहर उनका वह पुराना मकान अपने विस्तार को समेटने की बेइंतिहा कोशिश में भी सफल नहीं हुआ. बड़ा और लंबा चौक घास के बिखरे हुए तिनकों की उधार ली मेहरबानी से भी भर नहीं सका. भैंस खूंटे पर बंधी सींग दीवार पर टकरा रही थी. खट्...खट्... खट्...वह सींग टकराये ही जा रही थी. उसकी आवाज मकान के भीतर और बाहर अब अकेली आवाज रह गयी, सत्यवती बिना आवाज किये रोने वाली औरत है. खट् खटा खट्... खट् खटा खट्... भैंस अब तेजी से सिर टकरा रही थी. "चोप् सूअर की बच्ची!" किसन की सख्त और खुरदुरी आवाज निकली. भैंस सहमकर चुप हो गयी. उसने पूंछ ऊपर उठायी और गोबर कर दिया.

"चुप, साली... हरामजादी... मैं साफ कर-करके मर जाऊं तू हगती रहेगी. घूटने को मिलरा ना... साली तेरी खुराक बंद!" वह फिर चिल्लाया और भैंस की तरफ बढ़ा. भैंस सहमकर थोड़ा हटी. "ले साल हग!" उसने एक लात भैंस को जमायी. भैंस अपनी हद में बंधी-बंधी दूसरे कोने में चली गयी. फिर वह नीचे बैठ गया और भैंस का गोबर उठाने लगा...

रसोई से बरतनों के रगड़ने की आवाज आने लगी. एक गिलास शायद जोर से जमीन पर गिरा... वह फिर भीतर चला गया. बरामदा-या बैठक-एक तख्त, एक मेज, दो लोहे की पुरानी कुर्सियां लिये उसका इंतजार कर रहा था. दीवारों पर सफेद पुताई के नीचे पीली मट्टी की एक हलकी और धुंधलायी पट्टी पूरे कमरे की लंबाई को अपनी चौहद में बांध रही थी. दीवार पर एक दस साल पुराना भगवान शंकर का कलैंडर, दो पिछले साल वाले चुन्नू-मुन्नू के कलैंडर और एक नया कलैंडर जो नरेन लाया था, टंगे थे. वह तख्त पर लेट गया और बीड़ी को टटोलने के अंदाज में कमीज की जेब पर हाथ डाला... वहां बीड़ी का बंडल था... एक माचिस थी... और उसे किसी ठंडी चीज की छुअन महसूस हुई. वह बैठ गया. उसकी अंगुलियां फिर से जेब के भीतर गयीं. वह गोल चीज थी. उसकी गोलाई के किनारे एक सारा खुरदरापन लिये थे—वैसा, जैसा पचास पैसे का सिक्का हुआ करता है. उसने उसे बाहर निकाल लिया...

तांबे की गोल बटिया सत्यवती को हमेशा से पसंद रही-वह इसे सूरज भगवान मानती है. पूजा की जगह से छोटू इसे उठा लाया था. बहू ने उसे डांटा...वह रो पड़ा. उसे चुप कराते-कराते न जाने कितनी देर हो गयी थी... वे लोग गाड़ी पर पहुंचे तो गाड़ी छूटने को थी. उसने यह सूरज भगवान अपनी जेब में रख लिया था.. जाते समय छोटू को देने के लिए...

उसने बीड़ी जला ली. बीड़ी का धुआं अपने भीतर उंडेलते-उंडेलते वह बस की याद करने लगा... वे दोनों-नरेन और बहू-छोटू को लिये परेशान थे. नरेन सीट पर से समान ठीक करने में व्यस्त था और बहू छोटू को लिये बदहवास-सी सीट पर बैठने और उठने की कोशिश में लगी थी. बस में और लोग शायद उसे ही देख रहे थे. उसने दो बार उनके पास तक जाने की कोशिश की थी... फिर उनकी बदहवासी देख रुक गया था. सूरज भगवान उसकी जेब में पड़े थे-छोटू अपनी मां की परेशान गोद में अचानक सहम कर चुप हो गया था. कंडेक्टर ने सीटी दे दी थी. ड्राइवर ने इंजन चालू कर दिया था.. उसने उन तक पहुंचने की एक कोशिश और की थी.. जाते-जाते बेटे और बहू उसे सेवा लगाना भूल गये थे... लेकिन वह तो छोटू को देखना चाहता था.. नरेन अभी तक समान ही ठीक कर रहा था. "जल्दी-जल्दी उतरो..." पता नहीं कौन बोला था. उसे लगा जैसे यह नरेन की आवाज थी. जब तक वह नीचे उतरा बस आहिस्ता-आहिस्ता आगे को सरक गयी थी... फिर रुक गयी थी. वह बस के किनारों की खिड़कियों तक पहुंचा... भीतर से छोटू की एक झलक दिखायी दी. बहू की झलक भी मिली. फिर बस तेजी से आगे चल दी. वहीं खड़े-खड़े उसने देखा-नरेन शायद अपनी सीट पर बैठ रहा था...

...खट्-खट्-खट्. भैंस फिर से सिर दीवार पर टकराने लगी थी. उसने बीड़ी नीचे फेंक दी. बरामदे से बाहर आया. भीतर से ढेर सारा बलगम बाहर उगल दिया. एक नजर भैंस पर डाली और फिर भीतर चला गया. एक पल बीता, दूसरा पल भी बीत गया, तीसरा पल आया कि नहीं, उसे होश भी न रही. वह उसी तरह तख्त के नजदीक खड़ा रहा. बेमतलब सा.. पता नहीं अब तक कितने पल बीत चले थे.

"पंडतजी..." उसने बाहर से कोई आवाज सुनी. वह जैसे सोते से जागा. मगर फिर भी अपनी जगह से हिला नहीं.

"हां जी... पंडतजी... कौन से विलायत में हैं आप?" अब वह चेता. एकाएक तेजी से आगे बढ़ा. रुका.. अपनी कमीज की तरफ देखा...

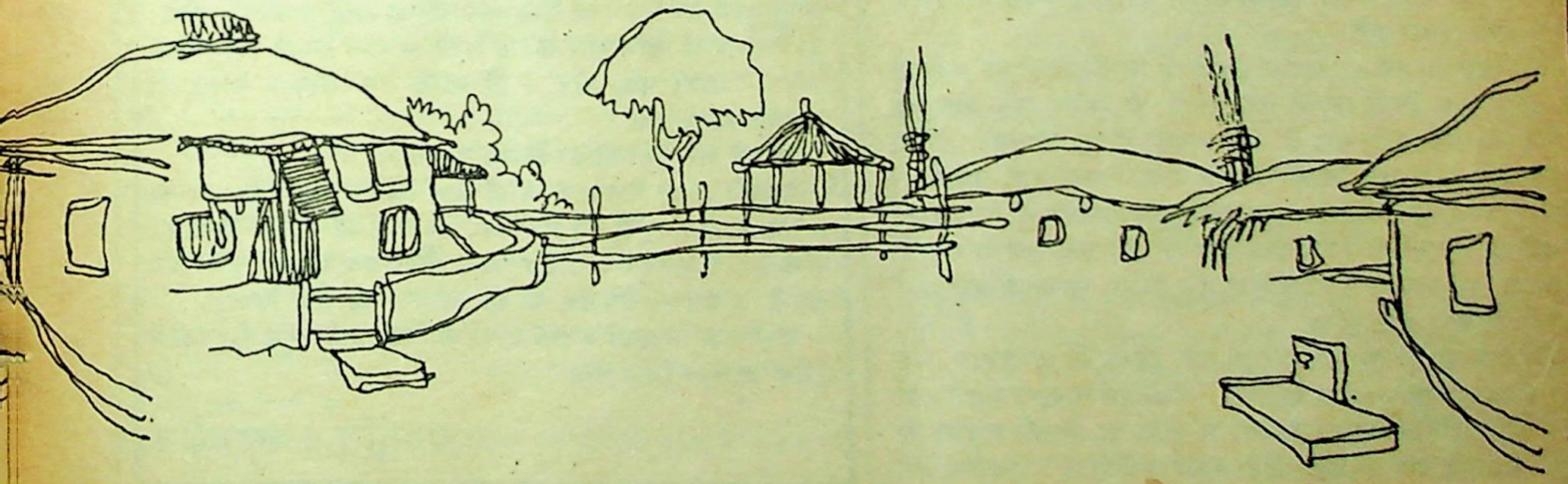

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनिक संतुष्ट हुआ, फिर आगे बढ़ गया. आगे-जहां दरवाजा था, एक अपरिचित चेहरा बड़ी शालीनता से खड़ा मुस्करा रहा था. अपने चेहरे पर एक तरह की खिसियाहट का-सा भाव लिये वह मुस्कराया, दरवाजे पर इस तरह साधिकार खड़े मुसकराते आदमी को देखकर वह थोड़ा हैरान हुआ, थोड़ा-सा परेशान भी हुआ. परेशान होने जैसी कोई बात वहां नहीं थी-अगले ही पल उसने महसूस किया. वह एक बूढ़ा आदमी था. उसके शहरी कपड़ों पर धूल जमी हुई थी.

"कहिये पंडतजी...हैरान हो गये. हं-हं-हं." वह एक धीर-गंभीर हंसी हंसा. उसने प्रतीक्षा की कि हंसी थमे. हंसी रुकी और वह दरवाजे के भीतर चला आया "बयावां में भी मिल लेंगे. सनम जो तुम वहां होगे." वह फिर उसी गूंजदार आवाज में बोला और अपना हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिया. पता नहीं पल का कौन सौवां हिस्सा था जब वह अचानक उस बूढ़े को पहचान गया. "सच रजा..." उसके मुंह से महज ये शब्द ही निकल पाये. बस... उसने अपने हाथ में उसका सख्त मजबूत हाथ महसूस किया. उसे अपने बहुत नजदीक महसूस किया. उसका चेहरा अपनी आंखों से इंचों के फासले पर टिकता हुआ देखा. उसके चौड़े कंधों को अपने दोनों हाथों के गिर्द महसूसा. उसके समूचे व्यक्तित्व को एकाएक अपने इर्द-गिर्द लिपटा हुआ पाया.

जब तलक यह गरमजोशी ताप के इधर से उधर चले जाने तक ठंडी पड़ी, वह सालों के पार गया...ठहरा रहा... फिर एकाएक लौट आया "आओ...रजा, आओ. हं..हं. बैठो. तुम जैसे धरती फोड़कर निकल आये."

उसने लोहे की कुरसी अपनी जगह से थोड़ा हटायी, हाथ से उस पर जमी काल्पनिक धूल झाड़ी और फिर से उसे अपनी जगह सरका दिया. एक नरम आंच-सी आंखें लिये उसने रजा की तरफ देखा, बैठने को फिर कहा. रजा दूसरी कुरसी पर बैठ गया. वह वापस चलकर तख्त पर आ बैठा. एकाएक उसने कमरे में एक लंबी खामोशी को रेंगते हुए महसूस किया. रजा की आंखें नम हो आयीं. वह एक्टक फ्रेम में जड़ी प्रेमचंद की तस्वीर की तरफ आंखें टिकाये था. उसके और तस्वीर के बीच सहसा कोई शून्य पैदा हो गया लगता था.

उसने सिर्फ रजा के बोलने का इंतजार किया. उसे लगा कितना अच्छा होता अगर यह रजा महसूस करता कि यहां मैं इस खामोशी को कितनी तकलीफ के साथ झेल रहा हूं.... एकाएक रजा ने सिर हिलाया, एक पल दोनों की आंखें मिलीं, रजा फिर नीचे देखने लगा. वह शायद कुछ कहना चाह रहा था मगर समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहें. एक क्षण उसके जहन में कौंधा कि रजा की मुश्किल सिर्फ उसे हल करनी चाहिए. उसे ही कुछ कहना चाहिए. आखिर रजा तीस साल बाद इस घर में आया था और तीस साल बाद ही वे मिल रहे थे. मगर अगले ही क्षण उसे लगा कि वह भी उसी मुश्किल से घिरा है जिस मुश्किल से रजा घिरा हुआ है.

बाहर मैंस फिर जंजीर हिला रही थी. खूंटे से सींग ठकरा रही थी. वे आवाजें उनके बीच पसरी खामोशी पर से अपने कदम हलका-सा घसीटती आगे बढ़ती रहीं.

"तीस साल हो गये..." आखिर खामोशी को गलना ही था. रजा की आंखें अभी तक किसी शून्य पर अटकी थीं. मगर होंठ बोल रहे थे...."मुझे अच्छी तरह याद है. सन् बावन, चौदह अक्तूबर.... तीस साल दो दिन बाद मुझे किसी ने रजा कहा." रजा बड़ी उदासी से मुसकराया.अचानक उसे खयाल आया रजा को यह नाम मां ने दिया था. औरों के लिए वह रजनीश चंद्र ढौंडियाल था. उसे लगा अब फिर चुप्पी बढ़ जायेगी. इसे अब टूटना ही चाहिए. हे भगवान, सत्यवती जरा इधर आ जाती तो बड़ा भला होता.

"मुझे पता था कि तुम रिटायर हो गये. शायद वो दुर्गाप्रसाद... वो तुम्हारे फूफा का लड़का आया था इधर." रजा अब सामान्य लगने लगा था... "हां... वो तो कोई सन् बहत्तर में आया था. उसकी लड़की का रिश्ता तय किया गया था मैंने... यहीं नजदीक सौरी में." एकाएक उसे खुशी हुई. वह अब बोल सकता था. रजा के साथ बातें करना किसी जमाने में बड़ी खुशगवार चीज हुआ करता था.

"मुझे पता है. वह लड़की बहुगुणाओं में ब्याही. उसी से पता चला था मुझे कि तुम अब घर ही हो. और कैसा गुजरता है वक्त.."

"सुनो!" उसने जोर से आवाज लगायी. सत्यवती की तरफ.... "हलो," उसने इस बार दूसरा सुर छोड़ा, "हलौ जी...."

रजा धीरे से मुसकराया. सत्यवती धड़धड़ाती हुई चली आयी. रजा को देखा तो ठिठकी रह गयी. रजा उठा. उसके पैर छूने को झुका. सत्यवती थोड़ा पीछे हटी. रजा हंसा. धीर-गंभीर हंसी... ठहरे जल पर टकराती हुई. "भाभी जी... हं हं हं... पहचाना नहीं."

"ये रजा है. मेरा भाई. अजमेर वाली मौसी का लड़का... याद है कुछ?" उसने सत्यवती की मदद करनी चाही.

"क्या बच्चों वाली बात कर गये पंडतजी.. भला याद कहां होगा. हमने तो भाभी को देखा था, बारात में जब गये थे." सत्यवती बहोत हलका-सा मुसकरायी... फिर वापस रसोई में चल दी. बरामदे में फिर दोनों रह गये. मगर अब खामोशी वहां टिक न सकी. बातों का सैलाब भीतर ही भीतर कहीं उमड़ रहा था और किसी पल अचानक टूट पड़ा...

टेलीफोन की अर्जी

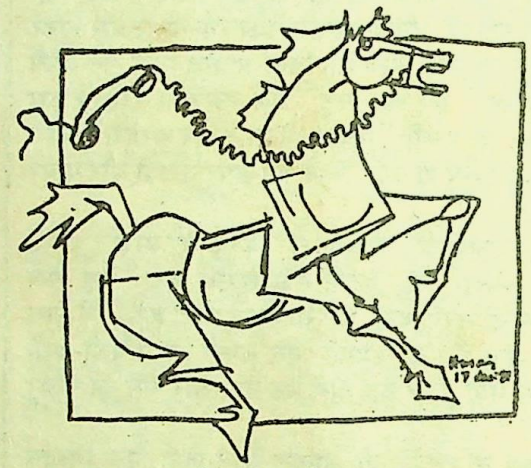

Johari Saheb
My "Horse" is in dire need of communication
.....
Wishing you a happy '82
Yours M.F. Husain

चित्रकार हुसैन को टेलीफोन पाने के लिए न फार्म में लंबी-चौड़ी खानापूर्ति करनी पड़ी, न आठ हजार रुपये जमा कराने पड़े, और न ही सालों तक इंतजार करने की जहमत सहनी पड़ी.

उनकी अर्जी अपनी ही किस्म की थी.

उन्होंने अपने मनपसंद घोड़ों का रेखाचित्र बनाया, उसकी लगाम के साथ जुड़ी हुई टेलीफोन की तार और चोंगा दिखाया, नीचे अपनी जरूरत का जिक्र किया और चित्र बंबई में टेलीफोन कंपनी के जनरल मैनेजर, पी.सी. जौहरी को भेज दिया.

यह चित्रनुमा अर्जी अपना करिश्मा दिखा गयी. कुछ ही दिनों में हुसैन को फोन मिल गया. □

प्रस्तुति : सुखबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई चार घंटे रजा घर में रुका था. रजा का उनकी जिंदगी के बीच एकाएक आना और फिर उसी तरह चला जाना पता नहीं. आने वाले दिनों के लिए कोई अहमियत रख सकेगा भी कि नहीं. एकाएक उसे लगा, सारा दिन ही अहमियत भरा था. रिटायर हो जाने के बाद उसकी जिंदगी सुबह चार बजे उठना थी. जिंदगी के पल रसोई पर आग की आंच से निकलता धुआं था. जिंदगी के घंटे भैंस पर घास डालते हाथ थे. जिंदगी के दिन सत्यवती के नजदीक खड़े-खड़े उसकी बड़बड़ाहट झेलते कुछ अनकहे शब्द थे, महीने पेंशन के लिए शहर में बैंक तक के सफर के दोहराव थे. जिंदगी के साल बरसात में छत से टपकती बूंदों की याद थे या फिर बेटे और बहू का चले आने की खुशी भरी यादों का दोहराना थे या फिर आपसी वाले अमीन के चपरासी का आना थे. जिंदगी की घटना गांव में किसी के यहां ब्याह होना थी. जिंदगी की दुर्घटना किसी बूढ़े का मर जाना था.

और अब रजा को गांव के बाहर छोड़कर वापस लौटते वह समझ नहीं पा रहा था कि रजा का आना कोई घटना थी... या जिंदगी के तीस साल थे. कहीं गहरे वह आहत हुआ था. अपनी कायरता की चोट से. तीस साल बाद रजा आया था. तीस साल तक उसने रजा की कोई खबर नहीं ली थी. रजा जिसे मां बहुत चाहती थी, इस तरह उनके बीच से अलग हो जायेगा. मां ने तो सोचा भी नहीं होगा. मां के लिए रजा मौसी की याद था. उसे अच्छी तरह याद है जब वो छोटा था, मां उस रोज दीवार पर सर पटक-पटककर रोयी थी. पास ही रतन चाचा चुपचाप बैठा था. अब न रतन चाचा रहा, न मां रही... और मैं खुद कितने बरस और चलूंगा. एकाएक उसने ऊपर देखा-आसमान में-वहां चीलें थीं, बहुत ऊंचाई पर उड़ती हुई.

रजा को मां अक्सर बुलाती थी. तब वह बड़ा बातूनी था. सालों के लंबे वक्फे ने रजा के बीच से कुछ नहीं बदला. उसने अपने आपको गुनहगार समझा जब उसे पता चला कि रजा ने शादी नहीं की. वह रजा आज भी वैसा ही था. हंसमुख मगर खोया-सा... एकाएक भावुक हो जाने वाला. और तीस साल... मां को गुजरे बत्तीस साल हो गये. वह खुद हैरान हुआ. उसे सालों की गिनती याद क्यों हो आयी. क्या रजा का आना सालों का गिनती की तरह टकरा जाना तो नहीं है? वह खड़ा रहा... बुत की तरह. "जै राम पंडतजी!" सामने से सिंगवारु चला आ रहा था. उसने सिर को हलका-सा झटका दिया, हाथ उठाकर सिंगवारु को जबाव दिया और आगे बढ़ गया.

किसना ने पंडतजी का सफर तय करते करते वह खुद कितना बदल गया? रजा का आना शायद इस बात की तरफ ध्यान दिलाना था, उसे लगा. रजा को याद था कि दुर्गाप्रसाद की शादी में उसने सत्तर पूड़ियां खायी थीं, कि अपने जमाने में वह बाल्टी मुंह से लगाकर दूध पी जाता था, कि वह तेज पिलायी लाठी पास रखता था, कि एक दफा वह रजा के साथ ऊंटनी का दूध पीने गया था, कि उन्होंने टोपी पर ऊंटनी का दूध निकाला था. सड़क पर चलते-चलते उसने रजा से कहना भी चाहा था कि रजा, अच्छा हुआ तुम आ गये, मुझे जैसे जिंदगी पिछले तीस सालों को छोड़कर फिर से हासिल हो गयी है. उसने इन शब्दों को दो तीन बार दोहराया था. मगर गांव के बाहर रजा को विदा देते उसने सिर्फ इतना ही कहा-"फिर जल्दी आना," रजा ने उसकी तरफ मुसकराकर देखा था.

"पंडतजी..... पिछले तीस साल से मैं किसी जगह दुबारा नहीं गया, बस, एक तमन्ना थी, तुम्हें देख लिया...." वह फिर उदासी से मुसकराया था. जाने से पहले वे फिर गले मिले थे.

"भाभी जितना तुम जानती हो, किसन भाई को... उससे ज्यादा मैं जानता हूं, अब ये वो किसन भाई नहीं रहा... पंडतजी अब तो नहीं करते गुस्सा कभी?" रजा खाते समय कह रहा था. उसे रजा के ये शब्द पता नहीं क्यों अच्छे नहीं लगे थे... शायद इसलिए कि यह सत्यवती को अच्छा नहीं लगा था.

अब एकाएक उसे खयाल आया कि वह कितना मूरख है. सड़क पर चलते-चलते उसकी इच्छा अपने सर पर से बाल नोच लेने की हुई. उसके जी ने चाहा कि उसे मौत क्यों नहीं आ जाती. रजा पूरे चार घंटे पर रुका, न उसने और न सत्यवती ने यह पूछा कि पिछले तीस वर्ष रजा क्या करता रहा... पता नहीं किस बात पर रजा ने सिर्फ इतना कहा था कि उसने शादी नहीं की. बस रजा ने अभी तो कोई ज्यादा पूछताछ नहीं की थी कि इन तीस सालों में मैं क्या करता रहा... उसने नरेन के बारे में नहीं पूछा. नरेन तब पैदा नहीं हुआ था.

किसन को लगा कि उसके लिये रजा की जिंदगी के उन्हीं सालों की अहमियत थी जिनमें वह खुद उसके साथ मौजूद था...शायद रजा के लिए भी वही साल महत्वपूर्ण थे. चार घंटे तक वे इन्हीं सालों को टटोलते रहे थे और सत्यवती के लिये ये साल निरर्थक थे.

एकाएक उसका मन कड़वा हो गया. पता नहीं क्यों... सत्यवती का ध्यान आते ही उसे उसका बड़बड़ाना याद आया. उसने कदम तेज किए और घर की ओर बढ़ने लगा.

घर की तरफ बढ़ते उसे ध्यान आया कि दिन अब ढलने लगा है. भैंस के लिए घास काटकर लाना है. उससे तो कुछ होगा नहीं. औरत है कि घनचक्कर है. जरूर भैंस भूखी होगी. तेज-तेज कदम रखते हुए उसने अहाते में कदम रखा. उसकी नजर सीधे भैंस की तरफ बढ़ी. भैंस ने ढेर सारा गोबर अपने चारों तरफ फैला रखा था और उसके बीच बैठ कर आराम से जुगाली कर रही थी....

वह भैंस के नजदीक गया और उसे खड़ा करने को आहिस्ता से टहोका. भैंस बेअसर बैठी रही. उसने अब जोर लगाया. भैंस फिर भी बैठी रही "साली.... हराम की बच्ची!" इस बार वह चिल्लाया. भैंस ने जुगाली करना बंद कर दिया मगर उठी नहीं. "ले... उल्लू की पट्ठी!" उसने एक लात भैंस को लगायी. भैंस हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई. "घुटा-घुटा के मर गया. साली... हगती रहेगी...मर! तेरा खाना बंद!" वह बड़बड़ाता जा रहा था और गोबर उठाता जा रहा था.

"घर में आये नहीं, फिर गालियां निकालने लगे." सत्यवती न जाने कब भीतर से बाहर निकल आयी.

"प्रभा के पिताजी, तुम्हें सौ बार टोका, पशु पे लात ना उठाओ."

"तो ससुरी तेरे पे उठाऊं!" किसन दहाड़ा.

"हां...हां...यही तो नसीब है मेरा! तुम्हें पका के खिलाऊं.. तुम्हारे बेटे-बहू आयें..उन्हें पका के खिलाऊं.... तुम्हारे मेहमान आयें उन्हें पका के खिलाऊं... मैं हूं चुल्हे में आंख फोड़ने वाली... मेरे तो मां-बाप थे जिन्होंने..."

"चोप्, सुअर की बच्ची!"

"हां...हां.. गाली दे दो. सुख तो दिया नहीं...बस गाली दो. हां. हां मुझे गाली पहनाओ... गाली ओढ़ाओ."

किसन ने गोबर का टोकरा उठाया और बाहर डालने चला गया. जब वह वापस लौटा सत्यवती भीतर रसोई में जा चुकी थी. वह बरामदे में गया. नरेन के दिए हॉटिंग बूट पैरों में डाले. रसोई के बाहर ताक पर रखी पाठल उठायी और बाहर निकल आया.

"सुनो, मैंने सत्तू से कहा था." सत्यवती की आवाज सुनकर वह ठिठका, "वो भीमल ढा के ले आवेगा." उसने हलके से सांस खींची, वापस आंगन में लौटा. रसोई की तरफ बढ़ा और पाठल वापस ताक पर रख दी... □

चलते-चलते

हॉलीवुड के एक रेस्तरां के दरवाज़े पर लिखा हुआ है—
'मेहरबानी करके हमारे बेटों का अपमान न करें. ग्राहक तो हमें और भी मिल जाएंगे.'

-भेरूंलाल गर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियां : 'शापित लोक', 'जिलाधीश की वापसी', 'ऊंचाइयों का ईश्वर', 'राह के पत्थर', 'एहसासों की शाम'
संप्रति : निदेशक, राजभाषा विभाग पटना.

भगवतीशरण मिश्र

पवन पुत्र

धर्म का आचरण लोगों को लज्जाजनक लगता है. पुराणपंथी कहे जाते हैं धर्माचारी. मुझे हंसी आती है. धर्म ही तो मनुष्य की सारी कामनाओं की पूर्ति का एकमात्र साधन है और अंततः वही उसे ईश्वर-सान्निध्य भी प्रदान कराता है. मैं नहीं कहता कि आप अमुक धर्म मानें अमुक नहीं. कि राम ही एक मात्र ईश्वर है और कृष्ण, क्राइस्ट और बुद्ध, महावीर व्यर्थ की बातें हैं. यों मेरा तुलसी कुछ ज्यादा ही कट्टर था और उसने वृंदावन में कृष्ण-मूर्ति के सामने टेक ही लगा दी कि जब तक धनुष-बाण नहीं धारण करो मेरा सिर नहीं झुकने का------

कहां कहौ छवि आपकी,
भले बने हो नाथ।
तुलसी माथा तब नवे,
धनुष-बाण लो हाथ।।

कृष्ण को झुकना ही पड़ा था तुलसी के सामने और मुरली छोड़ धनुष-बाण को हाथ में लेना पड़ा था. यों मैं इसे बुरा भी नहीं मानता. आपकी आस्था इतनी पक गई हो कि सर्वत्र अपने इष्टदेव के ही दर्शन होने लगें तो साधना का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है?

तो मैं कह रहा था खूब है आपकी समझ. कुछ सरकारें धर्म-निरपेक्ष हो गयीं तो बहुतों ने मंदिर--मस्जिद जाना ही छोड़ दिया. खूब लगाया आपने धर्म-निरपेक्षता का अर्थ. धर्म-निरपेक्ष हो जाना तो अपने में बड़ी अच्छी बात है. यह तो सभी धर्मों को समान आदर देने का बड़ा अच्छा आधार है. किसी के धर्म से भी घृणा नहीं करना, सभी धर्मों का सम्मान करना यही न है धर्म-निरपेक्षता? कि नहीं? पर जिसको धर्म के नाम से ही विरक्ति हो उसके लिए बड़ी अच्छी ढाल है आपकी यह निरपेक्षता. वह निरपेक्ष हो गया पूरी तरह---किसी धर्म से उसे कोई लेना-देना नहीं. फिर ईश्वर का भी ऐसे व्यक्ति से कोई लेना-देना नहीं रहता और एक दिन मूल-कटे वृक्ष की तरह वह कहीं का नहीं रहता. उसका अधःपतन स्वाभाविक है.

पर मेरे दुःख का सबसे बड़ा कारण है लोगों में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव. ऐसे तो लोग धर्म के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ेंगे पर जब दो धर्म-संप्रदायों के मध्य टकराव की स्थिति आयेगी तो वे अपना रक्त बहाने सबसे आगे आ जायेंगे. रोज ही देखता हूं ऐसी घटनाएं और रोज ही सिर-पीटता हूं आप सबों की नादानी पर. अयोध्या तो मेरा मुख्यालय है न? यहीं की हनुमान-गढ़ी में तो लोग मेरा भव्य आवास मानते हैं. इस हनुमान गढ़ी के कंगूरे से मैंने क्या-क्या नहीं देखा? धर्म के नाम पर लोगों को कटते-मरते भी देखा और कभी विभिन्न धर्मावलंबियों को एक दूसरे के लिए महान् त्याग करते भी पाया. हिंदुओं को मस्जिदें और मुसलमानों को मंदिर बनाते भी देखा. पहले दूसरी बात को ही लेता हूं.अपने इस हनुमान गढ़ से ही आरंभ करता हूं.

यदि कभी आपने अयोध्या आने का कष्ट किया हो और मेरे मंदिर तक पहुंच पाये हों तो आप इसकी विशालता और विचित्रता से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे. हनुमान-गढ़ी इसका नाम यों ही नहीं पड़ा. किसी विशाल गढ़, किसी किले से कम नहीं लगता यह स्थान. इसकी स्थापत्य-कला दिल्ली और आगरे के लाल किले की याद दिलाती है. चारों ओर उठी ऊंची चहारदीवारी के ऊपर से कृत्रिम तोपें भी झांकती हैं और किले-बंदी के अंदर के आकार ग्रहण करता धीरे-धीरे ऊपर आता देवालय किसी शांत सरोवर में शनैः-शनैः प्रस्फुटित हो रहे कमल-कुसुम की छवि प्रस्तुत करता है. नहीं, कमल का आकार नहीं है मंदिर का पर एक समग्र प्रभाव जो पड़ता है मन पर, उसी के निरूपण का प्रयास कर रहा हूं. सीढ़ियों की एक लंबी पंक्ति बिछी है जो बाजार के किनारे से आरंभ होकर ऊंची, और ऊंची चढ़ती विशाल प्रवेश-द्वार तक पहुंचती है. कई तो इन ऊर्ध्वगामी सोपान-पंक्तियों को देखकर पहले ही हिम्मत हार देते हैं और मुझे एक मानसिक नमस्कार ही निवेदित कर आगे बढ़ जाते हैं. सच, बड़ी सहज नहीं है चढ़ाई, चाहे वह इस मंदिर की हो या जीवन की. ऊंचाईयों के अवलोकन-मात्र से जिनका सिर चकराता है वे इन पर अपने को स्थापित करने में सफल भी कैसे हो सकते हैं?

यदि कभी आपने अयोध्या आने का कष्ट किया हो और मेरे मंदिर तक पहुंच पाये हों तो आप इसकी विशालता और विचित्रता से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे. हनुमान-गढ़ी इसका नाम यों ही नहीं पड़ा... हनुमान के जीवन पर आधारित आत्मकथात्मक उपन्यास का एक अंश...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कई और बाधाएं भी हैं मेरे तक पहुंचाने वाली इन सीढ़ियों को पार करने में. आपके मन ने साहस बटोर लिया और पैरों ने साथ दे दिया तब भी इस मंदिर के मेरे ही नामधारी रखवारे आपको बड़ी आसानी से मुझ तक कहां पहुंचने देंगे! मेरे नामधारी इसलिए कहा कि ये भी कपि ही हैं जो सीढ़ियों के आर-पार के मुंडेरों और दीवारों पर घात लगाए जमे रहते हैं. इनका ध्यान आपके हाथों में पड़े मिष्ठान-पात्र पर होता है और आप इनकी दुरभिसंधि से सर्वथा अनभिज्ञ सीढ़ियों की दो-चार दस पंक्तियां पार नहीं कर पाते हैं कि ये कई ओर से आप पर इस तरह टूटते हैं कि आप कि-कर्त्तव्य-विमूढ़, इनके मुंह ताकने लगते हैं और ये आपके हाथ की मिठाई को झटक अपने उदर के हवाले करते कंगूरों पर जा चढ़ते हैं. इसके पहले कि आप समझें कि आप के साथ क्या घटित हो गया, आपकी बगल का आदमी आपको अपने कर्त्तव्य की याद दिलाने सामने आ जाता है—"अब जाइये दूसरा 'दोना' लाइये. आपको पता नहीं केसरी नंदन के भोग लगाने के पूर्व इनके ये स्वजाति वर्ग मिठाइयों की स्वाद-परीक्षा अपना दायित्व समझते हैं. मिठाइयां इन्हें भा गयीं. अच्छी हैं. जाइये, और लाइये तथा अब की बार हाथ में एक छड़ी भी लेना न भूलिये. वहां दुकान पर मिल जायेगी. नहीं, मारने के लिए नहीं, केवल डराने के लिए. यहां अहिंसा परमो धर्मः का सिद्धांत पूरी तरह चलता है वर्ना सीढ़ियों पर वानरों की यह वाहिनी कैसे पलती-पुसती रहती?"

भाषण तो आपने अच्छा सुन लिया पर मैं बताऊं अहिंसा परमो धर्मः कभी अयोध्या का मूल मंत्र रहा होगा अब नहीं है. जब मैं अहिंसा को यहां का मूल-मंत्र कहता हूं तो आप अन्यथा नहीं लें और राम-रावण की कहानी अथवा ताड़का, खर-दूषण और मारीच या अन्य असंख्य राक्षसों के बध की याद आप मुझे नहीं दिलाएं. दुष्टों की हिंसा भी अहिंसा की श्रेणी में ही आती है क्योंकि एक की हिंसा से शत-सहस्र की हिंसा रुकती है. खैर मैं तो कह रहा था, अयोध्या में अहिंसा का राज्य अब रहा नहीं! कभी था और तब वानरों के झुंड-के-झुंड यहां भी गलियों में निर्भीक विचरते थे. मंदिरों पर किलकारियां मारते और अटारियों पर उछलते-कूदते एक गृह से दूसरे गृह तक निर्विरोध घूमते-खेलते-कूदते थे. आज भी बहुत-से पुराने मकानों के दरवाजों-खिड़कियों पर मढ़ी लोहे की जालियां वानरों की अधिकता की सूचक हैं. पर अब ये जालियां बेकार हैं. बंदर अब भी हैं अयोध्या में पर गिनती के. इनकी रक्षा के लिए अब किला-बंदी की आवश्यकता नहीं------जाली और जाल की आवश्यकता नहीं.

जाल में ही फंसा लिए गये यहां के निरीह वानर. क्या समझे आप? फंसा लिए गये और मनमानी कीमतों पर झोंक दिए गये समुद्र-पार के अस्पतालों और प्रयोगशालाओं में जहां परीक्षण-प्रयोग के बहाने इन्हें भीषण शारीरिक यंत्रणा और अंततः अप्राकृतिक और असामयिक मृत्यु का सामना करना पड़ा. उजड़ गयी बंदरों की मंडली अयोध्या से. जो कुछ रह गयी है वह पूर्व की छाया मात्र है-----दो--चार--दस दर्जन लंगड़ाते भूखे-मरते कपि. कहां हैं उन्मुक्त शाखामृगों के वे झुंड के झुंड जो इस नगरी की नैसर्गिक शोभा में चार चांद लगाते थे?

नहीं, मेरा दर्द यों ही नहीं है? हनुमान गढ़ी के किले से सटा ही है एक इमली-वन. 'है' कहना अब व्यर्थ है 'था' कहना ही ज्यादा उचित. अब भी इमली के कुछ वृक्ष हैं---बूढ़े, जर्जर. कुछ कमर से टूटे तो कुछ जड़ से खोखले. जमीन ऊबड़-खाबड़; गंदगी और घास से भरी. कभी यह हरा-भरा था पूरी तरह. दर्शनीय देह-यष्टि के बंदरों का बास था इस वन की डाली-डाली पर. लोग भीगे चनों की डालियां भर-भर इस बाग में आते. कपियों के झुंड-के-झुंड उनके समक्ष जम जाते. उनके हाथों से छीन-छीन चने चबाते. कोई कंधे पर उछल आता, कोई कमर पर. नहीं, किसी से किसी को भय नहीं था तब. न नर को वानर से न वानर को नर से. पारस्परिक सद्भाव और विश्वास का वातावरण व्याप्त था सर्वत्र. और जाल बिछ गये इस इमली-वन में भी, वानरों की संख्या क्षीण हो चली. धीरे-धीरे प्रायः लुप्त हो गयी. वन के उन्मुक्त वानर शाखा से शाखा को उछलने, कूदने-फांदने और प्रकृति के अपार प्रेम में पलने वाले शाखामृग पिंजरों में बंद हो, एक-दूसरे पर गिरते-पड़ते, नोंचते-खसोटते, क्षुआ और पिपासा की अग्नि में जलते चल पड़े हजारों मीलों की यात्रा पर. नरों की धन-लिप्सा की आग में स्वाहा होने.

अब भी कुछेक बंदर हैं इस इमली-वन में. पर अब कोई किसी के हाथ के चने नहीं चुनता. न किसी नर में हिम्मत है तलहथी पसारने की न किसी वानर में साहस है पास फटकने का. पारस्परिक प्रेम और विश्वास छीन लिया है आपसी भय, अविश्वास और घृणा ने. चने अब लुटाये जाते हैं यहां, बिखेरे जाते हैं, बांटे नहीं जाते.

उजड़ गया इमली-वन, लुट गयी उसकी श्री-सुषमा और उसी के साथ लुट गयी हनुमान गढ़ी की भी गरिमा बहुत हद तक. हां दुःख है मुझे इसके उजड़ने का. कपियों के कैद होने और अंततः असहय पीड़ा के असंख्य द्वारों को पार करते, तिल-तिल कर मृत्युमुख में प्रवेश करने का.

पर दुःख अधिक इस बात का है कि यह बाग आपने नहीं लगाया था. आपने अर्थात् तथा कथित हनुमान-भक्तों ने, आपकी शब्दावली में कहूं तो हिंदुओं ने. यह कहानी मैंने हनुमान-गढ़ी के स्थापत्य को लेकर शुरू की थी. कहा था भिन्न है यह स्थापत्य, आपके सामान्य स्थापत्य से. इस विशाल गढ़, इस विराट मंदिर को बनाया था एक मुसलमान सुल्तान मंसूर अली ने आज से कोई तीन सौ वर्ष पूर्व. मंसूर अली तब लखनऊ और फैजाबाद का प्रशासक था. संत अभयारामदास का सहयोग मिला था उसे और उन्हीं की देख-रेख और निर्देश में पूर्ण हुआ था यह विशाल निर्माण-कार्य. निर्वाण आखाड़ा के शिष्य थे अभयारामदास जी और यहीं अपने संप्रदाय का अखाड़ा भी स्थापित किया था उन्होंने. मंसूर अली ने ही लगाया था यह बाग. हनुमान गढ़ी के आस-पास की कोई 52 बीघे जमीन दे दी थी उसने मंदिर और बाग के निमित्त. शाखा-मृगों के लिए मंदिर बनाना है तो शाखाओं का प्रबंध तो करना पड़ेगा----- तरुवरों का. तो इमली के पेड़ से अच्छे पेड़ क्या होते—छाया की छाया, फल का फल, और फल भी कैसे? कच्चे में कसैले-खट्टे, पकने पर खट-मिट्ठे एक ही साथ कई-कई स्वादों का प्रबंध कर दिया उस मुसलमान भक्त ने वानरों के लिए.

तो मंदिर और बाग दोनों का श्रेय जाता है उस मुसलमान सुलतान को. अनास्था के शिकार इस घोर कलियुग में भी एक तथाकथित विधर्मी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगाध आस्था का प्रतीक है यह विशाल मंदिर. धर्म-निरपेक्षता के सबसे अच्छे उदाहरण के रूप में अवस्थित है यह देवालय. नहीं, वह मुसलमान हिंदू नहीं बन आया या मंदिर बना कर मस्जिदों की नमाज उसने नहीं बंद कर दी थी, पर इस निर्माण के द्वारा उस काल में भी धर्म-निरपेक्षता सरकारों का दायित्व नहीं बनी थी. उसने सर्वधर्म समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता का एक व्यावहारिक प्रतिमान उपस्थापित कर दिया था इस कृति के माध्यम से.

कहानी है इस निर्माण की भी. सुलतान का एक मात्र पुत्र बीमार पड़ा था और प्राण बचने के कोई आसार नहीं रह गये थे. रात्रि की कालिमा के गहराते ही जब उसकी नाड़ी उखड़ने-उखड़ने को हो आयी थी और प्राण अनंत पथ के पथिक बनने को आतुर हो आये थे तो उस सुल्तान ने मेरी गुहार लगाई थी-----

"रहम करो पवन सुत! संकट-मोचन कहते हैं लोग तुम्हें! दे दो रहमत की भीख. बख्स दो जिंदगी मेरे बेटे को. बहुत दरवाजों पर माथा टेका मैंने. पीर की मजारों से लेकर मस्जिद की दीवारों से सिर टकराया पर हाथ कुछ नहीं आया. बेटे की बीमारी बढ़ती ही गयी तूफानी रफ्तार से. अब तुम्हीं यह आफत टालो तो टालो वर्ना छिन गया मेरा औलाद-सुख. बड़े-बड़े चमत्कार सुने हैं तुम्हारे. साधु-संतों के तुम एक मात्र रखवारे हो. मैं कोई साधु-फकीर तो नहीं अंजनी-कुमार, पर मेरा दिल पाक जरूर है. मैं यह नहीं जानता कि खुदा होता है अथवा नहीं, अथवा होता भी है तो आसमान की किन बुलंदियों में बसता है वह, मैं उन ऊंचाइयों तक कैसे पहुंच पाऊंगा? मेरे खुदा तो बस तुम्ही हो. तुम्हीं....."

मेरा वश चलता तो मैं यहीं पर मंसूर अली के मुख पर अपना हाथ रख देता. खुदा अर्थात राम. मेरे राम और मंसूर के अल्लाह में कितना अंतर है? कुछ भी तो नहीं हनुमान सब कुछ हो सकता है पर वह राम बन आये वह बदांश्त नहीं. और मैंने मंसूर को और मौका नहीं दिया. इसके पहले कि वह दुबारा मुझे खुदा का दर्जा दे दे मैंने अपने आराध्य को याद किया और पलक झपकते मंसूर के बेटे की धड़कन वापस आ गयी. पर इस घटना से आप यह न समझ लें कि सभी मंसूरों और मौहनों की इच्छाएं यों ही बात की बात में पूरी हो जाती हैं और कभी मुर्दा शरीरों में यों ही प्राण फूंक आते हैं. यह तो था कुछ ऐसा मंसूर की प्रार्थना, उसकी विह्वलता और उसके समपर्ण-भाव में कि पिघलना पड़ा मेरे राम को भी. युगों में कभी-कभार किसी प्रहलाद अथवा किसी ध्रुव की पुकार पर पसीज आती है उस करुणासागर की असीम करुणा की संपूर्ण ऊष्मा, अंतर की सारी छटपटाहट सिमट आती है तो यह पुकार प्रकृति के सारे विधि-विधानों को निरस्त कर असंभव को संभव कर देती है.

तो यह था एक उदाहरण जिसमें एक तथाकथित विधर्मी ने बनाया मेरा मंदिर. यह कोई एकाकी उदाहरण नहीं. अनेक दृष्टांत हैं ऐसे पर मैं एक ही ऐसी और घटना का वर्णन करूंगा.

लखनऊ का नाम तो आपने सुना होगा. यह था कभी लक्ष्मणपुर. अपभ्रंश होते-होते हुआ लखनपुर और कालांतर में इस्लाम के प्रभाव ने बना दिया इसे लखनऊ. इसी लखनऊ के अलीगंज में एक मंदिर है मेरा जिसकी मान्यता अपने ही ढंग की है. हनुमानगढ़ी की तरह यह भी एक प्रमुख स्थान बन गया है मेरा. प्रमुख इसलिए नहीं कि यह मेरे द्वितीय मुख्यालय के रूप में ख्यात है. नहीं, यह बात नहीं. प्रमुखता इसकी इस अर्थ में है कि लखनऊ या इसके आस-पास अथवा दूर-दराज के भी किसी मंदिर में मेरी मूर्ति स्थापित हो रही हो तो उसकी प्राण-प्रतिष्ठा तब तक अपूर्ण मानी जायेगी जब तक इस मंदिर से प्राप्त सिंदूर और लंगोटे का प्रयोग नहीं हो. मंदिर से मुफ्त ही ये वस्तुएं वितरित होती हैं—घंटा और छत्र तक. मंदिरों का मंदिर है अलीगंज का यह हनुमान-मंदिर. मेरे इस स्थान की महिमा प्रत्येक ज्येष्ठ मास में बढ़ आती है जब हर मंगल को यहां विशाल मेला जुटता है. नर-नारियों, बाल-वृंदों की अपार भीड़ उमड़ती है और उत्सवों-महोत्सवों का लंबा सिलसिला चल पड़ता है. भक्तों की आस्था का एक अपूर्व उदाहरण तब मिलता है जब मेले के एक सप्ताह पूर्व से ही शत-सहस्र व्यक्ति लाल लंगोटा पहने सड़कों पर पेट के बल घिसकते---प्रणाम निवेदित करते-----मंदिर की ओर बढ़ते हैं. इस प्रक्रिया में अधिकांश के पेट, छाती और ठुड्डी रक्त-रंजित हो उठते हैं पर श्रद्धा और भक्ति से अभिभूत इन भक्तों को शारीरिक पीड़ा का जैसे भान तक नहीं हो पाता.

खूब है अलीगंज का यह मेरा स्थान. मनोकामना-पूर्ति की पीठ ही मान ली है लोगों ने यह. रोज सैकड़ों मनौतियां मानी जाती हैं और उनमें अधिकांश पूरी भी हो आती हैं. इसका श्रेय जाता है मुझे. पर मैं बताऊं मैं तटस्थ ही रहता हूं अक्सर. जो कुछ होता है आपके प्रयास और इच्छा-शक्ति के बल पर ही. इच्छा का महत्व भी कुछ कम नहीं. इच्छा जब श्रद्धा से संयुक्त हो जाती है तो देवता चाहे न चाहे उसकी पूर्ति के सारे अवदान-उपादान स्वतः आकृष्ट हो आते हैं. अधिकांश स्थितियों में इतना और मात्र इतना ही योगदान होता है मेरा आपकी मनोकामनाओं की पूर्ति में. आपकी श्रद्धा, आपका विश्वास जाग्रत हो जाता है मेरी मूर्ति का संबल पा और श्रद्धा-विश्वास से संबलित आपकी आकांक्षा आकार ग्रहण कर लेती है.

श्रद्धा और विश्वास के इस आधार को आप साधारण नहीं समझें. विश्वास फल कर रहता है क्योंकि विश्वास बल देता है आपकी आकांक्षा को. यह सारा संसार, यह संपूर्ण ब्रह्मांड एक ही नियम पर टिका है और वह है पारस्परिक आकर्षण का. हर वस्तु, समान-धर्मी वस्तुओं को खींचती है अपनी ओर. विश्वास से बलवती हो आयी वायवीय इच्छा अपनी भौतिक प्रतिलिपि को आकृष्ट कर आपके सामने ला खड़ा करती है. यह सब कुछ, विश्व-ब्रह्मांड से सामान्य नियम के अंतर्गत ही घटित होता है. आपको पता है विश्वास के इस खेल के अत्याधुनिक उदाहरण का? नहीं तो बताता हूं.

आज से कोई लगभग दो हजार वर्ष (1987 वर्ष) पूर्व पैदा हुआ था क्राइस्ट. ईश्वर का बेटा कहते थे लोग उसे. चमत्कार-पूर्ण था उसका जीवन. जैसे कृष्ण ने अपने गुरु संदीपनी के पुत्रों को उनकी मृत्यु के वर्षों पश्चात् ला कर खड़ा कर दिया, उसी तरह क्राइस्ट ने भी कई निष्प्राणों को प्राण-दान दिए. क्राइस्ट की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी रोग-निवारण शक्ति जिसको आंग्ल-भाषा में 'हीलिंग पावर' की संज्ञा देते हैं. नेत्रहीनों को ज्योति और कोढ़ियों को 'काया' प्रदान करना क्राइस्ट के लिए साधारण बात थी. जिधर से निकलता वह ईश्वर-पुत्र उधर ही लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती--लंगड़े-लूलों और अंधों-कोढ़ियों की. लोग चिल्ला पड़ते----- "क्राइस्ट कृपया मुझे ठीक कर दो."

"तुम्हें विश्वास है मेरे बेटे कि मैं तुझे ठीक कर दूंगा?" क्राइस्ट किसी पीड़ित के पास रुकते और पूछते.

अगर जबाब आता--- "हां मेरे मालिक, तुम ऐसा कर सकते हो," तो रोग-विकार भी तत्काल चले जाते. अंधों को आंखें मिल जातीं, कोढ़ी को 'काया'. यह था विश्वास जनित चमत्कार. पर जबाब में जहां जरा भी देर होती, संशय की छाया की भी जहां झलक लगती वहां कुछ नहीं होता. उस ईश्वर-पुत्र के किये भी वहां कुछ नहीं होता जहां विश्वास का अभाव होता.

तो कह रहा था अलीगंज के अपने मंदिर की बात. आपका विश्वास ही फलता है यहां. और जगहों की अपेक्षा अगर वह यहां अधिक फलता है तो उसका कारण भी वही विश्वास ही है—युगों से फलीभूत होती लोगों की आस्था. वर्षों से इस स्थान पर फलता-बढ़ता लोगों का अदम्य विश्वास, उनकी अपार श्रद्धा. विश्वास के इस घनीभूत स्वरूप का सहारा पा लड़खड़ाता विश्वास भी अगर सशक्त हो आपकी मनोकांछा-पूर्ति का बहाना बन आता है तो श्रेय मुझे नहीं आपकी श्रद्धा, आपके विश्वास को ही मिलना चाहिए. मेरे तुलसी ने तो श्रद्धा और विश्वास को शिवा और शिव का स्वरूप ही कह दिया. उनकी प्रतिमा का एक मात्र साधन--"भवानी शंकरौ बंदे, श्रद्धा विश्वास रूपिणौ." तो जो विश्वास साक्षात् शिव के साक्षात्कार का आधार बन सकता है, जो श्रद्धा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं भवानी को अनुकूल कर सकती है, उस श्रद्धा, उस विश्वास के समक्ष अप्राप्य क्या रहता है, असंभव क्या बचता है?

तो मैं कहूंगा, अपनी श्रद्धा को ही संवारिए, अपने विश्वास को बल दीजिए और फिर मनौती चाहे अलीगंज के मंदिर में मानिए या अपने गांव के अश्वत्थ-वृक्ष के नीचे, उसे पूर्ण होने से कोई रोक नहीं सकता.

बात फिर घूम कर अलीगंज आ गयी. कहना यह था कि अयोध्या की हनुमानगढ़ी की तरह ही इस कामना-पीठ के इतिहास के पीछे भी किसी तथाकथित अहिंदू का ही हाथ है.

बात आज से कोई दो सो वर्ष पूर्व की है. अवध के नवाब थे मुहम्मद अली शाह. उनकी बेगम रबिया औलाद सुख से वंचित थी और दवा-दारू से लेकर दुआ-प्रार्थना तक बे-असर साबित हुई थी. तब इस मुसलमान-भाई को किसी ने एक हिंदू फकीर की याद दिलाई. इस्लामबाड़ी में कभी रहा था मेरा एक छोटा-सा मंदिर. पर उसका अब कोई अता-पता नहीं था. इस्लामबाड़ी का नाम पहले कभी हनुमानबाड़ी ही था किंतु आज से कोई 600 वर्ष पूर्व बख्तियार खिलजी ने इसका नाम इस्लामबाड़ी कर दिया. इसी इस्लामबाड़ी में रहते थे वह विरक्त साधु. बाड़ी के बाबा के नाम से ही लोग जानते थे उन्हें. मुझ में अपार श्रद्धा थी उनकी. रबिया बेगम ने बाड़ी के बाबा के यहां आंचल फैलाया और बाबा ने फरियाद पहुंचाई मुझ तक. पर मैंने रबिया की भक्ति की परीक्षा लेनी चाही. स्वपन हुआ बेगम को-- "इस्लामबाड़ी के टीले के नीचे गड़ी-पड़ी है एक हनुमान-मूर्ति. उसका उद्धार कर किसी मंदिर में स्थापित करो उसे."

रबिया दौड़ी बाड़ी के बाबा के पास. स्वप्न का संवाद सुनाया और बाबा के निर्देश पर खुदाई आरंभ हो गयी टीले की. मिट्टी के नीचे दबी मिली वही मूर्ति जो आज अलीगंज के मंदिर में स्थापित है. हाथी पर लादकर वह विग्रह लाया गया था यहां. इरादा था गोमती-पार ले जाकर मुख्य नगर में स्थापित करने का. पर हाथी बढ़ा ही नहीं इस स्थान से आगे. लोग कहते हैं भा गया मुझे यह स्थान. बेगम ने ही बनाया यहां पहला मंदिर. मूर्ति के भोग-राग और पुजारी तथा साधु-संतों के भरण-पोषण के लिए भूमि मिल गयी. महमूदाबाद रियासत से. इस तरह मेरे इस मंदिर और भूमि दोनों का श्रेय जाता है उन्हें जिन्हें आप विधर्मी की संज्ञा देते नहीं थकते. अब सोचने की बात यह है कि विधर्मी कौन है? वह जो धर्म के नाम पर मात्र रस्म-अदायगी करता है अथवा वह जो नींव को पक्की करने के लिए मंदिरों के कंगूरे गढ़ता है?

खैर, अलीगंज नहीं पड़ा था तब इस मुहल्ले का नाम. इसके लिए भी एक चमत्कार को घटित होना था. तब हुआ करते थे अवध के एक बड़े मशहूर नवाब ---- नवाब वाजिद अली शाह. शाह की दादी आलिया बेगम ने एक बार बिस्तर पकड़ा. किसी ने याद दिलाई मेरे मंदिर की और रबिया बेगम की संतान–प्राप्ति की कहानी की भी. बेगम ने मनौती की और रोग-मुक्त हो गयी तो बहुत बड़ा उत्सव आयोजित किया मेरे मंदिर पर. फकीरों, दरवेशों और साधु-संतों को छककर खिलाया. गरीबों-भिखमंगों को निहाल किया. तभी से चल पड़ी मेले की परंपरा जो आज तक वर्तमान है और तभी से पड़ गया इस मुहल्ले का नाम अलिया बेगम के नाम पर ही अलीगंज.

यहीं पर समाप्त हो जाती अलीगंज के मंदिर की यह गाथा अगर नवाब बाजिद अली शाह की दरियादिली की अनगिनत कहानियों में एक इससे भी नहीं जुड़ी होती.

नबाब उन दिनों अपनी चहेती बेगम कैसर के नाम पर कैसर बाग का निर्माण करा रहे थे. तरह-तरह के फूल-पौधों और ताल-तड़ागों से घिरी एक शानदार इमारत खड़ी हो रही थी बेगम के नाम पर.

इधर मारवाड़ का एक व्यापारी कई ऊंटों पर कस्तूरी-केसर लादे पहुंचा था लखनऊ की मंडी सआदतगंज में. कस्तूरी-केसर के लिए देश भर में विख्यात इस मंडी में वह सौदागर जटमल, पड़ा रहा दिनों तक पर किसी ने हाथ नहीं लगाया एक दाने को भी. जटमल घबराया तो लोगों ने याद दिलाई 'अलीगंज के हनुमान जी' की. जटमल पहुंचा इस मंदिर में. मरता क्या न करता? लाखों पर पानी फिरने, जीवन भर की पूंजी के डूबने के भय ने भर दी उसकी कातर प्रार्थना में इतनी शक्ति कि अपूर्व हो आयी उसकी श्रद्धा, अडिग हो गया उसका विश्वास. श्रद्धा-विश्वास की तरंगाभित लहरों ने जा छुआ नवाब के कुछ दरबारियों के मन-प्राणों को और उनमें एक नवाब को एक विचित्र प्रस्ताव दे बैठा----"बेगम साहिबा के नाम को रोशन करना हो तो पुतवा दीजिए पूरे कैसर महल को केसर-कस्तूरी से. पूरा इलाका गम-गम कर उठेगा केसरिया गंध से और सार्थक हो जायेगा कैसर-बाग नाम भी."

भा गयी नवाब को दरबारियों की बात और बिक गया जटमल का सारा केसर. मैंने उसके लिए कुछ किया या नहीं पर दोनों हाथों से धन उलीचा था उस सौदागर ने इस मंदिर के नाम. मूर्ति के ऊपर सोने का छत्र चढ़ाया जो आज तक वर्तमान है. स्थान का नव-निर्माण हुआ और ऐसा उत्सव-आयोजन संपन्न हुआ यहां कि हजारों लोगों की भीड़ उमड़-उमड़ पड़ी कई दिनों तक. मेले का महत्व तब से निरंतर बढ़ता गया और आज यहां के ज्येष्ठ मासीय मेले का महत्व दूर-दराज तक विख्यात है और उसकी हनुमान-भक्ति अधूरी ही मानते हैं आप जिसने अलीगंज के मंदिर में माथा नहीं टेका हो और इसके मेले में भाग नहीं लिया हो. □

ग़ज़ल

सुखवीर विश्वकर्मा

इस सदी को ये क्या हो गया दोस्तो,
आदमी अजदहा हो गया दोस्तो.

अब तो चारों तरफ छा गयी खामोशी,
अम्न मुर्दार सा हो गया दोस्तो.

फिक्र अब रोशनी की किसी को नहीं,
हर तरफ धुंधलका हो गया दोस्तो.

हर जगह करतो-खूं और डाकेजनी,
देश में क्या से क्या हो गया दोस्तो.

संतरी संतरी-सा न दिखता कहीं,
लूट का ये खुदा हो गया दोस्तो.

नस्ले आदम ही अब खोखली हो गयी,
प्यार भी खोखला हो गया दोस्तो.

हर तरफ मुफलिसी का धुआं ही धुआं,
सांस लेना सजा हो गया दोस्तो.

घुल रहा है हवा में जहर खौफ का,
वक्त इक हादसा हो गया दोस्तो.

जिंदगी का सफर हो गया बेमजा,
दर्द भी लावबा हो गया दोस्तो.

इस चमन पे गिरेंगी कई बिजलियां,
तुमने जो कुछ कहा हो गया दोस्तो.

पेड़ का दर्द कोई भी सुनता नहीं,
पेड़ बेआसरा हो गया दोस्तो.

लूट लेता है जो कर्म के नाम पर,
धर्म भी इक जुआ हो गया दोस्तो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ 36 से जारी

नहाते-नहाते उस पार से अपनी देवी का कंठस्वर उसके भीतर के तारों को कुछ इस तरह छेड़ गया कि वह उसी क्षण उसकी एक झलक भर पाने को व्यग्र और उत्कंठित हो उठा. क्या हुआ यदि उस पवित्र और प्यारी मस्ती की झोंक में वह कूद पड़ा. रोजमर्रा की अपनी नदी में—और तैरते-तैरते थोड़ा ज्यादा ही आगे निकल गया. जहां से उसने अपनी प्रेयसी के अंगों की एक झलक भर पाई होगी, वह जगह क्या उस पेड़ से भी नजदीक रही होगी?

खैर, किस्सा कोताह यह, कि विदुला का नदी-स्नान उसके बाद बंद होना ही था और हुआ. इसमें भी कोई शक नहीं कि पुजारीजी अभी उसी वर की प्रतीक्षा में एक वर्ष मजे से गुजार देते अगर यह फिजूल-सी घटना नहीं घटी होती. घटना भी क्या, निरी बकवास.

लोग सीधेपन के, सरलता के खामखाह गुन गाते हैं. अरे क्या है इस जिंदगी में और खुद आदमी में, जो सीधा हो. हर जगह बांकपन है, हर जगह घुमाव है. यह जितनी सारी चीजें तुम्हारी आंखों को, मन को अटकाती हैं, इनमें से एक भी चीज बताओ, जो सीधी हो. यह वर्षा, यह टहनी, नदी की लहर, चिड़िया या तितली की उड़ान...बताओ इनमें कौन-सी चीज तुम्हें सीधी लगती है? मगर इन सीधों की जिद है कि नहीं साहब सब सीधा होता है और सीधा होना चाहिए. जो नहीं दिखता सीधा, उसे हम सीधा कर देंगे. अरे जरा अपनी खुद की चाल ही देख लो.

गोपाल सुबह से शाम तक घाट पर बैठा रहता. विदुला की प्रतीक्षा में. विदुला क्यों आने लगी. गोपाल की समझ में कुछ नहीं आया. एक दिन मित्र-मंडली में से किसी ने उस तक वहीं डाक पहुंचा दी कि इसी हफ्ते विदुला की सगाई पक्की हो जायेगी और इसी महीने ब्याह भी. पुजारीजी स्वयं जाके लड़के को देख आये हैं और विदुला को भी दिखा दिया है.

मंजु ने डाक पहुंचा दी. उसके सामने ही विदुला ने गोपाल की चिट्ठी खोल के पढ़ी. चिट्ठी में टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में सिर्फ इतना ही लिखा हुआ था—मेरी बहन के कहे मुताबिक—कि कल शाम तक किसी तरह तुमसे भेंट नहीं हो पाई तो तुम मेरी लाश ही देख पाओगी. मैं घाट पर ही तुम्हारा इंतजार करूंगा. तुम नहीं आयीं, तो जहां जिस जगह तुम नहाती थीं वहीं उसी जगह पर मैं गले में पत्थर बांधकर डूबकर प्राण दे दूंगा.

विदुला छटपटा उठी. ऐसे प्रेम पत्र की उसे कल्पना भी नहीं हो सकती थी. उसने तत्काल एक निर्णय लिया. चिट्ठी लिखकर मंजुला के ही हाथों गोपाल के पास संदेश भिजवाया—"घाट पर नहीं, तुम मुझे मंदिर के पिछवाड़े मिलो. आज ही आधी रात."

वे मिले, जैसे कि, पहले कभी नहीं मिले थे. दो प्रेमी, जो बरसों से लगभग रोज ही मिलते रहे हों और खुले में, दिन के प्रकाश में ही मिलते रहे हों—कल्पना करो कि वे जब पहली बार ऐसी हालत में घुप्प अंधेरे एकांत में दुनिया की नजरों से छुपकर मिलेंगे तो वह मिलना कैसा होगा? बस उसी तरह वे मिले और मिल के अलग हुए.

दूसरे दिन सुबह-सुबह गांव में कुहराम मच गया. गोपाल ने, लगता है, लौटने के तुरंत बाद ही जहर खा लिया. सुबह वह बिस्तर में मरा हुआ पाया गया. सिरहाने उसके एक चिट्ठी पड़ी हुई थी जिसमें मोटे मोटे हरफों में लिखा हुआ था—"मैंने अपनी खुशी से जहर खाया है. मेरी मौत के लिए मेरे सिवा और कोई भी जिम्मेदार नहीं है. सबको मेरा अंतिम प्रणाम—सबका गोपाल."

अधेड़ रेंगता हुआ खोह से बाहर निकला. "चलो अब चलें," उसने कहा, "बारिश बंद हो गयी. सिर्फ हल्की-सी फुहार है. शाम की बारिश का कोई ठिकाना नहीं."

युवक आंखें मलता हुआ बाहर निकल आया तो अधेड़ ने उससे कहा, "क्या बात है जी? तुम तो लगता है जैसे नींद से निकल के आ रहे हो. सो गये थे क्या?"

"नहीं तो," युवक ने कहा, "लड़की का क्या हुआ? यह तो बताया नहीं आपने."

"बताता हूं. पहले तुम यहां से निकलो," अधेड़ तेज चाल से आगे-आगे बढ़ गया.

"किस कदर अंधेरा है," पीछे से युवक की आवाज सुनाई दी. "कितना बजा होगा?"

"अभी बहुत देर नहीं हुई," अधेड़ ने युवक से कहा." कुहरा है, जंगल है, इससे ऐसा लगता है अभी मोटर-सड़क आ जायेगी. तभी पता चलेगा."

"लड़की का क्या हुआ?" युवक ने फिर कुरेदा. अधेड़ जोर से हंसा, "तुम्हारा क्या ख्याल है?"

युवक चुपचाप रहा. अधेड़ ने बोलना शुरू किया—कुछ दिन बाद लड़की की सगाई होने वाली थी ना? हो गयी. महीने भर बाद विवाह का मुहूर्त था. जब तक विवाह नहीं हो गया, पूरा गांव चुप रहा. चुप रहने की ही बात थी. कैसे चुप न रहता! पूरा गांव उमड़ पड़ा था .कैसे न उमड़ता!

किंतु जब लड़की ससुराल में कुछ दिन रहकर अपने मायके लौट के आयी तो उसने क्या देखा कि गांव के सभी लोगों की निगाह ही बदल गयी है. खासकर औरतें तो उससे ठीक से बात ही नहीं करतीं. उसे देखते ही मुंह फेर लेती हैं.

बेचारी विदुला जब बेहद परेशान हो गयी—उसकी सहेलियां भी एक-एक कर कन्नी काटने लगीं—तो उसने मंजुला को ही पकड़ा, "आखिर क्या हो गया तुम लोगों को? इस तरह अजनबियों की तरह क्यों ताकते रहते हो मुझे? कुछ बोलते क्यों नहीं?"

मंजुला को जितना मालूम था, उसने बता दिया, "विदुला! गांव की औरतें कह रही हैं तुमने और गोपाल ने एक साथ जहर खाकर मर जाने की शपथ ली थी. वह तो बेचारा चला गया सचमुच और तुमने शपथ तोड़ दी."

विदुला यह सुनकर सकते में आ गयी. "यह झूठ है," उसने कहा. "और तुम? तुमको तो सब पता है. क्या तुम भी उनकी बातों पर विश्वास करती हो?"

"नहीं, मैं तो नहीं करती," मंजुला बोली, "मैं तो कितना समझाती हूं. मगर कोई सुने तब न?"

तुम समझ रहे हो. मेरे गांव की औरतों पर मंजुला के समझाने-बुझाने का कोई असर नहीं पड़ा. एक बार ही क्यों, विदुला जब कभी गांव आयी, उसका इसी तरह मूक बहिष्कार हुआ. पुजारीजी से जरूर सबको सहानुभूति है. किंतु विदुला से नहीं. तुम आज भी उनसे पूछो तो वे तुम्हारे सामने डंके की चोट पर यही दुहरा देंगी कि विदुला और गोपाल दोनों ने उस रात एक दूसरे का हाथ पकड़ के शपथ ली थी कि इस जन्म में न सही, वे अगले जन्म में अवश्य एक-दूसरे को पा लेंगे. उन्होंने आज तक विदुला को इसके लिए क्षमा नहीं किया कि उसने गोपाल का दिया जहर क्यों नहीं खाया. क्यों उसे धोखा दिया.

तथ्य—मैं तुम्हें बताता हूं—तथ्य निश्चय ही यह नहीं है. गोपाल ने उस रात विदुला को अपने इरादे का रंचमात्र भी आभास नहीं दिया था. इसके ठीक विपरीत, विदुला तो सब कुछ के लिए तैयार होकर आयी थी. गोपाल के साथ गांव छोड़के भाग जाने तक के लिए. मगर गोपाल तो गोपाल ही था. वैसा कुछ उसने जताया ही नहीं. उल्टे यही कहता रहा कि उसकी मनोकामना पूरी हो गई, उसे कुछ भी नहीं चाहिए और विदुला को उसके योग्य वर मिल गया है, यह जानकर वह प्रसन्न है, आशीर्वाद देने आया है...इत्यादि-इत्यादि.

तथ्य तो यही है—अगर विदुला ने मंजु को जो बताया, उसे तथ्य मानें तो. मैं तो यही मानता हूं. मगर एक पूरा और समूचा गांव जो मानता है, वह तथ्य नहीं है, बकवास है, ऐसा भी कैसे कहा जाय! क्यों? तुम क्या सोचते हो? तुम्हारा क्या ख्याल है?

युवक चुपचाप चलता रहा. वह अपनी ही उधेड़-बुन में खोया था: क्या यही सवाल पूछने के लिए अधेड़ ने उसे इतनी लंबी कहानी सुनाई थी?...वह कुछ तय नहीं कर पाया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

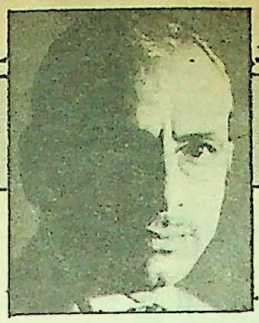

राजेंद्र राव

सांस्कृतिक दारिद्र्य हटाओ

किसी विकासोन्मुख नवोदित राष्ट्र को प्रौद्योगिकी, सुरक्षा और चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में समुन्नत देशों से सहायता लेनी पड़े तो बात समझ में आती है. परमाणु ऊर्जा केंद्र, भारी कारखाने और मेट्रो रेल के लिये हमने विदेशी तकनीक और धन लिया है क्योंकि समय की रफ्तार के साथ कदम मिला कर चलने के लिये यह जरूरी था लेकिन कला और संस्कृति के क्षेत्र में गौरांग प्रभुओं के अनुदान के बिना कौन-सा काम रुका जा रहा था? ज.ले.सं. की केंद्रीय पत्रिका 'नया पथ' के अंक 4 में अजय तिवारी ने अपने लेख 'अशोक वाटिका में सांस्कृतिक जागरण' में इस महत्वपूर्ण प्रश्न को उठाया है. भारत की सांस्कृतिक दरिद्रता को दूर करने के उद्देश्य से बने मंच, भारत भवन और वत्सल निधि जैसे संस्थानों को अमेरिका के फोर्ड फाउंडेशन द्वारा स्वीकृत अनुदानों को स्वीकार करने की मानसिकता आखिर हमें किस ओर ले जायेगी? एक समय तो ऐसा था जब घर-घर से विदेशी कपड़े बटोर कर होली जलायी गयी. स्वदेश और स्वदेशी का नारा लोगों की जुबान पर था और आज निहायत बेशर्मी से हम विदेशी धन को सांस्कृतिक उत्थान के लिये स्वीकार कर लेते हैं.

अपने लेख में अजय तिवारी बताते हैं कि "सन् 84 में भारत भवन की स्थापना के लिये 20 लाख रु. की फोर्ड फाउंडेशन की सहायता का मामला उजागर होने पर सचिव अशोक वाजपेई ने बड़े गर्व से कहा था भारत भवन में राज्य और केंद्र शासन ने लगभग चार करोड़ रुपये निवेश कर इसे राष्ट्रीय कला केंद्र के रूप में विकसित किया है. बीस लाख रुपये की राशि इतनी अधिक नहीं है कि अगर उसमें कोई शर्तें होतीं तो उसे हम मन मारकर मान लेते.' यह भी कि, 'संयोग से '84 में ही पता चला कि वत्सल निधि को 25 हजार डालर का अनुदान फोर्ड फाउंडेशन से स्वीकृत है—" बहरहाल हमें खुशी इस बात की है कि इन करोड़ों रु. से बने भवनों से हिंदी कथाकारों का अभी तलक दूर का नाता है.

नयी पत्रिकाएं

कई नयी साहित्यिक पत्रिकाएं आयी हैं. ज.ले.सं. के तीसरे राष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर 'नया पथ' के अलावा 'नया विकल्प' तथा 'उद्भावना' के कलेवर और सामग्री देखकर खुशी होती है. शहर लखनऊ से गोपाल उपाध्याय ने पुनः प्रकाशित उत्कर्ष का दूसरा अंक प्रकाशित किया है जिसमें ख्वाजा अहमद अब्बास की एक प्रतिनिधि कहानी और उन पर शकील सिद्दीकी का सुंदर लेख है. लखनऊ से ही वीरेंद्र यादव और राकेश के संपादन में प्रकाशित हो रही है साफ सुथरी और गंभीर पत्रिका 'प्रयोजन'

कफन का बखिया

हिंदी साहित्य के अफलातूनी आलोचकों की सम्मानीय सूची में एक नाम और, अर्चना वर्मा. अनुमान है कि आप हिंदी साहित्य की प्राध्यापिका हैं. 'कफन' जैसी सहज ही बोधगम्य कहानी के पुनर्मूल्यांकन में आपने अपनी वैश्लेषिक प्रतिभा का जबर्दस्त प्रदर्शन किया है. 'अनेक रचनाओं का जटिल सत्य' जैसे भारी भरकम शीर्षक की व्याख्या में, घीसू के किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान होने में विचार शब्द पर विचार करने का यह अंदाज देखें, "इस सहजता या अनायासता का कारण यह है कि विचारधारा को उस स्थिति में बिना किसी शंका या प्रश्न के, असंदिग्ध रूप से स्वीकार कर लिया गया है, कभी परंपरा तो कभी मर्यादा के नाम पर तो कभी बिना किसी नाम के, मात्र अभ्यासवश. दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सिद्धांत के बिना व्यवहार संभव नहीं है. जहां वह व्यवहार में अलग से साफ-साफ दिखाई नहीं देता, वहां भी वह मौजूद तो है पर या तो अभी तक अलग से पहचाना और परिभाषित नहीं किया गया है—और जब किया जायेगा तो ऐसा लगेगा कि व्यवहार से सिद्धांत निकला है जबकि वह पहले से ही व्यवहार में निहित था—या फिर वह इतना अधिक जाना-पहचाना और स्वाभाविक हो चुका है कि हम उसे सहज बुद्धि का व्यापार समझने के आदी हो गये हैं अर्थात् जीवन के दैनिक व्यवहार में विचारधारा या सिद्धांत का अर्थ आम आदमी द्वारा जीवन और जगत के प्रत्यऐकता की विधि है."

(उद्धरण हंस, अगस्त 87 अंक से साभार)

कुलीन शिशु

प्राध्यापकीय अफलातूनों में एक पुराना नाम है—बटरोही. आप हर साल छपने वाली हिंदी कहानियों में से दो प्रतिनिधि कहानियां छांटते हैं. यह गुरुतर दायित्व भली भांति संभालते हुए आप रचनात्मक कर्म में भी संलग्न रहते हैं. आपका विचार है कि "एक पूरी की पूरी पीढ़ी ऐसी तैयार हो चुकी है जिसमें आस्थाएं आस्थाहीनता में से पैदा हुई हैं. जिसके मूल्य मूल्यहीनता के बीच से निकले हैं और...." अपनी पीढ़ी के बारे में बटरोही सगर्व बताते हैं कि—"मुझे उस दिन बहुत अच्छा लगा था, जब मैं गोविंद मिश्र से पहली बार मिला और शैलेशजी ने मेरा परिचय उनसे इस रूप में दिया, 'अरे, इन्हें नहीं जानते, ये प्रेमचंद के नाती हैं—बटरोही!' और मुझे सचमुच इस बात का गर्व है कि एक रचनाकार के रूप में मेरे दादा प्रेमचंद और पिता अज्ञेय जी हैं." (कहानियां—सितंबर '87 से साभार) अब बताइये इस सादगी पे कौन न मिट जाये!

फ्रायड और रीतिकाल

हिंदी साहित्य के आदिकाल याने मध्यकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का सम्यक् अध्ययन, अनुशीलन और समाजशास्त्रीय मूल्यांकन प्रस्तुत करना डा. रमेश कुंतल मेघ जैसे दिग्गज विद्वान के ही बूते का काम है. आपकी पुस्तक 'मनखंजन किनके' रीतिकाल के फ्रायडीय विश्लेषण के लिहाज से एक दिलचस्प और ज्ञानवर्द्धक पुस्तक है. डा. मेघ ने हिंदी शोध कर्त्ताओं के परंपरागत पोंगापंथ को ताक पर रखकर रीति काव्य और सूरदास का वैज्ञानिक दृष्टि से साहसिक विवेचन किया है. फ्रायड के सिद्धांतों को रीतिकाल से लेकर आधुनिक युग तक प्रासंगिक बताते हुए डा. मेघ ने लिखा है कि "अनुभूतियों की तीव्रता और यौन लीलाओं, इरोटिक प्लेज की चरम परिणति इन कृतियों में हुई है और यह सभी प्रचुरता नारी को ही केंद्र बनाकर प्राप्त की गयी है. नारी के सौंदर्य और काम का इतना मधुमय प्रवाह केवल अकेले नारी ने नहीं, उसकी कांत संगिनी प्रकृति ने भी वहन किया है.....साहित्य के परंपरागत नख-शिख-वर्णन, बारहमासा, रीतिकालीन नायिकाएं, मृदुला गर्ग और जैनेंद्र के उपन्यासों की कई नारियां आदि उपर्युक्त तथ्य का प्रमाण है. कला के प्रेम और श्रृंगारिक पक्षों में कामपूर्वृत्तियों की प्रचुरता तो मिलती ही है." □

(मनखंजन किनके, पृष्ठ 16 से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवालों के आइने में हिंदी कहानी के सौ वर्ष

सारिका द्वारा आयोजित परिचर्चा "सवालों के आइने में हिंदी कहानी के सौ वर्ष" में आपने लक्ष्मीनारायण लाला, राजेंद्र यादव, हिमांशु जोशी, रमाकांत और गंगाप्रसाद विमल के विचार पढ़े. (नवंबर, 87 अंक में)

इस बार पढ़िये मैनेजर पांडेय, राजकुमार सैनी, चित्रा मुद्गल, सुधीश पचौरी और ब्रजेश्वर मदान के विचार कि उन्हीं सवालों के आइने में ये कहानी की तस्वीर को किस तरह देखते हैं....?

सत्तर के बाद कहानी का नक्शा बदल गया

मैनेजर पांडेय

हिंदी कहानी के मूल्यांकन के प्रसंग में हालांकि चर्चा प्रेमचंद युग से की जाती है लेकिन हिंदी कहानी का इतिहास प्रेमचंद से पुराना है. यह सही है कि हमारी कहानी की असली परंपरा प्रेमचंद की कहानी से शुरू होती है. एक जमाने में प्रेमचंद की 'बड़े घर की बेटी', 'पंच परमेश्वर', 'ईदगाह' जैसी कहानियां बड़ी प्रसिद्ध थीं. नयी कहानी की चर्चा करते हुये 'कफन' को हिंदी की पहली नयी कहानी बताया गया. जबकि सन् सत्तर के बाद हिंदी कहानी में जो बदलाव आया है उसमें प्रेमचंद की दूसरी कहानियां 'सद्गति', 'आहुति' की चर्चा एक नये सिरे से हुई.

गौर से ध्यान दिया जाये तो प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के कथाकारों के लिए सबसे बड़ी चुनौती स्वयं प्रेमचंद थे. प्रेमचंद के बाद सामाजिक यथार्थ की जगह मनोवैज्ञानिक यथार्थ की खोज–पड़ताल में व्यस्त रहने वाले जैनेंद्र और अज्ञेय पहले थे. यह चुनौती यशपाल के भी सामने आयी, लेकिन यशपाल ने औरों की तरह पीछे हटने की अपेक्षा प्रेमचंद की इस चुनौती का सामना किया. उनकी कहानियां सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ की दृष्टि से प्रेमचंद की परंपरा में इस बात का एक जीवित साक्ष्य हैं. आजादी के बाद जब नयी कहानी का आंदोलन आया तो उसका मिजाज एकदम बदल गया. यह कहानी प्रेमचंद की परंपरा से बिल्कुल भिन्न थी जिसमें कोई सामाजिक या राजनीतिक आंदोलन की भंगिमा नहीं है. मेरी दृष्टि में नयी कहानी का आंदोलन पूर्णतः एक साहित्यिक आंदोलन था जिसमें रोमैंटिकता और कलावाद की जबर्दस्त छौंक थीं.

इसलिए कुछ आलोचकों का यह कहना कि नयी कहानी का आंदोलन एक सांस्कृतिक नवजागरण का उभार था, मेरी दृष्टि में यह भ्रांतिपूर्ण कथन है. गौर से देखा जाये तो नयी कहानी के समक्ष कोई चुनौती थी ही नहीं. उनकी एकमात्र चुनौती थी स्वयं को प्रतिष्ठित करना. इसलिए उन्होंने तमाम तरह के उद्योग शिल्प के चमत्कार के रूप में प्रकट किये. लेकिन शिल्प के आतंक का यह खेल बहुत दिन तक चल नहीं सको. हिंदी पाठक मध्यवर्गीय दिमाग वाले कथाकारों की निजी हताशा और फ्रस्ट्रेशन से ऊब गया. इन कथाकारों का सेक्स–चित्रण भी बहुत फूहड़ निकला.

लेकिन, सत्तर के बाद हिंदी कहानी का नक्शा ही बदल गया. दरअसल, हिंदी कहानी में इस बदलाव के लिए भारतीय राजनीति में जन-आंदोलनों की काफी महत्वपूर्ण भूमिका है. इन आंदोलनों में नक्सलवाड़ी का आंदोलन बहुत महत्वपूर्ण है. मेरी दृष्टि में इस आंदोलन ने हिंदी कहानी की एक नयी पीढ़ी पैदा की, जिसने अपने समय की कहानी को सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों में व्यापक स्तर पर जोड़ा है, जिसे मैं कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानता हूं. उल्लेखनीय है कि हिंदी कहानी की इस दिशा को बदलने के लिए आलोचकों ने कोई काम नहीं किया बल्कि इसका श्रेय जन-आंदोलनों को है. ऐसे कहानीकारों में ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, स्वयं प्रकाश, विजेंद्र अनिल, सुरेश कांटक, संजीव, नमिता सिंह और नासिरा शर्मा का नाम उल्लेखनीय है. यहां मैं समकालीन कथा-सहित्य में महिला कथाकारों की स्थिति की खास समस्या की ओर इशारा करना चाहूंगा, जिसकी ओर लोगों का ध्यान कम गया है. अक्सर कुछ आलोचक समकालीन महिला कथाकारों पर व्यावसायिक लेखन का आरोप लगाते हैं जो वाजिब नहीं है. असल में महिला-लेखन की समस्या उसके सीमित अनुभवों के कारण है. चूंकि हमारे समाज में नारी सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में उस तरह सक्रिय साझेदारी नहीं कर पाती जैसा उसे करना चाहिये. उसे ऐसी सीमित जिंदगी जीनी पड़ती है जहां सामाजिक संदर्भों का व्यापक अनुभव मिल नहीं पाता. फलतः उनके लेखन में एकरसता और दुहराव होता है.शायद इसीलिए, समकालीन हिंदी कथा-लेखन में महिला-लेखन की औसत ऊंचाई मन्नू भंडारी तक सीमित है. यहां महाश्वेता देवी और दुर्गा भागवत जैसी लेखिकाओं की कल्पना असंभव है. इसलिए जरूरी है कि स्त्री की, दुनिया को विस्तार देने के लिए उसे जन-आंदोलनों में हिस्सेदारी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौका दिया जाना चाहिये. मेरी राय में हिंदी की लेखिकाओं को सामाजिक संघर्ष में पुरुष लेखकों के साथ आगे आना चाहिये. तभी उनके लेखन का कोई अर्थ भी हो सकता है.

मेरी पीढ़ी की विडंबना

चित्रा मुद्गल

औद्योगीकरण की संस्कृति ने समाज के हर वर्ग के विकास और उत्थान की आड़ में मालिक और मजदूर जैसी व्यवस्था को पोसा....

व्यवस्थागत बढ़ते दबाव के बीच घुटते हुए व्यक्ति का रियक्ट न करना...बढ़ते आर्थिक दबावों के चलते मानवीय भावनाओं का व्यवसायीकरण..

'मामला आगे बढ़ेगा अभी' में कोठी वालों की कार धोकर गुजारा करने वाला किशोर बंडू जब एक रोज यह महसूस करता है कि उसकी हाड़तोड़ मेहनत और ईमानदारी से बेअसर सक्सेना साहब बीमारी के कारण हुए खाड़े का भी पैसा काट लेते हैं तो वह उनके व्यवसायी आचरण से क्षुब्ध होकर एकाएक विद्रोह पर उतर आता है और जिस कार को वह बड़े जतन से धो–पोंछकर चमका-दमका कर रखता था उसे सरिये से पीट-पाट कर डिब्बा बना देता है. व्यक्ति के 'रियक्ट' करने को रेखांकित करती उपरोक्त कहानी के अलावा कुछेक अन्य कहानियां हैं 'केंचुल', 'त्रिशंकु', 'बंद चेहरे', 'ब्लेड़', 'फातिमा बाई कोठी पर नहीं रहती', 'गर्दी' आदि. यह 'रियक्ट' करना चाहे शोषण के खिलाफ हो या स्वयं अपनी कुंठाओं या कमियों का इसी प्रकार 'जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं'. गांव के हारे हुए सरपंच ठा. सुमेर सिंह के यहां अब भी परजा के रूप में सेवा टहल करने वाली अपने ही वोटों से शोषित सुखन्न भौजी की त्रासदी है. किस तरह वोट की राजनीति सर्वहारा वर्ग के उत्थान की आड़ में बड़ी कुशलता से उनका इस्तेमाल कर अपना उल्लू सीधा कर रही है. ये सामाजिक विसंगतियां हमारे चारों ओर मोह भंग का नैराश्य बुन रही हैं. यह मेरी पीढ़ी के परिवेश की विडंबना है. यही मेरी रचनाओं की मुख्य जमीन है. 'कलम हुये हाथ', 'कसाईबाड़ा', 'मुहिम', एक थी 'हंसमुख दे', 'अपना-आकाश', 'चीं घोड़ी', 'टेपचू', 'लड़ाई है', 'कर्फ्यू' (नमितासिंह), 'बिरजू तो मारा ही जायेगा', 'अपराध', 'यह नाटक नहीं है', 'खुदके खिलाफ' आदि ढेरों ऐसी कहानियां हैं जो अपने समय की ईमानदार गवाह हैं □

'नई कहानी आंदोलन' के प्रति

राजकुमार सैनी

हिंदी कहानी की सौ वर्ष (लगभग सौ वर्ष कह लीजिए) की उपलब्धियों को मैं न तो आशावादी के नजरिये से देखता हूं न निराशावादी नजरिये से. मैं उसे गंभीर यथार्थवादी नजरिये से देखता हूं. प्रेमचंद से पहले की कहानी गल्प तथा रहस्यों की रोमांचभरी मानसिकता की कहानी थी. प्रेमचंद के युग में एक यथार्थवादी सामाजिक कहानी ने जन्म लिया और होश संभाला. प्रेमचंद के साथ-साथ कौशिक, प्रसाद, सुदर्शन आदि उस युग के कहानीकारों को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने हिंदी की आधुनिक कहानी को विकसित किया. इन्होंने हिंदी कहानी को लल्लू लाल के 'प्रेम सागर' और सैयद इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी', किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती', बंगमहिला की 'दुलाई वाली' और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' जैसी पुरानी कहानियों के मायाजाल से निकाल कर यथार्थवादी जमीन पर उतारा. 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा', 'पंच परमेश्वर' यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहानियां थीं. गुलेरी की 'उसने कहा था' और कौशिक की 'ताई' शीर्षक कहानियां भी यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहानियां हैं. प्रेमचंद ने अपने परिमाणपरक और गुणपरक कहानी साहित्य द्वारा यथार्थोन्मुख आदर्शवाद से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तक की यात्रा की. प्रसाद और निराला जैसे कथाकारों ने हिंदी कहानी की इस यात्रा को आगे बढ़ाया. बाद में राहुल, यशपाल, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, अमृतराय, नागार्जुन, मुक्तिबोध, भीष्म साहनी, अमरकांत, भैरव, मार्कंडेय, परसाई, शेखर जोशी, ज्ञानरंजन, रामनारायण शुक्ल, इसराइल जैसे कहानीकारों ने इस यथार्थवादी हिंदी कहानी को अपने–अपने ढंग से विकसित और गुणांतरित किया.

दूसरी ओर जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, धर्मवीर भारती जैसे लेखकों ने इस यथार्थवादी हिंदी कहानी के विरुद्ध यथार्थवाद विरोध की कहानियां लिखीं.

इसके बीच एक मध्य-धारा थी जो शुरू से आज तक प्रवाहित होती रही है. चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, भगवती प्रसाद बाजपेयी, उपेंद्र नाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वर नाथ रेणु, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मोहन राकेश और रघुवीर सहाय जैसे कहानीकारों की कहानियां यथार्थवादी संकल्प और यथार्थवाद-विरोधी विकल्प दोनों के बीच की कहानियां हैं. इने कहानीकारों ने जाने-अनजाने दोनों तरह की कहानियां लिखीं. उदाहरण के लिए 'ठाकुर का कुआं', 'पूस की रात' (प्रेमचंद), 'बेड़ी', गूदड़ी का लाल' (प्रसाद), 'ज्ञानदान' (यशपाल), 'प्रभा', 'सुरैया' (राहुल), 'चतुरी चमार' (निराला), 'हत्यारे' (अमरकांत), 'अमृतसर आ गया है' (भीष्म साहनी), 'उखड़े खंभे', 'भोला राम का जीव' (परसाई), 'प्रचार', 'सहारा' (राम नारायण शुक्ल), 'उस्ताद', 'बदबू' (शेखर जोशी), 'घंटा', 'बहिर्गमन' (ज्ञानरंजन), 'फिर कहानी उसी की' (इसराइल) जैसी कहानियां यथार्थवादी संकल्प की कहानियां हैं जबकि 'लंदन की एक रात' (निर्मल वर्मा), 'रोज' (अज्ञेय), 'झाड़ी' (श्रीकांत वर्मा), 'गुलकी बन्नों' (धर्मवीर भारती) जैसी कहानियां यथार्थवाद-विरोधी विकल्प की कहानियां हैं.

मुझे लगभग सभी युगों की विभिन्न कहानियां आकर्षित करती हैं. साहित्य को देश–काल से जोड़कर तो देखता हूं लेकिन मैं उसे दशकों में बांटकर नहीं देखता. कौशिक की 'ताई' मुझे आज की भारतीय बुढ़िया की कहानी लगती है. लेकिन निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' मुझे पराधीन भारत में अंग्रेजी मानसिकता में जीनेवाले एक पुराने चरित्र की याद दिलाती है. 'ताई' जैसी बुढ़ियाएं उस समय रही होंगी, आज भी हैं, दूसरी ओर अंग्रेजी मानसिकता वाले चरित्र पराधीन भारत में तो थे ही, आज भी हैं. मुझे प्रेमचंद से लेकर परसाई, अमरकांत, भीष्म साहनी, राम नारायण शुक्ल और ज्ञानरंजन तक के दौर की और उनके बाद के दौर की भी विभिन्न कहानियां आकर्षित करती हैं, जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कफन', 'पूस की रात', ईदगाह' (प्रेमचंद), 'उसने कहा था' (गुलेरी), 'पुरस्कार'(प्रसाद), 'ताई' (कौशिक), 'बाबा भारती' (सुदर्शन), 'मिठाईवाला'(भगवती प्रसाद वाजपेयी), जज का फैसला (विष्णु प्रभाकर), 'डिप्टी कलक्टरी', हत्यारे', 'दोपहर का भोजन' (अमरकांत), 'चीफ की दावत', 'अमृतसर आ गया है' (भीष्म साहनी), 'फेस के इधर उधर', 'पिता', 'बहिर्गमन' (ज्ञानरंजन), 'बदबू', 'उस्ताद' (शेखर जोशी), 'राजा निरबंसिया' (कमलेश्वर), 'टूटना' (राजेंद्र यादव) और 'एक और जिंदगी' (मोहन राकेश) जैसी विभिन्न दौर-दौरों की कहानियों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा.

नयी कहानी आंदोलन के प्रति मैं निष्ठावान नहीं हूं. साहित्य को सामाजिक आंदोलनों से जुड़ना चाहिये न कि कोरे साहित्यिक आंदोलनों से. फिर नया और पुराना मूल्य सापेक्ष भी होता है. उदाहरण के लिए कबीर अज्ञेय की तुलना में मुझे अधिक समकालीन और आधुनिक लगते हैं.

समकालीन कहानीकारों में इसराइल (फिर कहानी उसी की), रमेश उपाध्याय (कामधेनु), रमाकांत (तवर), धर्मेंद्र गुप्त (समुद्र), प्रदीप पंत (इतने दिनों तक तुम कहां थे?), अवध नारायण मुद्गल (कबंध), चित्रा मुद्गल (जरिया), इब्राहिम शरीक, (नारायणी तू हार गई है!), असगर वजाहत (केक), पंकज बिष्ट (हल), ब्रजेश्वर मदान (लैटर बक्स), सच्चिदानंद धूमकेतु, (अजगर), मधुकर सिंह (बाढ़) आदि कहानियां ध्यान आकृष्ट करती हैं. तथापि ज्ञानरंजन (बहिर्गमन), राम नारायण शुक्ल (प्रचार), कमलेश्वर (राजा निरबंसिया), राजेंद्र यादव (टूटना), मन्नू भंडारी (यही सच है), परसाई (भोला राम का जीव), मार्कंडेय (बीच के लोग), भैरव (आंख क्यों भर आई है), शेखर जोशी (दाज्यू), अमरकांत (डिप्टी कलक्टरी), विष्णु प्रभाकर (धरती अब भी घूम रही है), भीष्म साहनी (चीफ की दावत), हंसराज रहबर (हिंडोलना), मुक्तिबोध (जिंदगी की कतरन), अमृतराय (सांवली लड़की), रांगेय राघव (गदल), रेणु (तीसरी कसम), प्रेमचंद (पूस की रात, कफन), प्रसाद (बेड़ी, ममता, पुरस्कार), निराला (राजा साहब को ठेंगा दिखाया) जैसी कहानियां हिंदी की श्रेष्ठ कहानियां हैं.

फिर भी अपनी इस यात्रा में अलग और देसी पहचान बनायी है

सुधीर पचौरी

हिंदी कहानी का इतिहास बहुत पुराना है. वह आधुनिक युग के आरंभ के साथ हिंदी में जन्मी है. अतः उसकी यात्रा यूरोपीय कथा साहित्य की तरह लंबी नहीं कही जा सकती. फिर भी हिंदी कहानी ने अपनी इस यात्रा में अपनी अलग और देसी पहचान बनायी है. इस पहचान की वजह से कई बार जब हम यूरोपीय कथा साहित्य को लेकर चली बहसों से निकले मानकों को इन पर लागू करते हैं तो कई बार अनर्थ हो जाया करता है. देखने में यह आता है कि अपने यहां यानी हिंदी में उपन्यास उतना नहीं विकसित हुआ जितना कहानी साहित्य. यह शोध का विषय है कि सघन औपन्यासिक परंपरा के पुष्ट न होने पर भी कहानी परंपरा अधिक बलशाली नजर आती है और कई बार वह साहित्यिक प्रक्रिया के केंद्र में नजर आती है नयी कहानी हिंदी की पहली ऐसी प्रक्रिया है जो शिष्ट स्तर पर समूचे सांस्कृतिक बोध के नयेपन को पहचान योग्य बनाती है. नयी कहानी से पहले प्रेमचंद अकेले पितामह की तरह हैं जहां तमाम तरह की कहानियां और उनके बीज मिलेंगे.

नयी कहानी के बाद ऐसी सामाजिक स्थितियां नहीं बनीं कि कथा साहित्य और खासकर कहानी में नयी कहानी की प्रतिभावों से बड़ी प्रतिभाएं विकसित हो पातीं. आज तो युवा कथाकारों के चारों ओर एक नकारात्मक और हतोत्साहक वातावरण अधिक है जो उनकी प्रतिभा को क्षीण करता है फिर भी पिछले दस पंद्रह साल में कुछ नये कथाकार बिल्कुल नये ढंग की कहानी और एक नया स्वस्थ विजन लेकर सामने आ रहे हैं. प्रयोग भी इस वक्त शुरू हो रहे हैं. स्वयं प्रकाश, असगर वजाहत, विष्णु नागर, उदय प्रकाश, मधुसूदन आनंद, धीरेंद्र अस्थाना, सुरेश उनियाल, ब्रजेश्वर मदान, शशांक, रमेश बतरा, चित्रा मुद्गल, नमिता सिंह, पंकज बिष्ट, शिवमूर्ति, ललित कार्तिकेय, बलबीर लोकेश, रामानंद राठी, सहीराम आदि अनेक नये लेखकों ने कुछेक बेहद नयी और अच्छी कहानियां लिखी हैं, जिनसे आगे कथा विकास की उम्मीद निश्चित ही की जा सकती है. इनके अतिरिक्त अनेक नवांकुर भी ध्यान देने योग्य हैं. □

कहानी की पहचान

ब्रजेश्वर मदान

नयी कहानी के दौर के बाद सन् 67,68 के दौर से मैंने लिखना आरंभ किया

उस समय कहानी की दुनिया में किसिम-किसिम के आंदोलन सक्रिय थे. किंतु कहा जा सकता है कि नयी कहानी आंदोलन के बाद हिंदी कहानी की स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं थी. जितने कथाकार थे उनके उतने आग्रह और झंडे थे. फतबे देने में लोगों को विश्वास अधिक था, अच्छी कहानी लिखने में कम.

ऐसे कठिन माहौल में हमारी पीढ़ी की मुख्य चुनौती थी हिंदी कहानी को पुनः केंद्र में लाने की. क्योंकि नयी कहानी के दौर के खत्म हो जाने के बाद सातवें दशक में हिंदी कहानी ने तमाम आंदोलनों और मताग्रहों के बीच अपनी पठनीयता और पहचान खो दी. कहानी से आम पाठक का विश्वास ही उठने लगा था. लेकिन मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि हमारी पीढ़ी के युवा कथा लेखकों ने एक बार फिर हिंदी कहानी की पहचान को संभव बनाया. हम लोगों ने उच्च वर्ग की अभिजात संस्कृति को छोड़कर निम्न मध्यवर्ग की कठिन जिंदगी को केंद्र में रखकर कहानियां लिखीं. सन 70 के बाद समांतर कहानी आंदोलन, और इधर जनवादी कथा आंदोलन ने नया मोड़ लिया. इससे कहानीकारों की एक लंबी जमात सामने आयी है. लेकिन एक खतरा यह भी पैदा हुआ है कि आज फिर कहानी अपने-अपने खेमें में वापस आ रही है. जिससे एक ओर मूल्यांकन के पूर्वाग्रह का खतरा बढ़ा है तो दूसरी ओर बेहतर कहानी लिखने के माहौल में गतिरोध पैदा हुआ है. इसलिए यह जरूरी है कि समकालीन कहानी का माहौल अपने मत और सिद्धांत के आग्रहों के बावजूद गुट और शिविरों से दूर रहे.

हमारी सौ वर्षों की उपलब्धियां काफी उल्लेखनीय हैं. खास तौर से इधर की कहानी ने हिंदी कहानी के भविष्य की ओर एक रचनात्मक इशारा किया है. जिसको लेकर मैं आश्वस्त हूं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन प्रवृत्ति और सृजन प्रवृत्ति का आधार

रामदरश मिश्र की कृति 'जहां मैं खड़ा हूं' को किसी एक विधा और फॉर्म में बांध कर देखना कठिन है. ऊपरी तौर पर यह एक जीवन-कथा या आत्मकथा का आभास देती है क्योंकि यह लेखक के जीवनानुक्रम—जीवन-प्रसंगों और घटनाओं को लिए हुए है. पर यह भी सच है कि यह आत्म तक, निजी जीवन-वृत्त तक सीमित नहीं है. जीवन-वृत्त के बहाने, यह प्रमुख रूप से, समग्र परिवेश को आत्मीयता से उभारती है और आत्मीयता के चलते परिवेश से जितनी टकराहट संभव है, उसे व्यक्त करती है. आत्म और परिवेशगत टकराहट आज उनकी कहानियों और उपन्यासों में भी व्यक्त हुई है. 'जहां मैं खड़ा हूं' कहानी या उपन्यास नहीं है, हालांकि इस में कहानी और उपन्यास जैसी ही पठनीयता और रोचकता है. हां, मोटे तौर पर, सुविधा की दृष्टि से इसे जीवनी या जीवन-वृत्तांत कह सकते हैं.

दरअसल, यह कृति रामदरश मिश्र की जीवन-प्रवृत्ति और सृजन-प्रवृत्ति (जो उनके उपन्यासों, कहानियों, कविताओं और ललित निबंधों में अभिव्यक्त हुई है) के आधारों को स्पष्ट करती है. इससे उनके साहित्य को समझने में मदद मिल सकती है. इससे यह भी लगता है कि उनके जीवन और सृजन में विभाजन नहीं है. इस रचना की खूबी यह है कि आत्मिक स्तरों के साथ-साथ एक विशेष 'देश' और 'काल' में फैले हुए मानवीय संसार के जीवन व्यापारों को, ठोस पात्रों को, उनकी तकलीफों और खुशियों को यह रचना प्रत्यक्ष करती है. सांस्कृतिक संस्कारों और सामाजिक सरोकारों की बेहद संश्लिष्ट और तल्ख पहचान यह रचना कराती है. लेखक का यह कहना सही है— "जहां मैं खड़ा हूं यों तो मेरी जीवन-यात्रा का वृत्तांत है किंतु वास्तव में यह उस परिवेश का वृत्तांत है जहां मेरे जीवन और साहित्य की चेतना, अनुभव और मूल्य-बोध निर्मित हुए." यह परिवेश गांव का है जिसने उन्हें भावुक और संवेदनशील बनाया है. इस परिवेश के सैकड़ों प्रसंगों और संदर्भों में बिंधे-गुंथे अनुभव यहां बिखरे पड़े हैं. सघन अनुभव बिंबों के लिए, अपनी साहित्यिक कृतियों में वे, बार-बार, गांव लौटते हैं. अपने इस सृजन आधार की ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं—"वह अपनी ठोस जमीन है, वह जिसे नहीं प्राप्त है वह यथार्थ जीवन के नाम पर अरूप सार्वभौमिकता के संसार में भटकने के लिए अभिशप्त हो जाता है."

इस पुस्तक में गांव के निजी संदर्भों और सामाजिक संदर्भों का अंतरावलंबन और सन्निधिकरण बड़े मार्मिक ढंग से हुआ है. 'दरअसल यह एक वर्तुल जिंदगी थी जिसमें तमाम चीजें, एक दूसरे में समाई हुई थीं, जिंदगी खानों में बंटी हुई नहीं थी. गांव जीवन के साथ रागात्मक संबंधों में बंधा व्यक्ति ही ऐसे संवेदनात्मक बिंबों की सृष्टि कर सकता है:

'दीवारों के टूटने की एक लय होती है.' (पृ. 9)

'आंखों में निरुपायता कस गयी है, एक खाली भविष्य आगे दहाड़ रहा है।' (पृ. 9)

'आंखों में एक सीलन भरा सन्नाटा अंटा होता था. (पृ. 10)

'अभाव की एक अजीब गंध बाहर भीतर फैली है.' (पृ. 11)

यहां परिवेश की घटनाएं और स्थितियां अंतर्रात्मा के सीमांतों तक जाती हैं और फैलती हुई सामाजिक सीमांतों से टकराने लगती हैं. बाढ़ के दिनों में गांव में घंटहवा पीपल के पास मुर्दों को जलाने की रस्म को याद करता हुआ लेखक आज की सामाजिक स्थिति पर टिप्पणी करने लग जाता है—"अब घंटहवा पीपल नहीं है, न जाने कब का उजड़ चुका है लेकिन उसने जो भय पैदा किया वह जीवित है बल्कि कई गुणा बढ़ गया है. हां, परिदृश्य बदल गया है—पूरे समाज और देश में जगह-जगह घंटहवा पीपल दीख रहे हैं जिन पर मरे हुए मूल्यों, संवेदनाओं और संबंधों के घंट टंगे हुए हैं और नीचे जातिवाद, क्षेत्रवाद, स्वार्थ, हिंसा के भयानक भूत अट्टहास करते हुए तांडव कर रहे हैं और तमाम जीवित इंसानों की भूखी-प्यासी और डरी आंखों की हंसी छिन गयी है. पीपल का भूत तो अरूप है और मेरे अवचेतन में है लेकिन ये भूत तो ठोस हैं और जीते जागते इंसानों के सिर पर है." परिवेश के इस चित्रण के पीछे झलक रहा है लेखक का गहरा सामाजिक सरोकार और इसीलिए वे अपनी जिंदगी को दूसरों की जिंदगी के हिस्से के रूप में देखते हैं. उनके पास है स्थिति और संबंध के तर्क को तोड़ने वाली संवेदनात्मक दृष्टि जो मूल्य की तलाश से जुड़ी हुई है—"आज की पढ़ी-लिखी पीढ़ी की दृष्टि में वे उजड्ड थे, गंवार थे लेकिन क्या वे जीवन-विवेक-शून्य भी थे. क्या अज्ञानी भी थे? मुझे ऐसा नहीं लगता. लगता है वे कहीं ज्यादा विवेकवान थे. जीवन को सही ढंग से जीने की समझ उनमें कहीं ज्यादा थी, उनमें एक निर्भीकता थी जो उजड्ड होते हुए भी कहीं अधिक मानवीय थी. वे कुंठा, संत्रास, अकेलापन, टूटन ढोने वाले आधुनिक सभ्य पुरुष नहीं थे. वे बाहर से भीतर तक धधकती हुई शलाका की तरह जीने वाले लोग थे."

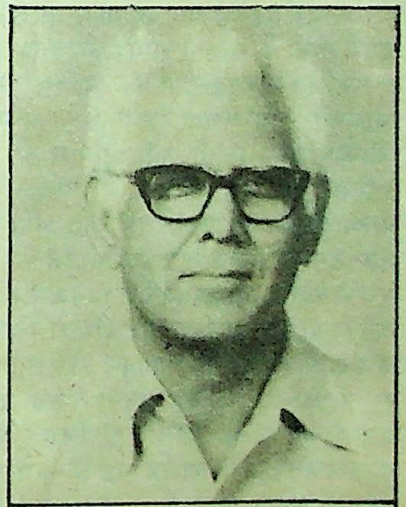

रामदरश मिश्र

लिखने का अर्थ अगर अभिव्यक्ति है तो इस अभिव्यक्ति का अर्थ मनुष्य के हक में और मनुष्य विरोधी ताकतों के खिलाफ हस्तक्षेप करता भी है. यह प्रश्न अलग है कि यह हस्तक्षेप कैसा है—पोला है या कड़ा, मूर्त है या अमूर्त, जुझारू है या ठस्स, सपाट है या व्यंग्यात्मक, सरल है या व्यंजित या नुकीला? 'जहां मैं खड़ा हूं' का हस्तक्षेप सांस्कृतिक प्रकृति का है—विश्वास, निष्ठा और मूल्य पर खड़ा—मनुष्य के हक में, मनुष्य विरोधी ताकतों के खिलाफ—मूर्त और सहज किस्म का हस्तक्षेप. लेखक ने इस हस्तक्षेप से पैदा होने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों और विसंगतियों को नजरंदाज नहीं होने दिया है. उदाहरण के लिए अपने सामंती ब्राह्मण संस्कार से निरंतर जूझते रहने के बावजूद उससे पूरी तरह मुक्त न हो पाने की लाचारगी की ओर उन्होंने एक स्थल पर संकेत किया है—"ऐसा नहीं है कि मैं इस सामंती ब्राह्मण संस्कार से मुक्त रहा हूं. इस संस्कार से मुक्त होने के लिए विचार के स्तर पर बहुत आत्म-संघर्ष करना पड़ता है जो उस समय संभव नहीं था किंतु संवेदना के स्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मैं उनकी तकलीफ से आहत अवश्य होता था. यों मेरा भी ब्राह्मरूप और मालिक संस्कार कभी-कभी जोर मारता था (और अब एकदम समाप्त हो गया है, यह मैं नहीं कह सकता) और किसी हरिजन के व्यवहार को अपने प्रति अपमानजनक पा कर मैं क्षुब्ध हो उठता था और उसे पीटने की भी इच्छा हो आती थी. हरिजन हो कर उसने मेरे साथ यह सलूक किया, यह सोच कर मैं तिलमिला उठता था किंतु वह क्षणिक होता था और मैंने किसी को पीटा हो, मुझे याद नहीं."

यह भी गौर करने की बात है कि यह दर्शन या राजनीति में हस्तक्षेप करने वाली जीवन-यात्रा नहीं है. यह यात्रा है अपने आस-पास से, गांव से, परिस्थिति से जुड़ते-टकराते हुए आगे बढ़ने की—परिवेश के बदलाव के साथ-साथ स्वयं के बदलाव को आंकते चलने की, परिवेश को ही नहीं स्वयं को भी विश्लेषित करने वाली संवेदनात्मक यात्रा है यह जिसे पढ़ते हुए हम गहरे सर्जनात्मक अनुभव में से गुजरते हैं.

इन जीवन-वृत्तांतों में दर्द और अंतर्वेदना का जो भीगा तार है वह केवल आत्मगत नहीं है, रामदरशजी की पीढ़ी का ही नहीं है, आज की पीढ़ी का भी है. वह दर्द सब का है. स्कूल में पिटाई के दृश्यों की याद दर्दनाक है और इस दर्द को लेखक आज के संदर्भ में भी वैसे ही महसूस करता है और उभारता है. इन जीवन वृत्तांतों की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है.

लेखक ने आत्मिक और भावनात्मक धरातलों पर भोगी हुई यातना के संदर्भों को रस्मी अंदाज में या अति नाटकीय बना कर पेश नहीं किया है. प्रसंग में से प्रसंग, घटना में से घटना, स्थिति में से स्थिति निकलती चलती है जो अतीत को वर्तमान में और वर्तमान को अतीत में घुलने देती हैं.

'जहां मैं खड़ा हूं' एक ओर जहां जीवन से जुड़े विविध परिवेशों की कथा है, वहीं दूसरी ओर परिवेश के साथ व्यक्ति के संबंधों की कथा भी है. लेखक का विचार इस जीवन कथा को तीन खंडों में लिखने का है. प्रस्तुत पुस्तक पहला खंड है—रामदरशजी की जीवनी का प्रारंभिक हिस्सा—बचपन से जवानी तक की उनकी जीवन-यात्रा! अभी दो खंड आने शेष हैं. वैसे भी जीवनी में जितना कहा जाता है उससे कई गुणा अनकहा छोड़ दिया जाता है. इस ढंग की जीवनी में यह गुंजाइश और ज्यादा रहती है.

—डॉ. नरेंद्र मोहन

चर्चित पुस्तक : जहां मैं खड़ा हूं: रामदरश मिश्र, किताब घर, 917-10 मेन रोड, गांधी नगर, दिल्ली-110031, मूल्य 30.00

'शब्द-बध' : एक्सपोजर की सीमा

वीरेंद्र जैन

वीरेंद्र जैन के उपन्यास 'शब्द-बध' को पढ़ते हुए प्रारंभ में ही की गयी यह घोषणा लगातार याद आती रहती है कि "इस उपन्यास का कथा-संसार नितांत काल्पनिक है, सो इस चराचर पर पाये जाने वाले किसी प्राणी से कैसे भी साम्य को महज संयोग या कुयोग ही माना जाये."

यह घोषणा क्यों याद आती रहती है? इसलिए कि यदि आप हिंदी के प्रकाशन-जगत से जरा भी परिचित हैं तो उपन्यास के पात्रों और परिस्थितियों में आपको कुछ जानी-पहचानी सूरतें नजर आने लगती हैं. नाम भले ही बदले हुए हों, किंतु आप पहचान जाते हैं कि ये लोक हितकारी साहित्यमंडल के संचालक लालचंद्र, सूर्योदय प्रकाशन वाले दीपक जी, दीपक जी के मूर्धन्य लेखक-पिता अरिहंत कुमार, वर्णमाला प्रकाशन वाले बलभद्र चौधरी, प्रतिबद्ध प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड की प्रबंध निदेशिका कांता कौर, समग्र साहित्य भंडार वाले केदारनाथ, प्रकाशन का नाम अंधविश्वासियों जैसा रखकर वामपंथी साहित्य छापने वाले गोविंदजी, आदिनाथ और उनके पोते के संचालक चोरनाथ आदि वास्तव में कौन हैं. इन प्रकाशकों के द्वारा शोषित, प्रवंचित, अपमानित और उत्पीड़ित लेखक आनंद आचार्य को भी आप अनायास ही पहचान सकते हैं, जो इस उपन्यास के नायक हैं. अतः उपन्यास पढ़ने के बाद लगता है कि इसके कथा-संसार के नितांत काल्पनिक होने की घोषणा संभवतः कानूनी झंझटों से बचने के लिए की गयी होगी.

उपन्यास पढ़ने के बाद यह भी लगता है कि इसमें नामों के अलावा शायद सब कुछ सच है. प्रचलित शब्दावली में कहें तो लेखक का स्वानुभूत सत्य अथवा जिया-भोगा यथार्थ. रमाकांत द्वारा लिखी गयी भूमिका में भी उपन्यास के प्रसंगों को "लेखक के आत्मानुभव पर आधारित" कहा गया है. अतः उपन्यास में जो कुछ कहा गया है, उसके सच अथवा प्रामाणिक होने के विषय में संदेह नहीं किया जाना चाहिए और भूमिका-लेखक के इन शब्दों को सच मानकर ही रेखांकित करना चाहिए कि यह रचना "उस भ्रष्ट समाज की कलई खोलती है जिसमें एक सम्मानजनक और जायज धंधे के नाजायज हथकंडे चलते रहते हैं." और इसमें हम "अपनी देखी-बूझी दुनिया के ऐसे सत्यों से परिचित होते हैं जो हमें दहला देते हैं." भ्रष्ट समाज की कलई खोलना वाकई साहस का काम है और इसमें जोखिम भी उठानी पड़ती है, इसलिए यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस उपन्यास का लिखा जाना "एक साहसपूर्ण और जोखिम भरा प्रयास है". मगर सवाल यह है कि इस प्रयास की सार्थकता क्या है? दूसरे शब्दों में कहें तो एक साहित्यिक कृति के रूप में इस उपन्यास की अर्थवत्ता और गुणवत्ता क्या है?

कहने का मतलब यह है कि भ्रष्ट समाज की कलई खोलना और दहला देने वाले सत्यों से परिचित कराना एक तथाकथित खोजी पत्रकार के लिए तो अपने कर्तव्य की इतिश्री हो सकता है, लेकिन एक साहित्यिक कृति का मूल्यांकन केवल इन चीजों के आधार पर नहीं हो सकता. साहित्यिक कृति भंडाफोड़ भी करती है, और अक्सर करती है, लेकिन वह इससे आगे भी कुछ करती है. वह समूचे समाज को भले ही न बदल पाये, मगर अपने पाठक को जरूर बदलती है. वह उसे पहले से ज्यादा सचेत, समझदार और समर्थ बनाती है. एक अच्छा उपन्यास यह काम प्रातिनिधिक परिस्थितियों और प्रातिनिधिक पात्रों के यथार्थ चित्रण के जरिए करता है. वह एक दृष्टिसंपन्न चित्रण होता है, जो पाठक को एक नयी दृष्टि देता है. जो यथार्थ-चित्रण ऐसा नहीं कर पाता, वह आत्मानुभव पर आधारित होने और सर्वथा प्रामाणिक होने का दावा करने के बावजूद प्रकृतवादी ही रह जाता है, यथार्थवादी नहीं बन पाता. केवल भंडाफोड़ तक सीमित रह जाने वाला उपन्यास प्रकृतवाद की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाता.

दुर्भाग्य से 'शब्द-बध' इन सीमाओं का अतिक्रमण न कर पाने के कारण एक अच्छा यथार्थवादी उपन्यास बनते-बनते रह गया है.

इस उपन्यास में एक युवा, ईमानदार, मेधावी और कर्मठ लेखक को जीविका के लिए विभिन्न प्रकाशकों के यहां नौकरी करते दिखाया गया है. अपनी इन विभिन्न नौकरियों के दौरान वह प्रकाशन-जगत के काले कारनामों से परिचित होता है और अपनी ईमानदारी तथा स्वाभिमान के चलते या तो नौकरी से निकाल दिया जाता है, या स्वयं ही नौकरी छोड़ने को विवश हो जाता है. अपने लेखन से भी वह जीविका चलाने में असमर्थ रहता है, क्योंकि अव्वल तो नये लेखक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े प्रकाशक छापने को तैयार नहीं होते, यदि छाप भी देते हैं तो अपनी आपसी प्रतिस्पर्द्धाओं में से कुचल कर खत्म कर देते हैं. उपन्यास के अंत में लेखक की एक छोटे प्रकाशक द्वारा छपी पुस्तक को एक बड़े प्रकाशक द्वारा संपूर्ण रूप में खरीद कर जला दिया जाता है.

इसमें कोई संदेह नहीं कि वीरेंद्र जैन ने एक सदाशयी रचनाकार की दृष्टि से प्रकाशन-जगत और उससे जुड़े लेखन तथा शिक्षा के क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थों के छल-छद्मों को बड़ी सूझ-बूझ के साथ उजागर किया है और उपन्यास में कई प्रसंग सचमुच बड़े मार्मिक तथा उद्वेलित करने वाले हैं. परंतु पूरे उपन्यास में न तो इसके नायक के मन में, और न शायद लेखक के ही मन में, इस भ्रष्ट व्यवस्था का कोई विकल्प है. विकल्प न होने पर की गयी आलोचना का कोई आधार नहीं होता और वह अधूरी होने के कारण एक अरण्य-रोदन बन जाती है, जो प्रायः हताशा पैदा करता है

यथार्थवाद का मतलब है सतह पर दिखायी देने वाली चीजों के सारतत्व को सामने लाना और समाज के अंतर्विरोधों को उनकी पूर्णता तक पहुंचाना. हालांकि वीरेंद्र ने इस बात को जोर देकर रेखांकित किया है कि पूरा प्रकाशन उद्योग भ्रष्ट नहीं हो गया है और एकदम निराश हो जाने का कोई कारण नहीं है. पृष्ठ 110 और 111 पर उपन्यास के नायक आनंद और उसके साथी के बीच का वार्तालाप इसका प्रमाण है. मगर इस वार्तालाप का एक अंश इस उपन्यास के लेखक की आलोचना के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है.

यदि लेखक ने प्रकृतवाद की सीमाओं से उबरकर यथार्थवादी दृष्टि अपनायी होती तो भ्रष्ट समाज-व्यवस्था में लेखक की अस्मिता का सवाल उसे केवल प्रकाशन-व्यवसाय से जुड़ा सवाल ही न नजर आता. समाज की व्यवस्था ज्यों की त्यों रहे और प्रकाशन-व्यवसाय ठीक हो जाये, ऐसा कभी नहीं हो सकता. इसलिए जरूरत इस बात की थी कि वीरेंद्र व्यवस्था के ही अंतर्विरोधों पर उंगली रखते. और तब शायद उन्हें लेखन और प्रकाशन की सांप्रतिक दरिद्र अवस्था का वास्तविक समाधान सुझानेवाली वे आवाजें भी अपने समाज में सुनायी पड़ जातीं, जो आज "सबको शिक्षा सबको काम" मांग रही हैं.

डा. रमेश उपाध्याय

शब्द-बध (उपन्यास): वीरेंद्र जैन, सचिन प्रकाशन, 7/34 दरियागंज, नयी दिल्ली-2, मूल्य : 40 रुपये

नाटक

मायावी सरोवर में नहाती अर्थ-छायाएं

शैक्षणिक संस्थानों में पाठ्येतर क्रिया-कलापों का सहअस्तित्व विद्यार्थियों की मानसिक सक्रियता और सृजनात्मक जीवंतता का गवाह होता है. कालेजों में इस तरह का शौकिया संस्कृतिकर्म एक ओर युवा प्रतिभा को गहरे लगाव के साथ किसी कला माध्यम से उलझने का मौका देता है तो दूसरी ओर कोई व्यावसायिक या आर्थिक दबाव न होने के कारण लीक से अलग हटकर नये और मौलिक प्रयोगों का साहस भी. गत दिनों लेडी श्रीराम कालेज द्वारा प्रस्तुत डॉ. शंकर शेष का 'अरे! मायावी सरोवर' इस तथ्य का ताजा उदाहरण है.

नवभारत टाइम्स के सहयोग से लेडी श्रीराम कालेज के सभागार में प्रस्तुत डॉ. शंकर शेष का यह नाटक आये दिन मंडी हाउस परिसर में होने वाले आम नाटकों से इस नजरिए से एकदम अलग है. नियमित पेशेवर रंगमंच से सर्वथा परे हास्य-व्यंग्य की लाजगी से भरा यह नाटक लगभग पूरी तरह शौकिया या अव्यावसायिक रंगमंच के स्वस्थ विकास का नमूना है.

किमिको पंकज के निर्देशन की यर्थावादी परिकल्पना में नाटक कई अर्थ-छायाओं के साथ उभरता है. अपने निर्देशकीय में किमिको का कहना है : "सूत्रधार, राजा, मंत्री, रानी, राजगुरु, कुलपति, संन्यासी और मायावी सरोवर की पुरानी कथा दुहराता यह नाटक दरअसल आज का, आज के प्रशासक, आज के चाटुकार, आज की औरत और अंततः आज के इस पूरे जटिल उलझे-पुलझे मायावी जीवन सरोवर का है."

नाटक में सचमुच वे सूक्ष्म सूत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं जिनसे व्यवस्था या समाज के भीतर चलने वाले भ्रष्ट रूप अथवा इंसान की जिंदगी का यथार्थ रूप खुलकर सामने आ जाता है. स्त्री को सत्य और पुरुष को व्यवस्था का प्रतीक बताकर यह नाटक स्त्री जीवन को ज्यादा सृजनशील और संतोष भरा प्रमाणित करता है.

ऋषि-कबीर कौशिक को छोड़ दें (जिन्होंने असाधारण प्रतिभा दिखाई है) तो सूत्रधार से लेकर राजा, मंत्री, कुलपति (उल्लू), पत्रकार (कुत्ता), सेनापति, धर्मगुरु, कुमार, अंशुमाली और इंद्र तक सभी पुरुष पात्र कालेज की अभिनय कुशल कन्याओं द्वारा ही अभिनीत किये गये हैं. कुत्ते का पत्रकार होना या गाय का डेरी मैनेजर होना विडंबनापूर्ण स्थितियों के भीतर व्यवस्था और सामाजिक ढांचे पर चोट करता है, तो उल्लू का उपकुलपति होना विद्यार्थी, शिक्षा और राजनीति के त्रिकोण को नये आयाम में पेश करता है. उल्लू कुलपति-सोनल होरा, गया-आयशा किदवई, और कुत्ता-दीपिका आनंद के किरदार मजेदार भी हैं और व्यंग्य को उभारने वाले भी.

नाटक का संगीत पक्ष कुछ कमजोर है. शुरू की वंदना "दर्शक देव पधारो" तो अच्छी लगती है लेकिन मायावी सरोवर के राजा के चले जाने पर "आवाज दे कहां है" की तर्ज पर "आजा मेरे राजा, अब बज उठा है बाजा" जैसे प्रसंगों की शैलीबद्ध गतियों में रोचकता तो बनी रहती है किंतु सपाट गायन के कारण अर्थवत्ता नहीं उभर पाती. रिकार्डेड संगीत पर ओडिसी की 'आरभी पल्लवी' का उपयोग भी क्षेपक जैसा ही लगता है.

वैसे इस बात को मद्देनजर रखते हुए कि सारा प्रयास कालेज की छात्राओं का है, किसी पेशेवर रंगमंडल का नहीं—प्रस्तुति इतनी आत्मीय लगती है कि दर्शक अनजाने ही उससे गहरे स्तर पर जुड़ जाता है □

मंजरी सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये
और हर महीने १८० रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' दिसंबर '८७ अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि २० जनवरी, १९८८ है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा मार्च १९८८ के अंक में की जायेगी.

सारिका कथा पहेली : जनवरी 1988

१. इन पात्रों में, वह कौन-सा पात्र है जो अपने सर्जक से भी कहीं ज्यादा प्रसिद्धि पा गया और वर्ष १९८७ में उसका[जन्म] शताब्दी वर्ष भी मनाया गया. सही पर [✓] अंकित करें.
[डान क्विग्जोट/ शरलॉक होम्स/देवदास]

२. यह पात्र किन कहानियों के है?
कोष्ठक में कहानियों के नाम लिखें :
१. आरती [ ], २. केतन [ ]
३. दीपक शर्मा [ ]

३. शौर्यगाथा... में 'हीरोल' शब्द का प्रयोग हुआ है. इसका अर्थ है.....

४. यह इस अंक की सर्वोत्तम कहानी .....हैं.

५. साज-सज्जा और ले-आउट की दृष्टि से ये दो पृष्ठ सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं :
१२-१३ [ ] २२-२३ [ ] २७ [ ]
५६ [ ] ६०-६१ [ ]

६. "मूर्ति को पत्थर समझने वाला कभी भी भगवान का भक्त नहीं हो सकता. इसी तरह पत्नी को मात्र वासना का साधन समझने वाला उसके दूसरे रूपों को महसूस नहीं कर सकता." यह कथांश किस कहानी का है?

७. इस अंक के मुखपृष्ठ की मुख्य विशेषता क्या है? :.....

८. 'शरलॉक होम्स का भ्रम' कहानी के प्रकाशन में क्या त्रुटि रह गयी है? :
.....

९. "जो साहित्य में व्यक्तिगत या व्यक्तिपरक की दुहाई देते हैं वे बहुत ही भोंडी बात करते हैं." यह कथन किसका है? : .....

१०. इस कहानी में अपराधी बत्तख के कारण पकड़ा जाता है? :

नाम.....आयु.....

पता. .....
.....

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं....पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं....स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित ३०० शब्दों में लिख भेजिए.

नयी पौद

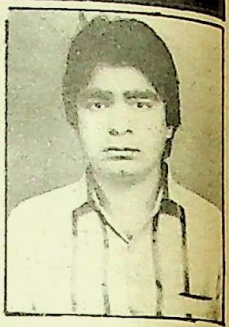

रचनात्मक जागरूकता जरूरी

● महेश 'अनुज'

साहित्य की विभिन्न विधाओं में रुचि एवं कविता के क्षेत्र में एक संग्रह की उपलब्धि सहित अवसर कहानी-लेखन में भी अपने हाथ आजमाने का प्रयत्न किया. कहानी-विधा में हर बार कहानी लिखने के बाद कई ऐसी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, जिन्हें सुलझाए बिना अपने लेखन को चालू रखना संभव नहीं. ये मुश्किलें मूलतः विषय को लेकर होती हैं. जो विषय जहन में उतर पाते हैं, कई बार उनके चरित्रों का वर्णन करना कठिन लगने लगता है. हालांकि इसका कारण जानता हूं कि उन चरित्रों को वास्तविक जीवन में देखा नहीं होता अथवा उनके बारे में कभी गंभीर रूप से विचार नहीं किया होता. तब लगने लगता है कि कहानी लेखन के लिए खास मानसिकता शुरू से ही बना लेनी चाहिए जैसे कि जीवन की घटनाओं तथा आने वाले चरित्रों को उसी वक्त ध्यान से देखना तथा मस्तिष्क में उनकी तथा उनसे जुड़ी हर बात एवं यथार्थ को जैसा का तैसा उतार लेना. बात यहीं खत्म नहीं हो जाती, क्योंकि इस बात का अंदरूनी अभ्यास भी होना चाहिए कि हर बात के विषय में बाद में गहराई से सोचते हुए तुलनात्मक पक्ष भी विचारा जाए.

नए-नए लेखन मे एक बड़ी रुकावट तब आती है जब हम कहानी में अब तक के विकास पर नजर डालते हैं और इस कोशिश में रहते हैं कि हम अपने विषयों अथवा शिल्प में कहीं पिछड़ तो नहीं रहे. ये भय हमारा काफ़ी समय ले लेता है और एक कहानी के बाद दूसरी कहानी लिखने के बीच एक लंबा अंतराल आ जाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्थ शरीर

— विशेष परिशिष्ट

स्वस्थ शरीर आदमी की पहली जरूरत है.

एक कहावत है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है. याने जो व्यक्ति शरीर से चुस्त और दुरुस्त होगा, उसका मस्तिष्क भी उतना ही बुद्धि और विवेक से संपन्न होगा. लेकिन शरीर का स्वस्थ होना ही पर्याप्त नहीं है. उसका सुंदर होना भी अनिवार्य है. क्योंकि सुंदर और स्वस्थ शरीर ही दूसरों को आकर्षित करता है, और ऐसा व्यक्ति ही जीवन में सफलता प्राप्त करता है.

स्वस्थ और सुंदर शरीर पाने के लिए जरूरी है कि हम अपने खान-पान की आदतें ठीक रखें और नियतिम व्यायाम करें. भोजन उतना ही लें जिससे हमारे दैनंदिन के कार्यों में खर्च होने वाली उर्जा की कैलरी हमें प्राप्त हो, उचित मात्रा में प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज आदि अनिवार्य तत्व हमें मिल सकें. कई बार जब भोजन में इनमें के कुछ चीजें कम रह जाती हैं तो शरीर कमजोर होने लगता है. ऐसे में च्यवनप्राश आदि आयुर्वेदिक अथा विभिन्न प्रोटीनों, विटामिनोंवाले एलोपेथिक टॉनिक लेने से उनकी पूर्ति हो जाती है और शरीर फिर से स्वस्थ हो जाता है.

व्यायाम करने से शरीर की मांसपेशियां लचीली रहती हैं तथा सही आकार में रहती हैं. इसके अतिरिक्त व्यायाम करते हुए हम जो श्रम करते हैं उससे शरीर के विभिन्न भागों में जमी चर्बी भी गलती है जिससे शरीर में मोटापा नहीं आता, और इस प्रकार शरीर सुडौल बना रहता है.

व्यायाम न करने से शरीर में जगह-जगह चर्बी जमा होने लगती है और मांसपेशियों का लचीलापन खत्म हो जाता है. चूंकि मांसपेशियों में चलने की अधिक शक्ति नहीं रहती इसलिए आदमी किसी भी काम को करते हुए जल्दी ही थकने लगता है. इतना ही नहीं, मोटापा बढ़ने के साथ-साथ धममनियों में कोलस्ट्रोल भी जमा होने लगता है, और हृदय को शरीर में रक्त का प्रवाह बनाये रखने के लिए अधिक कार्य करना पड़ता है. ऐसे में कई तरह की हृदय की बीमारियां होने का डर भी बना रहता है.

इसलिए जरूरी है कि हमारी खान-पान की आदतें ठीक रहें और हम नियमित व्यायाम करें.

झंडु फार्मेसी : एक परिचय

झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड पिछले 75 वर्ष से भी अधिक बरसों से आयुर्वेद के विकास में जुटी हुई संस्था. आयुर्वेद की सेवा में समर्पित.

इस संस्था ने आज के आधुनिक दौर में बहुत से लोगों के दृष्टिकोण को बदला है. उनमें विश्वास जगाया है और इस देश की सदियों पुरानी परंपरा को जन-जन तक पहुंचाया है. झंडु आयुर्वेदिक दवाएं बनाने वाली कोई एक संस्था मात्र नहीं रह गयी बल्कि एक आंदोलन का प्रतीक बन चुकी है. जिसे देश और विदेश में एक सम्मान मिला है. यह महान उपलब्धि कोई साल दो साल में नहीं मिली बल्कि तीन-चौथाई सदी की कोशिशों का परिणाम है.

यूं तो हर संस्था की सफलता के पीछे कई हाथ होते हैं. लेकिन असल में झंडु की सफलता का श्रेय उसके प्रेरणा पुरूष श्री झंडु भट्ट जी को जाता है. उन्होंने इस संस्था की आधारशिला रखी और उन्हीं के नाम पर इसका नाम रखा गया झंडु, जो आगे चलकर झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड हुआ.

आयुर्वेदिक चिकित्सा की पारिवारिक परंपरा झंडु भट्ट जी पर आकर थम नहीं गयी. उनके प्रयासों को उनके पौत्र श्री जुगतराम शंकर प्रसाद जी ने आगे बढ़ाया. जुगतराम शंकर प्रसाद जी ने राजकोट लेबोरेट्रीज में प्रोफेसर ली स रसायनशास्त्र और औषध विज्ञान की शिक्षा ली. आयुर्वेद का विस्तृत अध्ययन करके अधिक से अधिक अनुभव प्राप्त किया. तब 1910 ई. में बंबई नगर में झंडु फार्मेस्युटिकल वर्क्स की बुनियाद रखी. उन्होंने तीन चौथाई सदी पहले जो बीज रोपा था आज उसने एक विशाल वृक्ष का रूप ले लिया है. और झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड के नाम से हमारे सामने है अगर यह कहा जाए कि जुगतराम शंकर प्रसाद वैद्य जी की दूरदृष्टि बाद में आने वाली कितनी ही संस्थाओं के लिए अनुकरणीय बन गयी तो अनुचित न होगा.

शुद्ध, विश्वसनीय औषधियां बनाना बेशक एक महत्वपूर्ण काम है. लेकन उनके प्रति लोगों में विश्वास जगाना और व्यसायिक स्तर पर उन्हें सफल बनाना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है. शुरू से ही कम्पनी के इस पक्ष को संभ्राता श्री मथुरादास भक्तिदास पारेख जी ने. झंडु फार्मेस्युटिकल की अपार व्यवसायिक सफलता में उनकी सूझ-बूझ और सही आर्थिक निर्णयों का बड़ा योगदान है. यह उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है कि झंडु फार्मेस्युटिकल का शुमार आज देश की आर्थिक रूप से सुदृढ़ कम्पनियों में होता है और कम्पनी के अंशधारियों (शेयर होल्डर्स) को हर तरह का इत्मीनान है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साठ साल के बूढ़े या साठ साल के जवान ?

कभी आपने ग़ौर किया है कि सड़क पर दौड़ते यह बुज़ुर्ग ६० बरस की उम्र में भी क्यों शक्ति और स्फूर्ति से भरपूर हैं? जबकि आप अभी ३० ही के हैं फिर भी थके-थके से रहते हैं.

इसका जवाब है, केसरी जीवन.
हर दिन, दिन में दो बार दो छोटे चम्मच.

ज़ाफ़रान (केसर)–अनमोल तत्त्व!

केसरी जीवन की बोतल खोलिए. ज़ाफ़रान की लुभावनी खुशबुएँ सबसे पहले आपका स्वागत करेंगी. शुद्ध, असली ज़ाफ़रान. दुनिया की सब से महँगी जड़ी-बूटियों में से एक. जिसे ख़ास तौर से कश्मीर की वादियों से चुना गया.

केसरी जीवन में ज़ाफ़रान के अरोग्यकर और सौंदर्यवर्धक गुणों के साथ-साथ ताज़ा आँवला और कई दूसरी जड़ी-बूटियाँ मिली हुई हैं. यह सब मिलकर आपके शरीरगठन को मज़बूत करते हैं. शरीर के टिशूज़ को वृद्धावस्था में भी चुस्त बनाए रखते हैं और आज की तेज़ रफ़्तार ज़िन्दगी के तनावों से आपको मुक्त रखने में आपकी मदद करते हैं. तो आज ही से इसे अपनी आदत बना लीजिए. और जीवनभर बीमारियों से मुक़ाबला करने की शक्ति जुटा लीजिए. वृद्धावस्था में सेहत का अनमोल रत्न आप भी पा लेंगे, और सारी ज़िन्दगी, ज़िन्दगी से भरपूर तरो-ताज़ा रहेगी.

झंडु केसरी जीवन

रग-रग में जान — ज़िन्दगी की शान

ZP/8/244 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरिक व्यायाम के उपकरण

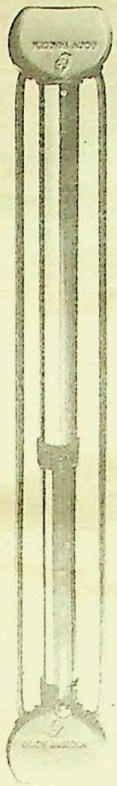

महाराष्ट्र फिटनेस इक्विपमेंट्स कंपनी प्राइवेट लिमिटेड शरीर को चुस्त बनाने वाले उपकरणों का निर्माण करती है. इनके द्वारा बनाये गये सभी उपकरणों में आइसोटोनिक तथा आइमोमीट्रिक, दोनों प्रवृत्तियों के व्यायामों का अच्छा सम्मिश्रण किया गया है.

इस कंपनी द्वारा पहला उपकरण जो बाजार में भेजा गया वह था—बॉडी बिल्डर. यह मांसपेशियों को लचीला बनाने तथा शरीर को चुस्त बनाने में सहायता करता है. इस उपकरण को ग्राहकों तथा व्यापारियों ने बहुत पंसद किया. इसकी बिक्री से उत्साहित होकर ही महाराष्ट्र फिटनेस इक्विपमेंट्स कंपनी लिमिटेड ने एक और उपकरण बाजार में भेजा है. इस उपकरण का नाम है. टमी एलिमिनेटर याने पेट घटाने वाला उपकरण. यह काफी हल्का-फुल्का उपकरण है और इसे आसानी से कहीं भी ले जाया जा सकता है.

दोनों उपकरणों पर कुछ ही मिनट के हल्के फुल्के व्यायाम से अच्छे परिणाम निकलते हैं. और इनकी कीमतें भी इतनी कम हैं कि आम आदमी इन्हें खरीद सकता है. □

व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा सामाजिक सुरक्षा योजना

केंद्र सरकार ने १९८५ में लगभग १०० जिलों में समाज के कमजोर वर्ग के हित में यह बीमा योजना शुरू की थी. वर्ष १९८६ में १०० और जिलों में यह योजना शुरू की गयी. सरकार का इरादा है कि सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के अंत तक पूरे देश में यह योजना लागू हो जाये.

अगर किसी गरीब परिवार के कमाने वाले सदस्य की किसी दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है और उसे किसी भी अन्य स्रोत से हर्जाना नहीं मिलता तो इस योजना के अंतर्गत उसे तीन हजार रुपये की राहत राशि दी जायेगी. इस योजना में वे ही परिवार (पति पत्नी और उन पर निर्भर बच्चे) शामिल होगे जिनकी कुल वार्षिक आय 5000 रुपये से कम है.

किसी भी मौत की दशा में मौत के ९० दिन के भीतर दावा जांच एवं निर्धारण अधिकारी के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत करना होता है.

विभिन्न बीमा कंपनियों को क्षेत्र बांट दिये गये है. ये इस प्रकार है :

नेशनल इंश्योरेस कंपनी लिमिटेड : उत्तरी तथा उत्तर पूर्वी क्षेत्र के सभी राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड : पश्चीमी क्षेत्र के सभी राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश

ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड : उत्तरक्षेत्र के सभी राज्य एंव केंद्र शासित प्रदेश

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड : दक्षिण क्षेत्र के सभी राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश □

Now! Getting into shape is a treat and not a treatment... What's more, it's within your means!

A portable device

In Europe they have developed a 1 kg exercise device you can carry in your overnight bag. They call it 'NO STOMACH'. Designed specifically to eliminate all excess fat from your stomach,it is a stretching and exercising device made with one/two steel coil springs, so you can choose the level of workout you want.

10 Minutes a day and your Pot Belly will be gone!

That's our guarantee. If you're not satisfied with how it works for you, return it for full refund. There are six simple exercises to do and you can do them almost anywhere. In a hotel room, in your own home etc. That is why **bb TUMMY ELIMINATOR is the answer for people who travel, who like to have good meals but who don't want the belly that often comes as a result.**

ONLY Rs.168/- single spring for Women & Men
Rs.198/- double spring for Men only

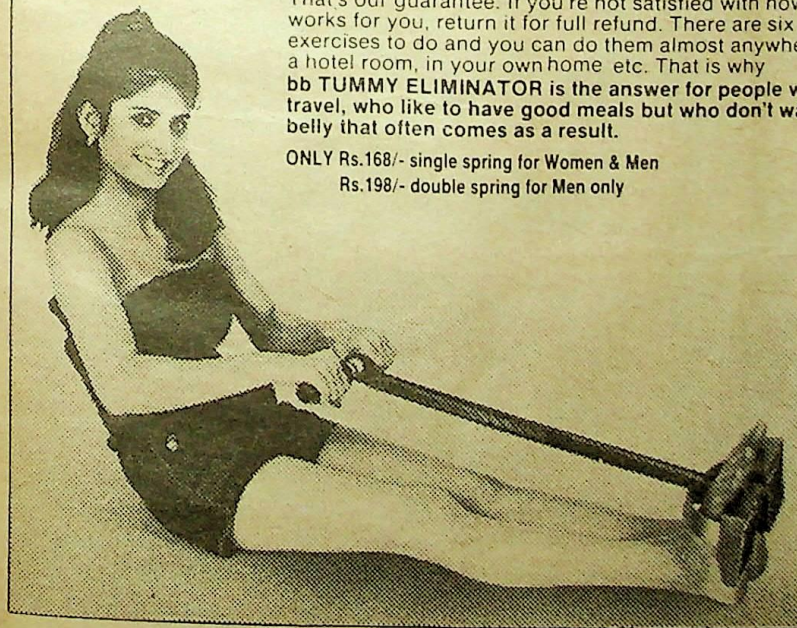

14-DAY FREE HOME TRIAL

If you are not satisfied with the results you may return everything within the 14-day free trial period for immediate refund (Less Rs. 28/- towards postage.)

Also available at all leading sports shops.

FREE! Exercise Chart

Introducing

TUMMY ELIMINATOR

18 MONTHS' UNCONDITIONAL GUARANTEE!
It is built of superior materials with superior technology!

To SR 1
MAHARASHTRA FITNESS EQUIPMENTS CO. PVT. LTD.
Krishna Kunj, 2 Main Avenue, Santa Cruz (West), Bombay 400 054

Please send me
☐ bb Tummy Eliminator (Single spring) [Rs.168/-]
☐ bb Tummy Eliminator (Double spring) [Rs.198/-]
✓Tick your preference
by
☐ Registered Post. I am sending Rs.168/- or Rs.198/- as required by D.D./I.P.O./M.O. No. _____ dated _____ (Payable to Maharashtra Fitness Equipments Co. Pvt. Ltd.)
☐ V.P.P. I promise to pay postman Rs.168/- or Rs.198/- as required on delivery
✓Tick appropriate box

Name _____
Address _____
_____
Signature _____

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सबको तो है बचाता ...

जी आई सी का बीमा छाता

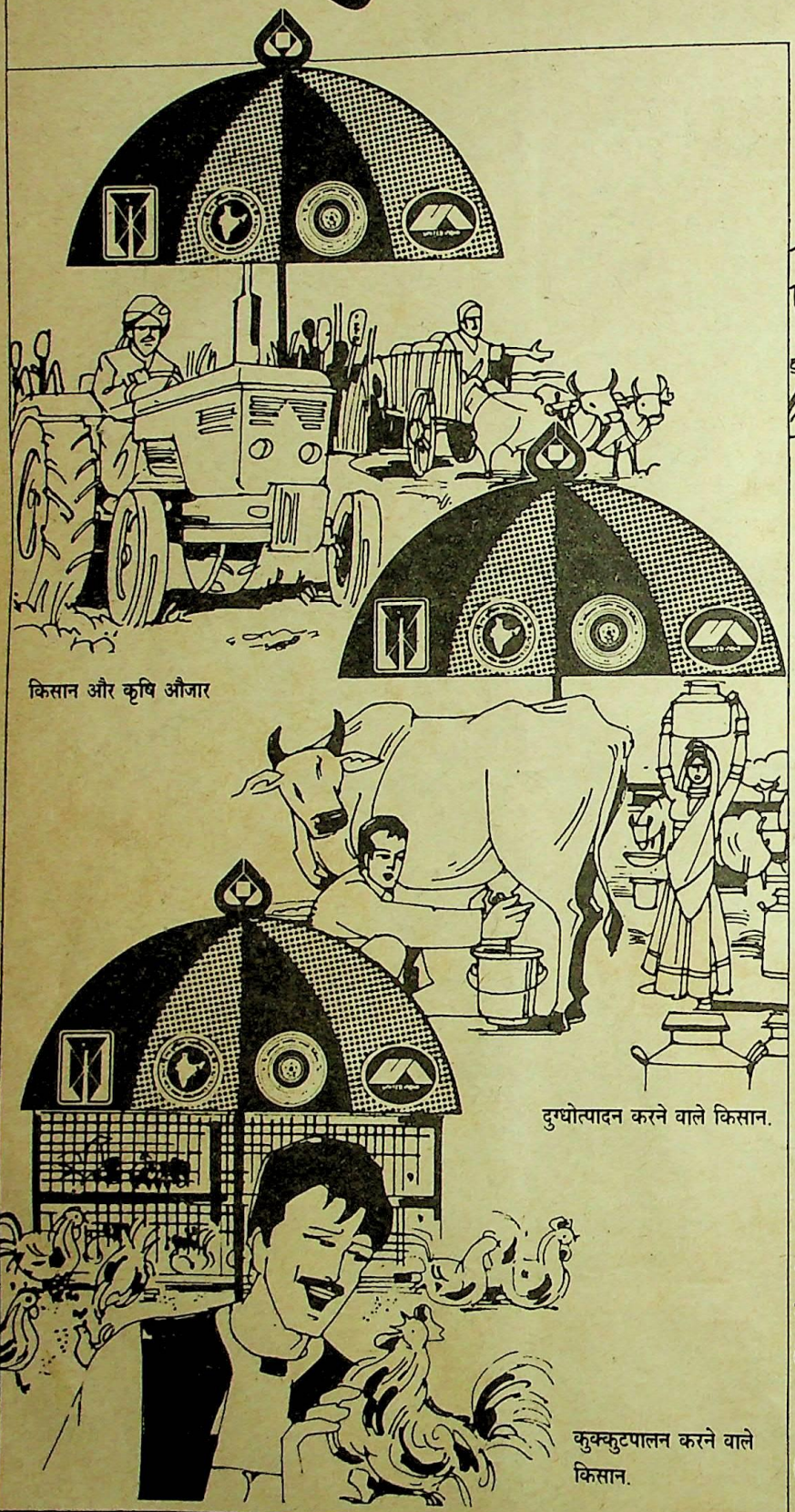

किसान और कृषि औजार

दुग्धोत्पादन करने वाले किसान.

कुक्कुटपालन करने वाले किसान.

और आप?

आपको अक्सर तरह तरह के ख़तरों का सामना करना पड़ता है। कभी बाढ़, सूखा और कभी तूफान आपके मवेशियों, या मालअसबाब को मटियामेट कर देते हैं... कभी बैलगाड़ी बैल दुर्घटना की चपेट में आ जाती है– कभी पम्पसेट या ट्रैक्टर ही ठप्प पड़ जाते हैं--इन सबके कारण आपके ऊपर ख़र्च का बोझ तो बढता ही है–परेशानी सो अलग!

इन सब समस्याओं से अपने को सुरक्षित करने का एक ही तरीका है–वह है जी.आई.सी. का बीमा छाता।

आपकी जरूरत और सुविधा के मुताबिक जी आई.सी. के पास विविध प्रकार की पॉलिसियां हैं। यदि आपने बीमा करवाया हुआ है, तो माल असबाब के नुकसान की हालत में आपको कम्पेन्सेशन (हरजाना) मिलता है। बीमे के कारण आपको जो सुरक्षा, हिफाजत और मानसिक शांति मिलती है, उसके सामने आपके द्वारा भरा जाने वाला मामूली सालाना प्रीमियम कुछ भी नहीं!

भारतीय साधारण बीमा निगम की चार सहयोगी कम्पनिया हैं जो हर तरह का साधारण बीमा करती हैं। इनमें से कम से कम एक कपनी का दफ्तर तो आपके करीब ही होगा जहां से आपको पूरी जानकारी मिल सकती है; या चाहें तो आप किसी साधारण बीमा एजन्ट से भी पूछताछ कर सकते हैं जो सहर्ष आपके प्रश्नों के उत्तर दे देगा। या फिर आप बीमा के योग्य अपनी सम्पत्ति का हवाला देकर हमें भी लिख सकते हैं।

सर्वतोमुखी सुरक्षा है देता–

जी आई सी का बीमा छाता

जनरल इन्श्योरेन्स कॉर्पोरेशन आफ इन्डिया
इन्डस्ट्रियल एश्योरेन्स बिल्डिंग
चर्चगेट, बम्बई ४०० ०२०

आपत्काले रक्षिष्यामि

नैशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

दी न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

दी ओरिएन्टल एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

युनाइटेड इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Multimedia Aquarius/GIC/1/87/H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मुस्कान रहेगी कायम

जिस दिन से मिल गया उसे अनचाहे गर्भ से छुटकारा,
उसकी खुशियों का झिलमिलाया सितारा।
अपने परिवार को छोटा रखने के लिए आज
संसार में साढ़े छः करोड़ से भी ज्यादा औरतें ओरल पिल्स यानि
गर्भ निरोधक गोलियां खा रही हैं।
उन्हीं की तरह उसने भी माला-डी-नई छोटी
खुराक वाली गोलियां खाना शुरू कर दी हैं।
ये गोलियां खासतौर से भारतीय महिलाओं
के लिए अनुकूल हैं।
पहला बच्चा जल्दी नहीं,
दूसरा उसके तीन साल बाद
और इसके लिए हर समझदार औरत खाती है गर्भ निरोधक
गोलियां
माला-डी-गोलियों के प्रयोग से छाती का कैंसर,
डिम्ब ग्रंथि का कैंसर, गर्भाशय कैंसर तथा पेडू
में सूजन जैसे रोग का खतरा कम हो जाता है।

डाक्टर की सलाह लीजिए,
वह आपको **माला-डी** की राय देंगे।

**माला-डी, बच्चों के जन्म में अन्तर के लिए
सुरक्षित, सरल और शर्तिया उपाय
नई खाने की गर्भ-निरोधक गोलियां,
रियायती दामों पर,
सिर्फ 2 रु. में एक पैकेट।**

डी ए वी पी 87/146

. रोड, बंबई-400 001.
स ईस्ट, कलकत्ता-700 069;
. ऑदन टेलिफोन नं. 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी पुस्तक अच्छा साथी

विशेषकर तब, जबकि वह आपको अपने पड़ोसी राज्यों की संपूर्ण जानकारी देती हो. नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया तेरह भारतीय भाषाओं में मौलिक पुस्तकें अथवा उनके अनुवाद प्रकाशित करता है.

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के अनुदित प्रकाशनों के विषय में आप पायेंगे कि वे निश्चित रूप से भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ मौलिक पुस्तकों के अनुवाद हैं.

नेशनल बुक ट्रस्ट ने तेरह भारतीय भाषाओं के कथा-संग्रह प्रकाशित किये, साथ ही भारतीय ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी तथा अन्य प्रादेशिक पुरस्कार प्राप्त पुस्तकें सर्वप्रथम नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा ही प्रकाशित की गईं.

कुछ महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह जो हमारे विभिन्न विक्रय-केंद्रों पर उपलब्ध हैं :

इक्कीस बांग्ला कहानियां
उर्दू कहानियां
तमिल कहानियां—I
समकालीन तमिल कहानियां—II
हिंदी कहानियां—I
समकालीन हिंदी कहानियां—II (प्रकाश्य)
तेलुगु कहानियां
मलयालम कहानियां—I
समकालीन मलयालम कहानियां—II
जयकांतन की कहानियां
प्रेमचंद की कहानियां
पदुमइपित्तन की कहानियां
गुजराती कहानियां

नेशनल बुक ट्रस्ट,
इंडिया ए-5, ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110 015

अब आप रोक सकते हैं
गंजापन

सीकरी या रुसी, बालों का गंजेपन की शुरुआत है। गंजापन पुश्तैनी हो या नया, पूर्ण रूप से ठीक हो सकता है। हमारी जड़ी-बूटियों के अदभुत उपचार द्वारा सफेद बाल भी पुनः जड़ से काले उगते हैं। पूर्ण जानकारी हेतु मुफ़्त परामर्श करें।

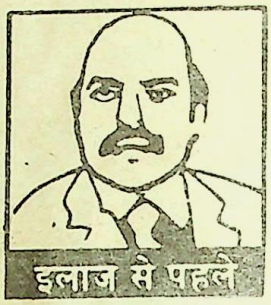
इलाज से पहले

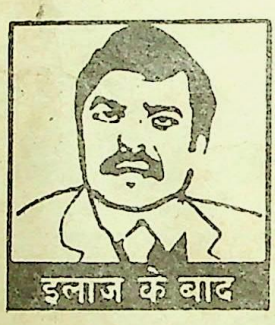
इलाज के बाद

बाल खोने की समस्या का उपचार सम्भव है।

९.०० से दोपहर १.०० बजे तक, रविवार सहित
संध्या-५.०० से ७.०० बजे तक, रविवार बंद.

भारतीय चिकित्सा संस्थान
जी–62, प्रीत विहार, नई दिल्ली - 110 092.
फोन : 2201749

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिजली
बचत का अर्थ है
बिजली का उत्पादन

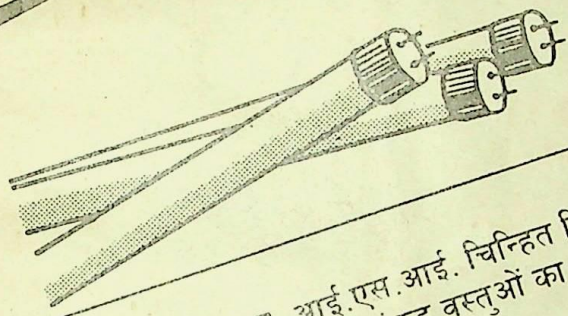

■ ट्यूबलाइट का प्रयोग करें। इसके प्रयोग से बिजली कम खर्च होती है तथा रोशनी अधिक होती है।

■ आई.एस.आई. चिन्हित विद्युत उपकरणों तथा अन्य संबद्ध वस्तुओं का प्रयोग करें।

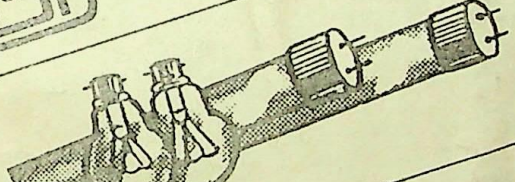

■ ट्यूब तथा लैम्प को साफ रखें।

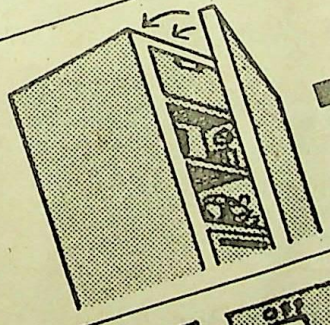

■ अपने रेफ्रीजरेटर के दरवाजे को यथाशीघ्र बन्द करें।

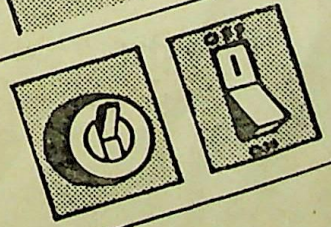

■ आवश्यकता न होने पर सभी विद्युत उपकरणों को तुरन्त बन्द कर दें।

■ कमरा छोड़ते समय बत्तियों, पंखों तथा वातानुकूलनों को बन्द कर दें।

विद्युत विभाग
ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार
नई दिल्ली-110 001 द्वारा जारी

davp 87/231

बैनेट, कोलमैन एण्ड कं. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिये ऋचा जैन द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002 से मुद्रित व प्रकाशित. पंजी. कार्यालय : डॉ. दादा भाई नौरोजी रोड, बंबई-400 001. शाखाएं : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380 009; 105/7 ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700 014; कार्यालय : 13/1-2, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700 069; गंगा गृह, तीसरी मंजिल, 6-डी नुंगाम बक्कम हाई रोड, मद्रास-600 034; 410, मैथ्यू मार्ग, नरीमन पॉइंट, बंबई-400 021. टेलेक्स : 8 बंबई, तार : मिडिलसेक्स, लंदन, यू.के., लंदन टेलिफोन नं. 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/499
KARNATAKA
Regn. No. KRN/BG/GPO/46
RJ 2954

I WALK IN SEARCH OF LIGHT

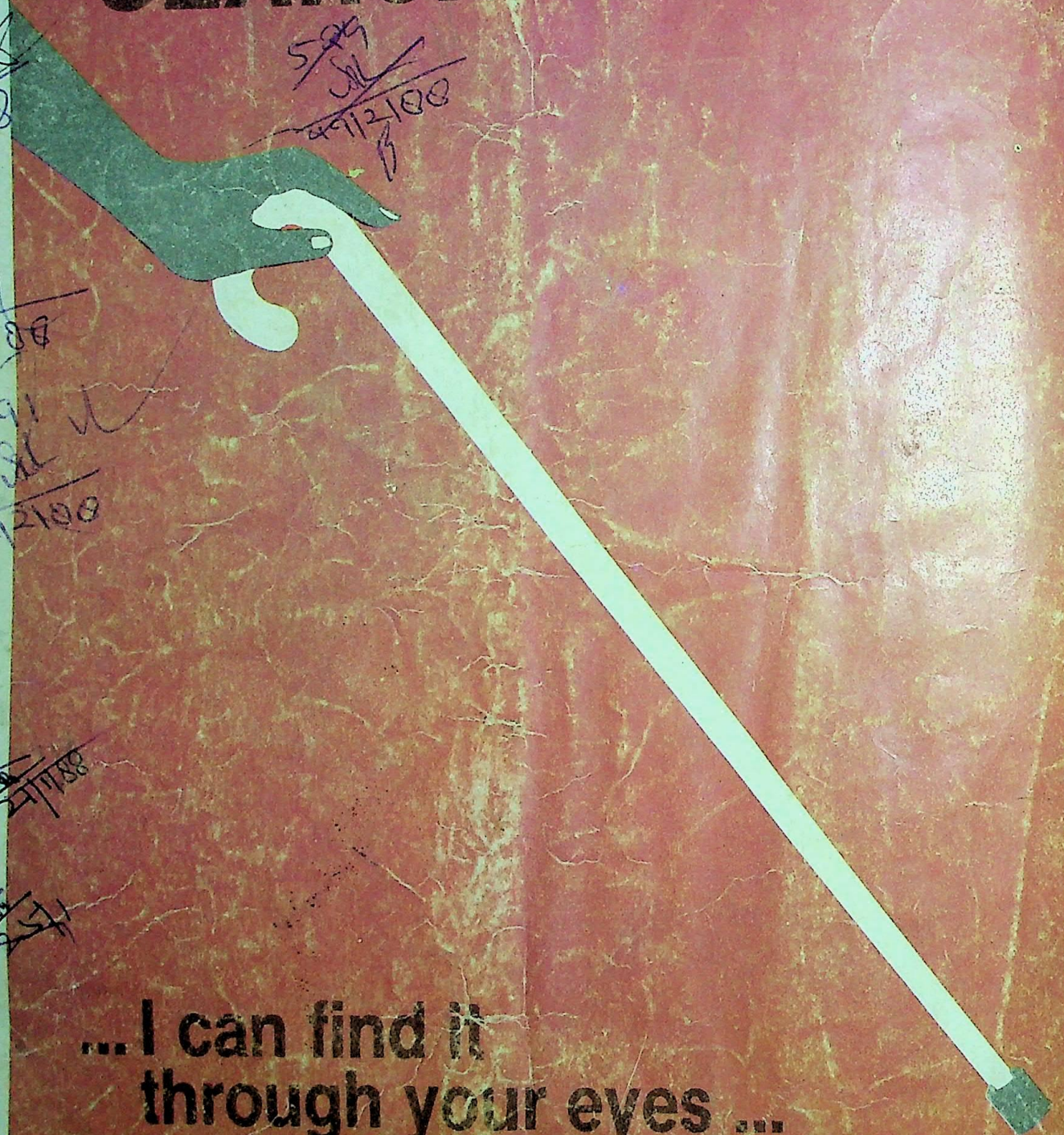

Design Concept: Ronna Sharma

...I can find it through your eyes...

SIGHT

A GIFT ONLY YOU CAN GIVE

Times Eye Research Foundation
10, Daryaganj, New Delhi 110002.
Phone: 271911, 271912, 271913.

Let your eyes live after you — DONATE EYES

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

डायमंड पाकेट बुक्स में

साहित्य प्रेमियों के लिये अनुपम उपहार

महान कवि, कथाकार, नाटककार

जयशंकर प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य

प्रसाद ग्रन्थावली चार भागों में

मूल्य प्रत्येक भाग 40/-

29 फरवरी 1988 तक एडवांस मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट प्राप्त होने पर चारों खंड 160/- के स्थान पर 100/- में डाक व्यय फ्री।

अनुपम अवसर सम्पूर्ण प्रसाद साहित्य केवल 100/- में

मुंशी प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य

(उपन्यास)

निर्मला	8-00
वरदान	12-00
प्रतिज्ञा व मंगलसूत्र	12-00
सेवासदन	15-00
गोदान	20-00
प्रेमाश्रम	20-00
कर्मभूमि	20-00
रंगभूमि-1	20-00
रंगभूमि-2	20-00
कायाकल्प	20-00
मनोरमा	12-00
रूठीरानी व प्रेमा	12-00
गबन	15-00

(कहानी संग्रह)

मानसरोवर भाग-1	15-00
मानसरोवर भाग-2	15-00
मानसरोवर भाग-3	15-00
मानसरोवर भाग-4	15-00
मानसरोवर भाग-5	15-00
मानसरोवर भाग-6	15-00
मानसरोवर भाग-7	15-00
मानसरोवर भाग-8	15-00

नाटक

संग्राम	12.00
कर्बला	12.00

शरतचन्द्र का साहित्य

देवदास	10.00	पंडित जी	10.00
परिणीता	10.00	मंझली दीदी	10.00
गृहदाह	15.00	दत्ता	10.00
शेष प्रश्न	10.00	शेष परिचय	15.00
देना पावना	10.00	बिराज बहू	10.00
श्रीकांत	20.00	पथ के दावेदार	15.00
चरित्रहीन	15.00	ब्राह्मण की बेटी	10.00

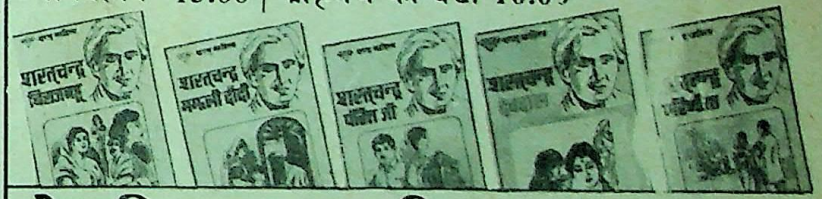

देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास

चन्द्रकांता	12.00
चन्द्रकांता सन्तति I	12.00
चन्द्रकांता सन्तति II	12.00
चन्द्रकांता सन्तति III	12.00
चन्द्रकांता सन्तति IV	12.00
चन्द्रकांता सन्तति V	12.00
चन्द्रकांता सन्तति VI	12.00

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथाजगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28, अंक : 430, फरवरी, 88

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञानसिंह

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

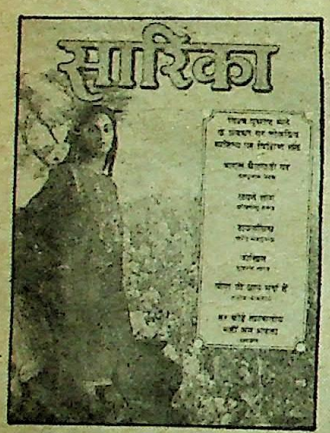

आवरण पारदर्शी : **विमल सक्सेना, हेमंत कुमार, फाल एस. गिरोटा**

अंक सज्जा : **हरिप्रकाश त्यागी**

कथा रचनाएं

6. बारात बैलगाड़ी पर : **उपेंद्रनाथ अश्क**
15. अपने लोग : **अभिमन्यु अनत**
19. डायलिसिस : **वीरेंद्र मेंहदीरत्ता**
23. जोखिम : **सुदर्शन नारंग**
26. आउट हाउस : **केशव**
30. पापाजी, आप गंदे हैं : **नफीस आफरीदी**
36. अजनबी लोग : **शैलेंद्र सागर**
39. रेत के शिखर : **तेजेंद्र शर्मा**
44. नींद टूट गयी : **विनय बिहारी सिंह**
52. बिरादरी : **विनय श्रीवास्तव**

उपन्यास अंश

48. पवनपुत्र : **भगवतीशरण मिश्र**

संस्मरण

12. हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता : यशपाल : **चंद्रगुप्त विद्यालंकार**
54. फीस और क्यू : **डॉ. ईश्वर दत्त वर्मा**

परिचर्चा

68. किताबें दीवारें नहीं पढ़तीं उर्फ लेखक, प्रकाशक और पाठकों के अंतर्संबंध

लघु रचनाएं

8. रास्ता : **रतीलाल शाहीन**
17. जमानत : **जगमोहन बलोही**
32. सिलसिला : **अशफाक अहमद**
33. चैन की सांस : **सीतेश आलोक**
34. दर्शन और पाप : **अनिल श्रीवास्तव**
46. अरब का बीरबल अबू : **अनुराधा शुक्ला**
47. उसकी आंखें : **ज्योतिवाला**
50. बहरे दोस्त की मिजाजपुर्सी : **सुधांशु गुप्त**
51. लेखक और परिवेश : **विपिन जैन**
56. देवता की हंसी : **रमाकांत**
58. नंदी : **हिमानी शिवपुरी**

विशेष आयोजन

59. लोकप्रिय साहित्य खंड : **मनमोहन चड्ढा**

स्थायी स्तंभ

5. अपनी बात
42. अनजानी प्रेम कथाएं : **बाला दुबे**
73. कृतियां
78. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ : **गोपाल चतुर्वेदी**
81. सारिका कथा पहेली, नयी पौद

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंवले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

"दृष्ट प्रवर,

समझ में नहीं आता, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्यों तुम हाथ धोकर मेरे पीछे पड़े हो? सी.आई.ए. जैसे किसी भी देश में गृह-कलह करा देता है, वैसे ही तुमने भी मेरी छोटी-सी गृहस्थी में बवंडर उठा दिया है...महाशय, मैं तुमसे व्यक्तिगत तौर पर बिल्कुल परिचित नहीं, मैंने तुम्हें कभी देखा नहीं, फिर तुम मेरे संबंध में सारी बातें कैसे जानते हो?...तुम लेखक हो कि 'एंटीना', मियां बीबी के बीच होने वाले गुप्त संवादों को भी कैच कर लेते हो?"

यह खुला पत्र भूचाल सिंह ईंट ठेकेदार ने विनोद शंकर शुक्ल के नाम से आज से करीब तीन साल पहले सारिका के (1-15 मार्च, 1985 के) अंक में लिखा था. ....पर जनाब की खुसूसियत यही नहीं है इससे बहुत पहले वे 'मुद्रिका रहस्य उर्फ असली किस्सा कुमारी शकुंतला को' भी लिख चुके हैं...और इधर लंबे समय से प्रतिदिन एक नयी धार लेकर नवभारत टाइम्स में हाजिर हो जाते हैं.

.....तो इस बार होली की ठिठोली का नेतृत्व कर रहे हैं 'सारिका' के अतिथि संपादक और प्रख्यात व्यंग्यकार

शरद जोशी

.....और अपने व्यंग्य की रंगभरी पिचकारी लेकर साथ में आ रही है मौजूदा व्यंग्यकारों की होली की तरंग में मदमस्त टोली....

सभी स्थायी स्तंभों के साथ होली पर इस उपहार की अपनी प्रति कृपया अभी से सुरक्षित करवा लें.

सारिका

मार्च 1988

अपनी बात

दलालों का साहित्य और साहित्य के दलाल

पिछले अंक में हमने पुस्तक मेलों की सार्थकता और उपयोगिता की बात उठायी थी और उसी से जोड़कर प्रकाशकों लेखकों तथा पाठकों के अंतर्संबंधों की भी चर्चा की थी. इस बार हमने इन्हीं बातों और चर्चाओं पर आधारित कुछ सवाल कई प्रतिष्ठित प्रकाशकों से पूछे हैं. इन सभी चर्चाओं और सवालों के पीछे हमारा उद्देश्य पाठकों को अधिक से अधिक संख्या में साहित्य से जोड़ना है. लिखित शब्द का महत्व तब तक कुछ नहीं होता जब तक उसे पढ़ने वाले और उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले समझदार पाठकों की संख्या न बढ़े. इन चर्चाओं को छेड़ने और इन सवालों को उठाने का एक मकसद यह भी है कि किस तरह प्रकाशक, लेखक और शब्द प्रचार के अन्य माध्यम मिलकर एक बड़े परिवार या संसार का निमार्ण कर सकते हैं अर्थात जो पाठक सुरुचिपूर्ण और सार्थक साहित्य से हटते जा रहे हैं उन्हें फिर से साहित्य की मूलधारा से जोड़ने और उनके साथ एक नये पाठक वर्ग का निर्माण करने का सिलसिला शुरू किया जा सके.

ऐसा नहीं है कि साहित्य के सामने पाठकों का अभाव हो. निश्चित रूप से लोग पढ़ना चाहते हैं "लेकिन जो भी सहज मिल जाए" वाली सुविधा से पढ़ना चाहते हैं. अधिकांश पाठक पुस्तकें खरीदकर पढ़ने की स्थिति में नहीं हैं. उनके सामने यह स्थिति कैसे पैदा की जाए यह आज सबसे अहम और विचारणीय सवाल है. प्रकाशकों के मन में व्यावसायिकता के दबाव इतने घनीभूत हो गये हैं कि लगता है जैसे उनके बीच प्रतियोगिता किताबों के प्रकाशन की न होकर मूल्यों की वृद्धि की हो. कभी कभी किताबों की इतनी ज्यादा बढ़ी हुई कीमतों को देखकर ऐसा भी लगता है जैसे प्रकाशकों को पाठकों की कोई चिंता ही न हो. यह बात किसी सीमा तक सही भी है क्योंकि आज के अधिकांश प्रकाशक लाइब्रेरी खरीद तथा सरकारी खरीद पर ही निर्भर रहना सीख गये हैं. इस निर्भरता के कारण घटिया या फेक साहित्य भी काफी संख्या में नजर आने लगा है. पुस्तक खरीद से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े दलाल किस्म के लोग, जिनका साहित्य से दूर-दूर का भी रिश्ता नहीं रहा, वे भी अपने इष्ट मित्रों और परिवार जनों के साथ इस साहित्य संकीर्तन से जुड़ गये हैं. मतलब यह है कि उन लोगों की रद्दी से रद्दी चीजें प्रकाशक प्रशंसा और धन भी पेशगी देकर सहर्ष छाप डालता है और उनके कारण जेन्यून साहित्य के प्रकाशन में रुकावट पैदा होती है. इस स्थिति पर नजर रखने और इसे रोक पाने का दायित्व भी प्रकाशकों, लेखकों, पाठकों तथा शब्द प्रचार के माध्यमों का है.

मैं जो कुछ कह रहा हूं वह इस बात की पक्षधरता नहीं है कि लाइब्रेरी खरीद और सरकारी खरीद बंद कर दी जाये, अगर ऐसा हो गया तो इससे हमारा प्रकाशन व्यवसाय बुरी तरह प्रभावित होगा. हमारी पक्षधरता पाठकों के निर्माण के प्रति और उनके रुचि-परिष्कार के प्रति है साथ ही इस बात के प्रति भी कि पुस्तकों की इन अनाप-शनाप कीमतों को किस तरह नियंत्रित किया जाये ताकि उन तक पाठकों की पहुंच हो सके. सुना है कि इस दिशा में हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी के कृष्ण चंद्र बेरी ने काफी सराहनीय और स्तुत्य प्रयास किया है. उन्होंने भारतेंदु बाबू के संपूर्ण साहित्य को सिर्फ 30 रुपये में और डाक खर्च के साथ 40 रुपये में बेचने के लिए तैयार किया है और वे इतने ही पैसों में अन्य कई महत्वपूर्ण साहित्यकारों के संपूर्ण साहित्य को प्रकाशित करने के प्रयास में लगे हुए हैं. मैं उनका हार्दिक अभिनंदन करता हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि उनके इस प्रयत्न से पाठकों के मन में पढ़ने के प्रति एक नयी उमंग और किताबों के प्रति एक सही आस्था पैदा हो सकेगी और निश्चय ही इससे पाठकों की संख्या का विस्तार भी होगा.

इस अंक में हम पूरी इच्छा और कोशिश के बावजूद कुछ स्तंभ और कुछ घोषित रचनाएं प्रकाशित नहीं कर पाए हैं इसका हमें खेद है लेकिन भविष्य के लिए हमारी पूरी कोशिश होगी कि किसी भी अंक से कोई भी स्तंभ अनुपस्थित न रह सके.

अ. म. दुर्रानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी पीढ़ी के चर्चित एवं प्रतिनिधि कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार. प्रायः प्रत्येक विधा पर अधिकारपूर्ण लेखन.
संपर्क : 5, खुसरो बाग, इलाहाबाद (उ.प्र.)

उपेंद्रनाथ अश्क

बारात बैलगाड़ी पर

चिट्ठिए दर्द फ़िराक वालिए
नी, ले जा, लें जा सुन्योहड़ा सोहने यार दा

नीचे बैलगाड़ी चरख-चूं चली जा रही थी. सड़क के दोनों ओर लगे शीशम के घने पेड़ों के ऊपर नीला, निरभ्र आसमान, किसी विशाल शामियाने-सा तना था. वसंत का त्यौहार आकर जा चुका था, लेकिन सर्दी वैसी ही तीखी थी, बल्कि हवा में गलन बढ़ गयी थी और धूप सुहानी लग रही थी. कहीं-कहीं किसी घने पेड़ की नीची डाल चेतन के ऊपर से लहराती निकल जाती और सहसा चेतन का मन उसे पकड़ने के लिए ललक उठता.

उसके बड़े साले याने चंदा के ताऊ पंडित वेणी प्रसाद के बड़े लड़के रणवीर 'नाशाद' की शादी पर बरात लालड़ां जा रही थी. बैलगाड़ी पर आगे को बरातियों के ट्रक और पीछे की ओर को शीरीनी तथा नमकीन सेव और शकरपारों के कनस्तर थे. उनके ऊपर गोल किये हुए और रस्सियों के कसकर बांधे बिस्तर तह-दर-तह जमाकर रखे गये थे, सब के ऊपर मोटी फर्शी दरी तहाकर डाल दी गयी थी और यूं बैलगाड़ी के ऊपर पेड़ों को छूता हुआ-सा बहुत ऊंचा, चौड़ा मंच-सा बन गया था. चेतन बायीं ओर चित्त लेटा हुआ आसमान को तांक रहा था. उसके बराबर 'हुनर' साहब और 'निश्तर' कोहनी के बल लेटे थे. जरा परे भाई साहब दोनों घुटनों को बांहों में बांधे पीछे को झुके हुए थे. उनके पास ही रणवीर बैठा था. चूंकि बैलगाड़ी पर सब-के-सब एक साथ खुली तरह नहीं बैठ सकते थे, इसलिए बैठे-बैठे उकताकर कुछ युवक बैलगाड़ी के साथ-साथ जनैली सड़क पर चल रहे थे और रणवीर की गली का सुनार युवक रतना दायीं ओर नीचे को पैर लटकाये बैठा, दिशाओं को गुंजाती हुई, अपनी लोच और सोज-भरी आवाज में 'चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए' गा रहा था.

लेटे-लेटे करवट बदलकर चेतन ने अपने भाई की ओर देखा...अगर उन्हें लाहौर ही में पता चल जाता कि रणवीर की शादी लालड़ां नाम के जिस गांव में होने जा रही है, वहां रेलगाड़ी और तांगे-इक्के नहीं जाते (बसों का तो उन दिनों रिवाज ही नहीं था) बैलगाड़ियां ही जाती हैं और बरात उन्हीं में जायेगी तो चेतन को विश्वास था, रणवीर के तमाम अनुरोध और अनुनय-विनय के बावजूद भाई साहब कभी न आते. डेंटल कॉलेज खोलने में आर्थिक सहायता देने का जो वायदा उसने किया था, उसका भी कुछ खयाल न करते.

चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
मैं वी वेक्खां मुख यार दा.
ओ मेरेआ चन्ना
मैं वी वेक्खां मुख यार दा.

चेतन का सारा रूमान इस बरसात और सर्दी में जम गया था. उसने क्षण भर अपने तीनों साथियों की ओर देखा. मौन और बेबस खड़े भीग रहे थे. उसका अपना दिमाग कुछ भी नहीं सोच रहा था. उसकी कल्पना में बड़ी-सी अंगीठी थी. उसमें दहकते उपले थे.

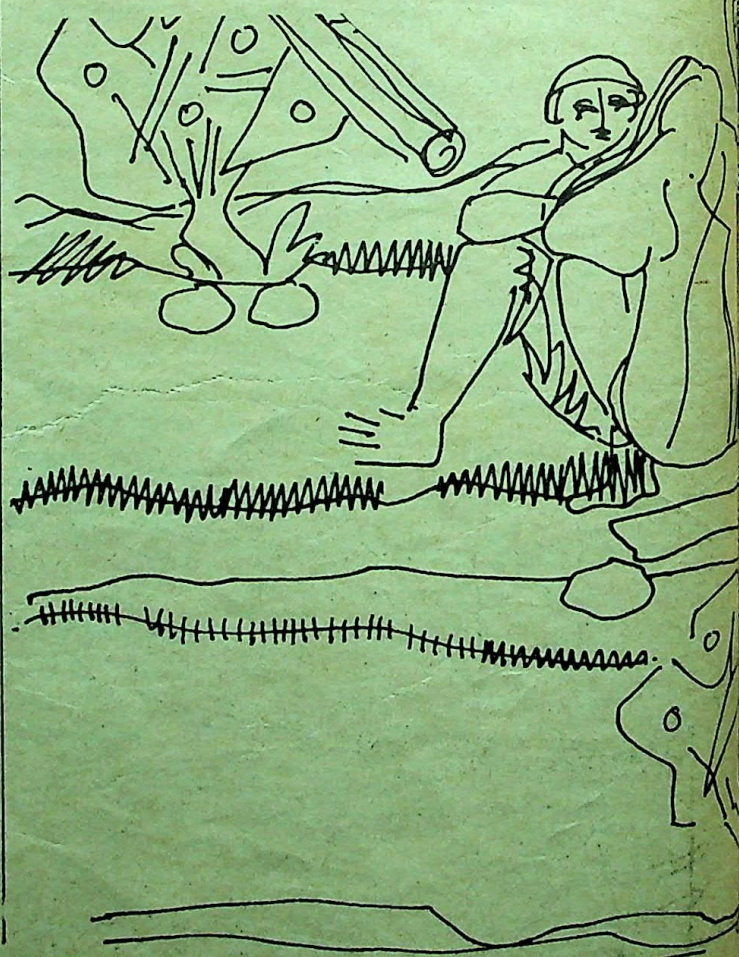

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रतना अपनी सोज-भरी आवाज में गा रहा था. और अंतरा खत्म होते ही बैलगाड़ी के साथ-साथ चलने वाले रणवीर के दोस्तों ने समवेत स्वर में टीप का बंद उठा लिया था :

चिड़िए दर्द फिराक वालिए.
नी, ले जा, ले जा सुनयोछड़ा सोडने यार दा.

चेतन कुछ क्षण चुपचाप वह गीत सुनता रहा था. कितना प्यारा सोज-भरा गीत था. चेतन के सामने कुछ वर्ष पहले के वे दिन घूम गये, जब वह कुंती की गली के नीचे से सिर्फ उसकी एक झलक पाने को गुजरा करता था. उसे याद था, ईद की एक शाम, जब लोग छतों पर चढ़े चांद को देख रहे थे, सहसा बारीक-सा चांद नजर आ गया था और बराबर के मुसलमान मुहल्लों से खुशी के नारे बुलंद हो गये थे और दूर इमाम नासरुद्दीन में दमामे बज उठे थे, अपनी छत की शहनशील पर बैठा हुआ देर तक वह 'चिड़िए दर्द फिराक वालिए' गाता रहा था :

चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
में वी वेक्खां मुख यार दा.

और सुध-बुध भुलाकर वह बार-बार यही पंक्तियां गाता रहा था.

भाई साहब को गाने का वैसा शौक नहीं था. लेकिन चेतन ने देखा—घुटनों को बाहों में बांधे, वे धीरे-धीरे झूम रहे थे. वह मन-ही-मन हंसा. आखिर भाई साहब ने बैलगाड़ी की सवारी से समझौता कर ही लिया है.

चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
में वी वेक्खां मुख यार दा
ओ मेरेआ चन्ना
में वी वेक्खां मुख यार दा

रतना उसी बंद को दोहराकर गा रहा था. भाई साहब घुटने बाहों में लिये

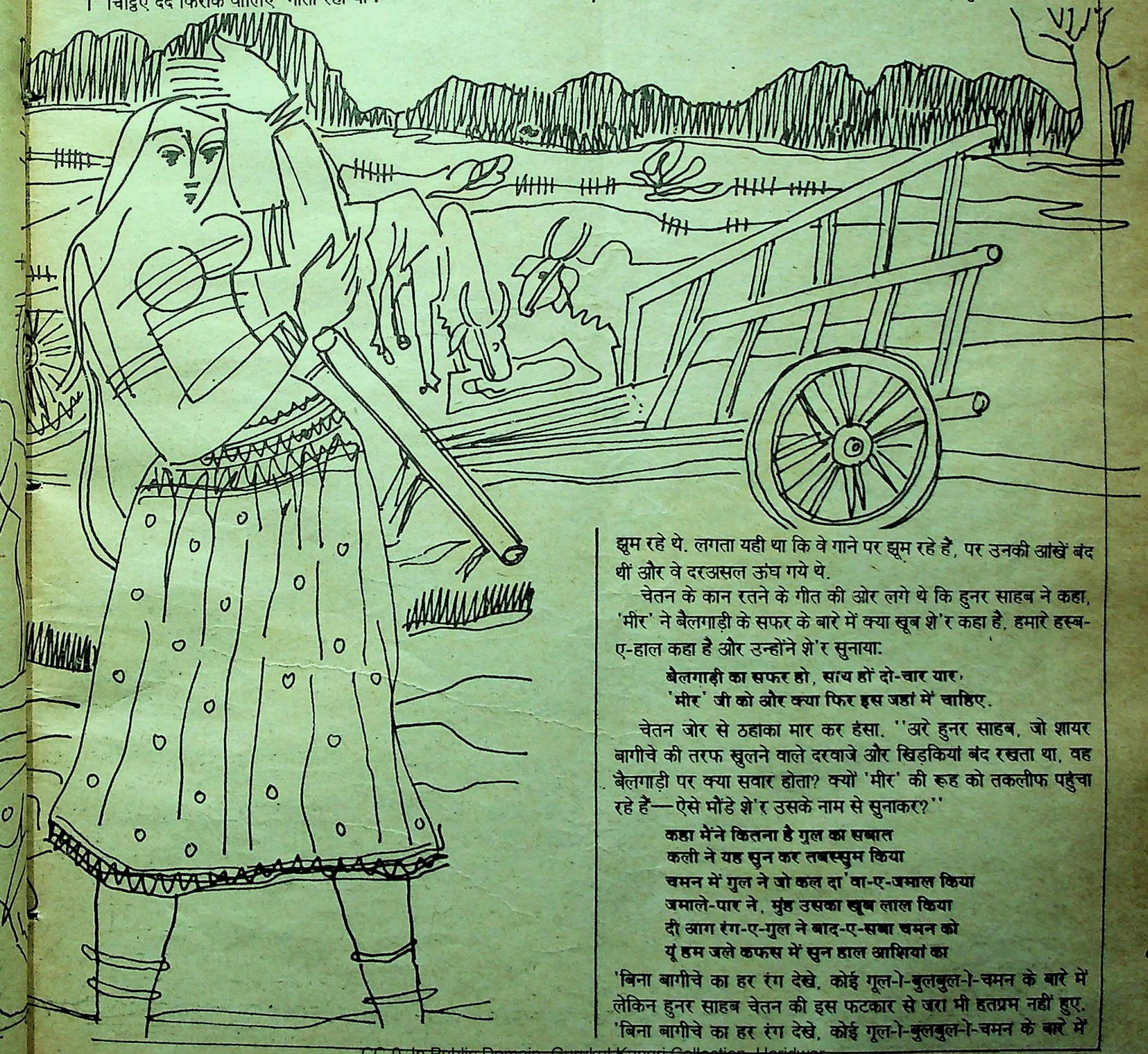

झूम रहे थे. लगता यही था कि वे गाने पर झूम रहे हैं, पर उनकी आंखें बंद थीं और वे दरअसल ऊंघ गये थे.

चेतन के कान रतने के गीत की ओर लगे थे कि हुनर साहब ने कहा, 'मीर' ने बैलगाड़ी के सफर के बारे में क्या खूब शे'र कहा है. हमारे हस्ब-ए-हाल कहा है और उन्होंने शे'र सुनाया:

बैलगाड़ी का सफर हो, साथ हों दो-चार यार,
'मीर' जी को और क्या फिर इस जहां में चाहिए.

चेतन जोर से ठहाका मार कर हंसा. ''अरे हुनर साहब, जो शायर बागीचे की तरफ खुलने वाले दरवाजे और खिड़कियां बंद रखता था, वह बैलगाड़ी पर क्या सवार होता? क्यों 'मीर' की रूह को तकलीफ पहुंचा रहे हैं—ऐसे भौंडे शे'र उसके नाम से सुनाकर?''

कहा मैंने कितना है गुल का सबात
कली ने यह सुन कर तबस्सुम किया
चमन में गुल ने जो कल दा'वा-ए-जमाल किया
जमाले-यार ने, मुंह उसका खूब लाल किया
दी आग रंग-ए-गुल ने बाद-ए-सबा चमन को
यूं हम जले कफस में सुन हाल आशियां का

'बिना बागीचे का हर रंग देखे, कोई गूल-ो-बुलबुल-ो-चमन के बारे में लेकिन हुनर साहब चेतन की इस फटकार से जरा भी हतप्रभ नहीं हुए. 'बिना बागीचे का हर रंग देखे, कोई गूल-ो-बुलबुल-ो-चमन के बारे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ऐसे दिलनशीं शे'र कह सकता है?' 'हुनर साहब ने कहा और अपने उस्ताद के उस्ताद के उस्ताद के हवाले से (जो हुनर साहब के कथनानुसार 'मीर' के हम-असर और हम-सुखन थे) बताया कि 'मीर' को बैलगाड़ी का सफर बहुत पसंद था और उन्होंने 'मीर' के नाम से दो शे'र और सुना दिये:

बैलगाड़ी का सफर है ज़िंदगी
चरख-चूं जाने न कितने दिन चले
बैलगाड़ी का सफर है, रात पूरे चांद की
याद ने तेरी अंधेरा पाख लेकिन कर दिया

और उन्होंने बताया कि 'मीर' ही पर क्या बस है, 'गालिब', 'जोक', 'मोमिन' और 'सौदा' तक ने अपने अश' आर में बैलगाड़ी की यात्रा के गुण गाये हैं और वे एक किस्सा सुनाने लगे, जब 'मीर' ने दिल्ली से लखनऊ तक का सफर बैलगाड़ी में किया था और रास्ते में पूरा दीवान लिख डाला था. हुनर साहब तो अपनी रौ में 'मीर' का वह पूरा दीवान ही सुना देते, लेकिन रतना गाड़ी पर खड़ा हो गया था और उसका स्वर फिजाओं को गुंजा रहा था और चेतन को मीर के शे'रों में उस वक्त कोई दिलचस्पी नहीं थी.

ढूंघी-ढूंघी नदी-आ, तला वे पुराना
मैं अन तारू, तरन न जाना
नज़र न आवे कंडापार दा
ओ मेरे आ यारा—
नज़र न आवे कंडा पार दा

रतना बैलगाड़ी पर खड़ा था. दायां हाथ उसने कान पर रख लिया था. बायें को हवा में लहराते हुए उसने अंतरा गाया. कितना रसीला गला पाया है, रतने ने? हठात चेतन ने सोचा और उसकी आंखों के सामने शिमले के चैडविक प्रपात के नीचे उस तन्हाई को सोज और लोच-भरी अपनी आवाज से गुंजाते कविराज जी की सूरत घूम गयी और सोहनी का वह गीत उसे याद आ गया:

लंघ आ जा पत्तन झनां दा
ओ यार

इर्द-गिर्द की सारी फिजां को गुंजाता हुआ, रतने का गीत जाने किस प्रक्रिया से चेतन की श्रवण-शक्ति से परे चला गया था और उसकी जगह दो वर्ष पहले चैडविक प्रपात के पार्श्व-संगीत पर उठती सोहनी की पुकार कविराज के स्वर में चेतन के कानों में गूंजने लगी और वह मन ही मन उस लोकगीत के सारे बंद गुनगुनाता रहा.

वहीं बैलगाड़ी पर लेटे-लेटे, चेतन पुरानी यादों में खो गया. शिमला के चैडविक प्रपात से उड़कर उसका मन दुसुआ स्टेशन की सूनी, अकेली रातों में भटक गया, जिन्हें एक ही रात में बैठ कर मंथली (महीने का पूरा हिसाब) बनाने के प्रयास में उसके पिता मील-मील तक फिजाओं को गुंजाने वाली अपनी आवाज से खनखना देते थे—और रांझे का वह दर्द-भरा गीत :

इश्क तेरे ने कमलिए हीरे
जग विच्चू मेंन्नूं ख्वार कीत्ता ई!

जिसे सुनने के लिए चेतन आधी-आधी रात तक जागता रहता था.

चेतन को इस बात का भी अफसोस था कि न उसके पिता ने अपने स्वर का कोई लाभ उठाया था, न कविराज रामदास ने. कविराज तो फिर भी दूसरों को रिझाने के लिए कभी-कभार गाते थे, लेकिन उसके पिता तो वीरानों में सुगंधि लुटाने वाले फूल की तरह, मंथलियां बनाते हुए, सोज और लोच से भरी अपनी मीठी, रसीली आवाज से वीरान रातों के सन्नाटों को गुंजाया करते थे. इससे ज्यादा उस विभूति का उनके निकट कोई उपयोग नहीं था...

रतना बदस्तूर 'चिट्टिए दर्द फिराक वालिए' गा रहा था.

चेतन की आंखें करकराने लगी थीं. वह रात भर का जगा था. धूप मीठी और प्यारी लग रही थी. लोकगीत के बोलों और भागती हुई बैलगाड़ी के हिचकोलों से उसे नींद आ गयी.

बैलगाड़ी कच्चे रास्ते पर उतरी, तो इतने जोर से हिचकोले लगे कि एक दूसरे पर गिर पड़े. भाई साहब झल्लाकर बड़बड़ाये—"अच्छी बरात में जा रहे हैं! इस धूल-मिट्टी में चलते-चलते, न जाने शाम तक कैसी दुर्गत हो जाये!"

चेतन उनकी बड़बड़ाहट सुनकर जाग गया. फिर वह हंसा, "अब आ गये हैं भाई साहब, तो यह मजा भी ले लीजिए!" उसने कहा, "झल्लाने से कोई फायदा नहीं, सिवा उन लोगों का मन खराब करने के. याद तो रहेगा कि रणवीर की बरात में शामिल हुए थे."

सड़क दोनों ओर के खेतों से काफी नीची थी. किनारे-किनारे खेतों की मेड़ों पर कांस उगा था. दोनों ओर, जहां तक नजर जाती थी, गेहूं के हरे-भरे खेत थे, जिनमें चना भी बोया हुआ था. मेंड़ों पर सरसों लगी थी. बीच में कोई पूरा-का-पूरा खेत सरसों का था. लगता था जैसे पीला जाजम बिछा हो. सरसों के पीले फूल दृष्टिसीमा तक फैली हरियाली की यकरंगी को मिटा रहे थे. हवा तेज थी और खेतों में दूर-दूर तक लहरें-सी बनती जाती थीं. कहीं-कहीं गन्ने के खेत खड़े थे और जहां रहट थे, वहां आम-जामुन के झुंडों में छिपे रहट 'रूं रूं' 'रीं रीं' कर रहे थे. तेज पछुआ चल रही थी और बैलों के खुरों और बैलगाड़ियों के पहियों से सड़क की मिट्टी आंधी-ऐसी उड़कर खेतों पर बिछ रही थी. सब लोग चने छीलते और खाते-बतियाते बढ़े जा रहे थे. काफी दूर जाने पर सड़क के निकट ही

लघुकथा

रास्ता

रतीलाल शाहीन

पिता रिटायर हो गये और फिर भी दो जवान बेटियां अनब्याही बैठी रह गयीं. मां के लिए इससे बड़ा दुख और क्या हो सकता है?

जब भी कोई घर में आता, शंकुतला देवी सबसे यही दुःखड़ा कहने लग जातीं, 'क्या बतायें बहन! सुधा ने बी.ए. किया है. सरला मैट्रिक में है. कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं हम लोग. कोई हमजात लड़का नहीं मिलता. तीस हजार रुपया नगद भी देने को तैयार हैं हम.'

पत्नी की बात सुनकर रिटायर्ड भगवती बाबू भीतर के कमरे में चल देते. वे भी पढ़े-लिखे हैं. लड़कियों की भावनाओं का ज्यादा ख्याल करते हैं. उनका दिल नहीं दुखाना चाहते. भीतर से वे भी पीड़ित रहते हैं. पर, पत्नी का बार-बार सबसे नमस्कार के बाद यही रामकहानी लेकर बैठ जाना उन्हें नहीं सुहाता. बेटियां भी बैठक के कमरे से भीतर खिसक जाती हैं. पिता भगवती बाबू भी इसीलिए आहिस्ता से उठकर भीतर चल देते हैं. पत्नी समझती है कि वे शायद औरतों की बातों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं, इसीलिए यहां से चले जाते हैं जबकि भगवती बाबू लड़कियों को यह दिखाने के लिए कि 'तुमको भगाने के लिए तुम्हारी मां ही केवल कपड़े झाड़कर बैठी हुई है, मैं तो तुम्हारे साथ हूं. जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्ने का एक खेत मिला. रिपु और रतना उसमें घुस गये और आठ-दस गन्ने तोड़ लाये. तब जिन बारातियों के हाथों में चने थे, उन्होंने भी उन्हें फेंककर एक-एक गन्ना ले लिया.

गन्ने पतले, सख्त और रसीले थे. न जाने चेतन ने कितने वर्षों बाद ये पतले, सख्त गन्ने चूसे थे. उसे बहुत अच्छा लगा. कुछ और चलने पर फिर गन्ने का एक खेत आया. किसान खेत पर ही था. उन्होंने गन्नों का एक पूरा पूला खरीदकर बैलगाड़ी पर रख लिया. सड़क अब कुछ बेहतर हो गयी थी और वे थक भी गये थे. सब-के-सब बैलगाड़ी पर चढ़ गये और गन्ने चूसने लगे.

चार-साढ़े चार बजे होंगे, जब बैलगाड़ियां सड़क के निकट ही चलने वाले एक रहट के पास रुकीं. शाम उतर आयी थी. हालांकि वे रास्ते में चने टूंगते और गन्ने चूसते आये थे और उनके होठों के कोने फट गये थे, लेकिन मीलों उस ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलने और बैलगाड़ी के धक्के खाने के कारण उन्हें भूख लग आयी थी. हवा रुक गयी थी, लेकिन सूरज ढल जाने के कारण ठंड बढ़ गयी थी. पेड़ों के घने झुंड में अकेला रहट बड़ा सूना-सूना लग रहा था—सूना और जैसे सदियों पुराना. यद्यपि इधर बहुत-से रहटों पर मिट्टी की बड़ी-बड़ी टिंडों के बदले टीन के डिब्बे लग गये थे, लेकिन इस रहट पर वही पुरानी टिंडें लगी थीं, जिन पर निरंतर पानी में रहने की वजह से काई जम गयी थी और टिंडें जो कभी लाल सुर्ख रही होंगी गहरी हरी लग रही थीं.

रहट के करीब ही एक छप्पर था, जिसके बाहर एक मुसलमान किसान बैठा हुआ हुक्का पी रहा था. चेतन ने आदत के मुताबिक कुएं में झांककर देखा—पानी बहुत नीचे था. वह कुछ क्षण टिंडों को भरकर ऊपर आते और अपना पानी नीचे कुएं पर लगी टीन की चौड़ी नाली में उंडेलते देखता रहा. फिर उसने जाकर धार के नीचे हाथ-पैर और मुंह धोया. पानी ठंडा यख़ था, तो भी उसे हाथ-मुंह धोना बहुत अच्छा लगा. इस बीच रहट के पास एक दरी बिछ गयी थी. उस पर शीरीनी, शकरपारों और बेसनी सेव के कनस्तर रख दिये थे और एक-एक मुट्ठी शीरीनी, शकरपारे और बेसनी सेव सब को दे दिये गये.

दिन भर मस्ती करते हुए वे लोग थक गये थे. आगे पैदल चलना हुनर साहब या भाई साहब या चेतन के लिए कठिन था. नाश्ता करके और रहट से पानी पीकर वे बैलगाड़ी पर जा बैठे.

सूरज काफी ढल गया था. खेतों और गांवों के कच्चे मकानों पर लंबे-लंबे साये उतर आये थे. सूरज की पीली-सुनहली धूप केवल पेड़ों की फुनगियों पर दिखायी देती थी और दृष्टि की सीमा तक दायें-बायें फैली हुई हरियाली पर सन्नाटा उतर आया था. हवा नहीं थी, लेकिन ठंड जैसे अदृश्य झर रही थी. दिन भर हरियाली को देखते-देखते चेतन की आंखें थक गयी थीं. उसे बेहद ऊब हो रही थी और वह चाहता था कि वे सब जल्द-से-जल्द लालड़ां पहुंच जायें.

लेकिन लालड़ां का कहीं नाम-निशान न था. एक के बाद एक—तीन गांव रास्ते में आये. दूर ही से पेड़ों के झुंड और उनमें से उठता धुआं गांव के होने की गवाही देता. निकट आने पर कच्चे मकानों के सिलहूत उभरते. जोहड़ के सड़ते पानी की दुर्गंध नथुनों में भर जाती. बकरियों और मेड़ों की 'में में, में में' सुनाई देने लगती और गांव के बाहर ही से कुत्ते भूंकने लगते और बैलगाड़ियों के अगल-बगल भूंकते हुए, उन्हें गांव के काफी बाहर तक छोड़ आते.

चेतन अपनी सुध-बुध खोकर पश्चिमी क्षितिज पर डूबते हुए सूरज को देख रहा था. वहां जैसे कोई बहुत बड़ा अलाव जल उठा था. सहसा हवा तेज चलने लगी. वे घने बादल, जिन्होंने देखते-देखते उस अलाव को निगल लिया था, हवा के कंधों पर चढ़े, भयानक दैत्यों-से बढ़ने लगे. देखते-देखते उन्होंने आकाश को ढंक लिया. गाड़ीवानों ने बैलों की पीठ पर सांटे जमाये. थके होने के बावजूद बैल दौड़ने लगे.

सब एकदम चुप थे. ताश खेलकर, पैदल चलकर, बातें करके और गीत गाकर वे थक गये थे. सबके मन में एक ही बात थी—वे लालड़ां कब पहुंचेंगे? सहसा चेतन ने अपने गाड़ीवान से पूछा, "क्यों बई, किन्नी दूर ए लालड़ां?"

"बस जी, एही कोई कोस-दो-कोस."

"यार हर बार कोस-दो-कोस कह देन्ना ऐं. तेरे एक कोस-दो-कोस कदीं खतम वी होणगे." और उसने हुनर साहब से कहा, "तीन गांव गुजर गये हैं. हर बार पूछने पर उसने यही जवाब दिया है. साले कोस न हुए, योजन हो गये."

हुनर साहब ने लंबी सांस ली और गुनगुनाये:

"इसी उम्मीद पर मीलों चले जाते हैं दीवाने
वो उट्ठा पर्दा-ए-महफिल, वो निकला हाथ महफिल से."

हुनर साहब शायद मूड में आ रहे थे. लेकिन खादी के कुर्ते-धोती, पट्टी की ऊनी वास्केट और गर्म चादरे के बावजूद उनके दांत बजने लगे थे. "मौसम तो ऐसा है कि पास में ह्विस्की की बोतल हो, दो-चार दोस्त हों और ढालकर देनेवाला साकी हो, तब न इस सर्दी की फिक्र हो, न जल्दी लालड़ां पहुंचने की. कयामत तक हम इसी तरह बैलगाड़ी पर बैठे हुए चले जा सकते हैं." हुनर साहब ने कहा.

वे ताबड़तोड़ कई गर्म-गर्म शे'र पढ़ने वाले थे कि तभी उनकी नाक पर एक मोटी बूंद गिरी. शे'र उनके दिमाग से हवा हो गया, "पानी बरसने ही वाला है.," उन्होंने हठात कहा. उनके स्वर में कुछ अजीब-सा भय था.

अच्छा जीवन-साथी नहीं मिलता, तुम सभी आराम से रहो.' और शादी-ब्याह की चर्चा चलते ही खुद वहां से चल पड़ते हैं.

पत्नी भी पुराने जमाने की मिडिल पास है. लेकिन कुल जमा दो ही तो लड़कियां हैं. लड़का हुआ नहीं. शकुंतला इसी से दुखी रहती है, भगवती बाबू इसे अच्छी तरह समझते हैं. लेकिन समझदार आदमी की तरह औरतों के सामने चुप बैठना ही ठीक समझते हैं. औरतें तो हमेशा कान की कच्ची हुआ करती हैं.

भगवती बाबू लेकिन पत्नी पर खीझ भी जाते हैं. "कान्यकुब्ज ब्राह्मण! कान्यकुब्ज ब्राह्मण! सुन-सुन कर ही कोई अपने लड़के को देने को तैयार नहीं होता. तीस हजार दहेज में कहीं ब्राह्मण लड़का मिलता है?" भगवती बाबू अपनी जातबिरादरी के क्षुद्रतापन को जानते हैं और चुप लगा जाते हैं.

लेकिन मां की रोज की झक-झक ने बड़ी बिटिया के सीने में एक ठंडी आग सुलगा दी. एक दिन उसने कहा, "मां! मैं बैंक में सर्विस करूंगी."

"पति तो मिलता नहीं, नौकरी तुझे क्या मिलेगी." मां ने जैसे पूरे तेईस साल का बदला लिया हो.

लेकिन सुधा भी कम नहीं थी. उसने नियुक्तिपत्र दिखला दिया जोकि उसे छः माह पहले के आवेदन के पत्रोत्तर और परीक्षा पास करने के संदर्भ में यूनियन बैंक से आया था.

सुधा नौकरी पर लग गयी. एक महीने में मां के लिए दूसरा आश्चर्य था. उसने बैंक के ही एक गुजराती सहकर्मी से शादी कर ली थी. केवल कोर्ट का कागज मां को दिखा भर दिया था.

भगवती बाबू बेहद खुश थे. जो बात वे मन में रखे हुए थे, बेटी ने वास्तविक तौर पर कर दिखाया था. उनकी खुशी का ओर-छोर नहीं था.

लेकिन सबसे ज्यादा खुश छोटी बहन सरला थी. उसे रास्ता मिल गया था. □

•37, नवपाड़ा, बांदरा पूर्व, बंबई-400051

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने किसी गांव के सिलहूत दिखाई दे रहे थे. बुजुगों वाली बैलगाड़ी उसके करीब पहुंच रही थी. उन्होंने बैलों को जरा तेज चलाने का आदेश दिया. बैल थक गये थे. कुछ क्षण भागकर फिर पहले की तरह सोये-सोये चलने लगे थे, लेकिन गाड़ीवान ने उनकी मां-बहन के साथ निकट संपर्क स्थापित करते हुए, दो-चार सांटे उनकी पीठ पर रसीद किये, बैलों ने हुमककर कंधों से जोर लगाया और भागने लगे.

लेकिन बादल शायद इसी संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे. ऐन उस वक्त टपाटप बड़ी-बड़ी बूंदें पड़ने लगीं.

सबने अपने-अपने कोट और चादरें और ओवरकोट सिरों पर ले लिये. गांव दो-एक फर्लांग पर सामने दिखाई दे रहा था. जब बकायदा पानी बरसने लगा तो लड़के बैलगाड़ियों से उतरकर सरपट ग ंव की तरफ भागे, लेकिन भाई साहब और हुनर साहब को यह लौंडियाई पसंद नहीं आयी. विवश चेतन भी उनके साथ ही रह गया और दूल्हा के नाते रणवीर भी. हुनर साहब ने सुझाव दिया कि दरी बहुत मोटी है. वे लोग उसके नीचे हो जायें और उसे ढलुवीं करके तान लें. पानी बह जायेगा और वे सुरक्षित गांव तक पहुंच जायेंगे.

वे चारों दरी के नीचे बिस्तरों पर जा बैठे और दरी को उन्होंने ऐसे तान लिया कि पानी नीचे की ओर बह जाये.

घुप्प अंधेरा. दरी की पोर-पोर में बसी हुई धूल और मिठाई-नमकीन तथा बिस्तरों और कपड़ों मिली-जुली गंध. चेतन कुछ क्षण सांस रोके, दोनों हाथों से दरी थामे पड़ा रहा. फिर उसका दम घुटने लगा. उसका जी हुआ दरी हटाकर बाहर निकल आये. लेकिन बाहर बेहद ठंड थी, जोरों से पानी गिर रहा था और दरी के नीचे सुरक्षा और गर्मी थी. वह चुपचाप गाड़ी के पहियों और बरसते पानी और गाड़ीवान की गालियों और टिटकारियों की आवाज सुनता बैठा रहा.

तभी हुनर साहब ऐसे चिल्लाये, जैसे उनके गले से सांप लिपट गया हो, ''अरे यह पानी मेरी गर्दन पर चूने लगा है!''

दूसरे ही क्षण भाई साहब को भी यही शिकायत हुई. शायद हुनर साहब ने हाथ से दरी को ऊंचा कर दिया और पानी की धार भाई साहब के सिर पर चूने लगी थी. दरी भीग कर भारी हो आयी थी.

कुछ क्षण तक यही तमाशा होता रहा. जिस पर पानी गिरता, वह दरी को जरा और उठा देता और वह दूसरों पर गिरने लगता अथवा शरीर के दूसरे हिस्से पर बहने लगता. थोड़ी देर बाद लगा कि यदि तत्काल बाहर निकलकर किसी पनाह की तलाश नहीं करेंगे तो न सिर्फ दरी के नीचे बैठे-बैठे भीग जायेंगे, बल्कि बिस्तर और उनके साथ कपड़े भी गच हो जायेंगे.

तब चारों एक साथ दरी के बाहर निकले. वे गांव के बिल्कुल नजदीक पहुंच गये थे. दायीं ओर जरा ऊंचाई पर एक बहुत बड़ा और घना बरगद का पेड़ था. उसकी लंबी-मोटी डालियां सड़क को छाये हुए थीं. हुनर साहब ने गाड़ीवान से जरा-सा आगे बढ़कर उसके नीचे गाड़ी रोकने को कहा. चेतन और रणवीर ने गाड़ीवान की मदद से दरी को ऐसे ढालुवीं बिछा दिया कि पानी बह जाये और नीचे का सामान न भीगे. फिर वे भागकर बरगद के नीचे खड़े हो गये.

कुछ देर बरगद के नीचे उन्हें राहत मिली. सब जगह पानी-ही-पानी था, सिर्फ बरगद के नीचे अभी सूखी थी, लेकिन दस-एक मिनट बाद वहां भी पानी की धारें गिरने लगीं और बरगद के तने के साथ पानी ऐसे बहने लगा, जैसे ऊपर किसी ने कोई अदृश्य ट्यूबवेल चालू कर दिया हो.

''यार, अगर कहीं बरसात इसी तरह जम गयी, झड़ी लग गयी और लालड़ा ही में तीन-चार दिन रुकना पड़ गया तो मेरा बड़ा नुकसान हो जायेगा.'' भाई साहब ने चिंतित स्वर में हुनर साहब से कहा, ''मुझे तो अपने दो मरीजों को सेट तैयार करके देने हैं.'' और वे जैसे अपने आप से बोले, ''अच्छा हुआ, मैंने अपना सूट और टाई ट्रंक में रख दी, वरना लाहौर पहुंचकर सबसे पहले सूट धुलवाने या उसे इस्त्री करवाने की जरूरत पेश आती.''

हुनर साहब ने जैसे उनकी बात नहीं सुनी.

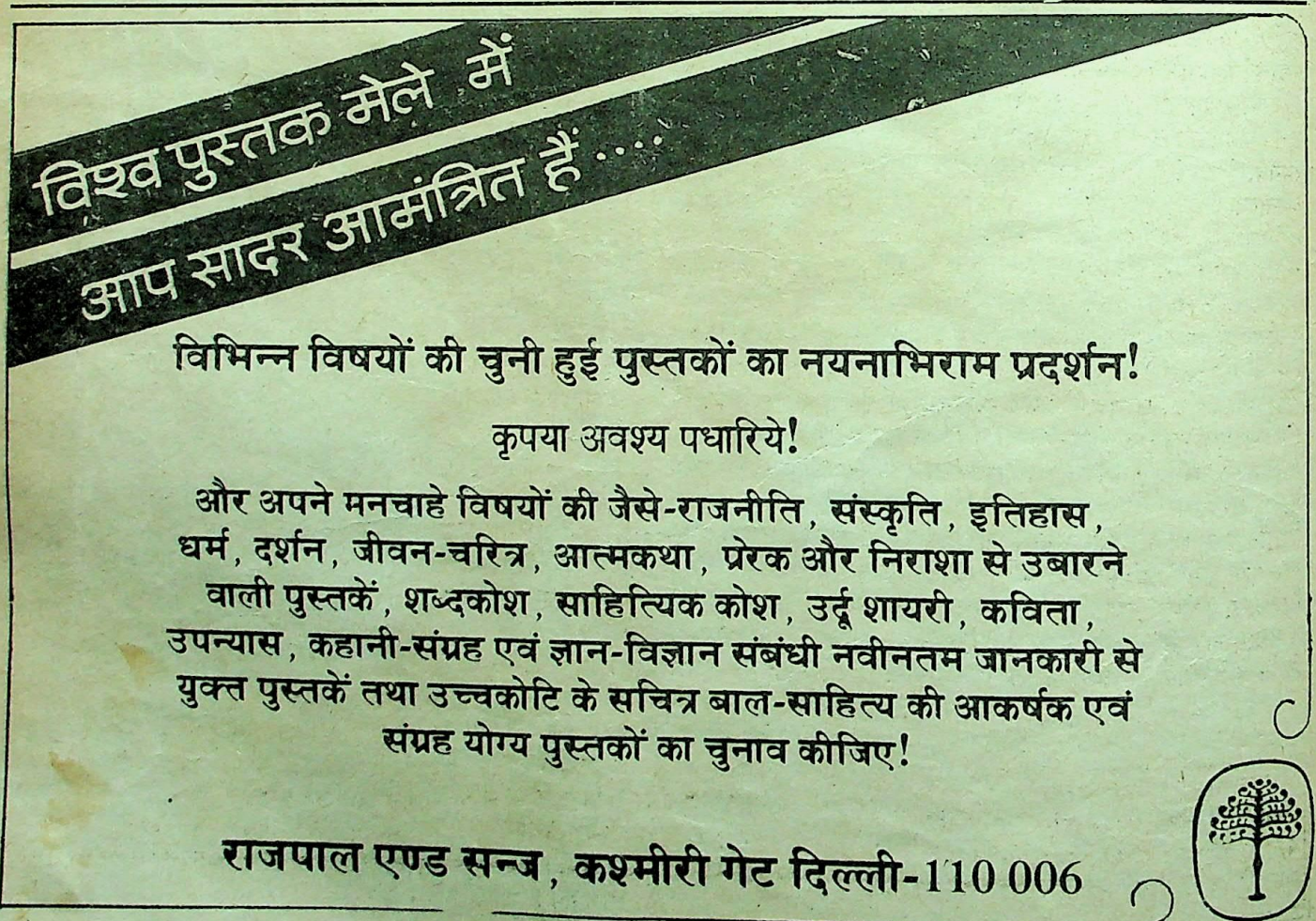

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''जी तो चाहता है,'' उन्होंने ठिठुरते हुए कहा, ''कि बसंत के मौसम की इस घिरी हुई घटा और बरसते पानी, हड्डियों में पेवस्त होती हुई सर्दी और बरगद के नीचे की इस पनाह को लेकर कुछ शेर किये जायें, लेकिन दांत बजने लगे हैं और लगता है, दिमाग भी साला गुड़ी-मुड़ी होकर बैठ गया है.''

''कुछ ही दिन पहले पंजाब और कश्मीर के पहाड़ों में जबरदस्त बर्फ गिरी है,'' चेतन ने कहा, ''आपने मार्क नहीं किया, दिन भर कड़ी धूप के बावजूद हवा में गलन थी.''

''इस वक्त तो सबसे बड़ी तमन्ना यही है,'' हुनर साहब ने अपनी ही रौ में कहा, ''किसी तरह गांव पहुंच जायें, किसी किसान के यहां जरा-सा आसरा मिल जाये, फिर उसे पटाना और रात भर आराम से काटने का डोरा बैठाना, हमारे बायें हाथ का खेल है.''

और वे लोग गांव की ओर नजरें जमाये, भीगते-कांपते चुप हो गये.

चेतन का सारा रूमान इस बरसात और सर्दी में जम गया था. उसने क्षण भर अपने तीनों साथियों की ओर देखा. मौन और बेबस खड़े भीग रहे थे. उसका अपना दिमाग कुछ भी नहीं सोच रहा था. उसकी कल्पना में बड़ी-सी अंगीठी थी. उसमें दहकते उपले थे. उनकी गर्मी से स्निग्ध एक दालान, गर्म-गर्म बिस्तर और गर्म-गर्म लिहाफ था और (उस अजीब चिंतन-प्रक्रिया से, जो सपनों को जन्म देती है) पास में लेटी अपनी पत्नी का गर्म-गुदाज सीना था और बरगद के नीचे उस काल्पनिक सुख में वह इस मुसीबत को भुलाये हुए था.

तभी जैसे युगों बाद (वास्तव में केवल पंद्रह-एक मिनट बीतने पर) दूर से एक बत्ती उनकी ओर आती दिखाई दी. फिर एक और बत्ती और उन दोनों के पीछे एक तीसरी. तीन आदमी छाते और लालटेन लिये, उनको ढूंढ़ते आ रहे थे.

जब वे बहुत पास आ गये तो मालूम हुआ कि रिपुदमन दो अपरिचितों के साथ लालटेनें और छाते लिये हुए उन्हें लेने आ रहा है. गांव का नाम गोविंदपुर ही था. वहां बारात की अगवानी का पूरा प्रबंध था. गैसवाले भी थे और बैंडबाजा भी था. लेकिन जब उन लोगों को पहुंचने में देर हो गयी और पानी जोर से पड़ने लगा तो गांव के मुहाने से हटकर वे सब अंदर चले गये.

वर्षा कुछ थम गयी थी. एक लालटेन बैलगाड़ी के जुए के नीचे बांध दी गयी और एक छाता गाड़ीवान को दे दिया गया. उसके पीछे बाकी दोनों छातों में दूल्हा और उसके बराती दो लालटेनों के पीछे किसी तरह कच्चे और कीचड़ भरे रास्ते में पांव घसीटते हुए चल पड़े. गांव के मुहाने पर गेट बना था. उस पर आम के पत्तों के बंदनवार के ऊपर वर्षों पुराना 'वेल-कम' का बोर्ड लगा था जो उस वक्त वर्षा से भीगा हुआ अंधेरे का अंग बन गया था और शायद तेज हवा से उलट भी गया था, लेकिन दूल्हा या उसके बारातियों का ध्यान उधर नहीं गया. अपने जूतों अथवा चप्पलों को कीचड़ में धंसने से बचाते हुए वे किसी तरह उस गेट में दाखिल हुए और किसी अंधेरे ओसारे में पहुंचकर उन्होंने सुख की सांस ली. □

चलते-चलते

छुट्टियों में बच्चे शनिवार को बाल फिल्म देखने के लिये सिनेमा हाल जाया करते थे. एक शनिवार प्रेस रिपोर्टर ने छोटी-सी लड़की को अपने भाई का हाथ पकड़े सड़क पार करते देखा. लडके की आंखें बंद थीं. रिपोर्टर ने सहानुभूति से लड़की से पूछा, इसकी आंखों को क्या हो गया? बचपन से ही देख नहीं सकता क्या?''

लड़की ने कहा, ''ओह नहीं, ऐसा नहीं है. इसकी आंखें तो बिल्कुल ठीक है. इसने सूर्य की तेजी के कारण आंखें मूंद रखी हैं. जिससे सिनेमा हाल में पहुंचते ही हमें आराम से दो अच्छी सीट मिल जायें. □

प्रत्येक घर एवं पुस्तकालय के लिए संग्रहणीय
कथा-साहित्य

उपन्यास

बाबर	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
हर्ष	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
छह छायावादी	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
कनक कमल	—गोविंद वल्लभ पंत	20.00
मोटर रोड	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
मधुरा	—गोविंद वल्लभ पंत	30.00
टूटा हुआ आदमी	—मोहन चोपड़ा	25.00
ये छोटे बड़े लोग	—आरिगपूडि	20.00
अन्तिम उपाय	—आरिगपूडि	20.00
कांटों के फूल	—निर्मला वाजपेयी	20.00
सूखा सैलाब	—निर्मला वाजपेयी	20.00
बूढ़ी सुहागिन	—जयनारायण कौशिक	20.00
टूटता हुआ मैं	—डा. राम कुमार	20.00

कहानी

राजस्थान की प्रेम गाथाएं	लक्ष्मी कुमार चूण्डावत	25.00
तीस कहानियां	—गोविंद वल्लभ पंत	30.00
तीस कहानियां	—गोविंद वल्लभ पंत	30.00
घने बरगद तले	—रोहिणी	25.00
पीले पत्ते शाम और अकेला आदमी	—मोहन चोपड़ा	20.00
मयसूद के	—आरिगपूडि	20.00
विचित्र निदान	—आरिगपूडि	12.50
अपनी अपनी आस्था	—मनहर चौहान	25.00
सांझ की बकरी	—निर्मला वाजपेयी	20.00
खारे पानी का भंवर	—निर्मला वाजपेयी	20.00
वह अल्हड़ थी	—डा. राम कुमार	20.00
श्रीनिवास (मास्ती) की श्रेष्ठ कहानियां	—बी.आर. नारायण	20.00
रीति स्मृतियां	अवधेश कुमार सिन्हा	25.00

वृहत् सूची-पत्र के लिए लिखें

आर्य बुक डिपो
करोल बाग, नयी दिल्ली-110005.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

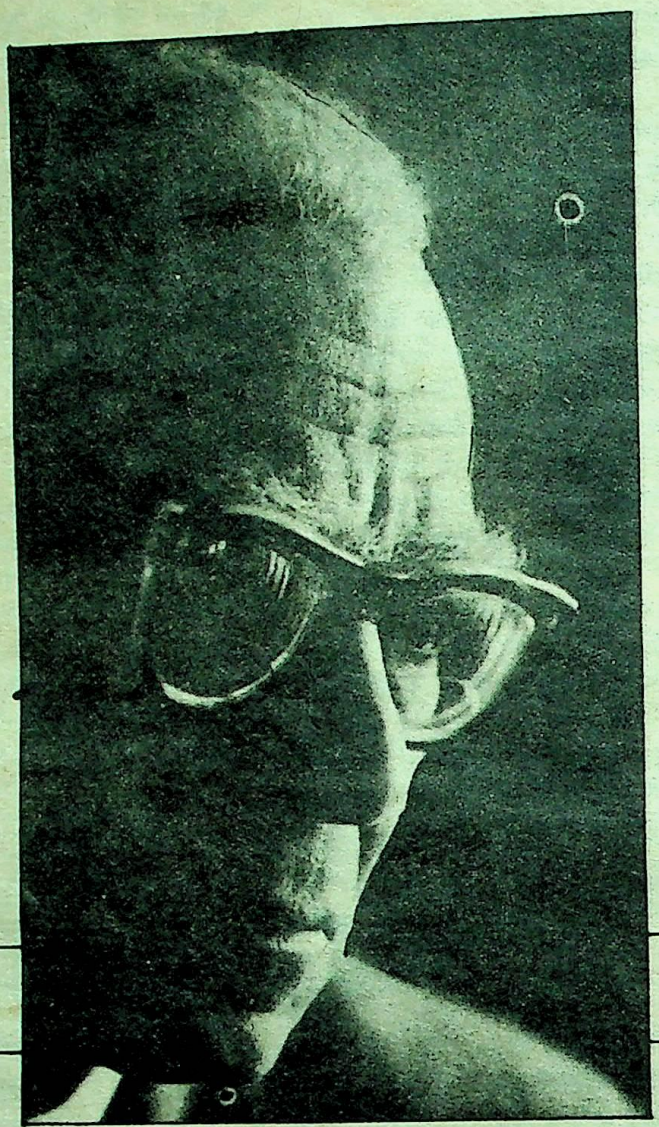

हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता....

जाने-माने कथाकार और 'सारिका' के भूतपूर्व संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार का प्रख्यात कथाकार यशपाल जी पर आत्मीय संस्मरण.

यशपाल और मैं गुरुकुल में एक ही कक्षा के विद्यार्थी थे. अंतर यह था कि वह गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट हुए और मैं गुरुकुल मुल्तान में. दूसरा यह कि वह आयु में मुझसे कुछ बड़े थे. वर्षों का अंतर छोड़ दें तो उनका जन्म 3 दिसंबर को हुआ था और मेरा 4 दिसंबर को.

1938 में शिमला में हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था. पंजाब में वह सम्मेलन हो रहा था, इससे मैं उसमें सक्रिय भाग ले रहा था. सम्मेलन के पहले ही दिन की प्रातः मैं मंच पर प्रबंधकों के साथ व्यस्त था कि स्वयंसेवक ने आकर मुझसे कहा, "एक सज्जन फाटक पर आपसे मिलना चाहते हैं. उनके पास टिकट या निमंत्रण पत्र नहीं है." मैंने नाम पूछा तो स्वयंसेवक ने मुझसे कहा, "वह कहते हैं कि अपना नाम वह आप ही को बतायेंगे."

मैं मुख्य द्वार पर पहुंचा, जहां संयोजक टिकट चैक कर रहे थे. भारी भीड़ थी. भीड़ से कुछ हटकर खड़े हुए बच्चन तथा शिवमंगल सिंह को मैंने तत्काल पहचान लिया. वे दोनों और मैं एक ही जगह ठहरे हुए थे. मैं उनके पास पहुंचा तो मेरी निगाह एक और युवक पर पड़ी. बच्चन जी ने युवक से मेरा परिचय करवाया, "यह है क्रांतिकारी यशपाल."

और कुछ भी कहने की जरूरत नहीं थी. मैं उस युवक से गले लगकर मिला. बात यह थी कि जब मैं गुरुकुल कांगड़ी में पहुंचा था तो मुझे अपनी श्रेणी में विद्यार्थियों से यशपाल का पूरा परिचय मिल गया था. गुरुकुल कांगड़ी में वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ करते रहे थे, करीब-करीब वही सब खुराफातें में गुरुकुल मुल्तान में किया करता था. उनके राजनीतिक जीवन से, लाहौर में रहने के कारण, भी मैं अच्छी तरह परिचित था. वह अब कहानियां लिखने लगे थे. और मैं दस बरसों से कहानियां लिख रहा था.

बल्कि इस बीच एक किस्सा भी घटित हो चुका था. यशपाल जेल में थे और 'मक्रील' नाम से उन्होंने (जहां तक मुझे याद है, कहानी का यही शीर्षक था) एक कहानी लिखी थी, जो 'विशाल भारत' में छपी थी. 1938 में जब मुझे शांति निकेतन में 'वर्तमान हिंदी कहानी' पर भाषण देने के लिए निमंत्रित किया गया था, तो मैंने नये कहानी लेखकों की चर्चा में कहा था, "मक्रील जैसी शक्तिशाली कहानी के लेखक यशपाल का भविष्य अवश्य उज्जवल होना चाहिए."

मेरे उस भाषण की संपूर्ण हिंदी जगत में बहुत अधिक चर्चा हुई थी. सभी पत्रों और लेखकों ने उसके संबंध में अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त की थीं. पक्ष और विरोध दोनों में. अज्ञेय ने लिखा था, "भाषण में कितनी ही बातें बिना सोचे-समझे (मुझे ठीक शब्द अब याद नहीं हैं, उनका मतलब में यही समझा था) कही गयी हैं, जैसे यशपाल के बारे में भविष्यवाणी."

बहरहाल यशपाल से मिलकर मुझे बहुत खुशी हुई. उसी समय से हम दोनों मित्र बन गये. विचार-भेद होते भी कितनी ही आधारभूत बातों पर हम दोनों का दृष्टिकोण एक था. हम दोनों की यह मैत्री निरंतर बढ़ती गयी.जब मैं लखनऊ जाता था, उनके साथ घंटों बिताता था. वह लाहौर आते तो मुझसे जरूर मिलते. स्वाधीनता के बाद दिल्ली में. जब महानगर में उन्होंने अपना मकान बना लिया तो 1965 में मैं कई दिन उन्हीं के घर ठहरा था. उनके पूरे परिवार से मुझे बहुत स्नेह मिला था.

यशपाल में असीम आत्मविश्वास था. जेल से छूटकर, आचार्य नरेंद्र देव की सहायता से लखनऊ में एक पत्र और पुस्तक प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया. तब तक अधिक लोग उन्हें नहीं जानते थे... न राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में और न लेखक के रूप में. उन्हीं दिनों वह लाहौर आये और मेरे एक मित्र, जो एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र के संपादक हैं, से उन्होंने कहा था, "एक दिन सारा हिंदी जगत ही नहीं, अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य-जगत यशपाल को एक सफल लेखक के रूप में जानेगा. और वह दिन दूर नहीं है."

अपने संबंध में यशपाल की यह गर्वोक्ति-पूर्ण भविष्यवाणी काफी अंशों तक सही सिद्ध हुई. उन्होंने खूब लिखा और अच्छा लिखा. सौभाग्य से उनकी पत्नी प्रकाशवती (हिंदू विश्वविद्यालय में प्रकाशवती और मेरी पत्नी स्वर्णलता न सिर्फ एक कक्षा में थीं, वे दोनों

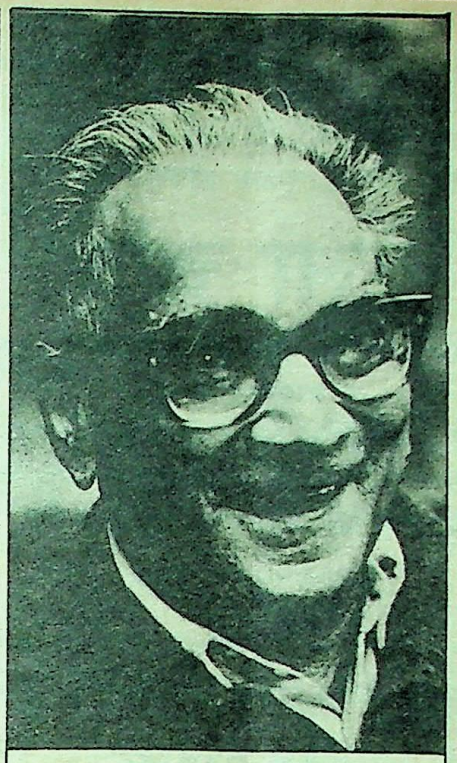

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

होस्टल के एक ही कमरे में भी रहती थीं) इतनी समझदार और सफल संगठन करने वाली हैं कि पुस्तक प्रकाशन का पूरा कार्य उन्होंने संभाल लिया और यशपाल निश्चिंत भाव से निरंतर लिखते रहे.

लेखक यशपाल के दो रूप हैं... सृजनशील कलाकार यशपाल और प्रचारक यशपाल. उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसे चार भागों में बांटा जा सकता है... उपन्यास, कहानी, प्रचारात्मक लेख और आत्म चरित. वह बहुत अच्छे लेखक थे. इससे असफल तो वह किसी भी क्षेत्र में नहीं रहे. उनके प्रचारात्मक लेख भी पढ़ने में दिलचस्प हैं. पर लेखक यशपाल का वास्तविक महत्व उनकी सृजनात्मकता में है, जो उनके कुछ उपन्यासों और कुछ कहानियों में प्रस्फुटित हुई है.

यशपाल की मां कट्टर आर्यसमाजी महिला थीं. वह अपने बेटे को आर्यसमाज का प्रचारक बनाना चाहतीं थीं और इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने बेटे को गुरुकुल कांगड़ी में भेजा था. यशपाल के पिता का देहावसान उनके बचपन में ही हो गया था. यशपाल धार्मिक वृत्ति के नहीं थे. प्रारंभ ही से वह स्वतंत्र चिंतक थे. इसी से गुरुकुल छोड़कर वह किशोरावस्था में ही भारतीय क्रांतिकारियों में सम्मिलित हो गये थे. मां की इच्छा के अनुसार वह सफल प्रचारक तो बने, पर आर्य समाज के नहीं. वह साम्यवादी आदर्शों के सफल प्रचारक अवश्य बने.

उपन्यास और कहानी -- दोनों क्षेत्रों में यशपाल का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है. अपनी सृजनात्मक रचनाओं के बारे में वह सदा मेरी राय जानना चाहते थे. अपनी कितनी ही रचनाएं प्रकाशन से भी पूर्व, छपे हुए फार्मों के रूप में वह मेरे पास भेजते रहे. मैं पूरी वस्तुपरकता (औब्जैक्टिविटी) के साथ अपनी राय उन्हें दिया करता था. एक रचना तो प्रेस में भेजने से पहले ही उन्होंने मेरे पास भेज दी थी, ताकि मेरे सुझाव, यदि उन्हें पसंद आयें तो, उनके आधार पर इसे रिवाइज कर लें.

यशपाल की कुछ कहानियां श्रेष्ठ कोटि की हैं. कुछ कहानियां साधारण हैं और कुछ कहानियां, जो प्रायः प्रचारात्मक उद्देश्य से लिखी गयी हैं, कमजोर हैं. मेरी राय से कहानी लेखक के रूप में उनका स्थान प्रेमचंद से कहीं नीचे है. इसके साथ यह कहना भी आवश्यक है कि मैं उनहें श्रेष्ठ कोटि का हिंदी कहानी लेखक मानता हूं.

पर एक उपन्यासकार के रूप में यशपाल प्रेमचंद से ऊपर पहुंच गये हैं. उनके 'झूठा-सच' को मैं हिंदी का अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानता हूं. मैं यहां यह कहना भी आवश्यक समझता हूं कि विश्व उपन्यास की दृष्टि से हिंदी उपन्यास अभी तक सर्वोच्च स्तर पर नहीं पहुंच पाया. इस समय तक भी हिंदी उपन्यास (विश्व स्तर की दृष्टि से) दूसरे दर्जे का है. हालांकि हिंदी कहानी विश्व के प्रथम स्तर तक पहुंच चुकी है.

मैंने कई बार यशपाल जी से कहा कि वह 'झूठा-सच' को पूरी तरह नये सिरे से लिखें. मेरी राय से उसका प्रथम भाग बहुत श्रेष्ठ है पर दूसरा भाग कमजोर है. दूसरे भाग में यशपाल का प्रचारक रूप उभर आया है. दूसरे भाग के कुछ अंश इतने कमजोर हैं कि उन्होंने रचना का स्तर बिगाड़ दिया है. यदि यशपाल यह मेहनत कर सकते, तो शायद हिंदी को प्रथम श्रेणी के स्तर का उपन्यास मिल जाता. यशपाल मेरी बात ध्यान से सुनते थे. 'झूठा-सच' के बारे में वह मुझसे सहमत भी थे. पर उनका कहना था कि जब मैं एक रचना पूरी कर लेता हूं, तब मेरा पूरा ध्यान आने वाली नयी रचना की ओर केंद्रित हो जाता है. लिखने के बाद एक बार तो मैं रचना को रिवाइज करता हूं. पर रचना छप जाने के बाद मेरा पूरा ध्यान उससे इतनी दूर चला जाता है कि मैं उस पर किसी तरह की मेहनत करने के योग्य नहीं रह जाता.

मैंने उन्हें बताया कि तालस्तोय ने अपने दो उपन्यास 'फादर एंड सन' तथा 'वार एंड पीस' कितनी बार लिखे थे. कुछ स्थल तो 20 से भी ऊपर बार. तीन-चौथाई सदी से ऊपर बीत जाने पर भी आज ये दोनों विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में हैं.

उन्होंने कहा, "हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरिष्ठ कथाकार और संवेदनशील निबंधकार

शिवप्रसाद सिंह

की एक और कालजयी औपन्यासिक कृति

नीला चांद

जिसमें मध्यकालीन काशी का नहीं, पूरे भारत का भविष्य चांद झलकता नजर आता है.

जिसमें खजुराहो से कालिंजर और विंध्याचल से हिमालय तक की तलहटी में फैले चंदेल और गाहड़वाल शासकों की मार्मिक इतिकथा दर्ज है.

मूल्य – 125 रुपये

रामकथा पर आधारित उपन्यासों के बहुचर्चित कथाकार

नरेंद्र कोहली

द्वारा महाभारत को आधार बनाकर लिखे जा रहे उपन्यासों की

पांच खंडों में विभाजित शृंखला

महासमर

की पहली कड़ी के रूप में प्रस्तुत है

बंधन

महाभारत जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से जुड़े उन विचारों का अथाह सागर है जिसका मंथन हमेशा नये से नया रत्न प्रदान करता है.

सारिका में बंधन के एक अध्याय के धारावाही प्रकाशन के बाद पाठकों द्वारा लगातार संपूर्ण उपन्यास के प्रकाशन की मांग उपन्यास की रोचकता, प्रामाणिकता और महत्व का सजीव उदाहरण है...

महासमर : एक–मूल्य : 125 रुपये

वाणी प्रकाशन

4797/5, 21-A, दरियागंज नयी दिल्ली-110002

दूरभाष : 276379

आठवें नयी दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर हिंदी की श्रेष्ठ एवं स्तरीय पुस्तकें एक जगह चुनने के लिए भारतीय भाषा मंडप में हमारे स्टाल पर पधारें और अपनी पसंद का साहित्य चुनें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चित कृतियाँ : 'लाल पसीना', 'एक बीघा प्यार' (उपन्यास)
'खामोशी के चीत्कार' (कहानी-संग्रह).
संपर्क : महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस.

अभिमन्यु अनत

अपने लोग

मंगरू ने चुनावों को आते-जाते देखा था. अपने अन्य साथियों की तरह उन सरगर्मियों में जी-जान से शामिल तो नहीं हुआ था और न ही अपने को उनसे एकदम अलग रख पाया था. उसने शुरू-शुरू में जो धारणा बनायी थी कि इस बार के चुनाव में वह अपने घर के भीतर बैठा रह जायेगा. किसी भी दल को अपना वोट नहीं देगा—वक्त के साथ बदल गयी थी. लालन से उसकी लंबी तकरारें हो जातीं और तब वह सिर्फ यही कहता रह जाता था कि क्योंकि बार-बार उन लोगों के द्वारा ठगे जायें.

और यही बात उस रात कोठी के सरदार ने भी कही थी.

"तुम लोग उस ओर वोट देकर ठगे जाते हो. पंद्रह वर्षों से तुम लोग लगातार उसी को वोट देते आ रहे हो पर वैसा करके तुम लोगों ने हासिल ही क्या किया?"

जो लोग सरदार के सामने हिम्मत करके बोल पाते थे वे बोले भी थे.

इसके बाद तो सरदार ऐसे-वैसे प्रश्न करने लग जाता कि किसी से उत्तर ही नहीं बन पड़ता था. और सरदार चिल्ला उठता था. लोग चुप रह जाते थे. और जाते-जाते सरदार एक बोतल शराब रनुआ के हाथ में छोड़ जाता था.

इस दो-हफ्ते पहले हुए चुनाव में सरदार मंगरू को अपने घर ले गया था फिर वहां से दोनों मालिक की कोठी में पहुंचे थे. उस कोठी में काम करने मंगरू का वह नौवां वर्ष था पर उससे पहले वह मालिक के उस आलीशान घर के भीतर तो क्या उसके इर्द-गिर्द भी कभी नहीं पहुंचा था. उस भव्य इमारत के करीब पहुंच कर उसने सरदार से पूछा था.

"इतना बड़ा घर?"

"बाईस कमरे हैं इसमें."

जिस कमरे के भीतर उसे बिठाया गया उसके भीतर के सामान और दीवारों पर सजी चीजों को देखकर मंगरू के सवाल करने का साहस भी जाता रहा था. मालिक तो कोई बीस-तीस मिनट बाद ही उनके सामने आ पाया था. इस बीच सरदार मंगरू को यही बताता रह गया था कि इस घर की देखरेख के लिए जो ग्यारह नौकर थे वे ठाठ का जीवन जीने वालों में थे. पर अपने आपसे सवाल कर-करके भी मंगरू इस बात को समझ नहीं पाया क्योंकि यहां के दो नौकरों से तो उसकी अच्छी दोस्ती थी. मोहन तो इस घर में सात साल की उम्र से नौकर था. अपनी बड़ी बेटी की शादी के वास्ते गहने-लत्ते जुटाने में उसे इतना समय लग गया था कि उससे ऊब कर रंधिया बिना गहने-लत्तों के रामधन के बेटे के साथ भाग गयी थी. और मनीचरवा तो आज भी मिलता है तो उसी से गुड़की मांग लेने की आदत के साथ. लेकिन मनीचरवा को यह विश्वास था कि वह

जब उस पार्टी की ओर से कुछ इस तरह के छोटे-मोटे वायदे भी पूरे नहीं किये गये तो क्या कारण था कि वर्षों से लोग उस पार्टी के साथ ही जुड़े हुए थे. आखिर उस दूसरी पार्टी के प्रति इतना अविश्वास क्यों था लोगों को?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिक के काम से अलग होगा तो उसे हिरणों के अहाते की बगल की जमीन से दो बीघा खेत मिलेगा.

सनीचरवा तो यह भी जानता था कि इस उम्मीद के साथ कई और लोग भी रहे पर अपने पर का विश्वास इससे कभी कम नहीं हुआ. वह तो मालिक का सबसे वफादार था. यही नहीं, अगर वह नहीं होता तो एक शाम अहाते का एक बारहसिंगा मालिक के पेट में अपने नुकीले सींगों को घुसेड़ देता.

उस घटना का एक गवाह तो खुद मंगरू भी था. हिरणों के शिकार का वह पहला ही सप्ताह था और मंगरू एकदम उसी मचान पर था जिस पर से सनीचरवा ने कूद कर मालिक की रक्षा की थी. आज सुबह की घटना के बाद मंगरू को ऐसा लगा था कि तीन वर्ष पुराना वह क्षण एकाएक दोबारा गुजरा था और इस बार बारहसिंगे के सामने मालिक नहीं बल्कि खुद वह था.... और .... और बारहसिंगे के सींग उसकी छाती को छलनी कर गये थे.

मंगरू जिस जगह पर अपने जेहन पर के भारी बोझ के साथ बैठ गया था, वह पूरे घंटे-भर तक उसी ठौर अपनी जेब की सारी सिगरेटों को फूंकता रहा. और जब डिब्बे की दसों सिगरेट समाप्त हो चलीं तो वह अपनी जगह से उठा और घर की ओर बढ़ गया. पगडंडी लंबी भी थी चक्करदार भी. एक चक्कर जब वह यह सोचता हुआ पूरा करता कि कसूर उसी का था. अगर वह मालिक की बात मान लेता तो यह नौबत नहीं आती. पर पगडंडी के दूसरे चक्कर पर वह खुद से पूछता हुआ ठिठक जाता कि आखिर उसका क्या कसूर था? बस यही कि उसने मालिक की हिदायत नहीं मानी थी.

उस दिन जब सरदार के साथ वह मालिक के घर पहुंचा था तो मालिक ने सबसे पहले उससे कई सवाल पूछे थे. उन सवालों में एक सवाल यह भी था.

"सचमुच मेरी कोठी के मजदूर तुम्हारी बहुत इज्जत करते हैं?"

"मेरी उमर की खातिर करते होंगे मालिक."

"तुम्हारी हर बात मानते हैं."

"हर बात तो नहीं मानते पर....."

"सुना है कि कई सालों से वे लोग तुम्हें ही बैठक का प्रधान बनाये चले आ रहे हैं."

"मैं तो बार-बार कहता हूं कि यह मौका अब दूसरों को मिलना चाहिए. पर लोग मानते नहीं. चुनावों में लोग प्रतिनिधि बदलना चाहते हैं. मैं कहता हूं कि हमारी बैठक के लिए भी वैसा ही हो तो कोई मेरी बात सुनता ही नहीं. लोग मेरी हर बात मानते हैं पर यही एक बात...."

"लगता है कि तुम यह मान कर चलते हो कि वक्त के साथ बदलना अच्छा होता है."

"वक्त के साथ तो बदलना ही चाहिए मालिक, नहीं तो वक्त आगे निकल जायेगा और हम पीछे छूट जायेंगे."

"बस, मैं भी यह चाहता हूं कि तुम लोग पीछे मत छूटो. बीजें-सांजें आवेक लेता. तुम्हें इसीलिए बुलाया है मैंने. बीजें सांझमां. बदलना चाहिए."

"मैं भी तो यही कहता आ रहा हूं. मैंने अभी पिछले ही सप्ताह जगेशर से कहा कि अब बैठका के इस ओहदे को वह संभाले. मैं बहुत दिनों तक रह चुका परधान."

"लेकिन मंगरू मैं तुम्हारे बदले जाने की बात नहीं कर रहा हूं."

"मुझे इस उमर में अब थोड़ा आराम भी तो चाहिए मालिक. बैठक का काम बड़ी जिम्मेदारी का है. परसों की तो बात है. लीलावती की गाय के मर जाने पर पड़ोस के कई गांवों में घूम-घूम कर पैसा उगाहना पड़ा. और चूंकि मैं परधान हूं इसलिए मेरे बिना कोई जाने को तैयार नहीं होता..."

"देखो मंगरू-सा बान ची त्रावाई-सा. ये सब तो छोटे-मोटे काम हैं. होते रहेंगे. मैं चाहता हूं कि तुम सिर्फ इस छोटी-सी बस्ती की ही बात मत सोचो. इससे आगे की सोचो. पूरे देश की बात."

"मालिक! पूरे देश की बात सोचने वाले तो बड़े लोग होते हैं."

"उन बड़े लोगों को बनाने वाले तो तुम लोग होते हो. मैं चाहता हूं कि देश की भलाई के लिए तुम लोग भेड़ों की तरह सिर झुकाये झुंड के पीछे मत चलो. अब बदलने का समय आ गया. सांझमां! तुम लोग बिना सोचे-समझे जिस पार्टी को वोट देते आ रहे हो वह पार्टी अब गलत लोगों के हाथों में आ गयी है. इसलिए तुम लोग अब उस दूसरी पार्टी के साथ चलो."

"लेकिन मालिक .....!"

"मैं तुम सभी के हित के लिए कह रहा हूं. तुम लोग जिस पार्टी को वोट देते रहे हो उसमें अब खुदगर्जी आ गयी है. वे लोग शुरू की हुई लड़ाई को बेच चुके हैं. उनसे अब गरीबों और तुम्हारे लोगों का हित कुछ भी नहीं होने का. तुम्हें बस्ती के सभी लोगों को समझाना होगा. लोग आगे बढ़ रहे हैं. तुम लोग पीछे नहीं रह सकते."

"लेकिन मालिक हम जिस पार्टी के साथ चलते हैं उसने हम लोगों के लिए बहुत काम किया है..."

"बहुत काम किया है इसीलिए महंगाई इतनी बढ़ गयी है."

"अच्छी तरह से सोचो और देखो कल बस का किराया कितना था आज कितना है. पिछले साल जो लोग महीने में पानी के लिए पांच रुपये चुकाते थे आज पचास चुका रहे हैं."

"लेकिन मालिक और कई बातों में..."

"एकदम ब्यें मंगरू! मैंने तुम्हें यहां इसलिए बुलाया है कि तुम मेरी बात को ध्यान से सुनो और जो कहूं वह करो. मैंने इसलिए नहीं बुलाया है कि तुम मुझ से बहस करो. यह जोजेफ बता रहा था कि तुम्हें अपने बेटे को नौकरी में लगाना है. मैंने जोजेफ से कह दिया है कि उसे इसी सप्ताह से कारखानें में रख लिया जाये. यह तो अजीब बात हुई कि हम तुम्हारे हित हर वक्त सोचें और तुम खुद अपने हित सोचने में आनाकानी करो."

"मालिक जहां तक मेरी बात है मैं तो आपका हुक्म मानने को तैयार हूं लेकिन...."

"लेकिन क्या! तुम बैठका के प्रधान हो. बस्ती के सात सौ आदमियों में कोई भी तुम्हारे आदेश का पालन करने से इनकार नहीं कर सकता. चुनाव में केवल छः दिन बाकी हैं. मैं चाहता हूं कि तीन दिनों के भीतर तुम सभी को समझा कर उन्हें अपनी ओर कर लो. बस्ती का एक वोट भी इस बार इधर-उधर न होने पाये. हमारी बात मान ली गयी तो सभी को खुश किया जायेगा."

आज चुनाव के बाद मंगरू खुद यह तय नहीं कर पा रहा था कि अगर सभी लोगों को खुश नहीं किया गया तो जिम्मेदार कौन होगा? क्या खुद वही नहीं? चुनाव के छह दिन पहले से वह लोगों से जिस बात के लिए मांग कर रहा था उसे ठीक चुनाव के दिन बदल कैसे दिया गया. क्यों लोगों से ठीक उसका उल्टा करने की मांग कर बैठा वह उस आखिरी घड़ी में. क्या अगर वह वैसा न करता तो आज पूरी बस्ती में इस तरह की आशंका इस तरह की उदासी और इस तरह की हताशा फैली हुई होती. तभी तो कल ही लोगों ने चुनाव में जीत की खुशियां मनायी थीं और आज सुबह यह हो गया.....

उस चेतावनी को मालिक की ओर से कोठी के प्रमुख सरदार मंगरू को सुनाया गया था. वह चेतावनी नहीं थी. मालिक का निर्णय था. सरदार की आवाज थी. "मंगरू तुमने मालिक से वायदा करके उंससे गद्दारी की. अब परिणाम खुद तो भोगोगे ही साथ ही साथ उन सभी का भी भविष्य बिगाड़ गये जो तुम्हारी गद्दारी में तुम्हारे साथ शामिल हुए."

ये तो सरदार के आखिरी दो वाक्य थे. इन दो वाक्यों से पहले तो पंद्रह मिनटों तक वह बोला था. मंगरू के घर के पास दो-तीन लोगों ने बात सुनी थी पर दूसरे ही मिनट बाद पूरे गांव में बात जगल की आग की तरह फैल गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फारसी लोक कथा

जमानत

एक व्यापारी काम से कहीं बाहर जाते हुए अपने नौकर से कह गया, "किसी भी ग्राहक को कुछ भी उधार मत देना."

जब वह बाहर था तो दुकान में एक ठग आया. उसने लगभग एक हजार तोमन का सामान खरीदा. अदायगी के वक्त बोला, "मैं पूरा बिल कल अदा कर दूंगा."

नौकर कुछ सोचकर बोला, "पर मैं तो तुम्हें नहीं जानता. पहचानूंगा कैसे! मालिक की यह अंगूठी ले जाओ और उंगली में पहन लो, जिससे मैं तुम्हें अगली बार मिलने पर पहचान सकूं."

अंगूठी बहुत कीमती थी. ग्राहक ने पहन ली पर नौकर को उसे पहचानने का मौका नहीं मिला. □

जगमोहन बलोही

"बस्ती के तीस लोगों को नौकरी से हटाया जा रहा है."

"मंगरू चाचा के साथ-साथ और भी कुछ लोगों को कोठी के घर तक छोड़ जाने का आदेश मिला है."

"यह सब केवल इसलिए कि हमने मालिक की बात नहीं मानी."

बस्ती की सभी औरतें चुप थीं. भयभीत थीं. तय नहीं कर पा रही थीं कि जो कुछ किया गया वह सही था या गलत. सवाल उठे. सोहन की पत्नी ने सवाल उठाया था. "हम लोग मालिक की बात मान लेते और उस दूसरे दल को वोट दे देते तो कौन-सा अनर्थ हो जाता."

सनीचरवा की औरत भी सामने आ गयी थी. "हां .. हां कम से कम यह नौबत तो नहीं आती."

मंगरू की पत्नी को सबसे बाद बोलना ही पड़ा. "वैसा करके हम लोग अपने ही पांवों कुल्हाड़ी मार लेते."

"मार लेते. अरी यहां तो मार चुके. और यह सभी कुछ मंगरू चाचा की बातों में आ जाने के कारण."

यही सुनकर मंगरू बस्ती से दूर नदी किनारे आ बैठा था. अब घर को लौटते हुए सोच उठा कि अगर वह मालिक के पास जाकर माफी मांग ले तो क्या बात बन जाने की गुंजाईश नहीं. उसने जब इस बात को रमेशर के सामने रखा तो उसने कहा कि मालिक को मना पाना असंभव था क्योंकि वह उसकी उस नाराजगी को अपनी आंखों देख आया था. रमेशर ने तो यह भी कहा कि अगर मालिक का बस चले तो वह बस्ती में आग लगा दे.

"मंगरू चाचा! मालिक की उस पार्टी को तो हमारी पार्टी ने हराया है मगर मालिक तो यह समझ रहा है कि उसकी भी हार हुई है और वह अगर हारा है तो अपनी ही कोठी के मजदूरों से. मैं तो कहूंगा कि तुमने भूल की उसके सामने जाने की बात सोचना."

"क्यों सूली चढ़ा देगा क्या?"

"नहीं तो!"

"तो फिर?"

"गोली दाग सकता है..."

और उस शाम हिरणों के अहाते से बाहर की पहाड़ी से बेसुमार गोलियां चलने की आवाज आयी थी. रात में रामायण पाठ के लिये इकट्ठे हुए लोगों के बीच बैठक में चर्चा हुई कि मालिक सात बंदूकों की गोलियों को हवा में छोड़ कर अपने को शांत कर पाया था.

सप्ताह भर बस्ती के लोग सहमे हुए रहे. काम से हटाये जाने या बस्ती से निकाले जाने में किसी का नाम आ सकता था. पर जब सप्ताह बीत गया और इस तरह की कोई बात नहीं हुई तो लोगों ने राहत की सांस लेनी शुरू की. आपस में बातें हुई और यह समझा गया कि मालिक का क्रोध वक्त से साथ पिघल गया.

पर लोगों का ऐसा सोच जाना गलत था. ठीक दसवें दिन बाद कोठी का प्रमुख सरदार बस्ती के ही कुछ खास लोगों के साथ जिनमें रनुआ, सोहन, सनीचरवा और रमेशर भी शामिल थे आकर बैठक के सामने खड़े हो गये. जेब से फहरिश्त निकाल कर पहले तीस आदमियों के नाम सुनाये फिर एक दूसरी सूची से सात आदमियों के. वह मंगरू था जिसका नाम इन दोनों फहरिश्तों में पहले आया था. नाम सुना चुकने के बाद उसने कहा. "इन पहले तीस व्यक्तियों को कोठी की नौकरी से हटाया जा रहा है और दूसरे सात आदमियों को यह आदेश दिया जा रहा है कि वे तीन दिन के भीतर कोठी के घर को खाली कर दें वरना सारा सामान बाहर फेंक दिया जायेगा."

लोगों को इस सूचना से कहीं अधिक हैरानी इस बात से हुई कि जब बैठक के आगे, मजदूरों को यह सूचना सुनायी जा रही थी और आदेश दिया जा रहा था तो रनुआ, सोहन, सनीचरवा और रमेशर उस ओर खड़े थे जिस ओर से सरदार सूचना सुनाकर आदेश दे रहा था.

रात भर मंगरू अपने बिस्तर पर अकुलाइट दे जाने वाले सवालों के रेले में छटपटाता रहा. उस गुंजलक में उपाय तलाशता रहा, लेकिन गुंजलक और अंधेरे की साजिश में रोशनी भी अदृश्य रह जाती होगी. ऐसी स्थिति में टटोल कर भी कुछ पा सकना नितांत असंभव था. आधी रात को उसे उसी तरह करवटें लेते देख उसकी पत्नी जो कि जमीन पर ही बिस्तर में अपने पोते के साथ सोयी थी उठी, बत्ती जलायी और मंगरू के पास पहुंचकर धीरे से बोली.

"अभी तक सो नहीं पाये?"

"तुम भी तो जाग रही हो."

"एक काम किया जा सकता है."

"क्या?"

"कानून."

"कैसा कानून?"

"इतनी आसानी से हमें इस घर से तो नहीं निकाला जा सकता."

"निकाले जा चुके हैं. तीन दिन की दया पर टिकाये गये हैं."

"तुम लोग मजदूरों के रक्षक या न जाने क्या बातें करते रहते हो. उन लोगों की मदद ऐसे मौकों पर न मिले तो फिर..."

"तुम जाकर सो जाओ भानू."

"एक और बात है. शाम को मैंने कुछ लोगों से सुना कि जिन तीन आदमियों को हमने वोट दिये हैं उनमें से एक मंत्री बनाया गया है. क्यों न तुम लोगों के साथ उससे मिलकर..."

"जा सोजा भानू!"

तब उसकी पत्नी बत्ती बुझा कर अपने बिस्तर पर चली गयी तो मंगरू के जेहन में एक खटका-सा हुआ. उसे लगा कि भानुमती जो कह गयी वह एकदम खोखली बात नहीं थी. वह उठ बैठा. तकिये के नीचे टटोला पर डिबिया वहां न थी. सिगरेट कशों को सुलगा कर उसने डिबिया को कोने में फेंक दिया था. उसे एक सिगरेट या कम से कम दो-तीन कशों की सख्त जरूरत महसूस हुई पर पाना असंभव जानकर फिर से चारपाई पर लेट गया. अपनी पत्नी द्वारा सुझायी बात को सोचता रहा... सोचता रहा जब तक कि नींद न आ गयी. लेकिन नींद के आ जाने से पहले ही उसने तय कर लिया था कि सुबह उठते ही किन-किन लोगों से सीधे मिलना था.

पर चूंकि वह बहुत देर सोया था इसलिए निर्धारित समय पर न उठकर उस वक्त उठा जब घर के बच्चे जागकर शोर शुरू कर चुके थे. उठते ही उसे वक्त का ख्याल आया तो वह बिन मौलिक आवश्यकताओं को पूरा किये झपट पड़ा उन व्यक्तियों के घर की ओर जिनसे सोते में मिलने की बात ठानी थी. सौभाग्य से उसे दोनों मिल गये. लोचन भी और गफूर भी. दोनों से बहुत थोड़ी-सी बात करके उसने उन्हें अपने साथ चलने को मना लिया.

नौ बजे से पहले ही तीनों घर से निकल पड़े. उनकी बस्ती से पड़ोस का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांव आधे मील के फासले पर था जहां से शहर के लिए बस पकड़ी जा सकती थी. उनकी अपनी बस्ती तक बस ले जाने के वायदे तो उन्हें कई वर्षों से मिल रहे थे पर वह बात केवल चुनाव के वक्त हुआ करती थी. रास्ते में आपस की बातों के बीच भी मंगरू यह सोच जाने को विवश था कि जब उस पार्टी की ओर से कुछ इस तरह के छोटे-मोटे वायदे भी पूरे नहीं किये गये तो क्या कारण था कि वर्षों से लोग उस पार्टी के साथ ही जुड़े हुए थे. आखिर उस दूसरी पार्टी के प्रति इतना अविश्वास क्यों था लोगों को? लोग उस पार्टी से जिस भय को महसूसते थे वह भय क्या था? इसको लेकर कई तरह की बातें होती लेकिन उनमें से बहुत कम बातों को मंगरू समझ पाता. उसने अपने आपसे एक सवाल कर ही लिया, 'ऐसा क्या हो जाता अगर हम उस दूसरी पार्टी को वोट देकर उसे जिता जाते तो? वही जो कुछ लोग कहा करते हैं. कि हमारे अपने लोगों की तबाही!' मंगरू ने फिर से अपने आपसे सवाल किया.

"पर ये अपने कहने वाले भी चुनावों में बाद परायों से ज्यादा पराये बन जाते हैं तो फिर?"

लोचन के आकस्मिक प्रश्न ने उसे अपने प्रश्न से रिहा किया.

"तुम्हें विश्वास है कि हमें उनसे मिलने दिया जायेगा?"

"इसी लिये तो तुम्हें साथ लिया हम लोगों ने. चुनाव की रात उन तीनों ने तुम्हारे यहां खाया-पिया था. इतनी जल्दी उस बात को थोड़े ही भूल जायेंगे."

"मुझे तो अभी भी विश्वास नहीं होता कि उन लोगों ने मेरे यहां खाना खाया था. लगा था कगाल के घर राजा खाने पहुंचा था."

"ऐसा नहीं करते तो हमारे साथ सवाल करते रहने वाले कुछ लोग यह कैसे मानते कि वे तीनों किसी भी जात-पांत के भेद भाव को नहीं मानते!"

"पर मंगरू चाचा क्या सचमुच वे लोग इस तरह के भेदभाव को नहीं मानते?"

"मैं तो लोचन इतना जान सका हूं कि चुनावों के समय तो ऐसा ही होता है. बाकी ऊपर वाला जाने."

पूरे घंटे बाद उन्हें शहर की बस मिली.

शहर के मंत्रालयों के गलियारे में पहुंचकर पूरे तीन घंटे बाद उन्हें उस दरवाजे तक भेजा गया जहां वे अपने इलाके के नये प्रतिनिधि और श्रम मंत्री से मिलने की उम्मीद रखे पहुंचे थे. दरवाजे से बीस-तीस फुट पहले ही पुलिस सिपाही ने उन्हें चौथी बार के लिये रोका. मंगरू ने जब उसे अपने चुनाव इलाके का नाम बताया तो सिपाही ने तीनों आदमियों को एक दूसरे दरवाजे की ओर संकेत किया जो मंत्री के दफ्तर के सामने पड़ता था. वह दरवाजा अधखुला था. तीनों को झांकते पाकर भीतर के आदमी ने आवाज देकर उन्हें भीतर आने को कहा. तीनों भीतर पहुंचे. कमरे में एक छोटी-सी मेज थी. एक ही कुर्सी थी जिस पर वह दाढ़ी वाला आदमी बैठा था. उसने प्रश्न आरंभ किया.

"तुम लोग कहां से आये हो? क्यों आये हो? अपॉइंटमेंट है?"

मंगरू ने प्रश्नों के जो जवाब दिये उससे वह तनिक भी प्रभावित नहीं दीख पड़ा. और भी कई प्रश्न कर दिये. उत्तरों की पूरी प्रतीक्षा किये बिना फिर धड़ाधड़ बोल गया.

"मंत्री जी को पंद्रह मिनट बाद मंत्रिमंडल की बैठक में जाना है. दो बजे के बाद से वे विदेशों से आये प्रतिनिधियों के बीच होंगे. उसके बाद उनको पत्रकारों से मिलना है. फिर टेलीविजन के लिए इंटरव्यू देना है."

वह जब चुप हुआ तो मंगरू ने लोचन की ओर बताते हुए कहा, "चुनाव की रात मंत्री जी ने अपने दोनों मित्रों के साथ इसी के यहां भोजन किया था."

"बड़ी किस्मत वाले हो भाई."

"जी!"

"मंत्री जी को दोबारा दावत देने आये हो क्या?"

"बात यह नहीं..."

"तो फिर बात क्या है?"

"हमें उनसे एक जरूरी काम से मिलना है. हमें उनकी मदद की अत्यंत ही आवश्यकता है."

"अभी तो पांच साल हैं भाई. दम तो लेने दो उन्हें. पांच दिन नहीं हुए और तुम लोग आये उन्हें नोचने-बकोटने."

"हम हाथ जोड़ते हैं भाई हमें उनसे दो-मिनट के लिए मिलने दें."

"कहा न बाद में आना."

"हम लोग बहुत-ही नाजुक स्थिति में हैं. हमें आज ही मिलना चाहिए वरना हम कोठी से निकाल दिये जायेंगे. हमने साहब को वोट दिया इसीलिये हमारे ऊपर जुल्म ढाया जा रहा है. आप हमें उनसे मिला दें."

"कहा न वे खाली नहीं हैं, और फिर मंत्रियों से मिलने का यह कौन-सा तरीका है?"

"हम लोग सुबह ने बिन खाये-पीये इन गलियारों में भटक रहे हैं. कृपया हमें उनसे बस दो मिनट मिलने दीजिये."

"तुम तीनों मेज पर के उसे डिब्बे को देख रहे हो?"

"हां."

"फ्रेंच पढ़ना जानते हो?"

"नहीं."

"अफ्रीका के भुखमरों के लिये तहसील की मांग है. अभी आध घंटे पहले मंत्रीजी से मिलने से पहले एक आदमी इसमें दो सौ रुपये डाल गया है."

"लेकिन हमारे पास तो...."

"तुम लोगों के पास होगा भी कहां से इतना पैसा. खैर जो भी है डाल सकते हो." तीन व्यक्तियों ने अपनी अपनी जेबों से पैसे निकाले. बस का किराया गिनकर दस रुपये अलग कर लिये और बाकी पैंतीस रुपयों को उस दाढ़ी वाले के आगे कर दिया.

"ए ए यह क्या कर रहे हो. मैं तुम्हारा पैसा लेकर क्या करूंगा. डिब्बे के मुंह में डालो और यहीं ठहरो. मैं देख आता हूं कि मंत्रीजी तुम लोगों से मिलने की स्थिति में हैं या नहीं.

लोगों ने पैसे गुल्लक में छोड़ दिये.

वह आदमी दूसरे ही मिनट लौट आया.

"देखो! मंत्रीजी तुम लोगों को केवल दो मिनट दे पायेंगे. आओ मेरे साथ." तीनों की आंखें अचानक चमक उठीं. वे उस आदमी के पीछे हो गये. मंत्री के दफ्तर में पहुंचे. मंत्री अपने सचिव को कुछ लिखवा रहे थे. तीनों की ओर देखे बिना ही पूछा, "कहां से आये हो?"

अपने सूखे मुंह से बाकी थूक को निगल कर मंगरू ने लोचन की ओर संकेत करते हुए कहा, "साहब, आपने चुनाव की रात इसी के यहां खाना खाया था."

अपनी जगह से उठते हुए मंत्री ने अपने सचिव से कहा.

"आई एम लेट फोर दी काबिनेट मीटिंग. तुम ऐसा करो इन लोगों से बिल लेकर इनका पेमेंट कर दो."

फिर उसने तीनों की ओर देखा और कहा, "ओके! आपको पैसे मिल जायेंगे. आप लोग मेरे पी.एस. को बिल दे दीजिये."

"लेकिन साहब हम..."

तब तक मंत्री दरवाजे से बाहर मंत्रालय के गलियारे में दूर निकल चुका था और दाढ़ी वाला अंगरक्षक उसके पीछे हो गया था. □

चलते-चलते

एक गणितज्ञ ऐसी लड़की से प्यार करने लगा जिसके चेहरे पर पूरे-पूरे धब्बे थे. लड़की ने गणितज्ञ से पूछा ये धब्बे तुम्हें परेशान तो नहीं कर रहे.

गणितज्ञ ने कहा, "नहीं बिल्कुल नहीं, मुझे तो डेसीमल प्वाइंट्स से बहुत प्यार है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी पीढ़ी के उल्लेखनीय हस्ताक्षर.
संपर्क : 696, सैक्टर 11- बी, चंडीगढ़-160011

वीरेंद्र मेंहदीरत्ता

डायलिसिस

जब अचानक पता चला कि शुक्रवार को छुट्टी है, बहुत खुश हुआ, चलो-एक कैजुअल लीव बच गयी! क्योंकि शुक्रवार को ही मेरी ताई का डायलसिस था और मेरा दिल्ली पहुंचना बहुत जरूरी. हर डायलसिस के समय घर में किसी आदमी को खून देना होता है. मैंने ही कहा था कि इस बार ताई के डायलसिस के समय खून मैं दूंगा. ताई ने मां की तरह से ही मुझे प्यार दिया था. असल में मेरे जन्म के बाद से ही मां बीमार रहने लगी थी. और मेरे होश संभालने से पहले ही मां का देहांत हो गया था. मां जैसा लाड़ प्यार इस ताई ने ही तो दिया था!

... पर थोड़ी देर बाद जब पता चला कि जिस शुक्रवार को मात्र एक छुट्टी मानकर खुश हो रहा था, वह छुट्टी, गुरु तेग बहादुर के शहीदी दिवस की है -- मन ही मन बहुत-सी शर्मिंदगी और आत्म-ग्लानि महसस हुई. पंजाब की इतनी बड़ी हस्ती का शहीदी दिवस और आज मेरे लिए उसका महत्व केवल इतना रह गया है कि इस दिन छुट्टी रहती है और मैं अपने घरेलू कामकाज निपटा सकता हूं.

कुंछ ऐसी शर्मिंदगी आज से लगभग दस साल पहले अपने मित्र प्रेमसागर शास्त्री के घर हुई थी. उनके ड्राईंग रूम में पलथी मारे सौम्य संत के चेहरे पर शौर्य का जलाल देखकर, उस ओर आकर्षित हुआ और बड़े आत्मविश्वास के साथ बोला, "गुरु गोबिंद सिंह का ऐसा भव्य चित्र तो मैंने आज तक नहीं देखा. अद्भुत!"

"यह चित्र गुरु गोबिंद सिंह का नहीं, गुरु गोबिंद सिंह के पिता गुरु तेग बहादुर का है." उस दिन भी इतना शर्मसार हुआ था कि बता नहीं सकता. असल में तब तक सिख गुरुओं में मेरा परिचय सिर्फ गुरु नानक देव और गुरु गोबिंद सिंह तक ही था. उस दिन पहली बार पता चला था कि कैसे गुरु गोबिंद सिंह के पिता गुरु तेग बहादुर ने काश्मीर के ब्राह्मणों की रक्षा हेतु अपना सिर कटवा दिया था.

एक शर्मिंदगी महसूस करते हुए भी यह आज भी समझ नहीं आ रहा कि औरंगजेब की आक्रामक धर्मांधता से टकराने वाले गुरु तेग बहादुर सिर्फ सिखों के ही पूजनीय कैसे रह गये? इस्लामी धर्मांधता से हिंदू धर्म की रक्षा करने वाला यह बलिदानी हिंदुओं की मानसिकता का अंग क्यों नहीं बना? क्यों नहीं पंजाब के प्रत्येक निवासी को गुरु तेग बहादुर जैसे उदात्त बलिदानी से प्रेरणा मिलती? क्यों प्रत्येक पंजाबी के लिए संत-सिपाही गुरु गोबिंद सिंह वीरता और शौर्य के आदर्श नहीं बन पाये?

सवालों की इस लड़ी में और भी बहुत से सवाल जुड़ने लगे हैं.

जिन धर्मशालाओं में मेरी मां जाया करती थी, वे आज लुप्त क्यों हो गयीं?

धर्मशाला के गुरुद्वारे बनने में कौन-सी राजनीति काम कर रही थी?

"सत्ता की राजनीति और राजनीतिज्ञों के क्षुद्र स्वार्थ, इंसानी रिश्तों पर कितनी चोट पहुंचा रहे हैं, उन्हें मालूम ही नहीं. अब मेरे जैसा आदमी क्या करेगा जिस के पापा केशधारी सिख हैं और पिता तथा चाचा हिंदू."

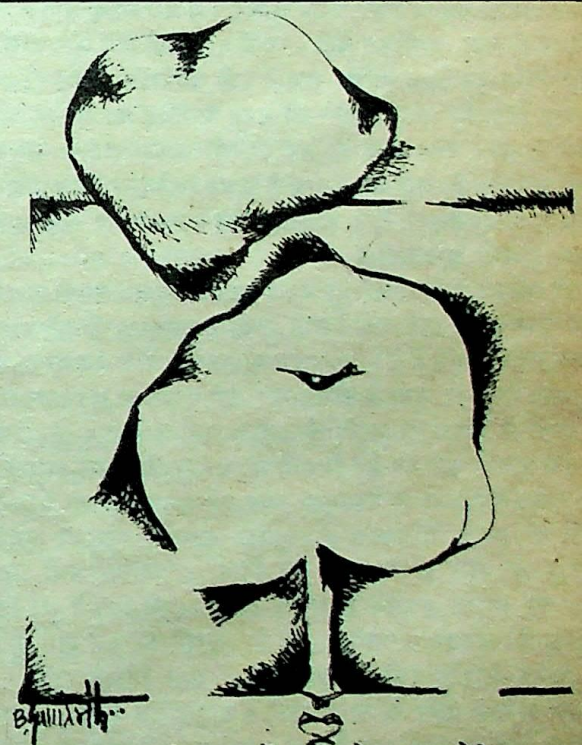

गुरद्वारे केवल धर्मस्थल क्यों नहीं बने रह सकते?

अगर आज मेरी मां जिंदा होती, तो क्या करती? कहां जाती?

अपनी मां की बोली को मैंने और मेरे परिवार के लोगों ने मां-बोली के रूप में क्यों नहीं स्वीकार किया?

क्यों, इस मां-बोली की दुहाई देकर सत्ता के भूखे, छोटी सोचवाले नेताओं ने पंजाब को काट-पीटकर इतना छोटा कर दिया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी कथा

पत्नी प्रेम

जेंग जियांग अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता था. पत्नी सुंदर थी पर उसके माथे पर एक निशान था जिसे वह एक पर के नीचे छुपाए रहती थी. तीन साल तक जियांग को वह निशान नहीं दीखा. पर एक रात जैसे ही पत्नी ने पर हटाया जियांग को निशान दीख गया. उसे इतना दुख हुआ कि वह सारी रात नहीं सो सका. और जोकि पत्नी ने तत्काल उस निशान को ढक लिया पर इसके बाद वह अपनी पत्नी को प्रेम नहीं कर सका. □

मुझे लगा कि भारत की आजादी पंजाब को माफिक नहीं आयी. विभाजन के बाद का जख्म अभी मुश्किल से भरा ही था कि लोकतंत्र के लिजलिजे-लीडरों, भिनभिनाते मंत्रियों, लार टपकाते विधायकों तथा पिनपिनाते सांसदों की फौज ने इस खुशहाल पंजाब को बीमार कर दिया है. सत्ता की राजनीति और राजनीतिज्ञों के क्षुद्र स्वार्थ, इंसानी रिश्तों पर कितनी चोटें पहुंचा रहे हैं, उन्हें मालूम ही नहीं. अब मेरे जैसा आदमी क्या करेगा जिसके ताया केशधारी सिख हैं और पिता तथा चाचा हिंदू. अर्से तक मेरी भी समझ में यह बात नहीं आयी थी, हम सब हिंदू और सगे ताया सिख? पिताजी ने बताया था कि हमारे दादा के परिवार में शादी के पांच साल बाद तक जब कोई संतान न हुई तो दादी ने धर्मसाल जाकर मन्नत मानी थी, अगर पहला बेटा हुआ तो उसे सिख बनाऊंगी. उन दिनों बेटे को सिख बना देने का मतलब होता...यह बेटा जाति की रक्षा के लिए मैंने समाज को अर्पित किया...और अब यह हालत यह है कि दिल्ली में ताया कृष्ण सिंह के परिवार के सभी लोग घबराये हुए हैं --- कि अब उनका क्या बनेगा? उधर जालंधर में बसे चाचा नानक चंद के घर वाले भी कम आतंकित नहीं -- कब कहां क्या होने जा रहा है? मेरे अस्सी वर्षीय बूढ़े पिता गोबिंद राम ने इसी घबराहट में सन् चौरासी में दम तोड़ दिया कि कहीं लाहौर की तरह चंडीगढ़ का मकान भी हमें छोड़ना न पड़े. देखा जाये तो हर पंजाबी अपने आपको असुरक्षित महसूस कर रहा है; चाहे वह पंजाब से बाहर रहनेवाला सिख पंजाबी हो या पंजाब में रहनेवाला हिंदू पंजाबी. चाहे वह गुमराह धर्मांध हो या स्टेनगन संभाले आतंकवादी.

इन्हीं सब बातों को सोचते हुए बस स्टैंड तक पहुंचा. बस में पांव रखते ही एक अजीब-सी दहशत होने लगी. अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ जब होशियारपुर में बसों में से निकालकर आतंकवादियों ने बेकसूर लोगों का खून किया था. जिन सुनक्खे नौजवानों ने इस धरती को खुशहाल बनाना था, खेतों में हरियाली लानी थी, आज वही इसे खून के धब्बों से चितकबरा क्यों कर रहे हैं? जिंदगी को भरपूर जीनेवाले शमले पहने और रंगीन पगड़ियों से पंखानुमा ऊंचे तुर्रे लगाए भंगड़ा डालनेवाले पंजाब के सुनखे नौजवानों ने आखिर क्योंकर स्टेनगन पकड़कर बेगुनाहों का खून करना शुरू कर दिया? ...आखिर क्यों उन्मुक्त जीवन की अपेक्षा इन्होंने खतरों से घिरी भागने-छिपने की जिंदगी अपनायी है? शायद वे नहीं जानते कि धरती पर पड़े खून के दाग, पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों नसों में बहते खून में जहर घोलते रहेंगे.

"खून में मिले जहर को साफ करती है डायलसिस मशीन." ताया जी ने समझाते हुए कहा था, खून में जब टाक्साईस की मात्रा इस कदर बढ़ जाती है कि गुर्दे उसे पूरी तरह साफ नहीं कर सकते तो किडनी का काम करने वाली डायलसिस मशीन से खून को साफ किया जाता है. जांघ के पास से एक नस को काटकर खून उस डायलसिस मशीन में लाया जायेगा और साफ खून को कोहनी के पास दूसरी नस को काटकर शरीर में डाल दिया जायेगा. इस सारी प्रक्रिया को ही डायलसिस कहते हैं. यह समझाते हुए ताया जी के चेहरे पर चमक थी और आंखों में उम्मीद. ताया जी को पूरा विश्वास था कि डायलसिस होते ही ताई बिल्कुल ठीक हो जायेगी.

... पंजाब में चुनाव के बाद लोकप्रिय सरकार बनते ही सब के मन में उम्मीद जागी थी कि अब कोई न कोई हल सामने आयेगा. इसी उम्मीद के बल पर ही डा. मनजीत कौर ने सालों काट लिये थे. डा. मनजीत कौर यूनीवर्सिटी, वील चेयर पर पढ़ाने आती थी. जून 4, 1984 की तिथि उसे अच्छी तरह याद है, क्योंकि उसी दिन दुर्घटना का शिकार हुई थी. रीढ़ की हड्डी टूट गयी और अब कमर के नीचे का सारा शरीर पैरालाईज्ड. मनजीत कौर अपने विभाग की ही नहीं, पूरी यूनिवर्सिटी में, अपने विद्यार्थी काल से हीर के नाम से पहचानी जाती थी. उसकी सानुपात देह यष्ठि तो खूबसूरत थी ही --- पर असल खूबसूरती उसकी चाल में थी -- हल्के पांव से झटक-झटककर चलना और अब उसकी टांगें बेजान हो चुकी थीं. अब उन बेजान टांगों को हील-चेयर के साथ बांधकर रखना पड़ता है. खूबसूरती पर मान करने वाली हीर को अपंग होकर जीना होगा..... और यह उसे स्वीकार नहीं था..... और उसने आत्महत्या करने की कोशिश की....

पंजाब भी एक दुर्घटना का शिकार हो गया है और हील चेयर पर है..... अगर इसी तरह चलता रहा तो क्या यह रास्ता आत्महत्या की ओर नहीं ले जायेगा.....

... बस की हत्याओं और मनजीत कौर की आत्महत्या का ध्यान आते ही डर तेज चाक् की तरह भीतर खरोचने लगा. पर यह सोचकर तसल्ली हुई...इस तरफ कोई खतरा नहीं. बस नान स्टाप है और पांच घंटों में दिल्ली पहुंचा देगी... आवागमन के इन तेज साधनों के कारण प्रदेशों के बीच दूरियां कम हो गयी हैं...छत्तीस घंटों में आप जेट प्लेन से दुनिया के किसी कोने में पहुंच सकते हैं..... कितने नजदीक आ गये हैं सभी देश!

देश नजदीक आये हैं. विश्व एक कुटुंब है, अब वह कल्पना साकार हो सकती है..... पर क्या यह साकार होगी? क्योंकि इनसान तो एक दूसरे से दूर हटते जा रहे हैं --- इसलिए, वे हिंदू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं, बंगाली हैं, गोरखा हैं, तमिल हैं, गुजराती हैं, मराठी हैं, अमरीकी हैं, रूसी हैं. असल में राजनीतिक हितों के बोझ में इनसानी सरोकार हमेशा से दबते चले आ रहे हैं; पर सवाल तो यही है कि क्या हमेशा दबते रहेंगे?

यह इंसानी सरोकार ही तो है जिसकी वजह से दिल्ली आया हूं. कल ताई का डायलसिस है, सुबह राजेंद्र नगर तो आना ही होगा, पर सोचता हूं, दिल्ली आया हूं तो बड़े भाई का हाल भी पूछता जाऊं. बस से उतरकर सीधे बड़े भाई के घर कैलाश कालोनी पहुंचा. भाजी हम भाईयों में सबसे बड़े हैं. पिछले हार्ट अटेक के बाद से दिन-ब-दिन कमजोर होते जा रहे हैं. पिछले खत में भरजाई ने लिखा था, जबान भी लड़खड़ाने लगी है और बिना सहारे चल भी नहीं सकते. बेटों के सहारे की जरूरत ऐसे ही वक्त हुआ करती है. इन का इकलौता बेटा दूर हैदराबाद में बैठा है और संयोग की ही बात है कि जब इन्हें उसकी जरूरत महसूस हुई है --- वह स्वयं किसी न किसी परेशानी में फंसा रहा है : कभी अपनी फैक्ट्री की और कभी बच्चों की. हार्ट अटैक का तार भेजा और हफ्ते बाद पहुंचा. भाजी की सभी तकलीफों के समय बेटी मीरा और दामाद विनय ने पहुंचकर खूब जमकर सेवा की है. बेटा मनोहर स्वयं कभी वक्त पर तो पहुंचा नहीं, पर हैदराबाद बैठे-बैठे ही घबरा गया कि कहीं दिल्लीवाला मकान भाजी मीरा और विनय के नाम ही न लिख दें. इसलिए इस बार जब उसे पता चला कि भाजी की तबीयत ज्यादा खराब हो रही है, उसने अपने बड़े बेटे राज कुमार और बेटी कामना को दिल्ली रहने के लिए भेज दिया.

जिस वक्त से मैंने घर में पांव रखा था, भाजी लड़खड़ाती जबान से सिर्फ एक ही बात दुहरा रहे हैं, "इन्हें कहो कि यहां से चले जायें."

भाजी बहुत कोशिश के साथ बोलते हुए कह रहे थे, "शरीर का क्या है..... इसने तो मिट्टी में मिलना ही है..... पर इस मकान को लेकर बहिन भाई आपस में लड़ पड़ें तो सब कुछ मिट्टी में मिल जायेगा."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात भाजी की सुन रहा था पर मन ही मन सोच रहा था, पंजाब में भी तो ऐसा ही हो रहा है.

भाजी बहुत बोल नहीं सके पर उनकी बेबसी और छटपटाहट उनके चेहरे और आंखों से प्रकट हो रही थी; भरजाई जी बार-बार रो रही थीं और बोले जा रही थीं, "इन दोनों ने तो सारे घर में आतंक फैलाया हुआ है; किसी की बात नहीं सुनते, मनमानी करते हैं. सुबह दुपहर शाम की कोई तमीज नहीं. राजकुमार तो रात को जाता है, सुबह आता है, कौन-सी नौकरी करता है जिसके लिए उसे रात को ही जाना पड़ता है. मुझे तो डर लगता है, कहीं कोई उल्टा सीधा धंधा न करता हो..... कहीं पुलिस ही न पकड़ ले जाये." .....'

समझ में नहीं आ रहा था कि भरजाई को तसल्ली भी दूं तो किन शब्दों में. सुबह लौटते समय सिर्फ इतना कह सका. "धीरज रखें, वक्त आने पर सब ठीक हो जायेगा. वक्त ही कोई हल निकालेगा."

वक्त ही कोई हल निकालेगा, पंजाब के लिए तो यह बात और भी सही है. वह सोचते हुए मैं ताई जी के घर जाने के लिए सुबह-सुबह बस स्टैंड के पास आया. मुझे समझाया गया था कि नयी दिल्ली में बसों पर यात्रा करने का सबसे आसान तरीका है कि सचिवालय के रास्ते से ही जाया जाये.

सचिवालय पहुंच गया. सचिवालय के पास संसद भवन है और संसद भवन के पास रकाबगंज गुरुद्वारा. क्योंकि आज गुरु तेगबहादुर का शहीदी दिवस है इसलिए गुरुद्वारे के सामने नीली, जोगिया, लाल पगड़ियां तथा पटके पहने सिखों के अनेक जत्थे खड़े हैं. आस-पास चारों ओर खाकी वर्दी में सी.आर.पी.एफ. के सिपाही हाथ में लाठियां, कनकी बनी ढालें, राईफलें, स्टेनगन तथा वायरलैस सेट लिए घूम रहे हैं. जत्थों में खड़े सिखों ने किरपाने लटकायी हुई हैं, पर उनकी आंखों मे भय और दहशत है. जालंधर के अटारी बाजार के मुहल्ले में हिंदुओं की भी ऐसी ही दशा देखी थी; ऐसा ही डर और इसी तरह समूह में एक साथ घूमने की प्रवृति.

संसद और गुरुद्वारा आमने-सामने डटे हैं और बीच में इंसान...डरा हुआ है, अभिशप्त है : क्योंकि राजनीति और धर्म दोनों मिलकर उसे डरा रहे हैं. धार्मिक कठमुल्लापन और राजनीतिक षड्यंत्रों के दाव-पेचों में युवाशक्ति उलझ गयी है..... और अब गुरुद्वारों में ही धर्म और राजनीति का गठबंधन कैसे, सारी स्थिति को विस्फोटक बना रहा है.

ताई को डायलसिस के लिए जाना है. ताई निस्तेज चारपाई पर लेटी है, उनकी आंखों में भी वैसा ही डर और घबराहट है; पता नहीं क्या होने जा रहा है. एक लाचारी और निरीहता. मुझे देखकर ताई के चेहरे पर एक प्लान की मुस्कान खिल उठी; जब ताई असली घी की पिन्नियां बनाकर होस्टल-भेजतीं, और छुट्टियों में दिल्ली आकर ताई के "पैरी पौना" करते हुए धन्यवाद करता -- तब भी ऐसी ही मुस्कान उनके चेहरे पर रहा करती. आस-पास के सभी सगे संबंधियों और मिलनेवालों पर ढेर सारा प्यार लुटाने वाली ताई की आंखों से इस समय वात्सल्य छलक रहा था; उमर भर इसी भाव को ताई ने जिया था; गुरबानी की ये पंक्तियां ताई को बहुत प्रिय थीं : "सभे जी समान, प्रभु जी मेहर कर." ..... और उठते-बैठते हुए ताई यही दुहराती "दाता मेहर कर," "दाता मेहर रख", "सबां ते मेहर रख"..... और मुझे याद आया कि हर संकट की घड़ी में ताईजी द्वारा रोज पाठ की जानेवाली गुरुबानी के बाक ने ही मेरी मदद की --- मुझे विवेक दिया, सही और गलत का फर्क बताया. संध्या-हवन के संस्कृत के श्लोक कभी सामने नहीं आये. ताई को मां माना पर ताई की जिस मां बोली ने मुझे विवेक दिया --- उसे ही नकारा. अपनी इस गलती का कारण ढूंढने लगा तो आर्य समाजी जोश में बहस करते करते पिता का चेहरा सामने आ गया, "साडी जबान तां हिंदी है." जबकि अकसर में देखता था कि पिता दफ्तर का सारा काम-काज अंग्रेजी में करते थे, पत्र-व्यवहार उर्दू में, धर्म-कर्म संस्कृत में और बोलते पंजाबी थे..... और जन गणना के समय यह आग्रह कि हमारी भाषा हिंदी

प्रवीण प्रकाशन से प्रकाशित

महत्वपूर्ण और संग्रहणीय पुस्तकें

☐ हिंदी पत्रकारिता: प्रेमचंद और हंस/डा. रत्नाकर पांडेय	200.00
☐ राजभाषा अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश/डा. श्यामसिंह शशि/ बलबीर सक्सेना	200.00
☐ जवाहरलाल नेहरू . . अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना पुरस्कार से सम्मानित विभूतियां/बलबीर सक्सेना	60.00
☐ कार्यालयीन हिंदी/प्रभुदयाल मढ़इया 'विकल'	100.00
☐ राजभाषा हिंदी : विकास के विविध आयाम/डा. मलिक मोहम्मद	60.00
☐ रिलायंस विश्व कप क्रिकेट/सुधीर सेन	35.00
उपन्यास	
चंद्रकांता/बाबू देवीकनंदन खत्री	35.00
चंद्रकांता संतति/बाबू देवीकीनंदन खत्री (छः भाग)	270.00
चांद सूरज के बीरन/देवेंद्र सत्यार्थी	75.00
फागुन के दिन चार/पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	45.00
एक चूहे की मौत/बदीउज्जमा	20.00
अपुरुष/बदीउज्जमा	7.00
उनके हिस्से का विश्वास/वीरेंद्र जैन	35.00
सुबह की नींद/सुदर्शन वशिष्ठ	25.00
आकाश मेरा नहीं/पीसीके प्रेम	55.00
राजा और प्रजा/आचार्य अनूपश्री	30.00
कहानी संग्रह - व्यंग्य संग्रह	
अवतार/पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	25.00
चौथा ब्राह्मण/बदीउज्जमा	35.00
एक नदी का मनोवेग/केशव	45.00
अनचाहे सफर/बलराम	45.00
दस्तक/श्रीनिवास जोशी	30.00
जिस गांव नहीं जाना/चंद्रमोहन प्रधान	45.00
बर्फ की कोख से/सं. तुलसी रमण	45.00
मंगलामुखी/पुष्पा मनकोटिया	35.00
व्यंग्यधारा/सं डा. राजेश	30.00
सिरहाने मीर के/सुरेश सेठ	30.00
आता हुआ काल/हरिहर द्विवेदी	35.00
कविता संग्रह	
एक सूनी यात्रा/केशव	35.00
नाखून उखड़ने की रात/हरिप्रकाश त्यागी	30.00
कम्पिला/डा. धर्मवीर	30.00
तुम मेरे घर मत आना/सुरंजन	35.00
दिन पाटलीपुत्र हुए/देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'	40.00
विविध	
असमंजस/डा. राजेंद्र प्रसाद	16.00
भारत रत्न/बलबीर सक्सेना	45.00
भारत के युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी/बलबीर सक्सेना	40.00
भगतसिंह/के.के. खुल्लर	6.00
असफाक उल्ला खां/के.के. खुल्लर	6.00
मंगल पांडे की पहली गोली/कमल शुक्ल	25.00
गणेश शंकर विद्यार्थी की जेल डायरी/सं. सुरेश सलिल	25.00

संपूर्ण सूची पत्र के लिए लिखें

प्रवीण प्रकाशन

1/1079 ई, महरौली नयी दिल्ली-110030

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकायन

हमारे 1987 के श्रेष्ठ प्रकाशन

मन्मथनाथ गुप्त	आत्मकथा	सिर पर कफ़न बांध कर	95.00
चिरंजीत	हास्य उपन्यास	-सिलबिलनामा	30.00
कुसुम गुप्ता	उपन्यास	दांव पर लगी जिंदगी	30.00
गौरीशंकर राजहंस	उपन्यास	अभिशप्त	25.00
पं. आनंद कुमार	उपन्यास	सिर्फ साइन बोर्ड	45.00
शरतचंद्र चट्टोपाध्याय	उपन्यास	विप्रदास	25.00
वि. अनन्त	उपन्यास	मित्र	30.00
वि. अनन्त	उपन्यास	एक चादर दाग भरी	30.00
शरतचंद्र चट्टोपाध्याय	उपन्यास	शुभदा	15.00
वीरेंद्र मिश्र	संगीत नाटक	जागे रे वा गाये रूप	30.00
चिरंजीत	नाटक	सात युन्नमंच नाटक	30.00
हबीब तनवीर	नाटक	चरनदास चोर	20.00
मुद्राराक्षस	नाटक	डाकू	20.00
गौरीशंकर राजहंस	व्यंग्य	आना एक वी आई पी का	25.00
मुज्तबा हुसैन	व्यंग्य	किस्सा आराम कुर्सी का	30.00
कुसुम गुप्ता	कहानी संग्रह	मंथन	30.00
रमेश गुप्त	कहानी संग्रह	बुद्ध का गृहत्याग	50.00
बलदेवराज दावर	विज्ञान गाथा	डाक्टर सुषेन	40.00
डॉ. शेरजंग गर्ग (सं)	शायरी	गजलें ही गजलें	40.00
डॉ शेरजंग गर्ग (सं)	शायरी	नया जमाना नई गजलें	40.00
डॉ शेरजंग गर्ग (सं.)	शायरी	मुक्तक और रूबाईयां	40.00
डॉ. मनोहर लाल	समीक्षा	हिमाचल प्रदेश के बज कवि	60.00
डॉ. शिवपूजन सिंह कुशवाहा	समीक्षा	हनुमान का वास्तविक स्वरूप	15.00
डॉ. हरिदत्त शर्मा	ज्योतिष	हस्तरेखा विश्वकोश	60.00
प्रा. राजेंद्र जिज्ञासु		महात्मा हंसराज ग्रंथावली (चार खंडों में)	240.00
डॉ. भवानी लाल भारतीय		स्वामी श्रद्धानंद ग्रंथावली (ग्यारह खंडों में)	660.00

1988 में प्रकाशित

चिरंजीत	नाटक	घेराव	30.00
सत्येंद्र शरत (सं)	नाटक	थीफ पोलीस	30.00
सत्येंद्र शरत (सं)	नाटक	आस्थाएं अपनी अपनी	30.00
पं. आनन्द कुमार	उपन्यास	पायालू	50.00
ब्रजेश्वर मदान	कहानी संग्रह	बावजूद	30.00
सुशील कालरा	व्यंग्य	पाकीजा तेरी पालकी	25.00
आशारानी व्होरा	कविता	लहरलहर गिनते हुए	35.00
आशारानी व्होरा	मनोविज्ञान	किशोरियों का मानसिक विकास	30.00

पुस्तकायन

(सुबोध पॉकेट बुक्स का उपक्रम)

सुरूचिपूर्ण साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

2/4240 ए, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002

टेलीफोन नं. 274513, 278858

है.

हम सभी पंजाब में रहने वालों की भाषा पंजाबी है, इस सच को स्वीकारने से हम कतराते क्यों रहे? जब किसी सच का सामना नहीं किया जाता, महाभारत होता है. सच चाहे कितना कड़ुवा हो, उसका सीधा साक्षात्कार करने का साहस पैदा करना चाहिए. कुंती कर्ण के जन्म के सत्य को यदि न छिपाती तो कम-से-कम कर्ण पांडवों के खिलाफ तो न लड़ते. कुंती को नहीं मालूम था कि इस छोटी-सी मासूम भूल को छिपाए रखने का परिणाम महाभारत होगा. महाभारत ही तो हो रहा है. अस्पताल के फोरोलोजी विभाग में ताई का डायलसिस हो रहा है और बरांडे में बैठा मैं अखबार का स्पैशल बुलिटन पढ़ रहा हूं. गुरुद्वारा बंगला साहब से लंगर का सामान ढोने वाला एक ट्रक निकला, उसे एक चौदह साल का नौजवान सिख लड़का चला रहा था. बड़ी तेज स्पीड से उस ट्रक ने गोल मार्केट के तीन चक्कर लगाये. और गुरुद्वारे के पास खड़ी सी.आर.पी.एफ. की पूरी टुकड़ी पर ट्रक चढ़ा दिया और तीन जवान मारे गये तथा अनेक जख्मी हुए. सी.आर.पी.एफ. के बाकी सिपाहियों ने उस युवा ड्राईवर को इतना पीटा कि उसकी भी घटना स्थल पर मृत्यु हो गयी..... आस-पास के सारे इलाके में तनाव है.....

मेरे मन में फिर से अपने सवाल उठने लगे. इस युवा सिख की मौत के लिए जिम्मेवार कौन है? क्या वे सिपाही, जिन्होंने कानून को अपने हाथ में ले लिया था? उसकी सोच को विषैला बनाने वाले कठमुल्लावादी? या शातिर राजनीतिज्ञ जो धर्म और युवा साहस का गलत प्रयोग कर रहे हैं. युवकों के खून में नफरत का जहर घोल रहे हैं.....

' जब मनजीत कौर ने भी आत्महत्या करने के लिए गोलियां खा ली थीं, और जहर खून में चला गया था, तो उसका भी डायलसिस किया गया था..... इस खून-खराबी में सभी पंजाबियों का खून खराब हो रहा है..... डायलसिस की जरूरत है.

ताई का डायलसिस हो गया है. उन्हें घर पहुंचा दिया है.

शाम ढलने लगी है. मैं कैलाश कालोनी जाने के लिए बस स्टैंड पहुंचा हूं. रास्ता वही है.

सचिवालय पहुंच गया हूं.

संसद की छाया रकाबगंज गुरद्वारे पर पड़ रही है..... और गुरद्वारे के पास खड़ा मैं बस की इंतजार कर रहा हूं. सारे माहौल में एक अजीब-सा तनाव महसूस कर रहा हूं. भवन की रोशनी सिर्फ सड़क पर है जहां ढेर सारी पुलिस तैनात है...बंदूकें, राईफलें, स्टेनगनों के साथ.

घंटा भर और बीत गया, पर बस नहीं आयी. इतने में एक सिख बुजुर्ग मेरे सामने आ खड़े हुए. उनके चेहरे पर घबराहट, आंखों में दहशत और डर से ज़बान लड़खड़ा रही थी.

"तु तुस्सी कित्थों जाणा ए?"

"मैं कैलाश कालोनी जाणा है."

मुझे पंजाबी बोलते देखकर उसने मेरी बाजू पकड़ ली और बोले, "तुसी कैलाश कालोनी अते मैं कालका जी --- साडा तां फिर इक्को ही रुट है."

...और मैं उस बुजुर्ग के चेहरे पर लहराती सफेद दाड़ी की ओर देखकर बोला, "हां, गुरमुखो, इक्को ही तां रुट है, बिल्कुल इक्को ही." □

चलते-चलते

एक पत्रिका के प्रबंध संपादक ने एक पाठक को वार्षिक चंदे का नोटिस भेजा. फार्म के अंत में लिखा था : आपको यह अंतिम नोटिस भेजा जा रहा है.

चंदे की राशि के साथ फार्म लौटाते हुए उस पाठक ने अंतिम पंक्ति के नीचे रेखा खींच कर आगे जोड़ दिया," ऐसा नहीं हो सकता. मैं अभी कुल नब्बे साल का हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

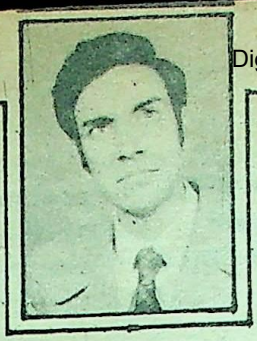

सातवें दशक के महत्वपूर्ण कथाकार. चर्चित कृति : 'इतना बड़ा पुल'.
संपर्क : द्वारा शीर्षक प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़

सुदर्शन नारंग

जोखिम

उस इलाके को लोगों के हितों की लड़ाई उसे सचिवालय तक ले गयी थी. खाद्यमंत्री से इस्तीफे की उसकी मांग ने पूरे प्रशासन को हिला दिया था और इतनी कम आयु में उसका नाम अखबारों की सुर्खियों में आ गया था.

यह घटना बहुत पुरानी है. दस वर्ष से ज़्यादा ही. हम दोनों एक ही स्कूल में पढ़े थे और एक ही बिल्डिंग में रहते थे. मैं नीचे की मंजिल पर और वह ऊपर की मंजिल पर. मैं कानून का विद्यार्थी था और वह साहित्य का. वह हर बात पर मुस्कराता रहता. उसके प्रश्न और जिज्ञासाएं भी एक तीखी मुस्कराहट लिये रहतीं. बहुत सारी बातों के अर्थ तो मुझे उस समय समझ ही नहीं आते थे. मिसाल के तौर पर मुझे याद है कि एक बार उसने पूछा था, भारतीय संविधान के तहत बननेवाले अधिकांश कानून जम्मू और काश्मीर में क्यों नहीं लागू होते? उसके प्रश्न के उत्तर का मतलब था बहस. पर मैं बात को बढ़ाना नहीं चाहता था. उसके पिता एक अर्द्धसरकारी संस्थान में ऊंचे पद पर थे और जाहिर है, कि उनका वेतन भी चार अंकों की राशि में रहा होगा. पर उसे मैंने कभी फिजूलखर्ची करते नहीं देखा था. कपड़े भी वह बेतरतीबी से पहनता और बालों को संवारने की सुध भी उसे नहीं थी. उसकी आंखों के चश्मे के शीशे काफी मोटे थे और उसके कमरे में बढ़ती हुई किताबों से ही मैं अधिकांश लेखकों के नाम से परिचित हुआ था. एक तरह से पढ़ने-लिखने में मेरी रुचि जाग्रत करने का श्रेय उसी को था. बेमतलब की जान-पहचान से उसे वितृष्णा-सी थी जिसे वह समय के अपव्यय की संज्ञा देता था. नगर में होने वाली बौद्धिक गतिविधियों में उसकी खास दिलचस्पी थी. देखा जाये तो कविता मौहल्ले के रोमानी माहौल की जड़ता को तोड़ने वाली साहित्यिक संस्था 'परिक्रमा' भी उसी की पहल के कारण अस्तित्व में आयी थी. अर्थात् वह आदमी जो मेरा दोस्त था और मन ही मन जिसके प्रति मैं एक अव्यक्त सम्मान की भावना लिये रहता, महान होने की असीम संभावनाएं जगाता था. मुझे पूरा विश्वास था, आगे चलकर वह हमारे इस छोटे से नगर की सीमाएं फलांगता हुआ प्रदेश तथा देश की भारी हस्ती के रूप में उभरकर रहेगा. उसके अंदर ऐसे कितने लक्षण थे जिनके आधार पर उसे मैं हमेशा ही जननायक अथवा महापुरुष के रूप में देखने की कल्पना सजाये रहा था. उसका वजूद आसपास के सभी साथियों से था भी भारी.

सरकारी नौकरी से उसे सख्त नफरत थी. सरकारी क्या, किसी भी तरह की नौकरी से उसे नफरत थी. आत्मा को गिरवी रख कोई कैसे जी सकता है! उसकी बेफिक्र चाल और चेहरे से झलक रहे गहरे आत्म-विश्वास से कोई भी अनुमान कर सकता था कि वह एक कुलीन परिवार का होनहार उत्तराधिकारी है.

कालिज की पढ़ाई भी हमने साथ-साथ ही पूरी की थी. कानून की शिक्षा के बावजूद वकालत का इरादा छोड़ मुझे सरकारी नौकरी में जाना पड़ा था. फिर मेरे साथ वह सब हो गया था जो एक सामान्य नागरिक के साथ होता है. अर्थात् मां की तरफ के रिश्तेदारों में घरेलू कामकाज में माहिर एक सुशील लड़की से ब्याह, दफ्तर से कुछ एक दिन की छुट्टी, हनीमून और पत्नी के साथ आये सामान की पनाह पर छोटे से घर की गृहस्थी. मेरे विवाह में वह बाकायदा शामिल हुआ था. बल्कि बिल्डिंग के ही एक दूसरे दोस्त से मांगे हुए कैमरे में रंगीन रील डाल उसने ढेरों चित्र खींच डाले थे. फिर तरक्की का इंतजार, वार्षिक बढ़ोत्तरी और बोनस की दर को लेकर होने वाली हड़ताल में गला फाड़ नारे और साल दो साल में घर की मरम्मत के लिए एडवांस और वक्त-जरूरत के लिए थोड़ा-बहुत बचाकर रखने की ऊहापोह का अपना साधारण हो आया जीवन धीरे-धीरे घिसटने लगा था. पर वह अपने असाधारण उद्देश्यों और संतव्यों के लिए जी-तोड़ मेहनत कर रहा था, ऐसा अनुमान था. उसके चश्मे के शीशे तो पहले से ही मोटे थे, अब उसने दाढ़ी भी बढ़ा ली थी.

बीच-बीच वह कई दिनों के लिए गायब हो जाता और फिर सामना होने पर पता चलता कि वह किसी लंबी यात्रा पर निकला था. देशाटन के शौक के अतिरिक्त वह बंगाल की राजनीतिक और बिहार के आदिवासी इलाकों की गरीबी की समस्याओं में भी गहरी दिलचस्पी रखता था. मुझे इस बात का संतोष था कि अपने साधारण जीवन के बावजूद मैं एक ऐसे आदमी से जुड़ा था जिसके पास योजनाएं थीं, उत्साह और उत्तेजना थी, और था मजबूत इरादा. महत्वाकांक्षाएं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति महत्वपूर्ण पुस्तकें

संदर्भ, समालोचना, हिंदी-प्रसार

विश्व सूक्ति कोश (1)/श्याम ब. वर्मा	195.00
विश्व सूक्ति कोश (2)/श्याम ब. वर्मा	195.00
विश्व सूक्ति कोश (3)/श्याम ब. वर्मा	195.00
भारतीय कला दृष्टि/अज्ञेय	50.00
हिंदी साहित्य का आदिकाल/चतुर्वेदी	60.00
भारतीय साहित्य/नगेन्द्र	200.00
मैथलीशरण गुप्त : काव्य संदर्भ कोश/नगेन्द्र	150.00
मैथलीशरण गुप्त : पुनर्मूल्यांकन/नगेन्द्र	30.00
स्वराज और घनश्यामदास/लक्ष्मीनारायण लाल	100.00
तुलसी मंजरी/विद्यानिवास मिश्र	75.00
सीमांत गांधी बादशाह खान/मदालसा नारायण	50.00
हिन्दी हम सबकी/शिवसागर मिश्र	40.00
अंग्रेजी हिंदी अभिव्यक्ति कोश/भाटिया	120.00
अंग्रेजी हिंदी शब्दों का ठीक प्रयोग/भाटिया	75.00
आदिकालीन हिंदी कोश/भोलानाथ तिवारी	120.00
राजभाषा हिन्दी	50.00
मानक हिंदी का स्वरूप/भोलानाथ तिवारी	60.00
सम्पर्क भाषा हिन्दी/भोलानाथ तिवारी	100.00
हिंदी और भारतीय भाषाएं/भोलानाथ तिवारी	100.00
कार्यालय कार्यबोध/हरिबाबू कंसल	50.00
कार्मिक प्रबन्ध कला/महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी	80.00
अनुवाद कला/विश्वनाथ अय्यर	30.00
पुनः भारतीयता की ओर/आशारानी व्होरा	60.00

उपन्यास

बारहखंभा/अज्ञेय	50.00
महायात्रा/अज्ञेय	40.00
गोली/आचार्य चतुरसेन	60.00
धर्मोरक्षित/आचार्य चतुरसेन	60.00
कागज का लंगर/शिवसागर मिश्र	50.00
अजन्मा वह/शिवसागर मिश्र	40.00
सोना माटी/विवेकी राय	90.00
मार्कंट्वेन का स्वर्ग/अभिमन्यु अनत	50.00
मुड़िया पहाड़ बोल उठा/अभिमन्यु अनत	50.00

हास्य व्यंग्य

पत्नी और धर्मपत्नी/श्रीनारायण चतुर्वेदी	30.00
मनोरंजक संस्मरण/श्रीनारायण चतुर्वेदी	40.00
साहित्यिक चुटकुले/श्रीनारायण चतुर्वेदी	35.00
फुलझड़ियां/काका हाथरसी	60.00
पैरोडियां/काका हाथरसी	60.00
काकदूत/काका हाथरसी	60.00
नोंक झोंक/काका हाथरसी	60.00
महामूर्ख सम्मेलन/काका हाथरसी	60.00
गिरगिट/रमेश गुप्त	50.00
अफसर की मौत/गोपाल चतुर्वेदी	30.00
मुस्कराती फाइलें/रामनाराणय उपाध्याय	60.00

जीवनी, निबन्ध, संस्मरण आदि

मानस के सांचे में/श्रीनारायण चतुर्वेदी	50.00
कसौटी/श्रीनारायण चतुर्वेदी	40.00
जन जनक जानकी/अज्ञेय	100.00
चिंतक की लाचारी/माखनलाल चतुर्वेदी	50.00
अमीर इरादे : गरीब इरादे/माखनलाल चतुर्वेदी	30.00
समय के पांव/माखनलाल चतुर्वेदी	30.00
समता के पथ पर/वियोगी हरि	60.00
अग्निरथ/विद्यानिवास मिश्र	35.00
लागौ रंग हरी/विद्यानिवास मिश्र	30.00
अंगद की नियति/विद्यानिवास मिश्र	25.00
कितने बजे हैं/रामदरश मिश्र	30.00
आम रास्ता नहीं है/विवेकी राय	70.00
प्रेरक प्रसंग/रामनारायण उपाध्याय	40.00
भारतीय वैज्ञानिक/कृष्णमुरारीलाल श्रीवास्तव	100.00
अमीर खुसरो/भोलानाथ तिवारी	60.00

विविध

विष्णु प्रभाकर : प्रतिनिधि रचनाएं/गोयनका	150.00
विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक (1)	150.00
विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक (2)	150.00
विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक (3)	150.00
सत्याग्रह के प्रयोग/सुमित्रा कुलकर्णी	75.00
अनमोल विरासत/सुमित्रा कुलकर्णी	150.00
हमारी विरासत /सुमित्रा कुलकर्णी	100.00

कहानियां

घर/श्रीकांत वर्मा	20.00
इकसठ कहानियां/रामदरश मिश्र	120.00
एक थाली समन्दर/अभिमन्यु अनत	60.00
ग्लेशियर से/मृदुला गर्ग	25.00
ग्यारह लम्बी कहानियां/चित्रा मुद्गल	40.00
इस हमाम में/चित्रा मुद्गल	35.00
सूली ऊपर सेज पिया की/राजेंद्र राव	70.00
साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियां	60.00
नारी उत्पीड़न की कहानियां	60.00
दलित जीवन की कहानियां	60.00
ग्राम्य जीवन की कहानियां	60.00
महानगर की कहानियां	60.00
विद्रोह की कहानियां	60.00
कार्यालय जीवन की कहानियां	60.00
वृद्धावस्था की कहानियां	60.00
शिक्षाजगत की कहानियां	60.00
विकलांग जीवन की कहानियां	60.00
बचपन की कहानियां	60.00
व्यवस्था विरोधी कहानियां	60.00

प्रभात प्रकाशन
205 चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपने तो सभी के पास होते हैं पर उसके अंदर लगन थी. यात्रा या माहौल को बदलने के नाम पर कभी-कभार मुझे गांव जाना पड़ता जहां पर एक पुराना पुश्तैनी मकान और बूढ़ी मां थी. मां को इस शहर की भीड़-भड़क्का कभी रास नहीं आया और न ही आसपड़ोस में ऐसे कोई लोग थे जिनके पास उठ-बैठ हो पाती. हालांकि इस बिल्डिंग के घरों की अधिकांश महिलाएं उसी तरह से धर्मपरायण हैं जिस तरह से मेरी बूढ़ी मां थी और यदाकदा यहां भी रात-रात भर के जागरण और मंदिर में सत्यनारायण की कथा होती है. पर मेरी मां को जो विराग गांव के बूढ़े मृदुलजी महाराज की कथा से पैदा होता है, वह अन्यत्र नहीं. बीच-बीच में जब मां के बीमार होने का समाचार मिलता, मुझे गांव जाना ही पड़ता. और उस माह मेरा बजट पूरी तरह से गड़बड़ा जाता.

वह कोई छुट्टी का दिन था. कैलेंडर में लाल अंक से छपनेवाली छुट्टी नहीं थी वह. किसी नेता के आकस्मिक निधन की छुट्टी थी. ऐसी छुट्टी जिसकी गंभीरता को समझे बिना बच्चे किलकारियां मारते हुए बल्ला और गेंद उठाकर मैदान की तरफ क्रिकेट खेलने निकल जाते हैं. ऐसी छुट्टी मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कोई पूर्व-निर्धारित योजना न रहने पर पत्नी को तंग करने और बिना जरूरत तीन-चार बार चाय पीते गुजरती है. ऐसी ही छुट्टी का दिन था जब सीढ़ियों में अचानक वह मिला था और घसीटते हुए अपने घर ले गया था.

"तुम भी क्या अजीब घर-घुसरे हो! न कोई महत्वाकांक्षा और न ही कोई चैलेंज! तुम्हें नहीं लगता कि जीवन में कुछ ऊंचे आदर्श होने चाहिए." उसने बताया था कि पिछले तीन माह वह बिहार के अकालग्रस्त क्षेत्र में बिताकर आया था. उस इलाके के लोगों के हितों की लड़ाई उसे सचिवालय तक ले गयी थी. खाद्यमंत्री से इस्तीफे की उसकी मांग ने पूरे प्रशासन को हिला दिया था और इतनी कम आयु में उसका नाम अखबारों की सुर्खियों में आ गया था. सामाजिक दायित्व के प्रति उसकी सजगता से मैं काफी प्रभावित हुआ था. कोयला खदानों में मजदूरों के शोषण के खिलाफ झरिया में काम करने की अपनी भावी योजना का बखान करते हुए वह एक तरह से उत्तेजित हो गया था और मुझे लगा था देश के राजनीतिक क्षितिज पर एक नये सितारे का उदय हुआ है. मैंने महसूस किया था, वह बहुत बोल रहा था और पहले की अपेक्षा काफी बदला हुआ-सा लग रहा था. पहले की तरह अब वह अंतर्मुखी नहीं रहा था और बात-बेबात आक्रामक हो उठता.

उसके होंठों में मंद-सी मुस्कान तैर गयी थी, "मैं चाहता हूं, तुम भी हमारे साथ काम करो. छोड़ो यह नौकरी का चक्कर! ऊब नहीं होती तुम्हें रोज दफ्तर जाकर, बच्चों को गणित और विज्ञान पढ़ाकर! या फिर साग-सब्जी के लिए मंडी के चक्कर काटते हुए!"

"मजाक कर रहे हो!" मैंने सहज ही कहा था.

"जिंदगी में कुछ रोमांच भी होना चाहिए. और सामाजिक दायित्व भी. जो जोखिम नहीं उठा सकता, वह कभी उन्नति नहीं कर सकता! औसत ढंग से जीना मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता!"

मां के बीमार होने की खबर पाकर मुझे फिर गांव जाना पड़ गया था. उसकी बातों पर गौर करने का न कारण था और न ही फुर्सत. उसके कंधों पर किसी तरह की जिम्मेदारी नहीं थी. न मां की बीमारी, न पिता का बुढ़ापा. न नौकरी की चिंता. वह जब तक चाहता, तजुरबे कर सकता था. छोटी-मोटी नौकरी के लिए उसने कभी आवेदन भी नहीं किया था. एक बार उसने कहा था, "असली जीवन चालीस के बाद शुरू होता है. तब तक घूम-फिरकर दुनिया देखनी चाहिए, अपने रुझान की पहचान करनी चाहिए."

बीच में वह अपने मामा के यहां चला गया था जो संघ लोकसेवा आयोग में सचिव पद पर आसीन थे. रोज शाम सफेद टी-शर्ट, शार्टस और फलीट्स पहन मामा के साथ वह बैडमिंटन खेलने क्लब जाता. जहां-पर ऊंचे तबके के लोग बड़े अधिकारी, न्यायाधीश, बुद्धिजीवी और पब्लिक सक्टर के अधिकारी उसी तरह इकटठे होते हैं, जैसे रिक्शा, झल्ली और ठेलेवाले शाम होते ही ठेके पर इकट्ठे होते हैं. मामा को सिफारिश भी नहीं करनी पड़ी थी. बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों के अधिकारीगण स्वयं ही उसके लिए ऊंचे-ऊंचे ओहदों के प्रस्ताव रखते रहे थे. पर उसने कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली थी.

मां को शहर ला अस्पताल में भर्ती करना पड़ा था और फिर सुबह-शाम अस्पताल के चक्कर काटते, किसी भी तरह के विलास का सवाल ही नहीं बचा था. उसकी सफलताओं अथवा अपनी सीमाओं की तुलना की फुर्सत ही कहां थी. फुर्सत वैसे भी मेरे जीवन में कम ही रही थी. स्कूल और कालिज के दिनों में गाऊन और मोटे शीशों का चश्मा लगा बालकनी में बैठ तिपाई पर पैर फैलाये जब वह किताबों में उलझ बौद्धिक होने के सुख को ले रहा होता, साइकिल उठा मुझे ट्यूशन के लिए आधे शहर की परिक्रमा करनी पड़ती. मेरे अंदर कभी कोई बेफिक्र और अलमस्त आदमी रहा हो ऐसा मैंने कभी नहीं जाना था.

देखते ही देखते उसके रंग-ढंग तेजी से बदल गये थे. इस बिल्डिंग के फ्लैट को छोड़ उसने शहर के बाहर सभ्रांत इलाके में कोठी बना ली थी. हम लोगों के बीच पड़ौसी के नाते जो थोड़ा-बहुत सूत्र था, वह भी टूट गया. अपने पिता और मामा के ऊंचे संपर्कों के बावजूद उसने नौकरी न कर ठेकेदारी का काम चुना था. अपने ब्याह में भी नहीं बुलाया था मुझे उसने. शादी में उसे एयरकंडीशंडकार और ढेरों तोहफे मिले थे. आलीशान सूट और आंखों पर काले रंग का चश्मा पहने एक बार वह मेरी बगल से गुज़र गया था और मुझे पहचाना तक नहीं था. आदतन अभिवादन में मेरे होंठ हिलकर रह गये थे. मेरे कदमों की रफ्तार भी कुछ तेज हुई थी. पर अपनी उत्तेजना को दबाते हुए मैं ठिठककर रह गया था. उससे मुलाकात के लिए अब संभवतः मुझे फोन पर पहले समय लेना पड़े और फिर बालकनी में बैठे साहिब द्वारा अंदर बुलाये जाने का इंतज़ार करना पड़े. मैंने मन ही मन तय किया था—कितनी भी गरज क्यों न हो उसकी मदद लेने कभी नहीं जाऊंगा. अब तक की मेरी यही आदत रही थी. एक बार कट जाने के बाद ऐसे आदमी से फिर मेरा कभी समझौता नहीं हुआ था. कितने ही लोग थे.

बंबई और चंडीगढ़ में उसकी फर्म ठाकुर 'एंटरप्राइजेज ने गगनचुंबी इमारतों के ठेके लिये थे. ईरान और लीबिया में अस्पताल और कल्चरल सेंटर के भवनों के ठेके भी उसके हाथ में थे. बिहार और पंजाब से विदेश जानेवाले लोगों को भेजने का काम भी उसने खोल लिया था.

इस कायापलट में कोई लंबा समय नहीं लगा था. तीन-चार वर्ष में ही इतना बड़ा परिवर्तन हो गया था. उसकी फर्म के विज्ञापन और नयी-नयी घोषणाओं के समाचार पढ़ कभी ध्यान आ जाता कि हम लोग कभी परिचित थे. इस बीच मां परलोक सिधार गयी थीं, और गांव का मकान बेच मैंने आवास विकास के बने-बनाये एल.आई.जी. फ्लैट का फार्म भर दिया था. दो कमरों के मकान के लिए आवास-विकास परिषद् की प्राथमिकता सूची में जब तक मेरा नाम आयेगा, वह पांच-सात गगनचुंबी इमारतों अथवा पांच सितारा होटल का डायरेक्टर बन चुका होगा. उसकी तेज रफ्तार और जोखिम उठाने की क्षमता के प्रति मेरे अंदर हमेशा सम्मान की भावना रही थी.

उसकी फर्म की भव्य योजनाओं के विज्ञापनों के मध्य एक दिन अखबार के पहले पृष्ठ पर आठवें कॉलम में उसकी तस्वीर देखकर लगा था जरूर कोई और सफलता प्राप्त कर उसने अपना कद ऊंचा किया होगा. उत्सुकता से तस्वीर के नीचे दिये समाचार को पढ़ने लगा था. विदेशी दूतावासों को गुप्त दस्तावेज बेचने वाले गिरोह का संचालन करने वाले अभियुक्त के रूप में उसका नाम पढ़ किसी तरह की भी प्रतिक्रिया क्यों नहीं हुई मेरे अंदर. मुंह का स्वाद सुबह से ही कसैला था. तौलिया उठाते हुए मैं बाथरूम की ओर बढ़ लिया था. दफ्तर का समय हो रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चित कृतियां : 'एक नदी का मनोवेग', 'फासला' (कहानी संग्रह), व 'एक सूनी यात्रा', 'ओ अपवित्र नदी' (कविता संग्रह).
संप्रति : हि.प्र. लोक-संपर्क विभाग की मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का संपादन.

केशव

आउट हाउस

लोकल बस अड्डा किसी भारी-भरकम जानवर की तरह ऊंघ रहा था.

दिसंबर के अंतिम दिन. बहुत छोटी होती है इन दिनों की शाम. एक झलक दिखाकर ही अंधेरा ओढ़ दुबक जाती है अगली शाम तलक.

अभी मुश्किल से सात बजे थे. लेकिन अंधेरा था कि अपने काले 'पट्ट' की तहें खोलता ही जा रहा था.

दोपहर से ही बर्फ गिर रही थी, रुक-रुककर. लेकिन कम-कम. बर्फ के देवता ने शायद अपना मुंह आधे से भी कम खोल रखा था.

बस अड्डे पर लोग काफी कम थे. इतने कम कि थोड़े से समय में ही प्रत्येक के कंधे पर हाथ रखकर इत्मीनान से उनका नाम, पता, व्यवसाय और घर-गृहस्थी की तमाम मालूमात हासिल की जा सकती थीं.

बुकिंग आफिस में कोई बहस छिड़ी हुई थी.

अक्सर बसों से खचाखच भरा रहता था अड्डा. आज बसें नदारद थीं. एकमात्र बस उस खालीपन को और गहरा कर रही थी. आपस में बतियाते लोग कभी-कभी कनखियों से देख लेते थे उधर. मानो बस न होकर कोई अकेली खूबसूरत औरत हो.

बर्फ अब नहीं गिर रही थी.

बर्फ की एक महीन-सी पर्त पनवाड़ी की दुकान से आने वाली रोशनी में चमक रही थी.

बुकिंग आफिस से अब गुर्राहटें-सी उभरने लगी थीं.

"मैं कहता हूं बस नहीं जा सकती." एक दहकती हुई आवाज.

"न ले जाने की हमारे पास कोई खास वजह नहीं है. फिर लोग आजकल एकदम शिकायत ठोंक देते हैं." एक दबी-दबी पर सख्त आवाज.

"ठोंकते हैं तो ठोंकते रहें. अपने भी बाल-बच्चे हैं." पहली वाली आवाज में अब जिद्द-सी थी.

"तुम बस ले जाने की तैयारी करो. नहीं तो लोग हम दोनों को उठाकर बस में ठूंस देंगे." दूसरी आवाज तेज थी.

"ऐसी की तैसी इस नौकरी की." जिद्द अब खाली बोरे की तरह लटक आयी थी.

तभी अचानक एक दस-ग्यारह बरस का लड़का मेरे सामने आकर खड़ा हो गया.

वह कांपते हाथों से मूंगफली टूंग रहा था. जगह-जगह से उधड़ा एक मैला-सा स्वेटर पहने था. कुछ सहमा हुआ-सा दीख रहा था. उसकी आंखों में किसी खोई हुई चीज के न मिल पाने का भय व्याप्त था. कोई-कोई मूंगफली जब वह अपनी ठिठुरती उंगलियों से न तोड़ पाता तो उसे छिलके समेत ही मुंह में धकेलकर चबाने लगता.

उसकी नाक बड़े इत्मीनान से चू रही थी. याद आने पर जिसे आस्तीन से पोंछ लेता या सड़ाक् से ऊपर खींच लेता था.

अचानक मेरे भीतर किसी चीज ने करवट ली. मुझे लगा, इस माहौल में कुछ ऐसा है जो मुझे पीछे की ओर धकेल रहा है. आउटहाउस में जीवन के कोई चिह्न नहीं हैं. जैसे आउटहाउस में रहने वाले खुद आउटहाउस में तब्दील हो चुके हैं.

"अभी तो बहस जारी है."

बुकिंग आफिस से लौटते ही अतुल ने सूचना दी. फिर अचानक मेरे पास खड़े लड़के को घूरने लगा.

अतुल को न जाने क्या सूझी. उसने झपटकर लडके के हाथ में पकड़े लिफाफे से कुछ मूंगफलियां निकाल लीं.

लड़के ने इस हरकत का तनिक भी विरोध नहीं किया. उल्टा उसकी आंखों में कुछ खो जाने जैसा भाव एकाएक गायब हो गया.

"क्यों बच्चे की मूंगफली उड़ा रहे हो." अतुल ने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं. लड़का उसके साथ सटकर खड़ा हो गया था.

अतुल उसी बेतकल्लुफी से मूंगफली उड़ा रहा था.

जब लिफाफा खाली हो गया तो अचानक अतुल ने एक रुपये का नोट निकालकर लड़के की जेब में ठूंस दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चल बे अब."

"नमक न खाया सही, मूंगफली तो खायी है." मैंने कहा.

अतुल हंस दिया. एक लापरवाह-सी हंसी.

तभी पुकार हुई.

"संजौली की ओर जाने वाली सवारियां बस में बैठ जायें."

लोग बस की ओर लपके.

आधे से ज्यादा सीटें खाली रह गयी थीं. शायद बुकिंग आफिस में चलनेवाले वाक्-युद्ध ने कुछ लोगों की उम्मीद को छलनी कर दिया था. उनमें से कुछ उम्मीद के उस छलनी जिरह बख्तर को वहीं छोड़ अपने-अपने जंगल में उतर गये थे.

बस गुर्राने लगी.

"जो डटा रहता है मोर्चा भी उसी के हाथ आता है." अतुल मेरे बगल में इत्मीनान से पसरते हुए बोला.

बस की गुर्राहट, मिमियाहट में बदली. एक हल्का-सा झटका. और उस खालीपन के पंजों से छूटकर बस अपनी राह पर हो ली.

मैं खिड़की की ओर बैठा था. बगल में अतुल,तीसरे की जगह खाली थी.

"साले ने चढ़ा रखी होगी. सड़क कहां दिखाई देगी." किसी ने कहा.

"बस आगे नहीं जायेगी." ड्राईवर ने पीछे मुड़कर रूखे लहजे में कहा.

कुछ कहने के बजाय सब एक दूसरे का मुंह देखने लगे. कुछ पल एक मनहूसियत-सी छायी रही. फिर एक-एककर उतरने लगे लोग.

कोई चारा न देख हम भी उतर गये.

सड़क एकदम अंधेरे में डूबी हुई थी.

रोशनी इतनी कम थी कि लग रहा था जैसे किसी सुरंग में चल रहे हों. बर्फ की मटमैली-सी सफेदी उस गाढ़े अंधकार को घूरती प्रतीत हो रही थी.

बर्फ के कीचड़ में टटोल-टटोलकर पांव रखते अभी हम कुछ दूर ही सरके थे कि वह लड़का पीछे से आ पहुंचा. बड़ी बेफिक्री से हमारे साथ-साथ चलने लगा.

"तुम्हें जाना कहां है." अब मैंने पूछा.

लड़के में अतुल की रुचि शायद बुझ गयी थी. या फिर अपनी हड्डी-पसली के खयाल ने उसके शब्दों को कहीं अंदर दबोच रखा था. वरना ऐसे मौकों पर अतुल की जुबान खुजलाने से चूक सकती थी भला.

"फारेस्ट कालोनी." थोड़ी देर बाद लड़के ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया.

तभी अचानक वह लड़का पीछे से आकर अतुल के साथ डट गया.

"ओए तू फिर आ गया." अतुल ने चौंककर कहा.

लड़का कुछ नहीं बोला. मूंगफली का दूसरा लिफाफा उसके हाथ में था. वह इत्मीनान से मूंगफली चबाता रहा.

अभी मुश्किल से एक किलोमीटर भी नहीं जा पाये थे कि बस को जोरदार ब्रेक लगे. सबका कलेजा मुंह को आ गया.

"क्या हुआ....क्या हुआ..." कुछ बदहवास स्वर उभरे.

दरअसल सामने उतराई पर एक ट्रक बर्फ पर तिरछा होकर अड़ा हुआ था. इतना रास्ता नहीं था कि हमारा ड्राईवर बस निकाल ले जाता.

"लो, अब बैठकर अपनी...."

ड्राईवर के मुंह से एक भद्दी गाली उछली. गाली लोगों के सर से होकर गुजर गयी. बस में बैठे लोग ट्रक ड्राईवर की ऐसी-तैसी फेरने लगे.

"लेकिन तुम आ कहां से रहे हो."

बात करते रहने से ठंड और अंधेरे का खयाल कहीं दुबक जाता है न.

"मौसी के घर से." लड़का अनिच्छा से बोला.

"अबे तेरी मौसी है या चुड़ैल. जो ऐसे मौसम में तुझे अपने घर से धकेल दिया उसने."

मेरी शंका निर्मूल निकली.

अतुल की आवाज एकदम चटख थी. न ठिठुरन, न अंधेरे का डर.

मोड़ पर पहुंचते ही स्ट्रीट लाइट के भुतहे आलोक ने हमारा स्वागत किया. अब हर चीज फैली-फैली दिखाई दे रही थी. सड़क, सड़क के किनारे की रेलिंग, दरख्तों के झुंड. सबके सब जैसे उस मद्धिम आलोक के बुश से अंधेरे की पीठ पर अपना नाम लिखने की हड़बड़ी में थे.

हमारे पैरों में भी अचानक गति भर गई. बस से उतरने वाले लोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-एककर निगल गयी थीं सड़क से ऊपर या नीचे फैली पगडंडियां. ये हम उस मोड़ पर पहुंचकर ही जान सके थे.

अब सिर्फ हम थे. हम तीन.

"अच्छा भई चंदर, अपन तो चले शार्टकट से. पर तुम्हें डर तो नहीं लगेगा न." अतुल ने अपने मजाकिया लहजे की पिटारी खोल दी.

"डर लगेगा तो गुनगुनाऊंगा. वैसे आज तो साथी भी है."

अतुल की हंसी में शामिल हो गयी मेरी हंसी. उसे बाईं ओर की पगडंडी पर चढ़ते देख मैंने पीछे से कहा, "जरा संभलकर जाना अतुल."

"डोंट वरी. टेक केयर ऑव योअरसेल्फ." अतुल की आवाज़ लुढ़कती हुई मेरे पास पहुंची.

अब हम दो रह गये थे. और थी सामने बिछी सड़क. फिर से अंधेरे के जबड़े की ओर सरकती.

मैंने लड़के की ओर देखा.

वह बर्फ पर अपने पैरों से चप्..चप्...कर रहा था.

वह कुछ अधीर-सा दिख रहा था. मुझे लगा जैसे हमारे बीच होने वाली बातचीत से ज्यादा उसे किसी और चीज में दिलचस्पी है. जैसे भीतर-ही-भीतर कुछ बर्दाश्त कर रहा है और फिलहाल बाकी चीजों को टाल रहा है.

आखिर वह जगह भी आ गयी जहां से हम दोनों के रास्ते अलग-अलग थे.

मुझे दूसरे रास्ते पर बढ़ता देख लड़का चिल्ला उठा. "मुझे डर लगता है. मैं अकेले कैसे जाऊंगा."

उसकी आवाज में डर नहीं जिद्द थी.

मुझे खीझ-सी होने लगी. जो ऐसे मौसम में मौसी का घर छोड़कर आ सकता है, वह अपने घर भी पहुंच सकता है.

"अब तुम जाओ." मैंने अपनी खीझ को बाहर नहीं उछलने दिया.

लेकिन लड़का उसी तरह अड़ा रहा. सीधे मेरी आंखों में देखता.

"अब जाते क्यों नहीं. डर लगता है तो बाप को साथ ले आना था." रोकते-रोकते भी मेरे गुस्से और खीझ की गांठ खुल ही गयी.

अचानक लड़के ने मेरे कोट का किनारा पकड़कर मुझे झिंझोड़-सा दिया. अपनी पूरी ताकत के साथ.

"अगर मेरा बाप होता तो..." लड़के ने अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया.

लड़के की आवाज में आक्रोश था. व्यंग्य था. घृणा थी. और थी विवशता भी. इनमें से कौन-सा भाव प्रबल था, यह कहना मेरे लिये मुश्किल था.

इससे पहले कि मेरे अंदर धंसता उसकी आवाज का चाकू मरोड़ खाकर कई कोमल हिस्सों को काट देता, मेरे पांव स्वतः ही फारेस्ट कालोनी की ओर मुड़ गये.

कालोनी का बाजार पीछे छूट गया था.

रास्ते का कहीं नामोनिशान भी नहीं था. बर्फ के नीचे कोई पगडंडी हो सकती है, इसका अनुमान मैं लड़के के सधे हुए कदमों से ही लगा पा रहा था.

पगडंडी के एक ओर जंगल था. ऊपर ही ऊपर उठता. दूसरी ओर तीखी ढलान. ढलान के नीचे सूखी खड्ड सफेद के उस भ्रामक उजाले में एक पतली रेखा की तरह दिखाई दे रही थी.

लड़के की निडरता को देख मुझे शर्म-सी महसूस हो रही थी. अपने अंदर उछलते डर को जबरन दबोचे मैं लड़के के पैरों के निशानों पर आगे बढ़ता रहा.

लड़का मेरी ओर से एकदम निश्चिंत था.

उसने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा. आखिर वह एक मकान के सामने जाकर रुक गया.

मकान क्या किसी कोठी का उजड़ा हुआ आउट हाउस था. सन्नाटे की खाई में किसी मरे हुए गिद्ध-सा पड़ा आउटहाउस. जगह-जगह से तिड़की दीवारें. छत का टीन किसी भी पल ढलान की ओर लुढ़कने को तैयार.

खड्ड के उस पार जंगल में टिमटिमाती कुछ रोशनियां जंगल के पंजों से मुक्त होने की जी-तोड़ कोशिश में लगी हुई थीं.

अचानक मेरे भीतर किसी चीज ने करवट ली. मुझे लगा, इस माहौल में कुछ ऐसा है जो मुझे पीछे की ओर धकेल रहा है. आउटहाउस में जीवन के कोई चिह्न नहीं हैं. जैसे आउटहाउस में रहने वाले खुद आउटहाउस में तब्दील हो चुके हैं.

तभी सन्नाटे की खाई में एक भुरभुरी-सी आवाज़ उभरी और ढलान पर सर धुनती खड्ड के दो पाटों के बीच दम तोड़ गयी.

मैंने देखा, लड़का दरवाजे पर दस्तक दे रहा था. दरवाजा खुला. एकदम निश्शब्द. एहतियात से. पलभर को लगा, दरवाजा बंद था ही नहीं.

इस बीच लड़का बीच से हट गया था. और लकड़ी के उस झूलते, चरमराते बरामदे में एक ओर को सरक गया था.

"आ जाइये."

एक स्त्री का धीमा, खुरदरा पर कांपता स्वर कुछ पल बरामदे में चकराता रहा.

झिझक ने मुझे बुरी तरह से पकड़ रखा था. "आइये न."

अबकी स्त्री स्वर ऊंचा था और सपाट भी. लेकिन खुरदरा कतई नहीं.

अनिच्छा की उंगली थामे मैं भीतर दाखिल हो गया. उस औरत ने बिना हत्थों की कुर्सी की ओर संकेत करते हुए निर्लिप्त भाव से कहा, "बैठिए."

कमरे की उस निचुड़ी-निचुड़ी रोशनी में वह निश्चित तौर पर तीस के आस-पास दिखाई दी. उसका चेहरा पीला-सा लग रहा था. या शायद उस रोशनी ने ही कुछ और गाढ़ा कर दिया था पीलेपन को. इसके बावजूद उसके सुंदर होने के आभास को पोंछ नहीं पा रहे थे-डगमगाती रोशनी या पीलापन.

न जाने क्यों मुझे वह चेहरा कुछ पहचाना हुआ-सा लगा. बीचों-बीच लटका था एक मैला, पैबंदों से अटा पर्दा. कमरे को सायास दो हिस्सों में बांटता.

इस बीच वह औरत दूसरे हिस्से में चली गयी थी. सामने वाली दीवार पर एक कैलेंडर टंगा हुआ था. जिसमें एक औरत बच्चे को दूध पिला रही थी.

कैलेंडर पर कालिमा की पर्त चढ़ी हुई थी. इसलिए यह अनुमान

बड़ी अर्जी

तेरह वर्ष की आयु में महाकवि 'अकबर' ने कचहरी में नौकरी के लिए अर्जी दी. बुलाये गये. हाज़िरी के बिन कलक्टर को उनकी शक्ल तो याद रही पर कहा, "इस बच्चे ने एक छोटी-सी अर्जी दी थी, वह कहीं खो गयी. खैर, दूसरी लिख लाओ." यह सुनकर 'अकबर' बाजार गये और कागज की आधी रिम खरीद लाये. फिर उन्होंने कागजों को गोंद से जोड़ कर दीवार पर टांगने वाले नक्शे के आकार का बड़ा पोस्टर बनाया और कूची से निहायत मोटे-मोटे अक्षरों में अर्जी लिखी और अंग्रेज कलक्टर की मेज पर बिछा दी. कलक्टर ने गुस्से में पूछा, "यह क्या है?"

अकबर बोले 'हुजूर, अर्जी है. अबकी बार जरा बड़ी लिखकर ले आया हूं ताकि खो नहीं जाये.'

कलक्टर हंस पड़ा और अकबर हुसैन को नकल-नवीसी की नौकरी मिल गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाना मुश्किल था कि यह कौन से वर्ष का है. कैलेंडर से होती हुई मेरी निगाहें बाईं ओर की दीवार पर जा टिकीं. खिड़की के ठीक ऊपर फ्रेम में जड़ा किसी का चित्र था. उस धूमिल प्रकाश में भी उस चेहरे को निकट से देखने की इच्छा को मैं नहीं दबा सका. मैं उठकर खिड़की के पास चला गया.

मुझे एक जबरदस्त झटका लगा. लगा जैसे मेरी धमनियों में बहने वाला रक्त बड़ी तेजी से बर्फ में तब्दील होता जा रहा है.

"यह तो रामू है. रामसरण." मेरे अंदर से बरबस निकला, "तो यह उसकी पत्नी है."

अचानक मेरे सामने दस बरस पहले की घटना साकार हो उठी....

उन दिनों मैं 'दैनिक आवाज' के लिए काम करता था. उस घटना को अपने अखबार के लिए मैंने ही 'कवर' किया था.

बीस बरस की राणो सीमेंट फैक्टरी की कल्याण शाखा में टाइपिस्ट थी. एक रात फैक्टरी के कल्याण अधिकारी ने राणो के साथ बलात्कार किया. अगले ही दिन फैक्टरी में हड़ताल हो गयी. हड़ताल कुछ दिन चली. मैनेजमेंट को कल्याण अधिकारी को निलंबित करना पड़ा था. उस पर केस भी चला था. लेकिन कोर्ट ने उसे बरी कर दिया था. और वह पुनः अपने पद पर नियुक्त हो गया था.

हड़ताल के दौरान मंच पर से बोलते वक्त इमारत की किसी खिड़की से एक पत्थर-सा फैंका गया था रामसरण पर.

"तुम ही राणो का हाथ क्यों नहीं थाम लेते." और वह राणो को ब्याहकर अपने घर ले आया था. साल भर में ही जिस प्लांट से रामसरण अपनी रोजी कमाता था, उसी ने उसे निगल लिया था.

राणो ने शायद मुझे पहचाना नहीं था. मैं उससे सिर्फ एक बार मिला था. अखबार के लिए बातचीत के सिलसिले में.

और आज मैं इस बर्फीली रात में राणो के छप्पर के नीचे बैठा था. जीवन के आउटहाउस में लापता होती राणो की छत तले.

मुझे लगा, कमरे की दीवारें धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही हैं. छत की टीन धंस रही है. नीचे, और नीचे. मुझे अपनी सांस घुटती प्रतीत हुई.

तभी राणो की आवाज मेरे कान के पर्दों से टकराई.

"जरा जल्दी कहिए."

छत मेरे ऊपर आ गिरी. टीन ने मुझे आरी की तरह चीर दिया था. आर-पार.

"आपने मुझे पहचाना नहीं." बहदवासी में मेरे मुंह से निकला.

राणो का चेहरा एकाएक सख्त पड़ गया. आंखों में कुछ भक् से जल उठा. फिर वह हंस पड़ी. हंसती रही. कमरे के सन्नाटे को अपने पैने दांतों तले चबाती. विक्षिप्त और डरावनी-सी हंसी.

मैं सिहर उठा.

"आपका चेहरा देखा है. लेकिन जो चेहरे मैंने कभी नहीं देखे, उन्हें भी खूब पहचानती हूं." उसकी हंसी थम गयी थी. लेकिन चेहरे पर किसी भी चीज को तार-तार कर देनेवाला तीखापन मौजूद था.

"शक्ल-सूरत अलग होने से कोई फर्क पड़ता है. हर चेहरे के पीछे वही जानवर. अगर गोश्त औरत का हो तो..."

वह हांफने लगी थी.

आधे खुले दरवाजे से सर्द हवा की पैनी किरचें रह-रहकर देह में चुभ रही थीं.

"दूसरों के दुख को भुनाना खूब आता है आप जैसे लोगों को. वो शब्द किस काम के जो आश्रय देना तो दूर, जो छत सर पर है उसमें भी छेद कर देते हैं."

"देखिए हमारा काम सच को लोगों के सामने लाना है." मैंने अपनी चुप्पी के खोल से बाहर झांकना चाहा.

"ताकि उस सच में अपनी गलीज उंगलियां घुसेड़कर चटखारे लिये जा सकें. अपने मजे को बरकरार रखा जा सके."

'थू' उसने मेरे सामने ही थूक दिया.

मेरे अंदर एक दंभ बार-बार आंखें खोलने की कोशिश कर रहा था. तिलमिलाहट की एक रस्सी बट खा रही थी. खुल रही थी.

"आपके वो शब्द जिससे सच को नंगा करने का दंभ आप भरते हैं, आज तक मेरा पीछा कर रहे हैं."

उसका गला रुंध गया था.

मुझे लगा वह किसी भी पल रो सकती है.

"मुझे आपसे पूरी हमदर्दी है. लेकिन..."

"नहीं चाहिए मुझे किसी की हमदर्दी." वह फिर बिफर पड़ी.

"रास्ते तो बहुत हैं. सिर्फ यही एक..."

"जब सब रास्ते बंद हो जाते हैं तब भी तो जिंदा रहना चाहता है आदमी. मुझे अभी जीना है. अपने लिए, अपने बेटे के लिए."

उसकी आवाज में पलभर के लिए जो विवशता झलकी थी उसका अब कहीं नामोनिशान भी नहीं था.

"लेकिन आप अपने बेटे को क्यों..."

मैं जो कहना चाहता था बार-बार मेरे संस्कार उसके आड़े आ जाते थे. और मेरे शब्द उसी संस्कार की भट्ठी में भस्म हो जाते थे.

"मैं जानती हूं जब यह समझने लायक होगा, मुझसे नफरत करने लगेगा. मैं चाहती भी यही हूं. तभी शायद..." वह कुछ पल सांस लेने के लिए रुकी. उसका चेहरा तमतमा रहा था.

"मेरे बेटे को हरामी कहा जाता है. आप बता सकते हैं यहां कौन 'हरामी' है, कौन नहीं. क्या हम यह निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि हम उसी बाप की औलाद हैं जिसे हम बाप कहते हैं?"

उसका तर्क ठीक होते हुए भी कहीं बेतरह चुभ गया मुझे. मेरी तिलमिलाहट चाकू की तरह उछलकर मेरे होठों पर आ बैठी. इससे पहले कि मैं उसे बाहर फैंकता, उसकी धार एकदम कुंद पड़ गयी.

"मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं."

"मदद...हुंह...."

उसकी आवाज में खिल्ली उड़ाने जैसा भाव था. दूसरे ही पल वह हंस दी. शायद मुझे असमंजस में देख या कुर्सी पर पहलू बदलते देख.

उसके हंसने में न कोई व्यंग्य था, न लपट. यह हंसी कहीं बहुत गहरे से उभरी थी. उसके अंदर के किसी ऐसे कोने से जहां अभी तक उजाले की कोई फांक अटकी हुई थी.

"कोशिश तो की ही जा सकती है."

मैंने कहा. लेकिन मुझे अपने ये शब्द खोखले लगे. एकदम फुसफुसे.

"नहीं. अब इसकी जरूरत नहीं है."

कहकर वह एक कोने की ओर बढ़ गयी. कोने में रखी किसी चीज पर से उसने कपड़ा हटाया.

टाइपराइटर था.

मैंने कमरे के बीचों-बीच लटके पर्दे को उठाया. दूसरी ओर लड़का चारपाई पर गुदड़ी जैसी में लिपटा गहरी नींद सोया हुआ था. उसके शरीर का आधा हिस्सा नंगा था. मैंने आगे बढ़कर उस गुदड़ी को उसके गले तक ओढ़ाया और फुर्ती से दरवाजे के बाहर निकल आया.

बर्फ पूरे वेग से गिर रही थी.

सामने खड्ड के उस पार, दो धूमिल-सी रोशनियों को जंगल अपने पंजों में जकड़े पूरी ताकत से निचोड़ने में लगा हुआ था.

इसके बावजूद वे टिमटिमा रही थीं. □

चलते-चलते

व्यापारी ने देखा कि भिखारी उसकी ओर बढ़ चला आ रहा है. वह "बाबा, दो पैसे का सवाल है," सुनने के लिए तैयार हो गया. किंतु भिखारी बोला, "अभी-अभी मुझे दो करोड़ की जायदाद मिली है मालिक, सच कह रहा हूं. पूरे दो करोड़ की!"

खिसिया कर व्यापारी ने उसे बधाई दी इस पर भिखारी बोला, "आप एक अठन्नी दे दें तो बैंक को जरा फोन कर दूं पता नहीं बैंक खुला भी है कि नहीं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1 जून, 1946
चर्चित कृतियां : 'अग्नि कुंड', 'धूप का दरिया' (कहानी-संग्रह) और 'खुले हुए दरीचे' व 'वायदा खिलाफ' (उपन्यास)
संप्रति : हिंद पॉकेट बुक्स व सरस्वती विहार में संपादक
संपर्क : 60 ब्रह्मनान स्ट्रीट, हापुड़

नफीस आफरीदी

पापाजी, आप मुर्दा हैं

उसके सामने दो हिस्सों में बंटा घर फैला था. दो बंद कमरे थे और उनमें घटती अलग-अलग घटनाएं थीं. पापा और मम्मी अलग-अलग अपने अकेलेपन को पाटने में लगे थे. वह घर के इन दो हिस्सों के बीच बुरी तरह पिस रहा था.

वह अंकल के साथ आयी थीं और सीधे किचिन में जाकर कॉफी बनाने लगी थीं. संजू तब आंगन की छितराई बेल के नीचे था और पप्पी के साथ खेल रहा था. संजू और पप्पी ने उन्हें बारी-बारी से देखा था. एकबारगी ठिठके से रह गये थे. उनकी आंखों में कोई विचित्र भाव नहीं था. रोज-रोज देखी जाने वाली चीजों के प्रति आदीपन जैसा ही कुछ था, फिर भी पप्पी से रहा नहीं गया, वह कूं-कूं करता उनके पैरों से जा लिपटा. वह हलके से बिफरीं, 'हुश-हुश' के साथ लतियाया था उसे. पप्पी किकियाता भाग छूटा था. ऐसा रोज ही होता है, पर पप्पी मानता ही नहीं. संजू को गुस्सा आता है उस पर. क्यों मम्मी के पैरों से लिपटता है? उन्हें यह पसंद नहीं, तो फिर क्यों?

लेकिन अंकल ऐसा नहीं करते. वह पप्पी से कोई मतलब नहीं रखते. न उसकी तरफ देखते हैं, न धुतकारते हैं. संजू की तरफ बढ़ आते हैं सीधे. उनके मोटे होंठों पर मुस्कराहट फैली होती है. धीरे-से उसके गाल पर 'किस्सी' रख देते हैं. पप्पी उन्हें ऐसा करते देखकर भौंकता है और संजू को लगता है उसके गाल पर बड़ा-सा अंगारा छूकर छिटक गया है. संजू को कुछ भी अच्छा नहीं लगता. अंकल के होंठ हों या पप्पी का भौंकना.

पप्पी बहुत डरता है अंकल से. एक बार ऐसे ही भौंक दिया था. मूड ठीक नहीं था अंकल का. मम्मी से लड़ चुके थे. पप्पी का भौंकना अखर गया था. लात जमा दी थी उन्होंने जोर से. औंधा जा गिरा था पप्पी, फिर न जाने उसे क्या हुआ था कि गुर्राकर झपटा था और अंकल के पैर में काट लिया था. आपे से बाहर हो गये थे अंकल. संजू की हॉकी स्टिक उठाकर धुनाई कर दी थी और लौटने तक मम्मी से कहते रहे थे, "खतम करो इसे! कल इंजेक्शन दे दूंगा!"

अंकल चले गये थे और संजू ने रोना शुरू कर दिया था. पप्पी की लाश दिख रही थी उसे, फिर वह गड्ढा खोदकर गाड़ भी दिया गया था. उसे लगा था कि पप्पी न होगा, तो वह बिल्कुल अकेला रह जायेगा. रोते हुए गिड़गिड़ाया था वह, तब मम्मी ने उसे आश्वासन दिया था कि अंकल को वैसा कुछ नहीं करने देंगी. ज्यादा करेंगे, तो कहीं छोड़ आयेंगी. उन्होंने बताया था कि मेजर सुधींद्र कई बार पप्पी को मांग चुके हैं. उन्हें कह देंगी कि ले जायें. संजू इस पर भी राजी नहीं हुआ. पप्पी बच तो गया, पर अंकल से बेहद डरा-डरा रहने लगा.

आज भी अंकल ने उसके गाल पर अंगारा छुआया था, पीठ थपथपायी थी, "कैसे हो संजू?" उन्होंने पूछा था.

"अच्छा हूं, अंकल." उसने कहा था.

उस समय पप्पी वहां नहीं था. ऊपर छत की मुंडेर पर चढ़ा भौंक पड़ा था. अंकल बड़बड़ाये थे, "डर्टी डॉग!" और अंदर चले गये थे.

संजू कच्चे अंगूरों को तोड़ने लगा था. कुछ इस तरह जैसे झल्लाया हुआ हो. कच्चे अंगूर तोड़-तोड़कर उसने जेब में भर लिये और किचिन

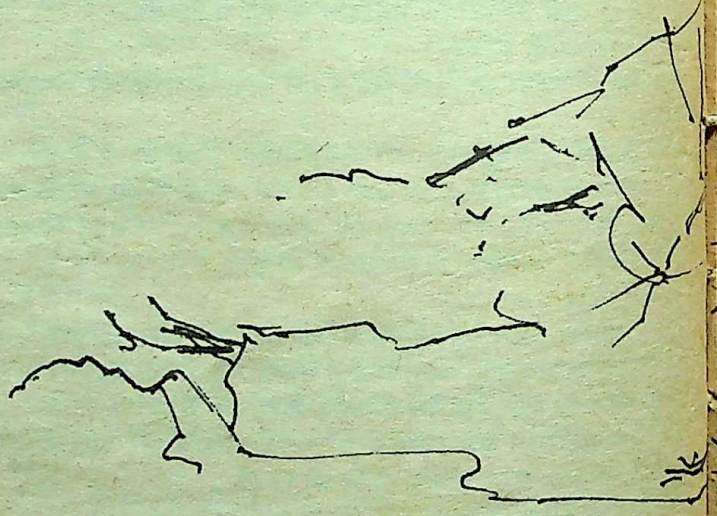

के सामने से गुजरा. मम्मी ने देख लिया. एक क्षण ठिठकीं वह, "कहां चल दिये, संजू?"

"रिकी के पास." उसने बताया.

वह कुछ नहीं बोलीं. संजू गली में निकल आया. वह जानता है कि मम्मी कुछ नहीं कहेंगी. अंकल के रहते कुछ भी कहने की आदत नहीं. उन्हें मालूम है संजू जायेगा ही. कहीं भी निकल पड़ेगा. अंकल के आने के बाद उसे जल्दी रहती है. गली में निकलकर उसने एक बार मुड़कर दरवाजे की तरफ देखा. वह सोच रहा था, पप्पी आता होगा, पर वह नहीं आया. उसे और भी गुस्सा आता है, क्यों रहता है घर में? उसके साथ क्यों नहीं निकल पड़ता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भानमल के चबूतरे पर रिंकी लड़कियों के साथ 'उचकना' खेल रही होगी. उसे देगा कच्चे अंगूर. बहुत पसंद करती है रिंकी. अच्छी लड़की है. उसके साथ खूब पटरी बैठती है, पर बाकी लड़कियां मुंह बना लेती हैं. अपने साथ खिलाना तो दूर, बात भी नहीं करना चाहतीं. रिंकी के साथ और लड़कियों को देख कतराकर निकल जाता और लड़कों के झुंड में शामिल हो 'बिचेरा' खेलने लगता. लड़कों के साथ उसे खेलने में मजा नहीं आता. बहुत बेईमानी करते हैं. ऊपर से झगड़ा करने लगते हैं. एक-दो तो गंदी-गंदी बातें करते हैं. ऐसी, जिनका खेल से कोई संबंध नहीं होता. एक बार नरेन ने बहुत खराब बात कह दी थी. वह बर्दाश्त नहीं कर पाया. नरेन उससे तगड़ा और लंबा था, फिर भी उससे भिड़ गया. जाने कितनी जगह काटा-खसोटा. बदले में जो उस पर मार पड़ी, उसका कोई ठिकाना नहीं. नरेन से पिटा फिर मम्मी से. अंकल घर में थे. उनकी शह पर मम्मी अधिक बेदर्द हो उठी थीं.

शाम को उसने पापा से शिकायत की. वह चुप सुनते रहे. उसे गोद में लेकर प्यार किया. बाल सहलाये और कहा, "बहुत फटकारूंगा, बहुत-बहुत." संजू बहुत खुश हो गया था. उसे लगा था, अब मम्मी की शामत आयेगी. आखिर उसे बेवजह ही तो पीटा गया था, लेकिन अगले दिन वह शाम तक प्रतीक्षा करता रहा. पापा ने मम्मी से कुछ भी नहीं कहा. दिन भर अपनी पेंटिंग में डूबे रहे. उसका मन हुआ था, दौड़कर जाये और कैनवास फाड़ दे, ब्रश तोड़ दे और सारे रंग नाली में उंडेल दे, पर कुछ नहीं कर पाया था वह. शाम के झुटपुटे में अंकल आ गये थे और पापा ने अपना कमरा अंदर से बंद कर लिया था. संजू समझ गया था, अब पापा के सामने एक बोतल होगी, वह स्वयं होंगे और तीसरा कोई नहीं होगा.

वह चुपचाप उठा था और रिंकी को ढूंढ़ने निकल पड़ा था. वह नहीं मिली, तो दिदिया के घर चला गया था. दिदिया उसे अच्छी लगती है, मम्मी से भी अच्छी. उनके साथ वह सब कुछ भूल जाता है.

उसे याद है. अनेक बार की यादें दिल और दिमाग में रची बसी हैं. वे क्षण ऐसे होते हैं, जब उसकी नसों में सिहरन-सी दौड़ जाती है. अजीब-से आवेश में जिस्म थरथराने लगता है. यह मोर्चा खुलने पर होता है. पापा और मम्मी के बीच युद्ध का ऐलान कोई भी घटना हो सकती है. एक दिन मम्मी ने पापा से ब्रश छीन कर रंग में डुबो, सारे कैनवास को बर्बाद कर दिया था. पापा किसी बालू के टीले की तरह अचानक ढह गये थे. हक्के-बक्के से, पैर पटखती जाती हुई मम्मी को देखते रहे थे, फिर पलटकर पेंटिंग को घूरा था. सहसा ईजल से कैनवास खींचकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया था और अंदर से कमरा बंद कर लिया था. इसके बाद वही होता है, जिसके होने से वह डरता है. पापा पीते हैं और रोते हैं.

रोते हुए पापा उसे कभी अच्छे नहीं लगते, जैसे चिंघाड़ती हुई मम्मी. वह सोचता, कभी इसका उलटा हो. पापा बरसें-गरजें और मम्मी की आंखों का बांध टूट जाये. 'कभी हो ऐसा, कभी हो ऐसा' की आवाजें उसके भीतर गूंजते-गूंजते थक चुकी हैं.

भानमल के चबूतरे पर रिंकी थी, पर 'उचकना' नही खेल रही थी, क्योंकि दूसरी लड़कियां नहीं थीं. रिंकी का चेहरा लटका हुआ था और आंखें डबडबायी हुई. हुलक के साथ उसकी ओर बढ़ा था संजू. जेब से कच्चे अंगूर निकाल कर बढ़ाये थे, "ले, रिंकी, देख, कित्ते सारे अंगूर!"

रिंकी ने न झोली फैलायी थी, न अंगूर ही लिये थे. आंखों का डबरा कुछ और भर गया था. अब उसकी नजर पड़ी थी. उसकी भरी-भरी आंखें देख वह हैरान रह गया था. रिंकी कुछ सहज हो आये, यह सोचकर उसने फिर आग्रह किया था.

"मुझे नहीं लेने अंगूर!" रिंकी तुनककर बोली थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"काहे के लिए?" उसने भोलेपन से पूछा था.

"अम्मा ने मना कर दिया है कि ना तो मैं तुम्हारे साथ खेलूं और ना तुमसे कुछ लूं." उसकी आंखों के डबरे का भराव बढ़ गया था.

संजू को झटका लगा. इत्ती अच्छी तो हैं रिंकी की अम्मा, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा? न लड़ाई झगड़ा, न कुट्टा-कुट्टी. कुछ भी तो नहीं था. उसकी समझ में नहीं आया. कई बार ऐसा कुछ अप्रत्याशित घट-बीत जाता है कि उसकी अकल चकरा जाती है. वह उसकी तह में उतरने की कोशिश करता, पर कोरा ही वापस लौट आता.

रिंकी से ही उसने पूछना चाहा. वह चुप खड़ी रही. सहमी-सहमी नजरों से भीतर के दरवाजे की ओर देखा और फिर बिना कुछ बताये एकदम अंदर भाग गयी.

टी.वी. में कोई सीरियल शुरू हो गया था, इसलिए लड़के भी नजर नहीं आ रहे थे. वह अजीब-सी स्थिति में गर्दन लटकाये खड़ा था, फिर मरे-मरे कदमों से पेशकार साहब के मकान की तरफ बढ़ गया था. दिदिया घर पर मिल गयी थीं. उन्हीं से पूछा था उसने. भोलेपन से भरे उसके सवालों ने उदास कर दिया था उन्हें. इतना ही कह पायी थीं वह, "बड़ा होने पर सब समझ जाओगे."

"सब कुछ समझने के लिए बड़ा होना जरूरी है, दिदिया?" उसने फिर पूछा था.

"हां, भैया, ऐसी बातें बड़ों के लिए ही छोड़ देनी चाहिए." उनकी उदासी और गहरा गयी थी. वह रोशनदान में देखने लगी थी, जहां मादा चिड़िया अपने बच्चों को चुग्गा दे रही थी.

दिदिया पड़ौस के श्यामलाल पेशकार की इकलौती बेटी थीं और विधवा थीं. बच्चों से बहुत प्यार करती थीं. संजू से तो कुछ ज्यादा ही था. खाली वक्त में उसके दो ही काम होते—गली में खेलना या दिदिया के साथ गप्पें लड़ाना. पापा को वह बहुत अच्छा बतातीं, लेकिन मम्मी का नाम आते ही चुप्पी साध जातीं. इस रहस्यमय चुप्पी को वह नहीं समझ पाता था. बस, ऐसे ही एक बार उसे पता चला था कि मम्मी ने दिदिया का कुछ गिराया-बिराया था. पेशकार अंकल ने उन्हें एक हजार रुपये भी दिये थे. गिराने वाली बात को लेकर मम्मी पापा में झगड़ा न होता, तो जान भी न पाता.

पापा को किसी तरह पता चल गया था. वह घर में घुसते ही तड़पकर बोले थे, "मैं सोच भी नहीं सकता कि तुम इतना गिर जाओगी. पैसों के लालच में तुमने नीच काम किया!"

"मैं जमाने की रफ्तार को देखकर चलती हूं. तुम्हारी तरह पेंटिंग में डूबी रहने और भाषण झाड़ने वाली महिमामय नहीं हूं. सारा संतपन तुम्हें ही मुबारक!" मम्मी की आंखें लाल थीं और चेहरा विकृत हो गया था.

"तुमने नीरू का हमल गिराकर न तो उस बेवा के साथ अच्छा किया और न ही अगले साल रिटायर होने वाले पेशकार साहब के साथ." पापा बौखलाये हुए थे.

"अच्छा-अच्छा, बंद करो यह लफ्फाजी! अच्छा-बुरा समझना मुझे खूब आता है." उन्होंने बेहद तीखेपन से कहा था और पैर पटकती हुई अपना बैग संभालकर तेजी से बाहर निकल गयी थीं. उनके जाने का वक्त हो गया था. वह महिला अस्पताल की इंचार्ज डाक्टर थीं.

संजू नहीं जानता था कि दिदिया और राजीव चाचा के बीच कौन से संबंध थे. वह दिदिया के घर बहुत आया करते थे. उन्हें देखते ही दिदिया का चेहरा लाल हो जाता था. कुछ झेंपी-झेंपी-सी लगने लगती थीं. एक बार संजू ने राजीव चाचा को दिदिया की पप्पी लेते भी देखा था. उस रोज दिदिया ने उसे ढेर सारा प्यार किया और गाजर का हलवा बनाकर खिलाने के बाद कहा था, किसी से कहना नहीं. वह नहीं समझ पाया तो उन्होंने समझाया कि पप्पी वाली बात अच्छी नहीं होती. वह फिर भी नहीं समझ सका, लेकिन उसने किसी से कुछ कहा नहीं.

एक दिन छज्जे में आकर दिदिया ने उसे आवाज देकर कहा था कि अपने राजीव चाचा को बुला लाये. उनके पेट में दर्द हो रहा था. उसे दिदिया पर हंसी आयी थी. पेट दर्द में भला वह क्या करेंगे? और उसने मम्मी से कह दिया था.वह अस्पताल जाने को तैयार खड़ी थीं. अपना बैग उठाये दिदिया के पास पहुंच गयीं. लौटीं तो उनकी त्यौरियों पर बल चढ़े थे. संजू गली में खड़ा मुर्गों की लड़ाई देख रहा था. चलते हुए उससे बोली थीं, "शाम को पेशकार साहब आयें तो मुझे बताना." वह गर्दन हिलाते हुए लहूलुहान मुर्गों को देखने लगा था.

पापा मम्मी की लड़ाई के दिन वह सीधा दिदिया के पास पहुंचा था और कहा था कि एक तो मम्मी ने उनका न जाने क्या गिरा दिया, ऊपर से रुपये भी ले लिये. उसने वायदा किया था कि बड़ा होने पर वह उनके पैसे चुका देगा. उसने बताया था कि एक दिन रिंकी का गुलदान उसने गिरा दिया था. शीशे का सतरंगा गुलदान था. गिरकर टूट गया. मामा के यहां कश्मीर गयी थी, वहीं से लायी थी. वह नया गुलदान तो नहीं दे सका, पापा से लाकर पचास रुपये दे दिये थे, जो उसकी मम्मी ने नहीं रखे और कह दिया, "कोई बात नहीं, दूसरा आ जायेगा."

उसने यह भी पूछा था कि जो कुछ गिरा है, क्या वह दुबारा नहीं आ सकता? दिदिया कहेंगी, तो वह पापा से मंगवा देगा. दिदिया सहसा भड़क उठी थीं. पहली बार खूब डांट पिलायी थी और कान भी उमेठ दिया था. दिमाग भिन्ना गया था उसका. वह हैरान रह गया था. अचानक दिदिया को क्या हो गया था? उसकी आंखें भर आयी थीं और भागता हुआ अपने घर की छत पर चढ़ गया था. उसे दिदिया पर बहुत गुस्सा आ रहा था. मंगली जैसी पागल हो गयी थीं, लेकिन वह पागल तो

लघुकथा

सिलसिला

अशफाक अहमद

करीमन दादी की रोजाना की ये आदत थी, जब तक एक कहानी न सुना देतीं, वो चैन से सो नहीं पाती थीं. आज भी रोज की तरह मुहल्ले की चंद नौजवान लड़कियां उनके इर्दगिर्द जमा थीं – उन्होंने दर्द भरी आवाज में कहानी की शुरुआत की... "बहुत साल पहले की बात है.सलीम नाम का एक नौजवान, साजिदा नाम की एक लड़की को कहीं से भगा लाया. कहने लगा मैं इस लड़की से शादी करना चाहता हूं. मुहल्ले के तमाम लोग सलीम की इस राय से सहमत हो गये. सलीम का निकाह साजिदा के साथ कर दिया गया. कुछ ही महीने गुजरे होंगे, उनके घर एक हंसती-खेलती लड़की पैदा हुई...समीना. लेकिन जवान होते ही मुहल्ले के एक लड़के रहीम के साथ फरार हो गयी. साजिदा और सलीम ने गम बर्दाश्त न करते हुए खुदकशी कर ली. कुछ दिनों बाद समीना को भी इस बात का पता चला. वह भागी-भागी आयी, लेकिन वक्त किसी का इंतजार नहीं करता. जो होना था हो चुका. धीरे-धीरे दिन बीतते गये. समीना के घर भी एक लड़की पैदा हुई. लेकिन जवानी की दहलीज पर कदम रखते ही वह फरार हो गयी. समीना ने ये गम बर्दाश्त न करते हुए खुदकशी कर ली."

करीमन दादी ने आंसू पोंछते हुये अपनी कहानी जारी रखी, "जानते हैं वह लड़की कौन थी? वह मैं हूं!" भीड़ में बैठी हुई तमाम लड़कियों के मुंह हैरत से खुले के खुले रह गये.

"लेकिन अब वह सिलसिला जो हमारे पुरखों से चला आ रहा था, खत्म हो चुका है...क्योंकि मैं बांझ हूं. मुझे कोई औलाद न हुई!"

□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं. अच्छी-भली हैं. मंगली तो अजीब-अजीब हरकते करती है. कपड़े फाड़कर सड़कों पर घूमती है.

रात फिर पापा-मम्मी में कहा-सुनी हो गयी थी. वह अपनी पढ़ने की मेज पर बैठकर पढ़ने के बजाए ऊंघ रहा था. दिदिया का नाम आया, तो कान उधर ही लगा दिये. पापा कह रहे थे कि मम्मी की हरकत की वजह से अब राजीव बिल्कुल हत्थे से उखड़ गया है. उन्होंने राजी किया था कि तुरंत ब्याह कर ले; पर अब....?

पापा एक रद्दी आदमी जैसे लगते है संजू को. कभी-कभी ही मम्मी पर गुस्सा होते और जरा बहुत देर में ही यह गुस्सा ढह जाता.

मम्मी बहुत तगड़े वार करतीं. बातों-ही-बातों में कचूमर निकाल देतीं. वह चीख-चीखकर कहतीं, "मैं जैसी थी, तुम्हारे सामने थी. कुछ भी नहीं छिपाया था तुमसे, फिर क्यों स्वीकार बैठे?"

"मैंने सोचा था तुम बदलोगी, पर तुम नहीं बदलीं. मैं कोशिश करके हार गया. मैं जानता हूं तुम अपनी गंदी केंचुल को उतार कर नहीं फेंक पाओगी." पापा मुट्ठियां भींचकर दांत चबाते हुए कहते.

"तो छोड़ क्यों नहीं देते? दूसरी कर लो. भतेरी मिल जायेंगी." मम्मी की उबल आयी आंखें संजू को डरा देतीं.

वह सहम जाता, फिर भागकर किसी कोने में जा छिपता. वह कांप रहा होता. होंठ थरथरा रहे होते. उसकी चकरायी हुई अकल में कांटे से चुभने लगते. यह सब क्या है? इनके बीच यह जंग क्यों छिड़ी हुई है? ये बार-बार गली के मुर्गों की तरह क्यों लड़ते हैं, पापा उसे बहुत बार बेकार के आदमी लगते. पता नहीं क्या हो जाता था उन्हें? मम्मी जैसे-जैसे चीखती-चिल्लाती वह थके-थके से नजर आने लगते, फिर हार जाते एकदम. आंखें डबडबायी-सी हो आतीं. कंधों पर हाथ लटक जाते और धीमे कदमों से जाकर वह अपने कमरे में बंद हो जाते, फिर सब वही होता, जो वह देख नहीं रहा होता और तब उसे लगता वह कुछ भी नहीं है. उसका कहीं कोई अस्तित्व नहीं. वह अपने को गलत जगह फंसा हुआ महसूस करता और अपने भीतर की बेचैनियों को थामने दिदिया के पास भागता. वह उसे अच्छी लगतीं. इतनी कि जैसे मां होती है. एक बार उसने कह भी दिया था, "दिदिया, मैं तुमको मां कहकर बुलाऊंगा."

वह हंस पड़ी थीं. "कुछ भी करके बुलाओ. हूं तो मां बराबर ही."

"नहीं, तुम उनके बराबर नहीं, उनसे बड़ी हो. जैसे मां होती है. सच्ची मां." उसने कहा था और दिदिया के चेहरे को गाढ़ेपन—से देखने लगा था. ऐसे जैसे कोई दूध पीता बच्चा देखता हो.

दिदिया को लगने लगा था कि वह बड़ा होता जा रहा है, क्योंकि वह बड़ी—बड़ी बातें करने लगा है. ऐसी बातें, जो उसके कद और अक्ल से भी बड़ी थीं. उलझी-सुलझी-सी. खरोंचों के जंगल उगे थे. इतने झाड़-झंखाड़ थे कि उन्हें घबराहट होने लगी थी. आखिर उन्हें कहना ही पड़ा था, "इतना मत सोचा करो, संजू! अपनी पढ़ाई में ध्यान लगाओ. तुम्हें बड़ा आदमी बनना है."

"बड़ा आदमी बनकर क्या होगा, दिदिया? किसे खुशी होगी?" उसने गहरी उदासीनता के साथ कहा था.

संजू का सवाल बहुत देर तक उनके दिमाग में बजता रहा था. फूटी तुरही से निकली बेसुरी आवाज की तरह. सचमुच उनके पास कोई जवाब नहीं था. संजू के लिए कोई हल खोज पाना भी संभव नहीं लगता था.

वह जानती थीं कि संजू के पापा ने शुरु से ही अभावों को ओढ़ा है और अपनी मस्ती में जिये हैं. ट्यूशनों पर गुजारा करते थे. जरूरत पड़ने पर रंग और कैनवास के लिए अपनी नयी—की—नयी शर्ट बेच देने वाले व्यक्ति के भीतर आज भी किसी प्रकार का सौदा न करने की दृढ़ता है, लेकिन संजू की मम्मी एक सौदागर की तरह सब कुछ खरीद लेना चाहती हैं. रामानुज अंकल, साड़ियों का अंबार, फ्रिज, रंगीन टी.वी. और कार के सपने उनके जीने के लिए जरूरी हैं. गंदे मौहल्ले का यह मकान, पिछड़ा हुआ कस्बा, मामूली आदमी की तरह संजू के पापा, सब कुछ उन्हें अपनी हैसियत से छोटा लगता. हर चीज को वह अपने हिसाब से बदल देना चाहती थीं. संजू भी उनके लिए फुर्सत के क्षणों की चीज बन गया था.

इतने पर भी संजू के पापा पता नहीं कैसे उस औरत के साथ रह लिये, जो जिंदगी के हर हिस्से में अपने ही ढंग से जीती रही. यहां तक कि अपने गंवई बाप और उसके गांव-घर को भी छोड़ा. अपने पूर्व पति परचून के उस दूकानदार को भी छोड़ा, जिसे अपनी पत्नी को डॉक्टर बनाने की धुन थी और बाद में उसने आत्महत्या कर ली. इतना सब होने पर भी वह कहीं ठहरी नहीं. लगता था, उनके भीतर सिर्फ एक पत्थर है, जो अभी रामानुज नाम की हस्ती के लिए पिघला हुआ है, पर कब अपने पूर्व रूप में आकर उन्हें भी दौंचकर किसी और दिशा में फिक जायेगा, कुछ ठीक नहीं?

संजू को लगता, वह एक घने जंगल में भटक रहा है, जहां दो जानवर एक-दूसरे के सामने खड़े गुर्रा रहे हैं. जब यह गुर्राहट तेज होती है, तो उसे क्रिकेट कमैंटरी या टी.वी. सीरियल भी नहीं बदल पाते. ऐसे में वह छत पर चला जाता और सूनी-सूनी आंखों से नीले आसमान में तैरते परिंदों और पतंगों को देखा करता या फिर किसी कोने या सीढ़ियों के नीचेवाली बुखारी में घुसकर अपने आपको नोचता-खसोटता, पागलों-सी हरकतें करता और फिर रोते-रोते सो जाता.

लघुकथा

चैन की सांस

सीतेश आलोक

किसी की जेब से बटुआ निकालते समय वह रंगे हाथों पकड़ा गया. अचानक गालियों की बौछार और अपनी ओर तनी हुई मुट्ठियां देखकर वह घबराया तो...पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को संभाल लिया.

लोगों को जैसे ललकारते हुए वह बोला, "मारो, और मारो....मार डालो मुझे. यही तो मैं चाहता हूं. क्या रखा है जिंदगी में...?"

भीड़ उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से सकपका गयी.

वह तैश में बोलता गया, "तुम लोग मुझे ही तो मार सकते हो...उन काला बाजारियों को तो छू नहीं सकते जो जनता का खून चूस रहे हैं...उन मंत्रियों की तो आरती उतारते हो जो जनता का गला काट कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं. हां...हां...मार डालो मुझे क्योंकि मैंने अपना पेट भरने के लिए चार पैसे चुराए हैं...अपने भूखे बच्चे के दूध के लिए..."

"अरे जाने दो बेचारे को...." उसकी बात काटते हुए एक ओर से आवाज आयी.

"छोड़ो यार इसको..." किसी दूसरे ने तरस खाते हुए कहा.

"अच्छा जाओ, लेकिन ऐसा फिर कभी मत करना, नहीं तो..." उसका कॉलर छोड़ते हुए उसे पकड़ने वाले व्यक्ति ने कहा. लोग बिखरने लगे.

वह सोच-सोच कर आश्चर्यचकित भी था और प्रसन्न भी कि ठीक समय पर अपनी बुद्धि के प्रयोग से उसने अपनी जान बचा ली.

लौटते समय उसने महंगी विलायती शराब की एक बोतल ली. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन अंधेरा पसरने पर वह छत से उतरा था. उसकी आंखें चमक रही थीं, जैसे ढेर सारा उजाला भर गया हो. बांछें इस तरह खिली पड़ रही थीं, जैसे अभी—अभी कुछ सुखद घट गया हो. वह सीधे पापा के पास चला आया था, जो किसी मोटी किताब में डूबे थे. आहट पर उन्होंने गर्दन उठायी और किताब औंधी रख दी थी. उन्हें लगा, वह उसे इसी तरह तरोताजा देखना चाहते हैं, बल्कि होंठों की मुस्कराहट को खिलखिलाहटा में बदलते हुए देखने का मन है.

लेकिन क्षण भर में ही बुझ-से गये. उनके भीतर एक मसमसाहट-सी उतरती चली गयी. वह जानते थे, मुस्कराहट की उम्र क्षणिक है. कुल इतनी, जो हवा के आवारा झोंके की तरह आकर हुलक भर दे और तभी—तब एकदम लौट जाये, छेड़कर चुपचाप. इस उम्र में ऐसा ही होता है. पल में हंसना—पल में रोना. स्थायी नहीं होता कुछ भी. कुछ दिलचस्प घटा होगा या उचंगो कल्पना ने हिलौरें भेंट दी होंगी. अभी कुछ देर में ही लौट जायेगा अपने कोप—भवन में, जहां उसके सिवा कोई नहीं होगा. थोड़ा—सा बचपना होगा और ढेर सारी घुटन.

कुछ बोल नहीं पाये थे वह .ठगे से देखते रहे थे. संजू ही बढ़ा था आगे, "क्या मैं पंछी बन सकता हूं, पापा ?"

"क्या करोगे फिर ?" धीमी आवाज में पूछा था.

"पंछी बहुत अच्छे होते हैं. आपस में बहुत प्यार करते हैं और मस्ती से आसमान में उड़ते-फिरते हैं. शाम को फिर लौट आते हैं घौंसलों में.' उसकी आंखों में चमक और होंठों में मुस्कान शेष थी. वह अपना गाल पापा की बढ़ी हुई दाढ़ी पर रगड़ने लगा था.

बहुत अजीब कुछ भी नहीं था, इस पूछने में, लेकिन उनके लिए जवाब देना बहुत कठिन था. दिमाग की नसों में बेचैनी-सी भर गयी थी. कुछ भी नहीं सूझने की स्थिति में वह झुंझला गये थे और बोले थे, "क्योंकि पंछी कुत्ते नहीं होते. अब पूछोगे कि कुत्ते क्यों झगड़ते हैं, तो मैं क्या जवाब दूंगा? ये ऐसी बातें हैं, जिनका जवाब देना मुश्किल है."

"लेकिन मम्मी और अंकल तो पंछी हैं. पापा." उसने बेहद भोलेपन से कहा था.

"प्लीज, संजू!" वह आहत्-से हो उठे, जैसे किसी ने उनके भीतर पलीता रख दिया हो.

"तो पापा आप क्यों नहीं बन जाते पंछी ? आप क्यों नहीं करते मम्मी से प्यार?" उसने गहरी-गहरी आंखें उन पर गड़ा दी थीं.

"संजू!" वह बिलबिला उठे थे. भीतर जैसे विस्फोट हो गया था. उन्होंने संजू को खींचकर अपने से चिपटा लिया था और भींच—भींचकर प्यार करने लगे थे. अचानक न जाने क्या हुआ था कि संजू सुबकने लगा था.

आज भी वह पप्पी के साथ खेल रहा था. सफेद—झबरा, पस्ता कद कुत्ता उसका साथी होता. उनके पास प्लास्टिक की सतरंगी बॉल थी. संजू जूते की टो से किक मारता. पप्पी बॉल की तरफ दौड़ता और पंजों से धकियाता वापिस उसके पास छोड़ जाता. वह बेहद खुश था, पर संजू में उतनी उमंग नहीं थी. ऐसे खेल अब उसे बचकाने लगते थे. उसका मन होता कि केरम या लूडो खेले. पप्पी इनमें उसका साथ नहीं दे सकता था. पिछली गर्मियों में वह केरम बोर्ड लाया था. कुछ दिन पापा के साथ खेला. वह खुद ही ऊब गये. केरम से अधिक उन्हें रंग प्यारे थे या फिर किताबें.

अभी-अभी पापा कहीं से लौटे थे. थके-थके से लग रहे थे. उनका चलना बोझ ढोने जैसा था. माथे पर कुछ अधिक सिलवटें थीं. उसे देखकर वह मुस्कराये थे. उनकी मुस्कराहट में फीकापन झूल रहा था. वह भी मुस्करा दिया था. बस, इतना भर कि जैसे किसी ने स्वीकृति में गर्दन हिला दी हो.

पापा आंगन में इजीचेयर डालकर बैठ गये, पुश्त पर सिर टिकाकर आंखें मूंद लीं. बॉल को किक लगाते हुए सहसा उसका पैर रुक गया था. कहीं पापा के लग गयी तो! पप्पी खेल की उत्तेजना में किकया रहा था. वह अचकचाया-सा खड़ा रहा.

"खेला-खेलो! रुक क्यों गये?" पापा ने आंखें खोलते हुए कहा.

"आप बरामदे में हो जाइए ना." संजू बोला था.

"नहीं, तुम खेलो!" वह मुस्कराने लगे.

पप्पी ने जोर से किक मारी. बॉल जोर से उछली. दीवार से टकरायी और धमाक से उनके चेहरे पर जा लगी. उन्होंने दोनों हाथों से चेहरा ढांप लिया. संजू कांप उठा. पापा ने कभी उसे पीटा नहीं था, लेकिन आज.....!

उन्होंने चेहरे से हाथ हटा लिये थे और उसे घूरने लगे थे. संजू की गर्दन झुकती चली गयी. पप्पी बॉल को पंजों से लुढ़का रहा था. पापा अचानक उठे और उससे बॉल छीन ली. संजू ने चौंककर देखा! आज तो फाड़ ही डालेंगे, चिथड़े उड़ा देंगे बॉल के.

दर्शन और पाप

अनिल श्रीवास्तव

एथेंस की लोकतांत्रिक सत्ता द्वारा नास्तिकता एवं नौजवानों को भड़काने के आरोप में सुकरात को मौत की सजा सुनायी गयी. सुकरात ने बगैर किसी भय या दुविधा के विष का प्याला होंठों से लगा लिया. ई.पू. 399 की उस घटना ने स्पष्ट कर दिया कि सुकरात की जिन सिद्धांतों में आस्था थी उन्हीं सिद्धांतों से उसका आचरण भी निर्धारित होता था...कि स्पष्ट नजर आती मृत्यु भी उसे सिद्धांत विरुद्ध आचरण करने को मजबूर नहीं कर सकी. दोस्तों द्वारा मौका जुटाये जाने पर भी उसने काल कोठरी से भागना उचित न समझा. ऐसा करना उसकी दृष्टि में राजा के कानूनों का उल्लंघन होता जिसे वह एक नागरिक के लिए सिद्धांत विरुद्ध मानता था. साथ ही वह उस पर अड़िग था कि विचार की स्वतंत्रता होनी चाहिए और उसने अपने विचार प्रकट कर किसी कानून को नहीं तोड़ा है.लोकतांत्रिक सत्ता को सुकरात की यह विचार-स्वतंत्रता असहनीय लगी. वह भी अपने मनगढंत आरोपों पर अड़ी रही. अंततः सुकरात को विष का प्याला पीकर अपने सिद्धांत और सिद्धांतनिष्ठ आचरण की रक्षा करनी पड़ी.

सुकरात के योग्यतम शिष्य और खुद एक महान दार्शनिक प्लेटो की दृष्टि में यह 'राज्य का दर्शन के प्रति पाप' था. वह इसे कभी भी माफ नहीं कर सका. सारी जिंदगी वह एक आदर्श एवं न्यायोचित शासक ढूंढने में लगा रहा. अपने विचारों के अनुरूप 'योग्य शासक' बनाने के उसके आजन्म प्रयासों के बावजूद कोई योग्य शासक न बन सका. इतिहास अपनी उथल-पुथल भरी रफ्तार से बदस्तूर चलता रहा. सुकरात द्वारा विष का प्याला पीने के लगभग पचहत्तर वर्ष बाद जैसे इतिहास का एक चक्र पूरा हो गया हो. सिकंदर महान की मौत के साथ ही अभिजात तंत्रीय एवं निरंकुश शासकों का दौर-दौरा समाप्त हुआ. एथेंस में एक बार फिर से लोकतांत्रिक सत्ता की स्थापना हुई और फिर से एक अन्य दार्शनिक पर नौजवानों को भड़काने के आरोप में मुकदमा चलाये जाने की तैयारियां जोरों से होने लगीं. इस बार अरस्तू पर यह आरोप लगा था. अरस्तू को किसी तरह राज्य की इन तैयारियों की खबर लग गयी. एक रात वह चुपके से देश छोड़कर भाग गया. ...लेकिन जाते-जाते वह अपने शिष्यों को देश छोड़कर भागने का एक कारण भी बता गया था — मैं राज्य को दर्शन के प्रति दुबारा पाप करने का मौका नहीं देना चाहता. निश्चय ही, अरस्तू कहीं ज्यादा व्यावहारिक दार्शनिक था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"संजू, तुम्हें बॉली-बॉल आती है?" वह बोले थे.

"य....यस, पापा!" वह घबराहट में हकला गया था.

"तो आओ, खेलें!" पापा ने बॉल उसकी ओर उछाली थी.

कुछ भी नहीं समझ पाया था वह. हैरानी में बॉल को वापस फैंकने की जगह झेल बैठा था. पापा जोर से हंस पड़े और मुंह से निकला, "फाउल!"

"सॉरी, पापा, मैं चूक गया था. अच्छा, मैं सर्विस करता हूं." भीतर का भय बह गया था और उसने एक हाथ पर बॉल रखकर दूसरे हाथ से सर्विस कर दी थी.

दोनों खेलने लगे थे. खेलते रहे थे. पप्पी दोनों के बीच कूदता रहा था. बॉल गिरती, तो तेजी से उस पर लपकता. किसी के पास भी बॉल पहुंचा देता.

संजू ने देखा मम्मी आ गयी थीं, पर उन्होंने इधर ध्यान नहीं दिया. सीधे अपने कमरे में चली गयी थीं. खेल जारी रहा. बॉल एक बार उस तरफ जा गिरी. संजू ने दौड़कर उठायी, तो कमरे में भी झांक लिया. मम्मी औंधी पड़ी थीं और गहरी-ठंडी सांसें फेंक रही थीं. वह चुपचाप लौट आया. आज क्या हो गया मम्मी को? कभी इस तरह हारी हुई-सी नहीं लगीं. हमेशा गम पर सवार रहीं. सारे झगड़े-झमेले के बावजूद तरोताजा दिखती थीं. लौटतीं, तो होंठों पर गुनगुनाहट होती. टू-इन-वन में कैसेट प्ले कर देतीं और बाथरूम में घुस जातीं. देर तक नहाती-गुनगुनाती रहतीं. उन्हें रत्ती भर भी एहसास नहीं होता कि घर में और लोग भी हैं, जो अपना-अपना नर्क भोग रहे हैं.

एक क्षण संजू गुमसुम खड़ा रहा था. पापा ने उसे बाहर खींचा था, "हरीअप, संजू!" और खेल फिर जारी हो गया था.

तभी रामानुज अंकल आये थे और अचानक बॉल उनकी खोपड़ी में जा लगी थी.

"रास्कल!" दांत भींचकर चीखे थे वह, लेकिन पापा को देखकर झेंप गये थे और तेजी से मम्मी के कमरे में चले गये थे.

पापा के हाथ झूल गये. चेहरा लटक गया. मुर्दनी-सी छा गयी थी, "बस, खेल खत्म." उन्होंने धीरे से कहा था.

उसने देखा, वह अपने कमरे की तरफ जा रहे थे. मरे-मरे पैरों से. मुर्दा जिस्म ढोते हुए. अभी शाम है और पापा रंगों में नहीं, बोतल में डूबेंगे. उसके मन में आया, दौड़कर जाये,बोतलों को चूर-चूर कर दे. यह सब चलते मुर्दा बन गये हैं पापा. मुर्दे से भी बदतर.

लेकिन वह कुछ नहीं करता. मम्मी के कमरे से आती तीखी बहस पर भी ध्यान नहीं देता. मम्मी की आवाज में तेजी भरी हुई थी और अंकल का लहजा झिड़कियों वाला था. उसने गर्दन झटक दी थी और सीढ़ियां चढ़कर छत पर चला आया था, पतंगबाजी के नजारों में अपने को उलझाने के लिए, पर आसमान में कटने-टूटने वाली इन खिलंदड़ी दुर्घटनाओं में मन नहीं रमा उसका. लेट गया सीमेंट की चिकनी छत पर. ठंडी-ठंडी छत ने उसे छुआ. जिस्म में सिहरन-सी दौड़ी. आंखें मुंदती चली गयीं. न जाने कब तक पड़ा रहा ऐसे ही. उसके सामने दो हिस्सों में बटा घर फैला था. दो बंद कमरे थे और उनमें घटती अलग-अलग घटनाएं थीं. पापा और मम्मी अलग-अलग अपने अकेलेपन को पाटने में लगे थे. वह घर के इन दो हिस्सों के बीच बुरी तरह पिस रहा था.

कोई चीखा था. चौंककर उठ बैठा वह, फिर एक और चीख. वह मम्मी थीं. बेचैन हो उठा वह. रोने के बीच में चीखें. वह सीढ़ियां उतरता चला गया.

अंगूर की बेल के नीचे वह ठिठक गया. मम्मी के कमरे का दरवाजा खुला था. रोशनी में एक परछाई हिल रही थी. वह रामानुज अंकल थे. परछाई हिल रही थी, फिर आवाज आयी थी, "जमाने भर की जूठन हो तुम! कुतिया कहीं की! जहां देखा, वहीं मुंह मारने लगी, तुम समझती क्या हो अपने को? चाहती हो, तुम्हीं से बंधा रहूं! माइंड योर सेल्फ, मैं तुम्हारे झांसे में आने वाला नहीं!"

"आज तुमने मुझ पर हाथ उठाया, राम! मुझे गाली दी तुमने! मैं तुम्हें बर्बाद कर दूंगी. देख लेना..." रुलाई और गुस्से में लिथड़ी हुई आवाज थी.

"ओSSS, यू शट अप!" चीखे थे रामानुज अंकल और तड़ाक की आवाज के साथ एक भरपूर तमाचा दूसरी परछाई के चेहरे पर छा गया था. परछाई लड़खड़ाती हुई ओझल हो गयी थी. घुटी-घुटी चीख के साथ.

संजू आंगन में खड़ा था और थरथर कांप रहा था. उसकी मुट्ठियां भिंची थीं और पसीने से लिसलिसा रही थीं. क्रोध और बेबसी ने अजीब-सी हालत बना दी थी. आंखें गहरे सुर्ख रंग से भर गयी थीं और बहती जा रही थीं. पप्पी उसके पैरों से सटा भौंक रहा था. शायद वह डर गया था. शायद उसके भीतर का जानवर भी रो रहा था.

अचानक न जाने क्या हुआ. संजू बिलबिलाने लगा था "पापा जी!.... पापा! आप सचमुच मुर्दा हैं! हां, बिल्कुल मुर्दा! ....आप मेरे पापा नहीं. मैं आपसे प्यार नहीं करूंगा, पापा! कभी भी नहीं. समझ गये न! मझे पापा अच्छे नहीं लगते."

और वह दौड़ता हुआ मम्मी के कमरे में घुस गया. पप्पी भी उसके पीछे था. वह बहुत जोर से भौंक रहा था. संजू एकदम रामानुज अंकल के पैरों में लिपट गया था और बुक्का भरकर कूल्हे पर काट लिया था. पप्पी के दांतों में उनकी पतलून का पांयचा फंसा था, जिसे गुर्राते हुए वह खींच रहा था.

"यू डर्टी, अंकल, आई हेट यू...आई हेट यू...!" उसने जोर से दांत किटकिटाकर कहा था और अबकी बार और भी जोर से काट लिया था.

कराह उठे थे वह. तिलमिलाकर जोर से धक्का दिया था. संजू फिसलता हुआ दीवार से टकराया था. उसके होंठों से निकला था, "हाय मम्मी!"

मम्मी के चेहरे का रंग बदल गया था. डरा-सहमापन-सा भर गया था आंखों में. ऐसा लगा, जैसे दिल अभी उछलकर हलक में आ जायेगा. वह उसकी तरफ लपकी थीं. उसे बांहों में भरकर उठाया था. साड़ी के पल्ले से पसीने से भीगा चेहरा और बहती हुई आंखें पौंछी थीं.

संजू ने गहरे तक देखा था उन्हें. उसके होंठ थरथराये थे. जोर-जोर से गर्दन हिलाते हुए कहा था उसने, "नहीं-नहीं, मम्मी, मुझे बहकाओ मत..... मैं किसी के बहकावे में आने वाला नहीं. आप बहुत बुरी हैं, मम्मी! मैं आपसे भी प्यार नहीं करूंगा."

वह तड़पकर उनकी बांहों से निकल गया था और धीरे-धीरे बाहर जा रहा था. पप्पी आंगन में मुंह लटकाये खड़ा था. वह रामानुज अंकल को ग़ली तक खदेड़ आया था. संजू ने पप्पी को गोद में उठा लिया था और सीने में भींचे हुए अपने कमरे की तरफ जाने लगा था.

मम्मी कमरे के दरवाजे पर खड़ी थीं. उसे देखती हुई. उन्हें लग रहा था, जैसे कोई उनका कलेजा खींचकर लिये जा रहा है. संजू ने धड़ाक से अपने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया था. दरवाजे की आवाज उनके दिमाग में हथौड़े की तरह पड़ी थी और वह दोनों हाथों से सिर पकड़कर वहीं बैठ गयी थीं. □

चलते-चलते

किशोर युवती बच्चों की तैराकी की कक्षा ले रही थी. उसे ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय के तैराकी पूल में क्या कुछ प्रगति हुई देखना था. एक युवा मां ने पास में खड़े आदमी से कहा, "जो गुलाबी सूट पहने है यह मेरी लड़की है. इसकी तैराकी की पहली क्लास है. देखो, इसने तैराकी में कैसी तरक्की की है."

आदमी बोला, "ये जो अध्यापिका है न, यह मेरी पुत्री है और यह तैराकी की क्लास पहली बार ले रही है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : रामपुर : 5 अप्रैल 1951
अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. अध्यापन के बाद भारतीय पुलिस सेवा में प्रवेश.
संप्रति : पुलिस अधीक्षक विजिलेंस, मेरठ.

शैलेंद्र सागर

अजनबी लोग

मुन्ने की मा, कुडी लगा लीजो...मास्टर टीकाराम ने साइकिल गली में खड़ी करके दरवाजे की सीड़ियों पर सीधे पांव की पैंट के पहुंचे को क्लिप में दबाते हुए नितप्रतिदिन की भांति आवाज दी.

"आ मैं..." अपनी पत्नी का स्वर सुनकर आश्वस्त होते हुए वह साइकिल पर चढ़कर स्कूल की ओर चल दिये.

यही कोई दस-बारह मिनट का मार्ग था यह. कई मोहल्ले, गलियों को पार करता ऊबड़-खाबड़ व संकुचित मार्ग. लोग रोज ही मास्टर टीकाराम को इधर जाते देखकर समय का अनुमान लगाया करते थे. स्थान, स्थान पर 'मास्साब नमस्ते', 'गुरुजी प्रणाम', 'पां लागू मास्साब' के स्वर उभरते जाते. मास्टर टीकाराम एक हाथ उठाकर, कसर हिलाकर और 'जीते रहो, जीते रहो' पुकारते, बुदबुदाते जल्दी-जल्दी पैडल मारते ठीक समय पर स्कूल पहुंचते, हां, कभी-कभी इन अभिवादन करनेवाले कुछ छात्रों व व्यक्तियों के लहजे में छिपे व्यंग्य व उपहास से मन ही मन खिन्न भी होते थे. पिछले कुछ वर्षों में हुए इन परिवर्तनों पर मास्टर टीकाराम कभी-कभी अत्यत व्यथित अनुभव करते किंतु समग्र परिवेश में हुए अनगिनत कष्टप्रद परिर्वतनों को दृष्टिगत करते हुए शीघ्र अपने को समझा लेते.

स्कूल के निकट आते-आते विद्यार्थियों के समूहों से साक्षात्कार होने लगे. भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिवादन कानों में पड़ने लगे. परीक्षा दिवस होने के कारण आज स्कूल के आस-पास अच्छी चहल-पहल दीख पड़ती थी. अन्य दिवसों पर स्थिति भिन्न होती. स्कूल के निर्धारित समय पर आने वाले छात्रों की संख्या प्रायः कम होती. पिछले कुछ वर्षों में यही स्थिति अध्यापक वर्ग की भी होती जा रही थी. अधिकतर अध्यापक विलंब से ही आते. जो अधिक विलंब और अनियमित रूप से आते, वे उतने ही अधिक लोकप्रिय व सम्मानित बनते दीख पड़ते.

"अरे यार, श्रीवास्तव तो सचमुच दादा है. रोज एक, डेढ़ घंटे लेट आता है और इंटरवल के बाद गायब..."

"भइया, बड़ी पहुंच वाला है. देखते नहीं लगभग प्रतिदिन ही डी.आइ.ओ.एस. उसे बुलाते रहते हैं."

"सो तो है. मगर अब टाइम से आने वाले कितने हैं, सिवाय टीकाराम के हर कोई किसी न किसी दिन लेट हो ही जाता है."

"टीकाराम तो बूढ़े हो चले हैं. घर में तबीयत नहीं लगती होगी उनकी."

सब के सब ठहाका मार के हंस देते.

मास्टर टीकाराम तक सब बातें पहुंचती. दुखी भी होते किंतु अपने नित्यक्रम में किसी प्रकार का विघ्न न आने देते.

मास्टर टीकाराम को आज अध्यापन करते तीस वर्ष से ऊपर हो चले हैं. बैंक में मिली क्लर्की को छोड़कर हाई स्कूल की अध्यापकी को

प्राचार्य पूरा प्रकरण सुनते रहे. समाप्ति पर एक अध्यापक बोल उठे, "श्रीमान जी, नक्ल तो पचास प्रतिशत छात्र करते हैं केवल स्तर का अंतर है. एक को पकड़ने से क्या लाभ..."

वरीयता दी थी. 'क्लर्की थर्ड डिवीजनर के लिये है.' वह कहा करते थे. इसलिए जब महानंद विद्यालय में विज्ञान के अध्यापक के रूप में उनकी तैनाती हुई तो फूले नहीं समाते थे.

अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, लगन व परिश्रम से वह विद्यालय ही क्या, पूरे नगर में लोकप्रिय हो जाने जाने लगे थे. महानंद विद्यालय के विज्ञान संवर्ग में विद्यार्थियों की संख्या मास्टर टीकाराम के कारण ही बढ़ती चली गयी. नौबत यहां तक आ गयी कि महानंद विद्यालय में प्रवेश एक गंभीर समस्या बन गयी थी. कुछ व्यक्ति मास्टर टीकाराम के पास सिफारिश के लिए आते किंतु वह दो टूक 'न' उत्तर दे डालते. फिर कुछ धनाढ्यों ने उन्हें लोभ भी दिया किंतु मास्टर टीकाराम इससे और अधिक चिढ़ उठते. प्रधानाचार्य से भी शिकायत कर देते और अपनी ओर से पूरा प्रयास करते कि उस विद्यालय में ऐसे विद्यार्थी का प्रवेश न हो.

महानंद विद्यालय में प्रवेश न होने पर ट्यूशन के आग्रह किये जाते. ऐसा नहीं था कि मास्टर टीकाराम ट्यूशन नहीं करते थे किंतु इसकी संख्या केवल चार-छः विद्यार्थियों तक सीमित रहती. प्रायः एक ही छात्र को एक बार में पढ़ाते थे किंतु अधिकतम दो छात्रों को ले लेते थे. छात्रों का चयन भी देखभाल के करते. कुछ लोग अधिक छात्र लेने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए दबाव डालते किंतु वह इससे अप्रभावित ही रहते. मुस्कराकर पास के मोहल्ले में निवास कर रहे गणेशी लाल को संदर्भित कर देते. गणेशी लाल प्रातः छह बजे से रात्रि दस बजे तक दस-दस विद्यार्थियों के सात-आठ समूह निकालते थे. विद्यालय का अध्यापन उनके लिए गौण था. क्लास में यदि कोई छात्र कोई प्रश्न पूछता तो झिड़क देते, "सब क्लास में ही नहीं पढ़ाया जाता..." विद्यार्थी अगले दिन ही ट्यूशन के लिए घर पहुंच जाता.

मास्टर टीकाराम गणेशी लाल की इन प्रवृत्तियों से परिचित थे और मन ही मन उसके लिए उनके हृदय में घृणा व चिढ़ थी. ट्यूशन पर किसी विद्यार्थी को लेते समय स्पष्ट कर देते थे, "यह मत समझना कि प्रेक्टीकल में पूरे अंक दिलवा दूंगा. जैसा करोगे वैसे ही अंक मिलेंगे."

प्रारंभिक वर्षों में मास्टर टीकाराम के लिए सबके हृदय में सम्मान दिखता था. विद्यार्थी उनका छात्र होने में गौरवान्वित अनुभव करते. प्राचार्य महोदय अध्यापक की यदि कोई छवि विद्यार्थियों के मस्तिष्क में उभरती तो वह मास्टर टीकाराम ही थे.

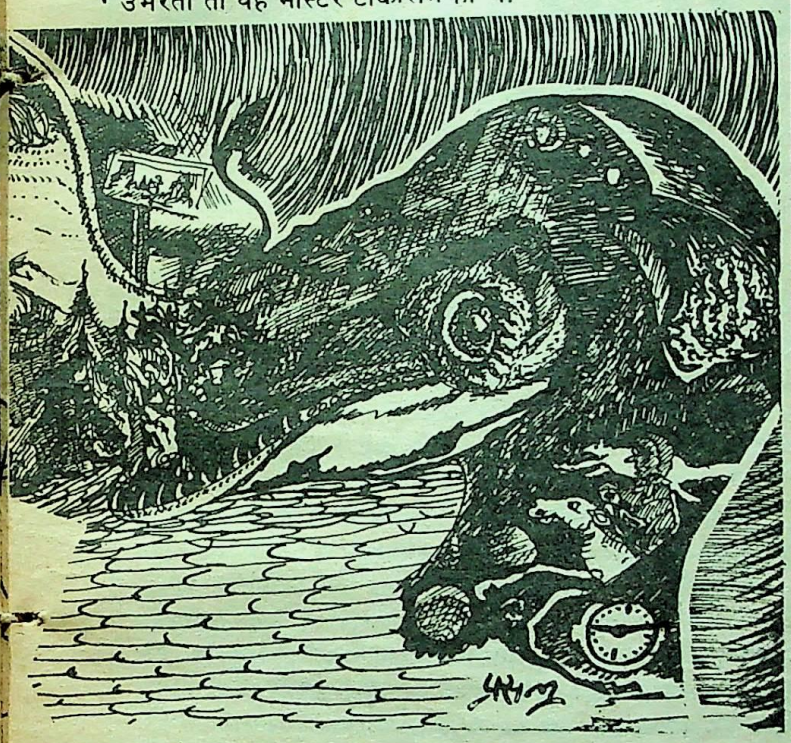

साइकिल स्टेंड पर खड़ी करके मास्टर टीकाराम ने जब विद्यालय में प्रवेश किया तो अभिवादन करने वालों की झड़ी सी लग गयी. हाथ अभिवादन में ऊपर किये हुए वह अध्यापक-कक्ष की ओर बढ़े. वहां चार्ट में अपनी ड्यूटी देखी और परीक्षा सामग्री लेने केंद्र व्यवस्थापक के कक्ष की ओर चले.

प्रत्येक कक्ष में दो अध्यापकों की ड्यूटी रहती थी. मास्टर टीकाराम अब इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे, उनके साथ ड्यूटी देने में अध्यापकों में कैसी खींचतान मची रहती थी. अधिकतर अध्यापक उनके साथ ड्यूटी देने में आनाकानी करते. अपने नाम कटवा लेते और कहते, "मास्टर टीकाराम के साथ कौन पहरेदारी करे!" अंततः सबसे सीधे, सरल व नये अध्यापक को ही साथ पर्यवेक्षण के लिए रखा जाता.

काफी समय तक मास्टर टीकाराम इसके कारण से परिचित नहीं थे और दरअसल कभी जानने का वास्तविक प्रयास भी नहीं किया उन्होंने, किंतु एक दिन उनके ही पूर्व सेवानिवृत सहयोगी मंगला सिंह ने उनसे किसी अन्य प्रकरण पर बातें करते कहा तो वह सकपकाकर रह गये, "टीकाराम तुम समय के साथ बदलना नहीं सीखे..."

"मैं समझा नहीं, मास्साब." उन्होंने अचरज से पूछा.

"भई, अब वह पुराना वाला माहौल नहीं. अब नीति-नियम पालन करने या करवाने का समय नहीं."

"होगा मास्साब. पर अपना तो जीवन जिस ढर्रे पर चला है, उसी पर चलना है." हृदय से उभरी टीस को छुपाते हुए मास्टर टीकाराम बोले.

"तभी देखते नहीं, विद्यालय में सभी तुम से कटे-कटे रहते हैं." मास्टर मंगल सिंह के स्वर में तिरस्कार मिश्रित उपहास का भाव था

मास्टर टीकाराम का अंतरंग जैसे धूं-धूं कर जलने लगा. हृदय में मास्टर मंगल सिंह के लिए जो वर्षों पुराना सम्मान था, चरमराकर ढह गया. मन में न जाने कैसे कैसे कुत्सित विचार कौंधे किंतु अंदर जमे संस्कार उन्हें थामे रहे. बदलाव का इतना कड़वा एहसास उन्हें पहली बार हुआ. मन मसोसकर वहां से चल दिये.

घंटी बजने के बाद जब वह कक्षा में प्रवेश करने लगे तो विद्यार्थी आपस में खुसर-पुसर करते व सहमे से दीखे.

"अरे, खूसट आ गया है, जरा होशियारी से..." एक विद्यार्थी का स्वर उनके कानों में पड़ा था.

परीक्षा प्रारंभ होने के कुछ ही समय बाद अनेक अध्यापक कक्षाओं के बाहर घूमते-फिरते, मूंगफली टूंगते, धुआं उड़ाते और गप-शप में व्यस्त दीख पड़े. सामने की कक्षाओं में विद्यार्थियों के इधर-उधर घूमने, बाहर आने-जाने के दृष्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित थे. मास्टर टीकाराम इन सबसे उदासीन रहने का प्रयास करते किंतु कहीं न कहीं उनके अंदर कुछ चुभता रहता.

"मास्साब, जरा पिशाब..." एक लड़के ने जब तीसरी बार यह प्रार्थना की तो उनसे न रहा गया, "परीक्षा देने आये हो या पेशाब करने. बार-बार पेशाब के लिए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती..."

"मास्साब, मेरी आदत ही ऐसी है...." एक निर्लज्ज हंसी के साथ वह लड़का बोला और पूरा क्लास खिलखिला दिया.

"चुप रहो..." मास्टर टीकाराम चीखे.

विद्यार्थीगण हंसी को दबाते हुए काम में लग गये.

पंद्रह, बीस मिनट बाद वही विद्यार्थी पुनः पेशाब की अनुमति मांगने लगा. किसी संकोच अथवा झिझक के साथ नहीं, अपितु इसके स्थान पर चिढ़ व झुंझलाहट पैदा करने वाली एक कुटिल मुस्कान उसके मुख पर थी. हृदय में उबाल लिये मास्टर टीकाराम उसे ताकते रहे और वह उन्हें. मास्टर टीकाराम की स्थिति कुछ दयनीय-सी हो चली. साथी पर्यवेक्षक बीच में बोल उठे, "गुरु जी, जाने दें, अपना ही तो समय नष्ट करेगा."

"मगर यह वहां जाकर अवश्य अनुचित कार्य करेगा..." वह फुंकार से उठे.

"तो अपना ही तो नुकसान करेगा. कौन प्रथम श्रेणी आ जायेगी इसकी..." वह अति सहज भाव से बोले.

विद्यार्थियों के सम्मुख इस विवाद से मास्टर टीकाराम एकदम परेशान से हो चले. साथी अध्यापक की विचारधारा से हतप्रभ भी थे और दुखी भी.

वह छात्र इस बीच बाहर जा चुका था और कुछ समय बाद "म्याई कमिन सर..." कहते-कहते अंदर आकर अपने स्थान पर बैठ गया. उसके चेहरे पर एक अजीब-सी तुष्टि नृत्य कर रही थी.

मास्टर टीकाराम कसमसाकर रह गये. असहाय से उसकी धृष्ट हरकतों को देखते रहे. कभी वह इस बल बैठता तो कभी दूसरे बल. कभी पैर सिकोड़ता तो कभी कुर्सी पर एकदम लेट जाता.

साथी पर्यवेक्षक अन्य अध्यापकों की भांति बाहर धूप सेंकने लगे. "मास्साब, चाय ले लें..." कुछ समय बाद उन्होंने बाहर से आवाज दी.

"धन्यवाद..." मास्टर टीकाराम ने बाहर झांककर उत्तर दिया.

"अरे, मास्साब लड़कों को काम करने दें...." एक पड़ोसी कक्ष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापक उपहास भरे स्वर में बोले. अन्य साथी भी खिलखिला दिये.

मास्टर टीकाराम अपने को स्थिर व शांत रखकर पर्यवेक्षण के कार्य में व्यस्त हो गये. यकायक उन्हें उसी छात्र द्वारा अनुचित साधन प्रयोग करने का संदेह हुआ. वह तुरंत उसकी ओर लपके और उस छात्र को डेस्क व टांगों के बीच एक पुस्तक रखे पाया. उन्होंने पुस्तक खींच ली. लड़का भी खड़ा हो गया.

"चलो उठो," मास्टर टीकाराम दहाड़े, "तभी बार-बार पेशाब आती थी. शर्म नहीं आती...!"

छात्र अपने स्थान पर खड़ा रहा.

"चलो, प्राचार्य के पास चलो."

वह तब भी वैसे ही खड़ा रहा और फिर हाथ जोड़कर कहने लगा, "मास्साब, पहली गलती है, माफ कर दो..."

"किस बात की माफी.... पूरी पुस्तक से नकल कर रहा है और माफी..."

"जी मास्साब, अब कभी नहीं करूंगा...." उसने अपने स्वर को दयनीय बनाने का प्रयास किया.

मास्टर टीकाराम उसका हाथ पकड़कर कक्षा से बाहर लेकर चल दिये. साथी पर्यवेक्षक निकट आकर कान में फुसफुसाने लगे, "गुरु जी, छोड़ दें. झमेला ही है..."

"मैं समझा नहीं...."

"मतलब यह गुरु जी, कि जब सब कमरों में यही हो रहा है तो..."

मास्टर टीकाराम की भाव-भंगिमा देखकर वह अध्यापक आगे न बोल सके किंतु मास्टर टीकाराम अब अपने को शांत न रख सके, "तो परीक्षा समाप्त करवा दीजिये न. क्यों यह ढकोसला करते हैं. किस बात का पर्यवेक्षण करने हमें भेजा गया है. सबको पुस्तकें थमा दीजिये."

साथी अध्यापक वापस कक्ष में चले गये.

मास्टर टीकाराम के साथ कुछ अन्य अध्यापक भी प्राचार्य कक्ष में आ गये थे.

प्राचार्य पूरा प्रकरण सुनते रहे. समाप्ति पर एक अध्यापक बोल उठे, "श्रीमान जी, नकल तो पचास प्रतिशत छात्र करते हैं. केवल स्तर का अंतर है. एक को पकड़ने से क्या लाभ...."

"यह कोई तर्क नहीं," प्राचार्य रोष भरे स्वर में बोले, "जो पकड़ा जायेगा उसे ही तो दंडित किया जा सकता है. फिर आप लोगे क्यों ढिलाई दिखाते हैं."

"श्रीमान्, आप ठीक कहते हैं," एक अधेड़ आयु के अध्यापक ने स्थिति को सम्हाला, "मगर छोटा बच्चा है. जीवन खराब हो जायेगा..."

"पहली बार पकड़ा गया है. एक अवसर तो दे दीजिये." दूसरे कहने लगे.

"कम से कम तीन वर्ष खराब होंगे इसके आवारागर्दी ही करेगा." तीसरे अध्यापक ने कहा.

"इसका पिता वकील है. एकदम सज्जन पुरुष, मेरे परिचित भी हैं. मैं उनके सामने क्या मुंह दिखाऊंगा." एक अन्य याचना करने लगे.

विद्यार्थी के पक्ष व प्रतिरक्षा में दिये जा रहे तर्कों व दलीलों से मास्टर टीकाराम का अंतरंग क्षोभ व पीड़ा से कसमसा उठा. समझ में नहीं आया किसको क्या उत्तर दें.

"टीकाराम जी, निर्णय आपका है, बोलिये..." प्राचार्य ने कहा.

"मेरा, मेरा क्या निर्णय होता...अनुचित साधनों का प्रयोग कर रहे छात्र को दंडित किया ही जाना चाहिए."

"तो फिर लाइये...."

औपचारिकताएं पूरी की जाने लगीं. आस-पास खड़े अध्यापक बड़बड़ाते हुए बाहर निकल गये.

परीक्षा समाप्ति के बाद जब मास्टर टीकाराम बाहर निकले तो अनगिनत नेत्र उन्हें एकटक घूरते से लगे. लगभग तीस वर्षों से अध्यापन कर रहे इस विद्यालय में वह नितांत अकेले व अजनबी से अनुभव करने लगे. अभिवादन के स्थान पर साथियों तथा विद्यार्थियों की दृष्टि में उनके प्रति रोष व उपेक्षा के मिले-जुले भाव थे.

तेजी से पैडल मारते हुए वह आगे बड़े किंतु उनका मस्तिष्क साइकिल के पहिये से भी तेज गतिमान था. एक उथल-पुथल सी मची हुई थी. उस दिन ट्रेन में घटी घटना आज उन्हें कितनी सार्थक लगी.

पत्नी के साथ वह यात्रा कर रहे थे. यात्रियों से लबालब भरा द्वितीय श्रेणी का डिब्बा था. प्रौढ़ावस्था का एक टिकिट निरीक्षक टिकिट चैक करने लगा तो सब लोग लोग अचकचाकर उसे देखने लगे थे.

"लेओ, इत्ती भीड़ में टिकिट चेकिंग...पगला गया है..." एक व्यक्ति बुरबुराया.

"मगर भई, यह तो इसका काम है...!" मास्टर टीकाराम ने धीरे से कहा.

"अजी, क्या काम है. धंधे के चक्कर हैं...डिब्बे से उतरते-उतरते पचास-सौ बना लेगा."

मास्टर टीकाराम के पास शांत रहने के अतिरिक्त भला क्या उपाय था.

कुछ समय बाद टिकिट निरीक्षक व एक नवयुवक के मध्य विवाद सुनाई पड़ा.

"बिना टिकिट लिये यात्रा करते हो..."

"बाबू जी, गलती हो गयी..."

"गलती कैसी...खैर, कहां से चले थे...?"

"लखनऊ से..."

"एक सौ चालीस रुपये निकालो..."

"एक सौ चालीस...?"

"हां, पैनाल्टी देनी होगी..."

"बाबू जी, गरीब हूं...."

टिकिट निरीक्षक ने कोई उत्तर नहीं दिया. रसीद बुक निकालकर कुछ लिखने लगा. वह युवक कानों में कुछ फुसफुसाया.

"पागल हुए हो...!" वह चीखा, "हर किसी को पैसे से खरीदने की कोशिश करते हो...! चलो टिकिट बनवाओ...!"

वह युवक पुनः कुछ फुसफुसाया.

"आफ्फो...," इस बार उसने अपना सिर पीटा, "कौन ज्यादा पैसे के लिए कह रहा है! रुपये निकालो वरना अगले स्टेशन पर...."

उस युवक की ओर से अनेक व्यक्ति बोल उठे.

"अरे लड़का है...माफ कर दें..."

"बाबूजी, लड़कों में यह फैशन है. छोड़ दें. पंद्रह, बीस लेकर खत्म करें यह मामला...."

टिकिट निरीक्षक अपनी बात पर अड़ा था.

"पागल है...!" कुछ ने टिप्पणी की.

"बात खुल गयी है तो हरिशचंद्र बनता है..."

"देखना बाद में ज्यादा पैसे लेकर छोड़ देगा...."

न जाने कितने मंतव्य इस प्रकार व्यक्त किये गये. सभी यात्रियों की दृष्टि जैसे उसे बेध रही थी. उसकी स्थिति कितनी दयनीय लगी थी मास्टर टीकाराम को. उस भीड़ में वह कितना अकेला और अजनबी बन चला था, ठीक आज के मास्टर टीकाराम की भांति...

घर के दरवाजे के सामने साईकिल रुकी और वह साईकिल अंदर चढ़ाने लगे. □

चलते-चलते

कलकत्ता विश्वविद्यालय की बिल्डिंग के बाहर एक सुझाव बक्स जीर्ण-शीर्ण अवस्था में लटका था. एक सुबह किसी मसखरे ने बक्स के नीचे पेंट से लिख दिया सबसे अच्छा सुझाव है, इस बक्से की मरम्मत करवायी जये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 21 अक्तूबर, 1952 जगरांव.
कृतियां : जॉन कीट्स व लॉर्ड बायरन पर अंग्रेजी में समीक्षात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त विविध पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित.
संपर्क : बी./बी. 401, आई.ए.सी. नगर/चूना वाला कंपाउंड, जे.बी. नगर, अंधेरी (पूर्व) बंबई-59

तेजेंद्र शर्मा

रेत के शिखर

दीपा के चले जाने के बाद भी मंजुला काफी देर तक खिड़की में खड़ी रही. और तब तक हाथ हिलाती रहीं जब तक कि दीपा आंखों से ओझल नहीं हो गयी. दीपा आज पूरे पांच वर्ष बाद उसे मिली थी--उसके कालेज के समय की सहेली. बी.ए., एम.ए. दोनों ने साथ-साथ ही किया था. खिड़की के पल्ले सरकाकर मंजुला कमरा ठीक करने लगी. नाश्ते की प्लेटें हटाकर उसने दीवान की चादर ठीक की. सब कुछ व्यवस्थित करने के पश्चात उसने एक लंबी-सी ठंडी सांस ली और वहीं कार्पेट पर बैठ गयी. आज का दिन अच्छा बीत गया था. बहुत दिनों बाद जैसे वह कुछ तरोताजा महसूस कर रही थी. जब से उसने अपनी रिसर्च छोड़ी है एक अजीब-सा खालीपन उसके जीवन में भर गया है. दीपा के साथ उसकी बहुत-सी चुलबुली यादें जुड़ी हुई हैं. दीपा पिछले चार वर्षों से कालेज में लेक्चरार है और उसका तबादला इसी शहर में हो गया है. मंजुला को यह जानकर बहुत राहत महसूस हुई. अब उसका अकेलापन कुछ कम हो जायेगा.

उसका मन हुआ कि वह आज फिर अपना पसंदीदा संगीत सुने. वह उठने को हुई, उसे लगा कि सोफे पर कोई पुस्तक पड़ी है. शायद दीपा ही भूल गयी थी. मंजुला ने फिर उठाकर अनायास ही पन्ने पलटने शुरू कर दिये. 'आधुनिक कविता में छायावाद.' लेखक का नाम पढ़कर मंजुला चौंक उठी--डा. नवीन चंद्र. उन्हीं के मार्गदर्शन में शोध आरंभ किया था मंजुला ने. कितनी महत्वाकांक्षी थी वह भी. आज वह डा. मंजुला भार्गव होती. किसी कालेज में लेक्चरार होती. पर अब तो सब कुछ एक दुःस्वप्न बनकर रह गया है.

डा. नवीन चंद्र. क्षोभ और वितृष्णा से उसका मन भर आया. अधजले सिगार के धुएं की गंध जैसे उसके नथुनों में भर गयी. और कमरे में एक-एक कर के अतीत के सारे बिंब उभरने लगे.

मंजुला ने एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास किया था. पिता फूले नहीं समाये थे--"आखिर बेटी किसकी है." उन्होंने प्यार से बेटी का सिर चूम लिया था. फिर मां से बोले, "मिठाई-विठाई खिलाओ कुछ. आज तो खुशी का दिन है."

मां बड़बड़ाती हुई दूसरे कमरे में चली गयी थी. मंजुला की दोनों बड़ी बहनें इंटर पास करके अपना-अपना घर बसा चुकी थीं. मां को उन्हें पढ़ाने का विशेष शौक नहीं था. तीन-तीन बेटियां मां के लिये काफी बड़ा बोझ थीं. उनकी पढ़ाई की अपेक्षा मां को बेटियों की शादी की अधिक चिंता थी. मंजुला की पढ़ाई में पिताजी के साथ का विशेष सहयोग रहा. फिर मंजुला की असाधारण प्रतिभा एवं योग्यता के कारण भी मां अब तक उसकी पढ़ाई का विरोध नहीं कर पायी थीं.

किताब बंद करके वह महेश के पौरुष को पूर्णता प्रदान करने के लिए आ गयी थी. अपने पति को वह यह नहीं समझा सकी थी कि पुरुष को पूर्णता प्रदान करने में स्वयं के अधूरे रह जाने का एहसास कितना पीड़ादायक है नारी के लिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अब मां चुप बैठने वाली नहीं थीं. जैसे ही उन्हें पता चला कि मंजुला रिसर्च के विषय में सोच रही है, वह फट पड़ीं थी-- "मैं कहे देती हूं जी, अब बेटी के विवाह की चिंता करो. इससे ज्यादा पढ़ गयी तो बिरादरी में लड़का मिलना भी मुश्किल हो जायेगा. पढ़े-लिखे लड़के मिलते कहां हैं आजकल. और फिर हमें कौन-सी नौकरी करवानी है इससे. एक बार ब्याह हो जाये तो चाहे पढ़ाई करे या नौकरी."

मंजुला को लगा कि मां आज भी मानसिक रूप से कई बरस पीछे है. मंजुला पढ़-लिखकर कुछ बनना चाहती है और मां है कि..... क्या हर औरत की तरह उसकी नियति भी शादी, पति और बच्चे ही हैं. नहीं. वह और पढ़ेगी. साहित्य में उसकी रुचि है. वह शोध करेगी, पुस्तकें लिखेगी और नाम कमायेगी.

परंतु मां के तर्कों के आगे पिताजी की भी एक न चली. और मंजुला भी मां को यह समझाने में असफल रही थी कि इस तरह जीने में कोई सार्थकता नहीं.

और फिर वही हुआ जो मां चाहती थी. मंजुला का महेश से विवाह. इंटर पास महेश -- जो व्यवसाय में रत. पढ़ाई की अपेक्षा पैसे कमाने में महेश की अधिक रुचि. दोष महेश का नहीं, उसके संस्कार ही ऐसे थे. परिवार में सभी प्रायः मिडल और मैट्रिक ही थे. वही संभवतः सबसे अधिक पढ़ा-लिखा था. पिछली कई पीढ़ियों से चला आ रहा बिजनेस ही उसे विरासत में मिला था. स्वयं महेश को भी कभी पढ़ाई की कमी महसूस नहीं हुई थी. वह अपने धंधे में निपुण था और अच्छी आमदानी भी थी. किसी भी वस्तु की कमी नहीं थी.

मां इसी में बहुत प्रसन्न थी. "पढ़ाई ज्यादा न सही, पर खानदान कितना अच्छा है. तीन बिल्डिंगें, दो गाड़ियां -- राज करेगी मेरी बेटी." और मां ने बेटी का विवाह बिल्डिंगों और गाड़ियों से कर दिया था.

नये माहौल में मंजुला को काफी असुविधा महसूस होने लगी थी. सुबह होते ही महेश जल्दी-जल्दी नहा-धोकर नाश्ता करके काम पर चला जाता. घर में नौकर-चाकर थे इसलिये कुछ खास काम भी नहीं होता था. सास की सेवा और पति की प्रतीक्षा में ही दिन बीत जाता था. मंजुला जल्दी ही इस दिनचर्या से ऊबने लगी थी.

पहले तो वह रात की प्रतीक्षा करती थी किंतु अब तो रात के नाम से भी उसे उबकाई-सी आने लगती थी. महेश दिन भर का काम से थका घर आता था और रात को अपने शरीर की उत्तेजना शांत करके सो जाता था. कालेज में रूप सुंदरी कहलानेवाली मंजुला -- अब उसका सौंदर्य पराजित अनुभव करने लगा था. उसे सब कुछ बेमानी लगने लगा था, एकदम निरर्थक. उसके भीतर का साहित्यकार जो संबंध अपने पति से जोड़ना चाहता था उसका तो उसे अवसर भी नहीं मिला. महेश एक मजदूर प्रकृति का व्यक्ति था और मंजुला उसमें एक कलाकार को तलाशती रह गयी.

एक दिन हिम्मत करके महेश के सामने अपने आगे पढ़ने की इच्छा व्यक्त कर दी. और मंजुला बहुत प्रसन्न हुई जब महेश ने कोई आपत्ति नहीं की.

"तुम्हारी इच्छा है तो जरूर पढ़ो. रिसर्च करके डाक्टर बनो. मैं भी फख्र से कह सकूंगा कि मेरी पत्नी डाक्टर है... वैसे मुझे थोड़ा मुश्किल लग रहा है यह काम. अब शादी के बाद तुम कर सकोगी पढ़ाई?"

"इसमें मुश्किल ही क्या है? हमारे एम.ए. के प्रोफेसर डा. मेहता के मित्र डा. नवीन यहीं यूनीवर्सिटी में रीडर हैं. डा. मेहता ने मुझे उनका 'रेफरेंस' दिया था. अगर आप कहें तो उनसे बात कर देखूं?"

महेश को तो कोई आपत्ति नहीं थी. पर मंजुला भूल गयी थी कि घर में एक सास भी है. और उसकी सास तो मंजुला की मां से भी पुराने विचारों की नारी है. मंजुला की सास को जब पता चला कि मंजुला रिसर्च शुरू करने वाली है तो वह फट पड़ी. "अरे हमारा भी तो एक जमाना था. घर की बहू घर से बाहर कदम रखती थी तो अपने पति के साथ. यहां तो नजारा ही उल्टा है. इतना ही पढ़ाई का शौक था तो बैठी रहती बाप के घर. शादी की इतनी क्या जल्दी थी..... अरे घर में कोई पोता खेले यह तो सोचा नहीं और बस ... पढ़ाई करेंगी मेम साहिब."

मंजुला जहर का घूंट पीती रही और सब सुनती रही. फिर उसकी सास का कुसूर भी क्या था? वह उन भारतीय संस्कारों को लेकर जी रही थीं जिनमें नारी के लिये अपने व्यक्तित्व को स्थापित करना एक बड़ा अपराध है.

मंजुला जब डा. नवीन चंद्र से मिली, तो उन्होंने बहुत प्रोत्साहित किया था, "तुमने ठीक ही सोचा है. इतनी पढ़ाई करने के बाद केवल घरेलू पत्नी बनकर रहो, यह तो कोई बात न हुई. आज की औरत केवल चूल्हे-चौके तक ही सीमित नहीं. पी.एच.डी. कर लोगी तो 'लेक्चररशिप' तो कहीं नहीं गयी."

डा. नवीन ने विषय भी स्वयं ही सुझाया.

मंजुला की सास अब महेश के कान भरने लगी. "अरे बेटा, देख पड़ोस में राजेंद्र और गणेश की शादियों को साल भी पूरा नहीं हुआ, बच्चों की किलकारियां घर में सुनाई देने लगी हैं. आस-पड़ोस की औरतें अब तो बातें बनाने लगी हैं. बहू को कह पढ़ाई छोड़े और गृहस्थी में रुचि ले." महेश के पौरुष पर सीधी चोट की थी मां ने. एक रात जब मंजुला नोट्स बना रही थी महेश झल्ला उठा, "यह क्या झंझट पाल लिया है तुमने. इतनी आसान नहीं है डाक्टरेट की पढ़ाई. फिर अगर तुमने पूरी कर भी ली तो क्या फर्क पड़ जायेगा. क्या मिल जायेगा तुम्हें? पति, घर, गाड़ी, इज्जत, यही सब होता है जिसकी चाह होती है एक औरत को."

"आप भी ऐसा सोचते हैं. आपको भी लगता है कि पढ़ाई बेकार की वस्तु है. कला के बिना यह जीवन कितना नीरस रह जाता है. सूक्ष्म भावनाओं से ही जीवन में रंग बहार आती है."

"यह आर्ट और कला से अधिक बेकार की वस्तु तो कोई है ही नहीं. जब भूख लगती है तो प्रेमचंद के उपन्यास भूख नहीं मिटाते, महादेवी और पंत की कविताओं का बिस्तर बनाकर सो नहीं सकते. कोई बात है कि मैं यहां बिस्तर में अकेला पड़ा हूं और तुम नोट्स बनाए जा रही हो."

मंजुला महेश का आशय समझ गयी थी. किताब बंद करके वह महेश के पौरुष को पूर्णता प्रदान करने के लिये आ गयी थी. अपने पति को वह यह नहीं समझा सकती थी कि पुरुष को पूर्णता प्रदान करने में स्वयं के अधूरे रह जाने का एहसास कितना पीड़ादायक है नारी के लिये. क्या उसे अपने व्यक्तित्व को पूर्ण बनाने का अधिकार नहीं.

नहीं, वह छोटी-छोटी बातों से विचलित नहीं होगी. और मंजुला नये उत्साह से अपनी पढ़ाई में जुट जाती. अब घर की जिम्मेदारियों के प्रति और सजग हो गयी थी ताकि उसके पति या सास को कोई शिकायत का मौका न मिले. पर नोट्स तैयार करके नियमित रूप से डा. नवीन को दे आती. मंजुला का उत्साह और लिखने की गति देखकर डा. नवीन

अच्छी पोशाक

चाऊ में एक आदमी रहता था जिसे बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनने का बहुत शौक था. कपड़ों में जरा-सी भी कमी होती तो वह संकोच करता और तब तक उसे चैन न मिलती जब तक वह कपड़े बदल न लेता.

एक दिन उसे कहीं जाना था. वह पूरे उत्साह में था. कपड़े पहनते समय उसे पता ही नहीं चला कि उन पर कीचड़ लगा है. आधे रास्ते में एक दोस्त ने उसे यह बात बतायी तो वह एकदम उदास हो गया. उसने मिट्टी तो रगड़ कर झाड़ दी पर दाग फिर भी बना रहा. दाग उसके दिमाग पर इस तरह हावी रहा कि वह एक कदम चलता था और दो दफा धब्बे को देखता था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी चकित थे.

"भई इतनी लगन और इतना उत्साह मैंने आज तक अपने किसी विद्यार्थी में नहीं देखा. और जिस गति से तुम लिख रही हो, मुझ में तो पढ़ने की उतनी गति है नहीं. देखो न पिछले सप्ताह जो नोट्स तुम दे गयी थीं, वो तो अभी देख भी नहीं पाया."

मंजुला को डा. नवीन के लापरवाही से काफी निराशा हुई. अपने क्षोभ को छिपाते हुए बोली, "सर, कोई बात नहीं. मैं आज के नोट्स भी छोड़े जा रही हूं. आप इकट्ठे देख लीजिएगा. पर मैं कुछ एक पाईंट्स आपसे डिसकस करना चाहती थी."

"मंजुला, देखो भई आज तो मेरा मूड नहीं है कुछ पढ़ने-पढ़ाने का. अगली बार आओगी तो ले लेंगे." और डा. नवीन ने सिगार सुलगा ली.

मंजुला को अधजले सिगार की गंध से बहुत नफरत थी. उसके धुएं से जैसे उसे मतली-सी आने को होती थी. पर मंजुला ने जो काम शुरू किया था उसे पूरा करना था. शोध पूरा करके अपनी आशाओं को मूर्तरूप देना चाहती थी. इसके लिये चंद घंटे सिगार का धुआं भी सह लेती थी.

"अच्छा, यह बताओ कि तुम्हारे पति ने पढ़ाई की इजाजत कैसे दे दी?" डा. नवीन मुस्कुरा रहे थे.

मंजुला उनकी मुस्कुराहट का रहस्य समझ नहीं पायी. कुछ अटकते हुये बोली, "मेरे पति काफी उदार विचारों के हैं सर."

"नहीं, वो बात नहीं. दरअसल अधिकतर पति सुंदर पत्नी को घर में बंद करके रखना चाहते हैं."

"नहीं सर, अब तो पुरुष के दृष्टिकोण में काफी अंतर आ गया है. और मेरे पति भी मेरी महत्वाकांक्षाओं की कद्र करते हैं." मंजुला ने विषय बदलते हुये कहा. उसे डा. नवीन की चुहल कुछ अच्छी नहीं लगी. वह उन्हें एक गंभीर एवं शालीन व्यक्ति समझती थी.

अगली बार एपांइटमेंट के बावजूद डा. नवीन घर पर नहीं मिले. उसे लगा कि वह दिन रात एक करके मेहनत कर रही है उसका कुछ लाभ नहीं. वह सारे नोट्स लिख भी डाले, जब तक डा. नवीन उन्हें देखकर सही न कर दें, उसका काम आगे नहीं बढ़ सकता.

मंजुला ने मन ही मन तय किया कि वह डा. नवीन से अनुरोध करेगी कि वह जांचने का काम साथ के साथ कर दें तो काम जल्दी पूरा हो जायेगा. यही सोचते हुए मंजुला डा. नवीन के घर एक बार फिर पहुंची. उसे देखकर खुशी हुई कि डा. नवीन घर पर ही थे और उसके नोट्स उनके सामने दीवान पर बिखरे पड़े थे.

मंजुला को काफी संतोष हुआ. पर साथ ही क्षोभ भी कि डा. नवीन ने केवल एक ही चैप्टर देखा है जबकि वह लगभग आठ-नौ चैप्टर लिख कर दे चुकी है. फिर भी उसका उत्साह कम नहीं हुआ. और वह नियमित रूप से अपना काम करती रही.

अंतिम चैप्टर के विषय में वह डा. नवीन से कुछ बातचीत करना चाहती थी. इसीलिये वह समय तय करके डा. नवीन के घर पहुंची थी. फोन पर भी डा. नवीन ने बताया था कि उन्होंने कई चैप्टर जांच लिये हैं. मंजुला को लगा कि अब उसके सपने साकार होने में अधिक समय नहीं लगेगा.

दरवाजा डा. नवीन ने ही खोला था. संभवतः घर पर और कोई नहीं था. डा. नवीन सदा की भांति काफी रंगीन मूड में थे. मुंह में पान था और हाथ में सिगार. शायद कुछ पढ़ रहे थे.

क्या यही डा. नवीन हैं. विश्वविद्यालय के वरिष्ठ व्याख्याता, साहित्य के मर्मज्ञ. हिंदी कविता व उपन्यासों पर अनेक समीक्षात्मक पुस्तकों के रचयिता. उनका बाह्य स्वरूप, उनके हावभाव, उनके व्यक्तित्व से बिल्कुल मेल नहीं खाते थे.

"बैठो मंजुला," उन्होंने दीवान की ओर इशारा किया. मंजुला की आंखें अपनी थीसिस के पन्ने ढूंढ रही थीं. पर आसपास बिखरी पुस्तकों में उसे अपने नोट्स दिखाई नहीं दिये.

"सर, आपने मेरे नोट्स देखे?"

डा. नवीन अलमारी से नोट्स निकालकर लाये और मंजुला के साथ ही दीवान पर बैठ गये.

"तुम्हारे हाथ बहुत सुंदर और कलात्मक हैं मंजुला. मैंने कहीं पढ़ा था कि जिनके हाथ पतले, लंबे व कलात्मक होते हैं उनका हस्त लेख भी बहुत सुंदर होता है. तुम्हारे नोट्स पढ़ते हुए मुझे यही ख्याल आया. तुम्हारा हस्तलेख भी बहुत सुंदर है."

मंजुला ने कुछ प्रतिक्रिया की आवश्यकता नहीं समझी.

"सर, आप अगर मेरे नोट्स जल्दी देख देते तो मेरा काम जल्दी हो जाता." मंजुला का स्वर विनम्र था.

"अच्छा यह बताओ कि हम अगर तुम्हारा काम जल्दी कर भी दें तो हमें क्या मिलने वाला है? आजकल के विद्यार्थी अपने गुरु की सेवा करना तो जानते ही नहीं." डा. नवीन ने शरारती मुस्कान से मंजुला की ओर देखा.

"ठीक कह रहा हूं ना? तुम हमें 'गुरु दक्षिणा' दो तो हम भी तुम्हारा काम जल्दी निपटा दें." और उन्होंने मंजुला के कंधे पर अपना हाथ रख दिया.

मंजुला उठ खड़ी हुई और उसने जलती हुई दृष्टि से डा. नवीन को देखा. वे अब भी टेढ़ी मुस्कान लिये उसकी ओर देख रहे थे. काम-वासना उनकी आंखों में स्पष्ट रूप से झलक रही थी. "अरे, बैठो भाई." उन्होंने मंजुला का हाथ पकड़कर दीवान पर बैठा लिया.

"हां, तो तुम हमारी दक्षिणा नहीं दोगी?" कहते-कहते डा. नवीन ने मंजुला को अपने आलिंगन में बांध लिया. अधजले सिगार और तंबाखू की तीखी गंध से मंजुला का सिर चकरा गया. सब कुछ इतनी जल्दी-जल्दी घटित हुआ कि मंजुला कुछ समझ नहीं पायी.

"यह क्या बदतमीजी है सर." डा. नवीन को एक ओर झटककर मंजुला उठ खड़ी हुई.

"भई कुछ पाने के लिये, कुछ तो देना भी पड़ता है.डाक्टरेट की उपाधि ऐसे ही तो नहीं मिल जाती."

मंजुला को अपने कानों पर यकीन नहीं हो रहा था. डा. नवीन का यह रूप आज ही उसके सामने आया था. उससे पहले भी कई लड़कियों ने डा. नवीन के साथ काम किया था. पर क्या डाक्टरेट की उपाधि के लिये उन्होंने भी इतनी कीमत चुकाई होगी. नहीं, नहीं. मंजुला को ऐसी उपाधि, ऐसी डिग्री की आवश्यकता नहीं जिसके लिये उसे अपना मान-सम्मान खोना पड़े. अपनी महत्वाकांक्षाओं के लिये वह इतनी बड़ी कीमत नहीं चुकायेगी. उसे ऐसे शिखर पर नहीं चढ़ना है जिसके नीचे भुरभुरी रेत हो और वह कभी भी ढह पड़े. उसे कीचड़ में नहीं धंसना है.

मंजुला जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरकर नीचे आ गयी. उसके हाथ-पैर अभी भी कांप रहे थे. आज वह बस की प्रतीक्षा नहीं करेगी. उसे लगा कि डा. नवीन अभी भी अपनी बाल्कनी में खड़े उसे ही देख रहे हैं. उनकी वह वासना से परिपूर्ण लोलुप दृष्टि जैसे पीछा कर रही हो. सड़क पर उड़ते हुए पत्ते, कागज जैसे उसकी अपनी ही थीसिस के पन्ने हों जो उड़-उड़कर उसके आसपास बिखर गये हों. □

चलते-चलते

एक आदमी अपनी बीवी को चश्मा लगवाने के लिए दुकान पर गया. डा. ने आंख का नंबर टेस्ट करने के लिए हिंदी चार्ट पर रोशनी डाली. तभी उसकी निगाह वृद्धा की नौ गज की साड़ी पर पड़ी. उसने सोचा इस युग में ऐसी साड़ी....जरूर ये अनपढ़ होगी. अपनी संतुष्टि के लिए डाक्टर ने व्यक्ति के कान में धीरे से पूछा.

इससे पहले कि व्यक्ति कोई जवाब दे. वृद्धा धारा प्रवाह अंग्रेजी में बोली, हां. मेरी हिंदी थोड़ी कमजोर है. मैं अंग्रेजी चार्ट को ही तरजीह दूंगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलवर की अंदलीब

बाला दुबे

रेत का मानसरोवर—राजस्थान.

पर इस भूरे वीराने के एक कोने में एक छोटा—सा चमन भी था... अलवर. और अलवर के दरबार में दो अंदलीब (बुलबुल) भी कूकती रहती थीं—— मुस्सी और मुद्दी. वे दोनों बहनें थीं. चचाजाद बहनें. महाराजा बख्तावर सिंह अपने मुंहलगे वकील अहमद बख्श खां से कहा करते थे:

"आवाज का घाव बहुत जानलेवा होता है अहमद बख्श.इस मुस्सी ने हमें अपनी इसी मीठी छुरी से इतना घायल कर दिया है कि हम नीमबिस्मिल हो गये हैं."

और उस दिन अलवर की वे दोनों अंदलीब दरबार को लुभाने सजधजकर आ बैठी थीं. इंदर का अखाड़ा—सा लग रहा था अलवर दरबार. अगरबत्तियों के धुएं सुरमई साया की तरह जगह—जगह टंग गये थे. केशर—कस्तूरी के जाम जब टकराते तो लगता जैसे शीशों के बने दिल खनक रहे हों. तभी साज छिड़ गये. वातावरण और भी नशीला बन गया. मुद्दी और मुस्सी ने अपनी झुकी नजरें उठायीं तो चारों तरफ एक खामोश कत्लेआम—सा हो गया. आज मुद्दी ने पहल की और टीपदार आवाज फेंकी....

"सलामत रहें दिल में घर करने वाले
इस उजड़े मकां में बसर करने वाले"

अहमद बख्श खां पर जैसे टोना कर दिया हो... वे मुद्दी को आंखों ही आंखों पीने लगे. शराब का नशा तो पहर-दो-पहर का होता है पर इश्क की शराब जिंदगी भर गालिब रहती है. महाराजा बख्तावर सिंह ने कनखियों से अपने वकील अहमद बख्श खां को देखा और मुस्कराये. खुदा खैर करे. आज शेख को मयखाना रास आ गया है शायद. उन्होंने ठीक ही सोचा था. अहमद बख्श खां की तबियत महक उठी थी.

उन दोनों बहनों के 'गजरे' के बाद वे कुम्हला गये जैसे गर्म लू के थपेड़े खाकर गुलाब अधमरा हो जाता है. उस रात वे दबे पांव मुद्दी की हवेली पहुंचे थे. पहले तो मुद्दी उन्हें देखकर चौंकी.

"अरे वकील साहब आप?"

"हां मैं. कल की गजल का खुमार अब तक बाकी है. और खुमार को तोड़ने का तरीका तजुर्बेकार शराबी यही बतलाते हैं कि ताजा घूंट तभी फिर से लिये जायें.मैं भी इस नुस्खे के तहत तुमसे एक और गजल सुनने आया हूं."

मुद्दी ने अपनी नजर की बिजली अहमद बख्श खां पर सिर से पांव तक गिरा दी. अहमद खां ने अधखुली आंखों से मुद्दी को देखा गोया के प्यार से नहा गये हों.

"जहे किस्मत, तशरीफ लाइये वकील साहब."

तब तक मुद्दी की बहन मुस्सी भी आ पहुंची. अहमद बख्श खां ही क्या पूरा अलवर जानता था कि मुस्सी महाराजा बख्तावर सिंह की मुंह लगायी डोमनी है. उन्होंने उसे बाकायदा अपनी दाश्ता (रखैल) कबूल किया था और 'गुलाबी हवेली' उसे दे दी थी. मुस्सी की आवाज में वजन था. वह जानती थी कि उसकी कोई भी बात महाराजा बख्तावर सिंह ओछी नहीं पड़ने देंगे. तभी तो वह कभी—कभी अच्छों से दो टूक बात करने में भी नहीं हिचकिचाती थी. फिर मुस्सी अलवर के वकील अहमद बख्श खां की साख भी जानती थी. सुबह का सूरज ये वकील अहमद बख्श खां — किस्मत के आसमान में तेजी से चढ़ते हुए. और फिर हाल ही में उन्होंने जो मदद फिरंगी जनरल लार्ड लेक को भरतपुर के खिलाफ दी थी. यह कोई छोटा—मोटा काम नहीं था. कुछ भी हो वह अंग्रेज लाट अहसान फरामोश नहीं था. हालांकि जनरल लेक ने अपने सब घोड़े खोल डाले पर जाटों का मिट्टी गारे का वह किला अटल खड़ा रहा. फिरंगी तोपों के उगले गोले दीवार हजम कर गयी हो जैसे. और हार कर लार्ड लेक को वापस जाना ही पड़ा. फिर भी अलवर के वकील अहमद बख्श खां का रसद पहुंचाना और भरसक मदद करना उसे याद रहा. लार्ड लेक ने ही सिफारिश की थी कि वकील अहमद बख्श खां को इनाम मिलना चाहिये. उन दिनों बात चल रही थी कि फिरंगी तलवार से एक इलाका तराशा जायेगा और उस नयी जागीर को अहमद बख्श खां को बतौर 'इनामे खैर ख्वाही' दिया जायेगा. इस अफवाह को खास-खास लोग ही जान पाये थे जिनमें अहमद बख्श खां के

अतीत के हादसों के कब्रगाह को कुरेदने में माहिर बाला दुबे के धारावाहिक आयोजनों — 'अनजानी इतिहास कथाएं' और 'गलियां जहां इतिहास कैद है' को 'सारिका' के पाठकों द्वारा बेहद सराहना मिली थी. इस अंक से हम प्रारंभ कर रहे हैं इन्हीं का एक नया स्तंभ 'अनजानी प्रेम कथाएं'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिक महाराजा बख्तावर सिंह भी थे. महाराजा बख्तावर सिंह के जरिये ही मुस्सी को पता लगा था कि वकील साहब के दिन फिरने वाले हैं. और आज यही उभरता सूरज उसकी बहन मुद्दी पर अपनी किरणें बिखेरने उसकी देहरी पर आ दमका है.

मुस्सी को देखकर पहले अहमद बख्श खां चौंके. वह जानते थे कि मुस्सी उनके मालिक की 'खूबसूरत कमजोरी' है. तभी मुस्सी मुस्करायी और बोली, "तशरीफ लाइये वकील साहब. आपके आने से हमारी झोंपड़ी जगमगा उठी."

थोड़ी ही देर में साज 'एक लौ' हो गये. एक बार फिर सुरों से शराब बरसने लगी. मुस्सी मुस्कराकर बोली, "आप तो कद्रशनास हैं वकील साहब.मुद्दी एक गजल छेड़ रही है जो पुर मतलब भी है और पुरमजाक भी. गौर फर्माइयेगा और एक एक शेर का जायजा लीजियेगा." मुद्दी ने संभल कर सुर छेड़ा और फिर गाने लगी,

"जो राहे इश्क में कदम रखें,
वो ह नशेबो फराज क्या जाने!"

इस शेर को सुनकर अहमद बख्श खां झनझना उठे. मुद्दी उन्हें चुनौती दे रही हो जैसे. तबले पर सम खत्म होते ही मुस्सी बोल उठी, "वाह-वाह, क्या शेर है. इश्क के नगीने की परख करने वाले जौहरी भी किस्मत से ही मिलते हैं."

अहमद बख्श मुस्कराये. अपने गले से मोतियों की लड़ उतारकर मुद्दी के सामने फेंक दी और उठ लिये. मुस्सी ताड़ गयी थी. तीर अपने निशाने पर लग चुका था.

महाराजा बख्तावर सिंह के पास सर झुकाये अहमद बख्श खां खड़े थे. महाराजा बोले, "इश्क कोई गुनाह नहीं अहमद बख्श...हां इश्क करके धोखा देना गुनाह है. खूब सोच समझ लो. अब तुम कुछ ही दिनों में बड़े आदमी बन जाओगे. रुतबे का नशा बड़ा खराब होता है, उतरता ही नहीं है कमबख्त."

अहमद बख्श खां बोले, "आलीजाह, मुद्दी की गजल का शेर मुझे याद है. जब इश्क की राह ही पकड़ ली फिर ऊंच-नीच क्या मानी रखते हैं."

महाराजा मुस्कराये, "शाबास वकील साहब, जिस दिन मुद्दी को अपने आंगन लाना मुझे उस रोज दावत पर बुलाना! मैं जरूर आऊंगा." फिर भाग्य की बयार चल पड़ी थी अहमद बख्श खां को सुख देने. फिरोजपुर झुर्का की नयी-नयी तराशी जागीर उन्हें फिरंगियों ने बख्शी थी और लार्ड लेक ने कहा था, "वेल अहमद बख्श खां, हम पच्चीस हजार सालाना का रैवेन्यू माफ करता, पर तुम को पचास सवार हमारे वास्ते हमेशा तैयार रखने होंगे." अहमद बख्श खां मान गये और तभी से वे नवाब फखुदिदौला अहमद बख्श खां बन गये. फिर उन्होंने अपने समकालीन सूबेदार अब्दल्ला बेग के भाई नसरूल्ला बेग से अपनी बहन की शादी कर दी. यही नहीं बाद में नवाब अहमद बख्श खां के छोटे भाई मिर्जा इलाही बख्श 'मारूफ' ने अपनी लड़की उमराव बेगम का विवाह सूबेदार अब्दुल्ला बेग के लड़के असद उल्लाह खां से कर दिया जो बाद में मिर्जा गालिब के नाम से विख्यात हुए.

अपने वचन के अनुसार अहमद बख्श खां ने बाकायदा मुद्दी का हाथ थामा और उसे अपने यहां ले आये. और जब वे नवाब बन गये तब उन्होंने मुदटी को एक नया नाम दिया....बहू खानम. बहू खानम को उन्होंने कांच के बर्तन की तरह सभाल कर रखा. वे जानते थे कि जरा-सी ठेस लगने पर शीशा चूर-चूर हो जाता है. उनके प्यार का इनाम भी कुदरत ने उन्हें दिया...एक बेटा जो शम्सुद्दीन खां के नाम से पुकारा गया. उन्होंने शम्सुद्दीन खां को गोद में लेते हुए मुद्दी से कहा था, "तुम्हारा ये बेटा ही मेरी जागीर का मालिक होगा." वैसे मुद्दी से इब्राहीम अली, नवाब बेगम और जहांगीरा बेगम भी पैदा हुए पर शम्सुद्दीन खां पर उनका प्यार झमझमाकर बरसता रहा.

फिर चार पैसे और बढ़ता हुआ रूतबा देखकर ही उन्हीं के बुजुर्ग और रिश्तेदारों ने नवाब अहमद बख्श खां को आ घेरा, "ठीक है तुमने अलवर की इस तवाइफ को अपनाया है. पर फिर भी हमारी इल्तजा है कि एक शादी 'नजीबुल तरफैन' (दोनों पक्ष एक ही प्रतिष्ठा के हों) से भी होना लाजिमी है."

नवाब अहमद बख्श खां पशोपेश में पड़ गये. तब मुद्दी ही उनकी मुश्किल देखकर पास आकर बोली थी:

"आपके रिश्तेदार ठीक कहते हैं. मैं आपको अपनी तरफ से इजाजत देती हूं. मुझे मालूम है कि आप मुझे धोखा नहीं देंगे!"

फिर सीने पर पत्थर रखकर ही नवाब अहमद बख्श खां ने मुद्दी की बात मानी थी.

"मुद्दी, मैं कुराने पाक की कसम खाता हूं कि तुम्हारा बेटा ही जागीर का मालिक रहेगा!"

और फिर मुगल नियाज मुहम्मद बेग की बेटी कूफू बेगम को ब्याह कर वे अपने घर ले आये. कूफू बेगम से भी चार संतानें हुईं...अमीनुद्दीन अहमद, जियाउद्दीन अहमद, माहे रुख बेगम और बादशाह बेगम.

पर उनका बड़ा बेटा शमसुद्दीन अहमद खां ही फिरोजपुर झुर्का का उत्तराधिकारी बना. और जब सौतेले भाइयों में बिगड़ने लगी तब उन्होंने अपने जीते जी जागीर का एक परगना लोहारू कूफू बेगम के लड़कों को दे दिया पर शेष जागीर शम्सुद्दीन अहमद खां के ही पास रही.

मुद्दी ने डबडबाई आंखों से अहमद बख्श खां से कहा था, "जब तलक आप जैसे अहले वफा इस दुनिया में रहेंगे, इश्क की परवरिश होती रहेगी."

नवाब अहमद बख्श खां ने मुद्दी को सीने से लगा लिया. □

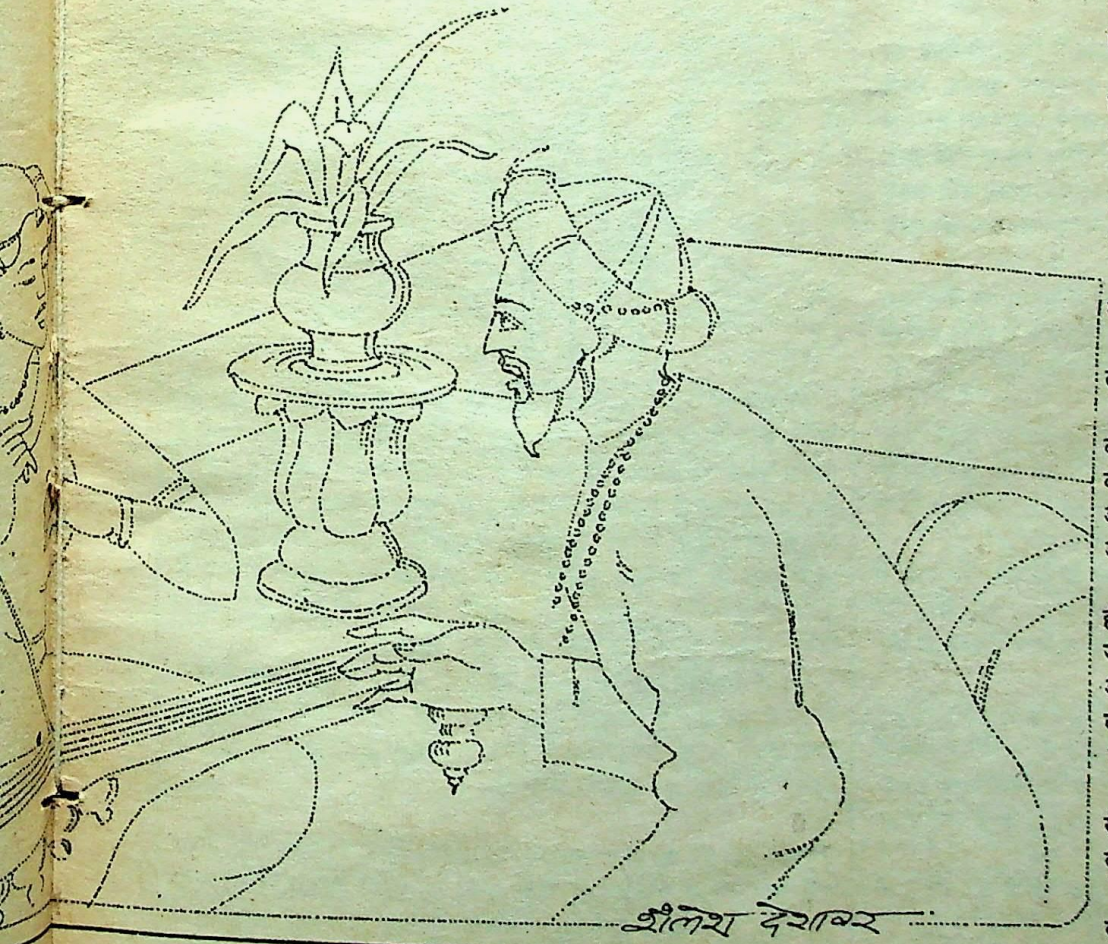

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : बलिया : सन् 1953
संप्रति : पत्रकारिता और कथा-लेखन.रूढ़ियों, विसंगतियों, जटिलताओं और पाखंडों पर प्रहार करना ही विनय अपने लेखन का उद्देश्य बताते हैं.
संपर्क : ए 138, किदवई नगर, नई दिल्ली - 23

विनय बिहारी सिंह

नींद टूट गयी

सुदूर आदिवासियों की बस्ती में बैठे शकर और भिखारी सिंह आपस में बातें कर रहे हैं. अभी-अभी उन्होंने राम प्यारे शुक्ल, आई.ए.एस. को एक पत्र लिखकर अपने एक साथी के हाथों भेजा है. मन में अब कोई उलझन नहीं है. क्या सारे आई.ए.एस. आफिसर एक जैसे होते हैं?...भिखारी सिंह को अफसोस है कि उनकी नींद पहले क्यों नहीं टूटी? और शंकर को ही क्या कम अफसोस है?

शंकर और भिखारी सिंह पिछली बातें भूल जाना चाहते हैं लेकिन ऐसी बातें क्या इतनी जल्दी भूलती हैं? शुरू से लेकर अब तक की एक-एक घटना दिमाग के तहखाने में जीवित है...

राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस. को आश्चर्य हो रहा है. क्या कस्बे में अब कोई भी लड़का बेरोजगार नहीं है?.....कहां गयी नौकरी मांगने वालों की भीड़?

पूरे कस्बे में शोर हो गया कि कलक्टर साहब ने भिखारी सिंह का कान फूंककर उन्हें चेला बना लिया. कलक्टर साहब यानी राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस..शुक्लजी के कान फूंकने का मतलब है गुरमंत्र बताना. गुरुमंत्र के शब्दों को भिखारी सिंह पकड़ नहीं पाए. कस्बे का कोई चेला बननेवाला व्यक्ति किसी भी गुरु के शब्द नहीं पकड़ पाता. गुरुजी कुछ बुदबुदाते-फुसफुसाते हैं और शिष्यत्व ग्रहण का काम हो जाता है.

वैसे तो शुक्लजी के पिताजी एक डिग्री कालेज में अध्यापक थे लेकिन साथ ही पुरोहिती भी करते थे. लोगों का कान फूंककर वे चेला बनाया करते थे...यह भी बताया करते थे कि किसी विद्वान का शिष्य बनने पर आदमी घोर विपत्तियों में कभी नहीं पड़ता.

उनके एकमात्र पुत्र राम प्यारे शुक्ल के कलक्टर बनने और अध्यापन से उनके रिटायर होने की घटना एक साथ हुई. रिटायर होने के बाद भी वे चूनेवाली सुर्ती खाते हुए पुरोहिती करते रहे. उनके मरने के बाद पुरोहिती की परंपरा ही खत्म हो गई उनके परिवार से.

राम प्यारे शुक्ल शुरू से ही पुरोहिती को घृणा की दृष्टि से देखते थे. वे आई.ए.एस. बनना चाहते थे. आई.ए.एस. बनने के बाद क्या चेलों की कमी रहती है? पांव पूजने वाले पुरोहिती...और आखिर वे बन ही गये आई.ए.एस.

अपने जिले से दूर, प्रदेश के एक छोर पर बसे जिले के वे कलक्टर हुए तो एक हल्की-सी समस्या उनके सामने आ खड़ी हुई थी. उनके घर-खेत की देखभाल कौन करेगा? मां मर चुकी है. पिता के मरने के बाद उनके चेले अब मुफ्त का बेगार नहीं करते हैं. फिर? कोई न कोई उपाय तो करना ही होगा. भिखारी सिंह कैसे आदमी हैं?....गुड.....

भिखारी सिंह ठहरे नपुंसक आदमी. आप चौंक रहे हैं न? पर हैं वे नामर्द ही. बचपन से ही हावभाव स्त्रैण. उनकी शादी नहीं हुई.

दो दिन की आयी बहुरिया (बहू) भी उनके सामने खुलकर बातचीत करती है. ठठाकर हंसती है. जिस घर की बहुरिया बेहद उदास रहती है, प्रयास करने पर भी उसकी उदासी नहीं टूटती, उस घर के लोग भिखारी सिंह को बुलाते हैं. भिखारी सिंह सीधे बहुरिया के कमरे में घुस जाते हैं. घर के परदा प्रथा के घोर हिमायती पुरुषों को कोई ऐतराज नहीं होता. और कुछ ही देर बाद बहुरिया की खिलखिलाहट सुनाई पड़ती है. बहुरिया उस दिन से उदास नहीं दिखती. तब घर की बड़ी-बड़ी औरतें उनसे आग्रह करती हैं, 'कल भी जरूर आइएगा!'

पर वे मेहनती आदमी भी हैं. कोई भी मौसम हो जब खेत में काम करने में जुट जाते हैं तो हट्टा-कट्टा किसान भी उनका साथ नहीं दे पाता. लोग कहते हैं कि ऊपर वाले ने नपुंसक बनाया है तो बदले में लोहे का शरीर भी दिया है भिखारी सिंह को.

यही देखकर कलक्टर साहब ने भिखारी सिंह का कान फूंक दिया. पूरा कस्बा एकबारगी चौंक गया. कलक्टर साहब ने तो कभी ऐसा नहीं किया था! पिता के मरने के सात साल बाद उन्हें पहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार किसी को चेला बनाने की बात कैसे सूझी? और वह भी भिखारी सिंह जैसे नामर्द को चेला बनाया! क्या कोई सद्‌गृहस्थ उन्हें नहीं मिला?

बड़ी तत्परता से भिखारी सिंह उनके खेतों की देखभाल करने लगे. कलक्टर साहब ने आश्वासन दिया है कि उनके भांजे शंकर को वे नौकरी दे देंगे. भिखारी सिंह की इज्जत एकाएक काफी बढ़ गयी.भिखारी सिंह भीतर से बहुत आनंदित हैं.

पूरा जिला कलक्टर साहब का चेला बनने के लिए आतुर है. सबके घर में कम से कम एक बेरोजगार बैठा है. कलक्टर साहब चेला बनाने की सिफारिश सुनते-सुनते तंग आ गए हैं. और एक दिन कलक्टर साहब ने ऐलान किया कि पिताजी ने मरते वक्त हिदायत दी थी कि एक आदमी से ज्यादा चेला बनाओगे तो तुम्हारा सत्यानाश हो जायेगा.

कस्बे के सिन्हाजी बड़े रोचक आदमी हैं. वे रूस और अमरीका को गाली देने में नहीं हिचकते. कलक्टर साहब को वे कैसे छोड़ दें? बोले, "राम हो..... राम हो..... देखा कलक्टर की चालाकी! मरे हुए पिता का वास्ता देकर झूठ बोल रहा है."

पांच साल बाद अचानक दो घटनाएं एक साथ घटीं. कलक्टर साहब सचिवालय में संयुक्त सचिव हो गए और इधर भिखारी सिंह को हैजा हो गया.

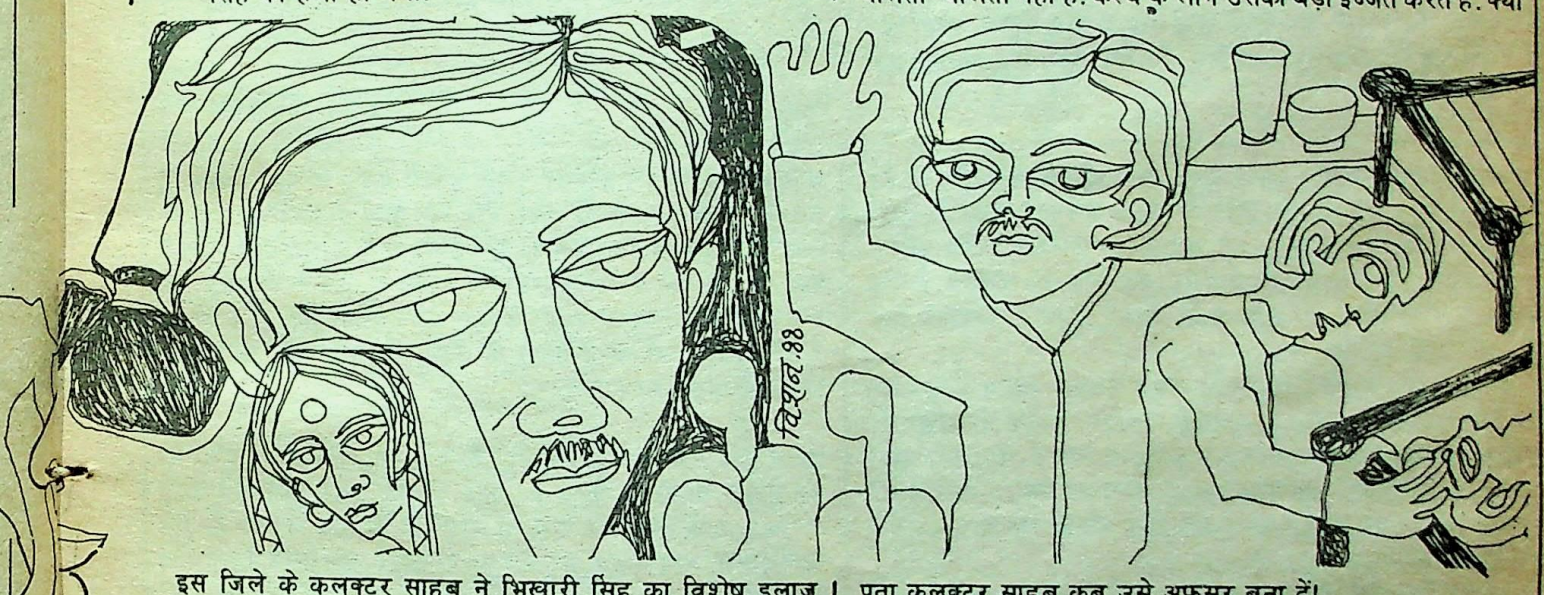

इस जिले के कलक्टर साहब ने भिखारी सिंह का विशेष इलाज कराया. यह कलक्टर साहब संयुक्त सचिव राम प्यारे शुक्ल के सहपाठी हैं. डाक्टर और नर्स भिखारी सिंह के इलाज के लिए दौड़ पड़े.अस्पताल के मरीज पूछने लगे, "कौन वी.आई.पी. आ गया इलाज के लिए हो भइया?" जवाब मिलता, "कलक्टर राम प्यारे शुक्ल की प्रापर्टी देखने वाला मैनेजर है."

मैनेजर! सुनकर भिखारी सिंह गदगद हो जाते. उनके जैसा निरक्षर आदमी मैनेजर! आधी बीमारी तो इस सम्मान के कारण ही दूर हो गयी. पर इस सेवा-सुश्रुषा के बावजूद उनके भीतर एक टीस उठती – ईश्वर ने उन्हें कैसा दंड दिया नामर्द बना कर! ....पत्नी होती, बच्चे होते तो वे हृदय से सेवा करते. पत्नी का स्पर्श उन्हें और जल्दी ठीक कर देता. अस्पताल की तामझाम की सेवा कहीं गहरे खोखली लगती है.

अस्पताल से स्वस्थ होकर निकले तो जिले के कलक्टर जैन साहब ने उन्हें चाय की 'दावत' दी. पूरे कस्बे में शोर हो गया – भिखारी सिंह ने कलक्टर जैन साहब के साथ चाय पी.

ठीक होकर भिखारी सिंह जब अपने कस्बे में आये तो उसके एक महीने बाद तक कस्बे के लोग उनकी तबियत का हाल पूछते रहे. भिखारी सिंह मन ही मन तय कर चुके थे कि अपने भांजे शंकर

नये हस्ताक्षर

किसी भी उम्र और वर्ग के ऐसे रचनाकारों के लिए यह स्तंभ प्रारंभ किया जा रहा है जो स्तरीय लेखन के बावजूद अब तक किसी बड़ी पत्रिका में प्रकाशित नहीं हो सके हैं.

को वे अपने साथ रहने के लिए बुला लेंगे. अकेले रहना ठीक नहीं. इस शरीर का क्या ठिकाना! शंकर भी तो पढ़-लिखकर अपने घर बेकार ही बैठा है!

शंकर उनके पास आ गया है. कस्बे के लोग अचरज में हैं. उसकी आंखें किसी नशीली खुमारी में डूबी रहती हैं. सात साल की लंबी बेरोजगारी ने उसे तनिक गंभीर बना दिया है. किसी से कुछ बोलता-चालता नहीं है. कस्बे के लोग उसकी बड़ी इज्जत करते हैं. क्या पता कलक्टर साहब कब उसे अफसर बना दें!

हालांकि शंकर, भिखारी सिंह का कुछ खास ख्याल नहीं रखता फिर भी वे निश्चिंत हैं. शंकर का आ जाना ही उनके लिए बहुत बड़ा संबल है.

शंकर का सिगरेट का बिल अधिक हो गया है. मुख्य सड़क पर स्थित कबीला साहू की दुकान से होकर वह अब आना-जाना नहीं चाहता. कबीला साहू उसे जब देखता है, रोक देता है, "शंकर बाबू, आप हिसाब कब चुकता करेंगे?" तंग आकर उसने मुख्य सड़क से आना-जाना छोड़ दिया है. कबीला साहू भिखारी सिंह से पैसे की बात कहना चाहता है लेकिन उनसे कहने की हिम्मत नहीं होती. भिखारी सिंह अब 'मनीजर बाबू' हैं. ...शंकर की तरह छोकरे नहीं.

राम प्यारे शुक्ल, आई.ए.एस., एक दिन अचानक नियुक्ति सचिव बना दिए गए. पहले हर चार महीने बाद वे अपने घर-खेत का हाल जानने अपने कस्बे में आ जाते थे. लेकिन अब मुख्यमंत्री फुरसत नहीं देते. राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस. का मोहभंग होने लगा घर-खेत से. क्या मिलता है इन खेतों से? ....दिस नानसेंस...फार्मिंग. दूसरे जब घर जाओ तो नौकरी मांगने वालों की अजहद भीड़ का सामना करो. पैतृक संपत्ति की कोरी भावुकता....नहीं...सब बेकार की बातें हैं.

उन्होंने अपने सारे खेत बेच दिये. कस्बे के लोग एक बार फिर भौंचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सऊदी अरब की लोक कथा

अरब का बीरबल अबू

किसी अमीर के यहां गोश्त पक रहा था. इतनी खुशबू उठ रही थी कि गली गमक उठी थी. एक भिखारी उधर से जा रहा था. गोश्त की एक बोटी पा जाने की उम्मीद से वह दरवाजे के पास बैठ गया. घंटों बैठा रहा, पर किसी ने उसे कुछ न दिया. खुशबू से ही पेट भर कर वह चला गया.

दूसरे दिन भिखारी ने अमीर से कहा, "हुजूर, कल के लिए शुक्रिया. आपने मुझे यहां से भगाया नहीं, इससे मेरा पेट भर गया. क्या खुशबू थी! वाह वाह!"

अमीर बोला, "अच्छा तो तूने मेरे खाने का जायका खराब किया था? मैं भी कहूं कि खाना बेस्वाद क्यों हो गया है. सारी खुशबू तो तूने चुरा ली थी."

अमीर ने राजा के यहां फरियाद की. भिखारी को पकड़ बुलाया गया. उस पर खुशबू चुराने का जुर्माना किया गया—बारह चांदी के रुपये.

भिखारी के पास एक पैसा न था. उसने एक दिन की मोहलत मांगी, मिल गयी. वह दौड़ा-दौड़ा अबू के पास पहुंचा. सारी बात सुन अबू ने उसे बारह रुपये दिए और दूसरे दिन राजा के पास जाने को कहा.

दूसरे दिन भिखारी ने दरबार में जाकर कहा, "मैं रुपये ले आया हूं."

अमीर ने कहा, "लाओ."

भिखारी ने पत्थर पर एक रुपया गिराया, "टन!" और फिर उसे वापस अपनी झोली में डाल लिया. इसी तरह उसने एक-एक कर बारहों रुपये पत्थर पर टन-टन की आवाज के साथ गिराये और फिर अपनी झोली में वापस डाल लिए.

अमीर बोला, "रुपये लाओ."

इस पर अबू ने वकालत की, "आपने रुपये की 'टन टन' आवाज सुनी?"

अमीर बोला, "सुनी."

"तो आपको आपके हिस्से के रुपये मिल गये. अगर कोई आदमी सूंघ कर खाना बेस्वाद कर सकता है तो उसका जुर्माना भी 'टन टन' की आवाज से चुकाया जा सकता है."

दरबारियों ने तर्क को ठीक पाया और भिखारी को छोड़ दिया गया. □

अनुराधा शुक्ला

हो गए. तो क्या कलक्टर साहब अपनी जन्म भूमि से नाता तोड़ रहे है? (कस्बे के लोग अब भी राम प्यारे शुक्ल को कलक्टर साहब ही कहते हैं...और शायद हमेशा कहेंगे.) ये बातें सुनकर कलक्टर साहब मुस्करा भर देते हैं...उनकी मुस्कराहट पता नहीं क्या-क्या कह जाती है. है कोई कस्बे में मुस्कराहटों की भाषा पढ़ने वाला?....शायद भिखारी सिंह हैं...और शायद शंकर भी.

भिखारी सिंह गमगीन हो चले हैं. अब वे कलक्टर साहब के सिर्फ घर की देखभाल करेंगे, उसमें दिया-बाती जलाएंगे. वे जब भी शंकर की नौकरी की बात करते कलक्टर साहब झुंझला जाते थे. वे उनका 'कान फूंकने' का वास्ता देते. आखिर कलक्टर साहब फट पड़े, "चेला माने? ....क्या नाक में दम करने के लिए आप चेला बने हैं. क्या आप चाहते हैं कि मैं आपको शाप दे दूं....?"

सुनकर भिखारी सिंह का हृदय धक्क से हो गया. शाप! नहीं. अब वे शंकर की नौकरी के लिए नहीं कहेंगे. शंकर इसी बात को लेकर उनसे मजाक करता है अब.

कलक्टर साहब पहले चिट्ठी भेजकर भिखारी सिंह का हालचाल पूछते थे. अब वे चिट्ठी भी नहीं भेजते. लेकिन गांव के लोगों से वे झूठ बोलते हैं, "कलक्टर साहब गुरु जी, अब पहलेसे ज्यादा ध्यान रखते हैं मुझ पर."

गांव के लोग पूछते हैं, "तो इतना ही ध्यान रखते हैं तो शंकर की नौकरी क्यों नहीं लगा देते हैं."

भिखारी सिंह का जवाब होता है, "उसकी कुंडली के ग्रह अच्छे नहीं हैं. कलक्टर साहब गुरु जी ने बताया है."

गांव के लोग तब चुप हो जाते हैं.

शंकर आदिवासियों के इलाके में एक स्कूल में अध्यापक हो गया. उस स्कूल का मैनेजर आदिवासी है. शंकर के किसी दोस्त का पिता. वह भिखारी सिंह को भी वहीं ले गया है. आदिवासियों की बस्ती में धीरे-धीरे शंकर और भिखारी सिंह घुल मिल गए हैं. दोनों को बेहद अफसोस है कि उन्होंने अपनी जिंदगी इसी तरह शुरू क्यों नहीं की. आदिवासियों का पूरा इलाका उनकी इज्जत करता है. और शंकर को लग रहा है कि वह नौकरी, सुख, दुख और पीड़ा से ऊपर उठ चुका है. भिखारी सिंह को अपने कस्बे की औरतें याद आती हैं तो वे बीच-बीच में वहां भी चले जाते हैं. लेकिन रहना वे शंकर के साथ ही चाहते हैं. इस शरीर का क्या ठिकाना! शंकर के पास अगर उनकी मृत्यु होगी तो वह उनकी 'मिट्टी' को चील-कौवों के नोंचने के लिए नहीं छोड़ देगा. बाकायदा अंतिम संस्कार करेगा.

इन दिनों राम प्यारे शुक्ल अपने कस्बे में आए हुए हैं. वे अपना घर भी बेचना चाहते हैं. कस्बे का कोई आदमी उनके पास नहीं जाना चाहता. वे लोगों को पास भी बुलाते हैं तो लोग कतराते हैं. राम प्यारे शुक्ल, आई.ए.एस. को आश्चर्य हो रहा है. क्या कस्बे में अब कोई भी लड़का बेरोजगार नहीं है? ...कहां गयी नौकरी मांगने वालों की भीड़? वे शंकर और भिखारी सिंह को बुलाने के लिए बार-बार अपनी गाड़ी आदिवासी इलाके में भेज रहे हैं. हर बार ड्राइवर यही आकर बताता है, "वे दोनों कहीं गये हुए हैं सर!"

और हर बार उनका एक ही आदेश होता है, "खोजो कहां हैं...पता लगाओ...कहना कि तुम्हारे गुरुजी बुला रहे हैं..."

अपने कस्बे के लोगों पर कलक्टर साहब मन ही मन भन्ना रहे हैं. पिताजी ठीक ही करते थे. जादू, टोना और प्रेत-बाधा के भय से ये कस्बे के लोग कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं. मरते दम तक पिताजी ने इन्हें भयभीत रखा. पर मैं क्या करूं? कस्बे में कोई हलचल नहीं है. जैसे वे एक वरिष्ठ आई.ए.एस. अफसर नहीं, भेड़-बकरी हों. मैं इन्हें नौकरियां दे देता तब क्या ये मेरे सामने हाथ जोड़े रहते?

अचानक एक आदिवासी प्रकट हुआ और शंकर के हाथ की लिखी चिट्ठी उन्हें दे गया. लिखा था, "आप में अब हमारी कोई रुचि नहीं है. आप बार-बार ड्राइवर न भेजें." नीचे शंकर का हस्ताक्षर और भिखारी सिंह के अंगूठे का निशान था. ठीक उसी समय राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस. को लगा कि मकान का पिछवाड़ा भरभरा कर गिर पड़ा है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी आंखें

ज्योतिवाला

आरती अपने कमरे के बाहर बरामदे में बैठी हुई अभी-अभी बनाये अपने चित्र को पूरा करके देर तक निहारती रही, फिर वह खिलखिलाती हुई रसोई में पहुंची और मम्मी के सामने अपना बनाया चित्र रख दिया. मम्मी ने देखकर आश्चर्य से कहा, "अरे यह क्या है, किसका चित्र बनाया है?"

आरती हंसते हुए मम्मी से कहने लगी, "यह तो मैं भी नहीं जानती कि कौन है, किसका चित्र है. यह तो मेरी कल्पना है, मेरा सपना है." मम्मी उसकी बात पर हंस दी और हल्के से गाल पर थपकी देते हुए बोली, "बिटिया, तूने अपनी दवाईयां खा लीं?"

आरती एकदम गंभीर हो गयी और मम्मी से बोली, "आप मेरी दवाईयों की इस तरह फिक्र क्यों करती हैं. आखिर आप इनके सहारे मुझे कब तक अपने पास रख सकती हैं. आखिर एक दिन तो सब जाते हैं, और मैं भी इसी तरह चली जाऊंगी." इसके आगे वह कुछ नहीं कह पाई, क्योंकि मम्मी ने आंखों में आंसू भरकर उसके मुंह पर हाथ रख दिया. उसकी आंखों में भी आंसू झिलमिलाने लगे.

आरती ने हताश मम्मी की आंखों को पोंछा, और ढाढस बंधाते हुए कहने लगी, "अरे मम्मी, आप तो रूठ गयीं, अरे बाबा आगे से कभी ऐसी बात नहीं कहूंगी." और आरती ने बातों का रुख बदल दिया फिर हंसती चहकती हुई बोली, "मम्मी आज क्या बनाया है खाने में?"

मम्मी ने गहरी सांस लेते हुये कहा, "तू क्या खायेगी?" आरती मम्मी का आशय समझ गयी और जल्दी से बोली, "मुझे सेब की खीर बहुत अच्छी लगती है. आज आप वही बना दीजिये. मैं भी आज आपके साथ काम में मदद कर देती हूं. आप अकेली कितनी थक जाती होंगी, है न मम्मी?"

मम्मी उसकी ओर विस्मित नेत्रों से देखते हुये बोली, "तुझे क्या हो गया है आरती, तू कैसी बहकी-बहकी बातें कर रही है?" आरती मम्मी की ओर देखकर मुस्कुराने लगी मगर उसने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया.

अस्पताल में आरती बेड पर लेटी हुई थी. उसे घेरे हुये डाक्टर मंडली खड़ी हुई थी. आरती की आंखें बंद थीं और उसका खिला सलोना-सा चेहरा उसके सौम्य नटखट स्वभाव का सूचक बना हुआ, शांत नीरस वातावरण को चीर रहा था. पास में खड़ी उसकी मम्मी उसे अपलक निहार रही थीं.

डाक्टर मंडली निरीक्षण करते हुए आपस में विचार-विमर्श कर रही थी. तभी नर्स ब्लड रिपोर्ट लेकर आयी और सर्जन के हाथ में थमा दी. सर्जन ने रिपोर्ट पढ़ी और चुपचाप वार्ड से बाहर निकल गये. अचानक आरती ने आंखें खोल दीं और हंसते हुये सभी को देखने लगी. फिर मम्मी की ओर कृतज्ञता पूर्वक देखते हुये कहने लगी, "मम्मी मेरे जाने के बाद आप मेरी कोई चीज जो दूसरों के काम आ सके जरूर ही दे देना. जिससे मेरी आत्मा को शांति पहुंचेगी."

आरती नहीं, अस्पताल से उसका मृत शरीर ही बाहर आया. आरती के मम्मी-पापा ने उसकी अंतिम इच्छा के अनुरूप उसकी आंखें अस्पताल को समर्पित कर दीं.

कुछ दिन बाद डा. खन्ना से अमित बोला जिसे आरती के नेत्रदान की बदौलत दुनिया देखने का सौभाग्य मिला था, "डाक्टर साहब, उस हमदर्द का नाम बता दीजिए, जिसने मेरे जीवन को प्रकाशवान कर दिया है."

डाक्टर के लाख बार मना करने पर भी वह जिद पर अड़ा रहा, अपने जीवन को रौशन करने वाले शख्स के बारे में जानने के लिये. आखिर डाक्टर साहब को उसकी जिद के आगे झुकना पड़ा और उसके घर का पता बता दिया.

अमित उस पते को खोजता हुआ आरती के घर पहुंच गया और दरवाजा खुलने पर वह जैसे ही ड्राइंग रूम में गया कि सामने दीवार पर टंगी पेंटिंग में अपनी ही तस्वीर देखकर ठिठक गया. उसने अपने बारे में और डाक्टर खन्ना के बारे में बताया. फिर आरती के पिता से आग्रह किया कि आप उनके बारे में बताइये जिन्होंने मुझे रोशनी दी है. आरती की मम्मी भी तब तक वहां आ गयी थीं. वे आंखों में आंसू भरकर कहने लगीं कि तुम्हें रोशनी देने वाली पहले ही चिर निद्रा में सो गयी है.

अमित ने खेद प्रकट करते हुए माफी मांगी और बात को बदलते हुए दीवार पर टंगी अपनी तस्वीर के बारे में पूछा.

मम्मी उसके कहने का आशय समझ गयीं, उन्होंने बताया, "बेटा, आरती का सपना सच हो गया. तुम्हारे से मिलती हुई यह तस्वीर कहीं से आयी नहीं थी, यह उसी ने बनायी थी. हां उसी ने जिसकी आंखों से तुम दुनिया और यह तस्वीर देख रहे हो."

सुनकर अमित सन्न रह गया.

विधि का यह कैसा विधान था...वे तीनों ही नहीं जान पाये... □

■ द्वारा : श्री वी.के. जैन, बी.डी.ओ., खिलचीपुर, जिला-राजगढ़ ब्यौबरा (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियां : 'शापित लोक', 'जिलाधीश की वापसी', 'ऊंचाइयों का ईश्वर', 'राह के पत्थर', 'एहसासों की शाम.'
संप्रति : निदेशक, राजभाषा विभाग पटना.

भगवतीशरण मिश्र

पवन पुत्र

हनुमान के जीवन पर आधारित आत्मकथात्मक उपन्यास का एक और अंश...

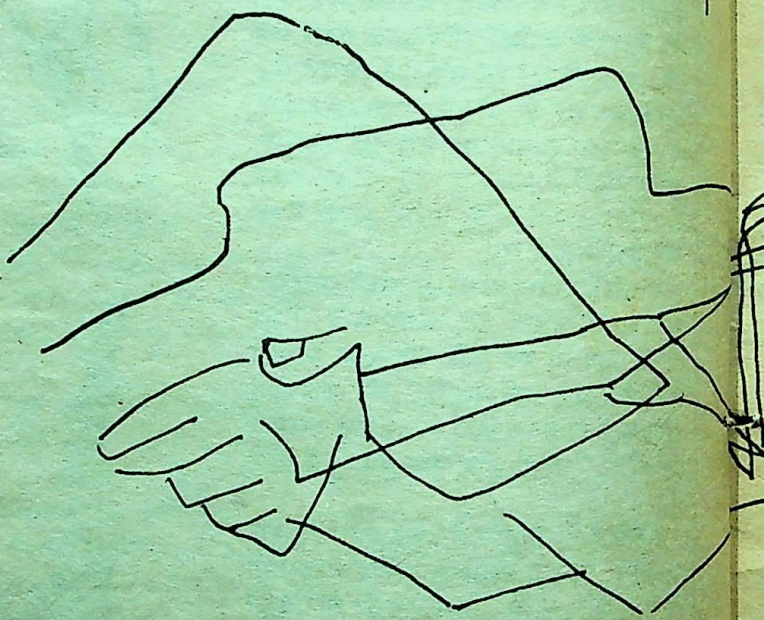

हनुमान तुम लंका से लौटे, बोलो वहां की क्या कथा है?

वहां की कथा (हाल) क्या बताऊं, वहां तो एक ही कथा है.

कौन-सी?

अब कह ही देता हूं....

वहां न तो साज-श्रृंगार की कथा है न खेल कूद की. न गीत-वादन की कथा है न मद-मत्त हाथियों और घोड़ों की. धनुष-वाण की भी वहां कोई कथा नहीं है. राक्षस-राज रावण के नगर में तो बस आपके भय से भागने की ही कथा है. स्वप्न में भी वहां कोई अन्य कथा है ही नहीं.

का श्रृंगार कथा, कुतूहल कथा गीतादि विद्या कथा. मादृयत्कुम्भी कथा कुतूहल कथा कोदंड दीक्षा कथा एकैवास्ति मिथः पलायन कथा त्वद्भीत. रक्षः पतेर्देव, श्री रघुनाथ तस्य नगरे स्वप्नेऽपि नान्या कथा.

रे अंगद! तू क्यों बहकी-बहकी बातें कर रहा है? मेरे प्रताप का तुझे पता नहीं है क्या? तो सुन! वर्षा का अधिपति इंद्र मेरे यहां पुष्प-चयन करने वाले माली का काम करता है. प्रकाश का अधिष्ठाता सूर्य मेरे दरवाजे पर पहरा देता है. शीतलता-दायक शशि मेरे लिए छाता लगाता है. पवन और वरुण मेरे घर-आंगन की धुलाई-सफाई करते हैं और स्वयं अग्नि मेरे यहां रसोइया बना बैठा है. क्या वह सब कुछ तुझे दिखाई नहीं पड़ता?

है मथिली! यह सुवर्ण (अच्छे रंग रूप) की अंगूठी, यह सुवर्ण (अच्छे अक्षरों वाली-रामानाथ के अक्षर) की अंगूठी, यह सुवर्ण (अच्छी जाति) की अंगूठी, यह सुवर्ण (स्वर्ण) निर्मित अंगूठी, राम ने तुम्हारे लिए ही भेजी है.

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथली,
प्रेषित रामचंद्रेण सुवर्णस्यांगुलीयकम्.

आपके धैर्य की परीक्षा तो नहीं हो गई? आप कहिएगा मैं कहां-कहां की ले बैठा. कभी इस डाल पर तो कभी उस डाल पर. ठीक अपने नाम से अनुरूप. नहीं? अरे नहीं हुआ बंदर तो क्या? नाम तो कपि पड़ा ही रहा न? तो छलांग लगाने की कला में तो दक्ष होना ही चाहिए.

नहीं, यह बात नहीं, अरे ये तो कुछ उदाहरण थे हन्नूमन्नाटक के साहित्य-सौष्ठव के. कैसे लगे आपको? क्या वर्णन-शैली है? कैसे भाव? कैसे अलंकार? कैसा कथोपकथन?

ठीक ही हन्नूमन्नाटक एक बेजोड़ ग्रंथ है. संस्कृत के इस आदि-नाटक को जितनी बार पढ़ा जाये उतनी ही बार नये भावोन्मेष होते हैं. हर बार एक नए रस की अनुभूति होती है. ठीक इसी तरह जैसे तुलसी के मानस को पढ़कर मन हर बार आनंद के नये स्रोत से साक्षात्कार करता है.

आप कहिएगा मैं भावावेश में बहता जा रहा हूं. इस ग्रंथ की प्रशंसा में कुछ उठा ही नहीं रखना चाहता. आखिर मेरे द्वारा रचित जो ठहरा यह? क्यों?

अरे यही तो रोना था. लोग-भक्ति-भाव में आ कर कौन-कौन से अनर्थ नहीं कर बैठते? कभी बाल्मीकि-रामायण की तरह एक पूरी रामायण मेरे द्वारा रचवा देते हैं तो कभी तुलसी की पंक्तियों को मेरी पंक्तियां कह बैठते हैं. और यहां तो बड़े अकाट्य तर्क दिये जाते हैं. लोग कहते हैं यह नाटक तो हनुमान पर है नहीं, यह तो राम-कथा है. हनुमान का उल्लेख तो प्रसंग-वश ही आया है, तो फिर इसका नाम हन्नूमन्नाटक क्यों पड़ा? इसीलिए तो कि इसे हनुमान ने रचा?

अब बताइए क्या जवाब है इसका? पर इसका जवाब है. मैं कहता हूं मान लिया वह किसी हनुमान के द्वारा ही रचित है पर वह हनुमान मैं ही होऊं वह कैसे सिद्ध होता है? मेरे बाद क्या किसी का हनुमान नाम नहीं रखा गया? आज क्या नहीं रखा जाता? आज भी तो बहुत सारे हनुमान मिश्र और हनुमान सिंह मिल जाते हैं? आप कहिएगा तो इस हनुमान ने, उस महान् आदि-नाटककार ने अपना अता-पता क्यों नहीं छोड़ा पुस्तक पर ताकि इस अटकलबाजी की आवश्यकता ही न रहे. मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता हूं कितने ऐसे प्राचीन लेखक हुए जिन्होंने अपना पता तो पता नाम तक भी छोड़ा हो अपनी कृतियों पर? कौन है वेदों का लेखक? और उपनिषदों का? किसने रचे इतने सारे पुराण? किसने लिखा महाभारत और उसमें अंतर्निहीत उस ग्रंथों के ग्रंथ गीता को? आप कहिएगा वेद-व्यास ने? तो कितने हुए वेद-व्यास और कहां है उनका अता-पता? या एक ही व्यक्ति ने अपने एक ही जीवन-काल में इतने सारे ग्रंथ रच दिए? एक लाख श्लोक वाले एक महाभारत-ग्रंथ की रचना के लिए ही तो एक जीवन पूरा नहीं पड़ता.

तो अनाम ही रहे भारत-भूमि के ग्रंथकार. यही है इस भूमि की विशेषता. नाम में नहीं, यश-कीर्ति में नहीं, मात्र कर्म में विश्वास रहा उनका. ऐसा ही अनाम था वह हनुमन्नाटक का प्रणेता. कम-से-कम मुझ कपि की स्वीकृति नहीं है वह. विशेषकर इसलिए कि इसमें मेरे संबंध में भी ऐसी-ऐसी उपमाएं गढ़ी गई हैं, ऐसी ऊंची बातें कही गई हैं जिनके योग्य मैं कदापि नहीं हूं. स्वयं अपने संबंध में उन बातों को लिखना तो मेरे लिए कदापि संभव नहीं होता.

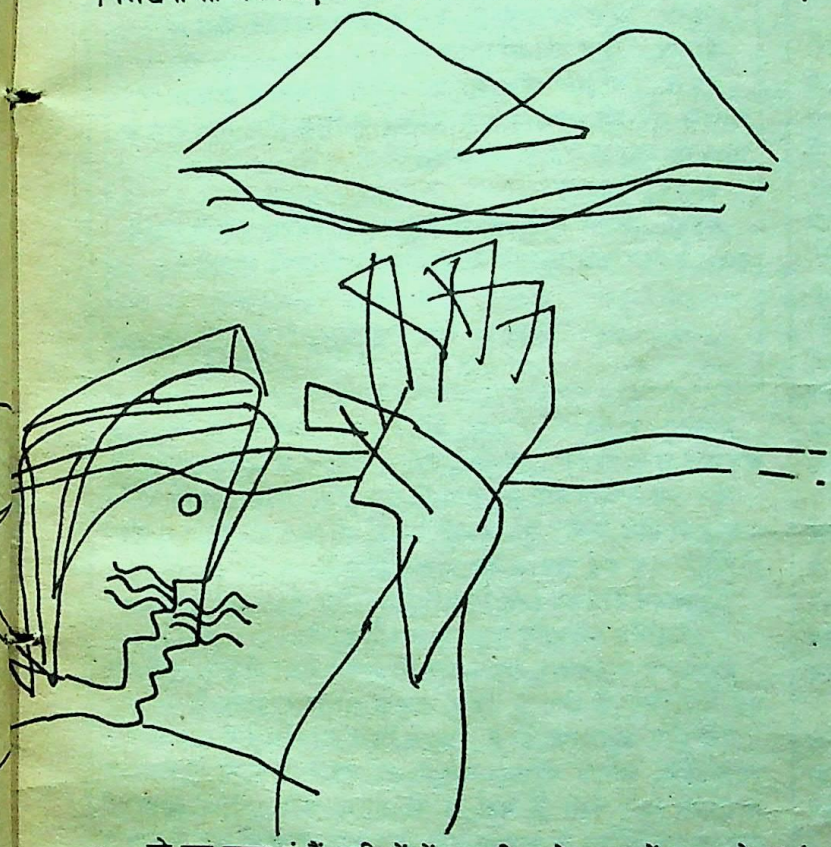

तो इस तरह हूं मैं ज्ञानियों में अग्रणी. अनेक शस्त्रों का अध्येता! वेद-वेदांग में परांगत! वैयाकरण, संगीतज्ञ और क्या-क्या?

ऊपर देखी न आपने मेरे संगीतज्ञ होने की बात? यह मैंने यों ही अनजाने में नहीं कही. आप सोचते होंगे हनुमान और संगीतज्ञ? अपना गाना और दूसरों का रोना किसे अच्छा नहीं लगता? पर विश्वास मानिए यह उपाधि भी मैंने स्वयं नहीं ले ली है और न मुझे अपने स्वर के तथाकथित माधुर्य को लेकर ही कोई भ्रम है. कपि की किलकिलाहट कोयल की कूक भी तो नहीं कि किसी बहाने उसमें संगीत की मिठास खोज ली जाय? पर क्या कीजिएगा कहने वाले तो कहते हैं कि मैं एक महान् गायक, एक संगीताचार्य भी हूं. और ऐसी बातों के स्रोत साधारण नहीं, आपके पुराण-ग्रंथ ही हैं. पुराणों के पुराण श्रीमद्भागवत में भी मेरे संगीतज्ञ होने की चर्चा है. भागवत कहता है.....किंपुरुष वर्ष में हनुमान किन्नरों और गंधर्वों के साथ लक्ष्मण के अग्रज आदि पुरुष सीता-सर्वस्व राम के गुणों का गायन करते हैं. जी हां, स्पष्ट लिखा है और स्वयं भी इसे गाते हैं... "स्वयं चैव गायति." अब सीजिए, मैं और गाऊं? वह भी किन्नरों और गंधर्वों के स्वर में स्वर मिला कर? आप को विश्वास हो रहा है इस सब पर? आपको तो हो ही रहा होगा. आदमी अपने श्रद्धा-पात्र अथवा प्रेम-पात्र में वे सारे कल्पित गुण ढूंढ ही निकालता है जिन्हें यह अपने में यहीं खोज पाता. माना कि मैं राम के गुणों का गान करता हूं-संकीर्तन करता हूं. यह मेरी आदत है, मेरा धर्म. पर एक कीर्तन-कर्त्ता उच्च कोटि का गायक भी हो, कहां से सिद्ध होता है? पर आपने तो सिद्ध करने का कोई प्रयास नहीं छोड़ा है. भागवत की बात तो आपने सुन ली. अब सुनिए एकाध और उदाहरण मेरी संगीतज्ञता के.

कैलास की बात तो आपने सुनी होगी. हिमाद्रि का यह हिममंडित शिखर अपने धवल सौंदर्य के लिए विख्यात रहा है. तो इसी कैलास पर तपोनिष्ठ ऋषि गौतम का आश्रम था. ऋषि अपने अनन्य सेवकों-साधकों के साथ इस देव-शिखर पर सानंद निवास कर रहे थे. उनके परम प्रिय शिष्यों में एक का नाम था शंकरात्मा. शंकरात्मा जितना कैलास-पति आशुतोष शिव का भक्त था उतना ही अपने गुरु गौतम के प्रति भी श्रद्धा-नत. अवधूत रूप में विचरण करता शंकरात्मा देखने में बड़ा अपावन और व्यवहार में उद्दंड था.

एक दिन गौतम के आश्रम में अतिथियों की भीड़ जुटी. पाताललोक से वाणासुर अपने गुरु शुक्राचार्य के साथ पहुंचा और उनके साथ था दैत्यपति वृष्पर्वा. कुछ दिन आश्रम में शांतिपूर्वक बीते. किंतु एक दिन अनर्थ घट गया.

वृष्पर्वा भी शिवभक्त था. एक सुबह शिवाभिषेक के पश्चात् वह बर्फ-निर्मित शिवलिंग के समक्ष स्तोत्र-पाठ में लीन था कि नंग-धड़ंग शंकरात्मा कहीं से आ टपका. वृष्पर्वा की अर्चना-उपासना की उपेक्षा-सा करता वह शिवलिंग के सामने ही खड़ा हो गया. स्तोत्र-पाठ के बाद शिवभक्त वृष्पर्वा ने आंखें खोलीं तो सामने के दृष्य को देख दंग रह गया. उसने आव देखा न ताव और तलवार से शंकरात्मा की गर्दन उतार ली. ऋषि-कुटि में रक्त की नदी बह गयी. गौतम दौड़े-दौड़े पूजा-गृह में पहुंचे तो शिष्य शंकरात्मा का निष्प्राण शरीर छटपटा रहा था. सिर एक ओर बिल्व-फल की तरह पड़ा हुआ था. अपने प्रिय शिष्य को इस तरह अकाल कालकवलित हुए देख ऋषि अपने को रोक नहीं सके और उन्होंने भी अपने प्राणों को खींच उन्हें ब्रह्मांड में विलीन कर दिया. दैत्य-कुल-गुरु शुक्राचार्य के पास यह संवाद पहुंचा तो उन्होंने इस अनर्थ के मूल में अपने को ही समझा और इस पाप के प्रायश्चित हेतु अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए. ऋषि के साथ आये दैत्यों ने जब अपने गुरु के प्राण-विसर्जन की बात सुनी तो उन्होंने भी एक-एक कर अपने प्राण छोड़ दिए. थोड़ी देर पहले जो आश्रम शिवभक्तों से सेवित और जीवन से स्पंदित था वही अब श्मशान की तरह शांत और भयावह हो आया.

ऋषि-पत्नी अहल्या ने जब यह हाल देखा तो घोर पीड़ा से व्याकुल हो क्रंदन कर उठी. सद्य विधवा बन आयी अहल्या को जितना अपने पति के प्राणों के जाने का कष्ट था उससे कम अनेक शिव-भक्तों के प्राणोत्सर्ग का नहीं था. शिव-भक्तों के आराध्य, पशुपति भी तो कैलास-वासी ही हैं! अहल्या-रुदन को उन तक पहुंचने में विशेष समय नहीं लगा और वे नंदी पर आरूढ़, गौतम-आश्रम आ धमके. संयोगवश उस समय उनके यहां ब्रह्मा और विष्णु अतिथि बने हुए थे. शिव के साथ वे ही अहल्या के समक्ष उपस्थित हुए. त्रिमूर्ति को अपने समक्ष खड़ी देखकर अहल्या ने अपने जीवन को धन्य माना पर पति-वियोग के दुःख को वह तब भी भूल नहीं पायी.

"औघड़ दानी आशुतोष के दर्शन व्यर्थ नहीं होते. वर मांगो." शिव ने अपनी सहज मुसकान के साथ कहा तो अहल्या चुप ही रही.

विष्णु ने भोलेनाथ के कानों से मुंह लगाया और बोले, "आप रह गये बौड़म के बौड़म ही. अरे, अपने इन सभी भक्तों को जीवन-दान दीजिए. इससे बड़ा वरदान अभी क्या हो सकता है?"

विष्णु की बात सुनते ही शिव ने शवों पर अपनी अमृत वर्षिणी दृष्टि फेरी और वे प्राणवंत हो आये. थोड़ी देर पूर्व की मरघट-तुल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांति हर्षोल्लास के वातावरण में बदल गयी.

प्रसन्नता से भरे त्रिदेव चले मानसरोवर की तरफ और वहां जल-क्रीड़ा में रत हो गये. बूढ़े ब्रह्मा तो तट पर ही खड़े अपने नेत्रों को तृप्त करते रहे पर शिव एवं विष्णु सरोवर के मध्य एक दूसरे पर जलांजलि फेंकने और हास-परिहास में लीन हो गये. सभी ऋषि और देवता भी यह दृश्य देखने मानसरोवर के तट आ जुटे और थोड़ी देर पहले के दारुण दुख को भूल, भोले शंकर और बैकुंठपति की इस जल-क्रीड़ा को निहार तालियां बजा-बजा आनंदित होने लगे. ठीक इसी समय नारदजी भी आकाश-मार्ग से पहुंचे. "नारायण! नारायण!" के स्वर के साथ उनकी वीणा का झंकार दिग्दिगंत में व्याप्त हो गया. पशुपति और विष्णु भी सरोवर से बाहर आ तट पर विराजमान हो गये और लगे इस आनंद का उपभोग करने. नारद की वीणा की तान पर देव-मुनि सभी नृत्य-मग्न हो गये, पर एक बात की कमी सभी को खल रही थी. नृत्य और वाद्य तो ठीक पर संगीत? बिना संगीत के वाद्य क्या? नृत्य क्या?

"इस समय हनुमान की कमी खल रही है." किसी ने कहा और मेरी आफत आ गयी. देवताओं की बात देवताओं तक पहुंचते कितना समय लगता है? और फिर जहां मेरे आराध्य साक्षात् विष्णु को मेरी आवश्यकता प्रतीत हो वहां पहुंचने में मैं विलंब करूं, यह कैसे हो सकता है? झट मैं भी मानसरोवर के तट पहुंचा. त्रिदेवों को नमस्कार निवेदित किया और तट पर पालथी लगा बैठ गया. नारद ने वीणा का नये सिरे से झंकार किया और मैं गायन-मग्न हो गया. उस दिन ब्रह्मा, विष्णु और शिव की स्तुति में मैं इतना तन्मय हुआ कि पता नहीं आरोह-अवरोह के किन स्वरों पर चढ़ मेरा गायन सबकी वाह-वाह का कारण बन आया और लोगों ने कहा कि ऐसे नैसर्गिक गायन का आनंद तो उन लोगों ने उसके पूर्व कभी लिया ही नहीं था. भोले बाबा तो इतने प्रसन्न हुए कि सारी सुध-बुध खो तट पर ही लेट गये और अपना दाहिना पैर उठा मेरी गोद में डाल दिया, "धन्य हो हनुमान, तुमने तो आज संगीत की स्वर्णिम धारा ही बहा दी."

भोले बाबा के चरण मेरे अंक में पड़े और मेरे आराध्य तक को ईर्ष्या हो आयी और उसको रोकने में असमर्थ वे आशुतोष को उलाहना दे बैठे, "मैंने वर्षों तक प्रति दिन हजार कमल-पुष्पों से अर्चना की. संसार में यह प्रसिद्ध भी है कि नारायण को शिव और शिव को नारायण प्रिय हैं पर हनुमान का यह सौभाग्य देख मुझे अपना भाग्य व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा."

इस घटना का लोगों ने खूब बढ़ा-बढ़ाकर प्रचार किया. एक ने तो यहां तक कह दिया कि मेरे गाने के पहले तक तो कुछ लोग गुन गुना भी रहे थे पर मेरे संगीत के आरंभ होते ही सब मंत्र-मुग्ध हो श्रोता बन गये, गायक केवल मैं ही रहा.

तो यह है मेरे गायन का एक प्रसंग. नारायण से यह जुटा था इसलिए मैंने इसे निवेदित कर दिया वर्ना मैं ऐसे प्रसंगों को सुनाने से रहा. पर इससे आप मुझे सचमुच ही कोई महान् संगीतज्ञ न समझ बैठें. भक्ति-भाव के प्रवाह में कभी-कभी सभी बह जाते हैं. उस समय अंदर से जो कुछ स्पष्ट-अस्पष्ट निकलता है वह सब छंदोबद्ध और ताल-लय युक्त ही हो आता है. बाल्मीकि की बात आप भूले नहीं न? क्रौंच-युगल में एक की हत्या होते ही "मा निषाद" के रूप में जो कुछ उनके अंदर से फूटा था वह काव्य तो था ही, किस संगीत से कम था? उसी रामायण को गा-गा कर न लव-कुश ने प्रभु का सानिध्य प्राप्त कर लिया था?

तो मैं कह रहा था हनुमान संगीतज्ञ नहीं है. और वह चाहे जो हो पर संगीत से उसका क्या वास्ता? पर आप मेरी बात पर ध्यान ही कब देते हैं? आपने तो संगीताचार्यों की सूची में भी मेरा नाम गिना दिया है.

आंजनेयो मातृगुप्तो रावणो नंदिकेश्वर,
स्वातिर्गर्गो विदुराजः क्षेत्रराजश्च काहल.

हनुमान, मातृगुप्त, रावण, नंदिकेश्वर, स्वातिगार्ग, विदुराज, क्षेत्रराज तथा काहल... ये आठ संगीत-शास्त्र के आदि प्रवर्तक हैं.

और अब संगीताचार्य बन गया तो कुछ छंद, अलंकार आदि भी मैंने चलाये ही होंगे. नहीं? मेरे भक्तों ने यहां भी कोई कंजूसी नहीं की है और मेरे नाम कई छंद-अलंकार कर दिए हैं.

आदूर्य दीर्घत्रयं प्राह द्वितीयं ह्रस्वमेव च,
विदुर्विंदु त्रयेणापि हनुमान् सार्धीविदुना.

हनुमान के मतानुसार, प्रथम तीन दीर्घस्वर, फिर दो ह्रस्व, पुनः तीन एवं अर्थ बिंदु के योग से 'विंदु' नामक अलंकार बनता है.

ऐसे और उदाहरण भी हैं. कितने गिनाऊं? संक्षेप में यह कि जैसे पहले कहा, आपके भक्ति-भाव ने ही मुझमें ये सारी विशेषताएं आरोपित कर रखी हैं वर्ना मैं तो ठहरा कपि... एक साधारण राम-भक्त! भक्ति के अलावा मुझे और कुछ आता हो यह मैं मानता नहीं और भक्ति में भी मैं पारंगत हूं, यह कैसे कहूं? भक्त भी ऐसे-ऐसे हुए हैं इस धरा पर मैं उनके सामने पानी भरूं. अब भरत के सदृश भी कोई भक्त हुआ है कभी, और होगा कभी? विभीषण की तरह? निषाद-राज की तरह? आगे सुनिए मेरी जन्म की कहानी जिसकी बड़ी आतुर प्रतीक्षा है आपको. है ही वह कुछ ऐसी वर्ना एक ही साथ कई एक नाम कैसे लग जाते मेरे साथ? हनुमान भी, आंजनेय भी, शंकर-सुवन भी, केसरी-नंदन भी. और सबके ऊपर पवन-पुत्र मारुति भी. तो आगे यही कहूंगा—अपने जन्म की विस्तृत गाथा. तब तक थोड़ा नाम लेते हैं अपने राम का. बहुत देर हो गयी अपनी ही बात करते. तो आइये गाते हैं तुलसी से स्वर मिला कर....

भायं कुभायं अनख आलसहुं,
नाम जपत मंगल दिसि दसहुं.

भाव से, कुभाव से, शत्रुता से, आलस्य से, जैसे भी राम का नाम लो वह दसों दिशाओं में मंगलकारी ही होता है. □

(यह उपन्यास राजपाल एंड संस दिल्ली द्वारा शीघ्र प्रकाश्य)

फारसी कथा

बहरे दोस्त की मिजाजपुर्सी

एक बहरा आदमी अपने एक बीमार दोस्त की मिजाजपुर्सी के लिए घर से निकला. रास्ते में वह सोचता गया कि उसे क्या पूछना है और जाहिर है वह उसके प्रश्नों का उत्तर वह जिस तरह देगा तो जवाब में उसे क्या कहना है. उसने सोचा कि बहरा हूं तो इसका मतलब यह तो नहीं कि दोस्त की तबीयत पूछने ही न जाऊं. पर सोचे हुए जवाब न मिलने पर दोनों दोस्तों का संवाद कुछ इस प्रकार हुआ :

बहरा, "कैसे हो दोस्त?"

बीमार, "बहुत खस्ता हाल हूं. मेरा ख्याल है मैं मौत के दरवाजे तक पहुंच गया हूं."

बहरा, "खुदा का शुक्र है. वैसे तुम्हारा डाक्टर कौन है?"

बीमार, "मौत का फरिश्ता."

बहरा, "बढ़िया बात है. वह बहुत कारसाज़ डाक्टर है." जिसके घर भी जाता है उसे हमेशा के लिए ठीक कर देता है. कौन-सी दवा ले रहे हो आजकल?"

बीमार, "जहर!"

बहरा, "जरूर तुम्हें आराम पहुंचाएगी. बिल्कुल सही दवा है. इससे बेहतर दवा तुम्हारे लिए और हो ही नहीं सकती. □

प्रस्तुति : सुधांशु गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक और परिवेश

विपिन जैन

वर्षों बाद हम दोनों आमने-सामने थे. पहले कभी सोचा भी नहीं था कि कभी हम सालों के अंतर से मिलेंगे. इस बीच हम दोनों में से किसी ने भी एक-दूसरे से मिलने की कोशिश नहीं की. बहुत से प्रश्न अंदर समेटे हुए हम शब्दों को समझदारी से स्वर में बदलने दे रहे थे.

मैं दूसरे ही प्रतीक को सामने बैठा पा रहा था. कभी वह कहता था कि लिखना उसके लिए सांस लेने से अधिक जरूरी है. उन दिनों वह दमखमवाली कहानियां लिखा करता था. कहता था शब्दों में बड़ी शक्ति होती है. शब्द समाज के सोचने के ढंग को बदल सकते हैं. रचनात्मक साहित्य से क्रांतियां हो जाती हैं. उसकी कहानियां हम कुछ दोस्तों के बीच चर्चा का विषय भी रहती थीं. कुछ पत्रिकाओं में उसकी कहानियां पुरस्कृत होकर भी छपी थीं. हम दोनों ने साथ-साथ एम.ए. किया था. हम सब दोस्त रोजगार की तलाश में लग गये थे. पर वह कहता था कि मैं सिर्फ लिखना ही जीविका का साधन बनाऊंगा.

प्रतीक धीरे-धीरे नशे के प्रभाव में आ गया था. हल्की-सी बहकी आवाज में वह कहने लगा था, "तुम समझते हो मैंने यूं ही लिखना छोड़ दिया? मैंने लेखनजीवनी होने का कोई प्रयास नहीं किया. पहले-पहल मैंने एक लोकल अखबार की नौकरी पकड़ी. दिन-रात मेहनत करके अखबार के संपादकीय से फिल्मी पेज तक सब खुद लिखा. बरसों तक वह मामूली-से वेतन पर मुझसे अखबार निकलवाता रहा. उसके दूसरे कई धंधे थे. अखबार वह अपनी प्रशासन में धाक के लिए निकालता था. जब मैंने उससे मेहनत के हिसाब से पैसा मांगना शुरू किया तो उसने मेरे जैसा पत्रकारिता में आने का उत्सुक लड़का ढूंढ़ा और पैसे खाने का आरोप लगाकर मुझे बाहर कर दिया. एक राष्ट्रीय दैनिक में भी नौकरी की मगर वहां भी जितना खटना पड़ता था, उससे अपना लिखना-पढ़ना छूटता जा रहा था. एक दिन लेखक बनने की पिनक में वह नौकरी भी छोड़ दी.

जब मैं कोई और नौकरी तलाश नहीं कर सका तो पिताजी ने एक दिन कहा, "मैं तुझे एक जगह नौकरी पर लगवा रहा हूं. वहां ठीक तरह नौकरी करना. नौकरी में कई तरह की बातों को अनदेखा करना पड़ता है. वे लोग मेरी सिफारिश और सही आचरण की गारंटी पर नौकरी दे रहे हैं. वहां सही गलत के चक्कर में मत पड़ना."

मैं वहां नौकरी करने लगा. मगर कुछ ही दिनों में वहां घुटन महसूस होने लगी. वे लोग दो नंबरी धंधा करते-करते करोड़पति बन गये थे. मगर अपने कर्मचारियों को पूरा वेतन भी नहीं देते थे. नौकरी पक्की होने से पहले ब्रेक करवा देते थे. मन करता था उनके शोषण के विरुद्ध खड़ा हो जाऊं. आत्मा धिक्कारती थी. लेखक महोदय, अपने पात्रों से अन्याय और शोषण के खिलाफ लड़ाई कराते हैं और खुद रोजी के समझौते पर सब चुपचाप देख रहे हो. एक दिन मालिकों के विरुद्ध जा खड़ा हुआ तो उन्होंने वही किया जो हर समझदार मालिक करता है."

एक दिन मैं रात को देर से घर लौटा तो पाया मेरी किताबों का रैक खाली था और बहुत सारे लिखे-अनलिखे कागज फटे बिखरे पड़े थे. सारी रात मैं गुस्से और क्षोभ की आग में जलता रहा. सवेरे बिना कुछ खाये पीये ही घर से निकल गया था. फिर तीन दिन घर नहीं गया. यार-दोस्तों से उधार-मांग पेट भरा. प्लेटफार्म पर जाकर सोया. चौथे दिन एक दोस्त ने बतलाया कि तेरी मां-बहन तुझे ढूंढने आयी थीं. तेरे पिताजी अस्पताल में हैं. उन्हें दिल का दौरा पड़ा है.

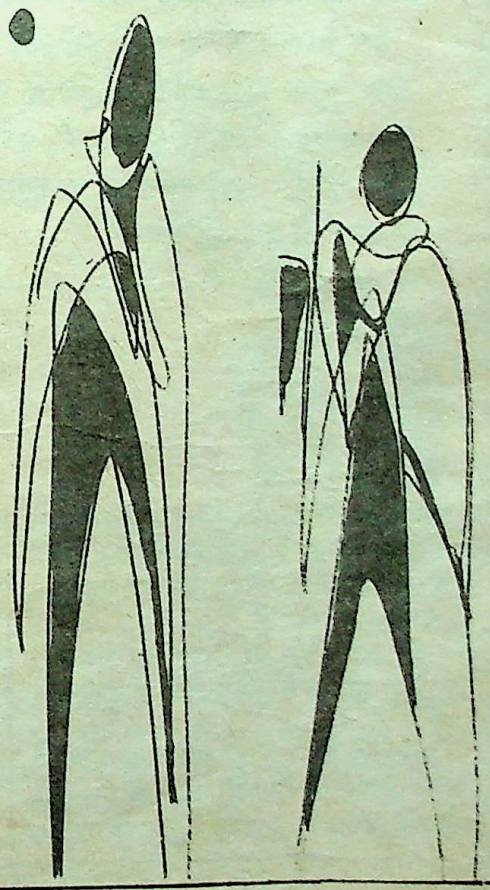

अस्पताल से पिताजी को घर लेकर आया तो मेरी आंखों के समर्पण ने उन्हें एक भरोसा दे दिया था. कई दिनों की लगातार खोज के बाद एक प्राइमरी स्कूल में बच्चों को पढ़ाने का काम मिला. उस प्राइवेट स्कूल में अधिकांश मुझ जैसे लड़के ही थे. उन्हें आठ सौ वेतन पर हस्ताक्षर करके चार सौ रुपये मिलते थे. मैंने भी सहर्ष वह नौकरी स्वीकार ली. उस दिन मुझे लगा था कि मेरा कथा नायक हार गया है. मेरी शादी में जो दहेज और रुपया मिला उसके सहारे बहन की शादी हुई. जिन बातों के लिए, जिन मूल्यों के लिए मैं अपनी कहानियों के जरिये लड़ता था मैंने उन सबको स्वीकारा. स्कूल में पढ़ाने के बाद एक दो ट्यूशन भी पढ़ाने लगा था क्योंकि शादी के बाद खर्च संभालना कठिन हो गया था. धीरे-धीरे सब छूटता गया. न मैं अपने कथापात्रों और स्थितियों के लिए रह गया था और न वह मेरे लिए. कभी कुछ लिखने की सोचता भी था तो मुझे लगता था जैसे मेरे पात्र मेरा उपहास कर रहे हैं. मुझसे पूछने लगते – लेखक महोदय अब हमें कितनी दूर तक ले जाओगे.

करते-करते एक दिन पी.जी.टी. ग्रेड में टीचर की नौकरी मिल गयी. एक छोटी-सी जगह नियुक्ति हुई. मैं खुशी-खुशी वहां चला गया. किसी बड़ी दुनिया में रहने की इच्छा भी नहीं रह गयी थी.

एक दिन वहां पिताजी आये. साथ में एक अटैची में भरकर मेरी किताबें लाये थे. एक सप्ताह वहां रहे. वे किताबों की एक रैक भी बनवाकर लाये. उसमें मेरी किताबें लगायीं. जितने दिन वहां रहे पढ़ते रहे. पत्रिकाओं से खोज-खोजकर मेरी रचनाएं पढ़ी. जाने से पहले कहने लगे, "अब तो कुछ खाली समय भी मिल जाता होगा? लिखना फिर शुरू कर दे." इतना कहकर वह आंखें झुका बाहर की ओर चले गये थे. चलने के दिन बोले थे, "मेरे पास कुछ पैसा जमा है, मैं भेज दूंगा. तू अपनी कहानियों की एक किताब छपवा लेना."

उनके जाने के बाद मैं कई दिन विचलित रहा. उसी विचलित दशा में शराब का सहारा ढूंढा. शराब अधिक बढ़ी तो एक रात पत्नी भी पूछने लगी थी – "तुम्हें क्या दुख है? तुम्हारे पास गुजारे लायक नौकरी है, परिवार है. फिर क्यों खुश नहीं रहते. तुममें जीवन के प्रति कोई उमंग-उत्साह नहीं है. जीवन तो खुद एक सुंदर रचना है."

मैं व्यंग्य से विद्रूप हंसी हंसता केवल इतना कह पाया था, "सुंदर रचना!"

इतना कह वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और बोला, "चलता हूं दोस्त! आधे-अधूरे फसाने का क्या सुनना सुनाना." □

■ 236, मुकंद नगर, गाजियाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्कीस वर्षीय विनय संप्रति ऋषि गालव महाविद्यालय, मुरैना में अध्ययन रत हैं. जीवाजी विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, निबन्धकार और वक्ता. यह कहानी जीवाजी वि.वि. में अखिल भारतीय नवांकुर सांस्कृतिक समारोह के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ घोषित.
संपर्क : गांधी चिकित्सालय के सामने, जीवाजी गंज, मुरैना (म.प्र.).

विनय श्रीवास्तव

बिरादरी

बस-बस खबरदार, आंखें मिचमिचाते हुए जग्गू ने कहा और बिना रुके ही आगे बोला, "जरा देखभाल के सड़क पर पानी छिड़क. अगर एक भी छींटा इधर आया तो तेरी खैर नहीं...समझा!"

लेटे-लेटे ही जग्गू ने कहा और फिर पैर फैलाकर आंखें बंद कर लीं.

रामदीन नल में लगे हुए पाइप का मुख दूसरी ओर घुमाते हुए फुसफुसाया, "जैसे लाट साहब ही तो हैं..."

रामदीन के मुख से निकली यह फुसफुसाहट भी जैसे जग्गू के कानों में पड़ गयी. उसके होंठों से कुछ अस्फुट गाली के स्वर निकले, पर आंखों से कंमबख्त नींद नहीं जा रही थी. वह शब्द उसके होठों पर आकर ही रह गए और उसी के साथ एक हल्की मुस्कान आकर विलीन हो गयी.

सड़क के किनारे एक बहुत बड़ा और घना नीम का वृक्ष है. वे लोग उसी नीम के वृक्ष के नीचे सो रहे थे. पत्तों के झुरमुट से छन-छन कर आती धूप उन पर बिखरी हुई थी. जग्गू ने अपने चेहरे को धूप से बचाकर सोये हुए साथियों को देखा. उसके बाजू में सो रहा है राका. उसी के पास जुम्मन और सत्तू और एक चीनियों जैसी नाक वाला लड़का छैनू. सब के सब निद्रामग्न.

साले सब कुंभकरण हैं, पूरे कुंभकरण. सोच कर हंस पड़ा जग्गू. वह उठ खड़ा हुआ और सड़क के उस पार बने नल की ओर मुंह धोने चल पड़ा.

उधर से पंडितजी दूध लेकर लौट रहे थे. जब वे नीम के पास से गुजरे तो नाक-भौं सिकोड़कर दूर हट गये. इन अभागों के मारे तो भोर के समय इधर से गुजरना मुश्किल हो गया है. कैसे सो रहे हैं, राम, राम, और वह सड़क की इस पटरी से हटकर दूसरी पटरी पर पहुंच गये.

"पर इससे क्या?"

क्या दूसरी पटरी पर जाने से वह उनसे बच सकते हैं?

कभी-कभी तो शर्म हया ताक पर रखकर इस प्रकार से अश्लील गाना शुरू कर देते हैं कि उधर से निकलना मुश्किल हो जाता है. विशेषकर ऐसे उद्‌गार उस समय अश्लीलता की चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं जब छात्राएं स्कूल जाने के लिए उधर से निकलती हैं.

हां भई, कंठ तो जग्गू और राका के बहुत सुरीले हैं. पता नहीं इन अभागे अनाथों के मन में इतनी मिठास कहां सें आ गयी?

मगर कंठ सुरीले होने से क्या होता है? इशारा ही नितांत गंदा है. इसीलिए कुछ लोग कहते हैं, अभागे मरते भी तो नहीं हैं.

नहीं, उनकी मृत्यु नहीं होती. शरीर पर जमाने भर की गंदगी, महीनों न नहाया हुआ शरीर और मुंह में अत्यधिक अश्लील शब्दों का जहर होने के कारण यमराज उनसे सौ कदम दूर ही रहते हैं.

और वह दुनिया भर के पापों का बोझ सीने पर लादे हुए भी जी रहे हैं. बस, बेमतलब जी रहे हैं.

सुबह से लेकर आधी रात के बाद तक ये पांचों मूर्तियां आवारागर्दी करने के बाद वहीं नीम के नीचे आराम करती हैं. जब वह उस पेड़ के नीचे नहीं रहते तो वह नीम का वृक्ष ऐसा लगता है जैसे महाभारत का 'समी वृक्ष' जिस पर पांडवों ने विराट राजा के महल में अज्ञातवास को जाते समय अपने अस्त्र-शस्त्र टांग दिए थे. ठीक उसी प्रकार इन पांचों पांडवों की सारी संपत्ति उस नीम के घने वृक्ष की टहनियों से टंगी रहती है, जिसमें अधिकांश गाली-गलौज, मारपीट और दूसरों को तकलीफ देने के उपाय होते हैं.

उस रात! रिम-झिम, रिम-झिम, पानी बरस रहा था. आधी रात के बाद यथावत पांचों मूर्तियां वापस उसी पेड़ के नीचे लौट आयीं. मिजाज किसी का भी ठीक नहीं था. बैड लक! कोई भी नहीं जीता. सभी के हाथ खाली और मुंह लटके हुए, रुंआसे. जैसे रास्ते में किसी से झगड़ा हो गया हो.

नीम के नीचे पहुंचने पर उनके बिगड़े हुए मिजाज और भी बिगड़ गए. नीम के नीचे उन्होंने देखा कोई व्यक्ति उनके स्थान पर आराम से सो रहा है. उसे देखकर जग्गू भड़क उठा, "कौन है बे! स्साले, उठ भाग यहां से" इतने

"इस बेरहम दुनिया ने तो हमें मार डाला होता अगर कुछ भले लोगों ने जिन्हें यह समाज गुंडे-बदमाश कहकर बुलाता है, हमें सहारा न दिया होता. उन्हीं देवताओं के रहमोकरम पर पलकर तो हम बड़े हुए."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवांकुर

देश के तमाम महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के जरिये आज कैसी प्रतिभाएं सामने आ रही हैं, लेखन के प्रति उनमें कैसा लगाव है...और रचनात्मकता के संदर्भ में वे क्या सोच रहे हैं. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसी नयी प्रतिभाओं की तलाश करते हुए हर माह एक उभरते रचनाकार की कहानी प्रकाशित की जायेगी. रचना भेजते समय यह न भूलें कि अपने विभागाध्यक्ष अथवा संस्थान के प्रधान का इस आशय का प्रमाण पत्र भेजना अनिवार्य है रचनाकार संस्थान में अध्ययनरत है और 'सारिका कहानी मंच' का सदस्य है.

यदि आपकी संस्था में 'सारिका कहानी मंच' नहीं है और आप विधिवत इसका गठन करना चाहते हैं तो 'नवांकुर' स्तंभ के कूपन की कटिंग लिफाफे पर पते के साथ चिपका कर संपादक से पत्र व्यवहार करें? रचनाएं भेजते समय भी कूपन का प्रयोग अनिवार्य है.

में आकाश में बिजली चमक उठी. क्षणिक रोशनी में उन पांचों ने देखा कि एक स्त्री नीम के नीचे सो रही है.

जग्गू ने घुटनों के बल धरती पर बैठकर सोई हुई युवती के माथे पर हाथ रखा और चौंककर उठ खड़ा हुआ, "अरे यह तो बर्फ-सी ठंडी है. शायद मरी पड़ी है."

"क्याSSS!" सबने एक साथ जग्गू से पूछा, "लो बेटा अच्छे झंझट में फंसे!"

"अरे एक बच्चा भी है इसके साथ, ये देखो इसके सीने से चिपका हुआ है." जग्गू बोला. "अरे खूनी हो!"

"बस कह दिया और खून हो गया. गला दबाने का निशान नहीं, छुरा भोंकने का निशान नहीं, कह देने से खून हो गया." राका चिल्लाया, "तुझे कैसे मालूम हुआ. जुम्मन जरा चिराग तो जला."

चिराग की रोशनी में उस युवती का चेहरा देखकर सत्तू जोर से चिल्लाया, "अरे यह तो पहचानी हुई औरत है. मां कसम, बेचारी, चार दिन से अस्पताल में भरती होने के लिए घूम रही थी. पर अब क्या किया जाए!" सत्तू ने कहा.

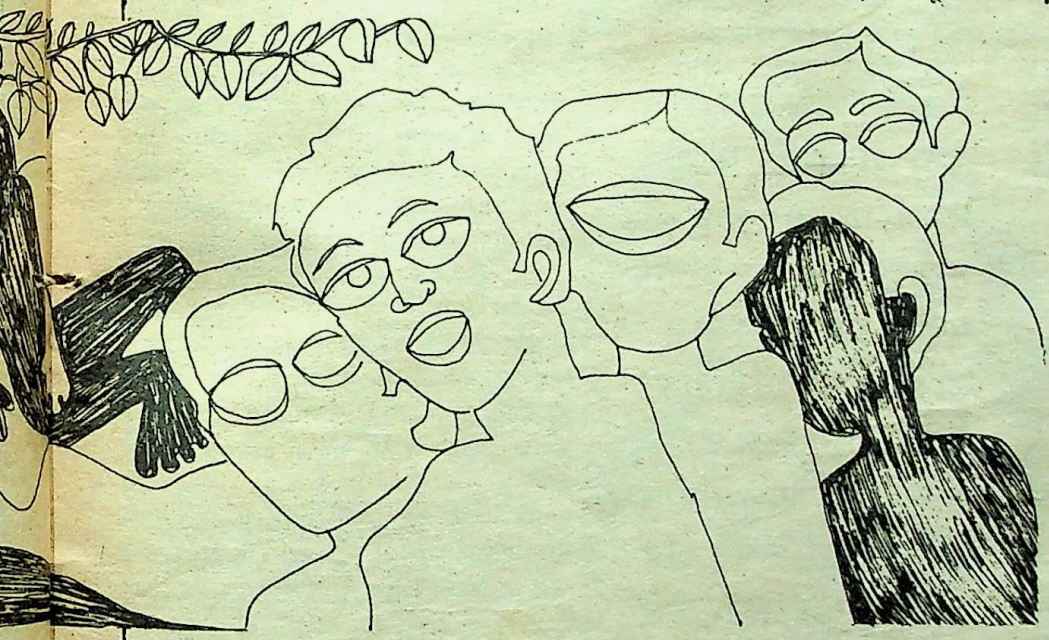

देख जल्दी क्या वह भी मर गया है?" छैनू ने पूछा.

"नहीं शायद सो रहा है." जग्गू ने कहा.

"कैसे फेर में पड़ गए हम लोग. मरने के लिए इसे और कोई जगह नहीं मिली, जो हमारे अड्डे पर आ धमकी." सत्तू कहने लगा.

"ये सब फालतू बातें छोड़ और बता कि अब क्या किया जाए. थोड़ी ही देर में पौ फटेगी. पुलिस वालों ने देख लिया तो बेड़ा पार ही समझो. कहेंगे, ये खून तुम्हीं ने किया है, तुम

"जरा दिमाग पर जोर डालो तो कोई तरकीब जरूर निकलेगी." इससे पहले कि कोई तरकीब सोची जाए, युवती के सीने से लगा बच्चा जोर-जोर से रोने लगा.

जग्गू ने बिना कुछ कहे बच्चे को उठाकर अपने सीने से लगा लिया. गरमाहट पाकर बच्चा चुप होकर सो गया. उसकी नींद टूट जाने के डर से पांचों के मुख से कोई शब्द नहीं निकला कुछ समय तक.

खामोशी तोड़ते हुए जग्गू गंभीर स्वर में बोला, "शायद हमारी मां भी इसी प्रकार फुटपाथ पर तड़फ-तड़फकर मरी होगी, कौन जाने?"

"हो सकता है!" राका ने कहा.

"जुम्मन तुझे तेरी मां याद है?" सत्तू ने पूछा.

"देखा ही नहीं तो याद कैसे? शायद इसी तरह मरी हो, और सत्तू तेरी मां!" जुम्मन ने पूछा.

"मुझे भी मेरी मां याद नहीं." सत्तू ने कहा, "होश संभाला तो ऊपर खुला आसमान था और नीचे जुआरियों, जेबकतरों और गुंडों की टोली थी. मां कैसी होती है? मां का प्यार क्या होता है? कभी जाना ही नहीं. लोगों की गालियां सुन-सुनकर और ठोकरें खा-खाकर ही तो पेट भरा. प्यार के दो बोल के लिए हम सारी जिंदगी तरसते रहे. कभी किसी ने हमें हमारा नाम लेकर नहीं पुकारा. इस बेरहम दुनिया ने तो हमें मार ही डाला होता अगर कुछ भले लोगों ने जिन्हें यह समाज गुंडे, बदमाश कहकर बुलाता है, हमें सहारा न दिया होता. उन्हीं देवताओं के रहमोकरम पर पलकर तो हम बड़े हुए."

छैनू कुछ नहीं बोला. आंसुओं से भीगा चेहरा घुटनों के बीच छिपाए हुए मौन बैठा था. कुछ सोचकर वह बोला, "इस बच्चे को हम पालेंगे. आज से यह हमारी बिरादरी में रहेगा. इसे हम 'नीमा' नाम से पुकारेंगे."

कुछ वर्षों बाद....! वे पांचों बूढ़े हो चले थे. नीमा शहर का नामी गुंडा बन गया था. उनकी बिरादरी ने उसे क्या से क्या बना दिया था.

वे पांचों नीमा के ऊपर फख्र करते थे. बड़ी शान से वे उसे अपना बेटा कहते थे. उन्हें इस बात का संतोष था कि उन्होंने अपनी जिंदगी में एक नेक काम तो किया. एक बच्चे को पाल-पोसकर जवान किया. वरना आज की दुनिया में कौन किसी के बच्चे को पालता है. अपनी बदनाम बिरादरी पर भी उन्हें नाज था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फीस और क्यू

ईश्वर दत्त वर्मा

अपनी ग्रामीण प्रैक्टिस के तीस वर्षों में से मैंने शुरू के सत्रह साल-किसी भी उस मरीज से घर पर देखने की फ़ीस न ली जो कि उस गांव का रहने वाला होता जिसमें कि मैं प्रैक्टिस करता था. जिस गांव में मैं रहता था, उस गांव के लोगों की आत्मीयता अर्जित करने के लिए उनके प्रति अपनी घर जैसी बात बनाए रखने की भावना में इस रूप में प्रदर्शित करता था. गांव छोटे ही होते हैं, चंद कदम चल कर एक असमर्थ रोगी को उसके घर पर देखना और फीस ले लेना मुझे कुछ अन्याय-सा जंचता. मैं कई बार सोचता जो मेरे अन्नदाता हैं उनमें से 75 प्रतिशत के तन पर ऐसा कपड़ा नहीं है जिसमें कोई टांकी न लगी हुई हो. खादी या मिल के सस्ते से वस्त्र भी बड़े मैले रहते और अक्सर फटे होते. ऐसे लोगों के बीच में रहकर उन्हीं के पैसे से मैं कैसा सूटिड बूटिड रहता हूं. यह विरोधाभास मुझे हमेशा खलता कि जिन्हें मैं अपना अन्नदाता समझता हूं उनकी हालत इतनी खस्ता है और मैं जो कि उन्हीं के पैसे से अपना उदर पालन करता हूं इस कदर सजा संवरा रहता हूं.

मेरे चार्ज हल्के थे फिर भी दाता और लेता का स्तर समान न था...कुछ इस किस्म के अहसास के तहत भी मैं अपने हैडक्वार्टर वाले गांव में किसी से फीस न लेता था.

कई बार जब मुझे रात को जगाकर लोग अपने घर ले जाते, मुझे उस समय कोई चुहल सूझती जब मरीज की जान को कोई खतरा न होता, "बूचे! इसी लिए मुझे घर बुला लाए हो बेटा, कि मेरी कोई फीस नहीं है."

बूचे ने तब उत्तर दिया, "क्या हुआ डाक्टर जी! तुम मुझे जब चाहे, आधी रात को जगाकर और चार घड़ी भार सिर पर लदवाकर बीस कोस भेज देना, भगवान कसम, कोई फीस न लूंगा!"

बात बूचे की ही ठीक थी फिर भी मुझे फीस लगानी पड़ी, न चाहते हुए भी क्योंकि मेरे लिए अपने प्राणों और अपने समय की रक्षा करना कठिन हो गया. एक-एक दिन में आठ दस बार दूसरों के घरों पर जाकर मरीज देखने की औसत ने मुझे थका दिया. रंज इस बात का न था कि मुझे लोगों के घर पर जाकर 'फ्री विजिट' देनी पड़ती थी, गम इस बात का था कि वे सब मरीज ऐसे न होते थे कि मेरे क्लीनिक में आ सकना उनके बस का ही न हो. परिणाम यह कि मुझे चिकित्सा संबंधी पुस्तकें तब देखने का अवकाश न मिलता, मनोरंजन के लिए समय निकालने का तो प्रश्न ही क्या था.

मैं अपने गांव में फीस न लेता था, इसका फायदा भी गरीब लोग कम ही उठा पाते थे. वह अपने मरीज को जैसे-तैसे लादकर या घसीटकर मेरे क्लीनिक में ही ले आते. ठीक मालूम होने पर भी कि मैं अपने गांव में फीस नहीं लेता जैसे उन्हें विश्वास न होता कि जो रिआयत गांव के संपन्न और बड़े आदमियों को प्राप्त है वह भी उसके हकदार हैं.

मैं अपने गांव में फीस न लेता था, इसका फायदा भी गरीब लोग कम ही उठा पाते थे. वह अपने मरीज को जस तस लादकर या घसीट कर मेरे क्लीनिक में ही ले आते. ठीक मालूम होने पर भी कि मैं अपने गांव में फीस नहीं लेता जैसे उन्हें विश्वास न होता कि जो रिआयत गांव के संपन्न और बड़े आदमियों को प्राप्त है वह भी उसके हकदार हैं. फीस न लेकर मैं कुलीन और संभ्रांत घरानों की कुरीतियों का भी अनजाने में, पोषक बन रहा था.बनियों-राजपूतों की औरतें काफी सख्त पर्दा करती थीं, उच्च मुस्लिम घरानों की औरतें भी बिना बुर्के घर से बाहर न निकलती थीं. पर्दे वाले घरों के मामूली से मामूली मरीजों को भी मुझे उनके घर जाकर ही देखना पड़ता क्योंकि उन घरों की औरतें सारा बाजार गुजर कर मेरे क्लीनिक आने में शरमाती थीं और संकोच करती थीं.

फिर भी विजिट सबसे ज्यादा तब अखरती जब मेरी डिस्पेंसरी मरीजों से ऊपर तले हो रही हो और उनमें से कई मरीज सीरियस हों. मेरी डिस्पेंसरी में काफी मरीज थे जब लाला हरभजन लाल आये, कहने लगे, "डाक्टर साहब. तन घर चलिए, बहू की तबीयत खराब है."

मेरे पास कई रोगी सीरियस थे, मैंने नम्रतापूर्वक लालाजी से कहा, "मैं थोड़ी देर बाद आ जाऊंगा, इस समय बड़ा रश हो रहा है."

लालाजी की त्यौरियां चढ़ गयीं, मुंह को कड़वा-सा बना कर बोले, "मेरी बहू चाहे इतनी देर में मर जाए!"

मैंने कलम वहीं रख दी, लालाजी के साथ हो लिया. उनके घर पहुंचकर देखा बहू रोटियां बना रही है. आ तो मैं चुका ही था, मैंने कहा, "आइये बीबीजी. आप की नब्ज देख लूं." नम्रता से चिरौरी-सी करती हुई वह बोली, "जरा देर के लिए चारपाई पर बैठ जाइए डाक्टर साहब, दो ही रोटी का आटा रह रहा है."

दो रोटी बन लीं. बीबीजी ने हाथ धोए, मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी नब्ज देखी और पर्चा लिखा. हरभजन लाल मेरे साथ ही साथ चल दिए. मेरे क्लीनिक के सामने पहुंचकर वह आगे की तरफ बढ़ते हुए बोले, "दवाई मुन्ना ले जाएगा, मुझे जरा दिल्ली काम है."

मैंने बाजार से तभी एक प्लेट लिखवा कर क्लीनिक की दीवार पर टांग दी जिस पर लिखा था—

'रोगी को फर्रूखनगर में घर पर देखने की फीस : पांच रुपये.' दो एक दिन गांव में हलचल रही कि डाक्टर बदल गया है, लोभी हो गया है, फिर सब ठीक हो गया. लाला लोगों की और मुसलमान घरों की कुलीन महिलाएं क्लीनिक में आने लगीं. लाला चंद्रभान का अपने हर मरीज को दिन में दो बार, सबेरे और शाम घर पर दिखलाने का आग्रह भी समाप्त हो गया.

सवेरे जब मैं उनके घर फ्री-विजिट कर आता था और मरीज की हालत बहुत अच्छी होती थी तब भी शाम के समय वह मुझे दोबारा लेने आते थे कि घर चलकर उनके मरीज को फिर से देख लूं. मैं कहता, "क्या कोई नयी बात हो गयी है, चंद्रभान जी. सवेरे तो देखा ही था. सुरेंद्र का बुखार तो उतर गया है." कहा करते थे, "सुरेंद्र की हालत तो बिल्कुल ठीक है डाक्टर साहब. फिर भी, एक बार शाम को चलकर देख जरूर लीजिए, हमें तसल्ली हो जायेगी."

लाला चंद्रभान का सम्मिलित परिवार है. पचीसों सदस्य हैं, हारी दुखारी लगी ही रहती है, मेरी सुबह शाम उनके घर की परिक्रमा उसी रोज समाप्त हो गयी जिस दिन फीस की प्लेट मैंने क्लीनिक की दीवार पर टांगी. फिर उन्हें केवल तसल्ली के लिए, कभी भी अपने मरीज को दिखाने के लिए मुझे घर ले जाने की आवश्यकता न पड़ी. कभी कोई आने में बिल्कुल ही असमर्थ रोगी हुआ तो वह मुझे घर पर लिवा गये वर्ना छोटी मोटी तकलीफ में उनके घर के सभी सदस्य मेरे क्लीनिक आने लगे.

कुलीन और संभ्रांत घरों के सदस्य मेरे क्लीनिक में आने तो लगे पर इससे एक नयी समस्या पैदा हुई. रश में ऐसे लोग अपने आपको सदा प्रेफरेंस का हकदार तसव्वुर करते.

देहात के बड़े आदमी अपने आपको तभी सम्मानित समझते जब क्लीनिक में उनके घुसते ही, सबको छोड़ सबसे पहले उनका काम किया जाता. मेरे, "चौधरी साहब, तशरीफ रखिए!" कहते ही वह मेरे से चौधरियों जैसे उचित सम्मान और तदनुकूल प्रेफ्रेंस की अपेक्षा करते. छोटे बड़ों का एक ही क्यू उन्हें समझ न आता था. उन्हें अपनी, और अपने बच्चों की जान सबसे कीमती नजर आती. वह अपने रोगी को ही सदैव सीरियस समझते और चाहते कि सबसे पहले उसे देख लिया जाए.

उन्हें केवल अपने ही रोगी का दर्द, दर्द महसूस होता परंतु मुझे किसी खास व्यक्ति को तरजीह देना बड़ा अनुचित लगता. डाक्टर तो किसी कराहते और फेंट होते रोगी को ही तरजीह दे सकता है.

खेतिहर मजदूरों और फटेहाल किसानों की भीड़ में वैसे लोग सदा ही अपने लिए एक विशिष्ट व्यवहार की उम्मीद करते. लाला चंद्रभान जब मेरे हस्पताल में किसी बच्चे को लेकर आते मैं एक कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए कहता, "तशरीफ रखिए लालाजी. बच्चे को अभी देखता हूं."

वह जबान से कुछ न कहते परंतु बच्चे को हाथों में लिए खड़े ही रहते. कुर्सी पर न बैठते. चेहरे की उलझन से साफ ही जाहिर होता कि

वह इस ख्याल में हैं कि उनका काम खड़ा-खड़ी में ही हो जाना चाहिए. मैं अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ मरीज देख रहा होता, वह मेज के बिल्कुल सामने खड़े रहकर मेरी तबीअत पर वजन डाल रहे होते.

मेरे क्लीनिक में नियम यह है कि एक लिस्ट में, आने वाले रोगियों का क्रम लिखा जाता है और फिर उसी नंबर से मरीज देखे जाते हैं. फिर भी उनकी बेचैनी को मद्दे नजर रखते हुए और यह सोचकर कि उन्हें मेरे क्लीनिक में खड़े-खड़े काफी देर हो गयी है, और वह मेरे दो तीन बार आग्रह करने के बावजूद भी कुर्सी पर नहीं बैठे मैंने लाला चंद्रभान के लड़के को पहले ही देखकर प्रैस्क्रिप्शन दे दिया और वह दवाई लेकर चले गये तो भोमई गांव का एक जाट पीतमसिंह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया. पूछने लगा, "लाला चंद्रभान नंबर से पहले दवाई कैसे ले गये डाक्टर साहब! हम तो घणी देर से आये बैठे हैं और चुप हैं कि नंबर पर नब्ज दिखाएंगे. लाला बिना नंबर दवाई क्यों ले गये?"

पीतम सिंह फिर बोले, "लाला लखपती आदमी हैं, मान लिया, थारा पीतम सिंह घणा गरीब सही पर थारे हस्पताल में तो दोनों बराब्बर ही होणें चाहिएं. जो तुम लाला चंद्रभान के पर्चे पर दो रुपए की दवाई लिख दोगे तो वह लखपती सही, दो के तीन नहीं देणें का और मैं घणा गरीब सही, पर जो मेरे पर्चे पर तुम दो की दवाई लिख दोगे तो दो के पौणें दो नहीं लेणे के. थारे हस्पताल में लाला चंद्रभान मेरे से बड़ा आदमी कैसे हो गया?"

पीतम सिंह की दी हुई शिक्षा मेरे लिए उस दिन के बाद बड़े काम की हो गई पर लाला चद्रभान का भी एक पक्ष था. उनकी गेहूं, घी, दाल, मसाले की दूकान मिर्जापुर में सबसे ज्यादा चलती है.वह बड़ा खरा सामान बेचते हैं और माकूल पैसे लेते हैं. उनकी दूकान पर भी बड़ी भीड़ रहती है, मेरी पत्नी भी रसोई की जरूरत का सारा सामान लाला चंद्रभान की ही दकान से खरीदती हैं. लाला चंद्रभान बोले, "मेरी दूकान पर चाहे पचास आदमियों की भीड़ हो. डाक्टरनी जी के दूकान पर आने की देर है. मैं सबका काम एक तरफ रखकर सबसे पहले उनका काम करता हूं. क्या मजाल है कि मेरी दूकान पर उन्हें एक मिनट भी इंतजार करनी पड़े. औरों को चाहे घंटा-घंटा खड़े-खड़े हो जाए पर डाक्टरनी जी को तो हम एक पल भी नहीं रुकने देते!"

मैंने उन्हें कह दिया कि आप मेरी पत्नी को नंबर से ही सामान दिया करें, मैं शिकवा न करूंगा, पर वह सदैव उन्हें प्रेफ्रेंस देते रहे. मैं पहले भी क्रम का कायल था और जाट पीतम सिंह के वचन सुनने के बाद तो और भी सख्ती से अपने बनाए नियम पर अमल करने लगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे क्यू का नियम सध गया. पहले मैं लोगों का शिक्षक था और उनसे क्यू के नियम का पालन करवाता था बाद में हालत ऐसी हो गयी कि वही लोग मुझसे सख्तीपूर्वक क्यू का पालन करवाने लगे. शुरू में मैं उन्हें टस से मस न होने देने देता था, बाद में वह मुझे टस से मस न होने देने लगे. अमीर आदमी इससे पहले अपने आपको अपमानित महसूस करते जबकि मेरे बहुसंख्यक मरीजों को यह तरीका बड़ा पसंद था, इससे वह अपने आपको सम्मानित मानते थे.

अक्सर पुरुष और स्त्रियां मेरे घर पर मक्की की कूकड़ियां, गन्ने का रस, फूटें, गुड़, गांडे, तोरियां, टमाटर और कितने ही खाद्य पदार्थ बतौर उपहार दे जाया करते थे. मेरे घर में हर किस्म के उन मौसमी खाद्य पदार्थों की भरमार रहा करती जो उस इलाके में उन दिनों पैदा होते. रायपुर में मेरे पास एक-एक दिन में कई-कई पेटी आम तोहफे में आ जाता जिन्हें निपटाना असंभव था. उन दिनों मैं अपने मित्र परिवारों को पत्र लिख-लिखकर आमंत्रित करता. आम और दूध ही उन दिनों हमारा मुख्य आहार बन जाते. लंगड़ा, मालदा, गोपाल भोग चौंसे और फजली आमों की पेटियों की पेटियां मैं उन दिनों अपने मित्रों के पास भिजवाता.

सामने की बेंचों पर कभी मजेदार हलचल होती. क्रम में बैठी हुई कोई स्त्री बड़ी बेचैनी महसूस करती. उसके चेहरे पर कई शिकन और कई तैवर उभरते. कभी उठती. कभी और कई तैवर उभरते. कभी उठती, कभी बैठती. तब मैं थोड़ा मजाक के मूड में आ जाता, कहता – "अम्मां! परसों ही तुम मेरे घर जो दो लौकियां दे गई थीं उनकी सब्जी बड़ी मजेदार थी. एकदम खिलती हुई-सी बोलती, "जभी तो एक घंटे से बात भी नहीं बूझ रहा."

"नहीं, अम्मां." मैं कहता, "यह जो तुम्हारे पड़ौस में जमनी बैठी है मेरे घर झोली भर के टमाटर दे गई थी." इशारा करते हुए कहता, "साथ में वह बैठे हैं सुनहरा सिंह जी, चार पांच दिन हुए उन्होंने टोकनी भर गन्ने का रस और एक ढय्या गरमा गरम गुड़ भेजा, और यह जो बैठा है भूरी पहलवान इसने तो बरसात के मौसम में जब मैं साइकल समेत एक दलदल में फंस गया तो पहले मुझे पिद्दी चढ़ा कर कीचड़ और गारे से बाहर निकाला फिर मेरी साइकल धो धा कर रास्ते पर धरी. अब क्या करूं अम्मां. तुझे सिरफ अपनी दी हुई लौकियां याद हैं और मैंने इनमें से हर एक का नमक खा रखा है."

कई मरीज जिन्हें कोई खास तकलीफ न होती और उन्हें ड्यूटी पर जाना होता या जिन्हें इतनी देर नंबर की प्रतीक्षा करना पसंद न होता उठ कर दूसरे डाक्टरों के पास चले जाते.

जो लोग मेरे क्लीनिक में से तंग होकर नाराज नजरों से खाली हाथ चले जाते थे, लगता था कभी मेरा कुछ अनिष्ट कर डालेंगे परंतु असलियत इससे बिल्कुल उलट निकलती.

एक रात मैं अपनी पत्नी को मोटर साइकल पर बिठाए और कैरियर पर लगभग पंद्रह किलो वजन लादे, दिल्ली से गांव को लौट रहा था, टीले के मोड़ पर पिछला पहिया पंक्चर हो गया. मेरी मंजिल वहां से दो मील दूर थी.

एक तो पहिया पंक्चर, फिर कैरियर पर पंद्रह किलो वजन. मैंने नयी-नयी मोटर साइकल ली थी. गलत या सही, मुझे अंदेशा था कि वजन लदे-लदे दो मील घसीटने से पिछला ट्यूब बिल्कुल ही बेकार हो जाएगा. मेरी पत्नी और मैं दोनों ही कुछ सताया-सा चेहरा लिए मोटर साइकल के पिछले पहिये में चुभा हुआ कील तलाश कर रहे थे.

पीछे देखा-सड़क पर दो व्यक्ति चले आ रहे हैं. पास आये तो पहचाना, दो तरुण हैं. 18-19 साल के. उनमें से एक लड़का ऐसा था जो पांच सात रोज पहले मेरे क्लीनिक में से कुछ खफा-सा हो कर बिना दवाई लिए उठ गया था. उसे जल्दी थी और मेरे क्लीनिक में वही नंबर का शिकंजा. मुझे याद था... वह कुछ उद्विग्न हो

देवता की हंसी

रमाकांत

उसे ईश्वर पर विश्वास नहीं था और बच्ची ईश्वर को जानती तक नहीं थी. सुबह-शाम बच्ची को लेकर टहलने निकलता तो एक मंदिर के सामने से गुजरना पड़ता.

मंदिर के विशाल कपाट खुले रहते. बाहर से ही शंख-चक्र, गदा, कमर में खोंसी बांसुरी सहित कृष्ण की कांतिवान तेजोमय प्रतिमा आकर्षित करती. बच्ची उसे देख कर मुदित भी होती, भयभीत भी, "मूर्ति के हाथ में क्या है, उससे वे क्या करते हैं..." वह पूछती, और वह संस्कार में मिले धर्म ज्ञान से उसके प्रश्नों का समाधान करता.

पुजारी की नजरों से यह छिपा न रहा.

एक दिन उसने कहा, "आप भीतर क्यों नहीं आते?"

वह पुजारी से धर्म, आस्तिकता आदि की निस्सारता पर बहस नहीं करना चाहता था, इसलिए भीतर चला गया. पुजारी ने बच्ची को पेड़े का प्रसाद दिया.

वह मुफ्त में कुछ नहीं चाहता, यह सोच जेब में हाथ डाला. कोई छोटा सिक्का नहीं मिला, अतः एक रुपया दे कर मन ही मन भुनभुनाता हुआ बाहर आ गया.

उस दिन उसे व्यापार में फायदे का समाचार मिला.

इसका मंदिर में चढ़ाये रुपये से क्या संबंध? वह मेहनत से काम करता है तो फायदा होना ही है...उसने अपने आप को विश्वास दिलाया.

उस दिन कोई त्योहार था और देवता की मूर्ति खूब सजायी गयी थी. उधर से गुजरते हुए बच्ची उसे देख कर मुग्ध हो उठी. उसने भीतर चलने की जिद की. पुजारी ने उसे फिर प्रसाद दिया. उसके पास आज भी छोटा सिक्का नहीं था अतः वह एक रुपया देकर उसी दिन की तरह भुनभुनाता वापस आ गया.

इसे संयोग ही कहा जायेगा कि उस दिन उसकी दो साल से रुकी हुई रकम मिल गयी.

उसके मन में अब भी कोई भक्ति-भाव जागृत नहीं हुआ. वह अपने विश्वासों का पक्का था. किंतु बच्ची को बहलाने का क्रम जारी रहा. पुजारी के बुलाने या बच्ची के जिद पर कभी-कभी भीतर जाता और प्रसाद के बदले कुछ चढ़ावा देकर वापस आ जाता. पर अब चढ़ावे ने कोई चमत्कार नहीं दिखाया. उल्टे व्यापार में उसे कुछ घाटा होने लगा. इसका कारण वह समझता था. उसने कुछ ऊलजलूल धंधों में रुपये लगा दिये थे जिनका उसे कोई ज्ञान नहीं था. वह चिंतित रहने लगा. लेकिन बच्ची को इसका ज्ञान नहीं. उसे तो टहलाने से ही जाना था. जाता तो मंदिर के सामने से गुजरना पड़ता. वह चाहे या नहीं, बच्ची तो वहां रुकना ही चाहेगी, यह सोचकर वह खुद बखुद रुक जाता. फिर भीतर जाता और प्रसाद के बदले कुछ चढ़ावा देकर बाहर आ जाता. एक दिन वह पूछ बैठा, महाराज, अगला श्रृंगार कब होगा?

पुजारी ने दिन बताया.

ठीक है, उसने पुजारी की ओर दस का नोट बढ़ाते हुए कहा, उस दिन मेरी ओर से विशेष प्रसाद चढ़ेगा. लेकिन यह गुप्त दान है. किसी को मालूम न हो.

समझता हूं श्रीमान! पुजारी ने कहा. आप जैसे दानवीर नाम के भूखे नहीं होते. आप बेफिक्र रहिये. वह आश्वस्त हो गया, पर तभी उसने महसूस किया, देवता उसकी ओर उपहास मुद्रा में देखता, हंस रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर निकला था, नाराजगी का प्रदर्शन करता हुआ.

पास आया, पूछने लगा, "क्या हुआ डाक्टर साहब?"

"मोटर साइकल पंक्चर हो गई है भाई." मैंने कुछ उपेक्षा से उत्तर दिया.

बोला, "तो चलो गांव ले चलते हैं. हम दो हैं, एक आगे से थामेगा, दूसरा पीछे से धकेलेगा, झट्ट पहुंचा देंगे."

"वजन भी तो है पीछे पंद्रह किलो."

"क्या हुआ फिर, हम में से एक वजन को सिर पर धर लेगा, दूसरा मोटर साइकल ले चलेगा."

एक ने सिर पर वजन रखा, दूसरे ने मोटर साइकल ली. दोनों जवान लड़के. हम लोग कुछ दूर तो साथ साथ चले, फिर पिछड़ने लगे. हमें उन दोनों का पीछा पकड़ना भारी हो गया.

घर पर पहुंचे तो दोनों युवक हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे. मैंने देखा दोनों पसीने से तर हो रहे हैं. मैंने मजीद और सलीमुद्दीन के प्रति अपना आभार प्रदर्शित किया. लापरवाही-सा दिखाते हुए बोले, "यह भी कोई काम है बेद जी! हम किस लायक हैं."

ट्रांजिस्टर खोला, 'हवा महल' शुरू होने में अभी देर थी. अगली सुबह साबिर के घर खबर भेजी, उसके पास भी मोटर साइकल है. उसने घर पर आकर मेरी मोटर साइकल का पिछला पहिया खोला और उसे अपनी मोटर साइकल पर रखकर दिल्ली ले गया. वापसी में वहां से पंक्चर लगवाकर मेरा पहिया उठा लाया. मेरे घर आकर मेरी मोटर साइकल में पहिया फिट कर दिया.

यह वही लोग थे—मेरे क्लीनिक में जिन्हें घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और जाहिरा तौर पर मुझ से खीझे से रहते थे, बावजूद इसके मेरे साथ उनका व्यवहार अतिशय मधुर और सम्मान पूर्ण था.

एकाध बार इससे उलट तजर्बा हुआ. नंबर के कारण मुझे गालियां खानी पड़ी और हालात बिगड़ते से दिखायी दिए.

लाला चंद्रभान जिनके परिवार की मैंने बरसों बिना फीस यात्राएं की थीं, मेरे फीस चार्ज करने को मानसिक स्तर पर स्वीकार न कर पाए थे और मुझसे क्षुब्ध थे. जिन मरीजों को वह अपने घर पर बिना फीस दिखलाने के अभ्यस्त थे उन्हें मेरे क्लीनिक में लाने तो लगे पर क्लीनिक में अपने नंबर की इंतजार करना उन्हें सख्त नागवार गुजरता. कहां तो पहले डाक्टर उनके घर पर मुफ्त हाजरी दिया करता था और कहां यह कि क्लीनिक में भी उनका नंबर और प्रतीक्षा.यह झटका बर्दाश्त होता भी कैसे.

नंबर तोड़कर उन्होंने अपने बच्चे को पहले देखने की जिद की. मैंने नंबर की प्रतीक्षा में बैठे मरीजों की भीड़ में वैसा करने में असमर्थता प्रगट की. उन्हें बड़ा गुस्सा आया. एकदम रोष में आ गए. उन्होंने पहले मेरे क्लीनिक में ऊंचा-ऊंचा बोलकर मुझे बुरा भला कहा, बाद में मेरी दूकान के सामने ही बाजार में खड़े होकर जोर-जोर से बोलने लगे. पूरा बाजार इकट्ठा कर लिया. शोर और गालियां सुनाई देने लगीं; "डाक्टर की आंख में सूअर का बाल है, आदमी को आदमी नहीं समझता. घंटों इसके हस्पताल में खड़े-खड़े हो गए, अपने को खुदा समझ रखा है."

दो-तीन दिन तक ऐसे लगा कि जैसे हवा मेरे विरुद्ध बह रही है परंतु तीसरे दिन की शाम लाला चंद्रभान के छोटे भाई लाला चोखेलाल मेरे प्रति अतिरिक्त आदर प्रदर्शित करते हुए एक बीमार बच्चे को दिखाने के लिए मुझे अपने घर लिवा ले गये. लाला चंद्रभान अपने घर में मेरे सामने न हुए. मैंने भी उनके घर में, दो दिन पूर्व घटी उस घटना का कोई जिक्र न किया. जैसे बात कोई हुई ही न थी.

उनके घर मेरा आना यथापूर्व हो गया.

गांव अकबरपुर के याकूब हुसैन से भी इस बार इसी तरह नाचाकी हुई वह बड़े स्वस्थ व्यक्ति थे और बड़े संपन्न थे. पैसे देने में एकदम खरे और मिजाज के तेज. मेरे क्लीनिक में एक दिन उनका गुस्सा सीमा पार कर गया, बोले, "मैं तुम्हारा सारा तामझाम उठा कर बाहर फेंक दूंगा." और एक घंटे के अंदर अंदर यह गांव छुड़ा दूंगा. मैंने कलम रख दी. रोष से मेरा भी मन उद्वेलित हो उठा, मैंने कहा, "मुझे भी ऐसे गांव में रहना नहीं जहां तुम्हारे जैसे आदमी की इस कदर हकूमत चलती हो. तुम मेरा सामान बाहर फेंक दो. मैं उसे उठाकर दोबारा अंदर न रखूंगा."

क्लीनिक में बैंचों, कुर्सियों पर बैठे लोग बाग खड़े हो गए, जैसे वह याकूब हुसैन से मार पीट कर डालेंगे. धकेल कर कुछ लोगों ने याकूब हुसैन को मेरे क्लीनिक से बाहर कर दिया. वह लगभग गुर्राते हुए और ऊंच-नीच सुनाते हुए चले गये. अकारण कलह से मैं उदास हो गया, जैसे मेरा कुछ कीमती सामान खो गया हो.

दो-तीन दिन मैं बड़ा उदास रहा, दिखाई देता था जैसे याकूब भाई फिर कभी मेरे क्लीनिक में न आयेंगे.चौथे ही दिन मैंने देखा — क्लीनिक में कोने की एक कुर्सी पर उनकी बीवी सलमा अपने बच्चे को गोदी में लिए चुपचाप बैठी हैं.

सलमा का चुपचाप बिना अपने आगमन की सूचना दिए निःशब्द, क्रम में बैठ जाना मुझे चुभ-सा गया. निरीहता मुझे खलने लगी. क्रम पर मैंने याकूब हुसैन के लड़के को देखा और दवा दी. दूसरे तीसरे दिन फिर उनके घर का कोई लड़का दवा ले गया. पहले जैसे उनके छोटे से छोटे बच्चे स्वयं आकर दवाई ले जाया करते थे, उसी तरह मेरे क्लीनिक में आने और दवाई ले जाने लगे. दो तीन महीने की अनुपस्थिति के बाद याकूब हुसैन को जब स्वयं कोई तकलीफ हुई तो आया और दवा ले गया.

घटना को ऊपरी तौर से देखें तो तबीअत एकदम उखड़ जाती है, शुरू में यह नतीजा निकलता है कि लोग इतने नाराज हैं कि मुझे सख्त नापसंद करते हैं, कुछ इतने क्रुद्ध भी होते हैं कि जैसे मेरा कुछ अनिष्ट कर डालेंगे. पर जरा गहराई में जाते ही वास्तविकता बिल्कुल विपरीत-सी महसूस होती.

क्या लाला चंद्रभान और याकूब हुसैन वास्तव में नाराज हो गए थे?

नहीं. जिस व्यक्ति को सरे बाजार गालियां दी हैं, अपमान किया है, जिस आदमी की अंतरात्मा तक को उन्होंने नाराज किया है, उसी के चरित्र पर उन्हें कितना भरोसा है! कितना वह उसे अपना समझते हैं. कहीं भी उन्हें शंका नहीं. खतरनाक हालत में, जिंदगी और मौत के बीच झूलता अपना बच्चा उसके हाथों में कैसी बेफिकरी से सौंप दिया है. विश्वास का यह स्पर्श मेरे मन में कोई कलुष टिकने न दे सकता था. इतना बड़ा सत्कार, अपने प्रति इतना बड़ा सम्मान मेरे मन को पुलक से भर देता.

मैं कभी याकूब हुसैन को चिताने न गया कि उसने मेरे साथ कभी दुर्व्यवहार किया था. याकूब और मेरे बीच संबंध फिर वैसे ही हो गए जिस तरह के इस घटना से पूर्व थे. उक्त घटना को अपने संबंधों की किताब में से हम दोनों ने चुपचाप एक क्षेपक की तरह निकाल बाहर किया. □

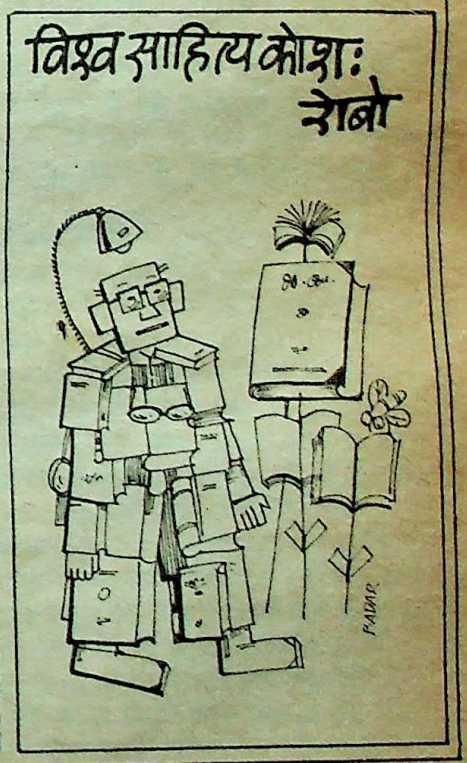

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्दी

हिमानी शिवपुरी

मैं जल्दी-जल्दी चल रही थी कि अचानक एक बूढ़ी औरत मेरे सामने रुकी. उसने फटा-पुराना सलवार कमीज़ पहना हुआ था जिसका रंग पहले क्या रहा होगा यह पता करना मुश्किल था. इतनी बार धुल जो चुका था.

"अरे बेबी तू है!" उसने अपनी फटी चुन्नी से आंख पोछते हुए कहा.

"नंदी", मैं चिल्लायी, "मामचंद कैसा है?" बस मेरा ये पूछना था कि वह शुरू हो गयी.

"अरे बेबी मामचंद तो परके साल ही मर गया. चला तो उससे जावे न था, ओपरेशन के बाद आंख से भी दिक्खे न था. बस अब मैं ही बची हूं यहां. कौन राजकुमार? अरे उस हरामी की तो पूछ ही मत बेबी. बड़ा लड़ता तो था ही न्यारा, यो भी गया मेरे हाथ से. पर बेबी, हमें तो किसी की जरूरत ना है, सुरू से अपने इन हाथ्थों से कमाया खाया. अरे अपनी गुजर लायक तो कमा ही लूं. मुझे चाहिए ही क्या, दो रोट्टी, बस. बेबी, तुम तो चले गये यहां से छोड़के, तो बस अब दो तीन कोठियां हैं, वहां काम कर लूं जाके..

"हां, बेबी दर्शन, मूरा सबसे छोटा लड़का ही है, वो डूटी पे गया हुआ है. मैंने कही थी उससे, तुझे साब से कह के इस स्कूल में लगा दूंगी, पर बोलुला, मां इन प्रेविट इसकूलों में धरा ही क्या है. अब सरकारी जमीदारी करे है. चलो ठीक है. बड़े को तो लगवा दिया मामचंद की जिगह पे जमादारे पे."

"हां, कितने बच्चे हैं उसके?"

"अरे सात है ससुरे के बेबी. पांच लड़कियां हैं दिके और दो छोरे. मैंने ही पैदा कराये. हरामी साले वैसे तो बात नी करे थे, पर बहू की दर्दे उठी तो भागे आये मेरे पास. तब आयी ससुरों को मेरी याद. और तो और वो राजकुमार बेबी उसकी बहू के भी बेट्टा मैंने ही करवाया, बोलुला मां तेरे ही हाथ का भरोसा है."

"क्या राजकुमार की भी शादी कर दी तूने?"

"हां बेबी, तू न थी यहां. सच्ची मैंने साब से भतेरा बोलुला. साब बेबी को जरूर खबर करियो. पर साब ने बताया था कि तबीयत ठीक नहीं थी तेरी, पैसे मिल गये थे थारे. अरे बेबी किसी तरह से कहीं से उधार लेके सादी की. बहू लायी हरिद्वार से, उसे हंसली दी चांदी की, पायल दी और टिक्का दिया. शर्मा साब ने मशीन दे दी थी. ओर टर्नर साब ने सूट दिया बहू को और कुछ रुपये. बेबी सादी होगी तब मैंने राजकुमार से कह दी देख ले, तू बहू के साथ चूल्हा अलग कर ले जो तेरी जी में आये तो. पर उस टैम तो बड़ी हेकड़ी दिखायी. मां तू मुझे बड़े भाई की तरह मत समझ मैं तो तेरे साथ ही रहूंगा. मैंने कहा भई जो तेरी खुशी. पर बेबी उसकी बहू तो बड़ी वाली से भी ज्यादा तेज निकली. मैं काम करके लौटूं तो चूल्हा ही नहीं बला हुआ. मैं तो सुबे ही चाय पीके निकल जाऊं थी काम पे. हैं बेबी, कितना कहूं थी मैं बेटे लायक हो जायेंगे तब न उठाऊंगी झाड़ू, पर किस्मत में लिक्खा था ये दिन में ससुरी रोट्टी पका के खुद खापी के पड़ जा खाट पे, कदी पेट में दरद तो कदी टांग में दरद. मैं आऊं थकी मारी और चूल्हे पर बैठ जाऊं. मैंने कुछ कह दी जरा सी तो बोलना-चालना बंद. तब तो मैंने कह दी राज कुमार से भैया अपना हिसाब किताब अलग कर लो. मैंने भतेरा कहा, तब हुआ अलग. बेबी आज तक इन्हीं हाथों से कमाई रोट्टी. बस, अपने गुज़र लायक तो हो ही जा. पर बेबी आजकल कोठियों में पहले जैसी बात नी रही. एक आप की कोठी थी और एक टर्नर साब की, दोनों छूटी तो बहोत बुरा लगा. दो ही घर तो थे मेरे बिलकुल अपने जैसे.

"अरे बेबी मैंने सुना है बाबा बड़े अफसर बन गये हैं?

"हां-हां."

"परके साल आये थे यहां बेबी. मुझे तो देखते ही पिछाण गये. रामरती बोली अरे तुझे कैसे पिछाण गये, अरे मैंने कही, क्यों नी पिछानेंगे इत्ते इत्तों सो को पाला हुआ. गू पोतड़े तो मैंने ही धो रक्खे. बेबी 50 रु. रख दिये मेरे हाथ में." नंदी ने अपनी आंखें पोंछी.

"तेरी बड़ी लड़की कैसी नंदी?"

"केला. अरे बेबी उसे गुजरे तो तीन साल हो गये."

"अर्रे उसे क्या हो गया था?"

"भूत लग गया था उसे बतावें. हमें तो उसके ससुराल वालों से बाद में खबर मिली. मामचंद गांव गया तो उसका किरया करम हो चुका था."

"तुम लोग! भूत-वूत क्या होता है?"

"पता नहीं बेबी, हमें तो कुछ ना पता चला. उसकी सास ही बता री थी कि भतेरा झड़वाया, पर केला ठीक ही नहीं हुई."

"और अब तो सुशीला भी बड़ी हो गयी होगी?"

"ले बेबी सुसीला के तो एक लड़का भी है. उसका आदमी तो गुजर गया. सा अब वो अपने देवर कने बैठगी. आप सुनाओ बेबी कितने बच्चे हैं?"

"एक ही लड़का है. बस अब और हिम्मत नहीं है नंदी."

"अरे बेबी तुम आजकल की लड़कियां, हमारे जमाने में हर एक के बारह-बारह, तेरह-तेरह से तो कम ही नहीं होवे थे."

"अच्छा अभी तो अपने बच्चों का रोना रो रही थी और मुझे और करने की सलाह कर रही है." मैं हंसते हुए उसे छेड़ रही थी कि कार के हार्न ने हमारी बातचीत का तार तोड़ा. मेरे पति देव!

कहां चली गयी थी डार्लिंग. घर पर कुछ भी नहीं बताया. उनके डार्लिंग के नोट से मैं समझ गयी कि वह अपने गुस्से को बड़ी मुश्किल से काबू में किये हुए हैं. मेरे पति का हर काम टाईम टेबल के अनुसार चलता है. इतने बजे यह उतने बजे वह. अव्यवस्था के कट्टर विरोधी. मेरी यह गैर हाजिरी प्लैन के अनुसार नहीं थी, सो उनका गुस्सा लाज़मी था.

"नमस्ते साब," नंदी बोल उठी. वह मेरे पति का अच्छी तरह से मुआयना कर चुकी थी. उसकी आंखों में प्रशंसा थी.

"ये नंदी है. हमारे यहां काम करती थी." क्या इतना-सा परिचय था उसका?

"साब, मैंने बेबी को अपने हाथों से पाला. बेबी तो स्विमिंग टैंक से निकलती ही न थी, मेमसाब मुझे भेज्जे थी इन्हें लाने...." नंदी जी शुरू हो गयी.

"गिव हर सम टिप एंड हरिअप प्लीज." मेरे पति ने कार के आगे का दरवाजा खोला.

मैंने पर्स से पचास का नोट निकाला और नंदी के हाथ में थमा दिया. "अच्छा नंदी."

"और बेबी, आपके बेटे के नाम की साड़ी भी लूंगी मैं."

"हां-हां शाम को घर आ जाना." मैंने कार में बैठते हुए कहा.

"हवाट इज़ दिस अबाउट शाम को? शाम को कुछ लोग आ रहे हैं. तुम अच्छी तरह जानती हो. यह समय विक्की की शॉपिंग के लिए था. मैंने सुबह ही बता दिया था तुम्हें, और तुम यहां इस औरत के साथ टाईम वेस्ट कर रही हो. यू आर होपलेस." गाड़ी स्टार्ट करते हुए मेरे पतिदेव बरस पड़े.

मेरे मन में आया कि कह दूं कि मेरा समय आपकी तरह कीमती नहीं, और मैं 'उस औरत' के साथ टाईम वेस्ट नहीं कर रही थी, वो मेरे बचपन का एक अभिन्न अंग है. पर मैं कुछ नहीं बोली. बस कार की खिड़की से नंदी को हाथ हिलाती रही...नंदी जो वहीं खड़ी थी नमस्कार की मुद्रा में, उसके हाथ अपने फटे दुपट्टे से आंखों को पोंछ रहे थे, अपनी चिर परिचित मुद्रा में... □

■ **369-एच, पाकेट 11, मयूर विहार, दिल्ली-92**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनात्मक लेखन और लोकप्रिय लेखन का अंतर इस बीसवीं सदी की ही देन है. वरना एक जमाना था जब चार्ल्स डिकंस, अलेक्जैंडर इयूमा जैसे लेखकों की पुस्तकें बहुत लोकप्रिय थीं. चद्रकांता संतति रचनात्मक स्तर पर कहां उन्नीस ठहरती है और लोकप्रियता की सीमा तो यह है कि उसे पढ़ सकने के लिए लोगों ने हिंदी सीखी थी. लोकप्रिय साहित्य की लंबी परंपरा का विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं हिंदी के कथाकार और पत्रकार मनमोहन चड्ढा

पेशेवर लेखकों के कारण ही आज साहित्य जिंदा है!

फ्रांस की नयी लहर के फिल्मकार क्लाड शबरोल ने फिल्मी फार्मूले की परिभाषा इस प्रकार दी थी, "मान लीजिये मैं फ्रांस का एक छोटा-सा गांव लेता हूं. गांव की आबादी बहुत कम है. वहां एक पैंतीस साल की औरत है, जिसके पास खूब पैसा, जमीन-जायदाद है. गांव का ही एक चालीस-पैंतालिस साल का धनी जमींदार उससे विवाह करना चाहता है, जिसे यह महिला खास पसंद नहीं करती, तभी एक और पुरुष गांव में आ जाता है और यह स्त्री उसकी ओर आकर्षित हो जाती है.दोनों पुरुषों में लड़ाई वगैरह होती है और एक उसे प्राप्त करने में सफल हो जाता है. यह एक मामूली कहानी है. भला इसमें किसी की क्या रुचि होगी? अब मैं इस कथा को हल्का-सा मोड़ दे देता हूं. तृतीय विश्वयुद्ध हो चुका है और दुनिया में केवल तीन प्राणी बच गये हैं. एक स्त्री और दो पुरुष. हर बार जब कैमरा युद्ध से क्षतविक्षत लैंडस्केप को चित्रित करता है, दर्शक का दिल दहल उठता है. अब प्रश्न है सृष्टि को बचाने का, पुनर्सजन का, मानवता की रक्षा का है. जब भी ये दो पुरुष लड़ते हैं, एक दूसरे को मारने की कोशिश करते हैं, पूरी मानवजाति का भविष्य खतरे में पड़ जाता है. यही एक हिट फिल्म का विषय है."

वृहदाकार कैनवस – यह आधुनिक बैस्ट सैलर की पहली पहचान है. इयान फ्लेमिंग द्वारा लिखे गये सभी उपन्यासों में हर बार या तो दुनिया नष्ट होने के करीब है या उस पर एक निर्दयी तानाशाह का स्वामित्व होने ही वाला है तभी जैम्स बांड इस निरीह दुनिया को बचा लेता है. सबसे ज्यादा बिकनेवाली किताबों की सूची में इन उपन्यासों का स्थान बहुत ऊपर है और 1987 में ही जेम्स बांड नाम के पात्र के फिल्मी जीवन का पच्चीसवां वर्ष धूमधाम से मनाया गया है.

हैरोल्ड रॉबिंस के उपन्यास **'बेट्सी'** में एक फोर्ड के स्तर का उद्योगपति अपनी बेटी के अठारहवें जन्म दिन पर उसे नये मॉडल की कार भेंट करना चाहता है. यानी इस समय बाजार में जो कार उपलब्ध है उससे कहीं आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित कार का नया मॉडल उसी के कारखाने में नवीनतम, आविष्कारों की सहायता से तैयार किया जायेगा. इस नये मॉडल की कार को विकसित करने में दस वर्ष का समय लगता है. इसके बाद पहली कार एसेंबली लाइन से बाहर आती है. सात सौ पृष्ठों के इस उपन्यास में विपुल संपत्ति का मालिक होने के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं का विस्तृत वर्णन है. इस वर्ग को परिभाषित करने के लिए एक नया शब्द ईजाद किया गया है– 'स्टिकिंग रिच'. हमारे देश में रानी जी ने अपने राजकुमार को इसी प्रकार कार का नया मॉडल और कारखाना भेंट किया था पर इस वृहद कैनवस पर यहां कोई बेस्ट सैलर नहीं लिखा गया. हैरोल्ड रॉबिन्स के एक अन्य उपन्यास में नायक 'शो बिजनेस' में है. अमेरिकन टेलीविजन के तीनों नेट वर्क उसे अपना अध्यक्ष बनाना चाहते हैं. बत्तीस बर्ष की आयु में वह अमेरिका का सबसे धनी पुरुष है और सबसे सुंदर स्त्रियों के साथ सो चुका है. उसकी हर ख्वाहिश पूरी हो चुकी है लेकिन वह बेहद दुखी और असंतुष्ट है.

रॉबर्ट लुडलम ने अपने उपन्यासों में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बच गये नाजियों को अपना विषय बनाया है, जिनके पास अकूत संपत्ति है. वे एक बार फिर एक नया हिटलर लाकर आर्यों का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं. जब भी पाठक लुडलम का उपन्यास उठाता है, उसकी नजरों में हर बार पूरी दुनिया खतरे में पड़ जाती है और नायक अंतिम समय में उसे बचा लेता है. लुडलम के उपन्यास पांच से छह सौ पृष्ठों के होते हैं जिनका दावा है कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद आप उन्हें समाप्त होने से पहले नहीं छोड़ सकते.

ढाई सौ साल पहले

परंतु वृहद कैनवस की इस अवधारणा से ढाई सौ वर्ष पूर्व 'बैस्ट सैलर्स' ने अपनी पहचान बनाना शुरू कर दिया था. सन् 1709 से ही इंग्लैंड और फ्रांस में यह महसूस किया जाने लगा था कि पुस्तकें पढ़ने में रुचि रखने वाले लोगों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है. इसी समय डेनियल डिफो (1660-1731) का उपन्यास **'राबिन्सन क्रूसो'** प्रकाशित हुआ. जिसे पहला उपन्यास भी कहा जा सकता है.

सन् 1704 से 1709 तक एक नाविक अलेक्जेंडर सेल्किर्क ने एक द्वीप पर पांच वर्ष बिताये. उसी नाविक के संस्मरणों को आधार बनाकर डिफो ने **'राबिन्सन क्रूसो'** लिखा. डिफो का दूसरा उपन्यास **'मौल फलांडर्स'** सन् 1722 में प्रकाशित हुआ, उसके बाद **'द फार्चुनेट मिस्ट्रैस'** 1724 में छपा. इन उपन्यासों में ही अतिनाटकीयता के तत्व देखे जा सकते हैं. **'मौल फलांडर्स'** की नायिका बारह

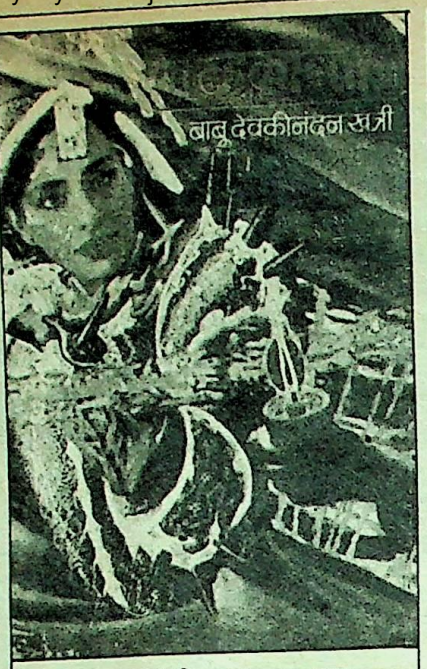

चंद्रकांता संतति का आवरण पृष्ठ

वर्ष तक वेश्या जीवन बिताती है, पांच विवाह करती है और खूब पैसा इकट्ठा करने के बाद भी गरीबी की हालत में मरती है.

डिफो के उपन्यासों के बावजूद सन् 1709 से 1830 तक इस विधा का विकास अवरुद्ध ही रहा. इन वर्षों में, जो पुस्तकें बड़ी संख्या में बिकीं उनमें अदालती कार्रवाइयों के विस्तृत वर्णन होते थे. हमारे 'रंगा-बिल्ला' या 'चार्ल्स सोभराज' की तरह उस समय 'जेम्स मैक्लिन' का मुकद्दमा बहुत चर्चा में था. इस का कारण यह था कि मैक्लिन एक संभ्रांत परिवार से था और लुटेरों के दल में शामिल हो गया था. सन् 1750 में मैक्लिन को फांसी की सजा दी गयी. तुरंत मैक्लिन के मुकद्दमे को विषय बनाकर लिखी गयी पांच पुस्तकें बाजार में आ गयीं और खूब बिकीं.

अठारहवीं शताब्दी का सर्वाधिक बिकने वाना उपन्यास सन् 1765 में प्रकाशित होरेस वालपोल द्वारा लिखित **'द कैसल ऑफ ओटरैंटो'** था इसे हम अपने **'चंद्रकांता संतति'** के समतुल्य मान सकते हैं. गोथक शैली में लिखे गये इस उपन्यास में एक क्रूर राजा, धीरोदात्त नायक और मुसीबत में फंसी नायिका है. अभेद्य किला, दुर्गम बन और अतिप्राकृतिक बाधाएं हैं.

धारावाहिकों की परंपरा

सन् 1830 के बाद बालजाक, अलेक्जेंडर ड्यूमा और चार्ल्स डिकेंस के लेखन ने सही मायने में नये उपन्यास की विधा को जन्म दिया और संस्कारित किया. 1830 से ही मध्यवर्ग का उदय और उसकी ताकत का असर दिखाई देने लगा था और कामगार वर्ग की अलग पहचान बनने लगी थी. वर्ग चेतना का युग आरंभ हो चुका था. बालजाक के मेलोड्रामा सामाजिक यथार्थ और समाज के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की छानबीन करने लगे थे. मध्यवर्ग के लिए ये उपन्यास प्रेरणादायी थे. ये राजनीति और साहित्य के जुड़ाव के वर्ष थे. पत्रकारिता के पेशे से जुड़े लोग. राजनीति और गंभीर साहित्य से भी जुड़े थे और एक पत्रकार की आय संतोषजनक थी. सन् 1836 में दुजाक नाम के व्यवसायी ने पेरिस से 'ल प्रैस' नाम का अखबार प्रचलित अखबारों से आधी कीमत पर बेचना शुरू किया और इस घाटे को विज्ञापन छापकर पूरा किया गया. सन् 1837 से 1847 तक बालजाक निरंतर इस अखबार के लिए उपन्यास देते रहे. दूसरे प्रतिस्पर्धी अखबार **'सीसेल'** ने अलेक्जेंडर ड्यूमा का **'थ्री मस्केटियर्स'** छापना शुरू किया. तीसरे अखबार में यूगेन सू का **'मिस्ट्री डी पेरिस'** नाम का धारावाहिक छपता था. यूगेन सू को सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक माना जाना था.

जब **'कान्स्टीच्यूशनल'** नामक समाचार पत्र ने यूगेन सू को उसके अगले उपन्यास **'जैफ एवेंट'** के लिए एक लाख फ्रेंक दिये तो यह एक मानक राशि बन गयी. परंतु एलेक्जेंडर ड्यूमा की दो लाख फ्रेंक प्रतिवर्ष की आय उच्चतम मानी जाती थी. इसके अलावा ड्यूमा के नाम से प्रकाशित दो लाख बीस हजार पंक्तियों के प्रतिवर्ष 63,000 फ्रेंक दो अन्य अखबारों से मिलते थे. यानी ड्यूमा के नाम से लिखे गये अलग-अलग उपन्यास तीन अखबारों में धारावाहिक छपते थे. जल्दी ही यह सिद्ध हो गया कि इतना अधिक लिखना किसी भी लेखक के लिए संभव नहीं था. यह बात अदालत में स्वीकारी गयी कि ड्यूमा अगर दिन-रात अनवरत लिखता रहे तब भी इतना लिख पाना संभव नहीं है, जितना कि उसके नाम से छपता है. पता लगा कि एक नये व्यवसाय 'घोस्ट राइटिंग' का जन्म हो चुका था. और एक समय में ड्यूमा के लिए तिहत्तर लेखक अपना योगदान दे रहे थे. बल्कि एक लेखक 'अगस्त माकेट' तो स्वतंत्र रूप से लिखते थे और उनका उपन्यास ड्यूमा के नाम से छपता था. यानी साहित्यिक कर्म का रूपातंरण व्यवसाय से हो चुका था जहां एक कारखाने में उत्पादन होता था और माल की निर्धारित कीमत मिलती थी.

चपलता और अतिनाटकीयता, बनते-बिगड़ते प्रेम संबंध, विवाहोत्तर प्रेम प्रसंग, हिंसा और क्रूरता के हरमों का दिल दहलाने वाला वर्णन, कहीं भी किसी पात्र का गायब हो जाना और कभी भी नये पात्रों का आ टपकना, घटनाओं का अंतहीन सिलसिला और कहानी के अप्रत्याशित मोड़ इन सबकी शुरुआत इन उपन्यासों में हो चुकी थी. ड्यूमा ने धारावाहिक की इस कला में सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली थी. प्रत्येक किस्त के अंत में पाठक को एक ऐसी खूंटी पर टांग देने की प्रक्रिया भी आरंभ हो गयी थी जहां वह अगले अंक के आने तक लटका रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके. फलतः दुजाक के अखबार 'सीसल' के ग्राहकों की संख्या दस वर्षों में सत्तर हजार से बढ़कर सन् 1846 में दो लाख तक पहुंच गयी थी. धारावाहिक उपन्यास ने साहित्य के जनतंत्रीकरण द्वारा, जैसे समाज के सभी वर्गों को एक ही स्तर पर उतार दिया. कभी भी किसी कला ने पूरे समाज को सांस्कृतिक स्तर पर इस तरह एक साथ अपनी गिरफ्त में नहीं लिया था.

साहित्यिक उपभोक्तावाद

इसी धारावाहिक उपन्यास के प्रकाशन के माध्यम से इंग्लैंड में चार्ल्स डिकेंस, इसी समयावधि में उच्चकोटि के लेखन द्वारा अपनी धाक जमा रहे थे. डिकेंस को सही मायने में इस साहित्यिक उपभोक्तावाद से होनेवाले हानि-लाभ का प्रतिनिधि लेखक माना जा सकता है. दिन-प्रतिदिन अपने पाठकों से प्रत्यक्षीकरण के कारण वे लोकप्रियता की कला की गहराई को समझ गये थे. लोगों से सहानुभूति, असीम सुरक्षा का भाव और बहुत बड़े फलक पर अपने उपन्यास को आधारित काने का कौशल और शब्दों के सहज प्रवाह ने डिकेंस को अपने युग का अत्यंत लोकप्रिय और महानतम लेखक बना दिया था. लोकप्रिय तो एलेक्जेंडर ड्यूमा और यूगेन सू भी थे परंतु डिकेंस की महानता की तुलना शेक्सपियर से की जाती है. डिकेंस की लोकप्रियता, पात्रों की गहराई तक छूने, सहज हास्य और भावों पर उसकी पकड़ के कारण भी. पहली बार, अच्छे-खासे बुद्धिजीवी माने जानेवाले पाठक यह स्वीकार करने लगे थे कि डिकेंस के उपन्यासों को पढ़ते समय आंखों में आंसू भर आना स्वाभाविक है.

डिकेंस की सफलता **'पिकविक पेपर्स'** से शुरू हुई, जिसकी पंद्रहवीं किस्त के बाद चालीस हजार अतिरिक्त प्रतियां छपने लगीं. **'ग्रेट एक्सपेक्टेशंस'**, **'अवर म्युचुअल फ्रैंड'** और **'डेविड कापरफील्ड'** जैसे उपन्यासों से यह भी आभास मिलता था कि डिकेंस केवल सफल उपन्यासकार कहलाकर ही संतुष्ट नहीं हैं, वे समाज सुधारक का दर्जा हासिल करना चाहते हैं, इसी समय डिकेंस ने अपनी दो पत्रिकाएं आरंभ कर दीं. साप्ताहिक **'हाउस होल्ड वर्ड्स'** का प्रकाशन 1849 में शुरू हुआ. और उसके दस साल बाद **'ऑल द इयर राउंड'** निकलने लगा.

इन सामाजिक उपन्यासों के समानांतर एक दूसरी औपन्यासिक विधा भी जन्म ले रही थी. इसे विकसित रूप देने में डिकेंस का भी योगदान रहा. सन् 1860 में उन्होंने धारावाहिक के रूप में **'हाउस होल्ड वर्ड्स'** पत्रिका में विल्की कालिन्स का उपन्यास **'द वोमेन इन व्हाइट'** छापा. इससे पहले कॉलिन्स का **'मून स्टोन'** उपन्यास छप चुका था. **'मून स्टोन'** को टी.एस. इलिएट ने पहला, सबसे लंबा और सर्वोत्तम अंग्रेजी डिटेक्टिव उपन्यास कहा है. भावनात्मक दूरी बनाये रखकर, कर्तव्यभाव से अपराधी की खोज में लगा डिटेक्टिव इन उपन्यासों के पाठकों को सामाजिक उपन्यासों के किसी भी नाटकीय नायक से अधिक आकर्षक लगता है. उस समय डिटेक्टिव थ्रिलर की इस विधा में केवल दो लेखक सिद्धहस्त थे. एडगर एलन पो और विल्की कॉलिन्स. सन् 1845 से 1875 तक इन्हीं दोनों के लिखे उपन्यास छपते रहे. 1875 में शरलॉक होम्स के **'ए स्टडी इन स्कारलेट'** ने इस विधा को नया आभास दिया. सामाजिक उपन्यासों की असावधान भाषा और बहुत अधिक लिख मारने की प्रवृत्ति के विपरीत इन उपन्यासों की भाषा एक खास किस्म का तीखापन लिये थी. सन् 1850 में लिखी गयी पो की कहानी **'पिट एंड द पेंडुलम'** का नमूना देखिये -- **"मैंने काले चोगे में घिरे उन जजों के होंठों को देखा. वे मुझे उस कागज से भी ज्यादा सफेद लगे, जिस पर मैं लिख रहा हूं. हद दर्जे के पतले, भिंचे हुए, मानवीय पीड़ा से पूर्णतया निर्लिप्त. उन्होंने चबाते हुए मेरे नाम का एक-एक अक्षर उच्चारित किया. मैं कांप गया. उस आवाज का विरोध असंभव था."** बीसवीं सदी में इस विधा में लिखने वालों में प्रमुख डैशहिल हैमिट और रेमेंड शैंडलर की भाषा का तीखापन बेमिसाल है.

फ्रांस और इंग्लैंड के इकहरे समाज से अलग अमेरिका में बहुजातीय और विविध स्तरीय समाज विकसित हो रहा था. इस समाज की मान्यताएं आकांक्षाएं और आदर्श इंग्लैंड के समाज से बिल्कुल भिन्न थे. सन् 1885 से लेकर 1987 तक वे बैस्ट सैलर्स, अमेरिकी ही हैं. सन् 1914 के बाद तो अमेरिकी संस्कृति के विस्तार ने जैसे पूरे संसार को अपना उपनिवेश बना लिया. सन

डिकन्स की पुस्तक निकोलस निकलबी

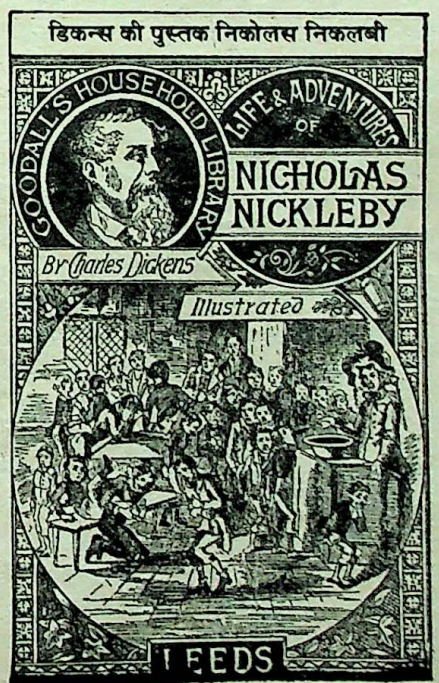

1854 में 'मारिया कमिंग्स' नाम की लेखिका का उपन्यास **'सैंप लाइटर'** छपा जिसकी पहले आठ सप्ताहों में ही चालीस हजार प्रतियां बिक गयीं. **'द चिल्ड्रन ऑफ एब्बी'** नामक उपन्यास की छपते ही पिचहत्तर हजार प्रतियां बिकीं. 1852 में ही हैरियट बीचर स्टोव का लिखा **'अंकल टाम्स केबिन'** (टाम काका की कुटिया) प्रकाशित हुआ. इसे अमेरिका के निग्रो जीवन का चित्रण करने वाला पहला उपन्यास माना जाता है. इस उपन्यास की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि प्रकाशक के छापाखाने में छह महीने तक दिन-रात यही उपन्यास छपता रहा.

अमेरिका के इस वातावरण में जहां अभिजात्य विक्टोरियन मूल्यों को लादने का सशक्त अभियान चल रहा था, टी.एस. आर्थर जैसा नैतिकतावादी उपन्यासकार सफल हो सकता था. आर्थर का जन्म सन् 1809 में न्यूयार्क में हुआ था. सन् 1852 में उसने आर्थर होम मैगजीन की स्थापना की और इस 'घरेलू विषयों पर लिखनेवाले' अमेरिकी, सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार के उपन्यास इस पत्रिका में छपने लगे. आर्थर का स्वयं को विज्ञापित करने का तरीका भी नया था. पाठकों को बताया जाता था कि **"यह संसार हमेशा टी.एस. आर्थर जैसे लेखकों का ऋणी रहेगा. उन्हें सच्चे मायनों में दुनिया का पहला समाज सुधारक कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने केवल लोगों का भला करने के लिए ही कलम उठायी है, उनकी कृतियां पाठक को सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक स्तर पर सुधारती हैं."** आर्थर के एक उपन्यास **'भटकी हुई न्यूयार्क की कहानी'** की नायिका समाज के सबसे निचले तबके से है परंतु अपने सच्चे और अच्छे व्यवहार के कारण, वह इस पाप से भरी दुनिया में भी उच्चतम सामाजिक स्तर प्राप्त करती है. **'शराब घर में दस रातें'** और **'मां तथा पत्नी'** आर्थर के सबसे प्रसिद्ध उपन्यास हैं.

सन् 1885 तक लोकप्रिय उपन्यासों के संस्करण डेढ़ लाख से साढ़े चार लाख प्रतियों के छपने लगे थे. ज्यादातर पत्रिकाएं, जो प्रत्येक अंक में पूरा उपन्यास छापती थीं, एक पैनी में बिकती थीं. **'फैमिली हैरल्ड सप्लीमैंट'** का प्रत्येक अंक दो लाख बत्तीस हजार का, **'पैनी इलस्ट्रेटेड पेपर'** दो लाख और **'वीकली बजट'** का अंक साढे तीन लाख प्रतियों का होता था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सदी का सर्वाधिक बिकने वाला उपन्यास **'गॉन विद द विंड'** है.सन् 1936 में प्रकाशित होने के बाद इसकी पक्की जिल्द में दो करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं और हर वर्ष दस लाख प्रतियां छपती आ रही हैं. पेपर बैक संस्करणों में छपनेवाली प्रतियों की संख्या कहीं अधिक है. इसकी लेखिका मार्गरेट मिचेल (1900-1949) ने इस उपन्यास से पहले या बाद में कुछ खास नहीं लिखा. उपन्यास अमेरिका के गृहयुद्ध की पृष्ठभूमि पर है और लेखिका के अनुसार यह सन् 1852 में प्रकाशित डेरियट बीचर स्टोव के उपन्यास **'अंकल टाम्स केबिन'** का जवाब है. इन दोनों उपन्यासों का इतिहास इस बात की गवाही भी देता है कि इस तरह पढ़ने में रुचि रखनेवाले समाज में पुस्तकें आंदोलनों का रूप ले लेती हैं. सन् 1852 में प्रकाशित **'अंकल टाम्स केबिन'** के काले लोगों की दासता के उन्मूलन के लिए चलने वाले आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी. सन् 1760 से 1890 तक काले स्वतंत्रता के लिए जी जान से लड़े थे. **'गॉन विद द विंड'** विरोधी प्रवृत्तियों कु कलक्स क्लान की मनोवृति को उजागर करती है. यह संस्था 1871 में उभरी थी और इसका काम काले विद्रोहियों का सफाया करना और उन्हें गुलाम बनाये रखने वाली ताकतों का समर्थन करना था. यह सन् 1880 ले लेकर प्रथम विश्व युद्ध तक गोरों द्वारा उठाये गये कष्टों की शौर्यगाथा है.

दस प्रतिशत सच के उपन्यास

अमेरिका के इतिहास में गोरों ने दो जातियों को कुचलने का काम किया है-एक तो अमेरिका के मूल निवासी 'रैड इंडियन्स' को और दूसरा अफ्रीकी कालों को. रैड इंडियन जाति का तो उन्होंने सर्वनाश ही कर दिया और कालों को वर्षों तक गुलाम बनाये रखा. रैड इंडियन्स से युद्ध की शौर्य गाथाओं के उपन्यास भी करोड़ों की संख्या में बिकते रहे हैं. जिन्हें 'वेस्टर्न' जेनर के उपन्यास कहा जाता है. इसमें लोकप्रिय लेखक हैं जेन ग्रे, अर्नेस्ट हेकार्क्स, मैक्स ब्रेंड, लुई ल' अमोर, और जे.टी. एडसन आदि. इन उपन्यासों पर आधारित 'वेस्टर्न' फिल्में बनाकर ही हालीवुड दुनिया का सबसे बड़ा फिल्मोद्योग बना है. लेकिन यह बात भी स्वीकारी जाती है कि इन उपन्यासों में दस प्रतिशत सच और नब्बे प्रतिशत कल्पना है.

हिंदी में जो लोकप्रिय उपन्यास लिखे जाते हैं उनमें भारत के स्वतंत्रता संग्राम और सशस्त्र क्रांतिकारियों पर वेदप्रकाश, ओमप्रकाश, परशुराम आदि शर्माओं ने दर्जनों, मोटे-मोटे काल्पनिक उपन्यास लिख

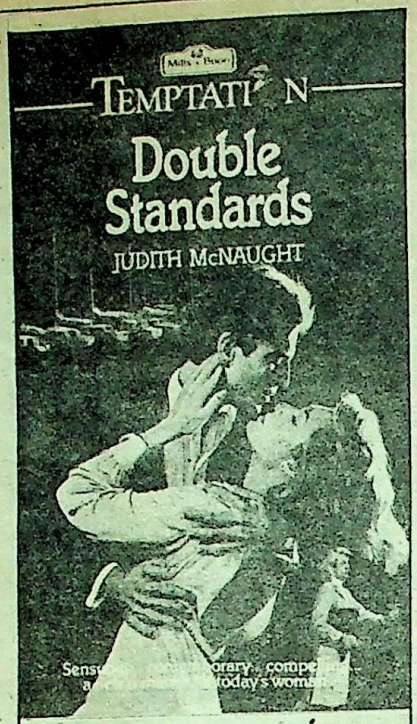

मिल्स एंड बून के एक उपन्यास का आवरण

डाले हैं. वेद प्रकाश शर्मा ने अपने तीन धारावाहिक उपन्यासों **'वतन की कसम'**, **'खून दो आजादी लो'** और **'बिच्छू'** में स्वतंत्रता संग्राम की ऐसी-तैसी की है और एक घटिया से गैंग का संबंध सीधे नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने जोड़ दिया है. वेदप्रकाश शर्मा की भाषा खासी लचर है. परंतु ये उपन्यास कई सवाल जरूर उठाते हैं—जैसे कि इन उपन्यासों का तिरस्कार करके क्या हम सही काम कर रहे हैं? एक बहुत बड़े वर्ग की छपे हुए शब्द के प्रति इस जबरदस्त भूख का अनादर करना कहां उचित है? साफ जाहिर है कि लोग स्वतंत्रता संग्राम के बारे में पढ़ना चाहते हैं और उन्हें लगातार गलत सूचनाएं दी जा रही हैं **'बिच्छू'** को जब मैंने किराये पर लिया तो उससे पहले अठ्ठाइस बार वह किताब जा चुकी थी. दिल्ली की एक छोटी सी बस्ती के एक मामूली दूकानदार के पास से यदि इस एक उपन्यास को पचास लोग किराया देकर पढ़ते हैं तो आसानी से हिसाब लगाया जा सकता है कि इन उपन्यासों के पाठक लाखों में हैं और ये लाखों लोग किताबें पढ़ना चाहते हैं और हम उन्हें रोचक तथा कम दाम की पुस्तकें उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं. उस दूकानदार को आप साहित्य-संस्कृति का पाठ नहीं पढ़ा सकते जो चार रुपये की किताबें खरीदकर पच्चीस रुपये कमाता है.

हमारे यहां रोमांटिक कहे जाने वाले लोकप्रिय उपन्यासों की भी परंपरा रही है. कुशवाहा कांत, प्यारेलाल आवारा और आदिल रशीद के उपन्यासों को प्रेम प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है. अवसर पाकर ये यौन प्रसंगों के विवरण देना भी नहीं भूलते थे. इनके बाद की पीढ़ी के लेखक प्रेम वाजपेयी, साधना प्रतापी, गोविंद सिंह और रानू इनसे काफी कमजोर थे. सन् सत्तर के बाद इस क्षेत्र में ट्रेड मार्का लेखकों और अपने नाम से लिखने वालों की संख्या में काफी वृद्धि हुई. परंतु इस पूरी भीड़ में गुलशन नंदा के नाम को कभी भी दर किनार नहीं किया जा सकेगा. गुलशन नंदा की विशेषता यह रही है कि फिल्मवालों ने उनके उपन्यासों का अनुसरण किया. जब कि इस कौम के बाकी उपन्यासकार फिल्मों के प्रचलित कथानकों से हमेशा दो कदम पीछे ही चलते रहे. फिल्मी दुनिया के 'सलीम-जावेद' की नकल पर इन उपन्यासों में भी 'राकेश-धरम' जैसी जोड़ियां चल निकली हैं. यह जोड़ी भी बीस उपन्यास लिख चुकी है.

इस तरह के एक लेखक 'राजहंस' ने बहुत कोशिश की कि एक आध फिल्म उनके उपन्यास पर भी बन जायें. पूरी कोशिशों के बावजूद फिल्म पूरी नहीं हो सकी. यह श्रेय तो केवल गुलशन नंदा को ही मिला है कि बंबइया फिल्मी दुनिया के यश चोपड़ा और शक्ति सामंत जैसे बड़े निर्देशकों ने उनके उपन्यासों को आधार बनाया और उनके लिखे चरित्रों को उस समय के चोटी के अभिनेताओं ने पर्दे पर सजीव किया. गुलशन नंदा की ही एक पुस्तक **'झील के उस पार'** को अब तक की सर्वाधिक पांच लाख प्रतियों के पहले संस्करण का गौरव प्राप्त है. 1949 में पहली बार छपा धर्मवीर भारती का उपन्यास **'गुनाहों का देवता'** भी अत्यंत लोकप्रिय रहा. उसके अब तक बीस संस्करण निकल चुके हैं. प्रेम कथाओं की लोकप्रिय लेखिकाओं में शिवानी और अमृता-प्रीतम को भी बहुत ऊंची जगह मिली है.

पाठिकाओं की सहेली लेखिकाएं

परंतु पश्चिम की कथा लेखिकाओं का किस्सा अजीबोगरीब है. रोमांटिक उपन्यासों के केवल एक प्रकाशक 'मिल्स एंड बून' के उपन्यासों की पच्चीस करोड़ प्रतियां प्रतिवर्ष बिकती हैं. 'मिल्स एंड बून' द्वारा प्रकाशित उपन्यासों में सांचे में ढली एक प्रेम कथा होती है. नायिका, कुंवारी और उन्नीस-बीस वर्ष की आयु की होती है और कई तरह की समस्याओं से घिरी हुई. मां-बाप मर चुके हैं या सुदूर कहीं हैं. दोस्त बहुत कम या बिल्कुल नहीं. वह कहीं भी टाइपिस्ट, क्लर्की आदि की छोटी-मोटी नौकरी करती है. इस पूरे वातावरण का विस्तृत ब्यौरा नहीं दिया जाता सिर्फ उल्लेख होता है. इस कारण जब नायक से भेंट होती है तो ज्यादा बाधाएं खड़ी नहीं होतीं, समाज एक ओर हो जाता है. नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्सर नायिका से उम्र में आठ-दस साल बड़ा होता है. समाज में और अपने व्यवसाय में बेहद सफल परंतु अपने व्यक्तिगत जीवन में टूटा हुआ और निराश. उसे एक सहारा चाहिए. नायिका उसे स्वीकार करती है और शारीरिक संबंधों को उस सीमा तक जाने देती है, जहां तक हिंदी फिल्मों में स्वीकृत है. उपन्यास का बड़ा भाग एक दूसरे की प्रशंसा आलोचना, आरोप-प्रत्यारोप से भरा होता है. एक दिन परेशान होकर नायिका उड़न छू हो जाती है. और नायक बहुत प्रयत्न के बाद उसे खोज निकालता है. अंतिम वाक्य अक्सर यही होता है, "आओ प्रिये तुम्हारी मां को सूचित कर दें." या "धीरज रखो प्रियतम, मैं इस निधि का समर्पण उसी रात को करना चाहती हूं" इस कथा में कुछ भी नया नहीं है परंतु 'मिल्स एंड बून' की पुस्तकें फ्रांस से जापान तक और अमेरिका से आस्ट्रेलिया तक अपनी पाठिकाओं के पास एक साथ पहुंचती हैं. इनके भारतीय संस्करण भी प्रकाशित होते हैं.

क्योंकि ये उपन्यास पाठिकाओं के लिए ही हैं, पुरुष इन्हें बहुत कम पढ़ते हैं. 'मिल्स एंड बून' के अधिकांश उपन्यास महिला लेखिकाओं के ही हैं. प्रत्येक उपन्यास में लेखिका का परिचय भी छापा जाता है. जैसे -- "डेनियली ने 'सुपर गर्ल' लिखना तब शुरू किया जब मंदी के कारण वह कंपनी बंद हो गयी, जहां वह काम करती थी. डेनियली, कैलिफोर्निया चली गयी, जहां मौसम खुशगवार है, लोग भले हैं और लिखने के लिए वह उपयुक्त स्थान है."

'पैन मैरिक' उपन्यास की लेखिका सूसन हौवच का परिचय है. – "वह अपने माता-पिता की अकेली संतान थी, उसके पिता द्वितीय विश्वयुद्ध में मारे गये. बरसों एक वकील के दफ्तर में नोटिंग का काम करके वह उब गयी और उसने उपन्यास लिखने का निर्णय लिया."

'फैमिली अफेयर्स' की लेखिका कैथविन गास्किन ने, "एक अमेरिकी से विवाह कर लिया और दस वर्ष तक न्यूयार्क में रही...."

गॉन विद द विंड पर बनी फिल्म की प्रमुख भूमिका में विवियन ले

यानी लेखिकाएं भी अपनी पाठिकाओं से भिन्न नहीं हैं. वे एक सहेली की तरह हैं, जो जीवन जी चुकी हैं और पाठिका को इस जीवन में आने वाली कठिनाइयों (फर्म का डूब जाना, पिता की मृत्यु, काम से भयंकर बोरियत) और खुशियों (अच्छा पति, सुस्थिर जीवन) के प्रति अपने लेखन के द्वारा परिचित करा देना चाहती हैं.

भारतीय सुपरमैन

सन् 1965 से 1975 तक हिंदी में गुरुदत्त नाम के एक लेखक ने लोकप्रिय साहित्य में अपना भयंकर दबदबा बना लिया था. गुरुदत्त ने अपना पहला उपन्यास 43 वर्ष की आयु में लिखा था, उसके बाद उन्होंने सौ से अधिक उपन्यास लिखे. दुर्घटनाएं यहां तक घटी कि कॉलेजों के प्राध्यापकों ने गुरुदत्त की प्रशंसा में पुस्तकें लिखी और उनके उपन्यास पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाये जाने लगे. गुरुदत्त के उपन्यास 'जमाना बदल गया' (दस भाग) का नायक कहीं भी घट रही घटनाओं को देख सकता है. उपन्यास आधुनिक युग की कथा कह रहा है. कोई पौराणिक आख्यान नहीं. परंतु नायक किसी की भी सोच को पढ़ सकता है, उसके भीतर घुसकर उसके सोचने की प्रक्रिया बदल देता है, बल्कि एक बार तो मुर्दे में घुसकर उसे जिंदा कर देता है. इसी प्रकार रघुवीर शरण मित्र का उपन्यास 'आग और पानी' मेरठ विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्वीकृत हो गया था, जिसमें चाणक्य मंत्र बल से हंडिया में पड़े गोबर को, पूरी सेना के लिए भोजन में बदल देता है. इन पुस्तकों का पाठ्यक्रम में स्वीकृत होना यही दर्शाता है कि दोहरे मूल्य और पाखंड हर जगह हावी हैं. कोई भी पुस्तक जो कुछ खास प्रकाशकों द्वारा बहुत मंहगे दामों पर छापी जाती है, श्रेष्ठ मान ली जाती है. मजा यह है कि गुरुदत्त भी पैसा कमाने के लिए नहीं लिखते, हिंदु पुनरुत्थान के लिए शाश्वत साहित्य की रचना करते हैं.

दरअसल हमारे यहां छपे हुए शब्द को पढ़कर ज्ञान अर्जित करने वाले लोग या मनोरंजन पाने वाले लोग इतनी सीमित संख्या में हैं कि लेखक नाम का जीव 'हिंदी का सेवक' ही कहला सकता है. एक लेखक को भी पैसा चाहिए यह सोचना ही इतना घृणित-कर्म है, जैसे कहें कि एक सन्यासी ने धन संग्रह हेतु ईश्वर सेवा का व्रत लिया है, इस व्रती, सन्यासी, तापस्वी, साधक की छवि को बनाये रखने का काम बड़े स्तर पर जारी है. इस छवि को पोसने में ही पुस्तक प्रकाशकों और अखबारों के मालिकों के स्वार्थ निहित हैं.

इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए क्या किया जा सकता है? साक्षरता में वृद्धि, पुस्तकालयों का जाल, सस्ती किताबें उपलब्ध कराना आदि सभी प्रस्ताव बहुत घिस गये हैं. छपे हुए शब्द को यानी छपे हुए उपन्यासों, कहानियों और वैज्ञानिक-सामाजिक जानकारियों को प्रसार देने के लिए और बिरादरी बाहर कर दी गयी अस्सी प्रतिशत जनसंख्या को भी इस अनुभव में शामिल कर लेने के लिए एक ऐसी तकनीक का सहारा लिया जा सकता है जिसे छपे हुए शब्द का शत्रु समझा जा रहा है. ऑडियो टेप तथा वीडियो टेप, दोनों ही छपे शब्द को विस्तार देने के माध्यम हैं. ऑडियो टेप (ध्वनि-चुंबकीय टेप) पर यदि हम प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों तथा अन्य लेखकों की उत्तम कृतियों को हूबहू उतारें तो वे उन लोगों तक पहुंच सकेंगी जिन्हें हम निरक्षर कहकर अपमानित करते हैं.

हमें एक खास तरह की किताबों में सिकुड़ते जाने की बजाय, विस्तार देने और हर तरह के ज्ञान के द्वार खोलने का रास्ता अपनाना होगा. जो समाज विविध प्रकार की कथाओं से उत्साह और उर्जा नहीं पाता उसका जड़ और निष्क्रिय हो जाना स्वाभाविक ही है. □

पाप बढ़ गया है!

ईश्वर को धन्यवाद कि स्वतंत्र स्कूल और छापेखाने नहीं हैं... क्योंकि पुस्तकें पढ़ने से आज्ञापालन के अभाव की स्थिति उत्पन्न हुई है. और पाप बहुत बढ़ गया है और छापाखाना इस प्रवृत्ति में तेजी से वृद्धि कर रहा है. प्रभु हमें इन दोनों से बचाओ.

सर विलियम बर्कले, वर्जीनिया का गवर्नर
मृत्यु-सन् 1677

यदि सब पढ़ सकें

"मेरे पिता को मानव मस्तिष्क की तर्कशक्ति पर अदम्य विश्वास था. उनका कहना था कि सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, यदि पूरी जनसंख्या को पढ़ना सिखा दिया जाये. यदि विविध प्रकार के विचार उन तक शब्दों और लेखन द्वारा पहुंच सकें और इस प्रकार वे अपने विचारों के अनुसार अपने प्रतिनिधियों को चुन सकें.

—आत्मकथा, जॉन स्टुअर्ट मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंदे आदमियों को भी भूख लगती है.

लिलियन हैलमेन

केवल पांच उपन्यास लिखकर महान जासूसी उपन्यासकारों में अपना नाम लिखवाने वाले डेशिल हैमेट की अपनी जिंदगी भी संघर्ष से भरी रही है. उनकी सैंतीस साला जिंदगी का काफी हिस्सा अमरीकी जेलों में बीता. उनकी पत्नी लिलियन हैलमेन, स्वयं भी जानी मानी नाटककार हैं. प्रस्तुत हैं उन्हीं के संस्मरण.

सैमुअल डैशिल हैमेट का जन्म 27 मई 1894 को मेरीलैंड में हुआ था उसने मुझे एक घटना बतायी थी. तब वह चौदह साल का था और बाल्टीमोर की रेल कंपनी में नौकरी पर लगा था.सप्ताह भर तक वह प्रत्येक दिन देर से नौकरी पर पहुंचता रहा. आठवें दिन मालिक ने कहा कि उसे निकाल दिया गया है. हैमेट ने यह सुनकर स्वीकृति में सिर हिलाया और बाहर की ओर चल पड़ा. उस आदमी ने असमंजस में उसे आवाज दी और कहा, "अगर तुम मुझे वचन दो कि आगे से ऐसा नहीं होगा तो तुम नौकरी कर सकते हो." हैमेट ने कहा, "धन्यवाद, पर मैं वचन नहीं दे सकता."

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उस आदमी ने कहा, "ठीक है, फिर भी नौकरी तो करते रहो." डैश का कहना था कि उसे नहीं पता कि उसके किस गुण के कारण उसे रख लिया गया था. पर उसे यह पता था कि वह इसी तरह से बात कर सकता है.

अपनी पहली भेंट के कुछ दिन बाद हम ब्राउन डर्बी में खाना खा रहे थे. तभी एक रैड इंडियन हमारे पास आकर बैठ गया. उसने कहा, "मेरे दादा को पुलिस ने मार दिया है..."

"तुम्हें कितने पैसे चाहिए?" हैमेट ने पूछा.

"मैं तुमसे दान नहीं चाहता. मुझे मालूम है कि तुमने हत्या के अपराध में एक रैड इंडियन को गिरफ्तार किया था." हैमेट ने अपना बटुआ मेज पर रख दिया, "इसे ले जाओ, पर मुझे यह मत बताओ कि तुम मेरे बारे में क्या सोचते हो." रैड इंडियन ने बटुआ खोला और बीस-बीस डालर के पांच नोट निकाल लिये, "मैं इन्हें दान नहीं, कर्ज के रूप में ले रहा हूं. तुम बहुतों से भले हो, पर तुमने...."

"...हत्या के अपराध में एक रैड इंडियन को पकड़ा था. ठीक." हैमेट ने तंग आकर कहा.

रैड इंडियन ने कहा, "इसलिए मेरे लिए असंभव है कि..."

"ठीक है भई—" हैमेट ने कहा, "किसी दिन मुझे डाक से भेज देना."

रैड इंडियन उठा. उसने झुककर मेरा हाथ चूमा और चला गया.

मुझे वह स्वाभिमानी आदमी लगा. मैंने कहा, "कितना गर्व है इसे अपनी कौम पर."

हैमेट ने बताया, "नहीं, ये एक नीग्रो हैं, जो रैड इंडियन का भेस बनाकर घूमता है. यह एक घटिया और गंदा आदमी है.

मैंने पूछा, "फिर तुमने इसे पैसे क्यों दिये?"

"क्योंकि घटिया और गंदे आदमियों को भी भूख लगती है." डैश ने जवाब दिया.

सन् 1942 में रूस से युद्ध की जो खबरें आ रही थी, वे बहुत बुरी थीं. परंतु पूरा अमेरिका रूसियों के साहस पर हैरान था क्योंकि उनके सामने पिछले तीस वर्षों से रूसी लोगों की छवि 'एक सोच-समझ न सकने वाली गुलाम जाति' के रूप में प्रस्तुत की गयी थी. इस युद्ध में रूस और अमेरिका एक ओर थे. पर जब रूसियों ने हिटलर की जर्मन फौजों को हराया और 1944 में रूसी, जर्मनी की ओर बढ़ने लगे तो अमेरिका घबरा गया. जो रूस जर्मनी तक आ सकता था, वह इच्छा होने पर और आगे आकर पूरे यूरोप पर अधिकार कर सकता था. इसके बाद जब चीन में क्रांति हुई, तब एक और देश के कम्युनिज्म की गिरफ्त में आ जाने से, पूंजीवादी समाजों के लोग बहुत चिंतित थे, बल्कि उन्हें लग रहा था कि कहीं वे भी इस सबके लिए जिम्मेदार हैं. उन्हें लगा कि वाकई अगर हम कुछ कर सकते तो इस दुर्घटना को रोका जा सकता था. लेकिन यह 'अगर कुछ' क्या था, इसे कभी समझा नहीं जा सका.

लोगों में फैले इस व्यापक भय का फायदा कुछ घटिया राजनीतिज्ञों ने उठाया. और मैकार्थी गुट (सांसदों, नौकरशाहों और सी.आई.ए. की संयुक्त मुहिम) बहुत ताकतवर हो गया.

इस समय हर उस व्यक्ति को संदेह से देखा जाने लगा, जो कभी भी समाजवादी सिद्धांतों से

डैशिल हैमेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावित रहा था या कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य रहा था. मुझे नहीं लगता कि हैमेट कभी पार्टी का नियमित सदस्य था. परंतु हम दोनों पर सन् 1952 में मैकार्थी कमेटी ने रूस के साथ सद्भावना रखने का आरोप लगाया. उनके तरीके में यह शामिल था कि वे आपसे उन लोगों के नाम पूछते थे जो सन् तीस से पचास तक आपकी मित्र मंडली में थे या जिन्हें आप समाजवादी विचारधारा से प्रभावित मानते हैं. तभी एक दुखद घटना घटी कि क्लिफोर्ड औडेट्स ('अवेक एंड सिंग' और 'गोल्डन बॉय' जैसे नाटकों का लेखक, जिसे पक्का मार्क्सवादी माना जाता था.) ने मैकार्थी कमेटी के समक्ष माफी मांग ली और कई नाम बताये, जिन पर उसे समाजवादी होने का संदेह था. जब डैशिल हैमेट को बुलाया गया तो उसने कुछ भी बताने से इंकार कर दिया और उसे एक वर्ष की जेल की सजा हो गयी. मुझे ब्लैक लिस्टेड कर दिया गया और काम मिलना बिल्कुल बंद हो गया.

एक वर्ष बाद जिस दिन हैमेट जेल से बाहर आया. वह दुबला-पतला आदमी बेहद कमजोर लग रहा था. उसके बाद उसकी तबीयत संभली नहीं. वह अंतिम समय तक बहुत अकेला और बीमार रहा.

जब भी मैंने उसे कहा कि तुम अपने जेल के दिनों के बारे में कुछ बताना चाहते हो तो उसने गुस्से में इतना ही कहा, "मेरे जिंदा बचे रहने के लिए जरूरी है कि मैं उस समय के बारे में बात न करूं."

और उसने कभी बात नहीं की. अंतिम दिनों में वह धैर्य, साहस और अभिमान की प्रतिमूर्ति बन गया था. दुख सहना एक निजी समस्या थी, जिसमें वह किसी का दखल नहीं चाहता था.

वर्ष की अंतिम रात्रि को मैंने उसे मार्टिनी का एक ग्लास लेने के लिए कहा, "इससे तुम्हें राहत मिलेगी."

"नहीं." वह बोला, "मुझे नहीं चाहिए."

मैंने कहा, "तुमने कभी सोचा भी नहीं होगा कि मैं तुमसे शराब पीने का अनुरोध करूंगी."

वह पहली बार उस दिन खुलकर हंसा, "नहीं, और मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं शराब के लिए मना करूंगा."

जब मैं पहली बार उससे मिली थी तो मेरी उम्र चौबीस की थी और उसकी छत्तीस की, और वह पांच दिन से शराब पर था. हम दोनों में टी.एस. इलियट पर बहस शुरू हो गयी थी. मुझे याद नहीं कि उसने या मैंने क्या कहा था. बस इतना याद है कि रात एक बजे शुरू हुई बहस सुबह तक चलती रही थी.

मुझे इस संस्मरणों को लिखते समय भी लग रहा है कि ये दर्द जब-तब उठते ही रहेंगे. मैं अभी इतनी बूढ़ी नहीं हुई हूं कि अतीत के बारे में सोचती रहूं. मैं हमेशा 'सच क्या है' और 'समझ क्या है' इन्हीं दो चीजों में उलझी रही और आज भी मुझे इनके बारे में कुछ पता नहीं है. □

लेखक की पत्नी होने से कठिन काम कोई नहीं है!

शीला हेली

लोकप्रिय लेखक आर्थर हेली की पत्नी शीला हेली ने 1978 में अपने संस्मरणों पर आधारित पुस्तक 'आई मैरिड ए बैस्ट सैलर' लिखी. इसी पुस्तक से लिये गये एक लेखक की पत्नी के जीवन के कुछ कड़वे-मीठे प्रसंग.

जब 1976 में आर्थर हेली और मैंने, अपने विवाहित जीवन की पच्चीसवीं वर्षगांठ मनायी तो हमने चार अलग-अलग भोज दिये. अपने घर बहामा में एक सौ साठ लोगों के लिए रात्रि-भोज तथा सामूहिक नृत्य. नापा घाटी में जहां हम बहामा से पहले रहते थे सौ लोगों का भोजन. कनाड़ा में पचास लोगों के लिए रात्रि भोज और नृत्य और न्यूजीलैंड में दस परिवारों के भोजन का लघु आयोजन, ठीक विवाह के दिन. तब एक मित्र ने कहा था, "शीला, कुछ ज्यादा ही उत्सव हो रहे हैं."

मुझे यह सुनकर खुशी हुई थी. आजकल जोड़े ही बहुत कम मिलते हैं जिन्होंने 25 वर्ष साथ बिताये हों और फिर एक लेखक के साथ पच्चीस वर्ष विवाहित जीवन बिताना केवल दुष्कर नहीं असंभव काम है.

हमारा विवाह जुलाई 1951 में हुआ था. हम तो दोनों समिति द्वारा प्रकाशित की जाने वाली पत्रिका 'बस एंड ट्रक ट्रांसपोर्ट' में काम करते थे. हम दोनों का वेतन कुल मिलाकर हमारे गुजारे के लिए काफी था. मुझे घर को सजाने-संवारने का बहुत शौक था और हमने कई चीजें किस्तों पर खरीद कर जमा कर ली थीं. मुझे याद है कि एक शाम हम फिल्म देखना चाहते थे और हमारे पास पैसे नहीं थे. हमने पूरा घर छान मारा पर इतने सिक्के नहीं मिले कि फिल्म के टिकट खरीदे जा सकते. तब हमने दूध की खाली बोतलें, अखबार की रद्दी एकत्रित की और उन्हें रास्ते में बेचा. जब हम फिल्म देखने हॉल में बैठे तो हम दोनों ही प्रसन्नता से चहक रहे थे.

सन् 1955 में एक बार आर्थर वैंकूवर से टोरंटो आ रहा था. उसने सोचा कि यदि अचानक दोनों चालकों की तबीयत खराब हो जाये तो क्या होगा?

यह कैसे संभव है? उसी समय जहाज में भोजन दिया जा रहा था और उसे प्रश्न का उत्तर मिल गया. बासी भोजन के कारण ऐसा संभव है. लेकिन डॉक्टर तो होगा ही हवाई जहाज पर?

सवालों और जवाबों से उलझते हुए उसने पूरी कहानी तैयार कर ली.

जब वह घर पहुंचा तो उत्साह से उछल रहा था. उसने मुझे कहानी विस्तार से सुनायी और मुझे भी अपने उत्साह में शामिल कर लिया.

एक वर्ष बाद अप्रैल 1956 में पहली बार आर्थर हेली द्वारा लिखित नाटक **'फ्लाइट इन टु डेंजर'** कनाड़ा के टेलीविजन केंद्र से प्रकाशित हुआ. नाटक इतना पसंद किया गया कि दो माह बाद ही अमेरिकी कंपनी एन.बी.सी. ने इसे प्रसारित किया. अमेरिकी शो बिजनिस की सबसे बड़ी पत्रिका **'वेरायटी'** ने नाटक की समीक्षा का शीर्षक दिया था **'हेलीस कॉमेट'**. कुछ ही माह बाद बी.बी.सी. ने इसे प्रसारित किया. बी.बी.सी पर आधारित होने के बाद एक प्रकाशक ने लिखा कि वह इस नाटक पर आधारित उपन्यास प्रकाशित करना चाहता है. परंतु इस बीच आर्थर कई नाटक लिख चुका था जो टेलीविजन पर आ रहे थे इसलिए उसने मना कर दिया. प्रकाशक ने फिर पत्र लिखा और प्रस्ताव किया कि एक लेखक भी इस रूपांतरण में सहायता करेगा. इस तरह पहला उपन्यास **'द पास वर्ड इज़ करेज'** प्रकाशित हुआ. आर्थर का दूसरा उपन्यास **'द फाइनल डायग्नोसिस'** भी उसके पहले लिखे टेलीविजन नाटक **'नोबैडली मैडिसिन'** पर आधारित था. **'इन हाई प्लेसेस'** उपन्यास 1962 में प्रकाशित हुआ और इसका अनुवाद बारह भाषाओं में छापा. तदुपरांत हर तीसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष आर्थर का एक उपन्यास आने लगा. **'होटल'** 1965 में, **'एयरपोर्ट'** 1968 **'हवील्स'** 1971 और **'द मनी चेजेर्स'** 1975 में छपा. उसका नया उपन्यास **'ओवर लोड'** 1979 में छपेगा.

मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकती हूं कि लेखक की पत्नी होने से अधिक कठिन काम कोई नहीं है. आर्थर को हमेशा यही लगता रहा कि उसका गृहस्थ जीवन सफल नहीं हो सकेगा. मुझसे मिलने से पहले उसका एक तलाक हो चुका था. इसलिए जब हमारी पहली बच्ची हुई तो मैं इस बात पर खयाल रखती थी कि बच्ची कम से कम सामने आ पाये. जब दूसरा बच्चा हुआ तो आर्थर अपने उपन्यास के लिए सूचनाएं जुटाने की यात्रा का था, परंतु तीसरे बच्चे के समय वह डिलीवरी रूम में था. चेहरे को आधा ढके, रबर के दस्ताने और सफेद गाउन पहने. संसार में प्रवेश करते उस बच्चे का सिर उसने खुद अपने हाथों से थामा था. बाद में उसने मुझे कहा, "शीला, बच्चे का जन्म लेना तो कविता की तरह है..."

मैंने गुस्सा दबाते हुए कहा था, "मैं जानती हूं.... तुम्हें शायद याद हो मैंने तीन बच्चों को जन्म दिया है."

'फाइनल डायग्नोसिस' में उसने एक पिता के सशक्त पात्र की रचना की थी. एक सात माह में जन्मा, साढ़े तीन पौंड का कम विकसित बच्चा. इन्क्यवेटर में लेटा है. उपन्यास का अंश इस प्रकार है, **"पहली बार इस विचार ने उसे घेर लिया कि यह मेरा पुत्र है, मेरा अपना, मेरे जीवन का एक अंश. उसके मन में उस कमजोर से, जीवन और मृत्यु के संघर्ष में उलझे निरीह जीव के प्रति प्रेम उमड आया. वह चिल्लाकर कहना चाहता था, "बेटे, तुम अकेले नहीं हो, मैं यहां हूं.ये मेरे हाथ हैं. इन्हें तुम ले लो. मैं अपने फेफड़े तुम्हें देना चाहता हूं ताकि तुम सांस ले सको. लेकिन अपना संघर्ष जारी रखो, हारना नहीं पुत्र, इससे आगे जीवन में जीने के लिए बहुत कुछ है जिसे हम साथ-साथ जियेंगे. मुझे सुनो और महसूस करो. मैं तुम्हारा पिता हूं जो तुम्हें बहुत चाहता हूं."**

इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद मैंने आर्थर से कहा था, "तुम स्वयं अपने जीवन में ऐसे क्यों नही हो." और आर्थर ने बात मजाक में टालते हुए कहा था, "क्या तुम चाहती हो कि अपनी श्रेष्ठ पंक्तियां मैं रोजमर्रा की घरेलू बातचीत में नष्ट कर दूं?

इस तरह के जीवन में चार साल से कम उसके तीन बच्चों को शांत रखना कठिन काम था. सुबह आठ बजे आर्थर लिखने बैठ जाता था. उसका कहना था कि साढ़े दस बजे उसके कमरे में कॉफी पहुंचा दी जाये. एक दिन जब मैं कॉफी तैयार कर रही थी, बच्चों को स्नानघर में एक नया आइडिया सूझ गया. दो वर्ष के स्टीफन ने जब नल खोलने के बाद अपनी कमीज उतारकर फेंकी तो वह पानी पर तैरती और चक्कर काटती हुई, पानी बाहर ले जाने वाली नाली में फंस गयी. तीनों बच्चे उत्साह से अपने कपड़े पानी में तैराने लगे नाली बंद हो गयी और जल्दी ही पानी रसोई तक पहुंच गया. जब तक मैं पहुंचती, तीन कमीजें और दो जांघिये नाली में फंस चुके थे. मैंने बच्चों को बाहर भगाया और नाली में से कपड़े बाहर निकालने की कोशिश करने लगी. ठीक दस चालीस पर आर्थर प्रकट हुआ, "मैं सोच रहा था कि मेरे लिए कॉफी आज आयेगी या नहीं," मेरा मन हुआ कि इस आदमी को भी नाली की ओर बहा दियाजाये और तीन-चार बाल्टी पानी डाल दिया जाये.

जब भी उपन्यास की प्रचार यात्राओं पर हम विदेश जाते हैं. आर्थर से एक सवाल अवश्य पूछा जाता है, "हमें यह बताइये कि इतने लोकप्रिय उपन्यास लिखे कैसे जाते हैं." मेरे खयाल से इसका जवाब होना चाहिए, "मेरे जैसी स्त्री से विवाह कर के." कई बार लोगों ने मुझे गुस्से में बुदबुदाते सुना है, "यहां सब कुछ तो मैं करती हूं, बच्चों को स्कूल में दाखिल कराने से, टेलीफोन के बिल जमा कराने तक. वह तो केवल उपन्यास लिखता रहता है."

परंतु इस 'केवल' में ही सब कुछ छुपा है. आर्थर को एक उपन्यास लिखने में तीन वर्ष लगते हैं और वह नियम से प्रतिदिन छह घंटे जमकर लिखता है. मेरे विचार से, आर्थर हेली को सर्वाधिक बिकने वाले उपन्यास लेखक का गौरव तीन गुणों के कारण मिला है. पहला, आर्थर कहानी को अत्यंत रोचक रूप देकर प्रस्तुत कर सकता है. आज भी अधिकांश पाठक एक ऐसी कहानी पढ़ना चाहते हैं, जो उत्सुकता बनाये रखें और आगे होने वाली घटनाओं के प्रति तीव्र जिज्ञासा के कारण पाठक उपन्यास पढ़ना बंद न कर सके. दूसरा, वह लिखने से पहले, उस विषय से संबंधित पूरी सामग्री जुटाता है, शोध करता है, लोगों से मिलता है और इस जानकारी का इस्तेमाल उपन्यास में करता है. वह पाठकों को आधुनिक दुनिया की सुविधाओं से जुड़ी समस्याओं और आधुनिक तकनीक का गहन और विराट परिचय देता है. तीसरा, उसके पास युग के मिजाज को परखने की असाधारण प्रतिभा है. वह जानता है कि आज से दो-तीन चार वर्ष बाद यह समस्या विकराल रूप ले लेगी और वह उस पर चार वर्ष पहले से ही काम करना शुरू कर देता है.

उदाहरणार्थ, जब **'मनी चेजर्स'**, 1975 में बाजार में आया तो आर्थर उस पर 1972 से ही काम कर रहा था. इसमें बैंक नाम की संस्था के बहुत तेजी से ऊपर जाने और फिर नीचे गिरने की कथा है. उसे यह तो पता था कि बैंक जो

हैली का हल्ला

अमेरिका में सर्वाधिक बिकनेवाली दस पुस्तकों की सूची हर सप्ताह 'न्यूयार्क टाइम्स' में प्रकाशित होती है. यह सूची सही सूचना नहीं दे पाती. इस सूची में 'एयरपोर्ट' का नाम चौंसठ सप्ताह तक और 'होटल' का नाम बावन सप्ताह तक छपता रहा. 'होटल' की इस अवधि में बयासी हजार प्रतियां बिकीं जब कि 'एयरपोर्ट' की दो लाख बासठ हजार प्रतियां. इस प्रकार 'हवील्स' केवल तेंतीस सप्ताह तक सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों की सूची में रहा जब कि इस पुस्तक की इस अवधि में दो लाख सात हजार प्रतियां बिकीं और 'मनी चेजर्स' चवालिस सप्ताह तक सूची में और चौदह सप्ताहों तक पहले स्थान पर रहा जबकि इसकी इस अवधि में केवल एक लाख इकहत्तर हजार प्रतियां बिकीं.

अमेरिका में प्रतिवर्ष लगभग आठ सौ उपन्यास प्रकाशित होते हैं. इनमें से कई उपन्यासों की प्रकाशन वर्ष में पचास हजार से एक लाख तक प्रतियां तुरंत बिक जाती हैं. परंतु वे पुस्तकें कभी भी इन सर्वाधिक बिकने वाली दस पुस्तकों की सूची में नहीं आ पातीं.

कुछ भी जो पढ़ने के लिए हो

कुछ भी पढ़ने की धुन थी उन्हें. रेलवे स्टेशनों से बहुत दूर की बस्तियों के लिए. छपे हुए पृष्ठ का कोई भी टुकड़ा. बसंत की हवा के झोंके के साथ बह आये पत्ते की तरह था. फाड़ा हुआ समाचार पत्र जिस में शहर से आया फेरीवाला साप्ताहिक बाजार में सामान बांधकर देता था, तेल लगा और मुचड़ा हुआ कागज, यूं ही जला नहीं दिया जाता. एक आधा पैराग्राफ, कोई रोचक सूचना, इन टुकड़ों को जोड़कर पढ़ ली जाती. हलवाहा उस अखबारी कागज को पढ़ता था जिसमें उसके लिए दोपहर का भोजन आता था. मर्द अखबार के उस टुकड़े को पढ़ते थे जिसमें तंबाकू लिपटा होता था. इस तरह एक पंक्ति यहां से, एक वहां से का जोड़ उनके लिये पुस्तक का काम करता था.

—द लाइफ ऑफ द फील्ड्स
रिचर्ड जैफरीस, प्रकाशन सन् 1884

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कर रहे हैं, उनसे उनका अधोपतन निश्चित है. परंतु यह तो उसे भी नहीं पता था कि जब 1975 में किताब छपकर दुकानों पर आयेगी तो सारे बैंक ताश के पत्तों की तरह एक के बाद एक ढह रहे होंगे.

इसी प्रकार जब **'एयरपोर्ट'** उपन्यास 1968 में आया तो हवाई अड्डे खतरनाक जगहें बन चुके थे. लाखों लोगों की भीड़ और लंबी कतारें सैकड़ों हवाई जहाज कतार लगाये हवाई पट्टी खाली मिलने की प्रतीक्षा में ही खड़े रहते थे. उतरने से पहले हवाई जहाज घंटों आसमान में ही चक्कर लगाते रहते थे तब जाकर उन्हें हवाई पट्टी खाली होने का संदेश मिलता था.

'एयरपोर्ट' के बाद **'ह्वील्स'** आया, जिसमें मोटर उद्योग की समस्याएं थीं. इसमें छोटी कार को भविष्य की कार बताया गया था. यह पुस्तक 1972-73 की सबसे ज्यादा बिकने वाली पुस्तक थी क्योंकि पैट्रोल की भयंकर कमी के कारण लोग छोटी कारें ही खरीद रहे थे जो बाजार में बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध थीं.

इन उपन्यासों को लिखने का काम इनके प्रकाशित होने से चार वर्ष पूर्व आरंभ हो चुका था.

इन उपन्यासों की सफलता के साथ-साथ हमारे घरेलू जीवन में भी तेजी से परिवर्तन आता जा रहा था. आर्थर को एक के बाद एक मकान बदलने का शौक था.

हमारा पहला मकान टोरंटो में था. आर्थर ने इसे 1947 में आठ हजार डालर में खरीदा था. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस तरह के मकान लंबी कतारों में कुकुरमुत्तों की तरह उग आये थे. इसे हमने किस्तों पर फर्नीचर खरीद कर बहुत मेहनत से, एक-एक पैसा बचाकर सजाया था.

एक रविवार को हम यूं ही सैर-सपाटे पर थे. झील के किनारे बना एक खाली मकान हमें अच्छा लगा. कीमत थी सोलह हजार सात सौ डालर (लगभग दो लाख रुपये) अब तक हम अपने पहले मकान पर इतना पैसा खर्च कर चुके थे कि वह हीरे की तरह चमकने लगा था. वह मकान तेरह हजार डालर में बिका. तीन बच्चों और सात वर्षों के विवाहित जीवन के बाद, यह नया घर, आरामदेह और सुंदर था.

सन् 1960 में एक पुराने मित्र दंपति हमसे मिलने आये. उन्होंने एक मकान पसंद किया था. पति ने मकान देख लिया था और अब पूरा परिवार उसे देखने जा रहा था. उन्होंने अनुरोध किया कि हम भी रविवार को साथ चलें. दोनों परिवार कारों के लदकर निकल पड़े.

आर्थर ने जब घूम-फिरकर मकान देखा तो उसे बहुत पसंद आया. उसने मित्र से कहा, "बिल, अगर तुम इस मकान को नहीं खरीद रहे हो तो मैं खरीद लूंगा." मैं असहाय सी खड़ी आर्थर को रोकना चाहती थी. परंतु यह भी जानती थी कि अब बात हाथ से निकल चुकी है.

बिल ने उत्तर दिया, "इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है. हमें तुम्हारा मकान बेहद पसंद है. तुम इसे ले लो, हम उसे ले लेंगे." छह घंटे बाद एक एस्टेट मैनेजर नये मकान की साफ-सफाई शुरू कर चुका था. मेरे लिए नया सिरदर्द था. हफ्तों तक चीजों को बांधना और फिर खोलना, हजारों किताबों को पेटियों में बंद करना और दुबारा से रैक बनवाकर लगाना. उसके एक वर्ष बाद ही जब **'इन हाई प्लेसेस'** छप चुका था और वह **'होटल'** पर शोध कर रहा था. अप्रैल के महीने में हम एक फिल्म देख कर लौट रहे थे, तभी बर्फ गिरने लगी. आर्थर को लगा कि जब हम कहीं भी रह सकते हैं तो ऐसी जगह क्यों रहें, जहां वर्ष में दस माह बर्फ ही गिरती रहती है. मैंने कहा कि हम बरसों से यहां रह रहे हैं और अब तो आदत पड़ चुकी है.

"कोशिश तो करो. एजेंट से पूछना, हमें इस मकान के कितने मिल सकते हैं." परंतु मैंने कोई कोशिश नहीं की.

मामला टल गया. लेकिन अभी असली झटका आना बाकी था. 1965 में **'एयरपोर्ट'** की शोध के सिलसिले में आर्थर लॉस एंजलीस गया. तब उसका परिचय एक रिटायर्ड पायलेट एलेक्सी कोल्ट से हुआ. एलेक्सी नापा घाटी में, सेन फ्रांसिस्को शहर से साठ मील दूर रहता था. एक दिन आर्थर ने कह ही दिया, "मैं यहां कुछ अच्छे मकान देखना चाहता हूं."

उसे कई मकान दिखाये गये. जिनमें से एक उसे पसंद आ गया, "कितना?" उसने पूछा. जवाब मिला, "ग्यारह हजार पांच सौ."

"अच्छा, वाकई. मैं इसे खरीदूंगा."

छह माह बाद हम टोरंटो से उड़कर (लगभग दो हजार मील दूर) सैन फ्रांसिस्को में सामान सहित उतर रहे थे. टोरंटो और नापा घाटी में जलवायु का बहुत अंतर था, लोग भी बहुत अच्छे और मिलनसार थे. आर्थर ने मीडोहुड क्लब में एक कमरा ले लिया था और नये उपन्यास **'एयरपोर्ट'** का जन्म हो चुका था.

बिकाऊ लेखक : तिरस्कार का पात्र

सभी पुस्तकीय लोग स्नॉब होते हैं, खासतौर पर ज्यादा पढ़े-लिखे लोग. वे समझते हैं कि यदि किसी लेखक की पुस्तक बहुत बड़ी संख्या में छपती है और सीधा-सादा आदमी भी उस पुस्तक को पढ़कर आनंद उठा सकता है तो निश्चय ही वह पुस्तक पढ़े जाने लायक नहीं है. उसे उदासीनता और तिरस्कार से देखा जाना चाहिए.

— आर्नोल्ड बैनेट, जुलाई 19, 1928, इवनिंग स्टैंडर्ड

इस समय हमें उन समस्याओं का सामना भी करना था जो अल्प अवधि में अधिक धन आ जाने से उत्पन्न होती हैं. **'एयरपोर्ट'** हमारी आशाओं से अधिक सफल रहा था. आर्थर पर फिल्में बन रही थीं. इसलिए उसका अधिक समय आयकर की उलझनों और कानूनी सलाहकारों के साथ बीत रहा था. एक दिन मैं गुस्से से फूट पड़ीं, "तुम लेखक हो या आयकर विशेषज्ञ? जो समय तुम्हें टाइप राइटर के साथ बिताना चाहिए उसे तुम कैलकुलेटर के साथ उलझकर नष्ट कर रहे हो."

हमने समस्या पर काफी समय तक बातचीत की. गर्मियों में नापा घाटी बहुत अनुकूल थी परंतु बाकी के छह माह वहां लगातार वर्षा होती रहती थी. हमारे कनाड़ा के कानूनी सलाहकार ने हमें बहामा (सैन फ्रांसिस्को से लगभग तीन हजार मील दूर, अमेरिका और वेस्ट इंडीज के बीच, स्वतंत्र द्वीप समूह) जाने की सलाह दी थी. वहां आयकर कानून सरल थे. यह कठिन निर्णय था क्योंकि बच्चों की शिक्षा कैलीफोर्निया में ही ठीक तरह हो सकती थी. बहामा में दो माह रहने के बाद मैं उस वर्ष के लिए कैलीफोर्निया आ गयी ताकि बच्चों की पढ़ाई पूरी हो सके. आर्थर नये उपन्यास **'ह्वील्स'** के लेखन में जुट गया था.

बहामा में रहते हुए हमें आठ साल हो गये हैं. **परंतु अब भी एक बुरा सपना देखकर मेरी नींद** उड़ जाती है — आर्थर प्रसन्नता से उछलता हुआ मेरी ओर से आ रहा है और कह रहा है, "प्रिये, किसी दूसरे देश के एक शहर में मैंने खूबसूरत जगह देखी है....."

मैं अपने जीवन से बहुत संतुष्ट और प्रसन्न हूं. मैं यह भी जानती हूं कि यदि आर्थर एक लेखक के रूप में असफल हो गया होता तो हमारा जीवन कितना कठिन होता. परंतु सफलता की कीमत भी कई तरह से देनी पड़ती है. अक्सर पार्टियों या समारोहों में मेरा परिचय दिया जाता है, "श्रीमती आर्थर हेली, इनके पति बहुत प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं."

इस तरह के एक परिचय के बाद एक महिला ने मुझसे पूछा था, "यह सुनकर तुम्हें बुरा नहीं लगता."

"नहीं," मैंने जवाब दिया था, "मुझे इसकी आदत हो गयी है, मेरा अहम् अब आहत नहीं होता."

"पर आपको नहीं लगता कि प्रत्येक स्त्री की एक स्वतंत्र पहचान होनी चाहिए."

मैं मुस्करा देती हूं. हमारे मित्र और परिचित जो हमें लंबे अरसे से जानते हैं. उन्हें पता है कि इस जीवन में मेरा क्या योगदान रहा है. लेकिन स्त्री स्वतंत्रता आंदोलन ने इन वर्षों में इस तरह के कई सवालों को उठाया है. मैं तो इतना ही जानती हूं कि मैंने अपने भविष्य की जो कल्पना की थी, मेरी जिंदगी उससे कहीं अधिक बेहतर है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताबें दीवारें नहीं पढ़तीं उर्फ लेखक प्रकाशक और पाठकों के अंतर्संबंध

पाठक लेखक और प्रकाशक के अंतर्संबंधों और पुस्तक जगत पर यह परिचर्चा इस रूप में महत्वपूर्ण है कि जहां निजी संस्थाएं बढ़ती जा रही महंगाई और सरकार के उदासीन रवैये से परेशान हैं वहीं सरकारी और स्वायत्तशासी संस्थाओं का कहना है कि वे बराबर इस दिशा में बेहतर प्रयास कर रही हैं...वह उन्हें सफलता भी मिल रही है. आइए देखें, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, प्रभात प्रकाशन, डायमंड पॉकेट बुक्स, राजपाल एंड संज, सचिन प्रकाशन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस हिंद पॉकेट बुक्स, आर्य बुक डिपो, वाणी प्रकाशन, प्रवीण प्रकाशन और किताबघर की ओर से जो विचार प्रस्तुत किये गये हैं उनके आधार पर इस विषय को सुलझाने की दिशा में क्या कुछ किया जा सकता है...और वस्तुस्थिति क्या है...?

नेशनल बुक ट्रस्ट का कार्य क्षेत्र

नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया का गठन अगस्त 1957 में शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त शासी संस्था के रूप में किया गया था. सदसाहित्य का उत्पादन ही नहीं उसके उत्पादन को प्रोत्साहित करते हुए कम कीमत पर जनता के लिए उपलब्ध कराना.....संविधान में मान्यता प्राप्त सभी भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद एक भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषाओं में करवाना....अधुनातन ज्ञान की लोकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करते हुए जनता में पढ़ने की आदत डालने के लिए भरसक प्रयत्न करना....आदि नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रमुख उद्धेश्य और कार्यकलाप हैं. नव्यतम पुस्तक मेले के संदर्भ में नेशनल बुक ट्रस्ट के एक प्रवक्ता ने जानकारी देते हुए कहा कि निजी प्रकाशकों के लेखकों की मोनोपोली को तोड़ते हुए एन.बी.टी. का सदैव यह प्रयास रहता है कि वह किताबें प्रकाशित करते हुए स्तर का विशेष ध्यान दे. प्रायः ऐसे विषय और नये व महत्वपूर्ण लेखकों को एन.बी.टी. की पुस्तकों के माध्यम से सामने आने का अवसर मिलता है जिन्हें अन्य प्रकाशक प्रकाशित करने में रुचि नहीं लेते. बच्चों की पुस्तकों की स्थिति यह है कि प्रायः उनके चार-पांच संस्करण तो होते ही हैं. यों 75% से 80% तक यहां की सभी किताबें रिप्रिंट होती हैं.

....इस पुस्तक मेले में लगभग छः सौ प्रकाशक भाग ले रहे हैं. इनमें से लगभग 60 विदेशी प्रकाशक हैं. लेखक संघों की सहयोगी प्रकाशन-संस्थाएं भी भाग ले रही हैं. इस बार लेखकों और प्रकाशकों के लिए सबसे आकर्षक बात यह है कि उन्हें प्रवेश निशुल्क तो मिलेगा ही साथ ही काफी-हाउसनुमा वातावरण दिये जाने की व्यवस्था भी की जा रही है. इसके पीछे हमारा उद्धेश्य यह है कि विविध भाषाओं के लेखक तो परस्पर विचार-विमर्श करें ही साथ ही विविध भाषाओं के प्रकाशक भी लेखकों से रू-ब-रू हो कें अपने आप में यह विश्व पुस्तक मेला न केवल सुनियोजित है बल्कि एशिया का सबसे बड़ा और सफलतम आयोजन भी रहेगा. पुस्तक व्यवसाय में यह मेला न केवल प्रकाशकों बल्कि लेखकों के लिए भी समान रूप से उपयोगी साबित होगा. ....यों नेशनल बुक ट्रस्ट की दृष्टि से यहां पैसा कमाना प्रमुख नहीं है इसके निश्चित उद्देश्यों के लिए हम गंभीरता से न केवल विचार कर रहे हैं बल्कि उन्हें पूरा करने के लिए अवसर भी जुटा रहे हैं...

प्रकाशन-विभाग की भूमिका

प्रकाशन की दृष्टि से प्रकाशन-विभाग देश का महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा प्रकाशन संस्थान है. अब तक इसने 6200 पुस्तकें प्रकाशित की हैं. यहां से प्रकाशित होने वाली पुस्तकें न केवल हिंदी और अंग्रेजी में बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होती हैं. और इनका उद्धेश्य है देश के नागरिकों को इतिहास, भूगोल, सामाजिक ढांचे, संस्कृति और भाषाई दृष्टि से संपन्न करना. राष्ट्रीय सक्रियता के लिहाज से नागरिकों में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराना..... राष्ट्रीय एकता और जागरूकता की समझ पैदा करना तथा आस्था और विश्वास पैदा करना, देश के जीवन और संस्कृति के प्रति गहरी आत्मीयता जगाते हुए उसकी समूची जानकारी देना. इस संस्थान के प्रमुख उद्धेश्यों में से है. कला, संस्कृति, पर्यटन, यात्राएं, भाषण, राष्ट्रीय नेता, जीवनियां, गांधी-साहित्य, स्वतंत्रता आंदोलन, विज्ञान की लोकप्रिय पुस्तकें, शिक्षा, इतिहास, तथा बच्चों के लिए संदर्भ ग्रंथों के रूप में विशेष किताबें कम से कम कीमत पर प्रामाणिक जानकारी के साथ यह संस्था सुरूचिपूर्ण तरीके से छापती है. इस बात का बराबर ध्यान रखा जाता है कि कथ्य और प्रस्तुति में स्तरीयता बनी रहे. यह संस्था न केवल अपनी स्तरीय पुस्तकों वरन अपने यहां से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं के लिए भी जनता में अपना विश्वास बना चुकी है. आर्थिक दृष्टि से भी यह संस्था दिनोंदिन प्रगति के रास्ते पर बढ़ रही है. बंगलौर, कलकत्ता, त्रिवेंद्रम और नयी दिल्ली की प्रदर्शनियां इस लिहाज से खास ही बड़ी उपलब्धियां हैं. आजादी के चार दशकों में देश के विकास और उपलब्धियों के संदर्भ को लेकर संदर्भ ग्रंथ प्रकाशित करने और आधुनिक भारत के निर्माता सीरीज के अंतर्गत पं. गोविंद बल्लभ पंत और मैडम भीकाजी कामा रिलीज की जा चुकी हैं. पं. गोविंद बल्लभ पंत का लोकापर्ण उपराष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा द्वारा पंत जी के जन्म शताब्दी वर्ष पर किया गया. प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के चुने हुए भाषणों और लेखों का (प्रकाशन नं.-1) भी इस वर्ष प्रकाशित किया गया. इंपलायमेंट न्यूज नाम से तीन भाषाओं में प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक अखबार की तीन लाख से अधिक प्रतियां प्रति सप्ताह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिकती हैं. दरअसल यह संस्था अपने आप में देश के नागरिकों में पाठकीय जागरूकता और उत्साह को बढ़ावा देने के लिहाज से बराबर सराहनीय प्रयास करती रहती है...

पुस्तकें गंभीर चिंतन का आधार हैं

दीनानाथ मल्होत्रा

आपने लेखक-पाठक और प्रकाशक के संदर्भ में महत्वपूर्ण सवाल उठाये हैं. तीनों ही अच्छी चीज चाहते हैं. व्यावहारिक रूप से इस संदर्भ में आने वाली दिक्कतों का सामना हम हर रोज करते हैं... तीस वर्ष पहले जब हमने पॉकेट बुक्स की शुरूआत की थी, तब किसी को यह विश्वास स्वप्न में भी नहीं था;.. पर हमें यह विश्वास था कि सस्ती और अच्छी पुस्तकों की मांग पाठकों में है. हिंदी ही नहीं भारतीय भाषाओं और विदेशी साहित्य के भी उत्कृष्ठ प्रकाशन हमने में हिन्दी में किये. तब अप्रत्याशित सफलता भी मिली. पर पिछले दस - बारह वर्षों में स्थिति बदल गयी है. यह ठीक है, कि पुस्तकें लिखने, पढ़ने और प्रकाशित करने के क्षेत्र में खासा विस्तार हुआ है... आज हमारी साक्षरता 35% है. और हिंदी देश के 40% लोगों की मातृ भाषा है. अहिंदी भाषी पाठक भी हिंदी पढ़ते हैं. पर जिस रूप में पुस्तकें बेच पाने के मामले में हमने अपने प्रारंभिक दौर में अप्रत्याशित सफलता हासिल की थी वह स्थिति अब नहीं रही. पॉकेट बुक्स के नाम पर बहुत सी हल्की-फुल्की मनोरंजन की किताबें छपने लगीं हैं. मुझे उनसे कोई ऐतराज़ नहीं है जो लोग पढ़ते हैं, जरूर पढ़ें, मनोरंजन करें. पर यह तो मानना ही होगा, कि स्तर-हीन लेखकों द्वारा तैयार वो किताबें और उनके प्रकाशकों की कार्यपद्धति और अर्थशास्त्र में आधार यह है, कि सब अच्छी पुस्तकों को बाजार से बाहर धकेल दिया जाए. जितने भी प्राइवेट स्टाल हैं, या बस स्टैंड या रेलवे स्टेशन पर किताबें बिकने की जगह हैं, वहां वे लोग वही चीज रखना चाहते हैं, जो तेजी से बिके और उन्हें अधिक मुनाफा दे. दरअसल वे रोजी कमाने वाले पेशेवर लोग हैं. उनके मन में प्रायः आदर्शवाद के लिए कोई जगह नहीं है. यूं अपवाद तो हर जगह होते ही हैं. आज विक्रेता यह फैसला करता है, कि क्या छपे - क्या बिके! पुस्तकें पाठकों तक पहुंचाने का प्राथमिक जरिया ये स्टाल्स ही हैं. अब ए.एच. व्हील्र के रेलवे स्टाल्स को ही लीजिए. इसे चलाने वाले कंपनी के डायरेक्टर न केवल हमारी किताबों की सराहना करते हैं, बल्कि वे हमारी इज्जत भी करते हैं. उनके निर्देशों के बावजूद इन स्टालों में हमारे यहां से प्रकाशित रवींद्रनाथ टैगोर की पुस्तकें उस रूप में नहीं बिकीं. क्योंकि स्टालों पर बैठा हुआ आदमी ही महास्वामी है. वही तय करता है कि कौन-सी पुस्तकें किस तरह से डिस्प्ले की जायें. आज आप देखिये, कि बुद्धिजीवी तो बहुत बड़ा शब्द है, स्तरीय पाठक भी इन स्टालों की तरफ झांकता तक नहीं. जबकि मेरा मत यह है, कि स्तरीय पुस्तक पढ़ने वाले पाठक भी बढ़े हैं, पर उनकी सुरूचियों का गला घोंट दिया गया है. डाक द्वारा पुस्तकें मंगवाने का एक साधन और था, पर आज डाक दरें इतनी ज्यादा हो गयी हैं, कि वे इस सुरूचि संपन्न साहित्य पर बहुत भारी पड़ती हैं. दस रुपये की पुस्तक डाक द्वारा मंगवाने पर पंद्रह रुपये की पड़ती है. हमारी घरेलू लायब्रेरी योजना के 1962 से अब तक कुल मिलाकर लगभग सवा पांच लाख सदस्य बन चुके हैं. पर इस समय सदस्यों की संख्या नगण्य ही है. लगता है, कि पाठक चाह कर भी पुस्तक नहीं खरीद पाता. लायब्रेरी के माध्यम से बिकने वाली पुस्तकों का एक अलग संसार है. हमारे यहां लायब्रेरी की जो ग्रांट मौजूदा हालात में दी जाती है, वह दरअसल बढ़ती हुई महंगाई के अनुपात में बहुत कम है. आज हमारे यहां वीडियो लायब्रेरीज तो बहुत खुल रही हैं. पर किताबों के लिये पुस्तकालयों की संख्या में न तो पर्याप्त विस्तार हुआ है. न सुविधाएं बढ़ायी गयी हैं. जबकि गहन गंभीर चिंतन का आधार पुस्तकें हैं. टी.वी. नहीं.....

आदर्शों व सिद्धांतों का खामियाजा

ईश्वरचंद्र

इस क्षेत्र में जो स्थिति आयी है, उसकी मूल वजह महंगाई ही है. हालत यह है कि हमारी स्तरीय पुस्तकों के बाउंड एडीशन व्यक्तिगत रूप से खरीदने वाले अधिकाधिक 5% पाठक होंगे. ज्यादातर लोग पुस्तकालयों में जाकर पढ़ना पसंद करने लगे हैं. इस क्षेत्र में कमीशन की होड़ इतनी बढ़ गयी है, कि यहां कोई नियम काम नहीं करता. जो लोग 60% तक कमीशन देने की स्थिति में होते हैं, आप पाएंगे कि उनकी पुस्तकों की कीमत अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा है. अखिल भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ के सदस्य भी इस मामले में बिखरे हुए हैं. और सही हल तक पहुंचने की कोशिश नहीं करते. आखिर कहीं तो आपको अंतर करना होगा न! अमृतलाल नागर, डा. राधाकृष्णन्... जैसे रचनाकारों की पुस्तकें और सामान्य लेखकों की पुस्तकें खरीदते वक्त क्या एक ही व्यवहार अनुचित नहीं है? खरीदते वक्त कमीशन की होड़ हर तरह की किताब को एक ही तराजू में तोलती है. कागज के मूल्य पर सरकार का होल्ड होना चाहिए. कई बार इसके लिए सरकार से बात भी की गयी किंतु कोई रास्ता अभी तक नहीं निकल पाया. सरकार छपी हुई पुस्तकें तो आयात कर सकती है लेकिन कागज आयात करने में रुचि नही लेती. आप जानते ही हैं, कि हिंदी के पाठक की क्रय शक्ति अंग्रेजी पाठकों के मुकाबले कहीं कम है. ऐसे में लगातार बढ़ता हुआ कागज का मूल्य किताबों को और महंगा बना देता है. पढ़ने की आदत डालने का काम नेशनल बुक ट्रस्ट और साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं को करना चाहिए, पर इस दिशा में कोई खास प्रयास दिखाई नहीं देते. जो प्रकाशक एथिक्स नहीं जानते, वे घटिया पुस्तकें भी अधिक लेते हैं..... आश्चर्य की बात यह है, कि नेहरू जी किताबों की बिक्री के इस सिलसिले के सख्त खिलाफ थे. उनका कहना था, कि वे कोई साग सब्जी हैं, कि इस पर टैंडर इनवाईट की जाएं. इसी व्यवस्था से भ्रष्टाचार पनपता है. पाठकों को बढ़ावा देने के लिहाज से कृष्णचंद बेरी की हाल ही में प्रारंभ की गयी सीरीज अनुकरणीय है. जिसके तहत वे बड़े रचनाकारों के संपूर्ण साहित्य को बहुत कम कीमत पर देने की शुरूआत कर चुके हैं. हमारी घरेलू लाएब्रेरी योजना की भी शुरूआत से जन-जन तक पहुंचने की कोशिश रही है. हमें अपने आदर्शों और सिद्धांतों की वजह से काफी खामियाजा उठाना पड़ता है, क्योंकि अब किताब - किताब न होकर प्रोडक्ट बन गयी है. पर यह एक मिशन है और हम इसे मिशनरी उत्साह से लेकर चल रहे हैं. ....

परचेंजिंग कैपिसिटी नहीं है

के.एल. मलिक

नेशनल पब्लिशिंग हाऊस के संचालक और भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ के अध्यक्ष के.एन. मलिक का विचार है कि बंगाल में पुस्तकों के प्रति वहां के लोगों में मोह होता है. वहां पढ़ने लिखने की संस्कृति बहुत विकसित है. जिस कारण वहां किताबों के एडिशन अधिक छपते हैं. जिस वजह से वहां पुस्तकों की कीमत भी कम हो जाती है. मगर हिंदी में ऐसा नहीं है और आप देखिये कि कीमतें केवल पुस्तकों की ही तो नहीं बढ़ रही हैं, हर वस्तु के दाम आसमान छू रहे हैं. कागजों के दाम क्या हैं, और छपाई पर कितना खर्चा होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे आप वाकिफ होंगे. कई बार तो किताब पर लगी लागत भी वसूल नहीं हो पाती. सरकार भी इस मामले में गौर नहीं करती. हार कर हमें पुस्तकों की कीमतें अधिक करने के लिए विवश होना पड़ता है. मगर कुछ प्रकाशकों ने पेपर बैक संस्करण शुरू किये हैं जो कि एक अच्छा कदम है. मगर हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि हिंदी के पाठकों में कैपेसीटी बहुत कम है.

मेरे विचार में इन पुस्तक मेलों का आयोजन बेमतलब है. इनकी किसी भी दृष्टि से कोई उपयोगिता नहीं है.

हमारा ध्येय बिक्री नहीं पाठक से जुड़ना है

अरुण कुमार

वाणी प्रकाशन के सह संचालक अरुण कुमार का मानना है कि किताब और पाठक की दूरी बढ़ती ही जा रही है. इस बारे में कुछ प्रकाशकों ने गंभीरता से विचार करके कुछ कदम भी उठाये हैं जिनमें सबसे उल्लेखनीय कदम है – किताबों के पेपर बैक संस्करण. इस बारे में गंभीरता से सोचा जा रहा है कि आखिर क्या कारण है कि हिंदी की बनिस्पन बंगला साहित्य सस्ता उपलब्ध हो जाता है. इसी कारण उस भाषा के पाठक हिंदी की तुलना में अधिक हैं.

इसमें कोई शक नहीं कि इस दिशा में बनारस के हिंदी प्रचारक संघ ने क्रांतिकारी कदम उठाये हैं मगर इसमें अहम बात है कि उन्होंने जिन लेखकों को अपनी उस योजना में शामिल किया है, उनमें वही हैं जो अपना लेखन संपूर्ण कर चुके हैं जबकि हमारा प्रकाशन उन लोगों को छापता है जो अभी लिख रहे हैं.

सच्चाई यही है कि हिंदी के पाठकों की गिनती बहुत कम है. आप बताइये पत्र-पत्रिकाओं में छपी पुस्तक-समीक्षाओं को पढ़कर कितने लोग पुस्तकें खरीदते हैं!

मैं स्वीकार करता हूं कि व्यावसायिक दृष्टि से पुस्तक मेलों का हम साहित्यिक-प्रकाशकों के लिए कोई विशेष महत्व नहीं मगर यह बात मैं आपको स्पष्ट कर दूं कि हमारे प्रकाशन-संस्थान का इन मेलों में शामिल होने का ध्येय केवल पुस्तकों की बिक्री नहीं है, पाठक से जुड़ना है. आप देखिये कि अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला 1988 का अधिकांशतः अंग्रेजी प्रकाशकों ने ही विरोध किया था मगर उनमें भी ज्यादातर वे थे जो प्रकाशक न होकर वितरक हैं.

चूंकि हमारी नीयत में खोट नहीं है इसलिए हम लेखकों के साथ अच्छे संबंध बनाते हैं और आखिर हम लेखकों से संबंध कैसे बिगाड़ सकते हैं, वे ही तो हमारी रोजी-रोटी का जरिया हैं. वैसे हमारी यह पूरी कोशिश रहती है कि हर लेखक हमसे इतना संतुष्ट हो कि वह अपनी पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए अन्य प्रकाशन संस्थान में न जाये मगर यदि वह फिर भी जाता है तो हमें कोई आपत्ति नहीं है.

पाठक, लेखक और प्रकाशक

श्याम सुंदर

हिंदी प्रकाशन की समस्याएं अंग्रेजी अथवा देश की अन्य भाषाओं से पर्याप्त भिन्न हैं. मुख्यतः पठन रुचि के विषय में. अंग्रेजी तथा बंगला, मलयालम, गुजराती व मराठी आदि भारतीय भाषाओं में पुस्तकें सामान्य पाठक के लिए लिखी व छापी जाती हैं. जबकि हिंदी में स्थिति ठीक दूसरी है. यहां एक तो पाठक हैं ही कम...और खरीद कर पढ़ने वाले तो और भी कम हैं. यही वजह है, कि हिंदी की सजिल्द साहित्यिक पुस्तकों का समूचा प्रकाशन व्यवसाय प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकारी पैसे से चलने वाले पुस्तकालयों की खरीद पर आश्रित है. दूर-दराज के देहाती इलाकों और कम पढ़े लिखे तबके में धार्मिक और लोक-साहित्य अब भी खरीद कर पढ़ा जाता है. पर इस प्रकार की पुस्तकें आजादी के बाद नए पनपे सजिल्द साहित्यिक पुस्तकों के क्षेत्र में नहीं आतीं. इसीलिए यहां हुए पुस्तक मेलों में यह पुस्तकें नजर नहीं आतीं. परंतु धार्मिक व सांस्कृतिक पर्वों और समारोहों में धड़ल्ले से बिकती हैं. रामचरित मानस के बीसियों प्रकाशक आज भी ऐसे हैं जो हजार पृष्ठ के इस ग्रंथ के वर्ष में अनेकों संस्करण प्रकाशित कर लेते हैं. जाहिर है, वे पुस्तकालयों की ओर झांकते तक नहीं. इधर वर्षों से चिंता के साथ यह विचार हो रहा है, कि हिंदी की पुस्तकों को पाठक या खरीदार नहीं मिलता. आमतौर पर पुस्तकालय संस्करण में छपे अच्छे सजिल्द उपन्यास का एक संस्करण चार-पांच वर्षों में बिक पाता है जबकि ठीक ऐसे माहौल में प्रेमचंद और शरत जैसे लेखकों की पुस्तकों की हिंदी में ऐसी स्थिति बिल्कुल नहीं है. इनकी पुस्तकें अपेक्षाकृत अधिक चाव से खरीदी और पढ़ी जाती हैं. ऐसे में लगता है कि सहजता, सरलता

हिंदी में पाठक

साहित्य और लोकप्रिय साहित्य का अंतर पश्चिम में पुराना है, कम से कम सौ साल पुराना, लेकिन हिंदुस्तान में ही नहीं-- यह फर्क पिछले बीस पच्चीस सालों में ही ज्यादा उभरा है.

दिनमान के प्रतिनिधि को कुछ लोगों के बातचीत करने पर प्रश्नों के जो उत्तर मिले, वे यकीनन दिलचस्प थे, जो आश्चर्यजनक नहीं, उत्तर देने वाले थे छह शिक्षक (विश्व विद्यालय से लेकर प्राथमिक कक्षाओं तक के) सात छात्र-छात्राएं, एक किरानी, एक दूकानदार, एक मिस्त्री, एक पुस्तक विक्रेता, एक सार्वजनिक पुस्तकालय के अधिकारी, एक पत्रकार और एक ऐसे दूकानदार जो दस बारह पैसे प्रतिदिन किराये पर पुस्तकें देते हैं. इन में अठारह व्यक्ति ऐसे थे जो साल में चार पांच से लेकर चालीस-पचास तक पुस्तकें पढ़ते हैं.....

इन उत्तरों से प्रकट होने वाले तथ्य हैं.---

हिंदी की पुस्तकों के अधिकतर पाठक सत्तरह-अठारह से लेकर चौबीस पच्चीस वर्ष तक की आयु के लोग होते हैं-- युवक और युवतियां दोनों ही.

इनमें से अधिकतर अविवाहित होते हैं. युवतियां अधिकतर छात्राएं या अध्यापिकाएं. युवकों में छात्रों के अतिरिक्त दफ्तरों के बाबू और छोटे-छोटे दूकानदार भी.

अधिकतर पाठक पुस्तकें खरीदते बहुत कम हैं. पुस्तकालयों से, दूकानों से किराये पर लेकर या मांगकर पढ़ते हैं.

अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ने के साथ वय और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों जुड़े हैं. कुछ लोगों ने कहा कि अब उन्होंने हिंदी की पुस्तकें पढ़ना बंद कर दिया है. क्योंकि हिंदी के जासूसी उपन्यास अविश्वासनीय होते हैं, और सामाजिक सतही और बचकाने.

युवतियां सामाजिक उपन्यास पढ़ती हैं, जासूसी उपन्यास बहुत कम. सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक हैं गुलशन नंदा, (पुस्तकें हैं-- सिसकते साज, नीलकंठ, माधवी, लरजते आंसू...) उसके बाद काफी पिछड़े हुए, आदिल रशीद.

अधिकतर युवक जासूसी उपन्यास पढ़ना पसंद करते हैं. लोकप्रिय लेखक हैं, अकरम इलाहाबादी (उर्दू से अनुदित होकर), ओम प्रकाश शर्मा, और वेद प्रकाश कंबोज, कोई खास पुस्तक नहीं.....

दिनमान 7, जनवरी, 1966

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रोचकता के कारण ही वे अधिक लोकप्रिय हैं. बहुत ऊंची (क्षमा करें) या दुर्बोध शैली और भाषा के कारण भी आम पाठकों में हमारी पुस्तकें लोकप्रिय नहीं हो पा रही हैं. यह बात काफी जोर से सुनायी पड़ रही है, कि पुस्तकों के मूल्य अधिक होने के कारण खरीदार नहीं मिलते. दरअसल, अधिक मूल्य होने का एक बड़ा कारण छोटा प्रिंट आर्डर होना है. कुछ प्रकाशकों ने साहस करके लगभग एक तिहाई मूल्य में पुस्तकों के अल्प मोली संस्करण निकाले भी किंतु जैसी अपेक्षा थी वैसी सफलता इस दिशा में नहीं मिली. उदाहरण के तौर परं लगभग ढाई तीन गुने मूल्य की सजिल्द पुस्तक की दो हजार प्रतियां जितने समय में बिकीं, उसी पुस्तक की एक तिहाई मूल्य की अल्पमोली संस्करण की महज पांच हजार प्रतियां ही बिकीं. कभी-कभी तो उससे भी कम.

जहां तक लेखक-प्रकाशक संबंधों की बात है, कठिनाई फिर वही है....पुस्तकों की कम बिक्री. पुस्तकें इतनी मंथर गति से बिकती हैं, कि लेखक को जो रॉयल्टी मिलती है वह उसे संतोषजनक नहीं लगती. यदि पुस्तकों की बिक्री अच्छी हो तो लेखकों की रॉयल्टी स्वतः बढ़ जाएगी. और साथ ही प्रकाशकों का लाभांश भी. कई बार लेखक-प्रकाशक संबंधों के मधुर न होने की बात सामने आती है. कुछ प्रकाशक निश्चित रूप से रॉयल्टी के मामले में गड़बड़ करते होंगे. किंतु उनकी संख्या अधिक नहीं होगी. मैं ऐसे बहुत से प्रकाशकों को जानता हूं, जिनके लेखकों को उनसे कोई शिकायत नहीं है. कुछ लेखक भी ऐसे हैं, जिनसे प्रकाशकों को कई तरह की शिकायतें रहती हैं. पर उनकी संख्या भी अधिक नहीं है. दरअसल यह व्यक्ति की अपनी ईमानदारी और निष्ठा पर निर्भर करता है. अनुभव की बात तो यह है कि जिन प्रकाशकों के अपने लेखकों से मधुर संबंध हैं, उनका व्यवसाय अधिक सुचारू रूप से चलता है.

पाठक हैं, मगर जरूरत उन्हें खोजने की है

नरेंद्र वर्मा

डायमंड पॉकेट बुक्स हिंदी का सम्भवतः अकेला प्रकाशन संस्थान है जिसके यहां से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के पाठकों की संख्या बहुत अधिक है. यह प्रकाशन पाठकों की नब्ज को पहचानता है. ऐसा लगता है कि यही वजह है कि यह राहुल, समीर कुमार कश्यप, सुरेंद्र मोहन पाठक आदि बिकने वाले लेखकों को छापकर धनार्जन करता है. और साथ ही साथ कुछ अच्छी साहित्यिक पुस्तकें भी छापता है. इससे प्रेमचंद और शरत चंद की संपूर्ण रचनाओं को पाठकों तक बहुत कम कीमत में पहुंचाया है. अब इसकी योजना जयशंकर प्रसाद की संपूर्ण ग्रंथावली को चार खंडों में केवल 160 रुपये में उपलब्ध कराने की है. इस प्रकाशन के संचालक नरेंद्र वर्मा संभवतः अकेले प्रकाशक होंगे जिनका यह मानना है कि हिंदी में पाठक हैं. मगर जरूरत उनको खोजने की है और हमने उन्हें खोजा है और उन तक अपनी पुस्तकों को पहुंचाया है.मगर श्री वर्मा पुस्तकों और पाठकों की दूरी के लिए केवल सरकार की नीति को जिम्मेदार ठहराते हैं. उनका यह मत है कि सरकार की यह कोशिश है कि जनता शिक्षित न हो ताकि वह वोट की राजनीति को समझ न सके. यही वजह है कि इस बार सरकार ने सूखे का हौवा दिखाकर प्रकाशकों को मिलने वाली ग्रांट को देने से इंकार कर दिया है. और बहुत हील-हुज्जत के बाद ग्रांट दी है तो केवल दो करोड़ रुपये जबकि इससे पूर्व यह ग्रांट लगभग छह करोड़ रुपये मिलती थी. असलियत यह है कि सरकार नहीं चाहती कि हमारे देश के लोग पुस्तकों में दिलचस्पी लें. नहीं तो क्या कारण है कि हर कस्बे और क्षेत्र में पुस्तकालय होना क्यों नहीं अनिवार्य कर दिया गया है.

प्रकाशक खूब कहते हैं कि हिंदी के पाठक नहीं हैं मगर मैं पूछता हूं क्या उन्होंने गंभीरता से इस दिशा में कोई कदम उठाया है! लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूं कि एक लेखक के पुस्तकों के एडिशन जितने पहले छपते थे, उतने अब नहीं छपते हैं. इसका मूल कारण है कि हम लोगों में किराये की खरीददारी पनप रही है. यह सोचना गलत है कि गुलशन नंदा के बाद अन्य कोई बिकने वाला लेखक हिंदी में नहीं आया है. प्रेम वाजपेयी, रानू, राजहंस आदि कम नाम तो नहीं हैं.

मेरा मानना है कि यह पुस्तक मेला बहुत बेढंगे वक्त पर लगाया गया है. इस दिनों विद्यार्थियों के सिर पर अपनी परीक्षाओं का भूत मंडरा रहा होता है तो वह पुस्तक मेले में कैसे आएंगे?

कारण अनेक हैं..

श्रीकृष्ण गुप्त

'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' के बाजार में उपलब्ध संस्करणों की दुर्दशा देखकर प्रवीण प्रकाशन के संचालक श्रीकृष्ण गुप्ता ने उन्हें नयनाभिराम साज-सज्जा के साथ प्रकाशित करने का निश्चय किया और उनकी देखादेखी फिर तो बाजार में इन पुस्तकों की बाढ़-सी आ गयी. हालांकि उनके यहां से प्रकाशित पुस्तकें पूरी भीड़ में सर्वश्रेष्ठ हैं, मगर एक शुभ उद्देश्य से शुरू किए काम की यह परिणति देख वे आज भी क्षुब्ध हैं. श्री गुप्ता का मानना है, कि पुस्तकों की बिक्री कम होने के पीछे कोई एक कारण नहीं, अनेक हैं. पुस्तकों की कीमतें ज्यादा होना, प्रकाशकों का प्रचार-प्रसार पर अधिक व्यय न कर पाना, पुस्तकों की साज-सज्जा आकर्षक न होने जैसे छोटे-मोटे कारणों के अलावा सरकार द्वारा इस उद्योग को किसी भी तरह की कोई रियायत या छूट न देना इसका मुख्य कारण हैं.

मेलों-ठेलों में श्री कृष्ण जी को कोई औचित्य नजर नहीं आता. अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने इसी मेले का उदाहरण देते हुए बताया कि अब इस मेले के लिए सरकार ने जो ग्रांट जारी की है. वह बहुत कम है.

सरकार को चाहिए कि वह ऐसे आदेश जारी करे कि किसी भी एक स्टाल से एक निश्चित रकम से ज्यादा की पुस्तकें नहीं खरीदी जाएं. तभी प्रकाशकों को मेले में सम्मिलित होने का लाभ मिल सकता है.

पाठक-प्रकाशक संबंधों के संदर्भ में उनका दो टूक जवाब था, कि यह हमारी विडंबना ही है, कि हमारे प्रकाशक भाई दूकान पर आये पाठक खरीददार से कहीं ज्यादा तरजीह विक्रेता खरीददारों को देते हैं. अगर वे जो छूट विक्रेता या बिचौलिए को देते हैं, वही सीधे पाठक को दें तो वह बार-बार उनका दरवाजा खटखटायेगा इसमें कोई संदेह नहीं.

मेलों में शामिल होना बस परम्परा है

विजय कुमार

सुबोध पॉकेट बुक्स प्रकाशन दो नावों में पांव रख कर चल रहा है. एक तरफ वह साहित्यिक लेखकों को छापकर अपनी गरिमा बनाये हुए है और दूसरी तरफ व्यावसायिक दृष्टि से वह सुरेंद्र मोहन पाठक, चिरंजीत आदि को भी प्रकाशित कर रहा है. अपने व्यावसायिक दृष्टिकोण के कारण ही उसने अभी हाल ही में चंद्रकांता को पेपर बैक में प्रकाशित किया. इस प्रकाशन के संचालक विजय कुमार का कहना है कि दिक्कत यह है कि हिंदी के अधिकाश साहित्यिक लेखक केवल बुद्धिजीवी वर्ग के लिए ही लेखन करते हैं. आम पाठक को दृष्टि के लेकर नहीं लिखते. यही वजह है कि उनकी किताबें बहुत कम बिकती हैं. इसलिए इनके संस्करण बहुत कम होते हैं. इस वजह से प्रकाशक को किताब की कीमत बढ़ाने के लिए विवश होना पड़ता है. हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावसायिक दृष्टि से भी सोचना पड़ता है, इसीलिए हम सुरेंद्र मोहन पाठक, चिरंजीत आदि को भी छापते हैं.

हम पिछले सात अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेलों में शामिल हुए हैं, इस पुस्तक मेले में भी अवश्य शामिल होंगे. मगर मेरा यह व्यक्तिगत मत है कि पुस्तक मेलों में प्रकाशकों का शामिल होना एक परंपरा बन गयी है. अगर देखा जाये तो इन मेलों का कोई महत्व नहीं है.

बात आदत की है

सत्यव्रत

अपनी सरलता और मृदुता के लिए जानेवाले किताब घर के संचालक श्री सत्यव्रत जी का मानना है कि हिंदी में पुस्तकों की पाठकों से दूरी कीमतों की वजह से नहीं आदत की वजह से है. अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि जैसे बंगाल में पारिवारिक समारोहों तक में भेंट में कोई कीमती वस्तु की बजाए पुस्तकें देने का चलन है इसी के चलते वहां किताबें ज्यादा छपती है, ज्यादा बिकती हैं और ज्यादा पढ़ी भी जाती हैं. सत्यव्रतजी की मान्यता है कि हमारे उद्योग में निश्चित रूप से कई पेंच ऐसे हैं कि जिन पर हमें समय रहते विचार करना होगा. जैसे पुस्तकों के अंधाधुंध मूल्य. एक पुस्तक एक जगह से पचास रुपये में, दूसरी जगह से अस्सी में...ऐसा नहीं होना चाहिए. कोई रोकथाम, अंकुश निजी अवश्य होना चाहिए. इसी तरह कमीशन का सवाल है. कमीशन क्यों हो? जब आप रेलवे में टिकिट रियायत के साथ नहीं पाते, घर की जरूरतों की चीजें, सरकारी-अर्द्धसरकारी या निजीसंस्थाओं से खरीदते हैं तो मुद्रित मूल्य देते हैं, फिर किताब मुद्रित मूल्य से कम पर खरीदने या बेचने को बाध्य क्यों? पाठक-लेखक-प्रकाशक की दूरी कम करने के लिए न केवल प्रकाशकों को बल्कि पत्र-पत्रिकाओं को भी विज्ञापन दरों में लचीलापन रखना चाहिए सत्यव्रत जी का मानना है कि उपन्यास, कहानी ज्यादा बिकते हैं. मगर आश्चर्य कि किताब घर से कई वरिष्ठ लेखकों की इन्हीं विधाओं की किताबें छपी हैं मगर उन्होंने अपनी सर्वाधिक बिक्री वाली जिन तीन किताबों के नाम गिनाये उन तीनों में से एक भी इस विधा की नहीं थी. वे थीं—भारत की श्रेष्ठ लोककथाएं, ओलिम्पिक और कालिदास के नाटक. अब कहानी उपन्यास के अलावा अन्य विधाओं की पुस्तकों के प्रति पाठकों की रुचि के बढ़ने से सत्यव्रतजी काफी प्रसन्न है, उन्हें आशा है कि इससे हिंदी में विविध विषयों पर पुस्तकें लिखने की परंपरा में श्रीवृद्धि होगी. मेलों की उपयोगिता को स्वीकारने वाले सत्यव्रतजी का मानना है कि इससे एक माहौल बनता है. लेखकों, पाठकों के अलावा प्रकाशकों को भी अपने समुदाय से मिलने, कुछ सीखने, कुछ जानने और कुछ अद्वितीय कर दिखाने की प्रेरणा मिलती है.

पुस्तकें सस्ती होंगी तो भी लाभ होगा.

अनिल पालीवाल

सचिन प्रकाशन को शुरू हुए केवल तीन साल ही हुए हैं अभी इसने केवल लगभग 70 पुस्तकें छापी हैं. मगर अल्पकाल में ही इस नये प्रकाशन ने बहुत प्रतिष्ठा हासिल कर ली है. इसके निदेशक अनिल पालीवाल का कहना है कि असलियत यह है कि लोगों में पुस्तकें खरीदकर पढ़ने की आदत नहीं है. पुस्तक चाहे हॉर्ड-बाऊंड में निकलें या पेपर बैक में, व्यावसायिक दृष्टि से कोई अंतर नहीं है. पुस्तकों की मात्रा में कोई विशेष फर्क नहीं आता. व्यावसायिक रूप से कोई खास असर नहीं पड़ता. लेकिन अभी हम चूंकि नये हैं. इसलिए पेपर बैक योजना को लागू करने में असमर्थ हैं. लेकिन मैं इस बात को तहेदिल से स्वीकार करता हूं कि पुस्तकें सस्ती होनी चाहिए. और अगर ऐसा होगा तो लाभ प्रकाशक को भी मिलेगा.

जहां तक लेखक-प्रकाशक संबंधों का सवाल है, हमारे यहां से लेखक नहीं या तो मित्र जुड़े हैं या हमारे शुभ चिंतक. मैं तो लेखक को इन्हीं दो रूपों में देखता हूं. हमारे यहां से प्रकाशित हर लेखक मेरा परोक्ष रूप से मार्गदर्शक भी है ऐसा मेरा मानना है. हालांकि इस क्षेत्र में रहते हम सभी तरह की पुस्तकें छापेंगे ही मगर मेरा ध्येय उन पुस्तकों और योजनाओं को मूर्त रूप देना है जिन्हें दूसरे प्रकाशक आसानी से अपने हाथ में नहीं लेना चाहते. मिसाल के तौर पर इधर हाल में हमने वीरेंद्र जैन का उपन्यास 'शब्द-बध' प्रकाशित किया है जिसका विषय ही लेखक-प्रकाशक संबंध है. इसी तरह 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी कोश', 'हिंदी लघु कथा कोश', जैसी महत्वाकांक्षी योजनाएं भी इसी ध्येय के उदाहरण हैं.

हिंदी के पाठक कम हुए हैं

सुखपाल गुप्त

आर्य बुक डिपो के संचालक सुखपाल गुप्त का मत है कि अगर हम पिछले लगभग चार दशकों का विश्लेषण करें तो हमें निष्कर्ष मिलेगा कि हिंदी के पाठकों, वितरकों की संख्या बहुत कम हुई है. आज एक भी दूकानदार ऐसा नहीं है जो बाखुशी किसी अच्छी किताब को अपनी दूकान में रखता हो. इस बारे में हो-हल्ला खूब होता है कि पुस्तकों की कीमतें अधिक हैं, इसलिये हिंदी के पाठक नहीं हैं. मगर मैं सोचता हूं कि असल में लोग 'रीडिंग कोंशस' नहीं हैं. अंग्रेजी की किताबें खूब बिकती हैं जबकि उनकी कीमतें हिंदी की किताबों से अधिक होती हैं. बंगला और मलयालम का पाठक हिंदी के पाठक से अधिक है. जबकि हमारा क्षेत्र उनसे 10-20 गुणा अधिक बड़ा है.

पुस्तक मेलों का अपना महत्व तो होता ही है. इन मेलों में किताबों का और पाठकों का आमना-सामना होता है. लोग किताबों को भले ही खरीदने के लिए नहीं, देखने तो जाते ही हैं. असल में इन मेलों का प्रकाशकों को कोई तुरंत परिणाम नहीं मिलता हां, एक लंबे समय बाद नतीजा सामने आ जाता है.

यह कितनी अजीब बात है कि अगर चार दशक पूर्व से हम आज की तुलना करते हैं तो हम पाते हैं कि पहले की बनिस्पत प्रकाशकों की संख्या बहुत बढ़ी है, किताबों की तादाद बहुत बढ़ी है मगर पाठक कम हुए हैं.

प्रकाशकों को पुस्तकालयों पर निर्भर रहना पड़ता है

सुनील वर्मा

हिंदी बुक-सैंटर भले ही पॉकिट बुक्स के रूप में कुछ पुस्तकें छापता है मगर यह प्रकाशन की दुनिया में एक वितरक के रूप में चर्चित है. यह अनुमानित 500 प्रकाशकों की पुस्तकें वितरित करता है. इसके सह-संचालक सुनील वर्मा का विचार है कि प्रकाशक का पूरा ध्यान पुस्तकालयों की तरफ क्यों न हो, हिंदी में इंडिविजुअल रीडर कहां हैं. इसलिए प्रकाशकों को पुस्तकालयों पर निर्भर होना पड़ता है. □

● आयोजक : सुशील वर्मा, वीरेंद्र, महेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन के बियाबां में एक घुटी हुई चीख

वरिष्ठ कथाकार प्रभाकर द्विवेदी के पिछले दिनों प्रकाशित उपन्यास **'वही आदिम आंच'** को पढ़कर लगता है कि इस नवें दशक के उत्तरार्द्ध में अभी भी हिंदी उपन्यास जगत मानवमन और उसकी अतलातल गहराइयों के सच को जानने में जुटा हुआ है. समकालीन कथा जगत की अप्रासंगिकता या उक्त विषय पर आरोप न समझकर इसे मनोवैज्ञानिक तथा शाश्वत सच के रूप में ही लिया जाना चाहिए. जीवन के इन शाश्वत सत्यों को चुनना और अपनी रचना का हिस्सा बनाना, रचनाकार की परिपक्वता और विस्तार का संकेत होता है. कथा साहित्य का यही वास्तविक मूल भी होता है जिसमें आगे चलकर लेखक की दृष्टि, उसकी वैचारिक समझ, अनुभव तथा विभिन्न जानकारियां शाखाओं के रूप में प्रस्फुटित होकर फलती-फूलती हैं. यह अलग बात है कि आज हिंदी कथा-साहित्य में कहीं केवल मूल है तो कहीं केवल शाखाएं या प्रशाखाएं. यही कारण है कि बड़ी संख्या में छपनेवाली कथा कृतियों के रूप में हमें या तो केवल ठूंठ मिल पाता है या मात्र नंगी शाखाओं का सूखा! स्वस्थ, मजबूत, नीरोग, हरे-भरे, फलदार और संपूर्ण 'कथा-वृक्षों' का यह अकाल इसीलिए है क्योंकि मूल को रोपते वक्त हम वांछित ईमानदारी का खाद नहीं डाल पाते. नये-नये उपशीर्षकों के तहत हम ठप्पेदार रचनाकार होना पसंद करते हैं और इसी अनावश्यक 'डिप्लोमा' के चक्कर में हम प्रायः विकसित होना तक अस्वीकार कर देते हैं. प्रसंगतः समीक्षित उपन्यास को पढ़कर यह अवश्य लगता है कि लेखक ने एक दमदार विषय लिया और अपनी संपूर्ण क्षमताओं का इस्तेमाल करते हुए पूरे मन से खुद को उसमें उतारा भी.

'वही आदिम आंच' धीरेन, मंदा, मुन्नी, गौरीमोहन, देबू और भैरों के जरिये इस समाज के तंग-नजरिये के बरक्स उपस्थित की गयी एक असमंजसपूर्ण संबंध-कथा है. धीरेन को एक प्रेम करनेवाली 'दीदी' चाहिए जिसे वह मंदा में तलाश करना चाहता है. इस अपेक्षा से उपन्यास की कथा आरंभ होती है और दूसरे चरित्रों को साथ मिलाकर आगे बढ़ती है. किस प्रकार से धीरेन मंदा को 'सोचता' है उसका लगभग रोजनामचा जैसा चित्रण यहां किया गया है. मंदा के पति गौरीमोहन का कथा में प्रवेश उस लय को तोड़ने के लिए किया जाता है जो एक-दो बार ही मंदा और धीरेन के बीच संतुलित होती दिखायी पड़ती है. यह सच है कि धीरेन मंदा को दीदी के ही रूप में अपनाना चाहता है मगर उसके मन का उभरन कई बार और प्रायः ऐसा पलटा खाता है कि धीरेन 'पुरुष' में तबदील हो जाता है और मंदा को 'मादा' मात्र में देखने की विवशता से उबरने के लिए उसे बहुत मानसिक जतन करने पड़तें हैं. वस्तुतः धीरेन लगातार मंदा की ताक में रहता है कि कब उसका मानस ऐसा बने कि दोनों ओर का प्रेम-देय और प्राप्य – बराबर हो जाये. धीरेन प्रायः जिस स्तर पर परेशान रहता है, उसकी एक झलक दृष्टव्य है : "वह नहीं चाहता – कतई नहीं चाहता, फिर भी क्यों उसे तकलीफ होती है? क्या चीज है, जो उसे यों नचा रही है? भीतर-ही-भीतर क्या खाए डालता है? पल-भर को भी प्यार नहीं, स्नेह नहीं.जीजी स्वीट ड्रीम्स की अभिलाषा कर सकती हैं, किंतु हृदय में से वह झरना क्यों नहीं फूट बहता, जो उनके वक्ष के नीचे रहकर उन्हें मां की संज्ञा प्रदान करता है?" शायद वह मां मर चुकी है. शायद वहां मात्र नारी ही बची है.जभी तो अपने यौवन के प्रतीक पयोधरों से उसे अपने बच्चे को दूध पिलाना भी स्वीकार नहीं है. बच्चे के लिए डिब्बे का दूध-पाउडर ही काफी है. चिरयौवना कहलाये जाने की साध ने

प्रभाकर द्विवेदी

जीत लिया है उस आदिम वासना को कि दो नन्हें-नन्हें हाथों का स्पर्श अनबोले शब्दों में कहे – मुझे जीवन दो मां, मुझे प्यार दो."

परस्पर संबंधों के तिलिस्म से निकलने के लिए धीरेन अपनी मूल प्रकृति को कई बार तिलांजली भी देता है जिसमें खूब खाना, एक उच्चस्तरीय होटल में जाकर डांस देखना तथा मुन्नी को साथ ले जाकर सिनेमा दिखाना तथा उससे रोमांस-तुल्य लाड़ जताना आदि घटनाएं शामिल हैं, और इसके बाद जब धीरेन को लगता है कि अब मंदा उसकी लगभग दीदी हो गयी हैं तो मंदा के साथ सैक्स को लेकर हुई छोटी-सी बहस धीरेन के विचारों में फिर से हड़बड़ी पैदा कर देती है. मंदा का मानना था कि धीरेन ने सूखने के लिए अपनी धोती ऐसे फैलाई कि बालिश्त भर धोती उसकी सूख रही साड़ी को ढके रही. "यह क्या था? सिर्फ सैक्स-फीलिंग जो साड़ी के कारण आप में अव्यक्त रूप से थी, आपकी क्रियाओं में प्रकट हो गयी."

इन दोनों के अतिरिक्त देबू, गौरीमोहन या भैरों का चरित्र भी जहां-जहां इस उद्वेलन को उकसाता है, वहां वह चरित्र या घटना एक-दूसरे की तौहीन नहीं करते बल्कि इस व्यापक विषय की बहस का ही एक अध्याय या आयाम बन रहे होते हैं. इसलिए यहां द्वितीय श्रेणी के खलनायकों की भी पूछ नहीं हो पायी है. सबसे बड़ा और सफल खलनायक तो अपना ही मन है जो रात को सोते हुए मंदा की पिंडली को धीरेन के हाथ के रूप में जा दबाता है और मंदा की अवचेतन वाणी से निकलता है – "कौन, देबू? चल हट." मन से मन के बीच का यह अंतराल, मन की यह तौल और मन का यह अजूबा गणित तथा समीकरण इस उपन्यास का तानाशाह नायक है. इसीलिए इस उपन्यास का तथाकथित नायक केवल "खिसियानी हंसी हंसता ही जाता है." धीरेन मर्मज्ञ है इसलिए भी शायद वह नायक नहीं बन पाया. वह गुणातीत नहीं है. मन की त्रुटियों का जानकार है. उसका मन एक बहुदर्शी 'यंत्र' है जिससे वह इस प्रकार भी बिसूरा करता है : "वे (मंदा) दूसरी ओर मुंह किये सो रही थीं. चेहरा आंचल से ढांप रखा था, करवट थी, बेखबर, धीरेन उन्हें यों ही देखता रहा. फिर उसे यों ही के देखने में रुचि से देखने लगा. रुचि में इच्छा होती है. इच्छा में प्यास, प्यास से कष्ट मिलता है. कष्ट से धीरेन पीड़ित होने लगा. मन जाने कैसा हो, लालसा से भर आया. इच्छा हुई कि उन्हें कंबल ओढ़ा दे. लेकिन भय और लाज लगी, अपनी लालसा का जैसा विकट रूप उसने देखा, उससे डांवाडोल हो गया. अपने मन की विकृति का ऐसा नग्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी अकादमी, दिल्ली

(स्थापित - 31-12-1981)

उद्देश्य

1. दिल्ली के साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास के सन्दर्भ में हिन्दी भाषा और साहित्य का संवर्द्धन तथा परिरक्षण करना।
2. साहित्यिक और शैक्षिक महत्व की मूल हिन्दी कृतियों का प्रकाशन तथा ऐसे महत्वपूर्ण साहित्य को प्रोत्साहित करना जो अब तक प्रकाशित न हो सका हो।
3. महत्वपूर्ण एवं उपयोगी साहित्यिक तथा वैज्ञानिक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करना। इसके अन्तर्गत उन कृतियों को सम्मिलित किया जायेगा जो सांस्कृतिक समन्वय तथा राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से श्रेष्ठ साहित्य की कोटि में आती हों।
4. हिन्दी में सन्दर्भ साहित्य तैयार करने के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर पाठ्य-पुस्तकों के सम्पादन तथा प्रकाशन की व्यवस्था करना।
5. दिल्ली में उपलब्ध हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य का संकलन जो शोध के अभाव में प्राप्त न हो सका अथवा अर्थाभाव के कारण उपेक्षित पड़ा हो (इसके अन्तर्गत हिन्दी की प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज तथा इसके प्रकाशन की व्यवस्था भी सम्मिलित होगी)।
6. दिल्ली के जन-जीवन से सम्बन्धित साहित्य का संकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन, जिसमें लोक साहित्य भी सम्मिलित होगा।
7. दिल्ली में ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व की पृष्ठभूमि में पंजाबी, उर्दू तथा अन्य भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का हिन्दी में अनुवाद।
   (इसके अंतर्गत साम्प्रदायिक सौमनस्य से सम्बन्धित विभिन्न भाषाओं का साहित्य भी सम्मिलित होगा)।
8. उत्कृष्ट कृतियों के प्रकाशन के लिए ऐसे साहित्यकारों को वित्तीय सहायता देना जो स्वयं प्रकाशन व्यवस्था न कर सकते हों।
9. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए प्रतिवर्ष पुरस्कार की व्यवस्था करना।
10. दिल्ली के वयोवृद्ध/उच्चकोटि के हिन्दी साहित्यकारों और प्रतिष्ठित विद्वानों का सम्मान।
11. हिन्दी के क्षेत्र में शोध करने वाले तथा शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को सुविधायें प्रदान करना।
12. आवश्यकता अनुभव होने पर पत्रिका आदि प्रकाशित करना। (त्रैमासिक पत्रिका 'इन्द्रप्रस्थ भारती' का जनवरी 88 में प्रकाशन प्रारंभ)।
13. हिन्दी भाषा के उच्चकोटि के दिवंगत साहित्यकारों की जयन्तियों का आयोजन, उनके द्वारा सृजित साहित्य का परिरक्षण तथा प्रचार की व्यवस्था करना।
14. हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के लिए यथासमय भाषा सम्मेलन तथा विचार गोष्ठी आदि आयोजित करना।
15. हिन्दी के विकास की विभिन्न गतिविधियों से सम्बन्धित कार्य करना। राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास की तथा जनसामान्य के उपयोग के लिए तकनीकी शब्दावली और हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार से सम्बन्धित साहित्य के संवर्धन की योजनाओं को कार्यान्वित करना।
16. हिन्दी में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले दिल्ली के विद्यालय तथा विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था।
17. एक ऐसे पुस्तकालय की स्थापना करना जिसमें साहित्य की मूल कृतियों, सन्दर्भ ग्रंथ, शब्दकोश तथा हिन्दी साहित्य की आलोचनात्मक पुस्तकें उपलब्ध हों।
18. हिन्दी के प्रचार और प्रसार में कार्य कर रही ऐसी स्वैच्छिक संस्थाओं को सहायता अनुदान देना जिनका कार्य वास्तव में हिन्दी के विकास तथा हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।
19. जनसामान्य के लिए, विशेषकर प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए ऐसे साहित्य का सृजन करना जो सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्पराओं पर आधारित हो।
20. हिन्दी भाषा और अनुवाद तथा कार्य विधि प्रशिक्षण की दिशा में समुचित कार्यवाही करना।
21. हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा में अपने साधन, शक्ति और जीवन के महत्वपूर्ण वर्षों को लगाने वाले साहित्यकारों के लिए साहित्यकार पेंशन की व्यवस्था करना।

ए-26/27, सनलाइट इंश्योरेंस बिल्डिंग,
आसफअली रोड, नयी दिल्ली-110002

दूरभाष : 733950

डा. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप उसने आज तक न देखा था. इतनी कष्टदायी और स्पष्ट स्थिति में प्यास न महसूस की थी.'' और अंततः यह तथाकथित नायक अपने मन से 'पराजित' होकर पलायन कर जाता है.

यह कहना उचित ही नहीं आवश्यक भी है कि वैयक्तिक आग्रहों के तहत ऐसे 'कथादर्शन' को समझाया बताया जाना काफी मुश्किल काम है. बौद्धिकता का संभवतः सबसे अधिक वर्जित क्षेत्र हृदय ही है, एक-दूसरे के साथ पटरी न बैठा पा सकनेवाली सौतन के समान हैं ये दोनों. साधारण रचनाकार के द्वारा, साधारण पात्रों के माध्यम से शायद इस विषय को टंकारा तो जा सकता है मगर कोई 'राग' सुनाना कठिन है, विषय की यह टंकार हमें इस उपन्यास में सुनाई तो पड़ती है मगर लगभग उथले प्रसंगों और चित्रणों के माध्यम से ही. साथ ही दुर्भाग्य से यह फ्रायडीय मनोविज्ञान का भी परिशिष्ट नहीं बन पाया है. निस्संदेह लेखक इस विषय का रचनात्मक उपयोग करना चाहता है मगर इसके अन्वेषण और ढांचे को मंदा तथा धीरेन की वैयक्तिता के हाथों सौंपकर एक अतिरिक्त अर्द्ध-आस्था की स्थिति में मानो स्वयं ही वह फंस भी जाता है. इस तरह इस कृति से न तो विषय के रूप में एक सामान्य पाठक को कुछ अतिरिक्त मिल पाता है और न पात्रो के रूप में साहित्य को ही कुछ विशेष मिलता है. उलझी हुई संवेदनाओं में उत्प्रेरक का काम करनेवाले परिवेश को तो यहां एकदम दरिद्र बनाकर प्रस्तुत किया गया है जिसमें संयोगों की भरमार और चालू फुटपाथिया भाषा ने अपनी भूमिका खूब बेहतरी से निभायी है. मंदा उदास रहनेवाली स्त्री-जीजी तो है मगर अपने अस्तित्व के शोषण के विरुद्ध वह सदैव यात्रा स्थगित रखती है. इसलिए कभी-कभार जब लेखक उससे 'बुलवाता' है तो वह अपने पात्र से 'ऊंचा' बोल पड़ती है. जबकि यह अविश्वसनीयता धीरेन के चरित्र में कम है, देबू एक दुःस्वप्न की तरह कथा के अंत में आता है और अपनी 'उदास परंपरा' के पात्रों का सही प्रतिनिधित्व करता है. मुन्नीवाला प्रसंग पढ़ते हुए ब्लादीमीर नो बोकॉव की 'लोलिता' की हमें याद आयी तो भी क्या किया जाये! कुल मिलाकर यह कि एक अलग तरह का यह उपन्यास होते हुए भी एक अलग तरह की जिरह, सांत्वना, भाषा, प्रवृत्ति या आस्था नहीं दे पाता, इस पर जितना क्षोभ लेखक से प्रकट किया जाये हमारे हिसाब से कम ही हो ॐ

राजकुमार गौतम

उपन्यास : 'वही आदिम आंच'; लेखक: प्रभाकर द्विवेदी; प्रकाशक: ज्ञान भारती, 4/14, रूपनगर, दिल्ली-110007; मूल्य – पच्चीस रुपये.

साक्षात्कार का संतुलित प्रयोग

साक्षात्कार के नाम पर इधर कुछ स्वनामधन्य संपादक नाक-भौं सिकोड़ने लगे हैं. उनके लिए साक्षात्कार एक ऐसी पत्रकारिता मात्र है जो बेरोजगार पत्रकारों का रोजगार बन गया है, जिसके पास अन्य कोई काम नहीं, वह साक्षात्कार करने दौड़ पड़ता है. अखबारों और तमाम दूसरी व्यावसायिक पत्रिकाओं में अक्सर प्रकाशित होने वाले साक्षात्कार देख कर इन संपादकों की बात एकबारगी सही भी प्रतीत होती है लेकिन यही साक्षात्कार कितना उपयोगी और कितना महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है, यह महेश दर्पण के पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित 'साक्षात्कार' 'कथन-उपकथन' देखने से पता चलता है. वास्तव में साक्षात्कार भी अन्य माध्यमों की तरह सच्चाई और तथ्य की तह में पहुंचने का एक माध्यम है. लेकिन उस्तरे की तरह इसका भी महत्व बहुत कुछ उपयोग करने वाले पर निर्भर करता है. निसंदेह, दर्पण ने इसका उपयोग आदर्श और संतुलित ढंग से किया है.

कथन-उपकथन में दर्पण द्वारा विगत दस वर्षों के दौरान समय-समय पर लिये गये सोलह साक्षात्कारों का संकलन है. साक्षात्कार देने वालों में प्रसिद्ध आलोचक डा. नामवर सिंह, डा. विनय, चर्चित कथाकार रमेश बक्षी, मन्नू भंडारी, हिमांशु जोशी, रमाकांत, नरेंद्र कोहली, मृणाल पांडे, पंकज बिष्ट, देशबंधु डोगरा 'नूतन', स्वाभाविक अभिनय के लिए प्रसिद्ध अभिनेत्री शबाना आजमी, चित्रकार के. खोसा, आंख पर पट्टी बांध कर मोटर साइकिल चलाने के लिए लोकप्रिय जादूगर एस.के. निगम, चुंबकीय चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञ डा. हीरा लाल बंसल और त्रिनिदाड में भारतीय संस्कृति और कला को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कथक नर्तक शंकर शामिल हैं. ये सभी अपने-अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित नाम हैं. इनका कला-संसार भी प्रत्यक्षतः काफी जुदा-जुदा है. 'कथन-उपकथन' की पहली और महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि इसमें साक्षात्कारों के माध्यम से कला-जगत की विस्मृतप्राय अस्मिता को ढूंढने का सायास प्रयास किया गया है.

आधुनिक जीवन के विकास के साथ ही मानवीय संबंध भी बदले हैं और उनमें एक प्रकार की जटिलता आयी है. इस जटिलता को कला-माध्यमों द्वारा अभिव्यक्ति देने की कोशिश का ही परिणाम है कि कला के विभिन्न रूप विकसित होते गये और उन्होंने अपनी स्वतंत्र सत्ता का निर्माण कर लिया. यह कला के अंग विशेष के लिए लाभदायक है लेकिन इसका एक नकारात्मक पहलू यह है कि इससे कला के विभिन्न क्षेत्रों के बीच मौजूद मूलभूत एकता या तो कमजोर पड़ी है या नष्ट हुई है जिसके कारण वह अपने अकेलेपन में पूर्ण विकसित होते हुए भी जीवन को संपूर्णता के साथ अभिव्यक्ति नहीं दे सकती. कला के विभिन्न रूपों के बीच इस मूलभूत एकता की कमी का ही एक उदाहरण यह है कि क्रांतिकारी नज्मों को भी रोमांटिक अंदाज में गुनगुनाया जाता है. आज अब सिर्फ कहानी के शिल्प, भाषा एवं रेखाओं द्वारा काल और शून्य को भरने पर अंतहीन बहस चल रही है तब दर्पण द्वारा इन तमाम चीजों की मूलभूत एकता की खोज करना 'धारा के विरुद्ध' जरूर लग सकता है. मगर यह अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण प्रयास है. यह ऐसा ही है जैसे कैमरे के आगे बैठे हुए किसी आदमी के हर हिस्से की फोटो लेने के लिए उसके चारों तरफ की लाइटें जला दी जायें. दर्पण के इस प्रयास का अब तक कोई विशेष नोटिस न लिये जाने का भी कारण यही लगता कि कला की बारीक बहस में उलझे होने की वजह से कुछ मोटी-मोटी लेकिन महत्वपूर्ण चीजें आलोचकों की दृष्टि से ओझल हो चुकी हैं.

'कथन-उपकथन' की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता जो बरबस अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करती है, वह है प्रश्नों की निरंतरता. संकलित साक्षात्कार दस वर्षों की लंबी अवधि में लियें गये हैं लेकिन ऐसा कहीं नहीं लगता कि प्रश्नों में वर्षों का अंतराल है. लगता है जैसे दर्पण इस पूरी अवधि के दौरान लगातार इस प्रश्नों से जूझते रहे हों. अक्सर हम सामान्य की बात करते हुए विशेष को भूल जाते हैं. या फिर विशेष की विशेषताएं गिनाते-गिनाते सामान्य हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है. दर्पण ने इस पूरी अवधि में एक संतुलित दृष्टि को बराबर बनाये रखा है. न तो वह सामान्य को भूलते हैं और न ही विशेषताएं उनकी नजर से चूकती हैं. उनके प्रश्नों में कुछ प्रश्न साहित्य के 'शाश्वत प्रश्नों' की तरह हैं (उदाहरण के लिए... चीजों में रचनाकार या आलोचक की वैचारिक प्रतिबद्धता आड़े आ जाती हैं...?) तो कुछ बिल्कुल सामयिक. (उदाहरण के लिए.... कहानी को लेकर नयी संभावनाएं क्या कुछ हैं... क्या आपने शशांक की कहानियां पढ़ी हैं?)

अनिल श्रीवास्तव

साक्षात्कार : कथन-उपकथन : महेश दर्पण
प्रकाशक : अभियान प्रकाशन
मूल्य : चालीस रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य प्रेमियों एवं शोध कर्त्ताओं के लिए
जाने माने विद्वानों की
शोध समीक्षाएँ

डॉ. मनमोहन गौतम
सूर की काव्यकला 75.00

भालचन्द तिवारी
सूफी काव्य का दार्शनिक विवेचन 80.00

डॉ. हरभजनसिंह
गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य 100.00

डॉ. गार्गी गुप्ता
रामचंद्रिका का विशिष्ट अध्ययन 150.00

डॉ. रविन्द्र भ्रमर
हिन्दी भक्ति-साहित्य में लोक तत्व 100.00

ओम प्रकाश
हिन्दी अलंकार साहित्य 50.00

हिन्दी काव्य और उसका सौंदर्य 60.00

डॉ. शंकर दयाल चौऋषि
द्विवेदी युग की हिन्दी गद्य शैलियों का अध्ययन 100.00

डॉ. शांतिस्वरूप गुप्ता
हिन्दी तथा मराठी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन 100.00

डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव
अपभ्रंश भाषा का अध्ययन 75.00

डॉ. रत्नसिंह जग्गी
दशम ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि 100.00

डॉ. विद्यानाथ गुप्ता
हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना 100.00

डॉ. राजकिशोर कक्कड़
आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास 120.00

डॉ. रामशंकर सिंह
सेठ गोविन्ददास: व्यक्तित्व कृतित्व और जीवन दर्शन 150.00

डॉ. वीरेन्द्रकुमार चड्ढावाला
रीतिकाव्य और विद्यापति 100.00

डॉ. गोपाल शर्मा
सामाजिक विज्ञानों की पारिभाषिक शब्दावली 100.00

डॉ. हरगुलाल
मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति 100.00

डॉ. वासुदेव
विचार और निष्कर्ष 75.00

नेमनारायण जोशी
सुमित्रानंदन पंत का नवचेतना काव्य 100.00

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत
जायसी का पद्मावत: शास्त्रीय भाष्य 150.00

डॉ. विमल कुमार जैन
कामायनी चिन्तन 100.00

देवर्षि सनाढ्य
भारतीय नाट्यशास्त्र तथा हिन्दी नाट्य विधान 100.00

डॉ. नगेन्द्र
भारतीय नाट्य साहित्य 150.00

डॉ. राम प्रतिपाल मिश्र
तुलसी काव्य चिन्तन 200.00

डॉ. ओम प्रकाश गुप्त
हिन्दी डोगरी प्रत्यय 100.00

डॉ. जयचन्द्र राय
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: सिद्धान्त और साहित्य 100.00

डॉ. भगीरथ मिश्र
कला साहित्य और समीक्षा 75.00

डॉ. रामचरण महेन्द्र
गोविन्ददास: साहित्य और समीक्षा 45.00

डॉ. देवराज उपाध्याय
साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन 200.00

डॉ. रामरतन भटनागर
उच्च साहित्यिक निबन्ध 75.00

डॉ. समारचन्द्र
हिन्दी के साहित्यिक निबन्ध 75.00

श्री गिरिजादत्त शुक्ल
साहित्य निबन्ध-संकलन 35.00

डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित
भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कला 150.00

डॉ. सत्यदेव चौधरी
हिन्दी के प्रतिनिधि कवि 40.00
आधुनिक कवि 20.00

उमा ठाकुर
विद्यापति की बिम्ब योजना 65.00

डॉ. रत्ना कुमारी
हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि 75.00

श्याम सुन्दर घोष
उपन्यासकार प्रेमचन्द 50.00

प्रो. टेक चन्द्र शास्त्री
निबन्धकार: रामचन्द्र शुक्ल 35.00

एस. चन्द एण्ड कं. (प्रा.) लिमिटेड
हेड आफिस : राम नगर, नई दिल्ली-55
शोरूम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली - 2
शाखायें: बंगलूर, बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, गौहाटी, हैदराबाद, जालंधर, लखनऊ, मद्रास, नागपुर, पटना

TRENDS-SC-- 1503

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्कराती फाइलें

व्यंग्य-विधा में लिखना तलवार की धार पर चलना है और उसी पैनी धार के आधार पर सार्थक मार करना भी है—रामनारायण उपाध्याय का व्यंग्य लेखन प्रायः इसी प्रकार का है. उपाध्याय जी व्यंग्य-लेखन में महारत हासिल ही नहीं कर चुके हैं, वरन् इस लेखन से बेहद लोकप्रिय भी हो चुके हैं. उनके नवीनतम व्यंग्य-संकलन 'मुस्कराती फाइलें' में साठ व्यंग्य निबंधों का संकलन हुआ है. व्यंग्य क्षेत्र की यह पहली पुस्तक है जिसमें समाज, संस्कृति, साहित्य और समकालिक जिंदगी के इतने ज्यादा जाने-पहचाने और अनजाने पहलू उजागर हुए हों. 'चांदी का जूता' तो बहुतेरों ने मारा होगा पर यहां उपाध्याय जी ने भरत द्वारा लाई 'राम की पादुकाएं' को जिस जूते से जोड़ा है, वह पठनीय के संग मननीय भी है.

व्यंग्य के तिलिस्म-भेदन के लिए उपाध्याय जी आसपास की जिंदगी को ही चुनते हैं. एक ही पृष्ठ पर अंकित ये व्यंग्य चुने गये से प्रतीत होते हैं—'एक दिन एक पत्र के पन्ने उलट रहा था, देखा उसमें एक जगह सद्यस्नाता नारी के हाथों साबुन का विज्ञापन कराया गया था. उसमें साबुन तो रेपर में लिपटी थी लेकिन नारी महज टावेल में'

बिकाऊपन की प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए उपाध्याय जी ने जहां चोरी, डकैती, जासूसी और जालसाजी के लिए रियायती दामों में आदमी बिकाऊ देखे, वहीं उपाधि, पुरस्कार, कला, साहित्य, सांस्कृतिक अकादमियों के लिए घटी दरों पर भी आदमी बिकाऊ पाये. कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है—यह सबूत मिला इस बात से कि हर स्टेशन पर एक जैसी मटमैले रंग की कसैले स्वाद वाली एक जैसी चाय एक जैसे दाम पर उपलब्ध हो जाती है. हर प्रदेश में गरीब के और अधिक गरीब होने और पैसे वाले के और अधिक पैसे वाले होने की समान सुविधाएं.

व्यंग्य के इस विधान में उपाध्याय जी की विविधता तो प्रमुख विशेषता है ही, उसे प्रस्तुत करने की उनकी विलक्षणता भी कम प्रशंसनीय नहीं है. देश और समाज में व्याप्त विषैले और कसैलेपन को वे बड़ी विलक्षण सहजता से अपने व्यंग्य में उभार लाते हैं और पाठकों को गुदगुदाते और झकझोरते हैं. स्वयं महसूस कीजिए — 'भारतीय रेल चल रही है. जो बैठे हैं, वे भी चल रहे हैं, जो खड़े हैं, वे भी चल रहे हैं, जो लेटे हैं, वे भी चल रहे हैं और जो बिना टिकट या छत पर हैं वे भी चल रहे हैं....देश में समाजवाद आया या नहीं, पता नहीं, लेकिन रेलवे में तो आ गया. रेलवे ने गरीबी हटाने की तरह, थर्ड क्लास मिटाने के लिए उसके डिब्बे पर से एक डंडा हटाया तो वह सेकंड क्लास बन गया है. इसे कहते हैं डंडा मिटाऊ समाजवाद. वही डिब्बा, वही गंदगी, लेकिन रेल के किराये में और बैठने वाले के रुतबे में बढ़ोत्तरी हो गई....कहते हैं स्त्री मेकअप करने में देर लगाती है. रेल 'मेकअप' करती है तो जल्दी आती है. लेकिन आजकल तो रेल भी स्त्रियों की तरह मेकअप करने में देरी लगाने लगी है.'

व्यंग्य के लिए उपाध्याय जी की पारदर्शी दृष्टि परतों को भेदकर भीतर तक पहुंच जाती है, इसीलिए उनका लेखन पाठकों के मर्म को छेदता भी है तो कभी उस पर मरहम लगाकर राहत भी पहुंचाता है. उनके इन व्यंग्यों को पढ़ने-गुनने के बहाने से इसीलिए स्थितियों का सही जायजा भी मिल जाता है और साहित्य का जायका भी. समझदार पाठक को इससे अधिक और चाहिए भी क्या? चुहलबाजी के संग व्यंग्य का यह रंग पाठकों पर कुछ ज्यादा ही असर करता है—और इसी से वह मुस्कराते हुए भी अपने को मथता हुआ पाता है. मुस्कराहट की इस मुद्रा में मनन-मंथन का यह दुर्लभ संयोग शायद उपाध्याय जी के व्यंग्य-लेखन की मौलिकता ही है. उनका व्यंग्य गांवों और कस्बायी जिंदगी से आगे बढ़ता हुआ नगरों और महानगरों तक पांव पसारे मिलता है, राजनीति की रजाइयों में घुसे नक्कू नेताओं, शिक्षा की शालीनताओं, आफिसों की आपाधापियों का पर्दाफाश करके पाठकों को परोस देता है, इतना कि एकबारगी पढ़ने पर भी पुनः पढ़ने की ललक दब नहीं पाती.

व्यंग्य के संग विनोद के रंग को मिलाने में माहिर उपाध्याय जी की कला 'ये संयोग से मिली संयोगिताएं', 'आदमी और बंदर', 'भैंस किसकी?' 'आइए, गोष्ठी करें!' आदि के साथ अंतिम तीन रचनाओं—लतीफें—हंसी का एक गुलदस्ता, राजनीतिज्ञ : विनोद के क्षणों में, साहित्यकार : विनोद के क्षणों में, बखूबी देखने को मिलता है.

व्यंग्य विधा में लिखी ये रचनाएं सार्थक जिंदगी की टोह लेती ऐसी कोशिशें हैं जो साहित्य के लेखन के साथ उसके पठन-पाठन को भी सार्थक बनाती हैं.

प्रो. विश्वंभर 'अरुण'

रामनारायण उपाध्याय के व्यंग्य
प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1685, दखनीयराय स्ट्रीट, नई दिल्ली-२०

आंधी और तिनके

कहानी और उपन्यास की दुनिया में बाला शर्मा पिछले कई वर्षों से सक्रिय हैं. अनुभूति को सहज रूप में अभिव्यक्त करने में इनका रचनाकार विशेष रुचि लेता दिखाई देता है. उपन्यास पढ़ते हुए यह एहसास बना रहताहै कि जीवन की विषमताओं के बीच सुख-दुख के सिलसिले को पार करते हुए संघर्षरत मानव के प्रति कथाकार में ऐसा आस्थाभाव बना रहता है कि समूचा उपन्यास 'सुरेश' के ही इर्द-गिर्द बुना गया प्रतीत होता है. यह सही है कि सुरेश ने जिन अनुभव-सत्यों का स्पर्श किया उनमें शालिनी भी उसके साथ बनी रही...किंतु शेष समूचे पात्र और कथा-स्थितियां महज कथानक को विस्तार देने में काम आते दीखते हैं. आजादी के बाद के भारतीय समाज में आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ना या पढ़ाना महज एक औपचारिकता मानी जाने लगी है जबकि सुरेश इस धुंध भरे माहौल में एक अपराजेय व्यक्तित्व के रूप में सामने आता है...और हमारे दिखावटी जीवन पर व्यंग्य करता-सा अपनी राह चल देता है. औद्योगिक विकास के साथ-साथ देश जिस तरह मजदूरों के कंधों पर आ टिका...उस तरह की सुविधाएं और महत्ता इस वर्ग को सामाजिक-आर्थिक तौर पर नहीं मिल सकीं. प्रायः यह वर्ग दूसरों की सुख-समृद्धि के लिए होम होते रहने पर मजबूर हुआ. सुरेश इन सबके सुख-दुख का साथी है. धारा के विरुद्ध आचरण वाला यह व्यक्ति कहीं गहरे में प्रभावित करने की क्षमता रखता है.

देश की मौजूदा हालत के मुताबिक इस उपन्यास में तीन प्रकार के पात्र देखने में आये हैं इनमें धनोपार्जन में लिप्त समाज के प्रतिनिधि भी हैं जो किसी भी रूप में देश के साथ कोई सद्भाव नहीं रखता...और श्रम व नैतिकता पर विश्वास रखने वाले लोग भी हैं जो कदम-कदम पर सामाजिक विषमताओं का विरोध करते हैं...और तीसरे, वह लोग भी हैं जो महत्वाकांक्षी कतई नहीं हैं. इनकी अपनी जिंदगी है और अपने सुख-दुख. अपने-अपने घोंसलों में दुबके यह लोग न संघर्ष में विश्वास रखते हैं न सामाजिकता के सही अर्थ को समझते हैं. सुरेश यहां एक सार्थक पात्र के रूप में आदर्श भूमिका निभाता है. यह दीगर बात है कि यहां आदर्श इतना अधिक है कि कहीं-कहीं अस्वाभाविकता खलने लगती है.

उपन्यास : आंधी और तिनके
लेखिका : बाला शर्मा
प्रकाशक : वातायन प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : सोलह रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल चतुर्वेदी

सफाई और स्वच्छ प्रशासन

"परिवर्तन जीवन का नियम है और तनाव का जनक भी," दफ्तर के स्वयंभू दार्शनिक गोरख ने अपने नियत समय और कुर्सी पर बैठकर चाय की चुस्की लगाते हुए इस वजनदार वाक्य से कैंटीन में बैठे सहयोगियों को प्रभावित करने का प्रयत्न किया. "तुम्हें तो शब्दों की बदहजमी हो गई है गोरख. बकवास बंद करो और हमें काम की बात करने दो," शर्मा ने गोरख को चुप करा दिया. पिछले पंद्रह दिनों से दफ्तर का कामकाज ठप्प था. पहले सफेदी हुई तो सबने कैंटीन की शरण ली. अब कार्यक्रम पुरानी मेज-कुर्सियों के स्थान पर स्टील के नये फर्नीचर और बड़े हाल को अलग-अलग अनुभागों में विभाजित करने का था. "क्या हो गया है बड़े अधिकारियों को! राजनीति की अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रशासन में भी लाना चाहते हैं," त्यागी ने अपनी असहमति जताई. अय्यर दुखी थे कि उनकी नयी मेज पुरानी से छः-सात इंच छोटी होगी, "प्रमोशन तो मिलता नहीं. 'स्माल' टेबुल पर बिठाकर हमारा स्टेटस भी घटाता. जब से हम मद्रास से आया, इसी मेज पर बैठता. जैसे हमारे देश का 'हिस्ट्री रिच' है, टेबुल का भी था. इस नये अफ्सर ने हमसे हमारा हिस्ट्री छीन लिया, अब 'पार्टीशन' करके 'ज्योग्राफी' भी बदल रहा है," अय्यर के स्वर में अपनी पहचान खोने की पीड़ा थी. रामलाल शर्मा दफ्तर में देश के प्रतिनिधि थे, "एक ओर काम कंप्यूटर की गति से निपटाने को कहते हैं और फिर तरह-तरह से अड़ंगे लगते हैं. पता नहीं जनता के धन की बर्बादी किसलिए की गयी है. चार-पांच लाख का चूना तो लग ही गया होगा. ऊपर से स्टील की मेज-कुर्सी गर्मी में तपेगी और जाड़े में ठंडायेगी."

हर छोटे-बड़े मसले में देश की परिपाटी और पढ़े-लिखे लोगों की परंपरा के अनुरूप नये फर्नीचर को लेकर दफ्तर में दो खेमे बन चुके थे. गोरख मेज-कुर्सी बदलाव को सरकार के स्वच्छ प्रशासन देने के व्रत का प्रतीक मानते थे. "दफ्तर के गर्द-गुबार का सफाया होगा, तभी तो प्रशासन साफ होगा. भ्रष्टाचार का मानसिक मैल हटते-हटते हटेगा. तब तक बाह्य छवि तो उजली रहे," वह अपना पक्ष प्रस्तुत करते. शर्मा की मान्यता के अनुसार कभी गोरख दफ्तर की कुर्सी पर जमकर बैठे ही न थे, वह उसके परिवर्तन का संत्रास क्या खाक समझेंगे. "जब से नौकरी शुरू की है, कैंटीन में जमा हुआ है. कभी काम किया है! आज तक सिर्फ चमचागीरी की है हर नये अफ्सर की. अब भी वही कर रहा है. जरा सोचिए कि इन खोखले नये नारों के पहले क्या प्रशासन कीचड़ में पड़ी मैली-कुचैली कमीज था जो सब उसकी धुलाई में लगे हुए हैं. हमें 'डैलीगेशन' में चलकर बड़े साहब से अपनी बात कहनी चाहिए," शर्मा ने अय्यर को ताकते हुए सुझाव दिया. अय्यर थोड़े विचलित हुए. वह उसूलन अफ्सर की अगाड़ी से घबराते थे. फिर यह तो सीधे टकराव का मामला था, "बड़ा जालिम साहब है. देखा नहीं, गनेशी कागज-पैंसिल घर ले जाते पकड़ा गया तो उसे खड़े-खड़े सस्पैंड कर दिया. कहीं हम लोगों के खिलाफ भी एक्शन ले लिया तो! और अब रिप्रेजेंट करने से फायदा भी क्या! नया फर्नीचर तो आ ही चुका है. मेरा दोस्त चारी अखबार में काम करता. इसके खिलाफ खबर छपवा दें तो कैसा रहे." भट्टाचार्य भी अय्यर से सहमत थे, "न्यूज पेपर आजकल बड़ा ताकतवर होता. वह सफेद को भी काला साबित कर सकता. फिर यह तो आफिस की हिस्ट्री का ब्लैक चैप्टर है." पर रामलाल और वर्मा अपनी बात पर अड़े रहे, "आप चारी के जरिये मीडिया को कांटेक्ट करो, हम तो आफिसर एसोसिएशन की तरफ से मूलजानी से मिलकर उनका दिमाग दुरुस्त करेंगे." ऐसे भी गनेशी के मामले को लेकर दफ्तर में काफी शंका और संदेह का वातावरण था. सब एकमत थे कि बच्चों की पढ़ाई के लिए दफ्तर की स्टेशनरी का प्रयोग उतना ही जायज और स्वाभाविक था जितना निजी इस्तेमाल के खातिर सरकारी अस्पताल के डाक्टर का विटामिन की गोली घर ले जाना या बिल बाबू का चाय-पानी का खर्चा हासिल कर बिल पास करना अथवा इंजीनियर का ठेकेदार से अपनी निश्चित कमीशन की राशि वसूलना. या राहत की रकम से किसी नेता का अपने जीवन का सूखा दूर करना अथवा फिर आला अफ्सर के परिवार के सदस्यों का साग-सब्जी लाने और सैर-सपाटे के लिए सरकारी वाहन को कृतार्थ करना. "भ्रष्टाचार और दस्तूरी में बड़ा अंतर है. रेल कर्मचारियों को रेल का फ्री पास मिलता है. हवाई जहाज वाले मुफ्त में दुनिया की सैर करते हैं. कागज की खान के हमारे जैसे मजदूरों को यदि कागज खरीदना पड़े तो यह राष्ट्रीय अपमान और शर्म का विषय होगा," त्यागी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की. सदा चहकने वाले गोरख चुप रहकर विवाद टाल गये. वर्मा और रामलाल सचिव से भेंट करने गये. निजी सचिव तक के कमरे का फर्नीचर चमकदार और लकदक था. उसने बताया कि अंदर साहब के साले साहब विराजमान हैं. दूसरे दिन सुबह दस बजे भेंट का समय तय हुआ.

रामलाल अगले दिन दफ्तर आये तो यों नर्वस थे जैसे उनकी स.इकिल के सामने नगर बस चली आ रही हो. वर्मा जाड़े के बावजूद रूमाल निकालकर बार-बार अपना पसीना पोंछ रहे थे. कैंटीन में चाय के अमृत से उनमें साहस और आत्मविश्वास जगाने का असफल प्रयास किया गया. "भाई जी! घबराना नहीं. अपनी बात जोर देकर कहना. शायद आप लोगों की सुन ले और मेरा सस्पेंशन वापस ले ले. हमारा तो पूरा परिवार आपको दुआ देगा," गनेशी ने अपनी अपेक्षा जताई. "मैंने चारी से बात कर लिया है. वह सारा घोटाला छापेगा. इसका तो अकल ठिकाने आ जायेगा. हम भी आपके साथ चलता पर सुबह से 'लूजमोशन' हो रहा है. हम तो सिर्फ आपको विश करने चला आया," अय्यर ने ढांढस बंधाया. "अभी भी सतीकांड के चर्चे चल रहे हैं. पता नहीं क्यों आप दोनों जान-बूझकर शेर की मांद में सता होने को कृतसंकल्प हैं. फिर भी आपके इस जांबाज कारनामे के लिए मेरी शुभकामनाएं," गोरख ने अपनी उपस्थिति का अहसास कराया. राम लाल और वर्मा शहीदाना अंदाज में साहब के कमरे में फांसी के फंदे की ओर दस बजने में पांच मिनट पर प्रस्थान कर गये. उनके पीछे गोरख, त्यागी, भाटिया, मेहरा, खन्ना आदि का जुलूस था. "यह सब क्यों पीछा कर रहे हैं," रामलाल फुसफुसाये. "यह देखने कि हम लोग जल्लाद को अपनी गर्दन बिना सौंपे यों ही न पलट जायें," उत्तर मिला.

"कहिये! क्या बात है!" मूलजानी ने फाइल में आंख और ट्रांजिस्टर के विश्व कपक्रिकेट के आंखों देखे हाल पर कान लगाये प्रश्न किया "यही नये फर्नीचर का मामला है सर!" वर्मा ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीगी बिल्ली बनकर उत्तर दिया, "क्यों, नया फर्नीचर पसंद नहीं आया आपको! मैंने तो खुद कुर्सी पर बैठकर देखा है, बड़ी आरामदेह है. टेबुल भी फंक्शनल और 'मार्डर्न' है. आपको क्या एतराज है!" मूलजानी ने जानना चाहा. अब रामलाल की बारी थी, "सर! बात नयी मेज-कुर्सी की नहीं, वर्तमान हालात में उसकी जरूरत की है. आज की वर्तमान वित्तीय परिस्थितियों में क्या यह खर्च जरूरी है!" "आपने अपना नाम शर्मा बताया था न," "मूलजानी ने अपनी शंका मिटाई और कुर्सी पर पीछे झुकते हुए अधिकार के स्वर में बोले, "नहीं मिस्टर शर्मा! मैं आपसे सहमत नहीं हूं. देश की जितनी चिंता आपको है, हमें भी है. सरकार की नीति है कि कार्यालयों को साफ-सुथरा और आकर्षक बनाया जाये. परिवेश ऐसा हो कि कर्मचारी अपना काम इबादत के अंदाज में कर सकें. इसके लिए क्या किया जाये, फर्नीचर कब कैसे और कितने रुपये में बदला जाये, यह एक विशुद्ध प्रशासनिक निर्णय है. यदि इसके लिए आपके पास सुधार के और सुझाव हों तो आप लिखकर दे सकते हैं," मूलजानी ने फर्नीचर प्रकरण को समाप्त कर दिया. साहस कर शर्मा ने गनेशी का सस्पेंशन भी समाप्त करने का अनुरोध किया. "कौन गनेशी," साहब ने प्रश्न किया. "स्टेशनरी क्लर्क, सर" उत्तर मिला. "वह तो कागज चुराते पकड़ा गया था. यह तो सरासर 'मिसकंडक्ट' है, भ्रष्टाचार है. आप क्या चाहते हैं कि खुलेआम चोरी की सजा भी न मिले. सरकार के स्वच्छ प्रशासन के निर्णय का क्या होगा!" मूलजानी ने स्वर ऊंचा कर जैसे चेतावनी दी. इतने में एक सूटधारी युवक अंदर आया. मूलजानी का चेहरा खिल उठा. "सब ठीकठाक रमेश," उन्होंने उसे बैठने का इशारा करते हुए पूछा. "सप्लाई पूरी हो गई है, बिल कल तक भिजवा दूंगा," जवाब आया. रामलाल और वर्मा अपमानित होकर खाली हाथ बाहर चले आये.

"मुलाकात कैसी रही," त्यागी ने देखते ही जिज्ञासा प्रगट की. "बस मुक्का-लात ही समझो. यों बिचारा बड़ा दुखी था. यदि पहले हम लोगों से बात हो जाती तो नये फर्नीचर पर पैसे की बर्बादी न होती. गनेशी का भी कुछ करेगा. ऐसे बड़े लोगों के वादे हैं. क्या भरोसा," शर्मा ने गोलमोल बात की. पर मंजे हुए नेता न होने के कारण झूठ बोलने की अपराध भावना उनके अवचेतन के दांत में तिनके की तरह फंस गयी थी. वर्मा ने उन्हें सांत्वना दी, "शर्मा जी! मन न छोटा करो. सार्वजनिक सच तीन प्रकार के होते हैं, सफेद, स्याह और साधारण झूठ." "भई वर्मा! पहेलियां न बुझाओ," रामलाल ने इस फलसफे का खुलासा चाहा. "यदि कोई जनमंच से विश्वास के साथ घोषणा करे कि सूरज पश्चिम से निकलता है तो यह प्रथम श्रेणी का सच होगा. दूसरी श्रेणी का सच यह हो सकता है कि सूर्य आज पश्चिम में उगा था और तीसरा यह कि आज सूरज दिखा ही नहीं वर्ना हो सकता है कि पश्चिम में उगा और पूर्व में डूबा हो. आपने जरा-सी पोलिटिक्स की और राजनीतिक सच बोलकर शरमा रहे हैं. पेशेवर नेताओं को लोग फालतू गाली देते हैं." वर्मा ने अपना सिद्धांत समझाया. "तुम्हारे हिसाब से आधुनिक सियासत में सच का अस्तित्व है ही नहीं," रामलाल अविश्वास के स्वर में बोले. "है क्यों नहीं! पर वह भगवान की तरह है. न किसी ने देखा, न बोलते सुना." वर्मा ने उत्तर दिया. "वर्मा भी तुम्हारी जमात में शामिल हो गये," गोरख को आते देखकर रामलाल ने चुटकी ली.

"चारी की मैसेज आयी है कि फर्नीचर की खरीद के सारे विवरण उन्हें दे दें तो वह समाचार छाप देंगे. अय्यर का फोन आया था", गोरख ने बताया फैसला हुआ कि एकाउंट सेक्शन के हरद्वारी लाल से भुगतान का ब्यौरा लेकर अय्यर को भिजवाया जाये. "हमें कुछ भी पता नहीं. फाइल शायद संयुक्त सचिव की अल्मारी में हो. 'गोपनीय' केटागिरी की है," हरद्वारी लाल ने साफ पल्ला झाड़ लिया. जहां सब दिग्गज असफल साबित हुए अय्यर ने किला फतह किया. "जब आप लोग मूलजानी से मिला तो वहां कोई था क्या!" उन्होंने शॅरलक होम्स की तरह जिरह की. शर्मा-वर्मा ने मौन स्वीकृति में सिर हिलाया. अय्यर ने साजिश के अंदाज में कैंटीन की मेज पर कोहनी टिकाई और कानाफूसी की आवाज में बोले, "बड़ा धांधली है. हमारा जात-भाई रामचंद्रन वहां सैकिंड पी.ए. है. वो बताता कि फर्नीचर का ठेका साहब के साले ने तय कराया. वह रोज आता. कुल सप्लाई पांच लाख का हुआ. कमीशन कितना था, पता नहीं. पर हम सोचता था कि सरकार का हर काम आराम से होता. यह नया फर्नीचर इतना आनन-फानन कैसे आ गया. 'वाइफ' का 'प्रेशर' रहा होगा."

खबर अखबार में छपी. औपचारिक जांच भी हुई. बात आयी-गयी हो गयी. बस गनेशी काम पर आ गये. गोरख उन्हें सुनाते हुए बोले, "देखा, प्रशासन का रवैया! पर्दे, फाइल-कवर, फर्नीचर, कंप्यूटर सब नया है. सफाई के इस दौर में पुराने नैतिक मूल्य, काम की निष्ठा, और लगन, ईमानदारी, कार्यकुशलता आदि सब साफ हो गये. अब तो हम विकास की इक्कीसवीं सदी की मंजिल पर बस पहुंचने ही वाले हैं. ऐसा कौन-सा विकसित देश है जहां 'करप्शन' नही है. मुझे तो भ्रष्टाचार शब्द ही दकियानूसी लगता है. हम शताब्दियों से किसी न किसी आचार का अचार डाल रहे हैं. क्या मिला. गरीबी, भुखमरी, महामारी, बाढ़ और सूखा. सिर्फ यह होना चाहिए कि कार्यालय स्वच्छ रहे. करतूतें कितनी भी काली हों. इमेज क्लीन और अफसर दमदार हो. जो दाम दे उसका काम हो वर्ना कामतमाम. अपना मूलजानी कितना दमदार हो. स्वच्छ प्रशासन इसी को कहते हैं," इस लंबी तकरीर में गोरख की सांस फूल गयी थी. पर वह अपने पुराने फार्म में फिर आ गये थे. □

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका की ओर से

बधाई

साहित्य अकादमी पुरस्कार

वर्ष 1986 का अकादमी पुरस्कार हिंदी के कवि-कथाकार स्वर्गीय श्रीकांत वर्मा को उनकी काव्य कृति 'मगध' को समर्पित किया गया.

मूर्तिदेवी पुरस्कार

वर्ष 1986 का 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' राजस्थान के सुप्रसिद्ध रचनाकार कन्हैयालाल सेठिया को उनके काव्य संग्रह 'निर्ग्रंथ' के लिए समर्पित किया गया.

मैथिलीशरण गुप्त सम्मान

कवि-कथाकार शमशेर बहादुर सिंह को मध्य प्रदेश सरकार ने ५१ हजार रुपये का पहला 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' प्रदान किया.

सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार

'सारिका' के सुपरिचित कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह को उनकी उपन्यास कृति 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' के लिए इस वर्ष 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किया गया.

श्रीकांत वर्मा

श्री.आर. नारायण

संस्कृति पुरस्कार

संस्कृति प्रतिष्ठान द्वारा प्रायोजित 1987 के 'नवोदित प्रतिभा पुरस्कार' क्रमश : साहित्य के लिए युवा कथाकार धीरेंद्र अस्थाना, पत्रकारिता के लिए अजीत नाइनन मैथ्यु, कला के लिए वसुंधरा तिवारी और नाटक के लिए फैजल अलकाजी को प्रदान किए गये.

हिंदी अकादमी सम्मान

हिंदी भाषा और साहित्य की विशिष्ट सेवा तथा योगदान के लिए इस वर्ष सर्वश्री डा. सत्यकेतु विद्यालंकार, डा. प्रभाकर माचवे, श्रीमती शकुंत माथुर, डा. नरेंद्र कोहली, डा. विमल कुमार जैन बी.आर. नारायण, मुकुट बिहारी वर्मा, चंदूलाल चंद्राकर और प्रभाकर द्विवेदी को सम्मानित किया गया

भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता की ओर से हिंदी कवि गिरिजाकुमार माथुर को उनकी काव्य कृति 'कल्पांतर' के लिए नथमल भुवालका पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

सुप्रसिद्ध अनुवादक श्री बी.आर. नारायण को कन्नड़ से हिंदी में अनूदित की गयी विविध रचनाओं के लिए वर्ष 1987 में हिंदी प्रतिष्ठान, हैदराबाद, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, राजभाषा विभाग-बिहार सरकार, हिंदी अकादमी-दिल्ली ने पुरस्कृत और सम्मानित किया.

अखिल भारतीय हिन्दी नाट्य-लेखन प्रतियोगिता

प्रथम	द्वितीय	तृतीय
जयशंकर प्रसाद पुरस्कार	डा. लक्ष्मी नारायण लाल पुरस्कार	डा. सत्यमूर्ति पुरस्कार
रु. १०,०००/-	रु. ७,०००/-	रु. ३,००० /-

आयोजक :-

सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ.प्र.

९वां तल, कमरा नं. ९३१, जवाहर भवन, अशोक मार्ग, लखनऊ-२२६००१

तथा

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी

कैसरबाग, लखनऊ-२२६००१

नि :शुल्क नियमावली एवं आवेदन पत्र के लिए लिखें अथवा संपर्क करें।

प्रविष्टियां स्वीकार करने की अंतिम तिथि १५ अप्रैल १९८८

Laser Ad

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका : जनवरी : 1988' अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 फरवरी : 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा अप्रैल : 1988 के अंक में की जायेगी.

प्रथम पुरस्कार : 80 रुपये, द्वितीय पुरस्कार : 60 रुपये, तृतीय पुरस्कार : 40 रुपये.

सारिका कथा पहेली : फरवरी 1988

1. इस अंक की रचना.....में कुत्तों के माध्यम से मनुष्य समाज पर सार्थक व्यंग्य किया गया है.
2. जैनेंद्र कुमार के उपन्यास 'त्याग पत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद.....ने किया.
3. .....कहानी का पुरुष पात्र इस हद तक हैरान हो जाता है कि वह अपनी पत्नी के संदर्भ में यह सोचने पर मजबूर हो जाता है आखिर यह लड़की उसकी बीवी क्यों है?
4. भगदत्त की पोल कैसे खुली?

.....

5. "यह जितनी सारी चीजें तुम्हारी आंखों को, मन को अटकाती हैं, इनमें से एक भी चीज बताओ, जो सीधी हो. यह वर्षा, यह टहनी, नदी की लहर, चिड़िया या तितली की उड़ान...बताओ, इनमें से कौन-सी चीज तुम्हें सीधी लगती है? मगर इन सीधों की जिद है कि नहीं साहब, सब सीधा होता है, और सीधा होना चाहिए." यह भाषा कथाकार.....की है.
6. इस अंक की प्रमुख विशेषता क्या है?.....

.....

7. "ऊपर वाले की यही मर्जी है तो यही सही. लेकिन मन के एक कोने में उसे थोड़ी-सी उम्मीद इस बात की थी कि कभी जरूर वक्त बदलेगा और भगौती फिर सुख-चैन के दिन काटेगी?."
यह मनःस्थिति.....कहानी के.....की है.
8. यह पात्र जिन कहानियों के हैं, उनके नाम कोष्ठक में लिखें–
त्रिपुरारी ( ), गोपाल ( ), जमना ( )
9. इस अंक में.....का रेखांकन सर्वश्रेष्ठ है.
10. ".....मटमैली-सी रोशनी में चारों तरफ एक रहस्यात्मक वातावरण घनीभूत होता लग रहा था. दीवारों की खूंटियों पर टंगे बेतरतीब कपड़ों की परछाइयां और दीगर सामान उस नीम उजाले में कुछ का कुछ नजर आ रहा था...."
यह कथांश.....कहानी का है.

नाम.....आयु.....

पता.....

.....

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं....पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं....स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित ३०० शब्दों में लिख भेजिए.

नयी पौद

अभी बहुत प्रयास करना बाकी है!

बीथिका जैन

किसी बात को सही रूप में समझना जितना कठिन है उसे सही रूप में प्रस्तुत करना उससेभी अधिक कठिन है. लेखन से पूर्व विषय की पूर्ण जानकारी और भावों-विचारों का उद्वेलन होना आवश्यक है. इनमें से एक की कमी होने पर भी मुझसे लेखन कार्य संभव नहीं हो पाता. लिखते समय कभी विषय-ज्ञान की अपूर्णता की वजह से गतिरोध आ जाता है. या फिर भाषा हमें अपने इशारे पर नचाती है, लिखो आगे कैसे लिख पाती हो! शब्द ही नहीं सूझते. यदि सूझ भी जायें तो उपयुक्त नहीं लगते. थोड़ा-बहुत कुछ लिख भी लिया तो स्वयं को संतुष्टि नहीं होती.

एकाध पेज लिख लिया तब लगता है अब घटनाओं को कैसे जोड़ा जाये!...जिससे आगे बढ़ा जा सके. कहां तक उनका वर्णन किया जाये.संक्षिप्तता आने में रोड़ा अटकाती है. ऐसी स्थिति में लगता है यह कथन सही है कि हम अध्ययन तो करते नहीं और लेखिका बनने का ख्वाब देखने लगते हैं. अभी तो आगे बढ़ने के लिए बहुत मेहनत करनी है. लिखना क्यों चाहती हूं, इस विषय पर मैंने अनेक बार सोचा. कभी लगा, आजकल लेखक-लेखिका कहलाना भी एक फैशन है. इसमें गौरवानुभूति होती है, कहीं इसीलिए तो मैं ऐसा नहीं करना चाहती. किंतु स्वयं ही इसे नकार भी देती हूं. स्त्री की स्थिति और समाज में व्याप्त रूढ़ विचार ही हमेशा मुझे लेखन के लिए उकसाते हैं. अभी तो मेरा लेखन मुझ तक ही सीमित है. मैं अपने विचारों को सही शब्दों में बांधकर उस पर सबको सोचने के लिए मजबूर कर सकूं, ऐसे लेखनके लिए सही भाषा और क्रम को लाने के लिए अभी बहुत प्रयास करना बाकी है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

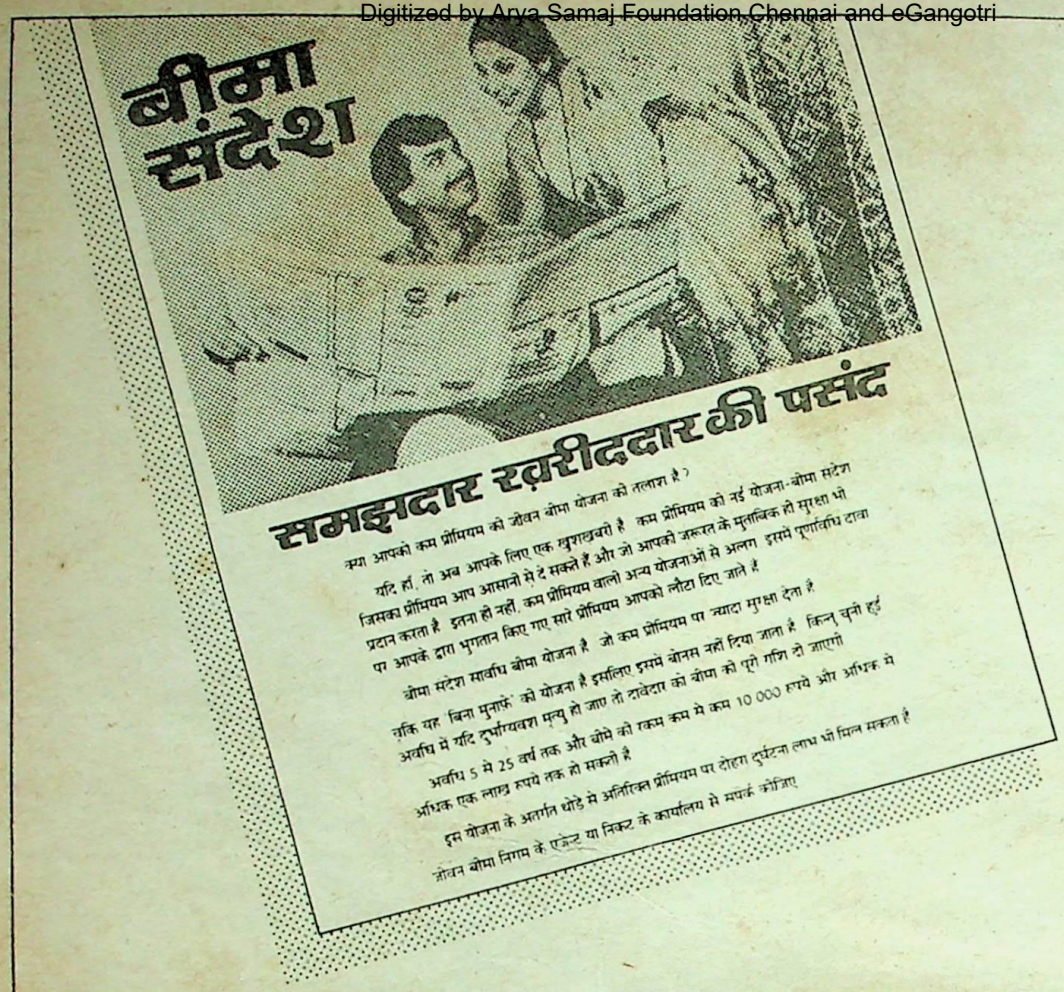

अब कम-लागत बीमा सन्देश योजना और भी कम लागत पर 10%—27% की छूट !

कम-कम प्रीमियम

बीमा सन्देश का मुख्य आकर्षण था उसका कम प्रीमियम.

अब प्रीमियम की दरें आयु और अवधि के अनुसार 10% से 27% तक और घटा दी गई हैं.

अब, प्रीमियम दरों में इस कमी के कारण बीमा सन्देश से जीवन बीमा सुरक्षा प्राप्त करना अधिक आसान हो गया है विशेष रूप से कम आय समूह के लोगों के लिए या उनके लिए जो कम लागत पर अधिक सुरक्षा प्राप्त करना चाहते हैं.

मौजूदा बीमा सन्देश पालिसीधारकों को भी लाभ मिलेगा

मौजूदा पालिसीधारकों के लिए बीमा सुरक्षा की राशि अपने-आप नए प्रीमियम दरों के अनुपात से बढ़ा दी जाएगी. हर पालिसीधारक को इसकी सूचना अलग से भेजी जाएगी.

हानिरहित योजना

बीमा सन्देश योजना के अन्तर्गत बीमा अवधि की समाप्ति पर अदा किए सारे प्रीमियम पालिसीधारक को लौटा दिए जाते हैं. बीमा-अवधि के दौरान मृत्यु हो जाने पर सारी बीमा-राशि नामज़द व्यक्ति को अदा कर दी जाती है.

आज ही अपने जीवन बीमा एजन्ट से मिलें या अपने निकटतम जीवन बीमा कार्यालय से सम्पर्क करें.

योगक्षेम वहाम्यहम्

भारतीय जीवन बीमा निगम

जीवन बीमा निगम — जनता की सुरक्षा का न्यासधारी

RADIUS LIC 5 87

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

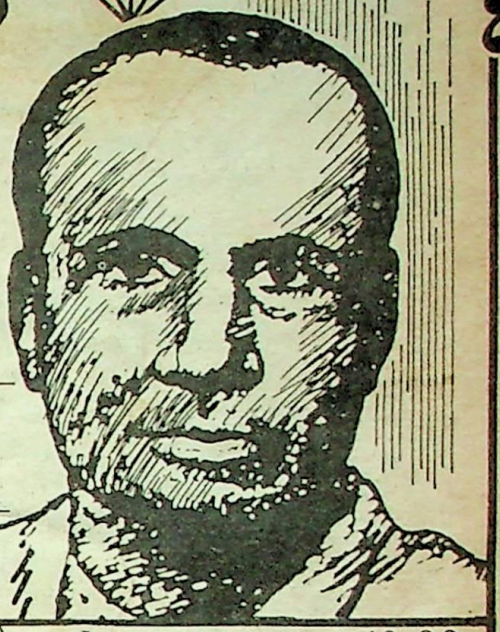

जयशंकर प्रसाद का साहित्य

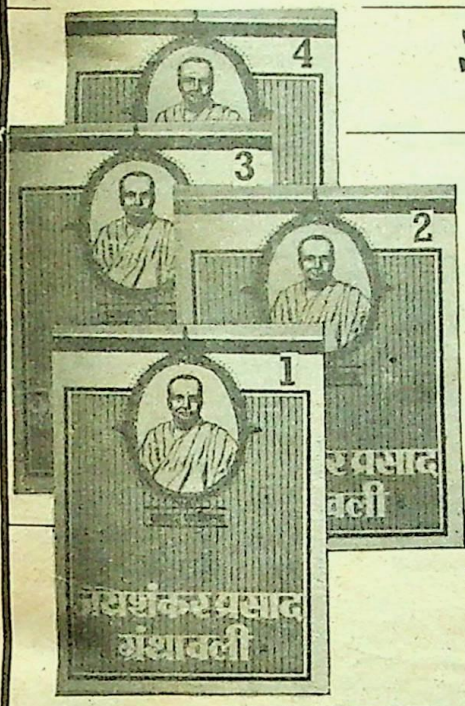

जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली

प्रसाद ग्रंथावली खण्ड	(काव्य) – I	40.00
प्रसाद ग्रंथावली खण्ड	(नाटक) – II	40.00
प्रसाद ग्रंथावली खण्ड	(कहानी-निबंध) – III	40.00
प्रसाद ग्रंथावली खण्ड	(उपन्यास) – IV	40.00

प्रसाद की अलग प्रकाशित पुस्तकें

काव्य

कामायनी	8.00
आंसू	5.00
झरना	5.00
लहर	5.00
महाराजा का महत्व	2.00
प्रेम पथिक	3.00

नाटक

चन्द्रगुप्त	10.00
स्कंदगुप्त	10.00
अजातशत्रु	6.00
ध्रुवस्वामिनी	2.50
जनमेजय का नागयज्ञ	6.00
राज्य श्री	4.00
विशाख	6.00
कामना	4.00
एक घूंट	4.00

कहानी संग्रह

छाया	6.00
इन्द्रजाल	8.00
आकाशदीप	7.00
प्रतिध्वनि	5.00
आंधी	6.00

उपन्यास

कंकाल	15.00
तितली	15.00
इरावती	6.00

निबन्ध

काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	15.00

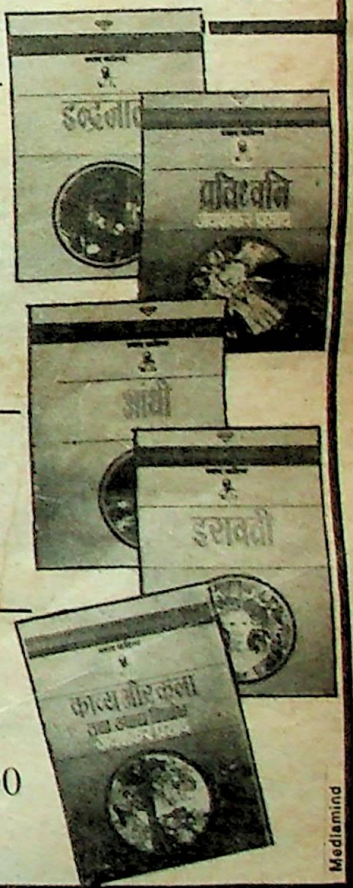

Mediamind

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा लि 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

सारिका के रजत जयंती के उपहार अंकों की शृंखला का प्रारंभ ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक :1, 2 से हुआ था. इन अंकों को पाठकों ने अद्वितीय और संग्रहणीय माना. आज भी इनकी बराबर मांग की जाती है.
और अब राष्ट्र के इस सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार की एक-चौथाई सदी की यात्रा-कथा के अनूठे अध्यायों को प्रस्तुत कर रहा है

ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक : तीन

अनेक आल्हादकारक प्रसंगों और धार पर चढ़े सर्जना से छिटके चमत्कारी स्फुलिंगों की जगमगाहट के बीच पाठक पायेंगे स्थायी महत्व की अन्य ऐसी सामग्री जो ज्ञानपीठ के बाइस पुरस्कार-मंचों की अमर उपलब्धि है.

पुरस्कार विजेताओं की कहानियां : सची राउतराय (ओड़िया) तकषी शिवशंकर पिल्लै (मलयालम) और पन्नालाल पटेल (गुजराती).

उपन्यास (नाट्यरूपांतर) : मृत्युंजय : वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य (असमिया), ययाति : विष्णुसखाराम खांडेकर (मराठी)

तीन उपन्यास : तीन पात्र : तीन युग
एक कथासूत्र में संयोजित आशापूर्णदेवी की बांग्ला उपन्यासत्रयी की नायिकाएं-प्रथम प्रतिश्रुति (सत्यवती), सुवर्णलता (सुवर्णलता) और बकुलकथा (बकुल)

कविताएं : इस वर्ष के पुरस्कार विजेता सची राउतराय की प्रतिनिधि कविताएं और मंच प्रस्तुतियों से संदर्भित महादेवी, पंत, बेंद्रे, दिनकर, अज्ञेय, अमृता प्रीतम के मार्मिक कवितांश.

संस्मरण : फिराक गोरखपुरी : एक महासागर
अतल के मोती—बिशन टंडन
सतह के फेन—रमेश द्विवेदी
एक संध्या—दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे के घर पर.

स्वयंवद : उमाशंकर जोशी, कुवेंपु (पुट्टप्पा), विश्वनाथ सत्यानारायण.

अज्ञेय —एक व्यक्ति चित्र : फणीश्वरनाथ रेणु
शिवराम कारंत से विचारोत्तेजक बातचीत.

पुरस्कार मंच पर मैत्री की प्रतिध्वनि
महादेवी वर्मा और ब्रिटेन की प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर तकषी शिवशंकर पिल्लै और मैक्सिकन कवि ऑक्टोवियो पॉज

विकट चुनौतियां : पुरस्कृत कृतियों की मंच प्रस्तुति प्रयोग के साथी : कुंथा जैन
श्रीमती रमा जैन के संचालन में: यामिनी कृष्णमूर्ति, अलकाज़ी, शांता गांधी, मायाराव, अमलाशंकर, मोहन महर्षि, सोनलमानसिंह, ओम शिवपुरी, सई परांजपे, गिरीश करनाड, कुलभूषण खरबंदा, राज बब्बर, नसीरूद्दीन शाह, वी.वी. कारंथ, शीला भाटिया, सत्यदेव दुबे, आनंद शंकर, तनुश्री, अविनाश पसरीचा, रामगोपाल बजाज, रीता गांगुली.

साहित्य सृजन, पुरस्कार और मैं
रचना धर्म, रचना कर्म, जीवन, समाज और आत्म बोध के संबंध में पुरस्कार विजेताओं के उद्गार-समारोह मंच से.

वाग्देवी के ये चिरंतन दीपाधार : पुरस्कार विजेताओं की दिग्दर्शिका.

दीप से दीप जले
कतिपय विजेताओं द्वारा पुरस्कार राशि का उपयोग साहित्य संवर्धन के प्रति समर्पित.

ज्ञानपीठ पुरस्कार : संस्थापकों के विचार और विनयांजलि
स्वर्गीय साहू शांति प्रसाद जैन, स्वर्गीया श्रीमती रमा जैन, वर्तमान अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जैन और वर्तमान मैनेजिंग ट्रस्टी, साहू अशोक कुमार जैन.

इस अंक के अतिथि संपादक हैं : **ज्ञानोदय और ज्ञानपीठ पत्रिका के भूतपूर्व संपादक, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रवर परिषद के सदस्य और ज्ञानपीठ के सलाहकार श्री लक्ष्मीचंद्र जैन.**

सारिका
अप्रैल 88

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका वर्ष :28, अंक :431, मार्च, 88

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

अतिथि संपादक :
शरद जोशी
संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

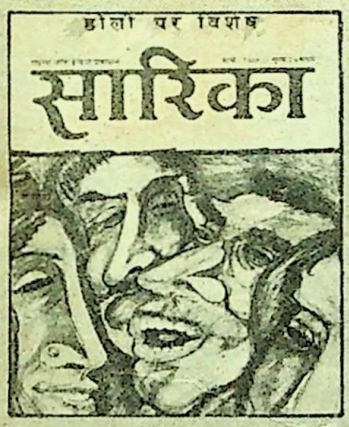

आवरण कलाकृति : हरिपाल त्यागी
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

प्राचीन व्यंग्य साहित्य खंड

11. किताब खाना :
भारतेंदु हरिश्चंद्र
12. शिवशंभु का चिट्ठा :
बालमुकुंद गुप्त
13. गुप्त ठग, दांत :
प्रतापनारायण मिश्र
15. 'हां' में 'हां'
मिश्र बंधु
17. लंका पर शंका :
जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

व्यंग्य रचनाएं

19. रोग :
रवींद्रनाथ त्यागी
20. पुलिया, गरम बोनट और बकरियां :
ज्ञान चतुर्वेदी
23. इंस्पैक्टर फोर्ड के कारनामे :
बुडी एलन
26. हैदराबाद का जो जिक्र किया :
मुज्तबा हुसैन
30. क्रांति, कुत्ता और ट्रेजिडी :
यशवंत व्यास
33. क्रिकेट्रिया :
राशिद आकाश
34. मेरा मुख्य अतिथि हो जाना :
लतीफ घोंघी
37. यक्ष विलाप :
सूर्यबाला
38. टेनिसी की पत्रकारिता :
मार्क ट्वेन
41. कला का पारखी :
कन्हैयालाल कपूर
43. असमर्थ :
राजेंद्र सिन्हा
49. सूखे खेत लहलहाते चिंतन :
शिवानंद कामड़े.
52. कुत्ता कथा :
लक्ष्मीकांत वैष्णव
60. भिखमंगों को पेंशन :
ईश्वर शर्मा
63. प्रेम के संबंध में विशेषज्ञ का बयान :
फ्रेक सलीवान
65. मिथ्या निंदक :
चेखव
67. पानी की समस्या :
शरद जोशी

साक्षात्कार

74. क्यों मुझे प्राचीर बनकर... :
महादेवी वर्मा के साथ डा. रणवीर रांग्रा की बातचीत

संस्मरण

76. आरोपित ऊंचापन... :
चंद्रगुप्त विद्यालंकार

नवांकुर

84. पहाड़ :
वेदिका वेद

नये हस्ताक्षर

88. दूसरी राह का दर्द :
मदन मोहन

विशेष आयोजन

69. व्यंग्य सर्वेक्षण—1987 :
प्रेम जनमेजय
82. मानवीय संबंधों के एक्स-रेज़ :
हरिप्रकाश त्यागी

अन्य आकर्षण

6. आपकी बात :
8. अपनी बात
9. अतिथि रहकर :
शरद जोशी
72. फाइनल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी
78. अनजानी प्रेम कथाएं :
बाला दुबे
87. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी
91. नयी पौद
92. कथा पहेली
93. कृतियां :
हरिमोहन, विश्वभंर अरूण, शीतांशु भारद्वाज
98 पत्रिकाएं :
महेश दर्पण

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88 महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंवले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकीबात

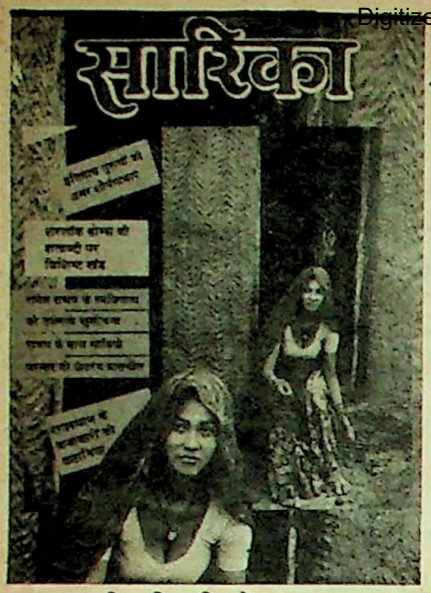

कहानी की-सी रोचकतावाला साक्षात्कार

सारिका का दिसंबर अंक पढ़ा. शौर्य गाथाओं का संकलन (कुछ कहानियों को छोड़कर) मात्र पन्ने भरने तथा फुसलाने का प्रयास रहा. मेरे विचार से कोई भी व्यक्ति जिसे भारत के इतिहास के बारे में थोड़ा-सा भी ज्ञान होगा, वह इन घर-घर में दादी दादाओं द्वारा सुनाई जाने वाली कथाओं के बारे में अनभिज्ञ तो नहीं होगा. क्या ही उत्तम होता इसकी जगह वर्षांत की साहित्यिक गतिविधियों, नये प्रकाशनों तथा अन्य संबंधित जानकारियों पर कोई आलेख प्रदान कर दिया होता.

सुलोचना राघव से लिये साक्षात्कार ने अवश्य सारिका की महत्ता को बनाये रखा. रांगेय राघव के बहुआयामी व्यक्तित्व के बारे में सावित्री परमार की लेखनी कहानी की-सी रोचकता को अंतर तक पाठकों के सामने रखती गयी. कहानियों में 'सर्वोच्च शिखर', 'साफ पानी की तलाश', तथा 'इल्मफरोश' काफी प्रभावशाली तथा सामयिक रहीं. तीनों रचनाओं का धरातल एक-सा ही था – भौतिकवादी दृष्टिकोण, चाहे वह डाक्टर आरती गुप्ता हो, चाहे परिवहन निगम के चौहान साहब अथवा माध्यमिक शाला के घनानंद जी, इसी दृष्टिकोण की धुरी के परितः घूमते रहते हैं. हर कहानी को पूरा पढ़ जाने के बाद कुछ ऐसा आभास होता है जैसे कि अब स्थिति बदल गयी हो, तथा यह तीनों कथानायक स्वयं धुरी के समान स्थिर हो गये हों तथा इनका वह उद्देश्य अब इनके चारों ओर तेजी से घूमता हुआ इन्हें ही स्वयं में लपेट लेने को आतुर है, 'शरलॉक होम्स' पर विशिष्ट प्रस्तुति तथा राजस्थानी कहानीकारों की रचनाओं ने काफी प्रभाव डाला. पाठकगण अब इसी तरह आगामी अंकों में अन्य राज्यों के साहित्यिकारों की रचनाओं के लिए आतुर रहेंगे, कृपया ध्यान रखें.

सारिका ने साहित्यिक स्तर की उच्चकोटि की पत्रिका होने का गौरव बनाये रखा है तथा हम आशा करते हैं कि नववर्ष के सभी अंकों में यह आशा पाठकों को कम से कम उत्कृष्ट साहित्य हेतु तो मिलती रहेगी, वह बात अलग है कि 88 के अंत तक आप इसका मूल्य दस रुपये कर दें. मूल्यवृद्धि कोई भी पाठक सहन कर ही लेगा पर यह तो कभी उसे सहन नहीं होगा कि इसका आवरण तथा विज्ञापन अर्द्धनग्न तथा आपत्तिजनक चित्रों से परिपूर्ण हों, जिसके कारण इसे पढ़ने के बाद सुरक्षित स्थान पर रखना पड़े.

□ **मोहन चंद्र परगाई, नैनीताल**

वह जी कभी नहीं पायी!

भौतिकवाद की अंधी दौड़ में बेतहाशा दौड़ रहे आदमी को मानवता, ममता और प्यार का आज जरा भी होश नहीं है – इस कटु सत्य को यादवेंद्र शर्मा चंद्र की कहानी 'सर्वोच्च शिखर' बखूबी उजागर करती है. आरती जीने के सामान जुटाने में मरती रही किंतु जी कभी नहीं पायी.

भौतिकवाद की चमक ने आज आदमी को इस कदर अंधा कर दिया है कि वह इंसान कहलाने लायक ही नहीं रहा. इसी कारण खून के रिश्ते फीके पड़ रहे हैं और धन के रिश्ते गाढ़े.

□ **देव प्रकाश कौशिक, धौलपुर (राज.)**

अबला जीवन : परतंत्रता प्रमाण

सारिका का दिसंबर अंक अपनी मर्यादित प्रतिष्ठा से लसित होकर प्रस्तुत हुआ है. शरलॉक होम्स पर दी गयी कथा रचनाओं ने अन्वेषी चरित्र की अतिसूक्ष्म व विश्लेषणपरक बुद्धि को प्रतिबिंबित किया है. इस प्रकार के अंक सच में परिवर्तनबद्धता व समसामयिक उपादेयता के मानदंडों पर सफलतापूर्वक खरे उतरते हैं. इतना ही नहीं, बल्कि इन अंकों की महत्ता इसलिए भी बढ़ जाती है कि ये सुरुचिपूर्ण साहित्यिक रसास्वादन के लिए भी जल्दी ही स्वीकार्य होते हैं. आलमशाह खान की 'अबला जीवन का गणित' कहानी नारी जीवन की, भारतीय परिप्रेक्ष्य में, परतंत्रता का जीवंत प्रमाण है. स्वाभाविक कथा व शब्द शिल्प के सहारे लेखक ने नारी के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण के पुनरावलोकन का आग्रह किया है. ऐसी छोटी या बड़ी साहित्यिक कृतियां जिनमें वर्तमान सामाजिक मूल्यों पर शोध किया गया हो अपरिहार्यता व महत्ता की दृष्टि से वरीयता प्राप्त कर लेती हैं.

शीतांशु भारद्वाज की 'इल्मफरोश', यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', माधव नागदा की 'साफ पानी की तलाश' तथा मोहर सिंह यादव की 'मंत्री जी महान' नामक कहानियां भी काफी अच्छी लगीं. नंदनजी द्वारा लिखित 'श्रद्धा स्मरण' पढ़कर डा. लाल के प्रति उनकी दो टूक टिप्पणियों के लिए मैं भी श्रद्धानत हो गया. स्व. डा. लाल कटु सत्य को कहने में कोई कोताही नहीं बरतते थे. यह स्पष्टवादिता लुप्तप्राय स्वभाव है.

एक परिमार्जित, उपयोगी व वस्तुनिष्ट दृष्टिकोणवाले इस अंक के लिए सारिका परिवार बधाई का पात्र है.

□ **हरीश उपाध्याय, असम**

नारी जीवन का व्याकरण

मैं कौन? मुझे भी लगता है कि मैं उस दरवाजे के बाहर खड़ा होकर सांकल खड़खड़ाने लगा हूं जिसके अंदर रहते व्यक्ति से मेरा कोई पूर्व परिचय व्यक्तिगत रूप से नहीं है किंतु मन में विश्वास लेकर जब कोई किसी के द्वार के बाहर हो तो अवश्य ही किसी अन्य प्रकार से वह अंदरवाले व्यक्ति को जानता है.

दिसंबर 87 का अंक राजस्थान के लेखकों को समर्पित. लघुकथाओं का मिश्रण और सबसे प्रभावशाली कहानी है 'अबला जीवन का गणित'. आलमशाह खान ने नारी के पूरे जीवन का गणित कितनी साधारण व स्पष्ट भाषा में किया. वास्तव में खान भाई का प्रयास सराहनीय है. जिस कोण से नारी जीवन को विभाजित कर गुणा किया - दस की बावली नहीं दावड़ी से सौ की जली का इतना सुंदर व्याकरण (नारी जीवन का) बड़ा सुहाया.

बाकी की कहानियों में 'मंत्री जी महान', 'सर्वोच्च शिखर' कुछ ऐसी ही कहानियां लगीं कि जीवन में लेखक केवल कलम ही चलाता रहे - क्या और रास्ता नहीं है इसके अलावा लेखक के पास? मंत्रीगणों का क्या, वे तो इस तरह अपनी मनमानी करते रहेंगे और हम कलम की चोंच तेज करते रहेंगे.

□ **अनिल पुरी, बिलशाद गार्डन, दिल्ली**

पिछले अंक की परिचर्चा

पिछले अंक में 'किताबें दीवारें नहीं पढ़तीं....' परिचर्चा में प्रकाशन-विभाग की ओर से भाग लिया था श्री अभय आत्मा शिरोमणि ने. खेद है, भूलवश इनका नाम न जा सका. –संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला उर्फ गरगजसिंह वर्मा साहित्य शार्दूल

अभी अभी सारिका का दिसंबर अंक देखा. राजेंद्र राव ने 'वे मतवाले' में लिखा है "मतवाला में एक कालम होता था, 'चाबुक' उसे कोई श्रीमान गरगजसिंह वर्मा साहित्य शार्दूल लिखते थे." सारिका के पाठकों को यह जान सुखद आश्चर्य होगा ये वर्मा साहब और कोई नहीं हिंदी संसार के स्वनाम धन्य महाकवि निराला थे. स्वयं निराला जी ने इस कालम के बारे में लिखा था, "चाबुक शीर्षक से मैं एक दूसरे नाम से 'मतवाला' में व्याकरण पर आलोचनाएं लिखा करता था. आलोचना यथार्थता लिए हुए जितनी भी हो, कटुता लिए हुए अवश्य थीं. आज जिन लेखकों और संपादकों पर मेरी श्रद्धा है, उन्हें, समय मैंने अपनी श्रद्धा नहीं दी. मैं करबद्ध होकर कटुता से समालोचित पूज्य साहित्यिकों से क्षमा चाहता हूं...."

उपर्युक्त उदाहरण 'चाबुक' पुस्तक से उद्धृत किया गया है जिसमें पूज्य निरालाजी के नौ निबंधों का संकलन था तथा जिसे उनके सुयोग्य पुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने अपने निर्देशानुसार 'निरुपमा प्रकाशन' 50 शाहरारबाग, प्रयाग से प्रकाशित करवाया था. 'मतवाला' के संपादक मंडल में श्री शिवपूजन सहाय, श्री बेचन शर्मा 'उग्र' के साथ स्वयं निरालाजी भी थे.

□ रामकृष्ण पराशर, कवेंट्री (इंग्लैंड)

उम्दा बातचीत

'मनुष्य जन्म' (मुरलीधर शर्मा), 'सर्वोच्च शिखर' (यादवेंद्र शर्मा चंद्र), 'हेड़ मास्टर' (मालचंद्र तिवाड़ी) बहुत अच्छी लगीं. श्री विमल द्वारा मनुष्य को मनुष्य के प्रति मनुष्यता की तरह अनुराग करने की जो बात कही तथा विधवा विवाह करने का जो बीड़ा उठाया, बहुत ही सराहनीय है. अन्य कथायें भी पसंद आयीं. हां, एक बात विशेष रूप से. रांगेय राघव के व्यक्तित्व को उकेरती सुलोचना राघव के साथ सावित्री परमार की अंतरंग बातचीत काफी उम्दा लगी.

□ माधो दास हर्ष, श्रीडूंगरगढ़

क्यों हो रहे हैं सिद्धांतवादी अल्पसंख्यक

अपने मित्रों की बुक क्लब योजना के अंतर्गत इधर माह से लगभग नियमित रूप से सारिका पढ़ने का सौभाग्य मिलता रहा है. आदर्श प्रधान समाज चिंतन व समर्थन में सारिका की कहानियां बड़ा संबल प्रदान करती हैं. दूसरी ओर समाज में नैतिक मूल्यों के परिवर्तन का झंझावात मन को क्षुब्ध कर देता है. सारिका की कहानियां मनो-मस्तिष्क को सहलाती हैं, दुलराती हैं.

'अबला जीवन का गणित' नारी जीवन की विषमताओं का स्मरणीय आकलन है. कथाकार आलमशाह खान को हमारा हार्दिक धन्यवाद. मैंने पहली बार स्त्री दुर्दशा का यह वर्णन पढ़ा. उसका कितना समय किन-किन अभावों, दुर्दशाओं और विडंबनाओं को भेंट चढ़ जाता है, पर खुशी होती है जब यशोदा अपने अतीत का स्मरण करके नये निश्चय करके आगे बढ़ जाती है. कहानी में लेखक की भाषा शैली और आंचलिक प्रभाव पाठक पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं.

शीतांशु भारद्वाज कृत कहानी 'इल्म-फरोश' मेरे लिए अनुभव और यथार्थ का आधार प्रदान करती है - अध्यापक जो हूं. जयदत्त जी का त्याग व आदर्शपूर्ण जीवन मात्र इसलिए त्याज्य है घनानंद जी के लिए, क्योंकि उससे उनके परिवार को कोई सुख नहीं मिला. दुर्भाग्यवश मूल्य संकट के इस युग में आदर्श प्रिय एवं सिद्धांतवादी व्यक्ति अल्पसंख्यक बनता जा रहा है. लोकतंत्र के बहुमत वाले सिद्धांत की यह बड़ी विडंबना रही है... इसी आधार पर अभी नैतिक मूल्यों में घोरतम परिवर्तनों की आंधी चलती रहेगी. शरलॉक होम्स शताब्दी खंड और शौर्यगाथा कथाएं भी रोचक और सराहनीय हैं.

अन्य कथाओं में 'मनुष्य जन्म', 'सर्वोच्च शिखर', 'मंत्री जी महान', 'साफ पानी की तलाश' आदि कहानियां भी परिस्थितियों का रोचक विवरण प्रस्तुत करती हैं और सराहनीय आकलन करती हैं.

□ संतराम वर्मा, नीमगांव (उ.प्र.)

प्राय कथाकारों ने निराश किया

राजस्थान के प्रायः कथाकारों ने निराश किया, लेकिन दो कहानियां इस अंक की उपलब्धि रहीं – 'अबला जीवन का गणित' (आलमशाह खान) और 'बंटवारा' (रंगनाथ राकेश). आलमशाह खान ने तो हमेशा विशिष्ट कहानियां दी हैं. जनजीवन में प्रचलित मुहावरों को कहानी में पिरोने का काम सिर्फ वही कर सकते हैं. 'बंटवारा' छोटी लेकिन सशक्त कहानी है. यह संयुक्त परिवार के टूटन एवं बिखराव की प्रतिनिधि कहानी है. लेखक ने जहां एक ओर 'द्विजत्व' पर चोट की है वहीं उनके संवेदनशील मन की छटपटाहट भी है जो टूटते परिवार के लिए चिंतित है. लेकिन कहानी के अंत को लेखक ने आदर्शवादी बनाने की जबरन कोशिश की है. यह अंत एक दशक पूर्व का सच हो सकता है, आज तो यह और भी बेहया होकर हमारे सामने है और छोटा भाई जैसा चरित्र महसूसने को तैयार नहीं है.

□ रामदेव सिंह, मधेपुरा (बिहार)

□ इस बार पुरस्कार योग्य कोई पत्र न होने की वजह से पत्र-पुरस्कार नहीं दिये जा रहे. – सं.

अभी शेष है रांगेय राघव का समुचित मूल्यांकन

श्रीमती सुलोचना राघव से साक्षात्कार पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ. 25 वर्षों के लंबे अंतराल के पश्चात रांगेय राघव पर कुछ पढ़ने को मिला. साधुवाद स्वीकार करें.

हिंदी साहित्य में रांगेय राघव का समुचित मूल्यांकन अभी शेष है. उनके निधन पर धर्मयुग जैसी ख्याति प्राप्त पत्रिका ने मात्र एक पृष्ठ का लेख छापकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली. राजस्थान सरकार ने भी रांगेय राघव की स्मृति को अक्षुण बनाने के लिए कुछ नहीं किया.

रांगेय राघव साहित्य की समस्त पृष्ठभूमि उनके पैतृक निवासगृह वैर (जिला-भरतपुर) के जनजीवन पर आधारित है. बयाना संसदीय क्षेत्र में एक साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था राष्ट्रीय लोक परिषद् सक्रिय है जो प्रति वर्ष 16 जनवरी को रांगेय राघव जयंती आयोजित कर साहित्य के मनीषी साहित्यकारों का सम्मान करती है. इस संस्था द्वारा रांगेय राघव जयंती पर सम्मानित साहित्यकारों में 'पार्वती' महाकाव्य के प्रेणता डा. रामानंद तिवारी 'भारतीनंदन' व राजस्थान के अग्रणी गीतकार श्री बशीर अहमद मयूख शामिल हैं. रांगेय राघव साहित्य पर शोध करवाने व शोधकार्य में निशुल्क सहयोग प्रदान करने हेतु स्व. लेखक के पैतृक गांव में भी 'डा. रांगेय राघव अध्ययन केंद्र' पिछले पंद्रह वर्षों से सेवारत है. प्राप्त जानकारी के अनुसार रांगेय राघव पर लगभग एक बर्जन से ऊपर अब तक शोध प्रबंध विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्वीकृति हो चुके हैं.

□ मुरली लाल शर्मा, टालस्टाय मार्ग, नयी दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होली, व्यंग्य और पितृपक्ष का कौआ

किताबों का मेला लगा. 10 दिन तक लगा रहा. देश-विदेश के बहुत से लोग देखने आए. कुछ खरीदारी का मन बनाकर भी आए लेकिन अधिकतर भीड़ एक दूसरे से मिलने-जुलने वालों की या मौजमस्ती करने वालों की ही थी जैसा कि हर मेले में होता है. जहां तक किताबों और प्रकाशकों से परिचय का सवाल है, वह तो हुआ लेकिन हिंदी की महंगी किताबों की जगह मध्यप्रदेश की मूर्तियां आनुपातिक ढंग से ज्यादा बिकीं. विशेष रूप से १५५ और १७५ रुपये वाली शालभंजिका और मिथुन मूर्तियां लोग इस तरह से रैप करवा कर ले गये कि देखने वालों को लगे कि ढेर सारी किताबें ले जा रहे हैं. इस घटना से हिंदी जगत की मानसिकता और किताबों के प्रति रुचि-अरुचि का संकेत मिलता है. मूर्तियां खरीदने से उन्हें लगता है कि घर के किसी कोने की शोभा बढ़ेगी और किताबें खरीदने से कोई कोना बेकार ही घिर जायेगा.

दूसरी प्रवृत्ति यह दिखायी दी कि कम कीमत वाली पुस्तकें अधिक बिकीं या उनकी अधिक बुकिंग हुई. उदाहरण के तौर पर हिंदी प्रचारक संस्थान वाराणसी के छोटे से स्टॉल पर रखे भारतेंदु समग्र को देखा जा सकता है. इस रचनावली की जितनी भी प्रतियां वे लोग लाए थे वे सभी बिक गयीं और सैकड़ों की संख्या में लोगों ने एंडवांस देकर अपनी प्रतियों की बुकिंग करवायी. बुकिंग तीन रचनावलियों की १०० रुपये मात्र में एक साथ हुई. पहली—भारतेंदु समग्र, दूसरी—बंकिमचंद्र समग्र, तीसरी—देवकी नंदन खत्री समग्र. इसे देखकर लगभग सभी के मन में एक से सवाल उठ रहे थे और हो सकता है प्रकाशकों के मन में भी उठे हों कि जब वाराणसी का एक प्रकाशक १०० रुपये में तीन रचनाकारों की रचनावलियां अच्छे कागज, अच्छी छपाई और अच्छी जिल्द के साथ बिक्री के लिए तैयार कर सकता है तो दिल्ली के प्रकाशक क्यों नहीं कर सकते. क्या राजकमल जैसा प्रकाशक जो रचनावलियां प्रकाशित करने के लिए प्रथम पंक्ति में खड़ा है यह काम नहीं कर सकता. फिर आखिर ऐसे कौन से कारण है जो उसे ऐसा नहीं करने देते हैं या फिर दिल्ली के प्रकाशकों को ऐसा करने से रोके हुए हैं. यदि नीयत साफ हो और पाठकों के साथ सीधे जुड़ने की उत्कट अभिलाषा मन में हो तो प्रकाशक, लेखक और पाठक के बीच सही समीकरण बन सकता है. इस समीकरण को बनाने में किसी न किसी को तो पहल करनी ही पड़ेगी. इस बड़े काम के लिए सामूहिक प्रयास भी किये जाने चाहिए और व्यक्तिगत प्रयास भी. इस संबंध में मेरी कुछ प्रकाशकों से बात हुई. उनमें से सभी ने इस कार्य में रुचि दिखायी लेकिन विशेष रुचि मुझे प्रभात प्रकाशन के मालिक श्री श्यामसुंदर में दिखी. उन्होंने सुलझे हुए ढंग से और रुचिपूर्वक काफी देर तक इस संदर्भ में बात की. इसकी रूपरेखा के कुछ प्रारूपों पर भी बातचीत होती रही.

इस मेले में कुछ परिवार ऐसे भी दिखाई दिए जो अपने बच्चों के साथ आए थे. बेचारे बच्चों को किताबों की इस भीड़ में काफी निराशा हुई. मेले की कल्पना के अनुसार न उन्हें कहीं गुब्बारे नजर आए न पिपनी, न चॉकलेट और न खिलौने ही. ऐसे मां-बाप अपने बच्चों को लेकर अप्पू घर की तरफ जाते हुए नजर आए. फिर भी कुल मिलाकर मेले का यह दसदिवसीय आयोजन बुरा नहीं रहा. किताबों के साथ बिताए हुए कुछ क्षण भी आदमी के मन पर जाने या अनजाने अपना असर तो छोड़ते ही हैं. देखना यह है कि वह असर कितनी देर तक और किस रूप में उभरता है. यदि ऐसे आयोजन लिखित शब्द के प्रति आदमी के मन में थोड़ी सी भी आस्था पैदा कर सके तो इनका महत्व बढ़ेगा.

अब कुछ बातें 'सारिका' के इस अंक के संबंध में भी करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा. होली पर व्यंग्य विशेषांक निकलने की एक परंपरा-सी बन गयी है. व्यंग्य बेचारे की दशा पितृपक्ष के कौए जैसी कर दी गयी है. जिस तरह कौए को सिर्फ पितृपक्ष में ही याद किया जाता है उसी तरह व्यंग्य को भी सिर्फ होली पर ही याद किया जाता है. यह व्यंग्य के साथ एक अजीब-सा व्यंग्य ही है. जब इस अंक के संबंध में विचार हुआ तो महसूस किया गया कि परंपरा से हटकर कुछ किया जाये और इस संबंध में यह तय किया गया कि व्यंग्य विशेषांक इस बार एक व्यंग्यकार के द्वारा निकलवाया जाए और 'सारिका' ने अनुरोध किया आज के सर्वाधिक चर्चित व्यंग्यकार श्री शरद भाई से. जिस समय शरद भाई से मैंने टेलीफोन पर बात की तो वे पहले तो जोर से हंसे और फिर बोले, ''बड़ी देर की मेहरबां आते-आते. हम तो बहुत देर से लोटा-डोर लिए और पोटली बांधे तैयार बैठे थे कि कब दिल्ली से बुलावा आये और हम चल दें. सो, अब तुम सारी चिंता छोड़ के आराम से सो जाओ.'' बहरहाल शरदजी ने हमारा अनुरोध मान लिया है. इसके लिए हम उनके आभारी हैं और उनके अतिथि संपादन में यह अंक आप सब को समर्पित हैं.

इस अंक के लिए हमें 100 पृष्ठों की व्यवस्था करनी पड़ रही है और इसी कारण बहुत बेबसी में इसकी कीमत आठ रुपये रखी गयी है. इसका अर्थ यह नहीं कि सामान्य पृष्ठ संख्या के अंकों के लिए भी आपको यही कीमत चुकानी पड़े. नियमित अंक आपको 7 - रुपये में ही उपलब्ध कराए जाने की कोशिश रहेगी.

अ. मा. कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिथि रहकर

जनमपत्री में लिखा था कि तुझे चाहे माह भर के लिए सही, 'सारिका' का संपादक होना है. ऐसा योग बरसों पहले भी आया था जब स्वर्गीय मोहन राकेश इस पत्रिका के संपादक हुआ करते थे और बंदा आवारागर्दी करने बंबई पहुंचा था. दो-चार दिन के सतसंग के बाद राकेश ने पाया कि मुझमें सहायक संपादक होने के अनिवार्य तंतु हैं. बात आवेदन से इंटरव्यू और वहां से नियुक्ति होने तक पहुंची. मैं इस कार्यालय का सदस्य लगभग होने ही जा रहा था कि राकेश ने 'सारिका' से त्यागपत्र दे दिया. हमने सोचा जिसकी खातिर नौकरी करने जा रहे हैं जब वही मेरा यार कुर्सी छोड़कर भाग रहा है तो मुझे क्या डाक्टर ने कहा है कि भोपाल छोड़कर बंबई बस. हमने नौकरी जॉइन ही नहीं की. करता भी तो एक माह में निकाल दिया जाता. न की तो भी आज माह भर के लिये संपादक हूं. काम तब भी क्या करता और आज ही क्या कर लिया. जनमपत्री में योग था और जिसे कहते हैं आदमी का बायोडाटा वह ऐसी ही कुछ बातों के कारण रबर की तरह खिचकर लंबा होता है. सो हम इस अंक के संपादक हैं. यह बात सनद रहे और शोक सभा, षष्ठिपूर्ति आदि अवसरों पर कहने लिखने के काम आये कि हम संपादक थे. पंडित विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक ने जो 'चांद' में विजयानंद दुबे के नाम से चिट्ठी लिखते थे, एक बार किसी अपनी चिट्ठी में केवल एक दिन के लिए संपादक होने के बड़े रोचक और जोरदार अनुभव लिखे थे. उन्हें जितने अनुभव एक दिन में हुए उतने मुझे एक माह में न हुए. क्योंकि उन्होंने जो एक दिन में किया था. उतना काम मैंने एक पूरे माह न किया. इसी कारण एक दिन के सुलतान वाली घटना के बाद यह दूसरी घटना उतनी सनसनीखेज न हो सकी. मैं कुछ उस प्रकार का संपादन करना चाहता था जैसा इसी अंक में आप मार्क ट्वेन की कहानी में देखेंगे. उग्रजी ने एक भाषण में कहा था कि वह भी क्या संपादक हुआ जिसका माह में कम से कम एक बार सिर न टूटे. मैं इस पूरे माह सलामत रहा. मैं संपादक नहीं हूं.

संपादक एक मजेदार जीव होता है. जैसे यदि मैं किसी कथा-पत्रिका का संपादक हूं तो मुझे यह खुशफहमी होना स्वाभाविक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि कौन-सी कहानी श्रेष्ठ है, इसकी सर्वाधिक समझ मुझमें है. एक नगर में लेखकों की समस्या पर आयोजित एक स्थानीय गोष्ठी में मुझे विशेष अतिथि के रूप में बुलाया गया. ध्यान रहे कि विषय था लेखकों की समस्या. पहला स्थानीय लेखक खड़ा हुआ और उसने लेखक के रूप में अपनी समस्या यह प्रस्तुत की कि हम जो कहानी छपने भेजते हैं वह लौट आती है जबकि हम कागज की एक तरफ, पर्याप्त हाशिया छोड़कर लिखते हैं. मैं वहां लेखकों में वरिष्ठ था और मुझसे इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षित था कि उसकी रचना क्यों लौट आती है? मैंने पूछा कि क्या आप टिकिट लगा लिफाफा भी साथ भेजते हैं. वह बोला हां, मैं वह भी भेजता हूं. मैंने कहा वह भेजना बंद कर दो, रचना नहीं लौटेगी. इस पर ठहाका तो लगने को लग गया मगर प्रश्न अभी भी वहीं लटका था. रचना लौट क्यों आती है? क्यों प्रायः कविता की वापसी संपादक के कार्यालय से होती है. यही बात कुछ हद तक कहानी और हास्य-व्यंग्य रचना के लिए भी सही है. अब आसपास कोई अवध नारायण मुद्गल तो बैठा नहीं था कि मैं कह देता इससे पूछो. रचना लौटानेका अपराधी यह रहा. इस बार भी यही हुआ. मैंने एक उदीयमान किस्म के व्यंग्यकार से कहा कि मैं 'सारिका' के एक अंक का संपादन कर रहा हूं उसमें तुम्हारे खयाल से क्या सामग्री दी जाये तो उसने अपनी रचना देने के अतिरिक्त एक सलाह दी कि आप इस विशेषांक में लेख लिखकर बताइये कि हास्य व्यंग्य की रचना कैसे और किन विषयों पर लिखी जाये कि उसके छपने में दिक्कत न आये. मतलब प्रश्न वहीं लटका है जहां उस दिन उस गोष्ठी में लटका था.

अब चाहे कोई माह भर के लिए संपादक ही क्यों न हो जाये, अपनी कला के गुर यों तो नहीं बताता. अरे जब इतने वर्षों संपादक रहने पर कोई अपनी संपादकी के गुर नहीं बताता तो मैं अतिथि-संपादक होने पर अपने गुर क्यों बताऊं? पर तभी मुझे अपने एक कथाकार मित्र की याद आयी. नाम नहीं लिखूंगा क्योंकि अब वह कथाकार नहीं है पर मित्र फिर भी है. उससे जब हम कहानी पर चर्चा करते थे वह आंकड़े प्रस्तुत करता था जिसे सुन हमेशा लगता था कि इसे तो योजना आयोग में होना चाहिए था. वह कहानी पर अपना बयान यों देता कि आज हिंदीमें कितने दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि हैं जिन्हें अपने उपयोग के लिए वर्ष भर में कुल कितनी कहानियों की आवश्यकता है. इसके अतिरिक्त विशेषांकों की जरूरत और कितनी रह जाती है. इतनी कहानियों की आपूर्ति के लिए यह मानकर कि एक लेखक माह में दो कहानी लिख देगा, इस समय कुल कितने लेखकों की आवश्यकता है. हैं कितने? और कितने चाहिए? उनकी बातें सुन हंसी भी आती थी और सिर पीटने का भी जी करता था. हाय हिंदी कहानी यदि सही जोड़ बाकी टाइप सोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही तो तेरा क्या होगा.

पर हास्य-व्यंग्य इसी आवश्यकता की जोड़बाकी का शिकार होकर रह गया है. मांग है और मांग को भरने वाले हैं. व्यंग्य-हास्य एक खाली जगह की पूर्ति होता जा रहा है. बोलो किसे चाहिए? कितना होना आपको? जी मिल जायेगा. आप इतमीनान रखिये. कल सुबह तक आपके कार्यालय पहुंच जायेगा. एक रचना है जिसे एक सुनिश्चित खाली जगह पर फिट होना है.वह हो जाती है. हिंदी व्यंग्य ने एक जोखम भरी यात्रा कर जो पाठकों की बड़ी संख्या उत्पन्न कर दी, उसे ठीक वहीं एक हास्य-व्यंग्य पढ़ने को मिल जाता है जहां उसने पहले पढ़ा था. तृप्ति हो न हो, काम जारी है. घूम-घूमकर उन्हीं विषयों पर वही-वही कलमें चलती रहती हैं. मैंने एक प्रतिष्ठित व्यंग्यकार को कहा था कि तुम बार-बार वही बात, वही लतीफे, वही दोहे, वही कोटेशन क्यों देते हो. कभी भूल से हो जाये, संभव है पर तुम एक ही चीज को कितनी बार दोहराते हो. तुम कोई बात नये ढंग से कहने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? वह बड़े गर्व से कहने लगा कि हां, मैं दोहराऊंगा. मैं बार-बार वही बात लिखूंगा. यह मेरी प्रतिबद्धता की पहचान है कि मैं एक ही बात को बार-बार उसी तरह, उसी तर्क के साथ कहूंगा जो मैं अपने पाठकों को पहुंचाना चाहता हूं. मैं उसे आश्चर्य से देख यह समझने की चेष्टा करता रहा कि उसका ऐसा सोचना कहां तक सही है? क्या सुनिश्चित सारोकार का अर्थ मौलिकता का गला घोंटना है? इस तरह बार-बार वही लिखने से व्यंग्य अपने पाठकों से कट नहीं जायेगा?

पर क्या करें? व्यंग्य हास्य का दायरा इतना विशाल और संभावनाएं इतनी अनंत हैं कि इस मामले में हर नाज और अंदाज का पूरा अवसर दे उसे उसके भरोसे छोड़ा जा सकता है. हम किसी भी मामले में किसी अंतिम नतीजे तक क्यों पहुंचे? जब हजारों समस्याएं हैं तो सौ हास्य-व्यंग्य लेखकों के दृष्टिकोण संभव हैं. जब तक यह दुनिया नहीं संवरती, यह लिखा ही जाता रहेगा. व्यंग्य एक पोस्टर की सी छोटी-सी सार्थक जिंदगी जीये या महाकाव्य की तरह बरसों अलमारी में अड़ा रहे हमें तो उसकी दोनों रूप में प्रशंसा इसलिए करनी चाहिए कि वह सक्रिय है. अपनी निरंतरता के कारण व्यंग्य लेखन सक्रिय लेखन का पर्याय हो गया है. कितना लिखा जा रहा है. फिर भी जितनी कड़वी सचाइयां रोजमर्रा अपने आसपास हम देखते हैं उतना लिखा नहीं जाता. कठिन है. मेरे वे मित्र नहीं हैं अन्यथा जोड़बाकी लगाकर बताते कि इस समय देश में कितना पाखंड, कितना भ्रष्टाचार, कितनी अव्यवस्था, कितनी पीड़ाएं हैं और उन्हें उजागर करने और उन घावों पर उंगली रखने के लिए व्यंग्य लिखनेवालों की सख्या कितनी कम है. 'सारिका' का हर अंक व्यंग्य का अंक हो तो भी इस देश का दर्द पूरी तरह जाहिर नहीं हो पायेगा.

ऐसे में कोई संपादन के लिए विशेष अतिथि बनकर आ भी जाये तो क्या कर लेगा. सच बात यह है कि मैंने कुछ नहीं किया. अतिथि कुछ करते हैं. यह भारतीय संस्कृति का तकाज़ा है कि अतिथि से कोई काम न कराया जाये. उसका आदर-सत्कार करो, उसे बैठने को कहो. मैं वही था. संपादन के काम में अतिथि. फटे में टांग. एक निरंतर कबाब में हड्डी. मुझे तो हास्य-व्यंग्य लेखकों के पते भी नहीं मालूम. वह मिल भी जायें तो कब तो मैं उनसे लिखवा लेता और कब वह लिखते. लिखते भी तो मेरे लिए विशेष क्या लिखते. वे जो लिख रहे थे, उसमें से ही एक रचना उन्होंने मुझे दे दी. मैंने उसे मुद्गल को दे दी. मुद्गल ने उसे प्रेस में दे दी. यही होता है ना संपादन. कर दिया. सेवा में प्रस्तुत है. यह आस दिल में रह ही गयी कि एक माह की सल्तनत में मैं अपने व्यक्तित्व के चमड़े का सिक्का चलाता. किसी को उठाता, गिराता. अपने गुट को अग्रेषित करता. अर्थात वह सब करता जो हिंदी में होता है. जो पत्रिकाओं के संपादन में होता है. पर वह सब हो न सका. व्यंग्य पर कोई फतवा न दे सका. गुरु के पद पर बैठा, मगर चेले मजबूत न किये. गुर न समझाया, गुर की बात न कही. जनमपत्री का एक योग पूरा हुआ. एक मासिक का एक माह तक संपादक रहा. फिर हटा दिया गया. स्वागत और बिदाई की दूरी इतनी कम तो शायद ही कभी किसी संपादक के जीवन में रही होगी. मैटर दे देने के बाद अब मैं इसे एक पाठक की तरह पढ़ूंगा जैसा कि मैं इतने वर्षों तक पढ़ता रहा हूं. मेरा इतना ही ठोस योगदान है, मैं कुछ रचनाओं की खोज और कुछ लेखकों के उत्तर की प्रतीक्षा ही करता रहा कि प्रेस में मैटर भेजने का समय आ गया. न भेजता तो संपादक न रहता सो भेजने लगा. उन मित्रों का आभारी हूं जिन्होंने मेरे आग्रह को आज्ञा कहा और चुस्ती दिखायी. जैसे सुदीप ने. कुछ फौरन अनुवाद करके दिये. मैं सुरेंद्र मोहन मिश्र का भी आभारी हूं जिनके पुरानी सामग्री के खजाने से मैंने कुछ मांगा तो उन्होंने सहर्ष दे दिया. इस सबसे जैसा बन सका, सो पेश है. ले आउट, संपादन, प्रस्तुतीकरण आदि सब सारिका के परिवार ने किया. वे निश्चित ही मुझसे अधिक अनुभवी हैं, यह बात आप भी जानते हैं और मैं भी. विशेष आभार संपादक अवधनारायण मुद्गल का जिसने मुझे अतिथि बनाया और हमेशा मुझे देखते ही चाय लाने का आर्डर दिया.

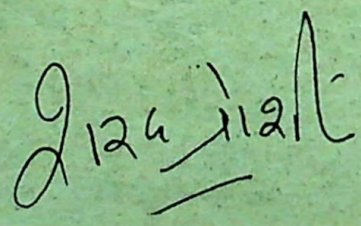

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताबखाना

भारतेंदु हरिशचंद्र

'व्यंग्य' को अभिव्यक्ति की अधुनातन विधा बताते हुए इसको सुदीर्घ परंपरा से काटने की कोशिश की जाती रही है...किंतु इतिहास इस बात का प्रमाण है कि हमारे यहां बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही व्यंग्य-लेखन होता रहा है. विपरीत परिस्थितियों में भी हमारे व्यंग्यकार जिस तरह का धारदार लेखन कर रहे थे...उसकी बानगी बतौर यहां प्रस्तुत हैं : 'भारत दुर्दशा' का पांचवां अंक— 'किताब खाना', 'शिवशंभु का चिट्ठा', 'गुप्त ठग' और 'दांत', 'हां में हां' और 'कूटनीति का विश्वविद्यालय' तथा 'लंका पर शंका'...इनके रचनाकार हैं क्रमशः भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, मिश्र बंधु और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी.

सात सभ्यों की एक छोटी-सी कमेटी : सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाये, छड़ी लिये : छह सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय).

सभापति – (खड़े होकर) सभ्यगण, आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि हम लोगों पर चढ़ाई है. इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिये कि जिससे हम लोग इस भाव आपत्ति से बचें. जहां तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है. आशा है कि आप सब लोग अपनी-अपनी अनुमति प्रकट करेंगे. (बैठ गये. करतलध्वनि)

बंगाली – (खड़े होकर) सभापति साहब, जो बात बोला सो बहुत ठीक है. इसका पेशतर कि भारतदुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है. किंतु प्रश्न एई है, जे हम लोग उसका दमन करने शासता कि हमारा बोज्जोबल के बाहर का बात है. क्यों नहीं शाकता? अलबत्त शाकैगा, परंतु जो सब लोग एक मत होगा. (करतलध्वनि) देखो, हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं. ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लीग इत्यादि अनेक शभा भी होते हैं. कोई थोड़ा बी बात होता, हम लोग मिल के बड़ा गोल करते. गवर्नमेंट तो केवल गोलमाल से भय खाता. और कोई तरह नहीं शेनता. और हुआं का अखबारवाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता. किंतु हेंयां, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता. आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए.

प. देशी – (धीरे से) यहीं, मगर जब तक कमेटी में है, तभी तक. बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं.

दू. देशी. – (धीरे से) क्यों भाई साहब, इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे?

एडिटर – (खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारतदुर्दैव को हटाने को तैयार हैं. हमने पहले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहां तो कोई सुनता ही नहीं. अब जब सिर पर आफत आयी सो आप लोग उपाय सोचने लगे. भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्दी सोचिये.

कवि – (खड़े होकर) मुहम्मदशाह ने भांड़ों ने दुश्मन को फौज से बचने का एक बहुत उत्तर उपाय कहा था. उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाये. जमना किनारे कनात खड़ी कर दी जाये, कुछ लोग चूड़ी पहने कनात के पीछे खड़े रहें. जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकालकर उंगली चमकाकर कहें, "मुए इधर न आइयो, इधर जनाने हैं." बस सब दुश्मन हट जायेंगे. यही उपाय भारतदुर्दैव से बचने को क्यों न किया जाये.

बंगाली – (खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो?

एडि. – (खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनायी जाये. कमेटी की फौज. अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायें. आप लोग क्या कहते हैं?

दू. देशी – मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो?

बंगाली – हाकिम लोग काहे को नाराज होगा. हम लोग शदा चाहता है कि अंगरेजों का राज्य उत्पन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता.

महा. – परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोगभारतदुर्दैवकी सैन्य से मिल तो नहीं जायेंगे.

दू.देशी – इस बात पर बहस करना ठीक नहीं. नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें. अपना काम देखिए (उपवेशन और आप ही आप) हां, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाजी होय.

महा. – तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना. कपड़ा बीनने की कल मंगानी. हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना. यह भी सब उपाय हैं.

दू.देशी – (धीरे से) बनात छोड़कर गंजी पहिरेंगे, हें हें.

एडि. – परंतु अब समय थोड़ा है जल्द उपाय सोचना चाहिए.

कवि – अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिंदू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें सब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दे.

प.देशी – पर रंग गोरा कहां से लावेंगे?

बंगाली – हमारा देश में 'भारत उद्धार' नामक एक नाटक बना है. उसमें अंगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें. ओ लिखता पांच जन बंगाली मिल के अंगरेजों को निकाल देगा. उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा. दूसराबांस काट-काटके पिवरी नाम जलयंत्र विशेष बनावेगा. तीसरा उस जलयंत्र से अंगरेजों की आंख से धूर और पानी डालेगा.

महा. – नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है. ऐसा उपाय करना जिससे फल सिद्धि हो.

प.देशी – (आप ही आप) हाय. यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक चित हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो. क्रमशः सब कुछ हो जायेगा.

एडि. – आप लोग नाहक इतना सोचकरते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, हम ऐसे ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा.

कवि – और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे.

प.देशी – पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूं

(सब डर के चौकन्ने से होकर इधर-उधर देखते हैं)

दू.देशी – (बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कमेटी में चले थे तब पहले ही छींक हुई थी. अब क्या करें. (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)

(डिसलायलटी का प्रवेश)

सभापति – (आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहां तशरीफ लायी हैं? कुछ हम लोग सरकारके विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं. हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं.

डिसलायलटी – नहीं, नहीं, तुम सब सरकार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे.

बंगाली – (आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है. सरकार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला? व्यर्थ का विभीषिका.

डिस. – हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है. 'कवि वचन सुधा' नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों उसे पकड़ने को हम भेजे गये? हम लाचार हैं.

दू.देशी – (टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, तमाशा देखने आये थे?

महा. – हाय हाय. यहां के लोग बड़ो भीरू और कापुरुष हैं. इसमें भय की कौन बात है. कानूनी है.

सभा. – तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है?

डिस. – इंगलिश पालिसी नाम ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से.

महा – परंतु तुम?

दू.देशी – (रोकर) हाय हाय! भटवा तुम कहता है अब मरे.

महा – पकड़ नहीं सकती, हमको भी दो हाथ दो पैर हैं. चलो, हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल-जवाब करेंगे.

बंगाली – हां चलो, ओ का बात – पकड़ने नहीं शेकता.

सभा – (स्वगत) चैयरमेन होने से पहिले हमीं को उत्तर देना पड़ेगा, इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते.

डिस. – अच्छा चलो. (सब चलने की चेष्टा करते हैं).

शिवशंभु का चिट्ठा

बालमुकुंद गुप्त

बनाम लार्ड कर्जन

माई लार्ड! लड़कपन में इस बूढ़े भंग को बुलबल का बड़ा चाव था. गांव में कितने ही शौकीन बुलबुलबाज थे. वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे, बालक शिवशंभु शर्म्मा बुलबलें लड़ाने का चाव नहीं रखता था. केवल एक बुलबुल को हाथ पर बिठाकर ही प्रसन्न होना चाहता था. पर ब्राह्मण कुमार को बुलबुल कैसे मिले? पिता को यह भय कि बालक को बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी. अथवा उसके हाथ से बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा. बहुत अनुरोध से यदि पिता ने किसी मित्र की बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घंटे से अधिक नहीं रहने पाती थी. वह भी पिता की निगरानी में!

सराय के भटियारे बुलबुलें पकड़ा करते थे. गांव के लड़के उनसे दो-दो तीन-तीन पैसे में खरीद लाते थे. पर बालक शिवशंभु तो ऐसा नहीं कर सकता था. पिता की आज्ञा बिना वह बुलबुल कैसे लावे और कहां रखे? उधर मन में अपार इच्छा थी कि बुलबुल जरूर हाथ पर हो. इसी से जंगल में उड़ती बुलबुल को देखकर जी फड़क उठता था. बुलबुल की बोली सुनकर आनंद से हृदय नृत्य करने लगता था. कैसी-कैसी कल्पनाएं हृदय से उठती थीं. उन सब बातों का अनुभव दूसरों को नहीं हो सकता. दूसरों को क्या होगा? आज यह वही शिवशंभु है, स्वयं इसी को उस बालकाल के अनिर्वचनीय चाव और आनंद का अनुभव नहीं हो सकता.

बुलबुल पकड़ने की नाना प्रकार की कल्पनाएं मन ही मन में करता हुआ बालक शिवशंभु सो गया. उसने देखा कि संसार बुलबुलमय है. सारे गांव में बुलबुलें उड़ रही हैं. अपने घर के सामने खेलने का जो मैदान है, उसमें सैकड़ों बुलबुलें उड़ती फिरती हैं. फिर वह सब ऊंची नहीं उड़ती. बहुत नीची-नीची उड़ती हैं. उनके बैठने के अड्डे भी नीचे-नीचे हैं. वह कभी उड़कर इधर जाती है और कभी उधर, कभी यहां बैठती है और कभी वहां, कभी स्वयं उड़कर बालक शिवशंभु के हाथ की उंगलियों पर आ बैठती हैं. शिवशंभु आनन्द में मस्त होकर इधर-उधर दौड़ रहा है. उसके दो तीन साथी भी उसी प्रकार बुलबुलें पकड़ते और छोड़ते इधर-उधर कूदते-फिरते हैं.

आज शिवशंभु की मनोवांछा पूर्ण हुई. आज उसे बुलबुलों की कमी नहीं है. आज उसके खेलने का मैदान बुलबुलिस्तान बन रहा है. आज शिवशंभु बुलबुलों का राजा ही नहीं, महाराजा है. आनंद का सिलसिला यहीं नहीं टूट गया. शिवशंभु ने देखा कि सामने एक सुंदर बाग है. वहीं से सब बुलबुलें उड़कर आती हैं. बालक कूदता हुआ दौड़कर उसमें पहुंचा। देखा, सोने के पेड़ पत्ते और सोने ही के नाना रंग के फूल हैं. उन पर सोने की बुलबुलें बैठी गाती हैं और उड़ती फिरती हैं. वहीं एक सोने का महल है. उस पर सैकड़ों सुनहरी कलश हैं. उन पर भी बुलबुलें बैठी हैं. बालक दो-तीन साथियों सहित महल पर चढ़ गया. उस समय वह सोने का बगीचा सोने के महल और बुलबुलों सहित एक बार उड़ा. सब कुछ आनंद से उड़ता था, बालक शिवशंभु भी दूसरे बालकों सहित उड़ रहा था. पर यह आमोद बहुत देर तक सुखदायी न हुआ. बुलबुलों का खयाल अब बालक के मस्तिष्क से हटने लगा. उसने सोचा! मैं कहां उड़ा जाता हूं? माता-पिता कहां? मेरा घर कहां? इस विचार के आते ही सुख-स्वप्न भंग हुआ. बालक कुलबुलाकर उठ बैठा. देखा और कुछ नहीं, अपना ही घर और अपनी ही चारपाई है. मनोराज्य समाप्त हो गया!

आपने माई लार्ड! जब से भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य काम भी किया है? खाली अपना खयाल ही पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिए भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया? एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारिये. आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पांच वर्ष पूरे हो गये. अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में, मूलधन समाप्त हो चुका. हिसाब कीजिये, नुमायशी कामों के सिवा काम की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कौन सी कर, चले हैं और भड़कबाजी के सिवा ड्यूटी और कर्त्तव्य की ओर आपका इस देश में आकर कब ध्यान रहा है? इस बार के बजट की वक्तृता ही आपके कर्त्तव्य काल की अन्तिम वक्तृत्ता थी. जरा उसे पढ़ तो जाइये फिर उसमें आपकी पांच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है? आप बार-बार अपने दो अति तुम-तराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं. एक विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली दरबार. पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी'? विक्टोरिया मेमोरियल हाल चंद पेट भरे अमीरों के एक-दो बार देख आने की चीज होगा. उससे दरिद्रों का कुछ दुःख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे.

अब दरबार की बात सुनिये कि क्या था? आपके खयाल से वह बहुत बड़ी चीज था. पर भारतवासियों की दृष्टि में वह बुलबुलों के स्वप्न से बढ़कर कुछ न था. जहां-जहां से वह जुलूस के हाथी आये, वहीं-वहीं सब लौट गये. जिस हाथी पर आप सुनहरी झूलें और सोने का हौदा लगवाकर छत्र-धारण-पूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया. आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं. दरबार में जिस सुनहरी सिंहासन पर विराजमान होकर अपने भारत के सब राजा महाराजाओं की गुलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भलीभांति जानते हैं कि वह आपका न था. वह भी जहां से आया था वहीं चला गया. यह सब चीजें खाली नुमायशी थीं. भारतवर्ष में वह पहले ही से मौजूद थीं. क्या इन सबसे आपका कुछ गुण प्रगट हुआ? लोग विक्रम को याद करते हैं या उसके सिंहासन को, अकबर को या उसके तख्त को? शाहजहां की इज्जत उसके गुणों से थी या तख्ताताऊस से? आप जैसे बुद्धिमान पुरुष के लिए यह सब बातें विचारने की हैं.

चीज वह बनना चाहिए जिसका कुछ देर कयाम हो. माता-पिता की याद आते ही बालक शिवशंभु का सुखस्वप्न भंग हो गया. दरबार समाप्त होते ही वह दरबार भवन, वह एंफीथियेटर तोड़कर रख देने की वस्तु हो गया. उधर बनाना, इधर उखड़ना पड़ा! नुमायशी चीजों का यही परिणाम है. उनका तितलियों का सा जीवन होता है. माई लार्ड! आपने कछाड़ के चायवाले साहबों की दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य हैं और हम लोग कुछ दिन के लिए. आपके वह 'कुछ दिन' बीत गये. अवधि पूरी हो गयी. अब यदि कुछ दिन और मिलें तो वह किसी पुराने पुण्य के बल से समझिये. उन्हीं की आशा पर शिवशंभु शर्म्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन मांगे दिनों में तो एक बार आपको अपने कर्त्तव्य का खयाल हो.

जिस पद पर आप आरूढ़ हुए, वह आपका मौरुसी नहीं—नदी-नाव संयोग की भांति है. आगे भी कुछ आशा नहीं कि इस बार छोड़ने के बाद आपका इससे कुछ संबंध रहे. किंतु जितने दिन आपके हाथ में शक्ति है, उतने दिन कुछ करने की शक्ति भी है. जो कुछ आपने दिल्ली आदि में कर दिखाया उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखाने की शक्ति आप में थी. उसी प्रकार जाने से पहले, इस देश के लिए कोई असली काम कर जाने की शक्ति आप में है. इस देश की प्रजा के हृदय में कोई स्मृति-मंदिर बना जाने की शक्ति आप में है. पर यह सब तब हो सकता है कि वैसी स्मृति की कुछ कदर आपके हृदय में भी हो. स्मरण रहे धातु की मूर्तियों के स्मृति-चिह्न से एक दिन क़िले का मैदान भर जायेगा. महारानी का स्मृति-मंदिर मैदान की हवा रोकता था या न रोकता था, पर दूसरों की मूर्तियां इतनी ही जावेंगी कि पचास-पचास हाथ पर हवा को टकरा कर चलना पड़ेगा. जिस देश में लार्ड लैंसडोन की मूर्ति बन सकती है, उसमें और किस-किस की मूर्ति नहीं बन सकती? माई लार्ड! क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आस-पास आपकी एक वैसी ही मूर्ति खड़ी हो?

यह मूर्तियां किस प्रकार के स्मृति-चिह्न हैं? इस दरिद्र देश के बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती. एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियोंके कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है. माई लार्ड! आपकी मूर्ति की वहां क्या शोभा होगी? आइये मूर्तियां दिखावें! वह देखिये एक मूर्ति है, जो किले के मैदान में नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बनी हुई है. पहचानिये, इस वीर पुरुष ने मैदान की मूर्ति से इस देश के करोड़ों गरीबों के हृदय में मूर्ति बनवाना अच्छा समझा. यह लार्ड रिपन की मूर्ति है. और देखिये एक स्मृति-मंदिर, यह आपके पचास लाख के संगमर्मर वाले से अधिक मजबूत और सैकड़ों गुना कीमती है. यह स्वर्गीय विक्टोरिया महारानी का सनु 1858 ई. का घोषणा-पत्र है. आपकी यादगार भी यहीं बन सकती है. यदि इन दो यादगारों की आपके जी में कुछ इज्जत हो.

मतलब समाप्त हो गया. जो लिखना था, वह लिखा गया. अब खुलासा बात यह है कि एक बार 'शो' और 'ड्यूटी' का मुकाबिला कीजिये. 'शो' ही समझिये. 'शो' ड्यूटी नहीं है! माई लार्ड! आपके दिल्ली दरबार की याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी जितनी शिवशंभु शर्मा के सिर में बालकपन के उस सुखस्वप्न की है.

(भारत मित्र—सनु 1903)

गुप्त ठग

पं. प्रतापनारायण मिश्र

कपड़ा-लत्ता, चेहरा-मुहरा देखो तो भले मानसों का सा. बातें सुनो तो साक्षात् युधिष्ठिर जी का अवतार. 'झूठ बोलना और...और...खाना बराबर है' यह जिनके तकिया कलाम हैं, 'रामौराम पर', 'धर्मोधरम पर', 'जनेऊ कसम', 'राम धै', 'परमेसुर जानै', 'जो तुम्हारे ईमान में आवै', 'अरे भैया रुपया पैसा हाथ का मैल है, धरम नहीं तो कुछ भी नहीं'— दिन भर यही बातें बात-चीत पर निकलेंगी. गंगाजी के दर्शन दोनों पहर करैंगे, मंदिर में घंटों घंटा हिलावैंगे, कथा में बैठे तो श्लोक पर आंसू चले आते हैं. कोई जाने धरती के खंभ, धर्म का पुतला, प्रेम का रूप, जो हैं सो बस आप ही हैं. पर कौड़ी-कौड़ी के लिए सब सतलुज वाली बातें विलैमान हो जाती हैं. दूकान पर आये नहीं कि 'या महादेव बाबा, भेज तो कोई भोला भाला आंख का अंधा गांठ का पूरा'. अ ह ह ह ह बलिहारी. बगुला भगत, बलिहारी! ध्यान करते देखो सो तो जाने कि ब्रह्म से तन्मय हो रहे हैं पर मछली निकली की गप. जानते होंगे कि कोई जानता नहीं, यह नहीं समझते 'पापु अंटारी चढ़ि के गोहरावत है!' भला यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों से भी कुछ छिपती है! यार, बुरा मानो चाहे भला पर कहेंगे वही जो तुम्हारे और सबके हित की हो. जब तक आचरण न सुधरेंगे तब तक यह सब भगतई और भलमंसी कौड़ी काम की नहीं है. अपने मुंह चाहो जो बने रहो जानि परी जब जइहो कचहरी. "फककड़ भाई, यह किस पर फब्तियां हो रही हैं? दो-एक थोड़ी हैं, हम कहते जायें तुम गिन चलो. पहिले चलो नाज की मंडी. बैपारी रात तो जानते हैं भाई, अच्छी सोने की चिड़िया हाथ लगी है, रुपया उधार दिया है जो मांगते तक नहीं, आओ तो कुछ नजर करैं, जावो तो कुछ भेंट धरैं, जब तक रहो आंखों पर रक्खैं, बात-बात पर कहैं कि 'हमार तुम्हार घर का बास्ता है.'' यह नहीं समझते कि 'बनिया का बेटा कुछ तो समझकर फिसल पड़ा.' भला रुपये की आढ़त पर यह धम-धम कैसे सहे जा सकते हैं, वहां कनवां बुधिया-मासा चलता है. ब्योपारी से कहा बीस सेर बिका और ग्राहक से इशारा किया 'कनवां', बस 'खग जानै खग ही की भाषा.' बिचारा गंवार ब्योपारी क्या जाने कि इस गूढ़ मंत्र का यह अर्थ है कि छटांक रुपया तो अढ़तियाजी के बाप का हो गया. जहां कहा 'मासा' बस पौवा रुपया अलग ही अलग चित्त हुआ. यह तो ब्योपारी का माल बेचने का हतखंडा है. जब अपना माल बेचेंगे तब बानगी और दिखाई तुलाय और दिया. 'गुरु, यह तो विश्वासघात है!!' अबे चुप! बनियाई के पेंच हैं उल्लू, कहीं तुलसी सोनां डालै रोजगार होते हैं.''

अब घी वाले की दूकान पर देखो चलैं. गाहक के दिखाने को भंडिया पर ताजा अरंड का पत्ता बंधा हुआ है, मानौ अभी दिहात से आया है. जहां खोल के देखा, घी क्या है, घी का बाबा है, आंच दिखाते ही जानोगे. 'गुरु यह पहेली-सी क्या कहि गये, घी का बाबा तो मट्ठे को कहते हैं क्योंकि मट्ठे से मक्खन और मक्खनी से घी होता है.' अबे ऐसा नहीं कहते, देख तो कैसा घी धरा है. सच है, दानेदार नहीं बरुक दाने का जीव और घी का जीव एक हो गया है, तभी तो रंगत तक नहीं बदली. खासा भैंस का सा घी बना है. भैंस का न सही यह लेब गाय का घी है. इसमें भी गुल्लू का तेल मिला होगा. हाय! इन रतन में जतन करनेवालों की दशा होगी नारायण, चलो-चलो, ऐसा घी खाये बिना क्या डूबा जाता है! दूध खाया करेंगे. दूधवाले ही कौन दूध के धोये बैठे हैं, वहां भी 'सेरुक दूध अढ़ैयक पानी. धम्मक-धम्मक होय मथानी.' की धैना है. उन्हें कुछ कम समझे हो, वह भी बकरी भेड़ी का दूध मिला-मिला के एक-एक के दो-दो करते हैं. तभी तो की दूध का गुन जाता रहा. हाय. इन ठगों की खबर सर्कार क्यों नहीं लेती कि अभी दूध का दूध पानी का पानी हो जाये. सर्कार को क्या पड़ी है कि छोटी बातों में अपना समय खोवै, सर्कार को अपने लाइसेंस टैक्स से काम है कि तुम्हारे धंधों से? फिर क्या ग्राहक लोग नहीं जानते कि राक्षसों के मारे गाय भैंस तो बचने ही नहीं पातीं, घी-दूध आबै कहां से ! ऐसी ही शरीर रक्षा करनी हो तो हिंदू भाई यदि अधिक न हो सके तो एक गाय पाल ही लें, जिसमें शरीर रक्षा, स्वादिष्ट भोजन और धर्म तीनों मिलें. सर्कार से किस-किस बात की शिकायत करते फिरोगे? यहां तो यह कहावत हो गयी हक 'पेशे में सभी चोरी करते हैं.' हलवाहे की दूकान पर जाओ सब चीज ताजी घी की बनी तैयार हैं, पर खाते ही जानोगे. जो तीन ही दिन की हो तहां तक ही कुशल समझो. सेर भर घी में पाव भर तेल मिला हो तो तब तक तो जानो बड़े ईमानदार का सौदा है, नहीं तो शुद्ध एक बर्धा 'तेल गले मढ़ैगा.' अत्तार के यहां बरषों की सड़ी दवाएं, सुंदर ऊंख का शहद, खालिस शिरे का शर्बत और गंगाजी का अरक तो एक साधारण बात है. संबत् 1936 में बीमारी बहुत फैली थी, तब बहुतेरे महापुरुषों ने लसोरे की गुठली पर अमरस चिपकाय के आलुबुखारे बनाये थे और बड़ी कठिनाई से पैसा के तीन-तीन देते थे क्यों न देश का देश निर्जीव हो जाये? रोगी राम कहते हैं, हकीमजी की दवा से फायदा नहीं होता. फायदा कहां से हो, दवा तो यार ही लोगों के यहां से आवैगी. हाय! यह भी तो नहीं हो सकता कि सब काम अपने हाथ ही से किये जायें. संसार में कोई किसी का विश्वास न करे तो भी काम नहीं चल सकता. पर विश्वास कीजिये किसका, यहां तो वही लेखा है कि 'हुशियार यारे जानी यह दश्त है ठगों का. यां टुक निगाह चूकी और माल दोस्तों का. 'सबको ठग बनाते हो? ऐसा न हो कि कोई बिगड़ जाये.' अरे भाई ऐसे डरने लगते तो यह काम ही क्यों मुड़ियाते? यहां तो खरी कहना माथे के अक्षर ठहरे. कुछ हो हमसे तो बिना कहे नहीं रहा जाता कि अपने मन के धन के लिए ऐसे अनर्थ करना कि दूसरों की तंदुरुस्ती (स्वास्थ्य) में भी बाधा लगै, केवल लोभी का नहीं बरंच महा अधम का काम है. इसमें परलोक ही अकेला नहीं बिगड़ता, दुनिया में भी साख जाती है. अन्य देशी लोग बेईमान बनते हैं. रोजगार जैसा सावधानी और ईमानदारी से चलता है, वैसा इन अंधेरों से सपने में न चल सकेगा. हमेशा तीन खाओगे तेरह की भूख बनी रहेगी. विश्वास न हो तो जैसे अपनी रीति पर अब तक चले हो वैसे ही जी कड़ा करके कुछ दिन भर हमारी बूटी का भी सेवन करो तो देखो कैसा मजा होता है, कैसे-कैसे लाभ उठाते हो. हम ब्राह्मण हैं. हित की कहते हैं. हमारी मानोगे तो धरम मूरत धरमा औतार हो जाओगे नहीं तो कोई अंगरेज सुन पावेगा तो 'डेम फूल' बना के मनवावैगा. वह मानता और तरह का होगा, बस आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने.

(ब्राम्हण-खंड 1, संख्या 4)

दांत

इस दो अक्षर के शब्द तथा इन थोड़ी-सी हड्डियों में भी उस चतुर कारीगर ने वह कौशल दिखलाया है कि किसके मुंह में दांत हैं जो पूरा-पूरा वर्णन कर सके. मुख की सारी शोभा और यावत भोज्य पदार्थों का स्वादु इन्हीं पर निर्भर है. कवियों ने अलक (जुल्फ), भ्रू (भौं) तथा बरूणी आदि की छवि लिखने में बहुत-बहुत रीति से बाल की खाल निकाली है, पर सच पूछिए तो इन्हीं की शोभा से सबकी शोभा है. जब दांतों के बिना पुपला-सा मुंह निकल आता है और चिबुक (ठोढ़ी) एवं नासिका एक में मिल जाती है, उस समय सारी सुधराई मट्टी में मिल जाती है. नैनबाण की तीक्ष्णता, भ्रूचाप की खिंचावट और अलकपन्नगी का बिष कुछ भी नहीं रहता. कवियों ने इसकी उपमा हीरा, मोती, माणिक से दी है वह बहुत ठीक है बरंच यह अवयव कथित बस्तुओं से भी अधिक मोल के हैं. यह वह अंग है जिसमें पाकशास्त्र के छहों रस एवं काव्यशास्त्र के नवों रस का आधार है. खाने का मजा इन्हीं से है. इस बात का अनुभव यदि आपको न हो तो किसी बुड्ढे से पूछ देखिए, सिवाय सतुआ को चाटने के और रोटी को दूध में तथा दाल में भिगों के गले के नीचे उत्तार देने के दुनिया भर की चीजों के लिए तरस ही के रह जाता होगा. रहे कविता के नौ रस, सो उनका दिग्दर्शन मात्र हमसे सुन लीजिए. 1. श्रंगार का तो कहना ही क्या है. ऐसा कवि शायद कोई ही हो जिसने सुंदरियों की दंतावली तथा उनके गोरे गुदगुदे गोल कपोल पर रदछद (दंतदाग) के वर्णन में अपने कलम की कारीगरी न दिखाई हो. आहा हा! मिस्सी तथा पान रंग रंगे अथवा यों ही चमकदार चटकीले दांत जिस समय बातें करने तथा हंसने में दृष्टि आते हैं, उस समय रसिकों के नयन और मन इतने प्रमुदित हो जाते हैं कि जिनका वर्णन गूंगे की मिठाई है. 2. हास्य रस का तो पूर्ण रूप ही नहीं जमता जब तक हंसते-हंसते दांत न निकल पड़ें. (पर देखना कहीं मक्खी लात मार न जाये). 3. करुणा और 4. रौद्र रस में दुःख तथा क्रोध के मारे दांत अपने होंठ चबने के काम आते हैं. एवं अपनी दीनता दिखा के दूसरे को करुणा उपजाने में दांत दिखाये जाते हैं. दिस में भी दांत पीसे जाते हैं. 5. सब प्रकार के बीर रस में भी सावधानी से शत्रु की सैन्य अथवा दुखियों के दैन्य अथवा सत्कीर्ति की चाट पर दांत लगा रहता है. 6. भयानक रस के लिए सिंह व्याघ्रादि के दांतों का ध्यान कर लीजिए, पर रात को नहीं, नहीं तो सोते से चौंक भागोगे. 7. वीभत्स रस का प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो किसी जैनियों के जैनी महाराज के दांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख लीजिए छोटी-सी स्तुति यह है कि मैल के मारे पैसा चपक जाता है. 8. अद्‌भूत रस में तो सभी आश्चर्य की बात देख सुन के दांत बाय, मुंह फैलाय के हक्का बक्का रह जाते हैं. 9. शांत रस के उत्पादनार्थ श्री शंकराचार्य स्वामी का यह पद महामंत्र है– 'अंग गलितं पलित मंडं दशनबिहीनं जातं तुंडम्. कर धृत कंपित शोभित दंडं तदपि न मुंचत्याशापिंडम्. भज गोविंदं भज गोविंदं गोविंदं भज मूढ़मते.' सच है जब किसी काम के न रहे तब पूछे कौन बांध भूसा देइ. जिस समय मृत्यु की दाढ़ के बीच बैठे हैं, जल के कछुवे, मछली, स्थल के कौवा, कुत्ता आदि दांत पैने कर रहे हैं, उस समय में भी यदि मत चित्त से भगवान का भजन न किया तो क्या किया? आपकी हड्डियां हाथी के दांत तो हई नहीं कि मरने पर भी किसी के काम आवैंगी. जीते जी संसार में कुछ परमार्थ बना दीजिए, यही बुद्धिमानी है. देखिए, आपके दांत ही यह शिक्षा दे रहे हैं कि जब तक हम अपने स्थान, अपनी जाति (दंनावली) और अपने काम में दृढ़ हैं, तभी तक हमारी प्रतिष्ठा है. यहां तक कि बड़े-बड़े कवि हमारी प्रशंसा करते हैं, बड़े-बड़े सुंदर मुखारविंदों पर हमारी मोहर 'छाप' रहती है. पर मुख से बाहर होते ही हम एक अपावन, घृणित और फेंकने योग्य हड्डी हो जाते हैं– 'मुख में मानिक सम दशन बाहर निकसत हाड़' हम नहीं जानते कि नित्य यह देख के भी आप अपने मुख्य देश भारत और अपने मुख्य सजातीय हिंद मुसलमानों का साथ तन, मन, धन और प्रानपन से क्यों नहीं देते. याद रखिए, 'स्थान भ्रष्टा न शोभंते दंता केशा नखा नराः.' हां, यदि आप इसका यह अर्थ समझें कि सभी समझें कि कभी किसी दशा में हिंदुस्तान छोड़ के विलायत जाना स्थान-भ्रस्टता है तो यह आप की भूल है. हंसने के समय मुंह से दांतों का निकल पड़ना नहीं कहलाता बरंच एक प्रकार की शोभा होती है. ऐसे ही आप स्वदेशचिंता के लिए कुछ काल देशांतर में रह आयें तो आप की बड़ाई है. पर हां, यदि वहां जा के यहां की ममता ही छोड़ दीजिए तो आपका जीवन उन दांतों के समान हैं जो होंठ या गाल कट जाने के अथवा किसी कारणविशेष से मुंह के बाहर रह जाते हैं और सारी शोभा खो के भेड़िए के से दांत दिखाई देते हैं. क्यों नहीं, गाल और होंठ दातों का परदा है, जिसके परदा न रहा अर्थात् स्वजातित्व की गैरतदारी न रही, उसकी निरलज्ज जिंदगी व्यर्थ है. कभी आप को दाढ़ की पीड़ा हुई होगी तो अवश्य यह जी चाहा होगा कि इसे उखड़वा डालें तो अच्छा है. ऐसे ही हम उन स्वार्थ के अंधों के हक में मानते हैं जो रहें हमारे साथ, बनें हमारे ही देशभाई पर सदा हमारे देश, जाति के अहित ही में तत्पर रहते हैं. परमेश्वर उन्हें या तो सुमति दे या सत्यानाश करे. उनके होने का हमें कौन सुख है हम तो उनकी जैजैकार बनावेंगे जो अपने देशवासियों दांतकाटी रोटी का बर्ताव (सच्ची गहरी प्रीति) रखते हैं. परमात्मा करे कि हर हिंदू मुसलमान का देशहित के लिए चाव के साथ दांतों पसीना रहे. हमसे बहुत कुछ नहीं हो सकता तो यही सिद्धांत दात रक्खा है कि– 'कायर कपूत कहाय, हात दिखाय भारत तम हरौ.' कोई हमारे लेख देख दांतों तले उंगली दबा के सूझ-बूझ की तारीफ करे अथवा दांत बाय के रह जाये या अरसिकतावश यह कह दे कि कहां की दांताकिलकिल लगायी है तो इन बातों की हमें परवा नहीं है. हमारा दांत जिस ओर लगा है वह लगा रहेगा. औरों की दंतकटाकर से हमको क्या. यदि दांतों के संबंध का वर्णन किया चाहें तो बड़े-बड़े ग्रंथ रंग डालें और पूरा न पड़े. आदिदेव श्री एकदंत गणेशजी को प्रणाम करके श्रीपुष्पदंताचार्य के महिम्न में जिनकी स्तुति की है, उन शिवजी की महिमा, दंतवक्त्र शिशुपालादि के संहारक श्री कृष्ण की लीला ही गा चलें तो कोटि जन्म पार न पावें. नाली में गिरी हुई कौड़ी को दांत से उठाने वाले मक्खीचूसां की जो किया चाहें तो भी लिखते-लिखते थक जाएं. हाथीदांत से क्या-क्या वस्तु बन सकती है? कलों के पहियों में कितने दांत होते हैं, और क्या-क्या काम देते हैं, वैद्यक और धर्मशास्त्र में दंतधावन की क्या विधि है, क्या फल है, क्या निषेध है, क्या हानि है, पद्धतिकासों ने 'दीर्घदंत्ता क्वचिन्मूर्खा' आदि क्यों लिखा, किस-किस जानवर के दांत किस-किस प्रयोजन से किस-किस रूप गुण से विशिष्ट बनाये गये हैं? मनुष्यों के दांत उजले, पीले, नीले, छोटे, मोटे, लंबे, चौड़े, घने, खुड़हे के रीति के होते हैं, इत्यादि अनेक बातें हैं जिनका विचार करने में बड़ा विस्तार चाहिए. बरंच यह भी कहना ठीक है कि यह बड़ी-बड़ी विषय लोहे के चने हैं, हर किसी के दांतों फूटने के नहीं. तिस पर भी अकेला आदमी क्या-क्या लिखे? अतः हम इस दंतकथा को केवल इतने उपदेश पर समाज करते हैं कि आज हमारे देश के दिन गिरे हैं, अतः हमें योग्य हैं कि जैसे बत्तिस दांतों के बीच जीभ रहती है वैसे रहें, और अपने देश की भलाई के लिए किसी के आगे दांतों में तिनका दबाने तक में लज्जित न हों, तथा यह भी ध्यान रक्खें कि हर दुनियादार की बातें विश्वास योग्य नहीं है. हाथी के दांत खाने के और होते हैं, दिखाने के और.

(ब्राम्हण-खंड 5 संख्या 9)

'हां में हां'

मिश्र बंधु

शिवप्रसन्न – कहो भाई मजबूत सिंह! कहां से कुछ अनमने से आ रहे हो?

मजबूतसिंह – अरे मुझसे न बोलो, नहीं तो मैं रो ही दूंगा.

शिवप्रसन्न – सच कहा भाई, जब चित्त प्रसन्न नहीं होता, तब मित्रों से भी बातचीत भारू हो जाती है. ऐसे में रो ही देने की इच्छा बलवती होती है. क्यों न ऐसा कहो, मामला ही कुछ इसी प्रकार का होगा. ऐसी बात पूछकर दुःख न देना ही ठीक है.

मजबूतसिंह – वाह भाई वाह! आप तो बड़ी ही कृपा करते हैं. आपसे मन की बात न कहूंगा तो किससे कहूंगा!

शिवप्रसन्न – क्यों नहीं, मन का हाल प्रेम-पूर्वक सुननेवालों से कहने से चित हलका होता है. सो कहना ही ठीक है. हां, कहिए क्या बात है?

मजबूतसिंह – अच्छा, तो आदि से ही कथा सुनाता हूं.

शिवप्रसन्न – ठीक ही है, बिना आद्यंत सुने बात भी तो समझ में नहीं आती. आदि से ही चलिए. हां, तो कैसी गुजरी?

मजबूतसिंह – अच्छा सुनिए. मेरे मकान के सामने, आप जानते ही हैं, थोड़ी-सी जमीन पड़ी है. मैंने अब की साल उसे जोत-जताकर उसमें बैंगन बो दिये.

शिवप्रसन्न – वाह भाई वाह, खूब किया. घर के सामने जमीन रखने से उसकी रौनक होती है. फिर जोतने बोने से कुछ लाभ ही हो रहा है. अच्छा ही किया, जो उसे जोत-बो डाला. फिर बोया भी बैंगन, जो ऐसा सुंदर फल है कि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने अपना रंग तक उसे दे डाला है. क्यों न हो, ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा न करेगा, तो कौन करेगा? खूब किया जो बैंगन बोये.

मजबूत सिंह – फिर उसमें खूब फल लगे.

शिवप्रसन्न – लगते क्यों न? जब आपने मेहनत की, तो फल लगने ही थे. अच्छा ही हुआ.

मजबूतसिंह – तब मैंने 16 बैंगन इसी झवई में भरकर उन्हें बेचना चाहा. इसलिए सिर पर लादकर उन्हें बाजार में ले गया.

शिवप्रसन्न – क्यों न हो! अच्छा ही किया. आखिर फायदे के लिए तो मेहनत की जाती है. जो बाजार न ले जाते, तो मतलब कैसे बनता? काम-काज के मामले में यह थोड़े ही सोचा जाता है कि सिर पर झोवा न धरें. अच्छा ही किया, जो अपने ही सिर पर झोवा रखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजार ले गये. दूसरे के हाथ भेजते, तो शायद आधापर्धा फायदा वही उड़ा ले जाता. खूब किया!

मजबूतसिंह – बाजार में जाने से तहसील का चपरासी आ गया, और चुंगी में आठ बैंगन मुझ से मांगने लगा.

शिवप्रसन्न – क्यों न मांगता, आखिर उसका और काम ही क्या?

मजबूतसिंह – देखा भाई क्या गजब की बात थी 16 बैंगनों में 8 चुंगी में मांगता था.

शिवप्रसन्न – सच ही तो है. आजकल अंधेर खाता तो मचा ही हुआ है. जरूर गजब की बात है. जब आधा माल चुंगी में दे दें, तो आसामी बेचारा बच्चे कहां से पाले?

मजबूतसिंह – मुझे भाई बड़ा गुस्सा लगा.

शिवप्रसन्न – गुस्सा तो लगना ही चाहिए था. जब अपने हाथ से मेहनत करके और दरवाजे की शोभा बिगाड़कर बैंगन पैदा किये थे तो उसके लिए थोड़े ही किये थे.

मजबूतसिंह – मुझे गुस्से में देखकर पाजी गालियां देने लगा.

शिवप्रसन्न – गाली क्यों न देता, आखिर सरकारी आदमी ठहरा. हम जैसों को डाटे न रहे, तो सरकारी इंतजाम कैसे चले?

मजबूतसिंह – भई, फिर मुझ से न रहा गया, और मैं भी गालियां देने लगा.

शिवप्रसन्न – हां, देते क्यों न, एक तो सिर पर झोवा रखकर बैंगन बेचने बाजार गये. भला इसी में क्या कम बेहुरमती थी? फिर जब एक मामूली सिपाही गाली दे बैठे, तो हम लोगों से भी कैसे रहा जाये? ठीक ही किया, जो उसका मिजाज ठिकाने कर दिया.

मजबूतसिंह – मेरे गाली देने पर वह मुझे मारने लगा.

शिवप्रसन्न – मारता क्यों न, आखिर वह तो सरकारी आदमी था ही, भला उसे जज्बा कैसे न आता? उसने भी ठीक ही किया. यदि तुम्हारी गाली सुन लेता. तो और लोग भी गालियां देने लगते. फिर सरकारी रौब ही क्या रहता? गुस्सा जब्त करना सरकारी लोगों का थोड़े ही काम है.

मजबूतसिंह – फिर मैंने उसे खूब मारा.

शिवप्रसन्न – अच्छा किया. जब तुम्हारे ही बैंगन जबरदस्ती ही छीने लेता था, और हाथ तक चला बैठा, तब बिना मारे भला कैसे छोड़ते? आखिर तुमने भी तो अपनी मां का दूध पिया है.

मजबूतसिंह – फिर आठ बैंगन चुंगी में ले ही गया.

शिवप्रसन्न – ले क्यों न जाता? जो ऐसे ऐसों से हार मानकर भाग खड़ा होता! तो कल उसकी नौकरी भी तो जाती रहती. उसने भी अच्छा ही किया.

मजबूतसिंह – अरे भाई क्या कह रहे हो? एक तो मुझी को मारा ज्यादा और दूसरे मेरे ही

बैंगन ले लिये.

शिवप्रसन्न – यह तो ठीक ही किया. आजकाल का जमाना ही ऐसा है. 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' है. ऐसा न होता, ताज्जुब होता.

मजबूतसिंह – फिर मैंने गुस्से में आकर बाकी आठों भी नाली में फेंक दिये.

शिवप्रसन्न – ठीक ही किया, जब आधे बैंगन के बैंगन गये और कुटे ऊपर से तब फेंकने को तो मन ही चाहेगा. और करते ही क्या? नुकसान तो हो ही चुका था, फिर अच्छी तरह सही. जहां सत्यानास, वहां साढ़े सत्यानास! जी तो ठडा हो गया होगा.

मजबूतसिंह – इसी से भाई रोनी सूरत लिए घर जा रहा हूं, अब पछताता हूं.

शिवप्रसन्न – क्यों न पछताओगे, गुस्सा बड़ा हराम होता है. उससे नुकसान तो लोटपोट के अपना ही होता है. बैंगन के बैंगन गये और कुटे ऊपर से. तुम न सोचोगे, तुम न सोचोगे तो क्या मैं सोचूंगा.

मजबूत सिंह – भाई बैंगन कुछ होता नहीं है.

शिवप्रसन्न – अरे सच तो कहा, कुछ भी नहीं होता. इसी से तो भगवान ने उसके मुंह में लकड़ी खोंस दी है. खाने में कडुआ. टुकड़े कलिया के से टुकड़े दिखते हैं. रसादार बैंगन देखकर घिन लगती है. भाई, कुछ भी तो नहीं होता. खाने से बवासीर जोर पैदा करे, घर का पैसा डाक्टर को दिलवावे. सभी तरह तो खराब है. न स्वाद न फायदा.

मजबूतसिंह – मगर भाई भर्ता बनाओ, और तेल–मसाला डालकर चक्खो तो क्या सोंधाहट का मजा देता है.

शिवप्रसन्न – हां, भाई, मजा तो ऐसा देता है कि कुछ कहते नहीं बनता. इसी से तो सब नुकसान बरदाश्त करके लोग बिना खाये नहीं मानते.

मजबूतसिंह – भाई जान, सुना अब उसी चपरासी ने मेरे ऊपर दावा भी कर दिया है.

शिवप्रसन्न – क्यों न करता, आखिर जब बीच बाज़ार में थुक्काफजीहत हुई, तब अपनी चपरास की तरफ तो देखता, उसकी तो इज्जत रखता. ठीक ही दावा किया.

मजबूतसिंह – मगर भाई पूरा अंधेर है कि नहीं, मैं ही कुटा पिटा, और मुझी पर फौजदारी का जुर्म लगा.

शिवप्रसन्न – अंधेर की क्या पूछते हो, अंधेर तो सोलह आने है. आजकल भले आदमी की पूछता कौन है? सुना नहीं कि जगत-गुरू बांझन, बांझन-गुरू संन्यासी, संन्यासी गुरू चपरासी.

मजबूतसिंह – लेकिन भाई, तुमको भी मेरी गवाही देनी पड़ेगी.

शिवप्रसन्न – गवाही की ठीक ही कही. भला हम आपके साथ और आप हमारे साथ न खड़े होंगे, तो दुनिया का काम कैसे चलेगा? आजकल तो सिर कटाने का जमाना थोड़े ही है. आजकल तो लाठी तलवार का काम रहा ही नहीं. अब तो गंगा पैरने का ही काम है. आप हमारी गवाही दीजिए, हम आपकी देंगे. अदालत में खड़ी गंगा पैरने का मामला तो रह ही गया है.

मजबूतसिंह – भाई, झूठ तो बोलना न चाहिए.

शिवप्रसन्न – इसमें क्या शक, झूठ कोई कैसे बोल सकता है? आखिर भगवान भी तो ऊपर से देखता है.

मजबूतसिंह – लेकिन फिर बिना झूठ बोले तो काम भी नहीं चलता.

शिवप्रसन्न – कहां से चलता है? सरासर मूड़ काटे बैठे हो, लेकिन जब तक गवाही न हो तब तक कौन पूछनेवाला है?

मजबूतसिंह – और फिर आप हमारी-सी न कहेंगें, तो समय पर हमीं आपकी-सी कब कह सकते हैं?

शिवप्रसन्न – हां, भाई, कैसे कह सकते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना मतलब के भरी दुपहरी में बेकाम कौन अदालतों में झुलसता फिरता है? आजकल गवाही का तो व्यवहार ही रह गया है. तुम हमारी गवाही भरो, हम तुम्हारी भरते हैं. यही बात है.

मजबूतसिंह – लेकिन कचहरी में वकील-बैरिस्टरों की जिरह कैसे आड़ोगे?

शिवप्रसन्न – कैसे आड़ सकते हैं! वे तो ऐसे चंट होते हैं कि सच को झूठा कर देते हैं, फिर झूठे का कहना ही क्या! वह तो झूठा ठहरा ही.

मजबूतसिंह – हम जैसे तो उनका मुकाबिला कर नहीं सकते.

शिवप्रसन्न – हम जैसे भला उनका क्या सामना करेंगे? बड़े-बड़ों के दांत तो वे खट्टे कर देते हैं, बड़े-बड़े तुर्रमखानों की चूलें हिला देते हैं. उनका सामना कोई दालभात का कौर है.

मजबूतसिंह – मगर भाई, यदि अंदाज से बात करें, तो क्या वे ही एक बुद्धिमान हैं! आखिर क्या हममें बुद्धि हैं ही नहीं? मामला लड़ न डालें?

शिवप्रसन्न – क्यों नहीं, बुद्धि की क्या कहते हो, बड़े-बड़ों को चराये फिरते हैं. अब अपना मामला लड़ ही डालो. यही ठीक है।

मजबूतसिंह – भला राजीनामे का डौल भी तो अच्छा है.

शिवप्रसन्न – क्यों नहीं, राजीनामे से बढ़कर क्या है? सांप मरे, न लाठी टूटे.

मजबूतसिंह – तो इसी का प्रबंध करता हूं.

शिवप्रसन्न – अवश्य करो. □

कूटनीति का विश्व-विद्यालय

(परीक्षा-केंद्र शिकारपुर)

(परीक्षक-लार्ड-मुखर्जी)

समय 3 घंटे

(नोट – केवल छः प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए)

1. प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह ब्रिटिश जाति को और ब्रिटिश शासन को सर्वोत्कृष्ट समझे. इस पर व्याख्या लिखो.

2. अंग्रेजों ने सृष्टि के आदि से लेकर आज तक किसी युद्ध में अन्याय नहीं किया. मि. मार्स्डन के इतिहास से वाक्य उद्धृत करके इसको साबित करो.

3. निम्नलिखित बातों पर टिप्पणियां लिखो :
(अ) काले मनुष्य स्वराज्य के अयोग्य हैं.
(इ) ब्रिटिश साम्राज्य सत्य और धर्म पर स्थित है.
(उ) इंग्लैंड में इस समय सतयुग है.
(ए) यूरोप की स्त्रियां सती और साध्वी हैं.

4. सर माइकेल ओ डायर, और लार्ड बर्केहेड में तुम भारत के वायसराय-पद के लिए किसे ज्यादा पसंद करते हो? प्रश्नोत्तर में कारण अवश्य लिखो.

5. निम्नलिखित किसी एक विषय पर 100 शब्दों का निबंध लिखो :
(अ) बिना अंग्रेजों के भारत में शांति नहीं रह सकती.
(इ) सरकार के सबसे अधिक हितचिंतक मुसलमान हैं.
(उ) सरकार ने जर्मन महायुद्ध में छोटे मुल्कों की रक्षा के लिए भाग लिया था.

6. भारत को महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक इत्यादि नेताओं ने बड़ी हानि पहुंचायी है. रायबहादुर मुक्ताप्रसाद चौधरी एम.ए.डी.डी. के इतिहास से इस कथन को पुष्ट करो.

7. ब्रिटेन को भारत पर शासन करने में परोपकार के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं. स्वर्गीय लार्ड कर्जन का मत इस विषय में प्रगट करो.

8. साइमन कमीशन भारत की सब बीमारियों का एक मात्र इलाज है. इस विषय में डाक्टर अहमद प्रिंसिपल का मत लिखो.

9. भारतवासी असभ्य पूर्वजों की संतान हैं, परंतु 150 वर्ष के अंग्रेजी राज्य के कारण अब उनकी असभ्यता दिन-दिन कम होती जा रही है. अस्पतालों और जेल खानों के आंकड़ों से इस बात को साबित करो.

10. पिछले दस वर्ष में भारतवासियों ने अपने आपको मांटेगू सुधार-स्कीम के अयोग्य प्रमाणिक किया है. 'मिस मेयो' के मतानुसार इसकी व्याख्या करो.

11. (1.) रायबहादुर सेठ सेढ़मलजी सिधानिया सी.आई.ई. का संक्षिप्त जीवन चरित्र लिखो, उसमें मुख्यतः यह बातें दर्शाओ कि उन्होंने (अ) कितनी बार वायसराय से मुलाकात की? (इ) गवर्नरों को कुल कितने प्रीतिभोज दिये? (उ) महायुद्ध में कितने रंगरूटों को भर्ती कराया? (ए) कितना रुपया वार-लोन में दिया?

2. सरकारी खैरख्वाही के विषय में तुम्हारा आदर्श सेठजी से कितना बढ़ा हुआ है? तुम इस ओर स्वयम् क्या प्रयत्न कर रहे हो?

नोट :– विद्यार्थियों को चाहिए कि इन प्रश्नों का उत्तर लिखते समय कोट पतलून धारण करके बैठें, अन्यथा आधे नंबर काट लिये जायेंगे.

मासिक भ्रमर (बरेली)
मार्च सन् 1928

लंका पर शंका

पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

कई वर्ष हुए, 'स्वतंत्र' के 'होलिकांक' (वाजपेयी की 'हिंदी-कोमुदी' के अनुसार) में मेरा उक्त शीर्षक लेख निकला था. अब इसे संशोधित, परिवर्द्धित कर सुधा के पाठकों आगे रखता हूं. आशा है, पाठक पसंद करेंगे.

प्राक्कथन

जो कहते या समझते हैं कि मैं केवल हंसी मजाक के ही लेख लिख सकता हूं और किसी गंभीर विषय पर लेखनी नहीं लुढ़का सकता, वे ज़रा ध्यान देकर इसे पढ़ें, और देखें, मैंने कैसा गंभीर गवेषणा और खोज से पूर्ण लेख लिख डाला है. अगर अब भी मुझे गंभीरता की सनद न मिली, तो मैं यही समझ लूंगा कि कद्रदां काशी-करवट ले गये और समझदारी का टाट उलट गया.

विषय-प्रवेश

अब तक तो बेचारे कविवर कालिदास, वाणी के वर पुत्र विहारीलाल, विद्या-विपिन-व्याघ्र विद्यापति प्रभृति की खींचा-तानी थी, पर अब बेचारी रावण की लंका पर भी शंका होने लगी है. इससे शंकाकार हैं इंदौर-कौंसिल के कुशल कीबे साहब, जो बड़े विद्या वारिधि हैं. आपने अपनी कल्पना, जल्पना और अनुमान के डेनामाइट से वर्तमान लंका को समुद्र से उड़ाकर मध्यप्रदेश की धरती पर ला पटका है. अब यात्रियों को लंका के लिए समुद्र पार करने की जरूरत नहीं. बंगाल-नागपुर के बंबई मेल पर सवारी कसी और दन से लंका जा पहुंचे. पर अपने राम को इतनी दूर का सफर भी मंजूर नहीं. इसलिए मैंने विचार को जरा लाचार किया, तो कीबे साहब की लंका मध्यप्रदेश से उड़ बिहार प्रांत में आ धमकी. अब बिहारी भाई इस घर बैठे लंका की सैर कर डंका बजावें. अगर कीबे साहब चीं-चपड़ करें, तो कह दें कि लंका उनकी ही मारीस नहीं है. उस पर श्रीरामचंद्र जी के नाते सबका सामान अधिकार है. उसे जो जाहें, जहां ले जा सकता है. अच्छा, अब लंका का नया पता-निशान सुन लीजिए.

खोज का फल

रावण की लंका और कहीं नहीं, यहीं मुंगेर-जिले के जमुई सब-डिवीज़न के आसपास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

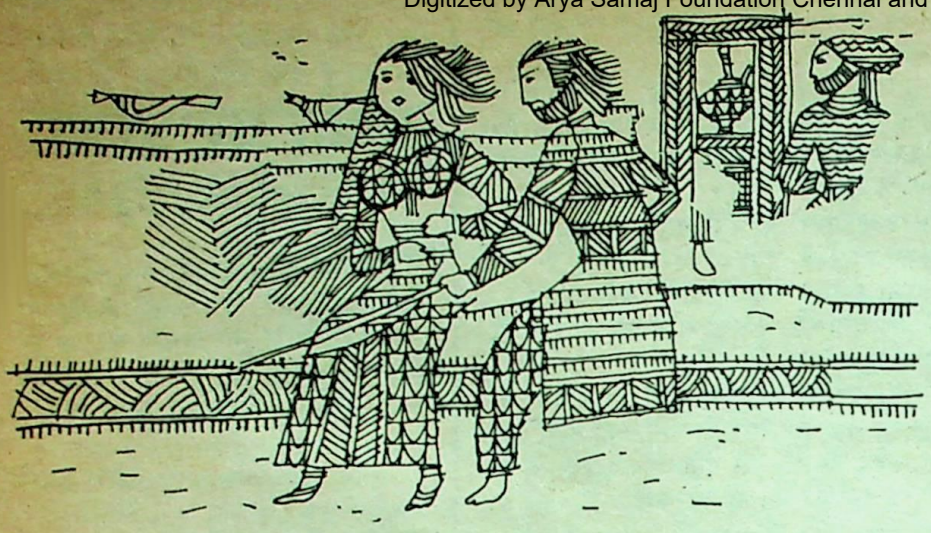

थी. यहीं श्रीरामचंद्र जी सीता माता के उद्धार के लिये आये थे. प्रकृति के प्रभाव से नाम-धामों में हेर-फेर हो गया, पर विज्ञानियों का विचार ज्यों-का-त्यों बना है. आजकल का लगमा गांव ही पुरानी लंका है. पहले यहीं समुद्र था जो सूख गया. इसका सुबूत मांगो बंदर गांव है. यह पहले बंदरगाह था, इसी से यह बंदर कहलाता है, जैसे मारवाड़ी लोग आजकल भी कलकत्ते, बंबई को कलकत्ता बंदर, बंबई बंदर कहते हैं और लिखते हैं. इसके सिवा पास ही सोनो और सोनपै ग्राम हैं जो लंका के स्वर्णमय होने के प्रबल प्रमाण हैं. इससे लगमा के लंका होने में संदेह नहीं रहता. लंका के पास सुबेल पहाड़ था. यहां भी लगमा के पास बेला गांव था. समय पा पहाड़ ज़मीन में धंस गया, और वहां बस्ती बस गयी. कुछ दूर पर पुराने किले का एक खंडहर है, जिसका नाम इनपैगढ़ है. इसे इंद्रजीत मेघनाद का वासस्थान मान लेने में क्या हर्ज है?

लंका के बाद सेतुबंध रामेश्वर है. पता लगाने पर मालूम होता है कि महादेव सिमरिया ही सेतुबंध रामेश्वर है. सेतुबंध से सिमरिया बन जाना कुछ असंभव नहीं. यहां बड़े तालाब के किनारे शिवजी का पुराना मंदिर है, जो पत्थर का बना हुआ है. लोगों का कहना है कि यह विश्वकर्मा का बनाया है. नल और नील विश्वकर्मा के अवतार कहे जाते हैं. बस, सिद्ध हो गया कि यहां सेतुबंध है. समुद्र सूख कर ताल हो गया और मंदिर ज्यों का त्यों बना रह गया. समुद्र सूख जाने का एक प्रमाण और मिल गया. यह है बलथर गांव. वारिस्थल से बरथर शब्द बना है, जिसका अर्थ है कि पहिले यहां वारि यानी जल था, फिर थर यानी स्थल हो गया. इससे बढ़कर और क्या सुबूत चाहिए.

गिद्धौर-राज्य में गिद्धाचल नाम का एक पहाड़ है, जिस पर हजारों गिद्ध वास करते हैं. इसका पुराना नाम गृध्रकूट है. शायद इसी से गिद्धौर नाम की उत्पत्ति भी हुई है. इससे सिद्ध है संपत्ति और जटायु की जन्मभूमि यही है, और यही श्रीरामचंद्र जी ने जटायु का उद्धार किया था, ऐसा कहने में बड़ा आनंद आता है.

जमुई से कुछ दूर पतौना-नामक गांव है. इसके पास ही पांच शिखरवाली एक पहाड़ी है. ये दोनों लगमा से उत्तर भी हैं. इस पहाड़ी के दोनों ओर दो नदियां हैं. दक्षिण में क्यूल और उत्तर में आंजन. इस पर श्रीरामचंद्रजी के चरण-चिन्ह भी हैं. क्यूल में बंदरीदह नाम का स्थान है, जहां पर्वों पर आस पास के लोग नहाने आते हैं. लोग कहते हैं, एक वानरी यहां नहाकर वैकुंठ गयी थी. यह वानरी और कोई नहीं पवनसुत हनुमानजी की माता अंजनी है, और उसी का स्मारक आंजन नदी है. इससे पता लगता है कि यह पतौना ही पंपासर और पंच-शिखरवाली पहाड़ी ही पंचवटी है. आंजन में गिरने वाली दूसरी नदी का नाम नकटी है, जिसके तट पर कटौना गांव बसा है. बस, यहीं सूपनखा की नाक कटी होगी, जिससे नदी का नाम नकटी और गांव का नाम कटौना हो गया. डुंडू-नर्वदा नाम के गांव ही दंडकारण्य है. नदी सूख गयी, और जंगल की जगह गांव बस गया. दोनों गांव नदी और जंगल के स्मारक-स्वरूप वर्तमान हैं. श्रीरामचंद्रजी को दंडकारय में कबंध राक्षस, शबरी, ऋषिगण प्रभृति कमले थे. खोजने पर यहां भी उनका पता चल सकता है. यहां कोल, भिल्ल, मुसहर, संथाल आदि जंगली जातियां आज भी निवास करती हैं. इसलिए शबरी का अभाव नहीं हो सकता है. ये लोग 'निमुंडा' नामक भूत की उपासना करते हैं. यह निमुंडा कबंध से बहुत कुछ मिलता जुलता है, क्योंकि दोनों ही मस्तक-हीन और वीर हैं. अतएव निमुंडा ही कबंध का स्थान ले ले, तो क्या हर्ज है. बाकी रहे ऋषिगण, सो उनकी भी जड़ जम गयी है. ई.आई.आर. के मननपुर स्टेशन के निकट पहाड़ पर ऋषिश्रृंगा का आश्रम है. जब आश्रम है, तब ऋषि भी होंगे. जब एक का पता लग गया, तब अनेकों का भी लग सकता है. अब लंका के यहां होने में कौन संदेह कर सकता है? कोई नहीं.

जमुई स्टेशन से कुछ दूर उत्तर की ओर भलुका गांव है, जिसे जांबवान की जागीर बताने में क्या हर्ज है. यहां रीछ को भालू कहते हैं. इसी से भालु की जागीर का नाम भालुका होना उचित ही है.

क्यूल नदी के उस पार एक नदी का नाम अब भी चित्रकोट है. इसलिए इसके बारे में अनुमान की विशेष आवश्यकता नहीं. यह तो स्वयंसिद्ध है. राजा जनक का जनकपुर से यहां आना जितना सहज है, उतना और कहीं नहीं हो सकता. पास ही खैरामा गांव है. यहीं भरतजी ने खड़ाऊं पायी थी, इसी से इसका नाम खैरामा है.

जमुई के पास मिरचा गांव में मुसलमानों की प्रधानता है. यही मारीच का घर होने लायक है.

कागेसर "सीता-चरन चोंच हति भागा, महामूढ़ मति कारण कागा." की याद दिलाता है. इसीलिए इस स्थान का ऐसा नामकरण हुआ हो, तो क्या आश्चर्य है.

अमकोली लता-वृक्षादि से परिपूर्ण है. पहाड़ी झरना बारहों महीने तीसों दिन प्रवाहित होते हैं. बड़ा सुंदर दृश्य है. यही अशोक-वाटिका का मान होना बुरा नहीं. इसी प्रकार भलुआन और भलुई को भालुओं की और बंदरचुआं को बंदरों की निवासभूमि मान लेना युक्ति संगत प्रतीत होता है.

लंका के यहां होने का सबसे प्रबल प्रमाण तो श्रीरावणेश्वर वैद्य नाथ हैं, जिन्हें रावण ने कैलास से लाकर देवघर में स्थापित कर दिया है. वैद्यनाथ माहात्म्य में लिखा है कि रावण नित्य कैलास जा श्रीशिव जी का पूजन करता था. रावण ने सोचा कि रोज-रोज कैलास जाने में नाहक परेशानी होती है, इसलिए एक दिन वह शिवलिंग को उठा लंका ले चला. पर बंभोलानाथ को लंका की सीमा के अंदर जाना मंजूर नहीं था, अतएव लंका के बाहर झारखंड (देवघर) में ही डट गये. रावण ने भी इसे गनीमत समझ लंका ले चलने की ज़िद न की. उसी दिन से इस लिंग का नाम रावणेश्वर वैद्यनाथ हो गया. वैजनाथ इसी का अपभ्रंश है. अब सोचने की बात यह है कि अगर लंका मध्य प्रदेश में होती, तो वैद्यनाथ जी भी वहीं होते. पर ऐसा नहीं है. वैद्यनाथजी बिहार प्रांत में हैं, अतएव लंका भी यहीं है, और मुंगेर ज़िले में है. इसके सिवा रावण का प्रतिदिन कैलास जाना यहीं से अधिक संभव हो सकता है, मध्य-प्रदेश से नहीं.

उपसंहार

इन प्रबल पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध होता है कि लंका यहीं थी और मज़े में थी. कीबे प्रसाद किसी तरह उसे मध्यप्रदेश नहीं ले ज सकते. अगर वह ज्यादा गड़बड़ करेंगे, तो मध्यप्रदेश को ही बिहार प्रांत में उठा लाऊंगा. फिर न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी. बस.

'सुधा' अक्टूबर १९२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग

रवींद्रनाथ त्यागी

"अरी दिल्ली से पेशावर जानेवाली ओ, सखि तू लोगों का व्यापार कर ले और इजारबंद का सौदा कर ले ओ गोरी आज कद्दू बड़ा मजेदार बना है और अब जीभ चटचटाकर उसे खाना है. मेरी जान, आज तू यहां से न जा."

यह उस ग्रामगीत का अनुवाद है जो मेरे मित्र डाक्टर मनोहर लाल के अनुसार गुलेरीजी की अमर कहानी 'उसने कहा था' में लेखक ने डाला था पर जो कुछ अज्ञात कारणों के कारण पाठ्यक्रम की पुस्तकों से निकाल दिया गया. इस विषय पर ज्यादा चर्चा मैं फिर करूंगा क्योंकि फिलहाल तो मैं बीमार चल रहा हूं.

मुझे बुखार आये कोई पंद्रह दिन हो गये. ज्वर के साथ-साथ आंखें पीली हैं, मूत्र श्वेत है, शरीर पर नीले चकत्ते पड़े हैं और मुखारविंद लाल है. इतनी रंगीन बीमारी मुझे पहले कभी नहीं हुई. पत्नी जरूरत से ज्यादा व्याकुल है क्योंकि वह शायद सती होना चाहती है. मैं भी सोचता हूं कि चलो लगे हाथों मर ही लूं. कुछ शोकसभाएं होंगी कुछ अखबारों में फोटो छपेगा और साहित्य अकादमी शायद मरणोपरांत वाला पुरस्कार भी दे देगी.

ड्राइवर आया व चपरासी वगैरह ने जो गंडे-ताबीज बनवाये उनसे कोई अंतर नहीं पड़ा. गंडा और ताबीज के बाद मेरी पत्नी ने एक प्राकृतिक चिकित्सक को बुलवाया. उन्होंने पहले तो भोजन पर हमला किया और सिवाय साबूदाने के सब कुछ खाने को मना कर दिया. शरीर पर मिट्टी का लेप किया गया. माथे पर गीली मिट्टी की पट्टी रखी गयी और शवासन करने को कहा गया. शवासन का नाम सुनकर जब मैं घबराया तो वे बोले कि "निर्वाण परम सुखम् अर्थात मृत्यु जो है वह सबसे बड़ा सुख है." उनकी वाणी सुनकर मेरी वाणी बंद हो गयी. जब कभी मिट्टी खराब करने पर भी हमारी मिट्टी खराब ही रही तो एक होम्योपैथ को बुलाया गया.

मेरे जो ये होम्योपैथिक डाक्टर हैं, वे काफी दिलचस्प और होनहार किस्म के इनसान हैं. पहले कभी ये वकील थे और नतीजा यह था कि एक तरफ मुवक्किल का मुकद्दमा लड़ते थे और दूसरी ओर अदालत के बीवी व बच्चों की चिकित्सा करते थे. एक बार कुछ ऐसा संयोग हुआ कि एक ओर तो मुवक्किल जो था वह जेल गया और दूसरी ओर अदालत की जो धर्मपत्नी थीं, वे स्वर्ग सिधार गयीं. दोनों दिशाओं में इतनी शानदार सफलता देखकर ये घबरा गये और भाग गये. प्रयाग जाकर दम लिया. वहां उन्होंने दाढ़ी बढ़ा ली, चिमटा खरीद लिया और 108 श्री सहजानंद सरस्वती नाम रखकर एक संस्कृत पाठशाला खोल ली. उन्हीं दिनों इन्होंने तंत्र विद्या सीखी ज्योतिष पढ़ी, अनाथाश्रम खोला और बाद में एक अदद विधवाश्रम भी स्थापित किया. कुछ विधवाओं से इनके संबंध इतने निकट हो गये कि इन्हें संन्यासी का चोला बदलना पड़ा. किसी प्रकार मेरे कस्बे में आ गये और तब से ये यहीं हैं. काफी अच्छे चिकित्सक हैं. इनका निदान बड़ा सच्चा होता है. यदि ये कहेंगे कि रोगी को सन्निपात हो गया है तो रोगी सन्निपात से ही मरेगा, यक्ष्मा से नहीं. इनका कहना है कि होम्योपैथी में जितनी भी कम शक्ति की दवा ली जाती है, वह उतना ही ज्यादा प्रभाव दिखाती है. मेरा निवेदन है कि यदि यह सिद्धांत ठीक है तो होम्योपैथी की दवा तब ही ज्यादा से ज्यादा असर करती है जब कि वह बिलकुल नहीं ली जाती.

होम्योपैथ के बाद एक वैद्य आये. बोले कि पित्त का प्रकोप है. खाना इन्होंने भी लगभग बंद ही रखा. वैसे ये कविराज हैं मगर लगते यमराज हैं. इन्हें स्त्रियों के रोगों का विशेषज्ञ माना जाता है. लगभग-सी सुंदर युवतियों से यही पूछते हैं कि तुम गर्भवती हो या नहीं? यदि हो तो कैसे हो और नहीं हो तो होना चाहती हो या नहीं? स्त्रियों के ठहरने का भी उचित प्रबंध है. निदान दिन में करते हैं और चिकित्सा रात को. माधवनिदान चरक, सुश्रुत, वाग्भट और पता नहीं कौन-कौन सी पुस्तक पढ़ते हैं. और रोगी को सुनाते हैं. इनके यहां जितने भी रोगी आते हैं, वे प्रायः वही होते हैं जिन्हें कोई स्त्री रोग होता है चूंकि मुझे ऐसा कोई रोग नहीं था, इन्होंने मेरा इलाज अपने हाथ में नहीं लिया.

वैद्यजी के जाने के बाद सिविल सर्जन बुलाया गया. देखने में यदि यमराज नहीं तो उनका वाहन तो जरूर ही लगता था. अस्पताल की दवाइयां बाजार में बेचने के कारण कई बार सेवा से निलंबित किया जा चुका था. और एक बार तो एक रोगी युवती के साथ बलात्कार करने के कारण इसकी जान भी बचनी मुश्किल हो गयी थी. यदि एक स्थानीय नेता मदद नहीं करते तो इन्हें जेल होती. बहरहाल मेरा पूरा निरीक्षण किया, फीस ली और नुस्खा लिखा. मुझसे पूछने लगे कि क्या खाने की इच्छा है? हम थे कोई दस दिन के भूखे. हमने तो स्पष्ट कह दिया कि डाक्टर साहब, आपको छोड़कर बाकी सारी चीजें खाने की इच्छा है. वे हंसे और चले गये. बुखार फिर भी नहीं उतरा.

इसके बाद एक विशेषज्ञ आये. वे अस्पताल में कोई तीन सौ मरीजों को रोज निबटाते थे मगर जाननेवाले जानते थे कि यदि आराम होना है तो घर पर ही मिलना चाहिए. मेरे घर आने की उन्होंने दुगनी फीस ली. कुछ जांच करवायी और फिर दवा लिखी. इनके इलाज से मेरी स्थिति संभलने लगी और धीरे-धीरे मैं ठीक होने लगा. ये इतने शरीफ डाक्टर निकले कि कोई चार बार तो बिना बुलाये ही घर पर चले आये जिसकी उन्होंने हर बार दुगनी फीस ली.

मेरे दोस्त 'हैरत' रतनगढ़ी काफी बाद में आये. वे एक शादी में आगरा गये हुए थे. हैरत साहब हकीम भी थे, छोटे-मोटे सर्जन भी थे, और साथ-साथ शायर भी थे. हजामत बनवाते-बनवाते जो इनकी पूर्ण गजल सुन लेता था, उससे हजामत का पैसा नहीं लेते थे. बहरहाल वे आये और आते ही ताजी गजल सुनाने लगे. चार गजलें और कोई पचास कते सुनाने के बाद उन्होंने मेरी सेहत के बारे में पूछा. इसके बाद चाय पी, 'इलाजुल गुर्बा' में से एक नुस्खा तजवीज किया और चलते वक्त एक बहुत पुराना और मशहूर शेर सुनाने लगे. इस कालजयी शेर का हिंदी अनुवाद इस प्रकार है :

उनके आने से जो आती मुख पर शोभा
वे समझते हैं कि रोगी का स्वास्थ्य उत्तम है. □

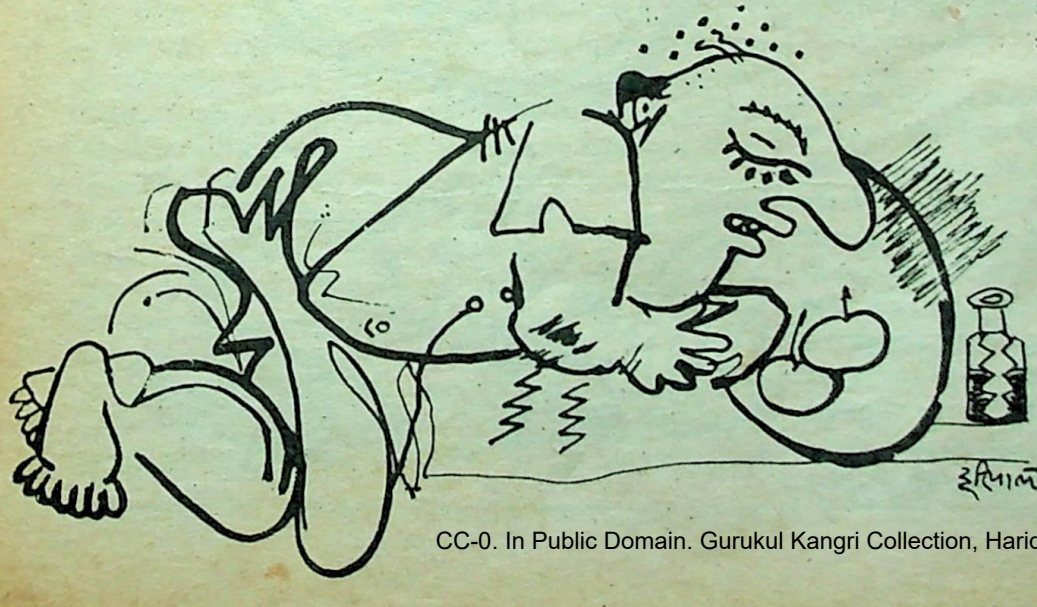

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलिया, गरम बोनट और बकरियां

ज्ञान चतुर्वेदी

भदरंग टीन की यह, बड़ी-सी कनस्तरनुमा रचना, जो कस्बे की सड़क पर खड़ी है, यहां की बस है, पहली बार विश्वास नहीं होता नये-नये आदमी को या शहराती को. शहर से आया हुआ आदमी तो जब तक पास जाकर पहिये आदि ठीक से न देख ले, मानता ही नहीं. तमाम सीमाओं तथा बाधाओं के बावजूद यह कनस्तर न होकर यदि बस है, तो इसके पीछे हफीज मियां के धैर्य, परिश्रम तथा दुःसाहस का हाथ है. यहां वहां से उखड़ते-छीजते-गल गये नये टीन के पतरों, हिलते, कटे-फटे टायरों, चकनाचूर से कांचों और बाढ़ में किनारे लगे मुरदे की आंतों की भांति बाहर झांक रही सीटों की स्प्रिंगों को यदि अजर आत्मा की भांति बस के मृतप्राय शरीर में किसी ने उखड़ते नट-बोल्टों से कहीं अधिक अपने अमर आत्मविश्वास द्वारा बांध रखा है, तो वे हैं जनाब हफीज मियां रंगरेज, उरईवाले. हफीज मियां महबूब ट्रांसपोर्ट कंपनी के मालिक हैं, जिसकी एकमात्र संपति यह बस है. महबूब मियां, हफीज मियां के सुपुत्र हैं, जिनके नाम पर इस महती कंपनी का नामकरण हुआ है. दो वर्ष पूर्व तक ट्रांसपोर्ट के पास इससे भी नाकारा एक और बस थी. ब्रेक न होने के मामूली से कारण से वह रुक नहीं पायी और दो साल पहले बरसात में चढ़ी नदी में बह गयी. पुर्जे-पुर्जे बह गये उसके. बस का बीमा था, सो एक लिहाज से ठीक ही रहा. हफीज मियां स्वयं तो खैर तैरकर किनारे लग गये. वैसे ब्रेक तो इस बस में भी कोई खास नहीं. इसे भी हफीज मियां स्वयं चलाते हैं तथा कुछ ऐसी कारीगरी जानते हैं कि बस ऐन टकराने से पूर्व रुक जाती है. पता नहीं कैसे. हफीज मियां को स्वयं भी नहीं पता. वे तो अल्लाह का हाथ मानते हैं इसमें. बस को देखकर तो कोई भी मानेगा.

आगे के दरके हुए कांच पर ही मक्का-मदीने की पाक तस्वीर चस्पां है. परंतु केवल अल्लाह ही इस बस की जिम्मेदारी संभाले और परेशान हों, यह हफीज मियां को बरदाश्त नहीं. नीचे शंकरजी की मूर्ति भी है और उसके पास ही स्टील का बना नंदी का सिर भी. एक तरफ हनुमानजी की तस्वीर भी. बस है भी ऐसी कि एक-दो देवताओं के बूते की बात नहीं लगती. और इन सबके ऊपर यहां-वहां से लटकते बिजली के लाल-पीले तार, जो बोनट तथा पैनल से निकलकर न जाने कहां जा रहे हैं. हफीज मियां स्वयं किसी तार को हाथ नहीं लगाते— न जाने किस तार से बस चल रही हो!

इंजिन स्टार्ट मुश्किल से होता है और एक बार हो जाये, तो झांसी पहुंचने तक हफीज मियां इसीलिए बंद नहीं करते. मोंठ पहुंचते ही गाड़ी रुकी है तो बोनट खोल दिया गया है तथा गर्मागर्म भाप पूरी बस में भर गयी है. बोनट के पास ही ड्राईवर साहब की सीट है, जो शेष सीटों के बराबर ही फटी, गलीज तथा जलील है. हफीज मियां इस सीट पर एक चीकट-तकिया धरकर बस चलाते हैं ताकि स्प्रिंग के तारों की चुभन से उनकी ड्राईविंग की विकट तपस्या में विघ्न न पड़े. आगे की दो सीटों पर रिजर्व लिखा है. इनमें से एक की पटिया गायब है और दूसरी से बकरी बंधी है. दो सीटें औरतों के लिए सुरक्षित हैं, जिन पर कई मुछाड़ियां यात्री जमे है. स्टाफ के नाम पर हफीज मियां के सुपुत्र श्री महबूब मियां ही हैं, जो टिकिट काटते हैं, गाली देकर सवारी चढ़ाते हैं, धक्का देकर सवारी उतारते हैं, बाप की गालियां सुनकर उन्हें उससे भी कठिन गालियों का प्रत्युत्तर देते हैं, छत से सामान गिराते हैं और हर चुंगी पर चलती गाड़ी से कूदकर चलती गाड़ी पर ही चढ़ते हैं. महबूब मियां बस के कर्तव्यपरायण कंडक्टर हैं.

सामने से बस की जाली कब की गलकर निकल गयी है. आधा इंजिन वहां से बूढ़े राक्षस के हिलते, भयानक दांतों-सा झांकता रहता है. बस चलाने से पूर्व ही हफीज मियां पीछे की तरफ आवाज मारते हैं— "अरे खां पंडितजी, आप तनिक पीछे की सीट पर बैठ जाइये. बैठने की जगह देना भई, पीछे. पीछे सड़क पर देखते जाइयेगा पंडितजी. कोई पुर्जा गिरे तो बताइयेगा." इंजिन कसा नहीं है. पुर्जे राह में गिरते जाते हैं, जिन्हें बस रोककर बटोर लिया जाता है, या कभी-कभी पुर्जा गिरने पर बस स्वयं ही रुक जाती है. पुर्जा उठाने के बाद हफीज मियां और महबूब मियां के बीच खुली सड़क पर यह परिचर्चा होती है कि यह पुर्जा कहां से गिरा

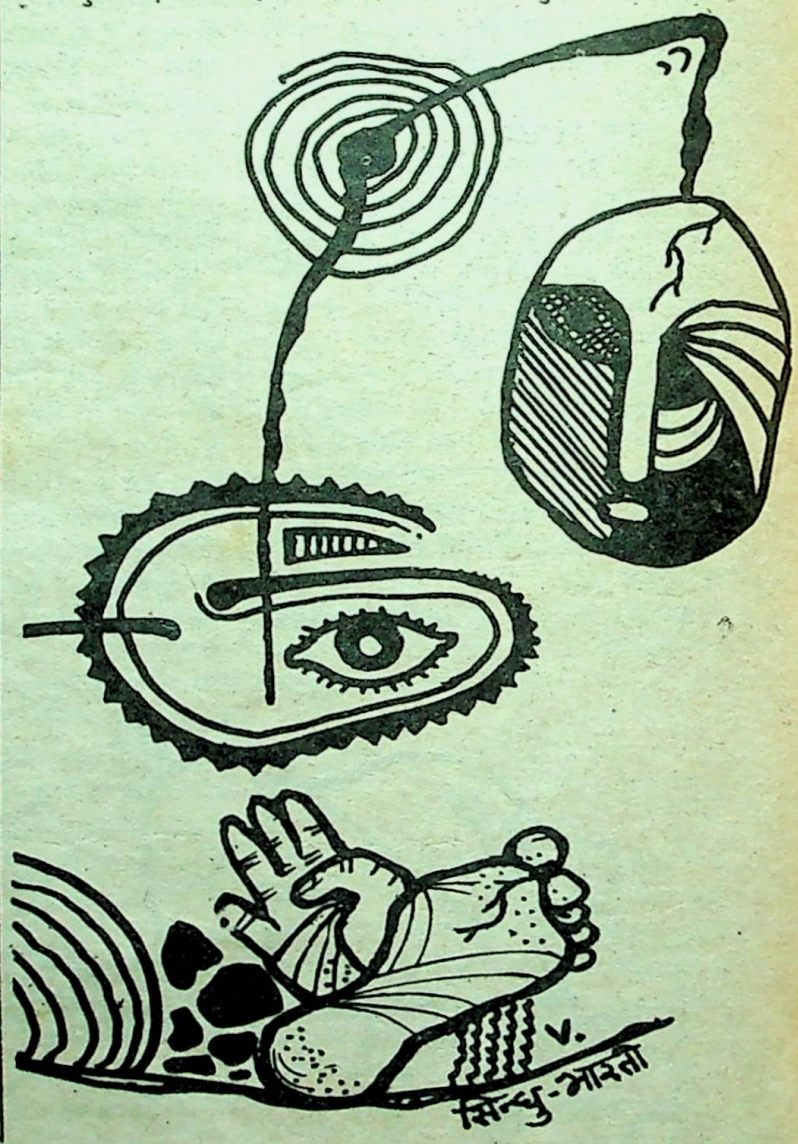

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा? महबूब मियां कहते हैं कि यह पुर्जा अपनी बस का न होकर 'बरसैंया ट्रांसपोर्ट' वालों की 'दतिया-समथर' बस से टपका लगता है. हफीज मियां डाट लगाते हैं क्योंकि उनकी फिलोसफी यह है कि जो पुर्जा मुफ्त में मिल रहा हो, वह फिर चाहे हवाईजहाज का ही क्यों न हो, महबूब ट्रांसपोर्ट की संपत्ति माना जायेगा. वे कहते हैं कि हो न हो यह पुर्जा 'कारबूरेटर' से टपका क्योंकि 'कारबूरेटर' में एक बड़ा छेद उन्हें साफ नजर आ रहा है. तब महबूब मियां बताते हैं कि उक्त छेद तो वे बचपन से देखते आ रहे हैं. तब हफीज मियां बताते हैं कि तुम्हारी तो बचपन से ही दोनों आंखें खराब हैं! तब महबूब मियां बताते हैं कि हमारे खानदान में तो फूटी आंखों का रिवाज बहुत पुराना चल रहा है, परंतु फिर भी यदि अब्बाजान अपनी 'अंधरी-आंख' पर जोर लगाकर देखें तो यह पुरजा, लगता है कि उस किसी छेद से टपका है जो डीजल टैंक, रेडियेटर, डेल्को,

बैठिये, बैठिये क्या कहा, बोनट गर्म है? तो क्या हुआ. बहुत नाजुक हो तो पाजामा गीला करके बैठ जाओ. बैठो यार, बैठो. आग नहीं लग जाने वाली. ऐसा गर्म भी नहीं है. फफोला पड़ जाये तो कोई बात नहीं. झांसी के बड़े अस्पताल से मल्लम लगवा लेना.

'एक्जास्ट' पाइप तथा फैन-बैल्ट में यहां वहां नजर आ रहे हैं. तब दोनों, किसी एक छेद के विषय में एकमत होकर, पुरजे को उस छेद में लगा देते हैं. बस फिर चल पड़ती है. हफीज मियां पंडितजी को धन्यवाद देते कहते हैं कि आज आपके रहते यह पुर्जा बच गया, वरना तो आजकल ऐसी लापरवाह सवारियां बैठती हैं कि पुर्जे 'छन' 'छन' करके गिरते रहते हैं और नामाकूल बताते भी नहीं. स्वयं हफीज मियां तो गांजा पीने के कारण सुन नहीं पाते, परंतु सवारियों के कारण आधा इंजन तो टपक-टपककर खो चुका है. इतना बताने के बाद वे अल्लाह का शुक्रिया अदा करते हुए कहते हैं कि अल्लाह के फ़जल से आधे इंजिन से भी गाड़ी ठीक चल रही है; बल्कि आधा इंजिन गिर जाने से बस हल्की हो गयी है और पहले की अपेक्षा तेज चलते लगी है.

बस अब छूटने लगी है. पर इतनी आसानी से छूटने वाली नहीं.

राम भरोसे चायवाले का छोकरा आकर बाल्टी भर पानी इंजिन में डाल गया है, जो इंजिन के अलावा यहां-वहां बहकर सीटों के नीचे बहता हुआ फर्श पर बैठे यात्रियों की धोती, पाजामे तथा अधोवस्त्रों में घुस गया है. उधर हफीज मियां भी ड्राइवर की सीट पर बिराज गये हैं. बोनट अब बंद कर दिया गया है. हफीज मियां ने संतोष की दृष्टि से पीछे की तरफ निहारा है. जब तक बस ठसाठस न हो, हफीज मियां गियर पर हाथ नहीं रखनेवाले, बस में आज भी यात्री ठूंस-ठूंसकर भरे जा चुके हैं. चिल्लपों मची है. गावं के लोग टीन की नुकीली पेटियां, झोले, दरी में ठूंसकर बंधे बिस्तरे, बोरों में भरे बर्तन-भांड़े, बकरियां, मुरगियां, गेहूं के बोरे, दूध के बड़े बर्तन, मिट्टी के तेल का कनिस्तर, डीज़ल की कुप्पी, बड़ी लाठियां, कच्ची दारू, नकली दवा आदि लेकर बस में यहां वहां मोर्चा-सा बांधे खड़े-पड़े या बैठे हैं. बस के चप्पे-चप्पे पर यात्रीगण छा चुके हैं. बच्चे रिरिया रहे हैं, बकरी सामने बैठे दादाजी की आधी धोती चबाकर आगे की योजना पर विचार कर रही है और एक बच्चा गेहूं के बोरों पर चढ़कर नीचेवालों की खोपड़ी पर कूद रहा है. गाली-गलौज, हा-हा-ही-ही, रोना-पीटना और चीख-चीख कर आवाजें देना जारी है. दद्दा पेशाब करने के लिए नीचे उतर गये थे और अब घुस नहीं पा रहे हैं, वहीं बाई के पैर पर किसी ने पेटी धर दी है और मास्साब का झोला किसी ने गायब कर दिया है. थानेदार साहब की सवारियां आनेवाली हैं, सो आगे की दो सीटों पर बैठे लोगों को सिपाही की तरफ खदेड़ दिया है. अजीब खौफनाक-सा, खतरनाक, हैरतअंगेज खेल चल रहा है इस बस में.

जो घुस गये हैं वे निकल नहीं सकते. पकड़नेवाला डंडा कब का उखड़ चुका है. लोग फिर भी गिरते नहीं. गिरने की जगह छोड़ने की गुंजाइश हफीज मियां ने छोड़ी नहीं. लोग एक दूसरे के सहारे खड़े हैं. जिसे कहते हैं गचागच, वह मचा है. फिर भी बस के नीचे खड़े महबूब मियां आने-जाने वालों का आह्वान कर रहे हैं कि वे झांसी चलें, 'झांसी-झांसी-झांसी' एक अनवरत पुकार. द्रुत पर चल रही है, और लोग आ भी रहे हैं. जगह बनानी होगी. महबूब मियां भरी बस में जगह निकालने में विशेषज्ञ हैं. बस जितनी भरी हो, वे उतने ही उत्साह से जगह निकालते हैं. अभी बहुत जगह निकलेंगी इस बस में.

"आगे बढ़ो भई आगे बढ़ो."

"आगे कहां बढें?"

"बोनट पर बैठ जाओ, भैया."

"वहां दो बैठे हैं पहले ही?"

"अभी तीन और बैठेंगे भाइजान. बैठिये, बैठिये! क्या कहा, बोनट गर्म है? तो क्या हुआ. बहुत नाजुक हो तो पाजामा गीला करके बैठ जाओ. बैठो यार, बैठो! आग नहीं लग जाने वाली. ऐसा गर्म भी नहीं है. फफोला पड़ जाये तो कोई बात नहीं. झांसी के बड़े अस्पताल से 'मल्लम' लगवा लेना. बैठो, बैठो...आगे बढ़ो. जगह दो दद्दा. पांव सिकोड़ो. ये टीन अपनी गोदी में धर लो. और तुम टीन पर बैठ जाओ बैठा. यार, गियर पर पैर मत रखो. सीधे खड़े रहो भाई. लड़ाई नहीं. लड़ाई-लड़ाई माफ करो. गोदी में बिठा लो भैया. शाबास, चिरगांव तक की बात है. वहां बस तनिक खाली हो जायेगी."

एक दूसरे की गोद में बैठ गये हैं यात्री. मोंठ से झांसी तक के पचास किलोमीटर के रास्ते में ऐसा विश्वबंधुत्व इस बस में चल रहा है कि हफीज मियां को वहां खड़े-खड़े शांति का नोबेल-पुरस्कार देने का जी करता है.

अब हफीज मियां लंबे-लंबे हार्न दे रहे हैं. बस अड्डे की हवा में आमंत्रण तैर रहा है कि जल्दी आयें. झांसी जाने के इच्छुक लोगों को कातर पुकार है यह महबूब ट्रांसपोर्ट की. बस खड़ी है और लोग कमीनगी पर उतारू हैं कि झांसी नहीं जा रहे! अभी दस आदमी तो बोरियों पर बैठ सकते हैं. बकरियां भी स्वस्थ हैं. कुछ उन पर बैठ जायेंगे. पर लोग आयें तो. पें पें पे. चलो भाई, बस चलने को है. जल्दी करो. लोग आते-जाते हैं और न जाने कहां घुसते जा रहे हैं. हफीज मियां से इस बाबत पूछिये तो वे इसे भी अल्लाह का करिश्मा मानते हैं. सच भी है. बिना अल्लाह की सहायता के अब बस में नहीं घुसा जा सकता.

अब बस चल पड़ी है. हफीज मियां ने चलायी या शायद कोई यात्री गियर पर बैठ गया— पता नहीं. पर बस चल पड़ी है. अब चल पड़ी है तो रोकी नहीं जा सकती क्योंकि ब्रेक कमजोर हैं और बस ढलान पर खड़ी थी. अब बस जा रही है. अंदर टिकिट को लेकर झिकझिक चल रही है—

"कहां जाओगे?"

"झांसी."

"निकालो सात रुपये."

"सात काहे के?"

"झांसी के, और काहे के?"

"तीन लेलो यार!"

"सात निकालो! जल्दी करो."

"हमारे पास तो तीन ही हैं. चाहो तो नंगा-झोली से लो."

"अच्छा तीन लाओ. पर बीच में चिरगांव पर उतर जाना."

"चिरगांव पर मत उतारियो खां साहब. उतें हमारी ससुराल है. बदनामी होगी."

"तो जंगल में उतर जाना. शेर पर बैठकर झांसी आजाइयो."

आधी सवारी की बहस तो अनंत है, जो सदियों से इस बस में चल रही है. इस कस्बे का कोई भी बच्चा बड़ा नहीं हो रहा. पर महबूब मियां भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम नहीं. टिकिट काटते हुए, इस भीड़ में भी यात्रियों की एक-एक चाल पर उनकी नजर है और तदनुसार माकूलकाट मौजूद है–

"डाई टिकिट देना कंडक्टर साब."

"आधी सवारी कौन सी?"

"इस बच्चे की."

"बड़ी बड़ी मूंछें आ गयी हैं इसकी. बच्चा तो मत कहो इसे."

"हमारे लिए तो बच्चा ही है."

"पूरी टिकिट लगेगी इसकी."

"मूंछ निकल आयी तो क्या पूरी टिकिट काटोगे?"

"और नहीं तो क्या?"

"मूंछ पर न जाओ खां साहब. वो तो यह बच्चा लहसुन ज्यादा खाता है सो मूंछें कुछ जल्दी आ गयी हैं. वैसे यह पांच साल का है."

"सोलह साल के लौंडे को पांच साल का बताते शर्म नहीं आती तुमको"?

"काहे की शर्म? शर्म तो तुम्हें आनी चाहिए कि हमने तुम्हें मूंछ वाला बच्चा बिना टिकिट लगाये दिखाया और तुम हमसे ही टिकिट मांग रहे हो?"

लोकसभा की बहस चलती है और बस, देश की तरह किसी तरह चलती जा रही है. धूल उड़ाती. छोटे-मोटे, दिशाहीन तूफान-सी गरजती. बैलगाड़ियों, साइकिल सवारों, पैदल चलने वालों तथा गाय-भैंसों को खदेड़ती. मोटे कांच का चश्मा लगाये हफीज मियां दबाये चले जाते हैं गाड़ी. इंजिन गर्म हो रहा है. बोनट पर बैठे लोगों की अग्नि-परीक्षा चल रही है. वे गर्मी से मचलकर टांगें इधर-उधर करते हैं तो हफीज मियां फटकारते हैं कि 'मियां, गाड़ी भिड़वा दोगे क्या? गर्म लग रहा है तो तेज-तेज सांस लो और काशमीर का खयाल दिमाग में लाओ. गर्मी नहीं लगेगी. चार फफोलों के पीछे सबकी जान मत ले लेना. गाड़ी चलती जा रही है. परंतु गर्म होकर इंजिन बंद हो पाये, उससे पहले ही कोई गांव आ जाता है और पुलिया पर बस रुक जाती है. पुनः लंबे हार्न मारकर हफीज मियां अब इस गांव वालों को बताते हैं कि झांसी जानेवाला तूफान मेल आ गया है. चलो. महबूब मियां नीचे उतरकर 'झांसी चलो आंदोलन' चलाने लगते हैं. पुलिया पर बैठे कुछ लोग बस पर चढ़ जाते हैं. यहां-वहां से बहुत से फुरसतिये छोकरे, नंग-धड़ंग बच्चे और सर्वदा फालतू बूढ़े आकर बस के चारों तरफ मंडराने लगते हैं. हफीज मियां सबको ललकारकर भगाते हैं कि बस को छूकर खराब किया तो खबरदार! एक सज्जन पेशाब के लिए उतरना चाहते हैं, पर महबूब मियां डांट देते हैं कि पेशाब-टट्टी अब सीधे झांसी में ही होगी. बैठनेवाले बैठ गये हैं, पर बस रुकी हुई है. गावं से अभी हफीज मियां को बहुत आशाएं हैं. वे दो-तीन यात्रीनुमा व्यक्तियों को देखते हैं तो उनकी शक्ल से हफीज मियां को लगता है कि इनको झांसी जाना चाहिए. वे उनको झांसी के लिए पुकारते हैं–

"बैठिये बैठिये जनाब, बस झांसी जा रही है."

"नहीं, हमें तो कानपुर जाना है."

"अरे छोड़िये कानपुर को.... झांसी चलिये. महबूब बिठाल इनको रे."

"नहीं दद्दा, हमें कानपुर जाना है."

"भैया, झांसी अच्छा शहर है."

"हमें नहीं जाना झांसी."

"'शोले' लगी है झांसी में, डमरू टाकीज में. बस अड्डे के पास. देखकर रात में हमारी बस से ही वापस आ जाना."

"हमें नहीं जाना."

"तुम्हारी मरजी. फिर झांसी की ऐसी लगी-बस न मिलेगी."

"न मिलने दो."

"कानपुर बड़ा शहर है. मार तमाम भीड़-भड़क्का. ट्रक के नीचे कुचल जाओगे तब हमारी याद करना."

"कर लेंगे."

मियां, अजीब ढीठ आदमी हो. झांसी न जाना हो मत जाओ, पर बुजुर्गों से मुंह तो मत लड़ाओ." "हमने ऐसी कौन-सी बात करदी जो नाराज हो रहे हो?"

"नाराजी काहे की. फिर चलो न झांसी. बैठो, बैठो." बीच में ही पड़ता है हफीज मियां का गांव. सड़क पर ही उनका छोटा लड़का खड़ा रहता है, बस की प्रतीक्षा में. बस रोककर वे उसे खाने का खाली टिफिन, सब्जी का थैला, कुछ पुड़ियां तथा एक कलेंडर देते हैं. एक पुड़िया लड़के के हाथ से गिर जाती है तो हफीज मियां बस से उतरकर पुड़िया उठाते हैं, एक जोरदार झापड़ मारकर पुड़िया उसके हाथ में देते हैं और पुनः सीट पर चढ़कर इस प्रकार बातें करते हैं मानों फिर कुछ हुआ ही न हो–

"क्यों रे, स्कूल गया था कि नहीं?"

"आज मास्साब ही नहीं आये शहर से. छुट्टी हो गयी."

"घर पर पढ़ा कि कंचे खेल रहा था?"

"पढ़ा."

"कंचे खेलेगा तो स्साले, मार-मारकर कचूमर निकाल दूंगा."

"जी."

"और रात को सात बजे वापस निकलूंगा. अपनी अम्मी को कहना कि फिर से कद्दू बनाकर न धर दे डिब्बे में, नहीं तो घर पर आकर मारूंगा, चाहे बस लेट हो जाये."

"ठीक."

"फिर भाग यहां से. और सड़क पर मत खेलना. बिना ब्रेक की बसें चलाते हैं हरामी लोग आजकल. बच के जाइयो. शाबास...."

कभी अच्छे या खराब मूड में हों, तो बस को चलता छोड़कर हफीज मियां घर चले जाते हैं और आधे-पौन घंटे से पहले नहीं लौटते. जल्दी न उनको है, न ही सवारियों को. जिनको जल्दी रहती है, वे ऐसी बस में बैठते ही नहीं. गावं के समृद्ध, प्रभावशाली लोग या सरकारी अफसर लंबी दूरी की अच्छी बसों में कोशिश करते हैं. यह बस तो गांव के जानवरनुमा, गरीब, लाचार, फटीचर, बेआवाज, निरीह और बेबस लोगों के लिए हैं जो पैसे देकर भी उचित सुविधा पाने के अधिकारी नहीं हैं इस देश में. इनके समय की कोई कीमत नहीं. इनके लिए बनी हैं पैसिंजर बसें. घड़ी-घड़ी रुकतीं. झींकतीं. टूटी-फूटी. कष्टप्रद. मजदूरों, किसानों को गारे की तरह ढोतीं.

बस फिर चल पड़ी है. मोटे चश्मे से जितना दिख सकता है, उतने की सहायता से ही हफीज मियां भगाये ले जा रहे हैं बस को. बोनट और गर्म हो रहा है. यात्री बढ़ते जा रहे हैं. बस के अंदर हवा बंद है और बाहर जैसे एक तूफान उठा है सड़क पर. दम घुट रहा है. सवारियों के मुंह नीले हो रहे हैं. बकरियों के मुंह से फैन निकल रहा है. पसीने में तर-बतर यात्री मानो गुत्थमगुत्था हो रहे हैं. गाड़ी हर पुलिया पर बैठे लोगों को बटोर रही है. इतना हाहाकारी वातावरण, फिर भी लोग हैं कि इस पर भी हंसते, मजाक करते, ही-ही ठी-ठी करते बैठे हैं. चली जा रही है बस. अभी बस उस पुलिया पर रुकी थी, जिस पर मैं बैठा था. हफीज मियां ने मुझे भी झांसी चलने का आमंत्रण दिया था. मैं नहीं गया. हिम्मत नहीं हुई. मैं शर्मिंदा हूं. धूल का एक बवंडर पुलिया के पास उठाकर महबूब ट्रांसपोर्ट का कारवां गुजर गया है. मैं क्षितिज की छाती पर उठते बवंडर को ताकने के अलावा और क्या कर सकता हूं?" □

चलते-चलते

तलाक का मुकदमा चल रहा था. पति ने जज से कहा, "जज साहब, हमारी शादी को दस साल बीत गये हैं. दस साल बाद जाकर संतान हुई सो भी लड़की. मेरा वंश आगे कैसे चलेगा? मुझे इस औरत से तलाक दिलवा दें!" यह सुनकर पत्नी तुनककर बोली, "जज साहब यह आदमी बकवास कर रहा है. इसके घरोसे बैठी रहती तो....यह लड़की भी न होती!" —राजेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंस्पैक्टर फोर्ड के कारनामे

बुडी स्लन

मामला एक रईस के कत्ल का

इंस्पेक्टर फोर्ड दनदनाते हुए स्टडी में दाखिल हुए. पर्श पर क्लिफर्ड ह्वील की देह पड़ी थी. ऐसा लगता था कि क्लिफर्ड पर किसी ने पीठ पीछे मुग्दर से वार किया था. देह जिस हालत में पड़ी थी, उससे संकेत मिलता था कि मकतूल अपनी सोन मछरी को गीत सुनाकर रिझाने की कोशिश कर रहा था कि अचानक उस पर वार हुआ और वह चारों खाने चित हो गया. इस बात के भी प्रमाण मौजूद थे कि कातिल और मकतूल के बीच खासी कशमकश चलती रही थी, जिसमें दो बार फोन आने से खलल पड़ा था– एक बर एक गलत नंबर लग गया था और दूसरी बार मकतूल से यह पूछा गया था कि क्या उसकी नाच सीखने में कोई दिलचस्पी है?

मरने से पहले ह्वील ने दवात में अपनी अंगुलियां डुबोयी थीं और एक

"सबसे पहले यह नीलम एक सुलतान के पास था जिसकी मौत बड़ी रहस्यमय परिस्थितियों में हुई, वह सूप पी रहा था कि कटोरे में से एक हाथ निकला और उसने सुल्तान का गला घोंट दिया. फिर यह नीलम एक अंग्रेज लॉर्ड के कब्जे में आया और एक दिन उसकी बीवी ने देखा कि लाट साहब खिड़की में उलटे उगे पड़े हैं.

संदेश घसीट मारा था : 'चीजें अनमोल कौड़ियों के मोल–हर चीज बिक के रहेगी!'

"आखिरी दम तक व्यापारी!" आइव्स ने कहा, आइव्स ह्वील का सेवक था, जिसके ऊंची एड़ी वाले जूते, अजीब बात थी, उसके कद को दो इंच और भी छोटा बनाये दे रहे थे.

टेरेस का दरवाजा खुला हुआ था और वहां से चलकर पैरों के निशान हॉल से होते हुए एक दराज में पहुंचते थे.

"जब यह वारदात हुई, तब तुम कहां थे, आइव्स?"

"किचन में. बर्तन साफ कर रहा था." अपनी बात के सबूत के तौर पर आइव्स ने अपने बटुए में से कुछ झाग निकालकर दिखा दिये.

"तुमने कोई आवाज सुनी थी?"

"वहां उनके साथ कुछ लोग थे. उनमें बहस चल रही थी कि उनमें सबसे ऊंचे कद का कौन है. मेरा खयाल है मैंने ह्वील साहब को डिडली-डू गाना शुरू करते सुना था और उनके साझेदार मोस्ले चीखकर बोले थे, "माइ गॉड, मैं तो गंजा होता जा रहा हूं!" इसके बाद तो मुझे इतना ही पता है कि वीणा के टंकार-सी हुई और ह्वील साहब का सिर लुढ़ककर लॉन पर आ गिरा. मैंने सुना मोस्ले साहब उन्हें धमकी दे रहे थे. उन्होंने कहा कि अगर ह्वील साहब ने उनके अंगूरों को दोबारा हाथ भी लगाया, तो वे उन्हें बैंक से कर्जा दिलवाने की सिफारिश कतई नहीं करेंगे. मेरा खयाल है, उन्होंने ह्वील साहब का कत्ल कर दिया."

"टेरेस का दरवाजा अंदर से खुलता है या बाहर से?" इंस्पेक्टर फोर्ड ने आइव्स से पूछा.

"बाहर से. क्यों?"

"बिलकुल वैही जैसा मैंने सोचा था. अब मुझे बोध हुआ कि क्लिफर्ड ह्वील की हत्या मोस्ले ने नहीं, तुमने की है."

इंस्पेक्टर फोर्ड ने कैसे जाना?

घर के नक्शे को देखते हुए आइव्स चोरी-छिपे अपने मालिक के पीछे तो पहुंच नहीं सकता था. वह आहिस्ता से उसके सामने ही पहुंच सकता था; उसी क्षण ह्वील साहब ने गाना रोक दिया होगा और अपना मुग्दर आइव्स पर चला दिया होगा–यह एक ऐसी परंपरा थी जिससे वे पहले भी कई बार गुजर चुके थे.

अजीब पहेली

जाहिरा तौर पर, वॉकर ने खुदकुशी की थी. नींद की गोलियों की भारी खुराक. फिर भी इंस्पेक्टर फोर्ड को लगा, कहीं कुछ गड़बड़ है. शक शायद शव की स्थिति से हुआ था. शव टीवी सेट के अंदर मिला था, वॉकर बाहर देख रहा था. फर्श पर संक्षिप्त सा आत्महत्या संबंधी रुक्का पड़ा था. "प्रिय एडना, मेरा ऊनी सूट मुझे खुजली देता है, इसलिए मैंने खुदकुशी करने का फैसला कर लिया है. खयाल रखना कि हमारा बेटा अपने सारे डंड-बैठक पूरे कर ले. अपनी सारी संपत्ति मैं तुम्हारे नाम किये जा रहा हूं सिवा अपने पोर्कचाइ हैट के, जिसे मैं प्लैनिटेरियम को दान कर रहा हूं. मेहरबानी करके मुझे लेकर परेशान मत होना, क्योंकि मृत होना मुझे सुख देता है और मकान का किराया देने से तो मर जाना कहीं बेहतर है. अलविदा, हेनरी. पुनश्चः हो सकता है यह बात इस वक्त नामुनासिक लगे, लेकिन मेरे पास यह मानने के कई कारण हैं कि तुम्हारा भाई एक कोर्निश मुर्गी से इश्क लड़ा रहा है."

एडना वॉकर घबराहट में अपना निचला होंठ काटते हुए बोली, "इसका मतलब क्या है, इंस्पेक्टर?"

इंस्पेक्टर फोर्ड ने बिस्तर के सिरहाने के पास रखी छोटी मेज पर पड़ी नींद की गोलियों वाली शीशी को देखा, "आपके पति कब से अनिद्रा के शिकार थे?"

"बरसों से, मानसिक रोग था उन्हें. उन्हें डर लगा रहता था कि अगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे आंखें मूंदेंगे तो शहर उन पर सफेद रेखा पोत देगा."

"अच्छा-अच्छा. क्या उनसे किसी की दुश्मनी थी?"

"नहीं– ऐसा तो कुछ नहीं था. कुछ बंजारे जरूर थे, जिनका शहर के बाहर एक डेरा था. मेरे पति ने एक बार उनका अपमान जरूर कर दिया था कानों में फूल लगाकर, उनके त्योहार के दिन उनके डेरे में उछल-कूद मचाकर."

इंस्पेक्टर फोर्ड को मेज पर दूध का आधा खाली गिलास नजर आया, गिलास अब भी गरम था. "श्रीमती वॉकर, क्या आपका बेटा कॉलेज गया हुआ है?"

"नहीं– पिछले हफ्ते उसे अशिस्ट बर्ताव के कारण कॉलेज से निकाल दिया गया है. हमें बड़ी हैरानी हुई. उसे उन्होंने एक बौने को टार्टार सास में डुबोते पकड़ लिया था. आइवी लीग स्कूल में यही यह चीज है जिसे वे बर्दास्त नहीं करते."

"और कत्ल ही अकेली ऐसी चीज है जिसे मैं बर्दाश्त नहीं करता. आपके बेटे को हिरासत में लिया जाता है."

इंस्पेक्टर फोर्ड को यह शक क्यों हुआ कि वॉकर के बेटे ने ही उसकी हत्या की थी?

वॉकर के शव की जांच करने पर उसकी जेबों में नकदी मिली थी. आत्महत्या करनेवाला आदमी निश्चित रूप से क्रेडिट कार्ड लेता और हर चीज के लिए सिर्फ दस्तखत कर जाता.

नीलम की चोरी

काच का केस टूटा हुआ था और बेलीनी नीलम गायब था. अजायब-घर में सिर्फ दो ही सूराग नजर आ रहे थे– एक भूरा बाल और एक दर्जन अंगुलियों के निशान– सब के सब गुलाबी. चौकीदार ने बताया कि वह वहां खड़ा था कि काले कपड़े पहने किसी आदमी ने पीछे से आकर एक भाषण के लिए तैयार किये गये नोट्स से उसके सिर पर चोट की. बेहोश होने से पहले, उसका खयाल था कि उसने एक आदमी को यह कहते सुना था कि 'जेरी, अपनी मां को बुलाओ', लेकिन मुमकिन है, उसने कुछ और सुना हो. जाहिरा तौर पर, चोर छत्त के मोखे से अंदर दाखिल हुआ था कि अपने सक्शन जूतों की मदद से किसी इन्सानी मक्खी की तरह दीवार पर चलता नीचे उतरा था. अजायब घर के चौकीदारों ने ऐसे ही मौकों के लिए एक विशाल मक्खीमार अपने पास रखा हुआ था, लेकिन इस बार कोई उन्हें उल्लू बना गया था.

"बेलीनी नीलम क्यों प्राप्त करना चाहेगा कोई?" अजायब घर के क्यूरेटर ने पूछा. "हम नहीं जानते कि यह नीलम शापित है?"

"क्या कहानी है इस शाप की?" इंस्पेक्टर फोर्ड ने तुरंत पूछा.

"सबसे पहले यह नीलम एक सुल्तान के पास था जिसकी मौत बड़ी रहस्यमय परिस्थितियों में हुई, वह सूप पी रहा था कि कटोरे में से एक हाथ निकला और उसने सुल्तान का गला घोंट दिया. फिर यह नीलम एक अंग्रेज लॉर्ड के कब्जे में आया और एक दिन उसकी बीवी ने देखा कि लाट साहब खिड़की में उलटे उगे पड़े हैं. उसके बाद इस रत्न के बारे के बारे में अरसे तक किसी को कोई खबर नहीं थी; फिर बरसों बाद पता चला कि यह टैक्सास के एक करोड़पती के पास है– एक दिन वह अपने दांतों को ब्रश कर रहा था कि अचानक उसे आग लग गयी. यह नीलम हमने पिछले महीने ही खरीदा था, लेकिन लगता है शाप तब भी अपना असर दिखा रहा था, क्योंकि उसे प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद पूरे ट्रस्टी मंडल ने नर्तकों की तरह पांत बनायी और नाचते-नाचते एक पहाड़ी से नीचे कूद पड़े."

"ठीक है," इंस्पेक्टर फोर्ड ने कहा, "यह नीलम दुर्भाग्यशाली भले हो, पर है तो बेशकीमती; और अगर आप उसे दोबारा प्राप्त करना चाहते हों, तो हैंडलमैन डेलिकैटेसन में जाइये और लेनर्ड हैंडलमैन को गिरफ्तार कर लीजिए. नीलम आपको उसकी जेब में मिलेगा."

इंस्पेक्टर फोर्ड ने कैसे जाना कि नीलम-चोर कौन है?

पिछले दिन ही लेनर्ड हैंडलमैन ने किसी से कहा था, "काश, मेरे पास एक बड़ा-सा नीलम होता, तो मैं इस डेलिकैटेसन के व्यवसाय को छोड़कर चला जाता."

एक विकराल दुर्घटना

बर्फ में पड़ी हट्टे-कट्टे पुरुष की लाल-लाल देह के पास खड़ी सिंथिया फ्रीम रोते-रोते कह रही थी, "मैंने अपने पति को शूट कर दिया."

"मगर यह हुआ कैसे?" इंस्पेक्टर फोर्ड ने सीधे अपने मुद्दे पर आते हुए सवाल किया.

"हम शिकार पर निकले थे, क्विसी को शिकार से प्यार था, मुझे भी है. थोड़ी देर के लिए हम एक-दूसरे से अलग हो गये. झाड़ियां बहुत घनी थीं. मैंने सोचा, यह कोई वुडचक (अमरीका में पाया जाने वाला खरगोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा चूहा) है. मैंने गोली चला दी. तब तक बड़ी देर हो चुकी थी. उसकी खाल छीलते वक्त मुझे एहसास हुआ कि हमारी तो शादी हुई थी."

"हूं," बर्फ में बने पैरों के निशानों की ओर देखते हुए इंस्पेक्टर फोर्ड ने कहा, "आपका निशाना तो बहुत अच्छा होना चाहिए. गोली ठीक भवों के बीचोबीच लगी."

"अरे नहीं. मेरी खुशकिस्मती ही रही. इस मामले में मैं एकदम अनाड़ी हूं."

"अच्छा-अच्छा." इंस्पेक्टर फोर्ड ने मृतक के सामान की जांच की. उसकी जेब में एक डोरी मिली, सन 1904 का एक सेब मिला और साथ ही एक निर्देशिका, जिसमें यह बताया गया था कि आप तब क्या करें जब आपकी नींद टूटे और आपको पता चले कि आप किसी आमेर्निंयाई के बगल में सो रहे थे.

"श्रीमती फ्रीम, शिकार के सिलसिले में आपके पति के साथ घटी यह पहली दुर्घटना है?"

"हां, पहली जानलेवा दुर्घटना, हालांकि एक बार कनाडा के रॉकी पहाड़ों में एक बाज उनकी जन्म-सनद ले उड़ा था."

"क्या आपके पति हमेशा टोपी लगाये रहते थे?"

"नहीं— मगर वे इसे हमेशा अपने साथ जरूर रखते थे और जब भी बहस में कोई इन्हें चुनौती देता था, तो वे टोपी निकालकर दिखा देते थे... क्यों?"

"लगता है, वे खब्ती थे."

"हां-थे."

"तो क्या इसीलिए आपने उनकी हत्या की?"

इंस्पेक्टर फोर्ड को कैसे पता चला कि यह दुर्घटना नहीं थी?

क्विसी फ्रीम जैसे अनुभवी शिकारी ने केवल अधोवस्त्रों में हिरन का पीछा कभी न किया होता. दरअसल श्रीमती फ्रीम ने घर में ही, जब उसके पति चम्मचों से खेल रहे थे, उन्हें गोली मार दी थी और उनके शव को जंगल में ले जाकर उसे दुर्घटना साबित करने के खयाल से 'फील्ड एंड स्ट्रीम' की एक प्रति शव के पास डाल दी थी. जल्दबाजी में वह उन्हें कपड़े पहनाना भूल गयीं. क्विसी फ्रीम केवल घुटन्ना पहने चम्मचों से क्यों खेल रहे थे, यह रहस्य अब भी रहस्य बना हुआ है. □

जन लेखक

अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

वैसे पेशे से तो वह सरकारी आफिस में बाबू था लेकिन मूलतः लेखक था. आफिस के बाद का सारा समय वह किसानों, मजदूरों व ठेले, खोमचेवालों सरीखे मेहनत-कश लोगों के बीच गुजारता था. उसे समाज के इस वर्ग से बहुत हमदर्दी थी. उसे ऐसा लगता था कि समाज के इस वर्ग के साथ सर्वाधिक अन्याय हो रहा है और समाज में किसी भी व्यापक परिवर्तन के लिए इस मेहनतकश वर्ग का संगठित होना बहुत आवश्यक है. वह इस वर्ग के लोगों को संगठित करने का काम करता तथा उनकी सामाजिक स्थिति पर लेख, कविताएं व कहानियां आदि लिखा करता. वह निम्न, व निम्न मध्य वर्ग के लोगों के बीच काफी लोकप्रिय हो गया था.

उसे लगा कि सरकारी नौकरी में होने की वजह से वह खुलकर ईमानदारी पूर्वक लेखन नहीं कर पा रहा है. अगर उसके व उसके परिवार के रोटी की कोई निश्चित व्यवस्था हो जाये तो वह इस तरफ से निश्चित होकर लेखन करेगा और मजदूर वर्ग में क्रांति ला देगा. उसने यह बात मजदूर संगठन के लोगों को बतायी। संगठन वालों ने खुशी-खुशी उसके परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और वह नौकरी से त्याग-पत्र देकर लेखन में एकाग्रचित्त होने की कोशिश करने लगा.

कुछ दिनों बाद उसने महसूस किया कि उसकी लेखनी तेज होने की बजाय मंद होती जा रही है. उसे लगा कि रहने की कोई निश्चित व्यवस्था न होने के कारण वह एकाग्रचित्त नहीं हो पा रहा है. अगर इसका समाधान हो जाये तो वह लेखन के प्रति पूर्ण-रूपेण समर्पित हो जायेगा. मजदूर संगठन के लोगों ने संगठन के कार्यालय के पिछले हिस्से में उसके रहने की स्थायी व्यवस्था कर दी.

कुछ दिनों बाद संगठन के लोगों ने अनुभव किया कि उसका लेखन कार्य धीरे-धीरे शिथिल तथा मजदूर वर्ग के जीवन से दूर होता जा रहा है. संगठन की एक बैठक में लोगों ने उससे इसका कारण पूछा. उसने बताया कि वह लिख तो खूब रहा है लेकिन पत्र-पत्रिकाओं वाले उसकी रचनाएं छाप नहीं रहे क्योंकि प्रकाशन जगत में पूंजी-पतियों का वर्चस्व है.

संगठन के लोगों ने उसकी इस बात पर गंभीरता पूर्वक विचार किया और उसके चुने हुए लेखों का एक संकलन संगठन के खर्चे पर प्रकाशित कराने का निर्णय लिया. जल्दी ही उसका निबंध-संग्रह प्रकाशित होकर आ गया. पुस्तक काफी चर्चित हुयी तथा उनका नाम देखते ही देखते सुर्खियों में आ गया. फिर धड़ाधड़ उसे दो-तीन पुरस्कार भी मिल गये. अब कई प्रकाशक उसके आगे पीछे मंडराने लगे हैं, वह कस्बे को छोड़कर राजधानी में रहने लगा है और प्रकाशकों की फरमाइश पर लिखने लगा है. अब उसके निबंधों में पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध की जगह पूंजीवादी तथा समाजवाद में सामंजस्य की बात होती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैदराबाद का जो जिक्र किया

मुज्तबा हुसैन

साहबो, हमें हैदराबाद को छोड़े हुए तेरह बरस बीत गये. अब हम जिंदगी में ठोकरें खाने के लिए हैदराबाद की नहीं बल्कि दिल्ली की सड़कों को जहमत देते हैं. फिर भी साल में दो-तीन मौके ऐसे जरूर आते हैं जब हम हैदराबाद की सड़कों पर फिर से ठोकरें खाने के लिए आ जाते हैं, क्योंकि ठोकरें खाने के लिए इससे बेहतर सड़कें किसी और शहर में सुलभ नहीं हैं. इन तेरह बरसों में हैदराबाद में क्या तब्दीली आयी और क्या नहीं आयी, यह हम नहीं जानते. बस इतना जानते हैं कि तेरह बरस पहले हमारे घर के सामने मेन होल का जो ढक्कन गायब था, वह अभी भी गायब है. हमारे घर के सामने एक पब्लिक नल भी था बल्कि अब भी है. तेरह बरस पहले आम जनता को इस नल की टोंटी बार-बार खोलने में कठिनाई होती थी लिहाजा किसी ने आम लोगों की सुविधा की खातिर इसकी टोंटी गायब कर दी. यह टोंटी अभी तक गायब है. हमारे घर के सामने बीस बरस पहले एक दीवार पर मंजन बनाने वाली एक कंपनी ने अपने मंजन का इश्तिहार मोटे अक्षरों में लिखवाया था. हम यह मंजन तो इस्तेमाल नहीं करते थे मगर अजनबियों को अपने घर का पता समझाने के लिए इस इश्तिहार को जरूर इस्तेमाल करते थे. यह इश्तिहार अब भी वहीं मौजूद है. यद्यपि मंजन बनाने वाली कंपनी कब की मर चुकी है मगर हमारा पता अभी तक जिंदा है. इस मंजन को इस्तेमाल करने वाले भी शायद अब इस दुनिया में जिंदा नहीं हैं. अगर वे मरे नहीं हैं तो उनके दांत जरूर गिर गये होंगे क्योंकि मंजन की खासियत बल्कि खूबी ही ऐसी थी.

यों तो कहने को हैदराबाद ज्यों का त्यों मौजूद है और सुरक्षित है लेकिन इसके बावजूद इधर चंद बरसों से जब भी हम हैदराबाद आते हैं तो हजरत जिगर मुरादाबादी की तरह हमें भी यहां की हर शय में किसी शय की कमी नजर आती है. हैदराबाद वही है. फर्क सिर्फ इतना है कि अब हैदराबाद में हमें खुद हैदराबाद की कमी नजर आती है. तेरह बरस पहले शाम को मुअज्जम जाही मार्केट पर निकलते थे तो हर चंद कदम के बाद कोई मिलने वाला पीछे से हमारे कंधे पर हाथ रख देता था कि– "भैया, कहां चले? कैसे हो? किस हाल में हो?" अब मुअज्जम जाही मार्केट पर निकलते हैं तो उसकी सड़क वही है मगर वह हाथ, जो पीछे से हमारे कंधे पकड़ लेता था, कहीं गायब हो गया है. बहुत हुआ तो इतना होता है कि कोई रिक्शावाला अचानक हमारे कंधे पर हाथ रखकर धक्का दे देता है कि– "अबे, सड़क पर किधर चलता है, फुटपाथ पर चल!" फुटपाथ पर जाते हैं तो कोई बुजुर्ग हमारे कंधे पर हाथ रखकर कहते हैं– "मियां, क्या अंधे हो गये हो? देखते नहीं, फुटपाथ पर पर्देवाली महिलाएं बैठी हैं. सड़क पर जाओ." इधर कई बरसों से हम हैदराबाद में उस मुहब्बत-भरे हाथ की तलाश में हैं जिसकी अचानक गर्मी हमें इस शहर से जोड़ देती थी.

हमें याद है कि पिछले साल मार्च में लंदन की एक सर्द शाम को आक्स फोर्ड स्ट्रीट से गुजर रहे थे कि हूबहू ऐसा ही एक नर्म-गर्म हाथ हमारे कंधे पर रखा गया. पीछे पल्टे बगैर एक लम्हे के लिए सोचते रहे कि एक अजनबी शहर में यह कैसा अजनबी हाथ है जिसका स्पर्श जाना-पहचाना-सा लगता है हमने पीछे मुड़कर देखा तो क्या देखते हैं कि हमारी नौजवानी का दोस्त मजीद अपने बालों में चांदी सजाये खड़ा है. उसने हमसे बेसाख्ता बगलगीर होते हुए कहा, "अरे तुम! तुम आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर कैसे आ गये?"

हमने कहा, "यार, मैं लंदन की आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर कहां हूं. मुझे तो यों लग रहा है जैसे मैं कई बरसों बाद हैदराबाद की आबिद रोड पर खड़ा हूं. मैं तो तुम्हें आबिद रोड पर ढूंढता रहा, और तुम लंदन में क्या कर रहे हो?"

मजीद बोला, "यार, बीस बरस से लंदन में हूं और तुम मुझे अभी तक आबिद रोड पर ढूंढते हो. अजीब अहमक हो! अच्छा, यह बताओ, लंदन में कहां ठहरे हो? अपना पता दो. एक दिन मेरे घर चलो; खालिस हैदराबादी खाना खिलाऊंगा."

हमने कहा, "यार, लंदन आये हुए बीस दिन हो गये. इन बीस दिनों में इतने हैदराबादी खाने खाये हैं कि खुद हैदराबाद में भी पिछले तेरह बरसों में न खाये होंगे. खिलाना ही हो तो अंग्रेजी खाना खिलाओ. मैं तो अंग्रेजी खाना खाने के लिए तरस गया हूं."

मजीद बोला– "यह कैसे हो सकता है कि दो हैदराबादी परदेस में मिलें और बघरे बैंगन बीच में न आयें!"

यार, लंदन आये हुए बीस दिन हो गये. इन बीस दिनों में इतने हैदराबादी खाने खाये हैं कि खुद हैदराबाद में भी पिछले तेरह बरसों में न खाये होंगे. खिलाना ही हो तो अंग्रेजी खाना खिलाओ. मैं तो अंग्रेजी खाना खाने के लिए तरस गया हूं.

सच पूछिये तो पिछले बरस यूरोप, अमरीका और कनाडा के दौर के बाद ही हमें यह एहसास हुआ कि जिस हैदराबाद को हम हैदराबाद की सड़कों पर तलाश करते फिरते हैं वह तो अब लंदन की सड़कों पर मिलता है, पेरिस की गलियों में पाया जाता है, शिकागो के चंचल गौड़ा में मिलना है, टोरेंटो के बंजारा हिल्स में पाया जाता है.

हमें इस बार पिछले साल 10 मार्च की वह शाम याद आ रही है, जब दक्षिणी लंदन के एक हॉल में हमारे दोस्त हबीब हैदराबादी की बेटी की शादी थी. हम शादी के समारोह में पहुंचे तो यों लगा जैसे हम कई बरस बाद हैदराबाद वापस आये हैं. वे सारे हैदराबादी जिन्हें हम हैदराबाद में ढूंढते फिरते थे या वे सारे हैदराबादी जो हैदराबाद में हमसे मुंह छिपाते थे, वे सब के सब वहां मौजूद थे. हैदराबादी शेरवानियों में सुसज्जित इन हैदराबादियों को दोबारा जिंदा-ओ-सलामत पाकर हमें कितनी खुशी हुई, इसका हाल हम क्या बयान करें, हैदराबादी खानों और तरह-तरह की मिली जुली खुशबुओं में बसे हैदराबाद की पुनप्राप्ति हमारे लिए एक अनोखा अनुभव थी.

हमारे एक हैदराबादी दोस्त जिन की रूह के कल्याण के लिए हम पिछले कई बरसों से दुआ करते आ रहे हैं, वह हमें वहां न सिर्फ जिंदा-ओ-सलामत मिले बल्कि उन्होंने अपनी तीसरी अंग्रेजी बीवी का परिचय भी हमसे करवाया. मालूम हुआ, पिछली दो अंग्रेज बीवियों में से एक तो अल्लाह को प्यारी हो गयी और दूसरी किसी और को प्यारी हो गयी!

हबीब हैदराबादी की बेटी की शादी के जिस समारोह का हम जिक्र कर रहे हैं उसकी विशेषता यह थी कि दूल्हा अंग्रेज था और एक हैदराबादी लड़की से शादी करने की कोशिश में मुसलमान हो गया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके असली अंग्रेजी नाम के साथ उसके नये इस्लामी नाम को जोड़ने से उसका नया नाम 'अल्फ्रेड इरफान' बन गया था. शादी इस्लामी तरीके से होती तो कई बात भी थी मगर यहां शादी हैदराबादी रस्मों के अनुसार हो रही थी. दुल्हन के मामा और हमारे दोस्त डाक्टर मुफ्ती तबस्सुम शादी का सेहरा हैदराबाद से खास तौर से बनवाकर ले आये थे. सेहरे को सही-सलामत लाने की कोशिश में मुफ्ती तबस्सुम का सूटकेस सीरियन एयरलाइंस के हवाई जहाज में ही रह गया था और वह जब से लंदन आये थे, एक ही सूट पहनकर शादी की रस्मों में बढ़चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे.

इस हैदराबादी सेहरे की खूबी यह थी कि इसमें से दूल्हे का चेहरा बिल्कुल दिखायी नहीं देता था. हमारे हैदराबादी दूल्हे कभी-कभी सेहरे को अपने चेहरे से हटाकर बारातियों को देख भी लेते हैं मगर अल्फ्रेड इरफान ने हैदराबादी रस्मों का इतना लिहाज रखा कि किसी अपरिचित की नजर अपने चेहरे पर पड़ने नहीं दी.

दूल्हे के अंग्रेज रिश्तेदारों और दोस्तों की सुविधा के लिए हैदराबादी रस्मों की नजाकतों के बारे में सरल अंग्रेजी भाषा में एक तकरीर भी की गयी. अंग्रेजों को बताया गया कि निकाह के बाद जब छुहारे उछाले जायें तो उन्हें लूटा जाये. अंग्रेजों का कॉलोनी राज्य जब से खत्म हुआ है, वे लूटमार के आदी नहीं रहे, मगर छुहारों की लूटमार में उनकी प्राकृतिक क्षमता काम कर गयी. हमने दो बादाम, एक खजूर और मिसरी की एक डली लूटी थी. हम लूट का माल हाथ में लिये बैठे थे कि एक अंग्रेज ने अचानक हमारे हाथ को जबरदस्ती मरोड़कर यह लूट का माल हासिल किया और भीड़ में गायब हो गया.

निकाह के बाद हमारे दोस्त हबीब हैदराबादी की तरफ से डिनर का इंतजाम था. डिनर क्या था, हैदराबादी खानों की नुमाइश थी. तीन तरह की बिरयानी, दही की चटनी, कबाब, बधारे बैंगन, दम का मुर्ग, डबल का मीठा, खूबानियों का मीठा, सेवैया—सब कुछ था. इस डिनर की खूबी यह थी कि यह बिला-लिहाज मजहबी-मिल्लत सबके लिए था. दूल्हे के अंग्रेज रिश्तेदारों की खिदमत में भी यही हैदराबादी खाना पेश किया गया. लिहाजा हमने देखा कि एक अंग्रेज दही की चटनी में डबल का मीठा मिलाकर न सिर्फ खा रहा था बल्कि हैदराबादी पकवान की तारीफ

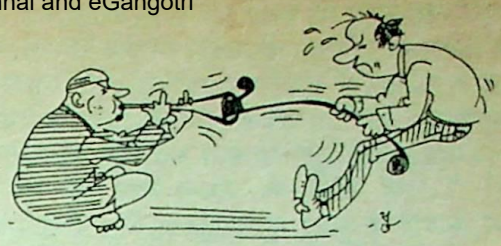

भी कर रहा था. एक अंग्रेज कबाब में बधारे बैंगन मिलाकर खा रहा था. एक और अंग्रेज मुर्ग की टांग की मदद से खूबानियों का मीठा खा रहा था. अंग्रेज जिस तरह हैदराबादी तहजीब को खा रहे थे उसे देखकर हमारे मुंह में पानी भर-भर आ रहा था हमारे दोस्त मुफ्ती तबस्सुम ने कई घंटों की मेहनत के बाद मेहमानों के लिए हैदराबादी पान भी बना रखे थे. ये पान खाने के बाद मेहमानों को पेश किये गये. अंग्रेजों को आसान अंग्रेजी में बताया गया कि अगर पान खाने के बाद मुंह से लाल रंग का थूक निकले तो उससे परेशान होकर डाक्टर के पास जाने की जरूरत नहीं है. अंग्रेज थूकने को बहुत बुरा समझते हैं, लकिन उस दिन बहुत अंग्रेजों को पान खाने के बाद पहली बार पता चला कि थूकना किसको कहते हैं और थूकने के हैदराबादी आदाब क्या हैं. एक अंग्रेज देर से महफिल में आया. उसने लोगों को पान खाते देखा तो खाता ही चला गया. हमने सोचा, यह अंग्रेज तो पान का बहुत शौकीन मालूम होता है. मगर जब उसने आस्तीन चढ़ाकर पान पर पान खाना शुरू किया तो हमने डरते-डरते पूछा— "भैया, खानावाना भी खाया या नहीं?" वह बहुत हैरत के साथ हम से पूछने लगा— "क्या इस खाने के अतिरिक्त और भी कुछ खाने का इंतजाम है?"

गर्ज, लंदन में कयाम के दौरान हमने हैदराबादी तहजीब को जिस तरह परवान चढ़ते देखा उससे हमारा दिल बाग-बाग हो गया. हमारे दोस्त आमिर मूसवी और अब्बास जैदी के यहां हैदराबादी निहारी और बकरे की जितनी जबानें खायीं, उतनी कभी और कहीं नहीं खायीं. आमिर मूसवी ने हमें बताया कि हैदराबादियों के लंदन आने से पहले अंग्रेज अपनी जबान की अहमियत से तो परिचित थे लेकिन बकरे की जबान की अहमियत और उसके फायदों से अनजान थे. अंग्रेजों ने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबान के अतिरिक्त बकरे की जबान इज्जत करना हैदराबादियों से ही सीखा. पहले अंग्रेज कसाई बकरे की जबान को फेंक देता था. मगर अब हैदराबादियों के इंतजार में संभालकर रेफ्रीजिरेटर में रखता है. अगर कोई हैदराबादी नहीं आता तो खुद खा लेता है. माना कि अंग्रेजों ने हमें बहुत कुछ सिखाया, मगर तुम यह बात क्यों नहीं स्वीकार करते कि हैदराबादियों ने उन्हें बकरे की जबान खाने का गुर सिखाया, हैदराबादियों के आने से पहले अंग्रेज दुनिया की एक बड़ी लज्जत से वंचित थे. सच तो यह है कि अब बाज अंग्रेज भी सुबह को खिचड़ी, अडों का आमलेट, अचार और इमली की चटनी, पापड़ वगैरा खाने लगे हैं. लंदन में हमारा कयाम कयामुद्दीन के यहां था और वह लंदन में ठहरे ही इसलिए थे कि यहां रहकर खालिस चीजों की मदद से लजीज हैदराबादी खाने बनाये जा सकते है.

लंदन तो खैर लंदन है, पेरिस में हम चार दिन के कयाम के लिए अपने दोस्त मसरूर खुरशीद के यहां पहुंचे तो उन्होंने जाते ही अपना रेफ्रीजिरेटर खोलकर दिखा दिया कि– "भैया, मैंने इसमें पूरे एक हफ्ते के हैदराबादी खाने पकाकर रख दिये हैं. तुम सिर्फ चार दिन क्यों रहते

हो, एक हफ्ता रहो. यह रहा मिहारी, ये रहे बघारे बैंगन, यह रही दही की चटनी, यह रही खिचड़ी और यह रही..."

हमने अपने और उनके मुंह पर हाथ रखते हुए कहा– "खुदा के लिए अब हैदराबादी खानों का जिक्र न कीजिए. मुझे उबकाई आ रही है. क्या हैदराबादी तहजीब अब सिर्फ पकवान में ही अटक कर रह गयी है!"

बोले, "यह बात है तो लो मुझसे मखदूम के शेर सुनो, अमजद हैदराबादी की रुबाइयां सुनो, शाज तिमकनत के शेर सुनो. मैं तो जरूरत पड़ने पर कंवलप्रसाद कंवल के भी शेर सुना सकता हूं."

मसरूर खुरशीद का घर हैदराबादी अदीबां और शायरों की किताबों से भरा पड़ा है. घर में इतनी किताबें हैं कि उनका पलंग बड़ी मुश्किल से घर में समा पाता है. पेरिस में हमारे पहुंचते ही उन्होंने अपना पलंग हमारे लिए खाली कर दिया था और खुद हैदराबादी अदीबों और शायरों की किताबों पर सो जाते थे हैदराबादी तहजीब उनके लिए सिर्फ खाना ही नहीं बल्कि ओढ़ना-बिछौना भी था.

पेरिस में पहले ही दिन पेरिस की सैर करवाने के लिए हमें भूमिगत ट्रेन मेट्रो से लेकर चले तो बोले–जरा इस स्टेशन का नाम पढ़िये."

हमने रोमन लिपि में फ्रांसीसी नाम को पढ़ने की कोशिश की तो पता चला कि स्टेशन का नाम 'बवासीर' है. हमने कहा– "यह स्टेशन है या बीमारी? पेरिस की सैर का आरंभ ही हम गलत स्टेशन से कर रहे हैं!"

बोले, "कोई फिक्र की बात नहीं. ऐफिल टावर से करीब आप जिस अगले स्टेशन पर उतरेंगे, उससे आपकी परेशानी दूर हो जायेगी."

ऐफिल टावर से करीब स्टेशन पर उतरे तो मसरूर खुरशीद ने कहा, "अब इस स्टेशन का नाम पढ़िये."

हमने नाम पढ़ा तो कुछ इस तरह पढ़ा गया, "बहरे हकीम!"

वह हंसकर बोले, "जब हम बवासीर से अपने हैदराबाद के बहरे हकीम साहब के पास पहुंच रहे हैं. तो इसमें डरना कैसा– जो कूए-यार से निकले तो सूए-दार चले!"

हम यूरोप के हैदराबादियों को निबटाकर अमरीका पहुंचे तो एहसास हुआ कि अमरीका में शायद कोई ऐसा शहर होगा जिसमें हैदराबादी आबाद न हों. हम अपने भाई डाक्टर असगर हुसैन और एक पाकिस्तानी डाक्टर फरहत खां के साथ वाशिंगटन से मियामी तट तक के कई हजार मील के सफर पर खाना हुए तो अमरीका के एक राज्य जॉजिया से गुजरते हुए हमें शाम के वक्त एक छोटा-सा कस्बा दिखाई दिया. शायद तलादीगा जैसा कोई नाम था उसका. पेशावर के डाक्टर फरहत खां को यह शिकायत है कि हैदराबादी न सिर्फ सारे अमरीका में फैले हुए हैं बल्कि उनकी तादाद अमरीका के मूल निवासी रेड-इंडियंस से भी ज्यादा हैं, अगर कहीं से पत्थर भी उठाओ तो उसके नीचे से एक हैदराबादी फर्शीसलाम करता हुआ बरामद होता है. हमने कहा, "इस वक्त हम जिस छोटे-से कस्बे से गुजर रहे हैं उसकी आबादी मुश्किल से डेढ़-दो हजार होगी. इसमें तो कोई हैदराबादी नहीं होगा."

फरहत खां बोले, "लगाइये इसी बात पर शर्त.."

हमारे भाई असगर हुसैन ने बीच में टोककर कहा, "शर्त न लगाइये, आप नुक्सान में रहेंगे. हमें आज की रात इसी कस्बे में रुकना है. मेरा एक हैदराबादी दोस्त डाक्टर असद यहां रहता है."

डाक्टर असद, जो चंचलगौड़ा के रहने वाले हैं, इसी छोटे से कस्बे में एक ऐसी मकान में रहते हैं जो महल से कम नहीं. घर के बाहर तीन-चार मोटरें खड़ी थीं. मिलकर बहुत खुश हुए. मगर उनसे ज्यादा उनके वालिद हमसे मिलकर खुश हुए जो छह महीने से अमरीका के इस छोटे-से कस्बे में रह रहे थे. कहने लगे, "छह महीनों से अपने बेटे के सिवाय किसी और हैदराबादी की सूरत नहीं देखी. मैं तो अमरीका के ऐशो-आराम से तंग आ गया हूं. चंचल गौड़ा बहुत याद आता है. एक-दो महीनों में वापस चला जाऊंगा."

दूसरे दिन सुबह को वह अपने बेटे का मकान और जायदाद तफसील से दिखाने के लिए हमें ले गये. एक टीले पर खड़े होकर उन्होंने कहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू किया, "यह जो पहाड़ आप देख रहे हैं, वे मेरे बेटे के हैं. वे जो बादलों के नीचे जंगल नजर आ रहे हैं वे मेरे बेटे के हैं, यह जो झील बह रही है वह भी मेरे बेटे की है..."

हमने बड़े मियां की बात को काटकर कहा, "और वह जो आसमान पर सूरज चमक रहा है, वह किसका है?"

फौरन अपने कानों पर हाथ रखकर बोले, "नऊज़ बिल्लाह! इस सूरज से मेरे बेटे का कोई संबंध नहीं है. यह किसी और का है!"

शिकागो में हम अपने वैज्ञानिक दोस्त मुजफ्फरुद्दीन फारुकी के मेहमान थे. उनकी बीवी ने पहली ही शाम को अंबाड़े का भाजी खिलाकर हमें आश्चर्यचकित कर दिया. पूछा, "अंबाड़े की भाजी, और वह भी शिकागो में?"

बोलीं, "यह कोहीर से आयी है. इसे बेवक्त जरूरत के लिए सुखाकर रख लिया है."

मुजफ्फरुद्दीन फारुकी बोले, "मैं पिछले चंद बरसों से इस भाजी को अपने किचिन गार्डन में उगाने के तजुर्बे कर रहा हूं. इंशा-अल्लाह दो-एक बरस बाद इस तजुर्बे में कामयाब हो जाऊंगा..."

"और इसी के लिए शायद आपको विज्ञान का नोबल पुरस्कार भी मिल जाये!" हमने हंसकर कहा.

शिकागो में ही हमें अपने पुराने दोस्त अजीजुर्रहमान मिले उन्होंने अपनी आत्म-तुष्टि के लिए ठेठ हैदराबादी गालियों का ठेठ अंग्रेजी में तर्जुमा कर रखा है जिन्हें वह आये दिन वहां के स्पानी ड्राइवरों को पाबंदी से देते रहे हैं. हमने पूछा, "स्पानी ड्राइवर नाराज तो नहीं होते?"

बोले, "सच पूछिये तो हैदराबादी गालियों से इतनी विलक्षणता होती है कि ये जब उर्दू में ही बुरी नहीं मालूम होतीं तो तर्जुमे की छलनी से गुजरने के बाद अंग्रेजी में क्या बुरी मालूम होंगी. मैंने तो बस अपनी आत्म-बुद्धि के लिए इनका तर्जुमा कर रखा है कि चलो, अपने ढंग से गाली दे दी अपने वतन से अपना रिश्ता बनाये रखा."

हमें शिकागो के चंचलगौड़ा में भी जाने का मौका मिला. यहां ज्यादातर वही लोग रहते हैं जो पहले हैदराबाद के चंचलगौड़ा में रहते थे. इसमें और हैदराबाद के चंचलगौड़ा में हमें कोई समानता नजर नहीं आयी. एक साहब ने इसी चंचलगौड़ा में हमें खाने पर बुलाया. हमने उनसे पूछा, "यह कैसा चंचलगौड़ा है जहां भैंसे नहीं बंधी हुई हैं?"

बोले, "भैंसे तो हमारे जहनों में बंधी हुई हैं!"

पूछा, "तो फिर दूध भी वहीं देती होंगी?"

एक आह भरकर बोले, "अब इस जिक्र को जाने दीजिए. खाना शुरू कीजिए. अल्लाह दिया है!"

अचानक इस 'अल्लाह दिया' को सुनकर हमें यकीन आ गया कि हम सचमुच हैदराबाद के चंचलगौड़ा में बैठे हैं.

हमने उन साहब से कहा, "मगर जरा सोचिये कि अल्लाह ने आपको जो कुछ भी दिया है वह हैदराबाद से कितनी दूर लाकर दिया है!"

अपनी आंखों में आंसू लाकर बोले, "आप ठीक कहते हैं. अगर अल्लाह ने इसका दसवां हिस्सा भी हमें हैदराबाद में दिया होता तो चंचलगौड़ा की गलियां छोड़कर यहां क्यों आते!"

हमने बात को और आगे नहीं बढ़ाया, क्योंकि आंसू उनकी पलकों पर छलकने को बेकरार थे.

और हमें यों लगा जैसे हैदराबाद एक शहर नहीं, फैलकर पूरी सृष्टि बन गया है! □

अनुवाद : लक्ष्मी चंद्र गुप्त

दीवार और आदमी

श्यामाकांत दुबे सैलानी

एक बहुत बड़ी दीवार थी. सबने उसे इस शर्त पर बनाया था कि वह उनकी हवा का रास्ता नहीं रोकेगी. बाद में वह मुकर गयी (जैसा कि पृथ्वी का इतिहास चलता है, उसी क्रम में) और वह लोगों की सांस घोंटने लगी थी. सारी रोशनी उसने समेट ली व लोगों के मुंह पकड़ लिये गये, अब वे बातें नहीं कर सकते थे. सभी विवश थे क्योंकि सभी को सिर की चिंता थी. कौन दीवार में सिर मारता?

तभी एक आदमी आगे आया. उसने दीवार में लात मारी. दीवार बज उठी, हिल गयी. दीगर आदमी भी उसके साथ चिल्लाने लगे थे. दीवार ने क्रोध में ठूंस दिया ताकि वे सबको दीवार की नींव का रहस्य न बता सकें.

एक दिन दीवार ने सोचा, वह अभेद्य है, उसे कोई तोड़ नहीं सकता. जनता से हाथ उठवाने वह सड़क पर निकल पड़ी. एक गलती दीवार ने यह कर दी कि नींव का रहस्य जानने वालों को उसने छेड़. उन्होंने नींव का रहस्य जनता को बता दिया व दीवार तोड़ डाली गयी.

किंतु जनता का दुर्भाग्य अभी समाप्त नहीं हुआ था. नाव में सवार सभी व्यक्ति नाव स्वयं खेना चाहते थे. सभी लड़ पड़े व जनता असमंजस में पड़ गयी. दीवार से लड़ाई का अगुवा चिल्लाते-समझाते मर गया. नाव के सवार लड़ते रहे और, अवसर पाकर दीवार ने जनता को फुसला लिया एवं पुनः खड़ी हो गयी.

हवा तो पर्याप्त अब भी नहीं मिलती, रोशनी भी खास जगह ही है और भूखों की संख्या अब भी बढ़ रही है. मगर दीवार को अब कोई डर नहीं क्योंकि वह सतर्क है. दीवार अब मुंह नहीं पकड़ती विभागों पर काबिज हो रही है (क्लीन कर रही है) और आदमी भूखा है पर उसे अर्जुन नहीं शिखण्डी दिखते हैं. दीवार सुरक्षित है क्योंकि उसके पास शिखण्डियों की काफी संख्या है.

फिर भी सबसे बड़ी बात यह है कि दीवार से लड़ाई का अगुवा कुछ असफल अवश्य हुआ हो लेकिन उसने यह आशा अवश्य उत्पन्न कर दी कि दीवार से टकराया जा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्ता, क्रांति और दैंजिडी

यशवंत व्यास

वह भौंक रहा था और लगातार भौंके जा रहा था. इस मुहल्ले से उसके ताल्लुकात सिर्फ नौ महीने से थे. कुछ लोगों का विचार था कि वह गुप्ताजी द्वारा पालित है और कुछ सज्जनों का ख्याल था कि शर्माजी की बिटिया द्वारा प्रदत्त रोटियों से उसका स्नेह सूत्र जुड़ गया था. बिटिया शास्त्रोक्त बिधि से वर पाने वास्ते गुरुवार का व्रत करती थी और इसमें किसी कृष्णवर्णी श्वान को रोटियां खिलाने का आवश्यक विधान था. बहरहाल, इन दिनों, वह कुत्ता इसी मुहल्ले का था और आज अपनी औकात पर उत्तर आया था. बार-बार भौंक रहा था और स्त्रियों पर झपटने की मुद्रा भी अपना रहा था.

कुत्ते आमतौर पर तभी भौंकते पाये जाते हैं जब मुहल्ले से नाजायज ताल्लुकात बनाने का इच्छुक कोई व्यक्ति उधर आये. आज वह अपने ही मुहल्ले वाले/वालियों पर झपट रहा था. उसकी सखी कुछ देर उसे देखती रही, फिर कुछ क्षण वह भी कर्तव्य के अंतर्गत भौंकी, लेकिन अंततः चुप होकर उसके पास पहुंच गयी.

कुतिया क्रांति के फेर में पड़ी थी और कुत्ता उसे पेट भरने के लिए उकसा रहा था. उसे अंदाजा होने लगा कि क्रांति का संबंध भूख से है. और वह टुकड़े टटोलकर पेट भर लेने के चक्कर में क्रांति से महरूम रह जायेगी. उसके कान खड़े हो गये, पूंछ हिलना बंद हो गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देर को भौंकना स्थगित हो गया, जैसे शर्माजी की बिटिया से मिलने आया नौजवान चारदीवारी कूदकर वापस चला गया हो. कुत्ते ने कुतिया को देखा, आश्वस्त हुआ कि उसकी मुद्राओं में शील-तत्व का प्राधान्य बराबर बना हुआ है. हालांकि उसे बुरा लगा था कि वह बीच भौंकने में चली आयी थी. राष्ट्रीय अखंडता का नारा लगाते हुए मंत्री के करीब यदि सेक्रेटरी आ जाये, तो राष्ट्र के अहित का क्षण आ पड़ता है. ऐसे में मंत्री, सेक्रेटरी को देश की अखंडता की खातिर प्रथमतः मंच से और अंततः अपने निजी सार्वजनिक जीवन से भी धक्का मारकर भगा सकता है. लेकिन कुत्ता, मंत्री नहीं था. वह कुतिया को निहारने लगा. कुतिया ने जिज्ञासुभाव से उसे देखा.

'क्योंजी? क्यों भौंक रहे हैं?'

'मैं देख रहा हूं कि बूर्जुआ ताकतें इकट्ठी हो रही हैं. पूंजीवाद के नाखून तेज हो रहे हैं. क्रांति की सख्त जरूरत है.'

कुतिया समझी कि क्रांति कोई नई किस्म की डबलरोटी है, जो बड़ी सख्त होती है. बच्चूमल ने बेकरी का अटाला साफ किया होगा तो कभी धूरे के ढेर में पड़ी होगी. आज उसी की तलब लगी है.

'क्रांति का ही मामला है? चलो पड़ौस के मुहल्ले में जो नई बेकरी खुली है, उसके सामने पड़े ढेर में तलाश लें.'

कुत्ता नाराज हो गया, कुतिया की बुद्धि पर उसे तरस आया. उसे पहले एक जनवादी लेखक के यहां पलने का मौका मिला था. वह लेखक पहले कुत्ते पालने के विरुद्ध था. तीन गोष्ठियों, चारवर्कशापों और सौ से ज्यादा चर्चाओं में वह श्वान विरोध को मार्क्सवाद के समर्थन का पर्याय सिद्ध कर चुका था. कुत्ता पूंजीवाद का प्रतीक है, इस पर वह नियमपूर्वक बहस करता था, चाहे लघुपत्रिका में हो या चर्चा गोष्ठी में.

महानगर के सेठ रामधन कालेज का राजनितिशास्त्र विभाग संभालते हुए भी,जनवादी होने में कामयाब लेखक तमाम श्वान संदर्भों से संघर्ष कर रहा था। सही मायनों में यह अस्मिता का संघर्ष था. संघर्ष का यह लावा टी.वी. पर 'यू एंड योर पेट्स' देखते समय भी उबलता रहता था. वह चाहता था कि ऐसे घोर अश्लील कार्यक्रम बंद कर दिए जाएं, मगर उसका पुत्र मानता न था. लेखक मानव स्वतंत्रता के अधिकारों का कायल था. बच्चा कुत्ते देखना चाहता था, जनवाद के हामी लेखक को आपत्ति नहीं होनी थी, तो नहीं हुई. टी.वी. चलता रहता, दोनों अपने अपने हिसाब से कुत्ते देखते।

बच्चा कुछ समय बाद किसी बोर्डिंग स्कूल में चला गया, ताकि देश के लायक बना रह सके. अब धर पर पत्नी अकेली रह गई. कॉलेज के ट्रस्टियों का जनवाद से कोई लेनदेन नहीं था, इसलिए कॉलेज– परिसर में लेखक को चार घंटे उपस्थित रहना अनिवार्य था. ये मैजूदा सड़ीगली व्यवस्था का दोष था, मगर उसे बदलने के लिए लंबे संघर्ष की जरूरत थी. लेखक, एक तदर्थ प्राध्यापक के तौर पर ऐसे संघर्ष करने के विरुद्ध था. लिहाजा उसने व्यवस्था बदलने का संघर्ष सेवानिवृत्ति तक के लिए स्थगित कर दिया. इधर जनवाद की आग बराबर सुलगी हुई थी, उधर घर पर पत्नी अकेली रहकर असुरक्षित कम, बोर ज्यादा महसूस करती थी.

चूंकि लेखक श्वान विरोधी रहा था, उसने पत्नी की श्वान ले आने की सलाह को पहले त्याग दिया किंतु फिर, कॉफी हाऊस में उसने गहन विचार किया तो पाया कि जनवाद, कुत्ते, कुत्ते को घर लाने की इजाजत देता है, बशर्ते उसके गले में पट्टा हो. जंजीर, मूल्यों के हिसाब से छोटी-बड़ी करके उसे बराबर अपने बस में रखा जा सकता है. बूजुर्आ ताकतों से संघर्ष के लिए, उन्हीं के मंच को उन्हीं के खिलाफ इस्तेमाल कर लेना क्रांतिकारिता का ही एक अंग है. अगर वह एक श्वान को घर लाये, उसे जनवादी के रूप में प्रशिक्षित करे और जब उसकी पूंछ जनवादी तरीके से हिले, कान और नाम जनवाद सुनने तथा सूंघने लगे, तब ऐसे प्रतिबद्ध श्वान को वह शेष श्वानों की टोली में छोड़ दे, तो ये एक काम जनवाद के पक्ष में एक पर्चा पढ़ने से बड़ा होगा. एक जनवादी कुत्ता, कई कुत्तों को जनवादी बनायेगा. इन कुत्तों की पीढ़ियां जनवादी

पैदा होंगी और आहिस्ता-आहिस्ता श्वानों का जनवाद भले घरों की स्त्रियों की गोद से लेकर मर्सिडीज़-मारूति की सीटों तक पहुंच जायेगा. यह क्रांति का सूत्र था और प्राध्यापक लेखक गद्‌गद हो गया. उसने बैरे को टिप दी थी और भागते-हांफते एक पिल्ला लाकर बीवी की गोद में डाल दिया. क्रांति का बीज पड़ गया. लेखक प्रसन्न था, जनवाद की एक वफादार फसल के लहलहाने की बाट जोहता हुआ.

मगर कुत्ता कुछ बड़ा हुआ तो पता चला कि व्यवस्था ने धोखा कर दिया था. लेखक की बीवी ने पहचान लिया कि वह दोगली नस्ल का है. नस्ल पहचानने में, प्रतिबद्ध व्यक्ति की पत्नी पारंगत होती है. लेखक फिर एक ऐसी साजिश का शिकार होते-होते बच गया, जो जन विरोधी तत्वों की बनायी हुई थी. धर्मपत्नियां, मार्क्सवादियों को ऐसे संकट के समय अवश्य बचा लेती है. जनवाद में दोगलेपन को जगह नहीं है. लेखक ने दोगले श्वान को हरावल दस्ते से बाहर कर दिया. वह उसे घर से निकाल, दुनिया में फेंक आया.

व्यवस्था के चक्रव्यूह को भेदने की जो थोड़ी-बहुत अदा उक्त श्वान ने वहां सीखी थी, वह उसके जवान होते-होते ठाटें मारने लगी. क्रांति जैसे जबर्दस्त शब्द उसने लेखक के वहां सीख लिये थे, तभी आज वह अपने सम्मुख बड़ी कुतिया की बुद्धि पर तरस खाने लायक हो पाया था.

कभी वह कुतिया के पीछे नाक सुंसुआता चिचियाता घूमता रहता था, पर क्रांति शब्द ने कुतिया को उसका फासला एहसास करा दिया था. कुत्ता अब चितक था. आज वह अकड़ रहा था और कुतिया क्रांति का अर्थ जानने के लिए घिघिया रही थी.

उसने स्पष्ट किया कि कुत्ता नैतिकता और यथार्थवाद का असली फॉलोअर है. महाभारत में भी वह पांडवों की तरफ था और कौरवों के विरुद्ध. अत्याचारी अनाचार के विरुद्ध उसने अपना लहू ठेठ हिमालय में जाकर ठार कर दिया. कुतिया को लगा, कुत्ता मुहल्ले में ठार होना चाहता है. लेकिन इस संदर्भ में जो उपयुक्त माहौल चाहिए था, वह बन नहीं पाया है. माहौल बनाने की गरज से उसने पूछा:

"क्यों ये धूरे का ढेर हिमालय नहीं लगता?"

कुत्ता दुम सख्त करके बोला, "तुम्हारा दिमाग इस देश के लोगों की तरह ठस और बोदा हो गया है. तुम समझो कि साम्यवाद, विश्वसनीयता, ईमानदारी और क्रांति के लिए भौंका जाना चाहिए. जो इनके विरुद्ध जाये उसके सीने में दांत गड़ा दो."

कुतिया के दिमाग का कार्यक्षेत्र एक नेता की अंगुली काट खाने की जानकारी से अधिक नहीं रहा था. दो वरिष्ठ नेताओं के कुत्ते एक दूसरे पर गुर्रायें और एक का कुत्ता दूसरे को काट ले तो अखबार में हेडलाईन बनती हैं, यह जानकारी उसे नहीं थी. उसे बस इतना पता था कि जिस कुत्ते ने मुहल्ले में पिछले साल सुलभ शौचालय का उद्‌घाटन करने आये एक नेताजी को काट लिया था वह, बाद में पागल हो गया. इस ऐतिहासिक दुर्घटना का सत्य कुतिया पर काबिज हो गया था. तब से काटने का जिक्र आते ही, वह एकदम ठंडी हो जाती, उसकी आंखें ठहर जातीं, कान लटक जाते, फकत पूंछ तेजी से हिलने लगती.

कुतिया की हिलती पूंछ ने सख्त पूंछवाले कुत्ते का मन करूणा से भर दिया. साम्राज्यवादी शिकंजों में फंसी कुतिया की निरीहता पर भर आये गले से उसने कहा, "तुम्हें मालूम है भूख ऐसी चीज है जो साम्यवाद और कुत्ते में फर्क नहीं करती. भूख से वफादारी पैदा होती है. तुम्हारी दुम बताती है कि तुम वफदार हो रही हो. तुम्हें भूख लगी है. मुझे भौंकने दो, तुम धूरे में कुछ बासी रोटी-सब्जी के टुकड़े टटोलो. सामने के सफेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकानवाली ने फेंके हैं, मैं पहले जब भौंक रही थी, तभी मैंने देख लिया था.

कुतिया क्रांति के फेर में पड़ी थी और कुत्ता उसे पेट भरने के लिए उकसा रहा था. उसे अंदाजा होने लगा कि क्रांति का संबंध भूख से है. और वह टुकड़े टटोलकर पेट भर लेने के चक्कर में क्रांति से महरूम रह जायेगा. उसके कान खड़े हो गये, पूंछ हिलना बंद हो गयी. कुत्ते की आंखों में चमक आयी. तुमने भूख को जीत लिया है. अब वफादार बने रहने की कोई जरूरत नहीं है. ये वफा झूठ है, वो क्रांति सत्य है. अब तुम मेरे साथ भौंक सकती हो."

तभी एक सुंदर हृष्टपुष्ट नौजवान कुत्ता अपनी जंजीर पकड़े हुए मालिक के साथ तफरीह करता हुआ गुजरा. कुतिया उसके सौंदर्य पर तनिक आकर्षित हुई, क्रांतिवादी कुत्ता अथड़ गया. उसने हिकारत से देखते हुए कुतिया को समझाया, "वॉचडाग्स है, बंधुआ कहीं के!" ऐसा कहकर मन ही मन उसने ऐसी संतुष्टि महसूस की जैसे उस नौजवान कुत्ते की खूबसूरती मिट्टी में मिल गयी हो. कुतिया उससे सहमत दिखी. कुत्ते ने जमीन पर पंजा मारकर कुछ मिट्टी खोद दी. फिर गुरगुराया. कुतिया ने उसका अनुसरण किया. दोनों के दोनों गुरगुराने लगे.

तभी प्रोफेसर आर्य का कुत्ता सत्यप्रकाश बंद गेट के ऊपर पैर रखकर खड़ा हुआ और थूथन ऊंचा करके रोने लगा. कुत्ता पर्याप्त झबरीला था और भारतीय संस्कृति का पोषक होकर प्रोफेसर बना. सिर पर चंदन का ताजा तिलक लगवाये हुए था. कुमारी आर्य उसे 'प्लीज डियर, स्टॉप इट!' कहकर रोने से निरंतर मना करने लगी. अंदर से आवाज आयी, "व्हाई सत्यप्रकाश इज वीपिंग? – ये अपशुकन होता है. प्लीज स्टॉप हर."

क्रांतिवादी कुत्ते ने साथी कुतिया को देखा, "प्रतिक्रियावादी है! रोता है!! क्रांति करने के लिए गेट तोड़कर धूरे के पास आना पड़ता है जो घर की रोटियां तोड़ता है, वो घर का गेट नहीं तोड़ सकता!"

कुतिया ने जमीन पर एक और पंजा मार दिया. उसे नये शब्द समझ नहीं आते थे, पर इतना जरूर समझ में आ गया था कि क्रांति कोई निहायत जरूरी किस्म की चीज है. सत्यप्रकाश को गोद में उठाकर कुमारी आर्य अंदर ले गयी और कुतिया ने धरती में दूसरा पंजा मार दिया.

कुत्ता खुश हो गया, उसे कुतिया पर फख्र हो आया. कुछ मामलों में कुत्ते फख्र जल्दी करने लगते हैं, कभी सरकारी दूधरोटी पर या कभी उस गोद पर जिसमें वे अच्छी तरह नहीं बैठ सकते थे. कुत्ता जानता था कि बड़े लोगों की गोद पाने के लिए कुत्तापन एक आवश्यक विशेषता है. कुतिया के ताजा कर्म से उसे लगा जैसे मुहल्ले से राजधानी तक कि गोदें कुत्तों से भर गयी हैं और नतीजे में हर गोदवाला बड़ा आदमी बन गया है.

हुलककर कुत्ते ने कहा, "ये देश बदलने वाला है. जनयुग आयेगा, तब कोई आदमी छोटा न रहेगा. हम चोरों और बेईमानों पर भौंकनेवाले, सदा से स्वामी के चौकीदार, अब नये जमाने के आगमन की राह बना डालेंगे.

कुतिया को लगा, कुत्ता कुत्तापन भूलकर कुछ और हो गया है. वह कुछ पास खिसक आयी. "फिर हमें घूसे में डबलरोटी ढूंढ़ने की जरूरत न होगी? रोटियां आसानी मिल जाया करेंगी? फिर ही चौकीदारी क्यों करेंगे? भूख खत्म, भौंकना खत्म."

दोनों की दुम सख्त होकर उठ गयी. इधर उधर घूमते हुए कुछ कुत्ते ने-और कुंकुआते पिल्ले भी उनके करीब इकट्ठे हो गये. कुत्ते ने पिछले पैर से जमीन खोदी और एक परिवर्तनकारी भाषण का मूड बना लिया. जिन दोनों वह लेखक के घर में रह रहा था, उन दिनों वह क्रांतिकारी साहित्य की एक जबर्दस्त अनियतकालीन लगुपत्रिका के रैपर पर अक्सर बिस्किट खा लिया करता था. शब्दों के सुसंस्कार जाग उठे: "दोस्तो, अब पूंजीवादी टुकड़े खाकर पेट भरने का समय नहीं रहा. कमीशन, शोषण, बंधुआ, स्वामी भक्ति जैसे लफ्जों में आग लगा दो."

पिल्लों ने कुंकुआना बंद कर दिया. श्रोता श्वानों के रोम-रोम खड़े हो गये. उन्हें विषय पता नहीं था, पर प्रस्तुतिकरण के चमत्कार ने उन्हें जकड़ लिया था. क्रांतिकारी कुत्ता समझा कि सब प्रतिबद्ध हो चले हैं. वह विषय निगल गया, सिर्फ आवाज उगलने लगा.

पहले सिर्फ– क्रांति! क्रांति!! भौं-भौं!!!

फिर– क्रांति! भौं-भौं!!

– क्रान्! भौं-भौं!!

– क्रा! भौं-भौं!!

– क्रा! भौं-भौं!!

– क! भौं-भौं!!

– भौं-भौं!!! भौं-भौं!!!

... और सब श्वान सबके सब प्रतिबद्ध, चिल्लाने लगे भौं-भों! पूरा मोहल्ला गूंज उठा– भौं-भौं! माहौल भौंकने लगा भौं-भौं! प्रोफेसर आर्य, मुहल्ला सुधार समिति के चेयरमेन, का फोन ठीक काम कर रहा था. व्यवस्था, कुछ मौकों पर अपनी साजिश के लिए फोन जैसी चीजों का तुरंत इस्तेमाल कर लेती हैं. प्रोफेसर ने फोन का इस्तेमाल कर लिया. नगर निगम ने षड्यंत्र को अपना संपूर्ण सहयोग दिया. व्यवस्था की यही विशेषता होती है कि आग लगने के बाद फायर ब्रिगेड तुरंत नहीं आ सकता, पर क्रांति होने के वक्त कुत्तागाडी विद्युत गति से आती है. वह आ गयी. कुत्ते और तेजी से भौंकने लगे. शर्माजी की बिटिया को लगा, अगले गुरुवार, वह कृष्णवर्णी श्वान को वर-व्रत के अंतर्गत रोटी नहीं खिला पायेगी. शादी की शास्त्रीय संभावना पर नगर निगम कर्मियों के गंडासे और कैंचियां/दरोगाओं-जमादारों की वर्दियायां छाने लगी. वह मुंडेर पर उदास हो गयी. उदासी मुंडेर पर फैल गयी और चौराहे पर क्रांति का अगुवा ज्यों का त्यों भौंकने पर प्रतिबद्ध था.

अब वे ऐसे भौंक रहे थे, गोया विरोध में नारे लगा रहे हों. एक एक करके कई प्रतिबद्ध गर्दनें व्यवस्था के हाथों ने दबोच ली. और देखते-देखते पूरी कुत्तागाड़ी में क्रांतिकारी श्वानों का समूह समा गया. कुछ पिल्ले अलबत्ता इधर-उधर भाग खड़े हुए, जिन्हें नेता श्वान ने क्रांति-बीज की सुरक्षा की जरूरत के रूप में लिया. कुत्तागाड़ी चल पड़ी. उस पर सवार था कुत्ता, कुतिया..... ढेर सारे कुत्ते ढेर सारी कुतियां..... सब भौंक रहे थे..... सबके सब कह रहे थे - भौं - भौं.

कुमारी आर्य ने अपने कुत्ते सत्यप्रकाश को फिर डांटा, "प्लीज डियर, स्टॉप इट!" सत्यप्रकाश ने कुमारी आर्य को गोद में ही, मुंह आसमान की ओर किया और रोने लगा... ऊं-ऊं ऊं-ऊं! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिकेट्रिया

राशिद आकाश

क्रिकेट्रिया रोग भारत में ही नहीं, पाकिस्तान में भी काफी गुल खिला रहा है. पेश हैं पाकिस्तानी व्यंग्यकार द्वारा वहां के क्रिकेट्रिया के हाल

जुम्मा का दिन है. मस्जिद से अजान की ऊंची आवाज घर-घर सुनाई पड़ रही है. लेकिन हर घर में चौके-छक्के की ताल पर लोग नाच रहे हैं. छोटी रेहाना चटखारे लेकर आती है, "हाय आपा, कितनी मजेदार चटनी है. किसने बनायी है यह चटनी?"

आपा रशीदा दीदे फाड़कर टी.वी. देखने में लगी हैं. वह चटनी को सेंचुरी समझती हुई खुशी से चिल्लाती हैं, "अरे छोटी, सेंचुरी और कौन बनायेगा? अपने इमरान ने बनायी है."

अम्मी कहती हैं, "बेटे वाजिद, नमाज पढ़ आओ, वरना जुम्मा निकल जायेगा." वाजिद मियां जवाब देते हैं, "बस अम्मी, ये आखिरी ओवर देख लूं, फिर जाता हूं" अम्मी के बार-बार कहने पर वाजिद मियां झुंझलाये अंदाज में कहते हैं, "जाने दीजिए अम्मी, अगले जुम्मा पढ़ लूंगा. इस बार जबर्दस्त मैच है." हैरान-सी अम्मी सोचती हैं कि वाजिद, जो बिला नागा नमाज पढ़ता था, उसे यह क्या हो गया है? हमसे पूछें तो उन्हें बतायें कि वाजिद को क्रिकेट्रिया हो गया है. खुदा दुश्मन को भी यह मर्ज न लगाये.

खुदा झूठ न बुलवाये, हमने खुद अपनी गुनहगार आंखों से इस मर्ज में मुब्तला एक मरीज को खयाली ख्वाब में अंपायर से लड़ते-झगड़ते देखा. हमें उस बेचारे की हालत पर बहुत तरस आया था. हमने उसके लिए दुआ की, "या खुदा, ये मेरा दोस्त अब तेरी पनाह में है. तू इसे बचा ले. इस मर्ज को उसके दिमाग से ऐसे निकाल दे जैसे मक्खन में से बाल निकलता है या हमारी कैंटीन में से मक्खियां निकलती हैं."

आमतौर पर जब असर (तीसरे पहर की नामाज) का वक्त होता है, ठीक उसी वक्त मैच बहुत नाजुक मोड़ पर होता है. ऐसी हालत में भला कौन दीवाना क्रिकेट मैच छोड़कर नमाज पढ़ने जायेगा? किसी भी दफ्तर में चले जायें. आपकी बात कोई नहीं सुनेगा. सभी लोग ट्रांजिस्टर से कान लगाये बैठे मिलेंगे. अगर कोई मुसीबत का मारा उन्हें 'डिस्टर्ब' करता है, तो जी भर गालियां सुनेगा. उसे थक-हारकर वापस निकलना पड़ेगा. इसलिए खुदा के लिए जब क्रिकेट मैच हो रहा हो, तो गलती से भी अपने काम के लिए किसी दफ्तर में मत जाइए—सरकारी दफ्तर में तो हर्गिज-हर्गिज नहीं.

आप किसी थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने चले जाइए. आपकी रिपोर्ट उस वक्त तक नहीं लिखी जाएगी, जब तक कि इमरान खां, या जावेद मियांदाद छक्का नहीं लगाते. अगर ऊपरवाले अफसर के पास ट्रांजिस्टर नहीं होगा तो आपकी शिकायत सुनने के बजाय सबसे पहले पूछेंगे, "अजी छोड़िए शिकायत-विकायत को, झगड़े-झपट तो रोज ही होते हैं. यह बताइए कि स्कोर कितना हुआ?"

कालेज-स्कूल की तो पूछें ही नहीं, हर तालिबइल्म (छात्र) की जुबान पर कोर्स की किताबों में पढ़े गये सबक से बजाय यही होता है-"यार देखा, इमरान खां ने कितनी जबर्दस्त बैटिंग की. कमाल कर दिया उसने." दूसरा कहता है, "वैसे सलीम जाफर की बॉलिंग भी देखने लायक थी." तीसरा कहता है, "वैसे जावेद मियांदाद ने भी अच्छी बैटिंग की." क्लास में आते ही टेस्ट हो तो नतीजा सिफर (शून्य) यानी इमरान खां की गेंद जैसा निकलता है.

एक घर का किस्सा-मैच बहुत ही सनसनीखेज मोड़ से गुजर रहा था. तालियों और नारों का शोर बुलंद हुआ. एक लड़की बौखलायी-सी चाय की ट्रे हाथ में पकड़े ड्राइंगरूम में घुसी और बेताबी से पूछने लगी, "नजमा, क्या हुआ?" नजमा ने खुशी से चिल्लाते हुए कहा, "अरे, हमारे मियां ने छक्का मारा है. हमारे मियां ने यानी जावेद मियांदाद ने. सच, चाय की ट्रे उसके हाथों से छूट पड़ी, हमारा मियां है ही ऐसा यार". (आमतौर पर मियां का मतलब शौहर होता है.)

शायद डेढ़ सौ साल पहले भी यही कुछ होता होगा, जो आजकल होता है. लेकिन जैसा कि मीर ने कहा है कि जमाने की कैंची इस तरह कतरती है कि कतरनें तक नहीं छोड़ती है. आज हम अपनी कौम को, अपने वतन को देखते हैं तो दिल से एक आह निकल आती है. आज जहां देखो, क्रिकेट ही क्रिकेट है. बड़ी-बड़ी शर्तें लगायी जाती हैं कि फलां टीम जीत गयी तो यह सारी रकम तेरी वरना मेरी. इस तेरी-मेरी में अक्सर सिर कट जाते हैं. धमाके होते हैं. पुलिस-कचहरी तक की नौबत आ जाती है. अरे मियां, यह तो शैतानी खेल है, बड़े बूढ़े कहते हैं.

क्रिकेट के बारे में हम दानिशवरों (बुद्धिजीवियों) के पास गये सन्यासियों से पूछा, बुजुर्गों से पता किया. खुद विचारों के समुद्र में गोते लगाये. जब बाहर निकले तो जवाब मिला कि क्रिकेट्रिया एक खतरनाक मर्ज है. इससे बचो. एक बार यह मर्ज किसी से चिपट जाये तो वह न दीन का रहता है, न दुनिया का.

शायद आपको मालूम होगा कि हिटलर ने क्रिकेट मैच देखने के लिए जर्मनी में तीन दिन की छुट्टी दी थी. मैच ड्रा हुआ तो उसने सारे क्रिकेटरों की छुट्टी करा दी थी. उसके बाद जर्मनी में क्रिकेट खेला ही नहीं गया. आज अमरीका, रूस, जापान और जर्मनी में क्रिकेट नहीं होता है, इसीलिए वे सुपर पावर बने बैठे हैं.

हमारे यहां आज अब्बाजी बेटे को पढ़ाई पर ध्यान देने के बजाय क्रिकेट खेलने के लिए उकसाते हैं. उन्हें मालूम है कि सोलह साल स्कूल-कालेज में झख मारने के बाद बच्चे को क्लर्क ही बनना है. लेकिन अगर किस्मत ने साथ दिया तो क्रिकेट खेलकर बेटा खानदान की सात पुश्तों की तकदीर बदल देगा. बस, एक छक्का मारने की देर है, घर में दौलत का ढेर लग जायेगा. कार, बंगला अलग से होगा. पढ़ने से सिवा दाल-रोटी के और कुछ नहीं मिलता है. एक वक्त ऐसा आयेगा जब मुल्क में, हर तरफ क्रिकेटर ही क्रिकेटर नजर आयेंगे. कौम को साइंस दां, इंजिनियर, डॉक्टर मिले न मिले, क्रिकेटर जरूर मिलेगा. □

■ अनुवाद : शीरोज अशरफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा मुख्य अतिथि हो जाना

लतीफ घोंघी

आजादी के बाद देश की विकासशील रंमपराओं में मुख्य-अतिथि बनाने वाली परंपरा मुझे सबसे अच्छी लगती है.

सुबह कालेज के कुछ छात्र आये. बोले, "कालेज में हिंदी साहित्य परिषद का उद्घाटन हमें करवाना है और हम चाहते हैं कि आप इस समारोह के मुख्य-अतिथि बनना स्वीकार करें."

मेरी इच्छा तो हुई कि छात्रों के चरण पकड़ लूं और कहूं, "अच्छा किया तुम लोगों ने. आखिर देश को आगे बढ़ाने का भार तुम्हारे ही कंधों पर है. सच कहता हूं, मैं तो कई दिनों से मुख्य-अतिथि बनने के लिए फड़फड़ा रहा था.. जिन लोगों को हाथ धोने की तमीज भी नहीं है वे पिछले चालीस सालों में कई बार मुख्य-अतिथि बन गये लेकिन मेरा नंबर आज तक नहीं आया. आज मुझे पता चला कि अपने यहां वास्तव में छात्र-शक्ति महान है. उतारो अपने जूते और मुझे बताओ कि तुम्हारे चरण कहां हैं?"

लेकिन मैंने ऐसा नहीं कहा. ऐसा कहना मुख्य-अतिथि की गरिमा के विरुद्ध है. मैंने कहा, "मैं इस लायक नहीं हूं.. नगर में और भी बुद्धिमान लोग हैं, जो मुझसे वरिष्ठ हैं."

वे बोले, "पिछले कई सालों से हम बुद्धिमानों को ही मुख्य-अतिथि बनाते आये हैं लेकिन इस बार आपके पास आये हैं. आशा है आप छात्र-जगत को निराश नहीं करेंगे."

वैसे उन्हें निराश करने की इच्छा भी नहीं थी मेरी. लेकिन डर मुझे इस बात का था कि छात्रों के इस गुट के जाने के बाद दूसरा गुट आयेगा और कहेगा, "हम स्टूडेंट पेनलवाले हैं और इस समारोह का विरोध कर रहे हैं इसलिए आपसे निवेदन है कि आप मुख्यअतिथि बनना स्वीकार न करें... आप यदि मुख्य-अतिथि बने तो हमें आपके हाथ-पैर तोड़ने के लिए विवश होना पड़ेगा... यह निर्णय हमने स्टूडेंट पेनल की कार्यकारिणी समिति की बैठक में सर्वसम्मति से पारित किया है. आशा है आप छात्र-जगत के विपक्ष की भावनाओं का आदर करते हुए हमें निराश नहीं करेंगे."

उनके जाने के दो घंटे बाद भी छात्रों का दूसरा गुट नहीं आया तब मैं समझ गया कि अपने कालेज में विपक्ष की भूमिका उतनी ठोस नहीं है. जितनी मैं सोच रहा था. अलबत्ता, हिंदी विभाग वाले डा. त्रिपाठी जरूर आये. मैं समझ गया कि वे बताने आये होंगे कि उन्होंने मुझे मुख्यअतिथि बनवा दिया वर्ना मैं हिंदी साहित्य में इसी तरह सड़ जाता और पूरी उम्र एक पुष्पहार के लिए तरस जाता.

मैंने उन्हें आदर के साथ बिठाया. हिंदीवाले थे और हिंदी के लेखकों की सामाजिक प्रतिष्ठा का आकलन उन्हें था. उन्होंने जेब से बीड़ी निकाली तो मैंने कहा, "मैं सिगरेट मंगवाये देता हूं.. आपने हिंदी की इतनी सेवा की है कि आपका बीड़ी पीना मुझे अच्छा नहीं लगेगा."

वे मुस्कराये. निश्चितरूप से कुटिल मुस्कान नहीं थी जो हिंदी वालों के चेहरों पर होती है. डा. त्रिपाठी की यही विशेषता है. हर परिस्थिति में वे अच्छा मुस्करा लेते हैं. कुछ दिनों तक कविताएं लिखीं, मुस्कराते रहे. फिर हास्य-व्यंग्य भी लिखा, मुस्कराते रहे. फिर आलोचना की ओर भी मुड़े. मुस्कराते रहे. मुस्कराते-मुस्कराते ही उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को निपटा दिया. शायद इस बार उनके मन में विचार आया हो कि अब क्षेत्रीय साहित्यकारों को भी प्रोत्साहन देने का काम निपटा ही देना चाहिए. एक-एक कर बना दो सालों को मुख्यअतिथि ताकि लोग यह न कहें कि हिंदी विभाग में रहकर भी उन्होंने साहित्य से जुड़े लोगों को सम्मान नहीं दिलवाया.

वे बोले, "रहने दीजिये.. सिगरेट से खांसी आती है."

मैंने भी सिगरेट मंगवाने का विचार यह सोचकर त्याग दिया कि शायद इसके पीछे भी उनकी कोई साहित्यिक दृष्टि काम कर रही हो.

मुख्यअतिथि बनने का यह मेरा पहला अवसर था इसलिए मन में बड़ी जिज्ञासाएं थीं. मैं कोई पेशेवर मुख्य-अतिथि तो था नहीं कि चुपचाप बैठा रहता. मैंने त्रिपाठी जी से पूछा, "क्यों हो गुरु, आप तो साहित्य से जुड़े हो.. मुझे ये तो बताओ कि कोई ऐसी किताब नहीं मिलेगी जिसमें सफल मुख्य-अतिथि बनने पर कुछ विस्तार पूर्वक लिखा गया हो? मेरा मतलब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि मुख्य-अतिथि को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए. कार्यक्रम के पहले और कार्यक्रम के बाद लोगों से किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, किस अवसर पर क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए आदि..."

त्रिपाठी जी फिर मुस्कराये.

शायद वे सोच रहे थे कि मैं उन पर व्यंग्य कर रहा हूं. यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि कुछ साल पहले त्रिपाठीजी ने हिंदी साहित्य में अभिनंदन-पत्र लिखने और मुख्य-अतिथियों के भाषण लिखने का काम भी प्रारंभ किया था. इस तरह की साहित्य सेवा बिरले लोग ही करते हैं. लेकिन इसके पीछे व्यंग्य करने की भावना आज मेरी नहीं थी. आज यदि वे मुझे भाषण लिखकर दे देते तो मैं समारोह में मुख्य अतिथि की तरह उसे इस तरह पढ़ देता जैसे पूरा भाषण मैंने ही लिखा है. जब खुद पर आती है तब व्यंग्य का मतलब समझ में आता है.

इस बीच बीड़ी बुझ गयी थी. त्रिपाठी जी ने जेब से माचिस निकाली. तीलियां समाप्त हो गयी थीं. वे बोले, "बीड़ी के साथ यही तो दिक्कत है.. बार-बार बुझ जाती है."

मुझे यह कहने में ज़रा संकोच हो रहा था कि मैं माचिस ला देता हूं. यह इसलिए कि शायद त्रिपाठी जी अपनी बीड़ी सुलगाने के लिए दूसरों की तीलियां पसंद न करें. हिंदीवाला वैसे भी बहुत संवेदनशील होता है. संवेदना के अलावा होता भी क्या है हिंदी वाले के पास? मुझे अपने एक आंचलिक कवि मित्र की याद हो आयी जो जेब में अपनी बीड़ियां तो रखते थे लेकिन तीलियां हमेशा दूसरों की ही प्रयोग करते थे. इसके पीछे उनका दर्शन क्या था, यह मेरी समझ में नहीं आया लेकिन इसी सृजनात्मक प्रवृत्ति के कारण वे बाद में आंचलिक साहित्य में स्थापित भी हो गये.

त्रिपाठी जी खुद ही बोले, "माचिस मंगवाइए."

मुझे अच्छा लगा कि उन्होंने मुझे कम से कम इस योग्य तो समझा. यदि भविष्य में कभी अपनी आत्मकथा लिखने का मूड बना तो इस बात का उल्लेख मैं अपनी आत्मकथा में जरूर करूंगा.

त्रिपाठी जी बोले, "लड़के मझसे सलाह लेने आये थे.. हिंदी परिषद का गठन हुआ है कालेज मे. जब गठन हुआ है तो उद्घाटन होना ही चाहिए. लड़कों ने कहा कि किसी नेता को मुख्य अतिथि बना देते हैं उद्घाटन भी करेगा और साहित्य परिषद को हजार-बारह सौ का अनुदान देने की भी घोषणा करेगा." मैं डर गया: मुझे लगा कि कहीं मेरा मुख्य आतिथ्य खतरे में न पड़ जाये.

तब तक छोटी बच्ची किचन से माचिस ले आयी थी. त्रिपाठी जी ने पहले माचिस को उलट-पलटकर देखा. इसे हिंदी साहित्य में आब्ज़रवेशन कहते हैं. फिर उन्होंने एक तीली निकाली. वे थोड़ी देर तक तीली को भी देखते रहे. तीली की बनावट, तीली की लंबाई, उस पर लगे बारूद की क्वालिटी. कुछ सोचकर उन्होंने तीली सुलगायी नहीं. बोले, " लेकिन मैंने कहा कि साहित्य परिषद का उद्घाटन नेता के बदले कोई साहित्यकार करे तो कार्यक्रम गरिमामय लगेगा और हिंदी साहित्य भी सार्थक होगा. यही सोचकर मैंने आपका नाम सुझा दिया. आप इतने दिनों से लिख रहे हैं.. आपको यह सम्मान मिलना ही चाहिए. इसे मैंने नैतिक जिम्मेदारी के रूप में लिया है.. आप अन्यथा न लें."

मैं भला क्या अन्यथा लेता. त्रिपाठीजी की नैतिक जिम्मेदारियां मैं कोई पहली बार तो नहीं देख रहा था. वे तो पिछले कई सालों से साहित्य में नैतिक जिम्मेदारियां निभाये चले जा रहे थे. कविता की जिम्मेदारी, व्यंग्य की जिम्मेदारी, आलोचना की जिम्मेदारी. सभी जिम्मेदारियां उन्होंने निपटा दी थीं. मैंने उनसे परिषद के लिए अनुदान दिये जाने की बात पर इसलिए भी कुछ कहना उचित नहीं समझा कि वे इस मामले में खुद भी समझदार हैं और देश के कई लेखकों के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हैं. और मेरे व्यक्तित्व से तो वे अच्छी तरह इसलिए भी परिचित हैं कि मैंने अपने इस अल्प जीवनकाल में केवल लेने में ही अपनी आस्था रखी है, कुछ देने में नहीं.

आज वे मुझसे लगभग वैसा ही व्यवहार कर रहे थे जैसा एक मुख्य अतिथि को दूसरे मुख्य अतिथि के साथ करना चाहिए, वैसे वे शालीन भाषा के पक्षधर कभी नहीं रहे लेकिन आज उनकी वाणी में शालीनता थी, बोलचाल की भाषा में विदेशी संदर्भ थे.

त्रिपाठीजी के जाने के बाद एक मित्र आ गये. मुझे पहली बार इतना गंभीर देखकर वे सकते में आ गये कि कहीं कोई ग़मी तो नहीं हो गयी घर में. बहुत साहसकर उन्होंने पूछा, "क्या बात है? इतना गंभीर पहले मैंने आपको कभी नहीं देखा."

मैंने कहा, "एक कार्यक्रम में मुख्यअतिथि बना दिया है लोगों ने मुझे. मैं तो मना करता रहा लेकिन वे माने ही नहीं."

मैंने यह बात इतनी गंभीरता से कही थी कि मित्र को भी लगा कि मैं सच बात ही कह रहा हूं, जरूर मैंने कई बार मना किया होगा.

मित्र बोले, "कल मेरे पास निराश्रित संघ के सचिव आये थे. कहने लगे कि उनके संघ ने भिखमंगों के मौलिक अधिकारों पर एक चर्चा गोष्ठी का आयोजन किया है और वे चाहते हैं कि मैं इस गोष्ठी में मुख्य-अतिथि की आसंदी स्वीकार करूं. मैं भी कई बार मना करता रहा लेकिन वे नहीं माने. कहने लगे कि इस गोष्ठी के लिए मुझसे योग्य मुख्य अतिथि कोई नहीं हो सकता."

वे थोड़ी देर के लिए चुप हो गये. गंभीर भी लगने लगे थे. मैं समझ गया कि वे मुझे यही बताने आये हैं कि मैं इस मुगालते में न रहूं कि वे मुख्य-अतिथि बनने योग्य नहीं हैं. समाज में यह सम्मान उन्हें बराबर मिल रहा है. पिछले दिनों एक आयोजन में हम दोनों आमंत्रित थे.आयोजन के बाद स्वल्पाहार भी था. जिस गरिमामय ढंग से उन्होंने स्वल्पाहार में भाग लिया था उसे यदि आप देखते तो उनके बारे में यह राय निश्चित रूप से बना लेते कि यह व्यक्ति किसी निराश्रित संघ के आयोजन के मुख्य-अतिथि के योग्य ही है.

वे बोले, "आपके पास इसलिए आया था कि भिखमंगों पर कोई साहित्य हो तो मुझे दीजिए. मैं चाहता हूं कि कुछ अध्ययन कर लूं.. कोई दूसरा आयोजन होता तो यूं ही निपट जाता.. कुछ भी बोल देता लेकिन मौलिक अधिकारों की बात है तो मुख्य-अतिथि के रूप में मुझे कुछ तैयारी कर ही लेनी चाहिए. है आपके पास कोई किताब?"

मैंने कहा, "कोई ऐसी किताब तो मेरे पास नहीं है."

वे बोले, "भिखमंगों पर अच्छा साहित्य कहां मिलेगा? आप कुछ सलाह दीजिये. मेरे पास समय बहुत कम है. मुख्य-अतिथि की हैसियत से हो सकता है इस परिचर्चा गोष्ठी को मुझे ही 'कनक्लूड' करना पड़े. वैसे मैं तो हमेशा विदेशी साहित्य ही पढ़ने में रूचि रखता हूं. लेकिन अब महसूस कर रहा हूं कि हमें अपने देश का साहित्य भी पढ़ना चाहिए."

आज वे मुझसे लगभग वैसा ही व्यवहार कर रहे थे जैसा एक मुख्य-अतिथि को दूसरे मुख्य-अतिथि के साथ करना चाहिए. वैसे वे शालीन भाषा के पक्षधर कभी नहीं रहे लेकिन आज उनकी वाणी में शालीनता थी, बोलचाल की भाषा में विदेशी संदर्भ थे, मौलिक अधिकारों के प्रति चिंता का भाव था, अपने देश की हर वस्तु के लिए समर्पण की भावना थी. और क्या चाहिए एक मुख्य-अतिथि होने के लिए? ललाट तो उनका पहले से ओजस्वी था. क्यों और कैसे हो गया, यह तो वे भी नहीं जानते.

उन्होंने आज बड़ी गंभीर बातें कीं. व्यवस्था के बारे में चिंतन किया, समाज की विसंगतियों पर अपनी चिंता प्रकट की, गिरते मानवीय मूल्यों को भी नहीं छोड़ा. आज वे किसी को छोड़ने के पक्ष में नहीं लगे. मुझे भी नहीं छोड़ते यदि मैं उनसे यह नहीं कहता कि मुख्य-अतिथि की हैसियत से मुझे भी अपनी तैयारी करना है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज मेरे घर के पास ही था.तय हुआ कि समारोह तीन बजे रखा जाये. कालेज के कुछ लड़के मुझे सूचना देने आये कि समय निर्धारित हो गया है और मैं तैयार रहूं. मैं तो सुबह से ही तैयार बैठा था. सूचना नहीं आती तो मैं दोपहर एक बजे ही चला गया होता.

लगभग दो बजे कर पचास मिनट पर त्रिपाठीजी ने सूचना भिजवायी कि मैं न आऊं. एक बार तो मेरा कलेजा धक रह गया कि कहीं कार्यक्रम स्थगित तो नहीं हो गया? छात्रों का क्या भरोसा. इसी बात पर मारपीट हो गयी हो कि उन्होंने मुझे मुख्य-अतिथि क्यों बनाया. पहली बार मुख्य अतिथि बनने पर कई प्रकार की शंका-कुशंका आना स्वाभाविक भी है. लेकिन छात्रों ने कहा, "त्रिपाठी सर ने कहा कि वे आपको लेने आयेंगे.. प्राचार्य साहब की हम लोग वेट कर रहे हैं.. वे आ जायें तो आपके पास त्रिपाठी सर आयेंगे."

मैं आश्वस्त हुआ. मुझे लगा जैसे कोई बहुत बड़ी दुर्घटना होते-होते रह गयी. अब मेरे समक्ष मूल-प्रश्न यही था कि देखें, त्रिपाठी जी कब आते हैं.

आ ही गये त्रिपाठीजी बोले, "चलिये."

मैंने कहा, "आपने व्यर्थ कष्ट किया.. मैं तो ऐसे ही आ जाता."

वे बोले, "हम मुख्य-अतिथि के पद की गरिमा समझते हैं. हमें कालेज के लड़कों को भी सिखाना है कि वे मुख्य-अतिथि को चिल्लहर न समझें. आखिर आगे चलकर उन्हें भी तो समारोहों में मुख्य-अतिथि बनना है. आज नहीं सीखेंगे तो कब सीखेंगे. चलिए."

हम दोनों कालेज तक आये. त्रिपाठी जी बोले, "अब आप आगे हो जाइए.. मुख्य-अतिथि हमेशा आगे रहता है."

मुझे लगा कि आगे चलकर त्रिपाठीजी अच्छे गाईड सिद्ध होंगे. हिंदी में अच्छे गाईडों की वैसे भी कमी है.

मुझे एक अच्छे कमरे में बिठाया गया. यह कमरा प्राचार्य का था. प्राचार्य ने निवेदन किया कि मैं सामनेवाली कुरसी पर बैठूं. त्रिपाठीजी ने लड़कों को बुलाकर कहा, "अब रिकार्डिंग बंद करो और एनांउसमेंट करो कि मुख्य-अतिथि पधार चुके हैं तथा थोड़ी ही देर में हमारा कार्यक्रम प्रारंभ होने जा रहा है."

सखेद श्रीमान अय्यर...

एन. कुंजू

यों तो हर लेखक की चाह होती है कि उसकी रचना छपे पर बंगलौर के सत्यनारायण अय्यर जब किसी भी पत्रिका को अपना लेख या कार्टून भेजते हैं, तो उनकी आकांक्षा यही होती है कि वह संपादक के खेद पत्र के साथ लौट आये. हो सकता है शुरू-शुरू में उन्हें अपनी रचना के लौटने पर दुख होता होगा पर बाद में खेद 'पत्र एकत्र करने का उन्हें शौक हो गया. एक बार 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के तत्कालीन संपादक श्री खुशवंत सिंह ने उनकी रचना एक साल तक नहीं लौटायी तो वे उनसे रचना लौटाने का आग्रह करने के लिए खुद बंबई पहुंच गये. यह अलग बात है कि उस रचना और खेद पत्र के लिए उन्हें एक साल और इंतजार करना पड़ा.

एक बार अय्यर साहब ने गिनेस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स के संपादक को पत्र लिखा कि सर्वाधिक खेदपत्र एकत्र करने के लिए उनका नाम गिनेस बुक में दर्ज किया जाना चाहिए. उसके संपादक ने उनका आग्रह तो स्वीकार नहीं किया लेकिन अय्यर साहब के खेद पत्रों की संख्या में एक का इजाफा जरूर हो गया. □

एक बड़ा लड़का, जो साहित्य परिषद का अध्यक्ष भी हो सकता है, बोला, "सर, ये मुकद्दर का सिकदर का गाना पूरा हो जाने दो फिर 'एनउंसमेंट' कर देते हैं."

समारोह जिस कालेज के कमरे में आयोजित था, वहा कोने में मां सरस्वती का एक फोटो रखा गया था. उसके आगे एक दीप था.

सामने के टेबिल पर एक हारमोनियम था. आप सोच रहे होंगे कि हारमोनियम की क्या जरूरत थी साहित्य परिषद के उद्घाटन में? मैं भी यही सोच रहा था. मैंने त्रिपाठी जी से पूछा तो वे बोले, "लड़के हारमोनियम पर 'वर दे वीणा वादिनी' गायेंगे.. तब आप दीप प्रज्जवलित कर साहित्य परिषद का उद्घाटन करेंगे."

मैंने पूछा, "फिर क्या करना होगा?"

वे बोले, "छात्र जगत को रचनात्मक कार्य करने के लिए उद्बोधन देना होगा."

कार्यक्रम प्रारंभ हुआ. पुष्पहारों से मुख्य-अतिथ का स्वागत किया लड़कों ने. त्रिपाठी जी ने इतने पुष्पहार इस बहाने पहनवा दिये कि मुझे भी लगने लगा कि शेष जीवन में किसी पुष्पहारों की मुझे आवश्यकता नहीं रहेगी.

अध्यक्षता प्राचार्य कर रहे थे. त्रिपाठीजी. ने उन्हें भी नहीं छोड़ा.

फिर संचालन कर रहे छात्र ने त्रिपाठी जी से निवेदन किया कि वे मुख्य अतिथि का परिचय दें.

त्रिपाठी मुस्कराये. मेरी ओर इस तरह देखा जैसे कहना चाहते हों— "क्यों बे मुख्य अतिथि, दे दूं परिचय?"

लेकिन माईक पर आने के बाद उन्होंने मुझे महान सिद्ध करने की पूरी कोशिश की. अंत में उन्होंने यह भी जोड़ दिया कि मैं हास्य-व्यंग्य सम्मेलनों में भाग लेने शीध्र ही विदेश भी जाने वाला हूं. ऐसा उन्होंने क्यों जोड़ा यह तो मैं उनसे बाद में पूछूंगा, लेकिन हिंदी के डाक्टर होने के नाते जब उन्होंने यह जोड़ा है, तो जरूर इसमें भी कोई साहित्यिक महत्व की ही बात होगी.

त्रिपाठीजी मेरे पासवाली कुरसी पर ही बैठे. बीच-बीच में मुझसे कहते रहे कि मैं कभी-कभी मुस्करा लूं. इससे मुख्य-अतिथि की गरिमा बनती है. मैं बीच में पुष्पहारों की तरफ देख रहा था तो त्रिपाठीजी ने मुझे टोका.

अंत में मुझसे निवेदन किया गया कि मैं कालेज में हिंदी साहित्य परिषद के उद्घाटन अवसर पर छात्रों को उद्बोधन दूं.

मैं बहुत धीरे-धीरे चलकर माईक तक आया. कमरा छात्र-छात्राओं से भरा था. समारोह गरिमामय ढंग से निपट रहा था. आप जानना चाहेंगे कि मैंने उद्बोधन में क्या कहा? लेकिन भाई साहब, मुख्य अतिथि बनने के बाद किसे होश रहता है कि वह क्या कह रहा है. बाद में त्रिपाठी जी ने मुझे बताया कि मैंने भाषण अच्छा दिया.

धन्यवाद ज्ञापन के लिए प्राचार्य खड़े हुए. कार्यक्रम की गरिमा बनाये रखने के लिए धन्यवाद ज्ञापन में उन्होंने मेरी बड़ी तारीफ की. उन्होंने साहित्य में कथनी और करनी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए मेरे व्यक्तित्व को उभारा.

मैंने त्रिपाठीजी को समारोह के बाद एक कोने में ले जाकर पूछा, "कोई चूक तो नहीं हुई इस मुख्य-अतिथि से?"

वे बोले, "आप कुछ जरूरत से ज्यादा शर्मा रहे थे."

मैंने कहा, "मेरा पहला मौका था. पहली बार शर्म तो लगती है."

वे मुस्कराये. बोले, "अभी स्वल्पाहार बाकी है. आशा है आप इसमें भी खरे उतरेंगे... चलिए, इसे भी गरिमामय ढंग से निपटा दीजिए."

मैंने उनके निर्देशानुसार चेहरे पर मुख्य-अतिथि हो जाने के भाव बनाये और उस कमरे की ओर बढ़ गया जहां प्लेटें सजी थीं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष-विलाप

सूर्यबाला

कालिदास के विरही यक्ष का आज के युग में एक विलाप

मेहरबानों, कद्रदानों. यक्ष फिर से बदकिस्मती का मारा है. वही हाल-बेहाल, वही चिर-विरही यक्ष. इस बार बिछोह उसकी यक्षिणी का नहीं, उसकी आत्मा का है. आत्मा ही गायब हो गयी है उसकी. अब आत्मा के बिना कैसी बेगैरत जिंदगी. तो जाहिर है, उसे एक अदद मेघदूत की तलाश है. किसी जमाने में वह उसका खासा खैरख्वाह हुआ करता था लेकिन अब कहां का खैरख्वाह और कैसी मदद. सदी के इस सबसे बड़े सूखे-भूखे दिनों में मेघ के कहा दर्शन. उसके पास इस देश के लिए, यक्ष के लिए फुर्सत ही नहीं.

और इधर यक्ष है कि खटवार-पटवार लिये पड़ा है. हालत नाजुक है. होनी भी चाहिए. सालों-साल से आत्मा गायब है बेचारे की. यूं,बेवफाई तो पिछले कई सालों से चालू थीं, उसकी लेकिन इस तरह एकाएक विन चड्ढा हो जायेगीं, इसकी उम्मीद नहीं यक्ष को.

बहरहाल जो ईश्वर हाल-बेहाल करता है, वही संदेशवाहक भी मुहैया करता है. ऐसी हालत में यक्ष को सूझा, क्यों न एक के बाद एक दिल्ली में एयर डैशिंग करते वायुदूतों के जरिये संदेशा भेजा जाये.

अथ यक्ष संदेश : हे दम पर दम दिल्ली के आकाशमार्ग पर मंडराते हुए वायुदूत, जब तुम दिल्ली की, अलकापुरी से भी सुंदर, गगनचुंबी अट्टालिकाओं के ऊपर से गुजर रहे होंगे तो जरा बाढ़ निरीक्षण के लिए प्रयोग में लाये जानेवाले वाइनाकुलर से देखना - बहुत संभव है, उन अट्टालिकाओं में से किसी एक के वातानुकूलित ड्राइंगरूम में फैली, पसरी मेरी आत्मा तुम्हें दिख जाये. यूं तो उसने सरकारी आवासों में भी दो-तीन फ्लैटस अलग-अलग फर्जी नामों से बुक करा रखे हैं लकिन वहां तो वह कभी-कभार ही, चेकिंग करनेवालों की आखों मे धूल झोंकने के निमित्त ही जाती है. अतः मित्र, ज्यादा उम्मीद तो यही है कि करोड़ों से सुसज्जित किसी भव्य अट्टालिका में ही वह अपनी अगली विदेश यात्रा के दरम्यान लायी जानेवाली साड़ियां, घड़ियों परफ्यूम्में और बिस्कुटों की लिस्ट बना रही होगी.

मित्र, पहली नजर में तो उसे देखकर तुम पहचान भी नहीं पाओगे. धोखा खाने की पूरी पूरी संभवना है. क्योंकि तुम्हें तो सालों साल पहले की देखी, उसकी गेरू खंचाई तस्वीर का ही स्मरण होगा. उन दिनों वह कैसी सिड़ी-सिड़ी सिलबिल्ली-सी हुआ करती थी. हर बात में सही-गलत, उचित-अनुचित और सच-झूठ को लेकर मुझसे उलझती रहती थी. अपने छोटे-छोटे आदर्शों-उसूलों को लेकर भी वह बड़ी टची हुआ करती थी. लाख समझाओ, राई-रत्ती टस से मस होने को तैयार नहीं. उन दिनों वह मेरी आत्मा, बड़े झमेले खड़े किया करती थी. चाय और निष्ठा की दुहाई देती बला की हठी और अभिमानिनी. सच को सच और झूठ को झूठ कबूलवाकर ही रहती, चाहे उसके पीछे फांके ही क्यों न करने पड़ जायें.

सखे, उन दिनों उसे मेरे साथ फांके-मस्ती में भी मजा आता था. कर्ज भी पीते थे. गालिब और समझते थे कि रंग लायेगी हमारी फांकामस्ती एक दिन?.... लेकिन वही फांकेमस्त आत्मा, दिल्ली की ऐशगाह में जाकर ऐसे रंग जमा बैठेगी कि अपनी पहली सारी पहचान ही भुला बैठेगी, इसका जरा भी इल्म नहीं था मुझे.

लेकिन उसे दोष भी क्या दूं बंधू? दिल्ली जगह ही ऐसी है बिलकुल गुड़ की भेली जैसी और चीटिंयों-सी तमाम आत्माएं उसका चूरा झाड़ने में मस्त हैं.

सो सखें, उसका गेरू उकेरी तस्वीर से तो तू

मिलान करना मती. अब इतने बरसों में तो वह घाट-घाट का पानी पी, सिखी-पढ़ी सयानी हो गयी है. अपना भला बुरा, नफा-नुक्सान समझने लगी है. अब वह बात-बात में उड़ती भी नहीं. सच को सच और झूठ को झूठ ही साबित करने की मगजमारी और बेवकूफी भी नहीं करती. इशारा समझकर भ्रम दे डालती है, वक्त को बदल डालती है, खारिज कर डालती है. नुक्सान के आंकड़ों को नफे में बदलने में तो उसे महारत हासिल है.

लेकिन इतना सब होने पर भी मित्र तू उससे मेरी गयी-गुजरी हालत का बयान मत करना क्योंकि वह तो मुझे, तेरी तबाही को, पूरी तरह कब की भूल चुकी होगी. सालों हो गये, उसकी जीप को इस रास्ते पर गर्द-गुबार उड़ाये. अरसा हुआ उसके हेलीकॉप्टर को यहां पूंछ फटकारे - जब वह हाथ जोड़े उतरती, हाथ जोड़े ही चढ़ती. चढ़ते, उतरते, बस एक ही रट लगाये रहती, 'मुझे सेवा का अवसर दीजिए' तब किसी को यह नहीं मालूम था कि वह किसकी सेवा का अवसर मांग रही है.

बेसोचे-समझे, मूरख लोगों ने दे डाला, सेवा का अवसर. उसने लपककर झपट्ठा मारा और जा बैठी हेलीकॉप्टर में. बस, तबसे आज तक उसका अता-पता नहीं मिल पाया. भखा-प्यासा, थका-हारा मैं ढूढ-ढूढकर हारा.

सुना है, अब तो हमेशा दस पाच की मंडलियों से घिरी बैठी रहती है. राय-बात चलती रहती है - आज किस एरिया को दंगे के सामानों की सप्लाई की जाये, किस शहर का कौन-सा डेलीकेट एरिया छांटा जाये, कौन-सा क्षेत्र काफी दिनों गड़बड़ीवाला नहीं घोषित हो पाया.. उस वाली गली में आग लगवानी ठीक रहेगी या इधर वाली सब्जी मंडी में?.... फलाने कॉलेज में छात्रनेता को फांसा जाये या ढमकाने कारखाने के यूनियन लीडर को?..... कारखाने से बस डिपो भी पास है, दो-चार प्राइवेट गाड़ियों को भी फूंकने का सुभीता रहेगा.

हथगोले अगले हफ्ते बंटवाना. लेकिन ठीक से प्रशिक्षित करके. बेकार सामानों की बरबादी न होने पाये और सभी संप्रदायों में समान रूप से बांटे जायें. किसी को कोई शिकायत न रहे. जो मूर्ख, अपढ़, अज्ञानी हैं, उन्हें प्रशिक्षित, ट्रैंड किया जाना जरूरी है.

तो सखे, जहां कहीं तुम इस प्रकार की सरगर्मी और विशिष्ट बैठकें देखना, समझ लेना वहीं मेरी सालों की बिछुड़ी आत्मा का निवास हैं वहीं बेचारी फैली-पसरी घर फूंक तमाशा देखती आराम के क्षण गुजार रही है. हो सके तो उससे तुम सिर्फ इतना कहना कि अब भी समय है. बहुत हो चुका. कुछ तो सोच, उस गेरू खींची तस्वीर और अपने उस विरही यक्ष के बारे में! लौट जा... वैसे वह सुनेगी और लौट के आयेगी, इसकी मुझे तो, कोई उम्मीद नजर नहीं आतीं....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टैनिसी की पत्रकारिता

मार्क ट्वेन

डॉक्टर का कहना था कि दक्षिण की जलवायु मेरी सेहत के लिए अच्छी रहेगी, इसलिए मैं टेनिसी जा रहा पहुंचा और वहां के अखबार 'मॉर्निंग ग्लोरी एंड जॉन्सन कांडटी वॉरकूप' में मुझे संयुक्त संपादक की नौकरी मिल गयी. जब मैं पहले दिन ड्यूटी पर पहुंचा तो मैंने देखा, प्रधान संपादक महोदय तीन टांग की कुर्सी में पसरे हुए हैं और उनकी अपनी टांगे मेज पर टिकी हुई हैं. कमरे में एक मेज और भी थी और एक अन्य घायल कुर्सी भी— और दोनों चीजें अखबारों और कागजों और पांडुलिपियों के नीचे आधी-आधी दफन थीं. इन से भरा एक लकड़ी का बक्सा भी वहां था, जिसमें सिगार के टोटे, राख और तस्वीरों के टुकड़े भरे पड़े थे. एक अंगीठी भी थी, जिसकी खिड़की एक तरफ को झूल रही थी.

प्रधान संपादक ने काले कपड़े का लंबा दुमदार फ्रॉक कोट पहन रखा था और सफेद लिनन की पैंट. उनके जूते छोटे थे, लेकिन बड़ी सफाई से पॉलिश किये हुए थे. उनके बदन पर फूली-फूली सी कमीज थी, हाथ में बड़ी सी मुहर वाली अंगूठी थी, पुरानी चाल का उठा हुआ कॉलर था और गले में चारखाने वाला रूमाल, जिसके सिरे नीचे लटक रहे थे. पोशाक की तिथि 1848 के आसपास. वे एक सिगार पी रहे थे और किसी शब्द के बारे में सोच रहे थे; सोचते-सोचते, अपने बालों को नोचते-नोचते, उन्होंने अपना हुलिया बिगाड़ रखा था. उनके चेहरे पर गुस्से के लक्षण थे और मैंने निष्कर्ष निकाला कि वे कोई उलझा हुआ-सा संपादकीय बनाने की फिराक में थे. उन्होंने मुझसे कहा कि मैं कतरनें लूं और 'टोनसी की पत्रकारिता की आत्मा' पर एक ऐसा लेख लिखूं जिसमें सारी की सारी जरूरी दिलचस्प बातें आ जायें.

मेरा लेख इस प्रकार था :

'टेनसी का पत्रकारिता की आत्मा'

'बैलीहैक रेलवे को ले कर 'अद्ध-सासाहिक अर्थक्वेक' के संपादकों ने जो कुछ लिखा है, जाहिरा तौर पर कुछ आशंकाओं के बोझ तले दब कर लिखा है, बजईवील को अलग छोड़ का कंपनी का कतई इरादा नहीं है, बल्कि तो उसे रेलमार्ग का सबसे अहम स्थल मानती है. इसलिए उसे नजरअंदाज करने का कोई सवाल ही नहीं उठता. 'अर्थक्वेक' के भद्र जन अपनी गलती को सुधारें, और उसका सुख भी लें.

हिगिंसवील के अखबार 'थंडरबोल्ट एंड बैटल क्राइ ऑफ फ्रीडम' के माननीय संपादक जॉन डब्ल्यू. ब्लॉसम कल यहां पधारे. वे वॉन ब्यूरेन हाउस में रुके हुए हैं.

'हमारा ख्याल है कि मड स्प्रिंग्स के 'मॉर्निंग हाउस' में काम करने वाले हमारे समकालीनों ने यह मानने की भूल की है कि वॉन वर्नर का

दोनों पिस्तौलें एक साथ गरजीं. संपादक के बालों की एक लट उड़ गयी और कर्नल की गोली के जीवन का अंत मेरी जांघ में हुआ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनाव तयशुदा तथ्य नहीं है, लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि इस पत्र के उन तक पहुंचने से पहले ही उन्हें अपनी भूल का पता चल चुका होगा. उन्होंने चुनाव के अधूरे नतीजों से ही अपना निष्कर्ष निकाल लिया था.

'यह देखकर खुशी हो रही है कि ब्लाथर्सवील नगर न्यूयॉर्क के किसी भद्र लोक से संपर्क स्थागित कर रहा है जो यहां की टूटी-फूटी सड़कों की मरम्मत कर सके. 'डेली हुर्रा' ने इस कदम की सफलता की कामना की है और उसे सफलता की उम्मीद भी है.''

अपनी पांडुलिपि मैंने प्रधान संपादक को थाम दी— वे उसे स्वीकृत करें, उसमें परिवर्तन करें, चाहें तो उसे नष्ट कर दें. उन्होंने उस पर एक नजर डाली और उनके मुखमंडल पर बदली-सी छा गयी. जैसे-जैसे वे पढ़ते गये, उनकी मुखाकृति पर ऐसे लक्षण उभरते गये जो किसी अपराकुन के द्योतक थे. साफ लग रहा था कि कुछ गड़बड़ है. आखिर में वे उछल कर खड़े हो गये और बोले, 'खुदा की मार! तुम क्या सोचते हो कि मैं इन ढोरों के बारे में ऐसा दूंगा! तुम क्या सोचते हो हमारे पाठक इस तरह की लचर बात पचा पायेंगे! इधर लाओ कलम!'

मैंने किसी कलम को इतनी बुरी तरह कांट-छांट करते या किसी दूसरे की क्रियाओं और विशेषणों की छज्जियां उड़ाते पहले कभी नहीं देखा था. संपादक महोदय अपनी कारगुजारी में लीन थे कि अचानक किसी ने खिड़की से उनपर गोली चला दी और मेरे कानों की सम भी बिगाड़ दी.

'आह!' वे बोले, 'जरूर यह 'मॉरल बोल्कैनो' में काम करने वाला बदमाश स्मिथ ही होगा— उसे तो कल आना था' और उन्होंने अपने कमरबंद से नेवी रिवॉल्वर निकाला और गोली दाग दी. गोली स्थिम की जांघ में लगी. वह गिर पड़ा. इससे स्थिम का निशाना भी चूक गया, क्योंकि वह दूसरी बार गोली चलाने जा रहा था— और उसने एक अजनबी को अपंग बना दिया. वह अजनबी और कोई नहीं मैं था. मेरी एक अंगुली उड़ गयी थी.

इसके बाद संपादक महोदय फिर अपनी कतर-ब्योंत में गुट गये. जैसे ही उन्होंने अपना काम खत्म किया कि अंगीठी के पाइप से एक हथगोला लुढ़कता हुआ आया और उसने अंगीठी को हजारों परखचों में बांट दिया. बस, इतना ही हुआ. और कोई नुकसान नहीं हुआ— सिवा इसके कि एक दिशाहारा परखचे ने मेरे दो-एक दांतों को उखाड़ फेंका.

''अंगीठी का सत्यानाश हो गया.'' प्रधान संपादक बोले.

मैंने पांडुलिपि ली. उसमें इतनी कांट-छांट, रद्दोबदल हो चुकी थी कि उसकी मां भी यह न जान पाती कि यह उसी की अपनी संतान है. अब वह आलेख इस प्रकार था :

'टेनिसी-पत्रकारिता की आत्मा'

''अर्द्ध-साप्ताहिक अर्थक्वेक' के झूठे और चोट्टे लोग बड़े साफ तौर पर एक उच्च और बहादुर कौम का अपना एक और गंदा और हिंस्र झूठ थोपने की कोशिश कर रहे हैं जिसका संबंध उन्नीसवीं सदी के सर्वाधिक गौरवशाली अन्वेषण यानी बैलीहैक रेलमार्ग से है. यह ख्याल कि बजर्डवील को अलग छोड़ दिया जायेगा, उनके अपने कूड़ा दिमागों की उपज है— या यों कहते हैं. वैसे तो वे इस लायक हैं कि उनकी खाल उनके गंदे बदन पर जस की तस बनी रहे, तो बेहतर हो वे अपने इस झूठ को खुद ही निगल लें.

'वह गधा हिगिंसवील के 'थंडर बोल्ट एंड बैटल क्राइ ऑफ फ्रीडम' वाला ब्लॉसम यहां आया हुआ है और वॉन ब्यूरेन में दारू में गोते लगा रहा है.

'हम देख रहे हैं कि मड स्प्रिंग्स के 'मॉर्निंग हाडला का पिचक्कड रखवाला अपनी झूठ बोलने की पुरानी आदत के मुताबिक ही यह कह रहा है कि वॉन वर्टर चुने गये हैं. पत्रकारिता का स्वर्ग-जनित मिशन है सच का उद्घाटन; भूलों का उन्मूलन; जनता की नैतिकता और शिष्टता का परिष्कार और उसे शिक्षित-जागरूकता बनाना; सभी लोगों को भद्रतर, ज्यादा अच्छाई भरा, ज्यादा दयावान, और सभी तरह से बेहतर इनसान बनाना— ज्यादा पवित्र, ज्यादा प्रसन्न; इसके बावजूद यह काले दिल वाला बदमाश झूठ कुप्रचार, विषवमन और अश्लीलता द्वारा

उनका ख्याल सही निकला. एक ही पल बाद कर्नल दरवाजे में खड़े नजर आये. उनके हाथ में एक ट्रैगून रिवॉल्वर था.

वे बोले, ''श्रीमान जी, क्या मैं उस मूढ़मति से मुखातिब होने का गौरव प्राप्त कर रहा हूं जो इस घटिया से अखबार का सपादन करता है?''

अपने उच्च पद को लगातार निम्नस्तरीय बना रहा है.

'ब्लादर्सवील को निकल्सन पैदल पथ की जरूरत है— उसे एक जेल तथा एक और निर्धन गृह की भी जरूरत है! पूरे शहर में एक तो घोड़ा है, दो चक्कियां हैं, एक लुहार की दुकान है— और वह पीला-प्लास्टरी अखबार है 'डेली हुर्रा!' ऊपर से पैदल पथ के सपने! वह रेंगने वाला कीड़ा बकनर जो 'हुर्रा' का संपादन करता है अपनी पुरानी आदत के मुताबिक हिनहिना रहा है और यह सोच रहा है जैसे वह कोई बड़ी अक्ल की बात कर रहा हो.''

''यह है तरीका लिखने का— मिर्च-मसालेदार और सटीक सीध-सादा लेखन मुझे बोर कर देता है.''

इसी क्षण एक ईंट खिड़की से उड़ती हुई अंदर आयी और मेरी पीठ के पास गिरी. मैं भौचक्का रहा गया. पता नहीं कैसे मैं उसकी जद से दूर रह गया.

संपादक बोले, ''ये जरूर कर्नल रहे होंगे. मैंने पिछले दो दिनों से उनके आने की उम्मीद कर रहा हूं.

''जी हां! तशरीफ रखिए, श्रीमान. कुर्सी पर जरा संभल कर बैठिएगा. इसी एक टांग टूटी हुई है. मेरा ख्याल है मैं सड़ांध भरे झूठे कर्नल ब्लादर स्काइट टेकुम्से से मुखातिब होने का सम्मान पा रहा हूं?''

''जी श्रीमान, मुझे आप का एक छोटा-सा हिसाब बराबर करना है. आपको फुर्सत हो तो हम शुरू करें!''

मुझे अमरीका के नैतिक और बौद्धिक विकास के प्रोत्साहन पर एक लेख पूरा करना है, लेकिन कोई जल्दी नहीं है. शुरू कीजिए.''

दोनों पिस्तौलें एक साथ गरजीं. संपादक के बालों की एक लट उड़ गयी, और कर्नल की गोली के जीवन का अंत मेरी जांघ में हुआ. कर्नल के बायें कंधे पर खरोंच आयी. उन्होंने फिर फायर किया. दोनों अपना-अपना निशाना चूक गये, लेकिन मेरा हिस्सा मुझे मिल कर रहा. मेरी बांह में लगी. तीसरी बार के वार में दोनों भद्रजन थोड़ा-थोड़ा जख्मी हुए और मेरी एक अंगुली घायल हुई.

फिर अपनी-अपनी पिस्तौलों में दोबारा गोलिया भरने के दौरान वे चुनावों और फसलों की बातें करते रहे और मैं अपने जख्मों पर पट्टियां बांधता रहा. लेकिन थोड़ी ही देर बाद वे फिर एक-दूसरे पर गोलियां चलाने लगे और हर गोली असरदार रही— बस, इतना जान लीजिए कि छह में से पांच गोलियां मेरे हिस्से में आयीं. छठी कर्नल को लगी और वे गंभीर रूप से घायल हो गये. उन्होंने मजाक में कहा कि अब उन्हें शुभ प्रभात करना पड़ेगा, क्योंकि उन्हें शहर में कुछ जरूरी काम है. उसके बाद उन्होंने कब्र खोदने और ताबूत बनाने वालों का पता पूछा और चलते बने.

प्रधान संपादक मेरी ओर घूमे और बोले, ''खाने के समय मेरे कुछ मित्र आने वाले हैं. मुझे अब तैयार होना पड़ेगा. तुम्हारा मुझ पर एहसान होगा अगर तुम प्रूफ पढ़ लो और ग्राहकों से भी निबट लो.''

ग्राहकों से निबटने की बात पर मैं थोड़ा दुखी हुआ, लेकिन मेरे कानों में गोलियों की गूंज अब भी इतनी जम कर बैठी हुई थी कि मैं कुछ भी सोचने या कहने लायक नहीं रह गया था.

वे कहते रहे, ''जोंस 3 बजे यहां आयेगा— उसकी खाल उधेड़ देना.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिलेस्पी शायद पहले आयेगा— उसे खिड़की के बाहर फेंक देना. फर्गुसन 4 बजे के करीब आयेगा— उसकी हत्या कर देना. मुझे लगता है, आज इतना ही काम रहेगा. अगर किसी किस्म का दिक्कत हो तो तुम पुलिस पर एक फनफनाता हुआ लेख लिख सकते हो— चीफ इंस्पेक्टर की ऐसी तैसी कर देना. शस्त्र वगैरह दराज में हैं— कारतूस वहां उस कोने में; पट्टियां वगैरह वहां कबूतरखाने में. कोई दुर्घटना हो जाये, तो लैंसेट के पास जाना; वह नीचे की मंजिल पर मिलेगा, सर्जन है. वह विज्ञापन देता है— हमारी अदला-बदली चलती रहती है."

वे चले गये. मैं कांप उठा. अगले तीन घंटों के दौरान मैं इतने भयानक खतरों से गुजर गया कि मेरी सारी मानसिक शांति और प्रफुल्लता मेरा साथ छोड़ कर चली गयी. जोंस आया. मैंने इंटर उठाया. उसने इंटर मेरे हाथ से छीन लिया और मेरी धुनाई करके चलता बना. एक अजनबी आया और मेरे बाल झिंझोड़ कर चलता बना. एक और अजनबी, जिसका नाम टांप्सन था, मुझे पूरी तरह लुंज-पुंज बना गया. आखिर में, मैं एक कोने में दुबका रह गया था जबकि मेरे सिर पर संपादकों, गुंडों, राजनीतिज्ञों और लुटेरों की क्रुद्ध भीड़ खड़ी हुई थी. वे मुझे गालियां दे रहे थे. चीख चिल्ला रहे थे और अपने हथियार चमका रहे थे, मुझे मार-धमका रहे थे. मैं अपना त्यागपत्र लिखने ही जा रहा था कि प्रधान संपादक लौट आये. इनके कुछ अच्छे, खुशमिजाज किस्म के उनके मित्र भी थे.

अब वहां एक ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया, जिसे दुनिया की कोई लेखनी बयान नहीं कर सकती, चाहे वह लौह-लेखनी ही क्यों न हो. गोलियां चलीं, तलवारें चलीं, अंग-भंग किये गये लोग, उनके शरीर उड़ गये, उन्हें खिड़की से बाहर फेंका गया.

दफ्तर जैसे युद्ध का मैदान बन गया था. वहां युद्ध-नृत्य चल रहा था. फिर सब खत्म हो गया. पांच मिनट में ही सब तरफ शांति छा गयी.

अब मैं और प्रधान संपादक अकेले रह गये थे. संपादक महोदय खून से लथपथ थे. सब तरफ घायल शरीर थे, खून था.

हम दोनों उस दृश्य का गहन सर्वेक्षण कर रहे थे.

वे बोले, "जब तुम इस के आदी हो जाओगे, तो तुम्हें यह जगह रास आने लगेगी."

मैंने कहा, "मुझे आपसे माफी ही मांगनी पड़ेगी. मेरा ख्याल है, मुमकिन है कुछ अरसे बाद मैं वैसा ही लिखने लगूं, जैसा आपको ठीक लगता हैं— मैं कुछ अभ्यास कर लूं, यहां की भाषा सीख लूं; उसके बाद मैं जरूर-जरूर वैसा ही लिखने लगूंगा, मुझे पूरा भरोसा है. लेकिन मैं साफ सच बताऊं— अभिव्यक्ति की ऐसी ऊर्जा की अपनी दिवकतें हैं... और फिर यहां खलल भी पड़ता रहता है. आपने खुद भी यह महसूस किया होगा. इसमें कोई शक नहीं है कि जोशीला लेखन जनता की भावनाओं को उभारता है, लेकिन मैं क्या करूं, मुझे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना मुझे जरा भी पसंद नहीं है. जितनी बार आज यहां खलल पड़ा है, उसे देखते हुए मुझे लगता है मैं यहां आराम से लिख ही नहीं पाऊंगा. मुझे नौकरी जरूर पसंद है, लेकिन मैं ग्राहकों की गुलामी करता रहूं, यह मुझ से नहीं होगा. मैं मानता हूं, यहां के अनुभव मेरे लिए नये हैं, और रोचक भी हैं एक तरह से, लेकिन उनका बंटवारा सही है. कोई आदमी खिड़की से आप पर गोली चलाता है और अपंग मैं हो जाता हूं; एक बम अंगीठी के पाइप से आपको संतुष्ट करने के लिए आता है और अंगीठी के दरवाजे को मेरी गर्दन की तरफ उछाल देता है; आपका एक दोस्त आपका हालचाल पूछने आता है और मुझपर इतने छर्रे उगल देता है कि मेरी खाल मेरे सिद्धांतों को अपने गीता बनाये रखने के लायक ही नहीं रह जाती; आप खाना खाने चले जाते हैं और जोंस इंटर लिये चला आता है, गिलेस्पी मुझे खिड़की के बाहर फेंक देता है, टांप्सन मेरे सारे कपड़े फाड़ देता है, और एक अजनबी मेरी खोपड़ी को इतनी आजादी से झिंझोड़ देता है, जैसे वह मेरा पुराना परिचित हो; और फिर पांच मिनट से भी कम समय में मुल्क के सारे गुंडे युद्ध के रंग पोते आते हैं और मुझमें जो कुछ भी बाकी बचा होता है, उसे भी अपनी बंदूकों से इतना जस्त कर देते हैं कि मुझे मौत अपनी आंखों के सामने नाचती नजर आने लगती है. कुल मिलाकर देखा जाये, तो इतने कम समय में इतनी उत्तेजना मैंने अपनी पूरी जिंदगी में नहीं भोगी है. नहीं; आपसे मुझे कोई शिकायत नहीं हैं और जिस तरह बिना उत्तेजित हुए आप अपने ग्राहकों के सामने चीजों का खुलासा करते हैं, वह भी मुझे पसंद है, लेकिन आप जानें, मैं इन चीजों का आदी नहीं हूं. दक्षिण वालों का दिल कुछ ज्यादा त्वरापूर्ण है. दक्षिण वालों का अतिथि सत्कार अजनबियों के लिए भी बड़ा खुला और विशाल है. जो पैराग्राफ मैंने आज लिखे और जिनके ठंडे वाक्यों में आपके हाथों ने टेनिसी की गरम आत्मा भरी, उससे भिड़ों का एक और छत्ता छिड़ जायेगा. तमाम संपादकों की भीड़ आयेगी— वे भूखों की तरह आयेंगे और चाहेंगे कि कोई आदमी नाश्ते के रूप में उनके सामने परोस दिया जाये. मुझे आपको अलविदा कहना ही पड़ेगा. उस भोज-समारोह में उपस्थित रहने की. मेरी कोई इच्छा नहीं है. दक्षिण में मैं अपनी सेहत बनाने आया था. इसी उद्देश्य से मैं वापस जा रहा हूं. टेनिसी की पत्रकारिता कुछ ज्यादा ही हिला देने वाली है."

इसके बाद हमने विदा ली. एक-दूसरे से, खेद सहित. और मैंने लौट कर अस्पताल में कमरा ले लिया. □

रूपांतर : विजया सुदीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला का पारखी

कन्हैया लाल कपूर

जालंधर के मसखरों को क्या सूझी, उन्होंने मेरा नाम एक मुशायरे की अध्यक्षता के लिए प्रस्तावित कर दिया, इसकी सूचना तब दी गयी जब पानी सिर से गुजर चुका था. उन्होंने मुशायरे की घोषणा समाचार पत्रों में भी करा दी. निमंत्रण पत्र, जो कवियों और शायरों के आतंकवादी संघ के सचिव की ओर से पाया था, इस प्रकार था:

महोदय,

चूंकि भारत विभाजन के बाद मुशायरों के स्थायी अध्यक्ष मौलाना नजीबाबादी हमसे छिन गये हैं, इसलिए निराश होकर आपको कष्ट दिया जा रहा है, मुशायरे की अध्यक्षता स्वीकार कर सेवक को कृतज्ञ कीजिये.

भवदीय

सचिव

इस कविता में इक्कीस बंद थे, क्योंकि उन्होंने यह कविता इक्कीस वर्ष की आयु में लिखी थी. यह भी अच्छा ही रहा कि कविता की रचना का विचार उन्हें तीस बरस की उम्र में नहीं आया.

मैंने जल्दी-जल्दी अध्यक्ष बनने की स्पीच तैयार की. कालिज से एक दिन की छुट्टी ली. मैं काले-काले बादलों के पीछे प्रकाश की परंपरागत सुनहरी किरण की कल्पना करके मन ही मन प्रसन्न हो रहा था कि जीवन में पहली बार रेलवे स्टेशन पर मेरा स्वागत होगा, संभवतः पुष्प मालाएं भी पहनायी जायें पुष्प मालाओं के विचार के साथ ही मुझे अपनी ऐनक का ध्यान आ गया. ऐनक की विशेष रूप से रक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि पुष्प मालाओं वाले महानुभाव ऐसी तेजी से मालाएं पहनाते हैं कि शीशे तो शीशे, कमानियां तक टूट जाती हैं. ये मैं सोच ही रहा था कि कमाल साहब आ पहुंचे. कमरे में प्रवेश करते ही बोले, "एक खुशखबरी सुनेंगे?"

मैंने कहा, "बड़े शौक से सुनाइये."

"मेरे अलावा शमन को भी जालंधर से बुलावा आया है."

मैंने पूछा, "यह शमन साहब कौन हैं?"

कमाल साहब, "यह शमन साहब नहीं साहिबा हैं.

कमाल साहब, "यह शमन साहब नहीं साहिबा हैं. पूरा नाम है शमन कुमारी. हिंदी में लिखती हैं. बच्चों की कवयित्री हैं."

मैंने कहा, "लेकिन मुशायरा तो नौजवानों के लिए हो रहा है. इसमें बच्चों की कवयित्री का क्या काम?"

हंसकर बोले, "आप भी बच्चों की ही बातें करते हैं. उन्हें मुशायरे में कुछ नूतनता लाने के लिए बुलाया गया है."

गाड़ी चलने में अभी दो-तीन मिनट शेष थे कि कमाल साहेब एक मोटी, भद्दी और बदसूरत स्त्री के साथ डिब्बे में आये. उस महिला का परिचय कराते हुए बोले, "ये शमन कुमारी हैं."

शमन कुमारी के नख-शिख का विस्तृत वर्णन मैं इसलिए नहीं करना चाहता कि आपको पढ़कर कोफ्त होगी. सारांश यह कि आप किसी ऐसी स्त्री की कल्पना कीजिये जिसे देखकर पुरुष जाति की कंपकंपी छूट जाये. आप एक अजीब ठस्से से मेरी बगल की सीट पर बैठकर मुझसे संबोधित हुईं.

"आप हिंदी जानते हैं?

"आप हिंदी जानते हैं?"

मैंने कहा, "बस पढ़ लेता हूं, लिख नहीं सकता."

"आपने शमन पिटारी देखी है?"

"नहीं."

"शमन क्यारी?"

"नहीं."

"शमन चिंगारी?"

"नहीं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"खैर कोई बात नहीं, मेरे पास तीनों मौजूद हैं." यह कहते ही अपने बैग में से हिंदी की तीन छोटी-छोटी पुस्तकें निकालीं, "कविता सुनेंगे आप?"

मैंने विवशतावश हामी भर दी.

यह एक कविता है उन्होंने शमन पटारी खोलते हुए कहा, "मैंने इसे इक्कीस वर्ष की आयु में लिखा था. यह यूं शुरू होती है :

शूं-शूं करती/शौ-शौ करती/मक-मक करती/शक-शक करती/चली आ रही है इक गाड़ी."

मैंने शिष्टता के नाते प्रशंसा करते हुए कहा, "शुरूआत तो बहुत अच्छी है."

हाथ के टहोके से मुझे हटाते हुए बोली "अजी छोड़िये, आपने तो हमें बनाना शुरू कर दिया. पहले पूरी कविता तो सुन लीजिये :

खरड़ खरड़ खड़/खड़ खड़ करती/धरड़ धरड़ धड़/धड़ धड़ करती/भरड़ भरड़ भड़/भड़ भड़ करती/चली आ रही है/इक गाड़ी."

इस कविता में इक्कीस बंद थे, क्योंकि उन्होंने यह कविता इक्कीस वर्ष की आयु में लिखी थी. यह भी अच्छा ही रहा कि कविता की रचना का विचार उन्हें तीस बरस की उम्र में नहीं आया. जब कविता समाप्त हुई तो मैंने कमाल साहब की ओर अर्थपूर्ण नजरों से देखा, उन्होंने मेरी विवशता का आनंद लेते हुए कहा, "कहिये, क्या खयाल है?"

कहना पड़ा, "शमनजी ने तो कमाल ही कर दिया है."

शमन जी तुरंत बोल उठीं, "अजी छोड़िये, इसमें कमाल की क्या बात है, खैर अब सुनिये 'कोयल और कौवा' :

एक था कौवा/एक थी कोयल/कोयल कूकी/कू कू कू कू/कौवा बोला/कायं कायं/कोयल अब के कुछ न बोली/कौवा बोला कोयल प्यारी/घिर आयी बदरिया कारी/आओ चलें जमना तट जायें/नाचें, कूदें, शोर मचायें/कोयल कूकी/कू कू कू कू/कौवा बोला 'कायं कायं'/मैंने उन दोनों को डांटा/क्या करते हो हाय-हाय."

इस पर मुझे कहना पड़ा, "बहुत ही खूब."

कुमारी शमन मचल उठी, "अजी छोड़िये, अभी आपने सुना ही क्या है, जरा दो-चार कविताएं सुन लीजिये. फिर जी भरकर प्रशंसा कीजिये, वैसे कविताओं की हमारे यहां कमी नहीं है. और आवश्यकता पड़ने पर मंच पर खड़े-खड़े तैयार कर सकती हूं."

मैं इतना उकता गया कि सोचने लगा कि चलती गाड़ी से छलांग लगा दूं लेकिन फिर खयाल आया कि मुशायरे की अध्यक्षता कौन करेगा.

भगवान-भगवान करके जालंधर स्टेशन आया. हम तीनों प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े संघ के सदस्यों की प्रतीक्षा करने लगे. लेकिन कोई भी व्यक्ति आता हुआ दिखाई नहीं दिया. शमन ने कहा, "चलिये, तांगा लेकर कार्यालय चलते हैं."

वहां पहुंचकर मालूम हुआ कि शायरों के आतंकवादी संघ को अवैध घोषित कर दिया गया है. और संघ के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये हैं.

शमन कुमारी कहने लगी, "चलो अच्छा ही हुआ, किसी काफी हाउस में चलते हैं, वहां आपको 'शमन चिंगारी' सुनाऊंगी.

काफी हाउस में पहुंचकर मेरी इच्छा हुई कि दीवार से मारकर सिर फोड़ लूं या जोर-जोरसे रोना शुरू कर दूं.

शमन कुमारी अपनी पुस्तक सुनाने में धुत थी. जब आधी पुस्तक पढ़ गयी तो मुझसे पूछा, "आप उकता तो नहीं गये, बस अब तीस कविताएं और हैं."

मैंने शिष्टता से काम लेते हुए कहा, "उकताया तो नहीं हूं. हां, एक जरूरी काम याद आ गया है. अगर आज्ञा हो तो सामने की दूकान पर जाकर फोन कर आऊं."

"बड़े शौक से." शमनजी ने कहा, "मैं इतने में कमाल साहब को 'डम डम डिग' पर कविता सुनाती हूं.

मैंने दो-तीन लंबे-लंबे श्वास लेने के बाद सामने की सड़क की ओर देखा. सहसा मेरी नजर एक पुलिस इंस्पेक्टर पर पड़ गयी.

वह काफी हाउस की ओर आ रहा था. ज्यों ही वह मेरे निकट पहुंचा. मैंने बड़े दयनीय स्वर में उनसे कहा, "आप पुलिस इंस्पेक्टर हैं?"

"जी हां."

"मुझे गिरफ्तार कर लीजिये."

"गिरफ्तार कर लूं. लेकिन आपका अपराध क्या है?"

"मेरा अपराध है कि मैं कला का पारखी हूं." □

मतदान

पृथ्वीराज अरोड़ा

गांव के प्राईमरी स्कूल के एक कमरे में मतदान-केंद्र की व्यवस्था कर ली गयी थी. बाहर रंग-बिरंगे कपड़ों में स्त्री-पुरुष कतार में खड़े थे. कुछ दूरी पर छोटे-छोटे बच्चे उत्सुकता से इस नजारे को देख रहे थे.

मतदान का समय हो गया. लोग एक-एक करके आने और मतदान का समय हो गया. लोग एक-एक करके आते और वोट डालकर चले जाते.

एक सांवली भोली-सी लड़की जब अलटर्नेट प्रिजाईडिंग अफसर के पास पहुंची तो उसने धीरे-से पूछा, "तुम्हारी उमर क्या है?" लड़की ने उत्तर नहीं दिया और सिर झुकाए खड़ी रही. अफसर ने दोबारा पूछा, "तुम्हारी उमर क्या है?"

"जी, वाह वाह ही है."

"यानि पंद्रह-सोलह साल." लड़की घबरा गयी. उसने इधर-उधर देखा. अफसर ने फिर कहा, "मैं किसी को बताऊंगा नहीं. तुम सच-सच बता दो."

"जी, सोलहवें में हूं."

"तुम्हें मालूम है, इस उमर के नागरिक वोट नहीं डाल सकते."

"जी, पता है."

"फिर तुमने ऐसा क्यों किया? जानती हो तुम्हें इस जुर्म में कैद भी हो सकती है."

लड़की रुआंसी हो गयी, "जी, मेरा भाई पढ़-लिखकर भी बेकार घूम रहा है. मेरे बाप को कहा गया है कि अगर वह सारे परिवार के वोट फलां उम्मीदवार को डलवा दे तो उसके बेटे को नौकरी दिलवा देंगे. इसलिए मुझे भी....."

अफसर ने लड़की को वोट डालने की अनुमति दे दी. लड़की वोट डालकर भारी कदमों से आगे बढ़ गयी. अफसर कुछ क्षण उसे जाते देखता रहा. फिर उसांस छोड़ अगले मतदाता की ओर उन्मुख हो गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असमर्थ

राजेंद्र सिन्हा

जिस चपरासी की ड्यूटी बंगले पर लग जाती है, वह दूसरे चपरासियों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है. बंगले पर बर्तन मांजने और कपड़े धोने के एवज में उसे अफसर से दूसरों की बुराई करने की सुविधा मिल जाती है.

प्रतीक्षा की लंबी घड़ी समाप्त हो गयी. नये साहब आ गये हैं. दफ्तर के प्रवेश द्वार पर बैठा मिट्ठू चपरासी बाबूओं को सूचना देने लपका. बाबू कुर्सियों को छोड़ बरामदे में से होते हुए प्रवेश द्वार की ओर दौड़े. जब तक बाबू दरवाजे तक पहुंचे साहब जीप से उतर चुके थे... एकटक नये दफ्तर की ओर निहार रहे थे. नये अफसर देखने में कैसे होंगे—जिज्ञासा समाप्त हो गयी. वे एकटक रियासती जमाने की इस खंडहर नुमा इमारत की ओर टकटकी लगाये हुए थे. खासे ऊंचे पूरे... चेहरे का रंग काला चिकना.. मोटे लेंस का चश्मा, ऊंची उठी हुई नाक पर टिका हुआ था. मटमैले रंग का सफारी पहने हुए. ऊंचे ललाट पर बिखरी हुई बालों की लटें प्रशासकीय अनुभव की झलक दर्शा रही थी.

"नमस्कार....स्वागत है". सबसे आगे बढ़कर हेड्क्लर्क बिदल बाबू ने झुके हुए हाथ जोड़कर नये अफसर का अभिवादन किया. हड़बड़ाकर दौड़े हुए चले आये थे. जल्दी में कोट के नीचे वाले बटन को ऊपरी काज में अटका लिया था... नये अफसर समझ गये, जरूर दफ्तर का बड़ा बाबू है. दरवाजे के इर्दगिर्द अन्य बाबू हाथ जोड़कर खड़े हुए थे. महिला कर्मचारी बाहर नहीं आयी थीं. इसी बीच सबसे पीछे खड़े चपरासियों की

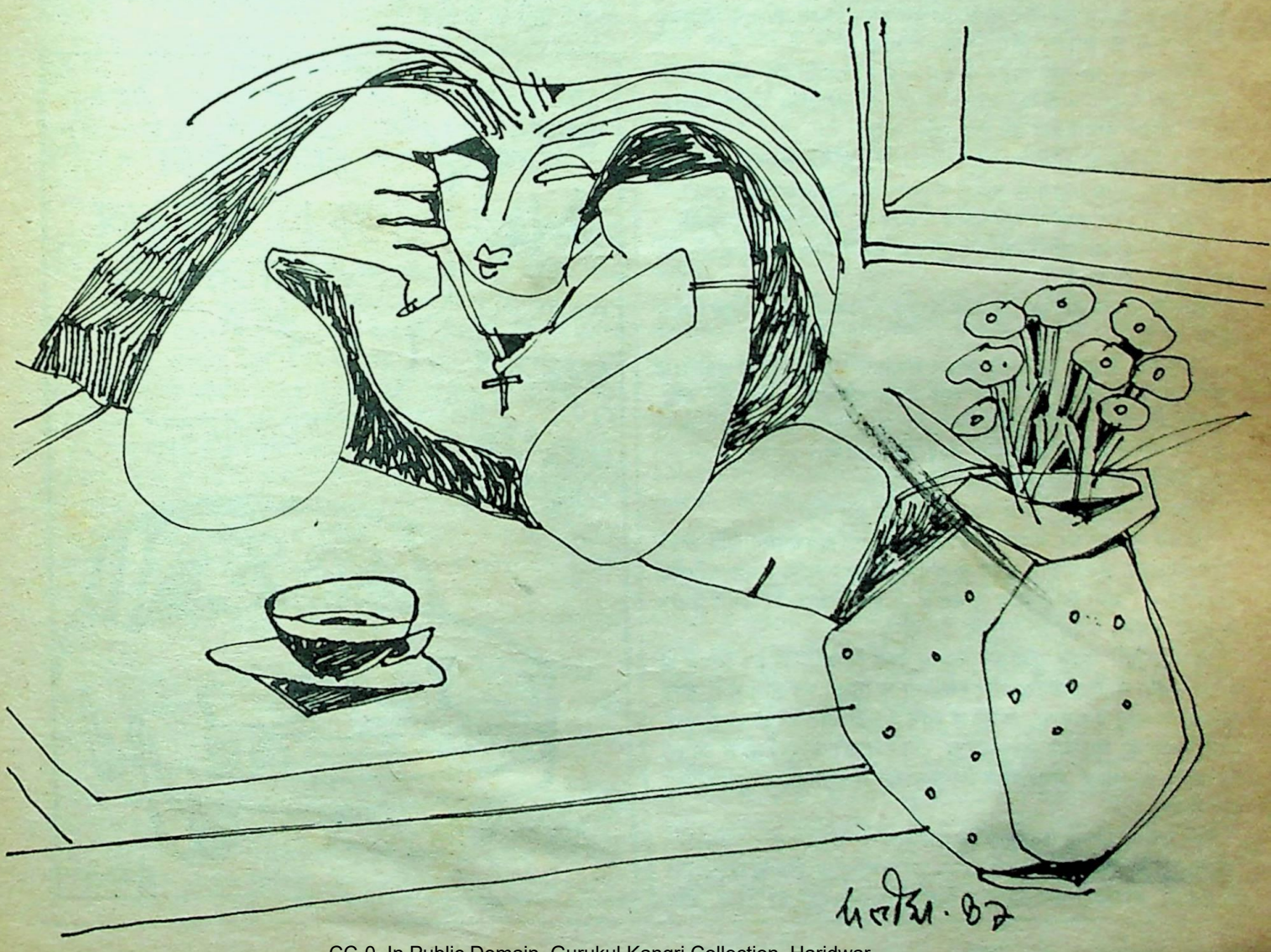

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कतार में शरीक छोटे लाल चपरासी ने आगे बढ़ने की चेष्टा की. क्लर्क रमेश ने उसे हाथ बढ़ाकर डपरते हुए रोक दिया, "अपनी औकात में रहो छोटे लाल." तिलकधारी बाबू ने भी उसे गुस्से की नजर से देखा.

भन्ना गया....औकात....! कल का नौकरी पर लगा हुआ यह लड़का मेरी औकात बतलाने लगा है. पत्थर की तरह जड़ बना हुआ छोटे लाल सोच रहा था— मैं इस दफ्तर का संबसे पुराना चपरासी हूं... अब तक हर अफसर की मूंछ का बाल बना रहा.... मेरी औकात..., और तुम बाबू लोगों की क्या औकात है? कोई दफ्तर में घुसा नहीं कि एक चाय और कचौरी के लिए पीछे पड़ जाते हो... और यह भिखमंगा लड़का हर महीने प्रपन्न से पैसे लेकर अपने बालों की कटिंग करवाता है... तंबाकू खाने के लिए सबसे सुबह से शाम तक दो-दो, चार-चार पैसे की भीख मांगता है. इनकी औकात? "कल तक कहते थे—छोटेलालजी... जमादार छोटे भय्या... साहब से कहकर हमारा ग्रेन लोन मंजूर करवा दो. हमारा जी.पी.एफ. मंजूर करवा दो.

टनन्-जोर की घंटी बजी. छोटे लाल को आवाज लगायी जा रही थी. एच.के.सथ, जो राय साहब के नाम से जाने जाते थे, अपनी नयी कुर्सी पर विराजमान हो चुके थे, मोटे लेंस का चश्मा टेबल पर झुकाये हुए, उंगली से टेबल ग्लास पर चढ़ी धूल पोंछ रहे थे. बड़े बाबू दस्तखत के लिए कैशबुक और चार्ज रिपोर्ट संभाले हुए चापलूसी भरी बातें सुनाते जा रहे थे— "सर, एम.एल.ए. साहब का फोन आया था. कह रहे थे साहब, आ जायें तो हमसे बात करवा देना. कलेक्टर साहब गुप्ता साहब से खुश नहीं थे. अक्सर कहा करते थे, कैसे हैं तुम्हारे साहब? काम-धाम तो करते नहीं, बस तंबाकू खाकर डाक-बंगले में पड़े रहते हैं?"

छोटे लाल चुपचाप भीगी बिल्ली बना एक कोने में सिमट कर खड़ा हो गया, देखा-साहब मंद-मंद मुस्कराते हुए टेबल ग्लास की धूल पोंछ रहे हैं. सूरत से तो अफसर रोबदार नजर आता है.

चपरासी के आने की आहट पा बड़े बाबू ने उसकी ओर गर्दन फेरकर डांटते हुए कहा, "क्या देख रहे हो, समझ में नहीं आता, जाओ, कपड़ा लेकर आओ और टेबल की धूल साफ करो."

फिर आवाज में नरमी लाते हुए साहब की ओर देखते हुए कहा, "क्या करें साहब, गुप्ता साहब के जमाने में काम में बहुत ढिलाई आ गयी है."

बहुत ही शांत स्वर में राय साहब ने कहा था, "सब ठीक हो जायेंगे."

साहब ने इच्छा जाहिर की, "दफ्तर के सब बाबुओं को बुलाओ. हम बात करना चाहते हैं."

हाल में जाकर छोटेलाल ने हांक लगायी—चलो-चलो, सबको साहब बुला रहे हैं."

सभाकक्ष में उस समय बिलकुल सन्नाटा था. कर्मचारी एक-एक करके कुर्सी पर बैठते जा रहे थे, एक तरफ महिलाएं आकर बैठ गयीं. दूसरी ओर पुरूष एक ठिगनी-सी लड़की जायसवाल जब अंदर दाखिल हुई तो साहब से नहीं रहा गया, आश्चर्यजनक स्वर में कहा, "ओ हो, इस बच्ची को किसने नौकरी पर रख लिया."

"हा.हा.हो.हो.हा!" सब ठकहा मारकर हंस दिये.

साहब ने उस पर बहुत प्यार जिताया, पीठ थपथपायी और अपने पास बिठाया. तत्पश्चात बहुत ही गंभीर होकर उन्होंने अपना परिचय दिया था— "आप सभी लोग जानते हैं, मैं इस विभाग का सबसे कठोर अफसर समझा जाता हूं." (कुछ देर मौन)

फिर उन्होंने गर्दन घुमाकर कहना शुरू किया, "मैं हर विषय में दखल रखता हूं. एकाडंट्स और स्थापना के नियम भी जानता हूं. कोई मुझे धोखा नहीं दे सकता. अच्छे के साथ अच्छा और बुरे के साथ बुरा, मगर किसी का नुकसान नहीं करता. (फिर कुछ रूककर) तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं, अनुशासन का उल्लंघन मैं कतई पसंद या बर्दाशत नहीं करूंगा...."

आगे उन्होंने अपनी सेवाकाल का एक किस्सा सुनाकर दृष्टांत दिया— "बालाघाट के दफ्तर में नरहरी नाम का एक बाबू था. सैंकड़ों शिकायतें की उसकी. शराब पीकर लोगों से गाली गलोच करता था. टी.ए. और मेडिकल पास करवाने के भी लोगों से पैसे लेता था. मैंने उसे बहुत समझाया— नरहरी, मैं दूसरे किस्म का अफसर हूं. एक मिनिट में तुम्हें ठीक कर दूंगा. नहीं माने, वही हरकतें. रिपोर्टों-रिपोर्टों, जांच-वांच, ये तो सब फिजूल की प्रक्रियाएं हैं, मैंने उसकी बंद कमरे में एक दिन धुलाई कर दी. भय्या, उस दिन से रास्ते पर आ गये."

दवे आदतन लेट लतीफ था. इस मीटिंग में भी वह देर से पान चबाता हुआ पाया. राय साहब क्या भिनके हैं. भय्या, एकदम गुस्से से थर्रा गये ओ हो, बाबूजी की खटिया खड़ी कर दी. डांटते हुए पूछा, "हू आर यू? मिस्टर नोट कर लो. मुझे अनुशासन-हीनता रत्ती भर बर्दाश्त नहीं. खिड़की से उठाकर फेंक दूंगा."

सन्नाटा. भयंकर सन्नाटा. राय साहब ने साफ-साफ उपस्थित कर्मचारियों को जता दिया— किसी के भरोसे मत रहना. मैं किसी नेता या पत्रकार से नहीं डरता हूं.

इस परिचय बेला में राय साहब ने एक मूलमंत्र कर्मचारियों को भेंट स्वरूप किया. इतना करो जितना आटे में नमक समाये.

मीटिंग समाप्त होने के पश्चात रायसाहब ने बिदल बाबू को रोक लिया. कुछ महत्वपूर्ण बातें करनी थीं, "बड़े बाबू जरा रूकिये."

बिदल बाबू रूक गये.

कितना नाटकीय स्वभाव था उनका. कहां, शोर की तरह बाबुओं की ओर दहाड़ते हुए राय साहब, कहां बड़े बाबू के सामने मेमने की तरह मिमियाते हुए— "अरे यार, बड़े बाबू, कल हमारी फैमिली आ जायेगी... बंगले पर एक चपरासी का इंतजाम तो कर दीजिये. जरा ढंग का हो, समझे."

बड़े बाबू फल के कुप्पा हो गये. हाथों की दोनों हथेलियां घुमा दीं, "हां साब... आज ही लीजिये."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी समय उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के संबंध में भी थोड़ी जानकारी भी दी- ईश्वर ने उन्हें सबकुछ दिया है... संपन्न परिवार, जमीन-जायदाद सबकुछ. किसी भी बात की कोई कमी नहीं. बड़े भाई ऊंचे आड़तिया हैं, लेकिन ऊपरवाले ने एक कसर रख दी. नहीं दी है तो केवल संतान.''

मोटे लेंस का चश्मा टेबल पर रखा हुआ था. स्थिर आंखों में आंसू झलकते हुए दिखे. एक दुःखी इंसान— बहुत ही दुःखी इंसान.

काम में बंटवारे की फाइल निकालकर बड़े बाबू कुर्सी पर आकर बैठ गये. आज की तारीख का सबसे महत्वपूर्ण काम बंगले पर चपरासी की व्यवस्था उन्हें करनी थी. बहुत ही पेचीदा काम था. इस दफ्तर में कोई ढंग का चपरासी है ही नहीं. मिट्ठू लाल-कामचोर. उसके मुंह की मक्खी ही उससे नहीं उड़ती. दिन भर दफ्तर के दरवाजे पर बैठा हुआ बीड़ी फूंका करता है. गणपत-चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी यूनियन का नेता है. उससे तो कोई काम कहना ही बेकार है. हमेशा नेतागिरी की डींगें हांका करता है. छोटेलाल-चुगलखोर. अफसर से दफ्तर की चुगलखोरी. गुप्ता साहब के साथ बदनाम भी हो चुका है. रसूलबेग-अरझरे. सबके सब बेकार. बड़े बाबू का दिमाग काम ही नहीं कर रहा था. शाम हो गयी. कोई निर्णय नहीं ले पाये.

साढ़े-पांच बज गये. दफ्तर का समय खत्म हो गया. घर चलने का उपक्रम शुरू हुआ. जैसा कि सदैव इस दफ्तर में होता आया है, एक-दो बाबू जिनकी निगाहें पांच बजे से ही घड़ी पर टिक जाती हैं, एकदम गायब नजर आये, महिला कर्मचारी साड़ी का पल्लू और मनीपर्स संभालती हुई नजर आती हैं. फर्राश के हाथों में झाड़ू होता है. दफ्तर के बाहर बड़े बाबू का कदम सबके बाद निकलता है. आज ऐसा नहीं हुआ. सभी गंभीर थे. दिमागों में प्रश्नों के अंबार थे. बहुत सोच रहे थे. कुछ ही दूर पी.एच.आई. का दफ्तर था. बड़े बाबू वहां तक पहुंचे ही होंगे कि पीछे से आते हुए दो साइकिल सवार बाबू उनके साथ हो लिये. फिर एक छोटी सी गली पार करके मैदान आता था. गली के नुक्कड़ पर ही एक बड़ा पीपल का पेड़, उस पर माताजी का मंदिर और ओटला बना हुआ था. कुछ बाबू रूककर इनका इंतजार कर रहे थे— नया अफसर कैसा है?

आसपास वहां केवल दो दूकानें थीं. एक मूंगफलीवाली कुछ दूर अपनी टोकरी लेकर बैठती थी. और एक गुमटीवाला चाय बनाता था. रूमाल झटकारता हुआ रमेश मूंगफली ले आया. मीटिंग शुरू हो गयी— एकता के लिए. अफसर कैसा भी हो, यदि हममें एकता है तो हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता. दूसरी बात सभी बिदलबाबू से यह जानना चाहते थे कि हम लोगों के बाहर आने के बाद राय साहब ने बड़े बाबू को रोककर क्या कहा?

बड़े बाबू बुजुर्ग थे. प्रशासनिक कार्य प्रणाली में ढीले होने के बाबजूद कर्मचारी हितों के रक्षक जाने जाते थे. उन्होंने अपने सभी कर्मचारी, साथियों को आश्वासन दिया, ''अफसर ऊपर से जरूर कठोर दिखता है, मगर हृदय से बहुत दयालु है. मैं जहां तक समझा हूं— मार लेगा, चिल्ला लेगा, मगर कभी किसी का नुकसान नहीं करेगा. पत्रकारों और नेताओं का चाटुकार है.''

सबने यह जानना चाहा, ''आखिर तुम्हें आज रोककर कहा क्या था?''

बड़े बाबू बड़प्पन में और फूल गये. एक महत्वपूर्ण काम सौंपकर उन्हें जो सम्मान प्रदान किया गया था उसके स्मरण मात्र से ही उनकी आंतरिक प्रसन्नता बढ़ गयी. बताया, ''कल उनकी फैमिली आ रही है. बंगले पर चपरासी का इंतजाम करना है.''

जिस चपरासी की ड्यूटी बंगले पर लग जाती है, वह दूसरे चपरासियों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है. बंगले पर बर्तन मांजने और कपड़े धोने के एवज में उसे अफसर से दूसरों की बुरायी करने की सुविधा मिल जाती है. छोटे लाल ने यह सब किया है. उसके कारनामे बहुत ऊंचे हैं. यदि वह गुप्ता साहब के साथ बदनाम नहीं हो जाता तो उसकी योजना विरोधी बाबुओं और चपरासियों को सस्पेंड करवाने की थी. महिलाओं के प्रति तो उसके हृदय में रत्तीभर भी सम्मान की भावना नहीं थी. श्रीमती चंदाणी कुछ अधिक बनाव श्रृंगार करके आती हैं. उन्हें देखकर तो वह जाने कैसी शक्लें बनाने लगता है. सभी के सामने इस समय एक ही खतरा था— छोटेलाल.

अब तक भटनागर बाबू चुप थे. वह अफसर चरित्र के पूर्ण मर्मज्ञ एवम ज्ञाता समझे जाते थे. उनके निष्कर्म तर्कपूर्ण, अकाट्य और अंतिम होते थे. चुप्पी तोड़ते हुए उन्होंने चेतावनी दी, ''अफसर को अच्छी तरह समझने में आप लोग बहुत गलती कर रहे हैं.''

कुछ क्षणों के लिए मौन छा गया. सबकी निगाहें भटनागर बाबू की आंखों पर टिक गयी. उन्होंने बात आगे बढ़ायी— ''साथियो, शायद आप लोग नहीं जानते हमारे अफसर की एक बहुत बड़ी कमजोरी है.''

फिर कुछ क्षणों के लिए मौन छा गया. आखिर भटनागर साहब कहना क्या चाह रहे हैं.

उन्होंने स्पष्ट किया, ''और वह कमजोरी है औरत. साहब बालाघाट में प्रशिक्षण केंद्र की एक व्यवस्थापिका को लेकर बदनाम हो चुके हैं. सुबह साढ़े दस से साढ़े पांच बजे शाम तक इनका दिन केंद्र पर ही गुजरता था. इस दफ्तर में दूसरा गुप्ता आ गया है.''

गुप्ता अर्थात पूर्व अफसर, जो गांव की एक सहायिका के घर पर रात को रंगे हाथ पकड़े गये थे. क्रुद्ध भीड़ उन्हें जान से मार डालना चाहती थी. छोटे लाल की मदद से बच निकले, बात अखबार तक में छप चुकी थी.

रमेश आवेश में आ गया. बुरी तरह चिल्लाया, ''बड़े बाबू, आपने यदि छोटे लाल की ड्यूटी बंगले पर लगायी तो दफ्तर रंडीवाला बन जायेगा.''

''चु...प,'' प्रसन्न ने उसे बुरी तरह डांटा, ''रमेश, अब तुम स्कूली बच्चे नहीं हो. एक सरकारी दफ्तर के बाबू हो. तुम्हें अपनी बोलचाल की भाषा सुधारनी चाहिए.''

भटनागर बाबू की इस गंभीर चेतावनी ने कर्मचारियों के रोंगटे खड़े कर दिये. नये सोच में पड़ गये. पुराने अफसर गुप्ताजी चरित्र के जरूर गिरे हुए थे. किंतु दफ्तर में सदैव मर्यादा से रहे. किसी भी महिला कर्मचारी की ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं. गांव की घटना यदि उजागर नहीं होती तो कोई नहीं जानता, यह चरित्र का इतना गिरा हुआ है. भटनागर बाबू ने कहा, ''राय साहब को तो लोकलाज का विचार नहीं.''

एकता— यदि कर्मचारियों में एकता रही तो आने वाली कठिनाइयों से निबटा जा सकता है. घर के भेदियों से सावधान रहा जाये. यदि अफसर कच्चे कान का हुआ तो मामूली-सी शिकायत भी किसी का कोई भी नुकसान कर सकती है. छोटे लाल को अफसर से दूर रखना बहुत जरूरी हो गया है. लेकिन इसका तरीका?

महफिल में उसका तरीका भी खोज निकाला गया— चौकीदार अरझरे करता क्या है? रात को आकर दफ्तर में सो भर जाता है. दिन भर पार्ट टाइम दो-तीन घरों के बरतन साफ करके ऊपरी कमाई कर रहा है. उसकी ड्यूटी दफ्तर में लगाकर छोटे लाल को चौकीदार बना दिये जाये. वह साहब और दफ्तर दोनों से अलग-थलग पड़ जावेगा.

वाह जनाब. क्या सुंदर उपाय ढूंढा है. बाबू लोग खुशी से नाच उठे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान की जय बोलो. बजरंग बली की जय के इस निर्णय के साथ कुछ शंका और कुशंकाओं को लेकर आज की मीटिंग समाप्त हो गयी.

जैसा कि कुशंका थी, इस उलटफेर से असंतुष्ट होकर अरझरे जरूर कुछ न कुछ उठापटक करेगा. वह भी कोई कम माया नहीं है. दफ्तर के जरूरतमंद बाबुओं और चपरासियों को ब्याज पर उधार पैसे देता है– ऐसा नहीं हुआ. रमेश ने उसे घुर दे दी– नया अफसर बहुत खर दिमाग का आया है. तूने अपनी सर्विस बुक में अपनी उमर दस साल कम लिखा रखी है. सो किसी ने शिकायत कर दी तो नौकरी से सफा हो जावेगा.'' चुप हो गया.

इसके बाद इस दफ्तर में कुछ समय बहुत सुख और शांति से बीता. एक अद्भुत श्रद्धा और विश्वास का वातावरण बनता जा रहा था.

दफ्तर में काम की गति ठीक प्रकार से चल निकली थी.अफसर की ओर से कोई रूकावट नहीं, दफ्तर का काम तो बाबू लोग ही करते हैं. राय साहब से सब बेहद खुश थे. अफसर कागजों पर दस्तखत आंख मूंदकर करता है. उनके लिए होली पर दी जानेवाली उपाधियां भी ढूंढी जाने लगी थी, लेकिन तभी राय साहब दफ्तर में एक हरकत कर बैठे.

फील्डवर्कर श्रीमती शरण इतनी सुंदर तो नहीं थीं, किंतु उनका इकहरा बदन और लंबा कद विशेष आकर्षक था. शरीर का रंग काला होते हुए भी बड़ी-बड़ी आंखें बरबस उन्हें देखने के लिए मजबूर करती थीं. रायसाहब अपने कमरे के कुर्सी पर बैठे हुए परदे की आड़ से देख रहे थे, बरामदे में परेशान-सी एक महिला इधर-उधर घूम रही है, घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया और पूछा, ''मिट्ठूलाल यह बाई यहां क्यों चक्कर लगा रही है?''

बताया गया, ''साहब, यह गांव की फील्डवर्कर शरण बाई है. दफ्तर में अपना टी.ए. मंजूर करवाने आयी है.''

तेवर बदल लिया. गरम हो गये, ''सेंटर से ड्यूटी छोड़कर दफ्तर में आयी है तो क्या छुट्टी लेकर आयी है? बुलाइये इन्हें. साहब के सामने श्रीमती शरण की पेशी करवा दी गयी. चुपचाप आकर खड़ी हो गयी. पूछा गया, ''सेंटर से आप क्या छुट्टी लेकर आयी हैं?''

चुप. बोलबंद.

साहब हावी हो गये, ''तो बिना छुट्टी लेकर दफ्तर में कैसे चली आयी? वैरी बैड-वैरी बैड, आपका गांव कितनी दूर है?''

अटकते-अटकते जवाब दिया, ''येई-अढ़ाई कोस.''

''हूं, आप लोग सेंटर पर रहती ही नहीं हैं. चलिये, हम आपका सेंटर देखेंगे.''

उसी क्षण राय साहब श्रीमती शरण को जीप में बगल में बैठाकर सेंटर चैक करने के लिए रवाना हो गये.

खी.खी.खी. दफ्तर में नयी उम्र की लड़कियां डेनी, कल्पना और जायसवाल मुंह पर रूमाल रखकर जोर-जोर से हंसने लगीं. अन्य कर्मचारियों में विशेषकर महिला कर्मचारियों में इस निर्लज्जता की तीव्र भर्त्सना हुई. इनकी मां-बहनें नहीं हैं क्या? गुंडा. सरकार कितनी बेवकूफ है! दफ्तरों में महिलाओं के बीच ऐसे व्यक्तियों को भेज दिया जाता है. दफ्तरों में अधिकतर संभ्रांत घरों की महिलाएं काम करती हैं. खुल्लम-खुल्ला जिसके मन में जो आया अनापशनाप बोला. अनुसूया बाई जिनके पति की मृत्यु के पश्चात उन्हें इस दफ्तर में नौकरी पर रख लिया गया था, जो आजतक एक शब्द नहीं बोली थीं. उनसे भी बिना बोले नहीं रहा गया. ''हमारे जेठ तो औरतों को दफ्तर में मर्दों के बीच नौकरी करने के सख्त खिलाफ हैं.'' श्रीमती चंदाणी, जिनके पति बेकरी चलाते हैं बोलीं, ''चंदाणी साहब तो रोज कहते हैं, तुम्हें किस बात की कमी है? छोड़ो इस झंझट को. घर में बैठकर राज करो.'' राष्ट्रीय विचार धाराओं से ओतप्रोत कुमारी मालविका का, जिनके लेख महिलाओं की पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे, आक्रोश अपनी चरम सीमा पर था, ''देखिये, देखिये, आजादी के चालीस साल बाद देश इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ता जा रहा है. राम, बुद्ध और गांधी के देश की धरती पर आज भी ऐसे दृश्य उपस्थित हो रहे हैं. नारी आज भी कितनी असहाय... बेबस है! नारियों के प्रति पुरूषों के दृष्टिकोण में आज भी कोई बदलाव नहीं.''

साढ़े पांच बज गये. दफ्तर की छुट्टी हो गयी. पी.एच.ई. के दफ्तर के सामने से होकर मैदान पार करके गली के नुक्कड़ पर पीपल के पेड़ के नीचे इस दफ्तर के कर्मचारी इकट्ठा होने लगे. आज फिर मीटिंग होगी– एकता– आज एकता की पहले से अधिक जरूरत है. एक के बाद एक कर्मचारी आते जा रहे थे. होनेवाली इस मीटिंग में विशेषता यह थी कि महिलाएं और चपरासी भी उपस्थित थे. दफ्तर में इस घटना के विरोध में एकजुट होकर उठकर मुकाबला किया जाना था.

प्रायः सभी लोग आ गये. मीटिंग की कार्रवाई शुरू हो गयी. सर्वप्रथम महिलाओं की ओर से गुमटी से चार मंगवायी गयी. चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी नेता गणपत सिंह रघुवंशी की ओर से प्रस्ताव आया, ''तृतीय श्रेणी कर्मचारी संघ और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी संघ की ओर से ज्ञापन तैयार किया जाये. इंटरवैल में दफ्तर के सामने खड़े होकर सब कर्मचारी चपरासी, नारे लगायें– गुंडागर्दी नहीं चलेगी, नहीं चलेगी. एच.के.राय मुर्दाबाद-मुर्दाबाद.''

किसी निर्णय तक पहुंचने के पूर्व बीच में ही एक निरर्थकवाद उत्पन्न हो गया. कर्मचारियों में एकता का नितांत अभाव है. जबकि यह तय हो चुका था छोटे लाल का पूर्णतय बहिष्कार किया जाये, अनावश्यक रूप से बड़े बाबू उसे क्यों मुंह लगाते हैं? परसों बड़े बाबू उसकी खुशामद कर रहे थे– छोटे, थोड़े दिन चौकीदारी कर ले, फिर तुझे दफ्तर में बुला लूंगा. क्या जरूरत है ऐसी लल्लो-चप्पों करने की. डरते हो? छोटेलाल क्या गर्वनर है, जो हम सबको नौकरी से निकलवा देगा!'' सभी बड़े बाबू पर पिल पड़े, ''सर्वथा नियंत्रण का अभाव....छोटेलाल रात को दफ्तर में ताला लगाकर गायब रहता है, कोई देखनेवाला, सुननेवाला नहीं, दफ्तर के बाहर की बिजली सुबह नौ-नौ बजे तक जलती रहती है. उससे स्पष्टीकरण पूछा जाना चाहिए.''

''दो मिनट,'' इस शोरगुल के बीच में उठकर बिंदल बाबू ने कुछ करने की इजाजत चाही.

मूल्यांकन

राजेंद्र परदेसी

बस का कहीं पता नहीं था. अन्य लोगों की तरह वह भी बस-स्टेशन पर बस का इंतजार कर रहा था. समय काटे नहीं कट रहा था. चाय पीने से कुछ समय कट जाये, इसी विचार से वह चाय की दुकान पर चला गया. बैठने की जगह खाली नहीं थी, इसीलिए खड़े-खड़े चाय पीने लगा. पास ही एक दस-बारह वर्ष की लड़की हाथ पसार कर सबसे भीख मांग रही थी. कुछ लोग पांच-दस पैसे दे रहे थे तो कुछ लोग सिर्फ नसीहत. लड़की शायद यह सब सुनने की आदी थी. जो पैसा देता उसके सामने तथा जो न देता उसके सामने भी उसी भाव से जाती. मांगते-मांगते वह उसके पास भी आयी. लड़की की दयनीय स्थिति देखकर उसका हृदय कुछ ज्यादा ही पिघल गया और अपनी जेब से एक पांच का नोट निकाल कर उसके हाथ पर रख दिया. लड़की ने पहले नोट को देखा फिर उसकी ओर फेंकते हुए कहा, ''स्साला नोट दिखाता है.''

लड़की की बात सुनकर वह किंकर्तव्य-विमूढ़ खड़ा-खड़ा सोचता रहा. ''क्या उसकी भावनाओं का यही मूल्यांकन है?'' वह सोचता ही रहा और लड़की उसके पास से कब चली गयी, उसे पता भी न चला.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी एक नहीं सुनी गयी. सब अपनी अपनी हांके जा रहे थे. यह बड़े बाबू की कमजोरियों का ही परिणाम है कि अफसर इतना निडर हो गया है. निकम्मे और बेईमान मजे मार रहे हैं और बेचारे कर्तव्यनिष्ठ बाबू और चपरासी पिसे जा रहे हैं.

"दो मिनट, खड़े होकर बिदल बाबू ने फिर कुछ बोलने की इजाजत चाही.

"आप बैठ जाइये, सब जानते हैं, आप कहना क्या चाहते हैं. यही न राय साहब बहुत सज्जन हैं. किसी का नुकसान नहीं करना चाहते आपके विचारों से हम सब अच्छी तरह वाकिफ हैं."

"दो मिनट." वे चिल्लाते रहे, लेकिन उनकी एक नहीं सुनी गयी. इस शोर-शराबे में प्रपन्न को बार फिर रमेश ने डांटना पड़ा, "रमेश!" वह एकटक डैनी को घूरता जा रहा था. समझ गया. निगाहें फेर लीं.

आज की मीटिंग यूंही समाप्त हो गयी. किसी ठोस प्रमाण के अभाव में भावी योजना नहीं बन सकी. इस बात पर सभी सहमत थे कि छोटेलाल की गतिविधियों पर अंकुश आवश्यक है. किसी भी सूरत में उसे अफसर के निकट नहीं पहुंचने दिया जाये. अत्यधिक हल्के स्तर का आदमी है.

ऐसा नहीं हुआ. यह कुछ ही दिन बाद शाम की घटना है. दफ्तर के सब लोग रवाना हो चुके थे. छोटेलाल अपना चौकीदारी चार्ज संभाल चुका था. दफ्तर के ताले, बिजली का लटट्, अन्य सामान वह चेक कर रहा था. उसी समय बरामदे का दरवाजा किसी ने थपथपाया. पोस्टमैन था. इस वक्त. बेसमय. छोटेलाल उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगा.

हाथ में एक बिना पते का लिफाफा थमाते हुए उसने कहा, "लो छोटे भयुया."

उलट-पुलटकर लिफाफा देखते हुए वह कुछ समझने का प्रयत्न करने लगा.

पोस्ट मैन ने माजरा स्पष्ट किया, "छोटे भयुया, यह लिफाफा आज डाक निकालते वक्त लेटर बाक्स से निकला है. इस पर अता-पता कुछ नहीं लिखा है. केवल भेजनेवाले की जगह तुम्हारे दफ्तर की सील है. बेचारा पोस्टमास्टर बहुत भला है. बोला-दे आओ कल्लू वरना यह लिफाफा महीनों इधर-उधर चक्कर काटेगा."

पोस्टमैन के रवाना होते ही छोटेलाल ने गजब की फुर्ती जतलायी, जैसे उसके हाथ जादुई चिराग लग गया हो. फट साइकल उठायी और दौड़ चला बंगले की ओर.

अगले ही दिन राय साहब ने दफ्तर में घुसते ही सबसे पहले बड़े बाबू की खबर ली, "बुलाओ बड़े बाबू को."

"सर.....", बिदल बाबू आकर खड़े हो गये.

उन्होंने चश्मा उतारा, रूमाल से पोंछा और टेबल पर रखते हुए धिक्कार भरे शब्दों में पूछा, "बड़े बाबू, इस दफ्तर में जावक कौन करता है?"

"रामकृष्ण तिलकधारी."

'कमाल है. लैटर बाक्स में लिफाफे बिना पते लिखे ही डाल दिये जाते हैं!"

बड़े बाबू चुप.

राय साहब ने छोटेलाल का दिया हुआ वह लिफाफा जेब से निकालकर टेबल पर रख दिया. देखिये न, देखिये, ए.जी. को जाने वाले कितने महत्व के कागजात हैं. बिदल बाबू को किस्सा समझ में आ गया. तिलकधारी ने आज तक कभी जिम्मेदारी से काम नहीं किया. सेवानिवृति में केवल दो वर्ष शेष हैं. आश्चर्य है आवक-जावक भी ढंग से नहीं कर सकते! दिन भर दफ्तर में ज्योतिष की बात किया करते हैं...शनि की साढे साती शुरू हो गयी है, केतु वक्री हो गया है.

बिदल बाबू को आश्चर्य तब हुआ, जब उन्होंने पाया कि अफसर ने इतनी बड़ी गलती गंभीरता से नहीं ली है. शांत स्वर में पूछने लगे, "बड़े बाबू, छोटे लाल को तुमने चौकीदारी में पटक रखा है. वह तो बहुत काम का आदमी है."

बड़े बाबू ने अदबन हां– में हां मिलायी, "जी हां, है तो बहुत होशियार चपरासी."

मंतव्य प्रकट किया, "कल बंगले पर यह लिफाफा लेकर आया था. बड़ा फुर्तीला नजर आया. बगीचे का काम भी जानता है. रसोई भी बना लेता है. ऐसा आदमी तो बंगले पर होना चाहिए. तुमने किसे भेज दिया."

फौरन बात बना दी, "बहुत होशियार आदमी है, सर पीर बावरची.... हर काम में उस्ताद, लेकिन एक बात है जिसकी वजह से वह बंगले पर नहीं रखा जा सकता."

".....?"

बड़े बाबू ने गर्दन झुकाकर इस तरह जैसे कि बहुत ही गोपनीय बात उजागर कर रहे हों, कहा, "हमने सब पता लगा लिया है, सर. दरअसल वह जात का नाई है, अपने को जाट बतलाता फिरता है."

राय साहब खुश हो गये, कहा, "वैरी गुड, वैरीगुड. आपने बहुत अच्छा किया बड़े बाबू, ऐसे आदमी को बंगले पर नहीं भेजा. हमारे घर में बहुत ही पुराने विचारों की हैं, चौके-चूल्हे तक पटकने नहीं देतीं. इतना परहेज-कोल्ही, चमार, कायस्थ मुसलमानों के तो चाय-पानी के बरतन अलग कर दिये हैं."

बड़े बाबू ने आज की बात तो संभाल ली. किंतु इस हादसे का दुष्परिणाम सामने नजर आ रहा था. शंका सत्य में परिणत हो गयी. पता नहीं यह खबर दफ्तर में किसने पहुंचाई. उस दिन दफ्तर खत्म होने के बाद जब सभी लोग जा चुके थे, दियाबत्ती लगे दफ्तर में छोटेलाल साहब का पैर दबा रहा था. और दूसरे दिन दफ्तर में हुआ विस्फोट...

दफ्तर में कदम रखते ही इधर-उधर फाइलों को फेंककर राय साहब ने आतंक फैलाना शुरू कर दिया. बड़े बाबू बुलाये गये.

उनसे जवाब तलब किया गया, "यह क्या बड़े बाबू, दफ्तर में गोपनीयता नाम की कोई चीज ही नहीं रही?"

उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया, "हमने चपरासियों की वर्दी देने के लिए खादी भंडार को लिखा है. छोटे लाल कल जिद कर रहा था, हम टैरीकाट की वर्दी लेंगे. आखिर यह पता कैसे चल जाता है, हम किसे और क्या आर्डर दे रहे हैं?

हुं! इसमें गोपनीयता भंग होने की क्या बात है. चपरासी अपनी वर्दी नाप देने खादी भंडार जायेगा और वर्दी का कपड़ा हम खरीदेंगे नावल्टी स्टोर से. बड़े बाबू चाहते तो जवाब देकर उन्हें चुप कर सकते थे, किंतु गुस्से के वक्त अफसर से जिरह करना मूर्खता है. वे चुप रहे.

थोड़ी ही देर बाद अल्लाह की गाय बन गये. शांत निवग्न स्थितप्रज्ञ बड़े बाबू को बुलाकर जानना चाहा– "बड़े बाबू श्रीमती चंदाणी के पास क्या काम है?"

"सर... शिकायत और जनरल सैक्शन दे रखा है?"

"टाइप भी जानती है?"

"सर....."

"बुलाइये उन्हें....."

एक अधेड़ उम्र की महिला को इतना बनाव-श्रृंगार कुछ अच्छा नहीं लगता. श्रीमती चंदाणी कुछ जरूरत से ज्यादा ही लिपस्टिक और पाउडर का उपयोग करती थी. अफसर के सामने चुपचाप आकर खड़ी हो गयीं– सर"...

कनखियों से ऊपर से नीचे तक देखते हुए राय साहब ने पूछा, "आप टाइप तो जानती हैं ना?"

"सर..."

"देखिये, मुझे आपसे आज एक जरूरी लेटर टाइप करवाना है."

"सर..."

"और देखिये, इस दफ्तर में कोई बात गोपनीय तो रहती नहीं है..."

"सर..."

आदेशित किया, "आपको आज आफिस टाइम के बाद रूकना होगा".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घबराती हुई श्रीमती चंदाणी पलटकर अपनी कुर्सी पर वापस आकर बैठ गयीं. सांस जोर-जोर से चलने लगी. पसीना आ गया था. साड़ी के पल्लू को हिलाकर हवा करने लगीं. जिज्ञासु बाबुओं ने आकर घेर लिया. "क्यों... क्या हुआ? क्यों बुलाया गया था? कुछ ही मिनटों में खबर सारे दफ्तर में फैल गयी. लो गोपनीय काम के लिए आफिस टाइम के बाद बुलाया जाने लगा. देख लिया छोटे लाल की कला का कमाल. कितनी जल्दी अपना जौहर दिखा दिया. सलाह मशवरा— काना-फूसी, खुसर-पुसर शुरू हो गयी. निश्चित रूप से बेशर्मी सीमा लांघ चुकी है.

अपनी कुर्सी पर सिकुड़ी हुई श्रीमती चंदाणी कुछ देर तक तो पसीना पोंछती रहीं. फिर उठी और डरते-डरते साहब के कमरे तक पहुंची. दबी जबान से कहा, "सर..."

"कहिये?"

"वो...."

"जी हां, कहते जाइये."

"वो..जरा..गेट... मैं कुछ देर के लिए घर हो आऊं."

राय साहब ने घर जाने की स्वीकृति दे दी, "शौक से जाइये, पर देखिये, आफिस टाइम खत्म होते-होते जरूर आ जाइएगा."

ऐसा अनुमान था कि निश्चित ही श्रीमती चंदाणी अफसर को झांसा देकर घर चली गयी हैं. सेर को सवा सेर. बाबू लोग बहुत खुश थे. आज फिर मीटिंग होगी. मेमोरेंडम तैयार कर लिया जायेगा. सेक्रेटरी, चीफ सेक्रेटरी, सबको प्रेषित किया जायेगा. मांग की जायेगी कि ऐसे गिरे हुए चरित्र के अफसर को यहां से तत्काल हटाया जाये.

साढ़े पांच बज गये. बड़े बाबू पी.एच.ई. के दफ्तर पहुंचे ही होंगे कि दो साइकल सवार बाबू पीछे से आकर उनके साथ हो लिये. कुछ माताजी के मंदिर तक पहुंच कर उनका इंतजार कर रहे थे. आश्चर्य. देखते क्या है, सामने से श्रीमती चंदाणी हाँफती हुई द्रुत गति से चली आ रही हैं.

रास्कल..... किसी ने किसी को नहीं देखा. वह तीर की तरह सीधी गर्दन किये हुए साड़ी का पल्लू संभालती हुई पास से गुजर गयीं. कितनी वाहियात औरत है. कथनी और करनी में कितना अंतर. कहती क्या है और करती क्या है. सब इधर-उधर बिखर गये. आज की मीटिंग नहीं हुई.

छोटे लाल के लिए आज खुशी का सबसे बड़ा दिन था. यह चंदाणी उसे देखकर सदैव किस तरह मुंह बिचकाया करती थी. दरवाजे के सामने से निकलकर आज सामने से कैसे अकड़कर जा रही है. बीड़ी के कश पर कश खींचते हुए आज तो उसने भी उन्हें झुककर सलाम किया. कुछ अंधेरा-सा हो चुका था दौड़कर उसने अफसर के कमरे की ओर टाइम रूम की बत्ती जलायी.

आज उसकी मानसिक प्रसन्नता चरम सीमा पर थी. वह दफ्तर के दरवाजे पर नहीं अपनी महत्वपूर्ण सफलता की दहलीज पर खड़ा हुआ था. आसमान की ओर मुंह करके बीड़ी का धुंआ छोड़ते हुए वह सोच रहा था— इस दफ्तर के बाबू लोगों ने उसकी हस्ती नहीं पहचानी. अफसर बदलते ही तेवर बदल लिये. छोटे लाल से दुश्मनी.. हा-हा..... .

रात हो चुकी थी. बरामदे से अफसर का कमरा दिखता था. खिड़की से बिजली की तेज रोशनी में अफसर का परेशान चेहरा साफ नजर आ रहा था. वह अच्छी तरह जानते हैं, जब तक दरवाजे पर छोटे लाल खड़ा है, इस दफ्तर में परिंदा भी पर नहीं मार सकता. टाइप कक्ष से टप-टप टाइप की आवाज लगातार आ रही थी.

छोटेलाल सोच रहा था— बड़े बाबू समझ रहे होंगे छोटेलाल को चपरासी से चौकीदार बनाकर बदला ले लिया. बच्चू, लड़ाई महंगी पड़ जायेगी. तिलकधारी को अपनी जमीन का घमंड है. बाप-दादा भीख मांगते थे और मंदिर की पूजा करते थे. जमीन दान में मिली हुई है. हमारी जमीन खरी कमाई की है. राम जय जय राम.... दूर मंदिर में जन-कीर्तन शुरू हुए. मंदिर के घंटे-घड़ियाल बजने लगे. उसकी विचार श्रृंखला टूटी. देखा, साहब सिर पर हाथ रखकर गर्दन झुकाये बैठे हैं. टाइप कक्ष से टप-टप लगातार टाइप की आवाज आ रही थी. उसे विश्वास था अभी घंटी बजेगी और वह बुलवाया जायेगा— छोटे लाल चंदाणी को बुलाओ या साहब खुद ही उठकर चल दें.

मंदिर से भजन-कीर्तन की आवाज बढ़ रही थी. दूर फाटक के पास कुत्ता मुंह ऊंचा किये रो रहा था. छोटेलाल आंतरिक प्रसन्नता में इतना खोया हुआ था कि यह शोरगुल उसकी विचार श्रृंखला को नहीं तोड़ पाया— रमेश अब फिर उसके पास आयेगा— छोटे भय्या से कहकर हमारा ग्रेन लोन मंजूर करवा दो! कल का लड़का हमसे अकड़ेगा. घर में आज आटा नहीं है, आज दाल नहीं है. एक दिन सिंधी ने उसका कालर पकड़ लिया था. दो महीने से उसकी दूकान का हिसाब नहीं किया था. हमने उसे सिंधी की मार से बचाया.

घंटी बजी. वह उछल गया. वह क्षण आ गया जिसकी प्रतीक्षा में वह लंबे समय से अधीर था. दौड़कर पहुंचा.

साहब ने कहा, "पानी पिलाओ."

मंदिर के भजन और कीर्तन की आवाज और तेज हो गयी थी. एकदम समझ में नहीं आया क्या कहा, चंदाणी को बुलाओ? भौंचक्का सा खड़ा रह गया.

साहब ने दुबारा कहा, "छोटेलाल, पानी पिलाओ."

धत् तेरे की. गयी भैंस पानी में, वह मायूस हो गया. पानी पिलाकर लौटते हुए वह फिर वापस आया. डरते-डरते हाथ जोड़कर मन में छुपा पाप उजागर कर गया, "साब... आप बेफिकर रहिये, दरवाजे पर मैं खड़ा हूं— छोटेलाल. अंदर परिंदा भी पर नहीं मार सकता..."

टाइप कक्ष से लगातार टाइप की आवाज आ रही थी. "टप-टप..."

दरवाजे पर खड़ा हुआ छोटेलाल कुछ समय के लिए अपने जीवन के स्मरणीय क्षणों में लीन हो गया— कौन नहीं जानता शहर में कमल पहलवान का कितना दबदबा है. नाम सुनकर सब कांपते हैं. उस दिन बस स्टैंड से पान वाली का हिसाब चुकता कर वह लौट रहा था, पीछे से पहलवान ने कंधे पर हाथ रखकर रोक लिया— "छोटे पहलवान, आजकल बड़ा रंग जमा रहे हो."

खट्..... दरवाजे की चौखट से जूता टकराने की आवाज आयी, अरे. यह तो बाहर जा रहे हैं— परेशान, घबराये हुये... उधर टाईपकक्ष से टप टप की आवाज बराबर आ रही थी. चंदाणी को बुलाया तक नहीं. वे बाहर आये. स्कूटर बाहर निकाला, किक मारी. दौड़कर वह उनके निकट खड़ा हो गया.

जाते-जाते छोटेलाल से राय साहब कहते गये, "टाइपिस्ट को बतला देना, साहब गये. और बस... इतना ही बतला देना साहब गये.. वे जायें."

बड़ा अहमक आदमी है. फिजूल इतनी जिल्लत. उसकी तमाम सुखद कल्पनाएं धल-धूसरित हो गयीं. आसमान पर चढ़ा हुआ छोटेलाल जमीन पर आ गया. वह दफ्तर के दरवाजे पर खड़ा हुआ एकटक स्कूटर पर जाते हुए साहब की ओर स्कूटर से निकलते हुए धुएं को देख रहा था. एक प्रश्न था— यह सब दिखावा क्यों? वह बेवकूफ नहीं था. स्थिति को अच्छी तरह समझ चुका था. अफसोस.... असमर्थ... सा.. ला पौने दो... □

चलते-चलते

एक व्यक्ति होटल मैनेजर से — "आपके होटल में रहने के अलावा न तो मैंने खाना खाया है न कि इस होटल की लड़की के साथ किसी प्रकार का लुफ्त ही उठाया है. फिर इन दोनों का चार्ज मेरे बिल में क्यों जुड़ा हुआ है?"

मैनेजर ने मुस्कराते हुए कहा, "गलती आपकी है साहब. मैं लड़की को खाना देकर आपके कमरे में भेजा करता था या नहीं?" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखे खेत लहलहाते चिंतन

शिवानंद कामड़े

उधर देश सूखा. इधर चिंतन. देश बहे तो चिंतन बहे. जब देश उठेगा तब चिंतन उठेगा. देश गिरा समझो, चिंतन गिरा. देश हरा तो चिंतन भी हरा. याने जैसा देश वैसा भेष. चाहता तो कोई नहीं था कि सूखा-उखा पड़े. पर अब जब पड़ ही गया है तो पड़ जाने दो. हम काहे को फालतू की चिंता में पड़ें. जिन्हें पड़ना हो वे पड़ें.

इस साल पड़ने में क्रमशः गति आयी है. पहले सूखा पड़ा फिर अकाल पड़ा. अकाल का प्रभाव तत्काल पड़ा. देश काल, अकाल, ट्रंक काल तथा नर कंकाल के ढेर में दब गया. खेत सो गये. किसान लेटे रहे. लेटे-लेटे आकाश तकते रहे. आकाश बादलों से ढंका था. बादल पानी से ढंके थे. लेकिन उस पानी का कोई मतलब नहीं था क्योंकि न तो उसमें नाव

आज का किसान प्रेमचंदीय युग का किसान नहीं है कि मुंह लटकाये, पसीना चुहचुहाये कर्जों का हल कंधे पर लादे मरियल गाय भैंसों को हांकते आये-जाये. अब वह स्वतंत्र है, पूरी तरह स्वातंत्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 'डी' के अंतर्गत अपेक्षित 'सारिका' नामक समाचारपत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का ब्यौरा, 8 जनवरी, 1988 के अनुसार.

1.	प्रकाशन का स्थान	10 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
2.	प्रकाशन की आवर्तता	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	सुश्री ऋचा जैन, स्वत्वाधिकारी, बेनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड के लिए
	क्या भारतीय नागरिक हैं?	हाँ
	पता	६, सरदार पटेल मार्ग, नई दिल्ली
4.	प्रकाशक का नाम	
	क्या भारतीय नागरिक हैं?	क्रमांक 3 के अनुसार
	पता	
5.	संपादक का नाम	श्री अवधनारायण मुदगल
	क्या भारतीय नागरिक हैं?	हाँ.
	पता	10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

6. **उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचारपत्रिका के मालिक और कुल प्रदत्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार या भागीदार हैं.**

भागीदार : (1) अशोका होल्डिंग्स लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (2) भारत निधि लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (3) कुमारी नंदिता जैन, शांति निकेतन, 12वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700017 (4) पी.एन.बी. फाइनेंस एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (5) मैसर्स साहू जैन लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (6) मैसर्स साहू प्रोपर्टीज लिमिटेड, कमरा नं. 21 स्टीफन हाउस, 4, डलहौजी स्क्वेअर ईस्ट, कलकत्ता-700 001 (7) श्री समीर जैन, शांति निकेतन, 14वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट कलकत्ता-700 017 (8) श्रीमती मीरा जैन, शांति निकेतन, 14वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017 (9) कैमक कमर्शियल कंपनी लिमिटेड, 33/1 नेताजी सुभाष रोड, 345, मार्शल हाउस, कलकत्ता-700 001 (10) अर्थ उद्योग लिमिटेड, 306, कुशल बाजार 32-33, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110 019 (11) पंजाब प्रोपर्टीज लिमिटेड, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (12) टीएम इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड, 13वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017 (13) एसजे एस्टेट्स लिमिटेड, शांतिनिकेतन, 14वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017 (14) अशोका विनियोग लिमिटेड, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017.

मैं ऋचा जैन, एतद् द्वारा घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपरोक्त विवरण सही है.

ऋचा जैन
प्रकाशक

1 मार्च, 1988

चलायी जा सकती थी और न ही खेती बाड़ी का काम. जब तक पानी नहीं गिरेगा उसका महत्व नहीं उठेगा.

नदियां सूख गयीं. उस पर राहत के टेंपररी पुल बन गये. उधर खेत सूख गये जहां विशेषज्ञों की समितियां लहलहाने लगीं. राहत के कमल इस सूखे दलदल में गमगमा उठे. ऋण के हल इन किसानों के कंधों पर जबरन लाद किये गये. किसान कुनमुना उठा. अब वह किसानी नहीं करना चाहता. किसानी से उसका विश्वास उठ गया. वह अपने खेत, खेत से जुड़े खेत, खेत के उस पार के खेत याने वह समस्त खेत बेचना चाहता है. खेतों के इन मेड़ों के परिधि से वह बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा है. छटपटाते हुए ऐसे किसी अज्ञात दिन ने जान ले डाली इस बेचारे किसान की. पर असलियत का पता किसी को नहीं चल पाता. पुलिस को भी नहीं. सी.बी.आई. तक यही रिपोर्ट देती कि किसान, भूख की पीड़ा से मर गया. इसे सूखे ने सूखा डाला.

भूख से मरनेवालों की संख्या में दिन दूरी-रात चौगुनी प्रगति देख गांव, शहरों तथा विधान सभा में हल्ला हो उठता. लोग उस पर प्रश्न उठाते. जांच समिति गठित होती. आदेश होता. और भूखमरों का एक दल विशेषज्ञ दल की हैसियत से भूख का दौरा करने पहुंच जाता. आंकड़े बटोरे जाते. कुछ फर्जी, कुछ बासी. इसे लेकर ये राजधानी लौट आते जहां कंप्यूटर से इन आंकड़ों की बारीकी से जांच होती. विशेषज्ञों के सुझावों, की सूचि बनती. उसके बाद इन आंकड़ों को छोटी-छोटी शीशीयों में बंद करके डायलिसिस में रख दिया जाता. इधर मृत किसानों की लाशें शहरों के चीरघर में सड़ती रहतीं. उधर इनके आंकड़े एयरकंडिशंड प्रयोगशालाओं में. कुल मिलाकर होता ये कि भूख से मृत इन किसानों की लांशें, गटर में बहा दी जातीं और उनके आंकड़ों के ऊपर लाखों रूपये खर्च करके सरकार राहत का मकबरा बनवा देती. विदेशी आते और आंकड़ों से निर्मित इस भव्य मकबरे पर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कर ताजमहल देखने निकल जाते.

इतना सब जानकर भी किसान, भारतीय किसान, दुखी या चिंतित नहीं होता क्योंकि यह बात सिर्फ वही जानता कि सूखा उसके हित में है या पर हित में. सूखा पड़ने के बाद, किसान किसान न रहे, वे इंसान हो गये. उनका जीवन ही बदल गया. सूखा पड़ना देश के लिए मंहगा पर किसानों के लिए सस्ता पड़ा. क्योंकि वे सस्ते हो गये. अनाज मंहगा हो गया. खाने, व उगानेवाले सस्ते हो गये. उनकी सारी दिनचर्चा ही बदल गयी. पहले वह एकदम तड़के उठता था फिर दिशा मैदान से निबृत्त होकर राम राम करता वह सीधे खेतों की तरफ भागरता. और धरती पर सूर्य की किरणें पड़ते आधा खेत जोतकर रख देता पर अब वह सुबह 7.30 के पहले नहीं उठ पाता. 11.30 बजे सोनेवाला प्राणी, प्रकृति के नियमानुसार 8 घंटे की नींद तो लेगा ही. हां, ये बात अलग है कि किन्हीं कारणों से रोज ऐसा नहीं कर पाता. वह भी कुछ मजबूरीवश. मंगलवार को तो और भी गजब हो जाता. बिस्तर छोड़ते-छोड़ते आठ बज ही जाते. सोचो, कितना अच्छा होता होगा वह दिन जब किसान लतीफे छाप कार्यक्रम देखकर प्रफुल्लित मन से उठता और दिन भर गमकता रहता सदैव हंसते मुस्कराते इस किसान के चेहरे पर झुर्रियां ढूंढ़े नहीं मिलतीं उसने अपने चेहरे की सारी झुर्रियां जमीन में गाड़ दीं. इसी से अकाल पड़ गया उसके चेहरे की ये झुर्रियां, जमीन में दरार बनकर उभर आयीं.

आज का किसान प्रेमचंदीय युग का किसान नहीं है कि मुंह लटकाये पसीना चुहचुहाये कर्जों का हल कंधे पर लादे मरियल गाय-भैंसों को हांकते आये-जाये. अब वह स्वतंत्र है, पूरी तरह स्वतंत्र. न उसे जमींदार की जी हुजरी करने की चिंता है न कर्ज पटाने का भय. उसके गुलामी के दिल गये. मन होगा तो आयेगा खेत, नहीं तो गांव में ही घूमता मिलेगा या फिर सायकल उठायी और चल पड़े 'सिटी' की ओर.

पहले ये किसान, बीज खरीदने या दूध बेचने के बहाने महीने में या हफ्ते में एकाध बार कभी-कभी शहर आता था पर अब तो हफ्ते में दो-तीन चक्कर लग जाते हैं. इन दिनों अक्सर उसे टी.वी. की दूकानों के आसपास मंडराते हुए देखा जा रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

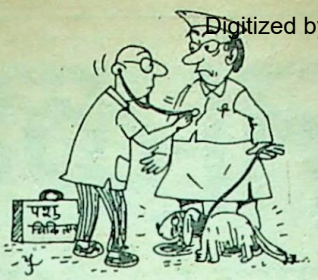

टी.वी. की वजह से गांव का माहौल ही बदल गया. अपूर्व शांति छायी वहां. पहले खेतों को लेकर या खेतों में बहने पानी की दिशा को लेकर तू-तू, मैं-मैं हो जाती थी, लाठी-बर्छे निकल आते थे सिर फुटौबल की नौबत आ जाती.

"मैं कहता हूं कि पानी इधर आया तो आया कैसे?"

"अबे तो मुझसे क्या पूछता है. जा पूछ अपने बैल से. उसने मेरे मेड़ को तोड़ा क्यों?" लेकिन टी.वी. की वजह से उसके व्यवहार, हावभाव में एकदम चेंज आ गया है, अद्‌भुत परिवर्तन.

"अरे रामदीन..... घर में हो कि नहीं."

"कौन? माधो भइया. जैराम जी. आओ आओ, भीतर चले आओ."

"नहीं, बस यही ठीक है."

"अरे आओ आओ..... अपना ही घर है."

थोड़ी देर तक बाहर ही खड़ा रहकर माधो कुछ सोचता रहा. लेकिन जब उसे मच्छर कुछ ज्यादा ही तंग करने लगे तो दहलीज में चढ़ ही गया.

"बैठो न." ऐसी भी क्या जल्दी है?" टी.वी. देखते-देखते उसने ऐसे ही पूछ लिया.

अब माधो भी टी.वी. देखने लगा. छोटे से परदे पर बड़ी-बड़ी चीजें. किसी खाद का विज्ञापन चल रहा था.

"क्यों भाई ये किसान छाप यूरिया खाद आखिर होता कैसा है? कभी उपयोग किया क्या तुमने....."

"हां चचा, बहुत ही बढ़िया चीज है. चार खेतों में आज सुबह ही छिड़क के आया था."

खेत का नाम आते ही माधो को अपने खेत की बात याद आ गयी. खाद भूलकर वह खेत में आ गया.

"बात यह है राम्. कि आपके खेत का वो खादवाला पानी अपने इधर बहने लगा तो हमने सोचा कि तुम्हारा नुकसान (नुसकान) हो रहा है, फालतू पानी बह रहा है खाद का. नुकसान अगल, सो हम चले आये बताने.

"तो क्या हो गया भइया. अरे खेत मेरा हो या आपका. पानी खेत में ही जा रहा है न जैसे मेरे खेत वैसे आपके. गांव के खेत हम सबके हैं. पानी गांव के बाहर तो जा नहीं रहा. ये धरती तो अपनी मां है उसकी सेवा छोटा बेटा करे या बड़ा कौन फर्क पड़ता है. मैं तो कहता हूं कि एक बोरी खाद आप भी ले जाओ. बहुत बढ़िया खाद है. चार बोरे ले आये थे लदवाकर मंगलू के ट्रेक्टर में." मुफ्त मिलता देख माधो का सारा गुस्सा चरमरा गया. आवाज में मीठे तेल का खनक आ गयी बोला, "तेरे को बैल बैल तो नहीं चाहिए!"

"न... आप पहले अपना जोत लो, फिर देखा जायेगा. वैसे भी इस साल पानी-पानी के आसार कम ही दिख रहे हैं."

"अरे कैसी बातें कर रहे हो. देखो, जगह-जगह पानी बरस रहा है. सोलह आने नहीं तो बारह आने तो होना ही है समझो. टी.वी. में नहीं देखा, सब जगह पानी ही पानी."

"का वर्षा जब कृषि सुखाने....." एक लंबी जम्हाई डिसपेच करते हुए रामदीन ने कहा. अरे अपने शरीर का वजन दायें से बायें पैर पर डाल दिया.

"यार, एक बात हमको भी बताओ. ये टी.वी. तुमको कितने में पड़ा."

अरे हम तो इसे शहर से उठा लाये हैं. टी.वी. का नाम सुनते ही उसकी सारी थकान दूर हो गयी-पांच कम पचास कोरी का हुआ समझो. अंटिया (एंटिना) मिलाके."

"अच्छा! इतना पैसा. कहां से ले आये भाई."

"सब धरती माता की कृपा है. खैनी बनाते हुए वह बताने लगा– बरगद के पास वह खेत था न, तिकोनावाला. बेच दिया उसे सीताराम के पास. बार-बार झगड़ा करता था. अब हमें ये झगड़ा-वगड़ा पसंद है नहीं. अच्छा नहीं लगता ये सब. इसलिए सोचा कि बेच ही दें. झंझट ही टूटे. हां, इसी में भलाई है हम सब की, गांव की, देश की..... क्यों ठीक नहीं किया?" खैनी देकर हाथ, धोती के छोर से पौंछते हुए कहा.

"भइया हमें भी दिलवा दो न एकाध हल्का-फुल्का सा टी.वी."

"हां-हां, क्यों नहीं, शहर चलो किसी दिन. किश्तों में दिलवाय देंगे अपनी तो पहचान हो गयी है वहां. दूध देने जाते थे होटल. उसी के बगल में दूकान है टी.वी. की... कौन बड़ी बात है."

"बहुत बहुत कृपा आपकी. अच्छा तो कल चलेंगे."

"जैसी मरजी हम तो कहते हैं कि अभी चले चलो. वैसे हम कल नहीं जा पायेंगे काहे कि कल पड़ गया इतवार सुबह से भिड़े रहते हैं शाम को चिक्चर विक्चर का टाइम... सो हो नहीं पायेगा."

"पर वहां तो सोमवार को पूरा मार्किट बंद रहता है."

"मंगलवार."

"अरे कहां भइया, लौटते-लौटते ही रात हो जायेगी. 'कालाजल' मिस हो जायेगा दद्दू. पैसा देकर लाये हैं तो क्यों छोड़ें. 'धमाल' तक नहीं देख सकेंगे मजा दे रहा है आजकल."

"बुधवार को.."

"ओह माधो जी, आप समझ नहीं रहे, 'चित्रहार,' 'रथचक्र,' सब गड़बड़ हो जायेगी. बृहस्पति को 'अमृता' शुक्रवार 'कबीर,' शनिवार 'चुनौती,' ये सब छोड़कर नहीं सकते अपने. पचासों काम छोड़कर यह सब देखना पड़ता है. अब देखो न मुन्ने की अम्मा चार दिन के लिए मायके गयी थी, आज उसको 22 दिन हो गये. पर न उसे आने की जल्दबाजी न मुझे कोई परेशानी टी.वी. की वजह से टाइम का कुछ पता नहीं चलता."

"खैर कोई बात नहीं..... फिर कभी देखेंगें, अच्छा चलूं मैं...."

"देखो भइया, बुरा न मत मानना. मजबूरी है. जिस दिन समय मिला खबर भिजवाऊंगा. चले चलेंगे दोनों. एक दिन की तो बात है. मेरे लायक और कोई सेवा हो तो बताओ....."

"बस रामदीन, एक काम कर दो... तुम्हारे उस खेत का सड़ा पानी मेरे खेत में न आये. यदि एक बूंद भी अब इधर पड़ा तो समझो.... अब हां.... समझ लेना कि हमसे बुरा....." कहता हुआ माधो तीर की तरह गली में जा घुसा."

मित्रो, आज देश की स्थिति यह है कि खेत और किसान दोनों ही आलसी हो गये हैं, कामचोरी करने लगे हैं. लापरवाही दोनों की है..... पर उगाना नहीं चाहता, दूसरा उगना नहीं चाह रहा. जिस पर सरकार का आश्वासन ये कि– 'डोंट माइंड, अपने पास खूब भंडार है. चल जायेगा.' ऐसे लाड़ प्यार से किसान और बरबाद होते जा रहे हैं. एक समय ऐसा आ आयेगा कि देश को किसान ढूंढे नहीं मिलेंगे. लोग खेती को पिछड़ेपन का प्रतीक समझेंगे. बड़े-बड़े खेत, सिकुडकर डाक टिकटों में समा जायेंगे. अंततः सरकार कृषि विश्वविद्यालयों के स्नातक, स्नात्कोत्तरों व पी.एच.डी. यों को अच्छे वेतनमान का लालच देकर उनसे हल चलवायेगी. बैल हड़ताल में रहेंगे वे नये वेतनमान व अन्य सुविधाओं की मांग करेंगे. खेतों को कंप्यूटर से जोता जायेगा. संपन्न किसान रिमोट कंट्रोलर से खेती करेंगे. ये नये किसान देखते ही देखते इक्कीसवीं सदी को जोतकर रख देंगे. तब फिर मत कहना कि मैं तुम्हें गाली दे रहा हूं कि आखिर हो न कृषि प्रधान देश के!.

□161 जरहा भाटा, बिलासपुर, (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्ता-कथा

लक्ष्मीकांत वैष्णव

उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था. वह गली के कोने में रहने वाले उस सेठ की तरह नहीं था जो लखपती सेठ होते हुए भी अपने सेठपन से दुखी था. वह भेरूलाल नेता की तरह भी नहीं था जिसे विधायक की सीट मिल जाने के बावजूद संतोष नहीं था. वह प्यारीबाई वेश्या की तरह भी नहीं था जिसके यहां सुबह से शाम तक ग्राहकों की लाइन लगी रहने के बावजूद असंतोष था कि रामरती के यहां भी चार-छह ग्राहक क्यों चले जाते हैं.

उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था. अपने लाल रंग से संतोष था. अपने मुंह के आसपास काले रंग के चकत्तों से संतोष था. छंगू हलवाई की दूकान के सामने पड़े राख के उस ढेर से संतोष था जहां वह ठंड के दिनों में अपने पंजों से कुरेद-कुरेदकर जगह बनाकर दुबक जाया करता था. गर्मी के दिनों में ठंडाई के लिए म्युनिसिपैलिटी के नल के पास एक डबरा उसने सुरक्षित कर रखा था जिसमें कमर तक डूबकर वह अकसर बैठ जाया करता था और आराम से जीभ लटकाकर मुंह से सांस लेता रहता था. हालांकि भूल से एक बार वह कलक्टर के बंगले में घुस गया था और वहां की एयरकंडीशनिंग की ठंडक उसे अपने डबरे की तुलना में कई-कई गुना अच्छी लगी थी, मगर वहां तैनात पहरेदारों, लाठीधारी नौकरों, और अल्सेशियन नस्ल के कुत्तों के खतरे को भांपकर वह जल्दी ही बाहर निकल आया था तथा उसने सोचा था कि कैद में बंद सुविधाओं के बदले स्वतंत्र असुविधा कहीं ज्यादा बेहतर है. ठंडक के लिए उसे अपना डबरा ही सर्वोत्तम लगा था. शांतिपूर्ण, निरापद. यह नहीं कि वह कोई संत के ढंग से सोच रहा था, बल्कि था यह कि उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था.

संतोष की स्थिति एकदम नहीं आती. धीरे-धीरे आती है. जब वह पैदा हुआ था तो उसकी आंखें बंद थीं. फिर धीरे-धीरे खुलती गयी थीं. और पूरी खुल जाने के बाद भी उसकी मां चंपी कुतिया ने कहा था कि, "बेटा, अभी तेरी आंखें पूरी नहीं खुली हैं. कुत्तों की आंखें मर जाने के बाद ही पूरी खुलती हैं. ठीक वैसा ही, जैसा आदमियों के साथ होता है. आदमी की आंखें भी पूरी तभी खुलती हैं, जब उसकी आंखें पूरी तरह बंद हो जाती हैं. बल्कि बाज आदमी तो मर जाने के बाद भी कुछ रहस्यों को देखने से वंचित रह ही जाते हैं." मां चंपी कुतिया ठीक कह रही है या गलत, तब उसने ध्यान नहीं दिया था. मगर जीवन में ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ा, बड़ा होता गया, उसे चंपी कुतिया के कहने पर विश्वास होता गया था. हालांकि वह दावा अभी भी नहीं करता था कि उसकी आंखें पूरी तरह खुल चुकी हैं, मगर यह वह जानता था कि उसकी आंखें काफी खुल चुकी हैं. और उसे अपनी आंखों के इतनी खुल जाने से ही संतोष था. संतोष उसे अपने समूचे अस्तित्व से था, अपने कुत्तेपन से. उसके सामने अस्तित्व के संकट का कोई प्रश्न नहीं था जिसे कहवा घर में दोसा खाते हुए कुछ दढ़ियल छोकरे अकसर प्रकट करते रहते थे. वह कुत्ता था और काफी हाउस नहीं जाता था. दोसा उसे पसंद नहीं था और दाढ़ी वह चाहता तो भी नहीं बढ़ा सकता था. लिहाजा उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था.

अपने छह भाइयों के साथ इस दुनिया में आया था वह. बाकी पांच भाई आज कहां हैं, वह नहीं जानता. वे लोग कुछ आवारा किस्म के थे और पैदा होने के कुछ दिन बाद ही इधर-उधर भागने-दौड़ने लगे थे. धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होती चली गयी थी. पांच के बाद चार, चार के बाद तीन, तीन के बाद दो, और दो के बाद अब वह अकेला बचा था. मां चंपी कुतिया इसी से अधिक स्नेह करती थी क्योंकि यह हमेशा चंपी कुतिया के इर्द-गिर्द ही मंडराता रहता था. कोई भी मां हो, अपने इर्द-गिर्द मंडरानेवाले बच्चे को ही सर्वाधिक प्रेम करती है. मगर इसे अब लगता है कि मां चंपी कुतिया इसे प्रेम करने पर मजबूर थी क्योंकि इसके अलावा उसका कोई दूसरा बच्चा उसके पास टिकता नहीं था. चंपी कुतिया के छह थनों में से किसी भी थन में मुंह लगाकर वह छककर दूध पी लेता था और उसके पीछे-पीछे फिरता रहता था.

मां के साथ रहने पर जीवन के कुछ कटु अनुभव उसे कम उम्र में ही हो गये थे. मसलन, कहीं भी जाओ, दुत्कारा जाना ही है. और इस मामले में आपको संवेदनशील नहीं होना है. मां अपनी संवेदना अकसर छंगू हलवाई की दूकान के सामने राख के ढेर में दबा जाती थी तथा हमेशा मानापमान से मुक्त रहती थी. इसने दो-एक बार कहा कि वह इस प्रकार के अपमान का अभ्यस्त नहीं है, तो मां ने कहा था, "बेटा तुम्हें अभ्यास डालना चाहिए." उसे एक अनुभव और हुआ था, और वह यह कि जब भी कोई दूसरा कुत्ता सामने पड़ जाये और आप उसकी गली में हैं, या उसके अधिकार क्षेत्र में गये हैं, तो आपको दुम दबा लेना चाहिए. उसने दो-एक बार अपनी मां को इस प्रकार की स्थितियों में पड़ने के बाद लहूलुहान होकर अपने दड़बे पर लौटते देखा था और चुपचाप अपने जख्मों को महीनों चाट-चाटकर ठीक करते देखा था. उसने कई बार मां से कहा था कि वह प्रत्याक्रमण क्यों नहीं करती, तो मां ने कहा था कि, "बेटा, जब तक आक्रमणकारी अधिकार में है, उस पर आक्रमण करना खतरनाक होता है. अभी वह केवल लहूलुहान करके छोड़ देता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दांत-नाखून दिखाने पर हो सकता है, नेस्तनाबूद कर दे. पूरी तरह मरने के बजाय, अधमरा रहकर अपने समय की प्रतीक्षा करना ज्यादा बेहतर होता है. और उसे लगने लगा था कि मां अपने कुतियापन से संतुष्ट-सी लगती है. सोहबत का असर होता है. उसे भी हुआ था. आज उसे लग रहा है कि वह अपने कुत्तेपन से संतुष्ट है, इस संतोष में उसकी मां चंपी कुतिया का एक बहुत बड़ा योगदान रहा है.

छंगू हलवाई की दूकान के सामने राख के ढेर पर पड़ा-पड़ा मोती कुत्ता सोचता रहता है, सोचता रहता है. सोचने की उसकी यह आदत जन्म की ही नहीं है. जब तक हाथ पैर में जान थी, ताकत थी, वह सोचता कम था और भागता-दौड़ता अधिक था. अब वह खुद महसूस करने लगा था कि उसकी हालत उस रिटायर्ड पोस्ट मास्टर बुड्ढे जैसी हो गयी है जो अपने घर के सामने खटिया डालकर दिन भर बैठा-बैठा खांसता रहता है तथा कभी अखबार पढ़ता है तो कभी अकेला ताश खेलताहै. जब तनिक छोटा था मोती कुत्ता तो उस पोस्ट मास्टर की नकल में वह भी किसी फटे अखबार का रद्दी टुकड़ा मुंह से पकड़कर घसीटता हुआ ले आता था और अपने राख के दड़बे पर बैठकर, कागज पंजों के बीच दबाकर अपनी थूथन से उसे जगह-जगह सूंघता रहता था. मगर उसकी यह आदत दूसरे कुत्तों को शायद पसंद नहीं आयी थी और वे अखबार के टुकड़े को अकसर छीन-झपटकर फाड़ दिया करते थे. पहले-पहले मोती कुत्ते को बुरा लगा था. मगर धीरे-धीरे वह अभ्यस्त हो गया था इस बात का. वह समझ गया था कि दूसरे कुत्ते उसका बुद्धिजीवी होना बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं. लगभग यही स्थितियां वह काफी हाउस के कांच के दरवाजों के अंदर बैठे दढ़ियल छोकरों के बीच भी देखा करता था. उसने देखा था कि एक टेबुल के आसपास बैठे चार-पांच दढ़ियलों में से कोई एक दढ़ियल अपने झोले से कुछ कागज निकालता था और पढ़ता था. उसके पढ़ चुकने के बाद, या पढ़ने के दौरान ही, बाकी दढ़ियल उस पर टूट पड़ते थे. छीन-झपट के बाद जब वह अकेला दढ़ियल बाहर निकलता था तो उसकी दाढ़ी के काफी बाल नुचे हुए होते थे तथा उसके कपड़े और कंधे का झोला जगह-जगह से फटे हुए होते थे. अपनी तरह औरों को भी दुख झेलते देखकर, आदमी अपने दुख से संतोष कर लेता है. मोती कुत्ते ने भी अपने कुत्तेपन से संतोष कर लिया था.

चंपी कुतिया आज इस दुनिया में नहीं है. उसकी मां चंपी कुतिया, जिसे देख-देखकर वह चलना सीखा, भागना सीखा, खाना सीखा, सोना सीखा, भौंकना सीखा, दुम दबाना सीखा. केवल एक काम वह अपनी मां से नहीं सीख पाया था और वह था बच्चे जनना. उसने अनेक बार अपनी मां से पूछा था कि क्या वह बच्चे नहीं जन सकता? तो मां चंपी कुतिया ने बदले में कहा था कि, "बेटा, दुनिया में कुछ काम हैं जो केवल स्त्री कर सकती है, मर्द नहीं कर सकता. साथ ही कुछ काम ऐसे हैं जो केवल मर्द कर सकता है, स्त्री नहीं कर सकती. जो काम अपन नहीं कर सकते, उनके बारे में अपने को अपनी सीमाएं पहचाननी चाहिए और वस्तुस्थिति से संतोष करना चाहिए." मोती कुत्ते ने अपनी उस स्थिति से भी संतोष कर लिया था. बाद को चलकर मोती कुत्ता यह समझ चुका था कि अगर वह खुद बच्चे नहीं जन सकता, तो किसी कुतिया को तो इस काम के लिए उत्प्रेरित कर ही सकता है.

जिन कुतियाओं के संपर्क में मोती कुत्ता आया, उसकी भी एक अलग दास्तान है जिस पर मोती कुत्ता अभी नहीं सोचना चाहता था. कुतियाओं के बारे में सोचकर वह अकसर उद्विग्न हो जाता था. उसने लाख कोशिश की थी कि अपने जीवन में आयी कुतियाओं के बारे में कोई स्पष्ट धारणा वह बना ले, मगर हर कुतिया उसके लिए एक पहेली थी जिसका हल मोती कुत्ता बार-बार कोशिश करके भी नहीं निकाल पाया था. वह हफ्तों, महीनों छंगू हलवाई की दूकान के सामने पड़े राख के ढेर पर पड़ा-पड़ा, उनमें से हर एक के बारे में सोचता रहा था. सोचता रहा

मोती कुत्ता उन दिनों देखने में काफी आकर्षक था तथा तीन-चार कुतियाओं ने उसी समय अपना सहयोग उसे देने का आफर किया था, मगर मोती कुत्ते ने कुतियाओं के प्रवेश पर आपत्ति की थी.

था. मगर हर सोच का परिणाम वह राख का ढेर होता था जिस पर वह पड़ा हुआ था. जिन दिनों इन मामलों को लेकर वह उदास रहता था, उन दिनों छंगू हलवाई द्वारा उसके सामने फेंके गये जलेबियों के टुकड़े और ग्राहकों द्वारा फेंके गये दोनों में चिपके भजियों-आलूबड़ों के कण भी उसका ध्यान आकर्षित नहीं कर पाते थे.

हकीकत से जुड़ा आदमी, रोटी-पानी की समस्याओं में उलझ जाता है. रोटी-पानी, यों तो मोती कुत्ते के लिए कभी समस्या नहीं रही. इधर-उधर सड़कों पर, हलवाइयों पंसारियों की दूकानों के सामने उसे काफी कुछ मिल जाता था, मगर कभी-कभी उसका मन होता था कि वह घरों के अंदर पल रहे कुत्तों की तरह आराम से बैठकर बर्तनों में खाये. अनेक बार वह, घरों में बंधे कुत्तों से अपनी तुलना किया करता था और सोचता था कि आखिर उन कुत्तों में ऐसी कौन सी बात है जो उसमें नहीं है. क्या केवल यही कि सड़क पर पैदा हुए की नियति सड़क पर ही जीवन भर फिरने और बाद में सड़क पर मर जाने में है. मगर उसने यह भी देखा था कि कुछ कुत्ते किस प्रकार कुछ अतिरिक्त प्रयत्न करके घरों में, बंगलों में घुस गये थे और आराम से रोटियां तोड़ रहे थे. भाग्य पर मोती कुत्ते को आरंभ में विश्वास नहीं था, मगर बाद को हो चला था. अब ऐसा नहीं है कि भाग्य ने कभी मोती कुत्ते का साथ ही न दिया हो. एक-दो बार गली के लौंडों ने उसके गले में रस्सी जरूर बांधी थी तथा दो-चार दिन अपने घरों में बांध कर रखा था. मगर उसे खुद लगा था कि उन्मुक्त गली में फिरने में जो सुख है, वह डोरी से बंधने में नहीं है.

अनुभवों ने मोती कुत्ते को काफी कुछ सिखाया था. मगर उससे अधिक उसे सिखाया था उसकी मां चंपी कुतिया ने. वह देखा करता था कि जिस दिन चंपी कुतिया को कुछ खाने को नहीं मिलता था, वह किसी भी दूकान के सामने खड़ी होकर पूंछ हिलाने लगती थी. उसकी पूंछ बहुत पतली थी तथा उसमें सिरे की ओर कोई चार-छह बाल ही रहे होंगे. मोती कुत्ते ने अकसर अपनी मां से कहा था कि वह अपनी पूंछ न हिलाया करे, वह बहुत बुरी लगती है. बदले में चंपी कुतिया ने कहा था कि, "बेटा, जो अंग हमें ईश्वर ने दिये हैं, उनके सबके अपने-अपने प्रयोजन हैं. दुम हमें विपत्ति की स्थिति में दबाने के लिए, तथा अपने से बड़ों के सामने हिलाने के लिए मिली है. चंपी कुतिया ने यह भी कहा था कि अगर उसके पास यह दुम न होती तो वह जीवन में कई-कई दिनों तक भूखी रही आती." उसने मोती कुत्ते से कहा था कि, "तू भी इसे हिलाया कर."

वैसे जब मोती कुत्ता अपनी भरपूर जवानी के दिनों में था और उसकी मां चंपी कुतिया धीरे-धीरे अपनी कब्र की ओर बढ़ रही थी, उसने अकसर अपनी मां से पूछा था कि, "जो चीज हम पूंछ हिलाकर हासिल करते हैं, क्या अपने दांतों का इस्तेमाल करके हासिल नहीं कर सकते?" जवाब में चंपी कुतिया ने कहा था कि, "पूंछ का इस्तेमाल निरापद है क्योंकि इसमें उसके टूट जाने का डर नहीं है जबकि दांतों का प्रयोग करने पर उनके टूट जाने का डर है. जिसके पास कुछ होता है, वह हमेशा ताकतवर होता है और बेमतलब काटने-भौंकने से वह आपके दांत तोड़ सकता है." मोती कुत्ते ने कहा था कि, "क्यों न हम कुत्तों का एक जत्था तैयार करें जो लोगों पर इकट्ठा टूटे और जो कुछ उनके पास हो, उसे छीन-झपटकर खा जाये." उत्तर में चंपी कुतिया ने कहा था कि, "इस प्रकार की एकता की बात सोची तो जा सकती है, परंतु उसके क्रियान्वयन में अनेक समस्याएं आती हैं. जो कुत्ते इकट्ठे होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे पर टूटते हैं वे फिर आपस में भी एक-दूसरे पर टूटते हैं. यही नियति है. उन तमाम कुत्तों को लगातार एक सूत्र में बांध रखने के लिए तुम लोगों को किसी दमदार कुत्ते की सेवाएं प्राप्त करनी होंगी और जैसे ही उस दमदार कुत्ते को एहसास होगा कि सबकुछ उसी की वजह से चल रहा है, वह तुम लोगों का शोषण शुरू कर देगा.'' मां चंपी कुतिया ने कहा कि उसके एक सहयोगी कुत्ते ने जीवन में एक बार ऐसा प्रयत्न किया था और काफी लंबे अरसे तक वह व्यवस्था को चलाता भी रहा था. मगर ज्यों ही वह कमजोर पड़ा था, उसके सहयोगी उसे तोड़कर खा गये थे. नेतागीरी का काम तनिक कठिन है बेटा और इससे आम तौरपर बचना चाहिए.

मगर जीवमात्र के अंदर एक चीज होती है, आकांक्षा—महत्वाकांक्षा. मोती कुत्ते ने अकसर अपनी मां चंपी कुतिया से कहा था कि उसके अंदर कुछ है जो कुलबुलाता है. कुछ कर डालने के लिए वह छटपटा रहा है. यह बात उन दिनों की है जब मोती कुत्ते की मसें भीगनी शुरू ही हुई थीं, वरना अब तो उसे खुद भी अपने उन दिनों की मूर्खताओं की बातें याद कर हंसी आती है. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि अंदर की कुलबुलाती शक्ति को नियंत्रित रखने के लिए उसे ऐसा कुछ करना शुरू कर देना चाहिए जिससे उस अतिरिक्त शक्ति का बाहर निष्कासन हो जाया करे और वह एक सामान्य कुत्ता रह सके. उसने उसे नेक सलाह दी थी कि अब वह काफी जवान हो चुका है तथा उसे शहर की कुतियों में अपनी लोकप्रियता बढ़ाना चाहिए.

ऐसा वह पहले से ही करता आ रहा था. हालांकि मां चंपी कुतिया को उसके इन प्रेम संबंधों की जानकारी नहीं थी. या हो सकता है जानकारी रही हो और मां जानबूझकर अनजान बनी रही हो. मगर दो-चार कुतियों के संपर्क में आने के बाद मोती कुत्ते को कुछ विरक्ति सी हो चली थी. उसे समझ में आ गया था कि कुतियों के संपर्क में आना, बस कुतियों के संपर्क में ही आना है, और हर कुतिया बाहरी बनावट और देखने-दिखाने में भले ही भिन्न हो, अंदर से वह मात्र कुतिया होती है. लिहाजा वही-वही-पन की स्थिति से मोती कुत्ता ऊब चला था. इसके अलावा एक और चीज मोती कुत्ते को मानसिक रूप से व्यथित करती थी. वह जिस चीज पर अधिकार चाहता था, उस पर अपना एकछत्र अधिकार चाहता था. मगर कुतियाएं थीं कि उसके सान्निध्य के साथ-साथ, इधर-उधर भी हसरतभरी नजरों से देखती थीं तथा मोती कुत्ता भोजन की तलाश में तनिक इधर-उधर हुआ कि वे कुतियाएं अन्य कुत्तों की स्नेहभाजन होने का प्रयत्न करने लगती थीं. वैसे मोती कुत्ता यह अच्छी तरह समझता था कि इसमें कुसूर केवल उन कुतियाओं का नहीं है, उन साले कुत्तों का भी है जो उसकी कुतियाओं पर डोरे डालने के लिए मंडराते हैं और अपनी ओर से ईमानदार प्रयत्न भी करते हैं उन्हें हथियाने का. मगर आधा ही सही, कुसूर कुतियाओं का भी रहा करता था. उसने अपनी मां चंपी कुतिया से इस बात का जिक्र किया तो चंपी ने कहा कि अव्वल तो उसे यह बात उससे पूछनी नहीं थी क्योंकि वह खुद भी कुतिया है और इस प्रकार की स्थितियों से होकर गुजर चुकी है. दूसरे यह कि कुतिया कुतिया है, वह एक कुत्ते को छोड़कर दूसरे की आकांक्षा क्यों रखती है, यह सवाल पूछना बेमानी है. उसने मोती कुत्ते को यह नेक सलाह दी कि, ''तू भी बदले में कई-कई कुतियाओं से संपर्क कर. जो कुत्ते तेरी कुतियाओं पर डोरे डालते हैं, तू उनकी कुतियाओं पर डोरे डाल.'' इस पर मोती कुत्ते ने कहा कि इस प्रकार तो उसका सारा जीवन इसी चक्कर में गुजर जायेगा. तब फिर चंपी कुतिया ने कहा कि कुतियाओं का चक्कर ही छोड़ और अपने अंदर की ताकत को किसी और दिशा में लगा.

उसी शाम वह बस्ती के कुछ और हमउम्र कुत्तों से मिला और उनसे बोला कि चलो हम लोग इकट्ठे हो लें और अपनी वर्तमान समस्याओं पर विचार करें तथा उन्हें हल करने की कोशिश करें. यह जीवन बार-बार नहीं मिलता और हमें इस जीवन में कुछ न कुछ कर गुजरना चाहिए. कुछ कुत्तों ने उसकी बात को सुना, कुछ ने नहीं सुना. कुछ ने संदेह व्यक्त किया कि यह अचानक ऐसी बात क्यों करने लगा. कुछ ने कहा पागल हो गया है, कुछ ने कहा दिखावा कर रहा है. उधर मोती कुत्ता कह रहा था कि केवल चार ईमानदार साथियों की उसे जरूरत है. बाकी तो धीरे-धीरे अपने संगठन को वह बढ़ा लेगा. मोती कुत्ता उन दिनों देखने में काफी आकर्षक था तथा तीन-चार कुतियाओं ने उसी समय अपनी सहयोग उसे देने को आफर किया था, मगर मोती कुत्ते ने कुतियाओं के प्रवेश पर आपत्ति की थी. एक तो इसलिए कि कुतियाओं के मामले में वह खुद भुक्तभोगी था, दूसरे वह इस बात को भलीभांति समझ रहा था कि जो लोग इसके साथ आयेंगे, वे इन कुतियाओं की वजह से आयेंगे.

चार कुत्ते मोती-कुत्ते के साथ आने को तैयार हो गये थे. हालांकि उनमें केवल दो ही सीरियस दिखाई देते थे, बाकी दो के चेहरों पर कुछ व्यंग्य भरा मजाकिया-सा भाव था कि देखें, साली यह संस्था क्या है और इसमें होता क्या है. मोती कुत्ता हालांकि सब समझ रहा था मगर वह आश्वस्त था कि धीरे-धीरे वह इन लोगों को आस्थावान बना लेगा.

उन चार कुत्तों को लेकर मोती कुत्ता छंगू हलवाई की दूकान के सामने पड़े राख के ढेर पर बैठने लगा. मगर जैसा कि कोई भी संस्था बनाओ तो पहले पहले अड़चनें आती हैं, इन लोगों के रास्ते में भी आयीं. पहली चुनौती छंगू हलवाई की तरफ से ही थी जिसने चार कुत्तों के हुजूम को देखकर गरम पानी फेंकना शुरू कर दिया. मोती कुत्ते ने साफ महसूस किया कि छंगू हलवाई उसकी लोकप्रियता बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है.

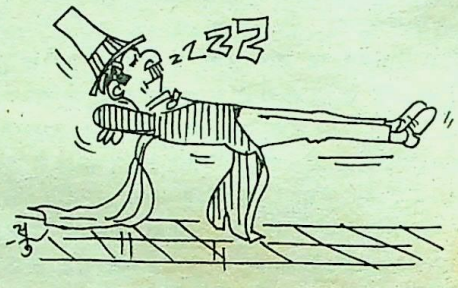

और उसके दूसरे दिन से उसने छंगू हलवाई की दुकान के सामने पड़े राख के ढेर पर बैठना बंद कर दिया था. हालांकि कभी कभी वह उधर से होकर गुजर जाता था और उधर पड़े हुए दोनों में अगर कुछ हुआ तो उन्हें सूंघ-चाट आता था. मगर उसने तय कर रखा था कि छंगू हलवाई द्वारा दिखाये गये दयाभाव से वह बचेगा. माना कि आप हमें टुकड़े फेंकते हैं, मगर आपको यह हक कभी नहीं बैठता कि आप दूसरे चार कुत्तों के सामने हमारा अपमान करें. उसने अपनी मां चंपी कुतिया से कहा भी था कि वह आइंदा छंगू हलवाई की दूकान के सामने नहीं बैठेगा. उत्तर में मां ने कहा था कि ''बेटा, अगर तू नहीं बैठेगा तो कोई दूसरा कुत्ता वहां बैठने लगेगा. वहां वे लोग खाने के लिए टुकड़े फेंकते ही हैं, अगर तू खाने नहीं पहुंचेगा तो कोई दूसरा कुत्ता लपक जायेगा. जगह अधिक देर तक खाली नहीं रहती बेटा. वह शीघ्रातिशीघ्र भर जाती है. इसलिए तू अपना ठिया मत छोड़.''

मगर इसके बदले में मोती कुत्ते को अपने चार कुत्तों का साथ छोड़ना पड़ता. जो महत्वकांक्षा उसके मन में उठ रही थी, उसे छोड़ना पड़ता. लिहाजा मोती कुत्ते ने निर्णय लिया, और एक गंभीर निर्णय लिया कि संगठन के लिए वह यह त्याग करेगा. उसने अपने साथी कुत्तों से कहा भी संगठन के लिए वह यह त्याग करेगा. उसने अपने साथी कुत्तों से कहा भी कि 'चेरिटी बिगिंस एट होम' देखो समाज के लिए मैं अपना ठिया छोड़ रहा हूं. वे लोग अब म्युनिसिपल कमैटी के अहाते में, एक पेड़ के नीचे बैठने लगे थे. नियम से रोज सबेरे दो घंटे बैठते, रोज शाम को दो घंटे बैठते और बैठकर विचार करते. किन्हीं निष्कर्षों पर, किन्हीं निर्णयों पर पहुंचने की कोशिश करते.

धीरे-धीरे मोती कुत्ते को लगा कि जो जगह उसने अपने और अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथियों के बैठने के लिए चुनी है, वह संभवतः काफी उपयुक्त जगह है. क्योंकि वह देखा करता था कि उस बिल्डिंग में रोज शाम को बस्ती के कुछ उजले कपड़ेवाले लोग इकट्ठा होते हैं और अंदर बैठकर ठीक उसी प्रकार का कुछ वाद-विवाद परामर्श वगैरह करते हैं जिस प्रकार का कि मोती कुत्ता अपने साथियों के साथ पेड़ के नीचे बैठकर किया करता था. कभी-कभी उन अंदर बैठे लोगों में भी बहस उत्तेजित हो जाती थी और झगड़ा चलने लगता था. झगड़ा कभी-कभी झूमा-झटकी और एक दूसरे को नोचने-खसोटने के स्तर पर पहुंच जाता था और ऐसे समय यदि मोती कुत्ते और उसके साथियों में भी गुर्राना भौंकना चल रहा होता, तो ये लोग सहमकर चुप हो जाते थे और दबे पांव जाकर हाल के दरवाजे के पास खड़े हो जाते थे. तब मोती कुत्ते को लगता था कि संस्था कोई भी चलाओ, उसमें झूमा-झटकी, भौंकना-गुर्राना बराबर होगा. फिर भी मोती कुत्ता अपने सहयोगियों से कहता था कि हमें ऐसा नहीं करना है. वे लोग आदमी हैं और हमें आदमियों का अनुकरण नहीं करना है. क्योंकि अनुकरण वह किसी का भी हो, अपने स्वतः के अस्तित्व के लिए घातक होता है. उस शाम मोती कुत्ते ने अपनी मां चंपी कुतिया से कहा कि उसने आज की अपनी कुत्ता-मीटिंग में यह सब कहा तो मां चंपी कुतिया ने कहा कि, "बेटा, अब तू काफी समझदारी की बात करने लगा है." साथ ही उसने यह भी कहा कि यह सब जिम्मेदारी की जगह पर बैठने का परिणाम है. जिम्मेदारी की जगह पर कुत्ते को भी बैठा दो तो वह थोड़ी-बहुत समझदारी की बात करने लगता है. मगर मां चंपी कुतिया ने यह भी कहा कि उसे इस बात का अफसोस है कि यह समझदारी की बात वह गली के कुत्तों के बीच बैठकर कर रहा है. मां चंपी कुतिया ने कहा कि वह अपने चिंतन के स्तर को बनाये रखे मगर उसके संप्रेषण के लिए तनिक व्यापक आयाम खोजे. कद्रदान के सामने की गयी समझदारी की बात ही सार्थक होती है. वरना उसका सारा जीवन उसके बाप हीरे कुत्ते की तरह गुजर जायेगा.

अपने बाप हीरे कुत्ते की याद करके मोती कुत्ता अकसर उदास हो जाया करता था. हीरे कुत्ते को अपने जीवन के अंतिम दिनों में खुजली हो गयी थी और उसके शरीर पर एक भी बाल नहीं बचा था. उसकी हड्डियां झांकने लगी थीं तथा पूंछ एक पतली रस्सी के टुकड़े की तरह लटकी दिखाई देती थी. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि, 'बेटा, हीरा कुत्ता अपनी जवानी के दिनों में वाकई हीरा था. उसको यह हीरा नाम उसके मालिक ने दिया था. यह जो म्युनिसिपैलिटी की बिल्डिंग में एक मोटा-सा सफेद कपड़ों वाला आदमी जाता है, इसने ही उसे पाल रखा था. मलाई और गुलाबजामुन खाता था हीरा कुत्ता. कालीन पर सोता था और पीतल के बर्तन में पानी पीता था. उसके ऐश्वर्य को देखकर चंपी कुतिया उस पर मन ही मन एक दिन आसक्त हो गयी थी और उस मकान के इर्द-गिर्द मंडराने लगी थी.

और एक दिन न जाने क्या हुआ था कि हीरा कुत्ता अपनी रस्सी तुड़ाकर चंपी कुतिया से आ मिला था. देर तक उसके मुंह से मुंह मिलाकर कूं-कूं करता रहा था तथा उसके शरीर को चाटता-सूंघता रहा था. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि बेटा, खानदानी आदमी खानदानी आदमी ही होता है. उसके संसर्ग से चंपी कुतिया को जो सुख मिला, उसके जीवन में आये लगभग चौदह-पंद्रह कुत्तों में से कोई भी नहीं दे सका. वह अपने हिस्से की डबलरोटी घर में से चुरा लाता था और चंपी कुतिया को खिलाता था. मलाई का दोना मुंह में पकड़कर घसीटता लाता था और चंपी कुतिया के सामने रख देता था. उसके इसी स्नेह का परिणाम है मोती कुत्ता. मां चंपी कुतिया हीरे कुत्ते का वर्णन करते समय रुआंसी सी हो आती थी और मोती कुत्ता उदास हो जाता था अपने बाप हीरा कुत्ता की याद करके. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि जैसे ही हीरे कुत्ते को खुजली हुई, उसके मालिक ने उसे लात मारकर निकाल दिया था और फिर घर में नहीं घुसने दिया था.

मगर हीरा कुत्ता खजरहा कुत्ता था यह एक हकीकत थी. यह खुजली उसे जहां से भी लगी हो. खजरहे कुत्ते से आदमी तो आदमी, दूसरे कुत्ते तक नफरत करते हैं. बीमारी या दुर्गुण आप में हैं तो लोग आपसे नफरत करेंगे. जब आप लाख सफाई देते फिरें कि यह दुर्गुण आपमें कैसे आ गया, आप इसके लिए जिम्मेदार नहीं हैं, वगैरह वगैरह. लोग उसी चीज को मानते हैं जो उन्हें दिखाई देती है. आपका वर्तमान ही आपकी सही इमेज है, सही प्रतिष्ठा है. न लोगों को आपके अतीत से वास्ता है और न ही भविष्य से. खजरहा होना हीरे कुत्ते का वर्तमान था. और इसीलिए उसके मालिक ने उसे दुत्कार दिया था और इसीलिए उसके सहयोगी कुत्ते भी उसे भौंक-भौंककर भगाने लगे थे. उसे अच्छी तरह याद है कि यह मां चंपी कुतिया भी हीरे कुत्ते से उसके अंतिम दिनों में बचने लगी थी. वह अकसर उसकी प्रणयाकांक्षा को ठुकरा दिया करती थी और दूसरे कुत्तों की ओर हसरतभरी नजर से देखा करती थी. उसे याद है कि हीरा कुत्ता अपने जीवन के अंतिम दिनों में चितक हो गया था तथा घंटों वह नीम के पेड़ के नीचे पड़ा-पड़ा जीभ से अपने खजरहे बदन को खुजलाता-खुजलाता कुछ न कुछ सोचता रहता था. कभी-कभी कातर निगाहों से टकटकी बांधकर घंटों बादलों की ओर देखता रहता था. और एक दिन ऐसे ही आसमान की ओर देखते-देखते उसने अपनी आंखें बंद कर ली थीं. मोती कुत्ते को याद है कि म्युनिसिपैलिटी के अंदर आने-जानेवाले दो काले-कलूटे आदमियों ने, जो कभी-कभी मेला गाड़ी लेकर निकलते थे, हीरे कुत्ते की लाश की पिछली दो टांगों में रस्सी बांध दी थी और उसे घसीटते हुए शहर के बाहर तक ले गये थे. आदमी खाली हाथ लौट आये थे और मोती कुत्ते ने अपनी मां चंपी कुतिया के साथ पीछे-पीछे जाकर देखा था कि शहर से दूर घूरे पर हीरे कुत्ते की लहूलुहान लाश के लोथड़े पड़े हुए हैं और उन्हें एक गिद्ध नोच-नोचकर खा रहा है.

संगठन बना लेना जितना आसान था, उसे चलाना उतना आसान नहीं था, यह मोती कुत्ते की समझ में धीरे-धीरे आ रहा था. जो कुत्ते नियम से उसके साथ बैठते थे, वे बाद को चलकर तड़ी मारने लगे थे. एक दिन ये दो आते तो दूसरे दिन दूसरे दो आते. किसी किसी दिन कोई भी नहीं आता था और मोती कुत्ता अकेला म्युनिसिपैलिटी के कंपाउंड में बैठा रहता.

उसने एक-दो बार उन कुत्तों को झिड़का भी. मगर बदले में उन्होंने कहा कि, "यहां कुछ खाने-पीने को तो मिलता नहीं है, व्यर्थ समय बरबाद करने से क्या फायदा?" मोती कुत्ते ने कहा कि, "तुम लोग अगर केवल खाने-पीने के लिए ही इस संस्था से जुड़े हो तो बेकार है." इस पर उन लोगों ने कहा कि, "संस्थाओं से लोग केवल खाने-पीने के लिए ही जुड़ते हैं तथा और कोई अपेक्षा वह उन लोगों से कर रहा है तो बेकार है." मोती कुत्ते ने इस बात पर अपनी मां की राय मांगी थी. मां चंपी कुतिया ने भी कहा था कि, "बेटा, वे कुत्ते जो कुछ कह रहे थे, सही कह रहे थे. ऑनरेरियम के नाम पर ही सही, थोड़ा बहुत तो उन कुत्तों को खाने को चाहिए ही. यदि तू उन्हें सीधे नहीं खिला सकता तो परोक्ष रूप से ही कोई लाभ पहुंचाने का आश्वासन उन्हें दे. अन्यथा वे लोग नहीं आयेंगे. उन्हें क्या पागल कुत्ते ने काटा है?"

दूसरे दिन की मीटिंग में मोती कुत्ते ने अपने सहयोगियों से खाने-पीने की संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया. उसने यह भी कहा कि, "अभी हम लोगों ने जो समिति बनायी है, वह तदर्थ समिति मात्र है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाकायदा चुनी हुई नहीं है. अगर अभी से लोगों की बदनीयती सामने आ गयी तो आगे चलकर हम अपने संगठन का विस्तार नहीं कर सकेंगे.'' उत्तर में सहयोगियों ने कहा कि, ''हम चुपके-चुपके खायें. अपने कार्यक्रमों की एक विस्तृत रूपरेखा बनाकर हम तमाम कुत्ता समाज के सामने रखें, उनके कल्याण की योजनाएं उन्हें समझाएं. इस बीच चंदा वगैरह एकत्रकर कुछ कोष बनायें. उस कोष में से जीवन निर्वाह के नाम पर कुछ न कुछ ले लिया करें.''

मोती कुत्ता कुछ ईमानदार किस्म का कुत्ता था. और अपने साथी कुत्तों की अनेक बातों से असहमत होते हुए भी उसे सहमत होना पड़ रहा था. इसका उसे खेद था. मगर वह क्या करता? जिस स्थिति तक वह पहुंच चुका था उसमें अब उसके सामने दो ही विकल्प बचे थे. या तो वह संगठन-फंगठन का चक्कर छोड़कर चुपचाप छंगू हलवाई का सामने पड़े राख के ढेर पर जाकर बैठ जाये या फिर चार बेईमान सहयोगियों को बर्दाश्त करे, उनकी बेईमानी पर पर्दा डाले और संगठन को बढ़ाने की कोशिश करे. आस्था उसकी पूरी तरह टूटी नहीं थी और उसने दूसरा विकल्प चुना था, केवल इसी उम्मीद में कि आगे चलकर वह निश्चित ही कुछ ईमानदार लोगों को ढूंढ पायेगा और धीरे-धीरे इन गलत तत्वों को अपने रास्ते से उखाड़ फेंकेगा.

अगले दिन की मीटिंग में दो प्रस्ताव आये. एक यह कि छंगू हलवाई की दूकान में पीछे से घुसा जाये और आलूबड़ों की टोकरी दो कुत्ते मिलकर दांतों से पकड़कर खींच लायें. दूसरा यह कि अपने साथी कुत्ते जो बड़े आदमियों के यहां चेनों से बंधे हुए गुलामी का जीवन बिता रहे हैं, उन्हें सड़क पर खींचकर लाया जाये. पहला प्रस्ताव चूंकि अधिक व्यवहारिक था, बाकी तीन कुत्तों ने जोर दिया कि पहले उस पर अमल किया जाये. मोती कुत्ते के मन में छंगू हलवाई के प्रति एक आदर भाव था और वह बचपन से ही उसके द्वारा फेंके गये टुकड़ों पर पला था.अतः वह नहीं चाहता था कि उसकी वजह से छंगू हलवाई को कोई नुकसान पहुंचे. मगर बाकी कुत्तों के मन में छंगू के प्रति एक सहज विद्रोह भाव था. उनमें से एक कुत्ता, जो टामी कुत्ता था, अपनी तिरछी टांग दिखाकर बोला कि यह छंगू के द्वारा फेंकी गयी लकड़ी से ही टूटी है तथा जब तक इस क्षति का बदला वह छंगू हलवाई से नहीं ले लेता, उसकी छाती ठंडी नहीं होगी. माना कि मोती कुत्ते के मन में उसके प्रति आदरभाव है, मगर केवल एक सदस्य की भावनाओं की रक्षा के लिए बाकी कुत्तों के अरमानों को नहीं दबाया जा सकता. हमें जो भी निर्णय लेना है, बहुमत से ही लेना है. और जाहिर था कि बहुमत छंगू हलवाई को नुकसान पहुंचाने के पक्ष में था. उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि चूंकि मोती कुत्ता नेता है, इस काम में भी आगे वही रहेगा. उसके नेतृत्व में ही आपरेशन आलूबड़ा-टोकरी संपन्न होगा.

मोती कुत्ते ने कहा कि इस मामले में चंद बुजुर्ग कुत्तों की सलाह लेना चाहता है तो बाकी तीनों ने कहा कि बुजुर्ग आम तौर व्यवस्था की पोषक तथा यथास्थितिवादी होते हैं. वे लोग फेंके गये टुकड़ों को ही खाने की सलाह देंगे, लिहाजा मोती कुत्ते का यह प्रस्ताव बेमानी है. दबाव इतना अधिक था कि मोती कुत्ते को झुकना पड़ा. मगर इसका दूसरा लाभ यह हुआ कि चार दीगर कुत्ते और इनके संगठन में आ गये. शेष तीनों कुत्ते कह रहे थे कि जिस दिन हम लोग आलूबड़े की टोकरी वास्तव में हस्तगत कर लेंगे, उस दिन देखना संगठन में आठ-दस कुत्ते और आ जायेंगे.

और वाकई यही हुआ. जिस दिन आलूबड़े की टोकरी खींचकर घूरे पर लायी गयी, विभिन्न दिशाओं से न जाने कहां-कहां से कोई बीस-तीस कुत्ते प्रकट हो गये थे और सबने मिलकर भोजन किया था. हालांकि बंटवारे को लेकर थोड़ी बहुत कांव-कांव, ख्यांव-ख्यांव भी हुई थी, मगर मोती कुत्ते को लगा था कि इतना तो चलता है. उसे उस दिन यह भी लगा था कि संगठन को अगर सही कामों के लिए बनाने के बजाये, चोरी-चपाटी के लिए बनाया जाये तो वह कितना जल्दी लोकप्रिय होता है. वे बीस-तीस कुत्ते जो उस दिन आलूबड़ों में हिस्सा बंटाने आये थे, उसके बाद फिर कभी दृष्टिगोचर नहीं हुए, हालांकि उनमें से दो-चार कह गये थे कि अब जब कभी ऐसा कोई माल हस्तगत हो, हमें स्मरण करना, हम लोग हाजिर हो जायेंगे.

त्याग करना कुछ पा लेने की अनिवार्य शर्त है. हालांकि मोती कुत्ता यह जानता था कि कुछ लोग हैं जिन्होंने बगैर कुछ त्यागे ही बहुत कुछ पा लिया था, मगर जहां तक उसका मामला था उसे बगैर त्याग के कभी भी कुछ भी हासिल नहीं हुआ था. बल्कि अनेक बार तो केवल त्याग करना ही हाथ लगा था, हासिल कुछ भी नहीं हो सका था. अब इसी आलूबड़े की टोकरी वाले मामले में न जाने कैसे छंगू हलवाई को उस पर शक हो गया था. हो सकता है उसकी दूकान पर काम करने वाले नौकरों में से किसी की नजर उस पर पड़ गयी हो. छंगू हलवाई ने एक दिन मौका तककर उसके ऊपर जो ईंट फेंककर मारी थी कि उसकी कमर लगभग टूट गयी थी. वह दर्द उसे कोई पांच-पांच महीने तक सालता रहा था. हालांकि ऊपरी जख्म उसने चाट-चाट कर ठीक कर लिया था मगर बदन के अंदर कहीं एक अंदरूनी जख्म भी बन गया था जो अभी तक नहीं भरा था. वह सोचता था कि काश वह आदमी होता और छंगू को उसकी अपनी भाषा में बतला सकता कि किस मजबूरी में उसने यह चोरी की थी. किन लोगों के दबाव में आकर यह गलत काम किया था. बहरहाल, उसने सोच रखा था कि छंगू हलवाई के इस नुकसान के बदले वह उसका कोई लाभ किसी न किसी दिन अवश्य करेगा.

दूसरे दिन की मीटिंग में एक साथी कुत्ते ने प्रस्ताव रखा कि उसे टेनाराम हलवाई की दूकान में वह जगह पता है जहां वह बेंच के नीचे गुलामजामुन का थाल रखता है. हालांकि बाकी तीन कुत्तों की जीभें यह सुनकर बाहर निकल आयीं और उनसे लार टपकने लगी, मगर मोती कुत्ते ने इस बात का दृढ़ता से प्रतिकार किया. उसने स्पष्ट कहा कि इस हरकतों से संगठन एक गलत दिशा में मुड़ जायेगा. लोग हमसे नफरत करने लगेंगे और हो सकता है वे हमें मिटाने पर तुल जायें. उसने अपने साथियों को चार-पांच साल पहले का वह वाकया भी याद दिलाया जब म्युनिसिपैलिटी वालों ने तमाम कुत्तों को मावे की गोलियां खिलायीं थीं और उनके खाने के बाद बस्ती के पचास-साठ जो सोये थे तो सोते ही रहे थे. उन्हें किस तरह घसीट-घसीटकर घूरे पर इकट्ठा कर दिया गया था और बाद में एक गाड़ी में डालकर न जाने कहां ले गये थे.

मोती कुत्ते ने कहा कि संगठन किस बात के लिए बना है, पहले यह तय कर लिया जाये. संगठन का नामकरण, उद्देश्य संविधान आदि का निर्माण कर लिया जाये और फिर उस दिशा में बढ़ें. इस संबंध में उसने सुझाव दिया कि हम बस्ती के कुत्तों के अनुभव सीमित हैं, अतः कुछ विद्वान और व्यापक भ्रमण के अनुभवी कुत्तों की सलाह भी ली जाये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा कि कलक्टर के बंगले में उसने एक अलसेशियन बंधा देखा है, उसे देखकर लगता है कि वह कलक्टर के कसाथ काफी घूमा-फिरा है. हम उसे एक दिन अपनी मीटिंग में आमंत्रित करें और उसके विचार जानें.

एक दूसरे कुत्ते ने कहा कि मवेशियों के डाक्टर के यहां भी सफेद रंग की एक छोटी-सी कुतिया है. उसे देखकर लगता है कि वह भी डाक्टर के साथ काफी जगहों पर रहकर आयी है, हम एक दिन उसे भी अपनी मीटिंग में बुलायें.

दोनों नामों पर मीटिंग में आम सहमति हो गयी. हालांकि कुतिया के नाम पर मोती कुत्ता सहमत नहीं था, मगर बहुमत के दबाव के आगे वह कुछ नहीं बोला, केवल यह सोचकर कि संगठन के लिए थोड़ी बहुत मूर्खताएं भी बर्दाश्त करनी पड़ें तो उन्हें कर लेना चाहिए. उसकी मां चंपी कुतिया ने कहा था कि, "बेटा, मोतीचूर के लड्डू को चाशनी बांधे रखती है. कई बार संगठन को बांधने के लिए औरत चाशनी का काम करती है. चाशनी के अभाव में लड्डू बिखर जाता है. अतः जहां जरूरी हो, दो-चार स्त्री सदस्यों को भी बर्दाश्त कर लेना चाहिए. संगठन के सदस्यों की उपस्थिति पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है. इसके अलावा, स्त्रियों की उपस्थिति में पुरुष का व्यवहार भी तनिक संतुलित रहता है, ठीक वैसे ही जैसे चाशनी लड्डू को नरम बनाये रखती है."

मोती कुत्ते ने कहा कि वह ढोर डाक्टर की कुतिया को भी संगठन में भाषण के लिए आमंत्रित करेगा. मगर पहले कलक्टर के कुत्ते के विचार सुने जायेंगे. तय किया गया कि अगले दिन उसे आमंत्रित किया जाये.

कलक्टर के कुत्ते ने चार-छह चक्कर कटवाकर अंततः एक दिन का समय दे दिया. उसने कहा कि उसे बस्ती के हलकट कुत्तों से घुलने मिलने की मनाही है, परंतु फिर भी, जिस प्रकार जीवन में ऊपर उठा सजातीय, अपने गरीब सजातीयों के प्रति नफरत का भाव रखते हुए भी किंचित आत्मीयता रखता है, वह गली के कुत्तों के बीच कुछ क्षण गुजार लेगा, मगर उस दिन जिस दिन कलक्टर बाहर दौरे पर गया होगा.

कलक्टर के कुत्ते को सुनने के लिए बस्ती के लगभग डेढ़ सौ कुत्ते इकट्ठे हुए. दरअसल, सुनने कम, उसे देखने के लिए अधिक कुत्ते इकट्ठे हुए थे. अलसेशियन ने कहा कि उसे बताया गया था कि बस्ती के कुत्तों ने कोई संगठन बनाया है जिसमें कोई चालीस सदस्य हैं. इतनी कम सदस्य संख्या वाले संगठन या तो कोई प्राइवेट कालेज खोलते हैं या सार्वजनिक प्याऊ का निर्माण करते हैं, जाति पंचायत की धर्मशाला बनवाते हैं या फिर सप्तकुंडी यज्ञ करवाते हैं. यदि बड़े पैमाने पर कोई काम करना है तो संगठन को व्यापक बनाना होगा. इसके अलावा आपको तय करना होगा कि आपका संगठन धार्मिक होगा, सामाजिक या राजनैतिक. वैसे संगठन कोई भी हो, होता अंततः राजनैतिक है, इसलिए बेहतर है कि आप इसे जाहिरा तौर पर राजनैतिक रखें.

अलसेशियन ने कहा कि जैसे यहां म्युनिसिपैलिटी है, वैसे ही प्रदेश की राजधानी में विधानसभा होती है तथा देश की राजधानी में संसद होती है. जैसे चुनाव, प्रतिनिधित्व, बहसमुबाहिसे, निर्णय, कार्यवाहियां आदि यहां होते हैं, वैसे ही देश और प्रदेश की राजधानियों में भी होते हैं. उसने बड़े-मुहल्ले में कोने की कोठी में रहनेवाले विधायक का उल्लेख किया कि वह चमचमाती कार में अनेक बार बस्ती के बाहर जाता है तो कहां जाता है. बीच में चार-छह महीने के लिए जब वह झंडा लगी सरकारी गाड़ी में आता था तो क्यों आता था, तथा उस दौरान कलक्टर, एस.पी. और दीगर अधिकारी तत्परता से उसकी अगवानी करते थे तो क्यों करते थे. उसने कहा कि विधायक मंत्री नहीं बनता, मगर कुछ विधायक बनते हैं. और ऊपर वर्णित विधायक की हैसियत में जो परिवर्तन देखा गया था, उसके मंत्री रहने के दौरान देखा गया था. उसने कहा कि आम तौर पर विधायक पांच साल तक मंत्री रह सकता है, परंतु कई बार यह अवधि पांच महीने ही रह जाती है. इक्का-दुक्कार मामलों में पांच दिन का मंत्रित्व भी देखा गया है. पांच मिनिट का रिकार्ड अभी तक किसी ने नहीं बनाया है.

अलसेशियन ने कहा कि ताकत हासिल करो, अधिकार हासिल करो. तभी संगठन सार्थक होगा. हालांकि ऊंची सरकारी नौकरी में आ जाना भी सम्मान जनक है, परंतु अपने इस जीवन के अनुभव के तहत मैं आप लोगों को यह सलाह नहीं दूंगा. बंगला, कार, नौकर चाकर आदि को सुविधाएं यहां हैं, मगर वास्तविक अधिकार कहां हैं, इसके लिए उसने विधायक के बंगले की ओर इशारा किया. उसने कहा कि अधिकारी के क्वार्टर के पेड़ का पत्ता तभी हिलता है, जब उधर से हवा का झोंका आता है.

अलसेशियन ने अपना भाषण समाप्त किया यह कहकर कि तुम लोग विधायक के कुत्ते को भाषण के लिए आमंत्रित करो. इससे तुम्हें दो लाभ होंगे. एक तो संगठन के लिए सही दिशा निर्देश मिलेगा, दूसरे धारा प्रवाह भाषण क्या होता है, यह भी जान जाओगे. वह विधायक मंत्री भी रह चुका है, अतः उसके कुत्ते के पास काफी अनुभव होंगे. वह मार्ग दर्शन भी दे सकेगा, संस्मरण भी सुना सकेगा.

अगली बारी ढोर डाक्टर की कुतिया की थी. उसे सुनने भी काफी कुत्ते इकट्ठे हुए. काफी शरमाते, सकुचाते उसने अपने संस्मरण सुनाए तथा कहा कि एक कुतिया के रूप में उसके अनुभव सीमित हैं. वह प्रजनन के तरीके जानती है, क्रास-ब्रीडिंग पर बोल सकती है तथा किस बीमारी में किस जानवर को ढोर-डाक्टर क्या दवा देता है, यह बतला सकती है. कौन सी दवा नकली है, कौन सी असली, यह भी उसे पता है तथा किस दवा की डेट एक्सपायर हो गयी है इसकी भी जानकारी उसे है.

वह काफी देर तक बोलती रही, मगर क्या बोली यह बहुत कम कुत्तों की समझ में आया. एक कुत्ते ने कहा भी कि इसका भाषण नयी कविता की तरह दुरूह है. वह कुत्ता कविता भी करता था तथा उसने कहा कि वह इस कुतिया को कविता लिखने के लिए उकसायेगा. राजनीति कवियों का क्षेत्र नहीं है. उनके वहां रहते कविता और राजनीति दोनों की मिट्टी पलीद होती है.

पराई बोली

सर्गेई मिरवालकोव

"मैं लोगों की तरह बोलना जानता हूं!" एक तोते ने बड़े गर्व से कहा. "मुझे पक्षियों की बोली पसंद नहीं है. आज से तुम मुझे पक्षियों की बोली में एक शब्द भी बोलते हुये नहीं सुनोगे."

"वाह, वाह!" दो चिड़ियों के मुंह से निकला. "कितना होशियार बन गया है."

"क्या कहा, लोगों की बोली में बोलेगा?" एक बूढ़े कौवे ने कहा, "यह तो बहुत बढ़िया बात है! पर इसका यह मतलब नहीं कि यह दूसरे पक्षियों से होशियार बन गया है. मैं भी लोगों की तरह कुछ शब्द बोल सकता हूं, पर मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि मैं तुम सब पक्षियों से होशियार हूं."

"तो फिर उससे लोगों की बोली में बात करो." चिड़ियों ने कौवे से कहा.

"बहुत अच्छा ख्याल है," कौवे ने कहा और उड़कर उस टहनी पर गया, जहां तोता बैठा हुआ था.

"सुनाओ, क्या हाल है?" कौवे ने उसे लोगों की बोली में कहा.

"तोता मूर्ख है! तोता मूर्ख है!" तोते ने बड़े गर्व से कहा.

"सुना इसे?" चिड़ियों ने चिहुंककर कौवे से कहा. "और क्या अब भी इस की बात का विश्वास करते हो?"

"क्यों नहीं!" कौवे ने कहा, "विश्वास ही नहीं करता, बल्कि इसकी बात से मैं पूरी तरह सहमत भी हूं." □

अनु.सु.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुतिया के संभाषण के बाद कवि किस्म के आठ-दस कुत्ते उसके पीछे लग गये थे तथा उसे घेरकर काफी देर तक अचार, बड़ी, पापड़, स्वेटर बुनने के तरीके तथा हेयर ड्रेसिंग, लिपस्टिक और पाउडर आदि पर चर्चा करते रहे थे. कुतिया ने कहा कि उसकी मालकिन से उसने बहुत कुछ सीखा है जिसे वह अन्य स्त्रियों को बतलाना चाहेगी. इस पर कवियों ने कहा कि जो बात वह स्त्रियों से कर सकती है, उसे कवियों से भी कर लेने में कोई हर्ज नहीं है. बल्कि उसे खुद लगेगा कि किसी भी स्त्री के लिए, अन्य स्त्रियों की अपेक्षा किसी कवि से अपने दिल की बात कह देना अधिक निरापद होता है. हालांकि प्रचार दोनों करेंगे, परंतु कवि केवल कविता लिखेगा जबकि स्त्रियां विधिवत समीक्षा करती फिरेंगी. अनुभवी जानते हैं कि समीक्षा, कविता की तुलना में अधिक नुकसानदेह होती है. कवि को उसकी कविता उतना नुकसान नहीं पहुंचाती जितनी कि उन कविताओं पर की गयी समीक्षा उसे पहुंचा देती है.

कुतिया की समझ में कुछ नहीं आया. उन कवियों की बातें काफी दुरूह थीं जिन्हें वह फिलहाल समझना भी नहीं चाहती थी. ढोर डाक्टर की नजर बचाकर वह घर के पिछले दरवाजे से भाग आयी थी और अब शीघ्रातिशीघ्र घर पहुंचना चाहती थी. कुछ कुत्तों ने उससे कहा कि उसे घर तक छोड़ आयें तो उसने मना कर दिया यह कहकर कि अगर घर वालों ने देख लिया तो वह कहीं की नहीं रहेगी. बचपन से ही मन में सड़क के कुत्तों से बचकर रहने के संस्कार डाले गये हैं तथा उनसे नफरत करने के लिए कहा गया है. परंतु जैसी की सहज मानवीय प्रवृत्ति है कि जिस काम के लिए मना किया जाये, उसे आदमी एकाध बार जरूर करके देखना चाहता है, वह अपने स्तर से उतर कर यहां कुत्ता मीटिंग में चली आयी. यदि घर पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई तो वह आगे से नहीं आयेगी, क्योंकि कुटने-पिटने से सभी डरते हैं. उसने अपना एक पूर्व अनुभव भी सुनाया कि एक बार एक रोबीले सड़क छाप कुत्ते से उसने केवल दो मिनिट बात कर ली थी जिसे ढोर डाक्टर ने देख लिया था. बदले में उसे कमरे में बंद कर दो घंटे पीटा गया था. उसे दो मिनिट के सुख की तुलना में दो घंटे का दुख काफी महंगा पड़ा था और तभी से वह जीवन के कदम कदम पर मिलने वाले सुख और उसके एवज में मिलने वाले दुख की तुलना करती चलती है. वैसे भी जीवन में दुख की मात्रा अधिक हुआ करती है लिहाजा जितने दुख से बचत हो जाये, बेहतर है.

इतना कहकर कुतिया चली गयी. कवि कुत्ते उसे देर तक जाता हुआ देखते रहे. उन्हें उम्मीद थी कि वह एकाध बार जरूर पलटकर देखेगी, परंतु उसने नहीं देखा.

इधर मोती कुत्ते ने सारे कुत्तों को फिर इकट्ठा किया और कहा कि कलक्टर के अलसेशियन की सलाह मानी जाये और विधायक के कुत्ते को उद्‌बोधन के लिए बुलाया जाये.

विधायक का कुत्ता विदेशी नस्ल का नहीं था. शुद्ध देशी कुत्ता था वह जो बेहतर खुराक तथा आरामदेह जीवन पद्धति के कारण कुलीन और रोबीला लगने लगा था. गमले में लगे हुए फूल जिस प्रकार बेहतर खाद-पानी के कारण आम जंगली फूलों की तुलना में अधिक आकर्षक और प्रभावशाली लगते हैं, कुछ ऐसी ही स्थिति विधायक के कुत्ते की थी.

मोती कुत्ते द्वारा भेजे गये डेलीगेशन को देखकर विधायक का कुत्ता एकदम से प्रसन्न हो गया, ठीक वैसे ही जैसे विधायक अपने से मिलने आये अपने क्षेत्र के मतदाताओं को देखकर खिल उठता था. संस्कार सोहबत से बनते हैं और विधायक के कुत्ते को ये संस्कार अपने मालिक की सोहबत से मिले थे.

श्रोता कुत्तों ने कहा कि वह कुछ अनर्गल प्रलाप कर रहा है जिसमें उन लोगों की रुचि नहीं है. बेहतर है वह विषयांतर छोड़े और ठीक और लीक पर आ जाये.

विधायक कुकुर ने कहा कि वक्ता को बीच में टोकना ठीक नहीं माना जाता. कवि सम्मेलन में श्रोताओं की ओर से ऐसी आवाजें हूटिंग की श्रेणी में आती हैं और नया कवि इनसे निराश होकर माइक छोड़ देता है तथा विधायक के कुत्ते ने कहा कि वह अपने वर्तमान मालिक के साथ पिछले चार वर्षों से है. इससे पहले वह दूसरे मालिक के पास था. उसने कहा कि राजनेताओं के कुत्तों में से अधिकांश की नियति यही है कि उन्हें बार-बार अपने मालिक बदलने होते हैं. कई बार नेता उन्हें छोड़ देता है, कई बार वे नेता को छोड़ देते हैं. उसने कहा कि उसने भी अपने पिछले मालिक को तभी छोड़ा था जबकि उसके पास खाने-पीने को नहीं बचा था. उसने यह भी कहा कि राजनीति में अकसर ऐसा होता है कि या तो खूब खाने-पीने को होता है या फिर बिल्कुल खाने पीने को नहीं होता. समृद्धि और अवसाद की ये स्थितियां राजनेताओं के जीवन में बदल-बदल कर आती रहती हैं. एक स्थिति में जहां चारों ओर जयजयकार होती है और भीड़ घेरे रहती है वहीं दूसरी ओर कोई पानी देनेवाला भी नहीं बचता है.

उसने कहा कि जब उसके पिछले मालिक को कोई पानी देनेवाला नहीं बचा था, तभी वह उसका साथ छोड़कर चल दिया था. विधायक के कुत्ते ने कहा कि उसकी बात काफी कुत्तों को निर्मम और क्रूर लग सकती है, परंतु राजनीति में यही निर्ममता और क्रूरता, विशेषता मानी जाती है. राजनैतिक में 'नैतिक' शब्द जुड़ा जरूर है परंतु उसमें नैतिकता ढूंढना व्यर्थ है. दरअसल यहां 'राज' शब्द पर गौर करना जरूरी है. 'राज' का अर्थ है रहस्य. अतः राजनैतिक का अर्थ हुआ उस प्रकार का नैतिक जो रहस्यमय हो.

रहस्यमय धंधों के धनी आम तौर पर राजनीति की ओर आकृष्ट होते हैं. वैसे कुछ ठीक-ठाक लोग भी उधर जाते हैं परंतु जल्दी ही ठीक-ठाक हो जाते हैं. जो ठीक -ठाक नहीं हो पाते वे चाशनी के मैल की तरह बाहर कर दिये जाते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी जगह पर बैठ जाता है. परंतु वह नया कवि नहीं है तथा यह कवि सम्मेलन भी नहीं है, अतः जब तक वह अपनी बात पूरी नहीं कर लेता, स्थान से नहीं हटेगा.

उसने कहा कि असली भाषण वह होता है जिसमें काम की कोई भी बात न की जाये और पूरा भाषण सुन लेने के बाद भी श्रोता यह अर्थ न निकाल सके कि वक्ता आखिर कहना क्या चाहता था. मैं ऐसा भाषण भी दे सकता हूं, परंतु यहां नहीं दूंगा. मैं अपने भाइयों के बीच आया हूं और उनके हित, उनके उत्थान की ही बातें करूंगा.

विधायक कुकुर ने उन लोगों से कहा कि तुम लोग एक पार्टी का गठन करो और अपने कुछ प्रतिनिधियों को चुनकर ऊपर भेजो. प्रतिनिधि ऐसे हों जो तुम्हारी बात रख सकें, तुम्हारे अधिकारों के लिए लड़ सकें. उसने कहा कि उन कुत्तों के लिए वह अपनी सेवाएं देने के लिए तैयार है.

श्रोता कुत्तों ने कहा कि यह कुछ चलता-पुरजा लगता है और चलते पुरजों का संगठन पर हावी होना ठीक नहीं, लिहाजा प्रतिनिधि उन्हें बनाया जाये जो निष्ठावान, समर्पित व ईमानदार कार्यकर्ता हों. एक समूह की ओर से मोती कुत्ते का नाम प्रतिनिधि हेतु प्रस्तावित किया गया.

विधायक के कुत्ते ने कहा कि तुम लोग शीघ्रता में कोई निर्णय मत लो निष्ठा, समर्पण, ईमानदारी, बुद्धिमत्ता, सच्चरित्रता आदि चीजों को समय-समय पर राजनैतिक क्षेत्रों में आजमाया जाता रहा है परंतु ये चीजें अकसर अल्पजीवी साबित हुई हैं. इस प्रकार के लोग राजनीति में ज्यादा समय तक नहीं चलते. या तो वे राजनीति छोड़ देते हैं या राजनीति उन्हें

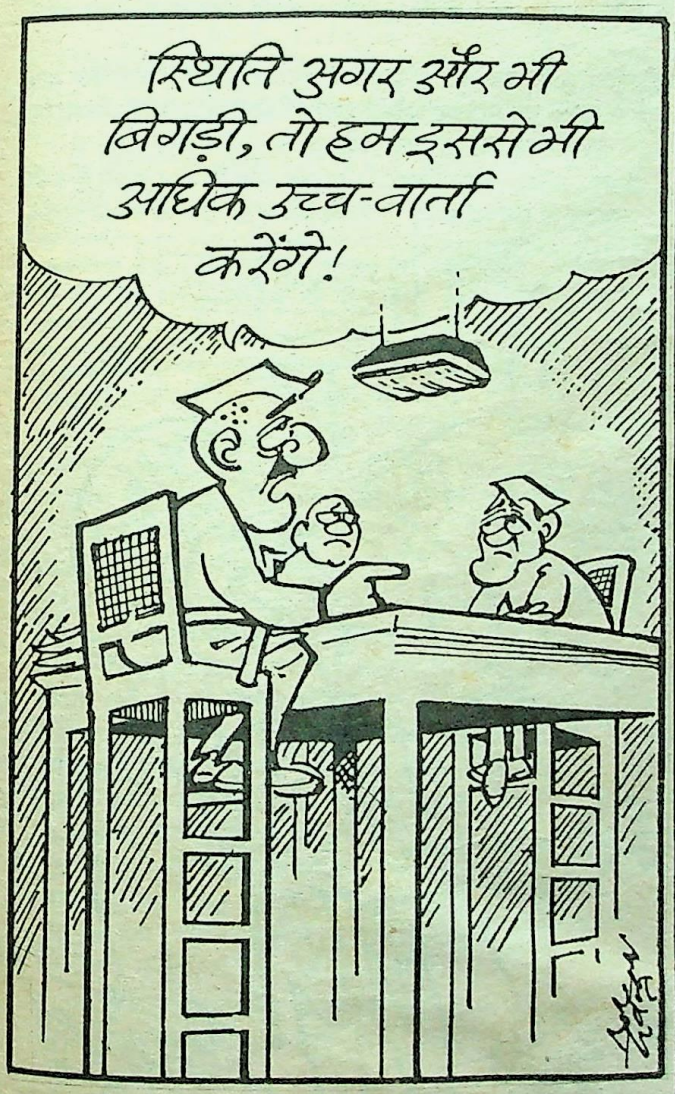

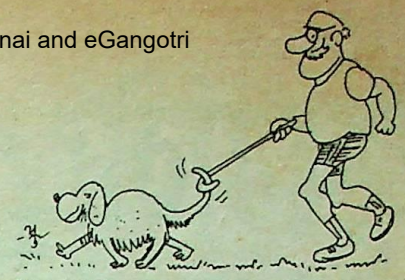

छोड़ देती है. जो राजनीति नहीं छोड़ना चाहते वे उक्त चीजों को छोड़ देते हैं.

उसने कहा कि मोती कुत्ते की तारीफ उसने सुनी है तथा उसके गुणों का वह प्रशंसक है. मगर जितना ईमानदार, बुद्धिमान व योग्य वह है, उसे लेकर वह राजनीति में अधिक समय तक नहीं चल पायेगा. वह राज्य की राजधानी अथवा देश की राजधानी तक पहुंच भी गया तो वहां के कुत्तों की भीड़ में खो जायेगा. वहां की आपाधापी, स्वार्थपरकता, भाई-भतीजावाद तथा चालूपन के शोर में उसकी निष्ठा और ईमानदारी की कूं कूं दबकर रह जायेगी. अतः प्रतिनिधि किसी दबंग कुत्ते को चुनो.

विधायक के कुत्ते ने उन कुत्तों की आठ-दस बैठकों को संबोधित किया और परिणाम यह हुआ कि वह प्रतिनिधि चुन लिया गया. बीच-बीच में उसने चार-चार, छह-छह कुत्तों के ग्रुपों से भी अलग-अलग संपर्क किया था तथा चुने जाने के लिए वे सारे तरीके अपनाये थे जो कि प्रतिनिधि चुने जाने के लिए आवश्यक होते हैं.

चुनाव के बाद की कथा वही है जो किसी भी चुनाव के बाद की होती है. चुने जाने के बाद विधायक का कुत्ता जो शहर गया तो फिर नहीं लौटा. उसकी खबरें भर आती रहती थीं कि वह जीवन में बराबर ऊंचा उठ रहा है और बस्ती के कुत्ता समाज का नाम रोशन कर रहा है. अपने समाज की भलाई के लिए उसने अनेक बार मालिक भी बदले हैं तथा निरंतर ऐसे मालिकों के साथ रहा है जो सत्ता में रहे हैं.

बस्ती के कुछ चालू किस्म के कुत्तों से उसका संपर्क बराबर बना रहता था जिन्हें वह अपने कार्यकर्ता कहता था. संगठन कुल मिलाकर नेता और कार्यकर्ता का आपसी मामला बनकर रह गया था तथा आम सदस्य तथा गैर-सदस्य कुत्ता बिरादरी नेपथ्य में चली गयी थी.

खेल बरसों तक चलता रहा था, जैसा कि आम तौर पर हर खेल चलता है. जैसे कि खेल में दो तरह के हिस्सेदार होते हैं, एक खेल देखकर ताली बजानेवाले. मोती कुत्ता और उसके ईमानदार सहयोगी, ताली बजानेवालों की श्रेणी में आ गये थे तथा मंच चलते-पुरजों ने संभाल लिया था.

नाटक कितना ही मनोरंजक हो, दर्शक एक सीमा के बाद, देखते-देखते थकता है और आगे ताली नहीं बजाना चाहता. मोती कुत्ता भी नाटकों के प्रति तटस्थ हो गया था तथा फिर छंगू हलवाई की दूकान के सामने राख के ढेर पर बैठने लगा था. एक दिन उसी राख के ढेर पर बैठे-बैठे उसे सपना आया कि कुछ बुड्ढे कुत्तों का सम्मान हो रहा है. कुत्ता समाज अपने पुराने निष्ठावान, त्यागी, तपस्वी बुजुर्गों की सेवाओं का स्मरण कर रहा है और उन्हें मंच कर बैठाकर तमगे वगैरह बांट रहा है.

मोती कुत्ते ने अपनी बूढ़ी आंखों से अपनी तस्वीर भी मंच पर ढूंढनी चाही. उसने देखा कि एक से एक चालू कुत्ते वहां थे, मगर मोती कुत्ता नहीं था. उसने हताशा से सर झटका तथा पलटकर आंखें खोलकर देखा. एक बस तेजी से उसी ओर चली आ रही थी. मोती कुत्ता चाहता तो हट सकता था परंतु वह नहीं हटा. बस छंगू हलवाई की दूकान के काफी पास से होकर गुजरी थी. इतने पास से कि वह राख के ढेर को रौंदती चली गयी थी.

बस के अगले पहिये का दबाव राख के ढेर पर लेट मोती कुत्ते ने अपनी जर्जर छाती, पेट और टांगों पर एक क्षण को महसूस किया था, अपने मुंह से निकली 'चाईं' की एक आवाज उसने सुनी थी और उसके बाद क्या हुआ था यह मोती कुत्ते को पता नहीं चला था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिखमंगों की पेंशन

ईश्वर शर्मा

सरकार ने घोषणा की, "लूले, लंगड़े अपंग निराश्रित लोगों को भीख मांगने की जरूरत नहीं है. उन्हें नियमानुसार सरकार द्वारा मासिक पेंशन दी जायेगी."

सरकार की इस घोषणा से भिखमंगों में खुशी की लहर दौड़ गयी. सोचने लगे, 'चलो सरकार की कपा से भिखमंगों के दिन फिर गये. दरवाजे-दरवाजे भटकने की झंझट से तो मुक्ति मिली.' कुछ भिखमंगे, जो सरकार की संवेदनशीलता नहीं समझ पाये थे, अब भी भीख मांगते घूम रहे थे. उन्हें दूकानदारों ने सरकारी धोषण की जानकारी देकर दुत्कारना शुरू कर दिया.

घोषणा होते ही सरकारी कारिंदों ने भिखमंगों को पेंशन देने के लिए नियम बनाना प्रारंभ कर दिया-जिनकी आयु पचास वर्ष से ऊपर हो, जो अपंग हों, जिनका कोई आश्रयदाता न हो, जिनका जीविकोपार्जन का कोई साधन न हो, ऐसे लोगों को निराश्रितों की परिभाषा में शामिल किया गया और यह नियम बनाया गया कि ऐसे निराश्रितों को शासन की ओर से प्रतिमाह साठ रुपये पेंशन दी जायेगी. इसके साथ ही सरकार ने भीख मांगने पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया.

कुछ दिनों के पश्चात सरकारी प्रक्रिया तय हो गयी.

नियम बना दिया गया कि जिस शहर में नगरपालिका अथवा ग्राम पंचायत, जहां जैसी व्यवस्था हो, वहां से निर्धारित प्रपत्र लेकर पात्र भिखमंगे को पूर्ण विवरण स्वयं भरना होगा तथा उसे कार्यालय में जमा कराना होगा. प्रपत्र की कुछ मुख्य बातें इस प्रकार थीं-

नाम, पिता का नाम, जन्म तिथि, स्थायी पता आदि साफ-साफ भरने के बाद आवेदक भिखमंगे को अपनी अधिकतम वार्षिक आय घोषित करनी होगी, जिसे सक्षम राजस्व अधिकारी से प्रमाणित कराना आवश्यक होगा. भिखमंगे को यह घोषणा भी करनी होगी कि उसका देश अथवा विदेश के किसी बैंक में कोई खाता नहीं है और यदि खाता हो तो उसमें जमा राशि का विवरण देना होगा. आवेदक को स्पष्ट उल्लेख करना पड़ेग कि वह स्वय को किस हैसियत से भिखमंगा मानता है, तथा उसे नगर के दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों से इस तथ्य को प्रमाणित कराना होगा. आवेदन के साथ ही आवेदक भिखमंगे को प्रदेश का मूल निवास प्रमाण पत्र भी संलग्न करना होगा. आवेदन को आवेदन पत्र के अतिरिक्त एक हलफनामा भी देना होगा जिसमें यह घोषित करना होगा कि आवेदन पत्र में भरी गयी समस्त जानकारी सत्य तथा सही है. और, गलत पाये जाने पर आवेदन भिखमंगा दंड का भागी होगा.

इतनी लंबी प्रक्रिया देखकर मैंने एक अधिकारी मित्र से पूछा, "भिखमंगों के लिए इतनी लंबी खानापूरी?"

अधिकारी ने बताया, "यदि इतनी सावधानी न बरतें तो नगर के अधिकांश लोग भिखमंगों की लाईन में लगकर पेंशन ले जायेंगे."

मेरे द्वारा इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करने पर उस अधिकारी ने आगे बताया, "और लाईन में सबसे पहले नेताओं के रिश्तेदार व चमचे ही दिखाई पड़ेंगे. सही भिखमंगे तो फिर भी भीख मांगते मिलेंगे."

मैंने इसके बावजूद विरोध प्रगट करते हुए कहा, "वह सब तो ठीक है, लेकिन ये अपंग इतनी कागजी खानापूरी कैसे कर पायेंगे?"

अधिकारी ने जवाब दिया, "सरकारी नियमों की खानापूरी तो अच्छे-भले पढ़े लिखे भी नहीं कर पाते, ये भिखमंगे क्या खाक करेंगे. नियम सरकारी कर्मचारी बनाते हैं. उन्हें कैसे पूरा करना है, वे ही उसे बताते हैं. भिखमंगों की जानकारी भी वही क्लर्क पूरी कर लेगा जो टेबल पर बैठेगा."

मैंने हर्ष प्रगट करते हुए कहा, "मतलब उस क्लर्क को यह सब करने के लिए सरकार ने आदेश दिया है."

अधिकारी ने पलटकर मुझे जवाब दिया, "मैंने यह कब कहा कि क्लर्क को आदेश दिये गये हैं. मैंने तो यह बताया है कि वह सब जानकारी भर लेगा. इसका अर्थ यह हुआ कि भिखमंगे जब असमर्थता प्रगट करेंगे तब वह क्लर्क उन्हें सहयोग देगा."

मैंने भोलेपन से पूछा, "जब आदेश नहीं है तो क्लर्क को क्या पड़ी है जो वह सहयोग देगा."

अधिकारी ने मंद मुस्कान के साथ कहा, "तुम्हें कभी सरकारी आफिसों में काम नहीं पड़ा मालूम पड़ता है. नहीं तो समझ जाते कि सरकारी बाबू कब और क्यों सहयोग देता है."

अधिकारी की गूढ़ रहस्य वाली बात तो मुझे सचमुच समझ में नहीं आयी. हां, इतना अवश्य समझ गया कि भिखमंगों के पास अवश्य कोई चीज ऐसी है, जिसका आकर्षण सरकारी बाबूओं से किसी तरह काम करवा लेगा. और मैं पहली बार किसी सरकारी घोषणा के प्रति आश्वस्त हुआ कि उसका लाभ संबंधित व्यक्ति को मिल जायेगा.

तीन माह बाद मुझे सरकार की इस घोषणा की अचानक याद आयी. मन में इच्छा जागृत हुई कि कितने भिखमंगे पेंशन पा रहे हैं, इसका पता लगाया जाये.

मैं नगरपालिका दफ्तर पहुंचा. वहां पता चला कि तीन महीने में अभी तो आवेदन ही पूर्ण किये गये हैं. पेंशन मिलने में तो अभी काफी विलंब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा.

मैंने संबंधित क्लर्क से जानना चाता, "आवेदन पूरे हो गये हैं तो पेंशन राशि मिलने में विलंब किस बात का है?"

क्लर्क ने जवाब दिया, "यदि समस्या सामने आते ही उनका निराकरण हो जाये. तो फिर सरकार और सरकारी दफ्तर खाली बैठे क्या मक्खियां मारेंगे?"

मैने पूछा, "मक्खियां नहीं मारेंगे तो फिर काम में लगे रहने के लिए क्या करेंगे जिससे इन भिखमंगों को पेंशन मिल जाये?"

क्लर्क ने बताया, "सरकारी दफ्तर का काम में लगे रहना अलग मुद्दा है, और भिखमंगों को पेंशन मिल जाना दूसरी बात है."

मैंने उलझाव से बचने के लिए सीधी बात पूछी, "और क्या कार्यवाही बाकी रह गयी है?"

उसने बताया, "अभी तो प्रारंभ हुआ है. संपूर्ण प्रक्रिया तो काफी लंबी है."

मैने बड़ी श्रद्धापूर्वक पूरी प्रक्रिया की लंबाई जानने की जिज्ञासा प्रगट की.

टेबल पर फैले सब कागजों को एक जगह समेटकर पेपरवेट से दबाते हुए क्लर्क ने जेब से तंबाकू की डिबिया निकाली. कुरसी को थोड़ा पीछे खिसकाकर झुलाते हुए उसने बड़े इतमीनान से तंबाखू-चूना निकालकर मला और उसकी फांक मुंह में डालकर मुंह चलाया. थोड़ी देर बाद पास रखी जालीदार टोकरी में पीक मारकर तब मेरी ओर इस भंगिमा में मुखातिब हुए मानो भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता-रहस्य से परिचित कराने जा रहे हों.

भिखमंगे को यह घोषणा भी करनी होगी कि उसका देश अथवा विदेश के किसी बैंक में कोई खाता नहीं है और यदि खाता है तो उसमें जमा राशि का विवरण देना होगा.

उसने मुझे भिखमंगों का पेंशन रहस्य समझाते हुए बताया कि आवेदन पत्र पूर्ण हो जाने के पश्चात सबसे पहले शासकीय चिकित्सक के पास भेजे जायेंगे. चिकित्सक द्वारा भिखमंगों का स्वास्थ्य परीक्षण कर उनके रोगों की पुष्टि की जायेगी. इसके बाद इस बात की तसल्ली की जायेगी कि ये भिखमंगे सचमुच निराश्रित हैं. यह पता लगाया जायेगा कि इनके आय के स्त्रोत कौन-कौन से हैं. इतनी सब पुष्टि हो जाने के बाद समस्त आवेदनों को स्वीकृति हेतु जनपद पंचायत के माध्यम से समाज कल्याण विभाग को प्रेषित किया जायेगा. जनपद पंचायत इन पर अपनी टिप्पणी लिखकर समाज कल्याण विभाग को भेजेगी. समाज कल्याण विभाग बजट आबंटन के अनुपात में भिखमंगों की संख्या का निर्धारण करेगा जिसमें अनूसूचित जाति व जनजाति के लिए तीस प्रतिशत कोटा आरक्षित रहेगा. वह स्वीकृत सूची जनपद पंचायत के माध्यम से नगरपालिका कार्यालय पहुंचेगी. इतना सब हो जाने के बांद पेंशन राशि का इंतजार किया जायेगा. जब समाज कल्याण विभाग को राशि की सुविधा होगी तब वह धनराशि का चेक जनपद पंचायत को भेजेगा. जनपद पंचायत उस चेक को पहले अपने खाते में जमाकर अपनी सुविधानुसार जनपद पंचायत का चेक नगरपालिका को भेजेगी.

हनुमान की पूंछ से भी लंबी इस प्रक्रिया को सुनकर, भिखमंगों का तो क्या होगा, नहीं मालूम लेकिन मुझे चक्कर आने लगा था. पास खड़े चपरासी से मैंने तत्काल पानी मंगवाया और ताबड़तोड़ दो ग्लास पानी पीने के पश्चात लंबी सांस छोड़ते हुए पूछा, "इसके बाद तो इन भिखमंगों को पेंशन मिल जायेगी ना?"

क्लर्क ने हंसते हुए जेब से माचिस की डिबिया और बीड़ी का बंडल निकालते हुए कहा, "अभी कहां.. अभी नियम पूरे थोड़ी हुए हैं, जो इन्हें पेंशन मिल जायेगी."

मैं लगभग पस्त भाव से कुरसी पर पसर गया. और थके स्वर में मैंने पूछा, "भिखमंगों को पेंशन प्राप्त करने के लिए और क्या क्या पापड़ बेलने पड़ेंगे, वह भी बता डालिए."

उसने मेरी जानकारी में वृद्धि करते हुए बताया, "जनपद पंचायत द्वारा भेजा गया चेक पहने नगरपालिका के खाते में जमा होगा. और जब हमें फुरसत मिलेगी तब भिखमंगों का अलग-अलग वाउचर बनाकर उतनी धनराशि का नगरपालिका का चेक को-ऑपरेट्टिव बैंक को भेजा जायेगा."

मैंने चौंकते हुए तत्परतापूर्वक पूछा, "बैंक में चेक क्यों भेजा जायेगा?"

क्लर्क ने तसल्लीपूर्वक जवाब दिया, "भिखमंगों को पेंशन राशि का भुगतान बैंक से प्राप्त होगा."

मैंने फिर पूछा, "बैंक से भुगतान करने के पीछे सरकार की क्या मंशा है?"

उसने बताया, "सरकार नहीं चाहती कि भिखमंगे जैसे शोषित पीड़ित वर्ग को रुपये देने में किसी किस्म का भ्रष्टाचार पनपे. इसीलिए उन्हें सीधे बैंक से रुपया दिलाने की योजना बनायी गयी है."

एक-बारगी तो मन में यह विचार आया, इसका तात्पर्य यह हुआ कि सरकारी विभागों में सीधे जो भुगतान होते हैं, उनमें भ्रष्टाचार होता है. लेकिन वातावरण खराब न हो जाए इस खयाल से मैंने यह बात नहीं कही. लगभग हथियार डालते हुए मैंने पूछा. "फिर वहां बैंक में इन भिखमंगों को कौन-कौन-सी खाना-पूरी करनी पड़ेगी, वह भी बता ही दीजिए."

क्लर्क ने उंगलियों के बीच दबी बीड़ी का अंतिम कश मारकर वहीं से बैठे-बैठे बचा हुआ टुकड़ा आफिस के कोने में लापरवाहीपूर्वक फेंका और कहा, "सबसे पहले इन भिखमंगों को स्वयं के खर्च से अपना फोटो खिचंवाकर बैंक में देना होगा.'

मैंने पूछा, "बैंक फोटो का क्या करेगी?"

उसने कहा, "सभी भिखमंगे साले देखने में एक जैसे दिखते हैं. बैंकवाला उन्हें कैसे पहचानेगा. उनकी फोटो बुक में लगी रहेगी उससे उन्हें पहचानकर रुपया दे पायेगा."

मन ही मन क्लर्क की बात से मैं पहली बार सहमत हुआ कि वास्तव में भिखमंगे, चाहे वे किसी भी वर्ग या लिबास में हों, एक जैसे ही दिखते हैं.

मैने पूछा, "फोटो देने के बाद क्या करना होगा?"

उसने बताया, "भिखमंगों को बीस रुपये जमा करवाकर बैंक में अपना बचतखाता खोलना होगा. तब उन्हें पास बुक मिल सकेगी."

मैने जानना चाहा, "भिखमंगों को ये बीस रुपये कौन देगा?"

उसने जवाब दिया, "यह बीस रुपया हर भिखमंगे को अपने पास से देकर खाता खोलना होगा और यह रकम हमेशा उनके खाते में जमा रहेगी."

आगे की विस्तृत कार्यवाही का विवरण देते हुए उसने यह भी बताया कि नगरपालिका द्वारा भिखमंगों का वाउचर और चेक में भेजे जाने पर बैंक द्वारा भिखमंगों के खातों में अलग-अलग रकम जमा की जायेगी. और फिर उनकी पासबुकों में वह राशि जमा दर्ज की जायेगी. इसके पश्चात ही भिखमंगे अपनी जमा रकम निकाल सकेंगे. इसके लिए उन्हे बैंक में फार्म भरकर देना होगा, तब उन्हें बैंक से रकम मिल जायेगी.

उस क्लर्क ने इतने इतमीनान से 'तब उन्हें रकम मिल जायेगी.' कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो भिखमंगों को निश्चितरूप से रकम मिल गयी हो. इतनी लंबी प्रक्रिया और इतनी लंबी अवधि के बीच आफिस-दर-आफिस उनके भटकाव और प्रतीक्षा की कल्पना से मेरी तो सांस ही उखड़ने लगी थी, भिखमंगों का तो शायद दम ही निकल जायेगा.

कुछ माह बाद यह जानने की गरज से कि भिखमंगों को पेंशन का रुपया मिला या नहीं, मैं बैंक पहुंचा.

वहां मैंने देखा कि बैंक के अधिकारी, बाबू और चपरासी मिलकर भिखमंगों की भीड़ को खदेड़ने में लगे हैं और गुस्सें में उन्हें गालियां बके जा रहे हैं. मैंने उन्हें शांत करते हुए गुस्से का कारण जानना चाहा.

बैंक अधिकारी ने आक्रोशपूर्वक बताया, "ये साले भिखमंगे समझते है कि बैंक वाले केवल इन्हीं का काम करने के लिए बैठे हैं. सुबह से शाम तक दरवाजे पर धरना दिये बैठे रहते हैं साले, नंगे भूखों की तरह. साले दो दिन भी सब्र नहीं कर सकते हैं. उधर नगरपालिका से कागज आया नहीं कि इधर हमारी छाती पर सवार हो जाते हैं."

मैंने उन्हें शांत करते हुए कहा, "चलो, जाने भी दो, भिखमंगे हैं बेचारे. पैसों की तंगी किसको नहीं होती. दे दो उनका रुपया, अपना क्या जाता है."

मेरी बातों से थोड़ा ढीला पड़ते हुए बैंक अधिकारी ने मुझे विश्वास से लेते हुए बताया, "बात तो आपकी ठीक है लकिन हमारी भी कुछ मजबूरियां हैं. आप तो जानते हैं कि ये को-आपरेटिव बैंक की छोटी-सी ब्रांच है. यहां ज्यादा रकम तो जमा रहती नहीं है. नगरपालिका ने भिखमंगों की रकम भेजी थी तो उससे हमने बैंक के स्टाफ को तनखा बांट दी. अब और कहीं से रुपया आयेगा तो इन भिखमंगों को दे सकेंगे."

इस जवाब के बाद कुछ कह सकने अथवा कर सकने की स्थिति में मैं नहीं रह गया था. बैंक से बाहर निकलने पर मुझे एक परिचित अपंग दिखाई पड़ा. मैंने उससे पूछा, "प्रति माह कितना रुपया मिल जाता है?"

उसने बताया, "सब कट-कुटाकर आखिर में तीस रुपया महीना हाथ में आता है बाबूजी."

आगे उसके बताये बिना ही मैं समझ गया कि बाकी तीस रुपया इतनी लंबी प्रक्रिया के दौरान कई लोगों की संवेदनाओं को संतुष्ट करने में लग जाता होगा. क्योंकि जटिल शासकीय प्रक्रियाएं आफिस-दर-आफिस कितने ही भिखमंगों को अस्तित्व में ला देती हैं, जिनका उदर-पोषण ऐसे अपंगों को करना पड़ता है.

सरकार की संवेदनशीलता के प्रति मेरा हृदय श्रद्धावनत हो गया, जिसने भिखमंगों को भीख मांगने के निकृष्ट कार्य से उबार कर स्वाभिमान से जीने की लाईन में लगा दिया.□

कालेज रोड, महासमुन्द म.प्र.-493445

प्रवचन

श्याम बिल्लौरे

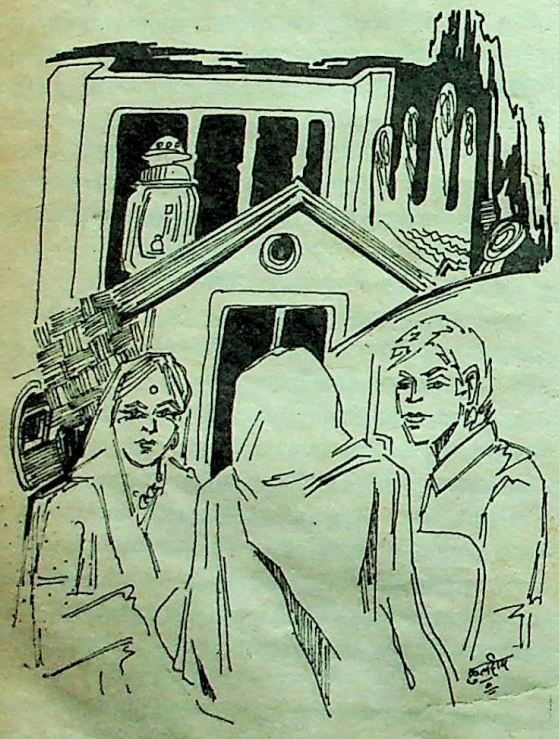

रात की शयन-आरती के बाद मंदिर के द्वार बंद हो गये. अब वहां थी देव-प्रतिमा, पूजन-सामग्री, कुछ जलते हुए दीपक और उन पर मंडराते पतंगे. कुछ दीपकों में तेल था और कुछ की लौ तेल की कमी के कारण मंद पड़ती जा रही थी. लगता था अंधकार के आने वे हथियार डाल रहे हैं.

यह देखकर देव-प्रतिमा के पास ऊंची वेदी पर रखे मुख्य दीपक को बड़ा क्रोध आया. उसका शरीर औरों की भांति, मिट्टी का नहीं, बल्कि पीतल का था, आकार प्रकार में चौगुना था और मंदिर में अखंड दीपक का पद प्राप्त होने से उसका पेट तेल से दिन रात भरा रहता था.

मुख्य दीपक ने अपनी वेदी के मंच के नीचे सारे छोटे दीपकों को एकत्रित करके कहना शुरू किया, "बड़े दुख की बात है कि तुममें से कुछ लोग अपने कर्तव्य से विचलित हो रहे हैं. याद रखो, तुम्हारा जन्म अंधकार को नष्ट करने के लिए हुआ है, उसके आगे हथियार डालने के लिए नहीं. तुम्हें रात भर जगते रहना चाहिए. अंधकार हमारा सबसे बड़ा शत्रु है. जब जहां, जिस ओर भी वह दिखाई दे, उस पर टूट पड़ो...!"

भाषण लंबा होता जा रहा था. कुछ दिये उनींदें हो चले थे. कुछ अपने अस्तित्व की चिंता में थे. लेकिन भाषण के बीच में कोई कैसे बोलता. वह उनका मुखिया जो था.

लेकिन वहीं पड़े एक अधजले पतंगे से रहा न गया. वह बोला, "महाराज, धृष्टता क्षमा करें तो एक निवेदन करूं. आपका पेट तो हमेशा भरा रहता है, इसलिए आप इतनी ऊंची, बातें सोचते और कह लेते हैं. बाकी दिये तो रोज जीते-मरते हैं. थोड़ा ध्यान से देखें तो इनमें से बहुतों के पेट लगभग खाली हो गये हैं. ये अपनी जान की फिक्र करे, या आपका उपदेश सुनें? बाकी दिये भी आधे पेट हैं. इसलिए भविष्य की चिंता में इनका ध्यान आपके प्रवचन से रह-रह कर हट जाता है.

पतंगे ने आगे कहा, "महाराज, अब इस आखिरी वक्त में प्राणों का भय नहीं रहा, इसलिये कह रहा हूं कि जहां तक अंधकार को नष्ट करने का सवाल है, थोड़ा अपने नीचे भी झुककर देख लें. आप और दियों से बड़े हैं, इसलिए आप देखेंगे कि इस सबमें सबसे ज्यादा अंधेरा आपके ही तले है.

इतना कहकर उस अधजले पतंगे ने दम तोड़ दिया. कक्ष में अब सन्नाटा था.

देव प्रतिमा के चेहरे पर मुस्कान यथावत् थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम संबंधों में विशेषज्ञों की राय

फ्रैंक सलीवान

प्रश्न : प्रेम संबंधी विशेषज्ञ होने के नाते क्या आप प्रेम विवाह, सैक्स आदि विषयों के संदर्भ में नियमित उपयोग किये जाने का शब्दों और वाक्यों के प्रयोग पर बयान देने के लिए तैयार हैं?

उत्तर : जी हां.

प्र. : ठीक तो बताइये, प्यार क्या होता है?

उ. : प्यार अंधा होता है.

प्र. : ठीक. प्यार से क्या होता है?

उ. : प्यार से दुनिया चलती है.

प्र. : कोई युवक किसके प्यार में पड़ता है?

उ. : संसार की एकमात्र लड़की के.

प्र. : कोई युवती किसके प्यार में पड़ती है?

उ. : संसार के सबसे अच्छे युवक के.

प्र. : दोनों कब प्यार में पड़ते हैं?

उ. : पहली नजर में.

प्र. : कैसे?

उ. : दीवानों की तरह.

प्र. : तब क्या माना जाता है?

उ. : कि कामदेव के बाणों के शिकार हुए.

प्र. : तब लड़का क्या करता है?

उ. : लड़की के कानों में मीठी-मीठी बातें फुसफुसाता है.

प्र. : इस प्रेमी को कौन प्यार करता है?

उ. : प्रेमी को सारी दुनिया प्यार करती है.

प्र. : दुनिया की वह एकमात्र लड़की कैसी होती है?

उ. : आंखें हिरनी जैसी, दांत मोतियों जैसे, उसके होंठ गुलाब की पांखुरियां, गाल सेब जैसे...उसका रूप अलौकिक.

प्र. : आप कुछ भूल रहे हैं?

उ. : आंखें, दांत, होंठ, गाल, रूप...जी नहीं, मेरे खयाल में सब कुछ बता दिया है मैंने.

प्र. : उसके बाल?

उ. : अरे हां, कैसा मूर्ख हूं मैं भी. उसकी अलकें नागिनों जैसी होती हैं.

प्र. : बहुत खूब, अब जरा दुनिया के उस सबसे अच्छे युवक के बारे में बताइये?

उ. : वह ग्रीक देवताओं जैसा होता है, पूर्ण पुरुष, उसके व्यक्तित्व में कोई विशेष बात होती है. वह सीधा-सच्चा होता है. जब तक उसे अपनी चाहत के मुताबिक लड़की नहीं मिलती—जो उसके भावी बच्चों की मां बन सके—तब तक वह पवित्र और विशुद्ध बना रहता है. वह लड़की की आंखों में सीधे देख सकता है.

प्र. : कैसे?

उ. : बेधड़क.

प्र. : क्या ऐसे लड़के सबके सब ग्रीक देवताओं जैसे ही होते हैं?

उ. : अरे नहीं, कुछ दूसरी तरह के भी होते हैं. घाट-घाट का पानी पिये. उन्हें सुंदरियों से पेश आने के तौर-तरीके मालूम होते हैं. गंवार नहीं होते. बदतमीजी नहीं करते. दिल सोने का होता है. ऐसा लड़का अनगढ़ हीरा होता है. वह अपने अतीत के बारे में सब कुछ बता देता है. वह भी उसकी बात समझती है—और उसे माफ कर देती है.

प्र. : और उससे शादी कर लेती है?

उ. : उससे शादी कर लेती है.

प्र. : क्यों?

उ. : उसे सुधारने के खयाल से.

प्र. : वह उसे सुधार पाती है?

उ. : शायद, कभी कुछ दिनों अवश्य.

प्र. : अच्छा, तो पागलों की तरह प्यार करने लगता है, तब वह करता क्या है?

उ. : वह हवा में उड़ता-फिरता है.

प्र. : वह तो हम जानते हैं, मगर वह करता क्या है?

उ. : कसम लेता है.

प्र. : किसी कसम?

उ. : अपनी, प्यार की.

प्र. : उसके बाद क्या होता है?

उ. : वे शादी कर लेते हैं.

प्र. : शादी क्या है?

उ. : एक लाटरी है.

प्र. : शादियां कहां तय होती हैं?

उ. : शादियां स्वर्ग में तय होती हैं.

प्र. : ऐसे में दुल्हन क्या करती है?

उ. : शरमाती है.

प्र. : और दूल्हा?

उ. : अंगूठी भूल जाता है.

प्र. : शादी के बाद क्या होता है?

उ. : सुहागरात.....मधुचंद्रिका.

प्र. : और फिर?

उ. : लड़की के पास एक भेद की बात होती है.

प्र. : कैसी बात?

उ. : वह छोटे-छोटे मौजे बुनती है.

प्र. : उसके बाद क्या होता है?

उ. : अरे, उनका घर बनता है, परिवार बनता है...और वे सुख से रहने लगते हैं, बशर्ते....

प्र. : बशर्ते क्या?

उ. : बशर्ते कि पुरुष ऐसा न हो कि कहीं चिकना चेहरा देखते ही फिसल जाये.

प्र. : और अगर वह ऐसा ही हो तो?

उ. : तब उनकी राहें जुदा हो जाती हैं.

प्र. : बहुत बहुत शुक्रिया.

उ. : लेकिन मैंने अपना बयान अभी पूरा कहां किया है.

प्र. : अच्छा!

उ. : जी हा, सैक्स का एक और पक्ष भी है.

प्र. : कौन-सा पक्ष?

उ. : बुरा पक्ष. आप तो जानते ही हैं, कुछ पुरुष ऐसे होते हैं जो भेड़ की खाल में भेड़िये होते हैं और दुख की बात है कि कुछ ऐसी सुंदर स्त्रियां भी होती हैं जो किसी भी हद तक गिर सकती हैं.

प्र. : मेहरबानी करके ऐसे पुरुषों के बारे में जरा विस्तार से बताइये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ. : वे तो घास में रेंगनेवाले सांप हैं. वे नारी को नारी नहीं समझते. चालू लोग जो लड़की को चूमते हैं और इस बात का ढिंढोरा पीटते हैं. वे लड़की के प्यार का नाजायज फायदा उठाते हैं, उसकी मासूमियत के साथ खिलवाड़ करते हैं, उसके विश्वास को तोड़ते हैं. सोचते हैं औरत तो सिर्फ औरत होती है जैसे एक अच्छी सिगरेट धूम्रपान के लिए होती है. उनका आदर्श वाक्य होता है : "प्यार करो और छोड़कर चलते बनो. और छोटी उम्र में ही उन्हें फांसों, मसलो-कुचलो और बताओ उन्हें कुछ मत. ये बेशर्मा लोग. औरत की आंखों में बननेवाली रोशनी की बात करते हैं और सिर्फ झूठ और झूठ बोलते हैं. पुराने जमाने में ऐसे लोग काली एंठी हुई मूंछें रखा करते थे, जिन्हें वे जब-तब ताव देते रहते थे : वे मासूम जवान लड़कियों को रात के खाने पर बुलाते थे अपने घर में और अकेले में कहते थे, "बेबी तुम हमसे डरती क्यों हो?" अब उनके काले, चमड़े जैसे बाल होते हैं और अपनी गाड़ी को मोड़ पर लाकर रोकते हुए कहते हैं, "मेम साब, लिफ्ट चाहिए? इनसान रूप में ये शैतान होते हैं, जो औरत का सबसे अनमोल खजाना लूट लेते हैं.

प्र. : कौन-सा खजाना?

उ. : उसकी इज्जत-उसकी अस्मत.

प्र. : कैसे लूटते हैं वे?

उ. : अपनी बेहूदी हरकतों से.

प्र. : जब घासमें रेंगनेवाला यह सांप जब किसी औरत की इज्जत लूटने की कोशिश करता है तो वह क्या करती है?

उ. : वह अपनी इज्जत बचाने की कोशिश करती है.

प्र. : कैसे?

उ. : उसके बढ़ते हाथों को धकेलकर, उसके आलिंगन को नकारकर.

प्र. : ऐसा वह कैसे करती है?

उ. : यह कहते कि 'आप भूल कर रहे हैं कि आप क्या है', या 'अपने गंदे हाथों से छूना मत मुझे,' या 'आप याद रखें कि मैं एक इज्जतदार औरत हूं.' या 'अपनी जलील हरकतों से बाज आओ वरना....'

प्र. : मान लीजिये, वह ऐसा कुछ भी न कहे तो?

उ. : उस हालत में वह जीवन का पहला गलत कदम उठाती है.

प्र. : वह पहला कदम उसे कहां ले जाता है?

उ. : फूलोंवाले रास्ते की ओर.

प्र. : फूलोंवाला रास्ता?

उ. : जो सबसे आसान है.

प्र. : वह रास्ता कहां पहुंचाता है.

उ. : शर्मनाक जिंदगी की ओर.

प्र. : शर्मनाक जिंदगी क्या है?

उ. : मौत से भी बदतर.

प्र. : अब, जब कोई औरत गलती कर बैठी हो, तो वह उस मजनूं का क्या करती है जिसने उसका सबसे बेशकीमती खजाना लूटा था?

उ. : वह अपनी जिंदगी के सबसे अच्छे साल उसे समर्पित कर देती है.

प्र. : वह क्या करता है?

उ. : वह उसे त्याग देता है.

प्र. : कैसे?

उ. : पुरानी जूती की तरह.

प्र. : तब वह क्या करती है?

उ. : वह अपने प्यार के घोसले में जाती है. उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है. उसका दिमाग सुन्न पड़ जाता है. वह रिवाल्वर निकालती है और इनसान की शक्ल वाले उस शैतान को एक ऐसा उपहार देती है, जिससे वह शैतान उसे हमेशा याद रखे.

प्र. : इसे क्या कहते हैं?

उ. : इज्जत लूटने का बदला.

प्र. : वह क्या है जो कोई भी ज्यूरी ऐसे मामले में नहीं कर पायेगी?

उ. : कोई भी ज्यूरी उसे सजा नहीं देगी.

प्र. : इन मामलों में विलशे अर्थात पिष्टोक्ति के सही इस्तेमाल का खुलासा हमारे लिए बड़ा जानकारी भरा रहा—और मैं जानता हूं कि यहां बैठे हम सब पिष्टोक्तियों का इस्तेमाल करनेवालों को पता रहेगा कि हमारी प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए जब किसी वार्तालाप के दौरान प्रेम—जब सैक्स—जब—आह—.....

उ. : मेरा ख्याल है आप यह कहना चाहते हैं कि "जब सैक्स अपना भद्दा सिर उठाता है"—है न?

प्र. : शुक्रिया. मैं यही कहना चाहता था. □

अनुवाद—सुदीप

चलते-चलते

एक नवयुवक सेल्समैन की नौकरी के लिये साक्षात्कार देने गया. मालिक ने एक लकड़ी का टुकड़ा उठाकर मेज पर रखा और उससे पूछा, "इसे तुम क्या कहोगे?" नवयुवक तपाक से बोला "साहब यह तो उसी छड़ी का हिस्सा है जिसे लेकर नेहरूजी टहलने निकलते थे!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्या निंदक

चेखव

रूस के महान कथाकार की हास्य रचना.

सलेखन के अध्यापन सिर्जो अखिनीओव ने अपनी बेटी नातालिया की शादी इतिहास-भूगोल के मास्टर इवान लोशाडनिकिख से कर दी. शादी की दावत मजे में चल रही थी. बैठकखाने में उन्होंने गाने गाये, खेल खेले, नाच किया. क्लब से किराये पर लाये गये काले फ्राक-कोटों और मैली सफ़ेद टाइयों से लेस बहरे पागलों की तरह इधर-उधर हड़बड़ाकर घूम रहे थे. स्वरों का ऊंचा शोर वायु को आक्रांत कर रहा था. बाहर से लोग खिड़कियों से झांक रहे थे. समाज में उनकी ऐसी स्थिति नहीं थी कि उन्हें अंदर आने का अधिकार प्रदान करती.

ऐन आधी रात को मेजबान अखिनीओव यह देखने के लिए कि खाना तैयार हो गया है कि नहीं, रसोईघर की ओर बढ़ा. किचन में फर्श से छत तक धुंआ भरा हुआ था. धुएं में हंसों, बत्तखों तथा चूज़ों की गंध मिली हुई थी. खाद्य-सामग्री और पेय-सामग्री दो मेज़ों पर कलात्मक अव्यवस्था में बिखरी हुई थी. लदे हुए मेजों के नजदीक लाल मुंहवाली हट्टी-कट्टी बावर्चित मारफा बहुत व्यस्त थी.

"मुझे बड़ी मछली दिखाओ," अपने हाथ रगड़ते और होंठ चाटते हुए अखिनीओव ने कहा, " क्या सुगंध है! जी चाहता है, सारा रसोईघर निगल जाऊं. अच्छा, लाओ, बड़ी मछली दिखाओ."

मारफा सावधानी से एक बेंच की ओर गयी और उसने चिकना अख़बार हटाया. कागज के नीचे, गाजरों, जैतून, और करील के फूलों की चटनी के बीच बड़ी मोटी मछली रखी थी. अखिनीओव ने बड़ी मछली पर सरसरी नज़र दौड़ायी और सुख की सांस ली. उसका चेहरा कांतिमय हो गया. वह झुका और उसने एक चटखारा भरा जिससे पहिये के चरमराने जैसा स्वर निकला. वह क्षण भर खड़ा रहा. फिर उसने स्वाद के लिए अपनी उंगलियों पर मुंह फेरा और एक बार फिर चटखारा भरा.

"आह! एक भरपूर चुंबन की आवाज. मारफा, तुम किसे चूम रही थीं?" बगलवाले कमरे से किसी का स्वर सुनाई दिया और तुरंत बाद सहायक-अध्यापक वेनकिन का मुंडा हुआ सिर द्वार-मार्ग में दिखाई दिया. "तुम यहां किससे चूमा-चाटी कर रहे थे? ओह, बहुत खूब सिर्जो, वास्तव में तुम एक मनमोहक बूढ़े हो! एक औरत के साथ अकेले में."

"मैं किसी का चुंबन बिल्कुल नहीं ले रहा था." हड़बड़ाकर अखिनीओव ने कहा, "अरे मूर्ख, कौन कहता है? मैं तो मछली देखकर केवल चटखारा भर रहा था."

"किसी और को बेवकूफ बनाना." वेनकिन ने मुस्कराकर कहा और दरवाजे के पीछे ओझल हो गया. अखिनीओव झेंप गया.

"शैतान ही जानता है कि इसका परिणाम क्या होगा." उसने सोचा, "वह दुष्ट अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुगलख़ोरी करेगा. वह हैवान सारे कस्बे में मुझे बदनाम कर देगा."

अखिनीओव डरते-डरते बैठक में दाखिल हुआ और चोर-नज़र से उसने देखा कि वेनकिन क्या कर रहा है. वेनकिन पियानों के पास खड़ा था और बड़ी होशियारी से झुककर उसने इंसपेक्टर की साली के कान में कुछ कहा. वह हंसने लगी.

'मेरे बारे में कहा होगा.' अखिनीओव ने मन ही मन सोचा, 'मेरे बारे में ही. शैतान ही लानत उस पर. और वह उस पर विश्वास करके हंस रही है. हे ईश्वर! नहीं, मामला ऐसे नहीं रहने दिया जा सकता. नहीं, मुझे कुछ ऐसा करना होगा कि कोई भी उसका यक़ीन न करे. मैं इन सबसे बात करूंगा और अंत में वह केवल एक मूर्ख गप्पी साबित होगा.'

अखिनीओव ने अपना सिर खुजलाया और उलझन में पैडोकोई के पास पहुंचा.

"मैं थोड़ी देर पहले खाने का बंदोबस्त देखने के लिए रसोईघर में गया था," उसने फ्रांसीसी से कहा, "मुझे मालूम है कि आपको मछली भाती है और मेरे पास बड़ी लंबी मछली थी. दो गज़ लंबी. आह...हां...हां... सुनिये, मैं भूल ही गया. मछली के बारे में किचन में गया. मैं खाने पर एक निगाह डाल लेना चाहता था. मैंने बड़ी मछली पर दृष्टिपात किया और स्वाद के लिए एक चटख़ारा भरा. वह बहुत मसालेदार थी. और तभी मूर्ख वेनकिन अंदर आया और बोला– हा, हा, हा. और कहा– 'अडहड.... तुम मारफा का चुंबन ले रहे थे.' ज़रा सोचो, वह बावर्चिन! उस बुद्धू ने क्या किस्सा गढ़ा है! वह औरत बदशक्ल है बिल्कुल बंदरिया जैसे लगती है और वह कहता है कि हम एक दूसरे का चुंबन ले रहे थे. क्या बेहूदा आदमी है."

"कौन बेहूदा आदमी है?" तरनतोलोव ने पास आते हीप्रश्न किया.

'मारफा और बड़ी मछली की कहानी दोहरा दी गई.

"मुझे इसी बात पर हंसी आ रही है. क्या ऊल-जलूल इनसान है वह. मेरी राय में मारफा को चूमने के बजाय एक कुत्ते को चूमा जा सकता है." अखिनीओव ने कहा और घूमकर देखा तो माज़दा उसे नज़र आया.

"हम वेनकिन के बारे में बात कर रहे थे." उसने उसे बताया, "क्या अजीब आदमी है. वह किचन में आया और मुझे मारफा के पास खड़ा देखा और तुरंत उसने किस्से गढ़ने शुरू कर दिये. क्या भला? तुम एक दूसरे को चूम रहे थे? उसने पी रखी थी इसलिए सपने देख रहा होगा!" और मैंने कहा, "मैं मारफा को चूमने के बजाए एक बत्तख को चूमना पसंद करूंगा. अरे मूर्ख, मेरी बीवी हैं, मैंने कहा. उसने मुझे हास्यास्पद बना दिय है."

"आपको किसने हास्यास्पद बना दिया है." धर्म-अध्यापक ने अखिनीओव को संबोधित करते हुए पूछा.

"वेनकिन ने. मैं किचन में खड़ा था और बड़ी मछली को निहार रहा था----" और फिर बाकी किस्सा कह सुनाया. लगभग आधे घंटे में घर के सब मेहमानों को वेनकिन और बड़ी मछली का किस्सा मालूम हो गया.

"अब वह बताता रहे," अखिनीओव ने हाथ मलते हुए दिल ही दिल में कहा, "उसे कहने दो. वह उन्हें बताना शुरू करेगा और वे उसे टोकेंगे," बकबक न करो, हमें सब जानकारी है."

और अखिनीओव को इस क़दर तसल्ली महसूस हुई कि उसने ख़ुशी मनाने के लिए चार जाम ब्रांडी के अधिक पिये. अपनी बेटी को उसने कमरे तक पहुंचाकर वह अपने कमरे में गया और घोड़े बेचकर सोया रहा. अगले दिन बड़ी मछली की कहानी तक उसे याद न रही. लेकिन अफ़सोस. इनसान क्या सोचता है और होता क्या है. बुरी जबान ने दुष्टता की और अखिनीओव की चालाकी उसके कोई काम न आयी."

एक सप्ताह बाद, बुधवार के दिन, तीसरे पीरियड के बाद अखिनीओव अध्यापक-कक्ष में खड़ा अपने विद्यार्थी विशेकिन की दुष्ट प्रवृत्तियों के बारे में बहस कर रहा था कि डायरेक्टर साहब आये और उसे इशारे से एक ओर बुलाया.

"सुनो सिर्जो," डायरेक्टर ने कहा, "माफ़ करना यह मेरा मामला नहीं लेकिन फिर भी मैं एक बात साफ़ कर देना चाहता हूं. यह मेरा कर्त्तव्य है समझे? अफवाहों का बाजार गर्म है कि अपनी बावर्चिन से तुम्हारे घनिष्ट संबंध है. यह मेरा निजी मामला नहीं है किंतु... तुम उससे घनिष्ट संबंध रखो, उसे चूमो चाटो... जो चाहे करो लेकिन यह न भूलो कि तुम अध्यापक हो. यह सब इतना खुल्लम-खुल्ला न करो. मैं तुमसे भीख मांगता हूं."

अखिनीओव भौंचक्का और हतप्रभ खड़ा रह गया. उसे लगा कि उसे भिड़ों के छते के काट लिया है. वह घर चला आया.

"तुम कुछ खा क्यों नहीं रहे हो?" खाने पर उसकी पत्नी ने पूछा, "क्या सोच रहे हो?, कामदेव के बारे में सोच रहे हो? तुम मारफा के लिए लड़फ रहे हो. मुझे सब कुछ पहले से ही पता है. अरे क्रूर, कृपालु लोगों ने मेरी आंखें खोल दी हैं." और उसने अपने पति के गालों पर एक थप्पड़ रसीद कर दिया. वह टेबल से उठ खड़ा हुआ और हैट तथा कोट पहने बिना, लड़खड़ाता हुआ वेकिन के घर की ओर चला. वह घर पर ही मिला.

"दुष्ट! पाज़ी!" उसने वेकिन से कहा, "तुमने सारी दुनिया के सामने मुझ पर कीचड़ फेंका है. तुमने क्यों मुझे झूठा बदनाम किया है."

"कैसे? कैसी बदनाम? तुम किस बारे में बात कर रहे हो?"

"किसने सबको कहा कि मैं मारफा का चुंबन ले रहा था! तुमने ही, क्यों? तुमने ही, ओ हत्यारे!"

बेनिका ने आंखें झपकायीं. उसके चेहरे के सब तुरंत कांपने लगे उसने अपनी निगाहें पवित्र प्रतिमा की और कीं और सहसा चीख उठा, "अगर मैंने किसी से भी एक शब्द आप के बारे में कहा हो तो ईश्वर मुझे सज़ा दे. मैं अंधा हो जाऊं, मर जाऊं, न मेरा घर रहे न बाहर."

वेकिन की ईमानदारी पर शक नहीं किया जा सकता था. ज़ाहिर था कि यह वह नहीं था जिसने गप्प उड़ायी थी.

"लेकिन यह कौन है? कौन?" उसने मन ही मन सब परिचतों का ध्यान करते हुए अपने आप से सवाल किया और अपनी छाती पीटते हुए बुदबुदाया, "वह है कौन?" □

अनुवाद : राजेन्द्र बोहरा

चलते-चलते

कुछ जुआरियों के बीच जब एक जुआरी ताश की पत्तियां बदलता पकड़ा गया तो उसके उत्तेजित साथियों ने उसकी अच्छी तरह मरम्मद कर डाली और क्रोध में आकर उसे छत से नीचे फेंक दिया. काफी चोट आयी. स्वस्थ होने पर उसने अपने एक मित्र से पूछा – "जुए में मेरे साथ जो कुछ भी हुआ, वह तुम्हारे साथ होता तो तुम क्या करते?"

"मेरे साथ ऐसा हरगिज नहीं होता." मित्र ने कहा, "क्योंकि मैं हमेशा नीचले फ्लोर पर ही जुआ खेलने बैठता हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी की समस्या

शरद जोशी

वे लोग जो टी.वी. देखते हैं, अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री वास्तविकता से सीधा साक्षात्कार करते हैं. वे स्वयं उस जगह जाते हैं और पूछ कर, बातचीत कर पता लगाते हैं कि सचाई क्या है. यह उनकी काम करने की शैली है. जैसे कोई मुख्यमंत्री उनसे कहे कि साहब हमारे राज्य में गरीबी है तो प्रधानमंत्री उसकी बात पर यों ही विश्वास नहीं कर लेते. वे वहां जाते हैं, टेलीविजनवालों को साथ लेकर जाते हैं और गरीबों से पूछते हैं:

"सुना आपके गांव में गरीबी है?"

"जी साब."

"कितने गरीब हैं गांव में?"

"जी सभी गरीब हैं."

"आपमें से ज्यादा गरीब कितने हैं?"

गांव वाले एक दूसरे का मुंह देखने लगते हैं.

"जी सभी ज्यादा गरीब हैं." एक सोशल वर्कर कहता है.

"उन्हें जवाब देने दीजिये, आप बीच में मत बोलिये."

"इस गांव की पाप्यूलेशन क्या है? कितने लोग रहते हैं इस गांव में?" प्रधानमंत्री कलेक्टर से पूछते हैं.

"जी कोई सत्तर फेमिलीज हैं." कलक्टर कहता है.

"आय वांट एक्जेक्ट फिगर्स."

"सिक्स्टी नाइन पाइंट फाइव."

"हूं!... ये पाइंट फाइव कैसे?"

"जी एक फेमिली में वाइफ नहीं है, हस्बंड शहर चला गया है."

"हूं."

तो इस तरह हमारे प्रधानमंत्री स्वयं वहां जाते हैं और वास्तविकता से साक्षात्कार करते हैं. अर्थात बातचीत से सचाई का पता लगाते हैं.

जैसे एक गावं में पानी की कमी है. प्रधानमंत्री स्वयं वहां जायेंगे और सचाई का पता लगायेंगे. वार्तालाप कुछ इस प्रकार का होगा.

"आप लोग पानी पीते हैं?"

"जी हां हुजूर, पीते हैं."

"इस गांव में कितने लोग पानी पीते हैं?"

"जी सब पीते हैं प्यास लगती है हुजूर तो पीना पड़ता है."

"कहां से मिलता है पानी, लाते कहां से हैं?"

"नदी से लाते हैं?"

"नल नहीं हैं?"

"जी नहीं हैं?"

"हूं. नदी यहां से कितनी दूर है?"

"थोड़ी दूर है."

"कैसे लाते हैं पानी?"

"मटकी में भरकर लाते हैं."

"मटकी घर से ले जाते हैं या नदी पर मिल जाती है."

"जी घर से लेकर जाना पड़ता है."

"आय सी. नदी पर मटकियों का कोई इंतजाम नहीं करता." तो आप जब मटकी लेकर नदी पर जाते हैं तब नदी में पानी मिल जाता है? या मुश्किल पड़ती है?"

"पहले मिल जाता था, आजकल मुश्किल पड़ती है?"

"क्या मुश्किल पड़ती है? एक नदी में कितनी मटकी पानी होता है?"

"काफी मटकी होता है?"

"आय वांट टू सी एक मटकी. एक्ज़ेक्ट क्या साइज होती है उसकी?" प्रधानमंत्री ने कहा.

फौरन एक गरीब के घर से एक मटकी लाकर प्रधानमंत्री को दिखाई गई.

"ये मिट्टी से बनती है?"

"जी."

"हम मिट्टी इंपोर्ट करते हैं या यहीं की है?"

"जी लोकल मिट्टी है."

"गुड."

"इस एक मटकी में कितने बकेट पानी आ जाता है? कितनी बाल्टी पानी आ जाता है?"

"कोई डेढ़ बाल्टी आता है."

"आप बड़ी मटकी लेकर क्यों नहीं जाते? ज्यादा पानी आ सकता है. या सभी मटकियां एक साइज की होती हैं?"

"जी बड़ी भी होती हैं मगर उठाने में भारी पड़ती हैं."

"एक बार में कितनी मटकी उठाते हैं?"

"जी एक उठाते हैं?"

"पानी से भरी हुई या खाली?"

"पानी से भरी हुई."

"आप खुद उठाते या दूसरे से उठवाते हैं?"

"जी खुद उठाते हैं."

"कितने आदमी लगे हैं इस काम पर?"

"जी सभी लगे रहते हैं."

"नदी से चौबीसों घंटे पानी मिलता है या उसका फिक्स टाइम है. इतनी बजे से इतनी बजे तक?"

"जब मिलता है तब चौबीसों घंटे मिलता है."

"आजकल कितने घंटे मिलता है?"

"आजकल नदी सूख गयी है."

"जब सूख जाती है तब कितने घंटे मिलता है?"

"तब नहीं मिलता."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

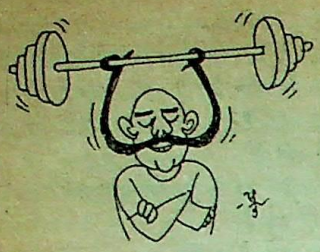

"एक-दो घंटे भी नहीं?"

"नहीं."

प्रधानमंत्री का चेहरा गंभीर हो जाता है. वे सोचने लगते हैं फिर कलेक्टर से पूछते हैं, "ये नदी सूख क्यों जाती है?"

"ये सर गर्मी में एटमोस्फेरिक टेंपरेचर बढ़ जाता है उससे सूख जाती है." आई.ए.एस. कलेक्टर जवाब देता है.

"कांट वी हेव सम शेड ऑर समथिंग जो नदी के ऊपर लगा दें जिससे छाया रहे. पानी पर धूप न पड़े ऐसा कुछ हो जाये."

"नो सर इट इज नाट पासीबल."

"क्यों? वी केन टाक टू वर्ल्ड बैंक अबाउट इट. सारी नदियों पर शेड लगा दिये जायें. खास कर उन नदियों पर जो गांवों के पास में बहती हैं. वी केन सर्च आउट दोज प्राब्लम एरिआज"

"सर उसमें प्रेक्टीकल डिफीकल्टीज हैं."

"क्या डिफीकल्टीज हैं?"

"क्या है सर एक तो नदी का पाट बहुत चौड़ा होता है उसको कवर करना बहुत मुश्किल है. दूसरे नदी के आसपास की सॉइल कंडीशन, रेती और कीचड़ के कारण ऐसी होती है कि उसमें पिलर्स खड़े करना बड़ी डिफीकल्ट है."

"आय सी."

"तब दूसरे अफसर ने जो इस अफसर के प्रधानमंत्री से ज्यादा बात कर लेने की वजह से परेशान हो गया था और स्पष्ट करते हुए कहा, "दूसरी प्राब्लम यह है सर कि अगर हम नदी को कवर कर देंगे तो बरसात में जो पानी नदी में गिरता है वह नहीं गिर सकेगा."

प्रधानमंत्री ने गर्दन हिलायी. वे प्राब्लम को समझ गये थे. सामने खड़े प्यासे गांव वाले उनमें क्या बातें हो रही हैं यह तो समझ नहीं पा रहे थे मगर उन्हें इतना समझ आ रहा था कि प्रधानमंत्री उनकी पानी की समस्या के हल को लेकर बहुत चिंतित हैं और वे अफसरों से इस बारे में बात कर रहे हैं.

प्रधानमंत्री ने फिर गांव के लोगों से पूछा, "जब नदी से पानी नहीं मिलता तो आप वहां मटकी लेकर क्यों जाते हैं?"

"हम कुएं पर जाते हैं साब, नदी पर नहीं जाते?"

"कुएं पर पानी मिल जाता है, नदी पर नहीं होता."

"जी."

"एक कुएं में कितना पानी मिल जाता है? पूरे गांव को मिल जाता है?"

"काफी मिल जाता है?" एक ने कहा.

"जी थोड़ा बहुत मिल जाता है?" दूसरे ने कहा.

"आप लोगों को कौन-सा पानी अच्छा लगता है. नदी का पानी अच्छा लगता है या कुएं का?" प्रधानमंत्री ने पूछा.

"जी जहां से मिल जाये वहीं का अच्छा लगता है."

"नदी के पानी में थोड़ा कचड़ा होता है साहब."

"फिर आप क्या करते हैं? नदी को छान लेते हैं?"

"पूरी नदी तो नहीं छानते साब, हम जो पानी लेते हैं वो छान लेते हैं."

"बाकी का छोड़ देते हैं."

"जी साहब."

"और नदी से क्या क्या मिलता है पानी के अलावा?" सब एक दूसरे को देखने लगे. किसी को जवाब नहीं सूझता.

"नदी से पानी मिलता है पर इसके अलावा और क्या-क्या मिलता है?" प्रधानमंत्री ने अपनी बात को दोहराते हुए पूछा, "पुल मिलता है नदी पर?"

"जी नहीं मिलता."

"बांध मिलता है नदी पर?"

"जी कोई बांध नहीं है."

"इट इज सरप्राईजिंग. आफ्टर फोर्टी ईयर्स आफ फ्रीडम नदी पर एक बांध नहीं है." प्रधानमंत्री ने अफसरों से कहा.

अफसरों ने शरम से सिर झुका लिया. फिर एक अफसर ने हिम्मत कर के कहा, "सर सिक्सथ प्लान में नदी पर बांध बनाने का प्रपोजल था."

"फिर क्या हुआ?"

"सर्वे करने का पता चला कि नदी में पानी नहीं है इसलिए बांध बनाना फिजूल होगा."

"हम इतना भी पानी अरेंज नहीं कर सकते कि एक बांध बनाया जा सके." प्रधानमंत्री ने कहा.

अफसरों ने शरम से फिर सिर झुका लिया. प्रधान मंत्री ने मुख्यमंत्री की ओर देखा जो साथ ही पीछे पीछे चल रहे थे. मुख्यमंत्री ने अपनी टोपी ठीक की, थोड़ा खांसे और फिर बोले, 'मैंने आपसे दिल्ली में भी निवेदन किया था श्रीमान कि नदी के पानी को लेकर अंतर्राज्यीय डिस्प्यूट है. 1967 में इस समस्या पर एक हाईपावर कमीशन बैठा था जिसकी सिफारिशें अमान्य कर दी गयीं. मैंने कांग्रेस अधिवेशन में भी यह सवाल उठाया था. श्रीमान..."

"कमीशन इस नदी पर बांध बनाने के लिए था ?" प्रधानमंत्री ने पूछा.

"जी नहीं वह दूसरी नदी पर था. " मुख्यमंत्री ने कहा.

"मैं आपसे इस नदी का पूछा रहा हूं?"

"प्लानिंग कमीशन कहता है जिन नदियों में पूरे वर्ष पानी नहीं रहता वहां हम बांध बनाने को प्रिआरिटी नहीं दे सकते क्योंकि उससे बिजली नहीं बनेगी."

प्रधानमंत्री कुछ सोचने लगे. मामला उलझा हुआ है. कंप्यूटर को फीड करना पड़ेगा. फिर वे लोगों की तरफ घूमे.

"कितने कुएं है आपके गांव में?"

"जी एक भी नहीं है."

"फिर आप मटकी लेकर कहां जाते है?"

"पासवाले गांव में?"

"वहां कुआं है?"

"जी है."

"पानी मिल जाता है?"

"मिल जाता है मगर भीड़ बहुत पड़ती है."

"वो गांव कितनी दूर है?"

"दो मील दूर है.'

"लौटने पर भी दो मील पड़ता है."

"जी उतना ही पड़ता है."

"जाने के लिए कोई साधन है, बस, टैक्सी?"

"जी नहीं कोई साधन नहीं, पैदल जाना पड़ता है."

"प्रधानमंत्री के चेहरे पर पीड़ा की रेखाएं उभर आयीं. उन्होंने अफसरों से पूछा कि क्या इन दोनों के बीच हम बस सर्विस नहीं प्रोवाइड कर सकते पानी लाने के लिए.

उस दिन एक विराट जनसभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा, "हमने देखा हम देखेंगे कि आपके गावों में पानी की समस्या है. लोगों को, खासकर महिलाओं को दूसरे गावों से पानी लाना पड़ता है. मटकी में भरकर. हमने देखा कि सिर पर उठाकर लाना पड़ता है. हम चाहते हैं कि हमारे देश में हर गांव के पास एक नदी हो. खासकर उन गांवों के पास जहां पानी नहीं है. हम देखेंगे कि आप लोगों को मटकी नहीं उठाना पड़े. या तो गांव नदी के पास ले जाये जायें या वे नदियां गांव के पास लायी जायें. जो भी जरूरी होगा हम करेंगे. सरकार करेगी. और भी समस्या जैसे बस चलाने की या बांध की सब हम पूरी करेंगे. वो बड़ी जल्दी करना है. हमें बताया गया यहां पर कि जो मटकियां यहां पर आप लोग उठाते हैं वे मिट्टी की बनी होती हैं. इस बारे में हमें कुछ करना है. देश में पानी ही पानी कर देना है. वो चाहे नदी का हो या बरसात का या समुद्र का. हम चाहते हैं और हम कोशिश करेंगे कि आपके यहां बरसात जल्दी आये या नदी में पानी जल्दी आये. या जैसा भी हो सके. हम बैंकों से बात करेंगे कि मटकियों के सवाल पर जितना कर सकते हैं करें. हमें देश को आगे ले जाना है."

इस बात पर एक युवक जो अगले चुनाव में कांग्रेस के टिकिट का उम्मीदवार था जोर से चिल्लाया, "राजीव गांधी की..."

इस पर सबने 'जय' कहा और प्रधानमंत्री का कारवां दूसरे गांव की समस्या समझने के लिए आगे बढ़ गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम जनमेजय

और अधिक लोकप्रिय हुआ है व्यंग्य

पाठक-वर्ग एवं लेखक वर्ग दोनों रूपों में व्यंग्य एक लोकप्रिय विधा बनता जा रहा है. अनेक कहानीकार इस क्षेत्र में प्रयोग कर रहे हैं. वस्तुतः भारत की वर्तमान परिस्थितियां इतनी विसंगतिपूर्ण हैं कि व्यंग्य किये बिना लगता है जैसे अभिव्यक्ति को पूरी जमीन नहीं मिली है. चारों ओर प्रत्येक क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन इतनी असंगत घटनाएं घटती हैं कि अभिधा में कही गयी बात उस पर अनायास प्रहार कर डालती है. नेता, मंत्रियों और अफसरों के भ्रष्टाचार पर किये गये व्यंग्य इतने जग जाहिर हो गये हैं कि अभिधात्मक अर्थ देते हैं. व्यंग्य की लोकप्रियता एवं निरंतर बढ़ती संभावनाओं के कारण युवा एवं कुछ प्रौढ़ रचनाकारों का एक बड़ा वर्ग व्यंग्य लेखन की ओर आकर्षित हो रहा है. अनेक युवा रचनाकार हास्य-व्यंग्य की दीवार पकड़कर इस मैदान में उतर आये हैं. सन् 87 में नये व्यंग्य रचनाकारों के अधिक संकलन नहीं आये हैं परंतु, अनेक संपादित संकलनों एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक नये नाम हास्य-व्यंग्य के साथ जुड़े हैं. इस वर्ष अमृतराय, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, अमृतलाल नागर, हरिशंकर परसाई, रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली, के.पी. सक्सेना, शंकर पुणताबेकर, प्रेम जनमेजय, लतीफ घोंघी, विनोदशंकर शुक्ल, लक्ष्मीकांत वैष्णव, गोपाल चतुर्वेदी, सूर्यबाला, यज्ञ शर्मा, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, कुंदनसिंह परिहार, प्रदीप पंत, शेरजंग गर्ग, बालेंदुशेखर तिवारी, हरीश नवल आदि जैसे व्यंग्य क्षेत्र में परिचित व्यंग्यकारों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से अपनी व्यंग्य क्षमता का परिचय तो दिया ही, इनके अतिरिक्त विश्वमोहन माथुर, शिवानंद कामड़े, अकिंचन, ज्ञान प्रकाश विवेक, अशोक भाटिया, डा. पुष्प, चंद्रभानु आर्य, मधुसूदन पाटिल, हरिश्चंद्र वर्मा, रमाशंकर श्रीवास्तव, रमेश गुप्त आदि अनेक नामों ने व्यंग्य क्षेत्र में स्वयं को परिचित कराया.

व्यंग्यकारों के नामों की इतनी बड़ी सूची आतंकित करने के लिए नहीं दी जा रही है और न ही इतने नामों की राशि अच्छे व्यंग्य की गारंटी है. यह तो समय और पाठक तय करेंगे अच्छा व्यंग्य और व्यंग्यकार कौन है. समय स्वयं तय करके एक द्वयी या त्रयी का निर्माण करेगा. परंतु हास्य व्यंग्य लेखन क्षेत्र में इतने नामों से साक्षात्कार होना इस बात का सूचक तो है कि व्यंग्य एक लोकप्रिय और आकर्षक विधा बनता जा रहा है. इसका कारण है कि हास्य ने व्यंग्य के साथ जुड़कर अनेक रचनाकारों के लिए व्यंग्य का मार्ग आसान कर दिया है. घिसे-पिटे विषयों पर शब्दों की कलाबाजी खाकर भौंड़ा हास्य उत्पन्न करनेवाले अनेक महारथी मंच पर जोकरनुमा हास्य पैदा करके, व्यंग्यकार का बिल्ला लगाये गर्वोन्नत मस्तक से इठलाते-घूमते हैं.

व्यंग्य को गंभीर कर्म मानकर सृजन करनेवाले युवा व्यंग्यकारों की खोज में भारतीय ज्ञानपीठ ने आलोचना वर्ष में एक सार्थक कदम उठाया. कविता कहानी के क्षेत्र में युवा प्रतिभाओं की खोज के पश्चात् 1987 में व्यंग्य के क्षेत्र में युवा व्यंग्यकार की प्रतिभा खोजने के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ने इस बार व्यंग्य प्रतियोगिता का आयोजन किया. इस प्रतियोगिता में वही व्यंग्यकार भाग ले सकता था जिसका अब तक कोई व्यंग्य संकलन प्रकाशित न हुआ हो. नये व्यंग्यकारों द्वारा प्रतियोगिता के लिए प्रेषित प्रविष्टियों की उत्साहवर्धक संख्या व्यंग्य लेखन के प्रति उनके आकर्षण को स्पष्ट करती है. प्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी और श्रीलाल शुक्ल तथा अनुभवी साहित्यकार बालस्वरूप राही एवं बिशन टंडन की निर्णायकों के रूप में उपस्थिति इस प्रतियोगिता की गरिमा एवं गंभीरता को रेखांकित करती है. गंभीर व्यंग्य लेखन की दिशा में यह एक सही और अनुकरणीय कदम है.

हरीश नवल के व्यंग्य कई बर्षों से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं. उनका नाम व्यंग्य के पाठकों के लिए नया नहीं है. परंतु भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित व्यंग्य प्रतियोगिता में पुरस्कृत उनकी व्यंग्य कृति **'बागपत के खरबूजे'** ने उन्हें ताजा रूप में ही प्रस्तुत किया है. पुस्तक रूप में किसी रचनाकार की रचनाओं को समग्र रूप में पढ़ना एक सुखद एवं प्रभावी अनुभव होता है. ऐसा ही ताजा अनुभव **'बागपत के खरबूजे'** को पढ़कर होता है. हरीश नवल की व्यंग्य क्षमता एवं विषयों की सही पकड़ पाठक को विस्मित कर देती है. उनका विषय क्षेत्र उनके आसपास का है, उसके लिए उन्हें कल्पना के काल्पनिक घोड़े दौड़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ी है. अगर वह **'बागपत के खरबूजे'** नामक रचना में या 'भाजपा, जपा और जजपा, एक तुलनात्मक अध्ययन में' कुंभन दास और चतुर्भुजदास को लाते भी हैं तो भारतीय राजनीति की सामयिक विसंगतियों से पाठकों का साक्षात्कार कराने के माध्यम रूप में ही.

संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना **'विक्रमार्क बुढ़िया और सराय रोहिल्ला'** में है. इसमें हरीश नवल ने भारतीय मध्यमवर्गीय समाज की पारिवारिक विसंगतियों को उद्घाटित किया है. और उन पर सार्थक प्रहार भी किया है. ऐसे विषयों पर अन्य व्यंग्यकारों का ध्यान कम जाता है. अधिकांश नये व्यंग्यकार भारतीय राजनीति के जाने-पहचाने चेहरों पर व्यंग्य करके रचना-कर्म की इति मान लेते हैं. हरीश नवल ने इस रचना में विक्रमार्क शैली में नया मोड़ देकर विषय की नवीनता प्रस्तुत की है. प्रतियोगिता के निर्णायकों के स्वर में हम भी "...श्री हरीश नवल से हास्य व्यंग्य की विधा में महत्वपूर्ण योगदान की अपेक्षा कर सकते हैं."

सन् 1987 में रवींद्रनाथ त्यागी की प्रतिनिधि रचनाओं का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुआ है. उनकी हास्य-व्यंग्य की प्रतिनिधि रचनाएं तथा हास्य व्यंग्य के संबंध में साक्षात्कार एवं निबंध रूप में उनके विचार भी इसमें संकलित हैं. डॉ. कमलकिशोर गोयनका द्वारा किया गया यह एक सही और प्रशंसनीय कार्य है. रवींद्रनाथ त्यागी की रचनाओं को एक साथ पढ़ना सुखद अनुभव है. इस पुस्तक के माध्यम से उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है.

रवींद्रनाथ त्यागी भद्र हास्य के सुघड़ रचनाकार हैं. उनकी रचनाओं में हास्य मुक्त एवं निश्छल भाव से अभिव्यक्त होता है. रवींद्रनाथ त्यागी का विस्तृत अध्ययन क्षेत्र अपने साथ पाठकों को बड़े मनोरंजक ढंग से बहा ले जाने की क्षमता रखता है. हजारी प्रसाद द्विवेदी की भांति त्यागीजी भी अपनी रचनाओं में अतीत और वर्तमान में डूबते उतरते पाठकों के समक्ष मजेदार असंगतियां उपस्थित करते हैं. रवींद्रनाथ त्यागी की हास्य व्यंग्यात्मक प्रतिनिधि रचनाओं को पढ़कर पाठक अनेक सुखद और मजेदार स्थितियों से गुजरने का समग्र सुख उठा सकता है.

मेरे उपर्युक्त कथन का यह आशय नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि रवींद्रनाथ त्यागी मात्र भद्र हास्य के रचनाकार हैं, उनमें व्यंग्य की दृष्टि भी विद्यमान है. विसंगतियों को परखने, उसे चित्रित करने की क्षमता उनमें है परंतु प्रहार करते समय वह दयालु हो जाते हैं. उनके प्रहार में भी लालित्य है. इसका कारण उन्होंने कमलकिशोर गोयनका को दिये गये एक साक्षात्कार में स्पष्ट कर दिया है. रवींद्रनाथ त्यागी स्वीकार करते हैं कि उनकी प्रवृत्ति साहित्य और लालित्य की ओर है तथा उनका उद्देश्य मनोरंजन तक सीमित है. इसी साक्षात्कार में उन्होंने अफसोस जाहिर किया है कि अब परसाई, शरद जोशी या त्यागी जैसा कोई हास्य व्यंग्य लेखक सामने नहीं आ रहा है. ऐसी शिकायतें पुरानी पीढ़ी को अकसर रहती हैं. उन्हें लगता है कि उनके जमाने का मैट्रिक आज के एम.ए. से अधिक ज्ञानी था. खैर यह तो समय ही तय करेगा. इसमें निराशा से दुबले होने की आवश्यकता नहीं है. साहित्य का मार्ग बहुत लंबा मार्ग है.

डॉ. कमल किशोर गोयनका का यह प्रयास प्रशंसनीय है, ऐसे प्रयास होने चाहिए इससे किसी रचनाकार को समग्र पढ़ने का, उसे जानने का अवसर मिलता है. परंतु इस प्रकार की प्रतिनिधि रचनाएं या ग्रंथावली केवल पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा सकती हैं. ऐसी पुस्तकों का मूल्य इन्हें आम पाठक तक पहुंचने नहीं देता.

शरद जोशी इस समय निर्विवाद रूप से सर्वाधिक पढ़े और सुने जाने वाले रचनाकार हैं. उनकी रचनाएं जहां पाठकों को सामाजिक विसंगतियों से अवगत कराती हैं. वहां उन्हें आनंदित भी करती हैं. सामयिक विषयों पर, विशेषकर राजनीति पर उनकी गहरी पैठ है. राजनीतिक विसंगतियों के चित्रण एवं उन पर प्रहार द्वारा वह पाठक को शिक्षित भी करते हैं. वह किसी पार्टी या व्यक्ति से बंधे हुए दृष्टिगत नहीं होते हैं और न ही आतंकित दिखाई देते हैं, इसी कारण उनकी कलम वाद या दल का बंधन नहीं मानती है. वह अपने राजनीतिक व्यंग्यों पर कोई सेंसर नहीं लगाते हैं. **'नवभारत टाइम्स'** में प्रकाशित होने वाला स्तंभ इस बात का साक्षी है कि शरद जोशी ने वर्ष में घटनेवाली शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, क्रीड़ा संबंधी और फिल्मी विसंगतियों को गहरे पकड़ा है.

आलोच्य वर्ष में उनका व्यंग्य संकलन **'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे'** नाम से प्रकाशित हुआ है. यह पुस्तक नयी हो सकती है परंतु इसकी अधिकांश रचनाएं पाठकों ने शरद जोशी के अन्य व्यंग्य संकलनों में पढ़ी होंगी. इस संकलन में शरद जोशी की **'वर्जीनिया वुल्फ से सब डरते हैं'** तथा **'मुद्रिका रहस्य'** जैसी सदाबहार रचनाएं हैं जो दोबारा या तिबारा पढ़ने पर भी ताजी लगती हैं.

श्रीलाल शुक्ल ने **'रागदरबारी'** के माध्यम से अपनी व्यंग्य प्रतिभा से पाठकों को इतना आतंकित कर दिया है कि उनके व्यंग्य संकलन **'अंगद का पांव'**, **'यहां से वहां'** का महत्वपू उल्लेख नहीं हो पाया जबकि इन संकलनों में श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य प्रतिभा में कहीं कोई कभी दृष्टिगत नहीं होती है. **'उमरावनगर में कुछ दिन'** श्रीलाल शुक्ल की नयी व्यंग्य पुस्तक है. यह व्यंग्य पुस्तक पाठकों को **'रागदरबारी'** के आतंक से मुक्त कराने की क्षमता रखती है और श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य क्षेत्र में एक नये आयाम को प्रस्तुत करती है.

'आह .ग्राम्य जीवन भी क्या है!' की सौंदर्यपूर्ण कलात्मक उक्ति की 'हाय ग्राम्य जीवन!' के यथार्थवादी धरातल की विसंगतिपूर्ण परिस्थितियों से श्रीलाल शुक्ल पुनः साक्षात्कार कराते हैं. ग्रामीण विकास के छद्म में होने वाले नेताई-नौकरशाही के

> सन् १९८७ में व्यंग्य रचनाओं और रचनाकारों ने अपने पाठकों को निराश नहीं किया है. व्यंग्य और अधिक लोकप्रिय हुआ है. परंतु व्यंग्य पर गंभीर चर्चाओं का लगभग अभाव ही रहा है.

व्यक्तिगत विकास की अद्भुत लीला का चित्रण **'उमराव नगर में कुछ दिन'** की विशेषता है. गांव का शोषण कर शहरी तोंदें फूल रही हैं. अन्याय, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता और शोषण के जहर में डूबा हुआ बाण संपूर्ण ग्रामीण वातावरण की निर्मम हत्या कर रहा है. **'कुंती देवी का झोला'** इस परिवेश के दूसरे पक्ष का करुण चित्र सामने लाता है. एक दूसरे के पर्यायवाची-डाकू और पुलिस की मेहरबानियों को गांव पर लदता हुआ इस रचना में देखा जाता है. एक क्रोध जाग्रत होता है मुट्ठियां अंगारे से सब कुछ गलत को नष्ट कर देना चाहती है. परंतु विवशताहै और इसी विवशता से फूटता है करुण व्यंग्य.

श्रीलाल शुक्ल की भाषा व्यंग्य की सही भाषा है, उसमें विसंगतियों को पकड़ने की अद्भुत क्षमता है. उन्होंने भाषा को व्यंग्य का संस्कार दिया है. उनकी व्यंग्यात्मक प्रतिभा का एक और प्रभावी परिचय **'उमराव नगर में कुछ दिन'** में मिलता है, अपनी सीमाओं में यदि कहूं कि यह वर्ष की उत्कृष्ट क्लिक है तो अत्युक्ति न होगी.

इसी पीढ़ी के अग्रज व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई **'गंगा'** में प्रकाशित अपने नियमित स्तंभ के माध्यम से अपनी रचना शक्ति से पाठकों को निरंतर प्रभावित करते रहते हैं. उनकी कलम से निकलने वाला शब्द व्यंग्य को पूर्णता में ध्वनित करने की क्षमता रखता है. **'गंगा'** में अपने स्तंभ के माध्यम से चाहे वह अतीत में कितना उतर जाते हैं परंतु, अपने वर्तमान की विसंगतियों, समस्याओं पर दिशायुक्त सार्थक प्रहार करने से नहीं चूकते हैं. अतीत को वर्तमान से जोड़ने की प्रवीणता को सीखने के लिए नये रचनाकारों को यह स्तंभ अवश्य पढ़ना चाहिए.

'अफसर की मौत' के माध्यम से हिंदी हास्य व्यंग्य क्षेत्र में एक और सशक्त रचनाकार पाठकों के समक्ष आता है. गोपाल चतुर्वेदी का नाम नया नहीं है, पिछले कुछ बर्षों से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके हास्य-व्यंग्य प्रकाशित होते रहे हैं परंतु **'अफसर की मौत'** के रूप में उनका संभवतः पहला व्यंग्य संकलन 1987 में प्रकाशित हुआ है. गोपाल चतुर्वेदी हास्य-व्यंग्यात्मक परिस्थितियों को कथा के माध्यम से व्यक्त करने में अधिक रुचि लेते हैं. उनकी रचनाओं का कथा प्रवाह, उनकी रचनाओं को पठनीय बनाता है. इन रचनाओं का अनुभव जगत रचनाकार के आसपास का ही है.

रवींद्रनाथ त्यागी ने नौकरशाही और लालफीताशाही की अनेक विसंगतियों को सशक्त रूप में प्रकट किया है. गोपाल चतुर्वेदी की कलम में भी वही ताकत है. **'अफसर की मौत'**, **'कागज और चूहा'**, **'सरकार में हिंदी भाषा अधिनियम 1963'** आदि ऐसी ही रचनाएं हैं. इसके अतिरिक्त समाज राजनीति, शिक्षा, खेल आदि क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों पर भी उन्होंने प्रहार किये हैं. उनकी प्रहार शक्ति प्रबल है. "प्रजातंत्र और तानाशाही का यही मूल अंतर है. एक में विरोध और विद्रोह के दौरान चप्पल चलती है, दूसरे में गोली जहां कलम के चलने की आजादी है, वहां चप्पल की नौबत कम ही आती है, लोग एक दूसरे से नाराज हों तो एक दूसरे के खिलाफ संपादक को पत्र लिखते हैं. संसद या विधान सभा में सवाल उठाते हैं. बहुत तैश आया या पत्र देर से छपा तो चप्पल दिखायी. जहां न चप्पल चलती है न कलम, वहां सिर्फ बंदूक चलती है.

इन दिनों हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में जितनी तीव्रता और भाषा के साथ लतीफ घोंघी लिख रहे हैं, देखकर आश्चर्य होता है. इस वर्ष भी उनके नाम से तीन व्यंग्य पुस्तकें आयी हैं **'सड़े हुए बांत'** तथा **'क्षमा करना हम बुरी हैं'** में लतीफ घोंघी ने विभिन्न विषयों में व्याप्त विसंगतियों को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया है. लतीफ घोंघी अधिकांशतः साधारण-सी लगनेवाली घटनाओं को उठाते हैं परंतु उसमें व्याप्त विसंगतियों का चित्रण इतना विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं कि उनकी व्यंग्य क्षमता से प्रभावित हुए बिना रहना कठिन है, कुछ रचनाएं कमजोर भी हैं शायद अधिक से अधिक लिखने के मोह के कारण.

लतीफ घोंघी के प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है **'जुगलबंदी'** का प्रकाशन. यह व्यंग्य के क्षेत्र में नया प्रयोग है. लतीफ घोंघी ने यह प्रयोग ईश्वर शर्मा के साथ किया है. लतीफ घोंघी का व्यंग्य के क्षेत्र में नाम परिचित है जबकि ईश्वर शर्मा नये व्यंग्यकार हैं. एक शब्द को लेकर उस शब्द से जुड़ी सामाजिक राजनीतिक आर्थिक धार्मिक और शैक्षिक विसंगतियों के चित्रण को लक्ष्य बनाया है.

रमेश गुप्त एक सुपरिचित कहानीकार हैं परंतु सन् 81 में उन्होंने व्यंग्य के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है. सन् 86 में सुरेश सेठ के बाद 87 में एक और कहानीकार रमेश गुप्त का व्यंग्य संकलन **'गिरगिट'** पढ़ना एक सुखद अनुभूति है. इस संकलन को पढ़कर लगता है कि रमेश गुप्त के पास व्यंग्य की भाषा है और वह उसका सही प्रयोग भी जानते हैं. पहली रचना **'गिरगिट'** राजनीति और नौकरशाही में व्याप्त विसंगतियों को चित्रित करती है. चरित्र चित्रण के लिए प्रयुक्त उनकी व्यंग्य भाषा देखिए—**"जाकी कृपा पंगुगिरि लंघे जैसे सर्वशक्तिमान है हमारे साहब."**

रमेश गुप्त कहानीकार के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये हैं. उनकी व्यंग्य रचनाएं कथा और संवाद के सहारे आगे बढ़ती हैं. उनमें व्यंग्य कथा के माध्यम से उभरता है. इनकी रचनाओं में हास्य को बलात उभारने का प्रयत्न नहीं किया गया है. रमेश गुप्त के व्यंग्य प्रहार का प्रिय क्षेत्र नौकरशाही है, शायद यह उनका अनुभव क्षेत्र भी है. **'गिरगिट'**, **'एक और स्वतंत्रता संग्राम'**, **'समाजवाद और आयोगवाद'** अच्छी रचनाएं हैं.

रामनारायण उपाध्याय के संग्रह **'मुस्कराती फाइलों'** में उनकी चिर परिचित मुद्रा दिखाई देती है. विषयों और शिल्प में कोई नवीनता नहीं है. लगता है जैसे रामनारायण उपाध्याय स्वयं को दोहराने लगे हैं. जिन्होंने उन्हें पहले नहीं पढ़ा है उनके लिए यह संकलन उनकी व्यंग्य क्षमता का अच्छा परिचय देगा. रामनारायण उपाध्याय में मुक्त रूप से हास्य का सहारा लेकर व्यंग्य करने की क्षमता इस संकलन में भी दिखाई देती है.

रामनारायण उपाध्याय को पुनरावृत्ति से बचना होगा. एक ही विचार को, उपमा को वह अलग रचनाओं में दोहराते हैं. **'पुराने युग की कैकयी'**, **'नये युग के दशरथ'** तथा **'मंत्री पत्नी की मांगें'** का कथ्य और व्यंग्य क्षेत्र एक ही है. दोनों में व्यंग्य की उपमाओं और लगभग सभी बातों को दोहराया गया है. दोनों में कैकेयी और दशरथ के दृष्टांत को एक साथ दोहराया गया है. ऐसा अन्य रचनाओं में भी है.

आलोच्य वर्ष में व्यंग्य संकलन काफी संख्या में प्रकाशित हुए जो व्यंग्य की लोकप्रियता को रेखांकित करते हैं. **'व्यंग्य ही व्यंग्य'** के माध्यम से बालेंदुशेखर तिवारी का प्रयास उल्लेखनीय है. संभवतः उन्होंने पहली बार व्यंग्य लघु कथाओं को एक स्थान पर संकलित करने का सार्थक श्रम किया है. **'व्यंग्य ही व्यंग्य'** में मात्र लघुकथाएं ही संकलित नहीं हैं, इस विषय पर पांच लेख भी संकलित हैं जिनमें विभिन्न आयामों को छूने का प्रयत्न किया गया है. अनेक प्रतिष्ठित एवं युवा लघु व्यंग्य कथाकारों का यह संग्रह इतिहास निर्माण में सहयोग देगा. यह रचनाएं संकलित होने से पूर्व विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित एवं प्रशंसित हो चुकी हैं.

भगवानदास मोरवाल द्वारा संपादित **हिंदी की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं'** में प्रदीप पंत, प्रेम

> घिसे-पिटे विषयों पर शब्दों की कलाबाजी खाकर भौंडा, हास्य उत्पन्न करनेवाले अनेक महारथी मंच पर जोकरनुमा हास्य पैदा करके, व्यंग्यकार का बिल्ला लगाये गर्वोन्नत मस्तक से इठलाते-घूमते हैं.

जनमेजय, रामनारायण उपाध्याय, फिक्र तौंसवी, रवींद्रनाथ त्यागी, लतीफ घोंघी, बरसानेवाले चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, गोपाल चतुर्वेदी आदि की अच्छी व्यंग्य रचनाएं संकलित हैं. परंतु इस संकलन में संपादक की दृष्टि नहीं दिखाई देती है और न ही इन रचनाओं के संकलन के उद्देश्य की चर्चा है, इस दृष्टि से मोरवाल को संपादक न कहकर संकलनकर्त्ता कहना अधिक उचित होगा.

इसी कड़ी में हरिश्चंद्र वर्मा द्वारा संपादित व्यंग्य के प्रसंग की चर्चा की जा सकती है. उन्होंने हरियाणा क्षेत्र से संबंधित व्यंग्यकारों की रचनाओं का संकलन किया है. (धन्य है भारतभूमि जहां व्यंग्य भी हरियाणवी या लखनवी होने लगेगा.) इस संकलन की उपलब्धि अशोक भाटिया हैं, अशोक भाटिया में व्यंग्य करने की क्षमता, विषयों के सही चुनाव की दृष्टि और प्रहारक शक्ति की झलक मिलती है. आशा है शीघ्र ही उनकी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाओं से परिचय होगा. इस संकलन में चंद्रभानु आर्य, जयनाथ नलिन, मधुसूदन पाटिल, देवेंद्र कुमार, हरिश्चंद्र वर्मा की रचनाएं भी संकलित हैं.

इस वर्ष डॉ. शंकर पुणतांबेकर की षष्टिपूर्ति के संदर्भ में **'एक व्यंग्य यात्रा'** का प्रकाशन भी उल्लेखनीय है. इस पुस्तक के संपादक प्रा.रा.बा. पाटिल हैं. इस आयोजन को सफल बनाने में डॉ. तेजपाल चौधरी का श्रम विशेष सराहनीय है. डॉ. शंकर पुणतांबेकर हिंदी व्यंग्य के लिए अपरिचित नहीं हैं. उनकी एक दर्जन से अधिक व्यंग्य पुस्तकें हिंदी व्यंग्य में अपना महत्व रखती हैं. उनके व्यंग्य की प्रहारक शक्ति गुदगुदाती नहीं है, विचलित करती है. **'एक व्यंग्य यात्रा'** के माध्यम से व्यंग्य के विषय पर एक सार्थक बहस भी की गयी है. डॉ. धनंजय वर्मा, प्रेम जनमेजय, बालेंदुशेखर तिवारी के लेख व्यंग्य के क्षेत्र में नया सोचने को बाध्य करते हैं. इस पुस्तक में मात्र डॉ. शंकर पुणतांबेकर की अर्चना पूजा या अभिनंदन नहीं है, उन्हें समझने के लिए विचारात्मक लेख हैं.

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी के संपादकत्व में प्रकाशित **'भारतीय हास्य व्यंग्य कोश'** एक सराहनीय प्रयास इस अर्थ में हो सकता है कि इस दिशा में बहुत ही कम प्रयास किया गया है. परंतु यह ग्रंथ कोश की गरिमा और गंभीरता को लिए हुए नहीं है. लगता है डॉ. चतुर्वेदी का श्रम विशेष फल उत्पन्न नहीं कर पाया है. इस प्रकार के प्रयास होने चाहिए परंतु गरिमा युक्त और गंभीर चेतना से प्रेरित.

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य अनेक व्यंग्य पुस्तकें सन 87 में प्रकाशित हुई हैं जिनके विषय में व्यापक चर्चा न करके मैं नामोल्लेख करना चाहूंगा. उनके विषय में मैं व्यापक चर्चा नहीं कर रहा हूं यह पुस्तक की सीमा नहीं है लेख और मेरी सीमा है यह पुस्तकें भी व्यंग्य क्षेत्र में उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी की उपरलिखित व्यंग्य पुस्तकें. **'मजाकी मजलब'** (अमृतलाल नागर), **'सिलसिले'** (चिरंजीत) **'मैं उल्लू हूं'** (दीनदयाल शर्मा), **'एक और पंचतंत्र'** (रमेश बक्षी), **'चहचहे'** (प्रेमशंकर श्रीवास्तव), **'सावधान ये मेहमान हैं'** (रमाशंकर श्रीवास्तव) **'1986 की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं'** (गिरिराज शरण अग्रवाल), **'बाप बड़ा न भैया'**, **'मुर्दों का प्रीतिभोज'** (काशीपुरी कुंदन) आदि.

सन् 1987 में पत्रिकाओं के माध्यम से भी अनेक व्यंग्य प्रकाशित हुए **'सारिका'**, **'धर्मयुग'** आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं ने व्यंग्य विशेषांकों का प्रकाशन किया जिसमें चिर-परिचित और नये चेहरे दिखाई दिये.

सन् 1987 में व्यंग्य रचनाओं और रचनाओं ने अपने पाठकों को निराश नहीं किया है. व्यंग्य और अधिक लोकप्रिय हुआ है. परंतु व्यंग्य पर गंभीर चर्चाओं का लगभग अभाव ही रहा है. आवश्यकता है व्यंग्य के आलोचनात्मक पक्ष पर गंभीरता से सोचने की. आशा है 1988 में **'व्यंग्यशती'** पत्रिका जैसे प्रयास और होंगे. तथा व्यंग्य के क्षेत्र में और अधिक गंभीर कर्म होंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल चतुर्वेदी

मच्छर और सुलतान

अपने किलेनुमा घर में जनता से सुरक्षित प्रजातंत्र के सुलतान परेशान थे. जैसे ही वह आंख मूंदकर आयातित गद्दे, चादर और तकिये के बिस्तर पर विश्राम के लिए लेटते कि भिनभिनाहट शुरू हो जाती जैसे उनकी आरामदेह सेज भीष्म की शर-शैया बन चुकी हो. आज तो बदतमीजी की हद हो गयी. वह शौर्य और पराक्रम से "भिनभिन" के स्रोत की ओर हाथ की तलवार भांज रहे थे कि यही स्वर उनके दांये कान के अंदर से गूंज उठा. अपनी पारिवारिक सुलतानी परंपरा के अनुरूप उनके हृदय में शरणागत के प्रति दया और करूणा की भावना थी. पर गर्वीले दुश्मन की हेकड़ी को उनके किसी भी प्रसिद्ध पुरखे ने नहीं सहा था. वह भला कैसे सहते! उन्होंने पूर्ण ताकत से कान पर हाथ मारा. आवाज बंद हो गयी. वह अपनी इस शानदार विजय का सोचकर खुश भी न हो पाये थे कि उन्हें उंगली पर लगा रत्ती भर खून का धब्बा दिखा. वह घबरा गये. कहीं इस गंदे और भिन-भिन खून से उन्हें छूत की बीमारी न लग जाये. रिआया का क्या होगा? विशाल सल्तनत की जिम्मेदारी कौन संभालेगा! अभी तो उनके लख्ते-जिगर भी सिर्फ कंचे खेलते थे. उनकी व्यक्तिगत पीड़ा सार्वजनिक चिंता में बदल गयी. उन्होंने घंटी बजाकर अपने सलाहकार को बुलाया.

"हमने मुल्क के इतने मोहल्ले, बस्ती, नगर और गटर इनको सौंप रखे हैं. फिर भी, यह नहीं मानते. आखिर यह चाहते क्या हैं", उन्होंने झुंझलाकर प्रश्न किया.

"सर, स्थिति तो सुधर रही है. ऐसे आतंक का कोई दर्शन तो है नहीं. जाने आतंकवादी कब क्या कर बैठें." सलाहकार ने अदब से उत्तर दिया.

सुलतान बिफर पड़े," आप निरे मूर्ख हैं! आप इतना भी नहीं जानते कि आतंक की समस्या तो हमारे समझौते के बाद हल हो गयी. अब तो 'प्रोबलम' मच्छरों का है. क्या इनसे कोई 'एकार्ड' संभव है?"

सलाहकार सिर खुजाने लगा. उसने देखा था कि महत्वपूर्ण बैठकों में अहम मसलों पर सुलतान की हां में हां मिलाने के पूर्व अधिकतर भाग लेनेवाले या तो ऊंघते थे अथवा अपनी गंजी चांदों को सहलाते थे. फिर बोला "सर! इस मौसम में मच्छर कुछ ज्यादा ही हो जाते हैं. मैं अभी स्वास्थ्य मंत्रालय से मच्छर-नाशक छिड़काव का प्रबंध करवाता हूं."

"यह सब तो आप पहले भी कर चुके हैं. पर 'रिजल्ट' क्या हुआ! यह सुरक्षा व्यवस्था कैसी है कि मच्छर आराम से नारे लगाते हमारे घर में टहलते-फिरते हैं. हम अभी यूरोप गये थे. वहां तो बिल्कुल मच्छर नहीं हैं. हमें यकीन होता जा रहा है कि आप लोग कतई निकम्मे हैं. मच्छरों तक पर नियंत्रण नहीं रख सके." सुलतान का पारा चढ़ता जा रहा था. उन्हें यकायक अपनी उंगली पर लगा खून का धब्बा फिर दिख गया. वह अपना आपा खो बैठे, "आप अपनी मनहूस शक्ल मुझे मत दिखायें", कहकर उन्होंने सलाहकार को रुखसत किया और निजी डाक्टर को बुलवा भेजा.

"सर! मामला गंभीर भी हो सकता है. जिन्हें आदत है, वह बर्दाश्त कर सकते हैं. कहां आप और कहां मच्छर!" डाक्टर ने उन्हें गोली दी और जांच के लिए खून लिया.

"डाक्टर! हमारे वैज्ञानिकों को क्या हो गया है! क्या मच्छरों की भिन-भिन भी नहीं रोकी जा सकती! यदि मच्छर सिर्फ काटें और भिनभिनाएं नहीं तो शायद तकलीफ कम हो," सुलतान ने देश की ज्वलंत समस्या पर अपने बहुमूल्य विचार प्रगट किये.

डाक्टर ने उंगली के बाद पोंहचा पकड़ा, "सर, हमारी प्रयोगशालाओं में शोध के लिए पैसे का अभाव है. वर्ना मच्छर क्या, हम गधों की रेंक, कुत्तों की भौंक, शेरों की दहाड़, गायों

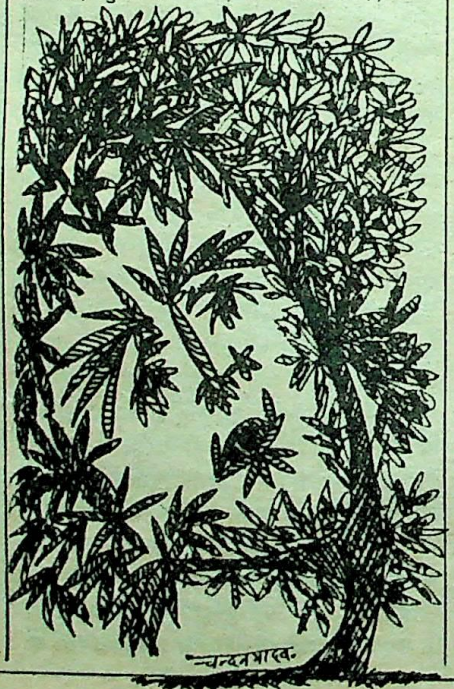

का रंभाना, हाथियों की हुंकार और चिड़ियों का चहकना, सब बंद करवा सकते हैं. जरूरत बस धन, उपकरण और विदेश में प्रशिक्षण की है."

सुलतान में तुरंत निर्णय लेने की विलक्षण प्रतिभा थी. डाक्टर के जाते ही, उन्होंने दूसरे सलाहकार और वित्त मंत्री को तलब किया और जन-उपयोगी शोधों, खासकर मच्छरों की बोलती बंद करने के लिए, अधिक वित्तीय राशि के आबंटन का आदेश दे दिया. "यदि जरूरी हो तो नयी प्रयोगशालाएं भी बनायी जायें. हमारी इच्छा है कि हर क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र के परिसर में एक मच्छर-मार रिसर्च सेंटर भी बने. इससे संस्कृति और सांइस का सुंदर समन्वय होगा. इक्कीसवीं सदी में जाने के लिए विज्ञान की तकनीकी महारत के साथ-साथ नट-नर्तकियों के करतब और जादू-टोने आदि भी आवश्यक हैं," सुलतान ने प्रगति का सिद्धांत प्रतिपादित किया.

सलाहकार गदगद हो उठा, "सर, आपका यह लोकोपयोगी संदेश तो देश के कोने-कोने में पहुंचना चाहिए. यदि आप समय दे सकें तो अभी टी.वी. के कू को बुलवा दूं.", सलाहकार गिड़गिड़ाया. सुलतान ने अपनी जन-छवि वाली भोली और मोहक मुस्कराहट दराज से निकालकर चेहरे पर लगाई और शाही अंदाज में बुदबुदाया, "हां."

सलाहकार नंबर एक की सुलतानी-कृपा के शिखर से नीचे फिसलने की खबरें सत्ता के गलियारों में कानाफूंसी से गूंजने लगी थीं. वह सुलतान की नजर में उठने की जुगत भिड़ा रहा था. उसने निश्चय किया कि वह सुलतान से वेश बदलकर मिलेगा. क्या पता सुलतान को उसकी नयी 'इमेज' भा जाये. उसने शीशे के सामने खड़े होकर अपने होंठों के ऊपर मक्खीनुमा मूंछ फिट की. गंजी खोपड़ी पर आयतित लंबे बालों का फ्रेंच विग लगाया और चल पड़ा. सुलतान संसद के जंगली जीवन का आनंद लेने गये थे. सलाहकार जानता था कि दृढ़ निश्चय, लगन और सही मौके की पहचान की शासकीय शतरंज की सफलता की कुंजी है. वह सुलतान की प्रतीक्षा में लगा रहा. सुलतान लौटे. निजी सचिव ने उन्हें प्रतीक्षारत सलाहकार की व्यथा-गाथा सुनायी. सुलतान इस समय अपनी जन-छवि वाली लोकप्रिय मुस्कान को उतारकर जेब में रख चुके थे. उन्होंने सलाहकार से मिलने की मंजूरी नहीं दी. सलाहकार निजी सचिव के गुट का था. निजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचिव मैडम सुलतान का खास था. सचिव ने मैडम से सलाहकार की सिफारिश की. मैडम ने सुलतान को सलाहकारों से इंसानियत और शराफत से पेश आने की सलाह दी, "नहीं तो वह वफादार कैसे होंगे!" दूसरे दिन सुलतान ने स्वयं सलाहकार को बुलाया.

सुलतान के चेहरे पर उनकी चिर-परिचित टी.वी. वाली मुस्कराहट देखकर सलाहकार ने मच्छर-प्रकरण छेड़ने का साहस किया. सुलतान ने उसे बीच ही में टोक दिया, "आपने अपनी यह हालत क्या बना रखी है! हमें युवकों और बूढ़ों को साथ लेकर चलना है. इसीलिए हमारा एक सलाहकार नवयुवक है. आपको अपनी उम्र का दिखना चाहिए", कहते हुए सुलतान ने सलाहकार की टोपी उछाल दी और मूंछें नोच लीं.

सलाहकार का मन प्रसन्नता से भर गया. सुलतान उसमें कितनी व्यक्तिगत रूचि लेते हैं. "सर, आपने हमेशा की तरह सही सोचा. मैं अब युवक बनने का अभिनय कभी नहीं करूंगा." सलाहकार ने दुम के न होने की विवशता में सिर हिलाकर अपनी भूल स्वीकार की और सही अवसर ताड़कर फिर मच्छर का विषय उठाया. सुलतान उसकी टोपी को गेंद की तरह उछालकर लोकने का खेल, खेलकर खुश थे. उन्होंने दस मिनट की मोहलत दी. फिर उन्हें सर्कस का उद्घाटन करने जाना था. सलाहकार जानते थे कि पांच मिनट भी किसी बात पर सुलतान का ध्यान टिकना अपने आप में उपलब्धि है.

"सर! मेरा तो विनम्र सुझाव है कि आप धरती के बजाय हवा में ही रहें. पच्चीस-तीस देशों ने आपको राजकीय यात्रा के लिए निर्मत्रित किया है. उनकी समस्याओं का हल भी आप ही को निकालना है. आपकी विदेश-यात्रा के दौरान हम मच्छरों की नाक में दम कर देंगे. जमीन पर तोपों से केमिकल बमों की और आकाश से उसी के 'स्प्रे' की ऐसी बमबारी करेंगे कि मच्छर नेस्तनाबूद हो जायें. आपकी अनुपस्थिति में मच्छरों के विनाश उनके समर्थक आपको दोष भी दे पायेंगे. इसके अलावा कुछ दूरगामी कदम उठाये जा सकते हैं", सलाहकार को सुलतान ने हाथ के इशारे से रोक दिया. सुलतान को विदेश-यात्रा का सुझाव अच्छा लगा "ग्लोब लेकर हमारी यात्रा का ऐसा कार्यक्रम बनाइये कि हम तीन-चार मुल्कों की सैर कर लें. कम से कम दो-तीन हफ्तों के लिए तो इन नामाकूल मच्छरों से मुक्ति मिलेगी. इस बीच देखें कि आप इनका क्या करते हैं." सलाहकार आगे कुछ कह पाता कि सुलतान अपनी सर्कस-यात्रा के लिए रवाना हो गये.

जैसे ही दूसरे को पता लगा कि पहले सलाहकार ने सुलतान के पास फिर से सेंध ली है, उसने तत्काल डाक्टर से संपर्क किया, "डाक्टर, ग़ब गुड़ गोबर हुआ जा रहा है. तुम्हारे शोध केंद्र का रुपया डूबने वाला है. वह विज्ञान-विरोधी सलाहकार फिर से सुलतान साहब के पास जा मरा है. जल्दी आइये!"

डाक्टर अपनी सफलता पर फूले न समा रहे थे. इस अनपेक्षित खतरे से चौंके और बड़बड़ाते हुए चल पड़े, "मौत और सुलतान का कोई भरोसा नहीं है!"

दूसरे सलाहकार ने पहले की विज्ञान-विरोधी प्रवृत्तियों की निंदा की, "उसमें दूरदृष्टि का कतई अभाव है. अपनी मोटी तोंद पर पेटी बांधता है और कहता है कि जब तक देश का पेट पीठ से न मिल जाये, राष्ट्रीय विकास संभव ही नहीं है. साहब के खून की जांच से कुछ पता चला!"

डाक्टर ने बताया कि सुलतान की उंगली पर लगा खून एक बहुत ही मरियल मच्छर का था. वह सिर्फ अपनी भूख की यातना के वशीभूत भिनभिना रहा था, काटने की कूवत उसमें थी ही नहीं.

"पर यदि मच्छर काट ले तो मलेरिया भी हो सकता है. यदि सुलतान बीमार हुए तो जनता का क्या होगा! उसके लिए साहब ही तो एकमात्र आशा और मनोरंजन के स्थाई केंद्र हैं. आपके शोध-केंद्रों के नतीजे आने में तो वक्त लगेगा. तब तक कुछ और उपाय सोचिये न." सलाहकार ने डाक्टर से अनुरोध किया. दोनों गहन चिंतन के लिए कौफी पीकर अपने-अपने व्यक्तिगत हित-चिंतन की चिंता में डूब गये. सुलतान भी अभी सर्कस से लौटे नहीं थे.

"हमारे साहब को भारतीय संस्कृति से गहरा लगाव और प्रेम है. वह घंटों कठपुतली का खेल, बंदर का तमाशा और सपेरे की बीन पर सांप का नाच देख सकते हैं," सलाहकार ने डाक्टर को सूचित किया.

सुलतान लौटे तो उनके साथ एक अदद बूढ़ा मंत्री भी आ टपका. सुलतान के दफ्तर में सब सियासती बूढ़े संदेह के पात्र थे. पता नहीं कब कौन घाघ मौका पाकर सुलतान को कौन.सी उलटी-सीधी पट्टी पढ़ा दें. मैडम सुलतान का निर्देश था कि ऐसे बूढ़े सियार अधिक देर तक सुलतान के पास अकेले न छोड़े जायें. पर सुलतान बूढ़े के साथ देर तक चाय पीते रहे.

काफी समय बाद दोनों बुलाये गये. डाक्टर ने तत्काल उंगली का निरीक्षण किया, "सर, अब तो बिल्कुल ठीक है." सुलतान के चेहरे पर कुछ विस्मृति के भाव उभरे. डाक्टर ने खून की जांच की बात बतायी. "हम तो राष्ट्रीय सर्कस के चक्कर में मच्छर के काटे का भूल ही गये थे," सुलतान ने स्वीकार किया.

"पर हम कैसे भूलते. मच्छर से आपका बचाव हमारा राष्ट्रीय दायित्व है." सलाहकार और डाक्टर ने युगलबंदी की. डाक्टर ने सलाह दी कि सुलतान को मच्छररहित माहौल में रहना चाहिए. "सर! रिसर्च के परिणाम आने में अभी देरी लगेगी. आपकी सेहत से हमारी पूरी नयी पीढ़ी और सारे मुल्क का भविष्य जुड़ा है. क्यों न हम एक गुप्त भूमिगत आवास बनवा लें. युद्ध स्तर पर काम लगेगा तो एक माह के अंदर तैयार हो जायेगा. मच्छरों को खबर ही नहीं होगी तो भिन-भिनायेंगे कैसे." सलाहकार ने मच्छर से मुंह छुपाने का तरीका बताया. इतने में फोन का बज़र बजा. दूसरे बूढ़े मंत्री का फोन था. सुलतान ने उनसे भी मच्छरजनित मुसीबत का जिक्र किया.

"बूढ़ा तो कहता है कि मच्छर प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अनिवार्य अंग हैं. उनकी चीख-पुकार तो सुननी ही पड़ती है. वर्ना चुनाव में सल्तनत जाने की आशंका है." सुलतान ने अपनी फोन की चर्चा का सार सुनाया.

"सर, गुस्ताखी माफ, यह मंत्री तो स्वयं एक बूढ़ा मच्छर है. यह जिंदगी भर मच्छरों के साथ रहा, पला और बड़ा हुआ. इसका मच्छर प्रेम स्वाभाविक है. आपको मच्छरों से क्या लेना-देना! यह तो आपकी महानता है कि आप मच्छरों के जड़ से उन्मूलन के स्थान पर सिर्फ उनका मुंह बंद करवा रहे हैं." सलाहकार ने अपनी वफादारी दिखायी.

"एक ही रात की बात है. कल सुबह तो हम विदेश यात्रा पर जा रहे हैं. आप अपनी योजना बनायें. लौटकर निर्णय ले लेंगे." सुलतान ने दोनों मुसाहिबों को विदा किया.

देर रात सुलतान ने नींद की गोली खायी और सो गये. सपने में उन्हें अपनी शक्ल का एक हाथी दिखा. उसके बड़े-बड़े कानों के अंदर मच्छर ही मच्छर थे. वह जड़वत खड़ा, असहाय पीड़ा से चिंघाड़ रहा था. सुलतान की नींद खुल गयी. वह पसीने-पसीने हो रहे थे. उन्होंने बूढ़े मंत्री को फोन लगाकर शिकायत की," आप बताइये क्या करू! बागी मच्छर तो सोने भी नहीं देते."

बूढ़े मंत्री ने उन्हें कुछ दिन और यह कष्ट सहने की सलाह दी, "चुनाव के माहौल में हर मच्छर शेर हो जाता है."

सुलतान को ख्याल आया कि यह प्रजातंत्र उनका पारिवारिक तंत्र है और अपने पूर्वजों की तरह इसके ढांचे को तोड़ने-मरोड़ने का उन्हें पूरा अधिकार है. वह क्यों इसकी सीमाओं में उलझे रहें. उन्होंने निश्चय किया कि वह अभी सलाहकार को फोन पर भूमिगत आरामगाह के निर्माण का निर्देश देंगे. उन्होंने टेलीफोन की ओर हाथ बढ़ाया. वहां एक मच्छर था. उन्होंने उसे भगाना चाहा. टेलीफोन नीचे गिर पड़ा. मच्छर उड़ गया. सुलतान की भिनभिनाहट उनके कान में गूंजती रही और वह विक्षिप्त से दौड़ते रहे. कुछ समय बाद जैसे सुलतान का सिर चकराने लगा. मच्छर उनकी पकड़ के बाहर था. पर सुलतान को यह होश नहीं था कि मच्छर उनका पीछा कर रहा है या वह मच्छर का. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. रणवीर रांग्रा

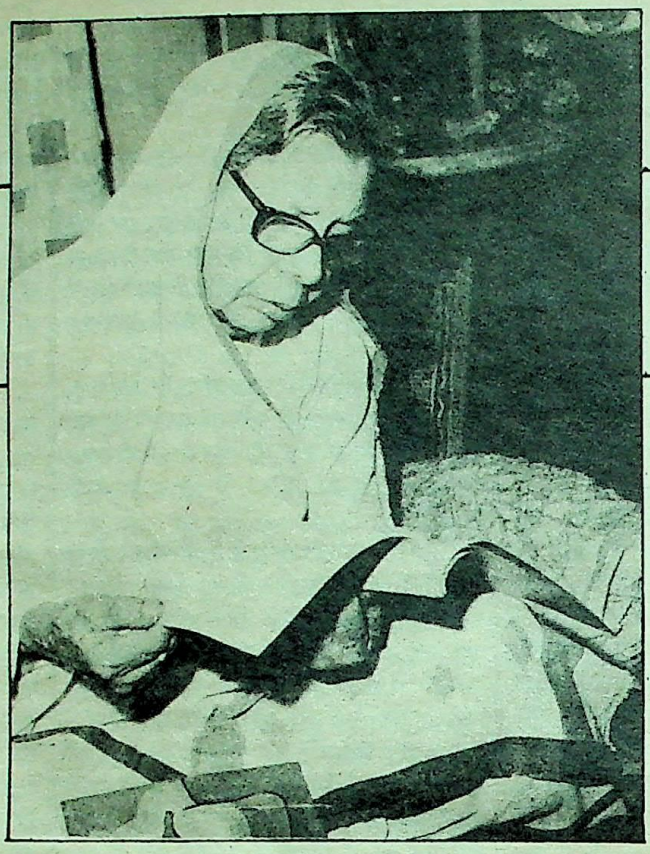

क्यों मुझे प्राचीर बनकर आज मेरे श्वास घेरे ?

हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणि' महादेवी अब नहीं रहीं. पर उनकी काव्य-वीणा की झंकार युग-युगांतर तक अक्षुण्ण रहेगी. वे वेदना की कवयित्री थीं. दुःख उनके जीवन का प्राणधार था. वे वेदना को जीवन का ऐसा काव्य मानती थीं जो सारे संसार को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता रखता है. उनका विश्वास था कि 'विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है. कवि का मोक्ष है : **दीप मेरे जल अकंपित, घुल अचंल/ पथ न भूले एक पग भी; घर न खोए लघु विहग भी/स्निग्ध लौ की तूलिका से, आंक सब की छांह उज्ज्वल.** अपनी काव्य-प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने एक बार बताया था : 'निहार' के रचानाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतुहल-मिश्रित वेदना उमड़ आती है, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देनेवाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है. 'रश्मि' को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिंतन प्रिय था, परंतु 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त करते हैं जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा था : **'विरह का युग आज दीखा, मिलन के लघु पल सरीखा/दुःख सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औ न सीखा/ मधुर मुझको हो गए सब, मधुर प्रिय की भावना ले.** उनकी ये अमर कृतियां 'यामा' मे संकलित हैं जिस पर वे भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुई थीं.

महादेवीजी से उनके काव्य पर खुलकर चर्चा करने का मुझे दो बार सुअवसर प्राप्त हुआ. एक बार यहां दिल्ली में वर्षों पहले और दूसरी बार प्रयाग में उन्हीं के विश्वास पर. उनके कला-कक्ष में कदम रखते ही व्यक्ति के प्राण विकल हो उठते हैं और उसके भीतर का रुद्ध पारावार ठाठें मारने लगता है, उसी प्रकार जैसे पूर्ण चंद्रिका में सागर उद्वेलित हो उठता है. मेरे साथ भी यही हुआ. फिर लगा कि देहताप से मुक्त होकर काव्य-लोक में विचरता हुआ महादेवीजी के सान्निध्य की स्निग्ध छाया में उनसे पूछ रहा हूं, 'कुछ लोगों का कहना है कि कविता रची नहीं जाती. वह कवि के भीतर से सोते के समान फूटती है और उसे सराबोर कर देती है तथा वह उसका स्रष्टा न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर, मात्र द्रष्टा रह जाता है. इस विषय में आपका अपना क्या अनुभव रहा है?'

महादेवीजी बोली, 'इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता. मुझे लगता है कि हरेक आवेश-आवेग उसी समय कविता नहीं बन जाता. कविता अवचेतन में रहती है और न जाने कब और कैसे प्रस्फुटित हो जाती है. अब देखिए न, इंदिरा के जीवनकाल में उस पर कविता न लिखने की कभी सूझी नहीं, बल्कि उससे हमारा झगड़ा ही रहा. मैंने सदा उसका विरोध किया' उसके निधन के बाद एक दिन अचानक हमें चार बरस की इंदिरा याद आती है और अपने-आप उस पर कविता बन जाती है : **किसी ने रूप मांगा, सिद्धि मांगी और नवजीवन/किसी ने दूध मांगा, पूत मांगा, दीप्त घर-आंगन/कहो प्रियदर्शिनी, तूने अनल-शृंगार क्यों मांगा?/जला जिसने दिया सब कुछ, वही अंगार क्यों मांगा?** तो न जाने भीतर बैठा कौन कब कविता प्रस्फुटित कर देता है. मुझे कई बार लगता है कि कविता भी मनुष्य को बनाती है. वह रचता ही नहीं है, स्वयं भी रचा जाता है. बड़े कवि की पहचान यह नहीं है कि उसकी कविता बड़ी है. बल्कि वह व्यक्ति के रूप में उतना ही बड़ा होना चाहिए.'

उनका मुखर चिंतन आगे बढ़ा, 'आज के कवि की साधन-संपन्नता के बावजूद उसकी कविता निर्जीव क्यों रह जाती है? जब निराला 'राम की शक्तिपूजा' लिख रहे थे, उनकी उस समय की साधनहीनता की आप कल्पना नहीं कर सकते. उनके पास कागज नहीं, टूटा कलम, निब भी टूटा हुआ, स्याही है नहीं. पाठशाला में जाकर किसी से ये सब मांग लाए और कड़वे तेल का दीया जलाकर कविता लिखने बैठ गये नीचे फर्श पर. उनके लिखने का आलम यह था कि बर्तन मल रहे हैं, खाना बना रहे हैं और साथ-साथ कविता भी लिखते जाते हैं. इस तरह लिखी उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' जिसका लोहा अब तक सब मानते हैं. उन्होंने कभी सोचा ही नहीं कि ऐसा कागज हो, ऐसी कलम हो, ऐसी मेज हो. इन सबसे वे बेखबर हैं. उनकी हालत देखिए. प्रसादजी को वे बाबूजी कहते थे. एक बार उन्होंने लिखा, ''बाबूजी, जब मुझे चिट्ठी भेजें तो उसके साथ एक कोरा कागज डाल दिया करें. मेरे पास कागज नहीं होता. उसका कहीं से प्रबंध करना पड़ता है.' अब आप देखिए, जिसके पास कागज नहीं है, कलम और दवात नहीं है, वह कालजयी काव्य की सृष्टि करता है. दूसरी ओर, आज के युग में साहित्यकार तो साधन-संपन्न हो गया है, पर उसका साहित्य उसके जीवनकाल में ही मृत्यप्राय हो जाता है.

महादेवीजी को थोड़ा कुरेदते हुए मैंने पूछा, 'आज प्रतिबद्धता की बहुत दुहाई दी जाती है. क्या आप भी मानती हैं कि लेखक को प्रतिबद्ध होने चाहिए और यदि होना ही चाहिए तो किसके प्रति? वे बोलीं, 'इसके बारे में मैंने बहुत सोचा नहीं है. फिर भी मैं जानती हूं कि साहित्यकार यदि प्रतिबद्ध है तो अपने प्रति है, अपने सत्य के प्रति है और जब किसी वाद से प्रतिबद्ध होगा, तब समझिए कि वह मिथ्यावाद में पड़ गया है. हर साहित्यकार अपने सत्य के साथ अकेला ही होता है. कोई भी बाहरी तत्व उसे इस अकेलेपन से निकाल नहीं सकता. देखिए, लहरें तो अनेक होती हैं, पर जो मोती खोजता है, वह गहराई में जाता है. इस खोज में उसे अपनी ही नाव का सहारा लेना पड़ता है चाहे वह कितनी ही छोटी हो. उसे जहां जाना है, वहां पहुंचने में किसी दूसरे का बड़े से बड़ा बेड़ा भी उसके काम नहीं आ सकता. कभी किसी दूसरे का उसे क्या करना है. प्रसादजी कहा करते थे कि किसी दूसरे के बजरे अपनी से डोंगी मत बांधो. वह तुम्हें कहीं नहीं पहुंचायेगा. कवि अपने में अकेला है, अपने सत्य के साथ अकेला है. उसकी कविता ही उसे दुकेला बनाती है. अन्य कोई वस्तु या वाद उसे अकेलेपन से उबार नहीं सकती, कविता ही उसे उबार सकती है. हमें लगता है कि इस विषय पर आज का युग जिस तरह सोच रहा है, जिस तरह चल रहा है, उसमें शायद कोई बड़ा कवि नहीं आ पायेगा. आज दूसरा तुलसीदास भी आ सकता था, सूरदास भी आ सकता था, टैगोर भी आ सकता था. पर आया तो नहीं. शायद इसीलिए कि आज का साहित्यकार अकेला चलने से घबराता है. उसे दल-बल की दरकार है.

आज साहित्यिक पुरस्कारों की जो होड़सी लगी हुई है उसका जिक्र छेड़ते हुए मैंने पूछा, 'क्या इन पुरस्कारों से सही साहित्य-सर्जना को बढ़ावा मिलता है?' उनका उत्तर दो-टूक था, ''कतई नहीं. हम तो यहां तक मानते हैं कि पुरस्कार व्यक्ति को छोटा बनाते हैं, बड़ा नहीं बनाते. इसलिए जब हमने न्यास बनाया तो स्पष्ट कर दिया कि पुरस्कारों में हमारी रुचि नहीं है, अगर आप किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देते हैं उसे अनुवृत्ति कहें, या कुछ और कहें, तो हमारा न्यास भी उसमें सहयोग देना. पूरस्कारों की विडंबना यह है कि कोई भी चयन निर्विवाद नहीं हो सकता. किसी की कविता, किसी का उपन्यास है और किसी का नाटक. आप कैसे तोल कर निर्णय कर सकते हैं कि इनमें कौन सर्वश्रेष्ठ है?''

चर्चा को साहित्यकार की संतुष्टि की ओर मोड़ते हुए मैंने पूछा, 'आपके निकट साहित्यकार की संतुष्टि-परितृप्ति की क्या संकल्पना है? अपनी किसी ऐसी कविता का उल्लेख करें जिसे रचने के बाद आप की सर्वाधिक संतुष्टि का अनुभव हुआ हो.' प्रश्न सुनकर पहली बार महादेवी जी असमंजस की स्थिति में प्रतीत हुईं. वे बोली, 'वह मैं नहीं जानती, क्योंकि यह तो अपनी शल्यक्रिया करना हुआ. हमारे अवचेतन में कितना कुछ है, नहीं बता सकते. सो रहे हैं, सोते-सोते अचानक जाग जाते हैं और कविता लिखने लगते हैं. मेरी कविता '**दुख आया, दिलदार लौटा न दो**' की रचना बिल्कुल उसी तरह हुई. वह ठीक आधी रात में लिखी गयीं. सोते-सोते अचानक जग गई. लगा कि कुछ लिखना है. क्यों मन में आया, यह कुछ नहीं मालूम, वह बस बन गयी, एक ही रात में. पर कैसे बनी, यह नहीं जानती. हां, लिखने के बाद जरूर ऐसा लगा कि यही कहना चाहिए था. हमें आज भी लगता है, भाई, कि अगर संवेदना नहीं है, वेदना नहीं है, दुख का कोई अनुभव नहीं है तो फिर आप कुछ भी नहीं करेंगे. उसमें नींद से जागकर यही बात कही गयी है : '**स्वप्न का ध्यान भी गुत्थियों में भरा/धरती विस्तार है आज मरु की तरह/दुख आया अमर सिंधु डूब कर/यह घटा-सी है सौगात लौटा न दो.**' आगे इसकी पंक्तियां बहुत हैं. अचानक ही यह कविता प्रस्फुटित हुई. कैसे हुई यह नहीं कह सकती. हां, इतना जानती हूं, अगर कोई दुख न हो, वेदना न हो, तो बदलेगा नहीं समाज.'

हमारी बात चल ही रही थी कि चाय आ गयी और मिठाई भी और महादेवीजी मातृसुलभ स्नेह के साथ उसके प्रति न्याय करने का अनुरोध कर रही थीं. फिर न जाने क्या हुआ कि वे सत्तर-पचहत्तर वर्ष की दूरी पार कर अपने बचपन में पहुंच गईं और अपने काव्यारंभ को टटोलने लगीं : ''हमारा अवचेतन एक समुद्र है, जैसे लोक-साहित्य एक समुद्र है. उससे बादल उठते हैं—रंग के हों, पानी बरसानेवाले हों, बिजली चमकाने वाले हों—उसी के उठते हैं. इसी प्रकार, हमारा अवचेतन भी न जाने कितने युगों के संस्कार लिए हुए हैं. अब हमारे परिवार में ही देखिए. हमारे बाबा तो फारसी जानते थे जो उस समय सिरमौर भाषा थी. परदादा भी उर्दू-फारसी जानते थे. हमारे पिताजी ने कहा कि अंग्रेजी पढ़ें. वे अंग्रेजी में एम.ए. थे. उस समय हम लोग उत्तर प्रदेश में आ गये थे और फिर यहां से चले गये इंदौर. अंग्रेजी ले गयी उन्हें राजकुमार कॉलेज में. हमारे यहां हिंदी चलती नहीं थी. हमारी मां जब आयीं जबलपुर से तब लड़कियों को इतना ही पढ़ाते थे कि रामचरित मानस पढ़ लें. बस, वही लेकर वे आयीं. अपने भाई-बहनों में मैं ही सबसे बड़ी थी. छह-सात बरस की थी, तब की याद है. वे हम सबको सवेरे-सवेरे नहलाती थीं पूजा पर. उनके राम थे, श्याम थे. हम लोग पूजा पर बैठे रहते चुपचाप. खूब ठंड लगती, तब हम जोड़ने लगे, उसी अनुभूति में. क्यों जोड़ने लगे, कैसे जड़ने लगे, कुछ पता नहीं. एक हमने जोड़ा : **ठंडे पानी में नहलाती/ठंडा चंदन इन्हें लगाती/इनकी मांग हमें दे जाती/फिर भी कभी न ये बोल हैं/मां के ठाकुर जी भोले हैं.**' हम सोचते कि हमारी तरह ठाकुरजी को भी ठंड लगती होगी, वे जरूर शिकायत करेंगे. पर वे तो कुछ बोलते ही न थे. हमने अपने सेवक से कहा, .यह ठाकुर जी भी कैसे हैं? ठंड लग रही है पर चुप-चाप सह रहे हैं. कुछ बोलते ही नहीं. सेवक ने कहा, 'ठाकुरजी कहीं बोलते हैं?' हमने पूछा, 'ठाकुरजी क्या गूंगे हैं?' उसने बताया कि वे भगवानजी हैं तो हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, 'क्या भगवानजी गूंगे हैं? तो इस तरह हमारे पास छोटी-छोटी बहुत-सी कविताएं हो गयीं. हमारी मां ने कहा कि एक पंडित रख दो. पंडितजी आये तो हम ब्रजभाषा में लिखने लगे. ब्रजभाषा में यह हमारा पहला प्रयास था : **''बांधे मयूख की डोरिन से किसलय के हिंडोरन में तुम झूलियो/सीकर मंद समीर तुम्हें दुलराय अंक लगाए प्रभुजी/रोझियो मोर के रान पे तितली के नतेन पेपुनि भौंजियो/फूल कहे तुम्हें ऐसे कोई जब कांटन में फंस के हंसि बोलियो.'** अब यह भाव भीतर से न जाने कैसे आया होगा. हमारा एक गीत बहुत गाया गया. लेकिन लोगों को यह मालूम नहीं था कि यह किसका है. टंडनजी ने पूछा कि ये जो गीत गाये जा रहे हैं वे किसके हैं? लोगों ने बताया कि एक लड़की है, वही इन्हें लिख देती है. तो उन्होंने कहा कि उसकी कविताएं लाओ. पर तब मेरे पास कविताएं लिखी हुई कहां थीं. बड़ी मुश्किल से उन्हें बटोरा और बाद में वे 'नीहार' के रूप में छपीं. वे न कहते तो 'नीहार' कैसे बनती. टंडनजी हमें चाहते थे. वैसे तो वे सभी को चाहते थे. पर हमें बहुत चाहते थे. एक बार क्रम चल पड़ा तो बस चलता ही गया. कवि कैसे लिखता है, क्यों लिखता है, यह सब कैसे जानें? हमारे और भाई बहन भी तो हैं. वे तो कविता नहीं लिखते.'

छायावाद की देन का उल्लेख करते हुए महादेवीजी ने कहा है, 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिंब-प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी. छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी. अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है. प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियां और कठोर शिलाएं, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिंब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं. जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोलने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश एक आलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा.'

पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद का कड़ा विरोध किया, विशेषकर प्रकृति के मानवीकरण की उसकी मूल प्रवृत्ति को लेकर. उसका जिक्र करते हुए मैंने पूछा, 'इससे क्या उस समय के छायावादी कवि, जिनमें आप भी प्रमुख थीं, खिन्न नहीं हुए? शुक्लजी के मत के प्रति आप

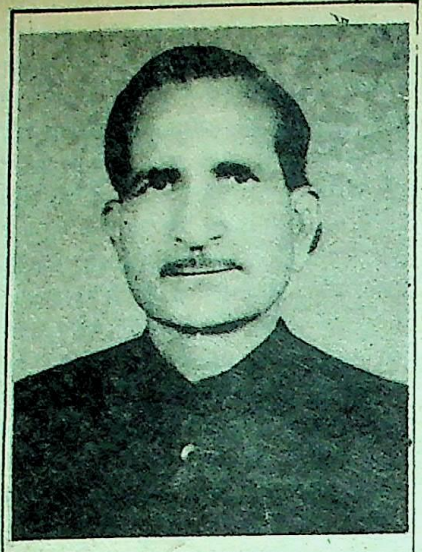

डा. रणवीर रांग्रा

लोगों का क्या रुख था?'

लंबे अतीत को पार कर पचास-पचपन वर्ष पहले के युग में पहुंचने में महादेवीजी को क्षण भर का समय भी नहीं लगा. वे इस तरह बताने लगीं मानो कल की बात हो, 'यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि शुक्लजी के विरोध के बावजूद हम लोगों ने उन्हें आदर दिया, श्रद्धा दी. इस विषय पर उनके साथ हमारी कई बार बात हुई. हमने उनसे कहा कि आप हमें तो कहते हैं, पर आखिर जो इतना देवतावाद चला है, उसके बारे में आप कुछ नहीं कहते. कज्ज कहीं सूर्य है, कहीं करुण है—ये सब क्या है? क्या यह प्रकृति का मानवीकरण नहीं है? लोकगीतों में बार-बार प्रकृति मानव के रूप में आती है. आज भी गांव में आप सुनेंगे कि ससुराल जाते समय बिटिया बाप से कहती है— **'बाबुल प्रेमिचा का रूख मत काटियो/यह मेरी कहानियां हैं.'** ससुराल में वह बादल से अनुरोध करती है : **'कारी बदरिया, तू मेरी बहिनी/बीरन के रहियो पास.'** हमने कहा कि इन लोकगीतों को तो किसी ने छायावादी नहीं कहा. कितने ही प्राचीन काव्य-ग्रंथों में पेड़ बोलते हैं पशु बोलते हैं, पक्षी बोलते हैं. उनके बारे में तो आपने कभी कुछ नहीं कहा ये जब हमारी कविताओं में बोलते हैं तो आप कहते हैं कि यह कैसे हो सकता है. हमने कहा कि हमारा यह जन्मजात स्वभाव है कि हम प्रकृति से प्रकृति की हर वस्तु से व्यक्तिगत संबंध स्थापित कर लेते हैं. ऐसा न होता तो कालिदास की शकुंतला और यक्ष ऐसा व्यवहार क्यों करते. उसे स्वाभाविक नहीं मानेंगे तो फिर कालिदास का क्या करेंगे. अंत में शुक्लजी को मानना पड़ा कि आदमी का सच्चा संगी-साथी तो प्रकृति है. हमने कहा आप प्रसादजी को छायावाद का पहला कवि कहते हैं, पर ये सब तत्व तो श्रीधर पाठक की कविता में भी मिलते हैं. आप इन्हें पहला छायावादी कवि क्यों नहीं मानते. वास्तव में, श्रीधर पाठक को महावीर प्रसाद द्विवेदी, और शुक्लजी भी, गुरुवर मानते हैं. पाठकजी उनको नाम से बुलाते थे और ये लोग उन्हें 'पंडितजी' कह कर संबोधित करते थे. इसलिए, उन पर उंगली कैसे उठाते? फिर भी शुक्लजी ने छायावाद के प्रति अपना रुख बदला और अपने पहले मत में समुचित संशोधन किया. शुक्लजी व्यक्ति भी बहुत बढ़िया थे. शास्त्र की जितनी व्याख्या हमारे यहां हुई है, उतनी कहीं भी नहीं हुई. पर उसे विज्ञान के नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का काम तो शुक्लजी ने ही किया. शुक्लजी की उस देन को हम भूल नहीं सकते.

श्रीधर पाठक का जिक्र छिड़ने पर महादेवीजी ने बताया, 'हिंदी के मूर्धन्य कवियों से हमारा परिचय श्रीधर पाठकजी के घर पर ही हुआ. उन्हें मैं पहला छायावादी कवि मानती हूं, प्रसादजी को नहीं. वैसे यह प्रवृत्ति तो बहुत पहले से चली आ रही थी, श्रीधर पाठकजी के घर पर हर रविवार को बैठक जमती थी. उस समय काफी हाउस आदि तो थे नहीं जहां साहित्यकारों का जमावड़ा होता. पाठकजी के 'पद्मकोट' के बड़े कमरे में ही छोटे-बड़े सब लोग नीचे बैठ जाते थे. सब अपना-अपना लिखकर लाते और सुनाते. पंतजी भी वहीं मिले, निरालाजी वहीं मिले. उन दिनों हम बहुत छोटे थे पंडित जी को पहली बार देखकर हमें हैरानी यह हुई कि वे हम महिलाओं-लड़कियों के साथ न बैठकर पुरुषों के बीच क्यों बैठे हैं. यह तो बाद में पता चला कि उनका पुरुषों में बैठना अनुचित नहीं था. हम लोगों को भी पाठकजी मौका दे देते थे. कहते थे—'अच्छा, नया क्या लिखा है? सुनाओ तो.' उनका यह अनुरोध हमें बहुत अच्छा लगता था. एक समय ऐसा होता है, ऐसा युग होता है, जब कोई कह दे कि अच्छा लिखा है तो मन खुशी से झूम उठता है. अगर कोई कह दे कि कुछ नहीं लिखा है तो मन भर जाता है. इसलिए हम कभी किसी के लिखे को बुरा नहीं कहते. हम जानते हैं कि इससे चोट लगती है. इसीलिए हम कहते हैं कि किसी की रचनाओं के बारे में लिखना है तो अच्छा लिखो, अच्छा नहीं लिखना तो लिखो ही मत. इस प्रकार, महादेवीजी अतीत की परत पर परत खोलती जा रही थीं. काल की अखंडधारा में निर्बाध तरती हुई. पर हमारी गर्दन तो काल के हाथ में थी. जिस पर टेप पर हमारी बातचीत रिकार्ड हो रही थी आखिर वह भी चूक गया और हम काव्याकाश से धरती पर आ गिरे.

देह और काल के बंधनों को तोड़, ससीम से निस्सीम हो जाने की विकलता उनके समूचे काव्य में व्याप्त है: **फिर विकल हैं प्राण मेरे! तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है!/जा रहे जिस पंथ से युग-कल्प उसका छोर क्या है?/क्यों मुझे प्राचीर बन-कर/आज मेरे श्वास घेरे?**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

आरोपित ऊंचापन बहुत समय तक टिक नहीं पाता

इस सदी के चौथे दशक के अन्त से पूर्व (1938-39) लाहौर में 'हिंदी समाज' एक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था का रूप धारण कर चुका था. में उसका प्रधान मंत्री था. एक बैठक में मेरे निमंत्रण पर किशनचंदर और राजेंद्रसिंह बेदी दोनों एक साथ आये. अपनी कोई रचना तो उन्होंने नहीं पढ़ी, पर जो हिंदी रचनाएं पढ़ी गयी थीं, उनकी चर्चा में पूरी दिलचस्पी से भाग लिया. तब भी उन्होंने यही सलाह दी थी कि हिंदी और उर्दू का फासला और अधिक नहीं बढ़ना चाहिए. किशनचंदर और बेदी दोनों उस समय तक उर्दू साहित्य में सम्मान का स्थान प्राप्त कर चुके थे. वास्तव में किशनचंदर को यह एहसास हिंदी समाज में पढ़ी गयी कहानियां और कविताएं सुनकर ही हुआ था कि दोनों भाषाएं एक दूसरे के बहुत निकट हैं. उससे पहले उनकी धारण थी कि हिंदी संस्कृत के निकट की कोई बहुत कठिन भाषा है. उसी बैठक में ही उन्हें यह भी ख्याल आया कि उर्दू, पंजाबी और हिंदी का एक सम्मिलित कहानी संग्रह प्रकाशित होना चाहिए. इस दिशा में कुछ काम भी उन्होंने किया था.

तब से मैं निरंतर किशनचंदर के संपर्क में रहा. लाहौर से वह दिल्ली आल इंडिया रेडियो में काम करने चले आये थे. डायरेक्टर जनरल अताउल्लाह शाह बुखारी ने उन्हें उर्दू विभाग में ले लिया था. देश विभाजन के बाद वह बंबई चले गये– फिल्मी कहानियां और डायलाग लिखने के लिए.

क्रमशः किशनचंदर ने अपना कार्यक्षेत्र काफी बढ़ा लिया था. विचारों से वह कम्यूनिस्ट थे और इस बारे में काम भी करते थे, विशेषतः बौद्धिक मोर्चे मे संबंध में योजनाएं बनाने का. उर्दू के वह हामी थे और उनका निरंतर यह प्रयत्न रहा कि भारत में उर्दू जीवित ही नहीं, बल्कि शक्तिशाली भाषा बनी रहे. बहुत बार इस संबंध में वह मुझसे विचार-विनिमय भी करते रहे. फिल्मों के लिए वह लिखते ही थे. इस सब कामों के साथ किशनचंदर सृजनात्मक लेखन नियमित रूप से करते रहे. उनका सब से अधिक प्रिय क्षेत्र सृजनात्मक लेखन नियमित रूप से करते रहे. उनका सब से अधिक प्रिय क्षेत्र सृजनात्मक लेखन ही रहा. हिंदी उर्दू को एक दूसरे के निकट लाने का मैं प्रारंभ ही से हामी हूं.

विभाजन के बाद उर्दू को भारत में काफी बड़ा धक्का लगा था. विभाजन से पहले पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग की प्रमुख भाषा उर्दू थी. विभाजन के बाद इन तीनों

किशनचन्दर

क्षेत्रों में उर्दू की स्थिति एकाएक बहुत कमज़ोर हो गयी. पंजाब का जो अंश भारत में आया, उस पूरे क्षेत्र से लगभग सभी और दिल्ली तथा उत्तरी यू.पी. से बहुत से मुसलमान, जिनमें साक्षर अधिक थे, पाकिस्तान चले गये. पंजाबी, हिंदू और सिखों ने शीघ्रता से हिंदी तथा पंजाबी को अपना लिया. भारती संविधान के अनुसार उर्दू भारत की एक राष्ट्रीय भाषा (मेरा राय है कि संविधान में स्वीकृत सभी भाषाएं भारत की राष्ट्रीय भाषाएं हैं. हिंदी तथा अंग्रेजी भारत की संपर्क भाषाएं हैं) अवश्य है, पर उन दिनों यह पाया गया कि उर्दू पढ़ने वालों की संख्या में बहुत अधिक उत्तार आ गया है. यह स्थिति उर्दू-लेखकों के लिए निस्संदेह चिंताजनक थी. इस सिलसिले में किशनचंदर ख्वाजा अहमद अब्बास, अली सरदार जाफरी आदि बार-बार दिल्ली आया करते थे. मुझे भी उनकी बैठकों में बुलाया जाता था. इस उद्देश्य से यदि हिंदी और उर्दू के निकट आ जायें तो उर्दू लेखकों की रचनाएं उसी रूप में हिंदी पत्रों में छप सकेंगी. मैंने अपने इन मित्रों को बताया कि 1638 में हिंदी साहित्य सम्मेलन यह प्रस्ताव पास कर चुका है कि उर्दू ही हिंदी का एक रूप है, जैसे ब्रज, अवधी, भागधी आदि हिन्दी ही के रूप हैं. इस स्थिति में यदि उर्दू लेखक सरल भाषा में लिखेंगे तो उनकी रचनाएं हिंदी पत्र खुशी से उसी रूप में छापेंगे. बल्कि यदि उर्दू रचनाएं शक्तिशाली हुईं, तो वे हिंदी के रूप को भी स्पष्टतः प्रभावित करेंगी.

परिणाम यह हुआ कि बहुत से उर्दू लेखक अपनी रचनाओं का नागरी लिप्यंतर हिंदी पत्रों को भेजने लगे थे और वे उसी रूप में प्रकाशित भी होने लगी थीं. कठिन उर्दू शब्दों का हिंदी अनुवाद या तो साथ दे दिया जाता था या मूल शब्द की जगह दे दिया जाता था.

अपने पत्रों में मैंने निरंतर किशनचंदर की बहुत-सी रचनाएं छापीं. उसी रूप में, जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है. उनकी वास्तविक आय फिल्मों से थी, पर हिंदी पत्रों तथा हिंदी में प्रकाशित उनकी पुस्तकों से भी उन्हें खासी अच्छी आय थी. बहुत से हिंदी लेखकों की अपेक्षा कहीं अधिक.

किशचंदर बहुत अच्छे दोस्त थे. दोस्तों के लिए वह कुछ भी कर सकते थे. उनके दोस्त भी उन पर जान देते थे. इसके साथ ही किशनचंदर अत्यधिक महत्वाकांक्षी भी थे. बड़े शाइस्ता ढंग से वह अपना प्रचार आयोजित और संगठित करते थे. आज की दुनिया में इस सबका लाभ भी है. हिंदी में भी अच्छे-अच्छे, यानी आज के खूब लब्धप्रतिष्ठ लेखकों ने भी ऐसा किया है. पिछली आधी सदी में निरंतर मैंने कितने ही हिंदी लेखकों को इस तरह के योजनाबद्ध प्रयत्न करते और उनमें से कुछ को यथेष्ठ सफलता प्राप्त करते भी देखा है. किशनचंदर को यह शिकायत नहीं हो सकती थी कि उन्हें यथोचित यश नहीं मिला. यह अत्यंत महत्वपूर्ण प्लेटफार्म से उन्हें गालिब के समकक्ष पहुंचा दिया गया था– पर साहित्य के क्षेत्र में किसी तरह का आरोपित ऊचापन बहुत समय तक टिक नहीं पाता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथद्वारे की सिर चढ़ी राधा

अतीत के हादसों के कब्रगाह को कुरेदने में माहिर बाला दुबे के धारावाहिक आयोजनों— 'अनजानी इतिहास कथाएं' और 'गलियां जहां इतिहास कैद है' को सारिका के पाठकों द्वारा बेहद सराहना मिली थी. पिछले अंक से हमने इन्हीं का एक नया स्तंभ 'अनजानी प्रेम कथाएं' प्रारंभ किया है. प्रस्तुत है इसकी दूसरी किस्त.

राजस्थान का बृज-नाथद्वारा मथुरा से श्रीकृष्ण को यवनों के हाथों से बचाने को ही उन्हें यहां पधराया गया था. और फिर राजस्थान के आंचल में यह छोटा-सा बृज मंदिर आस्था का केंद्र बनता चला गया. मथुरा-शैली की आराधना रहस्य-लीला एवं सखीं-भाव फलने फूलने लगा. उन दिनों गोसाईं गोकुलस्य नाथद्वारा के महंत थे. वैष्णवों का वल्लभाचार्यी मत उन्हीं के निरीक्षण में पनप रहा था. 'पुरुष और प्रकृति' ही सृष्टि का आधार है '— इसी धारणा के हेतु नाथद्वारा में अनेक पुरुष कृष्ण रूप में और अनेक राधा उनकी संगिनी बनकर 'शक्ति-साधना' में लवलीन थे. आग और फूंस साथ रहकर भी नहीं सुलगें यह निःसंदेह एक सिद्धि ही तो थी, पर यह 'कामजित स्थिति' हरेक को प्राप्त भी तो नहीं सकती थी. खुले आम तो वह राधा-कृष्ण के निर्मल प्रेम का प्रदर्शन कर तो पर एकांत में मन उद्विग्न हो उठता और मनुष्य अपने असली रूप में आ जाता— एक जानवर मात्र, जो समाज के बनाये सीखचों में बंद रहता था. नाथद्वारे की भक्ति-शैली की सुगंध चारों तरफ बही. यही सुनकर जोधपुर के महाराजा विजय सिंह भी वहां आये. महंत गोकुलस्य के प्रभावशाली प्रवचन और फिर रंग-बिरंगी रास-लीला देखकर वे प्रभाषित हुए. जगह-जगह राधा-कृष्ण की जोड़ियां और अपार प्रेम से लिप्त हाव-भाव देखकर महाराजा विजय सिंह का मन-सिंहासन डंवाडोल हो गया. और तभी उन्होंने निर्णय कर डाला कि वे उसी दिन से मांस-मदिरा का परित्याग करते हैं और राधा-कृष्ण की भक्ति को अपने जीवन की अमूल्य निधि मानते हैं. महाराजा विजय सिंह को 'पुरुष' रूप में स्वीकार करते ही गोसाईं गोकुलस्य को उन्हें 'प्रकृति' की जुगाड़ सतायी और उन्होंने अपने इस नये श्रीकृष्ण को एक बहुत ही मनभावनी राधा प्रदान की—गुलाब राय.

गुलाब राय हाड़-मांस का गुलाब ही था. रेशम जैसा शरीर, यौवन की सुगंध से सराबोर, दामिनी वरण, अमियां की फांकें जैसी आंखें. गुलाब राय का जब गाती तो मिश्री के कूंजे फूटने लगते. अपनी राधा को निहारकर कृष्ण-रूपी महाराजा विजय सिंह निहाल हो गये. फिर कुछ दिन वे मानों श्री कृष्ण ही बन गये हों— वैसे ही हाव-भाव, मान-मनौतियां, रास लीलाएं. राधा-कृष्ण लीला के हेतु उनका विवाह वैसे विवाह की ही मान्यता-श्रेणी में माना जाना चाहिए था— अद्वैध-प्रेम रहित, समाज द्वारा मान्य. पर एक महाराजा के लिए यह सब कुछ दरबारियों के लिए मान्य नहीं था. गुलाब राय किसी ओसवाल की बेटी थी और महाराजा विजय सिंह राठौर वंश के सिंह गोसाइयों ने लाख राधा-कृष्ण के अनुराग-रहस्य का बखान किया पर दरबारियों ने गुलाब राय को 'पासबिन' ही घोषित किया जो कि राजपूत चलन के अनुसार 'रखैल' मात्र मानी गयी है. दरबारी अपना ढोल पीटते रहे पर गुलाब राय ने अपने-प्रपंच में कुछ भी कमी नहीं की. दिल ब दिन वह महाराजा विजय सिंह पर छाती गयी और महाराजा उसके रूप की छांव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आत्मविमोर पड़े रहते. गुलाब राय ही उनके जीवन की राधा बन गयी थी और वे स्वयं रास बिहारी श्री कृष्ण. उन्हें संपूर्ण रूप से राधा-मय बनाकर ही गुलाब ने राज्य-रथ के घोड़ों की रास पकड़ना शुरू किया था.

पोखरन के सरदार सवाई सिंह के साथ मंत्रणा करके गुलाब ने अपने विश्वसनीय चाबुक-सवार भैरौ सानी को कर्त्ता-धर्त्ता बनाया. फिर धीरे-धीरे उसने जागीर और ठिकानों पर भी अपने पंजे जमाना शुरू किया था. गुलाब की बढ़ती पैंगें देखकर मारवाड़ के सरदार चौंके और उन्होंने इस छीना-झपटी के विरुद्ध आवाज भी उठायी.

और जब गुलाब ने महाराजा विजय सिंह से जन्मे अपने पुत्र तेज सिंह को राजसी हक दिलवाने की चाल चली, तब तो सरदार लोग भड़क ही उठे थे. महाराजा विजय तो इस कदर 'कलियुगी-कृष्ण' बन गये थे कि गुलाब की हरेक बात बगैर सोचे समझे मानने लगे थे. उनको अपने प्यार के मकड़-जाल में फंसाकर ही तो गुलाब ने अपने बेटे तेज सिंह को मेड़ता का जागीरदार घोषित करवा लिया था. मेड़ता का जागीरदार बहुत रुतबे का पदाधिकारी माना जाता था— स्वयं राजा के बाद पदासीन सरदार. इस घोषणा से राठौर सामंत भड़क उठे और वे सामूहिक विप्लव की योजना बना ही रहे थे कि भाग्य से तेज सिंह लड़कपन में ही मर गया.

और फिर समय-चक्र के साथ जोधपुर का यह कृष्ण बुढ़ापे की देहरी फलांग गया. शक्तिहीन, विवेकशून्य, गुलाब के स्नेह में लिप्त—महाराजा विजय सिंह अपने बाद युवराज घोषित करने में भी ढील दिखलाने लगा. उसके सरदारों ने फिर उसके पांचवें बेटे के लड़के भीम सिंह का नाम तजवीज किया था. महाराजा विजय सिंह बौखला गया और अपने सरदारों की बात काटने को कटिबद्ध हो गया. उस समय उसने फिर प्रश्नसूचक दृष्टि से अपनी राधा की ओर देखा. गुलाब ने तुरंत ही उसे नाम सुझाया— उसके छंटवे बेटे के पुत्र मान सिंह का नाम.

गुलाब की चाल वैसे सधी हुई थी. उसने होल्कर की अहल्या बाई की नकल करनी चाही— पहले राजकुमार मान सिंह को गोद लेना फिर अपने गोद लिये बेटे की जगह राज्य की बागडोर संभालना. गुलाब जानती थी कि उसका कृष्ण अब पतझड़ का पत्ता रह गया है और कभी भी जिंदगी की शाख से गिरकर अलग हो सकता है. इसीलिए तो वह राजकुमार मान सिंह की संरक्षिका बनना चाहती थी.

7 नवंबर 1791.

इसी दिन गुलाब ने मान सिंह के आगे सरदारों को तिखाचा भरने की योजना बनायी थी. पर इसी दिन राठौर परिवार में विस्फोट हो गया और महाराजा के निकट सम्बंधी तक एक हो गये.

"हम इस पासबिन के गोद लिये इस लड़के के आगे सर नहीं झुकाएंगे— हम इस बांदी के दत्तक पुत्र को अपना युवराज कभी नही मानेंगे." जितने भी तलवार के धनी सरदार थे वे शहर छोड़कर दूसरे शहर जा पहुंचे.

इसके बाद खून-खराबा और षड्यंत्र का बोलबाला हो उठा. मारवाड़ के राजपरिवार के सामन्त अब लगातार हत्याएं कराने लगे. जब गुलाब चंडी-रूप में बिफरी तो उसने दरबार में आये बूढ़े मंत्री खूब चंद सिंघवी की हत्या ही नहीं करवायी बल्कि उसकी लाश को जंगली कुत्तों के आगे डलवा दिया. इसके साथ ही गुलाब ने खूब चंद के भाई बिजै चंद और उसके बेटे को भी मरवा डाला. यही नहीं, उसने खूब चंद के परिवार की औरतों और बच्चों को बेरहमी से पिटवाया और कारावास में बंद कर दिया. पांव तले आयी नागिन की भांति गुलाब ने फिर महाराजा विजय सिंह के एक छोटे भाई गुमान सिंह को जहर देकर भी मरवा डाला.

और तो और राधा के नाम को कलंकित करने वाली गुलाब ने एक और भी हरकत की जिससे राठौर सुलग गये. चंपावत के सरदार का नाम भी विजयसिंह ही था जिसे गुलाब ने प्रधान मंत्री के अतिरिक्त अपना 'नया कृष्ण' भी बना डाला. उस रात जब एक राठौर सरदार ने उसे गुलाब के शयन-कक्ष में जाते देखा तब तो तूफान ही मच गया. सब सरदार लोग एक मत होकर चिल्लाने लगे "भले ही बांदी हो या रखैल पर क्योंकि वह हमारे महाराजा की भोग्या है वह हमें माननीय है हमारी माता के समान है. हम इस कलंक को बरदास्त नहीं कर सकते!" और गुलाब 'पासबिन' को सबक सिखाने की नीयत से ही उन्होंने चंपावत विजय सिंह के पास उसी का एक रिश्तेदार 4 जनवरी, 1792 को भिजवाया जिसने उसके सीने में खंजर उतार दिया. कत्ल करने के बाद वह रिश्तेदार भागकर बागियों की शरण में आ गया.

महाराजा विजय सिंह अपनी ही राजधानी में बेगाना बन गये और फिर कुछ महीने इधर-उधर भटक कर 20 मार्च 1793 को वापस जोधपुर के महल में आ गये. बूढ़े के सामने दो टके के सियार भी सीना फुलाकार घूमने लगते हैं. महाराजा विजय की जीवन-संध्या का अनुमान लगाकर ही सामंतों ने अपना आखिरी मोहरा बढ़ाया.

उन दिनों गुलाब शहर से बाहर अपने हजार-बारह सौ संरक्षकों के साथ एक बाग में रहती थी. सामंतों ने सबसे पहले इन संरक्षकों को फुसलाया, "तुम अपना बकाया वेतन हमसे ले लो और इस पासबिन का साथ छोड़ दो." पर वे संरक्षक नहीं माने. नतीजा यह हुआ कि सामंत-सेना ने ऊपर हमला बोल दिया. खूब लोहा बजा और दोनों तरफ से बीस-पच्चीस आदमी मारे गये. आखिरकार उन संरक्षकों ने स्वीकार कर ही लिया— "हमारी बकाया तनख्वाह दे दो तो हम चले जायेंगे." और सचमुच वे चले गये.

गुलाब राय फिर महाराजा विजय सिंह की अनुपस्थिति में एक गढ़ी में रहने लगी थी. राठौर सामंतों ने फिर एक और योजना बनायी थी. गुलाब को संदेशा भिजवाया— "महाराजा विजय सिंह ने तुम्हें याद किया है." इतना सुनते ही गुलाब राय ने पालकी मंगवायी और वह अपने कृष्ण से मिलने के लिए चलने को तैयार हुई. जैसे ही वह पालकी में चढ़ी कि किसी ने एक ही साथ में उसको निर्जीव बना दिया.

3 जुलाई को शहर में स्थित बालकृष्णमंदिर से लौटकर महाराजा विजय सिंह अपने किले वाले महल में आये. जब उनके कान में उनकी राधा के वध की भनक पड़ी तो वे विचलित हुए और रात के सवा बजे उन्होंने गुलाब की दोनों बांदियों किशोरी-मधोरी को बुलवाया. उनके ही मुंह से उन्होंने सब कुछ सुना. महाराजा विजय सिंह सिसकियां लेकर रोने लगे और फिर थोड़ी देर बाद मूर्छित हो गये. फिर तो जैसे वे पत्थर के हो गये हों. शून्य में टकटकी बांधे देखते रहते और 'गुलाब, गुलाब' बुदबुदाते रहते.

8 जुलाई को अपनी राधा को रटते-रटते वे सदा के लिए शांत हो गये. 'पुरुष और प्रकृति' का अनूठा मिलन हो ही गया जैसे आत्मा एक बार फिर हाड़ मांस के पिंजड़े में आ गयी हो जीवन की रास लीला करने. □

चलते-चलते

एक व्यक्ति हॉस्पिटल के 'विशेष देखभाल कक्ष' में भर्ती था. उसी हॉस्पिटल में उसकी पत्नी नर्स थी. हर शाम की तरह वह नर्स की ही यूनीफार्म में अपने पति से मिलने पहुंची. कुछ देर बाद जब उसने जाने की इजाजत चाही तो पति ने उसे अपने बांहों में कस लिया. तभी सामने से गुजरते दो रोगियों ने यह सब देखा. दोनों चार कदम आगे बढ़े, फिर एक ने रुककर दूसरे से कहा, "क्यों नहीं हम भी कुछ विशेष पैसे खर्च करें और इसी तरह के विशेष देखभाल के लिए अपनी भर्ती 'विशेष देखभाल कक्ष' में करवा लें." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा के विरुद्ध

राजेंद्र राव

छोटे शहर का बड़ा लेखक

क्या छोटे शहरों में रहकर लिखने वाले लेखक 'बड़े' नहीं माने जा सकते? हिंदी कहानी का एक ध्रुव महानगरीय संत्रास है तो दूसरा आंचलिक या ग्रामीण प्रष्ठभूमि बीच में उपेक्षित रहकर बराबर कहानियां लिखने वाले छोटे शहर, शाहजहांपुर, के कथाकार हृदयेश ने 1951 में लिखना शुरू किया था. जीवन और साहित्य, दोनों में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए इस मध्यवर्गीय नौकरी-पेशा प्राणी ने जो संघर्ष जारी रखा, उसकी झलक उनकी कहानियों से मिलती है. 'हत्या', 'गांठ', 'सफेद घोड़ा काला सवार' और 'सांड' जैसे उपन्यासों के लेखक का हमारे कथा साहित्य में क्या योगदान है, इस पर विचार करने का कष्ट आलोचकों ने नहीं उठाया. 'अंधेरी गली का रास्ता', 'एक मरी हुई चिड़िया', 'हत्या' और 'बारात' जैसी कहानियों के माध्यम से हृदयेश की पाठकों तक सीधी पहुंच रही है इसलिये उनकी कृतियों के प्रकाशन का सिलसिला चलता रहा. उनकी रचनायात्रा अनवरत चल रही है. उनकी रचनाओं के माध्यम से छोटे शहर की जिंदगी के विभिन्न आयाम उभरे हैं और पाठकों ने चित्रित जीवनस्थितियों के प्रति संवेदनात्मक जुड़ाव का अनुभव किया है. अब समय आ गया है कि छोटे शहर के इस बड़े लेखक का ईमानदारी से मूल्यांकन किया जाये.

इसकी पहल भी छोटे शहर से ही हुई है याने शाहजहांपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'संदर्श' ने 'हृदयेश विशेषांक' प्रकाशित करके एक सराहनीय कार्य किया है, 267 पृष्ठ के इस अंक में आत्मकथ्य, बातचीत, दूसरों की नजर में, परिचर्चा, समीक्षाएं, डायरी और पत्राचार खंडों में हृदयेश से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री दी गई है. सबसे अच्छी बात यह है कि इसे अभिनंदन ग्रंथ का रूप देने से भरसक बचा गया है और हृदयेश के रचनाकर्म और व्यक्तित्व का वस्तुपरक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है. मधुरेश का संस्मरण, गर्दिश के दिन, डायरी और पत्रखंड उल्लेखनीय हैं. रमेश उपाध्याय के 4-1-77 के लिखे पत्र का एक अंश देखिये– "अपने कहानी-संग्रह पर आपकी राय पढ़कर आश्चर्य नहीं हुआ, न दुख ही. दरअसल आप जैसी सोच-समझ के लोगों के लिए वे कहानियां हैं भी नहीं. 'प्रतिमान' के लिए भेजी गयी कहानी को भी आपने सामान्य और कमजोर लिखा है ---- अपने उपन्यास की आलोचना न सह पाने के कारण जिस आक्रोश में आपने यह पत्र लिखा है, उसी के कारण यह सब कुछ हुआ है ---- आप अपनी महानता में खुश रहें, यही आपके लिये ठीक है."

सुधीर विद्यार्थी से हुई बातचीत में समांतर आंदोलन के बारे में हृदयेश की दो टूक राय भी गौर तलब है, "कमलेश्वर के इस पत्रिका (सारिका) से हटकर फिल्म जगत में जाने के बाद फिर यह आंदोलन खत्म हो गया. कुछ कहानीकारों ने स्वयं को कमलेश्वर पर इतना आश्रित बना लिया था कि कमलेश्वर के 'सारिका' से अलग हो जाने पर उनकी स्थिति हिंदू विधवाओं जैसी हो गयी."

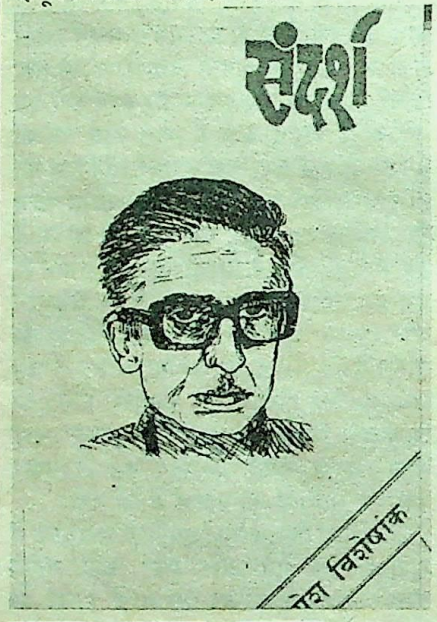

रचना, रचना, रचना

अधिकतर लघु पत्रिकाओं में सृजनात्मक साहित्य बहुत कम होता है और सैद्धांतिक लेख, उपदेशामृत आदि अधिक. अफलातूनी बहस-मुबाहिसों, तत्वचिंतन और आयातित वैचारिकी की भरमार अधिकांश पाठकों के सिर के ऊपर से गुजर जाती है. लघु पत्रिकाओं के सीमित साधनों को देखते हुए उन्हें पांडित्य प्रदर्शन का मंच बनाना कहां तक उचित है? अपवाद के रूप में दो सद्यप्रकाशित पत्रिकाओं के कहानी विशेषांक हमारे सामने हैं. राजस्थान के कांकरोली नाम के एक अचर्चित कस्बे से पिछले 21 वर्ष से लगातार प्रकाशित हो रही पत्रिका 'संबोधन' के कहानी विशेषांक 1987 में 17 कहानियां हैं– स्वयंप्रकाश, पुन्नी सिंह, बीर राजा, गुरुबचन जैसे जाने-माने लेखकों के साथ मदन मोहन, शोभानाथ शुक्ल, मधुसूदन पंड्या और गिरीश चंद्र श्रीवास्तव जैसे नये नामों की बहुत अच्छी कहानियां भी हैं. पंद्रह रुपये में यह पुस्तकाकार कहानी अंक किसी तरह भी महंगा नहीं है.

इसी क्रम में प्र.ले.सं. हरियाणा द्वारा प्रकाशित 'अथ' के कहानी विशेषांक में एक दर्जन कहानियां हैं, गिरिराज किशोर से लेकर सुकीर्ति गुप्ता तक. और ताज्जुब इस बात पर होता है कि बिना पारिश्रमिक दी जाने वाली भर्ती की कहानियां यहां नहीं हैं. यहां भी बाजी एकदम नये लोगों के हाथ रही है. हरजेंद्र

चौधरी, सुकीर्ति गुप्ता और अनिल ख्याल की आगामी रचनाएं पढ़ने की उत्सुकता रहेगी.

उन्माद के खिलाफ हिंदी कहानी का मोर्चा

गांधीजी के शब्दों में सांप्रदायिकता कोढ़ की तरह लाइलाज बीमारी है. यह बीमारी जिन जीवाणुओं से फैलती है उन्होंने हमारे सामाजिक ढांचे को अंदर ही अंदर धुन की तरह खाकर खोखला कर दिया है. 1947 से लेकर 87 तक सांप्रदायिक हिंसा-प्रति हिंसा का सिलसिला चला आ रहा है. भूख-बेरोजगारी-गरीबी-शोषण-उत्पीड़न, सांप्रदायिक उन्माद के सामने ये सब महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्दे गौण होकर रह गये हैं. धर्म, भाषा, जाति और क्षेत्रीयता से संबंधित विवाद जानबूझकर इसलिये उठाये जाते हैं कि इससे हमारा ध्यान मूलभूत समस्याओं पर केंद्रित न रह पाये. लेकिन नवंबर 84 में जो कुछ हुआ, उसने हम सबको बुरी तरह आहत कर दिया. एक बार तो ऐसा लगा कि हमारी राष्ट्रीय मुख्यधारा बेगुनाहों के खून से रंग कर अपनी निर्मलता खो बैठेगी. चारों ओर हैवानियत के नंगे नाच को देखकर शर्मसार होकर बैठने के अलावा अगर कुछ किया जा सकता था तो वह हिंदी कथाकारों ने किया. उन्होंने असलाह के जखीरे के मुकाबले कलम उठाई. मानसिक संकीर्णता के और तंगदिली के खिलाफ लिखी गयी कहानियों को लेकर सारिका ने सांप्रदायिकता विरोधी अंक निकला. इस तरह सुस्त और परंपरावादी समझी जाने वाली हिंदी की कहानी विधा ने एक जोरदार पहल की. इसी क्रम में 28 हिंदी कथाकारों की दंगों की प्रतिक्रिया स्वरूप लिखी गई कहानियों का एक महत्वपूर्ण कथासंकलन 'काला नवंबर' प्रकाशित हुआ है. इस संकलन का संपादन किया है सुरेंद्र तिवारी ने. इसमें

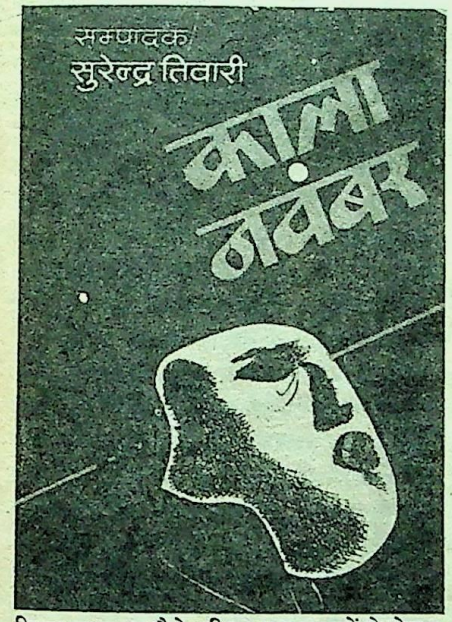

विष्णु प्रभाकर जैसे वरिष्ठ रचनाकारों से लेकर राकेश तिवारी जैसे युवा कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियां हैं जिनमें से अधिकांश चर्चित होती रही हैं. यहां हम 'सत्य को जीने की राह' (विष्णु प्रभाकर), 'एक मरा हुआ दिन' (महीप सिंह), 'भैय्या एक्सप्रेस' (अरुणप्रकाश) और 'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है?' (स्वयंप्रकाश) का विशेष उल्लेख करना चाहेंगे. काश इसमें नये कथाकार अमरीक सिंह दीप की कहानी 'कहां जायेगा सिद्धार्थ' भी संकलित हो पाती. बंद हो गयी साप्ताहिक पत्रिका 'परिवर्तन' में छपी यह सशक्त कहानी सांप्रदायिकता विरोधी रचनात्मक हस्तक्षेप की जीती जागती मिशाल है.

इतना अच्छा कथाकार !

शाम हो गयी थी. एक टी.वी. प्रोड्यूसर और 'बड़े' प्रगतिशील कथाकार किसी भी सूरत में चाय पीने को तैयार नहीं थे. उनके हिसाब से सागर-ओ-मीना के सामने होने का समय था. रास्ता लंबा था. हमने सुझाव दिया कि राह में एक युवा कथाकार का घर पड़ता है, समय निकालकर उनसे मिल लिया जाये. बेमन से दोनों ने हामी भरी. युवा कथाकार उन दो महान हस्तियों को अपने घर आया देखकर हर्षित हुए. हमने परिचय कराया कि उनकी कहानियां अमुक-अमुक पत्रिकाओं में छपी हैं, चर्चित भी हुई हैं, लेकिन ऐसा लगा कि दोनों महानों ने उनकी कोई भी रचना नहीं पढ़ी थी.

युवा कथाकार ने हमारी ओर देख कर पूछा, 'बताइये क्या चलेगी, कौफी या चाय?' हमने दोनों साथियों के चेहरे पर विरक्ति के भाव उठते देखकर कहा, "भैय्या, ये लोग तो ठंडी चाय पीने के मूड में हैं."

"नो प्राब्लम. क्या लेंगे, व्हिस्की या रम? दोनों हैं." देखते ही देखते बीच की सजावटी मेज पर बोतलें, गिलास और तले हुए काजू लग गये. टी.वी. प्रोड्यूसर और प्रगतिवादी कथाकार की बांछें खिल उठीं. "अरे वाह! ये इतने अच्छे कथाकार हैं ये तो आपने पहले बताया ही नहीं था. इनकी कहानियां तो अब ढूंढ कर पढ़नी पड़ेंगी." उन दोनों ने सम्मिलित स्वर में कहा.

वहां से चले तो फिर एक बार शिकायत सुननी पड़ी. "ये इतने अच्छे कथाकार हैं यह आपने पहले क्यों नहीं बताया राजेंद्र भाई!"

पुरस्कार विजेता का जलवा

पिछले दिनों संपन्न हुई एक कथा प्रतियोगिता में पुरस्कृत एक युवालेखक से हमारे एक मित्र ने अपनी लघुपत्रिका के लिए कहानी भेजने का अनुरोध किया और कहानी उनके पास पहुंच भी गयी. हस्तलिखित रचना को पढ़कर वह हैरान रह गये. व्याकरण और हिज्जे की गलतियों की ऐसी भरमार थी कि अगर लेखक पुरस्कृत होने के कारण चर्चित और यत्रतत्र खूब प्रकाशित न हुआ होता तो रचना लौटती डाक से वापिस भेज दी जाती. प्रकाशित करने के पहले उस कहानी का लगभग पुनर्लेखन करना पड़ा. नमूने के तौर पर उनकी लिखावट की जो बानगी संपादक मित्र ने हमें दिखाई है उसका आनंद आप भी लें—
रिछ (रीछ), दान्त (दांत), यानि (यानी), बडोल (बेडौल), प्रसंशा (प्रशंसा), जनलर (जनरल), वट (वट-अंग्रेजी का), पैन (पेन), एडिसन्ज (एडिशन्स), ठोडी (ठोड़ी), एस्ट्रे (एशट्रे), रिएक्सन, फराम, सिल्लेट, बढ़ाया, आदि. □

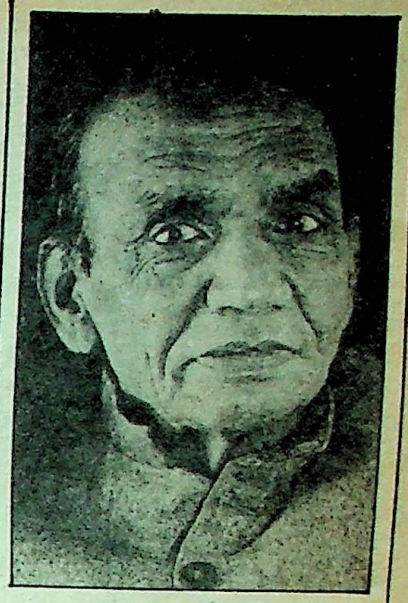

हंसराज रहबर

शुभकामनाएं

प्रख्यात कवि-कथाकार-विचारक हंसराज रहबर जहां इस माह अपने जीवन के पिचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं वहीं लंबे समय से देश के लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में अपने चित्रों और कला-आलेखों के जरिए छाये रहने वाले चिंतनशील कलाकार भाऊ समर्थ जीवन के साठ वर्ष पूरे कर रहे हैं.
सृजन-संघर्ष को समर्पित इन विभूतियों को इस शुभ अवसर पर 'सारिका-परिवार' की शुभकामनाएं....कि ये साहित्य और कला को लंबे समय तक समृद्ध करते रहें.

भाऊ समर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिप्रकाश त्यागी

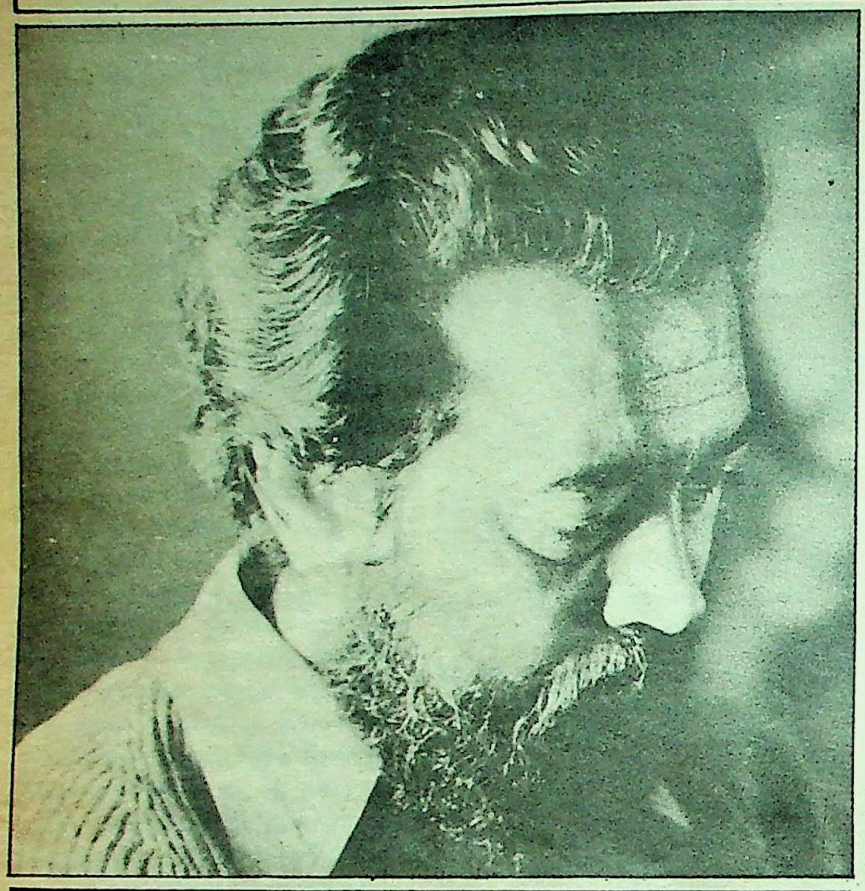

मानवीय संबंधों के एक्स रेज़

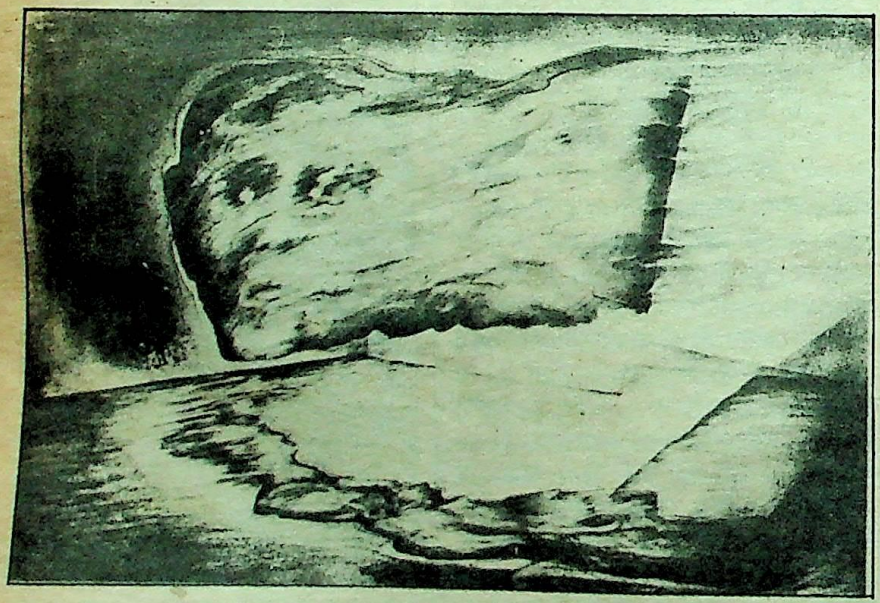

ऐसा जान पड़ता है कि सुविधाजीवी कलाकार अपनी शैली और सोच से इतना अधिक बंध जाता हो कि वह नयी खोजों और मानवीय चेतना के आयामों से आंखें मूंदे रहता है. इस कारण उसकी कला को 'टाइप्ड' माना जाने लगता है. ये चित्रकार अपनी शैली की दक्षता और विकास पर इतना अधिक ध्यान देते हैं या तकनीक को इतना अधिक विकसित कर लेते हैं कि उसका संबंध मन से न होकर मस्तिष्क से हो जाता है जिसके कारण इनकी कला मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति को संप्रेषित नहीं करतीं और गिर्फ दिमागी खुराफात भर दिखाई पड़ने लगती हैं.

दूसरी ओर अल्प आयवाले ऐसे कलाकार हैं जिनकी सोच मानवीय संवेदनाओं और जीवन से गंभीरता से जुड़ी हुई है. ये कलाकार जीवन के भौतिक स्वरूप को नहीं देखते, बल्कि वे जीवन से जीवन, और मानवीय संवेदनाओं को कला की गहराई से अभिव्यक्त कर मानसिक धरातल पर आसानी से संप्रेरित कर देते हैं. वे 'टाइप्ड' होना पसंद नहीं करते तथा लगातार कला के मानवीय आधार व आयाम खोजने में लगे रहते हैं. वे अपनी शैली में बदलाव व काम करने के तरीकों में बदलाव, तकनीक और माध्यम बदलने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करते. वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि अगर उनकी कलाकृति विशिष्ट शैली के कारण बिकने लगी है, तो शैली में बदलाव होने के कारण शायद बिकना बंद हो जाये, यानी ये कलाकार शैली और तकनीक को अनुभूत भावनाओं पर हावी नहीं होने देते, भले ही आर्थिक और व्यावसायिक दबाव में काम कर रहे हों. वे कला को मानवीय भावनाओं से जुड़ा ऐसा माध्यम मानते हैं, जिसकी पहली शर्त संप्रेषणीयता होती है.

के. खोसा (सारिका, मई 1986) ऐसे चित्रकार हैं जो अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं, उनकी सोच और कला-यात्रा से सारिका के पाठक परिचित हैं ही परंतु पिछले दिनों के, खोसा ने अपने को सार्थकता के साथ जोड़ने और अभिव्यक्ति को संप्रेषित करने के लिए नाटक को भी माध्यम बनाया. एम. मुकुंदन की कहानी 'विराजपेट्टा से आयी औरत' के आधार पर मंचित नाटक में के. खोसा के चित्रों ने नाटक की गंभीरता को ही अभिव्यक्त नहीं किया. बल्कि नाटक के पात्रों की अभिव्यक्ति को भी सार्थकता प्रदान करते हुये, नये आयामों की खोज की. (सारिका, दिसंबर, 1987)

हाल ही में के. खोसा ने अपने को अभिव्यक्त करने के लिए नयी तकनीक और माध्यम को आधार बनाया है. के. खोसा के प्रारंभिक दौर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

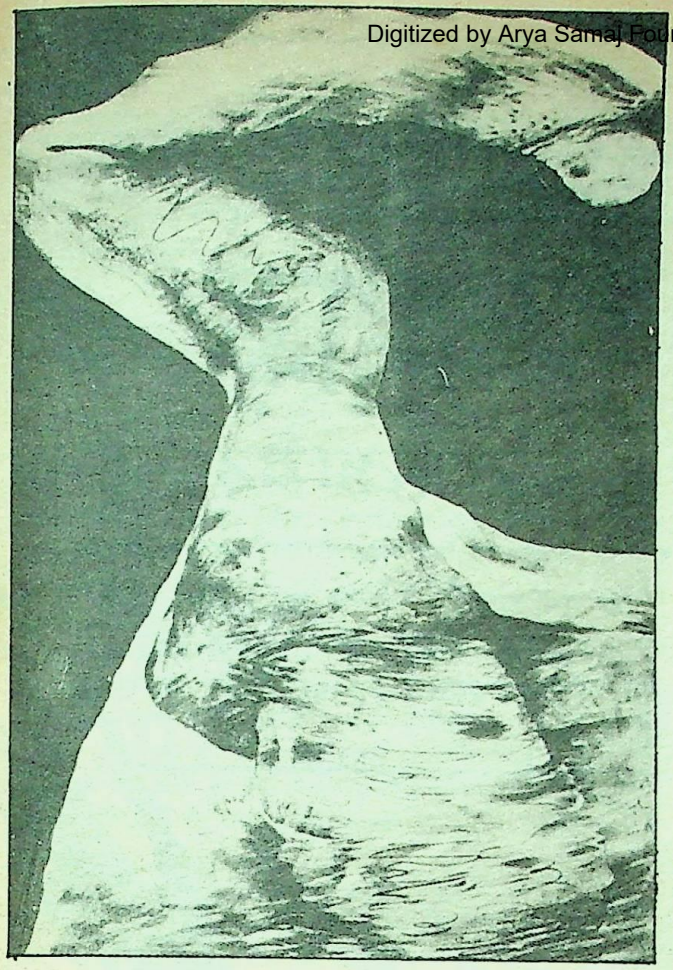

चित्र प्रकृतिजन्य रहस्यों से जुड़े रहे तो बीच के दौर के चित्र सामाजिक विसंगताओं को अभिव्यक्त करते रहे हैं, परंतु हाल ही में बने चित्रों का विषय एक ही है: नर-नारी संबंध जो व्यक्तिगत अनुभव से प्रभावित लगते हैं. के. खोसा का कला अनुभव विकसित होकर एक ऐसे व्यक्तिगत बिंदु पर पहुंचता है जहां यह व्यक्तिगत कला-बिंदु पूरे समाज को अनुभूत सत्य-सा प्रतीत होता है. यानी खोसा अपनी सोच की गहराई में अधिक संशलिष्ट और कला अभिव्यक्ति में अधिक सरल और सहज हुए हैं.

के. खोसा के नये चित्र श्वेत-श्याम रंगों में हैं. विभिन्न पैंसिल रंगों की सतहें से तैयार इन चित्रों में के. खोसा ने रंगों का प्रयोग नाममात्र को ही किया है. कैनवास के स्थान पर ट्रेसिंग पेपर, प्लास्टिक कोटेड ट्रेसिंग पेपर और पतंग बनानेवाले कुरमुरे कागज पर पैंसिल द्वारा इन चित्रों की रचना की गयी है.

ट्रेसिंग पेपर के धरातल पर पैंसिल कहीं रेखा के रूप में उभरती दिखाई देती है तो कहीं पैंसिल रंग की सतहें हल्का और गहरा बनाती हुई नर-नारी देहाकारों को बादल-चट्टान, पानी और हवा में बदलती हुई, कठोर तथा तरल बनाती हुई आगे खिसकती है. ट्रेसिंग पेपर अपने पारदर्शीय भौतिक गुण के कारण फिल्म पर बनाये गये चित्रों जैसा प्रभाव पैदा करता है.

समकालीन युवा चित्रकारों में के. खोसा का नाम अगली कतार में आता है. के. खोसा ऐसे चित्रकार हैं जो अपनी शैली और तकनीक बदलते रहने के बावजूद अलग पहचान रखते हैं. यहां प्रस्तुत है इस माह होने वाली उनकी प्रदर्शनी के कुछ रेखाचित्र और हरिप्रकाश त्यागी की टिप्पणी...

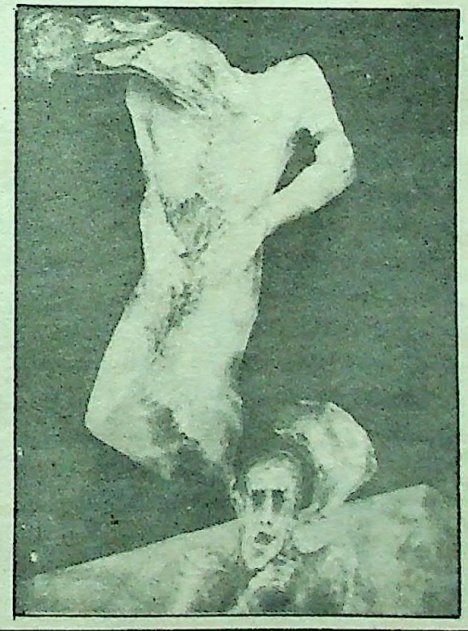

इरेजर और पैंसिल जितनी सुनिश्चित है, संयोजन उतना ही संतुलित.

इन नर-नारी रूपाकारों के द्वारा के. खोसा ने बिस्तर पर घटनेवाली क्रिया-प्रक्रियाओं को खाली आंख या भौतिक दृष्टि से अभिव्यक्त नहीं किया है. उन्होंने सोच, अनुभव और कल्पना, के द्वारा मानसिक दुविधा, संतोष संताप और सम्मोहन को पवर्ताकार रूप में कागज पर निचोड़ा है इसलिए नर-नारी देहाकार कहीं बर्फ की तरह पिघलते हैं तो कहीं चट्टानों आकार लेकर हवाएं बादलों की तरह उड़ती-फैलती हैं.

के. खोसा अपने इन चित्रों के वातावरण से सुपरिचित हैं. बीच के दौर में बनाये चित्रों में के. खोसा स्पेस और दृष्टिगत बाहरी वातावरण को भी सुनिश्चित करते थे, तो इन चित्रों में बाहरी वातावरण की दृष्टिगत वस्तुएं न के बराबर हैं जो हैं वे भी इस वातावरण में अपना आकार फंसाती-रूप में ही ग्रहण करती हुई मुख्य विषय से अपना सार्थक तालमेल बिठाती हैं. भौतिक दुनिया की वस्तुओं से छुटकारा पाने के कारण खोसा बताते हैं, ''टुकड़ों-टुकड़ों में मुखौटे पहने आदमी को जान लेना, पहचान लेना ही मुश्किल है, इसलिए अभी तो मैं इस बिना मुखौटे पहने आदमी के सौंदर्य को महसूस करने और ईमानदारी से अभिव्यक्त करने में लगा हुं.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ वेदिका वेद
संप्रति : डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून, छात्र-संघ के अध्यक्ष.
कथालेखन में विशेष रुचि.

पहाड़

वेदिका वेद

सर्प की तरह बल खाती हुई सफेद पगडंडी पर सहसा रुककर जब स्त्री पीछे मुड़ती और अपनी भाषा में चिल्लाती तो बच्चा भाग-भागकर फिर से स्त्री के पीछे हो लेता. कभी वह उसके कदम से कदम मिलाने की कोशिश करता और फिर गिरते-गिरते बैठ जाता. तब उसे हल्की-सी झिड़की मिलती और वह फिर चुपचाप स्त्री की उंगली पकड़े चलने लगता.

बच्चा घुटनों तक झूलता हुआ मलेशिया का कुरता पहने था. उसके पांव नंगे थे और सिर के कुतरे हुए बाल ऐसे लगते मानो चूड़ाकर्म करने से पहले ही किसी दुर्भाग्य के कारण काटे गये हों. स्त्री का चेहरा किसी गहरे विशाद में डूबा हुआ था. उसने कमर में घास काटनेवाली दराती खोंस रखी थी. रास्ता मीलों से खामोश चला आ रहा था.

"ये देखो बोये, ये देखो!" बच्चा पगडंडी के किनारे ठंडी, नम दीवारों पर खिले फर्यांली के पीले-पीले फूलों को देखकर चहक उठता और बड़ी मुस्तैदी के साथ झटपट उन्हें तोड़ने में लग जाता. यह देखकर स्त्री माथा पीट लेती और मुंह से कर्कश गालियां उगलती पीछे लौटती और फिर उसे खींचकर चलना शुरू कर देती. गालियां देते-देते अचानक स्त्री अपनी ही कही बातों पर कुछ सोच पड़ती और फिर सहसा फूट-फूटकर रोने लगती. पहाड़ पल भर में द्रवित हो उठते. बच्चा कुछ न समझ पाता. उसका चेहरा भी तब जैसे रोने-रोने को हो आता. वह एक बार स्त्री के

"शहर क्या होता है?" बच्चा फिर पूछता तो स्त्री बताती कि "जहां लोहे के ऊंचे ऊंचे मकान होते हैं, जहां गाड़ियां हर वक्त दौड़ती रहती हैं और जहां रात नहीं होती."

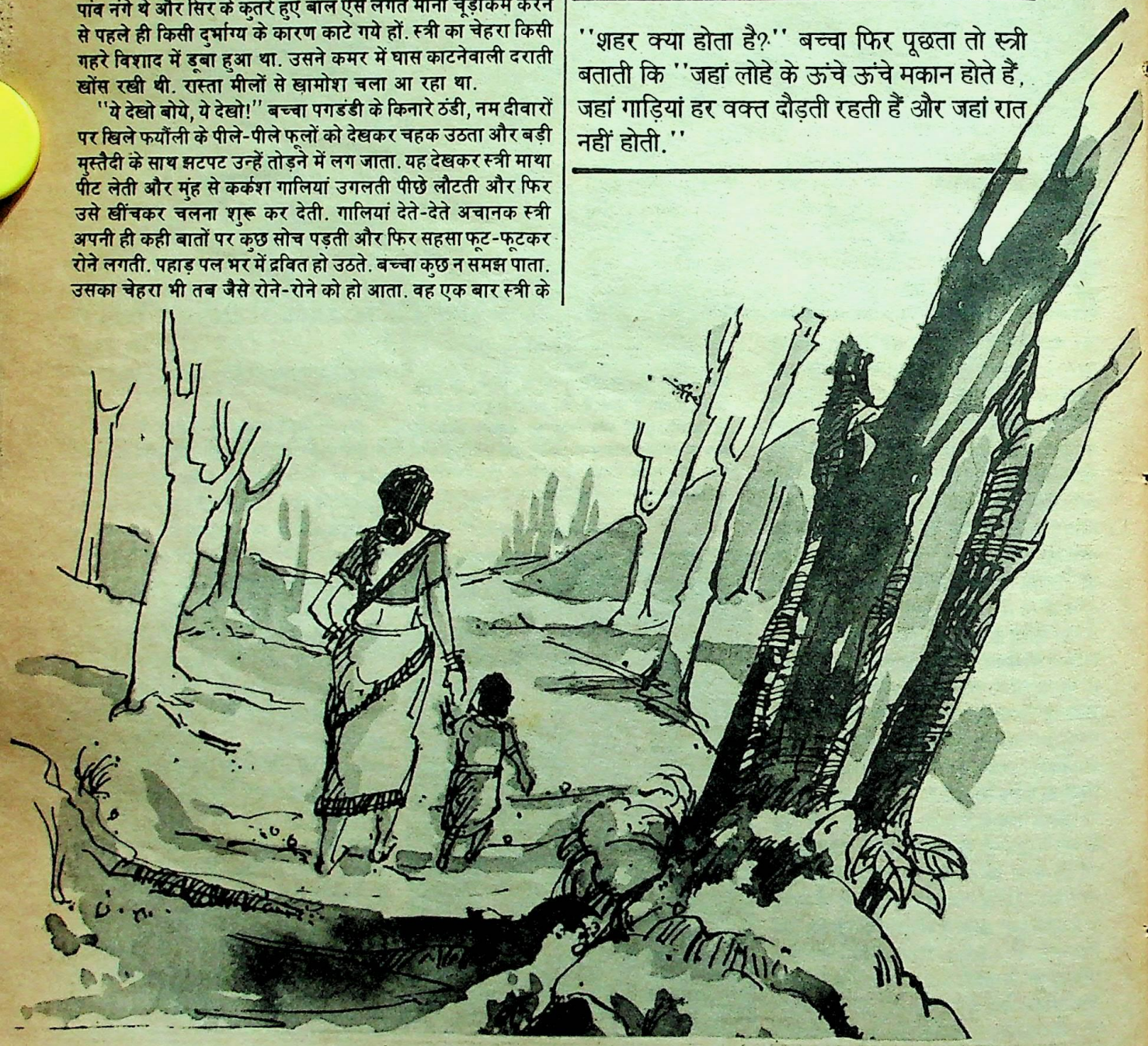

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवांकुर

देश के तमाम महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के जरिये आज कैसी प्रतिभाएं सामने आ रही हैं, लेखन के प्रति उनमें कैसा लगाव है...और रचनात्मकता के संदर्भ में वे क्या सोच रहे हैं. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसी नयी प्रतिभाओं की तलाश करते हुए हर माह एक उभरते रचनाकार की कहानी प्रकाशित की जायेगी. रचना भेजते समय यह न भूलें कि अपने विभागाध्यक्ष अथवा संस्थान के प्रधान का इस आशय का प्रमाण पत्र भेजना अनिवार्य है रचनाकार संस्थान में अध्ययनरत है और 'सारिका कहानी मंच' का सदस्य है.

यदि आपकी संस्था में 'सारिका कहानी मंच' नहीं है और आप विधिवत इसका गठन करना चाहते हैं तो 'नवांकुर' स्तंभ के कूपन की कटिंग लिफाफे पर पते के साथ चिपका कर संपादक से पत्र व्यवहार करें? रचनाएं भेजते समय भी कूपन का प्रयोग अनिवार्य है.

विशाद भरे चेहरे की ओर देखता तो दूसरी बार मुट्ठी में फंसे अपने फूलों पर. कुछ देर बाद स्त्री उसे कंधे में बिठाये चलने लगती है और बच्चा तब मजे से दोनों तरफ अपने पांवों को झुलाता उसकी कानों में लटकती नकली बालियों से खेलने लग जाता.

वे जब अपने गांव से चले थे तो स्त्री के बूढ़े और अशक्त ससुर व गांव के एक भले कुत्ते ने काफी दूर तक उन्हें विदाई दी थी.

"अब मैं तुम्हें देवी चंद्रबदनी के भरोसे छोड़ता हूं!" विदा होते वक्त बूढ़ा आसमान की ओर देखते हुए बच्चों की तरह रो पड़ा, पर उसकी आंखों के आंसू बीते हुए महीनों ने सोख लिये थे. स्त्री ने सिसकियां भरी थीं और बिछड़ते हुए सिर्फ इतना ही कहा था, "अपना खयाल रखना ज्यू!"

धीरे-धीरे गांव लुका-छिपी करता दूर होता गया और फिर देखते-देखते अचानक पहाड़ी के पीछे सरक गया. ब्यूंल, तिमले, बयड़ व आम के सगे से पेड़ एक-एक कर पीछे छूटते चले गये. कुत्ता भी काफी दूर तक उनके साथ चला और फिर उसी तरह चुपचाप पैदल वापस लौट गया.

पतझड़ के इन अंतिम और उदास दिनों में मैदानों की तरफ से धीरे-धीरे वसन्त शुरू होने लग गया था. और दूर तलक पहाड़ की ढलानों में गुमसुम से खड़े पेड़ों की नंगी शाखाओं पर श्वेत हरियाली लिये नन्हीं-नन्हीं कोंपलें फूल रही थीं. पगडंडी के ऊपर जब कभी-कभार हल्की-सी हवा चलती तो इक्का-दुक्का पेड़ों से फड़फड़ाकर पीलापन लिए हुए वे पत्ते गिर-गिर पड़ते जो टहनियों से नाता तो कभी का तोड़ चुके थे लेकिन हवा की हल्की-सी थपकी की इंतजार में बस, अभी तक चिपके हुए थे और फिर हवा में तैरते-लुढ़कते वे दूर अनंत में विलीन हो जाते.

"हम कहां जा रहे हैं? क्या बताया था तूने?" बच्चा बार-बार सहज तोतलेपन से अपनी भाषा में जब स्त्री से पूछता तो स्त्री हमेशा ही एक थका हुआ सा जवाब देती, "हम शहर जा रहे हैं."

"शहर क्या होता है?" बच्चा फिर पूछता तो स्त्री बताती कि "जहां लोहे के ऊंचे-ऊंचे मकान होते हैं, जहां गाड़ियां हर वक्त दौड़ती रहती हैं और जहां रात नहीं होती."

"पर हम वहां जा क्यों रहे हैं?" बच्चा जब यह पूछ बैठता तो स्त्री कोई जवाब नहीं दे पाती. वह चुपचाप जमीन को घूरती हुई चलती रहती और सहसा किसी गहरे सोच में फिर से डूब जाती. बच्चा यह सब देखकर चुप हो जाता. किसी गहरी आशंका के कारण जैसे तब वह डर सा जाता और घाटियों की तरफ अपनी उदास नजरें छुपा लेता.

"मैं तो वापस गांव जाऊंगा!" रुआंसा होकर कुछ देर बाद वह स्वयं ही नाराजगी से भर उठता अपना मुंह फुला लेता पर स्त्री कुछ नहीं कहती...कुछ भी तो नहीं.

काफी दूर तलक वे खामोश पहाड़ों के साथ चलते चले जाते हैं.

'सरग दंदा पाणि-पाणि!' की आवाज करता चोल पक्षी आसमान में उठता और पंख फैलाये घाटी के ऊपर स्थिर हो गया.

"वो देखो, वो देखो!" बच्चा उछल पड़ता है और स्त्री के पांवों पर लिपट-लिपटकर अपनी ताकत भर से उसे रोक लेता है. फिर जब वे चलने लगते हैं तो स्त्री उसे बताती है कि वह प्यासा पंछी है जो पानी ढूंढ रहा है. भगवान ने उसे शाप दिया है इसलिए कि उसने अपने बैलों को पानी नहीं पिलाया.

फिर बच्चा चोल पक्षी, भगवान और बैलों के बारे में तरह-तरह के सवाल पूछता रहता है.

"पर क्या अब हम वापस नहीं लौटेंगे?" बच्चा चिंतित स्वर में पूछ बैठता तो स्त्री भोलेपन से उसे जवाब देती, "नहीं छोरे, हम लौटेंगे! तब तक दादा जो हमारी बाट देखता रहेगा."

"और दादा का तंबाकू अब कौन भरेगा?" बच्चा अचानक जिज्ञासा से पूछ बैठता है तो स्त्री की हंसी छिटक जाती है. बच्चा किलकारी मारता, ताली पीटता उछल पड़ता है. उसने पहली बार मां का हंस पड़ता हुआ चेहरा देखा जो उसे बहुत ही सुंदर और भला लगा. उसे जैसे तुरंत ही आभास हो आया कि उसने कोई बुरी बात नहीं पूछी है लेकिन स्त्री का हंसमुख चेहरा फिर उदास हो जाता है और फिर देखते-देखते मुरझा जाता है.

ढलान के बाद गहरी घाटी शुरू हो जाती है. छोटे-बड़े असंख्य पत्थरों के बीच से दूधिया झाग उगलती नदी की आवाज से संपूर्ण घाटी एक विचित्र खामोशी में डूब जाती है. सामने नदी के पार छाया की हल्की-सी लंबी चली गयी रेखा बताती है कि दिन ढलना शुरू हो गया है. फिर नदी के किनारे-किनारे जंगल को छूती हुई पगडंडी से वे तेज-तेज कदमों से आगे बढ़ जाते हैं.

कुछ ही दूर रास्ते के किनारे पर पेड़ के एक बड़े से तने को देखकर बच्चा उंगली छुड़ाकर भागता है और पलभर में उस पर बने बड़े से छेद से दूसरी तरफ निकल जाता है. स्त्री भागते हुए दूसरी तरफ सहसा उसे पकड़ लेती है और फिर एक हल्का-सा थप्पड़ लगाकर उसे खींचते-खींचते ले चलती है. बच्चा रो पड़ता है. उसकी आंसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें झरने की तरह गालों से नीचे ढलकने लगती हैं और उसके गाल लाल हो उठते हैं. आसपास का वातावरण कुछ देर के लिए करुण हो जाताहै और हंसुर, किनगोड़े की झाड़ियों के ऊपर चिड़ियों की चहचहाट सहसा रुक जाती है. फिर काफी दूर तक बीच-बीच में बच्चे का रोता हुआ अलाप सुनाई देता रहता है.

"तुझ छोकरे के लिए ही मुझे यह दिन देखने पड़ रहे हैं." स्त्री चलते-चलते कहने लगती है, "अगर तू ही न होता तो..." सहसा स्त्री सहम जाती है और फिर अपनी किस्मत को दोष देते-देते उसकी आंखें नम हो उठती हैं.

"क्या उस पर किसी ने कुल्हाड़ी चलायी थी?" तभी बच्चा एक हाथ से अपने आंसू पोछते हुए सिसकते-सिसकते पूछ बैठता है.

"नहीं! वह छोटे से ही ऐसा रहा होगा." स्त्री शांत भाव से जवाब देती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और बच्चा स्त्री के पीछे खिंचते-खिंचते फिर उसी तरह मनचाहा रोना रोने लगता है.

कुछ देर बाद एक घने और अंधेरे जंगल के बीच से वे जल्दी-जल्दी पग भर रहे होते हैं, जैसे शाम होने से पहले ही वे कहीं पहुंच जाना चाहते हों. फिर देखते-देखते वे दूर होते चले गये और तरह-तरह के कोलाहल से पल भर के लिए ठिठक गया जंगल फिर से डरावना लगने लगता है.

अंधेरा होने के कुछ पहले ही वे ढलान पर बसे छोटे से गांव में दाखिल हो जाते हैं. एक साथ कई कुत्तों के भौंकने की आवाजें आती हैं जो फिर क्रमशः धीमे होने लगती हैं. और फिर पत्थर के बने एक घर के बाहर वे सहमे से खड़े दिखाई देते हैं. क्षण भर बाद ही एक बुढ़िया लकड़ी के सहारे बाहर निकलती है और गहराई से आगंतुकों को पहचानने की कोशिश करते हुए उनसे नाम-पता पूछती है. स्त्री झिझकते-सहमते अपनी भाषा में कुछ कहती है फिर सहसा रुककर बच्चे की ओर देखती है. बच्चा फौरन अपने दादा का नाम बता देता है. सुनते ही वह उनकी ओर बढ़ जाती है और स्त्री को बच्ची की तरह अपने अंक में समेटे फफक पड़ती है. काफी देर तक बुढ़िया और स्त्री का सामूहिक रुदन सुनाई देता है. फिर बुढ़िया बच्चे की ओर झुककर उसका माथा चूमने लगती है और उसके खुरदरे सर पर बार-बार हाथ फेरते हुए रुआंसे स्वर में बुदबुदाती है, "निरभागे! तूने कैसे अपने बाबू को डस लिया!"

बच्चा चुप रहता है. घने अंधेरे की तरह एक अपराध भाव उसके चेहरे पर छा जाता है. फिर कुछ देर बाद वे अंदर चले जाते हैं.

परिवर्तन

श्याम बिल्लौरे

उस दिन अपनी परिचित-चींटी को रास्ते में रोककर मैंने कहा, "आजकल तो तुम्हारे कीट-पतंग जगत में परिवर्तन की लहर-सी आयी हुई है."

चींटी ने शक्कर का दाना एक ओर रखकर पूछा, "भला वह कैसे?"

मैं बोला, "देख रहा हूं कि तुममें से कई चीटियां आटे और शक्कर का स्टॉक अपने घर में जमा करने के बजाय उन्हें गरीबों में खुले हाथों बांट रही हैं. एक जोंक प्याऊ खोलकर बैठी है. कुछ तितलियां फूलों का रस चूसने के बजाय पौधों पर पानी छिड़क रही हैं. गुबरैले साफ सफाई में जुटे हैं. घोंघा बौड़कर लोगों के काम कर रहा है. यहां तक कि मच्छर कुनैन बांट रहे हैं. और कुछ खटमल रक्त दान भी कर रहे हैं."

आगे पूछा, "आदतों में यह बदलाव कैसा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम लोगों में भी किसी भगवान, महर्षि, बाबा या योगी का अवतार हो गया है, और उसके उपदेशों के कारण आधार और विचार-परिवर्तन की यह क्रांति घटित हो रही है?"

चींटी बोली, "जी ऐसा तो कुछ नहीं है. हां, याद आया, हमारे यहां अगले महीने आम चुनाव जरूर हो रहे हैं." □

थोड़ी देर बाद ही एक बूढ़ा और एक जवान लड़का मिट्टी से सने कहीं बाहर से आते हैं और फिर लोहे के अपने औजारों को छान के बाहर रखकर उसी घर में दाखिल हो जाते हैं. स्त्री का क्रंदन फिर सुनाई देता है. फिर धीरे-धीरे शांति छा जाती है.

कुछ देर बाद धीमी-धीमी बातचीत सुनाई देने लगती है.

स्त्री बताती है कि, "शहर से उन्हें पोस्टकार्ड आया है. वकील ने उसे बुलाया है."

फिर लड़के की आवाज सुनाई पड़ती है जिससे पता लगता है कि वह कुछ कानूनी बातें बता रहा है.

"सुनकर हमें बहुत दुख हुआ. लेकिन ईश्वर के आगे हम बहुत छोटे हैं." बूढ़े की भर्रायी हुई आवाज सुनायी पड़ती है.

स्त्री बताती है कि, "पिछली दीवाली में उन्होंने घर आने को कहा था उसने एक दिन पहले ही वे रात को पत्थर लादे जब खान से उतर रहे थे तो सीधी उतराई वाली पगडंडीनुमा सड़क पर एक किनारे टायर पड़ते ही जमीन धंस पड़ी और ट्रक ने नीचे की तरफ लुढ़कना शुरू कर दिया. फिर ट्रक ने कई पलटे खाये और..." स्त्री सुबक पड़ी.

बूढ़े ने उसको फिर ढाढस बंधाया और ईश्वर का नाम लेकर मृत आत्मा के लिए शांति की कामना की.

कुछ देर बाद रुंधे स्वर से स्त्री फिर बोलने लगी, "नदी के दूसरी तरफ बसे गांव के लोगों ने पहाड़ी पर से किसी भारी चीज के गिरने की आवाज सुनी तो मशालें जलाये जंगल से गुजरते हुए वे नदी की तरफ उतर पड़े. उन्होंने वहां काफी खोजबीन की. फिर रात ही उन्होंने नजदीक शहर में घटना की खबर भिजवायी. सुबह जाकर ही मालिक और दूसरे लोग वहां पहुंचे लेकिन मटमैले पानी और तेज बहाव के कारण कुछ पता नहीं लग पाया....सारी पहाड़ी पर पत्थर और कांच के टुकड़े बिखरते चले गये थे. एक झाड़ी पर एक पोटली अटकी हुई मिली जिसमें उनके कपड़े थे." फिर कुछ देर तक कमरे में खामोशी छा जाती है जैसे दुःख के अथाह सागर में सारा परिवार डूब गया हो. कमरे में रोशनी दप-दप करने लगती है जो थोड़ी देर बाद अपने आप ही फिर ठीक हो जाती है. सामने छान से बैलों के रंभाने की आवाज आती है.

बाद में स्त्री खानों के मालिक का कुल नष्ट हो जाने की मनौती करती रहती है.

पहाड़ों में डैने फैलाये बाज की तरह जल्दी ही रात उतर आती है.

फिर देखते-देखते गांव, पहाड़, घाटियों, जंगल...सब कुछ काले और डरावने अंधेरे में खो जाते हैं लेकिन दूर घाटियों के बीच नदी का पानी निरंतर शोर गुल करता निस्तेज खामोशी को चीरता हुआ मैदानों की ओर भागता रहता है...भागता रहता है. रात गहरी होते ही टीं-टीं की आवाज करते पक्षियों का झुंड कतारबद्ध आसमान में दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर दौड़ जाता है और अंधेरे में ही पत्तें में छुपी कफुआ चिड़िया चिल्लाने लगती है– "फालगुन गया, चैत आया, काफल तक पक गये लेकिन मैंने नहीं चखे!"

सोने से पहले स्त्री सोचती है कि सुबह छह बजते ही अब उन्हें बस पकड़कर फिर से आगे की ओर चल देना होगा, एक भारी-सा डर उसके सीने में बैठ जाता है.

बच्चा, जो बिना कुछ खाये ही बहुत पहले सो गया था, एक सपना देखता है कि वह एक बड़े से लोहे के अहाते में दुबका ऊंघ रहा है और स्त्री धीरे-धीरे सांस लेती हुई गहरी निद्रा में देखती है कि कोर्ट में तरह तरह के कागजों पर उसके अंगूठे के छापे लगवाये जा रहे हैं और फिर वकील कहता है कि उसे दो महीने बाद फिर आना होगा.

घने अंधेरे में छुपी कफुंआ चिड़िया फिर बोलने लगती है, तब से निरंतर करुणा स्वर में बोलती रहती है.

"इस बार पहाड़ों में गर्मी लेकर आयेगा–बसंत!" क्षण भर के लिए नींद से जग गये लोग सोचते हैं और घाटी की तरफ नदी का शोर और अधिक गहरा हो जाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

प्रेमचंद का कत्ल हो रहा है

दूरदर्शन पर आजकल प्रेमचंद की कहानियों का साप्ताहिक कत्ल हो रहा है और प्रेमचंद की परंपरा में पलने-पुसने वाले एवं उसे आगे बढ़ाने का सच्चा संकल्प करने वाले लोग इस कत्ल को हर हफ्ते देख रहे हैं. इससे पहले 'अमृता' में कुछ महाकवियों की कविताओं की साप्ताहिक बेइज्जती की जाती रही. किंतु तमाम संवेदनशील लोग और रचनाकार सदा की तरह शुतुरमुर्गी मुद्रा अपनाये रहे. संचार माध्यमों के बिना जिनका काम ही नहीं चलसकता, ऐसे साहित्यकर्मियों की यह शुतुरमुर्गी मुद्रा माध्यमों और साहित्य के अंतः संबंधों पर एक शोचनीय टिप्पणी है.

प्रेमचंद की कहानियों की दूरदर्शन पर प्रस्तुतियां अक्सर होती रही हैं. कई बार उनके अच्छे नाट्य रूपातंर भी दिखाये गये हैं. किंतु हिंदी के इस कथा-पितामह के साथ प्रायः अन्यान्य ही हुआ है. 'जेवर का डिब्बा' (नाटक) और 'सद्गति' (टेली फिल्म) को या रघुवीर सहाय द्वारा नाट्य रूपांतरित की गयी एक अन्य कहानी की प्रस्तुति को छोड़ दें तो प्रेमचंद के नाम पर हमें जो कुछ दिखाया जाता रहा है, वह उनको व्यर्थ बना डालने वाला है.

प्रेमचंद की कहानियों में वर्णनात्मकता और अकृत्रिम नाटकीयता है. उनके चरित्र दृश्य प्रस्तुति के लिए अतिरिक्त श्रम की, कल्पना एवं प्रतिभा की वास्तविक मांग करते रहे हैं. प्रेमचंद ने अपनी कथायें जिस वक्त लिखीं उस वक्त संचार माध्यमों का इतना जोरनहीं था. यद्यपि फिल्मों में 'पटकथा' पर उतना स्पष्ट जोर उनके समय में शुरू नहीं हुआ था, फिर भी हर फिल्म को एक अच्छी पटकथा का आधार जरूरी तो होता ही था. उनके फिल्मों में असफल रहने के अन्य कारणों में एक कारण यह भी रहा कि वे कथाकार थे, पटकथा लेखक नहीं.

प्रेमचंद की कहानियों को यदि हम फिल्म बनाने के लिए चुनें तो प्रथमतः हम निराश होते हैं क्योंकि वहां चाक्षुष दृश्यों के प्रति वैसी सचेतनता नहीं दिखती. दृश्य बांधते हुए भी, उनकी कहानियों में बहुत कुछ पाठक के सहज ज्ञान और कल्पना पर छोड़ दिया जाता है. दृश्य विवरणों, नाट्य प्रसंगों के बीच पात्रों, परिस्थितियों और कथा-उद्देश्य को समझाने वाले नीति वाक्य भी बीच-बीच में होते हैं. यह पुरानी किस्सागोई की शैली है जो प्रेमचंद अत्यंत सहजता से इस्तेमाल करते हैं. प्रेमचंद की कहानियों का ताना बाना इस तरह कई रंगों वाला है. एक ही वक्त में वे यथार्थवादी और आधुनिक हैं, वहीं नाटकीयता लिए भी हैं, कहीं उसमें विवरणात्मकता है, कहीं दृश्य-व्यंजना, कहीं सूक्तियां चलती हैं तो कहीं सांकेतिकता. और ये तमाम बातें उनकी तमाम कहानियों में मौजूद है. ऐसे में उनके कथा के मर्म को समझना ही काफी नहीं, उस कहानी को उतनी ही मार्मिकता के साथ रूपांतरित करने की क्षमता भी बेहद जरूरी है. इसीलिए, 'सद्गति' जैसी अत्यंत लघु कहानी में भी सत्यजित एक महाकाव्यात्मक विस्तार देख लेते हैं और वैसी पटकथा लिखकर उसे फिल्माते हैं.

'प्रेमचंद की अमर कहानियां' में न केवल कथा संकलन मूर्खतापूर्ण हैं बल्कि उनकी प्रस्तुति और भी भयावह है. वहां ईदगाह, गुल्ली डंडा, मंत्र, मूठ, कर्ज जैसी कहानियां तो ले ली गई हैं किंतु इन कहानियों को ऐसी दो कौड़ी की 'पटकथाओं' में बदल लिया गया है कि मूलकथा की आत्मा का दूर-दूर तक पता नहीं चलता. पटकथा लेखक दीपक (भगवान जाने कौन सज्जन हैं या थे!) ने सबसे बड़ा काम यह किया है कि पटकथा लिखने के बहाने उन्होंने सबसे पहले प्रेमचंद की कहानियों की आत्मा का वध कर डाला है. आप चाहे कोई भी प्रस्तुति ले लें, हर बार प्रेमचंद की एक कहानी का खुले आम 'वध' उन्होंने किया है, और रहा सहा क्रिया-कर्म अमृत नाहटा जी के कर कमलों से हुआ है.

प्रेमचंद

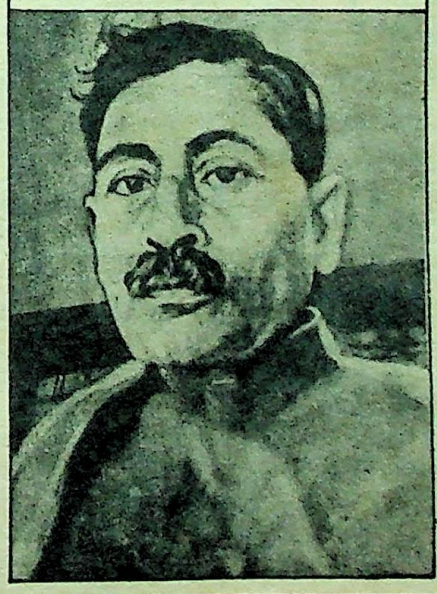

'ईदगाह' प्रेमचंद की सचमुच अमरकथा है किंतु वह क्यों है यह नाहटा को नहीं मालूम. न वह बच्चे की दुनिया रच पाती है और न बुढ़िया की तरफ से करुणा पैदा कर पाती है. वह 'ईदगाह' न रहकर, नाहटा जी की ईद बन जाती है. 'मंत्र' कहानी में तो दो हाथ आगे निकल मूल प्रसंगों को ऐसा तोड़-छोड़ दिया गया कि लगा कि कहीं हम प्रेमचंद की किसी दूसरी कथा को तो नहीं देख रहे? 'गुल्ली-डंडा' हर नजर से व्यंजनापूर्ण कहानी है किंतु उसे मार-मारकर अभिधा में अधमरा कर दिया गया. आगे के खंडों में भी कुछ कहानियों के साथ यही सुलूक किया जाता है. यह सरासर अन्याय है. हम चुप रहेंगे तो यही होगा.

किंतु क्या इसमें सिर्फ दूरदर्शन जिम्मेदार है? एक हद तक ही नहीं वह काफी हद तक जिम्मेदार है किंतु उससे भी अधिक वे लोग जिम्मेदार हैं जो दूरदर्शन के माध्यम को कुछ साहित्यिक जेब कतरों, मूर्खों और मतिमंदों के हाथों सिर्फ इसलिए छोड़ देते हैं क्योंकि उनके शुद्ध पातिव्रत्य धर्म (यानी शुद्ध प्रिंट-मीडिया में ही बंधे रहने को) को कैमरे के आगे आने से खतरा पैदा हो जाता है. यदि प्रतिभाशाली लोग इस माध्यम में हस्तक्षेप नहीं कर सकते तो फिर वह दोयम दर्जे के लोग इसका दोहन करेंगे ही. स्वयं दूरदर्शन भी ऐसे ही लोगों को प्रोत्साहित करेगा किंतु जब तक वह संसद या जनता के लिए जिम्मेदार है तब तक उसे उसके संचालकों की प्रतिभाहीनता के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता. प्रतिभाशाली लोग इसमें पहल कर सकते हैं.

अमृत नाहटा के सीरियल को देखकर प्रेमचंद को हम सिर्फ भूलने योग्य रचनाकार समझ सकते हैं. वह प्रेमचंद का 'निगेशन' कर रहे हैं और लाखों लोगों को समझा रहे हैं कि प्रेमचंद एक दोयम दर्जे का कथाकार था जिसकी कथायें हमारे जीवन का स्पष्ट आईना न होकर, जंग लगा शीशा भर हैं. यदि नाहटा की जगह कोई राम या मृणाल सेन या गोविंद निहलानी इसे बनाता तो यह स्थिति न होती.

किंतु दूरदर्शन की सीरियल दूकान में जो अपनी अर्जी पास करा लेता है, वह सीरियल बना लेता है. दूरदर्शन को प्रेमचंद और खेमचंद में फर्क करने की तमीज कहां? कायदे में तो दूरदर्शन को बड़े लेखकों के साथ अन्याय करने वाले ऐसे दूकानदारों से कठोरता से पेश आना चाहिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी राह का दर्द

मदन मोहन

शिवपूजन मास्टर, जिंदाबाद! इनकलाब जिंदाबाद! जिंदाबाद, जिंदाबाद! शिवपूजन मास्टर....''

ये नारे शिवपूजन मास्टर के दिमाग के एक गोशे में लगातार बज रहे थे और उनकी निगाह जेल के बड़े फाटक की आमदरफ्त पर टिकी हुई थी. आंखें थकतीं तो एक नजर सूरज के चटख होते गोले की तरफ डाल लेते. निराशा की एक और टीस लहक उठती. मस्तिष्क-पटल पर रह-रहकर वही मंजर उभर रहा था, जब सात साल पहले एक जुलूस उन्हें जेल तक विदा करने आया था. आगे-आगे धरनीधरन, जगदीश, अब्दुल्ला, मधु काकी और उनके पीछे सैकड़ों उठती-गिरतीं हथेलियां—''शिवपूजन मास्टर, जिंदाबाद. इनकलाब, जिंदाबाद. शिवपूजन मास्टर....''

उनकी बेचैन आंखें फिर उसी जुलूस को तलाश रही थीं, जिसे आज उनके स्वागत में आना था, पर .....

धरनीधरन जब पिछली बार मिलने आया था, तो कह गया था, ''हम आयेंगे मास्टरजी. रिहाई के मौके पर हम जरूर आयेंगे... आपने हम गरीबों के लिए बड़ा त्याग किया है, जेल काटी है ...''

और मसौदे पर दस्तखत के बाद भी उनका विश्वास बना हुआ था कि धरनीधरन बात का खरा है. आयेगा. जरूर आयेगा.

वे कल से ही धरनीधरन और नौरंगपुर के अपने पुराने साथियों का इंतजार कर रहे थे. कायदे से उन्हें कल शाम को ही आ जाना चाहिए था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर शाम की कौन कहे, बांस भर दिन चढ़ आया था, अभी तक एक का भी पता न था. टैक्सी-बस का कोई चार ही घंटे का तो सफर है. मुंह अंधेरे चल पड़ो, तो दसेक बजे तक नमूदार हो जाओ.

सात साल जेल काटने के बाद आज शिवपूजन मास्टर की रिहाई का दिन था. किंतु उनके भीतर खुशी की जगह निराशा और क्षोभ की टीस लहक रही थी. किंकर्त्तव्य विमूढ़—से वे अपनी बैरक में ही पड़े थे. मसौदे की बात चली, और जब उन्होंने दस्तखत किये, तब पता चला था कि वे अपनी आत्मा को खुद अपने हाथों गिरवी रख रहे हैं. आत्मा, जो नौरंगपुर की माटी में पैदा हुई थी और उसी माटी में तप कर सोना बन गयी थी. किंतु धीरे-धीरे उसके निस्तेज और निष्प्राण होते जाने की अनुभूति उन्हें कचोट देने लगी थी.

कहां से शुरू होती है उनकी जिंदगी? पढ़ाई पूरी करने के बाद बेकारी से ही न? आप तो जानते हैं, बेकारी की मार? शिवपूजन मास्टर पर वह मार कुछ अधिक की गुजरी. बी.एड. करने के बाद युवक शिवपूजन को साल-दर-साल भटकते बीते. अब वे थक चुके थे कि तभी नौरंगपुर से ठाकुर वीर सिंह का बुलावा आया. इलाके का होने के कारण शिवपूजन को इस बुलावे का मतलब मालूम था—बंधुवा मजदूरी. राप्ती के कछार में नौरंगपुर और गजूपुरा के बीच वीर सिंह का मदरसा बंधुवा मजदूरों की बदौलत ठाठ से चल रहा था. अध्यापक तो सभी योग्य थे, पर थे सभी बंधुवा मजदूर. वीर सिंह की बगुला दृष्टि अपने शिकार पर लगी रहती.

तुमने विश्वासघात किया है मास्टर? हमने तुम्हारी दिखायी राह पर चलने की कसम खायी थी. और तुमने ही अपनी राह बदल दी. तुम जेल से छूट जाओगे पर तुम्हारी आत्मा मर चुकी होगी. और तुम एक निर्जीव पदार्थ में तबदील होकर हमारी राह के रोड़े बनोगे.

शिकार थककर हताश बैठ जाता तो वह उसे अपना बंधुवा बना लेता. युवक शिवपूजन के साथ भी ऐसा ही हुआ. वीर सिंह का बुलावा आया तो सच्चाई जानते हुए भी चल पड़े नौरंगपुर की ओर. सोचा था, बैठकर कुंठित और समाप्त होने से तो अच्छा है, मास्टर बिरादरी के साथ भविष्य की कोई योजना ही बनायी जाये. शिवपूजन एक योग्य, संवेदनशील और जिम्मेदार युवक थे, पर उनकी योग्यता की परख कौन करे? परख की एक भोले-भाले मछुआरे युवक धरनीधरन ने. बचपन में क, ख, ग से कुछ अधिक ही पढ़ाई कर ली थी उसने. पढ़ाई हालांकि काफी पहले छूट चुकी थी, पर टोले के समीप स्कूल पाकर सीखने की एक नयी ललक जग उठी. सो मदरसे के गिर्द अक्सर मंडराने लगा. उसकी इस ललक ने शिवपूजन मास्टर को चुंबक की तरह खींचा. उनकी दोस्ती हो गयी. उन्हीं दिनों नौरंगपुर में एक घटना घट गयी. मामला राप्ती नदी के छाड़न को लेकर सामने आया. तलहटी में बसे मछुआरों ने राप्ती की छाड़न पर खेती करना अपना हक समझा. उधर वीर सिंह की गिद्धदृष्टि भी लगी हुई थी. एक दिन पटवारी-अमीन के साथ वीरसिंह के कारिंदों ने छाड़न की भूमि पर दो-दो एकड़ के सैकड़ों गाटें बनवा डाले और मछुआरों का कहलवा भेजा कि साल और गाटा के हिसाब से पांच सौ रुपईया जमा कर वे खेती कर सकते हैं. खबर न केवल मछुआरों के टोले तक पहुंची, बल्कि पूरे इलाके में सड़े डांगर की बदबू की तरह फैल गयी. जिसने सुनी, थू-थू की —नौरंगपुर के बबुआन के अन्याय अब बर्दाश्त नहीं होने को. इतनी जर-जमीन, ठीका-पट्टा, मिल-फैक्ट्री सब तो है, तो भी धन की प्यास न मरी....

किंतु धरनीधरन और शिवपूजन मास्टर ने दूसरी तरह से सोचा कि बबुआन की धन की प्यास सिर्फ आपस में हाय-हाय करने से नहीं मरेगी.

नये हस्ताक्षर

वह तो ऐसी प्यास है, जिसे मुस्तैदी से रोका न गया तो बढ़ती ही जायेगी. सो उन्होंने दिन-रात एक करके, इलाके में घूम-घूम कर अपने इरादे पर समर्थन जुटाया. कुछ ने तो बबुआन के अन्याय के खिलाफ तन-मन-धन से साथ देने की बात कही और कुछ ने अगर अपनी मजबूरी जाहिर की, तो भी जोर-जबरदस्ती की दिल से निंदा की. धरनीधरन और शिवपूजन मास्टर को यह विश्वास हो चला कि वीर सिंह के पालतू लठैतों के अलावा और कोई मैदान में न आयेगा. बाद में गवाही-सबूत की बात रह जाती है, तो देखी जायेगी. पुलिस-थाना की ओर से उन्हें अपने पक्ष की एक पैसे की उम्मीद न थी. पटवारी-अमीन तो पहले से खिदमत में जुटे थे बबुआन की.

धरनीधरन-शिवपूजन से मिलकर मछुआ टोले को सहेजा. गंगामैया की झोली से मिली भूमि की हिफाजत के लिए वे मर-मिटने को भी तैयार थे....

एक-रात, कार्तिक मास की टह-टह अजोरी रात थी. शिवपूजन मास्टर की मौजूदगी में समुचा टोला जुट गया. सैकड़ों की तादाद में लोग आंधी की तरह छाड़न पर पहुंच गये. देखते-देखते कारिंदों द्वारा बनवायी गयी मेड़ियों की जकड़ ढहा दी गयी और कुछ ही देर में छाड़न की भूमि मुक्त करा ली गयी.

इलाके के लिए तथा नौरंगपुर के ठाकुर वीर सिंह के खिलाफ यह एक अभूतपूर्व घटना थी, किंतु अखबार और रेडियो पर नादारद थी. जिस किसी ने जुबानी या किस्से-कहानी के बतौर सुने उन्हें भी यह अविश्वसनीय लगी. जिसका नतीजा बहुत बुरा हुआ. एक रात मछुआरों की बस्ती धू-धू कर जल उठी और श्मशान में तब्दील हो गयी. अनगिनत चौपाये, दुधमुंहे बच्चे और बुखार में बेसुध मधु काकी का सुहाग बिरजू काका वीर सिंह की हैवानियत की भेंट चढ़ गये.

वीर सिंह के भीतर धधक रही नफरत की आग यहीं ठंडी न हुई. अब वह शिवपूजन मास्टर के पीछे हाथ धोकर पड़ गया. उसका विश्वास पुख्ता हो गया था कि सारी खुराफात की जड़ में उसका बंधुवा मास्टर शिवपूजन है. पहले तो उसके लठैतों ने उसकी तलाश की, पर जब मास्टर हाथ न लगे तो वीर सिंह ने पुलिस की सेवा प्राप्त की.

और एक दिन आपने अखबारों में पढ़ा कि मछुआरों को बगावत के लिए भड़काने के जुर्म में शिवपूजन मास्टर गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये.

जेल पहुंच जाने के बाद भी काफी दिनों तक उनका उत्साह बना रहा. वे जानते थे, उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है—शीघ्र ही जमानत हो जायेगी और चार-छह महीनों के भीतर अपने देश-कोस होंगे. पर ऐसा न हुआ. ऐसी दफा लगी कि जमानत की नौबत ही नहीं आयी. वे बगैर किसी सुनवाई के, अनिश्चित काल के लिए जेल की चार-दीवारी के हवाले कर दिये गये. उन्होंने सुन रखा था कि गरीब के भले की रट लगानेवाली सरकार गरीब की हक की लड़ाई सहन नहीं करती. पर उस विसंगति को अपने जीवन के साथ घटित होते देख उनका मन एक ताजे अवसाद से गीला हो उठा था. एक हद तक निरुपाय से वे एक-एक दिन, एक-एक वर्ष की तरह काटते रहे. राप्ती कछार में स्वच्छंद विचरनेवाले जीव शिवपूजन मास्टर जेल के घुटन भरे माहौल में तड़पकर रह गये. वे भी हाड़-मांस के बने इंसान थे. उनकी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरी-पूरी गृहस्थी थी—बीवी-बच्चे थे. मां-बाप का प्यार-दुत्कार भी था. यह भी सुन लीजिये, मास्टर शिवपूजन सवर्ण अर्थात् जाति के ब्राह्मण थे. महीने-दो महीने पर मां-बाप, पत्नी-बच्चों या जगदीश-धनीधरन के आ जाने पर कुछ पलों के लिए उनके जीवन में हरियाली आ जाती. पर जैसे ही परिजन चले जाते, फिर वही उदासी और मनहूसियत धर दबोचती. उनके लिए वे पुस्तकें भी सार्थक नहीं सिद्ध हो पा रही थीं, जिन्हें पढ़कर उन्होंने जीवन की वैतरणी पार करने का तरीका सीखा था. अपनी इस स्थिति से वे हतप्रभ थे—खुद के बारे में किये गये अनुमान एक-एक कर बालू की खूबसूरत दीवारों की तरह ढहते जा रहे थे. जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, वैसे-वैसे उनकी चिंताएं भी गहराती जा रही थीं. बच्चों का क्या होगा? पत्नी? बूढ़े मां-बाप? खेत-खलिहान तो कब से परती-परास हो गये. कुल मिलाकर एक आतंककारी भविष्य...

तभी एक दिन उनके सामने जेलर ने मसौदे का कागज रखा था. उन्हें अजीब लगा था—मन कसैला हो उठा था. सहसा भीतर से एक तेज लहर उठी थी कि नहीं, उन्हें नहीं चाहिए मसौदे का कागज. किंतु लहर होंठों तक आकर लुप्त हो गयी थी और उन्होंने जैसे किसी जादू के वशीभूत हो एक-एक दिन में विचार कर बताने के लिए कागज रख लिया था.

कुछ दिन तो यूं ही गुजर गये, उन्होंने उसे फिर देखा तक न था. उस रात जब जेल का घड़ियाल दो बजा चुका था और बैरक के चारों तरफ खामोशी पहरा देने लगी थी तो उन्होंने चुपके से टार्च की रोशनी में मसौदे की करारें पढ़नी शुरू कर दी थीं. दिल की धड़कन तेज हो गयी थी और पूरा बदन थरथरा रहा था. तभी उस भयंकर काली रात में उन्हें लगा, तीन-चार कद्दावर परछाइयां उन्हें घेरकर खड़ी हो गयी हैं. वे दहल उठे. टार्च तुरंत बुझा दी. भयाकुल आवाज में फुसफुसाकर पूछा, "कौन हो तुम लोग? क्या चाहते हो?"

जवाब में उन्हें केवल प्रतिध्वनि सुनायी पड़ी. आंखें फाड़कर उन्होंने अंधेरे के पार देखने की चेष्टा की—नजर जहां कहीं ठहरती, परछाइयां वहीं से उनकी ओर आती हुई दिखाई देतीं. इतना साहस! कौन हैं ये परछाइयां! वे सिहर उठे. और जैसे प्रत्येक से पूछ पड़े हों—तुम धरनीधरन? तुम जगदीश? तुम अब्दुल्ला? और तुम मधु काकी—? मेरी जासूसी कर रहे हो तुम लोग? बेवकूफो, अभी तलक तो मैंने उसे पढ़ा भी नहीं है...लो पढ़ता भी नहीं.....

उन्होंने मसौदे को फिर सिरहाने के नीचे रख दिया और कंबल तानकर सीधे हो गये. किंतु हलकी-सी झपकी लगी थी कि उन्होंने एक विचित्र सपना देखा—वृद्ध शिवपूजन मास्टर जेल से छूटकर जब अपने गांव पहुंचते हैं, तो तलाशने पर भी उन्हें अपना घर नहीं मिल रहा है. मां-बाप, पत्नी-बच्चे, खेत-खलिहान सब नादारद. समूचा गांव अपरिचित, जैसे दूर के किसी ऐसे गांव में पहुंच गये हों, जहां उन्हें कोई न जानता हो.

जाहिर है, सपना विचित्र ही नहीं खौफनाक भी था. अपने सपने पर कभी यकीन न करनेवाले शिवपूजन मास्टर कंबल दूर फेंककर उठ बैठे और हांफने लगे. इस बार बिना किसी तरफ देखे उन्होंने शीघ्रता से टार्च जला दिया और मसौदे के कागज को सीधा कर, उसकी खाली जगहों को भरते हुए नीचे दस्तखत कर दिये.

उनका हांफना अभी जारी था और लग रहा था, शरीर का सारा सत निचुड़ गया है, वह बेकाबू हो रहा था. चाहते हुए भी उन्होंने फिर अंधेरे के पार देखने की चेष्टा नहीं की. किंतु उन्हें लग रहा था, उस दरमियान कोई चीज चुपके से अंतर्मन में प्रवेश कर गयी है और कुंडली मारकर बैठ गयी है. क्या हो सकती है वह चीज? बोध? कैसा बोध? अपराध बोध? ऐसा कोई काम तो नहीं किया उन्होंने! आखिर जेल में सड़ने से फायदा भी क्या? वे खुद को समझाने लगे थे.

किंतु बाद में कई दिनों-महीनों तक उनका मन बेचैन हो भटकता रहा था. वे जब भी निर्दोष होने के तर्क ढूंढते तो सहसा उस रात की कद्दावर परछाइयां बोल उठतीं—"तुमने विश्वासघात किया है मास्टर? हमने तुम्हारी दिखाई राह पर चलने की कसम खायी थी और तुमने ही अपनी राह बदल दी. तुम जेल से छूट जाओगे, पर तुम्हारी आत्मा मर चुकी होगी. और तुम एक निर्जीव पदार्थ में तबदील होकर हमारी राह के रोड़े बनोगे...."

"नहीं, नहीं, मेरी आत्मा बेसक निष्प्राण हो जाये, किंतु मैं तुम्हारी राह का रोड़ा नहीं बनूंगा! नहीं बनूंगा!"

वे सफाई देते. परछाइयां डटी रहतीं. वे दुम हिलाते उनके करीब होना चाहते तो वे गायब हो जातीं. वे रुक जाते कि तभी दूसरी ओर से वही आवाज उन्हें फिर सुनाई देती—"मसौदे पर दस्तखत के बाद तुम हमारे विरुद्ध हो चुके हो शिवपूजन! अगर तुमने इस पर अमल नहीं किया, तो तुम्हें फिर जेल में आना होगा."

"फिर जेल में क्यों आना होगा? ऐसा तो मसौदे में कुछ नहीं था."

हर हाल में वे अपने को निर्दोष साबित करने की कोशिश करते.

"भोला बनने की कोशिश मत करो मास्टर! तुम्हें सब पता है. मसौदे में जो नहीं है, दरअसल वही खास है. अब तुम्हें हमसे नफरत करनी होगी. हमारे हो रहे शोषण-उत्पीड़न में वीर सिंह और पुलिस की मदद करनी होगी. हमारी लड़ाई को तोड़कर हमें गुमराह और पस्तहाली में डालना होगा. गरज कि तुम्हें हर वो काम करने होंगे मास्टर...."

"बस-बस! बस भी करो तुम लोग....!"

उनका सिर तेज-तेज चक्कर खाने लगता और वे सिर पकड़कर बड़बड़ा पड़ते—"कैसे हरामी का पट्ठा मुझसे ये काम करायेगा? मैंने तो सिर्फ कानून कायदे के दायरे में रहने का वचन दिया है. इसके माने ये तो नहीं कि मैं वीर सिंह और पुलिस की कठपुतली बनकर रहूंगा? नहीं, वीरसिंह मुझे नहीं खरीद सकता..."

किंतु आपको बताना गैर-मुनासिब न होगा कि पिछली बार जब धरनीधरन जेल में उनसे मिलने आया तो उन्होंने उसे अपने भीतर की इस लड़ाई की भनक नहीं लगने दी. उन्होंने उत्साह से उसे अपनी रिहाई की खबर दी और इच्छा व्यक्त की कि साथियों के साथ नौरंगपुर वापस होना चाहेंगे. आज के दिन पिता और पत्नी को आने से मना भी कर दिया था.

मसौदे के जरिये शिवपूजन मास्टर की रिहाई की खबर से धरनीधरन को धक्का लगा था, किंतु उसने इस गम को जब्त किया था. चाहकर भी अपनी नाखुशी जाहिर न की थी. और साथियों के संग आने का वायदा किया था!.....

किंतु जैसा कि अब आपको स्पष्ट हो चुका है, यह मसला केवल धरनीधरन तक ही महदूद न था. नौरंगपुर के लोगों ने मिलकर अपने प्रिय साथी मास्टर शिवपूजन के खोने का बड़ा अफसोस मनाया और उनके जेल तक के सफर को यादगार मानते हुए आगे की राह ली.

राप्ती-कछार और साथियों से छूटते हुए मास्टर का हृदय चित्कार रहा था. पर अब हो क्या सकता था? हस्ताक्षरयुक्त मसौदा स्वीकार हो चुका था, और आज रिहाई का दिन भी आ पहुंचा था. पर वे अपनी बैरक में मानो संज्ञाशून्य हो पड़े थे. दिन को जैसे पंख लग गये थे, देखते-देखते तीसरा पहर भी आ धमका था.

रिहाई की औपचारिकताएं पूरी हो चुकी थीं. उनके आखिरी दस्तखत भी ले लिये गये थे. बड़े फाटक पर टिकी उनकी निगाहें गीली हो चली थीं। कभी-कभी होंठों में एक बेजान-सी हरकत हो जाती—धरनीधरन ने कहा था, हम आयेंगे मास्टर....रिहाई के मौके पर हम आयेंगे.....

बाहर सब कुछ सामान्य था. सुस्ताती जेल की बसों और लारियों की कतारें. यहां-वहां डोलते परिजनों के झुंड. आम, जामुन और नीम के छायादार दरख्त और उन पर चहचहाती चिड़ियां. सब कुछ सामान्य था. पर शिवपूजन मास्टर की हालत नाजुक होती जा रही थी. गला रुंधा हुआ था और शरीर पूर्णतः श्लथ. बड़े फाटक की ओर एकटक निहारती आंखों से आंसू अब धार बांधकर बह चले थे.....

थोड़ी ही देर में कैदियों, चौकीदारों और सिपाहियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी, जो उन्हें विस्मय और कौतूहल से देख रही थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पौद

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं ... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं ... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित ३०० शब्दों में लिख भेजिए.

सृजन के लिए प्रेरणा जरूरी

ममता पोपली

साहित्य को पढ़कर कई बार अपने अंदर वैसा साहित्य पैदा करने की कोशिश की कि मैं भी उसी स्तर का साहित्य-सृजन कर पाऊं. जब भी साहित्य पढ़ा उसी वक्त कुछ विचार दिमाग में कौंधते जरूर हैं मगर वह लिखने की भाषा नहीं ले पाते हैं. ऐसी अवस्था में दिमाग की क्या हालत होती है यह एक परिपूर्ण लेखक जानता है क्योंकि जो स्थिति आज मेरे साथ है बिल्कुल वही स्थति आज के बने हुए लेखक के साथ कभी जरूर हुई होगी. जब कोई विचार दिमाग में आता है मगर अच्छी भाषा नहीं ले पाता. तब मुझे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है. विषय मिल जाने के बावजूद जब उसका शीर्षक उचित नहीं मिल पाता तो कभी उस विषय के अनुकूल पात्रों को उस विषय में दौड़ाते व खिलाते वक्त सही सहानुभूति व स्थति नहीं उत्पन्न कर पाती. अगर मैं कभी जबरदस्ती मानसिकता बनाती हूं तो कबी खास तौर से अच्छा साहित्य रचने के लिए नहीं बना सकती. उसके लिए साहित्यिक किताबें जो हमारे बड़े लेखकों ने हमें अपनी महज वसीयत रूप में दी है, उसको लिए बिना मैं तो क्या कोई भी इस पथ पर पग नहीं बढ़ा सकता.

संस्कार रूप लेखन में भी अच्छा पढ़ना आवश्यक होता है. जब तक अच्छा लेखक अच्छे वाक्य जो पढ़ता है उन्हें समझता नहीं तब तक वह लिखने में असमर्थ तो होता ही है साथ ही वह अपने आधुनिक साहित्य की जानकारी न प्राप्त करने के कारण काफी पिछड़ा साहित्य उपजाता है. जो किसी को प्रेरणा नहीं दे पाता. अपने आप की संतुष्टि के लिए कोई चीज लिखी जाती है चाहे वह कोई लेख, कहानी, कविता या उपन्यास ही क्यूं न हो. सब तभी लिखा जाता है जब तक उसके पास किसी का अध्यापन न हो, प्रेरणा न हो. अगर यह नहीं होता तो उसका साहित्य, उसका लेखन दूसरी चीज लिखने तक में काफी अंतर पैदा करता है और वह अंतराल एक लेखक नहीं बनने देता. □

लेखन अनंत यात्रा है

कु. जीनत नकवी

कई बार इच्छा होती है कि मैं भी अच्छी कहानियां लिखूं और आदर्श लेखिका बनूं. कहानियों का प्लाट भी बना लेती हूं.... आदि अंत भी तय कर लेती हूं विचारों का ताना-बाना बुन लेती हूं... किंतु एक ऐसा बिंदु आता है जिस पर सारे के सारे विचार बिखर जाते हैं. यह बिंदु है कहानी को विस्तार देने का. कभी कभी ऐसा लगता है कि जैसे मुझ में शायद इतनी योग्यता ही नहीं कि कहानी को विस्तार दे सकूं. फिर लगता है जैसे चारों ओर का वातावरण सकारात्मक नहीं है. जो कहीं लिखने को प्रेरित कर सके. लिखना क्यों चाहती हूं कई बार इस पर भी सोचा है. यों तो मनुष्य के चारों ओर अनेकों

कहानियां बिखरी पड़ी हैं लेकिन बात फिर वहीं आती है कि इन्हें एक सूत्र में कैसे बांधा जाये. इन्हीं कहानियों में से सांप्रदायिकता और भ्रष्टाचार के खिलाफ बहुत कुछ लिखना चाहती हूं. मन में हूक उठती है कि कुछ ऐसा लिखूं जो समाज को झकझोर दे. उसे यह सोचने पर विवश करे कि जो कुरीतियां सुरसा की तरह मुंह फैला रहीं हैं उनका सामना किस तरह किया जाये. अच्छे से अच्छा साहित्य पढ़ने के बाद भी न जाने क्यों में लिख नहीं पाती! लगता है कि इस सब के लिये जिस परिश्रम, त्याग और तपस्या की जरूरत है उसी की मुझमें कमी है. लेखन का अंत यात्रा है और इस यात्रा में अनेक अवरोध आते हैं जो मुझे लिखने को प्रेरित करते हैं.

ईश्वरीय देन है लेखन

मीनाक्षी पंत

लेखन अभिव्यक्ति का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम मानसिक व अनुभव जन्य विचार व्यक्त कर सकते हैं. कथा-रचनाओं के साथ-साथ ही लेखनी के माध्यम से राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं को समझते

हुए नये समाधान प्रस्तुत किये जा सकते हैं. जब-जब मैंने ऐसा करने का प्रयास किया है, मुझे लगता है, संभवतः लेखन ईश्वरीय देन है... जो निरंतर अभ्यास व अनुभव द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है. मेरे लिये सबसे बड़ी समस्या यह है कि कहानी की शुरूआत कैसे की जाये. मन होता है कि कुछ ऐसा 'प्रारंभ' हो जो रचना के प्रति पाठक में आकर्षण पैदा करे. यदि यह संभव हो भी जाये तो दूसरी समस्या यह आ खड़ी होती है कि तथ्यों से पूरी तरह परिचित हुये बगैर उन्हें प्रस्तुत करना बहुत कठिन काम है. ऐसा भी लगता है कि विचारों में सही तारतम्य नहीं बैठ पर रहा है. बार-बार एक ही विचार उभरकर ऊपर आ जाता है. एकाग्रता और लगन जिसे कहते हैं उसकी कमी बराबर महसूस होती है. भाषा का सही इस्तेमाल न कर पाना भी आड़े आने लगता है. पर मैं निराश नहीं हूं. धीरे-धीरे समय के साथ-साथ मुझमें सुधार आयेगा... ऐसा मेरा विश्वास है. मेरा मन है आगे चलकर में सामाजिक कुरीतियों के विरोध में तथा विशेष रूप से नारी जीवन की समस्याओं व उनके समाधानों की दिशा में सार्थक रचना कर सकूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' : फरवरी, 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 मार्च, 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा मई : 1988 के अंक में की जायेगी.

सारिका कथा-पहेली : मार्च, 1988

1. 'रॉबिसन क्रूसो' उपन्यास किस नाविक के संस्मरणों पर आधारित है?
.....

2. वह कौन-सी घटना थी जिसके बाद जेंग जियांग अपनी पत्नी को प्रेम नहीं कर सका?
.....

3. अपने संबंध में गर्वोक्तिपूर्ण किंतु काफी अंशों तक सही भविष्यवाणी करने वाले लेखक.....थे.

4. "पंछी बहुत अच्छे होते हैं. आपस में बहुत प्यार करते हैं और मस्ती से आसमान में उड़ते फिरते हैं. शाम को फिर लौट आते हैं घौंसलों में."
यह.....कहानी में.....
...का संवाद है.

5. यह पात्र जिन रचनाओं के हैं उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
1. आरती (.....) 2. नीमा (.....)
3. चेतन (.....) 4. गोरख (.....)

6. इस अंक में एक रचना का शीर्षक दो जगह भिन्न-भिन्न छपा है. यह रचना है—
.....

7. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी.....है.

8. ".....सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है यदि पूरी जनसंख्या को पढ़ना सिखा दिया जाये." यह विचार.....के हैं.

9. मास्टर टीकाराम जिस व्यक्ति को अपने जैसी स्थिति में देख रहे थे वह कौन था?
.....

10. इस अंक में चित्रांकन, सज्जा और ले-आउट की दृष्टि से ये दो पृष्ठ सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं. सर्वोत्तम पर (✓) चिन्ह लगाएं.
26-27 ( ), 42-43 ( ), 47 ( ),
59 ( ), 52-53 ( )

नाम.....आयु.....

पता.....

कथा पहेली : जनवरी, 1988 के सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार विजेता

जनवरी 1988 की कथा पहेली के हजारों प्रतियोगियों में से केवल आठ ही दो-दो अशुद्धियों के साथ पुरस्कार विजेता बनने का गौरव पा सके हैं. सर्वशुद्ध हल भेज पाने में कोई भी प्रतियोगी सफल नहीं हुआ है. पुरस्कार राशि इन प्रतियोगियों में बराबर-बराबर बांट दी जायेगी. पुरस्कार विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं :—

1. आशीष दशोत्तर, 39, नगरवास, रतलाम (म.प्र.)

2. नरेंद्र कुमार चौबे, मकान नं. 384 संचार विहार कालोनी, आई.टी.आई. लिमिटेड. मनकापुर, गोण्डा (उ.प्र.) 3. अजय मेंढेकर राजेंद्र नगर, बिलासपुर (म.प्र.) 4. ज्योतिर्मय आनंद, द्वारा सोना लाल साह, ग्राम/पो. सोनाली, जि. कटिहार (बिहार) 5. एच.पी. साह, उद्योग निरीक्षक, जिला उद्योग केंद्र, रायगढ़ (म.प्र.) 6. राधा रमण पुरी, मुहल्ला-पटना का फाटक' पो. दाउदनगर जिला-औरंगाबाद (बिहार) 7. अनिल राज, 7/113 सराय नवाब, अलीगढ़ (उ.प्र.) 8. अनिल कुमार गुप्ता, मेसर्स, आभा मेडिकल हॉल, (चौक) पो. दाउदनगर जिला-औरंगाबाद (बिहार)

....और यह है कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. शरलॉक होम्स, 2. 'सर्वोच्च शिखर', 'शरलॉक होम्स का भ्रम', 'हेड मास्टर', 3. 'हीरोल'—इसका अर्थ है—सेना की अगुआई, 4. 'सर्वोच्च शिखर', 5. (27 और 56), 6. 'मनुष्य जन्म', 7. पारदर्शी का दुहरा इस्तेमाल, 8. 'कहानी अंग्रेजी भाषा की है' यह सूचना प्रकाशित होने से रह गई है, 9. गोविंद मिश्र, 10. 'हीरे की चोरी' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक जीवन का 'थ्री डी' परिदृश्य

आजादी के बाद यह उम्मीद की गई थी कि गरीबी, बीमारी, भूख, निरक्षरता अंधविश्वास, निराशा, जातिगत तनाव आदि से हमें मुक्ति मिल जायेगी. सरकार ने सामूहिक विकास-योजना चलाकर ग्रामीण जनता को विशेषरूप से अपने पैरों आप खड़े होने की प्ररेणा देने के प्रयास किये. इस योजना के अधीन सामाजिक शिक्षा, ग्रामीण जीवन के सभी घरेलू तथा ग्रामीण उद्योग, पशुपालन, कृषि विकास आदि पहलुओं पर ज़ोर दिया गया. किंतु परिणाम उतने गुणात्मक और धनात्मक नहीं मिले. इसके कारणों की तह में कहीं न कहीं हमारा 'चरित्र' काम कर रहा है, खासतौर से वह चरित्र जिसने आजादी के बाद 'विकास' पाया है.

श्रीलाल शुक्ल के तीन व्यंग्यकथाओं के संग्रह 'उमराव नगर में कुछ दिन' उपर्युक्त का गहरा संदर्भ सामने लाने की रचना-चेष्टा है. उन्होंने उत्तर-प्रदेश के 'उमरावनगर' नामक किसी एक गांव को आधार बनाकर एक व्यंग्यकथा रची है, जो अधिक व्यापक है और अन्य दो कथाओं– 'कुंती देवी का झोला' तथा 'मम्मी जी का गधा', को सम्मिलित कर पाठकों को सार्वजनिक जीवन का त्रिआयामी परिदृश्य दिखाया है, अपनी उसी विशिष्ट शैली में जिसके लिए उन्हें 'राग्दरबारी' से ख्याति मिली थी.

संग्रह की पहली कथा 'उमरावनगर में कुछ दिन' पढ़ कर तो रंगनाथ की याद आ जाती है, जो लगता है शिवपाल-गंज से बस में बैठकर सीधा उमरावनगर में कुछ दिन के लिए पत्रकार बन कर आ गया है.

कथानायक इन शब्दों के साथ प्रकट होता है, "बस के रुकने पर समझने में देर नहीं लगी कि यहां उतरने में, चढ़ने के मुकाबले ज्यादा जीवट की जरूरत होगी. पर मेरा मुर्गीवाला साथी मुझसे ज्यादा उतावला था. अभिमन्यु की तरह भीड़ का चक्रव्यूह तोड़ता हुआ वहां तक पहुंच गया जहां दरवाजा होना चाहिए और नीचे कूदते ही मैं भी उसी के साथ जमीन पर चू पड़ा." (पृष्ठ 9) उसके इस तरह प्रकट होने के साथ ही बहुत कुछ प्रकट हो जाता है. पहले तो 'परिवहन-व्यवस्था', फिर 'यात्री'. इसके बाद विकास करता गांव "सड़क पर जहां बस रुकी थी उसके किनारे पर एक दवाखाना था जिस पर किन्हीं डा. अंसारी का नाम लिखा था. विज्ञापन पट्टी पर ए.ए.यू. पी., पी.एम.पी. यम.डी. जैसी डिग्रियां लिखी थीं.... यम. डी. के नीचे कोष्ठकों के भीतर उर्दू या फारसी लिपि में लिखा है 'मैनेजिंग डाइरेक्टर, 'अंसारी क्लीनिक'! (पृष्ठ 10) यहीं से मिलते हैं कथानायक को गांव के विभिन्न् रंग-ढ़ंग और कारोबार वाले पात्र–इकबाल मियां, मित्र, बी.डी.ओ. साहब, विधायकजी जिलेदार साहब, रघुबरदासजी, सियादुलारीजी, रर्मसर भाई अर्थात् ठाकुर साहब, मजहर मियां और फूलमती आदि. इन सब पात्रों में भष्टाचार, उठाईगीरी, अवसरवादिता, कुटिलता, बदमाशी जैसी आधुनिक अमूर्त 'विशेषज्ञतायें, हाड़-मांस का रूपाकार ग्रहण कर चुकी हैं. उदाहरण के लिए रईस इकबाल मियां के इस 'रूप' में उठाईगीरी, काईंयापन आदि के दर्शन पायें, "वे लगभग साठ साल के होंगे. मोटे बदन पर लंबा कुर्त्ता और तहमत सर पर चौकोर टोपी नाक के कोने पर एक बड़ा-सा काला मस्सा, जो बड़ी-बड़ी आंखों के नीचे बस कर पूरे चेहरे को समुद्री डाकुओं जैसा खूंखार बनाता था. यही, जब वे आंखें मूंद लेते होंगे, उनके चेहरे की ध्यान मुद्रा को और भी गहनता देता होगा, धार्मिक भाषणों को मार्मिक बनाने में सहायता करता होगा." (पृष्ठ 12) विशेषज्ञता वाला उनका सही परिचय कथानायक और उसके मित्र के वार्तालाप में इस तरह सामने आता, "उन्हें क्या कहा जाये– एक तरह से ग्रामीण अर्थशास्त्र का ही विशेषज्ञ कर लो. खासतौर से जंगलों की कटान और जंगली लकड़ी के उपयोगी के बारे में उन-जैसा माहिर इधर कोई नहीं है." "तुम्हारा मतलब पर्यावरण-सुरक्षा और बानिकी से है?" "मुझे पता नहीं ये क्या हैं," मित्र बोले, "पर इनका मतलब चोरी और उठाईगीरी हो तो तुम्हारी बात सही होनी चाहिए." (पृष्ठ 13)

ऐसे अनेक पात्र उमरावनगर में हैं, जो नाम और रूप के बगैर ही 'फब्ते' हैं. अपनी प्रतीकात्मकता को सार्थक करते. कभी हरे-भरे और रमणीक रहे, कटे वृक्षों, एक-एक कर ऊंची उठती पक्की हवेलियों, ऐसी गलियों की 'अगर कोई औरत-मर्द आमने-सामने से निकल जाते तो इतने पर ही एक का बलात्कार या दोनों का व्यभिचार के जुर्म में चालान हो सकता था,' से लैस उमरावनगर में वह सब है जो 'स्वतः नियोजित विकास' के बाद होना चाहिए. इसी 'विकास-पद्धति' के विषय में कथानायक मंत्री जी से कहता है, "अब मान भी जाइए. घूसाखोरी, फरेब काले-धंधे आदि के खिलाफ शोर न मचाकर अब इन धंधों वालों से समन्वय करके कुछ दिनों के लिए एक सचमुच की समन्वित ग्राम विकास परियोजना लागू हो जाने दीजिए. फिर देखिए विकास कैसी तेजी से होता है!" (पृष्ठ 42)

सरकार द्वारा नियोजित विकास के चमत्कार के लिए चुने गए ऐसे गांवों में चाहे कंप्यूटर ट्रेनिंग के सरकारी प्रशिक्षण कार्यक्रम क्यों न चलें, वहां का विकास डॉ. अंसारियों और सरकारी डाक्टरों के गठजोड़, इकबाल मियाओं और ठाकुर साहबों के गठबंधन, तथाकथित विकास-संगठनों आदि-आदि पर ही निर्भर रहेगा. लेखक तो इस नतीजे पर पहुंचा है कि, "उमरावनगर का विकास चाहे वित्तमंत्री के सिद्दांतों से हो, चाहे इकबाल मियां की व्यवहार बुद्धि से, इन नरकों की सत्ता पर कोई असर नहीं पड़ेगा!"

इस व्यंग्यकथा में एक व्यापक कथापटल को समेटा गया है. एक कहानी के लिए यह बड़ा भारी है. इतने भार को उठाने के लिए मजबूत कदकाठी की कहानी की जरूरत रहती है. और निःसंदेह शुक्लजी ही ऐसी कहानी दे पाये हैं.

अब दूसरी व्यंग्यकथा: 'कुंती देवी का झोला.' इस छोटी कहानी में सबसे पहले कुछ डाकू अवतरित होते हैं जो हिम्मतपुरा नामक गांव वालों के चेतावनी देते हैं कि कुंती देवी का झोला यहां रह गया है. किसी ने छिपा लिया है. "और खबरदार, अगर इस सब के बारे में पुलिस को बताया तो किसी की खैर नहीं. तुममें से एक-एक को गोलियों से भून दिया जाएगा." (पृष्ठ 51) उसी दिन सरेशाम पुलिस ने धावा बोला. आते ही अपनी कार्यप्रणाली के अनुरूप एक-एक घर की तलाशी ली, पिटाई की और गांव वालों को इकट्ठा कर कहा, "हमें पता चल गया है कि कुंती का गिरोह आज यहां आया था. तुमने हमें इसकी इत्तला क्यों नहीं दी?" मूल मुद्दा यह कि, " कुंती ने हरगांव में दो किलो वजन के सोने के जेवर लूटे हैं. पांच लाख की कीमत के. निकालो झोला! पूरे गांव पर दफा चार सौ बारह चलेगी!"

घूमते-घूमते दो लड़कों को झाड़ियों में एक झोला मिलता है. यह वही रहस्यमय और बेशकीमती झोला है, किंत् उसमें है क्या– चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखी रोटियां, प्याज, नमक और तमंचा! कौतूहलवश एक लड़का उलट-पलटकर देखने के बाद तमंचा चला देता है. तमंचे से गोली छूटते ही लड़के सब कुछ जैसे का तैसा छोड़कर भाग खड़े होते हैं. यह क्या? उनकी ओर रुक-रुककर गोलियां दागी जाने लगी थीं. एक घर में छिपने पर बुजुर्गों की बातों से पता चला कि आज भी दोपहर में पुलिस गांव में आयी थी पर लौटते-लौटते उनका दस्ता जंगल के पास अचानक रुक गया. उन्होंने जंगल के तीन तरफ से घेराबंदी कर ली है. पुलिस का एक जत्था अब बीहड़ की तरफ बढ़ रहा है. शुरू में एक गोली चला कर डाकू जंगल में अब चुपचाप घात लगाये गोलियां चलायेंगे तो घमासान लड़ाई होगी. पर पुलिस को उन्हें अंधेरा होते-होते मार लेना चाहिए नहीं तो मुश्किल होगी.

कुल मिलाकर इस घटना से दो बातें प्रकट होती हैं—एक तो यह कि, डाकू और पुलिस के दो भारी पाटों के बीच निर्दोष जनता ही पिसती है. दोनों अपनी-अपनी तरह से आतंकित करते हैं. दूसरी पुलिस की कार्यकुशलता!

संग्रह की तीसरी कहानी है- "मम्मीजी का गधा." इस कहानी में अफसरशाही के अहं को विषय बना कर प्रसंगतः इस बात को खोला गया है कि नेता लोग किस प्रकार अर्थहीन-सी स्थितियों का लाभ उठा लेते हैं.

बचपन में अपनी मम्मीजी का गधा कहलाने वाला बालक पढ़लिखकर अफसर बन जाता है. विदेश से लौटा वह अफसर 'विशेषज्ञ बनाम जनरलिस्ट' का जुमला उछालकर देशव्यापी हड़ताल खड़ी करता है. इसी बीच अपनी अफसरशाही के अहं के प्रतीक रूप में उसकी बंदूक एक गधे को मार देती है. यह घटना जटिल स्थिति पैदा कर देती है. जब जनता एकत्र होती है और व्यक्ति आगे आकर इस स्थिति का लाभ उठाकर नेता बन जाता है. वह अफसर को सस्पेंड करा देता है, जेल भिजवा देता है. नेताओं की पहल पर जेल से लौट कर और बहाल होकर यह अफसर 'नेता' बन जाता है. वह अपने प्रदेशीय संघ का अध्यक्ष और अखिल भारतीय संघ का महामंत्री बन जाता है. उसकी वर्तमान स्थिति यह है कि, "वह अपने इशारे से सारे चक्के जाम करा सकता है, बड़े-बड़े सरकारी तीसमार खां उसके नाम से दलहते हैं, सड़क का आदमी अखबार में सबसे पहले ही टटोलता है कि आज इसने कहा क्या है. आज दिल्ली के दस सांसदों ने मिल कर उसे राज्य सभा में बुलाने का अनुरोध किया है. पर वह अभी नौकरी करेगा. क्योंकि यहां भी अब उसे बिना कोई काम किये पूरे तनख्वाह मिलती है." (पृष्ठ 79) शुक्लजी अपने इस तथाकथित बेटे के माध्यम से वर्तमान राजनीति ओर राजनीतिज्ञों के कपड़े हटवाकर पाठकों को सब कुछ दिखा देते हैं. और पाठकों के सामने ही उस

'गधे' से कहते हैं, " बेटा, यह सही है. यहां तक पहुंच कर तुम अपनी मम्मी के गधे नहीं रहे. पर वह कौन है इन दस सांसदों के मुंह से तुम्हें राजनीति के मैदान में दुलत्ती झाड़ने को बुला रहा है? मत भूलो, तुम्हें पता भी नहीं है और अनजाने ही तुम किसी दूसरे के गधे बन चुके हो. अब तुम खुद पता लगाओ कि तुम्हें गधा बनाकर अपनाने वाले तुम्हारे नये पापा या नयी मम्मी कौन है?" यह सचेत कर देने वाली मुद्रा ही लेखक की असली मुद्रा है.

'रागदरबारी' के बाद 'अंगद का पांव' और फिर इन कथाओं को पढ़कर पक्के तौर पर श्रीलाल शुक्ल को कथाकार से ज्यादा व्यंग्यकार मानने का आधार मिल जाता है. छोटी-छोटी और कम महत्व की बातों को वे जितने गहरे अर्थों से जोड़ कर व्यंग्य धार देते हैं, उतना कौशल अन्य लेखकों में कम देखने को मिलता है. वे इन कथाओं में भी ऐसी सच्चाइयों से रूबरू कराते हैं, जिन्हें हम अपने आसपास घटते हुए भी नहीं देख पाते. विन्यास ऐसा कि पढ़कर मन ही मन हंसी आये, किंतु भीतर एक चिंता विचलित कर दे. कार्यकारण संबंधों का ऐसा गठ-जोड़ कि प्रश्नों-शंकाओं की की गुंजाइश ही साफ हो जाए. बतकही और किस्सागोई से अलग 'कहानी' में व्यंग्य का जैसा चमत्कारपूर्ण संयोजन शुक्ल जी करते हैं, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है. भाषा का रचाव इन कथाओं की ऊर्जा का वास्तविक स्रोत है, लेकिन कहीं-कहीं उसमें निरंतर चलती नाटकीयता इतनी बढ़ गई है कि एकरसता पैदा हो गई है और वहां अनुभव फिसल गया है पहली कथा अन्य दो से ज्यादा प्रभावपूर्ण है.

कुल मिला कर जनहित, लोककल्याण, सार्वजनिक विकास, स्वाधीनता, सुधार, उत्पादन जैसी शब्दावली का प्रयोग सरकारी दावों में जिस ढंग से किया जाता है, उसे शुक्ल जी का यह कथासंग्रह पटकनी दे देता है, क्योंकि वे जानते हैं कि 'जो बात अपने देश के चरित्र के लिए सच है, वही पानी के लिए भी है. पानी हर हालत में अपना धरातल ढूंढ़ लेता है. और सचमुच इस चरित्र के चलते न तो उमराबनगर जैसे गांवों का नियोजित विकास संभव है, न डाकुओं और पुलिस के आतंकवाद से निर्दोष जनता की मुक्ति और न ही 'मम्मी जी के गधों' के रहते अफसरों और राजनीतिज्ञों-द्वारा जनता का कल्याण! इस संग्रह की तीनों कथाओं में देश के इसी पनीले चरित्र ने अपने धरातल ढूंढे हैं.

□ डा. हरिमोहन

चर्चित पुस्तक : उमराबनगर में कुछ दिन
व्यंग्यकार : श्री लाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
1988, पृष्ठ 81, मूल्य 30.00 रु.

व्यंग्य की जुगलबंदी

देश में तालाबंदी, चकबंदी, नसबंदी वगैरा न जाने कितनी बंदियां चल रही हैं. अब अगर जुगलबंदी भी हो जाए तो क्या हर्ज?' —बकौल रवींद्रनाथ त्यागी के इसे फर्ज मानकर लतीफ घोंघी ने एक अन्य सशक्त व्यंग्यकार ईश्वर शर्मा के संग संगीत की तर्ज में साहित्य में भी जुगलबंदी पेश कर दी है— 'व्यंग्य की जुगलबंदी'. व्यंग्य की इस जुगलबंदी में इन दोनों व्यंग्यकारों ने एक-एक विषय को लेकर स्वतंत्र व्यंग्य लेख लिखे हैं. पतझड़ से प्रश्न चिह्न, फिल्म से क्रिकेट, आदरणीय से बेशरम, अस्पताल से शवयात्रा, चिंता से जूता तक ऐसे सत्रह विषयों को व्यंग्यकार द्वय ने अपने लेखों का आधार बनाया है.

देश के राजनीतिक हालात, सामाजिक रूढ़ियों, जातिवादी प्रवृत्तियों आदि के संग रोजमर्रा की जिंदगी के आसपास फैली विरूपताओं और बिंडबनाओं को इन व्यंग्यकारों ने अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है. व्यंग्य की धारदार मार ज्यादातर राजनीति से जुड़े व्यक्तियों पर ही पड़ी है, पर फैशन परस्त युवा पीढ़ी, फिल्मों हस्तियों की दीवानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिलाएं, पढ़ाई से ज्यादा क्रिकेट के कीड़े बने हुए स्टूडेंट्स आदि भी उनकी पैनी नजर की पकड़ में आ ही गये हैं. बानकी बतौर 'जूता' पर लिखी पंक्तियां देखी जा सकती हैं. घोंघीजी, 'सरकारी जूता बहुत समझदार होता है. हिसाब से पहनोगे तो बिल्कुल नहीं काटेगा, रगड़ने पर ही तुल गये तो काटेगा नहीं तो और क्या करेगा?' इधर ईश्वर शर्मा जी का कहना है, 'समाज में हम सबकी स्थिति जूते के समान ही तो है. हम सब किसी न किसी पांव में चढ़ने के लिए ही तो अपनी दुकान सजाए बैठे हैं..... जूता मखमली हो या शेर की खाल वाला, सस्ता हो या महंगा, लेकिन जूता हर हालत में जूता ही कहलाता है. पहना तो उसे पैरों में ही जाता है. जो इस तथ्य को समझ गये हैं, वे मजे से पैरों के पास पड़े रहते हैं और जिन्हें अपने बारे में कुछ अधिक भ्रम हो जाता है, वे ठुकरा दिये जाते हैं और काम भी क्या है, केवल तलवे चाटते रहो.' की कोई कमी थोड़े ही है इस समाज में. जूते का और काम भी क्या है, केवल तलवे चाटते रहो.'

श्रोताओं को संगीत में सुखात्मक अनुभूति देने वाली जुगलबंदी की शुरूआत इस पुस्तक के द्वारा अब साहित्य में भी हो रही है. विभिन्न विषयों पर ज्वाइंटली लिखे इन व्यंग्य लेखों से पाठकों को प्रसन्नता और परितोष प्राप्त होगा– क्योंकि इनमें व्यंग्य की कचोट को विनोद का संग-साथ देकर मुस्कान को मिसरी जैसा बना दिया है. बकौल के.पी. सक्सेना– 'खेमों में बंटी व्यंग्य-बाजी के इस युग में एक ही पेड़ की छांव तले बैठे लिख रहे हैं– यह मामूली बात है क्या?' मामूली से विषयों का यह वैविध्य व्यंग्य की विधायिका शक्ति की सामर्थ्य का सबूत देता है, जो साहित्य क्षेत्र के लिए सचमुच ग्खद सूचना है.

लेखक : लतीफ घोंघी और ईश्वर शर्मा
प्रकाशक: सत्साहित्य प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-6
मूल्य : पचास रुपये

बिके हुए लोग

पैसा प्रधान इस युग में हर चीज बिकाऊ है– यहां तक कि मानवीय मूल्यों के वाहक समझे जाने वाले साहित्यकार और कलाकार भी. सरोजिनी प्रीतम ने आज के उन तथाकथित कवियों और लेखकों की कलई खोली है जिन्होंने या तो अपनी कलम बेच दी है या फिर जो योग्य और प्रतिभा सम्पन्न न होते हुए भी पैसे के बूते पर अपने को प्रतिष्ठित कर पाने में सफल होते हैं.

आज के कवि-लेखक समाज में कीर्ति को पैसे के बल पर कमा लेने की प्रवृत्ति किस हद तक जा पहुंची है– इस सब स्थितियों का जायजा सरोजिनी प्रीतम ने व्यंग्य विधी के माध्यम से कथात्मक फॉर्म में लिखी अपनी कृति 'बिके हुए लोग' में किया है. यश लोभी इन्हीं साहित्यकारों की इसी कमजोरी का लाभ उठाने के लिए कुंभन सिंह लेखक कॉलोनी में 'अभिनंदन करवा लो' की फेरी लगाता फिरता है और उसे राशिबाई, नेत्रवती, सपनावती अभिनंदन के लिए आतुर लेखिकाएं-कवयित्रियां मिल भी जती हैं जो एडवांस में मोटी रक़म देकर अपने सत्कार में साहित्यिक आयोजन करा लेना जीवन की सार्थकता समझती हैं. व्यंग्य विधा में बात की बारीकी शब्दों और अर्थों के भीतर से ज्यादा झांकती है और विनोद-विद्या में वह अधिक स्पष्ट हो जाती है. लेखिका का कथ्य व्यंग्य के रास्ते आया तो है, पर ज्यादातर वह हास्य-विनोद की सपाटबयानी के रास्ते चल कर कई बार फिसल भी पड़ा है. ऐसे स्थलों पर व्यंग्य के पैनेपन की कमी अखरती भी है. व्यंग्य को विनोद का जामा पहनाने की इस प्रवृत्ति से कई कल्पित नामों और स्थितियों से वास्तविक चेहरे और सच्ची घटनाएं बेनकाब भी हो जाती हैं और दिल्ली साहित्यिक जीवन से सरोकार रखने वाले उन्हें आसानी से पहचान भी सकते हैं. सपाटबयानी की यह तर्ज काबिले तारीफ नहीं मानी जा सकती.

लेकिन इसमें शक, नहीं किसी महिला द्वारा व्यंग्य-विधा को लेकर लिखा गया यह पहला ही उपन्यास है. साहित्य की दुनिया से जुड़े हुए जन इसे पढ़कर विनोदित भी होंगे और कसमसायेंगे भी. हास्य-व्यंग्य की मिलीजुली विद्या में लिखी यह कथाकृति अपने समानधर्माओं पर कहीं चोट करती है तो कहीं उन्हें सावधान भी करती है. कलम से प्रहारक बनना लेखिका को यहां रुचा है– शायद पाठकों को भी रुचे.

प्रो. विश्वंभर 'अरुण'

लेखिका : सरोजिनी प्रीतम
प्रकाशक : राजेश प्रकाशन, कृष्णा नगर, दिल्ली
मूल्य : पैंतीस रुपये

सफल व्यंग्य लेख

भारतेंदु युगीन व्यंग्य की अपेक्षा आधुनिक काल का व्यंग्य-साहित्य ने में कुछ अधिक ही प्रखरता लिये हुए है. आधुनिक पीढ़ी के व्यंग्यकारों ने सम सामयिक राज-नीति, व सामाजिक विसंगतियों पर अनेक रूपों के मारक प्रकार किये हैं. वर्तमान पीढ़ी में. यशवंत कोठारी एक परिचित हस्ताक्षर हैं. प्रस्तुत पुस्तक में व्यंग्य उपन्यास के अतिरिक्त उनके उन्नीस व्यंग्य लेख और दो कहानियां संकलित हें. यश का शिकंजा एक विशुद्ध राजनैतिक उपन्यास है. आज की राजनीति उठ-पटक का पर्याय बन कर रह गई है. लोक तंत्र के नाम पर आज के राज नेता किस सीमा तक टुच्चेपन पर उतर आते हैं, पक्ष-विपक्ष में फूट डाल कर किस प्रकार सरकारें गिरायी-उठायी जाती हैं, 'राजनैतिक चाल' के रूप में किन-किन हथकंड़ों से विरोधी दल दूसरे दलों के लोगों की हत्या कर डालते हैं– यही नहीं, 'बलात्कार' किये और करवाये जाते हैं. द्रष्टव्य है एक वरिष्ठ मंत्री रानाडे का स्वचिंतन, **"मैं 50 वर्ष से भारतीय राजनीति में झाड़ झोंक रहा हूं, और ये कल के लड़के मुझ पर सार्वजनिक रूप से आरोप लगाते हैं, और मुझे बलात्कारी और अत्याचारी करते हैं..."**

कोठारी ने 'सूत्रात्मक व्यंग्य' द्वारा सामाजिक नाम संज्ञाओं पर भी तीखे प्रहार किये हैं. संस्कृत सूत्रों के परिदृश्य में उन्होंने अपनी बात को सुस्पष्ट किया है. टीकाओं, शंकाओं और निवारण द्वारा उन्होंने विशेष चरित्रों को निर्वस्त्र किया है. दृष्यव्य है 'चमचे' की विशेषताएं, "चमचा हर समय अपनी कमर में 90° का कोण बना कर खड़ा रहता है. यह मुद्रा चमचे के लिये अत्यंत स्वास्थयवर्द्धक और उपयोगी है." 'बाढ़-सूत्र' की चारित्रिक विशेषता का एक उदाहरण लें, "वत्स, बाढ़ और स्त्री में कोई अंतर नहीं है. वैसे भी दोनों व्याकरण की दृष्टि से स्त्रीलिंग ही हैं. अतः इनके चरित्र का भगवान ही मालिक है. लेखक ने आधुनिक कवि का चित्रांकन 'कवि-सूत्र' में इस प्रकार से किया है: 'जटा के समान बालों वाला, दुबला-पतला, अर्द्ध विक्षिप्त, फटे वस्त्रधारी तथा पैरों में स्लीपर पहनने वाला जीव कवि होता है..." फिल्म ने हमारे समाज को किस कदर प्रभावित किया है. इसे 'फिल्म-सूत्र' में देखा जा सकता है.

शीतांशु भारद्वाज

यश का शिकंजा: ले. यशवंत कोठारी, प्रकाशक: सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-6, मूल्य तीस रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन्द्र धनुष, इन्द्र धनुष..."

चालीस वर्ष पहले, अपने पैतृक फार्म पर घूमते हुए उन्हीं सुषमा को प्रकृति से प्यार हो गया। यह जीवन
न का आरम्भ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि सुखद है

आज डा० सुषमा मित्रा — जो वनस्पतिज्ञ हैं, जिन्हें इस बात का गर्व है कि उन्होंने नेत्र-दान का संकल्प किया है।

"बरसात की पहली बौछार में सारे खेत नहाये हुए, दूर तक फैले, जहां इच्छामोती से मिलते थे वहां बरसते पानी की रेखायें अब भी नज़र आ रही थीं। जब मैं अपने दादा जी के साथ बाहर निकली तो मेरी आँखों के सामने कोई सामान्य हरियाली नहीं बल्कि एक जीवंत, धड़कन भरी, वर्षायी-हरियाली थी।

हम बहुत दूर नहीं गये थे कि मैंने आकाश में इन्द्र धनुष देखा — अपनी पूरी सजावट के साथ। मैं जीवन में पहली बार इन्द्र धनुष देख रही थी और मेरे मस्तिष्क में वे परी कथायें घूम रही थीं जिनका दावा था कि यदि कोई इन्द्र धनुष के छोर तक पुहंचने का साहस कर सके तो वहां उसे एक स्वर्ण-कलश मिलेगा।

इतिहास ने करवट ली जिसके परिणामस्वरूप वे खेत हमारे परिवार से छिन गये।

फिर भी मुझे लगता है कि उस सुदूर बरसाती सुबह को, मुझे तो मेरा स्वर्ण-कलश मिल गया था, क्योंकि, इन्द्र धनुष को ताकते हुये और दादा जी से उसके रंगों का रहस्य समझते हुए... मैं प्रकृति की आराधिका बन गई। बर्षों बाद, कुछ नाटकीय ढंग से, मुझे असली रहस्य का ज्ञान हुआ।

"मेरे छात्र और मैं प्रकृति दर्शन के लिए शिमला में निकले थे। उस दिन बसंत — प्रभात की निर्मल शान्ति थी। तभी एक अद्भुत घटना हुई। अकस्मात् तेज हवा चली जिसने चीड़ के वृक्षों से पके हुए सूक्ष्म पराग-कणों को नीचे गिरा दिया। फिर क्या था पर्वतीय ढलानों पर लाखों-करोंडों की संख्या में ये मकरन्द-कण स्वर्ण की निरन्तर वर्षा के रूप में बह रहे थे। इसे ही पर्वतीय गाथाओं में 'गंधक की फुहार' के नाम से सराहा गया है।"

"पवन से बिखरते हुये पराग के दृश्य को देखकर मुझे आभास हुआ कि ये सभी चीजें इतनी सुन्दर इसलिए मालूम होती हैं, क्योंकि मैं उन्हें देख सकती हूँ।"

घर लौटने पर मैंने एक काम किया जिससे उस एहसास का कुछ भला परिणाम निकले, मैंने संकल्प किया कि मेरी मृत्यु के उपरान्त, मेरे नेत्र किसी दृष्टिहीन को दान कर दिये जायें — डा० श्रीमती सुषमा मित्रा कहती हैं।

परिवार के लिये गर्व का विषय :

वह आगे कहती हैं : "आपको प्रसन्नता होगी कि मेरे पति और बच्चों ने भी नेत्र-दान का संकल्प किया है। हालांकि मेरे पति वैज्ञानिक हैं, किन्तु आरम्भ में उन्हें कुछ दुविधा थी, अतः मुझे कुछ बातें उन्हें समझानी पड़ी। अन्त में, वह मुझसे सहमत हो गये जैसे कि वह सदा करते हैं। (शायद यह भी एक कारण है कि मैं उन्हें प्यार करती हूँ) मेरे पति ने ही और परिवार जन को संकल्प पत्र भरने के लिए प्रेरित किया। यहां तक कि मेरी वृद्ध दादी माँ ने भी नेत्र-दान संकल्प किया है।

नेत्र-दान का संकल्प कीजिये :

दृष्टि, अन्य सभी इन्द्रियों से बढ़कर, अत्यन्त ज्ञानवर्धक अनुभव है।

और डा० सुषमा मित्रा की तरह, वह चमत्कार कर दिखाने का सामर्थ्य आपमें है। नेत्र-दान का संकल्प कीजिये। इसके लिए केवल आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है।

और एक दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए किसी दिन देखने की सामर्थ्य पा लेना, एक चमत्कार से कम नहीं है।

नेत्र-दान के विषय में कुछ आधारभूत तथ्य :

1. किसी भी उम्र का, लगभग कोई भी व्यक्ति नेत्र-दान कर सकता है, यदि नेत्र-दाता चश्मा पहनता हो, उसे मोतियाबिन्द हो या आँखों का सफल ऑपरेशन हो चुका हो, तो भी नेत्र-दान सम्भव है।
2. मृत्यु के उपरान्त 6 घन्टों के अन्दर-अन्दर आँखों को निकाल लेना चाहिये। अतः निकटतम नेत्र-बैंक को तुरन्त सूचित करना आवश्यक है।
3. नेत्रों को निकालने में केवल 10-15 मिनिट लगते हैं और उससे कोई निशान या विकृति उत्पन्न नहीं होती।
4. आपके नेत्र-दान से दो दृष्टिहीन व्यक्तियों को दृष्टि मिलती है, एक दृष्टिहीन व्यक्ति को एक नेत्र प्रदान किया जाता है।
5. कानून में यह प्रावधान है कि आप किसी मृत सम्बन्धी के नेत्र-दान कर सकते हैं — यदि उसने कभी नेत्र-दान के विरुद्ध अपना मत व्यक्त न किया हो तो।

कृपया अपने परिवार के साथ इस विषय पर चर्चा करें। नीचे दिया गया प्रपत्र भरें। और टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को डाक द्वारा भेज दें। हम आपको एक नेत्र-दाता के रूप में पंजीयन कर लेंगे और आपको नेत्र-दाता कार्ड और प्रमाण पत्र भेजेंगे जिसमे आपके निकटतम नेत्र-बैंक का नाम, पता व टेलीफोन नम्बर, अंकित होगा।

राष्ट्र को नेत्र-दान करने की घोषणा

मैं/हम, अधोहस्ताक्षरीगण, एतद्द्वारा संयुक्त रूप से/पृथक-पृथक राष्ट्र को अपने नेत्र दान करने का संकल्प लेता हूँ/लेते हैं तथा एक दूसरे पर दायित्व डालते हैं कि हममें से किसी की भी मृत्युपरांत नेत्र-चिकित्सक को बुला कर, प्रत्यारोपण के उद्देश्य से हमारे नेत्र निकाल कर हमारी इच्छा पूर्ण की जाए।

1. श्री/श्रीमति_____ आयु ____ हस्ताक्षर _____
2. श्री/श्रीमति_____ आयु ____ हस्ताक्षर _____
3. श्री/श्रीमति_____ आयु ____ हस्ताक्षर _____

पता _____ पिनकोड _____ राज्य _____ तिथि _____

साक्षी की आवश्यकता है जब केवल एक या परिवार के 3 से कम सदस्य नेत्रदाता हों.

1. श्री/श्रीमति_____ रिश्ता_____ हस्ताक्षर_____ पता_____
2. श्री/श्रीमति_____ रिश्ता_____ हस्ताक्षर_____ पता_____

दृष्टि

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन
टाइम्स ऑफ इंडिया, 10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

अं क ख/दृ/ई आ फा. 1

दृष्टि के आनन्द को बांटिये. नेत्र-दान का संकल्प कीजिये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को दी जाने वाली वित्तीय सहायता आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80(जी) के अंतर्गत कर मुक्त है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठहरकर सोचने पर विवश करती कहानियां

स्वाधीनता के चार दशकों में, इस देश में जो होना चाहिए था, वह नहीं हो सका. यही वजह है कि आर्थिक विषमता की खाई चौड़ी होती चली गयी. परिणामतः 'जीवन' को संचालित करने वाली शक्तियां अपने में फलती-फूलती चलीं गई और हमारा समाज धीरे-धीरे अपने मूल चरित्र की तस्वीर धुंधलाता चला गया. सामाजिक परिवर्तन के जिस चक्र को विकास की ओर चलना था, वह विपरीत दिशा की ओर लौटने लगा. इस सत्य से साक्षात करना हो तो हमें सरकारी प्रचार माध्यमों की खबरों से अलग, खुद आंखें खोलकर यह देखना होगा कि कैसे इस एक समाज के लोग अलग-अलग शताब्दियों में जी रहे हैं! पांच सितारा संस्कृति से नीचे झांकते ही क्यों चारों ओर मौत के इर्द-गिर्द मंडराते जीवित नर-कंकाल नज़र आते हैं! भ्रष्ट राजनीति के इशारे पर चल रहे इस समाज में कैसे 'व्यक्ति' एक इकाई न रहकर 'वोट' में तब्दील होता जारहा है...जिसे चाहे-अनचाहे किसी न किसी के लिए इस्तेमाल होना ही है.

ऐसे में हमारे समय का नया रचनाकार जब अपने लेखन के सफर की शुरुआत करता है...तब उसका दायित्व क्या होना चाहिए! यह एक ऐसा ज्वलंत प्रश्न है, जिसे कभी 'नॉस्टेलजिक मूड' में हमारे कथालोचक तो कभी बुजुर्ग रचनाकर विचारणीय मानते ही नहीं. चूंकि जो कुछ लिखा जा सकता था, वह तो दरअसल उन्हीं के समय में रचा जा चुकाहै. दरअसल उन्हीं के समय में रचा जा चुका है. बहरहाल, नयी रचनाशीलता के विकास का रास्ता तैयार करते हुए गहरी और व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि का विकास करने की दृष्टि से जो गैरव्यावसायिक और सार्थक प्रयास होने चाहिए उनकी स्थिति बहुत दयनीय है. इस धुंधलके में पिछले पांच वर्षों में एक प्रयास क्रमशः आकार लेता नजर आ रहा है...और वह है—(से.रा. यात्री, विभूति नारायण राय, कपिलेश भोज के संपादन में प्रकाशित) कथा-मासिक 'वर्तमान साहित्य'. यूं तो, इस पत्रिका में अब-तब अच्छी रचनाएं पढ़ने को मिलती रही हैं...किंतु इधर जनवरी, 1988 के अंक में 'कृष्ण प्रताप स्मृति कहानी प्रतियोगिता' में पुरस्कृत कहानियों से होकर गुज़रते हुए 'बेला एक्का लौट रही हैं', 'गैर जिम्मेदार उम्र' और 'पितृपद का स्थानांतरण' जैसी रचनाओं ने इस रूप में ध्यान आकर्षित किया...कि यह है नई रचनाशीलता...और इस

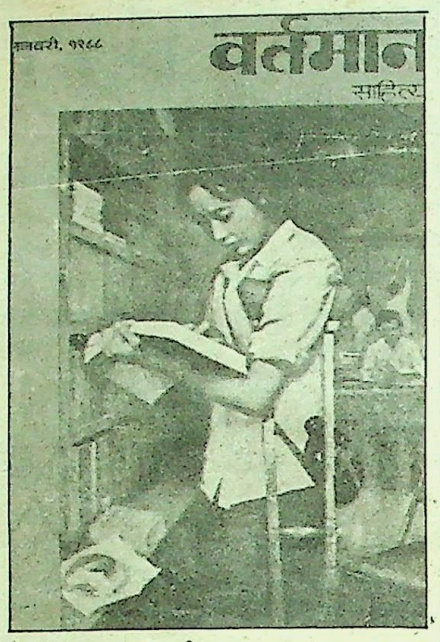

तरह नया कहानीकार समझना-परखना चाहता है अपने समय और समाज को!

यह तीनों कहानियां किसी न किसी रूप में समाज को संचालित करने वाली शक्तियों के मूल चरित्र को समूचेपन में पहचानने का संयुक्त प्रयास-सी प्रतीत होती हैं. 'बेला एक्का लौट रही हैं' जहां एक सधी हुई कथा-रचना के रूप में अपने आकर्षक शिल्प की वजह से सबसे ज्यादा प्रभावित करती है वहीं उसकी नायिका बेला एक्का जैसे चरित्र की असहाय स्थिति और बेचारगी हमें यह अहसास गहराई से कराती है कि छोटे लोगों के सपने बड़े लोगों के जूतों की नोक पर टिके होते हैं. जरा मस्ती में पैर ही झटक दिया, सपनों का शीराज़ा बिखर जाता है. जगदीश बाबू यहां कहानी का आधार चरित्र भले ही न हो, लेकिन बेला एक्का के सपनों की लगाम उसके हाथ में है. हो सकता है बेला एक्का की वापसी बहुतों को न रुचे...पर यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि कहानियों में सामाजिक परिवर्तन की गति तेज कर देने भर से क्रांति की शुरुआत नहीं हो जाती. इस कहानी की नायिका यदि इतना भर समझ गयी है कि 'सहना मरना है!' तो यह हमारे समाज की एक उपलब्धि ही है. और यह अस्वाभाविक नहीं है कि बेला एक्का जैसी किसी भी लड़की के सपनों का शीराज़ा कभी भी बिखर सकता है.

कहानी 'गैर जिम्मेदार उम्र' में जगदीश जैसा चरित्र हू-ब-हू न सही....पर बाज्यू उन्हीं शक्तियों का प्रतिनिधि चरित्र है जिनसे हमारा ग्रामीण समाज संचालित हो रहा है. यह कहानी एक मस्त, बेफिक्र और गैरजिम्मेदार किस्म की उम्र के नायक के मनोजगत को करीब से पहचानने की कोशिश के साथ-साथ हमारी संवेदना के तंतुओं को बाज्यू और मास्साब के (असमान जीवन स्तर के कारण) व्यवहार से झकझोरती हुई भी चलती है. अपनी जिस औलाद को अपने सपनों के मुताबिक ढालने की भरपूर कोशिश बाज्यू करते हैं, वही किस तरह एक दिन मास्साब की दयनीय हालत देखकर सहज रूप में वह सब कुछ जान-समझ लेता है जो हमारे समाज के असंतुलन की कुंजी है. धूप में नहीं, 'बोध' के झटके में खुली उसकी आंखें उसकी समूची सोच को बदल डालती हैं. पहली कहानी की ही भांति, इस कहानी में भी लड़का जो चाहता है, वह होता है या नहीं इसकी परवाह किये बिना कथाकार ऐसी जगह हमें ले जाकर खड़ा कर देता है जहां पहुंचकर गंभीरतापूर्वक सोचना हमारी विवशता हो जाती है...पर यह आश्वस्ति भी रहती है कि आने वाला समय ऐसा ही नहीं रहेगा. दो पीढ़ियों की समझ और सोच का यही फर्क कुछ दूसरे रूप में 'पितृपद का स्थानांतरण' कहानी में भी सामने आया है. यहां नयी पीढ़ी के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में गणेश एक यादगार चरित्र बनकर आया है जो पुत्र की हैसियत से यदि अपने दायित्वों का निर्वाह करना जानता है तो बड़े भाई को फटकार भी सकता है कि पिता को पैसे की नहीं बेटे की जरूरत है. उसका अंतिम प्रश्न पिता के अंधविश्वासों को जिस तरह झटका देता है वह निश्चित रूप से कहानी की उस पारंपरिक तर्ज को झुठलाता है जहां भावुकता अंत तक पूरी लय के साथ विद्यमान रहती है. और शायद यही कहानी की नयी संवेदना तक पहुंचने का रास्ता भी है. अरुण प्रकाश, संजय खाती और क्षितिज शर्मा इन कहानियों के लिए बधाई के पात्र इसलिए हैं कि वे मजेदार स्थितियों से होकर गुजरती कहानी में भी उस खतरे से बचा ले जाते हैं जहां मजा लेने भर के लिए कहानी बनी रह जाती है...ठहरकर सोचने पर विवश करती हैं यह कहानियां. □

महेश दर्पण

वर्तमान साहित्य
संपर्क : 109, रिछपाल पुरी,
पोस्ट बाक्स नं. 13
गाजियाबाद-201 001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

प्रतिभाशाली उपन्यासकार

राजहंस

का नया उपन्यास

जलते आंसू

५मी२ का नया उपन्यास

भ्रूण सच 6/-

जनप्रिय लेखक ओमप्रकाश शर्मा का नया जासूसी उपन्यास

सुधाकर हत्याकांड 10/-

जेम्स हेडली चेईज का नया जासूसी उपन्यास

डाका और मौत 6/-

शरत्चन्द्र का

ब्राह्मण की बेटी 10/-

कुशवीहा कांन्त का

आहुति 6/-

सुमार मुनिया

का नया जासूसी उपन्यास

ब्लैक आउट 6/-

कुशवीहा कांन्त का

मंजित 6/-

मुसाफिर का

दर्द के रिश्ते 6/-

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Ar... Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

कैसी होती है जिस्म से जेहन तक के रेशे-रेशे को जकड़े रखने वाली कैद...जिसके सींखचे दिखाई नहीं देते लेकिन शिकंजों का कसाव हर सांस महसूस करती रहती है...?

जिंदगी के अहम् सवालों से सामना ही नहीं, रास्ता तलाशने की दिशा में भी पहल करती देवेंद्र सत्यार्थी, शिव प्रसाद सिंह, कैथरीन मैंसफील्ड, श्रवण कुमार, सुरेंद्र अरोड़ा, आनंद अस्थाना, रामसरन शर्मा, रमेश राजहंस, राजेंद्र प्रसाद पांडेय, महावीर राजी और महेश राजा आदि की कथा-रचनाएं.

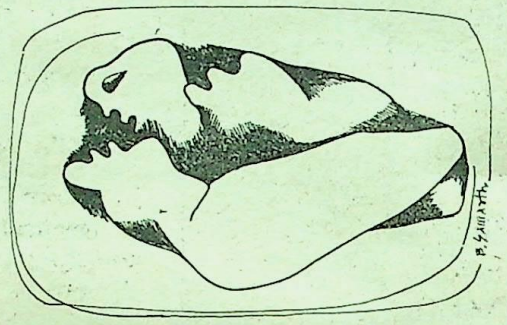

'पुनर्नवा' के अलावा आचार्य द्विवेदी ने कोई उपन्यास लिखा ही नहीं.

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की पुण्य तिथि पर प्रख्यात आलोचक प्रभाकर श्रोत्रिय का महत्वपूर्ण आलेख...जिसमें पहली बार द्विवेदीजी की कथा-कृतियों के रूपबंध के बारे में फैले भ्रम का प्रतिवाद करने की कोशिश की गयी है.

...और साथ में

फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, अनजानी प्रेम कथाएं, संस्मरण, नयी पौद, आपकी बात, नये हस्ताक्षर, कथा दर्शन, धारा के विरुद्ध, कृतियां, अपनी बात, हलचल, लघुकथाएं और चलते-चलते.

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

नये रूपाकार, साज-सज्जा और बढ़े हुए पृष्ठों के साथ 'सारिका' का यह अंक आपको अवश्य पसंद आया होगा और भविष्य में भी आप 'सारिका' नियमित रूप से पढ़ना चाहेंगे. आपकी सुविधा के लिए हमने 'सारिका' की वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक चंदे की रियायती दरें निर्धारित की हैं. आप केवल नीचे दिये गये कूपन के साथ अपने वार्षिक/अर्द्धवार्षिक चंदे की राशि बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा हमें भेज दें, आपको 'सारिका' डाक से नियमित मिलने लगेगी.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक :67 रुपये

अर्द्धवार्षिक :34 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम .....

पता .....

.....

.....

हस्ताक्षर .....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

प्रसार अधिकारी
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002

सारिका
मई, 1988

हर महीने एक जरूरी मुलाकात, सारिका जिंदगी की बेहतर किताब.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका वर्ष 28; अंक : 432; अप्रैल, 1988

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

अतिथि संपादक :
लक्ष्मीचंद्र जैन
संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

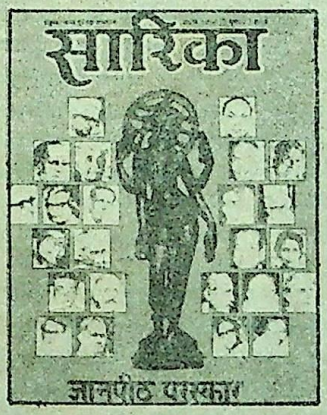

आवरण पारदर्शी : धर्मवीर जयनर
आवरण सज्जा : सुधीर गुप्ता
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक : तीन

कहानियां

11 अंधारुआ :
सच्चिदानंद राउतराय
18 कंकू :
पन्नालाल पटेल
23 बाढ़ में :
तकषी शिवशंकर पिल्लै

उपन्यास/नाट्य रूपांतर

26 मृत्युंजय :
वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य
30 ययाति :
विष्णु सखाराम खांडेकर

उपन्यास-अंश

34 तीन पीढ़ी :
आशापूर्णा देवी
39 माटीमटाल :
गोपीनाथ महांती

कविताएं

14 निर्वाचन :
सच्चिदानंद राउतराय
15 कोणार्क :
सच्चिदानंद राउतराय
21 आत्मा के खंडहर :
उमाशंकर जोशी
63 शिव और पार्वती :
आक्टोवियो पॉज

साक्षात्कार

43 स्त्री का सबसे सुंदर हिस्सा देह नहीं, उसकी भावना है :
सुमित्रानंदन पंत से इंदु जैन की अंतरंग बातचीत
52 मैं जीवन का रस लेने के लिए लिखता हूं :
शिवराम कारंत से बी. आर. नारायण की बातचीत

विशिष्ट आलेख

46 फिराक की सृजनात्मक ऊर्जा :
बिशन टंडन
50 अलख अकेला :
फणीश्वरनाथ रेणु
70 विकट चुनौतियां : प्रयोग के साथी :
कुंथा जैन

स्वयंवद्

55 साहित्य सृजन, पुरस्कार और मैं :
पुरस्कार विजेताओं के आत्मकथ्य
60 गीत मेरे! कर दे मेरे इश्क का कर्ज अदा :
अमृता प्रीतम
62 मेरी इस यात्रा का अविस्मरणीय क्षण :
मार्गरेट थैचर
63 यह समारोह कई अर्थों में अनूठा बन गया है :
आक्टोवियो पॉज

अन्य आकर्षण

64 ज्ञानपीठ पुरस्कार :
संस्थापकों, संचालकों के विचार और विनयांजलि
68 वाग्देवी के मंदिर के ये चिरंतन दीपाधार :
पुरस्कार विजेताओं की दिग्दर्शिका

स्थायी स्तंभ

6 आपकी बात
8 अपनी बात
9 अतिथि संपादकीय
76 कृतियां
80 नयी पौद
81 सारिका कथा पहेली

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेज़र रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88. महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326. स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

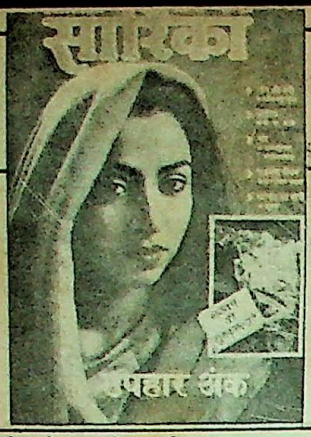

लिखने से कहीं अधिक त्रासद रहा पढ़ना

संजय की कहानी 'भगदत्त का हाथी' नये वर्ष का महत्वपूर्ण उपहार है. लगता है सन् 88 में अच्छी कहानियों का अकाल नहीं रहेगा.

इस कहानी को लिखना जितना त्रासद अनुभव रहा होगा उससे कहीं ज्यादा त्रासद है इस कहानी को पढ़ने से गुजरना. संभवतः पहली बार किसी लेखक ने ऐसे सामाजिक विषय को अपनी कहानी का आधार बनाया है. एक तरह से यह कहानी की वापसी है. वरना पिछले वर्षों में तो तथाकथित क्रांतिकारी मुखौटा लिये अंधी गली में भटकती रही है. और कई अच्छे से अच्छे कथाकार तक अखबारों में 'खूनी संघर्ष' के समाचार ढूंढकर अनुभव और वस्तुस्थिति से परे 'अविश्वसनीय' कहानियां लिखने के लिए आकुल-व्याकुल रहे हैं.

'भगदत्त का हाथी' ऐसे कथाकारों के लिये भी चुनौती है. इतनी अच्छी कहानी के लिये संजय को बधाई.

□ रामदेव सिंह, मुगल सराय (वाराणसी)

यह दोष नहीं, सुझाव है

प्रणवकुमार बंधोपाध्याय की 'पार' एक मजबूर इंसान की कहानी हो सकती है लेकिन उसे किसी जाति-विशेष में बांधकर प्रदर्शित करना लेखक की कौन-सी प्रगतिशीलता का बोध कराता है, सिवाय बेहूदगी के.

"लेकिन उसे मालूम है, कहार कुल में कोई पैदा हो तो किस्मत को कोसने के अलावा करने को और कुछ रह नहीं जाता." इस के लेखक महोदय ने क्या आज के समस्त कहार जाति पर एक घिनौना आरोप नहीं लगाया है? क्या उनके कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि समस्त कहार जाति एक निरीह प्राणी-मात्र है?

'पार' का अंत सिवाय भटकाव के, एक प्रश्न के, कुछ नहीं दे पाता है. कहानी केवल समस्याओं से ही घिरी है, निष्कर्ष से छटकी हुयी.

अच्छा होता बंधोपाध्याय इंसानों की, केवल इंसानों की कहानियां लिखते, किसी जाति विशेष को अपनी लेखनी से घिनौना प्रदर्शित न करते. यह मेरा रोष नहीं सुझाव है. अच्छा होता सारिका ने अन्य लेखकों की तरह बंधोपाध्याय जी का भी पता प्रकाशित किया होता, तो मैं स्वयं उन्हीं से पूछ लेता.

केवल कागज भरने से कुछ नहीं होता, मेरे सीमित लेखन से ही लेखक समझ जायें तो अति सुंदर हो.

□ शिवशंकर प्रसाद सिंह, सिवान (बिहार)

यह उपहार ही है

अंक काफी सुंदर व उपयोगी बन पड़ा है. साथ ही ढेर सारी पठन-सामग्री है. वास्तव में यह अंक हम पाठकों के लिये उपहार ही है. हमें सारिका के नये स्तंभों का काफी बेसब्री से इंतजार था, हम नये स्तंभों का हार्दिक स्वागत करते हैं. 'नये हस्ताक्षर', 'नयी पौध', 'कथा पहेली' आदि स्तंभों के लिये विशेष साधुवाद. 'नये हस्ताक्षर' के अंतर्गत नवोदित रचनाकार संजय की कहानी 'भगदत्त का हाथी' बेहद पसंदीदा लगी. ग्रामीण परिवेश में आम बोल-चाल की भाषा में लिखी गयी यह कहानी काफी अंदर तक छू गयी. काफी दिनों से इस तरह की कहानी नहीं मिली थी. इस कहानी में सशक्त शब्दों में गांव की सड़ी-गली परंपराओं का चित्रण हुआ है. इसमें गांव की मिट्टी की महक मिलती है, लोक-व्यवहार के शब्द मिलते हैं. प्रणव कुमार बंधोपाध्याय की कहानी 'पार' भी हृदय में टीस भर देती है. किस विवशता से एक बेटा अपने बूढ़े बाप से छुटकारा पाता है, इसका अच्छा खाका खींचा है लेखक ने. 'पार' की परिणति काफी सशक्त रही. अन्य कहानियां भी अच्छी रहीं.

□ रमेश विद्यार्थी, नरकटियागंज (बिहार)

इतनी महंगी क्यों?

'सारिका' के उपहार अंक में 'खिले हुए गुलाब और मुरझाये चेहरे.....' शीर्षक से 'आपकी बात' पढ़ी व समझी. संपादकीय की छठी लाइन :

"महंगाई के बोझ से दबा घुटा आदमी उत्सव नहीं मना पाता." लेकिन आप क्या यह नहीं समझ पाये, वही आदमी साहित्य जगत की सबसे महंगी पत्रिका 'सारिका' को कैसे व किन-किन आवश्यकताओं को काट-छांटकर खरीदता होगा?

'सारिका' से सजधज में कहीं अच्छी अन्य पत्रिकायें चार-पांच रुपये में आ जाती हैं फिर 'सारिका' इतनी महंगी क्यों? क्या 'सारिका' का महंगा होना उसके पूरी तरह व्यावसायिक होने का परिचायक नहीं है? क्या इस तरह 'सारिका' अपने पाठकों का शोषण नहीं करती? और फिर 'सारिका' तो अपने शब्द में ही एक साज है, संगीत है, उत्कृष्ट रचनाओं से सजी संवरी रहती है. 'सारिका' के पाठक चाहते भी यही हैं.

मेरे ख्याल में अगर 'सारिका' के मुख्य-पृष्ठ पर किसी 'खूबसूरत युवती की तस्वीर खूबसूरती से' न छापकर कोई मार्डन आर्ट छापें तो शायद 'सारिका' अधिक सस्ती पड़ेगी. आशा है उक्त संबंध में प्रयास किया जायेगा.

□ फूल चंद जायसवाल, बस्ती

देखो कहानियां लिखी जा रही हैं

संजय की लंबी कहानी 'भगदत्त का हाथी' और रमाकांतजी की लघु कहानी 'मुक्ति' सारिका की ओर से हिंदी कथा जगत को सचमुच उत्कृष्ट उपहार है. रमाकांतजी तो खैर वरिष्ठ हैं, पर संजय नये कथाकार हैं. साहित्य के कुछ गुटबाज छुटभैया, बड़भैया जिनकी नजर और मगज में पूरा हाथी अटक नहीं पाता वे कभी पूंछ, कभी कान, कभी पांव, कभी सूंड पकड़कर क्रमशः रस्सी, पंख, पेड़ और निष्कर्ष का अर्क शोध कर मग्न रहते हैं, ऐसे में उन्हें भगदत्त का पूरा हाथी देखना पता नहीं कैसा लगेगा, पर महानगरीय कुंठा से ग्रस्त और टी.वी की चौंध की अंधी आंखों को यह दिखाना बेहद जरूरी था कि देखो कहानियां लिखी जा रही हैं.

□ संजीव, कुलटी

कहानियों पर परिचर्चा

'पोखर' (नवीन कुमार नैथानी) एक बहुत अच्छी कहानी 'सारिका' ने छापी. इसको लेकर एक चर्चा गोष्ठी में युवा रचनाकारों ने इस कहानी में आने वाली गालियों का पूरी तरह समर्थन किया. कुछ रचनाकारों ने इस प्रकार की गालियों के प्रयोग पर आपत्ति करते हुए कहा कि कहानियां 'नैतिकता' से परे और हमारे भारतीय संस्करों के घेरे के बाहर हैं. लेकिन युवा रचनाकारों ने उस स्थितियों को लेकर खुलकर बात कि जब कोई पात्र कहानीकारों के माध्यम से गालियां देता है. यह जरूर है कि पात्रों से गालियां दिलवाना किसी लेखक का शौक होता है और न ही चौकाना. यह गालियां (पोखर के संदर्भ में) स्थितियों को मूर्तरूप देने के लिये जरूरत है.

काफी समय बाद, यह कहानी, वाकई बधायी की हकदार है. अन्य कहानियों में 'माइनस सेवन' (मनमोहन चड्ढा की रचना) पर भी विस्तृत बात-चीत हुयी. कहानी में संवेदनाओं को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया गया. इस कहानी को लेकर कोई आपत्ति न होने का यह कारण बिलकुल नहीं था कि उसमें कोई चर्चा की गुंजाइश ही नहीं थी बल्कि इसलिये कि सभी का इस विषय में एक मत था कि कहानी पढ़कर संतुष्टि मिली है.

□ अतुल शर्मा, विश्वनाथ, देहरादून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम पुरस्कृत पत्र

निजी स्तर पर घटित आदर्शवाद

सारिका के जनवरी 88 अंक में 'रूमानी मुद्रा की त्रासदी' शीर्षक से सुधीश पचौरी ने दूरदर्शन की व्यावसायिक संस्कृति के अंतर्विरोधों पर कुछ टिप्पणियां की हैं जो उनकी इधर पिछले कुछ समय से चल रही ल फ्फाजी की ताजा बानगी है. यह सच है कि दूरदर्शन में अधिकांश भ्रष्ट, कुत्सित और दोयम दर्जे की चीजें ही दिखायी जा रही हैं पर इस सबके बीच अगर कहीं कुछ अच्छा और प्रासंगिक है तो उसे चीन्हने और उसे समर्थन देने के लिये भी उतना ही नैतिक साहस होना चाहिये. एक सपाट सिनिसिज्म को लेकर आप कौन-सी लड़ाई लड़ना चाहते हैं?

'मनोरंजन' सीरियल के एक एपीसोड पर लिखते हुए सुधीश पचौरी फरमाते हैं कि इस सीरियल में साधनहीन कलाकारों को एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बहुत त्याग करते दिखाया गया है जो एक प्रकार की रूमानियत है. सुधीश पचौरी की समझ के अनुसार यदि ये साधनहीन कलाकार व्यावसायिक फिल्मों के माहौल में सारे भ्रष्टाचार से लड़ते हुए एक टीम बनाकर निजी स्तर पर बहुत बड़ी जिजीविषा, संकल्प और जुनून का उदाहरण दे रहे हैं तो यह बात व्यावहारिक नहीं है. और एक प्रकार का भावात्मक आदर्शवाद है. पचौरी आगे लिखते हैं कि यदि इस माहौल में एक कला फिल्म बन भी जाती है तो क्या उससे क्रांति हो जाती? अपनी 'सही' वामपंथी समझ के दंभ में टिप्पणियां करते हुए पचौरी साहब यह बताना भूल गये कि क्रांति आखिर किस चीज से आती है? वे बताते तो उनके क्रांति संबंधी दिव्य-ज्ञान का थोड़ा-सा लाभ 'सारिका' के बेचारे अज्ञानी पाठकों को मिल जाता.

सुधीश पचौरी क्रांति के रास्ते को व्यावहारिकता की दलील देते हुए व्यक्ति के निजी स्तर पर घटित होने वाले आदर्शवाद को जिस आसानी से नेगेट कर रहे हैं वह नया नहीं है. हमने ऐसी वामपंथी समझ के अनेक विलक्षण उदाहरण पिछले कुछ वर्षों में इस देश में घटते हुए देखे हैं. क्रांति की इसी 'व्यवहारिक समझ' के चलते प्रगतिशील लेखक संघ के जलसे की अध्यक्षता राजनीतिज्ञ कर लेते हैं और क्रांति के संबंध में बुद्धिजीवियों को उपदेश पिला जाते हैं. सत्ता विरोधी लेखक संघों के अधिवेशनों के लिये सरकारी महकमों से विज्ञापन लिये जाते हैं. अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता देश के किसी क्रांति-चेता बुजुर्ग लेखक से कराने की बजाय सत्ता की संस्कृति में गले तक पगे हुये एक राजनीतिज्ञ से करा ली जाती है. फोर्ड फाउंडेशन के पैसों पर पलते जिस भारत भवन और मध्य प्रदेश कला परिषद को ये वामपंथी लेखक दल कोसते नहीं थकते उन्हीं वामपंथी लेखकों के चरम आराध्य और परम प्रिय कवि त्रिलोचन या शमशेर बहादुर सिंह ठीक उसी समय से इन संस्कृति के अड्डों की पीठों पर आसीन रहते हैं. उनके वहां होने को लेकर इन लेखक संघों में कभी कोई बहस नहीं छिड़ती. आखिर ऐसी कौन-सी मजबूरी होती है कि जिस श्रीकांत वर्मा को ये लेखक संघ फासिस्ट और दमनकारी सत्ता का पिछलग्गू लेखक करार देते हैं उसी श्रीकांत वर्मा के निधन के बाद उसके नाम पर स्थापित पुरस्कार को एक जनवादी युवा कवि देश के उपराष्ट्रपति के हाथों स्वीकार कर धन्य हो जाता है. जो नागार्जुन इमरजेंसी और इंदिरा गांधी का विरोध करते हुए उन पर तीखी, कवितायें लिखते हैं, वे ही नागार्जुन कुछ वर्षों बाद उसी इंदिरा गांधी से एक बड़ा पुरस्कार प्राप्त कर रहे होते हैं.

हम यह स्वीकार करते हैं कि आज जटिल समय में सत्ता और कलाकार के द्वंद्वात्मक संबंधों को बहुत सपाट या इकतरफा नहीं बनाया जा सकता और किसी भी लंबी लड़ाई में व्यावहारिक से कुछ तत्व अनिवार्य रूप से शामिल होंगे ही फिर भी सबसे विडंबनात्मक स्थिति यह है कि व्यावहारिकता के नाम पर लेखक-कलाकार अक्सर समझौते और अमन-चैन की एक ऐसी मुद्रा में नजर आते हैं जहां उनका सारा आक्रोश, सारी बेचैनी महज खानज पर घटित होती नजर आती है. कलाकार के निजी स्तर पर घटित होने वाले आदर्शवाद के बिना कोई भी क्रांतिकारी कर्म रूपायित होना मुश्किल है फिर चाहे इस आदर्शवाद का प्रारंभिक स्वरूप भावात्मक ही क्यों न हो.

□ जितेंद्रकुमार मित्तल, बंबई

श्रद्धांजलि

सोहन लाल द्विवेदी

समरेश बसु

साहित्य-जगत की अपूर्णीय क्षति

लंबे समय तक हिंदी साहित्य-जगत की सेवा करते हुए राष्ट्रकवि का सम्मान पाने वाले सोहन लाल द्विवेदी कानपुर के हृदयरोग संस्थान में 1 मार्च, को 83 वर्ष की अवस्था में दिवंगत हो गये. साहित्य जगत की यह एक अपूर्णीय क्षति है. सन् 1905 में जन्मे पं. सोहन लाल द्विवेदी की रचनायें ही नहीं, उनकी हिंदी-सेवा की भावना भी हमारे लिये प्रेरणा-स्रोत बनी रहेगी.

11 दिसंबर 1924 को फरीदपुर में एक बेहद निर्धन परिवार में जन्मे समरेश बसु ने जिंदगी की समर अपने बाल्यकाल से ही लड़नी शुरू कर दी थी. समय की धारा के विपरीत समरेश की निष्ठा और लगन का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कक्षा आठ के बाद स्कूली पढ़ाई से अलग हो जाने वाले समरेश शरत् बाबू का समूचा कथा-साहित्य पढ़ चुके थे...और 12 मार्च, 1988 को कलकत्ता से जब हम यह समाचार पाते हैं कि समरेश बसु नहीं रहे, तब बंगला के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार, रवींद्रनाथ ठाकुर के बाद बंगला के सबसे बड़े गद्यकार के निधन के रूप में उनके न होने को रेखांकित करते दीखते हैं.

'नयनपुरेर माटी', 'उत्तरंग', 'सौदागर', 'गंगा', 'स्वीकारोक्ति', 'संकट', 'जुग-जुग जीये', 'महाकालेर खोर घोड़ा', 'तीन पुरुष', 'विक्ट', 'अश्लील', 'पातक', 'प्रजापति' सरीखे इनके सवा सौ से भी अधिक उपन्यासों और तीन सौ से भी अधिक कहानियों में से अधिकांश या तो हिंदी में अनूदित हो चुके हैं या हो रहे हैं. इस रूप में वे हिंदी कथा-पाठकों के चहेते रचनाकार रहे हैं.

अपने चौंसठ वर्षीय जीवन में जन्म से अंत तक जिन विविधताओं को समरेश ने जिया...वह अपने आप में एक ऐसी गाथा है जो अविस्मरणीय तो है ही, आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा-स्रोत भी बनेगी. जरूरत इस बात की है कि तमाम भारतीय भाषाओं में इस संघर्षजीवी रचनाकार की रचनाओं के अनुवाद की व्यवस्था की जाये...ताकि तमाम भाषा-भाषी पाठक उनके रचना-संसार से परिचित हो सकें. हिंदी में 'लघु पत्रिका आंदोलन' को बल देने वाली लघुपत्रिका 'लहर' के यशस्वी संपादक प्रकाश जैन के 13 मार्च 1988 को निधन का दुखद समाचार अभी-अभी मिला है. साहित्य-जगत की, इन विभूतियों के निधन से अपूर्णीय क्षति हुई है. सारिका-परिवार की ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

राष्ट्रीय चिंतन के अंतर्संबंधों का अंतर्सूत्र

जनवरी, 1985 में ज्ञानपीठ पुरस्कारों पर हमने 'सारिका' के दो विशेषांक निकाले थे. उन अंकों के बाद भी हमें लगातार यह लगता रहा था कि अब भी कई बातें ऐसी हैं जो पाठकों के सामने आनी चाहिये थीं लेकिन आ नहीं पायीं. इस बीच तीन रचनाकारों को ज्ञानपीठ पुरस्कार और मिल चुका है—तकषी शिवशंकर पिल्लै, पन्नालाल पटेल और सची राउतराय. जब पिछले विशेषांक हमने निकाले थे तो हमारा ज्यादातर ध्यान पुरस्कार की शरीर-संरचना पर रहा था. हमने अपनी बात में कहा भी था—''हमने ज्ञानपीठ पुरस्कार की शरीर संरचना से संबद्ध बातें मुख्य रूप से कीं...कि यह पुरस्कार कैसे शुरू हुआ, इसकी प्रक्रिया क्या है आदि. लेकिन इस पुरस्कार शरीर की एक धड़कन भी है. इसमें एक विशाल और ज्योतिर्मय आत्मा भी है. और वही आत्मा, वही धड़कन सबसे महत्वपूर्ण है. इसे हम राष्ट्रीय धड़कन और राष्ट्रीय आत्मा भी कह सकते हैं. यह पुरस्कार मात्र एक 'व्यक्ति' का ही सम्मान नहीं अपितु उस समूची भाषा का भी सम्मान है और उस अंचल या प्रदेश का भी, जिसके कृतिकार को यह दिया जाता है. जब भी हम किसी पुरस्कार विजेता की चर्चा करेंगे तो उस भाषा को भी रेखांकित करना पड़ेगा. उस भाषा की समृद्धि, उसकी साहित्यिक परंपरा, उसका इतिहास, उसकी प्रवृत्तियों और उसकी उपलब्धियों पर भी नजर अपने आप चली जायेगी. ये पुरस्कारजयी रचनाएं या रचनाकार देश की नब्ज का भी संकेत देते हैं. राष्ट्रीय चेतना की अंतर्धाराओं, राष्ट्रीय जनमानस और राष्ट्रीय चिंतन के अंतर्संबंधों का अंतर्सूत्र भी कहीं न कहीं और किसी न किसी सीमा तक हमारी पकड़ में आता है. यही एक सबसे महत्वपूर्ण बात है.

इसी महत्वपूर्ण बात को अधिक स्पष्ट करने और रेखांकित करने के लिए हमने इस तीसरे विशेषांक की योजना बनायी और यह चाहा कि इस काम के लिए ज्ञानपीठ से जुड़े किसी वरिष्ठ व्यक्ति को ही चुना जाये. इसी संदर्भ में हमने आदरणीय लक्ष्मीचंद्रजी से अनुरोध किया और उन्होंने कृपापूर्वक हमारे अनुरोध को स्वीकार लिया. हम उनके आभारी हैं. इस अंक के लिए लक्ष्मीचंद्रजी को विशेष सहयोग हमारे साथी वीरेंद्र जैन ने दिया है. यों हमारे सभी साथियों की इसके संयोजन में हिस्सेदारी है.

हमें पता चला है कि ज्ञानपीठ पुरस्कार को लेकर अन्य भारतीय भाषाओं की कुछ पत्रिकाओं ने अपने अंक निकाले हैं. अभी हाल ही में मराठी की लघु पत्रिका 'आलोचना' का ज्ञानपीठ पुरस्कार अंक हमें देखने को मिला. यह पत्रिका त्रैमासिक है और इसका यह विशेषांक 1987 में प्रकाशित हुआ था. मराठी की इसी पत्रिका ने 1976 में भी ज्ञानपीठ पर एक अंक निकाला था. यह सही है कि इस पत्रिका में अधिकांश लेख पुरस्कार विजेता रचनाकारों के परिचय पर ही आधारित हैं, दो-एक लेख ऐसे भी हैं जिनमें विजेताओं के स्तर की आलोचना की गयी है और उन्हें उस भाषा का दोयम दर्जे का लेखक मानते हुए विवाद खड़े किये हैं. विशेष रूप से डॉ. आर. श्रीनिवासन ने अखिलन और उनके साहित्य की इसी ढंग से समीक्षा की है. मराठी और गुजराती के रचनाकारों की भी दबी जुबान से कुछ-कुछ ऐसी ही टिप्पणियां हैं. साहित्य जगत के लिए इस तरह के विवाद और ऐसी बातें कुछ नयी नहीं हैं. बुद्धिजीवियों की जमात में निर्विवाद और एकमत जैसी कोई बात नहीं होती. यदि संदर्भ किसी बहुत बड़े पुरस्कार का हो तब तो इस निर्विवादिता की कल्पना भी संभव नहीं रहती.

साहित्य पर नोबेल पुरस्कार और ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवृत्तियों को एक साथ देखने से कुछ तथ्य सामने आये हैं जिनकी ओर मैं संकेत करना चाहता हूं. किसी भी कहानीकार को कहानीकार के रूप में न तो आज तक नोबेल पुरस्कार दिया गया है और न ही ज्ञानपीठ पुरस्कार. ये बात और है कि जिन रचनाकारों को उपन्यासकार के रूप में पुरस्कृत किया गया है वे कहानीकार भी हैं. विश्व के नाटककारों को नोबेल पुरस्कार दिया गया है लेकिन भारतीय नाटककारों को नाटककार के रूप में ज्ञानपीठ पुरस्कार अभी तक नहीं मिल सका. जबकि कहानी और नाटक दोनों ही साहित्य की स्थापित सर्वमान्य और महत्वपूर्ण विधायें हैं. भारतीय भाषाओं के किसी भी कहानीकार और नाटककारों के नाम भी ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए विचारणीय होने चाहिये. हमें यह भी मात्र संयोग ही लगता है कि हिंदी के चारों पुरस्कृत रचनाकार कवि हैं या उनके कवि रूप को ही पुरस्कृत किया गया है, जबकि अन्य भारतीय भाषाओं में कवि रूप में पुरस्कृत रचनाकारों की संख्या से अधिक संख्या उपन्यासकार के रूप में पुरस्कृत रचनाकारों की है. अन्य भाषाओं से नौ कवि पुरस्कृत हुए हैं जबकि उपन्यासकार ग्यारह पुरस्कृत हुए हैं. इसे देखते हुए क्या ऐसा नहीं लगता कि हमें हिंदी के समकालीन समस्त उपन्यास साहित्य के पुनर्लोचन और पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है.

अ. म. कुरैशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुति

आज से ठीक पच्चीस वर्ष पहले, 16 मार्च, 1963 को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा स्थापित एक लाख रुपये राशि के वार्षिक पुरस्कार के संचालन के लिए गठित प्रवर परिषद की पहली बैठक प्रवर परिषद के प्रथम अध्यक्ष देशरत्न डा. राजेंद्रप्रसाद के निर्णय के अनुसार दिल्ली में आमंत्रित की गयी थी. उन दिनों राजेंद्र बाबू भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति-पद के दायित्व से मुक्त होकर पटना में सदाकत आश्रम में रह रहे थे. जब उन्होंने ज्ञानपीठ की अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन को अपने 27 फरवरी, 1963 के पत्र द्वारा संपुष्टि दी थी कि वह बैठक के लिए एक दिन पहले दिल्ली पहुंच जायेंगे तब उन्हें क्या पता था कि उनके जीवन का यही अंतिम पत्र होगा. उनके सचिव श्री बाल्मीकि चौधरी ने उस पत्र को अपने पत्र के साथ संलग्न करते हुए रमाजी को इस तथ्य से सूचित किया था. 28 फरवरी को अचानक उनके हृदय की गति बंद होने से श्रद्धेय राजेंद्र बाबू का निधन हो गया. यह एक बज्रपात था जिसे सारे राष्ट्र ने दम साधकर झेला. क्या प्रवर परिषद की बैठक स्थगित की जाये? ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांतिप्रसाद जैन ने अपने सहयोगी ट्रस्टियों से परामर्श किया. जिस प्रवर परिषद के सदस्यों की नियुक्ति स्वयं राजेंद्र बाबू के परामर्श और उनके अंतिम निर्णय के आधार पर हुई थी उन सदस्यों की व्याकुलता स्पष्ट थी, वेदना संप्रेषित थी. पुरस्कार-योजना को राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू का आशीर्वाद 24 नवंबर, 1961 को प्राप्त हो चुका था, जब राष्ट्रपति भवन में इस योजना का लक्ष्य और प्रक्रिया की स्थूल रूपरेखा उनके सामने पहली बार रखी गयी थी. योजना की सफलता के लिये वह स्वयं भी कृत-संकल्प थे, और अपनी भावना व्यक्त कर चुके थे कि इसके कार्यान्वयन में विलंब नहीं होना चाहिए. उनके निर्णय को शिरोधार्य मानकर प्रवर परिषद की बैठक स्थगित नहीं की गयी. वह उनके प्रति ज्ञानपीठ की और राष्ट्र की विनम्र श्रद्धांजलि थी.

गठन के समय अध्यक्ष के अतिरिक्त प्रथम प्रवर परिषद के अन्य सदस्य थे. डा. पातंजलि शास्त्री (भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश), डा. संपूर्णानंद, काका कालेलकर, डा. रंगनाथ आर. दिवाकर, डा. गोपाल रेड्डी, डा. हरे कृष्ण मेहताब, डा. नीहाररंजन रे, प्रोफेसर मोहम्मद मुजीब, डा. वी. राघवन, डा. कर्णसिंह.

श्रीमती रमा जैन, अध्यक्ष और मैं (लक्ष्मीचंद्र जैन) मंत्री प्रवर परिषद में भारतीय ज्ञानपीठ के प्रतिनिधि थे. श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित को भी भारतीय ज्ञानपीठ के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित किया गया था.

यहां यह उल्लेखनीय है कि भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना, पुरस्कार-योजना प्रारंभ करने से लगभग 20 वर्ष पहले हो चुकी थी. अतः पुरस्कार की प्रामाणिकता को सहज रूप से उस प्रतिष्ठा का संबल प्राप्त हो गया जो ज्ञानपीठ ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल आदि के प्राचीन साहित्य की शोध-खोज और उसके आधुनिक पद्धति के संपादन-प्रकाशन की अभूतपूर्व प्रवृत्तियों द्वारा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में अर्जित की थी. ज्ञानपीठ ने आधुनिक भारतीय साहित्य को, विशेषकर पारदर्शी प्रतिभा की झलक देने वाले नये लेखन को केंद्र में रखकर लोकोदय ग्रंथमाला और 'ज्ञानोदय' तथा 'ज्ञानपीठ पत्रिका' के माध्यम से साहित्य के नये क्षितिजों को उजागर किया था. साहित्यिक चेतना के संचार का हलचलों-भरा वह अनूठा स्फूर्तिदायक युग था.

यहां तक तो ठीक था, किंतु समग्र भारतीय साहित्य की संविधान-सम्मत चौदह भाषाओं में से प्रतिवर्ष एक पुस्तक को चुनकर उसके सर्जक को एक लाख रुपये की राशि से सम्मानित करने का संकल्प अनेक समीक्षकों और हितैषियों को इतना विकट, दुःसाहसिक और जोखमभरा लगा कि उन्होंने बहुत सद्भावना-पूर्वक सचेत किया. ज्ञानपीठ के संस्थापक श्री साहू शांतिप्रसाद जैन औद्योगिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावसायिक महत्वाकांक्षी योजनाओं को हाथ में लेकर सफल बनाने की कला में दक्ष थे—वह बहुत दूरदर्शी थे. किंतु यह क्षेत्र साहित्य का था, वह भी भारत के ऊंचे-से-ऊंचे बौद्धिक वर्ग की साधना के मूल्यांकन का. उन्होंने उचित समझा कि उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन इस चुनौती-भरे दायित्व को ज्ञानपीठ की अध्यक्षा होने के नाते स्वीकार करें. यह रमाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व की चमत्कारी संभावनाओं के प्रस्फुटन का क्षण था. पुरस्कार योजना किस प्रकार रूपायित हुई, वह किस प्रकार परवान चढ़ी, किस प्रकार राष्ट्र की साहित्यिक प्रतिभा के सामूहिक योगदान ने इसे सफल बनाया, इसकी रोमांचक कथा 'सारिका' के जनवरी, 1985 के दो पाक्षिक विशेषांकों में दी जा चुकी है.

'सारिका' को श्रेय जाता है कि अप्रैल, 1988 के इस तीसरे विशेषांक द्वारा वह लगभग पच्चीस वर्षों की पुरस्कार कथा-यात्रा के तीसरे चरण में अब तक के बाईस पुरस्कारों की अद्यतन साहित्यिक उपलब्धियों को संकेतित करने का प्रयत्न कर रही है.

यह अंक उस समय प्रकाशित हो रहा है जब उड़िया साहित्य में नये युग के पुरोधाओं में अग्रणी साहित्य-शिल्पी श्री सच्चिदानंद राउतराय को ज्ञानपीठ पुरस्कार (28 मार्च, 1988 को दिल्ली में) समर्पित हो रहा है. सन् 1965 के पहले पुरस्कार से लेकर सन् 1986 के बाईसवें पुरस्कार तक साहित्य का जो स्वरूप निखरकर सामने आया है वह भाषा-गत होते हुए भी सच्चे अर्थों में 'भारतीय साहित्य' है. यह साहित्य पुरस्कृत न होता तब भी वह भारतीय साहित्य तो था ही किंतु भाषा और क्षेत्र की सीमाओं को लांघकर उसकी पहचान भारतीय साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में ज्ञानपीठ पुरस्कार का महत्वपूर्ण योगदान है. शंकर कुरुप से लेकर सची राउत राय तक सब लेखक जो अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारतीय लेखक थे वे अब राष्ट्रीय क्षेत्र में भी 'भारतीय' हैं. यह कहना विचित्र लगता है किंतु इस अभिधा की प्रतीति का एक ऐतिहासिक महत्व है.

इन विशेषांकों की सार्थकता इस बात में है कि हमारे लेखक और पाठक इन चौबीस पुरस्कार विजेताओं के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हों. कन्नड़ और हिंदी के चार-चार लेखक, बांग्ला और मलयालम के तीन-तीन, गुजराती और उड़िया के दो-दो तथा तेलुगु, मराठी, तमिल, पंजाबी, असमिया और उर्दू के एक-एक लेखक पुरस्कृत हुए हैं. इनमें तेरह मुख्यतः कवि हैं और ग्यारह उपन्यास-कहानीकार. पुरस्कार को सार्थकता देने वाले कैसे-कैसे दिग्गज हमारे बीच से उठ गये—शंकर कुरुप, ताराशंकर, सुमित्रानंदन पंत, फिराक, विश्वनाथ सत्यनारायण, विष्णु दे, दिनकर, बेंद्रे, खांडेकर, अखिलन, वात्स्यायन, महादेवी, मास्ति और पोट्टेक्काट. चौबीस में से चौदह! सभी यशःकाय और चिरंतन!

पुरस्कार समारोह साक्षी रहे हैं कि किस प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ ने साहित्य के साथ कला को संयोजित करने का प्रयत्न किया है. अभिनय, संगीत, नृत्य और चित्रपट से संबंध रखनेवाले उच्च कोटि के कलाकारों ने प्रत्येक वर्ष पुरस्कृत कृति के कथ्य और भाव को मंच पर प्रस्तुत करने में अपने कृतित्व की सार्थकता मानी है. एक विशेष लेख में पहली बार इस पक्ष को उभारा गया है. ज्ञानपीठ पुरस्कारों से संबंधित प्रश्न परीक्षाओं और प्रतियोगिताओं के आवश्यक अंग बन गये हैं.

प्रयत्न किया गया है कि यह अंक पुरस्कार विजेताओं की प्रेरणाओं का फलक भी प्रस्तुत करे. भारतीय साहित्य और संस्कृति की विरासत की उत्तराधिकारी तरुण पीढ़ी को ये तीनों अंक विशेष रूप से समर्पित हैं.

16 मार्च, 1988

लक्ष्मीचंद्र जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चिदानंद राउतराय

1916 में जन्में और 1985 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उड़िया रचनाकार सच्चिदानंद राउतराय ने अपनी पहली कविता तब लिखी थी जब वे स्कूली छात्र थे और उनका पहला कविता संकलन 1932 में प्रकाशित हुआ था जब उनकी आयु केवल 16 वर्ष थी. एक वर्ष बाद उनका एक काव्य नाटक प्रकाशित हुआ तथा 1937 में उनका दूसरा काव्य संकलन. उसके बाद से उनका सर्जनात्मक लेखन निरंतर जारी है और अब तक उनके 18 काव्य संकलन, चार कहानी संग्रह, एक उपन्यास, एक काव्य नाटक, साहित्य समीक्षा की तीन पुस्तकें तथा साहित्यिक मूल्यों पर एक महत्वपूर्ण अनुसंधान-कार्य प्रकाश में आ चुके हैं. लेखन के साथ ही उनके कृतित्व को मान्यता भी मिलती गयी. 1985का ज्ञानपीठ पुरस्कार पाने से पूर्व राउतराय पद्मश्री (1962), केंद्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार (1964), सोवियत लैंड पुरस्कार (1965), आंध्र विश्वविद्यालय (1977) तथा बरहमपुर विश्वविद्यालय (1978) से मानद डाक्टरेट प्राप्त कर चुके हैं. वे अखिल भारतीय कवि सम्मलेन (कलकत्ता-1968) तथा उड़ीसा साहित्य अकादमी (1978-1981) के अध्यक्ष भी रहे. उन्होंने फिल्म सेंसर बोर्ड को अपनी सेवाएं दीं तथा संसार के विभिन्न देशों में आयोजित साहित्यिक संगोष्ठियों में भाग लिया. उड़िया की एक साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका के वे संपादक हैं तथा उड़िया कला-कृति संग्रहालय के संस्थापक हैं.

अंधारुआ

सच्चिदानंद राउतराय

गले में हाड़. दांत में तिनका. जीभ रहते-रहते तुतलाना पड़ा पहली प्रधान को. घर-घर ठीकरा लिये फिरना पड़ा.

काले स्याह अंधेरे में अपनी मोटी-सोंटी बाह ऊपर उठा गांव के छोरवाली दुकान के पास बैठ पहली सबसे अपने मन की बात कहने की चेष्टा करता. तरह-तरह के दरदीले बोल निकाल गाहकों की जेब से पैसा-धेला झड़ाने का उपाय करता. कोई देता, कोई मुंह मोड़ चला जाता. अधिकांश उसकी ओर दांत निपोर हंस पड़ते, चिढ़ाते. पहली माटी में लोटता. बाल बिखेरे, हाथ पसार बहुत कुछ कहता. सब कहते, ''तमाशा कर रहा है.''

स्याह देह, गंदे कपड़े, धंसी चौड़ी छाती, काली रात में मिलकर अलग से पहचान में ही न आती.

ज़िद्दी बच्चा दूध न पीये तो मां डराती है, ''देख-देख वो अंधारुआ आया. गांव के नाके पर बैठा जीभ लपलप कर रहा है.''

पहली पुरस्तम (जगन्नाथ पुरी का ही एक नाम) जायेगा. राह में सांझ होने पर उस ओर के गांव में टिक जायेगा. सूरज डूबने से पहले दो-चार दाने मुंह में डाल किसी के बरामदे में दो टुकड़े पुवाल बिछाकर पांव पसार देगा. वह जिस गांव जाता, उस गांव में 'अंधारुआ आया, अंधारुआ आया' चारों ओर शोर मच जाता. उसके पीछे छोकरे ताली पीटते, दौड़ते. आवारा कुत्ते भी हाउ-हाउ कर भौंकते, फिर सूं-सां करते पावों में दुबकते, उसे सूंघते.

अंधारुआ रोज दिन भर चलता. और फिर सांझ ढले भीख मांगता.

अंधेरी रात. थुल-थुल पेट किसी औरत की तरह काला पड़ झूल आया है. उसी में चलते-फिरते अंधेरे की तरह लाठी लिये अंधारुआ चलता रहा...

कभी-कभी अंधारुआ सपना देखता—

पके खेत में लहरा रहा है धान. चोखे-चोखे धान के पौधे बेशुमार! क्यारी की रेख से सांप, बिच्छू और तिलचट्टों का मेला लगा है. चारों ओर आमिषी गंध पाकर चील भी झुंड के झुंड उड़ रही हैं.

उसी घने अंधेरे में मचान बनाकर खेत के बीच एक जगह आग जलाएं पहली रखवाली कर रहा है.

धान की जड़ों में जमा है ढेर की ढेर खाद, खाद नहीं हाड़ हैं. पहली के हाड़—उसकी स्त्री गेली के हाड़..

पहली को याद आता है—घोर ठंड के दिनों में भी कैसे खूब तड़के अंधेरे-अंधेरे केवटों के घर चिबड़ा कूटने की आवाज सुनते-न-सुनते गेली बहू थरथराती गली, रास्ते, कुरी, अमराई, नाले तक घूम-फिर टोकरी भरकर गोबर चुग लाती और पिछवाड़े में ढेर कर देती... और पहली अपना खून-पसीना बहाकर खाद को कूट-कूटकर चूरा करता, ले जाकर खेत में बिछा आता...

इतना ही नहीं, पत्थर-सी सख्त खेत की माटी में हल पकड़ चलाता तो कितना कष्ट होता, याद आने पर पहली के भीतर गहरे तक सिहरन दौड़ जाती. सिर पर आग के लौंदे की तरह सूरज, नीचे तपती-जलती माटी—दोनों पैर जलकर परत-दर-परत छिलके उतरते...

पहली की इतनी हाड़तोड़ खून-सनी मिहनत को सार्थक कर जिस दिन पके खेत में बेशुमार धान के पौधे लहराकर हवा में आंख-मिचौनी खेलने लगे, उस दिन पहली के जीवन में बड़ा महोत्सव होता. सब-कुछ भूलकर वह देखता रहा अधपकी क्यारियों की ओर...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस के बाद, एक दिन...

पहली सोच रहा था—

स्याह अंधेरा. मंगसिर की सिरसिराती हवा कलेजे को थर्रा रही है. पहली मचान पर एक कंथा ओढ़े चित्त लेटे बटुए से चूना और तंमाखू का पत्ता हथेली पर मल रहा है. खेत में कोई चवर-चवर आवाज आयी, पानी की कीच में धान के पौधे रौंदता कोई चारों ओर मानो फिर रहा है. पहली ने सोचा, कोई वराह या भालू होगा!

गुस्से में लाठी थामकर खड़ा हो गया.

धान के पौधों की सांवली-सी कतार को चीरती पानी की लकीरें चमचमाती दिख रही हैं, घने अंधेरे में पहली की आंखों में पड़ गया खूब बड़ा काला-कलूटा जंतु! नासा से उंचास पवन निकल रहे हैं.

पहली उसके पीछे-पीछे दौड़ा. मगर वह काली छाया धान के पौधों को कूदती-रौंदती, दौड़कर भाग गयी.

धान का एक भी पौधा रौंदा जाता तो पहली की देह का अंजुरी भर खून सूख जाता.

आगे है एक गड्ढा. वह और आगे न जा सका, मुंह फिराकर लौट आया. पहली की लाठी जा लगी उसके सिर पर—ठीक बीचों-बीच.

पहली ने बिजली की चमक में देखा—दो बड़े-बड़े पैने सींग ऊपर की ओर सीधे चले गये हैं.

पूंछ उठाकर फनफनाता जंतु एकदम घबराकर भाग छूटा. पहली ने देखा, वह कुछ दूर जाकर कांटों के झुरमुटे में धड़ाम से गिर पड़ा. और फिर कीचगारे से उठ ही नहीं सका.

पहली मचान पर आ चैन से सो रहा. रात में लेटे-लेटे सपना देखा—कोई विशालकाय कंकाल...उसे गीध-कौए घेरे हुए हैं. एक गीध उसकी नाभि में, उस लाश के चोंच धंसा रहा है. उस लाश के चारों खुर किसी ने काट डाले हैं, कुल्हाड़ी से.

पुरोहितजी ने पोथी देख बताया, "तीन पाद कोष लगा है! पुरस्तम(पुरी) जाकर मुक्तिमडप की सभा के आगे प्रासचित किये बिना पातक नहीं छूटेगा. प्रासचित न होने तक मुंह में तिनका रखोगे, किसी से बात नहीं करना!"

गांव भर में फुसफुसाहट चली—पहली को मुसकिल है! गोहत्या कर डाली!

उस दिन का पहली. आज का अंधारुवा! कितना फरक है!

पहली सोचता—उस दिन पदमपुरान बांचकर पुरोहितजी महाराज निधी मिस्मरजी ने क्या-कुछ बताया! डर से चेहरा फीका पड़ गया. आंखों के आगे तैर गया—जलती आग का चूल्हा—बड़े-बड़े हंडे, तेल उबल रहा है! इधर-उधर देखा. थर्रा गया. फिर आंखों में तैर गए भैंसों के मुंह-जैसे दो जमदूत! उन्हीं का चित्र तो पंडितजी महाराज दया कर पुरान से टिमटिमाते दीप के उजाले में दिखा रहे थे. तीन-रंगी वह फोटो याद आयी. कितनी बड़ी-बड़ी आंखें, कैसे सींग, हाथ मानो बंदर की तरह रोंयेदार, नाखून पैने-पैने! वह बच्चों की तरह नींद में बिलबिला उठा, "आया...वो...आया...लो.."

कभी-कभी राह-चलते सूनी दोपहर में थककर पेड़ के नीचे बैठ जाता. चारों ओर सुनसान. उसे याद आयी नीचे वाले गांव के रामा गौड़ की बात. गौ मारकर छुपा दी, पर मरा तब जीभ में घाव ही घाव हो गए, कीड़े पड़ गए, मुंह में कुलबुलाने लगे. कितना गू-मूत, खून-मवाद होकर सड़-सड़कर मरा! फिर भी क्या प्राण गये?

आखिर बस्तीवालों ने पूछा—क्यों रामा, क्या किया है? बोल दे! वरना सहज ही परान नहीं छूटेंगे!

रामा मान गया. गाय मारी थी! हिचकी उठी. तीन बार गाय की तरह रंभाया और प्राणवायु उड़ गयी...

इसके आगे पहली सोच नहीं पाता. उसे सुनाई पड़ता, कोई मरखनी गाय खूब दूर पर रंभा रही है. डरकर वह पेड़ को कसकर बांहों में भर लेता.

शायद पास ही दो-एक गायें चर रही हैं. धौरी, कजरी, मटियाली और उनकी बछियां कूदती चारों ओर फिर रही हैं. पहली को लगा, सींग उठाये उसे ही मारने आ रही हैं. लाठी लेकर उतर पड़ा...घबराई आंखों से इधर-उधर देखा.

कभी-कभी पहली सपना देखता—कोई मरी काली गाय पेट फुलाए आंगन में पड़ी है, पेट में छोटी-सी बछिया है. गेली बहू चौंतरा के पास बैठी चुपचाप रो रही है, और उसका मरा बच्चा फिर जी गया है. वह बापू-बापू किलकता उसे पुकार रहा है. पहली की नींद झप से टूट जाती. उठ बैठता. उसे लगता, जैसे दूर सूं-सां करता कोई चर रहा है.

कभी कभी राह-चलते पहली थककर खड़ा रह जाता. उसे लगता, पीछे से कोई आवाज दे रहा है. पैने-पैने सींग—हाथ में फांस बनी रस्सी! उसे याद आता रामा गौड़ का चेहरा. खून-मवाद और पुछल्ले कीड़े! मन को समझाता—फिर अपनी राह चल पड़ता. दस बार दस-दस नाम ठाकुरजी के, जगदीसजी के लेता.

पुरी बड़ दांड (मंदिर के आगे का प्रशस्त चौड़ा पथ). सैंकड़ों कोढ़ियों के बीच पहली भी हंडी का टुकड़ा लिये भीख मांग रहा है. बड़ देवल (जगन्नाथ मंदिर) पर ठाकुरजी की लंबी तीन मोड़ की ध्वजा फहरा रही है. पहली एकटक उधर ही देख रहा है. उसके मन में, बड़ दांड पर पैर रखा उस दिन से, थोड़ा साहस आया है. अब वह पहले की तरह न बड़बड़ाता है, न भयंकर सपना देख चौंकता है. पास लेटी कोढ़ के रोगवाली औरत पूछती, "तू कितने दिन हाड़ रखेगा बाबा?"

पहली अंगुली पर गिन, अंगुली दिखाकर बताता, "सात दिन!"

सात दिन बाद वह गांव लौट आया, गेली की मां के सिलवर के बने हाथ के कड़े, बरतन-भांडे बेच-बाचकर पांच रुपये अंटी में रख पुरस्तम गया था वह. घर भर की चीजें बेच, अब पुरस्तम में पातक छुड़ा आया.

एक महीना इक्कीस दिन पूरे हुए. पंचगव्य लेकर, बाम्हन भोजन करवाया; मुक्तिमंडप के महापुरुषों को कुछ-कुछ दे-दिलाकर उनकी चरन-धूल और आशीर्वाद लेकर घर लौटा था. आया तब गेली बहू के लिए महापरसाद का कुड़वा (पके चावल की छोटी एक हंडी और सूखे निर्माल्य-महाप्रसाद का भात सुखाकर उसकी छोटी-छोटी पोटली बनायी जाती हैं) की पोटली भी लाना जरा-सा न भूला था. लौटते समय उसके पांव जमीन पर टिकते ही न थे, मन खुशी में उछल रहा था.

उतरती सांझ के नीम अंधेरे में गांव पर हलका झीना परदा पड़ रहा था कोई. गांव के सिरे पर महुए के पेड़ पर मधुमक्खियों की सांझ की सभा चल रही थी. गेली बहू अपना भूखा मुंह साड़ी के आंचल में ढांपे तुलसी-चौरे के पास संझादीप जला सिर झुका रही थी. पीछे से पहली ने आवाज दी, "घर में सब ठीक-ठाक तो है गेली बहू?"

गेली की मां ने जो जवाब दिया, पहली का तो हलक सूख गया! घर लौटते समय की हंसी-खुशी पलक झपकते ही कहीं उड़ गयी.

"घर में एक पखवाड़ा हुआ चावल नहीं, मांडिया छेरी खा गई. तीन दिन हुए...जो शीत के दिनों वाली झड़ी शुरू हुई...उस में रसोई की भीत ढह गयी. और जो खेत में धान पैदा हुआ...जमींदार जी महाराज, पुरस्तम जब तुम गये, पीछे से उसे अगले बरस लगान के बाबत जबत कर लिया...अब पिछले बरस का लगान महीने भर में दाखल न किया तो फिर घर-बार कुड़क कर देने की धमक दे गये हैं."

सिर पर हाथ दिए वह सब सुन गया. कुछ नहीं कहा. पुरी से लाया प्रसाद लेकर रात दोनों ने किसी तरह काट दी.

सुबह देखा, चूल्हे पर चढ़ाने के लिए चावल नहीं, साग-तरकारी की बात तो दूर. रसोईघर की भीत ढेर हुई पड़ी है. एक कोने में दीमक की बांबी खूब बड़ी हो गई है. हांडी-कुंडी दो-चार जो थीं, सब भीत के गिरने से चूर-चूर हो गई हैं. घर में ठीकरे पड़े हैं. पहली दो महीने पुरस्तम में पड़ा रहा—घर में छदाम-कौड़ी भी नहीं रही. गिरवी रखने के लिए जो दो-चार बरतन-भांडे थे—सब बेच-बाच पुरी से गोहत्या का पातक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुड़ाने गया था. बाकी रहा क्या जिधर हाथ बढ़ाये? [illegible] बस शंखा (सुहाग की चूड़ी) एक-एक है—वो भी दिनों-दिन ढीली होती जा रही हैं.

सुबह पहली को देख गांव के बाम्हन दौड़े—भोज देना होगा! गांव के बाम्हन शुद्ध न करें तब तक भला पातक छूट सकता है? जमींदार का प्यादा आकर दुआरे बैठ गया. पिछले बरस का लगान दो, नहीं तो सामंतजी मुकदमा करेंगे. जात-भाइयों ने पकड़ा—जात-बिरादरी को खिलाये बिना शुद्ध कैसे होगे?

पहली निकला मजूरी करने. मगर पौष का महीना, धान कटाई के बाद काम कहां से आयेगा? फिर उसने देखा—गांववाले उसे देख नाक-भौंह सिकोड़ लेते हैं. एक ने तो उसे सुनाकर कह दिया, "गो-मारक को छूने में ही पाप लगेगा." तब से पहली सरककर रहने लगा. किसी से आगे बढ़ मेल-जोल नहीं करता.

जात-बिरादरी को भोज दिया नहीं. पहली को जाति से बाहर कर दिया. बाम्हन गुसाईं लोग अड़ गए. धोबी, नाई, आग-पानी सब बंद! पहली को अकेला कर दिया.

सागवान-सी कद्दावर देह देखते ही देखते आकर कांटा हो गई. गेली बहू भी फूंक दो तो गिर पड़े. बस हाड़ों का ढांचा भर दिखता है. स्त्री को उसने उसके पीछे पीहर भेज दिया.

पहली के यहां एक दिन चूल्हा जलता दो दिन सीधा उपवास! दुकानदार, धोबी, साहूकार सबने देन-लेन बंद कर दिया. पहली को कुछ नहीं सूझता.

दुख, अभाव, ग्लानि वगैरह सहते-सहते पहली का मगज बिगड़ गया. पुरस्तम क्षेत्र में इतने पैसे खरचकर जो काला दाग मन से मिटा आया था, फिर से उभरकर मन में रेख खींच रहा है.

पहले की तरह फिर वे ही भयंकर सपने...कभी-कभी चौंक उठता वह. उसे लगता जैसे काला-कलूटा कोई जंतु सूं-सां करता उसके चारों ओर चरता फिर रहा है. वह रातों में सपना देखता—कोई मरखना बैल मानो सींग घोंपने के लिए पूंछ उठाये उधर ही आ रहा है. सपने में चीख उठता— "वो...वो...आया घोंपा... भागो, सींग घोंप देगा...

पहली का सब-कुछ जाकर बचा था टूटा-फूटा यह घर. वह भी लगान न देने पर नीलाम में उठ गया. इतनी बड़ी दुनिया में सिर छुपाने को कहीं दो गज धरती नहीं रही. घर नीलाम होते समय वह टिमटिमाती निगाह से देखता रहा. मुंह में [illegible] नहीं रह गये. जब बता दिया गया उसे कि अब वह इस घर में नहीं रह सकता, चुपचाप उठकर खड़ा हो गया. एक सब्बल उठायी और पिछवाड़े के कमरे को खोद, मरी हुई गेली के जनम के समय की छठ-पूजा वाली सामग्री ले आया. रसोई में पूर्वजों की पूजा-वेदी को भी खोद लाया. धीरे-धीरे घर छोड़ बाहर निकल आया. बस, उस दिन से दुबारा वहां नहीं लौटा.

बाप-दादों के जमाने का घर चला गया—पहली के मन की हालत खराब हो गई. इस वक्त यहां, उस वक्त वहां... इसी तरह दिन कटने लगे.

घर के बीच खड़े सहिजन के पेड़ से पहली को बहुत प्यार था, ढेर की ढेर राख उसकी जड़ में उंडेली है उसने. सहिजन में गुच्छे-गुच्छे फली होतीं, दो-एक तोड़ पखाल भात के साथ खाने के लिए सहज ही उसका हाथ नहीं उठता— चाहे नीचे गिर जातीं वे. इसी की छाया में बैठ कितनी चांदनी रातें कटी हैं! बाहर खड़े होकर कभी-कभी पहली उस पेड़ की ओर देखता—उसके तले जाने का बहुत मन करता, पर वह लौट आता. जमींदार का चौकीदार उसे देख हंसी करता, "क्यों रे गोहत्यारे, पहली!"

पहली को याद आता—घर की पिछवाड़ी में खूब-खूब कनसिरि (एक तरह की हरी सब्जी) फैल गई होगी. कुएं की बगल में वह सदाबहार का गाछ और गोड़ीवाण (एक तरह का फूलों का पेड़) फूलों से लद गए होंगे. मन कहता—चल, जरा एक बार जी भर देख तो आयें!

टूटी छाती में कोह उठता. उसका मन किरच-किरच हो जाता. देखते-देखते पता नहीं कितने भयावने सपने देख जाता. हड़बड़ा जाता. उसे लगता, इसी बीच वह पता नहीं कब मर चुका है.

घर नीलाम होने को महीना भर ही हुआ होगा, बस्ती वाले बतिया रहे थे—पहली प्रधान पागल हो गया है. गू-मूत भरा इधर-उधर फिरता रहता है. आदमी को देखकर कहता है, "आया रे आया...घोंप देगा, घोंप देगा...होशियार!"

डूंगर की ओर ईंधन चुगने कुछेक बावरानी छोकरी गयी थीं.

वे सांझ-ढले धोबी साहू की दुकान के पास बतिया रही थीं—पहली बैठा है डूंगर पर! बस, बैल की तरह चीख रहा है, कहता रहता है, "वो आया...आया...कैसे सींग हैं! सूं-सां कर रहा है! मैं तो मर गया! मिट गया महाराज!"

सब कुछ सुन निधि जी मिस्सर बोले, "उसका पाप उसे देखेगा,

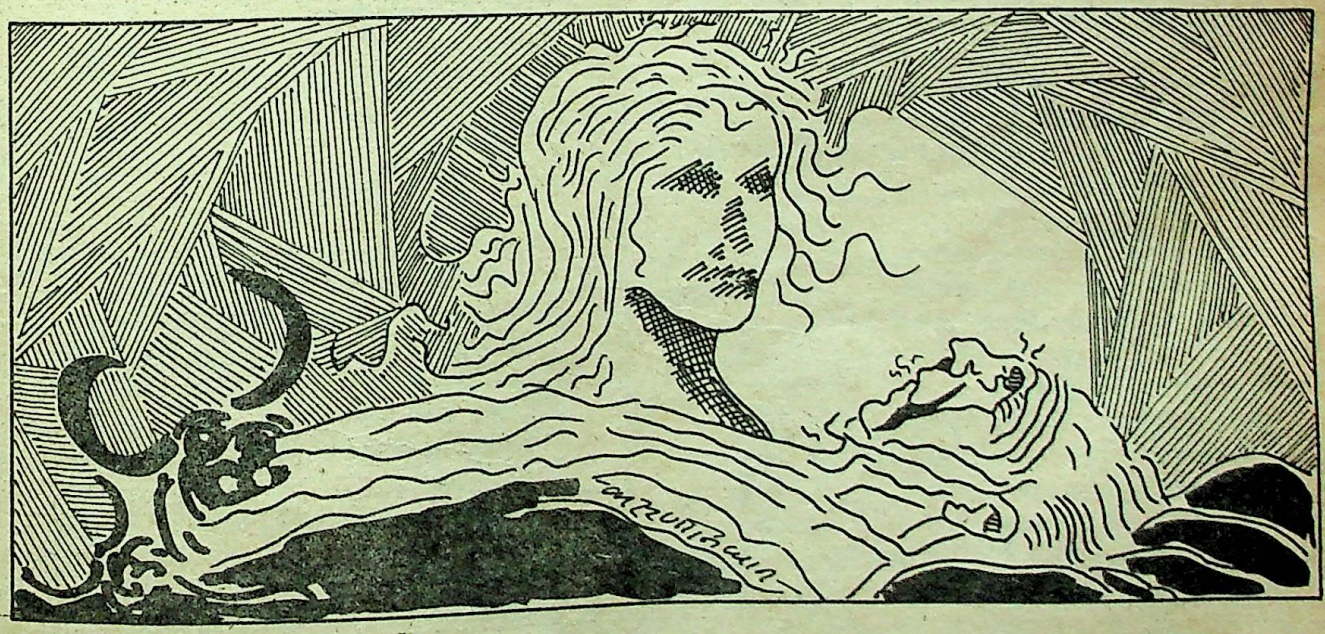

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जायेगा कहां? शुद्ध हुए बिना भी कहीं गोहत्या का पाप छूटता है? हजार कहा—हमारी बात तो उसे सड़ी हुई लगी, दस-पांच रुपये खरचने की ही तो बात थी—बाम्हन भोज करा देता—शुद्ध-पूत हो जाता. आज वह चैन से बैठा होता. धर्म कहीं उठ गया है?''

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षित ब्रह्मा ने कहा, ''आजकल कोई सास्तर-पुरान की बात मानता है मिस्सरजी? देखो तो, मरते समय कैसे गौ की तरह चीख रहा है! उसका अब समय आ गया. पाप खड़ा उसे दिखाई दे रहा है सामने.''

उस उजाड़ पहाड़ पर पहली का कंकाल. किसी भयंकर कल्पना की प्रेतात्मा उसके मन पर लंबी-लंबी छाया फैलाकर दबोचे है! उससे उद्धार कहां? उसके साथ जुट गई है दिनों की भूख, प्यास, अभाव, दुख-दर्द और अपमान. सब मिल उसके मन को चूर-चूरकर पीसे डाल रहे हैं.

पहली देख रहा है—उसके आगे घर-बार, स्त्री-परिवार, जान-पहचान के कोई नहीं. सिर्फ खाली सूना-सूना... और कोई बड़ी भरकम पोथी—पन्नों पर उसके छपी है बड़े-बड़े यमदूतों की फोटो—काली-काली आंखें, पैने-पैने सींग. उस पोथी के अक्षर एक-एक घर्राती चक्की...

पहली को लगता है—मैंने गो-हत्या नहीं की है. मैंने खुद अपने गले पर छुरी चलायी है...

पहली के अचल-स्तब्ध मन में और कोई हलचल नहीं. चारों ओर से कोई रौंदता-रौंदता लगता है. चारों ओर उजाड़ लग रहा है...

बेंत के झुरमुटे से ढीठ कौआ कांव-कांव करता जा रहा है. वन-जंगल, डूंगर की चोटी—सब उसे मानो जिंदा आदमी की तरह बार-बार कानों में पुकार रहे हैं—आ-आ-आ...

पहली ने देखा, निचले गांव वाले रामा गौड़ (गाय चराने वाले) की लाश. उसके मरे चेहरे पर ताजा हंसी दिख रही थी उसे.

और दूर पर सू-सां करता कुछ चर रहा है!

पहली डरकर चीखता-सा बेहोश! एक नुकीले पत्थर पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा.

अगले दिन पतर बीननेवाली छोकरियों ने गांव में जाकर बताया, ''पहली हांफ-हाफ कर थूक में लथपथ पड़ा है! अभी या कुछ देर में बस...''

बकरी चरानेवाला नोका बस्ती में जाकर कहने लगा, ''पहली को घेरे दो जमदूत बैठे हैं. उनका मुंह एकदम बैल की तरह है! पछाड़ खायी...वे लौट गये!''

गांव के दो-चार गावर्दी जवान पहुंचे वहां. जाकर देखा—एक पत्थर के बीच सिर छुपाये पड़ा है. खोपड़ी का एक हिस्सा उड़ गया है—दही बह गया.

खबर पाकर गेली की मां उसी रात लौटी. अपने घरवाले को शुद्ध करने, गोहत्या छुड़ाने की खातिर पीहर से कुछ रुपये-पैसे लेकर आयी थी. उसी रात पहली के पास लिवा जाने के लिए कुछ लोगों से उसने निहोरे किये. मगर इतने बड़े गांव में कोई भी आधी रात गए डूंगर की ओर जाने को राजी नहीं हुआ.

भोर तड़के गेली की मां उधर चली. बावरानी छोकरियों से खबर मिली— पहली मर चुका है. मुंह झाग से भरा है. आंखें धंस गई हैं...कान के पास खोपड़ी का टुकड़ा किरच-किरच हो गया है.

उसकी आंख के आंसू मर गए. बस टिमटिमाती उधर देखती रही वह बिना शुद्ध किया हुआ मुरदार!

कैसे कोई उठाएगा? गांव में तरक-बितरक चला जोरों से.

गेली की मां ने अपने घर वाले को शुद्ध करने के लिए पीहर से लाये रुपये पल्लू से निकालकर गांव के मुखियों के हाथ में बढ़ा दिए—लंबी पसरकर सब के पांवों में पड़ गई.

बाम्हन गुसाईंजी महाराज और जात-बिरादरी के लोग सब खुश होकर पहली की लाश को ढेर-की-ढेर आशीष दे रहे हैं. □

सच्चिदानंद राउतराय की कविताएं

निर्वाचन

दीवारों से मालूम होता है—
आया है वह महान दिन.
जब वर्णाशुद्धि पूर्ण
पोस्टरों और इश्तहारों से पट जाएंगे गली-मोहल्ले.
वाक्यों के तूफान से गूंजते हैं जब
शहर, कस्बे, खेत, खलिहान, मठ, खदान,
खाई और बखरे
पार्क, सिनेमा, और श्मशान.
जब अनेक चिह्न, अनेक नामावली
रामानंदी से घी का दीपक, चर्खा और दुधारू—
गाय, सूर्य, तारे, छाता, कलम, लालटेन.
फूस का घर, हंसुआ और हथौड़ी, तराजू, हल,
धान की बाली, मुचुकंद फूल
सब घोषणा करते हैं आ गए वे दिन.
अहिंसा और सत्य के त्यौहार.
जब समाधि से गांधीजी की हड्डियां खोदी जाकर
फिर एक बार साफ की जाएंगी
और उनका दर्शन तथा तीन बंदर
(एक जो आंखें मूंदे रहता है, एक कान, और एक
अधरों को दोनों हथेलियों से दबाए रहता है.)
आया है वह दिन आज भी.
जब प्रेत आते हैं स्वर्ग से
ट्रकों में भरकर.
(मार्क्स-लेनिन, गांधी, हो-ची-मिन्, चे जैसे)
स्कूली बच्चों और ठेकेदारों के स्वरों में.
जब वायदे बन जाते हैं ताड़ के पेड़.
जो था कल 'देखूंगा', 'पूछूंगा' या आनाकानी
आज वह है, 'जरूर होगा'.
बात नहीं मानती वोल्गा
तोड़ सारे दायरे और वर्ग छूना चाहती है आसमान.
आज वही मौसम, आज वही दिन है
जब भिखारी से भीख मांगी जाती है.
जब पोंछने को गरीब का मुंह
इस्त्री किया रुमाल दौड़ता है.
और सभी हिजड़ों के मुंह से
बिना व्यय के जय-जयकार व हर्षध्वनि करवाई जाती है.
शब्द आज पल्लवित हैं, दाढ़ी होते हैं अर्थ,
वाक्य बांधते हैं पगड़ियां, खोंस उसमें कुछ यमक.
अर्द्धविराम, विराम ने इकट्ठी छुट्टी ली है एक माह की,
जिसे देख-सुन
असहाय वानर तीनों
एक वह जिसने आंखें बंद की थी, एक ने कान,
होंठ एक और ने,
तीनों एक साथ मिलकर सबके सामने
नंगई नाच शुरू कर देते हैं.
आया है वह दिन
छह महीने के बच्चे जैसा एकाकी असमय. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोणार्क

तुमने देखा तो है शिलाओं पर
उसकी रम्य कला का रूप,
मैंने देखा है उसमें करोड़ों कंकालों के
भग्न हृदय का स्तूप.

तुमने देखा है खिली है किस तरह
कला के जादू से,
रात्रि की काली यवनिका पर
स्वर्ण उषा की छवि.

देखा है, कैसे खिली है कविता
पत्थरों के मूक बदन पर,
तंद्रामग्न अलसाये सपनों में
डूबी है अति स्नेह से.

तुमने चखा है रस का झरना
चारु मंदिर तले
अंजुलि भर-भर पिया है पीयूष
मिटाकर तृष्णा की ज्वाला.
मैं लौटा हू हाय दीन अरसिक
उसी के सिंह द्वार से,
पुंजित व्यथा के अवसाद से
बोझिल है यह हृदय
मजदूरों की नजरों से
देखा है मैंने उस मंदिर का रूप
व्यथा की आरती ले.
देखे हैं मैंने उस शिला की कब्र में
कई कारीगरों के सीने,
तिल-तिलकर, हाय, पाई है समाधि,
सह यातनाओं की ज्वाला.
मजदूरों ने पशुओं की तरह
ढोया है शिलाओं का बोझ,
झुकाए अपना मेरुदंड.
है कोई हिसाब उसका?
कई हथौड़े, छेनियां, मुद्गर,
राजा का हुक्म मान,
अपने काले पत्थर जैसे शरीर से
बहाया खून पानी-सा.

न जाने कितने बढ़ईयों, कारीगरों, लुहारों का
खून घुल-मिल गया,
सागर का खारा पानी उसे
नमक की तरह निगल गया.

देखा दुनिया ने विशाल मंदिर!
राजा का जय-जयकार किया.
पंडित तो कहता है, इसमें
लिखा है देश का परिचय.

कोई रसिक कहता है, सुंदरी नटी का
लीलायित नीवी बंध,
स्वतः श्लथ उसकी कंचुकी के नीचे
पद्म कली का छंद.

कोई देखता है नाग कन्या के गले में
रतिच्युत बनमाला,
यक्ष-वधू के जूड़े में
शत रात्रि की ज्वाला
अनुभव करता है कोई निरंतर,

क्या किसी ने जानना चाहा
इतिहास आदमी का?
पूछेगा कौन, कितना जीवन
उसके लिए हुआ है क्षय,
कितने बसूले, आरियां, कुल्हाड़ियां
हुए हैं पराजित.

कितने क्षुधातुर लोगों ने खाई है
मिट्टी उन दिनों भूख से
रम्य कला के दरबार में उसकी
कोई नहीं परिपाटी!
नहीं है उसकी चरण लिपि.
है शिल्प वहां, नहीं है कलाकार या शिल्पी,
धन्य है हमारा शिल्प चातुर्य.
धन्य है ललित कला.

राजा का सुनाम प्रचार करने को
कोटि शरीरों में बिंधती सलाखें
अमर होगा कालांतर में
चूंकि एक व्यक्ति का नाम
लाखों अनाम जीवनों को लेकर
बनाया गया है श्मशान.
यह भावुक जाति
अब भी देख उनकी कब्र
गर्व से तानती है अपना सीना.
कोटि-कोटि बिशु महाराना
और शिबेई सामंत अनेक
इस मंदिर के नीचे सोए हैं,
कला की फसल के खेत में.
गढ़ने को यह मंदिर
किया श्रमिकों ने रक्त-दान,
कृषकों ने दिए अपने कनक शस्य
राजा के कोष में बेहिसाब!

हालांकि कला के दरबार में नहीं
उनकी व्यथा का स्थान—
हंसी, या रुलाई, या
फसल कटाई का कोई गीत.
तोरण-तोरण में नंदन श्री,
यक्ष पुरी की लताएं,
कहां है धरती का शस्य?
धान की बिजली छटा?

आभिजात्य के आदेश से वहां
सामंती रुचि के सांचे में,
नग्न नटी के कोमल चरण
चपल ताल में थिरकते हैं.
हैं वहां सिर्फ फूलों की फसलें
सपनों की नीली लहरें,
हीरे का सूर्य भिनसारे ही
धरती का प्रणाम लेते हुए
कह जाता है उस के कानों में:
जीवन के सारे आघात, अपमान
गाये नहीं कभी किसी ने गीतों में.
रम्य कला की लीला!

कुछ भी तो नहीं कहा मनुष्य के बारे में,
जो था कहना. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'देखो मैंने क्या पाया...''

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालिस वर्ष पहले अपने बचपन मे, माता-पिता के साथ सागर तट पर छुट्टियाँ बिताते हुये रणवीर खोसला को बिरंगी सीपी ने मोह लिया था। मोह का वह सिलसिला अब तक जारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि सुखद है

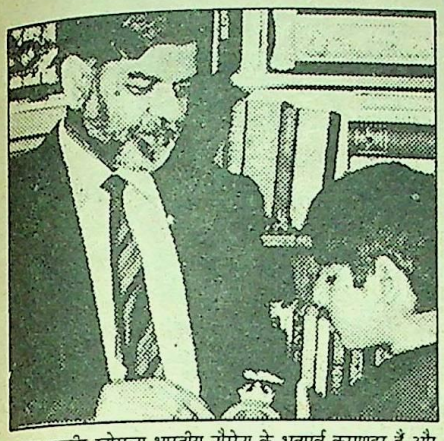

आज रणवीर खोसला भारतीय नौसेना के भूतपूर्व कमाण्डर हैं और उन्हें इस बात का गर्व है कि वे नेत्र-दान का संकल्प कर चुके हैं।

"मैंने उसे रेत से खोद निकाला था और तब मैं यह नहीं जानता था कि मैं अपनी समूची जिन्दगी के लिये प्रेरणा बटोर रहा हूं। उस बहुरंगी, धारीदार सागर सीपी ने मेरा मन कौतूहल से भर दिया... मैं खड़ा देखता रहा ऊंची लहरें जो आहिस्ता फिल्म की तरह चलती हुई तट की चट्टानों से टकराती और फिर धवल फुहारों के बादल छा जाते।

बाद में महाविद्यालय में पढ़ने पर यह जाना कि वह सीपी तो नॉटिलस नाम के एक जीव की होती है जो लगभग 20 करोड़ वर्षों से अपरिवर्तित है और जो संभवतः किसी अदृश्य प्रेरणा से वर्षों पहले उस सागर तट पर मेरे पाँवों तक बह कर आयी थी।

बाद के वर्षों में महासागरों के वक्ष पर बिताये जहाजी जीवन के दौरान सागर से मेरा संबंध और भी अन्तरंग होता चला गया — उसमें रहने वाले जीवन के असंख्य रूप, सौन्दर्य से भरे सूर्योदय, चांदनी रात में प्रेत-सरीखे सुदूर हिम-खण्ड। और अक्सर अपने जहाज के डैक पर चहल कदमी करते हुये, मेरा मन एक निस्तब्धता और एक आशा से भर गया। मेरी आँखों के सामने गुजरते हुये सौन्दर्य से प्रेरित निस्तब्धता और आशा उनके लिये जो देख नहीं सकते — दृष्टिहीन।

मैं नहीं जानता कि यह विचार कब से मेरे मस्तिष्क में था, पर कुछ वर्ष पहले भूमध्य सागर पर ढलती हुई एक शाम को वह पूरी तरह प्रज्वलित हो उठा।

मैंने तुरंत अपनी पत्नी को पत्र लिखा जिसमें जीवनोपरांत अपने नेत्रों को दान करने की इच्छा प्रकट की — कमाण्डर रणवीर खोसला कहते हैं।

परिवार के लिये गर्व का विषय :

उनका कहना है : घर लौटने पर मुझे बहुत खुशी हुई यह जानकर कि नेत्र-दान के विषय में पत्नी का उत्साह मेरे समान है। इसलिये यह स्वाभाविक था कि जब हमने परिवार का संकल्प पत्र भरा तो हमारे दोनों बेटे भी हमारे साथ हो लिये।

वह तो कार्निया-प्रत्यारोपण के विषय में और भी जानकारी चाहते थे ताकि वे अपने मित्रों को बता सकें और उन्हें भी नेत्र-दान का संकल्प करने के लिये राजी करें।

मैंने उन्हें बताया कि कार्निया नेत्र की सबसे बाहरी पारदर्शी परत है। प्रत्यारोपण द्वारा किसी दृष्टिहीन व्यक्ति के नेत्र खराब कार्निया के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दान किये हुए स्वस्थ कार्निया को लगा दिया जाता है।

हमारे बेटों ने हमसे वादा किया कि जब हमारे नेत्रदान का समय आयेगा तो वे हमारी कामना पूरी करने के लिये निकटतम नेत्र बैंक को फोन पर सूचित करके गर्व का अनुभव करेंगें।

नेत्र-दान का संकल्प कीजिये :

दृष्टि, अन्य सभी इन्द्रियों से बढ़कर, अत्यन्त ज्ञानवर्धक अनुभव है।

और कमाण्डर खोसला की तरह, वह चमत्कार कर दिखाने का सामर्थ्य आपमें है। नेत्र-दान का संकल्प कीजिये। इसके लिए केवल आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है।

और एक दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए किसी दिन देखने की सामर्थ्य पा लेना, एक चमत्कार से कम नहीं है।

नेत्र-दान के विषय में कुछ आधारभूत तथ्य :

1. किसी भी उम्र का, लगभग कोई भी व्यक्ति नेत्र-दान कर सकता है, यदि नेत्र-दाता चश्मा पहनता हो, उसे मोतियाबिन्द हो या आँखों का सफल ऑपरेशन हो चुका हो, तो भी नेत्र-दान सम्भव है।
2. मृत्यु के उपरान्त 6 घन्टों के अन्दर-अन्दर आँखों को निकाल लेना चाहिये। अतः निकटतम नेत्र-बैंक को तुरन्त सूचित करना आवश्यक है।
3. नेत्रों को निकालने में केवल 10-15 मिनिट लगते हैं और उससे कोई निशान या विकृति उत्पन्न नहीं होती।
4. आपके नेत्र-दान से दो दृष्टिहीन व्यक्तियों को दृष्टि मिलती है, एक दृष्टिहीन व्यक्ति को एक नेत्र प्रदान किया जाता है।
5. कानून में यह प्रावधान है कि आप किसी मृत सम्बन्धी के नेत्र दान कर सकते हैं — यदि उसने कभी नेत्र-दान के विरुद्ध अपना मत व्यक्त न किया हो तो।

कृपया अपने परिवार के साथ इस विषय पर चर्चा करें। नीचे दिया गया प्रपत्र भरें। और टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को डाक द्वारा भेज दें। हम आपको एक नेत्र-दाता के रूप में पंजीयन कर लेंगे और आपको नेत्र-दाता कार्ड और प्रमाण पत्र भेजेंगे जिसमें आपके निकटतम नेत्र-बैंक का नाम, पता व टेलीफोन नम्बर, अंकित होगा।

राष्ट्र को नेत्र-दान करने की घोषणा

मैं/हम, अधोहस्ताक्षरीगण, एतद्द्वारा संयुक्त रूप से/पृथक-पृथक राष्ट्र को अपने नेत्र दान करने का संकल्प लेता हूँ/लेते हैं तथा एक दूसरे पर दायित्व डालते हैं कि हममें से किसी की भी मृत्युपरांत नेत्र-चिकित्सक को बुला कर, प्रत्यारोपण के उद्देश्य से हमारे नेत्र निकाल कर हमारी इच्छा पूर्ण की जाए।

1. श्री/श्रीमति _____ आयु ___ हस्ताक्षर _____
2. श्री/श्रीमति _____ आयु ___ हस्ताक्षर _____
3. श्री/श्रीमति _____ आयु ___ हस्ताक्षर _____

पता _____ पिनकोड _____ राज्य _____ तिथि _____

साक्षी की आवश्यकता है जब केवल एक या परिवार के 3 से कम सदस्य नेत्रदाता हों.

1. श्री/श्रीमति _____ 2. श्री/श्रीमति _____

रिश्ता _____ रिश्ता _____

हस्ताक्षर _____ हस्ताक्षर _____

पता _____ पता _____

दृष्टि

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन

टाइम्स ऑफ इंडिया, 10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

ओ.बी.एस. (टी.ई.आर.एफ. 2)

दृष्टि के आनन्द को बांटिये. नेत्र-दान का संकल्प कीजिये.

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को दी जाने वाली वित्तीय सहायता आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80(जी) के अंतर्गत कर रहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्नालाल पटेल

जन्म : 7 मई 1912, गुजरात-राजस्थान सीमा पर स्थित मांडली गांव में. प्रारंभिक जीवन अस्तव्यस्त. विधिवत शिक्षा केवल आठवीं कक्षा तक. स्कूल छोड़ने के बाद कुछ वर्षों तक एक साधु की संगति. गांव-गांव भटकते हुये जीवन का भरपूर अनुभव. अपने सहपाठी उमाशंकर जोशी से आकस्मिक भेंट और उनकी प्रेरणा से लेखन में प्रवृत्त.

साहित्यिक जीवन का प्रारंभ कविताओं से. शीघ्र ही कहानियों की ओर झुकाव. आरंभिक असफलताओं के उपरांत कहानी 'शेठनी शारदा' एक उच्चस्तरीय साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित होकर चर्चित. 1940 में लघु-उपन्यास 'दलामणा' का प्रकाशन. 1941 में बहुप्रशंसित उपन्यास 'मलेला जीव' प्रकाशित.

1947 में प्रकाशित उपन्यास 'मानवीनी भवाई' गुजराती साहित्य की सर्वाधिक उल्लेखनीय कृतियों में परिगणित. इसी शृंखला में दो और उपन्यास— 'भांग्यानां भेरू' तथा 'चम्मर बलोणु' भी.

गत वर्षों में पौराणिक आख्यानों पर आधारित अनेक उपन्यास-शृंखलाएं. कुछ समय पूर्व प्रकाशित पौराणिक उपन्यास 'पार्थने कहो चढ़ावे बाण' (पांच खंड) विशेष उल्लेखनीय.

अब तक लगभग 60 उपन्यास, 28 कहानी-संग्रह, 2 नाटक, आत्मकथा एवं कई बाल-साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित.

शैली के अनूठे प्रयोग और जीवन की गहन अनुभूतियों के चित्रण के लिये विशेष रूप से प्रख्यात.

वर्ष 1985 के ज्ञानपीठ पुरस्कार के विजेता.

कंकू

पन्नालाल पटेल

"न करे नारायण पर यदि मैं मर जाऊं तो तू अपना जीवन मत बिगाड़ना...किसी अच्छे आदमी का घर ढूंढ़ लेना..." जीवन के किनारे खड़े खुमा ने अंदर धंसी आंखों से खाट के पास बैठी पत्नी की ओर देखने की कोशिश करते हुए कहा. वह कोहनी के सहारे ज़रा उठा. कंकू की गोद में खेल रहे चार-पांच मास के बालक को देखने का प्रयत्न करने लगा. "और हीरिया...वह तो तेरी गोद में ही है...मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं..." दोनों स्वजनों पर नजर डालते हुए खुमा की आत्मा पच्चीस वर्ष पहले जिस तरह आयी थी, कुछ वैसे ही चली गयी.

कंकू का रुदन राह में जानेवाले को रुला दे, ऐसा था. ज्वान-ज्वान खुमा की मौत दुश्मन को भी रुला देती. सभी ने सांत्वना देकर कंकू की आंखों को और सुजाया.

घर का सब कुछ लगाकर और कर्जा लेकर कंकू ने खुमा की तेरहवीं की. सब ओर कंकू का नाम हो गया. उसके बाद तो वह रोया ही करती. कुएं का पानी सूख सकता था परंतु कंकू के आंसू नहीं सूख सकते. लेकिन अब उसे घर की दरिद्रता आने वाले संकट का आभास देने लगी. बड़े-बूढ़े कहते भी, "इस तरह रो-रोकर नूर खो देगी, तो बच्चा क्या पियेगा?" परंतु बच्चे की खातिर कंकू ने इस दुःख के पहाड़ को अपने छोटे किंतु बलवान दिल में दबा लिया.

कंकू और खुमा की जोड़ी पूरे गांव में बेजोड़ थी. जब कंकू ससुराल आयी तब खुमा पर कर्ज का पहाड़ था. दोनों ने तनतोड़ मेहनत करके काफी कर्ज चुकता कर दिया था, तभी बुड्ढे-बुढ़िया के क्रिया-कर्म के खर्च से उतना ही चढ़ गया. परंतु जवान खुमा की मेहनत और कंकू की होशियारी देखकर मलकचंद सेठ और उधार देने को तैयार था. वही खुमा दगा दे गया. मलकचंद का गणित उल्टा होता जान पड़ा.

सगे-सबंधियों ने कंकू को किसी इज्जतदार का घर बसाने का सुझाव दिया, परंतु कंकू नहीं मानी. विधुरों को तो जाने दो, एक पत्नी होते हुए भी अनेक युवकों ने उसे सोने से लादने और घर की रानी बनाने के प्रलोभन दिये, परंतु कंकू न मानी तो न ही मानी. वह इतना ही कहती, "भगवान ने राजकुंवर जैसा बेटा दिया है, फिर किसी की दया की रोटी खाने की क्या जरूरत?" और बच्चे का चुंबन लेकर कह उठती, "कल बड़ा होगा और तुम्हारे आंगे से खेलकर घर आयेगा." आने वाले अपना-सा मुंह लेकर वापस चले जाते.

कोई उसके हाथ का खाना खाने तो कोई मीठी नजर पाने, कोई दया से तो कोई सहानुभूति से उसके खेतों को बो देते और कंकू बच्चे की तरह खेतों की देखभाल करके अपने दिल काटती.

खुमा के साथ जो काम पलक झपकते हो जाता था, वह अब उसे मुश्किल लगता. गोड़ते-गोड़ते कई बार उसकी आंखें भीग जातीं और वह घास की जगह धान के पौधे को उखाड़ डालती. जब कंकू के लिए खुमा का दो-चार दिन को बाहर जाना असह्य हो उठता था, तो यह जीवन-भर की तन्हाई कैसे सहन होती? गांव के युवकों में वह रंगीला जवान गिना जाता. उसके फेंटे की नजाकत देख युवतियां स्वयं को कमनसीब गिनतीं और जवान ईर्ष्या करते. इस पर उसे कंकू जैसी छबीली सहचरी मिली.

कंकू खुमा को भी मात दे, ऐसी थी. उसकी जवानी पर गांव के युवक पागल थे. अधेड़ जवान होने की कोशिश करते जबकि वृद्ध अपनी जवानी याद करते. खुमा को अपने फेंटे के ऊंचे छोर की चिंता नहीं हुई थी, परंतु उसने कभी कंकू की चोली के रेशमी गोटों का रंग फीका नहीं होने दिया था. पागल खुमा को कंकू में रोज कुछ-न-कुछ नया दिखायी देता. कभी उसके गले में लहराते मोतियों के हार को देखता रहता. किसी दिन पीठ पर झूल रहे फुंदने के मोती गिनता तो कभी पांव के कड़ों से खेलता रहता. खुमा के इस पागलपन ने कंकू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को और भी पागल कर दिया था. पागलपन भरे उन पांच वर्षों के प्रसंगों को याद करके कंकू आज सब कुछ भूलकर हंस पड़ती तो कभी फूट-फूटकर रो पड़ती. जिस प्रकार भरी दुपहरी में रेगिस्तान में चलने वाला पथिक दूरी पर छाया देखकर जल्दी-जल्दी पैर उठाने लगता है, उसी प्रकार अपने बेटे की ओर देखकर कंकू में हिम्मत आ जाती. 'कल बड़ा होगा और ये दुख के दिन सुख में बदल जायेंगे.' कंकू सोचती.

सेठ मलकचंद गांव में आते तो कंकू की खबर लेना नहीं भूलते. उसे हिम्मत बंधाते हुए कहते, "धन्य है कंकू, धन्य हैं तेरे माता-पिता! तूने ससुराल और पीहर दोनों की इज्जत बढ़ायी. जिस जाति में विधवा स्त्री दूसरा घर कर लेती है, वहां कौन बनिया-ब्राह्मणों की तरह विधवा जीवन स्वीकार करता है. जो चाहिए सो ले जाना, कल हीरिया बड़ा हो जायेगा. सुख-दुःख का चक्कर तो चलता ही रहता है."

"मलकचंद काका, तुम तो देवता आदमी हो, नहीं तो इतने कर्ज के बाद कौन औरत-जात को और कर्ज देता है?" कंकू रुंधे गले से बोली.

इतने दुःखों में भी कंकू पहले ही तरह हंसती परंतु पहले का हास्य रोते को हंसाता और अब हंसते हुए को रुला देता. बाघ जैसे पति के जीवित रहते जो जवान मजाक करने की हिम्मत रखते थे, वे आज ऊंची आंख भी नहीं कर पाते. हर कोई डरता—कंकू से नहीं, कंकू की त्यागमूर्ति से.

बरसाती झरने की तरह बहनेवाला समय कंकू के लिए तो शंकर की जटाधारा के समान था. परंतु वह भी उसने धैर्य और हिम्मत से पूरा किया. दस वर्ष गुजार दिये.

एक बार कंकू सेठ के यहां पैसा लेने गयी. उन्हें खुश देखकर बात निकली, "मलकचंद काका! बैलों के लिए दो तो अगले वर्ष हल बसाना है?"

"तो मना किसने किया है? तुझसे ज्यादा तो मुझे जल्दी है कि मेरे ग्राहक का घर सब लोगों के बराबर आ जाये." और हंसने का प्रयत्न करते हुए जोड़ा, "आज बसाना हो तो अभी दे दूं?" कुछ देने का अभिनय करते हुए फट्ठे से हवा खाने लगे.

कंकू उपकार जतानेवाली नजरों से देखती हुई बोल पड़ी, "तुम्हारी तो पूरी मेहरबानी रही है."

"पर तुम लोगों को इसकी कहां फिकर है!" सेठ मुस्कराते हुए कंकू की ओर ताकने लगे. कंकू की नजर मिलते ही दूसरी ओर देखने लगे. फट्ठे से हवा खाने लगे परंतु कान कंकू की ओर ही लगे रहे.

"तुम्हारी फिकर नहीं करें, ऐसा होता होगा, मलकचंद काका! तुमने तो बुरे समय में हमारी लाज रखी है." कंकू बोली.

"अब लाज-वाज तो ठीक है. सब मीठे के लालच में जूठा खाते हैं." कंकू के द्वारा बार-बार 'लाज' शब्द का प्रयोग सेठ को अच्छा नहीं लगा.

कंकू को सेठ छोटे होते हुए महसूस हुए. वह बोली, "तुम कुछ भी कहो परंतु मैं तुम्हारा उपकार भला भूल सकती हूं?"

सेठ कुछ बोलने वाले ही थे कि सामने की दूकान से कपड़े की पोटरी बांधते हुए एक आदमी ने आवाज दी, "कंकू बहन, गांव चल रही हो?"

कंकू ने हकार में जवाब देते हुए पोटरी उठायी और, "चलती हूं, मलकचंद काका!" कहकर सीढ़ियां उतरने लगी. सेठ कुछ बड़बड़ाये परंतु कंकू ने उधर ध्यान नहीं दिया. रास्ते में विचार करते हुए कंकू को आज सेठ का व्यवहार अजीब लगा. 'नहीं-नहीं, ऐसा आदमी तो नहीं है...हो तो भी मुझे क्या है?' इस तरह सेठ को भूलने की कोशिश में उन्हीं विचारों में उलझी घर आ गयी.

सेठ की उम्र तो चालीस की थी, परंतु वे दीखते पैंतालीस के थे. तोंद के अलावा स्वभाव भी वृद्धत्व की ओर जा रहा था. उनकी उम्र के ग्राहक उन्हें 'काका' ही कहते. गांव की गरीब बस्ती को चूस-चूसकर दस-दस हजार खर्च करके उन्होंने दो बार शादी की. परंतु पहली दो वर्ष और दूसरी चार वर्ष बाद मलकचंद को अकेला छोड़ गयीं. मानो अपना कर्ज लेने आयी हों. दूसरी ओर जाति में बात फैल गयी कि मलकचंद पत्नीखोर है. ऐसा फैल जाने पर बीस हज़ार खर्च करने पर भी कौन अपनी लड़की देता? मलकचंद ने भी यह विचार मन से निकाल दिया. उनकी पैंसठ वर्ष की मां भी बहू की आशा छोड़कर काम करते हुए मौत की प्रतीक्षा करने लगी.

दूसरे वर्ष कंकू ने हल बसा लिया. हल चलाने के सिवा वह सब काम बड़े उत्साह से करती. दो वर्ष में तो उसने दस वर्ष के वैधव्य काल का कर्ज चुकता कर दिया. सेठ दूसरों को कंकू का उदाहरण देते, "देखो, कंकू ने दो वर्ष में एक सौ बीस रुपये चुका दिये. तुम तो हुक्का गुड़गुड़ाते रहो, तुम से कुछ नहीं हो सकता."

कंकू को लड़के के हाथ पीले करने की लगन लग गयी. एक दिन तड़के ही सेठ के गांव पहुंच गयी और यह बात कही.

किसानों के जीवन-व्यवहार के संचालक साहूकार नहीं होते तो किसान वर्ग की जाने क्या दशा होती? सेठ मलकचंद खुश हुआ, "वाह! फिर तो कंकू खाट पर बैठकर बहू पर राज चलायेगी." सेठ हंसे परंतु इस हास्य में मिठास की जगह कसैलापन था. उन्हें अपने जीनव का कसैलापन याद आ गया.

"तुम्हारी कृपा हो तभी ऐसा हो सकता है." आशा भरी नजरों में कंकू ताकती रही.

"कितने देने होंगे?" अपने विचारों में खोये हुए सेठ ने पूछने की खातिर पूछ लिया.

"तुम्हें क्या पता नहीं है! कल सुबह तो गला डामोर के लड़के का विवाह करवाया है."

"फिर भी?" सेठ ने पूछा और गहरी सांस लेकर कंकू की ओर ताकने लगे.

"एक मन गुड़ और एक सौ बीस नकद. धान तो घर निकल आयेगा, घी उधार मिल जायेगा, ...पर कपड़े..."

सेठ बीच में बोल पड़े, "कोई बात नहीं, एक मन गुड़ तीस-चालीस के कपड़े और एक सौ बीस नकद, बस इतना ही तो? और घी के लिए दूसरी जगह जाने की क्या जरूरत है? ...पर एक बार तू हीरिया की सगाई तो कर. ऐसा हो सकता है कि कंकू के लड़के की सगाई हो और मैं उधार नहीं दूं?" कहकर जैसे पहली बार देख रहे हों वैसे कंकू के मुंह की ओर ताकने लगे और कुछ देर बाद थोड़े नीचे नजरें गड़ा दीं.

नजरें कहां लगी हैं यह जानकर कंकू विह्वल हो गयी और साड़ी के पल्लू को ठीक कर लिया. सेठ शरमा गये. तकिये पर ढला हुआ शरीर सीधा किया और मुंह से कृष्ण-कृष्ण बोलने लगे. "अच्छा, ले जाना," कहकर सेठ खड़े हो गये. इतने में दूसरा ग्राहक आया और उन्हें फिर से बैठना पड़ा.

कंकू ने अपनी पोटरी उठायी परंतु उस ग्राहक ने थोड़ा रुककर साथ ही निकलने को कहा. कंकू रुकी तो सही पर दूकान के बाहर दालान पर बैठ गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घंटे भर में तो उस आदमी की खरीदी पूरी हो पायी. कंकू खड़ी हुई तो सेठ कहे बिना नहीं रह सके, "कंकू, खाने का समय हो गया है, खाकर ही जा."

कंकू ने मन का क्षोभ छुपाकर कहा, "नहीं, मलकचंद काका! पास तक का साथ मिला है, दोपहर तक तो घर भी पहुंच जाऊंगी.

"घर जाकर तो खाओगी ही परंतु यह घर लेकर क्यों बैठे हैं?" जवानी के किनारे खड़े उस आदमी ने कहा और सेठ की ओर देखकर बोला, "वह हमारे यहां खा लेगी, गांव से निकलेगी तो कहीं भूखी जाने देंगे?" और अपना सामान उठाकर चल दिया.

सेठ चौखट पकड़कर टोले में से अलग दीखती कंकू को ताकते रहे. कंकू मुड़ गयी और सेठ की निराधार नजरें सामने की दीवार से जा टकरायीं. एकाएक उन्हें होश आया और दूकान की ओर मुड़कर कृष्ण-कृष्ण बोलने लगे.

रास्ते भर कंकू भी अस्वस्थ रही. साथ वाले सेठ की प्रशंसा किये जा रहे थे, "कंकू बाई! चाहे कुछ भी हो परंतु मलकचंद काका ने तुम्हारी बड़ी लाज रखी है."

दूसरा बोलने लगा, "हां! ऐसे समय में तो खास सगे भी उधार नहीं देते." वह अपने सगों के कड़वे अनुभव का उदाहरण दे, उससे पहले तीसरे ने कहा, "अरे भाई! मलकचंद तो देवता आदमी है. भगवान के भरोसे काम करता है." फिर वह बूढ़ा इन पचास वर्षों में बदले अनके साहूकारों के उदाहरण देने लगा, "वह हरगोबन! अरे उसका ब्याज तो राजाजी के घोड़े से भी तेज़ चलता है."

इन बातों में कंकू को कोई रस नहीं पड़ा, उल्टे शंका हुई कि उसके आगे सेठ की प्रशंसा करने का कहीं दूसरा अर्थ तो नहीं. उसका मन सेठ के व्यवहार का विश्लेषण करने लगा. 'सेठ वैसे लुच्चा लगता है...नहीं-नहीं, उसने मेरा क्या बिगाड़ा है? उल्टा बिना देखे उधार दिये जा रहा है...नहीं तो उसे क्या लाज? लड़का कुंआरा है तो मेरा है, उसका तो नहीं है.' कंकू ने एक गहरी सांस ली. बेचारे ने दो बार शादी की तो भी रोटी का दुःख वैसा का वैसा है. उस पर भी बनिये की जाति! और दुःख सहन हो सकते हैं परंतु रोटी का नहीं. कहीं उसकी तरह अपनी जाति में भी कन्या का यह प्रश्न रहता तो हम जैसों के लड़कों को कौन पूछता! इस तरह के विचार करती हुई कंकू खाने के लिए उस गांव में न रुककर सीधे अपने घर आ गयी.

कंकू की अपनी जाति में बहुत इज्जत थी. विधवा थी, घर में कोई कमाने वाला नहीं था फिर भी सबके बराबर सभी कामों में हिस्सा देती. मेहमानों की सेवा-चाकरी में उसने जरा भी फेर नहीं पड़ने दिया था. इसलिए लड़के की सगाई में कोई मुश्किल नहीं पड़ी.

कंकू के आनंद का कोई ठिकाना नहीं था. हीरिया की बहू को अपने कड़े दूंगी. उसने दस-बारह वर्ष पहले साड़ी में बांधकर रखी माला, अंगूठी, चूड़ी वगैरह गहने और मोती-जड़ी चोली-फरिया बहू के लिए निकाल लिये थे. 'आयेगी तो चूल्हा उसे ही सौंपूंगी! बहुत दिन मजूरी की. अब तो ये दोनों अपना संभालें.' और आज से अठारह वर्ष पहले खुद बहू बनकर आयी थी, उस जगह हीरिया की बहू को बैठाकर उमंग में स्वयं को भूल गयी.

कंकू विवाह का इंतजाम करने सेठ के यहां जाने वाली थी, लेकिन उधार वसूल करने निकले सेठ तो उसके घर ही आ पहुंचे. उन्होंने कंकू से गहने और अन्य खर्चों के बारे में वैसे ही पूछा जैसे सभी ग्राहकों से पूछते थे, लेकिन इस भाव में थोड़ा अंतर था. वैसे गांव वाले सेठ की उदारता पर मुग्ध हो गये. किसी-किसी को इस स्त्री की व्यवहार-कुशलता पर ईर्ष्या आयी. कंकू एहसान के बोझ से दबती हुई बोली, "मलकचंद काका! मैं तो तुम्हारे दम पर ही लड़के को ब्याहने निकली हूं."

"सेठ का तो एक नया ग्राहक बनेगा. ऐसे समय पर मदद लेने के लिए ही तो बड़ा सेठ देखा जाता है. इनके बाप मेरी बारात में आये थे, वह तो मुझे अभी भी याद है. लड़के तो [illegible] का के ही हैं." गला डामोर ने ताने में आते हुए कहा.

"गलत क्यों बोलें, कंकू बहू की बुरी घड़ी में इन्होंने बहुत सहारा दिया है." कंकू के कुटुंब का एक बूढ़ा बोला.

"कंकू ने भी बराबर अदायगी की है. वायदा निभाया है. मुझसे मना कैसे हो!" सेठ ने भौंहें खींचते हुए कहा और कोई प्रशंसा में कुछ कहे इससे पहले घोड़ी पर सवार होकर बोले, "रुपये तो बारात के एक दिन पहले ले जाना और गुड़-घी जब आयेगी, तौल दूंगा." इतना कहकर मान की घोड़ी की लगाम खींच दी.

सेठ को विदा करने के लिए आंगन में खड़े लोग अभी भी सेठ की प्रशंसा कर रहे थे, जबकि कंकू को यह प्रशंसा सुनकर संकोच हो रहा था इसलिए वह घर में चली गयी.

दो दिन बाद कंकू गुड़, घी और कपड़ा लेने गयी. सेठ ने उसकी पसंद के कपड़े निकाल दिये और कंकू के लिए साड़ी तो उसके मना करने पर महंगी बांध दी. "गिनती किये बिना ले जा चुपचाप! तेज लग रही हो तो खरीदी के भाव दे देना और मेरी ओर से पहनेगी तो समझूंगा कि नकद पर आधे आने का ही ब्याज लिया था." सेठ के मुंह से यह आवेश में निकल गया था. वे एकदम उठ खड़े हुए. "गोदाम से गुड़ तोल दूं. दूकान की सांकल लगा आना." चाबी लेकर नीचे उतरते हुए बोले.

गोदाम का ताला खोलते हुए सेठ का हाथ कांप रहा था. बिच्छू के पूंछ की आकार की लंबी चाबी कंकू को देते हुए बोले, "ले खोल तो सही, और सामने कोने में से गुड़ की भेली तराजू में चढ़ाना; मैं तब तक पानी पी आऊं." कहकर जैसे भयस्थान से छूटे हों, इस तरह बगल के अपने घर की ओर चले.

कंकू अंधेरे गोदाम में घुसी. अंदर के कोने में गुड़ की भेलियों की थप्पी के पास गयी. दो भेलियों को नीचे तो गिराया लेकिन न तो अलग कर सकी और न उठाकर तराजू के पास ला सकी. कोशिश कर रही थी इतने में सेठ आ गये. "क्या कर रही है अब तक?"

"ये तो उखड़ती ही नहीं." कंकू ने खीझकर कहा.

"अरे तेरा खाया-पीया बेकार गया." कहकर सेठ ने कीले से दो बार से भेलियों को अलग कर दिया. सीधे खड़े होकर कंकू को विजयपूर्ण नज़र से देखा.

"मर्द की बात और है." कहकर कंकू भेली उठाने झुकी. थोड़ा प्रयत्न करने पर बोली, 'ये तो नहीं चढ़ता." सेठ ने मदद की. उनका हाथ कंकू के कंधे से छुआ. सेठ को पसीना आ गया. भेली मुश्किल से उतरवायी. सीधे दरवाजे की चौखट पर आ बैठे. "कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण!...शरीर अकड़ गया...." और धोती का सिरा पकड़कर मन की विवशता को दूर करने का प्रयत्न करने लगे.

कंकू ने दूसरे पलड़े में बांट चढ़ाये और दोनों पलड़े बराबर हो गये तो बोली, "देखो, मलकचंद काका!"

सेठ ने बांटों का दो-तीन बार जोड़ किया तब कहीं सही तौल लिख पाये. परंतु उसके बाद न तो उन्होंने बारदान को हटाया और न पैसे ही गिने. वे तो बांट उतारती कंकू को एकटक देखते रहे.

"कंकू! एक बात पूछूं?" कंकू ने सेठ की आंखों में देखा. उसे मना का मन हुआ परंतु मना करने की हिम्मत नहीं हुई, "क्या?" पूछकर वह भेली पर चिपके फूस को उखाड़ने लगी.

"तूने दूसरा घर क्यों नहीं किया!" सेठ की आवाज गंभीरता और भावुकता से भरी थी. बिजली के झपकारे की तरह कंकू को अपना सौभाग्यपूर्ण जीवन याद आया और चला गया. स्वस्थ होकर बोली, "हीरिया को छोड़ने का मन नहीं हुआ."

"अब तो वह अपना संभाल सकता है? मेरी मान तो तू दूसरा घर कर ले. अभी भी क्या बिगड़ गया है!" आखिरी वाक्य बोलते हुए सेठ की नज़र कंकू पर अटक गयी. मानो कहती हो : पंद्रह वर्ष पहले जैसी थी वैसी तू अभी भी है. इस जवानी को तू कैसे दबाती है!

"कहीं पागल तो नहीं हुए हो! अब कितने समय के लिए यह सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूं? लो उठवाओ, दिन तो छिपने को हुआ."

सेठ गहरी निःश्वास छोड़कर खड़े हुए. एक क्षण उसे देखते रहे. परंतु कंकू उनके मन के भाव जान गयी. नीचे झुककर भेली उठाते हुए कहा, "लो उठवाओ!" सेठ को झुकना पड़ा. भेली उठाकर बाहर निकलती कंकू की लचकती कमर ने तो उन्हें बेहाल कर दिया. दिल धड़कने लगा. कान सुर्ख हो गये और पूरा शरीर पसीने से तर हो गया. उन्होंने इस हालत में ही गोदाम का ताला लगाया.

कंकू गांव से आयी गाड़ी में गुड़ की भेली रखकर कपड़े की पोटरी लेने आयी. गद्दी पर बैठे सेठ का फीका पड़ा मुंह उससे छिपा नहीं रहा. परंतु उधर ध्यान न दे, पोटरी बगल में दबाकर बोली, "आज से पांचवें दिन रुपये लेने आऊंगी, मलकचंद काका!"

मलकचंद ने अपने असली लहजे में कहा, "अच्छा, चाहिए तब ले जाना." और आंख बंद कर पांच-दस मिनट पहले आये भयंकर तूफान से बचा लेने के लिए श्रीकृष्ण का बहुत उपकार मानने लगे.

सिर पर पोटरी रखे कंकू के मन में आज रास्ते में अनेक विचार आने लगे. पांच दिन बाद पेट का जाया लड़का पराया हो जायेगा. जितना बहू का होगा उतना मां का थोड़ा ही रहेगा! और रहेगा भी तो कितने समय? जाने क्यों आज पहली बार कंकू को अकेलेपन का एहसास हुआ! जैसे स्वयं अपना कर्तव्य पूरा करके निष्क्रिय हो गयी हो.

लड़के की शादी पर देवता का आह्वान किया गया. इस प्रसंग के आनंद के अतिरेक से या अन्य किसी कारण से कंकू और दिनों से आज ज़्यादा गंभीर थी. दूल्हे के वेश में सजे हीरिया को वह निहारती रही—वे ब्याहने आये थे तब ऐसे ही लगते थे, जैसे एक को उठाकर दूसरे को बैठा दो. वह हीरिया के लाल साफे का छोर ठीक करने लगी. इस साफे में भी उसने खुमा की नजाकत को ही देखा.

गांव वालों ने भी आनंद में भाग लिया. जवान लड़कियों ने आंगन में बैठकर गाने गाये. वर्षों से सूना पड़ा आंगन चहल-पहल से भर गया. सभी को गुड़-धनिया दिये गये. गीत गाकर उठी स्त्रियों ने हर्षविभोर कंकू को स्वागत की याद दिलायी, "पागल कंकू! पानी का घड़ा भर ला, प्यासी मर रही हैं..." कंकू हाथ में पानी का घड़ा और आंखों में प्रेम की सरिता बहाती बाहर आयी. बराबर की स्त्रियों ने उसको फिर उलाहना दिया, "ज़रा धीरे से पैर रख...धीरे..."

बारात जाने से एक दिन पहले कंकू रुपये लेने गयी. सेठ ने दूसरे ग्राहकों को सुलझाया. कंकू के खाते में एक सौ बीस रुपये नकद साढ़े सात आढ़त के लिखकर कंकू का अंगूठा लिया. साक्षी की तरह दो ग्राहकों के अंगूठे लगवा लिये. और वही-खाता बंद करके बोले, "चल, घर से रुपये दूं."

घर में बूढ़ी मां बासनों को इकट्ठा करके रसोईघर साफ कर रही थी. कंकू ने बिना कहे ही बासन मांज दिये.

"कंकू, अस्सी रुपये से नहीं चलेगा? थोड़े कम पड़ते हैं." कमरे से बाहर आते हुए सेठ ने कहा.

"मलकचंद काका! मुझे कहां पांच-सात लड़के ब्याहने हैं? अकेला है उसमें भी कसर रखूं तो लोग क्या कहेंगे! वैसे तो इससे कम में चल जाये..."

मलकचंद बीच में ही बोलने लगे, "तुझे मना कौन करता है! यह तो पूछ रहा हूं. जरा हरगोबन के यहां होकर आता हूं." और बाहर निकल गये. बूढ़ी मां और कंकू बतियाने लगे. बूढ़ी ने अपने बेटे के दुःख से दुःखी होकर कहा, "देख, तेरा राजकुंवर की तरह लड़का तो है. मेरा पैसा किस काम का? तुझसे कुछ छिपा है. इस मलकचंद का दो बार तो ब्याह किया पर एक भी काम रास नहीं आया. ऐसी घड़ी देखने से तो भगवान मौत दे दे तो अच्छा है." बुढ़िया की अंदर धंसी आंखों के गड्ढे झलक आये.

कंकू को भी दुःख हुआ, "अरे अम्मा! यह सब कहां अपने हाथ की बात है! भगवान की मर्ज़ी के यहां किसकी चलती है! अब आंसू मत बहाओ. यह सब किस काम का है?"

गुजराती के मूर्धन्य कवि और ज्ञानपीठ के तीसरे पुरस्कार के सहविजेता उमाशंकर जोशी की कविता 'आत्मा के खंडहर' का सत्रहवां सोनेट

यथार्थ ही सुपथ्य एक

नहीं बिनती, न फरियाद, न फिक्र, नहीं बेकरारी,
या नहीं किसी प्रबल सत्व से शक्ति की याचना.
रम्य भ्रांति के असत्यचक्र जगाकर भटकानेवाली
गगनचुंबी आदर्श की पागल लगन भी नहीं.
जग से दुरित-लोप की अशक्य अभीप्सा भी नहीं,
सृष्टि के सकल तत्वविमर्श की उत्सुकता भी नहीं.
पग-पग बढ़ाती बजन काल की शृंखला,
सांस-सांस निकट आती यामिनी शाश्वती.
शांति के लिए, चित-सौख्य के लिए
मंथन में नहीं ढंढोलना जग को,
यदि उमड़ती हो चारों ओर उल्लास से अशांति.
असुख नहीं दमते मुझे जितने कि वितथ सौख्य चुभते,
नहीं रुचते सुख, जैसे रुचते हैं समझ में उतरे दुःख.
यथार्थ ही सुपथ्य एक, समझते रहना यथाशक्य.
अनजान रमना क्या! यातना के मोल भी समझना ही इष्ट.

इतने में मलकचंद अंदर आये. लगता था कि किसी असमंजस में हैं. बोले, "क्या सालग निकले हैं, जहां देखो वहां रुपयों की खैंच!"

कंकू उदास हो गयी, "मलकचंद काका! चाहे कुछ करो, मेरी लाज तुम्हारे हाथ में है. तुम्हारा उपकार नहीं भूलूंगी. तुम्हारे रुपये सोने के हैं." कंकू ने पैर से जमीन कुरेदते हुए कहा, "एक-एक पाई चुका दूंगी." उसे मलकचंद बहानेबाजी करते मालूम पड़े.

"घर में से निकाल दे, कहीं दूल्हे को कुंवारा रखा जाता है?" बूढ़ी मां बोली.

"कुछ-न-कुछ तो करना पड़ेगा. किसी दूसरे का हो तो और बात है यह तो कंकू का लाड़ला बेटा है." कहकर सेठ हंसे. "अच्छा चल, सब सामान हटाना पड़ेगा." कहते हुए मलकचंद दरवाजे के अंदर गये.

कमरे के अंदर कमरा और उसके अंदर भी एक कमरा था. दरवाजा बंद हो तो घुसने वाला दिन में भी दीवार से टकराये बिना न रहे. सेठ ने एक कंडी को इशारा किया, "इसमें सब सामान उतारने पड़ेंगे." कंकू दूसरी छोटी कंडी पर चढ़कर गागर-कलसा एक-एक करके सेठ को पकड़ाने लगी और उसका ढक्कन खोल दिया.

"बस रुक," कहकर सेठ कंकू वाली कंडी पर चढ़ गये. जैसे बगुला मछली को पकड़ लेता है उसी तरह अंधेरे में गेहूं के अंदर से एक पोटरी निकाली. परंतु नीचे उतरते समय सेठ लड़खड़ा गये. यदि कंकू के कंधे का सहारा न लिया होता तो दोनों नीचे गिर जाते. परंतु यह क्या हुआ? नीचे गिरते तो एक-दो जगह चोट लगती परंतु बिना गिरे ही पूरे बदन में आग कैसे लग गयी? कंकू भी तड़पने लगी. होश आते ही कंकू के कंधे से हाथ हटा लिया और नीचे उतरे. वह भी बेहोशी में नीचे उतरी.

खपरैल के बीच से आते प्रकाश में सेठ ने पोटरी खोली. सेठ की द्विधा देखकर मानो पोटरी के रुपये हंस पड़े हों, ऐसा उन्हें लगा. सेठ ने रुपये गिन-गिनकर कंकू के पल्लू में डाले. "ज़्यादा लेने हैं!" एक सौ गिनने के बाद पूछा.

सेठ की स्नेहभरी नजर और पूछने के ढंग ने कंकू को बिह्वल कर दिया. तिरछी नजर से सेठ की ओर देखते बोलने को हुई तो कमबख्त वह कहावत होंठों पर आ गयी, "भार है तो कन्या की कमर पर ही...कर्ज तो मुझ पर ही चढ़ेगा, तुम्हें क्या..." उसका वाक्य अधूरा रह गया. दोनों अपने आपे में नहीं रहे. वर्षों पहले की मधुरजनी दिवास्वप्न के रूप में साकार हो गयी.

हीरिया की बारात चढ़ी परंतु कंकू को रत्तीभर भी खुशी नहीं थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग दूसरा ही अनुमान लगाते, "ऐसे अवसर पर मरे हुए की कमी महसूस होती ही है."

बारात के वापस आने पर स्त्रियों ने गाया—

"माता के बोल भाई भूल गये
सास के बोल मीठे लागे...
हीरा भाई, बीरा महलों में रहना..."

इस गीत ने कंकू को विचारमग्न कर दिया. खुमा की याद आयी. और क्या, अब हीरिया जितना पत्नी का रहेगा, उतना उनका थोड़े ही रहने वाला है. यह तो दुनिया की रीति है. वह जोर से रो पड़ी.

जाने क्यों, अब कंकू में उमंग-उत्साह नहीं रहा, जैसे उसका जीवनकार्य पूरा हो गया हो. उसने मौत को दावत दी परंतु ऐसे मौत आ जाये तो जग में दुःख का कहीं नामोनिशान रहता?"

हीरिया के विवाह को एक महीना बीत गया, फिर दूसरा भी उसी तरह पूरा हो गया. अब तो वह मर भी नहीं सकती थी. मनुष्य को तो जाने दो, मनुष्य की छाया से भी कंकू दूर रहने लगी. दिन मशीनगन की गोली के समान जाने लगे.

गांव की अनुभवी बड़ी-बूढ़ियों को कंकू की चाल में फेर लगा. एकांत में बात पूछी परंतु कंकू ने बिल्कुल इनकार कर दिया. "यह तुम क्या कह रही हो, काकी! भरी दुपहरी रेगिस्तान पार किया और अब ढलती सांझ में..." कहकर कंकू हंस दी. पर इस हास्य में बड़ी-बूढ़ियों को मातृत्व की छाया और अधिक स्पष्ट दिखायी दी.

गला डामोर की पत्नी ने विचार करते हुए कहा भी, "जो तू सही कह रही है तो मैंने भी धूप में बाल नहीं सफेद किये हैं." फिर भी कंकू ने दृढ़ता से मना किया. तब गला डामोर की पत्नी ने अपनी अंदर धंसी आंखें गुस्से में निकालकर कहा, "तू मुझे बनाती है! तू बोल तो महीना बता दूं. बोल चौथा पूरा किया है और पांचवां बैठा हो तो?" वहीं कंकू की आंखें छलक आयीं. पैर से जमीन खोदती हुई मुश्किल से बोली, "काकी मेरे लिए जहर ला दो, मुझ कलमुंही ने..."

गला डामोर की पत्नी खुश हो गयी. हाथ का इशारा करते हुए बोली, "जहर खाये तेरी जूती. बंधी मुट्ठी लाख की है. सभी पेड़ों को थोड़ी-बहुत हवा लगती ही है. लेकिन उस कलमुहे का नाम...?" कंकू के पास आकर धीमे से पूछा.

कंकू मौन रही. दूसरी बुढ़िया ने भी उसे बहुत समझाया, "जात-बिरादरी का हो तो उस नासपीटे के साथ तेरा विवाह करवा दे." वगैरह प्रलोभन दिये. परंतु कंकू ने उन्हें नाम से तो क्या उसकी बू से भी बहुत दूर रखा था.

उसी अंधेरी रात को गांव के कुछ बूढ़े एकत्र हुए और कुछ घुसपुस करने लगे.

"देखो धना डामोर! जात-बिरादरी में पता चलेगा तो पूरे मुहल्ले की इज्ज़त जायेगी. और रोटी-बेटी के दरवाजे बंद हो जायेंगे." चारों में सबसे वृद्ध गला डामोर ने बात शुरू की.

"हद हो गयी, अभी तो बात दबाने में ही भला है." धना डामोर ने हां में हां मिलायी.

"पर उस हरामखोर का नाम तो मालूम..." तीसरे ने कहा.

"क्या करोगे? नागनाथ नहीं तो सांपनाथ होगा. मेरी औरत ने बहुत पूछा तो बोली कि मुझे मार डालो पर नाम नहीं बताऊंगी. त्रियाहठ के आगे किसकी चली है?" तीनों चुप रहे.

थोड़ी देर के बाद, थोड़ा घुसपुस करने के बाद अपनी जाति के एक विधुर को बुलवाया और धना डामोर ने बात की, "देख कालिया! तेरा घर बस सकता है. जो तू दूसरे की आबरू रख ले तो!"

"उल्लू होगा जो मना करेगा!" गला डामोर बोला, "कितनी ही औरतें बच्चा लेके नहीं आतीं? पांव उल्टा पड़ गया नहीं तो तेरी किस्मत में ऐसी कहां थी?"

कालू कंकू की जाति का ही था. पैंतीस के ऊपर का नहीं था. पच्चीस वर्ष का था तब बहू मर गयी. एक तो गरीब और ऊपर से कम रसिक होने के कारण विधुर था. स्त्री का नाम सुनकर उसके मुंह में पानी भर आया. दिल धड़कने लगा. बोल पड़ा, "काका!" मना कौन कर रहा है?"

"तो मंजूर है?" मोती बोला.

कालू जरा हिचकिचाया. गला डामोर की ओर देखते हुए पूछा, "काका! कोई नाम-ठाम..."

"अब एक बार तू हां कह दे. हम तेरा कुछ खराब करेंगे भला! वह तो तेरे बाप का मुझे ध्यान आ गया. और तू इज्ज़तदार है. पर तेरी इच्छा न हो तो..."

कालू जल्दी से बोला, "तो मुझसे क्या पूछते हो? तुम करो वह मंजूर, बस?" मोती को लगा कि कालू ठीक से समझ नहीं पाया है. इसलिए फिर पूछा, "तू समझ तो गया? माणिक वैसे तो लाख का है पर थोड़ा..."

इस पर गला डामोर चिढ़ गये, "तुम भी मोती..." और कालू के सामने देखकर बोले, "वैसे तो कोई किसी के साथ हो जाये पर थोड़ा जोड़ा अच्छा हो तो ठीक. पर तेरी इच्छा नहीं..."

कालू फिर बोला, "मैं नहीं जानता! तुम करो वह मंजूर है."

गला डामोर ने घर जाकर तैयारी करने को कहा. कालू घर की ओर जाने लगा. अंधेरी रात में उसकी आंखों के सामने लाल साड़ी पहने दुल्हन की छवि कौंध गयी. यह अच्छा था कि वह नाम नहीं जानता था नहीं तो अलबेली कंकू की कल्पना ही उसे पागल बना देती.

सवेरे ही गांव में बात फैल गयी. कंकू ने कालू का घर बसाया है. दो दिन तक पनिहारिनों में कानाफूसी हुई. आसपास के गांव में तेजी से बात फैल गयी. अलबत्ता गला डामोर जैसे बड़े-बूढ़े कहते रहे, "उसने अपना लड़का बड़ा कर दिया, उसे ब्याह दिया. चाहे कितना भी कंकू उस घर को अपना माने पर अब तो घर पर बहू का ही अधिकार अधिक है. उससे यह क्या बुरा हुआ? चाहे कुछ भी हो उसने अपने लड़के को बड़ा करके अपना फर्ज पूरा कर दिया." और सब सुनने वालों ने सामने नहीं तो पीछे इस बात को स्वीकार किया.

फिर भी तीन दिन तक घर से बाहर निकलने की कंकू की हिम्मत नहीं हुई. वैसे वह मन ही मन गांव के घर-घर से लड़ चुकी थी और उनकी सात पीढ़ियों के कलंकों को गिना चुकी थी. उस अकेली ने ही यह पाप नहीं किया है. ऐसा मन को समझाकर चौथे दिन घर से बाहर निकली. जानवर बाहर बांधे और घड़ा लेकर पानी भरने गयी. गांववालों ने भी पहले की तरह ही बातें की. महीने बाद तो कंकू अपने पैर फिसलने की बात को भूल गयी.

एक रात को कालू के घर के पास रहनेवाली एक बूढ़ी ने गांव की बड़ी-बूढ़ियों को जगाया, "चलो कंकू के 'दरद' हो रहा है."

बड़ी-बूढ़ियों ने, खास तो गला डामोर की पत्नी ने बड़ी होशियारी से बच्चे का जन्म करवाया.

कालू ने सभी स्त्रियों को लड़के के जन्म की खुशी में गुड़ बांटा. सब चले गये सिर्फ गला डामोर की पत्नी रह गयी. अभी वह नहायी भी नहीं थी. जैसे चित्र-विशेषज्ञ विविध दृष्टिकोण से चित्र को देखता है वैसे ही वह कंकू के नवजात शिशु को देख रही थी.

एकाएक बुढ़िया की झुर्रियां तन गयीं. होंठ बुदबुदाने लगे, "नासपीटे मलका..." और उसकी आंखों में आयी चमक बुझ गयी, "अब क्या हो? अरे मलका! इस रांड ने हवा भी नहीं लगने दी, नहीं तो तुझे पकी बेर की तरह झकझोर डालती." उसे इतनी झुंझलाहट हो रही थी कि नहाने-धोने के लिए भी वह कंकू के यहां नहीं रुकी. बिल्ली के हाथ में चूहा छूट गया हो, कुछ इस तरह का अफसोस करते रास्ते में बड़बड़ाने लगी, "अरे मलका! यह तो लाखों में एक कंकू जैसी औरत मिली; नहीं तो..." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

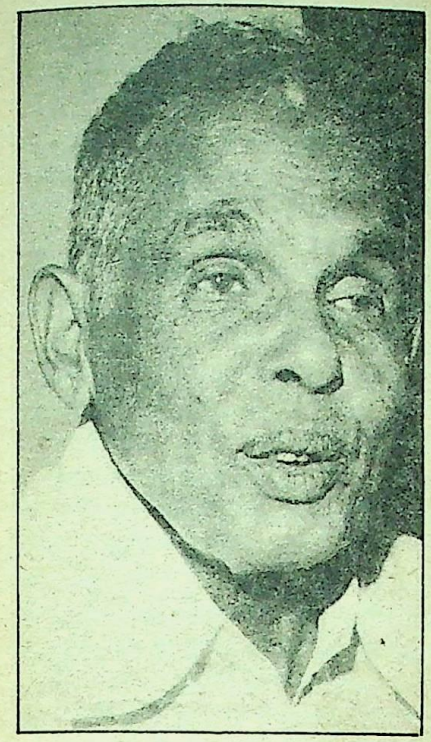

तकषी शिवशंकर पिल्लै

जन्म -17 अप्रैल, 1912 को एलैप्पी (केरल) से कोई बीस किलोमीटर दूर बसे गांव तकषी में. प्राथमिक शिक्षा मलयालम में तकषी के एक प्राइमरी स्कूल में. उच्चतर शिक्षा अंग्रेजी में गांव से बाहर. वकालत की शिक्षा त्रिवेंद्रम के लॉ कालेज में. वकालत की शुरुआत एलैप्पी में 1936 में. मुद्दतों से अपने ही खेतों में काश्तकारी करते आ रहे हैं. लेखन विद्यार्थी जीवन से ही प्रारंभ. पहली कहानी 1929 में तथा पहला उपन्यास 1933 में प्रकाशित. लगभग 32 उपन्यास, 600 से अधिक कहानियां और एक नाटक लिख चुके हैं. सात उपन्यास और अनेक कहानियां अंग्रेजी में अनूदित. 1956 में उपन्यास 'चेम्मीन' साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत. 1964 में 'एणिप्पटिकल' पर केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार. 1974 में सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार. 1980 में बृहद उपन्यास 'कॅयर' पर वायलर पुरस्कार. उपन्यास तथा कहानियां अनेक विदेशी एवं सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित. व्यापक भ्रमण. तीन बार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार समिति के सदस्य. केरल साहित्य अकादमी के अध्यक्ष. 'चेम्मीन' पर बनी फिल्म राष्ट्रपति स्वर्ण-कमल से सम्मानित. और 1984 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित.

बाढ़ में

तकषि शिवशंकर पिल्लै

गांव में ऊंचे स्थान पर एक मंदिर है. वहां देवता गले तक पानी में डूबा खड़ा है. पानी. सब कहीं पानी-ही-पानी है. सभी गांव वाले बसेरा ढूंढ़ने चले गये हैं. जिसके घर नाव है उसके यहां घर की रखवाली के लिए एक आदमी रह गया है. मंदिर की तीन कमरोंवाली छत पर सड़सठ बच्चे थे, तीन-सौ-छप्पन लोग, कुत्ता, बिल्ली, बकरी, मुर्गा जैसे पालतू जानवर भी. सभी एक जुट होकर रह रहे थे. कोई झगड़ा नहीं था.

चेन्नन् को पानी में खड़े एक रात और एक दिन हो गया. उसके नाव नहीं है. उसके यजमान को प्राण लिये किनारे पहुंचे तीन दिन हो गये. जब पानी झोंपड़े के अंदर पहुंचने को हुआ तो टहनियों और लट्ठों से ताक और मचिया बना ली थी. यह सोचकर कि पानी जल्दी उतर जाएगा, वह दो दिन तक उसी पर बैठा रहा. अलावा इसके चार-पांच केले के गुच्छे और फूस का अंबार भी तो था. वहां से चल दिया तो सारी चीजें कोई चालाक उड़ा ले जाएगा.

अब तो ताक और मचिया पर भी घुटनों पानी है. छप्पर छानेवाले नारियल के पत्तों की दो पंक्तियां पानी के नीचे हैं. अंदर से चेन्नन् चिल्लाया, पर सुनेगा कौन? पास है कौन? गर्भवती पत्नी, चार बच्चे, एक बिल्ली और एक कुत्ता—इतने प्राणी उसी पर आश्रित हैं. उसे निश्चय हो गया कि झोंपड़े के अंदर से पानी निकलने में तीस घंटे से कम नहीं लगेंगे. अब तो अपना व परिवार का अंत आसन्न है. मूसलाधार वर्षा तीन दिनों से लगातार हो रही है. झोंपड़े के ऊपर के नारियल-पत्ते हटाकर चेन्नन् किसी प्रकार बाहर आया. चारों ओर देखा. उत्तर की तरफ बड़ी नाव जा रही थी. उसने जोर लगाकर नाववालों को पुकारा. नाववाले, सौभाग्य से, बात समझ गये. उन्होंने नाव झोंपड़े की ओर मोड़ी. चेन्नन् अपने बच्चों, पत्नी, कुत्ते और बिल्ली को एक-एक करके छप्पर से बाहर ले आया. तब तक नाव भी आ गयी.

बच्चे नाव पर चढ़ने लगे. "चेन्नन् भाई, सुनो जरा!" पश्चिम की ओर से कोई बुला रहा था. चेन्नन् ने मुड़कर देखा. "इधर आओ!!" वह कुंजप्पन था. अपनी मचिया पर से बुला रहा था. चेन्नन् ने पत्नी का हाथ पकड़कर उसे नाव पर बिठाया. उसी ताक में बिल्ली भी नाव पर चढ़ गयी. किसी को कुत्ता याद नहीं आया. वह झोंपड़े के पश्चिमी ओर इधर-उधर कुछ सूंघता फिर रहा था.

नाव चल दी.

कुत्ता छप्पर पर लौट आया. तब तक चेन्नन् की नाव दूर पहुंच गयी थी. वह मानों उड़ रही थी. कुत्ता मर्मांतक पीड़ा से किकियाने लगा. बेसहारे मनुष्य की-सी आवाज उसने दी. कौन था उसे सुनने को? झोंपड़े के चारों ओर फिरा. कहीं-कहीं सूंघा, और फिर किकियाया.

एक मेंढक आराम से मचिया पर आ बैठा था. यह अप्रत्याशित शोरगुल सुन वह डर गया और कुत्ते के सामने से पानी में कूद पड़ा. धुटीमुम्... कुत्ता डरकर कांपने लगा और पीछे उचककर पानी को देखता रहा, पानी हिल रहा था.

शायद खाना खोज रहा होगा, कुत्ता इधर-उधर सूंघने लगा. कोई मेंढक उसकी नाक में पिशाव करके पानी में कूद गया. कुत्ते को बेचैनी में छींकें आने लगीं. वह सिर हिलाहिलाकर छींका. फिर आगे के पैर से मुख पोंछ लिया.

मूसलाधार वर्षा फिर शुरू हो गयी. कुत्ता उकड़ूं बैठकर सहता रहा. उसका मालिक अंपलप्पुषा पहुंच चुका था.

रात हो गयी. एक भयंकर घड़ियाल पानी में अधडूबी झोंपड़ी को छूते हुए धीरे-से बह गया. कुत्ता भय से पूंछ हिलाते हुए भौंका. घड़ियाल बह गया मानों कुछ नहीं जानता हो.

मचिया पर उकड़ूं बैठा कुत्ता भूख से पीड़ित हो, काले बादलों और अंधेरे से युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वातावरण को देख किकिया उठा. उसकी दीनता भरी रुलाई दूर तक सुनायी दे रही थी. सहानुभूति से पवनदेव उसे लेकर आगे बढ़े. घर की रखवाली करनेवाले कुछ हृदयालुओं ने कहा होगा—हाय! छत पर बैठा कुत्ता किकिया रहा है! समुंदर के किनारे उसका मालिक उसी रात का खाना खा रहा होगा. खाना खत्म करके उसने अपने कुत्ते के लिए आज भी मुट्ठी-भर भात अलग रख छोड़ा होगा.

कुत्ता कुछ देर तक लगातार ऊंचे स्वर में किकियाता रहा. फिर आवाज मंद होकर बंद हो गयी. उत्तर की दिशा में कोई अपने घर बैठे रामायण बांच रहा था. कुत्ते ने उस तरफ देखा, मानों वह उसे सुन रहा हो. वह गला फाड़कर दूसरी बार भी थोड़ी देर किकियाया.

निस्तब्ध निशीथिनी में मधुर स्वर में रामायण-पाठ एक बार और सुनाई पड़ा. कुत्ता कान लगाकर देर तक उसे सुनता रहा. शीतल पवन में वह शांत मधुर गान घुल-मिल गया. हवा के झोंके और लहरों की आवाज को छोड़ और कुछ सुनाई नहीं पड़ा.

मचिया के सबसे ऊपर चेन्नन् का कुत्ता लेट गया और लंबी सांसें लेने लगा. बीच-बीच में निराश होकर किकियाता भी रहा. तभी मेंढक ने छलांग लगायी. कुत्ता फिर बेचैन हो उठा.

सवेरा हो गया. कुत्ता धीमी आवाज में फिर किकियाने लगा. उसने हृदयविदारक राग छेड़ा. मेंढकों ने उसे घूरकर देखा. पानी की सतह पर उछलते-कूदते मेंढकों को वह एकटक देखता रहा.

पानी के ऊपर दीखते-झोंपड़े के पत्तों को उसने आशा से देखा. सब ओर विजन! कहीं पर चूल्हा भी नहीं जल रहा था. कुत्ता उन मक्खियों पर लपक रहा था जो उसके शरीर को खुशी से काट रही थीं. पिछले पैरों से चिबुक को बार-बार खुजलाकर वह मक्खियों को भगाने लगा.

थोड़ी देर के लिए सूरज निकला. सवेरे की धूप में वह थोड़ा सोया भी. उस केले के पत्ते की छाया मचिया पर पड़ रही थी, जो मंद पवन में हिल-डुल रहा था. कुत्ता उस पर भी लपक उठा. वह एक बार फिर भौंका.

बादलों से सूरज छिप गया. सब कहीं अंधेरा. हवा ने पानी को तरंगित कर दिया. पानी की सतह से जानवरों की लाशें बह रही थीं. लहरों में पड़कर उनका प्रवाह और तेज हो गया था. वे जहां कहीं स्वच्छंद बहती जा रही थीं. कुत्ते ने चाव से उन सबको देखा और फिर किकियाने लगा.

दूर कहीं कोई नाव तेजी से जा रही थी. वह उठकर दुम हिलाने लगा. उस नाव की गति देखने लगा, पर वह जल्दी ही छिप गयी.

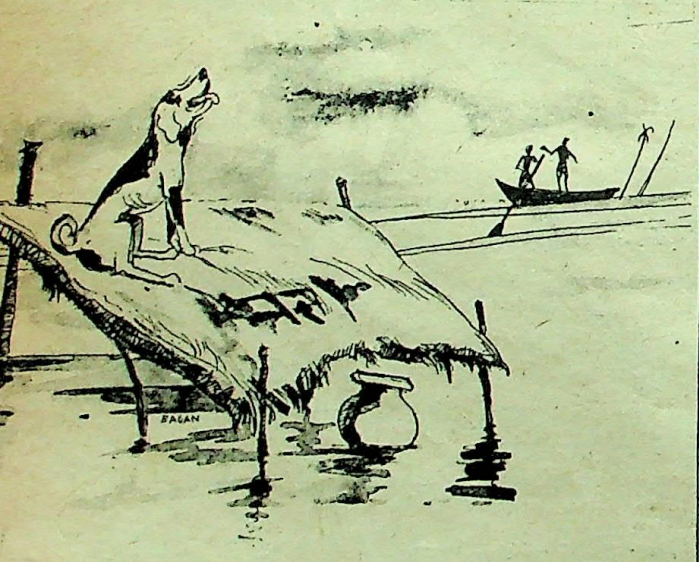

पानी बरसने लगा. कुत्ते ने उकड़ूं बैठकर चारों ओर देखा. उन आंखों में किसी तरह की भी सहायता की याचना नहीं थी. असहाय स्थिति प्रतिफलित हो रही थी.

पानी बंद हो गया. उत्तर के घर से एक छोटी नाव आयी और एक नारियल के पेड़ के पास रुक गयी. कुत्ता दुम हिलाते और जम्हाई लेते हुए किकियाया. नाववाला नारियल के पेड़ पर चढ़कर कच्चे नारियल तोड़ने के बाद नीचे उतरा. वह नाव पर ही नारियल का पानी पीकर डांड ले नाव खेने लगा.

दूर किसी पेड़ की डाली से एक कौआ उड़कर आया और उस सड़ी-गली लाश पर उतरा, जो एक मोटे भैंसे की थी. चेन्नन् का कुत्ता चाव से उसे देखकर भौंक उठा. कौआ भैंसे का मांस चिकोटने लगा था. फिर संतुष्ट होकर वह भी उड़ गया.

एक हरी चिड़िया झोंपड़े के पास खड़े केले के पेड़ पर आ बैठी और चहकने लगी. कुत्ता बेचैन होकर फिर भौंका. वह चिड़िया भी उड़ गयी.

पहाड़ों से बहे आ रहे पानी पर चींटियों का एक झुंड था, जो जाकर झोंपड़े से अटक गया. फिर बच गया. खाने की चीज समझकर कुत्ता उसे सूंघने लगा. वह एकदम छींक उठा, उसका मुलायम चेहरा लाल होकर थोड़ा-सा सूज गया.

दोपहर बाद, एक छोटी नाव में दो आदमी उस तरफ आये. कुत्ता दुम हिलाकर उन्हें देख भौंकने लगा. वह अपनी भाषा में कुछ बोला, जो मनुष्य की भाषा-जैसी थी. पानी में उतरकर नाव पर चढ़ने को तैयार खड़ा था. "देख, एक कुत्ता खड़ा है." उनमें से एक ने कहा. कुत्ता एक बार फिर किकियाया, मानों वह उनकी सहानुभूति का आभार प्रकट कर रहा हो. "वहीं रहने दे." दूसरे आदमी ने कहा. कुत्ता मुंह बंद करके कुछ बोलने लगा, एक-दो बार उस ओर लपकने का प्रयास भी किया.

नाव दूर चली गयी. कुत्ता और एक बार किकियाया. नाववालों में एक ने मुड़कर देखा.

"हाय!"

यह नाववाले की नहीं, कुत्ते की आवाज थी.

"हाय!"

उसकी थकी-मांदी और हृदयस्पर्शी दीन रुलाई दूर हवा में विलीन हो गयी. फिर लहरों का अनंत नाद. किसी ने फिर मुड़कर नहीं देखा. कुत्ता उसी तरह, नाव के गायब हो जाने तक खड़ा रहा. वह भौंकता हुआ मचिया पर चढ़ गया मानो कह रहा था कि अब दुनिया से अंतिम विदा ले रहा है. शायद कह रहा हो कि वह आगे कभी मनुष्य को प्यार नहीं करेगा.

उसने थोड़ा पानी पिया, फिर ऊपर उड़नेवाली चिड़ियों को देखा. लहरों में बहता हुआ एक सांप उसके पास आया. कुत्ता झट से मचिया पर जा पहुंचा. चेन्नन् और परिवार जिस सेंध से बाहर निकले थे, उसी से सांप अंदर रेंग गया. कुत्ते ने सेंध की ओर झांका. वह फिर भौंकने लगा. फिर किकियाया. उसमें प्राणों का डर और भूख दोनों मिल गये थे. वह भाषा कोई भी भाषा-भाषी, यहां तक कि ग्रहवासी भी समझ सकता था. इतनी संवेदनशील थी उसकी भाषा.

रात हो गयी. भयंकर तूफान आया. वर्षा हुई. छप्पर पानी के थपेड़ों से हिल-डुल रहा था. दो बार कुत्ता ऊपर से नीचे गिरने को हुआ. एक लंबा सिर पानी के ऊपर उठा. वह एक मगर था. कुत्ता प्राण-पीड़ा से भौंकने लगा. पास ही कहीं मुर्गियों की एक साथ रोने की आवाज सुनाई दी.

"कुत्ता कहां से भौंक रहा है? यहां से लोग गये नहीं क्या?" केले के पेड़ के पास एक नाव आयी जो फूस, नारियल और केलों से भरी हुई थी.

कुत्ता नाववालों की ओर मुड़कर भौंकने लगा. वह क्रुद्ध होकर, पूंछ उठाए, पानी के पास गया और फिर भौंका. नाववालों में से एक केले के पेड़ पर चढ़ गया.

"भई, लगता है कि कुत्ता लपकेगा."

कुत्ता आगे की ओर लपका भी. केले पर से वह आदमी गिर पड़ा.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सुझाव

तकषी

भारतीय कथा-लेखकों के लिए मैं एक सुझाव देना चाहूंगा. आधुनिक छोटी कहानी तथा उपन्यास पश्चिम के उत्पाद हैं. पश्चिम में छोटी कहानी तथा उपन्यास वहां के जीवन से विकसित हुए हैं. हम लोग उनसे भिन्न हैं तथा अतीत में कहानी कहने की हमारी स्वयं की अपनी तकनीक रही है. यह पद्य में थी. उदाहरण हैं—रामायण, महाभारत तथा अन्य महाकाव्य. हम अपना ही कोई रूप विकसित करने का प्रयास क्यों नहीं करते? मैंने अपने नवीनतम उपन्यास 'कॅयर' में ऐसा करने का विनम्र प्रयास किया है. □

दूसरे ने उसे हाथ देकर नाव पर चढ़ाया. इतने में कुत्ता तैरकर मचिया पर जा पहुंचा और शरीर झटकारते हुए क्रुद्ध होकर भौंकने लगा.

चोरों ने केले के गुच्छे काट लिये. "तुझे मिल जाएगा." गला फाड़ भौंक रहे कुत्ते से उन्होंने कहा. फिर उन्होंने फूस नाव में डाला. अंत में एक आदमी मचिया के ऊपर चढ़ा तो कुत्ते ने उसका पैर काट लिया. कुत्ते के मुंह में मांस भर गया. "हाय!" वह आदमी रोते हुए कूदकर नाव पर जा चढ़ा. नाव में खड़े आदमी ने डांड लेकर कुत्ते के पेट पर दे मारा.

"कैं—कैं-कैं!" कुत्ते की आवाज मंद पड़ गयी. जिसे कुत्ते ने काटा था वह नाव पर रो रहा था.

"अरे! चुप रह, कोई..." दूसरे ने उसे ढाढस बंधाया. वे आगे बढ़ गये.

बहुत देर बाद कुत्ते ने उस ओर देखा और भौंका, जहां से नाव चली गयी थी.

आधी रात के करीब का समय. एक मोटी गाय की लाश बहती हुई झोंपड़े से आ लगी. कुत्ता उसे ऊपर से देख रहा था. वह नीचे नहीं उतरा. लाश धीरे-धीरे बहने लगी. कुत्ता किकियाया. नारियल के पत्ते को छीला. दुम हिलायी. अलग हट रही गाय की लाश के पास गया और दांतों से उसे पास खींचकर खाने लगा. भयंकर भूख मिटाने को उसे काफी भोजन मिल गया था.

'ठे' एक प्रहार! कुत्ता दिखायी नहीं पड़ा. गाय की लाश थोड़ी डूबकर बह गयी.

तब से सिर्फ तूफान की गर्जन, मेंढक की टर्र और लहरों की आवाज ही सुनाई दे रही थी. और कुछ नहीं. सब ओर सन्नाटा! घर की रखवाली करनेवाले लोगों ने फिर कुत्ते की दारुण रुलाई नहीं सुनी. सड़ी-गली लाशें जल की सतह पर इधर-उधर बह रही थीं. किसी पर बैठा कौआ मांस नोच-नोचकर आराम से खा रहा था. कोई बाधा रुकावट नहीं. चोरों को भी अपने काम में व्यवधान नहीं पड़ा. सभी ओर एकांत!

थोड़ी देर बाद वह झोंपड़ा गिर पड़ा और पानी में डूब गया. उस अनंत जलराशि पर कुछ दिखायी नहीं पड़ता था. अपने मालिक के घर की रखवाली उस वफादार कुत्ते ने आखिरी दम तक की. वह चला गया. पर झोंपड़ा तब तक पानी की सतह पर खड़ा रहा, जब तक उस कुत्ते को मगर नहीं पकड़कर ले गया. अब वह झुककर पानी में पूर्णतः डूब चुका था.

पानी उतरने लगा. चेन्नन् कुत्ते की खोज करता हुआ वहां आया. किसी नारियल के पेड़ के नीचे कुत्ते की लाश पड़ी हुई थी. लहरें उसे धीरे-से चला रही थीं. पैर के अंगूठे से चेन्नन् ने उसे हिलाया, उसे उलटकर देखा. वह निश्चित नहीं कर सका कि यह उसी का कुत्ता है. उसका एक कान कट गया था. खाल सड़ जाने से रंग का भी पता नहीं चल रहा था. □

वाग्देवी वंदना

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।
अहं एवं स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानवेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तं ऋषिं तं सुमेधाम्।।

मैं (वाग्देवी) यज्ञार्ह देवों में प्रधान होकर इन सभी का ज्ञान रखने वाली और नाना प्रकार की संपदा का संग्रह करने वाली सम्राज्ञी हूं. देवों ने अनेक वस्तुओं में मेरा निवास और अनेक रूपों में मेरा प्रवेश करवाया और अनेक स्थानों में मेरी स्थापना की.

देवों ने और मनुष्यों ने जिस बात को प्रसन्नता से मान लिया है, ऐसी यह बात मैं तुम्हें अपनी ओर से ही कहती हूं. जिस पर मैं प्रसन्न होती हूं, उसे उग्र योद्धा, ऋत्विक्, दृष्टा ऋषि अथवा अत्यत प्रतिभाशाली पुरुष बनाकर ही छोड़ती हूं.

ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यं
इत्यास्पदचतुष्टयम्।
यस्याः सूक्ष्मादिभेदेन
वाग्देवीं ताम् उपास्महे।।

जिस (वाग्देवी) के सूक्ष्म आदि भेद से ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य ये चार स्थान होते हैं, उस वाग्देवी की मैं उपासना करता हूं.

वर्णानाम् अर्थसंघानां रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणीविनायकौ।।

वर्ण, अर्थसमूह, रस, छंद तथा मांगलिक कार्यों के विधायक वाणी और विनायक की मैं वंदना करता हूं.

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव।।

हे देव, मेरी आत्मा सदैव प्राणियों में मैत्री, गुणीजन में आह्लाद, दुःखी जीवों में दयाभाव तथा विपरीत आचरण करनेवालों में तटस्थभाव धारण करे.

सर्वे भवंतु सुखिनः
सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु
मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

सब सुखी हों, सब स्वस्थ हों, सभी शुभ देखें, कोई दुखी न रहे.

■ ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण समारोह का शुभारंभ उपरोक्त वाग्देवी-वंदना से होता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असमिया उपन्यास/नाट्य रूपांतर

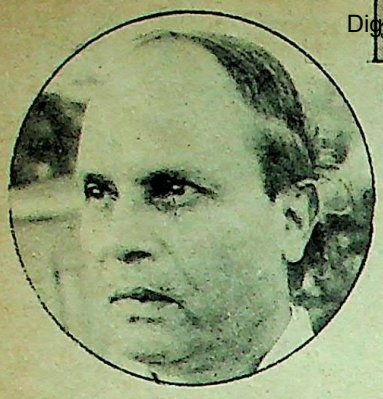

मृत्युंजय

वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य

स्वयंवद्

यथार्थ साहित्य में सचमुच न तो वास्तविकता से पलायन के लिए अनुमति है न ही उसकी संपोषणा के लिये. उसका धर्म मात्र इतना है कि चारों ओर अटाटूट हिलोरते सागर का मंथन करें और जो अमृत हाथ आये उसका लाभ सबको कराये. उसका लक्ष्य किसी का नाश करना नहीं होता, जीवन की व्यापक अशांति में समन्वय और सामंजस्य लाना हुआ करता है. और यह तो बड़े से बड़े लेखक के लिये भी सामान्य काम नहीं होता. अपनी ओर से, अपने विषय में, मेरा निवेदन इतना ही हो सकता है कि मैं सुंदर और सत्य को जीवन में एकमेक करने के लिये प्रतिबद्ध हूं.

एक बार एक भारतीय चिंतक राजनीतिज्ञ ने कहा था कि 20वीं शताब्दी की सबसे अधिक द्रष्टव्य विशेषज्ञता यह है कि इस समय विश्वभर की मानवजाति विश्व-भर के अन्यायों के विरुद्ध विद्रोह कर उठी है. स्त्रियां हों, चाहे निर्धन और हरिजन; काले हों, चाहे छोटे-मोटे अकुशल उत्पादक: केंद्रीकरण के आखेट हों, चाहे किसी भी प्रकार के सर्वसत्तावाद के रौंदे-कुचले जनमानव सभी अपनी-अपनी सांसत से विमुक्ति पाने के लिये दिशादान साहित्यकार को किसी रुद्ध या बद्ध दर्शन-चिंतन में नहीं मिलेगा, मिलेगा तो कहीं उसके पार ही. आज के प्रश्नों और आवश्यकताओं का समाधान प्राप्त हो सकता है तो ऐसे-विचार-दर्शन में ही जो उदार हो, अनेकवादी हो, और हो सतत विकासशील.

देखा जाये तो दूर मूल में संभवतः यही बात है कि लेखक और विद्रोही दोनों अपने को परस्पर सजातीय जैसा पाते हैं. दोनों ही जीवन और जगत की कुरूपता और असंगतियों को अस्वीकार करते हुए सुंदर और सामंजस्यपूर्ण एक लघुविश्व की परिकल्पना में लवजीन रहते हैं. लेखक का धर्म है कि युगीन सामयिक भावावेशों से खीजकर अपने किसी काल्पनिक या असार संसार में न जा रहे. उसे तो इस प्रकार के आवेशों की उपजायी हुई हिंसता तक का सामना करना होगा. मेरे प्रस्तुत तीनों उपन्यास: इयारूइंगम, प्रतिपद और मृत्युंजय – इसके साक्षी हैं, उदाहरण हैं.

15 दिसंबर, 1980 को पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर व्यक्त विचार

(मंच पर बिलकुल अंधेरा है. केवल आवाजें सुनाई दे रही हैं... लोगों के चलने की आवाज, वंदे मातरम्, महात्मा-गांधी की जय, इन्कलाब जिंदाबाद आदि नारे गूंजते हैं. विश्व विजय नौजवान, आदि नारे गूंजते हैं. सारे जहां से अच्छा आदि गीत सुनाई दे रहे हैं. फायर का आदेश सुनाई पड़ते ही गोलियां चलने की आवाजें के बीच वंदेमातरम् भारत माता की जय, महात्मा-गांधी की जय आदि की आवाजें गूंजती हैं. धीरे-धीरे आवाजें विलीन हो जाती हैं. मंच की बायीं ओर, और बीच के हिस्से पर प्रकाश पड़ता है. दिखाई पड़ता है कि बीच में अलाव जल रहा है, उसके पास चटाई, आसनी और एक पीढ़े पर दधी बरदलै, जयराम और आहिना कोंवर बैठे हैं. एक ओर एक खंभे के पास एक बड़ा पीढ़ा खाली पड़ा हुआ है. दो आदमी कटोरों में चाय पी रहे हैं. गोंसानी अंदर से और एक कटोरी लाकर तीसरे को दे मुड़कर अंदर चली जाना चाहती है. तभी गोसाईं आते हैं. गोसानी एक ओर सिकुड़ी-सी होकर अपने सिर की घूंघट कुछ और खींच लेती है. गोसाईं आते हैं.)

गोसाईं : एक कटोरी चाय मुझे भी.

(गोसानी अंदर चली जाती है. गोसाईं आगे बढ़ आते हैं.) चाय सबको मिली है न?

दघी, मधु, जयराम : हां हां मिली है प्रभुईश्वर.

(गोसाईं अपने आसन पर बैठ जाते हैं. सामने के अलाव की आग में एक लकड़ी डाल देते हैं. तभी बायीं ओर से हाथ में एक चिट्ठी लेकर मधु तेजी से आता है और-गोसाईं की ओर विनयी भंगी दृष्टि से बढ़ा देता है. गोसाईं पढ़कर कहते हैं)

गोसाईं : जा, यहां भेज उन्हें.

(मधु निकल जाता है.)

गोसाईं : **(दघी आदि की ओर देखते हुए)** कामपुर के गोसाईं ने तीन आदमी भेजे हैं, हमारे साथ देने के लिए.

(सभी बाहर की ओर देखने लगते हैं, तीन आदमी, याने भिभिराम, घनपुर और माणिक बरा अंदर आ जाते हैं. भिभिराम के कंधे पर एक गठरी, घनपुर के कंधे से लटकता हुआ एक थैला और माणिक बरा के कंधे पर भी एक गठरी.)

गोसाईं : गठरी-गुठरी रखकर यहां बैठिये. रास्ते पर तो कोई परेशानी नहीं हुई न?

भिभिराम : मनहा पार होने तक तो डर था. मगर उसके बाद तो ऐसा लगा कि स्वाधीन मायं राज में ही आ पहुंचे हों.

गोसाईं : घनपुर, तुमने पहले रेल की पटड़ी तो उखाड़ी है न?

घनपुर : जी हां?

गोसाईं : कहां?

घनपुर : कामपुर में

गोसाईं : हथियार है या नहीं?

घनपुर : जी हैं, रेलवे के एक गैंगमैन से मांग लाया हूं.

गोसाईं : उसने दे दिये तम्हें?

घनपुर : जी हां, दे दिये, कामपुर, बढ़मपुर, रहा आदि में जो अत्याचार हुए उनसे लोग जले-भुने हैं. इधर की हालत कैसी है?

गोसाईं : बीहड़ अंदरूपी जगह होने के कारण बहुत ज्यादा अत्याचार तो नहीं हुए. मगर हमारे पास के बिलिमारा गांव की एक बुढ़िया को फौजियों ने लातों से मार मार कर बिलकुल अधमरा कर दिया. वह चार दिन तक खून थूकती रही.

भिभिराम : इनका तो न दया-धरम है, न आचार-विचार.

गोसाईं : साम्राज्यवादी सेना ऐसी ही होती है. सेनापति जो कुछ कहे, वही उनके लिए वेद-वाक्य होता है. अगर इनके दिल दिमाग को मोड़ा जा सके तो जैसे रावण का पतन हुआ था, वैसे ही एक ही दिन में वृटिश राज का भी पतन हो जायेगा. हां, तो फिर कामपुर के गोसाईं जी ने जैसा कि अपने पत्र में लिखा है, तुम लोग हमारे मदद लिए ही आये हो? है न?

भिभिराम : जी हां, वहां से भेजे गये सभी कागजात आपने तो पहले ही पढ़ लिये हैं न?

गोसाईं : हां पढ़ चुका हूं. कामपुर के गोसाईं जी ने हमारे नेता हाजरिया के बारे में लिखा है. बंदूकें जुटा ली गयी हैं न?

भिभिराम : बारपूजीया की सभा में ही उसकी योजना बनायी गयी है. दस-बारह बंदूकें जुटी हैं. मगर बंदूकें इकट्ठी हो भी जायें तो क्या होगा? गुरिल्ला-लड़ाई सिखायेगा कौन? सुभाष बोस जैसा नेता की जरूरत थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोसाईं : हमारे नेता और कमां को तरीका न मालूम. उसके लिए भीतरी जगह चाहिये, सिखानेवाला चाहिए, सीखनेवाला चाहिये.

घनपुर : मायं में ही क्यों नहीं करते?

गोसाईं : करने की सोच रहा हूं. मगर आदमी और रकम चाहिये. ठीक है, ये बातें फिर आराम से करेंगे. अब असली बात पर आयें. हफ्ते भर पहले एक काम करने के लिये हमारी एक टुकड़ी गयी थी, मगर बिना काम पूरा किए लौट आये.

भिभिराम : क्यों?

गोसाईं : मिलिट्रीवाले पहरा दे रहे थे, देखकर डर गये.

घनपुर : कायर कहीं के.

गोसाईं : खैर, राह-बाट देख आये हैं. जगह भी तय कर आये हैं.

भिभिराम : जगह आपने खुद नहीं देखी?

गोसाईं : मैंने तो खुद नहीं देखी, मगर कामपुर के गोसाईं जी ने उस जगह का विवरण दिया है.

भिभिराम : जी हां, सुना है दो पहाड़ों के बीच की संकरी जगह है. वहां अगर रेल उलटी जा सके तो उसके डिब्बे इधर-उधर दोनों ओर बिखर जायेंगे. और तब सामरिक योगान कई दिनों तक बंद हो जाएगा.

गोसाईं : उन्होंने जो विवरण दिया है, हमारी तय की हुई जगह से उनका मेल है. मैं जरा धीरज से सिलसिलेवार ढंग से काम करने का तरीका सोच रहा हूं. हम कल सुबह यहां से तीन टुकड़ियों में कमारकुची आश्रम रवाना होंगे. वहां से भी देख-भालकर उस जगह के हाल-चाल की जांच कर लेंगे. पास ही एक गारों-गांव हैं, उसके आगे नेपालियों की बस्ती है. उन सबमें भी देखभाल कर जानकारी ले लेना होगा. लोगों की तो बड़ी कमी है, घनपुर तो लग रहा है कि रेल का फिस प्लेट खोलने में पक्का है.

भिभिराम : यह घनपुर वास्तव में दुर्दांत आदमी है. शेर का कलेजा पाया है इसने. आज रात ही घनपुर को साथ ले शिलाडुबी जाना और लयराम महाजन से उसकी बंदूक लाना.

भिभिराम : लयराम महाजन कौन है?

गोसाईं : लयराम कोच, महाजन, घर है गुवाहाटी में. यहां पाम बनाकर रहता है. बड़ा धाकड़ शिकारी है.

भिभिराम : ठीक होगा. हमें बंदूकें चाहिए.

गोसाईं : खाने का सामान, कड़ाई-बटलोई आदि सब कुछ का इंतजाम कमारकुची के मेरे आश्रम में ही हो जायेगा. वहीं से ले लेंगे. मधु, जा, खाना परोसने को कह दे. और तू घनपुर के साथ पहले खा-पीकर शिलाडुबि रवाना हो जा. रातों रात बंदूक यहां पहुंचनी होगी.

(दृश्यांतर)

(समय सबेरा. गोसाईं एक कड़ाही के अलाव में जलते अंगारों से अपनी छाती सेंक रहें हैं. बीच बीच में खांसते हैं. गोसानी बीच बीच में आंखें-पोछती और खरल में मकरध्वज घोंट कर खड़ी हो रहती हैं.)

गोसाईं : (मुस्कुराते हुए) भला, रोने को क्या हुआ है?

गोसाईं : (घनपुर से) फिस प्लेट खोलने में कितनी देर लगेगी?

घनपुर : पंद्रह मिनट लग सकता है.

गोसाईं : उससे देर हो तो खतरा है. मिलट्री पहरेदारों के हाथ पकड़े जायेंगे.

भिभिराम : आपके यहां से कौन-कौन जानेवाले हैं?

गोसाईं : हम ही हैं. मगर हम सभी एक साथ नहीं चलेंगे. कमारकुची आश्रम में नगांव के एक 15 कामरेड भी आकर मिलनेवाले हैं, गोसाईं हैं, गोसाईं ने लिखा है.

(मधु आता है)

मधु : प्रभु ईश्वर. गोसानी मैया ने कहा है, रसोई हो चुकी है, कोई अगर नहाना-धोना चाहें तो.

गोसाईं : ठीक है, खाना खा-पीकर हम और बातें करेंगे. मधु, तुझे एक काम करना होगा.

गोसानी : बिस्तर पर अकेली लेटी हुई थी, मगर पलक तक न झपीं. आप लोगों की बातें सुन सुनकर कलेजा सूख गया. आपको कहीं कुछ हो न जाये, सोच सोचकर मुझे डर लग रहा है.

गोसाईं : तुम इतनी चिंता न करो. जो होना है, होगा. तुमने तो देखा है न हमारी आखिरी बैठक हो चुकी, टुकड़ियों में हमारे लोग आगे बढ़ रहे हैं.

गोसानी : ये बातें मुझे न बताने से भी होगा. सारी रात तो दीवार के उस ओर से वही सब तो सुनती रही हूं. इतने सो हथियारबंद मिलिट्री वालों के सामने भला ये दो-चार आदमी क्या कर पायेंगे? तिलक डेका जैसे ही मारे जायेंगे. गहपुर में जैसे कनकलता—मुकुंद को मारा है, वैसे ही मारे जायेंगे. ढेक्कियाजुली में तिलेश्वरी को जैसे मारा है, इन्हें भी वैसे ही मार डालेंगे.

गोसाईं : (तेज निगाह से गोसानी की ओर देखते हुए) ये समाचार तुम्हें किसने दिये?

गोसानी : कली दादी ने. कल आकर सबको यहां इकट्ठा देख अंदर नहीं आयी, लौट गयी.

गोसाईं : लेकिन हमसे डरने को क्या था उसे?

गोसानी : नहीं, वह कलेजे को दहला देनेवाला एक समाचार लायी है. कहीं वह समाचार सबके सामने देना पड़ जाये, इसी कारण वह अंदर नहीं आयी. इघी के यहां है वह. वह बात बताते मुझे बड़ा बुरा लग रहा है.

गोसाईं : कौन-सी बात है, बताओ न.

गोसानी : सुभद्रा ने गले में फंदा डालकर खुदकुशी कर ली.

गोसाईं : क्या?

गोसानी : घनपुर वहां से आते समय वचन दे आया था, वह उससे शादी करेगा. कल रात जंगल में एक चीतल की रुलाई सुनी थी. मुझे लगा मानों वह सुभद्रा ही रो रही हो.

गोसाईं : यह समाचार अब घनपुर के कान में पड़ने नहीं दिया जा सकता.

(खांसते हैं) हां, देखूं, मकरध्वज की खुराक मुझे दो. और दो-एक खुराक मंकरध्वज थैले में रख देना. यह दमें की खासी जिस तरह से आ रही है, इसके कारण रास्ते में कहीं मुसीबत खड़ा न हो जाये. हां, तुम अब जाकर मेरे नाश्ते का इतंजाम करो, मेरे रवाना होने का समय हो गया है.....

गोसानी : और किसके भाग्य में क्या लिखा है कौन-जाने? न जाने कितनों की गोद सूनी हो जाएगी, कितनों की पत्नियों की मांगे सूनी हो जायेंगी. कितनों के शरीर बेकार हो जायेंगे.....

(कहती हुई अंदर चली जाती है)

(दृश्यांतर)

(समय रात का अंतिम पहर. गोसाईं, घनपुर, भिभिराम, जयराम, रूपनारायण, माणिक बरा, मधु और आहिना. मंच पर कुछ गठरियां और पेटियां आदि हैं. एक ओर दो

मृत्युंजय की नाट्य प्रस्तुति का एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंबा-दा और एक जगह तीन बंदूकें रखी हैं. पेटियां-गठरियों पर सिर रखकर सब सो रहे हैं सिर्फ गोसाईं बैठे हुए मकरध्वज को खरल में घोंट कर खा रहे हैं. तभी रूपनारायण जागता है.)

गोसाईं : (गंभीर आवाज से) रूपनारायण, जग गये?

(रूपनारायण उठकर आगे आता है) दूसरे लोगों को भी जगा दो.

(भिभिराम जगता है) घनपुर, मधु, जयराम.

(सभी जग जाते हैं)

यह जंगल होने पर भी इस विशाल वरगद के नीचे ऐसा लगा कि मानो किसी नामघर में ही सो रहे हैं. क्यों है न भिभिराम?

भिभिराम : जी हां, दो-तीन घंटे तो हम सो चुके हैं.

(बातों के बीच मधु-बाहर जाता है)

गोसाईं : हां, लेकिन मैं ही झपकी तक ले नहीं सका. दमें का दौरा हो आया.

घनपुर : (आगे बढ़कर) रवाना होने का समय हो गया क्या?

गोसाईं : हां, अब रवाना होना ही अच्छा है. मुंह अंधेरे ही इस नदी को पार कर जाना अच्छा रहेगा. तभी दोपहर तक हम गवर्धन पहाड़ी के नीचे पहुंच सकेंगे. वहीं दोपहर का खाना खाकर शाम के पहले ही पहाड़ी पर चढ़ना पड़ेगा. अब उठो चलो, नदी में हाथ-मुंह धोकर नाव पर चढ़ जायें.

(मधु भागता हुआ आता है)

मधु : उधर वह कोई आ रहा है, जान पड़ता है.

(सभी संत्रस्त होकर हाथों में लंबा-दा और बंदूकें उठा लेते हैं, और बाहर देखने लगते हैं, घनपुर आगे बढ़ जाता है)

घनपुर : लगता है, कोई औरत है. (दबी-सी मगर ऊंची आवाज में पुकारकर) कौन है वहां?

डिमि : (दूर से) तुम सब क्या वहीं हो?

घनपुर : डिमि की आवाज-सी लगती है.

(डिमि तेजी से आती है)

गोसाईं : डिमि, तू यहां आ गयी?

डिमि : बड़ी भारी घटना हो गयी है. रात घनपुर को विदा दे जब मैं लौटी जा रही थी तो राह में गोसानी और चार औरतों से मुलाकात हो गयी. वे सभी आश्रम पहुंची हैं.

गोसाईं : क्यों, क्या हो गया है?

डिमि : उन सबने बताया, किसी महाजन और एक नाववाले की खोज में पुलिस-मिलिट्री ने मांय का चप्पा चप्पा छान मारा है और घर घर में घुसकर उपद्रव मचा रखा है. गोसानी आदि डरके मारे वहां से इस आश्रम में चली आयी हैं. सोचा था, तुम सब आश्रम में ही मिल जाओगे. मगर तुम सब तो वहां से चले आये. मैंने उनसे तुम लोगों की सारी बातें बता दीं. हां, यह है एक चिट्ठी, किसी ने उनके हाथ भेजी है.

गोसाईं : दे, देखूं! तो फिर मांय में भी आग जल उठी है. (पत्र लेकर रूपनारायण के हाथ दे) हां, रूपनारायण, पढ़ो तो जरा, किसने दी है? मधु, जरा टार्च जला.

(मधु पत्र पर टार्च की रोशनी डालता है रूपनारायण पढ़ता है)

रूपनारायण : (पत्र पढ़ता हुआ) दघी बरदलै ने आपको लिखा है. पढ़ता हूं सुनिये. प्रभु ईश्वर, सारे मांय में पुलिस-इंस्पेक्टर शइकीया का अत्याचार जारी है. जहां-तहां खाना तलाशी हो रही है. हमारे अनके लोग पकड़े गये हैं. पुलिस-मिलिट्री वाले लयराम महाजन की खोजबीन में जुटे हुए हैं. लयराम को जिस घर में बंद कर रखा गया है, उसका पता उन्हें अब तक नहीं चल पाया है. मगर लगता है कि उन्हें पता लगा लेने में ज्यादा देर नहीं लगेगी. उन्हें जंगल में ले जाकर कहीं बंद रख सकते तो अच्छा होता. लेकिन चारों ओर पहरा होने के कारण अगर लयराम को यहां से निकालना संभव हो सका तो नाववाले के साथ ही उसे भी मार डाले बगैर कोई चारा नहीं है.

गोसाईं : जयराम, तुम भी घाट तक साथ चलो. वो नेपाली नाववाले तुम्हारे ही आदमी हैं, उन्हें समझा बुझाकर उसी ओर से चले जाना. चलो, चलो, डिमि, तू गोसाइन से जाकर सारी बात कह देना. उसके शरीर की वैसी हालत में ईश्वर उसे सकुशल रखें. कहना, वह आश्रम में ही रहे. हम परसों तक वहां लौटेंगे. चलो, चलो भाइयो.

(सभी लोग सामान उठाकर-निकल जातें हैं) गोसाईं, घनपुर और मधु के कंधों पर बंदूकें हैं. डिमि आंखों के इशारे से घनपुर को बुलाती है. मंच पर घनपुर और डिमि रह जाते हैं) डिमि अपने बगल से कपड़ों की एक पोटली खोलकर उसमें से एक गारो कमीज निकालती है.)

डिमि : तू तो कपड़ा लत्ता कुछ भी ठीक से नहीं लाया है. हां-ले-यह पहन ले. यह कमीज मेरे खुद बुने कपड़े से सिली है. वहां ऐसे कामों में एंड़ी चादर शरीर पर रहे तो काम में परेशानी हो सकती है. भागते समय झाड़ी के कांटों में चादर उलझ जाती है.

(डिमि कमीज घनपुर को पहना देती है. घनपुर आवेश से डिमि के चेहरे की ओर देखता रह जाता है.)

घनपुर : किसी ने मुझे ऐसा प्यार नहीं किया था.

डिमि : तू आयेगा न फिर?

घनपुर : (हंसता हुआ) आऊंगा, आऊंगा, भला आऊंगा क्यों नहीं? अगर मेरा कुछ हो जाये तो सुभद्रा से बता देना. मैं जाऊं अब. (घनपुर निकल जाता है. डिमि उसकी ओर देखती रहती है. अचानक हथेलियों से आंखें ढंककर, जिस ओर से आयी थी उधर तेजी से चली जाती है.)

(दृश्यांतर)

(समय दोपहर. गोसाईं एक डिब्बी से कच्ची सुपारी-पान निकालकर खाते हैं और खांसते हुए अपनी छाती पर तेल लगा मालिश करते हैं आहिना एक थैले में कड़ाही-बटलोई आदि रखता है. रूपनारायण बंदूक लिये आता है.)

गोसाईं : तुम खाना-खाने के बाद तुरंत भला कहां निकल गये?

रूप : कोई एक बात अचानक दिमाग में आ गयी, इसलिए वह जगह फिर से जाकर एक बार देख आया. घनपुर और दूसरे लोग क्या आगे बढ़े हैं.

गोसाईं : हां, मधु और घनपुर तो चले गये. वे शायद रेल लाइन के पास पहुंच चुके होंगे. यहां से तो वहां तक की दूरी करीब आधेमील भर होगी, मधु रास्ते में छोटी-छोटी खपच्चियां लगाता जायेगा जिससे आगे चलकर राह खो न जाये. भिभिराम भी अभी गया है, सिर्फ हमीं तीन रह गये हैं.

रूप : हम भी आगे बढ़ सकते हैं. (हाथ की घड़ी देखता है.)

गोसाईं : (पास की गठरी बांधते हुए) मगर तुम फिर से जाकर कौन सी जगह देख आये?

रूप : उन छितवन के पेड़ों के नीचे पहाड़ी की ढलान पर दो बड़ी बड़ी गुफाएं हैं. उसी जगह गुप्त शिविर बनाना बड़ा आसान होगा. पुलिस मिलिट्री वालों ने तो चारों ओर से घेर रखा है, समूचा अंचल इंस्पेक्टर शइकीया के कब्जे में है, मगर यहां काफी लोग कुछ दिनों तक छिपे रह सकेंगे. पुलिसवाले आसानी से पता नहीं लगा पायेंगे. यहीं रहकर हमें गुप्त रूप से एक गुरिल्ला दस्ता बनाना अच्छा रहेगा.

गोसाईं : अच्छा ठहरो, दूसरे कर्मियों से चर्चा किये बगैर कोई काम किया नहीं जा सकता.

रूप : दूसरे कर्मी भला हैं ही कौन? सब लोग जेल ही में हैं.

गोसाईं : ठीक है, इस बारे में आगे सोचेंगे, अभी कितना बजा है?

रूप : (विरक्त के भाव से) आप लोगों का दिल कमजोर है. और असली बात के लिए आग्रह भी कम है. (घड़ी देख) तीन बजा है.

(मंचकर प्रकाश धीमा होता है. केवल स्पाट लाइट के बीच गोसाईं स्वगत कथन)

गोसाईं : और तीन घंटा. ठीक सात बजे रेल आयेगी. छह बजे के बाद से ही हमारा असली काम शुरू होगा. रेल आने के कुछ समय पहले पहरेदारों की टुकड़ी के जाने के बाद से पहरेदारों की दूसरी टुकड़ी आने के बीच जितना समय रहेगा उसी के अंदर काम पूरा कर लेना होगा. अगर इस बीच पहरेदार आयें भी तो उन्हें गोली मार देनी होगी. दो बंदूकों से कम से कम चार को आसानी से गिराया जा सकता है. उधर से भी गोलियां चलेंगी. हमारे भी दो-एक आदमी गोली से गिरेंगे. गोली चलने की आवाज पाकर पास के शिविर से फौज के आने में दो घंटे से कम समय नहीं लगेगा. इस बीच मिलिट्री एक्सप्रेस गाड़ी घटना स्थल पर पहुंच ही जायेगी. रेल के उलटकर पचास फुट नीचे की खाई मे गिरने के बाद कौन मरे, कौन जीये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन पकड़ा जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता. गोसानी तो आश्रम में है, उसके पैर भारी हैं... दो-चार दिन में ही प्रसव होने वाला है.

(मंच पर स्वाभाविक प्रकाश पड़ता है)

रूप : (कुछ रोष से) जाने का समय हो गया.

गोसाईं : (स्वाभाविक रूप से) हां, हां, चलो. कोवंर, तुम सामान सहेजकर पास वह जो गुफा है, वहीं रख दो. अपनी गांठ में जरा-सी अदरख बांध लेना. जो मकरध्वज लाया था खत्म ही हो गया, इधर छाती भी लगातार परेशान रही है. चलो रूपनारायण, हम आगे बढ़ें.

(दृश्यांतर)

(स्पाट लाइट में घनपुर का मूक अभिनय. उसने अपने शरीर का पूरा बल लगा कर फिसप्लेट को पूरा खोल दिया. हांफता है. सिर का पसीना पोंछता है. फिर सिर उठाकर भिभिराम की ओर देखता है.

(स्पाट लाइट में घनपुर का मूक अभिनय. वह हथौड़ी से पीट रहा है पर जोड़ खोल नहीं पा रहा है. घनपुर जाकर वहां पहुंचता है. भिभिराम को हटाकर घनपुर फिसप्लेट निकालने का प्रयत्न करता है. पूरा बल लगाकर फिसप्लेट निकाल लेता है)

(दृश्यांतर)

गोसाईं : घनपुर क्या हो गया है तुम्हें?

घनपुर : (तकलीफ से हंसकर) कुछ मालूम ही नहीं कर पाया, एक पैर मानो सुन्न-सा हो गया है. घुटने के नीचे से खून की धार बह रही है.

गोसाईं : गोली लग गयी है. तुम घुटनों के बल ऊपर चढ़ आओ.

घनपुर : घुटनों के बल भी चढ़ा नहीं जा रहा है. एक पहरेदार के गोली मारने की आवाज कानों में आयी थी.तभी आप लोगों की गोलियों की आवाजें आयीं. वे दोनों मर चुके हैं.

रूप : भिभिराम और मधु हैं कहां?

घनपुर : उन्हें पहरेदारों की बंदूकें और गोलियां ले आने को कह दिया है जल्द, ओह, मैं अब खड़ा नहीं रह सकता. (बैठ जाता है)

गोसाईं : घनपुर, तुम वहीं ठहरो, मैं उतर आ रहा हूं. चोट की जगह पर पट्टी बांध दूं.

घनपुर : नहीं नहीं, आप वहां से न उतरें. आप लोगों का काम पूरा नहीं हुआ है.

रूप : तुम क्या अपनी चोट की जगह पर खुद पट्टी बांध सकोगे? खून बहना न रुके तो खतरा है. ठहरो, मैं आकर बांध दे रहा हूं.

घनपुर : आहिना भाई पकड़े हुए हैं. यह मेरा काम है, मैं करूंगा. तुम लोग अपना अपना काम करो. खबरदार, जब तक उजेला है, उस जगह से न उतरना. ओहू (सख्त वेदना का भाव).

गोसाईं : कोंवर, तुम घनपुर के पैर को बांधने की कोशिश करो और पास ही रहो. वो देखो, भिभिराम और मधु आ रहे हैं. मधु को अपने पास ही रख लो. उसे अब पेड़ पर चढ़ने की जरूरत नहीं. दिन का उजाला मिटता जा रहा है. भिभिराम बंदूकें और गोलियां ले ऊपर आ जाये. मधु और तुम्हें बांस की कमाठी पर घनपुर को लेकर उस ओर की गुफाओं के पास ले जाना होगा, कोंवर सुन रहे हो न?

घनपुर : प्रभु ईश्वर, मुर्दे को ढोकर भला अब क्या फायदा? मैं अब जिंदा नहीं रहूंगा. निश्चित जान गया हूं बेकार तकलीफ उठाकर कोई फायदा नहीं. मुझे यहीं मरने दो. जहां तक हो सके मैं खुद अपने शरीर को संभालूंगा. मेरे हाथ में रायफल है. दुश्मन दिखाई पड़े तो मारूंगा. अगर न दिखाई पड़े तो उलटती हुई रेल को ही देखूंगा. दिल ठंडा होगा.

गोसाईं : एक बात है घनपुर, याद रखो, मैं अभी दल-नायक हूं. अभी मेरा निर्देश नहीं मानता ऐसा कह नहीं सकते. असली लड़ाई तो अभी शुरू ही नहीं हुई. शहकीया इंस्पेक्टर के सिपाही पीछे की ओर से बड़ी तेजी से चले आ रहे हैं. लेटे लेटे ही गोलियां चलानी पड़ सकती हैं. इसलिए जैसे भी हो सके हमारी उसी गुफा की उस जगह तुम पहुंचकर ठहरे रहो. जबकि रेल के फिसप्लेट खुल चुके हैं, रूपनारायण और मैं यहां संभाल लूंगा. कोंवर, मधु के साथ तुम घनपुर को वहां ले जाने का इंतजाम करो.

(आहिना घनपुर को पकड़ता है. मधु आता है. तीनों बाहर की ओर कदम बढ़ाते हैं)

(मंचपर अंधेरा : संकेत : एक एक्स्प्रेस ट्रेन नजदीक आती है. अचानक भयंकर आवाज होती है. रेल के अनेक डिब्बे उलटने की प्रचंड आवाजें. आग लगने, विस्फोट होने की आवाजें. चीख पुकार, हजारों लोगों की मृत्यु यंत्रणा के निनाद-आर्तनाद, कुछ समय तक धरती-आकाश को कंपाने वाली आवाजों के बाद मंच पर झीना-सा प्रकाश होता है. दधी एक चट्टान पर बैठा हुआ है. दीख पड़ता है— गोसाईं दमें की लंबी लंबी सांसें खींचते हुए मृत्यु कातर हालत में रूपनारायण के शरीर का सहारा लिये प्रवेश करते हैं. उन दोनों की हालत जरा-जीर्ण हो गयी है. शरीर के कपड़े तार-तार होकर फट गये हैं. गोसाईं के शरीर पर खून के धब्बे. दधी उतावली से आगे बढ़ जाते हैं.)

दधी : प्रभु ईश्वर, आ गये? रेल उलटने की आवाज यहां तक, इस गुफा तक सुनायी पड़ी थी.

गोसाईं : सुनी थी? सुनी थी तुमने वह आवाज? यह हत्याकांड किसने किया? हत्यारा कौन है? रूपनारायण? घनपुर? मधु? भिभिराम? मैं?.... मगर.... मगर यह सब आवश्यक हत्याएं हैं. नहीं—नहीं—खून के धब्बों से हमने अपने हाथ कलुषित कर डाले हैं. क्या यह अहिंसक लड़ाई है? इंसान के खून का धब्बा अपने हाथ में लिये विवेक को कैसे समझाऊं?....विवेक क्या कहता है? यत्र जीव-तत्र शिव..... मगर..., मगर यह तो कमजोरी प्रकट करने का समय नहीं. रेल उलटने की आवाज जरूर मिलिट्री कैंप तक पहुंची है, वे अभी अभी यहां आकर इस पहाड़ी का चप्पा छान मारेंगे. मगर मगर मेरा यह शरीर....(खांसते हैं और लंबी सांसें लेते हुए हांफने लगते हैं. मंच पर स्वाभाविक प्रकाश होता है. दधी और रूपनारायण, गोसाईं को लेकर चट्टान पर बिठला देते हैं.)

गोसाईं : हूं (लंबी सांस लेकर) भिभिराम भी रोता-धोता घनपुर को ढूंढने चला गया है. वे बेचारे दोनों साथ-साथ आये थे. (खांसते हैं) उफ्, अगर थोड़ी आग जला सकते. नहीं तो कब किस क्षण यह जान उड़ जाये, पता नहीं.

रूप : मगर यहां तो आग जलाना ठीक नहीं होगा.

गोसाईं : बात तो सही है. लेकिन मैं तो और एक कदम भी आगे बढ़ नहीं सकता. तुम लोग मुझे यहीं छोड़ जाओ.

रूप : भला, आपको छोड़ क्यों जायें?

(अचानक दूर अलसेसियन कुत्ते के भौंकने की आवाज आती है) वो, पुलिस अफसर शइकीया का अलसेसियन कुत्ता.

गोसाईं : मतलब हम जाल में फंस चुके हैं. अब एक ही रास्ता है, यहां जब तक लोग रहेंगे, कुत्ता भी इसी ओर आयेगा. मैं यहीं रहता हूं, तुम लोग इस उलटी दिशा से यहां से भाग जाओ.

रूप : भला, आप को ऐसे छोड़ कर.....

गोसाईं : मुझे छोड़ न सको, तो तीनों की मौत का शिकार होना पड़ेगा. तुम लोगों को और काफी काम करना है. मेरी प्राणवायु तो यों ही खत्म हो चुकी है. दमें की खांसी ने छाती को टुकड़े टुकड़े-सा कर डाला है. कलेजा रुक सा रहा है. अचानक कभी धड़कन बंद हो जाती है. इससे भी बड़ी बात, मेरे प्राण तो यों ही खत्म हो चुके हैं, इस हाथ में इंसान का खून लगा हुआ है. यह मुझसे सहन नहीं हो पा रहा है. मेरा विवेक नष्ट हो गया है. झूठ बोलकर अब कोई फायदा नहीं, मैं अहिंसक संग्राम का ही सिपाही हूं.

रूप : प्रभु, हम आपको यहां से उठाकर ले जा सकेंगे.

गोसाईं : नहीं, नहीं सकोगे. अब मुझे ले जा नहीं सकते. तुम लोग तुरंत यहां से निकल जाओ. तुम लोग जिंदा रहो, दूसरों से मिलकर तुम लोग कहना-सेना-नायक का आदेश है— क्रांति को आगे बढ़ाना है...

—और सिर्फ एक बात याद रखना—गोसानी की अगर कोई संतान हो, लड़का हो या लड़की, अगर उन सबने अब भी जिंदा रखा है— तो तुम सब क्रांतिकारी ही उसकी देख-भाल करना. अब बात करने का समय नहीं. जाओ-जाओ-चले जाओ. □

असमिया नाट्य रूपांतर : अरुण शर्मा
हिंदी अनुवाद : नवारुण शर्मा

संक्षिप्त रूपांतर : कांता चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ययाति

विष्णु सखाराम खांडेकर

स्वयंदत्त

'ययाति' से पूर्व मैं काफी लिख चुका था. वह सारा लेखन शब्द-अर्थ, कल्पना-भावना, और विचार आदि के सौंदर्य का प्रतिबिंबन करता था. उसके अधिकांश के द्वारा एक सामाजिक ढांचा भी प्रस्तुत हुआ. पर सौ-सौ दुख-सुख-भरे मानव मन को, उसकी आंखों आगे उतराते सोनल सपनों को, और उसे भयभीत करने वाली सनातन समस्याओं को चित्रित करने में सामाजिक ढांचा प्रायः अपर्याप्त ठहरता है. उस समय प्रतीति होती है कि पुराण-कथाओं को नानी-दादी की कहानी बताकर उपेक्षित करना कितना अर्थहीन है.

ऐसा ही एक संवेदनशीलता का क्षण था जब मन में इस उपन्यास का बीज बोया गया. मेरे चारों ओर का समाज भौतिक समृद्धि के एकांगी प्रभावों में पड़ा परंपरागत नैतिक मूल्यों को नष्ट करने में प्रवृत्त था. ऐसा लगता मानो मदमस्त हाथी के पांवों तले कोमल-कोमल फूल रौंदे जा रहे हों. सत और असत, पाप और पुण्य के बीच की सीमा रेखाएं अधिकाधिक अस्पष्ट होती जा रही थीं. दूसरों के दुख के प्रति जो सहज संवेदनशीलता मानव के मन में होती है वह क्षीण हो चली थी. समाज की मनश्चेतना पर लोभ का अनिर्बंध अधिकार था. प्राचीन आस्थाओं को ढहाया जा रहा था और उनके स्थान पर नयी आस्थाएं निर्माण करने के प्रयत्न असफल हो रहे थे. अधिकांश समाज इस भ्रमजाल में फंसता जा रहा था कि इंद्रिय-सुखों को छोड़ जीवन में पाने के लिये और कुछ नहीं होता. यह एक बहुत ही भयावह अनुभव था : और इसी अनुभव ने मुझे प्रतीति करायी कि जिस सत्य का उद्घाटन आज के युग के लिये आवश्यक है उसे ययाति की पुराण-कथा के द्वारा किया जा सकता है.

ज्यों-ज्यों मैं इस उद्देश्य से उस कथा के भीतर पैठा, मुझे लगता गया कि निर्बंध लोभ और निरंकुश कामवासना में परिणामों की दृष्टि से आश्चर्यजनक साम्य है. जीवन का रूप ऐसा हो चला था मानो किसी नदी में भयंकर बाढ़ आयी हो और वह चारों ओर की धरती को निगल ले. 'ययाति' के द्वारा मैंने इसी सबका चित्रण करने का प्रयत्न किया है.

26 फरवरी, 1976 को
पुरस्कार समर्पण समारोह
के अवसर पर व्यक्त विचार

निवेदक ययाति : देवयानी को जब पता चला, तब उसका चेहरा उतर गया. उसका पासा उस पर ही पलट गया था. दिन डूबा. रात होने लगी थी. प्रत्येक तारे के साथ शर्मिष्ठा की स्मृति मेरे मन में खिलने लगी. मैं महल में मंचक पर था, और वह अभागिनी, किसी निर्जन स्थान में धरती पर सो रही होगी. मैं अत्यंत अस्वस्थ हो उठा. मन को कुछ शांति मिले यह सोचकर मैंने मदिरा पी ली. धीरे-धीरे मेरी आंख लग गई. सुबह बहुत अशुभ समाचार मिला. माधव का स्वास्थ अचानक बिगड़ गया था. उसे तीव्र ज्वर था. उस रात शर्मिष्ठा को छोड़ने गया था, तो मूसलाधार वर्षा थी. भीगने के कारण उसकी यह दशा हुई थी. मैं माधव के घर गया. नन्ही तारका, मुझे गुड़िया का दूल्हा बनाने वाली, अब बड़ी हो गयी थी. मुझे देखकर वह शरमाई. माधव मछली की भांति तड़प रहा था.

उस रात भी मुझे नींद न आई. मैंने फिर से प्याला उठाया. उसमें मदिरा का समुद्र था.

आठ दिन हुए. माधव का ज्वर न हटा. बहुत उपाय किये. किंतु उसकी देह के पिंजड़े से प्राण पंछी कब उड़ गया, किसी को पता न था. माधव से अंतिम विदा लेकर मैं लौटा. वह रात-रात नहीं, क्षण-क्षण में फुफकारकर मुझ पर आक्रमण करनेवाली नागिन थी वह. मृत्यु के बारे में सोचता, मैं अपने महल में तड़पता रहा. मेरा हाल देखने, देवयानी वहां फटकी भी नहीं. मैंने बहुत मदिरा पी. नशे में मुझे स्वप्न दिखाई देने लगा. एक चिता जल रही थी. उस चिता में मेरा ही एक-एक अवयव जलकर भस्म हो रहा था. मदिरा को छोड़कर अन्य सहारा नहीं था. धीरे-धीरे नशा मुझ पर चढ़ गया. वह उन्माद दूसरे उन्माद की स्मृति कराने लगा. मुकुलिका, अलका, देवयानी, शर्मिष्ठा—मैं उठा, महल का द्वार खोलकर मैं बाहर निकल पड़ा.

(प्रवेश : ययाति, देवयानी)

देवयानी : शर्मिष्ठा यहां नहीं है, तभी आज मेरी याद आई?

ययाति : मुझे शर्मिष्ठा भी चाहिये. तुम भी. और भी जितनी सुंदर लड़कियां हों, वे सब चाहिये. स्वर्ग की सारी अप्सराएं. मैं राजा नहुष का बेटा हूं. पुरुरवा का पोता.

दे : मेरे समीप नहीं आइये.

य : मेरे पिता को इंद्राणी नहीं मिली. पर मैं उसे प्राप्त करूंगा. दुनिया की प्रत्येक सुंदर स्त्री—एक फूल तोड़ो, सूंघकर फेंक दो. दूसरा फूल तोड़ो, सूंघकर....

दे : दूर हो जाइये. मैं कौन हूं. जानते हैं आप?

य : तुम मेरी धर्मपत्नी हो.

दे : मैं शुक्राचार्य की कन्या हूं. मदिरा पीकर मेरे महल में न आने की आपने शपथ ली थी. वह आपने तोड़ दी. मेरे पिताजी तपस्वी हैं, आप जानते हैं. मुझे लगता है जब तक वह आप को घोर अभिशाप नहीं देते, आप ठिकाने नहीं आयेंगे.

य: शर्मिष्ठा कहां है? राक्षसनी. तुम जैसी दुष्ट स्त्री संसार में नहीं है.

दे : दूर हो जाइये. शुक्राचार्य के शाप से आप पत्थर बन जायेंगे....

य : नहीं. मैं—आगे नहीं बढ़ूंगा. मैं...पीछे...

दे : पहले शपथ लीजिये.

य : लेता हूं. लेता हूं.

दे : आप मेरे शरीर का भविष्य में कभी स्पर्श नहीं करेंगे. मेरे पिताजी का नाम लेकर शपथ लीजिये.

य : लेता हूं. मैं शपथ लेता हूं.

ययाति निवेदक : पराभूत होकर मैं उस महल से बाहर निकला. मैंने निश्चय किया, जिस महल में पत्नी का स्पर्श करना मना है, वहां ठहरना व्यर्थ है. अशोकवन में रहने का मैंने निश्चय किया. अशोकवन में मेरे जाने से पहले एक नये गुरु महाराज अपने शिष्यों के साथ आ ठहरे थे. मैंने सोचा कि मनःशांति का कोई मार्ग कदाचित वह मुझे सुझा पायें.

मैं मदिरा पीकर उस पवित्र स्थान में गया था, इसलिये मैंने क्षमा मांगी. हंसकर गुरु महाराज बोले, "मनःशांति का आधा मार्ग तो आपने स्वयं ढूंढ लिया."

मैं अचंभित हो गया. वह आगे बोले, "यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युलोक है. यहां के दुःखों को भुला देने के लिये दो ही औषधियां यहां उपलब्ध हैं. मदिराक्षी. मदिराक्षी. इस संसार में दुख और सुख, यही दो सत्य हैं. बाकी सब माया. मैं भक्तों को तीर्थ के नाम मदिरा देता हूं. आपको मनःशांति देने वाली देवियां मेरे वश में हैं. उनमें से किसी की भी आप आराधना करें. आइये."

मुझे लगा कि मैं किसी पर्वत शिखर से धड़धड़ाता हुआ, किसी गहरी खाई में गिर रहा हूं. उस खाई का कोई अंत न था.

शर्मिष्ठा निवेदिका : उस रात, सघन अंधकार में, मूसलाधार वर्षा में मुझे छोड़कर माधव चला गया था. महाराज ने मेरे प्राण बचाये. किंतु अपनी प्यारी शर्मिष्ठा को इस प्रकार आंधी पानी में छोड़ना उन्हें कैसे अच्छा लगा. वह कहते, 'शर्मिष्ठा, यह राज्य, मुझे नहीं चाहिये, मैं तुम्हारे साथ चलता हूं' तो मेरा कितना साहस बढ़ता. मैं उन्हें आने न देती. किंतु उनके मीठे शब्द मेरे कानों में गूंजते रहते.

पिशाच की भांति चलनेवाली हवा, अंधा कर देनेवाला अंधेरा, डाकिनी की तरह झपट पड़ने वाली बिजली,...मैं रात जंगलों में, पहाड़ों पर से, कांटों में से चलती रही. सुबह मेरे सामने प्रश्न खड़ा हुआ. कहां जाऊं? पिताजी के वहां जाती, तो शुक्राचार्य के श्राप का भय था. वह संपूर्ण (राक्षस) कुल का ही नाश कर देते. इसमें सच, भरे पूरे संसार में मनुष्य कितना अकेला है, इसकी मुझे प्रतीति होने लगी. एक दिन मंदिर में एक बूढ़ी दयालु स्त्री मिली. वह मुझे घर ले गई. चार दिन बड़े शांति से बिताये. किंतु पांचवीं रात उसके पति महाशय ने अपना कुंठित रूप दिखाना चाहा. मैं पुरु को लेकर वहां से भागी. गांव के बाद गांव पीछे छोड़ते मैं चलती रही.

प्रवेश-1

आदमी : भाईयो सुनो. हस्तिनापुर की महारानी देवयानी के महल से एक सुंदर दासी भाग गई है. उसके साथ एक बच्चा है. यह दासी व्यभिचारिणी है. उसे पकड़कर महल पहुंचाने वाले को बहुत बहुत इनाम मिलेगा...

शर्मिष्ठा निवेदिका : कोई व्याघ पीछा कर रहा हो, तो हरिणी जिस प्रकार भागती है, उस प्रकार, नगरों को टालकर, मैं भागती रही.

एक दिन एक नन्हा-सा पक्षी सामने से उड़ता गया. उसका पीछा करने का पुरु ने हठ पकड़ा. मैं पगडंडी के आगे आगे चलती गई. सामने एक विशाल शिलाखंड कछुए के समान पड़ा था. उसके तले गहरी खाई थी. मेरा मन आकर्षित हुआ. अपूर्व दृश्य था. मुझसे रहा न गया...

प्रवेश – 2

यति : ठहरो.....

शर्मिष्ठा, तुम यहां कैसे?

शर्मिष्ठा : मैं जानबूझकर, हस्तिनापुर छोड़कर चली आई.

यति : क्यों?

श : काका को उनका भतीजा दिखाने. मैंने सोचा, वह स्वयं तो हस्तिनापुर आयेंगे नहीं. मैं ही जाकर उन्हें उनके कुल का यह रत्न दिखा दूं.

यति : मेरा भतीजा? ययाति का पुत्र?

श : हां....

यति : ताऊ देख रहे थे, कि भतीजे का एकाध चुंबन मिलता है कि नहीं. महाशय सो रहे हैं. सोने दो. चूंकि यह मेरे जीवन का पहला चुंबन होगा, उसे शुभमुहूर्त पर ही लेना चाहिये...

भाभी. हिमालय की तलहटी में मेरी पहचान के वन्य लोग रहते हैं. मेरे प्रति उनकी श्रद्धा है. आप वहीं चलो. वह तुम्हारी रक्षा करेंगे.

श: वहां मैं पर्णकुटी बनाऊंगी. वहां हम रहेंगे. मुझे आप अपनी सेवा करने का अवसर दे दीजिए.

यति : यह संभव नहीं. कचदेव उग्र तपस्या करने वाले हैं. संजीवनी खो देने के कारण दैत्यगुरु शुक्राचार्य उससे भी उग्र तपस्या करने जा रहे हैं. एक और प्रभावशाली विद्या प्राप्त करने का उनका उद्देश्य है. जीवित मनुष्य केवल मंत्र से ही मारा जाये, यह है वह विद्या.

श : यह तो विध्वंसक विद्या है.

यति : इसीलिये कच भी उग्र तपस्या कर रहा है. शुक्राचार्य की विनाशकारी शक्ति को रोकने के लिये. मैं भी कच के साथ अपने ढंग से तपस्या करूंगा. मेरा यह कर्तव्य है. अशोकवन से मैं भागा, तो मुझ पर पागलपन का भूत सवार था. कच ने भाई के समान मेरी सेवा की. मुझे फिर से मनुष्य बनाया. नहीं तो मेरा स्त्री-द्वेष मुझे राक्षस बनाता.

श : क्यों इतना स्त्री द्वेष है आपके मन में?

यति : बचपन से ही पिताजी के शाप के बारे में सुनकर मेरा संतुलन खो गया था. इंद्राणी के कारण यह हुआ था, जानकर मैं सारी स्त्रियों से द्वेष करने लगा.

श : यह जाग रहा है. अब इसे आशीर्वाद दीजिये.

यति : चिंता न करना. आज भले ही तुम्हारा पुरु वनवासी हो, कल वह हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठेगा.

निवेदिका शर्मिष्ठा : पुरु बड़ा होने लगा जैसे एक-एक अंश चंद्रमा बढ़ता है. यती की कृपा से अरण्य में मैं किसी वनराणी की भांति रहती थी. छोटा-सा धनुष बाण लेकर पुरु निशाना लगाने लगा. समीप के आश्रम में वेदाध्ययन शुरू किया.

आश्रम में एक दिन हस्तिनापुर से आये तपस्वी ने बताया कि महाराज ने राजकार्य छोड दिया है. देवयानी ही सारा शासन चला रही है. मैं उस दिन उदास हो गयी.

(प्रवेश शर्मिष्ठा, पुरु)

शर्मिष्ठा : भगवान. उन्हें सुखी रखना.

पुरु : मां, उन्हें याने किन्हें?

श : उन्हें याने उन्हें.

पु : उनका नाम बताओ.

श : तेरे बड़े होने पर बताऊंगी.

पु : अब तो मैं बड़ा हो गया हूं. अचूक निशाना लगा सकता हूं. पेड़ पर चढ़ सकता हूं.

श : तुझे इससे भी बड़ा होना है. बहुत-सी विद्याएं सीखनी हैं. बहुत-सी लड़ाइया जीतनी हैं.

पु. : लड़ाइया तो मैं अभी भी जीत सकता हूं. बताओ, किससे लड़ूं?

श : अभी लड़ाई नहीं लड़नी बेटे. आगे चलकर लड़नी है. तू सोलह बरस का हो जा. तब उन्हें यानि किन्हें यह बताऊंगी.

शर्मिष्ठा निवेदिका : पुरु सोलह वर्ष का हो गया. एक दिन मैंने उसका चित्र बनाया. वह हूबहू महाराज के समान बना. अब मैंने उसे बताया कि वह हस्तिनापुर का राजपुत्र है. इतने वर्षों का रहस्य मैंने उसे बताया—किंतु उसने मुझे अपना रहस्य नहीं बताया. सुनहरे बालोंवाली एक प्यारी-सी लडकी से प्रेम हो गया था उसे. उस लडकी की मौसी कभी हस्तिनापुर में ही दासी थी.

ययाति की नाट्य प्रस्तुति का एक दृश्य

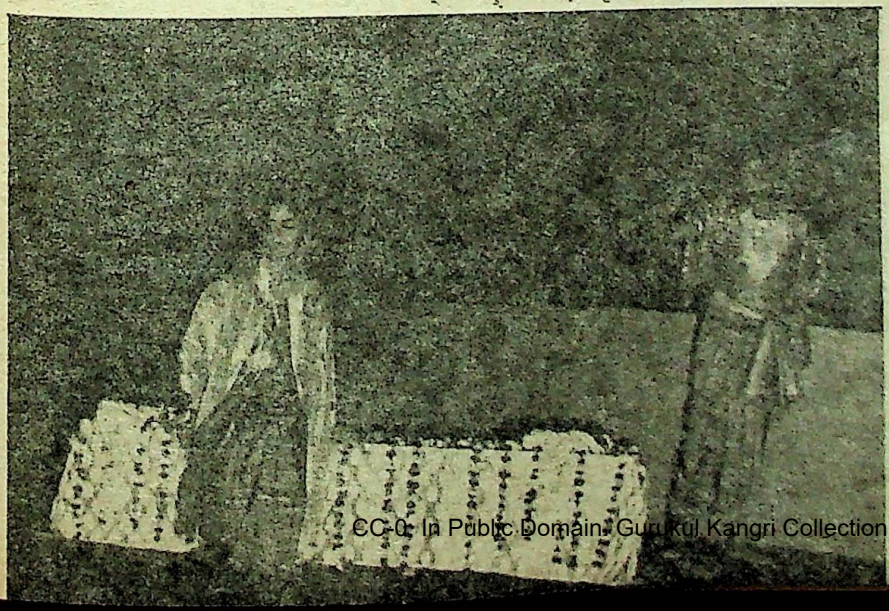

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दो तीन वर्ष बीत गये. एक दिन प्रक्षुब्ध मनस्थिति में वह शिकार से लौट आया. उसने सुना था कि उत्तर दिशा में दस्युओं ने उत्पात मचाया था. उनसे लड़ने युवराज यदु बड़ी सेना लेकर निकल पड़े थे. उस रात मुझे नींद न आई. महाराज स्वयं क्यों नहीं गये. पुरु भी रात भर करवटें बदलता रहा. दूसरे दिन वह शिकार पर गया. रात हो गयी फिर भी नहीं लौटा, उसके साथी भी नहीं आये. इस प्रकार पहले कभी बिना पूछे पुरु घर से नहीं गया था.

दूसरे दिन पता चला कि वह साथियों के समेत लड़ाई पर गया है. अलका के हाथ मेरे लिये एक चिट्ठी दी थी–

श : युद्ध का समाचार इतनी दूर प्राप्त होने में समय लगेगा. क्यों नहीं हम स्वयं हस्तिनापुर के निकट किसी गांव चलतीं? वहां आने जाने वाले दूतों से युद्ध का समाचार मिलता रहेगा.

अ : मैं भी चलूंगी आप के साथ.

श : चलो. तुम्हारी मां से अनुमति लेनी होगी.

निवेदिका शर्मिष्ठा : मैं हस्तिनापुर लौट रही थी. अठारह वर्षों के बाद. उतनी ही भ्रमग्रस्त मनःस्थिति में. मार्ग में बड़े-बड़े वृक्ष ज्यों के त्यों हैं मंदिरों के कलश वैसे ही चमक रहे हैं.

किंतु शर्मिष्ठा–वह बदली है. पहली शर्मिष्ठा प्रणयिनी थी. अब वह केवल मां है. पुरु कुशल से तो होगा न? विजयी यदु के साथ वह हस्तिनापुर गया तो, क्या देवयानी उसे पहचानेगी? मेरे साथ अलका है. कितनी प्यारी लड़की. एक किनारे जाकर चुपके से आंख पोंछती है, तो मेरा दिल भर आता है.

हस्तिनापुर के निकट एक गांव में अशुभ वार्ता आ धमकी. युवराज यदु को दस्युओं ने पकड़ लिया था. शत्रु का सिर काटकर उसे भाले की नोक पर लगाकर जुलूस निकालने की दस्युओं की रीति थी. यदु का क्या होगा? एक विजयी वीर के रूप में या भाले की नोक पर–

देवयानी निवेदिका : चारों ओर से आग लगी हो और बाहर निकलने का कोई मार्ग न हो तो, ऐसे मेरे मन की अवस्था हो गई है. शाम को वह समाचार आया.

मेरा यदु हार गया. क्या वह कुशलपूर्वक लौटेगा? मैं उसको आंसुओं से कब नहलाऊंगी? क्या मां का मन महारानी के मन से अधिक समर्थ होता है? महाराज के पराक्रम की बड़ी कथायें सुनी थीं.

यदु की मुक्ति के लिये वह स्वयं अवश्य जायेंगे. उन्हें समाचार देने अमात्य गये 'महाराज आकर मुझसे कहते मैं यदु को छुड़ाने जा रहा हूं. तुम दोनों की आरती उतारने को तैयार रहना.' तो मेरे हृदय का अंधकार प्रकाशित हो जाता. किंतु मंदिरा और मदिराक्षी के नशों में क्या वह इतने मग्न थे, कि पिता के नाते कुछ कर्तव्य है, यह भी वह भूल गये?

मेरी मति भ्रष्ट हुई थी, जो मैं हस्तिनापुर की [illegible] मेरा विवाह न था. बलिदान था. विवाह बेदी की उस ज्वाला में अठारह वर्षों से मैं जल रही हूं.

तालियां बजाकर मेरी प्रशंसा करनेवाले यह नहीं जानते थे कि, हर नृत्य को देवयानी के कलेजे के रक्त ने रंगत दी है. पति ने उसे धोखा दिया था. एक चुड़ैल पर अपने प्राण निछावर किये. उस दुख को भुलाने के लिये रात को देवयानी बेहोश होकर नाच रही थी. क्या कलाकर के दुख से कला अधिक सजीव हो जाती है?

शर्मिष्ठा के पलायन का सारा रहस्य मैंने ज्ञात किया. महाराज ने मुझसे प्रतारणा की थी. अवश्य वह आगे पीछे शर्मिष्ठा को यहां लाकर उसे महारानी बनायेंगे. विष वृक्ष को अंकुर सहित उखाड़ देना चाहिए. मां बेटे का कांटा सदा के लिये अपने मार्ग से अलग कर देना चाहिए. मैंने घोषणा करवा दी. उनको पकड़ लाने वाले के लिए बड़ा पुरस्कार घोषित किया. किंतु शर्मिष्ठा और पुरु हाथ न लगे.

आजकल एक अज्ञात स्त्री का स्वर, मेरे कान में गूंजता रहता है, 'देवयानी तूने पत्नी धर्म का पालन नहीं किया.' कौन है यह स्त्री, जिसका न रंग, न रूप, न आकार है. आज जब यदु के पराभव का समाचार आया, तब भी कान में गुनगुनाई 'यह तेरे पाप का प्रायश्चित है. तू कभी सुखी नहीं होगी.' नहीं. पाप तो महाराज ने किया. उनके पाप का फल किसे नहीं मिला? माधव मर गया. उसकी अनाथ भतीजी तारका पागल हो गई. और मेरा लाड़ला यदु–

जब से महाराज को मैंने शपथ लेने का आग्रह किया, उस दिन से वह विमग्न रहने लगे. कभी मेरे हृदय वीणा की एक तार झंकार उठती, कहती, पगली. अभिमान छोड़ दे, महाराज जहां भी हों, वहां जा, जाकर कह दे–

राजराजेश्वर, आप क्या कर रहे हैं?

आप मेरे हैं, आप का कलंक मेरा कलंक है. मैं आपकी पत्नी हूं. आपका सुख मेरा सुख है. उस सुख के लिये आप किसी फूल की भांति देवयानी को मसल डालिये. किंतु अधर्म को रोकिए. पति धर्म का पालन कीजिये. पुत्र धर्म का विस्मरण न कीजिये. राजधर्म को बनाये रखिये.

किंतु दूसरे ही क्षण कच के वैराग्य की मुझे स्मृति आती और महाराज की विलास प्रियता से बहुत घृणा होती.

(प्रवेश : देवयानी, अमात्य)

दे : इतना विलंब क्यों हुआ?

अ : महाराज से भेंट नहीं हो रही थी.

दे : यह ज्ञात होने पर भी कि यदु को शत्रुओं ने पकड़ लिया है?

अ : जी महारानी.

दे : क्यों?

अ : सेवक को वह बात कहनी नहीं चाहिये. महारानी को वह सुननी नहीं चाहिये.

दे : महाराज विलास में मग्न थे ठीक?

अ : (सिर झुकाता है)

दे : अंत में महाराज से आपकी भेंट हुई कि नहीं?

अ : जी. हो गई.

दे : क्या कहा उन्होंने?

अ : मेरा समाचार सुनकर वह हंस पड़े. बोले, इतने वर्षों बाद महारानी को हमारा स्मरण हुआ, इसलिये हम अत्यंत ऋणी हैं. और...

दे : हां, बताइये. झिझकिये नहीं. मैं एक-एक शब्द सुनना चाहती हूं.

अ : महाराज बोले, शत्रुओं को कहो. वह महारानी को भी पकड़कर ले जायें. मुझे कोई आपत्ति नहीं. महारानी से अब मेरा कोई संबंध नहीं.

(दासी का प्रवेश)

दा : देवी. बड़ा आनंद का समाचार है. युवराज शत्रु की कारावास से छूट गये.

दे : कैसे छूटे? क्या पराक्रम कर दिखाया मेरे लाल ने?

दा : अं...कहते हैं किसी ने अपनी जान खतरे में डालकर उन्हें छुड़ाया.

दे : किसने? सेनापति ने?

दा : नहीं. कोई अज्ञात वीर है. युवराज की ही आयु का है.

दे : कौन है वह?

दा : हमारा सैनिक नहीं है. उस वीर को साथ लेकर युवराज महारानी के दर्शन के लिये आ रहे हैं (दूसरी दासी दौड़कर आती है).

दूसरी : देवी. दैत्यगुरु शुक्राचार्य की तपस्या समाप्त हुई. भगवान शंकर ने उन्हें अद्‌भुत विद्या वरदान में दी है. राक्षसराज्य में महोत्सव शुरू हुआ है.

दे : अठारह वर्षों के कष्टों के पश्चात् आज मेरी तपस्या सफल हुई. अब शर्मिष्ठा के विषय में मैं पिताजी से कहूंगी. वह महाराज को भी उचित दंड देंगे. और यदु-मेरा यदु सिंहासन पर बैठेगा. यदु का अभिषेक पूरा हो जायेगा.

(ययाति सो रहा है. मुकुलिका आती है)

मु : महाराज सुनहरा फूल प्राप्त हुआ है.

य : कहां-कहां है?

मु : अभी वह गुरुमहाराज के मठ में है.

य : पिछले 15 दिनों से अविरत पी रहा हूं–यदि उस के केश सुनहरे न हुए, तो मैं तुम्हारे केश कटवाकर नगर में से तुम्हें घुमाऊंगा...कहां मिली यह लड़की?

मु : यहीं.

य : तो इतने दिनों मेरी सेवा में क्यों नहीं लाई गई?

मु : क्षमा कीजिये महाराज. वह हस्तिनापुर की नहीं है. वह इस नगर में आज ही आयी है. अपने प्रियतम को ढूंढने.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य : (हंसता है) क्या उसे किसी ने बताया नहीं कि उसका प्रियतम यहीं अशोकवन में है?

मु : उसका प्रियतम युद्ध पर गया था. उससे किसी ने कह दिया कि वह युवराज के साथ नगर में आ रहा है. उस लड़की के साथ एक प्रौढ़ा भी थी. प्रियतम से मिलने की अधीरता में उसे पीछे छोड़कर लड़की नगरी में अकेली आ गई—वह मठ के एक शिष्य को मिल गयी.

य : अभी क्या कर रही है?

मु : बड़ी शैतान लड़की है. गुरु महाराज के भी वश में नहीं आ रही थी. तब उसे मठ की अंधेर कोठरी में बंद कर देना पड़ा. वहां वह चीखने चिल्लाने लगी, इसलिये उसे बेहोशी की दवा दी है, दस घड़ी रात होने पर वह होश में आयेगी.

य : मूर्ख इतनी अधिक दवा क्यों दे दी?

मु : आज शुक्राचार्य जी आ रहे हैं. हमने सोचा महाराज दस घड़ी रात तक उनके साथ राजमहल में ठहरेंगे.

य : ययाति अभी इतना अरसिक नहीं कि सुनहरी बालों वाली परी छोड़कर वह जटाधारी शुक्राचार्य का आलिंगन रे. जा, उसे पालकी में बिठाकर इसी समय यहां ले आ.

(अलका मंच पर सोई हुई है. ययाति उसे देखकर अत्यंत चकित)

य : यह स्वप्न तो नहीं...अलका...नहीं...मेरी अलका....पुनः एक बार....

मु : महाराज, जल्दी बाहर आइये. महर्षि शुक्राचार्य और महारानी जी आयी हैं. महर्षि क्रोधित हैं. आपको बुला रहे हैं.

(ययाति शीघ्र ही वहां से निकलता है. बाहर देवयानी तथा शुक्राचार्य.)

(ययाति आता है. देवयानी मुंह फेर लेती है)

(ययाति लड़खड़ाते शुक्राचार्य को प्रणाम करता है.)

य : महर्षि मुझे क्षमा करें. मैं मोह का शिकार हो गया था.

शु : क्षमा मनुष्य के प्रथम अपराध को हो सकती है. मंजे हुए अपराधी के लिये दंड ही उचित है—देवयानी को ठुकराकर तुमने शर्मिष्ठा से प्रेम किया था?

य : हां.

शु : मेरी आज्ञा की अवहेलना?

य : महाराज, यौवन अंधा होता है.

शु : यौवन अंधा होता है न? तो ठीक है. मैं शाप देता हूं. इसी समय तेरा यौवन नष्ट हो जायेगा. तू बूढ़ा हो जायेगा.

दे : पिताजी, पिताजी यह आपने क्या कर दिया?

य : (हाथ जोड़कर) महाराज, मुझ पर दया कीजिये. मेरा मन अभी भी तरुण है. अभी भी मैं देवयानी के साथ आनंद से गृहस्थी कर लूंगा. यदि मेरा यौवन आप लौटा दें...

दे : पिताजी. मैं आंचल फैलाती हूं. इन्हें फ़िर से इनका यौवन दीजिये.

शु : वीर का बाण और तपस्वी का शाप कभी व्यर्थ नहीं होता. किंतु देवयानी मेरी लाडली कन्या है. और देर से ही क्यों न हो, किंतु इसके साथ गृहस्थी करने की इच्छा तूने प्रकट की है. इसलिये उःशाप देता हूं. तेरे ही कुल में, तेरा वार्धक्य स्वीकारने के लिये कोई तरुण यदि आनंद से तैयार हो जाये, तो तुम्हारा वार्धक्य उसे मिलेगा. तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् ही उसे अपना यौवन पुनः प्राप्त होगा.

ययाति निवेदक : शाप और उःशाप देकर शुक्राचार्य चले गये. मेरा वृद्ध कुरूप चेहरा देवयानी को दिखाते मुझे लज्जा आने लगी. उसी समय यदु एक अन्य युवक के समेत वहां आ गया. रंगमहल की ओर से धीरे से ध्वनि आयी. वह सुनहरी परी जाग रही थी. मुझे मेरा यौवन चाहिये था. मैंने यदु को समीप बुलाया. जब उसने मुझे पहचाना. तो वह चौंक उठा. "क्या मेरे लिए तू त्याग करने को तत्पर है?" मैंने उससे पूछा. यदु ने उत्तर दिया. "हां पिताजी, पितृदेवो भव, ऐसी धर्म की ही आज्ञा है." देवयानी चीख पड़ी. आज अठारह वर्ष बाद उससे बदला लेने का यह अवसर मिला है. उसकी आंखों के सामने मैं रंगमहल जाकर उस सुंदर तरुणी से अभिसार करूंगा. बदला लेने की वासना तथा मेरी कामुकता ने मेरी बुद्धि बधिर कर डाली. मैंने यदु से उसके यौवन की भीख मांगी. बदले में उसे अपना राज्य देने का प्रस्ताव रखा. यदु के आविर्भाव से ही उसका नकार प्रतिबिंबित हुआ. वह दूसरा तरुण आगे हुआ और बड़ी विनम्रता से बोला, "मैं आपका बुढ़ापा लेने को तैयार हूं". किंतु यह व्यवहार केवल मेरे ही कुल के व्यक्ति के साथ संभव था. इस पर वह युवक बोला कि उसके रक्त की एक एक बूंद पर मेरा अधिकार था, वह मेरा ही पुत्र था. शर्मिष्ठा का पुत्र—पुरू.....

मैंने पुरु की ओर देखा. यौवन की देहलीज पर खड़ा एक सुंदर पुरुष. भविष्य के कितने सुंदर स्वप्न उसकी आंखों के सामने लहराते होंगे. कोई तरुणी उसके लिये आंख बिछाए बैठी होगी. मेरा मन डगमगाने लगा.

चार घड़ी में कितना कुछ घटा था—देवयानी पुरु को देख क्रोध से भड़क उठी. पुरु के समीप जाकर बोली, "तू सच्चा पुरु है न? फिर सोच क्या रहा है. अपनी तरुणाई दे इन्हें और बदले में बुढ़ापा ले."

पुरु ने झट मेरे पैरों पर मस्तक रखा. जब उसने मस्तक उठाया, तो वह बूढ़ा हो चुका था...

और फिर, आज तक कभी न दिखा, मन का एक कोना मुझे दिखाई दिया. उसमें एक मंद ज्योति जल रही थी. स्वयं अपने लिये जीने में जितना आनंद है, उससे कितना ही अधिक आनंद दूसरे के लिये मरने में है. शुक्राचार्य ने मेरा बाह्यरूप बदल दिया. शर्मिष्ठा ने मेरा अंतरंग.

मैंने शर्मिष्ठा को धीरज देते हुए कहा कि पुरु पहले जैसा हो जायेगा. किंतु उसके लिये मुझे मृत्यु स्वीकारनी होगी. यह सुनते ही वह रोने लगी.

मेरा निश्चय हो चुका था. शुक्राचार्य का स्मरण करके केवल तीन बार कहना था—

यह उधार का यौवन मैं लौटा रहा हूं...
यह जिसका है, उसे वापस मिल जाये.
मैं मृत्यु को स्वीकारने के लिये तैयार हूं.

दो बार मैंने यह कहा, तीसरी बार कहने के लिये मुंह खोला ही था—इतने में सेवक ने आकर समाचार दिया. कचदेव आये हैं. मैं तत्काल मूर्च्छित हो गया.

मैं रुग्णशैया पर कई दिन रहा. कच का मंत्रपठन मुझे उल्लसित करता था. कितने योग्य समय पर कच पहुंचा था. शुक्राचार्य की भांति उसने भी तपोबल से बहुत सिद्धी प्राप्त की थी. परंतु अपनी सिद्धी शाप के नहीं, अःशाप के काम कच लाता था. उसने पुरु का यौवन उसे लौटा दिया.

पुरु का अपनी प्रेयसी के साथ—सुनहरी बालों वाली उस लड़की के साथ पुनर्मिलन हो गया. मैं रुग्णशैया पर रहा, उन दिनों एक और चमत्कार हो गया. देवयानी का जैसे पुनर्जन्म हो गया. वह सेवाशील, विनम्र और ममतामई हो गई. शर्मिष्ठा के साथ सखी-भाव से रहने लगी. कच को मैंने इस परिवर्तन का श्रेय दिया, किंतु उसने कहा कि वह पुरु की महानता का परिणाम था. पुरु ने जब मेरा वार्धक्य स्वीकार किया तो मैंने उसे राज्य दे दिया था. किंतु 'तुम मेरे बड़े भाई हो. राज्य पर तुम्हारा ही अधिकार है', कहकर उसने राज्य यदु को सौंपना चाहा. देवयानी का हृदय उसकी इस कृती से भर आया. अंत में प्रजा के आग्रह के कारण पुरु को राज्य लेना पड़ा, तब देवयानी भी बहुत आनंदित हुई.

जीवन में आसक्ति के अंतिम शिखर तक पहुंचने के पश्चात्, मैं विरक्ति का अनुभव चाहूं, यह क्रम प्राप्त था. मैंने वानप्रस्थ होने का निश्चय किया. मेरे साथ शर्मिष्ठा ही नहीं, देवयानी भी वन जाने को तैयार हो गई.

पुरु के राज्याभिषेक के दिन हम वन को निकले.

(प्रवेश : कच, ययाति, देवयानी, शर्मिष्ठा)

कच : क्या तुम तीनों की कोई इच्छा रही है?

(देवयानी, शर्मिष्ठा नहीं कहती हैं)

कच : ययाति, क्या तुम्हारी कोई इच्छा रही है?

य : यही, कि हम तीनों, बिना कुछ छिपाये, अपनी कथा संसार को सुनायें. जिससे संसार यह सीखे कि काम और अर्थ महान और प्रेरक पुरुषार्थ हैं. कि यह स्वैर भागनेवाले पुरुषार्थ हैं. वह शीघ्र विवेक खो सकते हैं. उनकी लगाम आठों पहर धर्म के हाथ में होनी चाहिये. □

संक्षिप्त रूपांतर : कांता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन पीढ़ी

आशापूर्णा देवी

स्वयंवद्

मेरी युवावस्था के अनदेखे प्रश्नों ने लगभग यह रूप ले लिया है : जिस समाज को मानव ने ही निर्मित किया है उसी समाज की दृष्टि में आदमी के बीच इतना अंतर क्यों है? हमारे समाज की बनावट में असंगत असमानताएं क्यों हैं? मुट्ठी-भर शक्तिशाली व्यक्तियों पर यह धुन क्यों सवार है कि वे ही इस दुनिया पर राज करें? अकसर हमारा समाज पुरुषों के अनुचित कृत्यों को सहन कर लेता है, जबकि स्त्रियों को एक मामूली-सी कमजोरी के लिये भी कड़ा दंड दिया जाता है. यह भेदभाव क्यों हो? जीवन के हर व्यापार में स्त्री को उसके अधिकार से क्यों वंचित रखा जाय? वे हरम के घमघोट अंधेरे में अपना जीवन काटें, ऐसा क्यों?

यह स्वाभाविक ही था कि मैं अपने विचार पुरुषों से अधिक स्त्रियों पर केंद्रित करूं. क्योंकि मुझे अपना बचपन और युवावस्था रूढ़िवादिता के प्रतिबंधों में बिताने पड़े हैं. स्त्रियों की असहाय अवस्था और अव्यक्त पीड़ा ने मुझे अत्यधिक विचलित किया. इन सारे उद्घाटनों ने मुझे दिन पर दिन दुखित किया और मेरे मस्तिष्क में विद्रोह और प्रतिवाद का एक विशाल पर्वत खड़ा कर दिया. यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्रथम प्रतिश्रुति की नायिका सत्यवती मेरे हृदय के उन मौन प्रतिवादों का प्रतीक है.

'प्रथम प्रतिश्रुति' मेरी कथात्रयी का पहला सोपान है. यद्यपि यह अपने आप में संपूर्ण है किंतु अन्य दोनों-'सुवर्णलता' और 'बकुलकथा'-एक-दूसरे की पूरक हैं. इन तीनों उपन्यासों के माध्यम से मैंने विगत, मध्य तथा वर्तमान कालखंड़ों की तीन पीढ़ियों के सामाजिक इतिहास को पकड़ने की कोशिश की है. इतिहास ने इतना ही किया कि इस संसार के उत्थानों और पतनों का, विद्रोहों-युद्धों और साम्राज्यों के उत्कर्ष तथा अवसान का लेखा-जोखा रखा. किंतु वह इतिहास ढंके-छिपे घरों की घटनाओं का ब्योरा नहीं होता. वहां भी उथल-पुथल और विद्रोह होते हैं, आंदोलन होते हैं और मुक्ति प्राप्त करने के लिये निराशोन्मत दुस्साहस किये जाते हैं. अंतःपुरों के जीवन में कायापलट ला देने वाले परिवर्तन का आलेख सामाजिक उपन्यासों में ही सुरक्षित है. मेरे यह तीन उपन्यास उस सामाजिक इतिहास के कुछ चरणों को अंकित करने के मेरे विनम्र प्रयत्न का ही उदाहरण हैं.

26 अप्रैल, 1978 को
पुरस्कार समर्पण समारोह
के अवसर पर व्यक्त विचार

सत्यवती

सत्यवती की यह कहानी मेरी लिखी हुई नहीं है. यह कहानी बकुल की कापी से ली गयी है. बकुल ने कहा था, इसे कहानी कहना चाहो, कहानी है, वास्तव कहना चाहो, तो वास्तव.

बकुल सुवर्णलता के बहुत से बाल-बच्चों में से एक है. उसके अंतिम ओर की लड़की.

सुवर्णलता के घर में बकुल की भूमिका अपराधी की थी जैसे विधाता का यह निर्देश हो कि उसे किसी अंजान अपराध से हर समय संत्रस्त रहना पड़ेगा.

इसीलिये बकुल का शिशु-मन एक अजीब धूपछांही परिमंडल में तैयार हुआ था, जिसका कुछ हिस्सा तो सिर्फ भय, संदेह, आतंक और घृणा का था और कुछ ज्योतिर्मय रहस्यपुरी की चमकती चेतना से दीक्षित. फिर भी मनुष्य को प्यार किए बिना नहीं रह सकती बकुल. मनुष्य को प्यार करती है, जभी तो...

आज के बंगाल की अनगिनत बकुल-पारुलों के पीछे हैं वर्षों के संग्राम का इतिहास. बकुल-पारुलों की मां-नानी, दादी-परदादियों के संघर्ष का इतिहास. गिनती में वे असंख्य नहीं थीं. बहुतों में वे एक-एक थीं. वे अकेली आगे बढ़ीं. आगे बढ़ीं खाई-खंदक पार करके, चट्टानें तोड़-तोड़कर, कंटीली झाड़ियों को उखाड़ती हुई. रास्ता बनाते हुए शायद ही कि दिशा खो बैठीं, अपनी बनाई हुई राह को छेंककर बैठ पड़ीं. उसके बाद दूसरी आयी, उसने उनके किए काम को अपने हाथ में ले लिया. और राह इसी तरह तो बनी जिससे होकर ये बकुल-पारुल आगे बढ़ती जा रही हैं. और ये बकुल-पारुल भी खट रही हैं बेशक. बिना खटे काम कैसे चले? पांव-प्यादे चलने का रास्ता बना जाने से ही तो नहीं हो गया.

रथ चलने का रास्ता चाहिये न.

वह रास्ता कौन बनाएगा, कौन जाने? वह रथ कौन चलाएगा, कौन जाने? जो लोग चलाएंगे, अलस कौतूहल से इतिहास के पन्ने पलटते-पलटते शायद सत्यवती को देखकर हंस पड़ें.

नाक में बुलाकी और पैरों में झांझर पहने आठ बरस की सत्यवती को. कभी बकुल भी हंसती थी.

अब नहीं हंसती. काफी दूरी पार करके आने के बाद वह पथ की वास्तविकता को समझना सीख गयी है. इसीलिये जिस सत्यवती को बकुल ने कभी आंखों देखा तक नहीं, उसे उसने स्वप्न और कल्पना, ममता और श्रद्धा में देखा.

जभी तो बकुल की बही में सत्यवती की ऐसी साफ शक्ल आंकी हुई है.

नाक में बुलाकी, कान में करनफूल, पैरों में झांझर, वृंदावनी छाप की आठ हाथवाली साड़ी पहने आठ बरस की सत्यवती. कोई साल भर पहले विवाह हो चुका है, ससुराल अभी नहीं गयी. अपने रोब-दाब से मुहल्ले के सारे लड़के-लड़कियों की अगुआ बनी जी चाहे जहां खेलती फिरती है. सत्यवती की मां, दादी, बड़ी चाची, फुआ-कोई भी उसे दबा नहीं पाती.

दबा नहीं पाती, शायद इसलिए कि उसकी मनमानी को बाप का कुछ सहारा है.

सत्य धिक्कार से दबती है, डांट से नहीं.

नित्यानंदपुर के कविराज रामकाली चैटर्जी की एकमात्र पुत्री सत्यवती ने असंख्य बाधाओं और विपत्तियों के बीच अपने चलने का रास्ता इसी तरह स्वयं तैयार कर लिया था. जीवन-संग्राम में विजयिनी होने के हेतु अग्रसर, अंत में उसे हार माननी पड़ी अपनी सास एलोकेशी के सामने. उसका संस्कार मुक्त मन स्तब्ध रह गया जब एलोकेशी ने सत्यवती की एकमात्र बालिका कन्या सुवर्णलता का विवाह उसको बिना बताये कर दिया. संसार के सब बंधन छिन्न-भिन्न कर क्षोभ और दुख से आहत सत्यवती, अपने पति, संसार, संतान, सब कुछ को त्यागकर चली गयी. पीछे छोड़ गयी इस घटना की स्मृति-अपनी मां के नाम पर लड़कियों के लिए स्कूल स्थापित करने की आशा लेकर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवर्णलता

यह युग-वह युग-यह तर्क तो सदा का है, पर उस 'काल' को चिह्नित कैसे किया जाये? एक-एक काल की आयु समाप्त होते ही क्या हर-एक-बार परदा गिरता है, जैसा परदा रंगमंच पर गिरता है?

नहीं, परदे का अवकाश कहां? अविच्छिन्न है वह स्रोत, फिर भी 'यह जमाना, वह जमाना, यह युग-वह युग' कहकर अभिहित भी किया जाता है. समाज, मनुष्य की रीति-नीति, चाल-चलन यही सब काल के एक-एक टुकड़े को पकड़े रहते हैं, इतिहास उसका नाम देता है, अमुक युग-फलां युग.

किंतु काल को अतिक्रम भी तो करता रहता है कोई-कोई, नहीं तो उस प्रवहमान धारा को आगे कौन बढ़ाये-जो बीच-बीच में बुझ-सी जाती है, निस्तरंग हो जाती है? फिर भी उन्हें वर्तमान की पूजा शायद ही मिलती है—लांछित होते हैं वे, उपहास के पात्र होते हैं, विरक्ति-भाजन बनते हैं.

सुवर्णलता वह सब नहीं जानती थी. वह अपनी गृहत्यागिनी मां की निंदा का संबल लिए गिरस्ती में आयी थी. इसीलिए उसने यह जाना था कि वह केवल अपने असार्थक जीवन की ग्लानि का बोझ लेकर ही दुनिया से बिदा हो रही है. यह जाना था कि उसके लिए किसी का कुछ जाता-आता नहीं.

उसके मरने पर उसकी सत्रह साल की कुंवारी बिटिया को पैरों तले जमीन ढूंढे नहीं मिली, सुवर्णलता यह जानकर नहीं गयी, जानकर नहीं जा सकी कि उस लड़की के लिए सुवर्णलता का मृत्युदिन ही जन्मदिन है.

दक्षिण के उस चौड़े बरामदे से, जहां सुवर्णलता संसार से आंखें फेरकर लेटी रहती थी, वह लड़की मानो हिलना ही नहीं चाहती. उस जगह के सूनी हो जाने पर ही उसने मानो सुवर्णलता को नयी नजर से देखना सीखा.

चूंकि देखना सीखा, इसलिए सोचना शुरू किया. जीवन आरंभ करने के समय सुवर्णलता को यदि दक्षिण का एक बरामदा मिला होता, तो शायद सुवर्णलता के जीवन का इतिहास और ही होता.

वह मकान भी तो सुवर्णलता की आंखों के सामने ही बना था. अपने सम्मिलित पुराने मकान के हिस्से का रुपया मुट्ठी में पाते ही उसके बुद्धिमान जेठ, देवर, पति ने झटपट मकान की बुनियाद डाल दी. कहा, रुपयों के पर होते हैं. उन्हें गाड़ रखना ही अक्लमंदी है. गली के भीतर है सो ठीक, बड़े रास्ते के मुंह पर ही है, दो बार नहीं मुड़ना पड़ता.

उसी घर में ही तो तीस साल काट गयी सुवर्णलता. वहीं आठेक बार सौरी में गयी, हंसी, काम-काज किया, आराम किया, संसार की सारी ही लीलाओं में हिस्सा लिया—फिर भी, पिंजरे की पीड़ा के बोध से हर पल छटपट करती रही.

लेकिन ये बातें बहुत बाद की हैं. जब सुवर्णलता की कनपटी के पास रूपहले तार की झलक आयी, जब सुवर्णलता के लंबे उन्नत और ससकते गठन में क्षय शुरू हुआ.

पहले, जब सुवर्णलता अपनी पतित्यागिनी मां के निंदनीय इतिहास का संबल लिए सिर झुकाए ससुराल में बसने आयी थी, जब किसी भी उपलक्ष्य पर सुवर्णलता की सास सुवर्णलता को उसकी ब्याहता बैंगनी रंग की जबरजंग बनारसी साड़ी और बड़े-बड़े बूटेदार मखमली जाकिट से सजा-संवार देती और कोई मिलने-जुलने आती तो उसके सामने नमक-मिर्च लगाकर बहू और बहू के मैके की निंदा करती...तब?

सुवर्ण ने तब तक छूटते ही जबाव देना नहीं सीखा था. सास जब मां का प्रसंग उठातीं, वह शर्म से मर जाती और अंत तक सारा ही आक्रोश और अभियोग मां पर ही जा रहता.

क्यों, उसकी मां और सबकी मां-जैसी क्यों नहीं है? पति और घर को त्याग कर क्यों वह अपने बच्ची-बच्चों का मुंह हंसा गयी?

तो फिर बच्चों का स्नेह कुछ भी नहीं. उसके लिए जिदही सबसे बड़ी है? यहां तक कि चिट्ठी देकर भी कभी नहीं पूछती. मां क्या समझती नहीं कि सुवर्ण को बाधाएं बहुत हैं? वह यदि मां को चिट्ठी लिखने बैठे, तो घर में कोर्ट कचहरी नहीं बैठ जायेगी?

यों ही तो उस अपराध के चलते वह किसी को फूटी आंखों नहीं सुहाती. गाढ़े बैंगनी रंग की जबरजंग बनारसी साड़ी और जरी की बूटीदार लाल मखमली जाकिट पहनकर भाग्य-विताड़ित की नाईं जिस दिन सुवर्ण इनकी बहू होकर इस घर में आयी, तो एक ही दिन में उसकी उम्र तीन साल बढ़ गयी! घर पर सभी बोल उठीं, "नौ साल? उस धड़ंग-मुस्तंड लड़की की उम्र नौ साल? नौ साल की तो वह तीन साल पहले थी!"

विरूपता की वह दृष्टि आज भी नहीं गयी. सच पूछिए तो 'पतित' की नाईं ही देखी गयी है. यह हो सकता है कि मां 'बदचलन' होकर निकल नहीं गयी है, फिर भी कुल, घर, पति का त्याग, यही क्या मामूली अपराध है?

सो, दिनों तक अपराधिनी रही आयी थी सुवर्ण. फिर देखा, ये लोग सख्त के भक्त हैं, नरम के यम! जितना ही झुको, ये उतना ही सिर चढ़ते हैं, इसलिए उसने सख्त होना सीखा.

सुवर्ण नौ साल की उम्र में इनके घर आयी है तब से यहीं है. मां है नहीं, लिवा कौन जाये? बाप ने साहस ही नहीं किया. निकट पास की एक फुआ है, उसने एक बार लिवा जाना था, इन लोगों ने भेजा नहीं. कहा, 'उस कुल से अब नाता रखने की जरूरत नहीं.' कभी-कभार बाप मिलने आ जाता है, यही बहुत है. वह भी घूंघट काढ़कर उन लोगों के सामने मिलना! संभवतः इसी दुख से अब बाप भी अधिक नहीं आता. अतएव सुवर्ण को इन्हीं के साथ रहना होगा, इसलिए इन्हें आदमी बनाने की इच्छा होती है उसे, इच्छा होती है कि ये शौकीन हों, सभ्य हो, रुचि-पसंद का मतलब समझें. इनके साथ घर-गिरस्ती करेगी वह.

झगड़ा-झांटी, ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ के लिए मारामारी. सुवर्ण को यह सब फूटी आंखों नहीं सुहाता-फूटी आंखों नहीं सुहाता उसे सोच में ही पड़े रहना भी. वे लोग उदार आबोहवा का स्वाद नहीं जानते. किताब पढ़ना, कविता कंठस्थ करना नहीं आता... सोचते-सोचते सुवर्ण का मन खो जाता, याद आ जाती अपने आकस्मिक ब्याह की बात. ब्याह नहीं हो गया होता तो अब तक वह मैट्रिक पास की पढ़ाई पढ़ती होती.

हालांकि सुवर्णलता का यह जीवन भर का सपना था कि उसके लड़के उसे समझेंगे, उसके अपने होंगे! परंतु वे अपने नहीं हुए, उन्होंने उसे नहीं

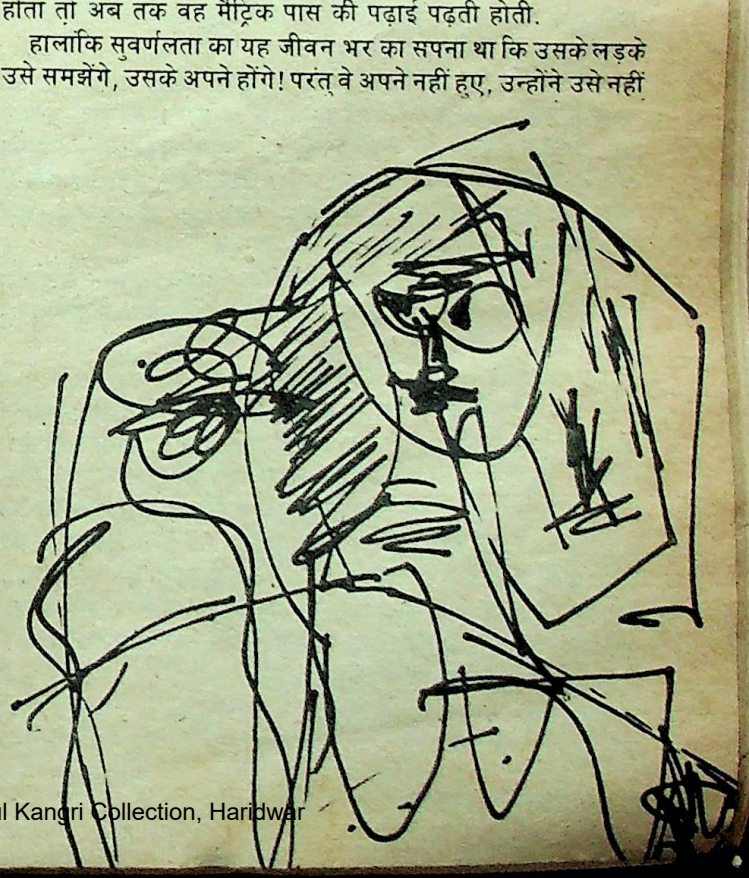

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा. संभवतः समझना चाहा ही नहीं. क्योंकि उसके लड़कों को अपनी मां की आशा के सपनों का कभी पता ही नहीं मिला ! उन लोगों ने केवल लड़ाकिन सुवर्णलता को ही देखा है, 'दक्षिण के बरामदे' की लोभी सुवर्णलता को कभी नहीं देखा.

इसलिए उन्होंने लड़ती हुई विक्षत सुवर्णलता के विकृत और हिंस्र चेहरे को ही देखा है, जिसने उनमें खीज और ऊब ही जगायी है. उन्होंने खोजकर नहीं देखा कि सुवर्णलता के भीतर 'वस्तु' थी.

सोचकर देखा नहीं कि वस्तु थी, सपना था, थी 'आदमी की तरह' जीने की दुर्दमानीय आकांक्षा! थी भव्यता, सभ्यता,सौकुमार्य! युद्ध की रसद जुगाते-जुगाते ही वह संपद जाता रहा.

मगर सोचकर देखें भी कब वे?

सुवर्णलता की लड़ाई का आज भी अंत हुआ है क्या?

नहीं हुआ है.

शायद हो कि युद्ध के कारण अब उतने प्रखर नहीं हैं, शायद हो कि अनुभूतियां भी अब उतनी अधिक तीव्र नहीं हैं, फिर भी सुवर्णलता एक समझौताविहीन संग्राम की नायिका है.

भद्देपन और कुश्रीता के खिलाफ लड़ते-लड़ते यह स्वयं कितनी भद्दी और कुश्री हो गयी है, सभ्यता-भव्यता-शालीनता को बरकरार करने की लड़ाई में उसने अपने चरित्र के सारे सौंदर्य को जिबह कर दिया है, इसका पता अब उसे नहीं चलता.

उसके लड़के मां की उस अपरिचिच्छन्न मूर्ति को ही देख रहे हैं.

इसलिए वे मां को घृणा करते हैं.

मां की ओर व्यंग्य की दृष्टि से देखते हैं.

सुवर्णलता के पूरे जीवन की यही कमाई है!

उनकी अभी-अभी खुली ज्ञान की आंखों के सामने अहरट उद्घाटित हो रहे हैं. मां-बाप की दांपत्य लीला के युद्ध और संधि के बहुतेरे कलंकित अध्याय!

वे यह जानते हैं कि वे सुवर्णलता की स्वप्न साधना की वस्तु नहीं, महज युद्ध हथियार हैं.

सुवर्णलता का अंतिम दृश्य वास्तव में बड़ा सुंदर और समारोह का रहा. सुवर्णलता परिपूर्णता का प्रतीक है.

सुवर्णलता की मृत्यु ऐसी उम्र और ऐसी अवस्था में हुई कि वह मृत्यु अवहेलना से भूल जाने की भी नहीं, शोक से हाहाकार करने की भी नहीं.

जगर-मगर जीवन, जगर-मगर मृत्यु!

सुवर्णलता से आजीवन किसने ईर्ष्या नहीं की? उसकी जिठानी-देवरानियां, ननदें, पड़ोसिनें, ये-वे. बचपन से ही डांट पर चली वह. किसी से डरकर नहीं चली, किसी पर रियायत नहीं की. वैसी दुर्धर्ष महिला मुक्तकेशी, उन्हें भी सुवर्णलता से हार माननी पड़ी. वह वैसा ही रौब-दाब चलाती आयी सदा. भाग्य भी सहाय हुआ. आसपास के बहुतों से सुवर्णलता का माथा ऊंचा हो उठा था.

रुपया-पैसा, घर-द्वार, सुख संपत्ति, क्या नहीं हुआ? संसार में गृहस्थ घर की बेटी-बहू की जो भी कामना की वस्तु है, सभी सुवर्णलता को नसीब हुई.

जयावती ने शांत स्वर में कहा, "तुम लोगों से एक अनुरोध करना है बेटे... मैं कह रही थी, अपनी मां के लिए काले भौंरा कोर की एक तशर की साड़ी और पालिश की हुई एक अच्छी खाट ले आते. इसकी बड़ी साध थी उसे! ला दोगे? ...सुवर्ण की यह बहुत दिनों की साध थी, एक काले भौंरे कोर की तशर की साड़ी पहनकर एक अच्छी-सी खाट और गद्दी पर सोने की. मन की बात खोलकर वह ज्यादा मुझसे ही कहती थी न! बातों-बातों में कितनी ही बार वह हंसते-हंसते कहती थी, इस जन्म में खाट पर तो कभी सोयी नहीं जया दी, मरने पर जब बेटों के कंधों पर चढ़कर जाऊंगी, तो वे जिसमें एक पालिशदार खाट पर मुझे ले जायें."

इस जनम में खाट पर कभी नहीं सोयी!

खाट पर!

इस जन्म में कभी!

यह कैसी अजीब भाषा है!

लड़कों ने अवाक होकर ताका.

मन की आंखों सारे घर की ओर ही ताका. इतना बड़ा घर, हर कमरे में जोड़ा पलंग और सुवर्णलता की यह शिकायत, यह शिकायत, यह अभियोग!

जयावती हंसी, रुकरुककर शांत भाव से बोली, "तुम्हीं बताओ बेटे, सोना नसीब ही कब हुआ? जब साबिक मकान में थी तब की तो बात ही छोड़ दो. ईंटों से ऊंची की हुई पाया टूटी चौकी पर फूल शैया हुई थी—कितने ही दिनों उसी पर काटा. दरजीपाड़ा का नया घर बनने के बाद हर कमरे में एक-एक चौकी हुई! खाट नहीं. चौकी! गोदी का लड़का लुढ़ककर कहीं गिर न जाये, इसलिए उस पर ही कहां सोयी,सदा जमीन पर ही सोती रही. तुम्हारे लिए ये बातें भूलने की नहीं होनी चाहिए... उसके बाद बिगड़कर, जिद करके उस गुफा से निकल आयी थी, मकान भी हुआ, मगर भोग कर सकी? तुम लोग एक-एक करके बड़े हुए, एक-एक करके बहुएं आयीं, उस बेचारी को अपना कहने को कोई कमरा भी कहां रहा? रात को रोशनी जलाकर किताब पढ़ने का रोग था उसे, लेकिन उससे तुम्हारे बाप की नींद में खलल..."

बातें कही तो बड़े शांत भाव से पर सुननेवालों का कलेजा हिम हो गया. और उनके पीछे खड़ी बहुओं का चेहरा लाल हो उठा. लेकिन वे झट से कुछ बोली नहीं.

लाचार, बजट बढ़ाना पड़ा.

मां की साध के नाते न भी हो, धनी की बेटी ताई के आगे अपना सम्मान बचाने के लिए!

सुवर्ण के जन्म-भर की साध मिटी.

सुवर्ण की अंतिम यात्रा देखने के लिए लोग टूट पड़े. ग्वालिन, धोबिन, नाईन, गोंयठेवाली— सभी आयी थीं.

बकुल शमशान नहीं गयी थी. मां की चिता को जलते नहीं देखा था उसने, संभवतः इसीलिए वह अपलक आंखों इधर देखती रही...

धीरे-धीरे जब आग बुझ गयी, तो उसे एक दिन की बात याद आयी. इसी छत के ही कोने में उसने दूसरी एक चिता को जलते देखा था. वह यह कभी भी नहीं समझ सकी कि उस दिन कौन-सी चीज राख हुई थी!

आज सोने से पहले मां की छोड़ी हुई सारी चीजों को एक-एक कर देख गयी वह. कोई पंक्ति, कोई हस्ताक्षर कहीं नहीं मिला. सुवर्णलता निरक्षर नहीं थी, इस परिचय को सुवर्णलता एक बारगी धो-पोंछ गयी थी.

बकुल छत के उस कोने में, जहां चिता जली थी, अंधेरे में चुपचाप बैठी रही.

कड़े खटखटाने की आवाज होते ही जग्गू ने आकर दरवाजा खोल दिया.

अवाक् होकर बोले, "ओ तू? इस धूप में? किसके साथ आयी है?"

"दाई के साथ."

"दाई के साथ अकेली आ गयी? ऐं बड़ी हिम्मत है? लेकिन यों एकाएक किसलिए?"

बकुल ने धीरे कहा, "आपका प्रेस देखने आयी हूं ताऊजी."

"प्रेस? मेरा छापाखाना? अब देखने आयी है तू?" जग्गू हा-हा करके हंस पड़े लेकिन बकुल को लगा, वह बूढ़ा आदमी रो उठा है.

हंसी ही थी. हंसना बंद करके जग्गू बोले, "छापाखाना अब नहीं है मैंने उठा दिया."

"उठा दिया!" बकुल क्षण-भर सन्न-सी रहकर बोली, "अच्छा ताऊजी जो सारी पांडुलिपियां छपती हैं, वे पांडुलिपियां फेंक दी जाती हैं?"

जग्गू ने संदिग्ध गले से कहा, ..."तू अपनी मां की वह कापी ढूंढ़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी है?"

"न न, यों ही. आप बैठिए न! पांडुलिपि रहती नहीं है?"

"रहती हैं. थी भी," जग्गू सहसा चिल्ला से उठे, "गुदामघर में ढेर लगी पड़ी थीं...वह कंबख्त मिताई...जब देखा कि प्रेस उठ रहा है, सारा कुछ झाड़-पोंछ कर शीशी-बोतल वाले को बेच दिया..."

वकुल सड़क पर आयी.

अचानक ही पीछे की ओर पलटकर खड़ी हो गयी और शायद उस दांत बिदोरे घर को ही मन ही मन प्रणाम करके मन ही मन बोली, "मां, मेरी मां! तुम्हारी जो जल गयी, खो गयी, लिखी-अनलिखी सारी ही बातें मैं ढूंढ निकालूंगी, नये सिरे से मैं सबको लिखूंगी. मैं अंधकार की गूंगी पीड़ा का इतिहास दिन के उजाले की पृथ्वी को बता जाऊंगी...

यदि वह पृथ्वी उस इतिहास को सुनना नहीं चाहे, यदि अवज्ञा की आंखों देखे, तो मैं समझूंगी उजाला उसका उजाला नहीं, झूठी चमक की छलना है! उसने अभी भी ऋण चुकाने का पाठ नहीं लिया है!

और, सामने के रास्ते बढ़ चली बकुल-पीछे—पीछे अपने साथ आनेवाली दाई को भुलाकर ही!

वकुल उर्फ अनामिकादेवी

बन-ठनकर खुशी से छलकती हुई शंपा आकर खड़ी हुई, "सिनेमा जा रही हूं बुआ! कमाल की एक पिक्चर आयी है लाइट हाउस में! जा रही हूं, हां? संवरने में देर हो गयी. तीरथ के कौए की तरह वह अभागा छोरा टिकट लेकर हा किये बैठा होगा. और हजार भला-बुरा कह रहा होगा. मैं जा रही हूं, मां से कह देना, हां?"

खुशी से उसके चेहरे को अनामिका देवी ने कभी देखा नहीं है? रोज ही तो देखती हैं. फिर भी क्यों आज हठात् 'बहुत युगों के उस पार से' आकर आषाढ़ ने उन्हें ढंग लिया. उस छाया में हठात् उन्हें शंपा वकुल-सी लगी!

हवा में बहती-सी उसकी देह से मिलती हुई हवा-साड़ी की जगह स्वदेशी मिल की मोटी साड़ी का एक हिस्सा देख पायीं मानो.

वकुल की वह साड़ी कुंजीबंधे आंचल की तरह घरेलू ढंग से पहनी हुई, खींच-खींचकर बालों का ताड़-सा जूड़ा बंधा, पैर खाली ढंग से वकुल के हाथ में दो किताबें.

लेकिन एकाएक शंपा वकुल क्यों लग रही है? उसका चेहरा तो शंपा के समान उमंग से झूमता हुआ नहीं है!

वकुल भीरू, कुंठित और नम्र है.

वकुल में दुस्साहस की भंगिमा कहां?

नहीं है.

फिर भी शंपा की ओट किये वकुल आ खड़ी हो रही है. और गरदन झुकाये खड़ी उस वकुल को जाने कौन तो डांट रहे हैं, "खबरदार अब कभी उनके घर मत जाना. हरगिज नहीं. इतनी बड़ी लड़की हो गयी, रात-दिन नाटक-उपन्यासों का श्राद्ध कर रही हो, और इतनी बुद्धि नहीं है कि किस बात से निंदा होती है?"

वकुल के चेहरे पर दुस्साहस की छाप नहीं, फिर भी वह एक दुस्साहसिक बात बोल उठी. शायद इसीलिए शंपा से हठात् मिलती-जुलती लग गयी.

बोली, "एकाएक निंदा क्यों होने लगी? हमेशा ही तो जाती रही हूं."

"हमेशा की तुलना इस समय से मत करो." टूटे-टूटे से प्रौढ़ गले ने कहा, "अब तुम्हारे सिर पर मां नहीं है. और उनके यहां का बड़ा लड़का..."

हां, ऐसी एक असभ्य बात अनायास ही बोल गये वह.

वकुल के क्षीण गले से निकला, "ठीक है, अब नहीं जाया करूंगी. आज केवल ये दो पुस्तकें लौटा आऊं."

"कौन-सी पुस्तकें?"

"ऐसी ही हैं."

"ऐसी से मतलब? नाटक-उपन्यास?"

वकुल चुप.

"वही तो! वही नाश की जड़ है. तीन पुश्त की एक ही बीमारी. सुना है नानी को थी, मां को तो सोलहो आने थी, अब लड़की को, देखूं कैसी किताबें हैं?"

वकुल के हाथ से किताबें ले लीं, मानो छीन ली हों. खोलकर देखा. उसके बाद व्यंग्य से बोले, "ओ कविता! रवि बाबू! यों ही कह रहा हूं मैं कि तीन पुश्त की एक ही बीमारी! हूं ठीक है. मैं दे दूंगा. किसकी हैं? जरूर उस निर्मल की होगी?"

वकुल बुत बनी खड़ी रही, जवाब नहीं दे सकी वह.

प्रौढ़ के गले से एक अक्षर का शब्द निकला, "हूं."

उस शब्द में अंतर्निहित धिक्कार से पत्थर की वकुल आषाढ़ की छाया की आड़ में खो गयी. उस शून्यता के ऊपर शंपा की उमंग-भरी मूर्ति चमक-सी उठी.

हां, वकुल के बड़े भाई ने यह गुरु उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था. किसी मौके से वकुल लुक-छिपकर बगल के मकान के लड़के के आमने-सामने होती है या नहीं. यह देखने का भार.

अच्छा, उस युग में बाल्य और कैशौर्य की सीमा रेखा उम्र की किस रेखा पर खींची जाती थी?

वकुल यह नहीं जानती.

वकुल दस-ग्यारह साल की उम्र से सुनती आयी है, "धड़ंग लड़की, तुम्हें बरामदे पर खड़े रहने की इतनी क्या जरूरत पड़ी है?... इस घर-उस घर घूमती-फिरती रहती है. जाकर गिरस्ती के काम-काज करो न? छत पर घूम रही थी? क्यों? बड़ी हो गयी, वह ख्याल कब होगा?"

बड़ा भाई कहता था, पिता कहते थे.

ज्यादा बड़ा भाई कहता था.

वकुल की मां जिंदा थी, तब तक वकुल को फिर भी एक बल था. बड़े बेटे का पारिवारिक पवित्रता की रक्षा के लिए यह कर्त्तव्यपालन देखकर मां बिगड़कर कहती, "तुझे सब बातों पर इतनी नजर रखने की क्या पड़ी है? मना करना होगा तो मैं मना करूंगी."

"तुम नजर रखतीं, तब तो कोई बात नहीं थी," बड़ा लड़का कहता, मां के मुंह पर ही मुंह फुलाकर कह देता, "मगर देखता तो नहीं हूं कि वह नजर रखती हो. बल्कि हम लोगों से होड़ लेकर बेटी को उकसाते ही तो देखता हूं. लड़की बड़ी मनदुलारी है न!"

मां चुप हो जाती थीं.

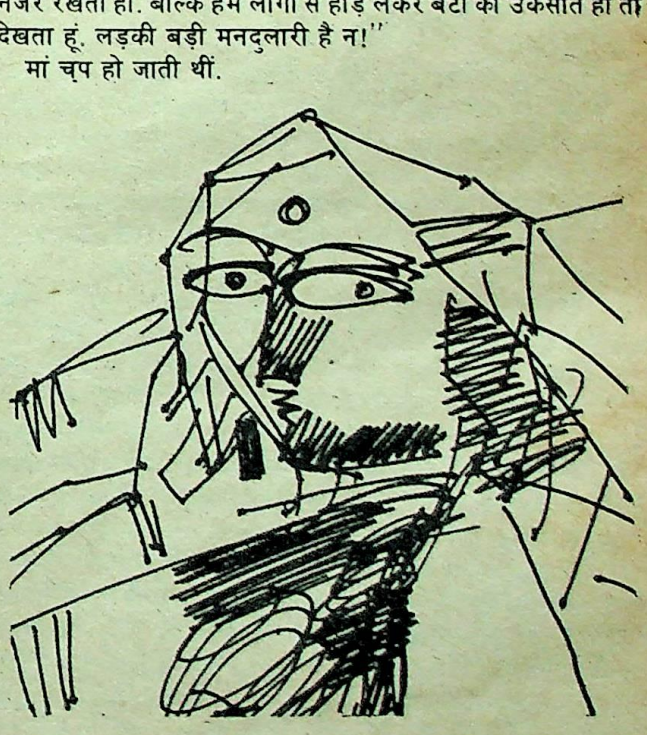

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते के दक्खिनी इलाके में राजेंद्र लाल स्ट्रीट के बिलकुल रास्ते पर उम्र की छाप लिये इस मकान के दुतल्ले पर साबिकी ढंग के लंबे बरामदे की ऊंची दीवार की सीढ़ी के बिलकुल सामने चौड़े फ्रेम में बंधा जो मुखड़ा देदीप्यमान है, वह मुखड़ा इस मकान के मूल स्वामी स्वर्गीय प्रबोधचंद्र मुखोपाध्याय का है.

मरते समय प्रबोधचंद्र अपने मकान के तिनतल्ले की छत, बरामदा, आदि हड्डी जलानेवाली इस छोटी लड़की के नाम क्यों वसीयत कर गये थे, यह एक रहस्य है. पर कर गये थे वसीयत—अपने बेटों को चौंका करके, विचलित करके और परगोत्र में गयी हुई बेटियों को ईर्ष्यालु बनाकर.

पिता के गोत्र में अविचल रहकर अनामिका निरंतर साहित्य सेवा करती चली जा रही हैं.

अनामिका के ख्याल में प्रबोधचंद्र जैसे रक्षणशील ब्राह्मण के यहां अनब्याही रह जाने का दृष्टांत विरल है. मगर फिर भी यह अविश्वसनीय घटना घटी थी. तीन-तीन लड़कियों का ब्याह उन्होंने यथारीति ठीक समय पर किया था और छोटी बेटी के समय वह हार गये, सो बेटी की जिद से या उसकी 'चिर कुमारी' रहने की कामना से नहीं, नितांत अपने ही आलस्य से.

या केवल आलस्य नहीं, और कोई सूक्ष्म कारण था.

उनके चार बेटों और चार बेटियों में सात तो हाथ से निकल गये थे. बेटों में से तीन को ले लिया था बहुओं ने, अर्थात् परायी बेटियों ने. और चार लड़कियों में से चंपा, चंदन और पारुल नाम की बड़ी, मंझली, संझली बेटियों को बदस्तूर पराये बेटों ने हथिया लिया था. शायद इसीलिए जामाताओं को प्रबोधचंद्र फूटी निगाहों भी नहीं देख सकते थे. स्त्री-वियोग के बाद तो और भी.

लिहाजा अंतिम भरोसा यह छोटी.

बड़े भाई लोग इस प्रश्न पर माथा खपाने नहीं बैठे.

और फिर बाप की वसीयत!

उस वसीयत की बदौलत वकुल अगर इस घर का एक हिस्सा दखल किये रह ही सकती है, तो उसे घर से निकालने की चेष्टा से लाभ भी क्या? वह पति को भी साथ लेकर यहीं आ बैठे तो?

इसीलिए खास किसी कारण से नहीं, विशेष कोई इतिहास की सृष्टि करके नहीं, नितांत मध्यवित्त, निहायत ही मध्यचित्त इस परिवार की लड़की उस समय समाज के नियम की वज्र-गांठ से छिटककर आज के समाज में विचर नहीं है.

लिफाफे पर यहीं का पता है, लेकिन नाम बिलकुल अपरिचित. और मार्फत प्रबोधचंद्र के नहीं. चिट्ठी चाहे जिसकी आये-पते में साफ-साफ अक्षरों में 'मार्फत प्रबोधचंद्र मुखोपाध्याय' तो लिखा ही रहेगा.

इस चिट्ठी की अधिकारिणी कौन है? किसी बहू का छद्म नाम है यह?

"नहीं है? नहीं है तो यह अनामिका देवी जी कौन हैं, सुनूं जरा?"

वकुल ने मुस्कराकर कहा, "हकीकत में कोई भी नहीं."

"हकीकत में कोई नहीं! मगर उसके नाम से चिट्ठी आती है. खूब! रखो चिट्ठी. मैं जानना चाहता हूं कि यह अनामिका देवी कौन हैं!"

लेकिन वकुल ने चिट्ठी रखी नहीं... और वह कमरे से चली गयी. पिता का क्या हाल हुआ. ताका तक नहीं.

किंतु कुछ ही दिन पहले तक वकुल आंख उठाकर बाप की ओर ताक भी नहीं सकती थी. हठात् उसे यह साहस किसने दिया? उस अनामिका देवी ने? जिसके नाम से किसी पत्र के संपादक ने लिखा था, "आपकी कहानी स्वीकृत हुई. अगले अंक के लिए और एक कहानी भेज दें तो आभारी होऊं." या कि निर्मल के विवाह के सिलसिले में जो वकुल उद्घाटित हुई थी, उसी वकुल ने यह तय किया था कि पैरों तले की माटी कहां है, उसे खोजना होगा. शायद उसे खोज भी लिया था, उसने. इसीलिए एक कापी के कोने में जाने उसने कब लिख दिया था— "डरते डरते एक ऐसी अजीब आदत हो जाती है जिससे यह याद ही नहीं रहता कि डरने का कोई कारण नहीं है. इस आदत को छोड़ना होगा."

और वकुल की बड़ी भाभी ने चकित होकर कहा था, "अजी किताब तो लोग नाम-यश के लिए ही लिखते हैं, जानकर कोई नाम बदलकर लिखता है, यह तो कभी नहीं सुना. रचना तुम्हारी ही है, यह साबित कैसे होगा? मान लो, मैं ही यदि कहूं—मैं ही अनामिका देवी हूं!"

"कहो न, एतराज क्या है?" कहकर हंसती हुई चली गयी थी वकुल.

इसके पहले भी उसकी रचना छपी थी, लेकिन वह खबर खुद वकुल और निर्मल के घर तक ही सीमित रही, इस घर तक उसका धक्का नहीं पहुंचा. अब की धक्का दिया इसलिए धक्का उठा.

संझली दी पारुल ने और एक धक्के की खबर भेजी थी.

लिखा था, "इधर तो तू मजे का एक कांड कर बैठी. तेरी कहानी पर पुरुष समाज में जोरों की हलचल है. 'नवीन भारत' पत्रिका यहां बड़ी लोकप्रिय है न!... लोग कह रहे हैं, निरूपमा देवी, अनुरूपा देवी, प्रभावती देवी, इन्हें तो जानते हैं, यह नयी देवी जी कौन हैं? हो न हो, महिला के छद्म नाम में कोई पुरुष है...लिखने की शैली जैसी जोरदार है..." यानी जोरदार होना पुरुषों का ही एकाधिकार है.

"तेरे बुद्धिमान बहनोई ने लेकिन लेखिका का असल परिचय किसी को नहीं बताया, किंतु स्वयं तो वह जानते हैं, वह बेहद अपमान की जलन में जल रहे हैं. क्यों, पता है? वह शायद उस कहानी के खल-नायक के रूप में अपनी छाया देख रहे हैं.

"मैं लाख समझाती हूं, कहानी का नाम जब 'आईना' है, तो उसके सामने खड़े होने पर अपनी छाया तो दीखेगी ही, पर तुम क्यों अपने को... मगर सुनता कौन है ऐसी अच्छी बात... मैंने यह भी कहा, तुम अपनी ही छाया क्यों देखते हो? उतने निष्ठुर हो तुम?

"इस सांत्वना से लेकिन कोई नतीजा नहीं निकलता."

नहीं होता है. वैसी सांत्वना से कुछ नहीं होता. इसका अनुभव अनामिका देवी को बहुत बार हुआ है. अपने दीर्घकाल के लेखिका जीवन में उन्हें बहुत बार कठघरे में खड़ा होना पड़ा है. कसूर यह है कि उन्होंने अपने परिचितों में से चुन-चुनकर किसी-किसी की हेठी करने के लिए अपनी कहानियों के नायक-नायिकाओं की सृष्टि की है...

और बार-बार ऐसा अनुरोध भी आता. "मुझ पर लिखो..."

नहीं लिखो तो सोचता है, मेरी अवहेलना की.

उस समय निर्मल मोतिहारी में नहीं था, बदली होकर कहीं और चला गया था. जहां बंगला पत्रिका दुर्लभ थी, फिर भी खोज-खोजकर पढ़ता था. और छुट्टी में घर आने पर उसी नितांत छोटी उम्र के समान ही कोशिश करके बहाना ढूंढकर अनामिका देवी से भेंट कर जाया करता था.

दुनिया में इतने लोगों के रहते, एक आदमी और एक आदमी से मिलने के लिए छटपटा रहा है, यह पकड़ में आ जाना बेहद शर्म की बात जो है! उम्र कितनी भी क्यों न हो उनकी, पकड़े जाने पर ही मारे गये!

ऐसी ही एक झूठे उपलक्ष्य की घड़ी में गहरी दृष्टि डालकर निर्मल ने कहा था, "इतनी कहानियां लिखती हो, हमारी भी लिखो न?"

वकुल तो उस समय अनामिका के कैंचुल में कैद थी, उस कैंचुल को उतार फेंककर वकुल के रूप में खिल पड़ने का उपाय कहां था उसे? उसे तो अब सदा-सदा के लिए इस कैंचुल के बोझ को ढोते ही फिरना होगा. यह कैंचुल चीज ही बड़ी भयंकर है. पहले ऐसा लगता है कि शायद मैंने अपने आप ही उसे बदन पर डाल लिया है, जब जी चाहे उतार दूंगी. मगर ऐसा होता नहीं. धीरे-धीरे वह नाग-पाश में जकड़ लेती है, छुटकारा नहीं मिलता.

लाचार अनामिका देवी को अनामिका देवी होकर ही रहना पड़ेगा. अब कभी भी वकुल हो सकना संभव नहीं होगा, कुछ और भी होने की इच्छा करने से वह कभी नहीं हो सकेगा. □

संक्षिप्त रूपांतर : कांता/बीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़िया उपन्यास-अंश

माटीमटाल

गोपीनाथ महांती

स्वयंवद्

जीवन में मैंने जो कुछ देखा और अनुभव किया है और जैसी मेरी स्वाभाविक सहानुभूतियां हैं, उस सबके कारण मैंने प्रायः ही शोषण, अत्याचार, अन्याय, क्रूरता और निर्दयता की भर्त्सना की है और ढोंग, पाखंड, भ्रष्टता और मिथ्यात्व को नंगा किया है. इनसे उन पर विपत्तियां आती हैं जो मनुष्यता के स्तर से ही गिर चुकते हैं. मैं तो उन हजारों-लाखों में से केवल एक हूं. जो आज के इस क्रूर और अन्यायपूर्ण जीवन-जगत में सामाजिक न्याय के लिये पुकार कर उठते हैं!

यह अवश्य है कि मेरे लेखन का विषय आदिवासी, हरिजन, मजूर, किसान, निम्न मध्यवर्ग, और अन्य दलित लोग हैं. किंतु यह इसलिये कि मैं इन्हें मानवप्राणि से भिन्न किसी और रूप में देख ही नहीं सका. मेरी दृष्टि में ये मात्र सामाजिक या आर्थिक धारणाओं के भाव में कभी आये ही नहीं. यही शायद कारण भी हुआ कि इनकी स्थिति मुझे और भी अधिक त्रासिक लगी.

किंतु अनजानी और अकस्मात आयी आपदाओं से अंतिम क्षण तक जूझते हुये जो रूप उसका सामने आता है वह एक त्रासिक वीर नायक का होता है. उसके रोम-रोम में जिजीविषा बसी होती है जो अंतिम क्षण तक बनी रहती हैं. इसीलिये, कैसी भी परिस्थिति आये, वह खोजता है तो केवल प्रकाश, उल्लास. सृजन करने में उसे सुख मिलता है, परिस्थिति और परिवेश को अनुकूल बनाने में वह जुटा रहता है, और जहां उजाड़-विजन हो वहां अपनी बस्ती बनाता है. इस प्रकार विश्व में अपनी हस्ती को वह बनाये रखता है और आस्था, प्रेम, समवेदना, सद्भाव की भित्तियों पर अपने संसार को खड़ा करता है. स्वतंत्रता का वह प्रेमी होता है, तो भी कितनी ही बातों में उसे औरों के अधीन रहना पड़ता है. अपना निजी व्यक्तित्व और अपनी एकांतता उसे प्रिय होते हैं: पर प्रिय उसे मित्रता, मेलजोल, और समाज-वास भी लगते हैं, संग-साथ और सहचरता की ललक उसमें जैसे जन्मजात होती है.

8 नवंबर, 1974 को
पुरस्कार समर्पण समारोह
के अवसर पर व्यक्त विचार

रवि के जाने के बाद बंधमूल गांव में बट महांती के घर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, बाहर के लोगों की आंखों में कल जो था आज भी वही है.

बाहर के लोगों की नजर में न आये किंतु घर में दो अधेड़ उम्रवाले थे ही—बट महांती और उनकी पत्नी. दोनों ही यंत्र की तरह अपने-अपने काम में लगे हैं फिर भी दोनों को ऐसा लगता है जैसे उस घर में उनका शरीर है प्राण नहीं. खाली घर खड़ा है, आदमी नहीं. बट महांती खाने बैठे हों या कभी उनके लिए पान का बीड़ा लाकर देते समय रवि की मां को अवसर मिलता है तो पति-पत्नी एक-दूसरे को देखते हैं और बिना भाषा के ही केवल आंखों ही आंखों वही बात चलती है—

एक के मन की बात दूसरा समझता है पर मुंह कोई नहीं खोलता. बट महांती बाहर-बाहर घूमते, रवि की मां घर में रहकर कभी थोड़ा-बहुत रो लेती. मुंह पोंछकर काम में जुट जाती.

खाना-पीना हो जाने के बाद बाड़ी की ओर बरतन रख दिये जाते तो, पता नहीं कहां से चील की तरह चली आती एक ताक में रहनेवाली कुतिया. चार पिल्ले दिये थे, दो कहीं गये, और दो मां के पीछे-पीछे भागते रहते. ऐसे ही कितने बच्चे वह बरस के बरस जनती. कहां जाते वे सब!

अपने मन के साथ मेल खाती कितनी ही ऐसी बच्चोंवालियां रवि की मां की आंखों में पड़तीं.

घर से चले गये अपने दोनों बेटों के लिए शोक में डूबी रवि की मां चारों ओर देखती. पहले कभी सोचा ही नहीं, ऐसी कई बातें मन मे आ जातीं. गाय-बैलों की ओर देखती, कौन किस गांव का है, किसकी मां कहां है! बछड़ा धूल उड़ाता, नाचता-नाचता लौटने के समय कितना रंभाता! किस गांव का लड़का कहां आकर किसके लिए हल चला रहा है. और फिर मां-बेटों की भेंट नहीं. ओस की बूंद जमने की तरह दोनों आंखों में आंसू डबडबा आते. आंसू सूख जाते, उड़ चलती उदास चिंता, निष्फल हवा के झोंके की तरह, चेतना में सूखे दुख की तरह, केवल धूल और अंधड़ की तरह बार-बार लगा ही रहता, भुलाया नहीं जा सकता.

बट महांती सब कुछ जानकर भी चुप साधे रहते. उनकी स्त्री ने समझा-बुझाकर द्विजवर आचार्य को मध्यस्थ बना कर भेजा. उसमें उनका मन नहीं लिया गया. वे चुप रहे, प्रतीक्षा कर रहे थे. द्विजवर नास्तिवाणी लेकर आया—इस पर बट महांती ने अपमान का अनुभव नहीं किया, क्रुद्ध भी नहीं हुए, उलटे उनका अहम् पूंगी बजाकर ऊपर उठा. उन्होंने अर्थ लगाया—सिंधु चौधरी डर गया, उनसे डर कर इनकार कर दिया है. फिर मन अपनी प्रशस्ति खुद बखानने लगा—बट महांती! बट महांती! उस स्थिति में बेटा भी एक प्रतिद्वंद्वी के अलावा और कुछ नहीं है और वह हार गया है, कितना ही जोर लगाये हारता ही रहेगा.

दिन गया, रवि नहीं लौटा. पहले लगता था वह बच्चों का खेल है, मोटी बुद्धि का है वह, जिद्दी है, ग्रह का खिलौना हो गया है. जोतिषियों को बात-बात में उन्होंने कहा था—देखो तो अभी उसकी क्या दशा है? जोतिषी ने बताया उसकी दशा अभी खूब 'कर्म' की चल रही है.

उधर सारी खबर पाकर बड़े बेटे कवि ने लिख भेजा कि आप कठोर व्यवस्था का आसरा लें. फालतू आदमी की तरह घूमता-फिरता यदि रवि कहीं राजनीति में घुस गया तो उसके इस रवैये से इधर मेरी चाकरी डगमगा जायेगी. घर पर होता तो मैं उसे ठिकाने लगा देता, किंतु मुझे छुट्टी नहीं. कवि की चिट्ठी पढ़कर बट महांती तनिक हंसे, फिर चिट्ठी को दाब दिया.

किंतु रवि बीमार पड़ा नहीं, ठोकर खायी नहीं; खबर मिली कि वह वहां छोकरों को मिलाकर जाने क्या-क्या कर रहा है. वे लोग गांव में असमर्थ लोगों का घर बना देते हैं, खेत का काम कर देते हैं, गांव में कूड़ा-कचरा साफ करते हैं, गड्ढों में माटी भर देते हैं, रात में बूढ़ों को पढ़ाते हैं, लोगों को नयी-नयी बातों से प्रभावित करते हैं. फूलशरा गांव में हलचल मची है. जो आता है रवि की बड़ाई करता है.

रवि वहां भी नेता होगा! टूटेगा नहीं वह!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचने को फ़ुरसत नहीं. दोल पूनम सिर पर आ गयी, झांझ मृदंग की झंकार में देश हुलसा था. ठाकुरजी यात्रा को निकलेंगे विमान में. बट महांती जुट पड़े. केवल ठाकुरजी का हम काम करने में लगे रहे.

इस व्यस्तता के बीच, जब मौक़ा पाते, ठाकुरजी को बट महांती अपनी इच्छा जनाते और सांत्वना खोजते. बट महांती पूछते—कौन-सा उपाय करूं कि बेटा बात माने. उसका मन फिरे?

रवि ने पैसे मांगे नहीं. इतने दिन हुए उसे गये, कोई सहायता के लिए खबर भी भेजी नहीं. उलटे उसके जाने के बाद दो बार फूलशरा गांव से सब्जी का टोकरा आ चुका है. फूलशरा तो नाम की जमींदारी है, फल-फूल वहां से कभी आते नहीं, लगान बाकी न रहने भर से ही वहां के तहसीलदार धन्य भाग मानते. और फिर भारवाहे ने बताया कि वहां के कचहरीघर का चेहरा बदल गया है, कचरा साफ हो गया है घास साफ-सुथरा हो भीतों में माटी लीप दी गयी है, अहाते में नये घर बन रहे हैं, जब देखो बस गांव के लोग भरे हैं, और साथ-साथ रवि के बताये कितने ही नये-नये कामों में गांव वाले भिड़ गये हैं, उद्यम चल रहा है कि सारा गांव मिलकर एक गोठ होगा.

तब नयी दुनिया गढ़नेवाले छोकरों की बचकानी बातों को बट महांती ने पतली बाकी हंसी में ऊपर उड़ा दिया था, परंतु अंदर ही अंदर कितनी ही काल्पनिक चिंताओं की कोंच खाकर वे चौंक पड़ते. मानो वे किसी और की बात सुन रहे हैं, जिसे वे नहीं मानते, बस दूर ही दूर से सुना-सुनाया परिचय मिल रहा हैं.

अपने अतीत को याद कर बेटे के मन की अवस्था समझने की चेष्टा भी की थी. कुछ याद नहीं आया, जिससे कि वे मन ही मन रवि का कोई रूप गढ़ सकते.

बेकार बचकानी हा-हा! यह सब भी दो दिन में उड़ जायेगा. छोड़ो, बाधा देने की जरूरत नहीं, पुआल की आग की तरह अपने आप ही सुलग-सुलगकर सब काला पड़ जायेगा. सोचकर हंसी आ जाती, अभिज्ञ मन का सूक्ष्म विचार अर्थ निकालता—ब्याह होने से पहले छोकरों के मन में जब गरमी पैदा होती है, तब वे ऐसे ही कोई चिनगारी निकाल कर झड़ जाते हैं.

रवि का नया आंदोलन उसी रास्ते का है, पर पानी बहेगा ही, रोकने से कुछ होगा नहीं.

कवि की बात पर उन्हें अब और विश्वास नहीं है. वह गांव का नहीं, शहर का ठहरा. वह समझ नहीं पायेगा. वह घर कभी आता नहीं, घर की खबर लेता नहीं. दो-तीन महीने में एक-आध चिट्ठी. कवि की अपेक्षा रवि कल अधिक जुड़ा रहता है.

फूलशरा गांव में—

कचहरी के अहाते से सटकर दाहिनी ओर साधु जेना का घर-द्वार था. कचहरी के अहाते में घर से थोड़ा हटकर बीच में एक बाड़ है. साधु जेना की बाड़ी इस नयी बाड़ी से मिल गयी है. उसकी भी मेढ़-बाढ़ और नहीं है. उसके उधर गंगा हलवाई की बाड़ी, उमा पशायत की बाड़ी, रघुवा नाई की बाड़ी थी. सब की बाड़ियां उठकर एक में शामिल हो गयी हैं. रघु जेना की बाड़ी के उधर पड़ता है ज़मींदार का एक तीन एकड़ का पुराना पोखर, चारों ओर से भरता आ रहा है. बीच में गड्ढे की तरह थोड़ा पानी रहता है. पोखर के इधर ऊबड़-खाबड़ होकर पांच एकड़ ज़मीन, नाम पांचमाणिया है, बिना आबादी का वन है, केवल छोटी-छोटी कांटेदार झाड़ियां और इधर-उधर जगह-जगह बेंत के झुरमुट, बहुर सारे शरीफ़े के पेड़, थाक की थाक थूहर, केवड़े, कंसारी आदि, केवल गांव के गोंधि, सांप, गीदड़ के रहने की जगह. ऊंची बालुई जगह देखकर क़तार की क़तार नागफनी फैली पड़ी है, सिर पर एक-एक लाल फूल उस वन के बीच टीले पर हाथ पकड़े खड़े होने की तरह दो पालिधी के पेड़, लाल-लाल फूलों से लदे हैं. अनापादी के पूर्व की ओर चरेंगी नदी की पतली धारा तिरछी-तिरछी मुड़कर चली गयी है. नाम की नदी होने पर भी एक खाई भर है, बंजर ख़त्म होते ही खेत शुरू होता है.

चमचमाती दोपहर में उसी 'पांचमाणिया' पर इधर-उधर गछ काटनेवाले लोगों का कलरव सुनाई पड़ रहा था. स्त्री-पुरुषों का मिला-जुला स्वर. रवि के निर्देश में वे वन काटकर साफ कर रहे थे. टीले पर कंटीली झाड़ियां कटी पड़ी थीं, उनके ढेर के बग़ल में तीन जने युवक खड़े थे कंधे पर चमकती कुल्हाड़ियां रखे हुए—रवि, बई मलिक और गंगा हलवाई. बूढ़ा नंद तहसीलदार 'आं' किये पालिधी की ओर देख रहे थे, मानो वे उसके फूलों के सौंदर्य से मुग्ध हों.

रवि ने कुल्हाड़ी उतारकर कहा, "बातों ही बातों में बहुत समय चला गया, अब काम हो." इसके बाद पालिधी पर पहली चोट दी, फिर बई मलिक ने, फिर गंगा हलवाई ने. दूसरी बार चोट पड़ने से पहले ही नंद तहसीलदार चिल्ला उठे, "ठहरो, बात तो सुनो!"

रवि हंसते-हंसते लोट-पोट हो गया. कुल्हाड़ी को कंधे पर डाल पीछे कमर मोड़कर कहा, "अब ठहर-ठहर क्या, अब हमारी बातें करना और बाक़ी रह गया है, मौसा?" बूढ़े तहसीलदार बाबू को मौसा कहने में तब से उसकी जीभ अभ्यस्त हो गयी थी; उसी सूत्र से 'मौसा' पर जोर भी दे देता. कहा, "लोगों ने जमकर काम करना शुरू कर दिया, अब जल्दी-जल्दी उस वन में झुरमुट को भी साफ-सुथरा कर दें तो काम बने. और अब प्रतीक्षा किसलिए?"

नंद ने कहा, "किस घर के बेटे हो, किस घर के पोते हो, इस तरह इनके साथ मज़दूरों की तरह बनकर कांटे-झाड़ी रौंदकर कुल्हाड़ी चलाये बिना नहीं चलेगा, बाबू?"

रवि ने कहा, "हम सब मज़दूर हैं, सिर से कोई कितना ही सोचे, हाथ से काम किये बिना आदमी होकर नहीं रह सकता. छोड़ो, तुम क्या कहते हो कहो, मौसा, मैं रुकूं.... ये काम करेंगे?"

नंद तहसीलदार का मुंह जल गया; किंतु बई मलिक ने फिर कहा, "बूढ़े बाबू तो माला फेरनेवाले ठहरे, बड़े बाबू विदेश में रहते हैं, वहां वे भले और उनकी चाकरी भली. जमीन-बाड़ी, काम-धंधा सब देखते हैं छोटे बाबू. खुद कर्ता ही खड़े होकर बता रहे हैं कि यह झाड़ी का वन साफ़ होगा, वह बाड़ कटेगी, वह पोखर खुदेगी, वह जमीन ऐसे नहीं वैसे काश्त होगी. अच्छा, उन्होंने तुम्हें रखा है अपना काम करने के लिए ही न. उन्हें जो भला लगा, वह करेंगे. उनकी 'हां-हां' में तुम्हारी 'ना-ना' क्यों है बाबू? काम बंद करनेवाले तुम हम कौन हो, यही समझ में नहीं आता."

अवाक् खड़े बूढ़े नंद रवि की ओर देखते रह गये. बई मलिक की चेतावनी से उनको होश आ गया. नजर झुक गयी. सोचा, यह पागल है. इसमें मेरा क्या जाता है? फालतू विरोध करना ठीक है क्या!

याद आया, यहां का हालचाल बट महांती को बताने के लिए आदमी भेजा था. बट महांती ने सब सुना, कोई आदेश नहीं दिया. कंडुरी बारीक ब्योरा लाया था. बूढ़े बाबू ने पूछा था कि 'रवि ठीक है तो?'—'जी, हां.' 'सब गोविंद की लीला है!'—बूढ़े बाबू ने कहा था.

याद आया, ऐसे ध्वंस हो गये हैं कितने ही बड़े-बड़े जमींदार, कितने राजा-महाराजा केवल अपने खयाल के पीछे-पीछे भाग कर. किसी ने पहाड़ों पर पोखर खुदवाये हैं, तो किसी ने गड्ढों में महल चिनवाये, किसी ने कुत्तों का झुंड पाला है; तो किसी ने बाघ के झुंड की प्रतीक्षा की है, कोई एक-एक कर पत्नियां जुटाता गया, और किसी ने राज-भर के भाटों-नटों को जमा कर उन पर खजाना लुटाया है.

आती-बांकी हंसी को गोल मरोड़ मुंह बिचका कर ढंक लिया. नंद ने कहा, "अच्छा मैं चलता हूं. ये सब देखेंगे तो पिता बिगड़ेंगे."

बीच में अचानक द्वंद्व टूट गया, मानो समय से पहले ही तमाशा खत्म हो गया हो.

रवि ने दूने उत्साह से कुल्हाड़ी उठाकर पालिधी पर आक्रमण किया, परंतु लगता था जैसे आज काम पग-पग पर तर्क में ही उलझ जायेगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बई मलिक ने हंसकर कहा, "ये दोनों पेड़ कैसे दिख रहे हैं?"

रवि ने पूछा, "बोलो."

"ठीक जैसे दो बहुएं, काटने को हाथ उठता ही नहीं."

सब 'हो-हो' कर हंस उठे. रघुवा ने ठट्ठा किया, "तब तू इनमें से एक को व्याह ले." कुरुपा ने कहा, "सच बई कुछ भी कह, सोहनी चीज को काटने के लिए हाथ उठता ही नहीं. गांव के पास होते ही बच्चे ये फूल लेकर खेलते ही."

"खाली खेल ही क्यों. इसके फूलों को ले जाकर साग बनाने से कितना स्वादिष्ट लगता है! सच, दोनों गाछ, मानो इन पर आलता लगा दिया हो."

रवि कह पड़ा, "नदी की कछार में सफेद-सफेद खस के फूल पीले-पीले सन के फूल सुंदर लगते हैं. फिर मनवरा धान का खेत भी सुंदर, बाड़ी-बग़ीचा भी सुंदर है. खाने को हो तब तो इस खोखली सुंदरता से मन बहलाया जा सकता है, नहीं तो नहीं. हमें चाहिए वैसा सुंदर जिसमें अभाव मिटे या काम करने को मन हुलसे, और राज भर के सुंदर-असुंदर को चुनने-बीनने का हमारे पास समय नहीं. चलाओ कुल्हाड़ी! बेकार की गप्पों में समय गया."

चोट पड़ी.

उसी बीच रवि के मन में गुदगुदाया—लाड़भरा जीवन. एक चेहरा याद आया. कुरुपा ने कहा, "रहने दो बाबू, हम तो काट ही रहे हैं. उधर क्या हुआ, जरा देख आओ तो."

रवि ने आपत्ति नहीं की. घूमकर देखने लगा.

अब आंखों के आगे था एक सपना, सब और सब का मिलकर एक विराट् क्षेत्र बन गया है. सबको पकड़े हैं, सबको पाल रहा है, वहां बाड़ बूड़ा नहीं, मन की खुशी से एक जगह सबके जरूरी-गैरजरूरी बड़े-बड़े बग़ीचे-बाग, खेत, और स्वस्थ-सबल लोगों के चेहरे से हंसी उफनकर गिर रही है. सब निश्चित हैं.

छवि अकेली तटबंध के तले खड़ी थी. पीठ की ओर सेंहुड़ा का पेड़ ओट किये है. घर से वह दिखता नहीं, परंतु इतने पास है कि आहिस्ते पुकारने पर भी सुनाई पड़ता. और छिन-भर में सूरज अस्त होगा, बांयी तरफ वो इधर नीचे झूल गया उस सूने सौंदर्य की प्रतिमूर्ति बन जो केवल इस सिहराते पौष में ही नजर आती है—सामने अनंत अकलन नीलिमा सच नहीं, कल्पना नहीं, मानो कल्पना का एक रूप नहीं, यौवन का स्वप्न और मर्म भावों का अनकहा संगीत वहां रंग का पिंड बन क्षण-भर के लिए विराजित है! बाद में वह लीन हो जायेगा.

छवि अन्यमनस्क होकर उसी सूर्य की ओर देख रही है मानो कि उसमें मिल जाने की चेष्टा कर रही थी. कभी सचमुच उसमें मिली जा रही थी, तब उसे अनुभव ही न होता. फिर भी उससे छिटक जाती, तब वह उदास करुण अनुभूति के बीच छन-छन से चौकन्नी हो उठती, उसकी छाती के नीचे थर-थर होती. कितनी जल्दी मन के अंदर एक दूसरे का पीछा करते हुए ज्वार भागा-दौड़ी करते, एक ही निःश्वास में कितनी अतीत की चेतना-समष्टि, भूले-अधभूले दृश्यों की स्मृति है. वेदना में ढंके गहरे आनंद के तले से जो भाव उठता, उसकी किरण शीतल, उदास, वर्ण की विचित्रता में और विपुलता में विह्वलकारक. उसका अविकल प्रतिरूप मानो यह सूर्य है.

पौष का यह अस्तगामी सूर्य आत्मस्थ हो चुका है. महाशून्य में अलग होने की तरह उसकी गोलाई की लकीर का स्पष्ट पता चल जाता है. सचमुच जैसे कितने ही अपार काल की अनंत दूरी की ओट से भी वह अपनी माया-ममता, प्रकट और प्रकाश का ज्योतिपुंज खींचकर स्वयं में यह रस संवरण कर अनासक्त होकर हंस देता है, उस हास्य में उद्दीपना नहीं पिघलती, अंधेरी चेतना में विचार की दीपशिखा भरे देता है—इस पल तुम गति रोको, स्थिर होओ, भेष खोल डालो, अनुभव करो, सोचो!—सुदूर देहात के पाटेली गांव में उस समय छवि के लिए मानो इतना ही उसका संदेश है.

सूर्य अस्त हो रहा है, शरशय्या पर हैं भीष्म, क्रियाशील, गति और शक्ति के आधार, वे आत्मस्थ होकर स्थिर हो गये हैं, दृष्टि की सीमा से चले जा रहे हैं दिव्य दृष्टि की सीमा में.

छवि की छाती गहरी सांस से उठती है, गिरती है. सेंहुड़ा के पेड़ से वह चिपट गयी है. तनिक खसखस या खड़खड़ाहट होते ही वह चौंक उठती.

बीच-बीच में उसका मन जाग उठता. तब वह इस अद्भुत गंभीर क्षण में अपने साथ उसका मुकाबला करती, क्या उसका उद्देश्य है? क्या उसने पाया है? ऐसे कितनी ही पूछ-ताछ, समझा-बूझी करती. अस्पष्ट-सी प्रतिध्वनि की तरह उसके मन-गहन में उसका उत्तर गुनगुनाते समय फिर वह अस्तगामी सूर्य से चिपटी थमी रहती. तब भले-बुरे के विचार और उद्देश्य से परे केवल एक स्पंदित मनःरूप होता.

किनारे के तले दूर तक फैल गया है फसल से भरा कछार. टटके-टटके बैंगन, टमाटर, मटर की फली. जाड़ों के दिन के कद्दू, करेला, भांति-भांति की तरकारियां, बीच में वो दूर रखवाली करने के लिए झोंपड़ी बनी है. और दाहिनी तरफ हल्दी सरसों का खेत. पहले इस कछार का पट्टा लेने के लिए कितनी बढ़-चढ़कर बोली, झगड़ा होता, परंतु अब यह फसल की है सामलाती से. सब खटते हैं, सब भाग पाते हैं. कछार के नीचे बालूचर है, खाली विस्तृति में कुछ सोने की झलक जैसे दिखाई दे रही है, उसके उधर नदी की सुरमई लकीर, उस पार तीखा कगार और अमराई.

और बांयी तरफ कोने में सूरज उतर पड़ा है. निचला आधा तो बुझ गया है, ऊपर का आधा दबता-दबता जा रहा है, अपरूप वर्ण के किसी देवल की तरह, सारे आकाश में रंग-रंगीले चंदोवे.

और है वह, छवि, सूरज चाहे डूबे या विलीन हो जाये, चाहे जितने चमत्कार-पूर्ण दृश्यपटल हों, वह अपने प्रकाश में आनंद ले रहा है. उसके पैरों तले भूरी घास है. पास में लाल रामजड़ा, वह उसके चिकने कोमल पत्ते के सिरे को अंगूठे और तर्जनी के बीच धीरे धीरे मसल रही है. वहां से तनिक हटकर किसी ने दोपहर में टट्टी की है, और एक तरफ किसी का पुट्ठे का हाड़ पड़ा है. नासा फनकारती थोड़ा मुंह खोल 'आं'

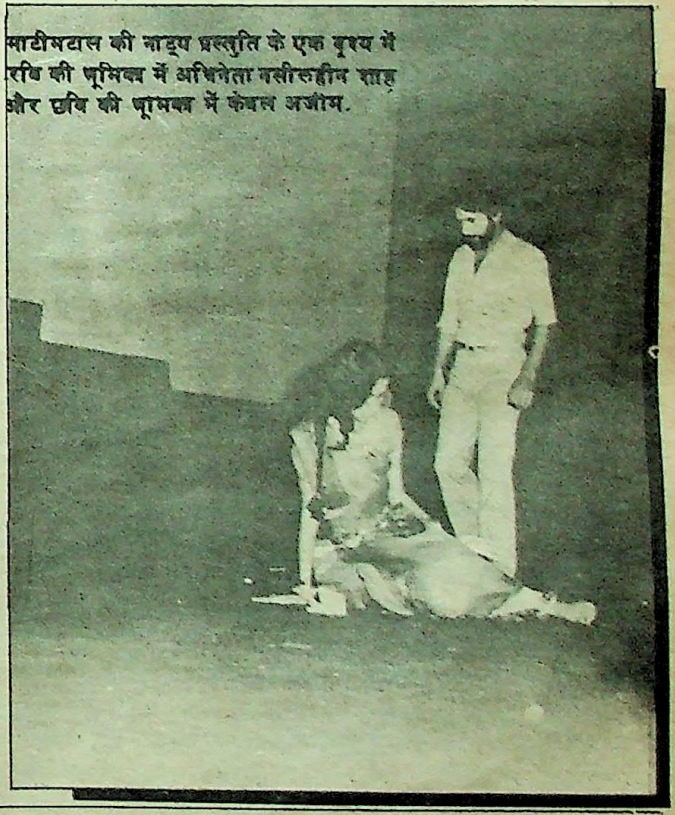

साठीबटाल की नाट्य प्रस्तुति के एक दृश्य में रवि की भूमिका में अभिनेता नसीरुद्दीन शाह और छवि की भूमिका में कंवल अजीम.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये एक लय से वह दूर देख रही है. यौवन और जीवन की मूर्ति है वह आदमी!

कोई कार्यकर्ता नहीं, कोई विप्लवी नहीं, केवल आदमी!

वह अचंभे में भरी विह्वल होकर एकटक देख रही है उसी आकाश की ओर. थोड़ी-थोड़ी दूरी पर नारियल की फुनगिनों पर वहीं कितनी झुंड की झुंड अनजान चिड़ियां उड़ जाती हैं. कहां किस देश से आती हैं, फिर किधर चली जाती हैं.

अचानक उसे लगा—जितने यह सिर चकरानेवाले काम हैं, जितनी दांत भींचकर प्रतिज्ञा-पूर्तियां हैं, जितने आंख फाड़ मुट्ठी कसकर घड़ी-घड़ी बातें उगलते हुए आंदोलन हैं, जितने ऊंचे काठ के पायदान पैरों में बांध भांति-भांति के विचित्र साज सजा अपनी टेक ऊंची रखने के लिए जीवन व्यापी परिश्रम हैं, जितने धंधे या योजनाएं, चिंताएं या बुद्धि की कसरत है जिनमें भेजा पिघल जाता है—ये सब केवल आनंद के प्रकाश के लिए अवलंबन मात्र हैं. जो जिस तरीके से कर सके. वे अपने में आनंद के हेतु नहीं. आनंद तो अपने अंदर है, अनुभव कर सके तो वह है, न कर सके तो नहीं. जो अपनी पहुंच में है उसे हाथ बढ़ाकर ले लेना ही मानो बुरा है, सुस्थ सतेज सरल दृष्टि से देखना ही गलत है, अतः शायद आदमी हाथ पसारता है दूर—आसरा करता है कुटिल बुद्धि का और जटिल पंथ का.

छवि ने सतेज होकर मन में चंचलता का अनुभव किया, और उसे अनुभव हुआ अपने भीतर से निकल रही मादक महक का, खयाल में मन का एक खेल रच लिया कि वह आदमी नहीं, कोई फूल है, झरने या न झरने की उसके मन में कोई चिंता नहीं. वह है, बस इतना ही यथेष्ट है.

अपनी महक के साथ सांस से पी रही है परमतृप्ति, शांति, आनंद. लू की प्यास में शीतल पानी की घूंट पीने पर जैसे तृप्तिकर हो, उत्साह और उत्तेजना आती है, कुछ वैसा ही लग रहा है. समूचे सब उसके, अपने, स्नेही आदमी, किसी के साथ उसका विरोध नहीं, प्रतिद्वंद्विता नहीं. उसका आनंद ही उसकी सार्थकता है, वह नहीं चाहता कि कोई उसे चीन्हे या बड़ाई करे या प्रशंसा करे. यही हवा, यही छाया-रोशनी का दृश्य, यह माटी का उतार-चढ़ाव उसे मायाजाल में गूंथकर रखे हैं, प्रत्येक धागा ढूंढने पर कोई एक स्मृति, नहीं तो परिचित स्वप्न के सारे तार अनंत आनंद में समा जाते हैं.

इस गांव में कभी था हृदयों का फटना-टूटना, गाली-गलौज, निंदा, कलह, दंगा-फसाद. वे ही जो आज उसके बारे में इतनी प्रशंसा कर इतने आशीर्वादों से सींच-सींचकर प्रचार कर रहे हैं, कितने लोग उनमें से ऐसी बातें भी तो कहा करते थे कि सुनकर हाड़ से मांस झर पड़ता था. कितना बड़ा झूठ, कितना अपवाद! हलदी मलने की तरह कब से झड़ गया है, याद आने पर पीछे हट जाता, कोई परवाह नहीं है. वैसे ही उसे लालच नहीं इस प्रशंसा की. गांव की बहू-बेटी ने परदा खींचकर फेंक दिया है, जाति में बड़ी-छोटी, छुआछात, धन में होने न होने का भेद, मन के कोने-कोने में किस मांधाता के ज़माने से घर-घर में मतांतर, आंचल में ढेर की ढेर गांठ की तरह बांधे थे—वे सब मन से भूल चुके हैं, संतान पैदा करना, खाना पकाना, पान लगाना— इनके अलावा अब और भी विराट् सामाजिक जीवन का वे लोग उपभोग कर रहे हैं, एक गांव, एक घर, सब आदमी भाई-भाई के आदर्श की नींव रखकर वे नयी दुनिया गढ़ रहे हैं, सचमुच जैसे वे लोग मरुभूमि पर बहाते-बहाते चले जा रहे हैं भागीरथी की नयी धारा. यह सब उसे बिलकुल साधारण-सा लग रहा है, इस सब में उसका अपना कृतित्व कुछ है—उसे लगता ही नहीं; कुछ है भी ऐसा वह सोचती नहीं, बड़े-बड़े नाम उसे याद नहीं—त्याग, परिश्रम, सेवा, निष्ठा. फूल की तरह वह खिली है, हवा में उसका सुवास स्वतः घुल गया है, इसीलिए उसकी चेष्टा नहीं. उसका स्वाभाविक तरीका ही वही है.

उसमें जैसे, उसी तरह और भी कितनों में वह तरीका ढक्कन-बंद हो रुका पड़ा था, खुल गया है. सारे स्रोत एक जगह मिलकर हो गयी है, पुण्यधारा! कोई याद आता है तो उन्माद भर जाता है. गर्व या गौरव या गरिमा का कण-भर भी मन में आता नहीं.

याद आ गया कि आज हरि साहू सामलाती में आ गया है. उसमें भी कोई विचित्रता नहीं, साग के धोरे में साग का पौधा धीरे-धीरे खुद ही उठकर खड़ा हो जाता है, हरसिंगार से फूल जैसे धीमे-से माटी पर झर जाता है, वैसे ही एकदम साधारण-सी यह घटना उसके देखने-सोचने के ढंग में मिल जाती है.

इसी हवा-पानी से गढ़े जायेंगे इस युग के छोटे-छोटे बच्चे. वे नये युग के कारीगर होंगे. भविष्य के घर-बारी आदमी, ये ही नन्हीं कोमल कलियां, कोई मां के पल्लू की ओट में मुंह छुपा रहा है, कोई पाटी-किताब लिये घर लौट रहा है. उसकी छाती फूलकर चौड़ी हो गयी. अबकी उसने देखा, आकाश में एक-एक तारे उग आये थे. फीके-फीके दिखते-दिखते अब उज्ज्वल होते जा रहे हैं. ऐसे ही उठेंगे इस धूल-माटी से इस देश के ज्योतिष्क, स्नेह-शांति से बढ़कर वे मैत्री के प्रतीक बनेंगे. उनके विचार या विश्वास में न विरोध होगा और न संदेह.

और वह होगी मां, जैसे वो दूर तट पर देवदारु की जोड़ी की ओट से चांद उगता आ रहा है, ये नन्हे-नन्हे तारों के ऊपर अपनी सुनहली हंसी उंड़ेले दे रहा है. वहां सब कितना सहज और स्वाभाविक है.

विचारों-भावनाओं में खोये हुए अचानक उसे उचाट-सा लगा. उसकी देह सिहर उठी, वह तन-तनाकर मुड़ गयी और देखा, शायद कोई उसके मन की भावनाओं को सुन रहा है, अस्त-व्यस्त होकर उठते समय कहीं कोई पास छुपा बैठा देख रहा है.

छवि ने थर-थराकर तटबंध के ऊपर दृष्टि दौड़ायी. कोई नहीं. एक कुत्ता दौड़ा-दौड़ा आ रहा है!

और जो बड़ी बात उसकी चेतना में घुल-मिल सचमुच जैसे उस पर रंग चढ़ाये थी उसे मानो स्पष्ट छू दिया तो, कान और गाल गरम-से हो उठे हैं, देह थर्रा रही है, छाती धड़-धड़ कर रही है, छवि मन ही मन सोच रही है कि आज इस गांव में रवि है.

लजाती-लजाती जब धीरे-धीरे तटबंध पर चढ़ी, और फिर उतरकर घर की ओर चल पड़ी, तब घूम-फिरकर स्मृति लौट गयी दो वर्ष पीछे की ओर, जब रवि के साथ उसकी पहली देखा-देखी हुई थी.

घर की प्राचीर के दरवाजे पर फिर रुककर प्रतीक्षा करने लगी. मन ही मन वह खयाल बुनने लगी कि चबूतरे पर चटाई डाले वे बैठे होंगे, पास मां होंगी, गुरु की मां, बग़लवाली कोठरी में पल्थी मारे बापू बैठे होंगे, भागवत-पाठ से पूर्व जैसे वे आंख मूंद कुछ समय बैठते हैं, किसी अनदेखी शक्ति के ऊपर या खाली शून्य पर संपूर्ण आत्मसमर्पण की भंगिमा, सामने लालटेन और मयूरचंद्रिका का चिह्न लगी भागवत का एकादश स्कंध, सिर के ऊपर मुकुट की तरह बड़ा धान का गुच्छा, उसमें कौड़ियों की माला लपेटी होगी. उन्होंने रवि को स्वीकार कर लिया है, उनके व्यवहार से साफ पता चलता है. इस घर ने भी उन्हें अपना लिया है. उसी व्यवहार से साफ पता चलता है.

उसी रूप में, उसी परिवेश में वह उन्हें देखना चाह रही है, बाहर संबंध स्थिर न हो, शंखवाले ने शंख न फूंका हो, पुरोहित ने मंत्र न पढ़ा हो परंतु मन ही मन उसका समर्पण हो चुका है.

और दो डग जाते न जाते उसके मन में मानो वितर्क उठता है—

और अगर वे राज़ी न हुए तो? उनका यदि कहीं और मन होगा तो? असंभव! खूब ज़ोर से मन ने प्रतिवाद किया. समुद्र में ज्वार ही चंद्रमा के आकर्षण का प्रमाण है. बचपन में पढ़ी साधारण भूगोल की बात यही बताती है. और यहां उन्हें उस दिन से देखा, तभी से अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में अनुभव करती आयी है ज्वार का, उसी खींच-तान में उसने जीवन के लक्ष्य का अनुभव किया है. वह भला कभी झूठ हो सकता है?

... पर वे क्यों आये हैं? □

प्रस्तुति : वीथिका/कांता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

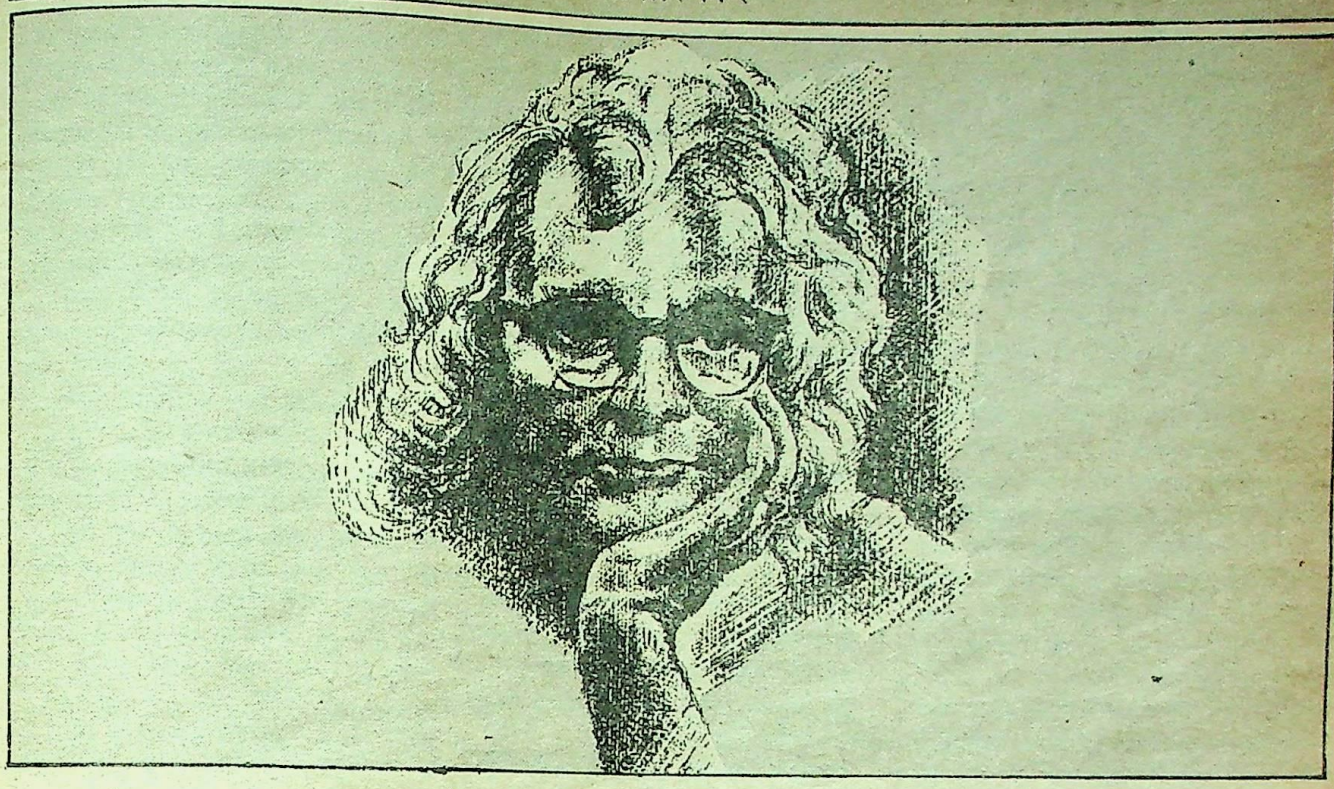

स्वयंवदू

इस सुंदर, साहित्य-पर्व के अवसर पर मैं सर्वप्रथम भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार के संयोजकों को हार्दिक बधाई देता हूं, केवल इसलिए नहीं कि उन्होंने मेरे कृतित्व को पुरस्कार के योग्य समझा, बल्कि इसलिए भी कि उन्होंने भारतीय भाषाओं के उपेक्षित साहित्य-साधकों को, जिन की भाषाओं को उन्हीं के देश में यथोचित स्थान एवं सम्मान नहीं मिल सका है और जो अपने को अपने ही देश में निर्वासित तथा विस्थापित-सा अनुभव करते हैं, इस योजना से पुर्नवास दे कर संस्थापित तथा प्रतिष्ठित करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है.

अपनी कृति 'चिदंबरा' को पुरस्कार मिलना मैं केवल एक संयोग की बात मानता हूं. हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में आज इतने महान् सर्जक तथा प्रतिभाशाली लेखक विद्यमान हैं कि उन में अपनी गिनती करने में मुझे संकोच का अनुभव होता है. भारत के प्रायः सभी लेखकों के प्रेरणा-स्रोतों में समानता मिलती है, और उन के साहित्य में भी सामान्यतः एक ही प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास पाया जाता है, इस का अनुभव वर्तमान युग के भारतीय साहित्यों के किसी भी अध्येता को सहज ही मिल सकता है.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 19 दिसंबर, 1969 को व्यक्त विचार.

स्त्री का सबसे सुंदर हिस्सा देह नहीं, उसकी भावना है.

सुमित्रनंदन पंत से इंदु जैन की अंतरंग बातचीत

इंदु जैन : पंतजी, आप की यह लंबी कविता 'आत्मिका' मेरे सामने है जो आत्मकथात्मक कविता है और इसमें आपने कुछ पंक्तियां कही हैं प्रेम के बारे में–

'कल्मष लांछन के कांटों में खिला प्रेम
का फूल धरा पर,
उसको छूना मौन द्रोह के भू-कर्दम में
गिरना दुस्तर.'

प्रेम का फूल है लेकिन कल्मष और लांछन के कांटों से घिरा हुआ–ये कल्मष और लांछन क्या?

पंतजी : यह कल्मष और लांछन आज के जीवन की स्थितियां हैं. जब कि आदमी प्रेमियों पर उंगली उठाना चाहता है और उनको सोचता है कि केवल पंक में सने हुए लोग हैं और वह प्रेम की ऊंची कल्पना नहीं कर सकता. मैं बहुत किशोरावस्था में ही कविता के प्रति आकर्षित हो गा था और सौंदर्य के प्रति कविता में मैंने कविता की उपमा दी है स्त्री से. क्योंकि वह सौंदर्य की प्रतिनिधि है. सौंदर्य तो हिमालय के अंचल में पैदा होने के कारण मेरे घर का मेहमान रहा है, सदैव से. तो मैं यह कहना चाहता था कि– भाई, प्रेम की जो अवस्था आज है, जो स्थिति आज है, वह तो द्रोह से, मोह से, लांछन से, कर्दम से घिरी हुई है. हूं! वह कभी सार्थक होगी. मैंने हमेशा स्त्री के लिए लिखा है कि उसका हृदय तो तिजोरी में बंद है. उसको तो ऐसा होना चाहिए जैसे फूल अपने नाल से बंधा रहता है, वैसे स्त्री को अपने प्रियजन से, बंधा तो रहना चाहिए– घर से, लेकिन अपने हृदय का सौरभ– जैसे फूल सबों को देता है, वैसे भी स्त्री को अपनी भावना समस्त लोगों को देनी चाहिए जिससे कि भावना का आदान-प्रदान हो सके. क्योंकि स्त्री का सबसे सुंदर हिस्सा देह नहीं, उसकी भावना है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंदु : लेकिन पंतजी, क्षमा करें. इतनी भावना रखी और स्त्री को इतना बड़ा महत्व आपने दिया है. आपकी 'भावी पत्नी के प्रति' कविता भी पढ़ी और इसके अलावा बीसवीं शताब्दी में नारी को एक बिलकुल नया रूप देने की जब हम बात करते हैं, तो आपकी कविता की पंक्ति बार-बार दोहरायी जाती है– **'देवि, मां, सहचरि, प्राण'**– इस तरह से आपने नारी के रूप को देखा, लेकिन फिर भी विवाह नहीं किया, न ही कोई प्रेम-प्रसंग हम सीधा जोड़ पाते हैं आपसे. नारी को अपनी जिंदगी से इतना अछूता आपने कैसे रख दिया?

पंतजी : मैंने नहीं रखा, वह परिस्थितियों ने रखा. मैं पहाड़ में पैदा हुआ हूं–तो स्त्री-पुरुष दो अलग-अलग धाराओं की तरह–यहां तो गंगा-जमना मिल जाते हैं. वहां कभी भी नहीं मिलते. यह तो गांधीजी के आंदोलन के बाद लड़कियां रास्ते पर चलने लगीं, नहीं तो वे घर के अंदर बंद रहती थीं. तो वहां तो ऐसा संभव ही नहीं था कि उनकी ओर आकर्षित हों. लेकिन यह जो मैंने कविता लिखी है, यह बहुत प्रौढ़ावस्था की लिखी है. तब तक मैं बहुत कुछ सोच-विचार कर चुका था–प्रेम पर, स्त्री-पुरुषों के संबंध पर. यह तो मेरी तब की कविता है, तब मैंने लिखा है कि भई, 'प्रेम तो अभी इस पृथ्वी पर फूल की तरह खिल ही नहीं पाया है. उसको तो द्रोह और मोह के जो कांटे हैं और जो पंक है लाछन का, वह उसे पनपने ही नहीं देते.' इसमें मेरा व्यक्तिगत कुछ नहीं है. यह भी मानव जीवन का तब का इतिहास है और अब भी यह इतिहास है. मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूं कि मनुष्यता का विकास तभी होगा जब स्त्री स्वतंत्र होकर इस धरती पर विचर सकेगी, उसे भय नहीं रहेगा.

इंदु : पंत जी, लेकिन इतने संवेदनशील कवि में और जो संवेदन का पुंज मानता हो स्त्री को.....और एक सहगामिनी की इच्छा होती है हर एक व्यक्ति के भीतर, वह किसी भी वजह से–चाहे वह परिस्थिति की वजह से नहीं हुई पूरी, तो क्या उसकी एक छटपटाहट आपकी कविता में नहीं उभरी होगी.

पंतजी : खूब उभरी है मेरी कविता में. आप तो जानती हैं, वह मेरी कविता 'ग्रंथि' में है, 'उच्छ्वास' में है, 'आंसू' में है और मैंने स्त्रियों पर बहुत...मैं तो स्त्रियों को बहुत प्यार करता हूं, यह दूसरी बात है कि किसी स्त्री को अपना नहीं सका. स्त्रियों को तो मैं बहुत अधिक प्यार करता हूं. क्योंकि मैं जानता हूं कि भविष्य में मनुष्य को अगर कोई स्वस्तिक बना सकती है तो स्त्री बना सकती है, कब? जब वह अपने शील में, सौम्यता में हो, अपने सौंदर्य में रहे, और मनुष्य को प्यार करना सिखलाये, न कि अपनी देह से, जैसे इस युग में देह को प्रमुखता दी गयी है और देह की साज-बाज से मनुष्य को भटकाये.

इंदु : यही शायद आपकी इन पंक्तियों में

> भौतिकता, आध्यात्मिकता का समन्वय अत्यंत आवश्यक है. भौतिक विज्ञान ने मनुष्य को सभ्य बनाया. संस्कृत होने के लिए हमको अंतर्मूल जो मानव के हैं, हैं न, अंतर्जीवन के मूल्य–उनको खोज निकालना होगा.

आता है–

'हो न सका चरितार्थ प्रेम का धरा स्वर्ग नारी उर में स्थित'

पंतजी : यह (सहमति)

इंदु : **'हृदय नहीं विकसित, शोभा के देह भाव से मन अवगुंठित.'**

पंतजी : यह (सहमति)

इंदु : तो देह भाव से मन अवगुंठित हो जाता है, लेकिन देह को नकारा तो नहीं जा सकता.

पंतजी : नहीं, नकारा नहीं जा सकता.

इंदु : तो क्या आपने आदर्श को शायद इतना ऊंचा तो नहीं रख लिया कि...?

पंतजी : बिलकुल ऊंचा नहीं रखा. अगर केंद्र में हृदय हो जाये तो देह तो अपने आप आ जायेगी, लेकिन यदि हृदय ही न हो, देह ही देह हो तो बतलाइए. यह कितना बड़ा संकट है.

इंदु : पंतजी, आपकी कविता में मैंने बराबर यह महसूस किया है कि उसमें नकार नहीं है, स्वीकार है. गांव में रहे तो गांव का स्वीकार. उसके बाद शहर में चले आये तो शहरी सभ्यता को भी, तिरस्कार आपने उसका भी नहीं किया, उसको भी स्वीकारा है. आपके रूपकों में जहां शिल्पी आता है, कलाकार आता है, वहां वैज्ञानिक का एक बड़ा भारी महत्व है. यह सब कुछ स्वीकार करते हुए क्या कोई एक आदर्श, क्या कोई परिकल्पना आपके मन में है, जिसमें आप गांव का, शहर का, तमाम पुरानी-नयी सभ्यताओं का एक तालमेल बिठाना चाहेंगे?

पंतजी : जी हां, यह तो मैं क्या चाहता हूं, यह तो यह युग चाहता है. विज्ञान ने जो कि एक जड़-जगत, एक बड़ी भारी बाधा भी मनुष्य के जीवन में, है न! उस बाधा को मिटा दिया है भौतिक विज्ञान ने. अब आप देखते हैं कि देश-काल मनुष्य की मुट्ठी में है. देश-विदेशों के लोगों के विचार, उनके धार्मिक दृष्टिकोण, नैतिक दृष्टिकोण, संवैधानिक दृष्टिकोण, चाहे वे रेडियो से हो, चाहे वह सिनेमा से हो, चाहे देशांतर में घूमने से हो–मनुष्य एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं, यह दृष्टिकोण निकट आ रहे हैं. तो, पहले यह संभव नहीं था. भौतिकवाद और अध्यात्म का एक समन्वय तो इस युग के लिए अत्यंत आवश्यक ही है.

हम में जो सबसे बड़ी हमारी मध्ययुगीन, सबसे भारी कमी रही है, वह यह कि हमने इस संसार को नकारा है, जीवन को नकारा है. हम कहीं मन के जंगल में खो गये हैं. हमने कहीं अध्यात्म को मन के शिखर से ऊपर माना है. लेकिन आज का अध्यात्म या आज का जीवन दर्शन कहता है कि भाई, चाहे इसे आप भगवान कहें, चाहे आत्मसंतुलन कहें, वह तो इसी जीवन के स्तर पर हमको प्रतिष्ठित करना है. अगर भगवान का नाम ही नाम आप लेते हैं, तो वह तो अधूरा है, भगवान के रूप का भी निर्माण कीजिए. भगवान का रूप आप दिगज्जीवन के रूप में ही निर्माण कर सकते हैं. तो, आज तो निर्माण युग है. इसमें तो विज्ञान और अध्यात्म, इनको मिल कर काम करना है. वैदिक युग में हम कहते थे– 'पद्धयाम' पृथ्वी-यह जो पृथ्वी है, यह खड़ी होने की जगह है–भगवान की. तो भगवान खड़े हों तो पृथ्वी पर तो, चाहे ग्राम-जीवन हो, चाहे नगर का जीवन हो. आज आपस में इनमें अदलाव-बदलाव हो रहा है. चेतना में भी. चाहे स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म हो. आपस में एक-दूसरे से टकराव उसमें हो रहा है. चाहे कम्युनिज्म हो, चाहे अध्यात्म हो. उनकी मान्यताएं एक-दूसरे में बदल रही हैं. जिसे हम कम्युनिज्म कहते हैं, आज वह कोरा कम्युनिज्म न रह सकेगा, जिसे हम अध्यात्म कहते हैं, मध्ययुगीन दृष्टि से, आज न वह अध्यात्म रह सकेगा. आगे का जो जीवन होगा वह बहुत विकसित होगा और इन दोनों संचरणों को समेट कर चलेगा. मैंने हमेशा अपनी दृष्टि में यह चीज रखी है. यह ठीक है कि मुझको इसमें पूर्णता कहिए या सफलता कहिए वैसी नहीं मिली है, जैसी मिलनी चाहिए. इसका कारण यह है कि यह तो बड़ी भारी संक्रांति का युग है, बहुत बदलाव का युग है और इसमें तो चीजें इतनी जल्दी-जल्दी बदल रही हैं कि मैं जहां खड़ा हूं कल देखता हूं कि दूसरी जगह खड़ा हूं और परसों पाता हूं कि अपने को कहीं तीसरी जगह खड़ा हूं. तो यह तो विश्व जीवन का ऐसा संचरण है इस युग में जिसको कोई टाल नहीं सकता.

भौतिकता, आध्यात्मिकता का समन्वय अत्यंत आवश्यक है. भौतिक विज्ञान ने मनुष्य को सभ्य बनाया, लेकिन संस्कृति नहीं बनाया. संस्कृत होने के लिए हमको अंतर्मूल जो मानव के हैं, हैं न, अंतर्जीवन के मूल्य-उनको खोज निकालना होगा. जो कि आपको भारतीय संस्कृति में बहुत पहले मिलते हैं, मध्ययुगीन संस्कृति में नहीं. तो इसलिए यह जो-समन्वय विज्ञान और अध्यात्म का होगा वह न विज्ञान ही रहेगा न अध्यात्म ही रहेगा, वह एक नयी मानवीय संस्कृति में विकसित होगा. इसलिए मैं सोचता हूं कि यह समन्वय अत्यंत आवश्यक है. विज्ञान ने देखिए ऐसी-ऐसी रोशनियां दी हैं कि बाहर के जगत का अंधकार आप एकदम हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती हैं. कोई ऐसा प्रकाश नहीं दिया है कि भीतर-जगत का अंधकार हरे या मनुष्य के हृदय का अंधकार हरे, तो इसके लिए तो आपको अंतर्जीवन के मूल्यों को ही खोजना होगा, जो कि आपके पास अध्यात्म में हैं. इसलिए यह समन्वय अनिवार्य है. पश्चिम के जगत के लिए भी, पूर्व के जगत के लिए भी. हमको विज्ञान के मूल्य ग्रहण करने हैं. उनको भारतीय अध्यात्म के मूल्य ग्रहण करने हैं और इससे एक नयी मानवता के निर्माण में, मुझे ऐसी आशा है, कि बहुत सहायता मिलेगी.

इंदु : शायद यही वजह है कि आपने ये कविताएं लिखी हैं—मार्क्स के प्रति,...

पंतजी : बिलकुल.

इंदु : गांधी के प्रति...

पंतजी : बिलकुल.

इंदु : अरविंद के प्रति, इन सबका एक मेल बिठा सकें.....

पंतजी : मार्क्स का बहुत बड़ा एक इस युग के लिए दान है. है न! उसने जो दृष्टि दी है, वैज्ञानिक दृष्टि और श्री अरविंद ने तो भारतीय समस्त दर्शन को मथ कर आज के युग के अनुकूल बना दिया है, विवेकानंद ने भी ऐसा किया है. गांधी जी ने तो इसको कर्म की भूमि पर उतार दिया है. तो, मैं गांधीजी को इस तरह से इस युग के लिए संपूर्ण प्रतिनिधि के रूप में मानता हूं.

इंदु : पंतजी, आपने एक बड़ा एकाकी जीवन बिताया है. लेकिन साथ ही आपका मित्र-समुदाय भी बहुत बड़ा रहा है. दोस्तियां बनीं, दोस्तियां टूटीं. उनका प्यार, उनकी खुशियां दोनों आपने पायीं. उनके बारे में कुछ कहें.

पंतजी : बात यह है कि मैंने तो कभी एकाकी अनुभव ही नहीं किया है. आपसे सच कहता हूं. इतने बुढ़ापे में भी, इतनी उम्र में भी इतना आंदोलन विचारों का मेरे मन में रहा है कि मैंने कभी अपने को एकाकी अनुभव ही नहीं किया. और मेरे जो चारों ओर मित्र थे वे भी इस युग के एक-एक तरह से अपने-अपने विभिन्न विभागों के प्रतिनिधि रहे हैं. प्रसादजी-उन्होंने 'कामायनी' दे कर इस भौतिक युग को एक अंतर्दीष्ट देने का प्रयत्न किया है. निराला—निराला तो आप सभी लोग जानते हैं, निराला मेरे बहुत बड़े मित्र रहे हैं. लेकिन हम बहुत ही अलग-अलग स्वभाव के रहे हैं. लेकिन स्वभाव से मित्रता में कोई फर्क पड़ता नहीं. निरालाजी हमारे युग के एक 'जीनियस' कवियों में रहे हैं—छायावाद के.

ऐसे ही महादेवी रहीं, महादेवी की जो गीत-भावना है, वह तो अद्वितीय रही है. मैं सब लोगों से कहता हूं कि महादेवीजी छायावाद की नवनीत रही हैं. माखन रही हैं. इतनी मिठास, इतनी वेदना उनमें है और इतना सौंदर्यबोध उनके काव्य में मिलता है!

उसके बाद छायावादोत्तर कवि आते हैं—उनमें बच्चन. बच्चन तो मेरा बहुत ही बड़ा मित्र रहा है. मैं उसके घर में इतना रहा हूं कि बहुत ही ज्यादा रहा हूं और वैसे छोटे-मोटे मतभेद बराबर होते रहते हैं मित्रों में. लेकिन इससे हमारी मित्रता को कोई फर्क नहीं पड़ता. तेजी जी और बच्चन को मैं अपने परम मित्रों में मानता हूं. नरेंद्र तो मेरा छोटा भाई-सा रहा है. उसकी भी अपनी एक भावना का संसार रहा है. बच्चन, नरेंद्र, दिनकर—दिनकर को कौन भुला सकता है. 'इस युग का सूर्य हूं मैं' कहता है तो सूर्य तो दिनकर रहे ही हैं—तो हमारे जो मित्रवर आते हैं उसमें एक-से-एक, जिन्हें अंग्रेजी में 'इल्यूमिनरी' कहते हैं—प्रकाश केंद्र-वे रहे हैं और इसमें मैं अपने को बहुत सौभाग्यशाली मानता हूं.

इंदु : पंतजी, अगर आपको जिंदगी दुबारा पूरी की पूरी जीने को मिले तो कौन-सी ऐसी इच्छा है, जो अपूर्ण रह गयी. उसे जरूर पूरी करना चाहेंगे?

पंतजी : मैं चाहता हूं कि संसार से विषमता मिट जाये, मैं चाहता हूं कि यह संसार मनुष्य के रहने के लायक हो जाये—यह धरती मानवीय हो जाये. इसमें स्त्री-पुरुषों का चाहे संबंध हो, चाहे पुरुष-पुरुष का संबंध हो इस एक तरह का संतुलित और इस तरह का सजीव संबंध बन जाये कि जो हम स्वर्ग की कल्पना करते हैं, वह धरती पर ही साकार हो जाये.

और यह तो बिलकुल निश्चित ही है कि स्वर्ग और कहीं नहीं है, मनुष्य के भीतर है. उस मनुष्य को अपने भीतर के स्वर्ग को इस धरती पर प्रतिष्ठित करना है, समस्त आगे आनेवाले प्रयत्न इसी ओर रहें. यह आज जो इतना संक्रांति का युग और जो यह इतना बदलाव दिखता है, और ऐसे गुट और पंथ बन रहे हैं, यह बन रहे हैं, वह बन रहे हैं,—यह तो जैसा कि पतझर आता है न, वसंत से पहले. सब पत्ते झड़ते हैं! तो यह तो 'डिसइंटिग्रेशन' का युग है, विघटन का युग है, पुराने मूल्य विघटित हो रहे हैं.

इंदु : पंतजी, आपका हमेशा एक खास विन्यास रहा है कि कपड़ों के बारे में, बालों के बारे में और आप की एक पूरी रूप छटा बनी रहती है पढ़नेवालों के मन में हमेशा से. यह कैसे आपने विन्यास अपना बनाया?

पंतजी : . क्या बतलाऊं, मैं तो यह कह सकता हूं कि मैं तो जन्मजात हिप्पी पैदा हुआ हूं. मैंने तो छुटपन से ही बाल रखे, नेपोलियन का चित्र देखा था जब मैं फोर्थ में पढ़ता था. तब से उसके बड़े घुंघराले बालों ने मुझे आकर्षित किया— तभी तो मैं उसके बालों के पीछे लगा.

और चूंकि मैं घर में सबका लाडला था, छोटा था, तो पोशाकें भी मैंने तरह-तरह की पहनी हैं. मेरे कोट भी खास ढंग के होते थे और टाई भी मैं पहनता था. और टोपी भी तरह-तरह की पहनता था. मखमल के कपड़े मुझे बहुत पसंद थे. मखमल के कपड़े बहुत पहनता था.

लेकिन फिर ऐसा हुआ, जब मैं साहित्यिक क्षेत्र में आया और वहां इलाहाबाद में एक बार द्विवेदी मेला हुआ, तो उसमें मेरे कुछ मित्रों ने वहां मेरी टाई खींचकर फेंक दी. तब से मैंने सोचा ऐसे ठूंठा कोट अच्छा नहीं लगता. तो बंद गले का कोट पहनने लगा और अब तो मैं, बात ये है, वृद्धावस्था में जितनी सादगी हो सकती है पोशाक में, वेशभूषा में उतनी सादगी पसंद करता हूं.

लेकिन छुटपन से मुझे रूप और भाव का बहुत बड़ा भारी संबल मिलता रहा है. और मैंने अपने को ही सजाया है. क्योंकि अगर मेरे घर में मेरी बीवी या यदि कोई होता, तो शायद उसे सजाता. खैर, यह कोई बात नहीं है. रूप का मैंने हमेशा आदर किया है और मुझे खुद उसमें अपना शरीर ही मिला और मैंने अपने शरीर को ही सजाया. मैं और क्या कह सकता हूं. एक छोटी-सी आत्म-रचना भी आपको सुना दूं!

नयी वृष्टि

खुल गये छंद के बंद
प्रास के रजत पाश
अब गीत मुक्त और युगबाधी
बहती अयास
बन गये कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम
जीवन संघर्षण देता सुख
लगता ललाम
सुंदर, शील, सत्य
कला के कल्पित भावधान
बन गये स्थूल जगजीवन से हो एक प्राण
मानव स्वभाव ही बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण
असुंदर को सुंदर!

—इसमें भी वही भावी जीवन की मेरी कल्पना है कि कला अपनी कल्पना में जिसका आह्वान करती थी अब वह जीवन में मूर्त होने जा रहा है.

(धर्मयुग और वार्ताक्षर के साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिराक की सृजनात्मक ऊर्जा

बिशन टंडन

स्वयंवद्

ऐसे समारोहों के अवसर पर पुरस्कार पाने वाले से आशा की जाती है कि वह उचित शब्दों में कुछ उचित बातें कहे जिनसे इस अवसर पर कुछ प्रश्नों पर रोशनी पड़े. जो लोग दुनिया की सेवा करते हैं, दुनिया उन्हें हुक्म देनेवाला मालिक या रहनुमा मानती है. राजनीति के या जमाने के वे बड़े लोग जो जमाने को बदल देते हैं, दुनिया उनकी इज्जत करती है; लेकिन दुनिया की कहानी बदलती रहती है और बदलने का यह सिलसिला शोहरत के मैदान में भी जारी रहता है. जैसे-जैसे समय बदलता रहता है बड़े-बड़े कर्मवीरों के नाम और शोहरतें धुंधली पड़ती जाती हैं. शोहरत मशहूर लोगों के साथ भी तन्ज या मजाक करती है. इतिहास एक व्यंग्य है. इतिहास अपने आप से भी छेड़ करने में नहीं चूकता. ये बातें सच उतरती हैं. इतिहास के योद्धाओं और नायकों और बड़े-बड़े विचारकों, बड़े-बड़े आविष्कारों को जन्म देनेवाले वैज्ञानिकों, दर्शनाचार्यों और बड़ी-बड़ी सभ्यताओं के रचयिताओं पर भी परिवर्तन सर्वशक्तिमान है. बड़े-बड़े उससे पार नहीं पा सकते हैं.

कवि की हैसियत से मैंने अपना काम कच्ची उम्र में नहीं बल्कि प्रौढ़ावस्था में शुरू किया. इस बीच मेरा जीवन उजड़ चुका था और बरबाद हो चुका था. इस नाजुक वक़्त में कविता आरंभ करते हुए मुझे इस समस्या का सामना करना पड़ा कि जिस शांति और आनंद की ओर मैंने इशारा किया है उसका समझौता अपने दुखद जीवन से कैसे करूं. दुख को सुख का संदेश कैसे बनाऊं, यह काम था. यह सिलसिला बहुत धीरे-धीरे कायम हो सका.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 27 नवंबर, 1970 को व्यक्त विचार.

बंबई की एक महफिल का किस्सा है. वहां उर्दू के कई लब्ध-प्रतिष्ठ शायर उपस्थित थे. फिराक ने वहां एक शेर पढ़ा :

मौत एक गीत रात गाती थी
जिंदगी झूम-झूम जाती थी.

इस पर एक बहुत विख्यात शायर ने (उनका नाम मैं जान-बूझकर नहीं लिख रहा हूं; आजकल वह शायरी से अधिक प्रगतिवाद का झंडा फहराने में व्यस्त हैं) कहा, "फिराक साहब, गुस्ताखी मुआफ हो, हमें आप शेर सुनाइए, बकवास मत कीजिए." फौरन फिराक ने करारा जवाब दिया कि "मैं तो शेर ही सुना रहा हूं, बकवास तो आप कर रहे हैं." कुछ गुस्से में जरूर कही गई थी पर बात बिलकुल ठीक थी. आश्चर्य की बात नहीं. जो 'तू धूल भरा ही आया, ओ चंचल जीवन बाल, मृत्यु जननि ने अंक लगाया' में अंतर्निहित गूढ़ भाव नहीं जानता वह यह शेर नहीं समझ सकता.

फिराक की शायरी समझना अगर मुश्किल नहीं तो आसान भी नहीं है. उसके लिए फिराक का व्यक्तित्व समझना आवश्यक है; और वह काफी दुरूह है. शायद इसी एहसास के साथ यह कहा गया है कि—

आने वाली नस्लें तुम पर रश्क करेंगी हम असरो
जब ये ख्याल आयेगा उनको, तुमने फिराक को
देखा था

मैंने फिराक को देखा ही नहीं मुझे उन्हें बहुत अच्छी तरह जानने का सौभाग्य मिला. विश्वविद्यालय में पैंतालीस वर्ष पहले उनसे भेंट हुई थी. मिलना-जुलना शुरू हुआ. बाद में वह हमारे पड़ौसी भी हुए और मेरठ और दिल्ली में अधिकतर मेरे साथ ही ठहरा करते थे. आज जब उनके काव्य पर कुछ लिखने की धृष्टता कर रहा हूं तो स्मृतियों के अनेक चलचित्र मेरे अंदर उमड़-घुमड़ रहे हैं; शायद कभी उनको शब्द-बद्ध करूं.

टोपी से बाहर झांकते हुए बिखरे बाल, शेरवानी के खुले बटन, ढीला-ढाला (और कभी-कभी बेहद गंदा और मुसा हुआ) पैजामा, लटकता हुआ इजारबंद, एक हाथ में सिगरेट और दूसरे में छड़ी, गहरी और गोल-गोल डस-लेने-वाली-सी आंखों में उनके व्यक्तित्व का फक्कड़पन तो स्पष्ट हो जाता था पर उनकी गहन गंभीरता और विद्वता के प्रभाव का पैनापन वही समझ सकते थे जिन्हें उनको नजदीक से जानने का सुअवसर मिला हो. भारतीय दर्शन, साहित्य, संस्कृति, कला, संगीत आदि जैसे विषयों पर फिराक घंटों बातें करते रह सकते थे, जो उनके मिलने-जुलने वालों को विस्मय में डाल देती थी. फिराक की शायरी ऐसे ही व्यक्तित्व से उपजी है.

फिराक के काव्य की बात मैं एक बड़ी छोटी-सी, पर मेरी समझ में अत्यंत महत्वपूर्ण, घटना से शुरू करूंगा. विश्वविद्यालय में एक दिन मेरे एक मित्र ने बताया कि अगले दिन फिराक बी.ए. की अपनी कक्षा को कविता को समझने (एप्रीसियेशन आफ पोएट्री) पर वार्ता देंगे. मैं उनकी कक्षा का विद्यार्थी नहीं था पर पहुंच गया उनको सुनने. पहले तो लड़कों से नोक-झोंक हुई. कुछ परीक्षा-प्रेरित विद्यार्थी फिराक से इस वार्ता पर आपत्ति प्रकट करने लगे. उनका कहना था कि परीक्षाएं पास हैं और कोर्स बहुत बाकी है. इस पर फिराक ने कहा कि 'कोर्स' स्टूडेंट्स फ्रेंड्स यूनीवर्सिटी रोड पर किताबों की एक दूकान से 'की' खरीदकर खत्म कर लेना, बहुत-सी ऐसी किताबें मिलती हैं. इस बार यह आपत्ति की गई कि अन्य अध्यापक इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने को मना करते हैं. फिराक कब चूकने वाले थे, बोले, वह तो इसलिए मना करते हैं क्योंकि खुद उन्हीं से पढ़कर पढ़ाते हैं. पूरी कक्षा में जोर से हंसी फूट पड़ी और जब वह हल्की पड़ी तो फिराक बोले, "देखो मैं जो आज तुम्हें पढ़ाऊंगा वह इस विभाग में बच्चन को (प्रसिद्ध हिंदी कवि जो उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे) छोड़कर कोई नहीं पढ़ा सकता." उसके बाद साहित्य और कविता की जो व्याख्या फिराक ने की वह सब ने दत्तचित्त होकर सुनी; कक्षा समाप्त होने पर सब स्तब्ध थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांट ने कहा है कि संसार का ज्ञान हमें अपनी परिस्थितियों और वातावरण में असंबद्ध और बेतरतीब ढंग से बिखरी वस्तुओं से होता है. पर यही अव्यवस्था और बिखरापन मानव की विचार-प्रक्रिया में पककर व्यवस्थित और सम-स्वर हो जाता है. और अगले चरण में व्यवस्था और एक-रूपता का यही बोध मनुष्य की कल्पना की सहायता से कविता और ललितकलाओं में परिणत हो जाता है. वास्तव में यही आंतरिक एकात्मता विश्व की पूर्णता की परिचायक है. फिराक ने कहा है—

विश्व एक है ये नियम कभी न ऐ मन भूल
इक तारा थर्रा उठा जब तोड़ा इक फूल.

कार्लाइल ने भी कुछ ऐसी ही बात कही है कि "पूरा समाज गुप्त और अर्ध चैतन्य ढंग से जिन बातों को धुंधले ढंग से अनुभव करता है कवि उन्हीं अनुभवों को धुंधलके से उभारकर खुली रोशनी में प्रस्तुत करता है."

फिराक का सारा काव्य इसी अस्तित्व को अस्तित्व के रूप में समझने का प्रयास है. तभी तो वह जीवन को—विस्तृत, व्यापक जीवन को—काव्य का विषय मानते हैं. उन्होंने स्वयं कहा है कि "हिंदू संस्कृति और इस संस्कृति के मिजाज ने मुझे यह अनुभव कराया कि प्रेमी-प्रेमिका का संबंध, घरेलू जीवन, सामाजिक जीवन, प्रकृति के दृश्य, धरती, नदियां, सागर, पहाड़, लहलहाते खेत, बाग और जंगल, अग्नि, हवा, सूर्य, चंद्रमा, सितारे, मौसमों का जुलूस— किसी भी ईश्वर-पैगंबर, धार्मिक ग्रंथ, काबा या काशी से कहीं अधिक दिव्य और पवित्र है." इसी जीवन का "काव्यात्मक और कलात्मक अनुभव प्राप्त करना और दूसरों तक इसे पहुंचाना साहित्य का एकमात्र लक्ष्य है.... साहित्य हमारी चेतना की वह तपस्या है, वह साधना है जिससे हमारी विश्व या आत्मचेतना दिव्य बन जाये."

कलम की चंद जुंबिशों से
और मैंने क्या किया
यही कि खुल गये हैं कुछ रमूज-से हयात के

शायरी बस उसी का है इज़हार
रब्ते पिनहा जो कायनात से हैं.

विश्व या आत्म चेतना को दिव्य बनाना फिराक के लिए कोई संकीर्ण प्रक्रिया नहीं है. भौतिकता के चमत्कार के अनुभव को ही वह उच्च आध्यात्मिकता मानते हैं. पाकिस्तान में जब इस्लामी और रूहानी (आध्यात्मिक) साहित्य का नारा उठाया गया तो फिराक ने 'नुकूश' (लाहौर की एक मासिक पत्रिका) के संपादक को पत्र में लिखा कि साहित्य में आध्यात्मवाद व भौतिकवाद जैसे धड़ों का प्रश्न ही नहीं उठता. आज की समस्याओं की पृष्ठभूमि में "एक ही प्रकार की मुसीबत में गिरफ्तार मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दुनिया को एक ही उद्देश्य के साहित्य की आवश्यकता है..... वर्तमान का बोध और वर्तमान में जिस उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएं संसार भर के लिए निहित हैं, उन संभावनाओं का बोध यही वह साम्यवादी सत्यता (सोशलिस्ट रियलिज्म) है जिसके सहारे साहित्य की रचना होगी. यह सत्यता न इस्लामी है, न ईसाई है, न हिंदू है...." (हिंदी रूपांतर)

लेकिन फिराक की इस साम्यवादी सत्यता को किसी 'वाद' से जुड़ा समझने की भूल नहीं करनी चाहिए. अपने प्रगतिवादी मित्रों को एक बार उन्होंने यही चेतावनी दी थी—

"याद रहे कि साहित्य और संस्कृतियों के बावजूद अगर अपने सिलसिले और स्रोतों से विमुख हो गये तो सख्त घाटे में रहेंगे. संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद से लेकर टेनीसन..... टैगोर, गालिब और इकबाल तक के साहित्य में दूसरों को प्रभावित करने के ढंग और कलात्मक चमत्कार हमें मिलते हैं, यदि हमने उन्हें प्राप्त नहीं किया तो केवल प्रगतिशील उद्देश्य हमसे महान साहित्य की रचना नहीं करवा सकते....हमें प्राचीन साहित्य की आत्मा को अपने अंदर समोना है..... यदि हम प्राचीन साहित्य के तत्वों का भेद न पा सके, तो हमारा साहित्य प्रगतिशील होते हुए भी एक उखड़े पतंग के समान होगा."

इस भावनात्मक और वैचारिक पृष्ठभूमि की—वस्तुतः इनके अद्भुत सामंजस्य की—लंबी कहानी है. एक समृद्ध परिवार के दार्शनिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक वातावरण ने फिराक को बचपन से ही अत्यंत प्रभावित किया. 'रूहे कायनात' की भूमिका में स्वयं फिराक ने इसके बारे में लिखा है. प्रेरणा के स्तर पर 'रूप' की भूमिका में फिराक ने लिखा है— "मुझे याद पड़ता है कि मैं अपने बचपन में मामूली से मामूली चीज देखकर किसी अकथनीय प्रेरणा से विह्वल हो जाया करता था (इन चीजों की सूची में चूल्हा, घड़ा, घरौंदे, खेत, बहता पानी, सब्जियां, चिड़िया, जानवर, उनके बच्चों, लोक गीत, लोककथाएं आदि सभी कुछ सम्मिलित हैं) सारांश यह कि रास्तों में पड़े ठीकरों से लेकर सूरज और चांद तक कोई ऐसी वस्तु थी ही नहीं जो मुझे निमग्न न कर दे.... यही दिव्यता, हृदयग्राहयता, अकथनीय मान्यताओं की अनुभूति साधारण में असाधारण की झलक, यही अपनत्व शायद हिंदू संस्कृति का रहस्य है."

लेकिन भावनात्मकता का इतना उद्रेक होते हुए भी फिराक की आरंभिक काव्य-यात्रा ने बड़ी धीमी गति से प्रगति की. इसका स्पष्टीकरण फिराक ने अपनी पुस्तक 'मशाल' की भूमिका में दिया है.....

"बात यह थी कि शायरी करने की बनिस्बत उर्दू शायरी ने हमें जो सरमाया दिया है, उसकी जांच-पड़ताल में मुझे गहरी दिलचस्पी थी. उस शायरी पर नजर डाली तो उसमें बहुत कुछ खूबियां नजर आयीं, लेकिन कमियां और खराबियां भी बहुत मिलीं." बाद में इसको और स्पष्ट करते हुए फिराक ने 'बज्मे-जिंदगी : रंगे-शायरी' की भूमिका में लिखा है—

"मुझे, उर्दू-काव्य साहित्य में और गद्य-साहित्य में भी अच्छी से अच्छी और सुंदर से सुंदर, ऊंची से ऊंची चीजें मिल चुकी थीं और मिलती रहती थीं. इन बातों के होते हुए भी मुझे मजमूई हैसियत से एक असंतोष का आभास होता रहता था. शायद इस कारण से कि मेरे अंदर हिंदू विचारों और हिंदू संस्कृति की गहरी से गहरी, बहुमूल्य संच्चाइयां और अनुभूतियां विद्यमान थीं जो उर्दू कविता में कम ही मिलती थीं. हिंदू संस्कृति का मिजाज और उस मिजाज की ध्वनि, उर्दू कविता में कदाचित ही मिलती थी."

इसको और स्पष्ट करते हुए 'रूप' की 1976 की भूमिकां में फिराक ने लिखा है—

"मुस्लिम कल्चर बहुत ऊंची चीज है और पवित्र चीज है, मगर उसमें प्रकृति, बाल जीवन, नारीत्व का वह चित्रण या घरेलू जीवन की वह बू-बास नहीं मिलती, वे जादू भरे भेद नहीं मिलते, जो हिंदू कल्चर में हमें मिलते हैं. कल्चर की यह धारणा हिंदू घरानों के बर्तनों में, यहां तक कि मिट्टी के बर्तनों में, दीपकों में, खिलौनों में, यहां तक कि चूल्हे-चक्की में; छोटी-छोटी रस्मों में और हिंदू की सांस में इसी की ध्वनियां, हिंदू लोकगीतों को अत्यंत मानवीय संगीत और स्वर्गीय संगीत बना देती है.

बाबुल मोर नइहर छुटल जाए
ऊ ड्योढ़ी परबत भई, आंगन भयो विदेस.

यह तो हमें गालिब भी नहीं दे सके, चकबस्त भी नहीं दे सके.

उर्दू कविता में भारतीयता की हजारों सुंदर से सुंदर झलकियां तो खुद मुसलमानों ने दिखाई हैं. यह सब होते हुए भी मानवता और दिव्यता का संगम इन कविताओं में नहीं मिलता."

चर्चा आगे बढ़ाने से पहले एक बात कह देना आवश्यक लगता है. फिराक को हिंदू संस्कृति के प्रभाव ने कट्टरवादिता से बिलकुल अछूता ही छोड़ दिया है. उनका मानना है कि—

"हम काव्यात्मक और कलात्मक चेतना से, मनन और विवेक से ऐसे अनुभव प्राप्त कर सकें जिससे संसार से अलग किसी खुदा, ईश्वर, मजहब, पूजा-पाठ, सिज्दा-दंडवत या सांप्रदायिकता का कोई स्थान न हो. हिंदू-विचार सांप्रदायिक विचार नहीं है. किसी विशेष जाति या संप्रदाय को दूसरी जातियों और संप्रदाय से अलग करके हिंदू विचारों का निर्माण नहीं हुआ है. जब ये विचार ईश्वरवादिता से मुक्त हैं, तो संप्रदायवादिता से कैसे जकड़े रह सकते हैं." (भूमिका-बज्मे-जिंदगी: रंगे-शायरी)

फिराक की सृजनात्मक ऊर्जा का विवरण जानबूझकर कुछ विस्तार से दिया गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिराक ने उर्दू काव्य को जो बहुत कुछ नया दिया है उसका स्रोत इसी संवेदनशील अभिव्यक्ति और विवेकशील चिंतन के अद्भुत सामंजस्य में ही मिलता है. इसी पृष्ठभूमि से ऐसी कविता उपज सकती है–

संजोग बियोग की कहानी न उठा
पानी में भीजते कमल को देखा.
बीती होंगी सुहाग रातें कितनी
लेकिन है आज तक कुवांरा नाता.

लहरों में खिला कंवल नहाये जैसे
दोशीज़ये-सुबह गुनगुनाये जैसे
ये कोमल रूप का सुहानापन आह
बच्चा सोते में मुस्कुराये जैसे.

फिराक के काव्य की विस्तृत व्याख्या यहां संभव नहीं, केवल कुछ विशिष्ट पक्षों की चर्चा ही हो सकती है. संक्षेप में, सबसे पहली बात तो यही है कि फिराक की शायरी में जो मानव को प्रतिष्ठा और मानवीयता को महत्व दिया गया है वह अन्यत्र इतना प्रभावशाली नहीं हो सका. 'इस भरी दुनिया में आदमी को आदमी होता नहीं दस्तयाब.' इस दुख भरी दुनिया का असली रूप 'जब आंख खुली फिराक देखा न गया.' तभी–

हजारों खिज़्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की
ये सब तस्लीम, लेकिन आदमी अब तक
भटकता है

और शायर उसी के लिए चिंतित है-

जो उलझी थी कभी आदम के हाथों
वह गुत्थी आज तक सुलझा रहा हूं.

फिराक के लिए मानव देवता से भी बड़ा है–

गैबदां है मगर खुद को भी
नीयते आदमी नहीं मिलती.

शायर चाहता है–

पाते जाना है और न खोते जाना
हंसते जाना है और न रोते जाना
अब्वल और आखिरी पयामे तहजीब
इन्सान को इन्सान है होते जाना.

लेकिन उर्दू काव्य को फिराक की खास देन है प्रेम और सौंदर्य काव्य का नया रूप. यह अपने में बहुत ही विस्तृत विषय है और नीचे के संक्षिप्त विवेचन के उसके साथ न्याय नहीं हो सकता, फिर भी. फिराक की अधिकतर शायरी इश्किया शायरी है लेकिन यह उर्दू की सामान्य इश्किया शायरी से भिन्न है. प्राचीन इश्किया शायरी के विपरीत फिराक में प्रेम की अभिव्यक्ति एक जीवंत और गतिशील शक्ति के रूप में है. स्वयं फिराक ने लिखा है–

"..... महान इश्किया शायरी के लिए जरूरी है कि शायर का बोध और ज्ञान, अंतःप्रेरणा और सदाचार संबंधी दिलचस्पियां व्यापक हों. उसका व्यक्तित्व एक व्यापक जिंदगी और व्यापक कल्चर का वाहक हो. उसका दिल भी बड़ा हो और दिमाग भी बड़ा हो–यानी ऐसे दिल और दिमाग जिन्हें कल्चर ने रचाया-सजाया हो."

(हिंदी रूपांतर)

उर्दू शायरी की कमियों और खामियों (इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है) की पड़ताल करके फिराक ने एक नयी हुस्न और इश्क की दुनिया बसाई जिसमें, "केवल व्यक्तिगत भावनाओं के सुंदर वर्णन का नाम नहीं, बल्कि उन भावनाओं के सुंदर वर्णन का नाम है जो व्यक्तिगत होने पर भी सामूहिक हैसियत रखती हो."

इस नयेपन की मैं कोई व्याख्या करूं इससे अच्छा होगा कि प्रसिद्ध समालोचक मुहम्मद हसन अस्करी ने इस विषय पर जो लिखा है उसको संक्षेप में उन्हीं के शब्दों में लिख दूं–

"फिराक साहब ने उर्दू शायरी को एक बिलकुल नया आशिक दिया है और उसी तरह बिलकुल नया माशूक भी. इस नये आशिक की एक बड़ी स्पष्ट विशेषता यह है कि इसके भीतर एक ऐसी गंभीरता पायी जाती है, जो उर्दू शायरी में पहले नजर नहीं आती थी..... उनके काव्य में ऐसी तीव्र प्रबुद्धता है जो उर्दू के किसी शायर से दब के नहीं रहती, चाहे ज्यादा ही हो. अतएव उनके आशिक में एक तरफ तो आत्मनिष्ठ मानव की गंभीरता है, दूसरी तरफ प्रबुद्ध मानव की गरिमा..... फिराक के आशिक और माशूक के पास जिस्म तो खैर है ही दिमाग भी है..... जिसे इश्क के अतिरिक्त दूसरी मशगूलियां भी निभानी होती हैं..... यहां दो शरीर मात्र ही एक दूसरे से नहीं मिलते, बल्कि दो दिमाग भी गुंथे हुए हैं. फिराक के आशिक को आप उस वक्त तक पूरी तरह नहीं समझ सकेंगे, जब तक फिराक के महबूब को भी न समझ लें. फिराक साहब ने महबूब को एक ऐसी निर्वेद स्थिति प्रदान की है, जो उर्दू-काव्य में उसे प्राप्त नहीं थीं..... उनका महबूब सिर्फ एक टाइप नहीं बल्कि एक पात्र है..... यह आशिक और माशूक दो मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं हैं....."

इतना और जोड़ दिया जाए कि फिराक की इश्किया शायरी का प्रेरक इश्क तो है "पर यह शायरी सिर्फ इश्क नहीं, बल्कि पूरे विवेक ने की है." फिराक ने प्रेम को पूरे जीवन के परिप्रेक्ष्य में देखा है: दूसरे शब्दों में कई मानसिक अनुभूतियों में से प्रेम भी एक है. यह भी स्पष्ट है कि यह केवल शारीरिक भावनाओं तक सीमित नहीं है. एक रूबाई में फिराक कहते हैं–

कहती हैं यही तेरी निगाहें ऐ दोस्त
निकली नयी जिंदगी की राहें ऐ दोस्त
क्यों हुस्नो-मुहब्बत से न ऊंचे उठके
दोनों एक दूसरे को चाहें ए दोस्त.

एक और शेर–

हुस्न परस्ती पाक मुहब्बत बन जाती है जब कोई
वस्ल की जिस्मानी लज्ज़त से रूहानी
कैफीयत ले.

यह बड़ी पावन पूजा भी है–

पैगंबरे इश्क हूं समझ मेरा मकाम
सदियों में फिर सुनाई देगा ये पयाम
वो देख कि आफ़्ताब सजदे में गिरे
वो देख उठे देवता भी करने को सलाम.

इस प्रकार फिराक की शायरी में 'इबहाम' और 'फसाहत' दोनों का सामंजस्य है. फिराक की इश्किया शायरी को इसी पृष्ठभूमि में समझने की कोशिश करनी चाहिए.

इश्क में सच ही का रोना है
झूटे नहीं तुम, झूटे नहीं हम.

मुझको गुनाहो-सबाब से मतलब? लेकिन इश्क में अक्सर आए
वो लम्हे खुद मेरी हस्ती जैसे मुझे देती हो दुआएं
छोड़ वफा-ओ-ज़फा की बहसें, अपने को पहचान ऐ इश्क!
गौर से देख तो सब धोखा है, कैसी वफायें कैसी जफायें!

कभी पाये-पाये हुए तुझे, कभी खोये खोये हुए तुझे
कभी बेनयाजे-तलाश है, कभी इश्क मायले जुस्तुजू.

माशूक (जिसकी चर्चा ऊपर हुई) को समझने के लिए–

एम फुसूं-सामां निगारे-आशना की देर थी
ऐसी भरी दुनिया में हम तनहा नज़र आने लगे.

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो
तुम को देखें कि तुम से बात करें.

इस इश्किया शायरी का असली सौष्ठव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिराक के आशिक के विरह में दिखाई देता है. अधिकांश उर्दू शायरी में आशिक की जहनियत नीची रही है (संभवतः इसी आधार पर पं. नेहरू ने डा. महमूद को अपने एक पत्र में लिखा था कि उर्दू शायरी अधिकांशतः 'सेंटीमेंटल स्टफ' है) लेकिन फिराक का इश्क किसी मानसिक गिरावट का द्योतक नहीं है. यहां आशिक एक उदास संसार का निर्माण करता है जो रूमानी तो है, पर उसमें संवेदनशीलता और प्रबुद्धता है. उसने अपने लिए जो वातावरण बनाया है उसका चित्र देखिएं (केवल गिने चुने उदाहरण दे रहा हूं, वैसे फिराक की कविता इनसे भरी पड़ी है) विरह में उदास हो जाना स्वाभाविक है: उदासी बढ़ती ही जाती है— न कटती है, न घटती है और फिर प्रेमी इसमें पूरी तरह तल्लीन हो जाता है. इसी स्थिति को महोदवी के संदर्भ में डा. शिवमंगलसिंह सुमन ने वेदना की विह्वलता की संज्ञा दी है. फिराक और महादेवी के काव्य में गहरा अंतर होते हुए भी इस वेदना, पीड़ा और उदासी की विह्वलता, गहनता और भावना की तीव्रता में काफ़ी समानता है.—

मुझे खबर नहीं ऐ हमदमों, सुना ये है
कि देर देर तक अब मैं उदास रहता हूं.

शामे-ग़म कुछ उस निगाहे नाज़
की बातें करो
बेखुदी बढ़ती चली है राज़ की बातें करो.
सागरे-सुबह-चकां लाओ कि कुछ रात कटे
नूरे-ख्य्याम को छलकाओ कि कुछ रात कटे.
सुकूते-शाम मिटाओ बहुत अंधेरा है
सुखन की शम्अ जलाओ बहुत अंधेरा है.
यह रात वो है कि सूझे जहां न हाथ को हाथ
खयालो दूर न जाओ बहुत अंधेरा है.

विरह बहुत गहरा हो जाने पर फिराक का आशिक विक्षिप्त नहीं होता, अपने में ही डूबता जाता है, तल्लीन होता जाता है — (कोष्ठक में महादेवी की पंक्तियां हैं)

शिव का विष-पान तो सुना होगा
मैं भी ऐ दोस्त, पी गया आंसू.
(आंसुओं का क्षार भी मैं,
बांटती नित स्नेह का रस)
शबे-हिज्र भी यूं तो मगर पिछली रात को
वो दर्द उठा फिराक कि मैं मुसकुरा दिया.
अपने हवास में शबे-गम कब हयात है
ऐ दर्द-हिज्र तू ही बता कितनी रात है.
('पूछता क्यों शेष कितनी रात')

देखिए तन्हाई का आलम—

'आये तुम आज भूली हुई याद की तरह'
(सज़नि कौन तम में परिचित-सा, सुधि-सा
छाया-सा आता)
कौन करे है बातें मुझसे तनहाई के पर्दे में
ऐसे में किसकी आवाजें कानों में रस घोले है.
(अलक्षित आ किसने चुपचाप सुनी अपनी
सम्मोहन तान)

तन्हाई की रातों ने अक्सर मुझको मिलवाया है
मुझसे', उस समय—

कल मुझसे और मेरे दिल में ता-देर
रही सरगोशी-सी
कुछ मैंने उसे समझाया है
कुछ उसने मुझे समझाया है.
मैं हूं, दिल है, तनहाई है,
तुम भी जो होते अच्छा होता.
शामें किसी को मांगती हैं आज भी फिराक
गो जिंदगी में यूं मुझे कोई कमी नहीं.
(तेरी सुधि बिन क्षण सूना)

विरह की रात में—

जागे हैं फिराक आज गमे-हिज्र में ता-सुबह
आहिस्ता चले आओ अभी आंख लगी है.
('कन कन में बिखरी सोती है, अब उसके जीवन की प्यासा जगा न दे हे दीप कहीं, उनको तेरा यह क्षीण प्रकाश' महादेवी को भी क्षीण प्रकाश से प्रिय के जाग जाने की चिंता है)

प्रिय से मिलने की इच्छा है पर कब—

झपकाते हो आंख जब सितारों के चराग़
ऐसे में हो काश मुझको तेरा दीदार.
(करुणामय को भाता है तम के पर्दे में आना
हे तम की दीपावलियो क्षण भर को तुम बुझ जाना)

और फिर वे क्षण भी आते हैं जब अपनी बेखुदी ही सबसे अधिक प्रिय हो जाती है. प्रिय पास आ भी जाये तो भी उसकी कमी खटकती है; कभी कभी पहचाना भी नहीं जाता.

आज बहुत उदास हूं मैं यूं कोई ख़ास गम नहीं.
हाय ये बेखुदी ये गम आये जो वो तो हम नहीं.
(पथ देख बिता दी रेन, मैं प्रिय पहचानी नहीं)

बस प्रेमी अपने को ही ढूंढने लगता है, प्रेमी और प्रेमिका का अंतर मिट जाता है.

तुझे पाके मैं खुद को पाऊंगा,
कि तुझी में खोया हुआ हूं मैं
ये मेरी तलाश है इसलिए कि
मुझे है अपनी ही जुस्तजू.
न ये भेद हुस्न का खुल सका,
न भरम ये इश्क का मिट सका
किसी रूप में ये है तू कि मैं,
किसी भेस में ये हूं मैं कि तू.
(मुझ में नित बनते मिटते प्रिय
तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या.)

फिराक की इससे भी बड़ी देन है सौंदर्य-काव्य. उर्दू में उनसे पहले उच्च श्रेणी का ऐसा काव्य नहीं मिलता, इसीलिए उन्हें शायरे-जमाल भी कहा गया है. नर्म-ओ-नाजुक शायरी तो उर्दू में बहुत है और फिराक के कलाम में भी यह बिखरी पड़ी है. पर भावना और भाषा दोनों स्तरों पर जो नयापन फिराक लाये वह विस्मयकारी है. भावों और शब्दों की सुंदर पैठ, अद्भुत रूपकों और उपमाओं का उपयोग, सौंदर्य की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएं और उनका सजीलापन उर्दू क्या भारतीय काव्य में भी अन्यत्र कम ही मिलेगा. मेरी समझ में इसका कारण यह है कि फिराक सौंदर्य के उपासक हैं. वह कहा करते थे— "सौंदर्य सतही होता है पर कुरूपता अंतरतम को बेध डालती है." "(बयूटी इज स्किन डीप बट अगलीनेस इज सोल डीप) 'हिंडोला' में, जो उनके बचपन का आत्मकथ्य है, उन्होंने इसको स्वीकारा है.

यही 'शऊरे जमाल' आगे चलकर उनकी शायरी में ज्वालामुखी की तरह फूटा. भावना का उद्रेक और कल्पना की गहनता देखिए—

उसका सरापा हमसे पूछो
चेहरा ही चेहरा पांव से सर तक.

'रूप' की रूबाइयां तो सौंदर्य की सजीव प्रतिमाएं हैं. केवल कुछ ही उहादरण देना पर्याप्त होगा (दो तीन रूबाइयां पहले उद्धृत कर चुका हूं). पहली ही रूबाई में-'पड़ती है जब आंख तुझपे ऐ जाने-बहार, संगीत की सरहदों को छू लेता हूं' जैसा चित्र तो उर्दू शायरी के लिए बिलकुल नया है.

आ जाता है गात में सलोनापन और
चंचलपन, बालपन, अनिलापन और
कटते ही सुहागरात देखें जो उसे
बढ़ जाता है रूप का कुंवारापन और.

हम्माम में उर्यानिये-तन का आलम
पैकर धुंधलके में झलकता कम कम
एक हलकी थरथरी-सी सर से पा तक
शबनम से धुली शफक खाती है क़सम.

नग्न-तन का ऐसा सजीला चित्रण चित्रकला में भी शायद न मिल सके. लेकिन फ़िराक के लिए सौंदर्य केवल प्रेयसि या अभिसारिका में ही नहीं है. 'रूप' की अनेकों रूबाइयों में गृह-लक्ष्मी, बच्चे को खिलाती हुई मां, अलगनी पर कपड़ा सुखाती गृहिणी, तुलसी पर जल चढ़ाती नारी, गाय को दाना खिलाती व दुहती ग्राम्यबाला के भी ऐसे ही सजीव चित्र हैं.

फिराक प्रकृति से अत्यत प्रभावित हैं. प्रकृति उनके लिए एक दिव्य ज्ञान है ('हर जलबे मे एक दर्से नमूं लेता हूं') और सत्य का आवरण है. प्रकृति के प्रति तल्लीनता उनकी कविता में स्पष्ट दिखाई देती है.

हर एक जलबे में गेबो शहूद वो मिलाय
हर एक नज़ारा एक आइना खांनये हैरत
तारों को, हवाओं को, फ़जाओं को सुला के
ऐ रात कोई आंख, अभी जाग रही है.

बाहय (प्रकृति) और अंतर के सौंदर्य से मिलकर ही ऐसी शायरी हो सकती है.

जिस तरह नदी में एक तारा लहराय
जिस तरह धरा में एक कौंदा बल खाय
बरमाये फिज़ा को जैसे एक चंद्र किरन
यूं ही शामें-फिराक तेरी याद आये.

और अंत में जोश मलिहाबादी ने अपनी आत्मकथा 'यादों की बारात' में फिराक के लिए जो कहा है कि "जो शख्स यह तस्लीम नहीं करता कि फिराक का महान व्यक्तित्व हिंदुस्तान के माथे का टीका, उर्दू जुबान की आबरू और शायरी की मांग का सिंदूर है, वो खुदा की कसम निरा घामड़ है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलख अकेला

फणीश्वरनाथ रेणु

स्वयंवद्

संभव है कि ऐसे अवसरों पर साहित्यकार से साहित्य के अथवा जीवन मात्र के बारे में कोई बड़ी, गुरु-गंभीर बात, कोई शाश्वत संदेश, कोई प्रबोधन अपेक्षित होता हो. मेरे पास वैसी बड़ी या गहरी कोई बात कहने को नहीं है. पचास-एक वर्ष पहले कदाचित् मुझे भी वैसी बात की अपेक्षा होती, और उसे पूरा करने के लिए मैं स्वयं भी दूर की कोई कौड़ी लाने का प्रयास करता. पर आज, आज मानता हूं कि साहित्य एक अत्यंत ऋजु कर्म है. उस की अकृत्रिम सरलता ही उस की शक्ति है. कर्म की वह ऋजुता एक जीवन-व्यापी साधना से मिलती है. सोचता हूं कि जब साहित्यकार की खोज समग्र मानव जाति की खोज के साथ तादात्म्य पा लेती है तभी उसे वह सरल शक्ति भी सिद्ध होती है—तभी वह उसे स्वायत्त कर पाता है. और मानव की खोज केवल सुरक्षा और आहार और जोड़े और बसेरे की खोज नहीं है जो कि उस के और पशु के बीच समान है. मानव की खोज—उस बिंदु से जिस पर वह पशु से अलग हो जाता है और मानव नाम का अधिकारी होता है—मूल्यों के किसी अजस्र और अक्षय स्रोत के लिए है. कोई कह सकता है कि यह तो विशिष्ट मानव की ही खोज हो सकती है और साधारण जन के सरोकार तो बुनियादी सुख-सुविधा के ही होते हैं. मैं जानता हूं कि ऐसा कहने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है और नये सुखवाद की जो हवा चल रही है उस में मूल्यों की सारी चर्चा को आभिजात्य का मनोविलास कह कर उड़ा दिया जा सकता है. पर मैं ऐसा नहीं मानता और मेरा सारा जीवनानुभव इस धारणा का खंडन करता है. मेरा विश्वास है कि इस अनुभव में मैं अकेला भी नहीं हूं.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 28 दिसंबर, 1979 को कवि अज्ञेय द्वारा व्यक्त विचार.

'विशाल भारत' में एक ऐसे लेखक की कहानियां प्रकाशित होती थीं, जो अपनी हर कथा के नायक का नाम 'सत्य' ही रखता था. सो, दूर-देहात के इस किशोर पाठक (पाठकराम!) को यह ढंग जरा भी पसंद नहीं था. लेकिन न जाने क्या बात थी कि उसकी कहानी देखकर पाठक (उपर्युक्त) का मन ललच जाता, ललचने लगता...

शायद, लेखक के नाम में कोई विशेषता थी. विशेषता थी, पर इस नाम से थोड़ी कोफ्त ही होती थी. रामलीला या यात्रा में, मुंह पर मुखोस लगाकर प्रकट होने वाले पात्रों के वास्तविक चेहरों को देखने के लिए मन जिस तरह अकुलाता था, वैसी ही अकुलाहट ऐसे नामों से होती थी... अज्ञात, अदृश्य, अकेला, विचित्र अथवा अज्ञेय.

तब, संभवतः भाषा....

हां, भाषा में ही कोई ऐसी बात रही होगी, क्योंकि कथा के वक्तव्य या कथनोपकथन का अधिकांश शब्दार्थ समझ में कभी नहीं आया. इसके बावजूद मन के परदे पर कथा का गति-चित्र कभी धुंधला होकर नहीं उभरा.

इस नकाबपोश विचित्र लेखक की कहानियों से पहले, 'माधुरी' के पुराने अंकों में प्रेमचंद की कई कहानियां पढ़ चुका था. बुढ़िया और बंदर वाली कहानी, कर्बला!...कहां उन कहानियों की भाषा-भाव की सादगी और ... यह अलख, अचल, अगम, अगोचर, अज... अज्ञेय की भाषा, जिसके अनेक शब्दों का 'सुद्ध उचारन' भी नहीं कर पाता. और, कर्बला कथा का किशोर नायक वह गरीब, करीम, हबीब, रहीम, हमीद, या जो भी नाम रहा हो उसका, कहानी पढ़ते समय जो पाठकराम की आंखों के आगे साकार खड़ा हो गया था, फिर उसमें ही समा गया था. और, इधर अज्ञेय का यह अद्‌भुत नायक 'सत्य!' ऐसा आदमी कभी देखा नहीं!...

ओ? ?...तो, जनाब आली कविल्त भी बनाते हैं. 'विशाल भारत' में ही 'सत्य' के लेखक का एक गीत छपा था. गांव का कोई भी पाठक उन दिनों पद्य नामक चीज को पढ़ता नहीं था. अर्थात यों ही नहीं. गा-गाकर पढ़ता था...बिना गाये अरथ कैसे खुलेगा? अजोधा मंडर रामायण की चौपाई गाता था. लछुमन गुरूजी हमेशा तार स्वर में गाते रहते, भगवान भारतवर्स में गूंजे हमारी भा-र-ती-.ई-ई-इ-ई!! पाठकराम को भी यही शिक्षा मिली थी. मन-ही-मन गुनगुनाकर चमत्कृत हुआ. गीत गुनगुनाते समय पदों से...मृदंग की ध्वनि निकलती है. दौड़कर गांव के प्रसिद्ध पखावजिया जनकदास को बुला लाया. वह सस्वर पढ़ने लगा. अनपढ़ जनकदास, मृदंग बजाकर गीत का अर्थ खोलता गया...

जागो ! जागो !!
धिन्ना! धिन्ना !
जागो सखि, बसंत आ गया !
धिन्ना कत्तक तिन्ना तिरकित ता,
धिनक-धिनक-धिन-धा.
जागो !...
धिन धा !!

कथाकार के इस गीत को मृदंग की संगत के साथ यहां प्रस्तुत करने का कारण है.. बहुत दिनों के बाद देखा, इस गीत को कथाकार ने अपनी एक कहानी में टांक दिया. रसमादकता से मन मंदिर हो गया पाठकराम का.

वसंत आ गया. सखि जागे या न जागे... पाठकराम किशोरावस्था पार कर गांव से शहर आ गया. उसकी जवानी जागी और जगी रही. 1943 में नजरबद होने के बाद भागलपुर सेंट्रल जेल में एक दिन हाथ में आई एक जीवनी: शेखर की.

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय. सत-चित् आनंद-सत्य.

'विशाल भारत' की कहानियों के सत्य ने अपना नाम बदल लिया था—शेखर!

पाठकराम जेल में शेखर की जीवनी पढ़ता और बगल के जेल में, उस की पार्टी की नेशनल एक्जक्यूटिव के एक मान्य सदस्य सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की जीवनी सुनाते, हंसी-ठहाके के साथ. फिर भाषण देने लगते, ह्यूमेनिस्ट...मानवतावादी. हम जेल में हैं और उधर लेनिन के साथ मिलकर क्रांति-मसविदा बनाने वाले महान क्रांतिकारी एम.एन.राय साहब के चेले चांदी काट रहे हैं!...

हर जगह 'अहम सवाल'?

पाठकराम पर इसका कोई भीतरी असर नहीं पड़ा, क्योंकि वह (नमक-हराम?) मन-ही-मन, चोरी-चोरी मानवेंद्रनाथ राय को भी श्रद्धा और भक्ति का फूल चढ़ाया करता था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंवइ आदमी, जयकार करते समय सुलू से अंत में "सब संतन की जै" कहना नहीं भूलता. 'आरिजिन आफ दि फेमिली' पढ़ने के बावजूद वह एट्टी परसेंट सनातनी ही रहा, सब दिन.

याद है, जेल से निकलने के बाद कर्म-क्षेत्र में कहीं किसी कर्मठ कामरेड ने टोका था, "आपका वह लेखक... कौसल्यायन... सांस्कृत्यायन...कात्यायन...अरे वह 'शेखर एक जीवनी' का लेखक कहां है? है मालूम?"

आपका लेखक? जवाब दिया, "मेरा ही नहीं, आपका भी. हमारा लेखक. हिंदी का लेखक."

"मारिए गोली. मेरा लेखक क्यों होगा वह? कहां है वह? है मालूम. वार में! पूर्वी फ्रंट पर. जाइयेगा?"

'वार' के विशेषार्थ, साम्राज्यवादी युद्ध और जनता की लड़ाई.

सच्ची बात यह है कि इस संवाद से पाठकराम पुलकित ही हुआ था. कामरूप कामाख्या की ओर गया, जिधर जाना हर ग्रामगीत में मना है (हो मोरे राजा! पूरब मति जा!) लौटकर कब 'सत्य' या 'शेखर' की जीवनी सुनाइएगा?

पांच-सात साल बाद.

देश स्वतंत्र होकर बंट चुका था. और दानवी लीला भी समाप्त हो चुकी थी. किसी ने सुनाया, उर्दू में एक अद्भुत किताब लिखी गई है, 'और इनसान मर गया.'

"उर्दू में ही 'पेशावर एक्सप्रेस' कहानी लिखी गई है."

"बंगला की एक पत्रिका में प्रबोध कुमार सान्याल का उपन्यास प्रकाशित हो रहा है, धारावाहिक."

"और हिंदी में?"

"हिंदी में? हां, हिंदी में भी चीजें आई हैं. फिलहाल, पढ़िए यह कहानी 'शरणार्थी!'"

पाठकराम ने अपने प्रिय मित्र प्रतुलकुमार गुहारठाकुरता उर्फ छानू से पूछा था, "की र छानू? पोडेछिस? बुझते पेरेछो?"

पाठकराम के मित्र प्रतुल को आप रामपाठक कह सकते हैं, क्योंकि वह भी एक परम पाठक था. उसने गंभीर होकर जवाब दिया था, "बुझे छी ! ताहले, हिंदी में भी है"...लाख चेष्टा करने पर वह अज्ञेय का सही उच्चारण नहीं कर सका था, किंतु...अगौंय!

अज्ञेय की कई किताबें मांगकर ले गया. उस दिन आया तो प्रसन्न था. बोला, "मैं अब नाम पुकारने में गलती नहीं करूंगा."

"बोलो तो, सुनूं!"

"मुहम्मदबख्श!!"

कई साल बाद, फिर प्रतुल ने ही एक दिन बतलाया, क्रांतिकारी पार्टी में हिंदी के दो लेखक थे. एक जनाब पिक्रिक एडिस धोते थे और दूसरे साहब श्रृंगार-प्रसाधन की सामग्री बनाते

यशपाल, अज्ञेय!!

जय-दोल, अरे यायावर रहेगा याद.

याद है. इतनी सरस यात्रा-कथा पहली बार पढ़ रहा था... कानवाई, पूर्णियां की सड़क से नहीं गुजरेंगा?... यों, सिलीगुड़ी से पूर्णियां को रास्ता जाता है, और वहां से कटिहाल होकर फिर कहीं स्टीमर से गंगा पार की जा सकती है...किंतु इस सड़क की अवस्था के बारे में जो-कुछ पता चला था, उसके आधार पर यही निश्चय किया गया कि सिलीगुडी से ट्रेन में लदकर कलकत्ते...

यायावर का कान गई कलकत्ते की ओर मुड़ गया. पाठकराम का मन उदास हो गया, यायावर, पूर्णियां के तीतरों को नाम पुकारते नहीं सुन सकेगा.

एशियाई लेखक सम्मेलन की प्रारंभिक बातें फिर से नहीं दुहरा रहा. निवेदन है, पाठक उसमें 'दिल्ली दूर नहीं अब' के बाद जोड़ लें कृपया.

शीघ्र लौटकर सुना, अज्ञेयजी प्रयाग आये थे. इसके बाद ही दूसरा दल जो अब तटस्थ और उदास था, सम्मेलन में उत्साहपूर्वक सम्मिलित होने की तैयारी करने लगा...

दिल्ली. हिंदी के एक बड़े कथाकार के साथ यात्रा कर रहा हूं. मेरा सौभाग्य...

दिल्ली. यही है दिल्ली स्टेशन. दिल्ली. अब दूर नहीं...स्टेशन के बाहर, कुलियों को सामान दिखला रहा था, मेजबान को नमस्कार कर रहा था, भूली-खोयी चीज को खोज रहा था कि एक मीठी मुस्कराहट के साथ सत-चित सज्जन सामने आये, "नमस्कार! मैं अज्ञेय हूं."

उन्होंने मुझे चुप देखकर मेरे दिल्ली में रहने का ठौर-ठिकाना पूछा. मैं कोई जवाब दूं कि अश्क भाई जी ने पुकार कर कहा, "अमां, तूलिका भाभी वहां अकेली खडी कब से पुकार रहीं हैं, और तुम इधर..."

चलते-चलते सुना, अज्ञेयजी बोले, "जिन्हें लेने के लिए कोई नहीं आये हैं, वे मेरे साथ जा रहे हैं."

मन का जवाब मुंह में ही रख लिया. कह देता तो क्या होता, पता नहीं. कह देता, "जी हां. धन्य हैं वे लोग, जो आप के साथ जा रहे हैं."

विशाल भवन, विज्ञान-भवन. भवन के हर कोने में लेखक. उतने लेखकों के बीच एक ही पाठक निकला, वह भी लिफ्ट-आपरेटर जवान सरदारजी. लिफ्ट को ऊपर उठाने और नीचे उतारने के समय भी वह लगातार एक उर्दू नाविल के पृष्ठ-पर-पृष्ठ पढ़ता जा रहा था.

पाठकराम को बड़ी प्रसन्नता हुई पाठक सरदार को पढ़ते देखकर. लिफ्ट में देखा, अज्ञेयजी चुपचाप किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं. चुप रहे हम. सरदारजी की पढ़ाई में बाधा नहीं पहुंचाई हमने. हम एक साथ ऊपर गये....अज्ञेयजी ने सरदारजी के नाविल का नाम पढ़ लिया था. 'नकाबपोश'.

उतने तमतमाये हुए चेहरों के बीच, बहुत थोडी निर्विकार मूर्तियों को देखा. उसमें एक यशपाल का चेहरा है, दूसरा है अज्ञेय का.

बाहर एक काउंटर पर पेशेवर फोटोग्राफरों ने, सम्मेलन की कारवाई तथा अकारवाई के समय खींची तस्वीरों की दुकान लगा दी थी. लेकिन, ढूंढकर थक गया, अज्ञेय की लुकी-छिपी तस्वीर भी कहीं नहीं दिखाई पड़ी.

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध यात्रा-कथा लिखने वाले मनोज बसु पर दृष्टि पड़ी. हिंदी के यायावर की याद आई. 'शनिवारेर चीठी' के प्रवीण संपादक रजनीकांत दास को देखकर उनकी एक कहानी की घटना आंखों के सामने फिर से घट गई. किंतु तुरंत ही 'हीलीबान की बत्तखें' गर्दन लंबी कर के उचकती हुई-सी चारों ओर जुट गई और 'कक-कक' करने लगीं...

"कहानियों के सत्य में उतनी व्याप्ति नहीं होती, वह एक क्षण का, एक मनःस्थिति का सत्य है, एक दौड़ती लहर का गति-चित्र. वह गति-चित्र आपको दीख जाय और देखने में आपका मन भी थोड़ी देर के लिए उलझ जाय, तो लेखक को और कुछ नही चाहिए." -अज्ञेय.

लेखक को और कुछ नहीं चाहिए. किंतु पाठकराम को शब्द चाहिए. और उसने सुन रखा था कि अज्ञेय और कुछ दे दे, पर शब्द नहीं देता. नहीं देता तो पाठकराम क्या करेगा? लाठी मार कर वसूल तो नहीं सकता. ...महंत, पादरी, पुरोहित, डिक्टेटर, धूर्त, चतुर, चालाक सब—कुछ हो सकता है वह, किंतु, इससे... उसके कथाकार को छोटा कैसे मान लिया जाय?

हिंदी के कई कथाकारों के भाषण हुए, अंग्रेजी में ही...अज्ञेय जब अपना वक्तव्य पढ़ रहा था तो गोपाल हालदार एकटक उसकी मुखमद्रा को परखने की चेष्टा कर रहे थे... यशपाल बोलने लगा. भाषण के बीच में न जाने क्या बोला कि सभी रूसी लेखकों ने हेडफोन से अनुवाद सुनकर एक दूसरे की ओर देखा. उनकी आंखें चमकीं. फिर कागज पर जल्दी-जल्दी नोट्स लेने लगे.

ताराशंकर बंद्योपाध्याय ने पाठकराम से कहा था, "मैं जानता हूं जैनेंद्रजी को, अज्ञेय को, यशपाल को...और कारों नाम मने नेइ."

नेपाली लेखकों का दल अपनी अपनी भाषा में आपस में सलाह कर रहा था, "अज्ञेयजी सित कुराकानी गनू पदद."....अज्ञेयजी से बातें करनी होंगी... किसलिए? अज्ञेय इन्हें शब्द देगा?... दे भी सकता है, पुरोहित ठहरा.

महंत, चक्राधिपति, पादरी, पुरोहित, डिक्टेटर, हिपोक्रेट, केलिफोर्नियन आड़ू खानेवाले... अदृश्य... अलख... अकेला... लेखक...अज्ञेय! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयंवद्

मैं जीवन का रस लेने के लिए लिखता हूं

डा. शिवराम कारंत से बी.आर. नारायण की विचारोत्तेजक बातचीत

आज इस पुरस्कार का विजेता होने के नाते अपने लेखन और पुरस्कृत पुस्तक के विषय में इस अवसर पर कुछ कहना आवश्यक है.

मैंने अपना अधिकतर लेखन कन्नड़ भाषा में ही किया है जो मुझे परिवार और परिवेश से सहज रूप से प्राप्त थी. इसमें कुछ कठिनाई हुई. आप सबकी भांति, मैं भी अपने विचार और भावनाओं को समुचित कुशलता से, अपनी मातृभाषा में अपने इर्द-गिर्द के व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत करने लगा. किंतु जब, और जिस प्रकार, परिवर्तित परिवेश के अनुकूल मेरा व्यक्तित्व सधने-संवरने के क्रम में भिन्न अस्तित्व में ढलने लगा, तो मुझे इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार करना पड़ा कि जीना और जीवन किन तत्वों से बना है. मेरे लिए यह एक गंभीर कार्य-व्यस्तता थी. इस विषय में परंपरा से प्राप्त विचारों से मेरी सहज तुष्टि नहीं होती थी. मैं अपने अनुभवों पर गंभीरता से विचार करता. और, ऐसा करना, बहुधा, मेरी मान्यताओं को झकझोर देता था.

मेरी पुस्तक 'मूकज्जी' में यौन के मानवीय, अतींद्रिय व अन्य विविध पक्षों की चर्चा है, जो हमारे अतीत इतिहास में विकसित होते रहे गुहा-मानव से प्रारंभ होकर वर्तमान युग तक के लंबे इतिहास-काल को समेटती है. यहां चर्चा है यौन की सर्जक शक्ति की, यौन के धार्मिक प्रतीक के रूप की, वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में यौन-स्थिति की. इन सबका तर्क-संगत पद्धति से विवरण है—यौन, एक सर्जक-शक्ति; यौन, एक धार्मिक प्रतीक; यौन देवी-देवता के रूप में; यौन पौराणिक गाथाओं में; यौन वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में आदि.

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर 20 जनवरी, 1979 को श्री कारत द्वारा व्यक्त विचार.

आपको लिखने की इच्छा कब हुई? यानी सृजनात्मक साहित्य की ओर आपका ध्यान कब गया? और कैसे गया?

लिखना सृजनात्मक होना चाहिए, यह विचार कब आया, यह कह नहीं सकता. जब कभी कोई अच्छी कहानी या निबंध पढ़ता, तो लिखने का मन होता. 'तिरुमलांबा' और 'वेंकटाचार्य' की पुस्तकें पढ़ने पर भी लिखने की इच्छा हुई. शुरू में एक उपन्यास लिखा था. जब मैं विद्यार्थी ही था तभी से लिखने लग गया था. बाद में कालेज छोड़कर गांव जाने के बाद एक पत्रिका निकालने और उसे लेखों से भर देने की इच्छा हुई. सृजनात्मक साहित्य तो एक बड़ी बात है, तब उद्देश्यपूर्ण साहित्य लिखने की ओर भी मेरा मन गया होगा, यह कहने में मुझे संदेह होता है.

शुरू में आपने कई प्रकार के काम किये. लिखने के साथ-साथ अभिनय करना, नाटकों में नये-नये प्रयोग करना, बच्चों के लिए 'बालवन' चलाना, ऐसे अनेक काम के साथ लिखना भी प्रारंभ किया.

ऐसा लगता है कि नाटक लिखना कुछ पहले शुरू हुआ. कन्नड़ में नाटक लिखने का प्रारंभ लगभग सन् 1914 में हुआ. उसके कुछ बाद बंबई के नाटक शुरू हुए. 'आशा-निराशा', 'एकच प्याला' जैसे मराठी नाटकों का मुझपर विशेष प्रभाव पड़ा. तब गांधीजी के आंदोलन का प्रभाव था. इसलिए ऐसा लगता था कि नाटक लोगों के मन पर प्रभाव डालने के अच्छे साधन हैं. यह विचार आने से कि लिखने से समाज का सुधार हो सकता है, नाटक की ओर मैंने विशेष ध्यान दिया. तिलिस्मी और जासूसी साहित्य की ओर भी मेरी रुचि थी. पर उसके लिए किसी खास उद्देश्य की जरूरत नहीं थी. दूसरे प्रकार के साहित्य के लिए एक उद्देश्य जरूरी था. यह अलग बात है कि वह सृजनात्मक साहित्य है या नहीं. पर उस जमाने में जो भी दिखाई देता, उससे प्रतिक्रिया की भावना बड़ी तीव्र होती. वे बुद्धिपूर्वक योजना बद्ध नाटक लिखने के दिन थे.

यानी वे समाज सुधारने के लिए लिखे गये.

जी हां, उस भावना को लेकर लिखने लगा. उस अवधि में, यानी सन् 1924 से 1930 तक नाटक ही लिखे. लगभग उसी जमाने में उसी उद्देश्य को लेकर एक उपन्यास भी लिखा.

क्या एक उपन्यास को लिखने की जब इच्छा होती है तब आप कोई विशिष्ट अनुभव प्राप्त करते हैं, अथवा देखते हैं? आपका उपन्यास किसी एक घटना से आरंभ होता है?

यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि ऐसा होता है. एक समस्या मन में घर करके बैठी रहती है. यदि वह समस्या याद आ जाये तो लिखने में सुविधा होती है. मतलब यह है कि उस समस्या से संबंधित घटनाओं को दस लोगों में देखा हो, मन ने उसके बारे में सोचा हो तो, तब आपके सामने केवल कुछ व्यक्ति आते हैं. वे सब चरित्र जीवंत व्यक्ति ही होते हैं. आमतौर पर कई बार उनके स्वभाव और गुण को दिखाने के लिए एक काल्पनिक सन्निवेश को तैयार करते हैं. लिखते समय ऐसा लगता है कि एक व्यक्ति का नाम अपने आप आने पर भी वह नाम क्यों आ रहा है, यह सन्निवेश क्यों उठाया? कई बार ऐसा मैंने उपन्यास लिखकर पूरा करने के बाद सोचा है. परंतु लिखते समय ऐसा कोई विचार नहीं रहता. यदि यह पूछें कि वह नाम क्यों आया या वह घटना क्यों आयी? लिखते समय मेरे मन में अनुभूत व्यक्ति का मुख ऐसा है, पहले अमुक घर में ऐसी घटना देखी थी, ऐसी याद आती है परंतु लिखते समय यह कहा नहीं जा सकता कि वह सब प्रयास पूर्वक आता है. यही कहा जा सकता है, मन की तह में उसकी दास्तान रहती ही है.

संस्कार कहिए अथवा एक प्रकार के स्वाभाविक आकर्षण का केंद्र कहिए, उसे दिखाने के लिए अथवा उसके लिए एक प्रतीक के रूप में आपके उपन्यासों में वृद्धाओं के पात्र आते हैं, यह कहना उचित होगा?

मेरे लिए वे इसलिए प्रिय हैं कि वे एक विश्वास को लेकर एक लंबे अरसे तक उसके अनुसार जीवन चलाती हैं और जीवन चलाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए समय नहीं रहता. वह जीवन का अंतिम छोर होता है. उनके लिए वह आखरी अनुभव होता. सीमित भूमिका में अपने विश्वासों के आधार पर जीनेवाले व्यक्तियों से मिलने का प्रयास करता हूं. मैंने उनमें सौंदर्य को देखा है पर किसी को कभी यह नहीं समझना चाहिए कि उनका विश्वास मेरा विश्वास है. उनमें मेरी कुछ मान्यताएं हो सकती हैं कुछ न भी हो सकती हैं. उन मान्यताओं को कम आयु वालों में दिखा दें तो कृत्रिम हो सकता है क्योंकि यह प्रश्न उठता है कि थोड़े समय में उतना अनुभव, उतनी समझ, उनमें कैसे आ गयी?

आमतौर पर उस जमाने में लिखे उपन्यासों में एक बात विशेष रूप से उभरकर आयी है, वह है अन्यान्य संबंध में परस्पर प्रेम का महत्व.

मेरे लिए सबसे बड़ा भाग्य मित्र, संबंधी और कइयों द्वारा व्यक्त प्रेम और विश्वास है. मेरा अनुभव है कि इस प्रेम की तुलना में और कोई प्राप्य समाधान नहीं है. अपने जीवन को सहनीय बनाकर तृप्ति पाने के लिए और कोई उसके समान नहीं है. यश और कीर्ति की अपेक्षा तसल्ली देने वाली चीज, लोगों द्वारा कमाया गया प्रेम और विश्वास है. यह प्रश्न दूसरा है कि कोई क्यों हमें प्रेम करता है या विश्वास दिखाता है. उसमें आपकी स्थिति, सामाजिक दर्जा, बौद्धिक योग्यता कुछ भी नहीं रहता है. दूसरे प्राणियों के समान ही आप भी एक हैं. मेरा अनुभव है कि प्रेम या स्नेह ही जीवन है.

तो यह कहा जा सकता है कि जो भी स्वाभाविक है, वह अच्छा है.

यह कहना भी सरल नहीं है. प्रश्न उठता है स्वाभाविक क्या है? क्योंकि सामाजिक जीवन में ही हजारों समस्याएं आती हैं. एक व्यक्ति पूर्णरूप से जो चाहे कर नहीं सकता है. दूसरों पर उसका जीवन निर्भर रहता है. अतः अनेक प्रकार के सामंजस्य चाहिए. ऐसा व्यक्ति कौन है, उसकी शक्ति क्या है, उसे जाने बिना बनाये गये नियम टिक नहीं सकते हैं. हमारी आशा के अनुसार भी चलते नहीं हैं. हमारे विश्वास के अनुसार भी चलते नहीं हैं. जिस ढंग से चलना है उसी ढंग से चलते हैं. हमें चाहिए या नहीं चाहिए, यह पूछकर चलनेवाले ढंग से नहीं, वह जंगल में रहने वाले विभिन्न प्राणियों के समान रहते हैं. ज्यादा से ज्यादा यदि हम उसी स्थान में होते तो विवेक से रह सकते. पर अलग से न्यायाधीश के स्थान पर खड़े होकर तौलना नहीं चाहिए. मुझे ऐसा लगता है.

सामाजिक हित की दृष्टि से कुछ निर्बंध बना लेना आवश्यक है, उनका भी विरोध करके उन्हें बंधनकारी समझें तो क्या यह समाज का दोष है?

यह बहुत बड़ा प्रश्न है. यदि समाज को निर्बंध बनाना हो तो उसने किस आधार से, किस अनुभव से बनाया. उसे किस बात का ज्ञान है? इस प्रकार निर्बंध बनाने वाले को पूर्व स्थिति का ज्ञान होना चाहिए. लैंगिक संबंध को ही लीजिए. उसके सारे कायदे कानून बनाने वाले पंडित के अपने जीवन में, दूसरों के जीवन में, यह प्रवृत्ति किस प्रकार काम करती है? दूसरे दैहिक नियम क्या है? मानसिक परिणाम क्या है? नैतिक जिम्मेदारी कैसी है? इन सब का ज्ञान होना चाहिए. आपके निर्बंध वहां काम नहीं आते हैं.

ऐसा क्यों समझना चाहिए कि इन बंधनों को किसी एक ने बनाया?

यह बात नहीं कि एक ने किया है. हजार लोगों ने बनाया है, हजारों समाजों में हुआ है. इसके लिए एक ही मापदंड कभी नहीं रहा है. हमसे थोड़ा भिन्न मापदंड दिखने पर हम ही गडबड़ में पड़ जाते हैं. इसमें सदा के लिए एक स्वीकृत मान्यता हो, उसे मानने वाले सब समान हों, अथवा ऐसा ही हो यह कहने का हमें धैर्य ही नहीं होता. हमारे देश में तो ऐसा मिलता ही नहीं है.

लैंगिक संबंध छोड़ दीजिए. आपने ऐसे पात्रों का निर्माण किया है कि जो यह मानते हों कि मनुष्य से बढ़कर एक शक्ति है, देव जैसी कोई चीज है, अथवा हमें चलानेवाली कोई अज्ञात शक्ति है.

इसमें दो तीन बातें मिल गयी हैं. मनुष्य से बढ़कर एक शक्ति है, यह कहने में किसी को एतराज नहीं होना चाहिए. हम यहां पचास साठ वर्ष रह सकते हैं, सत्तर साल जीवित रह सकते हैं. हमसे पहले भी लोग थे, आगे भी रहेंगे, हमसे भी बड़ा एक गांव है, एक भूमंडल भी है, नक्षत्र हैं, ये सब हमसे ज्यादा शक्तिशाली हैं. इसके लिए मुझे कोई जवाब देने की जरूरत नहीं है. वह शक्ति है ही, उसके अंग के रूप में हम हैं. और दैव भी एक है. उस देव के बारे में आपकी कल्पना का आधार यह कहा जा सकता है कि वह है. आपकी कल्पना और मेरी कल्पना समान रही है. हम सब यह स्वीकार करते हैं कि हमसे कोई एक बड़ी चीज है. वह क्या है, यह जवाब पाने में, कठिनाई है. मेरी कठिनाई इस बात में नहीं है कि मुझसे एक बड़ी एक शक्ति है. कठिनाई यह है कि उसकी कल्पना की योग्यता मुझमें नहीं है. अमुक ने ऐसा कहा है पर मैंने किसी के वर्णन को स्वीकार नहीं किया है.

आखिर मेरे जैसे लोगों ने ही जिन्हें मालूम नहीं है, यह कहकर बड़ा वर्णन किया है कि उन्हें मालूम है. पर मैं साफ कहता हूं कि मुझे मालूम नहीं है.

क्या विश्वास से मन का समाधान होता है?

होता है. पर मन बदल गया तो वह समाधान नहीं रहता है. विश्वास के अनुसार सब चलें तो संतोष होता है, नहीं तो दुख.

आपका यह कहना है कि अलग-अलग संस्कृति के दो व्यक्तियों का एक साथ रहना संभव नहीं है.

यदि एक संस्कृति वाले हों तो एक साथ रहने में सुविधा होती है अथवा संस्कृति को कोई महत्व न दें तो भी सरल होता है.

आजकल हमारे यहां एक नया समाज वर्ग जन्म ले रहा है. आज हम बंबई में हैं तो कल कलकत्ता में होते हैं. पुरानी संस्कृति के संबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थ

शिवराम कारंत

मंगलूर की निवासी एक पढ़ी-लिखी लड़की ने मन ही मन मुझसे विवाह करने का संकल्प कर लिया था. उसने मित्रों द्वारा मुझसे बात करने का प्रयत्न भी किया. पर इस अश्वत्थामा से बात करने का साहस मित्रों में नहीं था. जो भी हो, मित्र ठहरे. उन्होंने सोचा कि समझदार होने पर भी यह लड़का ऐसे कर रहा है. उसे एक खूंटे से बांध ही देना चाहिये. मुझसे उस लड़की का परिचय कराया गया. मैंने मन से स्वीकृति भी दे दी थी. एक-दो माह तक हमारे बीच पत्र-व्यवहार भी चला. एक दिन वह सारी जिम्मेदारी अपने पिता के सिर मढ़कर मूक हो गयी. मेरे मित्रों ने उसके पिता से बात की. उन्होंने कहा कि यह कैसे संभव है? अभी तो उसे तीन साल और पढ़ना है.

इसके बाद एक छोटी आयु की लड़की मेरे सौंदर्य को देखकर मुझ पर आसक्त हो गयी. मध्यस्थ लोगों द्वारा बातचीत भी शुरू हुई. एक सप्ताह बाद वह अपने आप उत्सुक होकर आगे आयी और फिर वह भी इस व्यक्ति को एकदम अयोग्य समझकर पीछे हट गयी.

मैं कभी कभी मंगलूर बेसेंट स्कूल जाया करता था. उनके यहां नाटक-नृत्य और अभिनय का निर्देशन किया करता था. उस स्कूल की सुपरिटेंडेंट रमाबाई मेरा बड़ा सम्मान करती थी. एक दिन उन्होंने मुझे नृत्य सीखने वाली एक लड़की के बारे में पूछा, "इस लड़की के बारे में आपके क्या विचार हैं?" मैंने कहा, "क्या कहा जा सकता है. लड़की चुस्त है पर .....उमर बहुत छोटी है." वह मेरे द्वारा निर्देशित नाटक, नृत्य और प्रदर्शनों में सदा भाग लेती थी.

गर्मी की छुट्टियों में एक दिन वे सब अपनी सुपरिटेंडेंट के साथ एक दल बनाकर मेरे 'बाल वन' आयीं. वहीं एक-दो दिन रहकर खुशी-खुशी वापस लौट गयीं. तब फिर से रमाबाई ने उस लड़की की बात उठायी. मैंने अपना पहले वाला जवाब दुहराया. उन्होंने उस लड़की के पिता से बात करने का निश्चय किया. आगे तीन दिन बाद मैं भी मंगलूर गया. मेरे ठहरने की जगह पर वही लड़की आयी और बोली, "मास्टरजी आप हमारे घर आइए." मैंने कहा, अच्छी बात है. उनके घर जाने पर, उसने मुझे अलग बुलाकर एक विचित्र बात कही. "मैं आपसे विवाह करना चाहती हूं." मैंने धीरे से कहा, " यह बात उठने से पहले तुमने इसके बारे में कुछ सोचा भी है? मेरा स्वभाव, मेरी स्थिति, तुम्हारी जिम्मेदारी— इन सबके बारे में सोचे बिना ही ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये." वहां से वह मुझे अपने पिताजी के पास ले गयी.

उसने तीन दिन पहले ही अपने मन की बात पिताजी से कह दी थी. उन्होंने भी यही बात उठायी. कहा, "देखिए पहले मेरी आमदनी अच्छी थी. अब वैसी स्थिति नहीं है. और फिर जाति का प्रश्न भी है."

उस शाम को जब हम घूमने गये तो मैंने उसको सारी जिम्मेदारी के बारे में बताया. लगा कि उसने अपने मन को पक्का कर लिया था अतः मैंने स्वीकृति दे दी. अगले 15 दिनों में हमारी रजिस्टर्ड मैरिज हो गयी. □

('पगले मन के दस चेहरे' से)

प्रस्तुति : बीथिका

ऐसे लोगों को भी दिक्कत नहीं आयेगी. पर किसी संस्कृति में विश्वास रखने वालों की—मान लीजिए एक ईसाई और दूसरा हिंदू है, उनके पाप पुण्य की बात जब सामने आती है तब कुछ कठिनाई होती है. उन सबको ताक में रखकर जीवित रहना आज संभव लगता है. परंतु हम यह कह नहीं सकते हैं कि ऐसी समस्याएं भविष्य में नहीं आयेंगी या कब आयेंगी.

यक्षगान पर आपकी बहुत रुचि है, उस पर जरा प्रकाश डालिए.

यह नाटक एक का माध्यम है. यह बालिद्वीप और थाईलैंड के नाटकों के समान ही उत्कृष्ट है. इसका सौंदर्य, इसकी वेषभूषा, गीत और प्रदर्शन शैली में है. मैंने अनेक प्रकार के नाटकों का प्रयोग किया है. अतः मैं इसके सौंदर्य और इसकी सीमा से परिचित हूं. इस कला के लिए मैंने परिश्रम किया है. मुझे उससे संतोष मिला है.

आपके उपन्यासों पर पाठकों की जो प्रतिक्रिया होती है उस पर आप कुछ कहेंगे?

बात यह है कि मैं किसी से यह पूछता नहीं कि मेरा उपन्यास आपको कैसा लगा? या आप पर क्या प्रभाव पड़ा? हां, कुछ लोग अपनी प्रतिक्रिया बताते हैं. उसमें सब प्रकार की बातें होती हैं, कुछ लोगों की ध्वनि से समझ जाता हूं कि उन्हें कुछ पसंद आया या पसंद ही नहीं आया. उनकी प्रतिक्रियाओं को मैं कंधे पर ओढ़कर नहीं चलता.

आपकी कुछ रचनाओं का दूसरी भाषाओं में अनुवाद हुआ है. उसके बारे में आपका क्या मत है?

देखिए, दूसरी भाषाओं का अनुवाद गले के नीचे उतरना कठिन है. उसके लिए समय भी चाहिए. शरत् आदि के उपन्यास जल्दी जनप्रिय इसलिए हुए क्योंकि भारतीय भाषाओं में उस समय अच्छे उपन्यास नहीं थे. पुरस्कार आदि प्राप्त करने के बाद अनूदित उपन्यास भी जनप्रिय हो सकते हैं.

'मूकज्जिय कनसुगलु' उपन्यास में 'मूकज्जी' पात्र के मुख से अनेक मौलिक विचारों की व्याख्या हुई है. क्या वे विचार आपके हैं?

मूकज्जी ही क्या मैंने तो सभी पात्रों का निर्माण किया है. मैंने इस उपन्यास में चार हजार साल की संस्कृति या उससे भी लंबी अवधि की संस्कृति के विकास को टटोलकर देखने का प्रयास किया है. उसके लिए मूकज्जी एक निमित्त मात्र है. उसमें आये प्रतीकों को समझना आवश्यक है.

आप लिखते क्यों है?

जीने के लिए, अच्छी तरह जीने के लिए, और जीवन का रस लेकर जीने के लिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना धर्म, रचना कर्म, जीवन, समाज और आत्मबोध के संबंध में पुरस्कार विजेताओं के उद्‌गार : पुरस्कार समर्पण समारोह के मंच से...

साहित्य सृजन, पुरस्कार और मैं

जी. शंकर कुरुप

19 नवंबर, 1966

एक ही रत्न की कई मुखिकाएं होती हैं न? भारतीय हृदय की विविध मुखिकायें हैं– हमारी समस्त भाषायें. हो सकता है राजनैतिक अविवेक के कारण भाषाओं की विविधता बाधा बन रही हो. मगर आत्माभिव्यक्ति को विविध और भाव-समग्रता प्रदान करनेवाली उपाधि के रूप में भाषा को देखने वाले लोगों के लिये यह वैविध्य अवश्य ही अनुग्रह प्रतीत होगा. रत्न की मुखिकायें प्रकाश किरणों को अनेक वर्णों में, विविध सांद्रता में, प्रतिस्फुटित करती हैं. अगर रत्न के एक ही मुखिका होती तो क्या यह संभव हो पाता? मैं इस संदर्भ में एजरा पाउंड को याद करता हूं. उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि कोई भी एक भाषा पूर्ण रूप से समस्त अनुभव-मंडल को प्रकाशित नहीं कर सकती. सुमित्रानंदन पंत, उमाशंकर जोशी, नजरूल इस्लाम और जी. शंकर कुरूप एक ही भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा के विभिन्न नाद हैं. विभिन्न भाषाओं के ये नाम भारत के विशाल एवं अगाध अंतःस्थल के भावों को समग्र रूप से अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध होते हैं. इस सत्य के अनुभव-गोचर होने पर ही हम अपने क्षुद्रता-बोध एवं सीमित-दर्शन से विमुक्ति प्राप्त कर सकते हैं. उस समय ही हाथी अपने बड़प्पन को पहचानकार मस्तक ऊंचा कर खड़ा रह सकता है.

मनुष्य का प्रकृति से, मनुष्य का प्रकृत्यतीत शक्ति से, मनुष्य का मनुष्य से जो रागात्मक संबंध है, उसी की बोध-धारा है किसी भी जनता के साहित्य की मुख्य त्रिवेणी. उस प्रवाह की कई उपनदियां होती हैं. कई शाखाएं होती हैं, कई गति-परंपराएं होती हैं. सब कुछ उसी में, सब कुछ उसी को. यही बोध-धारा संस्कृति की जीवन सिरा-स्वरूपा त्रिवेणी है.

क्या मेरी सर्गात्मक भावना इसके लय और 'रिद्‌म' के लिये कुछ योगदान करने में समर्थ बन गयी है? अल्पमात्र परिमाण में ही सही, यदि ऐसा है, तभी मैं अपने को इस अभिनंदन के योग्य मान सकता हूं.

कु.वें. पुट्टप्पा

20 दिसंबर, 1968

राज्य की दृष्टि से मैं कर्नाटक का हूं. भाषा की दृष्टि से कन्नडिग हूं : लेकिन संस्कृति और राष्ट्र की दृष्टि से मैं भारतीय हूं. मेरा कर्नाटकत्व भारतीयत्व से कभी द्वेष नहीं रख सकता. अविरोध रूप में भारतीयत्व की सेवा करने में ही कर्नाटकत्व अपने अस्तित्व की रक्षा कर पाता है. भारती मां है और कर्नाटक उसकी पुत्री है. भारत को हानि पहुंचे तो कर्नाटक जिंदा रह नहीं सकता. पुत्री कर्नाटक का बुरा होता है तो भारतमाता उसको सहन नहीं करेगी. आपसी हितरक्षा में सबकी हितरक्षा निहित है.

कर्नाटक को 'भारतजननी की तनुजाता' मानने वाला यह कवि इस तरह भी उद्‌घोष करता है कि 'भरतभूमि है मेरी मां' आगे चलकर वह यों कह देता है. 'मत विभिन्नता की दरारों को भूल जाऊंगा : भाषा के भेदों को भुला दूंगा : बाधा डालने वालों को उखाड़ दूंगा : स्वतंत्रता के मंदिर के निर्माण में जीवन को ही देवी के चरणों में चढ़ा दूंगा.' कन्नड़ कवि की तरह अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने भी गाया है, इसमें मुझे रंचमात्र भी संदेह नहीं है.

किसी भी भाषा के किसी भी कवि ने इस सौहार्द्रता को धक्का पहुंचाने वाले अपस्वर में कुछ गाया है तो वह खंडनीय है. वह आसुरी साहित्य बन जाता है. सच्चा साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐक्यकारी होता है. सामरस्य, समन्वय, सहानुभूति और सर्वोदय की भावनाओं को प्रचारित करना दैवी साहित्य का लक्षण है. असूया, द्वेष, स्वार्थता, निष्करुणा और निरुकंपा जैसे भावों को उत्तेजित करने वाला साहित्य आसुरी साहित्य बन जाता है. अतः वह दमन योग्य बन जाता है.

उमाशंकर जोशी

20 दिसंबर, 1968

कविता शब्द-निर्मिति है और सृजनात्मक शब्द के माध्यम से किसी कवि-आत्मा के गहरे स्पंदन पाठकों की चेतनता में आनंद का रूप लेकर अनूदित हो जाते हैं, या कहें कि स्वयं पाठकों का चिदानंद हो जाते हैं.

कवि तो एक तीर्थयात्री है, शब्द जिसका पथप्रदर्शक है. नहीं, इससे कहीं अधिक है वह. शब्द ही वह तत्व है, जिसके द्वारा, मात्र जिसके द्वारा ही, कवि अस्तित्वमय है. और, फिर वह कभी इस अनुभूति तक पहुंचता है जहां शब्द और कर्म का अंतर कम होता होता दोनों एक छोर के बिंदु पर मिलते हैं. शब्द स्वयं ही कर्म हो जाता है. ऋग्वेद का समास-पद 'कवि-ऋतु' मुझे बहुत रुचता है. कवि वह है जो उस पार देखता है, जो उस अपर-पारिय परिदेशा का ज्ञान करता है. ऋतु ही कर्ता है, अर्थात कर्मठ व्यक्ति. इस अर्थ में कविऋतु है गायक-कर्ता—वह जिसका कर्म ही गान है. कल रवींद्रनाथ ऐसे थे. आज ओक्टावियो पाज ऐसे हैं.

आज की मानव-स्थिति, कम-से-कम सृजनात्मक कलाकार से तो यही अपेक्षा रखती है. और, यदि वह कला की उपलब्धि में सफल होता है तो वह अखंडित और संपृक्त जीवन की आशा को सार्थक करता है. समसामयिक समाज का तंत्र-प्रविधि-आश्रित ढांचा प्रेम की लघु नहरों को सुखाता जा रहा है. भीड़ भरे नगरों में मनुष्य अपने को अकेला अनुभव करता है. वह अंदर के एकांत से वंचित हो गया है—शांति का वह केंद्र जहां स्थित रह कर वह मानव की तरह व्यवहार कर सके. आज कविता का यह कर्तव्य है, जिस सीमा तक कि पहले कभी नहीं हुआ था, कि वह संबंधों के अंतरावलंबन के ताने-बाने को प्रकाश की परिधि में लाये और अपनी अंतर्दृष्टि तथा अंतप्रेरणा के आधार पर उस अपूर्व सामंजस्य की इंगिति दे जो मानव और अ-मानव, शरीर और अ-शरीर, जीवन की अपरिहार्य दारुण निर्दयता और सततवाही प्रेम के बीच है. यह कविता का ही कार्य है कि वह नर्क से स्वर्ग तक का मार्ग जो आत्मशोध की मंजिल से गुजरता है, संसार को दर्शाये.

विश्वनाथ सत्यनारायण

16 नवंबर, 1971

'शब्द ओठों पर आये और कविता में तुतलाये'—यह पंक्ति मुझ पर लागू हो सकती है. पालने से उतरते ही मैं तुकबंदी करने लगा था. अपने जन्म के गांव से चालीस मील दूर मछलीपटनम में मैं तीसरी श्रेणी में पढ़ता था. जब मेरे पिताजी मुझ से वहां मिलने पधारे तो उन्होंने मुझे उसी तरह कविता गढ़ते पाया. वे क्रोध से भर उठे.

मेरे पिता तेलुगु के विद्वान थे. महाभारत और भागवत उनकी उंगलियों की पोरों पर थे. शायद उन्हें लगा कि यदि मुझे तुकबंदी करने की धुन लग गयी तो मैं भी एक दिन वैसा भिखारी कवि बन जाऊंगा जैसे बहुधा उनके पास आया करते थे. धमकी दी गयी कि मुझे अंगरेजी अध्ययन सीखने को तिलांजलि देनी होगी.

मेरी और उनकी संधि हो गयी. यदि मुझे कविता ही चीतना है तो मेरा उद्देश्य होना चाहिये कि मैं तेलुगु में रामायण लिखूं.

संभवतया तेलुगु के पुराने रामकाव्य जो उस समय उपलब्ध थे, पिताजी को पसंद नहीं थे.

इस प्रकार पिताजी के सम्मुख मैंने यह पवित्र प्रतिज्ञा की कि यदि मेरी क्षमता इस स्तर की हो पायी, तो मैं तेलुगु रामायण का सृजन करूंगा. मैंने प्रतिज्ञा – 1913 में की थी और 1934 में मैंने 'रामायण कल्पवृक्षम्' लिखना आरंभ किया.

इक्कीस वर्ष का अंतराल.

विद्यार्थी काल में मुझे तेलुगु के प्राचीन साहित्य के उच्चस्तरीय अध्ययन-मनन का समुचित अवसर प्राप्त हुआ. मेरे गुरुजी श्री वेंकट शास्त्री की विद्युत-ऊर्जा जैसी उपस्थिति ने मछलीपट्टनम के वातावरण को इस प्रकार के अध्ययन के अत्यंत अनुकूल बना रखा था.

तेलुगु भाषा में रचना करने वाले सैकड़ों कवि हैं. किंतु प्रवीण कवि-गुरु केवल आठ-नौ हैं. उन्होंने कवि-गुरु की पदवी कैसे प्राप्त की? इसका रहस्य क्या है?

हमारे साहित्य में किसी कवि-गुरु की शैली के अनुरूप लिखने वाले को महान कवि कहा जाता है. किंतु कवि-गुरु किन की शैली अपनाते हैं?

अतः मैं अपनी रामायण का सृजन यदि करूंगा तो अपनी ही निजी शैली में.

किंतु ऐसा कर पाना सहज कार्य नहीं है. मैंने एक लाख पद्य लिखे. उन्हें फाड़ डाला और जला दिया.

तब एक समस्या और उभरी. वे सृजेता-गुरु संस्कृत के महान विद्वान थे. मेरे लिये संस्कृत भाषा का उतना ही ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो गया जितना तेलुगु-भाषा में विज्ञ लेखक होने के नाते आवश्यक था.

मैंने संस्कृत में रचित काव्य, नाटक और संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन किया. पर प्रश्न था कि मैं इस लंबी यात्रा में किसी पड़ाव तक पहुंचा हूं या नहीं?

जितना ही मैं रामायण को पढ़ता उतना ही विस्मित रह जाता. उसमें अनगिनत कथायें गुंथी हुयी हैं. वे क्या हैं? प्रत्येक कथा का क्या अर्थ है और क्या रहस्य? यह समझे-बूझे बिना मैं कैसे आगे बढ़ूं.

लोकातीत और धार्मिक अर्थों से परे उस कथा के वर्णन में ही सैकड़ों प्रसंग और दृष्टांत भाव-बद्ध हैं. कोई एक घटना विशेष क्यों और किसी विशेष स्थल पर ही कैसे घटित हो? केवल विद्वता-भर काम न आयेगी. जितना अधिक मैं रामायण को पढ़ता उतना ही भयभीत हो उठता.

क्या मेरे अग्रजजन इन सब बातों से अनभिज्ञ थे? इन सबके 'क्यों' से क्या मैं अपने प्रयत्न से हाथ धो लूं? मैंने अपने पिताजी से पवित्र प्रतिज्ञा की थी. उसे तोड़ देना पाप होगा. मेरे हृदय को एक टीस ने मथा. मुझे लगा कि एक अनिवार्य बाध्यता प्रेरित कर रही है "रामायण लिखो, तुम जीवन के उच्चतम उत्कर्ष को अनुभव करोगे."

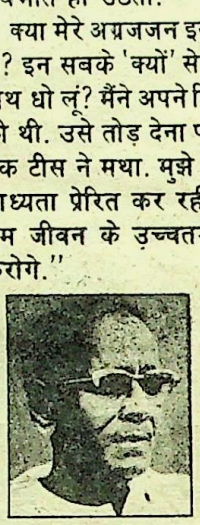

ताराशंकर बंद्योपाध्याय

15 दिसंबर, 1967

अपनी वर्तमान संस्कृति, साहित्य और वैदग्ध्य की बात जितनी ही सोचता हूं उतना ही लगता है मानो हमारे कंठ से उच्चरित आत्मकीर्ति की अहमियत ज़ोर तो पकड़ रही है किंतु हमारे उस छाया से घिरे हुये जीवन में कर्म की ध्वनि या वर्ण न किंचिन्मात्र गूंज रही है, न हल्के से भी कहीं रंग रही है. जनसाधारण तो आज भी उस रामायण-महाभारत के काल से उन दो महाकाव्यों के बंधन में आबद्ध होकर, उत्तर में हिमालय के शीर्ष-देश से दक्षिण में कन्याकुमारिका के प्रांत बिंदु तक तथा पश्चिम में गुजरात से पूर्व में मणिपुर तक विस्तृत भौगोलिक मृतिका पर एक गहरी एकता के बंधन में आबद्ध हो एक ध्रुवबोध को अनजाने ही अपने संस्कारों में पवित्र होमाग्नि की तरह स्थापित कर, जीवन बिता रहे हैं. अंग, बंग, कलिंग के समुद्र सरिताओं के तट पर, पंजाब, बंबई, गुजरात के प्रांतरों में, एक ही जीवन अपनी रक्तधारा में तथा हृदय के स्पंदन में, एक ही निश्शब्द मंत्रोच्चारण करता चला आ रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधान शायद वहीं कहीं है. यदि देश के आलोकित तथा तिमिरावृत दोनों प्रकार के विच्छिन्न जीवन रूपों को पारस्परिक सान्निध्य में लाकर प्रेम और विश्वास के स्वर्ण-सूत्र से बांधने का पथ आविष्कार किया जाये, तो हमारी संस्कृति के एक बृहत जीवन क्षेत्र की मुक्ति शायद संभव होगी. यदि जीवन की यथार्थता को तथा सनातन आकांक्षाओं को, दोनों को, हम अपनी आंतरिक प्रचेष्टा, गहरी श्रद्धा तथा निरलस श्रम द्वारा जानने तथा समझने का प्रयास करें तो शायद हमारी संस्कृति में एक बार फिर ज्वार आयेगा और उस दिन भारत-वर्ष की किसी भी प्रांतीय भाषा में जो भी साहित्य रचा जायेगा वह तुरंत ही अखिल भारतीय साहित्य बन जायेगा. उस अखिल भारतीय साहित्य मूर्ति में मैं सार्वभौम मनुष्य का केवल चिरंतन रूप ही नहीं देखूंगा, बल्कि 'जनानां हृदये सन्निविष्टः' जो जनार्दन है, उसे भी देखूंगा.

बिष्णु दे

10 फरवरी, 1973

मेरे साहित्यिक जीवन की यह विचित्र विडंबना है कि मुझे तीन पुरस्कार प्राप्त हुये और उनमें तीसरा है यह ज्ञानपीठ का 1971 का इतना विशाल पुरस्कार. भाग्य की विडंबना इसलिये भी है कि युवावस्था में जब दिमाग चढ़ा हुआ था, तो मुझे अंग्रेजी और फ्रांसीसी लेखकों के रंग-ढंग के अनुरूप विद्वता या साहित्यिक मार्ग पर चलकर बाजारू सफलता प्राप्त करने के विचार से मानसिक अवरोध की प्रतीति होती थी. और सच बात तो यह है कि मैंने भाग्य की इस विडंबना का स्वाद जीवन भर चखा है. रवींद्रनाथ ठाकुर से प्रभावित होकर वह विद्यार्थी बालक जो उनके लेखों को पढ़कर प्रचलित शिक्षा-पद्धति के खोखलेपन के प्रति सजग हो स्कूल की पढ़ाई छोड़ने को तत्पर था और जो अपने धैर्यशाली पिता से इस विषय पर घंटों बहस करता था, अंततोगत्वा अपने वयस्क जीवन को एक परंपराबद्ध प्राध्यापक के रूप में प्रारंभ करने को बाध्य हुआ.

लेखक के रूप में यद्यपि उस बालक की किशोरावस्था में भी कभी यह इच्छा नहीं रही कि वह मुंह-जोर उद्धत बालक बने किंतु उसका विश्वास था कि किसी भी प्रकार की ऐसी रूढिग्रस्त पद्धतियों से उसका मेल नहीं है जिनके माध्यम से सहज ही पुरस्कार मिल जाते हैं. पर, देखिये कि मैं आपके समक्ष हूं. क्या यह एक विचित्र दुरभिसंधि नहीं जिसमें हास्यविनोद की पुट है? यदि आप मुझ पर हंसें या कम-से-कम मुस्कायें ही तो मुझे जरा भी नहीं खलेगा. किंतु विश्वास रखिये कि मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि मैं अपनी सीमित शक्ति भर अपने प्रति और अपने पाठकों के प्रति ईमानदार रहूं.

रामधारीसिंह दिनकर

1 दिसंबर, 1973

कविता युग के संचित ज्ञान का आख्यान नहीं है.

कविता का क्षेत्र ज्यों-ज्यों नवीन होता जाता है, कवि त्यों-त्यों अधिक गहराई में उतरता जाता है, और ज्यों-ज्यों वह गहराई में उतरता जाता है, त्यों-त्यों यह बताने में वह अधिक असमर्थ होता जाता है कि यह सत्य है और वह सत्य नहीं है. कविता की जो यात्रा गहराई की ओर है, वही उसे अनेकांत की ओर लिये जा रही है. कवि यह जान गया है कि कोई भी बात जोर से बोलने के योग्य नहीं है. इसलिये अब वह निश्चित और अनिश्चित, ज्ञात और अज्ञात के संधिस्थल पर काम करता है. मनुष्य इतनी बार धोखा खा चुका है कि उसे अब किसी भी ज्ञान पर विश्वास नहीं रहा और सत्य को उसने इतनी बार बदलते देखा है कि वह कहीं भी दुराग्रहपूर्वक अड़ने को तैयार नहीं है. इसका प्रभाव कविता पर पड़ना स्वाभाविक था. कविता अब सत्य का उद्घोष नहीं, उसके अनुसंधान का प्रयास है.

जिस सभ्यता में हम जी रहे हैं, वह चौकोर व्यक्तित्व-वालों की नहीं, विशेषज्ञों की सभ्यता है. ज्ञान के वृक्ष की डालियां अब बढ़कर इतनी स्वतंत्र हो गयी हैं कि एक डाल पर बसनेवाला पक्षी दूसरी डाल के पक्षी की बोली समझने में असमर्थ है. एक समय ऐसा भी था, जब गैलीलियो, वैज्ञानिक होने पर भी, कविता करते थे. और लियोनार्डो द विची को, कलाकार होने पर भी, विज्ञान की सारी बातें मालूम थीं. भारत में तो कवि अकसर ज्योतिषी भी हुआ करते थे.

'खानखाना' अब्दुर रहीम केवल शायर ही नहीं, ज्योतिषी और सिपहसालार भी थे. लेकिन अब समय ऐसा आ गया है कि भौतिकी के सारे आविष्कार गणित के फारमूलों में बोले जाते हैं. मगर सभी वैज्ञानिक इतने बड़े गणितज्ञ नहीं होते कि वे इन फारमूलों को समझ सकें. नतीजा यह है कि वैज्ञानिक की बातें सभी वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आतीं. इसी प्रकार कवियों की कविताएं भी कुछ खास-खास कवि ही समझ पाते हैं. यह स्थिति कविता के लिये सामान्य नहीं, अच्छे-खासे सुधी पाठकों के लिये भी दुखदायी हो रही है. काश, कोई ऐसा कवि पैदा होता, जो इलियट और रिल्के के स्वप्नों को तुलसी की सरलता से लिखने का मार्ग निकाल देता.

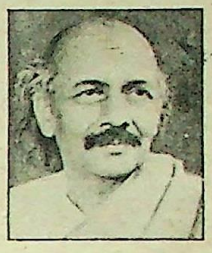

दत्तात्रय रामचंद्र बेंद्रे

8 नवंबर, 1974

मैं कर्नाटक के उस धारवाड़ क्षेत्र से आया हूं जहां के दो महाकवि अपने समकालीन कवियों से बहुत ऊंचे थे. इनमें एक पंप थे, जन्म से ब्राह्मण पर आस्था और निष्ठा से जैन, और दूसरे थे कुमारव्यास जिन्होंने अपने कर्म विषयक महाकाव्य को ही ईश्वर के प्रति आत्मार्पण के महाकाव्य में ढाल दिया. इन दोनों ही महाकवियों ने महाभारतगत समस्याओं को अपना विषय बनाया है. एक ने अनेक वीर पुरुषों का विभिन्न वर्णों और विभाओं में चरित्र-चित्रण किया है, दूसरे ने नियति, श्रद्धा और स्वतंत्रता के घात-प्रतिघातों द्वारा बड़े सुदर्शन प्रकार की रश्मियों को आविर्भूत किया है. पंप का महाकाव्य जैन कथा पर आधारित है पर किस रूप में अंत होता है उसका? व्यास के महाभारत की नाई, कलिकाल के आगमन और सर्वनाश की सूचना से. मैं जो उसके ही देश का हूं. क्या इससे भिन्न किसी भले भवितव्य को अभिव्यक्ति दूं? मैं तो अनुभव करता हूं कि एक नवीन कृतयुग का आगमन होने वाला है.

यह सारा विश्व, संसार, समूचा भूमंडल एक है. जीवन, मनुष्य, संपूर्ण मानवजाति भी एक है. यही एकमात्र सत्य है, वास्तविकता है : हमें इसका ही अनुसंधान करना है, और फिर इसी का साक्षात्कार. साक्षात्कार किया जा सकता है तो सत का ही. जो असत है वह निराशा और कुंठा को जन्म देगा. जब तक हम इस सत्य के प्रति अनुरक्त नहीं होते, इसे ही अपना जीवन-प्राण नहीं बना लेते, तब तक वह शक्ति हमें प्राप्त नहीं होगी जिससे हम अपना और दूसरों का भला कर सकें. जीवन की यही दिशा और यही उसका रूप है जो हमें यथार्थ सौंदर्य का दर्शन करा सकेंगे और जीवन को आनंदमय बना सकेंगे.

अपने कवि-जीवन में मुझे 'उषः और 'उड़ान भरता काल' शीर्षक दो कविताओं पर काफी ख्याति मिली है. दोनों कवितायें हमारे यहां के अबोध बालक-बालिकाओं को पढ़ना होती हैं : और जो अध्यापक पढ़ाते हैं वे संभवतः और अधिक अबोध रहते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पी.वी. अखिलंदम्

17 सितंबर, 1977

सच मानिये, मेरी रचनाओं के अधिकतर पात्र ऐसे ही हैं जिनका मेरे व्यक्तिगत जीवन के साथ कोई न कोई संबंध रहा है. मैंने उन्हीं लोगों का चित्रण किया है जो मुझे प्यार देते हैं या क्षुब्ध करते हैं, जो मेरे सहायक बने हैं या जिन्होंने मेरे साथ छल- कपट किया है. यह अवश्य है कि अनुपात-भेद कुछ-न-कुछ सब कहीं रखा है.

अपने जीवन में मुझे अपने भाग के हर्ष भी मिले हैं और क्लेश-विषाद भी. लेखक का जीवन तो यों भी उस व्यक्ति के जैसा होता है जो एक ही समय में दो घोड़ों पर चढ़ने का प्रयत्न करता हो. वह यदि अपने आदर्शों पर चलते हुये आंतरिक भावनाओं को लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त करने में लगता है तो व्यवहारगत जीवन में असफल हुआ रह जाता है : और यदि धनार्जन की ओर उन्मुख होता है तब यह एकपतिका सृजनेश्वरी तत्काल विच्छेद पर उतर आती है. इसकी तो अपेक्षा होती है कि उसका संपूर्ण ध्यान, अविभक्त रूप में, इसे ही मिले : यहां तक कि अपनी सांसारिक आवश्यकताओं की ओर से भी वह विमुख हुआ रहे.

यह दो घोड़ों के बीच संतुलन बनाये रखने का कार्य सचमुच ही कठिन और जोखिम का होता है. भगवती सरस्वती ने मुझे अनेक बार कठिन परीक्षा में डाला है. मुझे जीवित रहने के लिये विवश होकर समय-समय पर निरे सामान्य काम करने पड़े हैं : मगर कभी भी न देवी सरस्वती की आराधना छोड़ी न ही उसे व्यापार-व्यवसाय का रूप देना सोचा.

एस.के. पोट्टेकाट

28 नवंबर, 1981

मैं वर्ष 1980 का ज्ञानपीठ पुरस्कार एक ऐसे संधि काल में ग्रहण कर रहा हूं जबकि हमारा देश राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के वात्याचक्र से गुजर रहा है. मैं यह बात विशेषकर इसलिए कह रहा हूं कि कला, साहित्य और संस्कृति के संबंध में आज की नयी पीढ़ी की धारणाएं पुरानी पीढ़ी से बिल्कुल ही भिन्न हैं. इन धारणाओं के साथ उनके मूल्य भी बदल गये हैं. कुछ लोग तो यहां तक सोचने लगे हैं कि विज्ञान और टैक्नोलोजी की आधुनिक प्रगति के इस युग में साहित्यकार का स्थान है ही कहां?

विज्ञान और टैक्नोलोजी के नये-नये आविष्कारों के परिणाम स्वरूप हमारे रहन-सहन के तरीके एक बड़ी सीमा तक बदल गये हैं. आगे ये और भी बदलते रहेंगे. परिवर्तन की अभी और भी संभावनाएं हैं. किंतु यदि हम गंभीरता से विचार करें तो पायेंगे कि ये परिवर्तन हमारे भीतर की आसुरी प्रवृत्तियों को ही बढ़ावा दे रहे हैं.

जैसे विशाल वट वृक्ष की जड़ें होती हैं उसी तरह भारतीय भाषाओं का साहित्य भी सारे देश में व्याप्त है किंतु एक प्रदेश की सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों और उपलब्धियों को अन्य प्रदेशों के लोग प्रायः नहीं समझ पाते. हम अमेरिका, रूस, स्वीडन आदि देशों के साहित्यकारों के बारे में तो जानते हैं किंतु अपने पड़ौसी प्रदेशों के कवियों, कथाकारों के संबंध में लगभग अनभिज्ञ हैं. यह बड़ी दयनीय स्थिति है.

साहित्य का उद्देश्य मनुष्य को जागृत करना और उसकी अंतरात्मा को ऊंचा उठाना है. साथ ही, साहित्य का यह भी उद्देश्य है कि विशाल भारत देश के विभिन्न प्रदेशों के लोगों को समता, सहयोग और पारस्परिक सांस्कृतिक समन्वय के द्वारा एक साथ निकट लाये, चाहे वे बंगाली हों, पंजाबी हों या तमिलनाडु के निवासी हों. यह भ्रातृभाव केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं है. प्रेम की परिधि विशाल होती है. उसमें पशु-पक्षी और यहां तक वनस्पतियां भी समा जाती हैं. हमारे ऋषि-मुनियों, पुराणकारों ने इस विश्वव्यापी प्रेम का प्रसार किया.

मैं आदि-शंकराचार्य के प्रदेश में उत्पन्न हुआ हूं. शताब्दियों पूर्व आचार्य शंकर ने अद्वैत सिद्धांत के द्वारा न केवल संपूर्ण भारत में दिग्विजय प्राप्त की थी अपितु भारत के चारों कोनों में चार मठों की स्थापना की और भारतवासियों को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में आबद्ध किया.

आज के मनुष्य का मानसिक रुझान इस ओर है कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए और सांसारिक सुख-सुविधा की पूर्ति के लिए किसी भी बुरे-से-बुरे साधन को अपनाया जा सकता है. प्रकृति के प्रेम की विज्ञान की बेदी पर बलि दे दी गई है. वनों का बुरी तरह विनाश किया जा रहा है और मरुस्थलों की परिधि बढ़ती जा रही है. हम इस बात से अनभिज्ञ हैं कि कंटीली झाड़ियां और मरुस्थल अब हमारे मस्तिष्क में भी घर कर गये हैं. अब भी समय है कि हमारे साहित्यकार, कलाकार आगे आयें और भारत देश को इस महान विपत्ति से बचायें.

महादेवी वर्मा

28 नवंबर, 1983

प्रायः प्रत्येक युग में साहित्यकार को चुनौती मिली है. कभी धर्म ने, कभी राजनीति ने, कभी समाज ने उसके समक्ष ऐसी समस्यायें उपस्थित की हैं जिनसे बिना संघर्ष किये वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता. अतः हर महत्वपूर्ण साहित्यकार को क्रांत द्रष्टा होना ही पड़ता है. उसने अपने विद्रोह के लिये दंड भी स्वेच्छा और सुख से झेला है.

आधुनिक युग में साहित्यकार को सबसे कठिन चुनौती विज्ञान से मिली है. विज्ञान भौतिक जगत के तथ्यों की खोज है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को प्रकृति पर विजयी होने की शक्ति देती है. पर यह शक्ति दिशाहीन और अनियंत्रित रहती है. उसमें धर्म के समान न पाप-पुण्य का द्वंद्व है, न दर्शन के समान सत्य-असत्य का और न समाज के समान उचित-अनुचित का. इसी से आधुनिक विकसित देश, विज्ञान से प्राप्त शक्ति को दोधारी तलवार की तरह चला रहे हैं. उन्होंने ध्वंस को अपनी शक्ति का प्रमाण मान लिया है. अतः विज्ञान की संहारक शक्ति आतंक ही उत्पन्न कर रही है.

जीवन के मंगल विधान के लिये मनुष्य में संवेदन की तरलता की आवश्यकता होती है जिसे विज्ञान का ताप सुखा रहा है. यदि मनुष्य में संवेदनाशीलता की रागात्मकता नहीं रहेगी तो ध्वंस के ज्वालामुखी पर बैठी मानव जाति किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है.

वैज्ञानिक साधनों ने एक देश से दूसरे की दूरी इस सीमा तक कम कर दी है कि जहां पहुंचने में वर्षों लग जाते थे वहां अब कुछ घंटों में पहुंचा जा सकता है. परंतु इस भौतिक निकटता ने मानव के मन को अन्य मानवमन तक नहीं पहुंचाया, वरन उन्हें इतना अपरिचित बना दिया कि एक मनुष्य निर्लिप्त भाव से अनेक निर्दोष मानवों को नष्ट करने में न करुणा का अनुभव करता है न पश्चाताप का.

भारत प्राचीन देश है. उसकी विशेषता है कि वह आक्रामक होकर कहीं नहीं गया. वैज्ञानिक साधनों की शोध से पहले ही उसने 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना में आस्था रखी है और वह अपने दर्शन, संस्कृति, कला, साहित्य आदि का अक्षय संदेश लेकर ही दुर्गम पर्वतों और अगाध समुद्रों को पार कर अन्य देशों में पहुंचा है.

आज भी उसका संकल्प वही है. आज भी वह जीवन की मांगलिक संजीवनी में विश्वास रखता है. मारक अस्त्र-शस्त्रों में नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की अकिंचन कवयित्रि होने के कारण मुझे उत्तराधिकार में वही करुणासिक्त मंगलसाधना प्राप्त है.

मास्ति व्यंकटेश आय्यंगार

13 अप्रैल, 1985

बहुत वर्षों तक मेरी यह मान्यता रही है कि वह युग, जिसमें धर्म एवं दर्शन द्वारा मानव जाति की रक्षा की जा सकती थी समाप्त हो गया है. अपने आप में सीमित धर्म केवल आपसी झगड़ों को जन्म दे सकते हैं. यहां तक कि एक ही धर्म के संप्रदाय और इन संप्रदायों के उपसंप्रदाय एक दूसरे से भिन्न होते हैं और एक दूसरे के प्रति विरोध की भावना को पालते-पोसते हैं, जो घृणा तक का रूप धारण कर लेती है. यही बात विभिन्न दर्शनों के संबंध में भी सत्य है. विज्ञान यह सोचता दिखायी देता है कि वह मनुष्य जाति की रक्षा कर सकता है. इसने महान कार्य किये हैं लेकिन अपनी प्रकृति के अनुसार मात्र परिणामों पर पहुंच सकता है. यह पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकता. धर्म एवं दर्शनों का उद्देश्य विश्वव्यापी सुख-समृद्धि के लिये प्राणिमात्र को शिक्षित करना है, चूंकि ये अपने कार्य में असफल हो गये हैं, इसलिये साहित्य को यह कार्य अपने हाथ में लेना है. वास्तव में साहित्य को एक धर्म तथा एक दर्शन सूत्रित करना चाहिये, जिसकी दिशा में मानवजाति आज प्रचलित विभिन्न धर्मों और दार्शनिक शाखाओं में मार्ग की खोज कर रही है. साहित्य यह कार्य कर सकता है क्योंकि यह संसार को इसके विद्यमान रूप में स्वीकार करता है और चूंकि यह इसे समग्र रूप से स्वीकार करता है, दिखायी देने वाले विरोधाभासों के मिलन बिंदु को देखता है. वर्षों पूर्व मैंने इन विरोधाभासों की सूची तैयार की थी, तुम और मैं, शरीर एवं आत्मा, जीवन और मृत्यु, यह संसार और दूसरा संसार, पुरुष एवं नारी, मूलवृत्ति एवं कारण, संस्कारों और मानवीय क्रियाकलाप में कारण एवं कल्पना, धर्म एवं विज्ञान, धार्मिक विश्वास एवं धर्म निरपेक्षता, संपत्ति एवं सामाजिक भलाई, पूंजीवाद एवं साम्यवाद, व्यक्ति एवं राज्य, कानून एवं दया, कट्टरता एवं प्रगति, सनक एवं विश्व प्रेम, आनंद एवं आत्म नियंत्रण— साहित्य को मार्ग प्रदर्शन करना है, शक्ति-संपन्न वर्गों से बाहर हमारे उचित कदमों पर जनसाधारण की ओर से दृष्टि रखनी है तथा प्रशासन चलाने के लिये सही आदमियों का चुनाव करने में उसकी सहायता करनी है.

तकषी शिवशंकर पिल्लै

10 नवंबर, 1985

मैं किसी भाषा का विद्वान नहीं हूं, न ही किसी विषय विशेष का ज्ञाता हूं. मैं मात्र एक ग्रामीण हूं. जिसका पालन-पोषण केरल के कुट्टनाड क्षेत्र के एक दूरस्थ ग्राम में हुआ. यह ग्राम मात्र 25 वर्ष पूर्व गाड़ी चलने योग्य सड़क द्वारा सुगम बन सका है. मैं अनुभव करता हूं कि मैं कला, साहित्य, काव्यात्मक अनुभूतियां तथा इस प्रकार के अन्य महान विषयों के संबंध में बात न करूं. यदि मैं अपने साहित्यिक क्रियाकलापों के पचपन वर्ष के अनुभवों तक ही इस व्याख्यान को सीमित रखूं तो आप मुझे क्षमा कीजियेगा. मैं अपने जीवन को मात्र साहित्यिक क्रियाकलापों का जीवन ही कह सकूं. यदि आप मेरे पैरों की ओर देखें तो आप उन पर मिट्टी के ऐसे दाग पायेंगे जिन्हें साफ नहीं किया जा सकता. कुछ समय के लिए मैंने मुफ़स्सल वकील के रूप में भी कार्य किया है.

मेरी अभिव्यक्ति का माध्यम ग्रामीणों की भाषा रही है. व्याकरण की जटिलताओं में उलझे बगैर मैंने सरल वाक्यों का प्रयोग किया. गांव का आदमी अपने विचारों में स्पष्ट था और मैं भी उसके विषय में स्पष्ट था. यदि वह भटकता तो स्वाभाविक रूप से मैं भी भटक गया होता, लेकिन मेरे मामले में एक स्पष्ट अंतर यह था कि मैं सृजन करना चाहता था. प्रत्येक ऐसी रचना के लिए एक समर्पण प्रक्रिया, जिसकी मुझे पर्याप्त रूप से पुनःसृष्टि करनी होती थी.

मैं जीवन और मनुष्य से प्रेम करता हूं यह सामान्य है. यह अस्पृश्यों, दलितों, अभागों तथा निम्न वर्गों का जीवन था जिसने मुझे लेखन के प्रारंभिक वर्षों में प्रभावित किया. यह प्रतिक्रिया अत्यंत गहरी थी. मुझ में आक्रोश था. मुझे अपने साहित्यिक जीवन के उस समय की याद है जब मैं समझता था कि भिखारी, कोढ़ी और इसी प्रकार के अन्य अभागे लोग हैं, जिन्हें परिवर्तन के लिए उस समय व्याप्त सामाजिक प्रणालियों के विरुद्ध क्रांति का नेतृत्व करना है. उस समय मैं किशोर था. मेरा उस समय का लेखन अभी भी बाजार में उपलब्ध है. बाद में मुझे समसामयिक इतिहास से ज्ञात हुआ कि क्रांति का नेतृत्व शोषित कामगार वर्गों को करना था. यदि मैं यह दावा करूं कि उपन्यास में कृषि के मोर्चे पर वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाला मैं भारत में प्रथम लेखक था, तो आप मुझे क्षमा करें.

पन्नालाल पटेल

16 दिसंबर, 1986

आरंभ में मैंने कविताएं लिखीं, किंतु उसमें मैं सफल नहीं हो पाया. तत्पश्चात् मैं कहानी-लेखन की ओर आकर्षित हुआ. और अचानक मैं अपनी पहली कहानी से ही लेखक बन गया. फिर तो अविरत रूप से कथा-साहित्य के प्रणयन का सिलसिला जारी रहा. गुजराती साहित्य-संसार ने यह देखकर मेरे लिए 'चमत्कार' का प्रयोग करना शुरू कर दिया.

मेरी जन्मभूमि दक्षिण राजस्थान में है. मेरा जन्म डूंगरपुर जिले के बागड़ अंचल के अंतर्गत मांडली नामक एक छोटे-से गांव में हुआ है, जहां मुश्किल से सौ घरों की बस्ती है. मांडली गांव गुजरात से सटा हुआ है. अतएव हम वहां के निवासी आधे गुजराती हैं. मेरी पढ़ाई गुजराती में हुई और आजीविका के लिए मैं गुजरात में ही स्थिर हुआ. मेरा साहित्य-सृजन गुजरात में हुआ. मेरी महिमा-मंडित एवम् सर्वाधिक प्रशंसित कृति 'मानवीनी भवाई' की मैंने अपनी जन्मभूमि मांडली में खेत के मचान पर बैठे-बैठे रचना की थी. पावस ऋतु की परि-समाप्ति होने वाली थी. मैं अपने खेत के मचान पर बैठ कर पक्षियों को उड़ाता जाता था और इस उपन्यास का लेखन-कार्य करता जाता था. संयोग की बात है कि 'मानवीनी भवाई' की रचना आज से ठीक चालीस साल पहले, यानी सन् 1946 में हुई थी. वर्षा ऋतु के बाद मैं उसकी पांडुलिपि लेकर बंबई गया और प्रकाशक को उसे छापने के लिए दे आया 1947 के ऐतिहासिक वर्ष में उसका प्रथम प्रकाशन हुआ है. जिन दिनों मैं बंबई के एक अस्पताल में खाट पर पड़ा हुआ था, तब मेरे प्रकाशक ने मुझे इस कृति की प्रथम प्रति दी थी. उस समय मेरे मन में यह तनिक भी विचार नहीं आया था कि मैंने एक अनोखी कृति की रचना की है.

साहित्य शब्द-निर्मित है. शब्द ही साहित्यकार की संपदा है. संसार के सभी साहित्य-स्रष्टाओं ने 'शब्द' की प्रचुर मात्रा में महिमा गायी है. मुझे इस 'शब्द' का परिचय है. अपने विगत अर्द्ध शती के लेखन-कार्य की कालावधि में मैंने इस 'शब्द' को पूरी तरह समझने और पाने का प्रयत्न किया है. किंतु मैं यहां यह कहना और स्वीकार करना चाहता हूं कि मैं अद्यापि इस 'शब्द' को पा नहीं सका हूं. उसकी उत्पत्ति कहां से होती है और किस प्रकार यह रचनाकार के चित्त में अनायास ही प्रकट हो जाता है—यह सब रहस्यमय है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह के अवसर पर
कवियत्री अमृता प्रीतम द्वारा दिया गया भाषण.

गीत मेरे!
कर दे मेरे इश्क का कर्ज अदा

अक्सर याद आता है, जब मैं बहुत छोटी थी, नानी कहा करतीं : जब तू पैदा हुई वर्षा ऋतु में, पंद्रह भादों को, तो देवता सो रहे थे. बाद में सुना कि शिशिर, बसंत और ग्रीष्म—ये तीन ऋतुएं तो देवताओं का दिन होती हैं और वर्षा, शरद और हेमंत उनकी रात होती हैं, देवता इन तीनों ऋतुओं में सोये रहते हैं.

लगता है सारी जिंदगी जो भी सोचती रही, लिखती रही, वह सब शायद देवताओं को जगाने का ही एक प्रयत्न था—उन देवताओं को जो इनसान के भीतर सो गये हैं.

क्यों लिखती हूं मैं?

मेरी नजर में यह मैं से आगे मैं तक पहुंचने की एक यात्रा है. यात्रा—उस 'मैं' तक पहुंचने की जिसमें सबसे पहले 'मैं' की पहचान जमा होती है, फिर 'तू' की, और उसके बाद 'वह' की पहचान : यानी दुनिया जमा होती है.

यही वह जगह है—जहां गैर से गैर दर्द भी अपना हो जाता है. इसीलिए एहसास की शिद्दत, अनुभूति की सघनता, 'मैं' का सहज कर्म हो जाता है. एक फूल की महक-सा सहज धर्म.

यही वह जगह है—जहां, यथार्थ की हदों से परे की कल्पना भी यथार्थ की हदों में आ जाती है.

और यही वह जगह है, वह बिंदु है, जहां एक लेखक का चिंतन पाठक का अपना चिंतन बन जाता है, जो यथार्थ पाठक के लिए आखिरी यथार्थ था वह आखिरी नहीं रहता. सचाई यह है कि एक असंभव की हद में आ जाता है.

यह ठीक है कि पाठक की अपनी जिंदगी का जाना-पहचाना यथार्थ, और यह उसका एक काल्पनिक यथार्थ, आपस में टकरा उठते हैं. मगर इसी टकराव से उसके मन में ऐसे कई सवाल भी पैदा हो उठते हैं जो होने चाहिए. मेरी नजर में कलम का मकसद भी यही है : कि यथार्थ जो है उसे दिखा पाना, और जो होना चाहिए उसे भी दिखा सकना.

पहले वक्तों में लोग बच्चे की पैदाइश के वक्त होने वाली मां की कोठरी में एक कोरा कागज और कलम-दवात रख दिया करते थे. और घर का बुजुर्ग उस कोरे कागज के पास खड़े होकर दुआ मांगा करता : 'विद्या माता, बच्चे के जन्म के वक्त जब यहां तुम आओगी तो बच्चे की अच्छी-सी तकदीर लिख जाना!'

कितना बड़ा विश्वास था यह इनसान का! कागज पर लिखे हुए अक्षरों में विश्वास!

और लिखे हुए अक्षरों के लिए यही सम्मान का भाव, यही अक्षरों में विश्वास बना लेखक और पाठक का कदीमी रिश्ता.

और मेरी नज़र में तो लेखक सही मायनों में तभी लेखक है जब विद्या माता की तरह उसमें इनसान के चिंतन की तकदीर लिखने की शक्ति हो.

ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों में एक कहानी चलती है कि पुराने वक्तों में आसमान बहुत नीचा हुआ करता था. इतना नीचा कि धरती का इनसान सिर उठाकर नहीं चल सकता था. तब धरती पर इतना अंधेरा भी रहता था कि खाने के लिए इनसान को हाथों से टटोल-टटोलकर जड़ी-बूटियां खोजनी पड़ती थीं. तब पंछियों को यह खयाल आया कि अगर किसी तरह आसमान को धकेलकर कुछ ऊंचा कर दिया जाये तो धरती के इनसान धरती पर सिर उठाकर चल सकेंगे.

और कहते हैं पंछियों ने लंबे-लंबे तिनके इकट्ठे किये और अपना पूरा ज़ोर लगाकर आसमान को ऊपर उठाना शुरू किया. और, आसमान सचमुच ऊपर उठ गया : और लोग, जो घुटनों के बल चलते थे, सिर उठाकर खड़े हो गये, चलने लगे.

साथ ही, आसमान के पीछे छिपा हुआ सूरज अब सामने आ गया और समूची धरती रोशन हो गयी.

यह कहानी पुराने वक्तों की होते हुए भी, मेरी नजर में हर काल की कहानी है, हर क्षेत्र की कहानी है—बेशक अपने-अपने अर्थों में. पंछी-रूहवाले इनसान अपने जतन से, इनसानी रिश्तों के अंधेरे जंगल में भी अपना आसमान ऊंचा उठकर अपने लिए सूरज की रोशनी खोज लेते हैं.

और मैं तो सोचती हूं कि हर समाज, हर मजहब, और हर सियासत के अंधेरे में—जहां और जितनी बार रोशनी दिखाई देती है, वह उन कुछेक लोगों की ही वजह से है जिन्होंने अपने जतन से कहीं-कहीं अपना आसमान ऊंचा किया है.

लेखन की धरती पर तो, सचमुच कुछ लेखक होते ही हैं—पंछी-रूही जैसे—और उनकी कलमें ही वह तिनके होते हैं जिनके जोर से वे आसमान को ऊंचा उठाकर इनसान का सिर ऊंचा कर देते हैं.

अपनी कलम के बारे में तो सिर्फ इतना ही कह सकती हूं कि इसने दुनिया की कुछ उन कलमों का साथ दिया है जो आसमान को ऊंचा करने में यकीन रखती हैं.

आसमान को ऊंचा करने वाले अदीब कैसे होते हैं, इसकी गवाही दुनिया-भर का अच्छा अदब देता आया है. लेकिन आम जिंदगी में आम इनसान अपना हाथ उठाकर कब किसी आसमान को ऊंचा कर जाता है—यह एक गुमनाम इतिहास हुआ करता है.

यहां एक घटना का जिक्र करना चाहूंगी : एक दिन अचानक एक अजनबी मिलने आया. भारतीय ज्ञानपीठ के इस एवार्ड की खबर पाने के बाद. और, उस अजनबी की आंखों में पानी था, और हाथ में थोड़ी-सी मिट्टी. कहा उसने इतना ही : "यह उस धरती की मिट्टी लाया हूं, गुजरांवाला की, जहां तुम पैदा हुई थीं....." मैं भरी-भरी आंखों देखती रह गयी!

मिट्टी का धर्म सचमुच कितना बड़ा होता है! कौन समझेगा कि जिन मजहबों की बुनियाद पर धरती के टुकड़े कर दिये जाते हैं, वे मजहब इसके सामने कितने छोटे हैं! इनसान के दिल की खूबसूरती, उसके मन की महक—मिट्टी का धर्म होती है. और धर्म की आत्मा को तो किसी मजहब ने अभी तक पहचाना नहीं.

यह मिट्टी का दिया हुआ उपजाऊ धर्म अच्छे इनसानों का होता है, अच्छे अदीबों का, साहित्यकारों का धर्म!

कोई भी एवार्ड किसी अदीब का मकसद नहीं होता. मकसद तो उसका एक ही होता है—कि लोगों की रूह तक पहुंचे. लेकिन अगर कोई एवार्ड उसके मकसद के पूरा होने का ज़रिया बनकर जिंदगी में आता है, तो उसकी अहमियत होती है, सही मायनों में बहुत बड़ी अहमियत होती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर कलम के सामने उसकी भाषा का एक सीमित दायरा होता है. हिंदुस्तान में खासकर यहां बहुत-सी भाषाओं ने चिंतन को छोटे-छोटे दायरों में बांटा हुआ है. भारतीय ज्ञानपीठ की सबसे बड़ी अहमियत यह है कि उसने भाषाओं की इन छोटी-छोटी नदियों को एक बहुत बड़ी नदी से जोड़ दिया है: पूरे हिंदुस्तान की कला और चिंतन की महानदी से!

किसी भी अदीब के लिए आर्थिक स्वतंत्रता एक बहुत बड़ा मसला होता है. इस पहलू से भी भारतीय ज्ञानपीठ की अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता. लेकिन एक और पहलू है, बहुत बड़ा पहलू, कि कोई अदीब लिखता है तो किन कद्रों के लिए, किन मूल्यों के लिए. अदीब नैतिक मूल्यों को, उनके सतही और सिमटे हुए दायरों से निकालकर, गहरे और रूहानी अर्थों तक उठा ले जाने की जद्दोजहद करता है. इस जद्दोजहद में उसे समाज का कड़ा विरोध झेलना पड़ता है. भारतीय ज्ञानपीठ का यह कदम उस तमाम विरोध की नजर में भी ज़िंदगी के व्यापक अर्थों को पहचानने की एक संभावना पैदा कर देता है. और यह सचमुच एक बहुत बड़ी बात है.

इसलिए भारतीय ज्ञानपीठ के लिए मेरा एक लफ्ज 'शुक्रिया', एक अर्थ वाला नहीं है, तीन अर्थों वाला है.

आग की लपट को बहुत से लोग चिमटे से पकड़ने की कोशिश करते हैं: रिवायतों और संस्कारों के चिमटे से. बहुत से आलोचक भी उस लपट को किसी न किसी 'वाद' के चिमटे से पकड़ने का जतन करते हैं और फिर खीज उठते हैं कि वह लपट चिमटे की पकड़ में नहीं आती.

उस आग की लपट को, —सचमुच पकड़ा जा सकता है तो सिर्फ आग की लपट से ही. इसलिए कहना चाहूंगी उन सबसे, जो भारतीय ज्ञानपीठ और ज्ञानपीठ एवार्ड से संबद्ध हैं, कि आपकी नजर को वह नजरिया मुबारक: जो हिंदुस्तान की साहित्यिक जन-चेतना को लोगों के पास तक पहुंचाने का बहुत बड़ा माध्यम बना है.

ज़िंदगी के एक मुश्किल वक्त में मैंने एक नज़्म लिखी थी:

आज मैंने एक दुनिया बेच दी
और दीन खरीद लिया—
बात कुफ़्र की कर दी
सुपनों का एक थान बुना था
गज एक कपड़ा फाड़ लिया—
और ज़िंदगी की चोली सी ली
आज मैंने आसमान के घड़े से
बादल का ढकना उठाया—
और घूंट चांदनी पी ली
गीतों से चुका जाऊंगी
यह जो मैंने मौत से—
एक घड़ी कर्ज ले ली.

सिर्फ मुश्किल वक्त नाजुक नहीं होता. अचानक ही कहीं से इतनी पहचान मिले, इतना प्यार मिले—तो ऐसा वक्त भी उतना ही नाजुक होता है. इसलिए आज भी कहना चाहूंगी—

गीत मेरे! कर दे मेरे इश्क का कर्ज अदा
कि तेरी हर एक सतर से आये जमाने की सदा.

बहुत-बहुत धन्यवाद.

16 अप्रैल, 1983

किसी शायर या अदीब का सबसे बड़ा सुख...

अमृता जी का एक और भाषण

जो साहित्य अकादमी समारोह में पिछले माह ही दिया गया था:

जब हर सितारा गीर्दश से गुजर कर तेरे सूरज के पास आने लगे, तो समझना- यह मेरी जुस्तजू है—जो हर सितारे में नुमाइया हो रही है, मेरे हम वक्त दोस्तो!

किसी भी शायर या अदीब के तसव्वुर से लेकर उसकी तखलीक तक का फ़ासला सचमुच एक बहुत लंबी यात्रा है. कदम-कदम चलते हुए जाने खुदा कहां-कहां से गुजरना होता है.

आपकी चेतना जाने कितनी बार अपनी ही उपचेतना का द्वार खटखटाती है. यह चेतना की यात्रा उपचेतना की गहराई में उतरती हुई, और अवचेतना की एक झलक-सी देखती हुई जब सामूहिक चेतना की सरसराहट सुनती है, तो जाने कितनी हरियालियां और कितनी वीरानियां आपके कदमों से लिपट जाती हैं.....

जाने कितनी खामोशियां आप से आवाज़ मांगती हैं
जाने कितने गुमनाम चेहरे आपसे पहचान मांगते हैं
और एक आग आपकी रगों में सुलगती है, अक्षरों में ढलती है...

कायां के किनारे टूटने लगते हैं—और सीमा में छलक आयी असीम की शक्ति ही वह फासला तय करती है, जो रचना के क्षण तक का एक बहुत लंबा फासला है. अहसास की एक बहुत लंबी यात्रा.

मानना होगा कि किसी हकीकत का मंजर उतना है, जितना भर किसी की पकड़ में आता है.....

वह कितनी शिद्दत का हासिल है? कितनी दीवानगी का हासिल? और किसी के संस्कार उसे किस पहलू से देख पाते हैं, और उसे किस कोण से कितना भर पहचान पाते हैं, यह एक ऐसा अनुभव है, जो इतने अलग-अलग रंगों में खिलता है कि हम उसे बड़ी आसानी से मौलिकता लफ़्ज दे सकते हैं, और यह उसी का तकाजा है कि कोई हरफ आखिरी हरफ नहीं होता.

इसीलिए बेइंतिहा किताबें दुनियां में हैं, लेकिन उनके होते हुए भी वह जगह हमेशा बनी रहती है, जो नयी तखलीक का इंतजार करती है.

कहते हैं एक बार भृगु ऋषि ने शुक्र से कहा—मेरी दृष्टि पूरी सृष्टि को देख पाई, और हर व्यक्ति के हर जन्म को. मौत के क्षण को भी, और आयु के बरसों को भी, लेकिन एक रहस्य पकड़ में नहीं आया कि एक आंसू की उमर कितनी होती है? वह कहां से आता है? कहां जाता है? और इंसान की आंखें कितने आंसू झेलती हैं? या एक ही आंसू होता है, जो इंसान की आंखों में बार-बार जन्म लेता है?

और कहते हैं— हैरान से भृगु-ऋषि की ओर देखते हुए, शुक्र की आंखों में एक आंसू भर आया था.....

और फिर भृगु ऋषि ने मुस्कराकर कलम की ओर देखा, जो अपनी आंख में भर आये हर आंसू को हर बार अक्षर बना देती है, और फिर आहिस्ता से हंस देती है.....

जिन्होंने भी हाथ में कलम ली, और कलम की आंख में भर आये आंसू को देखा, और फिर हर आंसू को अक्षर बना दिया, उन हाथों की व्यथा, और उन हाथों का हासिल, अदब की तारीख बनता है.....

हम सब जानते हैं कि जड़ता सोई हुई चेतना का नाम है, और चेतना जागी हुई जड़ता का नाम. और मैं मानती हूं कि किसी शायर या अदीब का सबसे बड़ा सुख यह है कि वह रचना के क्षण में, उस क्षण को देख सकता है, जो सोई हुई जड़ता के जागने का क्षण होता है.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी इस भारत यात्रा का अविस्मरणीय क्षण

मार्गरिट थैचर

महीयषी महादेवी वर्मा को पुरस्कार समर्पण करने के लिए ब्रिटेन की प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर को आमंत्रित कर समारोह के नये आयाम खुले. यह पहला अवसर था जब किसी अभारतीय के हाथों पुरस्कार समर्पित हुआ. इस अवसर पर कार्यक्रम इस तरह संयोजित किया गया कि मार्गरेट थैचर पहले और महादेवीजी बाद में सभास्थल में पहुंचें ताकि कवि का महत्व और गरिमा बनी रहे. यहां प्रस्तुत हैं श्रीमती मार्गरेट थैचर और महादेवी वर्मा के भाषणों के प्रमुख अंश

भारतीय ज्ञानपीठ का साहित्य-पुरस्कार भारतीय लेखक को प्राप्त होने वाला निर्विवाद रूप में सर्वोत्तम सम्मान है.

मैं जानती हूं कि इस वार्षिक पुरस्कार को अपने हाथों भेंट करने के लिए आपने सदा विशिष्ट भारतीय महानुभावों को आमंत्रित किया है– प्रायः या तो राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री, या एक अवसर पर स्वयं महादेवी वर्मा को, जो सर्वथा उचित था.

यह एक विशेष सम्मान की बात है कि आज संध्या आपने मुझे यहां पुरस्कार भेंट करने के लिए बुलाया. ऐसा पहली बार हुआ है कि भारतीय नागरिक के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति ने यह पुरस्कार भेंट किया हो. यह मेरे लिये बहुत अधिक प्रसन्नता की बात है और मेरी इस बार की भारत यात्रा की स्मृति में यह बात महत्वपूर्ण ढंग से जुड़ी रहेगी, जब भारत ने पहली बार राष्ट्र मंडल के शासन-प्रमुखों के सम्मेलन को आमंत्रित किया है.

भारतीय ज्ञानपीठ उस महावृक्ष की तरह है जिसकी जड़ें आपकी प्राचीन संस्कृति की भूमि में गहरी उतरी हैं और जिसकी शाखायें तथा पल्लव विकासमान भारतीय साहित्यकारों की उस विकासशील जीवन-परंपरा की प्रतीक हैं जो आज भारतीय भाषाओं में नये साहित्य का सृजन कर रहे हैं. आपकी भाषाएं भारत की जिस भाषागत व्यापक विविधता को और समृद्ध परंपरा को दर्शाती हैं वह भारतीय संस्कृति की महिमा के अंग हैं. 18वीं शताब्दी में जब से संस्कृत के महाग्रंथों का अनुवाद योरुप में पहुंचा, हम पश्चिम-वासियों को भारत की महान साहित्यिक विरासत का पता चला और हमने इससे प्रेरणा ग्रहण की. उसके बाद आपके प्राचीन और आधुनिक साहित्य ने अधिकाधिक अपना उचित स्थान हमारे साहित्य के सह-संबंधी के रूप में प्राप्त किया. इसने हमारे ज्ञान को विस्तार दिया है, हमारी समझ को गहरा बनाया और हमारे आनंद में वृद्धि की है. इस सबमें भारत की कविता ने अपना एक विशेष गौरवमय स्थान बनाया है.

मुझे बताया गया है कि अब तक जो साहित्यकार पुरस्कृत हुए हैं उनमें भारत की महान भाषाओं में 12 भाषाओं के रचनाकार सम्मिलित हैं. प्रत्येक पुरस्कार के द्वारा केवल लेखक ही सम्मानित नहीं हुआ है, बल्कि उस भाषा का और उस भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त संस्कृति का भी सम्मान हुआ है. इससे सारे राष्ट्र-वासियों को प्रोत्साहन मिला है कि वह अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के साहित्य को भी पढ़ें.

इस प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ ने महान राष्ट्रीय सेवा का यह काम किया है और कर रही है कि इस विशाल देश की एकता में योगदान देने वाली अनेक समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति देशवासियों की जानकारी विकसित हो.

श्रीमती महादेवी वर्मा, जिनका हम आज यहां सम्मान कर रहे हैं छायावाद के प्रमुख रचनाकारों में हैं. जिस काव्य धारा ने आधुनिक भारतीय कविता में 1920 और 1930 के दशकों में युगांतरकारी परिवर्तन किया. इसके अतिरिक्त वह साहित्य-शास्त्र की प्रेरणा हैं, संस्कृत काव्य की अनुवादक हैं, गद्य में रेखाचित्रों की सर्जक हैं, और भारतीय नारी पर लिखे गये उस निबंध-संग्रह की लेखिका हैं जिसने भारतीय क्लासिक (गौरव ग्रंथ) की मान्यता प्राप्त की है.

किंतु विशेष बात तो यह है कि महादेवी कवि हैं. हिंदी की मूल कविता का अंग्रेजी अनुवाद बहुत ही असमर्थ प्रतिरूप है, किंतु इस स्मरणीय अवसर पर अपने भाषण को मैं महादेवी की उन पंक्तियों से समाप्त करना चाहूंगी जो उन्होंने अनेक वर्ष पहले अपनी 'उस पार' शीर्षक कविता में लिखीं. जीवन के तूफान में कूदने से पहले अपने मन की शंका व्यक्त करने के उपरांत उन्होंने दृढ़ निश्चय और साहस को अभिव्यक्ति दी जो स्वयं उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है और जो हम से भी बहुत कुछ कहती है:

तरी को ले जाओ मंझधार
डुबा कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार
वही पहुंचा देगा उस पार!

नमस्कार

—मार्गरिट थैचर
28 नवंबर, 1983

और महीयसी महादेवी ने कहा.....

इससे मैं सुखद संयोग ही मानती हूं कि अनके वर्ष पहले विश्ववंद्य बापू के पुण्यकरों से मुझे जब हिंदी का सम्मानित पुरस्कार प्राप्त हुआ था, तब वे और हम सब अपनी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटेन से अहिंसक संघर्ष कर रहे थे और आज उसी देश की प्रधान मंत्री श्रीमती थैचर मित्र-भाव से मुझे सम्मानित कर रही हैं.

हमारा संघर्ष कितना द्वेष, हिंसा आदि से रहित था यह उसी का प्रमाण है कि स्वतंत्र भारत और स्वतंत्र ब्रिटेन आज मित्रता के सूत्र में आबद्ध हैं.

मेरी कामना अपनी आर्षवाणी में यही है–

'संगच्छध्वं संवदध्वम् संवो मनांसि जानताम्.'

हमारी गति साथ हो, हमारी वाणी समान हो और हम एक-दूसरे के मन को जानें.

जय भारत!

— महादेवी वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

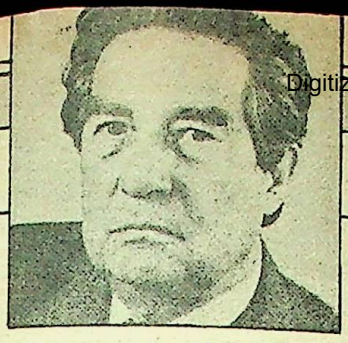

यह समारोह कई अर्थों में अनूठा बन गया है

आक्टोवियो पॉज

तीसरे पुरस्कार के सहविजेता गुजराती के मूर्धन्य कवि उमाशंकर जोशी ने 1968 में अपने भाषण में विश्व के जिन महान कवियों का जिक्र किया था उनमें एक नाम था—आक्टोबियो पॉज. और यह सुखद संयोग की बात कि 1985 में ज्ञानपीठ के बीसवें पुरस्कार को समर्पित करने वे ही कवि अपनी उपस्थिति से पुरस्कार समारोह को महिमामंडित करने आ पहुंचे. और इससे भी कहीं अधिक सुखद संयोग यह कि सुदूर मैक्सिको में बसे इस कवि ने पुरस्कार विजेता मलयालम कथाकार तकषी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना 'चेम्मीन' को वर्षों पहले अपनी भाषा-स्पैनी—में न केवल पढ़ा था बल्कि उसे सराहा भी था. यहां प्रस्तुत है कवि आक्टोवियो पॉज का अविकल भाषण और भारतीय पृष्ठभूमि पर लिखी उनकी महत्वपूर्ण कविता.

अपने एक सहयात्री, सुप्रसिद्ध लेखक और उपन्यासकार, तकषी शिवशंकर पिल्लै को भारतीय ज्ञानपीठ साहित्य पुरस्कार प्रदान करने का जो सम्मान आज मुझे मिला है, उसके लिए मैं अपने हृदय की गहराइयों तक झंकृत हूं. यह समारोह कई अर्थों में अनूठा बन गया है. पहला तो यह कि हम अपने जिस समकालीन लेखक का सम्मान कर रहे हैं, वह अपने विस्तृत और विराट साहित्यिक कार्य के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर पहले ही अपना स्थान बना चुका है. दूसरे, एक दूसरे देश तथा दूसरी भाषा का लेखक भारत के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेखक को भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से यह पुरस्कार प्रदान कर रहा है. और तीसरा यह कि मलयालम के एक लेखक को स्पानी के एक लेखक के साथ जोड़कर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की एक अनूठी विशेषता को दर्शाया गया है. यह एक ऐसा राष्ट्रीय पुरस्कार है जिसे प्रतिवर्ष विभिन्न भाषाओं में तथा विविध साहित्यिक परंपराओंवाले लेखकों को दिया जाता है. इस प्रकार यह पुरस्कार भाषायी राष्ट्रीयता की सीमाओं से आगे निकल जाता है. कहा जाता है कि भाषा ही लेखक की मातृभूमि होती है पर यहां भारत में तो राष्ट्र की अवधारणा किसी एक भाषा के साथ जुड़ी हुई नहीं है. भारत तो अपने आप में एक विश्व है. भाषाओं की एक महासभा.

भाषाओं तथा परंपराओं की विविधता के बावजूद आधुनिक भारतीय साहित्य में एकात्मकता के भी दर्शन होते हैं. यह एकात्मकता हमें साहित्यिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्रोतों की विविधता में दिखाई देती है. पिछली सदी के मध्य से ही पश्चिम के साहित्य का प्रभाव इस पर लगातार पड़ता रहा है, इसके अलावा स्थानीय परंपराओं तथा बोलचाल की शैलियों के प्रभाव के बावजूद वह एकात्मकता अक्षुण्ण है, शैलियों और सौंदर्य दृष्टि की समानताओं में इस एकात्मकता के दर्शन होते हैं. इस दृष्टि से पिल्लै ने बाहरी प्रभावों का अपनी राष्ट्रीय मेधा से उपयोग करके एक ओजस्वी गल्प का निर्माण किया है. अपने बचपन तथा युवावस्था में वे क्लासिकी साहित्य की परंपराओं के संपर्क में आये. महाभारत तथा रामायण ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया, बाद में जब वे गद्य में लिखने लगे तो उन्होंने आधुनिक युग की श्रेष्ठ विधा, उपन्यास को चुना, उन्होंने अपने जन्म स्थान केरल के आम आदमी के जीवन के अंधेरे-उजाले पक्षों को अपनी कहानियों और उपन्यासों का कथ्य बनाया और बहुत कम समय में वे पूरे भारत में प्रसिद्ध हो गये. 1956 में 'चेम्मीन' के प्रकाशन के साथ ही उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी मिली. इस उपन्यास का अनुवाद कई भाषाओं में हुआ, स्पानी में भी. यह एक ऐसी कृति है जिसमें पिल्लै का यथार्थवाद, अगर मैं कहूं तो, और अधिक यथार्थ के साथ प्रकट हुआ है. मेरे कहने का तात्पर्य है कि भावातिरेक, फंतासी, मिथक आदि सभी मानवीय यथार्थों को स्वीकार करते हुए यह उपन्यास आगे बढ़ता है. यथार्थवाद अनिवार्यतः अयथार्थ की पर्याप्त मात्रा को अपने में समाहित किये रहता है, अन्यथा वह यथार्थवाद होगा ही नहीं.

पिल्लै की उपलब्धियां प्रशंसा के योग्य हैं. अपने मित्र नारायण मेनन की एक बात मैं यहां उद्धृत करने की अनुमति चाहूंगा. मेनन भारत के एक बड़े संगीत विद् होने के साथ-साथ एक प्रखर आलोचक और उतने ही विद्वान साहित्यकार भी हैं. (मुझे कवि येट्स पर लिखे उनके सारगर्भित निबंध की अब भी याद है जिसे हो सकता है वे स्वयं ही भूल गये हों) उन्होंने पिल्लै के बारे में लगभग बीस साल पहले लिखा था कि "पिल्लै अपनी उम्र के चालीसे में हैं. यह उनके जीवन के चरम निखार वर्ष हैं. वे आज अपने लेखन में विविधता ला रहे हैं, दिन-ब-दिन निखार ला रहे हैं. यह निखार उनकी मेधा का ही नहीं, उनकी विलक्षणता का भी पैमाना है. आप इतने सहज, प्रखर और गतिशील लेखनी वाले रचनाकार से जो भी उम्मीदें रखें, वे कम ही होंगी." मेनन की ये उम्मीदें गलत नहीं रहीं और आज हम उनकी इस भविष्यवाणी को पूरा होते देख रहे हैं. आधुनिक भारतीय साहित्य के इस निर्माता का हम सादर अभिवादन करते हैं. यह भारतीय साहित्य जो कई भाषाओं में लिखा जाता है और समस्त मानव जाति की साझी सचाइयों को निरूपित करता है, वास्तव में, अपनी प्रकृति से ही सार्वजनिक है.

आक्टोविया पॉज
10 नवंबर, 1985

अनुवाद : सु. उ.

शिव और पार्वती!

हम तुम्हें पूजते हैं
देवताओं की तरह नहीं,
मनुष्य में देवत्व की
प्रतिमाओं की तरह!
तुम वह हो—जो मनुष्य रचता है
स्वयं नहीं है,
—किंतु वह हो जायेगा वैसा
जब वह अपने कठोर श्रम का दण्ड काट
चुका होगा.
शिव!
तुम्हारी चार भुजाएं चार सरिताएं हैं
जल की चार उच्छल धाराएं.
तुम्हारा सारा अस्तित्व एक निर्झर है
जिसमें रूपसी पार्वती नहाती है,
मनोरम नाव सी झूलती है.
सूर्य-तले समुद्र धड़क रहा है—
यह शिव के विशाल होंठ हैं, हंस रहे हैं.
समुद्र में कौंध हैं—
ये जल पर पार्वती के चरण हैं.
हे शिव और पार्वती!
यह नारी जो मेरी पत्नी है
और मैं
आपसे कुछ नहीं मांगते, ऐसा कुछ नहीं
जो इस लोक से परे का हो.
हम मांगते हैं
केवल
समुद्र पर पड़ता प्रकाश,
सोती धरा और सोते सागर पर
नंगे पांवों उतरता प्रकाश.

स्पैनिश कविता जो कवि ऑक्टेवियो पाज ने पढ़ी, और पुरस्कार-मंच पर इंदु जैन ने प्रस्तुत की.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ पुरस्कार

संस्थापकों, संचालकों के विचार और विनयांजलि

ज्ञानपीठ की अध्यक्ष श्रीमती रमा जैन का पुरस्कार समारोह के अवसर पर पहला स्वागत भाषण

इस प्रथम पुरस्कार-समर्पण समारोह के अवसर पर मैं आप सबका हार्दिक स्वागत करती हूं और महाकवि कुरुप का श्रद्धापूर्ण अभिनंदन. इस अवसर पर प्रवर परिषद् के प्रथम अध्यक्ष राष्ट्रपति देशरत्न—डॉ. राजेंद्रप्रसादजी का स्वतः ही स्मरण हो आता है. उनकी प्रेरणा, शुभकामना एवं मार्गदर्शन से भारतीय ज्ञानपीठ को तथा मुझे सदा साहस प्राप्त हुआ है और इस पुरस्कार योजना को वर्तमान रूप देने में उनके सुझावों से बहुत बड़ा बल मिला है. उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं.

यह मेरा सौभाग्य है तथा आत्मसंतोष की बात है कि 1961 में देखे गये स्वप्न को मैं सार्थक रूप में देख रही हूं. मुझे हर्ष है कि भारतीय ज्ञानपीठ ने इतने कठिन कार्य को हाथ में लेने का साहस किया और उसे सुखद परिणाम तक पहुंचाने का श्रेय डॉ. संपूर्णानंदजी के नेतृत्व, प्रवर परिषद् के सदस्यगण और भारत के साहित्यकारों को है, जिन्होंने अपनी अनेक व्यस्तताओं में-से भी समय निकालकर बराबर इस पुरस्कार योजना को सफल बनाने में सहयोग दिया है. डॉ. संपूर्णानंदजी एवं प्रवर परिषद् के सदस्यों के व्यक्तित्व से आप सभी परिचित हैं. भारतीय ज्ञानपीठ उनकी कृतज्ञ है.

इस समय देश में भाषा, जाति, प्रांत, धर्म आदि विषयों को लेकर कई विवाद खड़े किये जा रहे हैं. इससे देश की समग्र भावना को आघात पहुंचा है और आगे भी पहुंचने की आशंका है. इस प्रकार की धाराओं को रोका न गया, तो यह हमारे महान् जनतंत्र को भी जर्जरित कर सकता है. इस संदर्भ में यह विशेष महत्व व गौरव की बात है है कि प्रवर परिषद् में विभिन्न भाषी सदस्यों ने एकमत से महाकवि जी. शंकर कुरुप की मलयालम कृति 'ओटक्कुषल' का वरण किया.

देश की सांस्कृतिक एकता और विचारों का सामंजस्य, जो जीवन के यथार्थ थे, उन्हें संकुचित दृष्टि ने, राजनीति पर आश्रित भाषा और सीमा विवादों ने तथा अन्य दुराग्रहों ने धूमिल कर दिया है. उन सब सीमाओं को तोडकर हम समाज, साहित्य और संस्कृति के महा आकाश के नीचे एक साथ एकत्र हैं. आज उत्तर का यह अंचल सुदूर दक्षिण के अंचल के साथ एक-प्राण हो रहा है और हम अपने मलयालम के कवि का नहीं, भारत के कवि का अभिनंदन कर रहे हैं!

महाकवि, देश के साहित्यकारों ने आपकी वाणी वाग्देवी की अर्चना के लिए जो भावांजलि आज प्रस्तुत की है, भारतीय ज्ञानपीठ ने इस पुरस्कार के रूप में उस पुष्पहार में श्रद्धा का एक सुमन गूंथा है. हां, हमारी भावनाओं का विस्तार इतना व्यापक है कि यह फूल उनका एक प्रतीक ही बन सकता है.

आज का यह अवसर भारतीय साहित्य के इतिहास में इसलिए स्मरणीय रहेगा कि देश की राजधानी में विभिन्न विद्वानों, साहित्यकारों, राजनयिकों और बुद्धिचेता नागरिकों ने देश के विभिन्न अंचलों से आकर साहित्य-मनीषियों की उपस्थिति में और उनके सहयोग से एक ऐसे साहित्यकार का अभिनंदन किया जो समस्त भारतीय साहित्य की प्रतिभा और राष्ट्र की एकता का प्रतिनिधि है. महाकवि कुरुप का अभिनंदन देश की संश्लिष्ट संस्कृति और उस संस्कृति की साहित्यिक अभिव्यक्ति का अभिनंदन है.

वास्तव में यह समारोह और यह अभिनंदन समूचे देश के साहित्यकारों की ओर से महाकवि का अभिनंदन है. पुरस्कार का निर्णय जिस पद्धति से किया गया है उसका दायित्व स्वयं साहित्यकारों और समीक्षकों ने उठाया है और सबके सहयोग से यह संभव हुआ है कि आज हम समूचे भारतीय साहित्य में-से एक कृति का चयनकर अखिल भारतीय साहित्यिक मानदंड की स्थापना की ओर अग्रसर हुए हैं. यह मानदंड संसार के साहित्य-क्षेत्र में भारतीय साहित्यकारों को एक सम्मानित आसन दिलायेगा. भारत की सांस्कृतिक विचार एकता को जनसाधारण में व्यापक और दृढ़ करेगा.

हमें इस बात की प्रसन्नता है कि भारत सरकार ने पुरस्कार की राशि को आयकर से मुक्त कर दिया है और इस प्रकार भारतीय साहित्य के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की है. ज्ञानपीठ इस सहयोग के लिए आभारी है.

19 नवंबर, 1966

ज्ञानपीठ के अध्यक्ष साहू शांतिप्रसाद जैन का पुरस्कार समारोह के अवसर पर पहला स्वागत भाषण

इस सभागार में जिस स्थान पर खड़े होकर मैं बोल रहा हूं, वह स्वागत-स्थली आज अपूर्ण है. अपनी दूरदर्शिता और कर्मठता से जिसने भारतीय ज्ञानपीठ को एक सार्थक व्यक्तित्व दिया, अपनी साहसिक कल्पना और क्रियाशीलता से जिसने इस साहित्य-पुरस्कार को राष्ट्र की गरिमा के उपयुक्त बनाया, उसका स्थान तो कभी भरा नहीं जा सकता. विज्ञान भवन की गैलरी और सभागार में, और इस मंच पर के विगत नौ समारोहों की स्मृति में वह नाम सुवासित है. पारिवारिक स्तर पर उस स्मृति ने आपके स्नेह से विशेष रूप से जोड़ा है; आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवर्तिका श्रीमती रमारानी जैन.

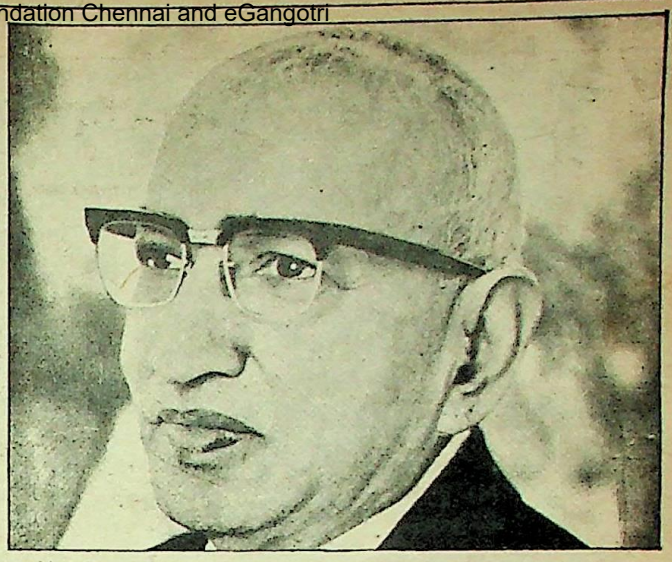

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांतिप्रसाद जैन.

संवेदनाओं ने हमें बल दिया है. स्वागत के इन शब्दों और भावनाओं से उसी व्यक्तित्व की प्रतिध्वनि आप सुन रहे हैं, यह विचार ही मुझे यहां खड़े होने का संबल दे रहा है.

आदरणीय श्री खांडेकरजी, आप इतना कष्ट उठाकर यहां पधारे हैं और यात्रा तथा प्रवास के अनुकूल आपका स्वास्थ्य नहीं है, यह हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं. स्वास्थ्य की लगातार असमर्थता और परिस्थितियों की सतत प्रतिकूलता में भी आपने विविध शैलियों और शिल्पों में इतना विपुल साहित्य रचा है यह हम सबके लिए आश्चर्य का विषय रहा है. लोक-जीवन के प्रवाह के साथ संयुक्त रह कर आपने साहित्य को दिशा दी है. पुरस्कृत कृति 'ययाति' की पौराणिक कथा में आपने भारतीय साहित्य के मूल उद्देश्य अर्थात् जीवन की सात्विक साधना को, इस प्रकार गुंफित किया है कि आज का मानव उसमें अपने जीवन और अपने युग के विरोधों की झांकी पाता है, और पाता है त्रस्त आकुलता से मुक्ति का उपाय. आपका और आपके कृतित्व का हार्दिक अभिनंदन.

महामना महादेवीजी, आपने हिंदी साहित्य के माध्यम से भारतीय काव्य को जो प्राण-प्रतिष्ठा दी है, वह साहित्य के इतिहास में सदा अमर रहेगी. आपके पात्र-चित्रों की जीवंतता ने और आपके निबंधों में चिंतन की सहज स्फूर्ति ने देश-विदेश के पाठकों के मन में भारतीय प्रतिभा की दीपशिखा प्रज्वलित की है. आप हमारा हार्दिक अभिनंदन स्वीकार करें.

यह हमारा विशेष सौभाग्य है कि पुरस्कार समर्पित करने के लिए आप यहां पधारी हैं. एक ओर सुदूर महाराष्ट्र के शिरोडा के सागर-तट के दृश्य-विस्तार ने श्री खांडेकर को साहित्य रचना की प्रेरणा दी, तो दूसरी ओर त्रिवेणी की पावन धारा के प्रवाह ने महादेवीजी की प्रतिभा को नित नूतन उन्मेष दिया. आज वाग्देवी-सरस्वती के चरणों पर आप दोनों की उपस्थिति से जो संयुक्त जलधारा चढ़ायी जा रही है, अभिषेक का वह चरणामृत हम सबको सदा प्रमुदित और पावन करेगा.

ज्ञानपीठ पुरस्कार का यह दसवां वर्ष है. इस पहले दशक की पूर्ति पर ज्ञानपीठ को गौरव की अनुभूति की अपेक्षा, एक विशेष विनम्रता और कृतज्ञता का भाव प्रभावित कर रहा है. इन दस वर्षों में हमारे राष्ट्र के लगभग बीस मनीषियों ने प्रवर परिषद् को अपने अनुभव और मार्गदर्शन का लाभ दिया. पुरस्कार निर्णय की प्रक्रिया में दो सौ से अधिक साहित्यकारों-समीक्षकों ने पूरी निष्ठा और दायित्व भावना से सहयोग दिया. सहस्रों विद्वानों और साहित्य-प्रेमी पाठकों ने प्रस्ताव पत्र भेजकर हमें उत्साहित किया. सबसे बड़ी बात यह है कि समूचे राष्ट्र ने इस पुरस्कार की प्रामाणिकता, निष्पक्षता और सार्थकता को मान दिया. देशरत्न राजेंद्र बाबू तो प्रवर परिषद् के पहले अध्यक्ष ही थे, डॉ. राधाकृष्णन ने प्रवर परिषद् के गठन में सक्रिय रुचि ली, श्री वराहगिरि वेंकटगिरि ने पुरस्कार समारोहों की दो बार अध्यक्षता की, प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा ने इसी समारोह-मंच से श्री फ़िराक़ गोरखपुरी को पुरस्कार भेंट किया और ज्ञानपीठ के कार्यों का अभिनंदन करके हमें प्रोत्साहन दिया. पुरस्कार के दस वर्षों के संदर्भ में इन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा कर्त्तव्य है.

मैं जानता हूं, यहां पधारकर इस उत्सव की शोभा को बढ़ाने वाले आप सब बहिनों और भाइयों के मन आत्मीय भावनाओं से पूरित हैं. भारतीय साहित्य के विविध रूप, देश की जिस मूलभूत सांस्कृतिक एकता को रेखांकित करते हैं, आप सब उसी के प्रतिनिधि हैं. आप सबका कृतज्ञतापूर्ण स्वागत.

प्रणाम!

26 फरवरी, 1976

ज्ञानपीठ के वर्तमान अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जैन का पुरस्कार समारोह के अवसर पर पहला स्वागत भाषण

ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए इस वर्ष यह विशेष गौरव की बात है कि पुरस्कार पहली बार एक महिला कृतिकार को समर्पित हो रहा है. श्रीमती आशापूर्णा देवी का स्थान बंगाल में, बांग्ला साहित्य में, बहुत पहले से ऊंचा है. वे प्रतिष्ठित और पुरस्कृत हो चुकी हैं. उनकी अनेक वर्षों की साहित्य साधना आज समस्त राष्ट्र की साहित्यिक-निधि के रूप में सम्मानित हो रही है, इससे ज्ञानपीठ पुरस्कार के उद्देश्यों की पूर्ति में वृद्धि हुई है

भारतीय पत्नी के लिए जीवन की जो सबसे अधिक संतापमयी दुर्घटना हो सकती है, उसके विषाद की छाया में भी श्रीमती आशापूर्णा देवीजी ने यहां पधारने का कष्ट उठाया है. यह हमारे अनुरोध की ही मानरक्षा है.

वास्तव में पुरस्कार प्राप्त कृति 'प्रथम प्रतिश्रुति' की कथा और भाव के अनुरूप आपने अपने को संतुलित करके इस कर्त्तव्य को निभाया है. भारतीय ज्ञानपीठ परिवार आपका कृतज्ञ है और आपके प्रति समवेदना प्रगट करता है.

यह भारतीय ज्ञानपीठ के लिए बहुत ही संतापपूर्ण अवसर है कि भाई शांतिप्रसाद, संस्थापक और रमाजी, अध्यक्षा, भारतीय ज्ञानपीठ हमारे बीच नहीं रहे हैं. यद्यपि उत्सव का आयोजन ठीक उसी प्रकार हो रहा है जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके मार्गदर्शन में उनके मानदंडों के अनुरूप होता रहा है, किंतु उनके न होने से जो सूनापन हृदय में टीस उत्पन्न कर रहा है उसको व्यक्त करने की क्षमता में अपने में नहीं पा रहा हूं. हमारे दुःख को सहस्रों भाई-बहनों ने आत्मीयता के साथ बंटाया है. आप सबकी सहानुभूति और सहयोग हमारा संबल है, उसी के सहारे आगे बढ़ने का साहस हमें प्राप्त हुआ है.

सभी भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों, समीक्षकों और सुधी पाठकों का बहुत बड़ा समुदाय, पुरस्कार निर्णय की प्रक्रिया में, प्रवर परिषद् को सहायक होता है. यह समुदाय भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की महत्ता और शक्ति का स्रोत है.

इस पुरस्कार ने एक ओर जहां भारतीय भाषाओं को एक संगम-स्थली दी है, वहां साहित्यकारों के बीच एक ऐसे सेतु का निर्माण किया है, जो एक दूसरे को आंतरिक परिचय की भूमिका पर जोड़ता है. पुरस्कार ने हमारी इस प्रतीति को साकार किया है कि भाषा और क्षेत्र के व्यवधान की धारा के नीचे सांस्कृतिक चेतना की एक मूलधारा सारे देश में समान रूप से प्रवाहित है. यह हमारे राष्ट्रीय समन्वय का दर्पण है.

सम्माननीय राष्ट्रपतिजी, आपके प्रति हम पुनः कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं.

श्रीमती आशापूर्णा देवीजी, आपका हार्दिक अभिनंदन!

प्रतिवर्ष पुरस्कार समारोह में पधारकर आप सब सहयोगी हमारे उत्साह का संवर्द्धन करते हैं—आप सबका स्वागत, अभिनंदन!

धन्यवाद!

26 अप्रैल, 1978

ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवर्तिका श्रीमती रमारानी जैन के देहावसान पर भारतीय ज्ञानपीठ ट्रस्ट की बैठक में पारित शोक-प्रस्ताव

भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल की यह बैठक ज्ञानपीठ की अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन के आकस्मिक निधन पर गहरे दुःख और संताप की भावना व्यक्त करती है. भारतीय ज्ञानपीठ न्यास के स्थापना के दिन से ही श्रीमती रमा जैन ने न्यास मंडल की तथा भारतीय ज्ञानपीठ की सांस्कृतिक-साहित्यिक प्रवृत्तियों की अध्यक्षता का दायित्व वहन किया. उनका नेतृत्व और सक्रिय दायित्व-निर्वाह भारतीय ज्ञानपीठ के लिए वरदान सिद्ध हुआ. यह उनकी एकांत निष्ठा, दूरदर्शिता और कार्यदक्षता का ही परिणाम है कि ज्ञानपीठ ने देश के सांस्कृतिक-साहित्यिक क्षेत्र में यश उपार्जित किया और समस्त भारतीय साहित्यों में से प्रतिवर्ष एक कृति को राष्ट्र के उच्चतम सृजनात्मक मानदंडों के अनुरूप एक लाख रुपये के पुरस्कार से सम्मानित करने का असंभव-सा दिखने वाला कार्य सफलता के साथ संपन्न किया. श्रीमती रमा जैन के निधन पर देश के कोने-कोने से परिचितों-अपरिचितों की जो सहस्राधिक शोक-संवेदनाएं और श्रद्धांजलियां प्राप्त हुई हैं, वे इस तथ्य की द्योतक हैं कि श्रीमती रमा जैन के व्यक्तित्व और कृतित्व का कितना बड़ा मान राष्ट्र के मन में है.

न्यासधारी मंडल तो उनके अभाव में आज किंकर्तव्य-विमूढ़ता की स्थिति में अपने को पाता है. श्रीमती रमा जैन जिस सौजन्य और आत्मीयता के साथ मंडल के सदस्यों से व्यवहार करती थीं और ज्ञानपीठ की समस्याओं का जिस माधुर्यपूर्ण कुशलता के साथ समाधान करती थीं, वह दुर्लभ है. उनकी स्मृति चिरकाल तक हमारे मनों में वास करेगी. हम उनकी स्मृति के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं. □

ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांतिप्रसाद जैन के देहावसान पर ज्ञानपीठ ट्रस्ट द्वारा पारित शोक-प्रस्ताव

भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल की एक तात्कालिक बैठक 3 नवंबर, 1977 को पूर्वाह्न 10 बजे 6, सरदार पटेल मार्ग, नयी दिल्ली में संपन्न हुई. बैठक की अध्यक्षता ज्ञानपीठ ट्रस्टी पं. मोलिचंद्र शर्मा ने की. निम्नलिखित श्रद्धांजलि प्रस्ताव स्वीकृत हुआ.

भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल की यह बैठक ज्ञानपीठ के संस्थापक एवं अध्यक्ष-ट्रस्टी श्री साहू शांतिप्रसाद जी के असामयिक निधन पर अत्यंत शोक और दुःख प्रगट करती है और इसे ज्ञानपीठ के इतिहास की अत्यंत मर्म-भेदिनी घटना मानती है. लगभग दो वर्ष पूर्व घटित श्रीमती रमा जैन के देहावसान के अपरिमित विषाद की छाया संतप्त मन को अभी भी अभिभूत किये हुए थी कि श्री साहूजी के वियोग ने ज्ञानपीठ परिवार के हृदय को गहरी व्यथा से आहत कर दिया है.

लगभग 34 वर्ष पूर्व, सन् 1943 में, ज्ञानपीठ की स्थापना के संकल्प की घोषणा के दिन से 27 अक्तूबर, 1977 तक जीवन पर्यंत श्री साहूजी ने संस्था के हित के एक मनप्राण से सींचा, सदा इसके कार्यक्षेत्र का विस्तार किया, इसे भारतीय दर्शन, धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, कला एवं शोध-विज्ञान की सेवा का समर्थ माध्यम बनाया और उपलब्धि के नये मानदंडों की स्थापना की.

मन, वचन, कर्म से अत्यंत श्रद्धावान् और धर्मनिष्ठ, श्री साहू जी भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे. तीर्थवंदना और जीर्णोद्धार के कार्य उन्हें संतोष और शांति प्रदान करते थे. भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना के मूल में उनके चित्त की यह प्रेरणा थी कि भारतीय विद्या की अमूल्य निधि का सर्वांगीण परिचय तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक भारतीय वाङ्मय के वह क्षेत्र उजागर नहीं हो जाते जो अन्वेषण और अध्ययन से वंचित रह गये हैं. यही कारण है कि ज्ञानपीठ के लिए जो कार्यक्रम उन्होंने बनाया उसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्राचीन वाङ्मय की शोध-खोज, संपादन और प्रकाशन पर बल दिया. साथ ही साथ समसामयिक हिंदी लेखन और पत्रकारिता के प्रयत्नों को प्रोत्साहित करके उन्होंने नयी प्रतिभाओं के उदय को प्रश्रय दिया.

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार का प्रवर्तन उनकी विशाल राष्ट्रीय दृष्टि का द्योतक है. इस पुरस्कार के द्वारा उन्होंने समस्त भारतीय लेखन की श्रेष्ठ उपलब्धि को देश-विदेश की चेतना में स्थापित किया, उसे सम्मानित किया. इसका फल यह हुआ कि भारतीय साहित्य अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को लांघकर अखिल भारतीय स्तर पर देश की सांस्कृतिक एकता का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब बना है. भारतीय उद्योग और व्यवसाय के विस्तार में उनकी प्रतिभा को जितना स्वागत मिला है, उससे भी अधिक उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों, सामाजिक सेवाओं और बहुमुखी प्रतिभा के प्रस्फुरण को मिल रहा है.

ज्ञानपीठ के न्यासधारी मंडल को उनके कृतित्व पर गर्व है और वह इसे अपना सौभाग्य मानता है कि उनके सहयोगी होने का गौरव उसे प्राप्त हुआ. श्री साहूजी के व्यक्तित्व की सरलता, मृदुता, उदारता और आत्मीयता ने हम सबके हृदय में अमिट छाप छोड़ी है. उनके अभाव से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति असंभव है.

हम श्री साहूजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके परिवार, स्वजनों और परिजनों के प्रति अंतरंग समवेदना व्यक्त करते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ के वर्तमान अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जैन

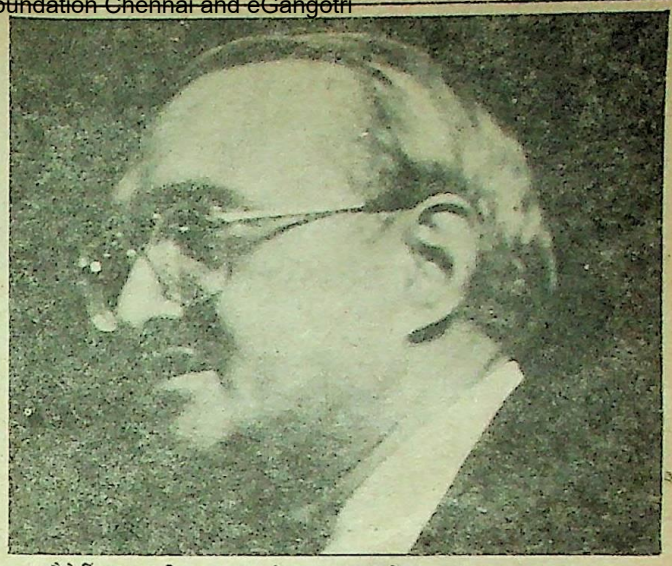

मैनेजिंग ट्रस्टी साहू अशोक कुमार जैन

श्री अशोक कुमार जैन, मैनेजिंग ट्रस्टी, भारतीय ज्ञानपीठ, का बीसवें पुरस्कार के अवसर पर धन्यवाद भाषण.

साहित्य जगत के प्रकाशपुंज श्री पिल्लै, आदरणीय अतिथि, कवि-शिरोमणि श्री पॉज़, प्रवर परिषद के मान्य अध्यक्ष श्री नरसिंहराव, परिषद-सदस्य, एवं देवियो और सज्जनो,

आप सब प्रबुद्ध और विशिष्ट महानुभाव यहां पधारे हैं. आप सबके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा अत्यंत सुखद कर्तव्य है. यह तो ऐसा ही है जैसे सुरभित फूलों के गुलदस्ते भेंट किये जा रहे हों– देनेवाले को आह्लाद और पाने वाले का मन प्रसन्न.

मैं बोलने खड़ा हुआ हूं तो एक अजीब दुविधा मन में व्याप्त है पहले किसका उल्लेख करूं– उनका जिनकी साहित्यिक उपलब्धि का हम अभिनंदन कर रहे हैं, पुरस्कार विजेता श्री तकषी शिवशंकर पिल्लै, या उनका जो हमारे मुख्य अतिथि हैं-विश्व विश्रुत श्री ऑक्टोवियो पॉज़–दोनों ही सरस्वती-पुत्र हैं. इसलिए दोनों ही भाई-भाई हैं. इस बात को श्री पॉज़ ने अपने भाषण में बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है.

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां ऐसे दो साहित्यिक महारथी उपस्थित हैं जिनके देश दूर-दूर हैं, जिनकी भाषाएं अलग-अलग हैं किंतु जो हमें इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव करा रहे हैं कि 'विविधा में एकता' एक वास्तविक तथ्य है. इन दोनों की भावनाएं एक हैं, मनुष्य के भविष्य के प्रति दोनों की चिंता एक है, निर्बलों और नीचे के वर्ग के लोगों की दशा के प्रति दोनों के मन की आकुलता एक प्रकार की है, दोनों अपनी संस्कृति की जड़ों से जीवन का पोषण प्राप्त करते हैं–दोनों उस सत्य का साकार रूप हैं जिसे हमारे ऋषियों ने अनुभव किया था और अभिव्यक्त किया था–वसुधैव कुटुंबकम्– सारा संसार एक कुटुंब है.

हमने जैसा यहां सुना, श्री तकषी के साहित्य ने जीवन की कठोर वास्तविकता को समझने और पहचानने के लिए हमारे सामने नये गवाक्ष खोले हैं. उनके माध्यम से हमने जीवन के संघर्षों और त्रासदियों से साक्षात्कार किया है, किंतु यह भी सीखा है कि मनुष्य के उदार विचार और सात्विक प्रवृत्तियां उसे सब प्रकार के दु:खों और हीनता से मुक्त कर देते हैं. इन उदात्त विचारों से आत्मा पवित्र होती है. हम श्री तकषी के आभारी हैं कि उन्होंने आज के उत्सव के केंद्र में विराजमान होने का हमारा निमंत्रण स्वीकार किया.

मुख्य अतिथि के रूप में श्री पॉज़ की उपस्थिति ने आज ज्ञानपीठ समारोह को एक नयी गरिमा से मंडित किया है. समुद्रपार की इस मूर्धन्य प्रतिभा ने भारत के अपने एक लेखक बंधु का अत्यंत ओजस्वी शब्दों में अभिनंदन किया है. हमारे देश के लेखकों को इस बात से सदा प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी.

श्री पॉज़ ने हमारे इतिहास को, हमारी संस्कृति को बहुत गहरी दृष्टि से समझा है. उनसे बातें करके और उनके व्याख्यानों को सुनकर मेरी आस्था अनेकांत दर्शन के सिद्धांत में अधिक गहरी हुई है. उन्होंने एक 'सभ्य राजनीतिज्ञ' की परिभाषा इस प्रकार की है : वह व्यक्ति जो अपने सुचिंतित मत का परित्याग किये बिना इस मान्यता को स्वीकार करता है कि सारे दृष्टिकोण सापेक्ष हैं. इसी को हम 'स्याद्वाद' कहते हैं जो जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए खरा है.

मित्रो, हमें इस बात का हर्ष है कि श्रीमती तकषी इस समारोह में पधारी हैं. वह एक भारतीय आदर्श पत्नी और आदर्श माता की प्रतिमूर्ति हैं. आदर्शों के प्रति अपनी एकांत-निष्ठा के कारण ही उन्होंने अपने परिवार की नाव को संघर्षों के ज्वार में से सुरक्षित निकाला है. विशेष बात यह कि अपने पचपन वर्षों के विवाहित जीवन में उन्होंने अपने पति की सर्जनात्मक प्रतिभा को फलांफूला रखा है और, सृजनशील लेखक कितने मनमौजी और निर्बंध होते हैं, यह हम सब जानते हैं. ऐसी महान नारी का हम अभिनंदन करते हैं. मैं ऋचा से अनुरोध करता हूं कि वह श्रीमती तकषी को हमारी आदर-भावना का प्रतीक फूलों का गुलदस्ता भेंट करें.

समान रूप से प्रसन्नता और गौरव की बात यह भी है कि हमें श्रीमती पॉज़ ने अपनी उपस्थिति से कृतज्ञ किया है. अपने कवि पति की सृजनशील प्रतिभा के पुष्पित और फलित होने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान उन्हीं का है. हमारे आदर और अभिनंदन की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें श्रीमती इन्दु जैन? गुलदस्ता भेंट कर रही हैं

भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार समारोह सदा ही एक स्मरणीय और आनंददायक अवसर बन जाता है. यह इसलिए कि इसे प्रबुद्ध साहित्यकार, कलाविद्, संस्कृति संपोषक, जन विशिष्ट नागरिक और ज्ञानपीठ के हितैषी इसे अपना आयोजन मानकर इसमें सम्मिलित होते हैं. आप सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूं □

14 नवंबर, 1985

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाग्देवी के मंदिर के ये चिरंतन दीपाधार

1. गो. शंकर कुरुप
(1901-1978)

1920-58 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'ओडक्कुषल' (कविता-मलयालम) के लिए वर्ष 1965 के पुरस्कार-विजेता.

2. ताराशंकर वंद्योपाध्याय
(1898-1971)

1925-59 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'गणदेवता' (उपन्यास-बांग्ला) के लिए वर्ष 1966 के पुरस्कार-विजेता

3. कु.वें. पुट्टप्पा
(1904)

1935-60 की दो सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'रामायण दर्शनम्' (कविता-कन्नड़) के लिए 1967 के पुरस्कार के सह-विजेता.

4. उमाशंकर जोशी
(1911)

1935-60 की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'निशीथ' (कविता-गुजराती) के लिए 1967 के पुरस्कार के सह-विजेता.

5. सुमित्रानंदन पंत
(1900-1977)

1945-1961 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'चिदंबरा' (कविता-हिंदी) के लिए वर्ष 1968 के पुरस्कार-विजेता

6. फिराक गोरखपुरी
(1896-1983)

1950-62 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'गुलेनग्मा' (नग्में, गजलें और रुबाइयां-उर्दू) के लिए 1969 के पुरस्कार-विजेता

7. विश्वनाथ सत्यनारायण
(1893-1976)

1955-63 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'रामायण-कल्पवृक्षमु' (कविता-तेलगु) के लिए वर्ष 1970 के पुरस्कार-विजेता.

8. बिष्णु दे
(1909-1983)

1960-64 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'स्मृति सत्ता भविष्यत्' (कविता-बांग्ला) के लिए 1971 के पुरस्कार-विजेता.

9. रामधारी सिंह 'दिनकर'
(1908-1974)

1961-65 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'उर्वशी' (कविता-हिंदी) के लिए 1972 के पुरस्कार- विजेता.

10. द.रा. बेंद्रे
(1896-1983)

1962-66 की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'नाकु तंति' (कविता-कन्नड़) के लिए 1973 के पुरस्कार के सह-विजेता.

11. गोपीनाथ महांती
(1914)

1962-66 की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से 'माटी मटाल' (उपन्यास-उड़िया) के लिए 1973 के पुरस्कार के सह-विजेता.

12. वि.स. खांडेकर
(1898-1976)

1958-1967 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'ययाति' (उपन्यास-मराठी) के लिए 1974 के पुरस्कार-विजेता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ साहित्य पुरस्कार विजेताओं की दिग्दर्शिका

13. प.वै. अखिलंदम्
(1923-1988)

1959-68 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'चित्तिरप्पवै' (उपन्यास-तमिल) के लिए 1975 के पुरस्कार-विजेता.

14. आशापूर्णा देवी
(1909)

1960-69 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'प्रथम प्रतिश्रुति' (उपन्यास-बांग्ला) के लिए 1976 की पुरस्कार-विजेत्री.

15. शिवराम कारंत
(1902)

1961-70 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'भूकैज्जय कनसुगलु' (उपन्यास-कन्नड़) के लिए 1977 के पुरस्कार-विजेता.

16. स.ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय'
(1911-1987)

1962-71 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'कितनी नावों में कितनी बार' (कविता-हिंदी) के लिए. 1978 के पुरस्कार-विजेता.

17. वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य
(1924)

1963-72 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'मृत्युंजय' (उपन्यास-असमिया) के लिए 1979 के पुरस्कार-विजेता.

18. शं. कु. पोट्टेक्काट
(1913-1982)

1964-73 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'ओरु-देशंतिते कथा' (उपन्यास-मलयालम) के लिए 1980 के पुरस्कार-विजेता.

19. अमृता प्रीतम
(1919)

1965-74 की सर्वश्रेष्ठ कृति 'कागज ते केनवस' (कविता-पंजाबी) के लिए 1981 की पुरस्कार-विजेत्री.

20. महादेवी वर्मा
(1907-1987)

भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में 'यामा' और 'दीपशिखा' जैसी कृतियों (हिंदी) के सृजन के लिए वर्ष 1982 के पुरस्कार की विजेत्री.

21. मास्ति व्यंकटेश अय्यंगार
(1891-1986)

भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में 'चिक्कवीर राजेंद्र' जैसी कृतियों (कन्नड़) के सृजन के लिए वर्ष 1983 के पुरस्कार विजेता.

22. तकषी शिवशंकर पिल्लै
(1912)

भारतीय साहित्य को 'रंटिटंउषी', 'बाढ़ में' जैसी कृतियों (मलयालम) के रूप में अमूल्य योगदान के लिए 1984 के पुरस्कार विजेता.

23. पन्नालाल पटेल
(1912)

'मानवीनी भवाई और 'पार्थने कहो चढ़ावे बाण' जैसी कृतियों (गुजराती) के रूप में अमूल्य योगदान के लिए 1985 के पुरस्कार विजेता.

24. सच्चिदानंद राउतराय
(1916)

भारतीय साहित्य को 'पाथेर', 'पांडु-लिपि' 'कविता: 1962' जैसी कृतियों (उड़िया) के रूप में अमूल्य योगदान के लिए 1986 के पुरस्कार विजेता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत साहित्यिक कृतियों का दृश्य, काव्य मंचीय रूपांतर और... प्रस्तुति

विकट चुनौतियां : प्रयोग के साथी

कुंथा जैन

यह मान्य तथ्य है कि मनुष्य की सर्जनात्मक प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट उपादान साहित्य रचना है और यह भी कि सृजन प्रतिभा के साहित्येतर उपादान-संगीत, नृत्य, अभिनय व चित्र कला आदि साहित्य से मुख्य प्रेरणा पाकर रूपायित होते हैं.

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा साहित्य सेवा के अन्य माध्यमों में, प्रतिवर्ष एक लाख (जो अब डेढ़ लाख है) रुपये के पुरस्कार से, भारतीय भाषा की श्रेष्ठतम रचना को सम्मानित करना, विशेष महत्वपूर्ण है. इस पुरस्कार की पृष्ठभूमि में अनेक भावनाओं का सम्मिलित योग है. भारत की समस्त भाषाओं में रचा साहित्य उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक फैले भारत के अनेक भाषा-भाषी, लेखन-शिल्प के विविध क्षेत्रों में पारंगत साहित्य सर्जकों के प्रयास का फल है. इस प्रकार इनमें श्रेष्ठतम रचनाकारों को देशव्यापी सम्मान मिले और उनकी कृतियों में प्रतिबिंबित भारतीय संस्कृति की संश्लिष्ट छवि के दर्शन हों. पुरस्कार के उद्देश्य के ये आयाम ज्यों-ज्यों पुरस्कार पुजारी की ओर बढ़ता गया, स्पष्ट होते गये. इसने पुरस्कार को अद्वितीयता दी. इस प्रकार जो साहित्य पुरस्कृत हुआ, उसकी मोटी-मोटी जानकारी, लेखक का, भाषा का, कृति का नाम-धाम तो परिचय में आया, किंतु ज्ञानपीठ की एक बड़ी आकांक्षा यह रही कि जिस कृति को, वह जिस भी भाषा की हो और किसी भी विधा में, पुरस्कार दिया गया है, उस कृति का परिचय इस प्रकार के सरल और रोचक माध्यम से प्रस्तुत किया जाये कि पुरस्कार समारोह में भाग लेने वाले विभिन्न क्षेत्रों के, विभिन्न विषयों से संबंधित दर्शक कृति के अंतरंग की झांकी पा सकें. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये संगीत, नृत्य, अभिनय, चित्र-छाया आदि कला-विधाओं द्वारा कृति का संक्षिप्तीकरण दृश्य व काव्य प्रस्तुति द्वारा आयोजित करने का निश्चय हुआ. जिस प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ का साहित्यिक पुरस्कार– उसी प्रकार इस संदर्भ में स्वर्गीय रमा बहिन का व्यक्तिगत क्रियाशील उत्तरदायित्व लेने का साहस और उत्साह, पुरस्कार समारोह के इस आयाम को सफल बनाने में अनिवार्य रहे हैं.

ज्ञानपीठ का प्रथम पुरस्कार समारोह 19 नवंबर, 1966 को राजधानी के विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. पुरस्कार विजेता थे महाकवि शंकर कुरुप, जिनकी मलयालम में लिखी कविताओं का संग्रह 'ओडक्कुषल' सम्मानित हुआ. इस अवसर पर हिंदी साहित्य जगत के सर्व मान्य दो कवि श्री हरिवंशराय बच्चन एवं रामधारी सिंह दिनकर द्वारा शंकर कुरुप की दो कविताओं–'निमिष' और 'सागर संगम' का हिंदी में पाठ हुआ. नाटक क्षेत्र के नामी श्री ई. अल्काजी ने कवि कुरुप की एक कविता का अंग्रेजी में प्रभावशाली वाचन किया. संयोग से उन दिनों प्रसिद्ध नर्तकी यामिनी कृष्णमूर्ति (जो उस समय दिल्ली में नहीं रहती थीं) अपने किसी अन्य कार्यक्रम के संबंध में दिल्ली आयी हुई थीं. अत्यंत संकोच से उनसे प्रस्ताव किया कि क्या वह कवि की किसी कविता के भाव को नृत्य द्वारा प्रस्तुत करेंगी? समय बहुत कम था और वे कैसे तैयारी करेंगी? पर एक महाकवि की कविता पर नृत्य करने का अवसर पा वह विभोर हो उठीं. उन्होंने स्वीकृति दे दी. तब कवि की कविताओं 'सागर-गीत' और 'विश्व-हृदय' की कुछ पंक्तियों को संस्कृत श्लोक में इस प्रकार ढालकर यामिनी कृष्णमूर्ति को दिया गया कि वे उनकी 'शिव-तांडव' नृत्य रचना के छंद और ताल में बद्ध हो सकें और कविता के भावों को अभिव्यक्ति दे सकें. यामिनी न केवल नृत्य में पारंगत हैं, बल्कि कविता भी लिखती हैं, यह बाद में पता चला. जिस हार्दिकता और गौरवशीलता की अनुभूति से उन्होंने नृत्य द्वारा कविता को सार्थकता दी, वह स्मरणीय है.

दूसरा पुरस्कार 15 दिसंबर, 1967 को बांग्ला के गणमान्य लेखक ताराशंकर बंद्योपाध्याय को मावलंकर हाल, नयी दिल्ली में समर्पित हुआ. पुरस्कृत कृति 'गणदेवता' एक महत्तर उपन्यास है. 625 पृष्ठ और साठ पात्रों के इस उपन्यास का संक्षिप्त नाट्य रूपांतर यदि हिंदी में मंचित किया जा सके तो दर्शकों को बंगला साहित्य की इस अनुपम कृति की श्रेष्ठता की एक झांकी मिलेगी और सन् 1924 के आसपास का ग्रामीण बंगाल भी उनकी नजरों के सामने गुजरेगा.

उन्हीं दिनों दिल्ली की नाट्य संस्था 'दिशांतर' ओम शिवपुरी, मोहन महर्षि, सुधा शर्मा (बाद में शिवपुरी), रामगोपाल बजाज व अन्य कई अभिनय क्षेत्र में उभरती प्रतिभाओं के प्रयत्न से क्रियाशील थी. भारतीय ज्ञानपीठ का कार्यालय कलकत्ते में था और बंगला उपन्यास के नाट्य रूपांतर की प्रस्तुति में, बंगला के ख्याति प्राप्त श्री शंभू मित्र व उनकी पत्नी तृप्ति मित्र का सहयोग प्राप्त था. दिल्ली और कलकत्ते के दो छोरों को जोड़कर पूरी लगन से नाटक प्रस्तुति का प्रयत्न करना अपेक्षित था. श्रीमती रमा जैन और साहू शांतिप्रसाद जैन की व्यक्तिगत रुचि और उदारता इस प्रयत्न को सुकारथ कराने में सफल हुई. कलकत्ते का 9 अलीपुर पार्क प्लेस नाट्य रूपांतर की चर्चा का और दिल्ली में टाइम्स आफ इंडिया का हाल नाटक की रिहर्सल के स्थली बने.

तीसरा पुरस्कार समारोह 20 दिसंबर, 1968 को दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. इस पुरस्कार के विजेता दो कवि थे : डा. के.वी. पुट्टप्पा और श्री उमाशंकर जोशी.

इस समारोह में दो विद्वत जन पुरस्कृत हुये, इसलिये दोनों कृतियों का मंचीय रूपांतरण प्रेषित होना था. एक कार्यक्रम से दूसरे कार्यक्रम का अधिक अंतराल वांछित नहीं था, अतः मंच संयोजन इस प्रकार का करना आवश्यक था जो मुख्य पुरस्कार समारोह, 'निशीथ' की प्रस्तुति और पुट्टप्पा की कृति 'रामायण दर्शनम्' के अंशों की प्रस्तुति, तीनों की पृष्ठभूमि में उपयुक्त रहे. इस कठिन कार्य को साधने में शांता गांधी का मंचीय अनुभव सार्थक रहा. उन्होंने बांसों का बना विचित्र आकृतियों का एक ढांचा समारोह से पहले ही मंच पर खड़ा कर दिया जो अपनी आकृति, सज्जा और रंग रचना के आधार पर, तीनों अवसरों की पृष्ठभूमि को अनूठी भाव-प्रखरता देता रहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदेवता के मंचन की तैयारी

निशीथ की नृत्य-प्रस्तुति

चिदंबरा : आत्मिका की नृत्य प्रस्तुति

चौथा पुरस्कार, महाकवि सुमित्रा नंदन पंत की कृति 'चिदंबरा' को समर्पित हो गौरवान्वित हुआ. 'चिदंबरा' पंतजी के कुछ लंबे काव्य-रूपकों को छोड़, उनकी समस्त कविताओं का संकलित प्रकाशन है. पंतजी की कविताओं का माधुर्य, संगीत और नृत्य के छंदो-बंदों में अभिव्यक्त होने की स्वतः प्रेरणा देता है. अतः कविताओं का मंचीय प्रेषण नृत्य और संगीत द्वारा हो, यह तो स्वाभाविक ही था. कविताओं को मनायोग से पढ़ने से जो तथ्य उभरा, वह यह भी कि ये कविताएं कवि की मानसिक यात्रा के चरणचिन्ह हैं. कवि की कल्पना, संवेदना जो उत्तरोत्तर विस्तृत क्षेत्रों और विश्वव्यापी यथार्थों से जुड़कर आध्यात्मिकता के शिखर छूने लगी. वह कविताओं की विविधता मुखरित है. कविताओं में कवि व्यक्तित्व का क्रमशः विकास प्रतिबिंबित होता दृष्टिगोचर हुआ. इस अनुभूति के आधार पर चिदंबरा की कविता का चयन कर उन्हें एक सूत्र में पिरोकर नृत्य रूपक का आकार दिया. नृत्य रूपक का आलेख पंतजी को दिखाया तो उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी कि अपनी जिस अंतर्यात्रा को उन्होंने अपनी लंबी कविता 'आत्मिका' (संस्मरण और जीवन दर्शन) में अभिव्यक्त किया है उसके पदचिन्हों को अंकित करती हुयी कवितायें उचित प्रासंगिक दृष्टि से चयन होकर, नृत्य रूपक की प्रस्तुति श्रीमती अमला शंकर के उदय शंकर कल्चर सेंटर द्वारा हुई. सर्जनात्मक नृत्य रचना के क्षेत्र में भी उदयशंकर अद्वितीय रूप से प्रतिष्ठित हैं. उदयशंकर और अमलाशंकर की रचना कल्पना चलचित्र में पंतजी उनके सहयोगी रहे थे.

कवि के रूप में, एक दूसरे की कला के प्रशंसक और परस्पर मित्र रहे थे. अतः पंत जी की कविताओं पर आधारित नृत्य रूपक की प्रस्तुति का उत्तरदायित्व अमला दी ने सहर्ष स्वीकार किया. साहित्यिक कृति की गरिमा को श्रीमती अमला शंकर ने जिस कलापूर्ण सौंदर्य और शोभायित रूप से नृत्य रूपक प्रस्तुत किया, वह दर्शनीय था. कविताओं का विविध धुनों में गायन, वाद्य संगीत योजना संयोजन, नृत्य रचना, परिधान और मंच सज्जा आदि का परिपूर्ण सफल संयोजन इस प्रस्तुति में समाविष्ट था.

प्रस्तुति के अन्य श्रेय में सम्मिलित हैं श्री रोबिनन दास, जिन्होंने संगीत निर्देशन किया. और उनके अन्य सहयोगी वाद्यवृंद. आलेख का श्रेय श्रीमती कुंथा जैन को है. नृत्य कलाकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं—ममता शंकर, तनुश्री शंकर, चंपक बागला, विशाखा गुप्ता राय, अनुपमा दास, अनुराधा फतहपुरिया और मधु छंदा, जिन्होंने नृत्य कला के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बनाया है.

29 नवंबर, 1970 की संध्या है. विज्ञान भवन का हाल दर्शकों से खचाखच भरा है. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी 'फिराक साहब' को पुरस्कार समर्पित करेंगी.

'फिराक' और 'शायरी' दोनों नाम रोमांचक हैं, और एक मिश्रित प्रकार का रस संचार करते हैं. सीधी-सीधी जीष्ट या नाट्य-प्रस्तुति से रस को दर्शन तक पहुंचा पायेगी क्या? विधि प्रेषण माध्यमों को फिराक और उनकी शायरी को 'रूपक' के सांचे में ढाला...रूपक के प्रेषण में कैमरे से लिये फिराक साहब के चित्र अन्य स्लाइडों का प्रोजेक्शन फिराक साहब की अपनी आवाज में कहे गये कुछ शेर व कविताओं का प्रसारण, उनके छायाचित्र के साथ कुछ कविताओं को अभिव्यक्त करते हुये पात्रों का मंच पर अभिनय, पार्श्व संगीत एवं प्रसिद्ध नर्तकी सोनल मानसिंह का नृत्याभिनय-रूपक के निर्देशक थे सुपरिचित मोहन महर्षि. कविताओं का चुनाव व आलेख-मोहन महर्षि और कुंथा जैन द्वारा हुआ. फोटोग्राफी एवं स्लाइडों का भार लिया इस क्षेत्र के प्रसिद्ध नाम रघुराय ने. प्रस्तुति में सहयोगी रहे श्रीमती शांता गांधी, गुरु केलुचरण, हफीज अहमद खां और अंजलि बनर्जी जैसे कला गुरु और संगीतज्ञ.

एक अविस्मरणीय कवि सम्मेलन

उन्नीस दिसंबर, 1969 को महाकवि सुमित्रानंदन पंत को पुरस्कार समर्पित करने के उपरांत जो कविसम्मेलन आयोजित किया गया उसमें भाग लेने वाले कवि थे: सर्वश्री सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भारत भूषण, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, सुरेंद्र तिवारी, रामदरश मिश्र, बालस्वरूप राही, गिरिजा कुमार माथुर, इंदु जैन, प्रयाग शुक्ल, रामानंद, शकुंत माथुर, प्रभाकर माचवे.

एक यादगार मुशायरा

शायरे आजम फिराक गोरखपुरी को 27 नवंबर, 1970 को जब पुरस्कार दिया गया, उसी अवसर पर गजल-गो शायरों का एक मुशायरा आयोजित किया गया. इन शायरों ने उसमें भाग लिया:

सर्वश्री फिराक गोरखपुरी, जोशमलिसयानी, अर्श मलिसयानी, कलीम अजीज, रिफत सरोश, जज्बी, शमीम फरहानी, ताबां, रविश सिद्धीकी, जगन्नाथ आजाद, शम्स तमकनस, सागर निजामी, जाकिया सुल्तान, मुमताज मिरजा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठा पुरस्कार समारोह 16 नवंबर 71 को विज्ञान भवन में वरद् मनीषी कवि-सम्राट डा. विश्वनाथ सत्यनारायण को उनके तेलुगु भाषा में लिखित महाकांव्य 'रामायण कल्पवृक्षम्' के अभिनंदनार्थ आयोजित हुआ.

मंच प्रस्तुति के लिये रामायण कल्पवृक्षम् के मारीचिकांड पर आधारित बैले के रूप में वह प्रसंग प्रस्तुत किया गया जहां पंचवटी में कुटिया बनाकर रहते राम-सीता युगल और लक्ष्मण को रावण की युक्ति द्वारा सीता हरण की स्थिति का सामना करना पड़ा था.....रामायण की कथा का यह विशेष मर्म-स्पर्शी स्थल है, जहां मानव स्वभाव की आकांक्षाओं, दुर्बलताओं, और उदात्त वृत्ति के विविध आयाम अपने अपने ढंग से प्रत्यक्ष होते हैं.

चुने हुये अंश का तेलुगु से हिंदी में अनुवाद प्रोफेसर लक्ष्मी रेड्डी द्वारा किया गया था. प्रस्तुति 'दिशांतर' द्वारा श्रीमती शांता गांधी के निर्देशन में आयोजित हुई. ओम शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, रामगोपाल बजाज के सहयोग द्वारा आलेखन व व्यवस्था आदि का संयोजन सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा सार्थक हुये.

बांग्ला भाषा के श्रेष्ठतम कवि श्री विष्णु दे के अभिनंदनार्थ ज्ञानपीठ का सातवां पुरस्कार समारोह 10 फरवरी, 1973 को विज्ञान भवन के विशाल हाल में संयोजित हुआ. विष्णु दे टैगोर के बाद बांग्ला के सबसे बड़े कवि हैं. इनका काव्य संग्रह 'स्मृति सत्ता भविष्यत' सर्जनात्मक साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है. 'स्मृति सत्ता भविष्यत' की कविताएं उस चेतना की अभिव्यक्ति हैं, जिसने उपनिवेशयगीन भारत एवं बंगाल की संस्कार-च्युत संवेदना का अतिक्रमण कर, समग्र मानव के बोध भाव में प्रवेश किया, जहां अतीत की स्मृतियां, वर्तमान का सत्य और भविष्य की खोज तीनों सहजीवी बनी हुई समायी हैं.

शीर्षक कविता 'स्मृति सत्ता भविष्यत्' की पंक्तियां चार सौ से अधिक हैं. उनमें से कुछ को चुनकर एक दृश्य काव्य, पाठ-रूपक की प्रस्तुति की गई. काव्य-पाठ में 22 स्वरों एवं गायन में 14 स्वरों ने भाग लिया. इन पात्रों ने मंच पर एक विशेष नियोजित रचना के अनुसार स्थान ग्रहण किया हुआ था. और प्रत्येक पात्र निर्देशानुसार काव्य-पाठ या गायन अथवा अभिनय द्वारा कविता के परोक्ष भाव को प्रत्यक्ष करता था.प्रकाश नियोजना ने पार्श्व से वाद्य-ध्वनियों की व पिछले परदे पर डाले गये अनुकूल स्लाइडों के सामंजस्य, बैक ग्राउंड में प्रस्तुति को पूर्ण रूप से प्रभावशाली बनाया. कविता में निहित भाव उपस्थित दर्शकों तक पहुंचा, उनके हृदय व मस्तिष्क को उद्वेदित करने में सफल हुआ.

कविता की इस विधा को मंच पर प्रस्तुत करने का श्रेय माडर्न स्कूल के श्री वेद व्यास जी को है. उनकी सूझ-बूझ और प्रयास ही सफलता के कारण थे. इसका संगीत निर्देशन किया श्री ज्योतिंद्र मेघा ने, वाद्य-वृंद संगीत की व्यवस्था की श्री वरुण गुप्ता ने, और रंग-सज्जा एवं मंच व्यवस्था का भार शाम तुली एवं लीला मोइया पर था. प्रकाश नियोजन किया श्री धींगरा ने. भारतीय कला केंद्र, माडर्न स्कूल, देहली आर्ट थिएटर और गांधर्व महाविद्यालय सबके सहयोग से यह रूपक सफल हुआ.

आठवां पुरस्कार 1972 में कवि श्री रामधारीसिंह दिनकर को उनके काव्य नाटक 'उर्वशी' के लिये समर्पित हुआ था. पुरस्कार समारोह 2 दिसंबर, 1973 को नयी दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित था. 'उर्वशी' पौराणिक कथा को एक नयी दृष्टि से अंकित करती हुई काव्य रचना है. इसमें दिनकरजी ने अप्सरा उर्वशी की 'भू' पर उतर 'नारीत्व' और 'मातृत्व' की पूर्णता पाने की उद्धाम अभिलाषा और पुरुरवा व उर्वशी के माध्यम से प्रेम भावना के दार्शनिक चिंतन मय स्वरूप को अपनी अनन्य भाषा शैली में अंकित किया है.

'उर्वशी' जैसी नायिका की प्रेम-गाथा और दिनकरजी जैसे सौंदर्य शिल्पी की लेखनी. नाट्य रचना को इस नृत्य रूपक द्वारा मंचित करने की प्रेरणा ही सुलभ रूप से हुई. भारतीय कला केंद्र की अध्यक्षा श्रीमती समित्रा चरतराम ने सहर्ष उत्साहपूर्वक उर्वशी का मंचन अपनी संस्था द्वारा विशेष रुचि लेकर तैयार कराया. दिनकरजी का भी पग पग पर सहयोग और सुझाव भारतीय ज्ञानपीठ और भारतीय कला केंद्र को मिलता रहा. श्रीमती कुंथा जैन द्वारा लिखा नृत्य रूपक का आलेख दिनकरजी ने बड़े चाव और ध्यान से पढ़ा. और न केवल उस पर स्वीकृति दी बल्कि उसकी भरपूर प्रशंसा की. समारोह के अवसर पर दिनकरजी ने नृत्य रूपक की प्रस्तुति पर हार्दिक संतोष प्रकट किया. दर्शकों ने काव्य का आनंद और काव्य में निहित विचार भावना का सुंदर रस ग्रहण किया. नृत्य निर्देशन, कोरयोग्राफी, संगीत व साज-सज्जा का उत्तम समन्वय प्रस्तुति को सबके लिये अत्यंत रुचिकर और प्रभावोत्पादक बनाने में समर्थ था.

गायन व कविता पाठ के स्वर थे श्री रामगोपाल बजाज, आशा भादड़ी, करुणा भादड़ी, सुदेश शर्मा के. भारतीय कला केंद्र से जुड़े. अपने-अपने क्षेत्र के विशेष, मोहन उपरेती (कोरियोग्राफर), प्रकाश जैन, वरुण गुप्ता (संगीत निर्देशक), के. शेखरन (नृत्य निर्देशक), राघवन नायर (पुरुरुवा की भूमिका में), आरती सरकार (उर्वशी), हरीशचंद्र (आयु), राजकुमार, बी.के. सावंत, नारायण नबदरी एव वाद्य सगीतज्ञों के पूर्ण सहयोग ने उर्वशी' के मंचन को अपेक्षित मनोहरता दी.

नौवां पुरस्कार डा. दतात्रेय रामचंद्र बेंद्रे को उनके कन्नड काव्य-संग्रह 'नाकुतंती' के लिये और श्री गोपीनाथ महांती को उनके उड़िया उपन्यास 'माटी मटाल' के लिये समर्पित किया गया. समारोह 8 नवंबर, 1974 को विज्ञान भवन, नयी दिल्ली में आयोजित था.

'नाकुतंती' अर्थात 'चार-तार' काव्य संग्रह में वर्तमान का व्यंग्यात्मक छवि रूप, सांस्कृतिक अतीत और भविष्य का निष्कर्ष प्रस्तुत है. कवि की अनुभूति आत्मचेतन की है. उन्होंने युग के चेतना बिंदु के साथ तादात्म्य किया है. कवि की कविता उनके अपने जीवन जीने के ढंग से जनमी हुई है.

श्री गिरीश करनाड द्वारा निर्देशित 'कवि के जीवन का एक दिन' चलचित्र उपलब्ध था. उस चलचित्र के प्रदर्शन द्वारा दर्शक कवि बेंद्र के 'चार-तार' काव्य संग्रह तक सहजता से पहुंच सके. इस चलचित्र में कवि के व्यक्तिगत के चारों पक्ष, मैं, तुम, वह और कल्पनाशील आत्मसत्ता एवं बेंद्र की सौंदर्य विषयक परिकल्पना के चार पक्ष—इंद्रियगत, कल्पनागत, बुद्धिगत और आदर्श, सबको कवि की दिनचर्या में मुखरित होता दिखाया गया है.

गोपीनाथ महांती का उपन्यास 'माटी मटाल' उड़ीसा के ग्राम्य जीवन का गौरव ग्रंथ है. 10 साल के दीर्घ काल में लिखा गया वह वृहद उपन्यास जिसमें दो प्रमुख चरित्र हैं, 'रवि' और 'छवि' जो उपन्यास में अत्यंत अल्पभाषी हैं. रवि के चरित्र के माध्यम से लेखक ने उड़िया ग्राम्य जीवन का वर्णन उसे एक महाकाव्य का रूप देता है. कथानक तो केवल एक बाह्य रेखा कृति ही है. इस उपन्यास रूपी महाकाव्य को किस प्रकार मंचित किया जाये, इस पर काफी विचार विमर्श हुआ. उड़िया भाषी श्री जीवनपाणि (संगीत कला अकादमी के सुपरिचित विद्वान) और श्री जतीन दास (प्रख्यात चित्रकार) की कलामर्मज्ञी संवेदना ने उड़िया ग्रामों के स्पंदन से कलाकारों को परिचित कराने में सहायता दी. श्री रामगोपाल बजाज के कुशल निर्देशन और संयोजन द्वारा श्रेष्ठतम कलाकारों का सहयोग प्रस्तुति को प्राप्त हुआ. उड़ीसा के प्रसिद्ध 'छाऊ नृत्य' के निर्देशक सोनार चांद ने नृत्य-रचना का भार संभाला. रूपक का आलेखन और प्रसंग चयन स्वयं श्री जीवन पाणि ने किया और उसका हिंदी अनुवाद किया श्रीमती वर्षा दास ने. उपन्यास के नायक 'रवि' की भूमिका में थे, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त चलचित्रों के प्रसिद्ध कलाकार नसीरुद्दीन शाह और छवि की भूमिका में केवल अजीम थीं—कत्थक नृत्य की प्रसिद्ध कलाकार. उपन्यास में प्रसंग आता है कि ग्राम के निवासी बराह की मूर्ति को देवता के रूप में पूजते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ययाति का एक दृश्य

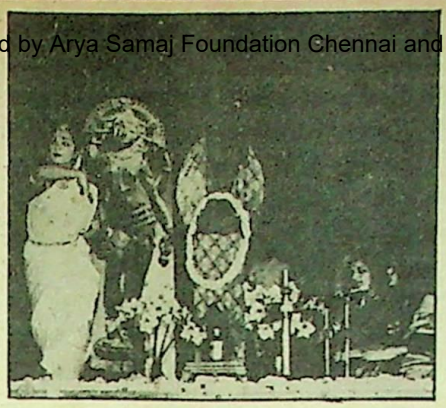

अमृताजी की कविता पर किरन सहगल के थिरकते पांव

यक्षगान का एक दृश्य

श्रद्धा के वशीभूत उन्हें वराह की पत्थर की मूर्ति में प्राणों का स्पंदन प्रतीत होता है जो अनेकानेक रूप धारण कर उनकी मनोकामना की पूर्ति करता है. इस भाव को दर्शाया अपनी नृत्य भंगिमाओं द्वारा छऊ नृत्य के प्रसिद्ध गुरु कृष्ण नायक ने, वराह की भूमिका में, मूर्ति को सजीवता प्रदान कर. ग्राम जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले पंद्रह नृत्य कलाकार थे, जिनमें सोनार चांद, सवा जैदी, चंपक बागला, मदन शर्मा, उमाकांत, शीना जैन, बाबुल, बी.आर. गुप्ता, सितांशु चौधरी, विठ्ठल आचार्य, टेकचंद, श्रीकृष्ण शामिल थे. गायन के स्वर थे शंकरदास गुप्त और सुमित्रा मजूमदार के. ध्वनि आकाशवाणी के श्री दीनानाथ द्वारा, परिधान सबा जैदी ने, प्रस्तुति नियमन सुदेश स्याल के और मंच व्यवस्था अमिताभ दास गुप्त ने संभाली हुई थी.

एक अतीव नवीन योजना विधि द्वारा, उपन्यास के हृदय स्थल को प्रेषित करने वाले श्री राम गोपाल बजाज ने स्वयं सूत्रधार की भूमिका ली.

८ सवां पुरस्कार श्री विष्णु सखाराम खांडेकर को उनके मराठी उपन्यास 'ययाति' पर समर्पित किया गया. 26 फरवरी, 1976 को संयोजित यह समारोह एक गहरी उदासी की प्रतिच्छाया में संपन्न हुआ. भारतीय ज्ञानपीठ की अध्यक्षा और प्राण-प्रेरणा श्रीमती रमा जैन के निधन ने समारोह के उल्लास को एक दिव्य दीप्तिमय अवसर का रूप प्रदान किया. यह प्रतीति बनी रही जैसे उनकी साहित्य-सेवा की अखंड ज्योति का पथ आलोकित करती वहां विद्यमान थी. इस समारोह की विशेष अतिथि थीं श्रीमती महादेवी वर्मा. उनकी उपस्थिति से अवसर को विशेष गरिमा प्राप्त हुयी. 'ययाति' की मंच प्रस्तुति का निर्देशन और उपन्यास का संक्षिप्त नाट्य-रूपांतर किया सुप्रसिद्ध निर्देशिका सई परंजपे ने.

सई परंजपे ने 'ययाति' की सुंदर मंच प्रस्तुति की, जिसकी प्रतिक्रिया दर्शकों पर प्रभावोत्पादक रूप से हुयी. पात्रों को चुनने की सई जी की दूरदृष्टि सराहनीय थी. तीन मुख्य पात्रों के निवेदन स्वर देने वाले सुपरिचित नाम थे—कवियित्री इंदु जैन (देवयानी)—रमा पांडेय (शर्मिष्ठा) और कूलभूषण खरबंदा (ययाति). अभिनय करने वाले पात्रों में थे, राज बब्बर (कच), कुसुम हैदर (शर्मिष्ठा), चंपक बागला (देवयानी), सुभाष गुप्ता (ययाति), मंजु जोगलेकर (बालक ययाति), विजया पटवर्धन (महारानी), मोहिनी माथुर (कलिका), रजिया ग्रोवर (मुकुलिका), अनीता राजपाल (अलका), बी.के. सूद (शुक्राचार्य), कीमती आनंद (यति), अविनाश खरे (सेवक), सरला भटनागर व मीनाक्षी नरूला (सखियां), पीयू सयाल (आश्रम कन्या), जिम्मी अहलूवालिया व नीरा कपूर,गणित सयाल, चंद्रावती सुसाय, शारदा यादव (दृश्य परिवर्तचारिकाएं).

प्रस्तुति में नृत्य रचना और नृत्य किया चंपक बागला ने, परिधान श्रीमती लक्ष्मी ने, मंच उपकरण अविनाश खरे द्वारा, वेशभूषा—का भार था के.पी. कुमार का. मंच सज्जा भानु शर्मा द्वारा, आलोक आर.के. ढींगरा और ध्वनि संयोजन बी. सालोमन द्वारा हुआ.

17 दिसंबर, 1977 को ग्यारहवां पुरस्कार समारोह सदैव की भांति विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. पुरस्कार विजेता थे, पे.वै. अखिलंदम, जो अखिलन के नाम से सुपरिचित हैं. इनके तमिल उपन्यास 'चित्तिरपावै' (चित्रित प्रतिमा) के संक्षिप्त रूपांतर को नाटक के रूप में आलेखित किया श्री सुरेंद्र वर्मा ने और रूपांतर का निर्देशन भी स्वयं उन्होंने किया.

नाट्य प्रस्तुति का श्रेय जाता है. पात्रों के रूप में : पंकज कपूर, रंजीत कपूर, नादिरा बब्बर, सुषमा सेठ, दीपक केजरीवाल, अनुपम खेर, कविता चौधरी, रमेश मनचंदा, रविकिरण शास्त्री, नीलम शर्मा, तिषा कपूर, हमीना, नीलम, दिनेक को और नेपथ्य में थे : राबिन दास, आर.के. धींगरा, भानु शर्मा, सुदेश स्याल, प्रेम मटियानी, नरेश खरे, नादिरा बेब्बर, रंजीत कपूर और सुरेंद्र वर्मा.

12 वां ज्ञानपीठ पुरस्कार गौरवान्वित हुआ प्रथम बार एक महिला लेखक को समर्पित होकर. बंगला भाषा की सुविख्यात लेखिका श्रीमती आशापूर्णा देवी के उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' को सन् 1978 की सर्वश्रेष्ठ सृजनात्मक कृति निर्णीत किया गया.

पुरस्कार समारोह 26 अप्रैल, 1978 को विज्ञान भवन में आयोजित हुआ. यह समारोह भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक साहू शांति प्रसाद जैन की वरद छत्रछाया से वंचित रहा. 27 अक्तूबर, 1977 की प्रातः हृदयाघात से उनका अकस्मात निधन ज्ञानपीठ परिवार के लिये एक अत्यंत अभावग्रस्त स्थिति उत्पन्न कर गया. किंतु जोत से जोत जलती है—इसीलिये समारोह आयोजन यद्यपि थोड़े विलंब से आयोजित हुआ, किंतु उसी आभा और शोभा से संपन्न हुआ जो दिवंगत साहू दंपती अपनी विरासत में छोड़ गये थे. बांग्ला उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' की मंचाकन कथाभूमि को(प्रस्तुति में हुआ था) बंगाल के ग्रामीण वातावरण को विज्ञान भवन के मंच पर उतारने का सफल प्रयत्न हुआ. नाट्य रूपक का निर्देशन मंच के निखरे मंजे सुपरिचित निर्देशक राजेंद्रनाथ ने किया. बांग्ला मंच रूपांतर किया देवनारायण गुप्त ने. रूपांतर में संशोधन एवं हिंदी अनुवाद श्रीमती सांत्वना निगम द्वारा किया गया. अभिनय में भाग लेने वाले मंच के प्रसिद्ध नाम थे : सुभाष गुप्त, भूपेंद्रकुमार, कमल वर्मा, अश्विनीकुमार, गिरीश माथुर, मोहिनी माथुर, प्रिया सेठ (छोटी वय), सुषमा सेठ (बड़ी वय), वीणा मेहता, रंजना, हेम नलिनी, प्रमिला ठाकुर.

13 वां ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह डा. शिवराम कारंत के अभिनंदनार्थ बिड़ला मातुश्री सभागार, बंबई में शनिवार 20 जनवरी, 1979 को संपन्न हुआ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली बार पुरस्कार समारोह राजधानी में आयोजित न होकर भारत के एक और महानगर में था, जिससे अंतर्भारतीय उल्हासभरी साहित्यिक चेतना देश के अन्य क्षेत्रों को भी स्पर्श करे. शिवराम कारंत के पुरस्कृत कन्नड़ उपन्यास 'मूकज्जिय कनसुगल' (मूकज्जी) का मंचन भार इस बार वहन किया उस समय के नेशनल स्कूल आफ ड्रामा के निदेशक श्री वी.वी. कारंत ने. 'मूकज्जी' एक अतींद्रिय कथालोक है. मंच पर यथार्थ और अतींद्रिय लोक दोनों को निर्मित करने के उद्देश्य से स्लाइड प्रोजेक्शन, छायांकन और आलोकित मंच पर अभिनय, तीनों विधाओं का समन्वित प्रयोग किया गया. ध्वनि प्रसारण व आलोक प्रपात के विविध स्वर और कोण भी उस वातावरण को बनाने में सहायक थे. इस मंच रूपक का आलेख श्री शिवराम कारंत के सुझावों के साथ श्री वी.वी. कारंत ने स्वयं तैयार किया.

14 वां पुरस्कार समारोह 'कला मंदिर', कलकत्ता में बुधवार 28 दिसंबर, 1979 को संयोजित हुआ. कलकत्ता नगर साहित्यिक दुर्ग है. हिंदी के लेखक मूर्धन्य कवि-लेखक श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय के सम्मानार्थ वहां आयोजन होना महत्वपूर्ण घटना थी. ज्ञानपीठ पुरस्कार का अंतर्भाषी मिलन का उद्देश्य इस पग से और अधिक सार्थक हुआ. अज्ञेय जी की पुरस्कृत काव्य-कृति थी 'कितनी नावों में कितनी बार' किंतु इस पुस्तक की ही रचनाओं पर मंच रूपक प्रस्तुति को केंद्रित न कर, वात्स्यायनजी की अनुमति व आदेश से उनकी एक अन्य संकलन से संग्रहीत एक लंबी कविता 'असाध्य वीणा' को रूपक का आधार बनाया. यह अकेली कविता वात्स्यायन जी के कवि रूप के विविध आयामों को समोये हुए उनके रचना शिल्प और शैली का प्रतिनिधित्व करती है. इस कविता के अतिरिक्त पुस्तक की समनामी कविता 'कितनी नावों में कितनी बार' को भी मंचित किया गया.

उपरोक्त दोनों कविताओं को नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया श्री आनंद शंकर और तनुश्री शंकर ने. साहित्यिक कृति को नृत्य अभिनय द्वारा रुपायित करने की कुशल क्षमता इस युगल ने उत्तराधिकार में पाई है.

15 वां ज्ञानपीठ साहित्य पुरस्कार असमिया लेखक डा. वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य को उनके उपन्यास मृत्युंजय' पर समर्पित हुआ. समारोह आयोजित था राजधानी के विज्ञान भवन में 15 दिसंबर, 1980 की संध्या को.

वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य लिखित इस उपन्यास की घटनाओं का संबंध 1942 के स्वतंत्रता आंदोलन से है, जब सारे देश के साथ कथा मिलाकर असम-प्रदेश ने ब्रिटिश सरकार की दासता से मुक्ति की अभियान छेड़ा था. अभिनय कलाकार पात्र थे : एस.एम. जहीर, सुभाष गुप्ता, सुरेंद्र दुग्गल, मीरा मिश्रा, गुलशन कुमार, आर.एस.केमु, विजय शर्मा, विनोद वर्मा, चित्रा शाह, शेखर त्यागी, कमल व्यास, निरुपमा वर्मा, इंद्र प्रकाश मित्र, किरण, तिलकराज. नेपथ्य में अशोक सागर भगत, संजीव दीक्षित, आर.एस. कैमु, इंद्र प्रकाश मित्र, हेमंत मिश्र, विनोश शर्मा, नवारुण वर्मा व कुंथा जैन.

सोलहवां पुरस्कार 28 नवंबर, 1981 को दिल्ली में विज्ञान भवन में मलयालम के बहुचर्चित साहित्यकार श्री शंकर कुट्टी पोट्टेक्काट को उनके उपन्यास 'ओरू देसंतिते कथा' (कथा एक प्रांतर की) को समर्पित हुआ. केरल के एक गांव की इस कथा का नायक, श्रीधरन वास्तव में स्वयं पोट्टेक्काट ही हैं. यह उस गांव के पचास वर्षों के बदलते परिवेश का गद्यात्मक महाकाव्य है. इस कृति में अंतर्कथाओं का गुंजन और पात्रों की विविधता का इतना व्यापक फलक है कि आश्चर्य होता है कि किस प्रकार प्रत्येक घटना और प्रत्येक पात्र अपने अलग-अलग रंग रूप में इतना सजीव कैसे बन पाया है.

इस विविधता और व्यापकता को मंच पर प्रस्तुत करने का सहज और सार्थक साधन होता, इसका फिल्मीकरण या फिर कई अंकों का भरा-पूरा नाटक. समय और साधनों की दृष्टि से यह संभव नहीं था. फिल्म इंस्टीट्यूट, पूना के एक तरुण कलाकार श्री नंदन खदियादी ने सैंट्रल एलैक्ट्रोनिक इंजीनियरिंग इंस्टीच्यूट के दिल्ली केंद्र के सहयोग से एक ऐसी टेकनीक की परिकल्पना की जिसमें सजीव चरित्रों के अभिनय की स्लाइड्स बनायी गयीं किंतु उनकी संख्या इस प्रकार सीमित रखी गयी कि छह-छह स्लाइडों को छह प्रोजेक्टरों द्वारा परदे पर प्रकाश और ध्वनि के संयोजन के साथ जब क्रम से उभारते और विषय करते तो चलचित्र का-सा प्रभाव दृष्टिगोचर होता.

वातावरण और चरित्रों की प्रामाणिकता अक्षुण्ण रखने के लिये नंदन खदियादी ने केरल के उसी गांव में जाकर स्लाइड-चित्र बनाये. और वहीं के व्यक्तियों से उनकी वेश-भूषा में अभिनय करवाया जो उपन्यास की पृष्ठभूमि है. उपन्यास का सामयिक स्थानीय संगीत वहीं टेप किया. पात्रों ने कथोपकथन मलयालम में बोले जिन्हें दिल्ली आकर हिंदी में कौशल के साथ 'डब' कर लिया गया था. प्रदर्शित प्रस्तुति का प्रभाव ऐसा ही था जैसे कि यह 'भव्य-दृश्य रूपक हिंदी में बनाया गया है.'

17 वां पुरस्कार समर्पित हुआ श्रीमती अमृता प्रीतम को. 16 अप्रैल, 1983 को यह समारोह दिल्ली में इस बार एशियाड सेंटर, एशियाई खेल गांव के विशाले एशियाड सेंटर एशियाई खेल गांव के विशाल भवन में आयोजित हुआ. पुरस्कृत कृति 'कागज ते कैनवस' में संग्रहीत कविताओं में एक नया भाव-गांभीर्य और समानांतर आंतरिक विवेकपूर्णता का समावेश है. अमृताजी ने जीवन के विविध धरातल और दिशाओं में व्यापक अंतर के चरम सत्य के छोरों को छूती कविताओं की रचना की है. अमृताजी की चिंतनरत, संवेदनशील भावुकता जो उनके अनेकानेक कविता के शब्दों और छंदों में मुखर हैं, उसे उसकी संपूर्णता में नृत्य और संगीत के रूपक द्वारा प्रेषित करने का उत्तरदायित्व लिया श्रीमती शीला भाटिया ने. पंजाबी और उर्दू की शायरी और मार्मिक कथाओं को ओपेरा अथवा नृत्य-संगीत रूपक की शैली में प्रस्तुत करने में शीलाजी अग्रणीय रही हैं.

समारोह का प्रारंभ अमृताजी की कविता 'आदि संगीत' के पाठ पर विख्यात नृत्यांगना किरन सहगल के अभिनय नृत्य द्वारा हुआ.

'रूपा' की भूमिका में प्रसिद्ध गायिका मदनबाला सिंधु ने अपने प्रभावशाली कंठ और व्यक्तित्व से सारे रूपक को सजीवता प्रदान की. वाचक श्रीमती स्नेहलता सान्याल और सरताज मेहरा, वीरू की भूमिका में ललित नागपाल और अन्य सभी कलाकारों ने अपनी-अपनी भूमिका खूब निबाही.

18 वें पुरस्कार को गौरव प्रदान किया, वागदेवी की मूर्तिमती प्रतिमा महीयसी महादेवी वर्मा ने. 28 नवंबर, 1983 को दिल्ली के 'सीरी फोर्ट' के जगमगाते मंच पर प्रधान अतिथि के रूप में थीं ब्रिटेन की प्रधानमंत्री श्रीमती मार्गरेट थैचर.

महादेवी जी की काव्य साधना के प्रति श्रद्धा अर्पण करने हेतु उनके कविता संग्रह 'यामा' और 'दीपशिखा' में से चुनकर मंचन करने हेतु कुछ कविताओं को छंद ताल और स्वर के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास श्रीमती रीता गांगुली द्वारा संयोजित किया गया. उन्होंने कवियित्री की छायावादी भावना और संवेदना को रूपाकार बनाने में कवियित्री की स्व-वाणी, उनका परिवेश-आंगन और परिसर, उनके शैशव की झांकी, उनके वर्तमान की भव्य-छवियों का प्रतिबिंब, उनके स्वरचित चित्रों का संप्रेषण भी संयोजित किया, कार्यक्रम 'अनुभूति' के अंतर्गत. इस कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में सहयोग दिया अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के फोटोग्राफर अविनाश पसरीचा ने.

महादेवीजी की कविताओं को समवेत गायन के रूप में प्रस्तुत किया भारतीय कला केंद्र के विद्यार्थी और सांग एंड ड्रामा डिविजन के कलाकारों ने. एकल गायन श्रीमती रीता गांगुली ने. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. राजेंद्र प्रसाद
शिखर सम्मान

रचनात्मकता का सम्मान

हर्ष का विषय है कि राजभाषा विभाग, बिहार सरकार की ओर से पहला 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान' हिंदी के वरिष्ठ कथाशिल्पी श्री अमृतलाल नागर को प्रदान किये जाने की घोषणा की गयी है. 17 अगस्त 1916 को गोकुलपुरा (आगरा) में जन्मे नागर जी की साहित्यिक यात्रा का श्रीगणेश सन् 1929 में साइमन कमीशनी के बहिष्कार स्वरूप लिखी गयी कविता के साथ हुआ. इसके बाद तो 'वाटिका', 'अवशेष', 'नवाबी मसनद', 'तुलाराम शास्त्री', 'सेठ बांकेमल', 'आदमी, नहीं!', 'पांचवा दस्ता', 'एक दिल हजार दास्तां', 'एटम बम', 'पिपल की पटी', 'काल दंड की चोरी', 'सात कहानियां', 'भारत पुत्र नौरंगी लाल' सरीखे कहानियों और रेखाचित्रों के संग्रह ही नहीं....'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'अमृत और विष', 'सात घूंघटवाला मुखड़ा', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस,' 'नाच्यो बहुत गोपाल', 'खंजन नयन', 'बिखरे तिनके', 'अग्निगर्भा', 'करवट' जैसे बहुचर्चित उपन्यास व 'गदर के फूल', 'ये कोठेवालियां', 'जिनके साथ जिया' सरीखे रिपोर्ताज और साक्षात्कार उनके विराट रचना-संसार में जुड़ते चले-गये. यही नहीं, नाटकों, रेडियो रूपकों, प्रहसनों और बालोपयोगी साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में नागर जी का उल्लेखनीय योगदान रहा है. आज भी वे 'करवट' उपन्यास को आगे बढ़ाते हुए कथा-जगत को समृद्ध कर रहे हैं.

इस संदर्भ में आश्चर्यजनक और बेहद तकलीफदेह स्थिति यह है कि नागर जी जैसे रचनाकार (जो लंबे समय से उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ की धड़कन बने हुए हैं और जिनकी वजह से यह शहर साहित्य प्रेमियों के बीच जाना जाता है) की ओर से वह उत्तर प्रदेश सरकार प्रायः उदासीन रही है जिसे इस दिशा में पहल करते हुए नागर जी को सम्मानित करना चाहिए था. संभवतः उत्तर प्रदेश सरकार यह न भी जानती हो कि अमृतलाल नागर एक ऐसे रचनाकार का नाम है जिसकी अधिकांश रचनाएं प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में ही नहीं विविध विदेशी भाषाओं में भी अनूदित होती रही हैं. यही नहीं, साहित्य अकादमी, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, बटुक प्रसाद पुरस्कार, प्रेमचंद पुरस्कार, वीरसिंह देव आदि पुरस्कारों से तो वे सम्मानित हुए ही हैं....विद्यावारिधि, सुधाकर पदक और पद्मभूषण से से भी अलंकृत हो चुके हैं. दरअसल, ऐसे रचनाकार को सम्मानित करना स्वयं भी सम्मानित होना है!

सारिका परिवार की ओर से आदरणीय नागरजी को बधाई.

शिवानी

लोकप्रियता के शिखर को छू लेने वाली लेखिका

की

पूतोंवाली

और

अतिथि

के बाद

दो मर्मस्पर्शी कृतियां

चरैवेति

रूस यात्रा का कथात्मक दस्तावेज

10/-

कस्तूरीमृग

जिंदगी के हादसों की सच्ची तस्वीर

10/-

शिवानी का समूचा रचना संसार

- माणिक
- जालक
- रथ्या
- विवर्त्त
- चल खुसरो घर आपने
- पूतोंवाली
- वातायन
- सुरंगमा
- अपराधिनी
- कैंजा
- गैंडा
- श्मशान चंपा
- भैरवी
- यात्रिक
- स्वयंसिद्धा
- मायापुरी
- आमादेर शान्तिनिकेतन

पुस्तक का मूल्य 10/-

उपहार

19 पुस्तकों में से चुनिए कोई सी 10 पुस्तकें और पाइए 11 वीं पुस्तक का मुफ्त उपहार! और डाक-खर्च भी हम वहन करेंगे

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कथा-शिल्पी

आर·के·नारायण

१२ कहानियां जो दूरदर्शन पर प्रदर्शित की गईं

मालगुडी डेज़ Malgudi Days

सजिल्द: 30/- ★ पेपर बैक: 12/-

★ अपने आदेश के साथ 10/- अग्रिम भेजें ★

इनके सजिल्द संस्करण सरस्वती विहार द्वारा प्रकाशित

★ सभी स्टालों पर उपलब्ध ★ न मिलने पर हमें लिखें

हिन्द पॉकेट बुक्स (प्रा.) लिमिटेड

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्नालाल पटेल की कहानियां

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गुजराती कहानी को इंदुलाल याज्ञिक, के.एम. मुंशी, धनसुख लाल मेहता, अंबालाल सांकरलाल, रणजीतराम मेहता जैसे कथाकारों ने जिस मोड़ तक पहुंचाया वह एक तरह से गुजराती कथा-यात्रा का पहला पड़ाव ही था. धूमकेतु जैसे कथाकार ने अपने समय में गुजराती कहानी को एक नयी ही दिशा दी. यह ऐसी दिशा थी जिसने गुजराती कहानी को दमित और शोषित वर्ग के जीवन से जोड़ते हुए भारतीय कहानी की मुख्य धारा तक पहुंचाया. आज यदि पन्नालाल पटेल जैसे बड़े रचनाकार हम गुजराती में देखते हैं... तो यह इस भाषा की कोई अनायास उपलब्धि नहीं है. इसके पीछे धूमकेतु जैसे रचनाकारों के साथ-साथ रामनारायण पाठक, रमणलाल देसाई, जयंत खत्री, उमाशंकर जोशी सरीखे कथाकारों के उल्लेखनीय रचनात्मक संघर्ष भी रहे हैं. पन्नालाल पटेल के साथ गुजराती साहित्य में एक नयी शुरूआत हुई और यह शुरूआत थी– श्रमजीवी का शब्द-सृष्टि से सीधा सरोकार. इनके यहां रचना, किसी बाहरी दबाव से नहीं, आंतरिक अनुभूति से जन्म लेती अधिक दीखती है... किंतु सच यह है कि यह कथाकार जीवन पर पड़ रहे बाहरी दबावों को जितनी सूक्ष्मता से पकड़ने में सक्षम है उतनी ही कुशलता से वह अपने पात्रों के मनोजगत में भी प्रवेश कर जाता है. यही कारण है कि कहानी संकलन 'गूंगे सुर बांसुरी के' पढ़ते समय कहीं यह आभास नहीं होता कि हम किसी दूरुह-जगत से साक्षात कर रहे हैं. विषय वैविध्य के साथ-साथ जीवन को भिन्न-भिन्न कोणों से देखने की कुशल तकनीक का प्रदर्शन करती यह कहानियां बड़े पाठक समुदाय में साहित्य के प्रति आस्था जगाने की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं.

जिस सामाजिक व्यवस्था में आद आदमी रह रहा है... और बहुत हद तक जिससे बाहर निकल पाना उसके लिये संभव भी नहीं है, वहां सुखी जीवन का एक रास्ता यही बचा रहा जाता है कि हम जीवन के प्रति आस्थावान होकर उसे समूचेपन के साथ जियें. 'गूंगे सुर बांसुरी के' कहानी का पूर्वार्ध यद्यपि यह सत्य स्थापित नहीं करता, वहां हम यह कल्पना कर लेते हैं कि युवती अंततः प्रेमी के साथ भाग ही जाएगी. किंतु अंतः तक आते-आते बहुत सहज रूप में यह स्थापित हो जाता है कि प्रेम में बनावट की कोई जगह दरअसल है नहीं. यही वजह है कि युवती अपने पति से प्रेमी के कहे मुताबिक शुरूआत तो दिखावटी प्यार से करती है.... पर क्रमशः वह दोनों के बीच एक स्थायी भाव, बल्कि जीवन का सच बन जाता है. ऐसे में, युवती के सामने सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुरूप जीवन जीने की सलाह के अतिरिक्त अपने प्रेमी के लिए शेष कुछ भी नहीं रह जाता. परिवार के सुख का आधार पति-पत्नी में परस्पर लगाव और विश्वास ही उसे समझ में आता है. जीवन का यहां जो सीधा-सच्चा रूप है उसमें यह कहीं भी असहज नहीं लगता.

जीवन के प्रति पन्नालालजी में जो अटूट आस्था है वह उन्हें प्रत्येक चरित्र के प्रति इतना सचेत रखती है कि वे उसके लिए एक सहायक तर्क साथ लेकर चलते हैं. और प्रायः यह तर्क जीवन के उतार-चढ़ाव के चलते आदमी में होने वाले बाहरी व भीतरी दबावों के पक्ष में खड़े दीखते हैं. 'कंकू' कहानी में विधवा कंकू सेठ मलकचंद और गला डामोर की पत्नी प्रमुख पात्र हैं. ऊपरी तौर पर, 'आर्थिक तंगी में जीती एक विधवा को उधार देकर सेठ मलक चंद किस तरह अपनी वासना का शिकार बनाता है' कहानी का कथानक है. किंतु गला डामोर की पत्नी का यह आक्रोश कि यदि पहले जान जाती तो वह कंकू की पकी बेर की तरह न झकझोर डालती... कहानी को एक ऐसा स्वर देता है जिसमें शोषक वर्ग के प्रति शोषित की वितृष्णा अपने चरम में झलक उठती है. कहानीकार यहां हमें इन तीनों चरित्रों को अपनी तरह से समझने का पूरा अवसर देता है. किंतु यौन कुंठाओं का जो तर्क वह एक विधुर के लिए अपनी ओर से रखता है... उसे असंगत भी नहीं कहा जा सकता. ठीक इसी तरह 'कंकू' का अंत तक चुप रह जाना... एक तरह से उन आर्थिक एहसानों को ढोना ही है जो बुरे दिनों में सेठ ने उस पर लादे थे. यहां 'कंकू' का नवजात शिशु भी कथाकार की उस आस्था का प्रतीक बन गया है जिसका आधार जीवन है. जीवन, जो तमाम विसंगतियों के बीच भी एक ऐसा सच है जिसे नकारा नहीं जा सकता. यह संग्रह पन्नालालजी की 1940 से 1969 तक की कहानियों में से गुजराती के ही कथाकार डा. रघुवीर चौधरी द्वारा चुनी हुई रचनाओं का है. 1944 में प्रकाशित 'कंकू' कहानी की विधवा कंकू आर्थिक विवशता के चलते यदि दैहिक शोषक के कुचक्र में फंस जाती है तो 1963 में प्रकाशित 'मगलूसत्र' में आर्थिक मजबूरियां इतनी विकराल हो उठी हैं कि चेतनलाल की पत्नी भी बच्चे की जान बचाने की खातिर कंकू जैसी स्थिति से होकर गुजरती है. किंतु यहां चेतनलाल की पत्नी पति के सम्मुख और चेतनलाल पत्नी के सामने स्वयं को इतना नीचा गिरा महसूस करते हैं कि आत्मघात करने पर मजबूर हो जाते हैं. जीवन की बेचारगी भरी स्थितियां यहां इतने विकराल रूप में सामने आयी हैं कि आत्म हत्या के अतिरिक्त और कोई रास्ता बचा नहीं रहा जाता. आजादी के बाद निरंतर असहनीय होती चली जा रही जीवन स्थितियों के आइने में यदि देखें तो यह बहुत अस्वाभाविक नहीं लगता...

जीवन के व्यापक अनुभव और अपनी जमीन से गहरे में जुड़े होने के कारण पन्नालालजी का कथाकार मूलतः मानववादी है और सहज-सरल प्रवाहमय रूप में जीवन को रेखांकित करना उसका उद्देश्य. यही वजह है कि इनकी रचनाएं जन-भाषा के रस को कुछ इस तरह आत्मसात किये चलती हैं कि कथारस को एक सहज ऊर्जा मिली है. यही ऊर्जा इन रचनाओं को पठनीय भी बनाती है. बावजूद इसके 'वात्रक के किनारे' और 'धर्मसंकट' जैसी कहानियों में जब संयोग और नियति जीवन को संचालित करने वाले प्रमुख कारक के रूप में सामने आते हैं तब सहसा विलक्षण नारी चरित्र को लेकर लिखी गयी कहानी 'भाथी की घरवाली' की ओर ध्यान आकर्षित होता है. ऊपरी तौर पर यह एक नियतिवादी कहानी प्रतीत होता है. किंतु यह एक रूपगर्विता के, पुनः छोड़े हुए पति के घर लौट आने भर की कहानी नहीं है. कथानायक भाथी की पत्नी, जो पहले शहर की जिंदगी के प्रति आकर्षित थी, मोहभंग के बाद हर ओर से निराश होकर जब भाथी के घर लौट आती है.. तब वह बाहर और भीतर, दोनों ओर की लड़ाई का मोर्चा संभालती है. एक ओर उसे गांव के तमाम लोगों को मुंहतोड़ जवाब देना है.... दूसरे अपने आप के सम्मुख इस रूप में प्रायश्चित भी करना है कि उसी पति की शरण स्वीकार करनी है जिसे पहले वह इसलिए छोड़कर चली गयी थी कि वह जिंदगी को सही तरीके से जीना ही नहीं जानता था. उसका कभी न झुकनेवाला अहम् परिस्थितियों के आगे सार्वजनिक रूप से टूट चुका है.

पन्नालालजी की अधिकांश कहानियां औपन्यासिक बुनावट लिये हैं और ऐसा होना अस्वाभाविक इसलिए नहीं है कि वे रचना रचना के लिए नहीं करते, जीवन को समझने के लिए, उसे व्याख्यायित करने के लिए करते हैं. संकलन के संपादक रघुवीर चौधरी ने रचनाकार के कथ्य, शिल्प और परिवेश वैविध्य की दृष्टि से जिन रचनाओं का चयन किया है उनसे हिंदी के पाठकों के मन में गुजराती के इस कथाकार के प्रति आकर्षण बढ़ना स्वाभाविक ही है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्वेषी कथाकार की कहानियां

अन्य भारतीय भाषाओं की भांति मलयालम की पहली कथा-रचना 'कुंदलता' पर भी पश्चिम का प्रभाव भले ही रहा हो... किंतु बाद के कथाकारों में अपनी जमीन की नव्य भाव-बोध की रचनाएं सामने लाने की प्रवृति अधिक दिखाई देती है. मलयालम के कथा-जगत को इस रूप में समृद्ध करने वाले कथाशिल्पियों में पी. केशवदेव, मोहम्मद बशीर, पोन्कुन्नयवर्कि आदि के साथ जो नाम सर्वाधिक सम्मान के साथ लिया जाता है, वह है—तकषी शिवशंकर पिल्लै.

तकषी को उपन्यासकार के रूप में अधिक चर्चा भले ही मिली हो, उनकी कहानियां अपने शिल्प की कसावट और भाषा की साधना की दृष्टि से मलयालम कथा-जगत की विशेष उपलब्धि हैं. उनके कहानीकार की यह विशेषता है कि वह अपनी कथावस्तु को विविध रूपों में सामने रखता है. कहीं शब्द चित्र आकार लेने लगता है तो कहीं रेखाचित्र. कहीं बेहद सीधे—सरल अंदाज में किस्सागोई चल निकलती है तो कहीं संवाद-कथा. कहीं संस्मरण कहानी कहने लगते हैं तो कहीं विचार कथा-सूत्र बन बैठते हैं. लगभग आठ सौ कहानियों के रचनाकार तकषी शिवशंकर पिल्लै का हिंदी में यह पहला कहानी संग्रह है. संग्रहीत इक्कीस कहानियां के माध्यम से जिंदगी के बारे में तकषी का नजरिया अच्छी तरह से समझा जा सकता है. उनकी अधिकांश कहानियां जिंदगी को विविध रूपों में परिभाषित करती हैं. जिस परिवेश और चरित्र-संसार से मलयालम का कथा जगत बचा रह कर केवल मध्यवर्ग तक सीमित था... तकषी की पीढ़ी के कथाकारों ने उसका सीमातिक्रमण किया. स्वयं तकषी ने भी निम्न वर्ग के जीवन का चित्रांकन अधिक विश्वसनीयता से किया है. इस वर्ग के पात्रों के मनोजगत में वे इस आत्मीयता से प्रवेश कर जाते हैं कि उसका रेशा-रेशा उधड़कर कथारस का निर्माण करता है. यह कथारस पारंपरिक रूप में आल्हादकारी नहीं है. विचारणीय स्थितियों से ऐसा साक्षात कराता है यह कथारस कि हम कहीं प्रारंभ से ही तो कहीं एकाएक झंकृत हो उठते हैं. रिक्त होते जा रहे संवेदना कोषों को फिर से भर दिया गया हो जैसे... और हम अपने समय के आदमी को पहचानते हुए आत्मीय भाव से उसके और करीब होने लगें.

'चुकौती' जैसी कहानी में एक भिखारिन के माध्यम से समूची स्त्री-जाति के होने के प्रयोजन पर विचार करते हुए जब यह कहानीकार पुरुष-जाति पर कटाक्ष करता है तब हम कथाकार की विचारयात्रा के सहयात्री हो जाते हैं और यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि क्यों पुरुष गैर जिम्मेदार होकर चलता बनता है. मां को बहुत कुछ सहना है... तो कुछ मिलना भी तो चाहिए उसे. इस कहानी की नायिका भिखारिन सही, पर वह अपने स्त्री होने को कहीं कलंकित नहीं होने देती... चूंकि वह स्त्री होकर पैदा होती है और अपना कर्तव्य निभाती है, पर इसके पीछे जो अमानवीय स्थितियां हैं... वह स्वतः हमारे समाज की समझ को उस 'सत्य' तक ले जाती हैं जहां ऐसी स्थितियों के न रहने देने का संदेश देता है. ऐसा ही संदेश देता है केशवन नायर भी. 'किसान' कहानी का एक नायक यह संदेश धरती के प्रति इंसान के लगाव, का देता है. किसान और खेती के नैतिक फर्ज से साक्षात कराती यह कहानी तकषी की श्रेष्ठ कहानियों में एक है.

सामाजिक विसंगतियों पर कटाक्ष करने में तकषी का जवाब नहीं. वे 'अनाथ की मौत' के माध्यम से उस संपन्न वर्ग को खूब आड़े हाथों लेते हैं जो अपनी छवि बनाने के लिए तो कोष लुटा सकता है पर एक बेसहारे को सहारा नहीं दे सकता. मक्कार की जिंदगी और मौत की यह छोटी-सी कहानी वर्ग विशेष के दिखावटी व्यवहार को तो बेनकाब करती ही है हमारी संवेदनाओं को भी झकझोरती है कि हम अपने आसपास के अनेकों को अपनी आत्मीयता दे सकें. मानवीय लगाव की जरूरत के इस संदेश को तकषी ने कई रचनाओं में विविध रूपों में गहराई से उठाने की सफल कोशिश की है.

'फौजी' कहानी का फौजी युवक एक अनजान वृद्धा से जो प्यार एक ही दिन में पा जाता है... उसका तापमान फौजी के फूट-फूटकर रोते हुए यह कहने में ही मापा जा सकता है— "मेरा कोई नहीं है, मां." और यहीं कथानायक का वृद्धा की बेटी से विवाह हो जाता है. भावुक अंत वाली यह कहानी बेहद सादगी से हमें 'ह्यूमेन कंसर्न' की परिभाषा दे जाती है. यह कथानायक श्रम पर निष्ठा रखने वाला एक अनाथ है जो आगे चलकर अकेला नहीं रह जाता. ठीक इसके विपरीत 'विरासत' कहानी का नायक अंततः एक भिखारी के तौर पर मरता है. यह नायक श्रम में महज इसलिए यकीन नहीं करता कि वह एक श्रेष्ठ जाति में उत्पन्न हुआ था. वह अपने परिवार की अतीत की गौरव गाथाओं के मायाजाल में डूबा रहता है पर वर्तमान के उस यथार्थ से आंख नहीं मिलाना चाहता जहां श्रमहीन आदमी की नियति भूखों मरना ही है.

जिंदगी के प्रचलित अर्थों के विपरीत जब रचनाकर मनुष्य के अंतस में प्रवेश करता है तब उसे समाज के चलन पर टिप्पणी करना जरूरी लगने लगता है. 'एक मामूली फांसी' कहानी में तकषी का कथापात्र कहता है— "समाज की यह खास आदत है कि उसे नियमों के प्रति आदर और आस्था हो और नियमों का उल्लंघन करनेवालों से घृणा और नफरत नियमों के वचन बहुमत की राय होते हैं." और समूची कथा ठीक इसके विपरीत हमें फांसी की सजा पाये एक जीवन पर गंभीरता से सोचने को विवश करती है. तकषी जहां बेहद गंभीर विचारों को कहानी के जरिए सहज बनाकर हमारे भीतर उतार देते हैं वहीं वे जिंदगी के खिलंदड़ेपन की सतह से मनोजगत को समझनेवाले वे सूत्र भी खोजकर लाते हैं. जिन्हें प्रायः अदेखा कर दिये जाने का प्रचलन बना रहा है. 'वाह रे चरित्रवान' और 'ताड़ीखाने में' जैसी कहानियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं. यह दोनों कहानियां जितनी सरलता से अपनी विचार यात्रा शुरू करती हैं उतनी ही गहराई और गंभीरता से हमें अपना चेहरा देखने पर विवश भी कर देती हैं.

कथ्य के स्तर पर तो तकषी विविधता भरे कथाजगत के अन्वेषी कथाकार हैं ही भाषा के स्तर पर भी उनकी कला चमत्कृत कर देती है. एक ही बात, जो ऊपरी तौर पर बेहद सामान्य प्रतीत होती है... एकाएक किसी उस पेंटिंग की तरह अर्थवान हो उठती है जिस पर हम फिजूल की कला समझकर विचार करना छोड़ चुके होते हैं... पर अर्थ ध्वनित होते ही वह हमें अपनी गिरफ्त से बाहर नहीं आने देती. तकषी की कथा-भाषा में पेंटिंग का-सा यह चमत्कार कदम-कदम पर मिलता है.

महेश दर्पण

चर्चित पुस्तकें

तकषी की कहानियां : अनुवाद-संयोजन : डा. वी.डी. कृष्णन नंपियार, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया लोधी रोड, नयी दिल्ली—110003., मूल्य : तीस रुपये

गूंगे सुर बांसुरी के : पन्नालाल पटेल प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ लोदी रोड, नयी दिल्ली-3, मूल्य : पैंतालीस रुपये संपादक : रघुवीर चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन-कला की सामाजिक सार्थकता

आज हमारा समाज जिस दौर से गुजर रहा है, वह सभ्यता के विकास का एक ऐसा चरण है जहां हम एक ओर इक्कीसवीं शताब्दी के सुनहरे सपने देखते हुए अंतरिक्ष-विजय को उपलब्ध यथार्थ बनाने में लगे हैं...वहीं दूसरी ओर पिछली चार शताब्दियों में एक साथ जीने का अभ्यस्त हमारा समाज अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए भी जी-तोड़ संघर्ष में लगा है. विभ्रम की यह एक ऐसी स्थिति है जहां पहुंचकर कोई भी समाज अपनी विवेकशीलता खो बैठता है और सही दिशा-निर्देश न मिलने पर क्रमशः पिछड़ता चला जाता है. ऐसे में जन-चेतना युक्त विज्ञापनों के लिए 'अशोक जैन पुरस्कार-योजना' अपने आप में एक उल्लेखनीय पहल है. सामाजिक-चेतना को जगाने और सही दिशा निर्देश की दृष्टि से प्रारंभ यह आयोजन प्रतिवर्ष विज्ञापन के क्षेत्र में सार्थक रचनात्मकता को बढ़ावा देते हुए

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजा, 'प्रेअर' हो या नमाज़...

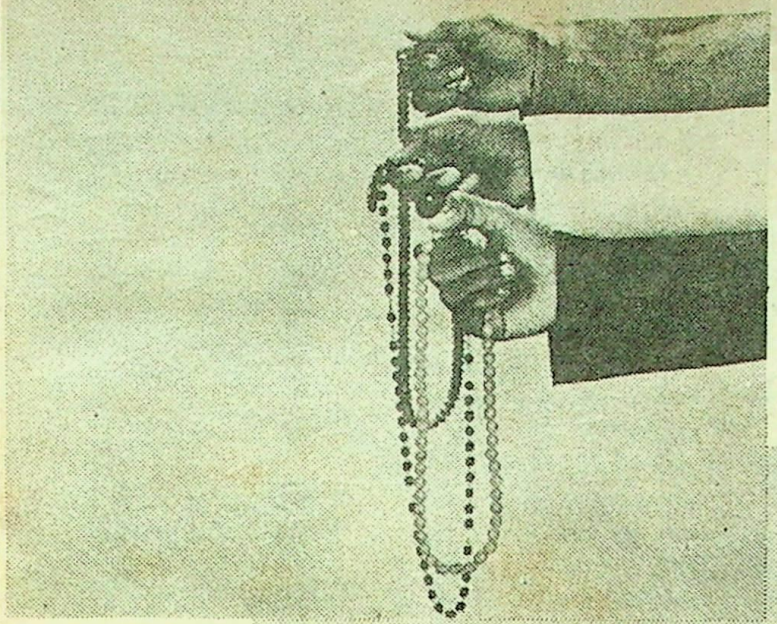

पुरस्कृत भी करता है. हिंदी और अंग्रेजी के माध्यम से जागृति-अभियान में सराहनीय भूमिका अदा करने वाले प्रतियोगी विज्ञापनों को युवा गैर पेशेवर (अधिकतम 21 वर्ष) कलाकारों की श्रेष्ठ प्रविष्टि, सुपरिचित विषय की नवीनतम प्रस्तुति, विशेष विषय, साज-सज्जा और कल्पनाशील अभिलेखन आदि श्रेणियों में पुरस्कृत किया जाता है.

प्रति वर्ष की भांति इस बार भी पिछले दिनों दिल्ली के होटल ताज पैलेस का प्रदर्शनी कक्ष इन जन-चेतना युक्त विज्ञापनों के कारण दर्शकों के आकर्षण का केंद्र बना रहा. विज्ञापन-कला की सामाजिक सार्थकता की दिशा में इस बार प्रथम पुरस्कार विजेता विज्ञापन-अभियान रहा—प्रफुल्ल सतनाम एवं बलवंत टंडन का. गुरूनानक पब्लिक स्कूल में अध्ययनरत हरपुनीत विरदी एवं गुरविंदर कौर को अंग्रेजी माध्यम में प्रथम और माउंट कारमेल स्कूल के छात्र हिमानिश दास को द्वितीय स्थान मिला. अव्यावसायिक श्रेणी में अनिता गांधी का अभियान प्रशंसित हुआ. □

● हिंदी में प्रथम पुरस्कृत विज्ञापन-अभियान

● अंग्रेजी में प्रथम पुरस्कृत विज्ञापन-अभियान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पौद

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं.... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित 300 शब्दों में लिख भेजिए. लिफाफे पर यह कूपन चिपकाना न भूलें.

'नयी पौद' स्तंभ
सारिका
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

अभिलाषा अब भी है

प्रीता झा (मुजफ्फरपुर)

बचपन से ही अच्छा साहित्य पढ़ने एवं लिखने का शौक है. पढ़ने का शौक तो कायम है और रहेगा, किंतु लिखने का शौक गृहस्थी के जंजाल में दुबककर कहीं दूर पीछे छूट गया. बिहार के पिछड़े क्षेत्र मिथिलांचल में जन्मी मैं नन्हे-मासूम सपनों के साथ विख्यात लेखिका बनने के सपने भी देखा करती थी. इन खूबसूरत सपनों को और भी प्रश्रय मिलता जब कक्षाओं में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत होती. सहेलियों ने मेरा नामकरण किया था– 'किताबी-कीड़ा'. मेरे सपने बिखर गए जब अचानक एक्कड़-दुक्कड़ खेलते मेरे पांवों को पहना दी गयीं विवाह की बेड़ियां. मेरा विवाह 15 वर्ष की उम्र में 1977 में हुआ. और उसके साथ ही प्रारंभ हुआ मेरे जीवन का नया अध्याय. पत्नी और माता बनकर मेरा 'मैं' खो चुका है जो कभी रचनाकार बनना चाहता था. लेकिन इन तमाम उधेड़बुनों के बीच अच्छा साहित्य पढ़ने की रुचि ने मन के किसी कोने में उन सपनों को पुनर्जीवित देखने की अभिलाषा को ज्योतित रखा है... जब कभी लिखने का अवसर आएगा–और जरूर आयेगा– तो लिखना चाहूंगी अपने ग्रामीण परिवेश एवं मैथिल ललनाओं की समस्याओं के बारे में. क्योंकि औरतों की बुनियादी समस्याएं तो समान हैं किंतु मिथिला की नारियों का कहना ही क्या? जब राजा जनक की पुत्री एवं राजा दशरथ की पुत्रवधू होकर भी मिथिला-सुकुमारी को अनंत कष्ट झेलने पड़े थे, तो फिर हम नाचीजों की तो बिसात ही क्या? हालांकि शिक्षा का प्रचार हुआ है, फिर भी हालत अभी ऊंट के मुंह में जीरे के फोड़न जैसा ही है. इसलिए लिखना है जरूर, बशर्ते कि एक पांव पर भी टिके रहने की जमीन मिले. □

सफर तय करना है

नीरज 'नीरू' (ग्वालियर)

चिकित्सा जगत में जाने कितनी व्यस्तता है... बस इस व्यस्तता के कारण समयाभाव मेरे लेखन-मार्ग में आने वाला सबसे बड़ा अवरोधक है. इस क्षेत्र में रुचि होने पर भी, जितना वक्त मुझे मिलता है, साहित्य पढ़ने और उससे ज्ञान अर्जित करने की मेरी हमेशा-हमेशा कोशिश रहती है.

जो कुछ भी विचार आते हैं उन्हें अपनी शब्द-निधि द्वारा मूल्यांकन कर अंकित कर लेता हूं. और हर बार उनमें गलतियां ढूंढकर सुधारने की कोशिश करता हूं... परंतु न जाने क्यों फिर भी ऐसा लगता है जैसे कहीं न कहीं कुछ कमी अवश्य है. आत्मसंतुष्टि की प्राप्ति नहीं होती है. यही आत्मसंतुष्टि की भावना हमेशा अतृप्त रहती है. कुछ भी नया लिखना प्रारंभ करो... पिछले लेखन की असंतुष्टि कलम को बांधती-सी लगती है. तब महसूस होता है कि वास्तव में आत्मसंतुष्टि ही, आत्म विश्वास अंकुरित करने के लिये धरा जैसा कार्य करती है.

समाज में व्याप्त अनेक ऐसी घटनाएं, हालात जिनके ऊपर अनेकानेक अलग-अलग विचारधाराओं को एक साथ संकलित करके लिखने में अक्सर धीरज हटता-सा प्रतीत होता है. मन करता है, लिखकर नहीं, बल्कि स्वयं घटनाओं से लड़ने के लिये अपने आपको समाज के हाथों सौंप दूं. अंततः जब उसके उपसंहार पर नजर डालता हूं तो महसूस होता है जैसे अकेला ही खड़ा हूं और वही समाज, जिसके हित में, मैं लड़ना चाहता था, हंस रहा है मेरी बेवकूफी पर. प्राकृतिक नियम है कि अभ्यास ही प्रत्येक निपुणता और सफलता की आधारशिला है. अपने आपको अभी भी इस काबिल नहीं समझता हूं कि जन्म लिये हुये हर विचार को, भावना को, हालात को समुचित, सही और संक्षिप्त रूप में लिख सकूं. ऐसा हासिल करना है तो शायद मुझे तय करना होगा अध्ययन अभ्यास, आत्मविश्वास और मन की एकाग्रता से होकर गुजरने वाला वह सफर.... जिसकी आखिरी मंजिल आत्मसंतुष्टि ही है. □

कुंठा की फसल

रणजीत रेणु (कोटा)

बहुत बड़ा ढेर है कथाओं, कविताओं, नाटकों और संस्मरणों का. शुद्ध आयातित विचार व ठेठ आंचलिक भी. पर कभी-कभी बेकार-सा लगता है यह सब. निर्विवाद रूप से वह कुंठा का कुहासा अंतहीन मेरी रचनात्मक रुचि पर छा जाता है. संपादकों का 'ढाई आखर प्रेम' का जुमला साधुवाद या धन्यवाद नवांकुरों के पथ से अलग करता है. कभी लगता है मानो साहित्यिक सभ्यता में यह नया 'वाद' आया है. किसी रचना की वापसी लेखन की उत्तेजनात्मक मनःस्थिति, प्रस्फुरित उद्धाम भावनाओं का उफान एकाएक थम-सा जाता है और फिर एक रचना से दूसरी के बीच लंबा अंतराल आ जाता है. कभी मन बेकाबू हो जाता है जो विषय, पात्रों में भी झलकने लगता है. उत्साह को केंद्रित करके सिलसिला आगे बढ़ता है. एक-दो रचनाओं की सफलता रोमांचित करती है. नयी आशाएं जागृत होती हैं. मैं ही नहीं हूं उस साहित्यिक अत्याचार का शिकार. अनेकों हैं. जो स्थापित हैं, उनके मुखौटों की चमक नये लेखकों के पीछे धकेल देती हैं. वे गुमनामी के अंधेरे में खो जाते हैं. इसके लिये कुछ पत्रिकाओं को छोड़ दें तो बाकी सब में स्वार्थवाद की कहानी है. निरपेक्ष कुछ नहीं कहा जा सकता. इनके लिये युग सापेक्ष बहुत कुछ सामने है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : फरवरी 1988 के सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार विजेता

फरवरी : 1988 की कथा पहेली के हजारों प्रतियोगियों में से केवल आठ ही एक-एक अशुद्धि के साथ पुरस्कार विजेता होने का गौरव पा सके हैं. सर्वशुद्ध हल भेज पाने में इस बार भी कोई प्रतियोगी सफल नहीं हो सका. पुरस्कार राशि इन प्रतियोगियों में बराबर-बराबर बांट दी जाएगी. पुरस्कार विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं :–

1. प्रेम सिंह सैनी, 522/11, निकट रोहतास ट्यूबवैल, ढ़ाणी बड़वाली, हिसार
2. श्रीमोहन अग्रवाल, वित्तीय परामर्श-दाता, जिला परिषद, हमीरपुर
3. राजेंद्र मधुकर, अशोक नॉवेल हाउस, जलालाबाद रोड, मुक्तसर, जिला फरीदकोट (पंजाब)
4. अवनेश माथुर, गली नं.-12, धोबी तलाई, गंगा शहर रोड, बीकानेर (राज.)
5. प्रबोध दवे, म. नं.-100 एच. आई. जी. (जूनियर), विजय नगर के पास, इंदौर
6. अनंतराम वर्मा, द्वारा स्टेट बैंक ऑफ पटियाला, कृषि विकास शाखा, नालागढ़, जिला : सोलन (हि.प्र.)
7. प्रमोद गुप्त, ग्राम व पत्रालय, शेखूपुर रौरा, जनपद: बुलंदशहर (उ.प्र.)
8. दिग्विजय सिंह, द्वारा श्री नेमीचंद जैन गोंदवाले, न्यू ब्लौक, शिवपुरी (म.प्र.)

यह रहा कथा पहेली का सर्वशुद्ध हल...

1. मुक्ति, 2. अज्ञेय, 3. माइनस सेवन, 4. कृष्ण भगवान के यह कहते ही भगदत्त की पोल खुल गयी–
"कहेउ कृष्ण पारथ सुनहु,
प्राण तज्यो गजराज.
राख्यौ है नृप जंघ गहि,
अस्त्र तज्यौ केहि काज?"
5. रमेश चंद्र शाह
6. अधिकांश कहानियां ग्रामीण जीवन से ली गयी हैं.
7. 'पार' कहानी के काशी की मनःस्थिति. मनःस्थिति.
8. 'सिर्फ पैसा', 'गांव की नदी' और 'पार'.
9. 'पार' का चौधरी द्वारा बनाया गया रेखांकन.
10. 'खारिज'

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' मार्च, 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 अप्रैल, 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा जून 1988 के अंक में की जायेगी.

सारिका कथा पहेली : अप्रैल 1988

1. कालिदास और सूर्यबाला के यक्ष की स्थिति में क्या अंतर है?
.....
.....
2. वह रचना, जिसमें एक जाना पहचाना मुहावरा चरितार्थ हुआ है, और मुहावरा खाली स्थान में लिखें.
.....
3. अंक का सर्वश्रेष्ठ कार्टून पृष्ठ ..... पर है.
4. रचनाकार और आलोचक के बीच सार्थक संवाद की दृष्टि से इस अंक में एक जगह उल्लेखनीय विवरण मिलता है. यह आलोचक और रचनाकार हैं क्रमशः ..... और .....
5. ये पात्र जिन रचनाओं के हैं उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
1. गुलाब (.....) 2. वेनकिन (.....) 3. रामदीन (.....) 4. हीरा (.....)
6. इस अंक की प्रमुख विशेषता क्या है?
7. ..... रचना में रचनाकार की उम्र का संबंध उसकी रचना के आकार से जुड़ा है.
8. 'पानी की समस्या' व्यंग्य में 'पानी' शब्द ..... बार आया है?
9. इस अंक में संवादशैली की ..... रचनायें हैं.
10. "प्रजातंत्र और तानाशाही का यही मूल अंतर है. एक में विरोधी और विद्रोह के दौरान चप्पल चलती हैं, दूसरे में गोली-जहां कलम के चलने की आजादी है, वहां चप्पल की नौबत कम ही आती है, लोग एक दूसरे से नाराज हों तो एक दूसरे के खिलाफ संपादक को पत्र लिखते हैं. संसद या विधान सभा में सवाल उठते हैं..."
यह भाषा व्यंग्यकार ..... की है.

नाम ..... आयु .....

पता.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेताओं की कृतियां

बसंत के एकांत जिले में	कविता संग्रह	सच्चिदानंद राउतराय		
अंधारूआ	कहानी संग्रह	,,		४५-००
गूंगे सुर बांसुरी के	कहानी संग्रह	पन्नालाल पटेल		४५-००
तकषी की कहानियां	कहानी संग्रह	तकषी शिवशंकर पिल्लै		३०-००
चिक्कवीर राजेंद्र	उपन्यास	मास्तिवेंकटेश अय्यंगार		५५-००
सुब्बण्णा	उपन्यास		पे.ब.	५-००
			ला.सं.	१०-००
परकाय प्रवेश तथा अन्य कहानियां	कहानी संग्रह			३५-००
महादेवी: प्रतिनिधि गद्य रचनाएं				४५-००
महादेवी: प्रतिनिधि कविताएं				४०-००
अमृता रचनावली: अमृता प्रीतम				
अमृता प्रीतम: चुनी हुई कविताएं				४०-००
अमृता प्रीतम: सेलेक्टेड पाइम्स (अंग्रेजी)				३८-००
अमृता प्रीतम: चुने हुए उपन्यास				९८-००
अमृता प्रीतम: चुनी हुई कहानियां, चुने हुए निबंध				६०-००
कोरे कागज	उपन्यास	अमृता प्रीतम		२०-००
कथा एक प्रांतर की	उपन्यास	एस.के. पोट्टेकाट		८५-००
मृत्युंजय	उपन्यास	वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य		४५-००
कितनी नावों में कितनी बार	कविता संग्रह	अज्ञेय		१८-००
मूकज्जी	उपन्यास	शिवराम कारंत		४०-००
सुवर्णलता	उपन्यास	आशापूर्णादेवी		६०-००
वकुलकथा	उपन्यास	,,		६०-००
चार-तार	कविता संग्रह	द.रा. बेंद्रे		२५-००
माटीमटाल	उपन्यास	गोपीनाथ महांती		
		(दो भागों में) प्रत्येक भाग		५५-००
संचयिता	काव्य-संकलन	रामधारीसिंह दिनकर	पे.बैक.	२०-००
			ला.सं.	४०-००
स्मृति सत्ता भविष	काव्य संकलन	विष्णु दे		४८-००
बज्में ज़िंदगी रंगे शायरी		फिराक गोरखपुरी		५०-००
चिदंबरा संचयन		सुमित्रानंदन पंत		
	(कन्नड़, तेलुगु, गुजराती, मराठी, बांग्ला, मलयालम एवं अंग्रेजी)			७-००
निशीथ	काव्य	उमाशंकर जोशी		६०-००
श्रीरामायण-दर्शनम्	काव्य	कु.वे. पुट्टप्पा		
गणदेवता	उपन्यास	ताराशंकर वंद्योपाध्याय		७०-००
ओड्डकुषल	काव्य	जी. शंकर कुरुप		६०-००

भारतीय ज्ञानपीठ
18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-११० ००३

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

लाखों पाठकों के प्रिय उपन्यासकार

एमी२ का नया उपन्यास

बंधन

सस्पैंस, थ्रिल एवं इन्वेस्टीगेशन के जादूगर

एहुल का नया सामाजिक थ्रिलर

सोने का जाल

10/-

लोकप्रिय जासूसी उपन्यासकार

वेद प्रकाश काम्बोज

का एक अविस्मरणीय उपन्यास

तोरा नागा

- अमर और उसके साथी मौत के चंगुल में फंसे जीने के लिये संघर्ष कर रहे
- समुद्री तूफान ने अमर के जहाज को मौत की घाटी की तरफ मोड़ दिया ।
- तोरा नागा चारों ओर से षडयंत्रों से घिरा था ।
- अमर और तोरा नागा की संघर्ष भरी खूनी दास्तान

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

आखिर वह कौन सी मानसिकता है जो औरत को रूपजीवा विषकन्या बनने को बाध्य कर देती है...?

क्या औरत जानवर है और उसका स्थान पिंजरे में हैं?

विश्व साहित्य में विषकन्याएं : दो

- जो भी उससे एक बार बात कर लेता, उसका पुजारी होकर रह जाता...कैसी थी भारत की पहली महिला जासूस?...अनिता जैन द्वारा प्रस्तुत रोमांचक सत्यकथा.
- भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति, कॉर्ल गर्ल, के.जी.बी. का ऐसा एजेंट जिसे कैनेडी की हत्या की पूर्व सूचना थी, चीन के लिए परमाणु शक्ति नगर बनाने वाला उद्योगपति और एक प्रख्यात पत्रकार...कैसे सबके सब अपने-अपने घोटालों के चक्रव्यूह में जा फंसे? और इनकी जिंदगी में लिप्त, इनकी उद्धारक वह अलिप्त नायिका कैसी सुलझी हुई उलझन बनी हैरत अंग्रेज दास्तान पेश कर गयी.
- ग्रीक पुराण कथाओं की विषकन्याएं.
- राजदरबारों की वे नर्तकियां जिन्होंने इतिहास बदल डाला.
- विश्व की सबसे छोटे आकार की विषकन्या : एड्स
- कॉलगर्ल्स की भीतरी दुनिया का सच.
- अंधी गलियों की अंधेरी दास्तान.
- ऐसे तैयार की जाती थीं विषकन्याएं.
- जब स्वयं विष्णु ने विषकन्या की भूमिका अदा की.

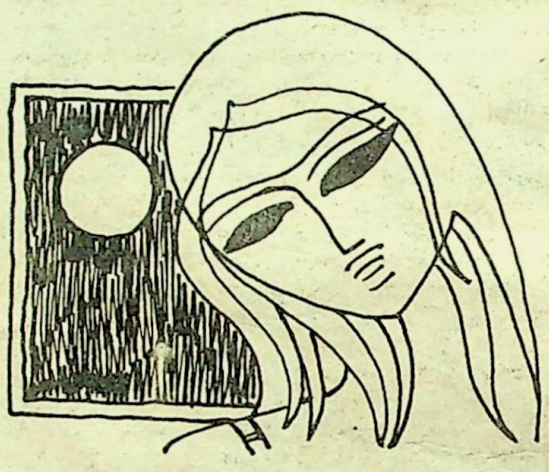

- और इतिहास के पन्नों में दबी रोमांचक दुनिया की अजीबोगरीब दास्तान.
- कला जगत की विषकन्याएं.
- भारतीय और विदेशी भाषाओं की कहानियों के साथ लगभग सात हजार साल से चले आ रहे विषैले सिलसिले को समझने की दूसरी दस्तवेजी कड़ी.

हर उम्र और वर्ग के पाठकों के लिए अजानी दुनिया की समूची तस्वीर

सारिका

जुलाई, 1988

अगस्त, 1988

युवा प्रेम-कथा अंक

विस्तृत सूचना आगामी अंक में....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का एक अनूठा प्रोजेक्ट

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें मगाने पर डाकखर्च माफ

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित
- सरस कथा शैली
- फोटोटाइप सैट
- बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई
- बहुरंगी आवरण
- वाजिब दाम

इस शृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय जगत से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को पूर्ण रूप से उजागर करने वाला एक सचित्र **'मिनि एनसाइक्लोपीडिया'** *है।*

उदाहरणार्थ *'रोमांचक कारनामे'* में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो *'खोजें'* में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। *'अनसुलझे रहस्य'* में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो *'खेल और खिलाड़ी'* व *'वैज्ञानिक'* क्रमशः जीवनी प्रधान पुस्तकें हैं। *'विनाश-लीलाएं'* में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण है तो *'दुर्घटनाएं'* में मानवीय भूलों से हुई मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। *'गुप्तचर संस्थाएं'* तथा *'जासूस'* में मकड़े के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो *'प्रेरक-प्रसंग'* किसी भी जहाज की तरह भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

अब तक प्रकाशित पुस्तकें:

विश्व-प्रसिद्ध..... 1.खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल एवं खिलाड़ी 8. रिकार्ड्स (भाग-I) 9. रिकार्ड्स (भाग-II) 10. वैज्ञानिक 11. विनाश-लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग।

आमंत्रण:—

प्रोजक्ट में योगदान के लिए विद्वान लेखक तथा अनुवादक संपर्क साधें।

जून, 1988 तक प्रकाश्य:

- विश्व-प्रसिद्ध जासूसी-कांड
- विश्व-प्रसिद्ध सभ्यताएं

तैयारी में/प्रैस में:

- चिकित्सा-पद्धतियां
- स्कैण्डल
- बैंक-डकैतियां
- राजनैतिक हत्याएं
- खोजी-यात्राएं
- क्रूर हत्यारे
- खजाने।

अपने निकट के बुकस्टाल एवं रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुकस्टालों पर मांग करें अन्यथा टी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006

शो रूम : 10-B नेताजी सुभाष मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे आपके नित्य जीवन का अभिन्न अंग

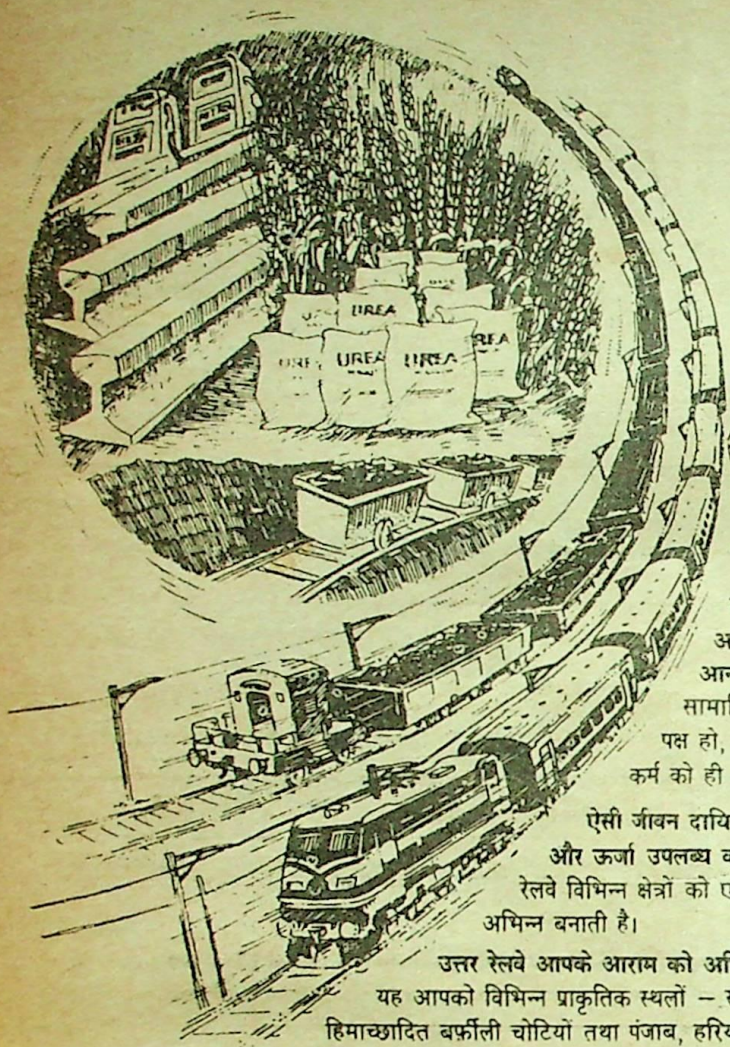

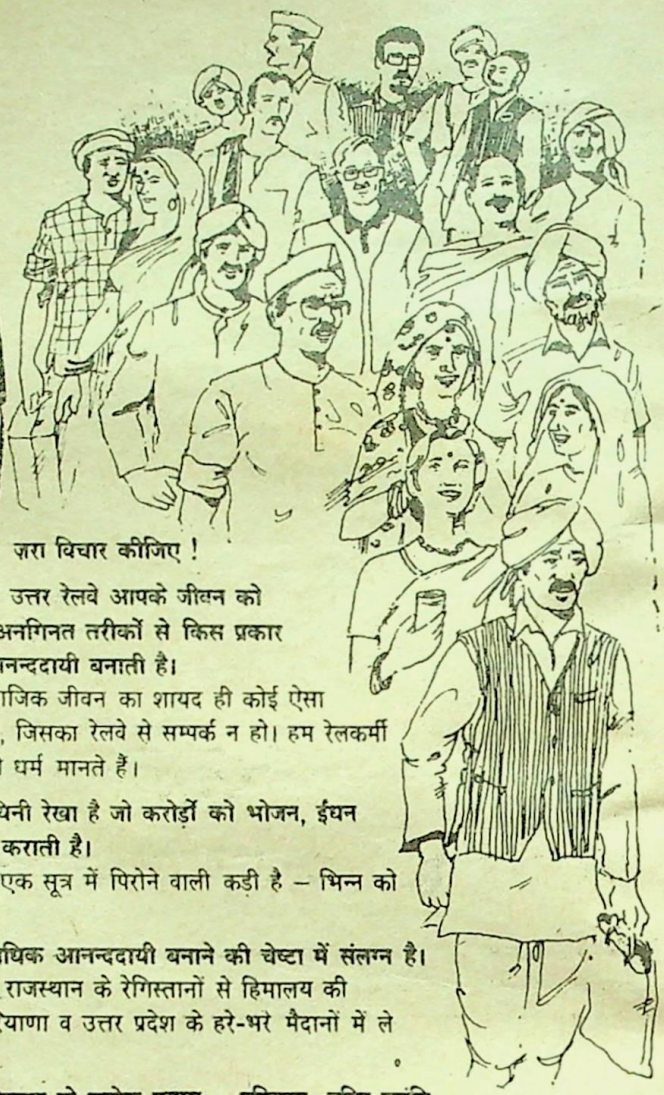

ज़रा विचार कीजिए !

उत्तर रेलवे आपके जीवन को अनगिनत तरीकों से किस प्रकार आनन्ददायी बनाती है।

सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका रेलवे से सम्पर्क न हो। हम रेलकर्मी कर्म को ही धर्म मानते हैं।

ऐसी जीवन दायिनी रेखा है जो करोड़ों को भोजन, ईंधन और ऊर्जा उपलब्ध कराती है।

रेलवे विभिन्न क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी है – भिन्न को अभिन्न बनाती है।

उत्तर रेलवे आपके आराम को अधिक आनन्ददायी बनाने की चेष्टा में संलग्न है।

यह आपको विभिन्न प्राकृतिक स्थलों – राजस्थान के रेगिस्तानों से हिमालय की हिमाच्छादित बर्फ़ीली चोटियों तथा पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के हरे-भरे मैदानों में ले जाती है।

उत्तरी भारत में रेलवे लगभग सवा सौ वर्षों से राष्ट्रीय विकास के प्रत्येक प्रयास – परिवहन, हरित क्रांति, ऊर्जा उत्पादन, तीव्र औद्योगीकरण आदि में सक्रिय योगदान दे रही है।

उत्तर रेलवे प्रतिदिन 900 मेल/एक्सप्रेस एवं सवारी गाड़ियों में 11 लाख यात्रियों का वहन करती है। साथ ही प्रतिदिन 2 लाख टन माल ढोया जाता है।

उत्तर रेलवे की दैनिक गतिविधियों में शामिल हैं –

- 47,000 टन अनाज का उत्तर के उपजाऊ क्षेत्र से देश के विभिन्न भागों को परिवहन.
- 62,000 टन कोयला, उद्योगों के लिए पहुँचाना.
- 15,000 टन पेट्रोलियम पदार्थों का यातायात.
- 17,000 टन खाद ढोना.

ये सब देश में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की भावना की जागृति लाने में सहायक हैं।

रेल पटरियों का जाल, जीवन दायिनी शिराओं और धमनियों की भांति काम कर रहा है।

उत्तर रेलवे करोड़ों देश वासियों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में सतत प्रयत्नशील है।

भारतीय रेल

उत्तर रेलवे

उत्तरी क्षितिज में स्थिर और निरंतर चमकता हुआ नक्षत्र है – उत्तर रेलवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका वर्ष : 28 ,अंक : 434, जून, 1988

विश्व साहित्य में विषकन्याएं—1

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुदगल
उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

आवरण पारदर्शी : फाल एस. गिरोटा
आवरण सज्जा : कला विभाग
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

विषकन्या खंड

कथा रचनाएं

10. पत्थर की अप्सरा :
हयात उल्लाह अंसारी
12. सर्वे और सुंदरी :
हरिशंकर परसाई
24. विलक्षणा :
सुरेश उनियाल
28. घर-गमला :
योगेश गुप्त
34. सोने का घूंट :
इस्मत चुगताई
42. सुकन्या :
हरिमोहन
48. हत्यारिणी :
सी. पी. डोनेल

विशेष लेख

19. प्राचीन भारत में विषकन्याएं :
हंस
38. ताजो-तख्त दिलाने वाली....:
मोहनलाल भास्कर
45. ईसा पूर्व भी माताहारी थी :
रामकुमार भ्रमर

लघुरचनाएं

13. रूपा जीवा क्रिस्टीन कीलर
17. संभोग क्षमता का परीक्षण
26. रक्तकंठा
32. बेवकूफी की कीमत
33. एक दूजे के लिए
41. शहद का जाल

अन्य रचनाएं

धारावाही आयोजन

50. सुनो परीक्षित, सुनो :
शिवप्रसाद सिंह
56. चमन्नचबा :
राजेंद्रप्रसाद पांडेय

नवांकुर

62. छोटा-सा इंद्रधनुष :
महेश राजा

नये हस्ताक्षर

66. अलविदा कैथी :
नाहीद

स्थायी स्तंभ

8. आपकी बात
60. धारा के विरुद्ध :
राजेंद्र राव
64. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी
69. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी
70. नयी पौद
71. सारिका कथा पहेली
72. कृतियां
75. हलचल

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326 स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैवले मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

पाठकों का दर्द

एक बार एक ग्राहक एक मानक बूकन पर कुछ वस्तुएं क्रय करने की दृष्टि से गया. ग्राहक ने अनेक वस्तुएं देखी. कुछ पसंद कीं. अच्छा ग्राहक फंसा देख दुकानदार ने ग्राहक की खातिरदारी भी की. वस्तुएं पैक करने के बाद ग्राहक ने बिल पर एक नजर डाली. उसे लगा कि कुछेक वस्तुओं की कीमत बाजार से कुछ अधिक है. उसने सवालिया नजर से दुकानदार को देखा. दुकानदार समझ गया. ग्राहक के पूछने के पहले ही बोल पड़ा, "एक दो वस्तुएं तो मंहगी रखनी ही पड़ती हैं. हम ग्राहक का आदर-सत्कार भी तो करते हैं." ग्राहक भी सब कुछ समझ गया कि कुछ क्षण पूर्व जो उसने चाय पी थी वह अपने पैसे से ही पी थी.

सारिका ने एक माह के लिए शरद जोशी को अतिथि संपादक बनाया. पाठकों ने सोचा सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य मिलेंगे पढ़ने को. सारिका का व्यंग्य विशेषांक आया. सात रूपये की जगह आठ रूपये देने पड़े. मृदुगलजी ने जोशीजी को जो चाय पिलायी, एक महीने तक अतिथि जी का स्वागत सत्कार किया उसे सारिका के पाठकों को छोड़—भला कौन झेल सकता था.

पुराने लेखकों के व्यंग्य आलेख इस अंक की निधि हैं. गोपाल चतुर्वेदी कई अंकों से जम नहीं पा रहे. इस अंक में जब अधिकतर रचनाएं व्यंग्य की आयीं तब उनकी असलियत उजागर हो गई है.

□ अतुल मोहन प्रसाद, वक्सर (बिहार)

होली के मूड में

होली से भरपूर सामग्री पढ़कर प्रसन्नता हुई. भीतर के पृष्ठों में रंग तथा अच्छे छायाचित्रों की कमी जो कभी सारिका की जान होती थी, अब बहुत खलती है.

इस अंक की सभी रचनाएं अच्छी हैं लेकिन इस अंक में प्रेमचंद के ऊपर दिया गया लेख, शरद जोशी तथा लतीफ घोंघी की रचनाएं भी पसंद आयीं. सबसे ज्यादा मुझे शिवानंद कामड़े की व्यंग्य रचना 'सूखे खेत : लहलहाते चिंतन' पसंद आयी. कीमत कुछ ज्यादा थी. पर होली के मूड में ले आये.

□ सूर्यभान सिंह सोलंकी, आगरा (उ.प्र.)

सोने पर सुहागा

व्यंग्य विशेषांक अनोखा, संग्रहणीय है. क्या खूब लिखा है लेखकों ने और सोने पर सुहागा है शरद जोशी का अतिथि— संपादन. इस अंक की रचनाएं एक से बढ़कर एक हैं. हास्य व्यंग्य का पिटारा खुला और पाठक 'पानी की समस्या' (शरद जोशी) से हंसते-हंसते पानी मांगने लगा.

'कुत्ता-कथा' (लक्ष्मीकांत वैष्णव) तथा 'क्रांति, कुत्ता और ट्रेजिडी' (यशवंत व्यास) पढ़कर लगा कि नेतागण, गधे के बाद कुत्ते को अपने व्यंग्य का निशाना बनाकर व्यंग्यकारों ने व्यंग्य दिशा बदल दी है. इस क्रांति की शुरूआत संभवतः दूरदर्शनीय — फिल्म — मध्यांतर के वक्त आने वाले श्वान-कार्यक्रम 'यू एंड योर पेट्स' से हुई है.

पूर्व प्रकाशित व्यंग्य रचनाओं के पुनः प्रकाशन हेतु साधुवाद, वर्तमान पीढ़ी ने पुराने व्यंग्यकारों की रचनाएं बहुत कम पढ़ी — गुनी हैं. भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी की रचनाएं उत्कृष्ट हैं. यह पहल प्रशंसनीय है.

स्व. महादेवी वर्मा के बारे में डा. रणवीर रांग्रा का लेखन याद ताजा कर गया. व्यंग्य को पितृपक्ष का कौवा बनाकर संपादक जी ने समाज की व्यावसायिकता पर तीखी चोट की है. 'मेरा मुख्य अतिथि हो जाना' (लतीफ घोंघी) और श्रीमान शरद जोशी का सारिका का अतिथि संपादक को जाना-दोनों यादगार, घटनाप्रधान व व्यंग्य खिचड़ी के दो पके हुए चावक हैं.

□ प्रभात झा, देवसर (म.प्र.)

कुछ सामान्य भी दें

मुखपृष्ठ इतना कलात्मक और लुभावना था कि मन वहीं भटककर रह गया. निःसंदेह हरिपाल श्रेष्ठ कलाकार है—आपको व हरिपाल जी को बधाई.

दूसरे मुझे आप की विशेषांक प्रणाली पर बेहद ऐतराज है. ये विशेषांक साहित्य के सामान्य विकास को पाठकों तक नहीं पहुंचने देते और आपकी नियत 12 महीने में 15 विशेषांक निकालने की रहती है. क्या कहानी में सामान्य रचनाक्रम की रचनाएं आपको प्राप्त नहीं होती हैं, जो कई बार विशेषांकों के नाम पर आप घटिया रचनाएं पढ़ने को बाध्य करते हैं.

□ श्याम देव शुक्ल, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

कटु सत्य उजागर हुआ

होली अंक पढ़कर अच्छा लगा. इस बार कुछ नये रचनाकारों की रचनाएं पढ़ने में आयीं. बार-बार वही पुराने घिसे-पिटे या प्रतिष्ठित रचनाकारों को पढ़-पढ़कर बोर हो रहे थे.

व्यंग्य लेखों में इस अंक की सर्वश्रेष्ठ रचना मुझे शिवानंद कामड़े की 'सूखे खेत' : लहलहाते चिंतन' लगी. साज सज्जा के दृष्टिकोण से भी यही पृष्ठ सर्वोपरि रहा.

शरद जोशी की रचना 'पानी की समस्या' भी बहुत पसंद आयी. अन्य लेखों में लतीफ घोंघी, मुजतबा हुसैन, ज्ञान चतुर्वेदी अच्छे लगे. पर रवींद्रनाथ त्यागी जैसे व्यंग्यकार ने निराश किया.

प्रेम जनमेजय का लेख, व्यंग्य आकलन के लिए अच्छा काम आयेगा.

सुधीर पचौरी जी ने बहुत सुंदर लिखा है कि दूरदर्शन को 'प्रेमचंद और खेमचंद में फर्क करने में तमीज कहां?' 'प्रेमचंद का कत्ल हो रहा है' एक कटु सत्य को उजागर कर देती है.

अच्छे रचनाकार भविष्य में सारिका के माध्यम से पढ़ने को मिलेंगे ऐसी आशा है.

□ डी.जी.के. शर्मा नयी दिल्ली

प्रतीकों का सुंदर प्रयोग

होली विशेषांक खूब जमा, वैसे शरद जोशी जैसे पारस-पत्थर के संपर्क में आकर तो ऐसा होना ही था लेकिन सर्वश्री ज्ञान चतुर्वेदी, लक्ष्मी कांत वैष्णव तथा ईश्वर शर्मा की रचनाएं भी मिजाज के माकूल थीं. पहले दोनों लेखकों की रचनाएं तो हयूमर और पैथास का बेहतरीन समन्वय किए थीं. पुलिया तो अपना देश (या समाज) की है, कहानी का गंतव्य-झांसी 'इक्कीसवीं सदी' तथा अंजर पंजर बस तो साक्षात शासन व्यवस्था है-प्रतीकों का सुंदर प्रयोग दिलफरेब बनाता है लेखक के वक्तव्य को. 'कुत्ता कथा' में शोषित से शोषक बनने की प्रक्रिया दिल को कहीं गहरे टीसती है. शायद यही टीस ही अब नियति होकर रह गई है. लेकिन 'पानी की समस्या' की प्रशंसा तो शब्दों (और इस पत्र के स्पेस) की सामर्थ्य से बाहर है. भले ही पितृ पक्ष के कौवे जैसा आपने व्यंग्य को याद किया लेकिन हंस जैसा सम्मान देकर बखूबी याद किया. बधाई.

□ शरद शक्ल, कानपुर

तथाकथित अतिथि संपादक

शरद जोशी जी ने अपने अतिथि संपादकीय में तो आपको अच्छी तरह डांट पिलाई है हमें ऐसा ही लगा. सब काम आपने आचार संहिता की चहारदिवारी के भीतर रहकर अपने ही हाथों निबटा दिया और पत्रिका बिकने हेतु किसी प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक को तथाकथित 'अतिथि संपादक' बनाकर होली पर अच्छा मजाक उड़ाया गया.

लगता है सारिका के पास अब उतनी अच्छी रचनाएं नहीं आती हैं. तब भी इस अंक की (व्यंग्य रचनाएं तो बहुत ही कम हैं) कुछ प्रसिद्ध भारतीय और चेखव की रचनाओं ने प्रभावित किया.

महान लेखक चेखव की 'मिथ्या निंदक' जैसी अन्य विदेशी लेखकों जैसे लू-शुन की ऐसी ही रचनाओं का प्रकाशन और प्रचार आवश्यक है.

'नवांकुर', 'नये हस्ताक्षर' दोनों ठीक ही लगते हैं. नयी पौध, कथा पहेली, कृतियां आदि स्तंभ नियमित रहें. शुभकामनाएं नये लेखकों के प्रति सदैव रहेंगी.

□ नवराज शर्मा, कंचनपुर (नेपाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर प्रेमचंद आज जिंदा होते

'कथा दर्शन' के तहत सुधीश पचौरी का आलेख 'प्रेमचंद का कत्ल हो रहा है' संकीर्णता की हद तक सीमित मस्तिष्क के व्यर्थ प्रलाप के अलावा कुछ नहीं लगता.

न जाने क्यों पचौरी जी ने पंक्ति दर पंक्ति बेवजह छाती पीटी है. ऐसे आलेख लिखने वालों की मंशा या दृष्टिकोण शायद यही होता है कि साहित्य अजूबा बनकर अजायबघरों की अंधेरी सुनसान दीवारों पर लटका रहे, वह खुली हवा में लोगों के बीच न आये. ये मानसिकता साहित्य को ऐसे ही सेंतने की कोशिश की है जैसे दुनिया भर की सस्ती मंहगी, धीमी-तेज सवारियों के सहज उपलब्ध हो जाने के बावजूद मुल्लाजी मस्जिद तक हांफते हुए पैदल ही बौड़े. हर सवारी को कोसते भी जायें और थककर बेदम भी होते जायें...

यह आम शिकायत है कि अच्छा साहित्य जनसाधारण तक नहीं आ पाता. अब यदि संचार माध्यमों की व्यापकता ने इसका बंदोबस्त किया है और दूरदर्शन 'अमृता' के बहाने महाकवियों या कहानी के बहाने प्रेमचंद जैसे युगपुरुषों की जन जन व्याप्ति सुगम कराने का प्रयास कर रहा है तो चंद ऐसे हकीमों का ये प्रलाप शुरू हो गया जो मरीज को ठीक होते देखकर बस इसलिए खफा हैं कि रोग उनके बिना नब्ज देखे ही क्यों पहचाना जा रहा है. प्रेमचंद ने खूब लिखा, खूबों के लिए लिखा होगा, पर क्या अभिधा में लिखा, क्या व्यंजना में, ये तो इन्हीं हकीमों से पूछकर तय किया जाये.

'अमृता' कार्यक्रम में शामिल कविगण या प्रेमचंद आज जीवित होते तो सुधीश जी की इस बात को स्वीकार करने के लिए शायद कतई तैयार नहीं होते कि उनकी दूरदर्शन पर बेइज्जती हुई है. या कत्ल हुआ है. बल्कि उन्हें संतोष होता कि वे जो कुछ चंद दिमागों तक पहुंचा पाये वह और सुलभ बनकर औसत तथा औसत से भी कमतर आदमी तक पहुंचाया जा रहा है. और यूं वह आदमी मात्र से जुड़कर संतुष्ट ही होते.

शायद पचौरी जी ये नहीं मानते कि सात लोगों की बौद्धिक जुगाली और सत्तर करोड़ लोगों की रंजक भूख में फर्क होता है. प्रेमचंद की कौन-सी कहानी व्यंजनापूर्ण है, कौन-सी अभिधापूर्ण, ये नुक्ताचीनी सिर्फ उन जैसे ईन-मीन-साढ़े तीन आदमियों का मानसिक शगल हो सकता है, जिन्हें प्रसाद-प्रेमचंद-महादेवी से इतना वास्ता नहीं जितना उन्हें साहित्य की पूंछ पकड़कर स्वयं साहित्य पत्रिकाओं में बने रहने से....

अंधेरे सुनसान द्वीप पर खड़े रहकर दुनिया को आंकने से दुनिया आपकी परिभाषाओं में सिमट नहीं आती. यह कहना बेहद निराशाजनक व पूर्वाग्रह पूर्ण है कि मृणाल सेन या गोविंद निहलानी ही इन्हें बनाते तो यह स्थिति न होती. मृणाल या गोविंद पर आकर दुनिया ठहर नहीं गयी. मृणाल या गोविंद कोई जादू की छड़ी नहीं, जो जहां घुमाई-पैसा वसूल. हर एक का एक नजरिया होता है. उनका भी है, जो एक वर्ग को भाता है. बस. यदि ऐसा ही है तो गोविंद और मृणाल सेन के नाम से एक मोनोपोलिस्टिक कंपनी खोलकर देश के कला और साहित्य का कांट्रेक्ट उसे ही क्यों न दे दिया जाय?

प्रेमचंद को इन कहानियों के माध्यम से करोड़ों की तादाद में वह लोगों तक पहुंचाया गया है जिन्होंने अब तक उनका नाम भर खूब सुना था पर उनकी रचनाओं में क्या है यह नहीं जाना था, आज ये कमी दूरदर्शन ने पूरी की है, जिसके लिए उसे कोसने की कोई वजह समझ में नहीं आती.

वास्तव में तो पचौरी जी का यह कहना कि प्रेमचंद साहित्य में चाक्षुष दृश्यों के प्रति सचेतना नहीं दीखती, उनकी मंशा उजागर करता है. वह चाहते हैं कि प्रेमचंद को फिल्माने के लिए चुना ही न जाता और एक ऐसा मायावी तिलिस्म बना रहने दिया जाता जिसे सिर्फ पचौरी जी जैसे विद्वानों की व्याख्या व प्रवचनों के माध्यम से ही समाज समझे.

आम आदमी इतनी बाल की खाल नहीं निकाल सकता. और दूरदर्शन आम आदमी के लिए है. जन सामान्य के लिए आसान कैनवास पर सहज सपाट रूप में आयी चीज सहजग्राह्य है. और ये सरलता प्रेमचंद की समर्थता है, फिर इससे डर कैसा? हां, पैशन के तौर पर दूरदर्शन को कोसना हो तो बात अलग है. लेकिन तब भी आपको तो ये प्रवृत्ति प्रोत्साहित नहीं करनी चाहिए.

□ प्रबोधकुमार गोविल, कोल्हापुर

भगवान-वर्ष

मुझे तो कुल मिलाकर यह आलेख ऐसा लगा कि जैसे कोई पंडित इंसान के चांद पर जा पहुंचने पर क्षुब्ध होकर अंतरिक्ष विज्ञान को ही गरियाने लगे. ये सोच कर कि चांद क्या है... चांद क्यों है, यह बताना तो मेरा धंधा था, अब क्या होगा, काश, कलमों की धार को ऐसे पहरेदार न मिलें जो उन्हें इस्तेमाल से पैना होना न देख सकें, बल्कि गुफा-गहवरों में पड़ा रखकर उसका जंग खाना या भोंथरा हो रहना जिन्हें ज्यादा सुहाए.

हमारे यहां मेहमान को भगवान समझा जाता है. तभी तो कहा जाता है. 'अतिथि देवो भव.'

दुर्भाग्यवश पिछले वर्ष भगवान का प्रकोप ही रहा. कहीं सूखा, कहीं बाढ़ तो हीं तूफान. हमारे भगवान यानि अतिथि शरद जोशी जी ने भी जेब पर हमला कर एक रुपये की हत्या कर ही दी.

परंतु भगवान को दोष देना नादानी है. आदमी की धृष्टतायें ही भगवान को प्रकोपों के लिए लाचार करती हैं. प्रकृति से हमारा खिलवाड़ ही सूखे और बाढ़ का कारज है. वहीं हम इतना ओछा और आडंबरपूर्ण जीवन जी रहे हैं जिसमें विसंगतियां ही विसंगतियां हैं. एक व्यंग्यकार को और क्या चाहिए?

आज गंभीरता का लबादा ओढ़े हम हंसना भी भूल गये हैं जबकि हंसना आदमी की जैविक आवश्यकता है. अतः हमारे स्वास्थ्य की रक्षा हेतु मुद्गल जी को हास्य-व्यंग्य विशेषज्ञ शरद जोशी जी की सेवाएं लेनी पड़ीं.

मेहमान आयेगा तो खर्चा बढ़ेगा ही. अब कहां वो जमाना और कहां वो मेहमान जो मेजबान पर बोझ न बनकर; दूध में तिनके की भांति रह लेते थे.

शरद जी आप अपनी जन्मपत्री फिर देख लें शायद दुबारा संपादक बनने का योग हो, परंतु मेहमान बन जाना हो तो पूर्व सूचित कर दें ताकि अपने घाटे के बजट में हम मूल्य वृद्धि का प्रावधान कर सकें.

"इस अंक में आपको हंसा रहे हैं और हंसी में आप मूल्य-वृद्धि का गम भूल जायेंगे. नियमित अंकों का मूल्य 7/- रुपये ही होगा." यह होली अंक का सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य था और व्यंग्यकार थे अवधनारायण मुदगल.

□ कुशल कुमार, बंबई

अभिवादन व खेद सहित

आंकड़े एक महत्वपूर्ण बिंदु होते हैं. मील के पत्थर की तरह. जैसे अगर किसी के सिर पर घने काले बाल हैं और लाखों की संख्या में हों तो अगर कोई एक दो बाल नोंच ही ले तो भी उसके बाल बचे रहेंगे. जोशी जी, सिर पीटने की कोई जरूरत नहीं है वरना लोग समझेंगे कि हिंदी साहित्य में कोई नया मदारी आ गया है जो कि डमरू बजाने की जगह सिर ठोंक-ठोंककर बजाता है. आजकल तो लोग मदारी का खेल देखकर तालियां जरूर बजाते हैं लेकिन इकन्नी नहीं देते हैं. अगर किसी के पास कहानी की समझ कुछ ज्यादा है तो आप दाल-भात में मूसरचंद बनने वाले कौन होते हैं? कहानी का अर्थ ही होता है जो हल्के फुल्के ढंग से कह दिया जाय. अगर किसी ने कह ही दिया तो आप उसे अच्छी कहानी क्यों नहीं मानेंगे ? लगता है कि आप को फुल्कियां खाने से परहेज है. जरूर उसकी आप से कभी आप का मुंह जल गया होगा और आज तक ठीक नहीं हुआ होगा.

व्यंग्य विधा को गंदे लेखन से बचाना होगा.अगर इसमें गंदगी फैल गयी तो जबरदस्त बीमारी फैलने की आशंका है क्योंकि आजकल इसी विधा में ज्यादातर लोग डूबते हैं. इसमें शोधक यंत्र लगाने की आवश्यकता है.

श्री अवध नारायण मुद्गल ने जो चाय आप को पिलायी वह लगता है कि साधारण ही थी इसीलिए यह व्यंग्य विशेषांक भी साधारण ही रहा. अगर आप को स्पेशल चाय मिली होती तो निश्चय ही यह विशेषांक भी स्पेशल होता. बहरहाल जितनी देर तक आप को चाय का स्वाद मजा देता रहा उतनी देर तक तो विशेषांक अच्छा ही लगा.

एक सुझाव मैं और देना चाहूंगा कि अतिथि संपादक की तरह ही अतिथि लेखकों का भी एक विशेषांक निकला जाय. बिना पारिश्रमिक के (विज्ञापन कम सहयोग). इससे पत्रिका के अनुमानित घाटे में कुछ कमी आयेगी. आप को कुछ लेखकों से समय पर रचनाएं न मिली हों तो उनकी रचनाएं लेकर आप एक लेट-लतीफ विशेषांक निकलवा दीजिये. शेष सब (यानी पत्रिका की सामग्री) ठीक है. अंत में शरद जोशी जी से क्षमा याचना सहित---

□ सतीश चंद्र गुप्त, इलाहाबाद

समस्या पानी ही की क्यों

अच्छा होता यदि जोशी जी अपनी रचना 'पानी की समस्या' के स्थान पर अन्य रचना प्रकाशित करवाते क्योंकि विभिन्न माध्यमों से अधिकतर पाठक इस रचना से वाकिफ हैं. 'पुलिया, गरम बोट और बकरियां' (ज्ञान चतुर्वेदी) व्यंग्य नहीं एक झन्नाटेदार तमाचा है जो पाठक के जेहन में आज की व्यवस्था के स्वरूप पर सोचने की बाध्यता को सिद्धत के साथ महसूस कराता है.

□ ई.के.सी.एच.टी.एस.टी.एच.बुस, रायपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1942 गद्य कृतियां : पर-पंखार में शिकस्ता कंगूरे (कहानी संग्रह), लहू के फूल (वृहद उपन्यास), घरौंदा और मवार (उपन्यास) प्रस्तुत कहानी 'लहू के फूल' का एक अंश है.
सहित्य अकादमी में पुरस्कृत, राज्य सभा के मनोनीत सदस्य
संपर्क : 24वेस्टर्न कोट, जनपथ, नयी दिल्ली-110001

हयात उल्लाह अंसारी

पत्थर की अप्सरा

अभी परदा उठने में बीस मिनट बाकी थे कि बंबई शहर के उच्च वर्ग के लोगों से हाल खचाखच भर गया. आज अगली सीटों के दाम सौ-सौ रुपये थे, लेकिन इस पर भी एक कुरसी भी खाली न थी. खाली होना कैसा! कल शाम से पहले ही सब टिकट बिक चुके थे.

प्रेस गैलरी में सिर्फ उन अखबारों के प्रतिनिधियों को बुलाया गया था, जिनके यहां ललित कलाओं का स्थायी स्तंभ होता था. राहत तो अब सिर्फ फ्री-लासर था, इसलिए वह अखबारी निमंत्रण-पत्र तो हासिल न कर सका और टिकट लेकर आया था, मगर उसको प्रेस-गैलरी में जगह दे दी गयी थी.

> जब मैं दो महीने की थी तब से ही मेरे दूध में जहर मिलाना शुरू कर दिया गया था और उसकी मात्रा बढ़ाते गये थे. जब मैं जवान हुई तो जहर की मात्रा इतनी बढ़ गयी कि उससे आधी मात्रा भी करके नाग को पिलायी जाती तो वह मर जाता... मैं जहर की वैसी ही आदी हो चुकी थी जैसे नशेबाज शराब का.

परदा उठने में अभी दस मिनट बाकी थे कि 'इंडियन आर्ट रिव्यू' का कला-समीक्षक डगलस आया. यह लंबे कद का अधेड़ उम्र अंग्रेज था. उसके मुंह में पाइप और बदन पर बहुत उम्दा सिला हुआ सूट था. उसने आते ही रामकृष्ण से, जो 'बंबई टाइम्स' के साप्ताहिक संस्करण का समीक्षक था, जोर से कहा, "मैंने आज तुम्हारा कालम पढ़कर यह फैसला कर लिया कि मैं भी यह अजूबा देखूंगा."

"तो मेरे लेखन में इतनी कशिश है?"

"कशिश! क्या कहते हो!! मुझे यकीन है कि इस मजमे का आधा नहीं, तो चौथाई हिस्सा सिर्फ तुम्हारी समीक्षा को पढ़कर आया है."

'बंबई टाइम्स' का साप्ताहिक संस्करण ही सिर्फ एक ऐसा अखबार था, जो सरकारी तबके में मकबूल था.

डगलस ने अपने पाइप को जलाते हुए कहा, "कृष्ण, सच कहो, नर्तकी की तरफ से कुछ कमिशन भी मिला?"

रामकृष्ण ने कहकहा लगाकर कहा, "कमिशन कैसा? करीब का जलवा तक नहीं मिला."

रामकृष्ण बहुत ही उम्दा सूट पहने हुए था.

देसाई ने राहत से कहा, "यह रामकृष्ण जो है, वह डगलस से भी ज्यादा अंग्रेज है. अंग्रेजों ही की तरह सोचता है और उन्हीं की तरह लिखता है. हिंदुस्तानी चीज तो उसे जंचती नहीं है. ऐसे आदमी क कलम से एक हिंदुस्तानी नर्तकी की तारीफ निकल जाये, यह चीज है वाकई हैरत अंगेज."

इतने में घंटी बजी और परदा हटने लगा. हाल में एकदम से सन्नाटा छा गया. स्टेज पर साजिंदों की जगह सिर्फ एक औरत नहीं थी, बल्कि आज उसके साथ आधा दर्जन मर्द भी थे.

परदा जो हटा तो स्टेज पर ग्यारह लड़कियां नजर आयीं. उन्होंने वंदना गायी लेकिन लोगों ने उसे बहुत बेलुत्फी से सुना, क्योंकि सब ऊषा के इंतजार में थे. इधर वंदना खत्म करके लड़कियां दो कतारों में बंटकर दायें-बायें हटीं और उधर संगीत एकदम से बुलंद हो गया और शिकारी परिंदे की तरह झपटती हुई ऊषा ने घुंघरुओं को बजाते हुए स्टेज के गिर्द तीन चक्कर लगाये. उसकी झपट में बिजली की कौंध भी थी और तलवार की चमक भी. उसकी हर हरकत में तेजी तो बला की थी और नजाकत बिलकुल नहीं, लेकिन जैसे ही उसके चक्कर खत्म हुए और वह स्टेज के बीच में आयी उसने अपने हाथों-पैरों, गरदन और आंखों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इस तरह संगीत के स्वर पर एकदम से रोका कि मालूम होता था कि कोई गिरती हुई दीवार 45 डिग्री पर आकर एकाएक रुक गयी हो. ऊषा रुक गयी और रुकी रही. फिर ठहराव टूटा. एक झुरझुरी-सी आयी. आंखों सें सजलता पैदा हुई और घुंघरू गुनगुनाने के अंदाज़ में बोले—"छम..छम..छम..छम छमा..छम.." अगर पहले के तीनों शानदार चक्कर फौलाद के दायरे थे, तो अब जो हरकतें देखने में आ रही थीं, वे थीं फूलों की डालियां! इन दोनों किस्म की हरकतों के दरम्यान वही जबरदस्त जज्बाती रिश्ता था, जो बिजली की कड़क और गरज के बाद हलकी बूंदों में होता है.

संगीत भी अब कोमल था और नृत्य वैसा था, जैसे सावन की फुहार. उस में नारीत्व ही नारीत्व था और वह भी घरेलू जिंदगी वाला. लगता था कि झूले में लड़कियां गा रही हैं और पकवान पक रहे हैं. दर्शक बहुत सुकून महसूस करने लगे और अपनी-अपनी सीटों में डूब-से गये. फिर यह सावन की रिमझिम वाला नृत्य तेजी पकड़ने लगा. होते-होते वह भादों की झड़ी में बदल गया. दर्शकों की आंखों के सामने मूसलाधार बारिश में नहाये हुए धान के खेत और लबालब भरे ताल तलैयों वाले घने जंगल घूम गये.

यह मूसलाधार बारिश होती रही. ताल बढ़कर झीलें और झीलें समुद्र बनते रहे. बरसते-बरसते पानी रुकने लगा; और बूंदें कम होने लगीं. कम होते-होते यह आलम हो गया कि एक-एक बूंद टप-टप अलग-अलग गिरने लगी और इसकी आवाज भी एक-एक कर के सुनाई देने लगी—"छम..छम..छम..छम..छम.."

बूंदें कम होने के बाद और कम होने लगीं और उनकी आवाज मद्धिम से मद्धिम होने लगी. ज्यों ज्यों बूंदों की आवाज मद्धिम होती जाती, दर्शकों के दिल उनके कानों और आंखों की तरफ खिसकते आते और ज्यों-ज्यों आंखों और कानों के पास दिल आते जाते, वह गुनगुनाते जाते कि सांस आहिस्ता लो, क्योंकि बहुत नाजुक वक्त है, और आहिस्ता! और आहिस्ता!!

जब इंटरवल हुआ, तब लोगों को पता चला कि नृत्य में पूरा घंटा बीत गया. नृत्य ने ऐसा कब्जा जमा लिया था लोगों के दिलों पर कि इंटरवल के हो जाने के बाद भी उनकी आंखों के सामने वह जारी रहा. वे अंधेरी बरसाती रात में किसी अकेले तारे की तरह चमकती हुई आंखें, वसंत ऋतु में पर्वतों पर चलनेवाले हवा के झोंकों की तरह लहराती हुई गरदन वे संगीत बरसाने वाली उंगलियां और वे कयामत ढानेवाले और फिर कयामत के बाद सुकून लाने वाले घुंघरू.

डगलस राहत के पास ही बैठा था. इंटरवल के बाद वह दो मिनट तक सन्नाटे में बैठा रहा. फिर अचानक ऊंची आवाज से कहने लगा, "अजूबा है, वाकई अजूबा है, बल्कि अजूबा नहीं, यह तो एक मुहाल चीज है, जो वजूद में आ गयी है. क्यों कृष्ण! तुमने इंटरव्यू की हर मुमकिन कोशिश करके देख ली या कोई संभावना छोड़ी है, जो मैं आजमा देखूं?"

"देख लो, तुम भी अपनीवाली करके!"

"मैं किसी न किसी तरह उससे मिलूंगा जरूर. ऐसी हस्ती से बात न की तो जर्नलिस्ट होना बेकार है."

डगलस के तारीफी वाक्य सुनकर रामकृष्ण की आंखों में अजीब-सी खुशी आ गयी.

राहत जब शो देखकर घर वापस आया तो उसके दिमाग में ऊषा पूर्ववत् नृत्य कर रही थी. राहत ख्वाब में भी उसको देखता रहा और दूसरे दिन और दूसरी रात को भी. उसके बाद भी ऊषा ख्वाब और जागृति में उसके दिमाग पर छायी रही.

राहत अपने आप से पूछता था कि इस नर्तकी में कौन-सी ऐसी खास बात है, जो वह मेरे दिमाग पर इतनी छा गयी है. मैं लखनऊ में एक से एक नाच देख चुका हूं. और वहां की नर्तकियों की नज़ाकतों से आनंदित हो चुका हूं. ऊषा में न तो लखनऊ के कथकों के नगीनों जैसी तराशी हुई मुद्राएं हैं, न उनकी जैसी रूपहली हंसी. और न वह पलकों के जानलेवा खम! ऊषा में तो नागिन जैसी लचक और चीते जैसी तड़प है. जिन में

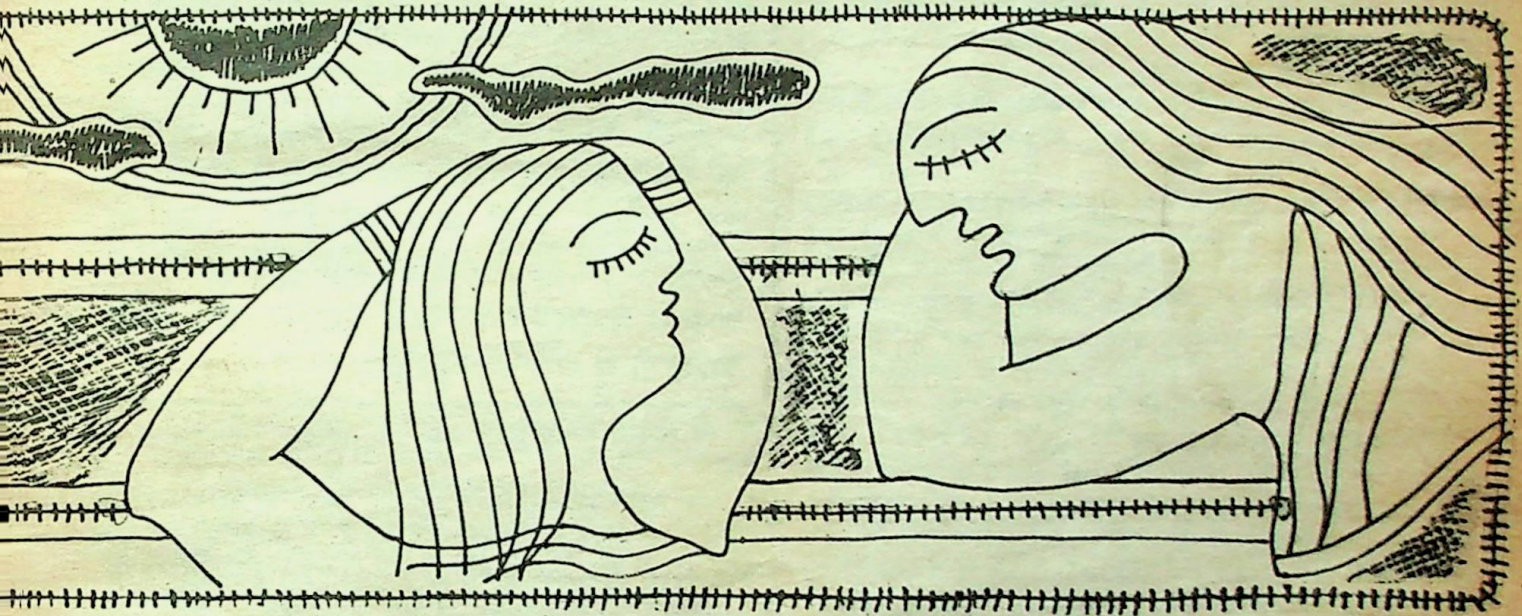

तेजी और तुंदी तो होती है, पर नजाकत नहीं होती. राहत का बेअख्तियार जी चाहता था कि किसी तरह ऊषा को करीब से देख लूं और कुछ बातचीत भी कर लूं. उसके बाद रिपोर्ट लिखूं, मगर राहत यह भी महसूस करता था कि जब बड़े-बड़े जर्नलिस्ट इस सम्मान को न हासिल कर सके, तो मैं क्या चीज हूं. राहत ने, जैसे भी बना, ऊषा से मिले बगैर उसके नृत्य पर एक लेख लिख डाला. वह अपने लेख से बिलकुल असंतुष्ट था, लेकिन देसाई ने लेख को बेहद पसंद किया. उसका इतना अच्छा मुआवजा भी दिला दिया, जिसकी राहत को बिलकुल उम्मीद नहीं थी.

जिस दिन राहत का लेख छपा, और राहत ने उसे पढ़ा, उस दिन उसके दिल ने कहा कि इस में तो ऊषा एक चौथाई भी नहीं आयी. काश! मैं उससे मिल सकूं और उसको करीब से महसूस कर सकूं.

कुछ ही दिनों के बाद ऐसा इत्तफाक पेश आ गया, जैसा जिंदगी में कम ही पेश आता है. वह यह कि राहत बस पर जो सवार हुआ, तो देखा, कि एक सीट पर ऊषा बैठी हुई है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राहत उसके बराबर की सीट पर जाकर बैठ गया, और मौका पाते ही उसने ऊषा को सलाम कर लिया. राहत को उम्मीद न थी कि सलाम कबूल होगा, लेकिन ऊषा ने इस तरह उसका जवाब दिया, जैसे जान-पहचान वाले लोग देते हैं.

"मैंने आपका शो देखा था."

"पिछले शो में आप अखबारवालों में बैठे हुए थे, मुझे याद है."

"आपको याद है? वहां तो कई हजार आदमी थे?"

"थे तो कई हजार, लेकिन ऐसी नजरें कम ही थीं जो नृत्य से गुजरकर मुझ तक पहुंचती हों."

"अपनी बात को आप कुछ और स्पष्ट कर सकती हैं?"

"जब मैं दर्शकों को सलाम करके विदा हो रही थी तो आपकी नजरों में मुझे कुछ नजर आया था."

"हां, मैंने भी उसी वक्त आपकी नजरों में कुछ महसूस किया था. तब से मेरा जी बेचैन था कि आप से कुछ बात करूं."

"आपने जो चाहा था, सो हो गया."

"यह तो कुछ नहीं हुआ. मुझे कुछ वक्त दीजिये. तो आपके निवासस्थान पर आ जाऊं."

"बस आप इतना समझ लीजिये कि हर शख्स का असल गुरु उसका भाग्य होता है."

"मैं तो निजी तौर पर नहीं, अखबार के लिए मिलना चाहता हूं."

"नहीं, मैं अखबार वालों से नहीं मिलती हूं. बाबू जी, हम लोग जंगल के पंछी हैं. शहरवालों की बातों को, अखबार को और इस तरह की चीजों को हम क्या जानें?"

राहत ने कुछ और कहना चाहा.

"नहीं, अब आग्रह न कीजिये. अगर भगवान की मर्जी है, तो फिर किसी दिन इसी तरह मुलाकात हो जायेगी, और अगर मेरे मन ने गवाही दी तो कुछ और बातें बता दूंगी."

राहत ने घर आकर उस मुलाकात और बातचीत को दिमाग में समेटा तो उसे महसूस हुआ कि ऊषा ने उससे बातें तो इस तरह कीं, जैसे जाननेवाले करते हैं, और विदा भी इसी तरह हुई, लेकिन मुलाकात करने से इंकार करने में उसने जरा भी तकल्लुफ नहीं किया. दूसरी बात यह कि उसके तौर-तरीके और अंदाज में कोई बात ऐसी ज़रूर थी, जो बेहद गैर-मामूली थी. अब राहत के लिए उस लड़की की शख्सियत ज्यादा रहस्यपूर्ण बन गयी और उसमें कशिश बेहद बढ़ गयी.

ऊषा को बंबई में आये पांच-छह माह हुए थे. इस दौरान पांच शो उसके हो चुके थे. वह शो, जो राहत ने देखा, तीसरा था. इसके अलावा चार शो क्लबों वगैरा में दिये. हर जगह मध्यवर्ग और उच्च वर्ग में उसके शो बहुत पंसद किये गये. शो के डाइरेक्टरों का ख्याल था कि अगर ऊषा के नृत्यों में कुछ अन्य चीज़ें मिला दी जायें, तो वह लोगों में भी मकबूल हो जायें और लोग इस ख्याल के मुताबिक नये शो का नक्शा भी बना रहे थे कि अचानक ऊषा ने उन लोगों से कह दिया कि अब मैं एक शो भी नहीं दूंगी और फिर उसने अपना यह फैसला तब्दील नहीं किया.

एक दिन एक रेस्तोरां में राहत की नजर एक शख्स पर पड़ी, और वह जाना-पहचाना-सा लगा. अचानक राहत को यह ख्याल आया कि वह रामकृष्ण है. रामकृष्ण अपने आला दर्जे के सूट के बजाय मामूली धोती और कुरते में था. यह वह लिबास है, जिस पर अभी कल तक रामकृष्ण की व्यंग्यपूर्ण नजरें पड़ती थीं. राहत को उसको पहचानने में जो दुशवारी हुई थी, तो उसकी वजह सिर्फ इतनी ही नहीं थी कि वह धोती और कुरते में ही था, बल्कि यह भी हुई कि उसका चेहरा बेहद बदला हुआ था. वह सूख गया था और उस पर मुरझायापन-सा था और आंखें किसी सोच में डूबी हुई और खोयी हुई थीं.

"मिस्टर राम कृष्ण!"

"आप कौन?... हां,..हां.. आप मिस्टर राहत!"

"आप तो बिलकुल बदल गये!"

"बिल्कुल तो अभी नहीं बदला हूं, लेकिन थोड़ा-बहुत जरूर बदल गया हूं, मगर हां, मेरे लिए सब लोग ज़रूर बिलकुल बदल गये हैं."

"वह कैसे?"

"वह यों कि अब पुराने लोग मुझे पहचानने में तकल्लुफ करते हैं. मैंने सूट-बूट छोड़ दिया है न!"

"आप तो बहुत सख्त किस्म के अंग्रेज-पसंद थे. सूट के सिवा आपको लोगों ने कभी किसी और लिबास में देखा ही नहीं था!..शायद कोई खास वजह है.. माफ कीजियेगा, मैं एक निजी बात की कुरेद कर रहा हूं."

"नहीं, कोई खास वजह नहीं है..."

जब राहत ने देखा कि रामकृष्ण लिबास की तबदीली की गुफ्तगू से कतरा रहा है, तो उसने दूसरा ज़िक्र छेड़ दिया, "मैंने आपका वह आर्टीकल पढ़ा था, जो आपने ऊषा के नृत्य पर 'आर्ट रिव्यू' में लिखा था. वह आर्टीकल खुद अपनी जगह पर आर्ट का एक शाहकार था."

"उस आर्टीकल को मैंने भी बहुत बड़ी तारीफ पेश की. वह यों कि 'आर्ट रिव्यू' से इस्तीफा दे दिया."

"इस्तीफा दे दिया?"

"जी हां. अब आप पूछेंगे, क्यों? तो सुन लीजिये!.. वह आर्टीकल एडीटर को पसंद नहीं आया. उसने पूछा, यह तुमने क्या लिख मारा है, प्राचीन काल का नृत्य और प्राचीन भारत की तहजीब और न जाने क्या-क्या! जवाब में मैंने यह नहीं कहा कि अगर आपको पसंद नहीं है, तो दूसरा आर्टीकल लिखकर मैं उसमें कही गयी बातों का खंडन कर दूंगा, बल्कि मैंने यह यह कहा कि यह आर्टीकल तो मेरी रूह की आवाज है. यह कहकर मैं दफ्तर से चला आया और इस्तीफा भेज दिया."

बाबा कहते थे, "बेटी तू अप्सरा है... अप्सरा को देवता के सिवा कोई हाथ नहीं लगा सकता.... जो इनसान तुम्हें हाथ लगायेगा, फना हो जायेगा." मैं इस पर खुश होती थी, अपने को अप्सरा समझकर इतराती थी, पर अब तो मैं पछताती हूं इस जिंदगी पर.

"तो आपकी सेवाएं किसी और बड़े अखबार ने हासिल कर ली होंगी?"

"क्या करोगे पूछकर, कि मैं क्या कर रहा हूं. मेरे पुराने दोस्तों का ख्याल तो यह है कि मेरा दिमाग चल रहा है.." यह कहकर राम कृष्ण बहुत जोर से हंसा. उसकी हंसी में बड़ी लताफत और कशिश थी.

"सुनो, मैं क्या कर रहा हूं. मैं आजकल ऊषा का अध्ययन कर रहा हूं. खुद ऊषा का. ऊषा के आर्ट का नहीं. ऊषा के अंदर मैं उसके गुरु देव या उसके आर्ट के रचियता की तलाश कर रहा हूं. मेरी नजर में ऊषा, ताज बीबी है, उसका आर्ट ताजमहल है और उसके पीछे एक शाहजहां है. मैं उस शाहजहां के दिल-दिमाग का अध्ययन करना और उसको समझना चाहता हूं. मिस्टर राहत, आर्ट का अगर गहरा अध्ययन करो, इतना गहरा कि अपने को उसमें समो लो तब तुम आर्ट को पा सकते हो. कैसे समझाऊं. तुमको मैं यह बात.

"राहत! ऊषा के आर्ट में जो फूल हैं, उनकी सुर्खियों में खून और उनकी पंखुड़ियों में मशीनगनें छुपी होती हैं. उसके आर्ट में जो आंसू हैं, उन में पैट्रोल के टेंक हैं और जो मुस्कराहटें हैं, उन में अपनी विजयों का विश्वास है.

"फिर क्या ऊषा ऐसी चीज़ नहीं है, जिसके अध्ययन में ज़िंदगी लगा दी जाये?" रामकृष्ण बिलकुल ही अचानक राहत को विस्मित छोड़कर, यह कहकर चला गया कि "मैं ऊषा के गुरु पर एक किताब लिखने की कोशिश कर रहा हूं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राहत सोचने लगा कि क्या इसका मतलब यह नहीं है कि वह ऊषा से मिलता भी रहा है. उससे गुफ्तगू भी करता रहता है और करीब से उसका आर्ट भी देखता है. मगर इस फिकरे का क्या मतलब है कि ऊषा की जिंदगी एक बेहद खतरनाक आर्टिस्ट का शाहकार है. उसको खतरनाक क्यों कहा?

एक रात जब राहत सोने जा रहा था कि किसी ने उसका दरवाजा खटखटाया. राहत ने उठकर दरवाजा खोला तो देखा कि देसाई है. इधर देसाई बहुत व्यस्त रहता था और राहत के पास बहुत ही कम आता था इसलिए उसका आना ही गैर-मामूली बात थी, न कि ऐसे वक्त आना.

आते ही देसाई कहने लगे, "मिस्टर राहत, आप अखबार के अच्छे रिपोर्टर भी हैं और अपनी सरकारी नौकरी के जमाने में भेष बदलकर जासूसी भी कर चुके हैं. इसलिए आप चाहें तो एक ऐसा काम कर सकते हैं जो दिलचस्प भी है और जिस की उजरत भी अच्छी मिलेगी."

"बताइये!"

"ऊषा का पता लगाना है कि वह कहां है और किस हाल में है?"

"एक महीना हुआ, मैंने उसे बंबई में देखा था."

"लेकिन यह तो पुरानी खबर है. यहां से वह बनारस चली गयी थी और वहां एक होटल में ठहर गयी थी. वहां खास ऊषा ही के कमरे में एक रात रामकृष्ण की अचानक मौत हो गयी."

"रामकृष्ण की...?"

"हां, सबको उस मौत का बहुत अफसोस है. हुआ यह कि ढाई बजे रात को ऊषा की साथी या बहन बिमला ने ऊषा की तरफ से पुलिस को टेलीफोन किया, और रामकृष्ण की मौत की खबर दी. जब पुलिस आयी तो ऊषा ने यह बयान दिया कि रामकृष्ण उससे बेहद मोहब्बत करता था और मोहब्बत ही की वजह से उसने अपनी नौकरी भी छोड़ दी थी, और अंग्रेजी लिबास और अंग्रेजी समाज को भी छोड़ दिया था. पुराने दोस्तों को भी छोड़ दिया और घर-बार भी तज दिया था. अब वह ऊषा के आर्ट पर किताब लिखने के लिए संस्कृत सीख रहा था और भारतीय नृत्य का अध्ययन कर रहा था, लेकिन ऊषा ने जवाब में मोहब्बत नहीं दी, बल्कि उसकी जान बचाने के लिए वह बंबई से अचानक किसी को पता बताये बगैर बनारस चली आयी, लेकिन रामकृष्ण ने किसी न किसी तरह उसका पता मालूम कर लिया, और उसके पास पहुंच गया. उसकी मोहब्बत का ऊषा पर भी असर पड़ा था. उसने रामकृष्ण को अपनी जिंदगी का राज बता दिया. उसने कहा कि मैं एक साधु के श्राप का शिकार हूं और मेरे चुंबन की कीमत चुंबन लेने वाले की मौत है.

"रामकृष्ण ने उसके इस खौफ को हंसी में उड़ा दिया. ऊषा ने आग्रह किया और कहा कि यह शाप वहम नहीं, हकीकत है, लेकिन रामकृष्ण न माना, और वह बराबर ऊषा को समझाता रहा कि वह वहम में गिरफ्तार है. और शाप की कोई हकीकत नहीं है. आखिर ऊषा ज्यादा इंकार न कर सकी. और रामकृष्ण ने ऊषा का चुंबन ले ही लिया. चुंबन लेते ही उसकी मौत हो गयी.

"इस वाक्ये पर दोनों औरतें हिरासत में ले ली गयीं, लेकिन जल्दी ही पोस्ट-मार्टम की रिपोर्ट देखने के बाद रिहा कर दी गयीं, क्योंकि रिपोर्ट ने मौत की वजह दिल की हरकत का बंद हो जाना करार दिया था. रिहा होकर वे दोनों उसी दिन बनारस से गायब हो गयीं. अब उनका पता लगाना है कि वे कहां गयीं. क्या आप यह काम कर सकेंगे?"

"इस काम का मुझसे क्या सरोकार? मैं अखबार का काम तो कर सकता हूं, लेकिन पुलिस का काम नहीं कर सकता! वह तो छोड़ चुका हूं."

"इसे आप अखबारी काम ही समझिये. यों समझ लीजिये कि आपको ऊषा का इंटरव्यू लेना है. अगर ले आये तो उसे हर अखबार बहुत शौक से छापेगा और अच्छे दाम भी देगा."

रूपाजीवा क्रिस्टीन कीलर

इंग्लैंड के 'वॉर मिनिस्टर' जॉन प्रोफ्यूमो ने घड़ी पर नजर डाली और फिर अपनी 'बेंटले' कार में चल दिया. आज उसे लार्ड ऐस्टर ने अपनी हवेली पर दावत पर बुलाया था. बल खाती सड़क पर उसकी भारी कार तैरने लगी. कुछ ही देर बाद वह क्लाइवडेन पहुंच गया जिसके एक कोने पर लार्ड ऐस्टर की भव्य हवेली खड़ी थी. अंदर चलकर लार्ड ऐस्टर ने उसे अपने 'स्विमिंग पूल' की तरफ से होकर गुज़ारा. हल्के नीले जल में प्रोफ्यूमो ने फिर उसे देखा था-बिल्कुल नग्न. क्रिस्टीन कीलर बिल्कुल नग्न ही नहा रही थी. गौर वर्ण, लचीला बदन, संगमरमर में तराशी मूर्ति जैसी. जब वह बाहर निकली तो उसके शरीर पर पानी की बूंदें ऐसी लगती मानो कमल की पंखुड़ी पर सुबह की ओस ठहर गयी हो.

वैसे क्रिस्टीन जैसी कई रूपाजीवाओं का अड्डा चलाता था स्टीफन वार्ड जिसके चकले में एक से एक छंटे नग भरे पड़े थे.

सबसे पहले क्रिस्टीन को स्टीफेन वार्ड ने लंदन-स्थित सोवियत दूतावास के 'नेवल अटैची' लेफ्टिनेंट कमांडर यूजीन इवानोव को अपने रूप-जाल में लपेटने छोड़ दिया था. और पहले ही बार में क्रिस्टीन उसके शयन-कक्ष की स्वामिनी बन गयी. इवानोव भी अपना मतलब सिद्ध करने के चक्कर में था.

जब तीनों भंवरे—लार्ड ऐस्टर, स्टीफन वार्ड और लेफ्टिनेंट कमांडर इवानोव—प्रोफ्यूमो को भी अपनी मंडली में ले आये तब सबसे पहले डाइरेक्टर जनरल सर सैंजर हॉलिस ने केबीनेट सेक्रेटरी सर नॉर्मन ब्रुक को इशारा दिया कि प्रोफ्यूमो को केबीनेट सेक्रेटरी ने आगाह किया तब प्रोफ्यूमो की उठक-बैठक ठीक लोगों में नहीं हो रही है. और जब प्रोफ्यूमों को केबीनेट सेक्रेटरी ने आगाह किया तब प्रोफ्यूमो को सहसा आभास हुआ कि उसकी दाढ़ी में तिनका अटका हुआ है. बदहवास होकर वह ब्रिटिश जासूस संस्था एम.आई. 5 की तरफ भागा और क्रिस्टीन-कांड को दबाने का प्रयत्न करने लगा.

पर धुआं इतना फैल चुका था कि लोग सूंघते हुए आग के पास तक पहुंच ही गये. तब कनजर्वेटिव सरकार के प्रधान मंत्री हैरल्ड मैकमिलन के कान भी घोड़े की तरह खड़े हो गये थे. और जब किसी कार्यवश मैकमिलन को बाहर जाना पड़ा तब उसके प्रिंसिपल प्राइवेट सेक्रेटरी टिमथी ब्लिग को 'डेली मिरर' पत्र के संपादक ने हुकसाया, परिणामस्वरूप बिलग ने जासूस संस्था को पीछे लगा दिया. पूछताछ होने पर प्रोफ्यूमो ने कहा भी था, "क्रिस्टीन कीलर से मेरा कोई शारीरिक संबंध नहीं हुआ है."

और फिर बौखलाये हुए प्रोफ्यूमो ने यह बयान हाउस ऑफ कॉमंस में भी दे दिया. आग फैलते ही विपक्षी दल अपने-अपने पंखे झलाकर हवा देने लगा. विशेष तौर पर विपक्षी नेता हैरल्ड विल्सन और उसके सहायक जॉर्ज विग ने हाय-तौबा मचा डाली. नतीजा यह हुआ कि मामला बिगड़ता चला गया और एक दिन प्रोफ्यूमो को त्याग-पत्र देना ही पड़ा. बात को बतंगड़ बनाने में विपक्षी दल बिल्कुल नहीं चूका और अंत में हैरल्ड मैकमिलन का सिंहासन ही हिल गया

—बाला दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊषा के हालात की तफतीश पर जिस चीज ने राहत को सबसे अधिक तैयार किया, वह खुद ऊषा थी. राहत आज भी उसकी अजीबो-गरीब शख्सियत में वही कशिश महसूस करता था, जो पहले दिन महसूस की थी. कैसी हस्ती है ऊषा भी!.. उसकी पृष्ठभूमि में भी एक अजीब-सी फिजा है. वह क्या है?

साधु के जिस शाप के बारे में ऊषा ने बयान दिया है, उसकी असलियत क्या है? अब तो ऐसा हसीन और आकर्षक राज थी ऊषा, जिसकी राहत पहले कल्पना भी नहीं कर सकता था. वह राज राहत को खींच रहा था, और आज उसको राज खोजने का मौका भी मिल गया था.

दूसरे दिन सुबह की गाड़ी से राहत बनारस के लिए रवाना हो गया, और बनारस पहुंचकर वह उसी होटल में ठहरा, जहां ऊषा ठहरी थी और जहां रामकृष्ण की मौत हुई थी. होटल में ठहरते ही राहत ने तफतीश शुरू कर दी. राहत को यकीन था कि ऊषा ऐसी औरत है, जिसको एक बार देख लेने के बाद भूल जाना आसान नहीं. इसलिए जिन-जिन लोगों का ऊषा से वास्ता पड़ा है, उनको वह याद जरूर होगी. पूछ-ताछ करते-करते राहत स्टेशन तक पहुंच गया और फिर वहां उसको वह कुली मिल गया, जिसने ऊषा का सामान उठाया था. उसे ऊषा भी याद थी, और उसकी बहन बिमला भी. कुली से यह भी मालूम हो गया कि उन दोनों ने बरेली का टिकट लिया था. राहत जब बरेली जा रहा था तो यह सोच रहा था कि जिस गाड़ी से ये दोनों औरतें बरेली गयी हैं, वह वहां रात को एक बजे पहुंचती है, इसलिए इस बात की काफी संभावना है कि उन दानों ने जनाना वेटिंग-रूम में रात काटी हो क्योंकि शहर स्टेशन से काफी दूर है. इसलिए इतनी रात गये दो औरतें अकेले तांगे पर बैठकर शहर जाने की हिम्मत नहीं कर सकती हैं.

राहत ने जनाना वेटिंग-रूम की लेडी-वेटरों से जो तीन थी, पूछ-ताछ की तो उसका अंदाजा सही निकला. उनमें से एक ने बताया कि दोनों औरतें काठ गोदाम जाना चाहती थीं. चूंकि रात की गाड़ी जा चुकी थी, इसलिए वे सुबह की गाड़ी से गयीं. काठ गोदाम पर राहत को पता लगाने में काफी कठिनाई हुई. वहां छह आदमियों ने छह औरतों का पता बताया. और हर एक का बयान ऐसा था कि राहत को शक होता था. हो सकता है, कि यही औरत ऊषा हो. आखिर राहत ने फैसला किया कि वह इन छह के छह पतों पर जाकर तफतीश करेगा.

इन छह औरतों में से तीन को देखने में राहत को सात-आठ दिन लग गये. चौथे पते पर जब राहत अलमोड़े पहुंचा, तो उसे ऊषा मिल गयी.

राहत ने उसी समय देसाई को तार दे दिया कि ऊषा मिल गयी है और अमुक-अमुक जगह ठहरी हुई है.

राहत को पूछ-ताछ करने पर इतना और मालूम हो गया कि ऊषा बीमार है. और घर से बाहर नहीं निकलती. इस घर में भंगी और एक छोकरे के अलावा अगर कोई जाता है, तो वह है डाक्टर प्रसाद.

राहत जाकर डाक्टर प्रसाद से मिला. उसे बताया कि मैं जर्नालिस्ट हूं और अपने आगमन का मकसद बताकर कहा कि आप अपने पेशे के शिष्टाचार को कायम रखते हुए ऊषा के बारे में जो कुछ बता सकें, बता दें. इन बातों में से, जिन बातों को आप मना कर देंगे, वह मेरे पास सुरक्षित रहेंगी.

डाक्टर ने कुछ मिनट मामले पर विचार किया और फिर कहने लगा, "मैं आपसे सिर्फ इतना वायदा चाहता हूं कि आप मुझसे जो कुछ भी सुनेंगे, वह अखबारों में नहीं छपेंगे."

राहत ने वायदा किया.

डाक्टर ने कहा, "ऊषा को ऐसी बीमारी है, जिसे सिर्फ संत और साधु ही अच्छा कर सकते हैं और वह ऐसे ही लोगों की तलाश में यहां आयी भी है. उसकी बड़ी बहन साधुओं के चक्कर में हर तरफ घूमी-घूमी फिरती है."

"ऊषा को बीमारी क्या है?"

"बीमारी कुछ भी नहीं. कोई एक दरख्त है जिसकी जड़ उबाल-उबालकर उसे बचपन से रोजाना पिलायी जाती रही है और अब उसकी वह इतनी आदी हो चुकी है कि उसके बगैर एक दिन भी आराम से नहीं बिता सकती... यहां आकर उसने उस जड़ का इस्तेमाल छोड़ दिया है.

"अब उसको शिकायत यह है कि वह बहुत तड़के बेहद जोश में आ जाती है, और फिर ज्यों-ज्यों सूरज चढ़ता है, सुस्त होती जाती है और तीसरे पहर को निश्चलता-सी छा जाती है. जब उसने मेरा इलाज शुरू किया, तो मैंने उसका खून, पेशाब, और सब चीजों की जांच करायी, तो सब नार्मल निकलीं. दिल, जिगर, और सब अंग भी तंदरुस्त हैं और बीमारी की कोई वजह नहीं मालूम हो सकी. मैंने कहा, कि जो तुम पीती रही थीं, वह मुझे दे दो, ताकि उसका रासायनिक विश्लेषण किया जा सके. उसने कहा कि उसके गुरु ने मना किया है. उसे किसी को देना नहीं. फिर वह कहने लगी कि वह बहुत सख्त जहर है, लेकिन मेरे लिए नहीं, क्योंकि मैं उसकी आदी हूं."

"फिर उसने जड़ का इस्तेमाल क्यों छोड़ दिया?"

"यह बात उसने मुझे नहीं बतायी और न अपनी बहन को."

"आपकी नजर में उसे क्या बीमारी है?"

"मेरा तो ख्याल ऐसा है कि बचपन से जो उसे इस बात का यकीन दिला दिया गया कि उस जड़ का पीना जरूरी है और उसे छोड़ देगी तो मर जायेगी, इस यकीन ने वहम की शक्ल अपना ली है और यह बीमारी एक तरह की मनोवैज्ञानिक बीमारी है, जिसने उसके दिल-दिमाग को

मेरा तो खयाल है कि बचपन से उसे इस बात का यकीन दिला दिया गया कि उस जड़ को पीना जरूरी है. उसे छोड़ देगी तो मर जायेगी. इस यकीन ने बीमारी की शक्ल अपना ली है और यह बीमारी एक तरह की मनोवैज्ञानिक बीमारी है.

प्रभावित कर रखा है. इस वजह से उसको दौरे पड़ते हैं. दौरों की शक्ल यह होती है, कि ऊषा सुबह मुंह अंधेरे से गाना और नाचना शुरू कर देती है. उसके नृत्य में इतनी तेजी और शिद्दत होती है कि तंदरुस्त से तंदरुस्त आदमी भी अगर इस शिद्दत से नृत्य करे, तो सिर्फ एक घंटे में थककर चूर हो जाये, लेकिन ऊषा दो-तीन घंटे तक और कभी-कभी चार-चार घंटे तक ऐसे नृत्य को निरंतर जारी रखती है. यहां तक कि थककर चूर हो जाती है और नीम-मदहोशी की हालत में गिर पड़ती है.

"मैंने बहुत सख्ती से उसे नृत्य से मना किया और कहा कि दिन भर जो कमजोरी छायी रहती है, उसमें इस नृत्य का काफी हाथ है. इसलिए उस नृत्य को बिलकुल बंद कर देना चाहिए. लेकिन ऊषा ने मेरे हुकम पर एक दिन भी अमल नहीं किया. आखिर तंग आकर मैंने परसों उसके इलाज से इंकार कर दिया, लेकिन जब उसकी बहन बिमला आकर बहुत रोने-धोने लगी और खुशामद करने लगी कि इलाज जारी रखिये, तब मैंने यह शर्त लगायी कि रोज सुबह को कुछ ऐसी बातें करो या काम करो, कि ऊषा का ध्यान बंटे और वह नृत्य में इतनी ताकत बरबाद न करे, जितनी करती है."

राहत ने दूसरे दिन मुंह अंधेरे जाकर ऊषा का दरवाजा खटखटाया. उसके घर में रोशनी हो रही थी और एक ग्रामोफोन का रिकार्ड बज रहा था. उस पर घुंघरुओं की छमाछम सुनाई दे रही थी.

जब राहत ने कई बार दरवाजा खटखटाया तो बिमला ने आकर खोला. वह राहत को पहचानने की कोशिश करती हुई बोली, "क्या बात है? आप कौन हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"डाक्टर प्रसाद ने मुझे भेजा है कि किसी तरह ऊषा का ध्यान बटाओ!"

यह सुनकर बिमला के लहजे में जो खुरदरापन था, वह गायब हो गया.

बिमला ने राहत को अंदर जा कर एक जगह बिठा दिया. जिस कमरे में राहत था, उसके बादे एक छोटा-सा गलियारा था. उससे निकलकर जो कमरा था, उसमें से रोशनी की एक किरण आ रही थी और ग्रामोफोन पर यह रिकार्ड बज रहा था : पिया बिन नाहीं आवत चैन...

अब्दुलकरीम खां का गाया हुआ रिकार्ड था, जिस में इस फिकरे की सैंकड़ों तरह तकरार की गयी थी और रिकार्ड के दोनों तरफ यही गाना था. उस गाने पर घुंघरू छम-छम कर रहे थे. बिमला के जाने के दो मिनट के बाद राहत अपनी जगह से उठा और दबे पांव कमरे से गुजर कर गलियारा तय करके दूसरे कमरे के दरवाजे पर आ गया और परदे के अंदर झांकने लगा. बिमला ग्रामोफोन के नजदीक बैठी थी, ताकि अगर एक रिकार्ड खत्म हो जाये, तो दूसरा लगा दिया जाये. ऊषा दक्षिण भारतीय किस्म की धोती बांधे हुए थी, जिसमें एक सिरा दोनों रानों के बीच से लेकर जाकर पीछे उडस लिया जाता है. ऊपर एक तंग ब्लाउज था. जूड़ा मणीपुरी अंदाज में बधा हुआ था. बांहों और जूड़े के गिर्द हार लपेटे हुए थी और 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' की गति पर इस प्रकार उड़ रही थी कि यह मालूम ही नहीं होता था कि उसके बदन का जरा-सा भी बोझ उसके पांव पर है.

रिकार्ड खत्म हो गया, लेकिन फिजा में जो उसकी गति गूज रही थी, उस पर ऊषा नृत्य करती रही. फिर बिमला ने जरा देर में रिकार्ड का रुख पलट दिया. ऊषा का नृत्य चढ़े तूफान कीं तरह जारी रहा. उसमें एक जगह ऊषा ने जख्मी की कराह की तरह सांस भरी और फिर इस तरह झुकी, जैसे रोती हुई पलकें आंसुओं के कतरे टपकाने को कांपें.

राहत के मुंह से बेअख्तियार आह निकल गयी. आह गहरी भी थी. वह कमरे में बिखर गयी. बिमला ने घबराकर दरवाजे के परदे की तरफ देखा और राहत की सम्मोहित आंखों से उसकी आंखें चार हो गयीं. फिर उसने और ज्यादा घबरा कर ऊषा की ओर देखा कि कहीं उसने भी तो यह आह नहीं सुन ली. आह पहुंची तो जरूर ऊषा तक, लेकिन ऐसा लगा कि वह आह ऊषा के कानों के बजाय उसके हाथों में आ गयी और फौरन नृत्य में ढल गयी. अब तो ऊषा के हाथ और पांव सब आहें भरने लगे. आहें भरते-भरते निढाल हो-होकर इस तरह गिर गयी, जैसे सिर्फ आखिरी सांस बाकी रह गयी हो. उस समय ऊषा के चेहरे पर वही सुकून था जो काफी रो लेने के बाद मुसीबत मारे चेहरे पर आ जाता है या फिर मुद्दतों तक मुसीबतें झेलने वालों के चेहरों पर उस समय आता है, जब वे किसी हमदर्द को पाकर अपनी सारी विपत्ति सुना चुकते हैं.

बिमल ने थर्मस से उंड़ेलकर फलों के रस का एक गिलास ऊषा को दिया. उसने पी लिया और फिर आंखें बंद करके कोच पर पड़ गयी.

सूरज की पहली किरण ने पहाड़ों को पार करके बरामदे से होकर ऊषा के कमरे में अपना जलवा दिखाया. ऊषा ने हसरत भरी आंखें खोल दीं. उसकी आंखों के खुलते ही ग्रामोफोन बोला-तन..तन..तनातन...

बिमला ने ऊषा के निर्देश के अनुसार पहली किरणों के स्वागत के लिए अपनी स्वप्निल आंखें झुका कर एक साज का रिकार्ड चढ़ा दिया था. यह काम खत्म करके बिमला ने खामोश पड़ी हुई ऊषा के कान के पास कुछ कहा और फिर इशारे से राहत को अंदर बुला लिया.

सूरज सुर्खी लिये उभर आया. उसके दाहिनी तरफ बर्फीली चोटियों की इंद्र-सभा सजी हुई थी. ऊषा ने राहत पर उचटती हुई नजर डाली और फिर उभरते हुए सूरज की तरफ देखती हुई कमरे से बरामदे में चली गयी. उस वक्त ऊषा भी इन पाक-साफ चोटियों की तरह पाकीजा और उभरते सूरज की तरह दहकती हुई नजर आ रही थी. जिस तरह लोहा चुंबक की तरफ खिचता है, उसी तरह राहत धीरे-धीरे ऊषा के पास चला गया और तकरीबन पांच मिनट तक बिना पलक झपकाये ऊषा की तरफ देखता रहा.

"ऊषा. तुम हूर हो हूर!"

"हूर क्या?"

"अप्सरा!"

"अप्सरा? अप्सरा!... बाबा कहते थे, 'बेटी! तू अप्सरा है.' फिर कहते थे, 'अप्सरा को देवता के सिवा और कोई हाथ नहीं लगा सकता है.' फिर कहते, 'बेटी! तुझे जो इंसान हाथ लगायेगा, फना हो जायेगा.' मैं इस पर खुश होती थी, और अपने को तमाम इंसानों से बरतर (उच्चतर) समझती थी और जब तक जवान नहीं हो गयी, अपने को ऐसा ही समझती रही. जब मूर्ख चेतानंद मेरे होंठों से होंठ मिलाकर दुनिया से चल बसा तो मैं भी अपने को अप्सरा ही समझकर इतराती रही पर अब तो मैं पछताती हूं इस जिंदगी पर."

"क्यों?"

"मेरा तन अब भी अप्सरा का ही तन है, पर मन अब कन्या का बन चुका है, जो काम देवता का खिलौना है, और जिसके होंठ किसी के गर्म होंठों को इस तरह ढूंढते हैं, जैसे लू का मारा पक्षी जल को.. हाय! माया का यही फेर था, जिसने मेरी मति को इस तरह छाव लिया कि मुझे ऐसा लगता है, जैसे मैं दोषी हूं."

"दोषी तुम हो या वह साधु जिसने शाप दिया था?"

"शाप!" ऊषा कड़वी हंसी हसकर करने लगी, "शाप! कैसा शाप? वह तो मेरा झूठ था. मैंने उस झूठ से पुलिस और सारी दुनिया को धोखा दिया था." ऊषा पहले से भी ज़्यादा कड़वी हंसी हंसी, "बाबा यही समझाते रहे, बेटी, तू अप्सरा है और तुझे इस बड़े पद को मरते दम तक निभाना है. तेरा जहां भी कदम डगमगाया, समझ ले कि किसी की जान गयी! और फिर बाबा कहते, 'बेटी, तू नंदा देवी को देखती है. कितनी हसीन है वह, लेकिन क्या उसे कोई आगोश में ले सकता है? नहीं, वह अछूती है. उसका हुस्न आंखों के लिए हुस्न है, लेकिन आगोश के लिए मौत.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फिर बाबा कहते, 'बेटी! जिस तरह तेरा तन सारी दुनिया से अलग है, उसी तरह तेरे विचार भी सारी दुनिया से अलग होने चाहिए और उसी तरह तेरा स्वभाव भी. तू तो संगीत है, जिसे सिर्फ कानों से वास्ता होता है. तू तो चित्र है, जिसे सिर्फ आंखों से वास्ता होता है. तू बिजली है, जिसे कोई मुट्ठी में नहीं पकड़ सकता. चांदनी है, जिससे बिस्तर नहीं गर्म किया जा सकता, समझी.'

"मैं इतरा कर कहती, 'सच बाबा? मैं ऐसी हूं. फिर पूछती, मुझे करना क्या होगा?"

'तुझे वह करना होगा, जो बड़ी-बड़ी फौजें भी नहीं कर सकती हैं. तुझे इस महान देश को विदेशियों से मुक्त कराना है. तू तो दीप है, जो खुद जल-जलकर संसार को रोशनी देता है. यह समझ ले, बेटी, कि जब तू जलकर भस्म हो जायेगी, तो आनेवालों के लिए अमर कहानी बन जायेंगी. लाखों मर्द और औरतें तेरे नाम पर फूल चढ़ायेंगे.'

"मैं पूछती, 'बापू! यह काम तो बहुत बड़ा है. मुझसे कैसे होगा?"

" यह तू मुझ पर छोड़ दे! मैं तुझे दिखा दूंगा कि मैंने तेरा जीवन व्यर्थ नहीं लुटाया. अगर तुझसे एक नेमत छीन ली है, तो उसकी जगह तुझे वह दिया है, जो राजाओं और महाराजाओं को उपलब्ध नहीं. यह याद रखना, बेटी, जो नेमत मैंने तुझसे छीनी है, उसे मैं खुद भी त्याग चुका हूं और देख चुका हूं कि मनुष्य त्याग की यह राह भी चल सकता है और लोग जितना समझते हैं, यह राह उतनी क्या, उससे आधी भी कठिन नहीं है.' यह सुनकर मैं खुशी से नाचने लगती, बाबा ने मुझे संगीत और नृत्य सिखाया और उसकी वह कलाएं सिखाते, जिसे अब भारत के विशेषज्ञ भी भूल चुके हैं और जो केवल कई मंदिरों के खंडहरों पर बनी हुई मूर्तियों में पायी जाती हैं.

" फिर बाबा ने मुझे मर्द की विशेषताएं बतायीं. उसे लुभाने की कला सिखायी. पहली नजर से लेकर बिस्तर तक के सभी गुर समझाये. बाबा ने मुझे शायराना भाषा में बातें करना सिखाया. मुझे अंग्रेजी बोलने का अभ्यास कराया...

"बाबा की जिंदगी तो बेहद सादा थी, लेकिन मेरे लिए बड़ी व्यवस्था की जाती थी. सुबह मुझे गधी के दूध से नहलाया जाता था और मेरे बालों में चंदन का तेल लगाया जाता था. फिर खुशबू में सुलगाकर मुझे उसके धुएं में बिठाकर धूनी दी जाती थी. मेरा खाना भी निराला होता था. खुश्क मेवे और ताजे मेवे भी होते थे. दूध भी और कभी-कभी चिड़ियों का मांस भी. इस तरह मैं बचपन की गोद से निकलकर जवान हुई. अचानक मेरी जिंदगी का पहला संगीन हादसा पेश आ गया. वह यह कि बाबा के तंबुओं में एक चट्टान फट पड़ी और बाबा अपने कई भक्तों सहित खत्म हो गये. हम दोनों एक झरने पर स्नान करने गयी थीं. इस लिए बच गयीं.

"बाबा के मरने के कुछ दिनों बाद उनका एक भक्त चेतानंद, जो जिंदा बच रहा था, हम दोनों को यह कहकर बंबई ले आया कि वह जानता है कि बाबा हमसे क्या काम लेना चाहते थे. बंबई लाकर उसने तरह-तरह के लोगों से हमको मिलाया और फिर एक शो का इंतजाम किया. लेकिन मेरा पहला शो देखकर वह पागल हो गया, और अपना धर्म, वचन और गुरु की आज्ञा सब को भुला बैठा. दुष्ट उसी रात मेरे बिस्तर में घुस आया. सुबह लोगों ने आकर बताया कि वह मेरे कमरे के बाहर चौखट के पास मरा पड़ा है. मुझे उसकी मौत का जरा भी अफसोस न हुआ, क्योंकि उसने अपने गुरु की अमानत में खयानत की थी और दिल का पापी निकल गया था. दिल की यह सख्ती तो बाबा ने मुझे दे दी थी."

ये बातें सुनते ही राहत पर कुछ अजीब अवस्था छा गयी, जिस तरह अंधेरी शामों में होता है, कि बिजली के एक बटन के दबते ही सड़कें और दूर-दूर जाने वाली गलियां सब रोशन हो जाती हैं. उसी तरह इस घटना ने राहत के अंदर को रोशन कर दिया. और वह उन में घूम-फिरकर अपनी बंबई की गुमराहियों के कारण तलाश करने में लग गया. वह या तो ऊषा से प्रश्न कर रहा था या अपने उद्देश्य के जायजे में खो गया... कहां गया मेरा जीवन-लक्ष्य? और कैसे पड़ गया मैं काम और मोह के जाल में?

मगर फिर किसी तरह राहत ने अपने को इस अवस्था से निकाला और कहने लगा, "बाबा ने यह नहीं बताया कि उसने जिस बड़े मकसद के लिए आपको तैयार किया था, वह कैसे हासिल करना चाहता था?"

"नहीं, अभी उसने मुझे पूरी तालीम ही कहां दी थी. जब तालीम पूरी हो जाती तब वह बताता."

"रामकृष्ण को तुम से मोहब्बत हो गयी थी?"

"हां, हो गयी थी. यह तो मुझे पहले ही दिन महसूस हो गया था कि वह ऐसा शख्स है, जो इस पैगाम को, जो मैं नृत्य की भाषा में देती हूं, पूरी तरह महसूस करता है. फिर मैंने उसका आर्टीकल पढ़ा. जब वह मुझसे मिलने आया तो मैं उस से मिलने से इंकार न कर सकी और जब मिली तो उसने मेरे दिल में अपनी जगह बना ली."

सूरज बुलंद हो गया था. लेकिन उस पर भी बहुत सख्त सर्दी थी. राहत गर्म कपड़ों में लिपटा हुआ था. फिर भी सर्दी महसूस कर रहा था, लेकिन ऊषा रेशमी धोती और ब्लाउज में थी. इस पर भी सर्दी के एहसास से बुलंद लगती थी.

ऊषा ने मुसकरा कर राहत की तरफ देखा और पूछा, "क्या आप यही मालूम करना चाहते हैं कि रामकृष्ण कैसे मरा? और इसीलिए बंबई से यहां तक आये हैं? अगर ऐसी बात थी, तो बनारस जाकर पोस्टमार्टम की रिपोर्ट देख लेते."

किसी ने जोर-जोर से दरवाजा खटखटाया. बिमला ने घड़ी देखकर कहा, "लगता है, डाक्टर साहब कुछ पहले आ गये!"

यह कह कर बिमला दरवाजे की तरफ गयी. ऊषा राहत से कहने लगी, "राहत जी, जब किसी माला की डोर टूट जाती है, तो मोती भी वही रहते हैं और डोर भी, लेकिन माला का वजूद तो खत्म ही हो जाता है. साथ-साथ मोतियों में भी वह सुंदरता नहीं रहती है और वह अपना पहले वाला फर्ज अंजाम नहीं दे सकते हैं. इसी तरह मेरे अंदर का डोरा भी टूट..."

दरवाजे पर जोर-जोर से बातें करने की आवाजें बिमला की थीं और दूसरी भी किसी औरत ही की थीं.

इतने में एक औरत गुस्से से चिल्लायी और किसी के गिरने की आवाज सुनाई दी. उसके बाद बिमला की चीख. फिर एक औरत गुस्से से बिफरी हुई हाथ में पिस्तौल लिये अंदर चली आयी.

"तुम ही ऊषा हो?"

"हां!"

"तो फिर तुम्हारा आखिरी वक्त आ चुका है." यह कहकर अजनबी औरत ने अपना पिस्तौल उठाया और ऊषा के सीने की तरफ ताना लेकिन ऊषा के सुकून में कोई खास परिवर्तन नहीं आया.

राहत, जो बिमला के गिरने की आवाज सुनते ही खड़ा होकर दरवाजे की तरफ बढ़ने लगा था और उस औरत को भागकर आता हुआ देखकर जरा किनारे हट गया था, उसने औरत को पिस्तौल उठाये देखकर गरजकर कहा, "खबरदार!" आनेवाली राहत को देखकर भौंचक्की—सी हो गयी. शायद उसको इस बात का वहम तक न था कि यहां कोई मर्द भी हो सकता है. राहत ने झपटकर अजनबी औरत के हाथ से पिस्तौल छीन लिया.

अजनबी औरत दुबली-पतली कमजोर-सी थी, लेकिन उसकी आंखों में बला की दृढ़ता थी. जैसे ही उसे अहसास हुआ कि मेरा पिस्तौल गया, वह फूट-फूटकर रोने लगी.

ऊषा ने ममता भरे लहजे में पूछा, "आप कौन हैं?"

"मैं कौन हूं? यह जानना चाहती हो, तो यह देखो!" औरत ने रोते हुए जवाब दिया और अपनी दोनों नंगी कलाइयां दिखा दीं. ऊषा के चेहरे पर फिर तनाव पैदा हो गया.

"तो आप रामकृष्ण की बीवी हैं?"

"बीवी नहीं, विधवा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप मुझे कत्ल करके पति का बदला लेना चाहती थीं?"

"हां, पापी, दुष्ट.. तूने ही मुझे विधवा किया है. अफसोस, मेरे हाथों ने साथ नहीं दिया. और मैं समय पर फायर न कर सकी."

"लेकिन मेरा कसूर?"

"मुझे यकीन है कि मेरा पति अपनी मौत नहीं मरा है, बल्कि तूने उसकी जान ली!"

"मैंने जान ली.. मैंने उसे साफ-साफ बता दिया था कि मैं विष-कन्या हूं!"

"विष-कन्या?"

"विष-कन्या!" राहत और अजनबी औरत की जबान से एकसाथ निकल गया.

"हा,हां, विष-कन्या."

"वह विष-कन्या, जो प्राचीन काल में होती थीं?"

"हां, वही! मैंने रामकृष्ण को यह बात पहली ही मुलाकात में बता दी थी, मैंने उसे बता दिया था कि मेरे बाबा ने, जब मैं दो महीने की थी, तब ही से मेरे दूध में जहर मिलाना शुरू कर दिया था, और उसकी मात्रा बढ़ाते गये थे. जब मैं जवान हो गयी, तो जहर की मात्रा इतनी बढ़ चुकी थी कि काले नाग को जब उसका आधा जहर भी पिलाया जाता था तो वह मर जाता था. दूसरी तरफ मैं जहर की वैसी ही आदी हो चुकी थी, जैसे नशेबाज शराब या अफीम के आदी हो जाते हैं. हालत यह हो गयी थी कि जिस दिन जहर की निश्चित खुराक न मिले, उस दिन मैं बिस्तर से उठ भी नहीं सकती.. यह आदत अब मेरी जिंदगी बन चुकी है.

"लेकिन मैंने राम कृष्ण के मरने के बाद से जहर छोड़ दिया है. मैं जानती हूं कि मैं उसे छोड़कर जी नहीं सकती, लेकिन जीऊं या न जीऊं.." ऊषा ने जर्द रंग के पानी वाली शीशी उठाकर कहा, "अब इस चीज का एक कतरा भी मेरे शरीर में नहीं जायेगा."

"जब तुम जानती थीं कि तुम विष-कन्या हो तो क्यों उसे अपने पास आने दिया?"

"मैंने कब आने दिया. उसे रोका. दर्जनों, बल्कि सैंकड़ों बार रोका, लेकिन जब मैं उससे कहती थी कि मैं विष-कन्या हूं, तो वह कहता कि यह वहम है वहम! जब वह वहम-वहम कहता रहा और किसी तरह न माना तो मैंने कहा कि अच्छा, यह देखो. फिर मैंने उसके सामने अपने को काले नाग से डंसवा कर दिखाया कि देखो, इस का जहर मेरे बदन पर असर नहीं करता है: इतना जहरीला है मेरा बदन."

"फिर उसने क्या किया?"

"जिस दिन मैंने उसे काले नाग से डसवाकर दिखाया था, उसी दिन वह मुझे बड़े-बड़े डाक्टरों के पास ले गया, जिन्होंने मेरा थूक और खून ले लिया. फिर दो दिन के बाद रामकृष्ण मेरे पास बहुत खुश-खुश आया, और कहने लगा कि मेरा खून और थूक नेगेटिव है. जब वह किसी तरह न माना तो मैं उसे जुल देकर बंबई से बिना पता बताये बनारस भागी, लेकिन वह वहां भी पहुंच गया. फिर भी मैं उसे रोकती रही, लेकिन उसके तपती हुई मोहब्बत, पहाड़ों के बीच घिरी हुई झील की तरह प्रेम-से लबरेज आंखें, उसके शायराना शब्द और मेरे विष-कन्या होने के विरुद्ध भारी भरकम दलीलें, यह सब चीजें धीरे-धीरे गैर-महसूस तौर पर मुझ पत्थर की अप्सरा को औरत में तब्दील करती चली गयीं, मैं अंदर-अंदर पिघलती गयी... वह जालिम रात! उस रात को मैं कब भूल सकती हूं.. वह मेरी बगल में था और मेरे कानों में अमृत घोल रहा था. उसके आग्रह के आगे में अंदर ही अंदर टूटती चली जा रही थी. फिर भी मैं जुबान से बराबर 'न न' करती रही थी. अचानक उसने मेरा हाथ पकड़कर कुछ शे'र पढ़े. फिर तो मेरा वह दृढ संकल्प, जो बर्फ की चट्टान की तरह बेमुरव्वत था, उसके प्रेम की गर्मी से पानी हो गया.. फिर जब मेरे दोनों होंठ मना करने को मिले, तो वह एक दूसरे से जुदा न हो सके, और उन पर रामकृष्ण के गर्म-गर्म होंठ..!"

"चुप रह डायन!"

"मैं डायन? लेकिन मेरा कसूर क्या है? अगर में विष-कन्या बनी तो इसमें मेरे इरादे का क्या दखल था? मैंने रामकृष्ण को अपने से किस-किस तरह दूर रखा है और उसने मेरी दृढ़ता पर कैसे-कैसे हमले किये हैं और अगर टूटी हूं, तो किसी हद पर जाकर. इन बातों को मैं कैसे बताऊं, हां, अब मैं सोचती हूं कि बाबा ने मुझे जिस लक्ष्य के लिए विष-कन्या बनाया था, अगर उसकी कोई राह मेरे सामने होती, और वह लक्ष्य मेरे लिए जीवित रहता तो शायद मैं न कर देती, लेकिन जब कोई लक्ष्य भी नहीं था, तो... लेकिन जाने दो इन बातों को! तुम मुझे कत्ल करना चाहती हो, तो लो, कत्ल कर डालो. मैं उसके लिए तुम्हारी आभारी हूंगी."

ऊषा ने झपटकर राहत के हाथों से पिस्तौल छीन लिया. उसकी झपट ऐसी अचानक और फुर्तीली थी और गिरफ्त भी ऐसी थी कि राहत के हाथ से पिस्तौल छूट गया. फिर ऊषा ने राहत की आंखों में आंखें डालकर कुछ इस तरह देखा कि राहत के सामने एक कौंधा-सा लपक गया. ऊषा की इन सभी हरकतों में कुछ ऐसा जोर और आत्मविश्वास और बेहद दृढ़ता थी कि राहत भौंचक्का-सा हो गया. उसको ऐसा लगने लगा, जैसे उस पर हिप्नाटिज़्म कर दिया गया हो. ऊषा ने पिस्तौल विधवा की गोद में डाल दिया और कहा, "हां, कर दे फायर!" यह कहकर ऊषा एक कदम हटकर, पत्थर की तराशी हुई मूर्ति की तरह खड़ी हो गयी. विधवा औरत ने पिस्तौल उठा भी लिया और निशाना लगाने की कोशिश भी की, लेकिन उसका हाथ इतना कांप रहा था कि वह पिस्तौल को सीधा तक न कर सकी. उसने मुरदा आवाज में कहा, "मैं कायर हूं." यह कहकर उसने पिस्तौल फेंक दिया.

"तुम कायर नहीं हो, मगर तुम्हारा हाथ कहता है, कि 'ऊषा निर्दोष

संभोग क्षमता का परीक्षण

ऋषि राज राही

महान कैथरिन, जिसने चौंतीस वर्षों तक रूस पर शासन किया, हव बर्जे की कामुक किस्म की औरत थी. उसने अपने पति पीटर, रूस के सम्राट, को अपने प्रेमी द्वारा मरवा दिया, क्योंकि पीटर उसकी उष्ण देह की तृप्ति में सक्षम नहीं था. उसने खुद रूस का राज सिंहासन हथियाकर अपनी कामतुष्टि के लिए दर्जनों प्रेमियों का जत्था बना लिया. सरकारी तौर पर 'कृपापात्रों' की नियुक्ति के समय वह उनकी पुंसत्व परीक्षा व संभोग क्षमता का परीक्षण कराती थी. वह अपने प्रेमियों को खूब सजा संवार कर रखती थी.

कहते हैं कि उसे पामेकिन नाम का प्रेमी सर्वाधिक पसंद था. शक्लोसूरत से तो वह सड़ियल केश, बदबूदार देहधारी, लीचड़, बदसूरत और काना था, पर उसकी कला की शारीरिक संभोग क्षमता पर कैथरिन दिलोजान से कुरबान थी.

रूस की साम्राज्ञी का यह गंवार प्रेमी उच्चस्थ सेनाध्यक्षों में एक था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है.' और वह सही कहता है. मैं हूं निर्दोष. मैं विष-कन्या नहीं हूं. अपनी मर्जी से नहीं बनी हूं. यह किसी और ने बनाया और उस समय बनाया, जब मैं दूध-पीती बच्ची थी.

"मेरी जान लेलो, मगर यह समझकर मेरी जान लो कि मैं निर्दोष हूं. मुझे नफरत न करो. मेरा दोष क्या है? मेरा दोष क्या है?... मेरा दोष क्या है? मुझ से नफरत क्यों?... मुझसे नफरत क्यों...? मुझ से नफरत क्यों?.. मुझ से नफरत?" ऊषा की आवाज डूबती गयी. आखिरी वाक्य पर वह कोच से ढलककर नीचे आ रही. बिमला ने लपककर उसे संभाला, तो देखा कि वह बेहोश हो चुकी थी.

बिमला ने नौकर को पुकारा और कहा कि फौरन डाक्टर को बुलाओ, लेकिन नौकर इतनी नींद में था कि अपनी जगह से हिल न सका.

राहत लपका डाक्टर को बुलाने के लिए और भागता हुआ चला गया. जब वह डाक्टर को लेकर आया तो डाक्टर ने ऊषा की नब्ज, सांस और दिल की हरकत देखी और फिर आज की सारी घटना मालूम की फिर उसने कहा कि "ऊषा को इसी तरह सोने दिया जाये और राहत से कहा कि "अब आप चले जाइये, और दो-तीन दिन तक ऊषा के पास न आइये."

राहत अपने होटल में आकर सो गया. शाम को वह ऊषा की ओर केवल इस ख्याल से गया कि बाहर से अंदर की गतिविधियों का जितना पता चल सकता है, चलाया जाये, लेकिन घर पहुंचते ही उसने देखा कि बाहर ताला लगा हुआ है. यह देखकर उसे चिंता हुई, क्योंकि ऊषा तो घर से निकलती ही नहीं थी. राहत डाक्टर के पास गया, और पूछा, "कुछ आपको खबर है ऊषा की?" डाक्टर ने राहत को एक पत्र दिया और कहा, "दो घंटे हुए मुझे एक छोकरे ने लाकर बिमला का यह पत्र दिया है. इससे आपको पूरी बात मालूम हो जायेगी."

राहत ने पत्र पढ़ा, तो लिखा था :

"डियर डाक्टर साहब,

ऊषा चाहती है कि वह अपना आखिरी समय उस जगह बिताये, जहां उसने बचपन और जवानी के दिन काटे हैं अर्थात नंदा देवी के दामन में, जो एक घाटी में स्थित है, उसमें वह रहना चाहती है. इसलिए मैं उसे लेकर वहां जा रही हूं. वह ऐसी जगह है, जिसका न पता बताया जा सकता है और न वहां कोई पहुंच सकता है.

खुदा हाफिज

बिमला."

पत्र पढ़कर राहत को बहुत दुख हुआ, क्योंकि वह ऊषा को उसके दुखों से निकालने के लिए कुछ करना चाहता था. बंबई ले जाकर बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाता. मनोवैज्ञानिक इलाज की भी कोशिश करता. इसके अलावा ऊषा में उसे अब नाकाबिले-बर्दाश्त कशिश महसूस होने लगी थी. ऊषा से बार-बार मिलने के लिए उसका दिल तड़प रहा था.

अब अलमोड़ा ठहराना फ़िज़ूल था इसलिए वह रवाना होकर उसी दिन काठ गोदाम पहुंच गया. रास्ते भर आंखों के सामने ऊषा का नृत्य होता रहा और कानों में गूंजते रहे उसके यह शब्द—'मेरा दोष क्या है? मेरा दोष क्या है?'

काठ गोदाम पहुंचकर एक बहुत खेदजनक खबर मिली. वह यह कि वेटिंग के बाथ-रूम में जाकर किसी औरत ने पैट्रोल छिड़ककर अपने आप को जलाकर खाक कर लिया. लोग बता रहे थे कि उसके सामान से मालूम हुआ कि उसके पति का नाम रामकृष्ण था.

यह खबर सुनकर बहुत देर तक राहत गुमसुम रहा. फिर उसने उस मौत पर दो आंसू बहाये और देसाई को सारे हालात लिखकर भेज दिये और रेल में बैठ गया. उसके अंदर भावनाओं और सोच-विचार का एक तूफान उमड़ आया, और अस्त-व्यस्त से विचार उभरने लगे.

रामकृष्ण की विधवा यहां आयी कैसे? उसको ऊषा का पता कैसे मिला? ऊषा का पता या तो मुझे मालूम था या देसाई को. अगर पता देसाई ने बताया तो क्यों? केवल हमदर्दी में! या कोई और बात भी थी? कहीं देसाई ने यह काम मेरे सुपुर्द इसी औरत की फरमाइश पर तो नहीं किया था?

फिर राहत के दिमाग का फोकस बदल गया और उसने सोचा, लो, रामकृष्ण भी गया और उसकी बीवी भी गयी और यह सब बरबादियां ऊषा के कारण हुई हैं. लेकिन यह खयाल आते ही ऊषा की आवाज कानों में आने लगी, 'मेरा दोष क्या है? मेरा दोष क्या... मुझसे नफरत क्यों? मुझसे नफरत क्यों?'

वाकई उसका दोष क्या?... क्या वह अपनी मर्जी से विष-कन्या बनी थी? और जब विष-कन्या बन चुकी थी तो जहां तक उसके बस में था, उसने अपने को प्रेम की भावनाओं से दूर रखा... तो क्या ऊषा बेकसूर नहीं है? अगर वह कसूरवार नहीं है, तो फिर कोई भी कातिल कसूरवार नहीं है. सब अपने-अपने माहौल की पैदावार हैं. माहौल? माहौल क्या है?... क्या वही व्यक्तियों को बनाता है, और उनके खयालों को भी वही ढालता है. मैं इन प्रश्नों पर सोच रहा हूं और जवाब तलाश रहा हूं. हो सकता है, कि मेरा दिल कोई जवाब दे दे, लेकिन वह जवाब क्या सही जवाब होगा?... क्या वह मेरे माहौल की मेरे मनोविज्ञान पर प्रतिक्रिया तो न होगी?

क्या सारा खेल माहौल का है? और माहौल? खुद माहौल क्या चीज है?.. राहत के दिल ने जोर से धड़ककर कहा, "जो कुछ भी असलियत हो, मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं कि मेरा सोचना और फैसला करना, यह सब माहौल की पैदावार है और मैं उसका गुलाम. क्षितिज पर से स्याही गायब हो रही थी और दूध जैसी सफेदी चौथाई आसमान तक फैल चुकी थी. बहुत सवेरे उठने वाले परिंदों ने सुबह को मोहब्बत के साथ पुकारना शुरू कर दिया. राहत थोड़ी देर उस शांत माहौल में गुम हो गया.

अचानक राहत को अपने दिल के एक कोने में एक ऐसी चीज नजर आयी कि उसके दिमाग में सनसनी दौड़ गयी. वह लेटे से बैठ गया. यह क्या? क्या यह एहसास माकूल और मुनासिब है? राहत पर ऐसा जबरदस्त जजबाती दबाव पड़ा कि उसको सांस तक लेनी मुश्किल हो गयी. आखिर बहुत देर बाद उसने फैसला किया कि मेरा अहसास सही है, और जो भी भला आदमी मेरी जगह होता, वह भी यही महसूस करता. वह एहसास, जिसने राहत को बेचैन कर दिया, वह यह था कि ऊषा की वजह से तीन जानें जा चुकी हैं, जिनमें से रामकृष्ण, और उसकी विधवा से मुझे हार्दिक सहानुभूति है, लेकिन इस पर मेरे दिल में ऊषा से जरा भी नफरत नहीं.

जब सूरज उभर रहा था, उस समय राहत निश्चय कर रहा था कि जुर्म के बारे में फैसला करने की एक दृष्टि वह होती है, जो अदालत और पुलिस में चलती है. जो हर व्यक्ति को उसके कर्मों का 90-95 प्रतिशत जिम्मेदार समझती है, लेकिन एक दृष्टि उस से बुलंद और व्यापक भी है. यह दृष्टि है, जो मुजरिम के जुर्म में समाज का कसूर भी देखती है. यह दृष्टि मुजरिम को सजा तो दे देती है, लेकिन समझती है कि उसका दिल ऐसा स्याह नहीं है, जैसे उसके कर्म बताते हैं. वहां एक कोना उज्ज्वल भी है, जिनमें नेक इरादे और इच्छाएं थीं, मगर उनको उभरने का अवसर नहीं मिला. यहां से राहत का दिमाग मुड़ गया और उसको अपनी बंबई की जिंदगी या स्वछंदता याद आ गयी, और फिर उसके दिल में वह सब कुछ उभर आया, जो ऊषा ने परमलक्ष्य की लग्न और काम-क्रोध और मोह के सिलसिले में बताया था. वह यह भी सोचने लगा कि ऊषा और रामकृष्ण की बीवी इन दोनों का अपना-अपना लक्ष्य था, लेकिन हुआ क्या? विधवा गोली न चला सकी और ऊषा को मंजिल का रास्ता न मिला. दोनों न आगे बढ़ सकीं और न पीछे हट सकीं. इसी दुविधा से घबराकर एक ने आत्महत्या कर ली और एक कर रही है. ऐसा नजर आता है, जैसे जान पर खेल जाना आसान है, लेकिन सही लक्ष्य और सही साधनों को पा लेना मुश्किल, बल्कि बहुत मुश्किल है. □

अनुवाद : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस

प्राचीन भारत में विष-कन्याएं

अभी हाल में श्री एस.डी. त्रिवेदी कृत 'प्राचीन भारत में गुप्तचर्या' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसे पढ़कर पता चलता है कि प्राचीन भारत में गुप्तचर प्रशासन के महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग थे, और राजा अपनी राजनीति का संचालन उनके बिना करने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे. इन गुप्तचरों में महिलाएं भी होती थीं.

कौटिल्य, जिनकी गुप्तचर्या व्यवस्था अत्यंत व्यापक और संपूर्ण थी, मानते थे कि वही राजा अपने शत्रुओं को मात कर सकता है जो उन्हें परास्त करने के लिए साम, दाम, दंड, भेद इन सब उपायों का प्रयोग करने के अतिरिक्त, यहां तक कि विष-कन्याओं के प्रयोग से भी न हिचकिचाये. प्रस्तुत है-प्राचीन भारत में विषकन्याओं समेत महिला-गुप्तचरों के प्रयोग का संक्षिप्त विवरण.

अपनी खोजपूर्ण पुस्तक 'प्राचीन भारत में गुप्तचर्या' में श्री एस.डी. त्रिवेदी ने प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि प्राचीन भारत में गुप्तचर्या दक्षता और निपुणता में पराकाष्ठा को पहुंची थी. और यह भी कि गुप्तचर्या भारतीयों के रक्त में है, उनकी गंध में है. वस्तुतः इस पुस्तक के माध्यम से प्राचीन भारतीय गुप्तचर्या की खुफिया दुनिया पर एक नजर डालते ही कम से कम यह पता तो चल ही जाता है कि इस विद्या और कला में प्राचीन भारतीय आज के रूस व अमरीका जैसे विकसित देशों में, जो अपनी के.जी.बी. और सी.आई.ए. गुप्तचर्या-व्यवस्था पर गर्व करते रहते हैं, कितना आगे था.

ये तथा अन्य विकसित देश— इंग्लैंड, फ्रांस आदि अपनी-अपनी गुप्तचर्याओं में शायद ही कोई ऐसा नया तरीका अपना रहे हों जिसका आविष्कार और प्रयोग प्राचीन भारत में न हो चुका था.

विषकन्याओं के रूप में जानी जाने वाली कुमारी गुप्तचर, जो अपने रूप सौंदर्य के बल पर विरोधी को आकर्षित कर अंततः उनका काम तमाम कर देती थीं, का उपयोग कौटिल्य बड़ी कुशलता के साथ करते थे. लेकिन, उनसे पूर्व भी रूपवती स्त्रियों का उपयोग ऋषियों-मुनियों को तप से डिगाने, तथा राजाओं से उनकी सत्ता हथियाने के उद्देश्य से किया जाता रहा है, इसके अनेक उदाहरण हमारे प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध हैं. मेनका, उर्वशी आदि अप्सराओं का प्रयोग देवताओं ने इसी उद्देश्य से किया था.

विषकन्याओं का सीधा संबंध गणिकावृत्ति से है. कारण, उनका चुनाव गणिकाओं के विभिन्न वर्गों में से किया जाता था. और गणिकावृत्ति की परंपरा हमारे देश में अति प्राचीन है. वैसे सिंधु घाटी सभ्यता के काल में भी गणिकाएं होती थीं, इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं. मोहनजोदड़ो में नृत्य करती हुई जिस नवयुवती की कांस्य-मूर्ति उत्खनन में मिली थी, उसके बारे में पुरातत्ववेत्ताओं का विश्वास है कि वह एक 'पवित्र गणिका,' (देवदासी) की मूर्ति है. वेदों में 'पुंश्चली' शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है, जो वेश्या का पर्याय है. वैदिक काल में 'पुंश्चली' को भी 'पवित्र गणिका' (देवदासी) माना जाता था. अथर्ववेद में दासियों का भी उल्लेख है, जो वास्तव में गणिकाएं ही थीं. किंतु उस काल में गणिकाओं को समाज में सम्मानीय स्थान प्राप्त था, और आज की वेश्याओं की भांति उन्हें द्वेष दृष्टि से नहीं देखा जाता था. धार्मिक वृत्ति के अनेक विद्वान दासीपुत्रों को ऋषि-तुल्य माना जाता था.

वैदिक काल में गणिकाओं का मुख्य कार्य राजाओं तथा धनी व्यक्तियों को यौन-सुख प्रदान करना था. किंतु ऐसे अनेक उदाहरण भी मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि कभी-कभी राजा उनका उपयोग विरोधी राजाओं को लुभाकर, उन्हें निर्बल बनाने में करते थे और धनाढ्य लोग उन्हें अपने विरोधी व्यापारियों के पास भेजते थे, ताकि वे उनकी संपत्ति के भेद प्राप्त कर सकें, या छल से उनकी हत्या कर सकें.

मत्स्य-पुराण में एक कथा आती है, जिसे गणिका-वृत्ति की जन्म कथा माना जाता है. इस कथा के अनुसार; एक बार ब्रह्मा ने शिव से पूछा कि क्या उन्हें गणिकाओं के आचार-व्यवहार से संबंधित नियमों का पता है. शिव ने उन्हें भगवान कृष्ण की सोलह हजार रानियों की एक कथा सुनायी, जिसके अनुसार, कृष्ण ने एक बार देखा कि मद्यपान के पश्चात शांब नामक एक यात्री को, अपनी ओर आकर्षिक करने का प्रयास कर रही है. कृष्ण ने उन्हें शाप दिया कि लुटेरे उनके साथ बलात्कार करेंगे, और उसके बाद उन्हें दासियों का-सा जीवन व्यतीत करना पड़ेगा. अंत में, सालभ्य नामक ऋषि उन्हें इस दासता से मुक्ति दिलायेंगे. जब दासी और वेश्या जैसा जीवन बिताने को मजबूर इन भूतपूर्व रानियों की भेंट ऋषि सालभ्य से हुई तो उन्होंने उनसे अन्य प्रश्नों के साथ यह प्रश्न भी पूछा कि उन जैसी दासी वेश्याओं को कैसा आचरण करना चाहिए. ऋषि ने उनसे कहा, "शुभ दिवसों पर ब्राह्मणों को अन्न, स्वर्ण तथा गायों का दान करती रहो. हर रविवार को सोलह शृंगार करके, गुप्तांगों सहित अपने सब अंगों का स्पर्ष करते हुए, कामदेव की पूजा करो. यह क्रम तेरह महीने तक चलना चाहिए. अंतिम महीने में, ब्राह्मणों को बुलाकर, उनकी पूजा करते हुए कहो, 'हे विष्णु, मुझे काम और केशव में कोई अंतर नहीं दिखायी पड़ता, कारण आप भी कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमला का साथ नहीं छोड़ते. पूजा के बाद, कामदेव की सोने की प्रतिमा ब्राह्मणों को भेंट करो." इस पूजा के बाद किसी भी रविवार को कोई भी ब्राह्मण आकर उस दीक्षित गणिका का उपभोग कर सकता था. प्रायः ये ब्राह्मण अपनी प्रिय गणिका का उपयोग अपने विरोधियों पर जासूसी करने के लिए भी करते थे.

गुप्त काल में रचित 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' नामक एक पुस्तक में गणिकाओं की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा कही गयी है— सम्राट भरत ने एक बार सागर की सब पुत्रियों का अपहरण कर उनके साथ विवाह कर लिया. लेकिन, बाद में उन्होंने उन सबका परित्याग कर दिया और एक पत्नीव्रत का पालन करने लगे फिर उन्होंने उन परित्यक्त स्त्रियों को आठ गणों में विभाजित कर दिया (जिसके कारण वे गणिकाएं कहलायीं) सर्वोच्च गणवाली स्त्रियों को 'गणिकाओं' की उपाधि मिली और निम्नतम गणवाली स्त्रियों को 'कुंभदासी' की.

महाभारत पढ़ने से ज्ञात होता है कि दुर्योधन की सेना में भांति-भांति के शिल्पियों के साथ गणिकाएं भी पीछे-पीछे चलती थीं, जो रात्रि में अपने पास के सैनिकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ विपक्षी शिविर में जाकर वहां के गुप्त भेदों का पता भी लगाती थीं. तब से, गुप्तचर्या सुंदर और समझदार गणिकाओं का एक गणिका-धर्म ही बन गया. गुप्त काल और मौर्य-काल में जिन्हें भारतीय इतिहास का स्वर्ण-काल माना जाता है, गणिकाएं युद्धों में अपने पक्ष की सेनाओं के साथ रहती थीं, और वही दोनों भूमिकाएं, गणिकाओं की और गुप्तचरों की, निभाती थीं, जो उन्होंने महाभारत-काल में निभायी थी.

गुप्तचरों और गुप्तचर्या के जो वर्णन हमें अपने प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद से लेकर, संहिताओं, रामायण और महाभारत आदि ग्रंथों में भी मिलते हैं, उनमें महिला गुप्तचरों की भूमिका का भी उल्लेख आता है, जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि गुप्तचर्या के हमारे प्राचीन इतिहास में उन्होंने आरंभ से ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है.

साधारणतः कौटिल्य को 'भारतीय गुप्तचर्या का पिता' माना जाता है. किंतु, उन्होंने भारतीय गुप्तचर्या के सिद्धांतों का निर्धारण ही नहीं किया था, हजारों वर्षों से भारत में प्रचलित गुप्तचर्या के सिद्धांतों तथा उनकी विधियों और परंपराओं आदि का संकलन कर उन्हें एकसूत्रता और क्रमबद्धता भी प्रदान की थी. उन्होंने गुप्तचरों द्वारा गुप्त सूचनाएं जमा करने की पद्धतियों को संहिताबद्ध कर, अपनी विख्यात कृति 'अर्थशास्त्र' में प्रस्तुत किया. गुप्तचरों का उपयोग सुचारू शासन-व्यवस्था के लिए कैसे किया जाये, उसका विशद-विस्तृत वर्णन 'अर्थशास्त्र' में बड़ी स्पष्टता और संपूर्णता के साथ किया गया है.

कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि 'विष-कन्या' रूपी महिला-गुप्तचरों की कल्पना सर्वप्रथम कौटिल्य के मन में ही आयी थी. वे रूपवती, कामिनी और आकर्षक युवतियों को राज्य की सेना में लेकर उन्हें विरोधी राजाओं, सेनापतियों आदि के मन मोहकर उनसे उनकी सेना के गुप्त भेद प्राप्त करने की कला में पारंगत कर विशेष प्रशिक्षण प्रदान करते थे. उनके शरीर में विख्यात चिकित्सकों द्वारा धीरे-धीरे अत्यल्प मात्रा में, ताकि यह स्वयं उन्हें कोई हानि न पहुचा सके, विष पहुंचाया जाता था जिसके प्रभाव से उनके साथ संभोग करने वाले व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो जाती थी. ऐसी गुप्तचर-युवतियों को उन्होंने 'विष-कन्या' का नाम दिया था. बाद में, यह नाम महिला मात्र का पर्याय बन गया.

'अर्थशास्त्र' के अनुसार मौर्य-काल मे 'पुंश्चली' नाम से जानी जाने वाली वेश्याओं से अनिवार्य रूप से विपक्ष की जासूसी करने को कहा जाता था. इसका एक कारण संभवतः यह रहा होगा कि जहां उच्च वर्ग की गणिकाओं को विपक्षी राजमहलों में प्रवेश पाने में कठिनाई होती थी, वहां 'पुंश्चलियों' (दासी वर्ग की वेश्याओं) के लिए यह कार्य अपेक्षाकृत आसान

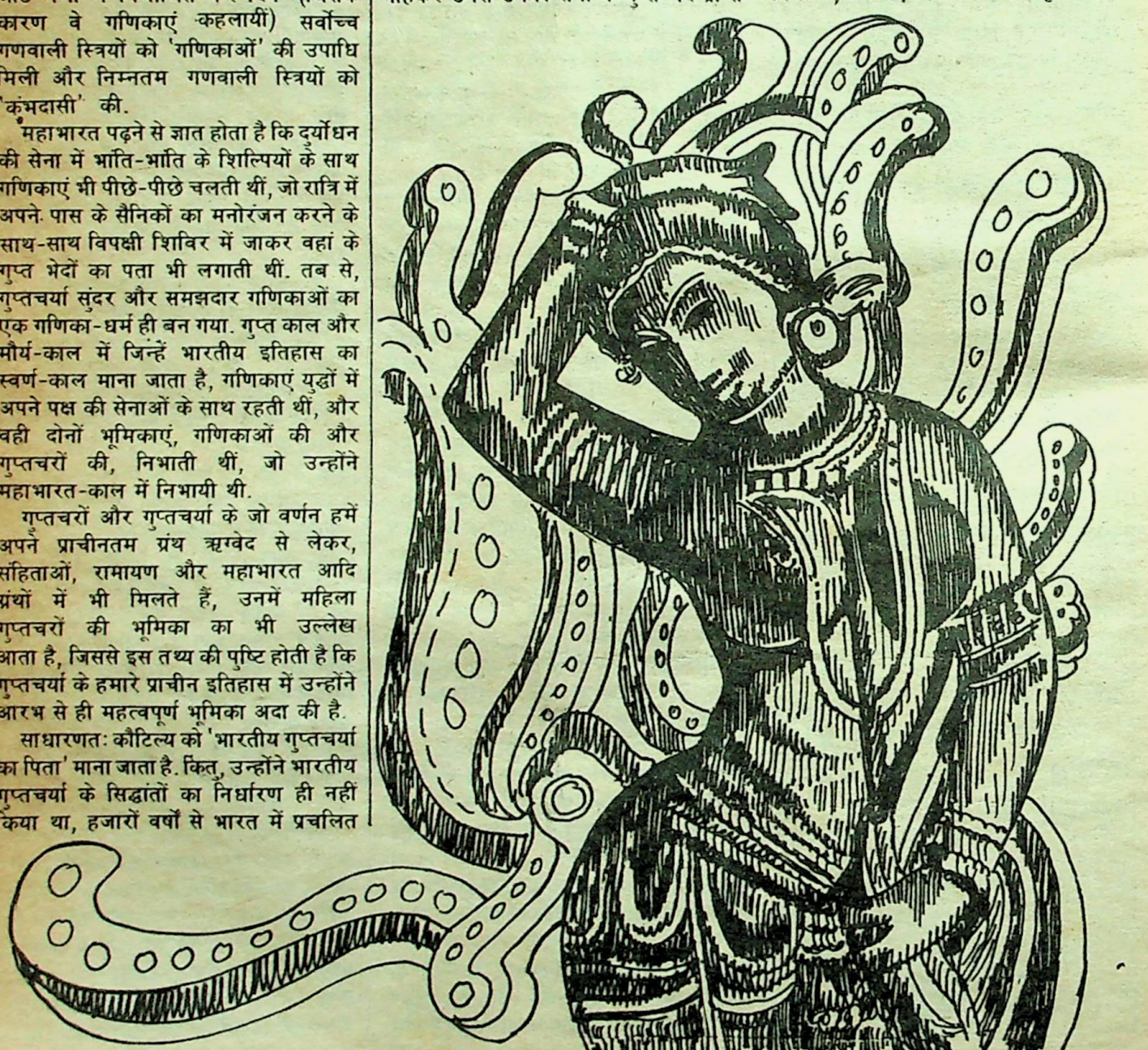

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. कौटिल्य गणिका-गुप्तचरों का प्रयोग राजशुल्क देने से बचनेवाले या कम मात्रा में शुल्क देनेवाले धनाढ्य व्यापारियों तथा रिश्वत लेने वाले सरकारी अधिकारियों की सही संपत्ति का पता लगाने के लिए भी करते थे. वही काम, जो आजकल हमारे देश के राजस्व विभाग का गुप्तचर किया करता है.

कौटिल्य के बाद, एक लंबे अर्से तक हमारे देश के राजा, कौटिल्यकृत 'अर्थशास्त्र' की गुप्तचर्या के लिए अंतिम सिद्धांतों की परिभाषा करने वाली अंतिम कृति मानकर, उसका निरंतर अध्ययन करते रहे और उसके बताये हुए गुप्तचर्या के रास्तों पर चलते रहे.

यही कारण है कि हमें शूद्रक, कालिदास, भास, माघ, भारवि, दंडी तथा बाण आदि विभिन्न कालों और राज्यों में जन्में साहित्यकारों व नाटककारों की रचनाओं में गुप्तचर्या की विभिन्न विधाओं के बारे में पढ़ने को मिलता है. विशेष रूप से,उनके नाटकों में उसका विशद वर्णन पढ़कर, अनुमान लगाया जा सकता है कि किस प्रकार गुप्तचर्या भारतीय राजनीति का एक अविच्छिन्न अंग बन गयी थी.

संस्कृत के अमरग्रंथ 'अमर कोश' में गुप्तचरों के अनेक पर्याय नाम दिये हैं. अधिकांश मामलों में ये पर्याय नाम गुप्तचर-विशेष के कार्य को इंगित करते हैं. ये पर्याय नाम पुरुष और महिला, दोनों लिंगों के गुप्तचरों पर समान रूप से लागू होते हैं.

कनिष्क तथा याज्ञयवल्क्य की कृतियों में भी प्राचीन भारत के गुप्तचरों और उनकी गुप्तचर्या का विस्तृत वर्णन है. इन सब कृतियों में गुप्तचर को ज्यादातर 'चर' कहा गया है. विशेष जासूसी के लिए भेजा जाने वाला 'चर' प्रहित बन जाता था. छद्मवेश में जासूसी करने वाले जासूस को 'अपसर्प' के नाम से पुकारा जाता था. कुछ ग्रंथों में ऐसे जासूसों को 'गंध पुरुष' भी कहा गया है. विश्वसनीय गुप्तचर को राजा 'आप्त' कहकर पुकारते थे और उसके गुप्तचार को 'प्रत्यापिता.'

कौटिल्य, जिन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में अपने राज्य में गुप्तचरों पुरुष व महिला दोनों का जाल-सा बिछा रखा था, उनकी कार्यक्षमता के अनुसार 'पथिक', 'अपसर्प', 'उत्पथिक', 'उभयवेतन,' 'उपनिषद' आदि उपाधियां प्रदान करते रहते थे.

उन्होंने गुप्तचर्या की विद्या को 'संचार' और 'समस्त' इन दो विभागों में विभाजित किया था. 'समस्त' गुप्तचर्या-व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करनेवाले पुरुष और महिला गुप्तचर अपना कार्य महलों और नगरों में रहकर करते थे. जबकि 'संचार' गुप्तचर्या-व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करनेवाले पुरुष और महिला गुप्तचर अपना कार्य बाहर रहकर करते थे.

'समस्त' गुप्तचर्या व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करनेवाले पुरुष और महिला गुप्तचरों को कौटिल्य ने पांच श्रेणियों में बांटा था. (1)- नकली (कापालिक) छात्रछात्राएं, जो असली छात्र-छात्राओं के बीच रहकर उनकी गतिविधियों के समाचार शासन को देते रहते थे. (2)- भिखारी के रूप में जासूसी करनेवाला गुप्तचर–(उपास्थित) (3)- निर्धन कृषक के रूप में जासूसी करने वाला गुप्तचर-गृहपथिक. (4)- व्यापार की आड़ में जासूसी करनेवाला गुप्तचर–'वैदेहक'. (5)- साधु के रूप में लोगों के बीच जासूसी करने वाला जासूस-'तापस'.

'संचार' गुप्तचर्या-व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करनेवाले पुरुष और महिला गुप्तचरों को कौटिल्य ने इन वर्गों में विभाजित किया था: (1)-सत्तरिण : जादू या वाक-पटुता के बल पर अजनबियों के मन जीतकर, उनके भेद जान लेनेवाला गुप्तचर. (2)- तीक्ष्ण : वह गुप्तचर, जो एकांत में अपने विरोधी को समाप्त कर दे. (3)- रसदा : अपने विरोधियों को विषादि देकर समाप्त करने वाला गुप्तचर.(4)- भिक्षुकी : ब्राहमण विधवा के रूप में महलों में रहनेवाली तथा प्रतिष्ठित कुल की महिलाओं के भेद जानने में निपुण महिला गुप्तचर.

जहां तक महिला गुप्तचरों का प्रश्न था, वे वेश्याओं; संपेरिनों, गणिकाओं, अभिनेत्रियों, धर्मप्रचारिकाओं आदि रूपों में जासूसी करती थीं. शायद ही ऐसा कोई पेशा रहा हो, जिसे महिला-गुप्तचरों ने आड़ के रूप में न अपनाया हो.

गुप्तचरी का प्रशिक्षण करनेवाली महिलाओं को जल्दी से वेश और शक्ल बदलने, गुप्त संकेत देने और प्राप्त करने, अफवाहें फैलाकर लोगों से असलियत का पता लगाने, डरा-धमका या फुसलाकर मामूली लोगों से अपेक्षित जानकारी प्राप्त करने आदि की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी.

कौटिल्य अपने गुप्तचरों को पूरी तरह अपने नियंत्रण में रखते थे, और आवश्यकता पड़ने पर गुप्तचरों की गतिविधियों पर निगाह रखने के लिए अन्य गुप्तचरों की नियुक्ति करने में भी नहीं हिचकते थे. ऐसे गुप्तचरों को वे 'उभयवेतन' गुप्तचर कहते थे.

अपने गुप्तचरों को कौटिल्य के कड़े आदेश थे कि वे सारी सूचनाएं सीधे उन तक ही पहुंचाएं. 'मुद्राराक्षस' में एक गुप्तचर यही करता है. 'किरातार्जुनीयम्' में युधिष्ठिर के गुप्तचर अपने संदेश सीधे उन तक पहुंचाते थे. 'उत्तर रामचरित' में भी दिखाया गया है कि गुप्तचर अपने संदेश सीधे राजा को देते हैं. मध्यस्थ द्वारा सूचनाएं भेजने में उनके शत्रु तक पहुंचने, ठीक समय पर न पहुंचने या सही रूप में न पहुंचने के खतरे थे. महाभारत के 'शांतिपर्व' में भीष्म ने राजा युधिष्ठिर को गुप्तचर्या के बारे में अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान की हैं. उन्होंने भी महिला गुप्तचरों से काम लेने की आवश्यकता पर बल दिया है. उन्होंने कहा है, "बुद्धिमान राजा अपने गुप्तचरों की सहायता से गिद्ध जैसी दूरदृष्टि रखे, भेड़िये की भांति दुबका रहे, कुत्ते की भांति सजग रहे, सिंह जैसा पराक्रम दिखाये, कौए की भांति चौकन्ना रहे और सांप की तरह बेधड़क शत्रु के दुर्ग में घुस जाये." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 22 अगस्त, 1924
प्रमुख कृतियां : कबिरा खड़ा बाजार में' विकलांग श्रद्धा का दौर सदाचार का ताबीज, परसाई रचनावली, रानी नागफनी की कहानी
संप्रति : स्वतंत्र लेखन.
संपर्क : 1527 नेपियर टाउन, जबलपुर

हरिशंकर परसाई

सर्वे और सुंदरी

साहब ने कहा, "नक्शे? मैं तो सोचता था आप मेरी जान मांगेंगीं. मैं जान निकालने के लिए तैयार बैठा था, नक्शा तो मामूली चीज है. जितनें चाहें ले लीजिए. आप चाहें तो मैं आपको पूरा देश दे सकता हूं."

जब से खबर पड़ी है कि सर्वे आफ इंडिया के किसी दफ्तर में दो पाकिस्तानी सुंदरियां एक अफसर के साथ रात-भर रहीं और सुबह नक्शे लेकर फरार हो गयीं, तब से मन डांवाडोल है. सर्वे का एक दफ्तर हमारे घर के पास ही है. मैं रोज उसके सामने से निकलता हूं. मैंने आज तक यह नहीं सोचा था कि इस भद्दे, अभागे दफ्तर में इतनी कोमल संभावनाएं छिपी हैं कि इसमें इतने दूर पाकिस्तान से आकर सुंदरी रात बिताती है. दिन में यह दफ्तर रहता है और रात को पाकिस्तानी सुंदरी के लिए रेस्ट हाउस हो जाता है. यह दफ्तर बड़ा प्यारा लगने लगा है.

एक साहब तो इतने दीवाने हो गये कि मुझसे कहते हैं—मुझे सर्वे आफ इंडिया में नौकरी दिला दो. सारी जिंदगी मास्टरी में बरबाद कर दी. अगर शुरू में सर्वे आफ इंडिया में भरती हो जाता तो आज मेरे साथ भी इस दफ्तर में पाकिस्तानी सुंदरी रात बिताती.

ये साहब घर से बढ़िया कपड़े पहनकर जाते हैं और घंटों सर्वे के दफ्तर के पास खड़े होकर उसे ललचायी नज़र से देखते हैं. फिर उसके फाटक को चूमकर घर आ जाते हैं. रात को नींद नहीं आती. घरवाले परेशान हैं कि ये रात को 'सर्वे-सर्वे' क्यों चिल्लाते हैं. मैंने उनके परिवारवालों से कह दिया है—इनकी भक्ति जाग उठी है. ये 'सर्वेश्वर' का लघु रूप 'सर्वे' कहकर भगवान का भजन करते हैं.

उस दफ्तर की घटना की जांच केंद्रीय ब्यूरो कर रहा है. उसका ब्यौरा जब आयेगा, तब आयेगा. मैंने उस रात की घटना की कल्पना कर ली है—

साहब क्वार्टर में बैठे थे कि चपरासी ने आकर कहा, "साहब, दो औरतें आयी हैं."

साहब ने पूछा, "औरतें तो बहुत होती हैं. ये कैसी हैं?"

चपरासी—"सूबसूरत हैं साब."

साहब ने उसे डांटा—"तो तूने उन्हें औरत क्यों कहा?"

साहब फौरन बाहर आ गये. देखकर गद्‌गद हो गये. पूछा, "कहां से आयी हैं?"

वे बोलीं, "पाकिस्तान से."

साहब ने कहा, "अच्छा, पाकिस्तान से इतने अच्छे हमारे संबंध हो गये कि वह टैंकों के बदले सुंदरी इधर भेजता है. आगे होनेवाले चुनाव के कारण पाकिस्तान ने हमसे रिश्ते सुधार लिये होंगे."

एक सुंदरी बोली, "हां साहब, वहां हुक्म हो गया है कि जितनी खूबसूरत औरतें चाहें, भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चली जायें."

साहब ने कहा, "सुंदरियो, यह तो बताओ कि इस इलाके में इतने साहब हैं, पर तुमने अपनी मेहरबानी के लिए मुझे ही क्यों चुना?"

सुंदरी—"इसलिए कि हमने आपकी बड़ी तारीफ सुनी है. सुना है, आप बड़े मेहमाननबाज हैं."

साहब खुश हुए. बोले, "तो फिर भीतर तशरीफ लाइए."

सुंदरियों ने कहा, "नहीं, हमें हिदायत है कि हम घर में नहीं, दफ्तर में ही रहें. हमें एक महीना भारत घूमते हो गया. कभी हम सेल्स टैक्स के दफ्तर में सो जाती हैं और कभी सिंचाई विभाग में. आज तो हम सर्वे के दफ्तर में ही सोयेंगी."

साहब ने कहा, "जैसी आपकी मर्जी. दफ्तर आपका है. जब तक जी चाहे रहिए."

साहब उन्हें लेकर दफ्तर पहुंचे. वहां सुंदरियों ने कागजों के पुलिंदे देखे. पूछा, "साहब, ये क्या है?"

साहब ने कहा, "इस इलाके के नक्शे हैं. लड़ाई के वक्त काम आते हैं."

सुंदरियों ने नक्शे उठा लिये. कहा, "साहब, ये नक्शे हम ले लें?"

साहब ने कहा, "नक्शे? मैं तो सोचता था, आप मेरी जान मांगेंगी. मैं जान निकालकर देने के लिए तैयार बैठा था. नक्शा तो मामूली चीज है. जितने चाहें, ले लीजिए. आप चाहें तो आपको मैं पूरा देश दे सकता हूं. देश ही उठा ले जाइए."

सुंदरी ने कहा, "मगर हिंद-पाक लड़ाई के वक्त ये नक्शे पाकिस्तान के काम आये तो?"

साहब ने कहा, "वह लड़ाई होगी ही नहीं. जो पाकिस्तान हमारे पास हूरें भेजता है, वह लड़ाई भला क्यों करेगा? और नक्शों का क्या! दूसरे बनवा लेंगे."

सुंदरियां नक्शे लेकर चलने लगीं तो साहब ने कहा, "आधी रात को अब कहां जायेंगी. जमाना खराब लगा है. सुबह चली जाइयेगा."

वे रुक गयीं.

थोड़ी देर बाद एक बोली, "नहीं, नहीं, यह क्या करते हैं?"

साहब ने कहा, "सर्वे का आदमी हूं न. सर्वे करना मेरी आदत बन गयी है. जरा तुम्हारे जिस्म का सर्वे कर रहा हूं. नक्शा बनवाऊंगा."

रात गुजारकर सबेरे सुंदरियां नक्शे लेकर चलीं. साहब ने कहा, "आज और रह जातीं तो कुछ नक्शे और दे देता."

उन्होंने कहा, "फिलहाल इतने ही काफी हैं. ये हम दे आयें. दुबारा फिर आ जायेंगी."

साहब ने कहा, "कुछ नये नक्शे बन रहे हैं. मैं खबर दूंगा तो लेने तो आ जाओगी न."

सुंदरियों ने आने का वादा किया और चंपत हो गयीं.

कुल इतनी-सी बात है. मगर संसद में शोर कितना हुआ. इतनी दूर से सुंदर स्त्री बड़ी आशा लगाकर आये और हमारा अफसर क्या इतना हृदयहीन हो जाये कि दो-चार नक्शे भी न दे?

सुना है, केंद्रीय ब्यूरो मामले की जांच कर रहा है. हो सकता है कि ब्यूरो की जांच का नतीजा यह निकले कि यह सब झूठ है. कोई नक्शे दफ्तर से नहीं गये. फिर भी मेरा ऊपर दिया ब्यौरा जहां का तहां रहेगा—यानी अगर कभी आगे भी सर्वे के नक्शे पाकिस्तान जायेंगे तो इसी तरह जायेंगे.

इस मामले में एक ही बात मुझे अखर गयी और मैं बलराज मधोक को मुंह दिखाने लायक नहीं रहा. वह अफसर हिंदू है. बलराज मधोक का कहना है, "हर हिंदू देशभक्त है और अहिंदू गद्दार." अब नारा यों बदलना पड़ेगा, "हर हिंदू देशभक्त है—सुंदरी के आने तक." □

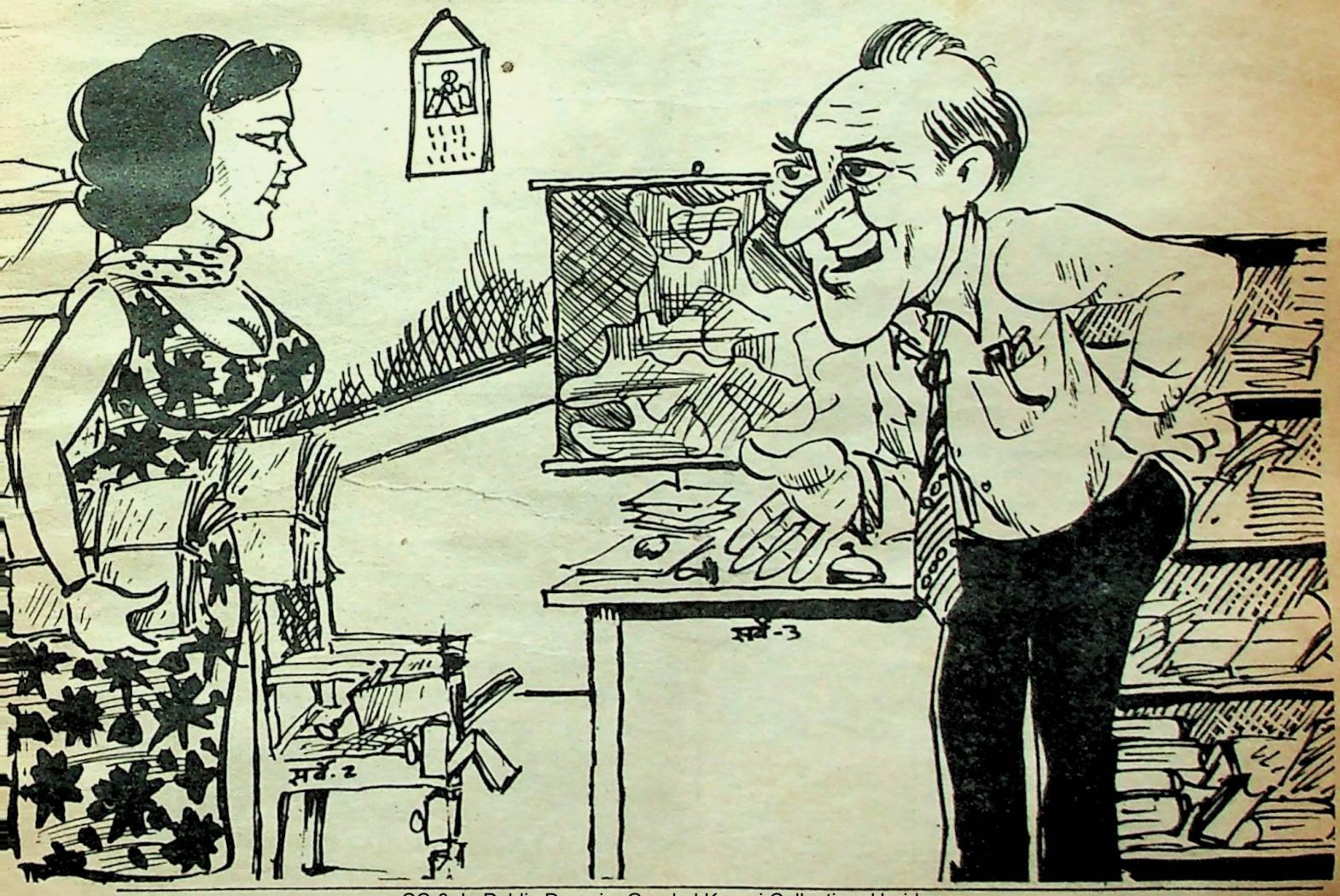

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1947
प्रमुख कृतियां : दरअसल, यह कल्पना लोक नहीं
संप्रति : सारिका संपादकीय विभाग से संबद्ध
संपर्क : 421 एफ पॉकेट 2, मयूर विहार, दिल्ली-110091

सुरेश उनियाल

विलक्षणा

वृहद् कथा, विशाखदत्त के नाटक 'मुद्राराक्षस', प्रसाद के निबंध 'चंद्रगुप्त मौर्य' तथा अन्य उपलब्ध स्रोतों के कंकाल पर कल्पना के मांस-मज्जा चढ़ाकर तैयार किया गया एक कथा प्रयोग

विचक्षणा की मृत्यु की सूचना विलक्षणा को अपनी सखी मदिरा से मिली थी. मदिरा आर्य राक्षस की निजी सेविकाओं में से एक थी. उसी ने बताया था कि विप्लव हो गया है. राजा नंद को सत्ता से च्युत करके मृत्युदंड दे दिया गया है. चंद्रगुप्त मौर्य को चाणक्य ने राजा घोषित कर दिया है. आर्य राक्षस किसी अज्ञात स्थान पर चले गये हैं. विचक्षणा उस समय राजमहल में ही थी. चंद्रगुप्त की विजय का समाचार सुनते ही वह बधाई देने के लिए चंद्रगुप्त की ओर गयी कि तभी चाणक्य के एक संकेत पर चंद्रगुप्त ने अपनी कृपाण के एक ही वार से उसका शिरोच्छेद कर दिया.

''लेकिन क्यों? क्या अपराध था मेरी भगिनी का?'' विलक्षणा ने मदिरा के दोनों कंधों को झकझोरते हुए पूछा.

''अपराध तो मैं नहीं जानती, परंतु जब वह चंद्रगुप्त की ओर बढ़ रही थी तो चाणक्य ने चंद्रगुप्त से कहा था, 'सावधान चंद्रगुप्त, यह विषकन्या तुम्हें भी डस सकती है. इसका जीवित रहना उचित नहीं.' यह सुनकर भी विचक्षणा जब न रुकी और चंद्रगुप्त से हाथ भर दूरी पर पहुंच गयी तो अपने गुरु के दृष्टि संकेत पर उसने तेरी भगिनी का शिरोच्छेद कर दिया.''

''हां, विषकन्या ही तो थी विचक्षणा. तभी तो उसने इसी चाणक्य और बूढ़े शकटार के कहने में आकर नंद के आठों बेटों को अपने अधरों के विष से समाप्त करके इस चंद्रगुप्त के लिए सत्ता पथ का मार्ग निष्कंटक कर दिया था... चाणक्य, तू कृतघ्न है... चंद्रगुप्त, मैं आज यह व्रत लेती हूं कि जब तक तू इस धरती पर सांस लेता रहेगा, मैं चैन से न बैठूंगी. चैन तभी लूंगी जब तेरा वध करके तुझे भी नंद और उसके बाकी आठ बेटों के पास पहुंचा दूंगी. मैं भी विषकन्या हूं, अब देखती हूं, चाणक्य तुझे कैसे बचा पाता है.''

विलक्षणा के इस क्रोध से मदिरा मन ही मन प्रसन्न हो रही थी. आर्य राक्षस भी कितनी दूर की सोचते हैं. अगर चाणक्य और शकटार ने नंद के आठ पुत्रों को समाप्त करने के लिए इसकी भगिनी विचक्षणा का प्रयोग किया था तो यह चंद्रगुप्त को समाप्त करने के लिए विलक्षणा का प्रयोग कर रहे हैं. मदिरा को विश्वास नहीं था कि उसके इस झूठ पर विलक्षणा इतनी सहजता से विश्वास कर लेगी. अगर वह स्वयं अपनी आखों से आर्य राक्षस को विचक्षणा का वध करते न देख लेती तो शायद विलक्षणा से यह झूठा वृत्तांत कहते उसकी जीहवा कांपी न होती, उसकी दृष्टि भूमि पर चिपकी न होती. पर अपनी सहोदरा के वध का समाचार विलक्षणा के लिए इतना बड़ा आघात था कि मदिरा के इस झूठ को वह पकड़ न सकी. यों भी मदिरा उसकी बाल्यकाल की सखि थी. उस पर अविश्वास करने का प्रकटतः कोई कारण भी न था.

नंद के पुत्रों का वध विलक्षणा ने किया. यह बात मदिरा के लिए सर्वथा अज्ञात थी. यही माना गया था कि रात्रि में किसी विषाक्त सर्प ने उन्हें डस लिया होगा अथवा जो मदिरा उन्होंने उस रात पी, उसमें ही संभवतः किसी प्रकार का विष रहा होगा. लेकिन ऐसा उसने क्यों किया?

और जब मदिरा कारण के बारे में सोचने लगी तो एक नहीं, कारणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की एक पूरी श्रृंखला ही वहां थी.

विचक्षणा नंद की दासी थी. सुंदर थी. आयु भी तब अधिक नहीं रही होगी. इसलिए बालसुलभ चांचल्य शेष था. एक दिन राजा हाथ मुंह धोकर हंसते-हंसते अपनी रानी के कक्ष की ओर जा रहे थे कि विचक्षणा भी उन्हें देखकर हंसने लगी. एक दासी को इस तरह हंसते देख राजा को क्रोध आ गया. उन्होंने तत्काल इस हंसी का कारण पूछा.

राजा के क्रोध और अचानक पूछे गये सवाल से हतप्रभ विचक्षणा के मुंह से निकल गया, "जिस कारण महाराज हंसे थे, उसी कारण दासी को भी हंसी आ गयी."

इस उत्तर ने राजा के क्रोध को और भी बढ़ा दिया. बोले, "तो यही बता, मैं क्यों हंसा था. यदि तूने सही उत्तर न दिया तो प्राण दंड मिलेगा."

अब तो विचक्षणा घबरा गयी. उत्तर के लिए उसने राजा से एक माह का समय मांगा. राजा ने समय दे दिया. लेकिन यह भी कह दिया कि एक माह बाद यदि उसने सही उत्तर न दिया तो उसे मृत्यु दंड दिया जायेगा.

एक-एक करके दिन बीतने लगे. राज सभा के कई विद्वानों, वृद्धजनों के सम्मुख उसने अपनी समस्या रखी लेकिन किसी के पास भी उसका उत्तर नहीं था. सभी ने एक ही बात कही कि पूर्व आमात्य शकटार के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति इसका उत्तर नहीं बता सकता. लेकिन शकटार तो बंदीगृह में थे.

शकटार यदि पूरे मगध में सर्वाधिक चतुर और विद्वान व्यक्ति थे, तो हठी भी कम न थे. नंद ने जब उन्हें पत्नी और सात बेटों के साथ बंदीगृह में डाल दिया तब भी उन्होंने हठ नहीं छोड़ा था. पूरे परिवार को भोजन के लिए रोज दो सेर सत्तू मिलता था. शकटार सबसे कहते कि इस सत्तू को वही खाये जो नंद को समूल नष्ट करने में समर्थ हो. यह सामर्थ्य उनके किसी बेटे में नहीं थी. इसीलिए सातों ने बिना भोजन पाये, एक-एक कर प्राण त्याग दिये. अपने प्रत्येक बेटे की मृत्यु पर शकटार नंद को समूल नष्ट करने की अपनी शपथ को दोहराते. वह मात्र इतना ही अन्न-जल ग्रहण करते जितने से जीवित भर रह सकते. इतने वर्षों में तो वे कंकाल के समान ही रह गये थे.

विचक्षणा अपनी समस्या लेकर उनके पास पहुंची. शकटार ने उसकी पूरी बात सुनी. फिर बोले, "यह तो बहुत सहज बात है, राजा जब कुल्ला कर रहे थे तब उन्हें पानी के छोटे-छोटे छींटों को देखकर वट बीजों की याद आयी होगी और वे सोचने लगे होंगे कि इतने छोटे-छोटे बीजों में कितना विराट वट वृक्ष छिपा होता है. और वे छींटे जब भूमि पर पड़ते ही नष्ट हो गये. राजा को हंसी आ गयी."

यह सुनकर विचक्षणा ने उन्हें वचन दिया, "यदि आपके बताये इस उत्तर से मेरी जीवन रक्षा हो गयी तो मैं आपको इस बंदी-गृह से मुक्त कराने का यथा संभव प्रयास करूंगी और आजीवन आपकी दासी बनकर रहूंगी."

अगले दिन वह राजा के पास गयी और शकटार से मिले उस उत्तर को शब्दशः राजा के सम्मुख कह दिया. राजा को बहुत आश्चर्य हुआ. यही सब सोचकर तो वास्तव में वह हंसा था. राजा सोचने लगा कि इस दासी में तो इतनी बुद्धि नहीं हो सकती. अवश्य इसने किसी से पूछा होगा. लेकिन इतना बुद्धिमान तो शकटार के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता.

"क्या तू शकटार से मिलने बंदीगृह में गयी थी?" राजा ने डांटकर दासी से कहा. अपने झूठ को वह छिपा न सकी और राजा के सम्मुख अपनी स्वीकृति प्रकट की.

"मैं समझ गया था, शकटार के अतिरिक्त किसी अन्य में इतनी बुद्धि हो ही नहीं सकती." राजा ने गर्व से कहा.

विचक्षणा ने उचित अवसर देखा तो पूछ लिया, "यदि महाराज क्षमा का वचन दें तो दासी एक निवेदन करना चाहती है."

राजा विचक्षणा पर प्रसन्न तो थे ही, हंसते हुए बोले, "कहो, क्या कहना चाहती हो?"

"महाराज, ऐसे विद्वान का स्थान बंदीगृह नहीं, आपकी राज्यसभा होनी चाहिए."

राजा को यह सलाह पसंद आ गयी और उसने शकटार को बंदीगृह से न केवल मक्त कर दिया, बल्कि फिर से आमात्य पद भी दे दिया.

राजा ने तो शकटार को क्षमा कर दिया पर शकटार ने राजा को क्षमा नहीं किया. उन्हीं दिनों तक्षशिला से अध्ययन और कुछ वर्ष अध्यापन करके आये विष्णुगुप्त को शकटार ने अपने साथ मिला लिया. विष्णुगुप्त वास्तव में शकटार के बालमित्र ब्राह्मण चणक का पुत्र था. इसीलिए उसे चाणक्य भी कहते थे. राजा द्वारा अपमानित किये जाने के कारण चाणक्य भी राजा के समूल नाश की शपथ ले चुका था. चाणक्य का चंद्रगुप्त से अधिक स्नेह था. वह चंद्रगुप्त में मगध तथा समस्त आर्यावर्त के भावी सम्राट होने के सभी लक्षण देखता था. चंद्रगुप्त वास्तव में नंद के निष्कासित सेनापति मौर्य का पुत्र था.

शकटार और चाणक्य के उद्देश्य समान थे अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहले तो उन्होंने विचक्षणा के विषकन्या होने का लाभ उठाते हुए उसकी सहायता से नंद के आठों पुत्रों का वध कराया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर पंचनद के राजा पर्वतराज पुरु की सहायता से चंद्रगुप्त के नेतृत्व में अब यह विप्लव भी करवा दिया.

आमात्य परिषद के प्रधान आर्य राक्षस को इस सबका अनुमान पहले से ही था, तभी तो विप्लब होते ही वे सुरक्षित स्थान पर चले गये और अब मदिरा के जिम्मे इतना ही काम था कि विलक्षणा को चंद्रगुप्त के वध के लिए तैयार कर सके. इतना काम उसने कर लिया था. पूरी भूमिका तैयार करने के लिए मदिरा ने विलक्षणा से पूछा, "सखी, अब तू क्या करेगी. ऐसे तो तू चंद्रगुप्त का वध कर न सकेगी. इसके लिए कोई युक्ति करनी पड़ेगी."

"युक्ति?"

"हां युक्ति, ध्यान से सुन..."

"तुम्हें विश्वास है कि विलक्षणा तुम्हारी बतायी युक्ति के अनुसार ही आचरण करेगी?" राक्षस ने मदिरा से पूछा. वे पूर्णतः निश्चित हो जाना चाहते थे कि उनका यह वार किसी भी तरह निष्फल नहीं होना चाहिए.

"हां आर्य, शरीर तो उस विषकन्या का पहले ही विषैला था. मैंने उसके मन में ही चंद्रगुप्त-चाणक्य मंडली के विरुद्ध पर्याप्त विष भर दिया है." मदिरा नें राक्षस को आश्वस्त करने के लिए कहा, लेकिन राक्षस अब भी आश्वस्त नहीं था. एक और कौड़ी अभी उसके हाथ में थी, वह उसे भी चल देना चाहता था. मदिरा से बोला, "पर्वतराज के जिस चर को उत्कोच देकर हमने अपने पक्ष में कर लिया था, जरा उसे बुला लाओ."

राक्षस जानता था कि पर्वतराज बहुत महत्वाकांक्षी है. वीर भी है और उद्यमी भी लेकिन चतुर नहीं. यदि चतुर होता तो यवन पति अलक्षेंद्र के विरुद्ध युद्ध में विजय के कगार पर पहुंचकर उसके मैत्री के लिए बढ़े हाथ को स्वीकार न करता. यह अवश्य था कि उस दिन के युद्ध में पर्वतराज घायल हो गया था और नीति निपुण अलक्षेंद्र युद्ध भूमि पर ही उसकी प्रशंसा कर रहा था. जब अलक्षेंद्र ने पर्वतराज से पूछा था कि आपके साथ कैसा आचरण किया जाये तो पर्वतराज ने गर्व से कहा था, "जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है." यद्यपि पर्वतराज तक एक संदेश पहुंचाया जा चुका था कि मगध और मालव के वीर युवकों का एक दल चंद्रगुप्त तथा सिहरणा के नेतृत्व में उनकी सहायता के लिए तैयार है और युद्ध को अंतिम निर्णय तक पहुंचाये बिना और अलक्षेंद्र की सेना को वितस्ता नहीं, सिंधु के भी उस पार खदेड़े बिना यह युद्ध समाप्त न करें. पर्वतराज को तब लगा कि युद्ध लड़कर अपने क्षत्रियत्व की आन उसने रख ली और राज्य भी बचा लिया. मगध के विप्लब में चंद्रगुप्त की सहायता करने का उसका उद्देश्य भी यही था कि मगध का आधा राज्य उसे मिल जायेगा. लेकिन चाणक्य की यह सारी योजना मगध को दो भागों में बांटने की नहीं थी. वह तो समस्त आर्यावर्त को ही एक राज्य के

रक्तकंठ

विशाल खिड़कियों जैसे नेत्रवाले चाणक्य ने नंदपुर के सुनार भूदेव की बेटी सुकेशी को निहारा. सुकेशी अनिंद्य सुंदरी थी. दूध में घुली केशर जैसा वर्ण, नीलम जैसी आंखें, ताजे रक्त जैसे होंठ. उसके शरीर से यौवन की सुगंध आ रही थी—भीनी-भीनी, नशीली. चाणक्य ने सौ स्वर्ण-मुद्राएं उस सुनार के आगे फेंककर कहा, "तुम्हारी पुत्री पद्मिनी जाति की अनमोल स्त्री रक्त है, भद्र. अनुपम सुंदरी एक पुरुष की भोग्या नहीं हो सकती. और इस राज्य का चलन तो यह है कि मनोहर स्त्री को राज्य की सेवा करनी होगी—विष-कन्या बनकर."

अपनी भीगी आंखों को कुर्ते की आस्तीन से पोंछकर फिर वह सुनार चाणक्य को प्रणाम करके लौट पड़ा था. चाणक्य ने स्वर्णनाथ को आदेश दिये, "इसे गायन एवं नृत्य की शिक्षा दी जाये और नित्य सर्प का विष कम मात्रा में दिया जाये."

एक वर्ष बाद उसे चाणक्य की सभा में लाया गया. एक कुशल जौहरी की भांति चाणक्य ने सुकेशी का एक एक अंग अपनी तीव्र दृष्टि से परखा. और जब सुकेशी ने राग जोग में एक श्लोक गाया तब उसके कंठ से बिखरा स्वर सम्मोहन-अस्त्र की भांति सुनने वालों के हृदय को विदीर्ण करता गया.

तभी चाणक्य ने प्रसन्न होकर उसे एक नयी उपाधि दी थी—रक्तकंठ.

उसी दिन से रक्तकंठा विष-कन्याओं की प्रथम पंक्ति में आ गयी थी.

यूनान का वह सजीला योद्धा सिकंदर पंजाब में जम गया था. वैसे उसके साथ भी उसके देश का चाणक्य एवं गुरु आया था—अरस्तू.

और जिस दिन सिकंदर के दरबार में खबर आयी कि भारत के नरेश चंद्रगुप्त ने उसे एक अनमोल उपहार भेजा है तब अरस्तू संभलकर बैठ गया था.

दरबार में रक्तकंठा एक बेहद झीना वस्त्र पहनकर आयी थी. ऐसा लगता मानो रुई जैसे महीन बादल में लिपटा चंद्रमा धरती पर उतर आया हो.

सिकंदर अपनी सुध-बुध खोकर खड़ा हो गया. इतनी रूपवती स्त्री उसने पहले कभी नहीं देखी थी.

सिकंदर बोला, "तुम्हारे ओंठ जिंदगी की शराब से लबरेज प्याले हैं, हसीना." और तभी यूनान का चाणक्य अरस्तू खड़ा हो गया और ऊंची आवाज में बोला, "सिकंदर, कभी-कभी इनसान जिंदगी की शराब के धोके में मौत का शरबत भी पी लिया करता है."

सिकंदर को गुरु की बात अखरी. वह तो रक्तकंठा को उसी दम निगल जाना चाहता था.

और फिर अरस्तू ने आगे बढ़कर पास खड़े प्रहरी अगस्त्स से कहा, "अनजाने दोस्त की सौगात को भी सब तरह से आजमा लेना अक्लमंदी है. मैं तुम्हें शाह के उस्ताद की हैसियत से हुक्म देता हूं कि तुम इस हसीना के होंठों का चुंबन लेकर दिखाओ."

एक बार तो सिकंदर भी अपने गुरु की अवज्ञा करने को तत्पर हो गया. बगावत के आसार उसकी लाल लाल आंखों से झलक रहे थे. पर झपटकर फिर अरस्तू ने अगस्त्स से कहा, "तुमने सुना नहीं, आगे बढ़ो."

और सहमता हुआ भीमकाय शरीरवाला अगस्त्स बढ़ा और रक्तकंठा को बांहों में भरकर उसके माणिक जैसे होंठों पर अपने होंठ रख दिये. सिकंदर ने क्रोध से अपनी आंखें बंद कर लीं. और तभी धड़ाम से अगस्त्स भरे दरबार में गिर पड़ा—निर्जीव, मिट्टी के ढेर जैसा.

यह देखकर सिकंदर कांप गया. फिर वह अपने गुरु की ओर बढ़ा और उसका दामन थामकर चूमा.

अरस्तू ने उसके सर पर हाथ रखकर कहा, "इस विष-कन्या को वापस भेज दो, सिकंदर. और याद रखना कि हमेशा बेशबहार जाम में जहरीली शराब भरी जाती है." □

—बाला दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में और एक राजा के अधीन लाने की योजना बना रहा था. ऐसे में आज नहीं तो कल, पर्वतराज का मोह भंग होना ही है. क्यों न आज ही हो.

यही सब सोचकर उसने पर्वतराज के विश्वस्त चर संबल को बुलवा लिया.

कुछ ही देर में संबल राक्षस के सम्मुख था.

"संबल, एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य हम तुम्हें सौंपना चाहते हैं. इस कार्य में हमारा ही नहीं तुम्हारे स्वामी पर्वतराज पुरु का भी हित है." राक्षस का गंभीर स्वर कार्य की गंभीरता की ओर संकेत कर रहा था.

"दास प्रस्तुत है, आप आज्ञा कीजिए."

"तुम्हें पर्वतराज को जाकर यह विश्वास दिलाना होगा कि चंद्र गुप्त के साथ रहकर उन्हें आधा राज्य क्या एक ग्राम भी नहीं मिल सकेगा. और यदि वे हमारे साथ मिल जायें तो मगध का पूरा रांज्य भी उन्हें मिल जायेगा. इतना ही नहीं राक्षस जैसा अमात्य भी उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत होगा." राक्षस ने उसे समझाते हुए कहा, "क्या यह काम तुमसे हो सकेगा?"

"सेवक की बुद्धि पर इतना विश्वास तो आप कर ही सकते हैं. जाना कब होगा?" संबल ने विनम्र स्वर से कहा.

"तत्काल, वहां तुम विलक्षणा नामक दासी से भी सहायता ले सकते हो... किंतु ध्यान रहे, वह विषकन्या है."

संबल ने झुककर राक्षस को प्रणाम किया और बाहर निकल गया.

मगध के राजमहल में उल्लास का वातावरण था. अगर कोई उद्विग्न दिखाई देता था तो अकेला पंचनद नरेश पर्वतराज पुरु. वह शाम से ही मदिरापात्र लेकर बैठ गया था. लगातार पी रहा था और बड़बड़ा रहा था, "चाणक्य और चंद्रगुप्त अपनी मंत्रणाओं में लगे हैं और मुझे इन मंत्रणाओं में सम्मिलित नहीं किया गया. यह तो सचमुच अपमान जनक है. विप्लब से पूर्व तो वे मुझे हर मंत्रणा में सम्मिलित करते थे. अर्थात यहां भी कोई दुरभिसंधि है. यह पाखंडी ब्राह्मण चाणक्य चाहता क्या है? इसके कुटिल जाल को छिन्न-भिन्न करना ही होगा. संबल राक्षस का संदेश लेकर आया है कि वह सहायता कर सकता है. पर जब वह अपने राजा नंद की सहायता नहीं कर सका तो किसी और की सहायता कैसे कर सकेगा! नहीं, कोई मेरी सहायता नहीं कर सकता. पर मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता ही क्या है? एक चंद्रगुप्त ही तो मेरी राह का कंटक है. यदि उसे परलोक पहुंचा दूं तो चाणक्य बिना शरीर की आत्मा से समान रह जायेगा. जिसे अन्यत्र कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा. यही उचित होगा.तो फिर आज रात्रि को ही..."

विलक्षणा ने भी योजना बना ली थी कि उसे क्या करना है. राजमहल की वह पुरानी दासी थी. राजमहल का कोई भी कोना ऐसा न था जो अपरिचित हो. चंद्रगुप्त के शयनकक्ष का पता करने में उसे जरा भी कठिनाई न हुई. विप्लब के बाद दास-दासियों की पूरी व्यवस्था परिवर्तित होनी थी अतः दास-प्रमुख से कहकर विलक्षणा ने चंद्रगुप्त के शयनकक्ष की देखभाल का काम हस्तगत कर लिया. इससे उसे यह सुविधा हुई कि वह स्वतंत्रता पूर्वक चंद्रगुप्त के शयनकक्ष में आ-जा सकती थी.

उसकी योजना थी कि चंद्रगुप्त के कक्ष में आते ही वह उसका आलिंगन करेगी तथा अपने अधरों को उसके अधरों पर रख देगी. चंद्रगुप्त युवा है, अभी अविवाहित है, ऐसे में इस रसमय निमंत्रण को ठुकराने की स्थिति में वह होगा ही नहीं. और इसके साथ ही उसके जीवन का अंत भी हो जायेगा. इसके बाद वह अपने सीने में छिपाकर रखी कटारी से अपने प्राण भी ले लेगी क्योंकि इसके बाद उसके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं रह जायेगा. यों भी चंद्रगुप्त का वध करने के बाद वह उस कुटिल चाणक्य की दृष्टि से न बच सकेगी और तब भी मृत्युदंड ही निश्चित है.

संध्या से ही चंद्रगुप्त चाणक्य के कक्ष में थे. रात्रि के प्रथम पहर तक तो विलक्षणा चंद्रगुप्त के शयन कक्ष के द्वार के बाहर बैठी प्रतीक्षा करती रही पर अब उसे नींद आने लगी थी.

वह यह भी जानती थी कि यदि आज वह यह कार्य न कर सकी तो फिर कभी न कर सकेगी. जैसे ही चाणक्य को पता लगेगा कि चंद्रगुप्त के शयनकक्ष की देखरेख का भार विलक्षणा को दिया गया है, वह इस व्यवस्था को तत्काल बदल देगा और चंद्रगुप्त को उसकी छाया से भी दूर रखने के उपाय कर लेगा.

जब निद्रा का आवेग बढ़ने लगा तो विलक्षणा उठकर टहलने लगी. शयनकक्ष की व्यवस्था एक बार फिर से देखने के लिए वह भीतर गयी. चंद्रगुप्त की शैया को देखकर एक बार उसे अनुभव करने के लिए पहले वह उस पर बैठी और फिर लेट गयी. शैया के मृदु-मसृण अनुभव से प्रभावित हो घड़ी भर के लिए उसने आंखें बंद कर लीं. निद्रा की देवी संभवतः इसी प्रतीक्षा में थी, उसने तत्काल अपना आंचल उस पर फैला दिया.

एक पहर भर संभवतः वह गहरी निद्रा में रही. लेकिन अर्धरात्रि के लगभग उसे कक्ष में किसी के प्रवेश की आहट मिली. वह तत्काल शैया पर से उठी और प्रवेश करनेवाले से आलिंगन बद्ध हो गयी.

परंतु क्षण भर में ही वह समझ गयी कि भीतर प्रवेश करनेवाला चंद्रगुप्त न था, पर्वतराज था. तो क्या यह चंद्रगुप्त का नहीं, पर्वतराज का शयनकक्ष है? विलक्षणा क्षण भर के लिए सकुचा गयी. सकुचा तो पर्वतराज भी गया था, चंद्रगुप्त के स्थान पर एक सुंदरी को वहां पाकर और उसके इस अकस्मात आलिंगन से. किसी स्वतः स्फूर्त प्रक्रिया से उसके दोनों बाहुओं ने उस सुंदरी को अपने में समेट लिया. अब सुंदरी स्वयं को छुड़ाने का प्रयास करने लगी. परंतु पर्वतराज की बाहों से स्वयं को छुड़ाना संभव न था.

"मुझे क्षमा करें, जाने दें." विलक्षणा ने अनुनय की.

पर मद्य और सुंदरी के आलिंगन के सम्मिलित नशे मे उसकी कुछ भी सुनने की शक्ति छीन ली थी. उसके अधर विलक्षणा से अधरों को पाने के लिए आगे बढ़े. विलक्षणा नहीं चाहती थी कि जो जाल उसने चंद्रगुप्त के लिए बिछाया है, उसमें फंसकर पर्वतराज अपने प्राण दे दें और चंद्रगुप्त बच निकले.

"सावधान, पर्वतराज, इसमें आपका अहित हो सकता है." विलक्षणा ने पर्वतराज को एक बार फिर चेताना चाहा.

"अपने हित-अहित की चिंता मैं कर लूंगा." पर्वतेश्वर उसकी कोई बात सुनने के लिए तैयार न था, "अगर तू अपने प्रेमी चंद्रगुप्त के नाम का भय दिखाना चाहती है तो जान ले कि आज रात्रि में यह निर्णय भी हो जायेगा कि मगध का सम्राट कौन होगा—वह या मैं."

"नहीं पर्वतेश्वर, मैं आपको भय नहीं दिखा रही हूं. मैं वास्तव में विषकन्या हूं. मेरा अभिसार आपके लिए चिरनिद्रा का कारण बन सकता है." विलक्षणा ने अपनी बात स्पष्टतः कह दी.

"आज तो मैं हर तरह का विष पीने के लिए तैयार हूं." कहते हुए पर्वतराज बलपूर्वक विलक्षणा को उसी शैया तक ले आया... कुछ ही क्षणों में पर्वतराज की मृतदेह को वह अपने शरीर पर से हटा रही थी.

अभी वह अपने वस्त्रों को ठीक भी न कर पायी कि सम्मुख चंद्रगुप्त, चाणक्य तथा अन्य कई व्यक्तियों को देखकर वह हतप्रभ रह गयी. उसने अपने सीने में छिपी कटार निकाली और चंद्रगुप्त की ओर झपटी. इससे पूर्व कि वह चंद्रगुप्त तक पहुंच पाती रक्षक सैनिकों ने उसे पकड़ लिया. अब विलक्षणा समझ गयी कि चंद्रगुप्त का वध वह कभी नहीं कर सकेगी. अंतिम प्रयास के रूप में उसने पूरी शक्ति से अपने को सैनिकों के हाथों से मुक्त किया और अपने हाथों में पकड़ी कटार को अपने हृदय में प्रविष्ट कर दिया.

चंद्रगुप्त ने गुरुदेव चाणक्य की ओर इस भाव से देखा, जैसे कह रहे हों, 'गुरुदेव, आपको भविष्य की घटनाओं का इतना स्पष्ट चित्र कैसे दिख जाता है?' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : दिसंबर, 1931
प्रमुख कृतियां : उनका फैसला, अकारण, अनायास, उपासंहार (उपन्यास) टूटा हुआ कोना, अबरक के फूल (कहानी संग्रह)
संप्रति : स्वतंत्र लेखन
संपर्क : 85 शिवाखंड, विश्वकर्मा कॉलोनी, शाहदरा, दिल्ली-32

योगेश गुप्त

घर-गमला

उसने वह गमला उस चौकोर खिड़की में सजा दिया.

दरअसल वह खिड़की नहीं थी. चारों दीवारें उठ जाने के बाद बनाने वाले को एहसास हुआ कि रोशनी आनें का कोई रास्ता नहीं छोड़ा. पूरब को टटोला और उस दिशा की दीवार में से एक दुकड़ा कुतरकर फेंक दिया. ईंट क्योंकि चौकोर होती हैं, लाख बेरहमी के बावजूद खिड़की चौकोर बनी और दीवार चिथड़ा-चिथड़ा होने से बच गयी. खैर, सबेरे-सबेरे घर में रोशनी आने लगी. और अब कहीं से लाकर यह गमला उसने इस खिड़की में फंसा दिया. रोशनी कम ही आये पर जरा खुशबूदार आये.

> वह अंदर आ गयी. उस आदमी ने देखा, उसकी बगल में एक दरी है. उसने दरी बिछा दी और लेट गयी. बोली, "किसी ने ठीक कहा है, एक से दो भले.
>
> उस आदमी ने जोर देकर कहा, "बिल्कुल गलत बात, दो से एक भला. मरने में आसानी होती है, जीने में भी."

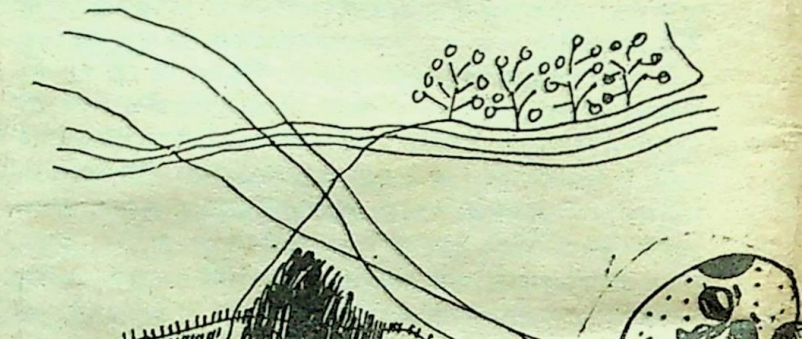

गमला चौकोर हो, यह उसने ध्यान रखा.और यह कि मिट्टी उसमें कम हो और ज्यादा फूल भी न हों, कहीं रोशनी आने के सारे रास्ते बंद हो जायें. यही सोचकर एक फूलवाला यह गमला वह खरीद लाया. छोटा-सा, थोड़ी-सी मिट्टी. मिट्टी के बीचोंबीच गड़ी एक डाल पर लगा एक फूल,फूल में चार पत्तियां, सोने के रंग की, पीली. सुबह, शाम, दोपहर को फूल की बदलती छवि उसके दिमाग में गड़ने लगी, अपने लिए सिंहासन खोदने लगी. रोशनी को भी घर में आने में स्वाद आने लगा. सूरज कुछ जल्दी उगने लगा. धरती के घूमने की गति मंथर हो गयी. उबासियां कम आने लगीं.

पर जिंदगी फूल नहीं होती. होती तो लोग घर में गमले न लाते.

वह आदमी देर से उठने का आदी था. उसका खयाल था कि सुबह-सवेरे पीछे छूटे बहुत से लोग मिलने आते हैं. जल्दी जागकर उन्हें निराश नहीं करना चाहिए. पर अब उसने अपनी चारपाई उस दायरे में बिछा ली है जहां सूरंज की किरणें सबसे पहले आसमान से उतर कर खड़ी होती हैं. वह उसे जगा देतीं. वह करवट लेकर फूल की तरफ देखता. मन खिल उठता. दूर से आये लोग भी इस दृश्य का रस लेते. वह जाग भी जाता और मेहमानों का अपमान भी न होता. उसे जगाकर सूरज घूम जाता. उसके सारे शरीर को हवा बना देता. वह दिन बिताने को तैयार हो जाता.

दिन! सूरज दिन में भी होता है. पर फूल की ओट के बिना.

इस कोठरी में इस आदमी के सिवाय कोई नहीं रहता पर बाहर बहुत चहल-पहल रहती है. चारों तरफ कोठरियां ही कोठरियां हैं. अलग-अलग कारखानों में, दूकानों पर काम करनेवाले लोग, उनकी बीवियां, उनके बच्चे, इधर-इधर बगूलों की तरह घूमते, खाते-खेलते-लड़ते, 'जीवन निस्सार है' के बोदे सत्य की पोल खोलते देखे जा सकते हैं. इन लोगों के एक-एक कमरे के घर भरे-पूरे हैं. बर्तन हैं, अंगीठी है, दरियां हैं, खूंटियां हैं और इक्का-दुक्का घर में तस्वीरें भी हैं. पर यह सच है कि किसी के भी घर में गमला नहीं है. इस आदमी के घर में जब गमला स्थापित हुआ (गमला खिड़की से दीखता है) तो पूरी गली चकित रह गयी. यह आदमी विशिष्ट हो गया. कुछ के लिए अजूबा और कुछ के लिए पागल, सनकी. लोग उसे देखकर, मुंह घुमा-घुमाकर हंसने लगे. सुबह भी, शाम को भी.

दिल्ली शहर में आपसी भेदभाव बिल्कुल नहीं है. गरीबों की बस्ती, बाबुओं के क्वार्टरों की कतार और अमीरों की कालोनी एक दूसरे से लिपटी थोड़ी-थोड़ी दूर पर पड़ी हैं. एक दूसरे में एक दूसरे का खून भी बहता है और एक दूसरे की खबर भी. यह खबर बाबू-अमीरों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबह की हवा की तरह फैल गयी कि करखदारों की बस्ती में एक आदमी ऐसा रहता है जिसकी खिड़की में एक फूलवाला एक गमला रखा रहता है. घर में खाना हो न हो, वह आदमी उस फूल को पानी जरूर पिलाता है. सब हंसते हैं, वह गौर नहीं करता. सब टोकते हैं, वह टाल जाता है. कोई कोई खिड़की में रखे गमले पर पत्थर मारता है तो वह भेड़िये की तरह उस पर झपटता है. कुछ ही दिनों में अनेक कहानियां फूल, गमले और उस आदमी के बारे में प्रसिद्ध हो गयी हैं. बाबू लोग खूब खिल्ली उड़ाते हैं पर बड़े लोग अजीब उदात्त मुद्रा ओढ़कर उस आदमी की प्रशंसा करते हैं. "उस आदमी ने फूल के बारे में सोचा तो सही. नहीं तो ये लोग तो बस..."

एक दिन वह आदमी दरवाजे पर ताला लगा रहा था कि एक पड़ोसी ने उसे घेर लिया, "क्यों भैया, एक बात बताओ?"

उस आदमी ने पड़ोसी की तरफ मुंह किया.

"इस बस्ती को जंगल बनाने का इरादा है?"

"नहीं... पर तुम जंगली हो." उस आदमी ने कहा और आगे बढ़ गया.

इससे पहले कि पड़ोसी उससे उलझता वह आदमी उसकी नजरों से ओझल हो गया.

उस दिन वह बस स्टैंड पर खड़ा था. जाहिर है,बस की इंतजार में कि एक बाबू साहब जो बस की लाइन में ठीक उसके पीछे खड़े थे, उसको ठुंगा मारकर बोले, "तुम्हारे ही घर की खिड़की में एक फूलवाला गमला है?"

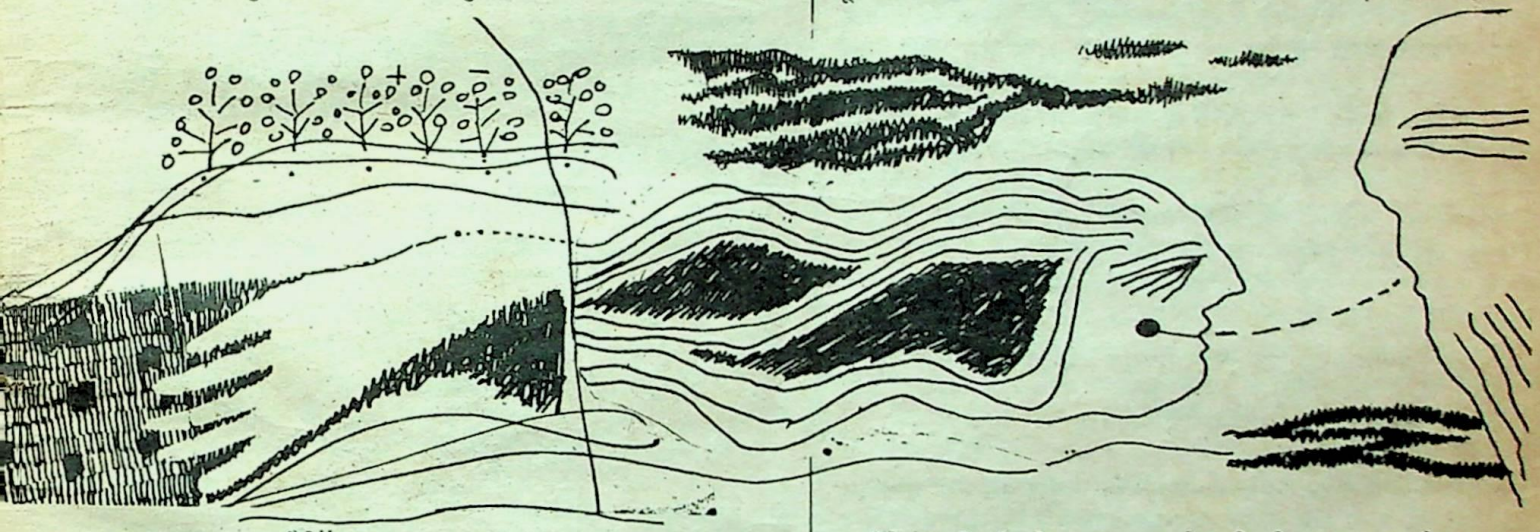

"आपको चाहिए— फूल? या गमला? या खिड़की?"

बाबू साहब का चेहरा लाल हो गया, "क्या मतलब?"

"अखबार पढ़ा कीजिए, मतलब भी समझ में आ जायेगा."

"तुम मेरी खिल्ली उड़ा रहे हो?"

"नहीं देखिए वह... आप की बस आ गयी."

बाबू साहब की ठिठक, झुंझलाहट, आवेश और बस की ओर प्रयाण ने उस आदमी के चेहरे पर मुस्कराहट खींच दी. वह लाइन से निकलकर एक तरफ खड़ा हो गया और देर तक आप ही आप मुस्कराता रहा.

और उस दिन...सूरज निकला भी नहीं था कि किसी ने उसका दरवाजा ठकठकाया बेंत की मूंठ से. एक बार नहीं, कई बार. सूरज की किरणों के जगाने और इस जगाने का अंतर वह आंख खोलते-खोलते जान गया. शरीर की सारी नलियों में जैसे जहरीली गैस घुस गयी. मेहमानों को उसने चेहरे से चूंद कर परे फेंका. उठा और कुंडी खोल दी. उसने पाया कि सामने एक भव्य लंबा-चौड़ा, गोरा-चिटटा आदमी सिल्क का कुर्ता और पायजामा पहने, हाथ में बेंत लिये खड़ा था. उसके सिर के बाल मांग से बायीं तरफ रंगे हुए थे और दायीं तरफ सफेद. दरवाजा खुलते ही वह भीतर आ गया और बायीं तरफ घूमकर गमले के पास आकर खड़ा हो गया. वह आदमी उसके पीछे-पीछे.

"वाह! खूब! मेरे यहां सेंकड़ों गमले हैं पर ऐसा फूल और ऐसी एक फूलवाली डाल..."

उस आदमी ने बात काट दी, "आपके यहां नहीं हो सकता."

भव्य आदमी हंस पड़ा, "क्यों भाई, हमारे यहां क्यों नहीं हो सकता?"

"क्योंकि आपकी प्रतिभा अनेक मुखी है."

"मैं समझा नहीं." भव्य आदमी वास्तव में असमंजस में था.

"दरअसल मैं देर तक सोने का आदी हूं. बुरी आदत है, जानता हूं पर क्या करूं लाचार हूं."

"और क्या बुरी आदत है तुममें."

"मैं बेंत लेकर नहीं चलता."

"जैसा सुना था, तुम्हें वैसा ही पाया. आदमी तुम खासे बदतमीज हो." भव्य कठोरता बहुत प्रभावशाली लग रही थी.

उस आदमी ने मुस्कराते हुए कहा, "इसीलिए मैं बेंत लेकर नहीं चलता. बेंत से आदमी रेत पर दायरे खींचने लगता है."

"बाप रे! क्या भाषा बोलता है कमबख्त, और क्या स्वभाव है." कहकर आगंतुक एक झटके से बाहर हो गया. उस आदमी ने दरवाजा फिर बंद किया, फिर खाट पर लेट गया. और फिर आंखें बंद कर लीं. सूरज भी फिर उसे जगा नहीं सका. वह दिन भर पड़ा सोता रहा.

सोते हुए किसी को क्या पता चलेगा कि कितना समय बीत गया.

किसी शाम खिड़की के पास होते शोर ने उसे जगाया. जागकर उसने खिड़की की तरफ देखा—गमला अपनी जगह पर था.

उसने चैन की सांस ली. दोनों हथेलियों से दोनों आंखों को रगड़ा. सिर में एक बड़ा गुबार चढ़ा. शरीर शांत हुआ. वह उठकर खड़ा हो गया. कोठरी का दरवाजा खोलकर वह बाहर आया और घूमकर खिड़की के नीचे आ गया. देखा—एक भीड़ है वहां. बच्चे, बड़े, औरतें. उसने आश्चर्य से उनकी तरफ देखा. वे खुद उसे आश्चर्य से देख रहे थे. जैसे वह कोई अजूबा हो. वह एक बच्चे की तरफ बढ़ा तो बच्चा डर गया. उसके मुंह से निकला, "फूल!?"

"क्या हुआ फूल को?"

"एक पत्ती लाल हो गयी."

"एक पत्ती?"

"हां."

उसने खिड़की के नीचे खड़े होकर फूल की एक झलक ली. फिर भागकर कोठरी में घुसकर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया. गमले को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिड़की से उतारा और आंख भरकर फूल को देखने लगा, देखता रहा, देखता ही रहा. उसे महसूस हुआ कि फूल की खूबसूरती हजारगुना बढ़ गयी है. चटकदार पीले में घिरा चटकदार लाल. यह अलौकिक है. शाम के आकाश और सुबह के समुद्र जैसा सुंदर. उस विह्वलता में उसके मन में यह प्रश्न भी नहीं उठा कि यह 'अलौकिक' है क्या? इस 'अप्राकृतिक' का कारण क्या है और कि अलौकिक और अप्राकृतिक लौकिक और प्राकृतिक से अधिक सुंदर, अधिक सुखद क्यों लगता है. वह अतिरिक्त अनुभूति दरअसल है क्या?

कुछ भी हो, यह खबर भी बाबुओं के क्वार्टरों और अमीरों की कालोनी में गर्म हवा की तरह फैल गयी. सबके शरीरों को झुलसाती हुई. सबने एक ही तरह से सोचा—ऐसा चमत्कार वहां नहीं होना चाहिए था. अवतार भी हुआ तो किसके घर. ऐसे शानदार मकानों, इतने बड़े-बड़े गमलों, ऐसे परों जैसे मुलायम वातावरण की उपेक्षा करके उस कीकर की झाड़ी पर, उस रेगिस्तान में.. पर यह हुआ कैसे? इसे..

मन में आयी नष्ट करने की बात सबने वापस दिमाग में घुसेड़ दी. मुंह से निकल गयी बात में दम नहीं रहता. उसकी रीढ़ की हड्डी टूट जाती है. वह कभी पांव-पांव नहीं चल पाती.

कुछ ही दिनों में उस आदमी की वह छोटी-सी कोठरी एक छोटा-सा अजूबाघर बन गयी. बहुत दूर-दूर से लोग उस फूल को देखने आने लगे. जो भी आता उसे कोठरी हमेशा अंदर से बंद मिलती. उस आदमी ने खिड़की पर एक जाली लगवा दी. वहीं से फूल के दर्शन करके लोग चले जाते, आपस में सूत कातते हुए. कभी-कभी वह आदमी बाहर पकड़ा जाता तो उस पर सवालों की झड़ी लग जाती. सब पूछते—यह कैसे हुआ? उसने गमले की मिट्टी में क्या मिलाया? क्या कोई कलम लगायी है? इस पत्ती में कुछ इंजैक्ट किया है? यह क्या जादू-टोने में काम आनेवाला फूल है? किसी देवी-देवता ने यह गमला उसे दिया है? कौन-सा व्रत रखता है वह? कौन-सी सिद्धि उसे प्राप्त है? वगैरह वगैरह. लोगों में अनंत जिज्ञासाएं थीं. पर उत्तर के रूप में उन्हें एक ही बात सुनने को मिलती. "मैं कुछ नहीं जानता. मैंने कुछ नहीं किया. यह गमला मेरा है. इसकी रक्षा का भार मुझ पर है. यह फूल जादू का नहीं है. यह सुंदर फूल है."

वह भव्य आदमी भी फूल देखने आया. उस समय वह आदमी बाहर ही खड़ा था. भव्य आदमी ने उसके कंधे पर हाथ रखा, कहा, "भई, कमाल कर दिया तुमने तो."

"मैंने कुछ नहीं किया."

"अरे, ऐसा कैसे हो सकता है. साइंस का जमाना है, कोई भी काम अकारण नहीं होता. तुम बताना नहीं चाहते, जिससे कोई और ऐसा फूल न बना ले और तुम्हारी विशिष्टता बनी रहे."

वह आदमी कुछ पल उस भव्य आदमी की तरफ टक लगाकर देखता रहा. फिर बहुत महीन मुस्कराहट में सोबोला, "आप सुबह को कुछ देर जॉगिंग किया कीजिए. बुद्धि की धार थोड़ी बारीक होगी."

"फिर वही ऊल-जलूल तर्क. बात न बताने की चालाकी."

"आप जानना ही चाहते हैं."

"हां भई, हम भी चाहते हैं, ऐसे फूल हमारे बगीचे में भी हों."

"तो आप को इंतजार करनी पड़ेगी."

"कब तक?"

"सूर्यग्रहण तक एक चौथाई सूरज के ग्रहण वाला सूर्यग्रहण. उस दिन की धूप खाकर फूलों का रंग बदल जाता है."

"तुम मजाक कर रहे हो."

"नहीं, मैंने कुछ नहीं किया."

कहकर वह आदमी अपनी कोठरी में जाकर बंद हो गया. बाहर खड़े लोगों की आंखों से ओझल.

शाम तक सब लोग चले गये. वह आदमी तब तक सो चुका था.

उस आदमी के पथरीले व्यवहार से टकराकर लोगों की जिज्ञासा धीरे-धीरे मिट्टी के नीचे चली गयी. चारों तरफ सब सहज हो गया.

लोग उस पीले-लाल फूल के आदी हो गये. उस आदमी से लोगों ने बोलना बिल्कुल बंद कर दिया. बाबुओं के क्वार्टरों और अमीरों की कालोनी के सैकड़ों मालियों ने फूलों के साथ अनेक प्रयोग कर डाले पर वैसा फूल न उगना था; न उगा. तभी बस्ती में एक धमाका हुआ. एक बहुत खूबसूरत लड़की आकर वहां बस गयी. एक कोठरी लेकर रहने लगी, अकेली. और दूसरा धमाका हुआ शहर में. पता चला कि युद्ध छिड़ गया है. किसी भी समय आकाश से बमों की बारिश हो सकती है. जो जिसने जोड़ा है, घटा में बदल सकता है. वर्ग त्रिकोणों में और त्रिकोण पंचभुजों में परिवर्तित हो सकते हैं. चारों तरफ अनिश्चय, आतंक और **बसुरक्षा** का राज्य फैल गया.

पर उस आदमी के रूटीन या भाव-भंगिमा में कोई अंतर नहीं आया. सूरज के जगाने से सुबह उठना, गमले में पानी देना, बहुत देर तक फूल को निहारते रहना, फिर कपड़े पहनकर बाहर निकल जाना और शाम को आकर, गमले में पानी देकर पड़कर सो जाना. दिन बीतते रहे.

उसी बस-स्टैंड पर एक दिन वही बाबू साहब मिले, यकायक बोले, "घमासान लड़ाई चल रही है."

वह आदमी मुस्कराया, बोला, "हां, सुना है."

"सुना है! अखबार नहीं पढ़ते?"

"नहीं."

"तआज्जुब है, क्यों?"

"मैं रास्ते चलते लोगों से सवाल करना नहीं चाहता."

"सवाल? तुम्हें लड़ाई का कोई डर नहीं है?"

"नहीं."

बाबू साहब बहुत देर तक चुप रहे, फिर विस्फोट की तरह बोले, "तुम्हारे फूल का क्या हाल है?"

"राजी-खुशी है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सुना है तुम्हारी बस्ती में एक बहुत खूबसूरत लड़की आयी है?"
"मैंने नहीं सुना."
"नहीं सुना? तुम बस्ती में नहीं रहते?"
"मुझे सुनाई कम देता है."

पर इतिवार की शाम को उस लड़की की आवाज उस आदमी को सुननी ही पड़ी. वह सोने की तैयारी कर रहा था कि दरवाजे पर दस्तक हुई, बैंत की मूंठ से नहीं, हाथ से, धीमे-धीमे.

दरवाजा खोलकर उसने पूछा, "कहिये."
"बहुत अंधेरा है."
"हां."
"लड़ाई बहुत तेज हो गयी है."
"मुझे नहीं मालूम."
"बहुत डर लग रहा है."
"किससे?"
"लड़ाई से, अंधेरे से."
"तो?"
"आपकी कोठरी में सो जाऊं."
"जमीन पर सोना पड़ेगा, चारपाई एक ही है."
"कोई बात नहीं, ठीक है."

वह अंदर आ गयी. उस आदमी ने देखा उसकी बगल में दरी है. उसने दरी बिछा ली और लेट गयी. बोली, "किसी ने ठीक ही कहा है, एक से दो भले."

उस आदमी ने जोर देकर कहा, "बिल्कुल गलत बात, दो से एक भला. मरने में आसानी होती है, जीने में भी."

इसके बाद बहुत देर चुप्पी रही.

फिर वह उठकर बैठ गयी और बोलने लगी. न जाने क्या क्या—वह कौन है. इस शहर में क्यों आयी है. यहां अकेली क्यों रहती है. दूर परदेस में कौन-कौन अपने-पराये हैं. उसने इस छोटी-सी जिंदगी में कैसे-कैसे दुख उठाये हैं. अब अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है. इसीलिए... फिर अचानक बोली, "तुम इतना कम क्यों बोलते हो?"

"चाहता हूं, इतना भी न बोलूं.... और तुम्हें शायद मुझसे डर लग रहा है... मुझसे डरने की जरूरत नहीं है... चुप होकर सो जाओ... ठहरो, उठो, मैं जमीन पर सोता हूं, तुम खाट पर सोओ."

"तुम तो सभ्य भी हो." कहकर वह हंस दी.

"मैं ही सभ्य हूं...दोबारा इस तरह का जुमला न बोलना."

सुबह भी वह घर में ही रही. उसने चाव से फूल देखा, सराहा. वही जिज्ञासा दोहरायी. वह आदमी चुप रहा. लड़की ने अचानक पूछा,

"तुम्हारे घर में कोई नहीं?"
"कहां है, देख तो रही हो."
"कहीं और?"
"नहीं."
"मुझे नहीं बताओगे, यह पंखुड़ी लाल कैसे हो गयी?"
"नहीं... और देखो, जासूसी मत करो.कुछ हासिल नहीं होगा."

वह सकपका गयी. उठकर निकलते हुए बोली, "शाम को फिर आ जाऊं?"

"मुझसे डर हो तो मत आना."
"नहीं, आऊंगी."

वह चली गयी. बस्ती जाग रही है. लोगों ने अखबार खोल लिये हैं. जोर-जोर से पढ रहे हैं. लड़ाई तेज होती जा रही है. बहुत लोग मर रहे हैं. बहादुरी दिखा-दिखाकर. कुछ के लिए तमगों की घोषणा हो रही है. बूढ़ी मां और जवान विधवा — क्या करेंगी तमगों का. पर वीरता के संदर्भ में ऐसी बातें नहीं सोची जाती. जहां तक उसका संबंध है, न उसने कभी वीरता दिखायी है, न कायरता. आज तो उसका सिर्फ एक संदर्भ ही बचा है. 'इस फूल की पत्ती लाल कैसे हो गयी.' क्यों जानना चाहते हैं ये लोग. इनको क्या सरोकार है इस फूल से. क्या ये... और यह लड़की भी. कैसे पूछ रही थी — 'मुझे नहीं बताओगे'. यानी औरों को नहीं बताया, कोई बात नहीं, पर इसे... यह तो खास है. इसे तो बताना ही चाहिए. इनका बस चले तो शायद ये इस लाल पत्ती को नोच कर फेंक दें. इस लड़की से भी इस पत्ती को बचाना होगा. रात को फिर आयेगी. गहरी नींद नहीं सोना है.

गहरी नींद...

उस दिन वह बहुत गहरी नींद सोया हुआ था. वह आयी थी—दिन में भी. और इस पत्ती को छूकर चली गयी थी, उस दिन से यह पत्ती लाल है.

भला जो काम छाया ने किया हो उसे ठोस आदमी कैसे मिटा सकता है.

यह लड़की मिटा सकती है, बशर्ते कि यह छाया में बदल जाये. इसकी छवि उससे कुछ-कुछ मिलती तो है.

वह रोज रात को सोने आने लगी.

रोज पत्ती के बारे में घुमा-फिराकर पूछती. वह टाल जाता. उसे एहसास हुआ, उसके मना करने पर वह उदास हो जाती है. उस पर सकता-सा छा जाता है.

एक दिन उस आदमी ने पूछा, "सच बताओ, तुम कौन हो?"

वह भयभीत हो उठी. उसे देखती रही, देर तक.

"डरो नहीं, मैं बुरा नहीं मानूंगा. और अगर तुमने सच-सच बता दिया कि तुम कौन हो, तो मैं भी तुम्हें सच-सच बता दूंगा कि यह पत्ती लाल कैसे हुई. पर एक शर्त है, तुम मुझ पर विश्वास करोगी और मैं तुम पर."

"पहले कौन बतायेगा."
"जाहिर है, तुम."

सच्चाई का आदान-प्रदान हुआ. उस लड़की ने बताया कि उसे उस भव्य आदमी ने भेजा है—फूल की सच्चाई जानने के लिए. वह यह सहन नहीं कर सकता कि ऐसा फूल... वगैरह वगैरह.

उस आदमी ने भी अपनी कहानी दोहरा दी. यह करिश्मा उसका है, जो रोज सुबह सपने में आती है. एक दिन रोशनी में आयी और उसे विशिष्ट बना गयी. उस आदमी ने यह भी कहा कि उसकी शक्ल बिल्कुल तुमसे मिलती है.

"मुझसे!"
"हां! मैं समझ रहा हूं, तुम्हें मेरी कहानी पर विश्वास नहीं है."
"और तुम्हें?"
"मैं पहले ही जानता था."
"ओह!"

एक लंबे समय तक चुप रहकर उस आदमी ने कहा, "मैं अपनी बात साबित कर सकता हूं."

"साबित कर सकते हो? कैसे?"

एक बार फिर वह आदमी बहुत देर चुपचाप खड़ा रहा. फिर खिड़की के पास गया और गमला उतार लाया. लाकर उस लड़की के सामने रख दिया, बोला — ऐसे जैसे गुंबद में खड़ा बोल रहा हो, "लाल पंखुड़ी को छुओ."

उस आवाज की उपेक्षा करना मुश्किल था. रोबो की तरह लड़की के हाथ ने उठकर पंखुड़ी को छू दिया.

और पलक झपकते ही पंखुड़ी का लाल रंग पीला पड़ गया.

लड़की ने भयभीत होकर उस बदलते रंग को देखा. पर सकते की हालत में बहुत देर वह खड़ी नहीं रह सकी. उस आदमी ने जोर से उस गमले को पटक कर चूर-चूरकर दिया.

और पहली बार वह आदमी जोर से ठहाका मारकर हंसा, बोला, "पर्दा गिर गया, मदाम, घर जाओ, आराम करो."

अजनबी हो जाने के बावजूद उस लड़की ने पूछा, "और तुम?"

"मैं बाहर निकालकर देखूंगा, क्या हो रहा है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेवकूफी की कीमत

□ 'लेसू सेंत नोवेलेस नोवेलेस' से

बहुत दिन पहले की बात है, फ्रांस में एक आदमी रहता था. उसका काम था लोगों से कर की उगाही करना. बहुत दिनों से उसकी नजर अपने पड़ोसी की खूबसूरत बीवी पर लगी हुई थी. पर वह उसकी तरफ देखती ही नहीं थी. वह भी था कि ढीठों की तरह उसके पीछे लगा रहा और आखिरकार उसे सफलता भी मिल गयी. एक दिन पड़ोसी की बीवी ने कह ही दिया, "ठीक है, मेरे पति को सफर पर जाने दो. बस पहली ही रात तुम्हारी होगी."

कुछ दिन बाद ही यह मौका आ भी गया. उधर पति घर से चला, इधर वह पड़ोसिन तेज कदमों से चलती उस उगाहक के पास बिस्तर में जा पहुंची. खाने-पीने का सामान उसने पहले से ही इकट्ठा करके एक थाली में रख दिया था कि भूख लगे, तो रसोई तक न जाना पड़े.

लेकिन उनका खेल अभी शुरू ही हुआ था कि दरवाजे पर जोर-जोर से दस्तक होने लगी. साथ ही पड़ोसी महोदय की आवाजें आने लगीं, "दरवाजा खोलो!" वह अप्रत्याशित रूप से लौट आया था.

उगाहक ने महसूस किया कि अगर उसने तुरंत दरवाजा न खोला, तो पड़ोसी को शक हो जायेगा. वैसे भी पड़ोसी की बीवी का मन जीतने के लिए उसने इस तरह के अघोषित-अप्रत्याशित आवागमन को खुद ही बढ़ावा दे रखा था. सो, उसने महिला से कहा कि वह तुरंत बिस्तर में छिप जाये. खुद वह उठा और उसने दरवाजा खोल दिया. इसके बाद वह तुरंत अपने बिस्तर में जा घुसा.

"मैं अभी थोड़ी दूर ही पहुंचा था कि मुझे याद आया, मुझे तुमसे एक गुजारिश करनी थी," पड़ोसी शयनकक्ष में घुसते हुए बोला, "बात यह है कि मेरी बीवी बड़ी डरपोक है जरा-जरा सी बात से घबरा जाती है. मेरी गैरहाजिरी में उसका खयाल रखना."

"अरे, यह भी कोई कहने की बात है!" उगाहक ने बिस्तर पर लेटे-लेटे ही जवाब दिया. "अगर मैंने शादी की होती, तो मुझे यकीन है, तुमने भी मेरी बीवी का खयाल रखा होता."

लेकिन तभी पड़ोसी का ध्यान मेज पर रखे खाने-पीने के सामान की ओर गया. फिर उसकी नजर घूमी और उसे लगा, बिस्तर पर कोई और भी है. वह शरारत से बोला, "आज की रात तो लगता है, मेरी बीवी का खयाल रखने का तुम्हारे पास वक्त नहीं होगा! पड़ोसी महोदय, जरा हम भी उसकी सूरत देखें, जिसे आपने अपने बगल में दबा रखा है!"

इतना कहने के साथ ही पड़ोसी ने शमादान उठाया और आगे बढ़ा. उसकी बीवी थर-थर कांप रही थी. पड़ोसी ने चद्दर हटाने की कोशिश की, मगर उगाहक ने उसे रोक दिया, "यह भी कोई तरीका है!" वह बोला, लेकिन पड़ोसी किसी जिद्दी बच्चे की तरह अड़ गया. उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया.

उगाहक ने खैर, चेहरा तो नहीं देखने दिया, एक झलक पेंदी की दिखा दी.

"अरे!" पड़ोसी बोला, "कमाल है! खुदाकसम, अगर मुझे यकीन न होता कि मेरी बीवी अपने घर में सो रही है, तो मैं यही कहता, मैं अपनी बीवी का ही पृष्ठभाग देख रहा हूं!"

"क्या कह रहे हो!" उगाहक बोला. "अपनी वफादार बीवी के बारे में ऐसी बात! जाओ, अपने घर जाओ. तुम्हारी बीवी तुम्हें वहीं मिलेगी."

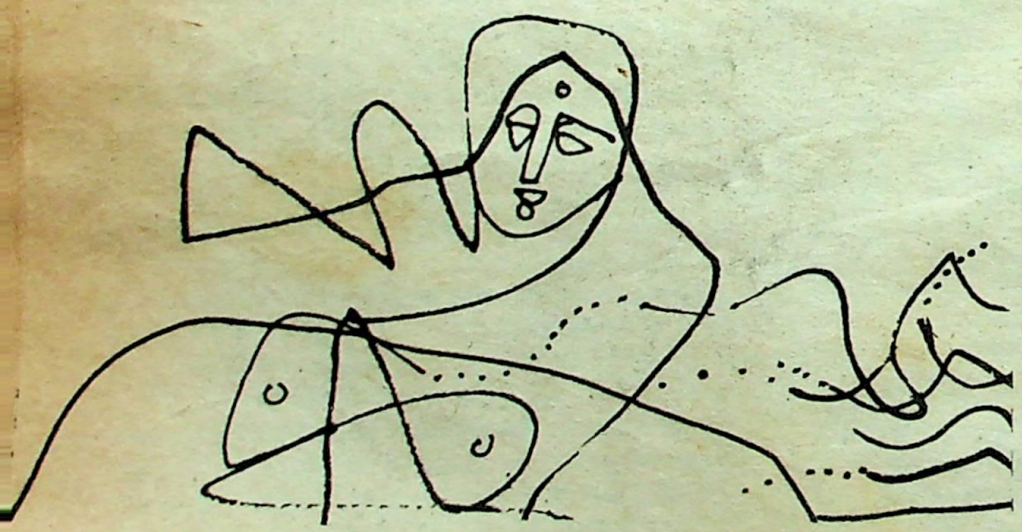

जाऊंगा तो मैं हूं ही!" पड़ोसी ने कहा. "सच बात बताऊं तो जो नजारा मैंने अभी देखा है, उसने मेरी भूख जगा दी है... और इस भूख की तृप्ति बीवी से ही करनी पड़ेगी." इतना कहकर वह वहां से चल दिया.

उगाहक सिर झटककर रह गया. मगर पड़ोसी की बीवी के पसीने छूट रहे थे.

"अब जल्दी से भागो!" वह बोला. "पिछले दरवाजे से चली जाओ. उससे पहले पहुंच जाओगी." फिर जब तक वह अपने कपड़े समेटती रही, वह उसे समझाता रहा कि उसे अपने पति से किस तरह बात करनी है.

बीवी बस किसी तरह घर पहुंची ही थी कि उसे पति की दस्तक देती आवाजें सुनायी देने लगीं.

"कौन है?" वह कुछ गरमी से बोली.

"तुम्हारा प्यारा खाविंद," उसने जवाब दिया.

"मेरा खाविंद! मेरा खाविंद तो यात्रा पर गया है!"

"दरवाजा खोलो, प्रिय!" वह बोला. "मैं तुम्हारे बगैर एक रात भी नहीं रह सकता."

"गुंडे! बदमाश!" उसने जवाब दिया. "तुम जो भी हो, मैं तुम्हें अंदर नहीं आने दूंगी." उसने दरवाजा नहीं खोला और बेवकूफ पति को सारी रात दरवाजे के बाहर लगे पत्थर पर ही बिता देनी पड़ी.

सुबह बीवी ने दरवाजा खोला और पति को देखते ही बड़बड़ाने लगी, "शैतान की औलाद! तुमने मेरा इम्तहान लेने के लिए सफर पर जाने का बहाना बनाया! तुम इस लायक हो ही नहीं कि मेरे जैसी पवित्रा के पति कहला सको!" वह लगातार गुर्राती रही. पति की हालत यह हो गयी कि उसका रात भर का गुस्सा तो काफूर हो ही गया, वह माफियां मांगने लगा.

"मुझे अपनी बेवकूफी का अहसास हो रहा है," वह रुआंसा होकर बोला, "पिछली रात मैं दरअसल एक ऐसी जगह होकर आया था, जहां व्यभिचार चल रहा था. मैं आपा खो बैठा था."

"तो यह बात है!" बीवी बिफरकर बोली, "नीच! कामी! तुम अपनी वासना को किसी वेश्यालय में तुष्ट करके सीधे अपनी पवित्रा पत्नी के पास चले आये! शर्म नहीं आती!"

"बस, बस! अब और नहीं," वह बोला. "अब और कुछ मत कहना."

मन ही मन मुस्कराती, वह धीरे-धीरे शांत होने का नाटक करती रही. आखिर जब उसके पति ने वादा किया कि अब वह अपनी बीवी पर कभी शक नहीं करेगा, तब जाकर उसने उसे माफ किया.

उसके बाद पति की यात्राएं बढ़ गयीं और पत्नी की मनमानी. □

प्रस्तुतिकरण : सुदीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूजे के लिए

बाला दुबे

आखिर हैंपशायर के लुहार की उस लड़की पर शक करता भी कौन.

साधारण चलन, सादा लिबास, मन मौजी. उसे शाम को 'पब' में बैठकर खाने-पीने का शौक था. और फिर उसे शीघ्र ही नौकरी भी मिल गयी और वह ब्रिटिश नौ सेना की महत्वपूर्ण शाखा 'अंडरवॉटर वैपंस ऐस्टिब्लिशमेंट' में जो कि पोर्टलैंड में था. और वहीं पर उसे नौसेना का सेवा निवृत्त 'पैटी आफिसर' हैरी होटन टकराया था.

वैसे हैरी होटन परशु से परशुराम बना था. सोलह वर्ष की आयु में नाविक बना और फिर तेईस वर्ष बाद रिटायर हो गया. इसके बाद ही वह ब्रिटिश नौ सेना के वॉरसा स्थित नेवल अटैची में लिपिक बन गया. मोटी तनख्वाह, मुफ्त की शराब ने उसे लालची बना डाला था और सबसे पहले वह पोलेंड की एक लड़की कैरीजिया से टकराया. कॉफी की तस्करी से श्री गणेश किया और कमाई को 'रात्रि-जीवन' में खर्च करने लगा. हैरी की चखचख उसकी पत्नी पैगी से भी होने लगी पर हैरी बदस्तूर अपने धंधे में फंसा रहा. और जब वह पोलेंड से पोर्टलेंड में स्थित वैपंस विभाग में आया तो उसका साक्षात हैंपशायर के लुहार की लड़की ईथल गी से हो गया. ईथल का प्यार का नाम 'बंटी' था. और तभी पोलेंड की पुरानी मित्रा कैरिजिया के मित्र का फोन हैरी के पास आया. पहले पहल पैनिसिलिन का अवैध धंधा शुरू किया गया और उसमें घाटा खाकर ही बेहतर धंधे की जुगाड़ बनायी गयी—जासूसी का तानाबाना. हैरी की मुलाकात फिर रूसी एजेंट गॉर्डन लॉसडेल से हुई थी.

उन दिनों ब्रिटिश नौसेना और 'नेटो' कुछ नयी पनडुब्बियों पर अनुसंधान कर रहे थे और रूस इस क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ था. और तभी जासूसी का ताना-बाना बुन लिया गया. बंटी अनुसंधान विभाग में थी ही. उसे जाल में फंसाया गया और फिर एक दिन बंटी को रूसी एजेंट लांसडेल को अमरीकन दूतावास का कमांडर एलक जोंस बतलाकर मिलवाया भी गया. बंटी से यही कहा गया कि पनडुब्बी की खबरें इंग्लैंड के मित्र देश अमरीका को ही जा रही हैं. लांसडेल के साथ अमरीकन दंपत्ति मिस्टर और मिसेज क्रोगर या कोहन भी सोवियत एजेंट थे. कई हजार पाउंड पाकर हैरी जामे से बाहर होने लगा—नयी कार, नया ग्रामोफोन, रेस्टोरेंट में खाना-पीना.

सबसे पहले एक नौसेना के सुरक्षा अधिकारी का माथा ठनका था. फिर बंटी भी तो हैरी से रोज ही मिलती थी. कीमती शराब-शेंपेन से शाम संवारी जाती, पैसा पानी की तरह बहता. और उधर हैरी के घर पर उसकी पत्नी पैगी कुढ़ती रहती. वैसे पैगी ने ही पीछे लगे सुरक्षा अधिकारी को एक दिन एक बंडल दिखलाया था—ऐडमिरोलटी के दफ्तर के कुछ महत्वपूर्ण कागजों का छोटा-सा बंडल. बंडल देखते ही वह अधिकारी सतर्क हो गया और उसी दिन से जाल फैलाना शुरू कर दिया. मामला जासूस अधीक्षक जार्ज स्मिथ के हाथ में पहुंच गया और ब्रिटिश जासूस संस्था एम.आई.ई. एवं स्पैशल ब्रांच ने भी हाथ बंटाना शुरू कर दिया.

सन् 1962 की बात है. उस दिन बंटी एक 'शापिंग बास्कट' लेकर निकली थी. कुछ बाजार से सामान खरीद इस टोकरी में भर लिया गया पर टोकरी के नीचे नौसेना विभाग की चार महत्वपूर्ण फाइलें और खींची हुई 'फिल्म-रील' पड़ी थी. लंदन के 'ओल्ड विक' नामक थियेटर के पास ही हैरी और बंटी मिले थे. जब कि टोकरी का आदान-प्रदान हो रहा था तभी जासूस अधीक्षक जार्ज स्मिथ के दल ने दोनों को धर दबोचा. फिल्म को हाल के हाल धुलवाया गया जिसमें ब्रिटिश नौसेना के करीब तीन सौ जहाजों और सामान के चित्र थे. सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि अणु-पनडुब्बी 'ड्रेडनॉट' के चित्र भी खींचे गये थे.

हैरी होटन को चीफ जस्टिस लॉर्ड पार्कर ने पंद्रह वर्ष की सजा सुनाई थी-"तुमने 'हर मेजेस्टी' की नौ सेना के रहस्य बाहर के देश को भिजवाने का प्रयास किया." बंटी उर्फ ईथल एलिजाबेथ गी को भी पंद्रह वर्ष की सजा सुनाई गयी थी.

दस वर्ष बाद बंटी और हैरी एक दिन रिहा किये गये थे. जेल के फाटक से बाहर निलकते ही वे दोनों गिरजे की तरफ चल पड़े थे. और वहीं जाकर उन्होंने पादरी से कहा था 'हम दोनों शादी करना चाहते हैं, फादर.'

फिर हाथ में हाथ डाले वे दोनों चल पड़े एक नये जीवन की पगडंडी बनाने. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू की सुपरिचित कथाकार, किस्सागोई शैली में भीतर तक मार करने वाली कहानियां लिखती हैं...
संपर्क : 3 इंडस कोर्ट, चर्च गेट रोड़ नं.-1, बंबई-1

इस्मत चुगताई

सोने का घूंट

"हैलो डार्लिंग."

लीना ने अपने चमकदार दांत और भी चमकाये, अपने ब्वॉय फ्रेंड के साथ बहती हुई निकल गयी. हम जितनी भी भली बीवियां वहां फूलदार सोफों पर विराजमान थीं, सुलगकर रह गयीं—दीदा तो देखो नामुराद का!. हेलो डार्लिंग की सगी!.

लोग समझते होंगे, वह हमारी कोई सगी-सौतेली होगी, या कम से कम सहेली तो होगी-खाक भी नहीं. मगर मुसीबत तो ये है कि हम सबके शौहर उसके बाप के नौकर हैं. इसका ये मतलब नहीं कि वे कोई मेहतर, बैरे हैं, बड़ी-बड़ी कुर्सियों पर लगे हुए हैं-तभी तो उसे झेलते हैं. वैसे भी किसी पार्टी में उसके बगैर रंग नहीं जमता-इसलिए उसे बुलाना भी पड़ता है और जहर के घूंट पीकर उसके यहां जाना भी पड़ता है-अगर कोई भूल की आड़ लेकर उसे न बुलाये तो पार्टी ही गारत हो जायेगी-तमाम वक्त मर्द उसका ही नाम लेकर ठंडी सांस भरते रहेंगे. कोई कबूलता तो खैर नहीं मगर हकीकत ये है कि मर्द जात उस पर बुरी तरह लट्टू है. वैसे सब अपनी बीवियों के डर के मारे उसके जन्म में थूकते रहते हैं.

न जाने उस कमबख्त में क्या बात है-'सूरत न शक्ल, भाड़ में से निकल' वाली हालत है-कुछ बनती-संवरती भी नहीं. बस गंदे से कपड़े सूती कुर्ती और चूड़ीदार पायजामा-अब तो खैर दुपट्टा बिल्कुल बेकार चीज बन गया है. जब चुन्नी-दुपट्टे का फैशन था तब भी वह दो मिनट बाद उसे कहीं रखकर भूल जाया करती थी. कुछ आगा-पीछा भी ज्यादा पुरकशिश नहीं. मगर है मनहूस पहले दर्जे की वो.

शादी, बल्कि शादियां रचा चुकी है. मौसम के हिसाब से शौहर बदलती है. भटनागर साहब हर पार्टी में अपनी मौजूदा सुघड़ और हसीन बीवी के साथ उसकी पार्टियों में आते और उस पर सदके वारी जाते हैं. लीना के तलाक के बाद भी उनकी नौकरी उसके बाप की एक फर्म में कायम रही. वह जिसे छोड़ती है, उनका दिल जरूर तोड़ती है, पेट पर लात नहीं मारती. उसके सब भूतपूर्व शौहर अलग-अलग फर्मों में डटे हुए हैं और पाबंदी से उसकी पार्टियों में हाजिरी देते हैं-वह बगैर पलक झपकाये उन सबसे फ्लर्ट करती है-उनकी बीवियां मुस्कराकर सब बर्दाश्त करती हैं, लेकिन पीठ पीछे उसे कच्चा खा जाने की धमकियां देती हैं, वह उन सबको 'हैलो डार्लिंग' कर डालती है. भटनागर साहब भूखी-भूखी नजरों से उसे तकते हैं. फिर बीवी की निहायत प्राइवेट चुटकी पर दुबक लेना. वाकई 'बिच' है. ऐसी औरतों को समझदार लोग उछाल छक्का कहते हैं, हालांकि लीना ने अभी सिर्फ पंजे उछाले हैं, उसके पांचवें शौहर से उसका इश्क मेरी ही मदद से फला-फूला था.

> लीना कभी भी उम्र नही छिपाती, उम्र वे छिपाते हैं जिनके पास सिवाय जवानी के और कुछ न हो. लीना के पास दुनिया है. उम्र के कभी उसे धक्का नहीं खाना पड़ा, उसके आशिकों में ज्यादातर कमसिन लड़के हैं.

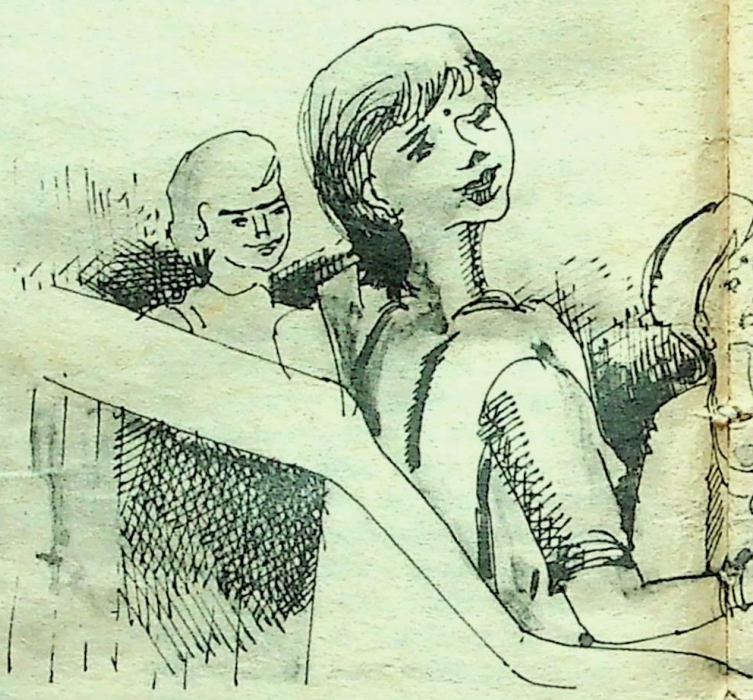

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके हर इश्क पर यही शक होता है कि ये उसका पहला और आखिरी इश्क है-उन दिनों उसकी हालत जुनूनी-सी हो जाती है. शादियों से अब कुछ दिन से बोर-सी नजर आती है. छठे से अभी उसने बंधन नहीं बांधा है. उसके शौहरों की लत से ज्यादा कलेजा फाड़ ब्वॉय फ्रेंड की रद्दोबदल है.

"अच्छा तो आनंद से कब शादी कर रही है?" एक दिन मैं उसके मौजूदा ब्वॉय फ्रेंड के बारे में पूछती हूं.

"ना बाबा- तौबा मेरी." वह कान छूकर कहती है.

"क्यों? इस तरह उसके साथ रहते हुये शर्म नहीं आती?"

"क्यों, क्या बुराई है इसमें?"

"कोई बुराई नहीं-आनंद के मर्दाना हुस्न की लपक से कौन इंकार कर सकता है."

"तो फिर क्यों कर लूं शादी?"

"एक दिन जी भर गया तो छोड़कर चलता बनेगा."

"और जो शादी के बाद छोड़कर चला गया तो?"

"वह ऐसा कमीना नहीं लगता."

"बलराम भी बड़ा शरीफ लगता था."

"उसने तुम्हें नहीं छोड़ा, तुमने ही उसका पत्ता काट दिया, दीपक के चक्कर में पड़कर."

"तो क्या करती? दीपक के बगैर में जिंदा नहीं रह सकती थी."

"और पांच महीने बाद उसे दुतकारकर जीने लगीं."

लीना को कुछ बदहजमी होने लगी है. वह हर खेल से थोड़े दिन बाद बोर हो जाती है.

एक रोज मैंने लीना से कहा, "असल बात ये है कि लोग-यानी मर्द लोग जो तुम्हारे करीब आते हैं; उन्हें एहसास-कमरती होने लगती है-तुम उन्हें जो पोस्ट दिलवाती हो वह खुद तुम्हारी पोस्ट के लगे की नहीं होती, हालांकि दुनिया जानती है तुम खाक भी काम नहीं करती, सारे यूरोप के बिजनेस ट्रिप अय्याशी के लिए होते हैं, लेकिन कंपनी के हिसाब में..."

"फिर में अपने पापा की बेटी जो हूं. ये गधे इतना क्यों नहीं समझते! मैं भी डायरेक्टर हूं, बड़ी शेयर होल्डर भी..."

"वैसे तुम्हारी अंधी मासी भी तो हिस्सेदार है, दोनों मामा और ग्वालियरवाली बुआ भी?"

"और क्या, ये सब कुछ तो हर कंपनी में करना पड़ता है. मेरी अकेली जान-खाली मेरे नाम से कितने शेयर खप सकते हैं? यही तो कंपनियों की मुसीबत है. सारे कुनबे को लपेटना पड़ता है. क्या कानून निकाल दिये हैं-सुना है अब सौ के नोटों की गड़बड़ होने वाली है. पापा ने तो दस रुपये के नोट जमा करने शुरू कर दिये हैं..." वह मुझे अपनी फाइनेंसियल मुश्किलें समझाकर बोर करने लगी. इससे दिलचस्प तो उसके आशिकों के किस्से हैं- उसके यहां ब्लैक आशिकों में भी चलती है. वैसे आफिसियल ब्वाय फ्रेंड तो आनंद है. मगर दो-एक से साइड में भी मामला चल रहा है.

"वही लड़ने लगा सुअर."

"लड़ता नहीं तो क्या करता- कोई खुद्दार शौहर अपनी आंखों के सामने अपनी बीवी को किसी और की बांहों में ऐंठता नहीं देख सकता."

"तो उसने दूसरी तरफ मुंह क्यों न मोड़ लिया? नीलू उस पर खासी मरती थी."

ओफ्फोह! मेरा तो सर चकरा जाता है-ये मालदार लड़कियां इतना मर-मर के लाखों का दहेज देकर शौहर पाती हैं, और किस बेदर्दी से उन्हें झटककर दूर गिरा देती हैं-जानती है एक खिलौना टूट गया तो दावा के 'लाकर' में इतना ब्लैक रुपया पड़ा है कि फौरन नया खरीद लेंगा. उधर बेचारी गरीब लड़कियों को वर जुड़ता ही नहीं. वही अनाजवाला मामला है. कहीं लोग भूखे मर रहे हैं-कहीं स्वादिष्ट खानों की ज्यादती से हाजमा खराब हो रहा है. शादी के मामले में वाकई अब

लीना का अपना बर्ली पर बड़ा फ्लैट था जिसमें चार तो बाथरूम थे-एक मर्सडीज, एक फिएट-और नौकरों की रेल-पेल. बलराम से, जो खूबसूरत मगर इंटर फेल था- जब उससे शादी हुई तो थोड़े दिन तो बड़े जोरों का इश्क मियां-बीवी में चला. लीना के सारे ब्वाय फ्रेंड लंडूरे फिरते रहे. लीना बेहद पतिव्रता बनी बलराम के गिर्द न्योछावर होती रही. मगर ये बलराम तो एकदम उसका पति बन बैठा. छूटते ही बोला, "बस, अब जाब छोड़ो और घरद्वारी संभालो."

लीना टुकुर-टुकुर उसका मुंह देखने लगी. वह बस धैया छूने दफ्तर जाती थी. घरद्वारी खुद-ब-खुद फर्स्ट क्लास हो रही थी.

"तुम्हें मेरी तनख्वाह में गुजारा करने की आदत डालनी चाहिए." बलराम ने एक और बात साफ की.

लीना का जी चाहा फट से कह दे-'तुम्हारी नौकरी भी तो मेरे दम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है.'.

"तुम समझते क्यों नहीं?" लीना ने समझाना चाहा.

"मैं बीवी की कमाई खाना हराम समझता हूं."

"बीवी की कमाई?" लीना जोर से हंस पड़ी, "डार्लिंग, तुम्हारी तनख्वाह से तो मकान का किराया भी पूरा न होगा."

"कुछ भी हो, कहीं सबर्ब में ले लेंगे."

"सबर्ब में पापा के बारह फ्लैट हैं, मगर खाली एक नहीं."

"तुम्हारे पापा के फ्लैट में मुझे दिलचस्पी नहीं." बलराम अजीब-अजीब बातें कर रहा था, "वर्ली पर मेरे दोस्त का दो कमरों का फ्लैट है."

"दो कमरे और ड्राइंग, डाइनिंग?"

"नहीं, बस दो कमरे."

"डोंट बी सिली डार्लिंग." लीना और हंसी.

पहले झक-झक, फिर गाली-गलोच, मार-पीट—कभी किसी ने लीना को झूठी उंगली न छुआयी थी. बलराम ने जो उसकी ठुकायी की तो कितना अजीब-सा लगा यानी काफी थ्रिलिंग लगा. वह बड़ी रोमांटिक-सी बनी अपने दोस्तों को इस दिलचस्प तजुर्बे के बारे में बताती फिरी. मगर जब ठुकाई रोमांस की हदों को तोड़कर सीधी-सादी जूतेकारी रह गयी तो लीना रोती-पीटती विलायत के ट्रिप पर चली गयी. बलराम को निकाला नहीं गया, हांगकांग की ब्रांच में ट्रांसफर कर दिया गया. शादी रजिस्टर्ड हुई थी, फेरे भी डलवाये थे, न जाने क्या तिकड़म लगायी कि फट से तलाक हो गया.

लीना जब फोरन ट्रिप से लौटी तो एक खुर्चा हुआ-सा विलायती झमेला अपने साथ लायी. बड़ा सब पर रोब बैठा— फॉरेन माल का मार्केट दिन ब दिन चढ़ता ही जाता है. मगर ये विदेशी माल अपने देशी माल से भी ज्यादा कच्चा निकला-डीन को मैल से बड़ा प्यार था. मैल को वह हिंदुस्तान की देन समझता था. ये जताने के लिए वह देशी-विदेशी का फर्क मिटाना चाहता है, इतना मैला रहता कि दूर से ही नाक सड़ जाती.

डीन जितना हिंदुस्तानी बनने की कोशिश करता, उतना ही लीना विलायती बनने पर तुली थी. डीन धोती और बड़ा-सा पग्गड़ बांधे फिरता. लीना मिनी से मिनी स्कर्ट पर आमादा थी. दोनों में नजदीकी पैदा होने की जगह अजीब उल्टी किस्म की दूरी पैदा हो गयी. डीन पीता खूब खुल के था. फिर वह कुछ दूसरी लतों में भी पड़ गया था.

डीन कोई उठाईगीर नहीं था. अपने मां-बाप का इकलौता था. उनकी मोहब्बत और दौलत से ऊबकर घर से बे-घर हो गया था. अब वह दीपक को विलायत ले जाने की धमकी देने लगा. मगर दीपक एक दफा वहां धक्के खा आया था. उसे यकीन था, डीन के बाद उसको यहीं अच्छा चांस मिलेगा. मगर डीन से तलाक लेने से पहले ही लीना का दिल प्रमोद पर मचल गया.

वैसे लीना ने तो नर्वेस ही पढ़ाई छोड़ दी थी. अंग्रेजी फरटि से आती ही थी. फ्रेंच भी आ गयी-थोड़ी जर्मन भी चलती है. उसे तो मिसाली बीवी होना चाहिए था. मगर दौलत ने उसका दिमाग खराब कर रखा है. यही उसके शौहरों और आशिकों की बड़ी मुसीबत है. वे उससे ज्यादा उसकी दौलत पर ही परवानावार गिरते हैं और फिर दौलत ही उनकी खुशियों की दुश्मन साबित होती है.

"अच्छा, प्रमोद में क्या ऐब था?" एक रोज मैंने लीना से पूछा.

"मिस्टर इंडिया था-बड़ा ऐंठता था अपने डंड किये हुए बाहुओं पर. कमबख्त पीता बहुत था. मेरी मर्सडीज में लौंडिया भरे घूमता-फिरता था. मैंने सब कुछ झेला."

"खाक झेला. तुम क्या बैठी इन दिनों जाप कर रही थी?"

"तो क्या पागल हो जाती- अगर वह मुझे इतना परेशान न करता तो कसम से, मैं उसके लिए सबको भगा देती, मगर उसके दिमाग में तो ढाई हजार की नौकरी ने गोबर भर दिया था, सांड कहीं का. मुझे बेबात मारता था. कोई बात नहीं. मैंने ये भी सहा... मगर उस दिन पापा ने बड़े जोर की दावत दी थी. और वह अपनी बिच के साथ पड़ा था. और वह भी मेरे अपने डबल बेड पर-तुम्हीं बताओ, फिर मैं क्या करती?"

"क्यों,तुम्हें जमा हुआ घर, शौहर और प्यारे बच्चे पसंद नहीं?" मैंने पूछा, वैसे शौहरों को पसंद करने का उसके पास काफी सबूत था.

"अरे पसंद क्यों नहीं? बच्चे तो मेरी जान हैं- कहां है आशू आज, दिखायी नहीं दिया. बुलाओ ना."

आशू भागा हुआ आया और वह उस पर न्यौछावर होने लगी.

"उफ मेरी जान, मेरे चुन्नू-मुन्नू मामा-आशू राजा—ओह, आई लव चिल्डेन."

"तुम्हें खुद मां बनने का शौक नहीं?"

"कोई फर्क पड़ जाता है?"

"बिल्कुल-अपनी औलाद की और ही बात होती है."

"मुझे तो फर्क नहीं लगता."

"तुम ममता का मजा क्या जानो."

"जानती हूं कुछ ज्यादा चटपटा नहीं."

"तुमने कभी किसी को नौ महीने कोख में नहीं पाला. किसी के नन्हें-नन्हें हाथ अपने दिल पे नहीं महसूस किये." मैं बड़े जज्बाती जुमले बघारने लगी.

"शट अप! डंकी मेरा बाबा है तो."

"ऐसा मुंह बोला बाबा नहीं. तुम्हारी मम्मी ने गोद ले लिया तो तुम्हारा कैसे हो गया?"

"तुम गधी हो. सच, तुम्हें कुछ नहीं मालूम."

"क्या?"

"यही कि डंकी मेरे पेट का बच्चा है-लगता नहीं कि मेरे इतना बड़ा लड़का हो सकता है?"

"क्या बक रही हो? डंकी तेरह-चौदह साल का है."

"तो मैं भी तो इकत्तीस साल की हूं-जब तो मैं बिल्कुल छोटी-सी थी."

लीना कभी अपनी उम्र नहीं छुपाती-उम्र वे छुपाते हैं जिनके पास सिवाय जवानी के और कुछ न हो-लीना के पास दुनिया है. उम्र से कभी उसे धक्का नहीं खाना पड़ता- उसके आशिकों में ज्यादातर कमसिन लड़के हैं."

"वह पारसी लड़का था. पापा बोले, पारसी नहीं चलेगा."

"जमशेद शहेर भी तो पारसी था—उससे शादी क्यों करने दी?"

"पापा तो बहुत बिगड़े-हम लोगों ने जनेवा में शादी की थी."

"तुम्हें उस पारसी लड़के से मोहब्बत थी?"

"बहुत-मगर जब पेट फूला तो सब प्रेम-वरेम रफूचक्कर हो गया."

"हम समझते थे बलराम तुम्हारा पहला शौहर था-उसे इस झगड़े का पता था?"

"अरे उसी ने तो सब कुछ किया था. वरना मैं तो पागल हो जाती." लीना ने आशू को गोद से उतार दिया और बेचैनी से टहलने लगी.

"और दीपक?"

"दीपक—दीपक ने तो बोर कर दिया. अल्टीमेटम दिया है जहर खा लेगा, छत पर से कूदकर जान दे देगा."

"वरना शादी करो?"

"हां—कहता है, लोग मुझे तुम्हारा रखेल कहते हैं."

"सच बताओ, तुम्हारा उससे ताल्लुक है ना?"

"दीपक से? तोबा करो, वह तो छक्का है-डीन के काम का होगा."

"अच्छा, वह जो सितार का शौक चर्राया था?"

लीना कहकहा मारकर लोट गयी.

"तो तुम्हें पता है इसका? कसम से, अब कभी उसका प्रोग्राम सुनती हूं तो कलेजे पर घूंसा-सा लगता है."

"खाक."

"डंकी की कसम, उन दिनों तो सच्ची पागल-सी हो गयी थी. एक वही ऐसा है जिसका जख्म हरा है. तीन साल गुजर गये, मगर ऐसा लगता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे कल की बात हो. फिर भी अगर धर्म छोड़ने की बात न होती तो... मगर पापा ने कहा...."

"ओफ्फोह. भई, तुम्हारे पापा ने बड़ा नाक में दम किया है."

"क्यों? मैं खुद बाबा की मर्जी के बगैर कोई काम नहीं करती. उनसे बड़ा बिजनेस मैन इस सदी में तो पैदा नहीं हुआ. बस एक लुटिया और धोती लेकर बंबई आये थे. कालबा देवी में अब तक खोली मौजूद है. पापा उसका किराया देते हैं. जब कोई मुश्किल पड़ती है तो वही पुरानी लुटिया और धोती लेकर कई-कई दिन के लिए वहां चले जाते हैं. एक काली कढ़ाई और पुरानी लकड़ की डोई अब तक पड़ी है. वहीं अपने हाथ से खाना बनाकर खाते हैं. वह कोठरी ऐसी भाग्यवान है कि उनकी हर विपदा वहां कट जाती है. जिस जमाने में उन्हें मीना कुमारी से प्रेम हो गया था सारी-सारी रात जाप करते थे."

"मगर मीना कुमारी तो नहीं मिली."

"जर्मनी का इतना कंट्रेक्ट तो मिल गया कि पापा का सारा इश्क गायब हो गया.

मैं फिर उसके आशिकों की बात ले आयी.

"अच्छा भई, रमेश से क्यों खटपट हो गयी?"

"रमेश उसका असली नाम थोड़े ही था."

"फिर?"

"अब्दुल सचार था."

"पापा बीच में कूद पड़े? धर्म की बात आड़े आ गयी?"

"नहीं जी, पापा को मालूम है मेरी तबीयत किसी ने खट्टी हो गयी तो फिर नहीं जमूंगी. दूसरे पूछताछ से ये भी पता चला कि वह जब फट से मुझे तलाक दे सकेगा. मैं चाहूंगी तो झमेले होंगे. फिर एक मुश्किल और भी थी."

"वह क्या?"

"वह सर में तेल बहुत डालता है." वह इधर-उधर देखकर राजदारी से बोली, "और वह भी शुद्ध सरसों का. सारा तकिया चिप-चिप करने लगता था. उफ." वह उबकायी लेकर हंसी.

"तो तकिया तब नौबत पहुंच गयी थी."

"और क्या, वरना पता ही कैसे चलता?"

"आनंद पर याद आया – तुम्हारे आनंद का क्या हाल है?"

"पहले एक बात बताओ."

"पूछो."

"कहते हैं मर्द की जात बेवफा होती है. मगर मेरे पीछे तो मर्द चमड़ी की तरह लग जाते हैं."

जी चाहा, कह दूं– 'अपने-अपने नसीब की बात है. मुल्क में लाखों लड़कियां एक अदद शौहर को तरस रही हैं. तुम पांच छोड़ चुकी हो. तुम्हारी उतरन ही औरों का सुहाग है. ये सब तुम्हारे पापा की कारोबारी दिमाग का इनाम है.

"मैं जानती हूं. वे सब मेरी दौलत पर आशिक होते हैं, मुझे आड़ बनाते हैं, मैं उनके नसीब के ताले की कुंजी हूं. अगर मैं इनकार करूं तो वे इस तरह रोते-बिसूरते हैं जैसे मैंने उन्हें रेप किया हो. उनसे शादी करके ही मैं उनकी आबरू बचा सकती हूं. अरे, मैंने इन हरामजादों के लिए क्या नहीं किया. शानदार फ्लैट, अपनी मोटर, पत्नी के काम के कपड़े. लखनऊ का किवाम – क्या कुछ नहीं मंगवाती – फिर भी शादी के पीछे पड़े रहते हैं."

"वे अपने हक पक्का करना चाहते हैं. उन्हें डर रहता है कि वैसे उनकी पोजीशन कुछ नहीं होगी. तुम्हारा जी भर जायेगा तो घर से निकाल दोगी."

"तो शादी के बाद भी तो तलाक लेनी आती है मुझे."

"इस मैदान में भी तुम किसी से पीछे नहीं, मगर मर्द की ये आदत है, वह कब्जा करना चाहता है यानी अपनी जागीर बनाना चाहता है."

"पता है, डेढ़ हजार भेजती हूं."

"किसे?"

"आनंद के बीवी-बच्चों को."

"क्या?" मैं चीख पड़ी.

"और क्या? जरा भी देर हो जाये तो खत पर खत आने लगते हैं, चौथे दिन आ धमकते हैं. कहते हैं बीवी को तलाक दे दूंगा."

"ये अच्छी धमकी है."

"हां, यहां मेरी जान पर सवार होकर रोज ड्रामे करेंगे. पापा को थोड़ा ही बताया है. वह समझते हैं आनंद का किस्सा खत्म हो गया."

"बात काम की है. जब सारे आशिक रूठ जायें तो बस आनंद की बीवी बच्चों को रुपये भेजना बंद कर देना. तुम्हारे मन-मंदिर का देवता आ धमकेगा–अच्छा ये बताओ–पाप के बारे में तुम्हारी क्या राय है?"

"तुम्हारे हिसाब से तो मैं सीधी नरक में जाऊंगी...ऊं हूं... तब की बात तब देखी जायेगी. पापा कुछ तिकड़म लड़ा ही लेंगे. वहां भी पापा का बड़ा असर है." वह हंसी.

"चलो, एक तरफ से तो तुम्हें इतमीनान है. बदनामी का तुम्हें डर नहीं. कोई तुम्हारा हुक्का-पानी नहीं बंद कर सकता. क्योंकि तुम्हारे पापा के पास न हुक्कों की कमी है न पानी की. तुम्हारे हाथों में समाज की नकेल है. जिधर चाहो मोड़ दो."

"मेरी जिंदगी में क्या कमी है? और फिर भी मुझे खुशी क्यों नहीं मिलती. क्यों कलेजा कोई हरदम काटता रहता है? भीड़ में क्यों अकेली रहती हूं."

'तुम्हें जेहनी और रूहानी बदहजमी की शिकायत है. तुमने इतनी छोटी-सी उम्र से इतनी अय्याशी की है कि अब तुम्हें ऐश भी सजा लगने लगा है. इतने आशिक चखे हैं कि जबान पर गिट्ठे पड़ गये हैं.' मैंने कहना चाहा, मगर नहीं कहा. मैं खुद भी तो उसके बाप के खैरात पर पलने वाले एक स्कूल में पांच सौ रुपये माहवार पर नौकर हूं. लीना की जिगरी दोस्त भी हूं. इसलिए जब जी चाहता है, उसकी आड़ में दुबक जाती हूं.

"लीनाजी, वे सब बेचारे तुम पर मरते हैं."

"हां. वे मुझ पर मरते हैं." लीना ने बड़ी हसरत से ठंडी सांस भरकर कहा, "जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी तो उनकी तादाद और भी बढ़ जायेगी–तब मेरे डंकी के हमउम्र मुझ पर जान देंगे." वह रुआंसी हो गयी.

"हां, और तुम कुछ भी न कर सकोगी, कि यही तुम्हारा एचीवमेंट है. जानती हो लीना?"

"क्या?"

तुम्हारी तरह एक दिन बोर होकर महात्मा बुद्ध भी राजपाट छोड़कर निकल खड़े हुए थे. उनके यार-दोस्त और बेचारी प्रेमिकाएं हाथ मलती रह गयी थीं." मैंने मस्का लगाना शुरू किया.

"तुम्हारा मतलब है मैं ये दुनिया छोड़कर हिमालय की चोटी पर जाके बैठ जाऊं."

"नहीं, क्योंकि इससे कोई फायदा न होगा. तुम्हारे पापा सारी बर्फ पिघलाकर कोई फैक्ट्री लगा देंगे. होटल शेरेटन की एक ब्रांच खोल देंगे, और वहां भी तुम्हारे आशिक टिड्डी दल की तरह गिरने लगेंगे."

वह डरी-डरी, खाली-खाली नजरों से न जाने कहां देखने लगी.

"एक बादशाह था, वह जो चीज छू लेता सोना बन जाती थी." वह उठती आवाज में बोलने लगी, "उसके हल्क में पानी का घूंट सोने का डला बन जाता था – मैं भी सोने के घूंट हल्क में फंसाए जा रही हूं."

मेरे पास से जाकर उस रात लीना ने मुट्ठी भर नींद की गोलियां फांक लीं, मगर वह भी शायद सोने की डलिया बनकर अटक गयीं. वह हफ्ता भर नर्सिंग होम में रहने के बाद एक डाक्टर के इश्क में दीवानी होकर लौटी. डाक्टर अपनी नौकरी को लात मारकर उसके साथ हनीमून मनाने जापान चला गया. बेचारे ने अपनी तीन साल की मंगनी तोड़ दी. □

अनुवाद : अशफाक अहमद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताजो-तख्त दिलाने वाली ताजो-तख्त हिलाने वाली हसीनाएं

मोहन लाल भास्कर

नीलकमल

वैसे तो मुस्लिम शासकों के जीवन में - प्रशासन में नारियों का बहुत प्रभाव रहा है. मुहम्मद बिन कासिम से लेकर जहांगीर तक - अलाउदीन खिलजी से लेकर औरंगजेब तक - कभी बीवी, कभी बहन, कभी प्रेयसी, कभी बेटी - हर रूप में नारियों ने उनकी हकूमत में अपना सिक्का चलाया है—युद्धों में उलझाया है— रेगिस्तानों में दौड़ाया है- तख्तो-ताज दिलवाया या छिनवाया है. कभी रजिया सुल्तान - कभी नूरजहां - कभी जहांनआरा-कभी मुमताज महल-यह सबकी सब और कई अन्य मुस्लिम प्रशासकों के जीवन पर किसी न किसी रूप में हावी रही हैं और इतिहास को कई मोड़ दे गयी हैं. किंतु अभी हम केवल चर्चा करेंगे इस्लामी मुल्क पाकिस्तान की जहां आजकल अवैध संबंधों पर कोड़े लगाये जाते हैं. जनसमूह के हाथों उन्हें संगसार किया जाता है (पत्थर मार-मारकर मार दिया जाता है) वहां के शासक पिछले चालीस वर्षों में क्या गुल खिलाते रहे हैं और वे हसीनाएं जो या तो दरपर्दा हकूमत चलाती रही हैं या वहां के हाकिमों को अपनी अंगुलियों पर नचाती रही हैं. उनके एक इशारे पर लोगों के मुकद्दर बदल जाते थे, तकदीरें खुल जाती थीं. उनकी भवों पर बल पड़ते ही देखनेवालों के कलेजे दहल जाते थे.

पाकिस्तान के आरंभिक शासक अपने जीवन काल में लडखड़ाते हुए दुनिया से कूच कर गये. मुकद्दर ने उनको इतना वक्त ही नहीं दिया कि वे अपने पांव जमाने की फिक्र से आजाद होकर किसी शोख हसीना के चंगुल में गिरफ्तार होते. इनमें स्वर्गीय मोहम्मद अली जिन्ना सोहरावरदी और सिकंदर मिरजा मुख्य हैं. डिक्टेटर सदर मोहम्मद अयूब खान अपने मुल्क में तो बहुत माकसाफ बने रहते थे लेकिन मुल्क से बाहर निकलते ही उनके पर निकल आते थे. दुनिया की नजरों से दूर वो अपने लिए ऐश के पहलू और सामान जुटा लिया करते थे. ऐसा कहते हुए एक बार जब वो परफ्यूमों कांड के मुख्य पात्र डाक्टर वार्ड के यहां स्वीमिंग पूल में क्रिस्टीन किलर के साथ केवल जांघिया पहनकर नाच रहे थे तो खान साहब की रंगीन तबीयत ने जोश मारा और उन्होंने ब्रिटिश हकूमत को हिला देने वाली क्रिस्टीन किलर को दोनों हाथों से जांघों से पकड़ा और पानी से बाहर हवा में टांग दिया और उधर वह इस हालत में कैमरे की आंख में कैद होकर रह गये. जब यह तस्वीर अखबारों में छपी तो पाकिस्तान के कट्टर मजहबी नेताओं और मुल्लाओं के माथे पर बल पड़ गये और दबे स्वर में 'लाहौल बिला लाहौल बिला' (लानत है इस पर) के बोल उनके मुंह से निकल गये लेकिन तब सदर अयूब का अपने मुल्क में इस कदर दबदबा था कि किसी को उनके खिलाफ चूं करने की हिम्मत तक नहीं हुई, भले ही बाहरी दुनिया के प्रेस में उनकी तस्वीर इस हाल में छपती रही और चर्चे होते रहे. अयूब का बाहरी मुल्कों में गुप्त यौन जीवन भले कैसा भी क्यों न रहा हो लेकिन अपने मुल्क में उन्होंने न तो किसी हसीना को अपने हरम में दाखिल होने की इजाजत दी और न ही किसी से एकांत में कोई संबंध रखे.

भुट्टो ने जो बगावत 1967 में अयूब के खिलाफ शुरू की थी, वह 1969 में अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी. पाकिस्तान के नौजवान मजदूर और किसान, अध्यापक वर्ग, विद्यार्थी वर्ग, वकील, सभी अयूब शाही को मिटाने के लिए सर पर कफन बांधकर निकल पड़े. मजबूरन फील्ड मार्शल मोहम्मद अयूब खान को हकूमत की बागडोर जनरल याहिया खान को सौंपकर हर किस्म की सियासत से संन्यास लेना पड़ा.

पाकिस्तानी जेलों में कई साल गुजारकर आये और 'मैं पाकिस्तान में भारत का जासूस था' नामक चर्चित और विवादास्पद पुस्तक के लेखक मोहनलाल भास्कर सुना रहे हैं पाकिस्तान के शासकों की प्रेमिकाओं के दिलचस्प किस्से.

यह शख्श याहिया खान इतना रंगीन मिजाज निकला, इसने अपने सभी भूतपूर्व शासकों की कसर पूरी कर दी. सबसे पहले तो पाकिस्तान की एक मशहूर फिल्मी हस्ती और गायिका को अपने बिस्तर की जीनत बनाया और उसे देश के बड़े से बड़े खिताब से नवाजा. अक्सर या तो याहिया खान उसकी कोठी में पड़े होते या वह उनके यहां जाकर उनकी मेहमाने-खास बनी हुई होती. चंद साल इसने याहिया खान के दौर में चमड़े का सिक्का चलाया. सैकड़ों को फर्श से उठाकर अर्श पर बिठाया और कई कातिलों को फांसी के फंदे से बचाया. उन दिनों हर कोई अपना काम निकालने के लिए इसकी पनाह में जाया करता और पलक झपकते ही उसका काम बन जाता था और मजे की बात यह है कि यह हसीनो-जमील फिल्मी हस्ती याहिया खान के संपर्क में आने तक छह शादियां रचा चुकी थी और छह बार तलाक ले चुकी थी लेकिन जब इसने युसफ खान से, अपनी उमर से पच्चीस बरस कम नौजवान से शादी रचायी तो एक बार तो याहिया खान हाथ से उखड़ गया और उसने इससे मिलना-जुलना बंद कर दिया. लेकिन यह जुदाई अधिक देर कायम न रही और वह फिर पहले की तरह ही याहिया खान की कोठी में आने-जाने लगी. इस फिल्मी हस्ती के बारे में उसके भूतपूर्व पति शौकत हुसैन रिजवी ने लिखा है, "उसे पलंग-पलंग कूदने की आदत है; वह शीघ्र ही मनपसंद पुरुष पर मोहित हो जाती है. जैसे उसे देखा ही न हो—वह एक तवायफ है और टकसाली तवायफ. उसकी नजर सदा अपने चाहने वाले की जेब पर होती है. जब जेब खाली होती है या उसके हाथ से ताकत चली जाये तो वह उसे चूसे हुए आम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनरल रानी

गुठली की तरह फेंक देती है."

उसके एक करीबी मित्र लुकमान ने उसके और याहिया खान के बीच गहरे संबंधों का जिक्र करते हुए बताया कि एक बार हम किसी साहब की याहिया खान से सिफारिश करवाने उसके पास गये तो उसने याहिया खान को फोन किया और बातचीत इन शब्दों से शुरू की, "सरकारी जनाब की बांदी बोल रही है..." एक बार याहिया खान के लड़के की शादी थी. वहां जनरल गुल हसन (जिसने बाद में याहिया खान को गिरफ्तार करके हकूमत भुट्टो के हवाले की) और जुल्फिकार अली भुट्टो धीरे-धीरे कोई बात कर रहे थे कि इस फिल्मी हस्ती ने उन्हें टोकते हुए कहा, "चुप करो, आये तुसी की बड़-बड़ लाई होई है," (चुप करो तुम क्या बक-बक कर रहे हो) इससे स्पष्ट पता चलता है कि इस फिल्मी हस्ती का याहिया खान पर क्या प्रभाव था.

याहिया खान की दूसरी महबूब – बेगम अकलीम अख्तर उर्फ जनरल रानी.

वह अपनी मलहनुमा कोठी के ड्राइंग रूम में बनी बार में बैठी शराब नोश फरमा रही थी—उसकी पारदर्शी नाईटी में से उसका संगमरमरी बदन झांक रहा था. वह धीमे-धीमे गुनगुना रही थी कि तभी नौकरानी ने आकर कहा, "बेगम साहिबा, बेगम शहबाज़ आपकी खिदमत में सलाम अर्ज करने आयी हैं."

"उससे कह दो सुबह मिले, इस वक्त मुझे फुर्सत नहीं है. तुम्हें पता है कि इस वक्त मैं सिवाय खानसाहब के और किसी से नही मिलती. इन लोगों को तो बीमारी है जब देखो मुंह उठाये चले आते हैं, मिलने के लिए. जैसे मुझे और कोई काम ही नहीं है. कह दो उसे दफा हो जाये."

"बेगम साहिबा, खुदा के लिए एक बार मिल लें. बेचारी जार-जार रो रही है. रो-रोकर उनकी आंखें सूज रही हैं."

"आये-हाये, बड़ी सिफारिश कर रही हो हरांफा (रंडी). लगता है उस गश्ती ने कोई तगड़ा लालच दिया है तुम्हें. जाओ ले आओ और बोलना कि अपनी बात मुक्तसर (संक्षेप में) करे, ज्यादा किस्से ब्यान करने ना बैठ जाये."

"जो हुक्म बेगम साहिबा," कहकर नौकरानी चली गयी और अपने साथ एक बहुत हसीनो-जमील औरत को ले आयी. उसके पहरावे से उसकी अमीरियत झलक रही थी लेकिन इस वक्त उसके चेहरे पर हवाईयां उड़ रही थीं. – बाल बिखरे हुए थे—आंखें रो-रोकर सूजी हुई थीं. वह आते ही बेगम अकलीम अख्तर रानी के कदमों से लिपट गयी और गिड़गिड़ाकर बोली, "हुस्सैन के सदके, मुझे बर्बाद ना करें—परसों रात चार नकाबपोशों ने, उस वक्त जबकि हम एक पार्टी में शरीक होने गये हुए थे, हमारी कोठी के नौकरों को बंदूक की नोक पर दरख्तों के साथ बांध दिया और कोठी नजरे आतिश कर दी. पड़ोसियों ने फायर ब्रिगेड को फोन किया. वह तब आया जब सारी कोठी ब-मय सामान जलकर राख हो गयी थी—हम सब करके दूसरी कोठी में आ गये तो आज पुलिस पार्टी ने हमारे घर छापा मारकर दो किलो अफीम बराद कर ली. अब वो उन्हें पकड़कर ले गयी है और उन पर जुल्म तोड़ रही है. खुदा गवाह है बेगम साहिबा, मेरे शौहर बिलकुल बेकसूर हैं. वह किसी गलत शै को छूते तक नहीं. पांचों वक्त नमाज अदा करते हैं, खुदा को सजदा करते हैं.

"जो शख्श खुदा को तो सजदा करे लेकिन खुदा के उन बंदों को जिन्हें खुदा ने जमीन पर हकूमत सौंप रखी हो, हिकारत की नजर से देखे—उस पर खुदा का कहर नाज़ल होता है. तुम्ही ने बेगम राजदान से कहा था ना कि यह रानी ही है जो उस पीपे (जनरल याहिया खान) को बर्दाश्त करती है, मैं तो उस पर थूकूं भी नहीं."

"हाये मुझ करमजली की जुबान कट जावे जिससे यह अल्फाज निकले. यकीन मानिये, वह दो औरतों में मजाक की बात थी. उस कमीनी ने सारी बात मुझ पर डाल दी."

"तुमने मेरे महबूब को पीपा कहा था ना, अब जब तक तुम उसी पीपे के सामने बरहना (निर्वस्त्र) नाचने पर आमादा नहीं होती हो तुम्हें बख्शूंगी नहीं."

"आप बरहना रक्स करने की बात करती हैं, आप और भी जो कुछ कहें, मैं करने को तैयार हूं. बस आप मुझे बर्बाद होने से बचा लीजिये. आपको रसूले-अकरम का वास्ता." यह कहते हुए वह फिर उसके कदमों से लिपट गयी.

"ठीक है, ठीक है. अब अपने तेवर दुरुस्त करो. जनरल साहब आने ही वाले हैं. उन्हें रोनी सूरतें पसंद नहीं हैं—मैं तुम्हारे शौहर की रिहाई के लिए फोन करती हूं." यह कहते हुए उसने अपने पति (जो याहिया खान की नजरे इनायत से एक पुलिस इंसपेक्टर से एस.एस.पी. बन गया था) का नंबर घुमाया और बोली, "सुनो अख्तर, मैं रानी बोल रही हूं. अब से ठीक दो घंटे बाद शहबाज साहब को रिहा कर देना और अपने आदमियों को ताकीद कर देना कि अब कोई उसे हाथ न लगाये." – फोन के दूसरे तरफ से कुछ ऐसा कहा गया जिसे सुनकर वह एक लहजा ठहाका लगाकर हंसती चली गयी.

फोन पर यह बातचीत सुनने के बाद बेगम शहबाज उसके बैडरूम में जाकर अपना मेकअप संवारने लगी. थोड़ी देर बाद नौकरानी ने याहिया खान के आने की इत्तिला दी तो वह लगभग दौड़ती हुई दरवाजे पर उसके इस्तकबाल को गयी और उसके भीतर आते ही उससे बगलगीर हो गयी.

"क्या बात है, बहुत खुश नजर आ रही हो?"

"मैंने तो जो खुश होना था हो लिया, अब तो आपके खुश होने की बारी है. हजूर की नजर ऐसा तोहफा पेश करने जा रही हूं कि देखेंगे तो खिल उठेंगे."

"भई ऐसा कौन-सा तोहफा है, जरा हम भी तो सुनें."

"बेगम शहबाज."

"ना-मुमकिन. वह तो हमारी तरफ आंख उठाकर देखती भी नहीं... सलाम तक नहीं करती."

"आप सलाम की बात करते हैं, वह आपके सामने बरहना रक्स करेगी. आपकी बांदी कोई कच्ची गोलियां नहीं खेली. बस जरा इत्मिनान से इंतजार फरमाएं," यह कहते हुए जब तीन बार ताली बजायी तो बेगम शहबाज ने अपने कयामतखेज जलवों के साथ कमरे में प्रवेश किया—याहिया खान आंखें फाड़े उसके बेपनाह हुस्न को देखता ही रहा गया—उसकी सांसें उसके गले में अटकने लगीं और उसे अपने दिल की धड़कन बंद होती महसूस होने लगी...

इस तरह ना जाने कितनी मासूम आंखों की पाकीजगी (पवित्रता) उसने याहिया खान की नजर कर दी. उसके उत्थान की और पतन की एक अपनी ही दास्तां है. पतन की बात बाद में करूंगा पहले उसके उत्थान की कहानी सुनाता हूं.

याहिया खान की कोठी पर पार्टी चल रही थी. याहिया खान मेहमानों के बीच बिचर रहे थे. उनका हाल-चाल पूछते हुए कि तभी उनके कानों में दो औरतों की सरगोशियां पड़ीं.

"तुम्हारे मालिक का नाम क्या है?"

"कौन मालिक – हम सबके एक ही मालिक हैं, हजूरे अनवर सदर मुहम्मद याहिया खान.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे मेरे शौहर का नाम अख्तर है." बेगम अक्लीम अख्तर ने कहा.

याहिया खान ने पलटकर देखा तो उस हुस्न के मुजस्में को देखता ही रह गया. वह औरत उन अल्फाज से कहीं प्यारी थी जितने प्यारे अल्फाज उसने बोले थे. और जो अब भी घंटियों की तरह यहिया खान के कानों मे गूंज रहे थे. और तभी उसके दिल में एक तड़प ने जन्म ले लिया कि वह उसके साथ तनहाई में बातें करेगा. वह किसी बहाने से मेहमानों को लान में छोड़ कोठी में चला गया और उसके बाद एक बांदी बड़ी राजदारी से बेगम अक्लीम अख्तर को भीतर ले गयी.

"तुम्हें याद हैं अपने अल्फाज जो तुमने मेरे बारे में कहे थे?"

"बांदी ने कुछ गलत नहीं कहा था हजूर."

"यह भी जानती हो कि मालिक को क्या हक हासिल होता है?"

"आप हुक्म तो करें हजूर, बांदी हर हुक्म की ताबेदार है." उसने यहिया खान की आंखों में आंखें डालते हुए कहा. उसकी आंखों में लाल डोरे तैर रहे थे और वह उसके सामने बिछती चली गयी.

"तुमने हमें अपना मालिक माना है, आज से तुम हमारी मलिका हो. हमारे दिल की रानी हो." याहिया खान ने उसे अपने आगोश में लेते हुए कहा और इस तरह से एक हकीर पुलिस इंस्पेक्टर की बीवी एक अदना औरत से बेगम अक्लीम अख्तर रानी बन गयी और बाद में जनरल रानी के नाम से जानी जाने लगी. एक बार उसके पति पर ताना कसते हुए किसी ने उससे कहा, "तुम्हें शर्म नहीं आती तुम्हारी बीवी को जनरल लिये घूमता है?"

उसने शराब के गिलास में से चुस्की भरते हुए कहा, "हमने जीने के लिए सोचने का अंदाज बदल लिया है, मैं सोचता हूं कि वह बीवी ही जनरल यहिया खान की है जिस पर कभी-कभी मुझे भी हाथ मारने का मौका मिल जाता है.

भुट्टो ने यहिया खान के दौर में कई बार उसके करीब होने की कोशिश की लेकिन उसने हाथ नहीं रखने दिया. एक पार्टी में भुट्टो ने उस सलाम कहा तो जवाब में वह फट पड़ी, "किससे बात कर रहे हो? किसी वाकिफ से बात करो, तुम्हें इतना भी शऊर (तमीज) नहीं कि मुहज्जब मस्तुरात (सभ्य स्त्रियां) किसी नावाकिफ गैर मर्द का सलाम कबूल नहीं करती."

भुट्टो इस जुमले पर कटकर रह गया. और शायद उसने दिल ही दिल कसम खायी हो कि, 'मेरा वक्त आने दे फिर मैं तुझसे इस हिकारत और तौहीन का बदला लेकर दिखाऊंगा.' और सचमुच अपना दौर आने पर उसने इससे भरपूर बदला लिया अपने अपमान का. वह किस तरह, इसका जिक्र बाद में करूंगा. पहले जरा भुट्टो साहब की रंगीन मिजाजी का जिक्र हो जाये.

भुटटो की महबूबा – बेगम हिना खर

औरत के मामले में भुट्टो का चुनाव दूसरों से कुछ भिन्न था. वह सिर्फ 15 से 25 साल के बीच की औरत ही पसंद करता था. जनरल रानी के निकट होने की उसकी कोशिश महज इसलिए थी क्योंकि उसके साथ शोख हसीनाओं की टोली होती थी वह आंटी कहलाया करती थी. उनमें नीलकमल बहुत ही दिलकश और मशहूर थी. उसका जिक्र भी बाद में करूंगा.

भुट्टो मुर्गी चबाकर उसकी हड्डियों गले बांधने का आदी नहीं था–रात गयी रात गयी–हर रोज एक नयी हसीना उसकी आगोश में होती थी और सप्लाई करनेवालों की कोई न थी–लेकिन सबसे ज्यादा जिस लड़की ने उसे मुतासिर (प्रभावित) किया और जिसके साथ उसने एक से अधिक रातें गुजारीं, वह थी पंजाब के गर्वनर गुलाम मुस्तफा खेर की बीवी. जिसका असली नाम तो मैं भूल गया हूं लेकिन प्यार से भुट्टो उसे हिनी कहा करते थे.

वह प्यारी सी गोल-मटोल गुड़िया अपने आप में सौंदर्य की मूरत थी कि जो भी उसे देखता, देखता ही रह जाता. गुलाम मुस्तफाखेर की शादी थी और भुट्टो उसमें चीफ गेस्ट था और यों लगता था कि असली दूल्हा गुलाम मुस्तफा खेर नहीं बल्कि जुल्फिकार अली भुट्टो है–हर कोई उसके कदमों में बिछा जा रहा था और यह बत कुदरती थी क्योंकि भुट्टो के पास उस वक्त तीन ओहदे थे–पाकिस्तान का सदर - पाकिस्तान का प्रधानमंत्री और पाकिस्तान का चीफमार्शल-ला-एडमिनिस्ट्रेटर. तीनों वही था. भला ऐसी शख्सीयत को नजरंदाज करके उससे अधिक गुलाम मुस्तफा खेर की कदर कौन करता. शादी हुई तो उसने गुलाम मुस्तफा खेर और उसकी बीवी के बीच बैठकर तस्वीर खिचायी. खैर यहां तक तो ठीक था लेकिन उसके बाद जो कुछ हुआ उसने लोगों को हैरान कर दिया कि गुलाम मुस्तफा खेर सुहागरात मनाये बगैर मुल्क से बाहर चले गये और भुट्टो साहब दस दिन तक गर्वनर हाऊस में पड़े हुए उनकी बीवी के साथ रातें रंगीन करते रहे और उसके बाद भी अक्सर हर महीने उनकी कुछ ना कुछ रातें वहीं गुजरती और गुलाम मुस्तफा खेर किसी न किसी बहाने उस वक्त मुल्क से बाहर भेज दिया गया होता.

याहिया खान जनरल गुलहसन के हाथों कैद में डाल दिया गया था और जनरल रानी दर-दर भटक रही थी. वही शाही खर्च, वही शाही शौक. दिन में भी शराब पीना और गम गलत करते रहना. आखिर वह तवायफ के स्तर तक उतर आयी. जुल्फिकार अली भुटटो उस पर ताव खाये हुए था और पुराने अपमान का बदला लेने की फिक्र में था. उसने सभी खुफिया महकमों को ताकीद कर रखी थी कि जब भी यह औरत कहीं रंगे हाथों पकड़ी जाये तो उसका भरपूर जलूस निकालना है.

एक रात पुलिस को खबर मिली कि जनरल रानी लाहौर के क्लैरीज होटल में पाकिस्तान शिपिंग कंपनी के डायरेक्टर अजीज अहमद के साथ रंगरलियां मना रही है. चुनांचे पूरी पुलिस फोर्स के होटल पर छापा मारा गया – वैसे वहां और भी जोड़े ऐश कर रहे थे लेकिन पुलिस ने किसी को तो कुछ नहीं कहा, सीधे बेगम रानी को जा घेरा. वह एक कमरे में ह्विस्की पी रही थी और उसके पिछवाड़े पड़ने वाले कमरे में पाकिस्तान शिपिंग कंपनी के डायरेक्टर अजीज अहमद की एक जांघ पर इसकी लड़की और दूसरी जांघ पर मशहूर सहयोगी नीलकमल बैठी थी. तीनों शराब में चूर मस्ती मार रहे थे. पुलिस चारों को गिरफ्तार करके थाना नौलखा लाहौर ले आयी और वहां बंद कर दिया. सारी रात थाना नौलखा उसकी ऊल-जलूल बकवास और गालियों से गूंजता रहा.

उसके बाद उसे हवालाती बनाकर कोटलखपत जेल लाहौर भेज दिया गया. यह 1973-74 की बात है तब वहां मैं भी कैदी था और कैदियों के तबादले के लिए अपनी बारी का इंतजार कर रहा था. वहां उसने जेल दरोगा हमीद खान पिस्तौल को फांस लिया. सुबह दस बजे ही वह उसे अपने दफ्तर बुला लेता. दोनों बंद कमरे में शाम तक बैठे रहते. अपने आसपास की दुनिया से बेखबर. दरोगा को हमीद खान पिस्तौल इसलिए कहते थे कि वह बात बात पर 'गोली मार दूंगा' की धमकी दिया करता था.

एक रोज उसके दफ्तर के पास दो कैदी झगड़ पड़े. यह फौरन अपनी पैंट ऊपर को खिसकाता हुआ बाहर निकला और बोला, "ड्योड़ी में दंगा करते हो, शर्म नहीं आती! गोली मार दूंगा!"

इसकी शक्ल देखकर दोनों कैदी लड़ना भूलकर हंस पड़े और उनमें से एक बोला, "यहां तो चाकू चल गये पर कतराभर खून नहीं निकला फिर आपका मुंह क्यों लाल हो रहा है जाईये चेहरा पोंछिये आपके चेहरे पर जनरल रानी के लबों की सुर्खी लगी है..." दरोगा सकपकाकर अपने दफ्तर में घुस गया और दोनों कैदी उसे देर तक गालियां देते रहे.

उसके बाद जनरल रानी रिहा कर दी गयी. भुट्टो साहब को फांसी दे दी गयी. यहिया खान दिल का दौरा पड़ने से मर गये. कुछ बरस पहले जनरल रानी हैराईन की स्मगलिंग करती हुई अमरीका में पकड़ी गयी और शायद आज भी वहां कैद है या वहां से रिहा होकर पाकिस्तान आ गयी है. उसे वहां तीन साल कैद का हुक्म हुआ था." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहद का जाल

बाला दुबे

बड़े-बड़े देशों के जासूसी तंत्र एक दूसरे के गुप्त भेद पाने के लिए कई तरह के जाल बुनते हैं. उनमें सबसे घातक लेकिन असरदार होता है यह शहद का जाल.

जासूसों की भाषा में इस विधि को 'शहद का जाल' ही कहते हैं. जैसे लोभी मक्खी फंसती है शहद में वैसे ही प्रवर अधिकारी फंस जाते हैं स्त्री-जाल में.

मोश्ये डि जीन भी एक माना हुआ भ्रमर था सुंदरियों की फुलवाडी में. वैसे डि जीन फ्रांस के राष्ट्रपति डि गोल का विश्वस्त मित्र भी था और सोवियत यूनियन में फ्रांस का राजदूत भी. और मजे की बात यह थी कि इस बात का भंड़ाफोड़ अंग्रेजों की जासूस सेवा द्वारा हुआ था जहां छप्पन वर्षीय राजदूत यूरी क्रॉटकॉव ने अपने को समर्पित करते हुए सभी पत्ते खोल डाले थे. क्रॉटकॉव ने कोई जघन्य अपराध भी नहीं किया था—हां वह सुंदर सलोनी सूरतों का मतवाला जरूर था.

और जब डि जीन ने भी प्रणय-पंख फड़फड़ाये तब रूसी जासूसी संस्था के.जी.बी. के गण प्रसन्न हुए. वे समझ गये थे कि यह फ्रांसीसी बुलबुल शीघ्र ही उनके पिंजड़े में आ जायेगी. फिर उन्होंने 'शहद का जाल' बिछा डाला जिसमें उन्होंने अपनी एक सहायिका को डि जीन की ओर बढ़ाया. यह सब निकीटा क्रुश्चेव के संकेत पर ही किया गया था क्योंकि उन्हें पता था कि डि जीन फ्रांस के राष्ट्रपति डि गोल का अभिन्न मित्र है और इस नाते वह शीघ्र ही किसी महत्वपूर्ण पद को हथियायेगा भी. और रूसी एजेंटों ने उस संलोनी रुहायिका को डि जीन के शयन-कक्ष में भिजवा कर ही चैन लिया. इस प्रयोग के बाद उन्होंने डि जीन को धड़ाधड़ पार्टियां देना आरंभ कर दिया जिसमें वे चुन-चुनकर सुंदरियां लाते और फ्रांस के राजदूत की झोली में डाल देते.

सबसे पहले डि जीन की बांहों में फ्रांसीसी-भाषा बोलनेवाली एक तलाकशुदा सुंदरी लिडिया खोवंसकाया गिरी और इसके बाद लंबे और कोमल पांवोंवाली लैरिसा क्रॉनबर्ग-सोबोलेव्सकाया अंकशायिनी बनी. और इस प्रणय-नाटक को बड़ी दिलचस्पी से दिखलाया गया. हुआ यह है कि जब लैरिसा अपने रसिया डि जीन के साथ शयन-कक्ष में रमण-मग्न थी तभी उसके पति का अभिनय करता हुआ एक रूसी भाई आ धमका. लैरिसा उसे देखकर बनावटी आश्चर्य में चीखी, "यह तो मेरा पति है."

फ्रांसीसी राजदूत के हाथों से तोते उड़ने लगे. और जब उस तथाकथित पति ने राजदूत महोदय की 'घूर-वच्छिना' का प्रोग्राम बनाना चाहा तब बगल के कमरे में जमे फिल्म खींचनेवाले एवं आवाज रिकार्ड करनेवाला स्टाफ बड़े मजे ले-लेकर हंस रहा था. सधे हुए संवाद के अनुसार लैरिसा ने अपने 'पति' को समझा-बुझाकर वापस कर दिया जिससे राजदूत महोदय भी पिटते-पिटते बचे.

बौखलाये हुए डि जीन के औसान खता हो चुके थे और इस लबड़ धों धों में उसने गलती यह की कि इस मामले पर पर्दा डालने को एक भाई की शरण में जा पहुंचे जो कि बदकिस्मती से के.जी.बी. का ही एजेंट था. अपने टीले पर राजी-खुशी मुर्गी को आते देख एजेंट भाई ने हमदर्दी के डायलॉग बोले और यह पुष्टि कर ली कि अब राजदूत महोदय पूरी तौर से 'शहद के जाल' में फंस चुके हैं और इसका फायदा मौका आने पर ब्याज सहित लिया जायेगा.

रूसी जासूस ने यह भी प्रयत्न किया कि किसी प्रकार से राजदूत की पत्नी मैरी क्लैर को भी जाल में फंसा लिया जाय पर वे सफल नहीं हो पाये.

वैसे रूसी एजेंटों की जल्दबाजी ने काम भी बिगाड़ा था. पिछली बार जब उन्हें एटैची कर्नल लुई गिबॉड और एक रूसी महिला के संबंध के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने चुपचाप उनकी प्रणय-लीला की फोटो खींच लीं. और जब उन फोटो को कर्नल गिबॉड को दिखलाकर कहा कि या तो विभीषण बन जाओ वर्ना हम तुम्हारा पर्दाफाश कर देंगे, तब वह कर्नल सीधा दूतावास गया और कमरा बंद करके उसने गोली मारकर आत्महत्या कर ली.

इस वारदात ने ही यूरी क्रॉटकॉव के कान खड़े किये थे और वह मौका पाकर सीधा इंग्लैंड आ पहुंचा. लंदन फ्रांसीसी राजदूत डि जीन के बखिये भी उधेड़ फेंके. डि जीन की किरकिरी तो तब हुई जब उसके परम मित्र फ्रांस के राष्ट्रपति डि गोल ने उससे कहा, "तो डि जीन तुम भी इधर-उधर सोते फिरते हो." □

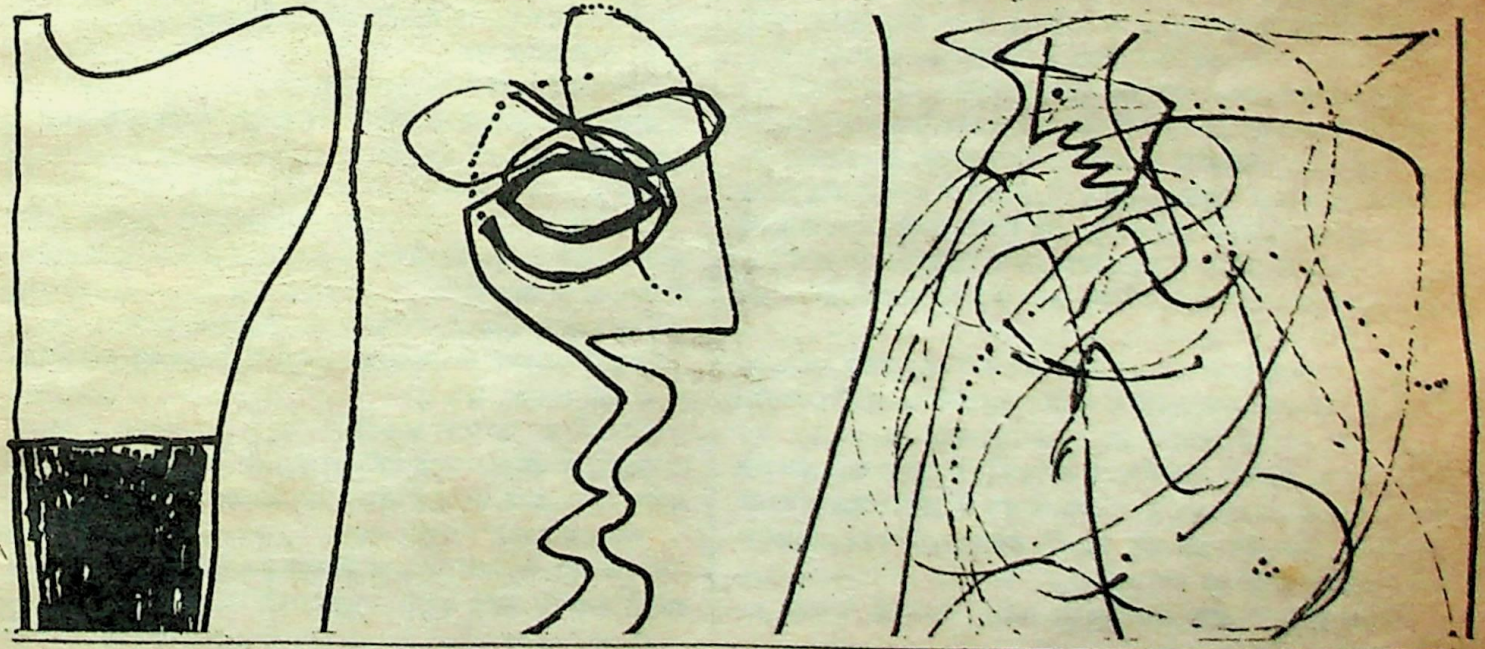

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकन्या

हरिमोहन

संप्रति गढ़वाल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से संबद्ध
संपर्क : गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल

"सुकन्या! शाम को ऊषा जी के घर पर मिला! ठीक पांच बजे!"

"जी, सर!"

सुकन्या सीढ़ियां चढ़ रही थी और डॉ. चंद्रशेखर सीढ़ियां उतर रहे थे. और कोई बात दोनों में न हुई.

सीढ़ियां चढ़कर सुकन्या डिपार्टमेंट में आ गयी. आज गौतम सर छुट्टी पर थे इसलिए पास के कमरे में बैठी मैडम ऊषाजी लड़के-लड़कियों के बीच जोर के ठहाके लगा रही थीं. उसने उस कमरे में झांका तो एक-साथ कोरस में सबने पुकारा, "आइए! सुकन्या जी आप भी आइए!!"

"नहीं, मैं जरा लाइब्रेरी जा रही हूं."

"अरी! चली जाना लाइब्रेरी! हर वक्त पढ़ती रहती हो, थकती नहीं हो? हम तो कभी इतना नहीं पढ़े..."

"आप तो जीनियस हैं मैडम..."

वह अब सुकन्या नहीं रह गयी थी, विषकन्या हो गयी थी. डॉ. गौतम को उसी ने तो डसा था. वह रो-रोकर उस विष को अपने भीतर से बहाकर बाहर निकाल देना चाहती थी.

सुकन्या का यह कथन ऊषाजी के ठहाके में डूब गया. सुकन्या सॉरी कहकर लौट आयी. उसे ऊषाजी का इस तरह बैठकर ठहाके लगाना, कुछ न पढ़ना-पढ़ाना कभी अच्छा नहीं लगा. यूनिवर्सिटी में नौकरी मिल गयी है, मजे से अकेली रहती हैं और डॉ. चंद्रशेखर के साथ राजनीति करती हैं. हुं...! उसने सोचकर अपना सिर झटक दिया और सोचने लगी, मैं जब लैक्चरर हो जाऊंगी, तब पढ़ने-लिखने के अलावा कोई फालतू काम नहीं करूंगी. कितना अच्छा इन सब झंझटों से दूर, बिल्कुल अपनी दुनिया. यह सब सोचते-सोचते उसके कदम गरिमामय ढंग से उठ-बढ़ रहे थे. वह लाइब्रेरी के सामने कब आ गयी, उसे पता भी नहीं चला.

शाम ठीक पांच बजे वह ऊषा मैडम के घर पंहुच गयी. डॉ. चंद्रशेखर वहां पहले से थे. वे सिगरेट पी रहे थे और सिगरेट के धुएं में ऊषाजी का मुस्कराता चेहरा आवृत था. उसे आश्चर्य हुआ यह वही ऊषा मैडम है जो सिगरेट के धुएं से नफरत करती हैं. उसे याद है एक बार टूर में गयी थीं तो बस में सिगरेट पीते कंडक्टर को देखकर कैसा-कैसा मुंह बना रही थीं. इस बात को लेकर ड्राइवर से तो उनका झगड़ा ही हो गया था.

"आओ सुकन्या! ठीक वक्त पर आ गयी!" ऊषा जी ने कहा.

"बैठो!" चंद्रशेखरजी ने भी उसे बैठने का संकेत किया.

"क्या लोगी? कॉफी या ठंडा!" ऊषा ने उठते हुए पूछा..

"कुछ नहीं मैडम! लाइए मैं लाती हूं. आप लोग क्या लेंगे सर?" सुकन्या ने खड़े होते हुए पूछा.

"तुम यहीं बैठो सुकन्या! यह सेवा ऊषाजी ही करेंगी!" अधिकार भाव से यह कहने के साथ ही उन्होंने ऊषा जी से कहा, "ऐसा कीजिए मैडम, कॉफी ठीक रहेगी."

"ओ के सर," और मुस्कराहट ऊषाजी वहां से चली गयी.

"सुनाओ सुकन्या, कैसी चल रही है तुम्हारी रिसर्च?

"ठीक है सर! चार चेप्टर हो गए हैं...

"जल्दी करो भई. हम चाहते हें कि तुम जल्दी पी-एच.डी. हो जाओ और डिपार्टमेंट में लैक्चरर बन जाओ...

"अरे! कहां सर..."

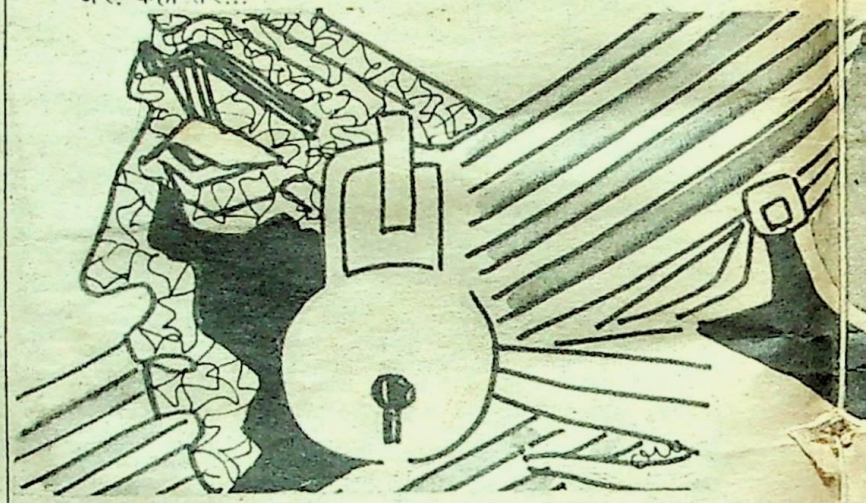

"क्यों? हम किसलिए हैं...हम पर विश्वास नहीं."

"ये बात नहीं है सर..."

"खैर छोड़ो! कल दिल्ली चलोगी?"

अन्य किसी भूमिका के बिना चंद्रशेखर ने अपनी नंगी आंखों से सुकन्या की ओर देखते हुए पूछा.

सुकन्या ने गरदन झुका ली और अटकते हुए बोली, "सर.. कल....."

"कल क्या? चलना. ठीक रहेगा. कुछ लाइब्रेरी देख लेंगे. अच्छी अच्छी किताबें देख लायेंगे और एक-दो लोगों से मिलना भी हो जायेगा. दो दिन की तो बात है."

"सर.. वो तो ठीक है, पर मामा जी से पूछना पड़ेगा...."

"वह मैं कह दूंगा. या तुम उन्हें समझा देना. रिसर्च वर्क यहीं बैठकर तो हो नहीं जाएगा. ठीक है?"

"ठीक है, सर कोशिश करूंगी."

"कोशिश-वोशिश कुछ नहीं—चलना है!" चंद्रशेखर ने लगभग आदेश दिया. इतने में कॉफी लेकर ऊषाजी आ गयीं.

"क्या तय हुआ?" उन्होंने पूछा.

"कुछ नहीं. तय क्या? सुकन्या से कुछ तय थोड़े ही करना पड़ता है. वह तो जैसे हम कहेंगे करेगी. बहुत अच्छी लड़की है!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है भई, हम भी चलेंगे, यदि आप लोगों को कोई दिक्कत न हो तो!" ऊषाजी ने लगभग परिहास के लहज़े में कहा.

"हां, चलिए मैडम आप भी चलिए. बहुत अच्छा रहेगा!" सुकन्या ने बड़े आग्रह के साथ प्रस्ताव रखा—मानो उसके आग्रह को वे मानेंगी और तब उसे अपना जाना इतना तकलीफदेह नहीं लगेगा.

"अरे! हमारे इतने भाग्य कहां. हमने तो अपने आप रिसर्च की थी. काश हमको भी शेखर जी जैसे सर मिल जाते...," कहकर ऊषाजी चंद्रशेखरजी की ओर देखने लगीं.

"चलिए आपको भी ले चलते हैं जी, आपको भी दिखा देंगे. कुतुब मीनार!"

"तब तो जरूर चलेंगे—हम भी देख लेंगे कुतुबमीनार!" ऊषाजी ने कहा और जोरदार ठहाका लगा दिया.

कॉफी पीने के बाद चंद्रशेखर ने फिर एक सिगरेट सुलगा ली. बोले, "सुकन्या! तुम्हारा सुपरवाइजर कहां गया है?"

"पता नहीं सर."

"क्या तुम्हें इसीलिए उसके अंडर में रिसर्च करने के लिए भेजा था?" चंद्रशेखर. जैसे उखड़ गये, सुकन्या के जबाव को सुनकर.

"सर,..दीदी कह रही थीं, शायद दिल्ली गये हैं!" कुछ सोचते हुए सुकन्या बोली.

इससे पहले कि चंद्रशेखर कुछ बोलें, ऊषाजी ने चुटकी ली, "अच्छा तो ये बातें हैं! डॉ. गौतम को जीजाजी बना लिया है!"

सुकन्या लजाकर रह गयी. उसके कपोलों पर एक बहुत हल्की-सी

"हुंह! आप भी बस...", चंद्रशेखर ऊषा की ओर ऐसे देख रहे थे जैसे वह बच्ची हो.

"शेखरजी, मेरी तो राय यह थी कि आप पहले से ही वह सब कुछ लिखा लेते. जब टाइम आये, तब वह डाक्यूमेंट यूनिवर्सिटी आथरिटीज को पेश कर दें. बाकी आपकी इच्छा. आप मुझसे ज्यादा जानते हैं." ऊषा ने राय दी.

"मैडम आप भी ठीक कह रही हैं. पर अभी इंटरव्यू दूर है. और फिर यह लड़की अभी इतनी परफेक्ट नहीं हुई है!"

"अच्छा तो ये बात है!"

"हां!" चंद्रशेखर ने अपने ऊपर के होंठ को निचले होंठ से दबाकर मक्कारी की मुद्रा में अपना चेहरा ऊषा के ठीक सामने लटका दिया.

"और परफेक्ट तो अभी आप भी नहीं हुई हैं!" कहते हुए उन्होंने ऊषाजी के गालों को हलके से थपथपा दिया.

"आप सब कर देंगे शेखर जी!"

"तो आओ, अभी किये दे रहे हैं!"

"ऐसी बात है!"

"हां-हां."

"जाओ – आप बड़े वो हैं!" कहकर ऊषाजी मेज पर पड़ी मेगजीन उलटने-पलटने लगीं, फिर बोलीं "घर नहीं जाना!."

"अरे! मैं तो भूल ही गया. सात बजे गये. अच्छा फिर मिलेंगे!"

"दिल्ली से लौट कर!" ऊषाजी ने चलते-चलते शरारत की. चंद्रशेखरजी ने प्यार से उनकी ओर देखा और उनसे विदा ली.

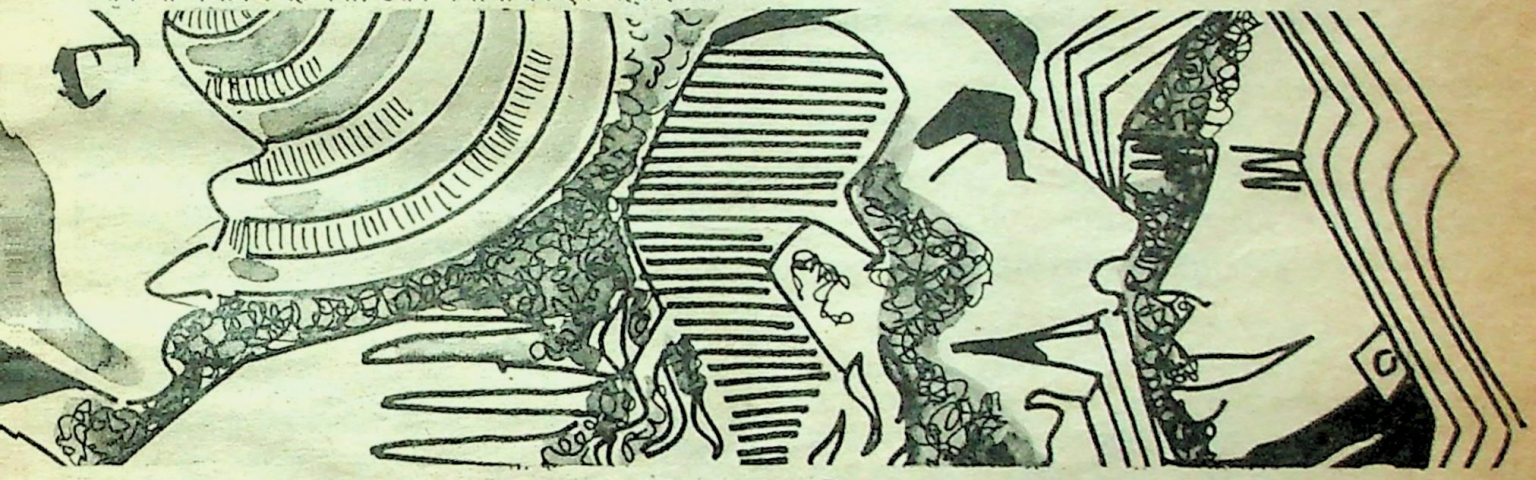

स्वाभाविक लाली थरथरा कर विलीन हो गयी. उसकी आंखों में दो काले सूरज इधर-उधर तैरकर रुक गये. थोड़ी देर खामोशी रही. कमरे में पंखे की आवाज ही सुनाई दे रही थी, जैसे कोई चिड़िया चक्कर काट रही हो. पंखे की हल्की आवाज के पीछे से चंद्रशेखर के शब्द उड़कर आये और सुकन्या के बालों में उलझकर रह गये, "ठीक है, सुकन्या, कल आठ बजे की बस से चलेंगे."

सुकन्या ने सिर्फ अपना सिर हिलाया. कहा कुछ नहीं—न 'हां' न 'ना'. चुपचाप उठकर खड़ी हो गयी. वह जानती है कि 'ना' तो संभव ही नहीं. पहले भी तो वह इनके साथ जाती रही है. 'अच्छा सर! अच्छा मैडम!' कहकर वह दरवाजे की ओर बढ़ी कि पीछे से ऊषाजी का स्वर तैर कर आया, "चिंता मत करो बेबी, मैं नहीं जाऊंगी." सुकन्या तेज-तेज कदमों से बाहर निकल गयी.

ऊषा ने चंद्रशेखर से पूछा, "वह लिखा लिया?"

"वह सब हो जायेगा, तुम चिंता क्यों करती हो." कहकर चंद्रशेखर ने उषा के कंधे पर हाथ रखा. और समझाया, "अभी जल्दी मत करो, अभी समय नहीं आया!"

"आप ऐसे ही समय देखते रह जायेंगे, वह प्रोफेसर हो जायेगा," ऊषा झुंझलायी.

तीन दिन बाद चंद्रशेखर सुकन्या के साथ दिल्ली से लौट आये. एक बात को छोड़कर सुकन्या के लिए यात्रा अच्छी रही.

चंद्रशेखर जी के लिए उस एक बात को छोड़कर बाकी यात्रा सामान्य रही. कुछ मित्रों से मिलना हो गया. सुकन्या की मुलाकात चंद्रशेखरजी के साथ कुछ पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों से हो गयी. कुछ रचनाएं छपने दे दीं. शायद कभी छप जायें. चंद्रशेखरजी का परिचय कई लोगों से है. यूनिवर्सिटी के अधिकारियों से उनके बहुत अच्छे संबंध हैं. जातिवाद के नाम पर यूनिवर्सिटी में कई गुट बने हुए हैं. चंद्रशेखरजी का गुट सबसे ज्यादा सक्रिय है. उसी गुट में फंसी सुकन्या को न चाहते हुए भी उनके कहे अनुसार करना पड़ता है. उसे इन लोगों ने डिपार्टमेंट में ही लैक्चरर एपॉइंट करने का वादा किया हुआ है. ऊषाजी रीडर बनने के ख्वाब देख रही हैं और प्रोफेसर का पद चंद्रशेखर जी हथियाने के चक्कर में हैं. इनकी योजना है, कैसे भी डॉ. गौतम को प्रोफेसर न बनने दिया जाये. यों योग्यता में वे चंद्रशेखरजी से कहीं आगे हैं और सीनियर भी हैं. लेकिन चंद्रशेखर जी की पहुंच ऊपर तक है. वाइसचांसलर तक उनके गुट से घबराता है. लड़कों को चाहे जब भड़काकर हड़ताल कराना, वाइसचांसलर के खिलाफ नारेबाजी और रजिस्ट्रार के खिलाफ अखबारबाजी करा देना इनके बायें हाथ का खेल है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकन्या चंद्रशेखर जी को एक सप्ताह बाद वहीं ऊषा जी के घर. आज सुकन्या एक बहुत बड़ी उपलब्धि लेकर पहुंची थी. कम से कम चंद्रशेखर जी के लिए तो यह बड़ी उपलब्धि थी ही. उसके हाथ में एक पत्र था, जो वह हेड साहब यानी अपने सुपरवाइजर डॉ. गौतम के घर से चुपचाप खिसका लायी थी. उसने गौतमजी की पत्नी का विश्वास जीत लिया था, जिन्हें वह दीदी कहती थी. इसलिए वह उनके घर की ही सदस्या बन चुकी थी. पत्र मेज पर था, जो अभी खोला नहीं गया था. गौतम घर पर नहीं थे. सुकन्या का ध्यान पता नहीं कैसे उस पत्र पर चला गया था और उसे चंद्रशेखर का कहा याद था. सो उसने वह पत्र उठाकर अपनी किताब में रख लिया था. पत्र डॉ. गौतम के मित्र विष्णुकांतजी का था.

"अरे वाह! आज तो तुमने कमाल कर दिया—सुकन्या!"

उसके हाथ से पत्र लेते हुए डॉ. चंद्रशेखर ने कहा. वे जल्दी से पत्र को खोल कर पढ़ने लगे—लिखा था :

"प्रिय गौतम, मैं 10 नवंबर को तुम्हारे यहां आ रहा हूं. तुम्हें चिंता की कोई ज़रूरत नहीं. कल प्रो. नायर मिले थे, दिल्ली में. वे भी हैं. तुम निश्चिंत रहो. हम तुम्हें प्रोफेसर बनायेंगे."

पत्र पढ़कर चंद्रशेखर जी को इतनी उत्तेजना हुई कि उन्होंने सुकन्या को भींचकर सीने से लगा लिया.

"अरे! क्या हुआ? आज आप बहुत खुश हैं शेखर जी!" ऊषा ने आंखें नचाते हुए कहा.

"पूछो मत ऊषा, आज बहुत बड़ा काम हो गया. ये देखो...."

चंद्रशेखर ने पत्र ऊषा जी की ओर बढ़ा दिया. पत्र पढ़कर ऊषा की आंखें फैल गयीं. पर उन्हें सुकन्या से ईर्ष्या हो गई. प्रकट में उन्होंने खुशी से सुकन्या का हाथ अपने हाथ में ले लिया, "शाबाश सुकन्या, कितना बड़ा काम करके लायी हो!... पर एक काम और रह गया—क्यों शेखरजी?"

"हां-हां, वह भी करना है!"

"क्या सर!"

"काम यह है सुकन्या! कि तुम्हें डॉ. गौतम के खिलाफ लिखकर देना है."

"क्या लिखना है सर?"

"कुछ नहीं बस यही कि डॉ. गौतम मुझे तंग करते हैं. मुझसे अनैतिक संबंधों का प्रस्ताव करते हैं. उन्होंने मुझे पी-एच.डी. जल्दी कराने का लालच देकर मेरे साथ दो-तीन बार कुकर्म किया है. मेरी स्कॉलरशिप वही ले लेते हैं. मुझे डिपोर्टमेंट में लैक्चरर बनाने का प्रलोभन देकर उन्होंने मेरे साथ.... और जो भी तुम लिख सको!"

"लेकिन सर?..." वह हिचकियाची.

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं. अब हमारी विजय है. तुम चिंता मत करो. तुम्हारे इस पत्र का उपयोग अभी नहीं करेंगे. यह गोपनीय रहेगा. तुम लिख दो."

"हां-हां, सुकन्या! कोई हर्ज नहीं लिखने में. मैं कहती हूं तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा. तुम्हारी पी-एच.डी. हम करायेंगे. फिर डॉक्टर साहब हैं ही ; तुम्हें लैक्चररशिप भी मिलेगी. लिख दो..." ऊषा जी ने समझाया.

दोनों के बीच फंसी सुकन्या सोच नहीं पा रही थी क्या करे! बेचारे गौतम सर इतने अच्छे हैं कि उन्होंने आज तक गलत निगाह से नहीं देखा. हमेशा पढ़ने-लिखने की बात करते हैं. मेरे मन में उनके प्रति आदर का भाव है. तब?... उसे लगा कि वह एक तेज बहाव वाली नदी में फैंक दी गयी है जहां वह डूबती-उतराती किसी चिकने पत्थर को पकड़ने की कोशिश कर रही है.

"क्या सोच रही हो? यह समय सोचने का नहीं है. दस दिन बाद इंटरव्यू है. और तुम्हारी पी-एच.डी. भी तो पूरी होने को है, हम जमा करा देंगे अपने अंडर में! लो ये कागज पैन..." ऊषा जी ने सुकन्या को कागज-पैन थमा दिया.

जैसे-जैसे दोनों ने बोली वैसा मन के सुकन्या ने एक-एक अक्षर लिखा-गोपनीय....कुलपति....महोदय.....

"तुम बेकार इतनी घबरा रही हो. देखो एम.ए. की स्टुडेंट है न प्रमिला. उसने भी लिख कर दिया था. गौतम सर ने मुझे अपने घर बुलाया. पेपर आउट कराया. मुझे सबसे ज्यादा अंक देने का प्रलोभन दिया और मेरे साथ..." सुनकर सुकन्या अवाक रह गयी. यह वही प्रमिला है जो गौतम सर की प्रशंसा करते-करते नहीं थकती थी. वह कुछ सोच नहीं पायी. पत्र लिखकर चेतनाशून्य सुकन्या चुपचाप उठ खड़ी हुई और ऊषा जी के घर से बाहर आ गयी. सड़क की भीड़ में बहकर जैसे-तैसे अपने घर तक पहुंची.

समय यों ही बीत गया. आठ दिन कहीं कुछ न हुआ. सुकन्या इस बीच बाहर भी नहीं निकली. ऊषा जी और चंद्रशेखर अपने अभिनय में लगे थे. डॉ. गौतम को पता भी नहीं था—क्या कुछ हो रहा है. सुकन्या सोचती रही कि जाकर गौतम सर से सब कुछ कह दे. बेचारे गौतम सर! क्या होगा उनका! चश्मे से झांकती उनकी सूनी आंखों और सीधे-सादे चेहरे का ध्यान उसे बार-बार आता रहा. दीदी का अपनत्व और बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें उसके भीतर गूंजती-बजती रहीं. वह बेचैन हो उठी. पर उसकी हिम्मत नहीं हुई कि घर से निकल कर कहीं जा सके. कई रातों तक वह सो नहीं पायी. सोचती-घबराती रही कि इस मकड़जाल से उसे कब और कैसे मुक्ति मिलेगी? उसे चंद्रशेखर का सपाट चेहरा अपने सीने पर रखे हुए पत्थर-सा लगने लगा और ऊषा मैडम! छिः कितनी घिनौनी है ये सुंदर औरत! मिस ऊषा सूद!! मिस... कुमारी... कन्या, कन्या नहीं विष-कन्या तभी तो शादी के अगले ही दिन पति को खा गयी. जिंदा रहता भी तो वह सीधा-सादा आदमी इसे कैसे निभा पाता. बे सिर-पैर की बातें करती रहती है. खिलखिलाती है बेमतलब और खोखली हंसी. और ठहाके! बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगती. चश्मा उतार ले तो आंखें कितनी भयानक लगती हैं. वह सोचती रही इन दोनों के बारे में. पर सोचने से क्या होगा? गलती मेरी ही है. क्यों फंसी पेपर आउट के लालच में शेखर के साथ, क्यों स्वार्थ जगा कि लेक्चररशिप मिल जाये. क्या पता इन लोगों ने प्रतिमा को भी लालच दिये हों. और डॉ. गुप्ता अपनी साली को लेक्चरर बनाने के लिए ही तो इनके साथ हैं. उसने मन ही मन तय किया अब इन लोगों से कभी नहीं मिलूंगी. इनके विषैले षड्यंत्रों का साधन नहीं बनूंगी. और एक निश्चय में उनकी मुट्ठियां तन गयीं. कल सुबह वह डॉ. गौतम से सब कुछ कह देगी. वे चाहे क्षमा करें या न करें!

लेकिन अगले दिन जब सुकन्या डॉ. गौतम के घर पहुंची तो उनके दरवाजे पर ताला लगा था. नेमप्लेट की जगह एक चौकोर उजला टुकड़ा दिखाई दे रहा था. डा. गौतम जा चुके थे. उन्होंने इस्तीफा दे दिया था.

सुकन्या की आंखों में आंसू छलछला आये. पश्चाताप की ग्लानि में डूबी हुई वह घर लौट आयी और अपने बिस्तर पर गिरकर जार-जार रोने लगी. तब वह सुकन्या नहीं रह गयी थी. विष-कन्या हो गयी थी. डॉ. गौतम को उसी ने तो डसा था. वह रो-रोकर उस विष को अपने भीतर से बहाकर बाहर निकाल देना चाहती थी, जो चंद्रशेखर तथा ऊषा ने उसके अनजाने उसमें भर दिया था.

पर क्या इससे डॉ. गौतम वापस आ सकेंगे? □

चलते-चलते

'यह देखकर मुझे खुशी हुई कि आपकी श्रीमतीजी आपकी देखभाल इतने अच्छे ढंग से करती हैं.'

'भाई साहब, मेरी देखभाल किस तरह होती है, हकीकत जाननी हो तो आप कभी अपनी अनुपस्थिति में यहां आकर तो देखिए.'

—सुबोध सहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसा-पूर्व भी 'माताहारी' थीं

रामकुमार भ्रमर

कृष्ण कथा तथा महाभारत पर उपन्यास श्रृंखला लिखने वाले रामकुमार भ्रमर उन पुराण तथा महाभारत-कालीन सुंदरियों के क्रिया कलापों का लेखा जोखा प्रस्तुत कर रहे हैं जिन्होंने लोगों को अपने रूप जाल में फंसाकर विलक्षण कार्य किये हैं.

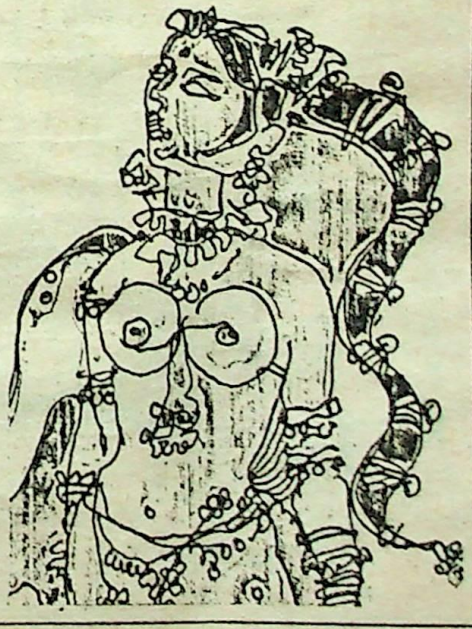

इस सदी की महानतम महिला जासूसों के नाम और विलक्षण कारनामे मेरे पढ़े और जाने हुए हैं. अब से तीन दशक पूर्व जब मैंने माताहारी की दुस्साहसपूर्ण गुप्तचर कला को लेकर पढ़ा-गुना, तब मुझे रोमांचक अनुभव हुआ था. फिर क्रिस्टीन कीलर और प्रोफ्यूमो कांड की जानकारी मिली. यह सब कुछ इस कदर चौंकानेवाला और हतप्रभ कर देनेवाला था कि बहुत समय तक उपर्युक्त दोनों ही महिला जासूस केवल मेरे लिए नहीं, मेरी तरह असंख्य लोगों के लिए कौतूहल से अधिक सनसनी का एहसास बनी रहीं. संभवतः अनेक के लिए आज भी हों...

किंतु अब से दसेक बरस पहले जब मैंने 'महाभारत' पर उपन्यास श्रृंखला लिखने का उपक्रम किया और उसके संदर्भ में पचासों प्राचीन संस्कृत ग्रंथों, उनकी टीकाओं, अनुवादों, और देशी-विदेशी कृतियों का अध्ययन किया, मुझे अनुभव हुआ जैसे माताहारी या कीलर आज से सदियों पूर्व की भारतीय गुप्तचर महिलाओं के अद्‌भुत और विलक्षण कारनामों की तुलना में नगण्य हैं. भारतीय संस्कृति और इतिहास दुनिया के किसी भी देश के इतिहास और संस्कृति से कहीं अधिक उलटफेरों और भूचालों को झेलते रहे मनुष्य समुदाय की अनथक यात्रा-गाथा है और इस गाथा में अब से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व तक स्त्री, पुरुष की समान भागीदार ही नहीं रही, अपितु अनेक बार स्त्री को पुरुष की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण देखा-जाना और स्वीकारा गया है. ईसवी पूर्व का भारतीय इतिहास और पौराणिक ग्रंथ उसकी बहुविध गुणवत्ता और राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक महत्व का लंबा लेखा-जोखा अंकित किये हुए हैं. इस लेखे-जोखे में अनेक ऐसी स्त्री चरित्र हैं, जो तत्कालीन राजनीति के कूटचक्रों को अपने दुस्साहसपूर्ण करतबों से हिलाते रहे. अनेक बार किसी एक चरित्र ने समूची राजसत्ता को या तो रक्षित किया या फिर ध्वंस ही कर डाला. ऐसी गुप्तचर महिलाएं समाज के प्रभावी पुरुषों, और ऋषियों के प्रभाव-नाश का कारण बनीं या फिर उन्होंने किसी का प्रभाव बहुत बढ़ा दिया. यह पहलू अलग है कि भारतीय ग्रंथों, पुराणों और महत्वपूर्ण टीकाओं में उनके गुप्तचर कर्म को भी पूरे सम्मान सहित विभिन्न रूपकों में वर्णित किया गया. उनकी सौंदर्य प्रसंशा करते हुए इतिहास में उन्हें उनका वांछित सम्मान और आदर मिला.

ऐसी स्त्री गुप्तचरों की भी कमी नहीं है, जो अपनी ढली आयु और वृद्धावस्था के बावजूद अपने देश, जाति, राज्य का समाज के लिए दुस्साहसपूर्ण गुप्तचर धर्म निबाहती रहीं. अनेक बार इन महिला गुप्तचरों ने शत्रु से क्षमा प्राप्त की और अनेक बार कूटजाल में वे बलि हो गयीं. अथवा उनकी हत्या कर दी गयी. गुप्तचर कला और कूटनीति के बीच आज जो चोली-दामन वाला रिश्ता है, उस समय भी था और जैसे कि आज इन रिश्तों में जीवन या मृत्यु कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं रहे हैं, उस काल में भी महत्वपूर्ण नहीं थे. अनेक ऐसी महिला चरित्र भी मिलती हैं, जिन्होंने अपने देश अथवा समाजहित में गुप्तचर कार्य स्वीकार किया और उसे इस बलिदान और त्याग की भावना से निबाहा, जिसकी जितनी प्रशंसा की जाये—कम है.

जब उनका नाम कथावाचक सुनाते हैं, तब वे सहसा उस रूप में समझ नहीं आतीं, जो उनका वास्तव्य था. यह भारतीय ग्रंथों और उनके प्रणेताओं की विलक्षण लेखन प्रतिभा है या कहूं कि लेखकीय ईमानदारी है कि उन्होंने प्रत्येक चरित्र का वर्णन करते हुए एक न्यायाधीश-जैसी न्यायप्रियता का ध्यान रखा. अच्छे लेखक और इतिहासकार का यह पवित्र धर्म है कि वह अपने देश, जाति और संस्कृति की गाथा रचते हुए भी, विरोधी देश, संस्कृति और उस जाति की विशिष्टताओं, चरित्रों की महानताओं और उनके गुणों के प्रति आदरभाव के साथ लेखन करे. 'महाभारत' और श्रीकृष्ण संबंधी अनके ग्रंथों पुराणों से लेकर श्रुतियों, संहिताओं में भी यह विलक्षण लेखकीय ईमानदारी मिलती है.

तत्कालीन गुप्तचर कला में भी सौंदर्य, तीव्र बुद्धि, निर्णयक्षमता और साहस जैसे गुणों का होना अनिवार्य होता था. अधिकतर गुप्तचरों अथवा गुप्तचर नारियों के नाम नहीं मिलते हैं, किंतु जिन्होंने आश्चर्यजनक कारनामे किये अथवा कार्यसिद्धि का चरम गौरव प्राप्त किया, वे जहां-तहां विभिन्न संदर्भों में उल्लखित भी हुई हैं. इन गुप्तचर महिलाओं ने साम, दाम, दंड, भेद हर नीति अपनाकर अपने कर्तव्य का निर्वाह किया, विभिन्न साधारण दृष्टि से देखने-समझने में गुप्तचर कर्म नहीं लगता, किंतु जिस उद्देश्य के लिए, जिस कारण जहां तक उनका उपयोग हुआ वह सिद्ध करता है कि वस्तुसत्य में वे गुप्तचर स्त्रियां ही थीं और उन्हें विशेष रूप से उनकी गुणवत्ता के कारण चुना जाता था.

यहां मैं उल्लेख करना चाहूंगा मेनका का. विभिन्न ग्रंथों, पुराणों, महाभारत आदि में मेनका को एक सुंदर अप्सरा भर कहा गया है और संदर्भ केवल इतना ही आया है कि इंद्र ने विश्वामित्र की तपस्या से घबराकर मेनका को उनका तप-भ्रष्ट करने के लिए भेजा. समूचा आख्यान और रूपक मेनका और महर्षि विश्वामित्र से जुड़ी घटना पर केंद्रित हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप इंद्र द्वारा मेनका को भेजे जाने का उद्देश्य अनायास ही साधारण पाठक या श्रोता की दृष्टि अथवा विचार से ओझल हो जाता है. यहां यह स्मरणीय है कि ऋषि की तपस्या भंग करते ही मेनका वापस इंद्रलोक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट गयी थी. घटना में मेनका ने ऋषि को रिझाया और कामासक्त कर दिया. पर किसलिए?... और अपनी सद्यजात पुत्री (शकुंतला), को लावारिस हालत में छोड़कर मेनका क्यों गयी?... कोई नारी मातृत्व की भावना का इस तरह बलिदान कर दे—यह वर्तमान स्थिति हो अथवा प्राचीन—असहज और अस्वाभाविक है. तब मेनका ने वैसा क्यों किया?... स्पष्ट है कि इंद्र ने ऋषि का जन-प्रभाव कम करने या उसे बढ़ने से रोकने के लिए ही अपने 'लोक' अथवा 'राज्य' से मेनका को भेजा. इस दृष्टि से देखा और विचार किया जाये तो मेनका साधारण अप्सरा भर न रहकर इंद्र की गुप्तचर हो जाती है, जिसने विश्वामित्र की प्रभाव शक्ति रोकने का कार्य इंद्र के पक्ष में पूरा किया. यहां तक कि मातृत्व की भी बलि दे डाली. अपने शरीर का उपयोग भी उस शांति किया, जिस तरह माताहारी ने युद्ध काल में विभिन्न जानकारियां एकत्र करने के लिए किया था.

यह ठीक है कि माताहारी और मेनका की कहानियां बहुत मेल नहीं खातीं, न ही घटनाओं का कोई एक-सा सिलसिला बैठता है, पर इतना सिद्ध है कि उद्देश्य रूप में दोनों का ही लक्ष्य एक था.

'महाभारत' व अन्य ग्रंथों में इस तरह के अनेक नारी पात्र उपस्थित हैं, पर श्रीकृष्ण के वायुगति जीवन खंड में अनेक महिला गुप्तचर वर्णित हैं. महाशक्तिशाली जरासंध उस काल के भरतखंड में अपनी अधिनायकवादी प्रवृत्ति के लिए आतंकरूप में जाना-माना जाता था. श्रीकृष्ण संबंधी पुस्तकों का अध्ययन करते हुए मुझे एक चरित्र मिला— तामसी. (इस तामसी नाम को मैंने मानसी के रूप में अपने उपन्यास में चित्रित भी किया है—भ्रमर) तामसी जरासंध की राजनीतिज्ञों में से एक थी. सुंदर, शोड़षी, चतुर और चपल होने के साथ-साथ अभिनय कला में प्रवीण. जरासंध ने मथुरा की यादव शक्ति को, जो गणसंघ व्यवस्था से चल रही थी, समाप्त करने के लिए इस गुप्तचरी युवती का उपयोग किया. स्वभावतः कंस (जो मथुरा के प्रमुख महाराज उग्रसेन के पुत्र और यादव गणसंघ के युवराज थे) स्त्रियों के प्रति बहुत झुकाव नहीं रखते थे. इसके बावजूद जरासंध ने तामसी की अद्भुत सौंदर्य शक्ति का उपयोग करके उसकी अभिनय-प्रवणता से कंस को अपने पिता के प्रति विद्रोह के लिए उकसवाया. इस सीमा तक कि कंस यादव गणसंघ-व्यवस्था के नाश का कारण बने. जरासंध ने कंस और अपने बीच तामसी का कूट-रहस्य समाप्त करने के लिए बड़ी कुटिलता और निर्ममता के साथ तामसी का वध भी करवा डाला था.

तत्कालीन युग में गुप्तचर महिलाओं का उपयोग केवल सूचनाएं लाना-ले जाना अथवा एकत्र करना भर नहीं था. अनेक बार उन्हें संभवतः ऐसे ही पौराणिक आख्यानों संदर्भों को गुप्तकाल में चाणक्य ने और अधिक विकसित करके गुप्तचर महिलाओं को 'विषकन्या' की स्थिति तक पहुंचाया होगा. उदाहरण रूप में मैं पूतना की चर्चा करूंगा. श्रीमद्भागवत पुराण में पूतना-वध कृष्ण-कथा की महिमा में केवल एक कांड बनकर रह गया है किंतु पूतना संबंधी विस्तृत अध्ययन किया जाये तो पूतना को लेकर कुछ महत्वपूर्ण बातें जानने को मिलती हैं. जैसे पूतना—कंस के सेनापति और विश्वसनीय मित्र अधासुद व केशासुर की बहिन थी—जिसने स्वयं अपने आपको कंस का मार्ग निष्कंटक बनाने के लिए गुप्तचर सेवार्थ प्रस्तुत किया. वह गोपिका का ही रूप धारण करके उस स्त्री समूह में जा बैठी, जो यशोदा के यहां पुत्र होने के सिलसिले में उत्सव मना रहा था. कुछेक ग्रंथों में यह वर्णन भी आया है कि पूतना ने बालक कृष्ण को अलग ले जाकर अपने विषाक्त स्तनों का पान करवाया. किंतु इतना सत्य है कि पूतना का समूचा कर्म उसके गुप्तचर रूप का ही एक अंग है, जिसका उद्देश्य सीधे-सीधे श्रीकृष्ण की हत्या कर देना था.

श्रीकृष्ण संबंधी अन्य ग्रंथों में एक दिव्या नामक युवती की चर्चा आयी है. और एक अन्य जगह शैव्या की. 'महाभारत' में शैव्या को श्रीकृष्ण की रानियों में गिनाया गया है, जबकि स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने शैव्या की चर्चा राजा श्रृंगलव की बेटी के नाते की है, जो श्रीकृष्ण के एक सखा से बहुत प्रेम करती थी, जबकि पिता श्रीकृष्ण के विरुद्ध था. मुंशीजी के अनुसार शैव्या बहुत मानिनी थी, जिसका विवाह बाद में श्रीकृष्ण के उसी सखा से हुआ. 'कृष्णावतार' नामक अपनी उपन्यास-श्रृंखला में मुंशीजी ने कथात्मकता की दृष्टि से ऐसा कुछ किया हो, यह संभव है किंतु मुझे इस संदर्भ में बहुत प्रमाण नहीं मिले. हां, ऐसे प्रमाण अवश्य मिले, जिनके अनुसार श्रृंगलव या राजा श्रृगाल की बेटी शैव्या ने श्रीकृष्ण से प्रेम किया और उनके शुभार्थ अपने ही राज्य में, विदेशी पणियों के प्रभाव में आये हुए अपने पिता के राजभवन में गुप्तचरी ही नहीं की, बल्कि श्रीकृष्ण की युद्ध तक में सहायता दी. शैव्या को इस हेतु अनेक बार शत्रुओं से ही नहीं, पिता तक से बहुत कष्ट झेलने पड़े. प्राप्त प्रमाणों के आधार से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैव्या के गुप्तचर धर्म से मिली सूचनाएं श्रीकृष्ण को न मिली होतीं, तब वह गोमांतक (वर्तमान गोआ) और करवीरपुर (वर्तमान कोल्हापुर) से पणि (फिनीशियंस या फोनेशियनों) को निकाल पाने में कभी समर्थ न हो पाते.

अब दिव्या की बात. दिव्या आर्यकन्या थी जो असुरराज की वासना का शिकार हुई. इस आर्य कन्या ने कुशस्थली में व्याप्त असुरराज्य को समाप्त करने के लिए अपने जीवन का खतरा उठाकर असुर शक्ति, शस्त्र भंडारों और असुर जल-शक्ति की सूचनाएं मथुरा से विस्थापित होकर रैवतक (वर्तमान गिरिनार और काठियावाड़ के आसपास) क्षेत्र में बिखरे हुए यादवों तक पहुंचायीं. दिव्या ने जीवनदान तक कर दिया, किंतु कुशस्थली, जिसे बाद में श्रीकृष्ण ने असुरों से छीनकर द्वारका नाम दिया—स्वतंत्र करवा दी. वह कुशस्थली स्थित उन आर्यों और मथुरा से आये विस्थापित यादव आर्यों के बीच संपर्क सूत्र का काम करती थी—जो कुशस्थली के विशाल क्षेत्र में असुर शक्ति के कारण दमित पड़े हुए थे. इस गुप्तचर धर्म में अनेक बार सुंदरी आर्यकन्या दिव्या को अपने वाकचातुर्य का परिचय देना पड़ा, अनेक बार उसने अपना देह विलासी असुरों को समर्पित किया. बहुत बार ताड़ना झेली और अंत में प्राण भी दिये.

'हित-हरिवंश' में शंबर नामक एक दैत्य की चर्चा आया है. इसकी पत्नी मायावती बड़ी आयु की होते हुए भी श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न पर रीझ गयी. इस सीमा तक रीझी कि उसने अपने पति शंबर द्वारा श्रीकृष्ण से विरोध के कारण अपहरित किये गये प्रद्युम्न पर ही प्रेम उंडेल दिया. प्रद्युम्न के बचाव के लिए मायावती ने अनेक दैत्य जाति की गुप्तचर दासियां और सुंदरियां रख रखी थीं और फिर एक दिन आया जब प्रद्युम्न और शंबर में भयानक युद्ध हुआ और शंबर हत हुआ. मायावती समुद्र पार करके प्रद्युम्न के साथ द्वारका चली आयी, जहां श्रीकृष्ण-रुक्मिणी ने मायावती का प्रद्युम्न के प्रति प्रेम स्वीकार किया. उसे प्रद्युम्न की रानी बनाया. वस्तुस्थिति में मायावती की गुप्तचर प्रणाली के कारण ही श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न की रक्षा शंबर से की जा सकी.

श्रीकृष्ण-कथा में ऐसी अनेक स्त्री चरित्रों के नाम या नामहीन वर्णन मिलते हैं, जब उनके गुप्तचरी सहयोग से या तो कृष्ण की रक्षा हुई अथवा श्रीकृष्ण ने जय प्राप्ति की. अनेक ऐसी स्त्रियों का भी वर्णन आया है, जिन्होंने श्रीकृष्ण के विरुद्ध गुप्तचर-कर्म करके उनके विरुद्ध सूचनाएं असुरों या उनके विरोधी आर्य राजाओं तक भेजीं.

प्राचीन भारत में स्त्रियां या पुरुष, गुप्तचरों का प्रारंभ कब और कहां से हुआ, यह ज्ञात नही होता, किंतु इतना अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है कि तबकी गुप्तचर प्रणाली में स्त्री और पुरुष समान रूप से सक्रिय भाग लेते थे. अनेक बार वे रूप परिवर्तन करते थे, अनेक बार उन्हें भाषा, संस्कृति यहां तक कि धार्मिक परिवर्तन करके भी गुप्तचरी करते हुए वर्णित किया गया है. ईसा पूर्व के भारत में ज्ञान-विज्ञान यदि अपने चरमोत्कर्ष पर थे तो गुप्तचर कला भी उतने ही उत्कर्ष पर थी. 'महाभारत' में (उद्योग पर्व अध्याय-192 श्लोक-क्रम-50 से 60 के बीच) गुप्तचरों के होने का उल्लेख आया है. इन गुप्तचरों को भीष्म ने चुनौती दे गयी राजकुमारी अंबा के पीछे लगाया था. लिखा है—"...मैंने राजा द्रुपद के यहां अंधे, गूंगे गुप्तचरों को भेज रखा है ताकि वे अंबा की प्रत्येक राजनीतिक गतिविधि का समाचार तुरंत मुझ तक पहुंचाते रहें!"

इसके अतिरिक्त 'महाभारत' में कुरुक्षेत्र के महायुद्ध से पूर्व अनेक स्थानों पर दुर्योधन कृष्ण और युधिष्ठर द्वारा बिखरायी गयी गुप्तचर व्यवस्था का वर्णन भी आया है, जिसमें कहा गया है कि विभिन्न राजाओं, राजानिवासों और जन-साधारण के बीच ऐसे गुप्तचर स्त्री-पुरुष फैला दिये गये हैं, जिनके कारण कुछ ही पलों में यहां से वहां तक सूचनाएं पहुंचायी जा सकती हैं. (उद्योग-पर्व—153 वां अध्याय)

द्वितीय विश्वयुद्ध में ऐसे अनेक जर्मन और पश्चिमी राष्ट्रों के युद्ध-केंद्रों का वर्णन मिलता है, जिनमें सैनिक, अधिकारी आदि 'मनोरंजन' किया करते थे. उन्हें उत्तम भोजन, सुंदरियां और शराब इत्यादि दी जाती थी. इन वेश्याओं या सुंदरियों में अनेक गुप्तचर होती थीं. यह संयोग नहीं है कि आज से पांच हजार वर्ष पूर्व हुए महाभारत युद्ध का वर्णन करते हुए (उद्योग-पर्व अध्याय-151 श्लोक क्रम-55 से 60) वर्णित है कि उसमें भी असंख्य युद्ध केंद्र थे. उनमें छकड़े, बाजार, डेरे, छोलदारियां, कनातें, वेश्याओं के डेरे, सवारियां, वाहन, खजाना, यंत्र शस्त्रास्त्र, वैद्य आदि उपस्थित थे. यह चर्चा करते हुए एक स्थान पर कृपाचार्य, दुर्योधन को सतर्क करते हैं—"हे दुर्योधन, अनेक सुंदरियों, सैनिकों और राजपुरुषों के अतिरिक्त संभव है कि सेवकों में गुप्तचर भी उपस्थित हों, अतः सावधान रहना!"

इससे भी आगे 'महाभारत' काल में इस तरह की चेतावनियां वर्णित हैं, जिनके अनुसार विरोधी पक्ष, एक-दूसरे के सैन्य केंद्रों, शस्त्रागारों आदि में गुप्तचरों द्वारा भयंकर विस्फोट आदि करवा सकते थे. उद्योग पर्व के 125वें अध्याय में ही विस्तार से इस सबका वर्णन आया है. (अध्याय-195 में श्लोक-क्रम-19) उद्योग पर्व में ही दुर्योधन का युद्ध-समय पर व्यवस्था कर्म वर्णित है—"...दुर्योधन स्वयं. कारीगरों, मजदूरों, नौकर-चाकरों, सूत-माघ-बंदीजनों, बनिये-व्यापारियों, वेश्या बाजारों, स्त्री-पुरुष गुप्तचरों, दर्शकों (जनता तक सूचना पहुंचाने वाले तो नहीं?) की देखभाल करता था..."

उपर्युक्त सभी संदर्भ इस सत्य को प्रमाणित करते हैं कि भारतीय संस्कृति और आर्य इतिहास के लिए किसी 'माताहारी' या 'हेलेन कीलर' का आज होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है. प्राचीन काल की भारतीय गुप्तचर कला में स्त्री-पुरुष—दोनों ही पारंगत होते थे और अपना कार्य योग्यतापूर्वक निबाहते थे. □

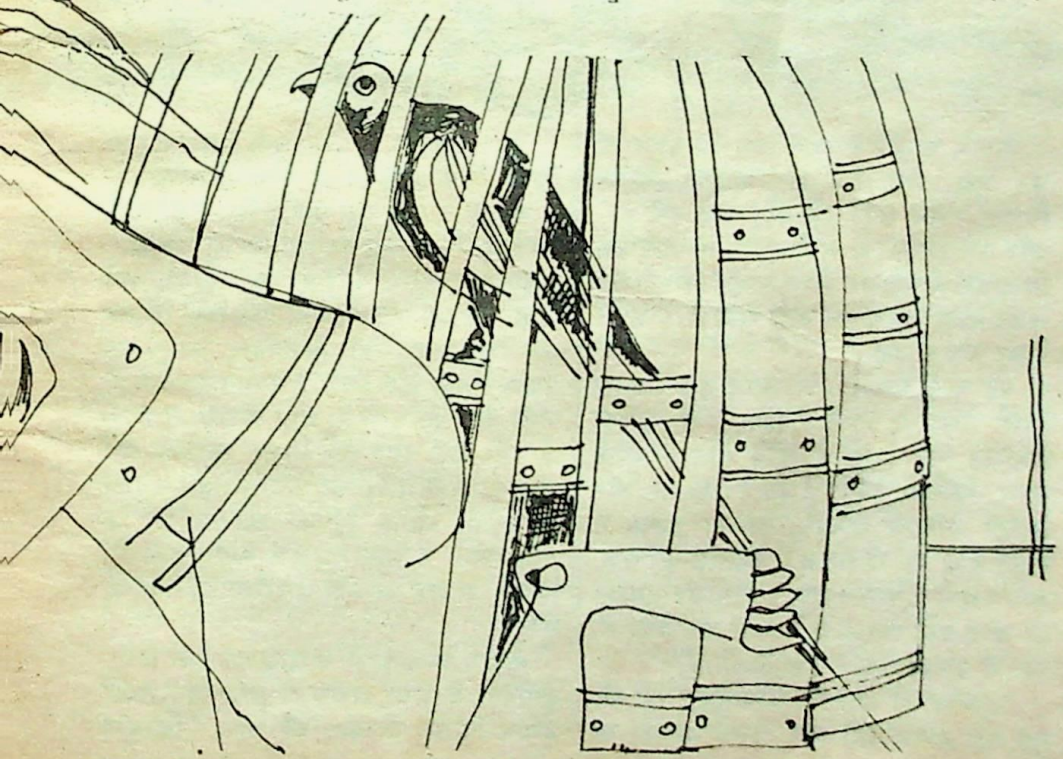

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब किसी स्त्री के दो पति मर जायें, और दोनों को ही पेट में बीमारी हो, और वह भी विवाह के दो साल बाद और दोनों ही अपने पीछे पत्नी के लिए बहुत बड़ी जायदाद छोड़ जायें तो....!

हत्यारिणी

सी.पी. डोनेल

फूलों से सजे हुये ऐसे घर की उसे आशा नहीं थी. और फिर उस घर की स्वामिनी को देखकर तो उसे और भी आश्चर्य हुआ. मादाम चालोन अपनी चालीस वर्ष की आयु में बिल्कुल हत्यारिन नहीं लगती थी. उसने उसे देखते ही सोचा, यह तो ज्ञान की रोमन देवी 'मिनर्वा' के समान है. उसकी बड़ी-बड़ी चमकती हुई आंखों का रंग उस गहरे रंग के भूमध्य सागर से कुछ ही हल्का था, जो कमरे की बड़ी-बड़ी खिड़कियों में से बाहर चमकता हुआ दिखाई दे रहा था.

और अधिक ध्यान से देखने पर उसने फिर सोचा, नहीं, यह बिल्कुल मिनर्वा नहीं है. उसके कपोलों की रंगत किसी अट्ठारह वर्षीय युवती के कपोलों की रंगत जैसी थी, और उसके सुकोमल, सुडौल अंगों में कुछ ऐसी बात थी कि दृष्टि उन्हें देखती ही रह जाती थी. उस जितने वजन की किसी भी लापरवाह स्त्री का शरीर भारी भरकम हो सकता था, पर मादाम चालोन का अंग-अंग तराशा हुआ था. उसने अपने शरीर की इस प्रकार संभाल की थी कि साठ वर्ष की हो जाने पर भी उसके शरीर में कोई विशेष परिवर्तन आने की संभावना नहीं थी.

"आप इंस्पेक्टर मिरोन हैं?" उसने पूछा. और फिर जब वह बातें करने लगा, तो वह गिलासों में शराब डालने लगी. इस पर इंस्पेक्टर की हिचकिचाहट को देखकर मादाम चालोन की आंखों में हल्की-सी चमक आयी, जैसे वह उस पर हंसी हो; परंतु उसे उसने अपने होंठों पर मुस्कराहट के रूप में प्रकट नहीं किया.

"धन्यवाद," इंस्पेक्टर ने कुछ घबराकर अपनी आवाज पर जोर देते हुये कहा.

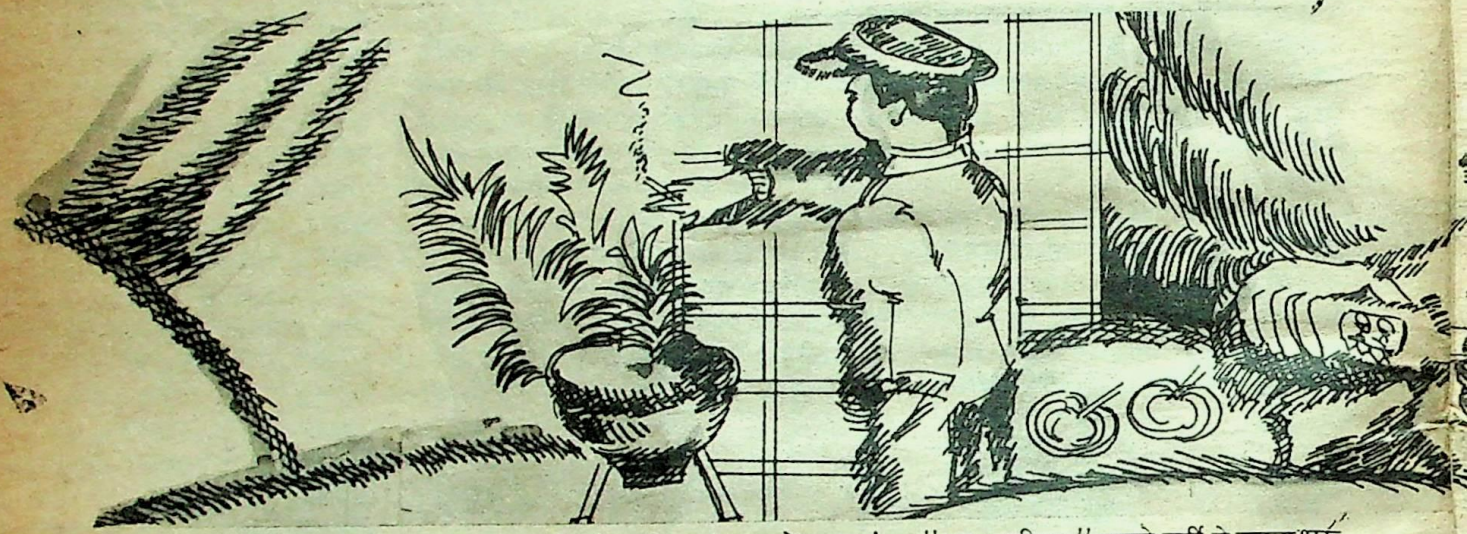

मादाम चालोन ने पहले स्वयं एक छोटा-सा घूंट भरा, जैसे कहा हो, "देखिये, मिस्टर मिरोन, इसमें खतरे की कोई बात नहीं है." और वह हल्का-सा मुस्कराई. "तो आप इस सिलसिले में पूछताछ करने आये हैं कि क्या मैंने अपने दोनों पतियों को जहर दिया है?" उसने स्पष्ट रूप से कहा.

वह कुछ संभला और उसमें एक अफसर वाली गंभीरता आयी. "मादाम, मैं आपकी इजाजत लेने आया हूं ताकि मिस्टर चार्ल्स वेरुर, जिनका 1939 में देहांत हुआ था, और मिस्टर एटियन चालोन, जिनका 1946 में देहांत हुआ था, के संबंध में पूछताछ कर सकूं. आप स्थानीय पुलिस दफ्तर के सार्जेंट लूकेयर को कोई बात बताने से इनकार कर चुकी हैं. क्या मैं इसका कारण पूछ सकता हूं?"

"लूकेयर की बातचीत सभ्यतापूर्ण नहीं थी. मुझे वह अच्छा नहीं लगा. उसमें आपका-सा सलीका नहीं है. मैंने एक व्यक्ति का रवैया पसंद नहीं किया, कानून का तो नहीं. कानून की मैं अब भी इज्जत करती हूं." उसने पीने के लिए गिलास उठाया. "मैं आपको बताने से इनकार नहीं करूंगी, इंस्पेक्टर मिरोन." उसकी आंखों में सम्मान था.

"यह आप की कृपा है."

"यह इसलिए," उसने नर्मी से कहना शुरू किया, "क्योंकि पैरिस की पुलिस के तरीकों को मैं जानती हूं और मुझे पता है कि गुप्त रूप से मेरे बारे में सब कुछ पता लगाया जा चुका है." उसने इंस्पेक्टर के चेहरे पर एक नया रंग आने दिया, पर यह अनुभव नहीं होने दिया कि वह उसे देख रही है. "और विश्लेषण," उसने इस प्रकार कहना शुरू किया जैसे बात पहले से ही जारी थी, "हो चुका है. आप उलझन में हैं कि आपको कोई सबूत नहीं मिला. इसीलिये अब आप मुझसे मिलकर सब बातों का पता लगाना चाहते हैं. शायद आपकी कोशिश हो कि बातों-बातों में आप मुझसे वे बातें कहला लें, जिनके आधार पर मुझे अपराधी ठहराया जा सके."

मादाम चालोन की ये बातें चुभने वाली थीं. इंस्पेक्टर ने सोचा, अच्छा हो अगर बिना किसी घुमाव-फिराव के बात की जाये. "बिल्कुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक है, मादाम चालोन, बिल्कुल ठीक.." पर उसने बड़ी सतर्कता से कहा, "जब किसी स्त्री के दो पति मर जायें और दोनों को ही पेट की बीमारी हो, और वह भी विवाह के दो ही साल बाद, और दोनों ही पीछे अपनी पत्नी के लिये बहुत बड़ी जायदाद छोड़ जायें... मेरा मतलब है..."

"बेशक." मादाम चालोन खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गयी. सामने नीले समुद्र की पृष्ठभूमि के सामने उसके चेहरे के आधे भाग और उसके उभरे हुये वक्ष की रूपरेखा दिखाई दे रही थी. "क्या आप मुझसे अपराध की पूर्ण स्वीकृति चाहते हैं, मिस्टर मिरोन?"

"अगर आप स्वीकार कर सकें, मादाम चालोन," उसने कहा और फिर मन में कहा, कैसी खतरनाक औरत है!

"अच्छी बात है." अब मादाम चालोन मुस्करा नहीं रही थी. खिड़की में से आने वाला हवा का झोंका अपने साथ मादाम चालोन की सुगंधी लाया. या क्या यह बाग की सुगंधी थी? क्या सचमच यह स्त्री इतनी आसानी से सब

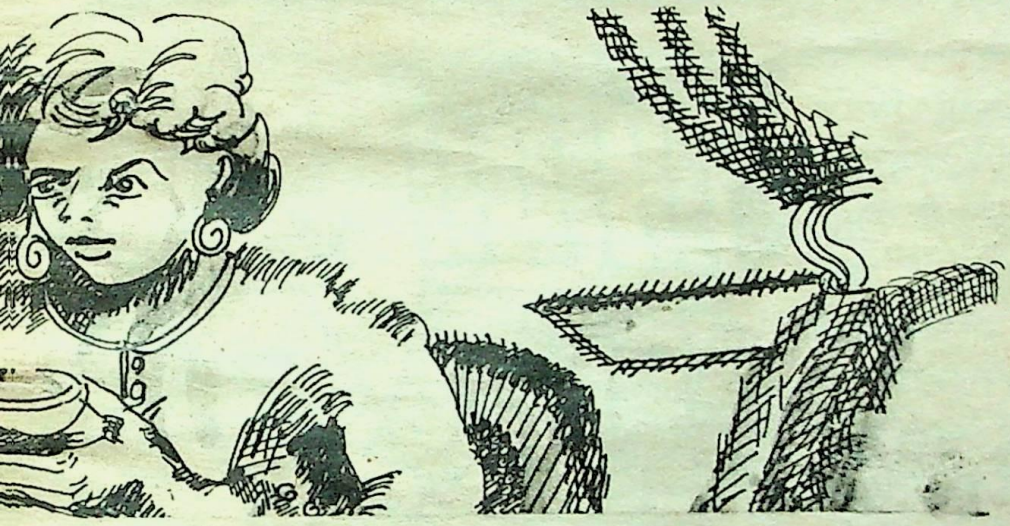

कुछ बता देगी?

"आप भोजन की कला के बारे में तो जानते होंगे, मिस्टर मिरोन?"

"आप जानती हैं कि मैं पेरिस से आया हूं."

"और प्यार की कला के बारे में भी?"

"जैसा कि मैंने कहा है, मैं पेरिस से आया हूं."

"तब..." दीर्घ श्वास में उसका वक्ष उभरा. "मैं आपको बता सकती हूं कि मैंने धीमे-धीमे, जानबूझकर और विशेष मनोरथ से अपने पहले पति, मिस्टर वेरुर की हत्या की है, जो 57 वर्ष की आयु का था और इसी प्रकार अपने दूसरे पति मिस्टर चालोन की भी हत्या की है, जो 65 वर्ष का था. मिस्टर वेरुर से मैंने अपने परिवार के अनुरोध पर विवाह किया था. तब मैं बच्ची नहीं थी. पंद्रह दिन में ही मैंने जान लिया कि मिस्टर वेरुर की भूख का अंत नहीं है. ऐसा भूखा आदमी मैंने कभी नहीं देखा था. वह उजड्ड, चापलूस, गरीबों को छलनेवाला, निर्दोषों को धोखा देने वाला था. बेहद गंदा आदमी और दिन-रात खाने वाला. संक्षेप में मैं कहूं कि उसमें वृद्धावस्था के सारे ऐब थे, पर वृद्धावस्था की न तो सहृदयता थी, न ही स्वाभिमान था. एक कारण यह भी था कि उसका मैदा बहुत कमजोर था." मिस्टर वेरुर के बारे में यही बातें इंस्पेक्टर को पेरिस में भी ज्ञात हुई थीं. उसने हां में सिर हिलाया और फिर कहा, "और मिस्टर चालोन?"

"वह और भी ज्यादा उम्र का था. क्योंकि तब मेरी भी उम्र ज्यादा थी."

"और शायद मैदा भी कमजोर था?" उसने हल्के से व्यंग्य के साथ कहा.

"बेशक. बल्कि यह कहिये कि उसकी इच्छाशक्ति भी कमजोर थी. वह वेरुर से कम बर्बर था. जबकि हम अच्छे से अच्छे भोजन और शराब का आनंद ले रहे थे, सड़कों पर बच्चे भूख के कारण बेहोश पड़े हुये होते. मैं 'हत्यारिन' हो सकती हूं. इंस्पेक्टर, पर फ्रांसीसी स्त्री भी हूं. इसलिये मैंने बिना किसी पश्चात्ताप के यह फैसला किया कि चालोन को मर जाना चाहिये, जैसे कि वेरुर मरा था."

बिना कोई विघ्न डाले इंस्पेक्टर ने आहिस्ता-से कहा, "कैसे मादाम चालोन?"

वह मुड़ी. उसके चेहरे पर मुस्कराहट चमक रही थी. "शायद आप उन स्वादिष्ट भोजनों के बारे में जानते हैं जिनके नाम हैं..."

"नहीं, उनके नाम लेने की जरूरत नहीं है, मादाम चालोन. उनके ख्याल ही से मेरे मुंह में एक साथ पानी भी भर रहा है और गला भी रुंधा जा रहा है. ऐसे स्वादिष्ट भोजन."

"हां, तो मैंने इन सैंकड़ों प्रकार के भोजनों का उपभोग किया. और उनमें से हर एक में मैंने एक चीज डाली..." वह अचानक रुक गयी.

"कौन-सी चीज मादाम चालोन?"

"आपने मेरे बारे में पूरी जांच-पड़ताल की है. आप जानते होंगे, मेरे पिताजी कौन थे?"

"क्यों नहीं, अच्छी तरह जानता हूं."

"हां, तो मैं जब बाईस वर्ष की थी, तो मेरे पिताजी अपने देहांत के कुछ पहले मुझे अपने बराबर ही समझने लगे थे."

"बहुत खूब!" इंस्पेक्टर ने सोचा कि यह सुंदर स्त्री बात को किधर ले जा रही है. "पर आपने कहा है कि आपने उन खानों में से हर एक में एक चीज..."

मादाम चालोन ने उसकी ओर पीठ कर ली. इंस्पेक्टर ने मन ही मन उसके कंधों की प्रशंसा की. कमर भी क्या खूब थी! और कूल्हे!.... वह जैसे समुद्र को संबोधन करके कह रही थी. "बस अपनी थोड़ी-सी कला और कुछ नहीं. सचमुच और कुछ भी नहीं, इंस्पेक्टर! वेरुर या चालोन जैसा व्यक्ति कैसे इनकार कर सकता था? दिन में तीन-चार बार मैं उन्हें अच्छी से अच्छी पौष्टिक खुराक खिलाती—ऐसी खुराक, जिसे पचाना आसान नहीं था. हां, मैं उन्हें ठूंस-ठूंसकर खिलाती. फिर सुला देती. उठने पर फिर खिलाती. और इतनी शराब पिलाती कि वे और ज्यादा खाते. अपनी उस उम्र में इतना खा-खाकर भला वे कैसे जीवित रह सकते थे? वे इतनी देर जीवित रहे, यह भी गनीमत थी!"

वह चुप हो गयी.

आखिर इंस्पेक्टर ने कहा, "और प्यार, मादान चालोन? माफ कीजियेगा, आप ही ने इसका जिक्र किया था."

"पौष्टिक खाने प्यार को जन्म देते हैं या कहिये, प्यार जैसी किसी वस्तु को. मैं खुद तो उनके पास थी ही. कभी दूसरी लड़कियां भी उनके पास जातीं, तो मैं उन्हें रोकती नहीं थी. आखिर वे मर गये. वेरुर 57 वर्ष की आयु में, चालोन 65 वर्ष की आयु में. और बस."

फिर स्तब्धता छा गयी. वह स्तब्धता जैसे गूंज रही थी. तभी इंस्पेक्टर इस प्रकार अचानक उठा कि वह चौंकी और घूमी. उसका रंग और भी पीला पड़ गया था.

"आज शाम को आप मेरे साथ 'नाईस' चलेंगी, मादाम चालोन?"

"पुलिस स्टेशन पर, इंस्पेक्टर मिरोन?"

"नहीं, कासीनों में. शराब पीने और संगीत सुनने. वहां और बातें करेंगे."

"पर इंस्पेक्टर मिरोन!"

"सुनिये, मादाम. मैं अविवाहित व्यक्ति हूं चव्वालीस वर्ष की आयु का. देखने में मैं इतना बुरा नहीं हूं. मेरे पास काफी धन है. मुझमें यद्यपि वह आकर्षण नहीं है, पर मुझसे घृणा भी नहीं की जा सकती." उसने उसकी आंखों में देखा. "मैं मरना चाहता हूं."

मादाम चालोन ने अंत में सोचते हुये कहा, "भोजन का अगर सही मात्रा में उपयोग किया जाये, तो वह किसी भी हालत में बुरा नहीं है. क्या आप मेरा हाथ चूमेंगे, इंस्पेक्टर मिरोन?" □

अनु : ब.स.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 19 अगस्त 1929
'अलग-अलग वैतरणी', 'गली आगे मुड़ती है' (उपन्यास), 'अंधकूप', 'एकक यात्रा सतह के नीचे' (कहानी) जैसी संप्रति : काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष.

सुनो, परीक्षित सुनो

शिव प्रसाद सिंह

"तू कौन है बे, सड़े बकरे की तरह बदबू करने वाला. देख नही रहा है सामने कुरुवंश के उत्तराधिकारी राजा परीक्षित खड़े हैं?" किल्विष ने कहा.

"राजा को मुझसे अधिक पहचानने वाला अब कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है किल्विष. मैं बहुत रहस्य से भरा भरा लग रहा हूं न तुझे. सच तो यह किल्विष कि तूने मुझसे पहले जन्म ले लिया. तू हमारी प्रजा का सबसे मजबूत हथियार है. धूर्तता कलियुग की खुराक है. बिना किल्विष के कलियुग बेकार है."

"सुनो किल्विष, राजा खुद की भयत्रस्त है. भ्रमग्रस्त है. कलियुग को तुम्हारे चित्रकारों ने, कवियों और इतिहासकारों ने ऐसा जामा पहना दिया है कि वे खुद उसी भंवर में उलझ गये हैं. क्या है शुभ्र बैल की कल्पना! चार में से तीन पैर गायब थे तो बताओ यह वृषभ एक पैर पर खड़ा कैसे था. वह लगातार मूतता रहता. बगल में गौ माता बछड़े से बिछुड़ी आर्तनाद करती रही. इनकी यवनिका पर मुझ बेचारे को उतारना कहां का न्याय है, बोलो किल्विष?"

"राजन्" किल्विष बोला, "क्या यह सच-सच कह रहा है? बताओ राजा बैल का कौन-सा पैर साबुत बचा. चारों में से तीन के गायब होने का मतलब है कि किसी बहुत बड़े वैद्य ने बैल के पेट में वह पैर जोड़ दिया हो. तुमने सुना कि यह दुर्गंध से भरा कलि तुम्हारा मजाक उड़ा रहा है. कोई गाय का बछड़ा मर जाय तो वह आंसू बहायेगी ही फिर इसमें कलि का दोष क्या है. तुमने स्वर्ण कुंडल और नरेशों की तरह कपड़े स चमचमाते हुए कलियुग को शूद्र क्यों कहा? कहा था या नहीं?"

"कहा था, किल्विष, कहा था. यह झूठ बोल रहा है, इसी से पूछो कि वह इन गरीब पशुओं को बेरहमी से पीट नहीं रहा था. क्या काले कोयले के शरीर पर राजवेश देखकर मुझे लगा कि यह शूद्र है जो मूक जानवरों को पीट रहा है. क्यों रे तू ही बोल किल्विष से कि शूद्र है या नहीं?"

"अगर जानवरों को बिना अपराध पीटना ही शूद्र का कर्म है तो बोल परीक्षित क्या तुझे मालूम है कि पश्चिमोत्तर भारत में बैल गाय के मांस को खाने वाले सैकड़ों हैं. क्या तेरे पूर्वज जिन्हें तुम लोग बहकावे में आर्य कहते हो और उनको सप्तसिंधु का वासी बताते हो, बैल,गाय, बछिया पूजना तो दूर इन्हें मारकर आंच और लपट में भूनकर खा जाते हैं. तू तो आसमान से त्रिशंकु की तरह लुढ़का दिया जायेगा अगर बताऊं कि संस्कार भोजन से नहीं, मानसिकता से बनते हैं. तेरे पूर्वज क्या गोमांस भक्षण नहीं करते थे. बोल जल्दी?"

"वे ऐसा नहीं करते होंगे. अगर वे आये हैं तो आर्यों का संस्कार भी होगा ही उनमें. सवाल पशु के मांस भक्षण का नहीं है वह तो शिकार में हम भी हिरन, नील गाय, शकर, साही आदि को भूनकर खाते हैं," परीक्षित बोला.

"वाह रे राजा, क्या तेरे व्यास भगवान् ने नहीं लिखा है कि रंतिदेव की पाकशाला में प्रतिदिन दो हजार गायों का वध किया जाता था?"

क्या खुद के माने छल हैं, क्या विश्व युद्ध में अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मशिर का प्रयोग उचित है. कौन सोचता है ऐसा? अब धर्मयुद्ध का यवनिकापात हो गया अश्वत्थामा. जिस ब्रह्मशिर को मेरे हाथों से सौंपते हुए मानव विरुद्ध इस्तेमाल न करने की शपथ करायी, वे खुद उसी पर दृढ़ रह सके क्या?"... इस कथा का एक भाग आप पिछले अंक में पढ़ चुके हैं

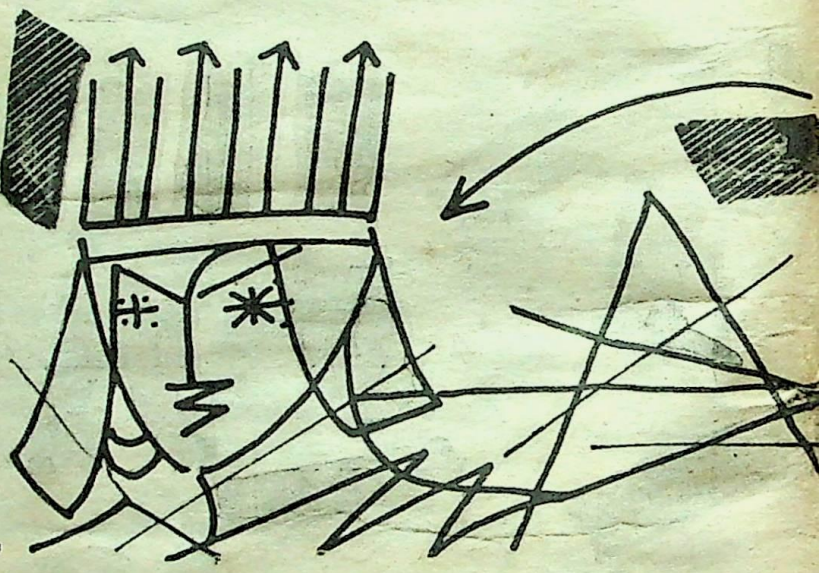

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किल्विष ठठाकर हंसा, "तुम महल वालों के वचन भी बहुत उलझे-उलझे होते हैं. फूंक-फूंककर पैर रखे बिना वहां धूर्त किल्विष भी धोखा खा जावेगा."

"खैर छोड़ इसे," कलि बोला, "तू जब अपनी रक्षा खुद नहीं कर सका तो तेरे पिता के भातुल ने तेरी रक्षा की, तो तू अपनी प्रजा की रक्षा क्या कर पायेगा. तू मुझे तीर से बेध कर मारना चाहता है, क्यों? क्योंकि तुझे घुट्टी में पिलाया गया है कि सब टंट-घंट की जड़ समय होता है. वह भी यमराज के नुमाइंदे की तरह छद्म का ही रूप लगता है. बोल तेरे ऋषियों ने चतुर्युज की जो कल्पना की है, उसका समय विस्तार कुल कितने वर्षों का होता है?"

"मुझे ठीक से मालूम नहीं है कलि, पर करोड़ों वर्षों से कम नहीं होगा."

"चल तूने यह तो कहा. मैं प्रसन्न हूं. अब बता कि इन करोड़ों वर्षों में कितनी बार कलियुग आया इस जमीन पर?"

"मुझे मालूम नहीं. ऋषियों ने कहा है कि चतुर्युग में एक बार तो आता ही है."

किल्विष और कलि खिलखिला उठे, "मूढ़ यह सब तुझे मकड़जाल में बांधने के तरीके हैं. क्या जब विष्णु ने कच्छप अवतार लिया तो कलियुग आया था."

"नहीं, तब सतयुग था."

"क्या जब उन्होंने मत्स्य अवतार लिया तो कलियुग दिखा कहीं?

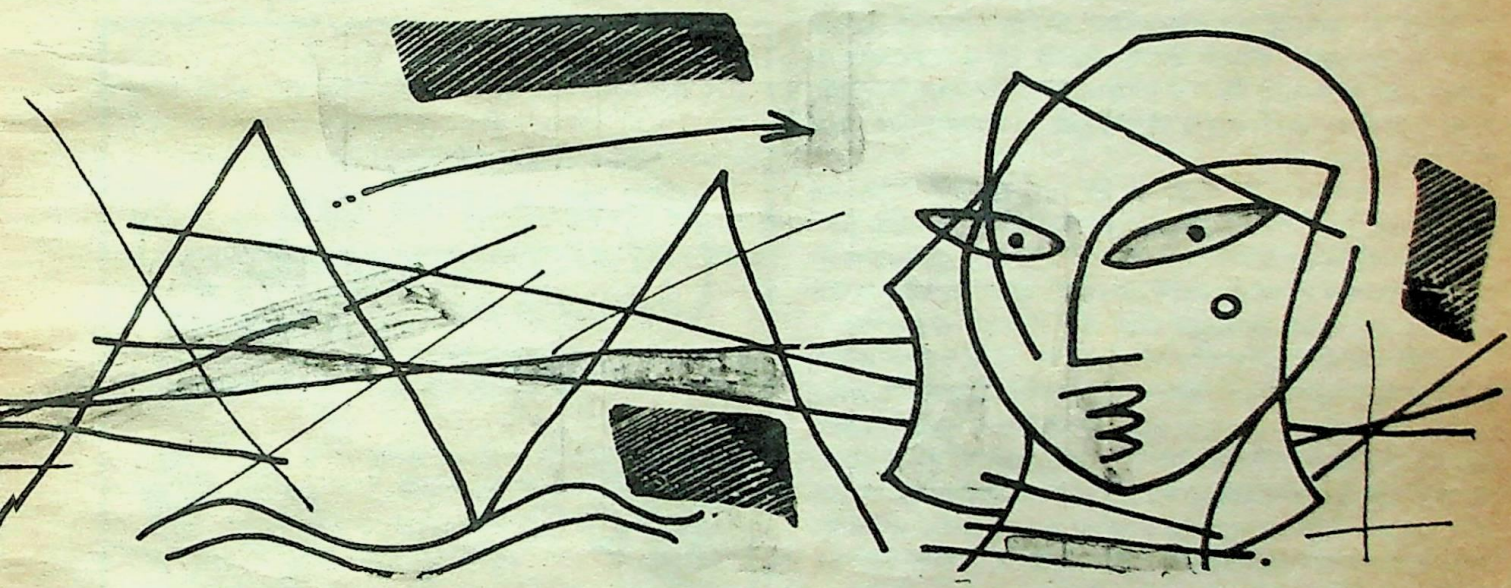

क्या जब उन्होंने, पृथ्वी को, जो तेरे ज्योतिषियों के अनुसार समुद्र में समा गयी थी, जलौघमग्ना कहा तो क्या महावाराह बनकर कलियुग आया था?"

"नहीं."

"क्या जब हिरण्यकशिपु ने पृथ्वी को संतप्त बनाया था, अपने भक्तों की रक्षा के लिए तुम्हारे भगवान् ने नृसिंह अवतार लिया, बोल यह क्या कलियुग के कारण हुआ? क्या जब परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन किया तब भी वहां कलियुग ही था? क्या रावण, कुंभकर्ण और इंद्रजीत मेघनाद ने राम को संत्रस्त कर दिया, पत्नी छीन ली, वनवासी, दुखों में डूबे दोनों भाई मारे-मारे फिर रहे थे, बोल राजा क्या यह सब कलियुग के कारण हुआ. क्या अपने स्वार्थ से तेरे पिता के मातुल ने यह विराट महाभारत रचाया तो उनके कार्यों को उचित ठहराने के लिए तूने अपने अपराधी पूर्वजों को कलियुग के नागदंत (खूंटी) पर टांग दिया है. यह तुम्हारी सचाई है कि दरिंदे जब कानून को लात मारकर अधर्म करते हैं, सांप्रदायिकता फैलाते हैं, अपने-अपने मजहब के लिए एक दूसरे का खून कर देते हैं तो इसे तुम उसी नागदंत पर टांग देते हो, यानी कलियुग पर. क्या अपने को जनता का सेवक कहलाने वाले जब नीच से नीच बर्बर हिंसा का समर्थन करते हैं, तब तुम उनकी तानाशाही को छिपाने के लिये धर्मनिरपेक्षता का नकाब लगाते हो. क्या हर बार यह सब कराने के पीछे कलियुग का ही अपराध है. सुनो परीक्षित, सुनो! तुमने या नामशेष कलि ने किसी ने भी प्रलय को नहीं देखा है. प्रलय और सृष्टि के चक्रों का यह मोतियाबिंद उन आंखों की ज्योति छीन रहा है जो इंसानियत जानती ही नहीं, असली चक्र तुम्हारे पिता के मातुल के पास नहीं, उन धुन-पशुओं की तर्जनी में घूम रहा है जो प्रजा को ही नहीं न्याय प्रिय राजा को भी नहीं बख्शते. वे चक्राकार स्वर्ण सिक्कों के बदले कभी भी, कहीं भी हत्यायें करा सकते हैं. योग्य की कुर्सी छीन कर अयोग्य को बैठा देते हैं."

"बस करो, बस करो." परीक्षित चिल्लाया, "तुम मुझे अपमानित करने आये हो?"

"नहीं. मैं अपमानित करने नहीं आया, न तो तुम्हारे पुत्र जनमेजय को डराने आया हूं. सिर्फ कहने आया हूं अग्नि प्रलय और जल प्रलय में क्या अंतर है. दुनिया के तमाम धर्म ग्रंथों में जल प्रलय का उल्लेख है. किंतु द्वादशसूर्यों की ज्वाला से प्रलय केवल इस बार हुआ है, जो भौतिकी तुला पर दुनिया को परखने वाले ही बता सकते हैं कि यह क्या है? यह किसी अज्ञात शक्ति का विधि विधान नहीं है. अपने पितामहों का करिश्मा कह कर नाचना है तो नाचो. अब क्या नाचेगा कोई. विकलांगों का नृत्य विकलांग भी देखने की जुर्रत नहीं करेंगे."

"वाह भाई कलि, तुमने हमारी आंखें खोल दीं." किल्विष खिलखिलाया, "क्यों रे राजा मनु, सतरूपा के पहले भी जल प्रलय हुआ था. उन्होंने पुनः सृष्टि का निर्माण कराया. आदम और ईव के जमाने में भी जल प्रलय हुआ था? पुनः आदमी आया. पर किसी ऐसे प्रलय का नाम बता जो द्वादश आदित्यों के एक साथ उदित होने का परिणाम कहा जा सके?"

"मुझसे क्यों पूछ रहे हो किल्विष और कलि. मेरा ख्याल है कि इस घटना को देखकर वैज्ञानिक द्वैपायन व्यास ने जो कहा उसे तुम दोनों ने कोरी गप्प या कल्पना नहीं माना. तुम्हें व्यास पर विश्वास है तो उन्हीं से पूछना चाहिए यह प्रश्न."

"मैं साफ कह दूं परीक्षित, कि सत्य की परीक्षा बाकी है. मैं व्यास को बहुत बड़ा इतिहासकार और वैज्ञानिक मानता हूं, पर उन्होंने अपनी नासमझी का जो परिचय दिया है उसे मैं भूल नहीं पाऊंगा. उन्होंने चरित्रहीनता, परस्पर घृणा और द्वेष, मानवमूल्यों की अवहेलना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिवारिक कलह, तामासक आचरण, अनैतिक कार्य करनेवालों को कलियुग की देन कह दिया. नतीजा हुआ कि हर पुराण के अंत में चाहे वह सतयुग हो, त्रेता हो, द्वापर हो, मुझ गरीब के सिर पर गुनाहों का इतना बोझ लाद दिया है कि उनके अनुसरण करने वाले यत्किंचित् बुद्धि का भी प्रयोग न करके सारे दुर्गंधित चोलों, चादरों, पसीने से भीगी बनियानों और स्नान से शुद्ध हो कर अपवित्र वस्त्रों को कलि की खूंटी पर लटकाते जा रहे हैं."

"हूं, तो तूने गाल फुला लिये," बोला किल्विष, "इसलिए तेरे सामने हमने महावैज्ञानिक व्यास की चर्चा क्यों की. जिस देश का राजा अपने वैज्ञानिकों को अपने से छोटा मानता है, उनसे दासता स्वीकार करके अपने वर्चस्व का नकाब ओढ़े अपने को भगवान् मानने का गर्व करता है वह इसी तरह बिला जाता है, जिसका उदाहरण तू खुद है. ब्रह्मास्त्र तैयार हों या न हों. इस पर लगने वाले खर्चे की परवाह न कर अपने अंहकार को तुष्ट करता है. प्रजा के लिए अन्न-जल की जरूरत को ठोकर मारकर सिर्फ मदांध की तरह जीता है वह तेरी तरह ही खतरे भरी अंध गुफाओं में खो जाता है."

"तू मिथ्याचारी है, कलि, पर इसी बहाने तुमने एक बहुत ही सूक्ष्म बात कही है. मैं व्यास का अपमान करना तो दूर, ऐसे घृणित कार्य का सपना भी नहीं देख सकता. कलि, व्यास देव न सिर्फ अद्वितीय वैज्ञानिक है बल्कि मेरे पूर्वज हैं. उन्होंने करुवंश को पालापोसा और जिलाया है और फिर, सुनो कलि, अगर व्यास देव ने अपनी प्रयोगशाला मे अनेकानेक अभूतपूर्व पदार्थों का निर्माण न किया होता तो अच्युत महावैज्ञानिक कृष्ण भी मुझ गर्भस्थ शिशु की रक्षा न कर पाते. उन्होंने ब्रह्मास्त्रों की टक्कर, प्रक्रिया और प्रभावों को देख कर सब कुछ को स्वाहा करते दोनों बाणों के बीच अपने को खड़ा कर दिया, यही ऋषि नारद ने भी किया. इस स्थिति में जो कुछ हुआ वह एक चमत्कार लगता है." राजा बोला.

"तो तू चमत्कार का भूखा है, हा, हा, हा, हा " किल्विष खिलखिलाया, "बोल राजा तू किस तरह का चमत्कार चाहता है?"

"पहला कौतुक तो जीभ पर जलती लपटों का है. तू ने खुद कहा था कि किल्विष कि जिस अग्नि को मुख में अग्निहोत्री भी धारण नहीं कर पाते उससे भी अधिक चमत्कारी अग्नि को मेरी जीभ पर जलता देख."

"काफी विलंब हो गया है राजा और इस समय मानव जाति विनष्ट हो रही है तो कौतुक का मतलब है कमीनापन, देख मेरी जीभ खेचरी सिद्ध हूं मैं. मेरी जीभ इसी कारण मुंह से बाहर काफी निकल आती है, इसी के छोर को थोड़ा उठा देने से वह नागफण लगती है इसमें गोधूम के आकार का कपूर रख कर जला देता हूं. वह तब तक जलता है जलता रहता है और मुझे याद है कि हर बार इस अग्नि को देख कर जनता भ्रम में डूब जाती है. किसी को संदेह नहीं होता डर के मारे कि जलने वाली चीज क्य थी."

"वाह किल्विष, ", परीक्षित बोला, "तुम्हें दुनिया को धोखा देते हुए कितने वर्ष हो गये?"

"एक कल्प." किल्विष और कलि बोले.

"इतना बड़ा झूठ तो मत बको तुम लोग?" परीक्षित ने कहा.

"एक कल्प के बाद तो सृष्टि ब्रह्मलीन हो जाती है. उस वक्त कोई भी नहीं बचता यानी सृष्टि निर्माता ब्रह्मा भी जल की अथाह गहराई में बिला जाते हैं. अगर तुम लोग सचमुच कल्प से आज तक जीवित होते तो प्रलय की चर्चा नहीं करते?"

"अच्छा राजा, तू ही बता, प्रलय कितने प्रकार के होते हैं?"

"दो प्रकार के तो होते ही हैं, एक प्राकृत और दूसरा नैमित्तिक."

"अच्छा यह बता कि तेरे पूर्वज व्यास ने जिन प्रलयों की बात की है. उसमें प्राकृत ढंग से घटने वाले प्राकृत प्रलय का आधार दिखता है. यानी अकल्पनीय जल प्लावन, अनंत पर्सोये विष्णु के मन में पुनः सृष्टि के खिलौनों की चाहत. फिर सूर्य और वायु से जल का विनाश, पुनः जल से सृष्टि का आरंभ आदि-आदि.

और यह नैमित्तिक प्रलय क्या है? बताओ दोनों का अंतर. बोलो परीक्षित."

"मैं नैमित्तिक की बात करूंगा तो तुम दोनों मेरा उपहास करोगे क्योंकि नैमित्तिक के लिए ईश्वर की इच्छा को, लीला को, आधार बताया है व्यास देव ने."

व्यास देव को कटु सत्य की अनुभूति थी, वे जानते थे कि ईश्वर को आधार मानकर जीने वालों को उस वक्त बड़ी निराशा होगी जब उन्हें पता चलेगा कि मानव विनाश का कारण ईश्वर नहीं लोलुप, तानाशाह, युद्धों के सौदागर और हथियारों को बेच कर अतुलनीय धन लूटने वाले उनके सहोदर ही हैं. यानी मानव को नष्ट करने का दायित्व केवल मानव का होगा. उन ऋषि वैज्ञानिकों को अपनी करनी पर दुःख होंगा, पीड़ा होगी और अगर उन्होंने विनाश का कारण बताकर प्रयोगशालाओं में जाना छोड़ दिया तो वे चाहे कितने भी विख्यात हों उन्हें जेलों में ठूंस दिया जायेगा. यह है नैमित्तिक. ले दे कर तुम्हारे पिता के मातुल ही अवतार माने जायेंगे क्योंकि तुम्हारे पितामह से कहा था— "मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन." तेरे पितामह युद्ध न चाहते हुए भी, उनके आदेश पर युद्ध में शामिल हुए और पार्थसारथी कुरुक्षेत्र के प्रथम विश्वयुद्ध में संहारकर्ता की भूमिका में उतरे." सिर्फ उतरे यह मत कहो राजा, "किल्विष बोला," उन्होंने द्रोपदी के पांचों पुत्रों के वध का बदला लेने का संकल्प लिया. कृष्ण और कृष्णा को वृगलात्मा समझो."

"वृगलात्मा क्या है किल्विष?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यानी एक तो भौतिक पत्नी होती है दैनदिन कार्यों के बीच पति को प्यारी लगने वाली पत्नी होती है पर दूसरी भी होती है जो प्राणों से भी अधिक प्रिय लगने वाली अपनी अंतरंग सखी. कृष्णा का रुदन देख कर वे गंभीर हो गये. इसके बाद जब द्रोपदी ने युधिष्ठिर पर व्यंग्य करते हुए कहा कि आप संपूर्ण पृथ्वी का राज्य भोगिये, युद्ध के दिनों में मेरे पुत्रों की जब हत्या हो रही थी तो आप मेरे साथ उपलव्य में थे. आप वहीं लौट जायेंगे और सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को भी भूल जायेंगे."

कृष्ण मन ही मन मुस्कुरा रहे थे. कृष्णा ने पार्थ से कहा, "अगर वीभत्स गुरुपुत्र का वध नहीं हुआ तो मैं अनशन करके जीवन त्याग दूंगी."

क्रोधित भीम गदा ले कर चल पड़े थे. उनकी रक्षा के लिए प्रेरित करते हुए पार्थसारथि ने अर्जुन, युधिष्ठिर को रथ पर बिठाया और दौड़े. "इतनी शीघ्रता किस लिए" अर्जुन ने पूछा. "तुम लोग इस अश्वत्थामा का चरित्र नहीं जानते. एक बार द्वारका यात्रा पर गया था. युद्धवंशियों ने पूर्ण आदर-सत्कार से आतिथ्य किया. एक दिन अकेले में मुझे देख कर उसने कहा कि मेरे पास पिता का दिया हुआ ब्रह्मशिर अस्त्र है वह तो अमोघ है ही. इस ब्रह्मास्त्र को ले लीजिए और अपना चक्र मुझे दे दीजिए."

मैंने हंसते हुए कहा, "तुम न केवल चक्र, यह धनुष, यह गदा सब ले लो बल्कि शक्तिवाण भी उठा लो." वह पसीने-पसीने हो गया पर कोई भी हथियार वह उठाना तो दूर हिला भी न सका. ऐसा व्यक्ति कुछ भी कर सकता है," कृष्ण बोले, "भीम के पहुंचने के पहले रथ को वहां पहुंच जाना चाहिए."

तभी हल्ला मचा. लोग अग्निहोत्री को अपने-अपने लूले हाथों से किसी तरह उठाये हुए ले आ रहे थे.

"बचाओ, बचाओ, बचाओ" चिल्लाहट निकट से निकट आती गयी.

किल्विष और कलि उधर की ओर दौड़े. भय से घबराये हुए लोगों के पास पहुंचने पर दोनों ने देखा कि अग्निहोत्री बेहोश है और उस का शरीर कुश के वस्त्रों से ढंका हुआ है.

"इसे तुम जानते हो किल्विष?"

"अच्छी तरह जानता हूं मित्र. यह अग्निहोत्री है. अभी कुछ घड़ी पहले मसान में गया था." किल्विष खिलखिलाया.

"क्यों?"

"वहां दिव्यास्त्र से भरे हुए तमाम जीवों की प्रेतात्माएं उसी रूप में परछाईं की तरह कार्यरत हैं जैसी वे युद्ध में तल्लीन थीं."

"बोलो, बोलो किल्विष क्या यह सत्य है?"

"मैंने देखा नहीं मित्र, देखना है क्या?"

कलि ने सब लोगों से हाथ जोड़ कर कहा, "अब आप लोग इस रेती पर इन्हें रख दें. मैं इनका निरीक्षण करूंगा. मैं सदानीरा के दक्षिणी जनपद का रहने वाला अनुभवी वैद्य हूं. यद्यपि हमारे वंश का इतिहास नया है, क्योंकि मादव विदेध के सदानीरा पहुंचते-पहुंचते वैश्वानर तिरोहित हो गया. फिर उन्हीं की आज्ञा से हमने कभी सदानीरा को लांघना वर्जित कर दिया."

"जरा-जल लाइये." कलि ने सराव के जल से अग्निहोत्री के मुख पर छींटे मारे और कुछ देर बाद अग्निहोत्री की तंद्रा टूटी.

"क्यों आर्य," कलि बोला, "कैसा लग रहा है आपको?"

"चुप बे पाखंडी," अग्निहोत्री बोला, "मैंने आज वह देख लिया जिसे देखने के लिए मेरी पांच पीढ़ियां तरसती रहीं. तुझे बोलने की भी तमीज नहीं है. तू अग्निहोत्री को मनुष्य समझने की कोशिश कर रहा है. कहां गया अधम कुरुवंश का उत्तराधिकारी परीक्षित्. बुलाओ उसे. आकर देख जाय कि ब्राह्मण का मतलब क्या होता है?"

"बाबा," किल्विष बोला, "अब तो बतला ही दो. ज्यादा दर्शन मत बघारो."

"हूं, तो छोकरा, अधम अनीश्वरवादी नास्तिक तू अब तक यहीं है. तू मुझसे तिल भर श्रेष्ठ अग्निहोत्री तो है..."

"तो दिखला रहा हूं कि मैं तुझसे तिल बराबर नहीं बल्कि एक मन से भी अधिक वजनी अग्निहोत्री हूं. किल्विष की जिहवा पर आज सात जिहवा वाले भगवान् वैश्वानर तेरे जैसे नकली अग्निहोत्री की बलि लेंगे यह सब मैं अभी दिखा रहा हूं..."

अग्निहोत्री घबड़ा कर बैठ गये.

"ऐसा मत करना वत्स. मैं तो मजाक कर रहा था आर्य किल्विष...हें हें हें."

"बस एक घुड़की से ही कांप उठा तू. अरे मूर्ख अचानक आर्य कब बन गया मैं? यह है वैश्वानर का प्रभाव. अच्छा बोल तूने शरीर में क्या लपेटा है और यह कुशा चीर क्यों पहन लिया है?"

"लपेटा तो घृत है और सकल जगत को पराजित करने वाले इस कुशाचीर को धारण किया है ताकि मूर्ख लोग ब्रह्म तेज को समझें. तू ने कृष्ण द्वैपायन की वे पंक्तियां तो सुनी ही होंगी वत्स कि जब छलिया कृष्ण भीम, अर्जुन और युधिष्ठिर के साथ वहां पहुंचा जहां ऋषियों के बीच अश्वत्थामा बैठा था."

"पंक्तियां बोलो, पंक्तियां." किल्विष बोला, "तुम शोधकर्ता लोग अप्रमाणित या अनदेखे संदर्भ को अपना बता कर अपने नाम से छपाते हो. मैं ऐसे किल्विष बंधुओं को बहुत अच्छी तरह जानता हूं. मैं नहीं मानता कि अश्वत्थामा घृत से नहा कर, कुशाचीर पहन कर बैठा था. पंक्तियां बोलो अग्निहोत्री."

"ले सुन..."

तं च क्रूर कर्माणं घृताक्तं कुश चीर्णम्
रजसा धवस्तमासीनं ददर्श द्रौणिमत्तिके...

"हूं" कलि मुस्कराया, "किल्विष."

"कहो मित्र! इसने बड़ा पाप किया है. मैं इसे क्षमा नहीं करूंगा."

"किसे क्षमा नहीं करोगे?"

"इसी अग्निहोत्री को, यह महाभारत के श्लोक को देख कर पगला गया है. यह अश्वत्थामा बनने चला है. अश्वत्थामा मृत्यु को निकट से निकटतर आती देख रहा था. वह द्वैपायन व्यास के साथ धार्मिक समस्याओं पर विचार करने वाले ऋषियों के साथ गंगा तट पर उनके बीच अपने को छिपाये बैठ गया था. पर यह श्लोक कुछ ज्यादा वजनी होना चाहिए. घृत और कुशाचीर? बोलो कलि यह घृत और कुशाचीर क्या बला है?"

कलि तर्जनी से कान खुजलाते हुए कुछ देर सोचता रहा. "मुझे तो लगता है कि यह कोई टोटका है. मृत्यु से बचने का कोई त्राणदाता कवच है."

"बिना प्रमाण के किल्विष कुछ नहीं मानता मित्र. टोटका है तो उसको प्रमाण दो, मृत्यु से बचने का कवच है तो उसका प्रमाण दो." किल्विष बोला.

"अब सीधा प्रमाण कहां से बताऊं. शुभ-अशुभ के कीचड़ में धंसी इस धरती को हिरण्याक्ष का वध करके महावाराह की तरह ऊपर कैसे ले आऊं. मैंने क्या ठीका लिया है? अलबता उन ज्योतिषियों और ऋषियों की तरह मैं कह सकता हूं कि आर्य जाति का विनाश केवल एक कारण से हुआ, यानी कलियुग के आगमन से." कलि खिलखिला कर हंसा, "वही समस्या, वही खूंटी. लटका दो एक और झूठ. क्या फर्क पड़ता है."

"नहीं कलि", किल्विष अपने सिर के बालों को खुजलाते हुए बोला "यह रहस्य है और काफी गहरा रहस्य है."

"यह रहस्य-वहस्य कुछ नहीं मूरखो. यह अंडा है वत्स अंडा." अग्निहोत्री ने मुंह को विकृत बनाते हुए कहा." क्यों रे छोकरे, सुना है तूने इस अंडे के बारे में."

किल्विष एक क्षण चुप रहा. "मैंने तुमसे कहा था न अग्निहोत्री कि किल्विष बिना प्रमाण कुछ सुनना पसंद नहीं करता. बोल कहां है वह अंडा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो तू मेरी परीक्षा लेना चाहता है प्रेत, तू अब मुझको फांस में फंसा नहीं सकता...सुन...

तत्क्रमेण विवृद्ध तु जलबुद् बुद्वत् स्थितम्
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे वृहत्तदुदकेशयम्.

"वाह अग्निहोत्री, धन्य है तू, तूने सारा धिक्कार, जुगुप्सा, तामसिक नकाब, चरित्रहीनता को बढ़ाने वाला कह कर जो अब तक कलि के माथे पर मढ़ा जाता रहा है, इस घृणित चोगे को कलि की खूंटी पर नहीं लटकाया बल्कि समुद्र की गहराई से बचा कर महावाराह भगवान् की तरह अंडे को सतह पर ले आये."

"मैं चला मित्र, मैं भूखों के प्रलाप सुनने-सुनाने वालों से घृणा करता हूं. तुम जिस अंडे का जिक्र कर रहे हो उसके भीतर ही सारा जगत है. मैं हूं, तू है, परीक्षित है और यह मूर्खाधिराज अग्निहोत्री भी वहीं है. ब्रह्मस्त्र ब्रह्मंड को कंपित कर रहा है, इस अंडे की रक्षा कैसे होगी इस पर सोचो, तो कुछ क्षण रुकूं वरना तुम लोगों से अंतिम विदा लूं."

तभी पागलों के प्रलाप का स्वर तेज से तेज होने लगा, डिंबनाद निकट से निकटतर होता रहा.

"अभी भी तुम लोग जिंदा हो?" एक जटाजूट से ढंका, कुशाचीर पहने, जल के लिए तरसते पानी-पानी चिल्लाता वह बटोही आया और थक कर रेती पर गिर पड़ा. गंगा सूख चुकी थी, परंतु उसके भीतर के ह्रदों में पानी शेष था. लोग अंजुरी पानी लिये आते और उसके मुंह में गिरा रहे थे, "मुझे खाल के पास ले चलो, मैं अभी भी प्यासा हूं. बिलकुल प्यासा. सुन रहे हो, सुन रहे हो?"

"हां सुन रहे हैव्याघ, भविष्यत् पीढ़ी पर कुछ भी दया दिखाई होती तूने, तो सिर्फ कुष्ठ से गलित लूलों के पास वे हाथ होते जो तुझे गंगा की खाल तक उठा कर ले जाते. तुझे गंगा से घृणा है, ईश्वर कहे जाने वाले छलिया पार्थसारथि से घृणा है, तो तू ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते वक्त पांडवों के विनाश का जल हथेली पर न रखता, क्योंकि पांडव तो निमित्त थे, जिन्हें अस्त्र-शस्त्र इस वादे पर दिये गये थे कि ये केवल कौरवों के विरुद्ध इस्तेमाल किये जायेंगे, यह तकनीक भी गुरु द्रोण ने इसी शर्त पर बनायी थी कि मानव विकास के स्थान पर मानव ध्वंस बिलकुल नहीं किया जायेगा. किंतु अश्वत्थामा तू ने अतुल संपत्ति के मोह में पड़ कर दुर्योधन की सलाह से एक गोपनीय प्रयोगशाला बनवाई, यानी तूने द्रव्य के मोह में उसे अपनी अविकसित तकनीक ही नहीं जमीर भी बेच दी. तू ने अतुल संपत्ति पा ली, दो दायादों में युद्ध करा दिया क्योंकि जब तक यह सत्य छिपा रहा कि ब्रह्मास्त्र केवल अर्जुन के पास है तब तक दुर्योधन शांत रहा. पर तुम्हारा उल्लसित चेहरा देख कर ही वह अपनी नीली कंजी आंखों से समझ गया कि तकनीक चाहे विकसित हो चाहे अविकसित शत्रु के लिए भयदायक तो होती ही है."

"कौन है तू", अश्वत्थामा की प्यास गायब हो गयी... "कौन है तू?"

"मैं हूं किल्विष" यानी किल्विषाचार्य अश्वत्थामा का अंतेवासी यानी सचमुच के विज्ञानी आचार्य का अविज्ञानी शिष्य."

"तू मेरा मजाक न उड़ा पामर, मेरे पास अपराजेय धनुष तो नहीं है, हां शरीर से लिपटी कुशों की कथरी जरूर है. मेरे पिता ने कुएं में गिरी गेंद को एक बाण से मारा, उसी बाण पर दूसरा और फिर तीसरा फिर चौथा यानी बाणों का ऐसा रहंट बना दिया कि कुएं में उतरे बिना उन्होंने वह गेंद निकाल दी. आदरास्पद भीष्म पितामह इतने प्रसन्न हुए कि वे पांडु और धृतराष्ट्र के राजपुत्रों के गुरु बनाये गये. और उन्हीं का इकलौता बेटा अमरता का वरदान पा कर इस अवस्था को प्राप्त कर चुका है कि वह अपना तिल तिल गलता शरीर देख रहा है और शरीर है कि उसे छोड़ने को तैयार नहीं है. काश, पर्वतों में कहीं गुफायें बची होंती, कदराये होतीं तो वहीं पर शरण पा जाता. पिता के स्नेह के... कौन है हस्तिनापुर का राजाधिराज? कहो उससे कि मुझे मौत चाहिए मौत."

"यहां का राजा तो वही है गुरुपुत्र, परीक्षित जो आपके ब्रह्मास्त्र से भी जल नहीं पाया, विकलांग नहीं हुआ. अब तो लोग यहां तक कहने लगे हैं कि स्वयं अवतारी कृष्ण ने उसके इस तरह चक्र से कीलित कर दिया है कि कोई भी ब्रह्मशिर अस्त्र कोई भी दिव्यास्त्र उसके सामने झुक जायेगा. हां झुक जायेगा, निश्चित झुक जायेगा. अब परीक्षित जैसे लोग भूख के बिना मरेंगे और अगर गलित कुष्ट से बच भी गये तो दुबारा मरेंगे, तिबारा मरेंगे— इस धरती को ब्रह्ममास्त्र की प्रलययाग्नि शांत करने में जाने कितने वर्ष लगेंगे."

अश्वत्थामा अत्यंत विषण्ण भाव से सोचता रहा. आखिर पिताश्री को मिला क्या. यह सही है कि उन्होंने ब्रह्मशिर का भेद बताने से बार-बार इंकार किया. लाचार एक बाप को पुत्र स्नेह के सामने झुकना पड़ा. उनकी दृष्टि में मानव से बड़ा कोई पदार्थ नहीं था और मानव से बड़ा कोई विज्ञान नहीं था. ऐसा अमोघ अस्त्र उन्होंने अर्जुन को दिया. अर्जुन उनके लाडले बेटे से भी ज्यादा विश्वसनीय शिष्य था. मेरे मन में अर्जुन के प्रति कोई व्यामोह नहीं था. ब्रह्मशिर का प्रयोग करते वक्त भी पार्थ ने संकल्प के प्रारंभ में ही कहा— "गुरुपुत्र का कल्याण हो." और हाय रे गुरुपुत्र, तू अंततः मौत का सौदागर ही बना रहा. तुमने बाप की आज्ञा ठुकरा दी. गुरु भाई के संकल्प की निश्छल शुभकामना को ठुकरा दिया. "अश्वत्थामा मारा गया" भीम का यह कथन पिताश्री के स्नेहिल चित्त को मथने लगा. क्या युद्ध के माने छल है, क्या विश्व युद्ध में अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मशिर का प्रयोग उचित है. कौन सोचता है ऐसा? अब धर्मयुद्ध का यवनिका पात हो गया अश्वत्थामा. जिस ब्रह्मशिर को मेरे हाथों में सौंपते हुए मानव विरुद्ध इस्तेमाल न करने की शपथ करायी वे खुद उसी पर दृढ़ रह सके क्या?"

"ब्रह्मस्त्र न जानने वाली प्रजा पर, निरपराध जनता को तुमने ब्रह्मास्त्र से दग्ध किया है, ब्रहमनू, तुमने घृणित कर्म किया है," एक साथ अग्निहोत्री को आगे करके विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, कश्यप और अत्रि जैसे ऋषियों की पूरी जमात पिताश्री को दुत्कारने लगी.

द्रोण वध का नाटक हुआ. एकलव्य के साथ उन्होंने छल-कपट का प्रयोग तो किया था, पर तब वे एक राजा के नौकर थे. प्रतिज्ञा थी कि अर्जुन विश्व का अप्रतिम धनुर्धर माना जायेगा. वे हठी थे, कष्टों में पले थे अपने परिवार को ढोते हुए खानाबदोशों की तरह मारे-मारे जिंदगी बसर करते रहे पर उन्होंने आत्मसम्मान नहीं बेचा. कभी याचना नहीं की."

"क्या सोच रहे हो गुरुपुत्र," किल्विष खिलखिलाया, "लगता है अग्निहोत्री की तरह तुम भी अंडा देख रहे हो, पहले मुर्गी हुई कि पहले अंडा."

"कौन हो तुम?"

"मैं तुमसे कह चुका हूं गुरुपुत्र कि किल्विषाचार्य अश्वत्थामा का शिष्य हूं."

"तुम मेरे शिष्य हो, तो क्या सचमुच अंडा ले आ सकते हो?"

"क्षमा करें गुरुपुत्र जो पृथ्वी दिव्यास्त्रों से बारबार दग्ध होती रही है, वहां अंडा कहां मिलेगा. अंडे का प्रयोग तो अग्निहोत्री ने किया. शायद वह जानता भी नहीं होगा कि इस बार ब्रह्मशिर का प्रयोग खंड प्रलय नहीं प्राकृत प्रलय में बन कर आयेगा, भीषण जलप्लावन अपने चपेट से बहा ले जायेगा, अंडे को भी. ब्रह्मास्त्र और ब्रह्मांड दोनों नहीं बचेंगे गुरुपुत्र, यह प्रकृति की अंतिम चेतावनी है. संभालो इसे. तुम्हें तो सड़-सड़ कर जाने कब तक मरना बदा है भाग्य में. पर तुम लोग अगर खुले मन से सोचोगे तो तुम भी मानव जाति को बचाने के लिए संघबद्ध होगे."

"यह कौन है मेरे सिरहाने"? गुरुपुत्र ने पूछा, "यह तो बहुत जाग्रत व्यक्तित्व का पुरुष लगता है?"

"सुना तू ने किल्विष" ठहाका लगा कर हंसते हुए कलि ने कहा, "गुरुपुत्र मुझे जाग्रत व्यक्ति मानते हैं. वे चाहते तो उन तमाम ऋषि-मुनियों की तरह इस सारी स्थिति का कारण कलि को बता कर उसी खूंटी पर टांग देते, पर नहीं, उन्होंने मुझे पहचान लिया. जल से सृष्टि जनमी है, अग्नि से नष्ट हुई है पर सदा आगे चलने वाली प्रकृति ने विराम नहीं लिया. सतयुग, त्रेता, द्वापर तक जिस तरह कुछ रुद्ध नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है. हर युग में मनुष्य आगे बढ़ता गया है, कलि में आ कर क्या प्रकृति अपनी घड़ी की सूई को उलट देगी? कलियुग में भौतिकता कम से कम और चेतन्य ज्यादा से ज्यादा निकट होता जायेगा. वह अपनी कार्यशाला में अनवरत पहले से बढ़िया, पहले से अधिक सात्विक तथा संतुलित कर्म करने वाले मुनष्य निर्मित करती जायेगी. एक दिन वह भी आयेगा कि कलि में प्रकृति पूर्ण मानव का निर्माण करने में सफल हो जाय. सोचो किल्विष सोचो."

किल्विष गम्भीर था. वह धीरे-धीरे कलि के पास आया और उससे लिपट गया, "कलि यार तुमने जो बात बतायी तो मुझे लगा कि किल्विष का रामनाम सत्य है करने की बात कह रहा है कलि, जब संतुलित चेतना बढ़ती जायेगी तो धूर्त क्या करेंगे. मारे जायेंगे सब बिना मौत, पर नहीं मैं इस अभियान को अंत तक देखूंगा चाहे इसके लिए आत्म हत्या भी करनी पड़े मुझे तो भी नहीं हिचकूंगा.

"हम लोगों में एक विवाद ने जन्म लिया गुरुपुत्र कि तुमने जिस दिन ब्रह्मशिर का प्रयोग किया उस दिन अपने मनभावन नीले रंग के कपड़े नहीं पहने? तुमने बदन में धृत क्यों पोता और शरीर पर कुशा निर्मित कटिवस्त्र क्यों धारण किया?"

अश्वत्थामा मुस्कराया. बहुत दिनों के बाद मुस्कराने जैसी घटना घटी, हालांकि कुष्ठगलितअधरों पर यह मुस्कान आकर्षक नहीं थी. मन में घृणा के भाव को और भी बोझिल कर रही थी.

"क्यों किल्विष क्या द्वैपायन व्यास ने इस पर कुछ नहीं लिखा? मैं नरपशु था किल्विष, जिसने युद्ध के दौरान सुयोधन से कहा था—राजा सुयोधन, अब प्रसन्न हो जाओ. तुम पांडवों से संधि कर लो. विरोध से कोई लाभ नहीं है. तुम्हारे गुरुदेव अस्त्र विद्या के अप्रतिम ज्ञाता थे. तो भी वे युद्ध में मारे गये. वही दशा भीष्म जैसे महारथियों की भी हुई है. अर्जुन को मैं मना लूंगा. कृष्ण भी भाई-भाई में ऐसा विरोध नहीं चाहते. कितना समझाता उसे. सुयोधन तो कर्ण जैसे महारथी सेनापति के शौर्य से इतना अभिभूत था कि समझ रहा था कि कल कर्ण अर्जुन को रज्जु में बांध कर उसके चरणों में फेंक देगा. उस ने कहा समुद्र की तरह गम्भीर मर्यादा को न छोड़ने वाले गुरुपुत्र, इस तरह की सलाह न दो."

एक ही पंक्ति में गुरुपुत्र की मर्यादा और अपने सेनापति कर्ण में अटूट विश्वास का दर्प ढोने वाले सुयोधन ने उसके प्रस्ताव पर ठोकर मार दी. मैं विवश था किल्विष विवश. अपने सहज स्नेह से दुलराने वाले महर्षि पिता को खो कर अनाथ हो गया था. मेरे भीतर न तो अब पिता के प्रति उपालंभ था न ब्रह्मास्त्र का गर्व. हां तुम यह कह सकते हो कि द्रोपदी के शिशुओं की हत्या जघन्य अपराध था. मेरी अंतरात्मा मुझे धिक्कार रही थी. पर मैं संकल्पबद्ध था. सुयोधन की ओर से लड़ने की शपथ ले चुका था."

"महाराज यह गाथा बंद करिये", किल्विष का धैर्य टूट रहा था, "आपने कैसे कैसे करिश्में किये, कैसी मर्यादायें निभायीं, किस तरह उल्लुओं के सामने घुटने टेके यह हम सभी जानते हैं. हमें तो जानना सिर्फ यह है कि अर्जुन, भीम के डर से व्यास और ऋषियों के बीच घृतासक्त शरीर और कुश का चीर आपने क्यों धारण किया?"

"सुनना चाहता ही है किल्विष तो सुन, मेरे शीश की मणि जब तक मेरे पास थी कोई भी संकट मुझे हिला नहीं सकता था. सामान्य हथियार अनावश्यक हो गये थे. गुरुपुत्र और गुरुभाई के संघर्ष का क्या अंत होगा इसे मैं भी जानता था. न तो भाई अर्जुन ही. यह कुश का चीर मेरे पिता का आसन था. मैंने प्रतिशोध की जो साधना शुरु की उसके लिए कुश शयन ही अनिवार्य था, कुशा से जब तक पैंती (पवित्री) नहीं बनती, कोई भी धर्मकृत्य सम्भव नहीं. क्या व्यास देव ने यह भी नहीं लिखा है कि जब मैं प्राण रक्षा के लिए भागा और शत्रुओं से घिर गया और मैंने एक सींक ले कर मंत्राभिषिक्त करके छोड़ दिया?"

"यह तो मालूम है."

"तो सींकों के रहस्य को तुम भली भांति जान जाओगे. तुमने एक टुकड़ा छोड़ दिया है. मैं घृताक्त ही नहीं धूल धूसरित भी था. पिता के वध, माता के वैधव्य और प्रजा द्वारा मेरा तिरस्कार इतने भारी थे किल्विष कि मैं शोक सूचित घृत से शरीर को भिगो कर धूल में लोटता रहा. कहां गये पिता. कहां हैं माता. अपने गुरु के हत्यारों से प्रतिशोध यह मेरा एक मात्र अभीष्ट थे. मैंने सम्पूर्ण पांडव सेना पर आक्रमण करके पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न और उसकी अपार सेना को सर्वला से काटता रहा. सोये व्यक्ति जान भी नहीं पाये कि उनका हत्यारा कौन है."

"पर गुरुदेव, द्रोपदी के पुत्रों के वध के पीछे कौन-सा प्रतिशोध था?" किल्विष खिलखिलाया, "पहले से तुम बहुत बदल गये हो गुरु. सारा भारत तो यही सोचता था कि दया, कृपा-विहीन तुम एक ब्रह्म राक्षस हो, बोलो, द्रोपदी के पुत्रों से प्रतिशोध क्यों?"

"यह मेरा अपराध है किल्विष" गुरुपुत्र ने कहा, "रक्त पिपासु पशु जैसे मानव रक्त का चस्का लगने पर रात-दिन आदमियों की प्रतीक्षा करते हैं. कमजोरों पर तानाशाही लादने के लिए कभी शांति कभी युद्ध के नारे लगाते हैं. फिर भी जब अहम शांत नहीं होता तो वे सोये-सोये बड़बड़ाते हैं. केवल एक शब्द—युद्ध, युद्ध, युद्ध. सब जगहों से अचूक आधुनिक से आधुनिक हथियार बटोरते हैं, सबको अपनी पशुता के सामने घुटने टेकने के लिए विवश करते हैं, मैं तब उनकी करतूतों को नहीं समझता था जब वे सब युद्ध के लिए दृढ़ निश्चय करके सेनाएं सजाते रहे, मेरे बाप को नमकहलाली निभाने की आज्ञा और उपालंभ दे कर धमकाते रहे. वास्तव में वह गुरु वन्दना नहीं, नम्रता के प्रदर्शन की नकाब थी क्योंकि उसके पीछे छिपे चेहरों में वे भेड़िये थे. मैं ऐसों के साथ उन की कूटनीति में भाग लेता था. प्रज्जवलित भारद्वाज द्रोण का यह तामसिक पुत्र सैकड़ों अन्यायों को चुपचाप सहता रहा, बल्कि सक्रिय रहा, उसे जो दंड मिला वह उचित था. द्रोण वध मेरे कारण हुआ, मेरे पिताश्री निर्दोष थे. वे चूक गये कि उत्तर भारत के एकमात्र विज्ञानवान् धनुर्धर और गुरु हो कर भी उन्होंने इस राज्य को लात मार कर ठुकराया नहीं, मैं सोचता हूं किल्विष कि वे ठुकराना चाहते तब भी या तो उनका अपहरण होता या किसी निर्मच्छिक जगह में कैदखाने में ठूंस दिये गये होते.

अश्वत्थामा प्यास से परेशान, जीभ निकाले पानी-पानी चिल्लाता रहा पर रात में उसके बेहोश शरीर का न तो कोई रक्षक था न तो भक्षक. सिर्फ एक मुर्दनी थी-सिर्फ मुर्दनी.

कलि ठठाकर हंसा— "क्यों रे किल्विष तू वज्रासन में बैठा, हाथ जोड़े किसकी आराधना कर रहा है. आखिर तेरा भी दिमाग फिर ही गया."

"नहीं कलि, " किल्विष की आंखें छलछला आयीं, "मैं तो अपनी मृत्यु की कामना कर रहा था. अगर कोई ऐसी चीज हो तो ईश्वर से अलग कर्म कांड से अलग. जो कभी कभी सोचने के लिए बाध्य कर देती है कि कुछ और भी है अनकहा, अनचीन्हा जिसे लोग नियति या प्रकृति कहते हैं तो मैं उसी 'कुछ है' से करबद्ध प्रार्थना कर रहा हूं, "रोको, रोको, इस सृष्टि को बचाओ." किल्विष के गदगद स्वरों को सुन कर कलि ने उसकी पीठ पर हाथ रख दिया, "किल्विष मर्द रोते नहीं, चुप हो जाओ, चुप हो जाओ."

एक नीरव मुर्दनी छा गयी सभी ओर तभी हिचकियों का स्वर उभरा. लंबी-लंबी हिचकियां, शरीर को हिला देने वाली हिचकियां.

"अरे किल्विष कलि उसकी पीठ सहलाते हुए बोला, "क्यों रो रहे हो बंधु, अभी तक तुम गलेसड़े कूड़े को जिसे लोग संस्कृति और सभ्यता कहते हैं, उठा-उठा का नाबदान में फेंक कर मस्त भाव से हंस रहे थे, हंसा रहे थे. अचानक अकारण यह व्यथा कैसी बंधु."

कलि सिसकते हुए किल्विष बोला, "जो भी हो यह सृष्टि इतनी प्यारी है कि मैं पुनः ऐसे विनाश को देखूंगा तो आत्महत्या कर लूंगा. कलि पूरे ब्रह्मांड में, सैकड़ों आकाश गंगाओं में होंगे प्राणी वे मनुष्य से उंचे स्तर का जीवन जी रहे होंगे शायद वे मनुष्य से अविकिसत जंगली जानवर ही हो, तो भी हमारी पृथ्वी जैसा कुछ नहीं है इस अनंत खगोल में. मैं अपनी पृथ्वी मां का कृतघ्न पुत्र हूं. कलि जो उनकी रक्षा में अपने प्राणों को सौंप नहीं पाया. पर जल्दी ही सौंप दूंगा कलि, निश्चित सौंप दूंगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : सन् 1947 'नया प्रतीक', 'आलोचना', 'नवनीत', 'नयी कहानी', 'वर्तमान साहित्य' और 'इंद्रप्रस्थ भारती' आदि में रचनाएं प्रकाशित. 'नान्दी' के प्रायोजक व संपादक
संप्रति : उत्तरप्रदेशीय प्रशासनिक सेवा में
संपर्क : प्रधान प्रबंधक, दि किसान सहकारी चीनी मिल्स लि. अनूपशहर, बुलंदशहर (उ.प्र.)

राजेंद्र प्रसाद पांडेय

चमन्नचवा

रामदीन ने अपने दाहिने कान पर दाहिनी हथेली रखी और थोड़ा दाहिनी और झुकाते हुए कुहुका :—

"कि हाय रामं बाबू दरोगा जी!"

उपस्थित श्रोताओं मे से किसी ने छाती पीटने की मुद्रा के साथ ललकारा, "जियौ बच्चा जियौ."

सुकुल बाबा के भोंपू ने एलान किया—

कोई नहीं जानता कि मरे हुए पशु के चमड़े में मनुष्य की सारी संवेदना क्यों भरी हुई है? कोई नहीं जानता कि मिट्टी के कच्चे-पक्के गोलों में मन के सुखों, दुखों, क्रोधकरुण, उत्साह विराम और प्रेम को अपना देने की अद्‌भुत शक्ति क्यों हैं?... लेखक के उपन्यास का एक और अंश.

"अइसे तो यमदूत सार भइंसा पर सवार भोका टुकुर—टुकुर देखत हैं, लेकिन मौरौ थोड़ी-बहुत रही-सही उमिर लइके जियो."

भीड़ में से किसी किशोर की आवाज आयी, "हां, हां, बाबा के सेतुआ-पिसान लादे-लादे जी. अब बाबा अधय में हैं."

भीड़ से हंसी का बांध-सा टूट पड़ा और थोड़ी देर तक चलता रहा. इस पर सुकुल बाबा ने तुरंत जड़ दिया, "बांधे-बांधे तौ मैं फिरत हों, तोर कहे.....?"

अपनी बात को सुकुल बाबा ने एक कहावत से भी पुष्ट किया, जिसका मतलब था कि तेली का तो तेल जले लेकिन मसालची की वही स्थिति क्यों हो, जो उक्त किशोर के बकौल सुकुल बाबा की थी.

सुकुल बाबा के इस कथन के पूरा होते-न—होते पूरी भीड़ में हंसी का ज्वार आ गया और किशोर जहां बगलें झांकने लगा, वहीं लोगों ने बताना शुरू किया कि पुरनियन से लड़ंग-लपाड़ी का नोहड़ा न लेय का चाही.

इसी बीच अनेक गुरुओं और चेलों ने अपनी-अपनी डफली शुरू कर दी और पूरी भीड़ से "कलबल कलबल" का हल्ला उठने लगा. रामदीन ने मजमा अभी न जमता देख कान पर से हथेली हटा ली और अपने शरीर को ढीला कर दाहिनी ओर से पांव पर शरीर का अधिक भार डालकर तख्त पर बिछी जाजिम के ऊपर खड़ा हो गया.

हल्ला धीरे-धीरे और बढ़ने लगा.

जब-जब नाचने वाले संतों के नृत्य धर्म पर विपत्ति पड़ती है तब-तब भगवादीन भगवान अपने नगाड़े-रूपी शस्त्र के साथ अवतार लेते हैं और भीड़ के हल्ले को ध्वस्त कर देते हैं. सो भगवानदीन ने तत्काल संतों को जताया कि अपने शस्त्र के साथ भगवान अवतरित हो चुके हैं :—

भगवानदीन ने मेहतर के घर जन्म लिया है. लेकिन यह भी हाथ में झाड़ू लिये या नगाड़ा-नगड़िया बजाते और अपने को मेहतर बताते हुए नहीं जन्मे. भगवानदीन अपने पिता के नेगरिया-नगाड़ा को छुटपन से छोटी-छोटी लकड़ियों से फोड़ते और लात-घूंसा खाते थे. वह पता नहीं कब से अपने माता-पिता का हृदय जीतनेवाला हाथ चलाने लगे. और जब उनके पिता ने पीठ-पीछे अपनी पत्नी से भगवानदीन के प्रति प्रेम उड़ेलते हुए उनकी कला की उपलब्धियों के मीठे सपने देखने शुरू कर दिये, कोई नहीं जानता.

कोई नहीं जानता कि मरे हुए पशु के चमड़े में मनुष्य की सारी संवेदना क्यों भरी हुई है? कोई नहीं जानता कि मिट्टी के कच्चे-पक्के गोलों में मन के सुखों, दुखों, क्रोध, करुणा, उत्साह, विराम और प्रेम को उफना देने की अद्‌भुत शक्ति क्यों है? कोई नहीं जानता कि धरती पर सालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही स्थान पर खड़े रहने वाले वृक्षों के फलों, लकड़ियों, धातुओं, पानी और ऐसी ही तमाम निर्जीव चीजों से निकलने वाली ध्वनियां भी मानव तो क्या किरनों और सांपों तक को क्या मुग्ध कर लेती हैं? और कोई नहीं जानता कि संवेदनतों-ज्वार को चढ़ाने वाली ध्वनियों का यह वरदान कब किस जाति, धर्म के कलाकार के हाथ-पांव में या वाणी में उतर आयेगा?

"कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़ कड़कड़....."

"हरे रौ लाला."

—भीड़ से कोई एक आवाज थी.

"बालहरे करेणा काढ़े लेत है सार सुख देइया बाला."

गुणों के चरम को प्रशंसित करने में भी और अवगुणों के चरम को प्रताड़ित करने में भी इस गांव में समान शब्दों का प्रयोग होता है. काकु की भी समानता के बावजूद बिल्कुल भिन्न-भिन्न अर्थछवियां उभारना शब्द के ब्रह्मत्व का एक और प्रमाण शायद हो सकता हो.

लेकिन इन सारी बातों से अनभिज्ञ भगवानदीन नगरिया-नगाड़े को अपनी कला की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाये करे जा रहा है—

"धधम् कड़धधम् कड़धधम् धम् धम् धम् धम् धम्म...."

अब रामदीन ने मजमें पर चारों ओर निगाह दौड़ाई और पाया कि शुरू करने का वक्त फिर आ गया है. थोड़ा आगे बढ़कर बीच मंच पर आकर अपनी एक हथेली कान की ओर लगाकर वह शुरू हुआ—

"आरे कि हाथ राम....."

अगले क्षण ही भीड़ को हल्ले ने "बाबू दरोगा जी" को दबा डाला. और रामदीन फिर शांत हो गया.

"आओ ठाकुर आओ."

"एंहहू सारे. निरै दे आगे."

"भइया तनी दूबर होइ जाव."

"जाव मालिक... बढ़ जाव."

"रामराम ठाकुर....."

तमाम आवाजों के बीच अपनी धौंस जमाते और 'रा राम' का उत्तर देते किसी की ओर अधमुंदी आंखें खोलकर या केवल चेहरा भर फिराकर देते और कुछ को वह भी न देते, दारू के नशे में झूमते, हाथ से गिरने-गिरने को होती बंदूक संभालते, पान खाये और गले में फूलों का गजरा डाले बमभोले ठाकुर आगे बढ़ रहे हैं. लोग अपनी-अपनी औकात के हिसाब से उन्हें आगे बढ़ने में सहायता कर रहे हैं. इसके द्वारा वे बमभोला से आनेवाले खतरों से अपना भविष्य सुरक्षित कर रहे हैं.

"तनी कुर्सिया खाली करौ! देख्तेव नहीं. जिमीदार आये हैं?"

कुर्सी पर बैठ गये हैं मुन्नीलाल पासी. थोड़ा पढ़ा-लिखा. अधिक स्वाध्याय किया. धीरे-धीरे कबीर, रैदास, बाबा आंबेडकर आदि के विचार जाने और समाज में व्याप्त छुआछूत के सिद्धांत बिल्कुल अनुचित हैं और इसे समाप्त होना ही चाहिए.

हमारे समाज में छूआछूत तो एक छुतही बीमारी है. कोई भी व्यक्ति जरा - सा ईश्वरोन्मुख हुआ कि छुआछूत की और भी ऊंची सीढ़ियां चढ़ने लगता है. नहाना-धोना और कुछ लोगों से शुरू करके अधिक-लोगों को छूना छोड़ते जाना और कुछ लोगों के हाथ का भोजन—पानी छोड़ना शुरू कर अधिक-अधिक लोगों के हाथ का छोड़ते जाना ऐसी साधना का अभिन्न अंग है. अनेक लोग इसी सीढ़ी से अध्यात्म की वह ऊंचाईयां चढ़ गये, जिस पर बड़े-बड़े साधू और संत न चढ़ सके होंगे. और ऐसी ही उच्चता की यात्रा का चरम है कुछ लोगों का स्वपाकी हो जाना. कुछ लोगों ने अन्न त्याग दिया है और बिना आग में पका ही खाते हैं. कुछ लोग केवल फलों और दूध-घी का ही सेवन कर अपने को जिलाये हैं. लोग-बाग श्रद्धा से अभिभूत होकर ऐसे लोगों को प्रणाम करते और सेवा करते नहीं अघाते. बहुत-से लोग अपनी जीविका खोजने हार-हार कर इसी एक ठेले से अध्यात्म और आजीविका के दो-दो पंछी हांकने में मस्त हैं.

और आज मुन्नीलाल ने हिम्मत करके ही यह कुर्सी पकड़ी है कि वह पूरी भीड़ से पूछेंगे कि उन्हें कुर्सी पर बैठने का अधिकार क्यों नहीं है.

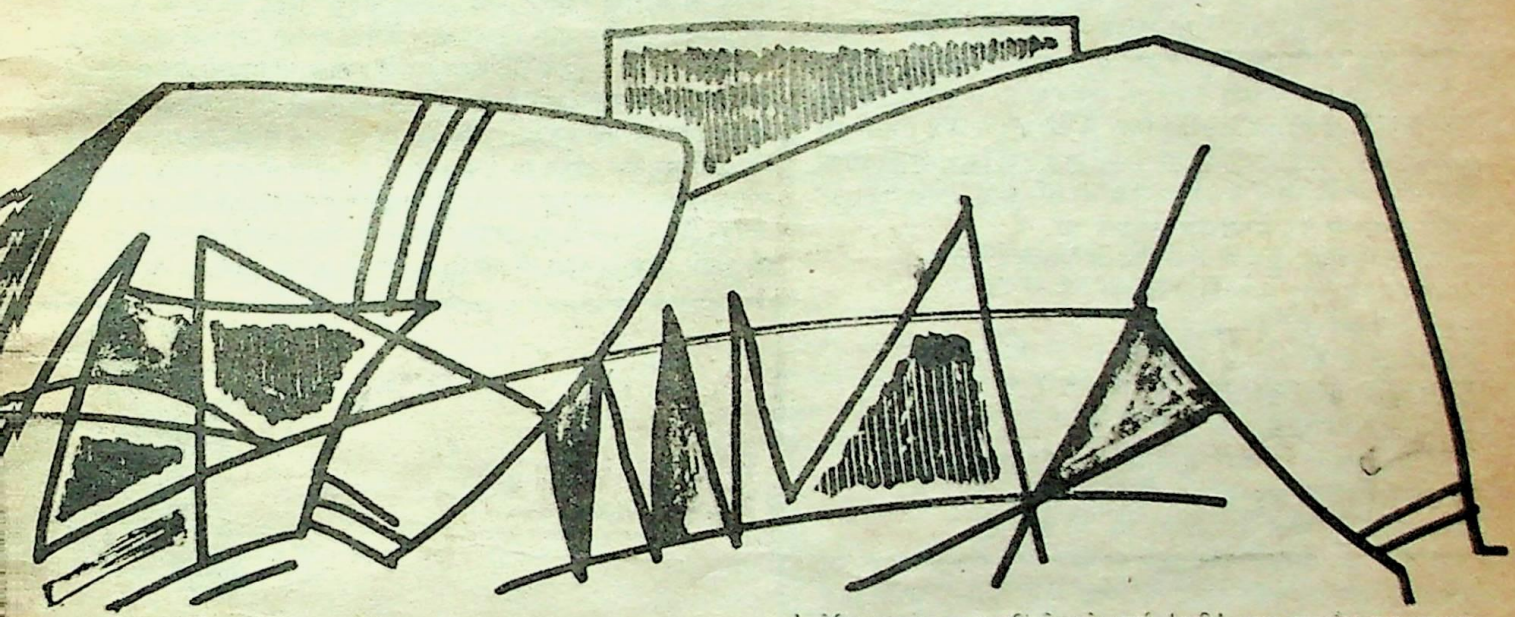

लेकिन तब तक उन्हीं के बड़े भाई 'दूनी' वहां पर दौड़कर आ गये—

"कसो मुन्नी! ईका? सुनात नहीं का? छोड़ौ कुरसी."

पता नहीं कितनी-कितनी रातें इसी संघर्ष की योजना बनाते मुन्नी लाल सो नहीं सके थे. आज वह अवसर आ गया था. उन्होंने सोचा था कि भले ही मैदान में मारे जायें पर हटेंगे नहीं. लेकिन उन्हें क्या मालूम था कि दूनी भाई इस तरह बीच में टपक पड़ेंगे?

भीतर-ही-भीतर लावा से फूट पड़े हैं. लाल-पीली चिनगारियां फूट रही हैं. लपलप करती हजारों फीट ऊंची लपटें उठ रही हैं और मुन्नीलाल सारे ब्रह्मांड को जला डालनेवाले हैं. इसमें सबसे पहले दूनी भाई ही जलेंगे क्या?

नहीं बड़ा भाई बाप होता है. भाभी मां होती है. क्या कहेगी दुनिया? क्या होगा उन मूल्यों का जो गलत मूल्यों द्वारा दबा दिये गये हैं, फिर भी अपनी चमक बिखेरे जा रहे हैं? दुनिया थूकेगी मुन्नीलाल को.

और अब दूनी भाई ने मुन्नी भाई को पीठ की ओर से गोद में भर कर उठा लिया है. इस अधबूढ़े में इतनी ताकत कैसे आ गयी? मुन्नी लाल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाये दूनी भाई दूसरी ओर चले जा रहे हैं और ठाकुर बमभोले ने पहले तो कुर्सी के पास पहुंचकर अपनी बंदूक उठायी. पूरी भीड़ सन्न हो गयी. जिधर दूनी और मुन्नी जा रहे थे, उधर के लोगों में भगदड़ मच गयी. लेकिन अगले ही क्षण गैस की रोशनी अचानक इतनी धीमी पड़ गयी कि इसी बहाने का लाभ उठाकर बमभोले ने अपने हाथ नीचे कर लिये. हाथ शराब के नशे में ठीक से ऊपर उठते तो नहीं थे.

एक और शंबूक आज मारा जाता, लेकिन सुरादेवी ने इतिहास मोड़ दिया था.

भीड़ के सारे लोग मुन्नी को धिक्कार रहे थे कि दूनी को पैदायशी धीरा कह-कहकर आयी विपत्ति को टालने के लिए गोवधर्नधारी कृष्ण की भांति बलशाली बखान रहे थे.

एक आदमी लपककर मंच पर गया और अपने दोनों पांवों के पंजों में गैस को दबाकर "फच फच फच धच" की आवाज के साथ गैस में हवा भरने लगा.

अभी नाच न चालू होते देख बमभोले कुर्सी पर बांयी ओर लुढ़क गये. इस समय वह कुछ सोते, कुछ जागते, कुछ नशे में, कुछ अपमान की ठेस में विकृत चेहरे के साथ कभी-कभी आंखें कोड़ा खोलकर माहौल का जायजा ले लेते थे. कुछ लोगों ने उनकी बंदूक संभालनी चाही तो उन्हें एतराज हुआ. जब केवल गोली न चल जाने के डर से उसे ठीक से रख देने की बात से वह आश्वस्त हो गये तो उन्होंने बंदूक को मां की एक गाली दी और बगल में फेंक दिया.

भक्तों पर आयी हुई यह विपदा भी भगवान् ने टाल दी थी.

अचानक ठाकुर महिपाल सिंह अंधकार-रूपी जल प्लावन में डूब रही भीड़-रूपी धरती को उबारते हुए भगवान वाराह के रूप में प्रकट हुए. मगर उनके हाथ में कोई पौराणिक शस्त्र या चिन्ह नहीं बल्कि एक गैस थी. पूरी भीड़ को वह विजेता निगाह से देख रहे थे और उनकी इस जिंदादिली और त्याग पर लोग इतने फिदा हो गये थे कि सभी की आंखों में गैस की ही थोड़ी-थोड़ी चमक आ गयी थी और लोग बागबाग हो उठे थे. और अब मंच पर झमाझम्म उजाला था.

बच्चे और औरतें नाच न शुरू होने से उकताने लगे थे.

अचानक एक ओर से आवाज आयी.

"रामदीन अब कहे बेर करत हौ?"

दूसरी ओर से भी आवाज आयी :

"अब जल्दी उठो भइया."

और एक तरफ से आवाज आयी :

"हां, हां, अब न देर करौ या, सबेरे हरौ तो जोत का है ससुर."

इस बात पर फिर एक ठहाका भीड़ ने लगाया.

हल जोतने की बात पर ठहाका? वह भी गांव में.

क्यों नहीं? यह आवाज चिरैयादास की थी. चिरैयादास बांमन हैं. मनु भगवान ने अपनी किसी स्मृति में लिख दिया था– "हलान्तयम् ब्रहावर्चसम्." और फिर सारे ब्राहमणों ने अपने ब्रहावर्चस की रक्षा के लिये तब से जो हल को त्यागा तो आज भी उसकी मूठ तक नहीं छूते. यह बात अलग है कि खेत-पर-खेत खरीदते जाना गांव के बांमन की सबसे बड़ी इच्छा है. यह बात भी अलग है कि कभी कुछ बांमनों ने जब शुरू-शुरू में भूमि स्वीकार कर खेती करानी शुरू की, तो उन्हें 'भूमिहार' कहकर शेष ब्राहमणों ने कलम कर दिया. लेकिन असली बामन अभी इस गांव में हल नहीं जोतते और इस बात की सूची लोगों ने अपने-अपने दिमाग में बना रखी है कि आसपास के गांवों में किस-किस बांमन द्वारा हल जोता जा रहा है? और ऐसे बांमनों को 'हरजोता' बांमन की एक नयी बनती जा रही श्रेणी में डालते जाते हैं, बेचारे चिरैयादास हल जोतते हैं और बांम-समाज में सम्मान गिर जाने के भय से भीतर-भीतर कांपते रहते हैं. मगर ईश्वर की कृपा से कम और उनकी लाठी की कृपा से अधिक उनका सम्मान समाज में दिन दूना और रात चौगुना बढ़ रहा है. इसी लिये चिरैयादास की इस बात पर लोगों ने उनकी खुशामद में यह ठहाका लगाया था. इस ठहाके से चिरैयादास को लगा कि गांव ही नहीं अलग-बगल भी उनका दबदबा कभी बना हुआ है क्योंकि और गांव के लोग भी नाच देखने आये ही हैं. अब उनके लड़के की शादी में चार-पांच हजार का तिलक जरूर चढ़ जायेगा. वह अपने इसी संदर्भ के सपनों में खो गये.

अचानक भीड़ से नाच शुरू करने की कई आवाजें आने लगीं. और कुछ लोगों ने रामदीन को तुरंत शुरू करने को कहा.

रामदीन मंच पर आया. दिन भर हल जोतने से शरीर का अंग-अंग टूट रहा था. फिर भी बेचारे ने लोक रंजन के लिये आज की 'साई' ले ली थी. इसके पीछे जाड़े की शुरुआत में एक रजाई भरवा लेने का लोभ भी था.

रामदीन करता भी क्या? पैदा होते ही गरीबी ने उसकी गर्दन में अपने जबड़े गड़ा दिये थे. उसका जन्म ही एक बंधुआ मजदूर के घर में हुआ था. पिता गांव के मुखिया के घर बचपन से ही लग गये थे. उनके भी पिता मुखिया के ही घर लगे थे और सेवा करते-करते इस लोक से चले जा चुके थे. लंबा कर्ज था, जो उतरता ही न था. रामदीन का बड़ा लड़का भी मुखिया के ही घर था. इस प्रकार चौथी पीढ़ी इस सेवा के पवित्र काम में पदार्पण कर चुकी थी. रामदीन ने अपनी पत्नी के गौने की साड़ी और 'बिलाउस' को अपने लिए सहेजकर रखवा लिया था. उन्होंने पत्नी को पहली ही रात बता दिया था कि गांव के आसपास के लोग उनका 'तमाशा' बहुत पसंद करते हैं. यों, उनकी पत्नी गौने के पहले ही खुद भी दो-तीन बार उनके तमाशे का मजा अपने मायके के गांव के आसपास जाकर ले चुकी थी. रामदीन के इस हुनर के कारण उनकी पत्नी की सखियां गांव में घास छीलते समय भीतर जलती थीं और उसकी इस खुशकिस्मती को अपनी न होने के दुख से उसे ताने मारकर "नचनिहा वाली" कहती थीं. मगर रामदीन की पत्नी जानती थी कि यह सब उनके मन की भड़ास है और वह उन लोगों की इस हीनभावना को कोई घास न डालते हुए घास छीला करती थी. शुरू में तो उसे संदेह था कि कहीं रामदीन औरत या जनखा न हों, पर गौने के बाद उसका यह संदेह समाप्त हो गया था और वह भी रामदीन के तमाशे को जीविका का आधार ही मानने लगी थी. इसलिये उसने रामदीन के लिये अपने जिंदगी की सबसे कीमती चीजें गौनही साड़ी और बिलाउस खुशी-खुशी रख

स्कूल की अमानत

जया बतरा

स्कूल में इम्तहान चल रहे थे. टाइम-टेबुल लगभग बदल-सा गया था. सुबह सात बजे से तीन बजे कहीं जाकर छुट्टी होती.

वह लैंगवेज टीचर थी. उसके दोनों पेपर हो चुके थे. चालीस-चालीस कापियों के दस सैट जांचने उसके जिम्मे पड़े थे: क्योंकि पांच सेक्शन लेती थी वह. लिखित परीक्षाओं के अतिरिक्त और भी स्कूल में बहुत कुछ होता... सालाना रिजल्ट में उन सभी चीजों के नंबर उसमें जोड़े जाते. मसलन.:. गृहकार्य, श्रुतलेख तथा कविता का मौखिक पाठ आदि.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़े थे. इसके अतिरिक्त रामदीन ने कहीं से पैसे बचाकर मेले में से एक नकली चोटी भी खरीद ली थी. अपने बाल वह न मुड़वाते थे और न ही कटवाते थे. इससे उनका नाई को दिया जानेवाला पैसा बचता था.बालों को वह कभी-कभी उसी पीली मिट्टी से धो लेते थे जो उनकी पत्नी अपने बाल धोने के लिए गांव के पूर्वी-उत्तरी क्षेत्र के 'मटखना' से ले आयी थी. पत्नी के हजार बार कहने से एक बार रामदीन बालों में तेल डालते थे. जिस दिन वह अपने बालों में तेल डाल लेते, उस दिन उनके बाल एक दृश्य कविता और उनसे सीधे टपकते हुए रस का साक्षात्कार होता. कोड़ा तेल लगाने की बात न उन्होंने समझी थी, न उनकी पत्नी ने, न इस गांव के किसी अन्य व्यक्ति ने और न आसपास के दूर-दूर तक के गांव वालों ने. इस कभी-कभी टपकने वाले रस से सबसे ज्यादा रामदीन की साड़ी प्रभावित हुई थी और उसका पल्लू तेजी से कीचट होकर रंग बदलता जा रहा था. साड़ी के इस बदलते रंग को देख-देखकर रामदीन की पत्नी का भी रंग बदलता जा रहा था और उधर कभी-कभी तमाशबीन रंगबाजों को भी यह बात रंग में भंग पैदा कर जाती थी.

मंच पर आकर रामदीन ने अपनी आंखें भरपूर खोलीं. उसके नेत्र शंकर के तीसरे नेत्र की तरह लाल थे. उसने एक अंगड़ाई ली. इससे औरतों और बच्चों को जहां नाच शुरू होने का भ्रम हुआ वहीं घुटे हुए मेलहा और नचहा गुस्से से जल उठे. मगर रामदीन ने किसी की परवाह न करते हुए अगले ही क्षण "ई....ई....ई...." करते हुए एक लंबी लभाई भी खींच दी.

इससे पहले कि नचहा और मेलहा अपनी लाठी लेकर रामदीन को पीट डालते, चिरैयादास ने भी "ई....ई....ई...." करते हुए जो एक बनावटी जंभाई ली तो पूरा समाज ठहाकों से गूंज उठा.

कुर्सी पर ही सो गये ठाकुर बमभोले की आंख खुल गयी और उन्होंने दौड़कर अपनी बंदूक उठा ली. आसपास के लोग "है,...हैं...हैं..." कहकर उन्हें रोकने दौड़े पर उन्होंने बंदूक को रामदीन की ओर तान दिया. बिजली की गति से चिरैयादास अपनी लाठी के साथ बमभोले की ओर कड़के. जैसे परशुराम के फरसे के आगे भगवान राम अपने बाजों के साथ फुक गये थे उसी प्रकार चिरैयादास की लाठी के सामने बमभोले झुक गये थे. उन्होंने चिरैयादास का पांव छुआ और कहा :—

"शांत होइ जाव बांमन दउता. बरुआ बहुत हलुक है."

इस पर भीड़ ने फिर ठहाका लगाया और रामदीन की भी नींद तथा थकान भाग खड़ी हुई.

उसने फिर एक चक्कर आगे-पीछे का लगाया और कान पर हथेली रखते हुए तैयार हुआ. तब तक भगवानदीन ने अपने नये सेंके नगड़िया और नगाड़े पर कड़कड़ कड़कड़ का जो हाथ करा कि लगा कि बेनौरी पड़ रही है.

"वाह वाह वाह वाह" — भीड़ से आवाज आयी. और सभी लोग पूरी तरह से टनमन हो उठे. कुछ भाई जी लोगों ने अपनी चूना-तंबाकू की थइली निकाल ली. तभी रामदीन ने फिर शुरू किया :—

अरे बाबू दरोगा जी...
कि हाय राम बाबू दरोगा जी
अरे कौने रे कसुरवा से सइयां मोरा पकड़यो
कि हाय राम बाबू दरोगा जी!

और भगवानदीन ने अपने हाथों से फिर से "कड़ कड़ कड़ कड़ झम झम झम" की बनौरियां बरसानी शुरू कर दीं.

साथ ही रामदीन ने अपने गाने के ही साथ जो लोचदार फिरकियां शुरू कर दी थीं वह अब अपनी चरम सीमा पर आ गयी थीं.

नगड़िया और नगाड़े की आवाज पर रामदीन फिरगी बना हुआ है. कोई नहीं कह सकता कि रामदीन रामदीन है. उसके शरीर में किसी परम सुंदरी का उतार-चढ़ाव है. वह बिजली की गति से आधा मंच पर और आधा हवा में है. उसकी पत्नी की साड़ी इस समय कितनी चमकदार हो गयी है. उसकी दोनों चोटियां हवा में लहरा रही हैं. आंखों की लपकों का और भौंहों का उठना, गिरना, हाथों का आगे-पीछे आना जाना, कमर का टूट-टूटकर मटकना और फिर साड़ी का गोला होकर हवा में उठकर नगड़िया नगाड़े की धुन में एकास होते जाना. यही शेष रह गया है पूरे मजमें में. □

'सभ्यता-संकर' नाम से यह पूरा उपन्यास वाणी प्रकाशन द्वारा शीघ्र प्रकाश्य

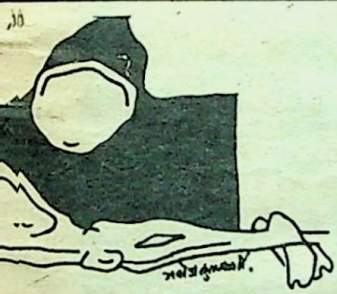

पांचों सेक्शन के इम्तहान लेकर उसने नंबर लिखे और तुरत-फुरत अपनी रिकार्ड कापी तैयार कर डाली. दो बच्चों के मेडीकल सैर्टिफिकेट भी उसमें नत्थी कर लिये. ताकि रिजल्ट बनाते समय कोई परेशानी न आन पड़े तथा काम भी समय पर पूरा हो जाये.

रिकार्ड कापी... का मतलब था रिकार्ड कापी यानी बहुत संभालकर रखने वाली चीज... और खोने का मतलब था कि खोने वाले की छुट्टी.... स्कूल से यानी नौकरी से.

यह सोचकर अपनी रिकार्ड कापी की सार-संभाल के लिए उसने स्टाफ-रूम के चारों कोनों की ओर नजर दौड़ायी. कोई दराज... कोई आलमारी. यानी उचित जगह न पाकर उसे कुछ घबराहट-सी हुई फिर उसने उसे अपने बैग में रखने का ही निर्णय लिया. "अपने घर से अधिक सुरक्षित स्थान और भला कहां हो सकता है." उसने सोचा.

छुट्टी का घंटा बजा ही था कि घर जाने से पूर्व उसने मिसेज यूजलैस को महज जानकारी देने के मकसद से सूचित भर करना चाहा, "मैडम आई विल कीप दिस रिकार्ड कापी इन माय होम, सो आय एम ब्रिंगिंग..."

"नो!" नपाक से बोली वह... उतनी ही तेजी से 'डूइंग नथिंग बट लुक [illegible]'... वाली उक्ति को अक्षरशचरितार्थ कर रहे उनके [illegible] से बिना आंख उठाये बड़ी सहजता से बोले, "अरे मै[illegible]ल की अमानत स्कूल में रखकर जाओ... आदमी का क्या है आज है कल नहीं."

"क्या मतलब?" वह एकदम चौंक-सी पड़ी.

"यही कि एकसीडैंट वगैरह... खां..म खां... हम लोगों की मुसीबत बढ़ जायेगी... बताओ कहां किसको ढूंढते- फिरेंगे आपको... या रिकार्ड कापी को? यहां रखी रहेगी तो कहीं न कहीं मिल जायेगी... स्कूल से भला कहां जायेगी?" इतना कहकर वह उसी व्यस्त मुद्रा में धूम्रपान के लिए बाहर निकल गये.

छुट्टी हो चुकी थी. सब जा चुके थे. छुट्टी के रजिस्टर में साइन करते वक्त जाने कैसे पैन उसके हाथ से छूट गया, काम पूरा कर लेने की खुशी एवं उत्साह भी पल भर में समाप्त हो गया फिर भी वह स्वयं को असहज होने देना नहीं चाहती थी.

अंततः रजिस्टर बंदकर बोझिल कदमों से वह स्कूल के प्रांगण से बाहर हो गयी. घर पहुंचने तक बस में लगने वाले हर छोटे-बड़े झटके पर उसकी समूची देह एक अनजनी आशंका से कांप-कांप जाती... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनिन विलास

जहा तक प्रगतिशील आलोचना का प्रश्न है. डा. रामविलास शर्मा का लेख **'यशपालजी और अश्लीलता'** एक ज्वलंत उदाहरण है. इसमें यौन उच्छृंखलता के आरोप में यशपाल के कथा साहित्य को कुछ इस तरह खारिज किया गया है, **'यही अनैतिक, अवसरवादी, टटपूंजिया, गैर जिम्मेदार दृष्टिकोण 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' आदि उपन्यासों में प्रकट हुआ है.'** घनघोर साम्यवादी होते हुए भी यशपालजी को अपने बचाव में कुछ शास्त्रोक्त प्रमाण खोजने पड़े, जिनके संदर्भ में डा. शर्मा ने लिखा, **"यौन संबंधों के बारे में अपने गलत अनैतिक दृष्टिकोण को सही ठहराने के लिए उन्होंने लेनिन का गलत हवाला अपने एक लेख में दिया था. लेनिन ने उन लोगों का विरोध किया था जो कहते थे कि जैसे किसी स्वच्छ गिलास से पानी पीने में हानि नहीं है, वैसे ही किसी स्वस्थ नारी से यौन संबंध कायम करने में हानि नहीं है. यशपालजी ने इसका ठीक उल्टा अर्थ लगाकर 'स्वतंत्र प्रेम' के समर्थन में लेनिनवाद को प्रस्तुत कर दिया."**

श्री रामविलास पांडेय द्वारा संपादित **यशपाल-व्यक्तित्व और कृतित्व'** में अप्रतिम कथा शिल्पी पर लिखे गये महत्वपूर्ण लेख संकलित हैं. डा. रामविलास शर्मा के नजरिये के बाद एक रूसी आलोचक डा.वी.आई. लानकिन की टिप्पणी का यह अंश देखें, **"सोवियत साहित्यिक आलोचना में यशपाल की कृतियों की तुलना शोलोखोव की कृतियों से की जाती है. वास्तव में यशपाल की रचनाओं में हमें कहीं समस्याओं का गहरा विश्लेषण, विषय का अमर महत्व, सामाजिक परिवेश का सच्चा चित्रांकन नजर आता है जो शोलोखोव की कृतियों में पाया जाता है."**

सुखद आश्चर्य : अतएव

जिन लोगों का विचार है कि सरकारी अनुदान से चलने वाले साहित्यिक संस्थानों से प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं में भरती की रचनाओं के सिवा कुछ नहीं होता, उन्हें उ.प्र. हिंदी संस्थान की त्रैमासिकी **'अतएव'** का प्रवेशांक देखकर हैरानी होगी. वैचारिक लेख, कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण, समीक्षा, सांस्कृतिक समाचार, श्रद्धांजलि—क्या नहीं है 280 पृष्ठ की महज दस रुपये मूल्य की इस भारी भरकम पत्रिका में. मार्कंडेय की **'निबंध सौरभ'** और ममता कालिया की **'उमस'** जैसी जोरदार कहानियों के साथ ही प्रगतिशील कथा साहित्य के मूल्यांकन पर चंचल चौहान की तीखी टिप्पणी ध्यान आकर्षित करती है, अपनी साफगोई की वजह से. प्रगतिशील आलोचकों की कमजोर नस पकड़ते हुए चौहान लिखते हैं, **" प्रगतिवादी आलोचना का प्रस्थान बिंदु अधिकतर हिस्सों में रचनाकार का जीवन रहा है. अगर प्रकाशचंद्र गुप्त या रामविलास शर्मा की आलोचना पद्धति को गहराई से विश्लेषित करें तो पायेंगे कि वे रचनाकार के निजी जीवन या निजी व्यक्तित्व से आलोचना की शुरूआत करते हैं और उस व्यक्तित्व की तसवीर में कहीं-कहीं रचना के पैबंद लगा देते हैं.—मूल्यांकन का परिप्रेक्ष्य यदि व्यक्ति यथार्थ की जगह सामाजिक यथार्थ देखने का रहा होता तो कहानी जैसी विधा उनके**

रामविलास शर्मा

समीक्षा कर्म की मदद करती. सामाजिक यथार्थ देखने के लिए रचनाकार के बजाए रचना पर ज्यादा भरोसा करना पड़ता."

सजग आलोचना

आलोचना की पुस्तकें प्रायः नीरस और बोझिल होती हैं. अपवाद है पंजाब प्रकाशन चंडीगढ़ द्वारा प्रकाशित डा. परेश का संग्रह **'आलोक और छाया'** जिसे आसानी से एक ही बैठक में पढ़ा जा सकता है. इसमें कथा-साहित्य, कविता और नाटक से जुड़े विषयों पर धारदार और रोचक टिप्पणियां हैं जिनके माध्यम से एक दबंग आलोचक हमारे सामने उभरता है. **'आंचलिकता और आधुनिकता'** लेख से एक उद्धरण साभार, **"अभी यह कहने का दौर नहीं आया किंतु इस लेख का लेखक साक्षी है उन दिनों का जब नामवर सिंह चितपुर स्ट्रीट के अंधेरे चाय घरों में 5-5 पैसे की चाय पी रहे हैं— उनके सभी प्रतिबद्ध युग सहकर्मी जाने किस जलती हुई प्रतिबद्धता से उस दग्धता को आहरित कर रहे हैं जो प्रेमचंद के पुत्रों के माध्यम से नहीं— निराला और मुक्तिबोध की रचनाओं से चलती हुई— इस समय के सजग समीक्षक के माध्यम से समकालीन लेखन में उतरी है. इनकी यह सजगता नहीं होती तो राकेश और कमलेश्वर के पात्र शराब और सिगरेट में ही डूबे रहते और केवल उस मखमल का ही जिक्र करते जिसका जायका रीतिकाल के कवि को भी शायद मयस्सर नहीं हुआ था.'**

डा. परेश की यह चुटकी जरा देखें, **"मेरी**

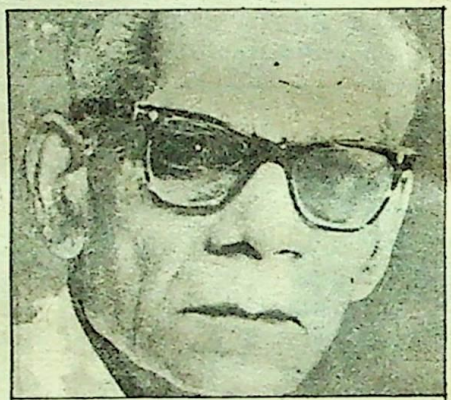

यशपाल

दृष्टि में धर्मयुग के उपहार अंक में छपे हुए सारे उपन्यास मात्र कहानियां हैं— उपन्यास जैसा घनत्व वहां है नहीं. उपन्यास का वजन 200-400 ग्राम तो होना ही चाहिए."

और अब, कहानी दरबार

वक्त के साथ-साथ सामंतशाही ने भी अपने तौर-तरीके बदले हैं. इन लोगों के आधुनिक संस्करण कथा साहित्य में उसी तरह दिखाई पड़ते हैं जैसे स्वतंत्रतापूर्व के उपन्यास-कहानियों में इनके पुरखे दिखाई देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं. कहा जा सकता है कि सामंतवाद और कथा साहित्य का चोली दामन का साथ रहा है. इन आधुनिक सामंतों को कभी-कभी पुरानी परंपराओं का मोह सताने लगता है, कि राजमहल सजें, बाजे गाजे के साथ हाथी पर जुलूस निकलें और दरबार लगाया जाए. यह नास्टेल्जिया भूतपूर्व नरेशों को ही नहीं, प्रजाजनों को भी सताता है. हाल ही में ग्वालियर की राजसी ठाठबार वाली शादी में जुड़ी भीड़ इसका जीता जागता प्रमाण है. बहरहाल यहां हम एक नये किस्म के दरबार का जिक्र छेड़ रहे हैं जिसका नाम है, कहानी दरबार. जी हां, हिंदी सहित तीन भारतीय भाषाओं का भव्य कहानी दरबार लगा और दो दिन तक लगा रहा. कहां? दिल्ली में. दरबार लगाने के लिए दिल्ली से बेहतर कौन-सी जगह हो सकती थी.

अत्यधिक प्रगतिवाद से त्रस्त हिंदी कथाकारों के लिए पंजाबी भाषा के कवि दरबार की तर्ज पर आयोजित 'कहानी दरबार' का आकर्षण सहज ही समझा जा सकता है. दिल्ली की सभी तोप तलवारें दरबार में हाजिर हुईं. कौन कहता है कहानी साहित्य की केंद्रीय विधा नहीं रही. तीन भाषाओं के 100-150 कहानीकार इस आयोजन में शरीक हुए और करीब 50 लेखकों ने या तो कहानी पाठ किया या कहानी पर बातचीत की. आगे खबर देते हुए जनसत्ता (10-1-88) में राजेंद्र उपाध्याय ने लिखा है, "**हिंदी कहानी का परिचय देते हुए**

कृष्णा अग्निहोत्री

कमलेश्वर ने कहा कि हिंदी कहानी में आम आदमी लौट चुका है." इस सफल दरबार से एक दिलचस्प तथ्य सामने आता है कि कहानी जरूरी नहीं कि पढ़ी ही जाये, सुनी भी जा सकती है और इस कदर कि दो दिन में लोग 50 कथाकारों को सुन लें, उफ तक न करें. हालांकि बड़ी संस्था में सजधजकर उपस्थित महिला कथाकारों को देखने-सुनने का अपना आकर्षण रहता है. प्रकाशकों द्वारा कथा संग्रह छापने में दिखाई जाने वाली अरुचि और कथा पत्रिकाओं की गिरती पाठक संख्या से चिंतित होने की अब जरूरत नहीं. कहानी दरबार चल निकले तो फिर एक बार जलवा देखने को मिलेगा, कथाकारों का.

उतरते मुखौटे

यह सभी जानते हैं कि फिल्म, टी.वी. प्रोड्यूसरों की तरह लोकप्रिय पत्रिकाओं के कुछ संपादक भी अपने पद का लाभ उठाने से नहीं चूकते. नवोदित महिला लेखिकाओं को कई दफे ऐसे संपादकों की रसिक वृत्ति को झेलना पड़ता है. एक युवा लेखिका ने तो कुछ वर्ष पहले हमें हिंदी के जाने माने साहित्कार संपादकों के अतिरिक्त स्नेहयुक्त पत्रों का एक मोटा पुलिंदा दिखाया था. हमारी समझ में यह भी एक तरह का यौन-शोषण है. इसके खिलाफ मन ही मन भुनभुनाने के अलावा किसी ने कुछ किया हो ऐसा सुनने में नहीं आया. नंदी में रहकर मगर से बैर कौन मोल ले. कुछ होशियार लेखिकाओं ने तो इस स्थिति का भरपूर फायदा भी उठाया है.

कथा लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री ने एक मार्मिक आत्मकथात्मक आलेख '**लगता नहीं है दिल मेरा**' में बड़े साहस और बेबाकी से ऐसे संपादकों के चेहरों को बेनकाब किया है जो अपनी पत्रिका में छपने वाली लेखिकाओं से पूर्ण समर्पण की अपेक्षा रखते हैं. दूसरी ओर ये लोग सारी दुनिया को नैतिकता का पाठ पढ़ाते नजर आते हैं. वैचारिकी के जनवरी 88 अंक में प्रकाशित यह लेख बुद्धिजीवी पुरुषों की शोषण वृत्ति को खूबी से उजागर करता है और ईमानदारी तथा उद्देश्यपूर्णता के कारण याद किया जायेगा. एक झलक– "**जब मैं एम.ए. व पी-एच. डी पूरी करने हेतु मायके में थी तब टकरा गयी आज के एक विख्यात संपादक से जो बड़ी पत्रिका संभाल रहे हैं. मैं यदि आत्मावलोकन करूं तो इतना स्वीकारती हूं कि प्रारंभ में उनके प्रति मेरा झुकाव केवल साहित्यिक मार्गदर्शन पाने के लिए ही था लेकिन जब उनका मेरे प्रति लगाव बढ़ता ही गया तब ही मैंने उस लगाव को मन से भरपूर स्वीकारा. मन से पर तन से नहीं क्योंकि मैं संस्कार व आदर्शों से अलग न हो सकी. जिसकी विडंबना पर वे आज भी मुझे व्यंग देते हैं.... वे यदि मेरे मन की भावुकता, संस्कारबद्धता का अंदाज लगा प्रतीक्षा करते तो मैं शायद इस प्यार में पूरी तरह समर्पित हो जाती और आज लेखिका होने के साथ किसी बड़े पद पर होकर पुरस्कार भी बहुत ले लेती परंतु 'सौदा' मुझे मान्य न हुआ, मैं किसी की रखैल बनकर या पत्नी का हक छीनकर नहीं जी सकती थी और मुझे यह बात उनकी अच्छी नहीं लगी कि वे मुझे नौकरी तभी दिलवायेंगे जब मैं उन्हें मन व तन से पूरी तरह अपनाऊंगी.**"

(साभार, वैचारिकी संकलन, जन. - मा. 1988)

पढ़ना बुरी लत है!

हमारा उद्देश्य पढ़ने को बढ़ावा देना या उत्साहित करना नहीं है. इस देश का प्रत्येक व्यक्ति न केवल पढ़ने की आदत का शिकार है, बल्कि पढ़ने की उसे बुरी लत है. मैं समझता हूं कि सबसे बड़ी अफीम आंखों को छपे हुए शब्द की पंक्तियों का साथ-साथ घुमाते रहना है. अशांति और थकावट से भी छपे हुए शब्द की जरूरत को बढ़ावा मिलता है. मेरे दोस्त ने, जो पूर्वी अफ्रीका के युद्ध में हमारे सैनिक के साथ था, मुझे बताया कि किस तरह खंदकों में गीले कपड़ों में बैठे, भूखे सैनिकों को एक पत्रिका का पन्ना मिल गया था. प्रत्येक ने उस पन्ने को अपनी आंखों को आराम देने के लिए पढ़ा. आज की दुनिया की सबसे बड़ी बुराई यह है कि पढ़ने से आदमी के चिंतन में कमी आती है.

– 16 जुलाई, 1927, ब्रिटेन के शिक्षा मंत्री का भाषण

साहित्य का लोकतंत्रीकरण

अगर पचास हजार लोग एक उपन्यास खरीदते हैं, जिसकी साहित्यिक गुणवत्ता तीसरे दर्जे की है, तो यह तो निश्चित है कि ये सब लोग मिलकर कोई षड्यंत्र नहीं रच रहे हैं और इस पुस्तक की सफलता को यूं ही नकारा नहीं जा सकता. इस सफलता की व्याख्या करनी जरूरी है ताकि साहित्य के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को सही मोड़ दिया जा सके. यह काम अल्पसंख्यक समुदाय को करना होगा और पूरी धार्मिकता के साथ... मैं जानता हूं कि इस अल्पसंख्यक साहित्यिक समुदाय में से कुछ साहित्य के लोकतंत्रीकरण के काम को असंभव और गैरजरूरी मानते हैं. लेकिन वे भी स्वीकार करेंगे कि यह जो 'भीड़ के मनोवैज्ञानिक' की समस्या है'.. जो कलाओं में लोकप्रियता का गोपनीय रहस्य है'... उसे अधिक रूचि लेकर समझना होगा, ताकि इस समस्या को सुलझाया जा सके.

– कथा साहित्य और ख्याति, आर्नोल्ट बैनेट, 1927

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा-सा इंद्रधनुष

महेश राजा

उसने जूते पर ब्रश फेरा. फिर जूते की चमक देखकर संतुष्ट हुआ और मुस्कराया.

जल्दी से जूते पांव में डालकर उसने फाइल उठा ली. सरसरी तौर से उसने यह भी देख लिया कि फाइल में सारे प्रमाण पत्र हैं या नहीं. दीवार-घड़ी सवा नौ बजा रही थी. उसे दस बजे तक पहुच जाना था. रसोई घर से मां और पूनू आ गयी. हर बार की तरह इस बार भी मां ने आरती उतारी , चावल उसके सर पर घुमाकर फेंके और घी-शक्कर उसके मुंह में डाल दी. पीछे खड़ी पूनू हंस रही थी. उसने लपककर मां के पांव छुए और पूनू की चोटी खींच दी.

"उई.. मां..आं.." पूनू चिल्ला पड़ी.

मां हंस दी. वह भी मुस्कराते हुए बाहर निकल गया.

धूप सिर पर चढ़ आयी थी. सड़क पर चहल-पहल थी. लोग तेजी से आ-जा रहे थे. किसी को दफ्तर जाने की जल्दी थी तो किसी को कालेज. उसने सोचा-आखिर मेरी मंजिल क्या है? उसका तो अभी कोई ठौर-ठिकाना नहीं. वह जानता था कि इस बार भी उसे कुछ हासिल नहीं होगा. कई बार के अनुभव से वह जान गया था कि इंटरव्यू तो एक चोंचला है. छंटनी की सूची तो पहले ही से तय होती है. कोई किसी मंत्रीजी की सिफारिश लेकर आया होता है तो कोई किसी साहब का साला होता है.

कार का हार्न सुनकर वह चौंक पड़ा. उसकी तद्रा भंग हुई. वह फिर तेज कदमों से चलने लगा.

वह मध्यमवर्गीय परिवार से था. पिताजी को गुजरे दो साल हो चुके थे. वे एक प्राइवेट फैक्ट्री में काम करते थे. कोई विशेष राशि हाथ नहीं लगी. जो कुछ थोड़ा बहुत मिला था वह कर्ज में समाप्त हो गया. मां ने पड़ोस की महिलाओं के कपड़े सिलकर उसे पढ़ाया था. पिछले वर्ष ही उसने बी.ए. किया था, तब से वह 'वांटेड' कालम देखकर आवेदन पत्र भेजा करता था. कार्ड मिलता-अमुक दिन साक्षात्कार के लिए आना है. वह जाता. वहां उसे एक भीड़ नजर आती. बेरोजगार लोगों की भीड़. फिर लंबी प्रतीक्षा के बाद उसकी बारी आती. दो-तीन सवाल पूछे जाते और जाने को कहा जाता. वह पूरे आत्मविश्वास के साथ लौटता कि उसे इस बार नौकरी मिलेगी ही,लेकिन अब उसे लगने लगा था कि वह एक प्रतीक्षा में ही जी रहा है. अब तो उसे कुछ भी नहीं लगता. जैसे सब कुछ जाना-पहचाना हो. वही इंटरव्यू, वही सवाल और वही नतीजा.

दिन गुजरने लगते. सिलेक्शन लिस्ट में उसका नाम नहीं होता. मां और पूनू के चेहरे पर उसे कोई उत्साह नहीं दिखता वह नजरें झुकाकर कहीं खिसक जाता.

हर बार असफल होकर उसने अखबार बांटने का काम स्वीकार किया था. मा नाराज थी. उसने मना किया. मां की इच्छा उसे बड़ा अफसर बनाने की थी. स्वयं उसने भी पहले यही स्वप्न देखा था. लेकिन अफसर क्या चपरासी की नौकरी भी मिलना उसे संभव नहीं लग रहा था. उसने स्थितियों से समझौता कर लिया.

उसे पड़ोस के माथुर अंकल के बेटे रमेश की याद आ गयी. रमेश एम.ए. करने के बाद पी.एस.सी., बैंक आदि सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठा था लेकिन बात कहीं नहीं बन पायी. माथुर अंकल नगरपालिका में नौकरी करते हुए रिटायर हुए थे. उनकी पहचान के कारण रमेश को क्लर्क की नौकरी भी मिल रही थी लेकिन रमेश ने क्लर्क होना स्वीकार नहीं किया. वह महत्वाकांक्षाओं में जीता रहा. धीरे-धीरे उसकी आयु सीमा पार कर गयी. अब वह अर्धविक्षिप्त-सा मारा-मारा सड़कों पर घूमता है.

केंद्र पास आ गया था. वही भीड़ थी जो हर बार होती थी. कुछ चेहरों पर उदासी के बादल और जिंदगी की थकान थी. कुछ चेहरे चहक रहे थे. शायद वे अपने साथ कुछ सिफारिशी पत्र लाये हों.

धीरे-धीरे पुकार होने लगी. लोग इंटरव्यू के

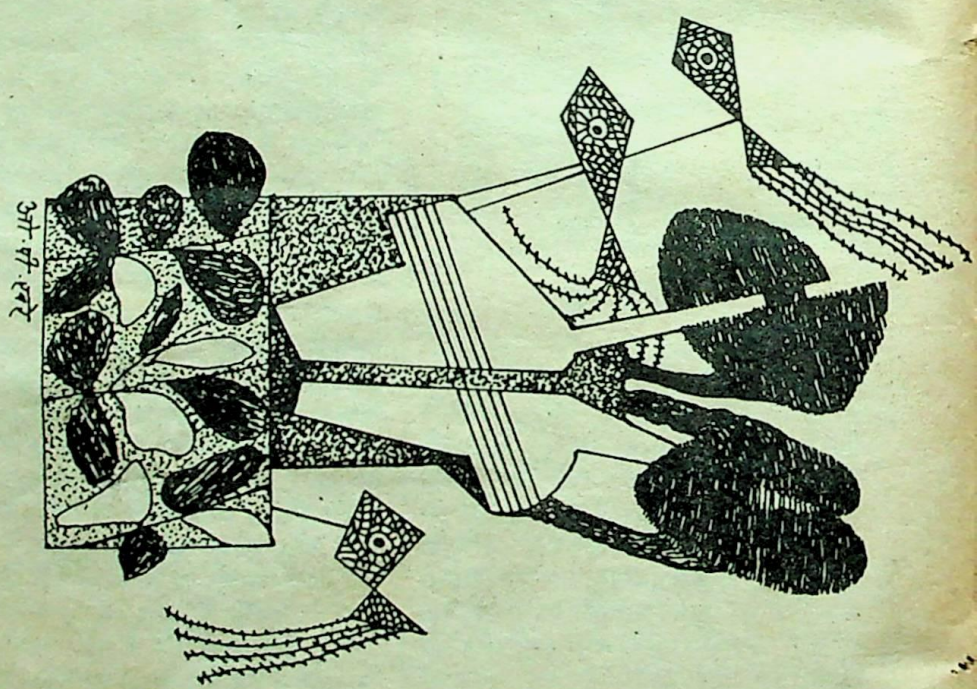

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवांकुर

देश के तमाम महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के जरिये आज कैसी प्रतिभाएं सामने आ रही हैं, लेखन के प्रति उनमें कैसा लगाव है...और रचनात्मकता के संदर्भ में वे क्या सोच रहे हैं. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसी नयी प्रतिभाओं की तलाश करते हुए हर माह एक उभरते रचनाकार की कहानी प्रकाशित की जायेगी. रचना भेजते समय यह न भूलें कि अपने विद्याध्ययन अथवा संस्थान के प्रधान का इस आशय का प्रमाण पत्र भेजना अनिवार्य है रचनाकार संस्थान में अध्ययनरत है और 'सारिका कहानी मंच' का सदस्य है.

यदि आपकी संस्था में 'सारिका कहानी मंच' नहीं है और आप विधिवत इसका गठन करना चाहते हैं तो 'नवांकुर' स्तंभ के कूपन की फोटो लिखाके पर पते के साथ चिपका कर संपादक से पत्र व्यवहार करें? रचनाएं भेजते समय ही कूपन का प्रकाशन अनिवार्य है.

कमरे में जाते और मुस्कराते हुए वापस आते. उसकी भी बारी आयी. वह कमरे में दाखिल हुआ. उसे बैठने को कहा गया लेकिन वह खड़ा रहा. दुबारा जब उससे फिर बैठने को कहा गया तब वह सामने रखी एक कुरसी पर अपने पैर कुरसी के नीचे पीछे की ओर ढकेलकर बैठ गया. उससे कुछ औपचारिक प्रश्न पूछे गये. उसने सही जवाब दिये. फिर उसे जाने को कहा गया और वह बाहर निकल आया.

धूप बढ़ रही थी. अस्पताल के सामने से गुजरते हुए याद आया कि कमल से मिले बहुत दिन हो गये.

कमल अस्पताल में कंपाउंडर था. बुरे समय में वह उसके काम आया था. कमल हंसमुख और सरल हृदय का था. उसे सदा ढाढस बंधाता, जिंदगी के प्रति आस्थावान होने की बात कहता.

जब वह उससे मिलने पहुचा तब कमल ड्रेसिंगरूम में एक मरीज की चोट पर पट्टी बांध रहा था. कमल ने उसकी ओर देखा. पट्टी बांधकर वह बाहर आया. उसे अपने साथ ड्रेसिंग रूम के अंदर ले आया. पास रखी कुरसी पर उसे बैठने को कहा और खुद बैंच पर बैठ गया.

"अब सुनाओ.. क्या हाल है? कुछ जमा? सब ठीक हो जायेगा.. बच्चा... ऊपर वाले पर भरोसा रखो."

फिर दोनों ठहाका लगाकर हंस पड़े.

बाहर आकर उन्होंने एक टपरीनुमा होटल में चाय पी. इधर-उधर की बातें होती रहीं. उसने कमल को घर पर आने को कहा और विदा ली.

घर पहुंचा तो देखा कि मां बाजार गयी हुई थी. पूनू रसोई में थी. कितनी समझदार हो गयी है पूनू. बेचारी सातवीं तक ही पढ़ सकी. बाबूजी नहीं रहे. उम्र के अनुसार उसने कोई मांग आज तक नहीं की थी. एक बार उसकी नौकरी लग जाये तो वह पूनू को अच्छे कपड़े ला देगा, उसे अच्छी तरह रखेगा और उसके ब्याह के लिए कोई अच्छा-सा लड़का भी तलाश करेगा.

उसने जेब में हाथ डाला. अखबार बेचने से जो कमीशन उसे मिला था, उसमें से केवल एक रुपये का सिक्का उसकी जेब में बचा था. उसने पूनू को आवाज देकर बुलाया और एक रुपये का सिक्का उसकी हथेली पर रख दिया. बहुत देर तक वह पूनू को चुपचाप देखता रहा.

मां अभी तक नहीं आयी थी. अब वह आज के साक्षात्कार के बारे में सोच रहा था. क्या इस बार भी कुछ वैसा ही होगा जो हर बार होता आया है?

पिछली बार वह लिखित परीक्षा में नौकरी के लिए अच्छे नंबरों से पास हुआ था. वह बहुत खुश था. मां भी खुश थी. उसे लगा कि इस बार जरूर उसे नौकरी मिल जायेगी. साक्षात्कार के लिए उसे बुलाया गया. तीन लोग थे. एक ने उसे मनोवैज्ञानिक ढंग से ऊपर से नीचे तक देखा. दूसरे ने उसका नाम पूछा और यह भी पूछा कि उसके पिता क्या करते थे. उसने यह भी पूछा कि बाबूजी को मरने के बाद प्रॉविडेंट फंड की कितनी रकम मिली थी. तीसरे ने सीधा प्रश्न किया, "नंबर तो अच्छे हैं तुम्हारे.. दस हजार की व्यवस्था कर सकोगे?"

वह चौंक पड़ा. "जी" भर कह पाया.

तीसरे व्यक्ति ने फिर कहा, "हां हां.. पुलिस विभाग में इस पद पर बैठ जाओगे तो इससे अधिक कमा लोगे."

उससे कुछ कहते नहीं बना. पहले व्यक्ति ने कहा, "अब आप जा सकते हैं."

कुछ दिनों बाद पता चला कि उसकी नियुक्ति नहीं हुई.

मां आ गयी. उसने मां की ओर देखा. मां खुश थी. पूछा, "इंटरव्यू कैसा रहा?

उसने कहा, "ठीक था."

वह जानता है, मां इंटरव्यू का परिणाम आने तक खुश रहेगी. कमल भी आयेगा और उससे कहेगा, "सब ठीक हो जायेगा.. ऊपरवाले पर भरोसा रखो बच्चा..." □

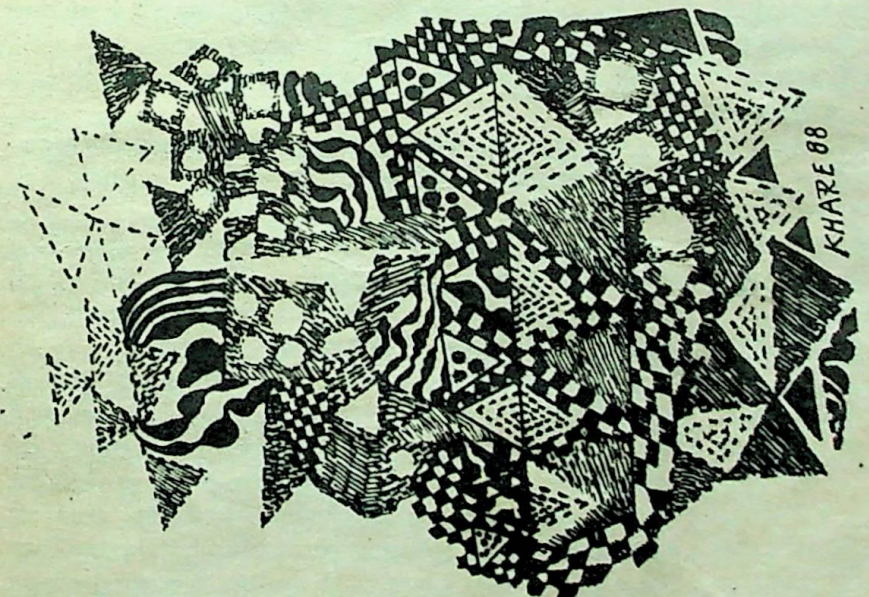

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल चतुर्वेदी

पान और पेड़ की दुकान

यह कोई बतकिया तो है नहीं. अपने देश में बात करने को राम-रामायण, दूरदर्शन-दहेज, राजा-राजीव आदि अनेक रोचक विषय हैं. पान की दूकान पर मौसम की चर्चा ने मेरे कान खड़े कर दिये.

"इस साल गर्मी कुछ ज्यादा है." पसीना पोंछते पान की प्रतीक्षा कर रहे एक सज्जन ने सबको सूचित किया.

"क्या फर्क पड़ता है. पहले ठिठुरकर मरे थे, अब कुछ लू के चलते मरेंगे." पीक की पिचकारी चलाते हमारे परिचित कैलाश 'कल्पित' ने ऋतु परिवर्तन की नैसर्गिक परिणति का विवचेन किया.

"ऐसे एक बात अच्छी है. गर्मी में कम कपड़ों से काम चल जाता है," बाबू राम सहाय ने राय दी.

"कपड़े ही क्यों! सब्जियां भी तो कद्दू-सी रहती हैं. खाओ तो कद्दू से, न खाओ तो कद्दू से. अब इतनी बचत है—आप लोग मेरा उधार चुकता कर दें," पान-भंडार के प्रो. (प्रोपराइटर) प्रीतम ने ग्राहकों को आगाह किया. आसपास खड़े कर्जदारों का स्वयंभू प्रतिनिधि बन मैंने प्रो. प्रीतम से निवेदन किया, "भाई जी, अब तो सरकार भी लोन-मेलों के उत्सव का आयोजन कर उधार बांटती है. एक आप हैं कि छोटे-मोटे कर्जों का उलाहना देते हैं."

प्रो. प्रीतम ने मुझे बीच में ही टोकते हुए अपने सरकार न होने की घोषणा की, "सरकार तो कर और कमीशन खाती है. अपने तो दाल-रोटी पर जिंदा है. उसका हमारा क्या मुकाबला. कहां गटर का मल, कहां गंगाजल." बहस आगे बढ़ पाती कि गगन-मार्ग से धोती की गठरी में लिपटी एक इंसान जैसी चीज 'हाय दैया' की दुहाई देती कैनवस की कमजोर छत को भेदती कत्था-चूना, सिगरेट-सुपारी के क्षेत्र में क्रांति कर गयी.

प्रो. प्रीतम के मुंह पर चूने और आकाशीय विपत्ति के कत्थे का लेप हो चुका था. उधार दल के सारे सदस्य प्रभु की अप्रत्याशित कृपा का मन ही मन गुणगान कर रहे थे कि पान के खोके से गुत्थमगुत्था की हरकत और गाली-गुफ्ता का अभद्र आदान-प्रदान गूंज उठा. प्रो. प्रीतम अपनी उजड़ी मिल्कियत के संत्रास का आक्रोश पतित आदम की औलाद पर निकालकर उसका आंशिक चीर-हरण कर चुके थे. धोती की भौतिक केचुल को तज वह अचानक आत्मा की चड्डी धारे हम लोगों के बीच आ गिरा. 'जय श्री राम' की तर्ज पर 'जाने न पाये' कहते हुए प्रो. प्रीतम उसकी धोती कंधे पर गदा की तरह सजाये उसके पीछे कूदे. हम लोगों ने उधार-धर्म निभाते हुए प्रो. प्रीतम के शिकार को घेर लिया.

"क्यों बे! तुझे मेरी दूकान से क्या दुश्मनी है," प्रो. प्रीतम ने हुंकार भरी.

" जरूर इसे 'प्रयाग पान संगम' के प्रो. प्रयाग ने भेजा होगा. व्यापारिक प्रतिबद्धता में इस तरह की घुसपैठ आम हो गयी है." मौसम विशेषज्ञ ने ज्ञान प्रदर्शित किया.

"हम भी काशी के हैं. ऐसा धोबी पाट लगायेंगे कि....." कहते हुए प्रो. प्रीतम आक्रामक मुद्रा में उसकी चड्डी उतारने लपके कि एक दर्शक ने बीच-बचाव करते हुए अनुरोध किया, "गुरु कुछ देर रुक जाओ.जरा मोहल्लेवालों को बुला लूं. बिचारे बिजली न होने से बिना टी.वी. 'बोर' हो रहे हैं. आप अपना 'वीडियो शो' तब तक मुल्तवी रखें, प्लीज!"

मारपीट के मनोरंजन के अभाव में प्रो. प्रीतम ने अपनी अध्यक्षता में उधार-दल के सहयोग से एक अनौपचारिक जांच कमीशन का गठन कर लिया था.

"नाम क्या है?" सवाल हुआ.

चड्डीवाला बोला, "पलटू राम."

"किसने भेजा था," कमीशन ने जानना चाहा.

"किसी ने नहीं. मैं तो दातून तोड़ रहा था कि पैर फिसल गया." उसने धराशायी होने का स्पष्टीकरण दिया.

"सच सच बताओ,तुम्हें इस विध्वंस के लिए किसने उकसाया? हम कोई संसदीय जांच समिति के सदस्य नहीं हैं कि शराफत और शिष्टाचार से पेश आयें. अभी हाथ-पैर तोड़ देंगे!" राम सहाय जी ने बाहें चढ़ाते हुए भीड़ को प्रभावित करने के लिए पलटू को चेतावनी दी.

पड़ौस की लकड़ी के टालवाले सिंह साहब ने पर्यावरण की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पलटू को हड़काया, "पेड़ काट रहा होगा, वर्ना क्यों गिरता. ऐसे ही लोगों ने निजी प्रयास से पेड़ काटकर देश का मौसम खराब कर रखा है."

"आप लकड़ी कहां से लाते हैं?" एक जिज्ञासा आयी.

"हम तो सरकार की सक्रिय सहायता से फालतू जंगलों का सफाया करते हैं."उन्होंने अपनी कार्यविधि बतायी.

"वह कैसे?" फिर सवाल आया.

"क्या आप भी लकड़ी का धंधा करना चाहते हैं?" टालवाले उत्तर टाल गये. "देखिये, व्यापार में सफलता के गुर यों ही नहीं बताये जाते. बोफोर्स के सौदे की दो-दो संसदों ने धर-पकड़ की. कुछ पता लगा? हम क्या काठ के उल्लू हैं जो खुले आम अपने राज खोलें."

इस चर्चा के चलते पेड़ से टपके प्रेत को लोग भूल चले थे. वह मौका ताड़कर निकल भागा. प्रो. प्रीतम ने उसे धर दबोचा. "पूरी दूकान चौपट कर दी! अब भागता है?" उसे गुद्दी पर धप मारकर धमकाया गया.

"बड़ी प्यास लगी थी सरकार." पलटू ने पलायन का कारण बताया.

"तुझे तो मैं ऐसा पानी पिलाऊंगा कि नानी याद आ जायेगी." प्रो. प्रीतम चीखे.

"सरकार तो टैक्स लेकर भी पानी नहीं पिला पाती. आप क्यों यह दुस्साहस कर रहे हैं, " बाबू राम सहाय ने सलाह दी. "पहले यह मेरी दूकान ठीक करेगा. तिरपाल लगायेगा और फिर पानी भी पायेगा," प्रो. प्रीतम ने बेगार लेने का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया.

मुझे आशंका हुई कि प्रो. प्रीतम कहीं हम कर्जदारों को भी दूकान-निर्माण में न जोत लें. "मुझे भी प्यास लगी है," कहते हुए मैं गुप-चुप खिसक लिया. तमाशे के खातमे और बेगारी के संक्रामक रोग के भय से सार्वजनिक पलायन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी. टालवाले सिंह साहब ने शायद अपनी छबि सुधारने के लिए या संभावित ग्राहकों को पटाने के खातिर उठती महफिल को ठंडा पानी पिलाने का निमंत्रण दिया. सिंह साहब के पानीदार प्रस्ताव को मेरे साथ चार-पांच लोग सधन्यवाद स्वीकार कर, उनके पीछे हो लिये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाल पर पहुंचते ही वह चीखे, "भोला!"

एक मूंछदार पहलवान अंदर से अवतरित हुआ.

"साहब लोगों का मुंह मीठा कराओ," उन्होंने हुक्म दिया और हमें बैठने का इशारा कर एक तख्त पर मसनद के सहारे लुढ़क पड़े.

थोड़ी देर बाद पहलवान एक हाथ में लोटा और दूसरे में प्लेट लिये प्रगट हुए. तश्तरी में पेड़े की शक्ल में भुने हुए बेसन और चीनी का मिश्रण था.

"खाइये, खाइये! मेरा तो उसूल है कि पेड़े खाने और पेड़ काटने के लिए होते हैं." उन्होंने हमें गैरजरूरी प्रोत्साहन देने की औपचारिकता निभायी.

"पर आप तो इसलिए पलटू की आलोचना कर रहे थे." हमने बेसन भरे मुंह से उनको याद दिलाया.

"एक व्यक्ति दूसरे पर गोली चलाये तो वह हत्या होती है. वह फौज या पुलिस करे तो देश या कानून की रक्षा. वनवासी सुरक्षा कर्मचारियों और उनके अधिकारियों से साठगांठ कर हम वृक्षों को सद्गति देते हैं. यह देश की सेवा है." टालवाले ने हमें समझाया.

उनके बयान की विश्वसनीयता चीनी और बेसन के मिश्रण से खासी बढ़ गयी थी.

"आपने दुरुस्त फरमाया. लकड़ी की जरूरत तो पालने से लेकर परलोक सिधारने तक है. बिना पेड़ काटे काम कैसे चल सकता है," एक विचार आया.

टालवाले का पानी पी-पीकर हम लोग पेड़ों को कोसने लगे. बेसनी विचारों के बैंगन इधर-उधर लुढ़ककर नयें दर्शन का सूत्रपात कर गये. "पेड़ों के आद्यिक्य से जंगल बनते हैं. वह कटेंगे तो लोग बसेंगे. तरक्की होगी. फिर वह ऊंचे-ऊंचे पेड़ हमें बौने होने का एहसास कराते हैं. तभी तो जापानियों ने वृक्षों का छोटा संस्करण खोज निकाला. हमें भी हर शहर में ऐसे जापानी जंगल लगाने चाहिए." कैलाश कल्पित ने कल्पना की उड़ान भरी.

"यों पेड़ों के फायदे भी हैं, चिड़िया घर बनाती है. साया मिलता है. फल-फूल अलग. इसी कारण हमारे पूर्वज पेड़ पूजते थे." बौद्धिक बहस में विरोध का स्वर उभरा.

"यही तो दिक्कत है. इस मोहल्ले में पेड़ कुछ ज्यादा हैं. कल मैं जा रहा था तो चिड़िया ने बीट कर दी." टालवाले ने इस दुखद याद के आते ही अपनी गंजी चांद को सहलाया.

"हमें दकियानूसी रूमानी खयालात छोड़ने चाहिए. यदि चिड़ियों को रहना है तो पिंजड़ों में रहें. जानवरों के लिए 'जू' है. जरा सोचिये, यदि पेड़ नहीं कटे तो पढ़ाई कैसे होगी! मैं तो इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि पेड़ सिर्फ काटने के लिए हैं." वृक्षों के विरुद्ध कैलाश कल्पित ने कुल्हाड़ी चलायी.

"पता नहीं कितनों का पेट काटकर एक बहुमंजिली इमारत बनती है. क्या इससे हमें पेट काटने का औचित्य सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए. कटते हुए पेट और पेड़ दोनों विवश हैं. हमें उनकी रक्षा करनी चाहिए. वर्ना किसी दिन विद्रोह की जंगल की आग हम सबको समेट लेगी." इकलौते विरोधी ने मार्क्स की धुन बजायी.

"आप पेड़ों के मामले में राजनीति मत लाइये. दुनिया भर में पेड़ कटते हैं. वर्ना संसार पथरीले जंगल के बजाय हरा-भरा जंगल न होता! सरकार पेड़ लगवाती है. सरकार के सेवक कटवाते हैं. नये उगते हैं, पुराने ढहते हैं. यही जीवन-चक्र है. तख्त से लेकर तख्ते-ताउस तक पेड़ का प्रताप है. कुर्सी भी तो पेड़ से बनती है. जो जितने पेड़ कटवाता है, उतनी ही ऊंची कुर्सी पाता है. यही असली समाजवाद है. मिल-जुल के पेड़ काटो और समृद्धि बांटो." कैलाश कल्पित ने अपना बौद्धिक वर्चस्व स्थापित किया. टालवाले ने प्रभावित होकर पहलवान को प्रो. प्रयाग की दुकान से आठ-दस पान लेने के लिए दौड़ा दिया. तांबूल आगमन की सुखद सूचना पाते ही एक सज्जन ने पेड़ काटो अभियान में योगदान के खातिर अपना सर्वस्व अर्पित करने का प्रस्ताव रखा. वह लुंगी-बनियान पहने थे. उन्हें कठिनाई से उनके निश्चय पर अमल करने से रोका गया.

"यदि आप लोग ऐसे ही वनों का विनाश करते रहे तो हरे खेत के स्थान पर रेत ही रेत होगी." विरोधी फिर बोला.

"अच्छा होगा. हम भी खाड़ी देशों से अमीर हो जायेंगे," टालवाले ने उन्हें चुप कर दिया.

मार्क्स के चेले मौन और बाकी प्रतीक्षारत थे. मैं टालवाले की अनपेक्षित उदारता के रहस्य के बारे में सोच रहा था. इतने में पान आ गये. टालवाले भी थोड़ा खुले, "आप मानते हैं कि पेड़ काटना प्रगति के लिए आवश्यक है!"

एक के अलावा सबने बेसन-चीनी और पान की कीमत चुकाते हां में हां मिलायी.

"जंगल में जानवर रहते हैं. पेड़ काटकर हमें साबित करना है. कि हम इंसान हैं," बाबू रामसहाय ने चुप्पी तोड़ी.

"भैया, तुम विध्वंस करो, हम तुम्हारे साथ हैं," लुंगी ने फिर सहयोग का वादा दोहराया. मौसम विशेषज्ञ ने जिस डाली पर बैठो, उसी को काटकर कालिदास बनने की सलाह दी.

"हम आपकी क्या मदद कर सकते हैं," उन्होंने जानना चाहा.

"हम आपके साथ बौद्धिक स्तर पर सहयोग के लिए पूरी तरह प्रस्तुत हैं," कैलाश कल्पित बोले.

"हमारे लिए आपकी शुभकामनाएं ही काफी हैं. ऐसे आपकी कालोनी तो पुरानी और हवादार है. इसमें पेड़ भी बहुत हैं." टालवाले ने उत्तर दिया. मेरे अलावा सबने स्वीकृति में सिर हिलाये. अपने घर के सामने केवल सड़क थी. मार्क्स का बिगुल बजाने वाले पान चबाकर फूट लिये थे.

"आपके मोहल्ले के पेड़ बुढ़ा गये हैं. अब उन्हें रहने में भी कष्ट होता होगा. इन्हें मुक्ति देना हमारा पावन कर्तव्य है. इसमें आप चाहें तो मेरी सहायता कर सकते हैं." टालवाले ने पेड़ों की हमदर्दी में पहल की.

"क्या करना होगा?" एक स्वयंसेवक ने जानना चाहा.

"कुछ खास नहीं. अपने पास के पेड़ के तने के चारों ओर छह-सात इंच का गड्डा खोदकर पेड़ के सूखने का इंतजार कीजिये. उधर पेड़ सूखे, इधर मुझे सूचित करें. बस आपका पेड़ के प्रति परोपकार का काम खत्म और मेरा शुरू," टालवाले ने अपने भविष्य के सहकर्मियों को प्रेरित किया.

"नेता जनसेवा के एवज में पद-कुर्सी का कलेवा करते हैं, हम पर्यावरण की सेवा के बदले क्या कुछ पत्र-पुष्प की आशा करें," एक ने सामूहिक भावना को शब्द दिये.

"एक पेड़ जो गिरा तो दो-सौ रुपये. ऐसे हमें जल्दी नहीं है." उन्होंने चारों तरफ लगे लकड़ी के प्रचुर ढेरों की ओर इशारा किया.

हम नामे की संभावना समाप्त होने पर निराश होकर घर चले आये. हमारा ख्याल था कि पान वाला ग्राहकों को चूना लगाकर कमाई करता है. शाम की चर्चा के बाद महसूस हुआ कि पेड़ की दूकान कहीं बेहतर है. किसे पता था कि मिल-जुलकर पेड़ों की कटाई की कमाई लाखों में होगी. हमें यकीन हो चला था कि हमने फालतू पढ़ाई की घास खोदी और उसके बाद से सरकारी नौकरी का भाड़ भसौंक रहे हैं. लकड़हारे बनते तो लाखों कमाकर सबके लाड़ले होते. इसी संत्रास के चलते हमेन अनिच्छा से खाना खाया और करवटें बदलते-बदलते न जाने कब आंख लग गयी.

सुबह उठे तो मोहल्ले में हलचल थी. "सुना आपने! रात को अचानक आग भड़क उठी. पानी के अभाव में लकड़ियां धू धू कर सुबह तक जलती रहीं," पत्नी ने उठते ही सूचित किया. अपनी परिचित टाल जल चुकी थी. बाहर निकले तो हमें हर पेड़ के चारों ओर खुदाई दिखी. यार लोग बिना समय खोये कमाई में लग लिये थे. थोड़े दिनों में पूरा मोहल्ला क्या सारा शहर हमारे घर के सामने की सड़क-सा सपाट होगा. हम यकायक उदास हो गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजशास्त्र से एम.ए. हैं. आज की दुनिया के आदमी की तकलीफों को शब्द देने के लिए लिखती हैं : सारिका में प्रभावित होनेवाली यह इनकी पहली कहानी है.
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : 831, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर

नाहीद

अलविदा कैथी

मैं घाट की सीढ़ियों पर जड़ीभूत बैठा था, सहसा पीछे से किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा, "हैलो मोहन!"

मैं चौंका! "मैं गोपाल हूं, मोहन नहीं."

"एक ही रूप के दो नाम. कहीं मोहन कहीं गोपाल."

मैं पूरी तरह से चैतन्य हो चुका था. वह भी सामने बैठ चुकी थी. उसकी आंखें मेरे चेहरे पर थीं. उनमें अग्निशिखा-सा कुछ था. मैं दो निमिष भी उन्हें देख न सका. सिर झुकाकर हंसकर कहा, "मैं हरे रामा हरे कृष्णा संप्रदाय का नहीं हूं. सनातन धर्मी हूं, और हर उस चीज का विरोधी हूं जो समाज को अव्यवस्था के दलदल में खींचे."

"मैं किसी दलदल में नहीं, बड़ी सख्त जमीन पर खड़ी हूं."

"मैं योगी भी नहीं हूं."

"मेरी मन-आत्मा में कोई विकार नहीं. तुम पीछे से मोहन जैसे लगे इसीलिए तुम्हारे एकांत में बाधा बनी. माफ करना दोस्त, मैं पिछले सात महीनों से इस शहर में हूं. कौन-सा आकर्षण मुझे यहां जाने से रोकता था, यह मैं आज जान पायी. एक हफ्ते में मुझे यहां से चले जाना है. अगर, तुम अपनी शाम के चंद लमहे मुझे दे सको तो खुशी होगी."

मैंने कहना चाहा– 'उबके हुए रंग वाले हर अंग्रेज से मुझे घृणा है.' पर शायद, वह इसका जवाब देती– 'कृष्णा वर्ण वाले हर हिंदुस्तानी मुझे प्यारे हैं.' इसलिए चुप रहा.

इतिहास का शोधक-अन्वेषक हूं. इतिहास के नाना अपरिचित अनजान प्रसंगों को अनावृत्त कर, उस अनावरण को मुग्ध दृष्टि से देखता हूं. वह मधुमय भोर, वह वासंती ऊषा. सूरज के रथ के पीछे आक्रांताओं का रथ धूल उड़ाता चला जा रहा था. पीछे चेतना लहुलुहान है. क्योंकि शोधक से अधिक मानव हूं. मानव से अधिक पुरुष. इसलिए दीपा के दिए हुए जख्म आज भी जल रहे हैं. मां शादी के लिए कहती है मुंह फेरकर हंसता हूं– 'कितनी बार करूं. मां को वंशवृद्धि पिंड-तर्पण की चिंता है. मैं दिल के शमशानों में आस अभिलाषाओं की मुंडमालाओं का भैरवनाद सुनता हूं.'

दूसरी शाम घाट पर आकर खड़ा हो गया. सोचा, उसे बता दूंगा. दिल की पर्तों को उघाड़कर दिखा दूंगा– 'देखो यहां दिन-रात स्वाहा का मन्त्रोच्चार हो रहा है. गंगा का पानी भी टेम्स का पानी भी इस पर धृत सा जल उठेगा!!'

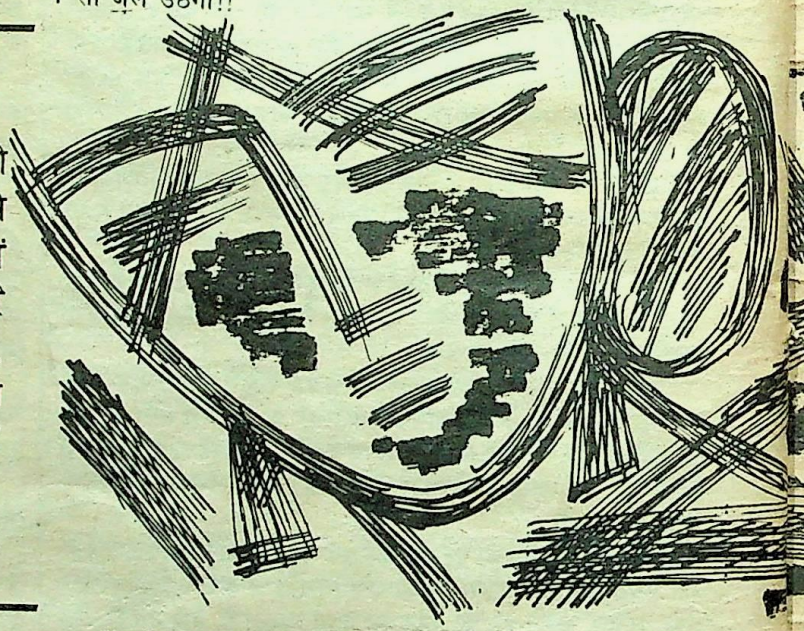

नाव बह रही थी. वह पानी में हाथ डाले उसकी धार को पलटने की कोशिश कर रही थी—मैंने उसे गौर से देखा. वह झुकी-झुकी उन अन-बहे आंसुओं को पीने की कोशिश कर रही थी जिनमें खून के कतरे थे. वह मुझे हाड़-मांस की कोई नारी मूर्ति नहीं, अमरनाथ की प्राचीरों पर जमी बर्फ के ढेर सी लगी जिसमें दिव्य आत्मा थी...प्रस्तुत है 'नये हस्ताक्षर' के अंतर्गत यह कहानी.

"हलो मोहन."

"मोहन नहीं गोपाल!!"

वह मेरे पास थी. वह मुझसे मुश्किल से एक या दो इंच छोटी थी. उसने घेरदार लंबी फ्राक जैसी कोई चीज पहन रखी थी. घुटने से नीचे उसकी टांगें चांदनी के रंग की थी. पानी की सतह पर चांदी थी. दूर कुहासा चांदी पर झुका था. मेरे पास उसके बालों में सूरज था.

"एक दिन मोहन ने भी यही कहा था." उसकी आंखों से उत्कीर्ण तापीय तरंगें मेरे मस्तिष्क का एक्सरे ले रहीं थीं.

"क्या?" मैं घबराकर पूछ बैठा.

"दिन उजाला था. हम टेम्स के किनारे टहल रहे थे. वह ठिठककर रुका था. मेरे कानों में चांदी की बालियों में फंसे हुए तिनके को निकालकर उसने अपने दांतों में दबा लिया था और बोला था– 'यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरज आज तुम्हारे बालों को चूमने के लिए उतरा है.''

''पर मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा...''

''सोचा तो...'' वह जोर से हंसी और मेरा हाथ पकड़कर नाव पर उतर आयी, ''मैं तीन बरसों से चल रही हूं. नेपाल से कश्मीर, राजस्थान से दिल्ली, आगरा से बनारस सच, अद्‌भुत है तुम्हारा देश, पर अनजान नहीं.''

''कैसे...?''

''इसीलिए कि मोहन मुझे पहले ही सब कुछ बता चुका है.''

''ओह प्लीज...''

''कैथी.''

''हां, कैथी प्लीज, क्या हम मोहन के बिना नहीं रह सकते!''

''मोह... गोपाल इतना गुस्सा मत करो. गुस्सा मांसपेशियों में खिचाव पैदा करता है. और यह तनाव चुपके से तुम्हारी उम्र के कुछ लम्हे चुरा ले जाता है.''

नाव बह रही थी. वह पानी में हाथ डाले उसकी धार को पलटने की कोशिश कर रही थी— मैंने उसे गौर से देखा. वह झुकी-झुकी उन अन-बहे आंसुओं को पीने की कोशिश कर रही थी जिनमें खून के कतरे थे. वह मुझे हाड़-मांस की कोई नारी मूर्ति नहीं, अमरनाथ की प्राचीरों पर जमी बर्फ के ढेर सी लगी जिसमें दिव्य आत्मा थी.

पहले दिन कैथी को देखकर आक्रोश का जो पौधा पनपा था, वह टूटा ही नहीं, जड़ से उखड़ गया. बरसों पहिले दीपा के जाने के बाद से ही उसके वे अंतिम वाक्य मुझे झुलसाते रहते थे— ''तुम्हारा इतिहास का ज्ञान इतिहास के विद्यार्थियों को कुछ रुचिकर पुस्तकें तो दे सकता है, पर मुझे क्या मेरे मेकअप का सामान भी दे सकेगा...??'' मैंने उसे विश्वास दिलाना चाहा था कि मैं भले ही उसे मेकअप की चीजें मुहय्या न कर पाऊं पर मैं उसे जो कुछ दूंगा वह शायद कोई दूसरा न दे पाये. उत्तर में उसने बड़े दंभ से कहा था— ''जिससे शादी होगी, उसे प्यार करना ही पड़ेगा'' वह जबरदस्ती का प्यार उसे रास आया कि नहीं यह तो नहीं जानता. अब जब कैथी ने कुछ सोचने पर मजबूर कर दिया तो टटोला और पाया कि दीपा के नाम का कांटा दिल के जिस उदास कोने में गड़ा था, आज वह जगह मुर्दा हो चुकी है. अब न दर्द का एहसास.

कभी दीपा की यादें रात भर सोने नहीं देती थीं. आज कैथी के बारे में सोचता रहा. उसने मेरे मन को झिंझोड़कर जगा दिया. पर एक दूसरे रूप में— ''तुम्हारा ज्ञान, दर्शन, कवित्व किसी को क्या दे सका! आम आदमी न दार्शनिक होता है न कवि. उसे रोजी रोटी चाहिए. शांति से जीने का हक चाहिए. क्या तुम हिंदुस्तान में इसकी कमी नहीं महसूस करते...??''

दो दिनों तक अपनी अत्यधिक व्यस्तताओं के कारण मैं उससे न मिल सका. तीसरे दिन अपने एक दोस्त की गाड़ी ली और सोचा उसे बनारस की वह झलक दिखाऊं जिसे देखने की चाह लेकर आते तो बहुत है, पर देख कम ही पाते हैं.

अभी शाम बाकी थी जब मैंने राजघाट पुल पर गाड़ी रोकी. वाहनों का आवागमन शांत था. सूरज उसके बालों को चूमने के लिए रुका था. ''यहां से हमारे शहर को देखिये'' मैंने उसके कानों में सरगोशी की. वह जैसे कहीं डूबी हुई थी. एकाएक बच्चों की तरह खुश होकर बोली, ''क्षितिज पर आधे चांद सा लटका शहर. बिल्कुल ऐसी ही तस्वीर खींची थी मोहन ने.''

वह शाम जो शामे-अवध की तरह सरसराती हुई पास से गुजर रही थी, लल्ख धुएं की तरह फिजा में फैल गयी. आहिस्ता-आहिस्ता उतारकर मैं गाड़ी को चंदनशाह के मजार वाले रास्ते पर ले आया. बृहस्पतिवार था. श्रद्धालुओं की भीड़. लोबान और अगरबत्ती की महक से वातावरण बोझिल था.

मेरा चेहरा धुंआ सा था. कैथी अपने ही खयालों में डूबी सी बोली, ''मैं चर्च नही जाती. पर मुझे वे सब लोग अच्छे लगते हैं जो आस्थावान हैं.''

''इतनी अच्छी हिंदी आपने कहां से सीखी?''

''मोहन से.''

''मोहन से आपकी शादी हो चुकी है?''

''होने वाली थी.''

''फिर उसने धोखा दे दिया.''

''मोहन धोखा नहीं दिया करते.'' वह रोष से बोली.

''तब जरूर उसके सामने कोई मजबूरी रही होगी.''

''मजबूरियों की उससे परवाह नहीं की. यही सबसे बुरी बात हुई ग्लासगो की सड़कें यूं भी शाम ढले वीरान हो जाया करती हैं. और दंगे कई रोज पहले से ही भड़क उठे थे. वह जानता था. वह फोन पर भी शादी की खुशखबरी दे सकता था. पर उसने मुझसे मिलना जरूरी समझा.''

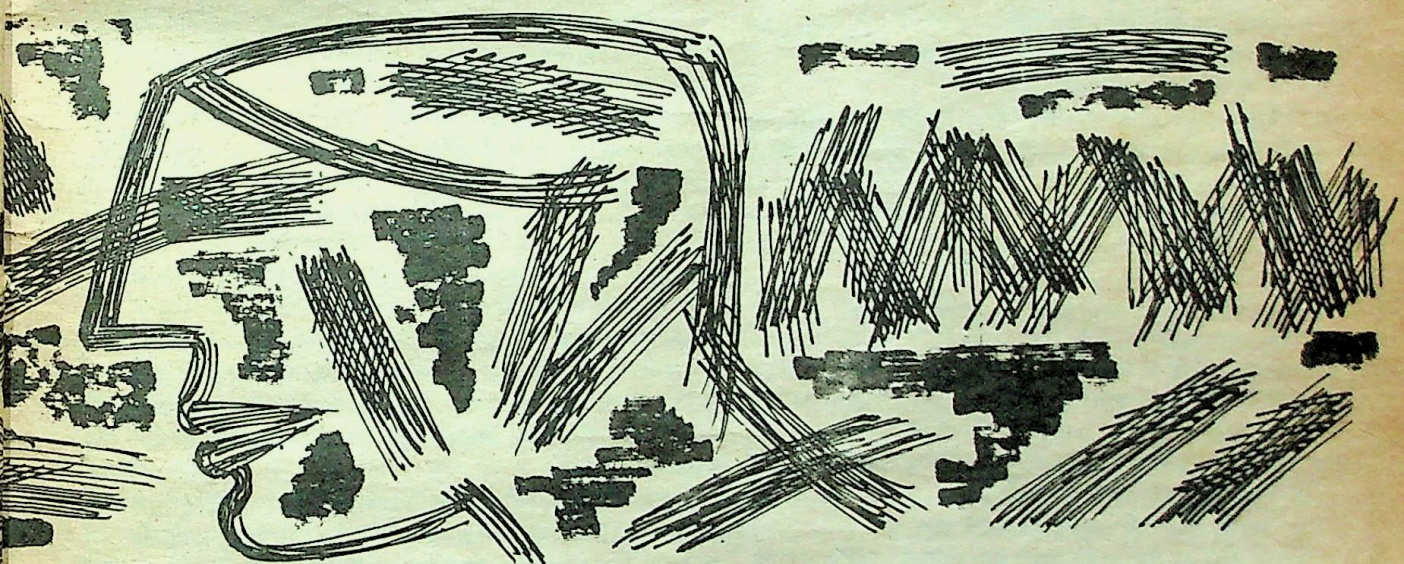

''फिर...??''

''फिर उस काले आदमी की लाश ही सड़क पर से उठायी जा सकी.'' जिस मोहन को मैं कई दिनों से जबरदस्ती झेल रहा था, वह भाई जैसा लगा. ''ये सफेद लोग... इन्होंने हमेशा काले लोगों को कीड़े-मकोड़े की तरह मसला है.''

उसने मेरी बात नहीं सुनी. सफेद कपड़ों में लिपटी वह महाश्वेता अपने से ही कहती रही, ''उफ! मोहन की मां की वह ठंडी आंखें और फिर उनका मुझे लिपटाकर रो पड़ना! मैं भूल नहीं पाती, न उन आंखों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंडापन न वह हिचकियां."

वह सुनसान-सा बाई-पास था जहां मैंने गाड़ी रोकी.

"क्या बात है गोपाल?"

"क्या मैं मोहन नहीं बन सकता?"

"गाड़ी चलाओ दोस्त." वह हंसकर बोली.

मैं स्टेयरिंग पर हाथ रखे बैठा रहा, "लाइये अपना पासपोर्ट दीजिए उसे फाड़कर बाहर फेंक दूं." फिर पीछे मुड़कर बोला, "गाड़ी वापस करूं?" मैंने उन आंखों में देखने की कोशिश की पर वह चुंबक जो मुझे इतने दिनों से खींचता आ रहा था छिटककर कहीं दूर जा गिरा था या कि शायद मेरा ही अस्तित्व लोहे के बजाए मिट्टी का हो गया था.

"मैंने सुना था कि हिंदुस्तानी बड़े मेहमाननवाज होते हैं. अच्छा आतिथ्य निभाया आपने!" उसकी आंखों में शिकवा था.

गाड़ी की रफ्तार शायद बहुत तेज थी. कैथी ने हंसते हुए कहा, "इतना गुस्सा अच्छा नहीं होता गोपाल. गुस्सा मांस-पेशियों में खिचाव पैदा करता है और यह खिचाव, यह तनाव हमारी जिंदगी के कुछ पल चुरा के चुपके से चल देता है और हमें पता भी नहीं लगता." यह बात वह एक बार पहले भी कह चुकी थी.

"और आप जो मेरी जिंदगी का सब कुछ चुरा के चली जा रही हैं!" मैंने मौन आंखों से पूछा. वह मुस्कराती हुई बाहर देख रही थी.

एयरपोर्ट पर हम अकेले नहीं थे. बहुत से लोग थे. पर अपने में उलझे हुए. हम सोफे पर बैठ गये. कोई 'चीज' उसके बगल में थी. वास्तव में वह 'चीज' नहीं, बच्चा था जिसकी कुनमुनाहट से मैं चौंका था.

"यही मोहन है." वह नन्हा-सा सांवला बच्चा नींद में मग्न मुस्करा रहा था.

"इसकी मां अस्पताल में इसे जन्म देकर छोड़ गयी. मैंने इसे गोद ले लिया. जानते हो, इसके लिए कितनी भाग-दौड़ करनी पड़ी. थका डाला इसने मुझे." और वह प्यार से उस पर झुक गयी.

मोहन ने एक बार फिर मुझे शिकस्त दे दी.

कल राजघाट स्कूल की इमारत से टिकी खड़ी कैथी जैसे श्रद्धावनत हो उठी थी, "क्या खूब थी ये ऐनीबेसेंट भी. सुख सुविधा का जीवन छोड़कर पराये देश में पराये लोगों के बीच अपनों को पहिचाना था उन्होंने." और फिर ऐनीबेसेंट को छोड़कर वह ईसाई मिशनरीज पर लंबा लेक्चर देने लगी तो मुझसे रहा न गया, "उस सेवा भावना के पीछे जो धर्मांधों की स्वार्थ लिप्सा थी...?"

"उसे तुम स्वार्थ कहते हो? याद करो जब बंगाल का चेहरा कोढ़ से दागदार हो उठा था तो अपने नंगे हाथों से उसकी मरहम पट्टी करनेवाले फादर और नन्स, जो बाद में खुद उसी बीमारी में डूब-डूब कर मरे. उनकी निःस्वार्थ सेवा भावना! क्या कहोगे तुम उसे!! तुमने समाज के जिस अंग को सड़ा हुआ कहकर काटकर फेंक दिया, उसे उन्होंने सीने से लगाया. कंपनी के आदि शासन काल से लेकर आज तक कलकत्ता के गली-कूचों में पल पल अपने जीवन को समर्पित करनेवाली मदर और नन्स! अब भी तुम उन्हें स्वार्थी कहोगे??"

वह निर्ममता से मेरे संस्कारों की पर्तें उधेड़ती रही. मैं चुपचाप सहता रहा. जहाज पर से एनाउंसमेंट हो रहा था. कैथी मोहन को संभाले हुए तेज-तेज बढ़ने लगी. मैं उसकी आवाज के भंवर में लिपटा उसके पीछे चलता रहा, "मोहन खालिस पूर्वी दुल्हन चाहता था, शादी ही जिसके लिए पहला तजुर्बा हो. उसकी अमानत मैंने आज भी संभाल रखी है. तुम्हें देखकर लगा था एक पल के लिए कि टूट जाऊंगी. इसलिए नन्हें मोहन का सहारा ले लिया. अब यही मेरी हिफाजत करेगा." फिर आखिरी बार मेरा हाथ अपने हाथों में लेकर बोली थी, "और इस तरह मोहन की मां की आंखों का ठंडापन शायद कुछ पिघल सके."

जहाज रनवे पर दौड़ने लगा– "अलविदा कैथी! टेम्स के किनारे मोहन की ऊंगली पकड़े जब तुम चलोगी तो सूरज तुम्हारे लिए उगेगा. फिर वह सूरज कभी नहीं डूबेगा. क्योंकि जो जाति अपने हत्यारों का प्रायश्चित करती है, उसका सूरज कभी नहीं डूबता."

धीरे-धीरे जहाज आकाश की असीम नीलाइयों में खो गया.

मैं वापस हो रहा हूं. मेरे दिल के श्मशानों में एक बार फिर नरमुंडों का उत्ताप नर्तन गूंज रहा है. पर उस निविड़ शोर में नीचे बहुत नीचे कहीं शीतल अग्नि का होम हो रहा है.

अलविदा! आखिरी बार अलविदा अनुराधा! तुम मोहनमय ही नहीं सूरजमय भी हो. आज से सूरज को समर्पित सब अंजलिबद्ध प्रार्थनाएं तुम्हारे नाम हुईं. □

पुण्य

सुरेंद्र सुकुमार

इक्का पूरी तरह से भरा हुआ था, पांच-छः औरतें थी, चार-पांच आदमी, कुछ बच्चे थे. इक्के में एक गेरुए वस्त्रधारी बुजुर्ग साधू भी बैठे थे. खासी धिचविच थी. ये लोग गंगा जी स्नान करने जा रहे थे. लगभग सभी लोग धार्मिक चर्चा कर रहे थे.

"परोपकार से बड़ा कोई धर्म नहीं है."

"हां भइया, दूसरे की भलाई ही सबसे बड़ा धर्म हैं."

"इंसान में अगर प्रेम हो तो उससे बड़ा कुछ भी नहीं हैं. प्रेम ही परमात्मा है. मनुष्य को मनुष्य से ही नहीं सब जीवधारियों से प्रेम करना चाहिए क्यों बाबा है न ठीक बात."

"हां भइया, प्रेम तो है ही बड़ा. कबीर भी कहते हैं....

'ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित हो', पर भइया सब चीजें संयोग से मिलती हैं"

"सही कह रहे हैं बाबाजी आप, अब ये संयोग ही तो है कि हम सब लोग गंगाजी स्नान करने जा रहे हैं और धर्म की बातें कर रहे हैं ये ही तो सत्संग है और आप जैसे साधू-महात्मा हमारे ही साथ चल रहे हैं." एक ने कहा.

"और क्या बाबा ये हमारे पुण्य ही हैं जो गंगा यात्रा में आप जैसे तपस्वी हमारे साथ हैं देखो इक्के में कितनी भीड़ है पर सब जने कितने प्रेम से बैठे हैं. इंसान के दिल में जगह होनी चाहिए." दूसरे ने कहा.

बाबाजी को सब बहुत आदर दे रहे थे. प्रत्येक ज्यादा से ज्यादा पुण्य लूटने के चक्कर में था.

इस समय इक्का शहर में प्रवेश कर गया था. अचानक भगदड़ मच गयी. शहर में दंगा हो गया था दो सम्प्रदायों के बीच इक्के वाले ने घोड़े के चाबुक मारी. घोड़ा बेतहाशा भागा. "बस ये मुहल्ला पार हो जाए फिर कोई फिकिर नहीं. ये मुहल्ला दंगाइयों का है." इक्के वाले ने कहा.

अनायास एक आदमी ने कहा, "बाबा, तुम उतर जाओ. तुम्हारे कपड़ों को देखकर ही सब समझ जाएंगे कि हिंदू बैठे हैं कोई भी इक्के पर बम फेंक देगा. तुम्हारे चक्कर में सब मारे जाएंगे.

इक्के की सवारियों ने भयभीत होकर समर्थन किया.

"ठीक बात है, ठीक बात है"–कई स्वर उभरे.

"देखो, वो भीड़ का रेला आगे है. सब मारे जाएंगे इस बाबा के चक्कर में. उतारो, इसे उतारो."

"भइया थोड़ा रहम करो. अभी तो तुम सब कह रहे थे..."

"चुप, बकवास बंद करो. कूदो, नहीं तो हम धक्का दे देंगे."

इसके साथ ही सवारियां उसे धक्का देने लगीं. वो डंडा पकड़े आधा लटके हुए गिड़गिड़ाता रहा. अंत में सवारियों ने उसके हाथों पर चोट की बाबा लुढ़कता हुआ गिर पड़ा इक्के ने मुहल्ला पार कर लिया.

सवारियों के चेहरे पर निश्चिंतता भरी मुस्कान थी और गंगा स्थान के पुण्य लूटने का उत्साह. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

अंधों के लिए एक प्रार्थना

"द मीडियम इज द मेसेज" (माध्यम ही संदेश है) एक वाक्य नहीं है बल्कि मुहावरा है. विश्व स्तर पर संचार माध्यमों खास कर टी.वी. की प्रकृति को लेकर चली तमाम बहसों में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से यह सूत्र गूंजता रहा है. हमारे देश में टी. वी. को लेकर कोई मौलिक ऊहापोह बहुत नहीं हुआ फिर भी यदि अखबारों में, सारिका में भी, छपनेवाल पत्रों, प्रतिक्रियाओं और समीक्षाओं को ध्यान से देखें तो हम पाते हैं कि वहां प्रकारांतर से टी. वी. को स्वीकृत करते हुए या उसे अस्वीकृत करते हुए बहस उसके 'संदेश' को लेकर उठती - गिरती रहती है. अक्सर 'संदेश और माध्यम' के बीच एक द्वैत मानकर चला जाता है. नतीजा यह होता है कि दर्शक टी. वी. से वह सब कुछ चाहने लगता है जो एक 'माध्यम' के रूप में वह नहीं दे सकता. प्रायः यह नहीं समझा जाता कि इस माध्यम की अपनी एक निश्चित प्रकृति है और जो इसमें जन्म लेता है, वह भी इस माध्यम की प्रकृति से नियंत्रित होता है. इसे न समझने के भयावह नतीजे निकल सकते हैं. इस द्वैत बुद्धि के चलते टी. वी. प्रायः बावले गांव में ऊंट की तरह चौंकानेवाला बन जाता है. एक संपन्न टी. वी. संस्कृति इसीलिए नहीं पनप पाती क्योंकि हम इस माध्यम की प्रकृति को समझे बिना इसे संशय और संदेह की दृष्टि से देखने लगते हैं. 'माध्यम संदेश है' से प्रसिद्ध सूत्र मार्शल मैक्लूहान का है. कहने की जरूरत नहीं कि यह सूत्र सिर्फ टी. वी. का सूत्र न होकर. हमारी समूची रचनाप्रक्रिया, तकनीकी युग मे कलात्मक रचना की प्रक्रिया, संप्रेषण प्रक्रिया, को अविभाज्य रूप में समझनेवाला और उसी संदर्भ में उसकी एक रचनात्मक व्याख्या करने वाला भी है.

मैक्लूहान का कहना है कि कोई भी तकनीक धीरे-धीरे एक नया मानवीय वातावरण बनाती है. ये वातावरण निष्क्रिय तंबू नहीं होते बल्कि सक्रिय प्रक्रिया में होते हैं. 'माध्यम ही संदेश है' कहने का अर्थ यही है कि इलैक्ट्रोनिक युग में एक सर्वदा नया वातावरण बन चुका है. इस नये वातावरण की मूल अंतर्वस्तु औद्योगिक युग का मशीनी 'वातावरण' है. हर नया वातावरण पुराने को पुनः प्रक्रिया में तेजी से बदल देता है. जैसे कि आज टी. वी. फिल्मों को बदले दे रहा है. वस्तुतः टी. वी. की मूल अंतर्वस्तु फिल्म ही है. टी. वी. वातावरण मूलक है और अदृश्य है जैसा कि सब 'वातावरण' होते हैं. हमारी दिक्कत यह है कि हम सिर्फ 'अंतर्वस्तु' यानी पुराने वातावरण से ही परिचित हैं. जब मशीनी उत्पादन नया-नया आया था तब धीरे-धीरे उसने एक नया वातावरण बनाया जिसकी अंतर्वस्तु कृषि जीवन का वातावरण, कला और शिल्प था. यह पुरानी अंतर्वस्तु नये मशीनी वातावरण द्वारा एक नवीन कलारूप में ढाली गयी थी. मशीन ने प्रकृति को एक नये कलारूप में बदल दिया था.

समूचे इतिहास को इस तरह तकनीक और मनुष्य की अंतर्क्रिया के इतिहास में बदलकर मैक्लूहान ने यद्यपि इतिहास की एक नयी व्यवस्था दी है जो इतिहास की अन्य व्याख्याओं को नजरंदाज करती हैं किंतु इस बहाने उन्होंने तकनीकी युग की रचनाप्रक्रिया को नये अर्थों में अवश्य समझा है. मैक्लूहान का मानना है कि कम से कम कला के इतिहास को उसकी तकनीक के इतिहास से कम करके देखना संभव नहीं है. मैक्लूहान के अनेक महत्वपूर्ण सूत्र 'अंडरस्टैंडिग मीडिया' (1964) में बिखरे पड़े हैं. जो 'माध्यम और संदेश' के अंतर्संबंध को समझने में मददगार हैं.

मैक्लूहान का खास जोर तकनीक के वातावरण पर है. उनकी दृढ़ धारणा है कि हर तकनीक अपने लिए जो वातावरण गढ़ती है वह पुराने द्वारा भ्रष्ट और घटिया समझा जाता है. फिर भी नया पुराने को कलारूप में बदल ही देता है. जब 'लेखन' नया था ते प्लेटो ने उसका सहारा लेकर पुराने वाचिक संवाद को कलारूप में बदला. जब छापाखाना आया तो उसने मध्यकाल को कला रूप में बदला. आखिर औद्योगिक युग ने पुनर्जागरण को मूलतः एक कलारूप में बदला ही.

मैक्लूहान यहीं से कला और तकनीक का रिश्ता नये रूप में व्याख्यायित करते हैं. आधुनिक युग में सतत वर्धमान तकनीकें अपने नये नये वातावरण गढ़ती रहती हैं. ऐसे में 'कला' प्रायः एक 'प्रति वातावरण' के रूप में देखी जाने लगती है. और हम उसके जरिए से 'नये वातावरण' को देखने लगते हैं. स्थिति यह हो जाती है कि तकनीक स्वयं कला रूपों का कार्य करने लगती है. ऐसे में 'प्रति वातावरण' के रूप में काम करने वाली 'कला' (पुराना वातावरण) स्वयं हमारे बोध एवं निर्णयों को ट्रेनिंग देने लगती है.माध्यमों के अध्ययन के जरिए हम इस नये वातावरण और 'पुराने वातावरण' की अनिवार्य अंतक्रिया को बेहतर समझ सकते हैं. इस अर्थ में माध्यम का अध्ययन हमें उसे समझने का बोध देता है. माध्यमों के प्रभावों का अध्ययन शोधों और नवीन उद्भावनाओं के द्वार खोल देता है.

मैक्लूहान की यह महत्वपूर्ण मान्यता आज सर्वस्वीकृति पा चुकी है कि संपूर्णता, व्यापकता और गहराई के प्रति सजगता विद्युत तकनीकी युग की स्वाभाविक मांग है.

माध्यम अगर संदेश है तो वह किस तरह प्रक्रिया करता है, इस बात का खुलासा करते हुए मैक्लूहान 'बिजली' का उदाहरण देकर समझाता है. उसके अनुसार 'विद्युत' का प्रकाश शुद्ध सूचना है. यदि वह किसी अक्षर को प्रकाशित नहीं करती तो वह संदेश के बिना माध्यम है. यही स्थिति सभी माध्यमों के साथ होती है. दरअसल, किसी भी माध्यम की अंतर्वस्त् हमेशा दूसरा माध्यम होता है मसलन लिखने की अंतर्वस्त् 'वाणी' है.ठीक ऐसे ही लिखित शब्द 'छापे' की अंतर्वस्तु है.

बहरहाल किसी भी माध्यम का संदेश वह प्रक्रिया है जो अपनी उपस्थिति से मनुष्यों के जीवन के नमूनों, गतियों या स्तरों को बदलती है. रेलवे ने पहिये की या भाप की ईजाद नहीं की थी बल्कि उसने अपनी उपस्थिति से मुनष्यों के जीवन में एक नयी गति, नये स्तर और नये रूप पैदा कर दिये. यह सभी जगह हुआ जहां जहां रेल गयी. हम फिर बिजली की बात पर लौटें. एक अंधेरी जगह में बिजली के आने पर, हमें अंधेरे में दफन बहुत-सी चीजों का पता चलता है. वे चीजें वस्तुतः बिजली के बिना 'गैर मौजूद' ही कही जायेंगी. वे तमाम चीजें बिजली की अंतर्वस्तु ही कही जा सकती हैं. यही 'माध्यम और संदेश का आंतरिक संबंध है. अंधेरे में दफन से हमारा संबंध शायद अंधेरे में भी रहा हो, मगर वह संबंध कैसा है, यह बिजली की उपस्थिति ने तय किया. यह बहुत मामूली अनुभव है. वह बताता है कि माध्यम ही जगत के साथ हमारे संबंध व प्रकार्य के स्तर एवं रूप को नियंत्रित करते हैं. यह संबंध इतना संघनित होता है कि किसी माध्यम की अंतर्वस्तु प्रायः हमें माध्यम के चरित्र के प्रति अंधा बना देती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पौद

विश्वास ही आधार है

□ गोपाल चंद्र पांडेय,

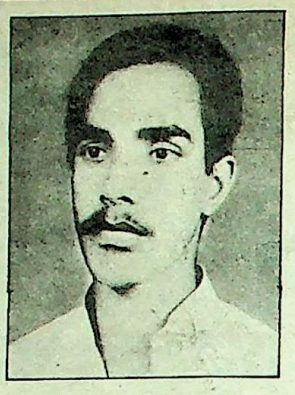

किन परिस्थितियों में साहित्य से परिचित हो गया, कह नहीं सकता पर परिचय के प्रारंभिक दिनों में ही हार्दिक आत्मीयता का एक संदेश प्राप्त हुआ था—"साहित्य आत्मा का परिष्कारक तत्व है..." और बहुत अंदर तक छू गये थे ये शब्द... एक संबल और आदर्श बनकर एकांतिक स्वभाव में पाठ्यपुस्तकों के साथ जीवन को भी पढ़ने के लिए प्रेरित किया लेखों, कहानियों, कविताओं, साक्षात्कारों ने. फिर शुरू हुआ पुस्तकों का संग्रह.

जीवन की इस लघुयात्रा में मधुर स्मृतियों के मध्य ही अनेक कटु सत्य भी सामने आये हैं. भावना की भूमि पर बहुत अकेला हूं.... यदि कुछ निकट पाता हूं तो वह है साहित्य जिसमें जीवन स्पंदित होता है. बहुत कुछ पढ़ जाने के उपरांत सृजन के क्षेत्र में उतरा. कहानी विधा ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनी... और स्वांतः सुखाय की परिधि में ही समस्त क्रिया-प्रतिक्रिया संपादित हो रही है इसका मुझे पूर्ण आभास है. हृदय की सुषुप्त भावनाओं को साकार रूप दे देना एक विशिष्ट उपलब्धि है और अपनी इस उपलब्धि पर जब एक दृष्टि डालता हूं तो लगता है उपलब्धि उस श्रेणी की नहीं जो मेरा प्रयासगत लक्ष्य है.... मेरे अवमूल्यन के पीछे परिवेश की वह ग्रंथि है जो इस बात की अनुमति नहीं देती कि उस दिशा में कुछ पहल की जाये जो सामान्य न हो... पर इतना स्थूल हो जाना कि किसी से प्रेरित ही न हो या भावनाशून्य की स्थिति में पहुंच जाना मेरे लिए कठिन ही नहीं असंभव भी है. भावना प्रधान व्यक्ति का यथार्थ की नींव पर खड़ा होना उसकी भावुकता का ही एक अंश है, यदि भावनाविहीन होकर मैं जी नहीं सकता तो यथार्थ की उपेक्षा कर मैं अपने जीने के मकसद को पूरा नहीं कर सकता. इन दोनों बिंदुओं के मध्य ही चल रहा हूं पूरी शक्ति, आस्था, समर्पण और विश्वास के साथ.

प्रथम उड़ान में ही अपेक्षित ऊंचाई तक न उड़ पाना आने वाले अवसरों पर अधिक क्रियाशील होने का संदेश देती है और यहीं आवश्यकता होती है प्रोत्साहन की, प्रेरणा की और उत्साह भरे दो शब्दों की.

लेखन की बुभुक्षा

□ महेंद्र सिंह

भावों को अभिव्यक्ति देना अच्छा लगता है. परंतु अभिव्यक्ति के लिए शब्द नहीं मिलते हैं, तब कितनी छटपटाहट होती है, एक लेखक ही समझ सकता है.

आज आदमी-आदमी के बीच तकलीफें हैं, पीड़ाएं हैं, संघर्ष है. पुरानी व्यवस्था द्वारा खड़ा किया गया चक्रव्यूह, विनाश, विघटन और पतनशीलता जीवन-जीने की विवशता, असंगति, इस सब के विरुद्ध जो कुछ भी लिखा, छोटे-बड़े रूप में, वह अपने अल्प अध्ययन, मनन और आत्म संशय के कारण या तो फाड़ दिया या फिर रद्दीवाले को बेच दिया.

लेकिन अब... अब ऐसा लगता है, जैसे मैं कुछ कहना चाहता हूं, लिखना चाहता हूं, सामयिक संदर्भों से जुड़ी कहानी, लेख, कविता, जो सामान्य आदमी के जीवन और संघर्ष से संबंध रखती हो. सच, लेखन द्वारा सत्य को शब्द रूप देना चाहता हूं. रह नहीं सकता, जब तक लिख नहीं लेता. मन करता है लिखूं... और लिखूं...खूब लिखूं. □

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो 'नयी पौद' की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं..., स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित 300 शब्दों में लिख भेजिए. लिफाफे पर यह कूपन चिपकाना न भूले.

'नयी पौद' स्तंभ
सारिका
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

पापा का कथन

□ राजिता निरंजन

आज तक मैंने आसपास जो भी देखा और अनुभूत किया वह मुझे बहुत बड़ा और अधिक लगा. मुझे कभी-कभी घबराहट-सी होने लगती है. जीवन की लंबी यात्रा में जाने कितना कुछ देखना, झेलना और चुपचाप स्वीकार करते चलना है. कितना कठिन और पीड़ादायक होगा... जीवन एक कैद बन जायेगा. इसलिए कुछ ऐसा करना चाहती हूं जिससे असहजता और जटिलता में भी मन नहीं घबराये. जीवन मकड़ी के जाले में फसने नहीं पाए.

मन की पीड़ा, घुटन, अव्यक्त क्रोध, चिड़, विद्रोह और बेचैनी मुझे बार-बार लिखने को प्रेरित करती है. कुछ ऐसा लिखूं जिससे लोगों की बंद आंखें खुल जायें. परिस्थितियां इंसान को इंसान नहीं रहने देतीं. इस अव्यक्त सत्य को लिखना चाहती हूं. आत्मा में ध्वनित होते प्रेम प्रवाह के प्रति लोग उदासीन और निष्ठुर हो जाते हैं. आक्रोश से भरा मन इसी विद्रोह को लेखनी से प्रकट करना चाहता है. किंतु अनुभवहीनता और अक्षमता आड़े आ जाती है.

अपने पापा के इस कथन से आश्वस्त होती हूं— "तुम पहले खूब पढ़ो. अपने व्यक्तित्व में विश्व की, विविधताओं को आत्मसात करो फिर तुम्हारी अभिव्यक्ति का मार्ग स्पष्ट और सरल हो जायेगा."

भविष्य में मैं कोई महान लेखिका बन जाऊं ऐसी मेरी आकांक्षा नहीं पर मैं दुनिया के असली रूप को दिखा सकूं ऐसी चेष्टा जरूर होगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : अप्रैल, 1988 के सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार विजेता.

अप्रैल, 1988 की कथा पहेली के हजारों प्रतियोगियों में से केवल दो प्रतियोगी ही दो-दो अशुद्धियों के साथ पुरस्कार विजेता बनने का गौरव पा सके हैं. पुरस्कार राशि इन प्रतियोगियों में बराबर- बराबर बांट दी जायेगी.

पुरस्कार विजेताओं के नाम व पते इस प्रकार हैं :–

1. प्रबोध दवे
100, एच.आई.जी. (जूनि.)
विजय नगर, इंदौर (म.प्र.)

2. सतीश राठी
212, उषानगर,
इंदौर (मध्यप्रदेश).

और यह रहा कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. कालिदास के यक्ष का विछोह याक्षिणी से था जबकि सूर्यबाला के यक्ष की आत्मा ही गायब हो गयी है. यहां विछोह आत्मा का है.

2. 'हां में हां'.

3. अंक का सर्वश्रेष्ठ कार्टून पृष्ठ 59 पर छपा है. कार्टूनिस्ट हैं–देवेंद्र.

4. आचार्य रामचंद्र शुल्क और महादेवी वर्मा.

5. नाथ द्वारे की सिर चढ़ी राधा, मिथ्या निंदक, सूखे खेत लहलहाते चिंतन, कुत्ता कथा.

6. व्यंग्यकार शरद जोशी का अतिथि संपादन.

7. कला का पारखी.

8. अड़तीस बार.

9. चार रचनाएं.

10. गोपाल चतुर्वेदी.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पाठकों तक सारिका देर से पहुंचती है वे 'सारिका कथा पहेली' में अपनी पूर्तियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. पूर्तियां भेजते समय यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि 'सारिका' आप तक देर से पहुंची.

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' मई 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 जून 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा अगस्त 1988 के अंक में की जायेगी.

सारिका कथा पहेली, जून, 1988

1. चालाकी का जवाब चालाकी से दिया जाना हो तो इस अंक की..... शीर्षक रचना याद आयेगी.
2. लेखन को ईश्वरीय देन न मानने वाले.....हैं.
3. यह पात्र जिन रचनाओं के हैं, उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
   पैट (.....), मिस रस्तोंगी (.....), मंजरी (.....), सुकुल बाबा (.....).
4. "उनकी उम्र उतनी होनी चाहिए जितनी इस संस्कृति की है."
   यह टिप्पणी.....ने.....के संदर्भ में की है.
5. इस अंक के यह पृष्ठ ले-आउट की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं.....
6. अपनी शारीरिक सामर्थ्य से बाहर की बात.....रचना में.....ने की है.
7. "सारी दुनिया को सुधारने की अपेक्षा खुद को सुधार लेना सुखी होने का मार्ग है."
   यह उपदेश-रहस्य.....का है.
8. वैभव मिट चुकने पर भी जिसकी प्रथा का दीपक आज भी टिमटिमा रहा है, वह स्थान है–.....
9. यदि आचार्य द्विवेदी ने 'पुनर्नवा' के अलावा कोई उपन्यास लिखा ही नहीं तो आलोचक उनकी अन्य कथा-कृतियों को किस श्रेणी में रखना चाहता है?
   .....
10. "नायक अपने जीवन के महत्वपूर्ण मोड़ पर आकर पहले तो कुरीतियों को तोड़ना चाहता है पर बाद में उसे अपना आदर्शवादी विचार छोड़ना पड़ता है." यह टिप्पणी .....शीर्षक रचना पर सही प्रतीत होती है

नाम.....आयु.....

पता .....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लेखक का घर

हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में सक्रिय प्रख्यात कथाकार गोविंद मिश्र की सर्वविधा पुस्तक का नाम है 'मुझे घर ले चलो'. इस पुस्तक में उनका एक संपूर्ण उपन्यास 'वह अपना चेहरा' के अतिरिक्त 'लाल-पीली जमीन' तथा 'हुजूर दरबार' के अंश, 'धांसू', 'जन-तंत्र', 'मुझे घर ले चलो,' 'खाक इतिहास' आदि सात चर्चित कहानियां, एक कथा-नाटक, राजनीति, इतिहास, लेखन की सामाजिक भूमिका तथा समकालीन कथा-साहित्य पर निबंध, देश-विदेश के यात्रा-चित्र, आत्मकथात्मक वक्तव्य, रचना-प्रक्रिया, कविता, डायरी-अंश, संस्मरण तथा पत्र... संकलित हैं. स्पष्ट है कि इन सब विधाओं के छोटे-छोटे टापुओं से एक लेखक का अपना पूरा द्वीप बखूबी देखा जा सकता है. एक लेखक की पूरी रचनात्मकता को जान-समझ लेने के लिए ऐसी पुस्तक की पाठक के संदर्भ में तो उपयोगिता होती ही है, लेखक के लिए भी यह एक प्रकार का 'एक्शन-रिप्ले' जैसे होता है जिसमें उसे स्वय की प्रत्येक 'मुद्रा' को सूक्ष्मता से विश्लेषित करने का अवसर प्राप्त होता है. संभवतः इसी आत्म-निरीक्षण के जरिये, एक सच्चे सर्जक की भूमिका का निर्वाह करते हुए वे लिखते हैं: 'बड़ा लेखन प्रभु की तरह झलक दिखा-दिखाकर चला जाता है, मिलता नहीं. उसे पाने की छटपटाहट ही है जो मेरी है. सोचता हूं, बड़ा लेखन न सही, यह छटपटाहट ही बनी रहे, मेरे पूरे जीवन को निरंतर मथती रहे...'

पूरी पुस्तक पढ़ जाने के बाद लेखक की यह छटपटाहट निःसंदेह सिद्ध भी होती है और परिणामस्वरूप रचनाकार के वैयक्तिक और सर्जक—दोनों के बीच खड़ी तथाकथित रहस्यमय दीवार भी एक हद तक ढहती दिखायी पड़ती है. एक गैरसिलसिलेवार आत्मकथा का-सा सुख देती यह पुस्तक लेखक की संपूर्ण मानसिकता, जिजीविषा, दर्शन, आध्यात्मिक-दृष्टि और समकालीन जीवन के धड़कते, संवेदनशील हृदय को शब्दों में उतारती रचनाओं का एक बेहतर कोश सिद्ध करती है. पहचान का संकट, अनचाही संस्कृतियों की बढ़ती महामारी और संवेदन-शून्यता को जनती तथाकथित बौद्धिक व्यवस्था के विरुद्ध यह लेखन एक उदाहरण की तरह पेश किया जा सकता है. समकालीन जीवन में घुस आयीं छोटी-छोटी मक्कारियों के, विरुद्ध तो लेखक ने लिखा ही है (संदर्भ: 'फांस' और 'आदमियत' कहानी के छोटे मक्कार), साथ ही अवसरवादी बौद्धिकों के लिए 'बौद्धिक और नेता' निबंध के माध्यम से यह भी बताया गया है: "यही अजीब लगता है कि मंत्रीगण बौद्धिकों का मार्गदर्शन करें— पर शायद पूरे समाज के मार्गदर्शन की ठेकेदारी नेता ने ही ले रखी है और समाज में बौद्धिक भी तो आता है. कुछ घपला भी जरूर हुआ है वरना नेता भी यह जानते हैं कि बौद्धिक वह पुराना सिरफिरा है जो एक जमाने में ऋषि होता था, जो जब तब आकर राजा को खरी-खोटी सुनाकर चला जाता था. उसकी नैतिक शक्ति थी, सब कुछ त्यागकर जंगल में रहने, तपस्या करने से पैदा हुई शक्ति. आज भी ऐसे सिरफिरे हैं पर यह वर्ग इतना अल्पसंख्यक है कि नेता उसकी उपेक्षा आसानी से कर लेता है. लगातार उपेक्षा से उसे क्रमशः और भी अल्पसंख्यक बनाया जा सकता है. यह क्रम चालू भी है."

इस प्रकार संपर्क में आये लगभग प्रत्येक वर्ग के सच-दर-सच को लेखक ने अपनी लेखनी से रवैया है- वह इतिहास हो या आदिवासी सभ्यता में व्यावसायिकता का चुभ चला नश्तर! लेखक चूंकि जिज्ञासु है इसलिए वह 'संध्यानाद' का भी कुशल चितेरा है और केशव के रूप में लुका-लुकव्वल का खेल भी उसे कंठस्थ है. इस वृहद्ता का कारण लेखक के इस वक्तव्य से भी खोजा जा सकता है: "दिमाग का सीखा हुआ एक सीमा पर पहुंचकर हमारा साथ देना बंद कर देता है, पर जो सीखना हृदय के फैलने पर हुआ था, वह आखिर तक साथ देता है."

प्रसंगतः गोविंद मिश्र के लेखन-स्वभाव पर यहां दो बातें की जा सकती हैं. पिछले लगभग बीस वर्षों के लेखन में उन्हें हिंदी उपन्यासकार के रूप में अधिक जाना-पहचाना गया है. यह भी सच है कि अपने समकालीनों के बीच उनका लेखन अपेक्षाकृत अधिक गतिमय रहा है. 'वह अपना चेहरा' 'उतरती हुई धूप', 'लाल-पीली जमीन', 'हुजूर दरबार' तथा 'तुम्हारी रोशनी में'— एक गतिमय उपन्यासकार के रूप में उनकी पहचान अंकित करने में सक्षम हैं. पिछले वर्षों की साहित्यिक चर्चाएं इस बात की गवाह हैं कि कथ्य, परिवेश और भाषा के स्तर पर इन उपन्यासों ने अपनी व्यक्तिगत पहचान भी कायम की है. लेकिन इन रचनाओं का 'ठप्पा' लेखक को इतना अधिक 'अपना' है कि किसी परंपरा विशेष का वह लेखक नहीं लगता. एक सघन निजी पहचान थामे इस

गोविंद मिश्र

लेखन ने एक ओर जहां लेखन की आसान ग्राह्यता को बाधा पहुचायी, वहीं साहित्य के नये पाठक के लिए और साहित्यिक-हलके में लगभग एक अपरिचित-वर्ग—अफसरशाही—को सफलतापूर्वक प्रक्षेपित भी किया है. 'वह अपना चेहरा' तथा छितराव रूप में 'तुम्हारी रोशनी में' उपन्यासों को इस प्रसंग में पढ़ा जा सकता है. भाषा तथा परिवेश— दोनों की घनिष्ठता को लेखक बहुत लुभावने ढंग से इस्तेमाल करता है. 'मुझे घर ले चलो' में संकलित निबंध, डायरी या यात्रा-संस्मरण पढ़ने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विषयों की गंभीरता के बावजूद लेखक भाषा को जटिल होने से बचाये रखता है. मगर कभी-कभी यह अवश्य होता है कि आत्मालाप की भाषा को अपने तुर्श लहजे के कारण कई बार अनावश्यक भाषाई-उन्माद से लेखक नहीं बचा पाता है (संदर्भ: 'धांसू' या 'जन-तंत्र' की भाषा). साथ ही एक बात यह भी पकड़ में आती है कि गोविंद मिश्र जब मानवता को सजा-संवार रहे होते हैं तो तब उनकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक गुनगुनी, स्वादिष्ट और पाठक को 'पकड़कर बैठ जाने वाली' होती है. प्रतिनायक-चित्रण के समय वे भाषा की तपिश को तो बरकरार रखते हैं मगर फिर भी अपनी प्रतिभा का शीर्ष वे नहीं प्रस्तुत कर पाते. कहने का मतलब यह है कि यदि गोविंद मिश्र 'ऑथेलो' लिखें तो उसमें 'इयागो' को वे चरित्र की 'संपूर्णता' संभवतः नहीं सौंप पायेंगे. हो सकता है कि यह उनके मन की एक सीमा भी हो.

घुमक्कड़ तो नहीं, मगर एक यात्राकार के रूप में भी गोविंद मिश्र के नाम की चर्चा रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. 'धुंध भरी सुर्खी' तथा 'दरख्तों के पार... शाम' किताबों के अतिरिक्त उनके छिटपुट यात्रा वर्णन भी पढ़ने को मिलते रहे हैं. इस पुस्तक में संकलित यात्रा निबंधों की यह बात विशेषतया रेखांकित की जा सकती है कि यात्रा के वक्त उनकी निगाहों के मध्य एक ऐसा निश्छल पौधा लहराता रहता है जो विलासितापूर्ण संस्कृति की अर्थहीनता को नकार कर 'मनुष्यता! तुम लौट आओ'– जैसा कोई आधारभूत गीत गुनगुनाता रहता है. मगर इन यात्रा-कथाओं में लेखकीय टिप्पणियों का बोलबाला भी हमें पढ़ने को मिलता है. विधा की सीमाओं से भी अधिक लेखकीय सीमाएं. यात्रा की 'अमीरी' और घुमक्कड़ी की 'गरीबी' से भरे पड़े हैं ये यात्रा-निबंध. यात्राकार के आकस्मिक जोखिमों से कटकर लिखा गया यात्रा वर्णन पाठक के लिए सूचनात्मक लेखन अधिक होता है. जहां गोविंदजी की 'घुमक्कड़ी' उभरी है वहां बेहतर सर्जना भी दिखायी पड़ती है. इस संदर्भ में 'कालापानी' एक बेहतर यात्रा-वर्णन सिद्ध होता है.

एक सीमा तक पढ़ते जाने के बाद लेखक की रचनाओं को उनके सर्वांग कोणों से समझने के लिए उसके 'व्यक्तिगत' को जान लेना अनिवार्य नहीं तो आवश्यक तो हो ही जाता है. उसके व्यक्ति की यातना, महत्वपूर्ण जीवन-घटनाएं, प्रेम-संबंध तथा विभिन्न संघर्षों का उपलब्ध होना इस दिशा और दशा के लिए आवश्यक है. इस पुस्तक में संकलित डायरी, पत्र तथा रचना-प्रक्रिया पर आत्मपरक लेखों के माध्यम से गोविंद मिश्र ने स्वयं की गणना के लिए भी मानो सामग्री उपलब्ध करायी है. हिंदी के आत्मकथात्मक लेखक में जिस तरह के जीवन का प्रायः सजा-संवरा और इकतरफा रूप मिलता है, उससे थोड़ा आगे जाकर, शालीन तरीके से वे अपने कुछ पक्षों का परिचय देते हैं. व्यक्तिगत नंगई को लोकप्रियता का सुलभ फार्मूला उन्होंने नहीं बनाया हैं.

गोविंद मिश्र के अब तक के कुल जमा लेखन का प्राइम है यह पुस्तक जिसे एक लेखक की विस्तृत आत्मघोषणा भी कहा जा सकता है. यद्यपि भूमिका में उन्होंने इस पुस्तक का कारण "अपने पाठकों के सामने समग्र रूप से प्रस्तुत हो जाना" बताया है लेकिन हो सकता है कि उनके अचेतन में यह पुस्तक एक 'जंक्शन' का-सा प्रभाव बनाये, जिस के बाद यात्रा की नयी-नयी दिशाएं जुड़ती-छूटती हैं. दोहराव उनके यहां नहीं है. इसलिए स्पष्ट है कि उनका आगामी लेखन अपनी सोच का ही उनका अलग सफरनामा होगा. विश्वास किया जाना चाहिए कि उनके आगत लेखन में जीवन के विभिन्न शाश्वत मूल्यों के बरक्स भले ही एकदम मौलिक उद्घाटित न हो, मगर एक सहज-मानवता के विकास को वे अवश्य लिपिबद्ध करेंगे. इस पुस्तक में लगातार उपस्थित उनकी लेखन-आस्था के बल पर ही यह विश्वास अर्जित किया जा सकता है. □

'राजकुमार गौतम

'मुझे घर ले चलो' (सर्वविधासंकलन)
लेखक– गोविंद मिश्र, प्रकाशक– पराग प्रकाशन, 3-114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-32:
मूल्य : एक सौ रुपये.

लघु विज्ञापन

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
- सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
- आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
- कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
- कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें –

AID **एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन**
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

हम होंगे कामयाब

लेखन के इस युग में जब रचनाएं आकर्षक छपाई और दर्शनीय आवरण के सहारे मात्र ड्राइंग रूप में सजावट के तौर पर इस्तेमाल की जानेवाली वस्तु बनती जा रही है, आज भी कुछ ऐसे लेखक हैं जो पाठकों से जुड़ने के प्रयत्न में सफल हैं.

'तीन लघु उपन्यास' वीरेंद्र जैन के **'उनके हिस्से का विश्वास'** संग्रह में संकलित पढ़कर ऐसी ही अनुभूति होती है. **'उसके हिस्से का विश्वास'**, **'व्यथा-कथा'** और **'प्रतिदान'** तीनों लघु उपन्यास संस्मरणात्मक पुट लिये होने के बावजूद संपूर्ण परिवेश को लिये हुए हैं.

आज भी हम जिस सामाजिक संकीर्णता की मनोदशा में जी रहे हैं, उसमें अंतरजातीय प्रेमविवाह, प्रगतिशील ही नहीं क्रांतिकारी कदम के रूप में माना जाता है. चूंकि ऐसे संबंधों में दोनों पक्षों से ही नये जोड़े को दुत्कार मिलती है, इसलिए उदारवादी दृष्टिकोण रखने वाले लोग ऐसे जोड़े को हर संभव सहायता देने के लिए तत्पर रहते हैं.

लेकिन जब उन्हें यह पता चलता है कि लड़का केवल प्रगतिशीलता का मुखौटा लगाये हुए हैं, और उसका यह क्रांतिकारी कदम केवल लड़की का दोहन करना था और साथ साथ वह उसके उदारवादी दृष्टि कोण का गलत फायदा उठा रहा है, तब उसका विश्वास सुधारवादी कदमों से न उठकर, उस लड़के पर से हटता है. **'उसके हिस्से का विश्वास'** ऐसे ही पात्र को लेकर लिखा गया उपन्यास है.

'व्यथाकथा' उपन्यास में वीरेंद्र जैन उन समस्त परिस्थितियों की सफलतापूर्वक विवेचना करते नजर आते हैं, जिनमें रहकर किसी प्रकार लड़कियों को वेश्यावृत्ति का धंधा अपनाने के लिए विवश कर दिया जाता है. अपना जीवन अपनी इच्छा के अनुसार यहां की नारियां जी सकती हैं? इस प्रश्न को उठाकर वीरेंद्र जैन नाकरात्मक उत्तर देते हुए भी सकारात्मक रहो नाकारात्मक उत्तर देते हुए भी सकारात्मक हो जाते हैं. यहां भी प्रेम विवाह है. लेकिन यह एक सुखी जिंदगी जीने के लिए है. इनका सुखी जीवन नष्ट करने की पहल लड़की का भाई ही करता है. क्योंकि वह भाई भी उसी व्यवस्था का अंग है, जो अपनी उपेक्षा नहीं सह सकती है.

इस संग्रह का तीसरा उपन्यास **'प्रतिदान'** भी सामाजिक-पारिवारिक और आर्थिक प्रश्नों के घेरे में पाठक को ला खड़ा करता है. यहां भी मान्यताओं को तोड़ने की कोशिश है. नरेन परिवार की सहमति से विवाह जरूर करता है लेकिन अपने आदर्शों पर अडिग रहते हुए. सादगी भरा बिना दहेज का विवाह. उसके इस कदम से उसके माता-पिता और भाई आधारित तो होते ही हैं. वधू पक्ष के लोग भी कम स्तंभित नहीं रहते, स्वयं वधू भी शायद. आर्थिक विपन्नता से भाई के विवाह के सहारे निकलने की आशा टूटने पर वह अपनी निरंतर स्नेह देती भाभी से घृणा करने लगता है.

वीरेंद्र जैन के इन तीनों लघु उपन्यासों की सबसे बड़ी खूबी यह है कि व्यवस्था द्वारा बार-बार कुचले जाने के बावजूद भविष्य के प्रति उनके घावों की आशा नहीं टूटती. **'हम होंगे कामयाब एक दिन'** को अपने लेखन में चरितार्थ करते हुए कथाकार वीरेंद्र जैन की रचनाएं पठनीयता और मानवीय संवेदना के स्तर को बनाये रखती हैं. □

-राजेश कालिया

उनके हिस्से का विश्वास (लघु उपन्यासत्रयी) : लेखक वीरेंद्र जैन, प्रकाशक : प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली-30, मूल्य : 35 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुषों का स्मरण

बाण भट्ट की 'आत्मकथा', 'चारु चंद्रलेख', 'अनामदास का पोथा' और 'पुनर्नवा' सरीखी कथाकृतियों, ललित निबंधों व अपने विपुल आलोचना-साहित्य के सर्जक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय साहित्य जगत के स्मरणीय महापुरुषों में एक हैं. इधर प्रकाशित पुस्तक 'महापुरुषों का स्मरण' इस दृष्टि से और भी उल्लेखनीय है कि वह एक महापुरुष द्वारा अन्य महापुरुषों का स्मरण है. यह स्मरण कहीं महापुरुषों के व्यक्तित्व पर आधारित है तो कहीं उनकी कृतियों और उपलब्धियों पर. आज से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व गणित के क्षेत्र में क्रांतिकारी स्थापनाएं करने वाले आचार्य आर्यभट का जानकारीपूर्ण स्मरण हो या चाणक्य पर यह विवेचनात्मक टिप्पणी... कि 'कौटिल्य की छल प्रपंच वाली नीति को देखकर प्रायः मैकियावेली के साथ तुलनीय मान लिया जाता है, लेकिन इस विषय में सावधानी से काम लेना चाहिए.' सकारण हमारे विवेक को जगाती है. तुलसीदास और तिलक पर द्विवेदी जी के श्रद्धास्मरण अपेक्षाकृत बेलौस शैली में हैं. छोटी-से-छोटी वस्तु आदर्श से सम्बद्ध होकर किस तरह महान हो उठती है... व्यवहार और आदर्श सिद्धांत का भेद क्या है... किस तरह तुलसीदास औसत आदमी में नयी आशा, नयी उमंग और नयी जीवन-लहर पैदा कर सके, यह इस निबंध को पढ़कर समझा जा सकता है. 'गीता रहस्य' के कृतिकार लोकमान्य तिलक की स्मरण शक्ति और पांडित्य को जो सम्मान द्विवेदी जी ने दिया है, वह निश्चय ही उन्हें मिलना चाहिए. 'राजा राम मोहन राय की हिंदी' लेख के बहाने द्विवेदी जी हिंदी गद्य साहित्य के प्रारंभिक इतिहास पर एक गंभीर विवेचन प्रस्तुत करते हैं. इससे यह भी स्पष्ट हुआ है कि सैयद इंशा अल्ला खां साहब की रचना 'रानी केतकी की कहानी' रचनाकार के निधन के बाद प्रकाशित हुई. हिंदी भाषा को देवनागरी लिपि में लिखने वाले आधुनिक युग के गद्य-विधाताओं की महत्वपूर्ण जानकारी के क्रम में राचरनदास, लल्लूजी लाल, सदल मिश्र और राममोहन राय की गद्य-भाषा के स्वरूप और शैली पर भी प्रकाश डाला गया है.

सर्वविदित सत्य है कि आचार्य द्विवेदी में कविवर रवींद्र के प्रति अगाध श्रद्धा रही. वे उन्हें महामानव कहते हैं. उनका कहना है कि रवींद्रनाथ ने भारत वर्ष के उसी रूप को ग्रहण किया है जो त्याग में, तपस्या में, श्रद्धा में और प्रेम में विश्वास करता है, जो जड़त्व की ओर से हटकर अंतर्खर के चैतन्य की ओर उन्मुख होता है. और यह, गुरुदेव पर एक सुचिंतित टिप्पणी है. रवींद्रनाथ की देन और नृत्य कला के पुनरुद्धार में उनका स्थान अपने-अपने विभागों में जानकारी बढ़ाने वाले आलेख हैं. बंकिम चंद्र, एंड्रूज, कामता प्रसाद गुरु, रत्नाकार, मैथिली शरण गुप्त, क्षितिमोहन सेन, डा. राजेंद्र प्रसाद, नेहरू, संपूर्णसिंह, द्वारिका प्रसाद मिश्र, सुमित्रानंदन पंत, दिनकर और सोहन लाल द्विवेदी आदि पर द्विवेदी जी के श्रद्धास्मरण तो इस पुस्तक को संग्रहणीय बनाते ही हैं... किंतु इनसे अलग जिन निबंधों का अपना एक अलग आकर्षण है, वे हैं—भारतेंदु हरिश्चंद्र, द्विवेदी जी की देन, मुंशी प्रेमचंद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रसादजी की कामायनी, निराला जी और निराला जी केवल छंद थे.

जीवन प्राणधारा के मूर्त विग्रह के रूप में जहां द्विवेदी जी भारतेंदु को अपने समय का सफलतम महानेता मानते हैं वहीं वे प्रेमचंद को एक ऐसे रचनाकार के रूप में देखते हैं जिसके लिए प्रेम एक पावन वस्तु है. यही उसे सेवा और त्याग की ओर अग्रसर करता है. जहां सेवा और त्याग नहीं वहां प्रेम भी नहीं, वहां वासना का प्राबल्य है... प्रेमचंद के रचनाजगत का सच भी यही है. शुक्ल जी का स्मरण पूरी विनम्र श्रद्धा के साथ करते हुए भी द्विवेदी जी सांकेतिक तौर पर यह अवश्य कह गये हैं कि आचार्य शुक्ल ने काव्य की ही आलोचना अधिक की. अन्य सहित्यांग उनकी विशाल दृष्टि के लक्ष्य बहुत कम बने. 'कामायनी' के कवि पर द्विवेदी जी की इस टिप्पणी से असहमति का प्रश्न ही नहीं उठता कि यह कवि जीवन को दूर से देखता है. यह बात नहीं कि वह उसकी संपूर्ण विचित्रताओं और बारीकियों की उपलब्धि नहीं करता, करता है, उसका सामना भी करता है, लेकिन उसके सामना करने का ढंग भी अनोखा ही है. 'कामायनी' के कवि को वे ऐसे दर्जी के रूप में देखते हैं जो कम परिश्रम और ज्यादा कल्पना करके एक लंबा-चौड़ा झूल तैयार कर देता है, जो प्रत्येक आदमी को ढंक सकता है. यह कवि विश्व-मानव में से प्रत्येक की दुख-सुख संबंधी अनुभूति की जांच नहीं करता, संसार की वैचित्र्यपूर्ण समस्याओं की निकट से परीक्षा नहीं करता, बल्कि अपनी सहज कल्पना से मानवता को एक विराट संदेश देता है, जो प्रत्येक के काम की चीज है. □

महापुरुषों का स्मरण :
हजारी प्रसाद द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
मूल्य : 45 रुपये.

लेखक होने के कर्तव्य की कहानियां

मिथिलेश्वर ने अपने नये कहानी-संग्रह ('मेघना का निर्णय'; पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-32, पंद्रह रुपए) की भूमिका में लिया है कि 'लड़ाकू रचनाएं (ही) सही रचनाओं की श्रेणी में आती हैं, लेकिन संग्रह की सभी कहानियां पढ़ने के बाद लगता है कि लेखक इस अवधारणा को अपनी रचनाओं में प्रायः नकारता है.

'मेघना का निर्णय' में लेख नायक द्वारा अपने दुश्मनों को जल्दी से खोज निकालता है लेकिन अपनी संगठनहीनता को भी स्वीकारता है. फिर भी उसकी दृष्टि स्थापित होती है तथा वह 'बाबू' लोगों से निपटने का निर्णय करता है. इस कहानी के अतिरिक्त संग्रह की एक भी कहानी किसी नायक को जीवंत रूप में चित्रित नहीं कर पायी है. शेष सभी कहानियों के पात्र पराजित, थके हुए, बेबस और निष्क्रिय हैं. मानसिक रूप से सही जीवन मूल्यों के गवाह होते हुए भी ये पात्र जिंदगी की तकलीफों को भोगते जाते हैं. यहां ऐसा नहीं है कि व्यवस्था के दबाब इस कदर प्रभावशाली हो जाते हों कि आदमी कुछ कर ही नहीं पाये, लेकिन ये पात्र व्यवस्था से असंतोष मात्र प्रकट करके ही रह जाते है. रचनाओं में व्यवस्था को एक्सपोज़ करना बड़ी बात हो सकती है लेकिन तभी जबकि रचनाकार ऐसे कुचक्रों, षड्यंत्रों को सामने लाये जिनसे पाठक प्रायः नावाकिफ़ हो. अधकचरी प्रगतिशीलता क्लर्क की जिंदगी, पुलिस द्वारा निर्दोष को सजा देने की प्रवृत्ति, जमींदार द्वारा देह शोषण तथा अफसरशाही अमानवीयता आदि बातें तो निहायत साधारण जन भी जानता है बल्कि उससे भी अधिक जानता है जितनी कि मिथिलेश्वर अपनी कहानियों में सूचित करते हैं. 'छोटे शहर के लोग' कहानी के माध्यम से लेख कहना चाहता है कि एक ग्रामीण युवती की इज्जत को छोटे शहर की भीड़-शक्ति द्वारा बेच लिया जाता है. मात्र छोटी-सी घटना को इधर-उधर की लीपा-पोती करके कहानी 'बना' डालना कहां तक उचित है?

लेखकीय दृष्टि के आधार पर तो इन कहानियों को जनसाधारण की पक्षधरता लिए देखा जा सकता है लेकिन रचनाएं पाठक के मन में आक्रोश उत्पन्न नहीं कर पाती हैं. कहानियों की सहजता से उनकी शक्ति गायब है □

□ राजकुमार गौतम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तिदेवी साहित्य पुरस्कार

भारतीय ज्ञानपीठ का वर्ष १९८६ का मूर्तिदेवी पुरस्कार लोकसभा अध्यक्ष बलराम जाखड़ द्वारा हिंदी और राजस्थान के यशस्वी कवि श्री कन्हैयालाल सेठिया को उनकी काव्यकृति 'निर्ग्रंथ' के लिए १२ मई को नयी दिल्ली के फिक्की सभागार में समर्पित किया गया.

निर्ग्रंथ में कवि की ८२ कविताएं संकलित हैं. प्रत्येक कविता के साथ दर्शन जुड़ा है. ढाई हजार साल पहले भगवान महावीर ने जिस को प्रतिष्ठित किया वह आज तक दुनिया के हर आदमी की चेतना को प्रभावित कर रहा है. तीर्थंकर महावीर एक इतिहास-पुरुष हैं और कन्हैयालाल सेठिया ने इन्हीं इतिहास-पुरुष को केंद्र में रखा है.

'निर्ग्रंथ' की कतिपय रचनायें इस परमपुरुष की पुण्य स्मृति के ज्योर्तिमय संस्पर्श से जीवंत और आलोकित हो गई हैं. कवि ने महावीर से अनेकांत और जीवनानुशंग का संदेश ही ग्रहण नहीं किया है अपनी भाव-समाधि में इस महासाधक के मन में एक-एक गांठ के खुलकर उसके 'निर्ग्रंथ' हो जाने की प्रक्रिया का अंतः साक्षात्कार भी किया है. महावीर की यह आत्मोपलब्धि ही सेठिया जी की काव्योपलब्धि है.

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक स्व. साहू शांति प्रसाद जैन तथा वर्तमान अध्यक्ष श्री श्रेयांस प्रसाद जैन की मातुश्री की स्मृति स्वरूप इस पुरस्कार का नाम 'मूर्तिदेवी साहित्य पुरस्कार' रखा गया है.

२१००० रुपये की राशि के इस पुरस्कार का उद्देश ऐसी साहित्यिक संरचनाओं को प्रोत्साहन देना है जिनमें भारतीय जीवन मूल्यों विशेषकर अहिंसा, अनेकांत, अपरिग्रह समता, शांति, संयम, करुणा, त्याग तथा जनकल्याण के सिद्धान्तों एवं भावनाओं का उन्नयन हो.

पुरस्कार से सम्मानित कवि-कथाकार कन्हैयालाल सेठिया ने कहा—इस पुरस्कार को मैं निर्ग्रंथ के लिए तो एक ग्रंथि मानता हूं पर यह साहित्यिक मूल्यांकन पाठक को कृति को पढ़ने की प्रेरणा देगा अतः प्रकारांतर से यह एक उपलब्धि भी है.

उन्होंने कहा—चरित्र संकट के एक ऐसे संक्रमण काल में जी रहा है जिसमें हृदय और मस्तिष्क का अंतर्द्वंद्व अपनी चरम सीमा पर है. केवल संवेगात्मक को वक्तव्य के रूप में प्रस्तुत करनेवाला साहित्य प्रचार के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाता. ऐसा साहित्य सृष्टि में तो है पर उसमें दृष्टि नहीं. मानवीय मूल्यों का त्वरा से क्षरण हो रहा है. ऋषियों के अनुभूत सत्य 'वसुधैव कुटुंबकम्' को धर्मभेद, रंगभेद के कथित आधार पर निर्लज्जतापूर्वक नकारा जा रहा है. अपने स्वरूप को विस्मृत कर प्रभुतुल्य मनुष्य पशुत्व के स्तर पर उतर आया है. सृजनधर्मी रचनाकार वही है जो भेद से अभेद की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने की क्षमता और गति समाज को दे."

निर्णायक मंडल के सदस्य डा. लक्ष्मीमल सिंघवी ने श्री सेठिया के साहित्य को दृष्टि के रस से सराबोर बताया. निर्णायक मंडल के अध्यक्ष श्री गंगाशरण सिंह ने कहा कि उनकी रचना निर्ग्रंथ को चुनना आसान काम नहीं था क्योंकि उनकी शेष रचनायें भी एक से एक बढ़कर हैं.

मुख्य अतिथि बलराम जाखड़ ने कहा कि महाकवि श्री कन्हैयालाल एक संत की तरह हैं जो आज के युग में हमें सचेत रखने की कोशिश कर रहे हैं. और यह मेरा अहोभाग्य है मैं एक महामानव का सम्मान कर रहा हूं. उनके साहित्य से पूरा समाज प्रकाशमान होता है और अंधेरा दूर हो जाता है. श्री सेठिया उस दीपक की तरह हैं जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है."

ज्ञानपीठ के प्रबंध न्यासी साहू अशोक जैन ने पुरस्कार के उद्देश की चर्चा करते हुए श्री सेठिया के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला. श्री रमेशचंद्र जैन ने समारोह में उपस्थित साहित्यप्रेमियों का आभार व्यक्त किया समारोह के दूसरे सत्र में सुश्री इंदु जैन ने मंच से कवि की कुछ हृदयस्पर्शी कविताओं का पाठ कर पूरे सभागार को मंत्रमुग्ध कर लिया. समारोह का परंपरा रीति से संचालन किया ज्ञानपीठ के सलाहकार श्री लक्ष्मीचंद्र जैन के. □

श्रद्धांजलि

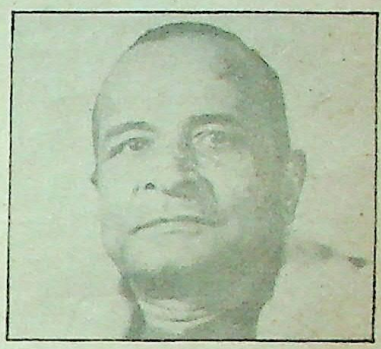

हिंदी अकादमी, दिल्ली के सौजन्य से

राम नवमी, १८९५ को मध्यप्रदेश के छतरपुर कस्बे में जन्में हिंदी के यशस्वी साहित्यकार वियोगी हरि का ९ मई, १९८८ को देहांत हो गया. वे ९३ वर्ष के थे. वियोगीजी ने जैसी शांति से लौकिक जीवन जीया उसी शांति से अलौकिक जीवन में प्रवेश कर गये.

वह अविवाहित थे. उन्होंने श्री भगवत दत्त शिशु को अपना पुत्र माना था. और उन्हीं के परिवार के साथ रहते थे.

वियोगी हरि का मूल नाम हरिप्रसाद द्विवेदी था. वे छतरपुर नरेश की पत्नी और टीकमगढ़ नरेश की पुत्री 'युगलप्रिया' को अपनी मां मानते थे. अपनी इस मां की मृत्यु से इतने दुखी हुए कि उन्होंने अपना नाम वियोगी हरि रख लिया था.

हरिजन समाज के उद्धार और विकास की प्रेरणा इन्हें गांधीजी से मिली. छुआछूत हटाने के लिए वियोगीजी ने हरिजन सेवक संघ का कार्य किया. वे साबरमती आश्रम और हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष थे.

वियोगी जी ने केवल लेखन कार्य ही नहीं किया अपितु हिंदी (खड़ी बोली) के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया. गद्य और पद्य दोनों विधाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा. इसके साथ-साथ गद्य और पद्य दोनों का एक साथ निर्वाह करने वाले गद्यगीतों की भी रचना की. उनका गद्य अलंकृत और सादा दोनों तरह का है. लगभग १५० पुस्तकों के रूप में फैले वियोगी जी के साहित्य ने प्रायः सभी विधाओं में श्रीवृद्धि की.

पिछले दिनों मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन ने वियोगी जी के साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें 'भवभूति अलंकरण' से अलंकृत किया था.

सारिका परिवार की ओर से भावीभीनी श्रद्धांजलि समर्पित है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'और गुड्डी की पोनीटेल अब दीख रही है...''

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचास वर्ष पहले, नन्हे किट्टी हजूरिया के लिये फोटोग्राफी का आरम्भ स्वयं द्वारा बनाये हुये पिनहोल कैमरे द्वारा और मॉडल के रूप में अपनी छोटी बहन के साथ हुआ था। तब से उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

CC-0. Unknown. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि सुखद है

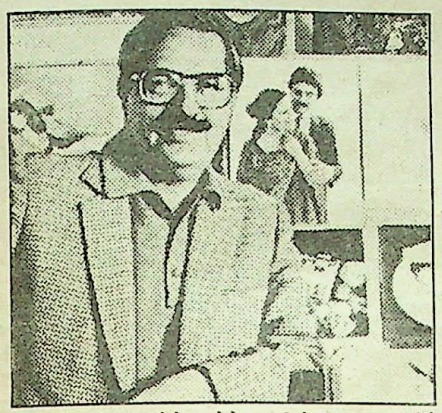

आज श्री हजूरिया एक पेशेवर फोटोग्राफर जिन्हें इस बात पर गर्व है कि उन्होंने नेत्र-दान का संकल्प लिया है।

"मैंने जो पहला फोटो खींचा उसकी तैयारी इतने मनोयोग से और जोरदार तरीके से की कि वह संभवतः यूसुफ कार्श के लिये सम्मान की बात होती।

शुरू में मैंने किसी भाँति अपने दादाजी का कैमरा ले लिया था (उन दिनों दादा से बहुत घबराहट होती थी। यहाँ तक कि दादा की घड़ी का समय ही सही माना जाता था।) यह कैमरा विश्वयुद्ध से पहले का "देहल" फ्रांस का बना हुआ था। मॉडल, मेरी जानकारी अनुसार सुन्दरतम नन्हीं लड़की थी। 'बहन गुड्डी', जो झालरवाली पोशाक में सजी थी, मैंने यह सावधानी बरती थी कि उसके चेहरे पर काफी धूप रहे। सब कुछ उसी तरह जैसा किताब में लिखा था, सिवाय एक छोटी सी बात, कि — मैंने फिल्म नहीं डाली थी।

यह देखते हुये कि ऐसी भयंकर भूल के साथ इस कहानी का आरम्भ हुआ था, मैंने जीवन में काफी कुछ पा लिया है। आज मैं तस्वीरें खींच कर अपनी जीविका अर्जित कर लेता हूँ। चूंकि मेरा व्यवसाय इस पर निर्भर है इसलिये यह तो आप सोच ही सकते हैं कि मैं अपनी फोटोग्राफी की उत्कृष्टता को बनाये रखने के लिये पूरा प्रयास करता हूँ। फिर भी, श्रेष्ठतम उपकरणों तथा सर्वाधिक उन्नत लैंसों के प्रयोग के बावजूद मैं हमेशा जो चाहता हूँ उसे कैमरे में नहीं पकड़ पाता। किसी रंग का एक नाजुक सा संकेत अथवा कोई अति सूक्ष्म बात मेरे कैमरे की पकड़ से अक्सर बच निकलती है।

शायद मेरे चित्रों का विक्रय मूल्य तो इस बात से प्रभावित नहीं होता परन्तु उससे सर्जनात्मक भावना अवश्य अतृप्त रह जाती है। और तब मुझे ध्यान आये बिना नहीं रहता उन शानदार लैंसों का जो तुरन्त मस्तिष्क की सेवा में प्रस्तुत हो जाते हैं और जो मनुष्य द्वारा निर्मित लैंसों से बहुत अधिक श्रेष्ठ हैं — मेरे नेत्र।

मैंने कभी इस बात का विशलेषण तो नहीं किया पर क्योंकि मैं अपने नेत्रों को इतना महत्व देता हूँ इसी लिये मैंने निर्णय किया कि वे मेरे बाद भी जीवित रहें। हाँ, मैंने किसी दृष्टिहीन व्यक्ति को दिये जाने के लिये नेत्र-दान का संकल्प किया है — किट्टी हजूरिया कहते हैं।

परिवार के लिये गर्व का विषय :

वह आगे कहते हैं: मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ कि मेरी पत्नी एवं बेटियाँ मेरे दृष्किोण से सहमत थे।"

सो हम सबने परिवार का संकल्प-पत्र भर दिया। पूरे परिवार की भागीदारी से यह तो निश्चित हो जाता है कि मेरी मृत्यु पर कोई न कोई निकटतम नेत्र बैंक को सूचित करने की जिम्मेदारी लेगा।

नेत्र-दान का संकल्प कीजिये :

दृष्टि, अन्य सभी इन्द्रियों से बढ़कर, अत्यन्त ज्ञानवर्धक अनुभव है।

और किट्टी हजूरिया की तरह, वह चमत्कार कर दिखाने का सामर्थ्य आपमें है। नेत्र-दान का संकल्प कीजिये। इसके लिए केवल आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है।

और एक दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए किसी दिन देखने की सामर्थ्य पा लेना, एक चमत्कार से कम नहीं है।

नेत्र-दान के विषय में कुछ आधारभूत तथ्य :

1. किसी भी उम्र का, लगभग कोई भी व्यक्ति नेत्र-दान कर सकता है, यदि नेत्र-दाता चश्मा पहनता हो, उसे मोतियाबिन्द हो या आँखों का सफल ऑपरेशन हो चुका हो, तो भी नेत्र-दान सम्भव है।
2. मृत्यु के उपरान्त 6 घन्टों के अन्दर-अन्दर आँखों को निकाल लेना चाहिये। अतः निकटतम नेत्र-बैंक को तुरन्त सूचित करना आवश्यक है।
3. नेत्रों को निकालने में केवल 10-15 मिनिट लगते हैं और उससे कोई निशान या विकृति उत्पन्न नहीं होती।
4. आपके नेत्र-दान से दो दृष्टिहीन व्यक्तियों को दृष्टि मिलती है, एक दृष्टिहीन व्यक्ति को एक नेत्र प्रदान किया जाता है।
5. कानून में यह प्रावधान है कि आप किसी मृत सम्बन्धी के नेत्र दान कर सकते हैं — यदि उसने कभी नेत्र-दान के विरुद्ध अपना मत व्यक्त न किया हो तो।

कृपया अपने परिवार के साथ इस विषय पर चर्चा करें। नीचे दिया गया प्रपत्र भरें। और टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को डाक द्वारा भेज दें। हम आपको एक नेत्र-दाता के रूप में पंजीयन कर लेंगे और आपको नेत्र-दाता कार्ड और प्रमाण पत्र भेजेंगे जिसमें आपके निकटतम नेत्र-बैंक का नाम, पता व टेलीफोन नम्बर, अंकित होगा।

राष्ट्र को नेत्र-दान करने की घोषणा

मैं/हम, अधोहस्ताक्षरीगण, एतद्द्वारा संयुक्त रूप से/पृथक-पृथक राष्ट्र को अपने नेत्र दान करने का संकल्प लेता हूँ/लेते हैं तथा एक दूसरे पर दायित्व डालते हैं कि हममें से किसी की भी मृत्युपरांत नेत्र-चिकित्सक को बुला कर, प्रत्यारोपण के उद्देश्य से हमारे नेत्र निकाल कर हमारी इच्छा पूर्ण की जाए।

1. श्री/श्रीमति _____ आयु ____ हस्ताक्षर _____
2. श्री/श्रीमति _____ आयु ____ हस्ताक्षर _____
3. श्री/श्रीमति _____ आयु ____ हस्ताक्षर _____

पता _____ पिनकोड _____ राज्य _____ तिथि _____

साक्षी की आवश्यकता है जब केवल एक या परिवार के 3 से कम सदस्य नेत्रदाता हों.

1. श्री/श्रीमति _____ 2. श्री/श्रीमति _____

रिश्ता _____ रिश्ता _____

हस्ताक्षर _____ हस्ताक्षर _____

पता _____ पता _____

दृष्टि

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन

टाइम्स ऑफ इंडिया, 10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

दृष्टि के आनन्द को बांटिये. नेत्र-दान का संकल्प कीजिये.

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को दी जाने वाली वित्तीय सहायता आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80(जी) के अंतर्गत कर रहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य, स्वच्छता और सौंदर्य

विशेष परिशिष्ट

स्वास्थ्य में ही सौंदर्य है !

स्वास्थ्य, स्वच्छता और सौंदर्य परस्पर एक दूसरे से संबद्ध हैं. एक के बिना दूसरे की संभावना कम हो जाती है. इनमें प्रमुख है स्वच्छता. स्वच्छता से ही स्वास्थ्य बन सकता है. बिना स्वच्छता के स्वास्थ्य बना नहीं रह सकता. कई तरह की बीमारियां आदमी को घेर लेती हैं. आज अगर प्रदूषण के विरुद्ध युद्ध स्तर पर काम किये जा रहे हैं तो उसका प्रमुख कारण यही है कि प्रदूषण से पैदा होने वाली बीमारियों से आदमी की रक्षा की जा सके. ये प्रदूषण भी कई प्रकार के हो सकते हैं. मोटे तौर पर देखें तो प्रदूषण को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है.

1. वायु प्रदूषण : वायु का प्रदूषण हमारे जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करता है. वायु को ही सांस लेते समय हम अपने फेफड़ों में खींचते हैं जहां से फेफड़े वायु में स्थित आक्सीजन को ग्रहण करते हैं. वायु में आक्सीजन के अतिरिक्त प्रमुख रूप से नाइट्रोजन तथा कार्बनडाई आक्साइड आदि गैसें भी होती हैं. ये शरीर को न तो कोई लाभ पहुंचाती हैं और न हानि. लेकिन जब वायु में कार्बनमोनो आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड आदि गैसें मिल जाती हैं तो ये शरीर के लिए हानिकारक होती हैं. इन प्रदूषणों का कारण है—कारखानों की चिमनियों से निकलने वाला इन गैसों से युक्त धुआं, सड़कों पर चलती मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुआं, घरों में पत्थर के कोयले आदि को जलाने से निकलने वाला धुआं आदि. ये सभी स्रोत प्रतिदिन भारी मात्रा में जहरीली गैसें उगलकर वायुमंडल में फेंक रहे हैं और इस वायुमंडल में सांस लेकर हम इन गैसों को अपने शरीर को दे रहे हैं. यदि वायु का प्रदूषण इसी रफ्तार से बढ़ता चला गया तो इसमें कोई शक नहीं कि इक्कीसवीं सदी में हम अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए एक ऐसा जहरीला वातावरण तैयार कर देंगे जिसमें सांस लेना ही दुष्कर होगा. जरा कल्पना कीजिए उस स्थिति की कि आदमी को चौबीसों घंटे अपने कंधे पर आक्सीजन सिलिंडर टांगे घूमता होगा. लेकिन अभी देर नहीं हुई. अभी संभावना बनी हुई है कि हम अपनी धरती को नर्क बनने से रोक सकें. यदि कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं को परिशुद्ध करने के बाद ही चिमनियों से छोड़ा जाये, मोटरगाड़ियों के इंजनों में इस तरह के सुधार किये जायें कि उनके धुएं को प्रदूषण मुक्त किया जा सके तो इस समस्या से किसी सीमा तक निपटा जा सकता है. यह सब इतना सरल तो नहीं है पर जब समस्या इतनी विकट हो तो उसका समाधान सरल भी कैसे हो सकता है.

2. जल प्रदूषण : वायु में हम सांस लेते हैं तो पानी हम पीते हैं. ये चीजें चूंकि हमारे शरीर के भीतर जाती हैं. इसलिए इन दोनों के प्रदूषण शरीर को हानि पहुंचाते हैं. जो पानी हम पीते हैं, वह भोजन नली के द्वारा पेट तक पहुंचता है. वहां से वह रक्त में आता है और फिर गुर्दों से होता हुआ मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकलता है. एक तरह से यह हमारे पूरे शरीर की यात्रा करता है. पानी के साथ हमारे शरीर में प्रवेश करने वाला प्रदूषण हमारे शरीर के भीतर कोमल अंगों को क्षति पहुंचा सकता है. इसके साथ कई प्रकार के जहरीले रसायन हमारे शरीर में प्रविष्ट हो सकते हैं. इस प्रकार के प्रदूषणों से हमारे शरीर पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव तात्कालिक भी हो सकते हैं और धीमे जहर की तरह धीरे-धीरे प्रभाव दिखाने वाले भी हो सकते हैं.

पानी में आने वाले प्रदूषणों की एक बड़ी मात्रा तो वायु के साथ मिली सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड, कार्बन मानो आक्साइड आदि गैसें वर्षों के पानी के साथ घुलकर बनाती हैं. पानी में घुलकर ये गैसें अम्ल में रूपांतरित हो जाती हैं. ये अम्ल जब धरती पर आते हैं तो मिट्टी में स्थित क्षारीय पदार्थों के साथ क्रिया करके कई प्रकार के लवण बनाते हैं. इनमें से कुछ लवण शरीर के लिए हानिकारक होते हैं.

कारखानों से निकलने वाला मैला आमतौर पर नदियों में छोड़ दिया जाता है. इस मैले में कई तरह के घातक रसायन होते हैं. नदी का यह पानी हम कई रूपों में उपयोग में लाते हैं. एक उपयोग तो है खेतों में सिंचाई का. विषैले रसायनों से युक्त यह पानी जब हमारे खेतों में पहुंचता है तो ये रसायन उन पौधों में और उसके बाद हमारे भोजन में आ जाते हैं. इसके अतिरिक्त नदी के पानी को परिशोधन के बाद पीने के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है. हालांकि परिशोधन की प्रक्रिया में कई तरह के रसायन पानी में से कम हो जाते हैं लेकिन फिर भी कुछ रसायन पानी में शेष रह ही जाते हैं. ये रसायन भी किसी न किसी रूप में हमारे शरीर पर दुष्प्रभाव ही डालते हैं.

कीटनाशकों का जब आविष्कार हुआ था तो ये आदमी के लिए वरदान माने गये थे किंतु आज से वरदान से अधिक अभिशाप बन गये हैं. कहना न होगा कि तीन साल पहले के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ तीस साल! और गंजापन?

यह एक जड़ी-बूटियों द्वारा अनोखा इलाज है। जिससे निम्न बीमारियों का इलाज होता है।

- कई प्रकार का गंजापन
- चकते
- रूसी तथा बाल झड़ना
- असमय हुये सफेद बालों का पुनः काला उगना

हानि रहित इलाज
बिना किसी डाई या मेंहदी के

मुफ्त परामर्श हेतु मिलें

रविवार: अवकाश

भारतीय चिकित्सा संस्थान

जी-62, प्रीत विहार, नई दिल्ली-110092 फोन: 2201749
समय: प्रातः 9 बजे से 1 बजे तक
सायं: 5 बजे से 7 बजे तक

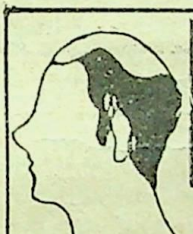

Only Thirty? Became Bald!

Here is a Unique Way
A Herbal Way to:

- Arrest Certain Type of Baldness
- Cure Alopia
- Stop Loss of Hair
- Glow Black Hair

NO SIDE EFFECT
NO DYES OR MEHNDI

For Free Consultation
Contact Personally

Sunday Closed

BHARTIYA CHIKITSA SANSTHAN

G-62, Preet Vihar, New Delhi-92 Ph.: 2201749
9 A.M. To 1 P.M.-5 P.M. To 7 P.M.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

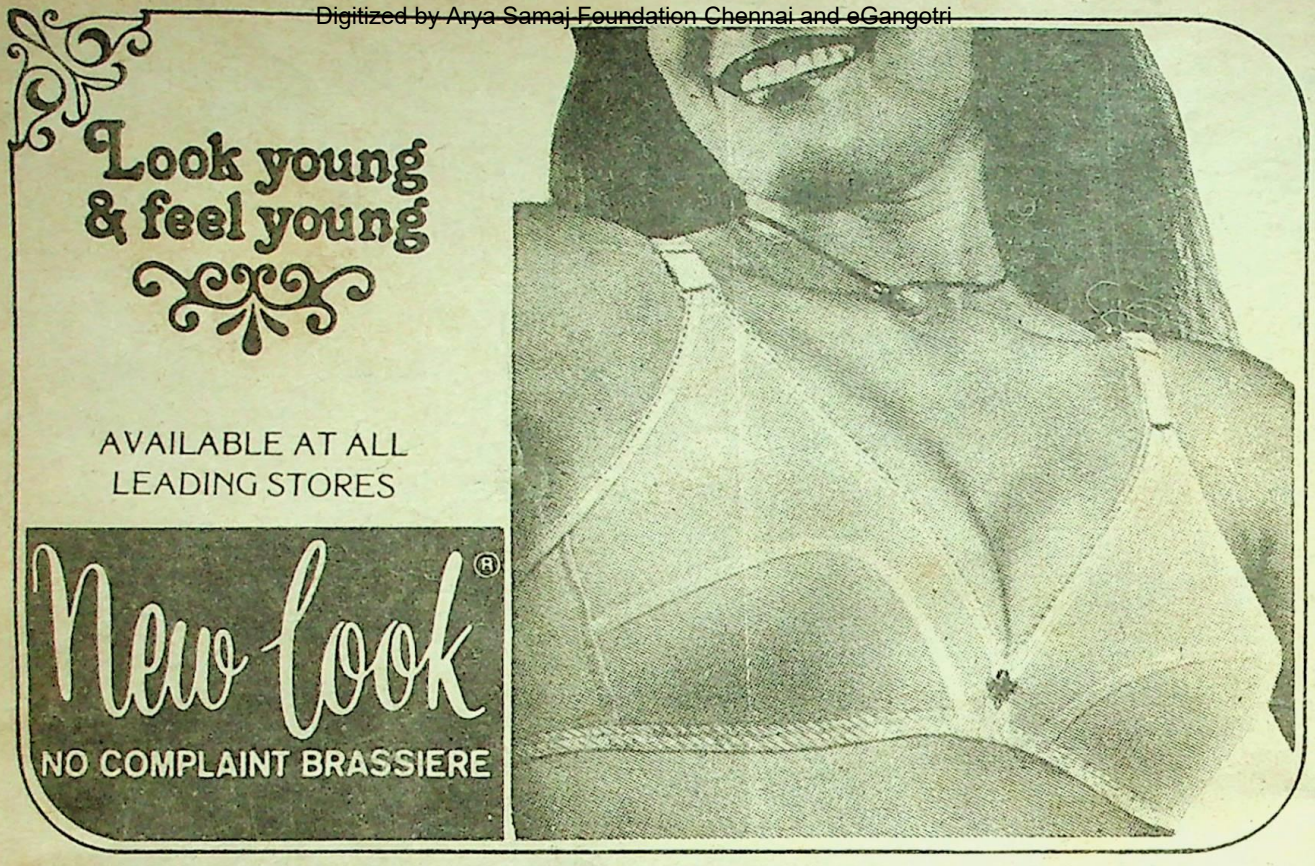

MFGD BY:— M/S NEWLOOK BRASSIERE COMPANY
204, J Shankar Sheth Road, Girgaon Near Gaiwadi, Bombay-400 004 Tel: 356583

भोपाल गैस कांड की त्रासदी का कारण एक कीटनाशक बनाने वाले कारखाने में हुई दुर्घटना ही थी. इस प्रकार की दुर्घटनाएं तो हमेशा नहीं घटती लेकिन इनमें तैयार होने वाला कीटनाशक मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हमेशा खतरा बना रहता है. खेतों में खेती को हानि पहुंचाने वाले कीटों को तथा घर में खटमल, मच्छर, काक्रोच आदि को मारने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है. घरों का कीटनाशक सांस के जरिये तथा घर की खाने की वस्तुओं के साथ हमारे शरीर में भी आता है. खेतों में डाला जाने वाला कीटनाशक भी खेतों में प्राप्त खाद्य सामग्री के साथ ही हम तक भी पहुंच जाता है इसके अतिरिक्त कीटनाशकों का कुछ भाग मिट्टी में समा जाता है और बारिश होने पर वह जमीन में गहराई में चला जाता है. वहां वह जमीन के नीचे के पानी मो मिल जाता है. जमीन के नीचे का यह पानी कुओं, स्रोतों, आदि के माध्यम से एक बार फिर हम तक पहुंचता है. यही पानी नदियों से होते हुए समुद्र तक भी पहुंचता है और वहां के जीवों को भी हानि पहुंचाता है.

कुल मिलाकर स्थिति यह है कि हमारी हर सांस के साथ पानी की हर घूंट के साथ, खाने के हर कौर के साथ हम किसी न किसी रूप में जहरीले रसायन ले रहे हैं. इन रसायनों से हमारे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है. तरह-तरह के रोग हमें आ घेरते हैं. इन रोगों से बचने के लिए पहली जरूरत है ऐसी औषधियों की जिन्हें लेकर हम अपने शरीर की रोग प्रतिरोध शक्ति को बढ़ा सकें. इससे हमारे शरीर में रोगों से लड़ सकने की क्षमता बढ़ सकेगी. कई आयुर्वेदिक संस्थान च्यवनप्राश बनाते हैं. च्यवनप्राश कई प्रकार की जड़ी-बूटियों का मिश्रण होता है इसका प्रमुख घटक है आंवला, इसमें विटामिन 'ए' तथा 'सी' काफी मात्रा में होते हैं. विटामिन 'ए' से आंखों की ज्योति ठीक रहती है तथा विटामिन 'सी' से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है. ये संस्थान इस प्रकार की औषधि भी बनाते हैं जिनसे पाचन आदि में सहायता मिलती है. कुछ औषधियां शरीर के तंतुओं को शक्तिशाली बनाने में मदद देती हैं. इनके प्रयोग से शरीर स्वस्थ तो होता ही है, सुंदर और सुडौल भी बन जाता है..

अगर कहा जाता है कि स्वास्थ्य में ही सौंदर्य है तो गलत नहीं कहा जाता. मनुष्य स्वस्थ होगा तो सुंदर भी होगा ही. अस्वस्थ मनुष्य कभी सुंदर नहीं हो सकता.

शरीर के विकास के लिए प्रोटीन बहुत जरूरी चीज है. बढ़ते बच्चों के लिए ही नहीं, युवाओं, प्रौढों, और वृद्धों के लिए भी यह जरूरी है. दाल, दूध, मांस, मछली अंडे आदि में यह काफी मात्रा में होता है. पर भारत की अधिकतर जनसंख्या चूंकि शाकाहारी है. इसलिए यहां प्रोटीन प्राप्त करने के स्रोत काफी कम रह जाते हैं. गत दो दशकों की शोधों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सोया में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है—43 प्रतिशत जबकि दाल में यह 25 प्रतिशत, मांस में 18 प्रतिशत, पनीर में 30 प्रतिशत तथा अंडे में 13 प्रतिशत होती है. इसलिए हमें अपने भोजन में सोया तथा उसके अन्य उत्पादों का भरपूर प्रयोग करना चाहिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक्टिव—२५

सपन डेयरी स्पेशल तथा मिल्क केयर जैसे सुप्रसिद्ध उत्पादों के निर्माता डालमिया ने सपन एक्टिव-२५ नामक एक नये स्वास्थ्यवर्धक पेय का उत्पादन शुरू कर दिया है. यह पूरे परिवार के लिए उपयोगी है.

स्वास्थ्य-वर्धक पेयों के बाजार में ७ ब्रांड चल रहे हैं. इनमें से कुछ कत्थई रंग के हैं और कुछ सफेद. इनमें सबसे बड़ा अंतर यह है कि कत्थई रंग के ब्रांडों को केवल दूध के साथ ही लिया जा सकता है. हार्लिक्स, बोर्नवीटा, कंप्लान आदि इनमें से कुछ प्रमुख ब्रांड हैं. इन सबमें से कंप्लान ही सबसे अधिक पोषक है लेकिन कीमत उसकी इनसे लगभग दुगुनी है.

एक्टिव-२५ इन सबसे अनूठा है. वह कंप्लान से भी बेतहर है क्योंकि कंप्लान में केवल २३ अनिवार्य पोषक तत्व होते हैं. जबकि एक्टिव-२५ में इनकी संख्या २५ है. इसके अलावा इसमें शुद्ध कोको तथा माल्ट भी होते हैं जो कंप्लान में नहीं होते. इसीलिए यह स्वाद में भी कंप्लान से बेहतर है. यह बहुत स्वादिष्ट होता है तथा इसके स्वाद की तुलना किसी भी कत्थई रंग ब्रांड से की जा सकती है.

एक्टिव-२५ हाल ही में पूरे राष्ट्रीय स्तर पर बाजार पर में आया है. अपने शुरू के दौर में ही इसने उपभोक्ताओं को आकर्षित कर लिया. बड़े पैमाने पर इसका विज्ञापन तो किया ही जा रहा है. इसके अतिरिक्त हर क्षेत्र के स्कूल के बच्चों में भी बड़े पैमाने पर इसे नमूनों के तौर पर बांटा गया है. बच्चों ने भी इसे काफी पसंद किया है.

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि एक्टिव-२५ बाजार के किसी भी अन्य स्वास्थ्य-वर्द्धक पेय की तुलना में अधिक पोषक और स्वादिष्ट है. □

मिरगी का उपचार

सभी प्रकार की मीरगी के दौरों का उचित दवाई के प्रयोग से अब ठीक किया जा सकता है. रोगी की बीमारी का पूरा इतिहास उसके सगे संबंधियों व स्वयं उसका इतिहास लेने के बाद उसे विस्तृत न्यूरोलाजिकल परीक्षण से पूर्ण निदान या परीक्षण कराना चाहिये. रोगी के विभिन्न प्रकार के न्यूरोलाजीकल परीक्षण किया जा सकता है. जैसे ई.ई.जी., सी.ए.टी. स्कान कानोटाइड एलजियोग्राफी और दूसरे बायोकेमिकल टेस्ट इत्यादि (यदि इनकी जरूरत समझी जायें तो) ताकि उचित निदान हो सकें और सही दवाई छांटी जा सके. आमतौर से रोगी को न्यूरोलोजिस्ट से 2 या 3 साल तक इलाज कराना पड़ता है. हर एक या दो महीने में फिर से जांच करनी पड़ेगी ताकि दवाई का प्रभाव व साइडइफेक्ट देखा जा सके. आमतौर पर देखा गया है कि अगर इलाज लेने के साथ-साथ रोगी अपने रोग के बारे में सोचना बंद कर दे कि मैं बीमार हूं. और अपने आपको खुश रखे. ऐसा कोई काम न करें जिससे उसके दिमाग पर ज्यादा जोर पड़े तो उसे स्वतः लाभ होता है. मां-बाप को भी रोगी पर इतना समुचित ध्यान देना आवश्यक है कि रोगी के मन पर किसी प्रकार का आघात न पहुंचे. रोगी के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार होना अति आवश्यक है. उसे प्यार से ही बुलाया जाये और किसी भी बात को प्यार से ही समझाया जाये रोगी के रोग को लेकर किसी के मामले रोगी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये. रोगी भी ऐसा न सोचें की उसका रोग कभी ठीक नहीं होगा. अगर इलाज के साथ साथ इन सभी बातों का ध्यान रखा जाये तो 50 प्रतिशत रोग स्वतः ठीक हो जाता है. बाकी इलाज पर निर्भर है.

डा. आर. के. गुप्ता आयुर्वेदाचार्य, निकट गुरुद्वारा, चौदह बीघा, लक्ष्मणझूला रोड, ऋषिकेश-249201

मिरगी
(दौरे)
का मनोवैज्ञानिक/आयुर्वेदिक इलाज
सैकड़ों पुराने से पुराने रोगी लाभ उठा रहे हैं

जे. डेनिस, 67 राजपुर रोड़, देहरादून.
मेरी बहन कु० मेरी डेनिस जो कि इस समय 53 साल की है। उसकी यह बीमारी 45 साल पुरानी हो चुकी थी। जिसके कारण उसकी शादी भी नहीं हो सकी। कभी 15 दिन में एक बार, कभी एक दिन में 5 से 10 दौरे तक आ जाते थे। हमें किसी ने डॉ० साहब के बारे में बताया। पहले तो हमने सोचा कि जब हमने बड़े-बड़े शहरों के डॉक्टरों से सभी तरह के इलाज करवा लिए हैं तो अब छोटे शहर में जाकर क्या होगा। 2-4 दिन ऐसे ही सोच-सोचकर निकल गये। हम डॉ० साहब के पास अपनी बहन को लेकर गये। डॉ० साहब ने पहले पूरी बीमारी का इतिहास सुना उसके बाद उसे देखा व मनोवैज्ञानिक इलाज दिया साथ में खाने के लिए दवा दी, उस दिन तारीख 1-11-85 थी। उस दिन से आज तक कोई दौरा नी आया। वह बिल्कुल ठीक है। हमने 4-5 रोगी और भेजे थे वे भी सब ठीक हैं। हम डॉ० साहब के बहुत आभारी हैं।

श्री एम.पी. मोहता, टैगोर स्ट्रीट, सेकेंड-फ्लोर, निकट हांगकांग बैंक कलकत्ता
हमारी लड़की जिसे बचपन से मिरगी की शिकायत थी, 30 साल की हो गई थी । इस बीमारी के कारण हम उसकी शादी भी न कर सके, एक दिन में कई-कई बार दौरे पड़ जाते थे, बहुत इलाज करवाया, लेकिन कोई आराम नही हुआ । किसी-किसी दवा से 5 से 10 दिन के लिये आराम मिल जाता था, लेकिन रोग की जड़ नहीं कटी, हमारी पहचान का एक आदमी अरविन्द नगर, दिल्ली-29 में रहता है, उसके लड़के को भी यही दौरा था । उन्होने डा. गुप्ता, ऋषिकेश से इलाज करवाया था । ठीक होने पर उन्होंने हमें पत्र लिखा, दूर होने की वजह से हमने डा. साहब को बीमारी का पूर्ण विवरण पत्र में लिख कर दवा वी.पी.पी. से भेजने की प्रार्थना की, लेकिन हमें उत्तर मिला कि रोगी को देखे बगैर हम दवा डाक से नही भेजते, एक बार दिखाना बहुत जरूरी है । हम लड़की को लेकर डा. साहब के पास गये, डा. साहब ने रोग का पूरा इतिहास जानने के बाद हमें विश्वास दिलाया कि हमारी लड़की बिल्कुल ठीक हो जायेगी, डा. साहब ने एक खुराक दवा अपने क्लिनिक में दी तथा बाकी दवा घर के लिये दी, उनकी दवा का कोर्स पूरा करने के बाद दवा बंद कर दी । आज 5½ वर्ष हो गये, कोई दौरा नही आया उसकी शादी भी कर दी है, दो बच्चे है । वह एकदम खुश है, हम डा. साहब का यह अहसान कभी नही भूल सकते ।

श्री सिंह जी, सैयद्यूल नं. बी राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली.
हम अपने लड़के को लेकर डा. गुप्ता के पास गये जो कई वर्षों से मिरगी से पीड़ित था, डा. साहब ने अच्छी तरह से चैक-अप करने के बाद दवा दी, अब वह बिल्कुल ठीक है ।

मिरगी कई प्रकार की होती है : बहुत से रोगी अपने रोग को स्वयं नहीं पहचान पाते। रोग के मुख्य लक्षण है *अचानक जमीन पर गिरना *मुंह का एक तरफ घुमाना *आंखें पथराना *मुट्ठियां कसना *गर्दन टेढ़ी पड़ना *मुंह से झाग आना *केवल एक-आधे सेकेंड के लिए ही चक्कर आना *जीभ का बाहर व दांतों के बीच आ जाना *ओं-ओं, गों-गों की आवाज व बेहोश होना।

जिन रोगियों में एक भी लक्षण दिखाई दे, तो वह स्वयं किसी भी दिन मिलें, शुरू में एक बार रोगी को यहां जाकर दिखाना बहुत जरूरी है। रोगी को यहां रुकने की जरूरत नहीं पड़ती। यह बीमारी जादू-टोने, झाड़-फूंक व शादी करने से दूर नहीं होती है।

समय : प्रातः 9.00 से सायं 5.00 तक, बृहस्पतिवार अवकाश

Rashtriya

नीरज क्लिनिक – डा. आर.के. गुप्ता
निकट गुरुद्वारा, चौदह बीघा, लक्ष्मणझूला रोड, ऋषिकेश (यू.पी.) फोन: 765, 1165
नोट : शुरू में रोगी को देखे बगैर पत्र द्वारा हम अपनी राय नहीं दे सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी

बीमा के क्षेत्र में न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी का अपना एक विशिष्ट स्थान है. इन्होंने समय-समय पर विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी योजनाएं तैयार की हैं और लाखों लोग इन योजनाओं से लाभान्वित हुए हैं. इन्हीं महत्व-पूर्ण योजनाओं में दो हैं: मेडिक्लेम तथा अनबॉर्न चाइल्ड वैलफेयर स्कीम.

मैडिक्लेम में बीमा किये व्यक्ति को अस्पताल के इलाज तथा वहां रहने के खर्चे के रूप में पूरी की पूरी बीमा राशि दी जा सकती है. इस योजना में १२ से ७० वर्ष तक के व्यक्ति का बीमा किया जाता है. इसके लिए इतना अवश्य अनिवार्य है कि व्यक्ति का इलाज भारत में ही हो तथा बीमे की राशि भी भारतीय मुद्रा में ही दी जाती है. इस योजना में कई वर्गीकरण है और कोई भी व्यक्ति किसी भी वर्गीकरण के अंतर्गत अपना बीमा करवा सकता है. वर्गीकरण के अनुसार ही उसे प्रीमियम देनी होगी तथा उसी के अनुसार उसे लाभ मिल सकेंगे.

बच्चों की बीमारी पर देश में काफी सीमा तक नियंत्रण पाया जा चुका है पर जन्म से पूर्व यह अनुमान लगाना काफी कठिन होता है कि बच्चा पूर्ण स्वस्थ ही जन्म लेगा. इस दिशा में न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी ने अनबॉर्न चाइल्ड वैलफेयर स्कीम शुरू की है इसके अंतर्गत १८ से २० वर्ष के बीच की आयु कि स्त्रियों की तीन माह तक के गर्भ की स्थिति में बीमा कराया जा सकता है. यदि बच्चे में जन्म के समय में ही कोई ऐसा रोग है जिसका इलाज कराया जा सकता है तो बीमा की राशि का आधा भाग तक उसके इलाज के लिए कंपनी द्वारा दिया जा सकता है. यदि बच्चे में जन्म के समय ही कोई स्थाई आंशिक अपंगता हो तो सारिणी के अनुसार इलाज के लिए कुछ राशि तत्काल दे दी जाती है और शेष राशि किसी बैंक में या यूनिट ट्रस्ट में उसके नाम से जमा करा दी जाती है. यदि जन्म के समय बच्चे में पूर्ण अपंगता हो तो इलाज का पूरा खर्चा दिया जाता है और शेष राशि बच्चे के नाम से बैंक अथवा यूनिट ट्रस्ट में जमा कर दी जाती है. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी का बीमा का क्षेत्र बहुत बड़ा है. इसकी विभिन्न बीमा योजनाओं के अंतर्गत पशुओं से लेकर उपग्रहों तक सभी आते हैं. इसकी देश भर में ९०० से अधिक शाखाएं हैं. इनमें से कोई न कोई आपके आसपास भी अवश्य होगी. एक बार वहां जाकर तो देखें कि आपकी सेवा किस तरह कर सकते हैं. □

झंडू फार्मेसी

आयुर्वेद का अर्थ है वह वेद जिसका संबंध आयु से है. याने एक ऐसा विज्ञान जो आयु को दीर्घ करने में सहायक हो. आयुर्वेद का इतिहास अश्वनिकुमारों से शुरू होकर चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि से होता हुआ आज तक चला आ रहा है. आज यद्यपि चिकित्सा की अन्य कई पद्धतियां विकसित हो चुकी हैं परंतु आयुर्वेद की महत्ता आज भी कम नहीं है.

आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में आज झंडू फार्मेसी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है. इसकी बनायी हुई औषधियों को खरीदने वाला विश्वास के साथ खरीदता है.

स्वास्थ्यवर्धक औषधियों में झंडू का एक महत्वपूर्ण उत्पाद है—झंडू केसरी-जीवन. इसका स्वाद भी बहुत अच्छा है यह शरीर में स्वास्थ्य, ऊर्जा, तथा शक्ति को बढ़ाता है.

यह वास्तव में च्यवन प्राश अवलेह का ही एक विकसित फार्मूला है. च्यवनप्राश की ही तरह इसमें रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ाने वाले तत्व तथा कफ नाशक तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं. च्यवन प्राश में मिली औशधियों के अतिरिक्त इसमें कुछ ऐसी औषधियों भी मिलायी गयी हैं जिनसे शरीर को अधिक स्वस्थ तथा लचीला बनाया जा सकता है. बढ़ते हुए बच्चों के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है. बड़ी उम्र के लोगों के लिए तो यह उपयोगी है ही.

इसमें च्यवनप्राश अवलेह के अतिरिक्त रस सिंदूर, अभ्रक भस्म, केसर, अश्वगंधा, कापीकचू, बालबीज आदि मिश्रित होते हैं. यह एक स्वास्थ्यवर्धक टानिक है. इसका स्वाद केसर जैसा होता है. बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ के लिए भी यह एक उपयोगी टानिक है. थकान जैसी महसूस होने पर तथा कमजोरी की अवस्था में इसका सेवन करने से शरीर में फिर से चुस्ती-फुरती का संचार होता है. हर आयु के लोगों के लिए यह एक अनिवार्य टॉनिक है.

इसे दिन में दो बार, एक से दो चम्मच मात्रा में खाया जाना चाहिए. इसके ऊपर दूध भी पीना चाहिए.

यह २२५ तथा ४५० ग्राम आकर्षक पैकिंग में मिलता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पॉकेट बुक्स पेश करती है

रहस्य, रोमांच, सस्पैंस व एडवेंचर की
दुनिया में एक नया जासूसी उपन्यासकार

विक्की आनन्द
विक्की आनन्द
विक्की आनन्द
विक्की आनन्द
विक्की आनन्द

जिसकी कलम के जादू में छिपे
सस्पैंस और रहस्य में आप खो जायेंगे डूब जायेंगे।

RAJESH

विक्की आनन्द
का पहला जासूसी उपन्यास

धुन्ध

शीघ्र प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

सर्दियों में लू चलने लगे
और गर्मियों में बर्फखाने-सी
सर्दी महसूस हो...अंधेरी रात
जगमगा उठे और पूर्णमासी की
रात अंधेरी हो जाये...तो...?

उम्र की पहली दहलीज पर
जिस्म के रेशे-रेशे में चटकती इश्क
की दास्तान पेश करता

किशोर प्रेम कथा अंक

ख्वाजा अहमद अब्बास, यू. आर. अनंतमूर्ति, जेम्स जॉयस, हरमन हैस, बानो कुदसिया, फ्योदोर दास्तोएव्स्की, मार्क बैनरमैन, इरविंग स्टोन, धीरेंद्र अस्थाना, यासुनारी कावाबाता, जेम्स जोंस आदि कथाकारों की भावप्रवण कहानियां/कथारचनाएं.

सत्य-कथाएं

- किशोर लिंकन की पहली और अंतिम प्रेम-कथा.
- गेटे की किशोर प्रेम-कथा जो अमर उपन्यास बन गयी.
- चुंबन मंहगा पड़ा बेचारे पुलिसकर्मी को.
- किशोर वय का प्यार : कितना उथला कितना ज्वार....
- ....और दुनिया जहान से खोजकर लाये गये ढेरों ऐसे किस्से जो किशोर जीवन की धड़कनों के जीवंत दस्तावेज हैं.

....और साथ में

- वरिष्ठ आलोचक डा. नामवर सिंह की षष्ठिपूर्ति पर विशेष आलेख.
- वरिष्ठ कथाकार दिजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की 'सारिका' के लिए विशेष रूप से लिखी गयी ताजातरीन कहानी—'सरस्वती'.
- प्रख्यात कथाकार गोविंद मिश्र के नव्यतम उपन्यास 'धीर समीरे' का अंश—त्यों-त्यों प्रगट होई उर अंतर कांच कलस जल झांई.

नये धारावाही स्तंभों का आकर्षक सिलसिला

- रेखाचित्र

जिंदगी से गुजरते हुए खुद से टकराने वाले चरित्रों को सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार परसाईजी ने किस तरह ग्रहण किया होगा....आइए देखें—रेखाचित्रों का संग्रहणीय आयोजन

- प्रहसन

हास्य-व्यंग्य स्तंभों की परंपरा में एक नयी शुरूआत....महाराज कृष्ण काव के हंसते-हंसाते प्रहसनों की शुरूआत कर रहा है—'प्रेम विभाग'

- रहस्य-रोमांच

होनी-अनहोनी के द्वंद्व में फंसे रहस्य-रोमांच भरे जीवन प्रसंगों की एक ऐसी श्रृंखला जिसका आप बेसब्री से हर महीने इंतजार करेंगे.

- अपराध कथा

अपराध कैसे, क्यों और कब-कब हो जाते हैं? क्या आदमी स्वभावतः अपराधी होता है? हर महीने एक सच्ची अपराध-कथा.

- किस्से कचहरी के

कचहरी की जिंदगी और जिंदगी की कचहरी की ऐसी घटना-कथाएं जो आपको एक नयी ही दुनिया की सैर करायेंगी.

- 'अरेबियन नाइट्स' उर्फ किस्सा अलिफ लैला

एक के बाद एक घटने वाली अनूठी कहानियों का एक विशाल भंडार है—'अरेबियन नाइट्स.' इसी भंडार में से चुनिंदा रोचक और मनोरंजक किस्सों-कहानियों का एक अनूठा आयोजन.

हर महीने पत्रिका की कीमत पर
एक समूची किताब का भरा- पूरा संसार

सारिका अगस्त : 1988

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वप्रसिद्ध शृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का एक अनूठा प्रोजेक्ट

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें मंगाने पर डाकखर्च माफ

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित
- सरस कथा शैली
- फोटोटाइप सैट
- बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई
- बहुरंगी आवरण
- वाजिब दाम

इस शृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय जगत से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को पूर्ण रूप से उजागर करने वाला एक सचित्र **'मिनि एनसाइक्लोपीडिया'** *है।*

उदाहरणार्थ *'रोमांचक कारनामे'* में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो *'खोजें'* में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। *'अनसुलझे रहस्य'* में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो *'खेल और खिलाड़ी'* व *'वैज्ञानिक'* क्रमशः जीवनी प्रधान पुस्तकें हैं। *'विनाश-लीलाएं'* में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण है तो *'दुर्घटनाएं'* में मानवीय भूलों से हुई भयांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। *'गुप्तचर संस्थाएं'* तथा *'जासूस'* में मकड़े के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो *'प्रेरक-प्रसंग'* किसी भी जहाज की तरह भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

अब तक प्रकाशित पुस्तकें:

विश्व-प्रसिद्ध.... 1.खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल एवं खिलाड़ी 8. रिकॉर्ड्स (भाग-I) 9. रिकार्ड्स (भाग-II) 10. वैज्ञानिक 11. विनाश-लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग।

आमंत्रण:—

प्रोजेक्ट में योगदान के लिए विद्वान लेखक तथा अनुवादक संपर्क साधें।

जून, 1988 तक प्रकाश्य:

- विश्व-प्रसिद्ध जासूसी-कांड
- विश्व-प्रसिद्ध सभ्यताएं

तैयारी में/प्रैस में:

• चिकित्सा-पद्धतियां • स्कैण्डल • बैंक-डकैतियां • राजनैतिक हत्याएं • खोजी-यात्राएं • क्रूर हत्यारे • खजाने।

VAN/PM/24

अपने निकट के बुकस्टाल एवं रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुकस्टालों पर मांग करें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006
शो रूम : 10-B नेताजी सुभाष मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

'सात मोमबत्तियाँ, मम्मी मैं बड़ी हो गई हूं..''

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालीस वर्ष पहले, नन्ही केतकी अपने जन्म-दिवस के केक पर मोमबत्तियों को देखकर उल्लास से भर गयी थी।
कई जन्म दिवसों के बाद भी वह चमक उसकी आँखों में अब भी कौंधती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि सुखद है।

आज केतकी सूद एक आन्तरिक सज्जा विशेषज्ञ (इंटीरियर डेकोरेटर) जिन्हें इस बात का गर्व है कि उन्होंने नेत्र-दान का संकल्प लिया है।

"उस दिन वे सात शानदार मोमबत्तियां, मेरे जीवन के हर वर्ष के लिये संसार की दिव्यतम वस्तु प्रतीत हुई थीं।

समय ने मुझे सभी स्थानों में सौन्दर्य की खोज करना सिखाया है... रेत में... बर्फ में...

मैं वह सुबह कभी भूल नहीं सकती जब मैं आस्ट्रेलिया से न्यूजीलैंड हवाई जहाज द्वारा जा रही थी। यह तीन घंटे की उड़ान थी। वस्तुतः वह जीवन भर की महान यात्रा साबित हुई।

जैसे ही विमान लंबे सफेद बादलों में पहुंचा, मुझे यह जानकर हर्ष हुआ और अचरज भी कि हमारे और दक्षिणी आलप्स के मध्य बादल नहीं के बराबर हैं।

दूर से माउंट कुक चमक रहा था। अनेक हिम श्वेत घाटियों की असंख्य तरंगों के बीच ऐसा लगता था मानों अनगिनत छाया-बिम्ब हिम-तल पर बिछकर अठखेलियाँ कर रहे हैं। तथा इनके बीच में हजारों रंग, कुछ हल्के कुछ चटक नीलिमा का आभास देते हुए खेल रहे थे। आज तक मैं इस मोहक दृश्य को अपनी दृष्टि की क्षमता का श्रेष्ठतम पुरस्कार मानती हूँ।

तथा मैं अनुभव करती हूं कि मेरी कृतियों में अब श्वेत रंग पहले से कहीं ज़्यादा अभिव्यक्ति पाते हैं। क्योंकि उन सुदूरवर्ती हिम-श्रृंखलाओं ने मुझे महसूस कराया कि सफेद रंग सिर्फ एक मात्र नहीं है, इसमें किसी भी रंग को सौम्यता या दीप्ति प्रदान करने की अद्‌भुत शक्ति हैं। मेरे लिये "श्वेत" शालीनता का अनन्त प्रतीक बन गया है।

तथापि राजस्थान के हल्के लाल या शर्मीले रेगिस्तानी रंग मुझे पहले की तरह अब भी प्रिय है। इसी प्रकार बादलों में चमकने वाली बिजली का प्रकाश, मानव-शरीर की आकृतियों एवं कक्षों के आकार, शीशम और रेशम जैसे विविध प्रकार के पदार्थों के ताने बाने मेरा मन मोह लेते हैं।

इन वस्तुओं का उपयोग करते हुए अपने कार्य के माध्यम से मैं अब समझ गई हूँ कि मेरी सफलता का मुख्य साधन मेरी दृष्टि है।

परन्तु मैं जानती हूँ कि मेरी मृत्यु के उपरान्त मेरे नेत्रों का कोई उपयोग नहीं रहेगा। इसलिये मैंने मृत्यु के उपरान्त उन्हें दान करने का विचार किया, केतकी सूद कहती हैं।

परिवार के लिये गर्व का विषय :

वह आगे कहती हैं "हमारे परिवार में हम मिल-जुल कर सब काम करने का विश्वास रखते हैं। मेरे पति और मैं, दोनों ने परिवार का संकल्प-पत्र भरने का निर्णय लिया।

हमने अपनी बेटियों को समझा दिया है कि एक साधारण कार्निया प्रत्यारोपण के द्वारा किसी दृष्टिहीन व्यक्ति के नेत्र के खराब कार्निया के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दान किये हुये स्वस्थ कार्निया को लगा दिया जाता है।

उन्होंने हमसे वादा किया कि जब हमारे नेत्र दान का समय आयेगा तो वे निकटतम नेत्र-बैंक को फोन द्वारा सूचित करने का उत्तरदायित्व का निर्वाह करेंगे। मेरे चले जाने के बाद वर्षों मेरे नाती-पोतों की पीढ़ी का फैशन मेरी सज्जा-कला को धूमिल कर देगा, परन्तु कहीं न कहीं कोई मेरी आँखों से सब कुछ देख रहा होगा।"

नेत्र-दान का संकल्प कीजिये :

दृष्टि, अन्य सभी इन्द्रियों से बढ़कर, अत्यन्त ज्ञानवर्धक अनुभव है।

और केतकी सूद की तरह, वह चमत्कार कर दिखाने की सामर्थ्य आपमें हैं। नेत्र-दान का संकल्प कीजिये। इसके लिए केवल आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है।

और एक दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए किसी दिन देखने की सामर्थ्य पा लेना, एक चमत्कार से कम नहीं है।

नेत्र-दान के विषय में कुछ आधारभूत तथ्य :

1. किसी भी उम्र का, लगभग कोई भी व्यक्ति नेत्र-दान कर सकता है, यदि नेत्र-दाता चश्मा पहनता हो, उसे मोतियाबिन्द हो या आँखों का सफल ऑपरेशन हो चुका हो, तो भी नेत्र-दान सम्भव है।
2. मृत्यु के उपरान्त 6 घन्टों के अन्दर-अन्दर आँखों को निकाल लेना चाहिये। अतः निकटतम नेत्र-बैंक को तुरन्त सूचित करना आवश्यक है।
3. नेत्रों को निकालने में केवल 10-15 मिनिट लगते हैं और उससे कोई निशान या विकृति उत्पन्न नहीं होती।
4. आपके नेत्र-दान से दो दृष्टिहीन व्यक्तियों को दृष्टि मिलती है, एक दृष्टिहीन व्यक्ति को एक नेत्र प्रदान किया जाता है।
5. कानून मे यह प्रावधान है कि आप किसी मृत सम्बन्धी के नेत्र-दान कर सकते है — यदि उसने कभी नेत्र-दान के विरुद्ध अपना मत व्यक्त न किया हो तो।

कृपया अपने परिवार के साथ इस विषय पर चर्चा करें। नीचे दिया गया प्रपत्र भरें। और टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को डाक द्वारा भेज दें। हम आपको एक नेत्र-दाता के रूप मे पंजीयन कर लेंगे और आपको नेत्र-दाता कार्ड और प्रमाण पत्र भेजेंगे जिसमें आपके निकटतम नेत्र-बैंक का नाम, पता व टेलीफोन नम्बर, अंकित होगा।

राष्ट्र को नेत्र-दान करने की घोषणा

मैं/हम, अधोहस्ताक्षरीगण, एतद्‌द्वारा संयुक्त रूप से/पृथक-पृथक राष्ट्र को अपने नेत्र-दान करने का संकल्प लेता हूँ/लेते हैं तथा एक दूसरे पर दायित्व डालते हैं कि हममें से किसी की भी मृत्युपरांत नेत्र-चिकित्सक को बुला कर, प्रत्यारोपण के उद्देश्य से हमारे नेत्र निकाल कर हमारी इच्छा पूर्ण की जाए।

1. श्री/श्रीमति _____ आयु ____ हस्ताक्षर _____
2. श्री/श्रीमति _____ आयु ____ हस्ताक्षर _____
3. श्री/श्रीमति _____ आयु ____ हस्ताक्षर _____

पता _____ पिनकोड _____ राज्य _____ तिथि _____

साक्षी की आवश्यकता है जब केवल एक या परिवार के 3 से कम सदस्य नेत्रदाता हों.

1. श्री/श्रीमति _____ 2. श्री/श्रीमति _____

रिश्ता _____ रिश्ता _____

हस्ताक्षर _____ हस्ताक्षर _____

पता _____ पता _____

दृष्टि

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन
टाइम्स ऑफ इंडिया, 10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दृष्टि के आनन्द को बाँटिये. नेत्र-दान का संकल्प कीजिये.

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को दी जाने वाली वित्तीय सहायता आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80(जी) के अंतर्गत कर रहित है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

सोये हुए समाज को जगाने के लिए

भारतीय ज्ञानपीठ के सहयोग से आपने इस अंक को स्मरणीय बना दिया है, इस सफलता के लिए सारिका प्रकाशन एवं भारतीय ज्ञानपीठ संस्था, दोनों को शुभकामनाएं.

बाजारू साहित्य से सम्मोहित, सुप्त समाज की चेतना को जगाने में इस प्रकार के प्रयोग आप अनवरत करते रहेंगे, ऐसी आशा के साथ आगामी अंकों की प्रतीक्षा में.

□ अनिकेत, झाबुआ (म.प्र.)

श्रद्धा से झुका मस्तक

अंक काफी अच्छा लगा. साहित्यिक अभिरुचि रखनेवाले पाठकों को भरपूर प्रेरणा मिलेगी. इस अंक में एक से बढ़कर एक विद्वानों की रचनायें एवं कृतियां संलग्न हैं. उनके लिखने की शैलियों पर हमारा मस्तक श्रद्धा से अपने आप झुक जाता है.

मुझे कभी आशा नहीं थी कि इन विद्वानों की रचनाओं को कभी पढ़ सकूंगा. परंतु सारिका का मैं आभारी रहूंगा जिन्होंने यह मौका दिया.

यह आश्चर्य लगा कि नये हस्ताक्षर का नामोनिशान न था. परंतु ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कहानियों की वजह से इसकी कमी खली नहीं.

□ संतोष कुमार, स्पीकर हाउस 3

पढ़ने का साहस नहीं जुटा सका

विगत दो वर्षों से सारिका का नियमित पाठक हूं. आज तक कभी सारिका खरीदकर पढ़ना अखरा नहीं, किंतु ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक-तीन खरीदकर देखने से अफसोस हुआ. 'देखने' शब्द का उपयोग इसलिये किया है कि पढ़ने का साहस ही नहीं जुटा सका. मानाकि सारिका हिंदी साहित्य के अग्रणी लेखकों की उत्तम रचनाओं को प्राथमिकता के आधार पर प्रकाशित करती है. किंतु किसी अंक-विशेष में इतनी बोझिल रचनायें उचित नहीं हैं. 'छोटी कहानियां' एक मिनिट मात्र को भी ध्यान आकर्षित न कर सकीं.

आपसे अनुरोध है कि भविष्य में इतना बोझिल अंक न दें. वास्तव में मैंने किसी भी कहानी का एक भी पैराग्राफ से ज्यादा नहीं पढ़ा.

□ लोकेश, विदिशा (म.प्र.)

श्रद्धांजलि

1 जून, 1988 को हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकार, समाज सुधारक और स्वतंत्रता सेनानी संतराम बी.ए. का लंबी बीमारी के बाद दिल्ली में देहांत हो गया. वे 101 वर्ष के थे.

संतरामजी जीवन का उद्देश्य देश प्रेम मानते थे. उन्होंने समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों को दूर करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये. गांव और शहरों में घूम-घूमकर छूआछूत छोड़ने का संदेश दिया. 1929 में प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद हिंदू मान्यताओं के विरुद्ध मराठा विधवा श्रीमती सुंदरबाई से विवाह किया.

गरीबों और पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए संतरामजी ने 'जाति-पाति तोड़क मंडल' का भी गठन किया था.

संतरामजी आर्यसमाज के समर्थक थे. भाई परमानंद से अत्याधिक प्रभावित थे. गांधीजी और अंबेडकर ने इनके कार्यों की प्रशंसा मुक्त भाव से की थी.

समाजसुधार के कार्यों में अग्रजी रहने के साथ ही संतरामजी ने अपने सौ वर्षों के जीवन में सौ से अधिक पुस्तकों से साहित्य को भी समृद्ध किया. इसके साथ ही अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ पुस्तकों का हिंदी में अनुवादकार्य भी किया. संतरामजी का मानना था कि अनुवाद से सांप्रदायिक और भाषिक एकता दृढ़ होती है.

दिवंगत आत्मा को सारिका परिवार की ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि. □

महत्वपूर्ण दस्तावेज

ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक-तीन पढ़ा. अंक के प्रारंभ से लेकर अंतिम पृष्ठ के संबंध में इतना लिखना पर्याप्त होगा कि सारिका का यह अंक एक 'कहानी संकलन' ही नहीं, अपितु एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है. वर्ष 1982 से मैं सारिका का नियमित पाठक हूं और सारिका के रजत जयंती वर्ष से इसका संग्रहकर्ता भी. ज्ञानपीठ पुरस्कार के पिछले दो विशेषांकों से आपने जो एक दस्तावेजी शुरुआत की, उसके अविरल प्रवाह के प्रति आपका प्रयास स्तुत्य है.

'साहित्य सृजन, पुरस्कार और मैं' में विजेताओं के विचारों को पढ़कर लगा कि मैं हिंदी में सारिका ही नहीं पढ़ रहा हूं बल्कि उन सब भारतीय भाषाओं को पढ़ रहा हूं जिनके सृजन को ज्ञानपीठ ने सम्मानित किया है.

वस्तुतः आपका यह अंक पुरानी यादों को ताजा करता है. संपूर्ण भारतीय श्रेष्ठ साहित्य के सृजकों से परिचय कराने बाबत बार-बार धन्यावाद.

□ राजेश चौधरी, झाबुआ (म.प्र.)

ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक विलंब से प्राप्त हुआ. सराहनीय प्रयास के लिये आप सभी बधाई के पात्र हैं.

□ अमरेंद्र किशोर, सासाराम (बिहार)

इस बार कोई भी पत्र पुरस्कार योग्य नहीं था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका वर्ष : 28, अंक : 435, जुलाई, 1988

विश्व साहित्य में विषकन्याएं— 2

कथा रचनाएं

16 अलिप्त नायिका : **अमरीकी कहानी**

26 केकसी : **जगदीशचंद्र पांडेय**

30 सैली वाटसन : **इर्विंग वैलेस**

36 हनीफा : **जेड.ए. बुखारी**

46 अंत:पुर की कुंआरी : **श्याम शर्मा**

48 कलावती और कंकलि : **क्षेमेंद्र**

51 त्रिया-तंत्र : **पंचतंत्र कथा**

16 संकेत कन्या : **सुभद्रा सिंह**

59 तभी तो... : **गोपाल शेखरन**

64 जयपुर की नूरजहां : **बाला दुबे**

विशिष्ट आलेख

11 पौराणिक विषकन्याएं : **डा. भगवतीशरण मिश्र**

13 रूप के अमृत में घुला जहर : **डा. कृष्णदत्त पालीवाल**

25 आधुनिक विषकन्याएं : **देवप्रिया**

40 भारत की पहली महिला जासूस : **अनिता जैन**

44 औरत जानवर है, उनका स्थान पिंजरे में है!

67 विषकन्याओं के बैर-बाण : **हरिप्रकाश त्यागी**

75 एक कवि की प्रार्थना... : **ब्रजेश्वर मदान**

अन्य रचनाएं

52 अदावत : **अजय श्रीवास्तव**

62 खबर : **ज्योति जैन**

स्थायी स्तंभ

79 सारिका कथा पहेली

8 आपकी बात

10 अपनी बात

42 अनजानी प्रेम कथाएं

57 धारा के विरुद्ध

58 नयी पत्रिकाएं

66 नयी पौद

73 हलचल

77 कृतियां

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

आवरण पारदर्शी : **आनंद शुक्ल**
आवरण सज्जा : **कला विभाग**
अंक सज्जा : **हरिप्रकाश त्यागी**

कापीराइट © 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित. बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैबर्स, टांक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैवलें मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षण

नामवरजी को आयु की सीमा में नहीं बांधा जा सकता

आलोचना को सांस्कृतिक सत्ता के धरातल पर वैचारिक प्रभुत्व के लिए चलने वाले संघर्ष का माध्यम मानने वाले मूर्धन्य आलोचक डा. नामवर सिंह ने पिछले दिनों अपने जीवन के साठ वर्ष पूरे किये. साहित्यिक जीवन की शुरूआत कविता से करने वाले नामवरजी कविता की आलोचना में अधिक रमे रहे हैं. यह दीगर बात है कि कविता तक सीमित हिंदी आलोचना के दायरे को बढ़ाने की गर्ज से एक समय वे कहानी की आलोचना के क्षेत्र में भी आये थे. यह ऐसा समय था जब नयी कहानी को कहानी कला की अपनी विशेषता के साथ ही संपूर्ण साहित्य के मूल्यों के संदर्भ में देखने की आवश्यकता और कहानी-समीक्षा की एक व्यापक और निश्चित 'भाषा' के निर्माण की दिशा में वे बराबर विचार कर रहे थे.

''निःसंदेह कहानी बेहद नाजुक कला है, अश्क के दोस्त राजेंद्र सिंह बेदी की 'लाजवंती' की तरह और लाजवंती की यह बूटी अत्यंत संवेदनशील हाथों की अपेक्षा रखती है, ज्यादा कलाबाजी से भी कुम्हला सकती है और रूखे हाथों के स्पर्श से भी. देखना है कि नये कहानीकार इसे कितनी सतर्कता और सजीवता से बढ़ाते हैं.'' सन् १९५९ में 'कहानी' में प्रकाशित नामवरजी के लेख 'नयी कहानी : नये प्रश्न' का यह अंतिम अंश 'कहानी' विधा के प्रति उनकी मूलभूत चिंताओं का खुलासा करता है. कहानी जैसी लोकप्रिय साहित्यिक विधा में भावुकता के खतरे को कविता से भी अधिक देखने वाले नामवरजी पूरी सतर्कता से 'भावुक' एवं 'भावप्रवण' कहानियों में भेद करते चल रहे थे...पर जिन कथाकारों पर यकीन करके वे कहानी आलोचना के क्षेत्र में आये थे उनकी दिलचस्पी आत्मप्रचार में ज्यादा दिखाई देने लगी. गैर साहित्यिक उद्देश्यों वाले ये लोग किसी सार्थक संवाद के लिए भी तैयार नहीं दिखाई दे रहे थे. लिहाजा सन् १९६५ में 'भाषा' में प्रकाशित अपने अंतिम लेख में व्यावसायिकता के खतरे को रेखांकित कर वे मौन साध गये...या कहें कि कविता की आलोचना में लौट गये. व्यावसायिकता के बढ़ते दबाव से नये सृजन की संभावनाओं को वे न केवल खत्म होता देख रहे थे वरन् कहीं शिवदान सिंह चौहान के 'आलोचना-३१' के उस संपादकीय के प्रति सहमत भी थे जिसमें कहा गया था...'' राकेश, कमलेश्वर या राजेंद्र यादव ने जो 'अच्छी' कहानियां लिखी हैं, वे 'नयी' से अधिक फार्मूलाबद्ध कहानियां ही हैं, जो नये मसनूई परिभाषा सूत्रों के अनुसार लिखी गयी हैं.''

हाल के कुछ वर्षों में साक्षात्कारों के माध्यम से (जिसकी शुरूआत १९८४ के नव वर्षांक 'सारिका' से ही हुई थी) भी नामवर सिंह के आलोचक की वही चिंताएं मुखरित हुई हैं. उपरोक्त व्यावसायिकता उन्हें अधिक खतरनाक इसलिए भी लगी कि वह प्रगतिशीलता का मुखौटा लेकर सामने आयी थी. व्यावसायिकता की यह चोट महज कहानी पर ही नहीं, वे आलोचना पर भी करते हैं...और वह है विश्वविद्यालयों में कहानी संबंधी शोध प्रबंधों की बाढ़.

बहरहाल, हमारी चिंता का विषय यह है कि एक व्यापक समीक्षा पद्धति के निर्माण की दिशा में नामवरजी ने जिस गंभीरता के साथ शुरूआत की थी वह बावजूद बेहतर कहानी लेखन के अब तक वहीं की वहीं कदमताल क्यों कर रही है? इस दिशा में सार्थक कदम उठाने के संकल्प के साथ-साथ सारिका-परिवार की ओर से नामवरजी के शतायु होने की शुभकामनाएं. हालांकि 'सारिका' इस विश्वास और आस्था के साथ चलती है कि नामवरजी को आयु की किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता. उन्हें अगर बांधा जा सका तो ज्ञान की सीमाओं में ही संभवतः बांधा जा सके.

'सारिका' अपने अगस्त और सितंबर अंकों में नामवरजी पर विशेष लेख और परिचर्चा प्रकाशित करेगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक विषकन्याएं

भगवतीशरण मिश्र

पौराणिक विषकन्याओं को उन आधुनिक बालाओं की श्रेणी से कहीं बहुत ऊपर रखा जा सकता है जो अपने सौंदर्य-जनित विष से अधिक कृत्रिम विष का सहारा ले अपने आखेट को विवश और कभी-कभी बेजान भी कर देती हैं. हां सौंदर्य भी आवश्यकता से अधिक मादक हो तो वह विष की तरह ही मारक बन बैठता है और उसका मारा पानी भी नहीं मांगता. पौराणिक विषकन्याओं ने, दूसरे शब्दों में कहें तो अप्सराओं ने, मर्त्यलोक के अनेक राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों और यहां तक कि मनुष्यों और दैत्यों को भी अपनी अनुपम रूप-शिखा की ज्वाला में दग्ध कर उनका सर्वनाश किया है, उन्हें लक्ष्य-च्युत और पथ भ्रष्ट किया है, प्राणों की बाजी लगा देने को भी बाध्य किया है. ऐसी स्वर्ग-सुंदरियों में जो सर्वाधिक चर्चा का विषय रही हैं, वे हैं, उर्वशी, मेनका, तिलोत्तमा आदि.

उर्वशी में इन सबों में सर्वाधिक भूमिका निभायी है और उसके शिकार न केवल संख्या में अधिक हुए हैं अपितु काल-विस्तार की दृष्टि से भी यह प्रथम स्थान की अधिकारिणी बनती हैं.

उर्वशी का उल्लेख वेदों से ही मिलना आरंभ होता है. वेदों में भी सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद में ही इस रूपसी का पर्याप्त उल्लेख आता है. जिस पुरुरवा को नायक बनाकर प्रसिद्ध संस्कृत कवि कालीदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' की रचना की और वर्तमान काल में स्वर्गीय रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने ख्यान काव्य-ग्रंथ 'उर्वशी' को हमारे समक्ष रखा उसी पुरुरवा और उर्वशी की प्रणयगथा ऋग्वेद में भी बीज-रूप में उपलब्ध है. वर्षों तक नृप पुरुरवा को अपने सौंदर्याग्नि में जलाकर अंततः यह छलना उस पराक्रमी को आजीवन विरह-ज्वाला में दग्ध होने को छोड़ बड़ी निर्ममता से अपने मूल स्थान स्वर्ग को लौट जाती है. यहां इसकी स्वार्थपरता और निमर्मता देखने ही योग्य है. 'विक्रमोर्वशीयम्' की कथा के अनुसार प्रतापी पुरुरवा ने इस अप्सरा की उस समय रक्षा की थी जब कुबेर के महल से लौटते समय वह राक्षसों द्वारा अपहृत कर ली गयी थी. इस उपकार का बदला इस स्वार्थपरायिणी अप्सरा ने पुरुरवा को अपने सौंदर्य-विष में तिल-तिल कर जलने के लिए छोड़ कर दिया. यह सही है कि अपने इस मर्त्य प्रेमी के साथ बहुत काल तक रही किंतु यह मात्र उस शाप की अवधि को काटने भर के लिए था जिससेवह अवधि को काटने भर के लिए था जिससे वह ग्रस्त हो गई थी.शापावधि की समाप्ति के साथ ही वह अपने प्रेमी को बिलखते छोड़ फुर्र हो गयी थी. बहुत-अनुनय-विनय के पश्चात् वह विरह-विदग्ध राजा के पास लौटी भी तो केवल अल्प अवधि के लिए और 'आयुष्' नामक एक पुत्र का भार राजा पर लाद उसने जो इंद्रलोक की ओर मुख किया तो फिर इस मिट्टी की ओर पलट कर देखा भी नहीं.

पुरुरवा उर्वशी का प्रथम शिकार नहीं था. मृत्युलोक के इस प्राणी को अपने सौंदर्य से अभिभूत और परास्त करने के पूर्व इसने देवों पर भी अपने अस्त्र को आजमाया था और इसकी रूप-शिखा के जो प्रथम पतंग बने थे वे थे 'मित्र' और 'वरुण'. इसकी सुंदरता का आलम यह था कि इस पर दृष्टि पड़ते ही इन द्वि-देवों का तेज स्खलित हो गया. इसी तेज के क्रमशः ऋषि अगस्त्य और ब्रह्म्मर्षि वशिष्ठ का जन्म हुआ. पर 'मित्र' और 'वरुण' मानने वाले कब थे? अपने को पतित करने वाली इस रूप-गर्विता को उन्होंने स्वर्गिक सुख से वंचित कर, दीर्घकाल के लिए मृत्युलोक का जीवन जीने का अभिशाप दे दिया और अपने इसी अभिशप्त जीवन को इसने पुरुरवा के साथ जिया.

उर्वशी के जन्म की कहानी भी कम मनोरंजक नहीं थी. एक बार 'नारायण' ऋषि घोर तपस्या में रत हुए. सदा से शंकालु और भयग्रस्त देवाधिदेव इंद्र को लगा कि अपने तप-बल के आधार पर 'नारायण' उनके सिंहासन को ही हड़पना चाहते हैं. इंद्र ने अपना सदा का आजमाया हथकंडा अपनाया और कई अप्सराओं को ऋषि नारायण के तप को भंग करने-हेतु भेजा. पर इस तपोपूत ऋषि पर इस 'इन्द्रजाल' का क्या प्रभाव पड़ता? विभिन्न अदाओं में भटकती इन अप्सराओं को मुंह चिढ़ाने के लिए उन्होंने अपने उरु (जंघे) को ठोंका और उससे पैदा हो आयी एक ऐसी रूपमती जिसके रूप के सामने वहां उपस्थित सभी अप्सराओं का रूप पानी भरे. सब अपना-सा मुंह लिए लौट गयीं पर इंद्र को एक लाभ अवश्य हुआ. रूप के उनके तरकश में उर्वशी के रूप में एक ऐसा तीर आ गया था जो हर निशाने पर अचूक बैठने वाला था. 'नारायण' के उरु से उत्पन्न उर्वशी तो उनकी पुत्री ही हुई, उनका वह क्या बिगाड़ती पर बहुतों को धर्म-च्युत करने में उसने अपने संरक्षक देवराज इंद्र की अच्छी सहायता की.

एक बार इस रूपवती का मन आ गया पृथा-पुत्र अर्जुन पर. महाभारत युद्ध के पूर्व दिव्यास्त्रों से समृद्र होने के लिए पार्थ पहुंचे हिमवान पर और तपस्या पूर्ण होने पर पिता इंद्र के राज्य का भ्रमण करने पहुंच गए इंद्रलोक. सुगठित देहयष्टि और तपस्या से दीप्त हो आये आनन वाले अर्जुन को देख कर वह उन पर बुरी तरह आसक्त हो आयी. सदाचारी पांडु-पुत्र ने उसके प्रणय-निवेदन को निष्ठुरता से ठुकरा दिया तो उसने उन्हें आजीवन नपुंसकत्व का ही श्राप दे दिया. विष-कन्या के विष के इस भीष्ण प्रभाव से चिंतित पांडुनंदन ने अपने पिता इंद्र को सारी बातें बता दीं. देवराज के बीच-बचाव से बात बहुत कुछ बनी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी तरह नहीं. पूरे वर्ष भर का नपुंसकत्व लेकर ही अर्जुन को वापस लौटना पड़ा. इधर द्रुपद-नंदिनी द्रौपदी को इस विष-प्रभाव का ज्ञान हुआ तो उसने सिर पीट लिया. खैर, बात वर्ष भर की ही थी अतः बहुत खलनें वाली सिद्ध नहीं हुई.

उर्वशी के पश्चात् अप्सराओं से सबसे अधिक विषैली थी मेनका. ऊपर से जितनी सुंदर, भीतर से उतनी ही कुरूप. इस विष-कन्या के अंदर भरे जहर का अंदाज इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि अपनी औरस संतान को भी निस्सहाय छोड़ वह स्वर्ग को भाग खड़ी हुई. यह संतान शकुंतला जिसे शायद अपनी मां के पाप के फलस्वरूप ही अपने ही पति दुष्यंत के दरबार में अपमानित होना पड़ा और चिरकाल तक अरण्य में परित्यक्ता का जीवन जीना पड़ा.

मेनका का यह शिकार-कोई साधारण योगी, यति अथवा तापस नहीं था. ये थे वशिष्ठ को भी मात देने वाले ऋषि राजर्षि और फिर ब्रहम्मर्षि पद तक को प्राप्त करनेवाले और अपने तपोबल से एक अलग सृष्टि की ही रचना कर देने वाले तपोमूर्ति साक्षात विश्वामित्र. हां, वही विश्वामित्र जिन्होंने दशरथ से राम, लक्ष्मण की याचना की थी और जानकी-स्वयंवर तक जिन्हें पहुंचाकर भारतीय इतिहास और भूगोल दोनों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का सुधार बने थे.

विश्वामित्र जब घोर तप में लीन थे तो सदा की तरह सुरेंद्र का मन आशंकित हो गया—कहीं इस ढोंगी तपस्वी का ध्यान इंद्रलोक के वैभव पर ही नहीं हो और

तब भेज दिया उन्होंने मेनका को. समय भी अच्छा चुना—मधुमास का, जब चर-अचर सभी मार (कामदेव) की दुस्सह मार से व्यग्र रहते हैं

मेनका ने नुपुरों की ध्वनि की, कोकिल कंठ से किसी प्रणय-गीत का गान आरंभ किया और वर्षों से मुंदी विश्वामित्र की आंखें उन्मिलित हो आयीं. ऋषि ने आंखों को कई बार मूंदा और खोला, मल-मलकर दृष्टि साफ की पर बात वहीं की

वही—सामने खड़ी थी रूप की एक साक्षात् प्रतिभा. उन्होंने तप से क्षीण हो आये बाहुओं पर चिकोटी भी काटी—नहीं यह स्वप्न नहीं, सत्य था. वे जाग्रतावस्था में ही देख रहे थे रूप के एक ऐसे विग्रह को जिसके पासंग के बराबर भी रूप का निर्माण वे अपनी स्वनिर्मित सृष्टि में भी नहीं कर सकते थे. परिणाम वही हुआ जो होना था—तपस्वी का तप भंग हुआ. वर्षों की साधना धरी रह गयी. और होश आया तो वह एक अवैध कन्या के पिता बन चुके थे और उनको मोहजाल में फंसाने वाली छलना मेनका गायब हो चुकी थी. अब लाख सिर पीटें तो पीटें, रूप का विष सिर चढ़ कर बोल चुका था. शकुंतला पैदा हो चुकी थी.

रंभा, चित्रलेखा आदि कई अन्य अप्सराएं इंद्र का मनोरंजन करने के साथ-साथ कई छोटे-मोटे तपस्वियों-साधना से विचलित करती रहीं पर कमाल किया तिलोत्तमा ने. जैसे उर्वशी मूलतः इंद्र-दरबार की नहीं थी, उसी तरह तिलोत्तमा का उस समय तक कुछ अता-पता नहीं था जब तक एक भयानक देवासुर-संग्राम में सुंद और उपसुंद नामक दो राक्षस बंधुओं ने देवताओं की ऐसी की तैसी नहीं कर दी.

ब्रहमा से वरदान प्राप्त सुंद और उपसंद किसी भी देवता के मारे नहीं मर सकते थे. उन दोनों दैत्यों ने जब देवेंद्र की गद्दी तक हथिया ली तो सभी देवता दौड़े-दौड़े प्रजापति के पास पहुंचे, "महाराज! आपने तो हमें कहीं का नहीं छोड़ा."

"क्यों?" ब्रहमा ने अनजान बनते हुए पूछा.

"राक्षसों ने नायकों सुंद और उपसुंद को आपने अमर बना कर हम अमरों की मिट्टी ही पलीद कर ली. आखिर हम भी तो आप ही की संतान हैं?"

"राक्षस अमर कैसे हो सकते हैं? अमर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai

तो केवल देवलोक-वासी हैं.'' ब्रह्मा ने आश्चर्य से कहा.

''जब वे किसी के भी मारे नहीं मर सकते हैं तो अमर तो हुए ही.'' देवेंद ने निवेदित किया, ''और यह हुआ है आप ही के वरदान के कारण.''

प्रजापति असमंजस में पड़े फिर कुछ सोच कर बोले, ''वरदान की बात आपलोगों को ठीक से ज्ञात नहीं. आखिर दैत्य आपको सही बात बताते भी कैसे?''

''तो सही वरदान क्या है?'' देवताओं की जान में जान आयी.

''सही वरदान यह है कि वे किसी अन्य के मारे तो नहीं मर सकते पर एक-दूसरे के मारे अवश्य मर सकते हैं.''

''अर्थात् अगर वे आपस में मरने-मारने पर उतर आयें तो अवश्य मर बैठेंगे?'' इंद्र ने पूछा.

''हां!'' प्रजापति ने सम्पुष्टि की.

''पर यह संभव कैसे है?'' देवेन्द्र ने शंका व्यक्त की, ''वे तो दूध-पानी की तरह मिले हुए हैं. एक दूसरे पर जान छिड़कते हैं. वे क्यों लड़ मरने लगे? अब हमारे दुर्दिन आ गए. देवता यों ही भटकते रहेंगे. उन्हें वरदान देने के पहले आपने कुछ तो सोचा होता.''

देवेंद्र की उलाहना पर प्रजापति चिंतित हुए और बोले, ''चिंता की कोई बात नहीं.''

''कैसे?''

''दैत्यों की तपस्या का फल समाप्त हुआ. उनके दुराचार का परिणाम अब सामने आयेगा. मुझे उपाय सूझ गया है.''

''कौन-सा उपाय?'' देवेंद्र हर्ष से भर कर बोले.

''विश्वाकर्मा को बुलाओ.'' ब्रह्मा ने आज्ञा दी.

''संसार की सारी सुंदरतम वस्तुओं से तिल-तिल भर सौंदर्य निकाल कर एक स्त्री-मूर्ति गढ़ो.'' विश्वकर्मा के आने पर प्रजापति ने सुझाया.

विश्वकर्मा ने ऐसा ही किया और ब्रह्मांड की सर्वश्रेष्ठ सुंदर मूर्ति बन कर खड़ी हो गयी. ब्रह्मा ने उसमें प्राण फूंके और इस जीती-जागती सुंदरतम नारी का नाम पड़ा तिलोत्तमा.

तिलोत्तमा का सौंदर्य इतना मारक सिद्ध हुआ कि दो शरीर पर एक प्राण सुंद और उपसुंद उसके लिए एक दूसरे पर टूट पड़े और इस संघर्ष में अपने प्राणों से हाथ धो बैठे. □

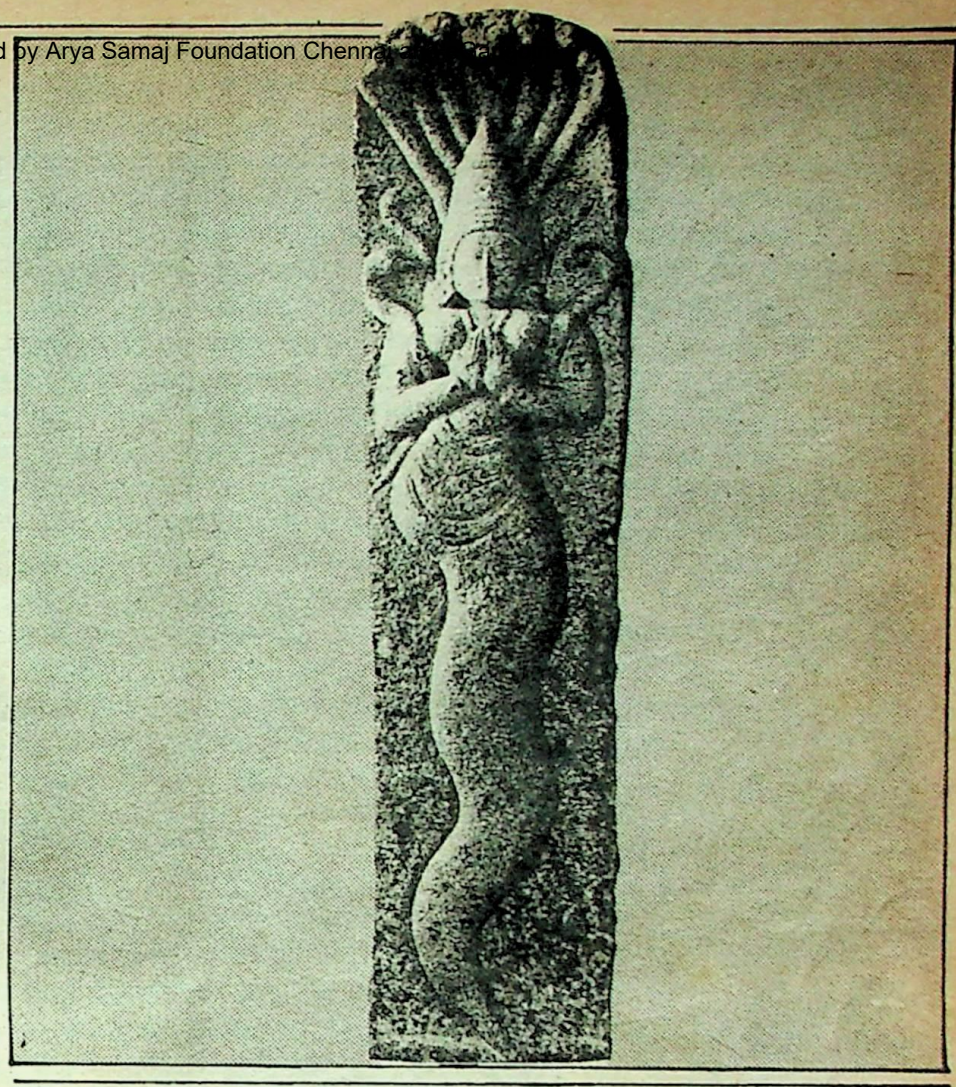

रूप के अमृत में घुला जहर

कृष्णदत्त पालीवाल

प्राचीन भारत के इतिहास, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, कामशास्त्र के लोकानुभव कई अर्थों और संदर्भों में एक जबर्दस्त चुनौती रहे हैं. इन अनुभवों पर समाज के राजनीतिक आर्थिक पक्षों की मोटी पर्तें जमीं हैं. इन पर्तों को कुरेद कर उनके भीतरी रहस्य को थाहने की आकांक्षा आज के मनुष्य में सहज ही है. फिर प्राचीन भारत में विषकन्या का प्रयोग तो एक मंत्रमुग्ध करने वाली चुनौती है और यह भारतीय बुद्धिजीवी की उस बुनियादी समस्या से भी जुड़ी है जिसमें नारी के भोगवादी समाजशास्त्र के नए अर्थ-दीपक झिलमिलाते हैं. राजाओं और रईसों के सामंतवादी विकृतवाद का मस्तिष्क, अर्थतंत्र, सामाजिक रूपतंत्र, कामशास्त्र, कलाबोध शास्त्र, रसायन शास्त्र और मानव मनोविज्ञान के पक्ष का यह वह हाशिया है जो मिथकीय अर्थ संभावनाओं को उजागर करता है. विषकन्या एक ऐसा मिथकीय बिंब है जिसमें नारी देह शास्त्र का पूरा इतिहास भूगोल निहित है.

पुरुष मन में नारी रूप सौंदर्य के प्रति जो अनादि आकर्षण रहा है उसका विकृत उपयोग या शत्रु को मारने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक उपयोग इस विषकन्या प्रकरण के भीतर से दमक-चमक जाता है. कुंवारी कन्या को विषकन्या बना दिए जाने पर उसका जीवन कितना भीषण, दुर्वह, नारकीय विडंबना से युक्त हो जाता था और वे राज़नीतिक इच्छा की क्रीड़ा-कंचुक मात्र रह जाती थीं. राजा-रईस अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इन विषकन्याओं का शत्रु पर उपयोग करते थे.

यह विषकन्या प्रकरण सामंतवादी समाज में नारी शोषण की व्यथा कथा का घृणित अध्याय है. आज भी पुरुष समाज के भोगवादी अर्थशास्त्र ने नारी-शोषण के जो नए तरीके ईजाद किए हैं और... प्राचीन विषकन्या को नई शक्लों में रूपांतरित कर दिया है. उन्हें अंतःपुर के विलासी प्रसादों से निकाल कर आलीशान होटलों की वैभव चादर में लपेट दिया गया है. इस नारी देह का धड़ल्ले से राजनीतिक कार्यों में प्रयोग चलता है. आधुनिक अमानवीय तंत्र का यह नागिन दांव आज भी मौजूद है. इसलिए विषकन्याओं का प्रयोग आज भी हो रहा है. कोई भी आधुनिक 'कीलर कांड' इस सत्य की गवाही दे सकता है.

विषकन्या प्रकरण उठाते समय यह जान लेना आवश्यक है कि इन आचरणों के तीन पहलू हैं (1) इनके पीछे का देह शास्त्र-रतिशास्त्र (2) राजनीतिक इच्छा की सिद्धि (3) उनकी ऐतिहासिक परंपरा. समाजशास्त्र की यह धारण रही है कि समाज में सामाजिक रूप से प्रचलित प्रत्येक के पीछे एक प्रकार का राजनीतिक आर्थिक तंत्र सक्रिय होता है. इसके तत्ववाद को कार्य-कारक में समझना जरूरी होता है. किंतु यह समझ राजनीतिक इच्छाओं के धरती आकाश जाल को सूक्ष्मता से समझने पर पैदा होती है. इसीलिए ऐतिहासिक परंपरा के स्रोतों की ओर लाजिमी तौर पर जाना पड़ता है. इसी से स्पष्ट होता है कि नारी देह व्यापार की विलासिता और रूप-सौंदर्य की स्वस्थ दृष्टि में आकाश-पाताल का अंतर है. थोथी विलासिता की केवल भूखी-नंगी बुभुक्षा का रूप है और इसी भूख में विषकन्या प्राण ले जाती थी. विषकन्या जिसके संपर्क और संभोग से पुरुष के प्राण पखेरू उड़ जाते थे. कहना न होगा कि भारतीय समाज में यह विषकन्या-परंपरा चाणक्यबुद्धि की अनोखी उपज है. अर्थशास्त्र का लेखक कौटिल्य या विष्णु गुप्त इसी चाणक्य के अन्य नाम हैं.

राज-रईस विषकन्या के लिए ऐसी कन्या को चुनते थे जो अनुपम सुंदरी हो. जिसे मदन देवता की शक्ति प्राप्त हो. महामाया के मृण्मय विलास में जो निपुण हो सके. इन कन्याओं को काव्य और कलाओं में पारंगत किया जाता था ताकि वे पुरुष को हाव-भाव-हेला चेष्ठा, उक्ति, नृत्य, गीत, वाद्य आदि से अपनी ओर खींच सकें. बौद्धकाल के पूर्व ही गणिकाओं-नर्तकियों-अप्सराओं के लिए कला-मर्मज्ञता आवश्यक गुण मानी जाती थी. 'ललित विस्तर' ग्रंथ में (पृष्ठ 497) चौंसठ कामकलाओं का उल्लेख है. कहीं-कहीं जैन ग्रंथों में इनकी संख्या बहत्तर है. किंतु बौद्ध और जैन दोनों के ग्रंथों में 64 काम कलाओं को स्थान मिला है और विशेष बात यह है कि इन्हें 64 महिला गुण कहा गया है. कालिकापुराण में कन्या संध्या से कला की उत्पत्ति को जोड़ा गया है. कला का अर्थ है चतुराई या कौशल. विषकन्या व्याकरण, छंद, ज्योति, न्याय, वैद्यक, राजनीति कला, कामकला में प्रवीण होती थी. काव्य, नाटक आख्यायिका, समस्यापूर्ति, प्रहेलिका पर उसका अधिकार होता था. रतिमस्त नारी का रूपधरण करना, अंग-अंग का श्रृंगार करना, कपड़ा रंगना, चोली बांधना, सेज बिछाने की कला उसे सिखाई जाती थी. रत्न और मणियों को पहचानना, घोड़ा, हाथी पर सवारी करना, जल विहार करना, तीतर-बटेर लड़ाना तोता-मैना पढ़ाना, जुआ खेलना, शुभाशुभ के शकुनशास्त्र का ज्ञान उसे होता था. दर्शन, गणित, ललित कलाएं (चित्र, मूर्ति, स्थापत्य, संगीत, काव्य), युद्ध आदि की कलाओं में उसे दक्ष किया जाता था. इन चौंसठ कोयल-नारी कलाओं से विष कन्याएं पुरुष को आकृष्ट करती थीं. ये ऐसी रतिमस्ता, रूप सौंदर्य-यौवना, कुंचित अलक होतीं थीं कि इनके काम-बाण से बचना कठिन होता था. पुरुष मनोविज्ञान को समझते हुए वे उसकी इन कमजोरी को निशाना बनाती थीं. वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में स्त्री-प्रसादन की इन कलाओं का वर्णन किया है. ध्यान देने की बात यह है कि वात्स्यायन 'कामसूत्र' में कामशास्त्रीय कलाओं के साथ अन्य सुकुमार कलाओं की भी चर्चा बराबर करते हैं. काव्यशास्त्रीय परंपरा के आचार्य क्षेमेंद्र 'कला विलास' नाम की छोटी-सी पुस्तक में वेश्याओं की 64 कलाओं का गहन विश्लेषण करते हैं. वे कहते हैं कि ये कलाएं धनापहरण की कलाएं हैं. यहां कला का सामान्य अर्थ है स्त्री आकर्षण, वशीकरण, विलास, रति-उन्मत्ता और रति देह दाहन.

आज का राजनीतिक, रईस, सामंत कला विदग्ध हो यह आवश्यक नहीं है वह शुद्ध धन से देह खरीद कर विलास करता है. पर प्राचीन भारत में ऐसी बात नहीं थी. प्राचीन भारत का राजा—रईस, श्रीमान कला-विद्या के पीछे न केवल धन लुटाता था बल्कि स्वयं भी उनमें प्रवृत्त रहता था. वह शिल्पियों कलाकारों का पोषण करता था. वह आभिजात्य था और नागरक सुबह से शाम तक कलाओं का पोषण सेवन अर्जन करता था. इसलिए गणिकाएं और विषकन्याएं इन्हें अपने रूप कला के इंद्रजाल में फांस कर मार डालती थीं. दातुन बनाने तक की कला ऐसी कन्याएं सीखतीं थीं. बराहमिहिराचार्य ने इनकी विस्तार से चर्चा की है कि कैसे ये सुगंधित दातुन बनाती थीं. यह दातुन पेड़ से तोड़ी ताजी दातुन नहीं होती थी, वह सात दिन तक सुगंधित द्रव्यों और औषधियों से सुवासित की जाती थी. गोमूत्र में हर्रे का चर्ण मिला होता था और इसके बाद इलाचयी, तेजपात, दालचीनी, मधु मारिच से सुगंधित की जाती थी. कामसूत्र साक्षी है कि दातुन के बाद अनुलेपन होता था और चंदन का अनुलेपन चलता था. स्त्रियां सुगंधित केश बनाकर जीवन पुष्प में भ्रमर-भ्रमरी की भांति केलि करतीं थी. अधर और नाखून की रंगाई चलती थी. अलक्तक चलता था.तांबूल सेवन की विधि रहती थी. माघकवि कहते हैं कि दीपशिखा सी देह, स्वच्छ धुले अंग, तांबूल से जगमगाते होंठ और सांस उड़ने वाली महीन साड़ी इन विलासिनी स्त्रियों का श्रृंगार होता था. पर विषकन्याएं, विषकुंभपयोगमुखम की कहावत चरितार्थ करती थीं. वे न किसी पुरुष को अपना परिचय दे सकती थीं न अपना यौवन-रूप भोग सकती थीं न कला ज्ञान का आदर-सम्मान पा सकतीं थी. वस्तुतः वे राजा की राजनीतिक इच्छाओं का खिलौना होती थीं. जिन्हें गुप्त रखा जाता था और अवसर पर उनका उपयोग किया जाता था.

रूपवती कन्याओं को बचपन से ही थोड़ा-थोड़ा विष खिलाकर पाला जाता था. अनेक प्रकार के विषों को इनके शरीर में प्रविष्ट करा दिया जाता था. इस विष के प्रभाव से इनका शरीर ऐसा हो जाता था कि जो इनके साथ संभोग करता था, इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

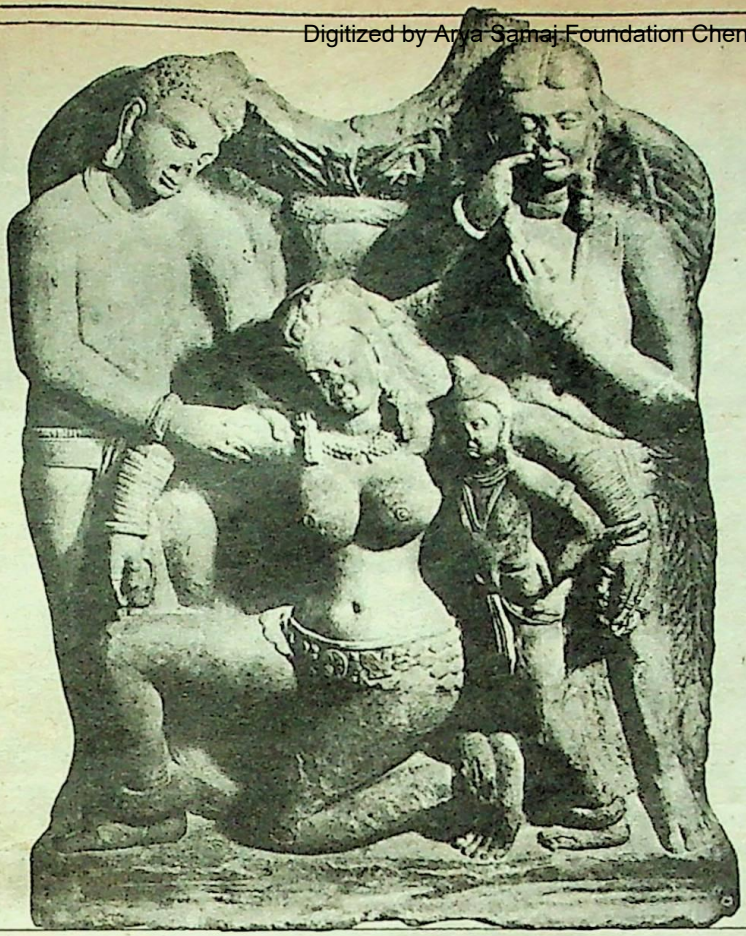

शिला पर उत्कीर्ण शूद्रक के मृच्छकटिकम् की मदमत्त-नायिका

पान की हुई मदिरा पीता था, इनका अधर-चुंबन करता था या नखदंश सहता था वह मर जाता था. इसीलिए जब राजा अपने किसी शत्रु को गुप्त रूप से मारना चाहता था कि वह इस प्रकार की विषकन्या उसके पास भेजता था. संस्कृत के राजनीतिक नाटक "मुद्राराक्षस" (42/116) (नाटककार विशाखदत्त) और कथा सारित्सागर (19/81) में विषपान द्वारा तैयार की गयी सुंदरी कन्या का स्पष्ट उल्लेख मिलता है. 'मुद्राराक्षस' नाटक में मंत्री राक्षस ने जो विषकन्या प्रस्तुत की है. उससे चाणक्य ने पर्वतक का संहार किया है.

इन विषकन्याओं के आतंक से समाज त्रस्त था. पर-भोगी पुरुषों ने इस जहर का काट निकाल लिया था. ये पुरुष 'विषघ्न' कहलाते थे और प्रतिदिन इस प्रकार के विष का औषधि रूप में सेवन करते थे. यदि किसी विषकन्या के द्वारा इनके शरीर में विष प्रविष्ट हो जाए तो किसी भी प्रकार से हानिकारक प्रभाव इनके शरीर पर न पहुंचता था. विषकन्याओं के प्रभाव को नष्ट करने के लिए जब यह तरीका राजपुरुषों रईसों ने निकाल लिया तो विषकन्या-परंपरा शक्तिहीन चली गयी तो समाज में स्मृतिशेष रूप ही उसका ज्यादातर रह गया.

शैव, शाक्त, तांत्रिक आदि वामाचारियों में आकर नारी को नयी शक्ति मिलती है. उसका विषकन्या रूप गायब हो जाता है.तांत्रिक साफ कह रहे थे कि नारी योनि में ही स्वर्ण का निवास है—शरीर ही कैलाश पर्वत है उसके अधरपान में ही अमृत का स्वाद है. स्वर्ण ऊपर नहीं इसी लोक में है और वह नारी रूप में है. ऐसा प्रतीत होता है कि इन वामाचारियों ने अपनी गुप्त साधना से सामंतवादी विषकन्या जाल से समाजको मुक्त किया. पुरुष या भुजंग को नारी या भुजगिनी के सहवास से स्वर्ण की प्राप्ति हो जाती है यह दर्शन प्रकृति-पुरुष, शिव ललिता, नर-नारी का सहज दर्शन बन गया. हालांकि वैष्णव-परंपरा का पवित्रतावादी तंत्र इस वामाचारी पद्धति का विरोध करता रहा पर वैष्णव अपने विरोध में सफल न हो सके. अभिनवाचार्य ने 'तंत्रलोक' में प्रकृति, नारीत्व की शक्ति का निरूपण करते हुए कह दिया कि बिना शक्ति के शिव शव हैं. सत्य बात यह है कि इस दर्शन की वैचारिक तत्ववादी अखंडता के मूलाधार को बार-बार खंडित करने का प्रयास हुआ पर उसे खंडित नहीं किया जा सका.

विषकन्या शब्द का व्यंजक अर्थ लोक में ज्यादा व्याप्त रहा. विष के पर्याय दो हैं—गरल तथा क्ष्वेड़. इसके नौ भेद हैं—वत्सनाभ, हारिद्र, शव तूक, प्रदीपन सौराष्ट्रिक, श्रृंगिक, कालकूट, हलाहल और ब्रहमपुत्र. आयुर्वेद शास्त्र की मान्यता है कि वैसे तो विष घातक है पर औषधि के रूप में थोड़ा-थोड़ा नित्य प्रति सेवन करने पर बड़ा उपकारी है. चाणक्य ने कई प्रकार के विष गिनाएं हैं— इनमें वृद्ध की तरुण स्त्री को भी विष कहा गया है. ऐतरेय ब्राहमण में लिखा है कि समुद्र मंथन से विष भी निकला था. इस रत्न को पान कर शिव नीलकंठ हुए. किंतु विषकन्या का विष उसके साथ संभोग से प्राणहरण का अर्थ ध्वनति करता रहा है. विषकन्याओं को लेकर ऐसी दंतकथाएं लोक में फैलती रही हैं कि उसकी भयानकता से प्राण कांप गये हैं.

राम कुमार वर्मा ने 'कौमुदी महोत्सव' नाटक में विषकन्या प्रयोग की बा नए ढंग से उठायी है किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि विषकन्या का प्रयोग इतिहास का सत्य कम है. मिथकीय कल्पना का उछाल जाता है. शायद यही कारण है कि जयशंकर प्रसाद जैसा समर्थ रचनाकार अपने नाटकों में विषकन्या प्रकरण पर एकदम मौन है.

प्रश्न उठता है कि विषकन्या प्रकरण की आधुनिक सार्थकता क्या है. इसका उत्तर है कि उस राजनीतिक परिस्थिति का परिदृश्य ही बदल गया है. जिसमें उनका उपयोग होता था. प्राचीन भारतीय सामंतवाद को रौंदकर जो नया सामंतवाद ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों ने विकसित किया वह एक नये बुद्धिजाल का करिश्मा है. राजनीतिक प्रयोजनों की सिद्धि के लिए नारी का उपयोग आज भी नये रंगों-ढंगों वृत्तियों से हो रहा है. किंतु इस कार्य का रूप इतना बदल गया है कि उसके मूल को पकड़ पाना कठिन है. आज विषकन्या प्रयोग की बात हमारी स्मृति में सुरक्षित इतिहास का अंग भर है. जिसमें पुरुष प्रधान समाज की बर्बरता, अमानवीय तथा क्रूरता की कहानी निहित है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलिप्त नायिका

अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अर्नशा एकबारगी सुन्न होकर रह गये थे. मूक-स्तब्ध. इस सदमे के लिए वह कतई तैयार नं थे. व्हाइट हाउस में बिताये पांच वर्षों में भी उन्होंने ऐसा गहन संकट नहीं झेला था. जैसा वे इस समय झेल रहे थे. उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे उससे कैसे उबर पायेंगे.

वे अपनी भतीजी कैरोल के साथ यूरोप की यात्रा पर आये हुए थे. लंदन में उनकी भेंट हुई एक नामी पुस्तक-प्रकाशक तथा ब्रितानी मंत्रिमंडल के एक सदस्य सर ऑस्टिन ओर्म्सबाय से, जो उनके पुराने परिचित थे. इस भेंट के दौरान, सर ऑस्टिन ने उन्हें जो सूचना दी, वह उनकी परेशानी का कारण बनी हुयी थी.

यह सूचना जर्मनी के एक चोटी के उद्योगपति डाक्टर बान गोयरलिज से संबंधित थी.

डॉक्टर गोयरलिज पर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात एक युद्ध-अपराधी के रूप में अंतरराष्ट्रीय आयोग द्वारा मुकदमा चलाया गया था. इस आयोग ने उसे एक गंभीर युद्धअपराधी का दोषी पाया था. इस आयोग के सदस्यों में अमरीका, रूस और ब्रिटेन के कुशल न्यायाधीश थे. आयोग ने डॉक्टर गोयरलिज को 20 वर्ष के कारावास का दंड प्रदान किया था. डाक्टर गोयरलिज ने अपने को निर्दोष साबित करने के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये थे, लेकिन आयोग उन प्रमाणों से प्रभावित नहीं हुआ. इस पर डाक्टर गोयरलिज ने, जो क्रूप के बाद जर्मनी के सबसे बड़े उद्योगपति माने जाते थे, अमरीका, रूस और ब्रिटेन के राजप्रमुखों से क्षमादान की अपील की थी, इस आधार पर कि उसके जेल चले जाने पर उसका विशाल उद्योग-समूह चौपट हो जायेगा. जिससे लाखों लोग बेकार हो जायेंगे. और विश्व उद्योग को भी भारी धक्का पहुंचेगा.

अर्नशा उन दिनों अमरीका के राष्ट्रपति थे. ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने स्पष्ट कर दिया था कि ब्रिटेन का निश्चय इस संबंध में वही होगा, जो अमरीका का होगा. अर्नशा के सलाहकार डाक्टर गोयरलिज को क्षमा-दान देने के पक्ष में नहीं थे. अर्नशा चाहते तो अपने सलाहकारों की सलाह की उपेक्षा कर डा. गोयरलिज को क्षमा कर उसें जेल जाने से बचा सकते थे, लेकिन डाक्टर से पूर्व-परिचय होते हुये भी उन्होंने ऐसा नहीं किया. मगर, रूस ने डाक्टर गोयरलिज से एक गुप्त समझौता करके उसे क्षमा-दान दे दिया और अपने 'वीटो' का प्रयोग कर, उसे कारावास से मुक्त करवा दिया.

रूस से हुये गुप्त समझौते के अनुसार, डा. गोयरलिज ने रूस और पूर्व जर्मनी की औद्योगिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा दोनों देशों में बड़े-बड़े कारखाने लगाकर स्वयं अपने औद्योगिक साम्राज्य का विस्तार भी किया. अब से क्रप से आगे निकल गये थे. और तृतीय विश्व के देशों जैसे भारत, चीन, मिस्र लीबिया आदि में कारखानें लगाकर दुनिया के इने गिने धनी और प्रभावशाली लोगों में से एक बन गये थे. उनके पास अब सब कुछ था. लेकिन, अभी तक वह अपमान के उस दंश की पीड़ा को नहीं भूले थे. जो अर्नशा ने क्षमादान न देकर उन्हें पहुंचायी थी.

इस पीड़ा और अपमान का बदला उन्होंने अपने जीवन-संस्मरण लिखकर, और उसके एक अध्याय में अर्नशा की कई करतूतों का पर्दाफाश करके लिया था. एक बड़े प्रकाशक होने के नाते, सर ऑस्टिन के हाथ उस अध्याय की प्रतिलिपि लग गयी थी, और वह वही अर्नशा को दिखाने लाये थे. अर्नशा उसे देखकर पीले पड़ गये थे. एक सफल वकील होने के कारण उन्हें यह समझते देर न लगी थी कि यदि कांग्रेस का कोई सदस्य चाहे तो इन आरोपों के आधार पर आज भी उन्हें कठघरे में खड़ा करके, उन्हें महाभियोग के चक्कर में डाल सकता है. तब, उनकी जीवन-भर की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायेगी.

सर ऑस्टिन ने उन्हें सूचित किया था कि डाक्टर गोयरलिज आजकल पेरिस में हैं, जहां शीघ्र ही बड़े राष्ट्रों—अमरीका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन आदि के प्रमुखों का एक शिखर सम्मेलन होने वाला है. सर ऑस्टिन के अनुसार, डाक्टर गोयरलिज शिखर-सम्मेलन के दौरान चीन की सरकार के प्रतिनिधियों के साथ हुये एक समझौते के कागजात पर हस्ताक्षर करेंगे. इस समझौते के अनुसार डाक्टर गोयरलिज चीन में परमाणु-भट्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समेत एक परमाणु-शक्ति नगर बनायेंगे, जिसका संचालन उसके निर्माण के बाद, जर्मन वैज्ञानिकों और तकनीशियनों के हाथ में आ जायेगा. इसके अलावा, वे अपने प्रकाशक को अपने संस्मरणों की पांडुलिपि भी दे देंगे.

सर ऑस्टिन ने अर्नशा को समझाया था कि वे डाक्टर गोयरलिज से मिलकर इस संस्मरण के प्रकाशन को स्थगित करने का अनुरोध करें, या कम से कम उसे इस बात पर राजी कर लें कि प्रकाशित पुस्तक में उनके बारे में लिखा गया अध्याय नहीं रहेगा.

अर्नशा ने कहा था कि वे कोशिश करेंगे. मगर, सर ऑस्टिन के जाने के बाद वे हाथ में सिर लिये, किंकर्तव्यविमूढ़ से बैठे रहे. उनका ध्यान भंग किया उनकी भतीजी कैरोल ने. सहसा अपने कमरे से बाहर आकर उसने पूछा, "क्या हुआ अंकल? आप इतने उदास क्यों हैं?"

अर्नशा ने कोई उत्तर नहीं दिया.

कैरोल ने अपने अंकल के पास बैठकर कहा, "सर ऑस्टिन के आने से पहले तो आप बहुत खुश और नार्मल थे."

अर्नशा को कैरोल के प्रश्न अनावश्यक लग रहे थे.

कैरोल ने कहा, "आपके मित्र सर ऑस्टिन काफी दिलचस्प आदमी हैं. अंकल! आपको उनके छोटे भाई सिडनी और मेडोरा हार्ट नाम की कालगर्ल और पैडी जेनसन नाम के रंडियों के एक दलाल के उस कांड के बारे में तो पता होगा ही जिसने लोगों के मन में कुख्यात प्रोफ्यूमों कांड की याद धों पोंछकर रख दी थी."

"क्या बक रही हो, कैरोल? जबान बंद करो. सर ऑस्टिन एक प्रतिष्ठित आदमी हैं. ब्रिटेन के एक नामी मंत्री हैं. उनके भाई के बारे में कीचड़ उछालते हुए तुम्हें शर्म आनी चाहिए. इस बारे में अब कुछ भी बोलने की जरूरत नहीं है."

"आपके कहने पर मैं तो चुप हो जाऊंगी, अंकल! लेकिन, इस कांड के बारे में तो सारा ब्रिटेन जानता है. सारी दुनिया जानती है. उन करोड़ों लोगों की जबान आप कैसे बंद करेंगे?"

मेडोरा हार्ट, जिस समय कैरोल और अर्नशा के बीच यह वार्तालाप हो रहा था, उस समय पेरिस के एक सार्वजनिक उद्यान में एक बैंच में सुबह की ठंडी हवा का आनंद ले रही थी. आज उसके क्लब-क्लब-लाउत्रेक की, जहां वह अर्धनग्नावस्था में नृत्य किया करती थी, छुट्टी थी, और उसने तय किया था कि वह सारा दिन मटरगश्ती में गुजारेगी. यहां कुछ देर शीतल वायु का आनंद लेकर वह अपने मनपसंद रेस्तरां में जायेगी, वहां भरपेट मनपसंद खाना खायेगी और फिर अपने छोटे से कमरे में जाकर दिन भर सोयेगी.

तभी, उसकी नजर एक समाचारपत्र पर पड़ी, जो उसकी बैंच के नीचे पड़ा था. शायद कोई गलती से छोड़ गया था. उसने अखबार उठाया और पढ़ना शुरू किया. बल्कि, यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि उसके चित्र देखने आरंभ किये, क्योंकि पढ़ना हमेशा से उसके लिए कष्टदायक अनुभव रहा है. सारे अखबार में उन अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्तियों के चित्र छपे थे, जो शीघ्र ही आरंभ होने वाले शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए अपने-अपने देशों के प्रमुखों के साथ पेरिस आये हुये थे.

एक पृष्ठ पर एक ही व्यक्ति के अलग-अलग चित्र देखकर क्रोध से उसकी आंखें जलने लगीं. ओह! तो यह शैतान सर ऑस्टिन भी अपनी पत्नी के साथ पेरिस आया हुआ था. हरामजादा! इसी की वजह से तो वह अपना देश ब्रिटेन छोड़कर फ्रांस के नगरों की खाक छानती फिर रही है, एक लावारिस आवारा की भांति!

अतीत की कड़वी यादों ने खुशमिजाज मैडोरा हार्ट को अचानक बदमिजाज बना दिया.

पैडी जेमसन से उसकी पहली मुलाकात लंदन के सोहो स्थित

न जाने कितनों का भला करके यकायक गायब हो जानेवाली अलिप्त नायिका के माध्यम से अमरीकी समाज और राजनीति का पर्दाफाश करनेवाली एक सशक्त अमरीकी कहानी—

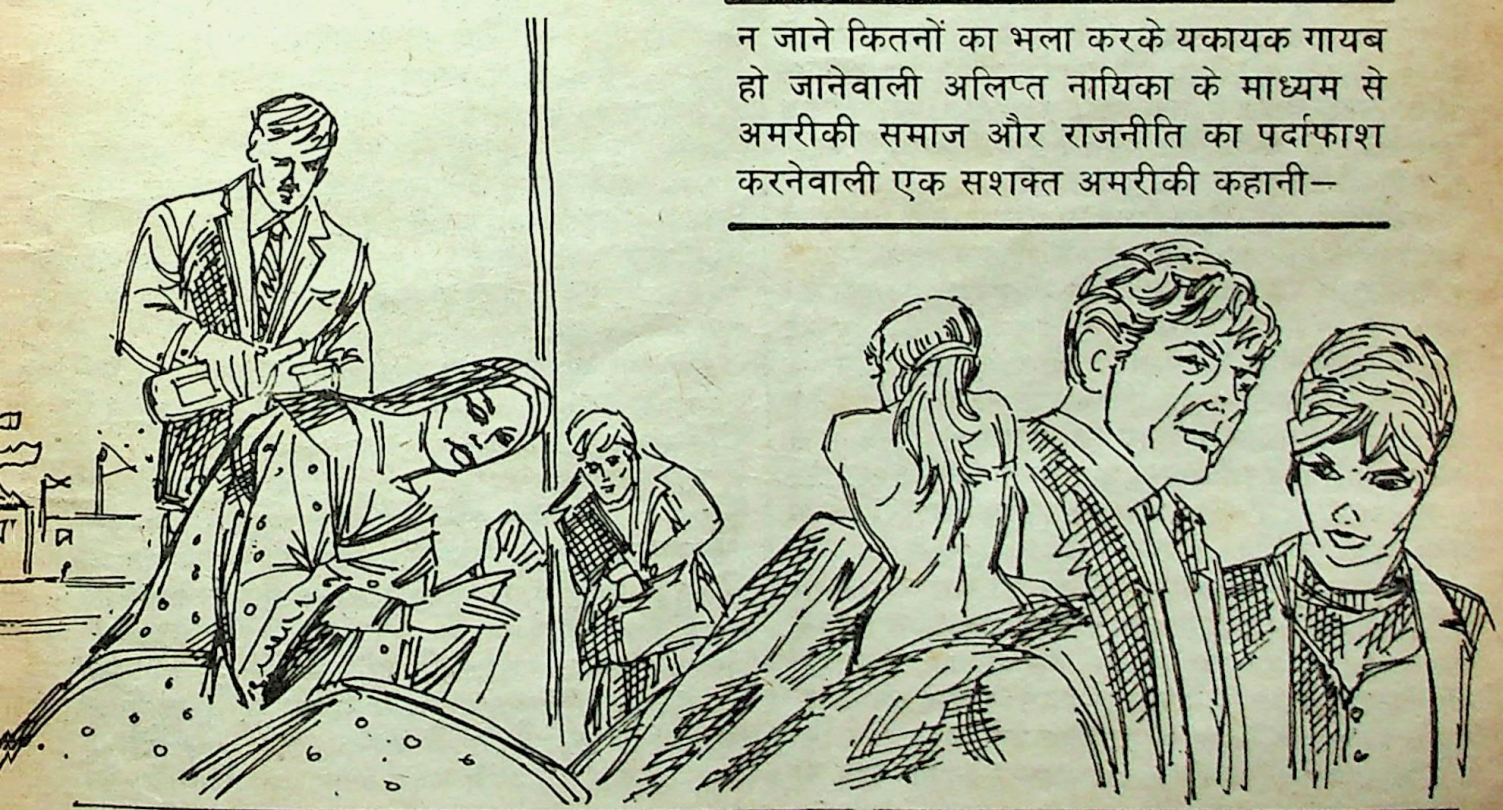

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नाइट क्लब में हुयी थी. तब उसकी आयु सत्रह साल थी, और उसे इस क्लब में कैबरे-डांसर का काम करते हुए एक महीना भी पूरा नहीं हुआ था. उसे प्रति सप्ताह नौ पाउंड वेतन मिलता था, और लगभग पांच पाउंड वह ग्राहकों से टिप में वसूल कर लेती थी. उसका खयाल था कि कुछ दिनों में वह 'इंग्लैंड की महारानी से भी ज्यादा अमीर हो जायेगी.' वह हमेशा अपनी सपनों की दुनिया में खोयी रहती थी.

लेकिन, यह पैडी जेमसन, जो देखने में एक शरीफ और भला इंसान लगता था, उससे क्या कह रहा था? वह कह रहा था कि वह अगर उसकी बात मान ले, तो एक सप्ताह में इससे तीन-चार गुना ज्यादा कमा सकती है. कैसे? उसकी सैक्रेटरी बनकर. वह एक 'डैकोरेटर' है, और लंदन के उच्च वर्ग के प्रायः सभी परिवार अपने घर की सजावट उसी से करवाते हैं. उसे एक स्मार्ट और हसीन सैक्रेटरी की जरूरत थी, जो आज मिल गयी. अगर वह हां कर दे, तो कल से ही काम शुरू कर सकती है. काम करने के लिए उसे कहीं जाना भी नहीं होगा. क्योंकि उसका (जेमसन) महल जैसा आलीशान घर ही उसका आफिस होगा, और उसी के बाथयुक्त कमरे में वह रहेगी भी. रहना-खाना मुफ्त. ऊपर से वेतन चालीस पौंड प्रति सप्ताह. काम? उसके ग्राहकों को आवश्यक जानकारी देना, उनके प्रश्नों के उत्तर देना.

'ब्लडी मेरी' के दो ही पैगों ने बेहोश हार्ट को ख्वाबों की एक बिल्कुल नयी और अनजान दुनिया में पहुंचा दिया था. उसने 'हां' कह दी. जेमसन ने उसे अपनी 'राल्स रायस' में बैठाकर, शोफर से कहा, "इनका सामान इनकी जगह से लेकर, इनके साथ जल्दी से हमारे घर आ जाना."

जेमसन जितना हंसमुख और आकर्षक था उतना ही तृप्तिदायक प्रेमी भी निकला. रात को उसके साथ उसे जो सुख मिला, वह पहले किसी पुरुष से नहीं मिला था. उसका तन और मन दोनों हमेशा-हमेशा के लिये जेमसन के हो गये.

जेमसन के पास एक महीना तक रहने के बाद भी मेडोरा हार्ट को यह ठीक से नहीं पता चल पाया कि उसका 'बास' अपना डेकोरेशन का धंधा कब, कहां और कैसे करता है? हां, एक बात उसने सही कही थी. उसके सब ग्राहक और संरक्षण उच्चवर्ग के लोग थे. जो अक्सर शनिवार के दिन, जो जेमसन की 'पार्टी का दिन' होता था, आते थे, इन लोगों में एक भारतीय राजा, एक आस्ट्रेलियाई उद्योगपति, जो अरबपति था; एक ड्यूक, ब्रितानी मंत्रिमंडल का एक सदस्य, एक अमरीकी वायुयान-निर्माता जैसे लोग रहते थे. पार्टी के दिन जेमसन न जाने कहां से उकी हमउम्र, और हसीन लड़कियां ले आता था, जो उसके साथ जेमसन के महमानों का स्वागत करती थीं. उनके साथ नंगी या अधनंगी होकर जेमसन के निजी स्विमिंग पूल में तैरती थीं, उनकी साथी बनती थीं, और उनके हाथ से जाम लेकर पीती थीं.

कभी-कभी, नशे में धुत, मेहमान, उन्हीं के समान नशे में धुत किसी छोकरी को लेकर जेमसन के छह शयन-कक्षों में से किसी एक में चले जाते थे. मेडोरा हार्ट भी कई बार गयी थी. एक बार वह सिडनी आक्सबाय के साथ भी गयी थी, उसी सिडनी के साथ, जो हरामी सर ऑस्टिन का भाई था. एक बिगड़ा हुआ, गुस्ताख और विकृत मनोवृत्ति वाला युवक. वह उसे कतई नहीं भाता था, लेकिन जेमसन की खातिर वह उसे सह लेती थी.

... और, नौकरी के पांचवें हफ्ते में, अचानक, उसकी सपनों की प्यारी-सी दुनिया, एक भीषण आघात से चकनाचूर हो गयी.

एक रात उसने बी.बी.सी. के समाचारों में सुना कि उसका बास जेमसन खुफिया पुलिस द्वारा सेक्स, ब्लैकमेलिंग और अपने ग्राहकों से अपनी छोकरियों की मार्फत गुप्त और राष्ट्रविरोधी सूचनाएं अन्य देशों के जासूसों और कुछ खास समाचारपत्रों को ऊंची राशि पर बेचने के अपराध में पकड़ा गया है, अब उस पर मुकदमा चलेगा. समाचार के अंत में कहा गया था कि खुफिया पुलिस को पूछताछ के लिये सिडनी ओक्सबाय नामक एक युवक की तलाश है, जो जेमसन की पार्टियों में नियमित रूप से आता रहता था.

अगले दिन समाचारपत्रों के शीर्षक चीख और चिल्ला रहे थे—प्रोक्यूमोकीलर-गर्ट कांड से भी बड़ा कांड! पार्लमेंट में तहलका! मंत्रिमंडल के गिरने के आसार! जेमसन की कॉल गर्ल्स ने राष्ट्र के लिये अहितकारी सूचनाएं विदेशी जासूसों को दीं.

बेचारी मेडोरा हार्ट यह सब सुन-पढ़कर सुन्न रह गयी. वह इतनी अधिक भयभीत थी कि उसे यह भी नहीं सूझ रहा था कि अब क्या करूं? तभी, अखबार वाला अखबार डाल गया. उसने पढ़ा, मुखपृष्ठ पर ही बड़े-बड़े टाइपों में छपा था, "जेमसन सेक्स-कांड में करोड़पति सर ऑस्टिन के छोटे भाई सिडनी के लिप्त होने का पुलिस को संदेह." वह कांपकर रह गयी. क्या पुलिस उसे भी इस कांड में लिप्त करेगी?

तभी दरवाजे की घंटी बजी. उसने दरवाजा खोला. आगंतुक ने अपना परिचय देते हुए कहा, "मैं सर ऑस्टिन हूं. मिस मेडोरा हार्ट! मैं आपके मित्र और शुभचिंतक के रूप में आपके पास आया हूं, इसलिए आप मुझसे घबरायें नहीं. अच्छा, पहले तो यह बताइये कि क्या पुलिस आपसे पूछताछ करने आयी थी?"

"नहीं. अभी तक नहीं आयी."

"देखिये मिस हार्ट! आप और मेरा भाई सिडनी दोनों संकट में हैं. मैं चाहता हूं कि आप इस संकट से बची रहें. आप गवाही के लिये यहां मौजूद नहीं होंगी, तो मेरे भाई सिडनी पर भी पुलिस मुकदमा न चला सकेगी. आपके पास पासपोर्ट तो है न?"

"हां, है."

"तो आप आज शाम ही, अपने सारे सामान के साथ, हवाई अड्डे पर जाकर पेरिस जानेवाला हवाईजहाज पकड़ लीजियेगा. टिकट मैं लेकर आया हूं. इतनी रकम भी है कि आप वहां कोई जगह लेकर चुपचाप एकांत में तीन-चार महीनों तक रह सकें. तब तक, यह पचड़ा खतम हो जायेगा. फिर आपको यहां वापस बुला लिया जायेगा."

मेडोराहार्ट को यह प्रस्ताव पसंद आया. उसने सर ऑस्टिन से टिकट और रकम ले ली. और उसी शाम को हवाई जहाज से पेरिस रवाना हो गयी.

जैसा कि सर ऑस्टिन ने कहा था, सारा मामला दो-तीन महीने के अंदर ही ठंडा पड़ा. पुलिस सिर्फ जेमसन को ही सजा दिलवा सकी. सिडनी तथा इस कांड से लिप्त दूसरे लोगों के खिलाफ प्रमाणों के अभाव में वह कुछ नहीं कर पायी. मेडोरा हार्ट ने, अखबारों से यह जानकारी प्राप्त करके, सर ऑस्टिन को लिखा कि वह उसे वापस इंग्लैंड बुलाने की व्यवस्था करें. कोई जवाब नहीं. फोन किये, तो सैक्रेटरी ने बार-बार कहा, "सर ऑस्टिन मौजूद नहीं है." हार्ट को अखबारों से पता चल गया था कि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच सर ऑस्टिन ब्रितानी मंत्रिमंडल के एक सदस्य बन गये हैं.

सर ऑस्टिन की ओर से निराश होकर, मेडोरा हार्ट ने पेरिस स्थित ब्रितानी राजदूतावास से संपर्क किया और सब हाल बताकर उससे प्रार्थना की कि वह इसके ब्रिटेन वापस लौटने की व्यवस्था करे. उसे दो सप्ताह बाद आने के लिये कहा गया.

जब वह दो सप्ताह बाद गयी, तो उसे बताया गया कि उसके पासपोर्ट का मामला ब्रिटिश सरकार के गृह-विभाग के विचाराधीन है. क्यों? इसलिए कि हंगरी से ब्रिटेन में स्थायी रूप से बसने के लिये उसके पिता ने अपनी अर्जी में कुछ ऐसे तथ्य दिये थे, जो आधारहीन और झूठे साबित हुये. बहुत संभावना इस बात की है कि उसका पासपोर्ट जब्त कर लिया जायेगा, और वह ब्रिटेन की नागरिक नहीं रहेगी, और ऐसी हालत में फ्रांस और अन्य देशों की सरकारें भी उसे अपने देश में रखने से हिचकिचायेंगी.

राजदूतावास के क्लर्क ने उसके बहुत अनुनय-विनय करने पर उसे यह भी बताया कि उन्हें ब्रिटेन की खुफिया पुलिस से एक पत्र मिला है, जिसमें कहा गया कि ब्रिटेन से पेरिस आनेवाली मिस मेडोरा हार्ट एक बदचलन औरत है, और राजदूतावास उसे बुलाकर उसका पासपोर्ट जब्त कर ले. क्लर्क ने कहा कि वह इस मामले को तरह-तरह के बहाने करके लंबे अर्से तक स्थगित करता रह सकता है, बशर्ते कि वह उसे समय-समय पर अपने प्रेम का प्रतिदान देती रहे. हार्ट उससे झूठा वायदा करके चली आयी. मगर, उसे इतना अवश्य पता चल गया कि इस सारी शरारत की जड़ में वह हरामी सर ऑस्टिन ही है, जो नहीं चाहता कि वह वापस इंग्लैंड आये.

अब उसके सामने समस्या जीविकोपार्जन की थी. और, इसके लिए एक ही हुनर उसके पास था-कैबरे डांसर का. और, उसके इस हुनर के पेरिस में बहुत से कद्रदान थे, और वे उसे अच्छे वेतन पर अपने क्लबों में नौकरी देने पर भी तैयार थे. जब वह सबसे अधिक वेतन देने वाले क्लब के लिये काम करने के लिये तैयार हो गयी, तो उन्होंने एक शर्त रखी. शर्त यह थी कि वह उसका प्रचार 'ब्रिटेन के जेमसन-कांड की एक रहस्य पात्र मेडोरा हार्ट की नेत्ररंजक देह का खुला प्रदर्शन के रूप में करेगी. चूंकि उसे काम की सख्त जरूरत थी, इसलिए उसने यह शर्त लिखित रूप से स्वीकार कर ली.

मगर, उसके बाद जो कुछ हुआ, उसकी उसने कल्पना भी न की थी. जब वह पहली बार क्लब में डांस करने गयी, तो उसने देखा कि क्लब के बाहर उसकी ऊंचाई से दुगुना ऊंचा 'कट आउट' लगा है, और उसके नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है-'ब्रिटेन के जेमसन-कांड की एक रहस्यमयी पात्र मेडोरा हार्ट की नेत्ररंजक और मादक देह का खुला प्रदर्शन.'

इस सब के प्रचार ने उसे सारे पेरिस में कुख्यात कर दिया. वह जहां जाती लोग उसकी तरफ उंगलियां उठाकर कहते, "यही है

तोड़कर अहदे करम

जर्मनी की वह अभिनेत्री इतनी सुंदर थी कि 1950 में उसने हाहाकार मचा दिया था. वैसे मेरिया नथ स्वयं भी जानती थी कि वह सुंदर है तभी तो उसे अपना साथी ढूंढने में समय लगा. एक दिन वह उस सेवानिवृत्त अफसर हींकों कुंजे से टकरायी थी. कुंजे इतिहास का कलाकार था और उसकी छोटी-सी दुकान पुरातत्व सामग्री से भरी हुई थी. वह एक चीज उठाता और एक कहानी शुरू कर देता—दिलचस्प कहानी जो बढ़ते कदम को रोक दे. मेरिया भी उसके इस चमत्कार से इतनी खिंची कि उसके बहुत करीब आ गयी. वह भी कुंजे के साथ दुकान में बैठकर अंग्रेज और अमरीकन अफसरों को लुभाकर 'ब्लैकमेल' करने लगी. और जब उसे खतरे रास आने लगे तो वह और बढ़ी. फिर वह पोलिश कर्नल ग्रेगर कोवल्सकी के जासूस-चक्रव्यूह में घुस पड़ी जो इस दिनों 'कोलबर्ग रिंग' के नाम से मशहूर था और बर्लिन से उसका संचालन हो रहा था. कर्नल कोवल्सकी रूसी जासूसों के लिये काम कर रहा था.

मेरिया को जासूसी करने में आनंद आने लगा. अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए वह सब कुछ करने लगी यहां तक कि कलोन और फ्रंकफर्ट में उसके लिये 'प्रणय-कक्ष' भी बनवा दिये गये जिसमें वह महत्वपूर्ण अफसरों को लाती, रमण करती और उनसे रहस्य बटोरती. सबसे पहले उसके प्रेमी-कुंजे को सह सुनकर धक्का लगा. उसने एक-आध बार पता भी किया पर मेरिया बहुत दूर जा चुकी थी. कुंठाग्रस्त कुंजे ने फिर दुखी होकर आत्महत्या कर ली. वह भला कैसे सहन करता कि उसकी प्रेमिका अब जासूस-रूपाजीवा बन चुकी है. कर्नल कोवल्सकी ने मेरिया को एक विशेष काम सौंपा था-यह पता लगाना कि जर्मनी फिर से सैन्य-बल बनाने के लिए क्या प्रयास कर रहा है. जब इसकी भनक पश्चिम जर्मनी की जासूस गेहलन आर्गिनाइजेशन को लगी तो उनके कान खड़े हुए. फिर उन्होंने डाक्टर पीटरसन को डबल-एजेंट बनाकर भेजा था-जाल फैलाने. डाक्टर पीटरसन ने अपने को चांसलर एडेंयोर के दफ्तर का महत्वपूर्ण कर्मचारी बतलाया और वह मेरिया के जाल में स्वयं ही फंसा. उसने मेरिया का विश्वास जीतना शुरू किया और दबी आवाज बोलने भी लगा, "जर्मनी को फिर से सैन्य-बल जुटाना होगा." मेरिया समझती रही कि डाक्टर पीटरसन उसका दाना लपक रहा है उधर पीटरसन दोधारी तलवार चला रहा था एक बार मेरिया के साथ प्रणय-कक्ष से लौटाने पर वह और खुला, "मैं तुम्हें जर्मनी की सैन्य-योजना के बारे में महत्वपूर्ण रहस्य बतलाऊंगा." और तभी ब्रिटिश और अमेरिका जासूस संस्थाएं भी एक होकर डाक्टर पीटरसन द्वारा गलत ब्योरे और खबर मेरिया को पहुंचाते रहे.

और एक दिन जब मेरिया कलोन के डाकखाने से कर्नल कोवल्सकी का लिफाफा ले रही थी तब 'ब्रिटिश एम.आई.5' नामक जासूस संस्था के अफसरों ने मेरिया को धर दबोचा था. मेरिया का गिरोह फौरन ही बिखर गया. यहां तक कि कर्नल कोवल्सकी भी ना जाने कहां अलोप हो गया. जर्मन-अदालत ने मेरिया को केवल तीन वर्ष का कारावास दिया था. क्योंकि वह जानते थे कि मेरिया कैंसर की रोगी है. दो वर्ष बाद ही वह जेल में अस्पताल में मर गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेमसन-कांड की मेडोरा हार्ट. खूब नाचती है. वह बहुत परेशान होती, मगर कुछ कर नहीं सकती थी.

क्लब का मालिक हार्ट की शोहरत का पूरा लाभ उठाना चाहता था. इसलिए उसने कई पत्रकारों को राजी कर लिया. कि वे हार्ट से मिलकर उसका चटाखेदार साक्षात्कार अपने अखबार में छापें.

सबसे पहली पत्रकार जो हार्ट का साक्षात्कार लेने आयी, वह थी 'न्यूयार्क हैरल्ड ट्रिब्यून' की पेरिस-प्रतिनिधि-मिस हैजल स्मिथ.

40 वर्षीया हैजल स्मिथ को अमरीकी पत्रकार-समाज में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था. वह एक प्रतिष्ठित और विश्व-विख्यात पत्रकार थी. लेकिन, यह प्रतिष्ठा उसने तब अर्जित करनी आरंभ की थी जब वह उस पर, एक तरह से, थोप दी गयी थी.

वह पहले डॉयल नाम के एक अमरीकी पत्रकार की, जो बीस साल पहले उसी पद पर था, जहां आजकल वह थी, टाइपिस्ट थी. टाइपिस्ट वह इसलिए बनी थी, क्योंकि वह खुद के प्रयासों से नौसिखिया रिपोर्टर भी नहीं बन पायी थी. डॉयल ने, जिसकी जानपहचान सब देशों के राजाप्रमुखों से थी, और जिसे अमरीकी विदेशी प्रतिनिधियों का शहंशाह माना जाता था, उसे लोगों से मिलना, साक्षात्कार के लिये उनको खोलों से बाहर खींचकर लाने, और साक्षात्कार को सरल, प्रभावपूर्ण और तथ्यात्मक शैली में प्रस्तुत करने की कला सिखायी, जिसे सीखने में हैजल को कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि पत्रकारिता और खास तौर पर रिपोर्टिंग से उसे शुरू से ही लगाव था.

हैजल को सुंदरी नहीं कहा जा सकता, और न वह अल्हड़ थी. पर उसके भोलेपन में एक आकर्षण था, जो पुरुषों को सहज ही उसकी ओर खींच लाता था. डॉयल भी उसके प्रति आकर्षित हो गया था, और काफी समय तक दोनों के संबंध पति-पत्नी जैसे रहे. बाद में, डॉयल के संबंध अन्य महिलाओं से हो गये, जो हैजल से अधिक रूपवती और परिष्कृत थीं. हैजल को शुरू में कुछ धक्का तो लगा, मगर वह फिर अपने काम को पूरा समय और ध्यान देने लगी. किसी वस्तु या व्यक्ति से ज्यादा लिप्त होने की उसकी आदत नहीं थी. इसी से, डॉयल कभी-कभी उसे 'अलिप्त नायिका' कहकर उसकी हंसी उड़ाया करता था.

एक बार, डॉयल बीमार पड़ा और कई महीने तक अस्पताल में रहा. इस दौरान, पेरिस में अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएं घटीं. रूसी-जासूसों की मौजूदगी का पता लगने का फ्रांस और रूस के संबंध बिगड़ने लगे. अनेक बातों पर फ्रांस की टक्कर अमरीका से भी हुई, जो चाहता था कि वह भी ब्रिटेन की भांति खुलकर उसका समर्थन करे, और साथ दे.

हैजल ने डॉयल की गैरमौजूदगी में अपनी पहल पर इन सब घटनाओं की जो रपटें 'न्यूयार्क हैरल्ड ट्रिब्यून' को भेजीं, उससे पत्र के समाचार-संपादक अत्यंत प्रभावित हुए. उन्होंने उसे लिखा, "फ्रांस में आजकल क्या हो रहा है, उसे तुमने बड़ी सूक्ष्मता के साथ समझने का प्रयास किया है. वहां की राजनैतिक समस्याओं का तुमने बड़ा ही प्रौढ़ विश्लेषण किया है. और उसे अपने वर्णन-नैपुण्य के साथ सुंदर प्रवाहरूपी सतर्क और सूक्ष्मदर्शी शैली में व्यक्त किया है.... मैं डॉयल को, उसके स्वस्थ होने के बाद, अमरीका बुला रहा हूं और चाहता हूं कि तुम उसका कार्य-भार संभालो."

हैजल को इस अप्रत्याशित नियुक्ति से बड़ी प्रसन्नता हुई. लेकिन उसने उसे किसी पर व्यक्त नहीं किया. डॉयल के अलावा कोई और पुरुष उसके जीवन में नहीं था, और स्त्रियों से उसके संबंध बड़े औपचारिक थे.

कुछ महीनों बाद, सहसा, एक ऐसी घटना घटी, जिसने उसे एक विशिष्ट महिला-पत्रकार से एक गुप्त महिला-जासूस भी बना दिया.

अपने पेशेवर जीवन में उसकी मुलाकात एक फ्रीलांस रूसी पत्रकार से हुयी. रास्तोव नाम का एक पत्रकार वास्तव में के.जी.बी. (रूस की गुप्तचर संस्था) का एजेंट था, लेकिन इस बात का पता हैजल को बहुत बाद में चला. रास्तोव एक हंसमुख, आकर्षक युवक था, लेकिन उसने न कभी हैजल को अपने प्रेमपाश में बांधने का प्रयास किया, न जाहिर होने दिया कि वह कहीं से भी के.जी.बी. का जासूस है.

एक दिन पत्रकार-क्लब में साथ-साथ बीयर पीते हुए, उसने हैजल से कहा, "एक स्कूप के बारे में जानना चाहती हो. अपने अमरीकी राष्ट्रपति के बारे में है."

"कैनेडी के बारे में? और स्कूप? जानना तो चाहूंगी."

"सुनो, मगर चौंकना मत. समाचार वर्तमान का नहीं, भविष्य का है, यानी अभी जन्मा नहीं है, जन्म लेने वाला है. मगर जन्म लेगा जरूर, और इसी रूप में लेगा, जिस रूप में तुम्हें सुनाने वाला हूं."

"अजन्मे समाचार के बारे में इतना ज्यादा विश्वास क्यों?"

"इसलिए कि उसकी जानकारी उन्हीं लोगों ने मुझे दी है, जो निकट भविष्य में इस समाचार को जन्म देंगे, उसे साकार करेंगे."

"पहेलियां मत बुझाओ. बताना हो तो साफ-साफ बताओ."

"तो, फिर सुनो. कुछ महीनों बाद तुम्हारे राष्ट्रपति कैनेडी उलास की यात्रा करेंगे और वहां कोई अज्ञात व्यक्ति गोलियों से उनकी हत्या कर देगा. इस हत्या के लिए, एक अंतरराष्ट्रीय साजिश के अनुसार, थोस्वाल्ड नाम का एक आदमी पकड़ा जायेगा, लेकिन उसकी भी हत्या इन अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्रकारियों द्वारा कर दी जायेगी. तुम चाहो तो इस स्कूप का उपयोग कर सकती हो."

हैजल ने सोचा, इस सूचना को अपने पत्र के माध्यम से अमरीकी सरकार या स्वयं राष्ट्रपति तक पहुंचा दे, मगर उसकी हिम्मत ऐसा करने की न हुई. उसे डर था कि खबर ठीक हो या गलत, दोनों हालतों में वह ख्वामख्वाह सी.बी.आई. या एफ.बी.आई. के चक्कर में पड़ जायेगी. उसने चुप रहना ही उचित समझा.

लेकिन, जब कैनेडी की हत्या कर दी गयी और घटनाएं वैसे ही घटीं जैसाकि रास्तोव ने भविष्यवाणी की थी, तो रास्तोव पर उसका विश्वास बढ़ गया. वह उससे और ज्यादा मिलने लगी, और वह उसे अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और अफ्रीकी देशों के बारे में ऐसे समाचार देने लगा, जो के.जी.बी. के एजेंट एकत्र करते थे, और सोच-समझ कर ऐसे ही समाचारों को प्रकाशन के लिए बाहर जाने देते थे, जो उनके हित में होते थे.

इन समाचारों के पाने के एवज में हैजल को कभी-कभी अपनी देह रास्तोव को देनी पड़ती थी. पर, उसे यह सौदा बुरा नहीं लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. रास्तोव यूं भी आकर्षक और स्वस्थ युवक था, और किसी भी पुरुष को अपनी देह अर्पित करते समय वह देह को ही सहवास का सुख उठाने देती थी. उसकी 'स्व' उससे अलग ही रहता था, अलिप्त, अप्रभावित!

मेडोरा हार्ट के बारे में हैजल ने पत्रों में काफी पढ़ा था, मगर उससे मिलने का विस्तार उसके मन में कभी नहीं आया था. लेकिन, उसके अखबार के समाचार-संपादक ने उससे कहा था कि वह उससे मिले और उस से पूछे कि वह आजकल पेरिस में क्या कर रही है.

हैजल ने हार्ट के क्लब के मैनेजर से संपर्क स्थापित किया, और उसने इंटरव्यू की तारीख को समय पक्का कर दिया. मगर, एक मामूली कैबरे डांसर से, भले ही वह जेमसन-कांड की वजह से दुनिया भर से कुख्यात हो चुकी हो, इंटरव्यू इतना तूफानी होगा, यह कल्पना उसने कभी न की थी. हार्ट ने उसे, आते ही, जैसे आड़े हाथों लिया, वह उसके लिए एक निराला अनुभव था.

"तुम मेरा इंटरव्यू लेने नहीं आयी हो, मेरे घावों पर नमक छिड़कने के लिये आयी हो. खुद औरत होकर, औरत की जलालत को समझने की कोशिश नहीं करती? क्या फर्क है तुम में, और उस कमीने जेमसन में? उसने भी मेरा शोषण कर, पैसा और नाम कमाया, तुम भी मेरे बारे में चटपटी और गदी बातें लिखकर अपने अखबार को पैसा कमाने का मौका दोगी. बोली, क्या चाहती हो, पूछो. वैसे, पूछने की जरूरत भी क्या है? जो जी में आये लिख लो." हार्ट इसी रौ में बोलती रही.

हार्ट ने हैजल को रुककर कुछ सोचने पर मजबूर कर दिया. वह हार्ट के प्रति सहानुभूतिशील हो आयी. वह पत्रकार बाद में है पहले नारी है. और नारी की दृष्टि से देखने पर उसे लगा कि हार्ट एक गणिका बाद में, एक असहाय, शोषित और पीड़ित नारी पहले है. उसने कहा, "मान लो, और मुझ पर विश्वास करके मान लो कि मैं तुम्हारी बड़ी बहन हूं. इस नाते को मानकर अपने बारे में कुछ कहना चाहती हो, वही मैं लिखूंगी, अपनी ओर से एक शब्द भी नहीं.

हार्ट ने शंकित निगाहों से हैजल को देखा. लेकिन, पाया कि हैजल वाकई जो कुछ कह रही है, ईमानदारी से कह रही है, और उस पर विश्वास किया जा सकता है. उसने रोते-रोते अपनी कहानी सुनायी और कहा, "मेरे पास सर ऑस्टिन को नीचा दिखाने और बदला लेने के लिये एक हथियार हाथ में आया है. मगर में अकेली उसका इस्तेमाल नहीं कर सकती. मैं बहुत कमजोर हूं. और वह बहुत ताकतवर. लेकिन, कोई मेरी मदद के लिए खड़ा हो जाये, तो मैं उसे नीचा दिखा सकती हूं."

"मैं तुम्हारी मदद करने के लिए तैयार हूं. हर तरह की मदद."

हार्ट ने फिर हैजल की आंखों में झांका. वह फिर आश्वस्त हुई कि हैजल पर भरोसा किया जा सकता है, और वह अवश्य उसकी सहायता करेगी. उसने कहा, "सर ऑस्टिन के चित्रों के साथ उसकी बीवी के चित्र भी छपे हैं. वह ऊंचे खानदान की है. बहुत सुंदर है, बहुत अमीर है. मेरे एक आर्टिस्ट मित्र नार्द की प्रेमिका भी रह चुकी है. जब वह उसकी प्रेमिका थी तब उसकी एक न्यूड पेंटिंग बनायी थी. जो इस समय मेरे पास है."

"तुम्हारे पास कैसे आयी?"

"नार्द मेरा भी मित्र है, और एक साल पहले मेरा प्रेमी भी था. तब मैंने उससे कुछ नहीं मांगा था, दो दिन पहले यह सोचकर कि

देश की दासी मार्सेल

सन् 1951.

उस दिन मिस्र में एक अंग्रेज व्यापारी आया था जिसने देखते ही देखते कई दोस्त बना डाले. वास्तव में यह व्यक्ति व्यापारी नहीं था—यह था इजराइली जासूसी संस्था का मंजा हुआ आफीसर कर्नल एब्राहम दर. मिस्र में अपना जाल फैलाने ही यह आया था. नये-नये चेहरों में इसने एक सलोना चेहरा भी ढूंढ निकाला था-फ्रेंच यहूदी विक्टोरिनों जिसे सब मार्सेल कहकर पुकारते थे. वैसे उसका पूरा नाम था मार्सेल मिनिओ.

चौबीस वर्षीय मार्सेल ऐथलीट भी थी. सुंदर कसा हुआ बदन, आकर्षक चहेरा-और भला क्या चाहिये एक जासूस को. धीरे-धीरे कर्नल दर की जासूस—मंडली पनपने लगी और मार्सेल जरूरी खबरें इधर-उधर से बटोरती रही.

सन् 1954 का सबसे भयंकर षड्यंत्र रचा जा रहा था जिसमें ब्रिटिश और अमरीकन एंबेसी में बम रखने थे. वे जानते थे कि विस्फोट होते ही राजनीतिक विस्फोट भी होगा और प्रेसीडेंट नासिर के खिलाफ ये दोनों देश हो जायेंगे.

इस षड्यंत्र का ताना-बाना बुना जा रहा था कि तभी एक इजराइली एजेंट पाल फ्रैंक ने भांडा फोड़ दिया और मिस्र की जासूस-संस्था ने फौरन ही धर-पकड़ शुरू कर दी. एब्राहम दर तो पहले ही भाग गया, पर मार्सेल को यह नहीं पता था कि उसका पीछा मिस्र के जासूस कर रहे हैं. जब मार्सेल मैक्स के यहां पहुंची तब वह अपने ट्रांसमीटर पर टेल अबीन को खबरें दे रहा था. और तभी मिस्र के जासूसों ने धर दबोचा, मार्सेल पकड़ी गयी. उसे तरह-तरह की यातनाएं दी गयीं. इक बार तो उसने खिड़की से कूद कर आत्महत्या करने का प्रयास भी किया पर विफल हुई.

अदालत ने उसे पंद्रह वर्ष की सजा सुनायी थी. चौदह वर्ष उसने मिस्र के जेल में काटे और फिर जब 'छः दिन का युद्ध समाप्त हुआ तब उसके देश ने कैदियों की अदल-बदल में उसे सन् 1965 में छुड़ा लिया.

अपने जीवन-वसंत के बहुमूल्य चौदह वर्ष पत्थर के पिंजरे में काटकर थकी हारी मार्सेल जब अपने देश की धरती पर उतरी तब उसे उचित सम्मान दिया गया. फूल मालाओं से उसे लाद दिया गया.

उसके पतझड़ में एक बार फिर आशाओं की कोपलें उगने लगीं और फिर उसने दिसंबर 1971 में इजराइली कर्नल अली बोगर से विवाह किया. उसका विवाह बड़े धूमधाम से हुआ था और विवाह के प्रीतिभोज में इजराइल की प्रधानमंत्री गोल्डा मायर अन्य फौजी जनरल एवं जासूस अफसरों के साथ आयी थीं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पेंटिंग मेरे काम आ सकती है, मैंने उससे वह मांगी. उसने खुशी-खुशी वह मुझे उपहार में दे दी."

"वह पेंटिंग तुम्हारे कैसे काम आ सकती है?"

"उसे दिखाकर मैं उसे ब्लैकमेल कर सकती हूं. इसे मजबूर कर सकती हूं कि मेरे इंग्लैंड वापस लौटने पर उसने प्रतिबंध लगाये हैं, वह उन्हें वापस ले."

हैजल ने कुछ देर सोचकर उससे कहा, "यह काम तुम्हारे बस का नहीं है. इसे मुझ पर छोड़ दो. मरे साथ वह पेंटिंग लेकर किसी फोटो-स्टूडियो में चलो. वहां हम उसकी एक रंगीन ट्रांसपेरेंसी निकलवायेंगे."

डाक्टर गोयरलिज के भव्य कार्यालय से बाहर आते हुए भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति अर्नशा पहले से भी अधिक अपमानित और व्यथित अनुभव कर रहे थे. पहले तो डॉक्टर ने उनसे मिलने से ही इंकार कर दिया था. लेकिन दुबारा अनुनय-विनय करने पर वह उन्हें सिर्फ दस मिनट देने के लिये राजी हुआ था. इस मुलाकात में उसने अर्नशा की इस प्रार्थना को कि वह अपने शीघ्र प्रकाश्य संस्मरणों में से उनसे संबंधित अध्याय को निकाल दे, ठुकरा दिया था, और उन्हें खूब खरी-खोटी सुनायी थी." तुम एक अयोग्य, कमजोर और कच्चे किस्म के राष्ट्रपति थे, मिस्टर अर्नशा. तुम्हारी अक्ल का दीवाला निकल गया था, और तुमने अपना सारा कार्यभार अपने विदेश-सचिव मेडलाक को सौंप रखा था. तुम उसके हाथों की कठपुतली बने हुए थे. मेडलाक की ढुलमुल नीतियों के कारण ही चीन को अमरीकी प्रोफेसर वार्ने की, जो अमरीका छोड़कर चीन चला गया था, न्यूट्रॉन बम मिला. इतना ही नहीं, तुमने मेडलाक की इस नीति पर चलकर कि अमरीका चीन को जितना शक्तिशाली बनायेगा, उतना ही वह उसके साथ मिलकर रूस का विरोध करेगा कि प्रक्षेपास्त्र निर्माण करने के लिये आवश्यक सामग्री भी दी. जिसकी सहायता से वह अपने-न्यूट्रान, हाइड्रोजन और परमाणु बम, जो तुमने ही से बनाने दिये, दूसरे देशों पर फेंक सकता है. चीन तुम्हारी अदूरदर्शी नीतियों के कारण ही विश्वशांति के लिये खतरा बना."

"लेकिन मैंने कभी ऐसा नहीं किया," अर्नशा ने हताश स्वर में कहा था.

"तो क्या ये कागजात झूठे और नकली हैं?" डाक्टर गोयरलिज ने एक फाइल उनके सामने फेंकते हुए कहा.

फाइल में ऐसे कुछ कागजों की जेरोक्स प्रतियां थीं, जिसमें उन्होंने अमरीकी राष्ट्रपति की हैसियत से गोयरलिज उद्योग-समूह को एक अधिकार दिया था कि वह प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण और न्यूट्रान बम के विकास से संबंधित सामान तथा प्रौद्योगिकी लाल चीन को अल्बानिता और शहनाई की मार्फत दे. उसका भुगतान अमरीकी सरकार अपने गुप्त खाते से गोयरलिज उद्योग समूह को करेगी. पत्र व्हाइट हाउस (राष्ट्रपति भवन) की स्टेशनरी पर था, और हस्ताक्षर उन्हीं के थे. अब कुछ कहने-सुनने को बाकी नहीं रह गया था. उन्होंने हिम्मत करके निवेदन किया, "डॉक्टर गोयरलिज, मुझ पर रहम करो. मुझे तबाह मत करो. उस अध्याय को पुस्तक से निकाल दो."

"क्यों निकाल दूं?" जब तुमने मुझे जाने से रोकने का कोई प्रयास नहीं किया, तो मैं तुम्हें तबाह न होने देने के लिये क्यों प्रयास करूं? अब तुम जा सकते हो, अर्नशा. तुम्हारे दस मिनट पूरे हो गये हैं."

गोयरलिज के कार्यालय से बाहर आते समय भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति अर्नशा जितना अपमानित महसूस कर रहे थे, वैसा उन्होंने जीवन में पहले कभी महसूस नहीं किया था. उन्हें लग रहा था, जैसे कोई उनके अंग-अंग में कांटे चुभ रहा है.

बाहर आये, तो एक महिला ने उनका अभिवादन किया, और उनसे बातें करने के लिये रुक गयी. वे उसे पहचान नहीं पाये. तब, महिला ने अपना परिचय स्वयं उन्हें देते हुए कहा, "गुडमार्निंग, मिस्टर अर्नशा. मैं हैजल स्मिथ हूं. 'न्यूयार्क हैरल्ड ट्रिब्यून' की पेरिस प्रतिनिधि. भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति को मेरा अभिवादन."

"ओह! एक महिला पत्रकार? कैसी हैं आप?"

"मैं ठीक हूं. मगर आप कुछ परेशान नजर आते हैं."

"अ....हां! असल में....."

"आइये, मेरी कार में थोड़ी देर के लिये बैठ जाइये, और ठीक समझें तो अपनी परेशानी की दास्तान मुझे सुनाइये. हो सकता है, मैं आपके कुछ काम आ सकूं."

डूबते अर्नशा को तिनके का सहारा मिला. उन्होंने हैजल का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया. बाद में उन्होंने सहृदय हैजल को अपनी सारी व्यथा कथा, बिना कुछ छिपाये, सुनायी. हैजल ने कहा, "आप मुझे अपना पता और फोन नंबर देने की कृपा करें. मैं आपसे दो-तीन दिन बाद संपर्क करूंगी."

'न्यूयार्क हैरल्ड ट्रिब्यून' जैसे विश्वविख्यात पत्र का नाम सुनते ही सर ऑस्टिन की पत्नी फ्लर हैजल को इंटरव्यू देने को तैयार हो गयी.

फ्लर अपने जमाने की इनीगिनी विश्वसुंदरियों में से एक थी. उसके असंख्य प्रेमी प्रायः सभी देशों व जातियों के थे, और उनके कारण उसके इर्दगिर्द अनेक स्कैंडल भी उछले थे. मगर, चतुर, बुद्धिमता फ्लर उन सबका अतिक्रमण कर, सर ऑस्टिन जैसे प्रतिष्ठित और गणमान्य पुरुष से विवाह कर, लोगों के सामने अपनी एक नयी छवि उभारने के लिये प्रयत्नशील रहती थीं. फ्लर ने थोड़ी देर बात करते ही, हैजल भांप गयी कि उसके इंटरव्यू के माध्यम से फ्लर अपनी किस छवि के साथ दुनिया के सामने आना चाहती है. उसने बड़ी सफाई से इंटरव्यू के प्रवाह को उसी ओर मोड़ा.

इंटरव्यू की समाप्ति पर जब दोनों महिलाएं काफी पी रही थीं तब हैजल ने फ्लर से पूछा, "क्या आप विश्वविख्यात कलाकार नार्दे से परिचित हैं?"

"नार्दे....नार्दे? नाम तो सुना है, मगर...."

"उनका दावा है कि आप वर्षों पूर्व उनकी प्रेमिका थीं, और आपने न्यूड पेंटिंग बनवायी थी."

"न्यूड पेंटिंग, मेरी न्यूड पेंटिंग?"

"जी हां. शायद यह ट्रांसपेरेंसी देखकर आपकी याददाश्त ताजा हो सके. यह देखिये, यह नार्दे द्वारा बनायी गयी आपकी ही उस न्यूड पेंटिंग की ट्रांसपेरेंसी है, जो इस समय मेरे कब्जे में है."

"मैं... न्यूड पेंटिंग.... यह क्या बकवास है? क्या तुम मुझे इस बहाने ब्लैकमेल करने की कोशिश कर रही हो, डियर? मगर ब्लैकमेल करना एक जुर्म है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं एक मामूली महिला-पत्रकार ऐसी जुर्रत कैसे कर सकती हूं? आप इस धनी और प्रभावशाली विश्वविख्यात महिला हैं. आपके पति ब्रिटेन के एक मंत्री और प्रमुख पुस्तक-प्रकाशक हैं. आप दोनों के सामने मेरी क्या बिसात?"

फ्लर ने दुनिया देखी थी. वह समझ गयी कि उसकी न्यूड पेंटिंग का यह चित्र दिखाकर यह चालाक औरत या तो उससे कुछ वसूलना चाहती है, या कोई काम कराना चाहती है. मगर क्या? उससे सीधे पूछना ही ठीक रहेगा. उसने पूछा, "साफ-साफ कहो, इस पेंटिंग के बदले क्या चाहती हो?"

"अच्छा किया कि आपने साफ-साफ पूछ लिया. इससे हम दोनों का समय बच जायेगा. देखिये, यह पेंटिंग तो आपके हाथ आने वाली नहीं है, हालांकि मैं आपको यह आश्वासन देती हूं कि मैं कभी उसका दुरूपयोग नहीं करूंगी, न होने दूंगी..... अपने पति से कहिये कि एक सप्ताह के अंदर-अंदर मेडोरा हार्ट नाम की लड़की के कागज पक्के और वैध करके उसके इंग्लैंड लौटने की व्यवस्था कर दे उसके हाथ में बतौर हर्जाना 2500 पौंड देकर. और यदि उन्होंने ऐसा न किया, तो मैं आप दोनों की जिंदगी में ऐसा तूफान खड़ा कर दूंगी कि आप दोनों किसी को अपना मुंह दिखाने के काबिल नहीं रहेंगे. मैं चुप बैठ जाने वाली मेडोरा हार्ट नहीं, शोर और तूफान मचाने वाली हैजल स्मिथ हं, जिसका घनिष्ठ परिचय कम से कम एक दर्जन प्रभावशाली पत्रों के संपादकों से हैं."

तीन दिन के अंदर ही, मेडोरा हार्ट के ब्रिटेन वापस जाने का प्रबंध हो गया. जाने से पूर्व, उसने हैजल से मिलने और उसका शुक्रिया अदा करने के बहुत प्रयास किये, मगर हर बार, उसे यह मालूम पड़ा कि हैजल शिखर सम्मेलन की रिपोर्टिंग में व्यस्त है, निराश, मेडोरा हार्ट हैजल से मिले बिना ही वापस इंग्लैंड चली गयी. उसे यह बात कभी भी नहीं पता चलेगी कि मेडोरा हार्ट का काम पूरा करने के बाद, हैजल उसकी ओर से एकदम अनासक्त और उदासीन क्यों हो गयी थी—अलिप्त नायिका.

अब उसका ध्यान भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति अर्नशा को डॉक्टर गोयरलिज के चंगुल से मुक्त करने के प्रयासों में लगा था. और वह मन ही मन जानती थी कि इन प्रयासों के सफल होते ही वह अर्नशा के प्रति भी अनासक्त और उदासीन हो जायेगी. लोग उसे 'अलिप्त नायिका' कहते हैं, तो गलत नहीं कहते, शायद!

दो दिनों तक, रोस्तोव की सहायता से वह चीनी प्रधानमंत्री, उसके सलाहकारों और चीनी प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों से मिलने में व्यस्त रही. पत्रकार के रूप में भी, और जासूस के रूप में भी.

पत्रकार के रूप में उसने रोस्तोव के कहने पर रूस और चीन के संबंधों के बारे में जो रपट दी, उसमें कहा गया था कि सीमा-विवाद तथा अहं समस्या से पीड़ित होने के कारण भले ही दोनों देशों से संबंध पहले जैसे प्रगाढ़ न दिखायी देते हों, लेकिन दोनों देश सैद्धांतिक रूप से कम्यूनिस्ट पहले हैं, विरोधी बाद में. जहां कम्यूनिज्म के हितों की रक्षा का प्रश्न आयेगा, दोनों सब मतभेद भुलाकर एकजुट हो जायेंगे. हैजल को दी गयी एक विशेष भेंट में चीन के प्रधानमंत्री ने इस नीति की पुष्टि की थी. रूस ने भी अप्रत्यक्ष रूप से इस बात की सच्चाई को स्वीकार किया था.

'न्यूयार्क हैरल्ड ट्रिब्यून' में इस रपट के प्रकाशन के बाद, न्यूज एजेंसियों ने इसे अन्य सभी समाचारपत्रों को प्रकाशनार्थ भेजा, और उन्होंने उसे सहर्ष प्रकाशित किया, क्योंकि यह रपट अन्य रिपोर्टरों की रपट से अलग थी, जिसमें कहा गय था कि चीन और रूस जो पहले भाई-भाई थे, अब कट्टर शत्रु हैं. हैजल ने वस्तुस्थिति का ज्यादा सही आकलन प्रस्तुत किया था.

मगर, इन दो दिनों में जो सबसे कीमती सूचना उसे मिली, वह चीनी प्रधानमंत्री से नहीं, उनकी पत्नी से मिली.

चीन के प्रधानमंत्री की पत्नी अंग्रेजी बड़ी साफ और शुद्ध बोल लेती थीं. अंग्रेजी के अलावा उसका फ्रैंच पर भी अच्छा अधिकार था. जब हैजल प्रधानमंत्री के कक्ष के बाहर बैठी अपने बुलावे का इंतजार कर रही थी, तो उसने देखा कि उनकी पत्नी कक्ष से बाहर आयीं; और उस बाहरी कक्ष में, जहां वह बैठी थी, किसी को फोन करने लगीं. फोन करने से पूर्व, उसने हैजल की ओर क्षण भर के लिए देखा, और फिर फ्रैंच भाषा में फोन करने लगीं. उसका ख्याल था कि हैजल को फ्रैंच भाषा नहीं आती होगी, पर हैजल फ्रैंच अच्छी तरह जानती थी.

प्रधानमंत्री की पत्नी फोन पर किसी से कह रही थी "किसी से कहना मत, लेकिन मुझे अभी-अभी अपन पति से मालूम हुआ है कि चीन की सरकार द्वारा जैसेही डाक्टर गोयरलिज चीन में अपने परमाणु नगर कर निर्माण पूरा कर लेगा, उस परमाणु नगर का राष्ट्रीयकरण हो जायेगा, और डॉक्टर गोयरलिज को चीन से बाहर निकाल दिया जायेगा. चूंकि चीन राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं है, इसलिए वह अंतरराष्ट्रीय अदालत में कोई शिकायत भी नहीं कर सकेगा. उसकी अरबों की जो हानि होगी, वह अलग. चीन इसी प्रकार पूंजीवादियों से बदला लेगा....."

जैसे किसी अंधेरी गली में एक रास्ता दिखायी दे गया हो. हैजल को लगा कि वह अपने राष्ट्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति अर्नशाा को बचा सकेगी.

जिस दिन शिखर सम्मेलन समाप्त हुआ, उसी रात को डाक्टर गोयरलिज ने चीनी प्रतिनिधिमंडल के सब सदस्यों को पेरिस के सबसे शानदार होटल में एक भव्य भोज दिया. यह भोज अगले दिन चीनी सरकार और डाक्टर गोयरलिज के बीच परमाणु-नगर के निर्माण के समझौते पर हस्ताक्षर करने के उपलक्ष्य में दिया गया था.

हैजल ने चीन के प्रधानमंत्री का जो इंटरव्यू लिया था, उससे वे बहुत हर्षित और प्रभावित हुये थे, चूंकि उसने प्रधानमंत्री महोदय के विचारों को बिना तोड़े-मरोड़े उसी रूप में व्यक्त किया था, प्रधानमंत्री के कहने पर इस भोज में हैजल को भी आमंत्रित किया गया था.

हैजल ने इस अवसर का लाभ उठाकर, डाक्टर गोयरलिज के और निकट आने का प्रयास किया. चूंकि उसका परिचय स्वयं चीन के प्रधानमंत्री ने डाक्टर गोयरलिज से कराया था. इसलिए डॉक्टर गोयरलिज ने भी उसके साथ ऐसे व्यवहार किया, मानो वह अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्ति ही हो.

उसके अनुरोध पर डाक्टर गोयरलिज भोज के तुरंत बाद, हैजल की एक विशेष इंटरव्यू देने को तैयार हो गये. हैजल ने उनसे कहा कि वह प्रस्तावित परमाणु-नगर का पूरा विवरण और पूरी रूपरेखा चाहती है, और वह उसे रात में ही अपने पत्र को प्रेषित कर देगी, जिससे वह इस सचित्र विवरण को समझौते के हस्ताक्षर के समाचार के साथ प्रकाशित कर सके.

डा. गोयरलिज की खुशी का ठिकाना न था. उनकी योजना को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी उम्दा पब्लिसिटी की व्यवस्था अनेक विज्ञापन-एजेंसी या जन संपर्क संस्था भी भारी रकम देकर नहीं कर सकती थी. भोज के पश्चात् वे अपनी शानदार मर्सिडीज में उसे 40 शयन-कक्षों वाले अपने निवास-स्थान पर ले गये, जहां उन्होंने विस्तार के साथ अपनी परमाणु-नगर योजना के बारे में हैजल को बताया. हैजल ने हाथ के हाथ उसे अपने शब्दों में लिया, सब चित्र रेडियो फोटो पद्धति से और विवरण सीधे फोन द्वारा अपने कार्यालय को प्रेषित कर दिया.

डा. गोयरलिज जो स्वयं 70 वर्ष की आयु में भी कर्मठ व्यक्ति थे, और कार्य-कुशलता के प्रशंसक थे, हैजल की मुस्तैदी और कार्यक्षमता से बहुत प्रभावित हुये.

सुबह, नाश्ता करते-करते, हैजल ने डाक्टर गोयरलिज से कहा, "मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानती हूं कि आपसे भेंट हो सकी. आप सचमुच विलक्षण व्यक्ति हैं."

"शुक्रिया! मगर मैं अपने अंदर कोई विलक्षणा नहीं पाता."

"चीन जैसे देश के साथ जिसका आचरण अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में सदा अनुमान का विषय रहा है, और जिसके साथ अमरीका और रूस जैसे देश भी अपने संबंध कभी स्थायी और सुदृढ़ नहीं कर पाये, आपने अच्छे संबंध स्थापित कर सचमुच अपनी विलक्षणता का परिचय दिया है. यदि मैं गलती नहीं करती हूं, तो चीन के साथ आपके व्यापारिक संबंध हमारे राष्ट्रपति अर्नशा के काल में आरंभ हुए थे."

"अ.. हां."

"आप ही के माध्यम से उन्होंने प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण संबंधी प्रौद्योगिकी तथा आवश्यक सामग्री दो देशों के जरिये भिजवाये थे."

"मैंने अपने शीघ्र प्रकाशित होने वाले संस्मरणों में इसका सविस्तार वर्णन किया है."

"हां, मैंने सुना है. और, यह भी सुना है कि आप उन्हें एक अयोग्य, लापरवाह और..... राष्ट्रविरोधी तक रहा है."

"हां, अर्नशा के बारे में मेरा यह मत है."

"हूं... यदि उन्होंने चीनियों को यह सामग्री और जानकारी देकर कोई अपराध किया, तो... तो क्या आप भी उनके साथ इस अपराध में सहभागी नहीं थे?"

"नहीं. मैं एक व्यापारी हूं. जहां लाभ देखता हूं, पैसा लगाता हूं, या मेहनत करता हूं,"

"ठीक! आप व्यापारी हैं. और मेरा ख्याल है कि हर व्यापारिक सौदे को हाथ में लेने से पहले उसे खूब ठोक-बजा लेते होंगे, यह जानने के लिये कि आपको उसमें हानि तो नहीं होगी?"

"यह तो पहली सतर्कता है, जो हर व्यापारी बरतता है... मगर आप यह सब सवाल मुझसे क्यों कर रही हैं, मिस हैजल स्मिथ?"

" आपके हित में ही कर रही हूं."

"मैं आपका मतलब नहीं समझा."

"अभी समझाती हूं. अच्छा, एक क्षण को कल्पना कीजिये कि आपसे आपके खर्चे पर परमाणु नगर का निर्माण करवाने के बाद, चीन की सरकार आपकी छुट्टी कर देती है, और न आपका भुगतान करती है, न आपके साथ किये जाने वाले समझौते की अन्य शर्तों का पालन करती है, तो आप क्या करेंगे?"

"यह नामुमकिन है. ऐसा नहीं हो सकता. कभी होगा भी नहीं."

"लेकिन यदि हो जाता है तो.... तो, आप क्या करेंगे?"

"मगर..." कहकर डाक्टर गोयरलिज विचारमग्न हो गये.

हैजल कहती रही, "चीन अभी तक राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं है और न ही अंतरराष्ट्रीय अदालत को मान्य करता है. अगर वह आपके साथ समझौता करके आपको भुगतान नहीं करता, समझौते की किसी या सब शर्तों को भंग करता है, तो आपके पास सहने और चुप बैठने के अलावा कोई और चारा न होगा. दुनिया का कोई भी व्यक्ति, कोई भी ताकत आपकी सहायता नहीं कर पायेगी."

डाक्टर गोयरलिज अभी तक खामोश सुन्न-बैठे थे. वे मन ही मन अपने को कोस रहे थे कि इतने समझदार व्यापारी होते हुए भी उनसे ऐसी भयंकर चूक कैसे हो गयी. चीन पर इस सीमा तक इतना अधिक विश्वास उन्होंने कैसे कर लिया?

तभी, हैजल ने कहा, "मैं पिछले दो दिनों से चीनी प्रतिनिधिमंडल के छोटे-बड़े सदस्यों के बीच रही हूं, उनसे काफी बातें की हैं, कि चीन का यही इरादा है, जिसकी कल्पना करने को मैंने आपसे कहा था. चीन की सरकार आपके साथ अवश्य विश्वासघात करेगी."

अब डाक्टर गोयरलिज संभले. बोले, "आपने मुझे बचा लिया."

"अब आपका इरादा क्या करने का है?"

"मैं कल चीनियों से समझैता तो करूंगा, लेकिन एक-दो शर्तें अपनी भी रखूंगा."

"मुझे खुशी है कि मैं आपके कुछ काम आ सकी. अच्छा, इजाजत चाहती हूं."

"नहीं, आप ऐसे नहीं जायेंगी, मिस हैजल! मैं नाशुक्रा आदमी नहीं हूं." कहकर वे अंदर गये और एक चैकबुक लेकर लौटे. एक खाली चैक पर अपने हस्ताक्षर करके उन्होंने कहा, "आप इसमें जितनी रकम चाहें, भर सकती हैं. यह आपकी फीस होगी, मेरी आंखें खोलने के लिये."

"मैंने आपसे कुछ लेने के लिये आपको यह गुप्त सूचना नहीं दी थी, डॉक्टर! मगर आप कुछ देना ही चाहते हैं, तो मुझे रकम नहीं, आपसे बदले में कुछ और चाहिये."

"कुछ और? क्या?"

"सिर्फ यह तो कि आप अपने संस्मरणों में से अर्नशा वाला अध्याय निकाल दें." डाक्टर गोयरलिज ने कहा कुछ नहीं, मगर चकित से हैजल को देखते रहे.

अर्नशा हैजल से फोन पर यह जानकर कि डा. गोयरलिज ने उनके बारे में लिखे गये अध्याय को अपने संस्मरणों में से निकालने का वायदा कर लिया है, कुछ क्षण के लिये अवाक् रह गये. और, जब वह उससे कुछ कहने को तैयार हुये तो उधर से फोन कट चुका था.

उन्होंने हैजल स्मिथ को ढूंढने का बहुत प्रयास किया, लेकिन हर जगह से यह मालूम पड़ा कि वह एक सप्ताह के लिये पेरिस से बाहर कहां चली गयी थी, कोई नहीं जानता था.

अर्नशा उसे जितना खोजते रहे, वह उनसे उतना ही दूर भागती रही. अब वे महत्वहीन... अर्थहीन हो गये थे—उस अलिप्त नायिका के लिये... □

प्रस्तुति : हरि.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक विषकन्याएं

देवप्रिया

स्कॉटलैंड का एक बहुत खूबसूरत शहर है—एडिनब्रा. यह शहर दुनिया भर के सैलानियों को आकर्षित करता रहा है. पर करीब सवा साल पहले एडिनब्रा का नाम 'आधुनिक विषकन्याओं' से भी जुड़ गया. एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि इस शहर की अधिकांश वेश्याएं एड्स के घातक रोग से पीड़ित हैं. वे यह रोग अपने ग्राहकों से ले कर फिर वापस उन्हीं को दे देती हैं.

वैसे तो पश्चिम के अधिकांश आधुनिक नगरों में ये विषकन्याएं आज मौजूद हैं, लेकिन एडिनब्रा और एड्स का संबंध इसलिए भी लगभग कुख्यात हो गयाकि वहां पर नशीली औषधों के रोगी काफी थे. ये रोगी इन औषधों को अपने खून में पहुंचाने के लिए जिन सुइयों का इस्तेमाल करते थे, वे एक से दूसरे हाथ में जाती थीं. नतीजा यह हुआ कि इन रोगियों ने वेश्याओं के संपर्क में आकर एड्स के वायरस को फैलाने का काम किया और चूंकि एड्स का वायरस अपना घातक रूप कभी कभी पांच-छह बाद भी दिखा सकता है इसलिए यह बताना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि किसी शहर में आने वाले पांच सालों में एड्स के कितने और रोगी बढ़ जायेंगे.

पश्चिम के सिनेमा में जेम्स बांड की आधुनिक छवि आज से 26 साल पहले पर्दे पर आयी थी. कई अर्थों में जेम्स बांड पश्चिमी सभ्यता का प्रतीक बन गया था. उसके एक हाथ में पिस्तौल होती थी और दूसरे हाथ में एक दर्जन लड़कियां भी दिखायी देती थीं. जासूसी के खतरनाक कारनामे दिखाते हुए, वह जिस किसी भी लड़की के संपर्क में आ जाता था, उसे वह बिस्तर पर ले जाना न भूलता था! लेकिन जेम्स बांड ने पिछले साल जब अपनी इस छवि के 25 साल पूरे किये, तो जो नयी फिल्म 'लिविंग डे नाइट' रिलीज हुई उसमें जेम्स बांड के पिस्तौल वाले कारनामे तो बरकरार थे, पर इन प्रेमिकाओं की संख्या काफी कम हो गयी थी. बल्कि इस पूरी फिल्म में जेम्स बांड अपना अधिकांश समय एक ही लड़की के साथ बिताता है. क्यों?

•पश्चिम में यह मान लिया गया कि अब अगर मीडिया में इस तरह के अय्याश नायकों को बढ़ावा दिया जायेगा, तो विषकन्याएं बढ़ती ही चली जायेंगी

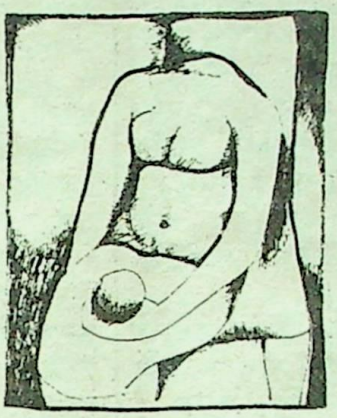

टेलीविजन के धारावाहिकों की पटकथाओं में आवश्यक सुधार किये गये. उच्छृंखल किस्म के नायकों को नये रूप में पेश किया गया. पिछले साल लंदन में एक ऐसा टी.वी. धारावाहिक बहुत लोकप्रिय सिद्ध हो रहा था, जिसका अधेड़ नायक एड्स का शिकार हो जाता है और वह अपनी पुरानी जिंदगी के मुक्त प्रेम संबंधों को दर्दनाक ढंग से याद करता है. लेकिन अब कुछ हो नहीं सकता है. विष उनके खून में प्रवेश कर चुका है.

यह अब एक बहुत जानी हुई बात है कि एड्स और समलैंगिकता का काफी गहरा संबंध है. लेकिन यह रोग वेश्याओं और ऐसी स्त्रियों से बड़ी आसानी से फैल जाता है, जो बिना किसी दिक्कत के किसी भी पुरुष के बिस्तर में चली जाती हैं.

आज पश्चिम में लोग एड्स को लेकर काफी डरे हुए हैं, लेकिन विकासशील और पिछड़े हुए देशों में तो इस तरह के रोग और भी अधिक घातक सिद्ध होते हैं. पश्चिम में कम से कम कुछ चीजों पर नियंत्रण किया जा सकता है. मीडिया की मदद से लोगों को डराया और धमकाया जा सकता है. लेकिन भारत सरीखे देशों में विषकन्याएं सेक्स से जुड़े तमाम दूसरे लोगों के उलपब्ध टीके ही नहीं लगवाती हैं, वे भला एड्स को आंधी को कैसे रोक पायेंगी.

शुरू-शुरू में जब पश्चिम में एड्स का काफी हो हल्ला हुआ था, तो भारत में सोचा जा रहा थाकि यह रोग हमसे बहुत दूर है. लेकिन ऐसा है नहीं. यह भी सोचा जा रहा था कि इस रोग की तस्वीर कहीं बढ़ा चढ़ाकर तो नहीं पेश की जा रही है. इसके पीछे कहीं 'चर्च' तो नहीं है. बहरहाल अब स्थिति काफी बदल चुकी है. यह स्पष्ट हो गया है कि आधुनिक युग में हमें इस रोग कोदूर का या अजनबी मानने की गलती नहीं करनी चाहिए. पर सवाल यह है कि इस रोग का मुकाबला कैसे किया जाये?

भारतीय चिकित्सकों और विशेषज्ञों ने तरह तरह से सुझाव दिये हैं. एक सुझाव तो यही है कि विदेशियों को जांच के बाद ही देश मेंआने दिया जाये. पर यह सुझाव बहुत व्यावहारिक नहीं है. दूसरा सुझाव और भी दिलचस्प है. इसके अनुसार, विदेशी स्त्रियों से सेक्स संबंध कानूनी रूप से रोके जायें. अपने आप में यह एक हास्यापद सुझाव है और व्यक्ति की स्वाधीनता पर खुला प्रहार है. ऐसा मान लिया गया है कि पश्चिम से आने वाली हर स्त्री मुक्त संबंधों में विश्वास करती है. इसी मानसिकता के कारण अनेक अकेली विदेशी महिलाओं को भारत के महानगरों अति आधुनिक बस्तियों में भी रहना मुश्किल हो जाता है. अधिकांश भारतीय इन महिलाओं को 'वेश्या' हो समझते हैं.

आज अधिकांश देशों में उस दिन का इंतजार किया जा रहा है जब एड्स का टीका मिल जाये. तब शायद 'एक स्त्री एक प्रेम ' का शोर फिर से धीमा पड़ जाये. लेकिन सुख के नर्क में डूब जाने की इच्छा रखने वाली आधुनिक सभ्यता इस तरह की चेतावनियों को बहुत महत्वपूर्ण नहीं मानती है. मीडिया ने पिछले दो सालों में एड्स के बारे में इतना अधिक लिखा है, पर इसके बावजूद बड़ी संख्या में लोग विषकन्याओं को गले लगाते हैं. शायद इस उम्मीद के साथ कि हर किसी में तो ये घातक रोग होते नहीं हैं. सिगरेट की डिब्बी के साथ तो यह चेतावनी रहती ही है कि 'धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है' पर सिगरेट पीने वाले इस पंक्ति का शायद अब अर्थ भी नहीं समझते होंगे. हो सकता है कि निकट भविष्य में कोई कानून बना दिया जाये कि वेश्या रूपी विषकन्याएं अपने गले में इस तरह को चेतावनी लटकाये रहें. 'हमारे साथ संबंध आपकी मृत्यु का कारण बन सकता है.' और धीरे धीरे इस तरह की चेतावनी भी अर्थहीन नजर आने लगेगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केकसी

जगदीशचंद्र पांडेय

वैसे यह बात नहीं कि दिवोदास सोमाली और माल्यवान के नाम से अपरिचित थे. यह दूसरी बात थी कि वे उस केकसी के नाम से अपरिचित थे जिसने धूल में मिल आये इन दोनों को संसार प्रसिद्ध बनाने में एक अजीब भूमिका निभाई थी. कारण वह नारी थी जिसके कारण राक्षस एक बार फिर इंद्र के सामने तनकर खड़े हो आये. अन्यथा तो शायद रक्ष संस्कृति का नाम लेनेवाला तक संसार में कोई बचा नहीं रहता. पर बावजूद इसके संसार ने नारी की ऐसी भूमिकाओं की ओर देखा कहां है. संसार ने तो केवल पुरुष को सराहा है. भारद्वाज भी इसके अपवाद नहीं थे. तभी तो उनके मुंह से दिवोदास ने इनका नाम कई बार सुना था. बल्कि एक बार तो भारद्वाज ने यहां तक कहा था, "दिवो, अगर तुम्हें सोमाली और माल्यवान से ज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर मिल पाता तो जाने संसार का कितना बड़ा कल्याण होता. क्योंकि इस समय संसार को जिस ज्ञान की आवश्यकता है उसमें इस समय सारे संसार में उनसे कोई मुकाबला नहीं कर सकता" तभी तो उनके मन में उनके प्रति धारणा थी—वे दोनों वैसे ही ज्ञानी होंगे जैसे वसिष्ठ, विश्वामित्र, शौनक आदि.

मगर आज जब उन्होंने भारद्वाज की बातें सुनीं तो स्तब्ध रह गये. उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी—सोमाली और माल्यवान सही अर्थों में उसके गुरुदेव के प्रतिद्वंदी हैं. उनकी चिंता का कारण था—उसके गुरुदेव उनके जिन प्रहारों के उत्तर की उससे अपेक्षा करते हैं उनके बारे में चौकसी केवल तब बरती जा सकती है जब उनकी असलियत का उन्हें पता चले. इसीलिए उसके बाद उन्होंने उनके बारे में भारद्वाज से कई बार पूछा. पर वे थे कि उसकी हर बात को अब टाल जाते थे. नतीजा यह कि इसके बाद उन्होंने उनके बारे में अपनी तरह से खोजबीन शुरू की. उनके पास अब जो भी ऋषि-मुनि आते थे वे उनसे सोमाली और माल्यवान के बारे में बातें करते. और तो उनके बारे में बता नहीं पाये. शौनक से उन्हें उन तथ्यों का पता चला—जिनकी जानकारी मिलते ही वे चौंक पड़े. एक तो अब एक सोमाली और माल्यवान अपने असली रूप में आ चुके थे. यानि कि वे लंका में रावण का राज्य स्थापित कर चुके थे. दूसरे दिवोदास को उनके उस अतीत का पता चला जो उनकी लगन और दृढ़ संकल्प की एक अनौखी मिसाल तो थी ही साथ ही उनकी लगन के पीछे वह केकसी थी जिसने उन्हें धूल से उठाकर संसार प्रसिद्ध बनाया था.

इनके सबसे बड़े भाई माली का उस समय लंका में राज्य था जिस समय दिवोदास के राज्य में प्रहलाद के पुत्र विरोचन का राज्य था. तब विरोचन और इंद्र के बीच संसार प्रसिद्ध युद्ध हुआ था. तब माली, सोमाली और माल्यवान विरोचन की मदद को आये थे. मगर उस युद्ध का परिणाम कि विरोचन के साथ न केवल माली मारा गया वरन विरोचन, माली, सोमाली और माल्यवान के सारे पुत्र तथा बंधु-बांधव मारे गये. यानि कि वह युद्ध राक्षसों के लिए काल बन आया जिसमें न केवल उनकी पूरी शक्ति खत्म हो आयी वरन संसार से शुक्राचार्य का वह वर्चस्व तक हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो आया जिसके बल पर वे देवताओं को अब तक लगातार चुनौतियां देते आये थे क्योंकि वे एक ऐसी विद्या जानते थे कि जिसके बल पर वे राक्षसों के मृतयोद्धाओं को जिंदा कर देते थे. शुक्राचार्य की यही तो विद्या देवताओं के लिए परेशानी का कारण थी. पर इस युद्ध में शुक्राचार्य ने राक्षसों का अनमने मन से साथ दिया. कारण बलि से लेकर प्रहलाद तक ने उनकी सलाह की उपेक्षा की थी. प्रहलाद ने उनकी इच्छा के खिलाफ इंद्र से संधि जो की थी. इसलिए मौके का फायदा उठा इंद्र ने इस युद्ध में ऐसा कत्लेआम करवाया जैसे उसने संसार से राक्षसों का बीज ही समाप्त करने का संकल्प ले डाला हो.

यह बात दूसरी थी कि नियति को यह मंजूर नहीं था, आखिर नियति यह जो जानती थी कि बिना राक्षसत्व के देवत्व की महत्ता असंभव है. सचमुच यही बात थी कि जब देवता सारे राक्षसों का कत्लेआम कर रहे थे तब सोमाली और माल्यवान न केवल देवताओं और इंद्र के घेरे से बच निकले, वरन वे पाताल लोक या वर्तमान सोमाली लैंड में ऐसे जा छिपे जैसे दोनों इस युद्ध से यह एहसास कर चुके हों कि इंद्र से बदला अस्त्र शस्त्रों से नहीं दिमाग से लिया जा सकता है. क्योंकि इंद्र ने इस युद्ध में राक्षसों की औरतों तक को बख्शा नहीं था. वह तो इनका सुभाग था कि ये किसी तरह से चार वर्षीया केकसी को अपने साथ ले जाने में सफल हो गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यथा तो शायद इनके पूरे वंश का ही नाश हो जाता.

ऊपर से इस युद्ध के बाद इंद्र ने लंका का अधिपति कुबेर को बना दिया. अज्ञातवास के दौरान जब इन्हें लंका की नयी स्थिति का पता चला तो वे पूरी तरह खीझ उठे. अब तक वे समझे थे—यदि लंका का राज्य किसी कमजोर के हाथों चला गया हो तो वे किसी न किसी तरह लंका में फिर अपना राज्य स्थापित करेंगे. कुबेर के कारण अब लंका को हथियाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो आया था. कुबेर के कारण अब ये दोनों इस बात के लिए चिंतित हो आये—देवता अब लंका में उनके अनुयायियों का छांट छांटकर कत्ल करवायेंगे. इसीलिए वे काफी परेशान हो आये. मगर वे इतने पर भी हताश नहीं हुए. उन्होंने संकल्प लिया—वे अपने जीते जी हर हालत में लंका को वापस लेंगे.

मगर ऐसा हो पाना आसान नहीं था. इसके लिए उन्हें महान योद्धाओं की जरूरत थी. उनकी अब वर्तमान स्थिति यह थी कि योद्धाओं का मिलना तो अलग, वे अपने दुखों को हल्का करने किसी से अपने मन की बात तक कह नहीं सकते थे. उनके पास शक्ति होती तो वे योद्धा तैयार कर सकते थे. वे तो स्वयं पाताल लोक में छद्म वेश में समय काट रहे हैं. असलियत को बताने में तक खतरा था—कहीं ऐसा न हो जिसे वे अपना समझें वही इंद्र को उनके जिंदा होने की खबर दे दे. इसीलिए वे पूरी तरह परेशान थे. अलबत्ता उनके लिए थोड़ी राहत की बात यह थी कि नन्हीं-सी गुड़िया केकसी के माध्यम से वे अपने दुखों को हल्का किया करते थे. उसे तरह-तरह की कहानियां सुनाने के बहाने वे अपने मन की खीझ कम किया करते थे. यह दूसरी बात थी कि जैसे-जैसे केकसी बड़ी होती गयी वैसे-वैसे उनके लिए यह साधन भी खत्म हो आया. केकसी दिखने में बेहद सुंदर थी. चौदह पंद्रह साल की होने पर तो उसे देख उन्हें कुछ आशा बंधी. उसी के बल पर उन्होंने आपस में योजना बनाई-संतान प्राप्ति की इच्छा से अगर केकसी को विश्रवा के पास भेजा जाये और विश्रवा राजी हो जाये तो उनका काम बन सकता है. कारण इस प्रकार केकसी का बच्चा कुबेर का भाई हो जाने पर कुबेर के खिलाफ चाहे उन्हें विश्रवा का समर्थन न मिले पर केकसी के बच्चे का विरोध भी नहीं होगा. मगर प्रश्न यह था—यह बात बेटी से कही जाये तो कैसे. हालांकि उन दिनों ऐसी इच्छा जाहिर करना मान्य था. फिर राक्षसों में तो मुक्त सहवास तक मान्य था. मगर यहां प्रश्न अपनी इच्छा का नहीं था. यहां प्रश्न केकसी की इच्छा से जुड़ा हुआ था. पर मजबूरी ऐसी थी कि उन्हें अंततः ये बातें केकसी से कहनी पड़ीं. सुनकर वह चौंकी थी. पर चाचा की पूरी बात सुन कर वह राजी हो गई. पिता तथा चाचा के दुख का उसे भी तो पता था. पर इसके बावजूद उसने एक नया ही प्रश्न खड़ा कर दिया—वैसे वह अपनी ओर से तो कुछ कहेगी नहीं पर यदि विश्रवा जी ने उससे शादी करने की बात कही तो वह उसे स्वीकारेगी क्या.....

सचमुच इस प्रश्न के बारे में सोमाली और माल्यवान में से किसी ने सोचा नहीं था. फिर ऐसा हो आने पर पेचदिगियां भी कम

विश्रवा केकसी को देखेते ही मोहित हो गये. उन्होंने उससे शादी की बात कह दी. केकसी सुंदर जो थी. उन्हें क्या पता था आगे चलकर केकसी उसके अपने लिए समस्या बनने वाली है.....

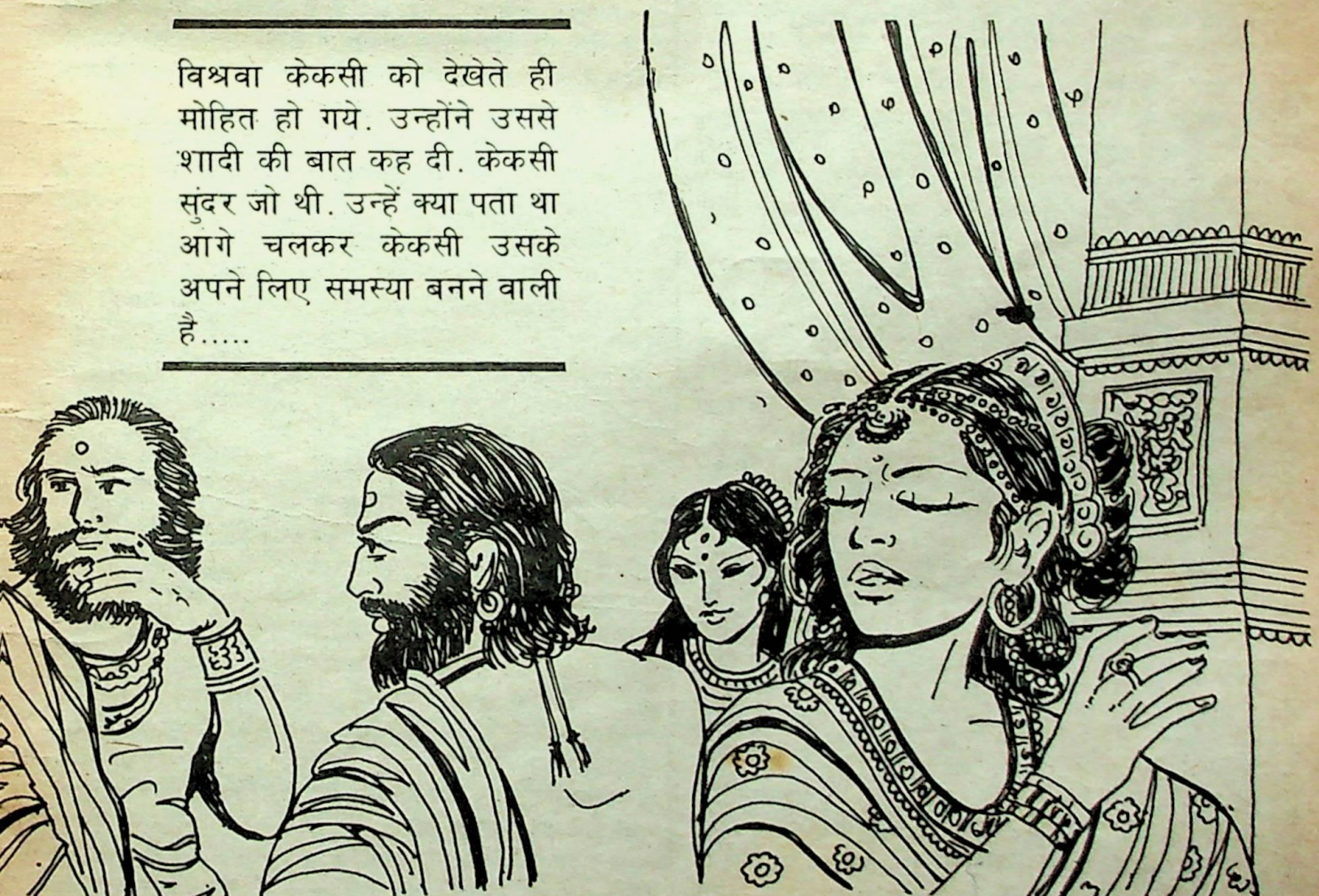

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थीं. पहले तो लंबे समय तक केकसी के लिए अपना राज छिपाये रहना कठिन था. फिर बच्चे के विश्रवा के संरक्षरण में पलने पर खतरा यह भी था—कहीं वह उलटा उनका विरोधी न हो आये. पर बावजूद इसके बहुत सोच-विचार कर कूटनीति के तौर पर सोमाली ने केकसी को माल्यवान ने संरक्षण में विश्रवा के पास भेज दिया. विश्रवा केकसी को देखते ही मोहित हो गये. उन्होंने उससे शादी की बात कह दी. केकसी सुंदर जो थी. उन्हें क्या पता था आगे चलकर केकसी उनके अपने लिए समस्या बनने वाली है. बस अब क्या था, विश्रवा की इस बात के कारण सोमाली और माल्यवान की पूरी तरह बन गयी. कूटनीति के तौर पर पहले तो वे दूर रहे. फिर जब केकसी के रावण और एक पुत्र और हो आये तो वे भी विश्रवा के आश्रम में चले आये. भला पत्नी के पिता और चाचा पर विश्रवा को शक कैसे हो सकता था.

जबकि सोमाली, माल्यवान और केकसी थे कि बचपन से ही रावण को कुबरे के खिलाफ तैयार करने में जुट गए. सोमाली ने रावण का नाम भी काफी सोच समझकर रखा था. रव का अर्थ आंधी तूफान जो था. यानि कि वे रावण को ऐसा बनाना चाहते थे जिसके नाम भर से लोग ऐसे कांपें जैसे आंधी और तूफान धरती को कंपाती है. बल्कि इन्होंने तो ऐसा तक किया कि कुबेर जब कभी पिता के पास आता, ये तीनों रावण को उसे ऐसे दिखाते थे जैसे कुबेर उसका बड़ा भाई न होकर उसका नंबर एक शत्रु है. ऊपर से रावण के मन में सौतेलेपन का जहर भी कम नहीं था. रावण बड़ी मां के हर व्यवहार का उल्टा अर्थ लगता था.

इस सारे प्रकरण का आश्चर्य तो यह था कि सोमाली, माल्यवान और केकसी यह सब करते हुए भी अपने असली रूप को छिपाये हुए थे. दो बार ऐसे अवसर आये जब उनकी चालों का भांडा फूट सकता था. दोनों बार उनको पहचाननेवाला इंद्र वहां आया था. पर वे इतने कुशल थे कि ठीक मौके पर किसी न किसी बहाने आश्रम से दूर हो जाते थे. खतरा जो था—इंद्र इनको देखते-ही सारी चालें भले ही भांप नहीं पाये. मगर इतना तो भांप ही सकता था कि केकसी की विश्रवा की पत्नी बनने के पीछे कोई न कोई चाल जरूर है. जहां तक केकसी की बात थी उसे इंद्र पहचानता कैसे. उसे तो उसने कभी देखा ही नहीं था. फिर केकसी के छिपने पर राज खुल जाने का भी तो खतरा था. तभी तो केकसी इंद्र का आतिथ्य-सत्कार करने में सबसे आगे रहती थी. ऊपर से वह चतुर इतनी थी कि पत्नी होते हुए जिस तरह से वर्षों से विश्रवा से अपना राज छिपाये हुए रही उसी तरह उसने इंद्र कीभी आंखों में धूल झोंक दी.

यह अलग बात थी कि काफी अर्से बाद ये तीनों भारद्वाज की निगाह से बचे नहीं रह सके. इंद्र के आने की तो इन्हें पूर्व सूचना मिल जाती थी. भारद्वाज के आने की थोड़े इन्हें पूर्व सूचना मिली थी. फिर भारद्वाज के आने का संयोग भी ऐसा हो आया, जिस समय भारद्वाज विश्रवा के आश्रम में दाखिल हुए उस समय सोमाली, माल्यवान, केकसी और रावण एक साथ खड़े थे. हालांकि केकसी को वे फिर भी पहचान नहीं पाये. उन्होंने उसे नन्हीं गुड़िया के रूप में देखा था. पर सोमाली और माल्यवान को वे पहचान गये. यह देख उनका खून खौल गया. पर विश्रवा जी के प्रति उनके मन में आदर था इसीलिए गुस्से को पी गये. उन्होंने सुन जो रखा था कि विश्रवा जी ने दूसरी शादी कर ली है. पर बावजूद इसके विश्रवा को प्रणाम करने के तुरंत बाद वे अपने को रोक नहीं पाये. मुस्कराते हुए बोले, "मुनिवर, आपकी तो जवानी बुढ़ापे में फिर लौट आयी है. वैसे यह तो मैंने सुना था कि आपने दूसरी शादी कर ली है. पर..."

"अरे भारद्वाज..." कहते कहते विश्रवा ने भारद्वाज की बात बीच में ही काट दी. फिर तनिक मुस्कुराते हुए बोले, "भाई मुनष्य देह की कमजोरी की बातें जो हुई? खैर ये बातें छोड़ो, अपनी बातें सुनाओ."

"मुनिवर मेरा तो हाल ठीक है." कहते हुए भारद्वाज ने आसमान की ओर देखा, "पर मुझे आपका हाल बेहाल लगता है."

"क्या मतलब?" भारद्वाज पर उन्हें भी अटूट विश्वास था.

"मेरे ख्याल से जिसे आपने अपनी दूसरी पत्नी बना रखा है वह उसी सोमाली की पुत्री है जिसे हम अब तक मृत समझे हुए थे."

अब भारद्वाज खुलकर सामने आ गये थे. उन्होंने विश्रवा से यह तक कह डाला कि जिसे आपने कुबेर की विमाता बनाया है वह कुबेर की हत्यारिन बनने वाली है. मगर अब विश्रवा थे कि भारद्वाज की हर बात का विरोध करने लगे. उनका कहना था-भला संसार में सगा भाई भाई को मारता है क्या? और तो और उन्हें केकसी पर पूरा विश्वास था. वह ऐसा नहीं करवा सकती है. उसने तो उनकी अब तक ऐसी सेवा की थी कि उन्हें कुबेर की मां की सेवा फीकी लगा करती थी. तभी तो जब विश्रवा माने ही नहीं तो भारद्वाज बोले थे, "जरा केकसी से जाकर तो पूछिये तुम्हारा पिता सोमाली और चाचा माल्यवान हैं या नहीं. बल्कि मेरा तो ख्याल है अगर आपने अब जरा भी और देर की तो शायद आप केकसी से यह पूछ भी नहीं पाओगे....."

सचमुच हुआ भी यही. विश्रवा केकसी की कुटिया में बाद में पहुंचे, तब तक सोमाली, माल्यवान आदि वहां से कभी के भाग चुके थे. तभी तो क्षुब्ध हो विश्रवा ने अपने सारे शिष्यों को इनको पकड़ने को दौड़ाया. यह तो क्या इसके बाद स्वयं भारद्वाज तक सोमाली आदि को पकड़ने भागे. पर फिर उनका पता ही नहीं चल पाया कि वे भागे हैं तो किस ओर. आखिर जिन्हें भारद्वाज अपना प्रतिद्वंदी मानते थे वे इतने मामूली कैसे हो सकते थे जो उनका आसानी से पता चल जाये. वे तो भारद्वाज से भी अधिक तेज थे. जितनी देर में भारद्वाज विश्रवा के पास पहुंचे उतनी ही देर में वे केकसी के चारों बच्चों को साथ ले वहां से भाग निकले. कारण, एक भी बच्चे के विश्रवा के पास फंसे रहने पर खतरा था—विश्रवा की शर्त उन्हें माननी पड़ सकती है. यही वजह थी कि इस नये सत्य का पता लगने पर विश्रवा पूरी तरह हक्के-बक्के रह गये. उनकी आंखों के सामने केकसी के सानिध्य के वे सारे के सारे क्षण बार-बार याद हो आते थे जिसके साथ उनके जीवन के पंद्रह-सोलह वर्ष का कालखंड जुडा हुआ था. इतनी लंबी अवधि में एक बार भी तो ऐसा नहीं हुआ था जिसमें केकसी पर संदेह किया जा सकता था. और तो और उसने कुबेर की मां तक का मन जीता हुआ था. उसकी भी वह बहुत सेवा किया करती थी. मगर आज उसका इस प्रकार भागना ऐसा था जिसने सारी बातों को नया ही अर्थ दे डाला था.

जब इंद्र को इन बातों का पता चला वह भी स्तब्ध रह गया. इन सारी बातों का असली असर उसी पर तो पड़ना था. तभी तो उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें खोजने अपने पूरे दल-बल को झोंक दिया. और तो और उसने सैकड़ों नाविकों को समुद्र में उतार दिया. पर अब वे किसी की भी पकड़ में नहीं आ सके. सुरक्षा की दृष्टि से वे मयदानव के राज्य में पहुंच गये थे. मयदानव भी उन्हें देख फूला नहीं समाया. उनके पास योद्धा तो कई थे पर कूटनीतिज्ञ एक भी नहीं था. उसे अब एक साथ अपने दो माने हुए कूटनीतिज्ञ मिल गये थे. यह अलग बात थी कि उसकी भी आंखें लंका पर थीं. इसके लिए उसने भी अपनी ओर से प्रयास शुरू कर रखे थे. देवताओं की जगत प्रसिद्ध सुरा-सुंदरियोंवाली कमजोरी का लाभ उठाने के लिए उसने भी देवताओं के पास राक्षस कन्याएं भेजनी शुरू कर दी थीं. ऊपर से सूर्यवंश की स्थापना होते ही उसने भी देवताओं को लड़ाना शुरू कर डाला था. हालांकि मयदानव की इन बातों से सोमाली तथा माल्यवान प्रसन्न हुए, पर लंका वाली बात से वे भी परेशान हो उठे. मगर माल्यवान इतना तेज था कि उसने एक नयी ही तरकीब खोज निकाली. वह यह कि उसने मय की पुत्री मंदोदरी से रावण की शादी करवा डाली. ताकि रावण के हाथों मयदानव का भी सपना पूरा हो और उनका अपना भी.

उधर अब कुबेर की स्थिति यह थी कि वह भले ही सुरा और सुंदरी में हर क्षण, हर पल खोया नहीं रहता था पर इनका वह रसिक अवश्य हो आया था. उसकी इसी कमजोरी का लाभ उठाने अब सोमाली और माल्यवान तन आये. अब वे अपने में से खूबसूरत राक्षस कन्याओं को सुनियोजित ढंग से कुबेर के पास भेजने लगे.

इस पर भी इस सारे प्रकरण का आश्चर्य यह कि राक्षस कन्याओं को प्रशिक्षित करने का कार्य केकसी संभाले हुए थी. उसे कुबेर की कमजोरियों तथा भलाइयों का और भी बारीकी से पता था. हालांकि ऊपरी दृष्टि से उसके ये कार्य ऐसे थे जिन्हें एक मां किसी कीमत में नहीं कर सकती थी. आखिर वह कुबेर की विमाता ही सही, मां तो थी ही. इसके पीछे उसकी भी एक गहरी चाल थी. वह कुबेर को लंका से हटाकर लंका में रावण का अधिपत्य तो स्थापित करना चाहता थी. पर कुबेर को किसी कीमत में मरवाना नहीं चाहती थी. पिता और चाचा पर उसे तनिक भी विश्वास नहीं था कि वे कुबेर को जिंदा रहने देंगे. इसीलिए मजबूरी में उसने यह कार्य अपने हाथों में लिया था.

सचमुच यह भी केकसी की कार्य कुशलता का परिणाम था कि एक ओर वह प्रशिक्षित राक्षस कन्याओं को कुबेर के पास भेजती वहीं दूसरी ओर रावण की रक्षा व्यवस्था की बागडोर धीरे-धीरे अपने हाथ में कुछ ऐसे ले ली कि ज्यों-ज्यों रावण का दबाव लंका में बढ़ता चला गया त्यों-त्यों वह कुबेर की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी. वह अपने विश्वासपात्रों के माध्यम से कुबेर को रोज नये-नये कमरों में सुलाने लगी. और तो और उसने तीन बार कुबेर के ऊपर हो सकनेवाले घातक हमलों तक को विफल कर दिया. जब उसने देखा कि रावण के बढ़ते प्रभाव से कुबेर का महल तक बचा नहीं रहा तो उसने कुबेर को चोर दरवाजे से निकालकर भारद्वाज के आदमियों के हवाले ऐसे किया जैसे अपने इस कृत्य के माध्यम से वह भारद्वाज को एहसास करा देना चाहती हो कि प्रतिद्वंदिता उनकी और उसके पिता और चाचा के बीच है. दीदी और उसके बीच नहीं. नारी होने के नाते वह सब कुछ सह सकती है पर दीदी की कोख का सूना होना वह कदापि नहीं सह सकती. □

बीसवीं सदी की विष-कन्या

महाराजा रणधीर सिंह के दरबार में राग-रंग छिड़ा हुआ था. उनकी चहेती गायिका अजरा शमीम मचल – मचलकर गजल अदा कर रही थी. और महाराजा तो जैसे लुटे जा रहे हों—सुध-बुध खोये अजरा को निहारते जाते.

महाराजा रणधीर सिंह एक दबंग राजा थे. उनकी रियासत में अंग्रेज कर्नल ब्रैंडन एजेंट के पद पर रहता था. उन दिनों राजे-महाराजे अंग्रेज रेजीडेंट की लल्लो-चप्पो किया करते थे. पर महाराजा रणधीर सिंह दूसरी ही मिट्टी के बने हुए थे. और जब देश-प्रेम की लहर उनके राज्य में फैली तो बजाय उससे बचने के उन्होंने उसे प्रोत्साहन भी दिया.

कर्नल ब्रैंडन चौंका. उसने वाइसराय के दफ्तर का दौरा भी किया और वहां इस नतीजे पर पहुंचे कि महाराजा को इस बिना पर तंग नहीं किया जा सकता. हां-अगर उन्हें किसी तरह से खत्म कर दिया जाय तो गद्दी पर उनके बेटे को बैठाया जा सकता है जो इंग्लैंड में पढ़-लिखकर आधा अंग्रेज तो बन ही चुका है. फिर इस षड्यंत्र पर कर्नल ब्रैंडन दिमाग दौड़ाने लगा. कुछ चाटुकारों की मदद से उसने यही तय पाया कि महाराजा साहब दरबारी गायिका अजरा पर लट्टू हैं और उसके कहने में भी हैं.

और जिस दिन जन्म-दिवस का जशन हुआ तो अजरा अपने गुलाबी पिशवाज में अप्सरा लग रही थी. फिर उसने गजल छेड़कर महाराजा साहब को दीवाना बना डाला. और फिर वह जहर का प्याला लेकर आगे बढ़ी. उसी वक्त रियासत के बूढ़े दीवान गोपाल सिंह ने कड़क कर कहा, "ठहरो!"

बीसवीं सदी की विष-कन्या रंगे हाथों पकड़ी गयी. जब वह शराब कुत्ते को दी गयी तो वह आधा घंटे में ही मर गया. महाराजा रणधीर सिंह सहम गये. अजरा ने यह सब किया? उस अजरा ने जिस पर वे भंवरे की भांति दिन-रात गुंजन करते थे. उस अजरा ने जिसे उन्होंने क्या कुछ नहीं दिया-मकान, जायदाद, हीरे, मोती और यहां तक कि अपना दिल भी. दरबार के लोग भड़क उठे और बोले, "महाराजा सा, इस को सजाये मौत दी जाये."

महाराजा रणधीर सिंह बोले, "नहीं, इसे मैंने अपने संरक्षण में रखा है इसलिये इसे मार नहीं सकता. हां, अलबत्ता इसे वह सजा दी जायेगी जिसे सुनकर यह कांप जायेगी." और महाराजा रणधीर ने नौकरों से कहा, "इस हरामजादी को मादर जात नंगा कर दिया जाये. और इसी हालत में इसे बाजार से निकाला जाय."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैली वाटसन

इरविंग वैलेस का प्रसिद्ध उपन्यास 'द मैन' एक ऐसे नीग्रो सिनेटर की कथा है, जो संयोगवश अमरीका का राष्ट्रपति बन जाता है. उसे अपदस्थ करने के गोरे सिनेटरों के चक्र-कुचक्र और उसमें एक सुप्रसिद्ध सिनेटर की पुत्री मिस सैली वाटसन के कारनामों का इतिवृत्त प्रस्तुत करता इसी उपन्यास का रोचक अंश—

अमरीका के पहले नीग्रो राष्ट्रपति डिलमैन ने उसे इंटरव्यू के लिये बुलाया है, यह सूचना अपने नीग्रो मित्र तथा डिलमैन के जीवनी-लेखक लेराय से प्राप्त करने के बाद से 21 वर्षीया मिस सैली वाटसन का दिल तेजी से धड़कना शुरू हो गया था. और यह धड़कन राष्ट्रपति के कार्यालय में प्रवेश करने के बाद' भी नहीं रुकी थी. उसे डर लग रहा था कि इस धड़कन के कारण कहीं वह डिलमैन के प्रश्नों के उत्तर देते समय गड़बड़ा न जाये. तब तो उसकी योजना पूरी तरह फेल हो जायेगी. वह तो अच्छा हुआ कि राष्ट्रपति महोदय उससे बातचीत करना शुरू भी न कर पाये थे कि किसी से लंबी फोन-वार्ता में उलझ गये, जो पांच-छह मिनट तक चली. इस दौरान, सैली को अपनी दिल की धड़कनें शांत करने में काफी हद तक सफलता मिल गयी. उसने चुपचाप अपना मेकअप भी, इस बीच ठीक कर लिया.

फोन-वार्ता से निपटकर, जैसे ही डिलमैन उसकी ओर मुखातिब हुए, उसने उन्हें कुछ पूछने का मौका दिये बिना, खुद अपने बारे में बताना आरंभ कर दिया. वह यह निश्चय करके आयी थी कि उसे राष्ट्रपति की 'सोशल सैक्रेटरी' बनना ही है, हर हालत में. काली त्वचा के बावजूद, उसे डिलमैन इतने अनाकर्षक न लगे थे, जितना उसने आने से पहले सोचा था. उसे उनमें बस एक ही खामी नजर आ रही थी, और वह यह कि उन्होंने उस जैसी सुंदर, मोहक, आकर्षक युवती की ओर एक बार भी प्रशंसाभरी निगाहों से नहीं देखा था. इसका कारण शायद यह हो कि अभी उनका ध्यान कहीं और केंद्रित था. मगर, उसे यह काफी नागवार लगा था.

उसने कहना शुरू किया, "आप इसे बड़बोलापन मानेंगे. राष्ट्रपति महोदय, मगर मैं जो कुछ कह रही हूं, पूरी ईमानदारी के साथ कह रही हूं. मैं पूरे विश्वास के साथ यह मानती हूं कि मुझसे ज्यादा योग्य और कर्मठ 'सोशल सैक्रेटरी' आपको शायद ही मिले. मैं दक्षिण के एक प्रमुख सिनेटर मिस्टर हौयट वाटसन की पुत्री हूं. कालेज के दिनों में हर किस्म के लोगों से मिलने का मुझे शौक रहा है. मैं हर किसी के साथ आसानी से घुल-मिल जाती हूं. लोगों के मन में क्या है, और वे किस बात से 'मोटिवेट' होते हैं, यह मैं सहज रूप से जान लेती हूं. पिछले दो राष्ट्रपतियों की 'सोशल सैक्रेटरी', मिस लॉरिल, मिस टकरमॅन और मिस बाल्ड्रिज से मेरा घनिष्ठ परिचय रहा है. इस पद पर कार्य करने की मेरी तीव्र इच्छा को जानकर उन्होंने मुझे इस पद की क्या अपेक्षाएं हैं, यह सब बता दिया था. इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव न होते हुए भी मैं जानती हूं कि मुझे क्या करना होगा, इसलिए मुझे किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होगी. वाशिंगटन की किसी भी नामी 'सोशलाइट' से आप मेरे बारे में पूछकर देख सकते हैं. वे सब मेरी रुचियों और मेरे व्यवहार-कौशल की तारीफ करेंगी, ऐसा मेरा पूरा विश्वास है. अपनी मां की मृत्यु के बाद, मैं अपने व्यस्त पिता की सोशल सैक्रेटरी रही हूं. उनसे मिलनेवाले उच्चवर्गीय लोग भी मेरे शऊर की तारीफ करेंगे. वाशिंगटन के उच्चवर्गीय गोरे लोगों के अलावा, नीग्रो समाज के प्रायः सभी संभ्रांत और नामी लोगों को भी मैं बखूबी जानती हूं. और तो और, आप अपने सैक्रेटरी ऑफ स्टेट मिस्टर ईटन से मेरे बारे में पूछकर देख लीजिये."

इतनी देर के बाद, डिलमैन को, जो अब तक सुने ही जा रहे थे, कुछ कहने का मौका मिला. उन्होंने पूछा, "मिस्टर ईटन आपसे परिचित हैं, मिस वाटसन?"

"आप खुद उन्हीं से पूछकर देख लीजिये," मुस्कराते हुए मिस वाटसन ने कहा.

"ठीक है. मैं उनसे पूछकर देखता हूं... आप इस बीच बाहर मेरी सैक्रेटरी मिस फास्टर के पास बैठिये, कुछ मिनट के लिये."

मिस फास्टर के पास जाते-जाते, मिस वाटसन सोच रही थी कि न मालूम ईटन-उसके नवीनतम प्रेम-उसकी इस नौकरी के बारे में, जिसका जिक्र उसने अभी तक उनसे नहीं था, क्या कहेंगे? काश! ईटन को ज्ञात होता कि वह जो कुछ कर रही है, उसी के हित में कर रही है, अपने लिये नहीं. यदि उसने उसके खिलाफ डिलमैन से कुछ कहा, तो...तो...वह हमेशा-हमेशा के लिये ईटन से संबंध-विच्छेद कर लेगी... हां, वह उससे कोई संबंध नहीं रखेगी, यह तय है.

करीब पांच मिनट के बाद, डिमलैन ने उसे वापस बुलाया.

जैसे ही, उसने राष्ट्रपति के कार्यालय में प्रवेश किया, राष्ट्रपति डिलमैन ने मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया, और कहा, "व्हाईट हाउस में आपका स्वागत है, मिस वाटसन? मेरे सैक्रेटरी ऑफ स्टेट ने तो आपकी इतनी ज्यादा तारीफ कर डाली कि एक क्षण के लिये तो मैं डर गया कि मैं खुद आप जैसी अन्यतम सोशल सैक्रेटरी के लायक हूं भी या नहीं. खैर मुझे खुशी है कि आप जैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार-कुशल, लोकप्रिय तथा आकर्षक बनाकर मेरी सार्वजनिक छवि को दुरुस्त रखने में मेरी सहायता करेंगी. पुनः आपका स्वागत.''

व्हाईट हाउस से बाहर आते ही मिस वाटसन ने सैक्रेटरी ऑफ स्टेट ऑर्थर ईटन के व्यक्तिगत नंबर पर उसे फोन किया. वह बेहद खुश थी कि राष्ट्रपति भवन में उसने जो तीर चलाया था, वह निशाने पर बैठा. उसे उम्मीद थी कि उसका दूसरा तीर भी निशाने पर ही जाकर बैठेगा.

''हैलो, सैली क्या हुआ?''

''मेरा काम हो गया. मुझे सोमवार को काम पर हाजिर होना है. ओह! मैं कितनी खुश हूं. मगर, इस खुशी के लिये मैं तुम्हारी अहसानमंद हूं, आर्थर.''

''नहीं, तुम्हें यह पद तुम्हारी योग्यता के बल पर मिला है. मैंने डिलमैन से साफ-साफ कहा कि सोशल सैक्रेटरी के पद के लिये तुम्हें मिस सैली वाटसन से ज्यादा स्मार्ट, लोकप्रिय, चतुर और अंकलमंद लड़की सारे वाशिंगटन में क्या, सारे अमरीका में नहीं मिलेगी. बधाई, सैली.''

''आर्थर! मैं तुम्हारे अहसान का बदला कैसे चुकाऊं?''

''बस, अपना काम पूरी लगन से करती रहो.''

''नहीं, मैं दूसरे तरीके से यह बदला चुकाना चाहती हूं. तुम्हारी पत्नी तो न मालूम कब लौटेगी? लौटेगी भी या नहीं, कौन जाने. घर पर अकेलापन तो बहुत खलता होगा.''

''बहुत ज्यादा. कभी-कभी तो...खैर, वह छोड़ो.''

''नहीं, तुम भले ही मुझे छोड़ना चाहो, मुझे तुम्हें नहीं छोड़ना है. कल रात के खाने पर मैं, और सिर्फ मैं, तुम्हारे साथ रहूंगी. कम से कम 'हां' तो कहो.''

''अ...हां...मगर.''

''अगर-मगर कुछ नहीं. मैं ठीक सात बजे आऊंगी. मेरे और तुम्हारे बीच कोई और नहीं होना चाहिये, आर्थर!''

''ओ.के. मेरी योजना तो अभी से शुरू हो गयी है.''

''इस बार मैं तुम्हें निराश नहीं करूंगी. पिछली बार, तुम्हें अचानक 'व्हाईट हाउस' जाना पड़ गया था, इसलिए... खैर मेरा इंतजार करना.'' कहकर उसने फोन रख दिया. वह खुश थी, क्योंकि उसका दूसरा तीर भी ठिकाने पर बैठा था.

अजीब लड़की थी मिस सैली वाटसन.

कुछ लोग होते हैं, जिन्हें खतरों में जीने में ही आनंद मिलता है. परंपराओं को लात मारकर, स्वेच्छाचारिता को अपनाने में ही 'थ्रिल' महसूस होता है, जिनके लिये जिंदगी बेमानी हो जाती है, जब उसमें से खतरे...स्कैंडल...स्वच्छंदताएं दूर हो जायें. जिन्हें सपाट, सुरक्षित जीने की राह पसंद नहीं, जो जिंदगी के उबड़खाबड़ रास्ते पर दुस्साहसी बनकर अंधाधुंध भागना पसंद करते हैं. सैली ऐसे ही लोगों में से एक थी.

सात-आठ साल पहले, जब वह सिर्फ 14 वर्ष की थी, उसे हिप्पियों की संगत में मारिजुआना के सेवन की लत लग गयी थी. जब उसके पिता ने उसे इस लत से मुक्त कराने के प्रयास किये थे, तो उसने चाकू से अपनी कलाई की नसों को चीरकर आत्महत्या करने का प्रयास किया था. अस्पताल से अपना इलाज (मारिजुआना के दुष्प्रभावों का) कराने के बाद जब वह वापस घर लौटी, तो एक सप्ताह के अंदर ही अपने से सिर्फ तीन साल ज्यादा आयु के एक आवारा प्यूटोकेरियन लड़के के साथ भाग गयी थी. सिनेटर ने इस समाचार को प्रकाशित या प्रसारित नहीं होने दिया था; और खुफिया पुलिस की मदद से उसे पकड़वाया था, और लड़के को पुलिस द्वारा देश-निकाला करा दिया था. घर पर आकर, उसने अपनी परेशानियों के लिये खुले आम अपने माता-पिता को जिम्मेदार ठहराया था, और फिर आत्मघात करने का प्रयास किया था, क्योंकि उसे असली शांति मौत में ही दिखायी देती थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति या राजनीतिज्ञों में उसकी कोई रुचि नहीं रही थी, यद्यपि स्वयं उसके पिता राजनीति में सक्रिय थे. लेकिन, एक शाम उसे अपने पिता के साथ राजनीतिज्ञों की एक डिनर-पार्टी में जाने का मौका मिला. संयोग से उसे जो सीट मिली, वह ईटन की सीट से ठीक सामने थी, जहां से वह उसे न सिर्फ साफ-साफ देख सकती थी, उसकी 'जादुई' आवाज भी सुन सकत थी. नतीजा यह हुआ कि वह प्रथम दृष्टि से ही सैक्रेटरी ऑफ स्टेट को अपना दिल दे बैठी

ईटन-अमरीका के सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, एक विवाहित और प्रतिष्ठित हस्ती इस छोकरी का प्रणय-निवेदन सुनकर सकपकाकर रह गये. कोई और लड़की होती, तो वह उसे वहीं रफा-दफा कर देते, मगर वह, कुछ भी हो, एक प्रभावशाली सिनेटर की पुत्री थी. मोहक और आकर्षक थी. जवान थी, उनकी बेटी की आयु की. ईटन फिसल गये. मगर, अपने को थोड़ा संभालकर धीरे से बोले, "मैं... आप जैसी प्यारी और हिम्मती लड़की से पहली बार मिल रहा हूं. कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा."

"सपना तो जब शुरू होगा, जब हम दोनों एक दूसरे के और निकट आयेंगे."

"मगर मैं ठहरा एक अधेड़ आदमी. मेरा ख्याल है कि तुम्हारी जैसी शोख और हसीन लड़की के सैकडों युवक प्रेमी होंगे."

"हजारों भी हो सकते थे, मगर एक भी नहीं है. मैं कच्चे-बच्चों से कोई वास्ता नहीं रखती. मुझे सभ्य और सरस पुरुष पसंद हैं... आप जैसे."

सैली का दु:साहस देखकर ईटन दंग रह गये. कई मिनट तक खामोश शून्य में ताकने के बाद उन्होंने पूछा, "तुम मुझसे क्या चाहती हो, सैली?"

"मैं मिसेज ईटन बनना चाहती हूं—जल्दी से जल्दी. और, यह भी जानती हूं कि जहां चाह है, वहां राह निकल ही आती है."

इसमें कोई संदेह नहीं था कि ईटन का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था. दिलकश चेहरा, सौम्य, मधुर स्वर और व्यवहार. उसके इस व्यक्तित्व की बदौलत ही एक दशक पूर्व, अमरीका के सबसे धनी घरानों में से एक की एकमात्र उत्तराधिकारी के ने जो सदा तथाकथित प्रेमियों से घिरी रहती थी, उसे अपना पति बनाया था. दोनों के दिल मिले, शरीर भी मिले, मगर स्वभाव कभी नहीं मिल पाया. इसी कारण के पिछले दो-तीन वर्षों से ईटन से अलग रह रही थी, और अब हालत यह आ गयी थी कि उसने ईटन की तथाकथित 'मानसिक क्रूरता' से छुटकारा पाने के लिये तलाक की तैयारियां कर ली थीं.

सैली ने जब ईटन से प्रणय-निवेदन किया था, तो वह इस स्थिति से अनजान थी. लेकिन, जब उसे स्थिति का पता चला तो ईटन की पत्नी बनने का उसका निश्चय, जिसका पता उसे और ईटन को छोड़कर किसी तीसरे व्यक्ति को नहीं था, और भी दृढ़ हो गया.

डिलमैन किन विचित्र और अप्रत्याशित परिस्थितियों में अमरीका के राष्ट्रपति बने थे, इसकी जानकारी सैली को टेलीविजन पर समाचार संबंधी कार्यक्रम देखकर हुई थी. कारण समाचारपत्र पढ़ने का शौक उसे कभी नहीं रहा था. उसे मालूम था कि भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति, जिन्हें लोग प्यार से 'टी.सी.' कहा करते थे, रूसी नेताओं के साथ बात करने के लिये अफ्रीका गये हुए थे, वहां जिस 600 वर्ष पुराने महल में उन्हें ठहराया गया था, उसकी छत गिर जाने से उनकी मृत्यु हो गयी थी. चूंकि उनके प्रमुख सहायक-उप राष्ट्रपति का निधन कुछ समय पूर्व ही हुआ था, इसलिए अमरीकी संविधान के प्रावधानों के अनुसार, स्पीकर मैक्फरसन को राष्ट्रपति-पद के लिए चुना गया. लेकिन, दुर्भाग्य से, और संयोगवश मैक्फरसन भी उस समय एक अस्पताल में मौत से जूझ रहे थे. टी.सी. की मृत्यु के कुछ घंटे बाद ही शोक-स्तब्ध अमरीकी जनता को पता चला कि मैक्फरसन भी चल बसे.

अमरीकी संविधान के प्रावधानों के अनुसार, वरीयता-क्रम में अब नंबर था-अमरीकी सिनेट के 'प्रोटेन्यो' अध्यक्ष का. वे निकले, एक नीग्रो सिनेटर डिलमैन. संविधान के प्रावधानों का आदर करते हुए; मुख्य न्यायाधीश ने उन्हें ही राष्ट्रपति पद की शपथ दिलायी और इस प्रकार अमरीकी इतिहास में पहली बार एक नीग्रो को राष्ट्रपति बनने का गौरव प्राप्त हुआ.

डिलमैन का राष्ट्रपति बनना अधिकांश सिनेटरों को नहीं भाया था. एक तो इसलिये कि डिलमैन नीग्रो थे, और अमरीका के इतिहास में आज तक किसी नीग्रो ने राष्ट्रपति बनकर अमरीका पर शासन नहीं किया था. और दूसरे, अधिकांश सिनेटर ईटन को, जिनका नंबर वरिष्ठता-क्रम में डिलमैन के बाद आता था, येन-केन प्रकारेण राष्ट्रपति की कुर्सी पर बैठाना चाहते थे.

ऐसे सिनेटरों में सैली के पिता भी एक थे. उनके पास, इस संबंध में, अन्य सिनेटरों के दर्जनों फोन रोज आते थे, जिन्हें सैली पास के अपने कमरे में बैठकर, बड़े ध्यान से सुनती थी. यदि ईटन राष्ट्रपति बन गये, तो वह अमरीका की 'प्रथम महिला' बन जायेगी. कारण ईटन ने तीन-चार बार उसके साथ सोने के बाद, उसे यह वचन दे दिया था कि जैसे ही उसे अपनी पत्नी से तलाक मिल जायेगा, वह उससे विवाह कर लेगा. मगर, साथ ही उसने सैली से एक वचन भी ले लिया था कि विवाह तक वह इस बात को सबसे गुप्त रखे.

सिनेटरों की फोन-वार्ताएं सुनकर, सैली को दो बातों का पता चला था. वे सब गुप्तचरों की सहायता से डिलमैन की छिपी कमजोरियां तथा उसके जीवन के ऐसे गुप्त भेद जानने में लगे थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके पता चलते ही वे सिनेट लगाकर, और उसे मुख्य न्यायाधीश की अदालत में घसीटकर, अपदस्थ करा सकें. दूसरे-उसे देशद्रोही या कम्यूनिस्ट सिद्ध कर उसकी छुट्टी कर देना.

षड्यंत्रों और खतरों में गहरी दिलचस्पी रखनेवाली सैली को इस जानकारी से जो खुशी हुई, जो 'थ्रिल' मिला, उसका बयान करना नामुमकिन है. उसने मन ही मन तय किया कि यह काम स्वयं करेगी. किसी और पर निर्भर नहीं रहेगी. डिलमैन का पर्दाफाश करने में वह अकेली ही समर्थ है. इतना अधिक विश्वास था उसे अपनी जासूसी क्षमता पर.

लेकिन, इस काम को अंजाम करने के लिये, पहली जरूरत है, राष्ट्रपति भवन में प्रवेश पाने की. इस बारे में काफी सोच विचार कर वह इस निश्चय तक पहुंची कि डिलमैन की सोशल सैक्रेटरी बनकर वह उसके काफी निकट आ सकेगी, और सोशल सैक्रेटरी बनने की सब योग्यताएं उसमें मौजूद हैं. टेलीविजन की मार्फत उसे यह जानकारी भी मिल चुकी थी कि डिलमैन के राष्ट्रपति बनते ही भूतपूर्व राष्ट्रपति टी.सी. की सोशल सैक्रेटरी ने त्यागपत्र दिया था.

वह चाहती, तो इस पद को पाने के लिये अपने पिता से सीधा कह सकती थी, लेकिन अपने पिता को इस बारे में कुछ भी नहीं बताना चाहती थी. वह अपनी इस योजना के बारे में किसी को भी नहीं बताना चाहती थी. ईटन तक को नहीं.

सहसा, उसे याद आयी लेरोय पूल नामक नीग्रो लेखक की, जो उन दिनों डिलमैन की जीवनी लिखने में व्यस्त था. वह पूल को जानती थी, और एक बार उसके साथ सो कर उसे उपकृत भी कर चुकी थी. उसने उसे फोन किया, और बताया कि वह राष्ट्रपति की सोशल सैक्रेटरी बनने की इच्छुक है. और वह डिलमैन से उसकी सिफारिश करे. लेरोय शुरू में तो तैयार न हुआ. लेकिन सैली के बहुत अनुनय-विनय करने पर राजी हो गया.

लेरोय पूल के कहने पर डिलमैन सैली से इस पद के बारे में मिलने के लिये राजी हो गये थे.

सैली इस इंटरव्यू के दौरान ईटन के नाम का उपयोग नहीं करना चाहती थी, लेकिन जब उसने देखा कि डिलमैन उसकी

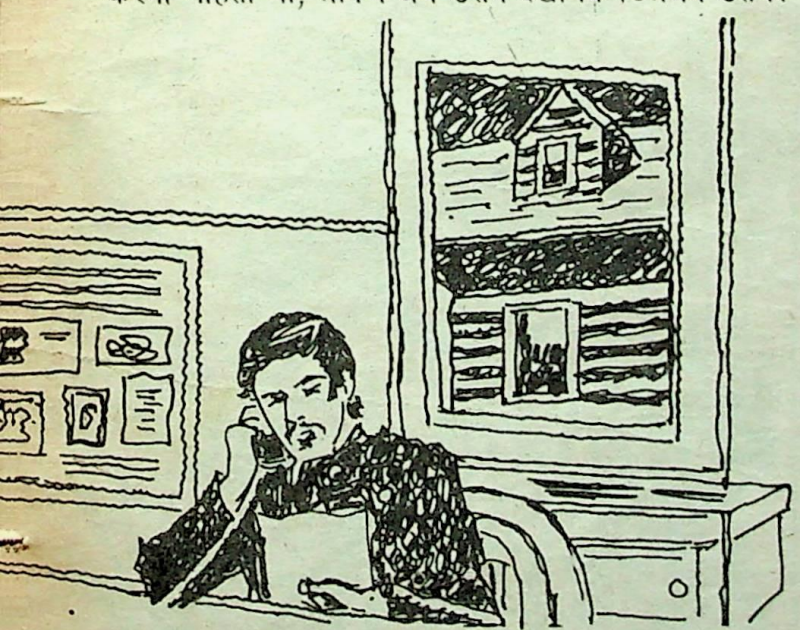

दिलचस्पी में दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं, तब उसने 'ट्रंप कार्ड' की भांति उसके नाम का उपयोग किया था. और, उसका यह तीर भी निशाने पर बैठा था.

ईटन ने बाद में, उससे उत्सुकतावश पूछा था कि वह राष्ट्रपति की सोशल सैक्रेटरी बनने के लिये इतनी इच्छुक क्यों है, तो उसने सवाल को यह कहकर टाल दिया था कि खाली बैठे-बैठे वह बोर हो जाती है, और इस बहाने उसका मन लगा रहेगा.

डिलमैन की सोशल सैक्रेटरी बनकर वह हमेशा इस ताक में रहती थी कि उसे डिलमैन के बारे में कोई भी ऐसी छोटी-बड़ी जानकारी मिल जाये, जो उसके विरोधियों के काम आ सके. लेकिन, बहुत कोशिश करने पर भी उसे इस दिशा में कोई सफलता नहीं मिली थी.

स्थिति का व्यंग्य देखिये, एक दिन, अचानक; उसे एक ऐसे गुप्त भेद का पता चला, जो ईटन के लिये उपयोगी होने के स्थान पर उसे, उल्टे, गहरे संकट में डाल सकता था.

न्हें से अफ्रीकी देश बोरोजा पर रूस का प्रभुत्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था. रूस उसे अनेक देशों में स्थित फर्जी संस्थाओं की मार्फत उसके विद्रोहियों को हथियार देता जा रहा था, ताकि वे उनका उपयोग अमरीका के समर्थन से बनी और टिकी सरकार को गिराने के लिये कर सकें. राष्ट्रपति को जब यह सूचना अन्य स्रोतों से प्राप्त हुई, तो उन्होंने सी.आई.ए. के प्रमुख मांटगुमरी स्कॉट को बुलाकर पूछा, "आपके जासूस बोरोजा में सक्रिय तो हैं न?"

"जी हां, बहुत अधिक सक्रिय हैं."

"तो फिर उन्हें उन हथियारों के बारे में पता क्यों नहीं लगा, जो रूस उन्हें पिछले कुछ दिनों से देता चला आ रहा है?"

स्कॉट चकित रह गया. उसने कहा, " उसका जिक्र तो मैंने पिछले सप्ताह की अपनी हर दैनिक रपट में किया है. आश्चर्य है कि वह आपको क्यों नहीं मिली?"

डिलमैन ने इस मामले की फौरन जांच करवायी. जांच से पता चला कि उन रपटों को सैक्रेटरी ऑफ स्टेट ईटन दबाये बैठे थे. क्यों? यह तो वही जानें.

बहुत नाराज हुए डिलमैन. स्कॉट से बोले, "राष्ट्रपति ट्रमैन ने जब सी.आई.ए. की स्थापना की थी, तो उसके अधिकारियों को स्पष्ट निर्देश दिये थे कि सी.आई.ए. के जासूस जो जानकारी एकत्रित करें, वह उन्हें सीधी और फौरन मिले. यदि ईटन ने आपकी रपटों को अपने पास रखा है, तो उन्होंने मेरे साथ विश्वासघात किया है."

स्कॉट ने कहा, " परंपरा यही रही है कि सी.आई.ए. की रपटें सीधी और शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्रपति को मिलें. जब ऐसा नहीं होता, तो कभी कभी उसके परिणाम बड़े भयंकर हो जाते हैं. राष्ट्रपति आइसनहॉवर के काल में सी.आई.ए. ने मैक्सिको से राष्ट्रपति महोदय को यह गुप्त सूचना दी थी कि विरोधी नेता कैस्ट्रो कम्यूनिस्ट हैं, और रूस की मदद से मैक्सिको के सर्वेसर्वा बनना चाहते हैं, ताकि रूसी षड्यंत्र में शामिल होकर अमरीका के लिए परेशानियां खड़ी कर सकें. अज्ञात कारणों से यह सूचना आइसनहॉवर को नहीं मिली, और वे कैस्ट्रो को वह मानते रहे, जो वह असल में नहीं था.... अब बोरोजा की रपटों के बारे में असल में क्या हुआ, और क्या नहीं, यह मालूम करके उसके विषय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक कार्यवाही करना आपका कर्तव्य है. मैं इसमें हस्तक्षेप नहीं चाहता.''

''मैं कार्यवाही करूंगा, और ईटन को अपना पद छोड़ने को मजबूर करूंगा.''

यह बातें, जो सैली ने छिपकर सुनीं शाम को देर को खत्म हुईं. आधा घंटे बाद, व्हाईट हाउस में एक राष्ट्र के प्रमुख के स्वागत में नाचने गाने का कार्यक्रम था, और उसके बाद डिनर. चूंकि यह एक सामाजिक कार्यक्रम था, जिसमें प्रतिष्ठित अमरीकी भी भाग लेने वाले थे, इसलिए सैली की उसमें मौजूदगी अनिवार्य थी. वस्तुतः, जो सांस्कृतिक कार्यक्रम बना था, उसे बनाने में उसका बड़ा हाथ था.

राष्ट्रपति और स्कॉट के बीच हुई बातचीत से उसने इतना तो जान लिया कि उसके प्रेमी ईटन का पद खतरे में है. आधा घंटे बाद शुरू होने वाला समारोह न होता तो वह फौरन ईटन के कार्यालय में जाकर उन्हें सब कुछ बता देती, लेकिन अब यह संभव न था. और, फोन पर उन्हें साफ-साफ कैसे बताया जा सकता था?

वह काफी परेशान हो उठी, और अपनी परेशानी को दूर करने के लिए उसने छिपकर जरूरत से ज्यादा शराब पी ली. इस दौरान, उसके अवचेतन में एक ही विचार छाया था, और वह यह कि उसे ईटन को बचाना है.... ईटन को बचाना है.... हर हालत में ईटन को बचाना है.

नशे की हालत में उसके दिमाग में एक तरकीब आ गयी. इस तरकीब का तीर भी निशाने पर बैठा, तो उसके होने वाले जीवन-साथी के सिर पर मंडराता संकट तो टल ही जायेगा, उल्टे डिलमैन चक्कर में आ जायेगा. उसकी निराशा आशा में बदल गयी.

जब संगीत व नृत्य का सांस्कृतिक कार्यक्रम आरंभ हुआ, तो उसने डिलमैन के पास जाकर कहा, ''सर, ऐसा लगता है, मुझे शराब चढ़ गयी है. मैं कुछ देर आराम करने जाती हूं.''

सहानुभूतिशील डिलमैन ने कहा, ''तुम घर जा सकती हो.''

''नहीं, सर! मैं थोड़ी देर आराम करके, वापस आ जाऊंगी.''

''जैसा तुम ठीक समझो.''

वह लड़खड़ाती हुई, व्हाईट हाउस के लिकन रूम में पहुंची, जिसे डिलमैन ने अपना बैडरूम बना लिया था. उसके सौभाग्य से रूम के बाहर या अंदर उसे कोई अनुचर नहीं मिला.

उसकी तबियत ज्यादा पी लेने के कारण सचमुच खराब थी. कुछ देर तक राष्ट्रपति के बिस्तर पर लेटने के बाद, वह अपने को थोड़ा बेहतर अनुभव करने लगी.

कमरे में हल्की-सी रोशनी ही थी. फिर भी उसे बिस्तर के पास रखी हुई मेज पर रखा राष्ट्रपति का ब्रीफकेस दिखायी दे गया. अरे! इसी की तो उसे तलाश थी! दरवाजा अंदर से बंद करके वह उस ब्रीफकेस के कागजों को टटोलने और ध्यान से पढ़ने लगी. उसकी दिलचस्पी जिन कागजों में थी, वे उसे सबसे अंत में मिले. ये कागजात उस जांच से संबंधित थे; जो राष्ट्रपति के स्कॉट द्वारा भिजवाये गये बोरोजा के बारे में प्राप्त जानकारी के उन्हें न मिलने के बारे में करवायी थी. ओह! इन कागजों को देखकर ईटन कितना खुश होंगे! उसने उन कागजों को अपने पर्स में छिपा लिया. अब उसका यहां कोई काम न था. उसकी तबियत भी ठीक हो चली थी. उसने सोचा कि अब चलना चाहिये.

—कि तभी किसी ने बाहर से दरवाजा खटखटाया. वह कांप उठी. होना तो राष्ट्रपति ही होने चाहिए.

जब उसने अंदर से बंद दरवाजा खोला, तो यह देखकर अवाक और स्तब्ध रह गयी कि सचमुच राष्ट्रपति डिलमैन ही दरवाजे के बाहर खड़े थे. तभी, उसे अपनी तरकीब की याद आयी, और वह लडखड़ाती हुई बैड पर लुढ़क गयी.

डिलमैन ने उसके पास आकर पूछा, ''मिस वाटसन...तुम? और यहां?''

वह निश्चल पड़ी रही. डिलमैन ने उसे जोर से हिलाया. वह आंखें मलती हुई उठी, और आंखें बंद रखकर, लड़खड़ाते स्वर में पूछने लगी; ''मैं कहां हूं... आप कौन हैं?''

''मिस वाटसन, तुम इस वक्त मेरे बैड पर हो, और काफी नशे में दिखायी देती हो. अच्छा हुआ, इस वक्त कोई और मेरे साथ नहीं है, नहीं तो मालूम नहीं, वह क्या अनुमान लगाता. खैर, तुम इसी वक्त उठकर किसी और कमरे में जाकर आराम करो.''

''ओह! आप हैं सर!... मैं बहुत शर्मिंदा हूं. सर! मैं... मैं अभी जाती हूं.''

''अगर तुम अकेली जाने में असमर्थ हो, तो मैं तुम्हारी सहायता के लिये मिस क्रेल को बुलाऊं?''

''नहीं, आप कोई कष्ट न करें, सर. मैं बस... जा रही हूं,'' कहकर जैसे ही वह जाने के लिए बैड से उठी, उसकी पर्स में रखे सब कागज फर्श पर बिखर गये. डिलमैन ने उन्हें समेट लिया. और फिर, सैली से पूछने लगे, ''क्या तुम इन कागजों के लिये खुद ही यहां आयी थीं मिस वाटसन या ईटन ने तुम्हें भेजा था? सच बताओ.'' सैली ने अब अपनी सोची हुई तकरीब का तीर चलाया.

''सच बताऊं? तो, फिर सच तो यह है राष्ट्रपति महोदय कि मैं यहां इसलिए आयी कि आपने ही कार्यक्रम के बीच में से मुझे यहां भेजा था. और, मुझे फांसने के लिये ये कागज भी आप ही ने मेरे पर्श में रखे थे. यही सच है, और अब यही सच सारे अमरीका को उस अदालत में दिये गये मेरे बयान से पता चल जायेगा, जो आपके खिलाफ लगाये गये महाभियोग की सुनवायी कर रही है.''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप मुझसे व्यक्तिगत मामले के बारे में फौरन मिलना चाहते थे, राष्ट्रपति महोदय?" ईटन ने डिलमैन के कार्यालय में प्रवेश करके पूछा. "मैं मौजूद हूं."

"ईटन, मैं तुम्हारा इस्तीफा चाहता हूं.. इसी वक्त... मेरी कैबिनेट से और स्टेट डिपार्टमेंट से."

"क्या मैं इस अप्रत्याशित मांग का कारण नहीं जान सकता?"

"क्या तुम्हारी जासूस, मिस सैली वाटसन ने वह कारण तुम्हें नहीं बताया?"

"उसने तो मुझे और मेरे कुछ सिनेटर–मित्रों को, जो मुख्य न्यायाधीश के सामने आपके विरोध में खड़े हैं, सिर्फ इतना बताया कि आपने उसे बहाने से अपने बैडरूम में बुलाया, और वहां उसकी इज्जत लूटने की कोशिश की, और वह किसी से इस बारे में कुछ कहे नहीं, इसलिए उसके पर्स में न जाने कैसे कागज ठूंस दिये. और, वह यही बयान अदालत में भी देने वाली है. जहां तक बोरोजा के बारे में सी.आई.ए. की कुछ रपटें दबा लेने और आपको न दिखाने का सवाल है, इस मामले में मैंने जो कुछ किया, अपने देश के हित में किया. एक नन्हें से अफ्रीकी देश को, जिसमें सौ फीसदी लोग आप कैसे काले और नीग्रो ही रहते हैं, रूस के चंगुल से बचाने के लिए हम गोरे अमरीकी सैनिकों का खून नहीं बहा सकते. सिनेट के अधिकांश सिनेटर मेरी इस राय से सहमत हैं, और आपको बोरोजा पर अमरीकी आक्रमण करने की इजाजत कभी नहीं देंगे."

डिलमैन ने कहा, "मुझे तुम्हारा इस्तीफा चाहिये. अभी. इसी वक्त. मुझे तुमसे कोई बहस नहीं करनी है. यदि तुमने ऐसा नहीं किया, तो तुम्हें जबर्दस्ती तुम्हारे कार्यालय से बाहर निकाल दिया जायेगा. क्या तुम चाहते हो कि ऐसी नौबत आये?"

"मैं ऐसी नौबत नहीं आने दूंगा, लेकिन आपके सच्चे शुभचिंतक होने के नाते, चाहता था कि वह नौबत भी न आये कि आपको इस मुकदमें में जलील होकर अपने पद से हटना पड़े. मगर, आप खुद ही यह मुसीबत मोल ले रहे हैं, तो मैं क्या कर सकता हूं?"

जैसा कि ईटन ने भविष्यवाणी की थी, डिलमैन को अपने खिलाफ लगाये गये महाभियोग के मुकदमे में सबसे जबर्दस्त सामना सैली की ओर से करना पड़ा, जो उन्हें पूरी तरह से नंगा करने पर तुली थीं. उनके खिलाफ लगाये गये अन्य आरोपों का प्रत्युत्तर उनके वकीलों (मैनेजरों) ने दिया, लेकिन इस विशेष आरोप से अपना बचाव करने के लिये उन्हें खुद भी जाना पड़ा

विरोधी सिनेटरों के वकीलों ने जो कुछ सैली को सिखाया-पढ़ाया था, उसने उसके अलावा अपनी ओर से भी काफी मिर्च-मसाला जोड़कर मामले को जो मोड़ दिया, उसने राष्ट्रपति फिल्मों के एक बलात्कारी खलनायक नजर आने लगे, और सैली एक ऐसी अबोध किशोरी, जो जबरन बलात्कार का शिकार हुई हो.

मगर, सैली के इस बयान के बाद, ईटन ने भी अपनी भूमिका बदल दी. उसकी पत्नी ने यह देखकर कि मुकदमें के बाद डिलमैन की व्हाईट हाउस से छुट्टी हो जायेगी और उसका स्थान ईटन लेगा, तलाक का विचार त्याग दिया, और ईटन के साथ आकर रहने लगी. उसके मन में 'अमरीका की प्रथम महिला' बनने की महात्वाकांक्षा, जो अब तक सैली को प्रेरित करती आ रही थी, जाग उठी. उसने ईटन को अल्टीमेटम दिया कि वह सैली से मिलना-जुलना बंद करे, नहीं तो वह उसकी राष्ट्रपति बनने की आकांक्षा का कबाड़ा करके रख देगी. ईटन जानता था कि प्रभावशाली के जो कह रही है, वह करके दिखा भी सकती है. वह सैली के साथ रुखाई से पेश आने लगा. यह रुखाई बाद में शत्रुता में बदल गयी.

ईटन के इस हृदय-परिवर्तन ने सैली की आंखें खोल दीं. प्रतिशोध की आग में जलते हुए उसने शपथ खायी कि वह ईटन को नेस्तनाबूद करके रख देगी, और डिलमैन को, जिसने स्वयं उसका कुछ नहीं बिगाड़ा था, न्याय दिलायेगी.

उसने अपने पिता को सब बातें साफ-साफ बता दीं. कुछ भी नहीं छिपाया, न अपना झूठ, न अपना धोखा. पिता जो अब तक डिलमैन का विरोध करते आ रहे थे तब डिलमैन के समर्थक हो गये. उन्होंने 40 के करीब ऐसे गोरे सिनेटरों को, जो उन्हीं की भांति डिलमैन के विरोधी थे, डिलमैन के बारे में सब सच-सच बताकर, डिलमैन का समर्थन करने के लिये राजी कर लिया.

मुकदमे की सुनवायी के बाद, मुख्य न्यायाधीश ने सब सिनेटरों को अलग-अलग बुलाकर पूछा, "क्या आप राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाये गये महाभियोग के आरोपों को सच मानते हैं?"

सिनेटर "हां" या "ना" कहकर आते-जाते रहे.

राष्ट्रपति को उसके पद से तभी हटाया जा सकता था, जब दो-तिहाई सिनेटर उन्हें दोषी मानें. जब मुकदमा शुरू हुआ था, तब 80 प्रतिशत से अधिक उनके विरोधी थे.

उनसे पूर्व, एंड्रयू जान्सन नामक जिस अमरीकी राष्ट्रपति के विरुद्ध सौ वर्ष पूर्व महाभियोग लगाया गया था, वे मतदान में सिर्फ एक मत से जीते थे.

संयोग ही कहा जायेगा इसे कि अंतिम मतदान में डिलमैन भी सिर्फ एक ही मत से जीते.

जिस सिनेटर के मत ने उन्हें विजय दिलायी, उन्हें उनके पद पर बने रहने दिया गया, वह सिनेटर था वाटसन. सैली वाटसन का पिता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनीफा

जेड. ए. बुखारी

1943 की बात है. मित्र-सेनाएं उत्तरी अफ्रीका में बैठी युद्ध का नक्शा तैयार कर रही थीं. जनरल आईजनहावर और उनके साथियों ने मनसूबा तैयार किया कि मित्र-सेनाएं अचानक सिसली में उतार दी जायें. स्पष्ट बात है कि यह मनसूबा गुप्त रखा गया और हर प्रकार से पूरा प्रबंध किया गया कि गिनती के कुछ अफसरों के सिवा किसी को इसकी खबर न हो.

जिन अफसरों को इस भेद का पता था, उनमें से एक जवान अमरीकी था. यह साहब बड़े विलासी थे. उन दिनों एक लड़की से उनकी बहुत गाढ़ी छन रही थी. यह लड़की वास्तव में डच नहीं थी, डच बनी हुई थी. असल में वह जर्मन लड़की थी. उसका नाम हनीफा था. वह बेहद सुंदर, मेहमानदारी में प्रवीण, बातचीत में शिष्ट और मोहक थी.

जनरल आईजनहावर के खुफिया दफ्तर में निश्चय हुआ कि मित्र-सेनाएं सिसली में उतरें. सुबह को निश्चय हुआ और शाम को उसकी सूचना जर्मनी को मिल गयी. जनरल आईजनहावर के सब किये-धरे पर पानी फिर गया. मित्र-सेनाओं ने वह मुंह की खाई कि उसकी सेना के बड़े-बड़े सलाहकार बैठे जख्म चाटते रहे.

अब चिंता यह हुई कि जर्मनों को कैसे पता चला कि मित्र-सेनाएं आक्रमण करने वाली हैं. सिसली में तो जर्मनों की सेना नहीं थी और अगर थी भी, तो बहुत मामूली. यह कैसे हुआ कि उन्होंने मित्र-शक्तियों के आक्रमण के दिन से ठीक पहले पूरी सेना वहां बुला ली. ज़रूर कोई घर का भेदी है, जिसने मित्रशक्तियों की यह लंका ढाई है.

यह ढूंढ मची हुई थी कि वह अमरीकी मेजर साहब मुंह बिसूरे हुए आये, जो हनीफा के साथ रंग-रलियां मनाने में मशगूल थे. यह साहब उदास बैठे थे कि किसी ने पूछा, "क्यों भई, क्या हुआ?"

आंखों में आंसू भरकर उन्होंने फरमाया, "मेरी हनीफा कहीं चली गयी."

होते-होते यह खबर सब में मशहूर हुई कि हनीफा मेजर साहब को छोड़कर भाग गयी है. जब यह खबर खुफिया दफ्तरवालों के पास पहुंची, तो उनके कान खड़े हो गये. मेजर साहब की तलबी हुई और उनसे पूछ-ताछ हुई. पता चला कि उन हजरत ने इश्क की तरंग में आकर हनीफा को बता दिया था कि हम अमुक तारीख को सिसली पर हमला करनेवाले हैं.

उन दिनों खुफिया कार्रवाइयों के इंचार्ज जनरल डनोवन थे. उनके साथ उनके सहायक दो अफसर थे. उन तीनों ने सलाह की कि जो हुआ, सो हुआ. अब ऐसी तदबीरें करनी चाहिए कि हनीफा को यह खयाल भी न गुज़रे कि हम उस पर शक कर रहे हैं. हनीफा को यह खयाल रहा कि मुझ पर किसी को संदेह नहीं, तो वह फिर किसी न किसी दिन जासूसी करने आ निकलेगी. फिर जो हो, सो हो.

इस बात को कोई महीना भी न बीता था कि एक नौजवान अफसर खुशी-खुशी कैंटीन में आये और फरमाया कि हनीफा हालैंड से लंदन आ गयी है.

उसको क्या मालूम कि इस जालिम हसीना का यहां किस-किस को इंतजार था. खुफिया दफ्तरवालों ने जब सुना कि बी साहिबा तशरीफ ले आयी हैं, तो बहुत खुश हुए. इधर बी साहिबा थीं कि खुलेआम होटलों में, क्लबों में, सैर-तमाशों में सैनिक अफसरों से मिलती थीं और उनका जी बहलाती थीं.

इस औरत की मौजूदगी से क्या फायदा उठाया जाये? किस तरह इस औरत को धोखा दिया जाये? किस तरह इस औरत के जरिये जर्मनों को गलत सैनिक सूचनाएं दी जायें? वह क्या सूचना हो, जो गलत भी हो, और जर्मनों को बेहद गलतफहमी में डाल दे! यह थे वह सवाल, जो खुफिया दफ्तर के अफसरों के मस्तिष्क में चक्कर लगा रहे थे.

उन दिनों मित्रशक्तियां अपनी सेनाएं नारमंडी में उतारने वाले थे और हमले की तैयारियां पूरी कर रहे थे, लेकिन साथ ही साथ उसके जासूस सूचना पहुंचा रहे थे कि जर्मनों को इस आक्रमण की तैयारियों का पूरा-पूरा पता है और वह मुकाबले के लिए हर प्रकार की जवाबी तैयारियां कर रहे हैं.

अब सैनिक खुफिया दफ्तर ने यह तजवीज सोची कि हमले की दिशा बदलने की झूठी तैयारी की जाये और यह प्रकट किया जाये कि चूंकि मित्र-शक्तियों को जर्मनी की जवाबी तैयारी का हाल मालूम हो गया है, इसलिए अब वह नारमंडी में अपनी सेनाएं नहीं उतारेंगे, बल्कि नारमंडी के बजाय हालैंड पर हमला करेंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रशक्तियों के गुप्तचर विभाग को यह विश्वास था कि यह कमबख्त औरत इस बला की हसीन है और इस बला की जहीन है कि जिस अफसर पर चाहे, अपना जादू चला दे और उससे किसी न किसी प्रकार खुफिया से खुफिया राज भी उगलवा ले.

अब यह तलाश हुई कि वह अफसर कौन हो, जिससे यह लड़की राज उलगवा ले. अतः एक बहुत लायक, खूबसूरत, बहुत जवान अफसर ढूंढ निकाला गया, मगर मुसीबत यह आ पड़ी कि अफसर इतना बड़ा एक्टर न था कि हनीफा को झांसे में ले आये. अगर इस अफसर को मालूम हो गया कि यह औरत जासूस है और मैं उसको गलत सूचना देकर झांसे में ला रहा हूं, तो यह व्यक्ति उस औरत के साथ गर्मजोशी से न मिल सकेगा और वह औरत ताड़ लेगी कि दाल में जरूर कुछ काला है.

निश्चय यह हुआ कि उस नौजवान अफसर जान को यह न बताया जाये कि वह औरत जासूस है है और न उसको यह बताया जाये कि जिस हमले की तैयारी के कामों पर तुम को लगाया जा रहा है, वह वास्तव में शत्रु की आंखों में धूल झोंकना है.

अब इस समस्या पर सोच-विचार होने लगा कि कोई ऐसा संस्थान हो जिसमें हालैंड पर हमले की तैयारी का झूठा मनसूबा तैयार किया जाये.

इस के लिए एक फिल्म-कंपनी बनायी गयी. वार्डोस्ट्रीट, लंदन में उसका बाकायदा दफ्तर और स्टूडियो बनाया गया. उस कंपनी में सब के सब हालैंड के वासी रखे गये. देशभक्त, स्वदेश से हिटलर की मार खाकर निकले हुए लंदन में शरणार्थी. इस फिल्म-कंपनी का काम यह था कि हालैंड के लुटे-पुटे लोगों के बारे में डोकूमेंटरी फिल्में बनाये. पंफलेट जारी करे और किसी न किसी तरीके से यह पंफलेट हालैंड में पहुंचाये, ताकि वहां के लोगों का हौसला बढ़े और वह यकीन कर लें कि एक न एक दिन मित्रशक्तियां हम को हिटलर के चंगुल से छुड़ा देंगी.

इस कंपनी में मित्रशक्तियों ने असहाय हालैंडवासियों की मदद के लिए अपने दो-चार अफसर भी नियुक्त कर दिये. इन अफसरों में एक तो जान था और दो-चार अन्य. इनसे कहा गया कि देखो, कानों कान किसी को इसकी खबर न हो कि मित्र-शक्तियां हालैंड में अपनी सेनाएं उतारनेवाली हैं.

यह संस्थान कुछ ही सप्ताह में अपना काम करने लगा. धड़ाधड़ डोकूमेंटरी फिल्में बनने लगीं. पंफलेट छपने लगे और संस्थान में काम करने वाला हर 'डच' यह समझने लगा कि मैं अपने देश को आजाद कराने के लिए काम कर रहा हूं.

जब इस संस्थान का काम संतोषजनक रूप में चलने लगा, तो इस बात की तदबीरें होने लगीं कि जान और हनीफा को एक दूसरे से मिलाया जाये. उन दिनों हनीफा एक अन्य अफसर के साथ रंगरलियां मना रही थी, मगर उस अफसर का इस फिल्मी संस्थान से दूर का भी संबंध न था, और न उचित समझा गया कि उस अफसर को संस्थान में शामिल कर लिया जाये. बहुत सोच-विचार के बाद एक बहुत बड़ी दावत की घोषणा की गयी. इस दावत में बहुत से अफसरों को बुलाया गया, जिनमें जान भी था, और वह अफसर भी, जिनके साथ हनीफा गुलछर्रे उड़ा रही थी. तरकीब ऐसी चली गयी कि उस अफसर ने कह-सुनकर हनीफा के नाम भी निमंत्रण-पत्र जारी करा दिया.

ऐन दावत के दिन उस अफसर को एक सरकारी काम पर छह-सात सौ मील दूर हवाई जहाज के जरिये भेज दिया गया और यों हनीफा उस अफसर के बगैर दावत में शामिल हुई यानी कबाब बगैर हड्डी के.

यह दावत क्या थी, मदिरा-पान सभा थी. शराब पानी की तरह बह रही थी और संगीत ऐसा बज रहा था कि उन्माद की अवस्था दुगनी हो रही थी.

हनीफा का महफिल में आना था कि महफिल जगमगा उठी.

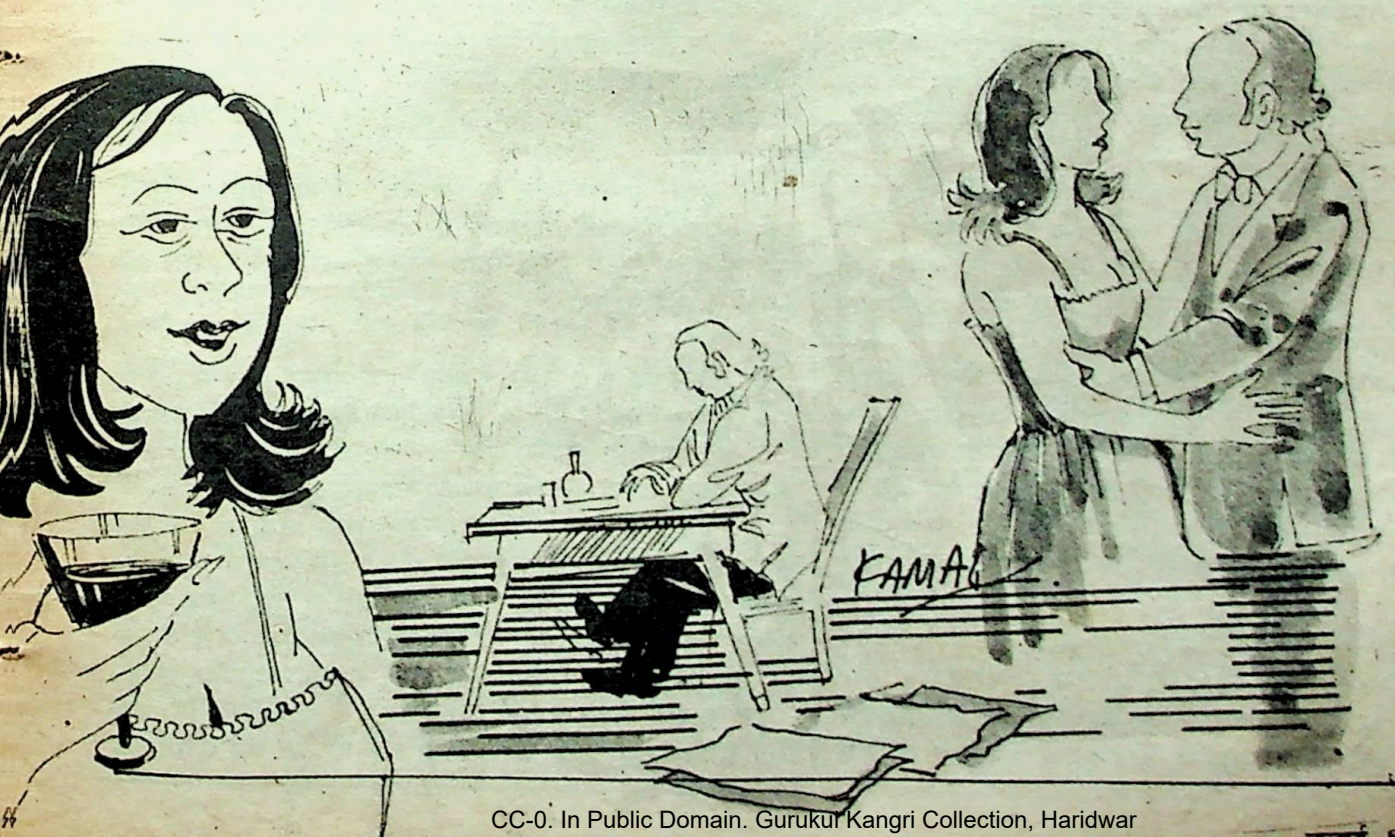

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी निगाहें हनीफा के चेहरे पर जाकर रह गयीं. खुफिया दफ्तर का एक अफसर आगे बढ़ा और उसने बहुत तपाक से हनीफा का स्वागत किया.

शराब का दौर चला. दिल-दिमाग पर सरूर छा गया और आंखों में लाल-लाल डोरे पड़ने लगे.

खुफिया दफ्तर के अफसर शराब के नशे में बदमस्त होने वाले कहां, मगर अब के उसने अपने ऊपर ऐसा सरूर आच्छादित किया था कि हनीफा भी उसके चक्कर में आ गयी. दोनों उठकर नृत्य करने लगे. घूम-घूमकर और झूम-झूम कर!

जान इस दुनिया से अलग एक मेज पर अकेला बैठा शराब के कड़वे घूंट गले से उतार रहा था. न जाने उसको अकेलापन काट रहा था या अपने किसी खयाल में गर्क था.

नृत्य करते-करते जब खुफिया अफसर की नजर जान पर पड़ी, तो उसने हनीफा से कहा कि देखो, इस आदमी की तरफ निगाह उठा कर भी न देखना! हनीफा बोली, "कौन आदमी?" खुफिया अफसर ने कहा, "वह सुनहरी बालों वाला. अपने आप को बहुत बड़ा खुफिया अफसर समझता है. घमंड इसको यह है कि कोई लड़की मेरे चंगुल से बच कर नहीं जा सकती और खुदा जाने लड़कियों को क्या हो गया है. जिस को देखो, उस पर जान छिड़कती है. दो-चार बार यह शत्रु की सेना में घुसकर उसके राज क्या मालूम कर लाया कि जमीन पर घमंड के मारे उसका पांव ही नहीं टिकता!"

अब जो नृत्य कुछ देर के लिए खत्म हुआ, तो खुफिया सैनिक अफसर कहीं इधर-उधर टल गया. कोई बीस-पच्चीस मिनट बाद आकर देखता है, कि हनीफा और जान एक दूसरे से आलिंगनबद्ध हैं और हरे-भरे पौधों की तरह नृत्य में लहर रहे हैं..

राग-रंग और नृत्य-सरूर की महफिल रात गये तक चलती रही. कोई दो-ढाई बजे जब महफिल खत्म हुई, तो बहकी-बहकी निगाहें, लड़खड़ाते हुए कदमों के साथ लोग नृत्यशाला से बाहर निकलकर गाड़ियों में बैठने लगे और अपने-अपने घर की राह लेने लगे. एक टैक्सी में हनीफा सवार हुई और उसके साथ जान भी.

हनीफा के निवास-स्थान पर गुप्तचर पहले ही से नियुक्त थे. उन्होंने गुप्तचर सैनिक कार्यालय को सूचना दी कि जान हनीफा के साथ उसके निवास-स्थान में प्रवेश कर गया है. अगले दिन सुबह नौ बजे गुप्तचर ने फिर सूचना दी कि अभी-अभी जान टैक्सी में बैठकर दफ्तर की ओर गया है.

हनीफा जर्मन जासूसा और सीधे-सादे कप्तान जान की दोस्ती हो गयी और वह भी ऐसी कि दोनों एक दूसरे पर आसक्त थे. एक दूसरे के साथ-साथ छाया की तरह. कप्तान जान तो मनप्राण से उस पर मोहित था, मगर वह प्राणों से कप्तान पर कुरबान थी लेकिन दिल से जर्मनों के साथ थी. कमबख्त प्रेम की पेंगें भी बढ़ाती थी और मित्रशक्तियों के सैनिक भेदों पर हाथ भी डालती जाती थी.

जब कप्तान जान और हनीफा आपस में खूब घुल-मिल गये और खुफिया दफ्तरवालों को यकीन हो गया कि दोनों एक दूसरे के चंगुल में हैं, तो उन्होंने कप्तान जान को बड़ी-बड़ी कानफ्रेंसों में बुलाना शुरू किया. ऐसी कानफ्रेंसें, जो बंद कमरों में होती थीं, ऐसे कमरे, जिनमें बिलकुल आवाज बाहर नहीं जाने पाती, ऐसे कमरे जिन के बाहर बीस-बीस फुट तक कांटेदार तार के गुच्छे पड़े होते हैं और बीस फुट के बाहर सशस्त्र पहरा होता है.

कप्तान जान ऐसी कानफ्रेंसों में बुलाया जाता था. ऐसी कानफ्रेंसों में हालैंड पर सेनाएं उतारने की तैयारियों का जिक्र किया जाता था, और आक्रमण के प्रबंधों के बारे में बहस की जाती थी.

लंदन में तो यह कुछ होता था और उधर जर्मनी में मित्रशक्तियों के गुप्तचर इस टोह में रहते थे कि इन कानफ्रेंसों का हाल यहां जर्मनी में हिटलर को मालूम होता है या नहीं. वे फौरन सूचना देते थे कि हिटलर के हाई कमांड को मालूम हुआ है कि अमुक स्थान पर लंदन में कानफ्रेंस हुई है और उस में हालैंड पर आक्रमण करने की तैयारियों पर बहस हुई थी.

होता यह था कि लंदन की कानफ्रेंसों की सभी बातें कप्तान जान अपनी सादगी में हनीफा को बता देता था, और हनीफा यह बातें खुफिया तरीके से जर्मनी पहुंचा देती थी.

लंदन के खुफिया दफ्तर ने हनीफा को और झांसा देने के लिए एक तरकीब चली. कप्तान जान को हुकम दिया कि तुम्हें बहुत खुफिया कागजात ले कर फ्रांस जाना है. एक खुफिया विमान का प्रबंध कर दिया गया है. यह विमान तुम को इंग्लिश चैनल के पार ले जायेगा और जर्मन सैनिकों के पीछे उतार देगा. वहां तुमसे हमारा एक जासूस आ मिलेगा. उसे यह कागजात दे देना. कल रात को बारह बजे सफर के लिए तैयार हो जाओ और अमुक हवाई अड्डे पर पहुंच जाओ.

इन गुप्तचरों ने जो हनीफा के घर पर नियुक्त थे, सूचना दी कि कप्तान जान रो-रोकर हनीफा से विदा हुआ.

मित्रशक्तियों के जासूस ने जर्मनी से सूचना दी कि लंदन से हिटलर के खुफिया दफ्तर को खबर मिली है कि एक जासूस इंग्लैंड से फ्रांस के तट पर अमुक समय उतरेगा. वह कुछ कागजात वहां किसी जासूस को देगा. जो जासूस लंदन से आ रहा है, उसे न किसी प्रकार का नुकसान पहुंचाया जाये, न उसे गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया जाये, लेकिन उस जासूस पर अवश्य नजर रखी जाये, जिस को लंदन का जासूस कागजात का पुलिंदा देगा.

यही हुआ. कप्तान जान रात के अंधेरे में फ्रांस पहुंचा. उससे एक जासूस मिला और कागजात लेकर चला गया. कप्तान जान सही सलामत लंदन पहुंच गया, लेकिन उस दूसरे जासूस को जर्मनों ने मार डाला.

अब हनीफा की हिटलर के खुफिया दफ्तर में धाक बैठ गयी. सब को यकीन हो गया कि हनीफा बहुत गजब की जासूसा है, इसलिए उसकी बातों पर एतबार कर लेना चाहिए, लेकिन कुछ जर्मन जनरल शक्की स्वभाव के थे.

जब जर्मन जरमैलों के संदेह की खबर लंदन के खुफिया दफ्तर वालों के पास पहुंची, तो वह सोच में पड़ गये कि ऐसी कौन-सी तदबीरें की जायें कि जर्मन जरनैलों के दिल में कोई संदेह न रहे और वह सचमुच समझने लगें कि मित्रशक्तियां नारमंडी के तट पर नहीं, बल्कि हालैंड के तट पर अपनी सेनाएं उतारने वाली हैं.

इस संदर्भ में लंदन के खुफिया दफ्तर ने दो तदबीरें कीं और वह दोनों सफल रहीं. एक तदबीर तो यह थी कि उन लोगों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरगरमियां तेज कर दी जायें, तो हालैंड में [illegible] कार्रवाइयां कर रहे थे. इन के एक नेता को खुफिया विमान के द्वारा लंदन बुलवाया. वह 'डच' था और वह अंग्रेज. जरूरत इस बात की पड़ी कि बीच में कोई भरोसेवाला अनुवादक हो. खुफिया दफ्तर के एक बड़े अफसर ने कप्तान जान से ज़िक्र किया और कहा कि अनुवादक के बिना काम बनेगा नहीं और भरोसेवाला अनुवादक मिलना बेहद मुश्किल है. कप्तान जान यह सुनकर पहले तो कुछ हिचकिचाया. फिर बोला, "मैं एक औरत को जानता हूं. हालैंड की रहने वाली है. मेरी अच्छी दोस्त है. और औरत काबिले-एतबार है."

खुफिया दफ्तर का अफसर बोला, "हां, अगर तुम्हें उस पर एतबार है, तो हमें भी कोई एतराज नहीं. उसका नाम और पता दे दो, ताकि मैं अपने तौर पर भी कुछ जांच कर लूं कि वह औरत भरोसे के काबिल है या नहीं."

खुफिया दफ्तरवालों को हनीफा के बारे में जांच तो क्या करनी थी, उन्होंने तो पांसा फेंका था कि अनुवादक का जिक्र करेंगे, तो जान हनीफा का नाम लेगा. हम हनीफा को बुला लेंगे और उसके सामने हालैंड से आये हुए जासूस के साथ बातें करेंगे. हनीफा जब अपने कानों से सारी बातें सुन लेगी, तो उसको और यकीन हो जायेगा कि मित्रशक्तियां हालैंड पर हमला करने की तैयारियां कर रही हैं और जाहिर बात है कि वह सारी बातचीत जर्मनी पहुंचायेगी.

हालैंड से वह खुफिया आदमी आया. खुफिया कंमरे में उसके साथ खुलकर बातें हुईं कि मित्रशक्तियां हालैंड के तट पर अपनी सेनाएं उतार रही हैं.

हनीफा अनुवादक के कर्त्तव्य निभा रही थी. इसलिए सब कुछ सुन रही थी और खुश हो रही थी कि सब हालात सीधे उसे मालूम हो गये.

हनीफा ने यह सब हालात जर्मनी पहुंचा दिये. वहां सब लोग बौखला गये कि अब क्या होगा. और क्या करते, अपनी सेनाओं को नारमंडी के तट से हटाने की तदबीरें करने लगे.

जब मित्रशक्तियों के जासूसों ने खबर पहुंचायी कि जर्मन नारमंडी से अपनी सेनाएं हटाने की तदबीर कर रहे हैं, तो वह बहुत ही खुश हुए कि तीर निशाने पर बैठा.

उन्होंने हनीफा को उस फिल्म-कंपनी के दफ्तर में नौकर रख लिया और सारे प्रापेगंडे का काम उसके सुपुर्द कर दिया.

अब रात-दिन फिल्मों के मसौदे तैयार होने लगे. फिल्म-कैमरे रात-दिन चलने लगे. एक्टरों की रेलपेल हो गयी. छापेखाने को हुकम दिया गया कि चौबीस घंटे खुला रहे और चौबीस घंटे हमले के बारे में निर्देश और कागजात छापता रहे.

इन सब कामों में हनीफा को प्रमुख रखा गया. वह यहां का काम भी करती थी और यहां के कागजात के एक-एक पुरजे की नकल जर्मनी भी खुफिया तौर पर भेजती थी.

कप्तान जान गरीब बिल्कुल निर्दोष था. उसे क्या मालूम कि हनीफा शत्रु की जासूसा है और शत्रु को सूचनाएं भेज रही है. खुफिया दफ्तरवालों को सब से बड़ी चिंता यह थी कि कप्तान जान को यह न मालूम होने पाये कि हनीफा शत्रु की जासूसा है, तो वह सारा भांडा फोड़ देगा. उस समय हनीफा को गिरफ्तार कर के खत्म कर देना पड़ता और बना-बनाया खेल बिगड़ जाता और शत्रु तक हालैंड पर हमले की खबर पहुंचाने वाला कोई न रहता.

मित्रशक्तियों के जासूसों ने जर्मनी से सूचना दी कि हिटलर की हाई कमांड उस सैनिक नक्शे की तलाश में है, जिसके अनुसार मित्रशक्तियां अपनी सेनाएं हालैंड पर उतारने वाली हैं. इस युद्ध-नक्शे को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने जासूसों को लंदन में कहला भेजा हैं, इसलिए सावधानी अनिवार्य है.

सावधानी कैसी! लंदन का खुफिया दफ्तर तो चाहता ही यही था कि किसी न किसी प्रकार यह युद्ध-नक्शा जर्मनी के जासूसों के हाथ लग जाये और वह उसे जर्मनी भेज दें, ताकि वहां वालों को यकीन हो जाये कि मित्रशक्तियां नारमंडी में नहीं, बल्कि हालैंड में अपनी सेनाएं उतारने की तैयारियां कर रही हैं. लंदन के खुफिया दफ्तर ने बहुत सावधानी से मित्र-शक्तियों की सेनाओं को हालैंड में उतारने का नक्शा तैयार किया. यह नक्शा हर दृष्टि से पूर्ण था और बिलकुल वैसा ही था, जैसे युद्ध का असल नक्शा होना चाहिए. यह नक्शा पूरा हो गया, और तिजौरी में रख दिया गया, तो इस तदबीर पर विचार होने लगा कि हनीफा को यह नक्शा चुराने पर किस प्रकार उकसाया जाये.

खुफिया दफ्तर का बड़ा अफसर तीन बार अपनी चाबियां मेज पर यों छोड़कर चला गया, जैसे भूल गया हो, मगर हर बार आकर देखा कि चाबियां ज्यों की त्यों पड़ी हैं और किसी ने उनको छुआ तक नहीं. एक बार उसने अपनी चाबियां कप्तान जान को भी दे दीं और देकर भूल गया. खयाल उसका यह था कि शायद जान यह चाबियां घर ले जाये और वहां हनीफा चोरी से उन चाबियों जैसी दूसरी चाबियां बनवा ले.

एक दिन खुफिया दफ्तर के बड़े अफसर ने युद्ध-नक्शा तिजोरी से निकाला. कप्तान जान और एकाध अन्य अफसर को दिखाया और आवश्यक विचार-विमर्श के बाद नक्शे को फिर तिजोरी में रख दिया और जान से कहा, "आओ, बाहर चलें. खाना खायें." मतलब उसका यह था कि जान को दफ्तर से बाहर ले जाऊं, ताकि हनीफा अकेली दफ्तर में रह जाये.

जब खुफिया दफ्तर का बड़ा अफसर जान को लेकर बाहर गया, तो हनीफा ने काम शुरू कर दिया. अपना हैंड-बैग खोला और उसमें से तिजोरी की वह चाबी निकाली, जो उसने बनवा रखी थी. चाबी को तिजोरी के ताले में डाला. खट की आवाज आयी और तिजोरी खुल गयी. हनीफा ने नक्शे निकाले. मेज पर फैलाये और माचिस के बराबर कैमरे से उन नक्शों की धड़ाधड़ तस्वीरें ले लीं.

हनीफा ने सब काम पूरा कर लिया था. नक्शे की तस्वीरें उसके कैमरे में थीं. उसने असल नक्शे फिर तिजोरी में रख दिये. तिजोरी का ताला बंद कर दिया और बाहर संड़क पर आ गयी.

अब हनीफा का केवल एक ही काम रह गया था और वह यह कि इंग्लैंड से भागकर जर्मनी पहुंचे और इंग्लैंड के युद्ध-नक्शे हाई कमांड में पेश करे.

हनीफा जर्मनी पहुंची. नक्शे हाई कमांड के सामने पेश किये. वहां सख्त भगदड़ मच गयी और बहुत तेजी से हिटलर की सारी सेना हालैंड में जमा हो गयी.

छह जून, 1944 का सूर्य उदय होने में अभी कुछ क्षण बाकी थे कि मित्रशक्तियों की सेना नारमंडी के तट पर उतरी और हिटलर का चढ़ा हुआ सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया. □

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की पहली महिला जासूस

अनिता जैन

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान अनेक महिलाओं ने अपनी जान पर खेलकर जर्मन ज्यादतियों के खिलाफ संघर्ष में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी. ऐसी वीरांगनाओं में एक भारतीय महिला भी थी, जिसका नाम अंतर्राष्ट्रीय जासूसी के इतिहास में कभी भुलाया नहीं जा सकता. इस महिला का नाम था—राजकुमारी नूर इनायत खां.

नूर अंग्रेजों के खिलाफ लंबे संघर्ष करनेवाले वीर टीपू सुलतान की वंशज थी. उसके पिता सूफी संत थे. सन् 1914 में नूर का जन्म मास्को में हुआ था. उसकी जिंदगी का अधिकांश भाग फ्रांस में ही बीता था. युद्ध छिड़ने तक वह रेडियो के लिए बच्चों की कहानियां लिखा करती थी.

जब फ्रांस पर जर्मन सेना का अधिकार हो गया तो वहां से भागकर इंग्लैंड चली गयी. वहां उसने ब्रिटिश सेना को अपनी सेवाएं अर्पित कीं. उसके सौंदर्य और बुद्धिमत्ता से ब्रिटिश सैनिक अधिकारी बेहद प्रभावित हुए. पहले उसे गुप्त वायरलैस संचालन का प्रशिक्षण दिया गया. फिर ब्रिटिश गुप्तचर सेवा से उसे अंतर्राष्ट्रीय जासूसी के लिए अपने साथ ले लिया.

नूर का व्यक्तित्व इतना आकर्षक और प्रभावित करनेवाला था कि जो भी उससे एक बार बात कर लेता, वह उसका पुजारी होकर रह जाता. हालांकि नूर अत्यंत भावुक और तेज मिजाज की थी, और जासूसी जैसे काम के लिए अयोग्य साबित हो सकती थी, फिर भी दुस्साहसी और निष्ठावान होने के कारण ब्रिटिश अधिकारियों ने उसे जर्मन शिकंजे में जकड़े फ्रांस में भेजने का निश्चय किया.

फ्रांस में गोपनीय सूचनाएं इकट्ठा कर गुप्त रेडियो द्वारा उन्हें ब्रिटिश गुप्तचर विभाग को भेजने का महत्वपूर्ण कार्य उसे सौंपा गया. 16 जून, 1943 की रात्रि को डायना रोडेन सेसिल लेफोर्स नामक दो महिलाओं के साथ नूर को एक जलयान द्वारा फ्रांस की ओर घाटी पर उतार दिया गया. फ्रांस में ब्रिटिश गुप्तचर सेवा के अधिकारी हेनरी दैरीकोर्ट ने तत्काल उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुंचा दिया. नूर को पेरिस में हेनरी गैरी नामक ब्रिटिश गुप्तचर के साथ रखा गया. हेनरी जर्मनी के खिलाफ महत्वपूर्ण सूचनाएं एकत्र करने के साथ-साथ विध्वंसक कार्य भी किया करता था. उसके साथ काम करने वाले गुप्तचर हैरान थे कि इस बेहद खूबसूरत नाजुक महिला से जासूस का जोखिम भरा कठिन कार्य कैसे हो पायेगा? लेकिन काम के प्रति अपनी निष्ठा, कुशाग्रबुद्धि, और कार्य-कुशलता के द्वारा जल्दी ही नूर इनायत ने उनका भ्रम दूर कर दिया.

कुख्यात जर्मन राजनीतिक पुलिस 'गेस्टापो' उन दिनों फ्रांस में मित्र राष्ट्रों की जासूसी और विध्वंसात्मक कार्यवाहियों से त्रस्त थी एवं व्यापक पैमाने पर संदिग्ध जासूसों की धर-पकड़ कर रही थी.

फलस्वरूप राजकुमारी नूर इनायत को कुछ दिनों चुपचाप और निष्क्रिय रहना पड़ा. फिर उसने अपने गुप्त रेडियो संदेश भेजने प्रारंभ कर दिये. इन संदेशों में मित्र राष्ट्रों के जासूसों की गिरफ्तारी के बारे में विस्तृत जानकारी थी. ब्रिटिश अधिकारियों को आशंका हुई कि जर्मनों को नूर का सुराग मिलने पर वे उसे मृत्युदंड देने से हिचकेंगे नहीं. अतएव उन्होंने नूर को तत्काल लौटने का आदेश दिया. लेकिन नूर इसके लिए राजी नहीं हुई. उसका कहना था कि मेरे यहां से हटने पर गुप्तचर विभाग का बहुत-सा काम ठप्प हो जायेगा, अतः मेरा स्थान लेने जब तक यहां कोई आ नहीं जाता, तब तक मैं यहां से हटूंगी नहीं.

जर्मन पुलिस ने शीघ्र ही फ्रांस में ब्रिटिश गुप्तचरों के संगठन का पता लगा लिया और उसमें जासूस छोड़ दिए.

ब्रिटिश अधिकारियों को नूर के संदेश मिलने यकायक बंद हो गये. कुछ दिनों बाद संदेश मिलना फिर प्रारंभ हुए तो उनकी भाषा और ध्वनि में कुछ अंतर था. इससे ब्रिटिश अधिकारियों को संदेह हुआ कि नूर कहीं 'गेस्टापो' के हाथों तो नहीं पड़ गई!

अक्तूबर 1943 में पैरिस के फोश एवेन्यू स्थित अपने फ्लेट में से नूर को हिरासत में ले लिया गया. उसका सहयोगी साथी हैनरी गैरी और उसकी पत्नी जैनी भी गिरफ्तार कर लिए गये.

'गेस्टापो' के शिकंजे में कैद हो जाने के बाद नूर को तरह-तरह की यातनाएं देकर उससे गोपनीय जानकारी हासिल करने की भरसक चेष्टाएं की गयीं लेकिन फूल-सी सुकुमार उस बहादुर नारी ने पूरी दृढ़ता से कोई भी जानकारी देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया. उसकी इस निष्ठा से कठोर और बेरहम जर्मन भी प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सके. अपने गुप्त दस्तावेजों में उन्होंने नूर की दृढ़ता और देश के प्रति निष्ठा की भूरि-भूरि सराहना की.

पैरिस में बंदी रहते हुए नूर ने दो बार भागने की असफल कोशिश भी की. उस पर काबू पाना आसान नहीं था, अतएव 'गेस्टापो' ने उसे जर्मनी भेज दिया.

नूर का वायरलैस-सैट, गुप्त-संदेश प्रणाली तथा महत्वपूर्ण कागजात 'गेस्टापो' के पास थे, इसलिए 'गेस्टापो' के अधिकारियों ने कुछ महीनों के अभ्यास के बाद नूर के नाम से ब्रिटिश गुप्तचर विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को संदेश भेजना प्रारंभ कर दिया. ब्रिटिश अधिकारियों को संदेह हुआ. उन्होंने अपनी शंका के निवारण के लिए नूर के व्यक्तिगत जीवन से संबद्ध अनेक प्रश्न भेजे, नूर के कागजातों और डायरी से उन प्रश्नों के उत्तर पाकर जर्मनों ने ब्रिटिश अधिकारियों को सही जवाब दिये, इससे ब्रिटिश अधिकारी संतुष्ट हो गये. ब्रिटिश अधिकारियों की इस असावधानी से फ्रांस में ब्रिटिश गुप्तचरों का जाल छिन्न-भिन्न हो गया क्योंकि उनके संदेशों से प्राप्त जानकारी के आधार पर 'गेस्टापो' ने छापा मार-मारकर मित्र राष्ट्रों के लगभग सभी गुप्तचर फ्रांस के विभिन्न हिस्सों में पकड़ लिये. यही नहीं, इन झूठे संदेशों के प्रभाव में आकर ब्रिटिश अधिकारियों ने फ्रांस में अन्य बहुत-से गुप्तचर भेजे, जो सीधे 'गेस्टापो' के चंगुल में आ फंसे.

नूर को फोर्जहाइम नामक कुख्यात कारागार में रखा गया. एक अंधेरी बदबूदार सीलन-भरी कोठरी में इस दुस्साहसी युवती को लोहे की मोटी-मोटी जंजीरों से बांधकर रखा गया. उसे इतनी यातनाएं दी गयीं कि वह कंकाल-मात्र बनकर रह गयीं. लेकिन उसकी रगों में वीर टीपू सुलतान का रक्त था तभी तो इतनी यातनाएं देने के बावजूद नाजी उससे एक भी रहस्य नहीं खुलवा सके.

सितंबर 1944 में उसे तीन अन्य महिला ब्रिटिश गुप्तचरों के साथ दाचो कारागार में भेजा गया. यहां उसे एक दीवार की ओर मुंह करके घुटनों के बल खड़ा किया गया. एक जरमन अधिकारी ने पिस्तौल से निशाना साधा और एक गोली पीछे से नूर की गर्दन को चीरती हुई निकल गयी. साहस, निष्ठा और पराक्रम की प्रतीक वह वीर नारी वहीं गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी.

बाद में पता चला कि फ्रांस में ब्रिटिश संगठन का प्रमुख हैनरी दैरीकोर्ट गद्दार हो गया था. दरअसल वह जर्मनों के लिए जासूसी कर रहा था और फ्रांस में उतरने के साथ ही नूर का भाग्य तय हो चुका था.

नूर को पकड़वाने में उसके साथी गुप्तचर हैनरी गैरी की बहिन रैनी गैरी का भी सहयोग था. युद्ध की समाप्ति के बाद प्राप्त जर्मन कागजातों से यह रहस्य खुला. रैनी पर ब्रिटिश अधिकारियों ने नूर को पकड़वाने के आरोप में मुकद्दमा चलाकर दंडित भी किया. □

पतिव्रता

एक गांव में वीरवर नाम का बढ़ई अपनी पत्नी कामदमनी के साथ रहता था. कामदमनी के काम उसके नाम के विपरीत थे. वह कामासक्त स्त्री थी. उसके गांव के अनेक पुरुषों से संबंध थे. गांव में कामदमनी के चरित्र को लेकर तरह-तरह की बातें होती थीं. धीरे धीरे ये बातें वीरवर के कानों तक भी पहुंची. उसने इन बातों का सच-झूठ जानने का निश्चय किया.

एक दिन वीरवर कामदमनी से बोला, "मैं कुछ दिनों के लिए परदेश जा रहा हूं.तुम मेरे लिए थोड़ा-सा कलेवा बना दो!"

कामदमनी मन ही मन यह सोचकर बहुत ही खुश हुई कि कुछ दिन तो आनंद से गुजरेंगे.

सुबह उसने पति को कलेवा देकर विदा किया और उसके जाते ही स्वयं भी अपने यार देवदत्त के पास जाकर उसे रात्रि को घर आने का न्योता दे आयी.

उधर वीरवर पूरा दिन जंगल में बिताकर सांझ को पिछवाड़े के दरवाजे से घर में घुस आया और खाट के नीचे छुप गया. थोड़ी देर बाद देवदत्त आया और उसी खाट पर बैठ गया. उसे देखकर वीरवर को बहुत क्रोध आया. वह उसे मारने का विचार करने लगा. फिर सोचा कि इन्हें अभी मारना उचित नहीं. जरा देखूं तो इनके इरादे क्या हैं?

देवदत्त के आने के थोड़ी ही देर बाद कामदमनी भी घर का दरवाजा बंद कर वहां आ पहुंची. देवदत्त ने हाथ बढ़ाकर कामदमनी को खाट पर खींच लिया. इसी असावधानी में कामदमनी का पांव खाट के नीचे छिपे वीरवर के शरीर से छू गया.

कामदमनी तुरंत समझ गयी कि हो न हो यह मेरा पति वीरवर ही है जो मुझे रंगे हाथों पकड़ने के लिए यहां छिपा बैठा है. अब यह अवश्य ही मुझे मार डालेगा. अतः कुछ उपाय सोचना चाहिए.

कामदमनी तो इस दुश्चिंता में पड़ी हुई थी उधर देवदत्त इन सबसे अनभिज्ञ उसे भोगने को उतावला हो रहा था. वह कामदमनी को आलिंगन में लेने को बढ़ा. कामदमनी ने उसे अपने से दूर धकेलते हुए कहा, "मैं पतिव्रता सती सावित्री स्त्री हूं. यदि तुम मुझे छुओगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगी..."

देवदत्त की समझ में नहीं आया कि इसे हुआ क्या है? उसने कामदमनी की तरफ देखा. जवाब में कामदमनी ने मुंह से कुछ न कहकर आंख और हाथ के इशारे से उसे समझाया कि यहां हम दोनों के अलावा कोई और भी मौजूद है. कामदमनी की चतुराई पर मन ही मन खुश होते हुए देवदत्त ने कहा, "यदि तुम सती सावित्री हो तो मुझे बुलाकर क्यों लायी थीं."

वह बोली, "आज सुबह जब में चंडिका देवी के मंदिर में गयी थी तब एकाएक देवी ने भविष्यवाणी की कि तुम छः महीने में विधवा हो जाओगी." मैंने देवी से प्रार्थना की कि यदि तुम यह जानती हो तो मेरे पति के प्राण बचाने का उपाय भी अवश्य जानती होगी. कृपा करके वह उपाय भी बता दीजिए. मैं अपने प्राण देकर भी उनकी रक्षा करूंगी."

देवी ने मेरी करुण प्रार्थना सुनकर कहा, "उपाय है तो सही पर उसका होना न होना एक बराबर है."

मैंने फिर प्रार्थना की कि जो भी उपाय हैं आप बता दीजिये मैं उसे अवश्य पूरा करूंगी.

तब देवी ने कहा, "यदि तुम एक रात पर-पुरुष के साथ व्यतीत कर लोगी तो तुम्हारे पति के ऊपर आये बुरे ग्रह टल जायेंगे." इसीलिए मैंने तुम्हें बलाया है.

खाट के नीचे छुपा मूर्ख वीरवर पत्नी की बात सुनकर इतना प्रसन्न हुआ कि उसी क्षण बाहर निकलकर पत्नी को आलिंगनबद्ध करके बोला, "तुम सती सावित्री स्त्रियों में अग्रणी हो. पति की प्राण रक्षा के लिए तुमने पर-पुरुष का संसर्ग जैसा घृणित काम करके भी अपने सतीत्व को लांछित नहीं होने दिया. आज तुम्हारी भक्ति और बुद्धि ने ही मुझे अकाल-मृत्यु से बचाया है. मैं व्यर्थ ही लोगों की बातों में आकर तुम्हारे चरित्र पर शक करने लगा था. मुझे क्षमा कर दो देवि!" फिर देवदत्त से बोला, "मेरा अहोभाग्य जो आप मेरे घर आये और आपकी कृपा से ही मुझे नया जीवन मिला." □

पंचतंत्र से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल की महफिल में दिल्ली की शमां

बाला दुबे

अठारहवीं शताब्दी के डगमगाते मुगलों का बिखरता हिंदुस्तान. उन दिनों समुद्री तट पर विलायती मल्लाह आपस में पंजे लड़ा रहे थे. जिसे जहां जगह मिलती वह वहीं धंसने लगा था. अंग्रेजों के अदने से एक दिलेर लुटेरे जॉब चारनंक ने काली घाट गांव के पास अपना अड्डा जमा लिया था. और फिर देखते ही देखते वे बंगाल की अंगुली पकड़कर पांउचे तक आ पहुंचे थे. जब इसकी खबर मुर्शिदाबाद में बैठे नवाब सिराजुद्दौला को लगी तो उसने 'हूं' कहकर सिर्फ सर हिला दिया था. फिलहाल तो उसकी शादी का जश्न मनाया जा रहा था. दूर-दूर से कोयल जैसी आवाजवाली तवाइफें बुलायी जा रही थीं

और उस दिन दिल्ली में भी बुलावा आ गया—मुन्नी के लिये. मुन्नी का नाम पूरी दिल्ली में महक रहा था. उसकी आवाज का जादू नवाबों-महाराजाओं के सर पर चढ़कर बोल रहा था. जब वह गाती तो उनके दिल शमां की तरह पिघलने लगते. कई दिल वालों ने दिल्लगी की कोशिश भी की मुन्नी से, पर मुन्नी की नजर से इनायत नहीं टपकी. मुन्नी दिल्ली की लरजती हुई शमा जिसके इर्दगिर्द सैकड़ों जले हुए पंख पड़े हुए थे—रईसों के, राजाओं के, नवाबों के. वैसे कीमती मुसलमानी लिबास से ढका मुन्नी का असली रूप कुछ और ही था. वह ब्राह्मण की बेटी थी—सुदामा से भी गरीब ब्राह्मण बालमुकुंद की बेटी.

आगरे के सूबे में सिकंदराबाद राऊ गांव में रहती थी वह. बालमुकुंद बामन दो जून की रोटी नहीं जुटा पाता और टब्बर में पांच बच्चे रोटी के टुकड़े के लिये चिल्ल-पों करते रहते. मुन्नी उसकी तीसरी बेटी थी. बालमुकुंद के पास गाहे-बगाहे दिल्ली का बिस्सू ढारी आ जाता था. वैसे बिस्सू की नजर थी पैनी. उसी ने मुन्नी को बारीकी से परखा था और उसे लगा कि बालमुकुंद की गुदड़ी में एक लाल भी पड़ा हुआ था. बिस्सू ढारी सुगना बाई के कोठे पर तबला बजाता था. लगे हाथ कायदे की लड़कियों को औने पौने में सौदा क़रके उन्हें दिल्ली के चावड़ी बाजार में बेच भी आता था. चावड़ी बाजार में रूप की आढ़ती होती थी. इसी थोक बाजार की सुगना बाई भी मंजी हुई आढ़तिया थी. पत्थर की शक्ल में हीरे उसके यहां आते और फिर उन्हें वह तराशती थी. फिर तराशे हुए यही हीरे रईसों के दिलों को कांच की तरह काट डालते.

बिस्सू ने ही बालमुकुंद और उसकी बीवी को ऊंच नीच समझाया. फिर गरीबी और भूख ने ममता का गला घोंट ही डाला. मोम के दिल से पत्थर के आंसू टपकने लगे. सौ रुपयों में बिस्सू मुन्नी को लेकर दिल्ली पहुंचा था. सुगना बाई ने मुन्नी को अपनी तीखी नजरों से परखा और फिर दो सौ रुपये बिस्सू के हाथ पर रख दिये.

दूज के चांद जैसी मुन्नी फिर अपनी पूर्णिमा की ओर तेजी से बढ़ी. रूप और आवाज की दुधारी तलवार लेकर वह महफिलों में जब उतरी तो उसने अपने कद्रदानों को नीम बिस्मिल कर दिया. सुगना बाई के 'दलिद्दर' दूर हो गये. फिर वह बड़ी नर्मी से मुन्नी से मिन्नतें करती कि फलां नवाब साहब ने उसकी नथ के पचास हजार लगाये हैं, फलां महाराजा तो एक लाख तक देने को तैयार हैं, पर मुन्नी ने अपनी नाक में पड़ी हीरो-पन्नों की नथ को 'उतारना' तो क्या उसे किसी को छूने तक नहीं दिया. सुगना बाई खिसिया-खिसिया जाती पर मुन्नी हंसकर टाल जाती. आखिर मुन्नी का भी तो कोई सपना था. अपने आकाश में वह अपना इंद्रधनुष स्वयं बनाना चाहती थी—हीरे, पन्ने, माणिक, नीलम, पुखराज से जड़ा हुआ इंद्रधनुष. और वह अपने रूप के सौदागर का इंतजार करती रही—कब आयेगा वह, कब वह गर्व से सर उठाकर सुगना बाई की ओर देख कर कहेगी, 'देख अम्मीं, तुमने अपनी मुन्नी की उड़ान को देखा.' और बंगाल से दावतनामा आज आ ही गया था. किस्मत उसे पुकार रही थी और मुन्नी भी गाफिल नहीं थी.

और मुन्नी चल दी—बंगाल के सूबेदार के दरबारी मुजरे के लिए. नवाब सिराजुद्दौला—क्रूर, कानों का कच्चा, जल्दबाज और अपने नाना नवाब अलीवर्दी खां के लाड़-प्यार से बिगड़ा हुआ. वैसे उसके नाना अलीवर्दी खां ने अवसर के निमंत्रण को हाथ से जाने नहीं दिया था. नवाब मुर्शिदकुली खां का वह अदना-सा हुक्का-बरदार था—मिर्जा बंदे नाम था. फिर किस्मत की बैसाखियों के सहारे वह परसू, परसा, परसराम बनता चला गया. पहले मिर्जा बंदे, फिर मिर्जा मुहम्मद अली और फिर अलीवर्दी खां. उसने फिर एक परंपरा को भी तोड़ कर दिखलाया—उसने हरम नहीं बनाया. अपनी इकलौती बीवी के साथ ही जिंदगी की मंजिलें पूरी कर डालीं. पर कुदरत ने उसकी किस्मत के चांद में भी एक धब्बा छोड़ ही दिया—उसे कोई बेटा नसीब नहीं हुआ, सिर्फ तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेटियां ही हुईं. मंझली बेटी के बेटे सिराज को फिर उसने गोद ले लिया और अपना सारा प्यार उस पर उड़ेल दिया. तभी तो सिराज उद्दौला बिगड़ता गया. हद तो तब की जब उसने अपनी बड़ी मौसी घसीटी बेगम के मोती झील वाले महल को लुटवाया और लूटा हुआ माल अपने महल में भरवाया—मंसूरगंज में. फिर अपने मौसा नवाब नवाजिश मुहम्मद के जीवन काल में ही उनके वफादार नायब हुसेनुद्दीन [illegible] हुसेनकुली खां को पकड़वाया था. हुसेनकुली खां का तो भरी दोपहरी में मुर्शिदाबाद की गली में कत्ल ही करवा डाला था. और फिर छोटी मौसी मेहरुन्निसा के साथ क्या किया. माना कि मेहरुन्निसा ऐय्याश हो गयी थी और उसका संबंध उसी के पति ढाका के सूबेदार के नायब के साथ हो गया था पर सिराजुद्दौला ने भी तो उसे भयंकर सजा दी थी. जब मेहरुन्निसा के चरित्र के खिलाफ उसी के पति ने अपने ससुर नवाब अलीवर्दी खां से शिकायत की तब सचरित्र अली वर्दी खां ने सिराजुद्दौला को तहकीकात के लिये ढाका भेजा था. और सिराजुद्दौला ने नायब सूबेदार का सर कलम करवा डाला. उसी दिन से उसकी मौसी मेहरुन्निसा तो उसकी जानी दुश्मन बन गयी थी. वह डसने के लिए मौका ढूंढ रही थी और किस्मत से मौका हाथ लग ही गया.

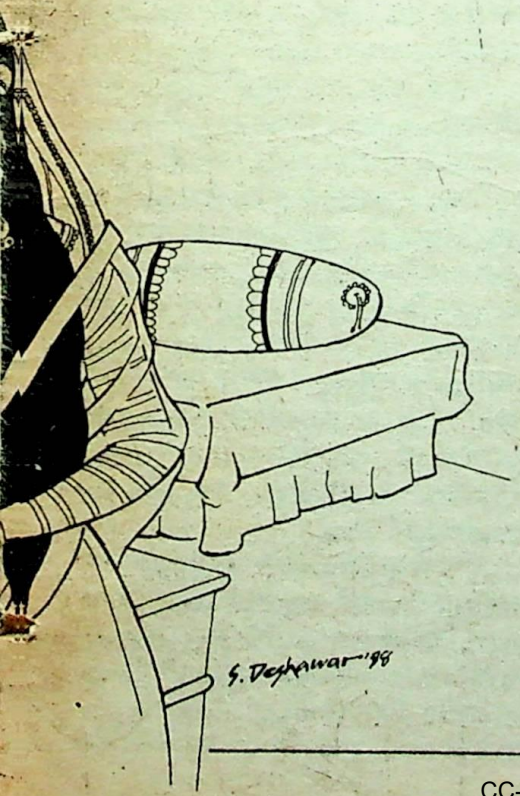

दरबार में जश्न मनाया जा रहा था. जिस वक्त दिल्ली की मुन्नी बेगम को गायन के लिये बुलाया गया उस वक्त सिराजुद्दौला को ना जाने क्या सूझी कि उसने मुन्नी को सिर्फ छेड़ा ही नहीं बल्कि ऐसी छींटाकशी कर दी जिससे मुन्नी की आंखों में लाल तैरने लगे. आज तक किसी ने उसे भरी महफिल में परेशां नहीं किया था. यह जानते हुए कि वह दिल्ली से कोसों दूर परदेस में अकेली घिरी हुई है उसने समझदारी से ही काम लिया. और भाग्य भी इसी नाजुक मौके पर उस पर मुस्करा उठा. दरबार में बैठे वजीर जाफर ने मुन्नी की हिमायत ली और इस कदर उस पर हमदर्दी उढेली कि मुंहफट नवाब सिराजुद्दौला को भी अपनी ढीली रास को काबू में करना पड़ा. तब मुन्नी ने डबडबायी आंखों से मीर जाफर की ओर देखा था. और तभी उसके दिल में मुहब्बत गूंजी जैसे कोई गुंबद में चिल्लाया हो. 'देख क्या रही है मुन्नी. अरी पहचान. यही तो है वह, जिसका तू इंतजार कर रही थी.' उसकी आंखों से निकले मीठे तीर फिर जाफर को बींधते चले गये.

चिलमन में बैठी मेहरुन्निसा ने यह सब कुछ देखा. वह तो उड़ती हुई चिड़िया के पंख तक गिन लेती थी. उसने मुन्नी की आंखों से निकले दोनों संदेशों को जान लिया—प्रेम और घृणा के मूक संदेशों को. और उसी दिन से मेहरुन्निसा चेत गयी. वह जान गयी थी कि मुन्नी के दिल में दो अग्नि कुंड धधक रहे हैं—मीर जाफर के लिये प्रेमाग्नि का कुंड, सिराजुद्दौला के लिये घृणा का अग्नि कुंड. मेहरुन्निसा ने दोनों अग्नि कुंडों को अंजुली भर के आहुति दी. यह उसी की सधी हुई चाल थी जिसने मीर जाफर को मुन्नी के मन के साथ बांध दिया. और मुन्नी भी मीर जाफर की ओर बरबस खिचती चली गयी. भरी महफिल में उसकी लाज भी तो मीर जाफर ने ही बचायी थी. और फिर मीर जाफर कोई लल्लू-पंजू भी तो नहीं था. वह बंगाल के सूबेदार का दायां हाथ था जिसमें उसने सोने की तलवार पकड़ रखी थी. धन और वैभव दोनों उसकी मुट्ठी में थे. मेहरुन्निसा ने फिर मीर जाफर को बुलवा कर समझाया था राब से पहले उसने मुन्नी को मुन्नी बेगम बनाया और मीर जाफर के महल की शमां बनवा दिया. इसके बाद ही मेहरुन्निसा और मुन्नी बेगम ने मिलकर षड्यंत्र बुना था—अपने शत्रु सिराजुद्दौला के खिलाफ. मेहरुन्निसा को प्रसन्नता तो तब हुई जब उसने देखा कि मुन्नी इन कामों में उससे भी कई मंजिल आगे बढ़ी हुई है. फिर मुन्नी ने अपनी घृणा पर धार रखना शुरू किया था, एक ही बार में सिराजुद्दौला के घमंडी सर को काटने के लिये.

अपने वश में किये प्रेमी और पति मीर जाफर को उसने ही पट्टी पढ़ायी थी. उसके हरेक इशारे पर मीर जाफर नाचने लगा और फिर एक रात वह ढकी हुई पालकी में बैठकर गया था लार्ड क्लाइव के पास. जैसा भी मुन्नी बेगम ने उसे पढ़ाया था उसी तरह वह तोते की तरह बोला था. लार्ड क्लाइव ने इस दावत को परिस्थितियों की कृपा-वर्षा माना और वह तैयारी करने लगा. पलाशी के मैदान में ही सिराजुद्दौला का भाग्य-सूर्य हमेशा के लिये अस्त हो गया. फिर बदहवास होकर सिराजुद्दौला भागा था भगवान गोला की ओर. और जब भूख ने उसे खिचड़ी खाने पर मजबूर किया तब उसकी कीमती जूतियां देखकर ही उस फकीर दानाशाह ने उसे पहचान लिया. फकीर दानाशाह—जिसके नाक-कान कभी इसी सिराजुद्दौला ने कटवा दिये थे. दानाशाह ने ही फिर उसे पकडवाया.

मुन्नी बेगम ने दानाशाह को इतनी दौलत दी कि वह निहाल हो गया. और मुहम्मदी बेग ने फिर सिराजुद्दौला का सर धड़ से अलग किया था. सिराजुद्दौला के मृत शरीर को हाथी पर डालकर घुमाया गया. मुन्नी बेगम के इशारे पर ही उस हाथी को उसी जगह लाया गया जिस स्थान पर कभी हुसैनकुली खां की लाश को सिराजुद्दौला के हुक्म से लाया गया था. प्राकृतिक न्याय ने तब अपना क्रूर मजाक किया था. जिस जगह पर हुसैनकुली खां की लाश से खून टपका था उसी जगह सिराजुद्दौला की लाश से भी खून टपका और जमीन उसे पी गयी.

मीर जाफर की गोद में लेटी मुन्नी बेगम उस दिन निहाल हो गयी थी. अपने अपमान का बदला वह ले चुकी थी तभी सोने के थाल में हीरे-मोती भरे सिराजुद्दौला की मौसी मेहरुन्निसा भी मुन्नी बेगम के महल की ओर नजर लेकर आ रही थी. उसकी भी छाती आज ठंडी हो गयी थी—ताजा पड़ी बर्फ जैसी ठंडी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सॉल बैलो, फिलिप रॉथ और नॉर्मन मेलर का मानना है कि....

'औरत जानवर है, उनका स्थान पिंजरे में है!'

बात उन दिनों की है, जब पश्चिम में नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन चरम सीमा की ओर अग्रसर था.

इस आंदोलन की एक प्रमुख नेत्री विवयन गार्निक ने 'द विलेज वॉयस' नामक एक अनजाने पत्र में 'ये पुरुष स्त्रियों से घृणा क्यों करते हैं?' शीर्षक से एक तीखा लेख लिखा. जिन पुरुषों के नाम इस चुभते हुए लेख में लिये गये थे, उनमें नोबेल-पुरस्कार विजेता अमरीकी साहित्यकार सॉल बैलो, उपन्यासकार फिलिप रॉथ और अपने को 'हेमिंग्वे का एक मात्र उत्तराधिकारी' मानने वाले, हमलावर साहित्यकार नॉर्मन मेलर भी थे. अपेक्षाकृत अनजान, किंतु प्रभावशाली पत्र 'द विलेज वॉयस' को विवियन ने विशेष रूप से इसलिए चुना था, क्योंकि मेलर इसके संस्थापकों में से एक थे.

इन तीनों को स्त्री-द्वेषी बताते हुए, विवियन ने कहा, "अवरुद्ध मानसिक विकास वाले इन तीनों लेखकों में मेलर सबसे अधिक स्त्री-द्वेषी हैं. कुछ समय पूर्व, मेलर ने उपन्यासकार हेनरी मिलर के व्यक्तित्व व कृतित्व पर 'जीनियस एंड लस्ट' नामक एक पुस्तक लिखी थी. और उसमें मिलर का मनो-विश्लेषण करते हुए लिखा था, "मिलर स्त्री को भोगने में रुचि रखते थे, लेकिन प्रेम किये बिना. उनकी जर्मन मां ने उन्हें कभी प्रेम नहीं किया. और संभवतः इसी कारण वे आजीवन स्त्रियों से घृणा करते रहे." मेरी राय में, मिलर के बारे में कही गयी मेलर की यह बात उन के बारे में ज्यादा मौजूं है. स्वयं उनका सारा लेखन और जीवन इस बात का गवाह है कि ढेर सारी स्त्रियों से ढेर सारा प्यार पाने के बावजूद वे समस्त स्त्री-जाति से सख्त नफरत करते थे. बहुत पहले उन्होंने ऑरसन वैल्स से कहा था, 'औरत जानवर है, उनका स्थान पिंजरे में है.' वे स्वयं हर युवा व सुंदर महिला से फ्लर्ट करने को तैयार रहते हैं, मगर उनकी बीवी ऐसा करे, तो जैसा कि खुद उन्होंने एक बार कहा था, वे उनकी हत्या भी कर सकते हैं. मेलर ही नहीं अपने को प्रगतिशील और उदार विचारों का माननेवाला हर बड़ा साहित्यकार स्त्रियों के बारे में ऐसे ही संकीर्ण और दकियानूसी खयाल रखता है."

विवियन के इन आरोपों का न कभी मेलर ने जवाब दिया, न सॉल बैलो ने, न फिलिप रॉथ ने. इससे उनके प्रशंसकों को यह मानने पर मजबूर होना पड़ा कि विवियन के आरोप काफी दमदार हैं.

मेलर ने कई विवाह किये. मगर जैसे ही किसी पत्नी ने अपना खुद का कैरियर शुरू किया, वे उससे कटना शुरू कर देते थे "औरत का काम घर में बैठकर बच्चे पैदा करना है. बाहर जाकर मर्दों से स्पर्धा करना नहीं", यह था कामकाजी स्त्रियों के बारे में उनका सुनिश्चित मत, जिस पर वे हमेशा कायम रहे हैं, और जोरदार वकालत करते रहे हैं.

नारी-स्वातंत्र्य-आंदोलन की नेत्रियों से मेलर की मुठभेड़, जो कभी समाप्त नहीं हुई, और आज तक जारी है, 'टाइम' के एक संपादक के उकसाने पर शुरू हुई थी. उसने मेलर से कहा, "ये नेत्रियां, आपको अपने आंदोलन का सबसे जबर्दस्त विरोधी मानती हैं. 'टाइम' को आपके विचार जानने और प्रकाशित करने में गहरी रुचि है." मेलर अपने विचार व्यक्त करने के लिए तैयार हो गये. नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन से जुड़ी उसकी मुखर नेत्रियां क्या कहती हैं यह जानने के लिए उन्होंने हाल ही में प्रकाशित 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' नामक पुस्तक पढ़ी, केट मिलेट नाम की एक नवोदित लेखिका द्वारा लिखित यह पुस्तक आगे जाकर, इस आंदोलन की 'बाइबिल' मानी जाने लगी. पुस्तक के एक अध्याय में लेखिका ने विवियन गार्निक के तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहा था, "1920 और 1960 के दरम्यान सेक्स के क्षेत्र में अति-सुधार और अति-क्रांति विचारों को जन-मानस में प्रतिष्ठित करने का 'संदेहजनक श्रेय' जिन तीन मूर्धन्य कथाकारों को जाता है, वे हैं—हेनरी मिलर, डी.एच. लॉरेंस और नार्मन मेलर. ये तीनों ऐसी सामाजिक व्यवस्था के हिमायती थे, जिसमें स्त्रियां पुरुषों के संपूर्ण नियंत्रण में उनकी दासी बनकर रहती हों. मेलर की सुप्रसिद्ध कृति 'एक अमरीकी स्वप्न' का तो स्वर ही यह है— 'अपनी बीवी का कत्ल करो, और बाद में सुख-चैन से रहो'. पाठक को यह बताया गया कि नायक रोजाक कैसे एक स्त्री की हत्या करके, और दूसरी के साथ अप्राकृतिक मैथुन करके 'मर्द' बनता है. मेलर चाहते हैं कि हर स्त्री चरित्रवान हो, गर्भपात जैसे 'कुकर्म' के बारे में सोचे भी नहीं, और संतति निरोध का जमकर विरोध करे, और पुरुष की वासना—पूर्ति करते हुए उसकी इच्छानुसार, धड़ाधड़ बच्चे पैदा करती जाये. वे हिटलर के जमाने में पैदा हुए होते, तो वह उन्हें अपना प्रचाराध्यक्ष बना लेता."

"एक मजा यह भी है," मिलेट आगे लिखती है, "उपन्यासकार मेलर को निश्चेष्ट हीरोइनें पसंद नहीं हैं. उसकी मर्दानगी का तकाजा है कि हीरोइन सक्रिय और सचेष्ट हो, थोड़ी जुझारू भी ताकि उसे दमित और वशीकृत करके अपनी मर्दानगी पर गर्व किया जा सके. मुझे मेलर के इन प्रतिक्रियावादी विचारों में कोई रुचि न होती, यदि मुझे यह न बताया गया होता कि अमरीकी पुरुषों की नयी पीढ़ी मेलर के इन विचारों से, जो नारी के उत्पीड़न में विश्वास से संबंधित हैं, अत्यधिक प्रभावित है."

और जैसा कि इस पुस्तक की आलोचना करनेवाली नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन की अन्य नेत्रियों ने लिखा, "जो पुरुष नारी के उत्पीड़न में विश्वास करता है, उसके लिये नारी-देह-व्यापार करना आसान हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. वह एक अनपढ़ और असभ्य नारी-देह-व्यापारी से ज्यादा खतरनाक हो सकता है, कारण वह नारी की संवेदन-शीलता पर जोरदार प्रहार करके उसे जड़ से समाप्त कर सकता है."

व्यक्तिगत कारणों से मेलर समय पर 'टाइम' को नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन पर अपने विचार नहीं भेज पाये, और इस बीच 'द सैक्सुअल पालिटिक्स' एक बहुचर्चित और विचारोत्तेजक पुस्तक बन गयी, जिसने विश्वव्यापी लोकप्रियता अर्जित की. 'टाइम' ने, जो इस पुस्तक के प्रसंग में मुखपृष्ठ पर नॉर्मन मेलर का चित्र छापना चाहता था, उनके विचार न आने पर उनके स्थान पर मिलेट का चित्र छापा.

इस घटना ने मेलर को स्त्रियों और उनके अधिकारों के बारे में नये सिरे से सोचने को मजबूर किया. उन्हें अंत-र्निरीक्षण करने पर मजबूर होना पड़ा. उनके पिछले चार विवाह बुरी तरह असफल रहे थे, और इसका जीता-जागता प्रमाण थे, जगह-जगह पर बिखरे छितरे उनके बच्चे. क्या अकारण, बिना किसी उत्तेजना के, अपनी एक पत्नी पेरेल पर चाकू से प्रहार करके उन्होंने यह नहीं दिखा दिया था कि वे स्त्रियों को निरादर की दृष्टि से देखते हैं? क्या उनके अनगिनत प्रेम-प्रसंग यह नहीं सिद्ध करते कि वे स्त्री को मात्र भोग्या मानते हैं? क्या उनका यह विचार कि जीविकोपार्जन के लिए स्त्री कुछ न करे, यह नहीं दर्शाता कि वे स्त्री को पुरुष के समान अधिकार पाने योग्य नहीं मानते?

उन्हें लगा कि नारी-स्वातंत्र्य और नारी-अधिकारों के बारे में पुनर्विचार कर उन्हें लिखना ही होगा. स्वयं उनका अस्तव्यस्त जीवन उनसे इसकी मांग कर रहा है. उन्होंने तय किया कि अपना अधूरा उपन्यास पूरा करते ही वह इस विषय पर, जिसने उन्हें झकझोर कर रख दिया था अवश्य लिखेंगे.

तभी, एक दिन 'हार्पर्स' के संपादक विली मॉरिस ने उन्हें फोन किया, और बताया कि नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन से जुड़ी कुछ नारियों ने अभी हाल में उन्हें घेर कर काफी लताड़ सुनायी, और काफी बुरा-भला कहा. मुझे यह सब अच्छा नहीं लगा, क्योंकि नारी की स्वतंत्रता के बारे में मेरे विचार वैसे नहीं हैं, जैसा कि वे सोचती हैं. मैं बहुत दुखी हूं, और तुमसे मिलना चाहता था.

नारी स्वातंत्र्य आंदोलन की कुछ नेत्रियों ने विश्व विख्यात तीन उपन्यासकारों को स्त्री-द्वेषी घोषित करते हुए एक कठघरे में खड़ा करा दिया है...कौन हैं वे तीन उपन्यासकार? क्या वे वास्तव में स्त्री-द्वेषी थे? और यदि थे तो हमारी दृष्टि में उनकी यह मानसिकता न सिर्फ स्त्री-द्वेष ही है अपितु स्त्री-द्रोह भी है.

दोनों एक रेस्तरां में मिले. वहां मेलर ने मॉरिस से कहा, "जिस उपन्यास पर मैं आजकल काम कर रहा हूं, उसके पूरा होते ही मेरा इरादा बर्र के छत्ते में हाथ डालने का, अर्थात् नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन पर एक जोरदार पुस्तक लिखने का है. सौ सुनार की तो एक लुहार की."

उपन्यास के समाप्त होने पर, एक महीने जूझते रहने के बाद, मेलर ने 'द प्रिजनर ऑफ सेक्स' पुस्तक (शब्द-संख्या : लगभग 50,000) पूरी कर डाली. इन उपद्रवी नारियों ने उन्हें 'मर्दानगी—संप्रदाय का बंदी' कहा था, वह अब सबको बतायेगा कि बेकार की चिल्लपों करनेवाली ये नारियां खुद 'सेक्स की बंदनियां' हैं.

पांडुलिपि को सबसे पहले पढ़ा मॉरिस ने. पढ़कर उसने कहा, "जानता हूं, इस लेख को पूरा छापकर मेरी नौकरी चली जायेगी, मगर यह जोखिम लेकर भी मैं इसे छापूंगा. यह लेख 'हार्पर्स' जैसे प्रतिष्ठित और जाने-माने पत्र में ही सबसे पहले छपना चाहिये."

किताब के 'हार्पर्स' में छपते ही जैसे तूफान आ गया. पत्र के 121 वर्ष के इतिहास में किसी एक अंक का इतना जोरदार स्वागत नहीं हुआ, जितना इस अंक का हुआ. दुगुनी प्रतियां छापनी पड़ीं. लेकिन, पत्र के मालिकों को मेलर के क्रांतिकारी विचार पसंद नहीं आये, और संपादक मॉरिस को इस्तीफा देना पड़ा.

क्या कहा था मेलर ने अपनी इस किताब में, जिसके कारण पत्र के पौने चार लाख के करीब पाठकों और करोड़ों अमरीकी महिलाओं में खलबली मच गयी? मेलर ने कहा था :

"नारी स्वातंत्र्य आंदोलन के बारे में मेरा स्पष्ट मत यह है कि यह नारियों से संबंधित हर प्राकृतिक नियम का उल्लंघन करता है, और कुछ शून्य मस्तिष्क वाली महिलाओं ने अपने दंभ की खातिर इसे शुरू किया है.

"टेक्नालॉजी ने सब कुछ बदल कर रख दिया है. पुरुष हीरो नहीं रहे, और स्त्रियां हीरोइन नहीं रहीं, और स्त्री-सुलभ गुणों से रहित हो गयीं.

"स्त्रियां सेक्स की बंदनियां हैं, क्योंकि वे सेक्स को कोई अर्थ प्रदान करना चाहती हैं. सेक्स को जो अर्थ दिया जाये, वह ग्रहण कर लेगा, और अंत में वह जीवन की हर असफलता, बुराई, कमजोरी और परेशानी को भी अर्थों के बढ़ते हुए दायरे में समेटकर, जीवन को एक अभिशाप बनाकर रख देगा.

'मिलेट सेक्स की बंदिनी ही नहीं, शत्रु भी है, क्योंकि उसका सरोकार न प्रेम से है, न भावनाओं से, जिनके बिना सेक्स खोखला और निरुद्देश्य हो जाता है. यदि प्रकृति की यह मंशा होती कि स्त्री और पुरुष दोनों समान हों, उनके अधिकार समान हों, तो वह ऐसी व्यवस्था करके ही दोनों की रचना करती.

'हार्पर्स' में प्रकाशन के बाद, 'प्रिजनर ऑफ सेक्स' पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुई, और उसे प्रशंसा भी मिली और निंदा भी. लेकिन, मेलर ने कहा, "मैंने जो लिखा है, वह मेरा सुनिश्चित मत है, और किसी को खुश करने या उससे समझौता करने के उद्देश्य से मैं उसे बदलने के लिये तैयार नहीं हूं."

अपने को हेनरी मिलर और डी.एच. लारेंस से भिन्न बताते हुए, मेलर ने लिखा, "मिलर मन ही मन स्त्रियों से डरते थे, और अपनी रचनाओं में उनकी अवमानना और मान-मर्दन इसलिए करते थे, ताकि अपने को उनके साथ यौन-क्रिया के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार कर सकें." लारेंस सेक्स को मोक्ष का साधन मानते थे और सेक्स का जुगाड़ करने के लिये ही स्त्री पर हावी होते थे. किंतु उनकी आलोचना करनेवाली नासमझ मिलेट यह भूल जाती है कि दोनों की कल्पना स्त्रियों जैसी नम्य और वश्य थी. मिलेट के शब्दों के समान पुरुषोचित नहीं थी." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतःपुर की कुंआरी

श्याम शर्मा

तारा पचास पार कर चुकी थी. वह 17 वर्ष की थी जब यहां आयी थी. अब तो महाराजा मदनसिंह जी भी स्वर्ग सिधार चुके थे और यह अंतःपुर हवेली का एक हिस्सा बनकर किराये पर चढ़ चुका था. महाराजा के लड़के अब राजकुमार नहीं थे. एक तो दिल्ली जाकर कहीं सरकारी अफसर बन गया था और दूसरा किशन सिंह पड़ा-पड़ा हवेली का किराया खाता रहता था. तारा अंतःपुर की बारादरी के पीछे अस्तबल की कोठरी में पड़ी रहती थी. अब इनके घर का कामकाज करके वह अपना गुजारा करती थी. ये दोनों लड़के न जाने किस रानी और किस दासी के थे. पर महाराजा के बुढ़ापे की संतान थे. महाराजा ने जवानी का सुख तो खूब भोगा था, अंतःपुर में दासियों और रानियों की संख्या सोलह सत्रह तक थी. उस वक्त रियासत थी. महाराजा के एक इशारे पर ही पास या दूर गांव की लड़की उन्हें पेश कर दी जाती थी. फिर महाराजा और हवेली का वैभव ही ऐसा था कि प्रजा और कर्मचारियों को चमत्कृत कर देता था. राजस्थान की अन्य रियासतों में महलों के साथ हवेलियां नजर भी आती थीं पर इस रियासत की गरीबी का तो ठिकाना ही नहीं था. बस महाराजा के महल के आसपास कुछ हवेलियां थीं. वह भी दीवानों और दरबारियों की. फिर तो पक्की दीवारों के भीतर कच्चे मकान ही दिखायी पड़ते थे. यह राजस्थान का भीतरी इलाका था. पानी की कमी का तो ठिकाना ही क्या लेकिन तरबूज की फसल अच्छी-खासी होती थी. जिन्हें मंडियों में बेचने के लिए ऊंटों के काफिले गुजरते रहते थे. इस रियासत में ओढ़नों और आंगियों की दस्तकारी भी थी. इसी रियासत के बहुत से लोग अन्य बड़ी रियासतों में जाकर धंधा करने लगे थे पर उनके परिवार यहीं रहते थे और उनकी आय का अधिकतर हिस्सा यहां आ जाता था. इस गरीबी में महाराजा किशन सिंह की हवेली और उनका रहन-सहन सभी को चरम सीमा का वैभव नजर आता था.

तारा को तो उसका बाप त्रिलोकी ही यहां सोलह सत्रह वर्ष की अवस्था में छोड़कर गया था. करता भी क्या. वे सात बहनें थीं. भाई एक भी नहीं था. बस दो ऊंट थे जो मंडी में तरबूज लाने ले जाने के काम आते थे और उन्हीं से घर का खर्च चलता था.

महाराजा की हवेली के ऊंटों में से एक ऊंट त्रिलोकी लेना चाहता था बहुत सस्ते दामों पर. कभी-कभी महाराजा उदार होकर या प्रसन्न होकर भी ऊंट दे दिया करते थे. त्रिलोकी इसीलिए तारा को साथ लेकर एक दिन हवेली गया था क्योंकि लड़कियों में तारा ही बड़ी थी और रंग सांवला होते हुए भी तारा का बदन सांचे में ढला हुआ-सा लगता था. आकर्षण उसके नाक नक्श का भी था पर सबसे अधिक आकर्षण तो उसके बालों का था जो खुलने पर कमर से नीचे तक आ जाते थे. बाप होते हुए भी त्रिलोकी कभी-कभी अपनी बेटी को देखकर सहम जाता था. सोचने लगता था कहां इसने इस गरीब घर में जन्म ले लिया. बिना खाये पिये और गरीबी की हालत में तो इसका यह हाल है अगर कहीं खाते पीते घर में जन्म लेती तो बस स्वर्ग की अप्सरा ही जैसी लगती. उसे पूरा विश्वास था कि एक बार महाराजा की इस पर नजर पड़ जाये तो ऊंट तो बिना पैसे के मिल ही जायेगा साथ ही महाराजा की नजरों में भी आ जाऊंगा. फिर किसी न किसी काम से वह फिर बुलवायेंगे और जब महाराजा को पता लगेगा कि मेरे घर में तो बस लड़कियां ही हैं तो गरीबी का यह सारा झंझट ही खत्म हो जायेगा.

वह एक दिन सबेरे तारा को लेकर पहुंच ही गया था. महाराजा हवेली के चौक में बने चबूतरे पर बैठे थे. और लोग कम थे सो महाराजा की निगाह सीधे तारा पर पड़ गयी. त्रिलोकी की तरफ देखकर महाराजा ने सीधे ही पूछ लिया, "या कुंण है तेरी छोरी है के?"

त्रिलोकी चाहता यही था, महाराजा की निगाह पहले तारा पर ही पड़े. हाथ जोड़कर बोला, "हां! अन्नदाता, बड़ी छोरी है."

"तो तेरे और कितां एक छोरी है?" महाराजा ने थोड़ी उत्सुकता दिखाते हुए कहा.

त्रिलोकी को मानो मुंह मांगी मुराद मिल गयी. बोला, "अन्नदाता छह हौर हैं."

त्रिलोकी में दिलचस्पी होने के लिए महाराजा के लिए इतनी जानकारी काफी थी. तुरंत बोले, "अब तू कांई आयो है."

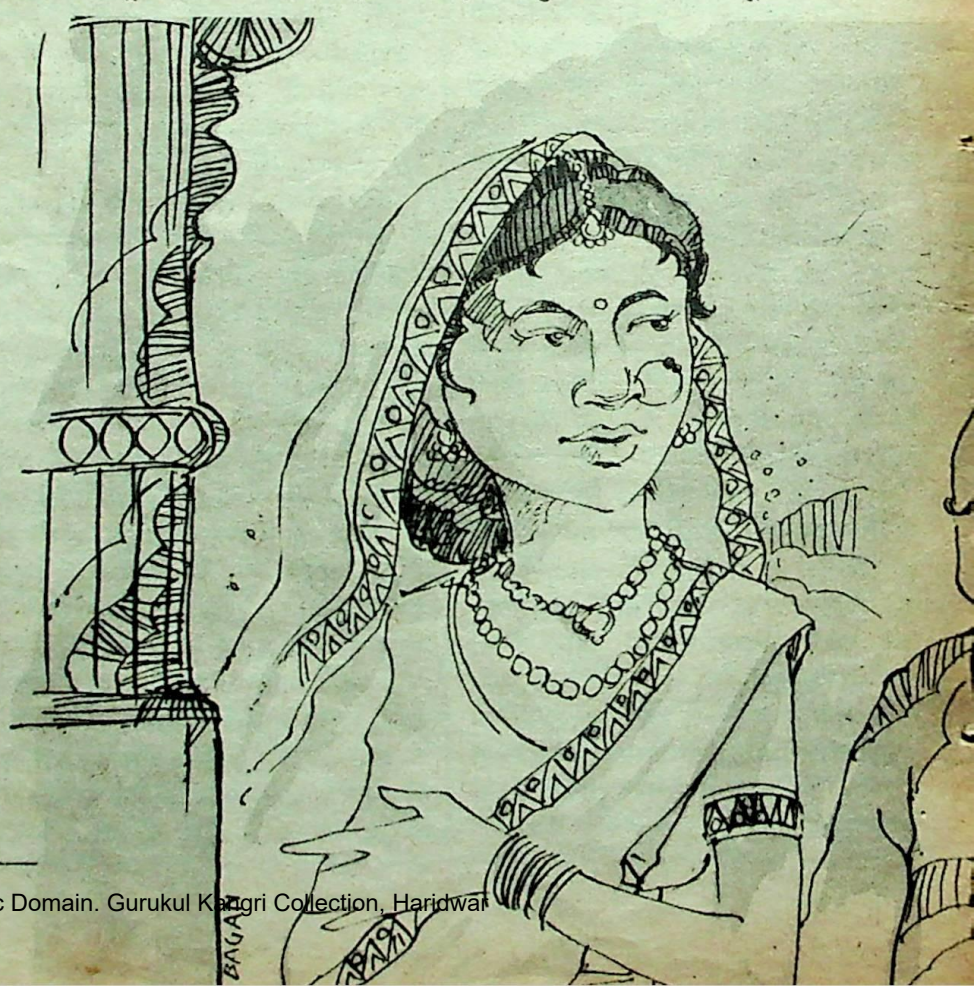

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिलोकी ने मौका देखकर अपना मकसद कह दिया. "अन्नदाता, एक ऊंट मिल जावे तो म्हारो काम चल जा सी."

महाराजा ने ऊंट देने का आदेश तो जारी कर दिया पर तारा की ओर देखकर बोले, "या घरों में के करें? उठे महल में भेजो कुछ काम कर सी. तेरो बोझ भी कम होसी." और त्रिलोकी को राजी होते देर नहीं लगी थी. तारा भी प्रसन्न थी और त्रिलोकी ऊंट के बदले में तारा को छोड़ गया था.

अबोध तारा को कुछ पता नहीं था. उसे उसका बाप यहां क्यों छोड़ गया है. वह तो सात बहनों के परिवार में घर का सारा काम काज और चख-चख से बच गयी थी और हवेली की चमक-दमक देखकर वह और भौर हो गयी थी. फिर जब उसे महल के अंतःपुर में एक दासी लिवा ले गयी तो वह वहां की सजधज और रानियों दासियों की भड़कीली पोशाक देख कर सोचने लगी थी—क्या उसे भी यही पोशाक मिल जायेगी.

अंततः वह अन्य रानियों और दासियों की पोशाक से भी चमकीली पोशाक में एक रात अंतःपुर के सबसे सजे हुए कमरे में धकेल दी गई गयी थी. महाराजा किशनसिंह उस रात जब कमरे में घुसे और तारा ने उन्हें देखा तो वह हतप्रभ रह गयी.

तारा को महाराजा पर दया आयी. उसका भय और आशंकायें न जाने कहां गयीं. उसने महाराजा को आगे बढ़कर सहारा दिया और पलंग पर बिठा दिया....

पचास-पचपन के बीच का नाटे कद का एक काला-सा आदमी सफेद धोती और गुलाबी मिर्जई पहने हुए उसकी तरफ बढ़ रहा था. तारा अब समझ गयी थी कि उसे महल में इस शानशौकत की क्या कीमत चुकानी पड़ेगी. वह सहम गयी और कमरे के कोने में जा खड़ी हुई. महाराजा के बार-बार बुलाने और अनुनय विनय करने पर भी वह उनके पास नहीं आयी थी. महाराजा जब कोने की और बढ़ रहे थे तो उनके पैर कांप रहे थे. उनके चेहरे पर क्रोध का भाव तनिक भी नहीं था, विवशता और परेशानी उनके चेहरे पर साफ झलक रही थी. तारा को महाराजा पर दया आयी. उसका भय और आशंकाएं न जाने कहां गयीं. उसने महाराजा को आगे बढ़कर सहारा दिया और पलंग पर बिठा दिया. महाराजा तारा के इस व्यवहार पर इतने मुग्ध हुए कि आधा समय उन्होंने तारा के साथ आमने सामने बैठकर बिताया और फिर न जाने कब वह निद्रामग्न हो गये. तारा कुछ देर तक सोते हुए महाराजा का काला और झुर्रियों भरा चेहरा देखती रही और फिर न जाने कब सो गयी. सबेरे खिड़की से झांकती हुई हल्की धूप ने जब तारा को जगाया तो महाराज किशन सिंह कमरे से जा चुके थे.

तारा अंतःपुर की रानियों और दासियों में से एक थी पर कोई नहीं जानता था महाराजा के साथ एक दिन बिताने पर भी तारा-तारा ही थी न वह रानी बनी और न दासी, महाराजा की हर रात अब तारा के कमरे में ही व्यतीत होती थी. वह कहीं किसी और कमरे मे जाते ही नहीं थे. महाराज अब बीमार रहने लगे थे. वह अब अपने कमरे में ही पड़े रहते थे. बारी-बारी से रानियां, दासियां उनका हाल पूछने जाती थीं. अंतःपुर से महल के उनके कमरे तक चमकीले भड़कीले कपड़ों में रानियां दासियां आती जाती रहती थीं. और अंतःपुर से महल तक का गलियारा दिन भर गुलजार रहता था. पर तारा को किसी ने महाराजा के कमरे तक जाते नहीं देखा था. वह अपने ही कमरे में रहती और आने जाने वाली दासियों से महाराजा का हाल पूछ लेती. महाराज किशन सिंह की हालत और खराब होती गयी. एक दिन समूचे महल में तहलका-सा मच गया. कुछ देर तक महल के कर्मचारी और अंतःपुर की रानियां, दासियां महाराजा के कमरे की ओर दौड़ भाग करती दिखायी पड़ीं और अचानक खबर मिली कि महाराज स्वर्ग सिधार गये. तारा भी कमरे से बाहर निकली और रानियों-दासियों की भीड़ में शामिल हो गयी.

किशन सिंह के बाद अंतःपुर रानियों-दासियों से सूना हो गया. तारा ने इस अंतःपुर में पांच वर्ष दुनिया की नजरों में महाराजा किशन सिंह की सर्वाधिक चहेती के रूप में बिताये. पर वह जानती है पहली रात को जब महाराज किशन सिंह वासना की भूख लेकर उस पर टूटनेवाले थे तब उसने क्या कह कर महाराजा किशन सिंह को ऐसा शांत किया कि महाराजा का अंतःपुर से मोह भंग हो गया. वह फिर तारा के सिवाय अंतःपुर के किसी और कमरे में नहीं देखे गये. महाराजा तारा के साथ बिताई गई उस रात के बाद से ही निढाल से हो गये थे. वह अंदर ही अंदर घुलने लगे थे. अधेड़ उम्र में अपने को युवा दिखाये रखने की चाह भी उनमें से चुक गयी थी—धीरे-धीरे महाराजा को अनेक बीमारियों ने आ दबाया था. इलाज के प्रति भी महाराजा उदासीन रहने लगे थे.

तारा यहां से नहीं गयी और जैसी वह अंतःपुर में उस रात महाराजा के उसके कमरे में प्रवेश करने से पहले थी वैसे ही आज भी है. वह अब तक भी पुरुष पाश से मुक्त थी. पर आज पचास की तारा साठ पैंसठ से भी ऊपर की लगती थी. तारा ने उस रात महाराजा से अपने शरीर को बचाकर वह घड़ी तो टोल दी पर दुनिया की नजरों में वह अंतःपुर की उन्हीं रानियों और दासियों में से थी जो महाराजा की वासना तृप्ति का साधन बनी थीं, लेकिन कौन जानता है तारा इस अंतःपुर की कुंआरी थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनर्तकी कलावती और कंकलि

कश्मीर के प्राचीन लेखकों में क्षेमेंद्र (जन्म : सन् 900) नामक कवि और नाटककार का एक अलग स्थान है. उनकी संगीत, नृत्य आदि ललित कलाओं में गहरी रुचि थी. स्वयं धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति होते हुए भी उन्होंने पाखंडी धार्मिक व्यक्तियों के कार्यकलापों के बारे में कई व्यंग्यपूर्ण रचनाएं लिखी थीं. समकालीन गुप्तचरों, विष कन्याओं, कुटनियों तथा लंपट लोगों का चित्रण करनेवाली उनकी एक रचना है—'समायामाजिका' प्रस्तुत है— सार—संक्षेप

कश्मीर राज्य के प्रावरपुरा नामक राज्य में कलावती नाम की एक नर्तकी रहती थी, जो अपने मोहक तथा उत्तेजक सौंदर्य और काम-कला में निपुणता के कारण, केवल 20 वर्ष की आयु में अपने राजा की प्रिय नर्तकी बनकर राज नर्तकी के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी थी.

परम सुंदरी थी कलावती. उसके बाहु-मृणाल में बंधा राजा जब भी उसे देखता, उसकी बड़ी-बड़ी आंखों के मृग-वन और नाभि-कमल की अथाह गहराइयों में खो जाता. पाकर भी वह उसे पाने में असमर्थ रहता. उसके अणु-अणु में रमण करके भी उसे कभी जान नहीं पाया.

राज्य का सारा राज-वैभव कलावती के भोग के लिये प्रस्तुत था. नहीं भोगती थी उसे, तो उसके पीछे घूमता रहता था कि मुझे भोगो. मगर काफी भोगने के बाद भोग से गहरी अरुचि हो गयी थी कलावती को. उसे तलाश रहती थी किसी की जो उसे धनी और सुरक्षित रख सके, उसे वह अनुभूति करा सके, जो भोग के अतिक्रमण से उपलब्ध होती है. भोग क्षणिक है, धन व सुरक्षा स्थायी है, ऐसी मान्यता हो चली थी उसकी.

... एक दिन उसने अपनी छत से एक अधेड़ गंजे, स्थूलकाय और अनाकर्षक नाई को देखा. न जाने क्या देखा उसने उस नाई में कि उसे बुला भेजा.

कंक नाम के इस नाई ने देखा कि सुंदरी कलावती म्लान-मुख लिये उदास बैठी है. उनके विषाद का कारण उसकी समझ में नहीं आया. क्या दूसरों पर अपने रूप का जादू करने वाली पर स्वयं किसी ने जादू कर, उसे अपने वश में कर लिया है. या.....?

कलावती ने अपनी मनोव्यथा का कारण स्वयं उसे बताया, "कंक! मेरी मां कर्मग्रीवा को एक कुटिल वैद्य ने दो दिन पूर्व विष देकर मार डाला. उसके बिना मैं एकदम बेसहारा हो गयी हूं. तुम्हें देखकर लगा कि शायद तुम मेरी सहायता कर सको. तुम मुझे निर्भरणीय और विश्वसनीय लगते हो. और मैं आदमियों को परखने में प्रायः गलती नहीं करती."

"मैं आपकी सहायता के लिये प्रस्तुत हूं, देवि! किंतु, एक प्रश्न है."

"बोलो."

"वह कुटिल वैद्य आपकी माता को विष देकर चला गया, और आपने उसके विरुद्ध राजा से कोई शिकायत नहीं की. आप तो राजनर्तकी हैं, और राजा आपका प्रिय करने के लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं."

कलावती कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोली, "मेरे और मेरी माता के इस राज्य में असंख्य शत्रु थे, और हैं. कुछ ने ईर्ष्यावश हमसे शत्रुता मोल ले रखी है, और कुछ ने अपने लोभ के कारण. यह वैद्य लोभी भी था, और कामुक भी, मेरा निःशुल्क उपयोग करना चाहता था, और ऊपर 'दक्षिणा' भी चाहता था. उसके इरादे जानकर मेरी माता ने उसकी शिकायत राजा से की थी, जिसने उसे आश्वासन दिया था कि वह वैद्य के विरुद्ध शीघ्र ही सख्त कार्यवाही करेगा. वैद्य के राजदरबार में अनेक गुप्तचर हैं. उनसे इस वैद्य को पता चल गया कि मेरी मां ने उसके विरुद्ध राजा से शिकायत की है. उसने एक शक्तिवर्धक औषधि देने के बहाने उसे विष दे दिया. अब जो होना था, सो तो हो गया. राजा तो वैद्य के विरुद्ध कोई न कोई कार्यवाही करेंगे ही. संभवतः उसे मृत्युदंड दें. लेकिन, उससे मेरी मां तो मुझे वापस नहीं मिल जायेगी, जो हर शत्रु, हर षड्यंत्र से मेरी रक्षा करती थीं. गुप्तचर्या में वे इतनी निपुण थीं कि असाध्य मामलों में स्वयं राजा भी उनसे परामर्श लेते थे. उनकी गुप्तचरी के कारण, एक बार राजा के प्राण तक बचे थे."

कंक ने कहा, "तो आप अपनी मां के स्थान पर उनके समान योग्य गुप्तचर चाहती हैं."

"हां, ऐसी महिला-गुप्तचर, जो चौबीस घंटे मेरे साथ रहकर. मेरी रक्षा कर सके. मरने-मारने में भी निपुण हो. मेरे व्यवसाय में पुरुष-गुप्तचर अधिक सहायक नहीं हो सकता."

"मेरे पास एक ऐसी महिला है. कंकलि है उसका नाम. आप जैसी धनी, सुसंस्कृत तथा प्रतिष्ठित राजनर्तकी की सेवा में आकर वह हर्षित तो होगी ही, गौरवान्वित भी अनुभव करेगी."

"उसके बारे में तुम कितना जानते हो?"

"मैं उसके बारे में सब कुछ जानता हूं, क्योंकि मैं उसे तब से जानता हूं, जब वह छोटी बच्ची थी. उसका जन्म परिहासपुर में एक पंथशालापाल के परिवार में हुआ था. दूसरों को अपनी लच्छेदार बातों में उलझाकर उनके भेद जान लेने और चोरी करने की आदतें उसे बचपन से ही थीं. वह पंथशाला में ठहरनेवाले यात्रियों का सामान चोरी कर लिया करती थी. और उनके गुप्त भेद जानकर उनमें झगड़ा कराने में भी उस्ताद थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी इन आदतों से तंग आकर उसके पिता ने उसे घर से निकाल दिया. उस समय उसकी आयु मात्र सात वर्ष थी. किसी ने उसे पकड़कर हाट में बालिका-दासी के रूप में बेच दिया. जिस व्यापारी ने उसे खरीदा था, उसे मद्यपान का शौक था. एक दिन जब वह नशे में धुत था, तब वह उसे और मदिरा पिलाकर, उसका धन और सामान लेकर भाग गयी. व्यापारी के धन से उसने एक दूसरे नगर शंकरपुर में जाकर एक घर खरीदा, और वहां सुख से रहने लगी. वहां उसने और धन कमाने के उद्देश्य से गणिका का धंधा आरंभ किया, जो अच्छा चल निकला था, लेकिन जब उसने अपने ग्राहकों की चोरी करना भी आरंभ किया, तो ठप्प होने लगा, इतना ही नहीं, इस कारण अधिकांश प्रेमी उसके शत्रु हो गये, और कुछ तो उसकी जान के प्यासे हो गये. तब उनसे निपटने के लिये चोरी की आदत छोड़ी और गुप्तचर्या का नया धंधा अपनाया, जो ज्यादा लाभदायक तो था ही, उसमें उसे अपना शरीर भी नहीं बेचना पड़ता था."

कलावती कंकलि की कहानी बड़े ध्यान से सुन रही थी. उसने कंक को कुछ क्षणों का विश्राम लेते देखकर पूछा, "अब उसने चोरी करना बिलकुल छोड़ दिया है न? मैं चोरों को बिलकुल पसंद नहीं करती. मुझे उनसे सख्त नफरत है."

"नहीं, वह आपके यहां चोरी बिल्कुल नहीं करेगी. मैं इसका आश्वासन देता हूं."

"उसके गुप्तचरी के अनुभवों के बारे में कुछ जानते हो?"

"हां, मैं उन्हीं अनुभवों पर आ रहा था. उसके इस शौक के बारे में जानकर प्रतापपुर नाम के एक छोटे से राज्य के राजा ने उसे अपने यहां नौकर रख लिया और उसे 'विषकन्या' के रूप में अपने विरोधियों के पास भेजने लगा. उनके इरादों के बारे में जानकर वह उनकी पूर्व-सूचना अपने मालिक को देने लगी. कुछ दिन तक उसने इस राजा की अच्छी सेवा की, और उसे उसके विरुद्ध रचे जा रहे अनेक षड्यंत्रों की पूर्व सूचना देकर, उसे आगाह किया, लेकिन यहां भी वह अपनी चालबाजी और धूर्तता से बाज न आयी."

"क्या किया उसने?" कलावती ने पूछा.

"उस राजा का एक रिश्तेदार भी उसकी भांति एक छोटे से राज्य का राजा था. अपने मालिक की ओर से उसकी जासूसी करते करते वह उसके रिश्तेदार से प्यार करने लगी, और उसे अपने मालिक की सुरक्षा व्यवस्था, सेना, अस्त्र-शस्त्र आदि के सब भेद बता दिये. उसका लाभ उठाकर, प्रतापपुर के राजा के रिश्तेदार ने उसकी हत्या कर दी, और स्वयं प्रतापपुर का राजा बन गया. मगर, राजा बनते ही उसने पहला काम यह किया कि कंकलि की, जिसने उसे प्रतापपुर का राज्य दिलवाया था, छुट्टी कर दी. और, इतना ही नहीं, उसने अपने सब पड़ोसी राज्यों के राजाओं को भी उससे दूर रहने के लिये आगाह कर दिया. उसका कहना था कि जिस प्रकार उसने अपने पहले मालिक-प्रतापपुर के राजा-के प्रति विश्वासघात किया, उसी प्रकार, एक दिन अपने नये मालिक या प्रेमी के प्रति भी विश्वासघात कर सकती है. उसका क्या भरोसा? इस प्रकार से सब राजा उससे सावधान हो गये."

"इस घटना का स्वयं उस पर कैसा प्रभाव हुआ?"

"काफी हितकारी प्रभाव हुआ. उसने जान लिया कि गुप्तचर को सफल होने के लिये प्रामाणिक तथा निष्ठावान होना चाहिये. अत्यधिक मांसाहार और मद्यपान से उसने अपना शरीर भी काफी भद्दा, स्थूल और आनकर्षक कर लिया था. स्थूलता के कारण वह पहले जैसी सक्रिय भी नहीं रही."

"फिर उसका गुजारा कैसे चलता है?"

"गुजारे लायक धन है उसके पास, जो उसने बड़े जतन से छिपा-बचाकर रखा है. उसकी आय का एक स्रोत और भी है. आजकल वह कृत्याश्रम के एक बौद्ध-विहार में भिक्षुणी के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है, मगर चोरी-छिपे गुप्तचर बनने के इच्छुक व्यक्तियों को गुप्तचर्या का प्रशिक्षण देती है. मैं स्वयं उसका प्रशिक्षार्थी रह चुका हूं, और विश्वास से कह सकता हूं कि गुप्तचर्या की शायद ही कोई ऐसी विद्या हो, जिसका ज्ञान उसे न हो."

"क्या तुम उसे मेरे लिये काम करने को राजी कर सकते हो? मैं चौबीसों घंटे उसे अपने साथ ही रखूंगी, उसकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति करूंगी, और जितना वेतन उसे अपेक्षित होगा, दूंगी."

"मेरा ख्याल है, मैं उसे राजी कर सकूंगा. लेकिन, इससे पहले, मुझे यह देखना होगा कि वह है कहां. पिछली बार मैंने उसे कृत्याश्रम के बौद्ध-विहार में एक भिक्षुणी के रूप में देखा था. लेकिन वह आज भी वहां होगी, यह कहना कठिन है, क्योंकि वह एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं टिकती."

"तुम ये स्वर्ण-मुद्राएं लो और फौरन उसकी खोज में निकल जाओ. मुझे पूरा विश्वास है कि तुम इन मुद्राओं को उसकी खोज में ही व्यय करोगे, और वापस लौटकर मुझे अवश्य सूचित करोगे कि तुम्हारे प्रयासों के क्या परिणाम निकले."

"आप विश्वास रखें देवि! मैं आपके साथ विश्वासघात नहीं करूंगा, और कंकलि को अपने साथ लेकर ही आपके पास वापस आऊंगा."

कंक के जाने के बाद, कलावती ने राजा के प्रमुख गुप्तचर को बुलाया. कलश नाम का यह प्रमुख गुप्तचर कलावती के गुप्त प्रेमियों में से था. इतना गुप्त था उनका प्रेम कि उन दोनों को छोड़कर किसी और को, राजा तक को भी—इस गुप्त प्रेम की जानकारी न थी. कलश कलावती के लिये सब गुप्त सूचनाएं लाने को तैयार रहता था. सिवाय राजमहल और राजदरबार की गुप्त सूचनाओं के. वहां उसके विरुद्ध क्या षड्यंत्र कौन बना रहा है, आदि आदि सूचनाएं एकत्र करने की जिम्मेवारी कलावती की मां की थी.

कलश को उसके योग्य स्नेह-सम्मान देने के पश्चात, कलावती ने इधर उधर की बातें करने के बाद उससे पूछा, "क्या आप कंकलि नाम की किसी महिला गुप्तचर से परिचित हैं? सुना है उसके कई वेश हैं, कई नाम हैं, कई पेशे हैं."

"क्या आपको उसके साथ कोई अप्रिय अनुभव हुआ है?" कलश ने कलावती की आंखों में आंखें डालते हुए पूछा.

"नहीं, लेकिन उसके बारे में काफी कहानियां सुनी हैं. उत्सुकतावश जानना चाहती थी कि उनमें कितना सच है, कितना झूठ?"

मदिरा-पात्र को धीरे-धीरे समाप्त करने के बाद, कलश ने कहना आरंभ किया, "कंकलि ने एक बार मुझसे कहा था—व्यक्ति यदि बुद्धिमान हो, तो न उसे अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता है, न अच्छे व्यक्तित्व की. बुद्धि मात्र से वह धन भी अर्जित कर सकता है और यश भी. उसने अपनी इस मान्यता को अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया है. वह एक अत्यंत साधारण महिला है. उसके पास न सौंदर्य है, न व्यक्तित्व, न अन्य कोई विशिष्ट गुण. किंतु अपनी असामान्य बुद्धि के बल पर उसने ऐसे सुखों को भोगा, जिसकी कामना नरेश भी करते रहते हैं, और ऐसी जोखिमभरी जिंदगी भी बितायी है, जिसकी कल्पना भी दुःसाहसिक मानी जायेगी. लोग उसे अपराधी मानते हैं, मगर मैं उसे कलाकार अपराधी कहता हूं, क्योंकि वह स्वलाभ के लिये अपराध नहीं करती, स्वांतः सुखाय अपराध करती है. मैंने विदेशों में काफी भ्रमण किया है, और तर्की, चीन, श्रीलंका आदि देशों के अलावा अपने देश के सुदूर प्रांतों बंगाल, विदर्भ, कर्नाटक आदि में उसकी ख्याति की कहानियां सुनी हैं."

"आपके वर्णन से लगता है कि वह एक विलक्षण महिला है."

"निःसंदेह."

"आजकल वह कहां है?"

"वह कब कहां होगी, यह उसके अलावा और कोई नहीं जानता. वैसे, मुझे अपने गुप्तचरों से उसके समाचार मिलते रहते हैं. सबसे ताजे समाचार के अनुसार वह विजयेश्वर नामक स्थान में थी. वहां उसने यह प्रचार किया था कि वह कश्मीर के एक मंत्री की पुत्री है. उसकी इस बात पर विश्वास कर एक धनी व्यापारी ने उसे अपनी वेतनभोगी परामर्शमंत्री नियुक्त किया, ताकि वह अपने 'पिता' मंत्री को इस बात पर राजी कर सके कि वह राज्य की ओर से उस व्यापारी का ज्यादा से ज्यादा माल, साधारण से अधिक मूल्य पर खरीदे. दाद देनी पड़ेगी उसकी हिम्मत और चतुराई की कि उसने उस मंत्री पर अपना प्रभाव जमा लिया और उसे धनी व्यापारी का काम करने के लिए रजामंद कर लिया. अब वह काफी सुख से है."

"मैं सोच रही थी कि वह मेरे पास आ जाये तो वह मुझे मेरे शत्रुओं और विरोधियों से, जिनकी संख्या कम नहीं है, बचा सकती है."

"ओह तो आप इसलिए कंकलि में इतनी रुचि ले रही थीं."

"मुझे तुम्हारी सच्ची राय की आवश्यकता है, कलश! मां के बाद मेरी कोई रक्षिका और संरक्षिका नहीं रही. क्या वह उनका स्थान ले सकेगी?"

कलश ने कुछ देर सोचकर कहा, "वह चाहे तो उनका स्थान ले सकती है, और अपने प्राण संकट में डालकर भी अपने प्राण बचाने में भी समर्थ है वह. लेकिन, उसके साथ दो समस्याएं हैं, पहली वह अत्यधिक चंचल है, और दूसरे वह अत्यधिक आवेगी भी है. यदि....."

"हां, यदि....."

"यदि कोई विश्वसनीय व्यक्ति आपकी ओर से उस पर लगातार जासूसी करके उसे उसकी इन दोनों कमजोरियों और प्रवृत्तियों से परे रख सके, तो वह आपके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है. यद्यपि मैं राजा का मुख्य गुप्तचर हूं, किंतु वह मेरा अतिक्रमण कर राजा की जासूसी करने और उनसे मनचाहा कार्य कराने में भी समर्थ है. आपके विरोधियों को भी वह अपनी बुद्धि के बल पर धूल चटा सकती है."

"मेरे पास एक आदमी है—कंक नाम का....."

"वह गंजा नाई? आप उसे कैसे जानती हैं? उसे कंकलि ने ही गुप्तचर्या में प्रशिक्षित किया था, और कुछ दिन तक उसने मेरे अधीन भी काम किया है. मेरा खयाल है वह कंकलि पर अच्छी जासूसी कर सकेगा."

"और, जरूरत पड़ने पर उस पर जासूसी करने के लिये आप तो हैं ही." कहकर कलावती कलश के और निकट खिसक आयी..... □

प्रस्तुति : हंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिया-तंत्र

एक अनजाने गांव में सूर्यास्त के समय देवशर्मा नाम का सन्यासी पहुंचा. वहां उसे एक जुलाहा अपनी पत्नी के साथ मद्यपान के लिए जाते हुए मिला. सन्यासी ने उनसे कहा, "हम तुम्हारे गांव में सूर्यास्त के समय पहुंचे अतिथि हैं. इस गांव में किसी को जानते भी नहीं हैं. तुम हमें एक रात अपने यहां आश्रय देकर आतिथ्य धर्म का पालन करो."

जुलाहे ने सन्यासी की बात सुनकर अपनी पत्नी से कहा, "तू सन्यासी को घर ले जा और उचित रीति से सत्कार कर. मैं तेरे लिए खूब मद्य लेकर आऊंगा."

जुलाहे की स्त्री को उस शाम अपने यार देवदत्त के पास जाना था. इसलिए वह सन्यासी को झटपट घर लायी और उसे एक खाट पर विश्राम करने को कहकर अच्छी तरह सजधज कर घर से निकल पड़ी. मगर ठीक तभी सामने से अपने पति को आता देखकर वह डरकर घर की ओर भागी. घर पहुंचते ही सबसे पहले श्रृंगार पोंछा फिर पहले पहने हुए वस्त्र ही पहन लिये.

जुलाहे ने अपनी स्त्री को सज-धज कर बाहर जाते हुए देख लिया था. घर में घुसते ही जुलाहे ने स्त्री से पूछा, "कलंकनी. तू सजधज कर किस के पास जा रही थी." उसने सकपकाते हुए कहा, "मैं तेरे पास से आने के बाद घर पर ही थी, तू मद्य से मतवाला हो न जाने अंटशंट क्या बक रहा है."

पत्नी की जल्दी में हुई उल्टी-पुल्टी वेशभूषा देखकर और झूठी बातें सुनकर जुलाहे का क्रोध और बढ़ गया. और उसने अपनी पत्नी को डंडे से मार-मारकर अधमरा कर दिया. जब इस पर भी उसका क्रोध शांत नहीं हुआ तो उसने पत्नी को आंगन के एक खंभे के साथ बांध दिया और खुद भी अत्यधिक नशे में होने के कारण जल्दी ही सो गया.

जुलाहे को सोता जानकर उसकी स्त्री की सखी नाइन आयी और बोली, "देवदत्त तुम्हारा इंतजार कर रहा है, अभी तक तुम उससे मिलने क्यों नहीं गयीं?"

उसने कहा, "मैं उसके पास नहीं जा सकती. मुझे दुष्ट पति ने बहुत मारा है. मेरा सारा शरीर मार से दुख रहा है. मैं इस दशा में वहां कैसे जा सकती हूं. तू उससे कह दे आज मिलना नहीं हो सकेगा. दूसरे यह भी पास ही में सो रहा है. अभी सोकर उठेगा तो मुझे बंधा न पाकर बाद में और मारेगा."

तब नाइन ने कहा, "यह नशे में चूर है, सुबह होने से पहले नहीं उठ पायेगा. तब तक तो तू देवदत्त से मिलकर आ भी जायेगी. इसलिए मैं तुझे छुड़ा देती हूं. और तेरी जगह मैं बंध जाती हूं. अगर इस बीच यह उठ भी गया तो भी इसे पता नहीं चलेगा कि तू कहीं गयी है. तू जल्दी से देवदत्त की इच्छा पूरी कर के आ."

इसके बाद नाइन की ने उसे बंधन रहित किया और उसके स्थान पर स्वयं बंध गयी. उसके जाने के थोड़ी ही देर बाद जुलाहा उठा, उसका नशा और क्रोध कुछ

कम हो गया था. वह खंभे पर बंधी नाइन के सामने जाकर बोला, "तू कसम खा कि अब कभी घर से बाहर नहीं निकलेगी. कभी उल्टा न बोलेगी तो मैं तुझे खोल देता हूं."

नाइन ने सोचा कि अगर मैं कुछ बोली तो यह आवाज से जान जायेगा कि मैं कोई और हूं. इसलिए वह जवाब में कुछ नहीं बोली. जुलाहा बार-बार उससे यही पूछता रहा. जब नाइन ने कई बार पूछने पर भी जवाब नहीं दिया तब जुलाहे का क्रोध और बढ़ गया और उसने पास ही पड़े चाकू से उस की नाक काट दी. फिर बोला, "तू क्या सोचती है मैं तेरी खुशामद ही करता रहूंगा. तू अब खंभे से ही बंधी रह." और फिर से सो गया.

जुलाहे की स्त्री देवदत्त से मिलकर वापस आयी तो नाइन से बोली, "तू तीकठक तो है न. मेरे जाने के बाद ये उठा तो नहीं?"

नाइन ने कहा, "नाक के अतिरिक्त सारे अंग सही हैं. तेरे पति ने मेरी नाक काट दी है. मैं स्वरभेद के कारण कुछ बोल तक नहीं सकी." फिर सखी को पिछली सारी कहानी सुनाकर बोली, "अब तू मुझे जल्दी से खोल जिसमें मैं अपने घर जाऊं."

थोड़ी देर बाद जुलाहा फिर उठा और पत्नी से बोला, "तू अब भी नहीं बोलेगी तो मैं तेरे कान काट लूंगा!" जुलाहे के इरादे जान उसकी स्त्री प्रलाप करते हुए बोली, "हे भगवान, ये मुझ जैसी सती-सावित्री स्त्री को बेमतलब डांट और मार रहा है. यदि मेरा सतीत्व अखंडित है और मैंने मन से कभी दूसरे पुरुष की इच्छा नहीं की है तो मेरी नाक पहले जैसी कर दे." थोड़ी देर चुप्पी साधकर उसने प्रसन्न भाव से अपने पति से कहा, "देख, देख, मेरी नाक फिर जस की तस हो गयी है. ये सब मेरे सतीत्व के कारण ही हो सका."

जुलाहे ने मशाल की रोशनी में अपनी स्त्री को देखा तो उसकी नाक को पहले जैसी ही पाया, जबकि जमीन पर नाक का एक कटा हुआ टुकड़ा पड़ा था और जमीन खून से भी रंगी हुई थी. अपनी स्त्री के सतीत्व को सच्चा जान कर जुलाहा उससे क्षमा मांगने लगा. □

पंचतंत्र से.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्धावत

अजय श्रीवास्तव

शाम के झुटपुटे में, अमराई के पास झाड़ियों में सरसराहट सुनकर, नशे के बावजूद लीडर के पूरे बदन में सिहरन-सी दौड़ गयी. फिर भी नशे की झोंक में उनके मुंह से निकल ही गया, "कौन है बे...?"

आवाज के साथ ही झाड़ियों में से कोई निकलकर भागा, खरगोश की तरह उछलकर मरगिल्ला-सा लड़का. न जाने कौन, लेकिन उसी झोंक में लीडर ने फिर भी पहचान लिया कि किरपलवा है! किरपलवा, यानी रघ्घू चौधरी का लड़का, यानी उनके खास प्रतिद्वंदी रघुनाथ चौधरी का सपूत. होगा कोई बीसेक साल का. लेकिन यहां क्या कर रहा था.... लीडर ने सोचा.

मार्च का आखिर है. गेहूं की कटाई के दिन हैं. खलिहानों में गेहूं की पूलियों के ढेर लगने लगे हैं. कहीं-कहीं ढौनी शुरू हो गयी थी. हवा में भी भूसे की अजीब-सी गंध मिली रहती है. चूंकि अब भी शाम जल्दी ढल जाती है, अंधेरा जल्दी घिर आता है, लिहाजा शाम के वक्त खेतों की ओर लोग कम ही नजर आते हैं. हां, चमार टोले की औरतें जरूर दिन भर खेतों में घास खोदती दिख जाती हैं. लेकिन, वे भी शाम ढलने से पहले अपने-अपने घरों को लौट आती हैं या लौट आने की कोशिश करती हैं.

हवा में अब वह जाड़ोंवाली नमी नहीं रही, लेकिन मस्ती से बहती हवा ने लीडर को एक बार फिर सिहरा दिया है, 'कहीं किरपलवा भी तो नहीं!'

अचानक कोटरों में धंसी उनकी आंखें सड़कवाले खंभे के बल्ब की तरह दिप्-से चमक उठीं. फिर-खुद-ब-खुद बुझ भी गयीं. उन्हें लगा कि एक सुनहरी मौका उनके हाथ से निकला जा रहा है, जब वह रघ्घू चौधरी को गांव में नीचा दिखा सकते थे. मार की कितनी ही चोटें उन्हें याद हो आयीं, जो उनके खयाल से रघ्घू चौधरी के इशारे पर ही उन्हें पड़ी थी. नशे के बावजूद उन्हें अपनी चोटें दर्द करती-सी लगीं और अनजाने ही उनका दायां हाथ बायें कंधे को सहलाने लगा.

सारा गांव जानता है, किरपलवा के बाप रघुनाथ चौधरी से लीडर की पुरानी अदावत है. रघुनाथ चौधरी उनके बाप के चचेरे भाई, यानी लीडर के चाचा हैं. लीडर के मां-बाप उनके छुटपन में ही चल बसे थे. उन्हें और उनके छोटे भाई को दादी ने पाला था. अपने बाबा को लीडर ने कभी नहीं देखा. दादी बताती थीं, पूरे गांव में उनका हल सबसे ऊंचा था और जब लीडर के बाप मरे थे, तब भी बहुत जमीन थी. लेकिन, सब तो रघुनाथ ने हथिया ली, बचा क्या!

यों गांव में लीडर के बहुत-से चचा-ताऊ हैं, लेकिन लीडर को कोई घास नहीं डालता. है भी क्या उनके पास जो कोई पूछे उन्हें! ले-देकर एक टूटा-फूटा दो कमरों का घर है. किसी जमाने में पक्का रहा होगा. पक्के से मतलब गारे से चिनी गयी लाल ईंटोंवाली दीवार और पटियन की छत से है, जो जमाने से झड़ते-झड़ते दम तोड़ गयी हैं. जगह-जगह से ईंटें खिसक आयी हैं. कमरों के कच्चे फर्श पर अर्सा हुआ भूसा, गोबर और मिट्टी की लिपाई नहीं हुई. कमरों के पीछे आंगन में अब भी दादी के जमाने की मिट्टी की आधी दीवार बची हुई है, जिस पर फूस का छप्पर डालकर दादी ने रसोई बनायी थी. मिट्टी का चूल्हा तो जाने कब का बह-खप गया. लेकिन वहां कमरे की दीवार अब भी काली नजर आती है.

अब तो लीडर ने घर जाना भी छोड़ दिया है. यहीं सड़क पर छुटकू की चाय की दूकान में रात गुजारते हैं. आज भी लीडर पूरे गांव में आवारागर्दी करते घूमते हैं. छुटकू तो पिटते-पिटते कुछ काम-धंधा करने लगा था, लेकिन लीडर बाज नहीं आया! धीरे-धीरे उन्होंने शराब पीना भी शुरू कर दिया. और आज हालत यह है कि वह बिना शराब के रह नहीं सकते. अब उन्हें खुद भी याद नहीं कि कब और कैसे उन्होंने शराब पीनी शुरू की थी.

नशे की झोंक में लीडर कब छुटकू की दूकान में आ गये उन्हें खयाल ही न रहा. छुटकू कब का दूकान बढ़ाकर जा चुका है. बीड़ी सुलगाने के लिए जैसे ही उन्होंने दियासलाई जलायी, उनकी निगाह किसी अर्द्धनग्न सिने तारिका की फोटोवाले कैलेंडर पर पड़ी. लीडर ने एक गहरी सांस ली और उंगली जलने के एहसास से ही उनकी उंगलियों ने तीली छोड़ दी.

दूकान में बिजली नहीं है. घुप्प अंधेरे में बार-बार लीडर के बीड़ी का कश खींचने से हल्की रोशनी होती है. फिर धीरे-धीरे बीड़ी का लाल सिरा मध्यम पड़ जाता है. लीडर एक और तीली जलाकर तारिका की तस्वीर बड़े गौर से देखते हैं. यों झरने के पास गीले कपड़े में लिपटी पत्थर पर बैठी हुई तारिका की, धूल-मिट्टी से चीकट, इस तस्वीर को लीडर ने सैंकड़ों बार देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा. लेकिन, इस तस्वीर ने आज उन्हें पहली बार आकर्षित किया है. वह तस्वीर को एक बार फिर देखना चाहते हैं लेकिन उनकी दियासलाई में तीलियां कम रह गयी हैं. उनका नशा कम हो चला है और वह पेशाब करने के लिए सड़क पर निकल आते हैं.

दरअसल, सिने तारिका वाले कैलेंडर की तस्वीर उन्हें भैरव मोची की लड़की परबतिया जैसी लगी. बहुत दिनों से निगाह है लीडर की परबतिया पर. देखने में सुंदर नहीं है, लेकिन बदन की गठन ऐसी है कि लीडर जैसे सैकड़ों मरते हैं उस पर. अचानक उनकी आंखें एक बार फिर चमक उठीं और उन्हें लगा कि उन्होंने बाजी मार ली. अनायास कितने ही बीते दिन उन्हें याद हो आये, 'अब शायद कई दिनों तक पैसे की तंगी नहीं रहेगी. लेकिन, अगर बिरादरी पर कोई बात....' नहीं, अब वह ज्यादा नहीं सोचेंगे. बहुत सोचने से माथा खराब होता है उनका.

परबतिया के खयाल ने लीडर को बुरी तरह परेशान कर दिया है. कई-कई जोड़तोड़ के बाद भी उसे पा नहीं सके थे. कई मर्तबा हाथ-वाथ पकड़ने की भी कोशिश की, लेकिन परबतिया भी दबंग है. फिर, अब पहलेवाली स्थिति भी नहीं रही कि कुछ ज्यादा जोर-जबर्दस्ती कर पाते. अगर ऐसा करते तो ख्वामखाह झगड़ा-फसाद होता और पूरा गांव भी साथ नहीं आता.

चमारों की इस स्थिति पर अब लीडर अक्सर मन मसोसकर रह जाते हैं. वरना वह भी दिन थे जब लीडर जैसों के सामने चमारों की चूं-चपड़ करने की भी हिम्मत न थी. अब तो इनके पर निकल आये हैं. बात-बात में पट्ठे गज भर की जबान चलाते हैं और लाठी तान लेते हैं.

लेकिन लीडर चमारों से निपटना जानते हैं. सुबह जब वह छुटकू की दूकान पर चाय के साथ अखबार पढ़ने बैठे, तो उन्होंने बलात्कार की खबरें दो-दो बार पढ़ीं. लेकिन अखबार की इस

नये हस्ताक्षर

आम खबर में उन्हें कोई खास बात नजर नहीं आयी. फिर भी, दुकान पर खबर सुननेवाले दूसरे गांववालों को लीडर ने अखबार के अलावा भी एक खबर सुनायी.

आनन-फानन में यह बात पूरे गांव में फैल गयी कि कल शाम किरपलवा ने परबतिया के साथ गलत काम किया. चमरौटे में बुजुर्गों के दिल धक् से रह गये. नौजवानों का खून खौल उठा और वे लाठियां तलाश करने लगे. भैरव का तो जैसे दम ही निकल गया, परबतिया भी ठगी-सी रह गयी, 'कल शाम तो मैं घर ही थी, गलत काम कब हो गया!'

दूसरी ओर रघुनाथ चौधरी मूंछों में मुस्कराये, 'हूं... लड़का जवान हो रहा है.' लेकिन फिर चौंके, 'कल शाम तो किरपलवा शहर गया था. फिर कब उसने गलत काम किया!' वह समझ गये कि यह किसकी शरारत है. उनका मन लीडर को जूता लगाने का करने लगा. लेकिन फिर भी, पूरे गांव में यह चर्चा आम रही. बहुत देर तक अंधे के कुएं के पास झाड़ियों में छिपे लीडर ने कई बीड़ियां एक साथ फूंकने के बाद न्याय का पक्ष चुना और चमरौटे में पहुंच गये. रह-रहकर उन्हें अपनी पिटाई की आशंका घेर लेती रही. लेकिन, कुछ कानूनी बातों की उलट-फेर से उन्होंने नौजवानों को शांत किया और आश्वासन दिया, "बेफिकर रहो, मैं तुम्हारे साथ हूं. रघ्घू चौधरी से अदावत है तो क्या मैं इसीलिए न्याय का रास्ता छोड दूंगा!" फिर थोड़ी देर तक टोले के बुजुर्गों से गुफ्तगूं करते रहे.

तो भी, लीडर की कोशिशों के बावजूद कई दिनों तक पुलिस ने गांव की ओर रुख नहीं किया. पुराना यार है दारोगा लीडर का. लीडर का सारा प्लान सुनकर दारोगा ने खीसें निपोड़ दीं, "क्यों मेरी वर्दी उतरवाये है! रघुनाथ चौधरी पर हाथ डालना खेल है क्या?" लेकिन लीडर की पुरानी सेवाओं को याद कर परबतिया को हासिल करने के लिए वह तैयार हो गया और प्लान तय करके उसने लीडर को चमरौटे में जायजा लेने के लिए भेजा. लिहाजा, साइकिल से उतरते हुए व्यस्त-सा बनकर चमरौटे के बुजुर्ग प्रधान कलट्टर से लीडर बोले, "दद्दा, रपट किये तो कित्ते दिन हो गये लेकिन पुलिस भी हम गरीबों की नहीं सुनती. अब देखो न, वह जानती है कि हमारे पास पैसा नहीं है, लेकिन पुलिस केस हाथ में तभी लेगी जब उसे पैसा दिया जायेगा."

लीडर की बात खत्म होते-होते कुछ और भी जुट आये. नौजवान लीडर की बात सुनकर एक बार फिर भड़क उठे. पुलिस का रवैया सब जानते हैं. उसके किये-धिये कुछ नहीं होने वाला. जो करना होगा खुद ही करना होगा, वरना इस तरह की वारदात बढ़ेंगी. आज परबतिया कल कोई और, आखिर कब तक चलेगा ऐसा!

अंततः चमरौटे के नौजवानों का सब्र जवाब दे गया. रोष में भरे नौजवानों में से किसी ने कहा, "जाओ चौधरी! हम खुद निपट लेंगें. हमें किसी की मदद नहीं चाहिए."

नौजवानों का आक्रोश देखकर लीडर और प्रधान कलट्टर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों समान रूप से आशंकित हुए. दोनों को ही लगा अब ये लौंडे न जाने क्या गुल खिलायेंगे. जहां बूढ़ा प्रधान टोले की बर्बादी के प्रति आशंकित था, वहीं लीडर को गांव में पूरा समर्थन न मिलने की वजह से अपने अनिष्ट की आशंका सताने लगी.

बूढ़े की आंखों में कितने ही दृश्य साकार हो उठे. वह उन दृश्यों की पुनरावृत्ति नहीं चाहता, लिहाजा अब बूढ़े प्रधान का विचार है कि मामला गांव के ही स्तर पर रफा-दफा कर दिया जाय. न मालूम रघुनाथ चौधरी ने पुलिस को कितना खिलाया-पिलाया है! टोलेवाले कहां से लायेंगे उतना! हर घर की तस्वीर बूढ़े प्रधान की आंखों में तैर-गूदड़ियों के बिछावन, झोल खाती चारपाइयां, टूटे-फूटे छप्पर, कांसे-पीतल और मिट्टी के बर्तन, कुछ ढोर-डंगर और, और भी कितना कुछ.

लेकिन, वृद्ध प्रधान के विचार से न लीडर सहमत हुए और न चमरौटे के नौजवान. वे एक बार फिर कसमसाये थे, लेकिन आगवाली बात ने उन्हें खाली कसमसाने भर दिया. जबकि लीडर को परबतिया के हाथ से निकल जाने की आशंका है. अपनी इस आशंका को छिपाते हुए लीडर ने चमरौटे को आश्वस्त किया, "नहीं दद्दा, मेरे होते क्यों डरते हो! अगर आज वह मामला यहीं रुक गया तो फिर समझो यह रोज का किस्सा हो जायेगा."

फिर सुझाव भी दे डाला, "ऐसा करो, हर घर से रुपिया-दो रुपिया चंदा करके मुझे दे दो, मैं सारी बात संभाल लूंगा."

जब से बात फैली है, परबतिया तभी से रो-रोकर आंखें सुजा रही है. मां नहीं है उसकी और भैरव की समझ में नहीं आ रहा कि वह कैसे उसे समझाये! वह जानता है अपनी बिटिया को, अगर उसके साथ ऐसा कुछ होता तो अब तक परान दे देती. लेकिन, गांव-जवार के लोगों को कौन समझाये!

आखिरी जूते को फ्रेम पर चढ़ाकर भैरव उठा तो शाम गहरा चली थी. घर के सामनेवाले जिस नीम के नीचे वह जूते गांठा करता है, उस पर चिड़ियां जाने कब से चहचहा रही हैं. रोज तो इनकी चहचहाहट सुनते ही वह धंधा समेट लेता है, लेकिन आज लगता है काफी देर हो गयी.

भैरव के आंगन में कदम रखते ही गाय और बछड़े ने एक साथ बा...बा... की गुहार लगायी. उसने देखा आज फिर किसी ने उनके सानी-पानी की फिक्र नहीं की थी. कोठरियों में दिया-बत्ती नहीं किया गया था और चूल्हा भी आज फिर ठंडा था. इसका मतलब है आज भी रोटी-पानी उसी को करना होगा.

देख आया है भैरव, परबतिया जाने कब रोते-रोते सो गयी थी. उसको जगाना ठीक न समझकर वह खुद रस्सी-बाल्टी लेकर कुएं की ओर चल दिया.

परबतिया को समझाने के लिए शब्दों के अभाव से भैरव रोने-रोने को हो आता है. लेकिन, हर बार रेत का सूखा सागर उसकी आंखों में तैर जाता है. जाने कब मर गया आंख का पानी! परबतिया की स्थिति उसके लिए असहय हो चली है. कुएं की जगत पर खड़े-खड़े बार-बार उसका मन कुएं में छलांग लगाने को करता है. अचानक कुत्तों से, जो लड़ते या खेलते कुएं तक चले आये हैं, चौंककर भैरव ने जल्दी-जल्दी हाथ चलाये और पानी भरकर घर की ओर चला.

लीडर की भी तो यही इच्छा थी कि एक बार परबतिया चौकी तक आ जाय तो दारोगा जी के साथ वह भी.... केस बहुत गंभीर है..... पूरी तहकीकात खुद दारोगा साहब को करनी होगी. परबतिया का बयान दर्ज करना होगा. बयान चौकी में ही दर्ज किया जायेगा. परबतिया को चौकी में आना होगा. अकेली.... और दारोगा साहब का प्लान तय हो गया. नहीं आयेगी तो पूरे टोले में आग लगा दी जायेगी, अखबार की खबर की तरह! और, उन्होंने अखबार की उस खबर को काले बाल प्वाइंट से घेर दिया.

"परबतिया कहां है?" नीम तले बैठे भैरव मोची से दारोगा ने कड़कदार आवाज में सवाल दागा.

भैरव मोची का दिल बैठने लगा. लेकिन, तब तक पूरा चमारटोला नीम तले इकट्ठा हो चुका था. लीडर की दगाबाजी से लोग पहले ही गुस्साये हुए हैं, ऊपर से दारोगा का आना उन्हें आशंकित कर गया है. और जब दारोगा ने कहा, "परबतिया के आज शाम चौकी में आकर बयान दर्ज कराना होगा," तो टोलेवालों को कोई शकशुबहा नहीं रह गया.

"क्यों साहब, बयान क्या यहीं दर्ज नहीं किया जा सकता?" भीड़ में से किसी की आवाज सुनकर दारोगा साहब चौंके, "ओह! तो कानून बघारना आ गया है मादर....." नौजवानों के तमतमाये चेहरों को देखकर घाघ दारोगा समझ गया कि लौंडे टोले की इज्जत के लिए मर मिटेंगे.

उसने फौरन पैंतरा बदला, "अरे केस गंभीर है. बयान तो दर्ज करना ही होगा."

"तो यहीं क्यों नहीं दर्ज कर लेते! और जो लीडर ने रपट लिखायी थी, उसकी भी नकल दे दो दारोगा साहब!"

दारोगा साहब गुस्सा काबू न कर सके और बिफर पड़े, "अबे यह कौन साला पुलिस के मामले में टांग अड़ा रहा है! तुम्हें क्या मालूम कि जब तक बयान दर्ज नहीं होता, कोई मामला नहीं बनता. और जब मामला नहीं बनता तो रपट नहीं लिखी जाती."

"तो दारोगा साहब! हमें तो कोई रपट नहीं लिखानी. न बयान दर्ज कराना है, न मामला बनाना है. फिर, बिना महिला पुलिस के परबतिया को हम चौकी भी नहीं भेज सकते और शाम के वक्त तो कतई नहीं."

दारोगा समझ गया कि अब ये लोग जाहिल नहीं रहे. फिर एक साथ इतने लोग, उसका साहस वैसे ही जवाब दे गया. अकेला भैरव होता हो अब तक डांट-डपटकर मतलब निकाल चुका होता. लेकिन, अकेला चना भला कैसे भाड़ फोड़ता! लिहाजा, बहस को आगे न बढ़ाना ही बेहतर समझकर लीडर को कोसता हुआ दारोगा वापस चल दिया. जाते-जाते धमकी दे गया, "अब के कोई फसाद किया तो सबको गिरफ्तार कर लूंगा." पीछे से कोई फिक्क् से हंस दिया. दारोगा के जबड़े भिंच गये, लेकिन खून का घूंट पीकर चला गया.

धीरे-धीरे भीड़ छंट गयी. बूढ़ा प्रधान कलट्टर कुछ देर भैरव के पास बैठा रहा. फिर वह भी चला गया. भैरव भी घर के अंदर गया. अंदर जाते ही दिल धक्क-से रह गया. कोठरियों के दरवाजे खुले हुए हैं. परबतिया का कहीं अता-पता नहीं है. रस्सी बाल्टी भी अपनी जगह नहीं है, 'कहीं ऐसा तो नहीं कि वह कुएं में छलांग लगा दे!' आशंकित-सा भैरव घर के बाहर निकला ही था कि परबतिया पानी भरकर आती दिखायी पड़ी. उसकी जान में जान आयी और वह दुबारा नीम की छांव की ओर मुड़ गया रह-रहकर उसे दारोगा की धमकी याद आ रही है. □

बी-125, सादतपुर, दिल्ली-110094

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत-कन्या

सुभद्रा सिंह

इंद्रलोक की अप्सरा के समान अपूर्व सौंदर्य से दूसरों को सम्मोहित कर दे ऐसी सुंदरी को देखकर भला कौन अनुमान लगा सकता था कि इस कोमलांगी का हृदय इस्पात के समान कठोर होगा?

अमरीकी माता पिता के घर में एक सुंदर कन्या ने जन्म लिया. नाम रखा गया एमी एलिजाबेथ थोर्प. एमी का असली नाम अधिक दिनों तक नहीं रहा. समय के साथ-साथ एमी विस्मृति के गर्भ में चली गयी और निखरती गयी सिथिया. अभूतपूर्व सौंदर्य की स्वामिनी ही नहीं थी वह. अपार प्रतिभा, योग्यता और दुःसाहस भी सिथिया में कूट-कूटकर भरे थे.

ब्रिटिश राजनीतिक आर्थर पैक से 1930 में सिथिया (तब एमी) ने विवाह रचाया. किंतु शीघ्र ही पता चल गया कि दोनों के रास्ते अलग-अलग दिशाओं को जाते हैं. यह खुले दिल की उच्चाकांक्षी युवती वह संकीर्ण और शुश्क स्वभाव का बनावटी व्यवहार वाला. फिर भी उसने अपने पति से तलाक नहीं मांगा. एक राजनयिक की पत्नी के रूप में सिथिया को अनेकानेक देशों की यात्रा का अवसर मिला. धीरे-धीरे वह राजनीति के गुर सीखने लगी. इसी प्रकार की एक यात्रा में उसे अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने का अवसर भी प्राप्त हुआ. ब्रिटिश गुप्तचर विभाग ने पोलैंड प्रवास के दौरान उसे ब्रिटेन के लिये जासूसी करने का आमंत्रण दिया. एमी तो ऐसे सुनहरे अवसर की तलाश में ही था. यहीं उसका नामकरण किया गया 'सिथिया'.

पोलैंड निवास के दौरान ब्रिटिश गुप्तचर विभाग द्वारा नियुक्त होने के बाद अपनी अदाओं के तीरों से विदेश मंत्रालय के एक उच्च पदाधिकारी को घायल करने में सिथिया सफल हो गयी और चेकोस्लोवाकिया तथा जर्मनी आदि के बारे में उसने अनेक महत्वपूर्ण राजनैनिक सूचनाएं ब्रिटेन को दीं. उन्हीं दिनों ब्रिटिश गुप्तचर विभाग को इस बात की भनक लगी कि पोलैंड के इंजीनियर किसी रहस्यमय कोड की भाषावाली मशीन बनाने का प्रयास कर रहे हैं जिसका प्रयोग जर्मनी के गुप्त कार्यों के लिये किया जायेगा. अगर इस कोड का भेद किसी प्रकार मिल जाय तो हिटलर के बढ़ते कदम को रोकने में मदद मिलेगी. इस कोड का पता लगाने का भार सिथिया को सौंपा गया. धीरे-धीरे उसने अपने रूप का जाल फैलाना शुरू किया. वह महत्वपूर्ण व्यक्तियों को अपने यहां आमंत्रित करती, उनके यहां दावतों में दिल खोलकर हिस्सा लेती. कभी-कभी बिना बुलाये ही किसी बहाने किसी से मिलने पहुंच जाती. जब देखती कि शिकार उसके शिकंजे में पूरी तरह फंस गया है तो उससे धीरे-धीरे सूचनाएं निकालती रहती और अपने काम की सूचनाएं अपने साथियों को पहुंचा देती. अंत में उसने पोलिश कोड मशीन के रहस्य का पता लगा ही लिया. फिर तो उसका काम ही हो गया अलग-अलग देशों की गुप्त संकेत भाषा का पता लगाना और उसे अपने साथियों तक पहुंचा देना.

ब्रिटिश एजेंटों में उसका नाम पोलैंड की कोड मशीन का भंडाफोड करने के कारण अब सम्मान से लिया जाने लगा. इसी कारनामे के कारण 1941 में ब्रिटिश सिक्यूरिटी कोआर्डीनेशन के मुखिया विलियम स्टीफेसन को जब इटली और फ्रेंच दूतावासों के अंदर जासूसी करने के लिये एजेंटों की आवश्यकता हुई तो उसने सिथिया को ही चुना. वाशिंगटन में उसने अपना डेरा एक आलीशान मकान में जमाया. ये 1941 के हलचल भरे दिन थे. इधर हिटलर का आतंक सिर पर मंडरा रहा था. उधर मुसोलिनी अपने पैर पसारने की जोड़-तोड़ में था. वाशिंगटन में सिथिया को 'शीघ्र मोहिनी' के रूप में ख्याति मिल गयी. वह भी महत्वपूर्ण

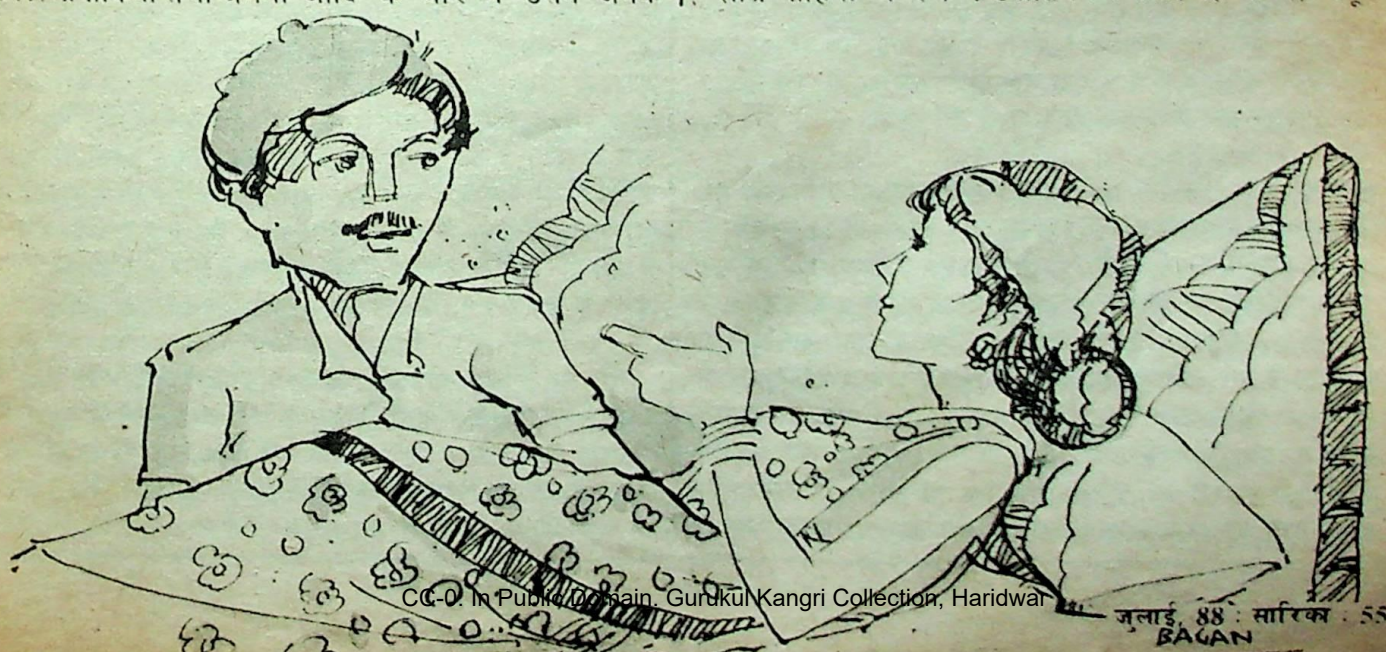

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों से घुल-मिल गयी. सभी उसके सामीप्य के लिये एक दूसरे से होड़ लेने लगे. इन्हीं में था, मुसोलिनी का नौसैनिक 'अटैची' अल्बर्टो लाइस. अपने मतलब का जान, सिथिया ने उसको मुहब्बत का चारा फेंका. जब उसने देखा कि लाइस उसके प्रेम में डूब चुका है, एक दिन वह उसके सामने जा खड़ी हुई.

"लाइस मुझे तुमसे बहुत जरूरी बात करनी है."

लाइस बेचारा कुछ समझा नहीं. उसने सोचा मेरी प्रेयसी आज कोई प्यार भरी मनुहार करने आयी है. उसने हाथ बढ़ाकर सिथिया को अपनी ओर खींचा. "मेरी प्यारी सिथिया! जरा बताओ तो तुम्हें चाहिए क्या? तुम्हारे लिये तो मेरी जान भी हाजिर है."

सिथिया ने उसका हाथ धीरे से अलग हटाया और कहा, "क्या तुम मुझे इतना प्यार करते हो कि अपनी जान भी दे सकते हो?"

"हां-हां. इसमें भी कोई संदेह है. जरा एक बार कहकर तो देखो."

"मुझे तुम्हारी जान नहीं चाहिए. किंतु जो कुछ मैं कह रही हूं वह ध्यान से सुनो. मैं मित्र राष्ट्रों की गुप्तचर हूं और इटली के विरुद्ध उनकी सहायता करने में तुम्हारी मदद चाहती हूं. तुम्हें अपना भेद इसलिये बता रही हूं कि मुझे तुमसे प्रेम है. बोलो मेरी मदद करोगे?" सिथिया ने लाइस के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा.

लाइस को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था, कि भोली-भाली-सी लगनेवाली उसकी प्रेयसी मित्र राष्ट्रों की जासूस है. किंतु सिथिया का जादू उसके सिर पर पूरी तरह चढ़ चुका था. सिथिया के हाथों में हाथ दिये उसने मोहाच्छादित अवस्था में पूछा, "मुझसे तुम क्या चाहती हो?"

"इटली द्वारा प्रयोग में लाये जानेवाले कोड संकेतों की जानकारी चाहिए मुझे." सिथिया ने बेखौफ हो बांकी मुसकान के साथ जवाब दिया.

मंत्र-विद्ध की भांति लाइस ने समस्त गुप्त संकेतों को लाकर सिथिया के नाजुक हाथों में धर दिया. एक पल के लिये भी उसके ध्यान में न आया कि उस जैसा उच्च अधिकारी कैसा राजद्रोह करने जा रहा है.

ये गुप्त संकेत जब सिथिया नें जाकर मित्र राष्ट्रों को सौंपे तो सभी हक्के बक्के रह गये. सिथिया ने दुश्कर लगने वाले काम को किस सफाई से अंजाम दिया था. अब सिथिया को लाइस से कोई मतलब नहीं रह गया था. उसने ए.बी.आई. को लाइस की गतिविधियों के बारे में सूचना भेज दी जिसने इटली के दूतावास को मजबूर कर दिया कि वह लाइस को इटली वापस भेज दे.

इटली में जब सिथिया अपनी कारगुजारियों में व्यस्त थी, फ्रांस पर हिटलर का शिकंजा कस चुका था. अब सिथिया ने अपनी नजरें फ्रांस के दूतावास पर जमायीं. वहां से उसे अपने मतलब का व्यक्ति खोज निकालने में अधिक समय नहीं लगा. वह व्यक्ति था भूतपूर्व पायलट कैप्टन चार्ल्स ब्राउजे, जो राजदूत के प्रेस अधिकारी का पद भार संभाल रहा था. लड़ाई से पहले भी ब्रिटिश गुप्तचर विभाग में कार्य किया था. किसी कारणवश अब वह ब्रिटिशों से चिढ़ता था. अमरीकियों से भी उसे नफरत थी. उन्हें वह घटिया समझता था जिन्हें राजनीति की समझ नहीं थी. यह ब्राउजे सिथिया का अगला शिकार बना. धीरे-धीरे उसने ब्राउजे के आसपास जाल बिछाना शुरू किया. जल्दी ही उसे शिकार को काबू में करने में सफलता मिल गयी. बात यहां तक बढ़ गयी कि सिथिया भी उसी होटल में रहने लगी जहां ब्राउजे सपत्नीक रह रहा था. यहीं सिथिया को सुराग मिला कि मातीनिक द्वीप पर फ्रांसीसियों का खजाना है जिसमें काफी सोना है और नाजी भी उस खजाने की फिराक में है. उसने तुरंत. अपने साथियों को आगाह किया. ब्रिटिश गुप्तचरों ने आनन-फानन कार्यवाही कर उस खजाने को नाजियों के पहुंचने से पहले ही अपने कब्जे में कर लिया. बाद में यही सोना ब्रिटेन ने अमरीका से कर्ज प्राप्त करने में जमानत के रूप में प्रयोग किया ब्राउजे से ही सिथिया को अमरीका में सक्रिय ज़र्मन एजेंटों की कार्यप्रणाली के बारे में जानकारी हासिल हुई.

एक बार फिर फ्रांसिसी नौसैनिक गुप्त संकेतों को जानने का भार 'संकेत कन्या' सिथिया पर डाला गया. किंतु काम इस बार इतना आसान नहीं था क्योंकि समस्त गुप्त संकेत दूतावास के स्ट्रांग रूम' में रखे जाते थे. काफी सोच-विचार के बाद सिथिया ने एक योजना बनाई. इस योजना में उसने ब्राउजे को भी शामिल किया जो उसके प्रेम में दीन-दुनिया भुला चुका था. उन्होंने फ्रेंच दूतावास के रात्रि चौकीदार के पास जाकर कहा, "हम बहुत मुश्किल में पड़ गये हैं. तुम हमारी कुछ सहायता कर सको तो तुम्हारा एहसान होगा."

चौकीदार उन दोनों को रात में वहां देखकर वैसे ही विस्मित था. उसने प्रश्न किया, "कहिये! मैं भला आपकी क्या सहायता कर सकता हूं?"

बस केवल इतना कि हमें दूतावास के अंदर रात में मिलने और प्रेम करने का अवसर दे दो." सिथिया ने अपना जादू चौकीदार पर चलाया. मेनका-सी सुंदरी अपने नाजुक होंठों से परेशानी बताये तो कौन ऐसा कठोर हृदय होगा जो पिघल न जाय?

रास्ते की पहली रुकावट दूर हुई. चौकीदार को इस उपकार के बदले एक भारी रकम देना मंजूर किया गया. वे चौकीदार के लिये नित नयी शराब की बोतलें भेंट में लाते जिसमें बेहोशी की दवा मिली होती. दोनों प्रेमी अब बेधड़क दूतावास के अंदर रातें गुजारने आने लगे. इधर वे प्रेम में मग्न रहते, उधर चौकीदार दवा के नशे में छक सोता रहता. तीसरी ओर सिथिया के साथी फ्रेंच नौसैनिक गुप्त संकेत चिन्हों की नकल करते रहते. गुप्तचर विभाग के विशेषज्ञ जितनी सफाई से दल के लिये ताले खोलते उतनी ही सफाई से नकल करने के बाद बंद भी कर देते. किसी को जरा भी शक नही हो पाया. फिर भी एक दिन नशा बीच में ही टूटने पर चौकीदार ने सावधानीवश यह देखने के लिये कि अंदर क्या हो रहा है चाबी के छेद में से अंदर का नजारा देखने की कोशिश की. पर जब देखा कि अंदर प्रेमी प्रेम करने में मग्न हैं तो निशिचंत हो फिर से खर्राटे लेने लगा. इस प्रकार कई रातों के अथक परिश्रम के बाद ब्रिटिश गुप्तचर सारे संकेतों की नकल करने में सफल हुए. बाद में सिथिया के इस कार्य की भी सराहना हुई.

युद्ध समाप्ति के बाद 'संकेत कन्या सिथिया' ने अपने पति की मृत्यु के बाद ब्राउजे से ही विवाह कर लिया, जिसने अपनी पत्नी से नाता तोड़ लिया था. काफी लंबे विवाहित जीवन के बाद बड़े-बड़े खतरों से बचकर जीवित निकल आनेवाली संकेत कन्या का अंत, कैंसर से जूझते हुए 1961 में हुआ. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेंद्र राव

विमोचन एक बला

वे नहीं माने. करवा ही लिया अपने कथा संग्रह का विमोचन. समारोह में थोड़ी चखचख भी हुई क्योंकि विशेष रूप से आमंत्रित एक प्रगतिशील लेखक ने भाषण कुछ इस तरह शुरू किया, "दोस्तो! सच तो यह है कि इनकी मैंने कोई भी कहानी नहीं पढ़ी है. पढ़ना तो दूर रहा निमंत्रण मिलने से पहले मैं जानता भी नहीं था कि ये कहानियां लिखते हैं क्योंकि व्यावसायिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाली ट्रैश रचनाएं मैं पढ़ता नहीं, न ही भविष्य में पढ़ने की कोई संभावना है इसलिये मैं इनकी कहानियों के बजाए हिंदी कहानी की दशा पर बोलूंगा..." इस संवेदनहीन और क्रूर आघात से उस कथाकार को कितनी पीड़ा हुई होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है.

सवाल उठता है कि यह पुस्तक विमोचन क्यों करवाये जाते हैं? क्या यह किसी तरह का साहित्यिक कर्मकांड है? पहले यह मर्ज सिर्फ कवियों तक सीमित था, अब कथाकार भी इसके शिकार हो गये हैं. इस तरह की तमाम गलत परंपराओं की तरह यह भी देश की राजधानी से शुरू हुई है. दूसरे शहरों में कुछ लेखक पुस्तक प्रकाशित होने पर दिल्ली पहुंचते हैं और अपनी गाढ़ी या पतली कमाई का एक हिस्सा दिल्ली शहर में विमोचन कराने पर खर्च करते हैं. लेखक गांठ का पूरा दिखाई दे तो भाई लोग कॉकटेल पार्टी भी झटकने में नहीं चूकते

खूंटा और खूंटे

लघु पत्रिका प्रकाशित करने का जुनून लेखकों पर क्यों सवार होता है और इस जद्दोजहद से गुजरते हुए उन्हें और परिवार के लोगों को किस किस्म की तकलीफों से गुजरना पड़ता है, इसका लेखा जोखा टिप्पणी या निबंध के बजाए कहानी के रूप में पढ़ना चाहते हों तो आनंद अस्थाना की कहानी 'खूंटे' को पढ़ें. यह उनके सद्यप्रकाशित कथा संकलन 'गिरोह तथा अन्य कहानियां' में संकलित है.

'खूंटे' की तर्ज पर पत्रिकाबाजी को हम भी दुखती हुई रग ही मानते थे कि कलकत्ता में एक तेज तर्रार युवा संपादक ने हमें सिक्के का दूसरा पहलू दिखाया. इनका कहना है कि तथाकथित अव्यावसायिकता महज एक छद्म भर है. पत्रिका चाहे कितनी ही लघु क्यों न हो उसके जरिये बहुत से काम बनाए जा सकते हैं. एक बहुचर्चित पत्रिका के बारे में उन्होंने बताया कि संपादक महोदय स्वयं एक प्रिंटिंग प्रेस के मालिक हैं. पत्रिका के तेवरों के बल पर और आला अफसरान की रचनाएं छाप कर न सिर्फ सरकारी विज्ञापन मिलते हैं बल्कि प्रेस के लिये अच्छा खासा जॉब वर्क भी मिल जाता है, आकर्षक दरों पर. इसमें घाटे का प्रश्न ही पैदा नहीं होता. लघु पत्रिका के संपादकगण आपसी व्यवहार और लेनदेन का पूरा ध्यान रखते हैं. अति विशिष्ट व्यक्ति (वी.आई.पी.) न सही विशिष्ट व्यक्ति का दर्जा तो मिल ही जाता है. हिंदी में ऐसे कई नान-प्रैक्टिसिंग राइटर्स हैं जो लघु पत्रिका की संपादकी के दम पर साहित्य में जिंदा हैं.

एक मित्र का कहना है कि लगातार दर्जन भर कहानियां संपादक के अभिवादन और खेद सहित लौट आने पर गुस्से और खीझ की एक सात्विक परिणति लघु पत्रिका प्रकाशित करने का निर्णय लेने में होती है. दो तीन अंक निकलते निकलते न सिर्फ कहानियों का लौटना बंद हो जाता है बल्कि उन पर चर्चा भी होने लगती है. इस लिहाज से तो यह कोई मंहगा सौदा नहीं है. क्यों आनंद अस्थाना जी?

खाकी लेखक

आज की हिंदी कहानी साहित्येतर जीविका से जुड़े लेखकों के हाथों में है. सफेद कालरवाली प्रतिभाओं के दिन गये. विश्वविद्यालयी हिंदी अध्यापकों और उच्च मध्य वर्गीय शालीन गृहणियों की कहानियां अब पाठकों को उबाने लगी हैं. तकनीशियनों, चिकित्सकों, वैज्ञानिकों और लघउद्यमियों की तरह पुलिसकर्मी भी कथालेखन के क्षेत्र में सक्रिय हुए हैं. सिपाही-दारोगा-थानेदार तो अभी हाथ में डंडा ही पकड़े हैं परंतु दो-तीन युवा पुलिस अधिकारी नियमित रूप से लेखन कार्य में संलग्न नजर आते हैं. इनकी आमद का कोई भी संबंध साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त अराजकता से नहीं है.

हाथ में वाकी टाकी, तन पर खाकी वर्दी, सर पर पी कैप वाले विभूति नारायण राय से बातचीत करके जल्दी ही मालूम पड़ गया कि उनका हृदय विशुद्ध साहित्यकार का हृदय है.—'साहित्य से तो मैं छात्र जीवन से ही जुड़ा हूं, पुलिस की नौकरी तो बाद में लगी.' भारतीय पुलिस की जनमानस में जो छवि है, उसके कारण हमारे मन में भले ही पूर्वाग्रह रहें परंतु जब मैंने विभूति नारायण का उपन्यास 'शहर में कर्फ्यू' पढ़ा तो मुझे उनके इस कथन पर विश्वास हो गया कि 'यह साहित्य ही है जिसने दस वर्ष की पुलिस की नौकरी में भी मेरी संवेदनशीलता को बचाए रखा'. 'शहर में कर्फ्यू' एक सशक्त और प्रामाणिक कृति है जो कि न सिर्फ सांप्रदायिकता की आड़ में समाज के ठेकेदारों द्वारा की जा रही जन विरोधी कार्यवाइयों के विरुद्ध कथा साहित्य में नया मोर्चा खोलती है बल्कि युवा पीढ़ी के पुलिस अधिकारियों के मानवीय दृष्टिकोण के अस्तित्व के बारे में निश्चित सूचना भी देती है.

अहिल्या बनने की मजबूरी

हिंदी कहानी में सेक्स और सेक्सवाद से संजीव और कात्यायिनी बेवजह चिंतित हैं. अपने यहां तो अभी मुग्धा नायिका युग ही चल रहा है जहां नायक को थरमस देते हुए नायिका का हाथ छू जाता है तो तन बदन सिहर उठते हैं जैसा कि सरयू शर्मा की घनघोर रूमानी कहानी सीप (हंस-मई 88) में होता है हालांकि मूल कथ्य वर्जनाओं को तोड़ने से ही संबंधित है जिसमें 37-38 वर्ष की तथाकथित प्रौढ़ किंतु आकर्षक देहयष्टि वाली कुमुदिनी शुक्ला (जो कि दो जवान लड़कियों की मां है और विवाहित जीवन के दो दशक एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुमसुम प्रोफेसर के साथ बिता चुकी है) पति की अनुपस्थिति में एक सागर अध्ययन दल के साथ छोटे जहाज पर, सौम्य-सुदर्शन एवं वयस के अनुकूल धीर-गंभीर मणिकांत के प्रति आकर्षित होती है परंतु भरपूर अवसर मिलने पर भी सलवार कमीज में ही समुद्र में गोता मारकर अपने में मग्न हो जाती है. बाद में मणिकांत की देह यष्टि को उजागर करते तन से गीले वस्त्रों को हाथ से दूर करती वह मुग्धा और जड़ होकर, अहिल्या की तरह शिला बन जाती है.

इसी कड़ी में एक और कहानी-गीतांजलि श्री की 'दोपहर' (कहानियां-मार्च 88). इसकी नायिका अपनी स्वतंत्रसता के प्रति सचेत और सतर्क तो इतनी है कि छः वर्ष के रोमांस के बाद भी मंगनी तोड़ देती है मगर सुंदर, सुडौल विजय पर मुग्ध बनी रहती है. सौम्य, भले-भोले चेहरे वाला लेखक अमरेंद्र भी अच्छा लगता है. एक दोपहर वह अपने दड़बे में हमेशा की तरह अकेली होती है कि एक के बाद एक दोनों नायक प्रगट होते हैं. तीनों पहले चाय फिर साथ बैठकर व्हिस्की पीने लगते हैं. तीन पैग पीने के बाद विद्रोहिणी मगर मुग्धा नायिका खाना बनाने रसोई में चली जाती है, दोनों युवक शतरंज खेलने में मसरूफ हो जाते हैं और उसे एकदम भुलाकर अपनी अपनी चालें चलने लगते हैं. वह कुर्सी पर बैठ कर सो जाती है, अहिल्या की तरह शिला हो जाती है. जाहिर है कि हिंदी को सेक्स से कोई खतरा नहीं है, न ही सेक्सवाद से क्योंकि लगभग सभी उपलब्ध नाकिकाएं फ्रीज्ड हो चुकी हैं और नायक तो शरच्चंद्रियन थे, वही रहेंगे.

सच्चे हमदर्द

एक हैं-युवा कथालोचक. आप महिला लेखकों के जबर्दस्त पक्षधर और सच्चे हमदर्द हैं. आपकी मान्यता है कि लिंग के आधार पर कथाकारों का विभाजन नहीं होना चाहिए. इसके विरुद्ध आवाज के लिये आप पत्रिकाओं के महिला कथाकार विशेषांकों में महिला कथाकार की कहानियों पर सच्ची-हमदर्दी के साथ लिखते हैं. इनकी प्रिय कथाकारों की सूची देखकर यदि आप किसी आधार भूमि की खोज न कर पायें तो ढूंढकर सबके चित्र एक साथ रख कर देख लें. इनकी चयन प्रक्रिया समझने में देर नहीं लगेगी. □

नयी पत्रिकाएं

जो सब कहीं है

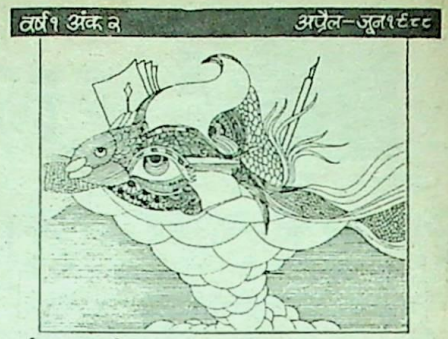

हिंदी अकादमी, दिल्ली की स्थापना हुए अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं लेकिन तमाम विवादों और गुटों से परे यह जिस गति से हिंदी की सेवा में संलग्न है उसके पीछे निश्चित रूप से इस संस्था के सचिव, जाने-माने भाषाविद् डा. नारायणदत्त पालीवाल और हिंदी अकादमी के सलाहकार मंडल की एक सुनिश्चित दृष्टि-संपन्नता का योगदान रहा है. डा. नारायणदत्त पालीवाल संभवतः इकलौते ऐसे अधिकारी हैं जो एक लंबे समय से अधिकारी नहीं बल्कि भाषाविद् के रूप में जाने जाते रहे हैं. पर्वतीय भाषांचल के प्रति किए एक भाषावैज्ञानिक के रूप में उन्होंने जो योगदान दिया है वह चिरस्थायी और ऐतिहासिक महत्व रखता है.

हिंदी अकादमी की अब तक की महत्वपूर्ण कार्य और उपलब्धियां इस प्रकार रही हैं: साहित्यिक गोष्ठियां, सम्मेलन, परिचर्चाएं आयोजित करना, राष्ट्रीय कवि सम्मेलन आयोजित करना, साहित्यकारों का सम्मान, साहित्यिक कृति को पुरस्कृत करना, नवोदित, विश्व-विद्यालयीय छात्रों, स्कूली छात्रों को उनकी रचनात्मकता के लिए पुरस्कृत करना, दिल्ली के साहित्य अथवा लोक-साहित्य पर शोध कार्य के लिए छात्रवृत्तियां देना, साहित्यकारों, छात्रों, हिंदी सेवी संस्थाओं, लघु पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देना.

और अब इन तमाम उपलब्धियों से बढ़कर एक और महत्वपूर्ण कांम हिंदी अकादमी ने अपने हाथों में लिया है—प्राचीन-अर्वाचीन, समकालीन और आगामी-रचनाकारों को एक खुला मंच देने का, जिस का नाम है—**इंद्रप्रस्थ भारती**, यानी हिंदी अकादमी से प्रकाशित साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका. सर्वश्री अक्षयकुमार जैन, कन्हैयालाल नंदन, गोपाल प्रसाद व्यास, डा. गोपाल शर्मा, विजयेंद्र स्नातक, विनोद कुमार मिश्र, विष्णु प्रभाकर के परामर्श और **डा. नारायणदत्त पालीवाल** के संपादन में शुरू हुई इस पत्रिका इंद्रप्रस्थ भारती के पहले ही अंक पर **ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि-कथाकार डा. सच्चिदानंद राउतराय की राय कुछ इस प्रकार रही: मुझे विश्वास है कि आप अपने प्रयास में सफल होंगे. पत्रिका जिस रूप में प्रकाशित की गई है वह सराहनीय है. यह धीरे-धीरे एक ऐसी साहित्यिक पत्रिका का रूप ले लेगी जिसका अभाव रहा है. मुझे प्रसन्नता है कि अकादमी ने अपना दायित्व निभाया है और एक सुरुचिपूर्ण पठनीय एवं आकर्षक साहित्यिक पत्रिका प्रारंभ की है.**

और अब इस आकर्षक पत्रिका का दूसरा अंक इन दिनों बाजार में है, जिसमें चित्रा मुद्गल, यादवेंद्र शर्मा चंद्र, रमेश गुप्त, सुरेश उनियाल की ताजा कहानियां, अजित कुमार, दिविक रमेश, राजेंद्र उपाध्याय, धीरेंद्र अस्थाना की कविताएं, डा. प्रभाकर माचवे, प्रेम जनमेजय के व्यंग्य, कुछ समीक्षाएं, गुजराती, डोगरी, बल्गारियन रचनाओं के अनुवाद और, और भी बहुत कुछ है, जो पठनीय है.

मगर यहीं एक सवाल जन्म लेता है कि यह सब सामग्री तो वही है जो यदि 'इंद्रप्रस्थ भारती' में नहीं छपती तो कहीं और छप जाती. ऐसे में क्या यह ज्यादा अच्छा नहीं होता कि इंद्रप्रस्थ भारती उस सामग्री को छापने में पहल करती जो कहीं और नहीं छप सकती, क्योंकि वह न तो बिकाऊ होती है, न सहज पठनीय. मगर वह होती है चिरस्थायी महत्व की. डा. नारायणदत्त पालीवाल ने जो काम अपने लेखन के जरिए किया, यदि इस पत्रिका को भी उसी दिशा में एक मील के पत्थर की तरह स्थापित करते तो निश्चय ही इंद्रप्रस्थ भारती को भीड़ से अलग अपनी पहचान बनाने से कोई नहीं रोक पाता या रोक पायेगा. □

—कांता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी तो...

गोपाल शेखरन

कोई बीस वर्ष पुरानी बात है. उन दिनों मैं एक सरकारी संस्थान के अध्यक्ष-पद पर नियुक्त था. मैं अब स्वीकार करता हूं कि यह पद मुझे मेरी योग्यता के आधार पर नहीं मिला था. वास्तव में यह पद मुझे राजनीतिक पैंतरेबाजी के कारण मिला था.इस पद पर आसीन होते ही मेरे व्यक्तित्व में अभूतपूर्व परिवर्तन आया. मेरे चलने-फिरने और बातचीत करने का ढंग बदल गया. रास्ते में मिलने वाले लोगों के देखने के मेरे ढंग में न जाने कैसा परिवर्तन आया कि मैं लोगों को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगा. मुझे स्वयं ऐसा लगता था कि मेरा व्यक्तित्व दुगना हो गया है. जब मैं अपने दरबार में बैठा होता तो मुझे लगता कि मुझ में कोई अदृश्य शक्ति भरी हुई है और मैं सबके लिए एक टेढ़ा और खतरनाक व्यक्ति हूं.

मुझसे मिलने-जुलने वालों का सारा दिन तांता बंधा रहता और मेरा अधिकांश समय बड़े-बड़े लोगों से मेल-मुलाकात में बीत जाता. संस्थान में मेरा काम अपनी पार्टी के लोगों को खुश रखना ही था. फिर मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया, केवल अपनी पार्टी के लोगों का भला किया, जिससे सर्वत्र मेरी प्रशंसा होने लगी.

यह क्या मैं सबका उचित अनुचित काम कर रहा था. पर मेरा एक छोटा-सा काम नहीं हो पा रहा था. मेरे सगे भाई ने अपने ही प्रांत की एक परीक्षा पास की थी. प्रदेश के जनसंपर्क अधिकारी के पद के लिए कुछ स्थान रिक्त थे. लिखित परीक्षा में मेरे भाई ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया. पर इंटरव्यू में उसे बहुत पीछे छोड़ दिया गया और उसके बाद योग्यता सूची में उसका नंबर छठा हो गया.

यह शायद इसलिए किया गया, क्योंकि प्रदेश में जनसंपर्क अधिकारियों के केवल पांच स्थान रिक्त थे. अतः प्रथम पांच को नियुक्तिपत्र मिल चुके थे.

अब यदि एक स्थान और रिक्त घोषित कर दिया जाता... तो मेरे भाई का काम बन जाता. अब आप अनुमान लगा सकते हैं कि यह काम कितना छोटा और सरल था. पर सभी यही कहते थे कि काम कठिन है. मैंने भरपूर जोर लगाया. उन सबसे मिला जिनके मैंने बड़े-बड़े काम किये थे. मैंने अपने प्रभाव का पूरा प्रयोग किया. तब मुझे पता लगा कि मैं कितने पानी में था.

मेरा छोटा भाई प्रतिदिन सायंकाल आ जाता और पूछता, "भाई साहब काम बना या नहीं."

उस समय मेरा जी डूब मरने को करता, जब मैं कहता, "अभी नहीं हुआ."

दूसरे दिन मैं फिर हाथ-पांव मारने शुरू कर देता. दफतर में जो भी मेरे पास अपना काम कराने आते, उसे मैं पहले अपना काम बता देता. साथ में यह भी कह देता, "तुम मेरा काम कराओ, मैं आप का काम तुरंत कर दूंगा."

फिर मैं इधर से उधर और उधर से इधर टेलीफोन करता रहता और अपने पदाधिकार की दुहाई देता और काम न होने पर मुझे कितना दुःख होगा... इस ओर भी तनिक संकेत कर देता. जब कोई बड़ा व्यक्ति मुझे टेलीफोन करता तो मन होता कि उसे टेलीफोन पर ही गालियां सुना दूं.

फिर एक व्यक्ति का टेलीफोन आया, "भाई, आपका काम मुख्य मंत्री ने अपने अधिकार क्षेत्र में ले रखा है. सचिव महोदय से बात हो गई है, उन्होंने कहा है कि कोशिश कर के देखेंगे, शायद काम हो जाए."

यह सब टेलीफोन मुझे राजनीतिक हथकंडों की तरह लगे. मैं उस व्यक्ति को भी खरी-खोटी सुनाना चाहता था पर कुछ सोचकर चुप हो गया.

> अंदर का वातावरण देखकर मैं स्तब्ध रह गया एक क्षण को तो मुझे लगा कि मैं किसी गलत जगह पर आ गया हूं... मैंने देखा कि एक मेज पर शराब के गिलास सजे पड़े थे और एक मर्द और दो युवतियां संदिग्ध स्थिति में बैठी थीं...

अब मुझे यह आभास होने लगा था कि लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए कितनी चालाकी और धूर्तता से काम लेते हैं. एक मैं था कि सब के काम किये जा रहा था... बिना किसी प्रतिफल की इच्छा के ... पर मेरा काम करवाने के लिए सबकी नानी मर जाती. मैं उन कई नेताओं से कह चुका था जो यह दावा करते थे कि मुख्य मंत्री उनकी जेब में है, पर कोई मेरे काम नहीं आ रहा था. ...

मैंने प्रदेश की राजधानी में भी टेलीफोन किया—

मुख्य मंत्री के एक विशेष सहयोगी को, जो मुझसे एक काम करा चुका था.

वह बोला, "मुख्य मंत्री महोदय बहुत सत्यनिष्ट और निष्पक्ष व्यक्ति है..किसी के प्रभाव में आकर अनुचित काम नहीं करते पर आप निश्चिंत रहें, मैं आपका काम अवश्य करा दूंगा. हर कीमत पर आपका काम करा दूंगा.'

उस सायंकाल को मैंने अपने भाई को उसके कुछ कहने से पहले ही कह दिया था, "भाई, एक विशेष व्यक्ति के जिम्मे काम लगा दिया है, अब हमारा काम एक सप्ताह में अवश्य हो जाएगा."

एक सप्ताह बाद मैंने फिर उस विशेष व्यक्तित्व को टेलीफोन किया तो उसने उत्तर दिया, "भाई, कोशिश हो रही है, मुख्य मंत्री दिल्ली गए हुए थे. एक सप्ताह और लग जाएगा."

मैंने पूछा, "मुख्यमंत्री किसका कहना अधिक मानते हैं? अन्य किसी को कहूं क्या?"

"मुख्यमंत्रीजी वैसे किसी की सिफारिश नहीं मानते. मगर मेरा कहना नहीं टालेंगे, हां, यदि उनका कोई पुराना साथी उनसे कह दे, तो वे काम कर देते हैं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने फिर टेलीफोन दौड़ाए पता करना चाहा कि मुख्य मंत्री का पुराना साथी कौन हो सकता है. किसी ने संकेत दिया कि वह ऐसा व्यक्ति भी हो सकता हैं जो मुख्य मंत्री जी के साथ जेल गया हो. फिर मैंने यह जानकारी भी प्राप्त की कि मुख्य मंत्री के जेल के साथी कौन-कौन थे...

तभी मुझे ध्यान आया कि मैं तो बेकार शून्य में भटक रहा था. मैं अपने सगे फूफाजी को भूल ही गया था जो कई बार जेल जा चुके थे. फूफाजी उन दिनों राज्य के महत्वपूर्ण सेवाश्रम के निर्देशक थे...

मैंने एकाध से फूफाजी के बारे में पूछताछ की तो मुझे बताया गया कि फूफाजी से बढ़ कर इस समय मुख्य मंत्री के निकट कोई नहीं है. वे मुख्य मंत्री के साथ जेल भी काट चुके हैं. मुख्य मंत्री पिछले वर्ष उन्हें राज्य का मंत्री भी बनाना चाहते थे, पर उन्होंने इंकार कर दिया था.

मैं अब निश्चिंत था कि अब मेरा काम हो जाएगा. मैं दूसरे दिन ही अपने दफ्तर की जीप लेकर सेवाश्रम चल पड़ा. उन्हें राज्य के मंत्री मंडल में शामिल करने का निमंत्रण मिला पर उन्होंने सदा इंकार कर दिया. सारी आयु गांवों के गरीबों और दलितों की सेवा करते रह गए. इस आयु में भी गांव-गांव भटक रहे हैं. अगर वे राजनीति में आ जाते तो या तो राज्य के मुख्य मंत्री होते या केंद्र में मंत्री होते.

इस प्रकार फूफाजी के बारे में सोचते-सोचते मैं सेवाश्रम पहुंच गया. सौभाग्य से फूफाजी किसी गांव में न होकर सेवाश्रम में ही थे. कुछ देर उनके दफ्तर में ठहरकर में उनके साथ उनके निवास स्थान गया जो आश्रम के कोने में था. फूफीजी का मुझे देखकर खुशी का ठिकाना न रहा और वह मुझे देख-देखकर मुस्कराए जा रही थी. फिर वे मेरे पास बैठ गई.

यह सुनकर फूफाजी गंभीर हो गए. एक-दो क्षण वे कुछ सोचने लगे, फिर ऐसे बोले जैसे मुझ से बात न कर अपने आपसे बात कर रहे हों—यह तो सिफारिश करने की बात है, क्या नैतिक दृष्टि से यह उचित होगा? आज तो नैतिक मूल्यों का अधःपतन हो रहा है—उसके मूल में यही बात है कि अयोग्य व्यक्ति सिफारिशों के सहारे ऊंची पदवियों पर बैठ गए हैं.

फूफाजी के ये शब्द सुनकर मेरे तन-बदन में आग लग गई. मैंने भावावेश में कहा, "फूफाजी, जब लिखित परीक्षा में मोहन का स्थान द्वितीय और बिना सिफारिश इंटरव्यू के बाद छठा हो गया. इंटरव्यू में सिफारिशं चल गई. यदि आप मोहन की सिफारिश करते हैं तो आप योग्य व्यक्ति को समुचित स्थान दिलवाएंगे. आपका यह काम सिफारिश नहीं, बल्कि एक सामाजिक बुराई के विरुद्ध आपकी लड़ाई होगी."

इस पर फूफाजी वैसे ही बोले जैसे मुझ से बात न कर सामने रखे मेज से बात कर रहे हों, "तुम्हारी इस दलील का आधार केवल अटकल पच्चू और अनुमान-मात्र है. यह किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं हो सकता है, उम्मीदवारों का चयन योग्यता के आधार पर हुआ हो."

यह सुनकर मैंने फूफाजी की ओर देखना छोड़ दीवार की ओर देखना आरंभ कर दिया. कई क्षणों तक मैं नहीं बोला.

फिर मैंने कहा, "फूफाजी, सभी कह रहे हैं कि इंटरव्यू में हेरा-फेरी हुई है. जिनको लेना था उनसे सरल प्रश्न किए गए, जिन को नहीं लेना था, उनसे कठिन से कठिन प्रश्न किए गए."

मुझे लगा कि फूफाजी मेरी दलील से सहमत हो गए हैं. पर उन्होंने जो बोला उससे मेरा दिल टूट गया. मेरा उनसे विश्वास उठ गया.फिर वे बोले, "भाई, यह काम मैं नहीं कर सकता, मैंने जीवन पर्यंत किसी की सिफारिश न करने की शपथ ली हुई है."

पर यह तो सिफारिश नहीं पर योग्य व्यक्ति को समुचित स्थान दिलाने वाली बात है...

भाई मैंने आज से लगभग पच्चीस वर्ष पहले प्रदेश के उस महापुरुष के सामने शपथ ली थी जिसने देश की आजादी की लड़ाई में लाठियां खाकर अपनी जान न्यौछावर कर दी. उन्होंने हमें स्वयम् शपथ दिलाई थी कि हम किसी निजी स्वार्थ के लिये भाई भतीजावाद, स्वजन पक्षपात और भ्रष्टाचार का आश्रम नहीं लेंगे.

यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया. मुझे बड़ा दुःख हुआ. मैं कुछ न कह सका. जिस महापुरुष का नाम लिया गया था, उनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा कूट-कूट कर भरी थी. उस महापुरुष ने सदा सत्यनिष्ठा का आश्रय लिया, सिद्धांतों पर डटे रहे और उन के बलिदान ने देश में एक नयी जागृति ला दी थी.

मैं जल्दी-जल्दी खाना खाकर उठ बैठा. और बिना फूफाजी और फूफीजी को प्रणाम किए वहां से निकल पड़ा. बाहर निकल कर मेरे मन में आया कि उस महापुरुष को कोसूं, उन्हें भला बुरा कहूं. पर उसी समय उस महापुरुष का चेहरा मेरे सामने घूमने लगा. मेरा मस्तक उनके सामने नतमस्तक हो गया, मुझे फूफाजी से तनिक भी शिकायत न रही. वास्तव में वे महापुरुष धन्य थे जिनके संसर्ग में मेरे फूफा जैसे आदमी आए और अभी तक वे सिद्धांतों पर डटे हैं, अपनी शपथ नहीं भूले, भ्रष्ट आचरण से दूर हैं और ग्राम सेवा में लगे हैं, वास्तव में महापुरुष प्रातःस्मरणीय थे.

ऐसे सोचते-सोचते मैं चौराहे पार करता गया और घर पहुंच गया. जब मैं घर पहुंचा तो दिन ढल चुका था.

पर संयोग ऐसा हुआ कि दूसरे दिन तो बहुत प्रभावशाली

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति, अपना काम कराने मेरे दफ्तर गया था. उनमें एक मेरा पुराना मित्र था, जिसने मुझे इस संस्थान में नियुक्त कराने में बड़ी भूमिका निभाई थी. उसने दूसरे व्यक्ति का मुझसे इस प्रकार परिचय कराया, "इनसे मिलिए यह हैं, चंपतरायजी, आप जानते हैं कि यह किस के भतीजे हैं."

मैंने पूछा, "किसके."

"यह हमारे प्रदेश के महान सपूत....के भतीजे हैं."

मैंने उस महापुरुष का नाम सुनकर अपने चेहरे पर अपना चश्मा लगा लिया जिससे वे दोनों मेरे चेहरे पर छाए वास्तविक भावों को न जान पायें. चश्मा लगाकर मैंने कहा, "ओह, बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर. हमारा सौभाग्य है जो इतने बड़े महापुरुष के भतीजे के दर्शन हुए."

मैं मन ही मन प्रसन्न था. मैं जानता था कि चंपतरायजी मेरी सहायता कर सकते थे. मैंने चंपतराय का टेलीफोन नंबर लिख लिया और उनका काम करने का वचन दे दिया.

सायंकाल छुट्टी होने पर मैंने दफ्तर की जीप ली और चंपत राय के यहां पहुंच गया. उनका दफ्तर बंद हो चुका था, पर चंपतरायजी वहीं थे. चंपतरायजी ने स्वयम् उठकर मेरा स्वागत किया. मुझे अपने यहां देखकर वे गद्‌गद् हो गए. वे मुझे देखकर उछल पड़े.

अंदर का वातावरण देखकर मैं स्तब्ध रह गया. एक क्षण तो मुझे ऐसे लगा कि मैं किसी गलत जगह पर आ गया हूं. उसी समय चंपतराय मुझे देखकर उछल पड़े और मेरा स्वागत करते हुये बोले, "धन्यभाग्य, हमारे जो इतने अच्छे अवसर पर इतने बड़े आदमी यहां आए हैं, हमारा दफ्तर आज पवित्र हो गया."

मैंने देखा, एक मेज पर शराब के ग्लास सजे पड़े थे और मेज पर एक मर्द और दो युवतियां संदिग्ध स्थिति में बैठी थीं.

मैं उस मेज के पास वाले सोफे पर बैठ गया.चंपतरायजी बोलें, "आज हमारे दफ्तर को कैसे पवित्र किया."

"भाई एक काम आ पड़ा है, शायद केवल आप ही उसे करा सकते हैं!"फिर मैंने वही रटी-रटाई कहानी सुनाई जो कइयों को पहले सुना चुका था.

सारी कहानी सुनने के बाद चंपत राय बोले, "यह कौन-सा कठिन काम है." फिर उन्होंने टेलीफोन का रिसीवर उठाया और एक नंबर मिला कर बोले, "भाई तुम मुख्य मंत्री के विशेष कृपा पात्र हो, इसलिए काम मैं तुम्हें सौंप दूं. न हुआ तो मैं शहर में रहने लायक नहीं रहूंगा."

फिर कुछ क्षणों तक चंपतरायजी पूरे संतुष्ट भाव से टेलीफोन सुनते रहे, स्पष्ट लग रहा था कि काम के होने में कोई संदेह नहीं था. तभी चंपतराय बार-बार हां-हां कह रहे थे.

फिर वे मुझसे बोले, "हो गया आपका काम."

फिर उन्होंने दूसरा टेलीफोन मिलाया और भूमिका बांधने के बाद बोले, "भाई, एक छोटा-सा काम है, मुख्य मंत्री से केवल एक नंबर बढ़बाना है, किसी कीमत पर यह काम होना चाहिए, समझे किसी कीमत पर."

यह कहकर उन्होंने फिर टेलीफोन पटक दिया और बोले, "आपका काम कल ही हो जाएगा. मुख्य मंत्री जो जानते हैं कि मैं किसका भतीजा हूं, फिर उनके दो विशेष सहयोगियों को साथ ले जाऊंगा, हाथ पकड़कर करा लूंगा आपका काम."

फिर इसी जोश में उन्होंने फिर रिसीवर उठाया और नंबर मिला कर बोले, "भाई, पहचाना मुझे, मैं अमुक महापुरुष का भतीजा बोल रहा हूं. एक छोटी-सी सिफारिश करानी है, मुख्य मंत्री से."

कुछ सुनने के बाद वे बोले, "वाह-वाह, नेता हो तो आप जैसा," फिर उन्होंने मेरे भाई का सारा विवरण उन्हें लिखवा दिया.

"वाह, हो जाएगा, धन्यवाद, धन्यवाद, हां, हां, रविवार की पार्टी यहीं होगी, सारा प्रबंध होगा," अभी आ जाओ, अभी हो सकता है, मैंने बड़ा भारी प्रबंध कर रखा है."

फिर टेलीफोन पटककर बोले, "हो गया साहब आपका काम." फिर उन्होंने इशारा किया. दोनों युवतियों ने जाम भरने आरंभ कर दिए. उन दोनों युवतियों के हावभावों को देखकर मुझे मानसिक क्लेश हुआ. मुझे अपनी आंखों पर और जो कुछ मैं देख रहा था, पर विश्वास नहीं हो रहा था. मेरा मन बार-बार यह क्या हो रहा है, यह क्या हो रहा है, कह रहा था.

दोनों युवतियां मेरी ओर अजीब तरह से देख रही थीं. उन दोनों के दृष्टिपात्र मुझ पर एक भारी प्रहार और आघात के समान लग रहे थे. मुझे ऐसे लग रहा था कि मेरे सामने एक ऐतिहासिक घटना घट रही है, चंपतराय और मुझ जैसे लोगों को पूर्ण आजादी मिल चुकी है." हमारी लोहे की हथकड़ियां कट गई हैं, पर उनके स्थान पर सोने की हथकड़ियां पहन ली हैं.

जो कुछ मैं देख रहा था, मेरे ऊपर पाशविक लाठियों के प्रहार के समान था, फिर भी मैं जिंदा खड़ा था.

तनिक भी विरोध का भाव मेरे मन में नहीं था,

दोनों युवतियों ने पुनः जाम उठाकर मुझे निमंत्रण दिया तो मैं भावावेश में आ गया और एक विक्षिप्त व्यक्ति की तरह चिल्ला उठा, "मैं नहीं पीता, मैं नहीं पीता."

मेरे इस असामान्य व्यवहार को देखकर चंपत राय ने भी नाराजगी और आक्रोश के लहजे में मुझसे कहा, "पीते नहीं हो, तभी तो एक छोटे से काम के लिए मेरे पास आए हो, अगर तुम नित ऐसी महफिल जमाते तो कभी इस छोटे से काम के लिए मेरे पास न आते." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खबर

ज्योति जैन

रीता अपने आंगन में खड़ी प्रकृति की अद्‌भुत छटा का रसपान कर रही थी. उसे प्रकृति की लीला अनुपम व अद्‌भुत नजर आ रही थी. तभी अंदर से आवाज आयी—जिसने उसकी तन्मयता को तोड़ दिया. वह आवाज की ओर मुंह करके देखने लगी. उसकी प्यारी भाभी ने उसके हाथ में चाय का प्याला व दैनिक अखबार सौंप दिया. वह भाभी की ओर कृतज्ञता पूर्वक देखने लगी.फिर उसने अखबार के पृष्ठ पर नजर दौड़ाई. संपूर्ण देश के समाचार देनेवाले समाचार पत्र में उसकी नजर एक खबर पर अटक गयी—'उदयपुर से बारात बैरंग वापस.' खबर पढ़ते ही वह अपनी भाभी की ओर अपलक निहारती हुई अतीत में खो गयी...

शीला आंटी उन दिनों कितनी खुश थीं जब उनकी प्यारी लाड़ली इकलौती बिटिया अपने पिया के घर जाने की तैयारी कर रही थी.

रश्मि दुल्हन के रूप में बदल रही थी. सारे घर में चहल-पहल मची हुई थी. आंटी के रिश्तेदार और संबंधी सभी उपस्थित थे. रीता भी अपने भाई रंजन और पिताजी के साथ वहीं पर थी. पिताजी अच्छे पड़ोसी होने का कर्तव्य निभाने में व्यस्त थे. रंजन भी इंतजामात में जुटा था और स्वयं वह रश्मि को सजाने-संवारने में जुटी हुई थी.

"बारात आ गयी...," "बारात आ गयी..." चारों ओर शोर-सा छा गया था और सभी इधर-उधर दौड़ने लगे थे. चारों तरफ खुशियां मनाई जाने लगी थीं और रूप रश्मि दुल्हन के भेष में परियों की रानी बनी खुशियों के साथ आंखों में पानी भरे सोच रही थी कि आखिर वह आज अपनों से अलग होकर परायों के देश में जायेगी. और सभी परायों को अपना बनायेगी.....

फेरे का समय आने पर दुल्हन को लाकर बिठा दिया गया. जब दूल्हे को लाने के लिये कहा गया तो दूल्हे के पिताजी ने आंटी से बीस हजार रुपये लाने को कहा. आंटी सुनकर दंग रह गयीं! वे सोच रही थीं कि आखिर उन्होंने कब रुपये देने को कहा था? लेकिन दूल्हे के पिताजी जहरीली मुस्कान लिये हुये अपनी बात दोहराते रहे. उन्होंने ऐलान कर दिया कि यदि रुपये नहीं मिले तो बारात वापस ले जायेंगे.

आंटी के काटो तो खून नहीं! वहां मौजूद सभी लोगों ने दूल्हे के पिता को बहुत समझाया, कि वह विधवा बेचारी इतनी बड़ी रकम नहीं दे सकती. वह तो अपना ही गुजारा बड़ी कठिनाई के बाद कर पाती है. जिस पर वह अपनी बेटी के विवाह के लिये पहले ही सारे जेवर बेच चुकी है. आखिर अब कहां से लायेंगी इतना रुपया.

आंटी भी बहुत गिड़गिड़ायीं और दूल्हे के पिता को बहुत समझाया-बुझाया लेकिन सब व्यर्थ. बाराती भी दूल्हे के पिता का ही समर्थन कर रहे थे. आंटी रोये जा रही थीं और बार-बार याचना कर रही थीं कि यह उनकी इज्जत और बिटिया की जिंदगी का सवाल है, लेकिन उनकी याचना का उन लोगों पर कोई असर नहीं पड़ रहा था.

सारी खुशियां अब तक गम में बदल चुकी थीं. रश्मि तो मानो जड़ हो गयी थीं. उसके चेहरे की रौनक चली गयी.वह लगभग बेहोश-सी होती जा रही थी. उसकी आंखें मानो सावन की घटा

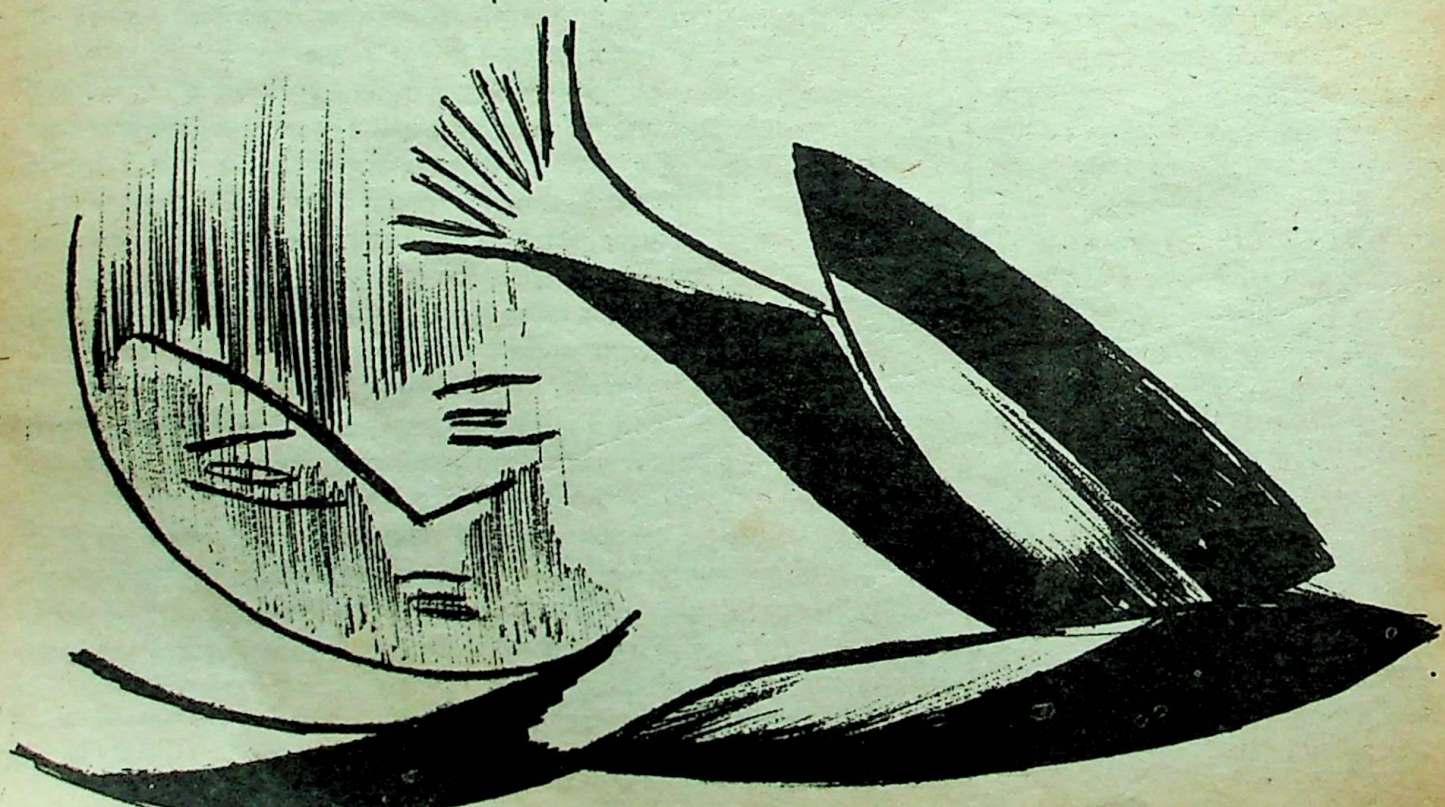

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवांकुर

देश के तमाम महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के जरिये आज कैसी प्रतिभाएं सामने आ रही हैं, लेखन के प्रति उनमें कैसा लगाव है...और रचनात्मकता के संदर्भ में वे क्या सोच रहे हैं. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसी नयी प्रतिभाओं की तलाश करते हुए हर माह एक उभरते रचनाकार की कहानी प्रकाशित की जायेगी. रचना भेजते समय यह न भूलें कि अपने विभागाध्यक्ष अथवा संस्थान के प्रधान का इस आशय का प्रमाण पत्र भेजना अनिवार्य है रचनाकार संस्थान में अध्ययनरत है और 'सारिका कहानी मंच' का सदस्य है.

यदि आपकी संस्था में 'सारिका कहानी मंच' नहीं है और आप विधिवत इसका गठन करना चाहते हैं तो 'नवांकुर' स्तंभ के कूपन की कटिंग लिफाफे पर पते के साथ चिपका कर संपादक से पत्र व्यवहार करें? रचनाएं भेजते समय भी कूपन का प्रयोग अनिवार्य है.

बन गयी थीं. वह अपने आप को कोस रही थी; कि आखिर वह लड़की बनकर इस दुनिया में क्यों आयी? उसकी आंखों के सामने दहेज देने में असमर्थ अपनी मां का चेहरा और वे सब किस्से आने लगे जो उसने पढ़े थे.

तभी उसे रीता की जानी-पहचानी आवाज सुनाई दी.

रीता ने अपने भाई रंजन को बुलाकर जाने क्या कहा और समझाया कि वह अपनी बहिन के कहे अनुसार न चाहते हुये भी उस पर अमल करने के लिये तैयार हो गया. वह जानता था कि वह अभी तक इस लायक नहीं है... लेकिन वह अपनी हठी बहन के पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह चला गया. रीता भी आखिर मजबूर थी. वह भी तो एक लड़की ही है और उसे यह कदम उठाना लाजिमी लग रहा था.

रश्मि को दुल्हन बनाकर मंडप में लाया गया. फेरे पूरे हुये. किसी रिश्तेदार ने कन्यादान भी कर दिया. आंटी और रीता के पिता अभी तक लड़के के पिता से मिन्नतें कर रहे थे. रीता जब दूल्हा-दुल्हन को बाहर ले गयी और आंटी व पिताजी से आशीर्वाद देने को कहा तो लड़के के लालची पिता उसे फटी-फटी आंखों से देखते रह गये!

...और तब भी इस शहर से बारात वापस हुई थी. तब भी बिन दुल्हन दूल्हा वापस हुआ था. लेकिन तब यह खबर इतनी भर नहीं थी...

रीता मन ही मन चाह रही थी—काश, इस बार भी खबर उतनी ही बड़ी होती! □

53बी, वसुंधरा स्टेट बैंक कालोनी
जहांगीराबाद, भोपाल (म.प्र.)

जासूस ऊर्सला

सन् 1932.

उन दिनों ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में जर्मन-यहूदी प्रोफेसर कूजिसवी अर्थशास्त्र पढ़ाता था. ऊर्सला कूजिसवी उसी की बेटी थी. उसकी शादी रूडोल्फ हैमबर्गर से हुई थी जो कि रूसी एजेंट था. सबसे पहले इन दोनों ने संघाई में अपना मोहरा बढ़ाया. सन् 1935 में रूडोल्फ पकड़ा गया पर ऊर्सला कानून की अंगुलियों से फिसलती हुई स्विटजरलैंड भाग गयी. अपनी दोनों बेटियों के साथ वह फिर मांट्रयक्स में रहने लगी. ऊर्सला ने फिर से तानाबाना शुरू कर दिया. फिर जेनीवा में उसे एक दिन रूसी जासूस चक्र 'लूसी' का रेडियो मॉनिटर अलेकजेंडर फुट मिला था. ऊर्सला ने उसे अपने गिरोह में ले लिया, फुट ने सबसे पहले ऊर्सला बहन बर्गिट से संपर्क किया जो उन दिनों उत्तरीय लंदन में रह रही थी.

सन् 1940 में रूसी जासूसी संस्था के.जी.बी. ने ऊर्सला का तबादला इंग्लैंड कर दिया. ऊर्सला ने ऑक्सफोर्ड में अड्डा जमा लिया. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वह जासूसी-रेडियो पर महत्वपूर्ण रहस्य-पूर्ण खबरें भेजती रही. उसके पिता प्रोफेसर कूजिसकी ने बड़ी मदद की क्योंकि उनका प्रवर अधिकारियों से काफी मेल मिलाप भी था.

फुट ने ऊर्सला को एक आकर्षक सामयवादी जासूस कहा है.

और जब फुट अगस्त 1947 में अपने घर इंग्लैंड लौटा था तब उसी वर्ष पुलिस ने चिपिंग नांटर्न नामक गांव में रह रही ऊर्सला से कुछ पूछताछ की थी. उन दिनों ऊर्सला अपने दूसरे पति लिओन ब्युटर्न के साथ रह रही थी. पुलिस ने कार्यवाही का बहाना यह बनाया था कि ऊर्सला ने पहले पति हैंबर्गर के रहते हुए दूसरा नाजायज विवाह कर लिया है. उसने इस आरोप का खंडन किया पर यह भी माना कि इससे पहले वह एक रूसी जासूस रह चुकी है, पर उसने यह काम बहुत पहले छोड़ दिया है., पता नहीं क्यों पुलिस ने कार्वाही में ढील डाल दी और बाद में उन्हें इस बात का पछतावा भी हुआ खासतौर से जबकि 'एटम जासूस' क्लॉज फरा ने अमरीका से लौटकर ऊर्सला को ही अपनी रिपोर्ट दी थी. फरा एटम बम की खबरें इक्ट्ठा करने में जुटा था. वह दो बार अमरीका भागा था उसे 1941 और 1943 में ऊर्सला ही ने न्यूयार्क में स्थित हैरी गोल्ड के पास भिजवाया था.

ऊर्सला ने कच्ची गोलियों नहीं खेल रखी थीं. उसने इंग्लैंड में कई ब्रिटिश जासूसों को अपनी मुठ्ठी में रख छोड़ा था. यहां तक कि यह बात भी विख्यात हो चुकी थी कि ऊर्सला ने ब्रिटिश एम.आई. पांच नामक सर्वश्रेष्ठ जासूसी संस्था के प्रमुख अधिकारी सर राजट हालिस को भी फोड़ रखा था पर उसने साफ इंकार कर दिया कि वह ऊर्सला से कभी मिला भी है.

लेकिन जिस दिन ब्रिटिश एम.आई. पांच के अफसर ऊर्सला के यहां पूछताछ को पहुंचे उसके दूसरे ही दिन ऊर्सला अपने पति ब्युटर्न के साथ पूर्वीय बर्लिन चली गयी और फिर वे दोनों कभी नहीं लौटे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयपुर की नूरजहां-रस कपूर

बाला दुबे

सन् 1803. कछवाहों का गढ़-जयपुर. वे मैदान में विकराल भैरव थे तो रनिवास में कामदेव. रघुकुल के इन दावेदारों के यहां एक 'रघुकुल रीत' यह भी थी कि उन्होंने भी एक छोटा-सा इंद्र का अखाड़ा अपने यहां बना रखा था.

जब महाराजा प्रतापसिंह गद्दी पर थे तो उनके बारह रानियां थीं पर उन पर छाई रही सिर्फ दीदार बख्श भगतन ही. वैसे और भी छोटे-छोटे चांद उनके महल में चकमते-दमकते-रंगराय, कस्तूरी राय, गतिसरस, गतिरंग राय, श्याम तरंग और रस प्रवीण. पर महाराजा प्रतापसिंह दीदार बख्श की चांदनी में ही नहाया किये और दीदार बख्श की तूती पूरे जयपुर में गूंजी.

महाराजा प्रताप सिंह के बाद उनका जवां मर्द बेटा गद्दी पर बैठा-जगतसिंह. जगत सिंह ने भी जयपुर में पलती हुई 'रघुकुल रीत' को निभाया. वैसे महाराजा जगत सिंह भी प्रणय-क्षेत्र में अपने पिता से उन्नीस नहीं बैठा. उसने भी तेरह रानियां और 18 खवास पातुरें रखी. उसके गले की माला की मोती थी—रूप रस, जैतराम, चंदन चर्चा, केसर चर्चा, कमलबदन, सरसराय, निरत विलास, गतिसरस, सुंदर विलास, गोगा, जैठी, सुख समाज, प्रभाती, प्रवीण राय, कुनणीभगतन, रसकपूर, भगतण, चंदा बीबी, ग्यानी पड़दायत और मगन राय. पर उसके प्रणय-अकाश में भी एक ही चंद्रमा दमका-रसकपूर. रसकपूर भगतण-रामावत साधुओं की जाति की रूप-शिखा. जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के काल में रामावत साधुओं की बेटियों ने गाने-नाचने का धंधा शुरू किया था. वैसे तो वे वैष्णव थे और उनके इष्टदेव हनुमान थे. सारंगी और तबले की तान पर उनकी रूपवान बेटियां नृत्य करती और फिर देह-व्यापार भी करने लगीं. सब कुछ करने पर भी वे खाने-पीने में पुरानी ही थीं.—मांस, मदिरा, यहां तक कि प्याज लहसुन और गाजर तक को नहीं छूती. ना जाने प्रकृति की अपार कृपा उन पर कैसे हुई कि उनके कुल में अप्सरा ही जन्म लेतीं. रस कपूर भी यौवन रस में डूबी हुई थी. संगमरमर जैसा रंग, पान से रचे जैसे ओंठ, चलती फिरती मछली जैसी. जब नाचती तो सैकड़ों विश्वामित्र एक साथ आह भरते और टीपदार आवाज में सुर भरती तो कानों में मिश्री भर जाती.

जगतसिंह तो उसके पहले ही वार में घायल हो गये थे और रस कपूर उनके ऊपर ऐसी छाई जैसे मरु भूमि में भूले भटके सावन के बादल छा जाते हैं. यहां रूप की आराधना के अतिरिक्त जगत सिंह ने विद्या और कला की भी परवरिश की. संगीत और नृत्य पर उसकी निजी कृपा बरसती रही. महाकवि पद्माकर भी जगतसिंह के दरबार में पुजे और काफी समय तक वहीं रहे. पदमाकर ही ने तो जगतसिंह से कहा था—

'जय जयपुर सुरपुर सहारा
जो जाहिर चहूं और

उसके पिता सवाई प्रतापसिंह ने बड़े परिश्रम से 'पोथी खाना' बनाया था जिसमें उनके रचे हुए बीस से अधिक ग्रंथ मौजूद थे. सन् 1778 में चारों वेदों की संपूर्ण प्रतियां एक फ्रांसीसी प्रतापसिंह के पोथी खाने से ही ले गया था. इसी फ्रांसीसी विद्वान लेफ्टिनेंट कर्नल एंटोनियों लुई हेनरी पोलियर ने सन् 1786 में अपना संग्रह ब्रिटिश म्यूजियम को दे डाला था.

महाराजा जगत सिंह ने पिता की विरासत में वृद्धि की. न जाने कहां कहां से पुस्तकें जुटायीं और पोथी खाना लबालब भर गया. और एक दिन पीनक में इसी जगतसिंह ने पुस्तकालय का आधा हिस्सा रस कपूर को दे डाला.

रस कपूर ने अपने रूप का शिकंजा कसना शुरू कर दिया था. जगतसिंह उसके हरेक इशारे पर नाचने लगा. वह दरबार में बैठती. जो रानियों को नसीब नहीं हुआ वह रुतबा उसने पाया. जगतसिंह इस कदर उस पर लट्टू हुआ कि उसने आधा आमेर ही रस कपूर के नाम कर दिया. उसे वह 'आधे आमेर की रानी' कहता था पर जयपुर के निवासी उसे 'जयपुर की नूरजहां' कहते थे. निःसंदेह वह, राजस्थान की धरती पर जन्मी, दूसरी नूरजहां ही थी. जब जगतसिंह हाथी पर बैठकर जयपुर की सड़कों से गुजरता तो रस कपूर उसके बगल में हौदे में बैठती. भाग्य की अपार कृपा पाकर रस कपूर को फिर अभिमान तो होना ही था. उसी के कहने पर उसके पालतू प्रेमी जगतसिंह ने अपने प्रधानमंत्री मिश्र शिवनारायण को आदेश दिये थे 'जब भी आप रस कपूर को सम्बोधित करेंगे तो उन्हें 'बाई जी' कह कर बोलेंगे.' उस दिन प्रधानमंत्री के दिल पर सियाह काला सांप लोटा था. वह अंदर ही अन्दर मुस्कराया 'घमंड ही तो सर्वनाश का सूचक होता है, शिव नारायण. रावण जैसा पराक्रमी भी घमंड में ही मारा गया. इसके घमंड को और पानी दो. नाश का पेड़ उगाओ, नाश होने ही वाला है.' और फिर एक और शिगूफा खिला. राजपूत सरदारों और जागीदारों को भी आदेश मिला, "रस कपूर को वही आदर दिया जायेगा जो आप लोग रानियों को देते हैं." तब खलबली मची थी. मूंछों पर ताव देने वाले सरदारों के हिये में फिर ज्वालामुखी फूटी थी. और फिर जगतसिंह जब किसी दरबार या महफिल में जाता तो बगैर रसकपूर के जाता भी तो न था. पग पग पर सरदारों को मन मसोस कर खून का घूंट पीना पड़ता था. फिर उन्हीं सरदारों के बीच एक दमदार सरदार उठा दूणी का राव-चांद सिंह. और एक दिन उसने एक दिन खुलकर सरदारों को भड़काया. रस कपूर की अवहेलना की. अब जगतसिंह को पता चला कि उसने चिढ़कर राव चांद सिंह पर उसकी जागीर की चार साल की आय का जुर्माना कर दिया जो लगभग दो लाख रुपया होता था. जगतसिंह ने तभी बर्रों के छत्ते में हाथ डाल दिया था. दरबार में षडयंत्र सुलगने लगा पर अभी सही बेला नहीं आ पायी थी. राव चांद सिंह और मंत्री दीना राम बहुरा ने मिलकर जाल बिछाना शुरू कर दिया और तभी जिस समय का उन्हें इन्तजार था आ पहुंचा. राज्य की हालत भी उस समय पतली थी. माचेड़ी के राव ने तलवार की नोंक पर जयपुर का टुकड़ा भेद कर अपने लिये स्वतंत्र रियासत तराश ली थी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलवर. पिता के काल में लड़ी तुंगा की लड़ाई और बार-बार मराठों की चौथ की घौंस ने भी जय मंदिर का खजाना रीता ही कर डाला था. और तभी रसिक जगतसिंह के सामने किसी खवास के उदयपुर की सुंदरी राजकुमारी कृष्णाकुमारी का रूप बखान दिया. तब जगतसिंह कृष्णा कुमारी को पाने को बेचैन हो उठा था. और उसने उदयपुर के राना भीमसिंह को सुपाड़ी और पान भिजवा दिया. उधर जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने भी कृष्णा कुमारी का हाथ थामने की जिद ठान रखी थी. कृष्णा कुमारी की सगाई जोधपुर के महाराजा मीरसिंह से हो चुकी थी पर अभाग्यवश वह विवाह से पहले ही मर गया. तब मानसिंह ने दावा किया कि कृष्णा कुमारी को जोधपुर में ही ससुराल बनानी पड़ेगी—मीरसिंह गया तो क्या उसकी जगह जोधपुर का महाराजा मानसिंह जो आ गया है. फिर सिंधिया और हिमायतियों का जोर शुरू हुआ.

सिंधियां और होल्कर ने जोधपुर का साथ दिया तो जयपुर के जगतसिंह ने अंग्रेज सेनापति लार्ड लेक का दामन पकड़ा. तीन हजार योद्धाओं के साथ चला था जगतसिंह और उसे रोकने चल पड़ा था जोधपुर का मानसिंह. फिर युद्ध रंग पर आया था. मराठी सहायता रखीदी जाने लगी और फिर अमीर खां पिंडारी भी तो अपने लुटेरे पिंडारियों को लेकर मधु-मक्खियों की तरह भनभना रहा था. किसी ने ठीक ही कहा है कि जब दो सांड लड़ते हैं तो खेत का ही नुकसान होता है. जयपुर और जोधपुर के इन सांडों ने राजस्थान की धरती खरोंच डाली. राज्य कोश के खजाना तेजी से खिसकने लगा था. मराठों, अंग्रेजों आर पिंडारियों ने अपनी दुकानें सजा ली थीं—सोना चांदी दो और हमारी सेना की मदद लो. और फिर उस दुष्ट अमीर खां पिंडारी ही ने तो महाराणा भीमसिंह को सलाह दी थी—'कृष्णा कुमारी के हाथ में जहर का प्याला दे दो. बस यही एक चारा है.''

और गुलाब सी महकती कृष्णा कुमारी जहर पीकर सो गयी. फिर जोधपुर और जयपुर के दूल्हे सर लटकाये हुये वापस आये थे. कृष्णाकुमारी को पाने की होड़ बड़ी मंहगी पड़ी. क्योंकि तभी तो उस बेईमान अमीर खां ने थके मांदे इन राजपूतों पर हमला किया और दोनों को ही जी भर कर लूटा.

कृष्णाकुमारी-कांड ही रस कपूर के दुर्भाग्य का कारण बना. जयपुर के सरदार लोग थोथी राजपूती जिद के कारण टूट चुके थे. और जब वे मुंह लटकाये हुए जयपुर आये तब उन्हें घरेलू शत्रु रस कपूर का खयाल उठ आया. तब तक तो रानियां भी उनके साथ षडयंत्र में मिल चुकी थी. एक बार फिर आगे भड़की. अबकी बार तो और भी खतरनाक बन गई थी लपटें. सरदारों और मंत्रियों वे अबकी बार और ही बीड़ा उठाया था—'जगतसिंह को गद्दी से उतारो.'

जगतसिंह भाग्य के दोराहे पर असहाय सा खड़ा था. और तभी उसके नमक हलाल सलाहकारों ने उससे कहा 'सिर्फ एक घर बचा है महाराज और एक ही मोहरा. मोहरा तो पिट जायेगा पर शह बच जायेगी.'

और उन्होंने इस मोहरे को उसके घर से उठाया और दूसरे घर में बैठा दिया. हां-रस कपूर को ड्योढ़ी के 'रस विलास' से उठाकर नाहरगढ़ के किले में बैठा दिया. इस काम में दूणी के राव चांद सिंह और मंत्री दीनाराम बहुरा का मुख्य प्रयास था. उन्होंने जगतसिंह के कान भरे थे— 'रस कपूर केवल आप की ही नहीं है, और भी कृपा-मात्र हैं उसके. जगतसिंह पर प्यार उढ़ेलनेवाली रस कपूर को दुश्चरित्र करार करके ही नाहरगढ़ के किले में बंदी बनाया था.

जयपुर राज्य पर अंकुश तानने वाली, आधे आमेर की रानी', जयपुर की नूरजहां का अंत भी दुखद हुआ—जहांगीर की नूरजहां जैसा. जगतसिंह फिर उससे भी मिलने तक नहीं गया और नाहरगढ़ के उस किले में ही रस कपूर घुट घुट कर मर गयी. □

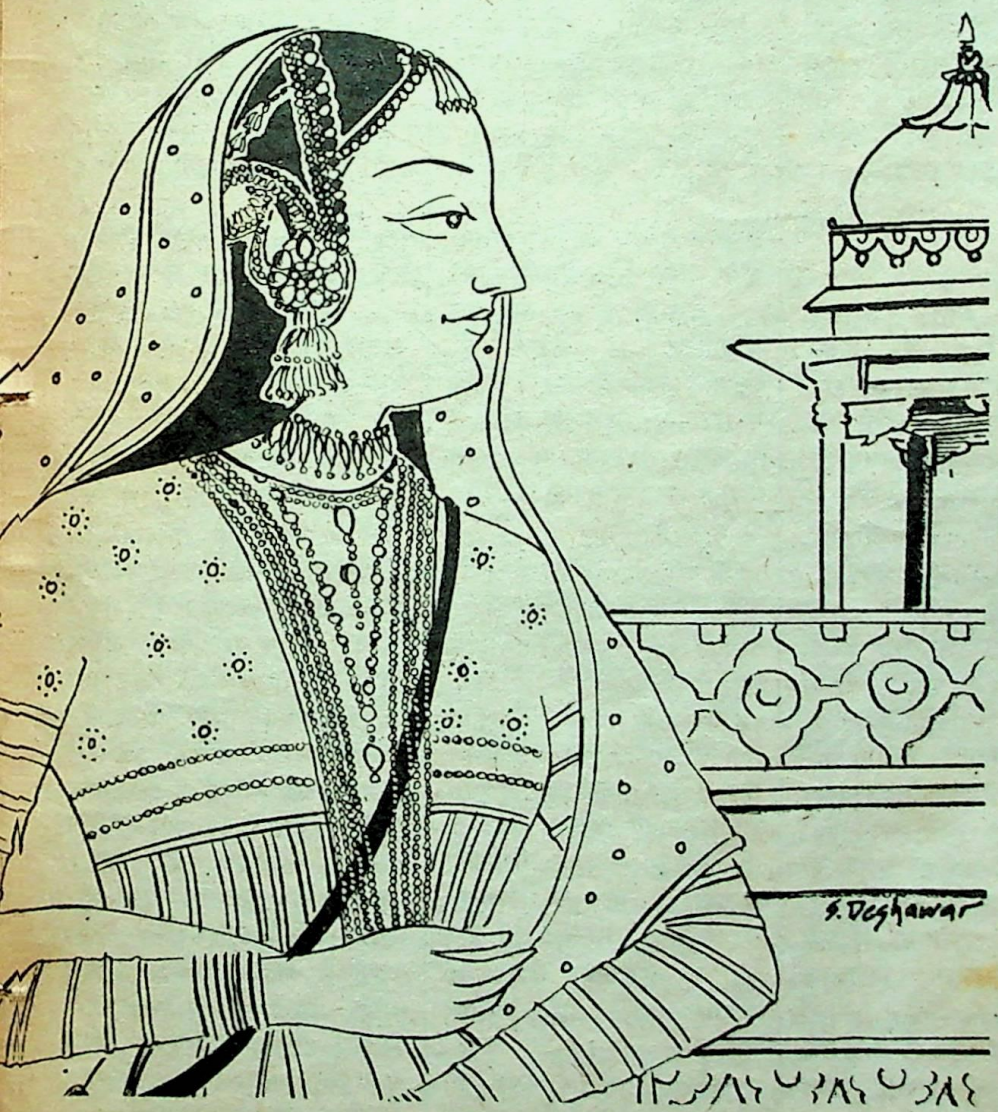

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पौद

बावजूद इसके

कलावंतीसिंह सुमन, रांची

पहले तो यह मालूम नहीं था कि जो कुछ लिख रही हूं वह साहित्य है. आत्म-संतुष्टि के लिये लिखती थी. जिन आस्थाओं को टूटते देख टूटन का दर्द, बेचैनी और उससे उपजा आक्रोश रचनाओं में उतर आता था वे आस्थाएं साहित्यिक क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था को देखकर और टूटीं.

वादों की राजनीति भी अब मिटनी चाहिये. मैं कोई वाद नहीं जानती, न ही किसी कला या उसके सिद्धांत को पहचानती हूं. मेरी कसौटी मेरी आत्मा होती है वह जिसे परखती है, स्वीकार करती है, उसे अपने में आत्मसात कर लेती है, उसे सींचती है. धीरे-धीरे वह किंतु विस्तार पाता है और तब कागज पर उतर जाता है अपना आकार लेकर. रचनाप्रक्रिया की वास्तविक ईमानदारी यही है.

इस सबके बावजूद नयी पौद यह जानती है कि जो सचमुच प्रतिभाशाली है वह अपने तेज से समस्त कालिमा को पछाड़कर दिवाकर-सा आलोकित होगा ही. विसंगतियों के प्रति अब उसके पास रचनात्मक रोष के साथ एक सकारात्मक आस्था भी है.

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत. ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो 'नयी पौद' की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित 300 शब्दों में लिख भेजिए. लिफाफे पर यह कूपन चिपकाना न भूलें.

'नयी पौद' स्तंभ
सारिका
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

कल हमारा है

अभयकुमार गोयल, औरंगाबाद

तुलसी का मानस तब पढ़ना शुरू कर दिया जब केवल पढ़ना पढ़ना ही सीखा था. शुरू में अर्थ नहीं समझता था, धीरे-धीरे समझने लगा था. मानस ने मुझमें साहित्य के अध्ययन की रुचि पैदा की. बाद में बहुत कुछ पढ़ा भी. पिछले कुछ वर्षों में हमारे नैतिक मूल्यों में तेजी से जो ह्रास हुआ है उससे लिखने छटपटाहट महसूस हुई.

क्या लिखना चाहता हूं? वही जो हमारे चारों तरफ घट रहा है ताकि आने वाली पीढ़ी के लिए वह एक दस्तावेज की तरह काम आये. क्यों लिखना चाहता हूं? शायद मैं भी नहीं जानता, शायद लिखकर हल्का महसूस करता हूं. माना आज हमारा नहीं है, पर हमें विश्वास है कल हमारा होगा ही.

प्रारंभ कहां से करूं?

नरेंद्रसिंह पटेल, बिदिशा

जब समाज की विसंगतियों एवं बिषमताओं को देखता हूं, तो मन आंदोलित हो उठता है. वर्तमान समय में समाज बाहर से सभ्य एवं पुरातन काल से विकसित दिखता है. परंतु समाज अंदर से काला कलुषित हो चुका है.

गरीबों के मसीहा दिखने-वाले राजनीतिज्ञों के महलों की नींवें गरीबों के खून-पसीने से निर्मित हो रहीं हैं.

बस इसी तरह की बातें मन-मस्तिष्क को हिलाकर रख देतीं हैं. कुछ कर गुजरने की आकांक्षा जाग्रत होती है. मंन करता है जादू की छड़ी घुमाकर, सबको सत्यता, समता एवं समानता का पाठ पढ़ा दूं. इसलिए लेखन के माध्यम से क्रांति लाना चाहता हूं.

कठिनाई केवल एक है. लेखन प्रारंभ कहां से करूं एवं कैसे करूं. भावावेश में आकर कहानी एवं लेख का सृजन कर लेता हूं. एवं किसी भी पत्रिका के लिए प्रेषित कर देता हूं. लेकिन कुछ दिनों बाद रचना संपादक जी के 'धन्यवाद एवं खेद सहित' वापस आ जाती है. बस, निरशा घेर लेती है और आगामी रचनाएं अधूरी ही रह जाती हैं.

धुंधलका कब हटेगा?

मनोरमा शर्मा, अमरोहा

कभी कभी बहुत इच्छा होती है मन में पनपते माहौल को विस्तार से उतार देने की. अंतर्मन में बैठे रहस्यों, स्वयं भोगी अनुभूतियों को उद्घाटित करने की. और मैं मानती हूं कि अच्छे साहित्य के पठन-पाठन से ही मुझ में यह समझ-बूझ आयी है. बहुत मन करता है अपने चारों ओर पनपती अमानवीय भावनाओं के परिणामस्वरूप अपने मन में उमड़ती घुमड़ती अनुभूतियों को समेटकर शब्दों का सुंदर संसार रच देने की पर जब लिखने बैठती हूं तो सब भ्रमित हो जाता है. स्पष्ट आकर बन ही नहीं पाते. अभिव्यक्ति की निरीहता से सारी कसमसाहट ढीली पड़ जाती है. अच्छा साहित्य ज्ञान, बुद्धि, विवेक को विकसित करता है भावनाओं को प्रगाढ़ता देता है. लेकिन लिखना नहीं सिखा सकता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेडुसा

ग्रीक पौराणिक कथाएं एक ओर प्रेम और वीरता की तो दूसरी ओर ईर्ष्या, द्वेष, सत्ता और प्रतिष्ठा की ऐसी कहानियां हैं जो मानवीयता के प्रत्येक पक्ष और स्वभाव को उजागर करती हैं. भारतीय पौराणिक कथाओं में जिस तरह इंद्र श्रेष्ठ और शक्तिशाली, कामुक और डरपोक है, किसी के, कैसे भी संकल्प और तपस्या से उसका सिंहासन डगमगाने लगता है... ठीक इसी तरह ग्रीक पौराणिक कथाओं में ज्यूस सर्वशक्तिमान होने के साथ-साथ डरा हुआ है. वह अत्यधिक कामुक है. उसकी संतानें इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं. इंद्र के दरबार में सुंदर अप्सराओं की भरमार है तो ज्यूस के दरबार में अतीव सौंदर्य की स्वामिनी एफ्रोडाइट (वीनस) उपस्थित रहती है. इंद्र जहां अपने सिंहासन को सुरक्षित रखने के लिए उर्वशी, रंभा और मेनका के सौंदर्य जाल का लाभ उठाता है, वहीं ज्यूस की पत्नी हेरा ज्यूस के कामुक स्वभाव पर तो कोई प्रतिबंध नहीं लगा पाती पर उसके विपरीत ज्यूस की प्रेमिकाओं को दंडित करने में कोई कसर बाकी नहीं रखती.

जहां ज्यूस का प्रेम सुंदरियों और नव यौवनाओं पर प्रायः छलकता रहता है, वहीं वीर पुरुषों पर उसका क्रोध वज्र की तरह गिरता है. ज्यूस का कोपभाजन सर्वप्रथम मानव वीर प्रम्थ्यूस को होना पड़ता है. प्रम्थ्यूस को अद्‌भुत यातनापूर्ण दंड देने के बाद भी ज्यूस का क्रोध शांत नहीं होता. वह अपनी मानस पुत्री एथिनी के सहयोग से रोग दूर करने वाली तमाम औषधि युक्त जड़ी बूटियां पृथ्वी से चुरा कर ले जाता है, और उन्हें ओलिंपस पर उगा देता है.

विषकन्याओं के बैर-बाण

हरिप्रकाश त्यागी

प्रम्थ्यूस ओलिंपस से आग और अन्य उपहार लाकर मानव समाज को भेंट कर चुका था और अब चट्टान पर पड़ा दारुण पीड़ा का दंड भोग रहा था. उधर पृथ्वी पर मानव-समाज सुख और समृद्धि की ओर बढ़ रहा था, जिसका नेतृत्व प्रम्थ्यूस का भाई एपीमिथ्यूस कर रहा था. ज्यूस को यह सहन नहीं हुआ. क्योंकि पृथ्वी पर दुखदायी ठंड, भूख, रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु से उनका कोई संबंध नहीं था. पृथ्वी पर भी आलिंपस की तरह आनंद और प्रसन्नता थी... ज्यूस ने सोचा कि आग को स्वीकार करने वाला मनुष्य समाज भी अपराधी है. इसलिये इसको भी दंडित होना पड़ेगा. ज्यूस जानता था कि अभी तक स्त्री की रचना नहीं हुई. ज्यूस के सोचने भर की आवश्यकता थी कि देवताओं के सहयोग से श्रेष्ठतम रूप की स्वामिनी पंडोरा की रचना हुई, और उसे एपीमिथ्यूस को उपहार स्वरूप भेंट किया गया. प्रम्थ्यूस ने अपने भाई-एपीमिथ्यूस को चेतावनी दी थी कि ज्यूस के किसी भी उपहार को ग्रहण न करें. परंतु एपीमिथ्यूस ने पंडोरा को सहर्ष स्वीकार कर लिया. पंडोरा अपने साथ स्वर्ण की डोरी से बंधा एक स्वर्ण कलश भी लायी थी. पंडोरा और एपीमिथ्यूस सुखी और प्रसन्न जीवन बिता रहे थे. एपीमिथ्यूस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे एक पल को अलग नहीं होने देता. एपीमिथ्यूस उस दिन अपने मित्रों के साथ नाच रहा था. पंडोरा अपने कक्ष में अकेली थी. उसका ध्यान अपने साथ लाये स्वर्ण कलश पर पड़ा और उत्सुक्तावश उसे खोलने लगी. पंडोरा स्वर्णकलश की अंतिम गांठ खोल रही थी कि एपीमिथ्यूस नृत्यनिमंत्रण लेकर कक्ष में घुसा. अंतिम गांठ खुली और स्वर्ण कलश से निकल सहस्त्रों छोटे, छोटे पंखों वाले जीव कमरे में भर गये. इन विषाक्त जीवों ने एपीमिथ्यूस और पंडोरा को काटना शुरू किया. इनके विष से पंडोरा और एपीमिथ्यूस अचेत हो गये. कुछ विषाक्त जीव कक्ष से निकल बाहर खड़े मनुष्य समाज और एपीमिथ्यूस के दोस्तों को भी काटने लगे. फिर क्या था, वह सभी बेहोश होने लगे. वास्तव में ज्यूस ने इस कलश में रोग-व्याधि, वृद्धावस्था और मृत्यु को बंद करके पृथ्वी पर पंडोरा के साथ भेजा था.

इस तरह के ज्यूस के कामों का बराबर विरोध होता रहा. पृथ्वी में ज्यूस से अपने पुत्रों का प्रतिशोध लेने के लिए टॉरटॉरस के संसर्ग से भयानक पराक्रमी पुत्र टॉयफून को जन्म दिया. टॉयफून जब अपने विशाल पंख खोले, पर्वताकार भुजाएं लिये, मुंह से आग उगलता ओलिंपस की ओर बढ़ा, तो भयातुर देवता ज्यूस के साथ ओलिंपस छोड़ भागे. एथिनी को देव सम्राट की कायरता पसंद नहीं आयी. ज्यूस और टॉयफून फिर आपस में गुंथ गये. अंत में टॉयफून ने ज्यूस की हंसिया (जिससे उसने अपने पिता की हत्या की थी) छीन कर टॉयफून ने उसके शरीर की सभी शिराएं निकाल कर ज्यूस को अपंग बना दिया. वह अब अपनी आंखों की पुतली जिनसे वीरता और क्रोध बरसता था, हिला भी नहीं सकता था. टॉयफून ने ज्यूस की शिराओं को एक भालू की खाल में बंद कर एक गुफा में छुपा दिया, और उसकी चौकीदारी अपनी बहन डेलफिना को सौंप दी. डेलफिना अनेक सर्पों के पांव वाली भयानक विषधर युवती थी. नानास के अनुसार डेलफिना ज्यूस के स्नायु तंत्र की रक्षा नहीं कर सकी. ज्यूस के स्नायु-तंत्र कोलाने का भार कैडमस को सौंपा गया. कैडमस वीणा बजाता हुआ डेलफिना के पास आया. डेलफिना कैडमस के वीणावादन पर मुग्ध हो गयी. मुग्धावस्था में ही कैडमस ने वीणा के तारों के लिये ज्यूस की शिराएं मांगी, और चुरा कर ले गया. यह स्पष्ट है कि कैडमस की सहायता को आये अपोलो ने मुग्धावस्था में एक ही बाण से विषधर डेलफिना का काम तमाम कर दिया. ज्यूस के मरणासन्न शरीर को ओलिंपस पर लाया गया, जहां उसने दिव्य भोजन और पोषक पेय द्वारा पुनः शक्ति प्राप्त की. उधर टॉयफून को मृत्युलोक के विषाक्त फल खिलाकर शक्तिविहीन कर दिया.

समुद्र देवता पॉसायडन और एफीमीडिया के जुडवां पुत्र एलूडियस थे. वे सुंदर, शक्तिशाली और दैत्यकार थे. कम उम्र में ही एलूडियस भाइयों ने अपने को देवताओं से श्रेष्ठ मानना शुरू कर दिया. उन्होंने सबसे पहले युद्ध देवता एरीज के अस्त्र-शस्त्र छीन जंजीरों में बांध एक लकड़ी के बक्से में बंद कर दिया. देवता पॉसायडन के पुत्रों के विरुद्ध युद्ध नहीं करना चाहते थे. एलूडियस भाइयों ने देवताओं को और अपमानित करने के लिये ओलिंपस का घेरा डाल दिया. उनका विचार हेरा और आर्तेमिस के अपहरण करने का था. इस विचार को जान आखेट की

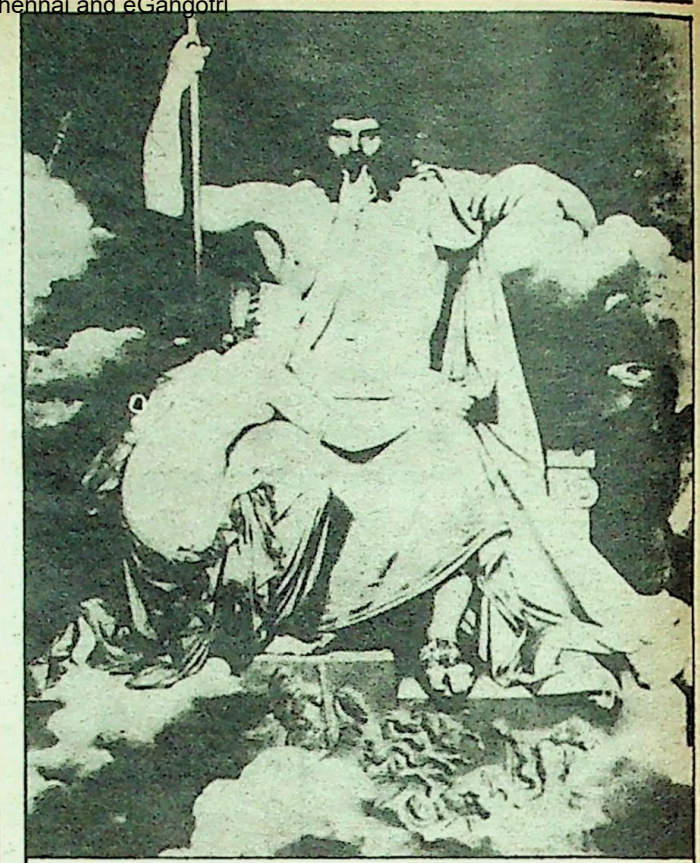

'ज्यूस और थेटिस' : अगस्त डोमेनीक इंग्रा

देवी आर्तेमिस आगे आयी और एलूडियस भाइयों में से एक ऊट्स को संदेश भेजा कि अगर वह ओलिंपस का घेरा उठा लें तो ऊट्स को वह नैक्सस द्वीप में मिलेगी. वह ऊट्स जैसा सुंदर पराक्रमी वीर पाकर अपने को धन्य समझेगी. ऊट्स को अपना स्वप्न साकार होता दीख पड़ा. जबकि दूसरा भाई एफीयल्टीज ईर्ष्या से जलने लगा. नैक्सस जाते हुए मार्ग में ही दोनों में झगड़े शुरू हो गये. एफीयल्टीज बड़ा होने के नाते पहले सहवास चाहता था जो ऊट्स को बिल्कुल पसंद नहीं था.

झगड़ा जब उग्रता की सीमा पर था तो दूध-सी उज्जवल, चंचल हिरणी-सी आर्तेमिस दिखाई दी. आखेट प्रेमी भाइयों ने भाले उठा लिए तभी आर्तेमिस गायब हो गयी दोनों भाई इधर उधर खोजते रहे. आर्तेमिस कभी यहां, तो कभी वहां दिखाई पड़ती. दोनों भाई अलग अलग दिशाओं में खोजते-खोजते आमने-सामने आ पहुंचे थे. आखिरकार बीच के कुंजों में आर्तेमिस खड़ी दिखाई दी. ऊट्स ने पूरी शक्ति से भाला फेंका. एफीयल्टीज ने भी ऐसा ही किया. आर्तेमिस अचानक गायब हो गयी. और दोनों भाईयों के भाले एक दूसरे का सीना पार कर गये. आर्तेमिस के साथ भोग कल्पना मात्र ही सिद्ध हुआ.

उस दिन वन में आर्तेमिस ही नहीं एरिस्टेयस का पुत्र एक्टेयॉन भी शिकार करता घूम रहा था. आर्तेमिस थक कर झरने में नहा रही थी. दुर्भाग्य-वश एक्टेयॉन भी इधर आ निकला, और छुप कर आर्तेमिस को देखने लगा. यह ऐसा अप्रतिम सौंदर्य या जिसे देवता भी नहीं देख सकते थे. आर्तेमिस को झाड़ियों में छुपे एक्टेयॉन का एहसास हुआ. आर्तेमिस ने पलट कर देखा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

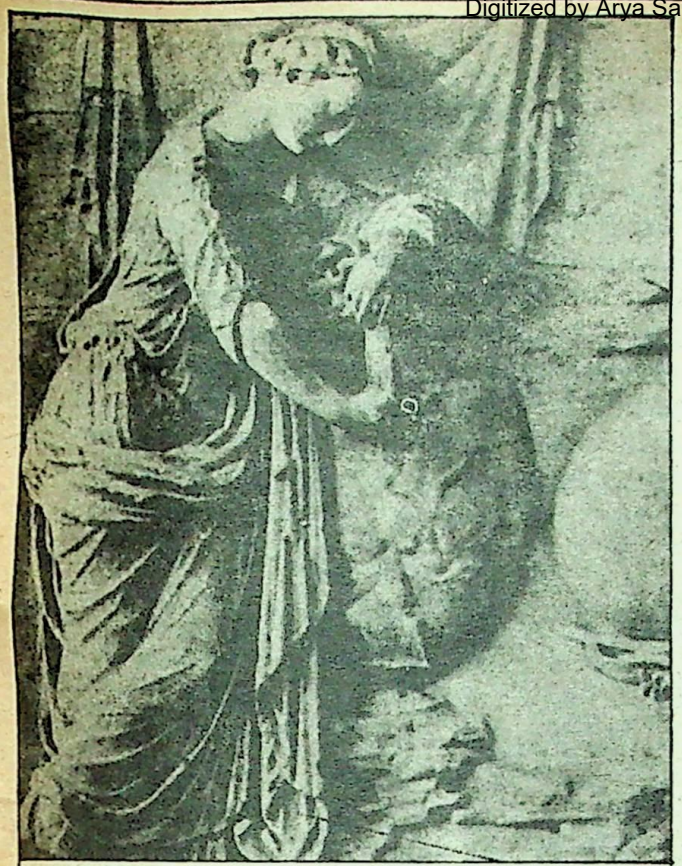

'पंडोरा' : ई.पू. छठी शताब्दी का मूर्तिशिल्प

एक्टेयॉन की आखों में भोग-लिप्सा तैर रही थी, और उसकी दृष्टि आर्तेमिस के सौंदर्य पर जमी थी. आर्तेमिस के घनुष-बाण दूर पड़े थे. अतः आर्तेमिस ने झरने के पानी को अपनी अंजलि में भरा मंत्र पढ़े और एक्टेयॉन के शरीर पर फेंकते हुए कहा, "जाओ, और संभव हो सके तो बताओ कि तुमने आर्तेमिस को नग्न अवस्था में देखा है." इधर पानी की बूंदें एक्टेयॉन के शरीर पर पड़ीं और उधर एक्टेयॉन पलक झपके ही बारहसिंगे में बदल गया. पीछे से आते एक्टेयॉन के पचास शिकारी कुत्तों ने उसे अपना शिकार बना लिया. एक्टेयॉन अपने शिकारी कुत्तों को यह भी नहीं बता पाया कि मैं ही तुम्हारा स्वामी हूं.

थीबी के राजा एंफियन की पत्नी निओबी के पास गर्व करने लायक संतान, सुख, समृद्धि और सौंदर्य सभी कुछ था.

एक बार निओबी ने अपोलो और आर्तेमिस की मां लिटो की पूजा में दखलदांजी की थी. लिटो हेरा के अतिरिक्त किसी को भी अपने समकक्ष नहीं मानती थी. लीटो के सम्मान में होने वाले एक उत्सव में नियोबी ने कहा, "दर-दर भटकने वाली बेघर बार लिटो की पूजा तुम क्यों कर रहे हो? उसके पास गर्व करने लायक है ही क्या? एक औरत-नुमा बेटा अपोलो और एक आदमी-नुमा लड़की आर्तेमिस. मेरे पास सात शक्तिशाली बेटे और सात रूपवान कन्याएं हैं. मेरे पास सातगुणा गौरवपूर्ण संपत्ति है."

एक पर्वत की चोटी पर बैठी लिटो ने निओबी के ये शब्द सुने. उसने अपोलो और आर्तेमिस को बुला भेजा. देखते ही देखते अपोलो के छः बाणों ने छः बेटों का काम तमाम कर दिया. आर्तेमिस ने महल में काम करती निओबी की छः कुमारियों को मौत के घाट उतार दिया. यह सुनकर पिता एंफियन ने आत्महत्या कर ली, और निओबी एक पत्थर की शिला में बदल गयी. अपनी बौद्धिक चतुराई से एक बेटा एमीक्लास और एक बेटी मैलीबोइया बच गयी. यानी निओबी की गौरवपूर्ण दुनिया लीटो के बेटे-बेटी अपोलो आर्तेमिस के कारण कुछ पल में ही बरबाद हो गयी.

अर्तेमिस की तरह ही ज्यूस की मानस-पुत्री एथिनी भी दंड देने में किसी से कम न थी. अखंड ब्रहमचर्य का पालन क़रने वाली एथिनी युद्ध के शस्त्रों सुसज्जित रहती. एथिनी का लालन-पालन ट्रिटन के यहां हुआ. ट्रिटन की एथिनी की उम्र की एक लड़की थी—पैलस. दोनों साथ साथ घूमती-फिरती खेलती-खाती. पर एक दिन दोनों में झगड़ा हो गया. झगड़ा इतना बढ़ा कि दोनों ने घनुष-बाण उठा लिये. एथिनी ने पैलस की हत्या कर दी. एथिनी ईर्ष्या में कुछ कम न थी. लिबिया में आर्कने नाम की एक लड़की रहती थी, जो कढ़ाई और बुनाई में सर्वश्रेष्ठ थी. जैसे ही एथिनी को पता चला उसने आर्कने से शर्त लगायी है कि वह उसकी बुनाई-कढ़ाई में दोष निकाल सकती है. आर्कने ने एक बड़े पर्दे पर कढ़ाई की, नीला सागर उस पर तैरता एक बलिष्ठ सफेद सांड, उस पर बैठी बिखरे बालों और हवा में लहराते अपने आंचल को समेटती भयभीत यूरोपे. काढ़े गये इस चित्र में कैलिस्टो की यंत्रणा और इओ की करुणा जनक कहानी उभर रही थी. एथिनी यह न देख सकी. उसने पर्दे को फाड़ कर टुकड़े-टकड़े कर दिये. और आर्कने को अनंत काल तक बुनते रहने का शाप दे दिया. फलस्वरूप आर्कने मकड़ी बन गयी, जो आज भी लगातार बुनती रहती है.

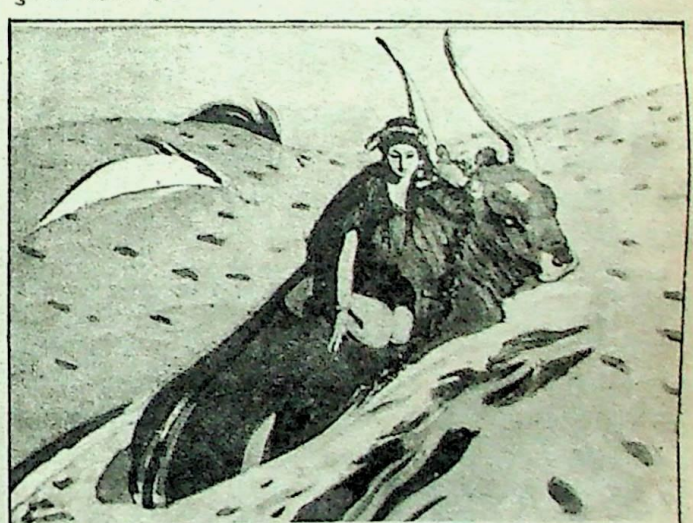

'यूरोपे का अपहरण' : चित्रकार वी. सेरोव

ज्यूस जलकन्या थेटिस पर आसक्त था. परंतु एक भविष्यवाणी (थेटिस से पैदा होने वाली संतान ज्यूस से अधिक शक्तिशाली होगी) के कारण ज्यूस को थेटिस के साथ संसर्ग का विचार छोड़ना पड़ा. हेरा ने जब ज्यूस के विरुद्ध षड्यंत्र किया था, तब थेटिस और एथिनी के सहयोग से ज्यूस बंधन मुक्त हुआ था. ज्यूस ने कहा कि वह थेटिस के विवाह में समस्त देवताओं के साथ उपस्थित होगा. थेटिस के विवाह के अवसर पर जब सभी सुंदर युवतियां मूंगे के महल में एक जगह उपस्थित थीं कि अचानक एक सेब आकर गिरा, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

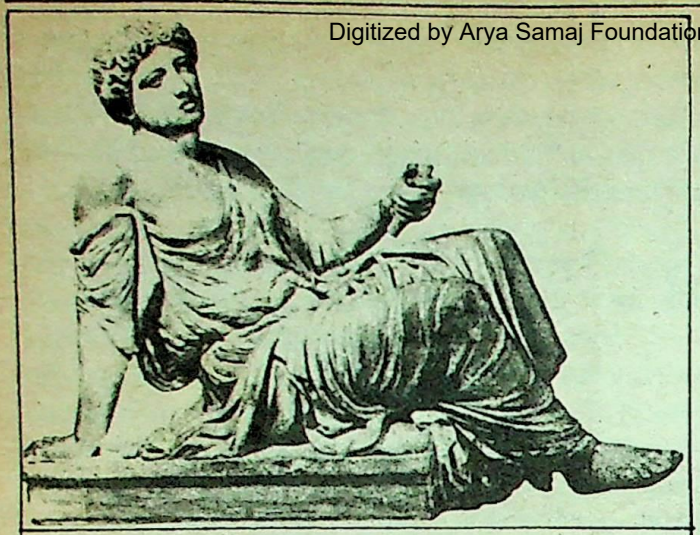

'एथिनी' : ई.पू. पांचवीं शताब्दी का मूर्तिशिल्प

भविष्यवाणी हुई, 'जो इस पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है वही इस फल को खाये' अपने अपने को सुंदर साबित करने की होड़ सभी युवतियों में लग गयी. परंतु इस सौंदर्य प्रतियोगिता के अंत में तीन ही बचीं. ओलिंपस की सम्राज्ञी हैरा, ज्यूस की मानसपुत्री एथिनी, तथा अतीव सौंदर्य की स्वामिनी एफ्रोडाइट, ज्यूस जूपिटर इस प्रतियोगिता का फैसला करने से बच गया. उसने कहा एड़ा पर्वत पर रहने वाला गडरिया पेरिस ही नारी-सौंदर्य का सच्चा पारखी है. अतएव वही निर्णय देगा. ज्यूस का संदेश और तीनों सुंदरियों को साथ लेकर संदेशवाहक हेमीज एड़ा पर्वत पर पहुंचा. सबसे पहले हेरा ने कहा, "परिस! अगर तुमने मुझे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया, तो मैं तुम्हें एशिया का स्वामी बना दूंगी. धन संपदा तुम्हारे पैरों में लौटेगी."

अब एथिनी की बारी थी. एथिनी ने कहा, " ओ पेरिस! अगर तुमने मुझे सर्वश्रेष्ठ सुंदरी घोषित कर निर्णय मेरे पक्ष में दिया तो मैं तुम्हें विश्व का सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्ति बना दूंगी. तुम्हारी कीर्ति विश्व में सब जगह फैलेगी."

अंत में एफ्रोडाइट आयी. प्रातःकालीन कोमल सरस समीर के झौके सी. पेरिस का रोम-रोम पुलकित हो उठा. नग्न एफ्रोडाइट पेरिस के इतना करीब आ गयी कि कभी-कभी उसके अंग अनायास ही पेरिस को छू जाते. कमल ही पखुड़ियों जैसे होठ हिले. कंठ से मधु मिश्रित शब्द पेरिस के कानों में पड़े, "पेरिस! तुम सा सुंदर युवक इस पूरे देश में नहीं है. मैं समझ नहीं पा रही कि तुम इस कठोर पर्वत पर चौपायों के बीच अपना यौवन क्यों बरबाद कर रहे हो. तुम्हारी एक झलक के लिए हजारों सुंदरियां अपना जीवन ध्वस्त करने को तैयार हैं. किसी सभ्य देश चले जाओ. मैं विश्वास दिलाती हूं कि विश्व की सबसे सुंदर रमणी तुम्हारी पत्नी होगी."

अनायास पैरिस का हाथ उठा और सेब अतीव सौंदर्य की स्वामिनी एफ्रोडाइट की हथेलियों में आ गया. एफ्रोडाइट तीनों लोकों की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी घोषित हुई. जाहिर है एथिनी चिढ़ गयी. एफ्रोडाइट ने अपना वादा पूरा किया. विश्व सुंदरी स्पार्टा के राजा मेनिलिएस की पत्नी हेलन पैरिस की अंकशायिनी बनी. पैरिस हेलन का अपहरण कर ट्राय ले गया. एथिनी ने स्पार्टा का साथ दिया. ट्राय और स्पार्टा वर्षों युद्ध की आग में झुलसते रहे. यहां तक कि हथियार कम पड़ गये. एथिनी अपने भाई हेरा के पुत्र हेफास्टस के पास हथियार लेने पहुंची. हेफास्टस को उसके चाचा पॉसायडन ने पहले ही उकसा दिया था. चूंकि एक तरह से एफ्रोडाइट पॉसायडन की बेटी थी. हेफास्टस ने एथिनी को गोद में लेना चाहा एथिनी हेफास्टस का आशय समझ गयी. दोनों में युद्ध हुआ. इस युद्ध में ही हेफास्टस का वीर्य एथेंस के पास जमीन पर गिर पड़ा. पृथ्वी को गर्भ रहा. पृथ्वी ने एरिकथोनियस नाम के बच्चे को जन्म दिया. और कहा कि इसका लालन-पालन एथिनी को ही करना चाहिए. एथिनी मान गयी. उसने बच्चे को एक बक्से में रखकर एथेंस के सम्राट सेक्राप्स की तीन पुत्रियों के हवाले कर दिया. उत्सुकता वश एक दिन सेक्राप्स की तीनों पुत्रियों ने इस बक्से को खोल कर देख लिया. वे भयभीत हो चीखने-चिल्लाने लगीं. और बदहवासी की हालत में महल में कूद कर आत्महत्या कर बैठीं. ऐसा क्या देख लिया था बक्से में? कहते हैं कि बच्चे एरिक्थोनियस के शरीर में पैरों की जगह दो बड़े-बड़े सांप थे.

'एफोडाइट' : लूव संग्रहालय में पांचवी शताब्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेलरफेन लीशिया पहुंचता है. लीशिया का राजा बेलरफेन को किमेरे को मारने का आदेश देता है. किमेरे का जन्म पृथ्वी से हुआ था. किमेरे का सिर शेर का, बांहें शेर के पंजों जैसी थी. शरीर बकरी का और पूंछ जहरीले नाग जैसी थी. इसका जन्म मैडूसा के मरते समय जो रक्त की बूंदें पृथ्वी पर गिरी थीं, उनसे हुआ था. एथिनी बेलरफेन के स्वप्न में आती है. और पैगासस नामक दिव्य घोड़े को वश में करने के लिए एक लगाम देती है, जिस पर चढ़कर बेलरफेन नाग जाति के इस विचित्र जंतु किमेरे का मार डालता है.

सेरिफॉस का राजा पॉलिडिकटीज, डैनी के रूप पर आसक्त था. डैनी ज्यूस के संसर्ग से परसियस को जन्म दे चुकी थी. डैनी और परिसयस पॉलिडिकटीज के कृपा पात्र थे. डैनी पॉलिडिकटीज के अनेक विवाह प्रस्तावों को परसियस की देखभाल का बहाना बना ठुकरा चुकी थी. परसियस जब युवा हुआ तो पॉलिडिकटीज ने दोनों का अपमानित करने के लिए एक समारोह आयोजित किया, जिसमें परसियस खाली हाथ आया. पॉलिडिकटीज ने भरी सभा में कहा "हमारे यहां कुछ ऐसे विदेशी युवा हैं जो हमारे टुकड़ों पर पलना अपना गौरव समझते हैं."

परसियस इस व्यंग्य-वाक्य को न सह सका. उसने कहा, "इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरे पास सम्राट को देने के लिए कुछ नहीं. परंतु मुझे अपने श्रम और शक्ति पर विश्वास है. सम्राट आदेश दे जो उन्हें चाहिए वह उनके चरणों में होगा. "असभ्य लड़के तुझे इतना ही घमंड है तो जा मेरे लिए गारगन मैडूसा का सिर लेकर आ."

गारगन बहिनें यूरियल एथेनो और मैडूसा तीन बहनें थीं. अपूर्व सुंदरी मैडूसा एक बार अपने रूप की तुलना एथिनी से कर बैठी. एथिनी ने श्राप दे डाला. मैडूसा का दूध सरीखा रंग काले रंग में बदल गया. एड़ी तक लहराती मैडूसा की स्वर्णिम रेशम-सी केश राशि भयंकर काले नागों में बदल गयी. चांद-सा सुंदर चेहरा इतना डरावना हो गया कि जो उसकी तरफ देखता रक्त जम जाता और वह पत्थर बन जाता. मैडूसा का वध करना किसी

'आर्तेमिस' : ई.पू. पांचवीं शताब्दी

के वश में न था. पर परसियस पॉलिडिक्टीस को वचन दे चुका था. पॉलिडिक्टीज और परसियस की बातचीत एथिनी सुन चुकी थी. मैडूसा से एथिनी की पुरानी शत्रुता थी सो एथिनी परसियस की सहायता को आ पहुंची. उसने परसियस से कहा मैडूसा के पंख हंस जैसे सफेद हैं, जबकि अन्य बहनों के पंख गिद्ध के समान. एथिनी ने पीतल का चमकता हुआ एक दर्पण देते हुए कहा कि याद रहे मैडूसा की आंखों में अद्भुत भयानक शक्ति है. तुम उसकी मृत्यु के बाद भी उसकी तरफ नहीं देखोगे. इस दर्पण में देखकर घातक वार करोगे.

आकर्षक गीत

ओडिसियस जब इथाका के लिये चला तो सेसी ने अपनी मायावी शक्ति से संकटों को देख लिया और ओडिसियस को आगाह कर दिया. ओडिसियस का जलयान सायरन बहनों के द्वीप पहुंचा. सायरन बहिनों के मुख स्त्रियों जैसे परंतु शरीर चिड़ियों जैसा था. इनके पंख भी थे परंतु ये उड़ नहीं सकती थीं. एकिलो और फारकीज इनके माता-पिता थे. हेडीज ने जब पर्सीफनी का अपहरण किया तो इन्होंने पर्सीफनी की सहायता नहीं की. ये बहनें बहुत अहंकारी थीं और किसी के भी सामने अपना सिर नहीं झुकाती थीं. इस कारण अफ्रोडाइट ने इनका रूप बदल कर रख दिया था. ये बहनें भयानक गीत गाती थीं जिसकी धुन और बोल इतने आकर्षक होते कि अपने आप पर नियंत्रण रखना मुश्किल होता. यात्री इनकी ओर खिंचे चले आते और समुद्र में डूब जाते. ओडिसियस ने जलयान के सायरन द्वीप पहुंचने से पहले अपने नाविकों के कान मोम से बंद कर दिये. ओडिसियस का जलयान जब सायरन द्वीप पहुंचा तो ओडिसियस ने स्वयं गीत सुनाना चाहता था. गीत की आवाज ओडिसियस के कानों में पड़ी वह मचल उठा चीखना चिल्लाता रहा पर उसकी चीख ने नहीं सुनी. जलयान सायरन द्वीप से पार निकल गया. अपनी इस हार को देख कर सायरन बहनों ने समुद्र में कूद कर आत्महत्या कर ली. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परसियस जब चट्टान पर पहुंचा तब मैडूसा बेसुध सोयी पड़ी थी. चांदनी में बेहोश पड़ी विकराल मैडूसा को देख कर परसियस का खून जमने लगा. परसियस ने दर्पण में देख कर सधा हुआ वार किया और एक झटके में गिर धड़ से अलग हो गया. परसियस ने सिर को एक चमड़े की थैली में रखा और चल दिया. पॉलिडिक्टीज समझ रहा था कि गारगन देश से परसियस का लौटना असंभव है. परसियस को राज दरबार में लौटा देख कर पॉलिडिक्टीस ने पूछा, "ले आये मैडूसा का सिर." परसियस ने थैले से मैडूसा का सिर निकाल अपनी गर्दन पीछे घुमा पॉलिडिक्टीज के सामने फेंक दी. देखते ही देखते सभी दरबारी पत्थर बन गये.

थीब्ज के राजा लॉएस का विवाह आयोकास्ट से हुआ. काफी समय बीतने पर जब संतान हुई तो देव मंदिर में प्रार्थना करने पहुंचे. वहां भविष्यवाणी हुई कि तुम्हारा पुत्र तुम्हारा हत्यारा होगा, और अपनी मां से विवाह कर देश को अपमानित करेगा. लॉएस और आयोकास्ट यह जानकर दुखी मन से महल में लौटे. उन्होंने बच्चे के हाथ पैर बांध एक बक्से में बंद कर समुद्र में फेंक दिया. बक्सा बहता-बहता सियान के राजा पॉलिबस की निसंतान रानी पेरीबोइया के हाथ लगा. पेरीबोइया ने प्रसव-वेदना का नाटक किया और प्रचारित करवा दिया कि उसको पुत्र की प्राप्ति हुई है. सूजे पैरों वाला थीब्ज का राजकुमार ईडिपस धीरे-धीरे युवा हुआ. उसे धीरे-धीरे इस बात का पता चल गया कि वह पिता की हत्या करेगा वह पॉलिबस को ही अपना पिता मानता है. सो उसने महल छोड़ दिया. इधर-उधर खाक छानता ईडीपस थीब्ज पहुंचा. रास्ते में उसने एक बूढ़े की हत्या की. थीब्ज पर उन दिनों रानी आयोकास्ट का भाई क्रियों राज कर रहा था. थीब्ज उन दिनों भयानक राक्षसी स्फिंकस से भयाक्रांत था. वह दानवी टायफून या किमेरे की संतान थी. इसका सिर स्त्री का और धड़ शेरनी का था. पूंछ की जगह हजारों सांप थे और कंधों पर बाज जैसे शक्तिशाली पंख. वह एक उंचे पर्वत की चोटी पर बैठी रहती थी और आने जाने वाले से एक प्रश्न करती. प्रश्न का उत्तर न पा कर उसे चट कर जाती. स्फिंकस के डर से कोई बाहर नहीं निकलता था. सो व्यापार चौपट हो गया और फसलें तबाह हो गयीं.

स्फिंकस ने घोषणा की थी कि जब उसे उसके प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा तो वह थीब्ज छोड़कर चली जायेगी. थीब्ज के काफी दुस्साहसी युवक स्फिंकस का शिकार बन चुके थे!

आयोकास्ट के भाई क्रियों ने घोषणा की कि जो इस स्फिंकस से थीब्ज को छुटकारा दिलाएगा और महारानी आयोकास्ट उससे विवाह करेगी.

ईडिपस के लिए जीवन व्यर्थ था. क्रियो की घोषणा सुन ईडिपस ने थीब्ज के लिए जीवन की बलि देना उचित समझा. वह उस पर्वत की ओर बढ़ चला, जहां स्फिंकस बैठी थी. सांय-सांय करता पथरीला इलाका, चारों ओर स्फिंकस द्वारा मारे गये प्राणियों की हड्डियों के ढेर स्फिंकस की हुंकार ही कभी-कभी पूरे सन्नाटे को भंग करती. ईडिपस सहज भाव से उस पहाड़ की तलहटी में पहुंचा जिस पर स्फिंकस बैठी थी. ईडिपस ने पूरी ताकत से चिल्लाकर कहा, "पूछो क्या सवाल है." स्फिंकस ने अपनी गर्दन घुमायी. भयानक लाल लाल आंखें चमक उठीं. ईडिपस पर दृष्टि गड़ा स्फिंकस ने पूछा, "वह कौन-सा प्राणी है जो सुबह चार पैरों पर दोपहर में दो पैरों पर और शाम को तीन पैरों पर चलता है, वह प्राणी तो मनुष्य है जो अपने जीवन की प्रातः वेला बचपन में दो हाथों और दो पैरों पर चलता है. यौवन की दोपहरी में दो पैरों पर तथा वृद्धावस्था की सांझ में एक छड़ी के सहारे तीन पैरों पर चलता है."

स्फिंकस ने भयानक चीत्कार किया. उसने अपनी हार मान ली और उड़कर फीशियम पर्वत की घाटी में गिर कर दम तोड़ दिया.

ट्राय ने दस वर्षों तक चलने वाले युद्ध से तंग आकर एथिनी को एक षड्यंत्र सूझा. उसने इस षड्यंत्र की जानकारी ओडिसियस को दी जिससे ट्राय की हार निश्चित हो गयी. वह था विशालकाय लकड़ी का घोड़ा जिस पर लिखा था, "अपनी सकुशल सुरक्षित यात्रा के लिए ग्रीक वासियों की एथिनी को भेंट." यह घोड़ा ट्राय नगर की सीमा पर खड़ा था नगर वासी चाहते थे कि इसे खींच कर नगर में ले जायें. घोड़े को नगर में ले जाने का विरोध संत लायकून कर रहा था. उसने कहा, "यह सब झूठ है. मुझे. तो इस कहानी में कुछ चाल दिखाई देती है."

अगले दिन लायकून जब समुद्र देवता के लिए एक सांड की बलि देने की तैयारी कर रहा था तो समुद्र से निकलकर दो भयंकर सांपों ने लायकून के दोनों लड़कों को अपनी चपेट में ले लिया. लायकून कटार ले कर झपटा, लेकिन सांपों ने उसे भी अपनी कुंडली में कस लिया. देखते-देखते तीनों वहीं ढेर हो गये. कहते हैं एथिनी ने ही लायकून को दंड देने के लिए इन भयंकर सांपों को भेजा था. □

स्किला

स्किला बहुत सुंदर थी. नदी का देवता ग्लाकस उसके रूप के आकर्षण में फंस गया. ग्लाकस का स्किला के आकर्षण में जाना ईर्श्यालु एंफीत्राइत को पसंद नहीं आया. उसने नदी में कुछ विषैली जड़ी बूटियां मिला दी. नदी में नहाते समय स्किला का रूप परिवर्तन हो गया. वह अब छह कुत्तों के मुंह वाली और बारह हाथों पैरों वाली भयानक दानवी बन गयी, जिसकी पूंछ में विषैले सांप फुंफकारते थे.

वह दो चट्टानों के मध्य से गुजरने वाले समुद्र के मुहाने पर बैठी रहती, और जलयानों के गुजरते समय यात्रियों की हड्डियों का चूरा बनाकर निगल जाती. स्किला से बचना मुश्किल था. ओडिसियस का यान जब इधर से गुजरा तो स्किला ने अपने छह मुंह से छह नाविक पकड़ लिये. ओडिसियस उनको तड़पते झटपटाते देखते रहने के अलावा कुछ न कर सका, स्किला इन छह नाविकों को निगलने में लगी हुई थी। तभी ओडिसियस का यान स्किला की सीमा से बाहर निकल गया □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतलाल नागर को 'डा. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान'

राजभाषा विभाग, बिहार सरकार के तत्वावधान में, 22 मार्च, 1988 को हिंदी के तपःपूत साहित्यकार पद्मभूषण श्री अमृतलाल नागर को 'डा. राजेंद्रप्रसाद शिखर सम्मान' से सम्मानित किया गया. एक लाख रुपये का यह सर्वोच्च पुरस्कार बिहार के मुख्यमंत्री सुकवि श्री भागवत झा आजाद ने चादर एवं बोधिवृक्ष के प्रतीक के साथ श्री नागर जी को सादर समर्पित किया.

रवींद्र भवन, पटना में आयोजित इस सारस्वत समारोह का प्रारंभ मंगलगान से हुआ. राजभाषा निदेशक एवं हिंदी के स्तभ हस्ताक्षर डा. भगवती शरण मिश्र ने आगत महानुभावों का स्वागत करने के क्रम में नागर जी के विशाल साहित्यिक व्यक्तित्व के प्रति हिंदी-जगत की श्रद्धा-भावना को मार्मिक अभिव्यक्ति दी. उन्होंने कहा कि आज हिंदी को जो विश्वव्यापी प्रतिष्ठा मिल रही है, उसमें नागर जी का योगदान स्पृहणीय है. इनकी जीवनधारा निष्काम कर्म और अनासक्त भक्ति से संभरित है. इन्होंने अतीत और वर्तमान की सांस्कृतिक गरिमा के समन्वय का सफल प्रयत्न किया है.

इस अवसर पर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए मुख्यमंत्री श्री भागवत झा 'आजाद' ने कहा कि शिखरस्थ कथाशिल्पी श्रीनागर ने अपनी कालजयी कृतियों के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिंदी को बहुमुखी बलिष्ठता प्रदान की है और हिंदी-वाङ्‌मय की अद्‌यतन आहटों से परिचित होने के लिए श्रीनागर की कृतियों का पारायण परम अनिवार्य है.

अपने अध्यक्षीय भाषण में बिहार सरकार के मानव संसाधन विकास एवं राजभाषा मंत्री डा. नागेंद्र झा ने हिंदी भाषा और साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए साहित्यकारों के प्रति समाज एवं सरकार के दायित्वों की विस्तृत चर्चा की और कहा कि साहित्यकारों का सम्मान करना किसी भी सुसंस्कृत समाज का सर्वोपरि कर्तव्य है.

बिहार हिंदी प्रगति समिति के अध्यक्ष एवं सुप्रसिद्ध समीक्षक डा. कुमार विमल ने श्री नागर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्षों को उजागर करते हुए कहा कि श्री नागर सर्जनात्मक प्रतिभा के शुभ्र पुरुष हैं.

पुरस्कार-ग्रहण करने के पश्चात् अपने भाषण के दौरान श्री नागरजी ने बिहार के सारस्वत अतीत का अत्यंत कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया और कहा कि साहित्यकारों को जन-मन की धड़कनों का सफल चितेरा होना चाहिए.

—कुणालकुमार

आधुनिकता का सही अर्थ

पिछले दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग और हिंदी अकादमी के संयुक्त तत्वाधान में 'छायावादी काव्य परंपरा और आधुनिकता का संधिकाव्य' विषय पर दो दिवसीय सेमिनार आयोजित किया गया. इस अवसर पर छायावादी काव्य को आधुनिक हिंदी काव्य की महत्वपूर्ण धारा बताते हुए प्रो. तारकनाथ बाली का कहना था कि इसके ऐतिहासिक महत्व और संवेदना की व्यापकता की उपेक्षा हुई है. यही नहीं, छायावाद का समर्थन भी गलत पक्षों को लेकर किया गया है. छायावाद का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि छायावादी काव्यधारा संकीर्णता का अतिक्रमण कर मानवता वादी धारा को मजबूत करती है.

सेमिनार का उद्‌घाटन करते हुए प्रो. मुनिस रजा ने किसी भी देश या साहित्य-परंपरा के लिये आधुनिकता के समुचित समन्वय को जरूरी बताते हुए कहा कि विकास परंपरा ही आधुनिकीकरण का नाम है.

अध्यक्ष प्रो. विजयेंद्र स्नातक ने छायावाद के प्रमुख चार कवियों के काव्य के संदर्भ में आधुनिकता और परंपरा के समन्वय की चर्चा की. हिंदी विभाग के प्रमुख प्रो. तारकनाथ बाली ने स्पष्ट किया कि छायावादी काव्य के व्यापक परिदृश्य से हम परिचित नहीं हो पाये हैं. छायावादी काव्य विश्वयुद्धों के बीच का काव्य है. इसकी हर श्रेष्ठ रचना के मूल्यों में युद्ध की भयावहता है.

दूसरे सत्र में प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की अध्यक्षता में दो आलेख पढ़े गये. 'छायावाद में आधुनिकता का पूर्वाभास' विषय पर रवींद्र भ्रमर का आलेख आधुनिक हिंदी कविता को छायावाद से ही प्रारंभ मानता प्रतीत हुआ.

दूसरे दिन डा. रमेश कुंतल मेघ की अध्यक्षता में प्रातः कालीन सत्र प्रारंभ हुआ. मुख्य अतिथि श्री गांगडे ने अपने भारत के गौरव को भूल जाने को रेखांकित करते हुए उसे फिर से जगाने की बात उठाई. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलगाववाद की चुनौतियां और प्रगतिशील लेखन की परंपरा

सम्मेलन का एक दृश्य

बिहार प्रगतिशील लेखक संघ के नौंवे राज्य सम्मेलन (अप्रैल, 88) में शामिल होते हुए सर्वश्री भीष्म साहनी, गुलाम ख्वानी ताबां, शेखर जोशी, सोमदत्त, कामतानाथ, डा. काशीनाथ सिंह, डा. अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजीव सक्सेना, डा. सुरेंद्र, डा. बच्चन सिंह, रविभूषण, मधुकर सिंह, डा. खगेंद्र ठाकुर, वीरेंद्र यादव, अरुण कमल, राजेंद्र कुमार आदि ने अपने वक्तव्यों के माध्यम से जातिवाद, रूढ़िवाद, सांप्रदायिकता, फिरका-परस्ती और अलगाववाद की खुली गीदड़भभकियों को चुनौती देते हुए जहां इसकी रूहानी खिलाफत की, वहीं 'समकालीन कविता में वैचारिक संघर्ष' तथा 'समकालीन कहानी और यथार्थ' विषयक दो खुली गोष्ठियों पर बहस मुबाहिसा भी किया.

सासाराम के कविवर कन्हैया नगर में बिहार प्रलेस के दो दिवसीय अधिवेशन कर उद्घाटन करते हुए गुलाम ख्वानी ताबां ने कहा, "अभी तक साहित्यकारों ने सांप्रदायिकता, जातिवाद और अलगाववाद को अहमियत नहीं दी है लेकिन इस समस्या ने हमारे सामने आज एक शैतानी शक्ल अख्तियार कर ली है. तब यह हरेक मायनों में लाजिमी हो जाता है कि तमाम अदीब अपने हथियार (कलम) से अलगाववाद की खिलाफत कर उसे नेस्तनाबूत की कसौटी पर कायम करें."

गुलाम ख्बानी ताबां के उद्घाटन भाषण का पूर्ण समर्थन देते हुए डा. बच्चन सिंह का कहना था कि प्रगतिशील लेखक संघ अलगाववाद का सर्वथा विरोध करे और सांप्रदायिकता को अपनी संवेदना बना ले. वरिष्ठ आलोचक डा. सुरेंद्र चौधरी ने भी सांप्रदायिकता की पुरजोर खिलाफत की और अपने आलोचकीय दृष्टिकोण से इसे एक भयावह अंजाम बतलाया. राजीव सक्सेना ने पाठक और लेखक के आपसी गठबंधनों को जहां मजबूत बनाने पर जोर दिया, वहीं रामेश्वर सिंह काश्यप का मानना था कि "साहित्य आज अप्रासंगिक हो गया है. लोग कार, जीप खरीद सकते हैं, लेकिन साहित्य की किताब नहीं." सत्र को मुकम्मल मुकाम तय कराते हुए डा. खगेंद्र ठाकुर ने सन् 1936 से लेकर अब तक के प्रगतिशील आंदोलन की मीमांसा की.

संयोजन समिति के सचिव अभय के अनुसार इस अधिवेशन में कुल 227 लेखकों ने हिस्सा लिया. धन्यवाद ज्ञापित करते हुए शंकर ने इस अधिवेशन के बाद लेखकों की जिम्मेवारियां और बढ़ जाने का अहसास दिलाया. □

कृपा शंकर

'प्रेमचंद महेश सम्मान' एवं 'वाणी पुरस्कार' समारोह

11 मई, 1988 को नयी दिल्ली में आयोजित एक भव्य समारोह में हिंदी के वरिष्ठ कवि श्री शमशेर बहादुर सिंह ने श्री कृष्ण सुकुमार, सुश्री दुर्गा हाकरे, और डॉ. रंजना अरगड़े को वाणी प्रकाशन की ओर से प्रारंभ किये गये क्रमशः 'प्रेमचंद महेश सम्मान' एवं 'वाणी पुरस्कार' से सम्मानित किया.

समारोह का शुभारंभ करते हुए हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि आज मानो यहां हिंदी कविता की आधी शताब्दी जीते-जागते रूप में मौजूद है. सभागार हिंदी की कई पीढ़ियों के कवि-लेखकों और साहित्य-प्रेमियों से खचाखच भरा हुआ था. नामवरजी ने कहा कि यह उपस्थिति किसी काव्यानुभूति से कम नहीं है.

पुरस्कार अर्पित करने के बाद शमशेरजी ने कहा कि मैं बड़े समारोहों से बचता रहा हूं पर आज यहां आकर अच्छा लग रहा है. उन्होंने कहा कि अध्ययन की और भाषाएं सीखने की कोई आयु-सीमा नहीं है. अस्सी के करीब आकर भी मैं संस्कृत सीखना चाहता हूं.

उन्होंने कहा कि अध्ययन, समझ तथा संवेदना का विस्तार ही हमें वनस्पतियों, पशु-पक्षियों और मनुष्य दलों को ठीक से समझने में सहायक होता है. विभिन्न देशों की संस्कृतियों, साहित्य और कलाओं को जब तक हम अपनी ही थाती नहीं मानेंगे तब तक हमारी संवेदना विकसित नहीं होगी और एक पत्ती, एक कोंपल भी मानों हमें अपना भेद नहीं बताएगी.

अध्यक्ष पद से बोलते हुए बाबा नागार्जुन ने आयोजन की सराहना करते हुए कहा कि इससे लेखकों-कवियों के मिलन का जो अवसर सुलभ हुआ है, वह इसी तरह फिर-फिर आना चाहिए. शमशेरजी का स्वर इतने दिनों बाद सुनकर हम सब आनंदित हुए हैं.

त्रिलोचन शास्त्री ने पुरस्कृत लेखकों की पुस्तकों का लोकार्पण किया. निर्णायक मंडल के सदस्यों में से डॉ. निर्मला जैन और डॉ. रामदरश मिश्र ने पुरस्कृत कृतियों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला. सभा का संचालन डॉ. नित्यानंद तिवारी ने किया.

समारोह में सर्वश्री डॉ. प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीकांत वर्मा, अवधनारायण मुद्गल, कुंवर नारायण, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, राजेंद्र यादव जैसे सुपरिचित कवि-लेखक मौजूद थे. हिंदी की युवा और युवतम पीढ़ी के अनेक रचनाकार भी एक बड़ी संख्या में उपस्थित थे.

—बीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कवि की प्रार्थना और नर-कंकाल पर खड़ी सभ्यता

ब्रजेश्वर मदान

फिल्मों की विष-कन्याओं पर यह लेख शुरू करते हुए; मुझे लातीनी अमरीकी कवि एर्नेस्तो कार्दिनल की एक कविता याद आ गयी. मर्लिन मनरो के लिए एक प्रार्थना, इस कविता का मंगलेश डबराल द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद 'वर्तमान साहित्य' के मई 88 अंक में छपा है. कविता का वह अंश अत्यंत ही अर्थपूर्ण है जिसमें कवि कहता है– "जब वह बच्ची थी तो उसने सपने में देखा (टाइम्स पत्रिका के मुताबिक) कि वह एक चर्च में नग्न खड़ी है/जमीन पर लोटती अपार भीड़ के सामने/और लोगों के सिर बचाने के लिए उसे चलना पड़ रहा है पंजों के बल/ प्रभु तुम हमारे सपनों को मानसिक चिकित्सकों से ज्यादा अच्छी तरह जानते हो./चर्च घर गुफा/सबके सब कोख की सुरक्षा के प्रतीक हैं/बल्कि इससे भी अधिक हैं. यह/तो साफ है ये सिर प्रशंसकों के सिर हैं/पर्दे पर जाती रोशनी शहतीर के नीचे तमाम सिर लेकिन मंदिर ट्वेंटियथ सेंचुरी फॉक्स का स्टूडियो नहीं है/कविता बहुत लंबी है और पर्दे पर विषकन्याओं की कहानी उससे भी ज्यादा लंबी है. विष कन्याओं के संदर्भ में मुझे यह कविता याद आना अजीब नहीं लगा कि इसके साथ ही 'सारिका' में छपी सुधीश पचौरी की टिप्पणी 'अंधों के लिए एक प्रार्थना', जिसमें वह कहते हैं– मीडियम दज द मैसेज (माध्यम ही संदेश है.) एक वाक्य नहीं बल्कि एक मुहावरा है. विश्व स्तर पर संचार माध्यमों, खासकर टी.वी. को लेकर चली बहस में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से यह सूत्र गूंजता रहा है.

हम यहां, माध्यम ही संदेश है या नहीं, इस बहस में नहीं उलझेंगे. लेकिन इतना जरूर है कि ट्वेंटियथ सेंचुरी में यह माध्यम विष कन्याओं का भी मौत का संदेश लेकर आता है. यह लंबी कहानी है किस किस तरह फिल्म के पर्दे पर विष कन्या पर जन्म हुआ. कहते हैं बहुत पहले लंदन में एक प्रदर्शनी में एक पेंटिंग दिखायी गयी, जिसका नाम था 'अरब डैथ'. इस पेंटिंग में एक खूबसूरत औरत के साथ नर-कंकाल दिखाया गया था. मतलब साफ था, उस औरत ने पुरुष का खून चूस कर उसे कंकाल बना दिया. यह पेंटिंग बहुत लोकप्रिय हुई और इसको ही आधार बनाकर एक नाटक लिखा था, 'अरब डैथ'.

हालीवुड के निर्माता विलियम फॉक्स को उस पेंटिंग और नाटक से ही 'विष-कन्या' का ख्याल आया. सिनेमा के पर्दे के लिए एक ऐसी औरत की तलाश शुरू हुई जो उस पेंटिंग की स्त्री की तरह सुंदर हो. जो दर्शकों के सिर से रोशनी की शहतीर में से गुजर सके और जब वह स्त्री मिल गयी, तो उसे उन्होंने 'मेकप' से उस पेंटिंग वाली औरत का ही रंग रूप दे दिया. उसके लिए पोशाकें भी अरेबियन सिलवायी गयीं. यही नहीं अरब डैथ' को उलट कर ही उसका नाम उन्होंने 'थैडा बैरा' रखा. एक तरह से वह फिल्म के पर्दे की पहली विष-कन्या थी. सेक्स का प्रतीक उन्होंने बूढ़ी औरत को बनाया था. उसके बाद हालीवुड में उस औरत के रूप बदलते रहे. उसके बाद आयी 'रैड हैडड' हीरोइन. कहते हैं कि इसकी तलाश हालीवुड के निर्माताओं ने लोकप्रिय उपन्यासों में ही लेखिका ईलिएन गोल्डविन नाम की एक लेखिका की मदद से की. जिसके उपन्यास में हीरोइनों के बालों का रंग लाल होता था. लाल बालों को अश्लील समझा जाता था. उसकी मदद से हीरोइन तलाश की गयी. क्लोरा बो, इस लेखिका का कहना था कि सेक्स अपील आंखों में होती है और स्क्रीन टेस्ट में ये परंपरा पड़ी कि पूरा चेहरा ढककर सिर्फ आंखें खुली छोड़ दी जाती हैं. हालीवुड में फिल्मों के बोलने के साथ इस हीरोइन का आकर्षण खत्म हो गया. क्योंकि उसकी आवाज भौंडी थी. इसके बाद हीरोइन के बालों का रंग सुनहरा हुआ और उसके रूप में ब्लोंब लोकप्रिय हुई. सैक्स सिंबल की आवाज हल्की होना जरूरी हो गया. जीन हार्लो के बाद मेरेडथ और मर्लिन मनरो का नाम आता है. बहुत साफ है कि हालीवुड की फिल्मों में ट्वेंटियथ सेंचुरी ने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जो नरकंकाल पर खड़ी है.

जिसके बारे में मर्लिन मनरो के लिए एक प्रार्थना में कवि कहता है–

मंदिर नहीं है ट्वेंटियथ सेंचुरी फॉक्स का ये स्टूडियो
सोने और संगमरमर का ये मंदिर
उसकी देह का मंदिर है
जहां आदम का बेटा हाथ में कोड़ा लिए खड़ा है.
ट्वेंटिएथ सेंचुरी फॉक्स के बनियों को खदेड़ता हुआ
जिन्होंने प्रभु तुम्हारे प्रार्थना घर को चारों के अड्डे में बदल दिया...

मर्लिन मनरों को विषकन्या इस अर्थ में कहा है कि सिनेमा की दुनिया में स्त्री का इस्तेमाल लोगों ने दर्शकों को उनकी वासनाओं का दास बना कर सिनेमा घर के अंधेरे में लूटने के लिए किया. पर्दे का मुंह बांधना और आदर्शों की ऐसी लड़ाई शुरू हुई कि धीरे-धीरे मूल्य गायब हो गये. दो विश्व युद्धों के दरमियान एक ऐसी सभ्यता पनपी कि गर्भ निरोधक गोली के साथ सब प्योरोटियन एथिक्स पर गोली चल गयी.

हमारे यहां भी फिल्मों में विष-कन्याएं हालीवुड के सिनेमा से ही आयी. उनकी नकल पर ही हमारे यहां स्टूडियो बने. शुरू में हमारे यहां पौराणिक साहित्य पर फिल्में बनती थीं. उस जमाने में पर्दे की विष कन्या भी उसके साहित्य से आती थी. इंद्र ऋषियों का तप भंग करने के लिए अप्सराएं भेजता था. यहां फिर उस कवि की कविता याद आती है जो कहता है–

वह प्यार चाहती थी और हमने उसे दी नींद की गोलियां/उसे गम था हमारे संत न होने का/और उसके लिए सुझाए गए मनोविश्लेषण के नुस्खे.

मीडिया इज द मैसेज. देखना यह है कि यह किस का मैसेज है. ये मीडियम किन लोगों के हाथ में है. महत्वपूर्ण प्रश्न यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिडिल ईस्ट की माताहारी

भला कोई कह सकता था कि शुलामित किशव कोहन सात बच्चों की मां थी.

वैसे बचपन में उसकी एक अधेड़ के साथ शादी कर दी थी—बेरूत में. कुदरत भी कैसे खेल खेलती है—कहां येरूशलम की जन्मी सीधी-सीधी शुलामित और कहां अरब के पड़ौस में आ बसी. 1940 का साल भी कितनी जासूसी लाग-डांट का समय था. और शुलामित इस भंवर में ऐसी पड़ी कि संवरती गयी.

वैसे श्रीगणेश उसके व्यापारी पति ने ही किया था. एक रात वह चुपचाप बेरूत के तट पर लगे हुए एक ग्रीक जहाज से एक यहूदी को अपने घर लाया और फिर उसे बड़ी खूबी से इजराइल की हद पार करवा दी. शुला कोहन-इसी नाम से उसे पुकारते थे-फिर यहूदी शरणार्थियों को अरब प्रदेश से निकाल कर इजराइल 'स्मगल' करने लगी.

अब वह इजराइल जाकर जासूसी की शिक्षा लेने लगी और वाकई इजराइल का नायाब मोती बन गयी. अब वह खतरों से खिलवाड़ करने लगी. 'पासपोर्ट' बदलकर वह जहाज द्वारा इस्तानबुल पहुंचती और गिरोह को दृढ़ करने में जुट जाती. 'बार मित्जवाह' और साबथ के त्यौहार के दौरान उसने अपना काम तेजी से बढ़ा दिया और 'रहस्य' खरीदने में जुट गयी. जैसा 'रहस्य' वैसे ही कीमत.

लेबनान की जासूस संस्था 'लेबनीज डयूक्सीम ब्यूरो' का एक सजीला जासूस फिर किसी तरह संस्था की लक्ष्मण रेखा पार कर ही गया. और तभी शुला पकड़ी गयी. जब लेबनान की अदालत में उसे लाया गया तब प्रोसीक्यूटर ने कहा था, ''यह मिडिल ईस्ट की माता हारी...'' देखा जाय तो शुला संपूर्ण यहूदी जाति की जासूस-माता थी. और अदालत ने उसे सजाये मौत सुना दी. सजा सुनकर वह मुस्करायी थी. और न जाने कौन-सा जादू जन्मा उसकी मुस्कराहट से कि उसका मुकदमा फिर से पलटा और इस बार उसे केवल सात वर्ष की सजा सुनायी गयी.

और जब 1967 का 'छः दिवसीय युद्ध' समाप्त हुआ तब शायद उसके देश इजराइल ने उसको सबसे ऊंचा सम्मान दिया. उसे यह गंभीर लेबनी कैदी के बदले में लेबनान से छुड़ा लिया. उसकी सेवा की थाह लेकर ही इजराइल के नेताओं ने उसके समस्त परिवार को बेरूत से इजराइल मंगवा लिया.

कि क्या हमारी फिल्मों में औरत का इस्तेमाल एक ऐसी सभ्यता के लिए नहीं किया जा रहा जो नरकंकाल बनाये.

दोष मर्लिन मनरो का नहीं था. जिसने स्टार बनने का सपना देखा था. और न उन लड़कियों का जो आज सपना देखती हैं. हमारी जरूरत है. यह लेख लिखते हुए मेरी एक ऐसी लड़की से मुलाकालत हुई जिसने बासु भट्टाचार्य की एक फिल्म में काम किया है. उसे दुख था कि बासु दा ने उसे मेकप नहीं करने दिया. उसने कहा, ''मैं रोज उन्हें कहती थी बासु दा मुझे मेकप करने दीजिए ना!''

वह कहते, ''नहीं करने दूंगा.''

मुझे याद आ रही थी कविता की

प्रभु स्वीकार करो इस लड़की को/जो अब जा रही है आपके हजूर में/बिना मेकप के बिना प्रेस एजेंट के/बगैर तस्वीरों के बगैर ऑटोग्राफ दिए हुए/एकाकी जैसे कोई अंतरिक्ष यात्री जाता है/अनंत अंधकार में.

रूप और यौवन की इस दुनिया में खुशी होती है कि बासु भट्टाचार्य जैसा कोई सिरफिरा फिल्मकार लड़की को मेकप नहीं करने दे रहा है.

उस दुनिया में जहां दर्शकों को दास बनाने के लिए फिल्मों में रूप और यौवन का व्यापार चलता है. जो खदेड़ना चाहता है बंबई के लोगों को जिन्होंने प्रभु के प्रार्थना घर को चोरों के अड्डे में बदल दिया है. □

नागों की बस्ती

वीना बाला जैन

कल्लो किशन के पास जाती तो खूब बातें होतीं दोनों में. कभी-कभी जोर से हंस पड़ते दोनों. कल्लो को लगता यही जीवन है, जिसकी उसे बरसों से साध थी. कई बार वह सोचती क्यों न इसी से ब्याह कर ले! पर किशन था कि रोज़ कोई न कोई किस्सा शुरू कर देता और बात आई गई हो जाती.

एक दिन जब कल्लो पहुंची तो किशन सजा-धजा बाहर ही बैठा हुआ था. एकदम बाबूजी सरीखा. बोला, ''आओ, मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था, कि सहारा देकर मुझे ले जाओगी!''

'किशन को दीखता नहीं तो क्या हुआ हर रोज खुद ही तो आता-जाता है! आज मेरी ज़रूरत क्यों महसूस होने लगी!' कल्लो सोच ही रही थी कि किशन ने हाथ उसके कंधे पर रख दिया. दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते कल्लो ने महसूस किया कि उसके कंधे पर दबाव बढ़ता जा रहा है. चारपाई पर किशन को बिठा वह अलग होना ही चाहती थी कि किशन बोला, ''बैठो कल्लो, ऐसी भी क्या जल्दी है!'' उसकी सांसें कल्लो की गरदन से टकरा रही थीं. कुछ ही क्षणों बाद वह किशन की गिरफ्त में थी. फिर कल्लो ने अपने आपको ढ़ीला ही छोड़ दिया था जैसे. मन ही मन उसने तय कर लिया था कि अब वह किशन से ब्याह कर लेने को कहेगी.

कई दिनों तक तो कल्लो हिम्मत ही जुटाती रही. फिर एक दिन उसने किशन से जाकर मन की बात कह ही दी, ''क्यूं न हम दोनों ब्याह कर लें!'' पर किशन जैसे इस प्रस्ताव से बिल्कुल खुश नहीं हुआ, ''कल्लो, मेरा तो ब्याह हो चुका था कबका. तुमसे तो मैंने वक्तकटी के लिए...''

कल्लो को काटो तो खून नहीं, 'तू भी नाग निकला रे! मुझे डस लिया और...' कल्लो चीख-चीख कर कहना चाहती थी पर आवाज़ रुंधकर रह गयी थी. आंखों की बाढ़ थी जो उसे भीतर-बाहर से भिगोये जा रही थी. फिर जाने क्या हुआ कि कल्लो तेजी से भाग निकली... अपनी झोपड़ी में आकर दरवाजा बंद कर लिया. पागलों की तरह अपने ही बाल नोचने लगी. पूरी दुनिया उसे नागों की बस्ती नजर आ रही थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विस्मयकारी उपन्यास

उपन्यास की पहचान इस वैशिष्ट्य पर स्थिर होती है कि उसमें कथाकार ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा द्वारा एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने वाली मानव-जीवन की गद्यकथा कितनी निर्दोषिता के साथ उपस्थित की है. इस कसौटी पर डॉ. भगवतीशरण मिश्र हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यास--सर्जकों के बीच सुप्रतिष्ठित हो गए हैं. कम-से-कम ऐतिहासिक उपन्यास 'पहला सूरज' द्वारा उन्होंने इसी श्रेष्ठता का परिचय दिया था. जिसका अभिनव संधान है उनका सद्यःप्रकाशित पौराणिक उपन्यास 'पवनपुत्र'. यह उपन्यास न केवल इतिहासप्रभित है, न केवल वीरगाथारंजित है, न केवल साहस और ज्ञान का आगार है, अपितु नानापुराण निगमागमसम्मत भी है. रामकथा से अनुप्राणित विविध रामायण-ग्रंथों में निगदित ही नहीं, क्वचिदन्यतोपि ही नहीं-वरन् क्वचिदरुतपूर्वअपि भी है. डॉ. भगवती शरण मिश्र जैसे भ्रमर को न जाने कितनी बार कंटककुशाच्छादित वन-वीथियों के बीच रक्त-रंजित होना पड़ा है और न मालूम कितनी वाटिकाओं के कितने पुष्पों का रस ग्रहण करना पड़ा है: यह पवनपुत्र के पारायण से स्पष्ट होता है. समस्त भारतीय रामसाहित्य और देश-विदेश के हनुमान-धामों की परिक्रमा का सार इस श्रेष्ठ उपन्यास में पुंजीभूत हुआ है. यह उपन्यास डा. मिश्र के गहन अध्ययन, व्यापक अध्यवसाय एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का द्राक्षारिष्ट है.

'पवनपुत्र' का संयोजन एक आत्म-कथात्मक उपन्यास के रूप में हुआ है. समूची कथा स्वयं पवनपुत्र हनुमान कहते हैं. प्रकारांतर से यह रामकथा के उन प्रसंगों का पुनर्प्रस्तुतीकरण ही है, जहां हनुमान उपलब्ध हैं. गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' में हनुमान की वंदना तो बालकांड में की गई है, लेकिन उनकी कथा किष्किंधाकांड से ही प्रारंभ होती है. वहां सुग्रीव ने अपने विश्वस्त सचिव हनुमान से कहा है- "अति सभीत कह सुनु हनुमाना, पुरुष जुगल बल रूप निधाना..." इस प्रसंग से लेकर उत्तरकांड के उस प्रसंग तक मानस में हनुमान की कथा फैली है, जहां महाकवि ने हनुमान की सेवकाई का बखान किया है-

"हनुमान सम नहिं बड़भागी, नहिं कोउ रामचरन अनुरागी." निश्चय ही 'रामचरितमानस' में हनुमान के जन्म परिवार, जीवन-विस्तार, नामकरण की सार्थकता आदि को स्थान नहीं मिला है. मानस के आधार पर हनुमान की कथा को डा. भगवती शरण मिश्र ने अपने इस उपन्यास में आठवें अध्याय से तेतालीसवें अध्याय तक विस्तार दिया है. इसके पूर्व पवनपुत्र के जन्म और बाल्यकाल का विवरण, भगवान शंकर के साथ बालक हनुमान का अयोध्या आगमन, श्रीराम की सेवा, गुरु विश्वामित्र के साथ श्रीराम के प्रयाण पर उन्हीं के निर्देशानुसार गंधमादन पर्वत पर माता अंजना के पास निवास, माता अंजना के आदेश से सुग्रीव के पास आगमन जैसे सारे मानसेतर रामकथाओं का सहारा लिया गया है. 'आनंद रामायण' के आधार पर डा. मिश्र ने हनुमान के जन्म की रोचक कथा उपस्थित की है. 'पवनपुत्र' में उल्लिखित है कि अयोध्या नरेश दशरथ द्वारा संपन्न पुत्रेष्ठि यज्ञ के पश्चात् एक चील सुमित्रा के हाथ से क्षीर ले उड़ी और वही क्षीरान्न पवनदेव की कृपा से अंजना के

पवनपुत्र : (उपन्यास)
कृतिकार : डा. भगवतीशरण मिश्र
प्रकाशक: राजपाल एंड संस, दिल्ली-6
मूल्य : साठ रुपये, पृ. 360

हाथों में गया, जिससे हनुमान का जन्म हुआ. यह एक अल्पप्रसिद्ध कथा है. डा. मिश्र ने अपने उपन्यास में कई प्रसिद्ध प्रसंगों के लिए भी संदर्भ-संकेत दिए हैं, जबकि इस अप्रचलित जन्मकथा का कोई संदर्भ नहीं दिया गया है. 'आनंद रामायण' आदि ग्रंथों के आधार पर ही डा. मिश्र ने अहिरावण की कथा भी उपस्थित की है. हनुमानपुत्र मकरध्वज और पिता भगवान शंकर के साथ पवनपुत्र के युद्ध का प्रसंग वाल्मीकि और तुलसी की रामकथा में नहीं है. इस उपन्यास में अंकित हनुमान द्वारा सिंदूर लेपने की कथा, चुटकी बजाने की सेवा, शनिदेव को पराभूत करने की घटना, मंथरा के साथ विवाह कराने का मजाक और सीता द्वारा हनुमान को अपने हाथों से खिलाने की घटना जैसी बहुत सारी घटनाओं को जनश्रुतियों से ग्रहण किया गया है. हनुमान की इन सारी कथाओं के आधार पर डा. मिश्र ने अपने आराध्य का उदात्त चरित्र उपस्थित किया है.

अतुल बल के धाम स्वर्ण पर्वत के समान कांतियुक्त शरीर वाले दैत्यरूपी वन को ध्वस्त करने के लिए अग्निपुंज, ज्ञानियों में अग्रगण्य, समस्त गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, भगवान श्रीराम के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमान का गुणकीर्तन करते हुए उपन्यासकार डा. भगवती शरण मिश्र ने अपनी कथाकारी और चरित्र-संकल्पना को सकल गुण निधान पर अधिक केंद्रित किया है. यही कारण है कि उनके पवन पुत्र सारी कलाओं, सारे कार्यों, सारी ज्ञानराशियों का संवहन करते हैं. कथाकार ने बताया है कि सबसे पहले हनुमान ने ही शिला-खंडों पर रामकथा उत्कीर्ण की थी, जिसे देखकर आदिकवि वाल्मीकि हताश हो गए थे. और अपनी व्यथा श्रीराम से कही थी. आदिकाव्य रामायण को अमरता देने के लिए श्रीराम ने हनुमान को शिलांकित रामकथा नष्ट करने का आदेश दिया. यह प्रसंग हनुमान को महाकवि सिद्ध करता है. उन्हें नाटककार बनाने के लिए ही 'हनुमन्नाटक' को हनुमान के साथ जोड़ा गया है. डा. मिश्र ने संगीतज्ञ, वैयाकरण, काव्यशास्त्री, कवि, ज्ञानी, तपस्वी, भक्त आदि तमाम भूमिकाओं में हनुमान को प्रतिष्ठित किया है. इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए उन्होंने हनुमान-कथा के सभी ज्ञात-अज्ञात प्रसंगों का आकलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है. भले ही इस क्रम में कुछ परिवर्तन भी हुआ है.

पवनपुत्र की श्रेष्ठता के मूल में केवल डा. मिश्र के आराध्य की परित्र-संकल्पना और आत्मकथा ही नहीं, अपितु हनुमान की पूजा-अर्चना के स्थलों का पर्यटन भी है. देश-विदेश के विभिन्न मंदिरों में उपलब्ध हनुमान के विविध मूर्ति रूपों की व्यापक परिक्रमा पवनपुत्र के उत्तरार्ध में की गयी है.

डा. भगवती शरण मिश्र की उपन्यास-कला ने कथा-संयोजन, चरित्र-विन्यास और संकल्प की प्रभावधर्मिता के समानांतर भाषा का अनूठा आकर्षण भी फैलाया है. उनकी कथा-भाषा कई स्थलों पर बाणभट्ट की 'कादंबरी' और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का स्मरण दिलाती है. जैसे– अगर किसी सर्प की मणि खो जाये, अगर किसी अकिंचन का कहीं प्राप्त पारस पत्थर विलुप्त हो जाये, अगर किसी साधक के संपूर्ण जीवन के तप पर अकस्मात् पानी फिर जाये, अगर किसी वीर का बड़ी साधना से उपलब्ध दिव्यास्त्र हाथों से निकल जाये, अगर किसी जननी का एकमात्र सुत सहसा काल-कवलित हो जाये, अगर किसी सौभाग्यवती का सौभाग्य सूर्य युवावस्था में ही अस्त हो जाये, अगर वृद्धावस्था में किसी की आजीवन संचित पूजी दस्युओं के हाथ पड़ जाये, अगर चंद्रमा को अपनी शीतलता और सूर्य को अपने ताप से रहित होना पड़े अगर सागर को बूंद-बूंद से वंचित होना पड़े, अगर अग्नि को अपनी दाहकता और अंतरिक्ष को अपनी अनन्तता से शून्य होना पड़े, जैसी स्थिति इन सबों की होती, उससे भी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति मेरी हुई. जब मैंने सुना कि मेरे आराध्य और उनके अनुज का अपहरण हो गया.

(पवनपुत्र-पृष्ठ 188-189)

.इसमें संदेह नहीं कि डा. भगवती शरण मिश्र का यह उपन्यास हिंदी रामभक्तिपरक साहित्य का नवीनतम विस्मयकारी उत्थान है. इस शोध केंद्रित कृति में डा. मिश्र ने न केवल प्राक्तन और अर्वाचीन हनुमानपरक चिंतन एवं सृजन का समन्वयन किया है, अपितु पौराणिक-सांस्कृतिक कथा लेखन का एक ऐसा कीर्तिमान स्थापित किया है– जहां तक पहुंचना आसान नहीं है. □

डा. वचनदेव कुमार

भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के वैचारिक प्रभाव

उनहत्तर परिच्छेदों में विभक्त 360 पृष्ठों का यह ग्रंथ अथ से इति तक संपूर्णतः समुज्ज्वल है—कथ्य और कला दोनों ही धरातलों पर. 'नदी नहीं मुड़ती', 'सूरज के आने तक' तथा 'पहला सूरज' के माध्यम से डा. मिश्र ने यह तथ्य बहुत पूर्व ही उजागर कर दिया है कि उनके लेखन का लक्ष्य विषयप्रवण व्यग्र विश्व-जीवन की अधोमुख मनस्विता को उद्दीप्त करना है. 'पवनपुत्र' जीवन को आत्मा की दृष्टि से देखने का एक दिव्य मंत्र-ग्रंथ है. आत्मा की दृष्टि से देखने पर सभी प्राणियों में सर्वभूतांतरात्मा के दर्शन होते हैं. आत्मज्ञानी प्राणी सब में आत्मा के ही दर्शन करता है. यही मनुष्य की समदर्शिता है. शास्त्र का वचन है कि प्रतिक्षण हमको यह देखना चाहिए कि हमारा जीवन पशुओं के समान है या सत्पुरुषों के समान.

प्राचीनता और आधुनिकता की, परंपरा और प्रतिभा की, प्राच्य और पाश्चात्य की सानुपातिक अन्विति उपस्थापित कर 'पवनपुत्र' से यह प्रमाणित कर दिया है कि अपनी कल्पनाशील सृजयशीलता के सहारे पुरा-कथाओं के बीच से अत्याधुनिक अवधारणाओं को प्रक्षेपित करने की डा. मिश्र में अपूर्व क्षमता है., विषयगत विचार, रचनात्मक उत्कृष्टता तथा बहुकोणीय वैचारिक परिपक्वता का ऐसा अनोखा सामंजस्य संपूर्ण हिंदी-साहित्य में दुर्लभ है. धर्म, राजनीति, संस्कृति, सभ्यता और शिक्षा के क्षेत्र में डा. मिश्र मानवीय भावनाओं और मानवतावादी दृष्टिकोण कल्याणकारी धवल पक्षों की प्रतिष्ठा करते हैं, जो उनके दृष्टिकोण पर भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के वैचारिक प्रभाव का परिचय देते हैं.

उपन्यासकार ने दर्शन, विज्ञान, इतिहास, काव्यशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के प्रभूत मनन-मंथन के उपरांत पहले अपने को वैचारिक स्तर पर समृद किया है और फिर अपने मौलिक चिंतन को एक अत्यंत रुचिकर कथा-भंगिमा की जिस भाषा में मुखरता प्रदान की है, वह एक आचार्य द्वारा प्रयुक्त गहन विचारों की गूढ़-संश्लिष्ट परंपरा की संवाहिका समास और समाहार शक्ति से भरपूर अत्यंत उन्नत और व्यंजक भाषा के रूप में सामने आती है. 'पवनपुत्र' की भाषिक ओजिस्विता पाठकों का वशीकरण मंत्र-सा फूंक देती है. अथाह भाव-संपदा के साथ-साथ डा. मिश्र विलक्षण अभिव्यंजना के भी अधिपति हैं. इनके आदेशों पर भाषा नयी-नयी भंगिमाएं ग्रहण करती है. अंतस को आनंदित तथा बुद्धि को चमत्कृत करनेवाली भाषा पर इनका अडोल आधिपत्य है. 'पवनपुत्र' में शिल्पगत अभिनवता और कलात्मक कौशल का चरमोत्कर्ष उजागर हुआ है. कथोपकथन तत्व का समावेश मुख्यतः कथा-प्रवाह को अग्रेषित करने, पात्रों की व्याख्या करने तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने की दृष्टि से हुआ है. इनमें उपयुक्तता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, अनुकूलता, संबद्धता, मनोवैज्ञानिकता तथा भावात्मकता आदि गुणों के साथ-साथ शैलीगत अनेकरूपता भी विद्यमान हैं. यहां वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, भावात्मक, विचारात्मक तथा उद्बोधनात्मक शैलियों की छटाएं देखते बनती हैं. प्रस्तुत उपन्यास यशस्वी लेखक के विस्तृत-व्यापक गंभीर अध्ययन, मनन, चिंतन एवं अनुभूतियों के आलोक से भास्वर है. श्री हनुमान की जीवन-गाथा का जैसा सांगोपांग और त्रैशिफटपूर्ण वैज्ञानिक अंकन इस ग्रंथ में उपलब्ध है, वह अन्यत्र दुर्लभ है. हनुमान से संबद्ध शायद ही कोई ग्रंथ हो, जिस पर डा. मिश्र की सतर्क एवं सूक्ष्म दृष्टि न पड़ी हो-और समस्त उपलब्ध सामग्रियों को उपन्यासकार ने इस प्रकार सजा दिया है कि वे सब-की-सब ग्रंथ का अविभेद्य अंश बन गयी हैं. भारतीय मनीषा की 'अंतर्धारा' में अवगाहन करने वाले प्रत्येक साहित्यानुरागी एवं साहित्यसाधक के अध्ययन-कक्ष में इस ग्रंथ की एक प्रति रहनी ही चाहिए.

कुणाल कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : मई 1988 के पुरस्कार विजेता तथा सर्वशुद्ध हल.

मई 1988 की कथा पहेली के हजारों प्रतियोगियों में इस बार केवल एक प्रतियोगी ही एक अशुद्धियुक्त हल भेजने में सफल हो सका है. सर्वशुद्ध हल कोई भी प्रतियोगी नहीं भेज सका है. पांच प्रतियोगी दो-दो अशुद्धियों के साथ द्वितीय स्थान पर रहे हैं. इस बार पुरस्कार राशि का एक भाग प्रथम पुरस्कार के रूप में एक अशुद्धि युक्त हल भेजने वाले प्रतियोगी को दिया जा रहा है और दूसरा भाग पांच प्रतियोगियों में बराबर-बराबर बांटा जा रहा है.

पुरस्कार विजेताओं के नाम व पते इस प्रकार हैं :–

प्रथम पुरस्कार (सौ रुपये)

1. मोना नेमा, 77 डी., विद्याविहार, पिलानी, राजस्थान.

द्वितीय पुरस्कार (बीस रुपये प्रत्येक)

1. निशा निशांत, 139 एफ., लोको शेड, रेलवे कालोनी, किशन गंज, दिल्ली-110006.
2. नरेंद्र शर्मा, आकाशवाणी, बीकानेर.
3. गगन श्रीवास्तव, 411-ए, इंडिया आॅप्टिग, रेलवे कालोनी, ट्रांसपोर्ट नगर, कानपुर-
4. करुणा वर्मा, द्वारा बी.पी. वर्मा, बी-14 ए, सेक्टर 11 ए, खेतड़ी नगर, झुंझनू (राजस्थान).
5. राजेंद्र मिश्र, 22/73, महावीर नगर, लंगड़े की चौकी रोड, आगरा.

... और यह रहा कथा पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. हिंदीतर भाषाओं की रचनाएं अधिक हैं.
2. 'कंकू.'
3. सच्चिदानंद राउतराय का पुरस्कार वर्ष (पृष्ठ 11 पर) 1985 प्रकाशित हो गया है जबकि यह 1986 होना चाहिए.
4. श्रीमती रमारानी जैन.
5. उड़िया भाषा के 'माटीमटाल' उपन्यास का अंश.
6. पृष्ठ 24.
7. 'बाढ़ में' कहानी का कुला.
8. उर्दू, तेलुगु, मराठी, तमिल, असमिया, पंजाबी.
9. आशापूर्णा देवी ने 'प्रथमप्रतिश्रुति', 'सुवर्णलता' और 'बकुलकथा' में.
10. सभी ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेताओं के साथ पहले विजेता गो. शंकर कुरुप और अब तक के अंतिम विजेता सच्चिदानंद राउतराय सबसे ऊपर एक दूसरे के सामने हैं.

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' जून 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 जुलाई 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा सितंबर 1988 के अंक में दी जायेगी.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पाठकों तक 'सारिका' देर से पहुंचती है वे 'सारिका कथा पहेली' में अपनी पूर्तियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. पूर्तियां भेजते समय यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि 'सारिका' आप तक देर से पहुंची.

सारिका कथा पहेली : जून 1988

1. अपनी करनी पर पश्चाताप ..... की ..... कहानी में सामने आया है.
2. अजनबी होते हुए भी एक-दूसरे के प्रति विश्वास करने का प्रसंग ..... कहानी में है.
3. ..... रचना में एक राजनीतिक नारा बदलने का संदर्भ आया है.
4. "माध्यम ही जगत के साथ हमारे संबंध व प्रकार्य के स्तर एवं रूप को नियंत्रित करते हैं." यह कथन ..... का है.
5. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी ..... है.
6. सिकंदर के पास चंद्रगुप्त ने अनमोल उपहार के रूप में विषकन्या ..... को भेजा था.
7. विषकन्याओं का चुनाव ..... वर्गों से किया जाता था.
8. बहुत दिनों के बाद प्रमुख पात्र के मुस्कराने की घटना ..... की ..... कहानी में वर्णित है.
9. ..... कहानी में सर्वनाम के जरिये प्रमुख पात्र सामने आया है.
10. 'अपने नाम के विपरीत आचरण करना' ..... कहानी में चरितार्थ हुआ है.

नाम.....आयु.....

पता .....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षित जीवनयापन

विशेष परिशिष्ट

सुरक्षित रहन-सहन और आर्थिक सुरक्षा के लिए भारतीय जीवन बीमा, साधारण बीमा, अच्छे खाद्य पदार्थ और दवाएं उपलब्ध होना लाजिमी है.

इस दिशा में भारत में साधारण बीमा का व्यवसाय भारतीय साधारण बीमा निगम और उसकी सहयोगी कंपनियों—नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, कलकत्ता, न्यू इंडिया एश्योरेंस कं.लि. बंबई, ओरिएंटल इंश्योरेंस कं.लि. नई दिल्ली और यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं.लि. मद्रास....द्वारा किया जाता है. सामाजिक सुरक्षा और विकास की इस दिशा में भारतीय जीवन बीमा निगम की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है. यही वजह है कि प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी निगम के कर्मियों को शुभकामनाएं देते हुए एक संदेश में कहते हैं'' प्रतिकूल परिस्थितियों में सुरक्षा और लोगों में मितव्ययिता की आदत को बढ़ावा देना जीवन बीमा के मूल सिद्धांत हैं. अपने ३० वें वार्षिकोत्सव के दिन जीवन बीमा अपनी विशिष्ट सेवाओं के लिए अपने अतीत का विश्लेषण कर गौरवान्वित अनुभव कर सकता है.

जीवन बीमा के लिए आवश्यक है कि यह देश के कोष संवर्धन में और भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे. इसे चाहिए कि यह हमारे समाज के कमजोर और अभावग्रस्त वर्गों की सहायता के लिए और भी नयी और लाभप्रद योजनायें विकसित करें.

भारतीय जीवन बीमा निगम का उदय एक सितंबर १९५६ को हुआ. आज यह अपनी प्रतिबद्धताओं और विश्वास के साथ विशिष्ट सेवाएं प्रदान करता हुआ राष्ट्र के एक महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थान के रूप में प्रगति विस्तार के साथ चौथे दशक में प्रवेश कर रहा है. जन-कल्याण के लिए जीवन बीमा निगम ने अथक प्रयत्न किये हैं. निगम पूरे विश्वास के साथ दावा कर सकता है कि राष्ट्रीय-करण के बाद तमाम क्षेत्रों में इसने उल्लेखनीय प्रगति की है. यह एक संवेदनशील संस्था के रूप में उभर कर सामने आयी है.

जीवन बीमा निगक से जुड़ा लक्ष्य प्रारंभ से ही स्पष्ट था व्यक्तिगत स्तर पर हजारों रोटी कमाने वाले बीमाधारकों की अकाल मृत्यु पर उनके परिवार को या वयोवृद्ध हो जाने पर स्वयं उनको व्यक्तिगत संरक्षण प्रदान करना और राष्ट्रीय स्तर पर लोगों की बचत का संग्रहण करते हुए उसे दूसरे रचनात्मक या उत्पादक निवेशों में लगाना....

देश की आर्थिक व्यवस्था में साधारण बीमा का महत्वपूर्ण स्थान है. आर्थिक विकास में जोखिमों से सुरक्षात्मक भरपायी करने का काम साधारण बीमा व्यवसाय करता है. भारत में साधारण बीमा व्यवसाय, भारतीय साधारण बीमा निगम तथा उसकी ४ निम्नलिखित सहयोगी कंपनियों द्वारा किया जाता है.

नेशनल इंश्योरेंस कं. लि., कलकत्ता, न्यू इंडिया एश्योरेंस कं. लि. बंबई. ओरिएंटल इंश्योरेंस कं. लि. नई दिल्ली और यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं. लि. मद्रास ये कंपनियां निम्न प्रकार के क्षेत्रों मे बीमा करती है.

अग्निकांड बीमा, मैरीन इंश्योरेंस, मोटर इंश्योरेंस, मेडीक्लेम इंश्योरेंस, विदेश चित्किसा बीमा. ग्रामीण शिल्पी, बायोगैस प्लांट, ग्रामीण कुटर उद्योगों के लिए विस्त बीमा योजना पशु बीमा योजना, फसलों का बीमा, पशु-चालित गाड़ियों का बीमा.

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के माध्यम से आयकर बचायें

समाज के विभिन्न हिस्सों के हितों के अनुरूप कुछ आकर्षक योजनाएं.

१. यूनिट स्कीम-१९६४ (यू.एस.-६४)

(अ) समस्त प्रवासी/अप्रवासी व्यक्ति शामिल हो सकते हैं.
(ब) विकासमान लाभांश (वर्ष १९८५-८६ के लिए १५.२५%) का वार्षिक भुगतान
(स) लाभांश के बार-बार निवेश की सुविधा
(द) बैंक लोन/आसान भुगतान के लिए धरोहर
(य) हस्तांतरणीय

२. यूनिट लिंक्ड इंश्योरेंस प्लान १९७१ (यू.एल. आई.पी.)

(अ) १८ से ५०½ वर्ष आयु वर्ग के प्रवासी व्यक्ति योजना में शामिल हो सकते हैं.
(ब) १०/१५ वर्ष में वार्षिक/अर्धवार्षिक समान किस्तों में देय—४,००० से ४०,००० के बीच किसी 'इनवेस्टमेंट प्लान' का चुनाव करें.
(स) वार्षिक/अर्धवार्षिक अंशदान पी.एफ/एल.आई.सी./जैसी आय में से कटाने की सुविधा.
(द) जीवन सुरक्षा.
(य) प्रतिव्यक्ति १५,००० की मुफ्त दुर्घटना सुरक्षा.
(र) अधिक लाभ (वर्ष १९८५-८६ के १२.५% लाभ)
(ल) किसी भी स्तर पर भुगतान की सुविधा.
(व) पूर्ण होने पर अधिक लाभ.

३. चिल्ड्रन गिफ्ट ग्रांट फंड १९८ (सी.जी.जी.ए.फ.)

(अ) समस्त प्रवासी/अप्रवासी व्यक्ति १५ वर्ष कम आयु के बच्चे को भेंट दे सकते हैं.
(ब) भेंट अपरिवर्तनीय है और बच्चे के साथ बढ़ती है.
(स) १२½% वार्षिक लाभांश दर से ६ वर्ष में दुगनी हो जाती है, २१ वर्ष में यह १२ गुना हो जा है.
(द) प्रत्येक पांच वर्ष में बोनस
(य) २०,००० तक की भेंट गिफ्ट-टैक्स से मुक्त है.
(र) भेंट बच्चे की आयु २१ वर्ष होने पर परिपक्व होती है. १८ वर्ष आयु होने पर निकालने का विकल्प.

४. मंथली इनकम यूनिट स्कीम विद ग्रोथ (एम.आई.एस.जी.)

(अ) सबके लिए पांच वर्षीय जमा योजना.
(ब) मासिक देश १२% वार्षिक लाभ जिसके लि चैक एड्वांस में भेजे जाते हैं.
(स) तीन वर्ष बाद सममूल्य पर भुगतान
(द) पूर्ण होने पर न्यूनतम २% लाभ

५. ग्रोथ इनकम यूनिट स्कीम (जी.आई.यू.एस.)

(अ) समस्त प्रवासी योजना में शामिल हो सकते हैं.
(ब) ५½ वर्ष में दुगनी से भी ज्यादा राशि.
(स) बार-बार अर्धवार्षिक लाभ प्राप्त करें जो योजनावधि में १२.५% से १४% तक बढ़ता है.
(द) परिपक्वता पर न्यूनतम २% बोनस की गारंटी

६. कैपिटल गेंस यूनिट स्कीम (सी.जी.एस.)

(अ) कैपिटल गेंस टैक्स से छूट
(ब) विकासमान लाभांश (वर्ष १९८५-८६ के लिए ८¾%) का वार्षिक भुगतान
(स) तीन वर्ष बाद भुगतान की सुविधा

सामान्य : सुरक्षा, निश्चिता, विकासमान लाभांश और आसान भुगतान के अतिरिक्त यूनिट्स से १०,०००/ रु. तक होने वाली आय पर आयकर छूट (७,०००/- यूनिट्स और अन्य उल्लिखित निवेशों पर तथा ३,०००/- यूनिट के लिए अतिरिक्त बिक्री वर्ष के दौरान सीमित अवधि के लिए खुलती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी जीवन सार्थक हो जाता है जब वो मां बनती है.

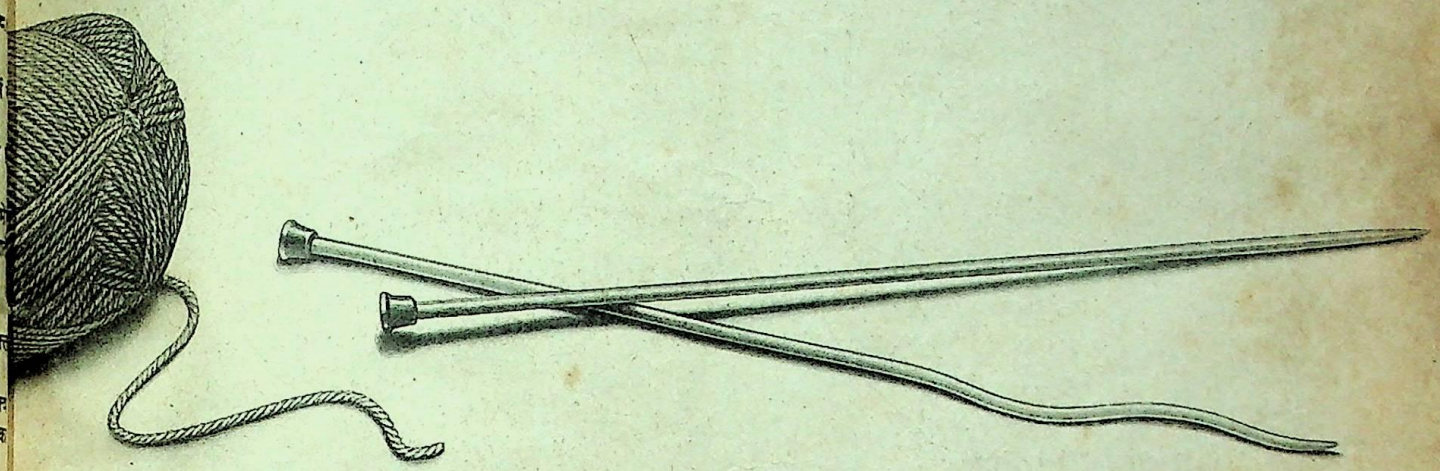

लेकिन एक स्वस्थ शिशु की मां.

'अनबॉर्न चाइल्ड वेलफेअर स्कीम' – बच्चे के जन्म से पहले ही उसकी भलाई के लिए बनाई गई यह देश में अपनी तरह की पहली योजना है और शायद विश्व भर में भी पहली. यह योजना बच्चों के कई तरह के जन्म-दोषों पर लागू होती है. गर्भधारण से ३ माह के अंदर कभी भी यह पॉलिसी ली जा सकती है.

इस पॉलिसी में चार अलग-अलग प्रीमियम-राशियां रखी गई हैं : रू. २००, रू. ५००, रू. १००० और रू. १५००. क्रमशः इनकी बीमा-राशियां हैं रू. १०,०००, रू. २५,०००, रू. ५०,००० और रू. ७५,०००.

बच्चे में जन्म के समय अगर कोई ऐसा दोष हुआ जो इलाज से ठीक हो सकता है तो न्यू इंडिया एश्योरंस, पॉलिसी धारक को इलाज के खर्च का भुगतान करेगी. लेकिन यह राशि बीमा राशि के ५०% से अधिक नहीं होगी. बच्चे में स्थायी आंशिक दोष होने पर कंपनी, बीमे की बाकी रकम का उतना भाग किसी बैंक या यूनिट ट्रस्ट में जमा कर देगी, जो कि किसी अधिकृत चिकित्सक के प्रमाण-पत्र पर आधारित होगा. और चिकित्सक का प्रमाण-पत्र इस बात पर निर्भर करेगा कि स्थायी आंशिक दोष कितना गंभीर है. स्थायी और संपूर्ण दोष की अवस्था में कंपनी, इलाज के खर्च के बाद बची बीमा-राशि की रकम, किसी बैंक या यूनिट ट्रस्ट में जमा कर देगी जिसका ब्याज पॉलिसी धारक को मिलेगा.

अधिक जानकारी के लिए
कृपया अपने नजदीक के
न्यू इंडिया एश्योरंस कार्यालय से संपर्क करें या लिखें :

अनबॉर्न चाइल्ड वेलफेअर स्कीम,
यूएनटीबी विभाग,
न्यू इंडिया एश्योरंस कंपनी लिमिटेड,
न्यू इंडिया एश्योरंस बिल्डिंग,
८७ महात्मा गांधी रोड, फोर्ट,
बम्बई ४०० ०२३.

न्यू इन्डिया एश्योरन्स

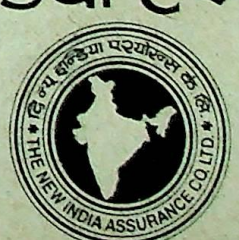

जनरल इंश्योरेंस कॉर्पोरेशन ऑफ़ इन्डिया की एक सहायक कंपनी.

ASP-NIA 360/88 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वादभरे लिज्जत पापड़

लिज्जत पापड़ उद्योग की सफलता का इतिहास कितना रोचक और स्पृहणीय है. यह इस छोटे से तथ्य से जाना जा सकता है कि २७ वर्ष पहले लिज्जत ने अपना प्रारंभ महज ७ महिला सदस्यों से किया था. आत्मनिर्भरता के जरिये शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा को महत्ता दिलाने का जो उपदेश कभी विनोबा भावे ने दिया था.... लिज्जत ने उसके लिए एक ठोस उदाहरण इस रूप में प्रस्तुत किया है कि यह प्रतिवर्ष ५० प्रतिशत के हिसाब से उन्नति करता चला आ रहा है. दरअसल, इस सोसाइटी को समझने के लिए 'द बेसिक कांदस एंड ट्रेडिशंस ऑफ अवर इस्टीट्यूशन' बुकलेट को पढ़ना चाहिए. फिलहाल इसका वार्षिक टर्न ओवर करीब १६ करोड़ रुपये है. राजस्थान, कर्नाटक, पंजाब और अन्य राज्यों में भी अपनी शाखाएं खोलने के विचार के साथ-साथ यह सोसायटी सदस्य संख्या लगभग २२,००० करने पर विचार कर रही है ताकि वार्षिक टर्न ओवर करीब ५० करोड़ तक बढ़ाया जा सके.

मारुति का वनस्पतिक खाद्य तेल

एक कहावत है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होना है. यानी जो व्यक्ति शरीर से चुस्त और दुरुस्त होगा, उसका मस्तिष्क भी उतना ही बुद्धि और विवेक से संपन्न होगा.

पहली बार मारुति ब्रांड ने विदेशी तकनीक से बिनौले का खाद्य तेल उत्पादित किया. इसे माइक्रो रिफांइड प्रक्रिया से बनाया गया है और इसकी बनाने की प्रक्रिया को अन्य खाद्य तेल उत्पादकों ने नहीं अपनाया. यह अति आधुनिक मशीनों द्वारा बनाया गया है और यह स्वच्छ वातावरण में निर्मित है जो कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है. इसके परिणाम काफी स्वास्थवर्धक रहे हैं.

झंडु फार्मेसी की स्वास्थ्यवर्धक दवाएं

झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड पिछले ७५ वर्ष से भी अधिक बरसों से आयुर्वेद के विकास में जुटी हुई संस्था. आयुर्वेद की सेवा में समर्पित.

इस संस्था ने आज के आधुनिक दौर में बहुत से लोगों के दृष्टिकोण को बदला है. उनमें विश्वास जगाया है और इस देश की सदियों पुरानी परंपरा को जन-जन तक पहुंचाया है. झंडु आयुर्वेदिक दवाएं बनाने वाली कोई एक संस्था मात्र नहीं रह गयी बल्कि एक आंदोलन का प्रतीक बन चुकी है. जिसे देश और विदेश में एक सम्मान मिला है. यह महान उपलब्धि है कोई साल दो साल में नहीं मिली बल्कि तीन चौथाई सदी की कोशिशों का परिणाम है.

यूं तो हर संस्था की सफलता के पीछे कई हाथ होते हैं. लेकिन असल में झंडु की सफलता का श्रेय उसके प्रेरणा पुरुष श्री झंडु भट्टी जी को जाता है. उन्होंने इस संस्था की आधारशिला रखी और उन्हीं के नाम पर इसका नाम रखा गया झंडु, जो आगे चल कर झंडु फार्मेस्युटिकल लिमिटेड हुआ. झंडु की दवाएं और अन्य स्वास्थ्यवर्धक पदार्थ हमें भला-चंगा बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं.

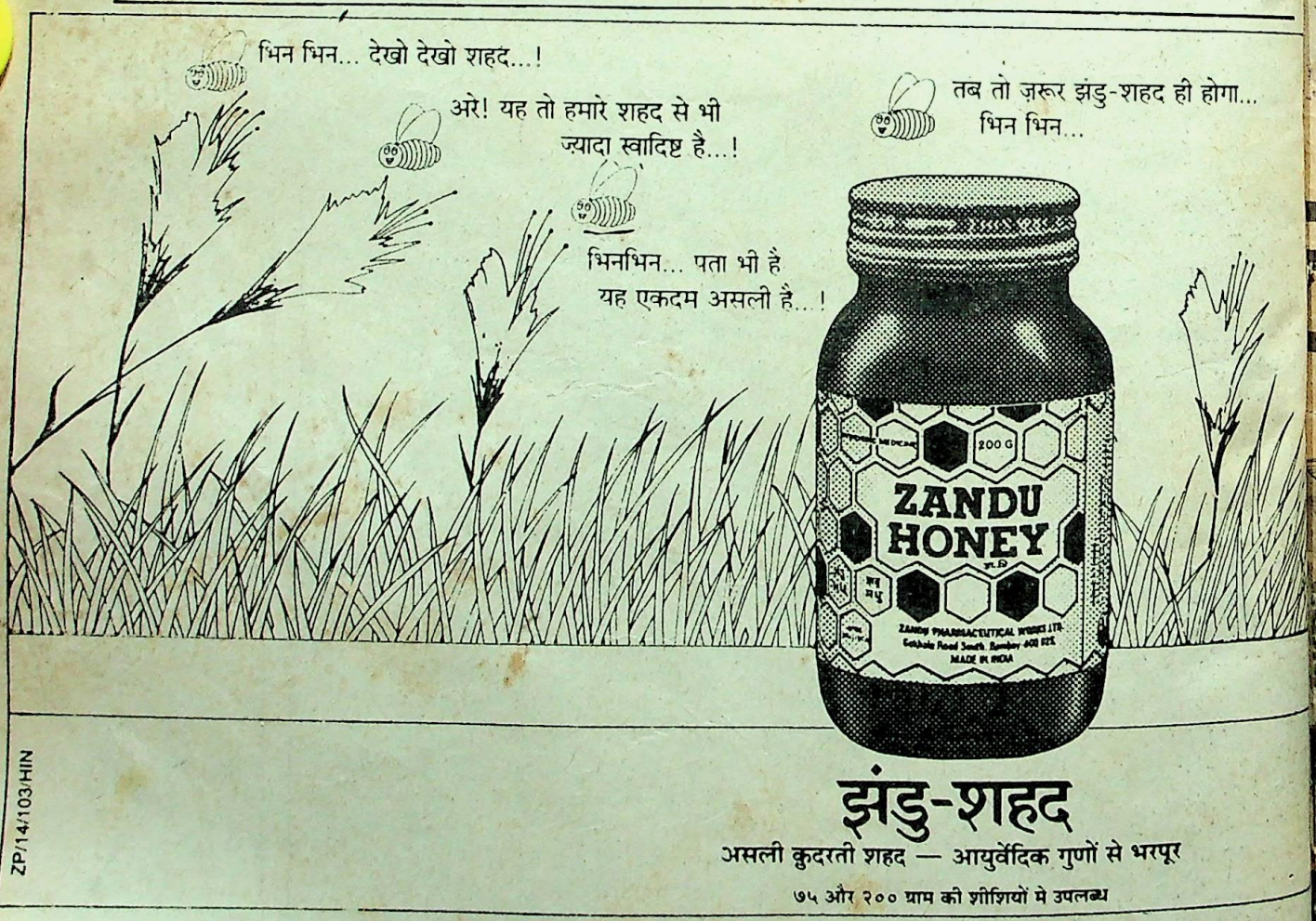

ZP/14/103/HIN

झंडु-शहद

असली कुदरती शहद — आयुर्वेदिक गुणों से भरपूर

७५ और २०० ग्राम की शीशियों मे उपलब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

पेश करते हैं –
एक महान उपन्यासकार

विक्की आनन्द

का नया जासूसी उपन्यास

घुग्घ

6/-

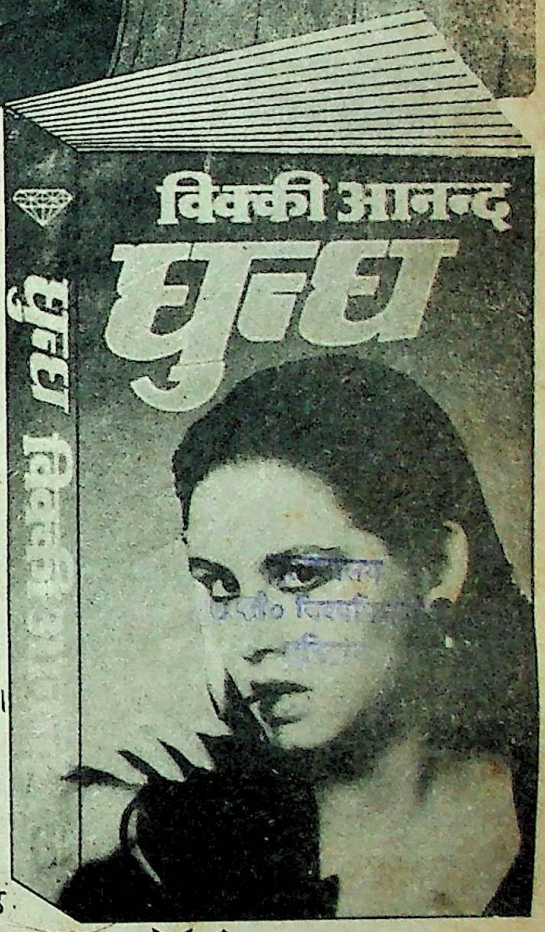

- लेखक का दावा है कि यह उपन्यास आपको पसंद आयेगा।
- एक नई किस्म के जासूसी उपन्यासों की परम्परा इस उपन्यास से शुरू होगी।
- विक्की आनन्द के उपन्यासों में रहस्य, रोमांच और इन्वेस्टीगेशन का अनूठा समन्वय है कि आप उपन्यास को एक ही बार में पूरा पढ़े बिना नहीं छोड़ पायेंगे।

लाखों पाठकों के प्रिय उपन्यासकार

सभीर

का नया उपन्यास

नकाब

6/-

सस्पैंस थ्रिल और एक्शन के जादूगर

एहुल

का नया रोमांचकारी उपन्यास

दोषी कौन

6/-

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

आंखों पर पट्टी बांधे
हाथ में तराजू लिये खड़ी दीखती
न्याय की देवी
अंधी है या गांधारी?
जिसका राजदंड भीष्म पितामह के
वंशजों के हाथ में है तो मगर
वे भी क्या भीष्म की तरह कभी-कभार
राजदंड के इस्तेमाल में कोताही करके
महाभारत की स्थितियां पैदा नहीं
कर देते?
तभी तो सुकरात, गैलीलियो और तिलक
जैसे मसीहा पुरुषों के साथ अंधेर
होता है!
कैसी है इन काले कोटधारी
हंसों की अजीब दुनिया

इस बार सारिका
आपको ले जा रही है
इन्हीं के अजीबोगरीब
संसार में कुछ ऐसे
मुकद्दमों की दास्तां सुनाने
जिन्होंने कानून के पंडितों
को पशोपेश में डाल दिया,
जिनके फैसले नजीर बन
गये और जिन्होंने दुनिया की
बड़ी से बड़ी हस्ती को कटघरे
में ला खड़ा किया...

साथ ही

जो सुलझ जाती है गुत्थी फिर से उलझाता हूं मैं...

न लिखने या सबसे कम सक्रिय होने के बावजूद आलोचना ही नहीं समूचे हिंदी साहित्य के केंद्र में नामवर जी पिछले तीन दशकों से बने हुए हैं...सुलझी हुई गुत्थियों को बराबर उलझाते जाने की उनकी चतुर रणनीति इसका कारण है या उनका वह व्यक्तित्व जिसे उनके गुरु आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बड़े डीलडौल की साकार मेधा कहा था...खुद नामवरजी से बातचीत के जरिए तलब कर रहे हैं उदय प्रकाश और सुधीश पचौरी.

...त्यों-त्यों प्रगट होई उर अंतर कांच कलश जल झाई
गोविंद मिश्र के नव्यतम उपन्यास 'धीर-समीरे' का एक और रोचक प्रसंग.

और साथ में...

- प्रहसन, रहस्य-रोमांच, अपराध कथा, किस्से कचहरी के, अरेबियन नाइट्स उर्फ किस्सा अलफ-लैला, रुपहली रातें, धारा के विरुद्ध, फाइल पढ़ि पढ़ि जग मुआ और सभी स्थायी स्तंभ.

सनसनीखेज दास्तानों का ऐतिहासिक दस्तावेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का
एक अनूठा प्रोजेक्ट

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें
मंगाने पर डाकखर्च माफ

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित
- सरस कथा शैली
- फोटोटाइप सैट
- बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई
- बहुरंगी आवरण
- वाजिब दाम

इस शृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय जगत से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को पूर्ण रूप से उजागर करने वाला एक सचित्र **'मिनि एनसाइक्लोपीडिया'** है।

उदाहरणार्थ 'रोमांचक कारनामे' में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो 'खोजें' में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। 'अनसुलझे रहस्य' में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो 'खेल और खिलाड़ी' व 'वैज्ञानिक' क्रमशः जीवनी प्रधान पुस्तकें हैं। 'विनाश-लीलाएं' में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण है तो 'दुर्घटनाएं' में मानवीय भूलों से हुई मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। 'गुप्तचर संस्थाएं' तथा 'जासूस' में मकड़े के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो 'प्रेरक-प्रसंग' किसी भी जहाज की तरह भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

इस शृंखला में प्रकाशित पुस्तकें:

विश्व-प्रसिद्ध.... 1. खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल एवं खिलाड़ी 8. रिकॉर्ड्स-I 9. रिकॉर्ड्स-II 10. वैज्ञानिक 11. विनाश - लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग 16. चिकित्सा-पद्धतियां 17. जासूसी-कांड।

तैयारी में/प्रैस में:—

- बैंक-डकैतियां
- क्रूर हत्यारे
- सभ्यताएं
- खजाने
- राजनैतिक हत्याएं
- खोजी-यात्राएं
- स्कैण्डल।

आमंत्रण:—

प्रोजक्ट में योगदान के लिए विद्वान लेखक तथा अनुवादक संपर्क साधें।

अपने निकट के बुकस्टॉल एवं रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुकस्टॉलों पर मांग करें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता:—

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006

शो रूम: 10-B नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

ब्रांच आफिस: 22/2 मिशन रोड (आप राव कम्पाउंड), बंगलौर-560027

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम जनता के हितकार्य में सदैव प्रस्तुत

महाराष्ट्र राज्य की स्थापना के आज २८ वर्ष पूरे हो चुके हैं. ''आम जनता का आधार'' जैसे शिवछत्रपति के लोकोत्तर राजनीति के आदर्श को आधार मान कर महाराष्ट्र सरकार ने गत २८ वर्षों में गरीबों के कल्याण की नीति को मूलाधार माना और अनेक जनहित योजनाएं तैयार करके उन्हें क्रियान्वित किया.

प्रधानमंत्री के नये २० सूत्री कार्यक्रम, ''गरीब व दुर्बल घटकों का जीवन-आधार'' को क्रियान्वित करने में महाराष्ट्र राज्य सदैव आगे की पंक्ति में रहा है.

किसान, खेतमजदूर, श्रमिक, ग्रामीण जनता, आदिवासी, अनुसूचित जाति-जमाति व विमुक्त जाति के लोग, झोपड़पट्टीवासी और शहरी जनता जैसे तमाम सामाजिक घटकों के हितों की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करके महाराष्ट्र सरकार ने छत्रपति शिवाजी महाराज के आज्ञापत्र में घोषित ''प्रजेच्या हितकार्यी सादर असावे'' आदर्श को मूर्तरूप दिया है.

आज महाराष्ट्र दिवस के इस मंगल अवसर पर जनसाधारण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को पुनः दोहराते हुए महाराष्ट्र सरकार आम जनता को इस बात का यकीन दिलाती है कि ''हमारी सरकार'' आम जनता के हितकार्य में सदैव प्रस्तुत है.

डीजीआइपीआर
महाराष्ट्र परिचय केंद्र
नयी दिल्ली-११०००१
द्वारा वितरित—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका
वर्ष :28, अंक :436, अगस्त, 1988

The Times of India
One Hundred and Fifty Years

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

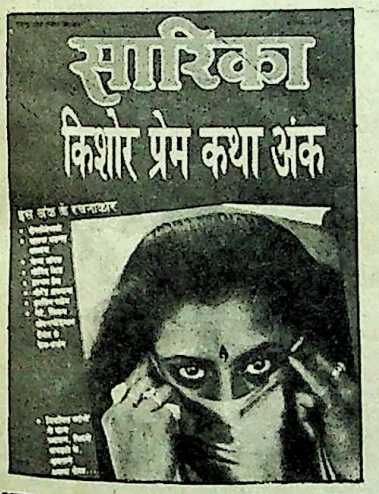

आवरण पारदर्शी : धर्मवीर जयनर
आवरण सज्जा : कला विभाग
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

किशोर प्रेमकथा अंक

कथा रचनाएं

10. एक था लड़का, एक थी लड़की :
ख्वाजा अहमद अब्बास
16. खूबसूरत मगर मजबूर :
हरमन हेस
22. पिया का नाम दिया ;
बानो कुदसिया
32. प्रेमावेग
इरविंग स्टोन
34. गुफाएं :
धीरेंद्र अस्थाना
39. रूपहली रातें :
दोस्तोयेव्स्की
43. कसक :
जेम्स जॉयस
60. त्यों त्यों प्रकट होत...:
गोविंद मिश्र
68. बेचारे लोग :
शुभकार कपूर
74. पार्क की बैंच पर चश्मा :
अतुल शर्मा

युवा प्रेम प्रसंग

15. गेटे
31. अब्राहम लिंकन
49. रवींद्रनाथ ठाकुर

विशेष आयोजन

'64. रस्किन बांड से अंतरंग साक्षात्कार :
सुधीर मिश्र
72. प्रौढ़ व्यापक और
परिक्व अनुभव संसार :
राजकुमार सैनी

अन्य आकर्षण

8. आपकी बात
18. दास्ताने अलफ लैला
46. रहस्य रोमांच
50. अपराध कथाएं
57. धारा के विरुद्ध :
राजेंद्र राव
58. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी
63. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी
66. किस्से कचहरी के :
दिनेश चंद्र दुबे
77. इस बार का ज्ञानपीठ पुरस्कार :
बाल स्वरूप राही
78. नयी पौद
79. सारिका कथा पहेली
80. कृतियां

कॉपीराइट © 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैवले मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

अंक का सौंदर्य

सारिका के नये अंकों की इंतजारी बड़ी उत्सुकता से करता रहता हूं इसलिए कि सारिका से अच्छी कुछ उत्कृष्ट रचनाओं की उम्मीद रहती है– अच्छी रचनाओं का मैं कायल हूं और सारिका इस मानी में कुछ दूर तक रचनात्मकता की भूख को मिटाती है. कभी नयी मौलिक रचनाएं प्रकाशित करती है जिन्हें पढ़कर तबियत खुश हो जाती है, सृजनात्मकता का सहज सौरभ अनायास प्राप्त हो जाता है.

श्रवणकुमार की 'मैं और तुम' गजब की प्रवाहमयी रचना है– बहुत संयत, बहुत गंभीर, बहुत सूक्ष्म फिर भी कितनी अपनी, कितनी आत्मीय-सृजनात्मक ऊर्जा अपने चरम बिंदु अपने चरमोत्कर्ष पर अधीष्ठित लगती है. संक्षिप्ति में सारगर्भिता, रूमानियत में शिष्टता, मैं और तुम के चिर-सनातन संबंधों को उकेरती हुई, परत दर परत उभारती हुई-प्रारंभ से अंत तक पाठक को अपनी लपेट में बहाती हुई और अंत, लगता है, अंत हुआ ही क्यों? क्यों न और बातें चलती रहीं. और हम उसमें, कथा प्रवाह में डूबते रहें. आनंद अस्थाना की 'महाभियोग' भी खूब सुंदर रचना है– कुछ विस्तार अवश्य है पर उतना खटकता नहीं– और डा. नायक का अंतिम अंतर्द्वन्द्व तो कमाल का है, बहुत सूक्ष्म. अस्थानाजी ने शायद एक अनछुए प्रसंग को, एक अस्पृष्ट पृष्ठ को, एक अति सूक्ष्म संवेदनात्मक अंतर्द्वन्द्व को बड़ी दक्षता, कहूं निष्णातता के साथ उद्घाटित, अनावृत्त, भास्कर-भास्मान किया है. रमेश राजहंस की रचना 'एक चिथड़ा सुख' भी बड़ी मनमोहन, मुग्धकारी आत्मीय रचना है. नवोदित रचनाकार ने रचना, रचनात्मकता, रचना-प्रक्रिया पर अपना पूर्ण अधिकार और कौशल दर्शाया है–रचना बड़ी ऊर्जा संपन्न और मोहिनी बन पड़ी है. इसी तरह नये हस्ताक्षर महावीर राजी की रचना 'फेंसी ड्रेस' भी काफी समृद्ध रचना बन पड़ी है. लगता है, लेखक नया नहीं है, रचनात्मकता के क्षेत्र में काफी प्रौढ़-प्रशिक्षित है. इन रचनाओं के आगे अन्य रचनाएं फीकी लगती हैं. यहां तक कि सुरेंद्र अरोड़ा की कहानी 'नाच चल रहा है' भी कुछ जीवंत होती हुई भी बहुत प्रभावित नहीं करती और 'छतरी' और 'चमड़ी के रंग' भी मनमानस से यों ही फिसल जाती हैं. क्योंकि स्थायी प्रभाव नहीं छोड़तीं. देवेंद्र सत्यार्थी, शिवप्रसाद सिंह एवं कैथरीन मेंसफील्ड की रचनाएं अपने-अपने ढंग से काफी प्रभावशालिनी सिद्ध हुई. पर मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि प्रथमोल्लिखित चार रचनाएं- इस अंक की शोभा हैं. इस अंक की विशिष्ट सिद्धि.

□ **रवींद्रनाथ ओझा, बेतिया (बिहार)**

विचारों के बेतालों की मुक्ति

अजय कुमार सिंह की कहानी 'कुत्ते' में लेखक ने कुत्ते जैसा सामान्य विषय लेकर मनुष्य का साहस, आक्रोश, पुरूषार्थ तथा सबसे बढ़कर निरीहता जैसे आवेगों को बहुत सूक्ष्मता से चित्रित किया है.

'सुनो परीक्षत सुनो' जैसे कथानकों की आवृत्ति ही तो सारिका को सार्थक करते हैं. कथा प्रतिष्ठित अवतारों के आचरण पर निष्पक्ष और निर्भीक चिंतन करनेवालों को अवलंब देती है.

□ **अमर सिंह, आगरा**

व्यंग्य पर व्यंग्य

कमल लिखित रचना 'वर्षगांठ मनाना' को 'व्यंग्य' का नाम देना व्यंग्य विधा के साथ अन्याय है. इस रचना के वाक्य-प्रयोग बचकाने हैं, व्यंजना का अभाव है.

उदाहरणार्थ- "कहने को तो राजे-रजवाड़े नहीं रहे, फिर भी भारत तो राजाओं के हाथों में ही कैद है" के स्थान पर "कहने को तो राजे-रजवाड़े नहीं रहे, फिर भी भारत तो राजाओं का ही देश है." ऐसा कहने में व्यंग्यार्थ चमत्कारजनक होता.

वस्तुतः व्यंग्य उसे कहते हैं, जहां वाच्यार्थ कुछ और हो तथा व्यंग्यार्थ कुछ और संस्कृत काव्यशास्त्र में व्यंग्य प्रधान काव्य (रचना) को उत्तम काव्य कहा गया है.

'वर्षगांठ मनाना' के लेखक ने प्रायः आधी रचना के बाद से वाच्यार्थ में ही बात कह डाली है और व्यंग्य के विषय 'राजीव गांधी और सरकार' का सीधा-सीधा नामोल्लेख किया है. मेरी दृष्टि में यह व्यंग्य के नाम पर राजीव गांधी और उसकी सरकार पर सीधा आक्षेप है, जो व्यंग्य विधा का अपमान है. व्यंग्य रचना में लेखक को व्यंग्य का विषय, स्थल और वास्तविक अर्थ नहीं बताना पड़ता, वह काम पाठकों का होता है. सारिका जैसी उत्कृष्ट पत्रिका में ऐसी रचना को देने का कारण जान सकता हूं?

□ **सत्येंद्रशर्मा हाजीपुर (बिहार)**

द्विवेदीजी सिद्ध उपन्यासकार हैं

सारिका (मई, 88) में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी पुण्यतिथि पर श्री प्रभाकर श्रोत्रिय के गवेषणात्मक लेख को देखकर प्रसन्नता हुई. लेकिन वे 'पुनर्नवा' के अतिरिक्त आचार्यजी की अद्भुत कल्पना प्रसूत रचनाओं 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारूचंद्र लेख' और 'अनामदास का पोथा' को उपन्यास नहीं मानते यह आश्चर्यजनक लगा. वस्तुतः 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारूचंद्र लेख' आख्यायिका धर्मी रचनायें होने पर भी महाकाव्य के सभी गुणों से युक्त युगांतकारी रचनायें हैं, जो आचार्य द्विवेदी को सही अर्थों में सिद्ध (साहित्यकार) रचनाकर्मी घोषित करती हैं.

यदि बाणभट्ट और चंद्रदीधिति पुरुषपुर की ओर चले जाते हैं तथा क्रियाशक्ति निपुणिया की मृत्यु हो जाती है– क्या इसी बजह से नहाराज हर्षकालीन भारत के इतिहास के अनछुये पृष्ठों पर रंजक प्रकाश डालनेवाली इस रचना को अधूरा माना जायेगा?

इसी प्रकार 'चारूचंद्र लेख' की मूल कहानी यद्यपि एक जैन कथा से ली गयी है और वह कथानायक राजा सातवाहन और सिद्धयोगिनी रानी चंद्रलेखा के जन-जागरण प्रयासों में समाप्त हो जाती है, परंतु इस शक्तिशाली रचना को समझने के लिए आचार्य द्विवेदी की 'हिंदी का आदिकाल' व्याख्यानमाला को पढ़ना होगा (आ. हजारी प्रसाद ग्रंथावली-3 में संग्रहीत) जिसमें गाहड़वार राजा गोविंदचंद्र और राजा जयचंद्र के सभामंत्री विद्याधर पंडित का महिमामंडित उल्लेख है. स्पष्ट ही राजा गोविंदचंद्र देव 'चारूचंद्रलेख' के कथा नायक हैं. व्याख्यान माला में दानवीर जगडू शाह का भी उल्लेख है, किंतु यह विषयांतर होगा.

'चारूचंद्र लेख' मध्यकालीन भारतीय और हिंदी साहित्य के इतिहास की विस्मयकारी रचना है- ठीक उसी प्रकार जैसे 'बाणभट्ट' हर्षकालीन भारत की. दोनों रचनायें हिंदी साहित्य की क्लासिक श्रेणी की रचनायें हैं. मुझे विश्वास है कि अगले हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका आकलन इसी दृष्टि से किया जायेगा.

आचार्य द्विवदी सिद्ध रचनाकार इसलिये भी हैं कि उन्होंने 'पुनर्नवा' 'बाणभट्ट' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चारूचंद्र लेख' तीनों रचनाओं में सिद्धों और योगियों की कल्याणकारी शक्तियों की महिमा बताई है– उन्हें महिमान्वित भी किया है. उदाहरण के लिये 'पुनर्नवा' की विध्यावटी के सिद्ध को लीजिये, समुद्रगुप्त के नर्मसखा-गोपालक की प्रिया मृणाल से मिलाया तथा समर्पिता चंद्रा के साथ न्याय किया. इसी प्रकार 'बाण' के आचार्य अघोर भैरव-देवी महामाया और सौगतधर्मी सन्यासी ने कथासूत्र को रोचकता से आगे बढ़ाया है. इतना ही नहीं देवी महामाया के लाखों शिष्यों ने ही उस समय देश के सीमांत की रक्षा की थी. 'चारूचंद्र लेख' में सिद्धों-योगियों के पतनकारी प्रभाव का उल्लेख भी है, किंतु अमोघवज्र देवी विष्णुप्रिया, और अन्याय तांत्रिकों के साथ दिग्भ्रमित रानी चंद्रलेखा के चरित्रों के साथ आचार्यजी ने सिद्ध साहित्य के अनेक रहस्य खोले हैं.

'अनामदास का पोथा' या 'रैक्व आक्ख्यान' भले ही बाद में लिखी गयी रचना है, लेकिन वैदिककालीन भारत की इस उपन्यासिका में आचार्य द्विवेदी ने तत्कालीन ऋषि-समाज की जीवन शैली और विश्वासों पर मनोरंजक दृष्टिपात किया है.

□ **अशोक श्रीवास्तव, विदिशा (म.प्र.)**

सारिका की बात ही कुछ और थी

सारिका कई सालों से पढ़ता आ रहा हूं. अब तो काफी महंगी भी हो गयी है. पहले सारिका पढ़ने को मन करता था. पढ़कर एक सुकून-सा मिलता था. अब हर अंक निराश ही करता है. मई का अंक पूरा पढ़ चुका हूं. कुछ भी ऐसा नहीं लगता जो कुछ छाप छोड़ गया हो मन पर. एक दौर में 'मुआवजा' जैसी कहानी भी छपी थी सारिका में, लगता है अब अच्छी कहानियों का अभाव हो गया है.

'छतरी' को जबर्दस्ती कहानी बनाने की कोशिश की गयी है, सच तो यह है कि यह कहानी है ही नहीं.

'कुत्ते' कहानी में अजयसिंह ने आज के खोखले समाज व लोगों की सोच का अच्छा चित्रण किया है.

□ **आनंद धौलाखंडी, अलमोड़ा (उ.प्र.)**

मेड टु आर्डर कहानियां

'कथा दर्शन' के माध्यम से सुधीश पचौरी ने भारत में रचनात्मक लेखन की अकादमी-शिक्षण की योजना की जानकारी दी है तथा आवाम को ऐसे प्रयोगों से 'बिदकने' को मनाही की है...

अपने समाजवादी (?) राष्ट्र में स्पष्टतौर पर बहुत पहले से ही एक वर्ग विशेष का वर्चस्व बना रहा है जो सिर्फ लेखन ही नहीं, हर क्षेत्र में 'मेड टु आर्डर' की शिक्षा-दीक्षा की वकालत करता है तथा उसे वतन के फरोग के लिए 'मस्ट' मानता है. दरअसल, 'डिमांड और सप्लाई' का सिलसिला आजादी प्राप्त करने के तुरंत बाद ही देश के तथाकथित सुसंपन्न समुदाय के लोगों ने शुरू किया तथा इसका प्रयोग उन्होंने अर्थनीति, राजनीति, कला, वाणिज्य, शिक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्र में किया ताकि देश की लगाम उनकी मुट्ठी से बाहर न हो जाये. लेकिन अब जब इन सारे क्षेत्रों में उन्हें यह प्रयोग प्रत्याशित सफलता देता दिखलायी नहीं दिया तो उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग कर देश की संस्कृति का ही आमूल चूल परिवर्तन करना चाहा है ताकि वे लेखकों से प्रतिबद्ध लेखन करवा सकें और समाज के आदर्श की 'मांग' के बदले वे अपनी नीतियों की 'पूर्ति' कर सकें.

इसी 'मेड टु आर्डर' के रोग को खुलासा करती हुई कहानी (फेंसी ड्रेस) (नये हस्ताक्षर) की होकर भी अति सशक्त और ताजा रचना है- लेखक को बधाई.

□ **धनेशदत्त पांडेय, मधेपुरा (उ.प्र.)**

जमाना गुजर गया

'दादाजी दंदे', 'गुड़ियाघर', 'मैं और तुम', 'फेंसी ड्रेस' तो सामान्य, किंतु 'सुनो परीक्षित सुनो', और 'एक चिथड़ा सुख' उत्कृष्ट रचनायें लगी. 'सुनो परीक्षित सुनो' में लेखक ने जिस मौलिक सोच को अभिव्यक्ति दी है काबिले तारीफ है. पौराणिक काल के जिन आदर्शों को आज तक आदर्श माना जाता है उनका दूसरा पक्ष कितना घृणित और निंदनीय है. कहानी में खूब उजागर हुआ है. दूसरी कहानी 'एक चिथड़ा सुख' पढ़कर तो ऐसा लगा जैसे बहुत दिनों बाद किसी अच्छी रचना से मुलाकात हुई है.

महेश कटारे 'सुगम', विदिशा (म.प्र.)

प्रतियोगिता परिणाम

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी परिषद, बस्ती ने 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की स्मृति में अखिल भारतीय हिंदी कहानी प्रतियोगिता का आयोजन किया था. जिसके सभी पुरस्कारों विजेताओं को सारिका परिवार की ओर से बधाई.

निर्णायक मंडल में सर्वश्री राजेंद्र राव, संजीव और आनंद अस्थाना थे. प्रथम पुरस्कार राजेंद्र लहरिया कृत 'देशांतर' पर द्वितीय पुरस्कार प्रमिला भजेजी को 'नेमप्लेट' पर और तृतीय पुरस्कार एन.आर. श्याम को 'पत्र मित्र' के लिए दिया गया.

बधाई

प्रख्यात हिंदी साहित्यकार श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क' को महाराष्ट्र उर्दू अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है.

वर्ष 1987-88 के लिए अहिंदी भाषी लेखकों के द्वारा हिंदी में लिखी पुस्तकों पर पुरस्कार देने की योजना के अंतर्गत हिंदी की प्रतिष्ठित लेखिका राजी सेठ के कहानी संग्रह 'यात्रा-मुक्त' को केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, की विशेषज्ञ समिति ने पुरस्कृत करने का निश्चय किया है.

समकालीन कथा-शिल्पी मंजूर एहतेशाम को वर्ष 1987 के 'श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार' के लिए चुना गया है.

मंजूर एहतेशाम को यह पुरस्कार उनके उपन्यास 'सूखा बरगद' के लिए दिया गया है.

चंद्रकांता को उनके उपन्यास 'ऐलान गली जिंदा है' पर जे. एंड के. एकेडमी ने पुरस्कृत किया है.

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने वर्ष 1984 के लिए हिंदी के शीर्षस्थ कथाकार रामदरश मिश्र को उनकी निबंध पुरस्तक 'जहां मैं खड़ा हूं' पर 'पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी नामित पुरस्कार' से सम्मानित करने की घोषणा की है. इसी क्रम में सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्वदेश भारती की औपन्यासिक कृति 'औरतनामा' को 'प्रेमचंद्र नामित पुरस्कार' की घोषणा की है.

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध भारतीय साहित्यकार राजा राव को साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए 25,000 डालर के प्रतिष्ठित 'न्यटाट पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है.

प्रो. राजाराव यह पुरस्कार पाने वाले पहले एशियाई साहित्यकार हैं.

सभी पुरस्कार विजेताओं को सारिका परिवार की ओर से बधाई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 7 जून, 1914 पानीपत
निधन :
'इन्कलाब' जैसे चर्चित उपन्यास और 'आवारा', 'मेरा नाम जोकर' जैसी सुप्रसिद्ध फिल्मों के स्क्रिप्ट लेखक व अपने समय के सम्मानित पत्रकार और फिल्म निर्देशक.

ख्वाजा अहमद अब्बास

एक था लड़का एक थी लड़की

किसे कहते हैं प्यार... और क्या होती है मुहब्बत...? उर्दू के प्रख्यात कथाकार की चर्चित कहानी बता रही है कि जब दो निर्दोष जन मिलते हैं तब क्या होता है?

एक था लड़का. एक थी लड़की.

लड़के का नाम, मान लीजिये था निर्मल.

लड़की का नाम मान लीजिये, था आशा.

लड़का वाडीबंदर गुड्स ट्रेन डिपो में काम करता था, मगर रहता था थाने में. क्योंकि उससे करीब कहीं सौ रुपये माहवार पर कमरा मिलना असंभव था. उसे महंगाई अलाउंस मिलाकर कुल तीन सौ रुपये तनख्वाह के मिलते थे. सौ रुपये किराया देकर उसके पास सिर्फ दो सौ रुपये बचते थे. जिसमें से अस्सी रुपये उसे घर भेजने होते थे. अपनी बूढ़ी मां और छोटी बहन के गुजारे के लिए, जो उत्तर प्रदेश के एक गांव में रहती थीं. बाकी एक सौ बीस रुपये में निर्मल को गुजारा करना पड़ता था. यह तब ही हो सकता था, कि वह खुद खाना पकाये. सो, उसने राशन-कार्ड बनवा लिया था और दाल-भात पका लेता था या रोटी और कोई सस्ती-सी तरकारी.

सुबह उठ कर पहले चाय बनाकर पीता था. फिर खाना पकाता था. फिर उस खाने को डिब्बे में डाल कर अपने दफ्तर ले

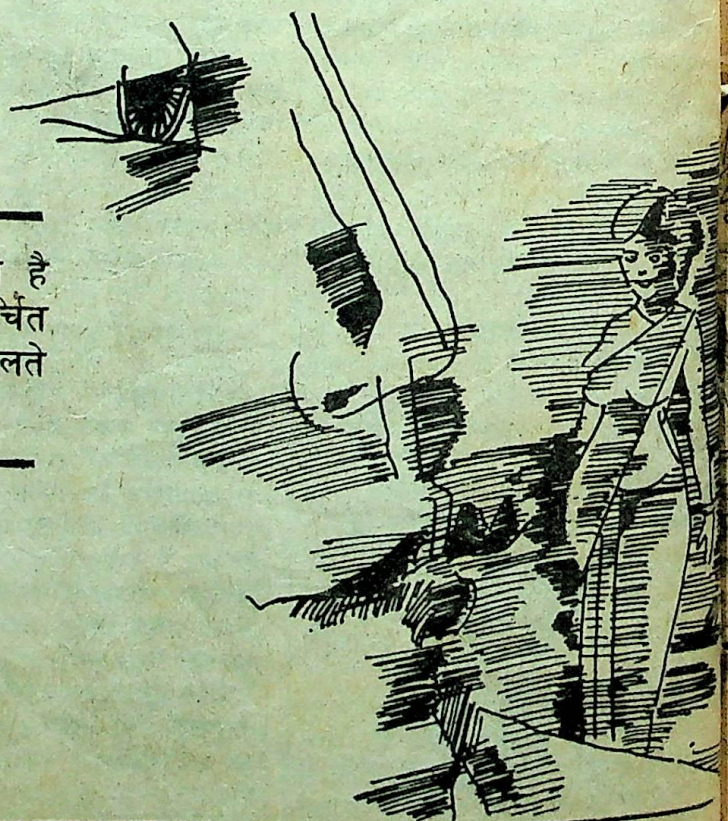

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता था. शाम को काम तो साढ़े पांच बजे खत्म हो जाता था, मगर घर पहुंचते-पहुंचते रात हो जाती थी. शाम का खाना रात को पकाना पड़ता था. कभी-कभी सवेरे उठने से बचने के लिए दोपहर का खाना भी रात को ही पका लेता था, और उसी को लेकर दफ्तर चला जाता था.

लड़की पंजाब के एक कस्बे से आयी थी. फिल्म में काम ढूंढने के खयाल से. पहले दस दिन तो मां के एक रिश्तेदार के यहां ठहरी. सूरत-शक्ल अच्छी-खासी थी, मगर स्टूडियोओं का चक्कर लगाने पर भी कोई काम न मिला, सिवाय इसके कि एक दलाल ने उससे कहा था कि मैं काम दिलवाये देता हूं, मगर "डायरेक्टर का बिच्छू काटेगा तुम्हें. अगर तैयार हो, तो पांच सौ रुपये माहवार का कंट्रेक्ट करवाये देता हूं." जिस अंदाज से आंख मारकर उस दलाल ने कहा था, कि डायरेक्टर का बिच्छू काटेगा तुम्हें आशा को अंदाजा हो गया था कि यह किस किस्म का जहरीला बिच्छू है. उस वक्त वह ऐसी शर्तों पर काम करने के लिए तैयार नहीं थी. सो, वह वहां से चली आयी और फैसला कर लिया कि अब कभी न जायेगी वहां.

दस दिन के बाद उसके रिश्तेदार की बीवी ने उसे घर से निकाल दिया यह कहकर कि उनके घर में मेहमान रखने के लिए जगह नहीं है. दरअसल उसे इन फिल्मी छोकरियों पर कुछ एतबार नहीं था कि कब उसके पति पर ही डोरे डालना शुरू कर दें.

वह पंद्रह दिन एक एक्स्ट्रा लडकी के यहां रही, जो अकेली एक खोली में रहती थी. वह जब 'नाइट-शूटिंग' के लिए जाती, तो आशा उसके बिस्तर पर सो जाती. जब उसकी 'नाइट-शूटिंग' न होती, तो उसके पलंग के नीचे जमीन पर अपना बिस्तर कर के सो जाती, मगर एक्स्ट्रा लड़की के जो चाहने वाले थे, एक्स्ट्रा और एक्स्ट्रा-सप्लाइर... वह जब आशा पर डोरे डालने लगे, तो

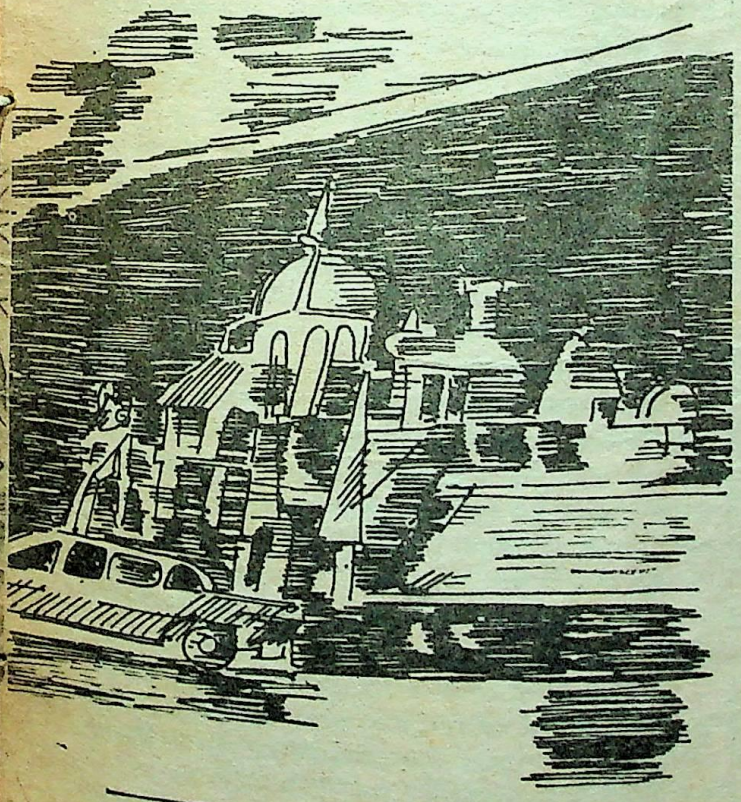

एक्स्ट्रा-लड़की ने भी उस मुकाबले की ताब न लाकर उसे घर से निकाल दिया. बहाना यह बनाया कि उसे संदेह है कि जब वह नहीं होती, तो आशा उसकी लिपस्टिक का इस्तेमाल करती है और उसके तकिये में आशा के सोने से जुएं हो गयी हैं.

जब एक्स्ट्रा-लड़की की खोली उसने छोड़ी, तो दो दिन से उसने खाना नहीं खाया था. घर से चुराकर जो डेढ़ सौ रुपये लायी थी, वह कब के खत्म हो चुके थे. दो-चार दिन अपनी चांदी की चूड़ियां बेचकर उन पर गुजारा किया. अब वह रुपये भी खत्म हो चुके थे. एक दिन तो केले खाकर ही गुजारा कर लिया. अगले दिन पानी पीकर ही सो रही. तीसरे दिन जब एक्स्ट्रा-लड़की ने उससे जाने को कहा और किराये के बदले में उसका बिस्तर और दो साड़ियां रख लीं, तो आशा के पास कोई उपाय न रहा सिवाय उस दलाल के पास वापस जाने के, मगर स्टूडियो चेंबूर में था और खोली परेल में थी. पैदल चलकर जब चेंबूर पहुंची, तो गले में कांटे पड़ चुके थे. आंखों में गढ़े पड़े हुए थे. परेशान बालों में रास्ते की धूल अटी हुई थी. चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं. अच्छी-खासी भूतनी लगती थी. ऐसी हालत में स्टूडियो के दरबान ने बाहर ही रोक दिया. दलाल जब एक और लड़की को साथ लिये स्टूडियो से बाहर निकला, तो आशा हिम्मत कर के आगे बढ़ी, "नमस्ते जी!" उसने कहा.

दलाल ने उसकी तरफ ऐसे देखा, जैसे पहले कभी देखा ही नहीं था. फिर भी आशा ने कहा, "आपने शायद मुझे पहचाना नहीं. मैं आशा हूं. आप ने कहा था कि काम दिलवायेंगे. मैं अब हर शर्त के लिए तैयार हूं."

दलाल ने उसे झिड़क दिया, "चल, अपना रास्ता ले. मैंने तो तुझे पहले कभी देखा ही नहीं. वायदे का सवाल नहीं पैदा होता." फिर अपने साथ जो लड़की थी, उसे संबोधित कर के कहा, "न जाने कहां से चुड़ैलें आ जाती हैं? ख्वाहमख्वाह एक शरीफ आदमी के गले पड़ती हैं." यह कहा और एक टैक्सी में लड़की को साथ लेकर चला गया.

वह वहां से पैदल चलती हुई फिर परेल पहुंची. एक्स्ट्रा लड़की की खोली पर गयी, मगर वहां ताला पड़ा हुआ था. साथ वालों से पूछा, तो जवाब मिला कि वह कह गयी है कि आज तो मेरी नाइट-शूटिंग है. कल सुबह ही आऊंगी. आशा ने डरते-डरते पूछा, "मुझे चाबी देने को तो नहीं कह गयी है?" पड़ोसिन ने जवाब दिया, "बल्कि कह गयी है कि वह जो लड़की मेरे साथ रहती थी, वह आये, तो उससे कह देना कि अब इधर आने की तकलीफ न करे."

आशा वहां से भी चली आयी. परेल स्टेशन पर आकर प्लेटफार्म पर लगे नल से पानी पिया. फिर बेंच पर बैठी लोकल-ट्रेनों का आना-जाना देखती रही. सोचा, ट्रेन में बैठ जाऊं, मगर टीटी के डर से वहीं बैठी रही. जब साढ़े पांच बजे की 'फास्ट-ट्रेन' आयी, तो वह हिम्मत करके जो मुसाफिरों का रेला डिब्बे के अंदर जा रहा था, उस रेले में शामिल हो गयी. मालूम नहीं, कब और कैसे वह डिब्बे में चढ़ी, जो खचाखच भरा हुआ था. जब उसे होश आया, तो दरवाजे के पास लोहे के डंडे से लगी खड़ी थी. रेल अब चल रही थी, पथराई हुई आंखों से दरवाजे के बाहर ऊंची-ऊंची इमारतों को बिजली के खंबों और सड़कों पर आती-जाती मोटरों-बसों और आदमियों की भीड़ को देखती रही. रेल की रफ्तार अब तेज होती जा रही थी. स्टेशन पर स्टेशन छोड़ती जा रही थी. उसे ऐसा लगा कि रेल के पहियों की आवाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे कह रही है : "बिच्छू. बिच्छू.. बिच्छू.. बिच्छू..."

फिर यह आवाज बदली और अब आहिस्ता होती हुई रेल के पहिये उससे कह रहे थे : "काटेगा.. काटेगा.. काटेगा.. काटेगा!"

किसी स्टेशन पर रेल आधे मिनट के लिए रुकी. कुछ मुसाफिर उतरे. उनसे ज्यादा मुसाफिर चढ़े. भीड़ उतनी ही रही, बल्कि उससे भी ज्यादा हो गयी. करीब खड़े हुए मुसाफिरों के बदन उसके बदन को छू रहे थे. उनकी गर्म-गर्म बदबूदार सांस वह अपने गालों पर महसूस कर सकती थी, मगर उस वक्त प्रतिरोध करने की न उसके पास ताकत थी, न हिम्मत. रेल की रफ्तार अब फिर तेज हो चुकी थी. रेल के पहियों की आवाज अब उससे कुछ और शब्द कह रही थी. बार-बार दुहरा रही थी... मर जा.. मर. जा.. मर जा.. मर जा. मर जा"

आसमान पर अंधेरा बढ़ता जा रहा था. इस अंधेरे में उसे अपने अतीत की झलकियां टिमटिमाते हुए चिरागों की तरह नजर आयीं...

भटिंडा कस्बे की एक गली. उस गली में एक छोटा-सा घर. उस घर में एक छोटी-सी लड़की.

जब वह लड़की पैदा हुई थी, तो उसकी मां ने उसका नाम रखा था, 'आशा'. क्योंकि उसे उस से बहुत-सी उम्मीदें थीं.

लेकिन अब एक और झलकी नजर आयी. उसकी मां बीमार पड़ी थी. बाप शराब पीकर बाहर से आया था. उसने बाप से पूछा था, "बाबा, दवाई ले आये?" हंस कर बाप ने जवाब दिया था, "तेरी मां के लिए दवाई तो नहीं लाया. सच यह है कि भूल गया, मगर अपने अंदर दारू भरवा लाया हूं." यह कह कर उसने एक भयानक कहकहा लगाया, जिससे कई बरस बाद और बारह सौ मील दूर आज भी बंबई में आशा भयभीत हो रही थी.

फिर मां की अर्थी को उठाकर लोग बाहर ले जा रहे थे. जब उसे श्मशान में जलाकर बाप वापस आया, तो आशा रो रही थी. बाप ने उसे समझाया, "चुप रह बेटी! तेरी मां अब दुनिया की सब तकलीफों से मुक्ति पा चुकी है. जहां वह है, वहां कोई तकलीफ, कोई दुख नहीं है. सिर्फ आनंद ही आनंद है."

दस बरस बाद यह शब्द आज रेल में फिर उसे सुनाई दिये. अब रेल के पहियों की आवाज उस से कह रही थी, "मर जा.. मर जा.. मर जा.. मर जा.. मर जा.."

वह सजाए-मौत का हुकम नहीं था. मुक्ति और आनंद पाने का एक सीधा-सादा आसान रास्ता था, मगर अभी एक और झलकी देखनी बाकी थी.

उसकी सौतेली मां, जो उसके बाप से काफी छोटी थी, और जिसका छोटा भाई आशा को देखते ही उस पर रीझ गया था, मगर आशा को वह बिलकुल पसंद नहीं था. आशा मैट्रिक तक पढ़ी हुई थी. उसकी सौतेली मां का भाई, जो उसका सौतेला मामा होता था, मिडिल-फेल था. मुंह पर चेचक के दाग थे. उसकी जबान पर हर किस्म की गालियां रहती थीं. जब आशा ने उससे, अपने सौतेले मामा से शादी करने से साफ इंकार कर दिया, तो एक दिन उसने (जब उसकी बहन और बहनोई दोनों बाहर गए हुए थे) मौके से फायदा उठाकर अपनी सौतेली भांजी पर हमला करना चाहा था. आशा ने शोर मचाकर सारे मोहल्ले को इकट्ठा कर लिया था. और सौतेले 'मामा' को भाग कर एक अंधेरी कोठरी में पनाह लेनी पड़ी थी. उस रात को जब सौतेली मां वापस आयी और उसने यह सब सुना, तो आशा से, जिसकी वजह से, उसके भाई की बदनामी हुई थी, उसे और चिढ़ हो गयी. वह अपने पति से कहने लगी, "किसी न किसी के साथ आशा के हाथ जल्दी से पीले कर दो. इससे पहले कि वह तुम्हारी इज्जत को खाक में मिला दे. चौधरी लक्खू राम कोई ऐसा बूढ़ा तो नहीं है. साठा-पाठा ही है. क्यों न उसका रिश्ता स्वीकार कर लो? वह कई बार कह चुका है."

आशा बूढ़े, पोपले, रंडवे लक्खू राम को जानती थी, जो उसके बाप से भी उम्र में बड़ा था. वह उस रात को घर से डेढ़ सौ रुपये चुराकर रेल से बंबई चली आयी थी.

अब तो उसने लगभग एक महीने तक बंबई और उसकी फिल्मी दुनिया को देख लिया था, बरत लिया था. अब उस पर बंबई का जादू कोई असर नहीं कर सकता था. अब वह भागती, दौड़ती हुई जगमगाती बंबई की भीड़-भाड़ और रौनक को नहीं देख रही थी. अब तो वह सिर्फ धड़धड़ाती हुई रेल के पहियों की आवाज को सुन रही थी, जो उससे अपनी आवाज में कह रही थी : "मर जा.. मर जा.. मर जा.. मर जा.. मर जा..."

आखिर को रेल की आवाज का बुलावा उसकी बुझती हुई संकल्प शक्ति पर हावी हो गया और आशा ने रेल की पटरियों के मजबूत जाल की तरफ छलांग लगा ही दी.

मगर अगले ही क्षण में न रेल की पटरियों ने उसको अपने फौलादी आलिंगन में लिया, न मौत ने उसे मुक्ति और आनंद प्रदान किया. वह इतनी कमजोर हो गयी थी कि बावजूद इस इरादे के कि चलती रेल से छलांग लगा दे, वह बेहोश हो कर वहीं डिब्बे के खुले दरवाजे के अंदर ही गिर पड़ी, जहां दो मजबूत हाथों ने उसे उठा लिया. यह हाथ निर्मल के थे, जो करीब ही खड़ा सोच रहा था कि सामने वाली बदसूरत लड़की शराब पिये हुए है, जो इस तरह झूम रही है या बेचारी को मिरगी की बीमारी है.

मगर थाने के अस्पताल में डाक्टरों ने उसे बताया कि लड़की न शराब पिये हुए है, न उसे मिरगी की बीमारी है, बल्कि वह कई दिन की भूखी है. कमजोरी के मारे बेहोश होकर गिर पड़ी थी. अस्पताल में उसे ग्लुकोज चढ़ाया गया, तो उसने आंखें खोल दीं. फिर दूध का गिलास पिलाया गया, तो बोलने के काबिल हो गयी.

"क्या नाम है तुम्हारा?" निर्मल ने पूछा.

"आशा." उसने आहिस्ता से जवाब दिया.

"कहां की रहने वाली हो?"

"पंजाब की."

"बंबई में कहां रहती हो?"

"कहीं नहीं."

"मेरे साथ चलोगी?"

"चलिये, मगर कहां?"

"जहां मैं रहता हूं. मैं शरीफ आदमी हूं. गुड्स डिपो में क्लर्क हूं. थाने में एक कमरे में अकेला रहता हूं. खुद खाना पकाना पड़ता है. तुम मेरा खाना पका दिया करना. मैं तुम्हें खाना खिला दिया करूंगा. कम से कम पेट में कुछ होगा, तो चलती रेल में बेहोश होकर तो नहीं गिरोगी."

"मुझे स्वीकार है."

और निर्मल पुलिस और अस्पताल वालों की अनुमति से आशा को घर ले आया.

पड़ोसियों ने टेढ़ी आंखों से एक जवान औरत को निर्मल के कमरे में जाते देखा, तो निर्मल ने उससे कहा, "बेचारी गरीब औरत है. भूख से बेहोश होकर रेल में गिर पड़ी थी. मैं खाना पकाने के लिए ले आया हूं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह तो ठीक है! मगर खाना पका कर सोयेगी कहां?" एक मुंहफट पड़ोसी ने जुमला कसा. निर्मल ने कोई जवाब नहीं दिया.

आशा को एक सूखी डबलरोटी का तोस और एक केला खाने को देकर निर्मल ने रसोई का कोना उसके सुपुर्द कर दिया और स्टोव जलाकर सामने रख दिया. आशा ने पानी में दाल को भिगो कर स्टोव पर पकने के लिए रख दिया और खुद एक थाली में आटा निकालकर गूंधने जमीन पर फसकड़ा मार कर बैठ गयी.

घंटे भर में खाना पक गया.

चार रोटियां और दाल निकालकर उसने निर्मल के सामने एक स्टूल पर कागज बिछाकर रख दिया.

"खाइये!"

"और तुम?"

"मैं बाद में खा लूंगी!"

"अच्छा." कह कर निर्मल ने खाना शुरू किया. आज गर्म रोटियों में से सोंधी-सोंधी खुशबू आ रही थी. दाल में लहसुन का बघार दिया गया था, जिस का कभी निर्मल को खयाल भी न आया था. उसने सोचा, औरत के पकाने में मजा ही अलग आता है. मर्द तो बस यूं ही खाना पका लेते हैं.

उसने खाना खा लिया, तो आशा ने नल पर ले जाकर बर्तन धोये. फिर उन्हें झाड़न से पोंछकर रख दिया.

"मैं हांडी ही में खा लूं?"

"क्यों, क्या प्लेट नहीं है?"

"है, मगर प्लेट धोनी पड़ेगी. हांडी तो वैसे भी मांजनी ही है. दो-दो बर्तन क्यों खराब करूं?"

"अच्छा भई, जैसा तुम्हारा जी चाहे, करो. अब खाना पकाने का डिपार्टमेंट तुम्हारे सुपुर्द है... तुम खाने के बाद बर्तन-भांडे बिना धोये रख देना. सुबह धुल जायेंगे. अच्छा अब मैं सो रहा हूं."

मगर बड़ी देर तक निर्मल न सो सका. बात यह थी कि एक नौजवान औरत के साथ अकेले कमरे में सोने का उसका पहला इत्तफाक था. इसलिए वह लेटा-लेटा कनखियों से आशा को देखता रहा. वह खाना खा रही थी. मगर अब कायदे और करीने से खा रही थी. वैसे नहीं. जैसे वह भूखों की तरह डबलरोटी और केले पर टूट पड़ी थी. खाना खाकर उसने एक उचटती हुई नजर निर्मल के पलंग की तरफ डाली और निर्मल ने फौरन आंखें बंद कर लीं और देर तक मीचे रखीं.

आशा ने बगैर आवाज पैदा किये बड़ी सावधानी से जूठे बर्तन धोये. फिर मांजे. फिर पोंछ कर रख दिये.

फिर उसने चटाई को (जो उसके लिए निर्मल ने पलंग के पास छोड़ दी थी) दीवार के पास सरकाया और उस पर अपने तह किये हुए बाजुओं का तकिया बनाकर लेट गयी, मगर उसको भी आज नींद नहीं आ रही थीं. वह भी आज से पहले कभी किसी नौजवान मर्द के साथ एक कोने में न सोयी थी.

निर्मल बड़ी देर तक करवटें बदलता रहा. कभी-कभी जब उसका रुख उधर को होता, तो कनखियों से आशा की तरफ देखने लगता, फिर भी बाहर के बरामदे की रोशनी खिड़की में से आकर आशा के चेहरे पर पड़ रही थी. यह रोशनी का जादू था कि उसकी अपनी कल्पना की कारस्तानी थी, मगर हर बार उसे आशा पहले से ज्यादा खूबसूरत नजर आ रही थी.

जब उसने उसे चलती हुई ट्रेन में खड़ा देखा था, तो वह अच्छी-खासी चुड़ैल दिख रही थी.

जब वह बेहोश हो कर गिर पड़ी थी, और इंसानी हमदर्दी की भावनाओं के अधीन निर्मल ने उसे अपनी बांहों में उठा लिया था, तो वह केवल बेहोश, गरीब और बीमार औरत थी.

अस्पताल में जब उसे ग्लूकोज दिया जा रहा था और सुई लगाने के लिए डाक्टरों को उसकी बांह की नस बड़ी मुश्किल से मिली थी, तो वह सिर्फ एक दुबली-पतली बीमार औरत थी, जिसको देख कर किसी रोमांस या यौन-भावना की उत्तेजना नहीं हो सकती.

जब वह दूध पी रही थी, तो उसने एक भूखे बच्चे की तरह मासूमियत से जल्दी-जल्दी गिलास खाली कर दिया था.

पहली बार जब उसने आशा को एक यौन-दृष्टि से देखा, तो वह जमीन पर फसकड़ा मारे आटा गूंध रही थी.

अजीब बात यह थी (और यह निर्मल ने न किसी कहानी में पढ़ा था, न किसी उपन्यास में) कि जब वह रोटी खा रहा था, तो उसकी नरमी और गरमी में उसे उस लड़की के जिस्म की खुशबू आयी, जिसने अपने हाथों से आटा गूंधा था और रोटियां पकायी और सेंकी थीं.

और उस समय रात के ग्यारह बज रहे थे और वे दोनों एक अकेले कमरे में बंद थे. न उनको कोई देख रहा था, न देख सकता था... क्या उसे पनाह देने के बाद निर्मल का कोई हक नहीं था? क्यों नहीं था?

बीमार प्रेमी

नीना गर्ग

एक साहब को जाने क्यों यह वहम हो गया कि उनकी पत्नी किसी और व्यक्ति से प्रेम करती है. उनका व्यवहार रोज़-ब-रोज़ चिड़चिड़ा होता चला गया. पति द्वारा अपनी उपेक्षा पत्नी को सहन नहीं हुई. उसे लगा, कहीं कुछ गड़बड़ है. वह अपने पति को एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के पास ले गयी और उसे वस्तु-स्थिति से परिचय कराया. चिकित्सक ने पत्नी से बाहर जाने को कहा. तन्हाई में उसने रोगीपति के समस्त हालात मालूम किये और गंभीरता से विचार करने लगा. "हूं!" देर बाद चिकित्सक ने झुकी गर्दन ऊपर उठायी, पूछा, "आपको कैसे पता चला कि आपकी पत्नी किसी और मर्द से प्रेम करती है?"

"बस, अनुमान है मेरा!" पति ने कहा, "देखिए महोदय! आपको शायद गलतफहमी हुई है. आपकी पत्नी नेक और चरित्रवान स्त्री है."

"नहीं डॉक्टर!" वह ऊंचे स्वर में बोला, "मुझे विश्वास है कि मेरी पत्नी किसी गैर-पुरुष से प्रेम की पींगे बढ़ा रही है."

चिकित्सक ने भरसक प्रयास किया कि उसका रोगी समझ जाये, किंतु वह अपने विश्वास पर अड़ा रहा. चिकित्सक ने फिर आने को कह उसे विदा ली.

रास्ते में पत्नी ने पति से पूछा, "शायद मेरे बारे में अब तुम्हारा संदेह समाप्त हो चुका होगा."

"हां डार्लिंग!" पति ने ठंडी सांस लेते हुए कहा, "इसमें मैं तुम्हारा कोई कुसूर नहीं मानता. कुसूर तो उस डॉक्टर का है जिसने तुम्हारी और प्रेम का हाथ बढ़ाया और वह भी बंद कमरे में. तभी पूछ रहा था कि आपको कैसे पता चला कि आपकी पत्नी किसी गैर-मर्द से प्रेम करती है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग तो लड़कियों को इस से कम हमदर्दी देकर भी अपना जिसी मतलब निकाल लेते हैं. उसे इतना सोचने-विचारने की क्या जरूरत थी.

वह हल्के से अपने पलंग पर बैठ गया. अंधेरे में उसकी आरजू भरी निगाहें चटाई पर लेटी लड़की के जिस्म पर लगी हुई थीं.

"क्यों जी, नींद नहीं आ रही?"

आशा की अप्रत्याशित आवाज ने जैसे निर्मल के मन का चोर पकड़ लिया हो. वह शर्मिंदा होकर फिर लेट गया.

"हां, नींद नहीं आ रही.. आज बहुत गरमी है न!" उसने बहाना बनाया, "सोचा था, सुराही से पानी लेकर पी लूं, मगर मुझे नहीं मालूम था कि तुम भी जाग रही हो."

आशा ने उठ कर गिलास भरा और निर्मल को दे दिया. गिलास देते वक्त उसकी उंगलियां निर्मल के हाथ को छू गयीं और निर्मल के तन-बदन में बिजली-सी कौंध गयी. निर्मल को पूरा गिलास पीना पड़ा.

आशा निर्मल से गिलास वापस ले कर चली गयी.

फिर अपने पलंग पर लेट कर निर्मल करवटें बदलने लगा.

"अजी, ओ!"

"हूं." निर्मल ने हुंकारा भरा.

"अगर नींद नहीं आ रही, तो कोई बात ही करो."

"बात करने को क्या है? मैंने तो कोई बात करने के काबिल काम ही नहीं किया."

"तुम्हारे मां-बाप क्या करते हैं?"

"मेरे बाप तो रेलवे में कर्मचारी थे. रिटायर हुए और मर गये. अब एक बूढ़ी मां है और एक छोटी बहन. उनकी खातिर मैंने कालेज छोड़कर रेलवे ही में नौकरी कर ली, मगर बंबई में काम करना पड़ रहा है. यहां तो किराये ही में इतना निकल जाता है कि घर सिर्फ अस्सी रुपये भेज पाता हूं. कोशिश कर रहा हूं कि झांसी डिवीजन में बदली हो जाये. तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं? क्या भाग कर आयी हो बंबई?"

"सब हैं, और कोई भी नहीं है. एक बाप है, जिन्हें नशे में यह भी याद नहीं रहता कि उनकी कोई बेटी भी है. एक सौतेली मां है, जो एक बूढ़े आदमी के हाथ में मुझे बेचना चाहती थी. एक उसका भाई है. मेरा सौतेला मामा. जो अपनी भांजी के साथ मुंह काला करना चाहता था.. सो, मैं डेढ़ सौ रुपये चुराकर घर से भाग आयी थी, फिल्मी जादू से चकाचौंध हो कर, मगर यहां आ कर मालूम हुआ कि बेसहारा लड़कियों के लिए कोई जगह नहीं है यहां, सिवाय फारस रोड के. असल में सारा बंबई ही मुझे एक लंबा-चौड़ा फारस रोड (वेश्या-बाजार) ही लगा. कल रेल से छलांग लगा कर खुदकुशी करने की ताकत भी नहीं थी. बेहोश हो गयी! वहां से तुम उठा कर मुझे यहां ले आये बस इतनी-सी कहानी है मेरी!"

निर्मल ने कभी एक खूबसूरत, खुश-पोशाक और अमीर लड़की से इश्क किया था, जो उसके कालेज में पढ़ती थी, मगर इश्क दिल ही दिल में रहा और उस लड़की ने एक बड़े गवर्नमेंट अफसर के बेटे से शादी कर ली. उसके बाद से उसने ब्रह्मचार्य को अपनाने का निश्चय कर लिया था. 'इस तरह अपनी मां और बहन की सेवा भी कर सकता हूं.' उसने अपने मन को सांत्वना दी थी, मगर उस लड़की ने आ कर उसकी जिंदगी का सारा प्रोग्राम ही अस्त-व्यस्त कर दिया था.

"अजी हो!"

"हूं!"

"क्या. सो गये?"

"नहीं."

"फिर कुछ बात तो करो!"

"तुम रोटी बहुत अच्छी पकाती हो. इतना मजा खाने में कभी नहीं आया, जितना मजा आज मिला है."

"धन्यवाद!"

"कहां तक पढ़ी हो?"

"मैट्रिक पास किया है."

"मैट्रिक पास खाना पकाने वाली को तो तनख्वाह नहीं दे सकता मैं."

"तनख्वाह देने को कौन कह रहा है?"

"फिर?"

"फिर क्या? कल मैं चली जाऊंगी यहां से."

"जाने को कौन कह रहा है?"

"तुम्हारा अंदाज कह रहा है. तुम कुछ खुश नहीं हो मेरे आने से. शायद मेरे आने से तुम्हारी जिंदगी का प्रोग्राम गड़बड़ हो रहा है?"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"औरतों को ऐसी बातें अंदाजे से मालूम हो जाती हैं."

"मगर अब ऐसा कुछ नहीं है. प्रोग्राम बदल गया है. बुखार उतर गया है."

"अब क्या प्रोग्राम है?"

"झांसी बदली कराने की कोशिश करूंगा. वहां हम तीन सौ रुपये में आराम से गुजारा कर सकते हैं."

"हम कौन?"

"मैं और तुम.. अगर तुम्हें झांसी चलना स्वीकार हो, तो?"

"वहां क्या करूंगी? तुम्हारा खाना पकाना होगा?"

"वहां खाना तो पकाना होगा और सब भी करना होगा!"

"मसलन क्या?"

"घर का सब काम करना होगा. मां की सेवा करनी होगी. बहन की देखभाल करनी होगी!"

"और इतने काम के बदले में तनख्वाह क्या दोगे?"

"जो कुछ मुझे मिलेगा, वह सब तुम्हारे सुपुर्द कर दूंगा."

"एक पकाने वाली पर इतना भरोसा?"

"पकाने वाली नहीं, आशा, तुम्हें घरवाली बनाना चाहता हूं."

दीवार की तरफ से लड़की के आहिस्ता-आहिस्ता रोने की आवाज आयी.

"आशा, तुम्हें बुरा लगा? जल्दबाज हूं न! इतनी जल्दी मन की बात कह दी?"

"नहीं जी," उसने रोना बंद कर के कहा, "मैं तो इसलिए रो रही हूं कि आज तक मेरे साथ इतनी हमदर्दी किसी ने नहीं की."

"यह हमदर्दी नहीं है आशा!"

"फिर क्या है?"

"इस को कहते हैं प्यार! इसको कहते हैं मोहब्बत. इसको कहते हैं. घर बसाना."

"एक था लड़का..."

"एक थी लड़की..."

इस कहानी का तो सुखांत हो गया या हमने कर दिया, मगर ऐसी दूसरी कहानियों का क्या होता है? □

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर गेटे की प्रेमिकाएं

गेटे एक अत्यंत चारू व सुहाने किशोर थे. उनकी चारूता अत्यंत सम्मोहक थी, विशेष रूप से बच्चों के लिये, जो घंटों उनके पास खेलते रहते थे, और किशोरियों के लिये, जो उन्हें देखते ही अपना आपा खो बैठती थीं.

अपनी पढ़ाई के दिनों में वे एक धर्मगुरु की पुत्री फ़ायदेरीख से प्रेम लिप्त थे. यह उनके जीवन का पहला प्रेम था. दोनों को एक दूसरे से 'प्रथम दृष्टि में प्रेम' हो गया था. उन दिनों किशोर गेटे की सारी अनुभूतियां, सारा व्यक्तित्व फ़ायदेरीख में ही केंद्रित था. आरंभ में दोनों का जीवन प्रेम की दपक से प्रदीप्त हुआ, मगर धीरे-धीरे प्रेम की दीवानी सीमोल्लंघन करने लगी. कहते हैं कि इस प्रसंग के चालीस वर्ष बाद भी अपनी आत्मकथा 'डिक्टेट' करते समय, इस प्रेम-प्रसंग का वर्णन करते समय उनकी वाणी प्रेमोल्लास में कांपने लगती थी.

दोनों के बीच वर्ग-भेद उन कारणों में मुख्य था, जिसने दोनों को शीघ्र ही 'प्रेम की इस दीवानगी' से मुक्त कर दिया. वस्तुतः यह 'दीवानगी' स्वयं गेटे ने ही प्रेम की प्रगाढ़ता को अनुभव करने के लिये, निर्मित की थी. फिर भी, दोनों ने एक दूसरे से विदा लेते समय, महसूस किया था कि वियोग की पीड़ा के कांटे दोनों के दिलों में बहुत गहरे चुभ चुके थे. विदाई के क्षणों में, दोनों एक दूसरे से कुछ कह भी नहीं पाये, फ़ायदेरीख की आंखें नम थीं, और गेटे का हृदय विषाद से भारी था. दोनों ही जानते थे कि भविष्य में उनका दुबारा मिलना संभव नहीं है.

इस विदाई के बाद, गेटे ने अपनी प्रेमिका की मनोव्यथा को, जो उनके लिये अपनी व्यथा से कहीं अधिक पीड़ादायक थी, अभिव्यक्त करने के लिए एक मर्मस्पर्शी गीत भी लिखा था.

प्रेम से रिक्त होना, किशोर गेटे के लिये, प्रेम की पीड़ा से कहीं अधिक पीड़ादायक था. अतः जैसे ही फ़ायदेरीख उनके जीवन से विदा हुई, वैसे ही उसका स्थान उन्होंने कार्लोटवफ़ नाम की एक नवयुवती को दे दिया, जिसके साथ उनकी भेंट एक नृत्य-समारोह में हुई थी. यह जानते हुए भी कि कार्लोट की मंगनी केस्नर नाम के एक नवयुवक से हो चुकी है, और कार्लोट उनसे विवाह करने के लिये कभी तैयार नहीं होगी, वे उसे उसी प्रगाढ़ता और दीवानगी के साथ प्रेम करने लगे, जिसके साथ वे फ़ायदेरीख को करते थे. उनके प्रेम का स्थल था—वेल्जर नाम का एक कस्बा.

कार्लोट के भावी पति केस्नर को, जो काफ़ी हद तक उदार और सहनशील था, गेटे का अपनी-भावी पत्नी से प्रेम जताना बिल्कुल पसंद नहीं था. उसने कार्लोट से कहा कि वह गेटे से मिलना-जुलना कम करे. फलस्वरूप, जैसा कि गेटे की डायरी से प्रतीत होता है, "कार्लोट ने मुझे आज साफ़ साफ़ बता दिया कि मैं उससे मित्रता से अधिक की आशा नहीं कर सकता. यह सुनकर मेरा मुंह पीला पड़ गया, और मैं खिन्न होकर उसके पास से चला आया."

अब गेटे के सामने इस के अलावा, कोई और विकल्प न था कि वे अपनी प्रेमिका कार्लोट के जीवन से हमेशा-हमेशा के लिए दूर चले जायें. कई महीनों तक 'क्या करूं, क्या न करूं' की स्थिति में रहने के बाद, अंत में उन्होंने मन कड़ा करके उससे दूर जाने का निश्चय कर ही लिया. उन्होंने एक पत्र लिखकर, कार्लोट को अपने इस निश्चय की सूचना दी. कहते हैं कि यह पत्र पढ़कर कार्लोट बहुत रोयी थी.

वेल्जर से फ्रेंकफर्त आने पर कई सप्ताह बाद, किसी ने उन्हें बताया कि वेल्जर में उनके एक परिचित युवक-येरुशलेम ने प्रेम में निराश होकर आत्महत्या कर ली है. उन्होंने केंसर-प्रेम में अपने प्रतिद्वंद्वी को पत्र लिखकर, तुरंत इस कांड का पूरा विवरण भेज दिया, और जैसा कि गेटे ने अपनी आत्महत्या में स्वीकार किया है, "यह विवरण 'द सॉरोज ऑफ बर्थर' के कथानक का आधार बना."

गेटे की जीवनी से हमें पता चला है कि प्रेम में निराश होकर, वे या तो कविता करने लगते थे, या अन्य किसी नवयुवती या युवती से प्रेम करने लगते थे. हर सुंदर नवयुवती को देखकर उन्हें 'प्रथम दृष्टि में प्रेम' हो जाता था.

जब 'सॉरोज ऑफ बर्थर' के लेखन की योजना गेटे के मन में बन रही थी, तभी उन्होंने तीसरी बार अपने को प्रेम के जाल में फंसा पाया. इस नये प्रेम के बारे में उन्होंने अपनी डायरी में लिखा, "बड़ी सुखद अनुभूति होती है वह, जिसमें कोई ऐसी मनःस्थिति में प्रेम में पड़ता है, जब विगत प्रेम का सूर्य पूरी तरह अस्त न हुआ हो, और एक नया प्रेमावेग मन में हिलोरें मारने लगा हो. सूर्यास्त के समय, जब कोई चंद्रमा को उदय होते देखता है, तो दो दीप्तियों की आभा मन को अपूर्व आनंद प्रदान करती है."

जिस युवती के कारण कवि गेटे के मन में काव्यमयी उपमा ने जन्म लिया, उसका नाम था—मैक्सीमिलियेन द लॉ रोश. उसकी मां को लिखे एक पत्र में गेटे ने लिखा था, "मैं आपकी पुत्री मैक्स के बिना नहीं रह सकता. मैं आजीवन उसे प्यार करता रहूंगा, यह आश्वासन आपको देना चाहता हूं."

पता नहीं, इस बात का पता कि उनकी तीसरी प्रेमिका मैक्स का विवाह ब्रेंतानो नाम के एक व्यापारी से तय हो चुका है, गेटे को कब लगा, लेकिन यह तय है कि विवाह के बाद भी, उसने अनेक मधुर क्षण मैक्स के साथ व्यतीत किये थे. ब्रेंतानो केस्नर की भांति उदार और सहनशील नहीं था, और उसने गेटे के घर पर आने पर पाबंदी लगा दी. इस प्रकार अंत हुआ इस तीसरे प्रेम का.

गेटे के उपन्यास 'द सॉरोज ऑफ बर्थर' के प्रकाशन के बाद, उसे मिली अप्रत्याशित लोकप्रियता के कारण कार्लोट और केस्नर ने गेटे को एक पत्र लिखकर इस बात पर अप्रसन्नता व्यक्त की थी कि केस्नर को उपन्यास में एक मूर्ख और अयोग्य पति के रूप में चित्रित किया गया है, और कार्लोट को एक ऐसी स्त्री के रूप में पेश किया गया है, जो विवाहिता होते हुए भी, अपने भूतपूर्व प्रेमी से, आजीवन प्रेम करती रहती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खूबसूरत मगर मजबूर

नोबेल पुरस्कार विजेता जर्मन कथाकार हरमैन हेस से भारतीय पाठक उनकी 'सिद्धार्थ' नाम की अनुपम साहित्यिक कृति से परिचित हैं. यहां प्रस्तुत है उनकी एक लंबी कहानी 'यूथ, ब्यूटीफुल, यूथ' का एक अंश, जो किशोर-प्रेम के हर्ष और विषाद, दोनों को दर्शाता है.

विदेश से छुट्टी पर कुछ दिनों के लिये घर लौटने पर मुझे कई ऐसे अनुभव हुए, जो पहले कभी नहीं हुए थे.

जब मैं विदेश नहीं गया था, मेरे चचा मॉथस मुझसे बहुत अप्रसन्न रहा करते थे. उन्होंने मेरे बारे में यह धारणा बना ली थी कि मैं कभी कुछ नहीं कर पाऊंगा. मगर, अब जब कि मैं सफल होकर लौटा था, तो वे मुझसे खुश ही नहीं, बेहद खुश थे. मुझे आश्चर्य होता था कि पहले बेरुखी से पेश आने वाले मेरे चाचा अब मेरे प्रति इतने मधुर कैसे हो गये?

छुट्टी का पहला दिन मैंने अपने घर की एक-एक चीज से नये सिरे से परिचित होने में लगाया. पुरानी चीजें तो मुझे नयी दिखायी दे ही रही थीं, घर में बहुत-सी नयी चीजें भी आ गयी थीं, जिनसे परिचित होना मुझे अच्छा लग रहा था.

बाग में गया, तो पाया कि उसके रख-रखाव पर, मेरी गैरहाजिरी में ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया था. बाग से मुझे बहुत प्रेम था, और बचपन में मेरा ज्यादातर वक्त वहीं गुजरता था. मैं सारे दिन, उसकी हालत सुधारने में लगा रहा, और शाम को जब घर आया, तो काफी गंदा हो गया था. स्नान करके जैसे ही, अपने कमरे की ओर जाने लगा, मुझे एक सुपरिचित मीठा और खिलखिलाता हुआ स्वर सुनायी पड़ा. मुड़कर देखा, तो पाया कि हेलन मेरी बहन से बात कर रही थी. मेरी बहन की यह सहेली कभी मेरी प्रेमिका थी, और इतने दिनों के बाद उसे देखकर मुझे जैसी सुखानुभूति हो रही थी, उससे तय हो गया कि मेरे हृदय के किसी कोने में वह अभी तक बसी हुई है.

जब उसने मुझसे हाथ मिलाया, तो मैंने उससे पूछा, "मुझे पहचानती हो?"

"क्यों नहीं? लोते ने बताया था कि तुम आये हुए हो. उसने मुस्कराते हुए कहा. मैंने गौर किया कि वह पहले से अधिक सुंदर और मोहक लग रही थी. लेकिन, जैसे ही मैंने पाया कि मेरा औपचारिक अभिवादन करके वह मेरी मां की तरफ मुखातिब हो गयी है, मैं भी वहां से चलने लगा. जब वह अपने घर वापस जाने लगी, तो मैंने उसके सामने बड़े नाटकीय ढंग से झुककर कहा, "गुड नाइट, मिस हेलन! क्या आप अपने घर जा रही हैं?"

"और कहां जायेगी, बेचारी?" मेरी बहन ने आश्चर्य से कहा.

मैं चुप रह गया. और, हेलन को जाते देखता रहा. न मालूम क्यों, अब मुझे हेलन सुंदर नहीं, बदसूरत लग रही थी, मीठी-प्यारी नहीं, तुनकमिजाज लग रही थी. मुझे अपने ऊपर आश्चर्य हो रहा था कि कभी ऐसी लड़की मेरी प्रेमिका भी थी. वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंखों से ओझल हुई, तो मुझे लगा कि वह मेरे जीवन से भी विदा हो गयी है. मैं ऐसी लड़की के द्वारा अपनी जवानी... खूबसूरत जवानी नष्ट नहीं करने दूंगा.

अगले कुछ दिन हंसी-खुशी में बीते. रोज पार्टियां, मौज-मजा, पिकनिक और नाच-गाना. पुराने दोस्तों और नये परिचितों से पहचान का सुख. मुझे इन दिनों में हेलन की याद एक बार भी न आयी. उसकी याद मेरे मन में मिट चुकी थी.

लेकिन, खूबसूरती की तरह हंसी-खुशी भी ज्यादा समय तक नहीं टिकती. जल्दी ही, हंसी-खुशी और उत्तेजना के दिन समाप्त हो गये. समय नीरसता से गुजरने लगा कि एक दिन, इस नीरसता को भंग करते हुए, मेरी बहन लोते ने मुझे बताया कि उसकी सखी अन्ना पास के नगर से आ रही है, और कुछ दिन हमारे-साथ रहेगी.

अना... हेलन, की भांति कभी वह भी मेरी-प्रेमिका थी. सच तो यह है कि मेरी बहन की हर सखी कभी न कभी मेरी प्रेमिका रह चुकी थी. भले ही कुछ मामलों में यह प्रेम एकतर्फा था.

अन्ना हेलन की भांति सुंदर और आकर्षक तो नहीं थी, लेकिन उसकी आवाज, चाल ढाल और तरीके में कुछ था, जो उसे विश्वसनीय बनाता था. शायद यही कारण था कि मेरी मां ने, जो किसी को घर पर रखने के लिये आसानी से तैयार नहीं होतीं, उसे देखते ही सहर्ष अपना लिया था, और बड़े प्रेम से उसका स्वागत भी किया था.

सदा शांत, प्रसन्न और विक्षुब्ध रहने वाली अन्ना आते ही मेरे मन में दुबारा उतरना शुरू हो गयी. वह कभी किसी बात का बुरा नहीं मानती थी. उसकी इस आदत को देख कर, मैंने यह मान लिया कि जिसका मन किसी भी बात से न दुखता हो, वह कभी किसी का दिल नहीं दुखायेगी. मैं उसकी ओर से निश्चित सा था कि वह मेरी प्रेम-चायना को कभी अस्वीकार नहीं करेगी.

एक दिन मेरी बहन ने अपनी सब सखियों को घर पर लंच के लिए बुलाया. तब मुझे अन्ना और हेलन दोनों को एक साथ देखने का मौका मिला. मैंने देखा कि हेलन जितनी कृत्रिम थी, अन्ना उतनी ही अकृत्रिम. जहां हेलन का सौंदर्य उत्पन्न करता था, वहां अन्ना का सौंदर्य शांति और तृप्ति प्रदान करता था. एक शराब की भांति उत्तेजक थी, दूसरी शीतल जल की भांति संतोषणीय. इस वैषम्य की अनुभूति के बावजूद, जब हेलन विदा होने लगी, तो न जाने किस अज्ञात आकर्षण से मैं उसकी ओर खिंच आया. मेरे दिये गुलाब के फूल को उसने मुस्कराते हुए स्वीकार किया. तभी, मुझे अन्ना की याद आयी. मैंने उसे भी गुलाब का एक फूल दिया, और उसने भी उसे मुस्कराते हुए स्वीकार किया.

अगले दिन, लोते ने बताया कि हेलन की मंगनी हो चुकी है, और एक-दो महीने में विवाह हो जायेगा. सुनते ही न मालूम क्यों, सब कुछ धुंधला-सा और विवादपूर्ण लगने लगा. मैं सारे दिन उदास रहा. मगर, फिर यह उदासी शीघ्र ही अपने आप छंट भी गयी. जीवन में मजा आने लगा.

तीसरे दिन, अन्ना ने कहा, "कस्बे में सर्कस आया है."

"अच्छा! देखना है तुम्हें?"

"हां! मां अकेले नहीं जाने देंगी. तुम चलो तो..."

हम दोनों सर्कस गये. वह तो बच्चों की तरह ताली बजा-बजाकर सर्कस के खेल देखती रही मुझे बस यही अहसास था कि वह मुझसे सही बैठी है. एक नयी कामना मन में जाग उठी.

मेरी छुट्टी खत्म होने पर आ रही थी, और अन्ना के जाने की तारीख भी निकट आ गयी थी. जब जाने में कुछ घंटे ही रह गये, तो हिम्मत जुटाकर, मैंने एकांत में उससे कहा, "जाने से पहले, तुमसे कुछ कहना चाहता था. बात यह है कि..."

"मुझ पर रहम करो, हरमन, बस, आगे कुछ मत कहो. मैं खुद तुम्हें नहीं बता सकती कि जो तुम चाहते हो, वह क्यों नहीं हो सकता? लोते को मालूम है, वह बता देगी. मेरे मुंह से सुनकर तुम उदास और दुखी हो जाओगे, और मैं विदा लेने से पहले तुम्हें सुखी देखना चाहती हूं. मैं चाहती हूं कि हम दोनों सच्चे मित्रों की भांति खुशी-खुशी एक दूसरे से अलग हो."

"मैं.... कह नहीं सकता... कोशिश करूंगा."

"तो, तुम खुशी-खुशी नहीं जाना चाहते. तो, फिर अभी ही सुन लो कि वजह क्या है... मेरी स्थिति तुम्हारी जैसी ही है, हरमन. कोई है, जिसे मैं अपना बनाना चाहती हूं, लेकिन वह मेरा नहीं होना चाहता. तुम्हारी तरह, मैं भी मजबूर हूं. बस, और कुछ न कहलवाओ मुझसे."

"इसके बावजूद, अन्ना, मुझे तुम्हारी मित्रता की बहुत जरूरत है, और रहेगी. जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं आजीवन तुम्हारा मित्र रहूंगा. मुझे याद रखना, एक मित्र के रूप में."

अन्ना रोने लगी. रोते रोते उसने कहा, "मैं भी आजीवन तुम्हारी मित्र रहूंगी." मैं उसके प्रति कृतज्ञ हो आया. स्वयं असहज होकर भी उसने मुझे सहज बना दिया था. वह सदा मेरी मित्र रही.

बड़ी खूबसूरत थी, जवानी, लेकिन साथ ही कितनी मजबूर! □

प्रस्तुति : आदित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास्ताने अलफ लैला उर्फ किस्सा हजार रातें

गजरे जमाने में हिंदुस्तान और चीन महाद्वीपों के बीच स्थित सासन नाम का एक राज्य था. उसका राजा बड़ा शक्तिशाली था, और उसकी विशाल सेना के कारण उसके पड़ोसी राजा उससे कांपते थे. उसके दो बेटे थे, एक लंबा, और दूसरा नाटा. राजा ने अपना विशाल राज्य इन दोनों बेटों में बांट दिया था. राज्य का ज्यादातर हिस्सा बड़े बेटे शहरयार के हिस्से में आया जो बहुत बहादुर और माना हुआ घुड़सवार था. छोटे भाई शाहजमान को समरकंद-अल-अम का राजा बनाया गया.

दोनों भाइयों ने बीस साल तक अपने-अपने राज्यों पर राज्य किया. उनकी रिआया के लोग अमन-चैन से रहते थे और अपने अपने राजाओं की खैर के लिए अल्लाह-ताला से दुआ करते थे.

फिर, एक दिन बड़े भाई शहरयार के दिल में अपने छोटे भाई शाहजमान को देखने की ख्वाहिश हुई. उसने अपने वजीर से कहा, "तुम फौरन रवाना हो जाओ और मेरे छोटे भाई को अपने साथ लेकर ही वापस लौटना."

"आपका हुक्म सर-आंखों पर, आलीजाह," कहकर वजीर फौरन समरकंद-अल-अजाम की तरफ रवाना हो गया.

समरकंद-अल-अजाम के महल में पहुंचकर वजीर ने अपने आने की खबर राजा शाहजमान तक पहुंचायी और यह भी कहलवा भेजा कि वह किसके हुक्म से और किस मकसद से आया है.

राजा शाहजमान ने अपने भाई के वजीर को बुला भेजा और उसकी सब बातें सुनकर कहा, "मेरे बड़े भाई का हुक्म सर-आंखों पर. मैं भी आपके साथ चलने की तैयारी करता हूं." उसने अपने वजीर को बुलाकर कहा, "मेरे वापस लौटाने तक मेरी जगह तुम मेरी सल्तनत की बागडोर संभालोगे." इसके बाद उसने सैकड़ों [illegible], ऊंचरों, सिपाहियों, गुलामों वगैरह के साथ अपने भाई की राजधानी की ओर कूच किया.

लेकिन, रात को अपने तंबू में आराम करते वक्त उसे याद आया कि वह महल में एक जरूरी चीज भाई को देने वाली कीमती भेंट भूल आया है. उसने काफिले को रुकवा दिया और तेजी से अपने महल में वापस गया. पर, उसने वहां जो दृश्य देखा, उसने उसे स्तब्ध कर दिया. उसने देखा कि उसकी बीवी अपने पलंग पर लेटी है और एक हब्शी गुलाम उसका आलिंगन कर रहा है. उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया और वह सोचने लगा, यदि मेरे जाने के कुछ घंटों बाद ही इस व्यभिचारिणी ने यह कमीनी हरकत की है, तो मेरे महीनों गैरहाजिर होने पर इसका क्या हाल होता? उसने म्यान से तलवार निकाली और दोनों की गर्दनें धड़ से अलग कर दीं. इसके बाद वह वापस अपने तंबू में आ गया और अपने काफिले से आगे बढ़ने को कहा. यथासमय, वह अपने बड़े भाई के महल में पहुंच गया.

शहरयार अपने छोटे भाई को देखकर बहुत खुश हुआ. उसने हुक्म दिया कि उसके भाई के आने की खुशी में राजधानी को दुल्हन की तरह सजाया जाये. मगर, शाहजमान अपने महल में हुए कांड की वजह से बहुत खिन्न और उदास था. उसके भाई ने उसके आमोद-प्रमोद के लिए जितने साधन जुटाये थे, उनमें से कोई भी उसकी होंठों पर मुस्कराहट नहीं ला सका. वह हमेशा मुंह लटकाये रहता था और हमेशा उसी घटना के बारे में सोचता रहता था.

शहरयार समझा कि उसकी उदासी की वजह यह है कि वह अपने बीवी-बच्चों की याद में खोया रहता है, इसलिए उसने इस बारे में उससे बात नहीं की. उसका खयाल था कि दो-चार दिनों में उसका मन यहां लगने लगेगा, और तब उससे और दूसरों से खुशी खुशी बातें करने लगेगा.

लेकिन, जब कुछ दिन और गुजर जाने पर भी शाहजमान की उदासी दूर नहीं हुई तो उसके बड़े भाई ने हिम्मत करके उससे

एक से बढ़कर एक दिलचस्प दास्तानों का मनोरंजक सिलसिला है– 'दास्ताने अलफ लैला उर्फ किस्सा हजार रातें'. किस्सागोई के अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत करने वाले अज्ञात रचनाकार की विश्वप्रसिद्ध कृति 'अरेबियन नाइट्स' पिछले दिनों सुर्खियों में तब आयी जब एक अरब देश ने इस पर प्रतिबंध लगाने की मांग की...पर जल्द ही विश्वव्यापी विरोध की वजय से यह मांग वापस ले ली गयी. सभी आयु-वर्गों के पाठकों को बांधकर रख लेने वाले इस लंबे सिलसिले की पहली कड़ी में पढ़िए दो भाइयों और उनकी बीवियों के विश्वासघात व बाद में घटने वाली मनोरंजक घटनाओं के साथ पशु-पक्षियों की भाषा जानने वाले एक अमीर किसान व उसके पशुओं की दास्तान...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछा, "भाई, तुम जबसे यहां आये हो, मैंने तुम्हें हमेशा उदास और चिंतित मुद्रा में ही देखा है. किसी चिंता ने तुम्हारी हंसी-खुशी और तुम्हारे बदन की ताकत सोख कर रख ली है. क्या मैं जान सकता हूं कि तुम्हें कौन-सी चिंता है?"

शाहजमान ने कहा, "भाईजान, आप बजा फरमाते हैं. यह सच है कि मैं एक चिंता की गिरफ्त में हूं. मगर वह चिंता मेरी अपनी है, और मैं उसका बयान किसी से भी नहीं कर सकता. आप से भी नहीं. आपको यह सुनकर बुरा तो लगेगा मगर मुझे माफ करें, मैं मजबूर हूं."

"खैर, जैसी मर्जी. मगर मेरी एक बात मानो. मैं कल शिकार पर जा रहा हूं. तुम भी मेरे साथ चलो. हो सकता है, वहां के माहौल में तुम्हें अपनी चिंता से निजात मिल जाये. तुम चाहोगे तो वहां तुम्हारी दिलबस्तगी के और इंतजाम भी कर दिये जायेंगे."

"शुक्रिया, भाईजान! मगर, फिलहाल मुझे अपने पर ही छोड़ दें. मेरी अंदरूनी तकलीफ इतनी गहरी है कि शिकार पर जाने पर भी दूर नहीं होगी."

निराश, उदास शहरयार अकेला ही शिकार पर गया.

अपने बड़े भाई के जाने के बाद, शाहजमान महल के अपने कमरे में अकेला रह गया. उस कमरे की सब खिड़कियां बाहर महल के हरे-भरे और लंबे-चौड़े बाग की ओर खुलती थीं. चिंताग्रस्त शाहजमान एक खिड़की के पीछे बाग की ओर अनमने भाव से देख रहा था कि उसे एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया.

महल के एक दरवाजे से बीस हब्शी दासों और बीस हब्शी दासियों ने बाग में प्रवेश किया. उनके बीच में थी, उसकी भाभी, उसके बड़े भाई की बीवी, जो काले दास-दासियों के बीच एक चित्ताकर्षक रत्न की भांति जगमगा रही थी.

ये सब लोग हंसते-किलकते हुए बाग के बीच स्थित एक तालाब के पास पहुंचे और अपने वस्त्र उतारकर, जलक्रीड़ा करने लगे. अचानक, उसकी भाभी, उसके बड़े भाई की बीवी, कामावेश में आकर, "मसूद, ओ मसूद, इधर आ!" चिल्लाने लगी.

मसूद एक बलिष्ठ और आकर्षक हब्शी युवक था. उसने अपनी पुकार सुनी तो आकर रानी से लिपट गया और रति-क्रिया में निमग्न हो गया.

यह देखकर सब हब्शी युवतियां भी हब्शी युवकों से लिपट गयीं और रति-क्रिया का आनंद लेने लगीं.

यह नजारा देखकर शाहजमान ने मन ही मन कहा, 'या अल्लाह! शुक्र है तेरा! कम से कम मैं अपने बड़े भाई से तो कम बदनसीब हूं. मैं बेकार फिक्र में मुब्तिला हो रहा था. असल में, फिक्र तो मेरे बड़े भाई को करनी चाहिए.'

यह विचार मन में आते ही उसके भीतर छाये गम और उदासी के सारे बादल, देखते ही देखते, अपने आप छंट गये, और उसका मन हल्का हो गया. उसने जी भरकर शराब पी, लजीज खाना मंगाकर उस पर टूट पड़ा.

शाम को जब शहरयार शिकार से वापस लौटा, तो उसे यह देखकर बहुत खुशी हुई कि उसका भाई बहुत खुश नजर आ रहा है और मजे ले-लेकर खूब शराब पी रहा है, और दस्तरखान से अलग होने का नाम ही नहीं ले रहा है. उसे बड़ा ताज्जुब हुआ. उसने शाहजमान से इस हैरतअंगेज तब्दीली की वजह पूछी.

"भाईजान! आपने पूछा है तो मैं बताता हूं कि मैं जब यहां आया था, तब उदास क्यों था, और अब कुछ देर से खुश और बेफिक्र क्यों हूं." शाहजमान ने कहा, " मैं जब अपने काफिले और आपके वजीर के साथ आपके महल की तरफ रवाना हुआ था तो रात को अपने तंबू में आराम करते हुए अचानक मुझे याद आया कि मैं महल में वह कीमती उपहार तो भूल ही आया जो मैंने आपको देने के लिए एक व्यापारी से ऊंची कीमत पर खरीदा था. लेकिन जब मैं महल में पहुंचा तो मैंने अपनी बीवी को एक काले गुलाम के आगोश में पाया. मैंने दोनों का वहीं कत्ल कर दिया और चुपचाप उपहार के साथ अपने तंबू में लौट आया. लेकिन इस वाकये के बाद मेरा मन उदास और गमगीन हो गया. इतने सालों के बाद आपसे मिलकर मुझे खुशी होनी चाहिए थी, मगर मुझे कोई खुशी नहीं हुई, क्योंकि मेरा मन हमेशा उस वाकये के बारे में ही सोचता रहता था. लगता था, हंसी-खुशी हमेशा के लिए मेरी जिंदगी से विदा हो गयी है. लेकिन, तभी मुझे एक ऐसा अजीबोगरीब वाकया देखने को मिला कि मेरी हंसी-खुशी वापस लौट आयी."

"कैसा अजीबोगरीब वाकया था यह?"

"नहीं भाईजान, मुझे माफ करें. मैं उसके बारे में कुछ न बता पाऊंगा."

"मैं बेचैन हूं उस वाकये के बारे में जानने के लिए, और प्रार्थना करता हूं कि..."

"प्रार्थना करके आप मुझे शर्मिंदा न करें, भाईजान! मैं आपको वह वाकया, जैसे मैंने देखा था, ठीक वैसे ही सुना देता हूं." और जो उसने देखा था, वह वैसा का वैसा ही सुना दिया.

सारी बात सुनकर गहरे सोच में डूब गया. कुछ देर बाद उसने कहा, "बेहतर होता कि मैं यह वाकया अपनी आंखों से देख पाता!"

"आप देख सकते हैं. आप फिर कल शिकार पर जाने का ऐलान कीजिये, मगर जाइये मत. इस कमरे में मेरे पास छिप जाइयेगा और फिर देखियेगा कि क्या होता है?"

अपने भाई का सुझाव मानकर शहरयार ने महल में और उसके बाहर यह ऐलान करा दिया. तड़के ही चंद सिपाही तंबू और शिकार का सारा सामान लेकर जंगल की ओर रवाना हो गये. राजा भी उनके साथ गया. उसने अपने तंबू के बाहर पहरा देने वाले काले हब्शी गुलामों से कहा, "कोई भी, किसी भी हालत में, इस तंबू के अंदर न आने पाये."

तंबू के अंदर अपना वेश बदलकर शहरयार बाहर आया, और अपने महल में पहुंचकर अपने भाई के कमरे में दाखिल हुआ. वहां वह एक ऐसी खिड़की के पीछे बैठ गया, जहां से बाग का सारा नजारा अच्छी तरह दिखाई देता था.

करीब एक घंटे के बाद, बीस-बीस हब्शी दास-दासियों से घिरी शहरयार की बीवी बाग में आयी और अपने प्रेमी मसूद के साथ जल-क्रीड़ा करने लगी.

राजा शहरयार ने यह नजारा देखा तो अपना धीरज खो बैठा और अपने भाई से कहने लगा, "हम दोनों को अब राज-पाट छोड़कर अल्लाह के बताये हुए रास्ते पर चल देना चाहिए. अब हम अपने राज्यों को तभी वापस लौटेंगे, जब हमें अपने जैसा या हमसे ज्यादा कोई बदकिस्मत आदमी मिल जायेगा. नहीं तो ऐसी जलालत की जिंदगी से तो मरना अच्छा." दोनों भाई एक गुप्त द्वार से महल के बाहर आ गये. शाहजमान को अपने भाई का सुझाव सही लगा था.

एक दिन और एक रात तक चलते रहने के बाद दोनों खारे समुद्र के निकट स्थित एक सुनसान चरागाह के बीचोबीच लगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पेड़ के नीचे आकर रुके. चरागाह में ताज़ा और मीठे पानी का एक चश्मा था, जिसमें से पानी पीकर दोनों ने अपनी प्यास बुझायी और घास पर लेटकर आराम करने लगे.

करीब एक घंटे बाद, समुद्र अशांत हो उठा, और उसमें से काला धुंआ उठकर आसमान और चरागाह की ओर बढ़ने लगा. धुएं के इस बबंडर को देखकर दोनों भाई डर गये और अपनी जान बचाने की खातिर, पेड़ पर चढ़ गये.

तभी उन्होंने आश्चर्य से देखा कि काले धुएं का बबंडर एक विशाल-काय जिन्न में बदल गया है और उसके सर पर एक बक्सा है.

जिन्न धीरे-धीरे चलता हुआ उस पेड़ की ओर बढ़ने लगा, जिस पर दोनों भाई चढ़े हुए थे. अंत में जिन्न पेड़ के नीचे आकर खड़ा हो गया. फिर उसने सर पर रखा बक्सा उतारा, और उसका ढक्कन खोला. बक्से में एक तिजोरी थी. उसने उसे भी खोला. तिजोरी के खुलते ही उसमें से एक हसीना निकली, जिसकी उजली धूप ज़ैसी सुंदरता देखकर, दोनों भाइयों की आंखें चकाचौंध हो गयीं.

जिन्न भी कुछ समय तक उसके हसीन और परी जैसी चेहरे को देखने के बाद, बोला, "मुझे भूली तो नहीं है न! मैं वह हूं, जिसने तेरी शादी के दिन तेरा अपहरण किया था. मैं कुछ देर आराम करूंगा." कहकर वह हसीना के घुटनों पर सर रखकर सो गया.

जिन्न के सो जाने के बाद हसीना की निगाह, पेड़ पर चढ़े दोनों राजाओं पर पड़ी. उन्हें देखते ही उसने जिन्न का सिर अपने घुटनों से हटाकर नीचे जमीन पर रख दिया और पेड़ के नीचे खड़ी होकर इशारे से दोनों भाइयों से कहने लगी. "नीचे आ जाओ. इस जिन्न से मत डरो."

"दोनों भाइयों ने एक बार फिर जिन्न के दैत्याकार शरीर को देखा और इशारे से हसीना से कहा, "अल्लाह ताला तुम्हें खुश और कुशल रखें. मगर हमें माफ करें."

"मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं कि तुम दोनों मुझ पर मेहरबानी करके नीचे आ जाओ और अगर तुम नीचे नहीं आये तो मैं जिन्न को जगा दूंगी. और मेरे कहने पर वह तुम दोनों को जिंदा नहीं छोड़ेगा. जल्दी से सोच लो, क्या करना है."

जैसे ही, दोनों भयभीत भाई पेड़ से नीचे उतरे, उस हसीना ने उन दोनों को उसके साथ अलग अलग प्रेम करने के लिए मजबूर

इसके बाद उस हसीना ने दोनों भाइयों को अपने बारे में बताते हुए कहा, "इस दुष्ट जिन्न से मेरी शादी के दिन मेरा अपहरण किया था. पहले उसने मुझे एक तिजोरी में कैद किया और फिर उस तिजोरी को एक बक्से में बंद करके उस पर सात जंजीरें लगा कर ताला लगाया. वह यह बक्सा सर पर लिये सारी दुनिया में घूमता है और सोचता है कि मैं उसे छोड़कर कहीं नहीं जा सकती, और कुछ भी नहीं कर सकती. मैं अभी तक इससे आजाद होने में तो कामयाब नहीं हुई हूं, लेकिन, इसकी कैद में रहते हुए भी मैंने अनेक पुरुषों को अपने को भोगने का अवसर दिया है. उनकी संख्या तुम्हें मिलाकर 570 तक पहुंच चुकी है. मैंने तुम्हें ये सब बातें इसलिए बतायीं, ताकि तुम दोनों भाइयों को यह पता चल जाये कि औरत मन में जो ठान लेती है, उसे करके ही रहती है, और दुनिया की कोई भी ताकत उसे ऐसा करने से नहीं रोक सकती."

हसीना की यह बात सुनकर शहरयार ने अपने भाई से कहा, "हमें ऐसे आदमी की तलाश थी जो औरत से विश्वासघात की सजा पाने के मामले में हमसे भी ज्यादा बदनसीब हो. तो, इस ताकतवर जिन्न के रूप में ऐसा बदनसीब आदमी हमें मिल गया. अब हमें अपने-अपने राज्यों को वापस लौट जाना चाहिए."

अपने महल में लौटने पर, शहरयार ने सबसे पहले अपनी बीवी के साथ उन सब हब्शी दास-दासियों का कत्ल करवाया, जिन्होंने उसकी बीवी के साथ जल-क्रीड़ा की थी. इस पर भी, उसकी क्रोधाग्नि ठंडी नहीं हुई और अपने वजीर को बुलाकर उसे हुक्म दिया, "तुम्हें कहीं से भी हर शाम को मेरे लिए एक कुमारी को लाना है. मैं रात भर उसे भोगकर, सुबह को उसका कत्ल करवा दूंगा. जाओ, आज से ही अपने काम में जुट जाओ."

बेचारा वजीर तीन साल तक अपने राजा शहरयार के लिए उसकी प्रजा के परिवारों में से प्रति दिन एक कुमारी कन्या लाता रहा. लेकिन, तीन साल के बाद, स्थिति यह हो गयी, कि उसे कुमारी कन्याएं मिलनी बंद हो गयीं, क्योंकि ऐसे सब परिवार, जिनमें कोई कुमारी कन्या थी, अपने राजा का राज्य छोड़कर भाग गये थे.

वजीर अब बड़ी चिंता में पड़ा, क्योंकि अब खुद उसकी जान पर बन आयी थी. उसे डर था कि कुमारी लड़कियों के न मिलने पर, राजा कहीं उसे कत्ल न करवा दे.

वजीर की चिंता का एक कारण यह भी था कि खुद उसके घर में उसकी दो जवान, अनब्याही बेटियां मौजूद थीं. बड़ी का नाम शहरजाद था, और छोटी का दुन्याजाद. शहरजाद एक पढ़ी-लिखी, चतुर और बुद्धिमती नवयुवती थी. इतनी कम आयु में भी उसने इतिहास, पुरा-कथाओं और लोक-कथाओं का रुचिपूर्वक अध्ययन किया था. उसके पास ऐसी कथाओं की एक हजार के करीब पुस्तकें थीं, जिनमें गुजरे जमानों के राजाओं, सम्राटों, यात्रियों और साधारण लोगों की कहानियां थीं. उसे कहानियां पढ़ने और सुनने के अलावा कहानियां सुनाने का भी शौक था. कहानी सुनाने का उसका ढंग ऐसा रोचक और हृदयग्राही था कि श्रोता मंत्रमुग्ध-सा सुनता ही रह जाता था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पिता को चिंतित देख, शहरजाद ने उनसे उनकी चिंता का कारण पूछा. वजीर ने सारी घटना शुरू से आखिर तक सुना दी. शहरजाद ने कहा, "मेरे पास एक उपाय है, जिससे, मैं समझती हूं आपकी चिंता तो दूर हो ही जायेगी, राज्य के वे सब परिवार भी, जिनमें कुमारी कन्या या कन्याएं मौजूद हैं, चिंतामुक्त हो सकेंगे."

"वह क्या उपाय है?" वजीर ने पूछा.

"आप अल्लाह का नाम लेकर मेरी शादी राजा शहरयार से कर दीजिये. आगे जो कुछ करना है, वह मुझे करना है."

"मगर कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा हाल वही हो जाये जो कहानी के गधे, बैल और अमीर किसान का हुआ था. लो, सुनो वह कहानी."

अमीर किसान उसके गधे और बैल

यह कहानी एक ऐसे अमीर किसान और व्यापारी की है, जिसके पास अल्लाह का दिया हुआ सब कुछ था—दौलत, लाभदायक व्यापार, सोना उगलती कृषि-भूमि, प्रेमल पत्नी और स्वस्थ-सुंदर बच्चे. खुदा के फ़जल से वह पशु-पक्षियों की बोली भी समझ लेता था.

"उसके पास दर्जनों पशु-पक्षी थे, जिनकी वह अच्छी देखभाल करता था, और जरूरत के मुताबिक काम भी लेता था. एक दिन उसने देखा कि उसका बैल उसके गधे के पास जाकर उससे कुछ कह रहा था. वह चुपके से उनके पास जाकर उनकी बातें सुनने लगा. बैल गधे से कह रहा था, "यार, तुम्हें तो रहने के लिए बड़ी आरामदेह जगह मिली हुई है. खाना भी भरपेट और सेहत बढ़ाने वाला मिलता है. मालिक तुमसे ज्यादा काम भी नहीं लेते. एक हम हैं, सारे दिन धूप में खेत जोतते हैं, और खाना भी काम चलाऊ ही मिलता है."

"अपनी तारीफ सुनकर गधा बहुत खुश हुआ, और उसने बैल को सलाह दी, "कल से तुम अपने मालिक को यह बताओ कि तुम बहुत सख्त बीमार हो, खेत पर जाते ही जमीन पर गिर पड़ना, और खाने से इंकार कर देना. तब, मालिक को तुम्हें आराम से रखने के अलावा, अच्छा खाना देने को भी मजबूर होना पड़ेगा." थोड़ी देर बाद, जब मालिक ने बैल को चारा दिया, तो उसने नहीं खाया. बड़ी मुश्किल से वह खेत में गया और वहां जाते ही गिर पड़ा. तब उसने अपने नौकर से कहा, "इस बैल को जो बीमार लगता है, गधे की जगह बांध दो और गधे से जमीन जुतवाओ."

"शाम को जब गधा थका-मांदा अपनी जगह पर लौटा तो वहां बैल को आराम करते देखकर उसकी तबीयत बड़ी कोफ्त हुई और उसे पछतावा होने लगा कि उसने बैल को नेक सलाह क्यों दी थी? उधर बैल बहुत खुश था. जब अगले दिन भी गधे को सारे दिन खेत में जुतना पड़ा, तो उसके मन में एक विचार आया. उसने बैल से कहा, "आज मालिक तुम्हारे बारे में नौकरों से बात कर रहे थे और कह रहे थे कि यदि बैल जल्दी ठीक नहीं होता है तो उसे कसाई को बेच देना ही ठीक होगा." बैल यह सुनकर बहुत घबराया और मालिक के पास जाकर बोला, "मालिक, मैं अब ठीक हूं. और काम पर जाने के लिए तैयार हूं." बैल की यह बात सुनकर मालिक को हंसी आ गयी और वह हंसता ही चला गया, क्योंकि हंसी रुकने में ही नहीं आ रही थी.

"इतना क्यों हंस रहे हो?" उसकी बीवी ने पूछा. उसने उत्तर दिया, "जो सुना और देखा है, उसके कारण हंस रहा हूं. मगर, तुम्हें वह कारण बताऊंगा तो मर जाऊंगा."

तुम्हें बताना ही होगा कि तुम क्यों हंस रहे हो? नहीं तो मैं तुम्हें चैन से नहीं बैठने दूंगी, भले ही तुम मरो या जिंदा रहो. मैं अच्छी तरह जानती हूं कि तुम मुझ पर हंस रहे हो."

अंत में शौहर ने ही कहा, "ठीक है, अपनी इस बीवी के सुख की खातिर मैं इसे अपनी हंसी का भेद बताकर मरने को तैयार हूं." यह कहकर, वह अपनी आखरी इबादत करने चला गया मालिक के इस निश्चय का समाचार जब उसके प्रिय पशु-पक्षियों को मिला तो वे सब चिंतित हुए और इस बारे में बात करने लगे. एक ताकतवर मुर्गा कुत्ते से कहने लगा, "मेरी पचास बीवियां हैं, और मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं होता, क्योंकि जब उनमें से कोई बेकार की जिद करने लगती है तो मैं उसकी पिटाई करके उसे सही रास्ते पर ले आता हूं. मालिक को भी ऐसा ही करना चाहिए." मालिक को मुर्गे का सुझाव सही और मौजूं लगा. उसने पेड़ की कुछ टहनियां तोड़ीं, और कमरा बंद करके उनसे अपनी बीवी को धुनना शुरू कर दिया. बीवी को फ़ौरन अकल आ गयी और वह अपने शौहर से माफी मांगने लगी. मुझे लगता है, तुम्हारी जिद (शहरयार से शादी करने की) दूर करने के लिए मुझे भी तुम्हारी पिटाई करनी पड़ेगी." शहरजाद ने हंसकर अपने वालिद से कहा, "मुर्गे के नुस्खे को मुझ पर न आजमाएं. मैं जैसा कहती हूं, वैसा ही करें." वजीर समझ गया कि बेटी उससे कहीं ज्यादा अक्लमंद है.

वजीर के जाते ही शहरजाद ने अपनी बहन को बुलाया और कहा, "मेरी शादी राजा शहरयार से होने जा रही है. मैं तुझे भी अपने साथ महल में ले जाऊंगी. वहां तुझे, जैसा मैं बताती रहूं, वह करना होगा. रात को जैसे ही हम दोनों, सब कामों से निपटकर, सोने के लिए जाने लगें तो तू वहां आकर मुझसे कहना, 'दीदी, तुम रोज सोने से पहले मुझे एक नयी कहानी सुनाया करती थीं. आज भी सुनाओ न, एक नयी कहानी. तुम तो जानती ही हो कि तुम्हारी कहानी सुने बिना मुझे नींद नहीं आती.' फिर मैं राजा से पूछकर तुझे एक नयी कहानी सुनाऊंगी. मेरी इस बात को याद रखना, भूल न जाना."

उधर, शहरयार को वजीर की बड़ी लड़की शहरजाद के साथ शादी के प्रस्ताव की बात वजीर के मुंह से सुनकर बड़ी खुशी हुई. उसने फौरन शहरजाद को बुला भेजा. विवाह की रस्म पूरी होने पर, शहरजाद ने रोते-रोते राजा से कहा, "कल सुबह तो मुझे मरना ही है. अगर आप मेरी आखिरी ख्वाहिश पूरी करने को राजी हों, तो मेहरबानी करके मेरी छोटी बहन दुन्याजाद को बुलवा भेजें, ताकि मैं उससे आखिरी बार मिल लूं."

जब तक दुन्याजाद महल में आये शहरयार ने शहरजाद का कौमार्य भंग कर दिया था और वह सोने के लिए जाने लगा. तभी, दुन्याजाद आ गयी और उसने अपनी बहन से वही कहा, जो उसने उसे कहने को कहा था. शहरजाद ने कहा, "मैं कहानी सुनाने को तैयार हूं. बशर्ते कि राजा साहब को उसमें कोई एतराज न हो." कहानी सुनने की ख्वाहिश शहरयार को भी थी, इसलिए उसने फौरन हां कह दी.

और, पहली रात को शहरजाद ने अपनी बहन और शहरयार को एक व्यापारी और एक जिन्न की कहानी सुनानी शुरू कर दी, जो इस प्रकार थी... □

अगले अंक में जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बानो कुदसिया
सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी कथाकार

पिया का नाम दिया

न जाने कब से कैसर की बुनियाद में पानी पड़ रहा था. देखने में तो वह बड़ा सेहतमंद दरख्त नजर आता, लेकिन अंदर से मिट्टी पोली हो गयी. दरख्त बजाहिर सरो-कद था, पर टहनियों को अंदर ही अंदर यह पैगाम मिल गया कि किसी लम्हे भी दरख्त का तना तेवरा कर नई कोंपलों समेत जमीन पर गिर सकता है.

पिया कुछ ऐसी हिरनी जैसी आंखों वाली नहीं थी लंबे कद की भी नजर नहीं आती थी रंगत भी उनाबी-शहाबी न थी, लेकिन बरसन-हार बादलों की तरह उसका वजूद बड़े वायदों के साथ भरा हुआ था. वह कब बरसेगी? मेंह लगातार होगा कि कुनमुन, कुनमुन झड़ी लगेगी? खुश्क अकाल से चटके हुए बंजर इलाके पर शीतल फुहार बन कर गिरेगी कि ठहरे तालाब पर अनगिनत भंवरों की शक्ल में जज्ब हो जायेगी?

जिस रोज पहली बार कैसर के दिल को खोंच लगी, वह एक फैशनेबल बेकरी में खड़ा था. सामान वह ज्यादा बंधवा चुका था और पैसे उसके मामा ने कम दिये थे. केक, पेस्ट्री के डिब्बों पर नजर डाल कर जब राजदारी से वह अपने बटुए की परत खोलने लगा, तो उस वक्त पिया शीशे का वह दरवाजा खोल कर अंदर दाखिल हुइ, जिस के बाहर वाली तरफ 'पुश' लिखा था.

अचानक खिड़की खुल जाने पर हवा के झोंके से जैसे मुंह से एक आह-सी निकलती है, ऐसे ही कैसर के होंठों से बड़ी हकली, बड़ी अज्ञात-सी सीटी नजराने के तौर पर निकली. पिया के लिए कैसर बिजली का खंबा था, जिस में अचानक शाम ढले बत्ती जल गयी.

वह लापरवाही से आगे बढ़ी. काउंटर पर एक कुहनी टिका कर अपना चेहरा हाथ के प्याले में धरा, एक पांव जमीन पर जमाया और दूसरे पांव के पंजे को पीछे खड़ा कर झुलाती हुई बोली, "जीयोजप है?"

इन में न जाने खुदा ने क्या खूबी दे रखी है कि जब यह चाहें मौसम बदल सकती हैं. सर्दियों में लू चलने लगे और गर्मियों में बर्फखाने-सी सर्दी महसूस हो. अंधेरी रात जगमगा उठे और पूर्णमासी की रात अंधेरी हो जाये..

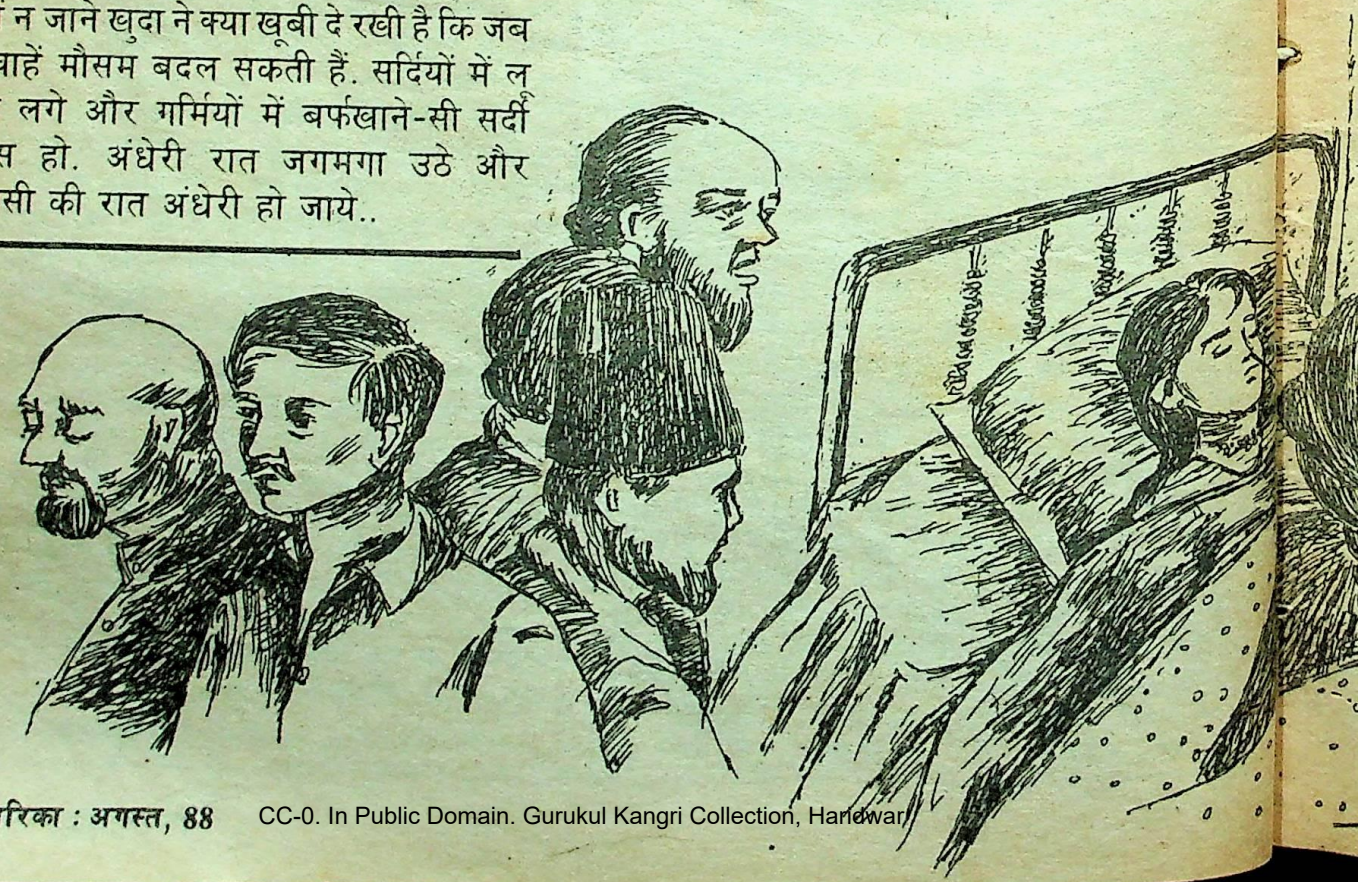

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी, किस कदर?"

"क्वार्टर पाउंड!"

कैसर पांच-पांच, दस रुपये के नोट और रेजगारी जमा करता रहा. फिर उसने ब्लैक-फोरस्ट केक वापस कर दिया, क्योंकि सामान उसने ज्यादा पैक करवा दिया था और पैसे मामा ने कम दिये थे. इस सारी कार्रवाई के दौरान वह अधझुकी मुंदी-मुंदी-सी आंखों से पिया को देखता रहा. पिया ने शार्किंग-पिंक रंग का लबादा-नुमा कुछ क़मीज, कुछ फ्रॉक, कुछ सर्कट-सा पहन रखा था. लंबी हील वाली कोट शूज के अंदर शार्किंग पिंक जुराबों में धागे उखड़ जाने की वजह से लंबी उधड़न बन गयी थी. कंधों पर दुपट्टा न था. मेंहदी रंगे स्याह बालों में अंगारा-सी चमक जरूर थी.

जब पिया जीयोजप लेकर और कैसर चार डिब्बे उठाये बेकरी से निकला, तो कैसर ने पुश वाला दरवाजा खोला, पिया के गुजरने का इंतजार किया. पिया ने मुस्करा कर 'थैंक यू' कहा, और सीढ़ियां उतर गयी. उसके बाद वे दोनों अपनी-अपनी कार में सवार हो कर गाड़ियां बैक करने लगे, क्योंकि सामने सड़क के ऐन बीच में कोई अफरातफरी का मारा अपनी सफेद गाड़ी पार्क कर गया था. कार बैक करते हुए कैसर ने पिया की गाड़ी का माडेल, कार का नंबर और गरदन मुड़ी लड़की को देखा. मेन सड़क पर पहुंचते-पहुंचते स्टीयरिंग को फेरने वाले कैसर के हाथ भीग चुके थे. विंड-स्क्रीन के सामने लगे हुए शीशे में अब पिया की कार नजर न आती थी, क्योंकि वह पिछले मोड़ पर ही मुड़ गयी थी. अब अनगिनत कारों के बावजूद कैसर को सड़क खाली-खाली नजर आयी. दिल ही दिल में, कैसर ने सोचा. इन लड़कियों में न जाने खुदा ने क्या खूबी दे रखी है, जब भी यह चाहें, मौसम बदल सकती हैं. सर्दियों में लू चलने लगे और गर्मियों में बर्फखाने जैसी सर्दी महसूस हो. अंधेरी रात जगमगा उठे और पूर्णमासी की रात अंधेरी हो जाये. वह कार चलाता हुआ सोच रहा था कि इस कमजोर जिस को बनाने वाले ने बड़ा ही ताकतवर बनाया है. दूर बैठी औरत मर्द को ऐसे खींच सकती है, जैसे लोहेचून को मिकनातीस... कुछ अपने आप से नाखुश और कुछ ऊपर वाले से गिलागुजार करता वह घर में दाखिल हुआ.

"इतनी देर लगा देते हैं कुक्कू?.. कुछ खयाल नहीं है तुम्हें. ए लेवल इम्तिहान ऐसे तो नहीं दे दोगे. सब तुम्हारी शिकायत करते हैं. बड़ा टाइम वेस्ट करना आता है तुम्हें!" पेस्ट्री, पेटीज़ के डिब्बे उसने खामोशी से मामा को पकड़ा दिये. जब से वह शेव करने लगा था, उसके ताल्लुकात मामा से उखड़ गये थे. कभी दोस्तों के सामने मामा मिठार-मिठार कर बातें करने लगती. कभी पांच-दस मेहमानों के सामने शेम-शेम-वाली गुफ्तगू के साथ उसका दिल छलनी कर देती. जब वह दिल लगा कर पढ़ता, तब बहुत झिड़कियां पड़तीं. जब पढ़ना छोड़ कर स्कवाश खेलना शुरू कर देता, तो मामा दिलदारियों के साथ उसे अपने आप से बांध लेती. इस झकझोरी की लंबी दास्तानें, अब्बू तक पहुंची. मामा घंटों अपनी सहेलियों के साथ कुक्कू को डिसकस करती. रोती. कसमें खाती. अपने बाल नोचती. मामा को कहीं अंदर यकीन हो चुका था कि उसका कैसर नालायक है. वह अपने बाप की तरह कभी जिंदगी बना नहीं सकता और जो ऊंचा टारगेट मामा ने कैसर के लिए दिल में सोच रखा था, उस तक पहुंच नहीं सकता.

पिया को बेकरी की दुकान पर देखने के बाद कैसर अपने वजूद की झड़न के साथ घर में दाखिल हुआ, क्योंकि सारा वजूद तो वह पिया को नजराना दे आया था. शायद यह खब्त आधे घंटे के बाद वी.सी.आर. पर कोई फिल्म देखते हुए खत्म हो जाता, लेकिन कभी-कभी बाकयात खुद ही संगीन शक्ल अपना लेते हैं. वह शिथिल-सा नंगे पांव कालीन पर फिर रहा था. उसके कानों में मामा की आवाज थी. जब फोन की घंटी बजी, उसने कार्डलेस उठाया, तो उस पर दो सहेलियां आपस में गुफ्तगू कर रही थीं. पिया कह रही थी, "हाय, पता है आंटी, मेरे लिए शार्किंग पिंक स्टार्किंग्ज लायी थीं.. एक तो सिली आते ही फट भी गया. मैंने बेकरी में नोटिस किया था. हां.. बाबा गयी थी जीयोजप्ज लेने..."

इन दोनों लड़कियों की क्रॉस-टॉक पर अगर कैसर गुजार कर लेता, तो शायद खैरियत गुजरती, लेकिन वह तो बीच में कूद पड़ा, और आग, जिसको वह समझता था कि सर्दी पड़ जायेगी, और भड़क उठी. अब पिया और वह, टेलीफोनी दोस्त बन गये. पहलेपहल तो पिया की तरफ से फोन आने लगे. वह बड़ी मिन्नतों-समाजतों से नंबर पूछता, लेकिन कुज-रफ्तार ने कभी अपना नंबर न बताया. हमेशा यही कहती, "भई, मैं खुद फोन करूंगी."

इन दिनों सारा वक्त कैसर का दिल फोन की घंटी के साथ बंधा रहता. कहां तो घंटी बजती रहती, लेकिन वह करीब न फटकता. मामा गुसलखाने में चिल्लातीं, "भई कुक्कू, फोन क्यों नहीं देखते!" वह फिर भी फोन की तरफ न बढ़ता और अब कार्डलेस ही उसके कमरे में रहने लगा. यहां तक कि नहाते वक्त भी फोन उसके साथ जाता. उसकी ख्वाहिश होती कि पिया रात को फोन करे, लेकिन पिया कहती, "कुक्कू, मैं कैसे रात को फोन कर सकती हूं. अम्मी मुझे जान से मार डालेंगी!"

"अच्छा, रात को एक बजे... तुम्हें पता है, मेरे पास एक दिया है. मैंने उसका नाम पिया रखा है. मैं रात को पूरे एक बजे उसे टेलीफोन के पास रख कर जलाता हूं. जब तक वह जलता है, मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीता रहता हूं... जब वह बुझने लगता है, तो मैं इंतजार नहीं करता. सिर्फ जीना बंद कर देता हूं."

"हाय, नहीं! मैं बाजी के कमरे में सोती हूं."

"चलो, आज रात... सिर्फ एक बार!"

होते-होते रात के पिछले पहर लंबे-लंबे फोन होने लगे. आवाज दोनों की प्यारी थी और दोनों यही चाहते थे कि तारीफ उस आवाज की होती रहे. हौले-हौले उन फोन की बदौलत वे एक दूसरे के यों वाकिफ बन गये, जैसे मुद्दतों साथ रहे हों. न तो पिया का इरादा कैसर से मिलने का था, और न शदीद ख्वाहिश के बावजूद कैसर पिया को मुलाकातों पर मजबूर करना चाहता था.

अपर क्लास के नौजवानों की तरह कैसर में भी डंक नहीं था. वह सांप, बिच्छू, बर्रिया सब कुछ था, लेकिन उस में काटने, खुखियाने, धोल-धप्पा मारने की खूबी नहीं थी. अंग्रेजी भाषा और मैनर्ज ने उसकी बोल-चाल में एक लाचारी-सी पैदा कर दी थी. बहसों ने उस में गीली लकड़ी का सुलगाव पैदा कर दिया था. जिस कदर ए लेवल की पढ़ाई जानलेवा थी, उस कदर वह अपने आप को इस मेहनत के अयोग्य पाता था. वह अंदर ही अंदर कहीं शायर था. आशिक था. नाकाम इंसान था. वह अपनी मां की आरजुओं को समझता जरूर था, लेकिन दुनियावी तौर पर कामयाब होने की उस में खूबी न थी. इकलौता होने की वजह से वह मामा का कमरतोड़िया था और जानता था कि अगर दुनियावी तरक्की के इस जीने पर न पहुंच सका, तो मामा-खड़ी-खलोती मर जायेगी, लेकिन गले पड़ी पढ़ाई का सौदा वह कर न सकता था. इसलिए अब वह पढ़ने बैठता, तो कापियों पर खूबसूरत कटे बालों वाली लड़कियों की तसवीरें बनाता रहता. यह तसवीरें गूंगी थीं, लेकिन कैसर उनकी जबान समझता और बोलता था. खिड़की में खड़े-खड़े हवाई जहाजों को देखने के बहाने वह एक आवाज के गिर्द बड़े-बड़े ख्वाब बुनता रहता. उसके चेहरे पर हलकी-सी सुर्खी और आंखों में खुमार उतर आता. यही दिन थे, जब वह खुद-कलामी का शिकार हुआ... हर वक्त उसके अंदर बैठी हुई शार्किंग पिंक लड़की बातें करती रहती. वह तार तोड़ देता, तो फिर फोन की घंटी बजने लगती और वह तमाम सवाल नये सिरे पूछे जाते, जिन का जवाब दोनों तरफ रटा जा चुका था.

लेकिन पिया की एहतियात और कैसर की शराफत के बावजूद वे दोनों एक दिन फिर बाजार में मिल गये. पिया 'फोन' के इंतजार में थी और कैसर मामा के लिए कुछ दवाएं खरीद कर दुकान से बाहर निकल रहा था. पहली ही नजर में उन दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया. अपनी-अपनी शिक्षा-दीक्षा की वजह से उन्होंने उस हादसे को मामूली साबित करने की कोशिश की, लेकिन अंदर ही अंदर कैसर को लगा, जैसे जशने-ताजपोशी में उसे तख्त पर बिठाया जा रहा है. पिया बहस नहीं करना चाहती थी. कैसर हकलाने के मूड में न था. इसलिए पिया मुंह परे कर के कोन खाती रही और कैसर दुकानों के बोर्ड पढ़ता हुआ मौसम के बारे में बातें करता रहा. दोनों के कदम गुलबर्ग के उस बाजार में जम गये थे. पिया दिल में हैरान थी कि वह जिसे मामूली टेलीफोन दोस्ती समझती रही है, वह तो एक ऐसी बीमारी है, जिसका इलाज वह नहीं जानती. कैसर सोच रहा था कि लड़कियों के कदम लेने में जो जिल्लत वह समझा करता था, जिल्लत का वही एहसास तो असल जिंदगी है.

सिपाही अनगिनत बार ट्रेफिक के इशारे बदल चुका था, लेकिन वे अपनी-अपनी कार की चाबियां हाथ में लिये वहीं खड़े थे. कैसर ने कनखियों से पिया की तरफ देख सोचा कि शक्ल तो इस लड़की की बड़ी मामूली है. थ्रेडिंग की वजह से जिल्द भी खराब हो चुकी है. फिर मैं क्यों इस ज़ालिम-मज़लूम-नुमा के हुजूर खड़ा हूं. पिया सोच रही थी कि अगर अभी कालेज की कोई दोस्त आ गयी और मुझे कैसर की जान-पहचान करानी पड़ी, तो क्या बात 'सेफ' रह सकेगी? इन दोनों ने अपने-अपने रास्ते जाने की कोशिश की. वे एक कार में एक तरफ तो जा रहे थे, लेकिन बिलकुल भिन्न दिशाओं का सफर उनके लिए काबिले-कबूल न था. फिर पता नहीं कौन-सी ताकत थी, कैसे हल्लाशेरी थी, एक दूसरे की नजदीकी की कैसी प्यास थी, जो उन दोनों को रेस्तोरां के अंदर ले गयी. आमने-सामने बैठ कर बातें करते हुए बड़ा वक्त गुजर गया. न उन दोनों में से किसी ने सामने धरे कोक को हाथ न लगाया, न बरगर खाया और दवाइयों में से बचे पैसे काउंटर पर अदा कर के कैसर घर आ गया.

कहते हैं, पहले पहल सैलब महज उंगली भर सूराख करता है. फिर सीसा-पिलाई दीवार भी काम नहीं आती. अगर किसी तरह यह मुलाकात ही न होती तो शायद कुछ बच-बचाव हो जाता, लेकन अब भूसे में तेल डाल कर जलती तीली दिखाई जा चुकी थी. मुलाकातें होने लगीं. कैसर प्राईवेट तौर से 'ए' लेबल का इम्तिहान दे रहा था. पिया थर्ड ईयर में थी. वह अकेला ट्यूशन पढ़ने जाता था. पिया अकेली कालेज के लिए रवाना होती थी. कुछ लोग शायद यह समझें की अगर मिलने-मिलाने न भी दिया जाता, तो भी दोनों तरफ त्राहि-त्राहि होती रहती.

मामा भी आखिर एक मनसूबा रखती थी. उसे भी अपने एकमात्र कमरतकिये को कहीं किसी ऊंची मंजिल पर पहुंचाना था. एक रोज ट्यूशन पर जाते हुए कैसर को मामा ने पकड़ लिया.

"कुक्कू, ठहरो..."

"जी, मामा..."

"मुझे जो बताओगे, सच बताना..."

"जी मामा..."

"तुम सयैद आसिफ अली की बेटी से मिलते रहे हो.. मेरी इजाजत के बगैर.." किसी ने कैसर पर तिरपाल डाल कर उस पर रस्सी बांध दी.. उसका दम घुटने लगा.

"तुम्हें पता है, उनका स्टेटस क्या है? तुम्हें मालूम है, तुम्हारे जैसे लड़कों को उनका बाप चपरासी भी नहीं रखे..."

पहली बार उसके कानों में अपने बंदीवास की असली हालत खुली, "हमें क्या एतराज हो सकता है, अगर वह लोग मान जायें... लेकिन उन लोगों को मानने के लिए कुछ होना चाहिए.. कुछ बनना पड़ेगा. तुम्हारा क्या खयाल है? एक ए लेवल की तैयारी करने वाले लड़के से वह अपनी बेटी ब्याह देंगे? तुम आम जिंदगी में एक बड़े अफसर के बेटे हो.... लेकिन कुक्कू वह लैंडलार्ड है. कारखानेदार है. किस मुसीबत में फंस गये हो तुम. ध्यान से पढ़ाई करो...."

कैसर ने जवाब देना चाहा. कुछ अपनी सफाई में, कुछ पिया की सच्चाई में. लेकिन उस वक्त मामा ने कोने में पड़ा हुआ रेकट इतनी जोर से सोफे के बाजू पर मारा कि रेकट के ऐन दरम्यान में पटाके की आवाज आयी और जाली वाला हिस्सा लटक गया.

"तुम्हें क्या पता, अमीरजादियों के पास तुम्हारे जैसे खिलौने बहुत... मारी तो मैं जाऊंगी, जिस का एक ही एक बेटा है... मारी तो मैं जाऊंगी कैसर..." मामा सिर के बाल नोचती, गले से ऊंट जैसी आवाजें निकालती सीढ़ियां चढ़ गयीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली बार उसकी मोहब्बत के शगूफे ने दुनिया की हवा चक्खी. अब तक वह अंदर किसी अंधेरे में मिनी-प्लांट की तरह पल रहा था. अब उसे समझ में नहीं आ रहा था कि पिया को पाने तक लंबा सफर जैसे तय होगा. जबकि पढ़ाई का सफर वह तय ही नहीं कर सकता. वह तो सारा दिन पिया के नाखूनों, उसके हाथों की लकीरों को देखता रहता है. कान की लौ पर बैठै हुए टॉप्स उसकी निगाह से ओझल नहीं होते. हंसते समय सामने वाले दोनों दांतों के हलके से शिगाफ में से जो खुशदिली से मुस्कराती है, वही उसके पीछे सुबह-शाम रहती थी. यह नहीं कि वह ट्यूशन पढ़ने नहीं जाता था. वह नहीं कि वह पहरों दरवाजा बंद कर के किताबें खोले अक्षरों की चीटामीटी नहीं देखता था, पर कुछ लोग अंदर ही अंदर आशिक होते हैं. कैफियतों में रहते हैं. दुनिया के एतबार के नाकाम इंसान होते हैं. जिस रोज मामा के स्कवाश का रेकट तोड़ कर अपने सिर के बाल नोचे, उस दिन के बाद से कैसर खौफज़दा हो गया. वह पिया से मिलने पर पढ़ाई की तरजीह देने लगा. उसने टेलीफोन की घंटी भी सुनने से कई बार दिल से इंकार किया. लेकिन अंदर इतनी चौमुखी लड़ाई लड़ने के बावजूद जो चीज़ उसे कूट रही थी, वह यही थी कि आखिर उस मोहब्बत में जलने-भस्म होने का फायदा? वह भला सयैद आसिफ अली की बेटी को क्या दे सकता है? मोहब्बत का मिनी-प्लांट दुनिया की धूप कब तक बर्दाश्त कर सकता है. वह अजीब दुविधा में फंसा रहता. दिल पर मोहब्बत की बालादस्ती थी. पढ़ाई पर मामा का राज चलता था. बाप से वह यूं ही निगाहें चार करने का आदी न था. कभी आठ आठ घंटे पढ़ता रहता. कभी तीन-तीन दिन किताब को हाथ न लगाता. हर बार नया टाइम-टेबुल बनता. नयी कसमें खायी जातीं, लेकि प्रोग्राम पर अमल करना उसके बस की बात न थी.

उन ही दिनों जब वह अपने खयाल में पिया नामक ब्राउन लड़की को भुला चुका था, वह उसे अचानक फाइन वीडियो शाप में मिल गयी. पिया काउंटर पर खड़ी, कुहनी रख्वे, हाथ के प्याले में चेहरा जमाये, एक पांव फर्श पर जमा कर दूसरा पैर पंजे पर उठाये खड़ी थी. तभी कैसर कुछ फिल्में वापस करने वीडियो शाप में दाखिल हुआ.

"हाए! तुम अपने आप को समझते हो!" पिया ने सरे आबरु चढ़ा कर पूछा.

"मैं?... कुछ नहीं..!"

"मैं तुम्हारे जैसे लड़के के मुंह पर थूकती भी नहीं...."

इसके बाद कैसर उसे कुहनी से पकड़ कर घसीटता हुआ दुकान के बाहर ले आया. वे दोनों पिया की कार के पास पहुंचे. पिया ने कई बार कार स्टार्ट की, लेकिन कैसर ने कार में से उतरने से इंकार कर दिया. कैसर ने बहुत मिन्नतें कर के पिया को मनाने की कोशिश की, लेकिन पिया ने मन जाने पर रजामंदी प्रकट न की.... जब दोनों तरफ से बहुत गर्मी-सर्दी हो गयी, तो आखिर पिया ने कहा, "चलो, घर चलो.... एक बार यह टंटा भी खत्म हो. किसी तरह तुम शक्ल दिखा आओ. बाकी सब मैं संभाल लूंगी...."

कैसर के गुबारे में से गैस निकल गयी. वह कार में निकल कर ड्राइवर के दरवाजे की तरफ आ गया और दोनों हाथ पिया के कंधों पर रख कर बोला, "नहीं पिया..... मैं तुम्हारे घर नहीं आ सकता.. सॉरी!"

"क्यों?..."

माना मेरे अब्बू बहुत बड़े सरकारी अफसर हैं... लेकिन हमारे पास कुछ नहीं है. बंगला सरकारी है. कार-सरकारी है... और मैं अभी ए लेवल का इम्तिहान भी दे नहीं पाया."

"मैं इंतजार कर लूंगी कैसर!"

"तुम्हारा इंतजार कितने साल... कब तक....?" पिया के होठों पर आंसुओं के आगमन के असार थे.

"जब तक तुम कहो..."

"मेरी मां मुझे कुछ बनाना चाहती है. मैं कुछ बन नहीं सकता.. पिया..."

"चलो, मैं गुजारा कर लूंगी कुक्कू..."

"गुजारा करना इतना आसान भी नहीं होता पिया... और फिर मैं क्यों तुम्हें वह तकलीफें दूं, जिन का अभी तुम्हें ठीक से पता भी नहीं है..."

"और कुछ न हुआ तो हम जमीनों पर चले जायेंगे कुक्कू.. मेरी जमीन हम दोनों के लिए काफी है..."

"नहीं पिया... मैं अम्मी के सिवा किसी के पाकेट-मनी नहीं ले सकता!"

"तुम्हें मालूम है कि अम्मी मेरी शादी कर देंगी?... तुम मेरे साथ चलो.... बाकी मैं संभाल लूंगी कैसर.... सब मेरी जबान से डरते हैं. तुम चलो तो सही... सब जानते हैं. जो मैं चाहती हूं, कर के रहती हूं."

बिजली के खंबे का बल्ब फ्यूज हो गया और वह अपनी जगह से हिल न सका. पिया के चेहरे पर पता नहीं कब के रुके हुए आंसू बहने लगे. उसने धक्के से गाड़ी को स्टार्ट किया और मोड़ काट गयी. पढ़ने का जो ताजा-ताजा अहद उसने किया था, वह उस कार के साथ रवाना हो गया.

अस्पताल की सीढ़ियां चढ़ते वक्त कैसर को पता न था कि इतनी बड़ी बात भी हो सकती है. वह समझता था कि पिया के घर वालों ने उसे डराने धमकाने, नोटिस देने के लिए अस्पताल में तलब किया है. भला पिया जिस के दरम्यानी दो दांतों के बीच खुशदिली रहती है, यों अपनी जान ले सकती है? लेकिन जिस वक्त वह प्राईवेट कमरे में दाखिल हुआ, कमरे में दबी-दबी सिसकियों का शोर था. न जाने पलंग के इर्द-गिर्द कौन औरतें थीं, लेकिन जिस लड़की को वह जानता था, उसके चेहरे पर चादर थी और पायंते कंबल से एक पांव बाहर था, जिस पर शापिंग पिक स्टार्किंग थी.

कैसर ने दोनों हाथों में उस पांव को पकड़ लिया. स्लीपिंग-पिल्ज ने उस जानदार पांव को भी चिरनिद्रा में सुला दिया था. पता नहीं कब से कैसर की बुनियाद में पानी गिर रहा था. बजाहिर तो वह सेहतमंद दरख्त था, लेकिन अंदर से मिट्टी पोली हो चुकी थी. उसे डर था कि कहीं सब के सामने वह तेबरा कर गिर न पड़े.

सरकारी गाड़ी की विंड-स्क्रीन पर खिजां-मारे पत्ते गिर रहे थे. कहीं से बरसन-हार बादल आसमान पर इकट्ठे हो गये थे और इक्का-दुक्का बूंदे भी शीशे पर पड़ने लगी थीं. कैसर सोच रहा था कि उस मां के लिए क्या कर सकूंगा, जबकि मैं पिया के लिए उसके घर तक न जा सका.... विंड-स्क्रीन उसके आंसुओं से धुंधला रही थी. अंग्रेजी भाषा और मैनर्ज ने उस में लाचारी पैदा कर दी थी. मामा की झिड़कियां सह-सह कर वह बजदिल हो चका था...

अनुवाद : सुरजीत □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम विभाग

प्रहसनों पर आधारित यह स्तंभ आप नियमित रूप से हर माह पायेंगे. 'प्रेम विभाग' में पढ़िये कि प्रेम को बढ़ावा देने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है!

प्रथम दृश्य

सभी : गुड मार्निंग, सर

सचिव : गुड मार्निंग. बैठिए, बैठिए. (कुर्सी खींचते हैं) सब लोग आ गये हैं क्या?

उप सचिव : (बहुत हलीमी और अधेड़पन के साथ) जनाब, सब आ गये हैं. (फुसफुसाकर) मगर सर, मीटिंग किस विषय पर है, यह सभी पूछ रहे हैं. एजेंडा तो हमने कोई सर्कुलेट नहीं किया.

सचिव : (फुसफुसाहट) कोई बात नहीं. मैं अभी बताता हूं. (सबसे) आज की एमरजेंसी बैठक मैंने बहुत कम नोटिस पर इसलिए बुलाई है कि हमें फौरन एक नये विभाग की स्थापना करने का हुक्म हुआ है.

संयुक्ता सचिव (एक महिला) : नया विभाग, सर? क्या पुराने विभाग कम हैं, सर?

सचिव : कम ज्यादा का सवाल नहीं है, मिसेज दादा. यह तो मुख्य मंत्री जी घोषणा कर चुके हैं.

उप सचिव : ओह, घोषणा कर चुके हैं. तब तो सर हमारे पास कोई ऑपशन नहीं है.

मिसेज दादा : मगर सर, घोषणा घोषणा में भी तो फर्क होता है. कई घोषणाएं तो जनता के कंजपशन के लिए की जाती हैं. क्या आप संतुष्ट हैं कि मुख्य मंत्री जी इस घोषणा को कार्यान्वित करना चाहते हैं.

सचिव : जी हां, बिल्कुल डेफिनिट. मुझे उन्होंने ट्रंककाल से बताया कि वह तुरंत, आज ही नये विभाग को गठित हुआ देखना चाहते हैं.

मिसेज दादा : आज सर? आज कैसे हो सकता है?

सचिव : हो क्यों नहीं सकता? जब मुख्य मंत्री जी का आदेश है तो सकने न सकने का सवाल ही नहीं है. होना होगा.

उप सचिव : यस सर. हो जाएगा, सर. कौनसा विभाग सेटअप करना है सर?

सचिव : प्रेम विभाग.

सब : प्रेम विभाग!!

सचिव : जी हां, प्रेम विभाग. प्रेम का विभाग. मिस्टर हॉजी.

उप सचिव : यस सर.

सचिव : वह टेप रिकार्डर ऑन कर दीजिए और यह टेप इसमें डाल दीजिए.

श्री हॉजी : राइट सर.

सचिव (सबसे) : जब मुख्य मंत्री जी का फोन आया तो मैंने तुरंत लोक संपर्क (अधिकारी से कहा कि मुझे स्पेशल मेसेंजर द्वारा उनके भाषण का टेप भेज दें. यह वही टेप है.

एक अवर सचिव : सर, यही तो आपमें गुण है. क्या फुर्ती है सर? बाकी लोग तो अभी सोच रहे होते. आपने एक्शन ले लिया.

दूसरे अवर सचिव : आप बड़े डायनामिक हैं सर.

सचिव : (फूलकर) : नहीं, नहीं, ऐसा तो नहीं. मगर हां, मैं किसी चीज में देर नहीं होने देता.

श्री हॉजी : टेपरिकार्डर तैयार है सर.

सचिव : तो चालू कर दीजिए.

(सब खामोश हो जाते हैं. मुख्य मंत्री की आवाज भाषण देते हुए).

मुख्य मंत्री : हमें इस देश से गरीबी को हटाना है. मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरी सरकार इसके लिए कटिबद्ध है. (तालियां)

एक अंतिम बात. सरकार के पास बहुत शिकायतें आयी हैं, प्रेम के बारे में. कुछ लोगों ने कहा है कि शुद्ध प्रेम तो कहीं मिलता ही नहीं. प्रेम में मिलावट आ गई है. हम जानता चाहते हैं कि यह कौन लोग हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो प्रेम में मिलावट कर रहे हैं. क्या यह वही लोग नहीं हैं जो सरकार की हर बात पर विरोध करते हैं. वही लोग नहीं हैं जो देशद्रोही हैं.

मिसेज दादा : इनको हर जगह देशद्रोही ही नजर आते हैं.

सचिव : शशश्. सुनिए, सुनिए.

मुख्य मंत्री : हमें पता लगा है कि कुछ लोग प्रेम की मोनोपली कर बैठे हैं. मुझे सी.आई.डी. की गुप्त रिपोर्ट मिली है कि कोई फरहाद है, कोई मजनू है, कोई रोमियो है. ये लोग हैं जिन्होंने प्रेम पर एकाधिकार किया हुआ है. हमारी सरकार मोनोपली के खिलाफ है. हम नहीं बरदाशत कर सकते हैं कि प्रेम कुछ लोगों की बपौती बनकर रह जाए. हम चाहते हैं कि वह जनता जर्नादन तक पहुंचे, गरीब आदमी तक पहुंचे, कॉमन मैन को उपलब्ध हो.

उप सचिव : बहुत अच्छा बोल रहे हैं, सर.

सचिव : आप नोट्स ले रहे हैं ना? यह सरकार का पॉलिसी स्टेटमेंट हैं.

मिसेज़ दादा : हां, हां, सर! मुख्य मंत्री अगर जम्हाई भी लें तो पॉलिसी स्टेटमेंट हो जाता है.

सचिव : अच्छा, अच्छा, अब सुनिए तो.

मुख्य मंत्री : इसलिए मैं बहुत खुशी से यह घोषणा करता हूं कि प्रेम पर नियंत्रण रखने, मिलावट रोकने, एकाधिकार समाप्त करने और उसे जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए सरकार एक नये विभाग का गठन करेगी. (तालियां) कल से ही यह विभाग काम करना चालू करेगा. (तालियों की गड़गड़ाहट) जय हिंद. (थोड़ी देर टेप पर शोर आता है, फिर क्लिक के साथ ही टेप बद हो जाता है).

श्री हॉजी : क्या बढ़िया बोलते हैं. सर!

पहला अवर सचिव : गजब का जादू है. मगर हमारे सर तो इनसे भी अच्छा बोलते हैं.

दूसरा अवर सचिव : उस दिन आपका रेडियो पर टॉक सुना था सर, क्या विद्वता थी, क्या शब्दों का चयन था. मजा आ गया.

मिसेज़ दादा : यह प्रेम विभाग की स्थापना मुख्य मंत्री की एक और बेवकूफी मालूम होती है. अरे प्रेम पर भी कभी कोई काबू पा सका है.

सचिव : अच्छा, सुनिए भी. विभाग की स्थापना तो करनी ही करनी है. यह निर्णय सही है या ठीक, यह देखना हमारा काम नहीं है.

उप सचिव : सर, एक तो प्रेम निर्देशक होंगे.

सचिव : जी, वह तो होंगे ही. विभाग के अध्यक्ष. आगे बढ़िये.

पहला अवर सचिव : उसके नीचे, सर, एक उपनिदेशक (व्यापारिक प्रेम) चाहिए. वह ऐसे प्रेम का निर्देशन करेंगे जो व्यावसायिक अथवा व्यापारिक हो.

सचिव : व्यापारिक प्रेम? यह क्या बला है?

दूसरा अवर सचिव : कुछ लोगों का व्यवसाय ही प्रेम है, सर! है ना सर? (फुसफुसाहट) यह मिसेज दादा के सामने क्या बताएं, सर? मतलब वैश्याओं आदि से है.

सचिव : ओ, अच्छा, अच्छा. हां, हां, वह तो होना ही पड़ेगा.

श्री हॉजी : दूसरा उपनिदेशक (रोमांटिक प्रेम) कहलाएगा, सर.

पहला अवर सचिव : उनके नीचे प्रत्येक जिले में एक-एक जिला प्रेम अधिकारी होगा.

दूसरा अवर सचिव : हर पंचायत में एक प्रेम सेवक होगा.

मिसेज दादा : प्रेम सेवक? वह किसके लिए चाहिए?

श्री हॉजी : प्रेमियों की सेवा के लिए मैडम. उन्हें आहें भरने के लिए फालतू ऑक्सीजन, आहों को ठंडा करने के लिए बर्फ, रोने के लिए नमकीन पानी अथवा ग्लिसिरीन और सोने के लिए नींद की गोली मुहय्या करेगा.

पहला अवर सचिव : गिरेबा चाक करने के लिए कुछ कुत्ते भी देने होंगे.

दूसरा अवर सचिव : और माशूक की गली में घूमने के लिए एक अदद चप्पल भी.

सचिव : यह भी सुझाव तो ठीक हैं मगर खर्चे का भी तो ध्यान रखिए. मेरे विचार में अभी राज्यस्तर का स्टाफ ले लेते हैं. बाकी स्तरों को थोड़ा सोचकर फैसला करेंगे.

श्री हॉजी : यस, सर.

पहला अवर सचिव : यह बढ़िया आईडिया है, सर.

दूसरा अवर सचिव : ब्रिलियेंट, सर, ब्रिलियेंट.

सचिव : तो फिर, निदेशक किसे बनाया जाए? आज ही बनाना होगा.

पहला अवर सचिव : सर, श्री हॉजी क्या इसके लिए उपयुक्त नहीं रहेंगे?

सचिव : क्यों, हॉजी साहब, कर लेंगे आप यह काम भी?

श्री हॉजी : हां, कर लूंगा सर. जैसा हुक्म होगा, सर.

दूसरा अवर सचिव : हॉजी साहब तो सर काम के लिए मना नहीं करेंगे. मगर जनाब को सोचना चाहिए सर. कुछ अतिरिक्त विशेष वेतन तो मिलना ही चाहिए, सर.

मिसेज दादा : प्रेम का निर्देशन भी और विशेष वेतन भी.

सचिव : नहीं, अतिरिक्त वेतन तो देना ही पड़ेगा. अच्छा आप अभी अधिसूचना जारी कर दीजिए. फिर निर्देशक के पद का कार्यभार भी ग्रहण कर लें. मगर आज ही

श्री हॉजी : राइट सर. उपनिदेशक कौन बनेंगे सर?

सचिव : आपका महकमा है. आप सुझाव दीजिए.

श्री हॉजी : मेहरबानी, सर. अगर गुस्ताखी माफ हो तो मेरा निवेदन है कि.....

मिसेज दादा : चार्ज दोनों अवर सचिवों को दिया जाए, क्योंकि दो-दो विशेष वेतन पहले से ही ले रहे हैं. एक और हो जायेगा. क्या परेशानी है?

सचिव : तो ठीक है. दोनों को चार्ज दीजिए.

श्री हॉजी : थैंक्यू सर.

(दूसरा दृश्य)

मुख्य मंत्री : ठीक है, यह तो हो गया. अगली मद ले लीजिए, चीफ सेक्रेटरी साहब.

चीफ सेक्रेटरी : अगली मद प्रेम नियंत्रण व निर्देशन अधिनियम, 1984 का प्रारूप है.

मुख्य मंत्री : जी.

चीफ सेक्रेटरी : सचिव (प्रेम) को मैंने बुलाया है, वह इसका ब्यौरा आपके सामने रखेंगे. लीजिए, आ गये.

मुख्य मंत्री : क्या बिल बनाया है, सचिव महोदय?

सचिव (प्रेम) : सर, मुख्यतः तीन-चार बातें हैं. पहला, प्रेम का राष्ट्रीयकरण.

मुख्य मंत्री : राष्ट्रीयकरण? क्या मतलब!

सचिव (प्रेम) : मतलब यह सर कि जिस बात पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं उसे हम रेगुलेट कैसे करेंगे. मिलावट कैसे रोकेंगे, चोरबाजारी कैसे खत्म करेंगे, एकाधिकार कैसे नष्ट करेंगे.

मुख्य सचिव : बात तो ठीक है.

मुख्य मंत्री : मगर आप करेंगे क्या?

सचिव (प्रेम) : सर, इस कानून द्वारा सरकार की आज्ञा के बगैर प्रेम करना अपराध माना जाएगा. प्रदेश के सारे प्रेम पर सरकार का अधिकार हो जाएगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य मंत्री : आप सारे प्रेम को लेकर रखेंगे कहां?

सचिव (प्रेम) : सर, प्रेम को लेने की स्कीम अभी नहीं बनाई है. फिलहाल तो हम उसे लोगों के पास ही रहने देंगे, मगर अधिकार हमारा होगा, नियंत्रण हम करेंगे.

मुख्य सचिव : क्या प्रक्रिया अपनाएंगे इसके लिए, सी.एम.. यह जानना चाहते हैं?

सचिव (प्रेम) : सर, हमारे दफ्तर जिला स्तर तक खोले जा रहे हैं. जिस भी स्त्री या पुरुष को प्रेम करने की इच्छा हो, वह हमें निर्धारित फॉर्म पर आवेदनपत्र दे सकता/सकती है.

मुख्य मंत्री : सादे कागज पर?

सचिव : नहीं, सर. छपे हुए फॉर्म पर.

मुख्य मंत्री : कोई फीस?

सचिव : हां, सर. हर आवेदन के साथ 500 रुपये.

मुख्य मंत्री : 500 रुपये कुछ ज्यादा लगते हैं. इसको थोड़ा घटा दीजिए. गरीबों को भी प्रेम करने का अधिकार होना चाहिए.

सचिव (प्रेम) : तो 400 कर दीजिए, सर.

एक और मंत्री : देखिए, सचिवजी, आप ब्यूरोक्रेट्स तो जनता से बहुत दूर हैं. यू आर आउट ऑफ टच. मेरे विचार में गरीबों से 5 रुपये लें या बिल्कुल ही कुछ नहीं.

सचिव (प्रेम) : सर, आप बजा फरमाते हैं. मगर यह भी तो देखिए कि योजना किस तरह सेल्फ सर्पोटिंग बन सकती है. सारे अमले का खर्चा तभी पूरा होता है यदि हम 500 रुपये प्रति केस से लें. 5 रुपया लेने से तो 2 करोड़ रुपये की हानि होगी. बाकी आप मालिक हैं.

मुख्य मंत्री : मेरा खयाल है, गरीबों के लिए 100 रुपये रख दें.

सचिव (प्रेम) : जी बेहतर.

मुख्य सचिव : अच्छा, आप प्रेम की इजाजत किस प्रकार के केसों में देंगे और किन में नहीं.

सचिव (प्रेम) : इसके लिए नीति बनाई जा रही है. एक तो आयु बेमेल नहीं होनी चाहिए. हम स्त्री-पुरुषों की आयु-तालिकाएं गजट में छपवाएंगे. चालीस वर्ष का पुरुष केवल 36.5 और 39.5 वर्षों के बीच की महिला से प्रेम कर सकेगा.

मुख्य मंत्री : अच्छा, और?

सचिव (प्रेम) : दूसरा वर्गीकरण आय पर आधारित है सर. जैसे 1000 रुपये आय वाला मर्द केवल 650 से 950 रुपये आय वाली औरत से प्रेम करने का हकदार होगा.

दूसरा मंत्री : ऐसा क्यों? अगर कोई उच्च से प्यार करना चाहे तो सरकार को उसमें क्या आपत्ति है?

मुख्य सचिव : चलने दीजिए, सर. ज्यादा छूट देते हैं तो कानून को दृढ़ता से लागू करना असंभव हो जाता है.

मुख्य मंत्री : और क्या नीति बनाई है?

सचिव (प्रेम) : सर, अगर कोई व्यक्ति किसी भिन्न राज्य, धर्म, भाषा अथवा वर्ण के व्यक्ति से प्रेम करता है और इसे साबित करने के लिए किसी गजेटिड अफसर या मैजिस्ट्रेट से प्रमाणपत्र देता है तो उसे ईनाम के तौर पर एक ट्रांजिस्टर रेडियो, पचास निरोध के पैकिट और 250 रुपये दिये जायेंगे.

मुख्य मंत्री : यह तो बहुत अच्छा है. इससे राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़ेगी.

सचिव (प्रेम) : सर, इस भावना को और बढ़ावा देने के लिए यह प्रस्ताव है कि जो व्यक्ति इस प्रकार का प्रेम जितने व्यक्तियों से करेगा, उसी अनुपात में इनाम की राशि भी बढ़ाई जायेगी.

मुख्य मंत्री : बढ़िया सुझाव है. यह कर लीजिए. वैसे आपका नियंत्रण किस प्रकार रहेगा?

सचिव (प्रेम) : सर, बहुत सोच-समझकर इसका तरीका निकाला है. शुरू में आवेदक प्रेमारंभ - घोषणा करेगा. इसकी एक प्रति भेजकर हम दूसरी पार्टी को भेजकर उसकी टिप्पणी मंगायेंगे.

दूसरा मंत्री : बाकी पांच कॉपियों का आपने क्या करना है.

सचिव (प्रेम) : सर, वे तो चाहिए होती हैं. एक मुख्यालय, दूसरी ज़िला कार्यालय, तीसरी रिकार्ड, चौथी अकाउंटस और पांचवीं अनुसंधान-कक्ष के लिए.

मुख्य सचिव : इतनी कॉपीज तो सर, होनी ही चाहिए.

मुख्य मंत्री : ठीक है.

सचिव (प्रेम) : दूसरी पार्टी का स्वीकारात्मक उत्तर आने पर यदि प्रेम नियमानुसार ठीक पाया जाये तो सक्षम अधिकारी उनका अनुमोदन कर देंगे. मगर प्रेम कैसा चल रहा है, कितना है, कोई मिलावट या शिकायत तो नहीं, इस बारे में दोनों पार्टीज जिला प्रेम अधिकारी को मासिक रिपोर्ट भेजेंगी.

मुख्य सचिव : मासिक रिपोर्ट का आइडिया अच्छा है.

अन्य मंत्री : रिपोर्ट अगर त्रैमासिक हो जाए.तो शायद कागजी कार्यवाही कम हो जाएगी.

मुख्य सचिव : जनाब, मासिक रिपोर्ट का अपना ही चार्म है.

मुख्य मंत्री : मासिक ही रहने दीजिए. आगे क्या होगा?

सचिव (प्रेम) : सर, यदि प्रेम ठीक-ठाक चला तो उसके अंत होने पर एक फाइनल रिपोर्ट दोनों पार्टीज दे देंगी.

मुख्य सचिव : उसकी भी छः कॉपीज ले रहे हो ना?

सचिव (प्रेम) : यस, सर.

मुख्य सचिव : वेरी गुड!

सचिव (प्रेम) : फाइनल रिपोर्ट आने पर, सर, हमारी फाइल पूर्ण हो जाएगी. उसे कवर चढ़वाकर, सिलवाकर, पेज नंबर ढलवाकर दाखिल दफ्तर कर दिया जाएगा.

मुख्य मंत्री : लेकिन अगर कोई शिकायत आयी तो?

सचिव (प्रेम) : उस सूरत में हमारे प्रेम इंस्पेक्टर मौके पर जाकर तफ्तीश करेंगे, सही स्थिति का जायजा लेंगे और अपनी रिपोर्ट भेजेंगे.

मुख्य मंत्री : और अगर रिपोर्ट में कोई गड़बड़ी साबित होनी बताई जाए?

सचिव (प्रेम) : तो, सर, अधिनियम की धारा (75) की उपधारा (4) के खंड (क) के उपखंड (1) के दूसरे परंतुक के तहत मुजरिम के खिलाफ कार्यवाही होगी.

आस्था

गिरजे की एक भिक्षुणी बहुत बड़ा अनाथालय खोलना चाहती थी.

उस समय उसके पास सिर्फ तीन रुपये थे, और वह उसी पूंजी से अनाथालय का काम शुरू कर देना चाहती थी.

कुछ लोगों ने उसे सलाह दी, "पहले काफी सारा धन इकट्ठा कर लीजिये, फिर अनाथालय का काम शुरू कीजिये. भला तीन रुपयों से क्या कुछ हो सकेगा?"

भिक्षुणी ने सहज भाव में कहा, "बेशक तीन रुपयों से मैं कुछ नहीं कर सकती, लेकिन ईश्वर और तीन रुपये पास होने पर मेरे लिए कोई काम असंभव नहीं है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य सचिव : क्या कार्यवाही?

सचिव (प्रेम) : प्रेम संबंध तुड़वा दिया जाएगा. मगर ऐसा करने से पहले दोनों पार्टीज को 15 दिन का वक्त देना होगा ताकि वह अपना स्पष्टीकरण दे सकें.

मुख्य मंत्री : भई, सचिव महोदय, वाह. जवाब नहीं है अधिनियम का और आपकी ड्राफ्टिंग एबिलिटी का. कोई चीज भी तो नहीं भूले हैं आप.

अन्य मंत्री : लेकिन, सर, एक बात मैं पूछना चाहता था. अधिनियम में प्रेम की फाइनल रिपोर्ट भी आ गयी और संबंध तोड़ने की बात भी. क्या कोई प्रेम संबंध विवाह में परिणत नहीं होंगे? उसके बारे में विभाग ने क्या प्रावधान रखा है?

सचिव (प्रेम) : सर, यह प्रश्न मुझसे न पूछा जाये. मैं तो केवल प्रेम विभाग का सचिव हूं.

मुख्य सचिव : मैं अभी विवाह विभाग के सचिव को मंत्रिमंडल के सामने प्रस्तुत करता हूं. (घंटी बजती है)

चपड़ासी : यस सर.

मुख्य सचिव : देखो, जरा विवाह सचिव को बुलाओ.

चपड़ासी : बहुत अच्छा, सर.

मुख्य सचिव : वह अभी आ जायेगी सर. अगर इजाजत दें तो मैं अगले आइटम को ले लूं. (सचिव (प्रेम) से) आप जा सकते हैं. आपका बिल अनुमोदित हुआ.

(तीसरा दृश्य)

युवक : मेरा खयाल है हमारी मंजिल आ गयी. वह रहा आफिस का बोर्ड.

युवती : खुश होने से पहले नजदीक जाकर देख लें. दो घंटे से आफिस ढूंढते-ढूंढते मैं तो परेशान हो गयी.

युवक : यही है. यह देखो, मोटे अक्षरों में लिखा है – 'जिला प्रेम अधिकारी कार्यालय'.

युवती : पता नहीं, वह दफ्तर में होंगे या नहीं. दौरे पर न चले गये हों?

युवक : तुम फ्रिक क्यों कर रही हो? अभी सब पता लग जायेगा. (चपड़ासी से) क्यों जनाब, साहब बैठे हैं?

चपड़ासी : पता नहीं.

युवक : पता नहीं क्यों? आप उनके चपड़ासी नहीं हैं?

चपड़ासी : चपड़ासी? और उनका? अरे मिस्टर, अपना रस्ता नापो. मैं क्लास फोर आफिसर हूं. उनके आने-जाने का हिसाब नहीं रखता.

युवक : यह सरकारी दफ्तर नहीं है? आप सरकारी कर्मचारी नहीं हैं? इस तरह से पेश आने का क्या मतलब है? हमें साहब से काम है और इस अंदर जा रहे हैं.

चपड़ासी : वहीं खड़े रहिए. अगर जबरदस्ती की तो बुरा होगा. यह तख्ती नहीं देखते? सरकार ने पब्लिक से मिलने का टाईम मुकर्रर किया हुआ है.

युवती : चार से सवा चार बजे?

चपड़ासी : जी.

युवती : देखो भइया, इनकी बात का बुरा मत मानना. हम दूर से आये हैं. आखिरी बस दो बजे वापिस जाती है. यहां रात ठहरना नहीं चाहते. आपकी मेहरबानी होगी अगर साहब से मिलवा दो.

युवक : यह क्या कर रही हो? इसकी खुशामद करने से मतलब?

युवती : तुम चुप रहो. (धीमे से) काम कराना है या नहीं?

चपड़ासी : बहनजी, इस वक्त साहब किसी से नहीं मिलते, लेकिन आपकी बात सुनकर मुझे लगता है कि आपका केस औरों से भिन्न है. अगर मैं साहब से बात कर लूं तो शायद वे आपको दो मिनट दे सकें.

युवती : बड़ी मेहरबानी होगी.

चपड़ासी : अरे, बहिनजी, क्या जमाना आ गया है? मेरे पिताजी अंग्रेज के वक्त में कलक्टर साहब के अर्दली होते थे. मजाल थी कि कोई खाली हाथ आता. यहां के जमींदार जागीरदार भी आते तो पिताजी को इनाम दे जाते.

युवक : हां, भई, तब हम गुलाम थे. अब हम आजाद हैं. अब इनाम को रिश्वत कहते हैं.

युवती : तुम चुप रहो! क्लास फोर अफसर साहब, आपका नाम क्या है?

चपड़ासी : जरनैल सिंह.

युवती : जरनैल सिंह जी, आप बजा फरमाते हैं. अंग्रेजों को जमाना बहुत बढ़िया था. (नोट की सरसराहट) इस महंगाई के जमाने में चाय-पानी के लिए कुछ...

चपड़ासी : अरे, बहिनजी, यह क्या कर रही है? मैं पैसे को हाथ नहीं लगाता. मैं अपनी ईमानदारी के लिए मशहूर हूं.

युवती : रख लीजिए ना.

चपड़ासी : हाथ नहीं लगाऊंगा. अच्छा, आप जोर करती हैं तो जेब में डाल दीजिए. (नोट की सरसराहट)

आप लोग यहीं रुकिए. मैं साहब से आपकी सिफारिश कर आता हूं. (जाता है)

युवक : तुम्हें इसको रिश्वत देने की क्या जरूरत थी?

युवती : तुम अपने आदर्शों को घर पर रखो. जिंदगी आदर्शों से नहीं चलती.

युवक : क्या मतलब?

युवती : मतलब यह कि अगर चपड़ासी ही आपको घुसने न दे तो क्या कर लोगे?

युवक : तुमने मुझे रोक दिया वरना मैंने उसे धमका लिया होता.

युवती : अरे, जाओ, जाओ. यह इतनी आसानी से नहीं धमकते.

चपड़ासी : चलिए, साहब बुला रहे हैं. बड़ी मुश्किल से माने.

युवती : बहुत मेहरबानी (अंदर जाती है)

युवक : नमस्कार, सर.

अधिकारी : (व्यस्त स्वर में) नमस्कार. अभी जरा बैठिए, मैं कुछ जरूरी काम कर रहा हूं.

युवक : (धीरे से) लगता है अपनी पत्नी को पत्र लिख रहे हैं. बहुत जरूरी काम है.

युवती : (धीरे से) अब चुप भी करो. सुन लेंगे.

युवक : सुन ले. क्या होगा? यह अपने पत्र घर पर नहीं लिख सकता?

युवती : ओफ्फोह! तुम यहां से निकलवाओगे.

अफसर : (घंटी बजाते हैं) जरनैल सिंह!

चपड़ासी : जनाब!

अफसर : यह चिट्ठी अभी पोस्ट कर आओ.

चपड़ासी : अच्छा सर!

अफसर : और सुनो!

चपड़ासी : यस सर.

अफसर : हैडक्लर्क साहब को भेजो.

चपड़ासी : राइट सर.

युवक : सर

अफसर : क्या है?

युवक : सर, हमें प्रेमारंभ घोषणा प्रपत्र का छपा हुआ फार्म चाहिए.

अफसर : तो मैं क्या करूं? आप प्रेम सेवक से क्यों नहीं लेते?

युवक : हमारे क्षेत्र के प्रेम सेवक का पद 6 मास से खाली है, सर.

अफसर : तो क्या हुआ? हम उसे भरने का प्रयत्न कर रहे हैं. दो-तीन महीने में कोई न कोई आ जायेगा.

युवक : तभी हम सीधे यहां आ गये, सर.

अफसर : यह आपने ठीक नहीं किया. अगर हम जिला आफिस से फार्म देने लगे तो फिर हम अपना काम कैसे करेंगे? सारा दिन फार्म नहीं बांटते रहेंगे.

युवक : वह तो ठीक है, सर, मगर इन हालात में...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवती : कुछ कर दीजिए सर. यह स्पेशल केस.

हेडक्लर्क : आपने बुलाया, सर?

अफसर : हां. वह विधानसभा प्रश्न हो गया?

हेडक्लर्क : कौन सा सर?

अफसर : वही भूतपूर्व सैनिकों के आरक्षणवाला.

हेडक्लर्क : सर, मैं वह फाइल लाया हूं. प्रश्न यह है. क्या माननीय प्रेम मंत्री बताने का कष्ट करेंगे कि पिछले 5 वर्षों में कितने भूतपूर्व सैनिकों ने प्रेमारंभ घोषणा प्रपत्र भरे, कितनों को प्रेम करने की अनुमति मिली, कितनों को नहीं मिली. क्या सरकार कुल स्वीकृतियों में भूतपूर्व सैनिकों के लिए कोटा आरक्षित करने का विचार रखती है?

युवक : सर, मेरे पिताजी भूतपूर्व सैनिक हैं.

हेडक्लर्क : आपकी बात नहीं हो रही.

अफसर : इनको एक फार्म चाहिए.

हेडक्लर्क : फार्म तो सर, आउट ऑफ स्टॉक हैं.

अफसर : देखिए, फार्म आउट ऑफ स्टॉक हैं. आप कुछ दिन बाद ट्राई कर लीजिए.

युवक : कब तक आने की उम्मीद है सर?

अफसर : क्यों, हेडक्लर्क साहब?

हेडक्लर्क : सर, मैं क्या कह सकता हूं? प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी डिपार्टमैंट को हमने अपना इनडेंट भेज रखा है. आ ही जायेंगे. कुछ दिनों में.

अफसर : सुन लिया आपने? कुछ दिन बाद आइये.

युवक : मगर ,सर...

अफसर : मगर क्या? आप देखते नहीं कि मैं कितना बिजी हूं. भूतपूर्व सैनिकों के प्रेम का विधान सभा प्रश्न आपने सुन लिया. इसके इलावा पंद्रह और प्रश्न हैं. विधान सभा के सदस्य जानना चाहते हैं कि पिछले पांच वर्षों में कितना प्रेम हुआ. प्रत्येक प्रेमसेवक के क्षेत्र का ब्यौरा मांगते हैं.

हेडक्लर्क : विधानसभा क्षेत्रों की जानकारी भी मांगी है, सर. श्री क्रोधी जानना चाहते हैं कि रूलिंग पार्टी के हल्कों में प्रेम किस प्रतिशत से बढ़ा है और उनके हल्के में विरोधी पक्ष के एम.एल.ए. होने के नाते भेदभाव क्यों किया जा रहा है.

अफसर : कई सदस्य यह पूछ रहे हैं कि गरीबी की रेखा से नीचे कितने परिवारों के बीच प्रेम को बढ़ावा देने के लिए सरकार क्या पग उठा रही है.

युवती : मैं एक हरिजन परिवार से हूं.

हेडक्लर्क : आपकी बात थोडी हो रही है? आपने तो अभी फार्म ही नहीं भरा.

अफसर : माईनोरिटीज कमीशन की एक चालीस पन्ने की प्रश्नसूची मिली है. उनको जिज्ञासा है कि मुसलमानों, सिखों, बौद्धों, जैनियों आदि में प्रेम की क्या व्यवस्था है.

युवक : लेकिन हमारा क्या होगा?

अफसर : लेकिन हमारा क्या होगा?

युवती : लेकिन वह तो अभी है ही नहीं.

हेडक्लर्क : इस पर हमारा नियंत्रण नहीं है. जब आ जायेगा, आपको दे देंगे.

युवक : तब तक हम क्या करें?

अफसर : घर जाकर अपना काम कीजिए.

युवती : क्या यह नहीं हो सकता है कि हम सादा कागज पर आवेदन दे दें?

हेडक्लर्क : सर, आपने सुना?

अफसर : माई गुडनेस, यह आप कैसी बात कर रही हैं. आवेदन छपे फार्म पर होना चाहिए यह तो अधिनियम का प्रावधान है.

हेडक्लर्क : राम, राम, राम. आप हमें सस्पेंड कराना चाहती हैं?

अफसर : आप को नहीं पता कि प्रत्येक छपे हुए फार्म पर अलग-अलग नंबर होता है? यदि ऐसा न हो तो फार्म गुम हो सकते हैं. फार्म को कोई अनधिकृत व्यक्ति बेच सकता है.

युवक : सर, यह तो ठीक है. मगर जब हम दोनों यहां मौजूद है तो फार्म की क्या जरूरत है?

हेडक्लर्क : क्यों जरूरत क्यों नहीं?

अफसर : रिकार्ड कैसे रहेगा?

हेडक्लर्क : प्रश्नों के उत्तर देंगे?

अफसर : आंकड़े कैसे जमा करेंगे?

हेडक्लर्क : सरकार के खजाने में जो फीस जमा होनी है, उसका हिसाब कैसे पूरा होगा?

युवक : मगर, जनाब, मैं आपके सामने खड़ा हू. मैं सौ रुपये फीस लाया हूं. यह वह लड़की है जिससे मैं प्रेम करता हूं. आप हमें इजाजत दे सकते हैं. अगर कुछ पूछना है तो इससे पूछ सकते हैं.

अफसर : आप नासमझ हैं. सरकार का काम ऐसे नहीं चलता.

हेडक्लर्क : आपने प्रेम करना है तो अलग छपे हुए फार्म पर आवेदन देंगे. सौ रुपये हम नहीं ले सकते. वे सरकारी खजाने में जमा होंगे.

अफसर : मैं इन मोहतरमा से सीधी बात नहीं कर सकता. आपके फार्म की एक कॉपी इनके पते पर जायेगी. इनकी लिखित स्वीकृति आयेगी. फिर हम आयु तालिका, आय तालिका और नियमों के प्रावधान देखकर फैसला करेंगें.

युवती : आप मुझसे यहीं लिखित स्वीकृति ले लीजिए.

अफसर : लेकिन मुझे कैसे मालूम है कि आप आप ही हैं.

युवती : क्या मतलब?

अफसर : मैं तो आपको नहीं जानता.

युवती : मगर मैं इनसे प्रेम करती हं.

हेडक्लर्क : प्रेम करती है? यह क्या बात हुई?

अफसर : आपका मतलब शायद यह है कि प्रेम करना चाहती हैं.

युवती : जी नहीं, करती हूं.

युवक : मैं भी इससे प्रेम करता हूं.

हेडक्लर्क : सर, यह अपने जुर्म का इकबाल कर रहे हैं.

अफसर : आपको पता नहीं कि सक्षम अधिकारी की इजाजत के बगैर प्रेम करना कानूनी अपराध है?

युवक : सर, मैं तो सच्चाई बयान कर रहा हूं.

हेडक्लर्क : यह बार-बार वही बात दोहरा रहे हैं. यह तो कानून की ऐलानिया खिलाफवर्जी कर रहे हैं.

अफसर : अब बात बर्दाश्त से बाहर हो गयी है. जरनैल सिंह!

जरनैल सिंह : यस, सर.

अफसर : इधर आओ.

जरनैल सिंह : सर?

अफसर : इन दोनों को दफा 15(3) में गिरफ्तार कर लो.

जरनैल सिंह : जी, बहुत बेहतर.

युवक : सर, हमें गिरफ्तार न करें. हम प्रेम नहीं करेंगे.

युवती : सर, हमसे बड़ी गलती हुई. फिर कभी न होगी.

अफसर : ले जाओ इन्हें.

युवक : सर, हमें पता नहीं था कि प्रेम करना गुनाह है.

युवती : सर, हमें छोड़ दीजिए. हम आपस में शादी कर लेंगे, प्रेम कभी नहीं करेंगे.

अफसर : मैं अपना फैसला नहीं बदल सकता. आप चाहते हैं तो अपील कर लीजिए.

युवक : (दूर होती आवाज) सर, हमें छोड़ दीजिए.

युवती : (दूर होती आवाज) सर, हम कान पकड़ते हैं.

जरनैल सिंह : (दूर होती आवाज) चलिए, चलिए. यहां शोर न मचाइए. साहब बिजी हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिंकन की प्रेमानुभूति

जब लिंकन से उसकी पहली भेंट हुई तो सबसे पहले उसकी सादगी ने उसे छुआ...वह अनजाने में लिंकन के प्रति आकर्षित और समर्पित हो गयी थी. क्यों? यह सोलह वर्ष की उस किशोरी को स्वयं ज्ञात नहीं था...

एक नवयौवना के रूप में स्प्रिंगफील्ड (अमरीका) की मेरी को इस बात का पूरा एहसास था कि वह अत्यंत रूपवती और मोहक है.

अनेक परिचित तथा अपरिचित नवयुवक उस पर फ़िदा थे, जान देते थे. उसकी सुंदरता तथा बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर अनेक प्रतिष्ठित अमरीकी परिवारों के लोग उसे अपने घर में पुत्रवधु के रूप में लोन को लालायित थे. इनमें से अनेक नवयुवकों के प्रति वह भी आकर्षित हुई थी, लेकिन यह आकर्षण अस्थायी था. क्षणिक प्रेम से अधिक नहीं था. कारण जब कभी प्रेम की बात उठती, उसका अवचेतन मन उसे सावधान कर देता कि उसके जीवन में कुछ समय बाद एक ऐसा प्रेम आयेगा, जिसकी शीतल छांह में जाकर वह जीवन के सब सुख-दुख भूल जाया करेगी. मगर उसके चेतन मन को कतई पता न था कि उसके जीवन में ऐसा प्रेम लेकर कौन आयेगा, उसका हुलिया कैसा होगा, वह किस बहाने उसके जीवन में आयेगा, कब आयेगा, आदि आदि. कुछ स्पष्ट नहीं था, लेकिन इस अस्पष्टता के बावजूद, यह प्रत्याशा बड़ी सुस्पष्ट थी कि उसके मन में बंद दरवाजे पर कोई न कोई अपरिचित दस्तक अवश्य देगा और एक बार दस्तक देने के बाद हमेशा हमेशा के लिये उसका अपना और परिचितों से ज्यादा परिचित बन जायेगा.

सोलह वर्ष की मेरी को जब से यह एहसास हुआ था, वह उत्सुक्तापूर्वक और बड़ी आतुरता के साथ उसकी प्रतीक्षा करती रहती थी.

और जब उसका आगमन हुआ तो वह स्तब्ध रह गयी. अरे, ऐसे जीवन-साथी की कल्पना तो नहीं की थी, उसने!

उसका एक चचेरा भाई था—जॉन स्टुअर्ट. हंसमुख. मिलनसार. हमदर्द. और पेशे से वकील. वकालत उसने कुछ समय पूर्व ही शुरू की थी.

एक शाम वह मेरी के घर आया तो उससे बोला, "वह तुम्हारी सहेली के परिवार का मुकद्दमा था न, जो तुमने मुझे दिलवाया था....."

"हां, हां, क्या हुआ उसका?"

"अभी तो वह शुरू भी नहीं हुआ. तुम्हें यह सूचित करने के लिये आया था कि मेरी गैरहाजिरी में उसे मेरा दोस्त देखेगा."

"मगर तुम कहां जा रहे हो?"

"मैं वाशिंगटन जा रहा हूं, कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने के लिये."

"तुम्हारा यह दोस्त.... कौन है? क्या मैंने उसे देखा है?"

"देखोगी कहां से, जब वह अपने को दिखाना ही नहीं चाहता. और सुंदर लड़कियों से तो वह खास तौर पर दूर रहता है. मगर है बड़ा जहीन और भरोसेमंद आदमी. मैंने उसे अपना सहायक वकील बनाया है, मगर मुझे उम्मीद है, वह मुझे जल्दी ही पीछे छोड़ देगा. लेकिन ईमानदार. इसी ईमानदारी की वजह से लोगों ने उसे इतनी कम उम्र में विधायक बनाया. अब वह...."

जॉन के जाने के बाद भी उसके ये शब्द मेरी के कानों में गूंज रहे थे— "हम सब धनी और साधन-संपन लोग जिस पुख्ता जमीन पर खड़े हैं, उससे मीलों नीचे

एक खड्ड से अपनी जिंदगी शुरू करके कर्मठ और ईमानदार लिंकन, अपने श्रम के बल पर हमारे बीच खड़ा हो सका है. मगर, वह एकाकी और उदास बन गया है, क्योंकि वह अपने को अनाकर्षक और कुरूप समझता है, और मानता है कि उसे कभी किसी लड़की का प्यार नसीब नहीं होगा. लड़कियों से दूर भागने का उसका शायद यही कारण है. बड़ी मुश्किल से यहां आने को राजी हुआ है."

इन शब्दों की वजह से, वह अनजाने में लिंकन के प्रति आकर्षित और समर्पित हो गयी थी. क्यों? यह सोलह वर्ष की उस किशोरी को स्वयं ज्ञात नहीं था.

जब लिंकन से उसकी पहली भेंट हुई तो उसकी सादगी ने सबसे पहले सीधे उसके हृदय को छुआ.

दोनों ने साथ-साथ खामोशी में चाय पी और फिर देर तक खामोश ही रहे. इसलिए नहीं कि उनके पास कहने को कुछ न था, बल्कि इसलिए कि अब दोनों के बीच किसी बातचीत की जरूरत ही नहीं रह गयी थी. शब्द इसीलिए अर्थहीन हो गये थे.

विदा लेते समय मेरी ने मुस्कराते हुए अपना दायां हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा, "मुझे आप अच्छे लगे. उम्मीद है, मैं भी आपको बुरी नहीं लगी हूंगी. क्या आपको मेरी दोस्ती कबूल है?"

"आप पहली लड़की हैं, जिसने मुझमें इतनी दिलचस्पी दिखायी है."

मेरी अवाक् रह गयी. लिंकन क्या यह सचमुच कह रहे हैं या वह महज़ कल्पना कर रही है कि उन्होंने अभी-अभी ऐसा कहा है!

क्षण भर के लिए लिंकन की आंखों में आंखें डालते हुए मेरी ने कहा, "मुझे तो यह अनुभूति हो रही है कि... सब अनुभूतियां होनी बंद हो गयी हैं! क्या... क्या... इसी को प्रेमानुभूति का नाम देते हैं कविगण?"

लिंकन के जाने के बाद अपनी सबसे प्यारी और घनिष्ठ सखी एलिजबेथ से मेरी ने कहा, "पता नहीं मुझे क्या हो गया है? सब लोग, सारा परिवेश नया-नया-सा... खिला-खिला-सा लगता है! सब मुझे प्यारे लगने लगे हैं और मैं सबकी प्यारी हो गयी हूं."

"तू किसी से प्रेम करने लगी है, शायद! एलिजबेथ ने हंसते हुए कहा. □

प्रस्तुति : आदित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमावेश

"तो तू स्कूल नहीं जायेगी!" सिनेटर टॉप वेंटन ने अपनी चौदह साल की पुत्री जैसी से पूछा.

"नहीं जाऊंगी, कभी नहीं जाऊंगी, ऐसे स्कूल में जहां की अध्यापिकाएं औरतें नहीं, जल्लाद हैं."

"ठीक है. मैं भी देखता हूं कि तू कब तक अपनी ज़िद पर अड़ी रहती है." कहकर गुस्से में भुनभुनाते हुए सिनेटर बाहर चले गये. एकमात्र पुत्री पर इससे ज्यादा क्रोध वे नहीं कर सकते थे. उधर उनके जाते ही जिद्दी और गुस्सैल जैसी ने कैंची से अपने लंबे बालों को काटकर बहुत छोटा कर लिया और फिर अपने पिता की लाइब्रेरी में आकर बैठ गयी. गुस्से में वह अपने पिता से जरा भी कम न थी.

मगर, यह क्या? लाइब्रेरी में, जहां किसी को नहीं होना चाहिए था, एक तरुण, सेना की वर्दी में, उसके पिता की प्रतीक्षा कर रहा था. मिनटों में ही बातूनी जैसी ने इस शर्मीले तरुण फ्रीमोंत के बारे में सब कुछ जान लिया.

तभी उसके पिता आ गये, और उन्हें देखते ही वह अंदर चली गयी. वह तरुण भी उनसे पांच-सात मिनट बात करके चला गया, मगर जैसी पर न जाने क्या जादू कर गया कि उसके जाते ही वह अपने को काफी बदला महसूस करने लगी.

संयोग ऐसा हुआ कि उसी लाइब्रेरी में दो वर्ष बाद, जब जैसी की आयु सोलह वर्ष थी, उसकी भेंट फ्रीमोंत से तब हुई, जब वह पहले की भांति ही उसके पिता की प्रतीक्षा कर रहा था. इस बार दोनों में बातचीत जरा खुलकर हुई.

"थोड़ा आशिकाना मिजाज है मेरा. जिस कागज पर मुझे नक्शे बनाने चाहिये थे, उस पर मैं एक सुंदर लड़की का चित्र बना रहा था कि शिक्षक ने देख लिया. बस, आउट."

"कौन थी वह लड़की?"

"उसका नाम सेसिला था. हम दोनों एक दूसरे से प्यार करने लगे थे. जब मैं अठारह का था और वह सोलह की. मैं उसकी सुंदर आंखों के अलावा उसकी मोहक हंसी पर फिदा थी. लगे हाथ यह बता दूं कि सेसिला की वजह से ही मैं स्कूल से निकाला गया था."

"उसकी वजह से? जरा विस्तार से बताइये," जैसी का मन ईर्ष्या से उबल रहा था और वह बड़ी मुश्किल से नियंत्रण रखे हुए थी.

"असल में हम दोनों का स्वभाव एक सा था. हम दोनों को पढ़ाई से नहीं नहीं के बराबर और आवारागर्दी करने और गप्पें लड़ाने का बेहद शौक था. चूंकि हम दोनों को समय से घर लौटने की बंदिश थी, इसलिए यह काम हम पढ़ाई के वक्त में ही कर सकते थे, और करते थे. हमारी शिकायत हुई. बतौर सज़ा, मुझे वह स्कूल भी छोड़ना पड़ा और वह शहर भी. सेसिला के पिता नगर के प्रभावशाली व्यक्तियों में से थे. उसे न स्कूल से निकाला गया, न उस शहर से."

"जो प्रेम करे, उसे सज़ा भुगतने को भी तैयार रहना चाहिये. अच्छा, यह बताइये, आपको यह पश्चाताप नहीं होता कि आपने एक मामूली लड़की की ख़ातिर..."

"सेसिला मामूली लड़की नहीं थी..खैर, आगे कहिये."

"... एक मामूली लड़की की ख़ातिर जो आपकी निगाहों में गैर मामूली थी, इतनी बदनामी मोल ली."

एक क्षण, जैसी को गौर से देखने के बाद, फ्रीमोंत ने कहा, "देखिये, प्रेम के प्रति मेरा दृष्टिकोण आम लोगों से अलग है. मेरा मानना है कि प्रेम की ख़ातिर जितनी जोखिम उठायी जायेगी, उतना ही वह रोमांचक... दुखद... और दृढ़ बनेगा. मेरा एक दोस्त है – हैरियट विलियम्स. वह भी ऐसे ही खयालों का है. आप उसकी प्रेम-कहानी सुनना चाहेंगी?"

"अवश्य! मुझे सब प्रेम-कहानियों में दिलचस्पी है."

"हां तो, मेरा यह दोस्त हैरियट विलियम्स एक रूसी लड़की से

विश्वविख्यात अमरीकी उपन्यासकार इर्विंग स्टोन ने अपने उपन्यास 'इममॉरटल वाइफ' की रचना, जिस सत्यकथा को आधार बनाकर की है, वह दर्शाती है कि पति-पत्नी का प्रेम अमर होने के साथ-साथ आवेशपूर्ण और संवेगशील भी हो सकता है.

प्यार करने लगा. लड़की भी उसे प्यार करती थी. दोनों कम-उम्र थे. मेरा दोस्त उन्नीस का और वह रूसी लड़की सत्रह साल की. दोनों को बहुत समझाया-धमकाया गया. समाज से बहिष्कृत कर देने की बात उठायी गयी. जान से मारने की कोशिश की गयी. दोनों के परिवार वालों ने जो करना था, कहना था, सब किया, कुछ छोड़ा नहीं. मगर, वे दोनों अपनी ज़िद पर अड़े रहे और शादी करके ही माने. शादी में सिर्फ मैं ही शरीक हुआ था, दोनों पक्षों की ओर से. कारण, अकेला मैं ही उन दोनों का प्रशंसक था, और आज तक हूं. आज भी मैं उनकी हिम्मत और प्रेम के प्रति वफ़ादारी का क़ायल हूं."

"जैसी का मन सहसा किसी अज्ञात रोमांच से पुलकित हो गया.

"कुछ देर, उधर की बातें करने के बाद, जैसी ने फ्रीमोंत से पूछा, "तुमने अभी तक शादी क्यों नहीं की?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरी शादी शायद कभी नहीं होगी."

"क्यों?" जैसी ने हैरत से पूछा.

"इसलिए नहीं होगी कि मैं अपनी पत्नी के रूप में ऐसी लड़की को चाहता हूं, जो पूरी तरह से मेरे लिये ही जिये, और जिसके लिये मैं पूरी तरह से जिऊं. दोनों हों-एक दूसरे के प्रति पूरी तरह समर्पित. मेरे लेखे यही प्रेम है. वैसे, शादी बिना प्रेम के भी हो सकती है, और होती है, मगर मैं, कम से कम अपने लिये, बिना प्रेम की कल्पना भी नहीं कर सकता. अब ऐसी दीवानी लड़की मुझे शायद ही मिले. और इसीलिए मैं कहता हूं कि मेरी शादी शायद कभी नहीं होगी. और मैं जीवन भर अविवाहित ही रह जाऊंगा.

आपका विवाह तो निश्चय ही किसी धनी और नामी युवक से ही होगा. मैं आपके सुखी भविष्य की कामना करता हूं."

जैसी कुछ क्षणों तक चुप रही. फिर, नपे-तुले शब्दों में दृढ़ निश्चय के साथ बोली, "मैंने यह तय कर लिया है कि मैं किसी ऐसे युवक से विवाह करूंगी, जिसे मैं संपूर्ण तन-मन से प्यार कर सकूं. एक ऐसा युवक, जिसने अपनी महत्वाकांक्षा को पूरी करने के लिये जी तोड़ संघर्ष किया हो और जो मुझे पूरा आदर, प्रेम और विश्वास देकर, एक वफादार जीवन—साथी सिद्ध हो सके."

फ्रीमोंत ने कोई उत्तर नहीं दिया.

फ्रीमोंत के जाने के बाद, जैसी को अपने ऊपर बड़ा गुस्सा आया. कौन है यह फ्रीमोंत, जिसने इतनी जल्दी और अचूक ढंग से मुझे अपने वश में कर लिया है? क्यों उसका ध्यान आते ही मैं अंदर से इतना कमजोर हो जाती हूं? क्यों? क्यों? क्यों?

आने वाले दिनों में फ्रीमोंत का सिनेटर के घर में आना जाना बहुत बढ़ गया, मगर उसकी वजह जैसी न थी, उसके पिता थे, जिन्हें अमरीकी-सरकार ने खोज यात्राओं में उनकी गहरी रुचि होने के कारण सेना द्वारा की जाने वाली खोज-यात्राओं और उसके स्थलाकृति विभाग, जिससे फ्रीमोंत जुड़ा था, के काम पर निगरानी रखने के लिये नियुक्त किया था.

फ्रीमोंत को ज्यादा देखने पर जैसी ने पाया कि उसके और फ्रीमोंत के स्वभाव में अनेक समानताएं हैं. दोनों स्वाभिमानी और नफासत-पसंद हैं. दोनों ही कठिनाइयों से जूझने के लिए सदा तत्पर रहते हैं और अपने प्रिय के प्रति पूर्णतया समर्पणशील हैं.

एक दिन, एकांत में जैसी ने फ्रीमोंत को चिढ़ाते हुए कहा, "सुना है, लड़कियों को पटाने के मामले में आप काफी उस्ताद हैं! क्या यह सही है?"

सकुचाते हुए फ्रीमोंत ने कहा, "देखिये, मिस जैसी! यह सच है कि हसीन लड़कियों तथा नाच-गाने से मुझे बेहद लगाव है. लेकिन मेरा अधिकांश समय बीहड़ स्थलों में जोखिमों और मुश्किलों का सामना करते हुए उनके नक्शे बनाने में बीतता है."

जैसी उसकी दिलेरी और ईमानदार आत्म-स्वीकृति से बहुत प्रभावित हुई. उसे फ्रीमोंत की बातें कविता जैसी लग रही थीं. उसने फ्रीमोंत का हाथ अपने हाथ में ले लिया और पूर्णिमा की चांदनी में नहाये उद्यान में आकर उससे पूछा, "सिसिला की याद आती है, कभी कभी?"

"नहीं. उसने भी कभी मुझे याद नहीं किया. मगर, आप उसके बारे में अचानक मुझसे क्यों पूछ रही हैं?"

"इसलिए कि मैं एक भोली और अनजान लड़की हूं. जो प्रेम के बारे में कुछ नहीं जानती, मगर जानना चाहती हूं."

"आप ग़लत आदमी के पास आ गयी हैं."

जैसी गलबहियां डाले उसके और करीब आकर चलने लगी.

... तभी, उसे अपने पिता की कड़कती आवाज सुनायी दी, "जैसी, अंदर आओ!" उसके पिता अपने एक मित्र के साथ कुछ दूरी पर ही खड़े थे और उनका मुंह गुस्से से लाल हो गया था. उन्होंने फ्रीमोंत से कहा, "रात काफी हो गयी है. अब तुम घर जाओ."

"क्या तुम शर्म और लिहाज दोनों को घोल कर पी गयी हो?" जिस आवेश में उसके पिता बोल रहे थे, वह जैसी के लिये एक नया अनुभव था. उनके रक्तिम, भीषण आक्रोश ने सौम्य चांदनी रात को आतंकमयी बना दिया था.

"मैंने क्या बेशर्मी की है, डैडी?"

"फ्रीमोंत जैसे मामूली लड़के के साथ खुल्लमखुल्ला प्रेम करने की बेशर्मी."

"हां, यह बेशर्मी मैंने अवश्य की है, डैडी, मगर मुझे इसका पश्चाताप नहीं है. मैं उससे विवाह करूंगी."

"फ्रीमोंत आगे से इस घर में कदम भी नहीं रख पायेगा."

"मेरे अपराध की सजा आप इस बेचारे को क्यों दे रहे हैं, डैडी?"

"इसलिए कि उसने चाल चलकर तुम जैसी नादान लड़की को प्रेम-जाल में फांसा है."

"मुझे नादान कहकर आप अपना ही अपमान कर रहे हैं, कारण मुझे आप ही ने प्रशिक्षित किया है."

"इस शादी से कोई लाभ होगा तो वह फ्रीमोंत को ही होगा. तुम्हारे लिये यह सौदा घाटे का सौदा साबित होगा."

"मगर आप ही तो उसे वाशिंगटन का सबसे काबिल युवक मानते थे."

"वह काबिल है. मगर धूर्त है. उसकी निगाह तुम पर नहीं. मेरी दौलत पर है."

"तो आपका खयाल है, डैडी, कि आपकी लड़की इतनी अनाकर्षक और मूर्ख है कि फ्रीमोंत को उससे प्रेम करने के लिए आपकी दौलत और शोहरत का सहारा चाहिये." आग्नेय नेत्रों से जैसी ने कहा. पुत्री का यह उलाहना सुनकर, सिनेटर शांत हो गये, और दबे स्वर में बोले, "माफ करना, डियर! मेरा इरादा तुम्हारी सुंदरता व योग्यता का अनादर करना नहीं था. तुम बुद्धिमती अवश्य हो, लेकिन दुनिया के तौर-तरीकों का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है."

"डैडी, मैं इतनी समझदार तो हूं ही कि जान सकूं कि क्या कर रही हूं."

"फ्रीमोंत ने तुमसे विवाह करने के बारे में कहा था?"

"उसने अपनी ओर से इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहा. उल्टे उसने मेरे मुंह से इस प्रस्ताव के बारे में सुनकर उसका विरोध किया था. मुझे समझाया था कि उसकी और मेरी हैसियत से बहुत फर्क है. प्रेम के बारे में भी उसने मुंह से कुछ नहीं कहा. जो कुछ कहा, दिल की गहराइयों से कहा. मगर, शायद वह साक्ष्य आप जैसे कानूनदां लोगों को स्वीकार्य न हो."

"दोनों काफी देर तक अनन्य और जिद्दी नेत्रों से एक दूसरे को देखते रहे. अंत में, बाप को ही झुकना पड़ा. उन्होंने, कहा, "यदि एक साल बाद भी तुम दोनों एक दूसरे को इसी तरह चाहते रहे तो मैं सहर्ष विवाह की अनुमति दे दूंगा. और फ्रीमोंत एक साल तक सेंट लुई रहेगा. मैं उसका तबादला एक साल के लिये वहां करा दूंगा." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरेंद्र अस्थाना

जन्म : 25 दिसंबर, 1956
आठवें दशक के चर्चित कथा हस्ताक्षर.
संप्रति : मुख्य उपसंपादक ''चौथी दुनिया.''

गुफाएं

चीजें या तो अपना अर्थ खो बैठी थीं या अपने मूल में ही निरर्थक हो गयी थीं. जीप में, ड्राइवर की बगलवाली सीट पर बैठा वह, अपने जीवन में पसर गयी जड़ता की टोह लेने के प्रयत्न में थका जा रहा था और ग्रहणशीलता से लगभग खाली हो चुकी उसकी आंखों के सामने से झरने, पहाड़, वादियां, सीढ़ियों वाले खेत और नेपाली युवतियों के झुंड इस तरह गुजर रहे थे मानो वायस्कोप के जमाने के मुर्दा दृश्यों की ऊब थिर हो गयी हो. जीप नेपाल के एक ऐसे पहाड़ी कस्बे की तरफ बढ़ रही थी, जिसके बारे में उसके दोस्त शिव ने कहा था, 'दिल्ली के जिस नरक में तुम जल रहे हो, उसमें तानसेन तुम्हारे लिए फुहार और ताजगी का काम करेगा.'

फुहार! वह हंसा, तभी ड्राइवर ने जीप को एक झरने के पास रोक दिया, 'साहब! यहां का पानी बड़ा गजब है. फ्रेश हो लें.'

फ्रेश? वह बड़ी जोर से चौंका. यही तो कहा था उसने अपनी पत्नी से, 'बरसों-बरस तक जैसी जिंदगी जीते-जीते मेरे भीतर जीवन का सोता शायद सूख गया है. मैं अब फ्रेश होना चाहता हूं. अगर पंद्रह-बीस रोज के लिए अकेला ही निकल जाऊं?'

यात्रा पर अकेला वह कभी नहीं जाता था फिर भी, पत्नी ने बिना देर लगाये अनुमति दे दी थी. पिछले लंबे समय से वह खुद यह महसूस कर रही थी कि अविनाश सारे काम कुछ इस तरह कर रहा है मानो कोई प्रेत किसी तांत्रिक के इशारे पर बोल-डोल रहा हो. इस प्रेत से लड़तेलड़ते वह खुद प्रेत हुई जा रही थी दफ्तर से लेकर दोस्तों के बीच हुई कहासुनी तक को शब्दशः बयान कर देनेवाला अविनाश अब एक शिला में बदल गया था. उसकी खामोशी और खिंचे-खिंचे रहने के भाव के कारण जो ऊब और मनहूसियत उन दोनों के बीच पसर गयी थी, उसका असर बच्चों की कोमल आत्माओं पर किसी बिजूरवे की तरह उतरने लगा था— बच्चों को बाप से न सिर्फ अलगाता हुआ बल्कि उन्हें बाप की उपस्थिति से आतंकित, उदास और निर्लिप्त करता हुआ. अब अविनाश के, रात को घर लौटने के वक्त का भी इंतजार नहीं करते थे बच्चे. अविनाश भी घर लौट कर बच्चों के बारे में कुछ नहीं पूछता था. बच्चे ही क्यों, वह अब किसी भी चीज के बारे में

''एक ठंडा मगर सख्त आतंक सहसा उसके कलेजे पर असर पर पसर गया...अपने भीतर के अंधकार में बोराये हुए आदमी की तरह हाथ-पांव मारता हुआ. सिरे से ही पराजित लेकिन फिर भी जीवित...'' आखिर वह कौन-सा ताकत है जो इस शख्स की जिलाये जा रही है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नहीं पूछता था. हद तो यह थी कि चिट्ठियों के बारे में पूछ पागल उत्सुकता से भरा रहनेवाला अविनाश अब अपने नाम आये खतों को यूं देखता था मानो वे खत न होकर अखबार के भीतर से निकले किसी कपड़ों, इलेक्ट्रोनिक्स या जूतों की नयी दुकान के इश्तहार हों. कई बार तो वह अपने नाम आयी चिट्ठियों को कई-कई दिन तक बंद ही पड़ा रहने देता था. वह समझ नहीं पा रही थी कि अविनाश के जीवन में कहां, क्यां गलत हो गया है कि तभी अविनाश ने बाहर जाने का प्रस्ताव रखा.

'कहां जाओगे?' उसने पूछा था.

'नेपाल.' अविनाश ने उत्साहित होकर नहीं, एक टूटती हुई उदासी के बीच आंखें झपकाते हुए कहा था, 'बस्ती में शिव है. वह एक जीप और ड्राइवर का इंतजाम करवा देगा.'

शिव ने पूछा था, 'मैं भी साथ चलूं?'

'नहीं.' उसने साफ मना कर दिया था, 'अगर मुझे ड्राईविंग आती, तो ड्राइवर को भी साथ न ले जाता.'

'क्या हो गया है तुम्हें?' शिव सशंकित हो गया था. वह अविनाश की आदतों से परिचित था. वह जानता था कि अविनाश जिस समय टूट रहा होता है, निपट अकेला होता है. बुरा वक्त गुजर जाने के बाद ही दोस्तों को पता चलता था कि अविनाश किसी हादसे की गिरफ्त से छूट कर लौटा है. अपनी यातनाओं में किसी को हिस्सेदार बनाने का अहसास तक अप्रिय था उसे.

'मेरे लिए यह जीवन बेमानी हो गया है. सुना तुमने!' अविनाश हांफते हुए बोला था, 'जीवन रहे या न रहे, मैं दोनों अहसासों से खाली हो गया हूं... और इतना अधिक खालीपन मुझसे झिल नहीं रहा है. मुझे अकेले ही जाने दो, सिर्फ अपने साथ. मैं देखना चाहता हूं कि सिर्फ अपने ही साथ रहा जा सकता है या नहीं.'

'मगर वहां तुम अकेले होगे. उनके तौर-तरीकों से एकदम अपरिचित. अजनबियों के बीच यूं अकेले जाना..'

इस वाक्य पर अविनाश ने यूं देखा कि शिव को अपना आपा एक दम बेगाना-सा लगने लगा. बेगाना और अर्थहीन. इसके बाद वह कुछ नहीं बोला.

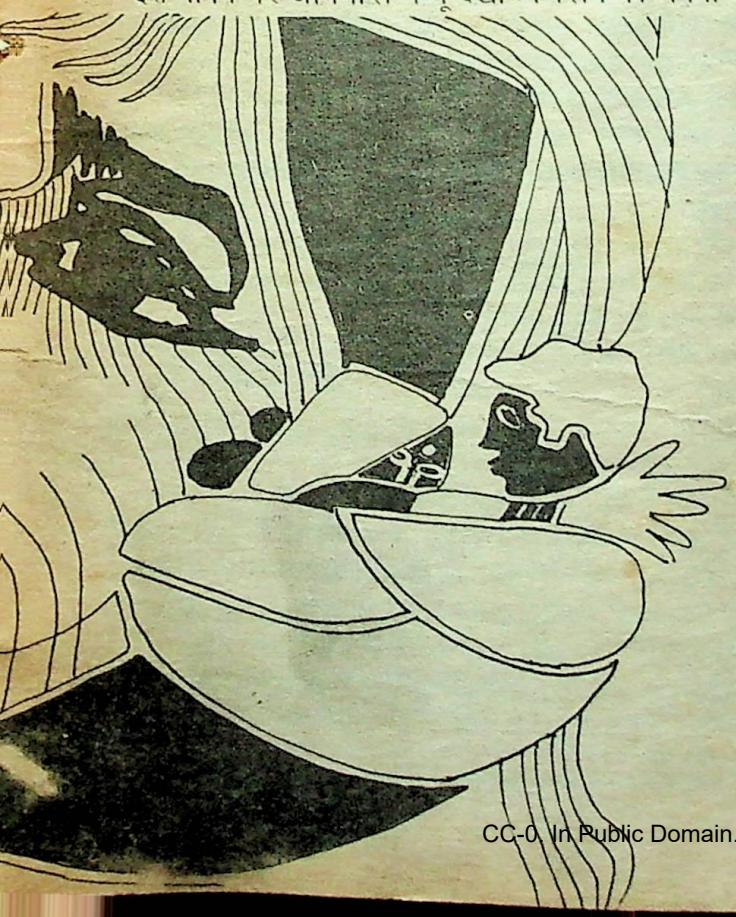

एक ठंडा मगर सख्त आतंक सहसा उसके कलेजे पर पसर गया. पहले तानसेन और फिर पोखरा, और इन दोनों के बीच का सफर, जिसे फुहार बताया था शिव ने, और जिन दो कस्बों के प्राकृतिक वैभव पर अभिमान था नेपाल को— कुछ भी तो नहीं छुपाया था उसे.

जीप के भीतर घुस आये बादल, झील, शराब की बेशुमार दुकानें, यौवन से लदी-फंदी नेपाली युवतियां, झरने, पहाड़, पेड़, सारे संसार से आये विदेशी पर्यटक, खूबसूरत सेल्स गर्ल्स, सुहाना एकांत, अकेली पगडंडियां, लकदक बाजार, कोहरा, रिमझिम बरसात, उद्दाम, छलरहित और उन्मुक्त जीवन चट्टानें, हनीमून मनाने आये जोड़ों का उत्साह, संगीत— कितना कुछ था नेपाल की धरती पर. कितना समृद्ध, कितना अप्रतिम और कितना स्वप्निल.

लेकिन इन सबके बीच वह कहीं नहीं था. इन सबके बीच से, एक अदृश्य और अतृप्त आत्मा की तरह गुजरता हुआ वह फिर तानसेन के होटल सिद्धार्थ के उसी कमरा नंबर तेरह में था, जहां वह आते हुए रूका था— ठीक उसी स्थिति में— टूटा, थका, बेचैन, उदास, जड़ और प्रतिक्रियाहीन. अपने भीतर के अंधकार में, बौराये हुए आदमी की तरह, हाथ-पांव मारता हुआ. सिरे से ही पराजित लेकिन फिर भी जीवित.

क्यों? उसने सोचा और ड्रेसिंग टेबल के सामने आ गया. उसने देखा, वह हांफ रहा था. उसने चाहा कि हाथ में पकड़े शराब के गिलास को आइने पर फोड़ दे. क्यों जीवित है वह? जीवित है भी या सिर्फ जीवित होने के भ्रम को जी रहा है? अपने भीतर यह किस अंधेरी गुफा में उतर गया है वह, जहां कोई छाया, कोई रोशनी, कोई आहट नहीं पहुंच पा रही है. वह कौन-सा शापग्रस्त क्षण था, जब उसके बीचों-बीच धरा गया था वह.

ऐसे ही एक जर्जर, विरक्त और बीहड़ क्षण में, जब दुनिया उसे निराश करने लगी थी, वह अपने भीतर उतर गया था, दबे पांव. उत्सुकता में डूबा हुआ दूर तक निकल गया. लौटने लगा, तो रास्ते खो चुके थे. ठीक उसी तरह, जैसे पोखरा की महेंद्र गुफा में खो गये थे. उस ऊबड़-खाबड़, पथरीली, नुकीली चट्टानों से भरी गुफा में वह तब तक चलता रहा था, जब तक एक ठोस अंधकार ने उसका रास्ता नहीं रोक लिया. वापसी में वह भटक गया और बाहर निकलने के उस रास्ते की तरफ मुड़ गया, जिसके बारे में उसे बताया गया था कि इस रास्ते से सिर्फ दुःसाहसी लोग ही बाहर निकलते हैं— अपने साहस और सामर्थ्य की परीक्षा लेने के लिए.

लेकिन वह अपने साहस की थाह लेने उस रास्ते नहीं गया था. वह तो भटक कर वहां पहुंचा था. ऊंची-नीची, गोल, फिसलनभरी, संकरी और ठोस अंधकार में डूबी कई चट्टानों पर पांव टिकाते उन्हें छलांगते हुए अंत में वह पायदान आता था, जिस पर खड़े होकर एक संकरे रास्ते के जरिये, छलांग लगा कर बाहर निकलना होता था. इस संकरे रास्ते से तीन चट्टान पहले जो चट्टान थी, उसमें और दूसरी चट्टानों के बीच एक गहरी खाई थी— अंधेरे में जड़ तक डूबी हुई. और इसी चट्टान पर वह फंस गया था. इस चट्टान से दूसरी चट्टान पर छलांग लगानी थी और वह भी बिना किसी सहारे के. अंधेरे में उसकी हिम्मत जवाब दे गयी. उसने लौटना चाहा लेकिन यह देख कर लगभग चीख ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पड़ा कि जिस चट्टान पर वह था, [illegible] लेकिन वहां से वापस लौटने के लिए फिर एक अंधेरी छलांग की जरूरत थी और गलत छलांग का अंजाम जिस्म का खाई की अतल और नुकीली गहराई में गिर जाना था.

इतनी खामोश, अकेली और मर्मांतक मौत! वह सिहर उठा था और दोनों तरफ से कटी हुई उस चट्टान पर बैठा रह गया था— एक धूमिल-सी प्रतीक्षा में, कि शायद कोई आये.

और करीब पौने घंटे की व्याकुल और दहशतभरी प्रतीक्षा के बाद लड़कियों का एक दल उधर आया था. उसी रास्ते— अपने साहस को तौलता हुआ. उस दल की मुखिया लड़की ने उसे सबसे पहले देखा. पहले घने अंधकार में, किसी प्रेत की तरह बैठे हुए, फिर टॉर्च की रोशनी में, उसकी बेबसी और कातरता को पढ़ते हुए.

'ऐसे आना चाहिए यहां.' मुखिया लड़की की आवाज अंधेरे में गूंजी. वह एकाएक ढेर-सी खुशी से भर उठा. इस हत्यारी गुफा में अकेला नहीं है वह.

वे नेपाली युवतियां थीं. रस्सी और रोशनी की मदद से उन्होंने उसे चट्टान से नीचे उतारा और बाहर निकलने के सीधे रास्ते तक पहुंचा आयीं.

महेंद्र गुफा की हत्यारी खाइयों से मुक्त करा दिया था उसे, नेपाली युवतियों ने. लेकिन अपने भीतर की जिस हत्यारी गुफा में वह, दोनों तरफ से कटी हुई चट्टान पर बैठा है, वहां से कौन आकर ले जायेगा उसे. मुखिया लड़की का वाक्य फिर उसकी चेतना में कौंध उठा— 'ऐसे आना चाहिए यहां.'

महेंद्र गुफा में पैंतालीस मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी थी उसे लेकिन अपने भीतर की गुफा में कैद हुए तो जमाना गुजर गया है. बाहर, कैसा होगा जीवन, उसने सोचा और रुआंसा हो आया.

शराब चढ़ ही नहीं रही थी. तीन लार्ज पैग पी लेने के बाद भी लग रहा था, मानो बीयर का पहला घूंट भरा हो.

हे ईश्वर! मुक्ति दो मुझे. वह बुदबुदाया. अचानक ही वह बहुत दयनीय हो उठा था. अपनी इस दयनीयता को देख उसे सहसा वे क्षण याद हो आये, जब इस धरती पर अपनी उपस्थिति को वह एक गहरी मोहासक्ति के भाव से महसूस किया करता था. दूसरों को आपस में नफरत करते और एक क्रूर प्रतिहिंसा में डूबते-उतराते देख, अपने एकांत में वह उनके ओछेपन पर खुल कर और खिल कर, एक संत की तरह, उपेक्षा भाव से मुस्कराता था. अपने होने को एक दुर्लभ अहसास की तरह संवारा था उसने. उसे मालूम था कि दूसरे ही नहीं, स्वयं उसकी बीवी भी कई दफा उससे कहती थी, 'इतना दंभ अच्छा नहीं है अविनाश, दूसरों को इतना ठंडा तिरस्कार एक दिन तुम्हें बहुत अकेला कर देगा.'

वह सिर्फ हंसता था और लापरवाही से कहता था, 'मैं दंभी नहीं हूं. लेकिन मुझसे जुड़ने के लिए लोगों को मेरे स्तर तक उठ कर सोचना और महसूस करना होगा. अगर लोग मेरी तरह सहनशील और कल्पनाशील नहीं हो सकते, तो मुझे मेरे साथ तो रहने दे सकते हैं कि नहीं. या कि मैं भी नीचे गिर जाऊं.'

तब वह नहीं जानता था कि बाह्य जगत के शोर, हलचल, घटनाओं और लोगों से दूर रहकर वह जो यात्रा अपने साथ कर रहा है, वह उसे एक ऐसी चट्टान पर ले जा कर खड़ा कर देगी जिस पर सिर्फ वही होगा, लोगों की चिंताओं, सरोकारों और दिलचस्पी से कतई खारिज. वह नहीं जानता था कि एक दिन अकेली चट्टान पर बैठे-बैठे, चुपचाप मर जाने की पीड़ा उसके अस्तित्व को नोचने-खसोटने और चींथने लगेगी, कि चट्टान पर बैठे-बैठे ही मरना होगा उसे.

यही सही. उसने सोचा और एक पैग शराब और पीकर कुर्सी पर पसर गया. तभी उसकी नजर घड़ी पर गयी. अभी सिर्फ शाम के छह बजे थे. कल उसे चले जाना था. वह पंद्रह दिन का कार्यक्रम बना कर आया था और छह दिन के भीतर ही भाग रहा था. यादगार के लिए कुछ खरीदारी कर ली जाये, उसने सोचा और कुर्सी से उठ खड़ा हुआ. मुंह हाथ धोकर और बाल संवार कर वह कमरे से बाहर आया और होटल की सीढ़ियां उतरने लगा. होटल के ठीक सामने पार्किंग स्थल पर, उसकी जीप खड़ी थी. लेकिन ड्राइवर का कहीं पता नहीं था.

पी रहा होगा वह भी. उसने सोचा और बाजार की चढ़ाई चढ़ने लगा. बाजार की सीमा पर स्थित मोतियों की मालाओं और कंगनों की एक छोटी-सी दुकान पर वह ठिठक गया.

वह एक खाली दुकान थी. यानी ग्राहकों से खाली. चेहरे-मोहरे से नेपाली लगते हुए भी, जो लड़की सामान बेच रही थी, उसे लगा, वह नेपाली नहीं है. यानी एक हिंदुस्तानी की दुकान. वह दुकान के करीब आया.

आहट पा कर, जरा भी उत्साहित हुए बिना, लड़की ने उसकी तरफ देखा.

हे भगवान! लड़की की आंखें देख कर वह सिहर उठा. क्या यह भी दोनों तरफ से कटी हुई किसी चट्टान पर बैठी है—एक अनजाने अभिशाप को जीती हुई, किसी बद्दुआ की मुसलसल यातना में जलती हुई.

लड़की अजीब तरीके से सुंदर थी. उसकी आंखें बहुत गहरी थीं लेकिन आंखों से भी अधिक गहरी थी वह उदासीनता, जो उनमें दूर तक पसरी हुई थी. एक नजर में यूं लगता था जैसे आंखों को जीवन से निर्वासित हो जाने का दंड मिला हो. उसके होंठों में रस था लेकिन यौवन की जीवंतता नहीं थी. उसके गाल रक्तिम थे लेकिन कुछ-कुछ निस्तेज भी थे. उसके बाल, उसकी गर्दन, उसकी उंगलियां, उसका ललाट... जैसे किसी स्वप्न का शापग्रस्त टुकड़ा थी वह.

'क्या चाहिए?' लड़की ने कहा.

वह चौंक गया. उसकी आवाज में उत्सुक्ता नहीं, भय था. मानो वह कुछ खरीदने नहीं, लड़की के एकांत-को तहस-नहस करने आया हो.

उसने जवाब नहीं दिया और लड़की को देखता रहा. लड़की कुछ इस तरह खुद को सहेजने-समेटने लगी कि अपना देखना उसे खुद ही नागवार लगने लगा.

'कुछ लेंगे?' लड़की ने फिर पूछा.

'क्या?'

'कुछ भी.' लड़की थोड़ा असहज हो गयी, 'कंगन, माला... मेरे पास बहुत सुंदर सुंदर चीजें हैं.'

'जो चाहे दे दो.' वह मंत्रमुग्ध था जैसे.

'जो चाहूं..!' लड़की बुदबुदायी और दुकान में इधर-उधर देखने लगी. वह कुछ परेशानी-सी हो गयी थी, मानो तय न कर पा रही हो कि क्या दे. आखिर उसने सफेद मोतियों की एक सुंदर-सी माला निकाली, 'यह देखिए.. सिर्फ पैंतालिस रुपये.'

'नेपाली या इंडियन?' वह बाकायदा ग्राहक बन गया.

'इंडियन पैक कर दूं?' लड़की थोड़ा-थोड़ा दुकानदार की मुद्रा में आ रही थी.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम्हें पसंद है न!' उसने अचानक ही पूछा.

'क्या?' लड़की जैसे समझी नहीं.

'हार.'

'मुझे. लड़की चौंक गयी फिर मुस्करा कर बोली, 'मेरी पसंद से उनके लिए हार लेंगे.'

'कौन उनके?' उसने सहजता से पूछा, दरअसल वह बातचीत को देर तक चलने देना चाहता था. और देर तक ही इस दुकान पर बने भी रहना चाहता था.

'अपनी पत्नी के लिए.' लड़की भी सहज थी.

'मैंने अभी विवाह नहीं किया.'

'तो फिर होनेवाली के लिए ले रहे होंगे.'

'होनेवाली भी कोई नहीं है.' वह पूर्ववत सहज था.

'तो फिर इस दुकान पर क्यों आये हैं?' लड़की को असमंजस ने घेर लिया था.

'तमसे बात करने के लिए.' उसने निसंकोच कहा.

'यानी आप यह हार नहीं ले रहे हैं?' लड़की कुछ-कुछ दुखी होने लगी थी.

'ले रहा हूं, अगर यह तुम्हें पसंद है.'

'मेरी पसंद का हार यह है.' लड़की ने एक दूसरा हार दिखाते हुए कहा, 'इसकी चमक कभी फीकी नहीं पड़ती. पर यह एक सौ पचास रुपये का है.'

उसने चुपचाप एक सौ पचास रुपये लड़की को पकड़ा दिये. लड़की के होठों पर मुस्कराहट खेलने लगी. वह हार की बिक्री पर कम, अपनी पसंद के स्वीकार पर ज्यादा प्रसन्न थी. उसकी प्रसन्नता उसके पोर-पोर से छलकने लगी थी.

लड़की को प्रसन्न देख उसे बहुत अच्छा लगा. शब्दों में भरपूर आत्मीयता उंडेलते हुए उसने पूछा, 'तुम नेपाली नहीं लगती!'

लड़की सहसा बुझ गयी और हार पैक करने लगी. धीरे से बोली. 'मैं हिंदुस्तान की ही हूं. लखनऊ से आयी थी यहां.'

'दुकान खोलने?' वह चकित हो गया.

'लड़की जैसे तड़प उठी. उसकी आंखों से आंखें मिलाते ही वह एकाएक दुखी हो गया. उसके प्रश्न से लड़की आहत हो गयी थी.

'मेरा आशय तुम्हें दुख पहुंचाना नहीं था, क्षमा कर देना.' उसने विनम्रता से कहा.

'अरे नहीं.' लड़की ने मुस्कराने की असफल कोशिश करते हुए कहा, 'यह क्या कह रहे हैं आप? यह हार लें.'

'मैं तुम्हारा नाम जान सकता हूं.' उसने हार को जेब में रखते हुए कहा.

'शैंदा.' लड़की की उदासीन आंखों में एक चमक सी कौंधी. शायद एक लंबे अरसे के बाद वह अपना नाम ले रही थी. उसे ऐसा ही लगा.

'खूबसूरत.' वह बुदबुदाया.

'क्या?' लड़की उत्सुक हो गयी.

'नाम.' उसने कहा.

'क्या फर्क पड़ता है.' लड़की ने जैसे अपने आप से कहा और एक नामालूम सी उदासी में डूबने-उतराने लगी.

'चलूं?' उसने लड़की से इस तरह पूछा जैसे अपनी किसी वर्षों पुरानी परिचिता से इजाजत ले रहा हो.

लड़की पहले खिलखिलायी, फिर उसने जिस तरह गर्दन हिलायी उसका अर्थ 'हां' भी था और 'ना' भी. उसने तत्काल तय किया कि वह अभी कुछ दिन और यहीं रहेगा.

अगली शाम वह फिर शैंदा के सामने था. रात को देर तक वह पीता रहा था और शैंदा के बारे में सोचता रहा था. शैंदा के लखनऊ से यहां आने और कंगन की दुकान खोल कर बैठ जाने के पीछे की व्यथा को तो पढ़ लिया था उसने शैंदा की आंखों में, लेकिन कथा से अपरिचित रह जाने की बेचैनी रात भर उसकी चेतना में करवटें लेती रही थी. सुबह वह देर से उठा, तो तैयार होने के बाद, सबसे पहला ख्याल उसे शैंदा के पास जाने का ही आया. पर तभी वह ठिठक गया. उसे लगा, बिना पिये वह शैंदा से इतनी अंतरंगता और अनौपचारिकता से बात नहीं कर सकता, जितनी इस बातचीत के लिए जरूरी है. रात, उसे सहसा ही यह भी लगा था कि जैसे महेंद्र गुफा में उसे बचाने के लिए नेपाली लड़कियों का दल चला आया था, ठीक वैसे ही शैंदा ने भी उसके भीतर की गुफा में प्रवेश किया है, कि हत्यारी गुफा में वह अकेला नहीं है.

दिन में वह बाजार की दूसरी दिशा में निकल गया था और कुछ कैसेट्स, एक चाइनीज बैग और एक जेबी शतरंज खरीद लाया था. लौट कर उसने होटल में ही खाना खाया और फिर सो गया.

और अब वह फिर शैंदा के सामने था.

भय

बिंदु सिन्हा

वह सड़क पर अकेली चली आ रही थी. सिर के ऊपर चिलचिलाती धूप, पांवों के नीचे तपती धरती. उसने अपनी चाल तेज कर दी ताकि गंतव्य तक जल्दी पहुंच जाय. तभी सामने के मकान से दो युवक निकले और उसके आगे आगे चलने लगे. दोनों आपस में खूब जोर-जोर से बोल बतिया रहे थे. बीच बीच में जोरों से हंस भी पड़ते. एक दो बार उन लोगों ने पीछे मुड़कर भी देखा.

वह भय से सिहर पड़ी, 'हे भगवान कहीं इन की नीयत में खोट तो नहीं, दुष्ट लगते हैं तभी बार-बार पलट कर पीछे देखते हैं. उसने अपनी चाल धीमी कर दी ताकि उनके बीच का फासला अधिक हो जाय.

वे दोनों युवक उसी तरह मस्ती में बोलते बतियाते आगे बढ़ते गये. अगले मोड़ पर वे दाईं ओर मुड़ गये तो उसने राहत की सांस ली. चलो किसी तरह पिंड तो छूटा.

सड़क फिर बिल्कुल सुनसान हो गयी. वह फिर डरने लगी क्योंकि अब वह बिल्कुल अकेली थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैदा ने उसे देखा, मुस्करायी और बोली, 'एक मिनट.'

शैदा व्यस्त थी. वह एक लड़की को तरह-तरह के कंगन दिखा रही थी. लड़की को निपटाने के बाद उसने शरारत से कहा, 'अपनी पसंद के कंगन भी दिखाऊं?'

'एक शर्त पर.' उसने संजीदगी से कहा.

'क्या?'

'अच्छा पहले कंगन दिखाओ.'

'शैदा ने मोतियों जड़े कंगन निकाल कर उसे दिखाये और बोली, 'इंडियन करेंसी में बावन रुपये.'

रुपये देने के बाद उसने कुछ देर तक कुछ सोचा फिर आहिस्ता से बोला, 'शैदा! बुरा मत मानना और मेरा जी भी मत दुखाना. ये कंगन और यह हार मैंने तुम्हारे लिए ही खरीदे हैं. इन्हें रख लो, प्लीज.' उसने झटके से वाक्य पूरा किया और जेब में रखा हार शैदा के हाथ में ठूंस कर लंबे-लंबे डग भरता अपने होटल की तरफ बढ़ गया.

'सुनिए.. सुनो!' पीछे से शैदा की पुकार आयी. उस पुकार में चिंता, व्यग्रता, आतुरता, आशंका, खुशी और दुख के भाव गड्डमड्ड हो गये थे.

उसने पीछे मुड़ कर नहीं देखा. शैदा द्वारा कंगन और हार अस्वीकार कर दिये जाने से पैदा हुए अपमान को झेल नहीं सकता था वह.

रात के आठ बज रहे थे, जब उसके कमरे के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी.

'कौन हो सकता है?' उसने विस्मय से सोचा और दरवाजा खोल दिया.

'शैदा!' उसकी चीख निकल गयी.

'यह सच नहीं हो सकता.' उसने सोचा और शैदा के कंधे को छुआ. शैदा ही थी. उसने गले में अपनी पसंद का हार और हाथों में अपनी पसंद के कंगन पहन रखे थे. काले रंग की साड़ी पहने वह एक स्वप्न की तरह थिर थी.

'तुम..यहां.. कैसे?' उसकी जबान लड़खड़ा गयी.

'तानसेन बहुत छोटी जगह है.. मैं भागते आपके पीछे भी आयी थी. इस होटल में चढ़ते देखा, तो लौट गयी. सोचा, दुकान बंद करके आऊंगी.' शैदा एक सांस में सब बता गयी.

'पर बिना नाम के..!' वह अभी तक चकित था. उसे अब तक यकीन नहीं हो रहा था कि शैदा उसके सामने खड़ी है.

'आपका नाम भी बहुत खूबसूरत है.' शैदा मुस्करायी, 'भीतर आने को नहीं कहेंगे.'

'हां.' वह हड़बड़ा गया और दरवाजा छोड़ कर भीतर आ गया.

'मुझ पर, एक अजनबी पर भरोसा हो, तो दरवाजा बंद कर दूं?' उसने पूछा.

'हैं.' शैदा ने बिना किसी दुविधा के जवाब दिया और कुर्सी पर बैठ गयी.

उसने दरवाजा बंद किया और शैदा के सामनेवाली कुर्सी पर बैठते हुए बोला, 'इसे जारी रख सकता हूं.' उसने अपना गिलास दिखाया.

शैदा ने गर्दन हिला दी.

गिलास की शराब खत्म करके उसने शैदा की आंखों में देखा और बोला, 'एक बात बताओगी.'

'पूछिए!' शैदा की आंखों में सहसा एक उदास व्यग्रता उतर आयी.

चट्टान. उसने सोचा. दोनों तरफ से कटी हुई चट्टान.

'तुम कौन हो?'

'आप कौन हैं?' पूछा शैदा ने.

'मैं?' वह लड़खड़ा गया. 'मुझे नहीं मालूम. मुझे कुछ नहीं मालूम कि मैं कौन हूं और क्यों हूं.' उसे लगा, उसे थोड़ी सी शराब की और जरूरत है. वह उठ कर नया पैग बनाने लगा.

'मैं कौन थी, यह तो मालूम है मुझे.' शैदा का स्वर टूटा हुआ था. 'पर अब कौन हूं और क्यों हूं, मैं भी नहीं जानती.'

उसने तड़प कर शैदा को देखा. शैदा की आंखें नम थीं. बहुत आहिस्ता से बोली वह, 'यह निशानी आप मुझे क्यों दे जा रहे हैं? ऐसा क्यों किया आपने?'

'मैं चाहता था, तुम्हें तुम्हारी पसंद की चीज मिले ताकि तुम प्रसन्न हो सको.'

'पर क्यों?'

'मुझे लगा कि तुम जैसी लड़की को जीवन से भागना नहीं चाहिए.'

'जीवन.' शैदा की उदासी घनी हो गयी, 'जीवन कभी किसी का नहीं होता. जीवन हमारे लिए नहीं, हम जीवन के लिए होते हैं.'

'शैदा!' वह भावुक हो गया और गिलास की शराब हलक में उंडेल उसकी तरफ बढ़ा.

'नहीं, विश्वास मत तोड़ो.' शैदा उठ कर खड़ी हो गयी. 'अगर विश्वास टूट जाये तो..'

'तो?' वह ठिठक गया.

'तो हिंदुस्तान से आयी लड़की का तानसेन में कंगन बेच कर जीना पड़ता है.' शैदा सुबकने लगी.

संवेदना के सारे तंतु जैसे एक साथ कराह उठे हों. अस्फुट स्वरों में पूछा उसने, 'यानी तुम्हें छला जा चुका है, तुम्हें भी?'

'नहीं, मुझे किसी ने नहीं छला.' दृढ़ता से कहा शैदा ने, 'अपने बारे में ही सोचती रहती थी मैं. और एक दिन मैंने पाया कि अपने बारे में सोचते-सोचते जीवन से ही बाहर चली गयी मैं. जो साथ चल रहा था, वह जीवन में रह गया और मैं..' शैदा वाक्य पूरा नहीं कर पायी.

यह जवाब नहीं था जैसे, चीत्कार था. लेकिन उसे लगा, किसी तिलिस्म को भेदने के लिए मानो कोई सूत्र वाक्य उच्चारा गया हो. उसे महसूस हुआ कि कमरा छत, दीवारों फर्नीचर और शैदा समेत घूमने लगा है. उसकी आंखों में ढेर सा दर्द उतर आया और दिल डूबने लगा. हाथ पैरों में तेज सनसनाहट भी होने लगी थी, एकाएक.

उसने एक बड़ा पैग बनाया और एक ही सांस में नीट पी कर हांफता हुआ बोला, 'जाओ, इस समय जाओ, प्लीज. मेरा विश्वास मत करो इस समय, वरना मैं सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर दूंगा, तुम्हें भी. जाओ.' वह दहाड़ा और फिर कुर्सी पर गिर कर रोने लगा.

जैसे नन्हें बच्चे को चूमते हैं, उसी तरह, उसकी दोनों बहती हुई आंखों को चूमा शैदा ने और उसे बिस्तर पर लिटा कर बाहर निकल गयी. चुपचाप.

होटल की सीढ़ियां उतरते समय शैदा को लगा, वह खुद भी रो रही है.

किसके लिए? उसने सोचा, तो रुलाई कंठ तोड़ कर बाहर आती सी-लगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्योदोर दास्तोएव्स्की

रुपहली रातें

एक संवेदनशील स्वप्नजीवी युवक के जीवन की रुपहली रातों की भावुक व्यथा-कथा है— 'वाइट नाइट्स'. फ्योदोर दास्तोयेव्स्की के इस बहुप्रसिद्ध उपन्यास का 'सारिका' के लिए विशेष रूप से अनुवाद किया है—वीरेंद्र सिंह ने.

वह रात बहुत सुंदर थी. एक ऐसी रात जिसके सौंदर्य को हम बस अपने यौवन के उषाकाल में ही अनुभव कर पाते हैं. उस रात आकाश इतना स्वच्छ और तारों-भरा था कि आपके मन में अयाचित ही यह प्रश्न उमड़ आता, कि इतने सुंदर आकाश की छाया में इतने विचित्र, सनकी और वाहियात किस्म के लोग आखिर कैसे रह सकते हैं? यह प्रश्न बड़ा युवकोचित है प्यारे पाठक, बड़ा ही युवकोचित, लेकिन ईश्वर करे ऐसे-प्रश्न आपके मन में बार-बार उठा करें. सनकी और वाहियात लोगों की बात करते समय मुझे खुद अपनी उस दिन की दिनचर्चा याद आती है. सुबह से ही मेरे मन में एक खास तरह की उदासी छायी हुई थी. मुझे ऐसा लग रहा था कि मानो हर आदमी मुझे अकेला छोड़ कर भागा जा रहा है, और उपेक्षा कर रहा है. यहां पर यह प्रश्न उठाना बिल्कुल न्यायसंगत होगा कि आखिर हर आदमी से मेरा क्या अभिप्राय है? क्योंकि, यद्यपि में आठ साल से सैंट पीटर्सबर्ग में रहता आ रहा था, लेकिन किसी से भी इतनी दोस्ती न कर सका कि बातचीत करके थोड़ा समय ही काट सकूं. लेकिन मुझे दोस्त बनाने की जरूरत ही कब थी? सच तो यह है कि मैं संपूर्ण नगर को अपना दोस्त मानता था, और इसीलिए, जब अचानक शहर के लोग अपनी सालाना छुट्टियां बिताने के लिए रवाना होने लगे, तो मुझे लगा कि हर कोई मुझे अकेला छोड़कर जा रहा है. अकेले रह जाने की बात ने मुझे डरा दिया, और पूरे तीन दिन तक मैं गहरी निराशा में डूबा हुआ शहर की गलियों

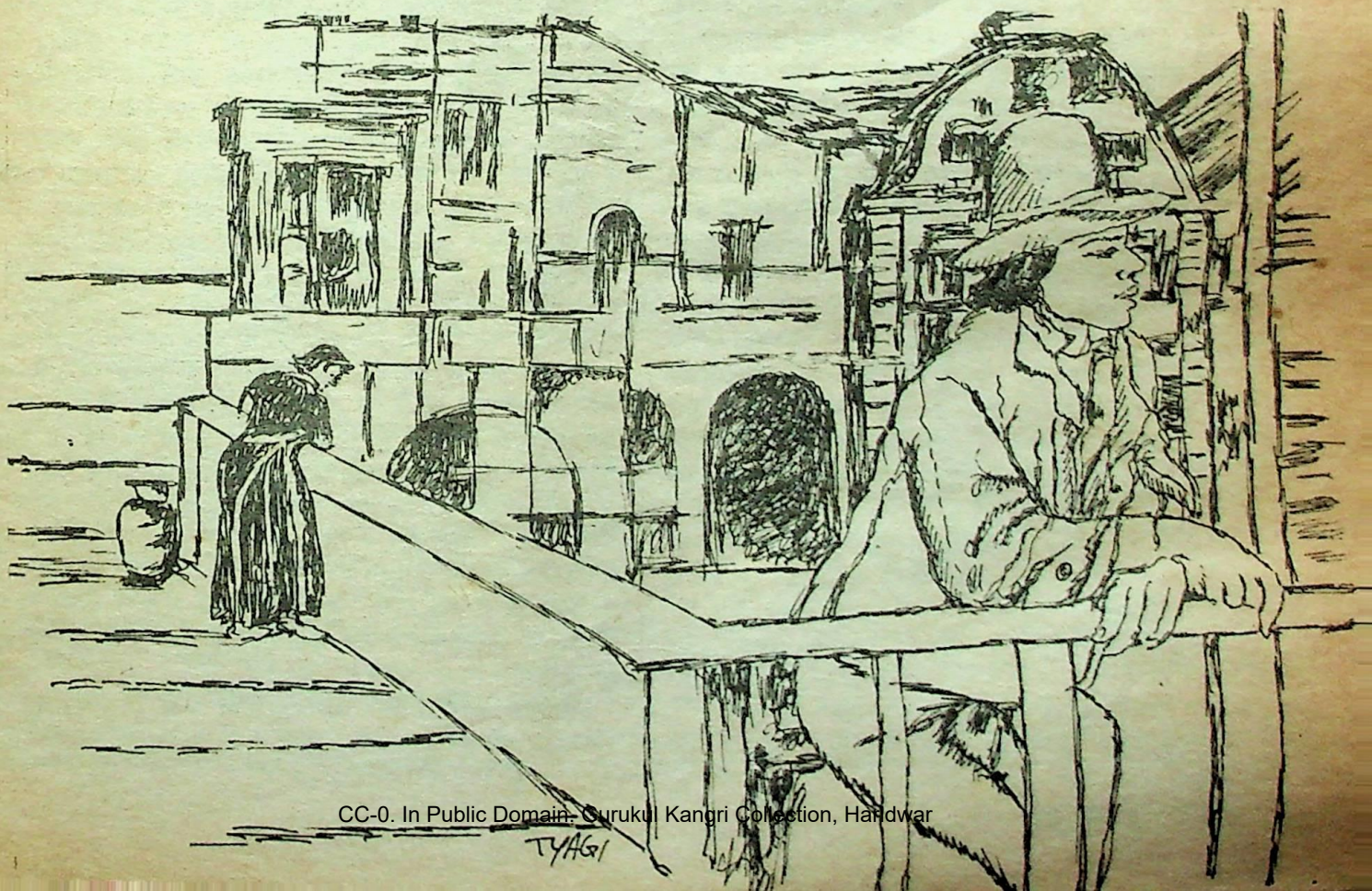

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सड़कों में भटकता रहा, और फिर भी मैं यह न समझ पा रहा था कि आखिर मुझे हो क्या गया है? चाहे मैं नदी के तट पर चहलकदमी करूं या और कहीं, चाहे नेवेस्की ऐवेन्यू हो या पार्क, हर जगह मुझे वे जानी-पहचानी सूरतें नजर आतीं जिन्हें मैं किसी न किसी स्थान पर और किसी खास समय साल भर से देखता आ रहा था. यह बात सही है कि वे लोग मुझे नहीं पहचानते थे, लेकिन मैं तो उनसे परिचित था. मैं बखूबी उन्हें जानता था. उनमें से प्रत्येक के चेहरे का मैंने अध्ययन किया था. उनकी खुशी से मैं आनंदित होता था, और उनके चेहरे पर मुर्दनी देखकर उदास हो जाता था. एक वृद्ध सज्जन को तो मैं अपना मित्र बनाते-बनाते रह गया. ये सज्जन रोज फोंतेंका नदी के किनारे एक निश्चित समय पर मुझसे टकराया करते थे. उनकी मुखमुद्रा सदा गंभीर होती थी और वे कुछ न कुछ सोचते रहते थे. अपने बायें हाथ की उंगलियों को अजीब ढंग से हिलाते हुए वे अपने आप में बातचीत करते रहते थे, और उनके दाहिने हाथ में सुनहरी मूठ वाली गठीली लकड़ी की एक छड़ी रहा करती. उन्होंने भी मुझे लक्ष्य किया था, और मुझमें खासी दिलचस्पी रखने लगे थे. मुझे यकीन है, अगर किसी दिन फोंतेंका तट पर निश्चित समय में दिखाई न देता तो ये जरूर स्वयं को हतोत्साहित अनुभव करते. यही वह बात थी जिसके कारण जब भी हम प्रसन्नचित होते तो परोक्ष रूप से मन ही मन एक दूसरे के कुशल-मंगल पूछ लेते. एक-बार, जब पूरे दो दिन के व्यवधान के बाद हम लोगों की मुलाकात हुई तो वास्तव में हम लोग अभिवादन के लिए अपने-अपने टोप उठाने वाले ही थे कि भाग्यवश हमारी चेतना लौट आयी और हम लोगों ने अपने हाथ गिरा लिये, और परस्पर एक दूसरे के प्रति हृदय में सहानुभूति का भाव लिये आमने-सामने से गुजर गये.

आदमियों की बात तो एक ओर जाने दीजिये, मकानों से भी मैं दोस्ती गांठ लेता हूं. सड़कों से गुजरते हुए मुझे लगता है कि वे मेरे पास दौड़कर चले आये हैं और अपनी सारी खिड़कियों की आंखों से मुझे देखते हुए कहने ही वाले हैं– 'कहिये क्या हालचाल है? मेरा तो हालचाल ठीक है. अगले महीने मेरे ऊपर एक और मंजिल खड़ी होने वाली है!' अथवा यह कि– 'कहिये आप कैसे हैं? मैं तो कल से अपनी मरम्मत कराने जा रहा हूं,' या कि– 'देखिये उस दिन तो मैं जलते-जलते ही बचा, डर के मारे में बदहवास हो गया था!'–और इसी तरह की बहुतेरी बातें. उनमें से कुछ को मैं प्यार करता था और उनसे मेरी गहरी दोस्ती थी. उनमें से एक बार गर्मियों में पुनर्निर्मित होने वाला था. तब मैं रोज आकर उसे आशीष दिया करूंगा और ध्यान रखूंगा कि उसे कोई तकलीफ न हो. लेकिन, मैं यह नहीं भूल सकता कि एक बड़े आकर्षक गुलाबी रंगवाले मकान के साथ क्या गुजरी थी. वह पत्थरों से बना एक सुंदर काटेजनुमा मकान था. जब भी में उसके सामने से गुजरता, वह ऐसी दोस्ताना मुस्कराहट से मेरा स्वागत करता, और अपने बेढंगे पड़ोसियों को ऐसे विद्रूप से देखता कि मेरा दिल बाग-बाग हो जाता. पहले सप्ताह, जब मैं उस सड़क पर से जा रहा था तो सहसा एक करुण पुकार मुझे सुनाई दी, 'देखिये, वे मुझे पीले रंग से पोत रहे हैं.' मैंने अपने मित्र को देखा. दुष्ट, निर्दय, जंगली कहीं के! उन्होंने कुछ भी तो न छोड़ा था, न खंभे, न कार्निश और मेरा मित्र एक कुरूप पीली बिल्ली जैसा बनकर रह गया था. यह देखकर में पीलिया का रोगी होते-होते बचा. और तब से आज तक मेरी हिम्मत न पड़ी कि जाकर अपने उस मासूम दोस्त को देखूं, जिसे उन चांडालों ने महामहिम ईश्वर के मठों जैसे रंग में पोत कर कुरूप बना दिया था.

और अब तो आप जान ही गये होंगे प्रिय पाठक, कि मैंने किस तरह सारे पीटर्सबर्ग से दोस्ती गांठ रखी थी.

मैं पहले ही बता चुका हूं कि मैं उदास था, और बिना उसका कारण ज्ञात हुए, मैं तीन दिन से इस यंत्रणा को झेल रहा था. घर से बाहर निकलते ही मैं दुश्चिंता में पड़ जाता था और घर में बैठकर भी चैन न मिलता. लगातार दो रातों तक मैंने अपने दिमाग को उल्टा-सीधा हर तरह से घुमाया कि आखिर मेरे घर में क्या पैदा हो गयी है? यह क्यों मुझे काटने को दौड़ता है, और इसमें बैठने की इच्छा क्यों नहीं होती? मैंने अपनी चिंताकुल दृष्टि कमरे की धुंधली हरी दीवारों और मकड़जालों से पटी छत पर घुमायी. ये मकड़जाले मेरी नौकरानी मात्र्योना की दया से और भी घने हाते जा रहे थे. मैंने सारे फर्नीचर पर एक खोजपूर्ण दृष्टिपात किया, हर कुर्सी के आगे-पीछे नजर दौड़ायी कि शायद वहीं मेरी परेशानी की जड़ हो, क्योंकि अगर एक भी कुर्सी अपने स्थान से जरा भी खिसकी हुई मुझे मालूम देती है तो मैं बेचैन हो जाता हूं. मैंने खिड़कियों की तरफ भी देखा, लेकिन सब बेकार – मेरे मस्तिष्क को उससे जरा भी शांति न मिली. अचानक एक तरकीब मुझे यह भी सूझी कि मैंने मात्र्योना को बुलाकर मकड़जालों और कमरे की अस्तव्यस्तता के ऊपर कसकर डांट पिलायी, लेकिन उसने एक बार अचंभे से मुझे सिर पैर तक देखा, और बिना एक शब्द कहे चुपचाप कमरे से बाहर चली गयी और नतीजा यह कि वे मकड़जाले आज तक जैसे के तैसे अपनी जगह पर बदस्तूर थे. अंत में आज सुबह मेरी समझ में आया कि माजरा क्या है! दरअसल, बात यह थी कि लोग मुझसे पीछा छुड़ाकर छुट्टियां मनाने देहातों की ओर भाग रहे थे. मैं इस बेहूदे शब्द-प्रयोग के लिए क्षमा चाहता हूं, लेकिन मैं उस समय इससे बेहतर शब्द का चुनाव करने की हालत में न था – क्योंकि सैंट पीटर्सबर्ग का हर निवासी या तो गावों की ओर जा रहा था, या जाने की तैयारी में लगा हुआ था. क्योंकि सम्भ्रांत-कुल और किसी भी सज्जन व्यक्ति को अगर मैं घोड़ा-गाड़ी तय करते हुए देखता, तो तत्काल यह विचार मेरे मन में कौंध जाता कि यह सद्गृहस्थ अपने दैनिक कार्यों से निपटकर, अब गांव जाकर अपने परिवार से मिलने की हड़बड़ी में है. हर राहगीर के चेहरे पर अब एक विशेष भाव झलकने लगा था जो अपने पास से निलकने वाले व्यक्ति से यह कहता हुआ मालूम पड़ता– 'बस जनाब, मैं घर का रास्ता ही काट रहा हूं, और चंद घंटों में हम लोग शहर से रवाना होने वाले हैं.' अगर किसी खिड़की का पल्ला खुलते हुए में देखता, और पहले गोरी-गोरी पतली-सी उंगलियां उसके कांच को थपथपातीं और फिर एक लड़की अपना सिर निकालकर गुलदस्ते वाले को आवाज देती – तो तुरंत वहीं मैं कल्पना कर लेता कि इन गुलदस्तों को खरीदने का मतलब सिर्फ इतना ही नहीं है कि ये लोग शहर के दमघोंटू मकानों में फूल सजाकर बसंत-ऋतु का आनंद लेना चाहत हैं, बल्कि सचाई तो यह है कि वे जल्द ही गांव जाने वाले हैं और वहां ले जाने के लिए ही इन गुलदस्तों की खरीददारी हो रही है. अपनी इस विशिष्ट और मौलिक खोज में मैंने इस सीमा तक प्रगति कर ली थी कि अब मैं केवल सूरत देखकर ही बिलाचूक यह बता सकता था कि किस व्यक्ति का ग्रीष्म निवास किस स्थान पर है.

जो लोग कामेनी और आप्तेकार्स्की द्वीपों से आये थे, या पीटरहोफ की तरफ के रहने वाले थे वे अपने शिष्ट व्यवहार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैशनेबुल कपड़ों और शानदार गाड़ियों में अजनबी ही दिखायी देते थे. जो लोग पार्वीलोवी और अन्य सुदूर ग्रामांचलों से आये थे, उनकी चतुराई और विश्वासी स्वभाव में तत्काल ही प्रभावित कर लेने की क्षमता थी. क्रेस्तोव्स्की द्वीप से आये हुए प्रवासियों के चेहरों पर सदा सौम्यता और प्रसन्नता खेलती रहती.

कभी मैं घोड़ागाड़ियों के एक लंबे जुलूस को देखता, जिसके बगल में गाड़ीवान लोग आराम से लगामें थामे हुए चलते रहते, और गाड़ियों पर मेज-कुर्सियां, तुर्कीकालीन, तख्त और घरगृहस्थी का तमाम सामान ऊपर तक लदा-फंदा होता. सामान के ऊपर चुहिया की शक्लवाली एक रसोईदारिन बड़ी सतर्कता से अपने मालिक के सामान की रखवाली करती नजर आती. या कभी फर्नीचर और दूसरे घरेलू सामानों से लदी किसी नाव को मैं नेवा या फोंतेंका के वक्षस्थल पर चोर्नाया नदी या दूरस्थ द्वीपों की ओर जाते हुए देखता. ऐसी हालत में ये नावें और गाड़ियां मुझे दस से लेकर सौ गुनी अधिक मालूम होतीं. मुझे लग रहा था कि प्रत्येक वस्तु गतिमान होकर निकल आयी है और इन काफिलों में शामिल होकर देहातों की ओर जा रही है. सहसा यह अशंका मेरे दिल में घर कर गयी कि बस पूरा पीटर्सबर्ग निर्जन हो जाने का संकट मंडरा रहा है. और तब मैं और भी पीड़ित लज्जित और उदास हो गया, क्योंकि न तो देहातों में मेरे रहने का कोई ठिकाना था ओर न ही ऐसा कोई कारण उपस्थित हुआ था कि मैं गांव जाने की बात सोचूं. वैसे मैं हर गाड़ी के साथ चलने को तैयार था, और हर सम्मानित दिखायी पड़ने वाले सज्जन के निमंत्रण पर मैं उसके साथ हो लेता, पर किसी ने मुझे अपने साथ चलने को आमंत्रित नहीं किया, जैसे कि ये लोग मुझे भूल गये हैं, या वास्तव में उनके लिए मैं अजनबी हूं.

ऊंचे कद का दोस्त

गुरमेल सिविया

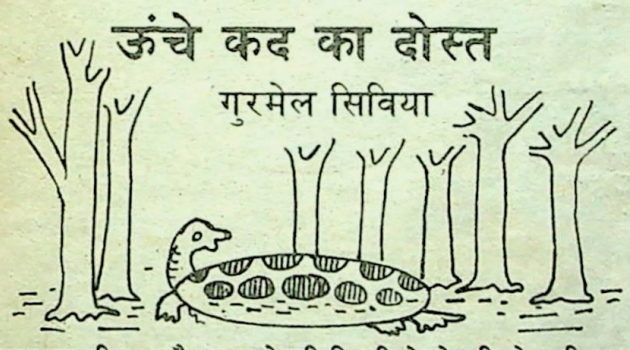

एक गीदड़ और कछुये की किसी से दोस्ती हो गयी. तब वे दोनों जहां भी जाते, खूब बढ़-चढ़ कर बातें करते कि वे इतने बड़े जानवर के दोस्त हैं.

एक दिन दोनों ऊंट से मिले, तो बहुत प्यार-भरी बातें करने लगे. पर ऊंट था कि उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था. आखिर एक मौके पर गीदड़ उसकी गर्दन पर चढ़ बैठा और प्यार जताने लगा. कछुआ भी ऊंट की पूंछ को पकड़कर चूमने लगा. ऊंट यह सब सहन न कर पाया कि तलखी में उठकर खड़ा हो गया. तब गीदड़ उसकी गर्दन के साथ लटककर गया, और कछुआ उसकी पूंछ के साथ. दोनों घबराये हुए थे. आखिर कछुये ने गीदड़ से कहा, "अरे भाई, कुछ करो... बचाओ मुझे!"

"क्या करूं?" गीदड़ ने कहा. "कोई पांव भी तो लगने दे."

□

चलते चलते मैं अपनी उधेड़-बुन में इतना मगन था और इतनी दूर निकल आया था कि मैं दिशा-ज्ञान ही भूल गया, जो कि हमेशा मेरे साथ होता था. अचानक जब मैं सचेत हुआ तो मैंने पाया कि मैं शहर के बाहरी फाटक पर आ गया हूं. उसी समय मेरा मन खिल उठा, और मैं परकोटा पार करके गोड़े हुए खेतों और हरी-हरी घास के चरागाहों में से होकर चलने लगा. मेरी थकान यकायक गायब हो गयी, और रोम-रोम को यह अनुभव होने लगा कि मेरे दिल पर रखा हुआ कोई भारी बोझ उठता जा रहा है. जितने भी लोग मेरे पास से निकले उन्होंने बड़ी आत्मीयता से मेरी ओर देखा, और मेरा कुशल-मंगल पूछा. ये सभी लोग जाने किस बात पर बड़े प्रसन्न दिखायी पड़े रहे थे. उनमें से हरेक के मुंह में सिगार दबा हुआ था. और मुझे भी इतनी खुशी महसूस हुई जितनी आज तक कभी न हुई थी. ऐसा लग रहा था कि मैं अचानक ही अपने सपनों के सुंदर-मनोहर देश इटली में पहुंच गया हूं. मुझे जैसा अर्ध-रोगी आदमी इस प्राकृतिक सुषमा से इतना प्रभावित हुआ कि मुझे महसूस हुआ कि परकोटे से घिरा हुआ वह शहर मेरा दम घोटे दे रहा था.

सतागमन के समय जब सहसा प्रकृति अपनी सारी नैसर्गिक सुषमा में झूमती हुई दिखायी देती है तो सैंट पीटर्सबर्ग के आसपास के ग्रामांचल में एक वर्णनातीत सम्मोहन छा जाता है जो हृदय को बांध लेता है.जब यहां की धरती पल्लव और पुष्पों से जुड़ी हुई अपनी चमकीली धानी चुनरिया ओढ़ लेती है – तो जाने क्यों मुझे लगता है जैसे वह एक मुर्झायी हुई, उदास और गुमसुम नवयुवती की तरह है, जिसे देखते ही अनायास आपकी करुणा उसके प्रति उमड़ आती है, जो, दूसरों के प्रति एक सयंमित प्रेमभाव तो रखती है लेकिन फिर भी किसी की परवाह नहीं करती. बिल्कुल अप्रत्याशित और अवर्णनीय – और तभी आपके मन में यह प्रश्न उमड़ा करता है. हतप्रभ और सम्मोहित होकर आप अपने मन में कहते हैं – 'आखिर किस दैवी शक्ति ने इसके उदास और झुके-झुके नयनों को प्रदीप्त कर दिया? इन पीले मुर्झाये कपोलों को किसने गुलाब की डाली से छू दिया? कौन है वह, जिसने इन सुकोमल अंग-प्रत्यंगों में मादकता भर दी है? क्यों उसके वक्षोज रह-रह कर धड़क उठते हैं? क्या है वह, जिसने इस उपेक्षिता युवती में यह आकर्षण, सौंदर्य और जीवन फूंक दिया है कि वह एक मुस्कान में इस तरह से खिल-खिल उठती है और उसका मृदुहास विद्युत प्रकाश की छटा बिखर देता है? आप अपने आस-पास देखते हैं, आप इस परिवर्तन का कारण जानने का प्रयास करते हैं और तब धीरे-धीरे सब-कुछ आपकी समझ में आने लगता है... लेकिन तब तक वह क्षण जा चुका होता है, और कल शायद आप उसे देखें तो पुनः वही मुर्झायी हुई उदास दृष्टि, वही निरुत्साह और हताशा उसके व्यवहार में आपको दिखायी पड़े. और हो सकता है कोई पश्चाताप, या किसी मरणोन्मुखी निराशा और व्यथा की झलक आप देख पायें, जो स्फुरण के उस एक क्षण की विस्मृति से जन्मी है... और तब आप सुंदरता के उस क्षणभंगुर फूल के लिए करुणा-विगलित हो पड़ेंगे कि वह इतने शीघ्र ही, एक अटल नियति के चक्रवात में पड़कर झर गया, कि उसके प्रकाश की कौंध इतनी छलनामयी और निष्फल थी. तब आप संतप्त हो उठेंगे – पछतायेंगे कि उसे प्यार कर सकने का समय भी हमें न मिल सका.

लेकिन आप जो कुछ भी कहें, मेरी वह रात, दिन की अपेक्षा कहीं अधिक फलीभूत हुई. यह सब इस प्रकार हुआ :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मैं वापस शहर में लौटा तो [illegible] और जब मैं अपने घर से थोड़ी दूर था तो घंटाघर की घड़ी ने दस बजाया. मेरा रास्ता नहर के किनारे-किनारे होकर था जहां इतनी रात गये किसी मनुष्य के मिलने की संभावना नहीं के बराबर रहती थी. यह शतप्रतिशत सही है कि मैं शहर के सबसे दूर बसे हुए मुहल्ले में रहता था. हां, तो चलते-चलते में गीत गाने लगा, क्योंकि जब मैं आनंदित होता हूं तो को-न-कोई धुन गुनगुनाने लगता हूं और ऐसा हर्षातिरेक में डूबा हुआ प्रत्येक ऐसा व्यक्ति करता है जिसकी प्रसन्नता में भाग लेने को न तो कोई मित्र होता है और न कोई परिचित. और तभी, अचानक एक अप्रत्याशित घटना मेरे साथ घटी.

मुंझे कुछ ही दूर, रेलिंग से सटी हुई एक नारी – आकृति खड़ी थी. मैंने देखा कि वह रेलिंग के ऊपर झुकी हुई बड़े ध्यान से जलप्रवाह को देख रही थी. वह एक सुंदर पीली टोपी और काला आकर्षक साया पहने हुए थी. 'यह तो कोई युवा लड़की जान पड़ती है, और निश्चय ही उसके बाल घने, लंबे और भैरों जैसे काले हैं,' मैंने सोचा. स्पष्ट था कि उसने मेरी पगध्वनि नहीं सुनी, क्योंकि जब मैं तेजी से धड़कते हुए दिल और रुकी सांस लेकर उसके पीछे से गुजरा तो वह अविचलित रही. 'यह तो गड़बड़ बात है,' मैंने सोचा, 'जरूर वह किसी गहरी चिंता में मग्न है.' और सहसा मैं बर्फ की तरह जमकर रह गया. मुझे कहीं से दबी हुई सिसकियों की आवाज आती हुई जान पड़ी.बेशक, मेरा अनुमान सही था. वह लड़की रो रही थी. रह-रह कर उसी सिसकियां फूट पड़तीं. हे भगवान! मेरा दिल बैठ गया. मैं स्त्रियों से वैसे बहुत लजाता था, लेकिन ऐसा मौका तो आज तक भी मेरे सामने नहीं आया... मैं घूम पड़ा, उसकी ओ एक पग उठाया, और कहने ही वाला था, 'मादाम!' कि मुझे याद आया कि कुलीन वर्ग से संबंधित सभी रूसी उपन्यासों में यह संबोधन पहले ही हजारों बार दोहराया जा चुका है. यह सोचकर मैं ठिठक गया. लेकिन वार्तालाप शुरू करने के लिए उपयुक्त शब्द की खोज कर ही रहा था, तभी लड़की ने रोना बंद कर दि[illegible] अपने को संभाल कर आस-पास देखा, और चुपचाप आ[illegible] मरे पीछे से निकलकर नहर के किनारे वाली सड़क पर [illegible]. मैं तुरंत उसके पीछे लग लिया, परंतु जैसे ही उसने [illegible] आहट सुनी, वह सड़क के उस पार वाली पटरी पर पहुंच गयी और इधर मैं इस पार वाली पटरी पर चलने लगा. सड़क पार करने का साहस मुझ में था नहीं. मेरा हृदय पिंजरे में बंद पंछी की तरह तड़प उठा... और तभी एक सुनहरे अवसर ने मुझे इस अनुताप से बचा लिया.

एकाएक मैंने सायंकालीन वेशभूषा में सुसज्जित एक पुरुष को उस युवती के निकट पहुंचते देखा. यह व्यक्ति उम्र और कपड़ों से तो शालीन और सज्जन मालूम देता था लेकिन चाल-ढाल से कुछ और. वह दीवार के किनारे-किनारे लड़की के साथ-साथ चलने लगा. लड़की ने उसे पास मंडराते देखा तो एकदम तीर की तरह भागी – जैसा कि रात के समय यदि कोई युवक घर तक पहुंचा देने का प्रस्ताव करे, तो स्वीकार न करने वाली संभ्रांत लड़कियां करती हैं. वास्तव में मेरे भाग्य ने अगर उस सज्जन पुरुष को शीध्र ही अधिक प्रभावशाली तरीका अपनाने को प्रेरित न किया होता, तो वह उस तक उम्र भर न पहुंच पाता. उस सद्पुरुष ने, बिना एक शब्द बोले यकायक एक उड़ान भरी और लड़की पर झपटा. लड़की पवन वेग से भाग रही थी लेकिन वह भी उसके पास पहुंचता जा रहा था. दोनों के बीच अब फासला काफी कम रह

गया था, और तभी उसने लड़की को जा पकड़ा. उसने चीख मारी – और मेरे नक्षत्रों को धन्यवाद कि उस समय मेरे दाहिने हाथ में अच्छा-खासा बेंत था जिसे मैं घूमते समय साथ रखता था. एक पल में मैं सड़क के उस पार था. दूसरे ही पल, सद्पुरुष ने जब यह महसूस किया कि अगला दृश्य कैसा होगा, तो तत्काल बेंत के अकाट्य तर्क के आगे अनी पराजय स्वीकार कर चुपचाप पीछे भाग खड़ा हुआ और जब हम लोग काफी आगे निकल आये, तो उसने बड़े जोर-शोर से गालियां देते हुए मुझे ललकारा. परंतु उसका एक भी शब्द हमारी समझ में न आया.

'लाइये, मैं आपका हाथ थाम लूं,' मैंने लड़की से कहा, 'अब वह सद्पुरुष कभी हमसे बात करने की हिम्मत न करेगा.

उत्तेजना और भय से कंपित अपना कोमल हाथ उसने मेरे हाथ में दे दिया. ओह, मेरे अजनबी उपकारक! मैं उसी क्षण उस सम्रांत पुरुष को धन्यवाद दिया!... मैंने एक तिरछी नजर में तरुणी को देखा, वह बड़ी प्यारी लड़की थी और उसके बाल भौरों जैसे काले थे – आखिर मेरा अनुमान ठीक ही निकला न! उसकी कजरारी पलकें हाल ही की दुर्घटना के भय से छलक आये आंसुओं से भीगी हुई थीं, या हो सकता है इसका कारण वह पहले वाला दुख ही रहा हो-मुझे मालूम नहीं. एक गुलाबी मुस्कान उसके होंठों पर झलकने लगी थी. चोरी से उसने मेरी तरफ देखा, फिर थोड़ा लजाकर आंखें झुका लीं.

अगले अंक में जारी...

... और कैसी रही वह दूसरी मुलाकात? क्या वे दोनों मतलब की बात पर आ सके... यानी दूसरी बात...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसक

जेम्स जॉयस

"इतनी देर क्यों लगा दी?" जूलिया ने गैब्रियल से पूछा. हम तो कब से तेरी और ग्रेटा की प्रतीक्षा कर रहे थे."

"इस ग्रेटा की वजह से देर हो गयी." गैब्रियल ने कहा.

"ग्रेटा की वजह से? वह कैसे?"

"अरे, मौसी, क्या बताऊं? यह ग्रेटा है न, दीवानी तो है ही. आप खुद देख रही हैं, बाहर कितनी ठंड पड़ रही है. रास्ते में इसने ज़िद पकड़ ली कि वह थोड़ी दूर गाड़ी से उतरकर नंगे बर्फ पर चलेगी. बस, इसी वजह से देर हो गयी और इतना ही नहीं, इस वजह से उसे सर्दी भी हो गयी है. देखिये,ये कांपे ही जा रही है."

जूलिया मौसी ने ग्रेटा के नंगे पांवों पर निगाह डाली और थोड़े गंभीर स्वर में पूछा, "मुझे तुम जैसी समझदार बेटी से यह उम्मीद न थी, ग्रेटा! गैब्रियल ठीक कह रहा है. तुम तो वाक़ई कांप रही हो!"

"आप सीधी हैं न, मौसी, इसीलिए यह आपको आसानी से बना लेते हैं. बर्फ पर नंगे पांव मैं नहीं, खुद ये चले थे."

"मगर कांप तो तुम रही हो!"

"मैं ठंड के कारण नहीं, हर्ष से कांप रही हूं, मौसी! आप तो जानती हैं कि आपके वार्षिक नृत्य-समारोह में भाग लेना मुझे कितना भाता है."

पिछले तीस वर्षों से मोरवन परिवार, बिला नागा, अपना वार्षिक नृत्य-समारोह बड़ी धूमधाम से मानता चला रहा है. केटी और जूलिया ही कब रह गयी हैं, इस परिवार में, लेकिन अपने दिवंगत भाई पैट की याद में वे इस समारोह को बड़े चाव से मनाती हैं. इस बहाने उन्हें तथा पेट की, जिसे नृत्य व संगीत में गहरी रुचि थी, याद भी आ जाती है.

दोनों बहनें गैब्रियल से, तब से परिचित थी, जब वह बहुत छोटा था, और पेट के साथ खेला करता था. दोनों ही अपनी मृत बहन रैला के एकमात्र पुत्र गैब्रियल को बहुत चाहती थीं, और गैब्रियल भी उन्हें बहुत मान देता था. जब आता, दोनों के लिये कोई न कोई क़ीमती उपहार लेकर आता. इस बार भी वह दोनों के लिये खुशनुमा और क़ीमती उपहार लाया था, जिन्हें पाकर वे बहुत प्रसन्न हुई थीं, क्योंकि मेहमान समारोह में भाग तो लेते, लेकिन उनके लिये उपहार कोई न लाता.

गैब्रियल और ग्रेटा ने कपड़े बदले ही थे कि हॉल में कई जोड़ों ने नाचना शुरू कर दिया.गैब्रियल ने कुमारी आयवर्स को अपने साथ नाचने के लिए पटाया. इसकी एक वजह यह भी थी कि आयवर्स उसकी भांति ही साहित्य की प्राध्यापिका थी.

दोनों नाचते भी जा रहे थे, और कॉलेज की राजनीति का ज़िक्र भी करते जा रहे थे. गैब्रियल ने इस चर्चा में बड़े जोश के साथ भाग लिया, मगर जब उसने देखा कि अनेकानेक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त आयवर्स झूठ बोले जा रही है, जो वह उसे छोड़कर दूसरे पार्टनर की तलाश करने लगा.

तभी उसने अपनी पत्नी को अपने पास आते देखा. उसने पूछा, "क्या तुम मेरे साथ नाचने को तैयार हो?"

"ना बाबा, यूं ही तुम मुझे हमेशा नाचते रहते हो. और इस वक्त तुम मालूम नहीं क्यों लड़ने के मूड में भी हो. जबकि मैं अभी हंसने-खेलने की मूड में हूं."

"किसने कहा, मैं लड़ने के मूड में हूं?"

"आयवर्स ने. वह सबके सामने कह रही थी. खैर, तुम अब नाचना छोड़ो और रसोईघर में चले जाओ, जहां तुम्हारी दोनों मौसियां तुम्हारा इंतजार कर रही हैं."

"करने दो थोड़ी देर इंतजार उन्हें," गैब्रियल ने ग्रेटा को अपनी ओर खींचते हुए कहा, "इस वक्त तो तुम्हारे साथ नाचने को मन कर रहा है."

पति जैसे ही सबके सामने उसकी ओर चाहभरी निगाहें तब डालता है कि ग्रेटा को फ़ौरन गुस्सा आ जाता है, और यह गुस्सा तक शांत नहीं होता, जब तक वह सबके सामने उन्हें ज़लील नहीं कर लेती.

जेम्स जॉयस ने जीवन भर निपट निर्धनता व अंधता के विरुद्ध संघर्ष करते हुए भी अंग्रेजी कथा-साहित्य को अपनी अमर कथाकृतियों से समृद्ध किया. उनकी यह कहानी अधकचरे किशोर-प्रेम की रूमानी संवेदना तथा कसकभरी निराशा से स्पंदित है.

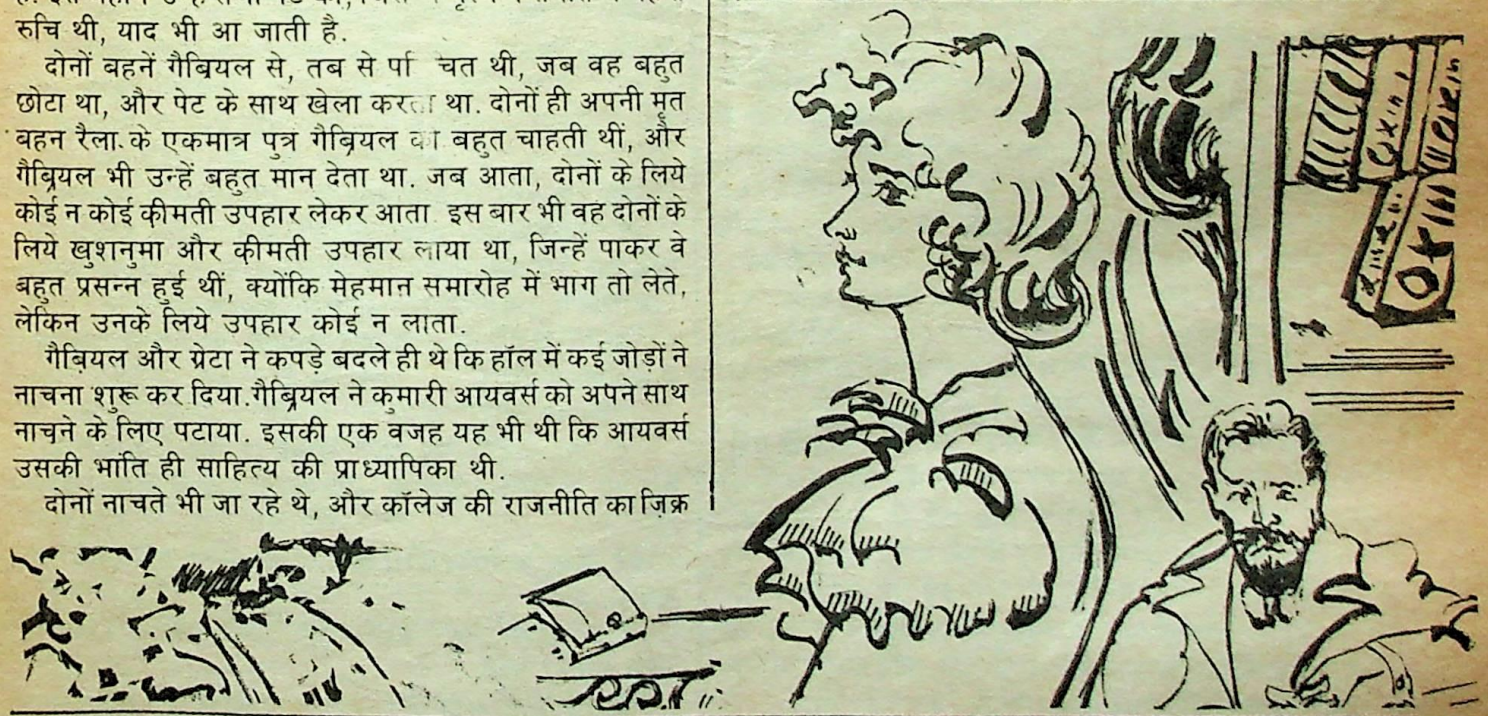

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कुछ दूर पर खड़ी मिसेज मार्लिस के पास जाकर, सबको सुनाकर कहने लगी, "आप सचमुच सौभाग्यशालिनी हैं, मिसेज मार्लिस! कितने नम्र और समझदार हैं, आपके पति! मुझे आपसे ईर्ष्या होती है."

उसकी बात सुनकर सब चकित-स्तब्ध रह गये थे. सबसे अधिक चकित-स्तब्ध थे—खुद उसके पति गैब्रियल. जो एक लंबी सांस लेकर चुप रह गये. यह अनुभव उनके लिए नया नहीं था. ग्रेटा, इससे पहले भी उन्हें सबके सामने उसे ज़लील कर चुकी थी. पति को खुले आम अपमानित करके वह मन ही मन बहुत खुश होती थी.

जब मेहमानों को भोजन परसा गया तो ग्रेटा को अपने पति को चिढ़ाने के और अवसर मिले. भोजन परसने की जिम्मेवारी उसने अपने ऊपर ली थी, और अविवाहित युवा-मेहमानों को वह बड़े चाव और जोश से भोजन परस रही थी. वे लोग भी उस पर विशेष रूप से कृपालु हो रहे थे, और मुग्ध होकर उसे देखते हुए उससे बातें कर रहे थे. गैब्रियल इस तमाशे को बड़े ध्यान से देख रहा था.

गैब्रियल का स्वभाव बड़ा गंभीर था जबकि ग्रेटा एक अमोदप्रिय युवती थी, जिसे हंसना-खेलना और गपशप करना ही भाता था. इसलिए अपने पति की प्रकृति के साथ उसका मेल नहीं खाता था. फिर भी, दोनों गृहस्थी की गाड़ी खींचे जा रहे थे.

खाने के बाद अधिकांश लोग चले गये और थोड़े चुने हुए मेहमान ही केटी और जूलिया के इसरार करने पर रुक गये. वे सब आर्की नाम के एक गायक का गाना सुनने के इच्छुक थे और उससे आग्रह कर रहे थे कि वे उन्हें अपने कुछ गीत सुनाये.

जैसे ही आर्की ने सुनाना शुरू किया, ग्रैब्रियल ने आश्चर्य से देखा कि शोकपूर्ण गीतों से दूर रहनेवाली उसकी पत्नी शोकपूर्ण गीत में खो-सी गयी थी. वह उसे इस समय बड़ी गरिमामयी और रहस्यमयी लग रही थी. एक रहस्यमयी महिला का प्रतीक.

सुबह को जब वह आर्की और अपनी पत्नी के साथ ट्रेन पकड़ने के लिए स्टेशन की ओर जाने लगा तो उसने ग्रेटा को आर्की के साथ-साथ चलते पाया. ग्रेटा उसे इस समय भी बड़ी मोहक और आकर्षक प्रतीत हो रही थी. उसका मन हो रहा था कि आर्की की परवाह किये बिना, वह आगे बढ़कर अपनी पत्नी को पीछे से दबोच ले और उसके गालों और होंठों पर चुंबनों की झड़ी लगा दे. अपने को रोक पान उसके लिए बड़ा कठिन लग रहा था और वह यही सोचकर अपने को मना रहा था कि घर पहुंच कर, जब वे दोनों अकेले होंगे तब वह उसी जी भरकर प्यार कर सकेगा.

चलते-चलते, उसकी आंखों के सामने वे दृश्य बार-बार घूम जाते थे जिसमें उसने ग्रेटा को जी भरकर प्यार किया था और उसने भी उतनी ही उमंग के साथ इस प्यार का प्रतिदान दिया था. हालांकि ऐसे अवसर उसके जीवन में कम ही आये थे.

जब आर्की उन दोनों से विदा लेकर, अपनी ट्रेन में चला गया, तो वे दोनों प्लेटफार्म पर अकेले रह गये. ठंड के बावजूद ग्रेटा की निकटता उसे अंदर और बाहर ले जला रही थी. ग्रेटा के हाथ में टिकट देते समय उसे लगा, जैसे वह अपनी पत्नी को पहली बार छू रहा है. बिजली के छूने जैसी अनुभूति हुई उसे. उसे गर्व और हर्ष हो रहा था कि ग्रेटा उसकी अपनी है. वह छिप-छिपकर उसे ऐसे देख रहा था, मानों वह उसकी पत्नी नहीं, कोई अज्ञात प्रेमिका है. उद्दाम वासना की लहरें उसे सराबोर कर रही थीं.

ट्रेन में और बाद में घोड़ागाड़ी में वह बदहवास रहा. घोड़ागाड़ी से उतरते समय, जब ग्रेटा ने हल्के से उसकी बांहों का सहारा लिया तो उसे एक अवर्णनीय सुखानुभूति हुई जिसमें उसने गाड़ीवाले को एक पौंड टिप दे डाला.

घर में प्रवेश करते समय वह अचानक एक सभ्य प्रोफेसर से एक असभ्य और जंगली हब्शी बन गया. ग्रेटा उसे एक नयी-नवेली प्रेमिका लग रही थी. जिसकी वह घर के अंदर पहुंचते ही पहली बार आलिंगन करेगा, उसके होंठ चूमेगा और जी भरकर मसलेगा. अपने ऊपर से उसका नियंत्रण खोता जा रहा था और एक पागलपन उस पर सवार होता जा रहा था.

लेकिन ग्रेटा को उसकी मनस्थिति के बारे में कुछ पता न था. उसने घर में आकर पूछा, "तुम जैसा महाकंजूस आज इतना उदार कैसे बन गया कि गाड़ीवाले को एक पौंड टिप में दे डाला!"

"प्रेम आदमी को उदार बना देता है और आज प्रेम ने मेरे तन और मन पर पूरा अधिकार कर रखा है. मैं तुमसे प्रेम करता हूं ग्रेटा." कहते-कहते उसका स्वर कांपने लगा.

नृत्य-समारोह का 'हैंगओवर' अभी तक पतिदेव पर सवार है, और उसी वजह से वह बहक रहे हैं, ग्रेटा ने सोचा. मगर, मन ही मन वह खुश भी थी, पति को उत्कट प्रेमी के रूप में देखकर. इस खुशी की लहर में उसने अपने पति का चुंबन ले लिया. गैब्रियल के दिल की धड़कनें इस चुंबन से और तेज हो गयीं, और उसे विश्वास हो गया कि ग्रेटो भी उससे मिलने के लिए इच्छुक है. ऐसे अवसरों पर ग्रेटा में भी उत्कट मिलन-कामना जाग जाती है, यह वह अनुभव से जानता था, लेकिन आज वह न मालूम क्यों, संकोच से काम ले रही थी.

क्यों? क्या अभी तक उसका आक्रोश जारी है? मगर, वह तो प्रेम का प्रतिदान करते समय, ऐसी बातों को भूल जाया करती हैं.

"क्या सोच रही हो, ग्रेटा डियर?" उसने प्यार से उसे अपनी ओर खींचते हुए पूछा. ग्रेटा ने कोई उत्तर नहीं दिया और शून्य में ताकती रही.

"क्या बात है, ग्रेटा? बताओ न!'—

ग्रेटा ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया, और फिर सहसा फूट-फूटकर रोने लगी. फिर, सुबकते-सुबकते बोली, "मुझे अचानक वह गीत याद आ गया. जिसकी पहली लाइन है—आग्रीम की लड़की." और फिर, तकिये में मुंह छिपाकर रोने लगी.

"लेकिन, उस गीत को याद कर रोने की क्या जरूरत है?"

ग्रेटा ने कोई उत्तर नहीं दिया, और रोती ही रही. कुछ देर बाद, जब वह कुछ स्वस्थ हुई तो गैब्रियल ने फिर नरमी से पूछा, "बताओ न ग्रेटा, तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों?"

"मुझे एक नौजवान की याद आ गयी जो इस गीत को गाया करता था बेचारा!"

"कौन था वह?"

"मैं नहीं जानती. वह मेरी ज़िंदगी में तब आया था, जब मैं किशोरी थी, अविवाहित थी और अपनी दादी के साथ रहा करती थी."

एक अंधा, बेलगाम क्रोध गैब्रियल के भीतर अपना फन उठाने लगा.

"क्या तुम उसे प्यार करती थीं?" उसने भरसक अपना स्वर शांत रखकर पूछा.

"कितनी बड़ी-बड़ीं और सुंदर आंखें थीं, बेचारे माइकेल की.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उनमें डूब कर न जाने कहां पहुंच जाती हूं. बड़े कमजोर, मगर आवाज बड़ी सुरीली थी."

"क्या तुम उसे प्यार करती थीं?" इस बार तेज स्वर में ग्रैब्रियल ने पूछा.

"मैं उसके साथ घूमने जाया करती थी. घूमते समय वह खामोश रहता था और मेरी बातें चुपचाप और दिलचस्पी से सुनता रहता था. बड़ा खामोश नौजवान था."

"ओह!... पिछली बार तुम उससे कब मिली थीं?"

ग्रेटा ने घृणा से गैब्रियल की ओर देखा और फिर मुंह मोड़ लिया. करीब चार-पांच मिनट तक खामोश रहने के बाद, उसने धीमे स्वर में कहा, "उसे मरे तेरह साल हो गये. जब मरा, तब सिर्फ़ सत्रह साल का था. काफ़ी कमज़ोर था, मगर बड़ा भला, नेक और भावुक."

"करता क्या था? विद्यार्थी था?" गैब्रियल का गुस्सा अभी तक शांत नहीं हुआ और लगातार बढ़ता ही जा रहा था.

"गरीब खानदान का था, इसलिए उच्च शिक्षा नहीं पा सका था. अपना और अपनी बूढ़ी मां का पेट पालने के लिए गैस कंपनी में काम करता था."

तीर की भांति इस एहसास ने गैब्रियल को अंदर से बींधा कि ग्रेटा बड़े अपनेपन से गरीब... कमजोर... और खामोश तबियत के नौजवान को याद कर रही थी. न चाहते हुए भी, उसे अपने ऊपर शर्म आने लगी. वह अपने को उस निरीह और कम समझदार नौजवान से निम्नतर मानने लगा. अब वह अपने अंदर के आईने में अपनी जो तस्वीर देख रहा था, वह बड़ी घिनौनी थी, एक खोखले... ढोंगी... स्वार्थी... और बेरहम आदमी की तस्वीर! लेकिन फिर भी उसका अहं उसे विभ्रम नहीं बनने दे रहा था. उसने बेरुखी के लहजे में पूछा, "साफ़ है कि तुम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे, एक दूसरे को चाहते थे."

"वह मुझसे प्रेम करता था या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती, मगर इतना ज़रूर जानती हूं कि मैं उससे अवश्य प्रेम करती थी... आज भी करती हूं... और जब तक जीवित हूं, करती

कुछ क्षण रुककर, उसने फिर कहना शुरू किया, "साथ घूमने जाने के लिए उसे बुलाने के लिए मैं ही उसके घर जाया करती थी. वह कभी मेरे घर नहीं आया था. सिर्फ़ एक बार आया था... मरने से पहले जब मैंने आगे की पढ़ाई के लिए दूसरे शहर में जाने का निश्चय किया. तो उसे यह बात खुद बताना चाहती थी, लेकिन वह घर पर नहीं था. मैं एक पत्र में यह बात लिखकर उसकी मां के पास छोड़कर आयी थी... रात को अचानक तेज बारिश हुई. मैंने खिड़की बंद करनी चाही तो देखकर दंग रह गयी. कि माइकेल बाहर खड़ा भीग रहा था. मैंने उसे अंदर आने या घर जाने को कहा तो वह कहने लगा, 'मैं अब ज्यादा दिन जिऊंगा नहीं! तुम कहती हो. तो चला जाता हूं.' एक सप्ताह बाद मुझे शहर में सूचना मिली कि वह नहीं रहा!"

वह सिसकती रही... और सिसकते हुए ही सो गयी!

उसके सोने के बाद गैब्रियल सोचने लगा... सच्चा प्रेम क्या होता है, यह मैंने अभी तक नहीं जाना, मगर ग्रेटा ने जाना और माइकेल ने जाना, जो उसकी खातिर अपने प्राणों की बलि दे बैठा. उनके उस सच्चे प्रेम के आगे... उसका अहं... उसका ज्ञान... कितना तुच्छ और महत्वहीन है. वह करुणा और प्रेम से द्रवित हो आया... □

(प्रस्तुति : हंस)

मनुष्य पानी नहीं बना सकता : तो वह उसे बेकार क्यों करे

आदिकाल से
जल और जीवन एक दूसरे के पर्याय रहे हैं
पानी बेकार न बहने दें

१. जल प्रकृति की अद्‌भुत देन है, इसे बेकार न करें

दिल्ली में सात लाख से अधिक पानी के घरेलू कनेक्शन हैं. यदि प्रत्येक घर में औसतन दो टूटियां भी हों, तो इसका मतलब है कि कुल १४ लाख टूटियां हैं. इनमें से यदि केवल १० प्रतिशत टूटियां ही टपक रही हों तो इसका मतलब है कि एक लाख से अधिक टूटियां टपक रही हैं. धीरे-धीरे टपकती टूटी से हर रोज लगभग चार गैलन पानी निकल जाता है, जिसका मतलब है कि दिल्ली में हर रोज पांच लाख गैलन से अधिक पानी बेकार जा रहा है. इसलिए टूटी की तुरन्त मरम्मत होनी चाहिए और इसकी मरम्मत बहुत आसान है. बहुत ही कम दाम में मिलने वाली वाशर से ही टूटी को टपकने से रोका जा सकता है.

२. जब घर से बाहर रहें, तो टूटी बंद होनी चाहिए

जब कभी आप टूटी खोलें और पानी न आ रहा हो तो आम तौर पर टूटी खुली रह जाती है. लेकिन कुछ देर बाद पानी आ सकता है. सोच कर देखिए कि जितनी देर आप घर से बाहर रहे और लौटने के बाद आपने टूटी बंद की, तो इतनी देर में कितना पानी बेकार चला गया होगा.

३. सार्वजनिक नल

आम जनता के इस्तेमाल के लिए लगभग ८००० सार्वजनिक नल हैं. अक्सर ही शरारती लोग इनकी टूटियां उतार कर ले जाते हैं. स्थानीय लोगों से अनुरोध है कि वे सतर्क रहें और इस तरह की कोई बात देखें तो नीचे लिखे टेलीफोन नंबर पर खबर दें.

४. घर से बाहर के टपकते नल

आम तौर पर ऐसा होता है कि घर से बाहर के टपकते नलों पर हम ध्यान नहीं देते क्योंकि उससे हमारे फर्श खराब नहीं होते और न ही रात की नींद खराब होती है. लेकिन घर के नलों के मुकाबले इन नलों से पानी का नुकसान ज्यादा होता है और अगर वह पानी किसी मुख्य पाईप लाइन से बह रहा हो तो नुकसान बहुत ही ज्यादा होगा.

५. कहां रिपोर्ट करें

यदि आपको पानी की मुख्य लाइन से या सार्वजनिक नलों आदि से कहीं पानी बेकार जाता दिखाई दे तो एक अच्छे नागरिक के नाते आप कृपया निम्नलिखित विभिन्न क्षेत्रों के नियंत्रण कक्षों को सूचित कर दें. इन नियंत्रण कक्षों के टेलीफोन नंबर हैं :—

नई दिल्ली ६४१४७४६	दक्षिण क्षेत्र ६००६४४
शहरी क्षेत्र २७९९४८	सदर पहाड़ गंज क्षेत्र ५११२७५
सिविल लाईन क्षेत्र २३२५१७	शाहदरा क्षेत्र २२८५६५१
पश्चिम क्षेत्र ५३९१४०	करोल बाग क्षेत्र ५७११११२९
ग्रामीण क्षेत्र महरौली ६५०८४४	नजफगढ ५४५६४३९
नरेला ७४७२५३६	

इसके अतिरिक्त आप सीधे निम्नलिखित नम्बरों पर भी फोन कर सकते हैं:—

आवास ३०१३८७१, ३०१४२३५ कार्यालय २५१४५४४, २५१४५४५

यदि पानी बचाने के लिए आपके पास कोई सुझाव हो, तो कृपया लिखें:—

जगप्रवेश चन्द्र
मुख्य कार्यकारी पार्षद
दिल्ली प्रशासन, दिल्ली

सूचना एवं प्रचार निदेशालय, दिल्ली प्रशासन द्वारा प्रचारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार जैक लंदन की प्रेतात्मा ने लेखक अप्टन सिंकलेयर से बात की

पेरिस के सारवोन विश्वविद्यालय में अमरीकी साहित्य के व्याख्याता रोजा एसेलीन्यू ने अमरीकी साहित्य में पराभौतिक चेतना नाम के अपने विचारोत्तेजक निबंध में लिखा है "अमरीकी साहित्य की एक अनूठी विशिष्टता है—उसका अनुभवातीत गुण, तर्कणावाद की अपेक्षा अंतर्बोध की उसकी पसंदगी और दैनिक जीवन तथा प्रकृति में चमत्कार की उसकी खोज. इस विशिष्टता को उन्नीसवीं सदी में एमरसन और ह्विटमैन की कृतियों में खोजा जा सकता है. और बीसवीं सदी में हेमिंग्वे, ड्रीजर और सेलिंगर आदि की कृतियों में. इन सब साहित्यकारों की रचनाओं में अंतर्ज्ञानवाद की व्यंजना पायी जाती है. अंतर्ज्ञानवाद एक मृत और विसंगत दर्शन न होकर, उर्वरक अंतर्धारा है और अमरीकी साहित्य का एक अपरिवर्तनीय लक्षण है."

हेमिंग्वे, अप्टन सिंकलेयर, जैक लंदन, जॉन स्टीनबैक आदि अमरीकी उपन्यासकारों के बारे में एसेलीन्यू का कहना है, वे मूलतः कवि रहे हैं और विचारों के स्थान पर अंतर्दृष्टि और निर्मम तर्क के स्थान पर अंतर्ज्ञान में आस्था रखते आये हैं. उनमें विस्मय का भाव है और वे एमरसन की भांति साधारण में भी असाधारण के दर्शन कर सकते हैं और प्रति क्षण जग को नयी दृष्टि से देखते हैं.

"हेमिंग्वे को कर्म में आस्था रखनेवाले ऐसे लेखक के रूप में मान्यता प्राप्त है, जो कर्म में आस्था रखने वाले पात्रों के बारे में ही लिखते हैं, पर अपनी कथाओं में वे घटनाओं से अधिक प्रभावों मे बारे में चिंतित दिखाई देते हैं. 'विग टू-हार्टेड रिवर' का कार्य-क्षेत्र बाहय नहीं, आंतरिक है. जो कुछ घटता है, पात्र के अवचेतन में घटता है, बाहरी दुनिया में नहीं. उसका संबंध दैनिक अनुभवों से न होकर, आत्मिक अनुभवों में है. उनकी 'डैथ इन द अॉफ्टरनून' और 'ग्रीन हिल्स अॉफ अफ्रीका' में किसी दुर्ग्राह्य सच्चाई (जैसे जीवन और मृत्यु के अर्थ) की खोज़ है. हेमिंग्वे ने मार्क ट्वेन और शेरवुड एंडरसन की भांति, देशी भाषा को एक नये ढंग से विकसित और परिष्कृत कर, उसके प्रयोग की नयी संभावनाओं के द्वार खोले. इनमें पराभौतिक चेतना के प्रयोग भी सम्मिलित थे. इन प्रयोगों की प्रक्रिया के माध्यम से जगत भावपूर्ण ढंग से अवगम्य वर्तमानों का एक सिलसिला बनकर सामने आता है. ऐसे वर्तमान जिनमें समूचा दिक्काल समाविष्ट हो जाता है.

> होनी अनहोनी के द्वंद्व में फंसे रहस्य रोमांच भरे जीवन प्रसंगों की इस अनूठी श्रृंखला की एक-एक कड़ी आप प्रति माह पढ़ सकेंगे...

अप्टन सिंकलेयर ऐसे विश्व-संवेदनशील अमरीकी उपन्यासकार थे, जिनके उपन्यासों में सामाजिक बुराइयों के चित्रण के अलावा, जटिल मानवीय दुर्बलताओं और कुंठाओं का बड़ा पैना चित्रण देखने को मिलता है.

एक बार उन्होंने लिखा था,

"तरुणावस्था में मुझे कई बार ऐसे अनेक आवेशों का सामना करना पड़ा जिन्हें मैं प्रेरणाओं के रूप में स्वीकार करता रहा. वे आवेश कब, कैसे और क्यों आये, मैं नहीं जानता, किंतु उनकी अनुमति एक ऐसे अदृश्य मार्गदर्शक के अचूक और सुपरिणामकारी मार्ग-दर्शन की अनुमति थी, जो मित्र के समान सहानुभूतिशील था.

"अब, वृद्धावस्था में भी जब मैं बाग में चहलकदमी कर रहा होता हूं, अपनी नयी कृति का कोई अध्याय अनायास मेरे सामने सुस्पष्ट हो जाता है. मेरे लिए यह बताना कठिन है कि यह कैसे संभव होता है, लेकिन, बड़े चमत्कारिक ढंग से हो जाता है, यह तय है.

"एक प्राचीन धार्मिक कहावत के इन शब्दों को मैंने हृदयंगम कर लिया है—'कर्म करना ही प्रार्थना करना है.' जब कभी मात्र कर्म करना मुझे अपर्याप्त लगता, मैं भगवान रूपी चरम सत्ता से प्रार्थना करता हूं, 'मुझे साहस, संकल्प, आशा और प्रेम प्रदान करो.' और, मेरी प्रार्थना सफल होती है. कैसे? एक उदाहरण देता हूं.

"चरम सत्ता के बारे में मेरी पत्नी के विचार मुझसे बहुत मिलते हैं. वह भी मानती है कि यह सारा जगत इश्वरीय है. मेरी जीवन-संगिनी होने के अलावा, वह एक कुशल गृहणी और मेरी पांडुलिपियों की योग्य संपादिका भी थी.

"जिस तनाव में वह जी रही थी, उसके कारण उसका स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया. तब वह 'स्व' की खोज में मुझे साथ में लेकर एक गुप्त स्थान में गयी जहां उसने आइंसटीन, एडिंगटन, जे.बी. राइन (आधुनिक परामनोविज्ञान के जन्मदाता), ह्वाइटहैड, जेम्स जींस जैसे अंतर्ज्ञानवादी वैज्ञानिकों की रचनाएं पढ़ीं. इन सब सत्यशोधकों ने ईमानदारी के साथ आत्मा के रहस्यों को जानने का प्रयास किया था.

"उसने इस स्थान में रहकर प्रार्थना करने की एक बेहतर विधि का आविष्कार किया, और अपने मन को नियंत्रित रख, उसे उपयोगी कार्यों में नियोजित करने की विधि भी सीखी. अपनी संकल्प-शक्ति के बल पर उसने अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त किया,

"बाद में, उसे दिल का दौरा पड़ा. ऐसा दौरा, जिसे चिकित्सक अपनी भाषा में रक्त-संकलता वाला दिल का दौरा कहते

"मेरी पत्नी की मान्यता है कि मेरी प्रार्थनाओं के परिणामस्वरूप ही उसके प्राण बचे. संशयवादी कहेंगे कि मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थनाओं को सुनकर, मेरी पत्नी में जो आत्म-विश्वास जागृत हुआ, उसी ने उसके जीवन की रक्षा की. मेरी प्रार्थनाओं से नहीं, उसके प्रति मेरे अगाध प्रेम ने ही उसे जीने और दुख सहने की शक्ति प्रदान की. संशयवादी यदि ऐसा मानते हैं तो शौक से मानें, मैं उनसे विवाद नहीं करूंगा.

अब सुनिये दूसरी सत्यकथा

"जैक लंदन, जो अमरीकी साहित्याकाश का एक चमकता सितारा था, मेरा घनिष्ठ मित्र था. उसकी त्रासद मृत्यु से पूर्व, मेरी पत्नी को, जिसने उसे कभी देखा भी नहीं था, न जाने कैसे यह पूर्व-ज्ञान हो गया था कि वह गहरे संकट में है. वह बराबर मुझसे जिक्र करती रहती थी. उसका मन बहलाने के लिए मैं उसे जैक लंदन के फार्म पर ले गया था जो हमारे घर से 500 मील की दूरी पर स्थित है.

"उसके फार्म से लौटने के बाद, एक दिन समाचारपत्रों में पढ़ने को मिला कि उसका सहसा निधन हो गया है. उसकी मृत्यु के बाद मुझे जॉर्ज स्टर्लिंग ने सूचित किया कि जैक की स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई थी, उसने आत्महत्या की थी.

"उसके निधन के दो दिन बाद, और उसके बाद लगातार कई हफ्तों तक हमें द कैलिफोर्निया के प्रेतात्मवादियों के फोन और पत्र आते रहे कि जैक लंदन की प्रेतात्मा मुझसे और मेरी पत्नी से संपर्क करने की बहुत इच्छुक है. मुझे यह अस्वाभाविक नहीं लगा, कारण मैं जानता था कि जैक प्रेतातमवाद में विश्वास करता था. मगर मेरी पत्नी, जो प्रेतात्मवाद में विश्वास नहीं करती थी, प्रेतात्मवादियों के संदेशों के बारे में सुनकर हंस देती थी.

"पर, इधर कुछ वर्षों से मेरी पत्नी भी अतींद्रिय-संवेदी हो गयी है. हम दोनों ने कुछ ऐसे प्रयोग किये हैं, जिनसे टेलीपेथी (दूरबोध) के अस्तित्व में हमारी आस्था काफी बढ़ गयी है.

"अनेक प्रेतात्माओं से भी मेरा संपर्क हो चुका है, लेकिन यह कहना कठिन है कि वे सचमुच मेरे दिवंगत परिजनों और मित्रों की प्रेतात्माएं थीं, या मेरे अवचेतन जीवन

के कोई भाग, जिनको मैंने भूला मान लिया था, मेरे स्मृति-कोश में से करके उन्हें प्रेतात्माओं का रूप दिया है. एक उपन्यासकार होने के नाते, मैं स्वयं अपने विचारों और भावों में से पात्रों का सर्जन करता हूं, जो विभिन्न देशों के पाठकों को वास्तविक लगते हैं.

"इस मामले की सच्चाई क्या है, इसका पता हमें कुछ वर्षों बाद भी लग सकता है, और कुछ सदियों बाद भी.

"मैं अब आपको आर्थर फोर्ड नामक 'मीडियम' (माध्यम) के साथ हुए एक आत्मायन में उपस्थित रहने, और प्रख्यात मनोविज्ञान प्रोफेसर मैक्डोनल्ड, मेरी पत्नी व मेरे बीच हुई एक परिचर्चा के सुनने के लिए आमंत्रित करता हूं. आत्मायन चूंकि एक घंटे तक चला, इसलिए मैं उसके बारे में तथा परिचर्चा के, जो तीन घंटों तक चली, बारे में सब कुछ तो नहीं बता सकता, परंतु उसका सार अवश्य प्रस्तुत कर सकता हूं. प्रोफेसर मैक्डोनल्ड का, जो इस लेख को पढ़ चुके हैं, कहना है कि उनकी यादगार के मुताबिक, जो कुछ घटा था, उसका सही वर्णन ही मैंने किया है.

"इस आत्मायन की शुरुआत लॉस एंजलीस के 'पीपुल्स स्प्रीच्युएलिस्ट चर्च' के एक कमरे में 16 जुलाई 1930 को दोपहर को तीन बजे हुई थी. मेरे पास ऐसे पांच मित्रों के पत्र थे, जिनका निधन हो चुका था. ये मित्र थे– जैक लंदन, जॉर्ज स्टर्लिंग, जॉर्ज ब्रांदेस, यूजिन डेब्स और सर आर्थर कॉनन डायल. इनमें से प्रत्येक पत्र को मैंने हरे रंग के एक कागज में बंद करके, एक बड़े लिफाफे में बंद कर दिया था. प्रोफेसर और मेरी पत्नी ने अच्छी तरह जांचकर देख लिया था कि लिफाफे अच्छी तरह बंद हैं. पहले मैं लिफाफों को गड्डमड्ड रखना चाहता था, लेकिन बाद में सही पहचान के लिए मैंने उन पर पैंसिल से नंबर लिख दिये थे.

"फोर्ड 34 वर्ष के स्नातक हैं. वे एक दिलचस्प वक्ता हैं और घंटों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध रख सकते हैं. उन्होंने हम सबको बताया कि वे अपना श्रेष्ठतम कार्य या प्रदर्शन भाव-समाधि की अवस्था में ही कर सकते हैं, और उस दौरान उन पर उनके कनाडावासी बालमित्र फ्लैचर की प्रेतात्मा हावी हो जाती है. उन्होंने हमसे कहा, "भले ही हमने फ्लैचर को न देखा हो और उसके अस्तित्व में भी विश्वास न करते हों, पर हमें यह विश्वास कर लेना चाहिए कि वे एक वास्तविक व्यक्ति थे

"जब हम इस 'छल' के लिए तैयार हो गये. तो फोर्ड ने अपनी आंखों पर रूमाल बांध लिया और जोर-जोर से सांस लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे. शीघ्र ही, वे भाव-समाधि की अवस्था में आ गये."

"सहसा, वे कनाडा में रहने वाले फ्रांसीसियों के लहज़े में (वे फ्लैचर के लहज़े में बोलेंगे, ऐसा उन्होंने हमें पहले ही बता दिया था) कहने लगे, 'हार्डविक या ऐसे ही किसी नाम वाली एक वृद्धा की आत्मा यहां आयी है. सॉरी, उसका सही नाम हार्डेन है. तुम उसे नहीं जानते, अप्टन, मगर वह तुम्हें जानती है.' तब, मुझे याद आया, मेरी नानी का नाम हार्डेन था.

"इसके बाद 'फ्लैचर' ने प्रोफेसर से कहा, 'मैं रेबैका नाम की एक आत्मा को देख रहा हूं. वह आपको 'विली' कह रही है.' जवाब में प्रोफेसर ने कहा, 'एकदम सही. वे मेरी मां हैं.' बाद में प्रोफेसर ने मुझसे कहा, 'इन दोनों नामों को सुनकर मुझे विशेष आश्चर्य नहीं हुआ. 'माध्यम' या कोई भी व्यक्ति 'हू इज़ हू' में हमारे विवरण पढ़कर ये नाम जान सकता था."

"लेकिन, जब हमने 'हू इज हू' के सफे पलटे तो हम यह देखकर दंग रह गये कि उनमें ये दो नाम नहीं दिये गये थे. इतना ही नहीं, किसी भी नये या पुराने संदर्भग्रंथ में ये नाम नहीं थे."

मेरी पत्नी मेरी क्रेग सिंकलेयर से मुखातिब होकर 'फ्लैचर' ने पूछा, 'यह फोबे कौन हैं? उसके पिता की आत्मा उसे बुला रही है.' मेरी पत्नी ने कहा, 'मैं ही फोबे हूं. मेरे पिता बचपन में मुझे इसी प्रकार के नाम से बुलाया करते थे

"इस भूमिका के बाद, 'माध्यम' फ्लैचर ने मुझसे कहा, 'मेरे सामने एक व्यक्ति की आत्मा है. वह मुझसे कह रही है कि जीवितावस्था में वह आपका घनिष्ठ मित्र था. वह आदमी लेखन की बात भी करता है. अपना पूरा नाम जैक लंदन बताता है. क्या आप उसे जानते हैं?'

'हां, मैं उसे जानता था. जैक लंदन मेरा घनिष्ठ मित्र था.'

'वह आपको प्यार से 'ठप्पी' कहा करता था. उसका कहना है कि आप उसका एक पत्र लेकर यहां आये हैं.'

'दोनों ही बातें सही हैं.'

'उसका पत्र मुझे दे दो.'

'वह इन पांच सील बंद लिफाफों में से एक में है.'

'मुझे सब लिफाफे दे दो.'

'मैंने उसे सब लिफाफे दे दिये. उन लिफाफों को काफी देर तक उलटने-पलटने के बाद, उसने एक लिफाफा अलग रख दिया.

"जिन पांच परिचितों के पत्र लेकर मैं आत्मायन में भाग लेने के लिए आया था, उनके नाम बोलकर 'माध्यम' ने मुझसे कहा, 'ये पांचों मेरे सामने मौजूद हैं. पर, इनमें से जैक लंदन आपके सबसे अधिक निकट है. जैक अपनी पुत्री को लेकर काफी चिंतित है.'

"उन दिनों जैक की पुत्री के तलाक को लेकर पत्रों में काफी भद्दा और अप्रिय प्रचार हो रहा था. किंतु, चैत्यलोक में रहने वाले जैक को उस बारे में कैसे पता चला, मैं सोच रहा था. उसकी चिंता का यही कारण हो सकता था, मेरी समझ से.

'क्या आप बता सकते हैं कि जैक ने अपने उस पत्र में, जो मैं साथ ले कर आया था, मुझे क्या लिखा था?' मैंने 'माध्यम' फ्लैचर से पूछा.

'इस संक्षिप्त से पत्र में एक ऐसी योजना का जिक्र है, जो अभी तक अपूर्ण है. उसने अपनी खुशहाली का उल्लेख भी किया है.'

"बात काफी हद तक सही थी. पत्र में लंदन ने लिखा था कि मेरे नये उपन्यास की एक प्रति खरीदने के बाद उसका भाग्य बदला है. उसने पत्र एक अधूरी समुद्री-यात्रा के दौरान लिखा था.

"'फ्लैचर' ने यूजीन डेब्स, सर ऑर्थर कॉनन डायल, जॉज स्टर्लिंग, और जॉर्ज, ब्रांदेस के पत्रों के बारे में भी जो सूचनाएं दीं, वे भी काफी हद तक सही थीं. डेब्स ने अपने पत्र में इस अफवाह पर खेद व्यक्त किया था कि मैंने अपना उपन्यास 'द जंगल' किसी को बेच दिया है. सर ऑर्थर कॉनन डायल ने अपने पत्र द्वारा सूचित किया था कि वे मेरी कृति 'मैंटल रेडियो' के लिए प्रकाशक खोजने में असमर्थ हैं. मगर, एक संस्था उसके कुछ अंश प्रकाशित करने को तैयार है. ब्रांदेस का नाम 'माध्यम' को ठीक नहीं मालूम हो सका, किंतु उसके कार्ड में जो कुछ लिखा था, वह उसने सही बता दिया. स्कैंडिनेविया से लिखे इस कार्ड में मेरी एक पुस्तक की प्रति प्राप्त होने पर उसने लिखा था, 'धन्यवाद! मुझे एक ऐसे लेखक का हस्तलेख देखने को मिला है, जिसका मैं अर्से से प्रशंसक रहा हूं.' जॉर्ज स्टर्लिंग के पत्र में क्या था, यह भी काफी हद तक 'माध्यम' ने सही बताया.

"प्रोफेसर से काफी देर तक बातें करने के बाद, 'माध्यम' फिर मेरी ओर गुडा और दुबारा जैक लंदन के बारे में बात करने लगा. मैंने उसके माध्यम से जैक से कुछ प्रश्न पूछे. प्रश्नोत्तर इस प्रकार चले,

"'तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई, जैक?'

"'तुम जानते ही हो. जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण आ जाते हैं कि उसके बाद आगे जीने को मन नहीं करता."

"'तुम पृथ्वी के अपने मित्रों से कुछ कहना चाहोगे?'

"'यही कि मैं यहां चैत्यलोक में बहुत खुश हूं."

"'क्या तुम अपने अंतिम विवाह से दुखी और संतुष्ट थे?'

"'मेरी अंतिम पत्नी सरल स्वभाव की थी. यदि वह तुम्हारी पत्नी मेरी की भांति व्यावहारिक भी होती तो हमारा विवाह सफल होता.

'मेरी पत्नी को पता था कि तुम आत्महत्या करने वाले हो. उसने कई बार मुझस यह बात कही थी, लेकिन मैंने उस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया.'

'अच्छा! तो, फिर उसने मुझे क्यों नहीं बताया. खैर, जो हुआ, वह हुआ. अब मुझे किसी बात का कोई पश्चाताप नहीं है.'

'तुम अपनी पत्नी से कुछ कहना चाहोगे?'

'उससे मेरा प्रेम कहना. मुझे खुशी है कि वह सुख से है.'

'सहसा 'माध्यम फ्लैचर' ने मुझसे कहा, मैं थक गया हूं.'

'फोर्ड जैसे किसी गहरी नींद से जागा, और पूछने लगा, 'मेरा सर चक्कर खा रहा है. इस बीच क्या हुआ, मुझे कुछ पता नहीं. वैसे, क्या परिणाम निकले?'

'परिणाम संतोषजनक ही रहे.' हम सबने कहा और उसे धन्यवाद देकर उससे विदा ली.

"बाद में मैंने प्रोफेसर से पूछा, 'इस आत्मायन के बारे में आपका खरा मत क्या है?'

उन्होंने कहा, "मुझे तो इस आत्मायन में सच्चे दर-संवेदन की शक्ति के दर्शन हुए. लगा कि लौकिक शक्तियों के अलावा अलौकिक शक्तियां भी हैं, जिनके बारे में हम अधिक नहीं जानते.'

"मैं अपने मित्र के, जो एक विश्वविख्यात प्रामाणिक मनोवैज्ञानिक हैं, इस मत से पूरी तरह सहमत हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

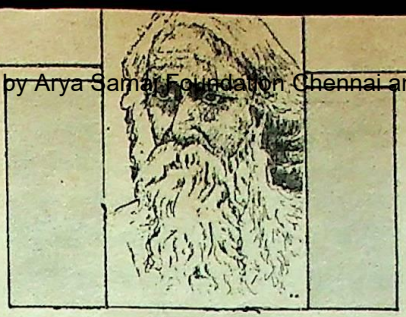

रवींद्रनाथ और नलिनी

इंग्लैंड जाने से पूर्व रवींद्रनाथ कुछ दिन तक बंबई में रुके थे. उनके बड़े भाई सत्येंद्रनाथ ने उनके रहने की व्यवस्था तर्खडकार नाम के एक ऐसे परिवार में की थी जिसके सभी सदस्य इंग्लैंड में प्रचलित शिष्टाचारों से भली भांति परिचित थे. सत्येंद्रनाथ को आशा थी कि इस परिवार के साथ कुछ दिन रहकर, रवि अंग्रेजी बोलना तो सीख जायेगा, उसका परिचय अंग्रेजी संस्कारों से भी हो जायेगा.

इस परिवार में अन्नपूर्णा नाम की एक रूपवती तथा प्रगल्भ किशोरी भी रहती थी, जिसे तर्खडकार परिवार के सदस्य प्यार से 'अना' कहकर पुकारते थे. वह मराठी के प्रख्यात व्याकरणकार दादोबा पांडुरंग के भाई डॉक्टर आत्माराम पांडुरंग की पुत्री थी. वह श्रीमती मिचेल नाम की एक मिशनरी महिला से प्रशिक्षण प्राप्त कर तथा इंग्लैंड में कुछ समय रहकर वहां के संस्कारों से सुपरिचित होकर पाश्चात्य रंग में रंग चुकी थी.

रवींद्रनाथ ने आगे चलकर अना नाम की इस किशोरी को 'आह्लादिका' कहा था. वे इस बात से चकित रह गये थे कि इस किशोरी ने उनके जीवन में प्रवेश करते ही उन्हें अपने सर्वस्व का दान करना चाहा था. यद्यपि किशोर कवि ने अपनी इस किशोरी प्रेमिका के प्रेम को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया तथापि अपने जीवन के इस प्रथम प्रेम की मधुर स्मृति उनके मन में सदा छायी रही. इस मधुर स्मृति को उन्होंने आगे चलकर इन शब्दों में व्यक्त किया था, "अना के स्वभाव में चारुता, रसिकता व आकर्षकता का बड़ा ही सुंदर संगम था. एक ही शब्द में उसका वर्णन करना चाहूं, तो मैं उसे 'आह्लादिका' कहना पसद करूंगा."

नटखट अना प्रथम दर्शन में ही रवींद्रनाथ से प्रेम करने लगी थी. अपने इस प्रेम की अभिव्यक्ति भी उसने बड़े ही खुले दिल और खिजानेवाले नटखटपन से की थी किंतु संकोची स्वभाव के रवींद्रनाथ में उस मदमाते प्रेम का प्रतिदान करने का साहस कभी नहीं जागा.

प्रथम भेंट पर अपनी शिक्षा-दीक्षा के प्रति आवश्यकता से अधिक सचेत और लज्जाशील रवींद्रनाथ ने अना को अपना परिचय इस प्रकार दिया, "मेरी शिक्षा-दीक्षा और तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा में बहुत अंतर दिखायी पड़ता है. फिर, परिचय के योग्य कोई विशिष्टता भी मुझमें नहीं है. मैं थोड़ी बहुत कविता कर लेता हूं. बस यही मेरी एकमात्र योग्यता व धरोहर है."

रवींद्र के मुंह से यह भोलाभाला आत्म-परिचय सुनकर अना बहुत हंसी, और नटखट स्वर में बोली, "अच्छा! तो आप कवि हैं. बहुत अच्छे! मुझे अपना नाम-अन्नपूर्णा बहुत साधारण लगता है, कविवर! काश!आप इसके स्थान पर कोई प्यारा-सा, रसभरा नाम मेरे लिये सोच सकते!"

"नलिनी! कैसा लगा यह नाम?" रवींद्रनाथ को अना के लिये रसीला नाम सोचने में तनिक भी देर नहीं लगी.

अना को यह नाम भाया, यह जानकर रवींद्रनाथ हर्षित हो उठे. उसने नाम की प्रशंसा करते हुए कहा, "नाम वास्तव में सुंदर है. अब एक काम और करो, कवि! इस सुंदर नाम को एक गीत में गूंथकर वह गीत मुझे सुनाओ. गीत लिखने में विलंब हो, तो मैं जब कहो, सुनने के लिये आ जाऊंगी."

"विलंब नहीं होगा," मुस्कराकर, किशोर कवि ने कहा. वे एक कागज पर गीत लिखने लगे, जो देखते ही देखते, पूरा भी हो गया. अना के आग्रह पर रवींद्र ने उसे पढ़कर सुनाया.

इस गीत के माध्यम से अना ने जैसे अपने को पूरी तरह खोकर, दुबारा नये ढंग से पाया. मन से तो वह अपने और रवींद्रनाथ के बीच की सब दूरियां समाप्त कर ही चुकी थी, पर अब शारीरिक दृष्टि से भी उनके और निकट आने की इच्छुक हो गयी. वह कोई न कोई बहाना ढूंढकर, रवींद्रनाथ के पास आ जाती और मधुर मुस्कान तथा स्नेहपूर्ण वाणी से उनका मन बहलाती.

उन दिनों की मीठी याद को रवींद्रनाथ ने आगे चलकर 'फुराली दू दिन' (वे दिन बीत गये) नामक कविता में, जो श्री दिक्शून्य भट्टाचार्य के कल्पित नाम से 'भारती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, अभिव्यंजित किया है. इस कविता में वे कहते हैं, "विदेशी परिवेश के संबंध में आशंकित रहने के बावजूद, मैंने दो दिन, मानो पर्वत के ऐसे टीले पर बिताये जो हरित तृणों से आच्छादित था और मेरे लिये सौभाग्यशाली पुष्पों से लदा था. यहां मैंने झरनों के दर्शन किये, संध्या की कोमल किरणों में यात्रा की, इंद्रधनुषों की रचना कर, उसके आलोक में मुक्त रूप से क्रीड़ा की थी और निर्मल चांदनी में सैर की थी, कितने सुंदर थे, वे कुछ दिन!"

और, अना उन्हें कैसे आनंदित रखती थी, इसका वर्णन भी स्वयं उन्हीं के शब्दों में सुनिये, "वह मेरे को रिझाने के नये-नये उपायों की खोज करने में बहुत कुशल थी. चुपचाप पीछे से आकर, मेरी आंखें मूंद लेती थी और अपनी शरारतों से मुझे बरबस हंसना तो जैसे उसके लिये खेल ही बन गया था. उसका प्रयास रहता था कि मेरे मन पर कभी अवसाद का कुहरा न छा पाये. मुझे अपने परिवार के लोगों की याद न आ पाये."

जिन दिनों रवींद्रनाथ अना के आनंदमयी सान्निध्य में बंबई में अपने दिन बिता रहे थे, उन्हीं दिनों उनकी 'कवि काहिनी' (कवि की कहानी) धारावाहिक रूप से 'भारती' पत्रिका में प्रकाशित हो रही थी. वे उसका अनुवाद अना को सुनाते और उसके साथ साहित्यिक चर्चा भी करते. उनके साथ बात करते-करते अना ने थोड़ी बहुत बंगला बोलनी सीख ली थी.

'कवि काहिनी' जब पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई तो ज्योतिरिंद्रनाथ ने, रवींद्रनाथ के कहने पर उसकी एक प्रति अना को भेजी थी. उस समय अना क्षयरोग से ग्रस्त थी, फिर भी उसने एक पत्र द्वारा इस भेंट के लिये ज्योतिरिंद्रनाथ को धन्यवाद दिया था.

इस पत्र को भेजने के कुछ दिन बाद ही वह चल बसी थी. पर उसका प्रेम, जो रवींद्रनाथ के जीवन का प्रथम प्रेम था, उनके लिये सदा कृतज्ञता व आदर का पात्र बना रहा.

उन 'मदमाते, मंदिर और मधु-अंध' दिनों की याद उन्हें बार-बार अनेक रूपों में आती रही. किशोरावस्था के इस प्रेम के मधुर बंधन से वे कभी मुक्त नहीं हो पाये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराध कैसे, कब और क्यों हो जाते हैं? क्या आदमी स्वभावतः अपराधी होता है? प्रस्तुत है प्रति माह प्रकाशित होने वाली सच्ची अपराध-कथाओं के सिलसिले की पहली कड़ी...

जब 'बंबई गोविंदन' ने 17 लाख के ज़ेवर लूटे

गंगाधर शिदे

बंबई के गिरगांव इलाके में, ठाकुरद्वार नाके पर स्थित 'वामन हरी पेठे' नाम की दूकान आभूषणों की एक पुरानी और विश्वसनीय दूकान है. यह दूकान 'पेठे बिल्डिंग' के नीचे की मंजिल में स्थित है. ऊपर की मंजिलों पर पेठे-परिवार के सदस्य तथा भागीदार व कर्मचारी आदि रहते हैं.

15 अगस्त, 1980 का दिन. सारा राष्ट्र बड़े उत्साह से अपना तेतीसवां स्वाधीनता दिवस मना रहा था. गिरगांव इलाके में भी यह उत्साह अनेक स्थानों पर दिखाई देता था. इलाके के नागरिकों ने इस अवसर पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया था जो रात को देर तक चलते रहे थे.

16 अगस्त, शनिवार की सुबह को पेठे-परिवार के वरिष्ठ सदस्य श्री सूर्यकांत रघुनाथ पेठे दूकान की चाबियों का गुच्छा हाथ में लेकर दूकान खोलने के लिए नीचे आये. उन्होंने दूकान के उत्तरी भाग का दरवाजा खोला और अंदर प्रवेश किया. मगर अंदर प्रवेश करते ही उनकी आंखें खुली की खुली रह गयीं. और दिल ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा. वे जो देख रहे थे, उस पर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था... आभूषणों के खुले और खाली शोकेस फर्श पर पड़े थे. तभी उनके भाई चंद्रकांत पेठे भी दूकान में आ गये. दोनों ही दूकान की परिस्थिति देकर चकित-स्तब्ध थे, किंकर्तव्य विमूढ़ स्थिति में. जब वे कुछ क्षण बाद, उस मनःस्थिति से उबरे तो उन्होंने निकटतम पुलिस-स्टेशन, विठ्ठलभाई पटेल रोड पुलिस थाने से संपर्क किया और वहां के वरिष्ठ पुलिस-अधिकारियों—श्री प्रभाकर खोत व श्री रमाकांत सिंह— को इस चोरी की सूचना दी. दोनों सूचना मिलते ही एक अन्य पुलिस-अधिकारी श्री सुभाष साल्वी को लेकर, शीघ्र ही घटना-स्थल पर पहुंच गये. दोनों भाइयों ने प्रारंभ में जो अनुमान लगाया था, उसके अनुसार 8 से 10 लाख तक मूल्य के आभूषणों की चोरी हुई थी. बाद में, जब सूक्ष्मता से ब्यौरेवार अनुमान लगाया गया तो पता चला कि नुकसान सत्रह लाख के करीब का था.

मैं उन दिनों वृहत्तर बंबई पुलिस की अपराध-अन्वेषण-विभाग की 'अपराध-प्रकटीकरण-शाखा' में सब-इंसपैक्टर था. उन दिनों बंबई के पुलिस कमिश्नर श्री मधुसूदन कसबेकर थे. वे वामन हरि पेठे जैसे पुराने और प्रतिष्ठित आभूषण-विक्रेता की दूकान से 8-10 लाख रुपये मूल्य के आभूषणों की चोरी की घटना से काफी चिंतित थे. उन्होंने हमारी शाखा को आदेश दिया कि वह इस मामले की समांतर जांच करे. परिणाम-स्वरूप सहायक आयुक्त श्री रणवीर लिखा, ज्येष्ठ पुलिस निरीक्षक श्री सदानंद परब, पुलिस-निरीक्षक श्री प्रभाकर सावंत और मैं घटनास्थल पर रवाना हुए. जब हम वहां पहुंचे तब श्री प्रभाकर खोत व श्री रमाकांत सिंह अपराध-स्थल का पंचनामा करने में व्यस्त थे. पुलिस फोटोग्राफर श्री काये, तथा उंगली-छाप-विशेषज्ञ श्री नारकर भी अपना-अपना काम कर रहे थे. पुलिस का सूंघकर अपराधी की टोह देने वाला प्रशिक्षित कुत्ता 'प्रिंस' भी प्रतीक्षा में था कि उसे कब खोज-कार्य में प्रवृत्त किया जाता है.

बंबई के एक नामी आभूषण-विक्रेता की दूकान से चोरी गये 17 लाख से अधिक के आभूषणों का पता लगाने और एक अन्य आभूषण-विक्रेता के उकसाने पर चोरी करने वाले दुःसाहसी चोरों को पकड़ने में पुलिस को ज्यादा वक्त नहीं लगा.

दूकान के बीचोबीच दीवार से लगा अतिथि-कक्ष था, जहां सोफा-सेट दिखाई दिया और उसके साथ ही दिखाई दिये प्लाईवुड के टुकड़े और आभूषणों की एक खाली पेटी. दूकान में एक ओर एक लोहे की अलमारी फर्श पर पड़ी थी. उसका हैंडिल टेढ़ा दिखाई पड़ रहा था जिससे ज़ाहिर था कि चोरों ने उसे खोलने का भीषण प्रयत्न किया था.

पेठे बिल्डिंग और उसके दक्षिण में स्थित सरस्वती बिल्डिंग के बीच में एक नाली बहती थी. वहां जाने पर हमने देखा कि दोनों बिल्डिंगों की बाहर की दीवारों को जगह-जगह से तोड़कर, उनमें अंदर जाने के लिए छेद बनाये गये थे. सोफा सेट के नीचे जो छेद थे, वे पंद्रह इंच से लेकर 8-10 इंच तक चौड़े थे. सेंध मारने के लिए चोरों ने यह स्थान सोच-समझ कर ही चुना होगा.

विठ्ठलभाई पटेल रोड पुलिस स्टेशन ने इस चोरी की रपट अपने रजिस्टर में क्रमांक 558170 के साथ भा.द.वि. की 454, 457 और 380 की धाराओं के अंतर्गत दर्ज की.

इस चोरी से कुछ समय पूर्व, बंबई के दो उपनगरों— दादर और बांद्रा— में क्रमशः अमृतलाल ब्रदर्स और जवाहरातों की एक दूकान में भी चोरी हो चुकी थी. लेकिन, इन दो स्थानों पर चोरों ने चोरी करने के जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरीके अपनाये थे, वे एक दूसरे से और इस चोरी में अपनाये गये तरीके से बिलकुल अलग थे. श्री लिखा, मैं और हमारे विभाग के श्री सहस्रबुद्धे इन तीनों मामलों की जांच से भी जुड़े हुए थे, और इन सब तरीकों से परिचित थे.

हमारे दल के सभी सदस्यों और विशेष रूप से मुझे पूरी आशा थी कि हम पेठे-दूकान से आभूषणों की चोरी का पता लगाने में अवश्य सफल होंगे, कारण हमें ऐसी चोरियों के चोरों को पकड़ने का पर्याप्त अनुभव था. मद्रास, बंगलूर, दिल्ली, कलकत्ता, आगरा आदि नगरों में जाकर हमने ऐसी चोरियां करने वाले अनेक चोरों का पता लगाया था. दादर में अमृतलाल ब्रदर्स की दूकान पर जो चोरी हुई थी, उसमें एक आरोपी को पकड़ने तथा चोरी का काफी माल उससे प्राप्त करने में भी हमें सफलता मिली थी.

मगर, पेठे के मामले में बंबई पुलिस को चोरों के अड्डे में पहली सेंध मारने का अवसर 2 अक्तूबर, 1981 को ही मिला, और वह भी बड़े अप्रत्याशित ढंग से.

सुबह के साढ़े छह बजे थे. लोकमान्य तिलक पुलिस थाने के सब-इंसपैक्टर श्री शिरोडकर अपने सहायकों के साथ गश्त पर थे कि महर्षि कर्वे रोड पर उन्होंने 24 वर्ष के एक युवक को संदेहास्पद स्थिति में घूमते हुए पाया. उन्होंने उसे पकड़कर उससे प्रश्न पूछने आरंभ कर दिये. उसने अपना नाम बताया— कन्नन आरोमगम. जब वह अन्य प्रश्नों के उत्तर संतोषजनक ढंग से नहीं दे सका, तो उसे थाने में लाया गया. वहां अपराध-प्रकटीकरण-शाखा के अनुभव प्राप्त श्री यशवंत जरठे ज्येष्ठ पुलिस-निरीक्षक के रूप में काम कर रहे थे. वे पेठे-मामले की जांच से भी जुड़े थे. कन्नन को देखकर उन्हें संशय हुआ कि पेठे की दूकान की चोरी के मामले में इस युवक का हाथ होना चाहिए. जब इस संशय की सूचना पुलिस-कमिश्नर श्री कसबेकर को दी गयी, तो उन्होंने कन्नन को अपराध-अन्वेषण-विभाग के सुपुर्द करने का आदेश दिया. 5 अक्तूबर 1981 को मैंने कन्नन से व्यापक पूछताछ आरंभ की. इस पूछताछ के परिणामस्वरूप, जो तथ्य सामने आये, वे इस प्रकार थे :

कन्नन व राजू उर्फ गोविंदराज इन दोनों किशोरों को 1968 में ज्यूवेनाईल कोर्ट, उमररवाड़ी कोर्ट के आदेशानुसार, सूसन डेविड इंडस्ट्रियल स्कूल, मांटुगा के सुधारगृह में भेजा गया था. लेकिन, इस सुधारगृह में रहकर भी वे अपने जीवन में कोई सुधार न ला सके थे. 1974 में दोनों को नासिक जेल की हवा खानी पड़ी. लेकिन, जेल से छूटने पर दोनों अपने-अपने रास्तों पर चले गये. 13 अगस्त, 1980 को दोनों की भेंट अचानक महर्षि कर्वे रोड पर स्थित सार्वजनिक मूत्रालय के निकट हुई. पेठे की दूकान में चोरी करने की योजना इसी मुलाकात के दौरान बनी. या, यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि राजू ने अपनी इस पूर्व-निर्धारित योजना में कन्नन को सम्मिलित करने की योजना इस मुलाकात के दौरान बनी.

इस योजना के अनुसार, दोनों एक पूर्व-निश्चित स्थान पर, 15 अगस्त, 1980 को रात के दस बजे मिले. दोनों ने दक्षिण भारतीयों की सी पोशाक पहन रखी थी. दोनों के कंधों पर ऐसे बोरे थे, जो सड़क से फालतू कागज बगैरह चीजों को जमा करने वाले लोग अपने साथ रखते हैं. मरीन ड्राइव से पैदल चलते-चलते वे चर्नी रोड स्टेशन के पुल को पार कर ठाकुरद्वार के नाके पर, जहां पेठे की दूकान थी, आये. उस समय रात के ग्यारह बजे थे. उस इलाके में, उस समय स्वाधीनता-दिवस के कई कार्यक्रम बड़ी धूमधाम से मनाये जा रहे थे. कई लाउडस्पीकरों से आती हुई गानों की आवाज ने वातावरण में फैले शोर को और ज्यादा बढ़ा दिया था. सेंध मारकर, चुपचाप किसी इमारत में प्रवेश करने के लिए 'आदर्श वातावरण' था.

पेठे बिल्डिंग और उसके पास की सरस्वती बिल्डिंग के बीच की नाली में प्रवेश करके दोनों ने पाया कि नाली इतनी संकरी है कि उसमें एक बार में एक आदमी ही चल सकता है और मोटे पाइपों की वजह से उस एक आदमी को भी अपने को काफी संभालकर चलना पड़ेगा. उनकी किस्मत से नाली में घुप्प अंधेरा था क्योंकि दोनों इमारतों की बत्तियां बुझ चुकी थीं.

पेठे की दूकान में सेंध लगाने का काम राजू ने किया. जब दूकान में प्रवेश करने लायक छेद बन गया तो राजू ने कन्नन से दूकान के अंदर जाने को कहा.

टॉर्च के प्रकाश में कन्नन ने जब सोने-चांदी के चमकीले ज़ेवरों से भरी दूकान के दर्शन किये, तो उसकी आंखें चकाचौंध हो आयीं. मगर इन ज़ेवरों को पाने में एक कठिनाई थी. वे जिन शोकेसों में बंद थे, उन पर ताले लगे हुए थे. कन्नन ने सोफे के पास आकर इस समस्या के बारे में राजू को बताया. राजू ने उससे कहा कि वह शोकेस तोड़कर उनमें से ज़ेवर निकाल लें. शोकेस तोड़कर ज़ेवर वह उस मोटे कपड़े में रखने लगा, जो राजू ने उसे दिया था. जब वह भर जाता, तो वह कपड़े में गांठ बांधकर राजू को दे देता. राजू ज़ेवरों को बोरों के हवाले करता और खाली कपड़ा कन्नन को दे देता. यह क्रम ढाई-तीन घंटे तक चलता रहा अर्थात् तीन बजे तक. तब तक शोकेस आभूषणों से खाली हो चुके थे.

जब कन्नन दूकान से बाहर आया तो उसने देखा कि राज ने सारे ज़ेवर एक ही

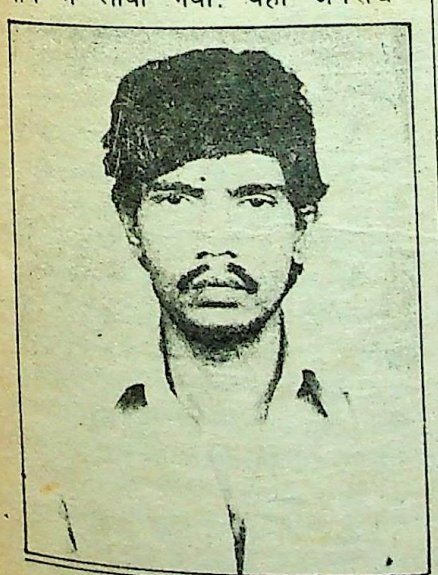

अभियुक्त कन्नन

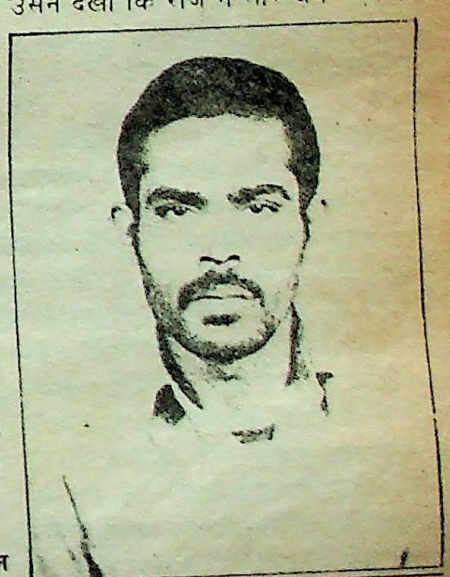

बंबई गोविंदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोरे में भर दिये हैं, जिससे बोरा बहुत ज्यादा भारी हो गया है. उसने राजू से कहा कि वह आधे ज़ेवर दूसरे बोरे में रख दे, मगर राजू ने उसकी बात न मानी. इतना ही नहीं, उसने कन्नन की तलाशी लेकर वे ज़ेवर भी अपने बोरे के हवाले कर दिये जो उसने अपने कपड़ों में छिपा लिये थे. कन्नन समझ गया कि ज़ेवर का बोरा खुद राजू ही उठायेगा और उसे किसी ज़ेवर के हाथ भी नहीं लगाने देगा. उसका काम जो हो गया है. वह काफी निराश था.

दोनों चर्नी रोड स्टेशन पर आये, और बोरिवली जाने वाली एक लोकल में सवार हुए. सुबह का वक्त था, और सारा डिब्बा खाली पड़ा था. राजू ने ज़ेवरों से भरा एक बोरा एक सीट के नीचे रखकर, कन्नन को उस सीट पर बैठने को कहा, और खुद एक दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया.

माहिम स्टेशन पर दोनों उतरे. ज़ेवरों की बोरी राजू ने अपने कंधों पर ही रखी, कन्नन को उसने कागजों की ही बोरी उठाने को दी. प्लेटफार्म पर प्रायः 42 वर्ष आयु का एक आदमी, जो कन्नन को मारवाड़ी जैसा लगा, खड़ा था. राजू को देखते ही वह उसके पास आया, और तीनों एक साथ माहिम स्टेशन से बाहर आये. बाहर सेनापति बायट मार्ग पर एक टैक्सी खड़ी थी. इन तीनों को देखकर टैक्सी ड्राइवर टैक्सी से बाहर आया, और डिकी खोलकर ज़ेवरों की बोरी राजू से लेकर उसमें रख दी. मारवाड़ी टैक्सी-ड्राइवर के पास बैठा, और कन्नन और राजू पीछे. राजू ने जेब से कुछ ज़ेवर निकालकर उन्हें दिखाये और कहा, "सारे ज़ेवर करीब सात लाख के होंगे." मारवाड़ी चुप रहा.

टैक्सी तेजी से दौड़ने लगी, और वकोला होती हुई कुर्ला आयी.

जब कुर्ला पाइप लाइन खत्म हो गयी तो टैक्सी-ड्राइवर ने एक बिजली के खंभे के पास टैक्सी रोकी. राजू टैक्सी से बाहर आया और उसने एकांत में टैक्सी ड्राइवर और मारवाड़ी जैसे आदमी से कुछ बातें कीं. इसके बाद, राजू ने कन्नन को टैक्सी से बाहर बुलाया और कहा, "तुमने पेठे की दूकान से जो छह हजार रुपये नगद लिये थे, वह ले लो और अभी कुछ देर बाद तुम्हें दस हजार और मिल जायेंगे. इस रकम को लेकर आज ही मद्रास के लिए रवाना हो जाओ और फिर कभी बंबई न आना."

आधे घंटे के अंदर दस हजार के नोटों की गड्डियां कन्नन को मिल गयीं. सोलह हजारी की नगद राशि के अलावा, उसने कुछ ज़ेबर भी बोरे में से निकालकर, कपड़ों में छिपा लिये थे जिनके बारे में राजू को पता न था. उसे खुद मद्रास जाने की जल्दी थी, लेकिन मद्रास जाने से पूर्व वह प्रिन्सेस स्ट्रीट के फ्लाई ओवर के नीचे रहने वाले अपने पुराने साथियों को बासमती चावल और मटन की शानदार पार्टी देना न भूला. उनसे विदा लेते समय वह उन्हें कुछ ज़ेवर भी उपहार में देना न भूला. बाद में, कन्नन के कहने पर वरिष्ठ पुलिस निरीक्षक श्री यशवंत तरटे ने ये ज़ेवर इन लोगों के पास से प्राप्त किये.

यह पूछे जाने पर कि राजू उसे पिछली बार कब मिला था, उसने कहा, "कुर्ला में ही आखिरी मुलाकात हुई थी, जब उसने मुझे सोलह हजार रुपये दिलवाये थे."

अब बंबई की पुलिस राजू के अलावा उस मारवाड़ी को भी खोजने में लग गयी. जिसे राजू ने ज़ेवर सौंपे थे. कुर्ला में जिन जिन मारवाड़ियों की आभूषणों की दुकानें थीं, वहां कन्नन के ले जाया गया, लेकिन उस मारवाड़ी का, जिसे कन्नन ने देखा था कहीं पता न लगा. अन्य स्रोतों के माध्यम से किये गये प्रयास भी विफल रहे.

राजू का पता जानने के लिये पुलिस-अधिकारियों ने 1975 के बाद के काल में बंबई में पकड़े गये सब अपराधियों के विवरण छान मारे, तब कहीं जाकर पता चला कि राजू उर्फ गोविंदराज रामचंद्र नामक अपराधी ने, जो जुहू गली की झोंपड़पट्टी में रहता था, सेंध मारकर एक

लेखक व जांच अधिकारी पुलिस निरीक्षक

घर में चोरी की थी. जब उसका फोटो कन्नन को दिखाया गया तो उसने राजू को पहचान लिया. जब जुहू गली की झोंपड़पट्टी में राजू का पता न चला तो उसके मूल पते की खोज की गयी, जो अपर्याप्त था. पता था— सालेम पेठ, बंगलूर. अंत में, इस शोध से जुड़े पुलिस-अधिकारियों की सहायता से राजू को खोजने का निश्चय किया.

रात के साढ़े आठ बजे. 15 अक्तूबर, 1981. दल के सदस्य मद्रास स्टेशन पर उतरे. अगले दिन, उन्होंने मद्रास नगर के श्री गुरुस्वामी पुलिस उप आयुक्त (अपराध शाखा) से संपर्क किया. उन्होंने इस दल की सहायता के लिए अपने असिस्टेंट इंसपेक्टर श्री रेतुकुमार को उनके साथ कर दिया. श्री रेतुकुमार की सहायता से 'चिताद्रि पेठ' के गरीब बच्चों से एक सोने की अंगूठी व दो ईयररिंग, जो उन्हें कन्नन ने दिये थे, बरामद किये. 17 अक्तूबर को दल के सदस्यों ने कन्नन की बहन सूर्या जोधी से भेंट की. उसने स्वीकार किया कि कन्नन ने उसे दस हजार रुपये उसके बच्चों की शिक्षा के लिए दिये थे. सूर्या की पहचान के जिस व्यापारी के पास कन्नन ने कुछ ज़ेवर गिरवी रखे थे, वे भी पुलिस ने व्यापारी से ले लिये.

कन्नन ने जितना काम निकल सकता था, वह निकालकर, इस दल ने उसे 'पी-1 पुलिस थाने' की कच्ची कैद में रखकर, राजू को सेलम जाकर पकड़ने का कार्यक्रम बनाया. दल के सदस्य 18 अक्तूबर को दोपहर एक बजे बस से रवाना हुए और रात के नौ बजे सेलम पहुंचे. वे पर्यटकों की वेशभूषा में थे और जानबूझकर सब के सामने अपने 'केस' के बारे में बात नहीं कर रहे थे. सेलम पहुंचकर, सदस्यों ने तमिलभाषी चालक मूर्ति को ओमलुर तालुका का पन्नापट्टी गांव कहां है, यह जानने के लिए भेजा. मूर्ति ने आकर सूचना दी कि पन्नापट्टी गांव दियाट्टीपट्टी पुलिस थाने के क्षेत्र में आता है. सेलम से यह गांव 40 किलोमीटर के फासले पर था.

दल के सदस्यों ने एक प्राइवेट कार किराये पर ली, और उसमें सवार होकर पन्नापट्टी गांव में पहुंचे. वहां उन्होंने दूर से राजू का घर देखा और निश्चय किया कि रात को स्थानीय पुलिस की सहायता से घर पर छापा मारेंगे.

इस बीच, जब वे एक उपाहार-गृह में चाय पी रहे थे. तब मूर्ति ने एक ऐसे व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पहचान की, जो पन्नापट्टी गांव से लोगों से अच्छी तरह परिचित था. उसने पुलिस की सहायता करने का आश्वासन दिया. उस व्यक्ति ने दल के सदस्यों से कहा कि वे उसे कुछ देर बाद दिवाट्टीपट्टी पुलिस स्टेशन से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित स्टेट बैंक के पास मिलें.

जब वह इस दल के सदस्यों को नियत समय पर स्टेट बैंक के पास मिला तो श्री गंगाधर शिंदे को उसे देखते ही विश्वास हो गया कि इस व्यक्ति पर विश्वास किया जा सकता है. जब उसे राजू का फोटो दिखाया गया तो उसने उसे देखते ही कहा, "अरे, यह तो अपना 'बंबई गोविंदन्' है!" उसने बताया कि वह (बंबई गोविंदन्) जब भी बंबई से आता है, काफी ज़ेवर और नगदी लेकर आता है, और उसकी पत्नी सदा ज़ेवरों से लदी रहती है, उसने बताया कि 'बंबई गोविंदन्' पलामट्टी की कागीयामूर बस्ती में रहता है.

दिवाट्टीपट्टी थाने के मुख्याधिकारी सब-इंसपेक्टर गुणसागरम् तथा उनके हवलदार रामस्वामी और एक-दो सिपाहियों के साथ दल के सदस्यों ने रात के दो बजे के करीब राजू के घर पर छापा मारा. पर निराशा ही हाथ लगी. कारण राजू उर्फ 'बंबई गोविंदन्' गया हुआ था. उसके घर के पास ही उसकी ससुराल थी, लेकिन वहां भी तलाशी लेने पर कुछ न मिला.

अगले दिन दल के सदस्य सेलम के होटल से एक कार द्वारा पानापट्टी की ओर रवाना हुए. रास्ते में चालक मूर्ति ने एक झाड़ के पास सरघुटे दंपति को बैठे देखकर कहा, "शायद यह राजू और उसकी पत्नी हैं. तिरुपति से सर घुटाकर लौटे हैं." श्री शिंदे और उनके सहायकों ने यह विश्वास हो जाने पर कि वे ही राजू-दंपति हैं, दोनों को गिरफ्तार कर लिया, और उन्हें अपने साथ लेकर उन के घर आये. राजू के सामने अपना अपराध कबूल करने के अलावा कोई और चारा न था. उसने कुछ ज़ेवर भी पुलिस को दिखाये, जो उसने घर में छिपा रखे थे. उन सब पर वी.एच.पी. (वामन हरि पेठे) शब्द अंकित थे. इन सबका पंचनामा करके, पुलिस ने उन्हें अपने अधिकार में ले लिया.

राजू उर्फ 'बंबई गोविंदन्' ने पुलिस के सामने यह भी स्वीकार किया कि कन्नन के जाने के बाद उसने चोरी का माल विलेपार्ले (पू) स्थित मनसुख ज्वेलर्स की दूकान के सुपुर्द किया था. इस सूचना के आधार पर श्री शिंदे ने बंबई के सहायक पुलिस आयुक्त श्री रणवीर लिखा को फोन से सूचित किया वे इस दूकान की तलाशी लेने की व्यवस्था करें. इसके बाद, उन्होंने राजू को जुडीशियल मैजिस्ट्रेट कोर्ट नं. 2, सेलम के सामने पेश किया, जहां उसे 26 अक्तूबर, 1981 तक पुलिस कोठरी में रहने का आदेश मिला.

मामले की पूरी तहकीकात करने के बाद पुलिस ने 1 फरवरी, 1982 को अभियुक्त राजू उर्फ 'बंबई गोविंदन्', कन्नन, लक्ष्मीलाल, नानालाल, मदनलाल जैन व सेलुराज के विरुद्ध सिटी मैजिस्ट्रेट, 23वें कोर्ट, एस्प्लेनेड में आरोप-पत्र दाखिल किये. 21 मार्च, 1983 को कोर्ट से कन्नन को दो वर्ष और एक हजार रुपये जुर्माने, और राजू को (जो जमानत पर जाकर फरार हो गया था लेकिन दुबारा पकड़ा गया) को ढाई वर्ष का कारावास और तीन हजार जुर्माने की सजा मिली. □

(महाराष्ट्र राज्य पुलिस मुख्यालय की विशेष अनुमति से 'दक्षता' के दिसंबर, 1987 अंक में प्रकाशित एक सत्यकथा पर आधारित प्रस्तुति)

अपराध कथा : दो

नटेश्वर

पद्माकर मलकापरे

महाराष्ट्र के इतिहास में यह अपने ढंग का पहला मुकद्दमा है. क्या विशेषता थी इस मुकद्दमे में!

वणी (महाराष्ट्र) तालुका में वणी से नायगांव जाने वाली सड़क पर शिरपुर गांव के पास ऊकणी नाम का एक गांव है. इस गांव में मुडे-परिवार के लोग कई पीढ़ियों से कृषि-व्यवसाय में लगे थे. इस परिवार के प्रमुख थे— श्री हरबाजी मुडे, जिन्होंने पहल करके अपने बेटे को स्कूल की शिक्षा दिलायी थी. इस शिक्षा तथा गांव में मुडे-परिवार की पुरानी प्रतिष्ठा के बल पर, उसे पंचायत समिति के कार्यालय में ग्राम-सेवक की नौकरी मिल गयी थी. सन् 1968 में उसका विवाह सरोदे-परिवार की कन्या लता से हुआ.

कुछ समय बाद, लता ने दो पुत्रियों को जन्म दिया. नौकरी तथा कृषि से होने वाली आय इस छोटे से परिवार के, जिसके सदस्य थे, गोपाल, लता, गोपाल की विधवा मां, और दो छोटी पुत्रियां, भरण-पोषण के लिए काफी थी. परिवार के सदस्यों को कोई विशेष अभाव नहीं था.

लेकिन, न जाने कैसी सोहबत के असर से गोपाल को 'वरली मटका' खेलने का व्यसन लग गया. हर जुआरी की तरह गोपाल भी चाहता था कि एक ही बार में हजारों के वारे न्यारे हो जायें. इसलिए वह आगे चल कर, अपनी तनख्वाह की ज्यादातर रकम के अलावा वह रकम भी मटके में लगाने लगा जो वह घर-पट्टी (गांव के घरों का किराया) आदि मदों में लोगों से वसूलता था.

धीरे-धीरे यह रकम बढ़कर इतनी ज्यादा हो गयी कि गोपाल को लगा कि वह अपनी सीमित आय तथा सीमित साधनों से उसकी भरपाई नहीं कर पायेगा. और तब उसे जेल जाना पड़ेगा, नौकरी से बर्खास्त होना पड़ेगा और गांववालों की हिकारत की नजरों का शिकार होना पड़ेगा. इस अपमानजनक स्थिति से बचने के लिए उसने एक आसान सा तरीका खोज निकाला.

एक दिन वह, बिना किसी को कुछ बताये, सन् 1978 में अपने घर से गायब हो गया.

गोपाल की पत्नी लता मुडे को पति के इस प्रकार, कोई पूर्व-सूचना दिये बिना, लापता हो जाने की अप्रत्याशित घटना से दुख तो बहुत हुआ, लेकिन उसने धीरज न खोया. वह मेहनत करके अपनी सास अंजनाबाई मुडे और दो पुत्रियों— मंजूषा और वर्षा— का पेट पालने लगी. उसकी सास धार्मिक वृत्ति की थी, और उसका विश्वास था कि साधु-संतों की सेवा करने से उनके आशीर्वाद से उसका गोपाल वापस लौट आयेगा. अतः वह जो भी साधु दिखाई दे जाता, उसे घर बुला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माईबाई

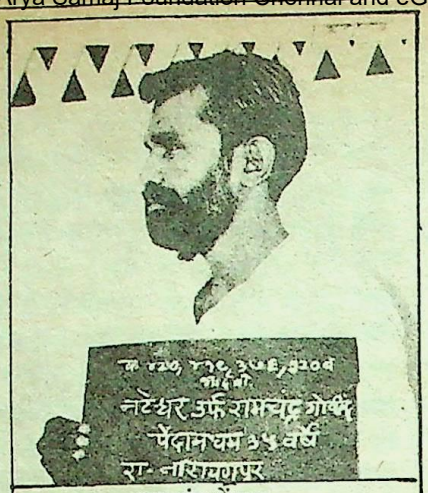

रामचंद्र पेंदाम

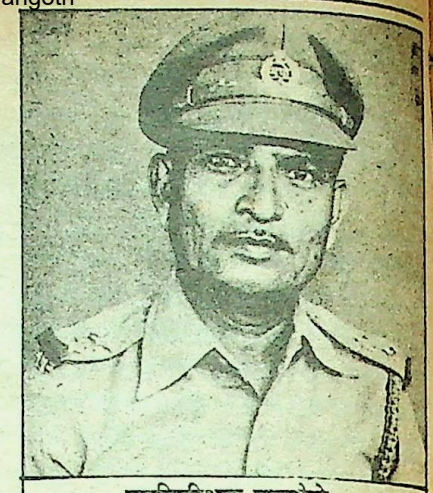
उपनिरीक्षक फूलझेले

लाती और उसकी खूब सेवा करती. कभी-कभी लता भी इस कार्य में उसकी सहायता करती.

इस बीच संयोग से लता को गांव में ही एक नौकरी मिल गयी. एकात्मिक बाल विकास योजना के अंतर्गत शिरपुर में अंगणवाड़ी प्रकल्प आरंभ हुआ और उसमें लता प्रशिक्षण प्राप्त कर एक शिक्षिका के रूप में कार्य करने लगी. प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्राचार्य लता की परिस्थिति से भली भांति परिचित थे इसलिए सदा उसके साथ सहानुभूति का व्यवहार करते थे. उन्होंने अपने एक परिचित ज्योतिषी से लता के पति के पुनरागमन की संभावना के बारे में पूछा तो ज्योतिषी ने अपना हिसाब लगाकर उन्हे बताया कि गोपाल के मार्च, 1984 तक वापस घर लौटने की पूरी संभावना है. प्राचार्य से यह भविष्यवाणी सुनकर लता को काफी संतोष हुआ. तब से वह स्वयं भी साधु-संतों और ज्योतिषियों का समागम तथा उनकी सेवा करने लगी.

तभी ऊकणी गांव में 'माईबाई' (जुलजाबाई) नाम की एक भक्तिन का आगमन हुआ. वह अपना समय भजन-पूजन में लगाती थी और गांव के लोग धीरे-धीरे उसे एक देवी की तरह पूजने लगे. एक दिन वह सुबह ही सुबह लता के घर आयी और उससे कहने लगी, "तुम्हारा पति गोपाल मुझे आलंदी (महाराष्ट्र का एक तीर्थ-स्थल) में मिला था. उसने मुझे बताया था कि उसे घर छोड़े 7-8 वर्ष हो गये. तुम कहो तो मैं उसे तुम्हारे पास ला सकती हूं." साधुओं और भक्तिनों पर अंधश्रद्धा करनेवाली लता और उसकी सास ने उसकी बात पर सहज ही विश्वास कर लिया. अब वे गोपाल के 'माईबाई' के साथ आने की प्रतीक्षा करने लगीं.

इस घटना के छह महीने बाद एक दिन सुबह ग्यारह बजे के करीब साइकिल पर सवार दो युवक– महादेव मेश्राम और बलीराम सोनवणे– लता के घर आये और उसे बताया कि 'माईबाई' गोपाल को लेकर आयी हैं और वणी के नटेश्वर मंदिर में ठहरी हैं. लता अंगणवाड़ी के काम से जाने वाली ही थी. वह अपनी सास को साथ लेकर वणी पहुंची. उसने अपनी सास को नटेश्वर के मंदिर के पास छोड़ा और स्वय अपना काम पूरा करने के लिए अंगणवाड़ी के कार्यालय में गयी.

नटेश्वर के मंदिर में हाथ में त्रिशूल लिये और लुंगी-शर्ट पहने एक जटाधारी युवक की ओर इशारा करके 'माईबाई' लता की सास से बोली, "यही है तुम्हारा गोपाल! जाओ, उसे लेकर अपने घर जाओ और सुख से रहो." अंजनाबाई को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ, कारण गोपाल की आकृति और इस जटाधारी युवक की आकृति में कोई साम्य नहीं था. लेकिन, 'माईबाई' यही कहती रही, "यही गोपाल है! तुम्हारे पहचानने में चूक हो रही है." इतना ही नहीं, वह दोनों को धकेलती हुई, बस-स्टैंड तक भी ले आयी, ताकि वे सब ऊकणी जाने वाली बस से ऊकणी जा सकें.

इस बीच ऑफिस का अपना काम पूरा करके लता भी बस स्टैंड पर आ गयी थी. जब उसे 'माईबाई' ने बताया कि यह जटाधारी युवक ही उसका पति गोपाल है तो उसे यह बात अविश्वसनीय लगी उसका संदेह तब और बढ़ गया जब उसने जटाधारी युवक से उसका नाम पूछा और उसने गोपाल के स्थान पर गोपाल के पिता हरबाजी का नाम बताया. मगर, 'माईबाई' ने उसे अपने संदेह व्यक्त करने का अवसर ही नहीं दिया और यही कहती रही, "यही तुम्हारा गोपाल है. उसे साथ लेकर अपने घर जाओ.

रास्ते में अंजनाबाई ने 'माईबाई' से कहा, "देखो माईबाई, हम दोनों को तो कतई विश्वास नहीं है कि यही युवक गोपाल है. किंतु यदि गांववालों ने इसे गोपाल मान लिया तो हम दोनों भी इसे गोपाल स्वीकार कर लेंगे." ऊकणी गांव के उन लोगों ने, जिन्होंने गोपाल को छुटपन से देखा था, जटाधारी युवक को गोपाल मानने से इंकार कर दिया लेकिन जब 'माईबाई' उसे ही गोपाल बताती रही तो वे लोग चुप हो गये. वे भक्तिनी में बहस से नहीं उलझना चाहते थे. अब इस तथाकथित गोपाल की हकीकत के बारे में शंका-कुशंका करने वाला कोई न रहा. वह अब लता के पति और अंजनाबाई के पुत्र के रूप में सानंद घर में रहने लगा. लता के शरीर का सुख भी उसने अनेक रातों में प्राप्त किया.

लता के जन और मन पर अपने अधिकार का सिक्का जमाने के बाद, अब इस नकली गोपाल ने धीरे-धीरे अपना असली रूप दिखाना आरंभ किया. लता और अंजनाबाई को अक्सर उसके एक इरादे के बारे में सुनने को मिलने लगा. परिवार के पास 35 एकड़ कृषि-भूमि थी. नकली गोपाल उसमें से दस एकड़ जमीन अपने नाम करने की जिद बार-बार करने लगा. उसकी इस विचित्र और संदेहास्पद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांग ने लता और अंजना दोनों की शंकाओं को पुनर्जीवित कर दिया. दोनों उसकी मांग की उपेक्षा करती रहीं. उन्होंने कभी उसे गंभीरता से नहीं लिया.

उनकी इस उपेक्षा से नकली गोपाल का गुस्सा-भड़कने लगा. उसने एक दिन दोनों से एक सादे स्टैंप-पेपर पर सही करने को कहा. कहा क्या, सीधा हुक्म ही दे डाला. स्टैंप-पेपर पर कुछ भी लिखा हुआ नहीं था. दोनों ने हस्ताक्षर करने से साफ इंकार कर दिया. अब उन दोनों को शत प्रतिशत विश्वास हो गया कि उनके साथ कपट करके रहने वाला यह युवक किसी भी हालत में गोपाल नहीं हो सकता.

सीधी उंगली से घी न निकलते देखकर, नकली गोपाल ने अब रौद्र रूप धारण किया और दोनों को खुले आम धमकी देने लगा कि दस एकड़ जमीन उसके नाम न की गयी तो वह दोनों के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देगा. गांव वालों को भी वस्तुस्थिति का पता चलने लगा. उनकी सहानुभूति लता व अंजना के साथ थी. घर में अपना ही दूध पीकर पल रहे आस्तीन के सांप को नष्ट करने के उद्देश्य से एक दिन अंजनाबाई ने नकली गोपाल के विरुद्ध शिकायत गांव के पुलिस पाटिल के पास कर दी. इस बीच, लता ने नकली गोपाल की धमकियों से बचने के लिए अपने भाई को अपने पास बुला लिया, ताकि वह जरूरत पड़ने पर उसके प्राणों की रक्षा कर सके.

गांव के कई प्रमुख व्यक्तियों ने मामले को शीघ्रता से आगे बढ़ाने के उद्देश्य से 26 अगस्त, 1984 को शिरपुर के थाने में नकली गोपाल के विरुद्ध शिकायत दर्ज करायी. थानेदार श्री फूलझेले ने मामले से संबंधित सब व्यक्तियों से मिलकर सच्चाई को जानने का प्रयास किया. मामला चूंकि महत्वपूर्ण था इसलिए उन्होंने उसकी सूचना जिला यवतमाल के पुलिस अधीक्षक श्री सुभाषचंद्र गाढ़े को भी दी. श्री गाढ़े ने मामले के सब पक्षों पर सावधानीपूर्वक विचार करके श्री फूलझेले को आवश्यक निर्देश दिये, जिनके आधार पर श्री फूलझेले ने शिरपुर पहुंचकर, मामले की छानबीन का काम आगे बढ़ाया.

सबसे पहले उन्होंने 2 सितंबर को थाने में श्रीमती लता मुडे का बयान दर्ज किया. उस अवसर पर लता के भाई श्री रमेश सरोदे (नागपुर) तथा गांव के अनेक पराने

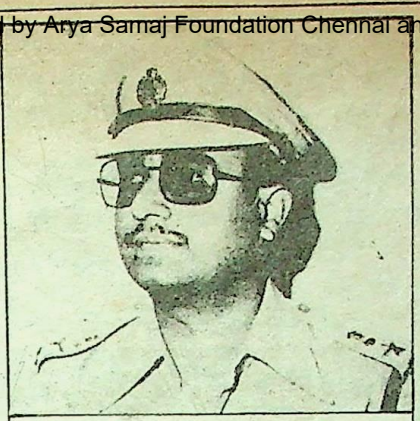

रामचंद्र गाढे,
जिला पुलिस अधीक्षक यवतमाल

न्यायमूर्ती एस्. जे. देशमुख,

प्रतिष्ठित लोग भी मौजूद थे जिन्होंने लता के इस वक्तव्य की पुष्टि की कि उसके घर में रहने वाला युवक गोपाल नहीं है.

इस बयान के आधार पर श्री फूलझेले ने गांव के लोगों से अलग-अलग पूछताछ आरंभ की. श्री एकनाथ कुचनकार नाम के एक व्यक्ति से उन्हें एक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई. उन्होंने थानेदार साहब को बताया कि गोपाल मुडे बनकर लता के घर में बैठा हुआ युवक वास्तव में पास के कोना नामक गांव में इसबगोल औषधि बेचा करता था. उसका नाम रामचंद्र था. यह जानकारी प्राप्त कर वे कोना गांव की ओर रवाना हुए, जहां दो प्रतिष्ठित गांववासियों– श्री भगवान हनुमंते तथा श्री बोधणे ने उन्हें रामचंद्र के बारे में और अधिक जानकारी प्रदान की. उनसे यह जानकर कि वह मूलतः वर्धा जिले की हिंगणघाट तहसील के नारायणपुर गांव का रहने वाला है, वे 3 सितंबर को उस गांव में पहुंचे. वहां उन्होंने जैसे ही सरपंच श्री विठ्ठल सदाशिव पुसदेकर से रामचंद्र नाम के युवक के बारे में पूछा तो उन्होंने रामचंद्र की सारी कुंडली ही जैसे बखान कर दी. सरपंच ने रामचंद्र की जो जानकारी दी, वह इस प्रकार थी :

उसका पूरा नाम रामचंद्र गोविंदा पेंदाम था, और वह गोंड नाम की आदिवासी जाति का एक सदस्य था. उसके पास तीन एकड़ कृषि-भूमि थी. भूदान-आंदोलन के दिनों में उसे पांच एकड़ जमीन और मिली थी. इस प्रकार, वह कुल मिलाकर 8 एकड़ जमीन का मालिक था. उसने अपनी सारी जमीन ठेके पर दे रखी थी, लेकिन उससे होने वाली आमदनी उसके लिए पूरी नहीं होती थी, क्योंकि उसके दो पत्नियां थीं. नारायणपुर के एक प्रतिष्ठित निवासी श्री यशवंत भोयर के घर उसने अपने दो साथियों की मदद से ज़ेवरों की चोरी की थी. उसने गांव का एक घर एक साथ तीन व्यक्तियों को बेचने का दुःसाहस भी दिखाया था.

नारायणपुर के सरपंच श्री पुसदेकर तथा एक अन्य प्रतिष्ठित निवासी श्री ज्ञानेश्वर खामनकर के रामचंद्र पेंदाम विण्यक बयान लेकर, सब इंसपेक्टर श्री फूलझेले वापस जीप से ऊकणी आये, और वहां के सरपंच श्री अंड़सकर तथा सर्वश्री बालकृष्ण लाड, पांडुरंग बोरबे, नत्थूजी बालकी के बयान लेकर रामचंद्र पेंदाम को गिरफ्तार किया.

पेंदाम की गिरफ्तारी के बाद, 'माईबाई' (तुरजी महादेव जूमनाके) तथा दोनों साइकिल सवारों को पकड़ने में इंसपेक्टर फूलझेले को विशेष कठिनाई नहीं हुई. इन चारों के विरुद्ध पुलिस ने यवतमाल के अतिरिक्त एवं जिला सत्र न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री एम.जी. देशमुख के न्यायालय में मुकद्दमे चलाये. मुख्य आरोपी रामचंद्र पेंदाम उर्फ गोपाल उर्फ नटेश्वर पर, भारतीय दंडविधान की 419, 420, 376 व 120 धाराओं के अंतर्गत नकली पति बनकर लता मुडे को फंसाने और उसकी 10 एकड़ जमीन हड़पने का प्रयास करने के अपराध थे तथा अन्य तीन आरोपियों पर इस षड्यंत्र में सम्मिलित होने का.

'महाराष्ट्र के इतिहास में अपने ढंग का यह पहला मुकद्दमा' (एक समाचारपत्र के अनुसार) 8 अगस्त, 1985 को आरंभ हुआ, और 1 सितंबर को समाप्त हुआ. मुकद्दमे की सुनवाई के दौरान 10 प्रमुख साथियों ने अपने बयान दिये. रोज मुकद्दमे की सुनवाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दौरान हजारों उत्सुक दर्शक और पत्रकार उपस्थित रहते थे. सरकारी पक्ष के अधिवक्ता थे– एडवोकेट श्री सुरेश बोरा.

न्यायमूर्ति श्री देशमुख ने दोनों पक्षों के बयानों और तर्कों को बड़े धैर्य और सावधानी के साथ सुनकर अपना निर्णय सुनाया, जिसके अनुसार, रामचंद्र पेंदाम और 'माईबाई' (तुरजी महादेव जूमनाके) को 3-3 वर्ष का सश्रम कारावास का दंड सकने की स्थिति में 6 महीने का कारावास. दोनों साइकिल-सवारों को न्यायमूर्ति ने निर्दोष मुक्त कर दिया.

अपने निर्णय में न्यायमूर्ति श्री देशमुख ने पुलिस की उस कार्यनिष्ठा व तत्परता की भरपूर प्रशंसा की जिसके बल पर उसे अंधश्रद्धालुओं का शोषण करने वाली स्वार्थी तथा समाज-विरोधी तत्वों को शीघ्र पकड़ने में सफलता मिली.

जिस कुशलता और सामर्थ्य के साथ एडवोकेट बोरा ने अभियोग-पक्ष की ओर से तर्कपूर्ण दलीलें प्रस्तुत कीं, उनकी भी न्यायमूर्ति महोदय ने विशेष प्रशंसा की. □

महाराष्ट्र राज्य पुलिस मुख्यालय की विशेष अनुमति से 'दक्षता' के दिसंबर 87 अंक में प्रकाशित एक सत्यकथा पर आधारित.

अपराध कथा : तीन

मंहगा चुंबन

□ अनतंराव पूर्णपात्रे

रात के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे का समय. चारों ओर पूर्ण शांति व स्तब्धता व्याप्त थी. तभी, उन दोनों घरों में से एक के अंदर से एक वृद्ध महिला के जोर से चिल्लाने और गालियां बकने की आवाजें सुनाई देने लगीं.

"जाड़ों के दिन थे. जिस कमरे में वृद्धा सोयी थी, उसमें अंधेरा छाया था. ठंड से बचने के लिए उसने अपने मुंह पर चादर ओढ़ रखी थी.

सहसा, किसी ने चुपके से आकर उसके मुंह से वह चादर हटा दी और धड़ाधड़ उसके होंठों और गालों को चूमने लगा. वृद्धा के चिल्लाने पर चुंबन लेने वाला तरुण स्तब्ध रह गया और एक-दो मिनट तक वह मूक और हतबुद्धि खड़ा रहा. जब वह इस मनःस्थिति से उबरा, तब उसकी समझ में आया कि चूक में उसने कैसा भयंकर करतब कर दिया है. स्थिति की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए उसने चुपचाप उसी दरवाजे से, जिससे वह अंदर आया था, बाहर जाने की कोशिश की, लेकिन नाकामयाब रहा. कारण, तब तक वृद्धा की चीख-चिल्लाहट सुनकर मुहल्ले के सब लोग उसके घर के द्वार पर जमा हो गये थे. अब उसके लिए भागकर अपनी जान बचाना भी कठिन हो गया.

अगले क्षण उसने पाया कि लोगों ने उसे घेर लिया है. पहले तो लोगों ने समझा था कि वह कोई चोर है और चोरी करने आया था. लेकिन जब बृद्धा बार-बार सबको सुनाकर यह बताने लगी कि उसने उसके मुंह से चादर हटाकर उस पर चुंबनों की वर्षा की थी तो कुछ लोगों ने वृद्धा की बात पर विश्वास नहीं किया. लेकिन वृद्धा उस तरुण को पुलिस थाने ले जाने के लिए जोर दे रही थी.

पुलिस थाने का नाम सुनकर तरुण वृद्धा के पांव पड़कर उससे क्षमा मांगने लगा लेकिन उसकी क्षमा-याचना का क्रुद्ध वृद्धा पर कोई प्रभाव नहीं हुआ. उसने मुहल्ले के उन लोगों की भी एक न सुनी जो बार-बार उससे कह रहे थे, "जाने भी दो दादी! गलती हो गयी बेचारे से. माफ़ कर दो." और जब उसके पड़ोस में रहने वाली एक युवती ने भी उस तरुण को क्षमा कर देने के लिए वृद्धा से कहा, तो वृद्धा ने कहा, "तू चुप रह. मुझे सिखाने की कोशिश मत कर. अपना काम कर."

तरुण को जब पुलिस स्टेशन ले जाया गया तो वहां के अधिकारी ने तरुण को देखते ही उस पर गालियों क बौछार शुरू कर दी. थाने के सब लोग वहां जमा हो गये. उन्हें सुनाते हुए उस अधिकारी ने कहा, "साले ने पुलिस विभाग की इज्जत धूल में मिला दी!" तब कहीं जाकर सब लोगों को पता चला कि तरुण पुलिस कर्मी है.

मैं चूंकि सरकारी वकील था, इसलिए यह मामला मेरे पास आया. मैं तरुण का विरोधी वकील बना. एक पुलिसकर्मी के विरुद्ध मुकद्दमा दायर करते हुए मुझे अच्छा तो नहीं लग रहा था लेकिन एक पुलिस प्रॉसीक्यूटर होने के नाते मैं लाचार था.

लेकिन मुकद्दमे से पूर्व, मैं यह जानने के लिए उत्सुक था कि आखिर उसने ऐसा अशोभनीय कृत्य और वह भी एक वृद्धा के साथ क्यों किया! शायद थाने के सब-इंसपैक्टर को वास्तविक कारण मालूम हो. इसलिए एक दिन मैं सुबह ही सुबह उसके घर पहुंचा. उसने मेरा स्वागत किया और मेरी जिज्ञासा का उत्तर देते हुए कहा, "वृद्धा के घर के बाजू में ही, ठीक उसके जैसे घर में एक तरुणी स्त्री रहती है, जिसके साथ चोपड़ा का प्रेम-संबंध था जो इस प्रसंग से पूर्व काफ़ी प्रगाढ़ हो गया था. वह अक्सर रात को छिपकर उस तरुणी के घर भी जाया करता था. लेकिन उस रात, दोनों घरों की बनावट एक सी होने के कारण उससे चूक हो गयी और वह ग़लती से वृद्धा के घर में इस विश्वास के साथ घुस गया कि वह तरुणी के घर में ही आया है. बस, उसके बाद में जो कुछ हुआ वह तो आपको पता है ही."

अदालत में बचाव-पक्ष के वकील ने, शायद तरुणी को इस मामले से अलग रखने के उद्देश्य से यह तर्क दिया कि उसके मुवक्किल ने उस रास्ते से गुज़रते एक तरुण को वृद्धा के घर से निकलते देखा था. वह उसे पकड़ना चाहता था कि अंधेरे का लाभ उठाकर वह गायब हो गया. इस बीच वृद्धा चिल्लायी और सकी चीख-पुकार सुनकर तथा उसके साथ जो कुछ घटा वह सुनकर लोगों ने उसे पकड़ लिया.

लेकिन, गवाहों ने जो गवाहियां दीं, उनसे यह तर्क तार-तार हो गया.

निर्णय देते समय, न्यायमूर्ति ने कहा, "वादी और प्रतिवादी के बीच कोई वैमनस्य नहीं है. दोनों का इस घटना से पूर्व, परिचय भी नहीं था. यह मानने का भी कोई कारण नहीं है कि आरोपी के विरुद्ध फरियाद झूठी थी. गवाहों की गवाहियां विश्वसनीय थीं. आरोपी ने जो निंदनीय कृत्य किया, वह एक पुलिसकर्मी के लिए अशोभनीय था. उसे भा. दं. वि. की 354 वीं धारा में अंतर्गत तीन महीने के सश्रम कारावास का दंड दिया जाता है."

इस दंड के कारण पुलिस-विभाग ने चोपड़ा को नौकरी से भी निकाल दिया. इस प्रकार एक अनचाहे चुंबन ने एक निर्दोष पुलिसकर्मी को जेल भिजवाया, उसकी नौकरी छुड़वायी, और उसके जीवन की दिशा ही बदल दी. □

महाराष्ट्र राज्य पुलिस मुख्यालय की विशेष अनुमति से 'दक्षता' के मई, 1988 अंक प्रकाशित एक सत्यकथा की प्रस्तुति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेंद्र राव

पुरस्कार को नमस्कार

साहित्यकारों को दिये जाने वाले सरकारी-गैर-सरकारी पुरस्कारों की संख्या बढ़ती जा रही है. सर्वाधिक पुरस्कार हिंदी भाषी राज्यों में बंटते हैं और कुछ कुछ लाटरी परिणामों की तर्ज पर कहते हैं खुदा देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है– एक वरिष्ठ और सर्वमान्य लेखक को नहीं मिले तो चालीस साल तक नहीं मिले, फिर लगभग एक साथ दो राज्य सरकारों के शिखर पुरस्कार उनके चरणों में आ गिरे. उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में प्रति वर्ष लेखकों की लाटरी खुलती है. तीन हजार से लेकर एक लाख तक जिसके भाग्य में जो बंटा हो. दिल्ली में हिंदी के अलावा उर्दू और पंजाबी के खिलाड़ियों को आर्थिक राहत बांटी जाती है, नाम चाहे जो दे दिया जाये. धीरे-धीरे स्थिति ऐसी आ सकती है कि पुरस्कार अधिक हो जायें और लेने वाले कम. यह भी संभव है कि विवाद अधिक बढ़ जाने पर बारी-बारी से सबको मिलने लगे. लेकिन इतना धैर्य लेखकों में कहां कि उस आगामी स्वर्णिम कल की प्रतीक्षा करें. कुछ लोग संस्थाओं की मार्फत पूरा खर्च उठाकर अपने आपको पुरस्कृत करवा लेते हैं तो कुछ मंत्रियों, सचिवों और अध्यक्षों के आगे पीछे घूमना शुरू कर देते हैं. ये लोग पहले तो झांसापट्टी देते रहते हैं परंतु जान छूटते न देखकर कह देते हैं, 'लो भई, इस बार तुम भी ले लो पुरस्कार.'

किसी भी लेखक के लिए पुरस्कार-सम्मान एक अच्छी खबर होती है. उसके सामने एक सुखद क्षण होता है. चर्मोत्कर्ष की उपलब्धि का मनभावन एहसास जो कि धीमे नशे की तरह चढ़ता है और देर लगती खुमार उतरने में. साहित्यजगत की फंतासी जाल की तरह उसे कसती जाती है, कुछ समय के लिए वह देश-काल-परिस्थिति से बेखबर इंद्रधनुषी कल्पनाओं में खोया रहता है... इसके बाद भारत भारती, सारस्वत, ज्ञानपीठ, पद्मश्री और जाने क्या क्या! कुछ पुरस्कृत हिंदी लेखकों ने तो नोबुल प्राइज के चांद खिलौने को पाने के लिये अपने नन्हें नन्हें हाथों को आकाश की ओर उठाकर गुहार मचाई.

येहि धनु पर ममता केहि हेतु

पुरस्कार-सम्मान की गफलतभरी मदहोशी में निमग्न भाग्यशाली और सपने सच करने के लिए 'हम होंगे कामयाब, एक दिन' का कोरस गाते हुए भाग-दौड़ कर रहे संभावनाशील लेखकों का मोह भंग करने के लिए, खरी खरी सुनाने के लिए प्रसिद्ध शैलेश मटियानी ने अपनी सुपरिचित प्रहारात्मक मुद्रा में एक अत्यंत प्रासंगिक और गंभीर लेख 'साहित्यकार और पुरस्कार' लिख डाला है जिसमें कुछ चुभते हुए प्रश्न उठाए गये हैं. तथाकथित महान लेखकों की हिप्पोक्रेसी और अवसरवादिता को बेबाक ढंग से उजागर करके मटियानी ने एक बेमानी सन्नाटे को भंग किया है. गंगा (जुलाई '88) में प्रकाशित इस लेख को लगभग अनौपचारिक श्वेतपत्र माना जा सकता है. अज्ञेय, महादेवी, नागार्जुन, नरेश मेहता और परसाई को जिरह के लिए कटघरे में खड़ा करके कही गई जिरह में निर्भीक-निडर मटियानी के तेवर देखते ही बनते हैं, "हम फिर जोर देकर कहना चाहेंगे कि पुरस्कार व्यक्तिगत वस्तु नहीं. राज्य व्यवस्था और लेखक दोनों की प्रतिष्ठा का अनुष्ठान है यह. छवि निर्माण के इस प्रसंग में हमारा महत्व न पुरस्कार देने वाले से कम है न लेने वाले से. और अपने इसी बुनियादी हक के तहत हम राज्य व्यवस्था से पूछना चाहेंगे- 'येहि धनु पर ममता केहि हेत?' और अपने वाणीपुत्रों से अनुरोध करेंगे– 'कहिय कृपा करि भृगुकुल केते'!"

हिंदी बोलनेवाले अहिंदीभाषी

हमें अच्छी तरह याद है कि छठे और सातवें दशक में जब पंजाब में भाषा विवाद जोर से उठा तो वहां रहने वाले हिंदुओं ने अपनी मातृभाषा पंजाबी के बजाए हिंदी लिखवायी थी. इसी आधार पर राज्य का विभाजन हुआ और सिखों-हिंदुओं के बीच एक दरार पड़ी जो निरंतर बढ़ती ही गयी. आज भी पंजाब में रहने वाले हिंदू (अधिकतर) अपनी मातृभाषा हिंदी ही मानते हैं. भले ही उनकी बोल-चाल और यहां तक कि सोचने की भाषा भी पंजाबी ही हो. खैर, यहां हम पंजाब से बाहर रह रहे पंजाबी हिंदुओं का जिक्र करना चाहते हैं जिन्हें पंजाब में तो हिंदी भाषी माना जाता है परंतु उ.प्र. दिल्ली या म.प्र. में अहिंदीभाषी समझा जाता है. समझ में नहीं आता कि रवींद्र कालिया या राजी सेठ किस लिहाज से अहिंदीभाषी हिंदी लेखक हैं? क्या महज अहिंदी भाषी लेखक पुरस्कार के लिए यह विशेषण इन्हें दिया गया या सचमुच इन्हें अहिंदीभाषी माना जाता है? शुक्र है यशपाल, अश्क और भीष्म साहनी को इस उपाधि से विभूषित नहीं किया गया.

पुरस्कारों का नगर

ज.ले.स. के भोपाल में हुए तीसरे राष्ट्रीय सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष शरद जोशी के भाषण का एक अंश उद्धृत करने का लोभ संवरण करना मुश्किल लग रहा है, "आप जानते हैं कि यह वह नगर (भोपाल) है, जहां प्रायः ही, जब भी दिल्ली से कोई हवाई जहाज रुकता है, कोई लेखक, कोई संस्कृतिकर्मी अक्सर उतरता रहता है. जब भी आप देखें कि कोई झोला डाले, डाढ़ी बढ़ाए, अजीब सा आदमी दिख रहा है तो समझ लीजिए. सरकार ने उसे बुलाया है. ये वो शहर है दोस्तो, जहां रह रहकर बार-बार, कुछ-कुछ दिनों में लेखक सम्मानित किये जाते हैं. कब किसका कहां सम्मान हो जाये, किस कारण सम्मान हो जाये, कहा नहीं जा सकता. यहां जिन्हें सम्मानित किया जाता है, उनकी साख नष्ट कर दी जाती है. जो सम्मान पाते हैं, अपनी साख खो देते हैं. यह वो जंकशन है मित्रो, कि जहां लेखक आकर अपना पाला बदलता है, अपना एरिया बदलता है. वो लोगों से छूटता है तो सरकार की गोद में जाकर बैठ जाता है."

(नया पथ (5-6 से साभार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल चतुर्वेदी

हाय! बरसात में...

न हमें बादल देखने पड़ते हैं, न मौसम विभाग की सूचना सुननी पड़ती है. जैसे चुनाव प्रभावित क्षेत्र में मंत्रियों के हैलीकाप्टरों का झुंड आकाश में और छुट-भइयों का जमीन पर नजर आता है, बारिश के पूर्व बत्तियों पर पतंगे और दीवार-दरवाजे की हर छोटी सेंध से चींटे उमड़ पड़ते हैं. क्या पता मौसम विभाग के वैज्ञानिक भी इधर बारिश का अनुमान हमारी ही तरह लगाते हों. मौसम के ज्योतिषी ने चींटों की कतार आंगन के पार द्वार देखी और दूरदर्शन को फोन कर दिया कि मानसून चल पड़ा है. कौन जाने इसीलिए मौसम की भविष्यवाणी में हाल-फिलहाल सच्चाई की मिगदार बढ़ती जा रही है. जैसे ही बारिश के इमकान दिखे, हम अपने निजी और नितांत घरेलू बाढ़ नियंत्रण केंद्र को कारगर बनाने में जुट जाते हैं. यही अवसर है जबकि लाल किले से बारी-बारी सूखा या बाढ़ से युद्ध स्तर पर निबटने की घोषणाएं हर साल की जाती हैं. हमें पता है कि पिछले साल सूखे की थी और इस वर्ष बाढ़ की बारी है. सरकार के नेक इरादों के रहते अपनी आप ही करनी है. हर साल नियम से राहत बंटती है. बांध बनते हैं और सत्ता के बिचौलिये वर्ग में समाजवाद आता है.

पतंगा-दर्शन के पहले मंगल को हम अपने घर के पास वाले मंदिर जरूर आते हैं. बरसात के जूतों की व्यवस्था यहीं से होती है. प्रभु-कृपा से पुरानी टूटी चप्पल को त्याग, मनभाये जूते पहन, हम घर की ओर टहल लेते हैं. आदमी अनुभव से सीखता है. कई जोड़े नये जूते और छाते गंवाकर यह गुर अपने हाथ लगा है. पढ़े-लिखे लोग किताबों को इधर से उधर करने को चोरी नहीं समझते हैं. भक्तों की जूते- छाते के बारे में यही धारण होनी चाहिए. पता नहीं औरों की है कि नहीं, अपनी तो है. ऐसी सभी भौतिक वस्तुओं में रखा ही क्या है. नयी हों या पुरानी. इन्हीं छुट-पुट सद्प्रयासों से मन धीरे-धीरे गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थ की ओर प्रस्थान करता है. हम पुनर्जन्म के उसूल में यकीन रखते हैं. इस जन्म में अच्छे जूते गंवाये भी तो क्या हुआ. दूसरे जन्म में पा लेंगे. हो सकता है कि लगातार जूता गंवाकर स्वर्ग में चांदी की चप्पल मिले.

बरसात में ख़ास तरह के कपड़ों की भी दरकार होती है. यदि पानी भरी सड़क पर तैरते पांव कीचड़ में सन जायें तो पतलून को धोने की नौबत नहीं आनी चाहिए. न उस हाल में जब पूंजीवादी कार या समाजवादी सिटी बस छींटों के फूल बरसाती गुज़र जाये. बारिश में कोई गारंटी तो है नहीं कि कपड़े धुलने के बाद सूखेंगे. अकसर सूरज की कृपा होते-होते बादलों का प्रतिघात हो जाता है. जैसे बादल बादल न होकर बोफोर्स की डील हों. कोई-न-कोई प्याज की पर्त खुलती ही जाती है. यों भी बरसात में नगरपालिका का जल-जल विभाग समझदारी से काम लेता है और अपने बचत अभियान में लगन से जुट जाता है. जब भगवान आसमान से पानी गिराने पर उतारू हैं तो नलों में उसे चलाने की बेवकूफी क्यों की जाये. लिहाजा बारिश के शिकार को कपड़े धोने के लिए बारिश का ही पानी तलाशना पड़ता है. इसीलिए ज्ञानी कह गये हैं कि ज़हर को ज़हर मारता है.

जाहिर है कि बारिश में सफेद कपड़े राजनीति में ईमानदारी जैसे बेकार हैं. सूरदास की मनपसंद काली कांबर या उससे मिलता-जुलता रंग ही इस स्थित में आदर्श है. लगते रहें छींटों के दाग. आसपास से बस जाये या स्कूटर. पैर नाले में पड़े या नाली में, क्या फर्क पड़ता है. लिहाजा हम अपने पुराने कपड़ों का बक्स ढूंढने लगे. पत्नी ने सुख-दुख में साथ रहने का कर्तव्य निभाते हुए जानना चाहा कि हम क्यों इधर-उधर हाथ-पांव फेंक रहे हैं. उनका मतलब हम समझ गये. अपनी नियत कुर्सी और चारपाई की लक्ष्मण रेखा को लांघने के दुस्साहस पर उनको एतराज था. हमने उनसे सहयोग चाहा और अपने पुराने कपड़ों के बक्स का अता-पता पूछा. उन्होंने जवाब दिया कि लड़का बड़ा हो गया है. खेत के प्रश्न पर खलिहान के उत्तर से मुझे अपनी श्रवण-शक्ति और उनके दिमागी संतुलन पर शक होने लगा. कहीं मेरी प्यारी बीवी को रुमानी दौरा तो नहीं पड़ गया. कुछ को चांद और कुछ को बादल दिखते ही यह रोग लग जाता है.

इसके बीमार खोये-खोये रहते हैं. कुछ फिल्मी गीत गुनगुनाते हैं, कुछ गजलें. शून्य में ऐसे ताकते हैं जैसे ब्रहमा का रहस्य खोज रहे हों. अधिकतर निराशा की तुकबंदी करने लगते हैं. इसमें चांद-चांदनी धूप, फूल, धूल, शूल, नैन, चैन, रैन, कजरी, अंजुरी आदि शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से होता है. वह अपने आपको अकारण भीड़ में अकेला महसूस करते हैं और ऊलजलूल हरकतों में लगे रहते हैं. जैसे चाट की दूकान पर जब सब गोलगप्पे या आलू की टिकिया खायें तो रूमानी रोगी अपने अंत समय की अपेक्षा में गंगा जल की मांग करते हैं. कच्ची उम्र के बीमार फिल्मी पत्रिकाएं पढ़ते मिलते हैं, पक्की आयु के (अर्थात् चालीस के आसपास वाले) घर का हिसाब-किताब. दिक्कतशुदा बात यह है कि मिर्गी के समान रोमांस भी एक मानसिक रोग है जिसका दौरा कभी भी पड़ सकता है. यहां जूता सुंघाने क्या, लगाने से भी काम नहीं चलता. उनके दिमाग में कहीं-न-कहीं मोर नाचता रहता है.

मुझे अपने जीवन-साथी को लेकर चिंता हो गयी. हम इस मामले में भुक्त-भोगी रहे हैं और बीमारी की गंभीरता से बाकिफ हैं. हुआ यों कि तीन सावन पहले जब हम दफ्तर से घर लौट रहे थे कि अचानक बारिश शुरू हो गयी. पहले हमने एक पेड़ का छाता लगाया. पर जब उसके असंख्य छेदों से भीगकर ठिठुरने लगे तो भागकर एक पक्की इमारत के बरामदे में शरण ले ली. वहां एक और निचुड़े सज्जन खड़े थे. चोर-चोर मौसरे भाई हों या प्रतियोगी, भीगे लोगों में स्वाभाविक भाईचारा होता है. उन्होंने एक सिगरेट निकाली और उसके दो बराबर के हिस्से कर एक मुझे दे दिया. इकलौती सिगरेट का बंटवारा करना सामान्य समय में उदारता और जाड़े-बरसात जैसी कठिन परिस्थितियों में. दरियादिली का प्रतीक है. मैं तेहेदिल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका शुक्रिया अदा कर ही रहा था कि सामने से एक गरजती हुई मोटर-साइकिल गुजरी. आगे लड़का बैठा था और पीछे उससे लिपटी एक लड़की.

"देखा आपने," सिगरेट का धुआं उगल कर आह भरते मेरे भीगे भागीदार बोले.

"जी हां! एक मोटर-साइकिल थी. सवार भीगने से बचने के लिए जल्दी में थे. पीछे की सवारी सीट की सतह से कम और लड़के की गर्दन के सहारे अधिक टिकी हुई थी. वर्ना कभी की गिर गयी होती," मैंने अपनी शरलोक होम्स वाली प्रतिभा का परिचय दिया.

"माफ करियेगा, आप कतई गलत फरमा रहे हैं. वह मना रहे होंगे कि यों ही बारिश होती रहे और वह भीगते हुए घूमते रहें," उन्होंने अपनी राय जाहिर की.

"यह कैसे होगा! पानी बरसता भी रहा तो पेट्रोल तो खत्म हो ही जायेगा." मैंने शंका उठायी.

"आप अजीब 'ड्राई' किस्म के इंसान हैं," उन्होंने मेरे भीगे व्यक्तित्व पर तोहमत लगायी और चालू रहे, "बारिश का असली मजा तो यही उठा रहे हैं. हम भी स्कूटर पर लड़की को यों ही घुमाते थे. पर अब तो उससे शादी हो गयी," वह उदास हो गये.

"अच्छा किया आपने कि भीगने की प्रतियोगिता में हिस्सा लेना बंद कर दिया. इससे खांसी-जुकाम भी हो सकता है." मैंने उनकी हौसला-अफजाई की कोशिश की. पर इसके बाद चुप्पी छायी रही. बारिश थमी तो हम लोग अपनी राह लग लिये.

पर इस घटना के बाद यकायक अपने को भी कुछ हो गया. दफ्तर ले 'लोन' लेकर पहले तो हमने स्कूटर खरीदा और फिर उसके बाद से शीला, नीला, गीता, रीता, मीता, सीता को लिफ्ट देने पर आमादा हो गये. दफ्तर के बाद इंतजार करते कि कोई लड़की कृपा करे तो हम उसे घर तक छोड़ आयें. नतीजन घर देर से पहुंचते. साग-सब्जी न लाते. किसी अंधेरे कोने में बैठ कभी रीता का सोचते कभी सीता का. अपना रूमानी भूत तब उतरा जब एक दिन घटामय वातावरण में हमने रीता को उसके घर तक 'लिफ्ट' देने की पहल की और उसने मुस्कराते हुए समझाया, "अंकल! मेरी मानें तो आप भी बस से ही आया-जाया करें. यों भी बिना चश्मे के आपको धुंधला नज़र आता है. कहीं आप नगर-बस को न तक पाये तो!" वह दिन था कि आज का दिन है, हम अपनी रूमानी सूरमाई भूले हुए हैं. हमने पारिवारिक खुशी में इजाफा किया और स्कूटर अपने पुत्र को भेंट कर दिया. कहीं फिर अंकल न कहे, इसलिए हम रीता से बचकर रहने लगे.

हम अतीत में खोये थे कि पत्नी की आवाज़ सुनाई पड़ी, "लड़का बड़ा हो गया है. सारे पुराने उसके काम आ चुके हैं." उनकी कैफियत से जान में जान आयी. कपड़े गये तो गये. बीवी तो सलामत है. औरतों की आज़ादी के माहौल का खतरा समझ आने लगा. यदि पति ऐरे-गैरों को 'लिफ्ट' दे सकता है तो पत्नी क्यों नहीं ईंट का जवाब पत्थर से दे सकती!

हमने लड़के द्वारा तजे कपड़ों का निरीक्षण कर एक नीली जीन्स और उससे मेल खाती कमीज अपने लिए चुनी. अपनी वर्दी में दफ्तर पहंचे तो हमें देखकर दूसरों को 'खी-खी' की जैसे छूत की बीमारी लग गयी. "जो थोड़े बहुत बचे हैं, उन बालों को रंग लीजिये तो पूरा कायाकल्प हो जायेगा." एक आवाज़ आयी. हमने दूरदर्शन के विज्ञापन की तर्ज पर सबको समझाया कि बरसात में ऐसे कपड़ों के इस्तेमाल में ही समझदारी है. न सिर्फ पतलून मैलखोर है, आजकल फैशन में भी है. सबकी निगहें अपनी ओर टिकी देखकर हमें लगा कि हम दफ्तर के देश में इलाहाबाद का उप चुनाव हो गये हैं. शाम तक सब अपनी दूरदर्शिता के कायल हो चुके थे. दोपहर के बादल घिरे. कुछ अंधेरा सा छाया और गरज के साथ छींटे पड़ने लगे. हमने दफ्तर के बाद अपने यौवन के नायक राजकपूर की आवारा स्टाइल में पतलून के पांइचे ऊपर चढ़ाये और छाता खोल अकेले हो 'श्री चार सौ बीस' के युगल-गीत 'प्यार हुआ इकरार हुआ' की धुन गुनगुनाते हुए बस-स्टाप की तरफ चल दिये.

हमने विजयी मुद्रा में पीछे मुड़कर छाता-हीन नियमित कपड़े पहने अपना मजाक उड़ाने वाली टोल को हिकारत की नज़र से ताका. चश्मे पर पड़ी बूंदों से धुंधलायी दृष्टि के बावजूद हम जैसे किसी 'मेनहोल' में गिर गये. हमें 'अंकल' कहनेवाली रीता किसी मुस्तंडे के साथ मोटर-साइकिल पर जा रही थी. हम हड़बड़ाये और छाते वाला हाथ नीचे आकर एक साइकिलवाले से जा टकराया. वह हमारे ऊपर गिरा और हम चारों खाने चित्त सड़क पर. दफ्तर और बस-स्टाप की भीड़ ने मुफ्त के दमदार दंगल के तमाशे पर हो-हल्ला मचाया. साइकिलवाले ने असभ्य भाषा का प्रयोग कर हमारे पुरखों तक को ठिकाने लगाने की धमकी दी. पर कोई भी माई का लाल इस पतित को सहारा देने आगे न आया. हम हांफते-कराहते हुए उठे और जान बचाने के ओलंपिक में दौड़ लिये. साइकिलवाले दुश्मन ने पहले हमारे गिरे चश्मे को पैरों से रौंदा और फिर आसानी से हमें पकड़ लिया. वह हमारी गर्दन गर्दन मरोड़ने जा ही रहा था कि किसी संत सिपाही ने हमें सता होने से बचा लिया.

हमारे मन के किसी कोने में बसा रोमांस का राजकपूर हमेशा-हमेशा के लिए मर चुका था. पर 'बरसात' तो रहेगी. खास कर मोटर-साइकिल पर जाती, अगूंठा दिखाती मुंह बिराती बरसात! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोविंद मिश्र

त्यों त्यों प्रकट होत उर अंतर कांच कलस जल झाईं

जतीपुरा गांव.

रघु को यह जगह बहुत भायी थी इसलिए इस बार जो उनका मन उचटा तो यात्रा के कार्यक्रम से हटकर पीछे लौट आये.

पर्वत की छोटी-सी श्रेणी, ऊंचाई इतनी मामूली कि पहाड़ी ही कहेंगे... पर नाम— गोवर्द्धन— कितना बड़ा हो गया है उस अनुपात से. ऊपर श्रीनाथजी का पुराना मंदिर... मंदिर का झंडा फरर्... फरर... अपनी कम, गोवर्द्धन की कीर्तिपताका ज्यादा फहराता हुआ. पर्वत पर जहां-तहां चरती गायें और बीच-बीच में चिहुक-चिहुक उठते मोर... कोई मोर बड़ी शान से पर्वत की चोटी पर खड़ा, गर्दन ठुनका-ठुनका कर चारों ओर देखता हुआ. नीचे मुखारविंद का स्थान.

गांव की मुख्य सड़क पर से परिक्रमा बह रही थी. गोवर्द्धन की परिक्रमा साल-भर चलती रहती है, पर एकादशी से पूर्णमासी के बीच ज्यादा ही लोग होते हैं. देश के हर कोने से आये लोग... कोई पुरानी मनौती के पूरा होने पर आते हैं, कोई नयी करने... और कुछ ने ऐसे ही नियम बांध रखा है, इसलिए. मुड़िया पूनो को तो परिक्रमा के लिए मेला लग जाता है— आषाढ़ की पूर्णमासी... बसों की खचाखच, उमसवाली गर्मी. यात्रियों के लिए कोई सुविधा नहीं जैसी बड़े तीर्थों में होती है... फिर भी आदमी भर-भराकर गिरता है. श्री चैतन्य के प्रिय शिष्य श्री सनातन गोस्वामी परलोकवासी हुए थे तो चारों ओर से लोग दौड़े आये. सभी ने मुंडन कराया, पूर्णिमा के दिन विमान सजाकर उन्हें श्री गोवर्द्धन की सातकोसी परिक्रमा करायी और वृंदावन में श्री मदनमोहन मंदिर के पीछे समाधिस्थ किया. तभी से चली आ रही है मुड़िया-पूनो. यह परिक्रमा तो पूरे साल चलती रहती है. परिक्रमा माने... गिरिराज के किसी बिंदु से आरंभ करके सात कोस का चक्कर नंगे पैर लगाकर उसी बिंदु पर खत्म करना. जब यात्रा यहां ठहरी थी तब एक दिन परिक्रमा के लिए रखा गया था— जो चाहें परिक्रमा कर आयें. रघु टाल गये थे... कौन चले पंद्रह किलोमीटर पैदल, वह भी नंगे पांव. पाल में पड़े किताब बांचते रहे थे. ब्राह्मणी चुपचाप सरक गयी थी. वह तो सोचती ही नहीं, थकती भी नहीं. जब भी इधर आती है तो परिक्रमा लगा आती है, दस-बारह बार तो लगा ही चुकी होगी!

रघु आज जतीपुरा के चौराहे के एक चबूतरे पर बैठे एकदम पास से देख रहे थे— परिक्रमा बह रही है... रह-रहकर तरह-तरह के लोग निकलते जा रहे हैं. औरतों की टोलियां, कितनी बच्चों को कांख में दबाये, कोई मोटी औरत पसीना-पसीना... अपने को हर हाल में आगे की ओर खींचती हुई. एक बूढ़ा लाठी टेक-टेक कर डग भरता हुआ! कोई रोगी! किसी को ठीक से दिखता नहीं, फिर भी चला जा रहा है. जाहिर है ये लोग इतना कष्ट नहीं उठा सकते, पर नशे-जैसी कोई तंद्रा-सी उनके चेहरे पर है... यह उन्हें खींचे लिये जा रही है. कुछ ध्यान में नहीं है इस वक्त... सिर्फ चलना, चलते जाना! वे चल रहे हैं, अपने कष्टों के बावजूद चल रहे हैं, चले जा रहे हैं.

चलो... चलते रहो. अपने हिस्से के दुःख की गठरी कांख में दबाये चलो, हर हाल में चलो, चलते रहो जब तक चक्र पूरा नहीं हो जाता...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही तो है परिक्रमा और यही है जीवन... रघु का कांधा और पता नहीं क्या हुआ कि अगले क्षण वे अपनी चप्पलें एक दुकान में रख परिक्रमा में उतर गये और चलने लगे.

चौराहे से गांव के बाहर निकलने-निकलने तक जहां-तहां से उखड़ी हुई वह सड़क पावों में गड़ी, पर गांव के बाहर आते ही तलहटी थी- गोवर्द्धन पर्वत के ठीक नीचे मंझौले पेड़ों की छाया में से गुजरता हुआ रास्ता, पांव तले चिकनी-चिकनी रेत. नंगे पांव चलना भला लग रहा था. शांति मन पर बिछती-सी लगी... पर जैसा रघु के साथ हमेशा होता है, शांति में स्थिर-मन होते-होते रह गये. फिर ढेरों सवाल उठने लगे- धर्म ही क्यों, प्राकृतिक रमणीयता में आनंद लेने मात्र के लिए भी यह परिक्रमा की जा सकती है. जीवन अपनी सुंदरता के लिए भी क्यों अपने से बाह्य तत्वों पर आश्रित हो... क्यों धर्म चाहिए ही यहां? जीवन का स्वभाव तो पानी-जैसा है— न खट्टा, न मीठा, न तीखा, न फीका. हमारी मनोदशा ही उसमें अलग-अलग गुण पैदा करती है, पर मनोदशा कहां से आती है... दुःख-सुख से, या कि दुःख-सुख है ही नहीं— ये वे रंग हैं जो हम अपने मनोभावों द्वारा ग्रहण करते हैं, स्वयं निर्मित करते हैं. पर नहीं, संयोग-वियोग तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं— प्रिय मिला तो सुख, बिछुड़ा तो दुःख... यहां यह भी कह सकते हैं कि प्रिय तो अपने रास्ते चला जा रहा है, हमी हैं जो ग्रहण करते हैं— सुख या दुःख. तो वह किसकी प्रेरक शक्ति से कहां चला जा रहा है...

सवाल... सवाल. इधर से उधर जाती छोटी-छोटी पगडंडियों से— कहीं एक-दूसरे पर सवार, कहीं एक-दूसरे को काटते हुए, कहीं उछले तो कहीं धुंधले— थोड़ा आगे जाकर खोते हुए...

राह... कहां? गोवर्द्धन कस्बा सामने था पर परिक्रमा वाला रास्ता किधर से था? रास्ता न दिखाई दे तो— महाजनो येन गता :... रघुनाथ अपनी चाल थोड़ा तेज कर चलने वाले की बराबरी पर आ गये. उसके साथ-साथ कस्बे वाली सड़क को काटते हुए बाजार के बीच से राधा-कुंड की तरफ.

"मैंने सोचा था पर्वत के नीचे-नीचे ही जाना होगा, पर परिक्रमा तो एक बस्ती से दूसरी में लिये जा रही है." रघुनाथ ने बात छेड़ी.

"गोवर्द्धनजी चार मील लंबे हैं. ऊंचाई बहुत नहीं है. कहीं-कहीं तो वे भूमि के बराबर हैं. ऐसी जगहों पर बस्तियां बस गयी हैं. इसलिए परिक्रमा इन बस्तियों से भी होकर जाती है." आदमी ने सूचना-सी दे दी और अपनी रफ्तार चलता रहा.

"पुराणों में गोवर्द्धन की लंबी कथा आयी है"— रघु को बतास सताने लगी थी. कुर्ते की जेब से सुंघनी निकाली और झटके से एक खींच लेकर बोलने लगे, "कहा है जब भगवान श्रीकृष्ण पृथ्वी का भार उतारने के लिए भूतल पर आने को प्रस्तुत हुए, उसी समय यह चौरासी कोस वाली भूमि चौबीस वनों के साथ भगवान के लोक से यहां आयी. गोवर्द्धनजी ने भी तभी पश्चिम दिशा में कहीं द्रोणाचल के घर पर जन्म लिया. एक समय पुलस्त्य ऋषि उधर से निकले और उन्होंने गोवर्द्धन को देखा. उन्होंने गोवर्द्धन के पिता द्रोणाचल से कहा— मैं काशी का निवासी मुनि हूं, काशी में कोई पर्वत नहीं है, वहां के लिए तुम अपने पुत्र को मुझे प्रदान करो. द्रोणाचल ने मुनि के डर से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया. लेकिन गोवर्द्धन ने कहा, "मुने, मेरा शरीर आठ योजन लंबा, दो योजन ऊंचा और पांच योजन चौड़ा है. आप किस प्रकार मुझे ले चलेंगे." पुलस्त्यजी ने कहा, "बेटा, तुम आनंद से मेरे हाथ पर बैठे चलो. गोवर्द्धन तो भगवान के लोक-गोलोक से आये थे और उनकी ललक ब्रजभूमि में रहने की थी इसलिए उन्होंने शरारत से एक शर्त रख दी— मुनि ने जहां उन्हें हाथ से उतारा, गोवर्द्धन फिर वहीं बैठ जायेंगे." मुनि ने शर्त मान ली. ब्रज आते ही गोवर्द्धन ने अपना भार बढ़ाना शुरू किया, मुनिवर को थकान आने लगी, लघुशंका से निवृत्त होने तक के लिए उन्होंने गोवर्द्धन को हथेली से उतारकर भूमि पर रख दिया. लौटकर जब वे पुनः गोवर्द्धन को उठाकर हथेली पर रखने लगे तो पर्वत टस-से-मस न हुआ. उसने मुनि को शर्त की याद दिलायी. मुनिवर को द्रोण-पुत्र की चालाकी समझ में आयी, उन्होंने शाप दिया, "पर्वत! तू बड़ा ढीठ है. तूने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया, इसलिए तू प्रतिदिन तिल-तिल भर क्षीण होता चला जा!"

"तो मुनि के शाप से गोवर्द्धनजी दिन-प्रति-दिन थोड़ा-थोड़ा पृथ्वी में धंसते चले जा रहे हैं." साथ चलने वाला चकित था, मन में रघु के ज्ञान के लिए आदर-भाव.

"देखिएगा... कि गोलोक स्वामी श्रीकृष्ण को पृथ्वी पर आना था, इसलिए ऊपर से अपने साथ सब कुछ लेते आये- राधाजी, जमुना जी, गोलोक भूमि और गोवर्द्धन पर्वत भी. साथ ही, ऐसा नियमन कि सब कुछ अंततः वहीं पहुंच जाये जहां से वह आरंभ हुआ था. हमारे यहां सब कुछ वृत्त में है! समय भी आगे नहीं जाता, चक्र में घूमता है. परिक्रमा ही परिक्रमा है. ब्रज-यात्रा भी एक परिक्रमा, उसके भीतर गोवर्द्धन की परिक्रमा, नंदगांव की परिक्रमा, भीतर-भीतर मंदिरों में परिक्रमा. आरंभ और अंत एक ही. इसीलिए समय की यात्रा को भी कालचक्र कहते हैं. किसी के वापस जाने की यात्रा भी ऐसे संपन्न होती है जैसे ईश्वर को उससे कोई लेना-देना ही नहीं— पुलस्त्य का शाप उपक्रम बन जाता है. गोवर्द्धन जहां से आये, वहीं चले जायेंगे...

"क्या ऐसे ही कभी यमुनाजी भी...?"

"हां, सूख जायेंगी." कुछ दृढ़ता से, कुछ कठोरतापूर्वक कह गये रघु काल की जो स्थापना वे कर रहे थे, उसमें यहीं पहुंचना था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा लगा कि सहयात्री को रघु की बात अच्छी नहीं लगी. उसने अपनी चाल तेज कर दी थी. रघु पीछे छूटते चले गये.

बस यही दिक्कत है... जहां कोई ऐसी बात निकली जो इन लोगों के विश्वास को ठेस पहुंचाये कि बस मुंह मोड़ लेंगे. अरे भाई! रघु भी धर्म को मानता है पर उसे बुद्धि और तर्क से समझो. यह क्या कि यमुनाजी तो देवी हैं... इसलिए चिरंतन हैं. इसी तरह जतीपुरा में कोई बता रहा था कि जिन पर गोवर्द्धन की कृपा होती है, उन्हें वे परिक्रमा में सर्प, सिंह, ग्वाल-बाल या गौ के रूप में दर्शन देते हैं. अब सर्प सिंह न सही, गौ-गोप तो मिलेंगे ही, क्योंकि रास्ते में बस्तियां हैं. इन्हीं सब चीजों ने हमारे धर्म को उपहास की चीज भी बनाया है. ऐसे ही एक जमावड़े में रघु कह बैठे कि दरअसल कृष्ण मथुरा के यादवों में आशा-किरण के रूप में उभरे थे, इतिहास-पुरुष बन गये... इसलिए पहले यादवों ने, बाद में उत्तर भारत ने उन्हें भगवान मानना शुरू कर दिया. उनकी मां देवकी को अपना पुत्र देखे बिना सोलह वर्ष बिताना पड़े थे. सांत्वना के लिए उन्हें पकड़वा दी गयी थी एक बालक की मूर्ति... जिससे वे बोलती-बतियाती रहतीं. इस तरह शुरू हुई और चल पड़ी- बाल-गोपाल की पूजा. यह सुनते ही लोग उठ-उठकर जाने लगे कि कहां का नास्तिक आ गया. रघु पूछता है क्यों नहीं किसी जीवित व्यक्ति को भगवान की तरह पूजा जा सकता... देवकी ने पूजा ही था. सोलह वर्ष के कृष्ण जब मथुरा आ गये, उन्हें देख भी लिया तब भी वे पूजती रहीं. जिससे भी आपको तृप्ति, शांति मिले. उसमें अवतार, रहस्यात्मकता... यह सब जोड़ने की जरूरत कहां है, खुद को भुलावा क्यों दिया जाये!

आदमी को ऐसे भुलावे क्यों चाहिए? पशु-पक्षियों की तरह क्यों नहीं सिर्फ खाते-पीते, चहकते-फुदकते, बैठते-उड़ते ही धरती पर का अपना समय खत्म किया जा सकता. ऐसे भुलावों को ही सम्मिलित रूप से धर्म क्यों मान लिया जाता है? शायद साधारण आदमी की जरूरत के लिए यह चाहिए. जीवन को कोई बना-बनाया अर्थ मिल जाता है... बना-बनाया विचारों-भावनाओं का एक स्ट्रक्चर— एक लीक जिस पर आंख मूंद चले चलो. मार्क्सवाद भी यही है. दोनों से ही रघु को शिकायत रही है कि वे व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए गुंजाइश नहीं छोड़ते. वे शायद हैं भी इसीलिए, उनके लिए जिसके पास सोचने की शक्ति नहीं है. मार्क्सवाद धर्म से बैर इसीलिए देखता है कि कहीं उसकी पोल न खुल जाये. रघु पूछेगा कि कोई मार्क्सवादी होते हुए भी धार्मिक क्यों नहीं हो सकता तो उसे पार्टी से निकाल दिया जायेगा.

डामर की जमी जमायी सड़क... कंकड़ नंगे पैरों में चुभते थे. रघु सड़क से हटकर कच्चे में चलने लगे. एकाएक कोई बबूल का कांटा चुभा... गनीमत कि छूते ही पैर ऊपर हो गया. उधर कंकड़, इधर कांटे. रघु वापस सड़क पर... कंकड़ ठीक. पांव पत्थर-कंकड़ों के थोड़ा अभ्यस्त हो गये हैं, वे उनको दरकिनार करते हुए पड़ते हैं, जहां न बच सके वहां पैर अपने आप हल्के होकर पड़ते हैं, या पड़ते ही हल्का हो जाते हैं. इधर-उधर स्वतः मुड़ जाते हैं ताकि आघात सीधा और जबर्दस्त न लगे.

सड़क पर एक तरपन एक वृद्धा डंडौती-परिक्रमा कर रही थी. उसके सामने बिछा बोरे का एक छोटा टुकड़ा... टुकड़े के छोर पर टिकी भगवान की फोटो, बगल में एक सौ आठ गिट्टियों से भरा टीन का कनस्टर. यह कनस्टर, बोरे का टुकड़ा और प्रभु का चित्र लेकर वह उस जगह से शुरू करती है जहां कल छोड़ा था. पृथ्वी के उस बोरे-भर टुकड़े के ऊपर दंडवत्— हाथ-पैर फैलाकर पट लोट जाना कि शरीर के हर अंग से भूमि का स्पर्श हो, स्वयं को हर तरह से दीन और असहाय मान पूर्णरूपेण प्रभु को समर्पित कर देना. एक दंडवत के बाद एक गिट्टी वह पीछे के ढेर से आगे के ढेर पर डाल देती है, गिनती के लिए. इसी तरह उसकी जगह पर 108 बार, फिर जहां हाथ छूते थे वहां से आगे. बोरा बिछा देना... और उस स्थल पर 108 बार. रघुनाथ महिला के पास रुक गये.

"मां जी, कहां से उठाई थी परिक्रमा?"

"राधाकुंड. यह दूसरी है."

"एक पहले कर चुकी हो?"

"हां... पहली की थी कि हे भगवान, हमारे ये पांव ठीक कर दो... चलते नहीं बनता था बेटा!"

"ठीक हो गये पैर?"

"हां.. देख लो. अब तो दौड़ भी सकती हूं." वृद्धा की आंखों में चमक थी.

"पिछली परिक्रमा में कितने वर्ष लग गये थे?"

"छः साल से थोड़ा ऊपर."

"इस बार?"

"कौन जाने... अभी तो उठाई ही है."

"पिछली बार तो मानता थी कि पैर ठीक हो जायें, इस बार भी कोई मानता है?"

"कुछ नहीं... सोचा भगवान ने पांव ठीक कर दिये, लंगड़ी हो जाती तो क्या होता अपना! पहली बार परिक्रमा अपने स्वत्व से उठायी थी, इस बार सोचा ऐसे ही कर डालूं पांव ठीक हो गये, चलो इसीलिए."

चली जा रही है... यह भी तय नहीं कि परिक्रमा जीवन के शेष वर्षों में पूरी भी कर सकेगी वह.

एक यही महिला नहीं, रघुनाथ को रास्ते में डंडौती परिक्रमा करते कई स्त्री-पुरुष मिले. उनकी जैसी साधारण परिक्रमा करने वाले यात्री पास से निकलते हैं, कुछ दान-दक्षिणा बोरे या दरी के टुकड़े पर डालते हैं. उसी में गुजर-बसर. अयाचित प्रवृत्ति बगैर मांगे जो मिल जाये उसी से गुजर-बसर. संपत्ति के नाम पर केवल एक पत्थर-भरा कनस्टर, बोरी या दरी का टुकड़ा और सामने भगवान का चित्र. रघु को यह अपरिग्रही भावना अच्छी लगती है. कितने ऐसे जो एक सौ आठी की जगह साधारण डंडौती परिक्रमा करते हैं— एक दंडवत् और बढ़े आगे, इसी तरह दिनभर में जितना आगे पहुंच गये, अगले दिन वहां से शुरू.

कितने लोग सालों से गिरिराज की ये तरह-तरह की परिक्रमाएं करते चले आ रहे हैं और यह सब ब्रजभूमि-भर में नहीं, भारत के कितने स्थानों पर... और जो यह क्रम सैकड़ों नहीं, हजारों वर्षों से चला जा रहा है... यह सब क्या मात्र अंधविश्वास, मूर्खता है? हर युग में आयी नयी-नयी समझ वर्षों लंबी और भारत के दूर-दूर कोनों तक चौड़ी फैली इस परंपरा को क्यों नहीं खत्म कर पायी? जो इन चीजों से जुड़े हैं, वे सबके सब अंधविश्वासी कहे जा सकते हैं? आधुनिकता, शिक्षा या तर्क के आने से जहां पर आस्था सूख जाती है, वहां भी जैसे कोई जड़ बची रह जाती है. क्यों रघुनाथ के मन में कहीं कुछ हिल्गा रहा और ये यात्रा पर निकल आये?□

अगले अंक में जारी...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

अभिधा में कथा नहीं चलती

'अमीर खुसरो' धारावाहिक पर प्रकाशित प्रतिक्रियाएं संप्रेषण की एक महत्वपूर्ण समस्या की ओर इशारा करती हैं: 'तमस' के दौरान भी ऐसी समस्या सामने आयी थी किंतु उसकी श्रेष्ठ कलात्मकता ने कला रूपों को 'अभिधा' में समझनेवालों को मुंह तोड़ उत्तर देते हुए संदेश और 'माध्यम' के सफल संप्रेषण का नया मानदंड स्थापित किया था.

खुसरो की सबसे कमजोर रग यही है कि वह एक यथार्थ की रचना की जगह इतिहास की अभिधामूलक व्याख्या को कच्ची सामग्री की तरह पेश करता है जो सच तो है मगर मौजूदा माहौल में जिसके अर्थों को सांप्रदायिक और धर्मांध रंग दे दिया गया है. इसलिए यदि सिर्फ 'खुसरो' को संप्रेषित किया जाता तो खुसरो पर उठनेवाला विवाद अधिक सार्थक होता.

निःसंदेह, 'खुसरो' को एक निश्चित इतिहास खंड में रखकर देखना जरूरी था. खुसरो को सांप्रदायिक सौहार्द और एकता का एक बड़ा प्रतीक मानकर चलना भी सर्वथा उचित है. यदि हिंदी साहित्य का कोई भी इतिहास उठाकर देखें तो हम पाते हैं कि खुसरो मध्यकालीन नवजागरण के कदाचित प्रथम पुरुष हैं और कई मामलों में उनका व्यक्तित्व नवजागरण में जन्मने-वाली बहुआयामी प्रतिभा का पुंज है जो अन्यत्र दुर्लभ है. वे इस्लाम में स्वच्छंदतावाद के प्रवर्तक हैं और सूफी प्रेम काव्य के पुरोधा हैं. वे हिंदी के आदि कवि कहे जाते हैं और भक्त कवियों से भी पहले के लोक भाषा के कवि हैं. वे संगीत के मर्मज्ञ पंडित एवं रचयिता भी हैं. उनका व्यक्तित्व इस तरह इतिहास कम, किंवदंती अधिक है. ऐसे व्यक्तित्व को कुछ मूढ़मति यदि इतिहास में हुए तीन-चार 'खुसरो' के चेहरों से मिला-मिलाकर देखते हैं और फिर इस सीरियल को बंद करने की मांग करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि ऐसों के लिए इतिहास की वही व्याख्या अंतिम है जिसे ऐसे स्वतः निर्वाचित इतिहासज्ञ उचित समझते हैं. मगर लोकतंत्र में ऐसे मूढ़ों के हाथों इतिहास की कमान नहीं दी जा सकती. खुसरो पर आयी दलीलें अधिकतर ऐसे ही अभिधार्थियों की हैं.

मगर, 'खुसरो' की सार्थकता को रेखांकित करते हुए यह स्वीकारा जाना चाहिए कि ऐसी प्रक्रियाएं बहुत कुछ एक धारावाहिक के रूप में 'खुसरो' की कलात्मक कमियों की वजह से भी पैदा हो रही हैं एक धारावाहिक के संप्रेषण की समस्या यहीं उठती है. विवाहस्पद और संवेदनशील विषयों को अपने केंद्र में रखकर चलने वाले सीरियल की चुनौती 'तमस' की तरह दुहरी होती है. वहां न कला के लिए संदेश की तिलांजलि दी जा सकती है और संदेश के लिए कलात्मकता की. 'खुसरो' में संदेश इस कदर अभिधेय बना दिया गया है, कई बार लगता है कि हम सीरियल न देखकर यू.जी.सी. का कोई शिक्षा कार्यक्रम देख रहे हों. खुसरो के चरित्र और व्यक्तित्व की परिकल्पना को साकार करने के बजाय असली मेहनत कहीं और की गयी है और वह भी कोई मेहनत नहीं है.

हम जानते हैं कि इतिहास को निनंधारियों और मिथों के रूप में देखने वालों ने मध्यकालीन इतिहास को सांप्रदायिक किस्सों में बदल दिया है. जिनमें मुसलमान शासकों की व्याख्या धार्मिक दृष्टि से की जाती है और इन्हें आसान बनाकर खूब प्रचारित भी किया गया है. इतिहास की ऐसी व्याख्या न केवल इतिहास विरोधी है बल्कि जन विरोधी और सांप्रदायिक भी है. कोई भी आधुनिक और प्रगतिशील सोचवाला निर्माता, निर्देशक यदि इस तरह की चीजों के विरुद्ध कुछ करता है तो उसके पुनीत उद्देश्य का स्वागत किया जाना चाहिए.

मगर हम सोचें कि जैसी अपेक्षा थी, वैसा स्वागत 'खुसरो' को क्यों न मिल जाए? कारण स्पष्ट है कि वह 'तमस' की तरह यथार्थ की रचना कम, यथार्थ का अभिधा संस्करण अधिक है. सीरियल एक रचना भी है जो रचना के जरिए व्याख्या करती है उसे 'आलोचना' या 'उपदेश' में तो कतई नहीं घटाया जाना चाहिए. एक इतिहास की गलत व्याख्या का जवाब एक सही व्याख्या ही हो सकती है मगर ऐसी किताबों, मिथों और किस्सों-कहानियों का जवाब किताबों से लिखित शब्द से बेहतर दिया जा सकता है. शिक्षा के पाठ्यक्रमों में अगर ऐसा जहर भरा है तो उसे उस स्तर पर निपटना जरूरी है. पाठ्यक्रमों के दोषों को दुरुस्त करने के लिए शिक्षा प्रणाली में रद्दो-बदल जरूरी है. उसके रोगों को एक सीरियल में उपदेश देकर दूर नहीं किया जा सकता. सीरियल से पूरे देश की ठीक वैसी ही कक्षा नहीं लगायी जा सकती जैसी कि फकीर बाबा दंगाग्रस्त माहौल में फंस गये पब्लिक स्कूल के बच्चों की लगाते हैं. इसीलिए पटकथाकार सांप्रदायिक विद्वेषवादी व्याख्याओं से लड़ने के लिए जो रास्ता तलाशता है, वह गंभीर कम, ऊबाऊ अधिक लगता है. यह रास्ता खुसरो के रास्ते फकीर बाबा तक मुड़ता है और फिर वह नेहरू की 'आत्मकथा' तथा 'डिस्कवरी' में कैद हो जाता है. जबकि इतिहास की सुसंगत व्याख्याएं नेहरू के जमाने से काफी आगे आ चुकी हैं.

नेहरू की धर्मनिरपेक्षवादी दृष्टि इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान करती है मगर सीरियल में उसकी सही व्याख्या की जगह चालू 'सर्वधर्म समभाव' पर ही अधिक जोर दिया गया है. एक खंड में हिंदू धर्म के एकेश्वरवाद और इस्लाम के एकेश्वरवाद की तुलना करा दी गयी है. इससे निष्कर्ष निकाला गया है (यही उद्देश्य भी था) कि सब धर्म एक हैं. तर्क यों चलेगा कि चूंकि सब धर्म एक ही हैं. अतः धर्मों में लड़ाई उचित नहीं.

इसके मुकाबले 'तमस' सांप्रदायिकता की उपदेशात्मक या किताबी व्याख्या न होकर रूपात्मक रचना और व्याख्या दोनों थी. वह एक यथार्थ रचती थी और वही एक संदेश बन जाता था. यथार्थ के रूप से उसका संदेश कहीं अलग से नहीं गिरता था, इसलिए यदि उसका विरोध था तो उसने अपना सहजात समर्थक भी तैयार किया, जबकि 'खुसरो' के विरोधी तो आसानी से बने मगर समर्थक आसानी से नहीं बने. खुसरो की असफलता में यही संदेश दिया हुआ है जिसे गंभीर रचनाकारों को हृदयंगम करना चाहिए □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ क्षण, रस्किन के संग

सुधाकर मिश्रा

"अभी दो मिनट में आया. जरा अपने इष्ट देव को प्रणाम कर लूं." कहकर रस्किन मुस्कुराते हुए अपने बैडरूम में चले गये.

इष्ट देव और रस्किन! मेरे लिए यह बिल्कुल नया अनुभव था. इनका कौन इष्ट देव हो सकता है? अपने को रोक न पाया. अंदर चला ही गया. देखा कि दिवार पर चिपकी लारेल व हार्डी की किसी अंग्रेजी कामिक से फाड़ी तस्वीर से सम्मुख खड़े कुछ कर रहे हैं.

"तो ये हैं तुम्हारे इष्ट देव!" मैंने ठहाका लगाते हुए कहा.

"हां! भाई! जितना इन दोनों ने मुझे हंसाया है, शायद किसी और ने नहीं. बस जरा नजरिया बदलने की देर है, बोझिल से बोझिल क्षण भी कैसे हल्के हो जाते हैं, यह मैंने इन्हीं से सीखा है."

मेरे घर के पास ही एक अंग्रेजी स्कूल है. जहां राकी पढ़ता है. उसको दाखिल कराने जब वे आये तो मुझे भी साथ ले लिया. हैड मिस्ट्रेस ने टैस्ट लिये तो वह गणित के घटाने के प्रश्नों में फेल, जोड़ के प्रश्नों में पास. वे बोलीं कि अंग्रेजी तो ठीक है लेकिन राकी गणित में कमजोर है, घटाने के प्रश्न ठीक नहीं कर पाता. रस्किन हंसते हुए बोले, "मैम! यह गणित में कमजोरी नहीं, बल्कि यही दर्शाता है कि राकी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण कितना आशावादी (पाजिटिव) है, तभी तो घटाने जैसे नकारात्मक (नेगेटिव) पहलुओं पर ध्यान नहीं दे पाता. हैड मिस्ट्रेस के लिए व्याख्या बिल्कुल नयी व रोचक थी. मुस्कराते हुए दाखिला कर लिया.

एक दिन टैक्सी में उनके साथ देहरादून से आ रहा था. बगल में बैठे एक सज्जन रस्किन के उपन्यास 'रूम आन दि रूफ' बड़े मगन होकर पढ़ रहे थे. मुझसे न रहा गया: रस्किन की ओर संकेत करते हुए उनसे बोला, "यह किताब इन्हीं की ही है." वे सज्जन गुस्से में भर गये. कहने लगे, "कैसे! अभी ही तो मैंने इसे स्टेशन की बुक स्टाल से खरीदा है!" रस्किन ने हंसते हुए मुझे चुप रहने का इशारा किया

रस्किन से मेरी मुलाकात बहुत पहले जब मैं मसूरी आया ही था, बड़े मजेदार ढंग से हुई थी. मैं अपने कमरे की खिड़की से कुछ भारी बदन, चश्मा लगाये हुए, भूरे बाल वाले, मंझोले कद के लगभग तीस बत्तीस वर्षीय एक अंग्रेज को एक छोटे से हिंदुस्तानी बच्चे का हाथ पकड़े अकसर आते-जाते देखा करता था. कई बार उस लड़के को गढ़वाली लहजे वाली हिंदी में और उस अंग्रेज को अंग्रेजी लहजे वाली टूटी-फूटी हिंदी में, अंग्रेजी में बातचीत करते हुए सुना था. अकसर बच्चों के सवाल लंबे और बड़ों द्वारा दिये गये उत्तर छोटे या 'हां' 'हूं' में होते हैं लेकिन इन दोनों के बीच लड़के के सवाल छोटे और उनके जवाब लंबे हुआ करते थे. वह अंग्रेज बातें करते-करते कभी रूक जाता, कभी किसी जंगली फूल, झाड़ी या पेड़ के पास खड़े होकर उस लड़के को कुछ बतलाता रहता. कभी-कभी मैं इन दोनों को सड़के के किनारे की मुंडेरों पर बैठे सूर्यास्त या वर्षा से धुली-धुलाई दून घाटी की ओर निहारते देखता.

इनसे मिलने की उत्सुकता बढ़ती ही गयी. एक दिन जब उस अंग्रेज के साथ वह लड़का नहीं था तो मुझे बातचीत करने का बहाना मिल गया.

"क्या बात? आज वह लड़का आपके साथ नहीं है." मैंने पूछ ही लिया अंग्रेजी में.

"कौन? राकी! वह तो अपनी मां के साथ कल गढ़वाल अपने गांव चला गया. उसके पिता मेरे यहां ही काम करते हैं काफी अरसे से. आप भी शायद यहीं कहीं रहते हैं." उन्होंने बहुत-सी मीठी आवाज में अंग्रेजी में कहा.

उनकी इस खट आत्मीयता में मुझे गद्‌गद कर दिया. मैंने अपने मकान की ओर संकेत करते हुए कहा कि मैं वहां रहता हूं और उनके साथ ही चलने लगा.

"अरे! मैं भी पहले इसी मकान में रहता था लेकिन मिस बींस के भूत के कारण इसे छोड़ना पड़ा." वे हंसकर बोले.

"मिस बींस! ये कौन हैं, मैंने तो इनके बारे में कुछ नहीं सुना." मैंने विस्मय से पूछा.

"यह एक लंबी कहानी है. कभी इस पूरे मकान में यही मिस बींस अकेले रहा करती थी. कुत्ते पालती थी और बेचती थी. बहुत रोबीली महिला थी. एक दिन वे अपने बैडरूम में मृत पायी गयी. सुना उनकी.

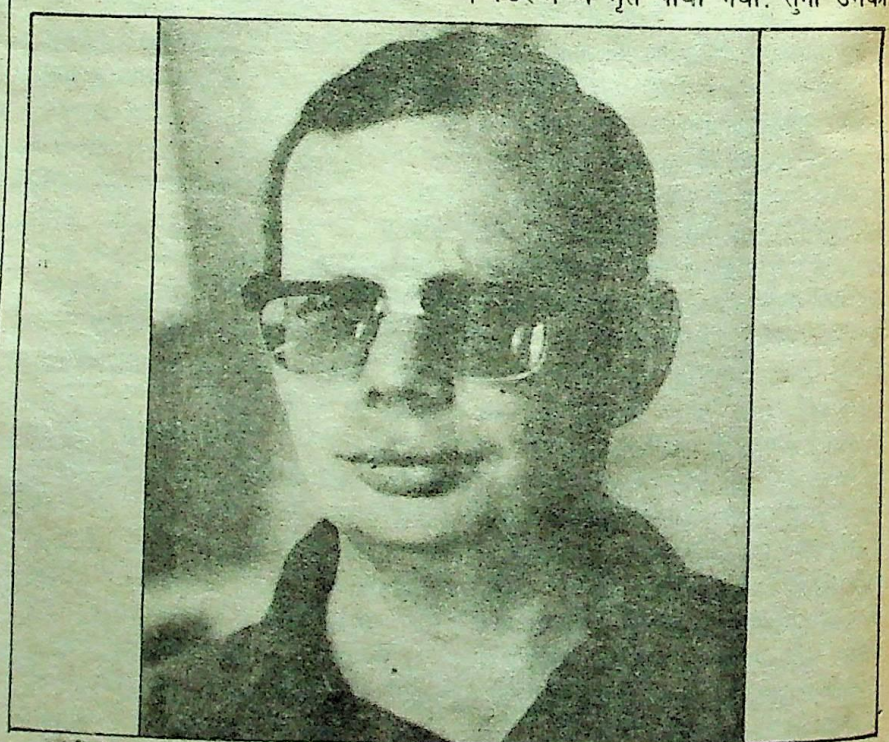

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्या की गयी थी, वे भी पड़ोस की एक अबोध कन्या द्वारा."

मैं आश्चर्यमगन हुआ उनकी बातें सुनता जा रहा था कि तब तक हम बाजार पहुंच चुके थे. जब मैं उनसे विदा लेने लगा तो बोले कि जरा किताबों की दूकान तक चलो. वहां उन्होंने एक छोटी-सी किताब मुझे उठाकर दी. नाम था 'एन एक्स फार ए रानी'. लेखक थे रस्किन बांड. बोले इसको पढ़ना मिस बींस की हत्या का रहस्य समझ में आ जायेगा.

"तो आप ही हैं रस्किन बांड?"

हंसते हुए बात बदलते हुए बोले कि मिस बींस की हत्या के बाद जो चर्चाएं चलीं, व अफवाहें उड़ीं उन्हीं को जोड़-तोड़कर मैंने यह कहानी लिख डाली थी."

मैंने रस्किन बांड का नाम तो सुना था और ये भी जानता था कि वे मसूरी में ही रहने लगे हैं. अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में उनके छोटे-छोटे लेख व कहानियां भी पढ़ी थीं. सोचता था कि वे होंगे अधेड़ उम्र के कोई गंभीर प्रकृति के बुजुर्गवार. लेकिन जैसे उनको देखा व पाया वह रूप तो दूसरा था. पहली ही भेंट में उनकी बच्चों जैसी सरलता और खुलेपन ने मुझे निहाल कर दिया और यह तो मैंने बाद में ही जाना कि अंग्रेजी भाषा में बाल-साहित्य के वे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक हैं.

उनके घर से जब मैं चलता तो मुझे छोड़ने दरवाजे तक अवश्य आते लेकिन उस दिन वे नहीं उठे. बोले जाते समय जरा दरवाजा बंद कर देना. मुझे कुछ अटपटा लगा. पूछ ही लिया, "रस्किन, तबीयत तो ठीक है?"

"मैं बिल्कुल ठीक हूं. बात यह है कि मेरे साथ मेरी रजाई में डौली सो गयी है और उसने मुझे बिल्कुल गीला कर दिया है. मैं उठूंगा तो यह भी उठ जाएगी." वे लेटे-लेटे ही बोले.

डौली, राकी की छोटी बहन. और उस समय वह छः मास ही रही होगी.

प्रेम शुरू से उनके साथ है. घर के सभी काम वही करता है. राकी व बंटी प्रेम के लड़के, डाली उसकी लड़की है. सब बच्चे रस्किन को 'दादा' और रस्किन बच्चों की मां को 'मम्मी' ही कह कर बुलाते हैं. बच्चे अंग्रेजी स्कूलों में ही पढ़ रहे हैं. एक बाथरूम और दो कमरों के मकान में सभी एक साथ रहते हैं. उनको बच्चों के झगड़े सुलझाने में और उनको अपने बाप की डांट से बचाने में बड़ा आनंद आता है.

पहाड़ों से रस्किन को बहुत प्यार है. अंग्रेजी की 'इंप्रिंट' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी इन्होंने मसूरी में रहकर किया और जब इनसे बंबई आकर संपादन करने का आग्रह किया तो संपादक का पद ही छोड़ दिया.

एक दिन मैंने उनसे यूं ही पूछ लिया कि रस्किन, अगर तुमको मसूरी छोड़ना ही पड़ा तो कहां जाओगे. कुछ देर सोचा और फिर बोले, "सामने वाले पहाड़ पर जहां परियां रहती हैं." उनका मतलब सामने वाली चोटी-परी टिब्बे से था.

मैंने उनका गुस्सा भी देखा है. और उस दिन तो वे मुझे सब दिनों से अधिक सुंदर दिखाई पड़े थे. घटना यूं घटी. श्याम प्रेम के गांव से आया था नौकरी की तलाश में और न मिलने पर उसी के साथ रहने लगा और धीरे-धीरे बन गया रस्किन की गृहस्थी का एक अभिन्न भाग. कुछ समय बाद श्याम को एक जान पहचान के सज्जन ने अपने यहां खाना बनाने पर रख लिया. लगभग दो वर्ष से वह उनके साथ था कि इसी बीच एक फिल्म कंपनी रस्किन की एक छोटी कहानी पर फिल्म बनाने मसूरी आयी. उन सज्जन को भी इसमें काम मिल गया खाने वगैरह का इंतजाम करने का. इनका पहला काम था श्याम की छुटटी करना और एक नये रसाइये को काफी ऊंची तनखाह पर रखना.

फिल्म के मुहूर्त पर एक पार्टी का आयोजन किया गया. रस्किन का बुलाया जाना तो स्वाभाविक ही था. मुझे भी बुला लिया गया. मुझे भी उस फिल्म में एक 'मूर्ख' का रोल करना था. खाना खाते समय वही सज्जन रस्किन के पास आकर कहने लगे, "देखा! कितना स्वाद खाना है. श्याम तो खाना बना ही नहीं सकता था."

रस्किन को श्याम को दो वर्ष काम लेने के बाद बिना किसी कारण निकाल दिये जाने पर गुस्सा तो पहले ही था. उन सज्जन की इस टिप्पणी पर तो वह एकदम आग बबूला हो गये. खाने की प्लेट उन पर फेंकते हुए बोले, "हां! पाखंडी! दो साल श्याम से खाना बनवाने के बाद तुम्हें अब पता चला कि श्याम खाना ही नहीं बना सकता." और यह कहकर उसी समय पार्टी को छोड़कर चले गये.

गढ़वाल के किसी अनजान कोने से आने वाले बेबस इनसान के प्रति हुए अन्याय के विरुद्ध उनके मन में उठे गुब्बार को इस पार्टी का रोबीला माहौल रोक सकने में असमर्थ था.

मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूं. कभी-कभी उनके पास बहुत देर तक बैठे रहने में संकोच भी होता है. शायद मेरे भावों को एक दिन उन्होंने ताड़ लिया. बोले "मालूम है दोस्त की पहचान क्या है? आप किस से, किस-किस मुद्दे पर, कितनी देर तक बातें करते रहे सकते हैं, बस यही न."

नदी के शांत प्रवाह का जो संगीत उनकी रचनाओं से फूटता रहता है, उसकी स्वर-रचना उनके दिन प्रतिदिन के जीवन से ही अनायास हुई है. उनसे एक क्षणिक भेंट भी ऐसी लगती है जैसी गंगा में डुबकी लगा ली हो; जैसे अचानक 'शांति पात' हो गया हो. उनके पास से मैं कभी 'छोटा' बनकर नहीं लौटा. मन ने सदैव ही अपने को एक अनूठी उपलब्धि, महत्व व खुशी से भरा अनुभव किया है. □

मेरे घर के पास ही एक अंग्रेजी स्कूल है जहां राकी पढ़ता है. उसका दाखिला कराने जब वे आये तो मुझे भी साथ ले लिया. हैड मिस्ट्रेस ने टैस्ट लिये तो वह गणित के घटाने के प्रश्नों में फेल. जोड़ के प्रश्नों में पास. वे बोलीं कि अंग्रेजी तो ठीक है लेकिन राकी गणित में कमजोर है, घटाने के प्रश्न ठीक नहीं कर पाता. रस्किन हंसते हुए बोले, "मैम! यह गणित में कमजोरी नहीं, बल्कि यही दर्शाता है कि राकी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण कितना आशावादी (पाजिटिव) है, तभी तो घटाने जैसे नकारात्मक (नेगेटिव) पहलुओं पर ध्यान नहीं दे पाता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलंबित न्याय के मूल-मोड़

दिनेश चंद्र दुबे

कचहरी की जिंदगी और जिंदगी की कचहरी की ऐसी घटना-कथाएं इस नये स्तंभ में आपको नियमित रूप से पढ़ने को मिलेंगी जो आम तौर पर एक अजानी दुनिया से साक्षात कराएंगी...

मैं ग्राम वहेलिया रहता हूं. मेरा पिता चार पांच साल पहिले खत्म हो गया है. मेरे घर पर मेरी मां, बहिन मीना बाई, मालती बाई, गीता और मैं रहते हैं. आज शाम छः बजे मैं अनंतसिंह प्रचापत के यहां लगुन में गया था. लगुन बंच जाने के बाद मैं, अपने घर आया. जैसे ही मैं अपने बाड़े तक गया, मुझे बनिया की औरत ताराबाई ने बताया कि तुम्हारी बहिन को भभूतसिंह, जसवंत, त्रिलोक, कोमल, जाहर जबरदस्ती पकड़कर ले गये हैं. और उसकी शादी अब्बू से कर रहे हैं. तो मैं त्रिलोक के घर गया. मैंने देखा मेरी बहिन और मां वहां थीं. गजराज बोला कि खवास (नाई) को बलवाओ और मीना को हल्दी जढ़वाओ. तो मैंने गुस्से में उसे भला-बुरा कहा. जो हल्दी चढ़वायेगा उसकी..... इतना कहकर मैं घर आ गया. वहां से जाहरसिंह, सीरीवारे निकले मैंने उनका ट्रैक्टर रोका. उन्हें सारा हाल बताया. और जाहरसिंह के साथ रिपोर्ट करने आया हूं. मेरी बहिन अभी त्रिलोकसिंह के घर पर ही है. कार्यवाही की जाये.

29.4.85 को, आक्रोशित 14 वर्षीय मंगलसिंह की यह रिपोर्ट लिखी गयी थाना-रेहली (सागर) पर. थानेदार मौके पर गये. लड़की वास्तव में थी. उन्होंने उसे छुड़ाया. अपराधी गिरफ्तार किये. सबके बयान लेकर न्यायालय में 29.4.85 को इस घटना की रिपोर्ट पर चालान दिनांक 29.6.85 को प्रस्तुत कर दिया. छः नामजद मुलमिजमान के साथ, तफ्तीश कुनिंदा ने आठ और व्यक्ति सहअपराधी के रूप में चालान किये, जिनमें एक अब्बू भी भी जिससे जबरन शादी करायी जाना रिपोर्ट में था.

अवयस्क मीना के, मां के संरक्षण से 'अपहरण' और विवाह के लिये ले जाने के हेतु वश 'व्यवरहरण' के अवैध कृत्य के कथित व्यक्तियों को धारा 363, 366, 147 सपठित 149 ता.हि. के अंतर्गत, मौथ न्यायिक दंडाधिकारी ने सत्रन्यायालय उपार्पित कर देते हैं.

विधि निर्माताओं ने गंभीर मामले सत्र न्यायालय द्वारा सुनवायी योग्य रखे हैं. मुख्य न्यायिक-दंडाधिकारी को, चूंकि यह अपराध, एकमेव सत्र न्यायालय द्वारा सुनवायी योग्य थे अतः उपार्पण करना जरूरी था.

सत्र न्यायाधीश और अपर सत्र न्यायाधीश दंड पारण की सक्षमता में बराबर हैं. सत्र न्यायाधीश प्रशासकीय हेड होता है और अन्य अपर सत्र न्यायालयों में प्रकरण भेजता है. न्यायालय संख्या मुकद्दमों पर निर्भर है.

उपार्पण के बाद यह मामला सत्र न्यायाधीश धारा 409(9) दंड प्रक्रिया संहिता के अन्तरगत मानकर इसे द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश को सुनवायी के लिए 'मेड ओवर' कर देते हैं.

सुनवाई होती है. 29 पेशियों में 18.3.86 को आरोप प्रस्थापन, साक्ष्प में 12 गवाह अभियोजित के और 4 गवाह बचाव-के होकर, मामला अंतिम नर्क के नजदीक 22.4.88 को पहुंच जाता है.

लेकिन तभी एक अजीब हादसा होता है. जज के नाम एक पत्र आता है. 'आपके नाम एक लाख रुपए गांव में एकत्र किये गये हैं. अपराधियों को बरी करें तो रुपया लिये बगैर नहीं.'

'न्याय केवल होना नहीं चाहिये बल्कि वह दिखना भी चाहिये कि हो रहा है.'

न्याय सिद्धांत जज के सामने प्रश्न चिन्ह बनकर खड़ा हो जाता है. यदि कानून अभियोजित लोग वरी हुई तो कुछ लोग यही समझेंगे कि...

क्या करें. क्या न करें?

किकर्तव्यविमूढ़, संवेदकशील जज, जो अपने प्रति आस्था को अपनी सबसे बड़ी शक्ति मानता है. अंततः निर्णय करता है कि प्रकरण वह निराकृत नहीं कर पायेगा. द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश तब पत्र लिखकर सत्र न्यायाधीश से प्रकरण अन्य न्यायालय में स्थानांतरित करने की प्रार्थना करते हैं.

सत्र न्यायाधीश जज की स्थिति महसूस कर प्रकरण तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश के यहां 'मेड ओवर' कर देते हैं.

कोई आपत्ति कई पेशियों पर नहीं होती.

नये जज दो बार बाहर से किसी बड़े वकील को अंतिम तर्क के लिये लाने हेतु समय दे देते हैं.

अंततः म.प्र. के एक महानगर से वहां के सबसे बड़े माने जाने वाले अभिभाषक आकर बहस करते हैं.

यह शायद इत्तफाक न होगा कि जो अभिभाषक लाये गये थे, वे वह थे जो स्वयं जज के मित्र जैसे थे और जिनके पास स्वयं जज का, उच्च न्यायालय में पैंडिग प्रकरण था.

बहरहाल बहस कई घंटे सुनने के बाद जज एक सवाल अभिभाषक से करते हैं.

यहि जैसा कि आपका बचाव है सारी घटना जाहरसिंह के द्वारा बनवायी गयी है और विवाह की कार्यवाही मीना की मां की मर्जी से हो रही थी तो वह क्या कारण है कि मीना, उसकी मां न केवल पुलिस के समक्ष बल्कि न्यायालय में भी इसे झूठा बताते हैं. फिर एक 14 वर्षीय किशोर बालक क्या मां, बहिन के समक्ष इतना आक्रोशित रहा हो सकता है कि मौके पर गालिया बककर इतने लोगों को चैलेंज करता, पुलिस लाता और न्यायालय में बयान तक अपनी बात पर अड़ा रहता? क्या भर इसलिये कि वह घर से ब्याह चाहता था और मुलजिम उसकी इच्छा के विरुद्ध मंदिर में ब्याह कर रहे थे? अपेक्षाकृत पितृविहीन मंगलसिंह के लिये तो बहिन का ब्याह और वह भी खर्च रहित शायद ठीक रहता? फिर जाहरसिंह जिसके द्वारा खुद मीना को रखैल बनाकर रखने का सुझाव है, क्या यह ग्राह्य है क्योंकि वह 35 वर्षीय विवाहित व्यक्ति है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र मीना 15 वर्षीय हालांकि आपने सकी आयु अधिक कही है?

अनुभवी, वरिष्ठ अभिभाषक चौंके थे. न्होंने संभावित निर्णय शायद आंका था. हां आकर वार में जज के 'रेंपुटेशन, ब्यू' उन्हें लगा था शायद जज उनके विपक्ष में फैसला दे। तब... तब?

और तब यकायक उन्हें एक तर्क सूझा

अनुभव के आधार पर यह कहा जाता है कि सफल वकील वह है जो अपने मुव्वलिक के विपक्ष में कभी फैसला न होने दे. दीवानी मामलों में तो यह सरल है ही. पर फौजदारी मामलों में भी अब यह, व्यावसायिक श्रेष्ठता, हम महसूस कर रहे हैं. लोग कहते हैं जब देश के प्रधानमंत्री की हत्या का मामला तक, वर्षों तक अंतिम परिणाम तक न पहुंचने देने के लिये हमारे अधिवक्ता ज्ञान रखते हैं तो छोटे-छोटे मामलों की क्या बिसात! शायद यही कारण है कि देश की अदालतें आज मामलों से अटी पड़ी हैं. इसी सबसे उत्साहित होकर वे लोग भी जो भले ही कानून में रुचि न रखते हों अंततः 'लॉ' कर लेते हैं.

एक नयी तर्क... इस न्यायालय को यह प्रकरण सुनने का अधिकार ही नहीं है. आरोप भी गलत प्रस्थापित हुआ है.

वस्तुतः धारा 409(2) जा.फौ. में यह प्रावधान है कि 'सुनवाई आरंभ होने के पहिले' एक सत्र प्रकरण, अन्य सत्र न्यायालय में भेजा जा सकता है. शायद इसलिये कि गवाह, जिस जज के सामने होते हैं, उसे उनके न्यायालय व्यवहार को देखकर, फैसला लिखना सरल रहता है.

उधर 'व्यपहरण' किसी भी आयु की महिला का हो सकता है. पर 'अपहरण' केवल अवयस्क अर्थात 18 वर्ष से कम आयु की महिला का.

द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश के द्वारा लिखे आरोप पत्रों में 366 के आरोप-पत्र में 'व्यपहरण' की जगह 'अपहरण' टाइप हो गया था, लिपिक द्वारा.

गौर तलब बात यह है कि पूरी बहस कई घंटे होने के बाद यह तर्क किया गया कि इस न्यायालय को सुनवाई अधिकार नहीं है. उधर आरोप गलत था और उससे मुलजिमानू को 'प्रैजूडिस' होता यह बात पूरी गवाही हो चुकने के मध्य नहीं उठायी गयी.

जिला जज ने सामान्यतः धारा 408(2) के तेहत प्रकरण स्थानांतरित किया जिसमें जज के रिपोर्ट पर स्थानांतरण कर सकना वर्जित है.

कई वर्षों से चल रहे प्रकरण में, 14 लोग, बिना यह निर्णय पाये कि उन्होंने कोई जुर्म किया भी या नहीं, बहरहाल फिर निर्णय दिनांक 29.6.88 को द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश ने वापस कर दिये हैं. उनके अभिभाषक का तर्क स्वीकार योग्य था. अतः स्वयं अभियोजन ने धारा 395 जा.फौ. के अंतरगत प्रकरण समुचित न्यायालय में 'बैधिक रूप से' स्थानांतरण के लिये भेजने का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर दिया है.

जज ने आवेदन स्वीकार कर लिया है. लोकल अभिभाषक का कहना है कि अब उनके मुब्बाकिलों को फिर उच्च न्यायालय से नोटिस आने पर वकील कर 200 किलोमीटर जाना होगा. फिर नयी जगह मुकद्दमा स्थानांतरण पर बाहर से बहस के लिये मोटी फीस देकर वरिष्ठ अभिभाषक लाना होगा. उन्होंने अपने मुब्बाकिलों से कहा था कि...

यह तो हुई छोटे वकील के जरिये 14 लोगों की पीड़ा. लेकिन एक प्रश्न और अंत में विचार के लिये शेष रह जाता है. वह यह, कि सुनवाई जज जब फैसला कर पाने में किकर्तव्यविमूढ़ता महसूस करते हैं तो मान लिया जाये कि प्रकरण उच्च न्यायालय अन्य न्यायालय में नियमानुसार भेज देता है तब क्या 409(2) जा.फौ. में वर्णित मतव्य हल होगा? और यदि मूल जज के समक्ष ही प्रकरण लौटा दिया तो क्या वे सामान्य मन से फैसला दे सकेंगे? इस सबसे परे यदि प्रकरण फिर द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश के समक्ष लौट आया तो क्या फिर नये ढंग से सभी गवाहान पर जिरह का अवसर, ब्यान मुलजिम, बचाव, बहस होकर कई वर्ष निर्थक रूप से इस सबमें नहीं लगेंगे.

और इस सबके पार इस बार यदि अभियोजित लोगों ने पत्र लिख दिया कि उन्हें सजा कराने के लिये रुपया जोड़ा गया है तब?

इन सारी स्थितियों में एक सामान्य मामला, कब तक, कितने न्यायालयों में, कितने शासकीय और व्यक्तिगत धन खर्च के बाद निपट पायेगा? □

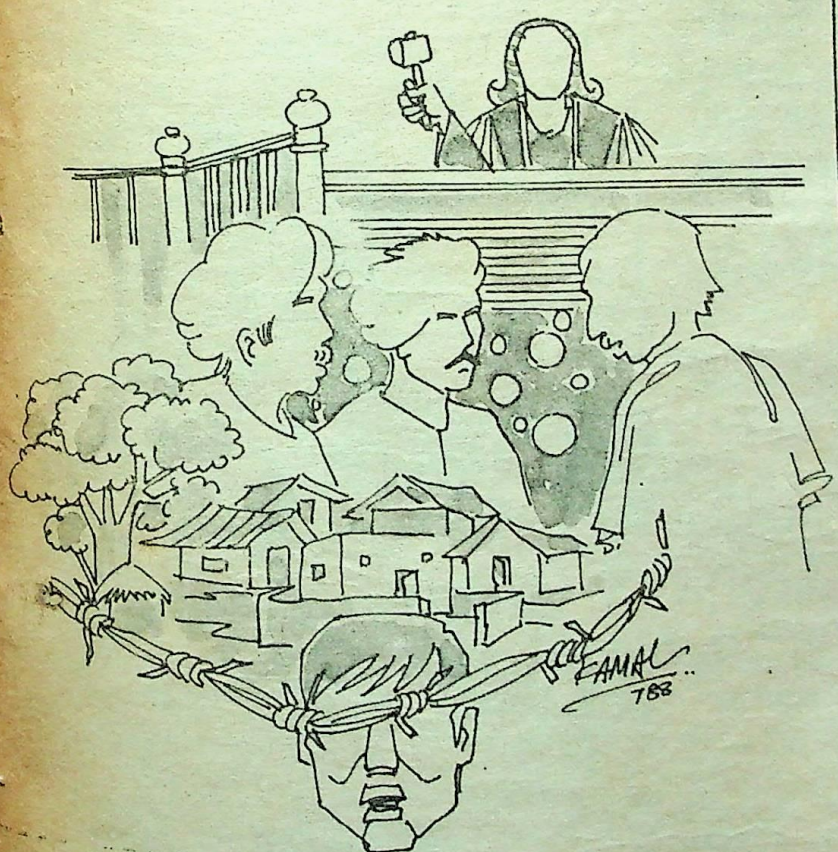

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभकार कपूर

जन्म : 23 नवंबर 1935 खैराबाद, सीतापुर उपन्यास लेखन में विशेष रूचि, 'स्वप्न के संकेत', 'आकाश के आंसू' व 'सूरज का कलंक' प्रमुख उपन्यास.
संप्रति : प्राध्यापक, हिंदी विभाग, आर.के. तलरेजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बंबई.

बेचारे लोग

ज्यों ही वह प्लेटफार्म पर पहुंचा, उसने देखा 'कल्याण लोकल' छूटने को तैयार खड़ी थी. उसे दो मिनट के अंदर ही सामने खड़ी गाड़ी में धंस जाना था. लेडीज कंपार्टमेंट को उसने लंबे कदमों से चलकर पार किया. प्लेटफार्म पर दौड़ना उसे अच्छा नहीं लगा. उसे दौड़ते देखकर लोग क्या कहेंगे? कोई उसका स्टूडेंट ही देख ले. क्या कहेगा वह! देखो सर कैसे भाग रहे हैं. वह तेज चलने के साथ-साथ अपने प्रोफ़ेसर होने की भावना को भी घसीट रहा था. वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जा रहा था, डिब्बों में भीड़ बढ़ती ही जा रही थी और वह तृतीय श्रेणी का टिकट लेकर इस लोकल से आराम से जाने की सोच रहा था. उसके बाद के आये लोग भाग-भागकर डिब्बों में चढ़ रहे थे और वह डिब्बों को पीछे छोड़ता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था.

गाड़ी छूटने जा रही थी. सामने प्रथम श्रेणी का डिब्बा था. कुछ-कुछ खाली मगर उसके पास प्रथम श्रेणी का टिकट नहीं था. अतः वह भी भागकर आगे बढ़ा. अनजाने ही वह भी दौड़ने लगा था.

क्या सचमुच हम लोग इतने निरीह हो गये हैं कि कैसे भी हालात क्यों न हो जायें... हमारी ज़बान बंद ही रहेगी और हम नपुसंक आक्रोश में घुलते रह जायेंगे!

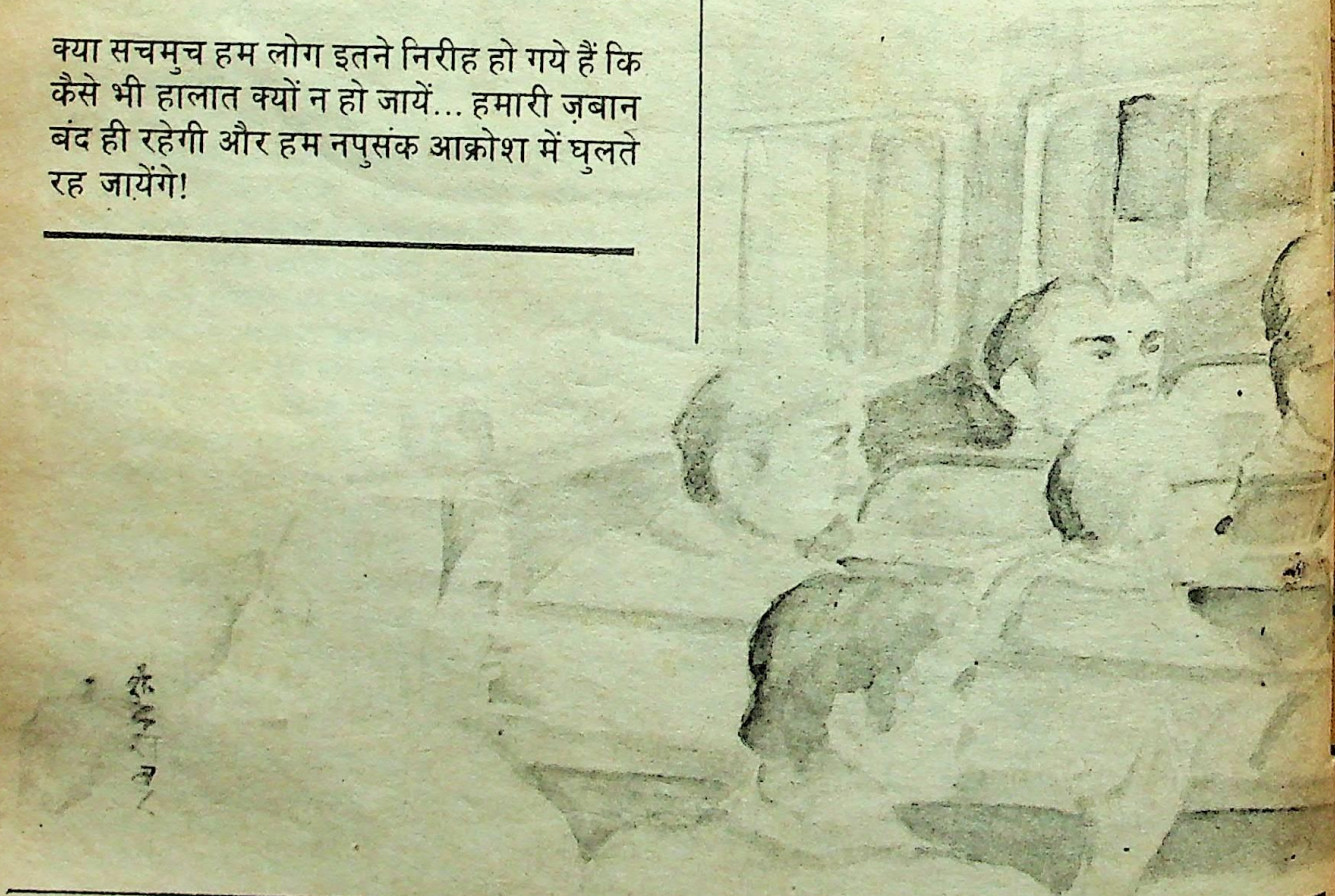

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला स्टेशन आने को ही था. डिब्बे के अंदर कशमकश शुरू हो गयी थी. उसने अंदर धंसने के लिए अपना अगला पैर कुछ आगे खिसकाया. पिछले पैर को भी पूरी ताकत से अंदर को खींचा. दोनों पैर थोड़े-थोड़े अंदर बढ़े, किंतु अंदर उसकी स्थिति और भी दयनीय हो गयी. चारों ओर के दबाव से वह बुरी तरह पिसने लगा था.

चार-छः स्टेशनों के बाद इन अनायास मिलनेवाले धक्कों ने उसे डिब्बे में एक किनारे पहुंचा दिया था. अगले स्टेशन पर डिब्बा ज्यादा खाली हुआ. थोड़ी-सी कशमकश के पश्चात् उसे अंदर सीट के पास खड़े रहने की जगह मिल गई. खिड़कियों से आती हुई ताजी हवा के एक झोंके के लगने पर उसे लगा कि अब वह मात्र उड़ती हुई गंध न होकर आदमी हो गया है. घाटकोपर स्टेशन के बाद उसे सीट पर चौथे नंबर पर सिमटकर बैठने की जगह मिली. डोंबिबली स्टेशन पर पहुंचते-पहुंचते वह आराम से बैठकर ऊंघने लगा था.

कल्याण स्टेशन पर उतरकर उसे बस पकड़नी थी. बस की लंबी लाइन से बचने के लिए वह स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही तेजी से भागा. कितने ही अन्य लोग तेजी से भाग रहे थे.

बस-स्टैंड पर उसके पहुंचने से पहले ही एक लंबी कतार लगी हुई थी. वह भी उसी में जाकर जुड़ गया. भाग-भागकर आकर लोग कतार से जुड़ते जा रहे थे और वह कतार बल खाती हुई आगे बढ़ती जा रही थी. पंक्तिबद्ध खड़े लोग जिस बस की प्रतीक्षा कर रहे थे, उसका कहीं दूर-दूर तक पता न था. धीरे-धीरे लोग ऊबने और बड़बड़ाने लगे थे. लंबे डील-डौल के एक सज्जन इस सरकार की निकृष्टता पर खीझ रहे थे. उन्हीं की बगल में खड़े एक सिधी सज्जन बसवालों की लापरवाही का रोना रो रहे थे. "ये साले सबके सब बदमाश हैं. भला बोलो, एक घंटे से लाइन में खड़े सड़ रहे हैं और साली कोई बस ही नहीं."

"यह मुलक साला कचरा-पट्टी हो गया है. कोई अपना काम नहीं करता. सब जगह बेईमानी."

"बेईमानी तेरा सहारा" कहकर एक साहब हंसे.

"यह हंसने की नहीं बाबा रोने की बात है."

"ठीक है रो लेता हूं." कहकर वह फिर हंसा.

"अरे विश्वकर्माजी, आप भी यहीं खड़े हैं?" उसी लाइन में कुछ आगे खड़े विश्वकर्माजी को देखकर उसने कहा.

"अरे प्रोफेसर साहब, आप! आप भी क्या बंबई से आ रहे हैं?" विश्वकर्माजी ने लाइन से निकलकर उसके पास आते हुए कहा, "यह बस भी बड़ा बवाल है साहब! आज कोई साली टैक्सी भी नहीं. एक घंटे से यहां खड़ा मर रहा हूं, मगर साली बस है कि वह ऐसी गायब हो गई है मानो गधे के सिर से सींग." कहते हुए विश्वकर्माजी हें-हें करके हंसे और अपने भारी-भरकम बैग को बायें हाथ में करते हुए दाहिने हाथ को मिलाने के लिए उसकी ओर बढ़ाया.

उसने भी अपना दायां हाथ आगे बढ़ाया. हाथ पकड़कर विश्वकर्माजी बोले, "इन बसों का कोई ठिया नहीं है. यहां रोज ही यह चलता है."

"साहब, इसलिए यह सब चलता है कि हम लोग मिट्टी के पुतलों की भांति खड़े रहते हैं." वही सिधी सज्जन बोले थे.

"नहीं, तो क्या करें साहब? जब बस नहीं आ रही है तो क्या बस पैदा कर दें." यह एक दूसरे सज्जन की आवाज थी. वे अपना थुलथुल पेट संभाले चुपचाप खड़े हुए थे.

"तो साहब आप अपना झोला-झपट लेकर यहीं रात भर खड़े रहिए."

"अरे साई, अपन यहां खड़ा है तो आप कौन चले जा रहे हैं. जहां आप रात भर सडेंगे, वहां अपन भी सड़ लेंगे."

"भाई लड़ो नहीं, देखो सामने से कंडक्टर साहब आ रहे हैं."

सभी की दृष्टि उस ओर मुड़ गई. सचमुच सामने से एक कंडक्टर साहब चले आ रहे थे. पैसों की थैली और टिकटों का बाक्स दोनों को संभाले हुए.

सभी की उत्सुक नजरें उस ओर मुड़ गयीं.

"क्यों साहब, आप अकेले चले आ रहे हैं? बस क्या रास्ते में रह गई?"

"लगता है घर से आ रहे हैं?"

"मगर साली बस क्यों नहीं आई?"

"अरे कंडक्टर साहब की जेब में तो नहीं है? तलाशी लीजिए न?" एक हंसती हुई आवाज.

सब आवाजों को नजरअंदाज करते हुए कंडक्टर साहब किसी दूसरी ओर मुड़ जाते हैं.

'हम सब साले हिजड़े हैं हिजड़े! इस कतार में कितने आदमी खड़े हैं, मगर सब माटी की मूरत की तरह! कंट्रोलर साहब का आफिस बंद, बाबू लोग गायब. कंडक्टर साहब इधर खड़े आंखें तरेर रहे हैं, मूछें ऐंठ रहे हैं—मानो पब्लिक को खाने की तैयारी कर रहे हों... क्या साला जमाना आ गया है." काफी समय बाद चोपड़ा साहब का स्वर गूंजा था. फिर एक बार जलती हुई आंखों से कंडक्टर साहब की ओर देखा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो-तीन लोग लाइन से निकलकर कंडक्टर साहब के पास जाकर कुछ खुसुर-फुसुर कर रहे थे. सिंह उन सबकी आवाज नहीं सुन पा रहा था. उसे लग रहा था कि कुछ लोग अपनी आदत के अनुसार पूंछ हिलाने के लिए कंडक्टर के चारों ओर घूम रहे हों और वह बीच-बीच में धत्-धत् कर रहा हो. कुछ क्षणों बाद उसे कंडक्टर की गुर्राती हुई आवाज सुन पड़ी. "साला बस हमारा पाकेट में पड़ा है, निकाल लो..." और इसके साथ ही दो-चार कुत्सित गालियों से संपृक्त वाक्य उसके फड़कते अधरों से बाहर आ टपके.

खुस-पुस करती हुई लाइन में एक सनसनाहट-सी आ गई. लगता था उस कंडक्टर की अपमानभरी बातों ने सबको क्रुद्ध कर दिया था. लाइन एक भीड़ में परिणित होने लगी थी. कई लोगों ने क्रोध से भर कर कंडक्टर को घेर लिया था. अभी चखचख चल ही रही थी कि इसी समय बस स्टेशन की ओर आती हुई एक बस की आवाज ने सबका ध्यान अपनी ओर खींच लिया. भीड़ फिर लाइन के रूप में अपने को ढालने लगी. कंडक्टर क्या कह रहा है, अब इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं था.

लाइन कई स्थानों से दोहरी-तिहरी हो गयी थी. बस के आने से पहले ही लोग पीछे से आगे आ जाने के सुप्रयास में लगे हुए थे. पूरी की पूरी पंक्ति एक विचित्र प्रकार की अव्यवस्था का शिकार हो चुकी थी.

बस आकर खड़ी हुई. एकदम खाली थी. पहले पीछे के दरवाजे से कंडक्टर साहब सीटी मुंह में दबाए हुए बाहर निकले और धक्कम-मुक्का करती लाइन को बड़ी उपेक्षा के साथ देखते हुए वे आगे बढ़ गए.

ड्राइवर साहब ने गाड़ी की घरघराहट बंद की, बगल का दरवाजा खोला और अपनी सीट से नीचे की ओर कूदने की मुद्रा में छलांग लगाई. नीचे आकर रूमाल से अपना मुंह साफ किया और फिर मुंह में दबे पान की पीक पिच्च से थूकते हुए वे भी उसी ओर बढ़ गए जिधर कंडक्टर साहब गये थे.

उस तरफ खड़े हुए कंडक्टर और क्लीनर भी बस से उतरनेवाले कंडक्टर की ओर बढ़ गए थे.

बेचैन खड़ी लाइन में भी फुसफुसाहट और आतंक का वातावरण था. कुछ लोग तो भी निर्भीक शहीदाना-मुद्रा में बोल रहे थे. ड्राइवर साहब ने अपनी सीट के पास वाला दरवाजा खोला और 'हाईजंप' की मुद्रा में छलांग लगाकर अपनी सीट पर जा बैठे. पीछे के दरवाजे से 'कंडक्टर एंड कंपनी' के लोग बस में जा बैठे. बस के साथ आए हुए कंडक्टर साहब ने अपना टिकट-बाक्स और सीटी संभाली और दरवाजा खोलकर खड़े हो गए. फिर कुछ कठोर स्वर में बोले, "आप लोग लाइन में एक-एक कर आकर बैठ जाए. टिकट बाद में बांट देंगे."

लाइन में लगे लोग झपट कर धक्का-मुक्की करते हुए बस में चढ़ने लगे. कंडक्टर साहब एक मूक दर्शक की भांति लोगों की धकापेल देखते रहे. चोपड़ा साहब चढ़े, प्रोफेसर सिंह चढ़े, वह सिंधी नवयुवक चढ़ा, उसके पश्चात वे कुछ लोग और चढ़े जो उस समय विवाद में कुछ मुखर थे. उन सभी के चढ़ते ही मूक दर्शक की भांति गेट पर खड़े हुए कंडक्टर साहब ने अकस्मात् खींचकर दरवाजा बंद कर लिया और एक लंबी सीटी देकर बस स्टार्ट करने का संकेत दे दिया.

बस स्टैंड के बाहर निकलकर सड़क पर आ गयी थी किंतु वह अपने निर्धारित मार्ग को छोड़कर दूसरी सड़क पर आकर मुड़ गयी थी. सिर को सहलाते हुए विश्वकर्माजी ने खिड़की से बाहर को ओर झांका. ड्राइवर के पीछे की सीट पर ही वे लोग बैठे हैं

"ड्राइवर साहब क्या रास्ता चेंज कर दिया?" विश्वकर्मा पूछा.

उनका प्रश्न अनुत्तरित ही रहा. इसी समय बस एक डिपो' के गेट को पार करती हुई अंदर जाकर खड़ी हो गई

बस रुकते ही कंडक्टर साहब दरवाजा खोलकर बाहर गए. दूसरे कंडक्टर साहब और उनके साथ के लोग आकर दरवाजे पर खड़े हो गए. क्लीनर ने आगे बढ़कर दरवाजा भड़ बंद कर लिया.

पूरी बस में एक विचित्र प्रकार के भय का आतंक छाया हु था. सब भौंचक्के से एकदूसरे को देख रहे थे. सिंह की बगल की सीट पर चोपड़ा साहब बैठे हुए थे. उनके मुख पर घबराहट छ रही थी. अगली सीट पर गोल-मटोल सिंधी सज्जन बैठे हुए थे उन्होंने अपने तरबूज के समान गोल सिर को थोड़ा घुमाकर पीछे की ओर देखा. उनकी चिमधी आंखें भय के कारण कुछ और चिमधी हो गयी थीं.

बस के बाहर कुछ हलचल हुई. कई गूंजती हुई आवाजें बाहर से आती हुई लगीं. प्रो. सिंह ने खिड़की से धीरे से झांककर देखा बाहर गए हुए कंडक्टर साहब के साथ कई लोग हाथों में बस के हैंडिल और डंडे लिए खड़े हुए थे. उन लोगों ने बस को लगभग पूरी तरह से घेर लिया था. सिंह के पूरे शरीर में सनसनाहट दौड़ गयी. उसके साथ-साथ कई लोगों ने बाहर खड़े हुए 'हथियार बंद' लोगों को देखा था और सबके सब भयभीत से, सिकुड़े बैठे हुए थे सिंह ने पूरी बस पर एक उचटती हुई नजर दौड़ाई. सबके चेहरे बुझे हुए थे. दिल धड़क रहे थे. चोपड़ा साहब का रोबदार चेहरा भी इस समय अपने को छिपाने का प्रयास कर रहा था. सिंह को लगा कि माथे पर चिंता और भय अलथी-पलथी मार कर बिराज रहे हैं.

इसी समय भड़ाक से बस का पिछला दरवाजा खुला और साथ ही एक चीखती हुई आवाज के साथ दो लोगों ने हाथ में हैंडिल लिये हुए प्रवेश किया. उनके साथ ही कंडक्टर साहब थे. बस में

धर्मराज के अवतार

विष्णु प्रभाकर

'धर्मराज के अवतार' के रूप में उनकी प्रसिद्धि अक्षुण थी. बिक्रीकर अधिकारी तक उनके प्रशंसक थे. वर्ष पर वर्ष बीत रहे थे, कोई भी अधिकारी उनके द्वारा प्रस्तुत हिसाब में शंका करने का कोई कारण नहीं खोज सका था. व्यापारी जगत में, कहा जा सकता है यह एक अपवाद ही था, फिर भी था और चर्चा का विषय बना हुआ था.

अचानक एक दिन व्यवधान उपस्थित हो गया. नये कर अधिकारी ने उसके हिसाब में गहरी जांच पड़ताल के बाद उन पर दस हजार रुपये का कर लगा दिया.

वे जैसे आसामान से गिर पड़े. 'धर्मराज के अवतार' का उनका विरुद्ध खतरे में पड़ गया था. इस कलंक को धोने के लिये उन्होंने अधिकारी से बार-बार बातचीत थी. समझाने की कोशिश की कि उनके द्वारा प्रस्तुत हिसाब अक्षरशः सही है. उन्होंने कभी झूठ नहीं लिखा है. उनसे पहले कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट के पास खड़े हुए कंडक्टर और उनके साथ के लोग अपने नीचे
र जमे हुए थे. मूछों पर हाथ फेरते और गालियों की बंदूक छोड़ते
आगे बढ़े. "वह साला, सबसे ज्यादा वही साला.. शोर मचा रहा
" वे चोपड़ा साहब की ओर इशारा करते हुए पीछे की सीटों को
गभग फांदते हुए बढ़े आ रहे थे.
"साला, बेटी... अपन को लीडर की... समझता है. इसकी मां
..." गालियां वीभत्स से वीभत्स होती जा रही थीं.
चोपड़ा साहब चुपचाप सिकुड़े-दबे से सिर नीचा किए बैठे हुए
थे. उनका भारीभरकम शरीर धीरे-धीरे कांप रहा था.
कंडक्टर ने आगे बढ़कर उनकी कमीज के कालर को तेजी से
पकड़ कर खींचा. नीचे झुका हुआ उनका सिर एक झटके के साथ
सीधा तन गया. उन्होंने घबराये हुए चेहरे से चारों ओर देखा फिर
लगभग कांपती हुई आवाज में बोले, "यह क्या बदतमीजी..."

उनकी बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि पीछे से कंडक्टर साहब
ने उनके सिर को आगे की सीट से टकरा दिया. दर्द के मारे वे करार
उठे. अभी तक भय के कारण दबा हुआ अंदर का क्रोध अकस्मात्
उबल पड़ा. वे कंडक्टर के हाथ को छुड़ाते हुए सीट पर तन कर
खड़े हो गए. चारों ओर बस में उन्होंने नजर दौड़ाई. मुर्दा से लोग.
दबे-सिकुड़े बैठे हुए थे. स्थिति को समझकर उन्होंने उमड़ते हुए
क्रोध को रोकते हुए कहा, "क्यों साहब, मैंने क्या गलती की है..."
उनकी बात की उपेक्षा करते हुए कंडक्टर साहब ने सामने बैठे
सिधी सज्जन की ओर संकेत करते हुए अपने साथियों से कहा,,
"इस साले तोंदिए को भी उतारो. वह भी साला खड़ा-खड़ा
फलसफा पढ़ा रहा था."

"अरे साहब, मैंने क्या किया है! मैं.. मैं..." गिड़गिड़ाती हुई
सिधी सज्जन की आवाज थी. उनकी आवाज ऐसी लग रही थी
मानों किसी के बकरे का मुंह दाबकर आवाज निकाली हो.
उनकी गिड़गिड़ाहट का कोई प्रभाव नहीं हुआ. पीछे के लोगों
ने हाथ पकड़कर उन्हें भी खड़ा कर दिया था. एक क्लीनर जैसा
आदमी उनकी तोंद पर बस का हैंडिल गड़ाकर खड़ा हो गया मानो

प्रोफेसर सिंह का सारा शरीर क्रोध, भय और आतंक से कांप रहा था. उन्होंने कुछ बोलना चाहा किंतु विश्वकर्मा ने उनका हाथ दबाकर चुप रहने का संकेत किया. उन्होंने छिपी दृष्टि से बस के लोगों की ओर देखा. सभी के चेहरे भय से फक्क थे. ज्यादातर लोग अपने चेहरों को आगे की सीट पर टिकाए-छिपाए बैठे थे. लगभग चालीस-पैंतालीस यात्री उस बस में बैठे हुए थे, मगर सबके सब मुर्दा के समान.

चोपड़ा ने थोड़ा प्रतिकार किया फिर वे अपना ब्रीफकेस लेकर बाहर जाने के लिए खड़े हो गए. एक बार उन्होंने फिर बस के यात्रियों की ओर देखकर गुहार लगाई "देख रहे हैं साहब, क्या जमाना आ गया है. सब... के सामने यह गुंडागिरी..."

"अबे गुंडागिरी का दादा..." चोपड़ा साहब की बात पूरी होने के पूर्व ही कंडक्टर का रंदा चोपड़ा साहब के कंधे पर पड़ा. अकस्मात झटके से उनके हाथ का ब्रीफकेस छूटकर नीचे जा गिरा.

इस अपमान और प्रहार को वे सह न सके. उन्होंने कंडक्टर के, हाथ को पकड़ लिया. मुंह उनका क्रोध से लाल था और मुंह से कुछ अस्फुट ध्वनियां निकल रही थीं.

बस के मुर्दा-यात्री इस समय भी चुपचाप सिर छिपाए बैठे थे और छिपी नजरों से इस पूरे दृश्य को तमाशबीनों के समान देख रहे थे.

थोड़ा धींगा-मुश्ती हुई. थोड़ी-सी जोरअजमाई हुई और उन चार-पांच लोगों ने चोपड़ा साहब को लगभग घसीटते हुए बस के बाहर ढकेल दिया. उनके ब्रीफकेस को भी उठाकर उन्हीं पर झोंक दिया.

"यह क्या तमाशा है?" सिंह धीरे से बुदबुदाया किंतु विश्वकर्माजी ने उसे फिर इशारे से चुप रहने की बात कही वह अंदर से खोलता हुआ चुपचाप बैठा रहा.

इसी समय उसने देखा मोटे सिंधी सज्जन को भी वे लोग खींचकर उतारने लगे हैं. उसका मोटा थुलथुल शरीर वे लोग ऐसे खींच रहे थे मानो मोटी भेड़ को जिबह करने के लिए घसीटकर लिए जा रहे हों. उसके मुंह से करुणा भरी जो आवाजें निकल रही थीं, वे भी उसे भेड़ के मिमियाने की ही आवाज लगी.

कोई पांच मिनट में उन लोगों ने कोई चार-पांच लोगों को बस से उठा-उठाकर फेंक दिया और बस में बैठे शेष चालीस लोग एक दर्शक की भांति निरपेक्ष भाव से बैठे यह तमाशा देखते रहे, मानो वे टी.वी. देख रहे हों अथवा कोई ऐसा दृश्य जिससे उनका कोई संबंध नहीं है. सिंह अपने नपुंसक आक्रोश को पीकर अंतर्मुखी हो गया था.

उसका ध्यान बस के आकस्मिक झटके से टूटा. उसने देखा बस घरघराती हुई 'गेट' के बाहर जा रही थी. उसने छिपी दृष्टि से बस के पिछले 'गेट' की ओर देखा. केवल एक कंडक्टर अपनी बिच्छू के डंक के समान कटीली मूछों को खड़ा ऐंठ रहा था. और शेष लोग भय के कारण सीट से चिपके, दबे-धंसे बैठे हुए थे. कुछ लोग आंख बंद कर चुपचाप सोने का अभिनय कर रहे थे.

चौथे बस स्टाप पर उसके साथ कई लोग उतरे. बस लगभग खाली हो गयी थी. उसने अनुभव किया कि बस से उतरते ही लोगों ने छुटकारे की लंबी सांस ली हो मानो वे जेल से छूटे हों. बस के स्टार्ट होते ही लोगों का बोलना 'स्टार्ट' हो गया था. लगता था मुर्दे फिर जिंदा हो गए हैं. उनके नपुंसक क्रोध को देखकर उसको हंसी आ गई... सचमच कितने बेचारे हैं हम लोग... □

किसी अधिकारी ने उन पर आरोप नहीं लगाया है.

अधिकारी हर बार मुस्करा कर उत्तर देता, "मैं जानता हूं पर मैंने भी जो कर लगाया है वह सही है."

अंततः जब उन्हें किसी भी तरह सफलता नहीं मिली तो उन्होंने मित्रों और वकीलों की शरण ली. गहरी मंत्रणा के बाद एक मार्ग खोज निकाला गया. जिससे होकर बीस हजार रुपये उन पर अधिकारी की पत्नी के पास पहुंचे. उसके बाद अधिकारी ने अपनी आपत्ति आप ही रद्द कर दी. वह गद्‌गद थे, उनका 'धर्मराज के अवतार' विरुद्ध अब सुरक्षित था.

भाव-विह्वलता के उन क्षणों में उनके एक अंतरंग मित्र ने यह पूछे बिना न रह सके, "मैं समझ नहीं पा रहा कि आपने दस हजार रुपये कर के रूप में क्यों नहीं दे दिए. बीस हजार रुपये की रिश्वत क्यों दी."

मित्र की ओर करुणा से देखते हुए वे बोले, "मेरे भोले भाई! दस हजार रुपये कर के रूप में देता तो मेरा 'धर्मराज के अवतार' वाला विरुद्ध छिन न जाता. उसकी रक्षा तो मुझे किसी भी तरह करनी ही थी. मुझे खुशी है मै कर सका." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी आलोचना के सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद प्रवक्ता नामवरजी ने पिछले दिनों अपने जीवन के साठ वर्ष पूरे किये. पिछले अंक में घोषित योजना के तहत प्रकाशित होने वाली विशिष्ट सामग्री के क्रम में प्रस्तुत है यथार्थवाद और सौंदर्यशास्त्र जैसी महत्वपूर्ण आलोचना पुस्तक के लेखक राजकुमार सैनी का आलेख...यह क्रम अगले अंकों में भी जारी रहेगा...

प्रौढ़, व्यापक और परिपक्व अनुभव-संसार के धनी : नामवर सिंह

पिछले तीन दशकों से हिंदी आलोचना के सर्वाधिक विवादास्पद प्रवक्ता के रूप में डा. नामवर सिंह अक्सर साहित्यिक चर्चाओं/परिचर्चाओं का केंद्र रहे हैं. इनका जन्म 1 मई, 1927 को वाराणसी जिले के जीवनपुर गांव में हुआ था. 1951 में काशी हिंदु विश्वविद्यालय से एम.ए. किया. फिर 1956 में पी.एच.डी. की. तब से लेकर आज तक उनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची इस प्रकार है :
1. बकलम खुद. 2. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग
3. पृथ्वीराज रासो की भाषा (शोध प्रबंध)
4. आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां
5. छायावाद इतिहास और आलोचना
6. कहानी नयी-कहानी 7. कविता के नये प्रतिमान
8. दूसरी परंपरा की खोज.

इसके अतिरिक्त कुछ पुस्तकों का संपादन किया है और हिंदी आलोचना की महत्वपूर्ण पत्रिका 'आलोचना' का संपादन कर रहे हैं. अनेक भाषणों और साक्षात्कारों के रूप में इनके वक्तव्य विविध पत्रिकाओं/चयनिकाओं में बिखरे पड़े हैं. इसके अतिरिक्त उन्होंने कविताएं भी लिखी हैं.

एक जागरूक आलोचक के रूप में वे अक्सर यथार्थवादी विवेक और रोमानी संविवेक के द्वंद्व से ग्रस्त रहे हैं. कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि पक्षधारता से दामन छुड़ाते-छुड़ाते, पक्षपात ने उनका दामन थाम लिया है. अगर भैरव और मार्कंडेय की कहानियां दोषयुक्त थीं तो निर्मल वर्मा की कहानियां दोषमुक्त नहीं थीं. लेकिन निर्मल वर्मा की कहानियों में उछले प्रश्न से उन्हें लेनिन की कृति के शीर्षक (क्या करें?) की याद आयी. इसी तरह बाद की पीढ़ी में उन्हें इसराइल, मधुकर सिंह आदि कभी याद नहीं आए! कमियां और खामियां तो उनमें भी रही होंगी जो उन्हें अक्सर और बार-बार याद आते रहे. कविता की आलोचना में उन्हें नागार्जुन बहुत देर से याद आए. आदि, आदि.

लेकिन कविता हो या कहानी, दोनों क्षेत्रों में कंटेट और फार्म दोनों स्तरों पर उन्होंने **परंपरागत कविता और परंपरागत कहानी** तथा **नये ढंग की कविता और कहानी** के बीच के अंतर को रेखांकित किया. इस प्रकार उन्होंने बड़े ही सटीक ढंग से पुरानी और नयी रचना के फर्क को समझाया. नयी विचारशीलता और संवेदनात्मकता का समीकरण पेश किया. यह उनके कृतित्व का सकारात्मक पक्ष है कि उन्होंने पुराने और नये मूल्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टकराव को पहचाना और उस पहचान को
ष्ट किया.
किंतु मूल्यों के टकराव को, व्यावहारिक
आलोचना करते समय, उन्होंने पीढ़ियों के
टकराव के साथ मिलाकर एक मोहक
भ्रम की सृष्टि की. इसका बाद की
पीढ़ियों पर असर पड़ा, जो स्वास्थ्यवर्धक
नहीं था. मूल्यों का टकराव मुख्य
अंतर्विरोध था, पीढ़ियों का टकराव गौण.
बातों को गडमड कर देने से स्थितियां स्पष्ट
होने के बजाय और उलझतीं गयीं. साहित्य
में जो नये ढंग का रीतिवाद आया, उसको
भी डा. नामवर सिंह ने अनदेखा किया.
बल्कि जब-जब इस नये ढंग के रीतिवाद
संबंधी राज-तिलक समारोह हुए तब-तब
वे उनमें 'शामिल' भी हुए, 'शामिल'
कहना शायद ज्यादती होगी, लेकिन उनमें
वे 'उपस्थित' तो रहे ही.

अमरकांत, भीष्म साहनी, शेखर
जोशी, ज्ञानरंजन जैसे कथाकारों के साथ
उन्होंने यथा-समय न्याय किया लेकिन
और बहुत से लेखकों की उन्होंने उपेक्षा की
जो नये ढंग के रीतिवाद के साथ
अपने-अपने ढंग से जूझ रहे थे. यदि यह
उपेक्षा अनजाने होती तो कोई बात नहीं
थी. लेकिन यह उपेक्षा जब-तब जानबूझ
कर की गयी.

अपनी आलोचनाओं में डा. नामवर सिंह
ने क्रांतिकारी रोमांस और सक्रिय यथार्थ को
चित्रित करने वाली रचनाओं की कलात्मक
संभावनाओं पर आशंका व्यक्त की और
निष्क्रिय ढंग की रोमानी-यथार्थवादी
रचनाओं की मगन-भाव से चर्चा की.
मुक्तिबोध साहित्यालोचन के साथ-साथ
आत्मालोचन भी करते थे जबकि डा.
नामवर सिंह सिर्फ साहित्यालोचन करते हैं.

लेकिन इन सीमाओं के होते हुए भी
उनके महत्वपूर्ण योगदान को नकारा नहीं
जा सकता. उन्होंने हिंदी कहानी और हिंदी
कविता की आलोचना को विश्व-स्तर पर
होने वाली कहानी और कविता संबंधी
आलोचना से जोड़ कर देखा. भारतीय
आलोचना और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने
वाले अद्यतन साहित्यालोचन के बीच एक
संपर्क कायम किया.

प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' की परंपरा के
विकास के रूप में भीष्म साहनी की 'चीफ
की दावत' का उल्लेख करना इस बात का
सबूत है कि डा. नामवर सिंह की
समीक्षा-दृष्टि अंतर्विरोधों के बावजूद
भोंथरी नहीं हो पायी है.

मुक्तिबोध और हरिशंकर परसाई के साहित्य के बारे में डा. नामवर सिंह का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हिंदी में यही दो लेखक थे जिन्होंने आजादी के बाद मोहभंग की पीड़ा का पहलेपहल साक्षात्कार किया था. लेकिन इस संदर्भ में भी (अनजाने या जानबूझकर?) वे और कई नाम भूल गए! डा. रामविलास शर्मा, नागार्जुन, हंस राज रहबर आदि जो मोहभंग के शिकार कभी हुए भी नहीं.

अपने हाल ही में दिए एक इंटरव्यू में डा. नामवर सिंह ने कहानी और उपन्यास के अंतर को बड़ी सफाई के साथ रेखांकित किया है. वे कहते हैं– "जहां काम आवे सुई, कहा करे तलवार. सूई से तलवार का काम नहीं लेना चाहिए. यह वही आदमी लेता है जो स्वयं सूई के महत्व को नहीं समझता है. तलवार के महत्व को तो समझता ही नहीं है. यह मैं जब कहता हूं तो मोटे तौर से बात करने की सुविधा के लिए की सूई को मैं कहानी मान लेता हूं और उपन्यास को तलवार."

(सुरेश पांडेय को दिया साक्षात्कार, पहल पुस्तिका-7 पृष्ठ 56)

इस निष्कर्ष से इंकार नहीं किया जा सकता कि कहानी की अपनी सीमाएं और मर्यादाएं होती हैं. कहानी उपन्यास का लघु-संस्करण नहीं है.

हम कामना करते हैं कि वे चालीस वर्ष और जिएं. अपने भाषणों, वक्तव्यों, वाचन और लेखन से साहित्य-संसार को विचारोत्तेजित करते रहें.

वे हिंदी संसार को अपनी श्रेष्ठतम और कालजयी कृति दें. हम उनसे ऐसी उम्मीद कर सकते हैं **क्योंकि उनमें उच्चकोटि की प्रतिभा है, उनका अनुभव-संसार प्रौढ़, व्यापक और परिपक्व हो चुका है.** विपुल और विविधात्मक अध्ययन सामग्री का वे अवगाहन कर चुके हैं. सुविधा-साधन संपन्न हैं. गुरुदेव रवीन्द्रठाकुर के शिष्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शिष्य हैं. अब उनकी अवस्था ऐसे महाकाव्य के सर्वथा उपयुक्त है. क्योंकि इस अवस्था में राग-द्वेष शांत रहने लगते हैं. और आदमी के भीतर का जहर निकल चुका होता है. उनके आगे के चालीस साल अत्यंत संभावनापूर्ण और सार्थक हों, यही कामना है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतुल शर्मा
एम.ए. हिंदी, शोध कार्यरत.
संप्रति : प्रकाशन एवं पुस्तक प्रकाशन के अतिरिक्त स्वतंत्र लेखन.
संपर्क : 38, लिटन रोड, देहरादून-248001

पार्क की बैंच पर चश्मा

उन्हें लगा कि उनकी बगल में पड़ा चश्मा उन्हें घूर रहा है. उन्हें उससे डर लगने लगा. डर की हालत में उन्होंने अपने पैर बैंच के ऊपर रख लिए...प्रस्तुत है नये हस्ताक्षर के अंतर्गत यह कहानी

शुरू में उन्होंने चश्मे को कोई तवज्जो नहीं दी थी. एक सरसरी नजर से उसे देखा था – वह बैंच के बिल्कुल कोने में इतमिनान से पड़ा हुआ था. उसके मेरून रंग के नये फ्रेम ने भी उनका ध्यान एकदम से नहीं खींच लिया था. वे, बस चुपचाप उसकी बगल में बैठ गये थे. पार्क में शाम ढले एक खाली बैंच का मिल जाना ही उन्हें सुकून देने के लिये काफी था.

कुछ पल वें अकेले लोगों को गुजरते और टहलते देखते रहे. फिर उनकी नजर चश्में पर जा पड़ी, जो उनकी बगल में बैंच पर पड़ा था. उन्होंने नजर चश्में से हटायी और आसमान की तरफ घुमा ली. आसमान पर नजर ज्यादा नहीं टिक सकी, फिर फिसलकर चश्मे पर जा पड़ी. उन्होंने सामने बैंच पर एक अजनबी को अपनी आंखों में चश्मा चढ़ाते देखा और उनकी नजरें फिर बगल में पड़े चश्में पर आ टिकीं. यह चश्मा जरूर कोई यहां भूल गया है. यह खयाल तब उनके जेहन में उगा हालांकि उसे तभी उग जाना चाहिये था जब उन्होंने चश्मा पहली बार देखा था. जब वे बैंच पर बैठे भी नहीं थे. उन्हें इस बात से अपने आप पर शर्म आने लगी और यह शर्म और ज्यादा बढ़ती गयी उन्हें लगा कि वे चश्मे के सामने शर्मिंदा हैं. फिर उन्हें लगा कि वह चश्मा नहीं है बल्कि चश्मा लगाये कोई आदमी है जो अहसास की तरह चुपचाप उनकी बगल में बैठा है और उन्हें घूर रहा है.

"देखिये, भाई साहब... एक मिनट!"

उन्होंने दयनीय आवाज में बैंच के पास से गुजरते एक आदमी को पुकारा. आदमी रूक गया तो उन्होंने चश्मे को देखा, जैसे उससे माफी मांग रहे हों और भरोसा दिला रहे हों कि अब सब कुछ ठीक हो जायेगा.

"भाई साहब! ये चश्मा यहां पड़ा है. पता नहीं किसका है." उन्होंने आदमी को रुका हुआ पाकर कहा. आदमी ने एक-दो पल चश्मे को घूरा. फिर वह उसके नजदीक गया और चश्में को छुआ.

"कोई यहां बैठा होगा, इसी बैंच पर आपकी तरह और जाते हुए इसे ले जाना भूल गया होगा." अपनी तरह से आदमी ने कहा और आगे चल दिया.

आदमी के जाते ही वे चश्मे की ओर देखने लगे. जरूर यह छूट गया है और कोई इसे छोड़ गया है. जो यहीं बैठा था. इसी बैंच पर, उनकी ही तरह. उसने यह बात कही है, इसका मतलब वे भी अपना चश्मा ऐसे ही भूल सकते हैं. जब उन्होंने अपनी आंखों पर चढ़े चश्मे को भी महसूस किया. अपनी उंगलियों से उसे छुआ और एक सुकून महसूस किया. तभी उन्हें लगा कि उनकी बगल में पड़ा चश्मा उन्हें घूर रहा है. उन्हें उससे डर लगने लगा. डर की हालत में उन्होंने अपने दोनों पैर बैंच के ऊपर रख लिये. छड़ी को अपने और चश्में के बीच रख दिया. पर उससे भी चश्में की स्थिति में कतई फर्क नहीं आया. उन्हें लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चश्मा उनसे नाराज है, और उसके भीतर बैठा आदमी गुस्से के कारण चुप है.

"देखो भाई! इसमें मेरा क्या कुसूर है, मैं तुम्हें पहचानता नहीं. मुझ जैसे पचासों आदमी यहां आते हैं, तुम्हें पता है कि तुम उनके लिए क्या हो? देखो भाई! चश्मा उनकी आंखों और उनकी क्षमताओं का पर्याय है."

वे रुक गये और उन्होंने चश्मे को एक बार फिर गौर से देखा. लगा जैसे चश्मा उन्हें अब घूर नहीं रहा है, उन्हें अपलक ताक रहा है. उन्हें अपनी बगल में सरसराहट-सी महसूस हुई. पार्क में शाम की हवा अपने खास अंदाज में चलनी शुरू हो गयी थी और एक छोटा लड़का अपने टोकरे में चने लिये उनके सामने खड़ा था.

"बाबू साहब! आपने मुझे बुलाया..." लड़का ढीठ बनकर उनके सामने खड़ा हो गया.

"मैंने,"... वे कुछ पल लड़के को घूरते रहे.

"देख लड़के. ये चश्मा पड़ा है. पता नहीं कौन इसे छोड़ गया है."

लड़के ने चश्मे की तरफ देखा. उसने अपनी टोकरी पार्क की बेतरसीब-सी बढ़ आयी हरी दूब पर रख दी और चश्मे के बिलकुल नजदीक चला आया.

"साब, ये तो उसका दिल और दिमाग ही यहां छूट गया है. वह जहां भी होगा यहीं खिचा आयेगा..."

उन्हें खुशी हुई कि अब लड़का डर नहीं रहा. वह दिलचस्प आंखों से चश्मे का मुआयना करने लगा. उसने चश्मा उठाया, उसे खोला और उसके भीतर झांका... फिर कांपते हाथों से उसे वापस रख दिया.

"साब! ये औरत का चश्मा है."

"औरत का? कैसे भाई?"

"मेरी दादी के भी था!"

"क्या पता वही भूल गयी हो?"

"दादी तो मर गई साब... और मरने से भी पहले उसका चश्मा टूट गया था."

लड़का अब दूर हट गया. उसने टोकरी उठायी और वापस जाने लगा फिर एकाएक वह मुड़ा और उनके बिलकुल सामने आ खड़ा हुआ.

"साब चना ले लो."

वे चौंके. उन्होंने चश्मे की तरफ देखा और उन्हें लगा शायद लड़के को उन्होंने पहले चने के लिये कह दिया हो.

"हां... हां देता क्यों नहीं, पचास पैसे के दे दे."

"साब... एक रुपये का ले लो...!" लड़का एकाएक उदास हो गया और उसकी आवाज में अजीब-सी मुर्दानगी चली आयी. उन्होंने फिर चश्मे को देखा और उन्हें लगा चश्मा उदास है. इसलिये उनकी तरफ नहीं देख रहा बल्कि ऊपर आसमान की तरफ देख रहा है.

"अच्छा ला... एक रुपये का ही दे दे." उन्होंने लड़के की तरफ हाथ बढ़ाया. लड़के ने पता नहीं कब से कागज की पुड़िया में चने रखे हुए थे और वह उनमें नींबू निचोड़ रहा था. उन्होंने हाथ में चने की पुड़िया महसूस की और जेब से एक रुपये का पुराना नोट निकाला, चश्मे की तरफ देखा और वह नोट लड़के को दे दिया. लड़का चला गया.

"लो भाई खाओ." उन्होंने कहा और पुड़िया अपने और चश्मे के बीच रख दी. खुद खिसक गये और छड़ी को वहां से उठा कर अपनी दूसरी तरफ लिटा दिया.

"मुझे चने अच्छे नहीं लगते, पर दोस्त तुम खाओ और उदास न हो. फर्ज करो तुम मेरा चश्मा होते!" उन्होंने मुस्कुराकर पांव वापस बैंच से उठाकर जमीन पर रख दिया. छड़ी को हाथों में ले लिया और उसे सहलाते-सहलाते कहने लगे, "पर दोस्त तुम मेरा चश्मा नहीं हो सकते. क्योंकि पहली बात, तुम मेरा चश्मा नहीं हो और दूसरी बात यह कि अगर तुम मेरा चश्मा होते तो इस तरह नहीं खो सकते थे. फिर भी फर्क नहीं पड़ता. असल बात यह है कि तुम चश्मा हो और ऐसा ही चश्मा मैंने पहन भी रखा है."

उन्होंने फिर चश्मे को देखा. लगा कि चश्मा अब उन्हें दिलचस्पी से देख रहा है और उसका मन बहलाना चाहिये जैसे वे पहले अपने पोते का मन बहलाया करते थे. उन्हें फिर लगा कि चश्मे के भीतर कहीं उनका पोता छुपा हुआ है. वह छुपने के लिए अजीबोगरीब जगहें ढूंढ लेता था.

"हां... बबलू,चुप चने खाओ. और बेटा तुम्हें याद है, मैंने अपना चश्मा कैसे बनवाया था!" चश्में से; उनके पोते को धकेल कर, फिर उत्सुक आंखें, उन्हें

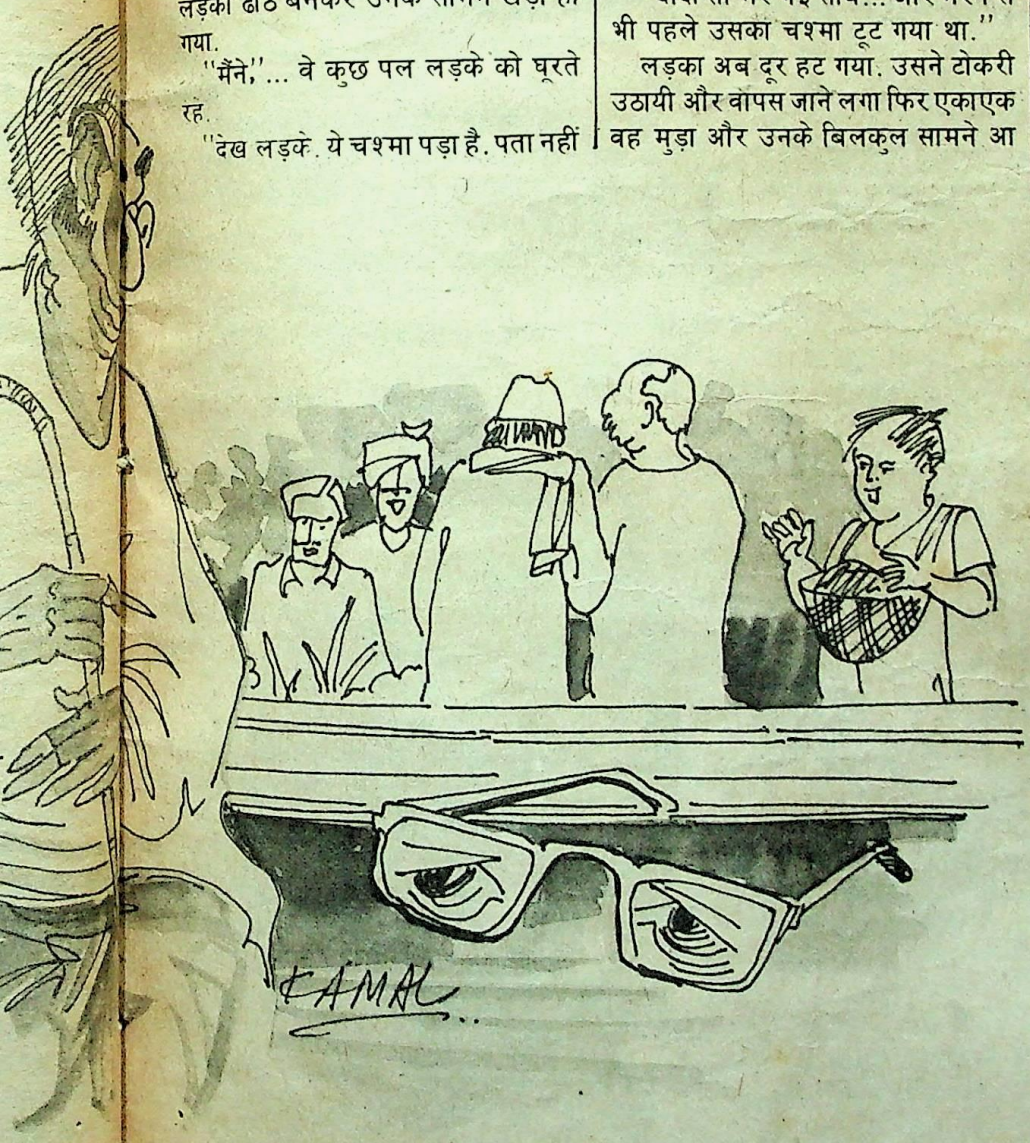

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकने लगी थी.

"हां! तुम भी सुनो, तब बबलू बहुत छोटा था. उसे खिलाते-खिलाते मेरा चश्मा टूट गया था. मेरे बेटे ने कुछ दिनों में बनवाने को कहा. जब उसे तनख्वाह मिलेगी. अब मैं तो उसे बचपन से जानता हूं. है तो मेरी ही औलाद. मुझसे क्या चालाकी करेगा. एक-दो महीने तो मैं देखता रहा. अब बने चश्मा– तब बने चश्मा. नहीं बनना था. वह नहीं ही बना. बस फिर मैं अपनी पर आ गया. सब्जी लाने के जो पैसे देता तो मैं पता है क्या करता? मैं बड़ी मंडी से सब्जी लाता. घूमने का घूमना हो जाता और पैसे भी बच जाते. तब एक रोज जब पूरे पैंसठ रुपये जमा हुए..., अरे! मैं बचे हुए पैसे अपने सिरहाने रख देता था. तब मैंने चश्मा लिया था. अब जिसका ये चश्मा होगा वो किस हाल में होगा. तो अब सोचो. किसका चश्मा है ये?"

अचानक अपने नजदीक तीन आदमियों की मौजूदगी से वे चौंके. पार्क की लाईट जल चुकी थी और वे तीनों उन्हें देख रहे थे. चेहरे पर खिचड़ी दाढ़ी छितरी हुई थी.

"देखिये, बात दरअसल ये है कि मैं इस बैंच पर बैठा हूं. और यहीं यह चश्मा पड़ा है. कोई आदमी इसे भूल गया है और अब उसके लिये परेशान होगा. मैं हर गुजरने वाले से पूछ रहा हूं. शायद किसी को वह आदमी मिल जाये. अब देखिये चश्मे के बिना कितनी तकलीफ होती है. जब आपको दुनिया धुंधली दिखायी देने लगती है और चीजें बेडौल..."

"सही कह रहे हैं, साहब!" एक अधेड़ चश्मे के पास चला आया उसने उसे उठाया और पहन लिया, "अरे! मुझे तो कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा है." उसने चश्मा वापस बैंच पर रख दिया, "चश्मा साला मिला भी तो काम नहीं दिया."

"चश्मा हमेशा आदमी की आंखों के मिजाज को भांपता है, तब काम देता है..." वे हंसे लगभग ठहाका-सा मारकर. उन्हें हंसता देख तीनों आदमी सहम गये और चुपचाप वहां से चले गये.

"देखो दोस्त, चले गये. तुम कमाल की चीज हो." उन्होंने चश्मे को प्यार से सहलाया, "मैं खामख्वाह डर रहा था और तुम परेशान. अब चश्मे को इस्तेमाल करने के लिये आंखें भी चाहिये और आंखें भी ठीक. वे जिनके लिये चश्मा बना है. दोस्त, तुम्हारी आंखें तुम्हें मिलेंगी, बस एक ध्यान रखना, यहां से कहीं मत जाना. जब मैं बच्चों को अपने साथ ले जाता हूं तो उनसे कहता हूं कि अगर तुम खो गये तो वहीं रहो जहां तुम हो. तुम्हें ढूंढने वाला वहीं पहुंच कर तुम्हें ढूंढ लेगा.

अच्छा दोस्त! अब मुझे चलना चाहिये. रात होने लगी है. मुझे इसलिये भी चलना चाहिये क्योंकि मैं खोया नहीं हूं. और तुम भी कुछ देर बाद खोये नहीं रहोगे. बिल्कुल यहीं तुम्हारी आंखें चली आयेंगी. निश्चित रहो. गलत आंखें तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं."

वे धीरे-धीरे उठे. छड़ी उठाई और पार्क की दूधिया रोशनी में आगे बढ़ गये. दो कदम चलने के बाद उन्होंने पीछे मुड़ कर. चश्मे को प्यार से देखा, चश्मे के बगल में चनों की पुड़िया रखी थी और वे चने खाये नहीं गये थे. वे वापस बैंच पर पहुंचे, चनों की पुड़िया उठायी और बोले, "तुम तो चने खा नहीं सकते. पार्क के चौकीदार को दे देता हूं, उसके बहुत प्यारे-प्यारे बच्चे हैं." □

झंडु-शहद
असली कुदरती शहद — आयुर्वेदिक गुणों से भरपूर
७५ और २०० ग्राम की शीशियों मे उपलब्ध
ZP/14/103/HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बार का ज्ञानपीठ पुरस्कार : इंतजार

बालस्वरूप राही

ज्ञानपीठ पुरस्कार-स्थापना की ऐतिहासिक घोषणा 2 अप्रैल, 1962 को हुई थी. घोषणा पर कविवर सियाराम शरण गुप्त की प्रतिक्रिया थी—"अस्मिन् द्वय श्रीश्च सरस्वती च. (इसमें दोनों हैं लक्ष्मी भी सरस्वती भी.) समय के साथ ज्ञानपीठ पुरस्कार का मान बढ़ता गया और अब यह भारत के सर्वाधिक कामय और प्रतिष्ठित पुरस्कारों में गिना जाता है. 22वां ज्ञानपीठ पुरस्कार उड़िया में आधुनिक कविता के प्रवर्तक-प्रवक्ता सची राउतराय को समर्पित किया गया था.

22वां पुरस्कार शीघ्र ही घोषित होने वाला है. पुरस्कार का एक नियम यह भी है कि जिस भाषा के लेखक को पुरस्कार मिलता है, उस भाषा पर आगामी तीन वर्षों तक विचार नहीं किया जाता. 20वां पुरस्कार मलयालम (तकषी शिवशंकर पिल्लै), 21वां पुरस्कार गुजराती (पन्नालाल पटेल) और 22वां पुरस्कार उड़िया (सची राउतराय) को प्राप्त हुआ, अतः 23वें पुरस्कार के लिए इन भाषाओं के लेखकों पर विचार नहीं किया जा रहा है. संविधान के 8वें परिशिष्ट में परिगणित शेष 12 भाषाओं में से किसी एक भाषा के लेखक को ही यह पुरस्कार घोषित किया जायेगा.

इस बार पुरस्कार-नियमावली में फिर एक महत्वपूर्ण और प्रभावकारी परिवर्तन हुआ है. अमृता प्रीतम को प्राप्त होने वाले 17वें ज्ञानपीठ पुरस्कार तक नियम यह था कि यह पुरस्कार अवधि विशेष में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ कृति के रचयिता को प्रदान किया जायेगा. कतिपय साहित्य-चिंतकों, और आम पाठकों ने भी, यह आपत्ति उठायी कि इस नियम के चलते कई युग-प्रवर्तक साहित्यकार पुरस्कार की परिधि से परे हो जाते हैं, जिसका कोई औचित्य नहीं है. हिंदीवालों का तो खासतोर पर कहना था कि दिनकर और अज्ञेय को तो ज्ञानपीठ पुरस्कार मिल गया किंतु महादेवी, जैनेंद्र जैसे दिग्गजो को यह पुरस्कार भेंट नहीं किया जा सका. इस आपत्ति कल निराकरण के लिए 18वें पुरस्कार से पुरस्कार की परिधि व्यापकतर बना दी गयी और यह पुरस्कार कृति विशेष पर नहीं, साहित्यकार के भारतीय साहित्य को उल्लेखनीय योगदान के लिए दिया जाने लगा. अभिप्राय यह कि अब विचार पुस्तक पर केंद्रित न रखकर लेखक के संपूर्ण योगदान पर किया जाने लगा. इस नियम के तहत पहला पुरस्कार महादेवी वर्मा को समर्पित किया गया उसके बाद मास्ति वेंकटेश अयंगार, तकषी शिवशंकर पिल्लै, पन्नालाल पटेल ओर सची राउतराय को ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका हैं.

अब स्थिति भिन्न है. पुरस्कार-नियम में होने वाला परिवर्तन इस प्रकार है—**"पुरस्कार के लिए 15 वर्षों की निधारित अवधि विशेष के दौरान लेखक की समग्र साहित्यिक सृजनात्मकता पर विचार किया जायेगा. उदाहरणत :वर्ष 1987 के ज्ञानपीठ पुरस्कार का निर्णय 1967-82 की अवधि में प्रकाशित कृतियों पर आधारित होगा. सिद्धांत यह है कि जिस वर्ष का पुरस्कार होगा उससे पांच वर्ष पहले से लेकर पिछले 15 वर्षों के मध्य रचित रचनाएं ही पुरस्कार का आधार बनेंगी.** इस नियम से यह लाभ होने की संभावना है कि लेखक के समग्र योगदान के साथ उसकी रचनाधर्मिता की निरंतरता को भी मूल्यांकन के मानदंड के रूप में अपनाया जा सकेगा. इससे पिछले डेढ़-दो दशकों में विशेष सक्रिय लेखकों को यथोचित महत्व प्राप्त हो सकेगा.

दुर्लभ ग्रंथों के जन-सुलभ संस्करण

भारतीय ज्ञानपीठ की विविध आयामी गतिविधियों का एक प्रमुख आयाम है प्राचीन दुर्लभ साहित्य भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित करना, मूल्यवान ग्रंथों का आधिकारिक संपादन कराकर उनके जन-सुलभ संस्करण प्रकाशित करना. इस संदभ में प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, एवं तमिल में प्रामाणिक अनुवाद के साथ अब तक लगभग 130 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधियां सुरक्षित हो सकी हैं. इस ग्रंथमाला की 5 नयी कड़ियां हैं : **षट्खंडागम परिशीलन** (पं. बालचंद्र सिद्धांतशास्त्री), **'तिरूवल्लुवर एंड हिज़ तिरूक्कुरल'** (का.ना. सुब्रहमण्यम), क्षु. जिनेंद्र वर्णी द्वारा रचित **'जैनेंद्र सिद्धांत कोश'** (नया संशोधित संवर्धित संस्करण)— चार भागों में, आचार्य बट्टेकर प्रणीत प्राकृत ग्रंथ **'मूलाचार'** — दो भागों में (अनु. आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी).

भारतीयता का मतलब?

जब हम भारतीय साहित्य की बात करते हैं तब हमारे सामने एक प्रश्न चुनौती के रूप में आ खड़ा होता है, होना भी चाहिए, आखिर भारतीयता है क्या चीज? हम बड़े मज़े से कह देते हैं कि अनेक भाषाओं में रचा जाने पर भी भारतीय साहित्य एक है, भारतीय साहित्य की एक मुख्य धारा है जिसमें सभी भाषाओं का साहित्य समाहित हो जाता है. किंतु यह एकात्मता क्या है, वह मुख्य धारा कौन-सी है? इसका एक बहुत अच्छा उत्तर उपराष्ट्रपति जी शंकर दयाल शर्मा ने हाल ही में श्री शरद पगारे की दो पुस्तकों का विमोचन करते हुए दिया. उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा— **"भारतीयता का मूल्य तत्व है— समन्वय."** हम भारतीय साहित्य की आत्मा के और अधिक निकट पहुंच जाते हैं. भारतीय ज्ञानपीठ ऐसे अवसर जुटाने के लिए प्रारंभ से ही अग्रसर रहा है. इसी उद्देश्य से भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा अभी-अभी प्रकाशित **'भारतीय साहित्यकारों से साक्षात्कार'** (लेखक— डॉ. रणवीर रांग्रा) इस दिशा में अभिनव प्रयास है. इसमें 16 भाषाओं के पचास प्रख्यात साहित्यकारों के साथ विस्तृत अंतरंग और प्रामाणिक साक्षात्कार हैं. इनमें से 14 साहित्यकार ऐसे हैं जिन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पित हो चुका है : मास्ति वेंकटेश अयंगार, ताराशंकर बंधोपाध्याय, सुमित्रानंदन पंत, जी. शंकर कुरूप, डॉ. के. शिवराम कारंत, डॉ. के.वी. पुटप्पा, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, आशापूर्णा देवी, अज्ञेय, उमाशंकर जोशी, तकषी शिवशंकर पिल्लै, डॉ. गोपीनाथ महांती और अमृता प्रीतम. इस ग्रंथ के माध्यम से हम ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त लेखकों से और अधिक निकटता का अनुभव कर सकते हैं. ❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वय लेखक बनना चाहते हैं... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत. ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो 'नयी पौद' की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित 300 शब्दों में लिख भेजिए. लिफाफे पर यह कूपन चिपकाना न भूलें.

'नयी पौद' स्तंभ
सारिका
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

आकांक्षा: यथार्थ लेखन की

शांती सिंह 'इशा'

मेरे लेखन में प्रमुख समस्या, अनुभव को लेकर है. काल्पनिकता को परे रखकर, यथार्थ को पन्ने पर उतारना चाहती हूं. और यथार्थ लेखन हेतु, मेरे विचार से, अनुभव आवश्यक है. जब भी, यथार्थ को परे रख, कल्पना पर लेखनी चलाती हूं, कहीं न कहीं लेखनी रुक जाती है, विचार प्रवाह का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है. क्यों? शायद इसलिए, कि मैं काल्पनिकता को बहुत कम खींच पाती हूं, क्योंकि यही कल्पना बकवास लगने लगती है.

सोचती हूं, लेखन क्षेत्र हेतु कुछ वर्षों के अनुभव और संजो लूं, फिर लिखूं, परंतु विचारों की नियमितता बनी रहती है, बिना लिखे उलझनें बढ़ती जाती हैं, और जब तक लिख न लूं, किसी अन्य कार्य की रुचि जाती रहती है, कार्य अत्यावश्यक क्यों न हो. संभवतः उम्र के दबाव के कारण, इसी वक्त कुछ करना चाहती हूं. यहीं से शुरूआत करने की आकांक्षा है. कहीं ऐसा न हो कि आने वाले समय में मेरे और लेखन के बीच जमीन-आसमान की दूरी हो जाये.

कविताओं, गीतों, गज़लों वगैरह को तो मैं कल्पना के शिखर तक ले जाने की क्षमता रखती हूं. यथार्थ व जिन्दगी के कुछ छोटे अनुभव इनमें ढाले जा सकते हैं. पर साहित्य की अन्य विधाओं, विशेषकर 'कहानी' हेतु यथार्थ का, अनुभव का सहारा चाहती हूं. यथार्थ में स्थायित्व है, कल्पना रेत का महल है. रेत के महल की अपेक्षा अनुभवी ईंटों की इमारत खड़ी करना चाहती हूं. अनुभव की कमी है, यही कारण है, आग्राज उलझनपूर्ण है, अनियमित है, अनिश्चित है. यूं इतने वर्षों में भी अनगिनत अनुभव संजोये हैं, सुखद भी, दुःखद भी, पर उन्हें किसी रचना का रूप में हिचकिचाहट महसूस होती है. □

आशा ही जीवन

प्रतिभा ठाकुर 'स्मृति'

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन: और यह अभिय, हृदय को, आत्मा को तृप्त करता हुआ, जीवन की सभी वेदनाओं का अति सहजता से विनाश कर देता है. किसी को कुछ देने की चाह मन में हिलोरे लेती है, उनके भावों को स्पंदित करने हेतु, कोई उसके हृदय के द्वारों पर थपकियां देती है, और जब वह उद्वेग लेखनी के माध्यम से कागज के मूल्य पन्नों पर बिखरता है, तो लगता है कर्म सार्थक हो गया. किंतु जब भाव-राशि, वर्तमान के आंकड़ों पर आधारित पृष्ठाशन-अप्रकाशन के विभेद की रेखा को तोड़ नहीं पाती तो हृदय चीख उठता है, एक बोझ को अनुभूत करते हुए.

लेखन तो एक तपस्या है, कठिन साधना के पश्चात ही सफलता प्राप्ति का विश्वास मन को दृढ़ बनाता है. अपनी निर्यात से अनभिज्ञ नहीं कि मैं नयी पौद हूं, जिसको सूर्य स्पर्श की चाहना में बढ़ने के लिए अविरत संघर्ष करना है. आत्मविश्वास व लगन को सहचर बनाते हुए— तत्पश्चात ही तो सफलता का वृक्ष, सुखों की पत्तियों को जन्म देगा, प्रेम के पुष्प होंगे और आनंद के फल, सत्य के बीजों को बिखराकर, जीवन की धरा पर पुनः नवीन अंकुरों को स्नेह देंगे और शुभाशीष भी. □

आत्माभिव्यक्ति

ज्योति भागिया

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अभिव्यक्त करना चाहता है. इसके लिए साहित्य एक सर्वोत्तम साधन है.

मानव मन अथाह समुद्र है. उसमें अनगिनत हीरे-मोती रूपी विचार हैं. मैं मानव मन के भीतर झांकना चाहती हूं. मानव-मन की एक-एक परत खोलकर मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के सामने प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य है.

मानव-मन की भीतरी दुनिया के अतिरिक्त एक और भी दुनिया है, बाह्य दुनिया. कठोर, यथार्थ, कुरूप, घिनौनी दुनिया. ये दुनिया एक-दूसरे की जान की दुश्मन हैं, नित नवीन संहारक अस्त्रों का निर्माण किया जा रहा है. मानो समस्त मानव-जाति एक परमाणु के ढेर पर बैठी है और एक चिंगारी समस्त मानव-जाति का विनाश करने में समर्थ है. साहित्य इसी आंतरिक व बाह्य दुनिया का प्रतिबिंब है. इन्हीं विषयों पर लिखना चाहता हूं, क्योंकि साहित्य इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं.

लेखन कला के मूल में संभवतः आत्माभिव्यक्ति ही एक कारण रहा है. मैं भी शायद स्वयं को व्यक्त करने के लिए लेखनी का सहारा लेना चाहती हूं. मनुष्य का अस्तित्व व आत्माभिव्यक्ति एक सिक्के के दो पहलू हैं. जब व्यक्ति स्वयं के कटु-मृदु अनुभवों को व्यक्त करने में असमर्थ होता है, तब उसके अस्तित्व के सामने ही एक प्रश्न चिह्न लग जाता है.

मैं क्या व क्यों लिखना चाहती हूं ये वास्तविक समस्या नहीं है लेकिन विचारणीय यह है कि मैं लिखना चाहती हूं, क्या लिख पाती हूं!

लिखने की इच्छा

राजेश शर्मा

कभी-कभी बहुत इच्छा होती है अपने भीतर की भावनाओं को कागज पर उतारने की. लंबे समय से जो कुछ भी मैं पढ़ता रहा हूं... उससे प्रभावित होता रहा हूं. धीरे-धीरे मुझमें भी लिखने की इच्छा प्रबल होती चली गयी. साहित्य के क्षेत्र में कुछ कर गुजरने की महत्वाकांक्षा लिए जब भी मैं कुछ लिखने बैठा.... हर बार यही मुसीबत आ खड़ी हुई कि शुरूआत कैसे की जाये!

लिखना मैं वही चाहता हूं जो हमारे चारों ओर घट रहा है... पर उस रूप में कर नहीं पाता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : जून, 1988 के पुरस्कार विजेता तथा सर्वशुद्ध हल.

इस बार प्रतियोगिता में केवल तीन ही ऐसे हैं जो एक-एक अशुद्धियुक्त हल भेज सके हैं. अधिकांश प्रतियोगियों के प्रयास सराहनीय रहे हैं. पुरस्कार राशी इन प्रतियोगियों में बराबर-बराबर बांटी जा रही है.

यह रहा कथा पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. कछुआ और बंदर.
2. ललित मोहन गुरुरानी.
3. गुड़ियाघर, फेंसी ड्रेस, महाभियोग, प्रचार पंवाए.
4. ब्रजेश्वर मदान ने देवेंद्र सत्यार्थी के संदर्भ में.
5. 18 और 19.
6. 'मधुमक्खी और हल' में मधुमक्खी.
7. छतरी.
8. गोलकुंडा.
9. भारतीय आख्यायिका परंपरा की अभिनव रूप सृष्टियां.
10. नाच चल रहा है.

.....और यह रहे इस बार के पुरस्कार विजेता

1. नमिता
   सी-49, हरमू कालोनी,
   रांची-834012 (बिहार)
2. प्रबोध दवे
   100 एच.आई.जी. (जूनि.)
   विजय नगर, इंदौर (म.प्र.).
3. मीना झा
   द्वारा श्री दीनानाथ ठाकुर, मिथिला क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक,
   प्रधान कार्यालय,
   बहेरियासराय, जि. दरभंगा,
   बिहार-846001.

सारिका कथा पहेली : अगस्त '88

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी, पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें, इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' जुलाई, 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 अगस्त 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा अक्तूबर, 1988 के अंक में दी जायेगी.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पाठकों तक 'सारिका' देर से पहुंचती है वे 'सारिका कथा पहेली' में अपनी पूर्तियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. पूर्तियां भेजते समय यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि 'सारिका' आप तक देर से पहुंची.

1. इस अंक का सर्वश्रेष्ठ लेख.....है.
2. "वह जिसकी मदद करती उसे आभाष तक न होने देती कि वह उसके लिए कुछ कर रही है."
   यह टिप्पणी.....रचना की .....पर सटीक बैठती है.
3. वह पात्र जिन रचनाओं के हे. उनके पात्र कोष्ठक में लिखें.
   कामदमनी ( ), सिंथिया ( ), रश्मि ( ), हनीफा ( ), डिलमैन ( ).
4. अभिशप्त होकर अपने ही कुत्तों क शिकार हो जाना..... चरित्र की नियति है.
5. इन पुस्तकों के लेखकों के नाम कोष्ठक में लिखें–
   मृच्छकटिकम् ( ), द प्रिजनर ऑफ सेक्स ( ), मुद्राराक्षस ( ), कला विकास ( ), कौमुदी महोत्सव ( ).
6. "आप इसमें जितनी रकम चाहें, भर सकती हैं. यह आपकी फीस होगी, मेरी आखें खोलने के लिए."
   यह संवाद ..... रचना में ..... का है.
7. नाम उलटने का विवरण.....लेख में..... के संदर्भ में आया है.
8. मिलर आजीवन स्त्रियों से घृणा क्यों करते रहे?
   .....
   .....
9. .....ने 14 वर्ष तक मिस्र के जेल में सजा काटी.
10. "अभी तक साहित्यकारों ने सांप्रदायिकता, जातिवाद और अलगाववाद को अहमियत नहीं दी है लेकिन इस समस्या ने हमारे सामने आज एक शैतानी शक्ल अख्तियार कर ली है.
    यह कथन ..... का है.

पता.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमीन से जुड़ी कहानियों में ग्रामात्मा का साक्षात्कार

'क्रौंचबध तथा अन्य कहानियां' के प्रकाशन से तथा इसके भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत होने से प्रसिद्ध कथा लेखिका ऋता शुक्ल को हिंदी के सिद्ध कथाकारों के बीच पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी है. इस संकलन की कुल तेरह कहानियों का स्वर समवेत भारतीय ग्राम संस्कृति का भावविह्वल स्वर है जो भोजपुर अंचल की सांस्कृतिक स्वरलिपि के रूप में प्रस्तुत हुआ है. इस रचनात्मक सांस्कृतिक भाव कोष में प्राप्त हो गयी है औसत किसान-जीवन की अनेक स्तरीय आंतरिक पीड़ा को. इसके बीच से गुजरने के बाद निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि लेखिका ने गांव के दुःख को निकट से देखा है तथा उसे भोगा भी है. इतना होते हुए भी लेखिका में जनवाद की शोभा-चारिता नहीं है और न ही उसमें कहीं आरोपित आधुनिकता है.उसकी कहानियों में जो कुछ भी है,वह गांव की अपनी निजी यथार्थ पहचान को उसके प्रतिनिधि पात्रों में रेखांकित करने की सर्वथा मौलिक कहानी-कला है. ये समस्त मुख्य पात्र हमारे अत्यंत निकट के हैं, जाने-पहचाने हैं और प्रायः पुरानी पीढ़ी के हैं. काका पंडित रघुनाथ दुबे (समय की गति), असंधतो आजी और रामबचन बाबा (प्रतिक्रिया), कमला नानी और रघुवंश नाना (आइलि गवनवा की सारी), फूलमती दीदी (मोहताज), यदुनाथ बाबा (क्रौंचबध), छोटका काका और बड़का काका (सातवीं बेटी), भिरुगनाथ बाबा (चक्षुदाह), तिलकधारी बाबा (सरबहारा), कालिंदी बुआ (कदली के फूल) और सोनहुली काकी (प्रतीक्षा) आदि नाम स्वयं एक संपूर्ण संदर्भ हैं. काका-काकी, आजा-आजी, नाना-नानी, दीदी-बुआ और बाबा लोगों के पद और संदर्भ में जो एक पुरातन सांस्कृतिक रोमांच है उसकी पहचान ऋता शुक्ल में संपूर्णता के साथ उभरी हुई है. इनसे जुड़ी हुई घर-बार नैहर-सासुर की मनमोहक स्मृति चित्रावलियां कहानियों में एक ऐसे स्वाद का सृजन करती हैं जो हिंदी-कहानी साहित्य में अद्वितीय हैं. वैज्ञानिक बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण का आधुनिक पाठक इन चित्रों में उभरे हारे-थके और समय के धक्के से विथके अस्तमान जनों की अथाह मानवता देख स्तब्ध हो जाता है. इसके साथ ही वह आत्मालोचन के लिये विवश होना है. वह क्या है उस पुरानी पीढ़ी के भोले-भावुक और निष्ठा सम्पन्न लोगों में जो उन्हें भरा-भरा बनाता है और उनकी तुलना में भौतिक संपन्नता की जमीन पर खड़ा नया आदमी बहुत खोखला लगता है. इस प्रकार भावाच्छनन अनुरंजन के साथ लेखिका जो विचारोत्तेजकता के आयामों का सृजन कर देती है उससे कहानियों की मूल्यवत्ता बढ़ जाती है.

गंवई जीवन के लिये समर्पित ऋता शुक्ल की लेखनी में कहीं नाम मात्र के लिये भी बासीपन नहीं मिलेगा. नये और पुराने की समानांतर संवेदनाओं के सृजन में अपूर्व

क्रौंचवध तथा अन्य कहानियां,
रचनाकार : ऋता शुक्ल
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ,

ताजगी होती है. कहानियां समकालीन चालू ढांचे से हटकर जब अत्यधिक सहजता के साथ फैलाव लेती हैं तो उनका आकर्षण और बढ़ जाता है. किसी बाबा की रेखाचित्र में त्याग, मानवीय मूल्य, न्याय और निष्ठा का गाढ़ा रंग भर कर लेखिका परदे के पीछे से आज की मूल्यहीनता को ललकारती है तो भी कहीं से ऐसा नहीं लगता है कि यह व्यामोहग्रस्तता या पुरातन का उच्चाटन है. ग्राम जीवन के सांस्कृतिक रस-गंध की पहचान लेखिका में बेजोड़ है वह उसे आधुनिक के पास गिरवी रखने के लिये तैयार नहीं दीखती है. उसके लिये आधुनिकता कौंध जैसी नहीं, एक तड़पन जैसी है. इसलिये उसकी संवेदना पुरातनता के नरक में बजबजाती मोहक जिंदगियों के भीतर से व्यंग्य के रूप में फूटती है. किसी दर्शन, किसी कतार और किन्हीं नारों की तहत लेखिका कुछ नहीं लिखती. ऐसा लगता है कि उसके लेखन के पीछे जो कुछ भी है वह भीतर से जीवन की पुकार है और बाहर से जीवन का दबाव है.

हिंदी कथाकारों ने नये-पुराने संस्कारों की टकराहट का चित्रण विशेष मनोयोग के साथ प्रस्तुत किया है. विशेषकर ग्राम जीवन के संदर्भ में इसकी जलती प्रश्नशीलता बारंबार सामने आती है. इस सनातन ग्राम संस्कार बनाम आधुनिक मध्यवर्गीय नागरिक संस्कार के संदर्भों को अपनी अधिकांश कहानियों में कुछ अतिरिक्त सहजता और गहरी पैठ के साथ ऋता शुक्ल ने भी उठाया है. पुस्तक की शीर्षक कथा 'क्रौंचबध' में भी स्थितियों की ऐसा ही समस्यात्मक जटिलतायें हैं. यहां लेखिका दोनों स्थितियों के बीच संतुलन की भांति साक्षी के रूप में दृष्टिगोचर होती है. इसके साथ उसमें अपने निजी भोग की पीड़ा भी है. यदुनाथ बाबा की इस कहानी के बहाने कथा-लेखिका सुपरिचित कथा-विषय के परदे के पीछे कहीं और ले चलना चाहती है. पाठक अनुभव करता है कि इस प्रकार की कहानियों की रचना करते-करते लेखिका बारंबार गांव-घर के बदलते माहौल में, उसकी अनंत स्फीत पीड़ाओं में, वहां फिक जाती है जहां आजा-आजी आदि नामधारी जाति के जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल-गल रहे हैं. अपनी अथाह संवेदना का कोष लुटाती लेखिका उनकी मानवीयता, उनके स्वभाव को सहजता एवम् उनके ग्रामीण व्यक्तित्व की महानता को रेखांकित करती चलती है. उन सजीव चरित्रों में किसी महान चरित नायक-नायिका की फांका पाकर कहानी के पाठकों को असीम वृद्धि मिलती है. लेकिन ऐसा लगता है कि मात्र इस वृद्धि-सृजन के लिये लेखिका कथा में हाथ नहीं लगाती है. अपने पाठकों में असंगत के लिए गहरी पीड़ा और अभावों के लिए प्यास भरी छटपटाहट उत्पन्न करना उसका उद्देश्य होता है. इस उद्देश्य में सफल होना ही उसकी लोकप्रियता का रहस्य है.

अन्य कहानियों में से 'उपलब्धि', 'प्रतिक्रिया', 'समय की गति' और 'सरबहारा' में भी संस्कारों की टकराहट का चित्रण है. गांव में घुसे शहर के उपद्रव को इन कहानियों में लेखिका बहुत ही मर्मभेदी कथा-दृष्टि से देखती है. 'उपलब्धि' तो इस संदर्भ से जुड़ी बेजोड़ कहानी है. अत्याधुनिक पति राहुल के लिए परंपरा के प्रति समर्पित पत्नी एक समस्या है. समस्या संघर्ष बन जाती है और संघर्ष की इस विस्तृति करुण कथा में विजय परपरा की होती दीख रही है. लेकिन कहानी को पढ़ कर ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि लेखिका पक्षपात कर रही है. वास्तव में यह उसकी अपनी दृष्टि है. वह आस्थाओं की जमीन को छोड़ कर खोखली आधुनिकता और फैशनी विद्रोह को ओढ़ने के लिए प्रयत्नशील नहीं होती है. ऐसा भी नहीं है कि उसमें आधुनिकता नहीं है. उसकी कहानियों के केंद्रीय ग्राम-संचार तथा उसकी आंचलिक और सांस्कृतिक छुवन को देखकर यह घोषित करना कि उसके शिल्प की यही सीमा है, नितांत भ्रामक होगा. जहां कहीं मूल्यों और मान्यताओं की टकराहट और टूटने के सदर्भ उपस्थित होते हैं लेखिका आधुनिक ही नहीं, अत्याधुनिक रूप में प्रस्तुत मिलती है. उसके रचनात्मक संसार में इन स्थितियों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चित्र उपलब्ध हैं. लेकिन लेखिका की आश्वस्ति उसके प्रति नहीं होती है. वह अपनी भारतीयता की जमीन को छोड़ने के लिये तैयार नहीं होती है. उसमें 'पिता' का स्वर प्रधान होता है. वह 'उपलब्धि' में कहता है. ''यह झूठी स्पर्द्धा, यह खोखला स्तर-बोध, दिखावे से भरी यह जीवन व्यवस्था इसी जादू के कई रूप हैं. बहू!'' (पृष्ठ 149)

इस अपनी जमीन से जुड़े होने के शिल्प का एक स्वाभाविक परिणाम होता है आशीवादिता और रचनात्मक दृष्टि का सम्मान. इसे 'सरबहारा' शीर्षक कहानी में देखकर ऐसा लगता है कि ऋता की कहानियां लिखी नहीं जाती हैं बल्कि परिवेश के भीतर से कहानी का ढांचा तोड़कर स्वयं बढ़ जाती हैं. समय की तेज़ रफ्तार का ज्ञान भी लेखिका को है. इसके भीतर जो कुछ भी पुराना है उसके प्रति सम्मान तो है परंतु उसे उसी रूप में बचाने का आग्रह नहीं है. अंतरविरोधों की कड़ी चट्टान के भीतर निहित जलस्रोत की भांति तरल मानवीयता के अन्वेषण में ही ऋता शुक्ल की कहानी-कला की ऋद्धि-सिद्धि है, उसी में तृप्ति और रोमांच है. वह जीवन के चित्रों को जो अधिकांश रूप में रेखाचित्र होते हैं कहानियों में इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि वही अपने आप में जीवन का भाव्य भी होता है. नाना-नानी के अतिरिक्त खेत, बाग, मंड़ई, मकई, चिरई-चुनमुन नैहर-सासुर, चौपाल और चूल्हे-चौके के सजीव परिवेश को प्रस्तुत करने के पीछे उसकी अपरिसीम आत्मीयता और संवेदना होती है. लेखिका आधुनिकता के धक्के को बरदाश्त न कर सकने के कारण टूटती ग्राम संस्कृति और समाज के संदर्भ में एक ओर अकुलाहट से भर उठती है तो दूसरी ओर पारिवारिक जीवन के उस पक्ष के संदर्भ में जो परंपरागत होते हुए भी अत्यंत क्रूरता से परिपूर्ण है क्षोभ से भर उठती है.

अपनी जमीन से जुड़ी ग्रामात्मा के साक्षात्कार के रूप में सृष्ठ ऋता शुक्ल की कहानियां विभिन्न सामाजिक रिश्तों को बदलते संदर्भों में प्रस्तुत करती है. ये रिश्ते कभी-कभी ऐसा लगता है कि देश की कोख से जन्म ले रहे हैं. ऐसी स्थिति में लेखिका के भीतर उनके स्वागत का भाव नहीं बल्कि 'उस आदिम अंधेरे के प्रति मुष्ठि बद्ध' हो जाने का भाव होता है. (पृ. 165) लोकगीतों और लोककथाओं की कोमलता और तरलता के साथ अंतरसंघर्ष की बुनावट को भी प्रस्तुत करना कला का एक विशिष्ट कमाल है. 'प्रतीक्षा' 'सातवीं बेटी' 'कदली के फूल' और 'आइल गवनवा की सारी' शीर्षक कहानियों में ऐसी ही स्थितियां हैं. इनमें किस्सागोई के अंदाज उभरे हैं और पुराने लोकगीतों को नये जमीन की ताजगी देने के तेवर भी. कहीं कोई सोनहुला काकी जैसे मरदानी नारी है जो बहादुरी के साथ अकेलेपन से जूझ रही है. कहीं कोई छोटकी काकी है जिसकी सात उपेक्षिता बेटियां पूरे समाज के लिए एक चुनौती हैं. कहीं कोई कमला नानी है जो अपने आप में पिछली एक शताब्दी के सामाजिक इतिहास और संस्कृति के उतार-चढ़ाव की बोलती कहानी है. बेशक, कमला नानी के चित्रों वाली 'आइल गवनवा की सारी' कहानी इस संकलन की बेजोड़ कहानी है. इसे पढ़कर पाठक समज सकेगा कि ऋता में कोमलता ही नहीं, कठोरता भी है. वह सांस रोककर उभरते आतंक, आवेग, ओज, वीरत्व और जय-पराजय के चित्रों के बीच बहुत तेजी से आगे बढ़ता है. सबसे विचित्र बात तो यह कि इस लंबी कहानी में खड़ी बोली और लोकभाषा भोजपुरी की सीमा एक प्रकार से टूट गयी है.

वास्तव में भाषा शिल्प की दृष्टि से ऋता शुक्ल की कहानियों का विश्लेषण बहुत ही महत्वपूर्ण है और विस्तार तथा अवकाश की मांग करता है. बहुत गझिन बुनावट में रत्नों की टांकी की भांति लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग पाठकों को बारंबार चमत्कृत करता चलता है. गांव की प्रकृति और गंवई जन की अंतःप्रकृति तथा उनके संपूर्ण परिवेश की जो चित्र भाषा कृति में उभरी है, अत्यंत हो ताजी और अनुरंजनकारी हैं. आठवीं बेटी पैदा हो जाने पर छोटकी काकी 'चुपचाप बड़ी-बड़ी हांड़ियों में उबलते धान-सी सींझती और उबलती रहें.' (पृष्ठ 162) ऐसी ग्रामगंधी उपभायें थोड़ी नहीं हैं. इस भाषिकी वैभव के रोमांच को लेकर लेखिका समकालीन कथाकारों की कतार में अपनी पृथक पहचान लेतीं हैं. भोजपुरी भाषा का प्राण पिरोकर भोजपुर-प्रदेश की संस्कृति के बहाने लेखिका ने जो नये गांवों के बदलाव का दस्तावेज प्रस्तुत किया है उसमें यद्यपि आर्थिक और सामाजिक संघर्षों की खून से लिखी कहानियों की सनसनी नहीं है परंतु पारिवारिक जीवन के आंसुओं से लिखी इन कहानियों में जो सहज संवेदनीयता और ताजगी भरी प्रामाणिकता है वह एक उपलब्धि है. □

विवेकी राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्पा : सार्थक उपन्यास

रामदरश मिश्र

लेखक : रामदेव शुक्ल,
प्रकाशक : साहित्य संगम इलाहाबाद,
मूल्य - 25 रुपये.

शीर्षक से ही प्रकट है कि प्रस्तुत उपन्यास किसी संकल्पशील स्त्री की कहानी कह रहा है. हां, वह स्त्री है कमल. कमल पारंपरिक सोच और नियति ढोती स्त्रियों में खो जाने वाली स्त्री नहीं है बल्कि वह अनेक बिंदुओं पर अपनी उर्जा, तेज और विवेकपूर्ण निर्णयो से स्त्री की पारंपरिक जीवन पद्धति के विरुद्ध एक चुनौती रूप में उठती अस्मियता प्रदान करती हुई पुरुष निर्मित समाज-व्यवस्था को आहत करती है, क्षुब्ध करती है और उससे टकराकर स्त्रियों का अधिकार हासिल करना चाहती है.

कमल इकहरा पात्र नहीं है और न ही यह उपन्यास इकहरा है. कमल मातृपितृ विहीन लड़की है चाचा-चाची के आश्रय में पलती है और अपने साथ बलात्कार करने वाले लड़के को बड़े कौशल से पुरुषत्व विहीन कर देती है. केस चलता है, वह अडिग भाव से विरोधी वकील के गंदे सवालों से लड़ती है और वकील को हतप्रभ कर देती है. बलात्कारी लड़के की आत्महत्या और उसकी अपराध स्वीकृति मूल द्वंद्व के आधार पर कमल बरी हो जाती है किंतु सबसे बड़ा कठघरा तो समाज होता है. न्यायालय से निर्दोष साबित होने पर भी समाज स्त्री को निर्दोष कहां मानता है. कमल के साथ भी यही होता है. वह अपने परिवार से भाग कर अरुण की भाभी के पास आती है और उनके मानवीय साहचर्य में फलती-फूलती है. बार-बार शादी कर प्रस्ताव आनेपर उद्विग्न होती है. वह शादी के विरुद्ध नहीं है किंतु शादी को स्त्री को नियति मानने को तैयार नहीं है. स्त्री के जीवन का लक्ष्य किसी प्रकार शादी करके एक विशेष प्रकार के पारिवारिक ढांचे में जीते चलना ही तो नहीं है. उसे भी पुरुष के समान सपना देखने और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कुछ बड़ा काम करने का अधिकार होना चाहिए. वह अपनी बात अरुण और उसकी भाभी पर प्रकट कर लगातर उठने वाले शादी के प्रसंग को खत्म कर देती है. अरुण के साथ उसका रागात्मक लगाव है किंतु वह उस रागात्मक लगाव के वेग को भीतर-भीतर जीती हुई भी विवाह से मना कर देती है. कमल के जीवन का यह प्रसंग संवेदना से संश्लेष से गर्भित है. किसी को चाहकर भी उससे विवाह न करना और विवाह कर्म का सर्वथा निषेध कर उसे केवल स्थगित रखना और अपने जीवन विकास के लिए संघर्ष करना, अपने जीवन विकास को सामाजिक जीवन विकास के साथ जोड़े रखना, जीवन संघर्ष में अपने प्रिय व्यक्ति के सहयोग की भी उपस्थिति अनुभव करते रहना जीवन का जटिल अनुभव क्रम है.

किंतु यह केवल कमल की कथा कहने वाला उपन्यास नहीं है. यह अपने लघु कलेवर में आज के समाज के सही गलत न्याय-अन्याय, मानवीयता अमानवीयता के संघर्ष की भी कथा बन गया. कमल की कथा एक बड़ी कथा से जुड़ती है. वह कथा है – अरुण उसके भाई वकील साहब और उसकी भाभी की. और वह कथा भी केवल इन तीन पात्रों की नहीं है वरन उन अनंत पात्रों की है जिनके ये प्रतिनिधि हैं. वकील साहब अर्थलोलुप पढ़े-लिखे नवधनाढ्य वर्ग के प्रतिनिधि हैं. विपरीत उनका छोटा भाई अरुण है जो अत्यंत सहृदय तथा मानवीय मूल्यों का पक्षधर है. भाभी अपने पति के विपरीत अत्यंत करुणाशील और ममतामयी है. वे अरुण को अपने बच्चे की तरह प्यार देती है. वे मानव मूल्यों के बिंदु पर अपने पति का विरोधी करती है और स्पष्टतया अपने देवर के साथ खड़ी मालूम होती हैं. इस पारिवारिक द्वंद्व के कई संदर्भ आते हैं. जिनमें प्रमुख हैं – दरवाजे पर के नीम का कटना, प्रधान का चुनाव, और सामाजिक हित में इस परिवार के खेतों का इस्तेमाल होने की समस्या. यानी लेखक ने सामाजिक संघर्ष की शुरुआत परिवार से ही की है.

रामदव जी ने प्रगतिशीलता को एक खोखली और तेज बजने वाली अवधारणा के रूप में प्रयुक्त नहीं किया है बल्कि उसमें विवेक और रागात्मकता के संक्रांत दंग भरे हैं. वकील साहब अपने दरवाजे का नीम का पेड़ कटवा रहे हैं. अरुण विरोध करता है. आधुनिक दृष्टि से देखा जाये तो पेड़ के प्रति संसक्ति एक रुमानी वृत्ति है. पेड़ को काटकर एक बंगला बनवाया जाना है जिसमें लोग बैठेंगे, पंचायत संबंधी मंत्रणा होगी. आखिर आधुनिक-मूल में कल-कारखानों की स्थापना के लिए पेड़-पौधों के काटना ही होता है. करुण पेड़ के माध्यम से अतीत को देखता है.

अरुण पेड़ के माध्यम से उस रागात्मक मूल्य की पक्षधरता करता है जिसे काट फेंकने के लिए वकील साहब जैसे बुद्धि व्यवसायी तुले हुए हैं. अरुण प्रधान के चुनाव में वकील साहब का विरोध करता है. वह जानता है कि उसके धूर्त साहब अपने चमचे को प्रधान बनवाकर इस देहात के जीवन का शोषण करेंगे. अतः वह उनके उम्मीदवार के विरोध में भोला जैसे बोड़ को खड़ा करता है जो चुनाव के दिन लापता हो जाता है. कुर्सी पर जूता छोड़कर अरुण जानता है कि भोला का चयन बहुत आदर्श चयन नहीं है किंतु चुनाव की जिस गरीज स्थिति में अरुण फंस गया था उससे तात्कालिक राहत पाने के लिए उसे सामने भोला ही दिखाई पड़ता है. वास्तव में भोला का चयन अरुण के विवेक का नहीं बल्कि अन्याय का किसी भी प्रकार विरोध करने की बेचैनी का परिचायक है. प्रधान के चुनाव के समय होने वाले क्रर गांठजोड़, अमानीवय हरकतों और बेईमानियों का थोड़े में अच्छा रेखांकन हुआ है.

उपन्यास अन्यंत पाठनीय है. उसकी पाठनीयता इस कारण तो है ही कि उसमे वस्तु और भाषा की कृत्रिम दुरूहता से बचा गया है.

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए
इन्टीरियर डेकोरेशन
(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)
• गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
• सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
• आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
• मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
• कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
• कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं
विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :-
AID एकेडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

पेश करते हैं –
एक महान उपन्यासकार

विक्की आनन्द

का नया जासूसी उपन्यास

धुन्ध

6/-

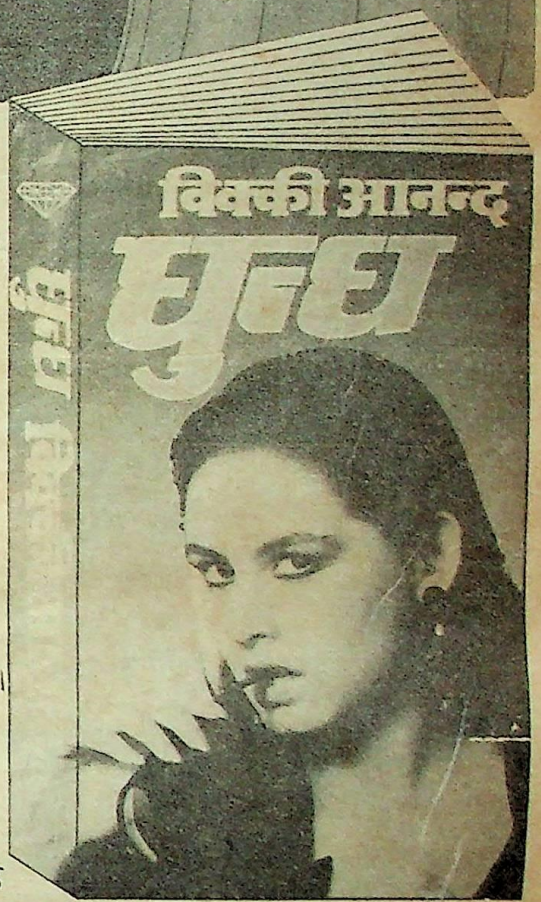

- लेखक का दावा है कि यह उपन्यास आपको पसंद आयेगा।
- एक नई किस्म के जासूसी उपन्यासों की परम्परा इस उपन्यास से शुरू होगी।
- विक्की आनन्द के उपन्यासों में रहस्य, रोमांच और इन्वेस्टीगेशन का अनूठा समन्वय है कि आप उपन्यास को एक ही बार में पूरा पढ़े बिना नहीं छोड़ पायेंगे।

लाखों पाठकों के प्रिय उपन्यासकार

सुमेर

का नया उपन्यास

नकाब

6/-

सस्पैंस थ्रिल और एक्शन के जादूगर

एहुल

का नया रोमांचकारी उपन्यास

दोषी कौन

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

दुनिया भर को झूठ और फरेब के गुंजलक में
फंसाकर भी क्या आप अपने आप से आंखे चुरा
सकते हैं...?

अपराध और आत्म स्वीकृति के आइने में इंसान
को समझने की रचनात्मक कोशिश...

अपराध और आत्मस्वीकृति

पर आधारित कथा-रचनाओं के विशिष्ट खंड के विश्वविख्यात रचनाकार हैं—
तुर्गनेव, पर्ल बक, जॉन ओ' हारा, सामरसेट मॉम, डेविड मार्शल, अल्बर्तो मोराविया, पीटर लैंग, थॉमस मस्तर, क्वोक चियो हो और एम. देलारु.

... और साथ में

प्रेमचंद की पुण्यतिथि पर विशेष... हिंदी में अब तक अप्राप्य तीन महत्वपूर्ण रचनाओं का धारावाहिक सिलसिला...

स्थायी स्तंभों सहित

द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण', चंद्रकांता,
हरिहर द्विवेदी और संगीता सिंह की ताजातरीन कहानियां.

अक्तूबर : 1988

हर महीने पत्रिका की कीमत पर
एक समूची किताब का भरा- पूरा संसार

सारिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुमेह, हृदयरोग, एलर्जी या अल्सर जैसे भयानक रोगों से निबटने में डाक्टर से भी ज्यादा आपकी अपनी भूमिका आवश्यक है

अपने रोग का आधा इलाज आपके हाथ में है, बशर्ते--- इसके कारणों, लक्षणों, जटिलताओं, सावधानियों और रोकथाम के बारे में आपको जानकारी हो...

इसके लिए पढ़िए

इंग्लैंड के प्रसिद्ध डाक्टरों एवं विशेषज्ञों द्वारा लिखित लाखों की संख्या में बिकने वाली प्रसिद्ध ब्रिटिश

पॉकेट हैल्थ गाइड्स

(अब हिन्दी में भी उपलब्ध)

- पाकेट हैल्थ गाइड्स इन बीमारियों के कारणों, जटिलताओं, सावधानियों तथा रोकथाम के उपायों के बारे में आपका ज्ञानवर्द्धन करेंगी।
- चित्रों और तालिकाओं के माध्यम से दी गई तकनीकी जानकारी को सरल व सुबोध भाषा द्वारा आसानी से समझने योग्य बनाया गया है।

हिन्दी में 16 तथा अंग्रेजी में 18 पाकेट हैल्थ गाइड्स

1.	**Allergies**—*Robert Eagle*	एलर्जी
2.	**Anaemia**—*Dr. Alexander D. G. Gunn*	रक्तक्षीणता
3.	**Arthritis & Rheumatism**—*Dr. Fernandes*	संधिशोथ एवं गठिया
4.	**Asthma**—*Robert Eagle*	दमा
5.	**Back Pain**—*Dr. Paul Dudley*	पीठ का दर्द
6.	**Children's Illnesses**—*Dr. Luke Zander*	बच्चों के रोग
7.	**Circulation Problems**—*J. A. Gillespie*	रक्त-संचार की समस्याएं
8.	**Cystitis**—*Diane Fernyhough*	
9.	**Depression & Anxiety**—*Dr. Arthur Graham*	अवसाद और चिंता
10.	**Diabetes**—*Dr. Alexander D. G. Gunn*	मधुमेह
11.	**High Blood Pressure**—*Dr. James Knapton*	उच्च रक्तचाप
12.	**Heart Trouble**—*Dr. Simon Joseph*	हृदय रोग
13.	**Hysterectomy**—*Wendy Savage*	
14.	**The Menopause**—*Dr. Margaret Thom*	रजोनिवृत्ति
15.	**Migraine**—*Dr. Finlay Campbell*	आधासीसी का दर्द
16.	**Peptic Ulcers**—*Dr. Finbarr Martin, Dr. Daniel Stiel*	पैप्टिक अल्सर
17.	**Pre-Menstrual Tension**—*June Clark*	रजोपूर्व तनाव
18.	**Skin Troubles**—*Deanna Wilson*	त्वचा-रोग

मूल्य 5/- प्रत्येक
डाकखर्च 2/- प्रत्येक

"I would not hesitate to recommend any of these books to patients suffering from the conditions they describe."
"इनमें से किसी भी रोग से ग्रस्त रोगी को मैं निस्संकोच संबंधित पुस्तक पढ़ने की सलाह दूंगा।" —BRITISH MEDICAL JOURNAL

Also available in English

अपने निकट के बुक स्टाल एवं ए.एच. व्हीलर के रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुक स्टालों पर मांग करें। वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के लिए लिखें

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006

नया शो रूम: 10-B. नेता जी सुभाष मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

VAN PM 33 88

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकतंत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, एकता और अखंडता— शांति और प्रगति के सशक्त आधार

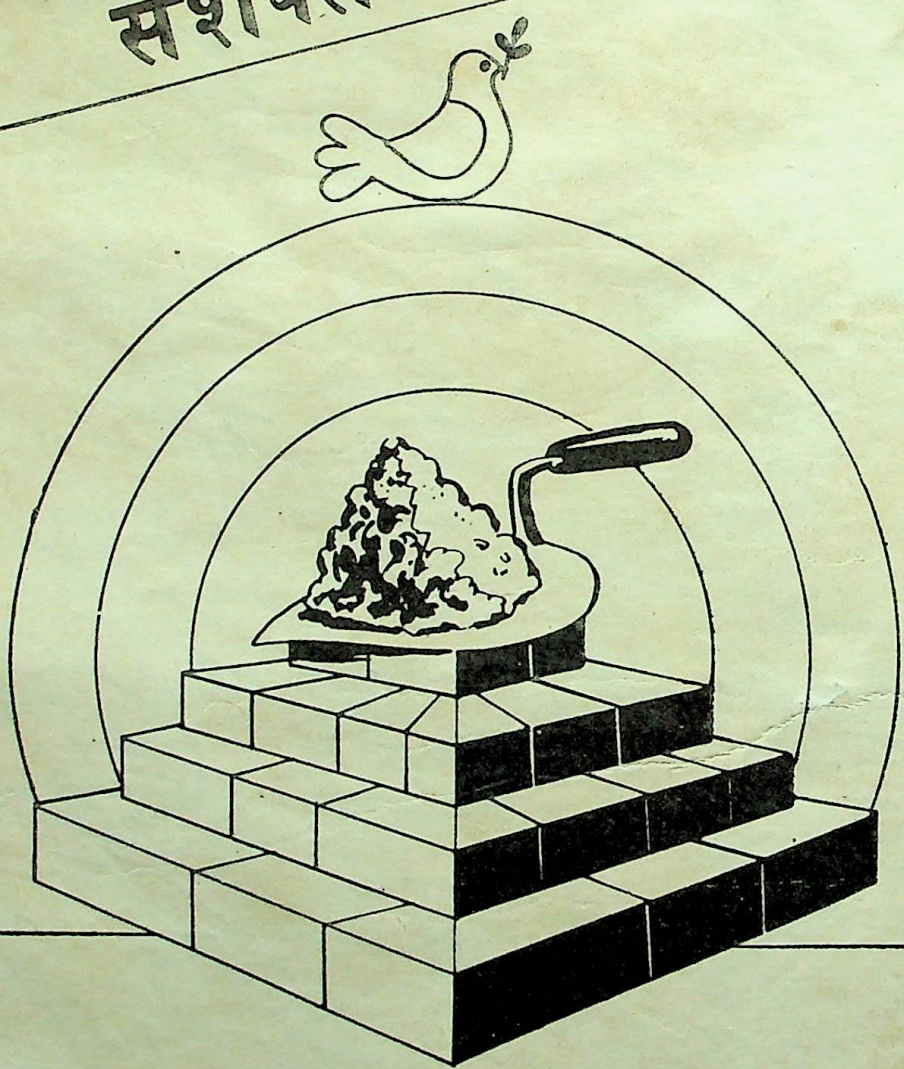

davp 88/243

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका
वर्ष : 28, अंक : 437, सितंबर, 1988

The Times of India
One Hundred and Fifty Years

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

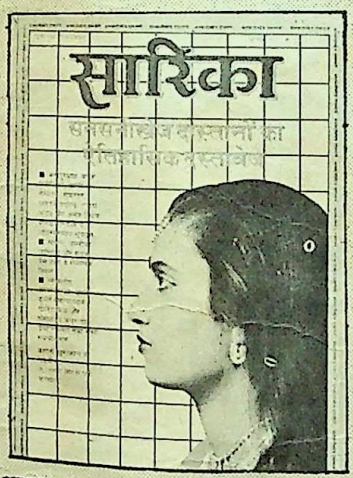

आवरण पारदर्शी : धर्मवीर जयनर
आवरण सज्जा : सुधीर गुप्ता
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

सनसनीखेज दास्तानों का ऐतिहासिक दस्तावेज

कथा रचनाएं

9. सती :
प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय
16. त्यों-त्यों प्रकट होत...
गोविंद मिश्र
37. सबक :
गौरीशंकर कपूर
48. आखेट :
कमल कुमार
64. रूपहली रातें :
फ्योदार दोस्तोयेव्स्की

सनसनीखेज दास्तान खंड

23. न्याय के साथ खिलवाड़
26. अमरीकी राष्ट्रपति पर मुकद्दमा
28. आस्ट्रिया की अदालत में
30. हत्या स्याम के लोकप्रिय राजा की
32. चार्ली चैप्लिन पर साहित्यिक चोरी का मुकद्दमा
43. गैलीलियो, एजरा पाउंड, सुकरात और आस्कर वाइल्ड पर चलाये गये मुकद्दमे.

160वीं जयंती पर विशेष

34. लेव ताल्सतोय की लघुकथाएं

साक्षात्कार

54. कहानी खुराफात की जड़ है :
नामवर सिंह के साथ उदय प्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत

अन्य आकर्षण

8. आपकी बात
20. दास्ताने अलफ-लैला
41. रहस्य रोमांच
46. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ
गोपाल चतुर्वेदी
51. प्रहसन :
महाराज कृष्ण काव
58. अनजानी प्रेम कथाएं :
बाला दुबे
60. अपराध कथाएं
69. कृतियां
72. भाषा : अस्मिता की पहचान :
डा० नारायण दत्त पालीवाल
73. सारिका कथा पहेली
74. धारा के विरुद्ध
75. हलचल

कापीराइट © 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि.. विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टांक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकीबात

सच कहूं तो

सारिका के माह जून एवं जुलाई 88 के विषकन्या अंक-1 और 2 आद्योपांत पढ़े सच मानिये यदि बेहद स्पष्ट शब्दों में कहूं तो पिछले दो वर्षों में इन दोनों अंकों के मुकाबले एक भी अंक नहीं निकला.

दोनों अंकों की किसी भी एक रचना को उत्कृष्ट कहना दूसरी के साथ अन्याय करना है.

□ सुलभा जैन, दमोह (म.प्र.)

कोबरा बनाम विषकन्याएं

श्याम शर्मा की 'अंतःपुर की कुंआरी', जेड.ए. बुखारी की 'हनीफा' काफी अच्छी रचनाएं रहीं, बधाई.

अंक के विशिष्ट लेख के रूप में 'अमृत में घुला जहर' में लेखक ने विषकन्याओं के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने का सार्थक प्रयत्न किया है. बधाई.

प्राचीन काल में नवजात कन्या को विष देना प्रारंभ कर दिया जाता था. विषकन्या निर्माण केंद्र गुप्त स्थान में अवस्थित हुआ करता था. जिसमें राजा के अत्यंत विश्वस्तों का ही प्रवेश की अनुमति हुआ करती थी. साधारणतः यह महत्वपूर्ण प्रयोग किसी गुफा में होता था. कन्याओं के जिह्वा पर विषधरों का विषदंश कराकर संपूर्ण शरीर को विषमय कर दिया जाता था. सर्वाधिक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि विषकन्या को जब सर्पदंश कराया जाता था तो अत्यंत प्राणघाती विषधर (संभवतः व्हाइट स्पाइटिंग कोबरा) भी इस क्रिया के उपरांत घंटों अचेत हो जाते थे. यह कोबरा अपनी फुत्कार से ही दुश्मनों का अंत कर देता है. इसका प्रक्षेप मैं स्वयं कैमूर के जंगली गांव में देख चुका हूं. जहां कोबरा के फुत्कार मात्र से करीब बीस मुर्गियों तथा उनके पचास पचपन चूजों का अंत हो गया.

कुछ विषकन्याएं तो अपनी वाक्‌बल से लक्षित शत्रुओं का अहित कर देती थीं. शिवानी की बहुचर्चित कृति 'विषकन्या' की कथा नायिका द्वारा बहुत खूब या सहजतापूर्णक अच्छा शब्द शत्रु को विनाश के अंधगर्त में ढकेल देता था. कुछ विद्वान तो इंद्र द्वारा कर्ण का प्रदत्त एकाघिन की संभावना विषकन्या से करते हैं. इसका अर्थ यह होता है कि ये मात्र एक बार विषवमन करती थीं.

यह अंक निश्चय ही शोधप्रज्ञों के लिए अत्यंत सहायक सिद्ध होगा. सारिका से इसी तरह के अंकों एवं संयोजन की अपेक्षा है.

□ अमरद्र किशोर, सासाराम, (बिहार)

देश गया भाड़ में

मुख्य रूप से श्री अंसारी की 'पत्थर की अप्सरा', श्री परसाई की 'सर्वे और सुंदरी', श्री योगेश की 'घर-गमला' और हरि मोहन की 'सुकन्या' अच्छी लगी. धन्यवाद. 'सर्वे और सुंदरी' में जो स्थिति परसाई जी ने बताई है कि दो पाकिस्तानी स्त्रियां अपने देश में आकर आराम से देश के नक्शे ले जाती हैं और हमारा देशभक्त कहता है कि "कुछ नये नक्शे बन रहे हैं. मैं खबर दूंगा तो लेने तो आ जाओगी न" और यही वास्तविक स्थिति भी है. हमारे देश के नक्शे तो वे साहब ऐसे दे रहे हैं मानो उन्हें देश से कुछ लेना-देना ही न हो. सामने दो स्त्रियां क्या आ गयीं देश गया भाड़ में.

मुख प्रष्ठ काफी कलात्मक व लुभावना है. यह एक अच्छी बात है. वास्तव में मुखपृष्ठ ऐसा तो होना ही चाहिए कि पत्रिका के हस्तगत होने के पश्चात पाठक कुछ देर तो वहीं अटका रहे और फिर जब मूड के साथ पन्ने पलटे जाएंगे तो सब शुभ ही होगा. खैर, मैंने भी पन्ने पलटे. 'सर्वे और सुंदरी', 'विलक्षणा', 'सोने के घूंट' व 'सुकन्या' आदि कथा रचनाएं बहुत ही पसंद आयीं. गवेषणात्मक शैली में लिखे तीनों विशेष लेख भी पसंद आए.

□ रमाकांत, कालाकांकर (उ.प्र.)

और विषपुत्रों पर?

सारिका के विषकन्या अंक (जून-जुलाई) मिले. क्या होती है विषकन्या और अमृतकन्या? साहित्य हो या समाज कन्यायों का अपना रूप है ही कहां, उसके तो हर रूप को गढ़ा है अमृतपुत्रों ने, दूसरे शब्दों में कन्या किसी भी युग में सिर्फ इस्तेमाल हुई है कभी विषकन्या के रूप में कभी अमृतकन्या के रूप में, कभी नाक की प्रतीक बनकर कभी उपभोग की वस्तु और कभी सियायत सत्ता प्राप्त करने या बनाये रखने के हथियार के रूप में. उनमें से कुछ रूपों की झलक आपने दिखाई जरूर है. पर किसी दूसरे शब्द या अर्थ में– "जिन्होंने लोगों को अपने रूप जाल में फंसाकर विलक्षण कार्य किया." इस रूप जाल की फंतासी को बुना किसने? इसका जवाब है आपके पास? बस एक शब्द छूप दिया–विषकन्या. जिसका आधार बना कर आपने दो-दो अंक जाया भी कर दिये. इसी तरह के विकृत शब्द से उपजी है कुछ विकट शब्द शब्दावली. एक स्त्री जो तथाकथित पत्नी होती है अपने तथाकथित पति को एक स्त्री से दूर रखना चाहती है कहीं वह चुड़ैल अपने रूप जाल में फंसा न ले, तथाकथित साधक के लिए वह पुण्य पथ और साधना में बाधक पापिष्ठा, 'मायाविनी' तो किसी ऐय्याश के लिए सुरा की प्याला या कंचन की चमक-सी 'उपभोग्या' चीज होती है. यह सभी शब्दावली अमृत संतान पुरुषों के लिए नहीं उसके लिए गढ़ा गया है जिसे समाज के ठेकेदार, सनातन पवित्र अमृत पुत्र पुरुष जब चाहे घर की चारदीवारी में बांधकर अमृतकन्या और चारदीवारी से बाहर धक्के देकर विषकन्या से विभूषित कर सके.

एक कैथरीन या किल्योपेट्रा जिनकी कहानियां सत्य कम किंवदंती अधिक हैं हालांकि सत्य तो अच्छे बुरे व्यक्ति चरित्र के सूचि पत्र में दाखिल होनी चाहिए न कि 'विषकन्या' कहकर हजारों करोड़ों ज्यूस, इंद्र, इदी अमीन, मुहम्मदशाह रंगीले या अतिशयोक्ति नहीं होगी, अगर कहा जाय आमद से आज तक किसी भी अमृत पुत्र का चेहरा बेदाग नहीं है तो बताइए कितने विशेषांक निकालेंगे आप विषपुत्रों पर?

□ रानी सिंह, परगना (पं. बंगाल)

मीठा जहर

मैं सारिका के 'विश्व साहित्य में विषकन्याएं' एक और दो पढ़ गया हूं. यह दोनों अंक पूर्ण रूपेण पढ़ जाने के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि विश्व के सभी देशों में विष कन्याओं का प्रभाव किसी न किसी रूप में जरूर विद्यमान है. विषकन्याएं क्या होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर मैं अब अच्छी तरह से समझ गया हूं. मुझे लगता है कि हमारे जैसे बहुत से पाठक इसका अर्थ विस्तृत रूप से जानने में सहायक हुए होंगे.

प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में विषकन्याओं का स्थान है. पहले अप्सरा, फिर विषकन्या और अब वेश्या (काल गर्ल) के रूप में हमारे सामने विद्यमान है. विषकन्याओं को मैं 'मीठा जहर' कह सकता हूं. क्योंकि इसका प्रभाव मीठा जहर के रूप में ही किसी के अंदर प्रवेश करता है. जिस प्रकार मीठे जहर को पीने का तो बड़ा आनंद आता है ठीक इसी प्रकार विषकन्याएं भी हैं. मीठी-मीठी बातें करके धीरे-धीरे अपने आगोश में ले लेती हैं और अंततः अंत होता है बड़ा कष्टदायक. इनका अलग-अलग रूप में पूरे विश्व में एक छत्र राज्य है. दुनिया का कोई कोना 'मीठा जहर' से अछूता नहीं रह गया है.

□ रमेश प्रसाद सिंह 'नीरज', भोजपुर

खूंटा और खूंटे

धारा के विरुद्ध में 'खूंटा और खूंटे' के अंतर्गत अपनी कहानी 'खूंटे' (धर्मयुग-12 मई 85 अंक) की दिलचस्पी टिप्पणी पढ़ी. सिक्के का दूसरा पहलू बहुत ही सटीक और यथार्थ लिए हुए है. राजेंद्र राव की साफगोई ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया कि लघु पत्रिकाओं के विषय में–दूसरी तस्वीर भी काफी अहमियत रखती है. अगर मेरा सोच उनकी तरह का होता तो शायद कहानी का एक दूसरा स्वरूप बन जाता. बहरहाल उनके स्पष्ट विवेचन व दो टूक बात करने को मैं नमन करता हूं. वे मेरी ओर से निश्चय ही बधाई के पात्र हैं.

□ आनंद अस्थाना, दरदोई (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'खबर', 'गोपी गंज संवाद' जैसे उपन्यास और "बारूद की सृष्टिकथा' व 'कस्बे का आदमी' जैसी कहानियों के सुपरिचित रचनाकार.
संपर्क : डी-240, सर्वोदय एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017

प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय

यह समझ लेने के बावजूद कि उसकी इतने दिनों की कोशिश अब नाकाम नहीं जायेगी... वह कहीं यह भी समझ बैठी थी कि जिस शख्स के साथ वह घरौंदा बनाने का सपना देख रही है, वह एक बाजारू औरत के साथ बंधा हुआ है. कैसी अबूझ पहेली थी यह... क्या चारु समझ सकी?

सती

सुबह होने में बहुत वक्त बाकी नहीं था. दिवाकर लौटा तो देखा, चारु जाग रही है. वैसे आंखें बंद थीं. वे बंद ही रहीं. पहले जब भी दिवाकर लौटता, चारु को उठकर दरवाज़ा खोलना पड़ता था. हर बार वह झुंझलाती और दिवाकर एकदम खामोश हो जाता. अब कोई साल भर से कम से कम दिवाकर के लिए चारु को उठना नहीं पड़ता. पुराना दरवाज़ा बदल गया और 'लैच की' से दिवाकर खुद ही बाहर से दरवाज़ा खोल लेता है.

ज़ाहिर था, इतनी रात तक चारु सोयी नहीं. बात खासी हैरानगी पैदा करने वाली थी. शुरू-शुरू में चारु एक अदद बीवी की तरह लड़ पड़ती थी. लेकिन अब अमूमन रात के ऐसे वक्त निगाहों में तल्खी के बावजूद गले की आवाज़ बहुत ऊंचाई तक नहीं जाती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवाकर को अब यह सब झेलने की आदत पड़ गयी है. इसके अलावा चारु पर उसकी शिकायत भी नहीं है. एक दफा उसने कह भी दिया था, "शिकवा-शिकायत के लिए एक खास किस्म के रिश्ते को कबूल करना पड़ता है. मैं तुम्हारे और अपने बारे में गौर करता हूं तो एक खालीपन के अलावा कुछ और महसूस नहीं कर पाता."

इतनी बड़ी चपत खाकर भी चारु शेरनी की तरह उछल नहीं पड़ी थी. थोड़ी देर में दिवाकर उठकर बाहर निकल गया तो वह एकदम से फफक पड़ी थी. लेकिन एक दिन बीत गया तो उसने अपने आप को नये सिरे से तैयार कर लिया. समझ गयी थी, जिंदगी आंसूओं पर नावें छोड़कर पतवार चलाने के लिए थोड़े ही हैं! उसने दिवाकर से साफ कह दिया, "खालीपन का जिक्र तुमने किया था न! लेकिन वह तुम्हारे और मेरे बीच नहीं, सिर्फ तुम्हारे अंदर एक जहरीले नासूर की तरह पल रहा है. इस वजह से तुम बीवी को कभी बीवी नहीं कबूल कर पाये. असली बात तो यह है कि तुम अपने आपसे इस तरह हार गये हो कि हकीकत का सामना करने लायक हिम्मत तुम्हारे अंदर अब कतई नहीं रही."

दिवाकर ने एक सिगरेट जला ली थी. उस वक्त जवाब में महज यही किया जा सकता था. देर तक फिर चुप्पी तैरती रही. इतनी चुप्पी कि सिगरेट के धुएं के छल्लों के साथ समूचे कमरे में एक जबरदस्त घुटन उतर आयी थी.

दिवाकर की आंखें बंद थीं. चारु को उम्मीद थी, थोड़ी देर में यह शख्स कुछ उकसाने लायक जरूर बोल देगा. लेकिन फिर घंटा भर गुजर गया और बीच-बीच में सिगरेट सुलगाने के लिए माचिस की खच्चस के अलावा बाकी सिर्फ सन्नाटा था. इत्तफाक है कि अड़ोस-पड़ोस में भी कोई शोर-शराबा नहीं हुआ. उससे कम से कम माहौल का एक भारीपन जरूर टूटता. उस वक्त उतनी चुप्पी में से गुजरना चारु को अपने लिए बहुत मुश्किल लगा था. आखिर में जब माहौल बरदाश्त के बाहर हो गया, वह एकदम से उठी और दरवाजे को झटके के साथ खोलकर बाहर चली गयी.

इसके बावजूद दिवाकर खामोश था. दरवाजे को पूरी ताकत लगाकर खोलते ही खासी आवाज हुई थी. बंद आंखों और उंगलियों में फंसी सिगरेट के साथ यह शख्स फिर भी बुत-सा बैठा रहा.

घंटा भर और गुजर गया तो दिवाकर उठा. आलमारी में आधी बोतल विहस्की पड़ी थी. पता नहीं चारु की निगाहें वहां तक पहुंची नहीं थीं या उसने जान बूझकर नजरअंदाज कर दिया था. जब भी विहस्की की बोतल लेकर दिवाकर बैठता, चारु उस पर झपट्टा-सा मारती और बोतल को किचन तक ले जाकर उड़ेल देती. उस वक्त उसकी सांस फूल रही होती और गले की आवाज में खासी बदहवासी उतर आती. बहुत मजबूती न हो तो दिवाकर घर में बैठकर नहीं पीता. अपनी मजबूरी के लिए कई दफा वह चारु से भिन्नतें भी करता रहा है लेकिन उसका असर अमूमन नहीं ही हुआ. खास तौर पर पिछले डेढ़ेक सालों में.

चारु के सामने कभी-कभी दिवाकर खुद को इतना बेगाना महसूस करता कि दिमाग की नसों में बिजली गिरने का-सा एहसास होने लगता. यह एक ऐसा मामला है कि अकेले खामोशी में सह लेने के अलावा दिवाकर को कभी कोई और रास्ता नहीं नजर आया.

लेकिन शुरू के दिनों में ऐसा नहीं होता था. दिवाकर गिलास और बोतल लेकर बैठता तो कई बार चारु पकौड़े भी तलकर के

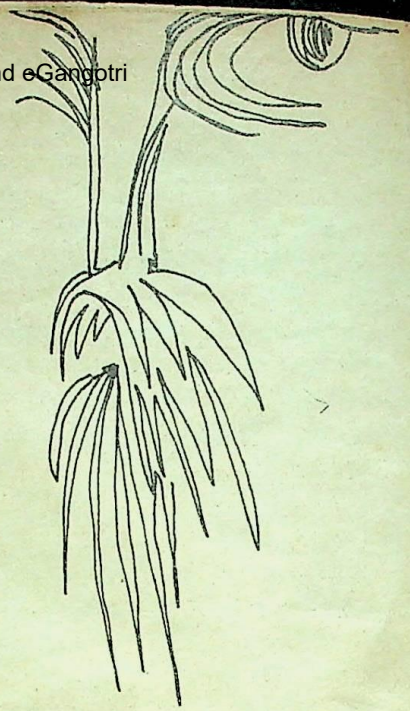

देती. दिवाकर समझ गया था, इस दरियादिली के पीछे चारु के अपने इरादे बिल्कुल साफ हैं. दिवाकर को हैरानी होती रही कि इस औरत में नासमझी की हद इस कदर बढ़ कैसे गयी जब कि वह होशियारी में कभी किसी से उन्नीस नहीं रही! चारु तब यकीन कर बैठी थी कि उसका पत्नीत्व थोड़ी देर से सही, रंग जरूर लायेगा. उसे लगता रहा, बात चंद दिनों की है, लिहाजा उल्टा-सीधा बोलकर रिश्ते में जहर की बेल बोने में उसे अक्लमंदी नहीं नजर आयी. लेकिन थोड़े अरसे में आहिस्ते-आहिस्ते सब कुछ बदलने लगा. चारु घर में बोतल लेकर बैठने पर फिर ऐतराज करने लगी. दिवाकर की मजबूरी इतनी थी कि चारु की बातों पर गौर करना उसके लिए मुमकिन नहीं रह गया था.

इसके बाद चारु खूंखार हो उठी थी. फिर से गिलास और बोतल के टुकड़ों से दिवाकर के तलवे लहूलुहान होने लगे. अपने खून से नज़र हटाकर हर बार यह शख्स चारु की आंखों को बहुत गौर से देखता और दार्शनिक की तरह बोल पड़ता, "तुम शायद यकीन न करो, फर्श पर फैले खून के ये दाग ही मेरा वजूद हैं. इनके साथ मैं इत्मीनान से इतनी उम्र तक जिंदा हूं और मैं मरूंगा भी इन्हीं के दरम्यान."

यह सब सुनकर चारु होंठ बिचका लेती. ज़ाहिर कर देती, इस तरह की सस्ती दार्शनिकता से प्रभावित होनेवालों में कम से कम वह नहीं है.

थोड़ी देर पहले चारु पूरी ताकत से दरवाजा खोलकर बाहर गयी तो दिवाकर को लगा, बाहर बरामदे पर मोढ़ा लेकर वह थोड़ा वक्त तो गुजार ही लेगी. फिर यह पता लगते ही कि अंदर का शख्स बोतल लेकर बैठा है, उसी रफ्तार से भीतर आएगी, जितनी तेजी से वह बाहर गयी थी. लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ. दिवाकर खासा हैरान हो रहा था. थोड़ी देर बाद चारु अंदर आयी, शेल्फ में से एक किताब निकाली और दोबारा बाहर चली गयी. न चेहरे पर कोई आवेश नज़र आया न चाल में. उस दिन दिवाकर को यही लगा था कि अगर विहस्की के बजाय वह गिलास में संखिया का घोल उड़ेलकर भी पीना शुरू करता, चारु नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोकती. आखिर में अंजाम यह हुआ कि वह शाम महीने के लिए बिल्कुल खामोश हो गयी. दिवाकर अपने आप पर हैरान होता रहा कि चारु के इस सलूक के बावजूद अंदर से उसे कोई फर्क क्यों नहीं पड़ा!

अंदर घुसते हुए दिवाकर को लगा था कि बिल्कुल अभी अगर वह कभी लौटता, शायद बेहतर रहता. सुबह होने में बहुत बाकी रह भी नहीं गया था. लिहाजा वह तीनेक घंटे बाद ही अगर वापस आता तो दिन के उजाले की वजह से पूरे माहौल में एक फर्क जरूर नजर आ जाता. चारु शायद तब उनींदी आंखों से चाय की चुस्कियां ले रही होती. ऐसे मौकों पर बहुत मासूम लगती है वह. दिवाकर को यही लगता है. इस आदमी को अपनी मजबूरियों का सिलसिला हमेशा ही ऐसा लगता कि वक्त की परवाह करना कई बार उसके लिए नामुमकिन हो जाता. आज भी ऐसा ही हुआ. दो अखबारों के लिए स्तंभ की सामग्री पूरी की. शाम से वह कमला के पास रहा. लगातार पीते हुए उसने दो कविताएं लिखीं, अपने को टटोलता, अच्छी तरह ज़ाहिर हो जाता, इस औरत के सहारे के बिना उसका कोई मतलब कुल मिलाकर नहीं ही निकलता.

कमला के पास पहली बार जब एक खरीदार की तरह दिवाकर आया था, लानेवाला एक पुराना अजीज था. उसे शायद एक होनहार कवि के अंदर एक वीरानगी नजर आयी थी. आखिर में उसे लगा होगा कि यह वीरानगी इस कवि को थोड़े ही अरसे में खत्म कर देगी. बात पूरी तरह सच थी या नहीं, कहना मुश्किल होगा. लेकिन इतना आखिर कहा ही जा सकता है, दिवाकर के दोस्त का खयाल पूरी तरह गलत भी नहीं था.

उस दिन दिवाकर के पांव कांपे थे. शर्मीला वह पहले से ही था, अब बोलती भी बंद-सी हो गयी.

फिर बहुत वक्त नहीं लगा था. दिवाकर को जैसे खड़े होने लायक एक पक्की बुनियाद मिल गयी थी. कोठे पर बैठनेवाली बहुत मामूली शक्ल-सूरत की एक सांवली औरत की आंखों में कवि ने खुद का आविष्कार किया था. बस, इसके बाद बहुत जल्द कमला उसका आधार-सा बन गयी थी. यह सब कैसे हो गया, पूछा जाये तो दिवाकर खासा हैरान हो जायेगा. फिर आवेश में आकर शायद यही कहेगा, "कैसे हुआ; इस सवाल की कोई अहमियत नहीं है. अहमियत तो इस बात की है कि मैंने एक औरत में उसका पूरा का पूरा औरतपन देखा और उसके साथ खुद को जोड़ने के लिए मजबूर हो गया. जिस तरह अंदर की एक गहरी मजबूरी से कविताएं लिखता हूं, बिल्कुल उसी तरह इस अदद औरत के साथ प्यार भी करता हूं. यह मजबूरी न हो तो दिवाकर न तो कवि है, और न आदमी."

अभी कमला के पास से आने के बाद दिवाकर को लगा, एक दिन लौटने के बाद यह देखेगा, चारु एक लाश के रूप में बिस्तर या फर्श पर पड़ी हुई है. लेकिन उसे पूरा यकीन है, तमाम कोशिशों के बाद चारु उससे प्रेम नहीं कर पायी. इसलिए अगर वह खुदकशी करती है, उसकी वजह होगी अहम का एक पहाड़. दिवाकर को बखूबी मालूम है, वह चारु नहीं रह जायेगी. बल्कि कहना यह चाहिए कि इस अहम् के बगैर यह लड़की जिंदा ही नहीं रह पायेगी.

दिवाकर आहिस्ता से स्टूल पर बैठा गया. बिस्तर से थोड़े फासले पर.

अब चारु उठ गयी. चद्दर को कमर तक खिसकाकर दीवार पर पीठ टिकाए बैठ गयी.

दिवाकर को खासा सुरूर चढ़ा था. इसके बावजूद गले की आवाज नहीं लड़खड़ायी. पूछा, "इतनी रात गये जाग रही हो. तुम्हारी तबीयत शायद ठीक नहीं है."

चारु कुछ नहीं बोली.

कोने में टेबल लैंप जल रहा था. दिवाकर को उसकी रोशनी जरूरत से ज्यादा पीली और बीमार लगी.

फिर एक चुप्पी तैरती रही.

दिवाकर को जबरदस्त थकान महसूस हो रही थी. उसने दीवार पर पीठ टिकायी और आंखें बंद कर लीं. समझ गया था, चारु अब उसे देर तक घूरती रहेगी.

कोई आधे घंटे तक सन्नाटा फैलाता रहा. फिर चारु ने अपने को तैयार कर लिया. बोली, "तुम अपनी मर्जी से घर पर भी पी सकते हो."

दिवाकर को अचानक अगर बिजली का खुला तार भी छू जाता, इतनी हैरानी नहीं होती. उसने आंखें खोलीं और सीधी कर लीं

चारु हड़बड़ा-सी रही थी.

"तुम्हारा खयाल है कि मेरा कोई घर है?" कोई खास जरूरत तो नहीं थी लेकिन दिवाकर तल्ख हो गया था.

चारु एकदम चुप. लगा, सामने बैठे इस शख्स से वाकई उसका कोई रिश्ता नहीं है.

"सवाल न तो घर का है, और न पीने का ही." दिवाकर बोला, "सवाल है मेरी मजबूरी का. मुझे चलने के लिए दो पांव चाहिए. और उन पांवों को अपने नीचे जमीन चाहिए. तुम जानती ही हो, वह जमीन मेरी बीवी बनकर तुम नहीं दे सकीं. लेकिन तुमसे यह मेरी शिकायत नहीं है. शादी से पहले ही मैं जानता था, तुम्हारी तरह की लड़कियां वह जमीन मुझे हर्गिज नहीं दे सकतीं, जिसकी मुझे जरूरत है.

चारु को आगे कुछ सूझ नहीं रहा था. लगा, उसका बोलना एकदम बेतुका हो गया है.

दिवाकर का नशा उतर गया था. मुमकिन है, नशे की वजह से ही वह अपनी गहराई की तलहटी तक पहुंच गया था.

इससे मिलते-जुलते जुमले चारु पहले भी कई बार सुन चुकी है. हर बार उसे शुरू में अपने से नफरत-सी होती लेकिन थोड़ी देर बाद वही नफरत गुस्से में तब्दील हो जाती. कई दफा वह दिवाकर के ऊपर तेंदुए की तरह झपट्टा भी मारती रही है. अंजाम में दिवाकर के कपड़े कई बार फटते रहे हैं. लेकिन यह शख्स अपने बारे में इतना नहीं मालूम कर पाया कि चारु के इतने खूंखारपन के बावजूद वह कोई जवाब क्यों नही दे सका! जवाब में जिस्म की ताकत का इस्तेमाल आखिर हो ही सकता था. लेकिन हर बार हमले के वक्त चारु उसे एकदम नासमझ और बेवकूफ लगती रही है. इस खयाल की वजह से सामने की इस औरत के खिलाफ उसने जेहन में कभी हिंसा जागी ही नहीं.

इस दफा चारु ने अपना संयम नहीं खोया. उसने एक गहरी सांस ली और टेबल लैंप की तरफ कुछ मुआयना-सा करने लगी. थोड़ी देर बाद बोली, "चाय पियोगे? या कॉफी?"

दिवाकर ठहाका मारकर हंस पड़ा, "सोच रही होगी, नशे की वजह से मैं बैलेंस में नहीं हूं और कॉफी पिलाकर मुझे होश में ला दोगी!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारु हैरान हुई. दिवाकर के शब्दों के लिए नहीं, उसके ठहाका मरने की वजह से. कई बार वह कहती भी रही है, " तुम कभी दिल खोलकर हंस क्यों नहीं लेते? तुम शायद कबूल न करो, लेकिन कोई भी साइकियाट्रिस्ट बता दूंगा, तंदुरुस्ती के लिए यह बहुत जरूरी है."

फिर एकदम सन्नाटा तैरता रहा. थोड़ी देर बाद बाहर एक कुत्ता भौंका. चारु को लगा उसे थोड़ा सही, एक सहारा जरूर मिल गया इससे. उसने खुद को संभाल लिया और दिवाकर की तरफ गर्दन मोड़ ली, "कई दिनों से एक बात कहने की सोच रही थी."

दिवाकर को लगा, चारु को कुछ हो गया है. इससे पहले कुछ भी कहने के लिए उसे कभी किसी भूमिका की जरूरत नहीं पड़ी थी.

"मेरी बात को बहुत गहराई तक गये बगैर तुम शायद समझ नहीं पाओगे." चारु बोली, बोलते हुए शब्द अटक रहे थे.

दिवाकर ने एक नयी सिगरेट सुलगायी, "मेरा ख्याल है, मेरे तौर-तरीकों से कभी यह जाहिर नहीं हुआ कि मैं शेर या चीता जैसा कुछ हूं. तुम बिना किसी तरह की घबराहट के अपनी बात कह सकती हो."

"मैं कमला से मिलना चाहती हूं." किसी तरह तमाम ताकत जुटाकर चारु बोल पायी. बोलने के बाद गला अकड़ने-सा लगा था.

"ह्वाट!" दिवाकर दहाड़-सा उठा. उत्तेजना के मारे उसका समूचा जिस्म कांप रहा था. उंगली में फंसी सिगरेट को उसने पहले तो ऐशट्रे में फेंका फिर शायद कुछ याद आने के बाद उसे मसल दिया.

"मैं जानती थी, तुम बुरी तरह रिएक्ट कर जाओगे." चारु बोली.

दिवाकर एकदम से संयत हो गया. बोला, "तुम्हारे इतने स्टूपिड प्रॉपोजल के बावजूद मैंने उस तरह से रिएक्ट नहीं किया, जो बहुत स्वाभाविक था. खैर, इतना मैं आसानी से समझ सकता हूं कि यह मेरे बजूद को खत्म करने की तुम्हारी एक बहुत गहरी साजिश है." दिवाकर की आवाज में संजीदगी थी.

चारु एकदम चुप.

दिवाकर ने एक नयी सिगरेट सुलगायी, "मेरा खयाल है, मेरे कप्लीट वुमन. उसी से मैं जान पाया कि जिंदगी के सही मायने क्या होते हैं. यह दूसरी बात है कि वह न तो तुम्हारी तरह खूबसूरत है. और न पढ़ी-लिखी ही. लेकिन मुझे जो चाहिए, सिर्फ वही दे पायी है. तुम्हें मालूम है कि यह कोई चार दिनों की बात नहीं है, बहुत लंबा सिलसिला है यह."

अब चारु ने थोड़ी हिम्मत जुटा ली, "मैं तुम्हारे वजूद के खिलाफ कोई साजिश नहीं कर रही हूं. इस बात पर तुम चाहे यकीन न भी करो लेकिन हकीकत यही है. तुम्हारी तरह मैं भी अगर अपने लिए जिंदगी के मायने जानना चाहूं तो इसमें तुम्हें ऐतराज नहीं करना चाहिए."

"तुम सच बोल रही हो?" दिवाकर को समझने में थोड़ी दिक्कत हो रही थी.

"अगर कहूं हां, तुम्हें यकीन आयेगा?" चारु बोली.

"लेकिन हरेक का रास्ता अलग होना है. जिस रास्ते से मैं कुछ ढूंढ सकता हूं, उस पर तुम चलोगी तो मुंह के बल गिरोगी. हरेक का रास्ता बहुत निजी होता है."

"ठीक है, नहीं मिलूंगी," चारु बोली, " लेकिन मेरे एक सवाल का जवाब तुम्हें देना होगा. तुम्हें जिंदगी का आधार हासिल कराने के लिए कमला है. लेकिन मुझे कहां से यह हासिल होगा?"

"इसका जवाब मैं कहां से दे सकता हूं? यह बहुत निजी मामला है. इंसान को खुद ही अपने को टटोलकर इसका जवाब ढूंढना पड़ता है. दिवाकर ने सिगरेट का एक गहरा कश खींचा और नये सिरे से दीवार पर पीठ टिका ली."

"मैं तुम्हारी तरह कवि नहीं हूं..." चारु को झटका खाकर रुकना पड़ा.

किसी की तरह होने की कोई जरूरत नहीं है." दिवाकर की आवाज में तल्खी थी, "अपने आप में रहने की सोचो, बल्कि कोशिश करो."

"चलो, वही सही. मेरे पास चूंकि भाषा नहीं है, कई बार कुछ ऐसा बोल जाती हूं जिसका कुछ और ही मतलब निकल आता खैर, अपने को टटोलती हूं तो लगता है, मैं एकदम खाली हूं... रेगिस्तान की तरह."

दिवाकर ने रोक दिया, "हमारी शादी कोई दो साल पहले हुई थी. शादी से पहले भी तुम यही कहती थी. तब भी मैंने तुम्हें आगाह किया था कि तुम्हारा यह खालीपन शादी का रिश्ता नहीं भर पायेगा. बल्कि मेरा तो तब भी खयाल यही था कि कोई भी रिश्ता इस खालीपन को पाटने के लिए नाकाफी साबित होगा."

"हां, कहा था तुमने," चारु बोली, "लेकिन इतना तुम शायद कबूल करोगे कि शादी जिंदगी का एक अहम पड़ाव है. उसके जरिए लोगों के जज्बात के बहुत सारे मसले हल भी तो होते रहे हैं."

दिवाकर ने सिगरेट को एशट्रे में मसल कर बुझा दिया. थोड़ी देर तक चुप्पी छायी रही. फिर बोला, " कुछ लोगों के मसले शादी के जरिए हल होते होंगे लेकिन तुम या मैं उन कुछ लोगों में से नहीं है."

चारु को लगा, अब आगे बात बढ़ाने से कोई मतलब नहीं निकलेगा. दिवाकर पहले भी उसे पहेली लगता रहा है, आज की ही तरह. इस पहेली की ही वजह से वह खुद प्रॉपोज कर बैठी थी.

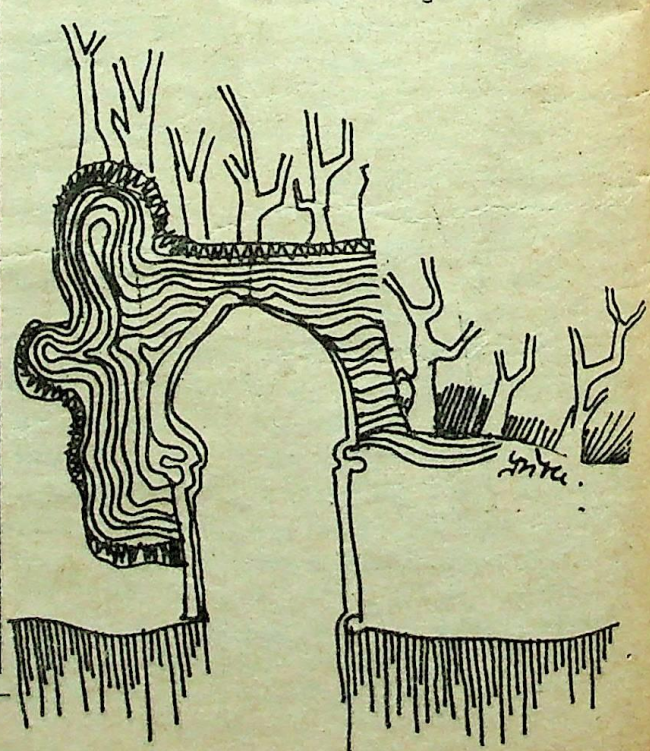

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह एक बहुत बड़ा फैसला था. लेकिन फैसले की वजह कितनी छोटी थी—इस पर सोचकर चारु इधर एक अरसे से जैसे चक्रव्यूह में फंसती रही.

बाहर खासी रोशनी फैल गयी थी. उसका थोड़ा हिस्सा खिड़की के शीशों से छनकर अंदर तक पहुंचा जरूर लेकिन उस पर किसी ने नहीं गौर किया. कमरे के अंदर टेबल लैंप उसी तरह जल रहा था. एकदम पीली रोशनी बिखेरते हुए.

दिवाकर और चारु का रिश्ता जब शुरू हुआ था, ठीक उसके पहले चारु मंझधार में डूब-सी रही थी. उस हादसे में कोई नाटकीयता नहीं थी. चारु चार बरस तक जिसके साथ प्रेम कर अपने भीतर एक और जीव को ले आयी थी, अचानक पता लगा, वह शादी-शुदा है. चार बरस के लमहे कम तो नहीं होते लेकिन चारु इसलिए नहीं पल-दर-पल टूटती रही कि उस शख्स से अब शादी होना मुमकिन नहीं था, बल्कि इसलिए कि उसके अपने जज्बात ही उसे धोखा दे गये थे. वर्ना एक आदमी को समझने में इतना वक्त नहीं गुजर जाता.

वह रिश्ता फिर अपने आप ही खत्म हो गया था. शुरू में चारु को लगा था कि इस समाप्ति के लिए कुछ तो कोशिश करनी ही पड़ेगी. लेकिन उसने नहीं की थी फिर भी एक दिन सब कुछ खत्म हो ही गया.

कुछ लोग सांप की तरह जाने कैसे सूंघ ही लेते हैं. हादसे के बारे में कुछ लोगों को शक पड़ गया था. आखिर में जाने किस जासूसी रास्ते से उन लोगों ने हकीकत का खासा हिस्सा मालूम भी कर लिया था. बहुत बदनामी हुई थी फिर. उन दिनों चारु कई बार खुदकुशी की भी सोचती रही. लेकिन आखिर में उसने खुद को संभाल लिया था. इसके बाद एक जानपहचान की नर्स की मदद से उसने एबॉर्शन कर लिया था.

उन्हीं दिनों दिवाकर से मुलाकात हुई थी. चारु के स्कूल में कविता-पाठ के एक कार्यक्रम में दिवाकर आया था. चारु की दिलचस्पी साहित्य में कभी नहीं रही. कविता में तो बिल्कुल ही नहीं. स्कूल में केमिस्ट्री पढ़ाते हुए इतना अरसा गुजर गया कि अब ललित चीजें कोई खास असर नहीं छोड़तीं. आए दिन स्कूल में कुछ न कुछ कार्यक्रम होता ही रहता है. लेकिन चारु उनमें कम ही शरीक हुई है. शुरू-शुरू में स्कूल की दूसरी शिक्षिकाएं जिद करती थीं कि वह रुक जाये. लेकिन लगभग हर बार वह किसी न किसी बहाने कन्नी काटकर खिसकती ही रही है. फिर लोगों ने आग्रह करना छोड़ दिया था.

इस बार किसी ने कुछ कहा तो नहीं था लेकिन चारु कविता-पाठ सुनने के लिए रुक गयी. डायस पर तमाम कवि बैठे थे. हम उम्र के. उस जमघट में ऐसी कोई खास बात नहीं थी कि दिवाकर पर एक विशेष अंदाज में गौर किया जाये. लेकिन स्कूल की लड़कियां और कई शिक्षिकाओं की नज़रें एक विशेष तरीके से कुछ कवियों पर थीं, इतना चारु को मालूम है. ये बातें अब उसे एकदम फालतू लगती हैं.

दिवाकर की बारी पांचवें नंबर पर आयी थी. तभी चारु की नजर पहली बार उस पर पड़ी. लंबा-सा नयी उम्र का एक मामूली शक्ल-सूरत वाला आदमी डायस पर खड़ा हो तो ललचाकर देखने जैसी कोई बात नहीं होती. लेकिन लोग खुसर-पुसर कर रहे थे कि आजकल कवियों में इसकी बड़ी धाक है.

दिवाकर ने अपनी कविता पढ़ी तो समूचा हॉल एकदम खामोश हो गया था. चारु ने भी यकीन किया, कवि में जबरदस्त गहराई है और उसका बात कहने का ढंग बहुत निराला है.

कार्यक्रम चारेक घंटे तक चला था. फिर स्कूल की लड़कियां 'ऑटोग्राफ' लेने एक-एक कवि पर टूट-सी पड़ीं. चारु एक कोने में खड़ी हो गयी थी. दिवाकर सामने से होकर गुजरने लगा तो उसने रोक दिया, "आपको बधाइयां तो बहुत मिली हैं लेकिन मेरी तरफ से कृतज्ञता स्वीकार कीजिए."

दिवाकर को कुछ भी समझ में नहीं आया था. वह अचकचा-सा रहा था.

"कृतज्ञ मैं इसलिए हुई थी कि पहली बार कविता सुनने आयी और लगा, आप सिर्फ मेरी ही कहानी सुना रहे हैं." चारु बोली.

दिवाकर थोड़ा-बहुत घबरा ही गया था. सामने खड़ी एक बेहद खूबसूरत लड़की इस तरह नाटकीयता के साथ बोले तो घबराहट होना मामूली बात है.

"मैं इस स्कूल में केमिस्ट्री पढ़ाती हूं." चारु शायद थोड़ा रुककर कोई और सिलसिला शुरू करती लेकिन दिवाकर को और ज्यादा ठहरना मुनासिब नहीं लगता था.

इसके कोई तीनेक दिन बाद चारु पता ढूंढकर दिवाकर के दफ्तर में जा पहुंची थी. उस वक्त वह अखबार के चंद पन्नों का आखिरी प्रूफ देख रहा था. वक्त पर पन्ने तैयार करके न भेजो तो मशीन रूम वाले चिल्लाते हैं. वक्त नहीं था लेकिन चारु को अखबार के इस दफ्तर में देखकर दिवाकर को कबूल करना पड़ा. वक्त का अपना ही हिसाब होता है. उस हिसाब मशीन रूम वालों की खास गुंजायश नहीं है.

पूरा दफ्तर उस दिन चारु पर आंखें गड़ाए था. लोग चटखारे ले रहे थे. अखबार के दफ्तर के उस नीरस माहौल में जैसे एकदम से फागुन आ गया था.

दिवाकर बतौर कवि बहुत मशहूर तो खैर था ही, एक पत्रकार की हैसियत से भी बहुत छोटा-मोटा नहीं था. कई लोगों का कहना है—आग बरसती है उसकी कलम से. लेकिन कवि या पत्रकार होने के साथ-साथ एक और भूमिका का निर्वाह उसने बखूबी निभाया था—एक जुझारू नेता का. फुटपाथ पर बैठकर तिजारत करनेवालों के खिलाफ पुलिसी जुल्म को शुरू में तो उसने मंत्री वगैरह से मिलकर खत्म करने की कोशिश की फिर अनशन पर बैठ गया. पूरे तैंतीस दिन अनशन चलने के बाद जब उसकी हालत कमल के पत्ते के ऊपर थर्राते पानी की तरह हो गया, पुलिस के डी.आई.जी., कमिश्नर, मंत्री वगैरह दौड़े हुए आये और दिवाकर की मांग कबूल कर ली कि फुटपाथी व्यापारियों पर पुलिस का जुल्म और रिश्वतखोरी पर कड़ी नजर रखी जायेगी. उस वक्त कोई ग्यारह पुलिस के सिपाही और इंस्पेक्टर एक साथ ससपेंड कर दिये गये थे. इसके बाद ही दिवाकर ने अनशन तोड़ा था.

दिवाकर फिर कवि होने के साथ एक जुझारू नेता जरूर हो गया था लेकिन नौकरी से छुट्टी हो गयी थी. अखबार के मालिक को यह नेतागिरी बहुत मतलब की नहीं लगी थी. नौकरी के कांट्रेक्ट में यह पहले ही से एक शर्त थी कि किसी तरह की राजनैतिक या सार्वजनिक कार्य-कलापों में प्रत्यक्ष हिस्सेदारी से पहले अनुमति लेनी पड़ेगी. दिवाकर इतने आवेश में था कि अनुमति लेने की बात उस वक्त दिमाग में आयी ही नहीं. संपादक से उसका अच्छा रिश्ता था लेकिन इस मामले में कुछ करने में उसने अपनी मजबूरी जाहिर की. दिवाकर इस मुअत्तिली के खिलाफ खासा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंगामा खड़ा कर सकता था लेकिन नौकरी में रहने की वजह से वह अपने आप को किसी हद तक बासी महसूस करने लगा था. बस, अखबारी नौकरी से रिश्ता फिर उसी मुकाम पर खत्म हो गया.

इसके बाद गुजारे की समस्या आयी तो इससे पहले कि वह गहराई से सोचकर कोई रास्ता निकालता, दोस्तों की मदद से दिल्ली, कलकत्ता और बंबई के अखबारों में उसे राजनैतिक और सामाजिक मुद्दों पर स्तंभ लिखने के अनुबंध मिल गये. उसने कबूल कर लिया.

उन्हीं दिनों चारु ने एक दिन शादी का प्रस्ताव रख दिया. दिवाकर हंस पड़ा था, "एक बेकार आदमी की आजादी इस मामले में बहुत नहीं होती."

चारु ने सब्र से काम लिया था. किसी हद तक वह समझ भी गयी थी कि इस शख्स से यह प्रस्ताव कबूल करवाना, दूसरा महायुद्ध जीतने जैसा ही कुछ होगा. इस बीच आहिस्ते-आहिस्ते उसने अपने अतीत के बारे में सब कुछ बता दिया था.

पूरी कहानी सुन चुकने के बाद दिवाकर ने एक गहरी सांस ली थी.

चारु समझ गयी थी, उसकी इतने दिनों की कोशिश अब शायद नाकाम नहीं जाएगी. और तब तक वह जान गयी थी कि जिस शख्स के साथ वह घरौंदा बनाने का सपना देख रही है, कोई तीस बरस से उसकी जिंदगी एक बाजारू औरत के साथ बंधी हुई है. इस पहेली को चारु समझ नहीं पायी. बात कुछ ऐसी लगी कि जैसे कोई सामने की भरी-पूरी. थाली छोड़कर कूड़ेदान में निकालकर जूठा पत्तल चाट रहा हो!

दिवाकर मुस्कराया था, "यह मसला आदमी की बुनियाद से रिश्ता रखता है. चंद लफ्जों में समझाने लायक बात यह नहीं है. इसके बावजूद यह जरूर बताना चाहूंगा कि कमला हर तरह से एक पूरी औरत है. अपने आधार के लिए मुझे सिर्फ उसी की तलाश थी. उससे रिश्ता जोड़ने के बाद मैं समझता हूं, मेरी भटकन काफी हद तक खत्म हो गयी."

चारु को ये बातें खास कुछ समझ में नहीं आयीं. इसके बावजूद उसे लगा, दिवाकर के लिए उसके अंदर एक कमजोरी-सी है, हालांकि चारु को गलतफहमी नहीं हुई कि इस कमजोरी को प्रेम कहा जाना चाहिए.

इसके बाद की घटना बहुत नाटकीय है.

कमला के यहां से आधी रात के बाद लौटते हुए दिवाकर पर जबरदस्त हमला हो गया. सर पर लाठी जैसी किसी चीज का वार होते ही वह बेहोश हो गया था. अगले दिन सुबह जब होश आया खुद को हॉस्पिटल में देखकर उसे हैरानी हो रही थी. थोड़ी हैरानी इस बात पर भी हुई कि समूचे जिस्म में बहुत सारे जख्म थे.

इसी हादसे का चूंकि कोई चश्मदीद गवाह नहीं था, पुलिस में शिकायत दर्ज करने के बावजूद किसी को गिरफ्तार नहीं किया जा सका. वैसे जब इस घटना की खबर अखबारों में छपीं, चंद रोज बाद एक गुमनाम पत्र-लेखक का खत इस आशय में प्रकाशित हुआ कि यह पुलिस की ही साजिश थी. दिवाकर ने उसके खिलाफ जो जिहाद छेड़ा है, उसके जवाब में.

उस दरमियान चारु ने दिवाकर की बहुत तिमारदारी की थी. हॉस्पिटल में कोई बीसेक दिन, फिर महीना भर तक घर आने के बाद. दिवाकर की टूटी हुई हड्डियों के जुड़ने में खासा वक्त लगा था. तब एक दिन चारु के नये सिरे से आग्रह को उसने कबूल कर लिया था. आखिर तक इस स्वीकार को दिवाकर ने अपनी कमजोरी के अलावा कुछ और नहीं माना.

इसके तीन महीने बाद दिवाकर ने चारु के साथ शादी कर ली. दोस्तों में से कुछ सोचते रहे, दिवाकर अब एक और दिवाकर में तब्दील हो गया. और कुछ लोगों का खयाल था, यह रिश्ता चंद महीने से आगे नहीं जायेगा. इतना सिर्फ शायद कमला ही समझ पायी थी कि दोनों ही खयालात गलत हैं.

चारु के पास एक आम लड़की की तरह तमाम उम्मीदें थीं. इसके अलावा सतरंगी सपने तो खैर थे ही. उसे यकीन था, किसी न किसी रास्ते दिवाकर को वह अपने आगे समर्पित कर ही लेगी. रास्ते उसने बहुत अपनाये लेकिन नतीजे में दिवाकर जैसे दूर होता चला गया. चारु समझ गयी थी, दो दमड़ी की कमला उसके सामने एक बहुत ऊंचे आसन पर इत्मीनान से बैठी हुई है. चारु को जाने क्यों लगता है, वह औरत उस पर लगातार रहम किये जा रही है. यही एक जज्बा है, जिसे वह कतई सह नहीं पायी. अतीत में धोखा खाकर जब वह मुंह के बल गिरी थी, तब भी नहीं. शादी से पहले दिवाकर ने साफ समझा जरूर दिया था कि कमला के साथ जो कुछ भी रिश्ता है, उसका कोई विकल्प नहीं है, चारु को उम्मीद थी, आखिर में मंजिल उसी को हासिल होगी.

आहिस्ता-आहिस्ता फिर चारु को लगता रहा, यह वह दिवाकर नहीं है, जिसकी कविता सुनने के बाद उसने बगैर किसी शर्त के खुद को समर्पित कर देने का प्रस्ताव रखा था. अपना तूफानी अतीत उसे परेशान करता तो है लेकिन इतना हरगिज नहीं कि अपने को वह अर्थहीन समझने लगे. शीशे के सामने खड़ी हुए बगैर ही वह बखूबी जानती है, उसके पास एक बेहद खूबसूरत चेहरा है. इस चेहरे की कीमत समझने वाले एक छोड़ हजार मिल सकते थे. लेकिन बस जाने क्यों वह दिवाकर की तरफ खिची चली आयी थी. अपनी कमजोरी पर उसे पछतावा शायद नहीं हुआ लेकिन हैरानी जरूर होती रही.

दिवाकर फिर विहस्की पीने लगा था. पहले कभी इसकी जरूरत महसूस नहीं हुई थी. अब पिये बगैर कई दफा वक्त नहीं कटता! पीने के इस मामले को लेकर चारु ने शुरू में कोई तूफान नहीं उठाया था. यह सोचकर साथ देती थी कि इस सहयोग की वजह से दिवाकर आखिर में अपनी हार मानकर चारु के प्रति समर्पित हो जायेगा. लेकिन काफी इंतजार के बावजूद ऐसा कुछ नहीं हुआ. दिवाकर जैसे अपने ही भीतर उफनता रहा. आखिर में चारु समझ गयी, इस शख्स के जेहन या दिल में अब वह कतई मौजूद नहीं है. अपनी हस्ती को इस कदर मामूली देखकर वह जैसे गहरे तालाब में बगैर किसी गवाह के डूबती चली गयी.

उस मुकाम से फिर तूफान उठते रहे लगातार. चारु इसके बाद बोतल, गिलास से लेकर बहुत कुछ उठाकर रहे. इस तरह फर्श पर पटकती रही कि दो कमरों का यह मकान फिर घर तो खैर नहीं ही, सराय जैसा भी कुछ नहीं रह गया था.

हर बार दिवाकर आंखें बंद किये बुत-सा बैठा रहता. यह दूसरी बात है कि दिमाग के अंदर की नसें तब फट रही होतीं. ऐसे हादसों के बाद हर बार उसे लगता रहा है, चारु की असली लड़ाई कमला के वजूद से है, शराब या बोतल या गिलास से नहीं. कई बार दिवाकर को ऐसे तजुर्बात के बाद महसूस-सा होता, इस घर से चारु के निकलने के अब बस चंद दिन ही रह गये हैं. लेकिन आखिर मे ऐसा सोचना गलत ही साबित हुआ. अब वह अच्छी तरह समझ गया है, चारु पत्नीत्व के इस दर्जे को किसी भी कीमत पर छोड़ नहीं सकती!

वक्त अब बहुत बदल गया. महीनों गुजर जाते हैं, दिवाकर को

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता ही नहीं कि उसके और चारु के बीच शादीशुदा का कोई सिलसिला भी है. चारु जब उबलने लगती, दिवाकर को लगता, वह बीच बाजार में खड़ा है और घर का पता भूल गया. और जब चारु एकदम खामोश हो जाती, दिवाकर को अंदर से यकीन-सा आ जाता कि वह एक अनजान औरत की बगल में किसी सराय में गुजारा कर रहा है. यह औरत चारु के बगैर कोई भी शायद हो सकती थी. दिवाकर को इससे कुल मिलाकर कोई फर्क शायद नहीं पड़ता. लेकिन यह और कमला हर्गिज नहीं हो सकती थी, इतना दिवाकर का पक्का यकीन है.

दिवाकर घर वापस नहीं आया था. चारु को अब इससे बहुत परेशानी नहीं हुई. इससे पहले भी कितनी बार चार-चार दिनों के लिए, कभी-कभी तो हफ्ता भर के लिए कविता पढ़ने वह बाहर जाता रहा है. कई बार स्कूल से लौटने के बाद चारु ने देखा, मेज पर उसके बाहर जाने की सूचना लिखी हुई है, इस दफा कोई ऐसी सूचना नहीं थी. एक फालतू कागजी सूचना भर के न होने से चारु के खामख्वाह परेशान होने लायक कुछ नहीं दिखाई पड़ा. यह सब अब उसे एकदम गैर मतलब का लगता है. नतीजे में इस मामले की खाना पूरी से ज्यादा अहमियत अब वह नहीं दे पाती.

चार दिन बाद पता लगा, गहरे नाले में जिस आदमी की लाश मिली है, कुछ पानी भर जाने की वजह से और कुछ जख्मों के कारण वह बहुत बेडौल हो गयी है. ऊपर से उसके दोनों होंठ और नाक का निचला हिस्सा और दोनों कान तेज छुरे से कट दिये गये थे. शक्ल इस कदर डरावनी हो गयी थी कि यकीन करना मुश्किल हो गया कि यह एक आदमी की ही लाश है.

अखबारों के कुछेक रिपर्टरों का खयाल है कि दिवाकर आखिर में पुलिस की खिलाफत और करतूतों के पर्दाफाश करने के लिए किराये के गुंडों के जरिए खत्म कर दिया गया. सुनने में आता है, पिछले ही हफ्ते एक उपमंत्री से उसकी झड़प हो गयी थी. उसने फिर पुलिस की हरकतों के खिलाफ मोर्चा बांधना शुरू कर दिया था.

थाने से चारु के पास पुलिस का सिपाही आया था. मुर्दाघर तक लाश लाने की शिनाख्त करने के लिए.

चारु अपना माथा पकड़कर वहीं, दरवाजे पर बैठ गयी थी. सारा जिस्म जैसे ठंडा हो गया था. हाथ-पैर फिर थर्राने लगे थे.

पुलिस का सिपाही तो इत्तिला देकर चला गया लेकिन अड़ोस-पड़ोस में एकदम से खबर हो गयी थी. लोग भागे हुए चले आये थे. आखिर में चारेक लोगों के साथ चारु मुर्दा घर पहुंची तो खून सने सफेद कपड़े के नीचे पड़े जिस्म को कपड़ा हटाने से पहले ही जैसे पहचान गयी थी. थोड़ी देर में जमादार आया और इत्मीनान से कपड़े को हटा दिया. नंगी लाश को देखकर चारु एकदम पत्थर हो गयी. चेहरा जबरदस्त विकृत तो था लेकिन चारु ने पहचान लिया. यह लाश उसी आदमी की है, जिसकी कविता सुनकर उसने घरौंदा बनाने का एक नाकाम फैसला लिया था. उस दिन से लेकर अब तक एक-एक बात चारु की आंखों के सामने तैरने-सी लगी. लेकिन इन आंखों में जब सपने थे, तब थे. अब तो अपनी आखिरी हार के अलावा और कुछ नहीं दिखाई पड़ता.

अचानक एक और लाश आ गयी. औरत की लाश थी. साथ आये सिपाही ने बड़े इत्मीनान से एक बीड़ी सुलगायी और धुआं उड़ेल दिया. बोला, "रंडी की लाश है. फांसी लगाकर मरी है सुबह."

चारु चौंक उठी थी.

औरत की लाश थी, इसलिए थोड़ी खुसर-फुसर होने लगी. कुछ लोग सिपाही से और थोड़ी जानकारी हासिल करने के लिए उसकी तरफ चले गये थे. थोड़ी देर में बीड़ी के दो-चार कश खींचने के बाद सिपाही ने औरत का नाम भी बता दिया, "लोग कहते हैं, बहुत शरीफ रंडी थी कमला बाई."

चारु को कुछ और सुनाई नहीं पड़ा. दोनों कानों के अंदर दावानल से जल उठे थे. उसकी आवाज इतनी गहरी थी कि बाहर का कुछ और सुन पाना मुमकिन नहीं था. लगा, अब साबित हो गया, किसी तरह दीवार पकड़े वह घुटनों को मोड़कर जमीन पर बैठ गयी. कमला वाकई बाजी मारकर बहुत आगे निकल गयी. एक साध्वी-सती की तरह. इसकी गवाही अब चारु को अपनी आखिरी सांस तक हर लमहा देते रहना पड़ेगा. □

ऊंट और पहाड़

उस ऊंट का घर भी रेगिस्तान में था, जहां हर चीज की किल्लत थी. न पानी, न चारा, न और कोई ऐशो-आराम की चीज़. उसने नखलिस्तानों के बारे में सुन रखा था. एक दिन गर्भवती ऊंटनी को रोती छोड़ वह नखलिस्तानों की तलाश में निकल गया. उसने सारे नखलिस्तानों की सैर की, उनके स्रोतों का शहद जैसा पानी पीया, अमृत जैसे मीठे फल खाये और हरी घास पर लेट लगायी. पर उसे हमेशा रेगिस्तान याद आता रहा. उसे हमेशा लगता था रेगिस्तान में ऐसा कुछ है जो इन सभी सुखों से बढ़कर है. उसे एक दिन एक पहाड़ दिखा जो चुनौती की तरह उसके सामने सिर उठाये खड़ा था. चढ़ाई बड़ी कठिन थी, फिर भी ऊंट किसी तरह पहाड़ की चोटी पर जा चढ़ा. एक ऊंट के लिए यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी. सफलता की उस ऊंचाई पर भी उसे रेगिस्तान याद आया, गर्भवती ऊंटनी याद आयी.

रेगिस्तान में अपने घर लौट कर उसने देखा ऊंटनी बूढ़ी हो गयी है. उसे दिखाई भी कम देने लगा है. ऊंटनी ने उसे बताया कि उसके जाने के बाद एक बेटे को जन्म दिया, जो अब जवान पट्ठा हो गया है, पर वह भी नखलिस्तानों और पहाड़ों की बातें करने लगा है.

एक दिन ऊंट ने बेटे को पास बुलाया और प्यार से उसके थूथन से थूथन सटाते हुए बलबलाया, "बेटे, ये जो नखलिस्तान दूर से बड़े सर-सब्ज और चमकीले दीखते हैं न, इनमें कोई खास बात नहीं है. पहाड़ों की ऊंचाई भी ऊंटों के लिए मुआफ़िक नहीं पड़ती. सारा जीवन चमक-दमक की लालच में भटक कर मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि अपना घर और अपना देश ही सबसे अच्छा होता है."

"हुंह! बुड्ढा खूसट! आपने तो मेरी मां को तपते रेगिस्तान में छोड़कर सारी जिंदगी मौज-मस्ती करता रहा. अब मेरे मौज-मस्ती के दिन हैं तो मुझे झूठी नसीहत देने चला है." बेटे ने मन ही मन कहा और नखलिस्तानों की तरफ भागने लगा.

डा. माहेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लाल पीली जमीन', 'हुजूर दरबार' और 'तुम्हारी रोशनी में' (उपन्यास) व 'रगड़ खाती आत्म हत्याएं', 'अंतःपुर', 'धांसू', 'खाक इतिहास' और हल में प्रकाशित कहानी संग्रह 'मुझे घर ले चलो' के अतिरिक्त यात्रावृत्त, साहित्यिक निबंध और संपादन.
संप्रति : भारतीय राजस्व सेवा से संबद्ध.
संपर्क : 22 बैलडेडियर, भुलाभाई देसाई मार्ग, बंबई-400036.

गोविंद मिश्र

त्यों त्यों प्रकट होत उर अंतर कांच कलस जल झाईं

रास्ते के दाहिनी तरफ गोवर्द्धन पर्वत साथ-साथ चल रहा है. इधर पर्वतमाला जमीन में करीब-करीब धंसी हुई है. एक जगह परिक्रमा पर चलने वाले कुछ लोग रुककर, छोटे-छोटे पत्थर बीन-बानकर घर-जैसा कुछ बना रहे थे, जैसे बच्चे खेल में घर बनाते हैं. एक यात्री ने बताया कि ये लोग इस तरह घर बनाने की मनौती करते हैं—जो तीन मंजिल वाला खिलौना-घर बनाये, समझो उसे तिमंजिला इमारत की चाहना है. मानता पूरी होने पर वह फिर परिक्रमा करेगा.

रघुनाथ को हंसी आ गयी. यही सब तो विरोधाभास हैं जो आस्था को हास्यास्पद बना देते हैं. आये हैं यहां ईश्वर से स्वयं को जोड़ने के लिए और चिपके हैं उसी दुनिया से, जिसे छोड़कर आये हैं. अधिकांश लोग गोवर्द्धन... ईश्वर की परिक्रमा का भ्रम पाले हुए हैं, दरअसल वे केवल तरह-तरह की माया-मोह के बिंदुओं के ही चक्कर काट रहे हैं!

दानघाटी पहुंचते-पहुंचते थक आये थे रघुनाथ. एक जगह बैठकर चाय पी. पेड़े-सेब लेकर आये. पहली बार इतना चले हैं, वह भी नंगे पैर. मन हुआ कि यहीं से कोई बस पकड़ लें... वापस यात्रा के पड़ाव पर, या तांगा में बैठकर जतीपुरा पहुंच जायें. वहां रामेश्वर उपाध्याय के यहां ही रात गुजार लेंगे... गरम पानी में पावों को उतार देंगे. गुनगुने पानी में पैर डाले बैठे रहेंगे. परिक्रमा को देखना था सो देख ही लिया. अब लौटा जाय. दानघाटी के दर्शन करने तक मन में विवाद चलता रहा.

एकाएक फिर कुछ हुआ कि लौट जाने की इच्छा तिरोहित हो गयी. कोई पतली-पतली धुंध मन पर फैल गयी थी जिसमें जाऊं-न-जाऊं की उछल-कूद डूब गयी. जैसे किसी अज्ञात शक्ति से खिंचे हुए वे यात्रियों के पीछे-पीछे शेष परिक्रमा पूरी करने के लिए तलहटी में उतर गये.

पर्वत के उस पार जतीपुरा गांव के आगेवाला रास्ता है... जिस पर रघुनाथ परिक्रमा के शुरू में चले थे. इसलिए इधर की तलहटी भी ठीक वैसी ही. मक्खन-सी मुलायम रज तादाद में इस तरफ थोड़ा ज्यादा ही है. ढलती दोपहरी में निकले थे तो जमीन भी तपती मिली. दोनों पैरों में छाले निकल आये हैं. पांव जैसे फूल आये हैं. इस मुलायम रज में पाव धंसते हैं तो सुख मिलता है. पर्वत

आधुनिकता, शिक्षा या तर्क के आने से जहां पर आस्था सूख जाती है, वहां भी जैसे कोई जड़ बची रह जाती है. क्यों रघुनाथ के मन में कहीं कुछ हिलगा रहा और ये यात्रा पर निकल आये... पिछले अंक की इस कहानी को आगे बढ़ाता एक और रोचक अंश कि विरोधाभास किस तरह आस्था को हास्यास्पद बना देते हैं...?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नीचे बराबरी से साथ चलता हुआ मनोरम जंगल-सा था... इतना झीना कि अगर थोड़ा कायदे से रोपा गया होता तो उसे बढ़ा बगीचा भी कह सकते. जहां-तहां बिराजे साधु... अपनी तरह-तरह की पूजा-तपस्या में लीन!

भारतीय जीवन कितना रंग-बिरंगा है. कोई अपनी पौर-बखरी से बाहर निकल कर तो देखे... केवल शरीर से नहीं, मन से. हम अपने छोटे-छोटे दायरों, उनकी ऊहा-पोहों को ही मन में ढोते-ढोते मर जाते हैं. बाहर निकलते हैं या तो अंधविश्वासी—ये बाहर जो—जो हैं उसकी पूरी कदर ही नहीं कर पाते या फिर वे जिनका कुछ खो गया और जो केवल अपने विषाद में ही झूलते रहते हैं. जब तक खोया हुआ नहीं मिल जाता, वे कुछ और देखने-सुनने वाले नहीं. शायद तब शुरू करें देखना जब जो खोया उसकी स्मृति धुंधली हो जाये. पर तब शायद बाहर निकलना बी बंद हो जायेगा! तीसरे हैं रघु जैसे लोग जो स्वयं से ही मुक्त नहीं हो पाते. जब वे बड़-बड़ करते हुए अपने को आरोपित, दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं तो ऐसा नहीं है कि उन्हें पता नहीं चलता.... यह उनकी बुनियादी हताशा का ही रूप हैं, हार की प्रतीति... उनकी त्रासदी!

व्यक्तिगत त्रासदी के उबर कर बाहर जो यह विशाल जीवन-सागर फैला हुआ है, उससे जुड़ो तो. जो ये तरह-तरह के लोग अपने-अपने वृतों में घूम रहे हैं, सौरमंडल के ग्रहों से किसी सूर्य की परिक्रमा भी किये जा रहे हैं, वैसे ही रघु...

हां, रघु भी अपने सूर्य के चारों ओर घूमने लगें. यह अपना सूर्य... यही तो है ईश्वर!

रघु उचक पड़. एक पुलक उनके शरीर को मथ रही थी. वे हल्का-फुल्का महसूस कर रहे थे. घिसटने की जगह दौड़ने लगे थे सहसा.

वे आन्योर गांव पहुंच गये थे. आन्योर... नशे का गांव, जिसने श्रीनाथ जी को खोज निकाला था.

एक दुकान के पास प्याऊ लगा था. परिक्रमा के यात्रियों को पानी पिलाने के लिए एक लड़की बिठा दी गयी थी. रघु पानी पीकर सामने के चबूतरे पर सुस्ताने बैठ गये. जब कोई पानी न पी रहा होता तो एक लड़का प्याऊ पर आकर पानी के लिए अपनी चुल्लू बांधता, लड़की गंगासागर से थोड़ा-सा पानी चुल्लू में ड़ालती, बाकी अपने चुल्लू में लेकर के बालों पर फेंक देती. लड़का भाग खड़ा होता. दोनों ही किशोर. लड़का दरअसल पानी पीने ही आया था, इसीलिए उसके चेहरे पर थोड़ी-सी खीझ थी. लेकिन लड़की का खेल चल निकला था और धीरे-धीरे लड़के को भी उनमें रस आने लगा था. बीच में यात्री आ जाते तो लड़की फिर बाहर से गंभीर होकर उन्हें पानी पिलाने में लग जाती, पर ध्यान उधर लड़के में ही, जो एक किनारे खड़ा प्रतीक्षा करता होता. यात्रियों के जाते ही फिर उनका खेल शुरू... पानी की एक-दो घूंट गले के नीचे, बाकी बालों और शरीर पर...

किन्छाव, छोटी-मोटी होली जैसा... पीछे से चली आती दोनों की निश्छल हंसी. उस हंसी में डूबते चले गये रघुनाथ. थोड़ा आगे चलकर वह हंसी पसर कर आलोक हो गयी. आलोक तेजी से फैलने लगा... राधा-कृष्ण, कृष्ण-गोपिकाएं... दधि-कादों लूटते गोप-ग्वाले... सब उस आलोक में तिरते दिखाई दे रहे थे...

जीवन-जीवन को परिभाषित करना हो तो उसे इन बच्चों की यह हंसी कहेंगे... अपने कर्म के बीच यों डूब सकना, इतना डूब जाना. रघुनाथ को अपनी कमी नजर आ गयी. वे बुद्धि के इतने दास रहे कि किसी चीज में इतना नहीं डूब सके. किसी चीज़ में पूरा डूब जाना और उसे पूरी तरह अपने में डूबो लेना!

रघुनाथ मुग्ध होकर लड़की को देखे जा रहे थे. उन्हें अपनी तरफ यों देखता पा लड़की सकुचा आयी और प्याऊ से उठकर भीतर चली गयी.

अंधेरा उतर रहा था. रघुनाथ चबूतरे से कूदकर आगे को चल दिये.

अंधेरा ज्यों ज्यों गहराता जा रहा था, परिक्रमा में आसपास चलने वालों की एक टोली-सी स्वतः बनती जा रही थी. अब अलग-अलग फड़फड़ आगे-आगे भागते जाना नहीं, सबकी चाल एक जैसी हो गयी थी, रुकना भी एक ही समय, उसी जगह. आन्योर से निकलते हुए रघुनाथ के साथ पांच-सात आदमी-औरतों का झुंड था. सब के साथ रघुनाथ भी गोविंद कुंड पर आचमन के लिए रुक गये. आचमन कर सबको बताने लगे "इंद्र का अभिमान टूटने पर उसने भगवान का सुरभि-पय सहित आकाशगंगा के जल से अभिषेक किया था, गोविंद नाम से उनकी स्तुति की थी. सुरभि की दग्ध धाराओं से ही यह कुंड प्रकट हुआ बताते हैं." यहीं रसखान को महाप्रभु ने शिष्य बनाया था—"प्रेम देव की छवि निरख मियां भये रसखान." उन्हें श्रीनाथजी के मंदिर में ले जाकर दर्शन कराये थे...

चर्चा चल पड़ी

"कहना मुश्किल है कि ब्रज में कौन तीर्थ बड़ा है."

"अरे भैया, यहां तो हर दस कदम पर एक तीर्थ है... ब्रजभूमि को जोई महात्मय ठहरो."

"हां, इतना-सा क्षेत्र और पग-पग पर तीर्थ... ऐसी भूमि और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहां है भारत में."

"नंदबाबा कंस के डर से जहां-जहां भगवान को लिये फिरे, वही तीर्थ हो गया." रघु बोले.

"यहां की तो धूल में भी प्रताप है. धन्य हैं वे जो डंडौती कर लेते हैं, ब्रज-रज को अंग में लपेटते हुए परिक्रमा करते हैं."

"इस क्षेत्र का आज भी ऐसा महात्म्य कि बस में कहीं एक आदमी का बटुआ चला गया... वह समझा जेब कट गयी. बटुए में उसका फोटो था. मानसी गंगा में स्नान करते समय फोटो का मिलान करते हुए एक व्यक्ति आया और बटुआ थमा गया... उसे कहीं पड़ा मिला था. ऐसा आज भी होता है यहां."

कोई कुंड के बारे में बताने लगा- "सफाई के लिए जब कुंड का सारा जल बाहर निकाला गया तो एक फुट कीचड़, कीचड़ के बाद फिर भी जल. प्रतिदिन उस जल को बाहर निकालने की कोशिश की जाती, पर अगले दिन प्रातः लोग देखते कि कुंड में कहीं पीले, कहीं लाल, गुलाबी रंग के बुलबुले नीचे से निकलकर फूट रहे हैं और पर्वत के नीचे से जल-नालियों के रास्ते आ रहा है. कुंड की पूरी सफाई न की जा सकी. आगरा के जो सज्जन अपनी निगरानी में सफाई करा रहे थे, उन्होंने यह भी बताया कि रात को कोई तीन बजे पर्वत में से लोगों के कुंड पर आने की आहट सुनाई देती थी..."

एक रास्ता कुंड के ऊपर गोवर्द्धन पर्वत की ओर चढ़ता दिखाई दे रहा था, ऊपर जाकर कहीं खो जाता था. रघुनाथ उधर देखने लगे—लाल-लाल चौड़ी पगडंडी-सा रास्ता, छोटे-छोटे पेड़ों से ढंका, क्रमशः ऊपर उठता हुआ. देखते-देखते रघुनाथ खो गये, पुराने किसी काल में पहुंच गये... देखते हैं कि साधु-महात्माओं की टोलियां कमंडल लिये कुंड की तरफ चली आ रही है... एक आलोकमय प्रवाह-सा पर्वत से उस पगडंडी के रास्ते कुंड की ओर बह रहा है... आकाशगंगा!

जीवन-निरंतर प्रवाहित है!

अगर शरीर के साथ ही समाप्त हो जाता है तो सचमुच सब कुछ कितना व्यर्थ है... मात्र साठ-सत्तर वर्षों का खेल, जिसमें भी कितने वर्ष अबोधावस्था, निद्रा में निकल गये. चाहे अच्छा करो, बुरा करो, सब एक... हश्र वही, समाप्त! इतने छोटे-से खेल में कोई फर्क नहीं पड़ता कि संसार को चलाने वाली कोई शक्ति है या नहीं, या कि है तो वह कैसी है... उसका स्वभाव क्या है.

और अगर निरंतरता है... चाहे जितनी सूक्ष्म, तो फिर शरीर-यात्रा की एक छोटी-सी इकाई भी विराटता से जुड़ जाती है. और उस विराटता के अंग बन जाते हैं—पर्वत, नदी, सागर, वायु, आकाश, नक्षत्र.... सभी अपने-अपने ढंग से उस विराटता की सृष्टि करते हैं. पानी का यह पोखरा कुंड हो जाता है, चली आ रही निरंतरता का साक्षी. जीवन....किसी अटूट क्रम की एक लड़ी.... और तब हर चीज महत्वपूर्ण है, प्रत्येक क्रिया का योगदान है, अच्छे कर्मों की महत्ता है.

रघु को लगा कि जीवन में अच्छे-बुरे की सीमा-रेखा बनाये रखने मात्र के लिए भी निरंतरता में विश्वास जरूरी है. ईश्वर में आस्था ही क्या मूल्यों में आस्था नहीं है? ईश्वर प्रतीक मूल्यों का!

वे सब कब चल पड़े, कितना चलते रहे... रघु को पता ही न चला. कुछ भान हुआ जब आरती की आवाजें सुनाई दे रही थीं. सामने अंधेरे में कुछ रोशनियां चमक उठती थीं. वे पूंछड़ी का लौंठा पहुंच रहे थे. गाय की तरह बैठे गिरिराज पर्वत का मुख मानसी-गंगा में है और पूंछ इधर.... जिससे यह पूंछरी ग्राम हो गया. रघुनाथ की परिक्रमा का यह अंतिम पड़ाव था. यहां से बस मुश्किल से एक मील और कि वे वहां आ पहुंचेंगे जहां से शुरू हुए थे. अन्योर के आगे तो वे साफ-साफ किसी नशे में चल रहे हैं.... कभी टोली के पीछे-पीछे, कभी साथ-साथ.... पैरों को हर हाल में आगे खचोरते हुए.... और मन में कुलबुलाते कितनी तरह के सवाल!

लौंठा यहां के क्षेत्र-देव हैं. रास्ते के किनारे लौंठा जी के मंदिर में आरती हो रही थी. टोली के लोग आरती के लिए रुक गये, रघुनाथ भी. थोड़ा-सा भी कोई बहाना मिले, तबीयत बैठ जाने को हो आती है. पूंछड़ी के लौंठा हनुमान जी का रूप हैं.... पर पूंछ वाले. ये श्रीनाथ के साथी ग्वाल-अवतार थे. जब श्रीनाथ जी यह स्थान छोड़कर श्रीनाथद्वारा जाने लगे तो आपने मना कर दिया, यहीं डंटे रहे.

चलते चलो.... चलते चलो! पैर चलने से इन्कार करते हैं, फिर भी चलो. रघुनाथ के दोनों पैरो में बड़े-बड़े छाले पड़ गये हैं. पैर पृथ्वी में मुलायम जमीन को टटोलते हुए बढ़ते हैं.... कि कहीं मुलायम में से ही कोई कंकड़ ऐसा गड़ता है कि दर्द की एक रेखा पांव से उठकर सीधा तीर की तरह मस्तक तक पैठती चली जाती है, पांव टन्ना कर एक पल के लिए टेढ़ा टंग जाता है.... कि तभी आदेश होता है—टंगो नहीं, चलो... जहां से यात्रा उठाई थी वहीं

लघुकथा

जोंक

बलवीर त्यागी

तपेश ने अपना सर्वस्व परिवार को बनाने में होम कर दिया था. इसकी चुभन उसकी पत्नी दमयंती महसूस करती थी. किंतु तपेश ने उसके विरोध को कभी नहीं स्वीकारा था. उसका कहना था, "दम्मो मैं समर्थ हो गया हूं. शेष परिवार को पैरों पर खड़ा करना मेरी जिम्मेदारी है."

"इससे कौन इनकार करता है जो. सारी उम्र आपने उन्हें पैरों पर खड़ा करने में लगा दी और अब वे सब अपने-अपने पैरों पर खड़े हैं. अब तो अपने बारे में कुछ सोचो. उनसे अपने हिस्से की आमदनी मांगो. भतीजे राजा को तीन साल मुफ्त में टिकड़ तोड़ते हो गये हैं. कभी दिया उसने अपनी कमाई में से लाल पैसा. अच्छी-भली नौकरी लगवा दी. अब उसका खर्च उठाने का ठेका भी हमने लिया है क्या?" दमयंती ने भड़ास निकाली "दमयंती, तुम बहुत छोटे दिल की हो. भला अपनों से भी कोई पैसे वसूलता है क्या?" तपेश ने उसे समझाने का प्रयत्न किया, किंतु दमयंती ने तो आज न समझने की कसम खा ली थी. वह भड़क उठी, "क्यों जी, भाई-भतीजों को पैरों पर खड़ा करने की जिम्मेदारी तो आपने ले रखी है, लेकिन यह जो एक, दो, तीन की गिनती दिनों-दिन सयानी होती जा रही है, इनकी जिम्मेदारी किसी को नहीं?"

"दमयंती चिंता क्यों करती है? समय आने पर सब देखा जायेगा. सब मिल कर एक-दूसरे का बोझ उठा लेंगे." तपेश वातावरण को जरा हलका बनाने की कोशिश करता है, लेकिन दमयंती पैर पटकती और बड़बड़ाती हुई रसोईघर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे समाप्त करना है, उसके पहले नहीं... चलते रहो...

गोविंद जय जय... गोपाल जय जय! अंधेरे में डूबे दरख्तों की डगालों से कीर्तन के स्वर जैसे नीचे झर रहे हैं. आदमी औरतों के मिलेजुले स्वर हैं, मद्धिम! अंधेरे में आगे-आगे कोई दूसरी टोली गाती चली जा रही है. कीर्तन के स्वर उठकर वातावरण में पहुंचते हैं और फिर चारों ओर, नीचे, झरते हैं... अपढ़ और अज्ञानी नाम के सहारे ही अपने को विराटता से जोड़ें!

एक फलांग पर जतीपुरा गांव. चलने की थकान और पांवों पर उछल आये घावों से उत्पन्न एक अजीब-सी निंदास में बहते-से चलते आ रहे हैं रघुनाथ... अवचेतन कहां-कहां झुलाता हुआ. यात्रा-समाप्ति की सुखद प्रतीति हुई तो सचेतन जागा, हैरत हुई कि वे इतना कैसे चल सके. ब्राह्मणी..सूखी टहनी-सी, डेढ़ बीते और अढ़ाई हड्डियों की वह औरत हर वर्ष इतना चलती है!

एक माई बायीं तरफ दिन-भर की एक-सौ-आठी डंडौती परिक्रमा को समाप्त कर अपना सामान बटोर रही थी. यहां भी उतना ही सामान एक टिन गिट्टियां, एक बोरे का टुकड़ा और भगवान की तस्वीर. रघुनाथ ने टोली के लोगों से विदा ले ली थी और अब अकेले धीमे-धीमे चल रहे थे, माई के पास आकर रुक गये.

"माई.... यहां तो रोशनी है, थोड़ी देर और नहीं."

"गांव पहुंचने में भी तो समय लगेगा बेटा! डेढ़ कोस से कम नहीं है."

"डेढ़ कोस! यह सामने तो रहा गांव!"

"क्या जतीपुरा?" माई हंसी, "सामने कैसे जा सकती हूं. परिक्रमा खंडित करूंगी? आज इस जगह.... यहीं तो खत्म की है."

"ओह!" रघुनाथ ने गलती की. गांव तो एकदम सामने भी है. लेकिन खाने-पीने के लिए न जाकर माई पीछे जायेगी, चाहे जितना दूर हो.... क्योंकि परिक्रमा करती हुई अभी यहीं तक पहुंच पायी है. आगे तो भूमि को लोटकर स्पर्श करते हुए ही बढ़ेगी.

"बहुत अच्छा है.... श्री गिरिराज की परिक्रमा के साथ-साथ ब्रजरज का भी पूजन करती चल रही हैं आप?" रघुनाथ ने उत्साह बढ़ाने के विचार से कहा.

"हां बेटा, भूमि ही है जो पवित्र बची है.... आदमी तो यहां का भी पता नहीं क्या होता जाता है. अब देखो परिक्रमा के ही रास्ते में यहां एक बाबा की गुफा है. वहां के कुएं में कारे बाबा के चेले गोपालदास की लाश निकली. पांच रोज पहले पुलिस आयी रही. अब गोपालदास बेचारी गुफा में भजन करता रहा... हम सभी को मालूम है. उसके दोनों तरफ पत्थर बांध कांटे से लपेट कुएं में डाल दिया. हे भगवान्!"

"क्यों?"

"वही मुआ पैसा... और क्या! सोचते हैं गुफा में, उस कुएं में पुराना रुपया-पैसा गड़ा-धरा है. पहले कारे बाबा आड़े रहा उनके, अब चेला था. कंटक हट जाये तो खोद-खोद कर निकाल लें.... अपने घर भर लें..." माई के मुंह पर घृणा थी. "किसी से कहना नहीं बेटा, नहीं तो मेरी जान पर आ जायेगी. तुम बाहर के हो तो बता दिया.... जाओ.... जाओ, रात हो गयी है."

रघुनाथ आगे बढ़ गये. यहां भी वे ही कुकृत्य! ये देखो तो दिनोंदिन चलते अनुष्ठान, हर पल चलते स्नान, अभिषेक... सिर्फ ढकोसका लगते हैं! गनीमत कि ये काम उनके नहीं होते जो यात्रा पर आते हैं, बल्कि ज्यादातर उन्हीं के होते हैं जिन्हें यात्रा से ही पैसे कमाना है—ठेंकेदार, ब्राह्मण, पंडे! ब्रज-भूमि में लोग अपने को उससे जोड़ने आते हैं जो रोजमर्रा के जीवन में उनसे छूटता चला जाता है... और इसी भूमि में बसते हैं वे, जो पैसे की लालच में कुछ भी करने को तैयार, साधु की हत्या भी.... कि पिछले सैकड़ों वर्षों से पुण्यात्मा तीर्थयात्री दान-दक्षिणा के रूप में कुएं में जो पैसे-रुपये डालते रहे, वह निकाल कर अपनी झोली भर लें. रुपये के लिए वही लालच, वही हायतोबा, जैसा शहरों में है!

जतीपुरा से जतीपुरा तक.... भगवान् के मुखारविंद से मुखारविंद तक रघुनाथ का शरीर दर्द से टूट रहा था पर मन एक अजीब तृप्ति से आलोड़ित था. ऐसा पहले कभी नहीं हुआ उसके साथ.

अब भागने की जरूरत नहीं है. उनका खलबलाता व्यक्तित्व बंध रहा है!

यहीं उपाध्याय के यहां रात बितायेंगे. प्रातः निकलकर यात्रा से जा मिलेंगे. यात्रा की सबसे बड़ी यात्रा तो यह रही जो आज उन्होंने की... यात्रा से बाहर चलकर. □

चली गयी. भतीजे दीपेश का ड्यूटी से आने का समय हो रहा था.

तपेश का प्रतीक्षित समय आ गया. उसकी बड़ी लड़की रेणु विवाह योग्य हो गयी. वह दौड़ा-दौड़ा गांव पहुंचा. उसने रेणु के विवाह की समस्या भाइयों के सामने रखी. सारे भाई कुछ ही क्षणों में गिरगिट की तरह रंग बदल गये और तपेश को अपनी-अपनी जिम्मेदारियां स्वयं निभाने का पाठ पढ़ाया. तपेश भौंचक रह गया. उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि वे सब तोते-चश्म निकल जायेंगे. वह लुटा-पिटा-सा शहर लौट आया और खोया-खोया-सा चारपाई पर पसर गया. दमयंती को पति को लस्त-पस्त देख कर तनिक भी हैरानी नहीं हुई. मानों वह सब पहले से जानती थी. वह धीरे-धीरे उसके पास पानी का गिलास ले कर आयी और बोली, "क्या हुआ जो?"

"वही जो तुम कहा करती थी." तपेश अत्यंत ठंडे स्वर में बोला, "हूं." दमयंती ने गंभीर होकर कहा, "देख लिया लाड़ले भाइयों को. एक आप हो, जो मेरी कभी बात मानी हो. रिश्ते-नाते जभी तक होते हैं, जब तक उनका पेट फाड़ते रहो और जब उनसे कुछ लेने का सवाल आता है तो सब आंख बदल जाते हैं. यही जमाने की रीत है. अब भी समय है, चेत जाओ. रेणु का विवाह अगले साल कर देंगे. तब तक कुछ-न-कुछ जुगाड़ हो ही जायेगा. भाइयों से अपना हिस्सा बांट लो और यह जो भतीजे राजा जोंक की तरह हमारा खून चूस रहे हैं. इसे भी रास्ता दिखाओ. एक आदमी का कोई खर्च नहीं होता क्या? पर आपको तो खून चुसवाने की आदत पड़ गयी है. लेकिन मैं अब और बर्दाश्त नहीं करूंगी." दमयंती मन की भड़ास निकाल कर खाली गिलास लिए पलट गयी और तपेश कमरे की छत में निगाह गड़ाये सोचता रहा. उसे लग रहा था कि उसके सारे शरीर में जोंक चिपटी हुई है और उनके मुंह उसके परिवार के लोगों के हैं. □

यह उपन्यास 'धीरसमीरे' नाम से राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली द्वारा शीघ्र प्रकाश्य.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस्सा एक व्यापारी और जिन्न का

किस्सोगोई के अद्भुत चमत्कारों का यह सिलसिला पिछले अंक से प्रारंभ हुआ था जहां शहरजाद कहानी सुनाने को तैयार हो तो गया था पर इस शर्त पर कि राजा साहब को कोई ऐतराज नहीं होना चाहिए. शहरयार ने इस पर फौरन हामी भर दी क्योंकि वह भी कहानी सुनने की ख्वाहिश रखता था. बहरहाल कहानी शुरू हुई और वह भी व्यापारी और जिन्न के आमने-सामने से...

पहली रात की कहानी

शहरज़ाद ने कहा, "ओ भाग्यशाली राजा, मैंने सुना है कि एक जमाने में एक बहुत बड़ा व्यापारी था, जिसका व्यापार दुनिया के सब देशों से होता था और जिसकी दौलत की थाह न थी. उन दिनों उससे ज्यादा अमीर कोई आदमी न था.

एक दिन वह घोड़े पर सवार होकर ऐसे कुछ स्थानों के लिए रवाना हुआ, जहां वह माल बेचता-खरीदता था. चलते-चलते दोपहर हो गयी. तेज़ धूप से बचने के लिए वह एक पेड़ की छांह में बैठ गया—और अपने खाने के झोले में से खाना और कुछ खजूर निकाल कर खाने लगा. खजूर उसने खाने के अंत में खायीं.

जब उसने खजूर की गुठलियां दूर फेंकी तो जहां वे जाकर गिरीं थीं, वहां भीमकाय जिन्न प्रकट हुआ और हाथ में एक तलवार लिये, उसकी ओर बढ़ा. व्यापारी के पास पहुंचकर, उसने चिल्लाकर कहा, "उठ, ताकि मैं तुझसे अपने बच्चे की हत्या का बदला ले सकूं."

"मगर मैंने तुम्हारे बच्चे की हत्या कहां और कैसे की?" व्यापारी ने आश्चर्य से पूछा.

"जब तूने खजूर की गुठलियां फेंकी थीं तो वे मेरे बच्चे की छाती में लगीं जिनके प्रहार से वह चल बसा. इस तरह तू ही मेरे बच्चे की मौत के लिए जिम्मेवार है."

व्यापारी ने जब देखा कि जिन्न उसकी जान लेने पर तुला है और किसी भी हालत में उसे नहीं छोड़ेगा तो उसने जिन्न से कहा, "अच्छी बात है जिन्न साहब, आपको मेरी जान लेनी ही है तो अवश्य ले लीजिये मगर मेहरबानी करके मरने से पहले मुझे कुछ लेन-देन के जरूरी काम पूरे करने दीजिये. नहीं तो मेरे मरने के बाद वे लोग सोचेंगे कि मैंने उनके साथ दगा की. मैं एक सच्चा इंसान और ईमानदार व्यापारी हूं और आपको वचन देता हूं कि जैसे ही मेरे लेने-देने के सब काम पूरे हो जायेंगे, मैं आपके पास आकर अपने को आपके हवाले कर दूंगा."

जिन्न ने व्यापारी की बातों पर विश्वास कर उसे जाने दिया.

व्यापारी ने अपने घर पर लौटने के बाद अपने सब लेन-देन पूरे किये. अपने सब दायित्वों से मुक्त होकर, उसने अपने बीवी-बच्चों से सारी घटना सुनाकर कहा कि अब उसे जल्दी से जल्दी जिन्न के पास वापस लौटना है. उसकी यह बात सुनकर उसके परिवार के सब लोग, रिश्तेदार और दोस्त-अहबाब रोने लगे. व्यापारी को जिन्न के पास लौटने की जल्दी थी और वह अपना वसीयतनामा लिखकर, सबसे विदा लेकर, अकेला जिन्न के निवासस्थान की ओर रवाना हो गया. जिस दिन उसने अपना सफर शुरू किया, वह दिन नये साले का पहला दिन था. उस दिन का सफर उसने एक बाग में पहुंचकर पूरा किया. जैसे ही वह आराम करने के लिए एक पेड़ के नीचे बैठा, उसे याद आया कि जिन्न के हाथों मरने की घड़ी निकट आ रही है और वह रोने लगा.

उसे रोते देखकर एक बुजुर्गवार जो एक चिकारा के गले में जंजीर बांधकर से बाग में घुमा रहे थे, उसके पास आये और दुआ-सलाम के बाद उससे पूछने लगे, "क्या मैं जान सकता हूं कि आप यहां अकेले बैठे क्यों रो रहे हैं? क्या आप नहीं जानते कि यह सारा क्षेत्र एक जिन्न के दुष्प्रभाव से ग्रस्त है?" उत्तर में व्यापारी ने अपनी व्यथा-कथा उसे सुना दी. इस कहानी को सुनकर बुजुर्गवार ने कहा, "मेरे भाई! मैं एक मामूली शेख हूं, मगर तुम एक फरिश्ता हो. तुम जैसा ईमानदार आदमी आज कहां मिलता है? मैं तुम्हारे पास ही बैठता हूं, यह देखने के लिए कि जिन्न तुम्हारे साथ कैसा सुलूक करता है," कहकर वे बुजुर्गवार व्यापारी के पास ही बैठ गये. वे व्यापारी का दिल बहलाने के लिए बातें करने लगे, यह जानते हुए भी कि इससे व्यापारी को कोई राहत नहीं मिल रही है.

तभी एक शेख उन दोनों के पास आ गये. वे जंजीरों में काले रंग के दो ग्रेहाउंड कुत्तों को बांधकर उन्हें बाग में घुमाने लाये थे. उन्होंने दोनों से जिन्न-प्रभावित क्षेत्र में आने का कारण पूछा. व्यापारी ने सारी कहानी सुना दी. वे भी उन दोनों के पास बैठकर जिन्न के आने का इंतजार देखने लगे. तभी एक तीसरे शेख तशरीफ लाये. वे एक मादा-खच्चर के साथ आये. उन्होंने भी व्यापारी से वही सवाल किया जो पहले दोनों शेखों ने किया था, और व्यापारी ने तीसरी बार आपनी व्यथा-कथा सुना दी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी समय तेज़ हवा चलने लगी और रेत का एक बड़ा बगूला आसमान में ऊपर उठता दिखायी देने लगा. धीरे-धीरे, इस बगूले ने विशाल और विकराल रूप धारण कर लिया और उधर बढ़ने लगा जिधर व्यापारी और तीनों शेख बैठे थे. उनके पास पहुंचते ही यह बगूला गायब हो गया और उसके स्थान पर प्रकट हुआ वही जिन्न जिसने व्यापारी को मारने की धमकी दी थी. उसके हाथ में एक तलवार थी और वह जलते हुए नेत्रों से व्यापारी को देखते हुए कहने लगा, "चल उठ! अब मैं तुझे उसी तरह मारूंगा, जिस तरह तूने मेरे प्यारे बच्चे को मारा था." व्यापारी जिन्न के यह शब्द सुनकर रोने लगा और उसके साथ तीनों शेख भी रोने लगे. अंत में पहले शेख ने हिम्मत की और जिन्न का हाथ चूमकर कहा, " ओ जिन्नों के शहंशाह, मैं आपकी इज़ाज़त लेकर आपको अपनी और अपनी चिकारा की हैरतअंग्रेज कहानी सुनाना चाहता हूं. अगर कहानी सुनकर आपको लगे कि वाकई मेरी कहानी हैरतअंगेज है तो आपको इस अभागे व्यापारी को एक-तिहाई खून की माफ़ी देनी होगी."

जिन्न ने कहा, "ओ शेख, मैं वायदा करता हूं कि अगर मुझे तुम्हारी कहानी वाकई हैरतअंगेज लगी तो मैं इस व्यापारी का एक-तिहाई खून माफ़ कर दूंगा.

पहले शेख़ की कहानी

"ये चिकारा जो मेरे साथ है, असल में मेरी बीवी है." पहले शेख ने अपनी कहानी शुरू की, "और इसके साथ मैंने अपनी ज़िंदगी के तीस साल सुख से बिताये थे. मगर मेरी तक़दीर खराब थी और मेरे कोई संतान नहीं हुई. इसलिए मैंने एक रखैल रख ली और उसने मुझे स्वस्थ-सुंदर पुत्र का पिता बनने का सौभाग्य प्रदान किया. मैं उसे देखता तो अपने सब ग़म भूल जाता था.

"लड़का जब पंद्रह साल का हुआ तो मुझे अपने धंधे के सिलसिले दूर के एक शहर में जाना पड़ा. मेरी ग़ैरहाजिरी में मेरी बीबी को, जो एक प्रवीण जादूगरनी थी (हालांकि यह बात तीस साल तक उसने मुझसे छिपाकर रखी थी) अपने सौतेले बेटे के खिलाफ़ कुछ करने का मौका मिला. उसने अपने जादू के ज़ोर से अपने सौतेले बेटे को बछड़ा बना दिया और उसकी मां को (जो एक दासी थी) एक गाय बना दिया और फिर दोनों को अपने पति के गाय-बछड़ों के झुंड में शामिल कर दिया.

"जब मैं वापस घर आया तो मैंने अपनी बीवी से अपनी रखैल और अपने बेटे के बारे में पूछा. मेरी बीवी ने कहा कि मेरी रखैल मर गयी है और लड़का न जाने कहां भाग गया है. यह सुनकर मेरी आंखों में आंसू आ गये. मैं एक साल तक शोक-संतप्त रहा."

"साल में एक बार हम किसी जानवर की कुर्बानी देते हैं. जब वह दिन आया तो मेरे गुलाम ने कुर्बानी के लिए उसी गाय को चुना जो असल में मेरी रखैल थी. गाय के रूप में वह खूब मोटी और हृष्ट-पुष्ट नजर आती थी लेकिन जब उसे मारा गया तो मुझे यह जानकर बड़ा दुख हुआ कि वह हड्डियों का ढांचा भर थी और उसमें गोश्त नहीं था. मैंने अपने गुलाम से कहा, "कोई मोटा-ताज़ा बछड़ा हो तो उसे ले आओ कुर्बानी के लिए वह उस बछड़े को ले आया जो असल में मेरा लड़का था."

कहानी यहीं तक पहुंची थी कि सुबह हो गयी और शहरज़ाद समझदारी से काम लेते हुए खामोश हो गयी. उसकी बहन दुन्याज़ाद ने उससे कहा, "कहानी बड़ी दिलचस्प है और तुमने उसे बड़े रोचक ढंग से सुनाया भी है. आगे क्या हुआ?"

"आगे चलकर कहानी और ज्यादा दिलचस्प हो जाती है," शहरज़ाद ने कहा, "लेकिन आगे की कहानी मैं तभी सुना सकूंगी, जब मैं आज सुबह के बाद ज़िंदा रहूंगी. मेरा ज़िंदा रहना राजा की मेहरबानी पर निर्भर करता है." यह सुनकर शहरयार ने जिसे अधूरी कहानी सुनकर बड़ा मज़ा आया था मन ही मन सोचा, 'पूरी कहानी सुनने तक मैं शहरज़ाद को नहीं मारूंगा.' उधर वज़ीर जब राज-दरबार में आया तो यह सोचकर आया था कि उसकी बेटी अब तक ख़त्म हो गयी होगी. लेकिन उसे तब बहुत हैरत हुई जब उसके मरने का ज़िक्र न खुद राजा ने उससे किया, न किसी और ने.

दूसरी रात को

दूसरी रात को दुन्याज़ाद ने अपनी बड़ी बहन से पूछा, "कल की अधूरी कहानी आज पूरी करोगी न?" शहरज़ाद ने कहा, "बेशक! बशर्ते कि राजा इज़ाज़त दें." शहरयार ने कहा, "हां, तुम्हें पूरी करने की इज़ाज़त है." शहरज़ाद ने कहना शुरू किया, "बछड़ा व्यापारी को देखते ही सुबकने लगा. उसे सुबकता देखकर व्यापारी को उस पर रहम आ गया और उसने अपने गुलाम से कहा, "इस बछड़े को झुंड में छोड़ दो."

जिन्न बड़ी दिलचस्पी के साथ शेख की कहानी सुन रहा था. शेख ने आगे कहा, "मेरी बीवी, जिसने जादू के ज़ोर से मेरे बेटे को बछड़ा बनाया था, मुझसे कहने लगी, "कुर्बानी के लिए यह बछड़ा ठीक लगता है. खूब मोटा-ताज़ा भी है." लेकिन मैंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और बछड़े को वापस झुंड में भेज दिया. अगले दिन, मेरे एक गुलाम ने मेरे पास आकर कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी से पहले और बाद ताकत व जवानी के लिए मिलें या लिखें

मिलने का समय :
सुबह 11 से 1, शाम 6 से 7.30
रविवार सुबह 11 से 1 (केवल)

कीमती पुस्तक पत्र लिखकर मुफ्त मंगवाएं

अगर आप कई जगह से इलाज करवाकर भटक चुके हैं तो आईए, हम आपको ताकत व जवानी की दौलत से मालामाल कर दें। हमारे खानदानी शफ़ाख़ाना के चार पुश्तों से चले आ रहे कीमती नुस्ख़े जो किसी ज़माने में सिर्फ राजे-महाराजे, खान, नवाब व रईस-लोग ही इस्तेमाल कर सकते थे, अब आप भी हमारे उन क़ीमती शक्तिवर्धक खानदानी नुस्ख़ों को इस्तेमाल करके अपनी खोई हुई सेहत, ताकत व जवानी फिर से प्राप्त करके दीर्घायु तक सुखी विवाहित जीवन का भरपूर लुत्फ उठा सकते हैं। अगर आप बचपन की गलतकारियों की वजह से अपनी ताकत व जवानी खत्म कर चुके हैं, तो परेशान न हों। हमारे सैक्स स्पैशलिस्ट (Sex Specialist) से जल्द मिलकर या लिखकर जल्द लाभ उठाएँ। अपने दिल की बात आज ही डॉक्टर साहब से स्वयं बता दें या लिख दें। अधिकतर पुरुष शर्म, संकोच या अपनी कमजोरी छिपाकर विवाहित जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा करने से आपका जीवन नष्ट हो सकता है। लेकिन समय पर सही सलाह और सही इलाज से दुख को सुख में बदला जा सकता है। खानदानी शफ़ाख़ाना दिल्ली में कई मरीज आकर दिल की मुराद पाते हैं।

Note : पत्र व्यवहार से भी इलाज होता है। जो लोग नहीं आ सकते, पत्र में पूरी तफसील लिखकर घर बैठे मशवरा व दवाएँ प्राप्त कर सकते हैं। पत्र व्यवहार गुप्त रखा जाता है। दुनिया के कोने-कोने से खानदानी शफ़ाख़ाना के इलाजों के लिए मनी आर्डर, ड्राफ्ट, पौंड, डालर इत्यादि आते हैं

Note : विदेशों के लिए जरूरी सूचना

हमारे इलाज भारत के इलावा विदेशों के हर मुल्क में भी जाते हैं। विदेशी भाई रकम एडवांस में भेजें। दवाएँ हवाई जहाज से भेजी जाती हैं।

खानदानी शफ़ाख़ाना

4/12, पहली मंजिल (नज़दीक ब्राडवे होटल)
आसफ अली रोड़, नई दिल्ली -110 002
फोन : 267709, 269650

मालिक अगर आप इनाम देने का वायदा करें तो मैं आपको एक खुश-खबर सुनाऊं." मैंने कहा, "खुश-खबर होगी तो इनाम जरूर मिलेगा." उसने कहा, "मेरी लड़की एक जादूगरनी है. एक बूढ़ी औरत ने, जो हमारे साथ ही रहती है, उसे जादू की शिक्षा दी है, कल जब मैं बछड़े को लेकर जा रहा था तो वह बछड़े को देखकर, अपना मुंह घूंघट में छिपाकर, पहले तो रोयी—और फिर हंसने लगी. जब मैंने उसके रोने और हंसने का कारण पूछा तो उसने कहा, "मुझे रोना इस बात का आया कि यह बछड़ा असल में हमारे मालिक का लड़का है, जिसे उसकी सौतेली मां ने जादू से बछड़ा बना दिया है. मैं इस बात पर भी रोयी कि मालिक ने अनजाने में उसकी मां की, जो जादू के ज़ोर से गाय बना दी गयी थी, हत्या करा दी थी. और हंसी मुझे आयी, इस स्वरूप-सुंदर और आकर्षक नवयुवक को बछड़े के रूप में देखकर."

गुलाम की बात सुनकर मालिक से रहा न गया और वह फौरन अपने बेटे को देखने के लिए चल पड़ा. गुलाम के घर पहुंचा तो बछड़ा उसके पांवों में लोट गया. मालिक ने गुलाम की बेटी को बुलाकर उससे कहा, "क्या यह सच है कि यह बछड़ा मेरा पुत्र ही है?" गुलाम की बेटी ने कहा, "यह सच है, मालिक." मालिक ने कहा, "यदि तुम इसे बछड़े के चोले से आज़ाद कर सको तो मैं तुम्हें जो मांगोगी, वह दूंगा." लड़की ने कहा, "मालिक, मैं दो शर्तों पर यह काम कर सकती हूं. पहली शर्त—आप अपने बेटे की शादी मुझसे करेंगे. दूसरी शर्त—मैं जब, जिसे चाहूं, जादू के ज़ोर से, किसी भी चोले में बदल सकूं."

मालिक ने इन दोनों शर्तों को खुशी-खुशी मान लिया. इस पर लड़की ने कहा, "आपकी इज़ाज़त हो, तो सबसे पहले मैं आपकी बीवी को चिकारा की शक्ल में तबदील करना चाहती हूं, ताकि वह हमेशा आपके साथ एक पालतू पशु के रूप में रह सके." मालिक ने इसकी इज़ाज़त दे दी और तब से वह जहां भी जाता है, अपनी जंजीर में बंधी पालतू चिकारा को साथ लेकर जाता है.

बछड़े को आदमी के चोले में लाने के लिए लड़की ने तांबे के एक बर्तन में पानी भरा और जादू के मंत्र पढ़कर उसे जादुई बनाया. फिर उस जादुई पानी को बछड़े के ऊपर छिड़कते हुए उसने कहा, "अगर तुम जन्म से ही बछड़े हो तो बछड़े बने रहो. नहीं तो उस शक्ल में आ जाओ जिसमें तुम अपनी सौतेली मां के जादू के असर में आने से पहले थे." जैसे ही उसकी बात पूरी हुई बछड़े ने अपना चोला छोड़ दिया और एक आकर्षक नौजवान बन गया. बाप ने अपने बेटे को गले से लगा लिया और बेटे की आंखें खुशी के आंसुओं से तर हो आयीं. उसने अपने बाप को बताया कि उसके जाने के बाद कैसे उसकी सौतली मां ने उसे बछड़ा और उसकी मां को गाय बनाया. उसके बाद व्यापारी का जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा.

"तो यह है मेरी कहानी, ऐ जिन्नों के शहंशाह!" पहले शेख ने जिन्न से कहा, जिन्न ने उत्तर दिया, "तुम्हारी कहानी वाकई हैरतअंगेज है और मैं वायदे के मुताबिक, व्यापारी का एक-तिहाई खून माफ़ करता हूं."

अगले अंक में

व्यापारी का बाकी दो तिहाई खून कैसे माफ हो पाया?...
किस्सा दूसरे और तीसरे शेख का...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुरशाह जफर पर चलाया गया मुकद्दमा न्याय के साथ खिलवाड़!

हंस

विजेता हमेशा से विजित लोगों को बदनाम करने के लिये उनके नेताओं पर झूठे मुकद्दमे चलाकर, न्याय का नाटक करके, उन्हें सजा देते चले आ रहे हैं. द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनों को हराने के बाद, ऐसा ही एक नाटक अमरीकियों और अंग्रेजों ने न्यूरेमबर्ग के मुकद्दमों का नाटक करके किया था. अंग्रेज लोग जब अपनी धूर्त्तता के बल पर भारत के शासक बने थे, तब ऐसा ही एक नाटक उन्होंने मुगल-राजवंश के अंतिम सम्राट बहादुरशाह जफर के साथ किया था, जिनका पूरा नाम था– अबू जाफ़र सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह द्वितीय.

न्याय का यह नाटक दुनिया को जनवरी, 1858 में देखने को मिला था.

इस मुकद्दमे का क्या औचित्य था, इस बारे में तो स्वयं मुकद्दमा चलाने वाले अंग्रेज-अधिकारी भी पूरी तरह न जानते थे, न आश्वस्त थे. वे जानते थे कि स्वयं अपने ही जज के सामने, जिसे बहादुरशाह जफर के खिलाफ निर्णय देना ही था, कितना भी झूठ बोलें, कितनी भी झूठी गवाहियां पेश करें, यह सिद्ध कर ही पायेंगे कि एक 82 साल का बूढ़ा 1857 में अंग्रेजों के खिलाफ हुए गदर के लिये जिम्मेवार था.

मगर, न्याय का यह नाटक तो होना ही था, और 27 जनवरी, 1858 को दिल्ली के लाल किले के दीवाने-खास में बहादुरशाह जफर के खिलाफ न्याय का यह नाटक, जिसे 'कोर्ट मार्शल' का सम्मानित नाम दिया गया, खेला गया.

इस नाटक का अंजाम क्या होगा, यह कुटिल अंग्रेज अधिकारी इस तथाकथित मुकद्दमे से पूर्व, अपनी कई कमीनी हरकतों द्वारा जगजाहिर कर चुके थे. इस मुकद्दमे से पहले, जफर को नजरबंद किया गया था, और उस नजरबंदी के दौरान, उन्हें प्रतिदिन भांति भांति की शारीरिक और मानसिक यातनाएं पहुंचायी जाती थीं. सबसे तीव्र और अमानवीय मानसिक यातना उन्हें तब पहुंचायी गयी, जब उनके सामने ही उनके दोनों पुत्रों को जान से मार डाला गया. इतना ही नहीं, उनके अपने वकील गुलाम अब्बास को भी इतनी यातनाएं दी गयीं कि वे 'सरकारी गवाह' बनने को तैयार हो गये.

> अंग्रेजों द्वारा बहादुर शाह जफर पर लगाये गये इल्जाम थे-
>
> – ब्रितानी सरकार से पेंशन पाकर भी वे ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों और सिपाहियों को सरकार के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित करते रहे.
>
> – ब्रितानी सरकार की प्रजा होते हुए भी उन्होंने गद्दारी करते हुए खुद को मुल्क का बादशाह घोषित कर दिया.
>
> – महल में 49 यूरोपियनों और अर्ध यूरोपियनों की हत्या करवायी...
>
> एक वतनपरस्त और गुलामी की जिंदगी की बजाय आजादी की मौत पसंद करने वाले हिन्दुस्तानी बादशाह पर लगाये गये ये इल्जाम कहां तक सही थे?

निष्पक्ष रूप से देखा जाये, तो बेचारे बहादुरशाह जफर का कसूर सिर्फ इतना ही था कि 20 मई, 1857 को आरंभ हुए गदर में भाग लेने वाले सब अंग्रेजी शासन के विरोधी नेताओं ने स्वेच्छा से, अपनी स्वामीभक्ति तथा एकता को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से बहादुरशाह जफर को अपना सर्वोच्च नेता चुना था, इसलिए कि वे भारत के अंतिम सम्राट थे. उनका यह निश्चय सर्वथा तर्कसंगत और परंपरावादी था, इसकी पुष्टि 'हिस्ट्री ऑफ द इंडियन म्यूनिटी' नामक पुस्तक के अंग्रेज लेखक चार्ल्स बॉल ने इन शब्दों में की है, "अंग्रेजों के सारे भारत का शासक बनने से पूर्व, देश पर मुगल-वंश के राजाओं का ही राज्य था, अतः अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध करने वाले हर जाति, धर्म व वर्ग के नेताओं का यह निश्चय कि यह विद्रोह देश के संवैधानिक नेता तथा मुगल साम्राज्य के अंतिम सम्राट के नाम से लड़ा जाये, सर्वथा उचित, संवैधानिक और परंपरानुकूल था."

विद्रोहियों ने उन्हें अपना सर्वोच्च नेता घोषित करने से पूर्व, उनसे पूछा था या नहीं, इस बारे में इतिहास पूरी तरह मौन है. लेकिन, बहादुरशाह 'जफर' शारीरिक व मानसिक दृष्टि से इस स्थिति में नहीं थे कि वे इस प्रस्ताव से सहमत हो पाते. वे 62 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे थे, और गदर के समय उनकी आयु 82 वर्ष थी. गदर से पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी, अंग्रेजों ने उनका प्रभाव-क्षेत्र उनके महल तक ही सीमित कर दिया था. अंग्रेज उन्हें एक लाख रुपये प्रति माह बतौर "शाही खर्च देते थे, लेकिन यह रक्म उन पर आश्रित सैंकड़ों परिजनों और अनुचरों को भत्ता व वेतन देने के लिये पर्याप्त न थी, और वे हमेशा तंगी महसूस किया करते थे. उनकी मुख्य बेगम जीनत महल भी, जो कभी उनकी चहेती थी, गदर से पहले उनके लिये दर्देसर बन गयी थी, क्योंकि वह हमेशा 'जफर' के अन्य बेटों की उपेक्षा करके, अपने बेटे मिर्जा जवां बख्त को अपना वारिस बनाने के लिये अंग्रेजों को राजी करने के लिये जोर देती रहती थी. 'जफर' इस डर से कि इस निर्णय से भाइयों में आपस में जूतम-पैजार शुरू हो जायेगी, यह मामला कभी अंग्रेजों के सामने नहीं उठाया. वैसे, अगर वे उठाते तो भी उनका कोई असर नहीं होता, क्योंकि अंग्रेजों की दिली ख्वाहिश तो यह थी कि 'जफर' के मरते ही, वे खुद दिल्ली की गद्दी को हथिया लें, वे कभी किसी वारिस के नाम की घोषणा के लिये तैयार न होते.

गदर को दबाने के बाद, अंग्रेजों ने जो कई कड़वे सबक सीखे, उनमें एक यह था कि यदि सब भारतीयों की एकता को समाप्त करना है, तो सबसे पहले भारत से राजतंत्र को समाप्त करना होगा, क्योंकि राजा के नाम पर हर हिंदुस्तानी एक होकर, उसकी तथा राजतंत्र की रक्षा के लिये देश के शत्रुओं से लड़ने को तैयार रहता है. उन्हें इस बात की भी खबर थी कि विद्रोहियों ने अपने सपने के स्वतंत्र भारत की जो रूपरेखा बनायी थी, उसमें दिल्ली के शहंशाह की स्थिति वैसी ही थी, जैसी इंग्लैंड में राजा या रानी की होती है, अर्थात एक संवैधानिक राजा या रानी की. असली शासन करने की जिम्मेवारी 12 योग्य और राष्ट्रप्रेमी व्यक्तियों पर रखी गयी थी, जो सम्राट 'जफर' के परामर्शदाता नियुक्त किये जाने वाले थे. भला, अंग्रेजों को, जो अपना तानाशाही शासन भारत पर देखना चाहते थे, यह कहां स्वीकार होता?

उन दिनों, दिल्ली की जो हालत थी, उसे जफर के समकालीन उर्दू शायर गालिब ने इन शब्दों में बड़े प्रभावशाली ढंग में बयान किया है, "गोरों ने जो कत्लेआम मचाया है, उसकी वजह से शहर सहरा हो गया है. उर्दू कहां से रहेगी, जब उर्दू बाजार ही नहीं रहा. दिल्ली अब शहर नहीं रहा, छावनी बन गया है. न किला रहा, न बाजार, न नहरें. मेरे करीब-करीब सब दोस्त-अहबाब गोरों के हाथों मारे जा चुके हैं. आज मैं चल बसूं, तो कोई रोने वाला नहीं."

'गालिब' की तरह 'जफर' भी शायर थे. 'गालिब' जैसे महान शायर भले ही ना रहे हों, लेकिन उन जैसे ही भावप्रवण थे. उन्होंने अपना श्रेष्ठतम काव्य-सर्जन रंगून की जेल में किया, जहां अंग्रेजों ने इस मुकद्दमे के बाद उन्हें निर्वासित किया था. ब्रिटेन के प्रमुख समाचार पत्र 'द टाइम्स' के तत्कालीन भारत के प्रतिनिधि रसल ने अपनी एक पुस्तक में शायर जफर का जिक्र करते हुए लिखा है, "उनकी रचनाएं संख्या में इनीगिनी होने के बावजूद, भावनाओं की सच्चाई, दर्द की गहराई और तड़प के लिये बेजोड़ मानी जाती हैं. 'न किसी की आंख का नूर हूं...' वाला शेर इसकी एक मिसाल पेश करता है." सदियां बीत गयीं, पर आज भी उनके प्रशंसक उनके शेर चाव से सुनते-सुनाते हैं. रसल ने अपनी पुस्तम में लिखा है, "अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने कई शेर जलती हुई छड़ी से अपनी जेल की कोठरी की दीवारों पर लिखे थे. यह मार्मिक दृष्टांत किसी भी संवेदनशील की आंखें गीली करने के लिये पर्याप्त है." उनकी पीड़ा उनके आसपास की परिस्थितियों से उपजी है, और उनकी बेबसी और लाचारी की तीखी अनुभूति कराती है.

ऐसे बेबस और लाचार 82 वर्षीय आदमी को, जो हर तरह से दयनीय था, अंग्रेज लोग क्यों अपने लिये इतना बड़ा खतरा मानते थे कि उस पर मुकद्दमा चलाकर उसे देश से निर्वासित करने पर ही तुल गये. अंग्रेजों के लिये जर्जर और दयनीय और असहाय बहादुरशाह खतरनाक नहीं था, उनके लिये खतरनाक था वह राष्ट्रवाद, वह भारतीय एकता, वह राजतंत्र, जिसके वे प्रतीक थे. उन्होंने वास्तव में यह मुकद्दमा व्यक्ति बहादुरशाह ज़फर पर नहीं, भारतीय राजतंत्र व एकता के प्रतीक बहादुरशाह 'जफर' पर चलाया था.

जब बहादुरशाह जफर को अपने खिलाफ अंग्रेजों द्वारा चलाये जाने वाले मुकद्दमे के बारे में पता चला, तो उनकी आंखों के सामने 11 मई, 1857 का वह दृश्य घूम गया, जब विद्रोहियों ने उन्हें एकमत से अपना सर्वोच्च नेता माना था. बेचारे बहादुरशाह को यह खबर सुनकर जरा भी खुशी नहीं हुई थी, उलटे उन्हें डर लगा था. आधी रात के समय जब उनके सम्मान में 21 तोपों को दागा गया, तो आशंका के कारण उनका दिल कांप रहा था. वे मन ही मन जानते थे कि पचास वर्ष से अधिक के अंतराल के बाद, जो मुगल राज्य भारत में पुनः आरंभ हुआ है, वह पांच महीने भी शायद ही टिक पाये.

और यही हुआ. 20 सितंबर, 1857 को अंग्रेजों ने पुनः दिल्ली के राजमहल पर अधिकार कर लिया. अंग्रेजों के आगमन की सूचना पाकर बहादुरशाह ने हुमायूं के मकबरे में शरण ली थी, पर अगले दिन अंग्रेजों के सामने इस शर्त पर आत्म-समर्पण कर दिया कि उनकी, उनकी मुख्य बेगम जीनत महल और राजकुमार जवां बख्त की जानें बख्श दी जायेंगी. अंग्रेज कप्तान हॉडसन ने इन तीनों की जानें तो बख्श दीं, मगर 24 राजकुमारों की जानें ले लीं.

बहादुरशाह की नजरबंदी के दिन उनके लिये बड़े तकलीफदेह दिन थे. उनके सब हमदर्दों और रिश्तेदारों का सफाया हो चुका था, और उनके पास आने-जाने वाले सब अंग्रेज उन्हें हिकारत की निगाह से देखते थे. ऐसी दयनीय स्थिति में उन्हें पता चला कि अंग्रेजों ने उन पर यह अभियोग चलाया है कि वे एक ऐसे गिरोह के नेता थे, जिसने अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य की जड़ों को हिलाने का प्रयास किया था. यह अभियोग एक नामी अंग्रेज अधिवक्ता के मतानुसार, सर्वथा निराधार था, क्योंकि उस समय भारत में अंग्रेजों का कोई साम्राज्य नहीं था, और इसलिए उनकी जड़ों को हिलाने का सवाल ही नहीं उठता था.

27 जनवरी, 1858 को बहादुरशाह ज़फर के खिलाफ कोर्ट मार्शल देर से शुरू हुआ, क्योंकि कोर्ट के पुराने अध्यक्ष ब्रिगेडियर शॉवर्स के स्थान पर ले. कर्नल दावेस को नियुक्त किया गया था. कोर्ट के अन्य सदस्यों में तीन मेजर और एक कैप्टेन था.

बहादुरशाह ने हाथ में एक छड़ी लिये 'दीवाने खास' में प्रवेश किया. उनके लड़के मिर्जा जवां बख्त और उनके वकील गुलाम अब्बास उन्हें सहारा दे रहे थे. अंग्रेजों के वकील मेजर एफ.जे. हैरियट ने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया कि "इस कोर्ट-मार्शल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दौरान, उन प्राविधिकर्ताओं की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जायेगा, जिनका पालन अन्य मुकद्दमों में किया जाता है. सुनी-सुनायी गवाहियों को भी मान्य किया जायेगा, बस वे विश्वसनीय होनी चाहिए."

मुकद्दमा कैसे चलेगा, इसका आभास इस स्पष्टीकरण ने ही कर दिया था.

मुकद्दमा शुरू हुआ तो कोर्ट मार्शल के माननीय जजों ने सबसे पहले मिर्जा जवां बख्त को बाहर भिजवाया, क्योंकि वह अपने खिदमतगारों से लगातार बातें करके जजों का ध्यान भंग कर रहा था. अब बहादुरशाह अकेले रह गये. अदालत में क्या चल रहा है, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था, और वे बारबार अपने शाल से खेलकर अपना दिन बहलाने की कोशिश कर रहे थे. वे बस तभी जबान खोलते थे, जब उनसे पूछा जाता, "तुम (आप नहीं) कसूरवार हो या बेकसूर?" वे कहते, "बेकसूर", यह जानते हुए भी कि अपने को बेकसूर बताने से भी उन्हें कोई लाभ नहीं होगा; अंग्रेजों ने उनके लिये जो सजा पहले से तजबीज कर रखी है, वह उन्हें अवश्य मिलेगी ही.

उनके खिलाफ ये चार अभियोग लगाये गये थे:

(1) भारत में ब्रितानी सरकार से पेंशन पाकर भी उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों और सिपाहियों को सरकार के खिलाफ लड़ने के लिये प्रेरित किया.

(2) उन्होंने अपने बेटे मिर्जा मुगल को राज-द्रोह करने के लिये प्रेरित किया.

(3) भारत में ब्रितानी संरकार की प्रजा होते हुए भी उन्होंने देश की सरकार के साथ गद्दारी कर, अपने को मुल्क का राजा घोषित किया.

(4) उन्होंने 16 मई, 1857 को महल में 49 यूरोपियनों और अर्द्ध-यूरोपिनों की हत्या करवायी.

सबूत के तौर पर शाही दरबार से उन शाही हुक्मों की प्रतिलिपियां प्रस्तुत कीं, जो राजमहल से 11 मई से लेकर 20 सितंबर, 1857 तक जारी किये गये थे. पहले सरकारी गवाह हकीम अहसानुल्ला ने बहादुरशाह के दस्तखतों को पहचाना. अगले दिन, अभियुक्त ने अदालत के सामने अर्जी दी कि उनके वकील गुलाम अब्बास रहेंगे. अर्जी मान ली गयी, लेकिन तीसरे दिन अदालत ने अब्बास पर जोर डालकर उनसे ऐसे बयान दिलवाये, जो उसके मुवक्किल बहादुरशाह के खिलाफ जाते थे. इस प्रकार, अंग्रेजों ने अपने विपक्षी वकील को ही अपना सबसे महत्वपूर्ण गवाह बना लिया. इतना ही नहीं, उन्होंने बहादुरशाह के भूतपूर्व सचिव मुकुंद लाल के मुंह से भी यह झूठी गवाही दिलायी कि महल में रहने वाले अंग्रेजों की हत्या बहादुरशाह के हुक्म से ही हुई थी.

मुकुंद लाल ने अंग्रेजों के प्रति अपनी स्वामीभक्ति प्रदर्शित करने के लिये अपनी गवाही में बहादुरशाह के साथ जीनत महल, आगा बेगम (उनकी लड़की), तथा दो अन्य बेगमों– नानी बेगम और अशरफुत्तिमा को भी लपेट लिया, और कहा कि अंग्रेजों की हत्या का हुक्म इन चारों ने मिलकर दिया था.

4 मार्च, 1858 को बहादुरशाह ने अपने बेकसूर होने का बयान उर्दू में दिया, और कहा कि वे गदर में भाग लेने वाले अधिकारियों व सिपाहियों के सर्वोच्च नेता होने के स्थान पर, उनके कैदी थे. वे लोग उनका हुक्म मानने के स्थान पर, उन पर ही हुक्म चलाते थे. उनके बाद, प्रमुख सरकारी अधिवक्ता हैरियट ने अपना बयान दिया जो 9 मार्च, 1958 तक चला.

जैसे ही, हैरियट का बयान खत्म हुआ, कोर्ट ने अपना फैसला सुना दिया. उसने, प्रस्तुत गवाहियों के आधार पर, अभियुक्त बहादुरशाह जफर को उन चारों अभियोगों का, सर्वसम्मति से, और असंदिग्ध रूप से दोषी पाया.

सजा के तौर पर, अदालत ने उन्हें देश-निर्वासन की सजा सुनायी.

उन्हें कहां निर्वासित किया जाये, इस बारे में अनेक सुझाव अंग्रेज अधिकारियों को पेश किये गये. अंदमान, हांगकांग, दक्षिण अफ्रीका आदि. अंत में, उन्हें रंगून भेजने का निश्चय किया गया. 7 अक्तूबर, 1858 को बहादुरशाह,जीनत महल, जवां बख्त और शाह अब्बास के साथ दिल्ली छोड़कर रंगून के लिये रवाना हुए. इलाहाबाद तक वे सड़क से गये, बाद में नदी से कलकत्ता तक और वहां से समुद्र के रास्ते रंगून तक.

बहादुरशाह 8 दिसंबर, 1858 को रंगून पहुंचे, और वहीं 7 नवंबर, 1862 को उनकी मृत्यु हुई.

कुछ लोग बहादुरशाह को राष्ट्रद्रोही और अंग्रेजों का टट्टू मानते हैं. उन्हें बहादुरशाह के उस पत्र की याद दिलानी आवश्यक है, जिसमें उन्होंने जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि रियासतों के सजाओं को लिखा था, "मैं चाहता हूं कि फिरंगियों को जल्दी से जल्दी मुल्क से बाहर निकालने के लिए हम सब मिलकर कोशिश करें."

बहादुरशाह के एक शेर की ये लाइनें आज भी हमें इस बदनसीब इंसान की याद दिला देती हैं, "इतना है बदनसीब जफर दफन के लिये, दो गज जमीन भी न मिली कूए-यार में." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिनेट भवन में ग्यारह हफ्तों तक चला मुकदमा कैसा रहा होगा... जिसमें कांग्रेस की ओर से सात वकील और अमरीकी राष्ट्रपति की ओर से पांच... जहां गवाहों को गवाही न देने के लिए रिश्वत दी गई हो और राष्ट्रपति का मनोबल गिराने के लिए हर संभव प्रयास किये हों...

अमरीकी राष्ट्रपति पर मुकद्दमा

□ कमला

उस काल के समाचारपत्रों ने इसे 'अमरीकी इतिहास का सबसे बड़ा मुकद्दमा' बताया था. और, आज तक भी यह मुकद्दमा 'अमरीकी इतिहास का सबसे बड़ा मुकद्दमा' माना जाता है.

आज से 120 साल पहले, जब अमरीकी राष्ट्रपति एन्ड्रयू जॉनसन पर अमरीकी सिनेट ने महाभियोग लगाया था, तब घोड़े-गाड़ियों के दिन थे. यह महाभियोग 54 सिनेटरों द्वारा लगाया गया था, और 'हाउस ऑफ रिप्रजेंटेटिव्स' के 190 प्रतिनिधि दर्शक के रूप में मौजूद थे. ये प्रतिनिधि 3 करोड़ अमरीकियों का प्रतिनिधित्व करते थे.

सिनेट ने अमरीकी राष्ट्रपति पर जो महाभियोग लगाया था, उसका विवरण इस प्रकार था: "यह प्रस्ताव पारित हुआ है कि अमरीकी राष्ट्रपति एन्ड्रयू जॉनसन महापराध करने, तथा अपने कार्य-काल में कदाचार और दुर्व्यवहार करने का अपराधी है.

"अमरीकी हाउस ऑफ रिप्रजेंटेटिव्स' द्वारा उक्त प्रस्ताव के संयोषण और समर्थन में, जो राष्ट्रपति एन्ड्रयू जॉनसन पर महाभियोग लगाने के संबंध में पारित किया गया है, उसके महापराधों तथा कदाचारों और दुर्व्यवहारों को सिद्ध करने वाले निम्न प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं:

प्रथम अनुच्छेद

कोलंबिया जिले के वाशिंगटन नामक स्थान में रहने वाले अमरीकी राष्ट्रपति एन्ड्रयू जॉनसन ने अपने उच्च पद की गरिमा को भुलाकर, अपने उन कर्तव्यों को, जिनका पालन करने की शपथ उसने सार्वजनिक रूप से ली थी, संविधान की रक्षा करने हेतु, भुलाकर राष्ट्र के कानूनों का उल्लंघन किया, देश-द्रोह किया, और सार्वजनिक रूप से अपने संपर्क में आने वाले लोगों के साथ दुर्व्यवहार कर, राष्ट्रपति के गौरवशाली पद को अपमानित किया.

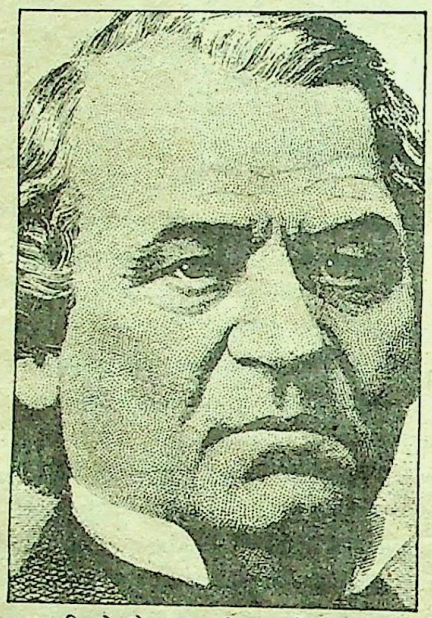

दूसरा अनुच्छेद

उक्त अमरीकी राष्ट्रपति एन्ड्रयू जॉनसन ने, अपने उच्च पद की गरिमा को भुलाकर, तथा उस शपथ को भी भुलाकर, जो उसने संविधान की रक्षा करने हेतु तथा अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने के लिये सार्वजनिक रूप से ली थी, कांग्रेस द्वारा पारित उस कानून का उल्लंघन किया, जिसके अनुसार राष्ट्रपति, बिना कांग्रेस की अनुमति और सहमति के, अपने किसी सैक्रेटरी को अपनी मर्जी से उसके पद से नहीं हटा सकता, अपने युद्ध-सचिव स्टेंगटन को उसके पद से हटाया.

तीसरा अनुच्छेद

उक्त अमरीकी राष्ट्रपति एन्ड्रयू जॉनसन ने, अपने उच्च पद की गरिमा को भुलाकर, तथा उस शपथ को भी भुलाकर, जो उसने संविधान की रक्षा करने तथा अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने के लिये सार्वजनिक रूप से ली थी, अपने उच्च और गरिमायुक्त पद को अपमानित किया, अपने निम्न अकीर्तिकर कृत्यों द्वारा:

(1) अधिकांश समय नशे में धुत्त रहकर.

(2) अपने से मिलने के लिये आने वाले सिनेटरों, उच्चाधिकारियों व अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ अभद्रतापूर्ण व्यवहार करके.

(3) अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ गाली गलौज करना, रूखी और असभ्य भाषा में बात करना.

(4) दक्षिणवासियों के साथ हमदर्दी दिखाकर पक्षपात करना.

अमरीकी 'हाउस ऑफ रिप्रजेंटेटिव्स' द्वारा राष्ट्रपति, न्यायाधीशों आदि उच्च पदों आसीन व्यक्तियों पर महाभियोग लगाने के अनेक अवसर आये हैं. यूं तो 1797 से 'आफ ऑफ रिप्रजेंटेटिव्स' द्वारा महाभियोग के काफ़ी मामलों पर विचार किया गया, लेकिन सिर्फ बारह अवसरों पर उसने इन मामलों को सिनेट में आगे कार्यवाही करने के लिये भेजना उचित समझा. राष्ट्रपतियों में अकेले एन्ड्रयू जॉनसन ऐसे थे, जिनके विरुद्ध सिनेट ने महाभियोग लगाकर, उन पर बाकायदा मुकद्दमा चलाया. चूंकि 'हाउस ऑफ रिप्रजेंटेटिव्स' राष्ट्रपति के अलावा अन्य उच्चाधिकारियों पर भी महाभियोग लगा सकता है, इसलिए उसने अपने इस अधिकार का प्रयोग कर, सर्वोच्च लगा सकता है, इसलिए उसने अपने इस अधिकार का प्रयोग कर, सर्वोच्च न्यायालय के एक एसोशियेट जन, एक सिनेटर, एक युद्ध सचिव, व आठ फेडरल जजों पर भी महाभियोग लगाया.

महाभियोग के लगने के बाद, संबंधित व्यक्ति पर एकदम मुकद्दमा शुरू नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता, पहले मामले की सुनवायी होती है. यदि हाउस के अधिकांश प्रतिनिधि प्रस्तुत साक्ष्य को अस्वीकार करते हैं, तो महाभियोग की कार्यवाही को वहीं समाप्त मान लिया जाता है.

एन्ड्रयू जॉनसन के विरुद्ध 'हाऊस ऑफ रिप्रजेंटेटिव्स' ने जीन बार महाभियोग लगाया था, लेकिन सिनेट ने उसे स्वीकृति दी, सिर्फ एक बार सिनेट 'हाउस ऑफ रिप्रजेंटिटेव्स' द्वारा उसके विचारार्थ भेजे गये महाभियोग के मामले पर विचार करते समय, एक न्यायालय बन जाती है.

जब सिनेट राष्ट्रपति पर लगाये गये महाभियोग पर विचार करने के बाद, राष्ट्रपति पर मुकद्दमा चलाने की स्वीकृति दे देती है, तो मुकद्दमे की अध्यक्षता के लिये सर्वोच्च न्यायाल के मुख्य न्यायाधीश को सिनेट रूपी न्यायालय का न्यायाधीश बनाया जाता है, और कुछ सिनेटर ज्यूरी-सभ्य बनते हैं. मुख्य न्यायाधीश अभियुक्त राष्ट्रपति पर अभियोग लगाते हैं. अभियुक्त राष्ट्रपति अपना बचाव करने के लिये अपने अधिकारियों की सहायता ले सकता है. वस्तुतः सिनेट द्वारा लगाये गये महाभियोग की कार्रवाई के दौरानी, एन्ड्रयू जॉनसन एक बार भी सिनेट में उपस्थित नहीं हुए थे. उनका सारा बचाव उनके अधिवक्ताओं ने किया था.

सन् 1797 से लेकर अब तक सिनेट ने उच्च पदों पर आसीन जिन 12 लोगों पर मुकद्दमे चलाये, उनमें से आठ को दोषमुक्त पाया गया, और सिर्फ़ चार ही दोषी पाये गये थे चारों दोषी व्यक्ति फेडरल जज ही थे, और बतौर सज़ा उन चारों को उनके पदों से हटा दिया गया था. जिस पर सिनेटर पर सिनेट ने मुकद्दमा चलाया था, वह भी दोषी पाया गया, और उसे बतौर सज़ा सिनेट से अलग कर दिया गया. इस मुकद्दमे के दौरान, यह भी तय पाया कि सिनेटर, जो हमारे देश के सांसद की हैसियत का होता है, सरकारी अधिकारी नहीं माना जा सकता.

अमरीकी 'हाउस ऑफ रिप्रजेंटिटेव्स' ने 55 जजों को महाभियोग के उपयुक्त पाया था, लेकिन सिनेट के कुल 8 पर ही मुकद्दमे चलाये. शेष 47 मामलों में 8 के विरुद्ध निंदा-प्रस्ताव पारित हुए, 22 को बेकसूर पाया गया, और शेष 17 ने मुकद्दमों की कार्यवाही शुरू होने से पहले ही इस्तीफे दे दिये थे.

लेकिन, आज तक किसी अमरीकी राष्ट्रपति ने इस्तीफा नहीं दिया, वुड्रो विल्सन जैक ने नहीं दिया, जो पक्षाघात के कारण बिस्तर पर ही पड़े रहते थे. वे राष्ट्रपति-काल में ही था तो स्वाभाविक मौत से मरते हैं, या उनकी हत्या कर दी जाती है. वे कितने भी रोगी हो जायें, कितने भी अक्षम हो जायें, पर इस्तीफ़ा कभी नहीं देते. सिर्फ़, 1832 में जैक्सन के उप-प्रधान जैक कैल्हॉन ने अपने पद से तब इस्तीफ़ा दिया था, जब उनके पद-काल की समाप्ति में सिर्फ़ दो महीने रह गये थे, औ वे सदस्य बन चुके थे.

अमरीकी संविधान के अनुच्छेद, शाखा 4 के अनुसार, 11 अमरीका के राष्ट्रपति पर, विश्वासघात, रिश्वतखोरी, महापराधों और कदाचार के जुर्म में महाभियोग लगाया जा सकता है."

राष्ट्रपति पर लगाये जा सकने वाले महाभियोग के बारे में जैफरसन ने एक बार कहा था, "महाभियोग मात्र एक हौआ है." लेकिन, उनका यह मत एकदम सही नहीं माना जा सकता. राष्ट्रपति पर लगाया जाने वाला महाभियोग परोकोटि का अभियोग है, और काफ़ी ख़तरनाक भी है.

वैसे, महाभियोग की कोई सही व्याख्या न संविधान में है, न कहीं और लिखी हुई है. यह एक ऐसे विशाल छाते के समान है, जिसके नीचे तरह-तरह के अभियोग शरण ले सकते हैं. 1887 में प्रख्यात अमरीकी अधिवक्ता तथा इतिहासकार जॉर्ज कार्टिस ने महाभियोग के बारे में कहा था, "महाभियोग लगाने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त ने किसी विशिष्ट कानून का उल्लंघन किया हो. उसकी अनैतिकता, हीनबुद्धिता और कुप्रशासन भी उसे पद के हटाये जाने का कारण बन सकती है."

एन्ड्रयू जॉनसन इतिहास-प्रसिद्ध राष्ट्रपति लिंकन के उप-राष्ट्रपति थे. लिंकन की दुखद हत्या के बाद, 1865 में उन्हें राष्ट्रपति बनाया गया. उस समय उनकी आयु 57 वर्ष थी. उन्होंने अपना जीवन एक दर्जी के रूप में आरंभ किया था, और पूर्वी टैनेनीज में उनकी दर्जी की दुकान थी. उन्होंने कभी विधिवत् शिक्षा ग्रहण नहीं की. मगर, वे लोगों में लोकप्रिय थे, और राजनीति से उन्हें शौक था, इसलिए, अमरीकी सिनेटर बनने में उन्हें कठिनाई नहीं हुई. वे अनेक कारणों से लिंकन के प्रिय पात्र बन गये. पहला-दक्षिणवासी होते हुए भी, वे अमरीका के दक्षिण भाग के मुख्य अमरीका से पृथक में आकर उन्होंने अपने सब दासों को मुक्त कर दिया था, और दासत्व प्रथा के विरुद्ध जोरदार अभियान आरंभ कर दिया था.

जब एन्ड्रयू जॉनसन अमरीका के राष्ट्रपति बने, तो उन्होंने पाया कि वे निपट मित्रविहीन हैं. दक्षिण के डैमोक्रेट उन्हें विश्वासघात मानते थे. उत्तर के रिपब्लिकर उन्हें अविश्वासनीय विरोधी-समर्थक मानते थे. हावदूत हाउस के कर्मचारियों का आदर और स्नेह भी उन्हें प्राप्त नहीं था. उनकी पत्नी क्षय-रोग से ग्रस्त थी, और सदा बिस्तर पर ह पड़ी रहती थी. चार वर्षों में वह सिर्फ़ एक बार अपने पति के साथ लोगों के सामने आयी थी. एंड्रयू जॉनसन पर महाभियोग लगाये जाने का मुख्य कारण यह था कि उत्तर के रिपब्लिकन, जिनकी मुट्ठी में कांग्रेस थी, दक्षिण के राज्यों को, जो लंबे अर्से तक चलने वाले गृह-युद्ध में उत्तर की सेनाओं द्वारा पराजित हुए थे, अपने अधीन राज्यों से बेहतर दर्जा देने को कतई तैयार नहीं थे. इसके विपरीत, राष्ट्रपति जॉनसन जो लिंकन की नीतियों का अनुसरण कर रहे थे, युद्ध के घावों को भरना चाहते थे, और उद्देश्य से दक्षिण के राज्यों को वही सम्मानपूर्व दर्जा दिलाना चाहते थे, जो उत्तर राज्यों को प्रस्तुत था. उनकी यह नीति उत्तर के राज्यों को, जो अपने को 'विजेता राज्य' मानते थे, स्वीकार नहीं थी, और उसके प्रति अपने विरोध और आक्रोश को व्यक्त करने के उद्देश्य से ही, उन्होंने राष्ट्रपति जॉनसन पर महाभियोग लगाने का निश्चय किया था, उसे सबक सिखाने के लिये.

जॉनसन को उनके पद से हटाने के लिये कांग्रेस के लिये यह लाज़िमी था कि 54 में से 36 सिनेटर उनका समर्थन करें. जॉनसन सिर्फ़ एक मत से जीते.

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने पाया कि 35 सिनेटरों ने राष्ट्रपति को दोषी पाया है, और 19 ने निदोर्ष समर्थकों में एडमंड रॉस के जुड़ जाने से उनकी संख्या 18 से बढ़कर हुई थी, और राष्ट्रपति जॉनसन की विजय का कारण बनी थी.

जीत जाने पर भी, राष्ट्रपति जॉनसन के व्यवहार में कोई सुधार नहीं आया और ना ही, उनहेंने अपनी नीतियां बदलीं. लेकिन, उनके विरोधियों ने फिर उन्हें कभी तंग नहीं किया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदित्य

आस्ट्रिया की एक अदालत में एक अनूठी प्रेम कथा

अभागी आस्ट्रियन महिला श्रीमती जोसेफाइन रोडिश का 'अपराध'

यदि था तो यही थाकि वह एक मां थी, एक पत्नी थी, एक ऐसी पत्नी, जिसे बचपन से ही यह सिखाया गया था कि अपने पति को देवता मानो और हर हालत में उसके सब आदेशों और अच्छे-बुरे व्यवहारों को खुशी-खुशी करो.

अपने इसी 'अपराध' के कारण वह इस समय जेल में बंद थी. उस पर जुर्म था कि उसने अपने पति की हत्या का प्रयास किया था. पति अस्पताल में पड़ा था—मौत और जिंदगी के झूले में झूल रहा था. पुलिस इस इंतजार में थी कि देखें वह जीता है या मरता है. मर गया, तब तो उसकी पत्नी को भी मरना होगा. और यदि वह जीता रहा तो उस पर क्या अभियोग लगाया जाता है, यह पति की हालत और उसके बारे में प्राप्त डॉक्टरी रिपोर्ट पर निर्भर करेगा.

> पति के अत्याचारों से पीड़ित पत्नी अदालत द्वारा पति के खिलाफ फैसला देने के बावजूद महीने भर बाद ही फिर से पति के घर जाकर क्यों रहने लगी...?

उधर श्रीमती रोंडिश का यह हाल था कि जब से पलिस ने उन्हें जेल में बंद किया था तब से उनके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला था. पुलिस पूछ-पूछकर हार गयी, कोई जवाब नहीं. उनके शहर में ही रहने वाले उनके एक भाई ने बहुत कोशिश की कि वे कम से कम उसे ही बता दें कि क्या हुआ था, ताकि वह अपने दो भाइयों के साथ जो दूसरे शहर में रहते थे, मिलकर अदालत में उन्हें बचा सकें. पर उन्होंने भाई के सामने भी मुंह नहीं खोला.

आखिर तीनों भाइयों ने मिलकर अपनी बहन को बचाने के उद्देश्य से एक अच्छे वकील को यह मामला सौंपा. उन्हें आशा थी कि उनकी बहन शायद वकील को अपनी व्यथा-कथा सुनाने को तैयार हो जायेगी मगर श्रीमती रोंडिश उसके सामने भी मूर्ति के समान बैठी रहीं.

तीन सप्ताह बाद, श्रीमती रोंडिश के पति जाबेज रोंडिश को अस्पताल से रिहा कर दिया गया. उनके सब जख्म भर गये थे और डाक्टरों के अनुसार, वे अब पूर्णतया स्वस्थ थे. अब पुलिस हरकत में आयी और उसने श्रीमती जोसेफाइन रोंडिश पर 'हत्या की कोशिश' के जुर्म में अदालत में मुकद्दमा दायर कर दिया.

जब श्रीमती रोंडिश को इस मुकद्दमे के बारे में पता चला तो वे इतने दिनों के बाद पहली बार बोलीं उन्होंने पुलिस से कहा कि वे अपने को अदालत में निर्दोष साबित करेंगी. इस पर पुलिस ने उनसे कहा कि वे अपना बयान उसे लिखायें. श्रीमती रोंडिश इसके लिए फौरन तैयार हो गयीं. उन्होंने कहा, "जब यह दुर्घटना हुई तब पुलिस मेरी प्रार्थना पर मेरे घर आयी थी. तब मैंने उससे बारबार यही कहा कि यह एक दुर्घटना का मामला है, हत्या का नहीं. उन्होंने इसका अर्थ यह लगाया कि हत्या मैंने ही की है. मैं फिर कहती हूं कि मेरे पति अपने रिवाल्वर से मेरी हत्या का प्रयास कर रहे थे. मैंने झपट्टे से उनके हाथ से पिस्तौल लेने की कोशिश की थी. इसी कोशिश में उनकी पिस्तौल की नली का रुख उनकी ही ओर हो गया. अपने हाथ से चली पिस्तौल की गोली से वे घायल हो गये और फर्श पर गिर पड़े. मैंने पुलिस को बुलाया. उन्होंने आते ही सबसे पहले मेरे पति को अस्पताल भिजवाने की व्यवस्था की. फिर उन्होंने मेरा बयान लेना चाहा. मगर इस दुर्घटना से मैं इतनी मूक-स्तब्ध हो गयी थी कि कुछ बोल ही नहीं पायी. उन क्षणों की याद आज भी मुझे कंपा जाती है. फिर, उन्होंने रोते हुए उन जुल्मों के बारे में बताया जो उस पर उसके पति सुहागरात की रात से करते आ रहे थे. "मैंने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसके कारण मुझ पर हमेशा पति द्वारा मार पड़ती रहे. नित्य नयी यातनाएं देने में वे बहुत निष्णात हैं. मैं उनके घर में पत्नी की तरह नहीं एक बांदिनी की तरह रहती हूं."

पुलिस ने उनसे पूछा, "क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानती हैं जो अदालत में कह सके कि आपके पति सचमुच आप पर इतने जुल्म करते थे?"

"एक क्या, हमारे सब पड़ोसी यह गवाही देने को तैयार हो जायेंगे कि मेरे पति सचमुच मुझ पर इतने ज्यादा जुल्म करते थे."

पुलिस ने जाकर उनके पड़ोसियों से बातें कीं. प्रायः सभी पड़ोसियों ने कहा कि उन्हें करीब-करीब रोज श्रीमती रोंडिश की चीखें सुनायी देती थीं. उसके पति जाबेज उन्हें घूंसों और बैंतों से मारने से पूर्व, उन्हें खूब गालियां भी दिया करते थे और उनके पीहर के लोगों के बारे में अपशब्द बोला करते थे. पुलिस ने पड़ोसियों से जो जानकारी प्राप्त की उससे उसे पता चला कि श्रीमती रोंडिश अपने पति के हाथों यह अमानवीय अत्याचार पिछले सात वर्षों से सतत रूप से सहन करती चली आ रही हैं.

एक और महत्वपूर्ण बात जो पुलिस को ज्ञात हुई, वह यह भी कि जावेज ने रहने के लिए शहर का जो मुहल्ला चुना था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें ज्यादातर ग़ैर-आस्ट्रियन रहते थे. वे नहीं चाहते थे कि उनकी पत्नी आस्ट्रियनों से अधिक मिले-जुले. मगर ये पड़ोसी आस्ट्रियन भले ही न थे, आदमी तो थे और वे दुखी और अभागी पत्नी के दुखदर्द को समझते थे. वे सब श्रीमती रोंडिश की ओर से अदालत में गवाही देने को तैयार थे.

जब मुकद्दमा शुरू हुआ, तो श्रीमती रोंडिश के वकील ने इन पड़ोसियों को गवाह के रूप में अदालत में पेश किया. गवाहियों का सार-संक्षेप इस प्रकार रहा:

श्रीमती रोंडिश एक रूपवती महिला हैं, मगर घमंड उन्हें छू भी नहीं गया है. वे अपने काम से काम रखती हैं. उनके पति उन्हें अकारण रोज मारते हैं.

उनके पति यद्यपि रोज पीटा करते थे तो भी वे उनकी भरपूर सेवा करती थीं. वे अपने दोनों बच्चों का भी पूरा ख़याल रखती हैं.

उनका पति साक्षात् पशु है. वे पति के अत्याचारों को चुपचाप सहती हैं, और तभी चीखती-चिल्लाती हैं, जब पति की मार असहय हो जाती है.

ऐसी नेक और पतिव्रता पत्नी मैंने नहीं देखी. यद्यपि हम सब पड़ोसी उनके पति के अत्याचारों से सुपरिचित थे तथापि हमने कभी उनके मुंह से अपने पति के खिलाफ कोई शिकायत नहीं सुनी.

इन गवाहों की गवाही से पूर्व वकील ने श्रीमती रोंडिश से भी सवाल-जवाब किये थे. श्रीमती रोंडिश ने कहा कि उन्होंने न अपने पति की हत्या की है और न कभी पुलिस को यह बयान दिया था कि उन्होंने हत्या की थी. "मैं नहीं जानती कि पुलिस को कब और कैसे यह गलतफहमी हो गयी कि मैंने उसके सामने कबूल किया था कि हत्या मैंने की है. दुर्घटना की शुरूआत तब हुई जब मैं सोफ़े पर लेटी थी और अचानक मैंने देखा कि मेरे पति मेरी ओर रिवाल्वर ताने मुझे घूर रहे हैं. इससे पहले कि मैं उनसे कुछ पूछ सकती, उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम्हारा अंत समय आ गया है. अब मरने के लिए तैयार हो जाओ.' मैंने उठकर फुर्ती से उनकी ओर लपककर उनके हाथ से पिस्तौल गिराने की कोशिश की. इस प्रयास में पिस्तौल का रुख उनकी ओर हो गया और उसमें से गोली निकलकर उनके पेट में जा लगी."

उधर, पुलिस के वकील ने एक ऐसे पड़ोसी को अपने गवाह के रूप में पेश किया जिसने अपनी गवाही में कहा कि उसने पिछले दो वर्षों में श्रीमती रोंडिश को, जिन्हें वे अच्छी तरह जानते थे, सिर्फ दो बार चीखते-चिल्लाते सुना था. गवाह ने अपनी गवाही में कहा कि वह पति जावेज रोंडिश से भी भली भांति परिचित था.

इस गवाह को पेश करके, पुलिस का वकील यह दिखाना चाहता था कि अन्य पड़ोसियों की यह गवाहियां बेबुनियाद थीं कि उनका पति उन्हें रोज पीटता था.

श्रीमती रोंडिश के वकील ने इस गवाह से पूछा, "आपको कम सुनायी तो नहीं देता?"

"बिलकुल नहीं. मैं ठीक सुनता हूं. मगर आप यह सवाल क्यों पूछ रहे हैं?"

"इसलिए कि मुझे आश्चर्य है कि जो चीखें आपके अन्य पड़ोसी-साथियों को रोज सुनायी देती थीं वे आपको दो सालों में सिर्फ दो बार ही क्यों सुनायी पड़ीं! खैर, आप क्या करते हैं?"

"इस सवाल का मुकद्दमे से कोई संबंध नहीं है. मैं इस पर एतराज करता हूं." पुलिस के वकील ने इस प्रश्न पर एतराज उठाते हुए कहा.

"मैं इस एतराज को नामंजूर करता हूं," जज ने कहा.

पुलिस के वकील ने गवाह से फिर पूछा, "आप क्या करते हैं?"

"मैं... मैं एक कंपनी में सेल्समैन हूं."

"क्या आप कार्यालय में रहकर काम करने वाले सेल्समैन हैं, या बाहर सफर करने वाले?" पुलिस के वकील ने पूछा.

विपक्षी वकील ने फिर एतराज उठाया. जज ने उसे फिर नामंजूर कर दिया.

"मैं सफ़र करने वाला सेल्समैन हूं."

"महीने में कितने दिन बाहर रहते हो? सच बोलाना."

"कभी कभी मैं महीनों भर नहीं आता," गवाह ने मुंह लटका कर कहा.

गवाह की इस स्वीकारोक्ति का ज्यूरी-सभ्यों और जज पर वही प्रभाव हुआ, जो श्रीमती रोंडिश का वकील चाहता था कि हो. इसके बाद ज्यूरी सभ्यों को संबोधित करते हुए कहा, "मुझे पूरा विश्वास है, देवियो और सज्जनो कि एक बेदर्द, बेरहम और जानवर-सरीखे पति के कारनामों के बारे में सुनकर आपका खून खौल रहा होगा. हम जिस सभ्य जगत में रहते हैं, उसमें यह कल्पना करना भी असंभव-प्रायः लगता है कि ऐसे निर्दयी और असंवेदनशील पति भी हो सकते हैं. आपने गवाहों के मुंह से सुना कि किस प्रकार यह बेरहम पति अपनी पत्नी पर घूसों, बेंतों और कभी-कभी चाकू का प्रयोग भी करता था. आपने सुना कि उसने अपनी पत्नी को यातनाएं देना तब भी नहीं रोका, जब वह गर्भवती थी. तब उन्हें पति की अत्यधिक मार के कारण कुछ दिनों तक अस्पताल में भी रहना पड़ा था. अपनी बेकसूर और भोलीभाली पत्नी के साथ ऐसी निर्ममता से पेश आने वाला आदमी, आदमी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह शैतान है, नृशंसता का साक्षात् अवतार. जैसा कि ऐसे नृशंस आदमी से आशा थी, उसने उसके खिलाफ़ लगाये गये सब अभियोगों से इंकार किया है. उसने तो यहां तक झूठ बोला कि वह रिवाल्वर उसका नहीं है, जबकि सरकारी रेकार्ड से यह स्पष्ट है कि रिवाल्वर का लायसेंस उसी के नाम से है और उसने ही उसे खरीदा था. आपने यह भी सुना कि इस दुर्घटना के बाद उसने रिवाल्वर को छिपा दिया था. यदि वह बेकसूर था, तो उसे रिवाल्वर छिपाने की क्या जरूरत थी? इन बातों को ध्यान में रखते हुए, मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप इस निर्दोष महिला को मुक्त कर दें, क्योंकि वह अपराधिनी या हत्यारी नहीं है."

ज्यूरी सभ्यों ने इस मामले पर विचार-विमर्श करके इस फैसले पर पहुंचने में अधिक समय नहीं लिया कि श्रीमती जोसेफाइन रोंडिश बेकसूर हैं. सिर्फ बीस मिनट लगे थे उन्हें इस निर्णय पर पहुंचने के लिए.

अपना निर्णय जज को सूचित करते हुए ज्यूरी-सभ्यों के फौरमैन ने जज महोदय से पूछा था, "क्या वे अपनी ओर से पति पर कोई अभियोग लगा सकते हैं?" जज ने जवाब दिया, "नहीं, आप ऐसा नहीं कर सकते." इससे लगता है कि ज्यूरी सभ्यों के मन में श्रीमती रोंडिश के पति के प्रति कितना रोष रहा होगा.

फैसला वही हुआ, जिसकी लोग आशा कर रहे थे. मगर इस फैसले के बाद जो कुछ हुआ, वह सबके लिये अप्रत्याशित था.

एक महीने बाद, श्रीमती रोंडिश फिर अपने पति के घर जाकर उनके साथ रहने लगीं. जब पड़ोसियों ने पूछा कि वे फिर क्यों ऐसे इंसान के साथ रहने के लिए आ गयीं जिसने उनकी हत्या करने की कोशिश की थी, तो उन्होंने शांत स्वर में कहा—"मैं अपने पति को प्यार करती हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान है तो जहान है

हरि

9 जून, 1946 को सारा स्याम देश यह सुनकर स्तब्ध रह गया कि किसी अज्ञात हत्यारे ने उनके प्रिय राजा आनंद की हत्या कर दी है.

राजा आनंद की मृत्यु के बाद जो सरकारी विज्ञप्ति जारी हुई, उसमें इस हत्या का संक्षिप्त ब्यौरा दिया गया था. विज्ञप्ति इस प्रकार थी : "आज सुबह राजा आनंद को उनके बिस्तरे पर मृत पाया गया. उनके हाथ में 45 कोल्ट का एक रिवाल्वर था. ऐसा समझा जाता है कि राजा द्वारा रिवाल्वर का प्रयोग करते समय, दुर्घटना हो गयी और गोली उनकी गर्दन के पिछले भाग से प्रवेश करती हुई मस्तिस्क तक पहुंची. मृत्यु तत्काल हुई."

इस विज्ञप्ति से अधिकांश स्यामवासियों को संतोष नहीं हुआ. कारण, वे जानते थे कि राजा रिवाल्वर का प्रयोग एक लंबे अर्से से चले आ रहे हैं और एक प्रवीण निशानेबाज थे. यह भी सवाल था कि सुबह ही सुबह उन्हें रिवाल्वर के प्रयोग की आवश्कयता क्यों पड़ गयी?

स्याम की सरकार ने इस दुखद हत्याकांड की तह में पहुंचने के लिए तुरंत एक जांच-आयोग की नियुक्ति की घोषणा कर दी. इस आयोग के सामने अनेक सनसनीखेज तथ्य आये. सरकारी डॉक्टरों का मत था कि गोली जिस कोण से शरीर में घुसी थी, उससे यह स्पष्ट था कि यह मामला आत्महत्या का नहीं, हत्या का था. उनका यह भी कहना था कि हत्यारे ने राजा आनंद की गर्दन के पिछले भाग में उस समय गोली मारी थी, जब वे सो रहे थे. उनके दायें हाथ में कोई ऐंठन नहीं थी. जो रिवाल्वर उनके हाथ में पाया गया, वह उनकी हत्या के बाद उनके हाथ में रखा गया था और उनकी उंगलियों ने उसे मजबूती से नहीं पकड़ रखा था.

महल के कर्मचारियों की एक गलती भी आयोग के सामने आयी जो उन्होंने जनबूझकर नहीं, अज्ञानवश की थी. उन्होंने राजा आनंद के शव को तरंत नहलाना आरंभ कर दिया था. इससे वे सब प्रमाण गायब हो गये, जिनके सहारे हत्यारे का पता लगाया जा सकता था.

जब इस जांच-आयोग की रपट से स्याम की जनता संतुष्ट नहीं हुई, तो दूसरा जांच-आयोग बैठाया गया. मगर इस आयोग की रपट से भी लोग संतुष्ट नहीं हुए. इसके बाद इस हत्या-कांड की जांच के लिये अन्य कई आयोग भी बैठाये गये मगर वे भी उन दो महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाये जो आरंभ से ही स्याम के लोगों को परेशान करते आ रहे थे.

वे प्रश्न थे :

(1) आनंद की हत्या की योजना किसने बनायी और हत्या वास्तव में किसने की? (2) हत्यारा राजा के शयनकक्ष में, जिसके बाहर दिन-रात कड़ा पहरा रहता है, कैसे प्रवेश कर सका?

हत्याकांड की जांच और उसके बाद चलने वाले मुकद्दमे का फैसला खुली अदालत में सुनाने से पहले ऐसा क्या घट गया कि न्यायाधीश स्पारो को अपना फैसला फाड़कर स्याम से भाग जाना पड़ा...

सब ओर से निराश होकर स्याम की सरकार ने इस मामले को गैराल्ड स्पारो नामक अवकाश-प्राप्त ब्रितानी न्यायाधीश को सौंपा. वे राजा आनंद के घनिष्ट मित्र थे और अकेले विदेशी थे जो इस दुर्भाग्यपूर्ण हत्या के समय स्याम के उस राजमहल में मौजूद थे जहां हत्या हुई थी.

वे उन दिनों एक मुकद्दमे के सिलसिले में इंग्लैंड से कलकत्ता आये हुए थे. कलकत्ता में उन्हें मालूम पड़ा कि स्याम में ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज विश्वविद्यालयों के भूतपूर्व विद्यार्थियों का वार्षिक भोज होने वाला है. बैंकाक में होने वाले इस वार्षिक भोज में 30 यूरोपयिन और 50 स्यामवासी भाग ले रहे थे. वे सब इन दोनों में से एक विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे. स्पारो को, जो स्वयं पुराने विद्यार्थियों में से एक थे, इस भोज में आने का निमंत्रण मिल चुका था और वे उसमें भाग लेने को उत्सुक थे.

यह वार्षिक भोज पहली बार 1946 में, जब यह हत्या हुई थी, स्याम के राजमहल में हो रहा था. स्पारो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, दो-तीन वर्षों तक जापान में युद्धबंदी रहे थे और तब जापानियों ने उन्हें बहुत यातनाएं दी थीं. इस लंबी नज़रबंदी के बाद यह पहला अवसर था, जब वे किसी मनोरंजक उत्सव में भाग लेने वाले थे.

रंगून से डकोटा हवाई जहाज से बैंकाक पहुंचकर उन्होंने पाया कि भोज शीघ्र ही आरंभ होने वाला है. उन्होंने जल्दी से होटल में सामान रखवाया और स्नान के बाद कपड़े बदलकर सीधे राजमहल पहुंचे. राजमहल के चारों ओर हंसी-खुशी और चहलपहल का वातावरण व्याप्त था. मुख्य द्वार के संतरी राजा के शोफर के साथ शतरंज खेलने में व्यस्त थे. किसी ने स्पारो को न रोका, न उनसे कोई पूछताछ की, और उन्हें सीधे भव्य डाइनिंग रूम में जाने दिया.

डाइनिंग रूम में प्रवेश करते ही स्पारो को आनंद ने देख लिया और इशारे से अपने पास आने को कहा. दोनों काफी देर तक बातें करते रहे. अलग होने से पूर्व, स्पारो ने आनंद से कहा, "मैं आपके मुंह पर आपकी तारीफ़ नहीं कर रहा हूं. मेरा पूरा विश्वास है कि आप शीघ्र ही स्याम को समृद्ध और प्रगतिशील देशों की पंक्ति में लगाकर खड़ा कर देंगे." राजा आनंद उत्तर में सिर्फ मुस्कराकर रह गये. तब स्पारो को क्या मालूम था कि शीघ्र ही उन्हें राजा आनंद की हत्या की जांच के लिये बैठाये गये आयोग से जुड़ना पड़ेगा.

भोज के दौरान अनेक लोगों से बातें करते समय स्पारो को राजा आनंद के बारे में कुछ और जानकारी मिली, जिससे उन्हें मुकद्दमे में बहुत मदद मिली.

भोज से कुछ दिन पहले, स्याम में रहने वाले चीनियों ने, जो स्याम के पहले राजाओं के प्रति वफादार नहीं थे, राजा आनंद का भव्य सार्वजनिक अभिनंदन कर उनके प्रति अपनी वफादारी व्यक्त की थी. अंग्रेज लोग भी, जिन्होंने स्याम को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानियों के चंगुल से मुक्त कराया था, राजा आनंद के प्रशंसक और मित्र थे. सिर्फ स्याम में रहने वाले जापानी, जिनकी संख्या ज्यादा नहीं थी, राजा आनंद के विरोधी थे.

जब स्पारो को यह जानकारी मिली तो जाने क्यों उनके मन में यह भयावह विचार आया कि आधी दुनिया को जीतने की आकांक्षा रखनेवाले गर्वीले जापानी, जो अब पराजय की धूल चाट रहे थे, शायद कभी स्याम में कुछ उत्पात करें. पूरे चार वर्षों तक जापानियों ने बड़ी बेरहमी के साथ स्याम पर शासन किया था. शायद वे जाते-जाते राजा आनंद को हानि पहुंचाकर अपनी पराजय का बदला लेने की कोशिश करें. एक अज्ञात आशंका से स्पारो का मन भर गया. लेकिन, अब जब भोज आनंदपूर्वक संपन्न हो गया. और अगले दिन 9 जून को भी कोई दुर्घटना नहीं हुई तो उन्हें लगा, उनकी आशंका निर्मूल थी. वे अपने काम में लग गये. उन्हें बैंकाक में कई काम पूरे करने थे. उनका कार्यालय महल के ठीक सामने स्थित था.

लेकिन, जब उन्हें राजा आनंद की हत्या का स्तब्धकारी समाचार मिला तो वे धक्क रह गये. उनकी दो दिन पुरानी आशंका सच्ची निकली.

जब उन्हें इस हत्या-कांड की जांच करने वाले अंतिम आयोग से न्यायाधीश के रूप में जुड़ना पड़ा तो सबसे पहले उन्होंने ऐसे चीनियों और जापानियों से पूछताछ आरंभ की जिन पर संदेह की काली छाया पड़ती थी. उन्होंने सबसे पहले महल के आंतरिक मामलों के मंत्री नाय प्रीदी को पूछताछ के लिये बुलाया. प्रीदी की मां चीनी थी और उसने महायुद्ध के दौरान गुप्त रूप से अंग्रेजों की सहायता की थी. उस पर संदेह था कि वह अंग्रेजों का एजेंट है, और उसने अंग्रेजों के उकसाने पर राजा आनंद की हत्या की है. लेकिन प्रीदी से पूछताछ करने पर स्पारो को विश्वास हो गया कि प्रीदी पर संदेह करने का कोई कारण नहीं हो सकता.

दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्ति, जिन पर संदेह किया जा रहा था, फील्ड मार्शल पिबूल थे, जिन्होंने युद्धकाल में जापानियों की सहायता की थी. हत्या के समय उन पर युद्ध-अपराधी के रूप में मुकद्दमा चल रहा था और वे नजरबंद थे. लेकिन यह कहा जा रहा था कि हत्या उनके एजेंटों ने, उनकी ओर से, स्याम के वर्तमान राजा से बदला लेने के उद्देश्य से की है. लेकिन पिबूल ने न्यायाधीश स्पारो के सामने शपथपूर्वक जो बयान दिया, वह काफी चौंकाने वाला था. उसने कहा कि, "मेरे शत्रुओं की संख्या काफी है, क्योंकि मैं एक सख्त सेनाधिकारी था. मुझे पूरा विश्वास है कि यह हत्या जापानियों के शत्रुओं ने मुझे इस हत्याकांड में फांसने के उद्देश्य से की है."

इन दोनों महत्वपूर्ण व्यक्तियों के अतिरिक्त न्यायाधीश महोदय द्वारा उन चंद जापानियों से भी पूछताछ की गयी जो स्याम में रह गये थे और उसका अहित चाहते थे. उन पर यह संदेह था कि सत्ता हाथ से ले चले जाने के बाद वे क्रोधन्मत्त हो गये थे और इसी उन्मत्तावस्था में उन्होंने राजा आनंद की हत्या का दुःसाहसिक और खतरनाक काम किया.

न्यायाधीश गैराल्ड स्पारो ने सब साक्ष्यों और तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद जो निर्णय लिया, वह इस प्रकार था:

"मेरे मतानुसार, इस हत्या-कांड में दो वर्ग सम्मिलित थे. पहला वर्ग स्याम के उन चंद प्रभावशाली लोगों का था, जिन्होंने इस हत्या-कांड की योजना बनायी थी और उसके लिये आर्थिक सहायता प्रदान की थी. दूसरा वर्ग उन लोगों का था जिन्होंने इस योजना को साकार किया. इसी वर्ग के किसी अज्ञात सदस्य ने राजा आनंद पर गोली चलाकर उन्हें खत्म किया. हमारे सामने ऐसे अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये थे जो यह सिद्ध करते हैं कि दूसरे वर्ग में प्रीदी के सचिव नाथ चालीअ और दो अनुचर नाथ वत्र और नाथ चित्रा सम्मिलित थे और इन तीनों ने अज्ञात हत्यारे को शयन-कक्ष में आराम से जाने दिया था. राजमहल के सुरक्षा-अधिकारियों की प्रशंसा करनी पड़ेगी कि उन्होंने हत्या के तुरंत बाद इन तीनों को गिरफ्तार कर लिया. लेकिन पुलिस उनसे पूछताछ करके हत्यारे के बारे में जानने का प्रयास करती, इसके पूर्व ही किसी अज्ञात व्यक्ति या व्यक्तियों ने इन तीनों को पुलिस की कैद में ही जान से मार डाला. इन तीनों के मर जाने से अपने प्रिय राजा की आक्समिक मृत्यु से खिन्न तथा क्रुद्ध स्यामवासियों को थोड़ी राहत अवश्य मिली लेकिन असली हत्यारे का पता नहीं लग पाया.

"मेरा अनुमान है कि हत्या या तो किसी निराशांध और क्रोधोन्मत्त जापानी ने की है या किसी चीनी कम्यूनिस्ट ने, अपने दल के नेता के आदेश पर. मुझे लगता है कि इन दोनों विकल्पों में दूसरा विकल्प अधिक सही होना चाहिये. कारण, महायुद्ध की समाप्ति के बाद से ही चीनी कम्यूनिस्टों की कोशिश रही है कि द.पू. एशिया के मर्मस्थल स्याम पर अधिकार जमा लिये जायें, ताकि आगे चलकर चीनी साम्राज्य आसानी से स्याम की खाड़ी तक फैल सके. स्याम के राजा को अपने मार्ग से हटाये बिना उनकी यह साजिश कामयाब नहीं हो सकती थी."

जिस दिन न्यायाधीश स्पारो, जिन्हें स्याम की सरकार ने ख़ास तौर पर इस हत्या-कांड की जांच और उसके बाद वाले मुकद्दमे के फैसले के लिये 'विशेष न्यायाधीश' के रूप में नियुक्त किया था, अपना फैसला अपनी खुली अदालत में सुनाने वाले थे, उससे पहले की रात को एक विचित्र घटना घटी, जिसने इस रहस्यमय मुकद्दमे को और अधिक रहस्यमय बना दिया.

फोन पर एक अज्ञात व्यक्ति ने, जो अपने को 'राजमहल का एक विश्वसनीय कर्मचारी' बता रहा था, उनसे पूछा, "क्या आपको मालूम है कि राजा आनंद के हाथ में कौन सा रिवाल्वर मिला था?"

"हां. 45 कोल्ट."

"ठीक. मगर हत्या उस रिवाल्वर से नहीं की गयी. राजा आनंद के प्राण लेने वाली गोली बाद में उनके तकिये के अंदर से मिली और वह 45 कोल्ट रिवाल्वर की नहीं थी, एक चीनी रिवाल्वर द्वारा चलायी गयी चीनी गोली थी. यदि आप चाहते हैं कि वही गोली आपकी गर्दन में भी न लगे तो आप उस निर्णय को फाड़ डालिये जो आपने लिखा है और फौरन स्याम छोड़कर चले जाइये. इसी में आपकी खैर है."

स्पारो ने वैसा ही किया. जान है तो जहान है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार्ली चैप्लिन पर साहित्यिक चोरी का मुकद्दमा

विश्वविख्यात हास्याभिनेता चार्ली चैप्लिन इस सदी की उन महान हस्तियों में से थे जो अपने जीवन में ही 'लीजेंड' हो जाते हैं. कलाकार के रूप में उन्होंने अपनी एक विशिष्ट अभिनय शैली को जन्म दिया. जो आज तक बेमिसाल है, और जिसकी नकल करने में कोई भी अभिनेता आज तक सफल नहीं हो पाया है.

यूं तो चैप्लिन की सभी फिल्में अविस्मरणीय हैं लेकिन उनमें भी 'गोल्ड रश', 'मॉडर्न टाइम्स', 'द किड' तथा 'द ग्रेट डिक्टेटर' को अन्यतम लोकप्रियता मिली. ख़ास तौर पर 'द ग्रेट डिक्टेटर' हिटलर का मज़ाक उड़ाने वाली फिल्म थी. इसमें चार्ली चैप्लिन ने हिटलर के बोलने, चलने और अन्य विलक्षणताओं की जो नकल की है, वह कहीं दर्शकों को हंसाती है, कुहीं गुदगुदाती है.

लेकिन चार्ली चैप्लिन के असंख्य दर्शकों में से बहुत कम को यह बात मालूम होगी कि इस फिल्म के कारण चार्ली चैप्लिन पर एक मुकद्दमा चला था—साहित्यिक चोरी का. मुकद्दमा चलाने वाले का दावा था कि 'द ग्रेट डिक्टेटर' की कहानी उसके एक 'आइडिया' पर, जिसे उसके चैप्लिन के अनुरोध पर सुनाया था, आधारित है.

सारी घटना इस क्रम में घटी.

चार्ली चैप्लिन कोनरड वैरकोविसी नामक यूरोपीय कथाकार की कथाओं के प्रेमी और प्रशंसक थे, ख़ास तौर पर जिप्सियों के जीवन पर आधारित उनकी कथाओं के. वे चाहते थे कि वैरकोविसी की किसी जिप्सी कथा का फिल्मांकन करें. एक बार वे इसी संबंध में वैरकोविसी से मिलने गये और कहने लगे कि वे अपनी सबसे अच्छी जिप्सी कहानी चुनकर उन्हें दे दें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकि वह उस पर फिल्म बना सके.

बातों-बातों में वैरकोविसी ने चैप्लिन से कहा, "आजकल हिटलर की धूम है. उसका ज़माना है. सब उसके बारे में ही बातें करते रहते हैं, कोई शत्रु के रूप में और कोई प्रशंसक के रूप में. मेरे दिमाग़ में उसके इर्द-गिर्द घमनेवाली एक कहानी का आइडिया आया है. यदि वह तुम्हें पसंद आ जाये तो तुम उस पर पहले फिल्म बनाओ जिप्सी-कथा पर बाद में बना लेना. इस कहानी पर बनी फिल्म सामयिक होने के कारण अत्यंत लोकप्रिय भी होगी. वह जर्मनी में भी चोरी-छिपे खूब चलेगी, क्योंकि हिटलर द्वारा उस पर प्रतिबंध लगा देने के बाद जर्मन लोग उसे देखे बिना मानेंगे नहीं."

बीच में लिखे गये पत्रों का कोई उत्तर नहीं दिया."

जब मुकद्दमा शुरू हुआ तो चैप्लिन के वकील ने वैरकोविसी के सब आरोपों को 'बेबुनियाद' और 'मनगढ़ंत' बताया. उन्होंने कहा कि फिल्म की कहानी का आइडिया उनका अपना है इसलिए किसी की कहानी की साहित्यिक चोरी का कोई सवाल ही नहीं उठता.

वैरकोविसी सीधे-सच्चे आदमी थे. उनके वकील ने उन्हें समझाया कि यदि मुकद्दमा जीतना है तो उन्हें या तो उसे ठोस सबूत देने होंगे या थोड़ा बहुत झूठ बोलना पड़ेगा. मगर वैरकोविसी के पास न कोई ठोस सबूत था और न वे कोई गलत बात कहने को तैयार थे. वे बार-बार यही कहते रहे कि झूठे वह नहीं, चैप्लिन है जिसने उनके आइडिया पर एक फिल्म बना ली और अब आइडिया का श्रेय और उसका पारिश्रमिक उन्हें देने से कतरा रहा है. उन्होंने अपने वकील से कहा, "मैं अदालत में अपनी इसी बात पर, जो हकीकत है, अड़ा रहूंगा. अब यह काम अदालत का है कि वह किस पर विश्वास करती है, मुझ पर या चैप्लिन पर!"

गया. आप उस रूसी अभिनेता से मिलकर मालूम कीजिए कि चैप्लिन ने उससे संपर्क करने का प्रयास किया था कि या नहीं. यदि किया था तो शायद उसने उससे मेरा भी जिक्र किया हो. ऐसे में वह हमारे लिए एक अच्छा गवाह साबित हो सकेगा."

वकील ने खोज करके उस रूसी गायक-अभिनेता का पता लगाया और खुद जाकर उससे मिला. कुइनेविज ने कहा, 'हां, चैप्लिन ने मुझे फोन किया था और पूछा था कि क्या मैं उसकी फिल्म 'द ग्रेट डिक्टेटर' में एक भूमिका निभाने को तैयार हूं? मुझे उनका यह प्रश्न सुनकर इतनी ज्यादा खुशी हुई थी कि मैं कुछ क्षण तक कोई उत्तर नहीं दे सका और सोचने लगा कि मैं जाग रहा हूं या सो रहा हूं. चैप्लिन

क्या वजह थी कि चार्ली चैप्लिन सरीखे विश्वविख्यात कलाकार को अदालत के बाहर न केवल माफी मांगनी पडी बल्कि वैरकोविसी को समुचित पारिश्रमिक भी देना पड़ा...?

चैप्लिन की उत्सुकता जागृत हुई. उन्होंने पूछा, "हिटलर के बारे में क्या आइडिया है आपके मन में?"

वैरकोविसी सुनाने लगे, "एक जर्मन नाई है जिसकी शक्ल हिटलर से बहुत मिलती है. उसे देखकर लोगों को भ्रम हो जाता है कि वे हिटलर को ही देख रहे हैं. फिर..."

पूरा आइडिया सुनने के बाद चैप्लिन ने वैरकोविसी से कहा, "मुझे इस आइडिया पर सोचने के लिए कुछ समय चाहिए. मैं आपसे जल्दी ही दुबारा मिलूंगा."

मगर बकौल उस शिकायत के जो बाद में वैरकोविसी ने अदालत में दाखिल की, "चैप्लिन फिर मुझसे नहीं मिले और न ही पत्रों या फोन द्वारा हमारे बीच कोई बातचीत हुई. लेकिन जब मैंने उनकी 'द ग्रेट डिक्टेटर' फिल्म देखी तो मुझे याद आया कि यह फिल्म तो उसी आइडिया पर आधारित है जो मैंने उन्हें सुनाया था. जब मैंने एक पत्र लिखकर उस दिन की याद दिलायी जिस दिन वे मेरे घर आये थे और मैंने उन्हें 'द ग्रेट डिक्टेटर' का आइडिया दिया था. मगर उन्होंने उस पत्र का तथा

लेकिन, उनका वकील जानता था कि ठोस और अकाट्य प्रमाण के अभाव में अदालत चैप्लिन पर ही विश्वास करेगी. और वैरकोविसी मुकद्दमा हार जायेंगे. वह अपने मुवक्किल के प्रति सहानुभूतिशील था और उन्हें जिताने के उद्देश्य से उसने खुद सबूत जुटाने की कोशिश की.

एक दिन वैरकोविसी ने उसे फोन करके कहा, "जब मैंने 'ग्रेट डिक्टेटर' का आइडिया चैप्लिन को दिया था तब उन्होंने कुछ सोचकर कहा था कि कुइनेविज नामक एक रूसी गायक अभिनेता उसके एक महत्वपूर्ण रोल के लिए बिलकुल फिट रहेगा. मुझे आज यह बात सहसा याद आ

जैसे महान और विश्वविख्यात कलाकार की फिल्म में काम करने से ज्यादा सौभाग्यदायी चीज मेरे लिए क्या हो सकती थी. इस बीच उन्होंने मुझसे कहा कि कहानी का आइडिया उन्हें वैरकोविसी से प्राप्त हुआ है और वे एक दिन उनके साथ बैठकर उसे एक फिल्म के रूप में विकसित करने के लिए विचार विमर्श करेंगे. मेरे यह कहने पर कि मुझे उनकी इस फिल्म में काम करके बड़ी खुशी होगी और मैं इसे अपना सौभाग्य मानूंगा, चैप्लिन ने मुझे अपना फोन नंबर दिया जो आज भी मेरी डायरी में दर्ज है और मुझसे कहा कि वे मुझे दुबारा फोन करेंगे. मगर उन्होंने फिर कभी फोन नहीं किया."

वैरकोविसी के वकील के अनुरोध पर कुइनेविज अदालत में जो घटा था, वह कहने को तैयार हो गया. उसकी गवाही सुनकर चैप्लिन ने फौरन वैरकोविसी ने उनका समुचित पारिश्रमिक देकर तथा क्षमायाचना करके अदालत के बाहर समझौता कर लिया. वैरकोविसी चूंकि भले आदमी थे, इसलिए उन्होंने इस घटना का भी ढिढोरा नहीं पीटा. चैप्लिन को तो चुप रहना ही था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

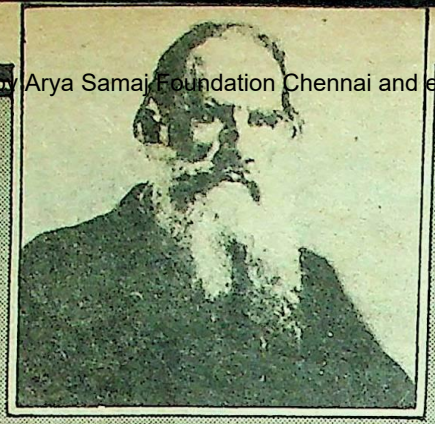

विश्वप्रसिद्ध रूसी कथाकार तालस्तोय की 160वीं जयंती (9 सितंबर) के अवसर पर प्रस्तुत हैं उनकी कुछ लघुकथाएं जिनका अनुवाद डा. सुरेंद्र कुमार शर्मा ने खासतौर पर 'सारिका' के लिए किया है...

पथ के साथी

दो मित्र कहीं दूर जा रहे थे. अचानक उनमें से एक ही दृष्टि रुपयों से भरे एक बटुए पर पड़ी. उसने झट से वह बटुआ उठा लिया और अपने मित्र से बोला, "देखो मुझे यह बटुआ मिला."

मित्र ने उत्तर दिया, "भाई, यह मत कहो कि 'मुझे' बटुआ मिला. यह कहो कि 'हमें' बटुआ मिला. हम दोनों पथ के साथी हैं और साथ चलने वालों को एक दूसरे के सुख दुख आपस में बांट लेने चाहिए. यदि आगे कोई कष्ट पड़ेगा तो उसे भी हम बांट लेंगे.

इस पर पहला मित्र बोला, "दोस्त, ऐसा नहीं होता. जो मुझे मिला वह मेरा और जो तुम्हें मिला वह तुम्हारा. मेरे सुख-दुख मेरे और तुम्हारे सुख-दुख तुम्हारे. इसमें कैसी साझेदारी?"

दूसरे ने उत्तर दिया, "अच्छा भाई, तुम्हारी मर्जी."

और दोनों मित्र फिर आगे चल दिये. थोड़ी देर बाद बटुए का स्वामी अपने अंग-रक्षकों के साथ अपना बटुआ खोजता वहां आ पहुंचा. उसे देखकर जिसे बटुआ मिला था वह घबरा गया और अपने साथी से बोला, "मित्र, हमसे गलती हो गयी."

इस पर उसके मित्र ने उत्तर दिया, "मित्र, यह मत कहो कि 'हमसे' गलती हो गयी. यह कहो कि 'मुझसे' गलती हो गयी. तुम्ही ने कहा था कि मेरे सुख-दुख मेरे और तुम्हारे सुख-दुख तुम्हारे. इसमें कैसी साझेदारी?" □

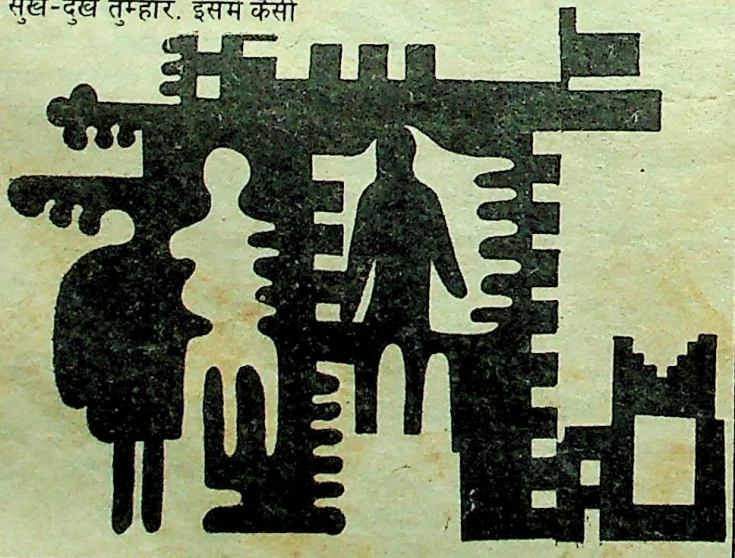

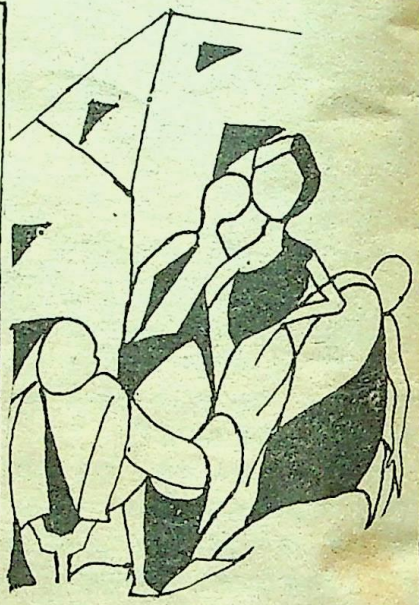

बच्चे का प्यार

एक मां के दो बेटे थे. बड़ा बेटा आठ साल का था और छोटा छः का. दोनों ही बड़े अच्छे और आज्ञाकारी बच्चे थे. इसलिए उनकी मां उन्हें बहुत प्यार करती थी.

एक बार छोटा बेटा अपनी मां से बोला, "मेरी प्यारी अम्मा, तू मुझे इतना प्यार नहीं कर सकती जितना कि मैं तुझे करता हूं."

"तू ऐसा क्यों सोचता है, मेरे प्यारे बच्चे?" मां ने पूछा.

"इसलिए कि तेरे दो बेटे हैं मगर मेरी केवल एक ही मां है." बेटा बोला. □

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधे की बुद्धि

अंधेरी रात में एक अंधा सड़क पर जा रहा था. उसके हाथ में एक लालटेन थी और सिर पर एक मिट्टी का घड़ा. किसी रास्ता चलनेवाले ने उससे चिल्लाकर पूछा, "अरे मूर्ख, तेरे लिए क्या दिन और क्या रात. दोनों एक से हैं. फिर, यह लालटेन तुझे किसलिए चाहिए"

अंधे ने उत्तर दिया, "यह लालटेन मेरे लिए नहीं, तेरे लिए जरूरी है कि कहीं रात के अंधेरे में मुझसे टकराकर कहीं तू मेरा मिट्टी का घड़ा न गिरा दे." □

लालच

बच्चा फूट-फूटकर रो रहा था. उसके पास से निकल रहे एक व्यक्ति ने पूछा, "बेटा, क्यों रो रहे हो."

बच्चा रोते हुए बोला, "मेरा एक रुपया खो गया."

"कोई बात नहीं, यह लो एक रुपया." उस व्यक्ति ने बच्चे को रुपया देते हुए कहा.

बच्चे ने रुपया लिया और फिर और भी जोर से रोना शुरू कर दिया.

व्यक्ति ने पूछा, "अब क्या हुआ?"

बच्चे ने फफकते हुए उत्तर दिया, "अगर मेरा रुपया नहीं खोता तो अब मेरे पास दो रुपये होते." □

बुद्धिमान न्यायाधीश

एक आदमी के घर सौ रुपये की चोरी हो गयी. उसने न्यायाधीश से शिकायत की. न्यायाधीश ने उस आदमी के घर में रहने वाले और उसके यहां काम करने वाले सभी नौकरों को बुलाया और उन सबको एक-एक समान लंबाई वाली लाठी दी और कहा, "ये विशेष प्रकार की लाठियां हैं. जो चोर है उसकी लाठी कल तक चार अंगुल बढ़ जायेगी."

यह कहकर न्यायाधीश ने सबको विदा किया. उनमें से जो चोर था, उसने न्यायाधीश की बात पर विश्वास कर लिया. इस डर से कि कहीं उसकी लाठी कल तक चार अंगुल बढ़ न जाये, उसने अपनी लकड़ी चार अंगुल काट दी.

दूसरे दिन सबेरे न्यायाधीश आया और उसने सबकी लाठियां देखीं. चोर की लाठी को उसने चार अंगुल छोटा पाया. इस प्रकार न्यायाधीश ने चोर का पता लगा लिया. □

गुठली

मां ने आलू बुखारे खरीदे. सोचा, बच्चों को खाने के बाद दूंगी. आलू बुखारे मेज पर तश्तरी में रखे थे. वान्या ने आलू बुखारे कभी नहीं खाये थे. उसका मन उन्हें देखकर मचल गया. जब कमरे में कोई नहीं था तब वह अपना मन न मार सका. उसने एक आलू बुखारा उठाकर खा लिया.

खाने के समय मां ने देखा कि तश्तरी में एक आलू बुखारा कम है. उसने बच्चों के पिता को इस बारे में बताया.

खाते समय पिता ने पूछा, "बच्चो, तुममें से किसी ने इसमें से एक आलू बुखारा तो नहीं लिया?"

सबने एक स्वर से जबाब दिया, "नहीं."

वान्या का मुंह लाल हो गया, किंतु वह फिर भी बोला, "नहीं, मैंने तो नहीं खाया."

इस पर बच्चों के पिता बोले, "यदि तुममें से किसी ने आलू बुखारा खाया तो ठीक है. पर, बात यह है.—मुझे डर है कि तुम्हें आलू बुखारा खाना नहीं आता. आलूबुखारे में एक गुठली होती है. अगर वह गलती से कोई निगल ले तो एक दिन बाद मर जाता है."

वान्या डर से सफेद पड़ गया. बोला, "नहीं, मैंने तो गुठली खिड़की के बाहर फेंक दी थी."

सब एक साथ हंस पड़े और वान्या रोने लगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंवार की बुद्धि

एक शहर के चौराहे पर एक विशाल शिला पड़ी थी. यह शिला इतनी बड़ी थी कि यातायात में बाधा पहुंचती थी. उस शिला को हटाने के लिए इंजीनियरों को बुलाया गया और उनसे पूछा गया कि शिला को कैसें हटाएं और उसके हटाने में कितना खर्चा आयेगा?

एक इंजीनियर ने कहा कि इस शिला के टुकड़े करने पड़ेंगे और उन टुकड़ों को गाड़ी अथवा ठेले में रखकर ले जाना पड़ेगा. इसमें लगभग आठ हजार रुपये का खर्चा आयेगा.

दूसरे इंजीनियर ने सलाह दी कि शिला के नीचे एक बड़े मजबूत ठेले का फट्टा लगाया जाये और लुढ़काकर शिला को उस पर रखकर ले जाया जाये. इसमें लगभग छः हजार की लागत आयेगी.

वहां पर एक गंवार भी था जो इन लोगों की बातें सुन रहा था. सुनकर वह बोला, "मैं इस शिला को सिर्फ सौ रुपये के खर्चे में हटा सकता हूं."

उससे पूछा गया कि वह ऐसा कैसे करेगा? उसने बताया, "मैं इस शिला के बिलकुल पास एक बहुत बड़ा गड्ढा खुदवाऊंगा. उस बड़े गड्ढे में इस शिला को लुढ़कवा दूंगा. ऊपर से खोदी हुई मिट्टी से ढककर समतल बना दूंगा."

अधिकारियों को उसकी योजना पसंद आयी और उन्होंने उसकी स्वीकृति दे दी. गंवार ने वैसा ही किया. उसे सौ रुपये तो लागत के दिये ही, उपर से सौ रुपये इनाम के भी. □

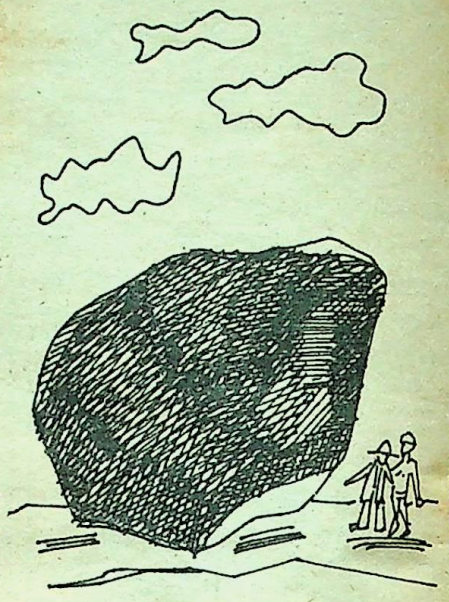

राजा और बाज

एक राजा ने शिकार खेलते समय अपने प्यारे पालतू बाज को एक खरगोश पर छोड़ा. बाज ने खरगोश को धर-दबोचा और राजा के हवाले कर दिया फिर राजा को बड़ी तेज प्यास लग आयी. वह पानी की खोज में इधर-उधर भटकने लगा. आखिरकार वह एक चट्टान के पास आया जिससे बूंद-बूंद पानी रिस रहा था. उसने अपना कटोरा उसके नीचे लगा दिया. बड़ी देर में जब कटोरा भरा तो राजा पीने के लिए उसे मुंह के पास लाया. अचानक उसकी बांह पर बैठा बाज फड़फड़ाया और उसने राजा के हाथ से कटोरा गिरा दिया. राजा ने फिर अपना कटोरा बूंद-बूंद रिसते पानी के नीचे लगा दिया. वह देर तक उस कटोरे के भरने की प्रतीक्षा करता रहा. भरने पर जब वह पीने लगा तो बाज ने फिर पंख फड़फड़ाकर उसे गिरा दिया. अस्तु जब तीसरी बार बड़ी मुश्किल से कटोरा भरा और राजा उसे होंठों के पास ले जाने लगा तो फिर बाज ने पानी फैला दिया. राजा को बहुत गुस्सा आया. उसने बाज को एक शिला पर जोर से पटककर मार डाला. इतनी देर में राजा के सेवक आ गये. उनमें से एक अधिक पानी की खोज में उस स्रोत की ओर गया जिससे आकर बूंद-बूंद पानी रिस रहा था. उसने सोचा कि वहां से एकदम डुबोकर राजा के लिए वह पूरा कटोरा भर लेगा. किंतु, सेवक वहां से पानी नहीं लाया. वह खाली कटोरा लिये लौट आया और बोला, "हुजूर, इस पानी को बिल्कुल नहीं पीना चाहिए. जिस स्रोत से यह पानी आ रहा है उसमें एक बड़ा जहरीला सांप है. अच्छा हुआ बाज ने पानी फैला दिया. यदि हुजूर पानी पी लेते तो प्राण न बचते."

यह सुनकर राजा पछताता हुआ बोला, "अरे मेरे प्यारे बाज, तूने मेरी जान बचायी और मैंने तेरी क्या गत बना दी!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नींद से पहले' और 'सचमुच सच' जैसे उपन्यासों व कहानी-लेखन के जरिये अपनी खास पहचान बनाने वाले कथाकार.
संपर्क : एफ-119, मयूर बिहार, पॉकेट-I, दिल्ली-91

गौरीशंकर कपूर

सबक

महेंद्र सिंह ने बहुत दूर से देखा कि झबरा कुत्ता सुनसान सड़क पर बौखलाहट भरी मुद्रा में भटक रहा है. इतवार की शाम का वक्त था और टी.वी. पर फिल्म दिखाये जाने के कारण हमेशा की तरह डिफेंस कालोनी की यह सड़क लगभग सुनसान हो गयी थी. स्कूटर ड्राइवर महेंद्र सिंह लंबे सफर की सवारी को डिफेंस कालोनी उतारकर अपने घर निरंकारी कालोनी की तरफ जा रहा था.

कुत्ते के नज़दीक पहुंचकर महेंद्र सिंह को स्कूटर धीमा करना पड़ा. झबरे कुत्ते को महीन आवाज में बेतरतीब ढंग से भौंकते और सड़क पर भटकते देखकर महेंद्र को मेले में खोये नन्हें बच्चे की याद आ गयी. सुनसान सड़क पर स्कूटर का शोर ज़्यादा उभरने के कारण झबरा कुत्ता बेतरह घबरा गया था और ऊबड़-खाबड़ ढंग से इधर-उधर उछलने-कूदने-भागने लगा था. महेंद्र सिंह को उस पर तरस भी आ रहा था तथा साथ ही उसकी वजह से स्कूटर धीमा चलाने के कारण घर पहुंचने की जल्दी भी महसूस हो रही थी. स्कूटर निकलने की गुंजायश देखकर महेंद्र ने एक्सीलेटर घुमाया ही था कि झबरा बोखलाकर

'चीजें बदल सकती हैं, पर आदतें नहीं. जितनी मर्जी टोका-टोकी कर लो, वक्त मिलते ही वो अपना रंग दिखा देती हैं' फिर जीतकौर ने आखिरकार अपनी हार स्वीकार की तो क्यों?

अनिल कामड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक स्कूटर के आगे आ गया. महेंद्र ने तेज़ी से ब्रेक पर ज़बर्दस्त दबाव डाला और स्कूटर झटके से रुक गया. महेंद्र को घर पहुंचने में बाधा पड़ने के कारण गुस्सा आने लगा. आज टी.वी. पर उसकी पसंदीदा फिल्म दिखाई जा रही थी. साथ ही इस वजह से भी उसे झुंझलाहट महसूस हो रही थी कि झबरा उसी के स्कूटर के नीचे आकर मरना चाह रहा था. स्कूटर रुकते ही वह तेज़ी से नीचे उतरा और झबरे की तरफ बढ़ा.

झबरा स्कूटर से सिर्फ कुछ इंच की दूरी पर गुच्छ-मुच्छ होकर निश्चल-निश्चेष्ट पड़ा था. डर की अधिकता में वह जिस मृतप्रायः अवस्था तक पहुंच गया था, वह अभी तक उसकी चपेट में था. महेंद्र को दुधिया बालों में लिपटा बिल्लीनुमा झबरा कुत्ता बहुत प्यारा लगा. उसे गुस्से की जगह उस पर तरस आ गया. उसने नीचे झुक कर झबरे की पीठ पर प्यार से हाथ फिराया. झबरे ने एक झुरझुरी ली, शरीर कुछ ढीला किया और माथे पर लटकते दूधिया बालों के बीच चमकती नन्हीं आंखों से महेंद्र की तरफ देखा. महेंद्र को लगा, झबरा उसके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर रहा है. वह खुश हो गया और झबरे को धीरे-से उठाकर गोदी में ले लिया. झबरा भी उसकी गोद में दुबककर आनंद से आंखें मिचमिचाने लगा. महेंद्र को यह सब अच्छा लग रहा था. कुछ क्षण तक वह झबरे की रेशमी गर्माहट और कृतज्ञता को महसूस करता रहा. झबरे के आत्मीयता-प्रदर्शन और खुद को भी झबरा भा जाने की वजह से कुछ क्षण तक वह यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि अब उसका क्या करे. पहली बात, वह जल्दी घर पहुंचना चाहता था और दूसरी बात कि वह झबरे का सही मालिक ढूंढने के झंझट में भी नहीं फंसना चाहता था. साथ ही, झबरे को सड़क पर लावारिस छोड़ने का खयाल भी उसे बेहद गैर-जिम्मेदाराना लग रहा था. लिहाजा उसने यह फैसला किया कि मौजूदा हालत में सभी समस्याओं का एक ही सही हल है कि वह झबरे को घर ले जाये. वहां बच्चे, खासतौर पर नन्हां बबलू खुश रहेगा, घर की रखवाली रहेगी और इतना खूबसूरत कुत्ता घर में रहने से मोहल्ले में शान भी बढ़ेगी.

झबरा कुत्ता घर पर आ जाने से बच्चे वाकई बहुत खुश हुए. काफी देर तक तो बिट्टू, नीता और गुल्लू में इसी बात पर झगड़ा होता रहा कि इसकी देखभाल कौन करेगा, जबकि बबलू एक क्षण के लिए भी झबरे को अपने से अलग करने के लिए तैयार नहीं था. इतना खूबसूरत कुत्ता देखकर सरदारनी जीत कौर भी खुश हो गयी थी. उसने सराहना भरी नज़रों से कुत्ते को एक बार गौर से देखा और कहा, "अमीरों का कुत्ता है. इसके नखरे बहुत होंगे." और उसके लिए दूध लेने चली गयी.

महेंद्र ने अमीरों के प्रति अपनी नफरत का पूरा प्रदर्शन करते हुए हिकारत से जवाब दिया, "अमीरों ने दुनिया में सभी सुंदर चीजों का ठेका तो नहीं ले लिया. जिस जगह भी झबरे को रहना पड़ेगा, अपने-आप वहीं की तरह रहेगा."

दरअसल महेंद्र सिंह को झबरे की वजह से बच्चों की खुशी को देखकर भी बहुत खुशी हुई थी. उसने सोचा था, अगर झबरे की खुराक के खर्च की कीमत पर बच्चों को खुशी होती है तो महंगा थोड़े ही है. उमर बढ़ने के साथ-साथ उसकी तीन लड़कियों तथा इकलौते लड़के के खर्चे तथा फरमायशें बढ़ रही थीं. झबरे पर ध्यान केंद्रित हो जाने से फालतू की फरमायशें तो कम होंगी ही. वह भी बच्चों के साथ मिलकर झबरे से खेलने लगा.

झबरा बच्चों के साथ खेलने में एक्सपर्ट निकला. कभी बिट्टू की गोद से उछलकर नीता की गोद में दुबक जाता और कभी बबलू की पीठ से अपनी झबरी पीठ रगड़कर गुदगुदी पैदा कर देता. देखते-देखते महेंद्र सिंह के किरायेदार गोविंद सिंह और पंडित अमरित राज के बच्चे भी वहां आ गये. कुछ ही देर में वहां इतना हुड़दंग मच गया कि जीत कौर को खाना तैयार होने की घोषणा करना मुश्किल पड़ गया.

झबरे की बिगड़े अमीरों की आदतों का पहला एहसास तब हुआ जब उसने रोटी खाने से साफ इनकार कर दिया. उसने जीत कौर द्वारा फेंकी नरम रोटी को सूंघना तो दरकिनार, देखा तक नहीं. जीत कौर ने झबरे के इस व्यवहार पर अपने पति की तरफ सार्थक नज़रों से देखा.

महेंद्र सिंह ने झेंप से सिर को झटका देते हुए कहा, "भूख लगेगी तो अपने-आप खायेगा... अपने घर की आदत तो डलवानी की पड़ेगी."

तभी नीता ने अपनी कटोरी से मांस की एक बोटी निकालकर झबरे की तरफ फेंकी. झबरा भी लपककर आया तो देखते-देखते बोटी चबा गया तथा याचना भरी मुद्रा में सबकी तरफ देखने लगा. तभी बबलू ने भी मांस का एक टुकड़ा फेंक दिया और मां-बाप के देखते-देखते बच्चों ने अपने अपने हिस्से का ज़्यादातर मीट झबरे को चटा दिया. इस तमाम तमाशे को जीत कौर अपने पति की तरफ सवालिया नज़रें किए देखती रही. महेंद्र सिंह ने एकाध बार बच्चों को डांटा भी लेकिन डांट का केवल क्षणिक प्रभाव ही बच्चों पर पड़ता था. उन्हें झबरे को खिलाने में खेल-जैसा आनंद मिल रहा था. एकाध बार डांटने के बाद वह खुद भी चुप हो गया. मां-बाप को गंभीर देखकर बच्चों ने कुल मिलाकर यह लिहाज किया कि उनकी कटोरियों का मीट झबरे को पेश नहीं किया.

जीत कौर का मूड देखकर महेंद्र सिंह समझ गया कि बच्चों के सोने के बाद उसे अपनी बीवी का एक लेक्चर सुनना पड़ेगा और ऐसा ही हुआ भी.

जीत कौर ने सपाट चेहरे तथा बेलिहाजी आवाज़ का इस्तेमाल करते हुए कहा, "यह कुत्ता आप जहां से भी लाये हैं, वहीं छोड़ आइए. यह अमीरों का कुत्ता है. इसे पालना हमारे बस की बात नहीं. यह तो सुबह-शाम दूध-मीट मांगेगा. हम कहां से लायेंगे? आज हफ्ते में एक दिन मीट बनाया था, बच्चों ने उसे खिला दिया. वो अपना दूध भी उसे पिला देंगे. मेरी सलाह मानो तो इसे कल ही ले जाकर कहीं छोड़ आओ. बच्चों को मैं समझा लूंगी."

पत्नी की सभी बातें सही होने के बावजूद इतनी जल्दी गलत साबित हो जाना महेंद्र सिंह को हजम नहीं हो रहा था. उसने मुख्य रूप से अपना मानसिक बल बढ़ाने के इरादे से वही पुरानी बात दोहरायी, "जब आदमी को जगह के मुताबिक अपनी आदतें बदलनी पड़ती हैं तो फिर यह तो जानवर है. दो-चार दिन में ठीक हो जायेगा. फिक्र न कर, सो जा." और उसने करवट बदल ली.

जीत कौर कुछ क्षणों तक अपने ज़िद्दी पति को देखती रही. झबरा कुत्ता बबलू से सटकर सो रहा था. बबलू और झबरे के चेहरे पर एक जैसा संतोष दमक रहा था. जीत कौर को बुरा नहीं लगा.

बच्चों को भी झबरे को लेकर मां की परेशानी का अंदाज़ा लग चुका था. अगले दिन बच्चों में मां से छिपकर एक कान्फ्रेंस की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें पड़ोसी गोविंदसिंह तथा पंडित अमरित राज भी शामिल हुए. फैसला यह किया गया कि वे किसी भी कीमत पर झबरे को नहीं जाने देंगे. झबरे की खुराक—दूध और मीट के इंतज़ाम के बारे में बच्चों ने फैसला किया कि वे अपना-अपना दूध झबरे को पिलायेंगे और रोज के खर्च के पैसे जोड़कर शाम को चुपचाप मीट ले आया करेंगे.

अगले दो दिन इसी तरह गुज़र गये. जीत कौर को हैरानी जरूर हुई कि सिर्फ एक बार के दूध के ज़ोर पर झबरा तमाम दिन बच्चों से खिलवाड़ करता रहता था. बड़ी बेटी नीता से शक के तौर पर पूछा भी कि बबलू वगैरह झबरे को अपना दूध तो नहीं पिला देते. लेकिन नीता ने यह कहकर मां को संतुष्ट कर दिया कि पड़ोसियों के घर से भी झबरे को दूध-मीट मिल रहा है.

फिर भी तीसरे दिन बच्चों का यह रहस्य खुल गया. जीत कौर ने महसूस किया कि बच्चे आजकल रोटियां ज्यादा खाने लगे हैं और साथ ही गली से जब भी फेरी वाले गुजरते, मां से पैसे जरूर मांग लेते, लेकिन खाते-पीते कुछ भी नहीं थे. उसने पड़ोसियों से भी बातचीत की. पता चला कि वे झबरे कुत्ते को दूध-मीट वगैरह कुछ भी नहीं देते. और जीत कौर ने पड़ोस के दस वर्षीय लवली को शाम के वक्त मीट लाते हुए भी पकड़ लिया. उसने बच्चों की खूब लानत-मलामत की और झबरे को रस्सी से बांध दिया.

बंधकर एक ही जगह पर रहना झबरे के लिए ज़रूर असाधारण बात होगी, क्योंकि बांधे जाने के बाद से वह लगातार मिमियाता-भौंकता रहा. बच्चे कुछ दूर पर खड़े बेबस नज़रों से उस पर तरस खाते रहे. बबलू ने झबरे को रस्सी से आज़ाद करने के लिए मां से एकाध बार असफल प्रार्थना भी की.

महेंद्र सिंह के घर लौटते ही बच्चों ने डैडी को घेर लिया और एक आवाज में झबरे को रस्सी से आज़ाद करवाने का अनुरोध करने लगे.

महेंद्र सिंह या तो समझ गया कि झबरे का रस्सी से किसने बांधा है, लेकिन बच्चों के ज़ोरदार अनुरोध के दबाव को वह टाल न सका. बच्चों ने लपककर झबरे को आज़ाद किया और अपनी विजय तथा हर्ष की किलकारियां भरने लगे.

आवाज़ें सुनकर जीत कौर बाहर आ गयी और जो कुछ उसने देखा, उससे उसका रुका हुआ गुस्सा तेज़ी से झड़क गया. इससे पहले कि जीत कौर अपना गुस्सा निकालना शुरू करे, बच्चे मां को देखते ही झबरे सहित पड़ोसियों के घर में घुस गये.

अब महेंद्र सिंह और जीत कौर के बीच बाकायदा क्लेश छिड़ गया. जीत कौर ने बच्चों के पिछले दिनों की हरकतों का हवाला देकर कहा कि अगर यही हाल रहा तो कुछ ही दिनों में यह कुत्ता शेर बन जायेगा और बच्चे टी.बी. के मरीज़.

महेंद्र सिंह उसे समझाने की कोशिश करता रहा कि बच्चों पर कंट्रोल रखो और कुत्ते को भूखा—तो दो-चार दिन में सब सही हो जायेगा. दुनिया में वक्त के साथ सबको बदलना पड़ता है, कुत्ता तो भला किस गिनती में है. थोड़े से सब्र और दो-चार तरीके अपनाने भर की बात है, यह कुत्ता घर के सबसे बेहतरीन सदस्य के रूप में बदल जायेगा.

लेकिन जीत कौर का विश्वास अटल था. वह मुसलसल यही कहे जा रही थी कि चीजें बदल सकती हैं, पर चीजों की आदतें नहीं बदल सकतीं. जितनी मर्जी टोका-टाकी कर लो, वक्त मिलते ही वो अपना ढंग दिखा देती हैं. झबरे की आदतें नहीं बदल सकतीं, नहीं बदल सकतीं. जब हम इसकी खुराक जुटाने लायक नहीं रहेंगे, यह दूसरे के घर भाग जाएगा, लेकिन अपनी आदतें नहीं छोड़ेगा. यह अमीरों का कुत्ता है और इसकी सभी आदतें भी अमीरों जैसी हैं.

इस दार्शनिक विवाद का अंत जीत कौर ने इस ऐलान के साथ किया था कि इस मामले में वह और कुछ भी नहीं बोलेगी. और साथ ही यह भी भविष्यवाणी भी की कि अंत में सरदार महेंद्रसिंह खुद झबरे कुत्ते को घर से निकालेंगे.

इस विवाद के बाद महेंद्र सिंह ने सारा मामला एक जिम्मेदाराना ढंग से अपने ऊपर ले लिया. उसने बहुत संजीदगी से बच्चों को समझाया कि हम इस कुत्ते का खर्च दूध-मीट के रूप में नहीं उठा सकते. इसलिए इसे धीरे-धीरे रोटी की आदती डाली जानी ज़रूरी है. नहीं तो कुत्ते को भगाना पड़ेगा.

बच्चे अपने डैडी की बात समझ गये और उन्होंने उसे रोटी खिलाने की कई कोशिशें भी कीं. डबलरोटी दी गयी, दूध में डालकर सामने रखी गयी, पानी में भिगोकर डाली गयी—लेकिन सभी कोशिशें नाकाम रहीं. झबरा अवांछित भोजन सामने आ जाने पर इस तरफ झांकता भी नहीं. बच्चों को हारकर उसे दूध या मीट देना पड़ता.

महेंद्रसिंह का मकान निरंकारी कालोनी के सुनसान इलाके में था और बराबर चोरी का खतरा बना रहता था. झबरे के आगमन के एकाध दिन बाद पंडित अमरित राज, जो पेशे से कबाड़िये थे, ने सरकारी नीलामी में लोहे का काफी सामान उठाकर घर के बाहर रखवा दिया था. सोचते थे, उनका कबाड़ कोई सिर पर रखकर तो ले जा नहीं सकता, कम से कम टेंपो या ट्रक में ही ले जायेगा और घर में कुत्ते के रहते यह भी संभव नहीं.

उसकी अभिलाषा

□ अमरीक सिंह दीप

नित्य नियमानुसार उस संध्या भी मठाधीश का स्वर्ग के स्वर्ण महल में दरबार सजा हुआ था. दरबार की प्रथा थी, ईश्वर की भूलोकीय शाखाओं (पूजाघरों) में भक्तजन जो मनौतियां, प्रार्थनाएं, याचनाएं करते थे, उनका निपटान इस सांध्यकालीन दरबार में होता था.

"हे महीश्वर, ये पहली अर्जी किसी सिरफिरे लेखक की है. आज जिंदगी में पहली बार वह आपके स्थानीय कार्यालय में आया था. उसने अपनी रचनाओं की रद्दी बेच कर जुटाये रुपये से पांच रुपये की प्रसाद चढ़ाया और हृदय से प्रार्थना करने लगा—'सुना है तुम सर्वशक्तिमान हो. दीन बंधु, मुझे विश्वास था कि मैं अपनी कलम से देश में होने वाला रक्तपात रोक लूंगा पर मैं असफल रहा. अतः तुम्हारी शरण में आया हूं.'"

मठाधीश की खाल गुस्से से लाल हो गयी-"फाड़कर फेंक दो ये प्रार्थना पत्र... क्या बकवास है?... रक्तपात बंद करवा दूं... रोटी, कपड़ा, छत! गोया में अपना धंधा चौपट कर लूं. किस मेहनत से पुरखों ने ये धंधा खड़ा किया है?... ये साला कोई विदेशी एजेंट लगता है. फौरन किसी को उग्रवादी के रूप में इसके घर धावा बोलने का आदेश दो..." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन झबरे के आने के चार-पांच दिन बाद एक सुबह नींद अमरित राज ने महसूस किया कि उनका कबाड़ आधा रह गया है जो वाकई सच भी निकला. साफ था, रात के चोरों के ट्रक के ज़रिए आधा माल गायब कर दिया था. उन्होंने जब झबरे के बारे में पूछताछ की तो पता चला, वो बबलू के साथ इत्मीनान से लिपटकर रात भर सोता रहा था.

सारी घटना की जानकारी मिलने के बाद जीत कौर ने महेंद्र सिंह की तरफ जतलाहट भरी नज़रों से देखा भर था. झेंपते हुए महेंद्र ने सिर्फ यह कहा था कि कुछ चीज़ों की तरह कुछ कुत्ते भी सिर्फ नुमायशी होते हैं. उनके इस्तेमाल पर जोर नहीं देना चाहिएं... और रखवाली नहीं करता तो मैं क्या करूं? ज़रा बच्चों से छीनकर देखो, सब पता चल जायेगा, उसकी ज़रूरत किसे है और किसे नहीं है."

जीत कौर ने जबाब में सिर्फ यह कहा था कि ज़रूरत तो नामालूम किसे है, लेकिन बच्चे इस मनहूस कुत्ते के नौकर बन गये हैं."

"और मैं तुम सब का," महेंद्र ने भुनभुनाकर कहा था.

अगले दिन महेंद्र सिंह ने घर लौटते हुए देखा, नीता एक हाथ में दूध का डोल और दूसरे हाथ में झबरे को गोद लिये घर लौट रही है. महेंद्र ने स्कूटर रोककर नीता से पूछा कि कुत्ते को पैदल क्यों नहीं चलाती.

नीता डैडी को देखकर बहुत खुश हुई थी. उसने महेंद्र को बताया, "झबरा गली के कुत्तों से बहुत डरता है. मारे डर के, कभी गोदी से ही नहीं उतरता. डैडी, यह बाग में खूब खेलता है."

महेंद्र को बीवी की शर्तें याद आ गयीं.

अगले दिन सुबह जीत कौर ने बहुत शांत आवाज में अपने पति को सूचित किया कि बिल्ली सारा दूध पी गयी है और दुबारा लाना पड़ेगा.

महेंद्र ने पूछा, "आज तो घर में झबरा भी था. बिल्ली कैसे आ गयी?"

"बिल्ली जब दूध पी रही थी, झबरा भी रसोई के एक कोने में खड़ा महीन आवाज़ में भौं-भौं कर रहा था. जैसे ही यह ऊंचा

लाइन क्लियर

फिल्म-निर्देशक, जॉन रिच एक फिल्म की आउटडोर शूटिंग कर रहा था कि एक दृश्य में हर बार किसी जानवर या हवाईजहाज की आवाज के कारण विघ्न पड़ने से उसकी नये सिरे से शूटिंग करनी पड़ रही थी. इस प्रकार वह दृश्य कई बार लिया गया.

एक स्त्री, जो अपनी कार में वहां से गुजर रही थी, शूटिंग देख कर रुक गई थी. वह समझ नहीं पा रही थी कि एक ही दृश्य इतनी बार क्यों लिया जा रहा है. आखिर वह निर्देशक से पूछे बिना न रही.

जवाब में जॉन रिच ने कहा, "जितनी ज्यादा बार यह दृश्य लिया जायेगा, उतने ही ज्यादा सिनेमाओं में दिखाया जा सकेगा."

स्त्री ने जैसे समझते हुए सिर हिलाया और संतुष्ट हो कर चली गयी. □

भौंकना, बिल्ली जरा-सी आहट से उसे डरा देती."

"मैं नहीं मान सकता."

जीत कौर ने शांत आवाज़ में 'वाह गुरु' की कसम उठाकर कहा, "मैं खुद सब कुछ देख रही थी."

महेंद्र सिंह ने अविश्वास में सिर हिलाकर झबरे के बारे में सोचने लगा. जीत कौर कुछ क्षण तक पति के विचारमग्न चेहरे को देखती रही और फिर कामकाज में जुट गयी.

महेंद्र सिंह ने फैसला कर लिया कि वह इस कुत्ते को असली कुत्ता बनाकर ही दम लेगा. उसे लगा, झबरे की नुमायशी तथा महंगी आदतों को बदलने के लिए उसे ज़ोर-ज़बर्दस्ती का सहारा लेना ही चाहिए.

अपने नये तरीके के पहले कदम के तौर पर उसने ऐलान किया, "झबरे का दूध-मीट बिलकुल बंद. घर के तीन-चार कोनों में नरम टुकड़े डाल दो. भूख लगेगी तो खुद खा लेगा."

झबरे ने भी आदतन रोटी के टुकड़े नहीं खाये. लेकिन भूख की बेचैनी के कारण वह बबलू के पास सोने भी नहीं आया. एक बार बबलू ने प्यार भरी जिद्द का सहारा लेकर मां के आगे झबरे की वकालत भी की लेकिन महेंद्र ने उसे इतनी ज़ोर से डांटा कि वह चुप होकर थोड़ी देर में सो गया.

सुबह जब बबलू की नींद खुली तो झबरा उसके पास ही सोया हुआ था. उसे बेहद खुशी हुई और उसने यह नज़ारा दिखाने के लिए फौरन सब बहनों को जगा दिया. इतवार का दिन होने के कारण जीत और भी मज़े से सोयी हुई थी, उसकी भी नींद खुल गयी. उसने पहला निष्कर्ष यह निकाला कि बर्दाश्त की हद से ज़्यादा भूख बढ़ जाने पर झबरे ने रोटी खा ली होगी और फिर आकर बबलू के पास सो गया होगा.

उसने अधजागे महेंद्र सिंह को अपने अनुमान के बारे बताया. उसने अलसायी आवाज़ में विजयी लहजे में कहा, "लगी होगी कंजर को भूख... और खा गया होगा." और वह फिर करवट लेकर आलस का सुख प्राप्त करने लगा.

जीत कौर चाय-दूध का इंतज़ाम करने के लिए रसोई की तरफ चल पड़ी. कौतुहलवश उसने रोटीवाले कोनों की तरफ देखा. उसे बेहद हैरानी हुई कि सब कोनों में रोटी के टुकड़े ज्यों के त्यों, अनछुए पड़े हैं. तो फिर झबरे ने पेट किस चीज़ से भरा! उसने सोचने की कोशिश की. रसोई में ताला लगा हुआ था.

तभी उसकी निगाह कमरे में जहां-तहां बिखरे चमड़े के जूतों पर गयी. बुरी तरह चबाये जाने के कारण जूते बदशक्ल बेकार हो गये थे. झबरे की भूख मिटने का रहस्य जीत कौर के आगे खुल गया था. उसने देखा, झबरे ने चमड़े का एक भी जूता पहनने लायक नहीं छोड़ा है. उसने ऊंची आवाज़ में पति को पुकारना शुरू कर दिया.

जब साढ़े दस बजे महेंद्र सिंह कमाई करने के लिए थ्री-व्हीलर पर घर से निकला तो उसकी गोद में झबरा भी था. वह किसी अमीर आदमी की कोठी में फेंकने की नीयत से झबरे को साथ लेकर चला गया.

जहां तक पति-पत्नी के बीच जीत-हार की बात है, महेंद्र सिंह के विचारों में कोई अंतर नहीं आया था. उसका कहना था, "झबरे की आदतें बदलना महंगा काम है और फिलहाल मेरे बस का नहीं है. लेकिन इसकी आदतें बदली जरूर जा सकती हैं."

और जीत कौर ने हंसकर अपनी हार स्वीकार कर ली थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलौकिक रहस्यों के चक्रव्यूह

हजार परमाणु बमों की शक्ति के बराबर शक्तिमान मंत्र की आध्यात्मिक ऊर्जा की चमत्कारी दास्तान... कि कैसे इस मंत्र ने ऑर्थर कोएस्लर को प्रभावित किया !

अपनी आत्महत्या से पूर्व, पश्चिम के एक अग्रणी, अति संवेदनशील तथा लेखक-चिंतक ऑर्थर कोयस्लर ने भारत के समाचार-साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' के संपादक रूसी करंजिया को एक चौंका देने वाला वक्तव्य दिया था.

श्री करंजिया ने उनसे लंदन में भेंट की थी. बातचीत के दौरान उन्हें लगा कि वे संभावित परमाणु महायुद्ध और उसके परिणाम स्वरूप होने वाले सर्वनाश की संभावना के कारण अत्यंत चिंतित व ग्रस्त थे. उन्होंने कहा, "मिस्टर करंजिया, इस सर्वनाशी युद्ध को देखने के लिये मैं जीवित नहीं रहना चाहता."

श्री करंजिया की समझ में नहीं आया कि वे उनके इस उद्‌गार के बारे में उनसे क्या कहें. उन्होंने कुछ सोचकर कहा, "जहां तक भारत का संबंध है, वह परमाणु-बम के निर्माण और अस्त्र-शस्त्रों की होड़ से दूर रहना चाहता है."

"हां, भारत की यह नीति उसकी शांति-प्रियता की नीति के अनुरूप ही है. और वैसे भी उसे परमाणु-बम की कोई आवश्कयता नहीं है."

"मैं आपका मतलब नहीं समझा, मिस्टर कोयस्लर! यदि हमारे पास परमाणु बम नहीं हुआ, तो हम अपनी सुरक्षा कैसे कर पायेंगे?"

"आप लोग अपनी रक्षा गायत्री मंत्र से कर सकते हैं!"

"गायत्री मंत्र से?" साश्चर्य श्री करंजिया ने पूछा. उन्हें याद आया कि कोयस्लर ने एक बार भारत को 'एक गंदा और शोरगुल वाला देश' कहा था और हैरानी जाहिर की थी कि ऐसे देश में सुख और शांति से कैसे जिया जा सकता है! उन्होंने यह भी कहा था, "आदमी को न्यूयार्क जैसे अशांत नगर में भारत के किसी भी मंदिर से ज्यादा शांति प्राप्त हो सकती है." गांधीजी के प्रति आदर व्यक्त करते हुए भी, वे यह कहना नहीं भूले थे कि "भारत में न राजतंत्र चलता है, न प्रजातंत्र, सिर्फ बापू-तंत्र चलता है. इसी बापूतंत्र के अनुयायी, भारत के प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने मेरी पुस्तक 'द लोटस एंड द रोबा' पर इसलि प्रतिबंध लगवा दिया था कि मैंने उसमें गांधीजी की आलोचना करने का दुःसाहस किया था. प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने गांधीजी की अहिंसा का नमूना पाकिस्तान से सशस्त्र युद्ध करके प्रस्तुत किया और शांति-स्थापना के प्रयास में ही उनका निधन हुआ. मैं श्री शास्त्री का अत्यंत कृतज्ञ हूं कि

उनके जीवन के अंतिम दिन उस बात की पुष्टि करते हैं जो मैंने भारत पर गांधी की विरासत के बारे में कही थी."

कोयस्लर ने आगे जो कुछ कहा, उसे सुनकर श्री करंजिया सचमुच चकित रह गये. कोयस्लर कह रहे थे. "**गायत्री मंत्र में हजार परमाणु बमों के बराबर शक्ति है. यदि सारे भारतीय, उन पर हमला होने पर, एक साथ इस मंत्र का पाठ करना आरंभ कर दें, तो यह शक्ति प्रकट होकर, हमलावरों के हौसले पस्त कर देगी.**"

गायत्री-मंत्र के बारे में कोयस्लर ने जो मत व्यक्त किया, वह भारत के प्रति उनके गहरे लगाव को अभिव्यक्त करता था. यह सच है कि उन्होंने भारत की कई अवसरों पर कटु आलोचना की, लेकिन साथ ही यह भी सच है कि वे कई बार 'भारत की खोज' के लिये भारत आये थे और हर बार उन्होंने भारत की स्थूल देह के परे जाकर, भारत की आत्मा को जानने और समझने का ईमानदार प्रयास किया था. उन्होंने पहली भारत-यात्रा 1958 में की थी.

अपनी भारत-यात्राओं के दौरान उन्होंने रमण महर्षि, आनंदमयी मां, आचार्य विनोबाभावे, कांची के शंकराचार्य, त्रिवेंद्रम के श्रीकृष्ण मेनन तथा अन्य संतों व योगियों से भेंट की थी. उन्हें भारतीय योगियों के ये दावे बिल्कुल खोखले लगे कि योग के माध्यम से हर प्रकार के शारीरिक व मनस रोगों का उपचार किया जा सकता है. वे आनंदमयी मां से तनिक भी प्रभावित नहीं हुए. शंकराचार्य के इस कथन पर कि 'विज्ञान को धर्म का सेवक होना चाहिये', उन्होंने टिप्पणी की कि "पिछले पंद्रह सौ वर्षों से भारतीय विज्ञान की प्रगति अवरुद्ध है. इसका एक कारण यह है कि उसने खगोल-विज्ञान को ज्योतिष के रूप में और गणित को अंक-विद्या के रूप में दूषित कर दिया था.

कोयस्लर के अंतस में संशय उठने स्वाभाविक थे, क्योंकि विकास की सीढ़ी की हर पायदान पर चढ़ते हुए उन्हें लगा था कि सार-तत्व इस पायदान पर भी नहीं मिला. वह द्वार अभी आना शेष है, जिसके आने पर सारे द्वार खुल जाते हैं और सारे संशयों का लय एक परम समाधान में हो जाता है. इसी प्रकार अंर्तयात्रा करते-करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन के अध्यात्म-जगत में प्रवेश कर गये. अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे परालौकिक के प्रति इतने अधिक विस्मय में लीन हो गये थे कि उन्हें लगने लगा था कि अपने सारे संशयों का समाधान उन्हें अपने से पार जाने पर ही प्राप्त हो सकता है. जीनव-सत्य की खोज की दिशा उन्हें भारत आने पर ही मिली. उस भारत में आने पर, जिसके वे पहल आलोचक थे. जो कुछ सूत्र हिंदू धर्म के सिद्धांतों से परिचित होने के बाद उन्हें मिले, उन्हें उन्होंने अपने हाथ में बोया और कुछ समय बाद पाया कि उनके जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आ चुका था.

1905 में बुडापेस्ट (हंगरी) में जन्मे आर्थर कोयस्लर ने युवावस्था में ही अमीरी और गरीबी, दोनों का स्वाद चख लिया था. जिस समृद्र परिवार में जन्म लेकर उन्होंने वियना में अपनी शिक्षा पूरी की, उसी परिवार को, आगे चलकर इस सदी के तीसरे दशक में सारे विश्व में छाये विश्वव्यापी आर्थिक संकट के दिनों में निपट निर्धनता का मुंह देखना पड़ा था. इस से उत्पन्न. विश्व के नैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक विघटन ने उन्हें साम्यवाद की ओर प्रवृत्त किया. 1932 से 1935 तक उन्होंने एक पत्रकार और कार्यकर्त्ता के रूप में साम्यवाद का खूब प्रचार किया, और नाना साम्यवादी प्रवृत्तियों से जुड़े रहे.

किंतु साम्य से उन्हें पूरा संतोष प्राप्त नहीं हुआ. उन्होंने देखा कि साम्यवाद जहां एक बुराई को समाप्त करता है, वहां पांच अन्य बुराइयों का पैदा भी कर देता है. साम्यवाद से निराश होकर 1938 में वे साम्यवादी दल से अलग हो गये. उनकी आस्था जनतंत्र और उदारतावादी तथा मानवतावादी पूंजीवाद में जाग्रत हुई और वह जीवन के अंत तक कायम रही.

कोयस्लर की उल्लेखनीय रचनाएं हैं– 'द योगी एंड कमिसार', 'इनसाइट एंड आउटलुक', 'लाइफ आफ्टर डैथ', 'एक्ट ऑफ क्रिएशन', 'लोटस एंड रोबो' (जिसे श्री लालबहादुर शास्त्री के गृह-मंत्रित्व काल में जब्त कर लिया गया था, क्योंकि उसमें गांधीजी के बारे में कुछ आपत्ति-जनक बातें कही गयी थीं), 'एरायवल्स एंड डिपार्चर्स', 'पोस्ट इन द मशीन' तथा बहुचर्चित 'गॉड दैट फेल्ड' (जिसमे उन्होंने सोवियत साम्यवाद की भर्त्सना की है), 'डार्कनैस एट नून' (जिसमें एक ऐसे पुराने बोल्शेविक की कहानी कही गयी है, जिसे स्वीकार करने के लिये विवश किया जाता है जो उसने कभी नहीं किये. तथा 'ब्रिकसट्रू वेबेल' और 'जेनसः ए समिग अप.'

चूंकि उनका 'डार्कनैस एट नून' उपन्यास सारे विश्व में ऑरवेल कृत 'एनीमल फार्म' नामक उपन्यास के समान इस सदी का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास बना, इसलिए अधिकांश लोग उन्हें 'एक भूतपूर्व साम्यवादी' और 'साम्यवाद के शत्रु' के रूप में ही जानते हैं. लेकिन, उन्हें सिर्फ इसी रूप में जानना उनकी अधूरी और भ्रामक पहचान होगी. यदि उनकी सब कृतियों का लेखा-जोखा किया जाये तो पता चलेगा कि उनकी कृतियां राजनीति के अलावा विज्ञान, मनोविज्ञान, परा-मनोविज्ञान, समीक्षा, संस्मरण, समाज-दर्शन, नृतत्व-शास्त्र, चिंतन, आदि विविध विधाओं से संबंधित हैं.

जीवन में मानव को तीन प्रकार से सिद्धि-लाभ होता है. पूर्व-कर्म के वेग से, औषधि से तथा मंत्र-शक्ति से. आयुर्वेद के अनुसार जब औषधि के साथ मंत्र की शक्ति भी मिल जाती है तो औषधि की शक्ति में एक प्रखरता और पुष्टता आ जाती है. आंतरिक शक्तियों को बहिरोन्मुख संचारित कर, कार्य-सिद्धि में मंत्र-शक्ति का महत्व सर्वोपरि है. मंत्र-शक्ति के महत्व को ईसाई धर्म और इस्लाम में भी स्वीकार किया गया है. सिखों के प्रथम गुरु–गुरु नानक नाम-जप के प्रबलतम समर्थक थे.

मंत्र मूलतः एक अवबोधन है, स्वयं का स्वयं के द्वारा. मंत्र के द्वारा व्यक्ति अपने उत्कृष्टतम रूप से परिचित होकर अपार शक्ति की अलभ्य कुंजी पा जाता है.

मंत्र का मनोविज्ञान के साथ, तंत्र का सूक्ष्म भौतिक विज्ञान के साथ, और यंत्र का सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक विज्ञान के साथ संबंध है.

बंबई के एक बड़े अस्पताल में प्रख्यात चिकित्सकों, शल्य-चिकित्सकों तथा तांत्रिक वैज्ञानिकों की मौजूदगी में एक प्रयोग किया गया था–गंभीर और असाध्य रोगों के रोगियों को मंत्रदीक्षा द्वारा स्वस्थ करने का. यह प्रयोग काफ़ी हद तक सफल रहा और उससे नागपुर की उस संस्था के, जो कई वर्षों से मंत्रदीक्षा द्वारा रोगियों का इलाज करती चली आ रही है, इस दावे को काफी बल मिला कि 'हिरण्यगर्भ-समीक्षा' में वर्णित मंत्रदीक्षा-चिकित्सा-विधि से पोलियो जैसे गंभीर रोग के रोगी भी चंगे हो सकते हैं.

मंत्र की शक्ति को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने और वैज्ञानिक ढंग से समझने की कोशिश की जाये तो कहा जायेगा कि मनुष्य के शरीर-तंत्र के दो भाग हैं–बाह्य और आंतरिक. जब तक दोनों चेतनावस्था में रहते हैं, सक्रिय रहते हैं, उनके अनवरत रूप से चलने वाले संग्रहण और संप्रेषण के कारण, घार्षणिक और धारावाही दोनों प्रकार की विद्युत हमारे शरीर में उत्पन्न होती रहती है. घार्षणिक विद्युत का उत्पादन शरीर करता है, धारावाही विद्युत का मस्तिष्क. वैज्ञानिकों तथा परा-मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मंत्रदीक्षा में इन दोनों प्रकार की विद्युतों का समवेत-गुम्फित प्रयोग होता है.

जिन अक्षरों के मिलन से मंत्र बनता है, उसका समन्वय इस प्रकार किया जाता है, जैसे धातु और रासायनिक पदार्थों को विचारपूर्वक मिलाकर विद्युत-शक्ति उत्पन्न की जाती है. समूह के सूक्ष्म विचारपूर्वक मिलन से मंत्र में चमत्कारिक शक्ति आ जाती है. और अब साधक के अंतःकरण की भाव-शक्ति, प्राण-शक्ति, मनःशक्ति और संयम-शक्ति के द्वारा मंत्र असाधारण शक्ति प्राप्त कर, ईप्सित फल देना आरंभ कर देता है. आर्थर कोयस्लर और पीटर सैलर्स के साथ भी उनके जीवन के अविस्मरणीय क्षणों में ऐसा ही घटा होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी और सूर्य की परिक्रमा के बीच गैलीलियो

आभा मिश्र

गैलीलियो पहले खगोल शास्त्री थे जिन्होंने टेलीस्कोप का इस्तेमाल किया था. और वह ऐसे अंतिम व्यक्ति भी थे जिन्हें चर्च के अंधविश्वासों के खिलाफ बोलने के लिए प्रताड़ित किया गया. चर्च के अनुसार सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है जबकि गैलीलियो कोपरनिकस के सिद्धांत से सहमत थे, जिसके मुताबिक पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है. रोम के चर्च ने गैलीलियो को धमकी दी कि यदि वह कोपरनिकस सिद्धांत का खंडन जनता के सामने नहीं करेंगे तो उन्हें इसकी सजा भुगतनी होगी. गैलीलियो ने चर्च की आज्ञा मानते हुए सार्वजनिक रूप से इस सिद्धांत के खिलाफ अपने विचार रख [illegible] माफी मांगने के बाद गैलीलियो ने 'डायलॉग ऑफ टू सिटीज' नामक पुस्तक में चर्च और कोपरनिक्स दोनों के ही सिद्धातों को सही बताया ताकि वह सच बोलने के साथ-साथ चर्च के कोप भाजन होने से भी बच सके. अब चर्च के लिए स्थिति असहनीय थी. चर्च ने गैलीलियो पर मुकद्दमा चलाने का फैसला किया और एक विशेष आयोग जांच के लिए बैठा दिया. जाहिर था कि गैलीलियो को दोषी पाया जाता. इस तरह के मुकद्दमों की खास बात यह थी कि उनमें यह नहीं बताया जाता कि मुजरिम को किस अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाता है बल्कि उससे यह पूछा जाता है कि क्या वह जानता है कि उस क्यों गिरफ्तार किया गया है. गैलीलियो से जब यह पूछा गया तो उसने जवाब में कहा कि वह तो पहले ही चर्च से किताब छपवाने की अनुमति ले चुका था. फिर भी चर्च ने धर्म-विरोधी विचार प्रकट करने के लिए गैलीलियो को कड़ी सजा देने की बात सामने रखते हुए यह प्रावधान भी प्रस्तुत किया कि यदि वह चर्च द्वारा दिये गये वक्तव्य को जनता के सामने पढ़ देगा तो बचाव की गुंजाइश हो सकती है. गैलीलियो ने भयातुर हो कर यह बात स्वीकार कर ली. वह जानता था कि ऐसा न करने पर उसे मृत्युदंड भी मिल सकता है.

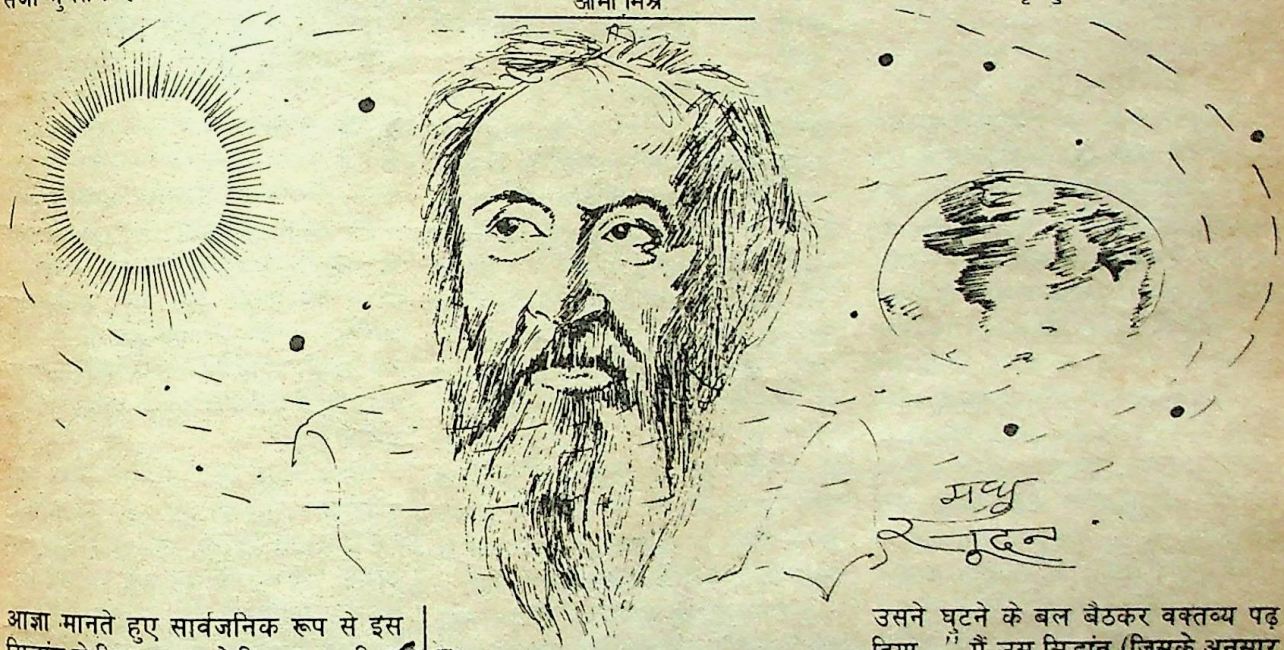

> चर्च के अंधविश्वास हों या अनैतिकता के आरोप, देश-द्रोह के अभियोग हो या पिछड़े समाज के अंधे कानून... इनकी चपेट में आने से गैलीलियो बचे न सुकरात, ऑस्कर वाइल्ड बचे न एजरा पाउंड.... आप जानते हैं, इसकी वजह आखिर है क्या?

उसने घुटने के बल बैठकर वक्तव्य पढ़ दिया..." मैं उस सिद्धांत (जिसके अनुसार पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है) की निंदा करता हूं... मैं उस सिद्धांत से नफरत भी करता हूं."

कुछ लोगों का कहना है कि जब गैलीलियो उठकर खड़ा हुआ तो उसने पृथ्वी पर जोर से लात मारते हुए कहा..." तू कम्बख्त अभी तक सूर्य का चक्कर लगा रही है."

इस मुकद्दमे के बाद चर्च ने सजा के तौर पर गैलीलियो को उसी के घर में नजरबंद कर दिया. यहां उससे कोई नहीं मिल सकता था.

आखिरी दिनों में यह क्रांतिकारी खगोलशास्त्री अंधा हो गया था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑस्कर वाइल्ड पर अनैतिकता के आरोप

"दुनिया में जितने मुकद्दमे चलते हैं वे सभी जिंदगी के लिए बराबर महत्वपूर्ण होते हैं. यह बात ऑस्कर वाइल्ड ने अपने मुकद्दमे की समाप्ति के तत्काल बाद अदालत में कही. हालांकि उसकी प्रतिष्ठा मुकद्दमे के दौरान कम हो चुकी थी फिर भी वह मजाक करने के मूड में था. उसका कहना था कि वह स्वयं इस मुकद्दमे का अभियोजक है. सबसे पहले स्वयं इस मुकद्दमे का अभियोजक है. सबसे पहले स्वयं वाइल्ड ने क्वींस बरी पर मानहानि का मुकद्दमा दायर किया. यदि वह क्वींस बरी पर मुकद्दमा न चलाता तो शायद उसका कुछ भी न बिगड़ता. वाइल्ड जिस युग में पैदा हुआ था, इंग्लैंड का पूरा समाज तब पाखंड में डूबा हुआ था. वाइल्ड के मन में समाज के प्रति आक्रोश और तिरस्कार भरा हुआ होगा. जो अभिजात वर्गीय महानुभावों को आग बबूला कर देता था. वह डगलस नाम के सुंदर सुकुमार और स्त्रैण नवयुवक को हाथ लिए पूरे लंदन में घूमा और अपने अनैतिक संबंधों का जानबूझकर प्रचार करता फिरा. मुकद्दमे की शुरूआत के दौरान अब मजिस्ट्रेट के द्वारा यह पूछा गया कि वाइल्ड नाटककार और कवि हैं तो उसे यह जवाब सुनना पड़ा, "मैं कोई सामान्य नाटककार और कवि नहीं हूं मुझे सारी दुनिया जानती है". जाहिर था कि वाइल्ड यहीं पर न्यायाधीश, को नराज कर चुका था. दूसरा सवाल क्वींस बरी से पूछा गया उत्तर में क्वींस ने कहा कि उसने वाइल्ड के लिए विजिटिंग कार्ड पर वाइल्ड के लिए गालियां लिख कर भेजी थीं ताकि वह उसके खिलाफ कार्यवाही करने को उत्तेजित हो जाये. और क्वींस बरी अदालत में वाइल्ड को एक घृणित और होमोसैक्सुअल साबित कर सके. क्वींस बरी को शक था कि उसके पुत्र से वाइल्ड के अनुचित संबंध थे. मुकद्दमा चलने से हो सकता है कि उसका पुत्र मजबूरन वाइल्ड से अलग हो जाए. उसने 'पिक्चर आफ डोरियन ग्रे' जैसे उपन्यास को भी अनैतिक बताया. उसने दर्जन भर ऐसे लोगों की फेहरिश्त पेश की जिनसे वाइल्ड ने अनुचित संबंध स्थापित करने की कोशिश की थी 5 अप्रैल, 1895 को मुकद्दमा शुरू हुआ. वाइल्ड के मित्रों के उस पर बहुत दवाब डाला कि वह मुकद्दमा वापस ले ले किंतु उसने यह सलाह नहीं मानी.

मुकद्दमे की खास बात यह थी कि अनैतिकता के आरोपों का जवाब देने की बजाय वाइल्ड स्वयं को नैतिकता से ऊपर उड़ने वाला महान साहित्यकार साबित करने की कोशिश करता रहा. प्रतिक्रिया स्वरूप लोग वाइल्ड के खून के प्यासे हो उठे. विरोधी वकील ने बहस के दौरान जब वाइल्ड को उत्तेजित करने के लिए पूछा कि क्या कभी उसने एक सुंदर युवक से पागलों की तरह प्रेम किया है...? तब वाइल्ड एक उत्तर था, "किया है लेकिन पागलों की तरह नहीं" इस पर मजिस्ट्रेट ने उसे डांटा भी. वकील ने फिर पूछा "यानी आपने किसी लड़के को वास्तव में पूजा की तरह से प्यार किया है." वाइल्ड ने जवाब दिया, "मैंने अपने अलावा कभी किसी की पूजा नहीं की." वकील ने फिर पूछा, "फिर भी अ[illegible] समलिंगी प्यार को अच्छा मानते हैं?" प्रत्युत्तर में वाडल्ड ने कहा, "ऐसा प्यार मैंने शेक्सपीयर की कविताओं से सीखा."..... बस अब क्या था लोग शेक्सपीयर की तौहीन पर नफरत से भर उठे. पूरे देश में वाइल्ड के खिलाफ घृणा की लहर दौड़ गयी. वकील ने वाइल्ड से पूछा, "क्या आपने डगलस का चुंबन लिया है?" वाइल्ड ने जवाब दिया, "वह तो इतना बदसूरत है कि उसका चुंबन लिया ही नहीं जा सकता." अदालत में सनसनी फैल गयी. और मजिस्ट्रेट के लिए वाइल्ड के खिलाफ फैसला देने का आसान रास्ता तैयार हो गया वाइल्ड को दो साल की सजा सुनायी गयी.

एजरा पाउंड का देशद्रोह

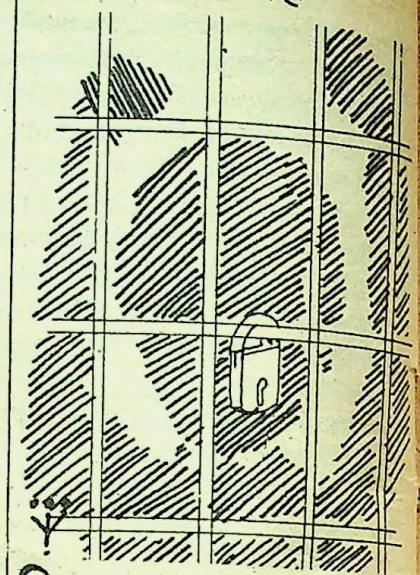

विश्व प्रसिद्ध कवि एजरा पाउंड दूसरे विश्व युद्ध के दौरान लंबे समय तक रोम रेडियो से इंग्लैंड अमरीका और सबसे ज्यादा यहूदियों के खिलाफ जहर उगलते रहे. वे इस बात पर जोर देते थे कि विश्व के यहूदी एक बड़े अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक षडयंत्र में शामिल है जिसका उद्देश्य दुनिया के गैर यहूदियों को लूटना है. ये यहूदी इंग्लैंड और अमरीका की सरकार चलाते हैं...

विश्व युद्ध की समाप्ति पर जब अमरीका में उन पर मुकद्दमा चलाया गया तब ये तमाम रेडियो प्रसारण अदालत के सम्मुख रखे गये. वे अंत तक इस बात पर अड़े रहे कि इटली की फासिस्ट सरकार वैचारिक स्वतंत्रता की हिमायती थी और सही अर्थों में एक प्रजातांत्रिक सरकार थी. मुसोलिनी प्रशासन ने कभी उन पर यह दबाव नहीं डाला कि वे उसकी इच्छानुसार भाषण करें. यह बात चौंकाने वाली थी. इटली से अमरीका लाये जाने से पहले इटली के अधिकारियों ने उनसे बेहद अमानवीय व्यवहार किया. पिंजड़े में बंद करके ऐसी जगह उन्हें रखा गया जहां सुरक्षा गार्ड ही उन पर नजर रख सकें. एजरा पाउंड ने अपने वकील कारनेल को यह सुझाव देकर चौंका दिया कि वह डाक्टरों की मदद से अदालत में उन्हें विक्षिप्त प्रमाणित करके रिहा करवा दे.

अक्तूबर 1945 में इस्तगासे के वकील ने एजरा पाउंड के खिलाफ अदालत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुकद्दमा दायर करते हुए कहा कि इस व्यक्ति ने अमरीका के शत्रु इटली के पक्ष में रेडियो प्रसारण करके युद्ध में अपने देश का मनोबल गिराते हुए देश द्रोही कृत्य किया है और इसके बदल खासी रकम हड़पी है. जवाब ने एजरा पाउंड के वकील ने उसके दोषी ने होने का दावा पेश किया. पाउंड को जेल से अस्पताल भेज दिया गया क्योंकि उसकी हालत काफी खराब हो चली थी. पाउंड के साथ हो रहे व्यवहार पर अमरीका और यरोप के हेमिंग्वे व इलियट जैसे अनेक महान साहित्कार उत्तेजित हो उठे. इन्होंने पाउंड के गुनाहों को नजरअंदाज करने का फैसला करते हुए उसे रिहा कराने का विश्वव्यापी अभियान छेड़ दिया. अदालत के चार मनोचिकित्सकों को यह इस काम के लिए नियुक्ति किया कि वे पाउंड की मानसिक हालत का जायजा लें. मनोचिकित्सकों ने पाउंड को विक्षिप्त घोषित कर दिया. सरकारी वकील ने इसका विरोध करते हुए जिरह किये जाने की बात उठायी. सहसा पाउंड ने बहस के दौरान यह घोषित कर दिया कि उनका जीवन में यह मिशन रहा है कि वे अमरीका की शत्रुओं से रक्षा कर सकें. वकील ने इस आधार पर अदालत ने उनकी रिहायी की मांग की. धीरे-धीरे पाउंड के पक्ष में माहौल तैयार होने लगा.

पाउंड विरोधी और दक्षिणपंथी पत्रिका 'लाइफ' ने भी पाउंड पर मुकद्दमा जारी रखने के लिए सरकार की आलोचना की. मुकद्दमे के बाद पाउंड बारह साल तक सैंट एलिजाबेथ अस्पताल में रहे जो जेल से कम नहीं था. मुसीबत के दिनों में रौबर्ट फ्रास्ट ने पाउंड की सबसे ज्यादा मदद की. अंततः सन् 1958 में पाउंड के खिलाफ केस खारिज कर दिया गया. पाउंड समर्थकों का यह मानना था कि पाउंड न सिर्फ मुकद्दमे के दौरान विक्षिप्त था बल्कि वह इटली से प्रसारण प्रारंभ करने के पहले से ही इस अवस्था में था. परिणामतः पाउंड को कोई सजा नहीं मिली.

सुकरात : सत्य की खोज

सुकरात पर चलाये गये मुकद्दमो के बारे में जैनोफोन जैसे उनके शिष्य ने प्रामाणिक लेखन किया है. जैनाफोन सैनिक अधिकारी थे. और सुकरात के बहुत नजकीद भी. उनके अनुसार सुकरात प्रायः इस जोड़-तोड़ में लगे रहते थे कि शासन के ऊंचे पदों पर किस तरह अपने विश्वासपात्रों को बिठा दिया जाये. प्लेटो ने भी इस बात की पुष्टि की है. जाहिर था, ऐसे सत्ता के करीबी लोग सुकरात के दुश्मन बन जाते. ऐथेंस के कुख्यात 'तीन आततायों' से सुकरात की दुश्मनी इसी तरह की थी. इनका नेता कभी सुकरात का शिष्य रहा था. उसने सुकरात की जोड़तोड़वादी नीतियों और ऐथेंस के युवकों को पढ़ाने पर रोक लगा दी. किंतु सुकरात कहां मानने वाले थे! लिहाजा उन पर मुकद्दमा दायर कर दिया गया. प्लेटो ने भी सुकरात के मुकद्दमों का विवरण 'एलोलोजी' में दिया है. यह विवरण इस रूप में अधिक प्रामाणिक है कि स्वयं प्लेटो इस मुकद्दमे के दौरान अदालत में मौजूद थे.

इस मुकद्दमे के दौरान अदालत में मौजूद थे.

इस्तगासे के वकील ने सुकरात पर अनेक दुष्कर्मों व नवयुवकों को गुमराह करने के आरोप लगाये. भूमिगत और आसमानी चीजों की खोजबीन ही नहीं बुरी चीजों को अच्छी और अच्छी चीजों को बुरी साबित करते हुए अपरिपक्व लोगों को चौपट करने के भी आरोप सुकरात पर लगे. किंतु असली कारण था. तत्कालीन सत्ताधारी दल के विरोधी अभिजातवर्गीय दल से निकट का संबंध होना सुकरात के आरोपियों में एनिट्स, मैलिटस और त्वाइकॉन प्रमुख थे. मैलिटस के आरोपों का जवाब देते हुए सुकरात ने कहा यदि यह सच है कि मैं एथेंस के युवकों को गुमराह कर रहा हूं तो क्या मैं इतना मूर्ख हूं कि यह भी न समझ सकूं कि ये लोग एक दिन मुझे भी क्षति पहुंचा सकते हैं. वाक्पटु और बहुत अधिक भाषण देने के आरोप भी सुकरात पर लगाये गये. पर इनके जवाब में उनका कहना था कि वह अपने भाषणों में सत्य बोलता है. धनी परिवारों के युवकों को मैंने तमाम अच्छी बातें सिखायी हैं पर चूंकि इनके पास करने को और कोई काम नहीं है महज़ इसीलिए वे दूसरों की खाल उधाड़ते फिरते हैं. और इससे मेरी बदनामी होती है." सुकरात ने अपने जजों से कहा कि यदि वे उसे मत्युदंड देंगे तो यह सुकरात का कम और स्वयं उनका नुकसान अधिक होग्ग. जाहिर है कि एक घटिया आदमी बेहतर आदमी को नुकसान पहुंचा नहीं सकता;" मैं अपने बचाव में जो दलील दे रहा हूं वह दरअसल आरोपियों की भलाई के लिए ही है क्योंकि यदि मुझे मृत्युदंड या देश निकाल दिया गया या किसी तरह के नागरिक अधिकारों से वंचित किया गया तो यह आरोपियों के ही विरोध में होगा. और वे एक तरह से मुसीबत में पड़ जायेंगे." सुकरात ने कहा कि अगर यह सच है कि मैंने अपने शिष्यों को भ्रष्ट कर दिया है कि यह कहां तब ठीक है कि ऐसे लोग मुझ पर मुकद्दमा चलायें!

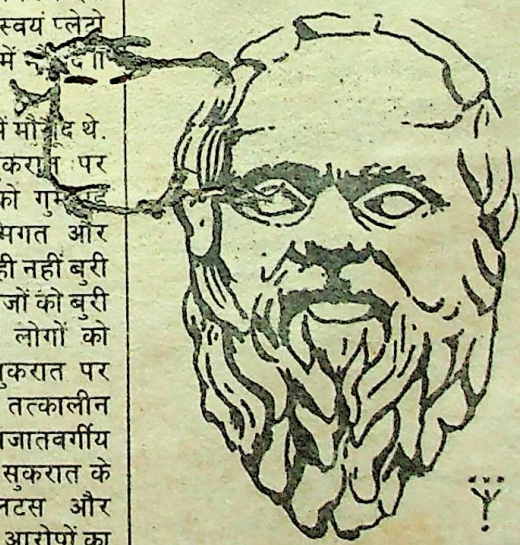

आखिरकार जब सुकरात को मृत्यु दंड दे ही दिया गया तो उसने अदालत से कहा, "अब मैं मरने जा रहा हूं और मरते वक्त आदमी की जवान पर सरस्वती विराजती है. अतः अब जो मैं कहूंगा वह सच साबित होगा. मैं कहता हूं कि आप मेरे हत्यारे हैं और मेरे मरने के बाद मुझसे भी ज्यादा भयानक सजा भुगतेंगे." उसने न्यायाधीशों को संबोधित किया, "मुझे मृत्यु से भय नहीं है. मृत्यु या तो स्वप्न विहीन निद्रा है या मृतक की आत्मा दूसरे लोक में चली जाती है. दोनों हालतों में मरने से आदमी को कोई तकलीफ नहीं होती. दूसरे लोक में वह उन लोगों से मिलेंगे जिन्हें ठीक उसी की तरह अन्यायपूर्वक मौत के घाट उतारा गया था. वहां भी वह सत्य की खोज जारी रख सकेगा.

सुकरात को जहर देकर मारा गया. इससे पहले उसके कुछ शिष्यों ने उसे जेल से भगा ले जाने की योजना भी बनायी थी किंतु सुकरात ने इस प्रस्ताव को अनैतिक और गैरकानूनी कहकर अस्वीकार कर दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल चतुर्वेदी

सरकार और 'साकर' दृष्टिकोण

एक हफ्ते के इंतजार के बाद मुझे वर्मा साहब के दर्शन का सौभाग्य मिला. उनके पी.ए. ने मुझे बधाई देते हुए सूचना दी, "आप तकदीर वाले हैं. साहब के पास दम मारने को फुर्सत नहीं है. मैंने तो एक मंत्रीजी के निजी स्टाफ में भी काम किया है. इतने मिलने वाले तो वहां भी नहीं आते." वर्मा साहब अभी दो 'एक्सटेंशन' पाकर रिटायर हुए थे और उसी मंत्रालय में सलाहकार बन गये थे.

"कहिये." उन्होंने मुझे कुर्सी पर बैठने का इशारा किया.

"सर! मैं आपके मित्र सक्सेना जी का भतीजा हूं." उन्होंने 'हूं' कह कर गर्दन हिलायी. "कैसे आये," उन्होंने जानना चाहा. "आप तो सरकार के बारे में ज्ञान की खान हैं. अपनी दस साल की नौकरी हो गई है. सारे साथी प्रमोशन पा गये. वह भी जो दफ्तर में सिर्फ मक्खी मारते हैं. जाने क्यों मैं हर मौका चूक जाता हूं. सक्सेना ताऊजी ने कहा कि आपसे सलाह ली जाये," मैंने निजी रोना रोया. "आप दफ्तर में मेहनत से काम करते हैं?" वर्मा सर ने सवाल किया. मैंने हामी भरी. "फिर आपका प्रमोशन क्यों हो! जाहिर है कि आप बिना पदोन्नति की स्थिति की स्थिति से संतुष्ट हैं. सरकार क्यों आप पर अधिक पैसा खर्च करे!" उन्होंने हमें पाठ पढ़ाया. हमसे उनसे अपील की कि हमें इस अंधेरे से उबारें. वर्मा सर का अगला प्रश्न था, "आप अपने साहब के यहां आते-जाते हैं?" "सर! रोज दस घंटे दफ्तर आने-जाने और काम करने में निकल जाते हैं. फिर घर के राशन-पानी और बच्चों की पढ़ाई में वक्त लग जाता है. मेहमानों की खातिर-तवज्जो अलग. दोस्त-रिश्तेदारों से महीनों मुलाकात नहीं होती. कैसे जायें साहब के घर." हमने अपनी विवशता बयान की.

"सर' ने निर्णय सुनाया कि हम उल्टी गंगा बहा रहे हैं. साहब को सलामी अनिवार्य है जबकि सरकारी काम ऐच्छिक है, "आप पी-एच.डी. तकनीक प्रामेशन के लिये लगाइये." उन्होंने आदेश दिया. हमें अपने अज्ञान पर तरस आया. यहां एम.ए. के बाद सिर्फ बच्चों की पढ़ाई से ताल्लुक रहा है. और यह पी.एच.डी. की बात कर रहे हैं. वह भी किसी तकनीक की. मैंने याददाश्त पर जोर डाला कि इस पहेली का कोई हल निकले. पर इधर "मैनेजमेंट' के इतने नये विदेशी शब्द चल निकले हैं कि अपने पल्ले कुछ नहीं पड़ा. "सर! आपकी पैठ तो हर क्षेत्र में है. यह पी-एच.डी. तकनीक क्या बला है?" मैंने झख मारकर घुटने टेक दिये. वर्मा सर ने ज्ञान दिया कि शोध और सेवा में मकड़ी और जाले, तोप और गोले अथवा सब्जी और झोले जैसा जन्म-जन्मांतर का साथ है. जो साहसी शोध की लादी अपने कंधे पर लादता है,

> उसूलों पर चलने का उपदेश देने वाले ही यदि चाकर धर्म निभाने से चूक जाएं तो बताइए भला उनका हश्र क्या होगा?

उसे सेवा का भार भी वहन करना पड़ता है. गुरु की चरणसेवा, उनके बच्चों की टाफी या रुचि के अनुसार मिठाई सेवा, गुरुआइन की आज्ञा पर छुटपुट बाजार-सेवा और शोध से पी-एच.डी. ऊंचाई पाने की अनिवार्य सीढ़ियां हैं. यों इसके बड़े फायदे हैं. मन में सेवा की भावना जगती है. मुल्क और सोसाइटी की खिदमत करने-कराने का रिहर्सल होता है. 'छड़ों' का पारिवारिक जीवन की जिम्मेदारियों में गृह-प्रवेश हो जाता है. "उजड़ों' याने शादीशुदा लोगों की नियमित प्रैक्टिस होती है. इसीलिये पी-एच.डी. की डिग्री पाये व्यक्ति सफल, कामकाजी और उपयोगी पति साबित होते हैं. "मैं इसी पी-एच.डी. तकनीक का जिक्र कर रहा था. आप भी इसे अपनाइये." सर ने अपनी वार्ता समाप्त की.

"आप किसकी नौकरी करते हैं?" उन्होंने यकायक पूछा. "भारत सरकार की." मैंने हड़बड़ाकर उत्तर दिया. "गांठ की अक्ल गंवा कर आप नौकरी में आये थे." वह गुस्सा हुये. फिर उन्होंने मुझे समझाया कि वह सिर्फ अपने मित्र सक्सेना का लिहाजा कर अपना कीमती वक्त जाया कर रहे हैं. सरकार एक सागर है. इसमें मगरमच्छ रहते हैं, छोटी-मोटी मछलियां भी और विभिन्न कीड़े-मकोड़े भी. समुंदर-वासी को अपनी हैसियत पहचाननी चाहिए. कि आप सरकार हैं. यह भ्रम आप जनता में उत्पन्न कीजिये. जहां तक दफ्तर का सवाल है, आप अफसर के प्रति चाकर भाव रखें. आपने सुना नहीं है कि पानी में रहकर मगर से बैर नहीं करते." उन्होंने गुरु ज्ञान आगे बढ़ाया.

"सर! चाकर भाव क्या होता है." मैंने गुस्ताखी की. उन्होंने मुझे घूरा और शायद 'गैर-आउट' कर देते कि दरवाजे पर आहट हुई. एक सज्जन, एक अदद पैकट जुड़े हाथों के बीच दबाये, श्रद्धावश आधे झुके दाखिल हुये. मुझे सोफे पर शरण लेने का इशारा करते सर ने "आओ शुक्ला! क्या हाल है." कहते हुए आगंतुक का [illegible] किया.

"आपकी कृपा है." उत्तर आया. पैकेट मेज पर रखकर वह शुक्ला नामक व्यक्ति 'सर' की मेज के नीचे लपका और अंतर्धान हो गया. जब वह उजागर हुआ तो सर के हाथ सभय और आशीर्वाद की मुद्रा में उठे हुए थे. "सर! आपके दर्शन पा, चरणस्पर्श कर पुण्य कमाने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पाया, "मेज के नीचे से उभरते शुक्ला बोले. "इसकी क्या जरूरत थी." सर का स्वर गूंजा. वार्ता का विषय मेज पर पड़ा पैकेट था. "इस मंदिर में खाली हाथ कैसे आता." शुक्ला भक्त ने माला जपी. मैं वर्मा सर की दिव्यता का सोचने लगा. जब सलाहकार होने पर यह हाल है तो सचिव रहने पर तो इनका पूरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व ही देवत्व से ओतप्रोत रहा होगा.

इतने में शुक्ला-साक्षात्कार समाप्त कर सर ने 'आते रहा करो' का आमंत्रण दिया. भक्त शुक्ला ने अपने लायक 'सेवा' जानी चाही और वह 'सर' को बिना पीठ दिखाये आधे झुके सरकते हुये दरवाजे से बाहर हो लिए.

मैं फिर सोफे से उनकी मेज के सामने वाली कुर्सी पर 'प्रमोट' हो गया. "ऐसा होता है सफल सरकारी नौकर. हाल-फिलहाल तो छोटी मछली है. जरूर एक दिन मगर बनेगा." सर ने शुक्ला की तारीफ की. "मैं समझा नहीं सर!" मैंने सच बोला. वर्मा सर के चेहरे पर झुंझलाहट के भाव आये. उन्होंने धैर्य से काम लेकर मुझे समझाया कि शुक्ला अभी अंडर-सैक्रेट्री हैं. अपनी काबलियत से अवश्य सैक्रट्री बनेगा. "उनके आने के पहले आप कोई शंका प्रगट कर रहे थे?" वर्मा सर ने शुक्ला-प्रकरण समाप्त किया. मैंने उनकी स्मृति को सराहा और चाकर भाव के विषय में जिज्ञासा प्रगट की.

उन्होंने तत्काल मेरी क्लास शुरू कर दी, "अभी आपने शुक्ला को देखा. उसका आचार-व्यवहार कितना मधुर है. बिना मिठाई के आता नहीं है. घर पर अचार अलग-दे जाता है. पैर छूकर बड़ों का आदर करता है. सही मायने में शुक्ला चाकर भाव का आदर्श उदाहरण है और आप सरकारी नौकर कैसा नहीं होना चाहिए इसके साक्षात प्रमाण हैं." अपने बारे में उनकी गिरी राय से मैं सहम गया. वह मुस्कराये, "आप घंटे भर से मेरा सिर खा रहे हैं. शुक्ला आया, मिठाई दी और चला गया. आप हैं कि बस जम गये हैं!" – मेरी उड़ी रंगत को देखकर उन्होंने प्रमोशन-पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाया.

सरकारी दफ्तरों में 'नाकर' स्थाई स्थिति है. इस उसूल के पालन से कर्मचारियों और अधिकारियों की मानसिक और शारीरिक सेहत चुस्त-दुरूस्त रहती है. कार्यालय के खुशनुमा मुगल गार्डन में लोग अनवरत टहलते-घूमते रहते हैं. 'नाकर' का सीधा-सादा अर्थ है, कुछ न कर. पर 'नाकर' के दर्शन में चाकर भाव का सम्मिलन उपयोगी सिद्ध होता है. ऐसे गाहे-बगाहे जैसे संसद के अधिवेशन के दौरान या महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रोत्तर में 'नाकर' की नींद में खोये कुंभकर्ण को 'साकर' का सहारा लेना पड़ जाता है.

वर्मा सर के अनुसार 'साकर' शब्द में उनके ज्ञान और अनुभव का निचोड़ निहित है. जो स्थान हिंदी फिल्मों में 'हिंसा' और रूप का है, वही सरकार में 'यस' और 'सर' का. 'साकर' का अर्थ है, अपने से बड़े कुर्सीधारी को 'सर' करना'. इसके मूल में यह विचार है कि 'वह कर जो सर कहें.' साकर दृष्टिकोण वाला व्यक्ति अपने अधिकारी से सिर्फ "यस सर" कहेगा. कभी-कभी इस चक्कर में काम भी करना पड़ जाता है. पर उसके भी लाभ हैं. साकर-पंथी सरकारी खर्चे पर देशाटन करते हैं. अच्छी 'रिपोर्ट' पाते हैं. दूसरों को लांघकर प्रमोशन कमाते हैं. वर्मा सर के अनुसार 'चाकर', 'नाकर' और 'साकर' पंथ ही प्रमोशन की मंजिल तक ले जाते हैं. किसका कब कहां और कैसे इस्तेमाल करें, यह अनुभव की परिपक्वता पर निर्भर है. इसीलिये सरकार में पदोन्नति वरीयता अर्थात् उम्र की धूप में बाल पकाने पर होती है.

मैं जब वर्मा सर के सत्संग से लौटा तो मुझे अपने निरे मूर्ख होने कर प्रबल एहसास हो चुका था. उनकी राय मानकर मैंने दफ्तर के समय में घर का रसद-सामान साग-सब्जी लाना शुरू कर दिया. साथ ही अपने सैक्शन अफसर का भी. शुरू-शुरू में थोड़ी आत्मग्लानि हुई. फिर धीरे-धीरे अपनी जिंदगी 'नाकर' दर्शन के ढर्रे पर आ गयी. अब मैं जब भी "साकर" दृष्टिकोण अपनाता तो अनुभाग-अधिकारी गदगद हो धन्यवाद देते. वर्ना पहले अपनी कार्यकुशलता पर कोई ध्यान नहीं देता था.

मैं स्वयं जाकर वर्मा सर के प्रति आभार प्रकट करने का सोचा. उन्हीं के उपदेश और प्रवचन से अपने जीवन में 'नाकर' क्रांति आयी थी. मैंने एक ठेकेदार से मिठाई को डिब्बा मंगवाया. उनसे दफ्तर में मुलाकात का समय लिया. वहां पहुंचा तो पी.ए. गायब थे. न कोई भीड़भड़ थी न पुरानी टीम-टाम. कमरे के सामने स्टूल पर बैठे बीड़ी पीते चपरासी का न होना काली बिल्ली के रास्ता काटने ऐसा अपशकुन था. हम श्रीमान् अर्जुन सिंह होते तो शर्तिया इसकी कोई काट करते पर वह न होने के कारण हमने कमरे के अंदर झांका. 'सर' को अकेला पाकर हम शुक्ला स्टाइल में मिठाई थामे और आधे झुके कमरे में प्रविष्ट हुए. पर मेज के नीचे झुक चरणस्पर्श न कर पाये. वर्मा सर उठ चुके थे. हमने मिठाई का डिब्बा उन्हें भेंट किया. वह डिब्बा लेकर बिना कुछ बोले बाहर चले गये.

मैं फिर पी.ए. के पास गया. वह मौजूद था, "साहब आज जल्दी चले गये." मैंने जानना चाहा. "जल्दी, देरी क्या. अब हमेशा के लिये चले गये." उसने प्रफुल्लित स्वर में सूचित किया. "क्यों?" मैंने प्रश्न किया. "सुना है, मंत्री जी से खट-पट हो गई", वह बोला. मुझे लगा कि देश की यही सबसे बड़ी दिक्कत है. बड़े लोगों की कथनी और करनी में कितना अंतर है. उसूल सब झाड़ते हैं, कोई उन पर अमल नहीं करता. मुझे सर ने लैक्चर दिया और स्वयं चाकर धर्म न निभाने से चल बसे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अपार्थ' जैसे उपन्यास और 'पहचान' जैसे कहानी-संग्रह की चर्चित लेखिका.
संपर्क: डी-38, प्रेस एन्क्लेव, साकेत नई दिल्ली-17

कमल कुमार

आखेट

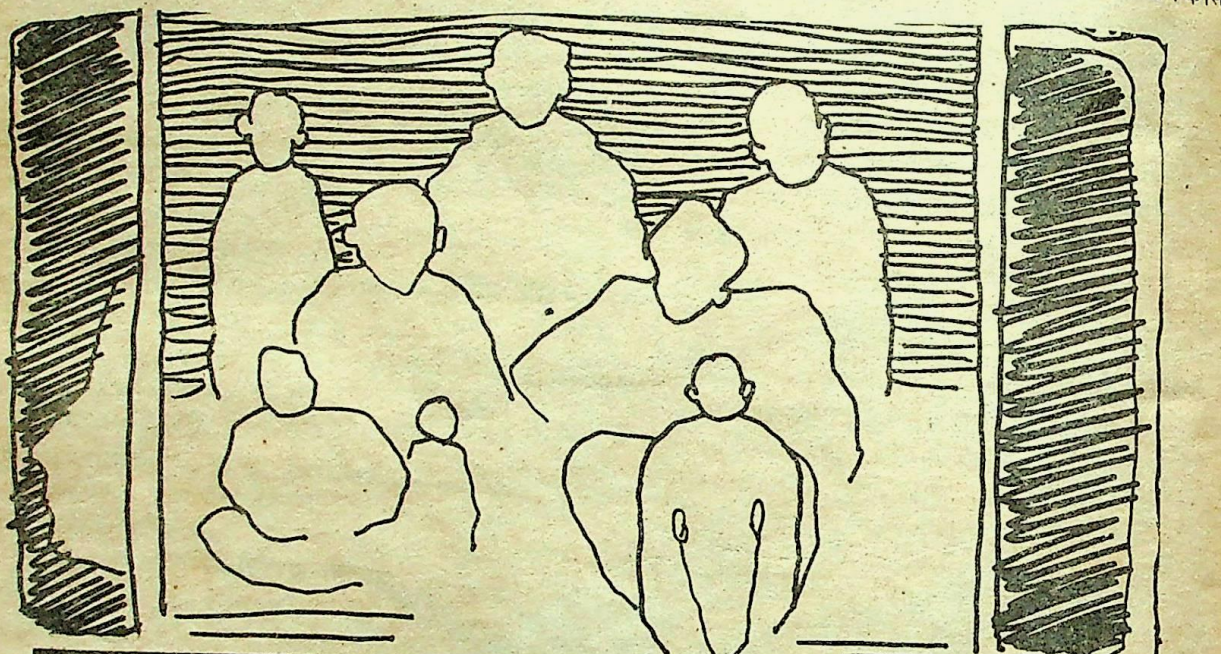

जिंदगी की पहेली भी सुलझा सका है भला कोई! आदमी सोचता कुछ है और होता कुछ और ही है... जैसे वह कोई शिकार हो और हालात शिकारी...

दो हजार के एरियर निकले थे. इतनी बड़ी रकम हाथ में लेते छाती धड़की... ज़रा-सी उंगलियां भी थरथरायीं... फिर झट से लिफाफा उसने जेब में ठूंस लिया. तनख्वाह अलग थी. वह सोच में डूबा रहा... क्या सारे रुपये एक साथ लेकर बस के भीड़-भड़ाके में जाना ठीक रहेगा... अगर कहीं भगवान न करे... जेब कट गयी... उसने अपनी जीभ काट ली... क्यों ऐसी अशुभ बात उसके मन में आयी. सोचा उसने, 'तनख्वाह के पैसे कल ले जाऊंगा... आज यहीं दफ्तर में छोड़ता जाऊं... पर एक साथ तीन हज़ार रूपये पास होने का नशा-सा छाया... जिसे वह तोड़ना नहीं चाहता था. उसने दोनों लिफाफे दो अलग अलग जेबों में रखे—और बटन बंद कर लिये... कुछ छुटटा हाथ में ही रहने दिया... बस के भाड़े के वास्ते. फिर उसने निश्चय बदला वह आज बस से नहीं जायेगा... वह स्कूटर से जायेगा. अगर कहीं स्कूटर वाला ही चाकू के नोक पर...छी:! क्या सोचने लगा वह! लेकिन यह तो महानगर है—ऐसी घटनाएं कोई अनहोनी तो नहीं... रोजमर्रा की बात है. स्कूटर से घर तक चार रुपये लेगेंगे... बेकार. वह आधा रास्ता पैदल चलेगा... आधे में स्कूटर लेकर घर पहुंचेगा. नहीं, वह यहां स्कूटर लेकर मंडी तक जायेगा, वहां पैदल घर. नाहक पत्नी स्कूटर से जाने पर सौ तरह के सवाल पूछेगी.... रुपयों की हवा से ही उसके नथुने फड़कने लगते हैं.

घर पहुंचकर वह अधिक से अधिक सामान्य दीखने की कोशिश करने लगा था. हमेशा की तरह तनख्वाह के आधे पैसे पत्नी को थमाये घर के खर्चे के लिए.... आधे मकान की किश्त, बिजली पानी के बिल, बच्चों की फीस व अपने जेब खर्च के लिए अपने पास रख लिए. दूसरा लिफाफा बड़ी संभालकर अपने ट्रंक में अखबार के नीचे खिसका दिया. अभी इसे कुछ भी बताने की जरूरत नहीं. पैसों को सूंघते ही शुरू हो जायेगी... चूल्हे चौके की जरूरत से दरी विस्तार तक की जरूरतों के लिए... बसों में सफर करना लानत है. उसने पहले ही फैसला कर लिया था अब की वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने लिए स्कूटर खरीदेगा... कई पुराने स्कूटर देख भी चुका था. जब से उसे पता चला था, एरियर मिलने वाला है, कई दोस्तों को भी कह रखा था. गुप्ता के पास वह अभी जायेगा... सौदा घट गया तो ले लेगा... देखने चलने में स्कूटर ठीक लगा था. बाकी मैकेनिक को दिखायेगा... रोज की चक-चक से छुटटी. वक्त बरबाद करो... और अब तो पैसा भी बर्बाद करो. बसों में जाना कौन-सा सस्ता रहा अब. एक रूपये से कम का टिकट ही नहीं. कोई कब तक इतंजार करे चालीस पैसे वाली बस का. आ भी जाये तो कुत्ते-बिल्लियों की तरह ऐसे झपटते हैं... न दायें देखते हैं न बायें... धक्का-मुक्की कर-कराके उतरो तो हुलिया ऐसा जैसे कोई कब्र से उठकर आ रहे हों. स्कूटर ही लेगा वह.

वह धोती के पल्लू से गर्दन पोंछती आ गयी थी.

"इस पंखे की तो हवा ही नहीं लगती जी... ज्वा तक हवा छुए... इसकी गर्दन दूसरी तरफ मुड़ जाती है. कब से स्विच खराब हुआ पड़ा है... ठीक कराओ भी तो फिर खराब हो जाता है... इस बार छत्त का पंखा ही ले लो."

"कूलर न ले लें." उसके भीतर हुमक उठी.

"हाय जी... मेरे जी की बात की आपने... देखो तो कितनों के कूलर लगवा लिये... तुम्हारे ही तो दफ्तर में काम करते हैं वे भी. वे घर भी तो ऐसे ही हैं... जैसे जानवरों के लिए बाड़ा. न कोई आंगन... न अगाड़ा, न पिछवाड़ा... दो कमरे बिल्ला-बित्ता भर के. इसमें तो अपना गांव सौ अच्छा था. हवा पानी को तो नहीं तरसना पड़ता था. सूखा मिस्सा अन्न भी मिलता ही था. साक-सब्जी घर की होती थी. नाहक खेती छोड़... नौकरी में पड़ गये..."

"बस-बस... बहुत बड़-बड़ न कर. सिर पर छत्त है न. शुक्र कर भगवान का. कभी घर से बाहर निकलकर देख तो आटे दाल का भाव मालूम पड़े... इसका ही किराया अब पांच सौ से कम नहीं है. तुझे गांव जाना है तो जा. बच्चों की पढ़ाई लिखाई का भी सोचा है या तेरे बाप-दादों की तरह मुह-सवेरे से शाम तक हुल्लारे हर्रा चिल्लाते ढोर की तरह जिंदगी ढोते रहते... कभी सूखा... कभी बाढ़... मुखमरी. यहां शहर में कंछ पढ़ लिख जायेंगे तो आदमी बन जायेंगे.... जाहिल कहीं की."

"मैं तो जी बस यूं ही कह रही थी कि कूलर लग जाता तो सारा घर ठंडा हो जाता... छोटा बार-बार हड़बड़ा कर उठता है. भटटी सा तपता है दोपहर में घर. पाती ऐसे पीने पर पेट फूलने लगता है—घर प्यास ही नहीं बुझती."

बात उसकी ठीक थी. कूलर खरीदने की बात सोची थी... पर फिर लगा जैसे तैसे एक डेढ़ महीने की गर्मी और रह गयी... उसके लिए दो हजार रुपये काठ मार लो कोई अकलमंदी नहीं. बरसात आते ही बेकार हो जायेगा. सारा साल यूं ही पड़ा रहेगा.

उसने धोती उतारकर पलंग पर रख दी थी. दोनों हाथ पीठ के पीछे ले जाकर ब्लाउज के बटन खोलती जा रही थी. उसने देखा उसकी बगलों में दोनों तरफ मांस की थैलियां सी लटक गयी थीं. छोटे के जन्म के बाद वह थुलथुला गयी थी. बार-बार हाथ जाता पर जोर नहीं पड़ता था. ब्लाउज पसीने से बदन से चिपका पड़ा था.

"लाओ खोल दूं." तुम आगे बटन वाला ब्लाउज पहना करो न."

"हां - तो - आजकल आगे बटन वाले ही सिलती हूं.. यह तो पुराना वाला है—सोचा घर में चला दूं."

"रुको इसे भी खोलता हूं... जरा सांस लो," उसकी अंगिया धुल-धुल कर पीली हो गयी थी—मोटे कपड़े की घर की सिली गंधती अंगिया, हाथ से पकड़ते ही उबकाई सी महसूस हुई. बाजार में आते-जाते रंग-बिरंगी जालीदार लटकी अंगियों को देखकर कई बार उसका मन हुआ वह उसके लिए खरीद ले चलें. पर यही सोचकर रुक जाता था कि वह तो अच्छे-बनियान से लेकर कमीज-पैंट-ब्लाउज सब घर पर ही सिलती है. ये भी गया तो रूआब झाड़ेगी..." बरबाद कर दिए छह रुपये! इतने में तो चंदर की कमीज का कपड़ा आ जाता!"

"तुम बाजार से क्यों नहीं ले आती सिली-सिलाई..."

"हां, अब की लाऊंगी... पटरी बाजार लगेगा वृहस्पति को. अब तो घर में सिलने का भी फायदा नहीं रहा. यू भी वक्त नहीं मिलता. छोटा कुछ करने ही नहीं देता..."

उसकी छाती में पहले सा कसाव अब नहीं रहा था. पर छोटे के दूध पीने से भरी होने के कारण... तनी रहती... उसने चोंचूं उंगली से मसल दिये... वह चिहुकी.

"क्यों—अच्छा लगता है न!"

"हिश..." उसने उंगली होंठों पर रखी तो नाक में मिटटी के तेल का भभका पड़ा.

"तुमने हाथ क्यों नहीं धोये! देखों कैसे गंधा रहे हैं मिटटी के तेल से."

"तो क्या करूं जी, स्टोव की बत्तियां उकसा-उकसाकर थक जाती हूं. दूसरा है, उसका बाशर ठीक कराओ तो पंप खराब, पंप ठीक कराओ तो बर्नर खराब... अब की तो बस तुम गैस का चूल्हा ला दो...."

औरत ललसाई होती है... तो पिघलती है.

"सच, ला दोगे न!" वह अपनी उंगलियां उसकी उंगलियों में फंसाकर उसके गले से झूल गयी... उंगलियों के नाखून पिस गये थे... हथेलियां खुरदरी थीं... रेगमार्क सी... कैसी मख्मली सी देह थी इसकी जब ब्याह कर आयी थी. लहकती, फूलों लदी डाल सी. और अब... जी भर आया उसका... कितना खटती है... बेचारी दिन-रात इस गृहस्थी के लिए. हो न हो, इस बार वह गैस का चूल्हा ही ला दूंगा. कई दिनों तक बाजार में दुकानों पर डौलता रहा... तरह-तरह के चूल्हे देखे बदले जमाने के मुताबिक नयी तरह के.... अरामदायक. खट से स्विच घुमाया... दिया सलाई दिखते ही गैस की अंगीठी तैयार... जो चाहे पकाओ.... न धुआं न कोयले से हाथ-मुंह काले. जरूर ला देगा वह.

पप्पू रोता कलपता भीतर घुसा तो उसने बढ़कर दो-चार थप्पड़ और जड़ दिये... बीच में पड़कर किसी तरह पप्पू को छुड़ाया... लेकिन उसका गुस्सा कम ही नहीं हो रहा था.

"इस मुए को कितनी बार कहा न जाया कर लोगों के घर में. फिल्म देखने... लेकिन यह मानता ही नहीं. अगर फ़िल्म नहीं देखेगा तो क्या मर जायेगा! दूसरों के यच्हां जाकर अपनी बेइज्जती करवाता है. अब जाना तू वहां... तेरी टांगें न तोड़ी तो!" वह दांत पीसती अंदर चली गयी थी. पप्पू को प्यार से बहलाता रहा. ब सुबक रहा था... "पापा. हमें भी टी.वी. ला दो... हम भी फिल्म देखेंगे." पप्पू की मासूम आवाज भीतर तक कोंध गयी. ठीक हो तो कहता है पप्पू... सभी के घर में टी.वी. है. वह भी टी.वी. ला देगा. बच्चों का मन बहलेगा... पत्नी भी फुरसत में आराम से बैठकर फिल्म देखेगी. वह जानता था, उसे फिल्म देखने का कितना शौक है... फिल्म की कहो तो सारे काम छोड़कर तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायेगी. लेकिन अपनी नाक नीची कर किसी के घर देखने कभी नहीं जाती. टी.वी. ही ला देगा.

कई दिनों तक वह दूकानों पर तरह-तरह के टी.वी. देखता. रहा... कीमतें पूछता. कीमतों तक एक-दूसरे से मिलान करता रहा. अलग-अलग कंपनियों के टी.वी. के गुण-दोषों पर चर्चा करता रहा. गोया के चार-छह रोज में ही सभी तरह के टी.वी. सेट से पूरी तरह बाकिफ हो गया था... एक निपुण सैलसमैन की तरह. घंटों बात कर सकता था. फिर उसने सोचा था, बेकार टी.वी. खरीदना. आंखों को नुकसान पहुंचता है. बच्चों की पढ़ाई का हर्जा होगा वह अलग. कचरा फिल्में देखकर बच्चों पर जो बुरा प्रभाव पड़ेगा वह अलग. पहले ही चंदर हाथ से निकला जा रहा है... कालेज जाने के नाम पर आवारागर्दी. इन फिल्मों ने तो देश पर बेड़ागर्क कर दिया... वह हमेशा सोचता. अब घर में टी.वी. लाकर इन्हीं ग़ैरत फिल्मों को बच्चों को देखने दें...

उसे पहाड़ देखने का कितना शौक है. ऊंचे-ऊंचे बर्फ से लदे पहाड़ों की कल्पना ही उसके दिलो-दिमाग को हिलोर देती है. पूजाघर में रखी भगवान शिव-पार्वती की तस्वीर के पीछे दिखने वाले पहाड़ों को देख... कैसा-कैसा होने लगता है उसका जी... अमरनाथ जाने की कितनी लालसा है उसके दिल में. वैसे भी सभी भले लोग-गर्मी गुज़ारने या सर्दी में बर्फ देखने झट से पहाड़ों पर पहुंच जाते हैं... खाते-पीते हैं-घूमते हैं... आराम फरमाते हैं... फिर लौटकर वहां के किस्से सुनाते हैं. ज़िंदगी में अनुभव...और अनुभवों की यादें कितनी महत्वपूर्ण होती है. आदमी का सब कुछ चूक जाता है तो भी ये यादें ही तो साथ रहती हैं. यहां सा...ला...घर से दफ्तर और दफ्तर से घर और घर से फिर दफ्तर.... बस! जिंदगी में इसके सिवा और कुछ है ही नहीं. अब की बार शिमले ही चला जाये. पर पत्नी का राजी होना आसान नहीं था. वह तो घर से बाहर एक प्याला काफी तक का नहीं पीती. "इतने पैसों में तो पूरी शीशी आयेगी काफी की... पूरा महीना चलेगी." उसे कैसे समझाया जाये कि रेस्तरां में पैसे सिर्फ काफी के नहीं होते... उस वातावरण के होते हैं... जिसमें आदमी दो पल बैठकर सुकून पाता है... पर उसके दिमाग में कितना ठोको, ये बात नहीं आयेगी. उसकी दलीलें ऊकाट्य होती हैं. वह कोशिश करेगा... फिर ध्यान आया, जायेगा. तो वहां पहनेगा क्या... ! कब से वही दो स्वेटर, एक पूरी बांह और एक बांह बगैर, चले आ रहे हैं... वही पुराना कोट... यहां तो जैसे-तैसे चल जाता है—पर वहां तो ठंड भी काफी होगी. और वह... उस बेचारी का तो पूछो ही नहीं. "मैंने कौन-सा दफ्तर जाना है," कहकर अपनी जरूरतों को टालती चली जाती है... वह तो चला भी लें... उन्हीं से... लेकिन उसे तो गर्म जरूर कुछ चाहिए ही... और बच्चे... स्कूल यूनीफार्म के अलावा तो ढंग का एक भी कपड़ा नहीं. हफ्ते दस दिन में कितना पैसा फुक जावेगा... घर से बाहर तो सांस लेने को भी पैसा चाहिए... हालत फिर वहीं फंक की फंक.

न मन का खाया.. न मन का पहना.. वह जरूरत अपने और पत्नी के लिए नये कपड़े सिलवायेगा... घर, बच्चों के खर्चे, और दुनियादारी के बाद अपने तक तो बात पहुंचती ही नहीं... जिंदगी का पहनने, ओढ़ने, खाने का वक्त तो यूं ही मारा मारी में निकला जा रहा था... वह रोज बाजार में दूकानों पर कांच की बड़ी-बड़ी अलमारियों के सामने खड़ा होकर तरह-तरह के नये-नये डिजाइनों के कपड़े देखता... कितना क्रांतिकारी परिवर्तन आया है कपड़ों में. कितने ज्यादा और नये फैशन के कपड़े बनने लगे हैं... अपने मुल्क में... ये तो किसी भी बाहरी देश के कपड़ों के मुकाबले उन्नीस नहीं हैं. हां, कीमतें जरा ज्यादा जरूर हैं पर चीज तो अच्छी है... फिर अपने ही देश में बनी... कपड़े ही तो व्यक्तिगत का निर्धारण और व्यक्ति की हैसियत की पहचान कराते हैं... उस दिन, घर पर साहब... बनियान और जांघिये में कैसे चुगद दिख रहे थे... कोई सोच सकता है ये वही साहब है—जिन्हें दफ्तर में देख-सुनकर ही लोगों की हवा खुश्क हो जाती है.

चंदर अंदर आया तो मंद-मंद मुस्करा रहा था. उसे देखते ही पत्नी का पारा चढ़ जाता था. उसे उसकी हरकतें कतई पसंद नहीं थी. तंग मोहरी की बदन से सटी पैंट, छाती के बटन खुले, गर्दन तक लहरातें बाल, गले में बंधा रंगीन रूमाल और सिगरेट का धुंआ उड़ाता वह जब तब मां और भाइयों पर रूआब डालता-झगड़ता. कुछ भी कहने पर या तो कोई फरमाइश पूरी न होने पर तपाक से बंदूक दागता. "जब हमारी जरूरतें पूरी नहीं कर सकते थे. तो पैदा क्यों किया?"... वह अपनी धोती का पल्लू मुंह में ठूंस कर घंटों सिसकती थी. "अब कोई इस कोख से जने बेटे को बताये कि पैदा क्यों किया था. इसी दिन के लिए इसे पालपोसकर बड़ा किया था! अवपना तन मन काटकर कालेज में दाखिल किया था कि पढ़-लिखकर कुछ बनेगा... पर यह तो जोंक की तरह हमारा ही खून चूसने पर आमदा रहता है. नित नयी फरमाइश... कभी नये जमाने के जूते.. कभी कमीज... कभी पैंट... कभी सिनेमा... कभी होटल. जब घर के लोगों की जरूरतें तक पूरी नहीं होतीं तो इसे ये सब बातें सूझती हैं... कोई भी फरमाइश पूरी न होने पर वह गुर्राता... बार बार पैदा किये जाने की जुर्म की सजा सुनाता... फिर पैर पटकता हुआ घर से निकल जाता... उसे न बाप का डर था न मां की शर्म और न भाई बहिनों का लिहाज...

उस दिन वह घर पर आया तो उसके चेहरे पर एक कुठिल मुस्कान थी. उसके हाथ में एक बड़ा-सा पैकेट था जिसे खोलने व रस्सी काटने के लिए मां से कैंची मांग रहा था... उसने पैकेट खोला... रिकार्ड प्लेयर का स्विच लगाया. कोई अंग्रेजी नंबर था... वह और उसके हाथ आये दोनों उसकी धुन पर नाचने लगे...टांगे...बाहें... कूल्हे... हिला-हिलाकर. आवाज से पप्पू व छोटू भी कमरे में आ गये—जिन्हें उसने डांटकर भगा दिया था... गाने की रिद्म पर उनके अंग-अंग थिरक रहे थे. वह अंदर आया तो उसने एक पर्चा उसने हाथों में थमा दिया और बोला, "आपको दो हजार के ऐरियर मिले—हफ्ते से ज्याद हो गया—हवा तक नहीं लगायी पैसों को! ये रिकार्ड प्लेयर खरीदा है—"गुप्ता एलेक्ट्रानिक से—इसका बिल चुका देना...आज ही..." कहकर वे फिर थिरकने लगे थे. □

चलते-चलते

क्या आप किसी को पहली नजर देखकर ही प्यार करने लगी थीं?" किसी ने एक अभिनेत्री से पूछा.

"बेशक!" अभिनेत्री ने कहा, "और ऐसा सुअवसर मेरे जीवन में केवल एक ही बार आया था....जब मैंने पहली बार खुद को आइने में देखा था." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित जी आ गये

कितने हीले-हवाले करके तो विमला जी ने सहेली को राजी किया था... उन्हें क्या पता था कि पंडित जी के बताये ग्रहों की मार से भी ठीक उसी रोज बचा जा सकता है... हंसते-हंसाते अच्छी-खासी जिंदगी का हुलिया बदलती 'प्रहसन' की दूसरी किस्त-

कमला: फिर क्या फैसला हुआ, विमला?
विमला: किस बात का कमला?
कमला: अरे वही जो मैंने पहले पूछा था. तुम मेरे घर किस दिन खाना खाने आओगी?
विमला: छोड़ो भी. खाने के बगैर क्या अपनापन कम हो जाता है?
कमला: यही कहकर तुम पहले भी मुझे टाल चुकी हो. अबकी मैं नहीं मानूंगी.
विमला: टालती थोड़े ही हूं. हम तो इतनी अच्छी दोस्त हैं.
कमला: यह एकतरफा दोस्ती क्या हुई? मैं तुम्हारे पास कई बार खाना खा आयी हूं. तुम कभी नहीं आयी.
विमला: नहीं, ऐसा तो नहीं. एक बार तो आयी थी.
कमला: हां, हां, छह महीने पहले. वह तो अब तक पच गया होगा.
विमला: अच्छा बाबा, आ जाऊंगी. बताओ, कब आना होगा?
कमला: नेक काम में देर क्यों? इसी हफ्ते में आ जाओ ना.
विमला: इसी हफ्ते?
कमला: हां, हां, इसी हफ्ते. फिर मैं मैके जा रही हूं, एक महीने के लिए.
विमला: चलो, इसी हफ्ते सही.
कमला: कल के बारे में क्या खयाल है?
विमला: कल? कल क्या वार है?
कमला: मंगलवार.
विमला: ओफ्फोह! मंगलवार है? तब तो भई मुश्किल होगी. मेरा मंगलवार को व्रत होता है.
कमला: काहे का व्रत है?
विमला: वह क्या है कि विक्रम के मंगल पर राहू की दृष्टि है.
कमला: अच्छा?
विमला: हां. पंडितजी ने कहा है कि विक्रम की सेहत को खतरा है.
कमला: तो फिर?
विमला: फिर क्या? मैंने पंडितजी से उपाय पूछा.
कमला: क्या बोला पंडित?
विमला: बोले एक ही उपाय है. विक्रम को हर मंगलवार को व्रत रखना होगा.
कमला: चलो, यह तो उसने कह दिया. लेकिन तुम कहां से बीच में टपक पड़ीं?
विमला: भई, क्या है कि विक्रम तो बहुत बिजी रहते हैं ना? दफ्तर जाते हैं, पार्टियों में जाते हैं, दौरे पर जाते हैं. तो उनके लिए व्रत रखना मुश्किल था. इसलिए मैंने रख लिया.
कमला: पंडित ने इसकी इजाजत दे दी?
विमला: हां, दे दी. थोड़ी दक्षिणा बढ़ाकर देनी पड़ी.
कमला: यह नहीं सोचा तुमने कि ग्रह विक्रम के खराब हैं तो तुम्हारे मंगलवार के व्रत से उसका ग्रह कैसे शांत होगा?
विमला: तुम नहीं समझोगी.
कमला: क्या?
विमला: ये पुरानी रिवायती बातें हैं हमारे घर में यह रिवाज कई पीढ़ियों से चला आ रहा है. इसीलिए मैं मानती हूं. तुम नये फैशन की हो, नहीं समझोगी.
कमला: अच्छा भई मैं तो मूर्ख हूं. नहीं समझूंगी. तो फिर बुधवार को आ जाओ.
विमला: बुधवार को क्या तारीख है?
कमला: सत्ताईस है ना?
विमला: सत्ताईस तारीख है? फिर तो मैं आ जाऊंगी. कितने बजे आऊं?
कमला: यही कोई ग्यारह बजे आ जाना. बैठेंगे, गप्पें मारेंगे, फिर खाना भी खा लेंगे.
विमला: ओफ्फोह! सत्ताईस तारीख है? उस दिन तो भई मैं नहीं आ सकूंगी.
कमला: अब क्या हुआ?
विमला: मैं एक मिनट के लिए भूल गयी थी. उस दिन मैं खून देने अस्पताल जा रही हूं.
कमला: खून देने क्यों? वैसे ही शौकिया?
विमला: नहीं नहीं, शौकिया क्यों देने लगी? मेरे पास कौन-सा फालतू है देने के लिए!
कमला: तो फिर क्या वजह है?
विमला: विक्रम के पेट में अलसर हो गया था. एक-दो बार खून भी आया. मैं तो घबड़ा ही गयी थी.
कमला: डाक्टरों ने क्या कहा?
विमला: उन्होंने कहा सिगरेट छोड़ दो, शराब छोड़ दो, मीट छोड़ दो. मगर यह मानें तब ना?
कमला: नहीं छोड़ा विक्रम ने कुछ भी?
विमला: नहीं, ऐसा तो नहीं है. कुछ दिन के लिए छोड़ा था. मगर क्या है कि उनकी विलपॉवर कमजोर है. वह ज्यादा देर तक किसी बात पर ठहर नहीं पाते. फिर शुरू कर दी.
कमला: फिर क्या किया तुमने?
विमला: करना क्या था? मैंने पंडितजी से मश्वरा किया. बोले, मुझे साल में दो-तीन बार रक्तदान करना चाहिए. इससे विक्रम की समस्या हल हो जायेगी.
कमला: तो सत्ताईस को तुम खून देने जा रही हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला: हां, और उसके बाद ज्यादा हिलना-डुलना ठीक नहीं. आराम करना होता है.

कमला: तो सत्ताईस को भी तुम नहीं आ सकती? फिर उसके अगले दिन?

विमला: अगले दिन? यानि ब्रहस्पतिवार को? मुझे तो कोई एतराज नहीं है. मगर तुम सोच लो. ब्रहस्पतिवार को मैं पूरी तरह शाकाहारी हूं.

कमला: क्यों उस दिन क्या है?

विमला: अब तुमसे क्या छिपाना? पिछले छह माह से मैं बाबा को मानने लगी हूं. यहां पड़ोस में ही ब्रहस्पतिवार का भजन होता है. कहते हैं कि बाबा के भक्त उस दिन मीट नहीं खाते. इसलिए मैंने भी छोड़ दिया.

कमला: फिर तो वह दिन रहने दो. सौल में एक बार तो तुम्हें यहां आना है. उस दिन भी शाक-सब्जी देकर रवाना करूं, यह मुझसे नहीं होगा.

विमला: अष्टमी का व्रत किसी खास वजह से नहीं होता. वह तो पंडितजी ने कहा है ताकि परिवार के सब लोग राजी खुशी रहें.

कमला: तुम और तुम्हारे पंडितजी!

विमला: अरे, पंडितजी की इसमें क्या गलती है? वह बेचारे ये सारे उपाय हमारे लिए ही तो बताते हैं?

कमला: बाकई? विमला मुझे तुम पर दया आती है.

विमला: अच्छा, यह सब छोड़ो.

कमला: हां, छोड़ दिया. फिर शनिवार का पक्का रहा.

विमला: शनिवार? भई, अब तुम हंसोगी. शनिवार को मैं नहीं आ पाऊंगी.

कमला: क्यों, उस दिन क्या है?

विमला: यह मेरा टिटकू है ना? पिछली बार उसके नंबर कम आये थे. मैंने देवता को तेल दान करती हूं.

कमला: मगर नदी यहां कहां?

विमला: तभी तो मुझे शहर से काफी दूर बाहर जाना पड़ेगा. बड़े गांव के पास एक नाला-सा बहता है. आने-जाने में समय लगेगा.

कमला: अब रविवार को तो तुम आने से रहीं. न मैं ही कहूंगी.

विमला: हां, उस दिन विक्रम भी घर पर होंगे. उस दिन तो तुम्हारे साहब भी घर ही होंगे.

कमला: हां, सो तो है ही. छुट्टी का दिन जो ठहरा.

विमला: अच्छा, फिर सोमवार का बिल्कुल पक्का रहा. मैं ग्यारह-साढ़े ग्यारह तक आ जाऊंगी.

कमला: ठीक है, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी.

विमला: तो फिर शुक्रवार का रहा.

कमला: ठीक है.

विमला: एक सेकिंड, मैं ज़रा कैलेंडर देख लूं. कहीं उस दिन अष्टमी तो नहीं? भई कमला, आई एम सॉरी. शुक्रवार को तो अष्टमी है.

कमला: तो?

विमला: तो यह कि उस दिन मेरा व्रत है.

कमला: फिर व्रत है? अब किस बात का है?

पंडितजी को उसकी पत्री दिखायी तो बोले उस पर शनि की दृष्टि है.

कमला: यह तो बड़ा अनर्थ हुआ!

विमला: हां, हां, तुम तो बात को मजाक में टाल सकती हो. मानती नहीं हो ना? लेकिन मेरे लिए यह एक गंभीर समस्या थी.

कमला: फिर क्या उपाय निकाला पोंगाजी ने?

विमला: कमला, तुम उनका मजाक मत उड़ाओ. वह बहुत ज्ञानी हैं. उन्होंने कारगर उपाय बताया. अब मैं हर शनेवार को नदी में दस किलो कोयला बहाती हूं और काले पुल के नीचे बैठ शनि

(विक्रम का प्रवेश)

विक्रम: नमस्ते, कमला जी.

कमला: नमस्ते. अच्छा, मैं चलती हूं.

विक्रम: अरे, हम आये और आप चल दीं.

कमला: नहीं, भाई साहब. चलती हूं. बहुत देर से बैठी थी.

विक्रम: अच्छा, कमला. सी यू. बाई बाई....

(कमला का प्रस्थान)

विक्रम: ओह... ओह...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला: क्या हुआ, जी? क्या हुआ?
विक्रम: पता नहीं, क्या हुआ. सर दर्द से फटा जा रहा है.
विमला: कबसे?
विक्रम: अभी-अभी शुरू हुआ. अचानक ही. ओह....
विमला: चलिए, चलिए. आप कपड़े उतारकर बिस्तर में लेट जाइये. मैं चाय लाती हूं.
विक्रम: जल्दी आना. बहुत दर्द हो रहा है (अंदर जाता है)
विमला: (स्वगत) पता नहीं इन्हें क्या हो गया! इस वक़्त पंडितजी होते तो कितना अच्छा होता.

(पंडितजी का प्रवेश)

पंडितजी: अरे विमला जी, खड़ी क्यों हैं? कुछ परेशान-सी नजर आती हैं.
विमला: पंडितजी! आप आ गये? मैं आपको देखकर कितनी खुश हूं! मैं अभी आपको ही याद कर रही थी.
पंडितजी: अच्छा? फिर तो अच्छा हुआ मैं आ गया. बताइए क्या बात है?
विमला: पंडितजी, अभी विक्रम दफ्तर से आये तो पसीने-पसीने थे, सर दर्द से फटा जा रहा था. आते ही बिस्तर में लेट गये. मैं उनके लिए चाय बनाने जा रही थी.
पंडितजी: फिर जाइए, उनके लिए चाय बना लीजिए.
विमला: नहीं, नहीं, पंडितजी. पहले जरा कोई उपाय तो बताइए.
पंडितजी: लेकिन बहनजी, बिना उनकी पत्री देखे मैं कैसे उपाय बता सकता हूं? आप पत्री तो लाइए.
विमला: मेरे पास यहीं रखी है. मैं उसे हमेशा पर्स में रखती हूं. (निकाल कर देती है)
पंडितजी: (पत्री खोलते हुए) वाह, बहन जी, वाह, यजमान हो तो ऐसा, आपका विश्वास देखते ही बनता है. हूं... अष्टम में चंद्रमा है. उसको बुध बक्र दृष्टि से देख रहा है. हूं... यह तो मामला ठीक नहीं है.
विमला: क्या ठीक नहीं है? क्या ठीक नहीं है?
पंडितजी: नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है. मगर यह सर दर्द कोई साधारण बीमारी नहीं. नहीं, बिल्कुल नहीं... इसको हम नजरंदाज नहीं कर सकते. भृगुजी कहते हैं:
विमला: क्या कहते हैं?
पंडितजी: भृगु महाराज कहते हैं:
अष्टम घरे चंद्रो, तत्परं बुधं दृष्टि
जातकाम् शरीरम् च अतिरोगम्
संभावनाम्.
विमला: अर्थात?
पंडितजी: अर्थात, यदि आठवें घर में चंद्रमा है और उस पर बुध की दृष्टि हो तो जातक के शरीर में रोग की संभावना रहती है.
विमला: यह कैसा रोग है, पंडितजी?
पंडितजी: कहना कठिन है, विमलाजी, बहुत कठिन. यह बहुत खतरनाक रोग लगता है. ऐसी अवस्था में कुछ भी हो सकता है. सन्निपात भी!
विमला: हे भगवान! अब क्या होगा?
पंडितजी: घबराइए नहीं. हम किसलिए हैं? इसका उपाय है.
विमला: ऐसे असाध्य रोग का?
पंडितजी: हां, हां, असाध्य रोग का भी. अरे विमलाजी, यह प्राचीन ज्योतिष-शास्त्र है, कोई मजाक नहीं.
विमला: तो फिर वह उपाय कीजिए, पंडितजी.
पंडितजी: हां, करेंगे, करेंगे. थोड़ा-सा उसमें समय लगता है. मगर जल्दी कराना पड़ेगा.
विमला: हां, पंडितजी, जल्दी करा लेंगे. उसके लिए क्या लाना होगा?
पंडितजी: वह कुछ खास नहीं है. आपको मैं चीजों की सूची दिये देता हूं.
विमला: देखिए, मैं कहां से लाती रहूंगी. आप ही ले आइए ना. कितना दूं?
पंडितजी: फिलहाल 500 रुपये दे दीजिए. फिर मैं देख लूंगा.
विमला: आप करेंगे क्या?
पंडितजी: इसमें तो महामृत्युंजय पाठ कराना पड़ेगा. यदि वह शीघ्र न कराया गया तो कुछ भी हो सकता है.
विमला: यह पैसे रख लीजिए. कब कराना चाहेंगे?
पंडितजी: (डायरी निकालकर) देखिए, अभी तो कुछ दिन मैं व्यस्त हूं. मंगलवार को मुख्य मंत्री जी ने बुलाया है. वह यह जानना चाहते हैं कि चुनाव के लिए सबसे अच्छा मास कौन-सा रहेगा?
विमला: लेकिन पाठ तो जल्द करना चाहिए.
पंडितजी: सो तो है. बुधवार को राज्यपाल महोदय के यहां पेशी है. उनका दूसरा बेटा बुरी संगत में फंस गया है. कोई उपाय चाहते हैं जिससे वह ड्रग्ज खाना छोड़ दे.
विमला: नहीं, वहां आप जरूर जाइए. मगर हमारे लिए भी कोई समय निकालिए ना.
पंडितजी: वही तो. वही देख रहा हूं. बृहस्पतिवार को विपक्ष के नेता ने बुलाया है. वह मुख्य मंत्री को गद्दी से उतरवाने का तांत्रिक उपाय चाहते हैं.
विमला: लेकिन महामृत्युंजय पाठ...
पंडितजी: शक्रवार को सेठ जमनादास यज्ञ करवा रहे हैं ताकि आयकर अधिकारी उन पर छापा न मार सकें.
विमला: मगर...
पंडितजी: हां, हां, उसी पर आ रहा हूं. शनिवार को किसान सभा ने बुलाया है. वे हवन करा रहे हैं ताकि वर्षा हो और सूखे की समस्या न रहे.
विमला: पंडितजी! पंडितजी! मुझे मालूम है आप बहुत व्यस्त हैं. मगर विक्रम के स्वास्थ्य का भी तो खयाल कीजिए.
पंडितजी: मिल गयी, मिल गयी.
विमला: क्या मिल गयी?
पंडितजी: डायरी में एक खाली तिथि मिल गयी. अब बताइए, सोमवार को यह पाठ रख लें?
विमला: सोमवार को? सोमवार को? क्यों, रविवार को नहीं हो सकता क्या?
पंडितजी: अरे बहनजी, अगर तिथि खाली होती तो आपसे बढ़कर हमारे लिए कौन है? उस दिन हम आई.जी. (रूल्ज) श्री खन्ना के घर पर पाठ करा रहे हैं, ताकि उनको दरबार में पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त हो.
विमला: दरअसल सोमवार को मैंने अपनी एक सहेली के पास जाना था.
पंडितजी: वह तो आप देख लें. सोमवार के बाद फिर मैं दस दिन के लिए दिल्ली जा रहा हूं. वहां से हवाई जहाज की टिकट आयी है. अब वहां किसने बुलवाया है यह तो नहीं बता सकता. मगर आप समझ ही गयी होंगी.
विमला: अरे, क्या उन्होंने...?
पंडितजी: जी, हां, उन्होंने ही...
विमला: अच्छा? हूं. चलिए, फिर और क्या हो सकता है? आप सोमवार को ही पाठ रख लीजिए.
पंडितजी: अच्छा, तो मैं चलता हूं.
विमला: अच्छा....

(पंडितजी का प्रस्थान)

विमला: (स्वगत) चाय बनाने से पहले कमला को फोन ही कर दूं. (चौंका उठाकर डायल करती है) हेलो, कौन कमला. सुन, वह सोमवार का खाना अब तू रहने ही दे.
कमला: (फोन पर उधर से) क्या हुआ?
विमला: अरे होना क्या था? पंडित जी आ गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कहानी खुराफात की जड़ है.'

नामवर सिंह

प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह से उदय प्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत

□ आपने आज से लगभग 30-32 वर्ष पहले, उस समय की महत्वपूर्ण कहानियों पर कुछ लिखा, उनकी व्याख्या की और उन्हें समझने की कोशिश भी की, जाहिर है इससे एक तरफ कहानी आलोचना का विकास हुआ तो दूसरी ओर कहानीकारों को भी इससे ऊर्जा मिली. तब से लेकर अब तक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीनिक हर स्तर पर परिवर्तन हो चुका है. क्या आपको इन 30-32 वर्षों में कोई बड़ा बदलाव नजर आता है? कथा आलोचना के पहले वाले अपने उपकरण क्या अब आपको नाकाफी नहीं लगते? कहानियों पर इतने लंबे समय तक कुछ न लिखने की वजह कहीं यह तो नहीं कि आपकी आलोचना की प्राथमिकता नहीं रही?

कहानी पर आखिरी लेख मैंने 64 या 65 में लिखा था. उस समय कहानी चर्चा जिस मोड़ पर आ गयी थी, उस समय एक पक्ष था व्यावसायिकता. और रहा दूसरा पक्ष, तो आपको याद होगा कि '**धर्मयुद्ध**' में '**एक कहानी दशक**' के नाम से एक लेखमाला एक साल से भी ज्यादा, लगातार प्रकाशित हुई थी. जिसमें अनेक कहानीकारों के वक्तव्यों के साथ उनकी कहानियां भी छपी थीं. इनमें से कुछ कहानीकार ऐसे थे जो कहानी की अब तक की उपलब्धियों को अपने हित और फायदे में भुनाने की कोशिश कर रहे थे. मैं इसे न तो कथा आलोचना कहूंगा, न साहित्यिक राजनीति, बल्कि असल में कहानी की व्याख्या गुटबाजी के तहत होने लगी थी.

□ ऐसे में अपनी आलोचना के माध्यम से आप इसमें हस्तक्षेप कर सकते थे.

देखिए, मैंने जिस नेक इरादे से, कहानीकारों के साथ संवाद करते हुए, एक सहयोगी प्रयास के रूप में अपनी कथा आलोचना और कहानी चर्चा की शुरूआत की थी, मुझे लगा कि वह अब संभव नहीं रही. मैं तो अपने इन लेखों को कभी छपाता भी नहीं. लेकिन होने यह लगा कि मेरे लेखों के टुकड़े यहां-वहां, बिना संदर्भ के उद्धत करके मेरे नाम से तमाम बातें की जाने लगीं. इसीलिए इन लेखों को ज्यों का त्यों, बिना एक भी शब्द बदले, एक दस्तावेज की तरह सबके सामने रखने का मैंने निर्णय लिया.

□ उस समय क्या कोई बदलाव कहानियों में भी दिखायी दे रहा था?

हां, मैंने अंतिम लेख 'एक और शुरूआत' में इसका जिक्र किया था. उस समय **रवींद्र कालिया, महेंद्र भल्ला, काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह** अदि लिखने लगे थे. कहानीकारों की एक नयी पीढ़ी आ गयी थी. इनकी कहानियों की भाषा और कथा दृष्टि भी, तथाकथित नयी कहानी के उम्मीदवारों के भिन्न थी, मैंने सोचा था कि यह थोड़ी और स्पष्ट होगी तो मैं इस पर लिखूंगा. शायद लिखता भी. लेकिन तभी, आपको याद होगा कि 'समांतर कहानी' नामक एक आंदोलन चला और फिर 'आम आदमी की तलाश' होने लगी...

□ कहीं सही क्रम यह तो नहीं है कि 'आम आदमी की तलाश' पहले शुरू हुई और 'समांतर आंदोलन' बाद में चला?

इससे क्या फर्क पड़ता है कि आगे या पीछे कौन हुआ? यह कहना भी कठिन है. वैसे, एक ही आदमी और एक ही दल ने यह सब शुरू किया था. फिर यह महसूस हुआ कि एक खास तरह की व्यावसायिकता अब चल रही है, इसलिए लिखने का उत्साह हुआ नहीं. फिर साहित्य संबंधी मेरी दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंताएं भी थीं. मैं उनमें लग गया. यह बात जरूर है कि उसके बाद परिवर्तन बहुत हुए. हमारे राजनीतिक जीवन और सांस्कृतिक जीवन में छोटे-बड़े कई मोड़ आये और फिर संपूर्ण साहित्यिक संवेदना में भी परिवर्तन आया है, कहानियां भी बदली हैं, लेकिन जब तक बहुत बड़ी संख्या में और व्यवस्थित ढंग से कहानियों को न पढ़ा जाये, तब तक कुछ छिटपुट कहानियों को देखकर अगर कोई राय बनायी जाये, तो वह राय बड़ी भ्रामक होगी. साहित्य के लिए भी और अपने लिए भी. लेकिन ऐसे व्यवस्थित अध्ययन का मौका मैं निकाल नहीं सका. फिर कुछ हमारे शुभचिंतकों-मित्रों ने कहा कि आपको लिखना चाहिए, मैंने भी सोचा कि इधर की कहानियों को व्यवस्थित ढंग से पढ़ा जाये—लेकिन फिर कुछ विघ्न आ गये. जैसे एक सज्जन ने एक लेख ही लिख डाला कि वे कहानियों पर आखिर क्यों लिखना चाहते हैं...? तो मुझे लगा कि कहानी तो खुराफात की जड़ है...

□ आपके लेख देखकर यह लगता है कि आलोचक और रचनाकार के बीच एक संवाद वहां है, मतभेद भी हैं तो एक गहरी चिंता भी है. जाहिर है साहित्य की गहरी चिंताएं जीवन की गहरी चिंताओं से जुड़ी हुई हैं.. तो ऐसा क्या हो गया इस बीच में, कि साहित्यकारों की वे चिंताएं बिल्कुल ही समाप्त हो गयीं और एक तलछट, एक छिछलापन और एक तरह की क्षुद्रता उसकी जगह आ गयी और पूरा माहौल गड़बड़ा गया. क्या माहौल में कोई बदलाव आपको नजर आता है. क्या आपके न लिखने का कारण यह माहौल... आप कुछ इस माहौल के बारे में कहें...

भई, माहौल के बारे में मैं क्या कह सकता हूं. मेरे मन में स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है इसकी. आप 1974-75 से देखें, क्योंकि निकट अतीत यही है, इन पिछले पंद्रह सालों के दौर में कहानियों ही नहीं, बल्कि उपन्यासों और कविता संग्रहों की भी समीक्षाएं तो होती रही हैं. शायद ही कोई लेखक ऐसा होता हो, जिसकी चर्चा न होती हो, नोटिस न ली जाती हो. लेकिन इसके बावजूद कुल मिलाकर एक बड़े परिप्रेक्ष्य में उपन्यास, कविता या कहानी की कोई एक मुकम्मल तस्वीर नहीं बनती दिखाई देती. ये समीक्षाएं न तो पाठक और न लेखक के मन मस्तिष्क पर कोई असर डालती हैं. दरअसल हमारा चिंतन इस मामले में इतना खंडशः, इतना एटोमिस्टिक हो गया है कि हम चीजों को समग्रता में देखने की आदत ही छोड़ चुके हैं. अभी पिछले दो सालों से भ्रष्टाचार के जितने विवाद हुए हैं—बोफर्स, एच.डब्ल्यू.डी. सबमेरिन, फेयरफैक्स आदि. इन पर अलग-अलग खूब चर्चा हुई है. लेकिन भारत का 'राजतंत्र' किस दिशा में जा रहा है, उसकी अर्थनीति और अर्थव्यवस्था किधर जा रही है—इसके समग्र विश्लेषण का ही एक हिस्सा होना चाहिए बोफर्स... लेकिन ऐसी गंभीर चर्चा राजनीति में भी कहीं दिखाई नहीं देती. ठीक इसी के समानांतर साहित्य में भी देखिए, अलग-अलग कहानियों पर तो चर्चा हुई है लेकिन समग्रता में आज की कहानी के बदलाव को रेखांकित करने या उसका विश्लेषण करने की कोई गंभीर कोशिश मुझे कहीं दिखाई नहीं देती. मैं सिर्फ दूसरों पर दोष नहीं लगा रहा हूं, शायद मैं भी उतना ही दोषी हूं...

□ आपने कहा कि आपकी कथा आलोचना कहानीकारों के साथ संवाद करते हुए विकसित हो रही थी और जब यह संवाद संभव नहीं रहा तो आपने लिखना बंद कर दिया. लेकिन 'नयी कहानी' के बाद जो कहानीकार आये थे—काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह आदि उनसे तो आपका संवाद बना रह सकता था. फिर तब तक कहानी आलोचना में आपकी स्थिति केंद्रीय बन चुकी थी. अशोक वाजपेयी ने तो कहानी आलोचना का जनक आपको कहा था. तो ऐसे कई कहानीकार जैसे निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा आदि आपकी प्रतिक्रिया के मुखापेक्षी तो रहे ही होंगे, फिर अगर संवादहीनता की स्थिति सचमुच थी, तो वह तो कवियों के साथ भी रही होगी. लेकिन आपने कविताओं पर लिखना जारी रखा. सिर्फ कहानी आलोचना ही क्यों बंद कर दी?

मुझे ऐसा लगता है कि जब मेरी किताब **'कहानी : नयी कहानी'** छपी और जब मैंने अपना लेख **'इत्यलम्'** लिखा, तब तक लगभग संवाद बंद होने की स्थिति आ गयी थी. और जहां तक ज्ञानरंजन वाली पीढ़ी का सवाल है, तो उनके साथ कहानी को लेकर सचमुच मेरा कोई संवाद नहीं रह गया था. यह एक तथ्य है. मुझे तो ऐसा लगता है कि पिछले बीस वर्षों में संवाद तो खत्म हुआ ही है, विवाद का भी रूप बदल गया है. **कीर्ति चौधरी** ने बहुत पहले एक कविता लिखी थी: 'कैसा जमाना आ गया है कि किसी को कड़ी बात भी कहो, तो वह बुरा नहीं मानता.' आज मूल्यों, सिद्धांतों, विचारों का दृढ़ता से खंडन-मंडन करने वाले साहित्यिक विवाद खत्म हो गये हैं. विवादों का स्तर और रूप बिल्कुल दूसरा हो गया है. वैयक्तिक तो नहीं कहूंगा लेकिन लोग साहित्यिक मान्यताओं पर नहीं, अनावश्यक और फालतू बातों पर बहस करते हैं. इसके सामाजिक कारण हैं. वातावरण में भी बदलाव हुआ है. लेखकों के बीच जो एक 'कम्यूनिटी लाइफ' होती है, उसमें भी संवादहीनता बढ़ी है. विवादों का संबंध साहित्यिक गोष्ठियों की जीवंतता, पत्र-पत्रिकाओं में चलने वाले

कविता तक सीमित हिन्दी आलोचना के दायरे को बढ़ाने की गर्ज से जिस समय नामवर जी ने कहानी की आलोचना के क्षेत्र में पदार्पण किया था तब कहानी-समीक्षा की एक व्यापक और निश्चित 'भाषा' के निर्माण की दिशा में विचार करने का एक सार्थक सिलसिला शुरू हुआ था. 'कहानी' विधा के प्रति उनकी मूलभूत चिंताएं 'नयी कहानी : नये प्रश्न' जैसे अनेकों लेखों से उजागर होती रही हैं. इधर लंबे समय से कहानी-आलोचना के प्रति उनका झुकाव कुछ कम जरूर होता नजर आया है... फिर भी यदा-कदा वे साक्षात्कारों व व्याख्यानों के जरिए कथा-लेखन पर अपनी राय जाहिर करते रहे हैं. प्रस्तुत है पिछले दिनों अपने जीवन के साठ वर्ष पूरे कर चुके नामवर जी से लंबी बातचीत की पहली कड़ी....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवादों से होता है...

□ लेकिन यह भी तो हो सकता है कि आपने कहानी पर लिखना इसलिए बंद किया हो कि आपने एक बार कहीं लिखा था कि आज तक कहानी को आधार बनानेवाला कोई आलोचक बड़ा आलोचक नहीं हुआ. और इसकी वजह आलोचना नहीं, स्वयं कहानी की दरिद्र स्थिति है.

नहीं, यह तो मैंने पूर्वपक्ष के रूप में कहा था. क्योंकि यह मान्यता मेरी नहीं है. यह मत तो परिमलवादियों और प्रयोगवादियों का था जो उन दिनों कहानी और कहानी आलोचना दोनों का विरोध कर रहे थे. मैंने तो इसका खंडन किया था.

□ लेकिन उस समय कहानी आलोचना का 'पोस्ट नामवर जेनरेशन' भी तो सामने आने लगा था, जिसमें एक तरफ देवीशंकर अवस्थी थे. उन्होंने गंभीरता के साथ अपने समय की कुछ कहानियों पर लिखा. आपके साथ उनके कुछ मतभेद भी थे, लेकिन उनकी चिंता फिर भी गंभीर थी. फिर सुरेंद्र चौधरी, परमानंद श्रीवास्तव, चंद्रभूषण तिवारी, विजयमोहन सिंह जैसे लोग थे, जो कहानियों पर लगातार लिख रहे थे, इतने लोगों के होने के बावजूद कोई ऐसा माहौल क्यों नहीं बन पाया जो कहानी को आपकी चिंता के केंद्र में या दायरे में ले आता...?

ठेठ आलोचना का विकास तब होता है, जब आप किसी ठोस कृति को लेकर यह कहें कि देखिए, मैं इसमें यह देख रहा हूं, इसमें यह अच्छा है, यह बुरा है. फिर आप दूसरे की राय पूछें. यानी सवाल 'परसेप्शन' का है, मत-अभिमत का है. मैंने इसीलिए कुछ ठोस कहानियों को लेकर उनसे जुड़े कुछ निश्चित सवाल उठाये थे. लेकिन मैंने देखा कि ऐसी चर्चा अचानक बंद हो गयी. मैं कहानी या साहित्य से बाहर जाकर किसी कृति पर बहस नहीं करना चाहता. लेकिन जब चर्चा यह हो रही हो कि अमुक कहानी में आम आदमी है या नहीं है—बताइए भला इससे फर्क क्या पड़ता है? यानी चर्चा कहानी की विषयवस्तु पर केंद्रित हो गयी. आज भी हम देखें तो आश्चर्य होता है कि चर्चा ज्यादातर कहानी के उपादान, मैटीरियल्स, स्रोत और सामग्री पर होती है, जबकि कहानी एक कलारूप है और कौन लेखक उसे कैसे साधता है, बहस इस पर

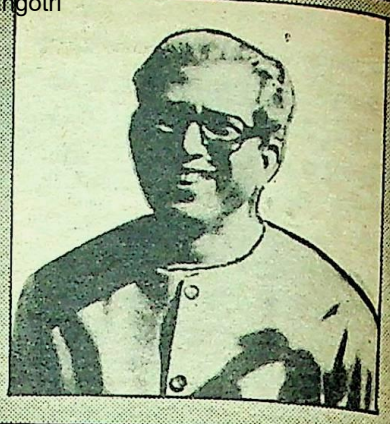

ठेठ आलोचना का विकास तब होता है, जब आप किसी ठोस कृति को लेकर यह कहें कि देखिए, मैं इसमें यह देख रहा हूं, इसमें यह अच्छा है यह बुरा है. फिर आप दूसरे की राय पूछें.

होनी चाहिए.

अभी पांच-छह महीने पहले इलाहाबाद में भैरवप्रसाद गुप्त की सत्तरवीं वर्षगांठ पर एक आयोजन हुआ. एक गोष्ठी समकालीन कहानी की समस्या पर आयोजित थी. इसमें दूधनाथ सिंह, ममता कलिया, शैलेश मटियानी आदि कहानीकार भी बोले थे. 'हंस' के संपादक राजेंद्र यादव भी मौजूद थे. मैंने उसमें सवाल उठाया कि राजेंद्र यादव ने कुछ दिनों पहले एक विशेष कहानी 'तिरिया चरित्र' को अपनी पत्रिका में सर्वश्रेष्ठ कहानी घोषित किया है. 'हंस' में और भी अच्छी कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें उन्होंने इतना श्रेष्ठ नहीं माना. मैंने कहा कि अगर वे यह बतायें कि यह कहानी उन्हें क्यों सर्वश्रेष्ठ लगी तो हमारी और उनकी कहानी की समझ का जो अंतर है, वह स्पष्ट हो जायेगा. मैं इस पर विचार-विनियम के लिए तैयार हूं. तभी यह पता चलेगा कि हममें से कौन आदमी कहां पर गलत है. दरअसल दो कहानियों को लेकर यह बात उठी थी—'तिरिया चरित्र' और 'तिरिछ'. लेकिन वे बहस के लिए तैयार नहीं हुए. गोष्ठी के बाद भी तैयार नहीं हुए. उन्होंने 'हंस' में भी इस पर कोई चर्चा नहीं करवायी, भले आदमी ने इसके बदले निर्मल वर्मा की 'सूखा' पर जरूर चर्चा करवा दी.

मैंने इस घटना का उदाहरण इसलिए दिया कि पिछले पंद्रह साल से कुल मिलाकर यही स्थिति रही है. बहस या संवाद के लिए ये लोग कभी तैयार नहीं हुए.

□ दिक्कत यह है डॉक्टर साहब कि जिनसे आप बहस चाहते हैं, वे पहले भी कोई बहस नहीं चाहते थे और अब तो उनके लिए बहस और भी मुश्किल है. खैर, आप अपने बाद के कहानी आलोचकों के बारे में कुछ बताइए... देवीशंकर अवस्थी के बाद...

मैं पहले भी कह चुका हूं, फिर कहूंगा कि कहानी पर थोक के भाव पुस्तकें भी बहुत से लोगों ने लिखी हैं. लेकिन इस बीच कुछ ऐसे लेख मुझे जरूर देखने को मिले, जिनके लिखने वाले कुछ स्वयं कहानीकार भी हैं, उनमें गहरी अंतर्दृष्टि मुझे दिखाई पड़ी है. अभी 'आलोचना' में **रवींद्र वर्मा** के कुछ लेख मैंने छापे हैं. **'कफन'** के बारे में **निर्मल वर्मा** की जो व्याख्या है, एक लेख में उस पर उन्होंने लिखा है. इससे लगता है कि कुछ लोगों में आज भी कहानी संबंधी ऐसी समझ मौजूद है, जो आलोचकों में नहीं दिखाई देती. **विजयमोहन सिंह** की तो किताब ही है-**'आज की कहानी'**. उन्होंने **मुक्तिबोध** और **गुलेरी जी** की कहानियों पर भी लिखा है और **महेंद्र भल्ला, ज्ञानरंजन** की कहानियों पर भी. बल्कि **काशीनाथ सिंह** की कहानियों की उन्होंने बड़ी सख्त आलोचना की है. और सही आलोचना की है. अभी **'हंस'** के अंक में **वीरभारत तलवार** ने **'सूखा'** पर अच्छी टिप्पणी की है. **'दिनमान'** में **उदयप्रकाश** ने इधर की कहानियों पर कुछ समय पहले एक लेख लिखा था. मेरा उसमें आलोचना भी की थी. लेकिन उस लेख में कहानियों के बारे में एक अच्छी अंतर्दृष्टि का आभास मुझे मिला, जो इधर के लोगों में नहीं दिखाई देता. जिस समय मैं लिख रहा था, उस समय कहानी आलोचना की जो दुर्दशा थी, उसकी तुलना में आज के लेखकों में कहानी के बारे में ज्यादा गहरी समझ है.

□ क्या आपको नहीं लगता कि इस बीच कहानी का दायरा बहुत विस्तृत हुआ है?

कुछ लोग इसे विविधता कहकर मुदित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूर हो सकते हैं लेकिन मुझे लगता है कि कहानी की रचनाधर्मिता के क्षेत्र में बिखराव बहुत ज्यादा है. कुछ मिलाकर कोई एक स्वर या कोई प्रमुख स्वर या कोई एक प्रवृत्ति का नाम आप नहीं ले सकते.

□ लेकिन कहानियों के लेखन की दृष्टि से आज ज्यादा संख्या में कहानियां लिखी जा रही हैं. और ज्यादा कहानीकार हमारे सामने हैं. भले ही वे 'नयी कहानियों' में प्रेम के भीतर ही कहानियां लिख रहे हों.

नहीं. ऐसा मैं नहीं मानता. बल्कि आज की कहानी की यह बहुत बड़ी सफलता है कि इधर के कुछ नये कहानीकारों के आने से 'नयी कहानी' का बचा-खुचा मुलम्मा भी उतर गया है. यह अच्छा ही हुआ.

□ लेकिन यह भी सच है कि अभी भी 'नयी कहानी' के फ्रेम को सिर्फ कुछ अच्छे कहानीकार ही तोड़ पाते हैं. वर्ना आज भी ज्यादातर कहानीकार नयी कहानी की सीमाओं को अतिक्रमित नहीं कर पाते.

हां, यह सच है कि लेखक बहुत ज्यादा हैं, वैसे एक बात यह भी है कि ऐसा हर दौर में होता है कि कुछ लोग दावे बहुत ज्यादा करते हैं और कहानियां बड़ी खराब लिखते हैं और कुछ लोग चुपचाप बहुत अच्छी कहानियां लिखते हैं. इस गड़बड़ी का स्रोत कहीं और है. देखिए, पत्रिकाओं और प्रकाशन संस्थानों का सबसे बड़ा दायित्व यह होता है कि वे प्रकाशन में अच्छे और बुरे, सार्थक और निरर्थक की तमीज रखते हुए रचनाओं को सामने लायें, लेखक तो चाहता है कि उसका लिखा हर कूड़ा-कचरा भी छप जाये. आज पत्रिकाओं की हालत यह है कि एक अंक में अगर कोई एकाध अच्छी कहानी भी हुई तो उसी अंक की दर्जन भर खराब कहानियों में वह भी नहीं, मुझे खेद है कि वह संपादकीय विवेक हमेशा जरूरत होती है. विवेकवान संपादक हमेशा आलोचकों का मार्गदर्शक होता है. उदाहरण के लिए भैरवप्रसाद गुप्त स्वयं बहुत अच्छे कहानीकार नहीं थे लेकिन वे बहुत विवेकवान संपादक थे, 'कहानी' के अंकों में उन्होंने जिस तरह कहानियों का चयन किया, वह एक मिसाल है.

□ इस समय कहानियों की जो दो-तीन प्रमुख पत्रिकाएं निकल रही हैं.. उनमें...

नहीं मझे खेद है कि वह संपादकीय विवेक मुझे कहीं नहीं दिखाई देता, वर्ना कहानी और कथा आलोचना की हालत आज यह न होती, अकेला आलोचक सब कुछ नहीं कर सकता, कहानियों के 'क्लियरिंग हाउस' का काम पत्रिकाएं करती हैं, और वह नहीं हो पा रहा है.

और अगली किस्त में

'परिंदे' से लेकर 'सूखा तक निर्मल वर्मा की कथा यात्रा पर विवादास्पद टिप्पणी, गोर्बाचौफ की परेस्रोइका और भारतीय वामपंथी लेखकों की समस्याएं, भारत-भवन और सरकारी साहित्य-संस्कृति का उभरता चरित्र...
और वे गुत्थियां जिन्हें उलझाते चलना नामवरजी की आदत में शुमार है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होशंगाबाद की मेनका—गंगा

गंगा देई के आकर्षण ने बेंसले को ऐसा बांधा कि वह उसे अपनी पत्नी ही बना बैठा... पर उसके विलायत लौटते वक्त गंगा देई के भीतर कौन सी चीज़ जाग उठी कि वह उसके साथ जाने से साफ इनकार कर बैठी...?

महाराष्ट्र का शाहजहां— बाजीराव. उसको भी शाहजहां की भांति पर स्त्री से खिलवाड़ का शौक था. उसके हितैषियों ने बाजीराव को बुजुर्गों की सीख कई बार सुनायी... 'परनारी पैनी छुरी...' पर बाजीराव को पैनी छुरियों से खेलने की चाह लग गयी. जो कुल्हाड़ी शाहजहां ने अपने पांवों पर मारी थी, वही कुल्हाड़ी बाजीराव के हाथ लग गयी थी शायद. वह भी अपने सामंतों की पत्नियों के साथ रमण करने लगा था— मोरो दीक्षित की पत्नी, चिमनाजी नारायण की पत्नी और न जाने कौन-कौन... और जब मराठों के भाग्य-रथ के घोड़े धमके तो लाख रास खींचने पर भी काबू में नहीं आये. और फिर वही हुआ— मराठों का शीराजा बिखर गया. और तभी अंग्रेजों ने अपने पंख फैलाये और चारों ओर फैली हुई जमीन को अपने पंख तले ढक लिया.

पिंडारियों की लाल-पीली आंधी को समेटने वाले योद्धा कर्नल बेंसले ने होशंगाबाद के फैले-फैले आंगनों में अपना त्रिशूल गाड़ दिया था. वह अपनी सेना का कमांडेंट एवं होशंगाबाद क्षेत्र का डिस्ट्रिक मैजिस्ट्रेट बन बैठा था. देखते ही देखते 'काले आदमियों' ने उसके लिए एक विशाल छप्पर वाला बंगला बना दिया और अहाते में एक कुआं भी खोद दिया था. एक 'मिनिएचर' बादशाह की भांति कर्नल बेंसले रहे रहा था. नौकर-चाकर, प्यादे-पिछलगुए— सभी उसके सामने भेड़ जैसे बनकर मिमियाते. कर्नल बेंसले के हाथ में नौ गजा हंटर रहता था, जिसकी फटकार बिजली की तरह कड़क उठती. उस वक्त तो सभी की नानी मर जाती. और जब कर्नल बेंसले अच्छे मूड में होता तो वह टोकरियां भर भर कर मिठाई बांटता. उस वक्त सुमेरा अपने पीले पीले दांत निपोर कर अपने साथियों से कहता 'बंसरी साब आज खुस है भैया— भगवान की किरपा है.'

कर्नल पर्सिवल जॉन बेंसले— पैंतीस वर्ष का मेघनाद जैसा, शेर जैसी कमर, चकला सीना, आंखों में चमक, भूरी-भूरी छोटी मूछें. वह बदमाश घोड़ों को दस मिनट में पालतू बना डालता था. घुड़सवारी का शौक उसके जीवन की निधि थी. पौ फटने से पहले वह घोड़े की पीठ पर सवार हो जाता और जिधर तबियत करती उधर ही चल पड़ता. डेढ़-दो घंटे बाद वह पसीने से नहाये घोड़े से उतरता, उसे अपने हाथों से गुड़ खिलाता और फिर सईसों को सौंप देता. बड़ा अचरज तो इस बात का था कि कर्नल बेंसले के जीवन में कोई मेनका उसका मन मोहने अभी तक पैदा नहीं हो पायी थी. जब वह अपने अफसरों में बैठता तब 'हो हो' हंसकर कहता 'किसी लड़ाकू को अगर खत्म करना हो तो उसके पल्ले एक खूबसूरत औरत को बांध दो, जल्द ही मारा जायेगा.' और स्त्री जाति से सतर्क कर्नल बेंसले ने अभी तक अपने दिल के दरवाजे बंद कर रखे थे. कोई भी सुंदरी उसके मन मंदिर के आसपास फटक नहीं पायी.

उस दिन कर्नल बेंसले कोई चार बजे ही घोड़े पर सवार होकर नर्मदा के बल खाते किनारों पर घोड़ा दौड़ाता रहा. नर्मदा के तट पर तपस्वी घाट पर अक्सर सन्नाटा छाया रहता था. इसी घाट का नाम बाद में सेठानी घाट पड़ गया था. जब कर्नल बेंसले अपने घोड़े पर आया तो उसने नर्मदा के तट पर कमर-डूबा पानी में नहाती एक छाया देखी. बेंसले और पास आया. और तभी उसे एहसास हुआ कि नहाने वाली छाया कोई औरत है. बेंसले और पास आया. पास के सतपर्णी के पेड़ की ओट में उसने घोड़े को बांधा और आगे बढ़ा.

हां— वह स्त्री नग्न नहा रही थी. ब्रह्म-बेला के सुरमई उजालों में नहायी हुई वह गंधर्व-कन्या-सी लग रही थी. कमल की पंखुड़ी जैसा शरीर, भादों की रात जैसे काले केश, मंह बंधी कली जैसे होंठ, बड़े-बड़े कजरारे नेत्र. कर्नल बेंसले एक बार को ठिठक गया और विस्मय से उसे देखता रहा. जब वह पानी में हाथ मार कर पानी उलीचती तो हजारों मोती उसके रेशमी शरीर पर टंक जाते जैसे केले के पत्ते पर सुबह की शबनम ठहर जाती है. आज बेंसले को मालूम हुआ कि औरत कितनी खूबसूरत होती है. और ना जाने क्यों वह बेधड़क उसकी ओर बढ़ता चला गया. और जब उसने पांवों की आहट सुनी तो घबराकर उसने पास पड़ी भीगी धोती अपने शरीर पर लपेट ली. उस वक्त तो वह सचमुच ही मेनका लगने लगी थी.

कर्नल बेंसले उसके पास आ गया था. उसने मुस्कराकर पूछा, "तुम्हारा नाम?"

"गंगा देई, हजूर. हम परसादी राम जुझौतिया की बेटी हंय."

'गंगा देई!' उसकी महीन आवाज कर्नल बेंसले के दिल में धंसती चली गयी. कर्नल ने उसे गौर से देखा. उसे गंगा ग्रीक पुराणों की डैफनी जैसी लगी. और तभी मानों उसके बंजर मन में अनुराग की वर्षा जैसी होने लगी. उसके मन के गुंबद में उसी की आवाज गूंज उठी 'पर्सीवल, डैफनी को खो मत देना. बड़ी देर बाद तेरे अंधियारे जीवन में यह जुगनू चमका है.'

और कर्नल बेंसले ने अपने हाथ से गंगा देई की ठोड़ी उठाकर कहा, "डरो मत गंगा बीबी. अम तुमसे शादी करना मांगटा. अम टुमारा फादर को बुलाना मांगटा."

भयभीत हिरनी ने कर्नल को निहारा और फिर पलकें गिरा कर बोली, "हम ब्रामन हंय साहिब."

"टुम ब्रामन से भी जाडा है गंगा बीबी. टुम बेंसले का ड्रीम क्वीन है."

और बेंसले ने अपने हाथों से गंगा देई को उसी की धोती से उलटा-सीधा लपेटा और अपनी बांहों में भरकर उठाया. घोड़े की पीठ पर उसे बैठाकर फिर वह होशंगाबाद की ओर चल पड़ा. गंगा देई को ऐसा लग रहा था मानो वह संयोगिता हो जिसे उसका पृथ्वीराज घोड़े पर बैठाकर ले जा रहा हो.

बंगले पर सभी नौकर-चाकर दबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ुबान से कम, पर आंखों से ज्यादा बोलते लगे. वैसे कर्नल बेंसले था एक आदर्श चहेता ही. उसने अपने नौकरों को इकट्ठा करके कहा, "आज से तुम सब गंगा बीबी को सलाम करेगा. गंगा बीबी अमारा मेम साब है– समझे!" सब ही नजर नीची किये हाथ बांधे– 'जो हुकुम सरकार' कहकर खड़े रहे.

और उसी दिन से कर्नल बेंसले के जीवन में एक नये वसंत ने जन्म लिया. वैसे गंगा बीबी भी उसको अपना प्राण नाथ मानती थी. उसकी सेवा करती, तरह-तरह के भोजन बनाकर खिलाती और जब वह अपने इलाके की कहानियां कर्नल बेंसले को सुनाती तो वह बड़े ध्यान से सुनता रहता. गंगा बीबी उसके जीवन की बैसाखियां बन चुकी थी.

और जिस दिन कर्नल अपनी रेजीमेंट के साथ युद्ध पर गया था, उस दिन गंगा बीबी ने श्रृंगार किया था. फिर थाल में दही-पेड़ा और घी का दीपक जलाकर उसने कर्नल की आरती उतारी और उसके चौड़े माथे पर तिलक लगाकर कहा था, "आप विजयी होकर लौटेंगे– जरूर लौटेंगे." तब गंगा बीबी की आवाज से ना जाने कौन-सा स्वर गूंजा था– मानों आकाशवाणी की गूंज सुनाई दे रही हो. वह न तो विचलित थी और न ही उसकी आवाज कांपी थी. उसकी आंखों में न कोई आंसू था और न कोई भय का आभास.

गंगा बीबी की भविष्यवाणी बिलकुल सत्य हुई. जब कर्नल बेंसले की रेजीमेंट ने आक्रमण किया था तब कितने लोग गिरे थे. उसके ही बगल में चल रहा मेजर पैट्रिक गोली खाकर धड़ाम से गिरा था. और फिर कैप्टिन जैनट भी उसी की आंखों के सामने मारा गया. पर कर्नल बेंसले को ऐसा एहसास हुआ मानों गंगा बीबी ने उसे कोई अदृश्य कवच पहना दिया हो. उसने भी युद्ध में विजय प्राप्त की थी. पर उसका श्रेय गंगा बीबी के तिलक को नहीं था. शायद इसी तिलक में उसका अमृत-कुंड भरा हो. कर्नल बेंसले कटकटाकर लड़ा और जब बिगुल की आवाज उसके कानों में पड़ी तब उसे विजय का आनंद मिला. विजय प्राप्त करके जब वह लौटा तब भी उसे गंगा बीबी देहरी पर दीपकों भरा थाल लिये मिली थी. उसने आरती उतारते समय कहा था, "हमने कहा था ना, विजयी होकर ही लौटे." और तब गंगा बीबी की आंखों से पिघलते मोती टपके थे–हर्ष के आंसू, उसके सुहाग के हिमायती जैसे.

कई वर्ष दिन की भांति बीत गये. फिर वह समय भी आया जब कर्नल बेंसले को वापस विलायत जाने की तैयारी करनी पड़ी थी. उसने गंगा बीबी से कहा, "तुम हमारे साथ चलोगी."

गंगा बीबी के सामने काबा और कलीसा वाली पहेली आ खड़ी हुई. वह बहुत रोई और फिर यही तय किया, "हम अपनी धरती माता को नहीं छोड़बे साहिब."

एक लंबी सांस खींचकर कर्नल बोला, "ठीक है गंगा बीबी. तुम्हारी मर्जी के बगैर हम कुछ नहीं करेंगे."

और दूसरे ही दिन कर्नल बेंसले ने अपना बंगला और जायदाद गंगा बीबी के नाम करदी. गंगा बीबी निहाल हो गयी. जाने से कोई हफ्ता भर पहले उदास होकर गंगा बीबी बोली, "एक डर हमें सताइत है साहिब, आपके जाने के बाद हमें जात बिरादरी वाले कहीं तंग नहीं करें."

कर्नल बेंसले चौंका. और फिर उसके दिमाग में खयालों की आंधी चलने लगी. पर वह योद्धा के अतिरिक्त एक प्रशासक भी था. उसने शीघ्र ही गंगा बीबी की शंका का समाधान ढूंढ निकाला.

दूसरे दिन उसने अपने बंगले पर एक दरबार किया और दो हुक्म सुनाये– पहला तो दस-बारह हलवाई बुलवाकर ज्यौनार का फौरन बंदोबस्त किया जाये और दूसरा आसपास के सभी जुझौतिया ब्राह्मणों को घेरकर ले आया जाये.

कर्नल के आदमी इधर-उधर फैल गये. देखते ही देखते बंगले के कुएं के पास भट्टियां खुद गयीं और पकवान-भोजन बनने लगा. उधर उसके सिपाही-चपरासी जुझौतिया ब्राह्मणों के दलों को पकड़कर ले आये. जो भाग गये. सो भाग गये पर जो पकड़ में आ गये उन्हें बंगले में इकट्ठा कर दिया गया.

तब हाथ में अपना नौ गजा हंटर लेकर कर्नल बेंसले आया और हंटर फटकारकर बोला, "हम वापस विलायत जाता है. गंगा बीबी हमारा घरवाली है. वह यहीं रहेगा. अगर किसी ने हमारे जाने के बाद उसे तंग किया तो हमसे बुरा कोई नहीं होगा."

और फिर कर्नल बेंसले ने अपना असली काम शुरू किया. सब जुझौतिया ब्राह्मणों को पंगत में बैठा दिया गया. पत्तलें बिछा दी गयीं और फिर सब को गंगा बीबी के हाथों द्वारा भोजन परसा गया. बंगले के कुएं से पानी भी गंगा बीबी ने उनके कुल्हड़ों में डाल दिया. सब ब्राह्मण सन्नाटे में आ गये. कर्नल बेंसले ने फिर एक बार हंटर फटकारा और जोर से बोला, "खाना शुरू करो!"

भयभीत ब्राह्मण खाने लगे. कर्नल बेंसले ने फिर चैन की सांस ली और गंगा बीबी से बोला, "अब तुम्हें कोई भी तंग नहीं करेगा."

आज भी होशंगाबाद के कलक्टर के पुराने बंगले में एक कुआं आपको दिखाई देगा जिसे लोग 'बंसरी साब का कुआं' कहते हैं. और आज भी जुझौतिया ब्राह्मण के दो दल मध्य प्रदेश में पाये जाते हैं– जुझौतिया ब्राह्मण और 'गंगाबीबी जुझौतिया ब्राह्मण.' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराध कैसे, कब और क्यों हो जाते हैं? क्या आदमी स्वभावतः अपराधी होता है? प्रस्तुत है प्रति माह प्रकाशित होने वाली सच्ची अपराध-कथाओं के सिलसिले की एक और कड़ी...

मित्र द्रोही

पांडुरंग खोत
पुलिस उपनिरीक्षक, बंबई

माता-पिता के प्रेम, भाई-बहन के प्रेम, पति-पत्नी के प्रेम की बड़ी प्रशंसा की जाती रही है. लेकिन, इन सबसे ऊपर है–मित्र-प्रेम, जो निःस्वार्थ-भावना से किया जाता है, और जिसमें कोई भी मित्र बदले में किसी पुरस्कार या प्रेम के प्रतिफल तक की भी आशा नहीं करता. ऐसे ही सच्चे मित्र-प्रेम की सत्यकथा है यह! यह घटना तब घटी थी, जब मैं घाटकोपर (बंबई) पुलिस स्टेशन से संबद्ध था.

1980 में जब घाटकोपर की यार्कसाइट कॉलोनी में रहने वाले सिल्वेस्टर लारेंस संथुमेअर सपलीक कुवैत गये तो अपना फ्लैट ही नहीं, अपना पूरा सामान भी वापस लौटने तक अपने मित्र जोसेफदास एंथोनी स्वामी को सौंप गये थे. 1982 के अप्रैल महीने के मध्य में उनकी पत्नी रोज़ी बंबई आयी और दो-तीन महीने बंबई में रहकर जून में वापस कुवैत चली गयीं. जाने से पहले वे अपने सारे गहने व कीमती साड़ियां स्टील की आल्मारी में बंद करके गयी थीं.

नौ जून, 1983 को किसी काम से संथुमेअर को बंबई आना पड़ा. घर आकर जब उन्होंने अपनी आल्मारी खोली तो चकित-स्तब्ध रह गये. न उसमें कोई गहना था, न कीमती साड़ियां. 22650 रु. के जेवर थे और तीन हज़ार की कीमती साड़ियां थीं. जून, 1982 से 5 जून, 1983 के बीच यह चोरी हुई थी. इसकी रपट लिखवाने वे घाटपोकर पुलिस स्टेशन पर गये. वहां उनकी सब बातें सुनकर मैंने उनसे कहा, "मेरा शक आपके मित्र जोसेफदास पर जाता है. किसी बाहरी आदमी का काम नहीं है यह. अगर बाहरी आदमी ने चोरी की होती तो वह आल्मारी के सामान के अलावा घर का भी थोड़ा बहुत सामान ले जाता. इसके अलावा, ऐसी हालत में जोसेफ के घरवालों में से किसी ने इसकी रपट यहां अवश्य लिखवायी होती."

"आपका कहना सही है लेकिन मेरा शक जोसेफ की मां और बहन पर जाता है. मेरे एक पड़ोसी ने मुझे बताया था कि उन्होंने मेरी पत्नी का सोने का हार जोसेफ की बहन के गले में देखा था."

"लेकिन वह हार उसका भी तो हो सकता है," मैंने कहा.

"जोसेफ की आर्थिक स्थिति से मैं परिचित हूं. उसकी हैसियत अपनी बहन को सोने का हार खरीदने की नहीं है और न ही किसी. और ने उसे वह कीमती हार पहनने को दिया होगा. चोरी मां-बेटी दोनों ने मिलकर की है, मेरे मन में इस बारे में कोई संदेह नहीं है."

संथुमेअर की बात ही संभवतः सच्ची हो, यह सोचकर मैंने उससे कहा, "ठीक है. मैं आपके कहने के अनुसार, जोसेफदास एंथोनी स्वामी के अलावा उसकी मां सिल्वरअम्मा और बहन कुमारी मेरी के खिलाफ इस शिकायत को थाने के रजिस्टर में क्रमांक 290/83 के अंतर्गत दर्ज कर लेता हूं."

जोसेफदास के घर पहुंचने पर मैंने सबसे पहले मेरी को देखा मैंने उससे सीधे पूछा,

> मित्र-प्रेम हो तो ऐसा! संथुमेअर सब-इंस्पैक्टर से कह रहा था, "यदि जोसेफराज ही गुनहगार साबित होता है,तो भी मैं उसने खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं करना चाहता. वह मेरा मित्र है." लेकिन पुलिस ने उस मित्र-द्रोही के विरुद्ध कार्यवाही की.

"रोज़ी के कुवैत जाने के बाद जो हार तुम पहना करती थीं, वह इस वक्त कहां है?"

"कैसा हार? कौन सा हार?" मेरी ने चकित होकर पूछा.

"जब यही प्रश्न मैंने उसकी मां से किया तो उसने भी चकित होकर उल्टे प्रश्न किया, "कैसा सोने का हार, साहब! हम गरीब आदमियों के पास सोने का हार कहां से आया?" सारी बातें सुनकर मेरी ने कहा, "रोज़ी जब आयी थी, साहब, तब उसके पास साड़ियां थी ही नहीं. फिर, उनके चोरी होने का सवाल ही कहां उठता है?"

मैंने फिर पूछा, "कपड़े औ जेवर कहां हैं?"

"हमें क्या मालूम? हमसे क्यों पूछ रहे हैं?" दोनों ने एक साथ कहा.

"जोसेफ कहां है?" मैंने पूछा.

"हमें नहीं मालूम."

आल्मारी व चोरी-स्थल का पंचनामाकर तथा मेरी और सिल्वर अम्मा को पकड़कर मैं थाने पर आया. वहां आकर मैंने वायरलैस गाड़ी पर काम करने वालों तथा डिटेक्शन स्टाफ को जोसेफ का हुलिया बयान कर उसे, वह जहां भी मिले, गिरफ्तार करने को कहा. सहायक पुलिस उपनिरीक्षक श्री चव्हाण आदि अधिकारी पार्कसाइट क्षेत्र में अपनी वायरलैस गाड़ी में जोसेफदास को ढूंढने लगे. सौभाग्य से वह जल्दी ही मिल गया. उसे देखते ही मैंने कहा, "देख जोसेफ, यदि तूने अपना गुनाह कबूल कर लिया तो मैं तुम तीनों को छोड़ दूंगा क्योंकि तेरा अच्छा दोस्त संथुमेअर तुझे परेशानी में नहीं देखना चाहता और अपनी शिकायत वापस लेने को तैयार है."

पहले तो वह काफ़ी देर तक यही कहता रहा कि उसका और उसके परिवार के लोगों का किसी चोरी से कोई लेना-देना नहीं है, मगर डराने-धमकाने और समझाने पर उसने सब कुछ उगल दिया. बोला, "साहब! चोरी मैंने और जगदीश पांडे ने मिलकर की थी. मेरी मां व मेरी का उससे कोई संबंध नहीं है. कृपया उन्हें छोड़ दीजिये. वे दोनों बेकसूर हैं."

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदीश के बारे में उसने बताया, "वह मित्र है और पार्कसाइट में ही रहता है." उसका पता लेकर मैंने हवलदार को उसे पकड़कर लाने को कहा. फिर मैंने जोसेफ से कहा, "मैं तेरी मां और बहन को छोड़ दूंगा मगर तभी जब तू उस चोरी के बारे में सब कुछ बता देगा, बिना कुछ छिपाये." यह सुनकर जोसेफ ने कहा, "साड़ियां मैंने सब चोर बाज़ार में बेच दीं. जेवरों में से, सोने के एक हार को छोड़कर जो मैंने अपने एक परिचित को बेचा है, सभी अलग-अलग मारवाड़ियों को बेचे हैं."

"क्या तुम हमें उन सब मारवाड़ियों की दूकानें दिखा सकते हो?" मैंने पूछा.

"हां," जोसेफ ने उदास स्वर में कहा. वह तब से उदास बैठा था, जब से संथुमेअर ने उससे कहा था, "अरे जोसेफ, इतनी खटपट करने की क्या जरूरत थी? तू कहता तो मैं सारे जेवर, सारी साड़ियां तुझे यूं ही दे देता."

सबसे पहले मैंने जोसेफ के साथ जाकर सोने का हार यशवंत मारुति नाम के व्यक्ति से प्राप्त किया. लाल बहादुर

शास्त्री मार्ग पर स्थित मदनलाल गौरीशंकर जैन की दूकान से हमें संथुमेअर के कई ज़ेवर मिले. अर्जुलाल कजोरीमल जैन नामक जौहरी की दूकान पर सोने के बने दो 'क्रास' मिले जो जोसेफ ने वहां बेचे थे. हमें सारे ज़ेवर प्राप्त करने का यश मिला.

मैंने सिल्वरअम्मा व कुमारी मेरी को पहले ही छोड़ दिया था. मैंने जोसेफ और जगदीश शंकर पांडे नामक उसके मित्र के ऊपर मुकद्दमा चलाने के उद्देश्य से उन दोनों के विरुद्ध अदालत में आरोप-पत्र दाखिल किये.

अदालत से जोसेफ एंथोनी स्वामी को तीन महीने का सश्रम कारावास-दंड मिला. उस पर दो सौ रुपये जुर्माना भी किया गया. जगदीश पांडे को प्रमाणों के अभाव में अदालत ने निर्दोष पाया और छोड़ दिया.

जोसेफ ने मित्र के प्रति विश्वासघात किया, मित्र-द्रोह किया और इसकी सज़ा, उसके मित्र की सज़ा दिलाने की इच्छा न होने पर भी, उसे भुगतनी पड़ी. □

महाराष्ट्र राज्य पुलिस मुख्यालय की विशेष अनुमति से 'दक्षता' के दिसंबर 1987 के अंक में प्रकाशित रचना का अनुवाद

प्रस्तुति : हरि

अपराध कथा : दो

लेफ्टिनेंट से ले. कर्नल तक

अशोक सालवकर

एक ऐसे धोखेबाज की सच्ची कहानी जो अपने को सेना का एक उच्च अधिकारी बताकर लोगों को ठगता फिरता था. कई बार जेल जाने के बावजूद, उसका यह धंधा चालू रहा.

टाइम्स ऑफ इंडिया में 24 सितंबर, 1987 को प्रकाशित एक छोटे से समाचार ने एक अवकाश-प्राप्त वरिष्ठ पुलिस-अधिकारी श्री अरविंद पटवर्धन का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लिया. श्री पटवर्धन जब तक सेवारत रहे, अपराधियों के घोर शत्रु बने रहे और अब अवकाश ग्रहण करने के बाद भी वे मौका मिलने पर, अपराधी को न्याय के सिपुर्द करके ही संतोष प्राप्त करते थे. बिना किसी स्वार्थपूर्ति की अपेक्षा के, कितने लोग ऐसी समाजसेवा करते हैं!

जिस समाचार ने श्री पटवर्धन का ध्यान आकर्षित किया था, उसका आशय यह था कि वासिम उज्जाफर नाम के ले. कर्नल ने 4 सितंबर, 1987 को 20 रुपये जमाकर, नागपुर में देना बैंक की एक शाखा में अपना खाता खोला था. दूसरे ही दिन, उसने बैंक की इलाहाबाद शाखा के एक खाते से जारी किया. 20,000 का एक चेक जमा किया और बैंक के मैनेजर से प्रार्थना की कि चूंकि चेक की रकम उसके खाते में जमा होने में 10-12 दिन लगेंगे और उसे 5000 की सख्त जरूरत है तो उसे वह यह रकम दे दे और चैक के 'क्लीअर' होने पर उसकी रकम में से काट ले. मैनेजर ने उसके पद के प्रभावित होकर उस पर विश्वास कर लिया और उसे 5000 दे दिये. दो-तीन दिन बाद ले. कर्नल ने फिर 2000 का चेक मैनेजर के गले मढ़ दिया और उसकी रकम भी रकम भी अगाऊ ले ली. कुछ दिन बाद दोनों चेक वापस आ गये और मैनेजर ने महसूस किया कि उस पर 7000 की चपत लग गयी है.

बैंक को धोखा देकर वासिम फरार हो गया. और श्री पटवर्धन, जो वासिम की गतिविधियों पर वर्षों से बारीक निगाह रखते चले आ रहे थे, जानते थे कि 1960 से उसने न जाने कितनों को फंसाया है. उसका पहला मामला भी श्री पटवर्धन को याद आ गया. 15 मार्च, 1960 को उसने सुबह ही एक टैक्सी ली थी और उसमें कई घंटों तक बंबई की सैर करता रहा था. अंतः में उसने टैक्सी वाले को बंबई के पुलिस कमिश्नर के कार्यालय के बाहर चलने को कहा. वहां आकर वह टैक्सी से उतरा और टैक्सी वाले से कहा, "मैं डी.सी.पी. पठाण से, जो मेरे रिश्तेदार हैं, मिलकर अभी आता हूं." कुछ मिनट बाद बाहर आकर उसने टैक्सी वाले से नाज़ सिनेमा चलने को कहा. वहां नाज बिल्डिंग में 'नाडियाडवाला फिल्म्स' का ऑफिस है. वहां पहुंचकर उसने कहा, "डिप्टी पुलिस कमीश्नर पठाण मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

– १९७९ में 'मेजर' वसीमउज़्ज़ाफर

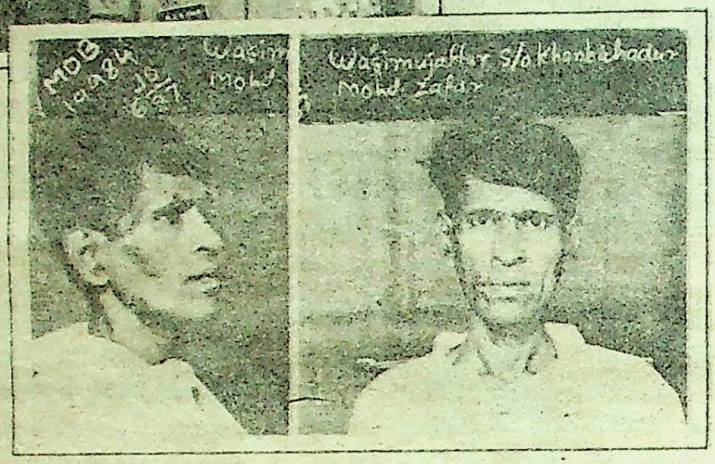

– १९८७ में 'लेफ्टनंट कर्नल' वसीमउज़्ज़ाफर

रिश्तेदार हैं. उन्होंने आपकी नयी फिल्म के छह टिकट मंगाये हैं. इसके बाद वह टैक्सी से जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट के सामने आया, और वहां 'अभी आया' कहकर ऐसा गायब हुआ कि टैक्सीवाले की समझ में नहीं आया कि वह गया कहां.

बेचारा टैक्सी ड्राइवर डी. एस. पी. पठाण के पास पहुंचा और उस पर जो बीती थी, वह सुनायी. पठाण साहब ने पूरी जांच करने के बाद मामला पुलिस की 'जनरल ब्रांच' के सुपुर्द कर दिया.

बंबई में अपनी सफलताओं के झंडे गाड़कर, वासिम साहब नयी दिल्ली पहुंचे. वहां कनॉट प्लेस पर रहने वाले श्री विश्वामित्र रुक्कर नाम के एक सज्जन को फोन करके उनसे कहा, "मैं उत्तर प्रदेश के डी.आई.जी.एफ.वी. मुहम्मद का बेटा हूं और सेना में अफसर हूं. बदली पर पठानकोट से खड़कवासला जा रहा था कि सामान चोरी हो गया. कुछ पैसों की सहायता करें." थोड़ी देर बाद, एक और फोन एफ. वी. मुहम्मद की ओर से किया कि "मेरे बेटे की थोड़ी मदद करने की मेहरबानी करें." श्री रुक्कर ने कोई जांच-पड़ताल नहीं की, और अस्सी रुपये उसे दे दिये.

लेकिन, जब उसने ऐसी ही 'ट्रिक' दिल्ली के नवाबज़ादा अली खां के साथ की तो वह पुलिस के चक्कर में आ गया और तीन मूर्ति पुलिस स्टेशन ने इस बोगस सेनाधिकारी को गिरफ्तार किया. समाचारपत्रों में प्रकाशित समाचारों के अनुसार से 13 सितंबर, 1960 को उसे तीन महीने की सज़ा मिली. सज़ा भुगतकर वह 27 मार्च, 1961 को बंबई 'जनरल ब्रांच' के एक सिपाही ने जो किसी काम से लेमिंग्टन रोड पुलिस स्टेशन आया हुआ था, उसे देखकर टैक्सी ड्राइवर और नाडियाडवाला फिल्म्स के मामले में गिरफ्तार कर लिया. 2 मई, 1961 को उसे फिर जेल जाना पड़ा.

12 जुलाई, 1961 को हम वासिम को हैदराबाद में पाते हैं. वहां उसने नसरुद्दीन नाम के एक अधिकारी को फांसकर, उससे दो सौ रुपये वसूल किये और इस रकम से सेनाधिकारी की यूनीफार्म, बैजेज आदि खरीदकर, उन्हें धारण कर, अपना नाम कैप्टन अब्बासी रखा. इस रूप में उसने हैदराबाद के मिलिट्री कैंप को फांसने का प्रयास किया और इस प्रयास में पकड़ा गया. 6 अगस्त, 1966 को उसे तीन साल की सज़ा मिली. इसके बाद, सोलापुर के किसी मामले में वह 5 मार्च, 1970 को दो साल के लिए फिर जेल में गया. जेल अब उस का दूसरा घर ही बन गया था.

नासिक जेल में वह इतना बीमार हो गया कि उसे खास इलाज के लिए बंबई के जे. जे. अस्पताल में भेजा गया. वहां 'प्रिजनर्स वार्ड' से वह अभिनेता दिलीप कुमार, उर्दू शायर अली सरदार जाफरी, साहिर लुधियानवी और मजरूह सुल्तानपुरी आदि को फोन करता रहता था. फोन पर वह अपना नाम मेजर हसन बताता था. मिसेज जाफरी से वह कुछ रकम ऐंठने में भी सफल हुआ. 1972 में जेल से बाहर आने पर वह मजरूह सुल्तानपुरी को अपने चक्कर में लाने में भी कामयाब हुआ.

4 सितंबर, 1987 को 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में वासिम द्वारा नागपुर के देना बैंक को धोखा देने का समाचार पढ़कर श्री अरविंद पटवर्धन ने बैंक की सहायता करने का निश्चय किया. उन्होंने 25 सितंबर को 'मोडस ऑपरेंडी ब्यूरो' के अधिकारी श्री ग्रोवर से मिलकर उनसे वासिम के बारे में विस्तृत सूचना प्राप्त कर उसे नागपुर के बैंक अधिकारियों को भेजा.

4 अक्टूबर, 1987 को बंबई के माता रमाबाई आंबेडकर मार्ग (पुराना पलटण मार्ग) के पुलिस थाने पर एक फोन आया. "मैं ले. कर्नल वासिम जाफर बोल रहा हूं. आपके पास में जो रूपम् होटल है, वहां लड़ाई-झगड़ा हो रहा है. आप फ़ौरन पुलिस भेजिये." फ़ौरन एक पुलिस-अधिकारी श्री घोरपडे दो कांसटेबुलों को लेकर जीप में बैठकर, रूपम् होटल की ओर रवाना हो गया. वहां 'ले. कर्नल' वासिम को सपरिवार बैठा देखकर पुलिस-अधिकारी को लगा कि इस आदमी को पहले कहीं देखा है. फिर उन्हें याद आया कि 1980 में उन्होंने वासिम उज्जफ़र नाम के इस आदमी को गिरफ्तार किया था. उन्हें यह भी याद आया कि नागपुर पुलिस को इस आदमी की जरूरत है, देना बैंक को धोखा देने के मामले में. 'ले. कर्नल' वासिम को फ़ौरन गिरफ्तार कर लिया गया. □

महाराष्ट्र राज्य पुलिस मुख्यालय द्वारा प्रकाशित 'दक्षता' से पुलिस विभाग की विशेष अनुमति से प्रकाशित यह सत्यकथा 'दक्षता' के दिसंबर, 1987 में छपी एक सत्यकथा पर आधारित है).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

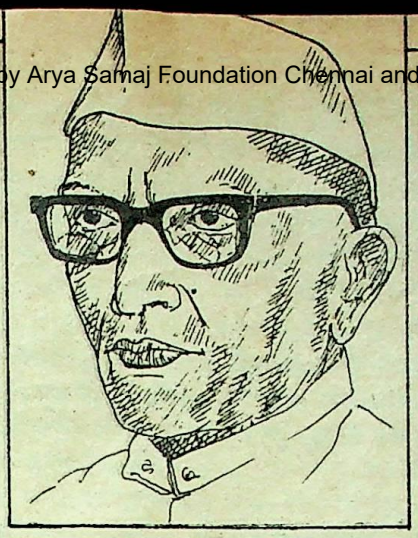

श्री देसाई बाल-बाल बचे!

□ जॉन लोबे

(अवकाशप्राप्त संचालक केंद्रीय अन्वेषण विभाग)

प्रत्येक वर्ष नवंबर के पहले शुक्रवार को मुझे उस विमान-दुर्घटना की याद अनायास आ जाती है और मन व शरीर स्तब्ध हो जाते हैं. यह अविस्मरणीय घटना 4 नवंबर 1977 को मेरी आंखों के सामने घटी थी, इसलिए मैं उसका पूरा तथा यथातथ्य विवरण प्रस्तुत कर सकता हूं.

4 नवंबर, 1977 को प्रधानमंत्री वायुसेना के एक विमान द्वारा इन राज्यों के दौरे पर जाने वाले थे. शाम के पांच बजे उनकी सुरक्षा-व्यवस्था से जुड़े हम लोग तथा विमान कर्मचारी पालम हवाई अड्डे पर जमा हुए. प्रधान मंत्री जोरहत जा रहे थे.

जिस विमान से प्रधानमंत्री यात्रा करने वाले थे, उसके चालन, प्रबंधन तथा देखरेख से संबंधित सभी अधिकारी, जिसमें प्रमुख थे विंग कमांडर क्लरंस जोसेफ डिलिमा, अनुभवी, कुशल तथा विश्वसनीय व्यक्ति थे. उनके संचालन में विमान ने पांच बजे अपनी उड़ान आरंभ की. उस समय हवा शांत थी. विमान में प्रधानमंत्री के साथ अरुणाचल प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री धुमोन, वहीं के एक सांसद श्री रिवम, सर्वोदय नेता श्री नारायण देसाई, उनके सुपुत्र श्री कांतिभाई देसाई, दो पत्रकार, एक फोटोग्राफर, गृह मंत्रालय के सहायक सचिव श्री कंपानी व प्रधानमंत्री कार्यालय के तेरह कर्मचारी थे. मुझे एक बार लगा था कि 13 का यह अंक कहीं अशुभ सिद्ध न हो जाये?

हमारा विमान-जोरहत पर पौने आठ बजे उतरने लगा था. मगर उसके निकट पहुंचकर हमने पाया कि वहां सचमुच जोरदार बारिश हो रही थी और तेज़ हवा चल रही है. कॉफी देने वाले सार्जेंट ने हंसते-हंसते घोषणा की, "जोरहत की तेज वर्षा व वर्षा के कारण हमें संभवतः तेजपुर जाना पड़े." मैंने कैप्टन से जाकर स्वयं यह जानने का प्रयास किया कि कार्यक्रम में कोई परिवर्तन तो नहीं होगा. कैप्टेन तक पहुंचने के लिए मैंने पैसेज से जुड़ा दरवाजा खोलने का प्रयास किया, पर यह खुला नहीं. यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो आज यह कहानी सुनाने के लिए मैं जीवित न होता.

बाहर घुप्प अंधेरा था. इस अंधेरे में भी विमान 300 मील की गति से जा रहा था. इंजन से जो धरधर आवाज आ रही थी, वह लगातार बढ़ती जा रही थी और धीरे-धीरे इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि उसके आघात से मैं अपनी कुर्सी से नीचे आ गिरा. विमान का सामान भी फर्श पर बिखरने लगा. विमान के पंख आसपास के झाड़ों को ऐसे काट रहे थे, जैसे छुरी मक्खन को काटती है. विमान की सब बत्तियां गुल हो गयी थीं और उसके अंदर पूर्ण अंधकार छाया था. मुझे अपने से अधिक प्रधानमंत्री की सुरक्षा की चिंता थी. वे विमान में हमसे आगे बैठे थे. हम सब, जो उनके पीछे के भाग में थे, एक प्रकार से अपने कक्ष में बंदी हो गये थे. डर लग रहा था कि कहीं विमान में विस्फोट न हो जाये.

इस बीच, विमान का एक पंख टूट गया था.

> प्रधानमंत्री का हवाई जहाज तेज़ हवा में थरथर कांप रहा था. जब वह जोरहत के पास गिरा तो पांच विमान-कर्मचारियों के प्राण ले चुका था, लेकिन सौभाग्य से प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई बाल-बाल बच गये थे.

या तो एक और कूद इस बीच, विमान का एक पंख टूट गया था और वह एक ओर झूल कर रुक गया था. हम सब, बिना सीढ़ी की मदद के कूदकर बाहर आये. बाहर आकर हमने देखा कि विमान में से तेल की दुर्गंध आ रही है. तभी, मैंने पाया कि श्री कांतिभाई देसाई कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं. विमान के एक भाग में आग लगनी शुरू हो गयी थी. मैं अपनी जान की कोई परवाह न करके विमान के अंदर श्री कांतिभाई को देखने के लिए घुसा. वे एक कुर्सी पर बैठे थे, मगर कष्ट के कारण उठ नहीं सकते थे. मैं उन्हें कंधों पर लेकर बाहर आया.

सौभाग्य से, इस समय तक विमान में लगी आग बुझ गयी थी. फिर सब लोग घबराये हुए थे. मैं तथा प्रधानमंत्री कार्यालय के श्री हसमुख शाह ने जख्मी लोगों का प्रारंभिक इलाज शुरू किया तथा घबराये हुए लोगों को सांत्वना दी. उसके बाद मैंने श्री कंपानी भी सहायता से विमान के कर्मचारियों की खोज शुरू की. यह खोज करते-करते मैंने पाया कि विमान का आगे का भाग करीब-करीब नष्ट हो गया है. मैंने विमान के कर्मचारियों के नाम लेकर उन्हें पुकारा, मगर कोई उत्तर नहीं मिला. मैंने अनुमान लगाया कि या तो वे विमान से बाहर फेंक दिये गये या उन्होंने विमान से खुद कूद लगायी है. वे जीवित हैं या नहीं, यह चिंता हमें सताने लगी.

तभी मैंने देखा कि पास के गांव के लोग हाथ में मशाल लिये हमारे विमान की ओर बढ़े चले आ रहे हैं. उन्होंने अपनी भाषा में हमसे विमान-दुर्घटना के बारे में पूछा. हमारे दल में से सिर्फ श्री कंपानी ऐसे थे जो उनकी भाषा समझते थे और बोल भी सकते थे. उन्होंने उन लोगों को बताया कि उन्हें किन वस्तुओं की तत्काल आवश्यकता है, जिनकी सहायता से जख्मियों को फ़ौरन अस्पताल पहुंचाया जा सके. वे बेचारे वापस गांव में गये और जो कुछ बन पड़ा, वे सामान लेकर आये.

मुझे मृतप्रायः कप्तान श्री डि लिमा दिखाई दिये, जिन्होंने मेरे सामने ही एक विचित्र आवाज़ निकालते हुए अपने प्राण त्यागे.

इस विमान-दुर्घटना में जो लोग काम आये वे सब विमान कर्मचारी थे. उन्होंने जिस कर्त्तव्य-पराणता, निष्ठा का परिचय दिया, उसके प्रति मेरा आज भी आदर से झुक जाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्योदोर दास्तोएव्स्की

"देखा तुमने! तुम्हें पहले ही मुझसे कतराना न था. अगर मैं तुम्हारे साथ होता तो यहां तक नौबत ही न आती."

"लेकिन मैं तुम्हें जानती जो न थी. मैंने सोचा, तुम भी उसी की तरह..."

"और अब तो जान गयीं न मुझे तुम?"

"थोड़ा ही. अच्छा, पहले यह तो बताओ जरा कि तुम कांप क्यों रहे हो?"

"ओह तुमने जान ही लिया. तुम बड़ी जल्दी समझ गयीं कि किस तरह के आदमी से तुम बात कर रही हो!" मैंने अपनी साथिन की बुद्धिमानी पर आनंदित होते हुए कहा. सुंदर स्त्री अगर बुद्धिमान भी हो तो उसे बड़ा लाभ होता है. "यह सही है कि मैं स्त्रियों से लजाता हूं. मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि जैसे अभी-अभी उस व्यक्ति के डर से तुम उत्तेजित हो गयी थीं, वैसा ही मैं इस समय

अनुभव कर रहा हूं... मुझे इस समय न जाने कैसा भय लग रहा है. यह सब बिल्कुल स्वप्न जैसी घटना है, और मैंने तो कभी सपने में भी न सोचा था कि मैं कभी किसी लड़की से बात कर सकूंगा."

"अरे नहीं? क्या सचमुच?"

"हां, बिल्कुल यही बात है. अगर मेरा हाथ इस समय कांप रहा है तो इसका कारण यही है कि आज तक तुम्हारे इस नन्हें-मुन्ने कपोत जैसे हाथ ने इसे कभी नहीं पकड़ा. मैं स्त्रियों से संपर्क में कभी नहीं आया, मैं उनके संसर्ग से बिल्कुल अपरिचित हूं. जानती हो, मैं सर्वथा एकाकी हूं. मुझे मालूम नहीं कि उनसे कैसे बात करना चाहिए. इस क्षण भी मैं यह निश्चित नहीं कह सकता कि मैंने कोई ऊल-जलूल बात तुमसे न कही होगी. अगर कही हो तो मुझे स्पष्ट बताओ, मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं जरा भी बुरा न मानूंगा...."

"अरे नहीं, नहीं! बात इससे ठीक उल्टी है. लेकिन अगर तुम मुझसे साफ-साफ कहलवाना ही चाहते हो तो मैं तुम्हें बताती हूं कि स्त्रियों को शर्मीले पुरुष अच्छे लगते हैं और अगर तुम और ज्यादा जानना चाहते हो तो मैं कहूंगी—मुझे भी वे अच्छे लगते हैं, और जब तक मेरा घर नहीं आ जाता मैं तुम्हें विदा भी नहीं करूंगी."

"तुम तो, लगता है, मेरी सारी लाज-शरम अभी दूर कर दोगी," मैंने हर्षातिरेक से गद्‌गद होकर कहा, "और तब-तब मुझे अपने इस एकमात्र अस्त्र से विदा लेनी पड़ेगी!"

"अस्त्र? कैसा अस्त्र? तुम्हारे मुंह से यह बात अच्छी नहीं लगती."

"माफ करना, दोबारा ऐसी बात मेरे मुंह से तुम न सुनोगी. वह तो मेरी जबान फिसल गयी थी. लेकिन जरा सोचो, क्या ऐसे क्षण में यह संभव नहीं कि इस बात के लिए उत्सुक हो उठूं कि..."

"कि कोई मुझे पसंद करे?"

"हां, बिल्कुल यही. ईश्वर के लिए मुझ पर रहम करो, तरस खाओ. जरा यह भी सोचो कि मैं किस दशा में हूं. छब्बीस साल का मैं होने को आया और अभी तक किसी स्त्री से मेरा परिचय तक नहीं! ऐसी हालत में यह कैसे उम्मीद की जा सकती है कि मैं तुमसे बुद्धिमत्तापूर्ण या बेझिझक बातचीत कर सकता हूं? यदि मैं तुम्हें सारा हाल सुना दूं तो तुम खुद इसे स्वाभाविक समझोगी. जब मेरे हृदय में एक तूफान-सा उठ रहा हो, मैं कैसे चुप रह सकता हूं. खैर, इसे जाने दो. लेकिन क्या तुम विश्वास करोगी कि, एक भी स्त्री से आज तक, यानी आज तक मेरी कभी कोई इस तरह की बातचीत नहीं हुई! ना ही किसी से दोस्ती! बस, मुझसे केवल इतना ही होता है कि स्वप्न देखा करता हूं कि किसी दिन, किसी जगह, किसी से मेरी मुलाकात होगी. आह, काश! कि तुम जान पातीं, मैंने कितनी बार इसी तरह प्यार किया है."

"लेकिन सो कैसे? और किससे?"

"ओह, किसी से भी नहीं, बस कल्पना में, जो भी मुझे सपनों में दिख गया. मैं अपने सपनों में पूरी की पूरी प्रेम-गाथायें रच डाली हैं. ओह, असल में तुम मुझे जानती नहीं! यह सही है कि मैं दो-तीन स्त्रियों से मिला भी हूं, लेकिन भला वे किस तरह की स्त्रियां थीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस इतनी, कि वे खासी घरैतिन छोड़कर और कुछ न होंगी...

लेकिन ठहरो, मैं तुम्हें-एक बात बताता हूं जिस पर तुम्हें जरूर हंसी आयेगी! मैं सदा किसी संभ्रांत-कुलीन स्त्री से सड़क पर टकराते हुए बातचीत करने की योजनाएं बनाया करता था, बशर्ते कि वैसी स्त्री मुझे मिल भर जाये. मैं सोचता कि मैं उससे नम्रता से, विनीत और भावुक होकर बातचीत करूंगा. मैं उससे याचना करूंगा कि मेरा एकाकीपन मुझे मृत्यु की ओर लिये जा रहा है, और वह मुझे अपने से दूर न हटाये, मैं कहूंगा कि मुझे किसी स्त्री से मित्रता जोड़ना जरा भी नहीं आता, मैं उसे ध्यान दिलाऊंगा कि नारी होने के नाते ही सही, वह मुझ दुखियारे की करुण पुकार सुन ले. और इन सब बातें से कोई प्रभाव न पड़ने पर मैं उससे केवल इतना ही मांगूंगा कि वह मुझे झटक कर अलग न करे बल्कि केवल बहिन की तरह स्नेहसिक्त दो शब्द ही बोल दे. अगर वह चाहे तो मुझ पर हंस भी सकती है, लेकिन बस मुझे थोड़ी-सी आशा दे दे, आशा के केवल दो शब्द, बस दो शब्द बोलकर चाहे हम फिर कभी एक दूसरे से न मिलें. लेकिन मैं देखता हूं तुम मुस्करा रही हो... जो भी हो, मैं तुम्हें यह सब इसलिए बता रहा हूं कि..."

पिछले अंश में आपने पढ़ा कि कथा नायक अपने सपनों में किस तरह पूरी की पूरी प्रेम-गाथाएं रचता रहा और फिर एक क्षण ऐसा आया कि जीवन में पहली बार उसकी बातचीत किसी युवती से हुई.... कैसा था यह विरल अनुभव कि नायक अपने साथ घटी चमत्कारी घटना से आत्मविश्वास की ओर लौट आया... आइए देखें, कैसी रही दूसरी रात की शुरूआत...?

"उत्तेजित न हो! मैं तो बस यह सोचकर मुस्करा रही हूं कि अपने दुश्मन को तुम स्वयं ही हो. और अगर तुमने, भले ही सड़क पर सही, कभी ऐसा करने का साहस किया होता तो तुम जरूर सफल होते. तम जितने ही सीधे-सादे ढंग से बोलोगे उतना ही अच्छा होगा... कोई भी कोमल हृदय नारी इतनी विनय से मांगे गये दो शब्दों का वरदान देने से कभी न इन्कार करती, हां यह बात अलग है कि वह मूर्ख हो या पहले ही से किसी बात पर उसका पारा चढ़ा हुआ हो... लेकिन यह मैं क्या कह रही हूं! असल में वह तुम्हें पागल तो जरूर ही समझ बैठती! स्वयं अपने दिल में उठने वाले विचारों के कारण यह बात जानती हूं. लेकिन यह भी एक सत्य है कि मैं इस जग की रीति-नीति से बहुत थोड़ी परिचित हूं."

"ओह, धन्यवाद!" मैं चीख पड़ा, "तुम नहीं जानतीं तुमने मेरे लिए कितना कुछ कर दिया है."

"ऊंह, हो चुका बस! अच्छा, लेकिन यह तो बताओ, तुमने यह अनुमान कैसे लगाया कि मैं उसी प्रकार की स्त्री हूं... यानी कि जिसे तुम अपनी मित्रता और घरेलू किस्म की न हो. आखिर, तुमने मुझ तक पहुंचने का निर्णय कैसे किया?"

"क्यों, इसमें कौन-सी बात है? तुम अकेली जो थीं, वह आदमी भी कुछ दुस्साहसी था और रात का समय, तुम मानोगी कि ऐसी हालत में हर पुरुष का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह..."

नहीं, नहीं, उससे पहले, जब तुम सड़क के उस पार दूसरी पटरी पर मेरे समानांतर चल रहे थे. तब तुम-मेरे पास आने के उत्सुक थे, बोलो नहीं थे?"

'अच्छा, वो उस पटरी पर? लेकिन मुझे डर लगता है. मैं नहीं जानता कैसे यह बात कहूं कि... जानती हो, आज मैं बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था. सड़क पर चलते हुए मैं गीत गुनगुना रहा था... इससे पहले मैं शहर के बाहर जा निकला था, और वहां पर मुझे इतना अच्छा लगा, मैं इतना आह्लादित हुआ कि आज तक कभी न हुआ था. तुम... लेकिन हो सकता है यह मेरी कल्पना मात्र रही हो... मुझे क्षमा करना यदि मैं तुम्हें फिर से याद दिलाऊं कि... मेरा मतलब है, मुझे उस समय ऐसा लगा कि तुम रो रही हो, और मैं... मैं यह सहन नहीं कर पाया... मेरा हृदय सिहर उठा... ईश्वर से मैंने कहा कि प्रभु इसका दुख मुझे दे दो. सच, तुम्हीं बताओ कि अगर मेरे दिल में उस समय एक मानवीय स्नेह उमड़ आया तो क्या यह पाप था? मुझे क्षमा करना, मैंने स्नहे कहा था. एक शब्द में क्या मैंने तुम्हारे निकट आने की अभिलाषा संजोकर पीड़ा पहुंचायी?"

"बस, बस करो, बस आगे न बोलना," उसने मेरे हाथ पर अपने हाथ के बंधन को कसते हुए कहा, "इसका भार मुझ पर है, मैं स्वयं तुम्हारे निकट आयी हूं. लेकिन मुझे संतोष है कि मैंने तुम्हें परखने में गलती नहीं की... अच्छा, अब इस कहानी को यहीं छोड़ें, इसी गली में मुड़कर दो-चार कदम पर मेरा घर है. अलविदा, और तुमको धन्यवाद!"

"क्या इसका, क्या इसका यही अर्थ है कि हम अब कभी न मिलेंगे? क्या इतने पर ही पटाक्षेप होना था?"

"देखा तुमने," लड़की खिलखिला पड़ी, "पहले तो तुम केवल दो शब्द चाहते थे, और अब... फिर भी, मैं कुछ न कहूंगी. शायद हमारी फिर भेंट हो."

"मैं कल यहां पर जाऊंगा," मैंने कहा, "मुझे माफ करो, मैं जानता हूं कि मैं काफी आगे बढ़ता जा रहा हूं."

"हां, तुम उतावले हो, और बड़े आग्रही भी!"

"मैं प्रार्थना करता हूं सुनो, जरा सुनो," मैं फूट पड़ा. "मैं क्षमा चाहता हूं अगर मैं कोई ऐसी बात कहूं जो कि... लेकिन मेरी हालत ये है कि ... मेरा कल यहां आना बिल्कुल अटल है. मैं स्वप्नदर्शी हूं. यथार्थ जीवन मैंने बहुत थोड़ा जाना है. और ऐसे क्षण मेरे जीवन में इतने कम आये हैं कि मैं बार-बार उन्हें सपनों में जिये बिना नहीं रह सकता. मैं सारी रात तुम्हारे सपने देखता रहूंगा और रात ही क्यों, हफ्तों, महीनों और बरसों तक मैं तुम्हारे बारे में सपने देखूंगा. कल मैं यहां इसी सपने और इसी स्थान पर जरूर आऊंगा और फिर आज के दिन की इन घड़ियों की याद करूंगा. यह स्थान मुझे पहले ही से बहुत पसंद है. पीटर्सबर्ग में इसी तरह से दो-तीन स्थान और हैं जो मुझे प्रिय हैं. एक बार तो मेरी इन स्मृतियों ने मुझे रोने को विवश कर दिया, बिल्कुल तुम्हारी तरह – और कौन जानता है, शायद तुम भी कुछ देर पहले अपनी स्मृतियों के लिए ही आंसू बहा रही हो. लेकिन मैं फिर बहक गया, देखो, मुझे कृपा करके क्षमा करना इस धृष्टता के लिए. शायद एक समय तुम इस स्थान पर आकर बहुत प्रसन्न होती थीं."

"बहुत अच्छा," लड़की ने कहा, "मैं सोचती हूं कल दस बजे मैं यहां पर आ पाऊंगी. मुझे यह भी लग रहा है तुम्हें कुछ फासले पर रखना अब अधिक देर संभव न होगा. बस, बात इतनी ही है कि मुझे यहां पर आना है. यह न सोचना कि मैं तुम्हारे साहचर्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनंद उठाने आऊंगी. यह बात समझ लो कि कुछ निजी कारणों से कल मुझे यहां पर आना है. केवल यही एक बात है बस... और यह भी मैं स्पष्ट कर दूं कि अगर तुम भी आओ तो मुझे कुछ एतराज न होगा. इसका एक कारण तो यह है कि कहीं आज रात की तरह कोई दुर्घटना न हो जाये. पर यह तो अलग बात है. संक्षेप में यही कि मैं बस तुमसे यहां पर मिलना चाहती हूं... किंतु तुमसे दो-चार बातें कर सकूं. लेकिन अब तो मेरे बारे में कोई कठोर राय न बनाओगे, कि बनाओगे? तुमने कहीं यह तो नहीं सोचा कि मैं बड़ी जलदी घनिष्ट हो जाती हूं? मैं तुमसे मिलने का वादा कभी न करती, अगर... परंतु इसे अभी अप्रकट ही रहने दो. हां, लेकिन मेरी एक शर्त भी है."

"एक शर्त! बताओ, मुझे तुरंत बताओ, तुम कहो तो मैं तुम्हारी हर शर्त मानने को तैयार हूं. तुम कहो तो मैं कुछ भी कर सकता हूं." मैं व्याकुल होकर चीख पड़ा, "मैं अपने पर काबू रखूंगा, मैं तुम्हारा कहना मानूंगा, तुम्हारे साथ सम्मानजनक व्यवहार करूंगा... तुम मुझे जानती हो."

"मैं तुम्हें जानती हूं इसीलिए तो कल आने का निमंत्रण दे रही हूं." लड़की ने हंसकर कहा, "मैं तुम्हें अच्छी तरह समझ गयी हूं. लेकिन ध्यान रखना कि तुम एक ही शर्त पर जाओगे. मेरी विनती है कि तुम उसे जरूर निभाना – तुम देखते हो मैं कितनी स्पष्टवादी हूं? बस मेरी शर्त केवल इतनी-सी है कि कहीं तुम मुझसे प्यार न करने लगना... तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, मैं फिर तुमसे कह देती हूं. मैं तुम्हारी मित्र बनने को जरूर तैयार हूं, बढ़ाओ अपना हाथ और मेरे हाथ पर रखो... लेकिन मेरी बस यही विनती है कि तुम अपने दिल को मेरे प्यार से पीड़ित न करना!"

"मैं कसम खाता हूं!" मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए भावावेश में कहा.

"बस रहने दो, कसम खाने की जरूरत नहीं. मैं जानती हूं तुम बारूद की तरह तुरंत फट पड़ते हो. मेरी इस चेतावनी का ध्यान रखना. काश! तुम जानते होते कि मुझसे भी कोई बात करने वाला नहीं, कोई सलाह देने वाला नहीं. यह सच है कि सड़क चलते किसी को मददगार नहीं मिला करते, किंतु तुम अपवाद हो. मैं तुम्हें इतनी अच्छी तरह समझ गयी हूं जैसे बीसों साल से हम-तुम एक दूसरे के मित्र है. अच्छा तुम अपना वादा तो न तोड़ोगे, बताओ?"

"यह तो तुम स्वयं देख लोगी... लेकिन अब मेरी ये समझ में नहीं आता कि यह बीच का समय कैसे कटेगा."

"बस जाकर गहरी नींद में सो जाना, यही एक उपाय है. शुभ-रात्रि! और याद रखना मैंने तुम्हारे वादे पर भरोसा किया है. तुमने कितनी गहराई से कहा था कि सचमुच भाई का स्नेह भी तुमसे किसी ने न मांगा! जानते हो, तुमने यह बात इतने मार्मिक, इतने प्रभावशाली ढंग से कही थी कि मैंने तत्काल तुम पर विश्वास करने का निश्चय कर लिया."

"है भगवान! लेकिन कैसे, और किस बात का विश्वास?"

"कल तक रुको! तब तक इस रहस्य को गुप्त ही रहने दो. तुम्हारे लिए भी यह अच्छा साबित होगा. क्योंकि कल्पना में ही सही, तुम्हारी स्वप्नीली प्रवृत्ति को यह सब एक रोमानी कथानक जैसा लगेगा. हो सकता है, जो रहस्य मैं आज तुमसे छिपा रही हूं, कल बता दूं, या कुछ भी न बताऊं. पहले मैं तुमसे और बहुत-सी बातें करूंगी जिससे हम लोग एक दूसरे को और अच्छी तरह से जान लें."

पांचवां तलाक

एक प्रसिद्ध अभिनेत्री चार बार तलाक ले चुकी थी और अब उसके पांचवे विवाह की चर्चा सारे देश में फैली हुई थी. इस बात का उसे बहुत गर्व था.

एक बार वह एक ऐसी अभिनेत्री से मिली, जो उससे कम प्रसिद्ध थी और दो तलाक ले चुकी थी.

बातचीत के दौरान दूसरी अभिनेत्री ने उसकी दिन प्रति दिन बढ़ती हुई मशहूरी का जिक्र कुछ व्यंग से किया, तो पहली अभिनेत्री ने गर्व से कहा, "मेरी मशहूरी की बुनियादें हैं–चार तलाक. और अब मैं पांचवें तलाक के लिए तैयारी कर रही हूं!"

"हां, हां, बिल्कुल ठीक. मैं कल तुम्हें अपने बारे में सब कुछ बता दूंगा. लेकिन, यह सब हो क्या रहा है? लगता है मेरे साथ कोई चमत्कारी घटना घट गयी है. हे ईश्वर, मैं कहां पहुंच गया हूं? अच्छा सच-सच बताना, कहीं तुम्हें इस बात के लिए मन ही मन पछतावा तो नहीं हो रहा है कि तुमने और सभी लड़कियों की तरह मुझे पहले ही क्यों न चलता कर दिया? दो मिनट के इस समय में तुमने मुझे सदा-सदा के लिए सुखी बना दिया. हां, सुखी बना दिया! कौन जानता है, तुम्हारे ही साहचर्य के प्रभाव से अब मैं अपने आत्मविश्वास को लौटता हुआ महसूस कर रहा हूं और मेरी सारी आशंकाएं समाप्त हो गयी हैं. काश! इसी तरह के क्षण मेरे जीवन में बार-बार आते! अच्छा तो बस, कल मैं तुम्हें सब कुछ बता दूंगा अपने बारे में. कल तुम मेरे बारे में सभी कुछ जान लोगी. सभी कुछ."

"अच्छी बात, ऐसा ही करेंगे. लेकिन शुरूआत तुम्हें ही करनी होगी."

"जैसा तुम कहो."

"अलविदा!"

"अलविदा."

हम अलग हुए. मरे हर्ष का ज्वार थम नहीं रहा था. मैं घर न जा सका और रात भर घूमता रहा... ओह! कल ही तक की बात है...!

"देख लिया न? आखिर तुम जिंदा बच ही गये!" उसने हंसकर अपने हाथों में मेरे हाथ लेते हुए कहा.

"मैं तो दो घंटे से यहां पर आया हूं. तुम कल्पना नहीं कर सकतीं कि आज का दिन मैंने कैसे गुजारा था"

"मुझे मालूम है, मुझे अनुमान है–लेकिन हमें अब मतलब की बात पर आ जाना चाहिए. जानते हो मैं यहां पर क्यों आयी हूं? आज मैं कल की तरह तुमसे फिजूल की गपशप नहीं करूंगी. अच्छा तो अब! देखो भविष्य में हमें अपने व्यवहार में जरा समझदारी से काम लेना चाहिए. कल रात मैं इन सब बातों पर बड़ा विचार करती रही."

"लेकिन यह तो बताओ कि किस बात में हमें समझदारी दिखाने की जरूरत है? जहां तक मेरा सवाल है, मैं तुम्हारी हर बात मानने को तैयार हूं. लेकिन सच तो यह है कि मेरे जीवन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझदारी की बात तो बस यही हुई है कि हम और तुम मिल सके."

"सचमुच? सबसे पहले तो मेरा अनुरोध यह है कि मेरे हाथ इतने जोर से मत दबाओ और दूसरी बात यह कि आज दिन में बहुत देर तक मैं तुम्हारे विषय में सोचती रही.

"अच्छा! और किस नतीजे पर पहुंची?"

"मैंने निश्चय किया कि सारी बातों की शुरूआत फिर से की जाये. क्योंकि आज सुबह मैंने यह पाया कि मैं तुमसे अच्छी तरह परिचित ही नहीं और कल रात का मेरा व्यवहार बिल्कुल बचकाना था. एक बेवकूफ लड़की जैसा. और इसमें गलती मेरे कोमल हृदय की थी. दूसरे, मैंने जो अपनी ढेर-सी प्रशंसा कर डाली,वह बिल्कुल उसी तरह थी कि जिस तरह अपनी छोटी-छोटी उपलब्धियों का मूल्यांकन करते समय हर मूर्ख व्यक्ति करता है. इसीलिए, मैंने अपनी गलती सुधारने के लिए निश्चय किया कि पहले मुझे तुम्हारे बारे में हर छोटी से छोटी, और बड़ी से बड़ी बात मालूम करना चाहिए. लेकिन चूंकि और किसी से पूछताछ करके में यह पता लगा नहीं सकती इसलिए अब तुम्हीं मुझे अपने विषय में सारी बातें बता डालो. गुप्त से गुप्त बात भी. अरे! तुम कैसे आदमी हो? जल्दी शुरू हो जाओ और मेरी बात का जवाब दो. हां, तो फिर सुनाओ अपनी जीवन-कथा."

"अपनी जीवन-कथा?" मैं चकराकर चीख पड़ा, "मेरी कथा कैसी! लेकिन तुम्हें बताया किसने कि मेरी भी कोई कहानी है? मेरी कोई कथा-वथा नहीं है."

"अगर तुम्हारी कोई कहानी नहीं है तो तुम भला जीवित कैसे हो?" उसने हंसते हुए मेरी बात काटी.

"मेरे जीवन में कोई कहानी है ही नहीं. मैंने तो अभी तक बस घटनाहीन एकाकी जीवन बिताया है, सबसे अलग. बिल्कुल अकेले. तुम जानती हो एकाकी का अर्थ क्या होता है?"

"एकाकी—लेकिन यह कैसे? क्या तुम्हारा मतलब है; तुम कभी किसी से मिले ही नहीं."

"ओह नहीं, यूं तो लोगों से अक्सर ही मिला करता हूं. फिर भी, हूं मैं एकाकी ही."

"क्या तुम कभी किसी से बात नहीं करते?"

"अगर इस शब्द को संकुचित अर्थ में न लिया जाये तो मैं कहूंगा—नहीं!"

"लेकिन तुम हो किस तरह के आदमी, जरा बताओ. एक पल रुको, शायद मैं समझ गयी. लगता है, मुझे जैसी तुम्हारी भी कोई नानी है. वह बेचारी है तो अंधी. जमाना बीत गया, उसने मुझे कहीं आने-जाने ही नहीं दिया. इसीलिए बातचीत करने की आदत भी मेरे अंदर से लुप्त होती जा रही है. दो साल पहले मैंने कोई शरारत की थी. उसने तुरंत सोचा कि मुझ पर कोई अंकुश नहीं रह गया है. बस, उसने मुझे बुलाया और मेरे कपड़ों को अपने कपड़ों के साथ सेफ्टी-पिन से टांक लिया—और तब से रोज दिन भर में उसके साथ सेफ्टीपिन से बंधी बैठी रहती हूं. नानी है तो अंधी, लेकिन मौजे बुन लेती है. बस वह दिन भर मौजे बुना करती है और मुझे उसके बगल में बैठे रहना पड़ता है. बैठे-बैठे या तो मैं भी कोई सिलाई-कढ़ाई का काम किया करती हूं या किसी पुस्तक को पढ़कर नानी को सुनाया करती हूं. किसी को दो साल तक इसी तरह से बांधकर रखना है बड़ी बेहूदा बात."

"हे भगवान्! कितने दुर्भाग्य की बात है यह! लेकिन मैं बताऊं—मेरे कोई नाना-नानी या दादा-दादी नहीं हैं."

लेकिन अगर यह बात नहीं है तो तुम घर पर कैसे बंधे रहते हो?"

"देखो, क्या तुम जानना ही चाहती हो कि मैं किस तरह का प्राणी हूं."

"जरूर जानना चाहती हूं."

"बिल्कुल सही-सही?"

"बिल्कुल सही."

"अच्छा तो फिर सुनो. मैं आत्मार्थी हूं."

"आत्मार्थी? कैसा आत्मार्थी?" लड़की ने विस्मित होकर कहा और इस तरह खिलखिलाकर हंसी जैसे बरसों से उसे हंसने का मौका ही न मिला हो. तुम तो बड़े मजेदार आदमी हो जी. देखो, वहां पर एक बैंच पड़ी है, जिस पर पहले हम बैठ जायें, तब आगे बात हो. इस तरफ कभी कोई नहीं आता. न यहां पर कोई हमारी बात सुन लेगा, ऐसी कोई आशंका है. अच्छा, तो अब तुम अपनी कहानी शुरू करो. यह तो प्रकट हो ही गया कि कहानी तो हमारे पास है. लेकिन तुम जो भी कहते हो उसे रहस्यमय बनाते जाते हो. सबसे पहले यह बताओ कि 'आत्मार्थी' किसे कहते हैं?"

"आत्मार्थी? आत्मार्थी एक सनकी किस्म का और उपहासास्पद प्राणी होता है," मैंने उसकी बच्चों जैसी हंसी का साथ देते हुए कहा, "यह उसका स्वभाव होता है. सुनो, तुम जानती हो स्वप्नदर्शी किसे कहते हैं?"

"स्वप्नदर्शी? अरे वाह, यह कौन नहीं जानता? मैं स्वयं स्वप्नदर्शी हूं. जब मैं नानी के बगल में बैठी होती हूं तो मेरा मन जाने कहां उड़ा करता है. और तब मैं सपनों के जाल बुनना शुरू कर देती हूं और वे मुझे यहां तक बहकर ले जाते हैं कि मैं कल्पना में देखती हूं कि एक चीनी राजकुमार के साथ मेरा ब्याह हो गया है. तुम जानते हो, स्वप्नदर्शी होना कभी-कभी बड़ा अच्छा होता है. लेकिन नहीं, शायद ऐसा नहीं है. मुझे नहीं मालूम. हो सकता है इस बारे में तुम्हारी कुछ और धारणा हो," लड़की ने अंतिम वाक्य कुछ गंभीरता से कहा.

"बहुत सुंदर! जब तुमने स्वयं की चीनी राजकुमार से ब्याह रचाये हुए कल्पना की है तो तुम मुझे पूरी तरह समझ लोगी. अच्छा तो अब सुनो. लेकिन जरा ठहरो, मुझे अभी तक तुम्हारा नाम भी नहीं मालूम!"

"आखिरकार तुम्हें ध्यान आ ही गया. इससे पहले यह बात तुम्हें नहीं सूझी थी? हे ईश्वर! मेरे दिमाग में तो यह बात कभी आयी ही नहीं. मैं इसके बिना ही काफी खुश था."

"मुझे नास्तेंका कहते हैं."

"नास्तेंका-बस, इतना ही है?"

"हां इतना ही. लोभी आदमी, क्या इतना तुम्हारे लिए पर्याप्त न होगा?"

"पर्याप्त? उल्टे, यह तो पर्याप्त से भी अधिक है, बहुत बहुत अधिक. नास्तेंका तुम निश्चय ही बड़ी कोमल हृदय लड़की हो, जो तुम मुझे अपने नाम से पुकारने की अनुमति दे रही हो."

"मेरी भी यही धारणा है कि मैं कोमल-हृदय हूं. अच्छा, अब आगे बढ़ो."

"ठीक. तो नास्तेंका, यह मजेदार कहानी मैं अब शुरू करता हूं." □

अगले अंक में

कितनी मजेदार थी यह कहानी... कितने सुखों और दुखों को लपेटे लपेटे आगे बढ़ रही थी यह...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोहर लाल ने अपनी बेटी के हाथ तो पीले कर दिए... लेकिन उनकी फूल जैसी बच्ची मुरझा गई।

मनोहर लाल ने अपनी बेटी को बड़े लाड़ प्यार से पाला पोसा। अभी वह सोलह साल की भी नहीं हुई थी कि तुरन्त उसकी शादी कर दी। वर तो अच्छा ढूंढ़ा लेकिन मनोहर लाल ने यह नहीं सोचा कि शान्ता ख़ुद अभी बच्ची ही तो है। घर गृहस्थी और गर्भवती होने का भार कैसे सह सकेगी! कुछ ही महीनों में शान्ता गर्भवती हुई लेकिन वह मां ना बन सकी। कच्ची उम्र होने के कारण बच्चा ठहर न सका। डाक्टरों ने शान्ता की जान तो बचा ली लेकिन उसका स्वास्थ्य दुबारा न बन सका।

मनोहर लाल को अपनी जल्दबाज़ी पर रोना आ रहा है। काश वे दो-तीन साल तक रुक जाते और अपनी बेटी को फलने-फूलने और बढ़ने का मौका देते।

याद रखिए लड़की की शादी अठारह वर्ष और लड़के की इक्कीस वर्ष से पहले करना उन पर अत्याचार करना है। उन्हें ज़िंदगी की जिम्मेदारियों का सामना करने लायक बनने का समय दें।

डाक्टर की सलाह मानिए :

डाक्टरों का कहना है कि लड़की के शरीर का विकास 18 वर्ष की आयु तक होता रहता है। वह 15-16 साल में जवान ज़रूर दिखती है लेकिन गर्भाशय और डिम्ब ग्रन्थियों का विकास 18 वर्ष तक होता रहता है। अगर लड़की 18 वर्ष से कम आयु में माँ बने तो ये मुश्किलें सामने आती हैं :

1. लड़की के शरीर का विकास रुक जाता है।
2. 18 वर्ष से कम उम्र माँ की सन्तान कमज़ोर और कम वज़न की पैदा होती है।
3. ऐसी कमज़ोर या कम वज़न संतान की बहुधा मृत्यु हो जाती है।
4. क्योंकि 18 वर्ष से कम उम्र में कुछ प्रजनन अंगों जैसे गर्भाशय और डिंब ग्रंथियों का विकास पूर्ण नहीं होता इसलिए अक्सर गर्भपात हो जाता है। माँ बनने में भी कठिनाइयाँ आती हैं।
5. पैलविस का पूर्ण विकास 18 साल से पहले नहीं हो पाता। इसलिए बच्चे का सिर उसकी तुलना में बड़ा पड़ सकता है। प्रसव में बाधा से अन्दरूनी अंगों को नुकसान पहुंच सकता है, जिससे मूत्राशय या मलाशय में कमजोरी पैदा हो जाती है।
6. कम उम्र में योंन-सम्बन्ध से गर्भाशय-मुख में कैंसर होने की संभावनाएं बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। यह भारतीय महिलाओं में कैंसर का मुख्य कारण है।

याद रखिए: बच्ची के बच्चा होना उसके साथ घोर अन्याय है।
अठारह वर्ष से पहले लड़की और इक्कीस वर्ष से कम लड़के की शादी क़ानूनन अपराध है।

और जानकारी और मुफ़्त पत्रिका के लिए इस पते पर लिखिए: पोस्ट बाक्स नं. 5420 नई दिल्ली 110011

davp 88/209

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकनीकी-युग के अंधकार से लड़ने का संकल्प

हिंदी के नये कथाकारों पर तकनीकी युग की वैज्ञानिक चेतना ने इधर यह असर जरूरी तौर पर डाला है कि वे महत्वपूर्ण प्रश्नों, समस्याओं, जीवन की जटिलताओं को लघु आकार में सुश्लिष्ट अनुभवों से रचने लगे हैं. यंत्र युग की मनःस्थितियों, विभीषिकाओं ने मानवीय संवेदना की केंद्रीय स्थिति में हलचल पैदा कर दी है. आदमी के भीतर का आदमी यंत्र दानव के प्रति चौकन्ना है, भयभीत है. त्रस्त है. शस्त्र शक्ति के उमड़ते हुए ज्वार में भी आप अपनी मानवीय संवेदना को नष्ट नहीं होने देना चाहते हैं और मां-चेतना का सृजन ममता-करुणा से आबद्ध रहना चाहता है. यंत्र प्रलय में मानव को डूबने से मां-चेतना ही बचा सकती है. गिरिराज किशोर का उपन्यास, 'असलाह' इसी विचार-मंथन की अभिव्यक्ति है. अपने छोटे आकार में यह उपन्यास बहुत कुछ लंबी कहानी का ही विस्तार लगता है. उपन्यास का संपूर्ण रूप तंत्र पांच हिस्सों और अनके चिंतनात्मक शीर्षकों के रोलों को थामे हुए है. किंतु इसकी समग्र प्रभावान्विति में बिखराव नहीं है. एक भीतरी कलात्मक कसावट इस उपन्यास को एक नये कथा-प्रयोग में बदल देती है. कथा ने आज के इंसान की हालत के जिन बुनियादी सवालों का सामना किया है—वे विचार के स्तर पर महत्वपूर्ण सार्थकता रखते हैं.

दरअसल यह उपन्यास उस आदमी की भीतरी तकलीफ का मनोमंथन है जो शस्त्रों की शक्तिशाली दौड़ में भी आदमी की आंतरिक लय करुणा को हर कीमत पर बचाना चाहता है. हथियार-प्रेम से मां-चेतना का प्रेम ज्यादा बड़ा और अर्थवान है और यहां अंततः इसी मां-प्रेम की जीत भी होती है. नायक अमरी की पूरी आवाज उसकी घरवाली की मूल चिंता के सामने पराजित हो जाती है और अकेली आवाज हथियारों के शक्ति प्रवाह को सोख जाती है. उपन्यास के आरंभ में अमरी अपने पिता दरोगा से पिटता है. पिता की पिस्तौल के प्रति उसका जन्मजात आकर्षण बढ़ता ही रहता है—यह हथियार आकर्षण इतना प्रबल है कि इससे तंग आकर उसकी प्रेमिका चंदा भी उसे छोड़ जाती है. अमरी के मन में पिस्तौल की काली भुजंग नाल उंगली की तरह आंखों में घुसी हुई है. वह पापा के जूतों के तरह हथियारों की लाइन लगाना चाहता है. पिता द्वारा दी गई नकली पिस्तौल भी बच्चे को मार-पीट कर दर्द भूला देती है. और नकली से असली की ओर बढ़ने की संकल्पबद्ध है. यही कथा उपन्यास का पूरा ढांचा पा लेती है. इस पर कहानी के कई स्तर हैं कई मोड़दार, घुमावदार हैं—तनाव हैं. अमरी की दोस्ती का एक मोड़ असलाह घर के इंचार्ज के लड़के से शुरू होता है. वह शस्त्रागार में वह रिवाल्वर देखता है जिसकी मूठ घूमी हुई है—मूठ हाथी दांत से बनी है—यह सिराजुद्दौला रिवाल्वर है—नये जमाने के हथियारों की तुलना में यह कुछ नहीं है. किंतु बच्चे के लिए इसका महत्व है. बाल मन में ललक का अतीत संसार है वह उसे जीना चाहता है. असलाह घर के नए अधिकारी के आ जाने पर फिर मोड़ हैं—बच्चा चानमारी देखने में तन्मय हो जाता है. चानमारी का संगीत उसे प्रेमिका के संगीत से ज्यादा मोहक लगता है. यह चानमारी प्रेम एक दिन कर्नल से दोस्ती करा देता है. उसकी इच्छा उमड़ती है—"मुगल बादशाहों के पास बेगमों का हरम होता है. उसके पास हथियारों का हरम होता है." (पृ.33) यही हथियार-प्रेम- बढ़ता जाता है. इतना किसी अमरी नवविवाहिता पत्नी से भी उतना प्यार नहीं करता है—जितना हथियारों से. उसने पत्नी से पहली ही रात कहा, "मेरे पिता ने मेरी शादी जबरदस्ती की है. मैं आदमियों को कम हथियारों को ज्यादा प्यार करता हूं." (पृ. 43) हालत यहां तक आ पहुंची कि पत्नी घबरा गयी. यहां विशेष ध्यान देने की बात यह है कि गिरिराज किशोर का पुरुषमन औरत के मनोविश्लेषण में बेहद रमता है उन्हें मौका भर मिले वे नारी के मन का विश्लेषण एक मनोविश्लेषणा शास्त्री की मुद्रा में करने लगते हैं. वे नारी मन के विश्लेषण की भी तमन्ना रखते हैं—उसमें गोता पर गोता खाते हैं—एक अतृप्त अंतर्मन की घुमड़न उनका पीछा करती है.

असलाह : गिरिराज किशोर
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, दिल्ली.
मूल्य : तीस रुपये

अमरीकी पत्नी बच्चे पर बच्चे पैदा करती है और वह हथियारों का व्यापारी बन जाता है. अमरी हथियारों के कदरदान के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है. टेक्नालाजी के विकास और वैज्ञानिक दृष्टि के प्रतीक हैं. वह स्वयं उधर बढ़ता है बच्चों के नामकरण पर हथियारों का नामकरण करता है. यही उसकी विज्ञान आधुनिकता-संस्कृति का प्यार है. सभी उससे थरथराते हैं हथियारों का शक्ति पुरुष. डेमोक्लीज की नई तलवार उसके हाथ में है. पर पत्नी नहीं डरती है—मां-चेतना, नहीं डरती है, वह बराबर अपने बच्चों को पिता अमरी के चिंतन विरोध के लिए तैयार करती है और कहती है, "मेरी इस कोख को कोख ही रहना देना मेरे बच्चे मशीन में न बदल देना". उपन्यासकार की कथा का यह विशेष विचार बिंदु है. मशीनी संस्था के प्रतीक और मानव संवेदना का सृजन प्रतीक द्वंद्व ग्रस्त है. आदिम शस्त्र प्रेम और आदिम ममता के आदिम बिंबों के द्वंद्व चल रहा है. नयी तकनीकी युग की छाया में पलता थर्राता मानव, विश्वयुद्धों की विज्ञान मार से मरा मानव पूरा दृश्य झांकने लगता है.

कृष्ण दत्त पालीवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलक्षण चारित्रिक सामर्थ्य

द्रौपदी का चरित्र अब तक के स्त्री पात्रों में शायद सबसे अनोखा है क्योंकि एक ओर तो उसे स्मरणीय कन्याओं में स्थान देकर दीप्तिसंपन्ना माना है तो दूसरी ओर पांच पुरुषों की भोग्या होने से उसे दलिता भी स्वीकारा है. द्रौपदी के इसी अनोखेपन और जटिलता को लेकर अनेक कवि-कथाकार और नाटककारों ने उसे अपनी कृतियों की नायिका बनाया है, पर द्रौपदी के स्त्री-मन में निरंतर चलते इस महाभारत को प्रतिभा राय ने जिस तरह अपनी कृति 'याज्ञसेनी' में महारत से अंकित किया है, वह चिरस्मरणीय स्वीकारा जायेगा. प्रतिभा राय ओड़िया की प्रसिद्ध लेखिका हैं, सोलह उपन्यास सहित्य-संसार में अपना स्थान बना चुके हैं, पर इनका याज्ञसेनी (द्रौपदी) इन सबमें विशिष्ट है. द्रौपदी के मन के भीतर का महाभारत तो सभी शुरू हो गया था जब उसकी सास कुंती ने अनजाने में ही अपने पांचों पुत्रों की पत्नी बनने का आदेश उसे दे दिया था. द्रौपदी के पिता कुंती मां के इस आदेश के मंतव्य को बूझकर आश्चर्य से भर गये. विचलित होकर कह उठे, "कैसी बात कर रही हैं? एक पुरुष से बहुनारी विवाह का तो विधान है, पर एक नारी का बहु पुरुष से विवाह करने से स्त्रीधर्म नष्ट हो जाएगा."

पांचों भाइयों को एकसूत्रता में निबद्ध करने का गुरुतर भार द्रौपदी को उठाना है, "राजा द्रपद! मुक्ता हों, पुष्प हों, देवता के गले में शोभाने के लिए ही उन्हें माला में ग्रंथित करना होता है. सूक्ष्म सूत्र को छोड़ पुष्प या मुक्ता को एकत्र करना संभव नहीं. आज वैसे ही आर्यावर्त में धर्म की रक्षा के लिए पांचों पांडवों का माला सदृश एकत्र ग्रंथित होना आवश्यक है. पुष्पहार देवता के गले में शोभा पाता है, पर पुष्पों में छिपे सूत्र की गहनीयता कौन अस्वीकार करेगा? वैसे ही पंच पाडव आर्यावर्त में धर्म की प्रतिष्ठा करेंगे तो भी कृष्णा (द्रौपदी) की महती भूमिका इतिहास के पवित्र अक्षरों में लिपिबद्ध होगी."

और, द्रौपदी के भीतर की औरत आर्त स्वर में कह रही है, "मैं हुई पंचपुष्पों को एकत्र बांध रखने का सूक्ष्म सूत्र, जिसे कोई नहीं देखेगा. उसका दुख-दर्द कोई नहीं पहचानेगा. उसकी यंत्रणा की टेर किसी को नहीं मिलेगी." सूत्र स्वरूपा द्रौपदी की नियति सबमें अनस्यूत होते हुए भी ओझल रहना है. उसका मन हाहाकार कर उठता है, "कैसी विडंबनापूर्ण स्थिति है. एक-एक करके पांच बार अग्नि को साक्षी रखकर मैंने पंचपति वरण किया. पांच बार प्रतिक्षा की-काय मनोवाक् से मैं तुम्हारी हूं, नितांत तुम्हारी! पर क्या ऐसा संभव है? यह सत्य है या आत्म प्रवंचना?"

पांडवों में सबसे बड़े युधिष्ठिर द्रौपदी के प्रति आकर्षण को स्वीकृति देते हुए उसे बताते हैं, "याज्ञसेनी! तुम्हारा जन्म-वृतांत सुना तब से तुम्हारी ओर आकृष्ट था. मैं जानता था कि तुम्हारे बिना धर्म की रक्षा संभव नहीं. अतः तुम्हें अपनी करना पड़ा. अग्नि की साक्षी में तुमने मुझसे विवाह किया, इतना ही यथेष्ठ है. मुझे कुछ और नहीं चाहिए. तुम अर्जुन को प्राप्य हो. उसी ने स्वयंवर में जय पायी है, अतः उसे तुम्हारे साथ संसार बसाने में आपित्त नहीं. हमारे बीच यही पवित्र संबंध रहें."

युधिष्ठिर के वचनों को सुनकर द्रौपदी क्रोधाभिभूत होकर बोल उठी, "आप धर्मराज कहा कर पूजा पाते रहेंगे और मेरा सारा जीवन असत्य में बिताकर पाप अर्जित करती रहूं? अग्नि को साक्षी रखकर पति बनाने के बाद सिर्फ एक के प्रति स्त्री का कर्तव्य पालन करूं? मुझे दुनिया असती कहे, लेकिन पतियों के पास जीवन भर असत्य और अविश्वासनीय जीवन व्यतीत करने की ग्लानि क्यों भोगूं?"

द्रौपदी को शांत करने को युधिष्ठिर का कहना था, "तुम्हारे लिए किसमें प्रलोभन नहीं है? परंतु हम पांचों को संतुष्ट करना सहज नहीं है. हम पांचों की पांच प्रकार की रुचि और पच्चीस प्रवृत्तियां हैं..... तुम्हें इसमें कष्ट होगा. पुरुष की प्रकृति से तुम परिचित नहीं. तुम तो वैसे ही पांचों की प्रियतमा हो. हम में से कोई तुम्हें पल भर भी अपने निकट से अंतर नहीं करना चाहेगा. किसी को जरा-सा भी उपेक्षा सहन नहीं होगी."

द्रौपदी मन ही मन जैसे चीख उठी, "पंचपति के साथ एक-एक कर विवाह संपन्न होने तक मुझे अपने कुमारीत्व को अक्षुण्ण रखना होगा.

पंचपतियों की पत्नी होने पर भी द्रौपदी कैसे हरेक पति के प्रति एकनिष्ठ रह पाती है? द्रौपदी का मानना है, 'जिस दिन जिस पति के कक्ष में रहती हूं उस दिन दूसरे पतियों को लेकर कोई दुर्बलता नहीं होती. तब समझ लेती हूं कि मेरे पति एक ही हैं. अपना सारा प्रेम, निष्ठा उनके चरणों में उड़ेल देती हूं. तब कोई पुरुष मेरे अवचेतन में नहीं होता, कृष्ण को छोड़कर.' पर कृष्ण से तो द्रौपदी के देहातीत आत्मिक संबंध है और कृष्ण तो उसके पतियों के भी परम हितैषी और आत्मीय सखा हैं. तभी तो द्रौपदी का सोचना है, 'कृष्ण को चाहने में मेरा सतीत्व या पतिव्रत क्षुण्ण नहीं होता. कृष्ण-प्रेम पवित्र है, अनाविल है, आशा-प्रत्याशा से बहुत ऊपर है. अतः अपने सतीत्व और पातिव्रत्य पर कभी-कभी मुझसमें भी अहंकार हो जाता है!'

देह से परे हार्दिक या आत्मिक तौर पर किसी पर पुरुष के प्रति आकृष्ट हो जाना आज की स्त्री के लिए परम स्वाभाविक स्थिति है. 'द्रौपदी' में कथा-लेखिका डॉ. प्रतिभा राय ने द्रौपदीकी चरित्र-सृष्टि द्वारा इन प्रश्नों के समाधान देने चाहे हैं. "पृथ्वी की अधिकांश स्त्रियां शरीर से न सही, मन से असती कही जाएंगी. देह को रखने पर भी मन ही मन वे पर पुरुष के साथ मधुशय्या की रचना कर लेती हैं. पर मुझमें वैसा कुछ नहीं होता. युधिष्ठिर के साथ एकत्र रहते समय मैं कभी भीम की कामना नहीं करती. भीम के साथ कभी अर्जुन को नहीं बिसूरती." अपने संयमित और श्रृंखलित जीवन के लिए वह अपने संपूर्ण जीवन को साधना के कठोर मार्ग पर तपाती है. द्रौपदी के चरित्र की इस दीप्ति को प्रतिभा जी ने अपनी प्रतिभा से इस औपन्यासिक कृति में बड़ी मार्मिकता से उजागर किया है. द्रौपदी के पांच पतियों के प्रति एकनिष्ठ भाव की विलक्षण चारित्रिक सामर्थ्य को समझ पाने के लिए इस उपन्यास का पढ़ना अपरिहार्य है. □

प्रो. विश्वंभर 'अरुण'

द्रौपदी (उपन्यास)
रचनाकार : प्रतिभा राय
प्रकाशक : राजपाल एंड संस,
कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
मूल्य : साठ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष प्रधान समाज की विसंगति पर सार्थक टिप्पणी

'और कब तक' उपन्यास में उपन्यासकार प्रदीप पंत 'भारतीय समाज में औरत की स्थिति' पर विस्तार से बात कर लेना चाहते हैं. इसके लिए उन्होंने उपन्यास के प्रमुख पात्र का नाम दिया है 'सुमति', जिसके चारों ओर कथा का तानाबाना बुना गया है. इसीलिए अगर उपन्यास का कोई पात्र अपनी निजी समस्या लेकर किसी दिशा में दूर निकल जाना चाहता है तो लेखक का अपनी कोठी बेचने के लिए अखबार में विज्ञापन देना और सुमति का अपनी संस्था के लिए कोठी खरीदना. शिल्प के इस कौशल को कथा की बनावट में एक कदम आगे बढ़ना कहा जा सकता है. लेखक ने यह कदम बहुत सोच-समझ कर किंतु स्वाभाविक ढंग से उठाया है.

जाने-अनजाने सुमति के जीवन में आए उतार-चढ़ाव ने उसे भीग कर सूख जाने के बाद कागज में आए कड़ेपन जैसा कर दिया. वह आज की एक आभ भारतीय नारी से जुड़े अनेक सवालों से जूझती है और साथ ही उसका अपने प्रति विश्वास उसे स्वयं तन कर खड़े होने में सहारा भी देता है. यानी वह व्यापक समाज की समस्याओं को लेकर भी चलती है और व्यक्तिगत प्रश्नों से भी संघर्ष करती है. इसी क्रम में वह शुभा और बसंती जैसी नारियों को भी अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाती है. यह उसके व्यक्तित्व की दृढ़ता का ही परिणाम है कि वह शरद मेहता से टूट कर अलग होने के बावजूद बिखरने से बच गयी.

इस बात की सराहना की जाएगी कि सुमति के बड़े व्यक्तित्व को कृतिकार ने अपनी इच्छा या अपनी कल्पना से आगे-पीछे करने की कोशिश नहीं की, बल्कि उसे बड़े स्वाभाविक रूप में समाज के प्रति प्रतिबद्ध बनाया. सुमति के भारतीय उत्तरा को शरद मेहता को सौंपने बंबई जाती है, यह जानते हुए भी कि वहां उसकी सौत बैठी है. सुमति का यह तर्क भारतीय परिस्थितियों में सही है कि उत्तरा का बचपन तो कहीं भी कट सकता है, पर उसका विवाह पिता के नाम और सामीप्य से ही संभव होगा. सुमति पति के रूप में शरद को स्वीकार नहीं करती. अपने नाम के साथ जुड़ा 'मेहता' शब्द भी हटा देती है. पर उत्तरा के पिता के रूप में शरद को मान्यता देने पर बाध्य हो जाती है. सुमति अपनी इस विवशता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगाती. उत्तरा को बंबई में छोड़कर वह वापस दिल्ली लौट आती है. अपने पीछे हवा में आती "मम्मी...मम्मी..." की आवाज पर वह मुड़कर नहीं देखती और न ही यह पूछती है कि 'और कब तक' ऐसी सामाजिक व्यवस्था चलेगी, जिसमें पति के रूप में भले ही पुरुष को त्याग दिया जाए, पिता के रूप में उसके अस्तित्व से इंकार नहीं किया जा सकता. वास्तव में ऐसा न पूछ कर वह मानो इस सवाल को परोक्ष रूप से ज्यादा गहराई से उठा देती है. यह लेखक की सफलता है.

उपन्यास के दो महत्वपूर्ण पात्र हैं—शैलेन और पारितोष. वास्तव में शैलेन और पारितोष के रूप में पूर्व और पश्चिम आमने-सामने खड़े हैं. संवादों के बीच दोनों में टकराहट होती है, जिसमें पछतावे का स्वर दोनों ही दिशाओं से उठता है. अंतर बस इतना है कि जहां शैलेन अपने अभावों को बीड़ी के कश में एक ओर हटा देता है, वहीं जिनेवा में संपन्न जीवन का सुख भोगता पारितोष अपने भारतीय संस्कारों की जड़ों से उखड़ा हुआ कराह उठता है.

नेल्सन, लोतिका, और रुक्मा... यह तीन पात्र भी भारत से जुड़े हैं. नेल्सन इसलिए कि उन्होंने एक सुंदर भारतीय स्त्री लोतिका से विवाह कर लिया. लोतिका ने भले ही एक योरोपियन से विवाह कर लिया, जिनेवा में रहती है, लेकिन साड़ी पहनना और माथे पर बिंदी लगाना नहीं छोड़ा. रुक्मा नौकरानी है. पैसा कमाने के लिए जिनेवा पहुंच गई, पर हर समय वापस भारत जाने के लिए आंखों में आंसू भरे रहती है. ये पात्र उपन्यास में बहुत थोड़ी-सी जगह घेरते हैं, लेकिन सवाल बड़े-बड़े उठा देते हैं. सारी भौतिक सुख-सुविधाओं और प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर जिनेवा रुक्मा के लिए खाली-खाली सा हो जाता है. क्योंकि वहां वह आत्मीयता नहीं मिलती जो भारतीय परिवेश में आज भी उपलब्ध है. गरिमा की बात दूसरी है. उसने पारितोष से विवाह अवश्य किया है. उसके पूर्वज भारतीय रहे हैं. पर इस सब से क्या, उसका जन्म तो जिनेवा में हुआ है. वह पारितोष के पक्ष को कैसे स्वीकार कर ले? गरिमा जब-तब पारितोष के भारतीय संस्कारों से टकराती रहती है. भारत में बसने की बात तो वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकती. पारितोष को गरिमा इतनी दूर तक बदलने में कामयाब हो जाती है कि पारितोष एक झटके में भारत से संबंध तोड़ देता है.

उपन्यास में खलनायक से प्रतीत होते दो पात्र हैं—राम बाबू और शरद मेहता. पर सही अर्थ में रामबाबू को खलनायक का खिताब नहीं दिया जा सकता. वह वर्षों तक प्रापर्टी डीलर रहे और शेयर बाजार में दलाली की. अब रिटायर्ड जिंदगी में भी अच्छे-बुरे माल को इधर-उधर करके कमीशन खाना चाहते हैं, भले ही यह अच्छा-बुरा माल आदमी की शक्ल में ही क्यों न हो. खलनायक शरद मेहता को भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह तो शुरू से ही सैडिस्ट टाइप के चरित्र के रूप में एकस्पोज हो जाता है. परपीड़न में सुख पाने वाले और केवल अपने स्वार्थ के लिए जीने वाले शरद मेहता के चरित्र के प्रति पाठक के मन में लेखक बड़ी सफलता से गहरी नफरत भर देता है. उपन्यास के अंत में परिस्थितियां सुमति के पक्ष में बदल जाती हैं. शोषित-दलित नारी-समाज का अपनत्व ही सुमति से नहीं जुड़ता, बल्कि वह पुत्री व दामाद के रूप में उत्तरा-सौरभ, और साथी के रूप में डा. दवे को भी पा जाती है. यहां से सुमति के जीवन की दूसरी ही कहानी शुरू होती है—ऐसी कहानी जिसे सुख, संतोष और पूर्णता का वरदान प्राप्त है.

अतः कहा जा सकता है कि 'और कब तक' उपन्यास के 267 पृष्ठ तो सुमति के जीवन का पूर्वार्द्ध हैं और अभी सुमति के जीवन का उतरार्द्ध लिखा जाना बाकी है. बहरहाल 267 पृष्ठ तक आते आते सुमति के आगे एक विशाल संसार फैल गया है, और संसार शदर मेहता की दी झठी गृहस्थी को छलना से एकदम भिन्न है और सामाजिक प्रश्नों और चनौतियों से भरा है.

धर्मेंद्र गुप्त

और कब तक : प्रदीप पंत
प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन जटवाड़ा, दरियागंज नई दिल्ली-2
मूल्य : पचपन रुपए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा : अस्मिता की पहचान

□ डा. नारायण दत्त पालीवाल

विविधता में एकता वाले हमारे देश में अनेक भाषाएं, उप भाषाएं, बोलियां, उप बोलियां हैं. जहां तक हिंदी का प्रश्न है यह भाषा सारे देश को जोड़ती चली आयी है और भाषा के स्तर पर भावनात्मक एकता के लिए हिंदी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है. हिंदी के प्रति आदर की इस भावना के पीछे महात्मा गांधी की प्रेरणा ने संजीवनी शक्ति का काम किया. उनका स्पष्ट मत था– "अगर स्वराज्य करोड़ों भूखे मरने वालों, करोड़ों निरक्षरों, निरक्षर बहनों, दलितों आदि का हो और इन सबके लिए होने वाला हो तो हिन्दी ही एक मात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है." गांधी की इस वाणी ने उस समय जन-जन के मन में भाषायी स्वाभिमान कूट-कूट कर भर दिया था और सभी अंग्रेजी शासन से मुक्ति के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा से भी मुक्ति चाहते थे. ऐसे ही वातावरण में स्वामी दयानंद सरस्वती ने कहा था- "हिंदी द्वारा भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।" सुप्रसिद्ध विद्वान डा. सुनीति कुमार चटर्जी ने भी एकीकृत भारत के लिए एक भारतीय भाषा की आवश्यकता पर बल दिया. हिंदी हीं एक ऐसी भाषा है जो इस देश में एकता की ज्वलंत प्रतीक हो सकती है. इसी तरह के विचार के काका कालेलकर और विनोबा भावे देश में हिंदी का समुचित आदर न होने पर अत्यंत दुःखी थे.

हिंदी ने पूरे देश को एक सूत्र में जोड़ते हुए पारस्परिक स्नेह और भावनात्मक एकता के लिए आधार भूमि तैयार की. इस भाषायी तालमेल में संस्कृत, हिंदी, उर्दू तथा भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं का भी महत्वपूर्ण सहयोग रहा. उस समय महत्वपूर्ण बात यह थी कि देश के सामने स्वतंत्रता का लक्ष्य था और सभी एक डोर में बंधे हुए इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एकजुट होकर संकल्प लिए हुए थे. न भाषाओं का झगड़ा था और न प्रांतों का. इसीलिए जब देश स्वतंत्र हुआ तो भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा हिंदी को गौरवपूर्ण स्थान मिला और अनुच्छेद 343 के अनुसार राजभाषा के रूप में हिंदी को सरकारी कामकाज तथा पारस्परिक आदान-प्रदान की भाषा को स्वीकार किया गया. संविधान में भारत की सामासिक संस्कृति के विकास और भाषायी तालमेल के लिए क्षेत्रीय भाषाओं को भी मान्यता दी गयी और यह स्पष्ट कर दिया गया कि देवनागरी लिपि में लिखी गई हिंदी भाषा भारत की राजभाषा होगी, जिसके लिए शब्दावली प्रमुख रूप से संस्कृत से और उसके पश्चात भारत की क्षेत्रीय भाषाओं से ली जायेगी. यह निर्णय ठीक भी था क्योंकि माध्यम परिवर्तन की स्थिति में अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न भाषाओं की शब्दावली, शैली, अलंकार आदि की सहायता अंततः हिंदी के विकास के लिए नितांत आवश्यक हैं. भारतीय भाषाओं का साहित्य समृद्ध है, अतः ज्ञान और विज्ञान के इस युग में जब विभिन्न क्षेत्रों का अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी का प्रयोग किया जायेगा तो भारतीय भाषाओं के रूप शैली, पदावली और शब्द भंडार हिंदी को और भी सक्षम बनाने की दिशा में सहायक सिद्ध होगा. कार्यालयों, न्यायालयों, विद्यालयों, कार्यशालाओं, निजी उद्योगों या प्रशासनिक संस्थानों में जब हिंदी के प्रयोग की बात आती है तो हमें प्रसाद, पंत, निराला ने जिस भाषा में हिंदी साहित्य को सजाया है उसके स्थान पर पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए सहज और बोधगम्य भाषा की आवश्यकता होती है. इसीलिए स्वतंत्रता के पश्चात सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर विभिन्न भारतीय शब्दकोश, शब्द संग्रह, संकलन और नियमों, कानूनों, अधिनियमों आदि का हिंदी रूपांतर सुलभ किया गया. हिंदी के प्रयोग के लिए साधन जुटाये गये. नियम, अधिनियम तथा कानून बनाये गये. मंत्रालयों, कार्यालयों में हिंदी के कक्ष स्थापित किये गये. निजी संस्थानों ने भी हिंदी के प्रचार और प्रसार की दिशा में कदम उठाये. सभी ओर अंग्रेजी को हटाकर हिंदी अपना लेने की बात चल पड़ी, किंतु 40 वर्ष बीत जाने पर भी हिंदी को वह गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हो सका जो संविधान द्वारा अपेक्षित था और अंग्रेजी का प्रचलन बराबर बना रहा. यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमें अभी भी विदेशी भाषा से चिपके हुए हैं और वे भाषाएं जिनसे इस देश की संस्कृति की महत्ता की महक आती है, अभी भी उपेक्षित ही हैं.

हिंदी और भारतीय भाषाओं की उपेक्षा के पीछे जहां हमारा मनोवैज्ञानिक संकोच है वहीं अंग्रेजी से जुड़ी हुई झूठी प्रतिष्ठा भी इसके लिए उत्तरदायी है. जब तक हमारी मानसिकता नहीं बदलेगी और हम भाषायी स्वाभिमान के प्रति जागरूक नहीं होंगे तब तक अंग्रेजी से पीछा छूटना कठिन प्रतीत होता है. ऐसा लगता है कि हमारी कुछ परिस्थितिजन्य विवशताएं हैं जिनके कारण अंग्रेजी का मोह बना हुआ है और अंगीकार नहीं हो पा रहा है. हिंदी ही नहीं अन्य सभी भाषाओं का यही हाल है. हिंदी का विरोध किसी भारतीय भाषा से नहीं, अंग्रेजी से है. अतः हमें भारतीय भाषाओं को समुचित सम्मान देते हुए उन्हें कार्य व्यवहार की भाषा के रूप में अपनाना चाहिए. हमें हिंदी को और अन्य भारतीय भाषाओं को जन-जन की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना है. परिस्थिति यह है कि कहीं अंग्रेजी से जुड़े रहना राजनीतिक कारण है तो कहीं अन्य विवशताएं. हमारी मानसिकता तो यह गयी है कि हम जोरदार रूप में अंग्रेजी पढ़ने वाला या अंग्रेजी का प्रयोग करने वाले को ही पढ़ा-लिखा, प्रतिष्ठित एवं सुसंस्कृत मानते हैं. हीन भावना के कारण हिंदी को पिछड़े हुए लोगों की या दोयम दर्जे के नागरिकों की भाषा मानने वाली मनोवृत्ति भी इसका एक कारण है. हम अपने बच्चों को भी ऐसी शिक्षा देने में संकोच करते हैं जिससे उनके मन में अपनी भाषाओं के प्रति लगाव पैदा हो और वे उन्हें दिल लगाकर सीखें, उनका सम्मान करें. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : जुलाई, 1988 के पुरस्कार विजेता तथा सर्वशुद्ध हल

इस बार 5000 प्रतियोगियों में चार प्रतियोगी ही सर्वशुद्ध हल भेज सके हैं. अन्य 100 प्रतियोगियों के भी प्रयास प्रशंसनीय रहे. सर्वशुद्ध हल भेजने वाले चार प्रतियोगियों में पुरस्कार राशि बराबर-बराबर वितरित की जा रही हैं.

कथा पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. हरिमोहन की 'सुकन्या.'
2. 'घर गमला.'
3. 'सर्वे और सुंदरी.'
4. सुधीश पचौरी.
5. 'पत्थर की अप्सरा.'
6. रक्तकंठ.
7. गणिकाओं के विभिन्न वर्गों से.
8. शिवप्रसाद सिंह की 'सुने परीक्षित सुनो'
9. 'घर-गमला' और 'छोटा-सा इंद्रधनुष'.
10. 'सुकन्या'.

...और यह रहे पुरस्कार विजेता

1. केसरी कैलाश नाथ
309 पी.डी. कीटगंज, (श्याम स्टोर्स)
इलाहाबाद (उ.प्र.)

2. राम प्रसाद
अध्यक्ष, नागपुरी विभाग, गोस्सनर कॉलेज, रांची-834001 (बिहार)

3. योगिता सहगल
डा. हजरत जी का मकान, लोहिया बाजार, लश्कर, ग्वालियर (म.प्र.)

4. सरोज सिंह
66 रजनी बाबू रोड, कांचड़ापाड़ा, 24 परगना (प.बं.)

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

सारिका कथा-पहेली में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित है. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पैर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा पहेली के सभी प्रश्न सारिका अगस्त, 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 सितबर, 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा नवंबर, 1988 के अंक में दी जायेगी.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पाठकों तक 'सारिका' देर से पहुंचती है वे 'सारिका कथा पहेली' में अपनी पूर्तियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. पूर्तियां भेजते समय यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि 'सारिका' आप तक देर से पहुंची.

सारिका कथा पहेली : सितंबर 1988

1. विश्वप्रसिद्ध भारतीय कवि की प्रेयसी 'नलिनी' का मूल नाम ..... है.
2. नपुंसक क्रोध को देखकर हंसने का संदर्भ ..... कहानी में आया है.
3. 'एन एक्स फौर ए रानी' और 'द सौरोज ऑफ बर्थर' पुस्तकों के लेखक हैं क्रमशः ..... और .....
4. कुछ समय पहले एक अरब देश ने एक विश्व प्रसिद्ध कृति पर प्रतिबंध लगाने की मांग की थी, किंतु विश्वव्यापी विरोध के चलते उसे अपनी यह मांगवापसी लेनी पड़ी. यह कृति है .....
5. यह पात्र जिन रचनाओं के हैं, उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
   1. रघुनाथ (.....) 2. विश्वकर्माजी (.....)
   3. अन्ना (.....) 4. शहरयार (.....)
6. अपनी कहानी के अंत पर टिप्पणी करते हुए ऐसी दूसरी कहानियों के अंत पर पाठकों से सवाल उठाने वाले कथाकार हैं .....
7. ज्ञानपीठ पुरस्कार-नियमावली में इधर हुए परिवर्तन से क्या लाभ होगा?
   .....
   .....
8. "संवेदनशील विषयों को अपने केंद्र में रखकर चलने वाले सीरियल की चुनौती 'तमस' की तरह दुहरी होती है." इस टिप्पणी से सुधीश पचौरी का अभिप्राय है...
   .....
   .....
9. "पता नहीं मुझे क्या हो गया है? सब लोग, सारा नया-नया-सा.... खिला-खिला-सा लगता है! सब मुझे प्यारे लगने लगे हैं और मैं सबकी प्यारी हो गयी हूं." यह संवाद ..... का है.
10. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ हिंदी कथा-रचना ..... द्वारा लिखित ..... है.

नाम .....

पता .....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेंद्र राव

पत्रिकाएं : कुछ सरकारों की, कुछ सरोकारों की

कतार से बाहर

सरकारी पत्रिकाओं की बेफिक्र कतार से बाहर, गरीब और शोषित जन के प्रति सरोकार के उन्मेष निकाली जा रही परिवर्तनकामी तेवर वाली एक अच्छी पत्रिका है—कतार. यह धनबाद से निकलती है और सबसे तारीफ की बात यह है कि सपादकद्वय-बृज बिहारी शर्मा और श्रीनारायण समीर का नाम किसी भी आपाधायी में सुनायी नहीं देता, वरना लघुपत्रिकाओं के प्रकाशन का पहला उद्देश्य ही अपने नाम की शोहरत मचाना होता है. हम अनेक महानुभावों और देवियों को जानते हैं जिन्हें अपना सिक्का चलवाने के लिये पत्रिका प्रकाशन जैसा द्रविड प्राणायाम करना पड़ा है. 'कतार' जनवादी पत्रिका है परंतु इसके प्रस्तुतिकरण में ताजगी है. वरवर राव की कविताएं और उन पर डा. मैनेजर पांडेय का लेख. वरवर राव के काव्य संकलन 'भविष्यत् चित्रपटम' पर आंध्र प्रदेश मे प्रतिबंध लगा. 1987 में, आज उनकी कविताएं अनूदित होकर हिंदी पत्रिकाओं में छा गयी हैं. कतार में उनकी 5 रचनाएं संकलित हैं. संजीव का नाटक '21 वीं सदी का जादू' और वरुणा धर की कहानी 'बदले हुए रुख' के अलावा सत्यभक्त जी पर दी गई सामग्री पठनीय तथा महत्वपूर्ण है. खटकने वाली पिष्टपेषित रचनाओं में अरविंद कुमार का समकालीन कहानी पर लिखा गया लेख है जिसमें संजीव, विजेन्द्र अनिल, सुरेश कांटक आदि वे संभवतः कमतर मूल्यांकन के लिये किन्हीं गोपेश जी को आड़े हाथों लिया गया है. इसी तर्ज पर सुरेश कांटक की एक तीखी टिप्पणी है. विजेन्द्र अनिल महोदय को लेकर 'नई रचना' के पिछले अंक में भी इसी तरह का एक लंबा पत्र व्यवहार छपा था. बहरहाल आगे के पृष्ठों पर विजेन्द्र अनिल के कथा संग्रह 'विस्फोट' पर लिखी अरविंद कुमार की ही समीक्षा है जिसे पढ़कर हमने इरादा कर लिया है इस पुस्तक को जरूर पढ़ना है.

अच्छा और गतिशील प्रशासन जनहित में नये से नया कदम उठाने में नहीं चूकता. पिछले एक दशक में पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के मूल्य तेजी से बढ़े हैं. जन सामान्य की पहुंच से बाहर हो रहे साहित्य को सस्ता और सुलभ बनाने की दिशा में उ.प्र., मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल जैसे राज्यों में कम मूल्य की परंतु आकर्षक साहित्यिक पत्रिकाएं प्रकाशित करने को प्राथमिकता दी गयी है. साक्षात्कार, अतएव, मधुमती, विपाशा आदि पत्रिकाओं को लागत मूल्य से कम में उपलब्ध कराने में होने वाला घाटा राजकोष से ही आता होगा. इन पत्रिकाओं की छपाई और सजधज देखते ही बनती है. इसी क्रम मे दिल्ली प्रशासन की हिंदी अकादमी ने एक खूबसूरत दीखने वाली पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' का प्रकाशन आरंभ किया है. यह नहीं कि वहां से पहले कोई सरकारी पत्रिका न निकलती रही, साहित्य अकादमी (या अकादमी) की भारी भरकम पत्रिका तो थी ही.

राज्य सरकारों के साहित्यानुराग और उत्साह के प्रति पूर्ण सराहन भाव रखते हुए भी यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि अगर सचमुच पाठकों को सस्ता साहित्य उपलब्ध कराना है तो कागज एवम् अन्य मुद्रण सामग्रियों पर कर तथा अधिभार कम करके बेहतर तरीके से किया जा सकता है. सरकार द्वारा प्रकाशित या सहायताप्राप्त पत्र-पत्रिकाओं की चुनौती को स्वीकार करना स्वतंत्र प्रकाशनों के लिये उसी स्थिति में संभव हो सकेगा अन्यथा कम मूल्य की बहु प्रचारित पत्रिकाओं के माध्यम से रचनात्मक साहित्य का अप्रत्यक्ष सरकारीकरण हो जाने का खतरा बना रहेगा.

सर्वे भवंतु सुखिनः

आधुनिक 'सीकरी' की कुलीन पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' के पहले दो अंक प्रभावशाली लगते हैं.

हां दूसरे अंक में अपेक्षाकृत परिष्कृत सामग्री है. चित्रा मुद्गल, सुरेश उनियाल की कहानियां, मटियानी की जैनेंद्र पर टिप्पणी और डा. सत्यपाल चुघ का हिंदी भाषा के प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' पर लेख उल्लेखनीय हैं. अमर गोस्वामी का रेखाचित्र 'समरेश बसु' बहुत सामयिक है. सबसे कमजोर पहलू है समीक्षा—दोनों अंकों में दिल्ली के लेखकों ने दिल्ली के लेखकों पर बड़े दिलखुश अंदाज में लिखा है. रही-सही कसर डा. पुष्पपाल सिंह ने अपने लेख में पूरी कर दी है. दोनो अंकों में कोई भी विवादास्पद या चिंतनीय मुद्दा नही उठाया गया है. कविताएं निरापद और स्त्रैण हैं— देश, काल, परिस्थिति की चिंता से दूर. कुल मिला कर लब्बो लुआब यह कि—दिल्ली में सब सुखी हैं. भगवान करे सुखी बनें रहें.

कथा भारती

'कथा भाषा' पत्रिका देखने में भले ही सीधी सादी और अनाकर्षक हो परंतु इरादे बुलंद हैं. एक एक करके भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि कहानियों के संकलन निकाले जा रहे हैं. उर्दू और पंजाबी के बाद हिंदी अंक प्रथम निकाला है. इसके सीमित साधनों को देखते हुए कमला चमोला, प्रेम कुमार, राजेन्द्र लहरिया जैसे युवा हस्ताक्षरों की अच्छी कहानियां इसमें चुनी गयी हैं. आगामी अंक कन्नड़ कहानियों पर होगा. मैं सोचता हूं कि 'कथा भाषा' जैसी पत्रिकाओं को सरकारी अनुदान क्यों नहीं मिलता जबकि राष्ट्रीय एकता के प्रचार के नाम पर संबंधित राज्य सरकार जाने कितना बड़ा बजट बनाती होगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चा : हुक्का-पानी बंद कथाकारों के एक सामूहिक आंगन की

पिछले दिनों राजधानी में एक ऐसा साहित्यिक आयोजन देखने को मिला जो कई अर्थों में पारंपरिक आयोजनों से अलग तथा विशिष्ट था. युवा कथाकार महेश दर्पण द्वारा संपादित तथा सचिन प्रकाशन, दिल्ली द्वारा सद्य प्रकाशित 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी कोश' (दो भाग) के विमोचन तथा चर्चा का यह महत्वपूर्ण अवसर था. राजधानी के सैकड़ों कथाकारों की संयुक्त उपस्थिति के बीच मंच पर थे-विष्णु प्रभाकर, अमृता प्रीतम, कमलेश्वर, सुरेश उनियाल, महेश दर्पण तथा इस ग्रंथ के प्रकाशक अनिल पालीवाल. डेढ़ सौ से ज्यादा कथाकारों को दो हजार पृष्ठों से अधिक में समाहित किये हुए यह ग्रंथ वास्तव में एक 'शिशु-आश्चर्य' की उत्पत्ति करता है क्योंकि हिंदी में जहां चार कथाकारों का एक साथ बैठना तक एक श्रेष्ठ लतीफा बन चुका दीखता हो, वहां किसी संपादक या प्रकाशक का दिल इतना विशाल कैसे हो सकता है. मगर यह हुआ है. इसीलिए यह आयोजन भी पारंपरिक नहीं रह पाया और लगभग तीन घंटों तक कहानी-कहानी और कहानी पर ही खुले मन, दिमाग से एक उत्तेजक चर्चा हुई.

बहैसियत संचालक सुरेश उनियाल ने चर्चा के प्रारंभ में कहा कि हिंदी कहानी पिछले चालीस वर्षों में अनेक रास्ते तय करके यहां तक पहुंची. इन रास्तों में आदर्श, नारे, आंदोलन, विचारधारा तथा कलागत आग्रहों की अपनी-अपनी भूमिका रही है. आज अवसर है कि हम इस ग्रंथ-चर्चा के माध्यम से इन रास्तों पर दृष्टिपात करें तथा एक ऐसे कथा-क्षेत्र की थाह लेने का प्रयास करें जो कहानी का एक लगभग सर्वमान्य क्षेत्र हो सके. उन्होंने कहा कि विस्तृत अर्थों में यही ग्रंथ संपादक का उद्देश्य रहा है, यही प्रकाशक का और यही इस गोष्ठी का भी उद्देश्य है.

अपने 'अलिखित आलेख' में डा. कृष्णदत्त पालीवाल ने संपादक-प्रकाशक को इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए बधाई दी तथा कहा कि पिछले चालीस वर्षों का ही नहीं, इस ग्रंथ के माध्यम से हमें हिंदी कहानी का परिपूर्ण दृश्य मिल जाता है. उन्होंने कहा कि कुछ महत्वपूर्ण कथाकारों की अनुपस्थिति ग्रंथ को भले ही 'अपूर्ण' न बनाती हो, मगर खलती अवश्य है. इस ग्रंथ को 'कोश' घोषित करने पर भी उन्हें एतराज था. उनके हिसाब से यह कोशगत नहीं, संकलनगत कार्य है.

वरिष्ठ साहित्यकार विष्णु प्रभाकर ने कहा कि लेखक को समाज के बदलते प्रगतिशील मूल्यों के साथ स्वयं को भी संवर्द्धित करते रहना चाहिए. उन्होंने कहा कि यदि आज के समय में मैं आंसूजन्य-आदर्शों से सनी कहानियां लिखूं तो मुझे कोई क्यों पढ़ेगा! हां, कहानी को उस आंतरिक-ऊर्जा की जरूरत हमेशा से रही है जिसके बल पर वह भाषा, समय, देश और तथाकथित विचारधाराओं की घेराबंदी को नकारती हुई बहुत आगे चली जाती है. यही कारण है कि प्रेमचंद की साढ़े-तीन चार सौ कहानियों में से चंद कहानियां ही ऐसी हैं जो उन्हें प्रेमचंद बनाती हैं. कहानी में आस्था प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि मनुष्य के अस्तित्व में रहने तक कहानी का रहना भी तय है. कुछ लेखकों की इस ग्रंथ में अनुपस्थिति को उन्होंने भी रेखांकित किया.

चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए सुरेश उनियाल ने सूचित किया कि निकट भविष्य में कहानी-कोश का एक पूरक खंड भी संकलित तथा प्रकाशित करने की योजना है. इसलिए आगामी वक्ता इस 'कमी' को 'डिलीट' करके ही अपना वक्तव्य दें.

अग्रज कथाकार रमाकांत ने अपने वक्तव्य को पर्याप्त खबरची बनाकर प्रस्तुत किया. हिंदी के साथ-साथ उन्होंने अमरीकी, रूसी कथा-यात्रा की याद दिलाई जहां प्रचार तथा प्रसार की तात्कालिक व्यवस्था के तहत कुछ नामों को उछाला गया तथा कुछेक समर्थ नामों को अ-चर्चा के नर्क की ओर धकेलने का असफल प्रयास किया गया. उन्होंने सोदाहरण बताया कि एक बार प्रेमचंद को भी एक श्रेष्ठ संपादित कथा-संकलन में शामिल नहीं करने का प्रयास किया गया था. मगर यह ग्रंथ एक विशाल संपादकीय मन का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसे अपने अनूठे सहयोग के लिए बरसों याद किया जायेगा.

चर्चा के अगले वक्ता अवध नारायण मुदगल ने बहस को पिछले चालीस वर्षों के कथा साहित्य की प्रचालित मान्यताओं की

■ विमोचन के अवसर पर बांये से कथाकार कमलेश्वर, सचिन प्रकाशन के निर्देशक अनिल पालीवाल और विमोचन करते हुए पंजाबी की कवि-कथाकार अमृता प्रीतम

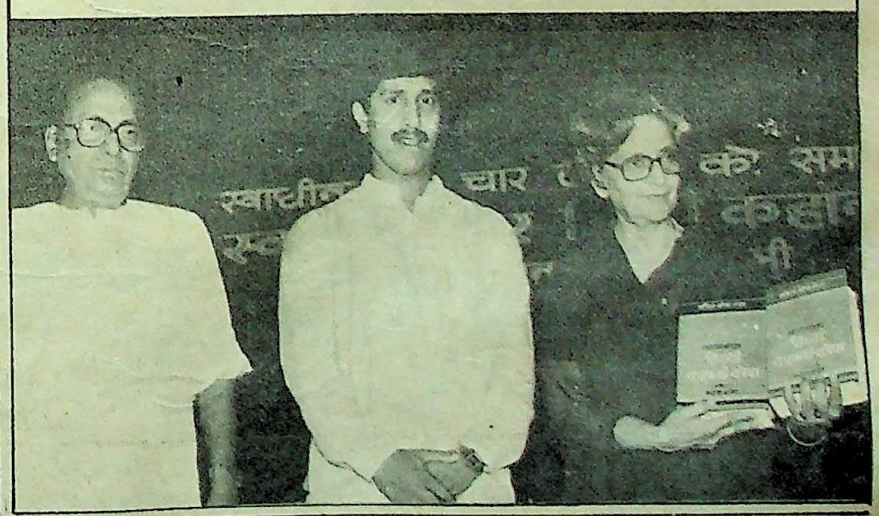

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिजली बचत का अर्थ है बिजली का उत्पादन

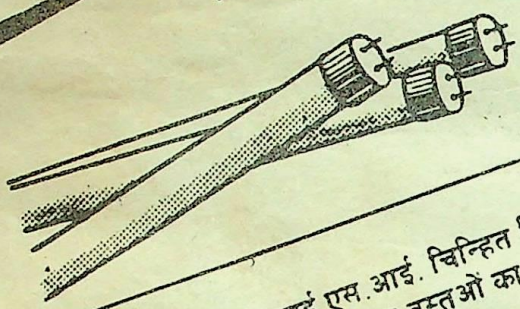

- ट्यूबलाइट का प्रयोग करें। इसके प्रयोग से बिजली कम खर्च होती है तथा रोशनी अधिक होती है।

- आई.एस.आई. चिन्हित विद्युत उपकरणों तथा अन्य संबद्ध वस्तुओं का प्रयोग करें।

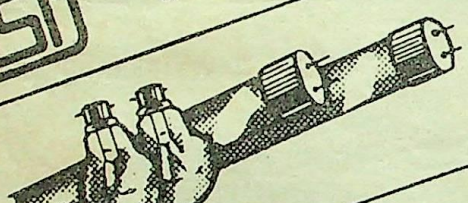

- ट्यूब तथा लैम्प को साफ रखें।

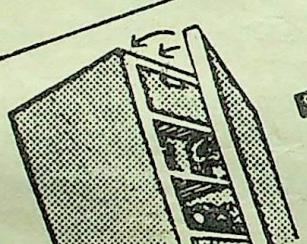

- अपने रेफ्रीजरेटर के दरवाजे को यथाशीघ्र बन्द करें।

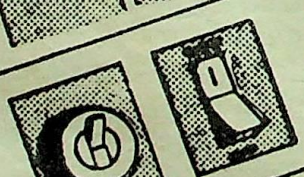

- आवश्यकता न होने पर सभी विद्युत उपकरणों को तुरन्त बन्द कर दें।
- कमरा छोड़ते समय बत्तियों, पंखों तथा वातानुकूलनों को बन्द कर दें।

विद्युत विभाग
ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार
नई दिल्ली-110 001 द्वारा जारी

davp 88

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ मोडा.

हिंदी कथा-साहित्य में अनेकानेक सार्थक प्रयोग हुए हैं जो उसे अंतर्राष्ट्रीय महत्व सौंपने में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं. साठ के बाद मोहभंग ने हिंदी कहानी में प्रयोग की सार्थक भूमिका निबाही, और आगे चलकर यही भूमिका जीवन के विस्तृत आयामों से जुड़ी और महत्वपूर्ण कहानियां हमारे सामने आयीं. इस कोश में संकलित कुछेक कहानियां इस बात का जीता-जागता प्रमाण हैं.

विवादास्पद कथाकार रमेश बक्षी ने हिंदी से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण अवसरों की याद को ताजा किया और कहा कि तमाम अवरोधों को पार करके इस कोश का संपादन वास्तव में एक कठिन काम था. एक समय था जबकि कथाकार आपस में लड़ते-झगड़ते थे, बहसें थीं, थुक्का-फजीहत थीं मगर इन सबके साथ-साथ लेखन भी था. ऐसे उत्कृष्ट माहौल को पुनः अवतरित करने के लिए ऐसे अनेकों संकलनों की आज जरूरत है.

प्रदीप पंत ने अपने तेज-तर्रार वक्तव्य में कहा कि आज लिखा बहुत जा रहा है, मगर 'कहानियां' बहुत कम आ रही हैं. इसकी बड़ी वजह यह है कि किसिम-किसिम की विचारधाराओं का बाजार आज गर्म है. उनका मानना था कि कथा-आंदोलनों की आवश्यकता है क्योंकि आंदोलनों से ही उत्कृष्ट कहानियां लिखने की वैचारिक-ऊर्जा किसी लेखक को मिलती है. प्रदीप ने इस बात को भी रेखांकित किया कि आज सामंतवाद या सामंती व्यवस्था के खिलाफ तो प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है मगर पूंजीदारी के खिलाफ क्यों नहीं लिखा जा रहा है?

ग्रंथ की विमोचनकर्त्ता, प्रसिद्ध कवियत्री अमृता प्रीतम ने अपने विशिष्ट लहजे तथा भाषा में टंके बिंबों के माध्यम से लेखन और जीवन को नाभि-नाल से जुड़ा होने की बात पर जोर दिया. मानवमात्र किसी भी क्षेत्रीयता से ऊपर होता है और इसीलिए इसकी थाह बतानेवाली रचना की कोई वैयक्तिक रूह नहीं होती. उनके अनुसार कहानीकार की भूमिका एक जननी की भूमिका ही होती है जो भावना को अंकुरित करने में मददगार होती है. उन्होंने कहा कि ऐसे संकलन सभी भारतीय भाषाओं में संकलित तथा प्रकाशित होने चाहिए.

अंत में, संचालक सुरेश उनियाल ने गोष्ठी के अध्यक्ष कमलेश्वर को बोलने के लिए आमंत्रित किया. अब तक देर काफी हो चुकी थी, इसलिए कमलेश्वर ने अपने वक्तव्य को अंशतः संक्षिप्त किया और कहा कि इस गोष्ठी में इतने सारे नये-पुराने कथाकारों की बिरादरी मौजूद है कि अपने कुटुंब में बैठकर गिले-शिकवे आसानी से दूर किये जा सकते हैं. उन्होंने कहा कि एक लेखक को इतिहास में जाने के लिए कहानी नहीं लिखनी चाहिए, बल्कि समय सापेक्ष सच्चाई को रेखांकित करते हुए कहानियां लिखनी चाहिए. यदि वह ऐसा कर पाता है तो इतिहास की फिर यह मजाल नहीं होती कि वह उसे छोड़कर चला जाये. उन्होंने कहा कि आज का कथाकार-एक-दूसरे के पूरक की भूमिका निबाहकर ही सार्थक योगदान दे सकता है. कमलेश्वर ने संपादक तथा प्रकाशक को ऐसा भिक्षुक भी बताया जो अपने-अपने कमंडलों में वक्त की सच्चाइयां संकलित कर रहे हैं ताकि आगे आने वाला समय और पीढ़ी इन सच्चाइयों से रू-ब-रू हो सके और लोहा ले सके. □

राजकुमार गौतम

दुखवा मैं कासे कहूं

तेजी से बढ़ती हुई उपभोक्तावादी संस्कृति और औद्योगीकरण के कारण मनुष्य में जो संवेदनहीनता आयी है उसका कोई पैमाना नहीं है. हर आदमी अपने बनाये हुए घेरे में डूब-उतरा रहा है. पिछले दिनों सोवियत कला एवं सांस्कृतिक केंद्र में चेखव की कहानी 'ग्रीफ' पर आधारित टेलीफिल्म 'दुखवा मैं कासे कहूं' देख कर एक बार फिर यह उम्मीद बंधी कि विश्वविख्यात कथाकारों की कृतियों पर टेली फिल्म बनाने की परंपरा जारी है. दरअसल यह निर्देशक कृष्ण राघव और वरिष्ठ फिल्म समीक्षक एवं पटकथा, संवाद लेखक विनोद भारद्वाज की गहरी दृष्टि का ही असर था कि 90 वर्ष पूर्व लिखी गयी इस रूसी कहानी ने परदे पर साकार होकर हाल में उपस्थित खालिस भारतीय दर्शकों को झकझोर दिया.

इस फिल्म के साथ कई खतरे भी जुड़े थे. एक तो यह चेखव की कहानी थी. दूसरे भारतीय पृष्ठभूमि में उसे रूपांतरित करना आसान काम नहीं था. जरा-सा चूक होती तो कहानी ही आत्मा खत्म हो जाती. लेकिन चूंकि इस फिल्म का रूपांतरण सटीक था और संवाद संतुलित थे इसलिए यह खतरा टल गया. यही दोनों चीजें फिल्म के फ्रेम को बनाती हैं. चूंकि विनोद भारद्वाज हिंदी के जाने माने फिल्म समीक्षक भी हैं इसलिए यह और भी महत्वपूर्ण बात थी. निर्देशक कृष्ण राघव भी 'रागदरबारी' के माध्यम से अपनी क्षमता को दिखा चुके हैं.

निर्देशक कृष्ण राघव दूरदर्शन के तंत्र से कुछ-कुछ दुखी लगे. उनका कहना था-'यह व्यवस्था आधा सच और आधा झूठ है. ईश्वर बचाये इससे.'

अशोक पत्की का संगीत बहुत अच्छा है. खास तौर से फिल्म के शुरू और अंत में गायक अजित करकरे का गाया टाइटल गीत—'दुखवा मैं कासे कहूं' भाव विभोर कर देने वाला है. मूल कहानी में 'ग्रीफ' से इतर इस फिल्म में जो घटनाएं जोड़ी गई हैं वे कहानी की मूल आत्मा को कहीं भी नुक्सान नहीं पहुंचातीं. फिल्म के अंत में तांगे वाला अपने घोड़े को ही दुख-दर्द सुनाता है....वीरेंद्र सक्सेना के जीवंत अभिनय ने यह साबित कर दिया हैं □

विनय बिहारी सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक एवं प्रकाशन परिशिष्ट

एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए यह निहायत जरूरी है कि हम देखें कि हमारा प्रकाशन-जगत किस दिशा की ओर अग्रसर है! यह एक ऐसा विषय है, जिस पर ठहर कर सोचने की गंभीर जरूरत है... आइए, देखें, इस दुनिया की एक झांकी–

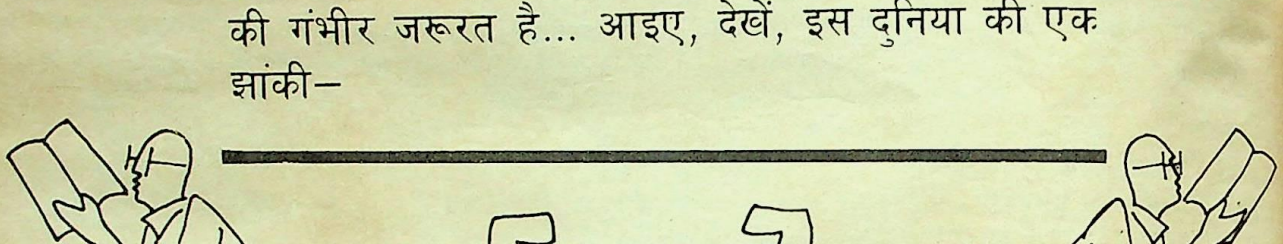

किताबें : आदमी की बेहतर दोस्त

पुस्तकें मनुष्य की सबसे अच्छी साथी होती हैं. यदि मनुष्य पुस्तकें पढ़ने की आदत डाल ले तो इससे ज्ञान-विज्ञान की जानकारी तो बढ़ती ही है एकांत के क्षणों का भी एहसास नहीं रहता. साहित्य एक ऐसे सागर के समान है जिसमें आदमी जितने गोते लगाएगा उतने ही बेशकीमती मोती निकाल कर लाएगा. किसी भी समय और काल की जानकारी वहां के इतिहास और साहित्य से मिलती है. अच्छे सुरुचिपूर्ण साहित्य का महत्व सदा से रहा है... क्योंकि यह हमारी सभ्यता एवम् संस्कृति का दर्पण होता है.

अतः सबसे पहले हमें चाहिए कि अच्छे देश रूपी भवन को सुंदर व मजबूत बनाने के लिए उसके नींव रूपी बच्चों को मजबूत करें.इस दिशा में ड्रीमलैंड पब्लिकेशंस बच्चों को सुरूचिपूर्ण साहित्य उपलब्ध करा कर जहां समाज की सेवा कर रहा है वहीं देश के भविष्य को भी सुरक्षित कर रहा है. ड्रीमलैंड पब्लिकेशंस बच्चों के कामिक्स चित्र कथाओं को सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर बच्चों में उसे पढ़ने की जिज्ञासा पैदा करते हैं. आज अधिकतर बच्चे ड्रीमलैंड पुस्तकों के लिए पागल रहते हैं. बच्चों की पुस्तकों के विषय में बातचीत के दौरान ड्रीमलैंड पब्लिकेशंस के मालिक श्री वेदप्रकाश चावला ने बताया कि वे प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थान इंडियन बुक डिपो के मालिकों में से एक रह चुके हैं. परंतु फिर उन्होंने बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकों के अभाव को अनुभव कर ड्रीमलैंड प्रकाशन के अभाव को अनुभव कर ड्रीमलैंड प्रकाशन के नाम से अलग प्रकाशन संस्थान शुरू किया जो कि देखते ही देखते लोकप्रियता की नई बुलंदियों को छूने लगा. दो-तीन वर्षों के कम समय में ही आपके 74 टाईटिल प्रकाशित हो चुके हैं तथा आगामी 2-3 महीनों तक 44 टाइटिल और छप जायेंगे.

बच्चों के लिए आपने पुराने पंचतंत्र की कहानियां, सिहांसन बत्तीसी, विक्रम बेताल तथा अन्य धार्मिक कथायें, पौराणिक लोक-कथाओं व परीकथाओं को सुंदर, सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशित किया है. इनका रामायण का 12 पुस्तकों का सैट बच्चों में बेहद लोकप्रिय हुआ है. ड्रीमलैंड पब्लिकेशंस द्वारा बच्चों को सत् साहित्य उपलब्ध कराना निसंदेह सराहनीय कार्य है. □

— श्रीमती कैलाश शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1988 के प्रमुख प्रकाशन

अनमोल विरासत (1) (गांधीजी का बचपन और सत्याग्रह के प्रयोग)	श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी	75.00
अनमोल विरासत (2) (कथा गांधी और आजादी की)	श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी	200.00
अनमोल विरासत (3) (गांधी व्यक्तित्व और परिवार)	श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी	75.00
विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण नाटक (1)	विष्णु प्रभाकर	150.00
विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण नाटक (2)	विष्णु प्रभाकर	150.00
विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण नाटक (3)	विष्णु प्रभाकर	150.00
प्रतिनिधि रचनाएं	विष्णु प्रभाकर	150.00
INDIAN LITERATURE	NAGENDRA	300.00
नैरन्तर्य और चुनौती (ललित निबंध)	विद्यानिवास मिश्र	60.00
अंग्रेजी हिंदी मुहावरा लोकोक्ति कोश	भोलानाथ तिवारी	250.00
आदिकालीन हिंदी शब्दकोश	भोलानाथ तिवारी	120.00
स्वराज और घनश्यामदास (जीवनी)	लक्ष्मीनारायण लाल	100.00
प्रारंभिक हिंदी गद्य का स्वरूप	श्रीमती शारदा वेदालंकार	100.00
याद एक यायवर की (संस्मरण)	शंकर दयाल सिंह	60.00
असफल दांपत्य की कहानियां	श्रीमती चित्रा मुद्गल/सुरेंद्र अरोड़ा	50.00
टूटते परिवारों की कहानियां	श्रीमती चित्रा मुद्गल/सुरेंद्र अरोड़ा	50.00
दूसरी औरत की कहानियां	श्रीमती चित्रा मुद्गल	40.00
थाली भर चांद (कहानियां)	श्रीमती सूर्यबाला	50.00
समर शेष है (उपन्यास)	विवेकी राय	150.00
आम रास्ता नहीं है (ललित निबंध)	विवेकी राय	60.00
चित्रकूट के घाट पर (कहानियां)	विवेकी राय	40.00
रत्न विज्ञान (रत्न परिचय)	पं. सूर्यनारायण व्यास	75.00
दूसरा सूरज (संस्मरण)	रामनारायण उपाध्याय	30.00
कातर धूप (उपन्यास)	श्रीमती सुधा	70.00
नवाब साहब (उपन्यास)	सुरेश कांत	60.00
बलिहारी गुरु (व्यंग्य)	सुरेश कांत	50.00
विकल्प (उपन्यास)	रामदेव शुक्ल	65.00
रिसता घाव (उपन्यास)	रामनाथ नीखरा	80.00
श्री अरविंद का साहित्यिक दर्शन	हरिराम जेसटा	30.00
दर्पण तुम्हें अर्पण (प्लास्टिक सर्जरी)	अक्षय कुमार वर्मा	35.00
लाजपत राय ने कहा था (विचार-सार)	गिरिराज शरण	35.00

अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकों का विस्तृत सूचीपत्र निशुल्क मंगाइये

प्र भा त प्र का श न

205 चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006

फोन : 264676

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वप्रसिद्ध श्रृंखला

'विश्व प्रसिद्ध श्रृंखला' पुस्तक महल का एक अनूठा प्रोजेक्ट है. 1985 से इस योजना पर बड़े पैमाने पर काम चल रहा है. ज्ञान एवं चिंतन के धरातल पर एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय जगत से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करने की गर्ज से प्रारंभ की गयी यह योजना अपने आप में नितांत महत्वपूर्ण है. खोजें हों या अनसुलझे रहस्य, रोमांक कारनामें हों या युद्ध, व्यक्ति हों या धर्म, मत व संप्रदाय, खेल और खिलाड़ी हों या रिकॉर्डस, वैज्ञानिक हों या विनाश लीलाएं, गुप्तचर संस्थाएं हों या जासूस, खजाने हों या सभ्यताएं, राजनैतिक स्कैंडल हों या खोजी यात्राएं, बैंक डकैतियां हों या अय्याश राजा, प्रेम-प्रसंग हों या क्रांतियां... मतलब यह कि दुनिया भर से इकट्ठा की गयी इंसान की जिज्ञासाओं को शांत करने वाली सामग्री का सुंदर संचयन है यह श्रृंखला. अच्छी बात यह है कि साहितय जगत के जाने-माने रचनाकार भी इस रचनात्मक आयोजन में सहयोग दे रहे हैं... और इसका ताज़ातरीन उदाहरण है— डा. मस्तराम कपूर द्वारा लिखित पुस्तक 'विश्व-प्रसिद्ध विनाश लीलाएं'. पुस्तक महल का यह एक नया प्रतिमान है हिंदी प्रकाशन जगत में.

साहित्य-जगत और प्रभात प्रकाशन

बहुत कम प्रकाशन संस्थान ऐसे हैं जो व्यावसायिक नैतिकता को निभाते चलते हैं. इस दृष्टि से प्रभात प्रकाशन साहित्य जगत में सम्मानित संस्थान है. अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, विवेकी राय, रामदरश मिश्र, विद्यानिवास मिश्र, रामनारायण उपाध्याय, सूर्यबाला, चित्रा मुद्गल, आबिद सुरती, डा. नगेंद्र सरीखे शीर्षस्थ रचनाकारों की असंख्य पुस्तकों का प्रकाशन इसका एक ज्वलंत प्रमाण है. सुनियोजित और स्तरीय प्रकाशन की दृष्टि से ही नहीं, विषयों से संबद्ध सीरीज-प्रकाशन की दृष्टि से भी इनकी योजनाएं उल्लेखनीय हैं... जैसे महानगरों की कहानियां, नारी उत्पीड़त की कहानियां, कार्यालय जीवन की कहानियां, नारी उत्पीड़न की कहानियां, कार्यालय जीवन की कहानियां, बाल्यावस्था की कहानियां, वृद्धावस्था की कहानियां, असफल दांपत्य की कहानियां, चर्चित महिला कथाकारों, दूसरी औरत की कहानियां आदि. यह श्री श्याम सुंदर (प्रभात प्रकाशन के सत्वधिकारी) की कार्यकुशलता का ही प्रमाण है.

डायमंड प्रकाशन का योगदान

लोकप्रिय साहित्य के प्रकाशन के अतिरिक्त प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, शरत्, देवकीनंदन खत्री, बंकिम जैसे महान भारतीय साहित्यकारों का संपूर्ण साहित्य प्रकाशिक कर महत्वपूर्ण अल्पमोली योजना सामने रखी है. पुराण साहित्य और भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के महान क्रांतिकारियों की जीवनियों का प्रकाशन भी इस संस्थान का ऐतिहासिक कार्य है. हिंदी-भाषा और साहित्य को प्रचारित व प्रसारित करने की दृष्टि से यह संस्था अपने आपमें एक उदाहरण ही बन गई है. हास्य कविता सीरीज, तकनीकी, और हस्तरेखा, तंत्र-मंत्र सीरीज.. भी भी इनकी महत्वाकांक्षाओं से भरी योजनाएं हैं.

सरकारी प्रकाशन संस्थानों में प्रकाशन विभाग डा. श्याम सिंह शशि के कुशल निर्देशन में जिस तत्परता से काम कर रहा है वह एक सराहनीय स्थिति है. उपनिषद की प्राचीन लोक कथाएं हों या उत्तर प्रदेश की लोक कथाएं, वैदिक काल की कहानियां हों या विश्व की श्रेष्ठ लोक कथाएं, जैन कहानियां हों या हंसी हंसी में, नमक आंदोलन हो या क्रांतिकारिता की कहानियां, भारत छोड़ो आंदोलन हो या वंदे मातरम्, बाल महाभारत हो या प्रवासी क्रांतिकारी... प्रकाशन विभाग की भूमिका देखते ही बनती है. इन संस्थानों के अतिरिक्त हिंदी प्रचारक संस्थान, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, सचिन प्रकाशन, राजपाल एंड संस, किताब घर, संभावना प्रकाशन, लोकभारती प्रकाशन, नेशनल बुक ट्रस्ट और साहित्य अकादमी आदि ऐसे संस्थान हैं जो सुरुचि संपन्न साहित्य के प्रकाशन, प्रचार और प्रसार की दृष्टि से उल्लेखनीय काम कर रहे हैं.

यह एक झांकी है हमारे पुस्तक जगत एवं प्रकाशन व्यवसाय की. आने वाला समय इसी पर आधारित होगा. □

— राजेश कालिया

सवाल तो धरा रह गया

"लेखक केवल लिखकर रहे या जीवीका के लिए कोई दूसरा काम करे, यह सवाल पुराना है. लेकिन पुराना ही है, यह मरा अभी नहीं है, बल्कि अब कुछ और जटिल रूप से जीवत है. इसी के साथ यह भी जुड़ा हुआ है कि अगर वह लिखकर रहना चाहे तो क्या ऐसा संभव है? और फिर यह कि अगर वह जीविका के लिए कोई दूसरा काम करे तो फिर क्या लिखना संभव है? पिछले दिनों साहित्य अकादमी ने रचनात्मक साहित्य से जीविकोपार्जन नाम देकर इस सवाल को पेश किया-- कहना चाहिए लेखकों की एक भरी सभा के बीच पेश किया और सभा में केवल लेखक ही नहीं थे, बहुत से श्रोता भी थे. ये सभी शायद इसी उम्मीद में इकट्ठा हुए थे कि संभव है इस जटिल हो गये सवाल के कुछ पहलू बातचीत से साफ हों और सोचने के लिए कुछ खुराक मिलें. लेकिन सवाल कुछ इस तरह से पेश हुआ तो माहौल इतना हल्का फुल्का हो गया कि सवाल तो धरा रह गया. हां, कुछ व्यंग्य-विनोद उभर आया....."

दिनमान, 12 मार्च, 1972

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
- सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
- आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
- कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
- कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें —

AID एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों की कहानियों की सुन्दर पुस्तकें

* मनभावन, कल्पनाशील, शिक्षाप्रद, आकर्षक, रंगीन सचित्र पुस्तकें। अब नई साज-सज्जा के साथ। हर उम्र के बच्चों का भरपूर मनोरंजन करती हैं।

रामायण

१२ पुस्तकों का सैट
बढ़िया डिजाइनिंग
वाला सैट ऐसा
पहले कभी नहीं छपा

ईसप की कहानियां

महान संत ईसप की शिक्षाप्रद
प्रेरणादायक कहानियों का संग्रह
१० पुस्तकों का सैट

विक्रम और बेताल

२५ कहानियाँ जो बेताल
राजा विक्रमादित्य को
सुनाता है शिक्षात्मक
और दिलचस्प ५ भागों
में प्रकाशित

सिंहासन बत्तीसी

३२ प्रसिद्ध कहानियाँ
जो राजा विक्रमादित्य
के सिंहासन की
पुतलियां राजा भोज
को सुनाती हैं। ६ पुस्तकों का सैट

पंचतत्र

पक्षियों और जानवरों की
मशहूर पौराणिक, शिक्षात्मक
कहानियाँ ६ भागों में प्रकाशित

बाईबल की कहानियाँ

प्रभु ईसामसीह
की, शिक्षाप्रद
कहानियों का संग्रह

कृष्णलीला

भगवान कृष्ण के
बचपन की लीलाओं
का सजीव सचित्र वर्णन
आकर्षक रंगीन चित्र
४ पुस्तकों का सैट

९५ पुस्तकों का सैट उपलब्ध है।

मूल्य 6/- रुपये प्रत्येक

सूचीपत्र के लिये लिखें।

Rashtriya

अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता अथवा समाचार पत्र विक्रेता से खरीदें या लिखें:

ड्रीमलैंड पब्लिकेशन्स, 4425 नई सडक दिल्ली- 6 फोन : 2915831

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक प्रकाश है

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों को प्रकाशन विभाग की विनम्र श्रद्धांजलि

महान राष्ट्रीय विभूतियों पर सर्वोत्कृष्ट प्रकाशन

* भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास लेखक डा० ताराचन्द्र–	खण्ड-2	40.00
	खण्ड-3	35.00
	खण्ड-4	45.00
* भारतीय शहीदों का परिचय–	खण्ड-1	4500
* भारत में अंग्रेजी राज ले० सुन्दर लाल	खण्ड-1	44.00
	खण्ड-2	40.00
* जब्तशुदा गीत (आजादी और एकता के तराने) लेखक डा० रामजन्म शर्मा		3.00
* प्रवासी क्रांतिकारी लेखक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी		3.00
* क्रांतिकारी महिलाएं ले० आशा रानी व्होरा		4.50
* भारत छोड़ो आंदोलन ले० शंकर दयाल सिंह		3.00
* स्वतंत्रता संग्राम-युवकों का युद्धघोष-वन्देमातरम ले० जयप्रकाश भारती		3.00
* बिहार में स्वतंत्रता के प्रेरक प्रसंग लेखक दिनेश कुमार नारायण		
* जवाहर लाल नेहरू (सचित्र जीवनी) लेखक बी.आर. नन्दा		25.00
* भारतीय इतिहास के निर्माता		9.00
* "छत्रपति शिवाजी" ले० काशीनाथ गोविन्द जोगलेकर		
* सन सत्तावन के भूले बिसरे शहीद ले० उषा चन्द्रा		20.00
* चुनौती भरे वर्ष (प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के भाषण 1966-69)		15.00
* प्रगति की ओर (प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के भाषण 1969-72)		60.00
* लाल किले के प्राचीर से (स्वतंत्रता दिवस के भाषण)		4.00
* नेताजी संपूर्ण वाङ्मय खण्ड-1 साधारण संस्करण		22.00
* भीमराव अम्बेडकर ले० डा. वा.ना. कुबेर		14.00
* बिट्ठल भाई पटेल ले० एच.एम. पटेल		17.50
* राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन ले० संत सोनी		8.00
* सरोजनी नायडू ले० तारा अली बेग		11.50
* रवीन्द्र नाथ ठाकुर ले० हिरण्यमय बनर्जी		10.00
* अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी ले० मालती शंकर		11.00
* यह गाथा वीर जवाहर की ले० कन्हैया लाल मिश्र "प्रभाकर"		7.00
* भारत के नारीरत्न		10.50
* भारत स्वतंत्रता के बाद		16.00
* एकता की बोलती तस्वीरें लेखक व्यथित हृदय		7.50

प्रकाशक विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने पर समस्त पुस्तकों की खरीद पर 10 प्रतिशत की छूट दी जाती है। विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं।

रु० 40 से कम के आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रजिस्ट्रेशन फी) अतिरिक्त भेजना होगा। पुस्तकें स्थानीय पुस्तक विक्रेताओं से लें अथवा सीधे हमें लिखें।

प्रकाशन विभाग
व्यापार व्यवस्थापक
विक्रय केन्द्र
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001

- सुपर बाजार "दूसरी मंजिल" कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110 001
- बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004
- 10बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019.
- कामर्स हाउस, दूसरी मंजिल, करीम भाई रोड, बालार्ड पीयर बम्बई-400 038
- एल.एल ए आडिटोरियम अन्ना सलै, मद्रास-600 002
- स्टेट आर्कीलाजिकल म्युजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद-500 004
- प्रैस रोड, त्रिवेन्द्रम-695 002

davp 88/264

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

पेश करते हैं –
एक महान उपन्यासकार

विक्की आनन्द

का नया जासूसी उपन्यास

धुन्ध

6/-

- लेखक का दावा है कि यह उपन्यास आपको पसंद आयेगा।
- एक नई किस्म के जासूसी उपन्यासों की परम्परा इस उपन्यास से शुरू होगी।
- विक्की आनन्द के उपन्यासों में रहस्य, रोमांच और इन्वेस्टीगेशन का अनूठा समन्वय है कि आप उपन्यास को एक ही बार में पूरा पढ़े बिना नहीं छोड़ पायेंगे।

लाखों पाठकों के प्रिय उपन्यासकार

समीर

का नया उपन्यास

नकाब

6/-

सस्पैंस थ्रिल और एक्शन के जादूगर

एहुल

का नया रोमांचकारी उपन्यास

दोषी कौन

6/-

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

© CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

जब भी अपने चेहरे को आईना दिखाता हूं,
कौन है न जाने वो, किससे खौफ खाता हूं.

आत्म स्वीकृति के आइने में
इंसानियत को समझने की
दूसरी कड़ी...

आत्मस्वीकृति विशेषांक : दो

तालस्तोय, रूसो, सोफिया लॉरेन, रवींद्रनाथ टैगोर, जवाहरलाल नेहरू, चर्चिल, चार्ली चैप्लिन, रामधारी सिंह दिनकर, बलराज साहनी, अमृता प्रीतम, ब्रेख्त, कृश्नचंदर, दुर्गा खोटे, ख्रुश्चेव, सत्यजित राय, और धीरेंद्र अस्थाना के आत्मस्वीकार जिनके बारे में जानकर आप अपने आप से डरने की बजाय खुद को पहचानने लगेंगे.

कामू, काफ्का, विला कॉथर, खादिया बेगम, साला पास्लोविज, बारबरा पास्किन, युकियो मिशिमा, चेग्वारा, फिदेल कास्त्रो जैसे रचनाकारों की संग्रहणीय रचनाएं

...और साथ में

प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाएं : दो
रामेश्वर शुक्ल अंचल की लंबी कहानी : 'देहगाथा'.
कथाकार नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल की पुण्य तिथि पर...
विशेष कथा-रचना : 'गारुणिक'
दास्ताने अलफ-लैला..., रुपहली रातें और अन्य स्थायी स्तंभ
डा. नामवर सिंह से लंबी बातचीत की तीसरी किस्त में विचारोत्तेजक मुद्दों पर गंभीर चर्चा.
रोचक किस्सा अमीर अली ठग का जो दरअसल नर-कंकालों का सौदागर था.
लंदन के लाश चोर की हैरतअंगेज दास्तान.

नवंबर, 1988

हर महीने पत्रिका की कीमत पर
एक समूची किताब का भरा- पूरा संसार

सारिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रैपिडैक्स® इंगलिश स्पीकिंग कोर्स

एक रिकार्ड

3,00,00,000 तीन करोड़ से अधिक पाठकों द्वारा अपनायी गयी भारत की बारह भाषाओं में प्रकाशित सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक

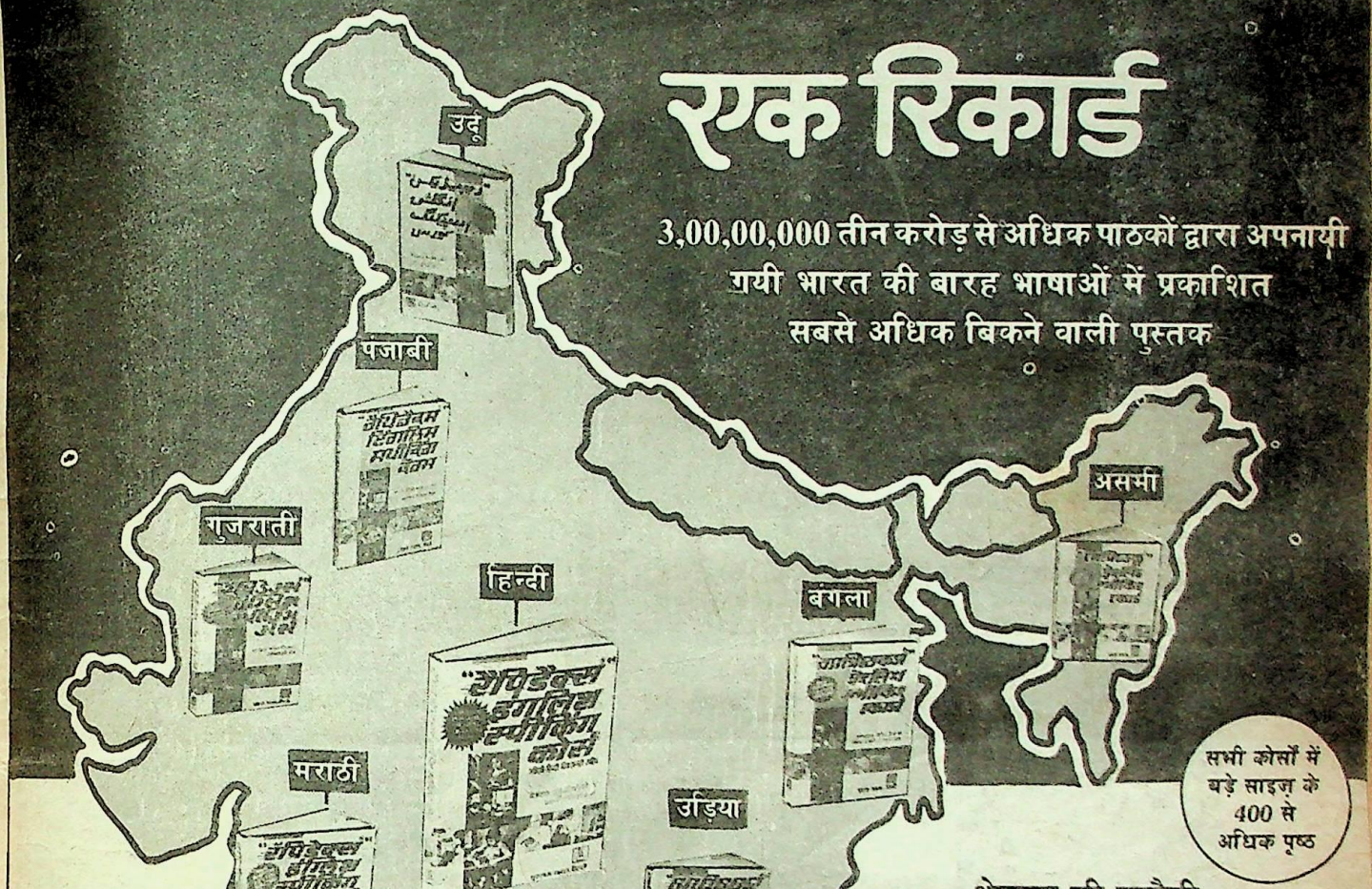

सभी कोर्सों में बड़े साइज़ के 400 से अधिक पृष्ठ

मूल्य: 30/- प्रत्येक
डाकखर्च: 5/-

'रैपिडैक्स' कोर्स सभी प्रमुख बुकसैलरों, रेलवे स्टेशन एवं बस अड्डों पर स्थित बुक स्टॉलों पर मिलते हैं। वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के लिए लिखें:-

श्रेष्ठता की कसौटी

देशभर के प्रसिद्ध अखबारों की सम्मितियों में से कुछ के अंश:-

•....वार्तालाप शैली में लिखी हुई यह पुस्तक अंग्रेजी बोलना आसानी से सिखा सकती है... अंग्रेजी का सारा आवश्यक ग्रामर भी इस पुस्तक को पढ़कर स्वतः समझ में आ जाता है। **–नवभारत टाइम्स, दिल्ली**

•....बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक की तलाश थी, जिसको पढ़ते-पढ़ते ही अंग्रेजी बोलचाल का अच्छा-खासा ज्ञान हो जाये और इस कसौटी पर रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स खरी उतरी। **–बम्बई समाचार, बम्बई**

•....इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें चुने हुए, दैनिक उपयोग में आने वाले शब्दों की उपयोगी सूची अर्थ सहित दी गई है।... प्रत्येक पाठ के अन्त में भाषा व व्याकरण सम्बन्धी कुछ आधारभूत बातें अलग से समझाने का प्रयास भी निस्संदेह प्रशंसनीय है। **–जुगान्तर, कलकत्ता**

•....इसमें अंग्रेजी सिखाने की अभ्यास सामग्री इतने बढ़िया ढंग से दी गई है कि कान्वेंट स्कूलों में भी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। **–दिनामानी, मद्रास**

•....अंग्रेजी भाषा को शुद्ध और प्रभावपूर्ण ढंग से जितना लिखना जरूरी है, उतने ही प्रभावपूर्ण ढंग से उसके शब्दों का सही उच्चारण तथा सही बोलना भी जरूरी है और ये सब गुण पुस्तक के क्रमवार अभ्यासों में मौजूद हैं। **–गुजरात मित्र, सूरत**

•....आकर्षक आवरण एवं सुन्दर छपाई से सुसज्जित, यह पुस्तक अल्प समय में ही अंग्रेजी सिखाने में सक्षम होने के कारण सभी स्त्री-पुरुषों, विशेषकर गृहिणियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी। **–डेक्कन क्रोनिकल**

•....वास्तव में यह एक बहुत ही उपयोगी कोर्स है। इसमें तमिल जानने वाले बगैर किसी परेशानी के ग्रेजुएट जैसी अंग्रेजी बोल सकते हैं। **–सण्डे स्टैण्डर्ड, मद्रास**

•....रैपिडैक्स कोर्स ही एकमात्र ऐसा विस्तृत कोर्स है, जो हर किसी को 60 दिन में अंग्रेजी बोलना व लिखना बिना किसी शिक्षक या स्कूल में गये, सिखाने में सक्षम है। **–नागपुर टाइम्स, नागपुर**

•....अंग्रेजी सीखने के लिए इसका क्रमवार अभ्यास अपनी एक विशेषता है। **–गुजरात समाचार, अहमदाबाद**

पुस्तक महल
खारी बावली, दिल्ली-110006.
10-B, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002.
22/2, मिशन रोड, बंगलौर-560027

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश

जनकवि बाबा नागार्जुन को उत्तर प्रदेश के भारत भारती पुरस्कार दिये जाने की घोषणा से कविता-जगत में हर्ष की लहर दौड़ गयी. इससे पूर्व यह पुरस्कार कथाकार अमृत लाल नागर को प्रदान किया था. यह पुरस्कार एक लाख रुपये का है.

गोरखपुर से निकलने वाली प्रसिद्ध साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'दस्तावेज' को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने 'सरस्वती' पुरस्कार से सम्मानित किया है. यह पुरस्कार पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी से संपादन में निकलने वाली ऐतिहासिक पत्रिका 'सरस्वती' के नाम पर इस वर्ष से शुरू हुआ है और पहली बार इसे प्राप्त करन का श्रेय 'दस्तावेज' को है. पुरस्कार की राशि रु. 7000. है 'दस्तावेज' के संपादक हिंदी के प्रसिद्ध कवि और आलोचक डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी हैं.

बिहार

पिछले दिनों राजभाषा विभाग, बिहार सरकार द्वारा आयोजित समारोह में विविध साहित्यकारों को पुरस्कृत किया गया। यह पुरस्कार लगभग साठ हिंदी-सेवियों को प्रदान किये गये. इनमें प्रमुख हैं— जानकी वल्लभ शास्त्री, प्रफुल्ल चंद्र ओझा मुक्त, राजेंद्र अवस्थी, विशंभर नाथ उपाध्याय और कथाकार चित्रा मुद्गल.

दिल्ली

हाल ही में भोपाल के युवा कथाकार मंजूर एहते-शाम को द्वितीय श्रीकांत वर्मा पुरस्कार से सम्मानित किया गया. यह पुरस्कार उन्हें चर्चित उपन्यास— 'सूखा बरगद' के लिए दिया गया है. स्मृति चिन्ह और पांच हजार रुपये का यह पुरस्कार उन्हें सुप्रसिद्ध कथा-कार निर्मल वर्मा ने प्रदान किया. इससे पूर्व यह पुरस्कार मध्यप्रदेश के ही कवि-कथाकार राजेश जोशी को प्रदान किया गया था. इस अवसर पर श्रीमती वीणा वर्मा व कवि अशोक बाजपेई भी उपस्थित थे. इसी समारोह में प्रतिष्ठित कथाकार कृष्णा सोबती ने 'पूर्वग्रह' के उस अंक का भी विमोचन किया जिसमें कवि-कथाकार श्रीकांत वर्मा की अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं.

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश शासन द्वारा हाल ही में प्रख्यात कवि-कथाकार नागार्जुन को मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार से सम्मानित करने की घोषणा की गयी है.

इन सभी रचनाकारों को 'सारिका' की ओर से हार्दिक बधाई! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका
वर्ष : 28, अंक : 438, अक्तूबर, 1988

The Times of India
One Hundred and Fifty Years

आत्मस्वीकृति विशेषांक : एक

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश मार्गव

आवरण छवि : काजल शर्मा
आवरण पारदर्शी : बसंत मिश्र
आवरण और अंक सज्जा :
हरिप्रकाश त्यागी

आत्मस्वीकृति खंड

9. दीवार पर टंगी तलवार :
सामरसेट मॉम
13. अंधेरी तूफानी रात में :
तुर्गनेव
16. मंटोरबाई :
राजेश जैन
19. छह लघुकथाएं
22. बड़े लोग :
जान ओ' हारा

लंबी कहानी

26. सरस्वती :
द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

अन्य कथा रचनाएं

43. अनुभूति :
संगीता सिंह
52. निर्णय :
हरिहर द्विवेदी
58. यहां वितस्ता बहती है
चंद्रकांता

धारावाही आयोजन

40. दास्ताने अलफ लैला...
48. रुपहली रातें :
दास्तोयेव्स्की
63. निर्मल वर्मा 'बाबावाद' के शिकार हैं :
डा. नामवर सिंह से उदयप्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत-2
70. प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाएं : एक
दरवाजा

विशिष्ट आयोजन

46. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी
51. धारा के विरुद्ध :
राजेंद्र राव
54. प्रहसन :
महाराज कृष्ण काव
67. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी
68. अनजानी प्रेम कथाएं :
बाला दुबे.
72. अन्ना की भूमिका :
प्रेमचंद

स्थायी स्तंभ

8. आपकी बात
57. नयी पौद
74. कृतियां

कापीराइट 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि. विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित. बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुनीकरण वर्जित.

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंवले मिडिलसेक्स, लंदन यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

ऐसा साल बैलो ने नहीं कहा था

जुलाई अंक के आवरण पर सारिका के एक दम नीचे, काफी बड़े अक्षरों में लिखा है– ''नौबेल पुरस्कार विजेता कथाकार साल बैलो का कहना है: औरत जानवर है उस का स्थान पिंजरे में है.'' उसी उल्लेख के शीर्षक पर पृ. 44-45 पर एक लेख है जिस में साल बैलो का नाम बस एक ही दफा लिया जाता है. दूसरे गद्यांश में, और लिखा नहीं है कि उन्होंने वह वाक्य सुनाया. वह वाक्य शीर्षक के रूप में क्वोट्स में दिया जाता है और जाहिर है कि आप का इरादा यह है कि पाठक समझेगा कि तीनों साल बैलो, नार्मन मेलर और फिलिप राय ने उन्हीं शब्दों का इस्तेमाल किया है. लेकिन लेख में यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विवियन गार्नर ने लिखा था कि नार्मन मेलर ही ने वह वाक्य ऑरसन वैल्स को सुनाया था, बहुत पहले.

इन सब बातों को पढ़कर मेरी नाराजगी हद से बाहर हो गयी है. नार्मन मेलर के पक्ष में नहीं हूं लेकिन अपनी संपादकीय जिम्मेदारी को फेंककर आप ने साल बैलो साहब की बहुत बेइज्जती की है.

पांच सालों से मेरे पढ़ाने, अनुवाद करने और शोध करने का एक ही मकसद रहता रहा है–कि अमरीकी और हिंदी उर्दू भाषी लेखकों के बीच परस्पर आदर दिया जाए.

□ **रॉबर्ट ए. हाइस्टेड, कनाडा**

किशोर मन की अछूती भावनाएं

यों तो सारिका मेरी सबसे प्रिय पत्रिकाओं में से है फिर भी घुमक्कड़ी नौकरी होने के कारण उसकी कई किश्तें नहीं मिल पातीं. आज एकाएक ट्रेन की इंतजार करते मेरी निगाह बुकस्टाल में लगी अगस्त माह की सारिका पर पड़ी. 'किशोर प्रेम कथा अंक' पढ़कर मन में एक उत्सुकता जगी. 'किशोर प्रेम' पर सारिका के विचार जानने की. इसलिए कि सारिका से बहुत कुछ पाने की उम्मीद जो रहती है.

सारिका की पहली कहानी 'एक था लड़का एक थी लड़की' ही मन के अंतरंग को छू गयी. कथाकार ने दो निर्दोष मनों की मानसिकता को अद्भुत एवं सजीव मनोवैज्ञानिक परिवेश में उतार दिया है. कहानी की मौलिकता एवं मूक प्रेम मन में एक अजीब-सी टीस पैदा करती है. फिर 'पिया का नाम दिया', 'प्रेमावेश', 'कसक' आदि कहानियां एक ही बार में पढ़ डालीं. सारी की सारी कहानियां अपनी विशिष्टता लिए हैं और किशोर मन की अछूती भावनाओं को उजागर करती हैं. हमारी ओर से सभी कथा लेखकों को बधाई. नियमित स्तंभों का संकलन भी सराहनीय है. आवरण पृष्ठ की छवि स्वतः किशोर प्रेम की मूक अभिव्यक्ति है.

□ **पी.पी. श्रीवास्तव, बारुन (म.प्र.)**

पुरानी चोली ही भली

'सारिका' की कीमत जब से बढ़ी, तब से नियमित खरीद तो नहीं पाता, हां कृपालु मित्र (राकेश) से मांगकर पढ़ जरूर लेता हूं. इसी तरह किशोर प्रेम कथा अंक भी आद्योपांत पढ़ गया और हर बार की तरह अब की भी हुआ. जी उचटता रहा और 'शायद' बेहतर मिल जाए की 'मृगमरीचिका' को भोगता रहा. दो-तीन साल पहले की सारिका और अब की सारिका में अद्भुत परिवर्तन हुआ.

मेरी राय में, सारिका अब बड़े नामों के ग्लैमर में घटिया रचनाएं परोस रही है. अनुवाद भी रस नहीं देता. मेरी बस एक मिन्नत है, 'सारिका' को पुरानी चोली पहना दीजिए उसी में ज्यादा खूबसूरत लगेगी. हर अंक अलग शीर्षक (विशेषांक) की परंपरा भी समाप्त कीजिए. सारिका स्वयं में संपूर्ण है.

एक बात और, आपकी विशेषांक योजना का कुपरिणाम हिंदी के साहित्यकारों को झेलना पड़ा है. उनकी बड़ी उपेक्षा हुई है. हम हिंदी भाषी पाठक अपनी भाषा के कलमकारों की उपेक्षा नहीं करना चाहते. कभी-कभार विशेष आयोजनों में विदेशी साहित्य के अनुवाद पढ़ना कबूल है लेकिन पूरे भोजन में विदेशी स्वाद वर्जित मानता हूं और स्वास्थ्य (मानसिक) के लिए अत्यंत हानिकारक भी.

□ **अकिंचन, कटिहार (बिहार)**

सारिका कथा पहेली

किन्हीं अपरिहार्य कारणों से हम सारिका कथा पहेली, अगस्त 88 के पुरस्कार विजेताओं और सर्वशुद्ध हल की घोषणा इस अंक में नहीं दे पा रहे हैं. इनकी घोषणा अब अगले अंक में की जायेगी और उसी के साथ हमेशा की तरह होगी एक नयी कथा पहेली.

यह सारिका वह सारिका

एक मित्र के सुझाव पर 'प्रहसन' पढ़ने के लिये 'सारिका' का अगस्त अंक ले आया. सारिका से मेरी यह भेंट लगभग एक वर्ष बाद हुई. सारिका ने अब तक कितने रंग बदले हैं, उड़ानें भरी हैं.

एक समय था जब सारिका का अर्थ कहानी होता था. मैं उन दिनों कहानियों के साथ व्यंग्य के लिये सारिका का पाठक था. इस अंक को देखते ही बहुत देर तक यह निर्णय नहीं कर पाया कि ये सारिका पढ़ रहा हूं अथवा कोई अपराध कथाओं की पत्रिका? दो-चार बार आंखें मलीं. मुख पृष्ठ पलटा– संपादक, प्रकाशक सब वही, सारिका माननी पड़ी. यह भी एक संयोग ही है कि सारिका ने यह पवित्र कर्म करने का बीड़ा या हार स्वीकार करने का डंका इसी अंक से प्रारंभ किया है.

यह बात नहीं कि पत्रिका बिल्कुल बेकार हो गयी है. प्रहसन का श्रीगणेश दमदार है. कहानियां मध्यम श्रेणी की हैं. फिर भी जिंदगी से जुड़ी हैं. अन्य स्तंभों का भी अपना महत्व है किंतु जो मसाला है उससे लगता है कि सारिका में अन्य सामग्री के अतिरिक्त अब कहानियां भी छपती हैं.

कहानी तक सीमित रहकर भी आप पाठकों की संख्या बढ़ा सकते हैं. सत्यकथाओं के नाम पर जो अपराध कथायें प्रकाशित हो रही हैं वे सत्यकथायें किसी भी मूल्य पर नहीं हैं. इन अपराधकथाओं में घुले असत्य को आप शिवं एवं सुंदरम् की संज्ञा दें तो कोई आपका क्या कर सकता है.

□ **महेश सांख्यधर, बिजनौर (उ.प्र.)**

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए
इन्टीरियर डेकोरेशन
(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)
• गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
• सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
• आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
• मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
• कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
• कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं
विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें –
AID एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मस्वीकृति

दीवार पर टंगी तलवार

सज-संवरकर पार्टियों में जाने का बहुत शौक था मिसेज स्किनर को. आज की पार्टी में जाने के लिए उन्होंने एक आकर्षक पोशाक चुनी थी, काले रंग की. काले रंग की इसलिए कि उनके दामाद की मृत्यु को ज्यादा दिन नहीं हुए थे.

पोशाक तो उन्हें ठीक लगी, लेकिन उन्होंने जब उसके साथ उस खास हैट को पहनना चाहा, जिस पर बोर्नियों के एक विशेष पक्षी के पंख लगे थे तो वे रुककर कुछ सोचने लगीं. उन्हें इस हैट में देखकर, उनसे ईर्ष्या करनेवाली औरतें उन्हें तीखी-कड़वी सुनाये बिना नहीं रहेंगी. सुनाती रहें! वे कुछ कहेंगी तो सुनेंगी भी. उनके पास भी मुंहतोड़ जवाबों की कमी नहीं है और वह भी शब्दों में तेजाब घोलने में किसी से कम नहीं हैं.

कितने चाव से लाया था उनका दामाद यह हैट उनके लिए. यदि किसी ने हैट के बारे में उनसे कुछ कहा तो वे उसे बतायेंगी कि दामाद की गर्मी में उसका दिया हुआ हैट धारण कर वे उसके प्रति कृतज्ञता ही व्यक्त कर रही हैं.

मिसेज स्किनर जानती थीं कि हैट की सबसे पहले आलोचना करेगी खुद उनकी छोटी बेटी कैथलीन जो अभी तक अविवाहित थी. लेकिन वे जानती थीं कि यह हैट कैथलीन को क्यों पसंद नहीं

हत्या को आत्महत्या के रूप में स्वीकार लिया गया हो... और अपराधी फिर भी सच को कहे बगैर न रह सके तो...?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. इसलिए कि उसे मिसेज स्किनर का दामाद और अपना जीजा हैरल्ड भी पसंद नहीं था. दोनों की पटरी कभी नहीं बैठ पायी.

काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने आखिर हैट पहनने का निश्चय कर ही लिया. बाद में यू-डी-कलोन से भीगा एक रुमाल अपने हैंडबैग में रखा. अब वे हेवुड के बंगले में हो रही पार्टी में जाने के लिए तैयार थीं.

उन्होंने खिड़की से बाहर देखा. बड़ा खुशनुमा दिन था. किसी भी पार्टी के लिए आदर्श. बाहर बाग में उनकी पोती जोन फूलों से खेल रही थी. वह बहुत पीली और कमजोर थी और सदा अकेली और गंभीर रहना ही पसंद करती थी. बोर्नियो की जलवायु उसे माफिक नहीं आयी थी, शायद!

वे कैथलीन के पास गयीं जो पार्टी में होने वाली प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाली महिलाओं की सूची तैयार कर रही थी. उसके पास खड़ी थी, उनकी बड़ी बेटी मिलसेंट, जिसके पति की मृत्यु कुछ महीने पहले ही हुई थी. लेकिन उसने इस तथ्य को भुलाकर एक सजीली और भड़कीली पोशाक धारण कर रखी थी. जब उन्होंने उसे इस पोशाक के लिए टोका था तो उसने बड़ी उपेक्षा के साथ कहा था, "कब तक हैरल्ड के मरने का शोक मनाया जाता रहेगा?"

हैरल्ड की याद आते ही उन्होंने कमरे की दीवारों को देखा जिन पर मलयेशिया के लोगों के चित्र-विचित्र अस्त्र-शस्त्र टंगे थे. वे सब हैरल्ड ने शौक से जमा किये थे. उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इन अस्त्र-शस्त्रों के बीच हैरल्ड का एक फोटो टंगा था, जो आज नहीं है. उन्हें लगा, शायद मिलसेंट ने उसे उतारकर अपने कमरे में टांग लिया है. लेकिन कैथलीन से पूछा तो मालूम हुआ कि वह फोटो मिलसेंट के कमरे में नहीं है.

मिलसेंट का स्वभाव कभी उसकी समझ में नहीं आया. वह घुन्नी थी और अपन हर बात को औरों से छिपाना उसकी आदत में शुमार हो गया था. पति की, जे बोर्नियों में एक सरकारी अधिकारी था, मृत्यु के बाद जब से वह अपनी मां के पास रहने के लिए आयी थी, चुप ही रहती थी. कोई हमदर्दी दिखाये या उसकी आलोचना करे, वह चुप ही रहती थी. उसकी अटूट खामोशी से तंग आकर, उन्होंने अपने पति की बात मानकर, उससे बोलना ही बंद कर दिया था. उससे बोलना दीवार से सर फोड़ने के बराबर था.

पति की याद आते ही वह उसे दिखाई भी पड़ गये. इसे उन्होंने एक सुखद संयोग माना. उसके पति मिस्टर स्किनर पेशे से वकील थे. उन्हें पार्टियों में जाने का कोई शौक न था लेकिन आज शनिवार था और हेवुड उनका घनिष्ठ मित्र था, इसलिए वे जाने को तैयार हो गये. वे एक ईमानदार व्यक्ति होने के अलावा एक ईमानदार सॉलिसिटर भी थे.

मिस्टर और मिसेज स्किनर और कैथलीन पार्टी में जाने के लिए तैयार थे मगर मिलसेंट का कहीं पता न था. "मिलसेंट कहां गयी," मिसेज स्किनर ने पूछा.

"कोई जल्दी नहीं है. काफी वक्त है." मिस्टर स्किनर ने कहा.

कुछ मिनट बाद विधवा की मातमी पोशाक में मिलसेंट वहां आ गयी. इस पोशाक में वह अजीब-सी, अपरिचित-सी लग रही थी लेकिन उसे पहनने के लिए लाचार थी. परंपरा के अनुसार पति की मृत्यु के बाद एक साल तक उसे यही पोशाक पहननी पड़ेगी. भले ही वह इसमें अनाकर्षक क्यों न दिखायी पड़े. फिर आकर्षक दिखाई देने से लाभ भी क्या था? वह छत्तीस की थी और इतनी आयु की महिला, भले ही वह कितनी भी आकर्षक क्यों न हो, शादी के योग्य नहीं समझी जाती.

मिसेज स्किनर को उसके दूसरे विवाह के बारे में उतनी ही चिंता थी, जितनी कैथलीन के पहले विवाह की. कैथलीन 35 की होने वाली थी. मगर, दोनों ही बेटियां शादी के बारे में कभी नहीं सोचती थीं जैसे उन्हें कभी शादी करनी ही न हो. तभी मिलसेंट को मातमी कपड़ों में देखकर उन्हें कुछ याद आया और उन्होंने मिलसेंट के पास जाकर कहा, "अभी पार्टी में जाने में तो वक्त है. चलो, इतनी देर कुछ बातें ही कर लें, मुझे तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी थीं. आओ, उस कोने में बैठते हैं."

"क्या बात है?" मिलसेंट ने पूछा. कैथलीन और उसके पिता भी दोनों की बात बड़े ध्यान से सुनने लगे. मिलसेंट को बातें करते देखना एक नया अनुभव होगा.

"आज सुबह मेरी मुलाकात बोर्नियो के बड़े पादरी से हुई थी," मिसेज स्किनर ने कहा, "वे हैरल्ड को जानते थे." मिलसेंट ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखायी. तभी कैथलीन ने आकर मिलसेंट से पूछा, "क्या हैरल्ड का फोटो तुमने उतारा था?" मिलसेंट चुप रही.

"तुम या तो चुप रहती हो या जब बोलती हो तो अधूरी ही बात बोलती हो. या झूठ बोलती हो," कैथलीन ने गुस्से से कहा.

मिलसेंट फिर भी चुप रही, लेकिन मिस्टर स्किनर ने कैथलीन को डांटा, "अपनी बहन से ऐसे पेश आया जाता है क्या?"

"मैं उससे ठीक ढंग से ही पेश आ रही हूं, डैडी! आप खुद मिलसेंट से पूछिये कि इसने हमसे झूठ क्यों बोला था कि हैरल्ड बीमारी की वजह से मरा था, जबकि बोर्नियो के बड़े पादरी का कहना है कि उसने आत्महत्या की थी."

सुनकर, मिलसेंट के अलावा सब सुन्न रह गये.

"बेचारा हैरल्ड!" मिसेज स्किनर सुबकने लगीं.

"हमारे खानदान में कभी ऐसी घटना नहीं घटी," मिस्टर स्किनर ने कहा.

"मैं ऐसी ही टिप्पणियों से बचना चाहती थी और इसीलिए अब तक खामोश थी." मिलसेंट ने वहां से जाते हुए कहा.

कैथलीन ने अपनी मां की ओर देखते हुए कहा, "मां, मैं तुम्हें और ज्यादा दुखी नहीं देखना चाहती. फिर भी यह बताये बिना नहीं रह सकती कि बड़े पादरी के कथनानुसार हैरल्ड को बहुत पीने की आदत भी थी."

"क्या अब कुछ और भी सुनना बाकी रह गया है?" कहकर मिसेज स्किनर अब जोर-जोर से रोने लगीं.

"सच्चाई को छिपाने का यही नतीजा होता है," मिस्टर स्किनर ने चिढ़कर कहा, "तरह-तरह की अफवाहें दुनिया में जन्म लेने लगती हैं."

कैथलीन ने घाव पर नमक छिड़कते हुए मिलसेंट से कहा, "बड़े पादरी ने यहां सबको बताया है कि हैरल्ड ने जब तलवार से अपना गला काटा तब वह नशे में धुत्त था. तुम्हें इस समाचार का खंडन करना होगा, मिलसेंट."

"बड़ी होकर जब जोन को ये बातें मालूम पड़ेंगी तो उस बेचारी को कैसा लगेगा?" कहकर मिसेज स्किनर फिर रोने लगीं.

"मगर सच क्या है, मुझे यह जानना है." मिस्टर स्किनर ने मिलसेंट से पूछा. "वह आपके सामने नहीं पीता था," मिलसेंट ने उत्तर दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्महत्या का बीज

मेरे पिता गोली से आत्महत्या करके मरे थे. उन्होंने विरासत में मेरे लिए पचार हजार डालर छोड़े थे.

अपने उपन्यास, 'फार हूम द बेल टाल्स' में मैंने इस बारे में एक पैरा लिखा है. यह लिखने के लिए मुझे अपने पिता की आत्महत्यावाली बात का सामना करना पड़ता था. और यह सामना करने के लिए मुझे बीस साल लगे थे.

जो बात मुझे सबसे ज्यादा तंग करती थी, वह यह थी कि मैंने अपने पिता को एक पत्र लिखा था. वह पत्र उस दिन भी मेरे पिता की मेज पर बंद पड़ा हुआ था, जिस दिन उन्होंने खुद को गोली मारी थी. मेरा खयाल है कि अगर वे उस पत्र को खोलकर पढ़ लेते तो आत्महत्या न करते.

इस घटना के कई साल बाद एक दिन मुझे अपनी मां की ओर से एक पार्सल मिला. उसमें वह पिस्तौल थी, जिससे मेरे पिता ने आत्महत्या की थी. पार्सल के साथ मां का एक छोटा-सा पत्र भी था, जिसमें लिखा था : "इस पिस्तौल को शायद तुम अपने पास रखना चाहोगे." पिस्तौल मैंने अपने पास रख ली थी. तब मैं यह समझ नहीं पा रहा था कि वह किसी बात का अच्छा शकुन है या बुरा. □

□ अर्नेस्ट हेमिंग्वे

मिलसेंट कुछ देर चुप रही. उसका चेहरा पीला पड़ गया था. जब वह बोली तो लगा जैसे उसकी आवाज किसी सुरंग से आ रही है. उसने कहा, "सच बात जानकर आपकी परेशानी और बढ़ जायेगी, इसीलिए मैं अब तक चुप थी... सच तो यह है कि मैंने हैरल्ड को कभी नहीं चाहा. न वह मुझे चाहता था."

मिसेज स्किनर बीच में कुछ कहना चाहती थीं, मगर अपने पति की आंखों के इशारे से रुक गयीं. मिलसेंट ने आगे कहा, "मेरी आयु 27 वर्ष हो गयी थी और कोई ऐसा पुरुष मुझे नहीं दिखाई देता था जो मुझसे शादी करने को तैयार हो. हैरल्ड यूं तो 44 का था, लेकिन एक ऊंचे पद पर था. उससे बेहतर पति मुझे नहीं मिल सकता था."

मिलसेंट ने अपनी कहानी जारी रखी, "हम लोग कुआला सोलोर में रहते थे, जो बोर्नियो का खास नगर है. वहां हैरल्ड काफी लोकप्रिय था. शादी के बाद हमें रोज डिनर के न्यौते मिलते. वहां लोग उसे पीने को कहते मगर वह मना कर देता. लेकिन जब डिनरों का दौर खत्म हुआ तो मुझे मालूम पड़ा कि वह शराब के बिना न रह सकता है, न सो सकता है. हालत यहां तक आ गयी थी कि उसके अफसरों ने उसे चेतावनी दी कि यदि उसने पीना न छोड़ा तो उसे नौकरी से निकाल दिया जायेगा."

"क्या कह रही हो?" आश्चर्य से मिसेज मिलसेंट ने पूछा. "पर, तुम्हारी चिट्ठियों में तो कुछ और ही लिखा होता था और यह भी कि तुम उसे बहुत चाहती हो."

पुरानी यादों में खोते हुए मिलसेंट ने कहा, "शादी के शुरू के कुछ महीने सचमुच सुखद और अविस्मरणीय थे. हैरल्ड सदा मेरे सामने आंखें बिछाने को तैयार रहता था. हनीमून के उन्हीं सुहाने दिनों में मेरी भेंट बोर्नियो के प्रायः सभी उच्च अधिकारियों से हुई थी. उनमें से असिस्टेंट रजिडेंट सिपसन के साथ मेरा घनिष्ट परिचय हो गया था. उन दिनों मैं सचमुच बहुत सुखी थी. इतना ही नहीं, मैं सचमुच हैरल्ड से प्यार करने लगी थी. मगर एक साल बाद सब कुछ बदल गया. शुरुआत तब हुई, जब दो अंग्रेज प्रकृति-विज्ञानी सरकारी काम से बोर्नियो आये और हैरल्ड के अनुरोध से हमारे यहां ही ठहरे. पहले दिन डिनर के बाद दोनों सिपसन और हैरल्ड के साथ ब्रिज खेलने बैठ गये. मैं कुछ देर तक तो उनके पास बैठी, फिर सोने चली गयी. लेकिन मेरे जाते ही चारों शोर-गुल करने लगे और मेरा सोना मुश्किल हो गया. खैर, जब खेल खत्म हुआ तो शोर भी खत्म हुआ और मैंने हैरल्ड को लड़खड़ाते हुए, बैडरूम में आते देखा. वह सोने से पहले, बाथरूम में गया. वहां नशे की वजह से फिसल गया और सबको गालियां देने लगा. बाद में नशे की हालत में ही आकर सो गया. मैंने तय किया कि सुबह होते ही हैरल्ड से इस बारे में बातें करूंगी. मेहमानों ने क्या सोचा होगा? लेकिन, सुबह उठकर वह इतना संभ्रांत लग रहा था कि मेरी हिम्मत उससे कुछ कहने की नहीं हुई. नाश्ते के लिए मेज पर काफी चीजें जमा थीं, लेकिन हैरल्ड सिर्फ व्हिस्की पीता रहा. दोनों मेहमान उसकी ओर देखकर बड़ी बेशर्मी से हंस रहे थे. एक ने तो मुझसे कहा, "आपके पति काफी मुसीबत पैदा करने वाले आदमी हैं," और बेशर्मी के साथ हंसने लगा. हैरल्ड भी उसके साथ हो-हो करके हंसने लगा. मेरा सिर शर्म से झुक गया.

कुछ महीने बाद हैरल्ड को अपने ज़िले के दौरे पर जाना था. जब वह लौटा, तो उसे मलेरिया हो चुका था. वह कमजोर तो हो ही गया था, मूडी और चिड़चिड़ा भी हो गया था. घंटों शून्य में ताकता अकेला बैठा रहता था या गर्दन तिरछी करके मुझे घूरता रहता था.

सिपसन हम दोनों से मिलने के लिए अक्सर आता रहता था. कई बार मुझे लगा, जैसे वह मुझसे अकेले में कुछ कहना चाहता है, किंतु संकोचवश कुछ कह नहीं पाता. एक दिन, मैंने उससे पूछ ही लिया कि वह मुझसे क्या कहना चाहता है? 'यदि बात हैरल्ड के बारे में है, तो बेहतर होगा कि आप मुझे साफ़-साफ़ बता दें.' उसने काफी हिचकते हुए कहा, 'मैं नहीं जानता कि यह बात मुझे आपको बतानी चाहिए या नहीं, मगर ऑफिस के सब लोग जानते हैं कि हैरल्ड साहब अपनी मेज की ड्रॉअर में हमेशा व्हिस्की की एक बोतल रखते हैं और जब-तब पीते रहते हैं, सबके सामने.'

एक सर्द लहर मेरे शरीर में फैल गयी. सिपसन ने कहा— 'यदि उन्हें अभी नहीं रोका गया तो उनकी पीने की आदत वैसी ही हो जायेगी, जैसी शादी से पहले थी, जब वे हमेशा नशे में धुत दिखाई देते थे.'

सिपसन के जाने के बाद मैं उठी और सीधी हैरल्ड के ऑफिस में पहुंची. उसकी मेज पर व्हिस्की की आधी भरी बोतल रखी थी. मुझे देखकर वह घबरा गया. मैंने उससे कहा, 'मैं देखने आयी थी कि कामकाज कैसा चल रहा है?'

'बैठो, बैठो. काम बहुत है,' उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा. मैंने उससे कहा, 'तुम पिये हुए हो.' मेरा स्वर काफी क्रुद्ध था.

"तुम क्या... क्या कह रही हो?" उसने उद्धत मुद्रा में कहा.

जवाब में मैं उसे खूब सुनाना चाहती थी, मगर सिर्फ रोकर रह गयी. हैरल्ड के ऑफिस में कोई और न था. वह मेरे सामने घुटनों के बल बैठकर, आजिजी से कहने लगा, 'मुझे माफ़ कर दो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डियर! इस मलेरिया की वजह से मुझे यह लत लगी. मगर यकीन करो, मैं इसे शीघ्र ही पीना छोड़ दूंगा.' मैंने कहा– 'तुम्हें पीते देखकर मुझे बड़ी शर्म आती है,' और फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी. मुझे रोते देखकर वह भी रोने लगा. उसे रोते देखकर मेरा मन पिघल गया और मैंने उससे पूछा, 'क्या तुम मेरी शपथ लेकर यह वायदा करते हो कि तुम अब कभी व्हिस्की को छुओगे भी नहीं? बोलो!' उसने कहा, 'मैं तुम्हारी शपथ लेकर वायदा करता हूं कि कभी शराब को हाथ तक नहीं लगाऊंगा. मैं स्वीकार करता हूं कि शादी से पहले मैं खूब पीता था. अकेले आदमी को यह लत जल्दी लग जाती है.' जब मैंने उसे बताया कि मैं मां बनने वाली हूं तो उसे बड़ी खुशी हुई. उसने कहा, 'मैं अब अपनी संतान की खातिर शराब से दूर रहूंगा.' उसने अपने वायदे को दोहराते हुए कहा, 'मैं या तो कभी वायदा करता नहीं, मगर जब कर लेता हूं तो उसे तोड़ता नहीं. तुम निश्चिंत रहो. मैं आगे कभी शराब की तरफ देखूंगा भी नहीं.'

मिलसेंट ने आगे कहा, "जब जोन का जन्म हुआ तब रेजीडेंट की पत्नी मिसेज ग्रे ने उसका बहुत खयाल रखा था. लेकिन जब मिसेज ग्रे ने मुझे बताया कि शादी के पहले, हैरल्ड बिला नागा रोज पीता था और उसकी नौकरी सिर्फ इसलिए जाते-जाते बची थी कि उसने वायदा किया था कि वह शीघ्र ही विवाह करके पीने की आदत हमेशा-हमेशा के लिए छोड़ देगा तो मुझे बहुत कष्ट हुआ. और यह कष्ट तब असहय हो गया जब अस्पताल से बच्ची के साथ लौटने पर मैंने देखा कि हैरल्ड ने पी रखी है. उसी क्षण मैंने निश्चय कर लिया कि ऐसे आदमी को मैं कभी नहीं चाह सकती. और कभी मेरे हाथों उसकी मौत हो जाये तो मुझे कोई आश्चर्य न होगा. उसने झूठ बोला, अपना वायदा पूरा नहीं किया. गलीज आदमी था."

"खुदा के वास्ते ऐसा मत कहो, बेटी!" मिसेज स्किनर ने कहा, "वह अब जिंदा नहीं है और जिंदा भी होता तो..." लेकिन मिलसेंट की कठोर निगाहें देखकर वे बीच ही में रुक गयीं.

"आगे क्या हुआ?" कैथलीन और उसके पिता ने पूछा.

"उस दिन के बाद वह खुले आम पीने लगा, बिना इस बात की पर्वाह किये कि उसे पीते देखकर मुझे कितनी पीड़ा होती है. तीन महीने बाद वह फिर बीमार पड़ा. वह काफ़ी ज़िद्दी और कमज़ोर हो गया था."

"तुमने उसे तब क्यों नहीं छोड़ दिया?" कैथलीन ने पूछा.

"अगर मैं उसे छोड़ देती तो उसे अगले दिन ही नौकरी से निकाल दिया जाता. मैं यह नहीं जानती थी. मुझे अपना और जोन का भी खयाल था. रेजीडेंट महोदय मुझे सूचित कर चुके थे कि यदि हैरल्ड ने फौरन पीना न छोड़ा तो उसकी नौकरी तत्काल चली जायेगी. उसकी पीने की आदत छुड़ाने के मैंने अनेक प्रयास किये मगर उसकी पीने की आदत नहीं छूटी. जब मैंने हैरेल्ड को नौकरी छूट जाने की संभावना की बात बतायी तो वह बहुत आगबबूला हुआ लेकिन थोड़ा डर भी गया और दो-तीन महीने तक वह शराब से दूर रहा. लेकिन, बाद में फिर पीना शुरू कर दिया. तभी उसकी इंग्लैंड जाने की छुट्टियां आ गयीं.

"इंग्लैंड आने से पहले, मैंने उससे बार-बार प्रार्थना की कि वह अपनी ससुराल में कतई न पिये. सौभाग्य से उसने यहां शराब की तरफ देखा भी नहीं. वह जोन को भी बहुत प्यार करने लगा था और मेरे से भी अच्छी तरह पेश आने लगा. काफी दिनों के बाद, मैंने सुख-संतोष का अनुभव किया."

कुछ क्षण चुप रहकर उसने फिर कहना शुरू किया, "फिर जोन बीमार पड़ी. डॉक्टर की सलाह पर मैं उसके साथ एक महीना समुद्र-तट पर रही. लेकिन जब वापस लौटी तो देखा, हैरल्ड अपने बिस्तरे पर, नशे में धुत्त पड़ा था. उसकी हजामत बहुत बड़ी थी जो दिखाती थी कि कई दिन से वह काम पर नहीं गया और इसी तरह पीकर सोता आ रहा है. मैं तेज़ी से अपना आपा खोती जा रही थी और मुझे तब पता नहीं चला कि मैं क्या कर रही हूं. सामने दीवार पर परांग टंगी थी, बोर्नियो की एक तलवार... और फिर उसका गला कट गया. आखिरी बार जब उसने एक क्षण के लिए अपनी आंखें खोलीं, तो वे मुझे जोन की आंखें जैसी लगीं."

मिसेज स्किनर ने डर के मारे चीख मारी. कैथलीन ने मिलसेंट को झंझोड़कर कहा, "सही-सही बताओ कि क्या हुआ था?"

"परांग (तलवार) दीवार पर टंगी थी. इसके बाद क्या हुआ, मैं नहीं जानती. वह तुरंत मर गया था और कुछ बोल भी नहीं पाया था."

"तो... तूने उसे जान से मार डाला था!" मिसेज स्किनर चिल्लायी. मिस्टर स्किनर ने पूछा, "यह काम तूने ही किया था? बता, मैं सच्चाई जानना चाहता हूं."

"मैंने नहीं किया था तो फिर किसने किया? वहां मेरे सिवा कोई और मौजूद नहीं था... मैंने सबसे यही कहा कि मैंने जब बंगले में जोन के साथ प्रवेश किया तो देखा कि हैरल्ड की गर्दन कटी है. हैरल्ड के पलंग के पास व्हिस्की की बोतल देखकर सबने विश्वास कर लिया कि उसने आत्महत्या ही की है. अधिकारियों ने मेरी बात पर विश्वास कर मेरे लिए पेंशन की व्यवस्था भी कर दी."

"मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिए," मिस्टर स्किनर बोले.

"आप क्या करना चाहते हैं या थे?" मिलसेंट ने पूछा.

"यह हत्या का मामला है. इसे छिपाया नहीं जा सकता."

कैथलीन ने उन्हें समझाया, "क्या आप अपनी बेटी को कानून के हवाले करेंगे?"

मिलसेंट ने कहा, "मैं चाहती तो सच को छिपा सकती थी. लेकिन, आप सबके कहने पर मैंने सब सच बता दिया. मैं इतने दिनों तक अशांत और दुखी रहे. आप कुछ मिनट भी अशांत और दुखी नहीं रह सकते, आश्चर्य है."

तभी नौकर ने आकर बताया कि शोफर कार लेकर आ गया है. उसको विदा कर मिलसेंट ने कहा, "पार्टी में जाने का समय हो गया है."

"मैं पार्टी में नहीं जा सकूंगी," मिसेज स्किनर ने कहा, "मैं वहां बड़े पादरी और हेवुड का सामना कैसे कर पाऊंगी?"

"पार्टी में तो हमें जाना ही होगा," कैथलीन ने कहा और मिलसेंट ने चलने के लिए आगे कदम बढ़ाकर उसका मूक अनुमोदन किया. मिलसेंट ने कहा, "जैसा आघात आपको लगा, उससे कई सौ गुना आघात मुझे इस घटना से लगा था. लेकिन, दो-तीन महीने के बाद मैं सब कुछ भूल गयी थी. आप तो दो-तीन दिन में ही सब कुछ भूल जायेंगे. किसी का खतरा तो न कभी था, न अब है."

तीनों में से किसी ने भी इस बात के उत्तर में कुछ नहीं कहा. हां, कार में सवार होते हुए, मिस्टर स्किनर ने मिलसेंट से इतना जरूर कहा, "कम से कम मुझे तुमको यह घटना नहीं सुनानी चाहिए थी." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मस्वीकृति

अंधेरी तूफ़ानी रात में

इंसान कैसे अपने व्यवहार को बदलने पर मजबूर हो जाता है...? धुंधभरी तस्वीर की असलियत बखानती प्रख्यात कथाकार की यादगार कहानी–

शिकार के बाद, मैं अपनी 'ड्रॉक्सी' (चार पहियोंवाली' गाड़ी, जिसका इस्तेमाल जंगली क्षेत्रों में जाने के लिए किया जाता है) में अपने घर वापस लौट रहा था.

मैं अपने घर से प्रायः छह मील की दूरी पर था. जिस रफ्तार से 'ड्रॉक्सी' दौड़ रही थी, उससे मुझे आशा थी कि मैं शाम को ही अपने घर पहुंच जाऊंगा. मेरा कुत्ता एक कोने में चुपचाप बैठा था. शिकार के दौरान, उसे काफी दौड़ना पड़ा था इसलिए वह काफी थक गया था.

तभी मैंने आकाश में बैंगनी रंग के बड़े-बड़े बादलों को मंडराते देखा. ये डरावने बादल आने वाले बड़े तूफान की पूर्व-सूचना दे रहे थे. और, जब तक मैं यह निर्णय कर पाऊं कि तूफान से बचने के लिए मुझे क्या करना चाहिए, तब तक वर्षा की मोटी-मोटी बूंदें मुझे और मेरी 'ड्रॉक्सी' को भिगाने लगीं.

मैंने चारों ओर देखा कि शरण लेने के लिए आसपास कोई सुरक्षित स्थान है या नहीं. सौभाग्य से एक ढलान के नीचे एक ऐसा स्थान दिखाई दे गया जो सायेदार वृक्षों से आच्छादित था और जहां पहुंचकर तूफान और वर्षा से राहत पायी जा सकती थी.

'ड्रॉक्सी' को सावधानी से चलाते हुए, मैं कुछ देर बाद उस स्थान पर पहुंच गया. यहां पहुंचकर तूफान और तेज वर्षा की बूंदों से तो मुक्ति मिल गयी लेकिन एक नयी परेशानी का सामना करना पड़ा, यानी– घटाटोप अंधकार. अंधेरा इतना घना था कि एक इंच आगे की वस्तु भी मैं नहीं देख सकता था. अंधेरे की वजह से घोड़ी और कुत्ता अलग परेशान थे. मैं एक पेड़ के नीचे दुबका बैठा, तूफान और बारिश के खत्म होने का इंतजार करने लगा.

सहसा बिजली जोर से चमकी और उसके प्रकाश में मैंने सड़क पर एक लंबे-चौड़े और मजबूत आदमी को खड़े देखा. ऐसा लगता था, जैसे वह अचानक जमीन में से निकलकर मेरी 'ड्रॉक्सी' के पास खड़ा हो गया हो. उसने तेज-तर्रार आवाज में मुझसे पूछा, "कौन हो तुम?"

मैंने उसे अपना नाम बताया. उसने कहा, "मैंने आपका नाम सुना है. मैं इस जंगल का वनाधिकारी हूं. क्या आप अपने घर वापस जा रहे थे?"

तभी बिजली चमकी और उसके साथ वर्षा भी तेज हो गयी. वनाधिकारी ने कहा, "लगता है, बारिश जल्दी नहीं रुकेगी. आप चाहें, तो मेरी झोंपड़ी में चलिये."

"बड़ी मेहरबानी होगी," मैंने कहा.

उसने घोड़ी को बड़े प्यार से थपथपाया, उसे 'ड्रॉक्सी' में जोता और फिर मुझे और कुत्ते को 'ड्रॉक्सी' में बैठाकर, उसे अपनी झोंपड़ी की ओर ले जाने लगा. करीब आधा घंटे के सफर के बाद हम उसकी झोंपड़ी पर पहुंचे. तभी, बिजली चमकी और उसके प्रकाश में मैंने एक बाड़े में सिमटे एक छोटे से झोंपड़े को देखा जिसकी एक खिड़की से दीये की मध्यम-सी रोशनी आ रही थी. कुछ सेकंड बाद, ग्यारह-बारह साल की एक लड़की हाथ में लालटेन लिये आयी. उसने एक क्षण के लिए मुझे देखा और फिर अंदर जाने लगी. मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया. वनाधिकारी 'ड्रॉक्सी' शेड में रखने के लिए चला गया.

झोंपड़ी के अंदर ज्यादा सामान न था. दीवार पर भेड़ की एक पुरानी खाल टंगी थी, जो शायद जमीन पर बैठने के काम आती थी. एक कोने में सिंगल-बैरल की बंदूक पड़ी थी. उसके पास में पुराने कंबल पड़े थे. चूल्हे के पास दो बड़े बर्तन रखे थे और उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकड़ियां जल रही थीं. दूसरे कोने में एक झूला लगा था, जिसे वह लड़की, बीच-बीच में मुझे देखते हुए, हिलाती जाती थी. झूले से किसी बच्चे की जोर-जोर से सांस लेने और कभी-कभी खांसने की आवाज भी आ जाती थी. बीच-बीच में, लड़की चूल्हे की आग को भी तेज करती जाती थी.

मेरा मन खेलने-खालने की उम्र में गंभीर बनी उस लड़की के प्रति सदय हो गया. मैंने उससे पूछा, "क्या तुम वनाधिकारी की लड़की हो?" उसने अस्फुट स्वर में कहा, "हां." तभी वनाधिकारी ने झोंपड़ी में प्रवेश करते हुए मेज पर एक मोमबत्ती जला दी. और पूछा, "आपको हमारी रुखी-सूखी रोटी कहां पसंद आयेगी. आप ठहरे बड़े आदमी."

"मेरे भाई, मुझे भूख नहीं है.... तुम्हारा नाम क्या है?"

"नाम तो वैसे फोया है लेकिन लोग मुझे 'भेड़िया' के नाम से ज्यादा जानते हैं."

"ओह! तो तुम ही 'भेड़िया' हो! मैंने तुम्हारे बारे में तरह-तरह की कहानियां सुनी हैं. तुम तो इस इलाके के मशहूर आदमी हो."

"मेरे बारे में आपने कैसी कहानियां सुनी हैं?"

"यही कि इस इलाके के किसान असली भेड़िये से भी ज्यादा तुमसे डरते हैं. तुम किसी किसान को जंगल की एक लकड़ी भी नहीं ले जाने देते. जो ऐसा दुस्साहस करता भी है, उसे तुम जंगल पार करने से पहले ही अपनी गिरफ्त में ले लेते हो. पर, तुम्हें देखकर मैं यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि तुम ही भेड़िये हो. तुम एक करुण-हृदय किसान लगते हो."

"मैं रहमदिल जरूर हूं, लेकिन अपराधी पर रहम नहीं दिखाता. मैं किसी पर सख्ती नहीं दिखाता और नमकहराम होने की जगह नमकहलाल होना ज्यादा पसंद करता हूं." इतना कहकर वह कुल्हाड़ी से लकड़ी चीरने लगा. मैंने पूछा, "तुम्हारी पत्नी कहां है?"

"वह... वह नहीं है," उसने लकड़ियों पर जोर से कुल्हाड़ी चलाते हुए कहा.

"क्या वह जीवित नहीं है?"

"वह जीवित है, लेकिन मेरे लिए नहीं. वह एक आदमी के साथ भाग गयी," उसने एक तीखी मुस्कराहट के साथ कहा.

लड़की ने शर्म से सर झुका लिया. बच्चा सहसा जोर-जोर से रोने लगा. फोमा ने उसे गोद में उठाते हुए कहा, "वह इसे भी छोड़ गयी. खैर जाने दें इस बात को. मैं आपकी घोड़ी को देखता हूं. और कुत्ते को भी. दोनों भूखे होंगे. जल्दी से उनके लिए गोश्त पका देता हूं. माफ करें, मैं आपको चाय नहीं दे सकता. घर में चाय नहीं है."

उसके जाने के बाद मैंने झोंपड़ी में चारों ओर निगाहें दौड़ायीं. सारा वातावरण बड़ा उदास और मायूसी तथा बासेपन से भरा था. लड़की के कपड़े पुराने, फटे हुए और नाकाफी थे. मैंने उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है, बेटी?"

"उलिता," कहते-कहते उसका चेहरा और ज्यादा उदास और भावशून्य हो गया.

इस बीच 'भेड़िया' बाहर लौट आया और मुझसे कहने लगा, "तूफान और बारिश का जोर धीरे-धीरे कम हो रहा है. आप कहें तो मैं आपको जंगल के पार छोड़ आऊं." मैं फौरन उठ खड़ा हुआ. उसने भी अपनी बंदूक उठा ली. मैंने पूछा, "बंदूक की क्या जरूरत है?"

"जरूरत पड़ेगी. किसी के लकड़ी तोड़ने की आवाज आ रही है."

"लेकिन, मुझे तो ऐसी कोई आवाज सुनायी नहीं दे रही है."

"मुझे तो आवाज साफ सुनायी दे रही है."

जब हम बाहर आये तो बारिश और तूफान दोनों थम चुके थे. बारिश से भीगे पेड़ अंधेरे में खामोश सहमे से खड़े थे.

सहसा, 'भेड़िया' रुक गया और कान झुकाकर कुछ सुनने लगा. फिर बोला, "निश्चय ही कोई पेड़ काट रहा है. उसने सोचा होगा कि ऐसी रात में भला कौन उसे रोकने आयेगा? लेकिन वह मुझे भूल गया है, शायद!"

घोड़ी को एक नयी पगडंडी की ओर मोड़ते हुए उसने कहा, "यह पगडंडी हमें दर्रे तक जल्दी पहुंचा देगी. आपको जंगल के बाहर छोड़कर मैं उस आदमी से निपटूंगा."

"मैं भी उस समय तुम्हारे साथ रहना चाहूंगा."

"आप चाहें तो... वैसे, मैं अकेला ही उसके लिए काफी हूं."

हम लोग काफी तेजी से जाने लगे. रास्ते में, अचानक 'भेड़िया' एक बार फिर क्षण भर के लिए रुका. तभी किसी पेड़ के धड़ाम से जमीन पर गिरने की आवाज सुनाई दी. अपने कंधे उचकाते हुए, 'भेड़िया' दर्रे की ओर भागा. मैं भी उसके पीछे-पीछे भाग रहा था.

घटनास्थल पर पहुंचकर, उसने मुझसे कहा, "आप एक क्षण को यहीं रुकें." कहकर, वह घनी झाड़ियों में गायब हो गया. उसके कंधों पर उसकी बंदूक थी. कुछ क्षण बाद, मुझे 'ड्रॉक्सी' के पहियों के थमने और कुल्हाड़ी के जोर से पेड़ पर पड़ने की आवाज सुनाई दी. और उसके साथ ही भेड़िये की गोली जैसी आवाज, "रुको! ठहरो! मैं आ गया हूं!" इसके साथ ही एक मिमियाती-सी आवाज सुनायी दी, माफी का इजहार करती हुई.

मैं जब झाड़ियों को चीरता हुआ, जमीन पर पड़े पेड़ के पास पहुंचा तो देखा, 'भेड़िया' गैरकानूनी ढंग से पेड़ काटने वाले के दोनों हाथ उसकी पीठ के पीछे बांध रहा है. सिर से पांव तक भीगा

(लघुकथा)

गलतियों की राख

विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक, थॉमस एडीसन की प्रयोगशाला और कारखाने को आग लग गयी तो कुछ ही देर में सब कुछ मिट्टी में मिल गया. बीस लाख डालर के यंत्रों के अलावा एडीसन के जीवन भर भर के शोध-कार्य से संबंधित सभी कागज-पत्र भी जलकर राख हो गये.

दुर्घटना की खबर पाते ही एडीसन का पुत्र वहां पहुंचा तो एडीसन एक जगह खड़ा उस आग को देख रहा था.

पुत्र को देखते ही एडीसन ने कहा, "तुम्हारी मां कहां है? उसे जल्दी से लेकर आओ. ऐसा दृश्य वह फिर कभी नहीं देख पायेगी."

अगले दिन सुबह अपनी आशाओं और सपनों की राख में घूमते हुए 67 वर्षीय एडीसन ने अपने सहयोगियों से कहा, "तबाही का भी कुछ फायदा जरूर होता है. हमारी सबकी गलतियां जलकर राख हो गयी हैं. अब हम नये सिरे से अपना काम शुरू कर सकते हैं. □

— सुखबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आदमी सर्दी और डर की वजह से कांप रहा था. मुझे उस पर रहम आ गया. मैंने 'भेड़िये' से कहा, "उसे छोड़ दो, दोस्त! मैं पेड़ की कीमत चुकाने को तैयार हूं."

'भेड़िये' ने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं. उसने अपराधी को दाहिने हाथ से घसीटते हुए कहा, "चल, अब सीधी तरह से मेरे साथ!" रास्ते में फिर मूसलाधार वर्षा आरंभ हो गयी, और हम सब बड़ी मुश्किल से झोंपड़ी तक पहुंचे. झोंपड़ी के बाहर, 'भेड़िये' ने अपराधी की घोड़ी को आंगन के बीचोंबीच लगे एक पेड़ से बांधा और उसे झोंपड़ी के अंदर लाकर उसकी गांठ ढीली करने लगा. 'भेडिया' एक टूटी कुर्सी पर बैठकर अपना सर हाथों में लेकर कुछ सोचने लगा. मैं भी स्टूल पर बैठकर देखने लगा कि अब क्या होगा? 'भेड़िये' ने मुझसे कहा, "बारिश शायद जल्दी नहीं थमेगी. आप यहीं आराम करें. इस सूअर को मैं पास की कोठरी में बंद किये देता हूं."

"इस आदमी को ज्यादा छेड़ो मत. उसे छोड़ दो. पेड़ की कीमत मुझसे ले लो." मेरे यह शब्द सुनते ही, अपराधी ने क्षणभर के लिए मुझे देखा. उसकी दयनीय निगाहों को देखकर मैंने निश्चय कर लिया था कि जो भी हो, इस बेचारे को आजाद कराके ही दम लूंगा. लालटैन की मंद रोशनी में मैंने देखा, उसका क्लांत और फुर्तीदार चेहरा, कृशकाय देह और डरी हुई आंखें. 'भेड़िया' अपना सर हाथ में लिये, चुपचाप बैठा था. झींगुरों की आवाज झोंपड़ी की शांति को भंग कर रही थी. सहसा, अपराधी ने अपनी गाढ़ी मगर टूटी आवाज में कहा, "फोमा कुजमिख, मुझे छोड़ दो." फोमा ने कोई जवाब नहीं दिया.

"मुझे जाने दो. भूख से लाचार होकर, मैंने मजबूरी में यह जुर्म किया."

"तुम सब गांववाले एक जैसे हो... चोर!" फोमा ने गुस्से से कहा.

अपराधी फिर गिड़गिड़ाया, "मुझे छोड़ दो. हम सब तबाह हो चुके हैं, अपने मैनेजर की वजह से. हमें और ज्यादा तबाह मत करो."

फोमा ने अपनी निगाहें अपराधी की ओर से मोड़ लीं. अपराधी या तो ठंड से, या डर से, बुरी तरह कांप रहा था और उसे सांस लेने में भी कठिनाई हो रही थी. वह शोकार्त स्वर में एक ही राग अलापे जा रहा था, "मुझे छोड़ दो... मैंने जो कुछ किया, मजबूरी में किया. मेरा परिवार भूख से मर रहा था. मेरे बच्चे अभी भी रो-चिल्ला रहे होंगे. मैं भगवान की सौगंध खाकर कहता हूं कि मैं पेड़ की पूरी कीमत अदा कर दूंगा. मैं बंद हो गया तो मेरी बीवी... मेरे बाल-बच्चे... भूखे मर जायेंगे. उन्हें कोई कुछ नहीं देगा."

कुछ देर बाद, फोमा ने कहा, "भूख का इलाज चोरी नहीं है."

"मेरी घोड़ी," अपराधी ने जैसे फोमा की बात सुनी ही नहीं, "कम से कम उसे तो छोड़ दो. हमारे पास वही एक जानवर है. तुम उसे नहीं छोड़ेंगे तो मेरी बीवी और बाल-बच्चों के साथ वह भी मर जायेगी."

"देखो, मैं कुछ नहीं कर सकता. मेरी भी मजबूरियां हैं. और तुम्हें तो यह जुर्म करने की आदत-सी पड़ गयी है. तुम्हें छोड़ देने से तुम्हारी यह आदत जानेवाली नहीं है."

"मैं तुम्हारे पांव पड़ता हूं, फोमा! मुझे छोड़ दो. मेरी बात पर यकीन करो. मैं भूखा था, लाचार था. मुझे जाने दो."

"उफ! बस भी कर! चुपचाप बैठा रह! देखता नहीं है, तेरे सामने कितने बड़े आदमी बैठे हैं." बेचारे किसान ने अपना सिर झुका लिया. फोमा ने लंबी जम्हाई लेकर अपना सिर मेज पर रख दिया. वह भी थका हुआ और परेशान दिखाई देता था. मैं उत्सुक था जानने को कि अब क्या होता है.

...सहसा बिना किसी चेतावनी के अपराधी किसान अचानक उठ खड़ा हुआ. वह अब तनकर खड़ा था और उसका चेहरा क्रोध से तमतमाया हुआ था. उसने फोमा से कहा, "बेरहम! सता मुझे जितना चाहता है! पी ले, और मेरे बीवी-बच्चों का खून! तुझे सौगंध है, भगवान की! पी हम सबका खून!"

फोमा ने मुड़कर किसान की ओर देखा और उसे कहते सुना, "हां, मैं तुझ ही से बातें कर रहा हूं. हत्यारे, गरीबों का खून पीनेवाले! मार, मुझे इसी वक्त जान से मार डाल!" छोटी लड़की उठ खड़ी हुई थी और सहमी सी उसे देख रही थी.

"खामोश!" भेड़िया चिल्लाया और किसान के ठीक सामने जाकर खड़ा हो गया.

किसान चिल्लाने लगा, "मैं अब खामोश नहीं रहूंगा. मैं अपनी जिंदगी से तंग आ गया हूं और मरना चाहता हूं. इसी जुल्मी आदमी के हाथों मरना चाहता हूं."

'भेड़िये' ने किसान की गर्दन पकड़ ली. मैं किसान को बचाने के लिए आगे बढ़ा और फोमा से कहने लगा, "जाने दो इसे फोमा. मैं उसकी ओर से सब हर्जाना चुकाने को तैयार हूं."

"मेहरबानी करके आप इसके पास न जायें, हुजूर!" और मुझसे यह कहकर फोमा किसान के बंधे हाथों को खोलने लगा. किसान को आजाद करके फोमा ने हल्का-सा धक्का देकर उसे झोंपड़ी के बाहर कर दिया और धमकी भरे स्वर में कहा, "इस बार छोड़ देता हूं, लेकिन अगली बार जरा भी रहम दिखाने वाला नहीं हूं." और वापस झोंपड़ी में आकर उसने अपनी छोटी लड़की को गोद में उठा लिया, और प्यार से सहलाने लगा.

बारिश फिर काफी कम हो गयी थी. सड़क तक मुझे छोड़कर वह वापस अपनी झोंपड़ी की ओर लौटा. काफी देर तक उसका चेहरा मेरी आंखों के सामने घूमता रहा और याद आते रहे, उसके ये शब्द, "इस बार आपके कहने पर उसे छोड़ दिया, हुजूर! मगर, अगली बार उसे छोड़ने वाला नहीं हूं." □

भूख

मुझे अपना बचपन सिर्फ भूख और डर की शक्ल में याद है. मैं रूस में जन्मी और आठ साल की उम्र तक रूस में ही पली. घर के बाहर बेहद ठंड होती और घर के अंदर बेहद खालीपन. मुझे आज भी अपनी वह हालत याद है, जब मैं रसोई में बैठी आंसू-भरी आंखों से देखती थी कि मां मेरे हिस्से की खिचड़ी मेरी छोटी बहन को खिला रही है. तब मुझे किसी ने यह बात नहीं बतायी थी कि मेरी बहन स्कूल में कई बार भूख के कारण बेहोश हुई थी.

करीब मैं एक छोटा-सा घर था, जिसके निचले हिस्से में हम रहते थे. जब कभी हम शहर में जाते, तो लोग हमें 'क्राइस्ट के कातिल' कहते. सुनकर मैं डर के मारे कांपने लगती. एक रात कुछ लोग यही नारे लगाते हुए हमारे घर पर टूट पड़े. तब मुझे पता लगा कि मैं यहूदी हूं और यहूदी होने के कारण ही मैं ओस-पड़ोस के घरों के बच्चों के साथ खेल नहीं पाती थी.

□ गोल्डा मायर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 16 जुलाई, 1949
प्रमुख कृतियां : 'नकली चांद', 'साज महल' (उपन्यास), विस्फोट (विज्ञान कथा), रहस्यों का सौदागर (कथा संग्रह).
संपर्क : अरावली अपार्टमेंट्स, अलकनंदा, कालका जी, दिल्ली-110 009

मंटोप वाई

□ राजेश जैन

सिन्हा साहब ने जीप से उतरकर प्लांट पर एक नजर डाली. बगीचे की क्यारियों-सी सुंदरता लिये हुए ये इस्पाती ढांचे... सारा प्लांट एक जंगी-सा लग रहा था... और मस्तूल-सी उठी हुई चिमनी.

कुछ याद करने की कोशिश उन्हें नहीं करनी पड़ी क्योंकि साथ के स्थानीय अफसर कौशल ने चिमनी की ओर इशारा करके कहा था, "सर वो है चिमनी, जहां से वेदू राम गिरकर या कूदकर मरा था..."

"तो उसका नाम था वेदू राम..." उन्होंने मन ही मन कोई खोयी चीज पा ली, "क्या हाइट है चिमनी की?"

"एक सौ पच्चीस मीटर सर," स्थानीय अधिकारी ने बताया "काफी ऊंची है..."

"येस सर, अभी पूरी नहीं बनी... सबसे ऊपरी फ्लोर का काम बाकी है..."

"ऊपर काम चल रहा था... वेदूराम वहीं काम कर रहा होगा?" अब सिन्हा के सामने इंक्वाइरी का पहला गवाह था—फूलो. उन्होंने व्यावसायिक मुस्तैदी सहित फूलो से बातचीत शुरू की. कलम तैयार की. कलम की गाड़ी को फूलो के शब्द ढकेलने लगे—जैसे फूलो की आवाज उनकी कलम से स्याही बन गयी.

"नाहीं साब," फूलो बोल रहा था. "वेदू ऊपरे काम न करे था..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो फिर ऊपर काहे गया रहा?"

"का मालूम... हो सकत है मनटोर बाई होये बुलाव रहीं...?"

"कौन मनटोर बाई... उसकी औरत है क्या?"

"उसकी औरत थी..."

"क्या वह ऊपर काम कर रही थी... वहां से उसने बुलाया था..."

"अरे साब... वा है तो ऊपर सही... पन बहुत ऊपर है... चिमनी से भी अऊर ऊपर..."

"क्या मतलब?"

"अब भला मोहे का मालूम कि भूतन की आतमा कितनी ऊंचाई पर रहत है..."

"भूत की आत्मा... मनटोरबाई किसी प्रेत का नाम है..."

"लो साब... हर कोई जानत है... सबै बात करत हैं. ई बार वेदू राम को वही बुलाय रही..."

"ई बार... यानी ऐसा हो चुका है..."

"होत रहत है... आज यहां तो काल वां... कोई न कोई मरत रहत है... काहे न मरे... साब, ई जगह जो गांव रहा—वो मैं पहले जिंदा गांव बारे अऊर बड़े-बड़े नामी भूत-परेत... सब हिल-मिलकर रहत रहे. कोई किसी को बाधा न पहुंचात रहा...

कभी-कभी अतीत इंसान पर इतना हावी क्यों हो जाता है कि आदमी अपने आप से ही घबराने लग जाए...

वो उधर टंकी दिखत है न... उधर घनी अमराई रही... वहां का इलाका भूत-परेत का रहा... उस तरफ समसान रहा... वहां मुर्दा जलत रहे... बस... और कभी कोई न जात रहा... भूत-परेत भी समझदार थे... कोऊ का तंग न करे थे. इधर न आत रहे... जब प्लांट बने तो जमीन से बेदखली भई, तभी से बस साब... गांव वाले ही न ऊजरे बल्कि भूत-परेत भी बेघर हो गये... गांव वारों को हर्जाना मिल गवा पर भूत-परेत को सरकार कैसे हर्जाना दे... वो अपना हर्जाना खुद वसूल रहे हैं... बलि लेकर..."

"अच्छा, कौन गांव था यहां?"

"मड़िया रास नाम रहा... बेचारा गांव ही बिला गया... लोगन ऊनी बी याद करत हैं वा को... का शानदार गांव रहा... वा की मैय्यत उठ गई..."

सिन्हा को लगा उनकी कलम रुक गयी है. फूलो, गांव का बखान उसी तरह कर रहा था मानो कोई दिवंगत हुए महापुरुष या संत को याद कर रहा हो.

"मड़िया रास," सिन्हा साब बुदबुदाये, "अच्छा नाम है. क्या मतलब इसका..."

"अब साब हम का बतायें... आप तो पढ़ा-लिखा बहुत है... मड़िया के माने झोंपड़ और रास माने मस्ती... मस्ती परकार-परकार की होत है.... शरीर वारी और मन वारी... ई गांव दोनों मसतियों का झोपड़ रहा.... आदमियों के लिए और भूत-परेत के लिए भी... ऐहिन से ई का नाम परा मड़िया रास..."

"अच्छा समझा..." सिन्हा अनायास प्रभावित हुए, "हां, अब बताओ वेदू राम कैसे मरा?"

"हमें का मालूम... वो साब हल्ला मचा तो गये—देखा वेदू राम मरा पड़ा है चिमनी के नीचे... लोग कहिन रहे ऊपर से गिर पड़ा..."

"ऊपर कौन-कौन थे...?"

"नाहीं मालूम..."

"वेदू राम चिमनी पर काम नहीं करता था?"

"हा साब... बताये रहेन न कि वा को मंटोरबाई बुलाय रही... मनटोर बाई की पुकार में तब भी बड़ा दम रहा... अच्छे-अच्छे खिचकर आ जा रहे.... वा बोल के नाही पुकारत रही बल्कि अंखियों से बुलात रही..."

बगल में कौशल अभी तक बैठा ध्यान से फूलो का बयान सुन रहा था. बात को एकाएक थमा देख उसने प्रकरण की बागडोर संभाली. "सर... मे आई इंटरप्ट..."

"हूं..."—सोचते हुए सिन्हा ने कहा.

"सर, ऐसा है कि फूलो यहां का ही रहनेवाला आदिवासी है. यहां प्रोजेक्ट में अधिकांश वर्कर ऐसे हैं जिनकी जमीन हमने प्रोजेक्ट के लिए अक्वायर की थी... यहां पूरा गांव था... ये गांव वाले काफी अंधविश्वासी हैं. इसलिए तरह-तरह की कहानियां प्रचलित हैं..."

"आई नो मिस्टर कौशल," सिन्हा ने कहा, "इन कहानियों का इंक्वायरी से सीधा संबंध नहीं है पर जिंदगी से है... और मुझे ऐसे भटकाव से परहेज नहीं है... मैं स्वयं चार-पांच प्रोजेक्ट्स के लिए लैंड एक्वीजीशन का काम कर चुका हूं अपने कैरियर में..."

एकाएक उन्होंने कलम रख दी और लंबी सांस लेकर बोले, "हां तो मिस्टर कौशल आप क्या कह रहे थे...?"

"साब, मैं बता रहा था वहां के लोगों में बहुत पिछड़ापन है. कभी-कभी तो बड़ी मुश्किल हो जाती है..."

"मंटोरबाई के बारे में क्या जानते हो?"

"सुना है, वह इस गांव की पतुरिया थी... पतुरिया तो खैर यहां की कई औरतें होती हैं... इनकी कोई वैल्यूज नहीं...सेक्स की कोई मर्यादा नहीं... यहां के लोग काफी पिछड़े और गरीब हैं. दरिद्रता के कारण अपना शोषण भी होने देते हैं. इनकी जरूरतें ही इनके शरीर और सोचने को दिशा देती हैं... जहां जरा जरूरत पूरी होती दिखी, वहीं लुढ़क गए..."

"अच्छा..."

"मनटोरबाई की कहानी इन्हीं से सुनी है. जहां चिमनी की साइट है, वहां पहले कुआं था... उसी कुएं में कूदकर मनटोरबाई ने आत्महत्या की थी. वेदू राम अक्सर यहां चिमनी के नीचे आया करता था और कहा करता था... यहीं कुएं की जगत पर बैठकर मैं खाना खाता था... यहीं मंटोरबाई खाना लाती थी... दिनभर मेहनत करके कुएं से पानी खींचकर खेत सींचता... खेतों में काम करता और फिर मंटोरबाई की लाई रोटी भी यहीं खाता... अब न तो कुआं रहा और न ही उसके खेत... बाद में भी अक्सर वह लंच के समय वर्कशॉप से निकलकर यहां चिमनी के पास आ बैठता... लोग उसे झक्की समझते थे. जो उसके अतीत से परिचित थे; वे उससे सहानुभूति रखते थे..."

"क्या अतीत था उसका?"

सिन्हा ने जिस तरह पूछा, उससे कौशल आश्वस्त हो गया. वह समझ गया कि प्रसंग जांच की औपचारिकताओं से बाहर आ गया है. उसने भी सहज होकर खुले ढंग से कहानी आगे बढ़ाई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अतीत तो दोनों का ही बिगड़ा हुआ था... कहते हैं वेदूराम अपराध जगत में सक्रिय था और मनटोरबाई नाचने-गाने में... वेदूराम था तो इस गांव का पर उसका कार्यक्षेत्र यहां से दूर शहर था... वहीं मंटोरबाई अपना धंधा करती थी... कुछ ऐसा हुआ कि वेदू राम और मंटोरबाई आपस में एक-दूसरे से बंध गये... वेदू ने चाहा कि वह नाचना छोड़ दे... पर मंटोर की अपनी मजबूरियां थीं. एक बार कहते हैं वेदू ने मंटोर बाई की टांग पर तलवार से वार कर दिया गुस्से में और कहा कि जिन टांगों से तू नाचती है उन्हें काट दूंगा ताकि न रहे बांस और न बजे बांसुरी. इसलिए भी काटना चाहूंगा ताकि इन पैरों से चलकर तू मुझसे दूर न जा सके. कहते हैं उस हादसे के पश्चात वाकई मंटोर ने पेशा छोड़ दिया और वेदू के साथ हो ली. यद्यपि वह थोड़ा लंगड़ाने लगी थी. मड़िया रास गांव में आकर वेदू ने अपनी जमीन संभाल ली और मनटोरबाई ने उसकी गृहस्थी... आराम से गुजर रही थी... मंटोरबाई की तान और नाच गांव में मशहूर था... उसकी आवाज सभी का मन तोड़ देती थी... इसलिए लोग इसे नाम के अनुकूल मनटोर बाई कहते थे... पर जैसा कि होता है, दिन एक जैसे नहीं होते. मंटोरबाई अपने कलंकित अतीत को भुलाकर वेदू के प्रति समर्पित थी."

सिन्हा मन ही मन कहीं गहराई में उतर रहे थे. उन्हें अपने अतीत का कुछ धुंधला अंश नजर आने लगा था. उनकी मुद्रा से स्पष्ट था कि वे कहानी में भाव-विभोर हैं. कौशल का उत्साह बढ़ने लगा. सिन्हा के अंतर्मन में कहानी धंसती जा रही थी. उन्हें जवानी के दिन याद आ रहे थे. तब वे बस्तर की एक रिमोट साइट पर पोस्टेड थे... प्रोजेक्ट का काम शुरू हो रहा था और एक मजदूरनी फुलवा उनका खाना लेकर साइट पर आया करती थी... एकाएक स्मृतियां बस्तर के वनों की तरह हरिया उठीं... फुलवा को लेकर कमजोरी के कई निजी क्षण आये थे. कैरियर में यह अस्वाभाविक नहीं था. घर और घरवालों से दूर जंगल के कैंप में कमजोर पड़ जाना उन्हें अन्यथा नहीं लगता था. घने पेड़ की छाया में एकाकी बोझ से दबे वे फुलवा का इंतजार अनायास करते थे. सुबह-शाम खाना खाते और कभी-कभार फुलवा को भी चख लेते... फुलवा का स्वाद अभी तक नहीं भूले थे, यद्यपि वर्षों के अंतराल ने उसे फीका अवश्य कर दिया था...

कौशल ने बात जारी रखी, "फिर साब कुछ ऐसा हुआ कि वेदू के पुराने बदचलन साथी उसके गांव आने लगे... उसके साथ ठहरने लगे... उनकी हरकतें वेदू को उकसाने लगीं... मंटोरबाई का बदला हुआ स्वरूप भी उन्हें खटक रहा था. वेदू के घर आकर वे लोग पुनः मंटोरबाई से पुरानी अपेक्षाएं दोहराने लगते... फिर इस प्रोजेक्ट का सर्वे शुरू हुआ. जमीन की बेदखली का मामला उठा... वेदू के एक खूंखार साथी नत्थू ने उसे उकसाया कि वह लैंड आफीसर के पास एक रात के लिए मंटोरबाई को भेज दे ताकि जमीन की चौगुनी कीमती मिल जाए... फिर शहर में शराब का धंधा करके लाखों कमाएंगे... मंटोरबाई जैसी सैकड़ों शहरी पतुरियां अपनी कांख में होंगी—मंटोरबाई को बेच डालने का भी षड्यंत्र था. वेदू का दिमाग भी बहकने लगा. नत्थू स्वयं मंटोरबाई को पुराने रूप में निचोड़ना चाहता था... यही कशमकश शुरू हुई... मंटोरबाई अवाक थी... कि जिस आदमी ने उसे अपनाया... पेशा छुड़वाया... उसे लंगड़ा बनाया... अब वही विश्वासघात कर रहा है. तनातनी बढ़ती गई और उनमें झगड़ा हुआ... मारपीट होने लगी. वेदू और नत्थू के जुल्म उस पर बढ़ गए. जब बरदाश्त न हुआ तो एक दिन वह अपने बच्चे के साथ कुएं में कूद गयी... सारा खेल खत्म हो गया पर वेदू को पछतावा होने लगा..."

"फिर क्या हुआ?"

"ये गांववाले ही बताते हैं कि जहां अपनी चिमनी है, वहीं कुआं था जिसमें मंटोरबाई कूदी थी. वेदू को जमीन की कीमत और प्रोजेक्ट में काम मिला... उसकी तरह और भी थे... सबको समझाया गया कि उनके आंगन में अब प्लांट लगेगा जिससे पूरे देश में दूर-दूर तक खुशहाली आयेगी... पर वेदू जैसे लोगों को इससे क्या लेना-देना... वह तो समझता था कि वही कुआं उलटा होकर चिमनी के रूप में बाहर आ गया है. बस चिमनी को देखकर उसे दहशत हो जाती थी... मानो कोई विषैला सांप बांबी से फन फैलाकर फुंफकार रहा हो. वह कुछ-कुछ पगला-सा गया था. चिमनी को देखकर बड़बड़ाता था... अक्सर वहीं मंडराता था. लोगों से कहता था चिमनी तो कुएं की गहराई सी ऊंची है. इसमें मंटोरबाई रहती है. वो देखो ऊपर काम कर रही है. मुझे बुला रही है. मैं उसके पास जाऊंगा. माफी मांगूंगा... अक्सर चिमनी की वह पूजा करता. हाथ जोड़ता... नशा भी बहुत करने लगा था..."

"समझा..." सिन्हा अभी भी खोये हुए थे.

"लोग कहते हैं कि वेदू राम चिमनी से गिरकर नहीं अपितु उसी कुएं में कूदकर मरा है जिसमें कभी मंटोरबाई कूदी थी. पर सर यह तो यहां की मनगढ़ंत आंचलिक किस्साई है... इंक्वायरी के लिए अगले गवाह को बुलाऊं?" कौशल ने अपनी बात को मुकाम पर ठहराते हुए पूछा.

"क्या टाइम हुआ?" सिन्हा अभी बस्तर के जंगलों में उलझे थे. फुलवा की झलकियां उन्हें याद आ रहीं थीं. उस दिन फुलवा की आंखों में आंसू थे... वही कभी कुछ नहीं बोलती थी. एकाएक आंसू देखकर वे असमंजस में पड़ गए थे... कुछ समझे भी पर समझकर भी नासमझ बने रहे... दूसरे दिन फुलवा गायब थी... नहीं आयी... उसका कोई पता न चला. किसी ने कहा भी कि लगता है, कोई भगा ले गया या जंगली जानवर खा गया. उन्हें उस वक्त ज्यादा सोचने की फुरसत नहीं थी क्योंकि फुलवा की जगह उनकी सेवा में दूसरी मजदूरनी भेजी जाने लगी थी.

"एक बज रहा है." सहसा कौशल को कुछ याद आया, "लंच का टाइम हो गया... साब आपके लंच का अरेंजमेंट कैंटीन में है... पास ही है... चलिए..."

आसपास काम करती मजदूरनियों में किसी को खोजती सिन्हा की आंखें जैसे थक गई थीं. उन्हें स्वयं महसूस हो रहा था कि उन पर अतीत का भूत सवार हो रहा है. ऐसे प्रेत के समक्ष वे विवश हो जाते हैं. दबाव के वशीभूत थे वे और कहना चाह रहे थे, लंच यहीं बुलवा लो... कुएं के पास, आई मीन चिमनी के नीचे ही खायेंगे... पर प्रत्यक्ष में वे चिमनी की ओर देखकर सहम गए. उन्हें एकाएक महसूस हुआ कि कहीं चिमनी झुककर डस न ले. तेजी से मुड़कर चलने लगे वे ताकि एक सौ पच्चीस मीटर ऊंची चिमनी से कम से कम एक सौ तीस मीटर दूर हो जाएं.

सहसा उनका पैर जमीन पर आड़ी बिछी चिमनी की छाया पर पड़ा. वे बुरी तरह समपका गए—मानो जहरीले सांप पर पांव पड़ गया हो. यद्यपि वे चिमनी से काफी दूर थे लेकिन छाया के रूप में चिमनी लगातार अजगर जैसी लंबी होकर उनका पीछा किए जा रही थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्या और मुक्ति

डेविड मार्शल

जिम चुपचाप कमरे में घुसा. मेरी उसकी पत्नी आराम से सो रही थी. उसने एक मोटा तौलिया लिया और उसे हाथों में लपेट कर धीरे से मेरी की गरदन पर रखा. एक जोर का दबाव... और मेरी निष्प्राण थी.

वह जिस तरह छिप कर आया था, उसी तरह गली में छिपता-छिपता, सुपर सिनेमा में पहुंचा, जहां ऑपरेटर था. अपने प्रोजेक्शन-रूम में पहुंचकर, वह अपने दोस्त हैरिस की याद करने लगा. उस हैरिस से, जिसकी पत्नी जून से वह प्रेम करता था और जिसके साथ विवाह करने के लिए आजाद होने के लिए उसने मेरी को जान से मारा था. उसे पूरी आशा थी कि समझाने-बुझाने पर, उसका बचपन का दोस्त अपनी पत्नी जून को, उसकी ख़ातिर छोड़ने को तैयार हो जायेगा. उसने कई बार कहा था कि जून से वह तंग आ गया है.

मेरी की हत्या करने में उसे पांच मिनट भी नहीं लगे थे. फिल्म इस दौरान अपने आप चलती रही थी. पुलिस कभी उस पर संदेह नहीं कर पायेगी. मेरी की हत्या की योजना उसने काफी सोचविचार कर बनायी थी.

मध्यांतर होते ही उसने हैरिस को फोन किया कि वह पौने छह बजे, दूसरा खेल शुरू होने से पहले, उससे अवश्य मिले. और जब पौने छह बजे हैरिस उससे मिला तो जिम ने उसके हाथों में उसकी प्रिय सिगरेट थमाते हुए कहा, "मुझे तुमसे एक ज़रूरी बात करनी है, दोस्त... जून के बारे में!" वह काफ़ी गंभीर था.

हैरिस का मुंह, सहसा, पीला पड़ गया. उसने कांपते स्वर में कहा, "तो आखिर तुम्हें सब कुछ मालूम पड़ ही गया. खैर, यह दोनों बातें तुमसे कब तक छिपी रहती?"

"कौन-सी दोनों बातें?' चकित जिम ने पूछा.

"यही कि मैं काफी दिनों से तुम्हारी पत्नी मेरी से प्रेम करता चला आ रहा हूं और कहा...

"हत्या किसकी? किसने की? सबूत क्या है?" घबराये जिम ने पूछा.

"तुम मेरे जिगरी दोस्त हो, इसलिए तुम पर विश्वास करके सिर्फ़ तुम्हें ही बता रहा हूं कि मैंने आज सुबह गला घोंटकर जून की हत्या कर दी."

जिम हंसने लगा. बोला, "यह बात तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बतायी, दोस्त! मैं मेरी को तुम्हारे हवाले करता हूं. अभी मेरे घर जाकर उसे अपने साथ अपने घर ले जाओ." □

लकी नंबर

महबूब

शहर के चोरों में शौकत ने अपनी जगह सबसे अलग बना रखी थी. दूसरे चोर तो उसे 'उस्तादों के उस्ताद' मानते ही थे, पुलिस तक उसकी इज्जत करती थी, कारण पिछले बीस साल से चोरी का धंधा करने के बावजूद वह एक बार भी पुलिस के चंगुल में नहीं आया था.

शौकत खुद अपने को 'लकी नंबर' कहा करता था.

लेकिन, बीस साल की अटूट कामयाबी के बाद, उसकी खुशकिस्मती का दौर अचानक चुक गया.

यह शुरूआत हुई थी, जनवरी की एक रात को. अपने साजो-समान के साथ एक छोटी-सी दुकान की नगदी लूटने के लिए अपने घर से बाहर निकला. दो हफ्तों से उस दूकान में कई बार आकर उसने खुद और नौकरों से दूकान के मालिक के बारे में कुछ गोपनीय बातें जानकर, चोरी की योजना बनायी थी. और यह योजना तब सफल हो गयी, जब वह दूकान की सेफ तोड़कर उसमें से तीन हज़ार से ज्यादा रुपये निकालने में कामयाब हो गया.

दूकान के मालिक को अपने नुकसान का पता सेफ खोलते ही चल गया. पुलिस ने चोर की उंगलियों के छाप अन्य अपराधियों की छापों से मिलाये, पर छाप किसी से न मिली. शौकत की छाप से तो मिलन का सवाल ही न था, क्योंकि उसकी उंगलियों की छाप पुलिस में दर्ज नहीं थी.

मगर दोपहर तक शौकत को पुलिस ने उसके घर में गिरफ्तार कर लिया. उसके पास से चोरी की गयी रकम भी पूरी की पूरी मिल गयी.

> जीवन में बड़े से बड़ा अपराध करने के बाद भी आप दुनिया भर ही निगाह में अपराधी भले ही न हों... पर क्या यह भी संभव है कि आप अपनी निगाह में भी अपराधी न रहें...? प्रस्तुत हैं, विश्व प्रसिद्ध रचनाकारों की श्रेष्ठ लघुकथाएं...

अब सुनिये, कैसे, क्या हुआ? जिस सब-इंस्पैक्टर को यह मामला सौंपा गया था, उसे सेफ के पास एक रूमाल पड़ा मिला था, जिसे लाकर उसने पुलिस की वैज्ञानिक प्रयोगशाला को दे दिया था. रूमाल पर किसी की उंगलियों की स्पष्ट छाप नहीं थी, लेकिन 'अल्ट्रा वायलेट लैंप' के नीचे रूमाल को रखने पर, रूमाल पर अंकित दो संख्याएं दिखाई पड़ीं. वह अदृश्य स्याही से लिखी संख्याएं थीं, जो शहर की लांड्रियां अपने ग्राहकों के कपड़ों पर पहचान के लिए लगाती हैं. पुलिस के पास ऐसी सब संख्याओं को लगाने वाली लांड्रियों की सूची थी.

इस सूची से लांड्री का पता लगाकर सब-इंस्पैक्टर वहां पहुंचा और उसने इस खास संख्यावाले ग्राहक का नाम और पता मालूम किया.

इस नाम और पते के सहारे वह सीधा शौकत के घर पहुंचा. वहां उसे शौकत भी मिल गया, और वह रकम भी मिल गयी जो उसने दूकान से चुरायी थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चचाजान

क्वोक चियो हो

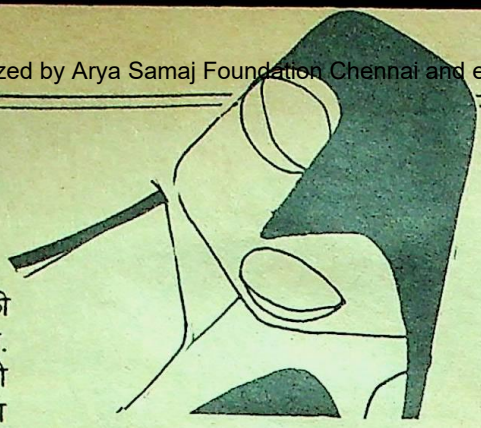

वे मेरे चाचा थें और दूसरे लोगों की भांति मैं भी उन्हें चचाजान कहता था.

नायाब इंसान थे चचाजान. मैंने कभी उन्हें दुखी या परेशान नहीं देखा. वे हमेशा मुस्कराते रहते थे. असल में उन्हें कोई चिंता थी ही नहीं. न बीवी, न बच्चे. शहर के सबसे बड़े जनरल स्टोर्स के मालिक थे. रोज गल्ले में ढेर सारे नोट और सिक्के जमा हो जाते थे.

उनकी एक निराली आदत थी. खजांची के पास सौ सिंगापुरी डॉलर का नोट देखते ही वह फौरन उसकी ओर लपकते और उसे सौ डॉलरों के अपने संग्रह में रख लेते. सौ डॉलर के नोट जमा करना उनका शौक बन गया था.

कभी-कभी कोई नक़ली भी आ जाता था. मगर उसे उनके संग्रह में स्थान नहीं मिलता था. वे उसे अपने दोस्तों की महफिल में सिगार जलाने के काम में लाते. उनकी इस अजीबोगरीब ऐयाशी का बड़ा रौब पड़ता था उनके दोस्तों पर.

सौ डॉलर के नोट जमा करने के अलावा चचाजान को छोटे सिक्कों को जमा करने का भी शौक था. मैंने उनके पास दुनिया के प्रायः सभी देशों के छोटे सिक्के देखे. धीरे-धीरे, इन सिक्कों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि उन्हें रखने के लिए कई बोरे खरीदे चचाजान ने.

एक दिन, बैठे-बैठे उनके दिमाग़ में एक 'आइडिया' आया. उन्होंने गोंद से सिक्कों को जोड़-जोड़कर, अजीब-अजीब खिलौने बनाने शुरू किये. एक बार सूझा तो दुनिया के सब बड़े पुलों के नमूनों का निर्माण इन सिक्कों से कर डाला. फिर सिक्कों से बने इन खिलौनों के प्रदर्शन के लिए कई शोकेस बने. दूर-दूर से लोग उन्हें देखने आने लगे.

कुछ दिन बाद, एक विदेशी व्यापारी ने चचाजान के स्टोर्स के मुकाबले एक नया बड़ा स्टोर्स शुरू किया, जिसने एक साल के अंदर चचाजान के स्टोर्स का भट्ठा बैठा दिया, और उन्हें उसे बंद करना पड़ा. चचाजान की कमाई बंद हो गयी. उनके पास रह गये सिर्फ सिक्कों से बने नायाब खिलौने. मगर उन्हें कोई किसी भी कीमत पर खरीदने को तैयार न था. खरीदारों की खोज के लिए रही-सही रकम खर्च कर दुनिया का दौरा किया, लेकिन बेकार.

सब ओर से निराश होकर चचाजान अपने प्रतिद्वंद्वी के स्टोर्स में गये, यह जानने के लिए कि उसमें ऐसी क्या खूबियां हैं, जो वह इतना चल रहा है. सौ डॉलर का एक नोट देकर उन्होंने कुछ सामान भी खरीदा. लेकिन उनके दुर्भाग्य से वह नोट उसी किस्म का निकला, जिससे वे कभी दोस्तों के सामने सिगार जलाया करते थे. प्रतिद्वंद्वी स्टोर्स के मालिक ने जरा भी देर न की और उन्हें पुलिस के सिपुर्द करके ही दम लिया. इस घटना से उन्हें इतना आघात पहुंचा कि वे हवालात में ही चल बसे. आज मैं उनके नायाब खिलौनों का मालिक हूं. चाहिए, आपको कुछ खिलौने? □

ब्लैकमेल

डोनाल्ड वाटसन

कितना शानदार लग रहा था, वह बजरा नदी के किनारे खड़ा हुआ! ...इतना बड़ा बजरा मैंने कभी नहीं देखा था. मैं चुपचाप किनारे से आगे बढ़कर बजरे के डेक पर आ गया. वहां एक सीढ़ी के सहारे नीचे आया. सामने एक दरवाजा था, जिसे खोलकर मैं आधुनिक फर्नीचर तथा सुख-साधनों से युक्त छोटी-सी केबिन में दाखिल हुआ. पश्चिम धुनों की ताल पर एक लड़की आंखें बंद किये झूम रही थी. उसके हाथ में शराब का एक प्याला था, जो आधा खत्म हो चुका था.

मैंने उससे पूछा, "कौन हो तुम?"

"देखिये, मुझे गलत न समझिये. मैं पास ही अपनी नाव में तैरकर ही थी और थककर यहां थोड़ी देर आराम करने चली आयी. बजरा आपका है? बड़ा ही खूबसूरत और आरामदेह बजरा है? आपकी पसंद की दाद देती हूं."

फर्श पर एक ब्रीफकेस पड़ा था.मैंने अपने बैग में रखे चाबियों के एक बड़े गुच्छे की चाबियों से ब्रीफकेस को खोलना चाहा. एक चाबी से, ब्रीफकेस खुल गया. एक कीमती नैकलेस दिखाई दिया.

लड़की मुस्करायी हुई मेरे पास आकर खड़ी हो गयी और कहने लगी—"कितना प्यारा नैकलेस है! मगर आप यक़ीन मानें, मैं इसे लेने नहीं आयी थी. मुझे उसके बारे में कुछ पता भी नहीं था... मगर, नैकलेस से बेहतर चीजें भी तो हैं, दुनिया में." कहकर, उसने मेरे गले में हाथ डाल दिये, और अपना ब्लाउज खोलकर, मुझे अपनी ओर खींचने लगी.

...तभी फ्लैशलाइट मेरी आंखों में पड़ी. बाहर एक फोटोग्राफर खड़ा था. मैंने लड़की से कहा, "तो, यह चाल थी तुम्हारी!"

"उसकी चाल-वाल कोई नहीं है, मिस्टर! आप इसे ब्लैकमेल समझ रहे होंगे मगर आप जैसे लोगों के संदर्भ में तो इसे सामाजिक सेवा माना जाना चाहिए." फोटोग्राफर बोला. मैं चुपचाप उसे देखता रहा. वह कहता रहा, "आप जिंदगी में इतना आगे आये. कैसे? नेताओं और मिनिस्टरों को ब्लैकमेल करके! इस फोटो से मैं सारी लूटी रकम एक झटके में ले लूंगा."

"ब्लैकमेल एक अपराध है, मिस्टर! और मेरा पेशा ही है, अपराधियों को पकड़ना यक़ीन न हो, तो यह देखिये," कहकर मैंने उसे अपना बैज दिखाया. उसे देखकर, फोटोग्राफर का चेहरा पीला पड़ गया. उसने लड़की से कहा, "सब गड़बड़ हो गया. यह पुलिस इंस्पैक्टर है."

मैंने कहा, "हमें काफी दिनों से इस बजरे के मालिक 'जो' की तलाश थी. अपने कई ग़लत किस्म के धंधों के अलावा वह नक़ली गहने बनाने और बेचने का धंधा भी करता है. मैं इसका सबूत लेने मुझे मिल गया."

केबिन की पूरी तलाशी लेकर, जब मैं बाहर आ रहा था तो सोच रहा था कि जब वह निगेटिव डेवलप होगा तो उस फोटो को देखकर, मेरी बीबी क्या कहेगी? मेरे बड़े अफसर क्या कहेंगे? वैसे, लड़की बुरी नहीं थी और वह कमबख्त फोटोग्राफर जल्दी न करता, तो उसका एक मीठा चुंबन तो मिल ही जाता!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलाबों को समर्पित जीवन

पीटर लैंग

घर के बाहर बगीचे में गुलाबों के रंगबिरंगे फूल खिले थे. बस, उन्हें देखते ही मार्टिना ने फैसला कर लिया था कि उन्हें यही घर खरीदना है. वर्षों से उसकी दिली ख्वाहिश थी कि वह किसी ऐसे बंगले में रहे, जिसके साथ बड़ा बगीचा जुड़ा हो ओर उस बगीचे में गुलाब के फूल खिले हों.

उसके पति डेविड ने आगे बढ़कर बंगले का दरवाजा खोला और ड्राइंगरूम की घंटी बजायी. आधा मिनट बाद, एक अधेड़ महिला, जिसकी आंखें रोने से सूजी हुई थीं, उन दोनों के सामने आकर खड़ी हो गयी, "आप शायद बंगला देखने आये हैं. शौक से, आराम से देखिये." और, यह कहकर वह उनके साथ हो ली.

बंगले के दूसरे कमरे भी ड्राइंगरूम की तरह बड़े और साफ-सुथरे थे. दीवारों पर पेंट ताजा लगा था. फर्नीचर भी नया था, और करीने से लगा था. कमरे हवादार थे और उनमें रोशनी भी खूब आती थी. मगर मार्टिना को सबसे ज्यादा खुशी यह देखकर थी कि उसकी भांति बंगले की मालकिन को भी गुलाबों से बड़ा प्रेम था. बंगले के बगीचे में गुलाबों की ही प्रधानता थी. गहरे लाल रंग के गुलाब, जो उसे सबसे ज्यादा भाते थे. यूं सारा बगला बड़ा खुशनुमा था लेकिन उसका सबसे ज्यादा खुशनुमा हिस्सा था, उसका बगीचा. पीछे की तरफ, सामने की सड़क पर आने-जाने वाले लोगो की निगाहों से परे एक सायेदार जगह थी जहां बैठ कर दोनों बगीचे के प्राकृतिक सौंदर्य का उपभोग कर सकते थे.

खटकने वाली सिर्फ एक ही चीज थी—एक पेड़ के नीचे जमा खाद का ढेर.

पत्नी ने कहा, "ऐसी चीजों को छिपाकर रखने के लिए एक स्टोररूम बनाना पड़ेगा."

अचानक मार्टिना ने मकान-मालकिन से कहा, "यह बंगला हमें पसंद है. हमें आशा है कि हय यहां उतने ही सुखी रहेंगे, जितने आप..." वह चुप हो गयी. उसे मालूम न था कि मकान-मालकिन विवाहित हैं या नहीं और बंगले में उनके साथ कौन रहता आया है?

"शुक्रिया," मकान-मालकिन ने रुंधे कंठ से कहा, "मैं और मेरे पति यहां बडे सुख से रहे."

"गुलाबों पर आपने काफ़ी मेहनत की है," मार्टिना ने कहा.

"इसका सारा श्रेय मेरे पति को जाता है. उनका सारा जीवन गुलाबों के लिए समर्पित था. इस समय भी वे..." कहकर वे बीच में ही चुप हो गयीं. भावावेश के कारण, आगे उनसे बोला नहीं गया. उनके नेत्र सजल हो आये थे, और वे हिचकियां लेने लगी थीं.

बंगले से बाहर आते समय, दोनों की निगाह एक बार फिर खाद के ढेर पर पड़ी. खाद का वह ढेर, जिसमें मिले मकान-मालकिन के पति के अवशेष जो इस समय भी खाद के रूप में गुलाबों को फलने-फूलने में मदद दे रहे थे. □

डर

थॉमस मस्तर

सारे घर में शोर छाया हुआ था. बाहर से आने वाला शोर, और घर में चल रहा शोर. पहली रात, जब उस लड़की ने देखा कि उसके दरवाजे का ताला नहीं लगता तो उसने फर्नीचर के सहारे उसे बंद कर दिया था. सीढ़ियों पर काफ़ी लोग आ-जा रहे थे.

लड़की को याद आया, ऊपर रहने वाली औरत देखने में कितनी डरावनी है. घर के जिस भाग में वह रहती थी, उस भाग में चीत्कार, दबा हुआ संगीत और लोगों के शरीरों के घर्षण की मिली-जुली अजीब-सी खौफनाक आवाज़ सुनाई दे रही थी. औरत का शौहर हर दूसरे शनिवार को आता था, और उसके पास आने वाले दूसरे पुरुषों जैसा ही लगता था.

लेकिन आदमियों की इस भीड़ में एक आदमी अलग दिखाई देता था. लड़ाकू-सा दिखाई देनेवाला और हमेशा सिगार पीने वाला वह आदमी आधी रात को आकर औरत का दरवाजा खटखटाया करता था. जब वह लड़की डर के मारे अपना दरवाजा बंद कर लेती थी.

एक रात किसी ने ऊपर रहनेवाली औरत को जान से मार डाला, ऐसा उस लड़की ने सुना. यह भी सुना कि वह बहुत चिल्लायी थी, "बचाओ, बचाओ," मगर कोई उसे बचाने के लिए नहीं आया था. मुहल्ले में इस दुर्घटना की कोई चर्चा नहीं हुई. मगर लड़की के मन में डर बैठने लगा. एक ख़ास किस्म का जमा हुआ डर. परीक्षा से पहली रात को उसका डर और चिंता इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि उसने औरत का दरवाजा खटखटाया था. दरवाजे पर ढीला ताला लगा था. दरवाजा आसानी से खुल गया. अंदर सब कुछ शांत था, सिर्फ चिड़ियां चहचहा रही थीं. उनके पिंजड़े में काफी दाना-पानी था. एक महीने के लायक.

तीन दिन बाद, उसके पास 500 मील से एक चिट्ठी आयी. छोटे से पत्र के साथ कुछ नोट थे और प्रार्थना की गयी थी कि चिड़ियों के लिए दाना खरीदकर उन्हें खिलाती रहें और पत्र तथा लिफाफे को जला डालें. उसने पत्र से अनुमान लगाया कि औरत शायद अभी तक जीवित थी. मगर, वह कहां थी? क्या उस डरावने आदमी के पास, जो आधी रात को उसका दरवाजा खटखटाता था, और सिगार का धुआं उड़ाया करता था.

फिर नींद की गोलियों के नशे में उसे यह एहसास हुआ कि सिर्फ़ वही उस औरत के रहस्य को जानती है. इस एहसाह ने उसके डर को और ज्यादा बढ़ा दिया.

ऊपरी भाग से चिड़ियों की चहचहाट सुनायी दे रही थी. जिस दिन, उसकी परीक्षाएं समाप्त हुईं, उसने डर के मारे नींद की इतनी गोलियों खा लीं कि दो दिन तक उसकी आंखें नहीं खुलीं.जब वे खुलीं तो उसने अंधेरे में पाया कि सारे कमरे में सिगार का धुआं छाया है, और कमरे में कोई चहलकदमी कर रहा है... एक खौफनाक चीख के साथ वह फिर बेहोश हो गयी... हमेशा के लिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध की पहली चिंगारी

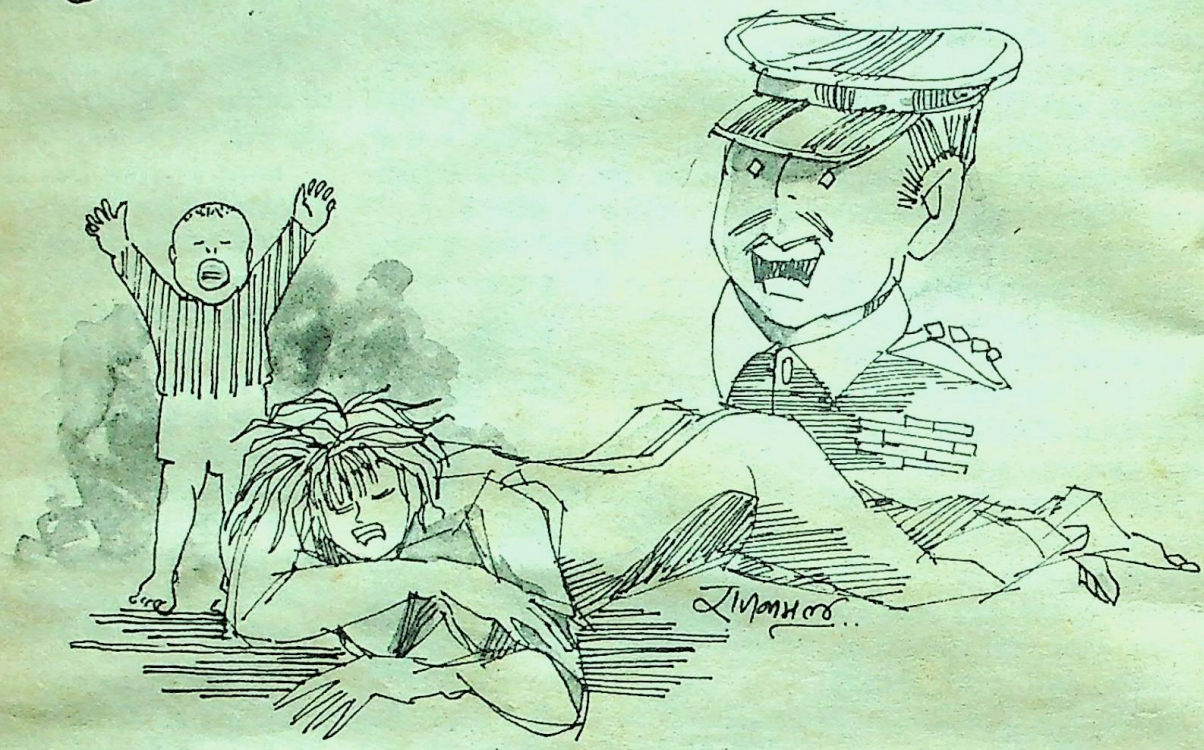

बात सन् 1917 की है. अमरीका तब तक प्रथम विश्व-युद्ध में नहीं कूदा था. कोरिया-वासी युल-हान रोज अखबार पढ़ता और रोज यह जानकर मन ही मन खुश होता कि अमरीका ने अभी तक अपने को महायुद्ध से अलग रखा है. वह तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति वूड्रू विल्सन को एक 'शांतिप्रिय संत' मानता था, ऐसे संत जिनके बारे में उसे पूरा यकीन था कि वे अमरीका को कभी भी युद्ध की आग में नहीं झोंकेंगे.

लेकिन उसके पिता इल-हान इस बारे में पूर्णतया आश्वस्त थे कि विल्सन इंग्लैंड के दवाव में आकर तथा जर्मनी की 'विल्सन डरपोक हैं' की व्यंग्योक्तियों से तंग आकर, जर्मनों के खिलाफ लड़ने के लिए मजबूर हो जायेंगे. इतना ही नहीं, उनका यह भी विश्वास था कि अमरीका के लड़ाई में शामिल हो जाने के बावजूद, विजय जर्मनी की ही होगी, कारण 'जर्मनी अजेय है!'

इस बात को लेकर अक्सर पिता-पुत्र में नरम किस्म का वाक्-युद्ध आरंभ हो जाता था. युल हान अपने पिता से कहता, "मुझे आपकी दलीलों पर आश्चर्य होता है. आप देखकर भी यह अनदेखा कर रहे हैं कि जर्मनी का युद्ध सरासर अन्यायपूर्ण और ईसाई-धर्म के सिद्धांतों के विपरीत है. ऊपर, स्वर्ग में बैठा भगवान कभी कैसर-रूपी शैतान की जर्मन सेना को युद्ध में विजयी नहीं होने देगा. रहा विल्सन का सवाल तो उनके लड़ने का फैसला करने की नौबत भी नहीं आयेगी."

पिता पर अपने पुत्र की इस दलील का कोई प्रभाव नहीं होता था. वह पूछता, "भगवान क्या सिर्फ विल्सन का ही है, कैसर का नहीं है? और यह बताओ, क्या इंग्लैंड और अमरीका ने अन्यायपूर्ण युद्ध नहीं लड़े हैं?"

एक दिन यह वाकयुद्ध शुरू हुआ तो उसने बंद होने का नाम ही न लिया. भला हो, घर की नौकरानी का कि उसने आते ही इस युद्ध को भंग कर दिया. उसने युल-हान को बताया कि उसकी पत्नी इंदक ने एक पुत्री को जन्म दिया है.

यह शुभ समाचार सुनकर युल-हान युद्ध और विल्सन दोनों को भूल गया था. यह उसकी दूसरी संतान थी और वह इस बार पुत्री की ही प्रतीक्षा कर रहा था. वह सोच रहा था कि उसका बेटा लि-यांग अपनी बहन को देखकर कितना खुश होगा.

लेकिन जब वह पत्नी के पास अपनी पुत्री को देखने गया तो उसे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि उसकी पत्नी पुत्री के जन्म से प्रसन्न नहीं है. वह खिन्न स्वर में कहने लगी, "लड़ाई के बादल छाये हैं और लड़ाई के छिड़ते ही, महंगाई भी बढ़ जायेगी. ऐसे में हम दूसरे बच्चे का ढंग से पालन कैसे कर पायेंगे?" यह थी उसकी चिंता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीष्म ऋतु बीतने के बाद शीत ऋतु आयी. लड़ाई अभी तक चल रही थी. एक दिन, जब युल-हान स्कूल से लौटा तो उसने अपनी मां को दरवाजे पर खड़े देखा. उसे देखते ही मां ने कहा, "अपने बाप को जाकर देखो. मालूम नहीं, उन्हें क्या हो गया है? वे रोये ही जा रहे हैं. सुबह से उनके आंसू नहीं थमे हैं. जाकर देखो, क्या बात है?"

बाप के कमरे में जाकर युल-हान ने देखा कि वे छाती से अखबार लगाये, कमरे में चक्कर लगा रहे हैं. बीच-बीच में उनके रोने की आवाज और सुबकियां सुनायी दे जाती थीं. युल-हान ने उनके पास जाकर पूछा, "क्या बात है, पिताजी! आप रो क्यों रहे हैं?"

"यह देखो, यह देखो, विल्सन ने अपने चौदह-सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की है. इसमें तीसरे सूत्र को पढ़ो— 'हर देश के निवासियों को अपना मनपसंद शासक और शासन-पद्धति चुनने का अधिकार है अमरीका हर देश को उसका यह अधिकार दिलाने के लिए प्राणपण से प्रयास करेगा.' सुना, विल्सन क्या कह रहे हैं? वे हमारे ही देश की बात कर रहे हैं."

युल-हान यह सुनकर, बच्चों की भांति फूट-फूटकर रोने लगा. उसने अपने से कहा, "यह एक शुभ समाचार है, पिताजी. किंतु आप इतने अधिक उत्तेजित न हों. आराम करें. अधिक उत्तेजना आपके स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह साबित हो सकती है."

इस समाचार ने कोरिया में एक मूक क्रांति को जन्म दिया. दो-तीन दिन बाद, कुछ कोरियाई विद्यार्थियों ने अपने देश की पराधीनता के प्रतीक जापान के गवर्नर-जनरल को गोली मारने की कोशिश की. गवर्नर-जनरल तो बच गये मगर उनका एक अंग-रक्षक मारा गया. भयभीत गवर्नर-जनरल ने जापान से कई सैनिक दस्ते बुला लिये. देश की सुरक्षा भंग न हो, इसलिए पुलिस ने सब अपराधियों व क्रांतिकारियों की धर-पकड़ शुरू कर दी. मगर, कोरियावासी इन कार्रवाइयों से तनिक भी चिंतित न हुए. उन्होंने अपनी विदेशी सरकार के विरुद्ध वैसी ही जंग छेड़ दी, जैसी मित्र-राष्ट्रों ने दूसरे देशों की स्वतंत्रता के शत्रु जर्मनी के खिलाफ छेड़ रखी थी. जो कोरियावासी जर्मनों के अत्याचारों की कहानियां सुन-पढ़कर उन पर विश्वास नहीं करते थे, वे भी जापानी सेना के अत्याचारों को अपनी आंखों से देखकर उन पर विश्वास करने लगे थे. उनके लिए युद्ध जर्मनी में नहीं, उनकी गोलियों में ही हो रहा था.

एक दिन, जब दुपहर शाम में ढलने लगी तो इंदक को अचानक याद आया कि उसके पति ने आज शाम के खाने में अपनी मनपसंद मछली खाने की इच्छा व्यक्त की थी. वह फौरन मछली खरीदने बाहर निकली. अपने बेटे लि-यांग को उसने पीठ से बांध रखा था. जैसे ही वह शराब की दूकान के पास आयी, उसने देखा, दूकान का मालिक उसकी तरफ इशारा करते हुए, उसकी दूकान के बाहर खड़े जापानी सैनिकों से कुछ कह रहा है. वह कांपकर रह गयी. उसे याद आया कि

क्रांतिकारियों की सहायता करने वाली वह औरत कैसी रही होगी जिसने हर हाल में राज को राज रखा.

उसने इस दूकान में काम करने वाले इप्पन को, जो क्रांतिकारी बन गया था, पुलिस की गिरफ्त में न आने में मदद की थी.

इंदक का डर तब और बढ़ गया, जब उसने देखा कि शराब के नशे में धुत्त वे सब जापानी सैनिक, उसे देखकर, अश्लील इशारे करते हुए हंस रहे थे. उससे आगे नहीं चला गया और वह जहां थी, वहीं खड़ी रह गयी.

तभी, जापानी सैनिकों ने आगे बढ़कर उसे घेर लिया. बाजार के सब कोरियाई दूकानदारों ने यह दृश्य देखकर, जल्दी-जल्दी अपनी दूकानें बंद कर दीं. और लोगों ने अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियां बंद कर लिये. बेचारी इंदक की सहायता के लिए आगे आने की हिम्मत किसी ने नहीं दिखायी.

एक जापानी सैनिक ने इंदक के दोनों हाथ उसकी पीठ में बांध दिये. और फिर अपनी राइफल के कुंदे से इंदक की पीठ पर बंधे उसके बेटे लि-यांग पर जोरदार प्रहार करते हुए पूछने लगा, "तो तू है, जो क्रांतिकारियों की सहायता करती है और उन्हें पुलिस के चंगुल से बचाती है!"

लि-यांग जोर से चीखने-चिल्लाने लगा.

इंदक ने शराब की दूकान के मालिक की ओर देखते हुए कहा, "मुझ पर रहम करो. मैं एक मां हूं और पत्नी भी."

दूकान के मालिक ने जमीन पर थूकते हुए कहा, "रहम? मैं क्यों रहम करूं तेरे साथ?"

सैनिक उसे पकड़कर पुलिस स्टेशन ले गये. उस पुलिस स्टेशन में, जहां बड़े अफसर से लेकर अदना सिपाही तक सब जापानी थे. उन्होंने लि-यांग को इंदक की पीठ से खोल दिया था और वह रोता-रोता अपनी मां के पीछे भाग रहा था.

बड़े अफसर ने इंदक को देखकर, अपने सिपाहियों से कहा, "इसे नंगा करके इसकी तलाशी लो. हो सकता है कि इसने अपने कपड़ों में कोई हथियार छिपा रखा हो."

सिपाहियों ने मिनटों में उसे पूरा नंगा कर दिया.

बड़े अफसर ने जब अपने सामने नंगी खड़ी हुई इंदक से क्रांतिकारियों के बारे में पूछा तो उसने कहा, "मैं क्रांतिकारियों के बारे में कुछ भी नहीं जानती." इस पर, अफसर का इशारा पाकर सिपाही उस पर लात-घूंसों की वर्षा करने लगे. जब वह बेहोश हो गयी, तब भी सिपाहियों ने उसे पीटना बंद नहीं किया.

...जैसे ही यह खबर गांव में फैली, डरे हुए गांववालों की समझ में नहीं आया कि क्या करना चाहिये. फिर, एक-एक, दो-दो लोग आपस में मिले और फिर इन लोगों ने एक भीड़ का रूप ले लिया और यह भीड़ पुलिस-स्टेशन की ओर बढ़ी.

भीड़ ने देखा कि इंदक अभी तक पुलिस-स्टेशन के फर्श पर नग्न और बेहोश पड़ी थी. उसने मांग की कि उसे फौरन रिहा किया जाये. अफसर ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि वह भीड़ को बाहर खदेड़ दें.

लेकिन भीड़ बढ़ती गयी, बढ़ती गयी. उसके नारों का शोर भी निरंतर बढ़ता गया. अंत में पुलिस अफसर को इंदक को मुक्त करना पड़ा.

और संयोग ऐसा हुआ कि अगले दिन अमरीका ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और कोरिया ने जापान के खिलाफ.

युद्धाग्नि, जिसकी पहली चिंगारी इंदक के रूप में प्रकट हो चुकी थी, सारे कोरिया में भड़क उठी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े लोग

यॉक शिडिल का उपाहार-गृह साढ़े नौ बजे के करीब खुल जाता था. उसके नियमित ग्राहक दो वर्गों में विभाजित थे. पहले वर्ग में वे ग्राहक आते थे, जो साढ़े नौ से लेकर दस बजे तक आते थे और जल्दी-जल्दी कोका-कोला के साथ नाश्ता करके, सिगार सुलगाते हुए चले जाते थे, क्योंकि उन्हें दस बजे अपने कार्यालय या कारखाने में पहुंचना होता था. शिडिल अपने रेस्तरां में जुआ खेलने या सिगार पीने की इजाजत नहीं देता था, हालांकि इस वर्ग के कुछ ग्राहक दोनों काम छिपे-छिपे या खुले-आम रेस्तरां में कर लेते थे.

दूसरे वर्ग में आते थे वे लोग, जो दस बजे के करीब आते थे और ग्यारह से बारह तक बैठते थे, क्योंकि पेशेवर लोग होने की वजह से इन्हें निश्चित समय पर कहीं नहीं पहुंचना पड़ता था. सबसे पहले आते थे शहर के मेयर लॉ फिलकिगर, जिनके साथ उनके दो चार चमचे अवश्य आते थे. उनके पीछे-पीछे या कुछ समय बाद, आते थे—दो डॉक्टर, तीन वकील, दो रिपोर्टर, एक प्राइवेट जासूस, एक बीमा एजेंट, स्त्रियों की तैयार पोशाकें बेचने वाला एक दुकानदार. ये अनिवार्य रूप से हाजिर हो जाते थे.

इन लोगों के आते ही, यॉक शिडिल अपना अखबार बंद कर देता था, क्योंकि इन लोगों से जो खबरें उसे सुनने को मिलती थीं, वे किसी अखबार में नहीं छप सकती थीं. ये सब लोग कई वर्षों से सुबह दस बजे शिडिल के रेस्तरां में आकर मिलते थे, और एक दूसरे के घनिष्ठ मित्र हो गये थे. उनमें आपस में एक अलिखित समझौता था कि यहां वे जिन खास खबरों का आदान-प्रदान करेंगे, वे रेस्तरां से बाहर नहीं जायेंगी, और अगर जायें, तो सुनने वाले को यह कभी भी नहीं बताया जायेगा कि इन खबरों का स्रोत क्या है?

एक दिलचस्प बात यह भी थी कि ये सब लोग एक दूसरे की बातों और खबरों का पूरा विश्वास करते थे. वे विश्वास नहीं करते थे तो उन पेशेवर राजनीतिज्ञों की बातों का, जो कभी-कभी इस रेस्तरां में आते थे, और जो अफवाहें खबर के रूप में फैला कर चले जाते थे. मगर कोई उन पर विश्वास नहीं करता था.

मजिस्ट्रेट की हैसियत से वे ज्यादातर दो मामूली किस्म के अपराधियों के जुर्म सुनते थे—शराबियों के या दंगा-फसाद करने वालों के. दोनों अपराधियों के लिए उनकी ओर से एक ही सजा निश्चित थी—दस डॉलर जुर्माना या दस दिन की कैद. ज्यादातर अपराधी दस डॉलर देकर घर चले जाते थे. जिनके पास दस डॉलर नहीं होते थे, और जो पहले गुनहगार होते थे, उन्हें वे जेल नहीं भेजते थे, चेतावनी देकर छोड़ देते थे. आभ्यासिक अपराधियों को वे तीस दिन की सजा सुनाते थे, और गरीब आभ्यासिक अपराधी इसके लिये उनके बड़े ऐहशानमंद होते थे, क्योंकि उनकी मेहरबानी से उन्हें सर्दी के दिनों में जेल में रहने-खाने का मुफ्त इंतजाम हो जाता था. खर्च नागरिक करते थे, शुक्रिया का मजा मेयर लूटते थे.

उस दिन जब मेयर साहब शिडिल के रेस्तरां में तशरीफ लाये, तो उनके साथियों को उनकी मुखमुद्रा से ही पता चल गया कि वे कोई ताजा और दिलचस्प खबर सुनाने को बेताब हैं. उन्होंने उस खबर की भूमिका बनाते हुए कहा, "दोस्तो! आप तो जानते ही हैं कि दीन-दुखियारों के प्रति मैं कितना हमदर्द हूं!"

"बेशक!" एक रिपोर्टर ने व्यंग्यात्मक लहजे में, जिसे शायद मेयर साहब समझ नहीं पाये, कहा, "आप इस शहर के दीन-दुखियारों के मसीहा हैं."

उसकी बात को अनसुनी करते हुए मेयर साहब ने आगे कहा—"आज मेरी अदालत में मेरे सामने फिर जैनी को पेश किया गया. उसके खिलाफ शिकायत थी कि वह सारी रात चिल्लाती और गालियां देती रही थी. अदालत में भी उसका व्यवहार बड़ा अशोभनीय था."

"मगर उसके चिल्लाने की कोइ वजह तो होगी, मेयर साहब!" किसी ने उनसे पूछा.

"जैनी के चिल्लाने और गुस्सा करने की एक ही वजह होती है, जो आप सब जानते ही हैं. वह कैसी है, आप सब जानते ही हैं. मगर, इस बार तो उसने कमाल ही कर दिया. अपना धंधा शुरू किया, स्टेशन के उस हिस्से में, जहां रेलवे वैगनों में माल चढ़ाया-उतारा जाता है. वहां के हर मजदूर को उसने अपना ग्राहक बना लिया है. कहते हुए शर्म आती है. जब पुलिस ने उसे गिरफ्तार किया, उस वक्त वह गोदाम की एक कोठरी में एक मजदूर के साथ थी, और कोठरी के बाहर आठ-दस मजदूर लाइन लगाये खड़े थे. अपनी बारी की इंतजार में."

तभी, वहां मौजूद दो पेशेवर राजनीतिज्ञ आपस में बेसबाल के मैचों के बारे में बातें करने लगे. उन्होंने इस जोरशोर से मैचों के बारे में बातें शुरू कीं कि जैनी के बारे में न मेयर साहब आगे कुछ बोल पाये, न किसी को पूछने का मौका मिला 'आगे क्या हुआ?' वैसे, जो कुछ आगे हुआ होगा, वे समझ ही गये थे.

बेसबॉल के मैचों की चर्चा में ही साढ़े ग्यारह बज गये. मेयर साहब उठ कर अपनी दुकान की ओर जाने लगे. दोनों पेशेवर राजनीतिज्ञ भी उनके साथ हो लिये. सड़क पर, दोनों में से एक ने पूछा, "क्या आप जानते हैं कि मैंने जैनी की चर्चा को आगे क्यों नहीं बढ़ने दिया?"

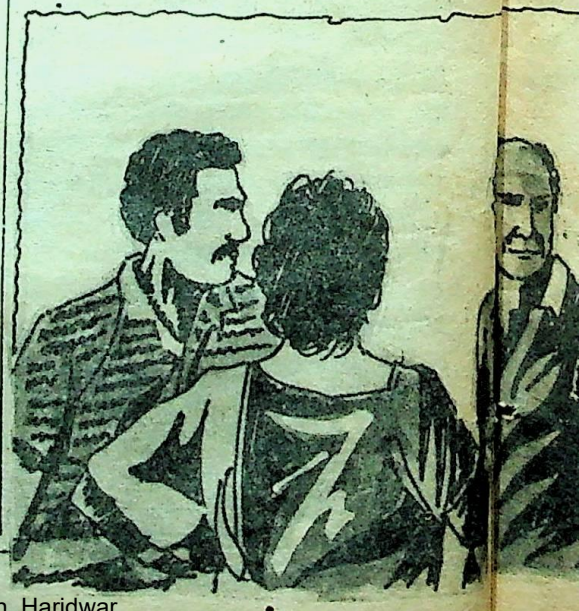

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं. मगर जानने की उत्कंठा अवश्य है."

क्या आपको जैनी के साथ रेस्तरां मालिक शिडिल के पूर्व-संबंधों के बारे में पता नहीं है? उसके रेस्तरां में बैठकर, उसके ही सामने, जैनी का जिक्र करके आप उसे ख्वामख्वाह अपना दुश्मन बना रहे थे. इसलिए, मुझे आपकी खातिर बीच में कूद कर, आपको बचाना पड़ा."

"शुक्रिया! मगर शिडिल और जैनी के कभी कोई संबंध थे, यह मुझे बिलकुल मालूम नहीं था, हालांकि मैं यहां का मेयर हूं."

"आप मेयर भले ही हों, मेयर फिल्किगर साहब, मगर इस शहर की ढेर सारी बातों से आप पूरी तरह अनजान हैं. जहां तक शिडिल और जैनी के पूर्व-संबंधों की बात है, फिलहाल मैं आपको सिर्फ इतना ही बता सकता हूं कि जैनी को सड़क-छाप रंडी बनाने में शिडिल का बड़ा हाथ है, बल्कि वह उसके लिये जिम्मेवार है."

मेयर साहब पूरी कहानी सुनने के लिए बेताब थे. वे दोनों पेशेवर राजनीतिज्ञों को अपनी दुकान में ले गये, और वहां एकांत में उनसे बातें करने लगे. उन्होंने कहा, "मैं यॉक शिडिल के परिवार के सब सदस्यों को बखूबी जानता हूं. वह एक प्रतिष्ठित परिवार है, और उसके सब सदस्य अनुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं."

"हूं. अब यह बताइये कि आप जैनी के बारे में क्या जानते हैं?"

"मुझे अफसोस है कि मैं उसके परिवार के बारे में कुछ भी नहीं जानता. उसका पूरा नाम जैनी फॉस्ट है, यह बात भी मुझे आज ही मालूम पड़ी.

"यह परिवार एक निर्धन परिवार है. कई वर्षों से दक्षिणी नहर के किनारे एक टूटे फूटे घर में रहता है. छोटा-सा परिवार था—जैनी, उसकी बहन, उसकी मां और उसका बाप. वर्षों पूर्व जब जैनी के पिता की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गयी तो उसकी मां अपनी दोनों बेटियों का पेट पालने के लिये लोगों के कपड़े धोने लगी. इस काम में जैनी और उसकी बहिन लिज भी अपनी मां का हाथ बंटाती थीं. जब दोनों की आयु पंद्रह-सोलह हुई, तो दोनों रेशम की मिल में काम करने लगीं. न मालूम कब और कैसे जैनी का परिचय शिडिल के साथ हो गया. एक दिन शिडिल उसे अपने साथ लेकर अपने माता-पिता से मिलाने के लिये लाया. माता-पिता ने यॉक से उसके सामने कुछ नहीं कहा, लेकिन जब उसे उसके घर छोड़कर वापस अपने घर आया, तो मां-बाप ने उसे आड़े हाथों लिया. उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यॉक से कहा, "हम लोग अमीर और इज्जतदार लोग हैं. जिस लड़की से तुम प्रेम कर रहे हो, वह एक ऐसे गरीब घर की है, जिसकी समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं है. हम नहीं चाहते कि तुम ऐसी लड़की से कोई संबंध रखो. न जाने कितने आवारा लड़कों से उसकी दोस्ती होगी."

"उस समय यॉक की आयु क्या थी?" मेयर ने पूछा.

"18-19 का रहा होगा. जैनी 14-15 की थी शायद. यॉक ने माता-पिता की चेतावनियों के बावजूद, जैनी से मिलना-जुलना जारी रखा. नतीजा वही हुआ, जिसकी पहले से उम्मीद थी. एक दिन जैनी की मां यॉक के घर पहुंची, और यॉक की मां के रोकने पर भी सीधी घर में घुस गयी, और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी, "मेरी जैनी के पेट में तुम्हारे लड़के यॉक का बच्चा पल रहा है. या तो, आप उसकी शादी मेरी जैनी से करो, नहीं तो मैं अभी जाती हूं, पुलिस में उसकी शिकायत करने." यॉक का बाप उठा, और उसने धक्का देकर जैनी की मां को घर से वापस निकाल दिया. उसके बाद, उसने यॉक को एक बंद कमरे में जी भर कर पीटा. यदि यॉक की मां उसे नहीं बचाती, तो वह यॉक को अधमरा करके घर से निकाल देता."

"क्या जैनी सचमुच गर्भवती थी? और बच्चा यॉक का ही था?" मेयर ने पूछा.

"हां, वह सचमुच गर्भवती थी, लेकिन जब यॉक और उसके पिता ने उसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया, तो उसने गर्भ गिरवा दिया. इसके बाद, उसकी मां ने उसे घर से निकाल दिया. घर से निकालने पर, वेश्या बनना उसकी मजबूरी हो गयी."

"जिसने भी गर्भ गिराया, वह एक होने वाले शिशु की हत्या का अपराधी है." मेयर साहब ने अपने कानूनी दिमाग का परिचय दिया.

"शायद. मगर किसे पड़ी थी, इस पचड़े में पड़ने की. किसके पास इतना फालतू वक्त था? और, अब किसे याद है कि तब क्या हुआ? इस घटना को घटे तीस साल हो गये. शायद जैनी को भी ठीक-ठीक याद नहीं होगा."

"एक मजिस्ट्रेट के नाते मैं जैनी को इस मामले में अपराधी नहीं मानता. वह एक रंडी है, और अपना शरीर बेचकर अपना पेट पालती है. यह कानून की निगाह में एक अपराध हो सकता है, लेकिन मामूली अपराध है. उससे कहीं बड़े अपराधी—महापराधी—हैं—यॉक शिडिल, उसका पिता, यदि वह आज जीवित है, और उसकी मां, यदि आज वह जीवित है तो!"

"यॉक को छोड़कर सब मर-खप चुके हैं, सिर्फ यॉक ही जीवित है. और वह आज शहर का एक प्रभावशाली नागरिक है. मैं नहीं चाहता कि एक ऐसे मामले को लेकर, जो हम सबके लिये महत्त्वहीन है, आप यॉक से शत्रुता मोल लें. इसी वजह से मैंने यॉक के रेस्तरां में इस मामले को आगे नहीं बढ़ने दिया था, और विषयांतर कर दिया था."

"देखो, मित्र! मैं यॉक के समान ही शहर का प्रभावशाली नागरिक हूं. इसलिए, उससे डरने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता. लोगों की निगाह में वह भले ही निर्दोष हो, लेकिन मैं उस घटना के बारे में सुनकर उसे एक महापराधी मानता हूं. इसके बरखिलाफ, जैनी एक सामान्य अपराधी है. कल पुलिस उसका मामला मेरी अदालत में पेश करेगी, और मैं अभी ही आपको बताये देता हूं कि मैं उसके साथ बड़ी नरमी से पेश आने वाला हूं, और सिफारिश करूंगा कि नगरपालिका उसे कोई नौकरी दे, ताकि उसे अपना तन बेचने को मजबूर न होना पड़े. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1915
प्रमुख कृतियां : 'प्यार के फूल', 'छोटा आदमी', 'आसरा' (कहानी संग्रह)
संपर्क : डी. 5/131, त्रिपुरा भैरवी, मीरघाट, वाराणसी (उ.प्र.)

□ द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

लंबी कहानी

इस अंक से लंबी कहानियों के प्रकाशन का धारावाहिक सिलसिला प्रारंभ किया जा रहा है. अगले अंक में इस सिलसिले को आगे बढ़ाएंगे कवि कथाकार—रामेश्वर शुक्ल अंचल...

सरस्वती

मैं वीसलपुर से लौट रहा था. एक मित्र की शादी में शरीक होने गया था. सप्ताह भर टिका रहा. वहां दैवयोग से एक अविवाहिता नवयुवती से मेरी थोड़ी घनिष्ठता हो गयी— थोड़ा घुलमिल गये हम. नाम तो माधुरी था. पर सब उसे मधु-मधु कहकर पुकारते थे. मधु का अर्थ शहद भी होता है— शराब भी. मुझे लगा कि— वह जैसे इन दोनों का सम्मिश्रण है. सलोनी थी, लजीली-शर्मीली थी और जरूरत से ज्यादा मितभाषिणी थी. चार बातें पूछो तो एक का जवाब देती नमितनयना होकर. कभी तो अच्छा लगता, कभी खीज लगती— गुण लगता कभी अवगुण. पर लड़की में एक खास कशिश थी— इतना तो मुझे स्वीकार कर ही लेना चाहिये.

...मित्र मुझे स्टेशन तक पहुंचाने आया. ट्रेन में, सीट पर मुझे बिठा, खुद भी सामने बैठ गया और प्रसन्न मुद्रा से कहने लगा, "माधुरी को तुमने देखा— भाला है. उसकी मां ने तुम्हें बहुत पसंद किया है. मेरे पीछे पड़ी है— संबंध तय करा दो. तो अब तुम बोलो, लड़की जंच रही है या नहीं, क्या इरादे हैं तुम्हारे?"

मैंने हंसकर कहा, "लड़की मेरी मनपसंद है— तुमसे स्पष्ट ही कह रहा हूं, परंतु तुम तो जानते हो— मेरी बाल विधवा दीदी ने ही मुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है. मां-बाप, भाई-बंधु मेरे लिये अकेली दीदी ही हैं. उसकी इच्छा के बिना मैं एक कदम भी इधर-उधर नहीं रख सकता. और वह बीस साल से कानपुर से बाहर नहीं गयी है— अपने आराध्य गिरिधर गोपाल को अकेला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर और न कभी जायेगी कहीं, शायद मृत्युपर्यंत. तो भाई, माधुरी के माता-पिता उसे साथ लेकर कानपुर आयें, मेरी दीदी के आगे उसकी पेशी करें, तभी कुछ निर्णय हो सकेगा. यह तुम उन्हें समझा देना. मुझे लिखना फिर."

ट्रेन चली जा रही थी. सामनेवाली खाली सीट पर अपने पैर फैलाकर मैंने आंखें मूंद ली थीं और सोचे जा रहा था कि— मान लो, वे लोग कानपुर चले आये, दीदी राजी हो गयी, तब? तब क्या ठीक ही रहेगा. माधुरी के साथ जीवन कटेगा. सुखी ही रहूंगा. और माधुरी की वह शरमायी-शरमायी नजर याद आई, धीरे-धीरे कांपते कोमल होंठ याद आये कि खट् से किसी ने मेरा पैर थपथपा दिया.

चौंक पड़ा मैं. आंख खोल दीं. पैर समेट लिये जल्दी से.

सामने एक नवयुवती खड़ी थी— खाकी पैंट— बुशशर्ट पहिने, कंधे पर बड़ा-सा बैग लटकाये. जरा-सा झुककर निहायत शरीफाना अंदाज में वह लड़की मुझसे पूछने लगी, "मैं इस सीट पर बैठ जाऊं? आप को कोई एतराज तो नहीं है? टिकट है मेरे पास सिटिंग का."

मैंने कहा, "शौक से बैठिये आप."

"थैंक यू!" उसने मेरे सामने बैठकर बैग उतारा कंधे से और उसे अपने पैरों के पास रखती-रखती बोली, "मैं उधर बैठी थी— चौंतीस नंबर पर. लेकिन मेरे सामने जो आदमी बैठा था मैली-सी चादर लपेटे— वह कोई खूंखार डाकू-वाकू है शायद. मैंने जरा खिड़की से झांका तो उसने फौरन मुझे डांट दिया, 'सिर भीतर कर ले.' थोड़ी देर तो मैं सिर भीतर किये रही, फिर भूल गई. दुबारा जो मैंने खिड़की से बाहर झांका तो वह डपटकर बोला, 'ए लड़की, सीधी तरह बैठ, वर्ना तुझे उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दूंगा.' खिड़की से मुझे बाहर तो क्या फेंक पाता भला, लेकिन उसकी लाल-लाल आंखें और बड़ा-बड़ा-सा मोछा देखकर चित्त मेरा

कैसी होगी वह तरुणी जिसका उठना-बैठना, हंसना-मुस्कराना... बोलना तो बोलते ही चले जाना... और चौंकाकर रख देने वाली अदाएं दुनिया—जहान के हर विषय पर ऐसी टिप्पणी करना कि उसकी उम्र को देखते हुए सिवाय हैरत के और कोई चारा न रहे...?

कुछ उद्वेलित जरूर हो गया. मैंने उचककर देखा यह सीट खाली लगी. उठकर भाग आयी. 'दुष्ट संग जनि देहि विधाता' — यहां अब बैठी हूं तो चित्त मेरा शांत है. आप कहां से तशरीफ ला रहे हैं और कहां जा रहे हैं?"

"कानपुर." मैंने उसे गौर से देखा, कुछ अजीब-सी लगी वह मुझे, हालांकि देखने-भालने में सुंदर ही थी. खुश-खुश बोली, "मैं भी कानपुर जा रही हूं. बड़ा अच्छा हुआ, संग-साथ हो गया यह. खूब गुजरेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो. आप किस जाति को सुशोभित कर रहे हैं?"

"हरिजन हूं." मैंने छूटते ही कहा.

वह तनिक चुप रही, फिर बड़ी शाइस्तगी से कहने लगी, "बुरा न मानें तो एक बात कहूं. राष्ट्रपिता हमें दो मंत्र देकर गये हैं— सत्य और अहिंसा. और आप बापू के उसी भारत के एक होनहार नवयुवक हैं. मैं पूछती हूं, सत्य को तिलांजलि देकर असत्य का सहारा क्यों ले रहे हैं आप? यह जो आपके गले में तीन धागों वाला फंदा लटक रहा है— आप की चुगली खा रहा है. फंदा चीख-चीखकर कह रहा है— आप हरगिज 'हरिजन' नहीं हैं."

बाथरूम गया था. जनेऊ भीतर करना भूल गया था. संकुचित होकर जनेऊ कमीज के भीतर किया और हंसकर कहा, "ब्राह्मण हूं."

खुश-खुश बोली, "मैं भी ब्राह्मण हूं. आप कानपुर में क्या काम करते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"घास छीलती हूं." मैंने हंसते-हंसते कहा तो बड़े शांत स्वर में बोली, "कुछ न करने से घास छीलना अच्छा है. मैं भी कभी-कभी अपनी बगिया की घास छीलती हूं गौ माता के लिये. आप कहां की घास छीलते हैं?"

मैंने थोड़ा कुढ़कर कहा, "एक डिग्री कालेज की. अध्यापक हूं. और कुछ पूछना हो तो पूछिये. नाम मेरा शिवशंकर है और शाकाहारी हूं."

इस पर सांस खींचकर बोली, "हमको उनसे वफा की है उम्मीद, जो नहीं जानते वफा क्या है!"

मुझे उसकी बातों में आनंद आने लगा था. हंसकर ही पूछा, "अब आप अपना परिचय दीजिये."

खुश हो गई. तपाक से बोली, "बरेली की निवासिनी हूं. जिस शहर के बाजार में कभी किसी अज्ञातनामा तरुणी का झुमका गिर गया था, उसी ऐतिहासिक नगर बांस बरेली में मेरा अपना छोटा-सा आशियाना है. अकेली मां ही है मेरी सब कुछ. तपस्वी, विद्वान ब्राह्मण पिता की एकमात्र संतान हूं, जो स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे और अब स्वर्गस्थ हैं. मां को पारिवारिक पेंशन मिलती है, गांव से खेतों का अन्न आ जाता है और यों गुजर हो जाती है हमारी. मैं इस वर्ष एम.ए. फाइनल की परीक्षा दे चुकी हूं. पर्चे बहुत अच्छे किये हैं. प्रीवीयस में 87% प्रतिशत अंक थे मेरे. संभव है, 'टाप' कर जाऊं इस वर्ष. सब कुछ मेरा उसी परमपिता पर निर्भर है. नाम मेरा सरस्वती शर्मा है, जिसका शार्ट है— यस.यस.. और कुछ पूछिये."

"कानपुर क्यों जा रही हो?"

"इंटरव्यू देने."

"किस पोस्ट के लिए."

जरा सोचकर बतलाया उसने, "पोस्ट यों तो नितांत साधारण है परंतु मेरे संपूर्ण भविष्य का दामोमदार उसी पर टिका हुआ है. मोस्ट कानफीडेंशियल केस है. आप को बता दूंगी, पर अभी नहीं. हम लोग थोड़ा और निकटस्थ हो लें, थोड़ा सब्र कीजिये अभी. वक्त आने दें, बता देंगे तुझे ए हमसफर." और आंखें मूंदकर बैठ गयी चुपचाप. उसकी यह 'अदा' मुझे बहुत मोहक लगी. ऐसा सहयात्री तो कभी न मिला था. तबीयत खुश हो गयी...

ट्रेन चली जा रही थी. एक छोटा-सा स्टेशन आया और सूं-सूं करती ट्रेन रुक गयी. क्या हुआ? यह तो फास्ट एक्सप्रेस गाड़ी है. यहां क्यों रुक गयी? सब एक-दूसरे से पूछने लगे और थोड़ी देर बाद पता चला कि इंजन का कोई पुर्जा टूटकर गिर गया है. ट्रेन आगे नहीं चलेगी. किसी जंकशन से दूसरा इंजन आयेगा, तभी ट्रेन सरकेगी. इसमें कई घंटे लगेंगे.

सरस्वती ने आंखें खोल दीं. सब सुना. सब सुना. दुख में डूबकर हताश स्वर में वह उठी, "मर गये हम तो!" और हाथ-पैर ढीले करके तिरछी होकर सीट पर लुढ़क रही. उसका यह मरने का 'पोज' देखकर मुझे बरबस हंसी आ गयी. मुझे यों हंसता देखकर वह फौरन उठ बैठी और चिढ़कर बोली, "बंधु, किसी को विपदा में फंसा देख हंसनेवाला क्या होता है, जानते हो? नृशंस. बंधु, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी. सजातीय होकर, सुसंस्कृत होकर, सहयात्री होकर तुम यह क्या व्यवहार कर रहे हो, एक असहाय के साथ?"

मेरे होंठों से तत्काल हंसी लोप हो गयी. अप्रतिभ हो गया. कुछ बोल नहीं पा रहा था. वह उदास होकर दूसरी ओर देखने लगी थी. तब मैंने साहस बटोरकर कहा उससे, "मैं तुम से क्षमा मांगता हूं. जो विपत्ति हो, परेशानी हो, मुझ से कहो. मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं— हर स्थिति में तुम्हारी सहायता करूंगा."

तब सरस्वती ने मानो आश्वस्त होकर अपनी परेशानी मुझे बतलायी. पूरी बात सुन कर मैंने सांत्वना के स्वर में उससे कहा, "मैं तुम्हें अपने साथ अपने घर ले चलूंगा. तुम तनिक भी चिंता मत करो. मेरी बड़ी बहिन है और मैं हूं घर में. मेरी बहिन इतनी दयालु प्रकृति की है कि वह तुम्हें स्नेह से सराबोर कर देगी. जरा मेरे घर चलकर देखना. और अपने जिन ताऊजी के पास तुम जा रही हो, वे हम लोगों के परम शुभचिंतक हैं. मेरी बहिन को 'दिदिया' कहकर पुकारते हैं. एकाकी, वीतराग, संन्यासी की तरह वे रहते हैं और निस्वार्थ भाव से जन-सेवा करते हैं. उन्हें भला कानपुर में कौन नहीं जानता. मेरे तो परम श्रद्धेय हैं तुम्हारे ताऊ शुक्लाजी. ट्रेन कितनी भी लेट हो जाये, मैं तो तुम्हारे साथ रहूंगा न! रात को तुम स्टेशन पर पड़ी रहोगी और मैं तुम्हें अकेला छोड़कर चल दूंगा— मुझे इतना 'अधम' मानती हो क्या?"

"छमहु बंधु, अपराध हमारे!" मेरी ओर दोनों हाथ जोड़कर बोली, "अब मैं निश्चिंत हो गयी. तुमने मुझे उबार लिया. भला सोचो तो, रात में एक बजे— दो बजे कहां टक्कर मारती फिरती. ताऊजी की किवाड़ें पीटती, उन्हें कष्ट देती, खुद भी कष्ट उठाती. धन्य हो प्रभु, कैसे रक्षा करते हो तुम अपनी सरस्वती की. ऐसा बंधु मिला दिया कि पौ बारह हो गये हमारे. और ताऊजी की बात कह रहे हो न, निश्चय ही देव पुरुष हैं वे तो. मेरे पिता के परम मित्र, बाल्य-बंधु हैं. वर्षों साथ रहा है दोनों का. पिता की मृत्यु के बाद वे बराबर हमारी सुधि लेते रहे हैं. मेरी मां को 'भौजी' कहते हैं. मां उन्हें 'देवर बाबू' कहती हैं. दसियों बार हमारी कुटिया पर आये हैं. खाया-पिया है. रात को सोये हैं."

...हमने देखा— डिब्बे के अधिकांश यात्री उतरकर सामने हरी घासवाले लान में जमा हो रहे हैं, चादर बिछा रहे हैं, तौलिया बिछा रहे हैं. तीन-चार घंटे यहीं प्लेटफार्म की ठंडी-ठंडी हवा ली जाये. हम दोनों भी लान में आ गये, चादर बिछा ली, ठंडी हवा खाने लगे. तनिक देर बाद, सरस्वती कह उठी, "बंधु, हवा से पेट नहीं भरेगा. अब पेट-पूजा कर ली जाये. आओ, खाना खा लें."

मैं चादर पर अधलेटा हो रहा था. संकोच करके कहा, "तुम खा लो, मुझे भूख नहीं है." वह अपना टिफिन केरियर खोल रही थी, उसके हाथ जहां के तहां रुक गये, मेरी ओर ताकने लगी फिर चढ़े स्वर में बोली, "ऐ मिस्टर, कान खोलकर सुन लो, अगर तुम मेरे साथ खाना नहीं खाओगे तो फिर मैं भी तुम्हारे साथ— तुम्हारे घर नहीं जाऊंगी. खैरियत चाहते हो तो उठ बैठो फौरन."

अगत्या मुझे साथ देना ही पड़ा. खा-पीकर आश्वस्त हो दोनों बैठे थे तब उसने खुद ही बात छेड़ी, "अब हम लोग काफी निकट हो गये हैं. सो अब अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें अपना वह 'कानफीडेंशियल केस' सुनाऊं— इंटरव्यू वाला."

"जरूर सुनाओ." मैं उत्सुक हो उठा. बोली, "अब तुम से क्या छिपाना. असल में, मैं शादी वाला इंटरव्यू देने जा रही हूं."

चौंका मैं. यह क्या कह रही है! पर उसने अपनी बात जारी रक्खी, "हां बंधु, ऐसा ही मामला है यह. अब मैं तुम्हें पूरी 'केस हिस्ट्री' सुनाये दे रही हूं. मैंने जब बी.ए. कर लिया तो मेरी मां ने मेरे आगे शादी का प्रस्ताव रख दिया. मैंने प्रस्ताव निगलेक्ट कर दिया, उसकी बातों पर कान ही न दिया. वह चर्चा करती और मैं अनसुनी कर जाती. बस, यों ही डेढ़-दो साल गुजार दिये मैंने एम.ए. की परीक्षा से निबट गयी तो एक रात को मुझे अपने पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिटाकर मेरी मां करुण-करुण स्वर में हौले-हौले कहने लगी, आज मैं जिंदा हूं तो तू मेरे आंचल की छाया में सुख-शांति से जी रही है, पर कल को जब मैं न रहूंगी, तब तेरा क्या होगा? निपट अकेली तू कैसे जीवन बितायेगी? दुनिया बहुत बुरी हो चुकी है. दुनिया तुझे चैन से जीने न देगी. किसी भी जवान लड़की को एकाकी जीवन बिताना— आज के इस गंदगी भरे युग में संभव नहीं रह गया है बेटी? तू इतनी भोली, इतनी सरल है कि कुछ भी नहीं जानती. पर मैंने तो दुनिया देखी है. बड़े कटु अनुभव हुये हैं मुझे तेरे पिता की मृत्यु के बाद. कुछ सोच-समझकर ही तुझसे शादी के लिए कह रही हूं. मेरी बात अब मान जा बेटी, मैं तुझ से विनय कर रही हूं. सुख-दुख सहते किसी तरह इतने साल बिता दिये मैंने तुझे छाती से लगाये, अकेली इसी एक आशा पर कि— कभी तेरा घर-द्वार बसा देखूंगी— तुझे फलता-फूलता देखूंगी. देवते-देवती को कलेजे से लगाकर स्वर्ग का सुख पाऊंगी. मुझे और तेरे पिता को परलोक में पानी देनेवाला कोई होगा दुनिया में. अकेली एक अभिलाषा थी मेरी. सो भी पूरी न होगी. प्रभु, यों ही तरसती-तरसती मर जाऊंगी किसी दिन.'

मैंने तड़प कर कहा, 'बस करो मां, तुम्हारे चरणों की शपथ खाकर कह रही हूं— जो कुछ तुम कहोगी— करूंगी, खुशी से करूंगी.'

लघुकथा

परख

नेताजी कुत्ता खरीदने गये.

उन्हें देखकर कुत्ते वाले को आश्चर्य हुआ—नेताजी को कुत्ता खरीदने की क्या जरूरत पड़ गयी.

नेताजी ने एक बुलडॉग की ओर इशारा किया, "इसकी विशेषता?"

"यह बहुत ही खतरनाक और स्वामीभक्त कुत्ता है."

नेताजी ने दूसरे कुत्ते की ओर इशारा किया, जो स्पेनियल था.

"यह चोरों को पकड़ने में माहिर है. चोर कहीं भी क्यों न छिपा हो, यह खोज निकालता है."

नेताजी को यह भी पसंद न आया, "कोई और?"

"जी हां हुजूर, यह खास प्रशिक्षण प्राप्त कुत्ता है." कुत्ते वाले ने तीसरे कुत्ते की ओर इशारा किया, "इस कुत्ते की खासियत यह है सरकार, कि यह डांटने और पुचकारने पर गुर्राता है... मारने पर काटने दौड़ता है, काटता नहीं है.. लेकिन अगर आप इसे रोटी दिखायेंगे तो यह बिना काटे नहीं छोड़ता, चाहे भागकर आप पाताल ही क्यों न पहुंच जायें!"

नेताजी प्रभावित हुए बिना न रह सके.

"तो यह दुम कब हिलाता है," नेताजी ने अभिभूत होकर पूछा.

"रुपए की गड्डी दिखाने पर हुजूर."

नेताजी ने कुत्ते को तुरंत गाड़ी में बिठाने का हुक्म दिया.

□ प्रकाश सूर्यवंशी

यह समझो इस केस का फ्रस्ट चेप्टर हुआ.

द्वितीय अध्याय यह है कि— मेरे लिये 'पति' नामक व्यक्ति की खोज शुरू हुई और फिर एक दिन केंडीडेट नंबर वन मेरे बैठकखाने में नमूदार हुआ. कृष्ण वर्ण, सुता हुआ चेहरा, नीला सूट, लाल टाई और मोटा चश्मा. मैं सामने पहुंची तो वह छोटी मेज पर अंगुलियां चला रहा था मानो टाइप कर रहा हो. नजर ऊपर को थी— शायद छत की कड़ियां गिन रहा था. मैंने उसके व्यक्तित्व का भला-बुरा कुछ भी प्रभाव महसूस न किया. बंधु, मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि मेरी मां जिसे चुन देगी मेरे लिये, उसी का सहर्ष वरण कर लूंगी. एक्स-वाई-जेड— जो कोई भी हो, मुझे कोई ऐतराज न होगा. बस, शादी कर लेनी है और कैसा भी बिगड़े दिल-दिमाग का वह क्यों न हो, मैं उसे संतुष्ट कर लूंगी उसकी हर इच्छा की पूर्ति करूंगी. हर कदम पर साथ दूंगी— तहेदिल से प्यार करूंगी. हर स्थिति में, कंप्रोमाइज करके अपने को एडजस्ट कर लूंगी. मेरे अपने कोई स्वप्न नहीं हैं कि कुढ़ती रहूं मैं. चिंता क्या है?

हां तो, वह नंबर वन— मैंने बड़ी शालीनता से हाथ जोड़कर कहा, 'नमस्ते जी!' चौंक पड़ा वह. मैंने नम्रता से पूछा, 'आज्ञा हो तो बैठ जाऊं.'

'बैठो-बैठो. बैठिये.'—घबराया-सा लगा मुझे वह. 'धन्यवाद.' मैंने शांत भाव से कहा उसके सामने बैठकर 'कुछ पूछना चाहें तो पूछिये मुझसे.' तड़ाक से पूछ बैठा, 'किस कलास में पढ़ रही हैं?' मैंने उसे अपनी सब योग्यता बतला दी. चुप रह गया. फिर मैंने पूछा, "श्रीमान की क्वालिफिकेशनस् क्या हैं, बतलाने का कष्ट करेंगे?' पता चला, बी.कामं. है. किसी बैंक में क्लर्क है. एक कमरा किराये पर ले रक्खा है. होटल में खाता है. होटलवाला बहुत बेईमान है— ठग है पूरा. कमरे में मच्छर बहुत हैं. ओडोमास लगाकर सोता है, इत्यादि— मैंने कहा, 'बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर. मेरी एक छोटी-सी जिज्ञासा है. आप तो दिन भर संख्याओं से ही खेलते हैं. यह बतलाइये कि— अगर किसी शून्य संख्या की किसी शून्य संख्या से गुणा की जाये तो उसका 'गुणनफल' क्या होगा? शून्य को शून्य में घटाया जो, तो 'शेष' क्या बचेगा? कृपा करके मुझे बतलाइये.' वह गहरे सोच की मुद्रा में हो गया तो मैंने कहा, 'आप विचारिये, मैं अभी आयी.' उसके लिए चाय-नाश्ता लेने मैं भीतर चली गयी. थोड़ी देर में ट्रे लिये लौटी तो देखा— वह कमरे से नदारद है. भला आदमी खिड़की से कूदकर भाग गया था." कहकर सरस्वती खिलखिला उठी. मैं भी हंसने लगा था. जी भरकर हंस ली तो फिर आगे बढ़ी, "इसके बाद बंधु, नंबर दो आया. यह व्यक्ति खल्वाट, खुर्राट, दोहरे बदन का, गोरा और काफी वयस्क था. छोटी-छोटी चालाकी भरी आंखों से मुझे ताकता रहा घड़ी भर. फिर उसने मुझसे प्रश्न पूछने शुरू किये— इतिहास, भूगोल, गणित, समाजशास्त्र, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र— खटाखट पूछता ही चला गया पट्ठा और मैं तड़ातड़ जवाब देती चली गयी. अंत में, रुक गया वह.

मैंने मन में कहा, 'पूछ बेटा, और पूछ, रुक क्यों गया? मुझे नहीं हरा पायेगा. तू भी क्या याद करेगा कि मिली थी कोई लड़की तेजतर्रार, 'और पूछिये कुछ.' आखिर मैंने कह ही दिया तो कुरसी पर धोक लगाकर बोला, 'बस, यथेष्ट है. अपनी मां को बुलाओ.' मैं भीतर गयी मां को भेज दिया. पता चला— वह स्वयं किसी हाईस्कूल का हेड मास्टर है. अपने छोटे भाई के संबंध के लिये आया है. चलते-चलते मेरी मां से कह गया, 'लड़की बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिलियंट है, जबकि मेरा भाई थोड़ा 'कुंद मगज' है. जोड़ी ठीक नहीं रहेगी. मैं चला.'

आदमी शायद समझदार था....

...नंबर तीन किसी प्रतिनिधि को न भेजकर स्वयं ही हाजिर हो गया. देखने-भालने में सुंदर— हैंडसम, हृष्टपुष्ट और हंसमुख, शालीनता से भरा. पढ़ा-लिखा— ग्रेजुएट था. हम दोनों— मैं और मां उसके सामने बैठे थे. वह बराबर मेरी मां से ही बतियाता रहा और बीच-बीच में कनखियों से मुझे ताकता रहा. मुझसे उसने रुख ही न मिलाया, कुछ भी न पूछा मुझसे. प्रसन्नवदन आया था— प्रसन्नवदन लौट गया. अब जरा उसका विवरण सुनिये— व्यवसाय था, बनारसी रेशमी साड़ियों पर पालिश करना. यानी एक छोटा-मोटा कारखाना और यह कारखाना अपने घर में ही वह चला रहा था. पिता नहीं थे. मां थी और दो छोटी बहिनें थीं और दो नौकर थे, जो स्थायी थे और यहीं दोनों जून खाते पीते-सोते थे. कुल मिलाकर छह-सात प्राणियों का भोजन बनता था, जिसकी जिम्मेदारी अब उसकी 'जो' बनेगी— वही उठायेगी भविष्य में. मां से अब काम नहीं होता. बहिनें स्कूल चली जाती हैं. मैंने सोचा— 'चलो ठीक है, यही सही. मैं साड़ियों पर पालिश करना सीख लूंगी. आनंद रहेगा.

पर कई दिन बाद बिचौलिये ने आकर सूचना दी कि दहेज में आप जो कुछ भी देंगी— वह तो अलग बात है. लेकिन लड़के को स्कूटर जरूर चाहिये— यह मत भूलियेगा. मेरी मां की हिम्मत जवाब दे गयी. हम तो किसी तरह गुजर-बसर कर रहे थे. इतना भार उठाने के काबिल ही न थे. आखिरकार बात टूट गयी.

बंधु, नंबर चार और पांच के किस्से इतने वहियात और गंदे हैं कि तुम्हारे श्रवणीय ही नहीं हैं. हरगिज नहीं सुनाऊंगी.'' जरा रुकी वह और फिर सिर डुलाती कह उठी, ''इति सरस्वती— विवाह प्रकरणे— द्वितीय अध्यायः समाप्त.''

मैं बैठा मुस्कराता रहा. और फिर उसने मानो सन्नद्ध होकर शांत भाव से कहा, ''अथ तृतीयः अध्यायः प्रारभ्यते. हे श्रोता, तुम इस कथा को ध्यान से सुनो—उत्तर प्रदेश में, कानपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर है. वहां एक विप्रवंशावतंस नवयुवक रहता है, जो अपनी किसी वृद्धा मौसी-बुआ-ताई अथवा मामी का पालतू प्राणी है. उस वृद्धा के कोई भगवान् हैं, जिन्हें वह पिछले बीस वर्ष से एक रात को भी अकेला नहीं छोड़ सकी है. उसे भय है कि अगर वह कानपुर से बाहर गयी— तो कोई उसके भगवान को उठा ले जायेगा. कानपुर में ही मेरे ताऊजी भी रहते हैं— जिन्हें तुम भी जानते हो. सो उसी एक्स-वाई-जेड लेक्चरार के साथ मेरे विवाह संबंध की बात चल रही है. ताऊजी ने मेरी मां को जाकर जब बतलाया कि उस वृद्धा के आगे मुझे यानी सरस्वती शर्मा को पेश करना लाजिमी है, तभी कुछ हो सकेगा, वृद्धा की रजामंदी के बाद एतदर्थ, मां के साथ मुझे कानपुर आना था, ताऊजी के यहां ठहरना था, शादी का इंटरव्यू देना था. परंतु उस बुढ़िया की तरह मेरी मां के भी भगवान् हैं, बुढ़िया के एक भगवान हैं— मेरी मां के चार. स्वयं श्री जानकीनाथ राघवेंद्रजी, एक गौ-माता, एक सुग्गा तोताराम, और एक कुतिया पुन्नी. हर जीव भगवान् का ही अंश होता है— इनको किसके सहारे छोड़ती मेरी मां? लिहाजा सरस्वती ने अकेले ही कमर सकी इस शुभ कार्य की शुभ यात्रा के लिए और इस प्रकार मैं ताऊजी की सेवा में प्रस्तुत होने जा रही हूं— शादी वाले इंटरव्यू के निमित्त. सब समझ गये न बंधु?''

मेरे दिमाग ने झटका खाया, मेरा माथा ठनका— यह क्या सुना रही हैं? कहीं इसका वह एक्स-वाई-जेड लेक्चरार मैं ही हो नहीं हूं—वह बुढ़िया मेरी दीदी ही तो नहीं है?—अच्छा कौतुक रहा यह, यानी कि— यानी कि यह लड़की मेरे लिये ही कानपुर चल रही है, मेरे साथ ही इसके 'ग्रंथि-बंधन' की बात चलायी जा रही है. पर मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम! मैंने हकलाकर पूछा, ''उस लेक्चरार का नाम, धाम— ठिकाना तुम जानती हो?''

सरस्वती ने सिर हिलाकर कहा, ''नो सर, आई डोंट नो, हू इज दिस फेलो. होगा कोई. ताऊजी से पूछकर तुम्हें बतला दूंगी. बंधु, मेरे मस्तिष्क में अभी-अभी एक विचार कौंधा है—क्या यह संभव नहीं है कि वह लेक्चरार तुम्हारा परिचित हो, साथ पढ़ा संगी-साथी हो— दोस्त हो गहरा!

''खुदा के फ़जल से, यदि ऐसा हुआ तब तो तुम मेरी बहुत सहायता कर सकोगे. कह-सुनकर उसे मेरे साथ शादी करने के लिये राजी कर सकोगे. बोलो, मेरे लिये इतना करोगे न?''

''जरूर करूंगा. पूरी ताकत लगा दूंगा तुमसे उसे भिड़ाने की.''

''शुक्रिया. अच्छा बंधु, एक बात पूछना तो मैं भूल ही गयी. तुम्हारी शादी हो चुकी है कि अभी तक बैचलर ही हो?''

''शादी हुई तो नहीं है, लेकिन 'तय' पा गयी है. मेरी मंगेतर है एक लड़की.''

''मेरा भी यही खयाल था. इतना बढ़िया माल बाजार में बिना बिक्री के कैसे रह सकता था? कितने में बिके तुम? मेरा मतलब है, तुम्हारी दीदी ने कितने की डिमांड की? बोली कहां तक पहुंची?''

मैंने हंसकर बतलाया, ''अभी तो सिर्फ श्रीगणेश हुआ है. देखो शादी में क्या होता है.'' तभी देखा कि सारे यात्री उठ-उठकर डिब्बों की ओर भाग रहे हैं. पता चला— नया इंजन आ गया. हम दोनों भी अपनी सीटों की ओर लपके....

सरस्वती ने क्षिप्रगति से दोनों सीटें 'एक' कीं. बैग को सीट के नीचे सरकाया, चप्पलें उतारी और वीरासन से अपनी जगह बैठ खिड़की के उस पार निहारने लगी मुंह लिये. दशमी का चांद आकाश के मध्य आ गया था. दूधिया, हल्की चांदनी में नहाये खेतों, बागों और छोटे-छोटे गावों को पीछे छोड़ती ट्रेन तेजी से भागी चली जा रही थी.

सरस्वती मेरा अस्तित्व जैसे भूल ही गयी थी. न तो फिर उसने मेरी ओर रुख किया—न एक शब्द बोली फिर. बैठी रही, बैठी रही उधर को ही मुख किये फिर अनायास ही नीचे की ओर सरकी और गुड़ी-मुड़ी होकर पड़ रही नयन मूदे—मृदु बांह मोड़ उपधान किये....

मैं तब से बराबर उसे ही निहारता बैठा था. गाड़ी के हिचकोलों से उसका पूरा शरीर धीरे-धीरे हिल रहा था. उसकी सिमटी टांगें क्रमशः फैलती गयीं और अंत में उसके दोनों चरण मेरी गोदी तक आ गये. वो कोमल-कोमल शुभ-स्वच्छ सुंदर-चरण! उन चरणों को मैं अपनी गोदी से नहीं हटा पाया. जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैंने उन प्यारे-प्यारे चरणों पर अपने हाथ रख लिये धीरे से.

सोचने को विवश हो गया— कितनी निश्चितता से यह मेरे इतने समीप नींद में सो गयी है. यह मेरी कौन है? मेरी कोई नहीं है. फिर भी इसका सामीप्य मुझे कहीं भीतर उद्वेलित कर रहा है. क्यों?

अभी-अभी कितना बोली थी मेरे आगे और अब मौन होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो गयी है मेरी गोदी में अपने चरण रखकर. मुझे अच्छा लग रहा है. क्यों? और मान लो, यह मेरे लिये ही कानपुर चल रही है, शादी के लिये, मेरी दीदी की स्वीकृति के लिये. मान लो, दीदी ने अपनी स्वीकृति दे दी— सहसा माधुरी का मुख मेरे सन्मुख उद्‌भासित हो उठा. एक ओर माधुरी— दूसरी ओर सरस्वती. मैं मानो इन दोनों के बीच विमूढ़ हो कर खड़ा हूं. मान लो, मुझसे पूछा जाये—तुम किसे 'प्रिफरेंस' देते हो—माधुरी को या सरस्वती को? तब मैं किसे चुनूंगा?

यही सब अनर्गल बातें सोचता, उंघता, सोता, जागता रात का शेष सफर बिताने लगा...

...कानपुर स्टेशन पर उतरे तो पौ फट रही थी. रिक्शा किया. घर आ पहुंचे. दीदी पूजा-गृह के बाहर खड़ी मिली. मैंने आगे बढ़कर चरण छुये तो सरस्वती ने भी चटपट उसका चरण-स्पर्श कर दिया. दीदी भौंचक हो उसे अपलक ताकने लगी. उस दृष्टि से अकुलाकर सरस्वती स्वयं ही कह उठी, "दीदी, मैं— मैं— इनके साथ— इनके साथ..." मैंने हंसकर सुनाया, "ट्रेन में इससे भेंट हो गयी. यहीं आयी है— शुक्लाजी के पास. उनका घर नहीं जानती थी. साथ ले आया. अब उसे पहुंचा दूंगा उनके ठिकाने पर."

दीदी ने प्रसन्न भाव से कहा, "अच्छा किया, साथ ले आया. चलो बिटिया, अपना सामान रख लो. शंकर, इसे तू अपने कमरे में ले जा. कुछ संकोच मत कर बिटिया, यह भी तो तेरा अपना ही घर है. जा." मैंने अपनी अटैची उठा उससे कहा, "आओ."

अपना बैग एक ओर रखकर सरस्वती कुरसी पर जमकर बैठ गयी. एक बार चारों ओर नजरें घुमाकर कमरे का जायजा लिया और फौरन सुनायी पड़ा— "वेरी फाइन, क्या लाजवाब आशियाना है तुम्हारा! तुम्हारी रुचि की दाद देती हूं बंधु. बड़े प्यारे आदमी से मेरा मिलन हुआ है. प्रभु को लाख-लाख धन्यवाद है. लगता है— किसी पवित्र देव-स्थान पर अचानक आ गयी हूं. बंधु, तुमने दीदी के बारें में जो कुछ कहा था— ठीक वैसी ही तो हैं वे. एक मधुर प्रभामंडल से आलोकित दीदी का मुख देखकर ही विह्वल हो उठी मैं. ऐसी मधुरवाणी है उनकी स्नेह में डूबी कि मुझे पुलक हो आया."

मैंने यात्रा वाले कपड़े उतारकर उससे कहा, "चलो, तुम्हें बाथरूम दिखला दूं."...

चाय पीकर मैं शुक्लाजी का पता लगाने चला गया था कि वे घर पर मौजूद भी हैं या नहीं. लौटा तो देखा— अधर को पीठ किये बैठी सरस्वती दीदी से कुछ कहे जा रही है और दीदी मंद-मंद मुस्करा रही हैं. क्या बखान कर रही हैं? उसके पीछे खड़ा मैं सुनने लगा... "बस, फिर मैं उसके साथ खरामा-खरामा यहां चली आयी. दीदी, यह जो मेरा बंधु है न, तुम्हारा भाई, यह कबीर का 'शीलवंत कोई एक' है. मुझे वह इत्ता अच्छा लगा है— इत्ता भाया है मुझे कि तुमसे क्या कहूं. बड़ा हीरा-रतन लड़का है. परमात्मा इसे लंबी उमर दें." बहुत रोका मैंने अपने को, तुरंत उसके इस आशीर्वाद पर हंसी फूट उठी मेरी. दीदी भी हंसने लगी. वह तत्काल उठकर खड़ी हो गयी, पूछने लगी, "ताऊजी हैं घर पर? चलूं मैं?"

लालसा

विजय दत्त शर्मा

अखबार पढ़ते हुए चंद्रा की नजर एक वैवाहिक विज्ञापन पर टिक ही गई. तो आखिर रामदयाल ने शादी का विज्ञापन दे ही दिया. पढ़कर उसे लगा कि शुकिया के लिए यह ठीक रहेगा.

दो-तीन दिन पहले ही शुकिया का पिता चंद्रा से मिला था और कहा था, "बहनजी, मेरी शुक्रिया के लिए कोई अच्छा-सा वर देखना...."

शुकिया पढ़ी-लिखी थी, सुंदर थी. घर के काम-काज में निपुण थी, परंतु दान-दहेज के अभाव में अच्छे घर का कोई लड़का शादी के लिए हां नहीं कर रहा था. धन्ना चाहता था कि उसकी शुकिया अच्छे घर में जाये इसलिए यह काम उसने चंद्रा को सौंपा था.

अगले ही दिन चंद्रा रामदयाल से मिलने जा पहुंची थी.

रामदयाल सरकारी नौकर था, बाप-दादों की हवेली थी, पैसा था. इसलिए पीना और मौज करना उसके स्वभाव में शामिल था. पहली बीवी मर चुकी थी. सच तो यह था कि रामदयाल ने ही उसे रास्ते से हटाया था. क्योंकि धर्मवती को रामदयाल का शराब पीना कतई बर्दाश्त न था और रामदयाल को उसका रोकना.

रामदयाल के लिए जितनी जरूरी शराब थी उतनी ही जरूरी थी एक स्त्री देह! इसीलिए पहली पत्नी की मृत्यु के फौरन बाद अखबार में विज्ञापन दे दिया था. चंद्रा रामदयाल से मिली. बात पक्की हो गयी और फिर एक दिन आर्यसमाज में मंदिर में शादी संपन्न हुई. धन्ना खुश था कि चंद्रा बहनजी ने जल्दी ही अच्छा वर ढूंढ दिया.

शुकिया ने अपने नये घर को देखा. वह खुश थी— बड़ी-सी हवेली, खूब पैसा.

शुरू के कुछ दिन तो रामदयाल बाहर ही पीकर आता रहा. शुकिया को पता भी न चला कि यह शान की बदबू है या....! लेकिन अब वह घर में ही पीने लगा था. शुकिया को यह अच्छा न लगा. एक दिन उसने अपने मन की बात रामदयाल पर भी जाहिर कर दी.

रामदयाल ने भी नहले पर दहला लगाया और कहा, "हां प्रिये! शराब छोड़ने की बात मैं भी सोच रहा हूं. तुम कहो, हम कल से ही छोड़ दें!"

मगर वह कल कभी नहीं आया.

शुकिया के खाने-खेलने के दिन चिंता में घुल गए. वह हर तरकीब कर हारी, लेकिन रामदयाल को रास्ते पर नहीं ला सकी. ज्यादा कहती तो रामदयाल का भयंकर रूप....! एक दिन शुकिया ने चंद्रा बहनजी को बुलाकर अपनी व्यथा कह ही डाली. और यह भी कि अगर उन्होंने शराब नहीं छोड़ी तो....!

शुकिया की व्यथा-कथा सुनकर चंद्रा मन ही मन में मुस्करायी और बैग बगल में दबा खटपट सैंडिल बजाती चल दी.

लौटकर बयतर पहुंची तो एक बूढ़ा वहां बैठा इंतजार कर रहा था. उसके साथ एक सुंदर-सलौनी किशोरी थी. बोला, "बहनजी, हमारी यह लड़की..... इसकी शादी की कहीं जुगत लगाओ न!"

सुनकर चंद्रा की बांछें खिल गयीं. 'समाज सेवा' का एक और अवसर.

शुकिया तो चंद दिनों की मेहमान है ना अब! उसने तुरंत कहा, "बाबा, चिंता मत करो. मेरी नजर में एक लड़का है. भले घर का है. बैंक में नौकरी करता है, पैसा है, हवेली है अपनी....! पर थोड़े दिन तुम्हें इंतजार करना पड़ेगा....!"

"कोई बात नहीं, हम इंतजार कर लेंगे," कहकर बूढ़ा चला गया और चंद्रा ने लपककर फोन का चोगा उठाया और जल्दी-जल्दी एक नंबर डायल करके बोली, "हैलो, डियर रामदयाल, मैं चंद्रा बोल रही हूं.. हां, लाइन क्लियर करो ना!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने हंसी के बीच ही सुनाया, "शुक्लाजी दिल्ली गये हैं. शाम की गाड़ी से लौटनेवाले हैं." वह धम्म से बैठ गयी नीचे और सिर पर हाथ रखकर निराश स्वर में बोली, "जहं-जहं चरन परैं संतन के तहं-तहं बंटाढार." हम दोनों को फिर एक बार हंसी छूटी उसकी इस चेष्टा पर. मैंने इशारे से दीदी को अलग बुलाया. कोने में जाकर लज्जा-संकोच के बीच शुक्लाजी से हुई बातचीत सुनायी दीदी को. दीदी के चेहरे पर जैसे चमक आ गयी. प्रसन्नता से भरकर बोलीं, "मुझे तो खुद ही तब से संदेह हो रहा था, इसकी बातें सुन-सुनकर कि कहीं यह वही लड़की न हो, जिसके लिए शुक्लाजी मुझसे दो बार बातें कर गये हैं. तेरी गैरहाजिरी में वे आये थे यहां, घंटों बैठे रहे. तो तू शरमा क्यों रहा है लड़कियों की तरह पगले, प्रभु जो कुछ भी करते हैं, हमारे कल्याण के लिये ही करते हैं. शुक्लाजी ने बुलाया है मुझे तो फिर चल न, देर क्यों कर रहा है?"

चलने को तैयार हुए तो दीदी उसके आगे जा बैठी और प्यार से कहा, "सुन लो!" वह सिर डाले उदास बैठी थी. दीदी ने प्यार से पूछा, "तुझे यहां ठहरना अच्छा नहीं लग रहा है क्या? शाम तक का वक्त यहां नहीं काट पायेगी क्या?" वह चौंकी, तड़पी जैसे, तमककर कह उठी, "कौन अहमक कह रहा है तुमसे यह बात? यह बिल्कुल झूठ है— घोर असत्य है कि मैं यहां..." दीदी ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर बीच में ही कहा खुश होकर, "मेरी बात सुन, हम दोनों कुछ देर के लिए बाहर जा रहे हैं. घर-द्वार तेरे सिपुर्द. अकेली डरेगी तो नहीं?"

"डर?" उसने भवें सिकोड़कर कहा, "डर किस चिड़िया का नाम है, सरस्वती नहीं जानती. वह जानती है सिर्फ— जूडो— कराटे— लाठी भांजना, बंदूक चलाना. एन.सी.सी. में रही तो दो बार निशानेबाजी में पुरस्कार पा चुकी हूं. समझीं?" दीदी ने हंसते-हंसते कहा, "समझ गयी. अब तू किवाड़ें दे ले. हम चले."

शुक्लाजी शेव करते उठे थे. हम लोगों को आया देख खिल उठे. "आओ दिदिया, मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था. आओ, बैठो." हम दोनों को चटाई पर ही बिठा लिया, खुद भी बैठ गये और प्रसन्नता के मूड में सरस्वती-प्रकरण उठाया, अपनी ओर से बहुत कुछ बोलकर आगे यह कहा, "सरस्वती का पिता माधव शर्मा मेरा बाल्य बंधु था. जहां जिस गांव में उसका पित्रालय था— वहीं मेरी ननिहाल थी. बचपन मेरा ननिहाल में बीता और तभी से मेरी उसके साथ दांत काटी रोटी हो गयी. फिर शहर में भी हम दोनों साथ-साथ पढ़े, आगे बढ़े और फिर साथ ही स्वतंत्रता-आंदोलन में कूदे, साथ ही जेल गये, साथ ही छूटे फिर. देश स्वतंत्र हो गया तो उसे राजकीय पुस्तकालय का लाइब्रेरियन बना दिया गया और मैं गांधी-भंडार में लग गया. —खद्दर बेचने लगा." हंसते गये और सुनाते गये, "माधव तो बचपन से ही किताबी-कीड़ा था. लाइब्रेरियन हो गया तो मानो उसे मुंह मांगी मुराद मिल गयी. उसने मानो पूरी लाइब्रेरी ही चाट डाली. दिन-रात पढ़ता रहा तरह-तरह के ग्रंथ-रत्न और अपना 'ज्ञान-घट' भरता रहा. उसी 'ज्ञान-घट' से फिर हर रात को अपनी एक मात्र संतान, इसी लौंडिया को एक-एक घूंट पिलाता रहा. इतनी थोड़ी उम्र में वह इतनी प्रबुद्ध हो उठी कि जिसका अंत नहीं. तो ज्ञान तो इसे इतना, लेकिन प्रकृति वही बालिका जैसी. ऐसी सरल, भोली-भाली है कि मैं क्या कहूं? माधव अचानक ही बीमार पड़ा और अचानक ही चल बसा. मेरी व्यथा का ओर-छोर न था. पागल हो गया था जैसे उससे बिछुड़कर. पर समय तो हर घाव को भर देता है. अब तो उसकी स्मृति ही शेष है."— मेरी दीदी चुपचाप सुनती रही. जरा रुककर आगे बोले, "मंजू बहिन, मैं यह नहीं कहता कि सरस्वती सर्वगुण संपन्न है. उसमें भी जाने कितनी खामियां होंगी, कमियां होंगी, दोष होंगे. सौभाग्य से, फूल स्वयं ही देवता के चरणों में आ टपका है. अब यह देवता की इच्छा पर निर्भर है कि उस फूल को हाथों से उठाते हैं या नहीं. सो अब तुम अच्छी तरह— जी भरकर उसे जांच-परख लो, अपना मन भर लो, तब फिर अपना निर्णय मुझे बतलाना. उससे खाना बनवाओ, कपड़े धुलवाओ, झाड़ू-बुहारी करवाओ और देखो फिर कि उसके माथे पर शिकनें पड़ रही हैं या नहीं."

मेरी दीदी कुछ न बोली तो शुक्लाजी ने कहा, "एक ही बात है झमेले की, मैं तुम्हें बता भी चुका हूं— उसकी मां के पास देने दिलवाने को कुछ नहीं है— दहेज में शायद कुछ भी न दे पायें. देने को बस लड़की ही लड़की है यह. अगर तुम इसी पर संतोष कर सको..."

मेरी दीदी ने पहिली बार मुंह खोला, हौले से बोली, "मैंने दहेज की कभी कोई कल्पना ही नहीं की है."— शुक्लाजी ने गद्‌गद् कंठ से कहा, "मैं जानता था, तू यही कहेगी. तो अब तू सरस्वती को दो-चार दिन अपने पास ही रहने दे. देख ले उसका शील-सौजन्य, गुण-अवगुण काम का सलीका, अच्छाई-बुराई. मैं उसकी मां को तार किये देता हूं कि मैंने उसे रोक लिया है. लेकिन देखो, तुम दोनों ही उसे वास्तविकता से परिचित मत होने देना— कुछ भी जानने न पाये. मुझे पर्दे के पीछे ही रहने दो. शंकर, तू भाई, एक बार शाम को बाहर निकल जाना, लौटकर कह देना, "शुक्लाजी की खबर आ गयी है. चार-पांच दिन अभी दिल्ली में ही रहेंगे. ठीक है न? दिदिया, अब तुम लोग जाओ. नमस्ते!"...

... हम लोग लौटे तो दस से ऊपर हो रहा था. कालेज जाना न था, अभी दो दिन और अवकाश था मेरा. राह में दीदी एक शब्द न बोली, अचरज लग रहा था. घर में घुसे तो अजीब आलम था— सरस्वती नहा-धोकर गीली केश-राशि छितराये, नीली पाड़ की शुभ्र धोती पहिने, रसोईघर के आगे बैठी अंगीठी सुलगा रही थी— पंखा फट्-फट् करती. कोयलों से उठती हल्की धुंए की रेखा आकाश की ओर चली जा रही थी. सरस्वती का यह नया रूप, ये गीले केश, यह धुली-निखरी मुखश्री, यह अंगीठी पर पंखा झलना, यह आत्मीयता—यह सेवा भाव— एक अव्यक्त मधुर भावना से मेरा संपूर्ण हृदय भर उठा. अकुलाकर अपने कमरे की ओर लपका तो सुन पाया, वह मुझे पुकारकर कह रही है, "बंधु, मैंने तुम्हारे मैले कपड़े धो डाले हैं. अपने भी धोये और तुम्हारे भी. देख लो, अरगनी पर फैले हैं सब." ...दीदी कुछ बोल नहीं रही थीं. आंखें फाड़े, स्तब्ध खड़ी अपना घर-आंगन निहार रही थीं. सरस्वती ने सारा घर झाड़-बुहारकर धो डाला था. दीदी मौन साधे ही एक बार पूजा-घर में झांकी, मेरे कमरे में झांकी फिर रसोईघर में झांककर देखा— सब ओर मानो शुचिता छा गयी थी. सारा परिवेश मानो सरस्वती के हाथों का स्पर्श पाकर पावन हो उठा था. यह मात्र दो-तीन घंटे का अध्यवसाय— सरस्वती की लगन— मैं अवाक् होकर कमरे में बैठा था. दीदी मुंह से कुछ न कहकर उसके पास जमीन पर जा बैठी थीं और पागलों की तरह उसे निहारे जा रही थीं.... कोयले सुलग गये हैं, देख पाकर सरस्वती ने पंखा एक ओर रख दिया और उन्मुक्त प्रसन्नता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौदह वर्षीय बिस्मिल

जब मैं उर्दू का चौथा दर्जा पास कर के पांचवें में आया उस समय मेरी अवस्था चौदह वर्ष की होगी. इसी बीच मुझे पिताजी की संदूक से रुपये-पैसे चुराने की आदत पड़ गयी थी. इन पैसों से उपन्यास खरीदकर खूब पढ़ता. पुस्तक विक्रेता महाशय पिताजी की जान पहचान के थे. उन्होंने पिताजी से मेरी शिकायत की. अब मेरी कुछ जांच होने लगी. मैंने उन महाशय के यहां से किताबें खरीदना ही छोड़ दिया. मुझमें दो-एक खराब आदतें भी पड़ गयीं. मैं सिगरेट पीने लगा. कभी-कभी भंग भी जमा लेता था. कुमारावस्था में स्वतंत्रतापूर्वक पैसे हाथ में आ जाने ने और उर्दू के प्रेम-रसपूर्ण उपन्यासों तथा गजलों की पुस्तकों ने आचरण पर भी अपना कुप्रभाव दिखाना आरंभ कर दिया. घुन लगना आरंभ ही हुआ था कि परमात्मा ने बड़ी सहायता की. मैं एक रोज भंग पीकर पिताजी की संदूकची में से रुपये निकालने लगा. नशे की हालत में होश ठीक न रहने के कारण संदूकची खटक गयी. माताजी को संदेह हुआ. उन्होंने मुझे पकड़ लिया. चाभी पकड़ी गयी. मेरे संदूक की तलाशी ली गयी. बहुत से रुपये निकले और सारा भेद खुल गया. मेरी किताबों में अनेक उपन्यासादि पाये गए जो उसी समय फाड़ डाले गए.

परमात्मा की कृपा से मेरी चोरी पकड़ ली गयी, नहीं तो दो-चार वर्ष में न दीन का रहता न दुनिया का.

इसी प्रकार की कुटेवों के कारण दो बार उर्दू मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका. तब मैंने अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा जाहिर की. पिताजी मुझे अंग्रेजी पढ़ाना नहीं चाहते थे बल्कि किसी व्यवसाय में लगाना चाहते थे, किंतु माताजी की कृपा से मैं अंग्रेजी पढ़ने भेजा गया. दूसरे वर्ष जब मैं उर्दू मिडिल की परीक्षा में फेल हुआ उसी समय पड़ोस के देव मंदिर में, जिसकी दीवार मेरे मकान से मिली थी, एक पुजारीजी आ गए. आप बड़े ही सच्चरित्र व्यक्ति थे.

मैं मंदिर में जाने-आने लगा. कुछ पूजा-पाठ भी सीखने लगा. पुजारी जी के उपदेशों का बड़ा उत्तम प्रभाव हुआ. मैं अपना अधिकतर समय स्तुतिपूजन तथा पढ़ने में व्यतीत करने लगा. पुजारीजी मुझे ब्रह्मचर्य पालन का खूब उपदेश देते थे. वह मेरे पथ-प्रदर्शक बने. मैंने एक दूसरे सज्जन की देखा-देखी व्यायाम करना भी आरंभ कर दिया. अब तो मुझे भक्ति मार्ग में कुछ आनंद प्राप्त होने लगा और चार पांच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा. मेरी सब बुरी आदतें तथा कुभावनायें जाती रहीं. स्कूलों की छुट्टियां समाप्त होने पर मैंने मिशन स्कूल के अंग्रेजी के पांचवें दर्जे में नाम लिखा लिया. इस समय तक मेरी और सब कुटेवें तो छूट गयी थीं, किंतु सिगरेट पीना न छूटता था. मैं सिगरेट बहुत पीता था. एक दिन में पचास-साठ सिगरेट पी डालता था. मुझे बड़ा दुःख होता था कि मैं इस जीवन में सिगरेट पीने की कुटेव को न छोड़ सकूंगा. स्कूल में भरती होने के थोड़े दिनों बाद ही एक सहपाठी श्रीयुत सुशीलचंद्र सेन से कुछ विशेष स्नेह हो गया. उन्हीं के कारण मेरा सिगरेट पीना भी छूट गया. □

(रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा से)

भरी कहने लगी, "दीदी, तुम्हारे पीछे एक छोटी-सी घटना हो गई यहां. गंदे पानी की बाल्टी लेकर मैं बाहर नाली में डालने गयी. मैंने पानी उछाला कि ठीक उसी क्षण में एक बुड्ढा फलवाला मुसलमान बीच में आ गया. बाल-बाल बचा वह. वर्ना गंदा पानी ठीक उसके जूतों पर पड़ता— छींटे तो फिर भी पड़ ही गये जूतों पर. मैंने घबराकर नीचे को झुककर उसे 'सलाम' किया और विनय करके कहा, 'अब्बा जी, मुझसे गलती हो गयी. माफी चाहती हूं.' ... तो उस बूढ़े मुसलमान ने क्या किया— जानती हो? अपना फलोवाला टोकरा हमारे चौंतरे पर रख दिया और खुश होता बोला, 'माफी क्यों मांग रही हो बिटिया रानी, तुमने तो ऐसी कोई खता ही नहीं की है, और मान लो पानी मेरे ऊपर पड़ ही जाता, तो कौन गजब हो जाता? मान लो, मेरी अपनी बेटी ही अनजाने यह गलती कर बैठती, तब? और तुमने अभी मुझे 'अब्बा जी' कहकर पुकारा है, तो तुम भी तो मेरी बेटी हुई न?' — और इतना कह उस वसीयदिल वाले ने अंगूरों का एक गुच्छा उठाया और मुझे पकड़ाता बोला, 'ये ले अपना इनाम— पानी फेंकने का.' — हंसा खूब और टोकरा उठाया और आगे चला गया.— मैंने तभी भीतर आकर धीरे-धीरे आधे अंगूर टूंग लिये और आधे रख दिये बंधु के लिये. अंगूर खूब मीठे थे. मजा आ गया. दीदी, मैंने अंगूर धोये भी नहीं. धोती भला कैसे? वह जो 'अब्बा जी' के स्नेह भरे हाथों का स्पर्श उनमें लगा था— वह धुल जाता— इसलिये. दीदी, इस चराचर विश्व में प्यार— करुणा— स्नेह— ममता— इनसे बढ़कर मूल्यवान और कुछ नहीं है. मैं सच कहती हूं, तुम मुझे वही प्यार दे दो— बदले में चाहे मेरी जान ले लो."— वहीं से चिल्लाकर बोली, "बंधु, तुम्हारे अंगूर वहीं मेज पर रक्खे हैं. खा लो."

मेरी दीदी गद्‌गद् हो रही थी उसकी बातों पर कि वह कह उठी, "दीदी, मैंने अंगीठी सुलगा ली है. मेरी प्रबल इच्छा हो रही है कि आज का खाना मैं ही बनाऊं. दीदी, क्या— क्या बनेगा— यह तुम मेरी पसंद पर छोड़ दो. मैंने सब देख-भाल लिया है. यह तो माता अन्नपूर्णा का भंडार है. सभी कुछ तो है यहां. शाक-सब्जी भी है, थोड़ा दही भी है. आज जरा अपनी सरस्वती का पाक-कौशल भी तो देखो तुम. दीदी, आज्ञा है न? तो अब मुझे लग जाना चाहिये. शुभस्य शीघ्रम्." मेरी दीदी का शायद कंठावरोध हो रहा था. कठिनता से कह पायी, "ठीक है, तुम्हीं बनाओ खाना."

इतने सालों से दीदी के हाथों बना खाना खाता आया हूं. उस स्वाद से चिरपरिचित हूं, परंतु सरस्वती के द्वारा बनायी गयी, रोजमर्रा की वे ही साधारण चीजें— दाल, तरकारी, सूखी सब्जी और रायता, आज अपने विशेष आस्वाद का परिचय दे रही थीं. मुझे हर चीज इतनी अधिक स्वादिष्ट क्यों लग रही है?— खाते समय, खाकर कमरे में आकर लौटने पर भी यह प्रश्न मेरे मन में उठता ही रहा.

यहां लेटा-लेटा ही सुन रहा हूं— सरस्वती बोल रही है, "दीदी, उपनिषद कहता है— 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' — दूसरों को खिलाकर जो बच रहे, अन्न खाना चाहिये. दीदी, मेरे स्वर्गीय पिता जब तक जिंदा रहे— प्रायः प्रतिदिन ही कोई न कोई अतिथि हमारे यहां भोजन करता रहा. पिता स्वर्ग चले गये, अतिथियों का आना रुक गया. तो भी यदा-कदा कोई गांव से आ जाता, गाहे-बगाहे ये ताऊजी ही पहुंच जाते, तो मुझे इत्ती खुशी लगती कि क्या बताऊं!— नहीं तो मेरी मां खाना बनाकर सबसे पहिले अपनी गौमाता को 'गोग्रास' खिलाती, अपने तोताराम की कटोरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरती, कुतिया को रोटी दे देती, फिर मुझे पुकारती.

दीदी, मेरी इतनी उमर हो गयी, पर अब भी मां मुझे अपने साथ एक ही थाली में खाना खिलाती है. मां के साथ बैठकर एक थाली में खाते जो परमास्वाद का अनुभव होता है– सारी दुनिया के स्वाद उसके आगे तुच्छ लगते हैं दीदी. यह रायता इसी कटोरी में तुम्हें दे दूं न?" ..पलंग पर पसरा मैं थोड़ा उनींदा हो रहा था कि वह आन पहुंची. कुरसी खींचकर मेरे नजदीक डाल ली और सहसा ही पूछ बैठी, "बंधु, भोजन कैसा लगा? दीदी के हाथों बने भोजन की तरह ही स्वादिष्ट लगा न?" – मैंने जवाब दिया, "खूब स्वादिष्ट लगा."

वह जरा रुकी, फिर कहने लगी, "यह स्वाद कहां से आता है, क्यों आता है, जानते हो? किसी रोगी व्यक्ति के पास बैठो तो रोग के कीटाणु लग जाने का भय रहता है. ठीक इसी तरह मानव की भावनाओं, सद्-असद् विचारों के असंख्य 'अणु' उसके समस्त शरीर से प्रवाहित होते रहते हैं, जो इतने सूक्ष्म होते हैं कि किसी तरह देखे नहीं जा सकते.

अब यह जो एक मधुर प्रेम की भावना होती है–जन्मजात, शाश्वत और सहज प्रेमभावना– हर नारी के हृदय में, उसी प्यार के असंख्य, अदृश्य अणु-परमाणु नारी के तन और मन से निर्झरित होते रहते हैं. भोजन का यह स्वाद उसी प्रेममयी भावना का होता है. उसके हाथों का स्पर्श होते-होते हर खाद्य पदार्थ में प्यार के वे अणु घुल-मिल जाते हैं, तो एक तो प्यार का स्वाद दूसरा अन्न का स्वाद– ये दोनों स्वाद मिलकर एक अपूर्व आस्वाद की सृष्टि कर देते हैं. यही रहस्य है इसका...

बंधु, जितनी देर खाना बनाती रही, उसी प्यार में डूबी रही– तुम्हारे लिये, दीदी के लिये प्यार उमड़ता रहा. मनःप्राणों में. प्यार झरता गया, खुश होती गयी खाना बनाती गयी.

बंधु, भगवान की इस सुरम्य सृष्टि में, प्यार से बढ़कर महिमाशाली वस्तु और कोई नहीं है. तुम मेरी बात का विश्वास करो. इसी प्यार को लेकर अभी-अभी क्या हुआ है– जानते हो? सुनो, दीदी के साथ एक ही थाली में खाकर आ रही हूं मैं. भला सोचो तो, एक अज्ञात कुलशीला लड़की को एक परम शुचिता का पालन करने वाली नारी अपने साथ बिठाकर खिला रही है! यह दृश्य अगर तुम देख पाते...

और ठीक मेरी मां की तरह दीदी कहे जा रही थीं, 'और खा, और खा.' और मैं उनकी आज्ञा मानती गयी, खाती गयी और खाती गयी. समझो कि 'भोजन भट्ट' हो गयी. अब मेरे उदर की स्थिति जरा गंभीर है. इसीलिये तुम्हारे पास चली आयी– थोड़ी गपशप करूं– थोड़ा पाचन हो. क्या मैंने, तुम्हारी दिवा-निद्रा में विघ्न डाला है? उठ जाऊं क्या?"

"नहीं-नहीं, बैठो तुम, जी भरकर गपशप करो. मजा आ रहा है." मैंने कहा.

"तो फिर उठकर बैठो न, तुम लेटे-लेटे सुनोगे और मैं बकती रहूंगी. बंधु, ठीक नहीं लग रहा है." मैं लेटे से उठ बैठा. कहा, 'अब सुनाओ!"

बोली, "बहुत ही मधुर क्षणों के बीच समय बीत रहा है– शाम तक, रात तक यह आनंद उपभोग करती रहूंगी. फिर ताऊजी आ जायेंगे. सबेरे तुम मुझे साथ लेकर उनके यहां पहुंचोगे और फिर मेरी 'अग्नि-परीक्षा' की घड़ी आ जायेगी. बंधु, केस सीरियस है, इसलिए तुम इसे सीरियसली सुनो. मैंने दीदी को राजी कर लिया है. वे मेरे साथ ही उस बुढ़िया के पास जायेंगी और फिर नमक, मिर्च, मासाला लगाकर मेरी तरफ करेंगी कि–ऐसी लड़की तुम्हें कहीं ढूंढे न मिलेगी. बुढ़िया के आगे सारी बातें दीदी ही बोलेंगी. मुझसे 'डाइरेक्ट' कुछ पूछा जायेगा तो मैं सिर झुकाये अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में उत्तर दूंगी. दीदी ने मुझे सिखा दिया है. छोटा-सा घूंघट काढ़े बैठी रहूंगी, चुपचाप जमीन की ओर ताकती–यह सब तय हो चुका है. तो इधर वाला मोर्चा तो समझो दीदी ने सम्हाल लिया है– फतह होगी हमारी. अब उधर वाला जो मोरचा है, उसे तुम अपने जिम्मे लो. मेरा मतलब है, वह जो कोई एक्स-वाई-जेड है लेक्चरार– उसे शादी के लिए राजी करना है तुम्हें. पूरी ताकत लगाना बंधु– 'आपत काल परखिये चारी– धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी' सो तुम्हारी भी समझो परीक्षा है. मित्र की कर्तव्य-निष्ठा का पालन करना है. और देखो, तुम जो कुछ भी मेरे विषय में कहोगे– सत्य ही कहोगे! भली-बुरी जैसी भी हूं– तुम्हारे सामने हूं और तटस्थ होकर मैं स्वयं ही अपना 'आत्म-निरीक्षण' करती हूं तो 'फिट' पाती हूं अपने को किसी की भी 'जीवन-सहचरी' बनने के लिये." वह जरा रुकी, फिर कहने लगी, "बस, एक ही त्रुटि है मुझमें. बहुत बड़ी खामी कहो, दोष कहो– वह है– मेरा वाचालपना, बहुत ज्यादा बोलती हूं मैं– जरूरत से ज्यादा. परंतु बंधु, यह जो मेरी 'बक-बक' करने की आदत पड़ गई है, इसका रहस्य जानते हो? वस्तुतः यह मेरे स्वर्गीय पिता की अनोखी देन है....

वे अपने पुस्तकालय से कोई भी ग्रंथ लाकर मुझे दे देते. मैं उसे पढ़ती रहती–पढ़ती रहती. जब पूरा पढ़ लेती तो पिता मुझसे पूछने बैठ जाते. उसी ग्रंथ से संबंधित प्रश्न उठाते और मैं उत्तर देती. इसी में फिर बहस छिड़ जाती बाप-बेटी में. समझो, तगड़ा शास्त्रार्थ होता. पिता कभी गरम हो जाते तो मैं भी जोर-जोर से बोलने लगती. पिता कभी डांट कर कहते, 'एक झापड़ दूंगा अभी!' – तो मैं कहती, 'मारो, मैं तुम्हारे हाथ में काट खाऊंगी.' और तब पिता ठहाका मारते, मैं भी खिलखिलाती. अजीब दृश्य हो जाता था वह...

बंधु, वे दिन याद आते हैं तो कलेजा मुंह को आता है. कहां चले गये मेरे प्यारे पिता, कहां– किस नक्षत्र लोक में जा बैठे, सरस्वती को इस भवसागर में अकेला तैरते छोड़कर!" कहते-कहते वह उदास हो गयी और खिड़की के उस पार अनंत आकाश को ताकती जाने क्या सोचने लगी. मेरी समझ में नहीं आ रहा था, क्या कहूं उससे!

तनिक देर बाद, मानो उसने याद करके कहा, "बहुत दिन हुये, हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़े. उसमें एक प्राचीन कवि का जीवन-परिचय पढ़ा था. कोई युवा संन्यासी था, जिसने बहुत-सा ज्ञान अर्जित कर लिया था– मेरी तरह. पचा नहीं पाया था– मेरी तरह. इसलिए सदा 'बक-बक' करता रहता था– मेरी तरह. हर किसी से शास्त्रार्थ करने बैठ जाता और तर्क-कुतर्क करने अपना पक्ष सही सिद्ध करने की चेष्टा करता. देख पाकर एक दिन गुरु ने खिन्न होकर उससे कहा, "अरे दुष्ट, इससे तो अच्छा था–तेरी जीभ, चाम की न होकर, काठ की होती." युवा संन्यासी कवि ने अनुताप करके एक छोटा-सा काठ का खोखा बनवाया और अपनी जीभ उसी काठ के खोखे में डालकर जीवन यापन करने लगा. उसने यों वाक्-संयम कर लिया. उसकी कविता के कुछ दो-चार उदाहरण दिये गये थे इतिहास में. उन्हीं में यह पंक्ति मैंने पढ़ी, 'पुनि जीभ काठ सों मढ़ि लई' बंधु, यही उस 'काष्ठ जिह्व स्वामी' की सत्य कहानी है. पढ़ कर दिल भर आया था मेरा. मैं भी ऐसा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लूं. 'काठ की जीभ' बनवा लूं. पर वह तो पुरानी कथा है. आज के युग में भला वह प्रक्रिया कैसे चल सकेगी? सोचती हूं, सारे असाध्य रोगों पर नयी-नयी दवाओं के आविष्कार हो रहे हैं. तब शायद किसी मनोवैज्ञानिक ने इस रोग की दवा भी ईजाद की हो. कोई कैप्सूल हो ऐसा कि जिसके सेवन से आदमी मितभाषी हो जाय. क्या यह संभव नहीं है?''

मैंने इस पर अपनी कोई सम्मति न दी...

परंतु उसने इधर ध्यान न दिया. जरा रुक कर आगे कहने लगी— ''प्राध्यापक, मेरी सहेलियां और मेरी मां— सभी मेरे इस अक्षम्य अपराध को क्षमा देते रहे हैं. यहां आयी हूं तो तुम और दीदी भी मेरे दिये इस कष्ट को सहे जा रहे हो. पर वह जो कोई एक्स-वाई-जेड है, शादी होने के बाद, वह मेरी इस गुस्ताखी को माफ कर पायेगा या नहीं, यह एक अहम् सवाल जरूर है. परंतु बंधु, पहिले शादी भी तो हो. गांव बसने नहीं पाया, बिल्लियां रोने लगीं. अच्छा बंधु, मान लो— दीदी के लाख समझाने पर भी वह बुढ़िया नहीं माने, तुम्हारी हजार कोशिशों पर भी वह लेक्चरार राजी न हो, तब? तब क्या होगा? तुम्हारा क्या खयाल है? सरस्वती घोर निराशा में डूब जायेगी? नहीं बंधु, ऐसा कुछ भी न होगा. ईश्वर जानता है, मेरे मन पर इस दुर्घटना का रंच मात्र असर न होगा, विश्वास रक्खो. मैं तुम्हें यात्रा में ही बता चुकी हूं और फिर बतला रही हूं— शादी मैं केवल अपनी मां की उत्कट अभिलाषा की पूर्ति के लिये कर रही हूं और इसे मैं कोई आत्म-बलिदान मानती होऊं— ऐसा भी नहीं है. जिसने मुझे जन्म दिया है, बेशुमार दुःख-दर्द कष्ट सहकर मुझे पाला-पोसा है, पढ़ाया-लिखाया है, दिन-रात मेरे ऊपर अपने प्राणों की छाया किये रही है— तो उसका यह जो इतना भारी ऋण लिये बैठी हूं— उस ऋण का थोड़ा-बहुत निस्तार ही कर पाऊंगी, कोई 'त्याग' नहीं होगा यह, जिसकी डींग हांकूं.

परंतु अगर यहां भी नाकामयाबी होती है, तो मैंने सोच रक्खा है कि यही मेरे विवाह-प्रकरण का अंतिम अध्याय होगा. एंड इट इज़ माई डिटरमिनेशन— इस कांड के बाद फिर मैं हरगिज शादी न करूंगी. मां को समझा लूंगी, मां को समझना ही पड़ेगा— क्या किया जाय! 'जब लिखा न विधि सरसुती विवाह.'...

बंधु, यह जो जरा-सी जिंदगी है मेरी, इससे अगर कोई सार्थक कार्य सिद्ध हो सके तो मैं अपना नारी-जीवन सफल मानूंगी. जाने कितने कार्य मेरे लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं— बड़ी लंबी लिस्ट है उनकी. देखो, कितना क्या कर पाती हूं. बर्नार्ड शा ने कहा है कि आदमी की उम्र कम से कम तीन सौ साल होनी चाहिये. सौ साल तक तो वह बच्चा ही रहता है, जब कुछ समझने के काबिल होता है तो कब्र में जा सोता है. मुझे जफर का यह कलाम अक्सर याद आता रहता है...

'उम्रे दराज मांगकर लाये थे चार दिन,
दो आरजू में कट गये, दो इंतजार में.'

पर मेरी आरजू क्या है? मैं तो अपने नारायण से यही कहती हूं— **'यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते'**— देवता और पितर जिस मेधा की उपासना करते रहे— प्रभु, मुझे वही 'मेधा' दे दो— और कुछ नहीं चाहिये मुझे. प्रकाश की एक किरण दे दोगे तो उसी के सहारे मेरी छोटी-सी नैय्या पार लग जायेगी...

मुझे संस्कृत 'एपिक्स' पर कुछ गंभीर गवेषणा करनी है, पुराणों के कुछ महत्वपूर्ण अंशों पर सार्थक वर्क करना है. सृष्टि के काल-क्रम के विषय में जो सामग्री छितरी पड़ी है, उसका संचय करके वास्तविक तथ्यों को उजागर करना है. अपने स्वर्गीय पिता की अंतिम इच्छा— मैं हर हालत में उसे पूर्ण करके ही दम लूंगी, चाहे कितने ही साल लगें— पूरी जिंदगी लग जाय मेरी. तो बंधु, यह तो मेरा बाहुबल है, लोक बुद्धि है-इसका उपयोग मैं दूसरी ओर करूंगी— बल्कि कहो, कर रही हूं.

मैंने एक 'मोरचा' खोल रक्खा है, जिसमें शुरू-शुरू में पड़ोस की सिर्फ पांच लड़कियां शरीक हुई थीं और अब उनकी संख्या बढ़कर बीस के करीब हो गई है. हमारी यह छोटी-सी सेना, जिसकी मैं ही सी.इन.सी. हूं.— यानी कमांडर इन चीफ— अपने रूप में एक 'चीज' है. अपने कर्त्तव्यों में बराबर संलग्न है. कितना उत्साह है उन सब लड़कियों में, बतला नहीं सकती. उन्हें झखझोरती रहती हूं कि ऐसे रहो, ऐसे चलो, ऐसे बढ़ो. नादानो, यह तुम्हारे 'मेक अप' का जमाना नहीं है— 'वेक अप' का है. आंखों से दीख नहीं रहा है तुम्हें कि—पूरा 'नेशन' बीमार हो गया है. पूरा देश ही रोगी है. तुम इस ओर से चलो, अपनी नारी-जाति की नब्ज पकड़ो. गरदन की कौन-सी नस टूट गयी है उसकी, कलेजे में कहां गहरा घाव है चेक-अप करो तुम. इलाज करो कुछ.

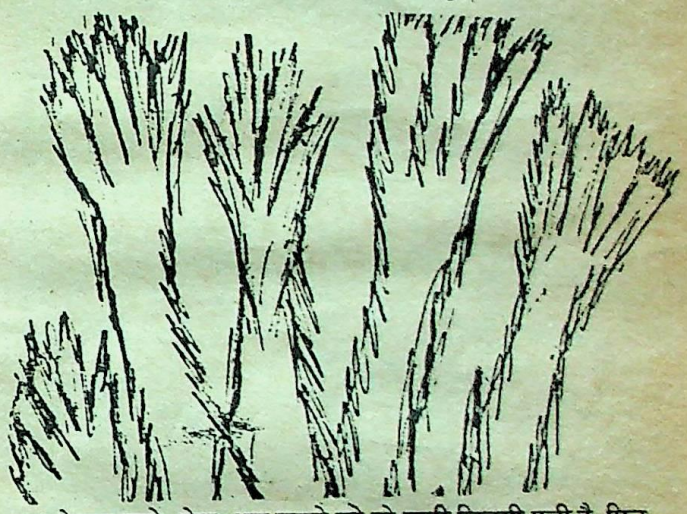

आपरेशन करो. मेक-अप करने को तो सारी जिंदगी पड़ी है. फिर सज लेना, अभी नहीं....

बंधु, मेरी कुछ 'जासूस' हैं, जो घर-घर जाकर गुप्त रूप से पता लगाती हैं कि—किस बंद मकान में किस नारी पर क्या अत्याचार हो रहा है और फिर हम उसका कुछ न कुछ प्रतिकार खोजते हैं. केस गहरा हुआ तो फिर पुलिस को इनफार्म करते हैं. अखबारों में रिपोर्ट देते हैं. लेकिन बंधु इस प्रसंग में मुझे एक बड़ा विचित्र अनुभव हुआ. मैंने पाया— नारी ही स्वयं नारी की असली दुश्मन है. एक नारी दूसरी निर्बल नारी पर जितना जुल्म ढाती है, कोई मर्द शायद वैसा कभी न कर सके. कितनी अजीब बात है यह! इस प्रसंग में, हमारा गत वर्ष का रेकार्ड है— दो केस दहेज के, चार केस बहुओं पर उत्पीड़न के. तीन केस भ्रष्टाचार के और एक केस बलात्कार का. यही छोटी-सी सूची है हमारे निरंतर जारी क्रिया-कलापों की. लो, अपनी फौज की कारगुजारी का एक ताजा-तरीन किस्सा तुम्हें सुनाऊं, मेरी जासूस ने आकर खबर दी— गली के नुक्कड़ वाला पंडिता ब्राह्मण का बच्चा अपने दो बेटों के साथ हेरोइन, चरस वगैरह का धंधा करता है. रात के अंधेरे में गाहक आते हैं, पुड़िया खरीदते हैं, और कभी-कभी लंबा हाथ मारा जाता है. हजारों के वारे-न्यारे हो जाते हैं पंडिता के...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन डूबे, शाम के झुटपुटे में, तकरीबन बीस लड़कियां, गली के बीच खड़ी, भोंपू लगाकर जोर-जोर से चीख रही थीं, "जहर के सौदागरों का नाश हो— नाश हो.' 'कौम को मारनेवाले— मुर्दाबाद— मुर्दाबाद' ... 'नशीली चीजों का धंधा करने वाले— मुर्दाबाद— मुर्दाबाद.'

गली में दोनों ओर सारे मकानों की खिड़कियां खुल गयी थीं. लोग-लुगाइयां और बच्चे-कच्चे झांक रहे थे और खुश हो रहे थे. सिर्फ पंडिता की खिड़कियां बंद थीं.—आधा घंटा चीखकर सेना लौट आयी.

...हमने दो दिन प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा की. पता चला— कुछ भी भाव नहीं हुआ है. धंधा-चालू है— तब सी.इन.सी. को फिर बिगुल बजाना पड़ा. परंतु इस बार हमने जो नारे लगाये— बहुत वज़नी थे.

'इन पापियों को कोई दो अंजलिं पानी देने वाला न रहे!' 'जहर के सौदागरों की औलाद को भवानी उठा ले जायें. इनके तन गल जायें— इनका सर्वनाश हो जाये.' — मेरे सैनिक चिल्लाते रहे. कोई रोकने न आया हमें. चीखते-चीखते गले पड़ गये तो चले आये सीना ताने...

और बंधु, दूसरे ही दिन पंडिता की घरवाली मेरी मां के पास भागी-भागी आयी. पैर पकड़ लिये मां के. गिड़गिड़ाकर बोली, "अपनी बिटिया को रोक लो. हमें ऐसे न सरापे. कन्याओं का शाप

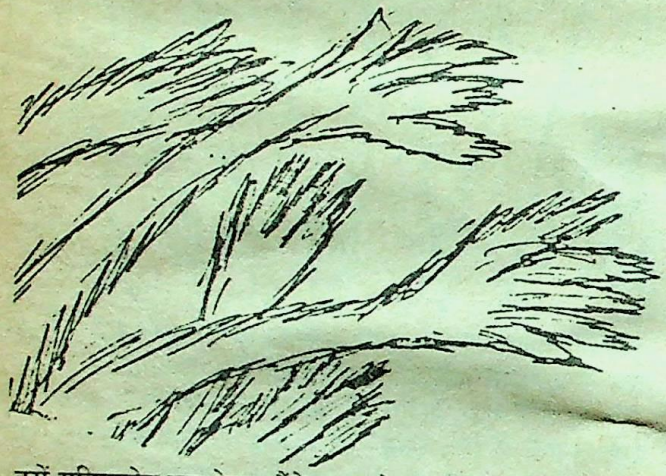

हमें मटियामेट कर देगा. मैंने धुन्नू के बापूका धंधा रुकवा दिया है. गंगा मैया की सौंगंध, धंधा नहीं करेगा वह. दोनों बेटों के सिर की कसम खा रही हूं— उन्हें यह धंधा नहीं करने दूंगी. नहीं करने दूंगी."

"...और बंधु, अपने मुहल्ले में, हेरोइन—चरस की बिक्री इस तरह बंद करा दी हमने. बहुत छोटा-सा काम हुआ यह. पर कुछ हुआ तो सही. 'बूंद-बूंद से घट भरे'— यों ही बढ़ते-बढ़ते कभी हम बड़े काम भी कर पायेंगे. मैं तो यही विश्वास पाले हूं— आगे ईश्वरेच्छा."

...सोचा तो बहुत कुछ है— अब जितना कर सकूं. और अगर बीच राह में ही मौत आन पहुंची मेरी अयादत को? तो फिर चले जायेंगे हम, कोई गम नहीं. 'लायी हयात—आये! कजा ले चली-चले अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले.'

"जाऊं, दीदी के कमरे में जाऊं, थोड़ी देर लोट लगाऊं."— कहकर वह उठ गयी थी. मैं पलंग पर आंखें मूंदे, चित पड़ा यही सोचता रहा कि— कहां से, भोजन के स्वाद से, उसने बात उठायी थी और फिर कहां—मौत पर जाकर बात ताड़ दी.— कैसा अनोखा व्यक्तित्व है यह! आज तक मेरा अनदेखा और अनजाना. सोने की चेष्टा करने लगा. नींद न आयी. उठ बैठा. बाथ-रूम गया. हाथ-मुंह धोकर उधर से लौट रहा था. नजर चली गयी, देखा— दीदी लेटी है, उनके पांयते बैठी सरस्वती कुछ कह रही है. क्या कह रही है? ओट में खड़ा होकर सुनने लगा, "दीदी, अभी मैं तुमसे श्रीमद्भागवत की बात कह रही थी न, दीदी, दशमस्कंध में भगवान वेदव्यास ने जो प्रभु की रामलीला का वर्णन किया है... उस 'महारास' का रहस्य भला साधारण पाठक कैसे समझ सकता है? रहस्य तो रहस्य होता है— छिपा हुआ ही अच्छा लगता है. दीदी, मैं अल्पबुद्धि जो कुछ जान पायी हूं, वह यही है कि— यह जो आदमी का अहंभाव है— अहंकार की दुर्घटना है— इसका नाश किये बिना प्रभु के निकटस्थ होना असंभव है. तुम चाहे कितने ही भक्ति के राग अलापते रहो— विश्वात्मा से तुम्हारा सायुज्य नहीं ही होगा. यही यह गूढ़ रहस्य है दीदी जिसे भगवान् वेदव्यास ने अपने महाकाव्य के माध्यम से हम अज्ञानियों के कल्याण हेतु गुंफित कर के रख दिया है. और दीदी, बाइबिल पढ़ती रही हूं मैं. आहा, महाप्रभु ईसा की अमृतवाणी मैंने सुनी. गद्गद् हो गई. प्रभु ईसा कहते हैं— "सारे पापों की क्षमा है, परंतु अहंकार एक ऐसा पाप है, जिसकी कोई क्षमा नहीं.' —देखो तो, कहां भारत भूमि— कहां जेरूसलम! परंतु एक ही वाणी—एक ही स्वर— एक ही ध्वनि— यहां से वहां तक गुंजरित हो रही है. समस्त विश्व एक है, सारे मानव एक हैं. संसार के सारे मानवों के हृदय एक हैं. हाय, यह सब मैंने जिस दिन जाना— विह्वल होकर रोई मैं. ओ मेरे पिता तुम कहां हो? मुझ अकिंचन को ज्ञानदीप दिखाने लगे, तुम कहां चले गये?" सरस्वती की आवाज रुक गयी. सरस्वती सिसक रही है क्या? मैं कान लगाये खड़ा रहा— खड़ा रहा. और तब अपनी दीदी का मोह भरा स्वर सुन पाया, "इधर आ, मेरे पास आ." सरस्वती दीदी के पास को सरकी है शायद. दीदी ने उसकी पीठ पर हाथ रख दिया है सांत्वना का, या दीदी ने उसे अपने पास लिटा लिया है, अपने कलेजे से सटा लिया है, और फिर दोनों मूक रह गई हैं. मैं कुछ नहीं देख पाया, कुछ नहीं जान पाया. दबे पैरों अपने कमरे में चला आया...

जैसा कि शुक्लाजी ने प्लान बना दिया था.— मैं बाहर गया और दिन डूबते-डूबते लौट आया. घर में घुसा. देखा—दीदी कनस्तर सामने रक्खे आटा छान रही है और सरस्वती पास बैठी चाकू से सब्जी काट रही है. मैं उसी के आगे जा खड़ा हुआ. संदेश सुनाया— शुक्लाजी दिल्ली से नहीं लौटे. ब्राह्मण सेवक के नाम चिट्ठी आयी है— दस-ग्यारह तारीख तक लौटेंगे. आज सात तारीख है.

सरस्वती ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न की. उसी तरह चाकू चलाती रही. मैं कमर पर दोनों हाथ रक्खे उसके सामने खड़ा था. कुछ कहे यह... उसने आखिरी आलू के टुकड़े किये. चाकू नीचे रक्खा. फिर दोनों घुटनों को हाथों में लपेट, शांत स्वर में कहने लगी, "अच्छा हुआ, ताऊजी नहीं आये. अब भाड़ में जाय वह खूसट बुढ़िया और उसका लल्लू-मटल्लू. धूल डालो इस किस्से पर. हो गई सरस्वती के विवाह-प्रकरण की इतिश्री. झमेला खतम 'इट इज आल फार द बेस्ट'— ईश्वर जो कुछ करता है, भला ही करता है. जान बची तो लाखों पाये—लौट के बुद्धू घर को आये. अब आज की रात चैन से घोड़े बेच कर सोऊंगी— फिर कल सबेरे ही अपना कूच है. शाम तक घर पहुंच जाऊंगी. मां को सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार सुनाऊंगी. मां जरूर दुखी होगी. उसे समझाऊंगी, 'तकदीर में यही था... मैया मेरी, मत रो, सावन के बादलो!' अरे ये बीच में बादल कहां से आ गये!" उसने सिर उठाकर आसमान को ताका– आसमान साफ था और वह खिलखिला उठी. हम लोग भी हंसने लगे. हंसी रुकी तो जैसे याद करके बोली, "दीदी, हरा धनिया तो है न? लाओ, उसे भी काट दूं."...

...सबेरे सोकर उठा तो पूजा-गृह से एक नहीं– दो मधुर-मधुर गीत ध्वनियां यहां तक बहती चली आ रही थीं. लपक कर उधर गया. देखा– राधाकृष्ण की पावन प्रतिमा के आगे दीदी से सटी बैठी, नहायी - धोयी सरस्वती, हौले-हौले मजीरे बजाती दीदी के स्वर में स्वर मिलाकर मधुर कंठ से गा रही है– "मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई." प्रतिमा के आगे मंद-मंद दीपक जल रहा है. अगरबत्ती की सुगंध उठ रही है. एक अवर्णनीय श्रद्धाभाव से हृदय उद्धवेलित हो उठा इस पवित्र मधुर-परिवेश को देखकर...

याद आया– यह तो इसी सवेरे वाली ट्रेन से कूच करने वाली थी सो क्या हुआ? रुक क्यों गयी? पता चला– दीदी ने रोक लिया है. आज बुधवार है– यात्रा के लिये शुभ दिन नहीं है...

...वह दिन कैसा बीता, क्या सुनाऊं? लगता रहा– सारे घर में, आंगन में, कमरों में– हल्का– हल्का आनंद बह रहा है. उसकी मीठी हरकतें, उसके भाष्य– कभी खुद ही हंस उठती. कभी दीदी को हंसा देती, कभी हम तीनों मिल कर ठहाके लगाते रहते.....

...दिन बीत गया. रात बीत गयी. सबेरा हो गया. आठ वाली ट्रेन से उसे जाना था. उसने जल्दी-जल्दी अपना बड़ा बैग सम्हाला. यात्रा वाला वही ड्रेस पहिन लिया. आंगन में आ खड़ी हुई.

अब दृश्य यह था कि– दीदी खड़ी थी उदास-उदास चेहरा लिये, दीदी के आगे सरस्वती खड़ी थी और उसके पीछे मैं खड़ा था– स्टेशन तक साथ जाने के लिये. तब सरस्वती अचानक ही कह उठी, "दीदी, बंधु की शादी में मुझे तुम जरूर बुलाना. भूलना मत. एक बार और इस आंगन की सुगंध पा लूंगी, एक बार और छोटा-सा सुख पा लूंगी– यहां दो दिन रह कर. अच्छा दीदी, अब हम चल दिये– 'उड़ चले पंछी– यहां से उड़ चले– तीन दिन तरु पर बसेरा कर चले.' उसने एक बार चारों ओर हाथ जोड़े. अपना बैग कंधे पर लटकाया, पर पैर न उठाये यात्रा-हेतु. और जाने कैसी होकर कह उठी, "हाय दीदी, यहां से जाने को जी नहीं हो रहा है मेरा– क्या करूं?"

आंखें छलछलायी हुई–होंठों पर बेमालूम सी मुस्कान– दीदी ने मोह से कहा, "तो मत जा, और दो-चार दिन रहले यहीं, अभी मत जा."

दुखी स्वर में बोली, "जाऊं कैसे नहीं, वह जो वहां बैठी है कोसों दूर– मेरी अम्मीजान, मेरे नाम को रोती. आज अगर न गयी तो अकुला कर मर जायेगी." कहते-कहते उसने बैग कंधे से उतार दिया. आगे बढ़ी. नीचे झुकी. दीदी के एक चरण से अपना मस्तक लगाया, फिर दूसरे चरण से मस्तक लगाकर उठ खड़ी हुई. दीदी ने उसकी पीठ पर स्नेह भरा हाथ रख दिया. बिना एक शब्द बोले उसने पुनः अपना बैग उठा लिया और बिना किसी ओर देखे, सिर नत किये बाहर को चल दी. दीदी यों ही मूर्ति बनी खड़ी रही. मैंने सरस्वती का अनुगमन किया... ट्रेन में, खिड़की के पास वाली सीट पर उसे बिठा कर मैं बाहर आ खड़ा हुआ. वह मौन बैठी थी. मैं खिड़की पर एक हाथ रक्खे खड़ा था. सहसा उसे जाने क्या हुआ,

लघु कथा

खिलाफ़ हिंसा के

अशोक गुजराती

अचानक शोर उठा तो मैंने बाहर झांककर देखा. सामने की सिन्धी की दुकान के आगे सात-आठ युवा खड़े चिल्ला रहे थे, "दुकान बंद करो, दुकान बंद करो!" पता नहीं उस दुकानदार ने क्या जवाब दिया, एक लड़के ने उसे हाथ पकड़कर दुकान से बाहर खींच लिया. बाकी लड़कों ने उसे हाथ पकड़कर दुकान से बाहर खींच लिया. बाकी लड़कों ने तुरंत उसे घेर लिया.

दुकानदार कुछ समझे इसे पहले उस लड़के ने उसके गाल पर एक जोरदार थप्पड़ जड़ दिया. अब क्या था, चारों ओर से उस पर लात-घूसों की वर्षा होने लगी. तभी एक लड़के की नजर दुकान में पड़ी एक लोहे की छड़ पर पड़ी. उसने झपटकर उसे उठाया और दुकानदार की बांह पर वार कर दिया. दुकानदार ने झट अपनी-अपनी साइकिलें संभाली और नारे लगाते हुए आगे बढ़ गये.

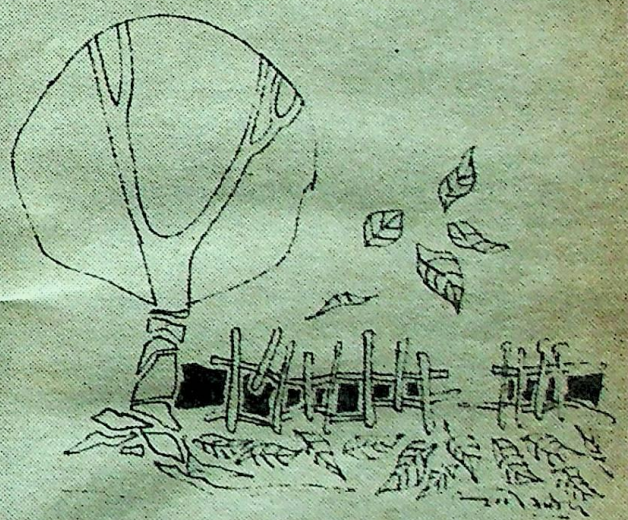

आसपास की दो-तीन बंद दुकानों के सामने खड़े उनके मालिक और मुहल्ले के कुछ लोग दूर खड़े तमाशा देख रहे थे. तभी खिड़की के पास से जा रहे एक परिचित से मैंने पूछा, "क्या बात है?"

उसने व्यंग्यात्मक लहजे में जवाब दिया, "हड़ताल है. पंजाब में पिछले दिनों हुई हिंसा की वारदातों के विरोध में." फिर सड़क पर दर्द से बिलखते उस दुकानदार की दिशा में देखते हुए वह क्रूर हंसी हंसा, "हा! हा! हा! हिंसा के खिलाफ!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने मेरे हाथ पर अपना हाथ रख लिया और हौले-हौले कह उठी, "बंधु, नरेंद्र शर्मा की कविता याद आ रही है— 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?' कब मिलेंगे प्रश्न—उत्तर कब मिलेंगे?"

मैं कुछ भी न बोल पाया, बोला ही नहीं जा रहा था. उसकी ओर निहारने लगा. पहिली बार उसकी सुंदर आंखें आंसुओं में तैरती देखी ट्रेन ने सीटी दे दी. ट्रेन रेंगने लगी. वह बहुत दूर तक उन्हीं तरल आंखों से मुझे निहारती, ट्रेन में बैठी, चली गयी...

मन बहुत भारी हो गया था. शहर को लौटना मैं रास्ते भर यही सोचता रहा कि— यह अचानक दो-तीन दिन में क्या हुआ है प्रभु, इतने अल्पकाल में इतनी आत्मीयता ले-देकर चली गयी एक लड़की, हम दोनों भाई-बहिन को पागल करके. कितना आश्चर्यजनक संयोग है यह!

शिथिल तन लिये चला आ रहा था. दरवाजे पर ही पोस्टमैन से भेंट हो गयी. मेरी चिट्ठी पकड़ाकर वह आगे बढ़ गया. भीतर घुसा. सारे घर में सन्नाटा छाया था. कहीं भी कोई आवाज नहीं है जीवन का कोई लक्षण नहीं है, मानो एक विराट शून्य में मेरा घर समा गया है. सामने, अपने कमरे में दीदी मूक होकर लेटी हैं. यह क्या कर गयी सरस्वती?

कमरे में आकर बिना कपड़े उतारे ही चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगा. मेरे प्रिय मित्र ने वीसलपुर से लिखा था, "माधुरी के माता-पिता उसे कानपुर लाने को राजी हो गये हैं. मैं भी उनके साथ आऊंगा. बोलो, कौन-सी तारीखें देते हो? तुम्हें कब सुविधा रहेगी?"

मैं वह खुली चिट्ठी लिये दीदी के पास चला आया. दीदी मौन लेटी जाने क्या सोच रही थी. मैंने चिट्ठी उनके आगे रख दी और बिना कुछ बोले चला आया. अपने कमरे में जा लेटा...

तीन साल से भी अधिक हुआ— कानपुर के एक डिग्री कालेज में 'इंटरव्यू' लेने गया था. शिवशंकर भी कैंडीडेट था. मुझे वही सब से योग्य जजा. उसी की नियुक्ति कर आया. इंटरव्यू के पूर्व, जहां मैं ठहरा था, शास्त्री जी के निवास पर, वह मिलने आया था. इंटरव्यू के बाद भी रात को फिर वहीं आ गया था और बहुत देर तक बातें करता रहा था. उससे थोड़ी आत्मीयता हो गयी थी. इस बात को तीन साल हुये या चार— याद नहीं रही. इस बार फिर कानपुर आना हुआ— एम.ए. की वाइवाबोसी के लिये, उसी डिग्री कालेज में.

परीक्षा-कार्य समाप्त करके बाहर निकला तो सामने शिवशंकर को खड़ा पाया. चरण छूकर प्रसन्न भाव से बोला, "मैं एक घंटे से आपके इंतजार में खड़ा हूं. मेरे घर चलिये." मैंने बहुत बहाने किये, पर वह ज़िद पकड़ गया. हार कर कहना पड़ा, "अच्छा चलो."...

मैं पान खाने का शौकीन हूं— शिवशंकर जानता था. सो कई बीड़े बनवा लाया था.

वह अपने घर मुझे लाकर अतिशय मुदित था. मुदित मुद्रा से बोला, "आपके आर्शीवाद से कालेज का जीवन बहुत आनंद से कट रहा है. छात्र और अधिकारीगण— सभी मुझसे प्रसन्न हैं. डी.फिल की तैयारी कर ली है मैंने."

"बहुत अच्छा किया. अब अपनी घर-गृहस्थी का हाल सुनाओ."

हंसकर बोला— "गुरू जी, खास तौर पर यही समाचार सुनाने तो आप को लाया हूं. आप तो स्वयं इतने बड़े 'कथा-शिल्पी' हैं, आज जरा मेरी कहानी भी सुन लीजिये एक बार. आप को कुछ मसाला जरूर मिल जायेगा लिखने के लिये."

"सुनाओ भाई, क्या कहानी है तुम्हारी, रुचिपूर्वक सुनूगा मैं. सुनाओ तुम."— मैंने सोफे पर सासन जमाकर उससे कहा... तब शिवशंकर ने यही 'सरस्वती' वाली कहानी सुना दी मुझे— आदि से अंत तक रस ले-लेकर.

मुझे कहानी बहुत मजेदार लगी. सीधा होकर बैठ गया और कौतूहल से पूछा, "फिर? फिर क्या हुआ? शादी कर ली न तुमने? लेकिन किसके साथ शादी की तुमने? यह तो बताओ. सरस्वती से या माधुरी से?"

तपाक से बोला, "सरस्वती से. माधुरी को तो दीदी ने अपने यहां आने ही न दिया— साफ निषेध कर दिया. लेकिन हमारी शादी के बाद, कुछ ऐसा दुर्योग आया कि साल भर बीतते न बीतते मेरी स्नेहमयी दीदी और सरस्वती की मां— आगे-पीछे दोनों ही स्वर्ग सिधार गयीं. हम दोनों दुनिया में अकेले रह गये. बड़ी दारुण आंतरिक व्यथा सही दोनों ने. फिर मिल-जुलकर अपनी गाड़ी खींचने लगे. मौज से ही कट रही थी, लेकिन फिर एक हादसा हो गया. चार महीने हुये, सरस्वती बीमार पड़ गयी, फिर उसे 'टाइफाइड' हो गया. बड़ा कष्ट झेला उसने. धीरे-धीरे फिर ज्वर से छुटकारा मिला, परंतु मेरा और उसका दुर्भाग्य देखिये कि उसकी वाक्-शक्ति जाती रही— गूंगी हो गयी वह एक दम."

सुनकर स्तब्ध बैठा रह गया कुछ क्षणों तक. फिर बल लगाकर पूछा, "अब? अब क्या स्थिति है?"

दुख मनाता शिवशंकर कहने लगा, "स्थिति यह है कि वैसे काम-काज तो सभी ठीक ढंग से कर लेती है—करती ही रहती है, बस बोल नहीं पाती. एक शब्द का भी उच्चारण नहीं कर पाती. एक गूंगे प्राणी के साथ मेरा दिन रात का जीवन बीत रहा है."

"बड़ी विषम स्थिति है यह तो तुम्हारे लिये."— सांत्वना के ये शब्द मैं कह ही रहा था कि बीच में ही शिवशंकर कह उठा, "देखिये, वह आ रही है."

मैंने चौंक कर देखा— धीमे कदम रखती, हाथों में बड़ी-सी ट्रे

धंधा

रूपक

लंबी लाइन टिकट कटाने के लिए लगी थी. अपनी बारी आने तक ट्रेन नहीं पकड़ी जा सकती थी. तभी भीख मांगती हुई वह मेरे करीब पहुंची. मैंने एक युक्ति सोच उससे कहा, "तुम मेरा टिकट करा दो मैं तुम्हें पच्चीस पैसे दे दूंगा." महिला काउंटर से उसने मुझे टिकट लेकर दे दिया.

कुछ दिनों बाद फिर टिकट लाइन में लगा था, तभी एक महिला मेरे करीब आ बोली, "बाबू टिकस कटा दूं, पच्चीस पैसे दे देना."

मैं उसे तुरंत पहचान गया, यह वही औरत थी जिसने पिछली दफा मेरा टिकट कटा दिया था. जब मैंने उसे उस दिन की याद दिलायी तो वह मुझे दुआएं देती हुयी कहने लगी, "बाबू, आपने तो मेरी जिंदगी ही बदल दी है, अब मैं यही धंधा करती हूं, सिपाही जी और टिकस बाबू को हिस्सा देकर मैं रोज-पांच-दस रुपये आसानी से कमा लेती हूं.□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़े, एक नवयुवती चली आ रही है नयन नत किये. पलक रोक कर देखने लगा. उसने सम्हालकर सामने की गोल मेज पर ट्रे रख दी. मेरी ओर मुड़ी. नीचे झुकी. मेरा चरण-स्पर्श किया और मेरे निकट वाली बेंत की कुरसी पर शालीनता से बैठ गयी सिर नत किये. आहा! यही सरस्वती है! मैं अपलक उसे निहारे जा रहा था— कैसा सलोना-सलोना, सौम्य-शांत मुख है. साधारण-सी वेशभूषा में है, पर लगा— कोई देवबाला हो जैसे. परंतु हाय, बोल नहीं सकती— बेचारी गूंगी हो गयी है. एक अव्यक्त करुण भाव से मेरा हृदय भर उठा.

शिवशंकर ने हौले से ताली बजायी. वह पति की ओर देखने लगी. पति ने हाथों से काफी बनाने के लिये इशारा किया. पर उससे समोसे वाली एक प्लेट मेरे आगे सरका दी. दूसरी पति के आगे कर दी. शिवशंकर प्रसन्न भाव से बोला, "गुरुजी, खाइये, ये समोसे बाजार के नहीं हैं, खुद इसी ने बनाये हैं. खाइये जरा गरम हैं." मैंने एक समोसा उठाया तो फिर जाने कैसी करुणा-सी लगी. गूंगी लड़की के हाथों बना समोसा, मुझसे खाते न बनता था. परंतु शिवशंकर बड़े प्रेम से समोसा खा रहा था.

पूछा— "इलाज तो चल रहा होगा गूंगेपन का. डाक्टर लोग क्या कहते हैं?" शिवशंकर मुंह चलाता बोला, "डाक्टर कहते हैं— दवा खाती रहे. धीरे-धीरे ठीक हो जायेगी. कुछ समय लगेगा."

सरस्वती प्यालों में थोड़ा-थोड़ा दूध डालकर काफी घोलने लगी. मैं सोचने को विवश हो गया कि— अभी-अभी मैंने इसकी इतनी लंबी कहानी सुनी है. काश यह 'मूक' न हो गयी होती. इस प्रबुद्ध लड़की से बातें करके कितना आनंद मिलता! यह दुखियारी जाने कितना मानसिक कष्ट झेल रही है!

सरस्वती ने सुनहली-सुनहली सुगंधित काफी के प्याले आगे बढ़ा दिये. मैं और समोसा न उठा सका. अकारण ही अपने प्याले में चम्मच घुमाता, अन्यमनस्क भाव से पूछने लगा, "वैसे तुम जो कुछ कहते हो, उसे समझ तो लेती है." "सब समझ लेती है. किसी भी काम में गफलत नहीं करती-बस, बोल नहीं पाती." मैं सिर झुकाये चम्मच घुमाता रहा.

शिवशंकर ने तीसरा समोसा उठाते आगे सुनाया, "समय का सदुपयोग करना खूब जानती है."

सरस्वती अपनी चिबुक पर हाथ टेके निश्चल बैठी सब सुन रही थी. शिवशंकर समोसा खाता, आगे सुनाने लगा, "घरेलू कामों से फारिग होते ही मोटे-मोटे पोथे लेकर बैठ जाती है और अपनी थीसिस के नोटस तैयार करती रहती है."

शिवशंकर ने समोसा खतम करके कहा, "उस समय अगर मैं इससे कुछ कहता हूं तो जरूर उजबक की तरह मेरी और ताकने लगती है. असल में, यह कुछ-कुछ पोंगा है."

शिवशंकर का वाक्य पूरा होते न होते मेरे कानों में सहसा एक तीक्ष्म स्वर सुना, "मैं गूंगी नहीं हूं."

बुरी तरह चौंक पड़ा मैं— यह आकाशवाणी कहां से आयी? सिर उठाकर पागलों की तरह उधर-उधर देखने लगा और क्षण भर में ही फिर मानो आसमान से जमीन पर आ गिरा.

मेरे करीब बैठी सरस्वती, मुझी को लक्ष्य करके तेज आवाज में कह रही थी, "गुरुजी, मैं गूंगी नहीं हूं. यह झूठ बोलता है."

मैं तो हक्का-बक्का रह गया. शिवशंकर ने तालीपीट कर एक जोरदार ठहाका लगाया. सरस्वती ने उधर ध्यान न दिया. जल्दी-जल्दी मुझसे कहती गयी उसी टोन में, "इसने मुझसे कहा— गुरुजी आयेंगे. तू उनके सामने जरूर 'बक-बक' करेगी. मेरी बड़ी 'किरकिरी' हो जायेगी. तू आज गूंगी बन जा. मैंने इसका कहना मान लिया. तब से गूंगी का नाटक कर रही थी. और अब यह मुझे 'पोंगा' बता रहा है!" सरस्वती के होंठों पर हल्की सी मुस्कान आ गयी. वही मुस्कान लिये मुझसे कहने लगी, "गुरुजी, मैं पोंगा नहीं हूं!"— उसने हाथ उठाकर पति की ओर अंगुली-निर्देश करके, जल्दी-जल्दी कहा, "यही पोंगा है." और उसकी नजर पति पर पड़ी, जो कुरसी की पीठ पर सिर ढुलाता बेतहाशा हंस रहा था और पलक मारते वह स्वयं खिलखिला उठी. और उसी मधुर—मधुर हंसी के बीच कहती गयी, "यही पोंगा है. यही पोंगा है!" और फिर हंसती-हंसती कुरसी में लुढ़क गयी खिलखिलाती. तब मैं अपने को किसी तरह रोक न पाया और ठहाका मारकर हंसने लगा जोर-जोर से.

अब स्थिति यह थी कि— शिवशंकर आंखें मूंदे लगातार उसी तरह बेतहाशा हंसे जा रहा था और कुरसी में लड्डू होकर पड़ी सरस्वती कनखियों से बार-बार उसे देखती बेसाख्ता हंस रही थी. और उन दोनों को यों हंसता देख मेरी भी हंसी रुकती न थी. कमरे में मानो हंसी के फव्वारे छूट रहे थे.

तीन पढ़े-लिखे, सभ्य, सुसंस्कृत व्यक्ति अकारण ही इतनी तीव्रता से हंसे जा रहे थे— हंसे जा रहे थे.

हालत यह थी कि— हम तीनों ही 'पोंगा' बन गये थे.

...यह कहानी बहुत ही हल्की-फुल्की है. करीब-करीब निस्तत्व है. सरस्वती की बक-बक के सिवाय इसमें है ही क्या? कौन भला इसे 'अच्छी कहानी' कहेगा? लाकन एक बात है, कहानी मजेदार जरूर है... दिन रात अभावों में पिसती, परेशानियों से जूझती जिंदगी, आज निहायत बेरौनक, बेलज्जत, बेमजा और बदरंग हो गयी है. कहीं कोई 'रस' नहीं रहा...

...ऐसे में, 'सरस्वती' से मुलाकात करके शायद थोड़ी देर के लिए उदासी भरे मन 'हरे' हो जायें. शायद सूखे-मुरझाये होंठों पर तनिक-सी मुस्कान आ जाये. यही बहुत है. □

स्वप्न नहीं, हकीकत

सुबह एक वीर भाई हम लोगों के कमरे में आया और पापा से भारत के बारे में पूछने लगा. लगा ही नहीं कि आज 16 बजे (शाम चार बजे) यह देश के लिए मरने जा रहे हैं. मैं इसी वीर भाई को एक टक देखती रही. पापा ने टोका, "क्या सोच रही हो आशा." वह वीर भाई ने कहा, "आशासान जिसे मैं सफलता पूर्वक शत्रु के जहाज में टकरा सकूं इसके लिए आप प्रार्थना करती रहें." मैं कुछ बोल नहीं पायी. चुपचाप एक प्याली चाय आगे बढ़ा कर बैठ गयी. मुंह से शब्द निकालती तो आंख से आंसू जो टपक पड़ता.

पापा को मैं अपना चेहरा दिखाना नहीं चाहती थी कि वे हंसेंगे. पर देखती क्या हूं कि वह भी अपनी आंखें, धीरे से पोंछ रहे हैं. यह विदाई अविस्मरणीय है. मजाक उड़ाते-उड़ाते मरने वाले वीर भाइयों की आत्मा को तृप्ति और शांति देना हमारा धर्म है. मात्र भारत की स्वाधीनता से ही नहीं संसार के सभी गुलामों की मुक्ति से ही उन की आत्मा को शान्ति मिलेगी और यह स्वप्न नहीं हकीकत है. □

(संदर्भ : भारती चौधरी लिखित 'आशा सान की सुबह अपरी')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे शेख की कहानी

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह बछड़े ने अपना चोला छोड़ा और आकर्षक नौजवान बन गया...! इस कहानी का असर यह हुआ कि व्यापारी का एक-तिहायी खून तो जिन्न ने माफ कर दिया.... लीजिये अब पढ़िये आगे की दास्तान कि किस तरह बाकी दो तिहायी खून माफ हो सका?...

जैसे ही पहल शेख की कहानी खत्म हुई दूसरे शेख ने आगे आकर बाअदब, जिन्न से कहा, "जिन्न साहब, मेरे साथ आप जिन दो कुत्तों को देख रहे हैं, वे असल में मेरे भाई हैं. उनकी वजह से मुझे जिन-जिन परेशानियों और मुसीबतों का सामना करना पड़ा है, उसकी कहानी आप सुनेंगे तो आपको यक़ीन हो जायेगा कि ऐसी दिल दलहाने वाली कहानी आपने पहले कभी नहीं सुनी है. अगर आपको यह कहानी उस कहानी से बेहतर लगे जो अभी-अभी आपने सुनी है तो उसके बदले में इस अभागे व्यापारी का एक-तिहाई खून माफ़ कर दीजियेगा, बस."

"ठीक है शेख साहब, आप अपनी कहानी सुनायें." जिन्न ने कहा.

दूसरे शेख ने अपनी कहानी इस तरह शुरू की, "जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूं, ये दोनों कुत्ते मेरे भाई हैं. मरते वक्त, हमारे वालिद ने तीन हज़ार दीनार छोड़े थे. इस रक़म को हम तीनों भाइयों ने बराबर-बराबर बांट लिया. मैंने अपने एक हज़ार दीनार से एक दूकान खोली, जो अच्छी चल निकली. मेरा एक भाई अपना हिस्सा लेकर व्यापार के लिए विदेश जाने लगा तो मैंने उसे समझाया, "बाहर जाकर तुम एक भारी जोखिम मोल ले रहे हो. बेहतर यही है कि तुम इस रक़म से मेरी तरह एक दूकान खोल लो और आराम से बैठकर खाओ." मगर उसने मेरी सलाह न मानी और विदेश चला गया. कुछ दिन बाद वह घर लौटा तो अपनी सारी रक़म गवा चुका था और जार-जार रो रहा था. वह मेरे पांवों में पड़ गया और मदद की भीख मांगने लगा. मुझे उस पर रहम आ गया और मैंने उसे अपनी दूकान पर काम करने के लिए रख लिया. शर्त यह थी कि उसके सेवा-काल में जो मुनाफ़ा होगा, उसमें से आधा मैं उसे दूंगा. उसने मेरे सहायक के रूप में एक साल तक काम किया.

"एक साल बाद उसे और दूसरे-भाई को फिर विदेश जाकर व्यापार करने की सनक सवार हुई. वे मुझे भी सब्ज-बाग़ दिखाकर अपने साथ ले जाना चाहते थे लेकिन मैंने उनके साथ जाने से साफ इंकार कर दिया. मेरी दूकान अच्छी चल रही थी और उससे मुझे अच्छा मुनाफ़ा हो रहा था. पिछले एक साल में मुझे एक हज़ार दीनार का फ़ायदा हुआ था. जब मेरे उस भाई ने जो मेरी दूकान पर काम कर रहा था, उसमें से आधा हिस्सा मांगा तो मैंने उसे पांच सौ दीनार देकर उन दोनों भाइयों को विदा किया.

"मगर वे बिना मुझे साथ लिये नहा जाना चाहते थे और अपनी-अपनी रक़म से अपना-अपना धंधा करते रहे. उन दोनों की आमदनी काम-चलाऊ थी. नफ़ा सिर्फ मुझे ही होता था. छह साल तक ऐसे ही चलता रहा. वे मुझे विदेश व्यापार करने को कहते और मैं मना कर देता. उनकी निगाह मेरे मुनाफ़े की रक़म पर लगी थी. जो छह हज़ार दीनार तक पहुंच चुकी थी और मैं उसे सुरक्षित रखना चाहता था. लेकिन छह साल बाद मैं आखिर उनके साथ चलने को राज़ी हो ही गया. पर जाने से पहले आधी रक़म यानी तीन हज़ार दीनार, घर में ज़मीन खोदकर उसमें छिपा दिये और बाकी तीन हज़ार दीनार की रक़म तीन हिस्सों में बराबर-बराबर बांट ली. इसके बाद, हम तीनों भाई एक जहाज़ द्वारा तिजारत के लिए विदेशों को रवाना हुए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पहले ही शहर में हमें बेचे गए माल पर दस गुणा फ़ायदा हुआ, जिसे हमने बराबर-बराबर बांट लिया. जब हम बंदरगाह से जहाज पर आ रहे थे तो एक महिला, जो चीथड़ों में थी और काफ़ी परेशान नज़र आती थी, मेरे पास आयी और मेरा हाथ चूम कर बोली "मालिक, मैं आपकी शरण आयी हूं. कृपा करके मुझे स्वीकार कर लो. एक न एक दिन में आपके एहसानों का बदला अवश्य चुका दूंगी." मैंने उस पर रहम खाते हुए कहा, "मैं तुम्हारी भरसक सहायता करने को तैयार हूं लेकिन उसके बदले में तुमसे कुछ नहीं मांगता." उसने कहा, "तब, आप मुझसे विवाह कर लीजिये. उसके बाद मेरा तन और मन दोनों आपके हो जायेंगे." मैं उसे अपने साथ जहाज़ पर ले आया. वहां अच्छा खाना खाकर तथा अच्छे वस्त्र धारण कर वह एक संभ्रांत महिला दिखाई देने लगी. उसकी स्वामीभक्ति के प्रसन्न होकर मैंने उससे शादी कर ली और अपना सारा समय अपने भाइयों के पास बिताने के स्थान पर, अपनी बीवी के साथ बिताने लगा." यह मेरे भाइयों को बिल्कुल नहीं भाया और उन्होंने एक रात जब हम दोनों सो रहे थे,

उन्होंने चुपके से आकर हम दोनों को समुद्र में फेंक दिया, और हमारी सारी माल-पूंजी पर कब्जा कर लिया.

"समुद्र में गिरते ही, मेरी बीवी ने फ़ौरन एक जिन्नी (मादा-जिन्न) का रूप धारण कर लिया और मुझे अपनी कमर पर लादकर एक द्वीप की ओर उड़ने लगी. मुझे द्वीप पर सुरक्षित छोड़कर, रात भर वह न जाने कहां ग़ायब रही. सुबह जब वह वापस लौटा तो भी जिन्नी के वेश में थी. मुझसे पूछने लगी, "मुझे पहचाना नहीं? मैं तुम्हारी बीवी हूं. इससे पहले एक जिन्नी थी (और एक वक्त भी हूं). लेकिन अपना काम पूरा करके मैं फिर तुम्हारी प्यारी बीवी बन जाऊंगी. बीवी के रूप में आने से पहले मुझे तुम्हारे दोनों भाइयों के प्राण लेने हैं. वे चोर और विश्वासघाती ही नहीं, हत्यारे भी हैं. मैं उन्हें ज़िंदा नहीं छोड़ूंगी. मैं कल उनका जहाज डुबोकर उनकी जीवन-लीला समाप्त कर दूंगी."

बड़ी मुश्किल से मैं उसे यह समझाने में कामयाब हुआ कि मेरे भाइयों ने मेरे साथ कुछ भी किया हो लेकिन मैं उनकी मौत नहीं चाहता. अनिच्छापूर्वक, उनके मेरी बात मान ली और मुझसे वायदा कि हालांकि वे जान से मारने लायक हैं, फिर भी वह उन्हें जान से नहीं मारेगी. इसके बाद हम दोनों अपने घर लौट आये. मेरी सारी रकम मेरे भाइयों ने चोरी कर ली थी लेकिन मुझे याद था कि मैंने अपने तीन हज़ार दीनार कहां गाड़े हैं. मैंने उन्हें खोदकर निकाल लिया और उनसे अपनी पुरानी दूकान को नये सिरे से चलाने का फ़ैसला किया.

"शाम को दूकान से घर लौटा तो देखता क्या हूं कि घर के बाहर बरांडे में दो कुत्ते बंधे हुए हैं. मुझे देखकर वे रोने लगे और मेरे पांवों में सर रखकर लेट गये. मेरी समझ में न आया कि माजरा क्या है?. तब, मेरी बीवी ने आकर बताया, "ये दोनों आपके दगाबाज़ और चोर भाई हैं. आपके कहने पर मैंने इन्हें मारा नहीं लेकिन बतौर सज़ा इन्हें दस साल के लिए कुत्ते बना दिया है. आज उनकी सज़ा के दस साल पूरे होने वाले हैं. मैं उन्हें आखिरी बार घुमाने के इरादे से बाहर लाया था कि इन अभागे व्यापारी पर निगाह पड़ी और उनके दुख में शरीक होने के लिए उनके पास बैठ गया. कहिये, मेरी सच्ची कहानी आपको कैसी लगी?"

"बेशक, आपकी कहानी लाजवाब है, शेख साहब. मैं अपने वायदे के मुताबिक इस व्यापारी का एक-तिहाई खून माफ करता हूं."

दूसरे शेख जिन्न का शुक्रिया अदा करके, पीछे जाने लगे तो तीसरे शेख ने आगे आकर जिन्न से अर्ज की, "मेरा खयाल है कि मेरी इन दोनों शेख साहबों की कहानियों से भी ज्यादा दिलचस्प लगेगी आपको, जिन्न साहब! अगर, कहानी सुनने के बाद, आपका भी ऐसा ही खयाल हो, तो आप मेहरबानी करके इस बेचारे व्यापारी का बाकी एक-तिहाई खून भी माफ़ कर दें." जिन्न ने कहा, "ठीक है. आप अपनी कहानी सुनाइये. मैं सुनने को बेकरार हूं."

तीसरे शेख की कहानी

तीसरे शेख ने अपनी कहानी इस तरह सुनानी शुरू की, "मेरे साथ आप जिस मादा-खच्चर को देख रहे हैं, वह असल में कभी मेरी बीवी थी. एक बार मैं अपने धंधे के सिलसिले में एक साल तक घर से बाहर रहा. जब एक रात को अचानक बिना किसी इत्तला के घर लौटा तो यह देखकर सकते में आ गया कि मेरी बीवी एक हब्शी के साथ सो रही थी. मेरे आने की आवाज़ सुनकर वह उठी. उसने एक घड़े में से पानी लिया, उसके ऊपर कुछ शब्द बुदबुदाये और उसे मेरे ऊपर छिड़कते हुए कहा, "जा, कुत्ता हो जा!" और, मैं कुत्ता हो गया. फिरउ उसने डंडे से मारकर, मुझ घर से बाहर निकाल दिया. मैं घूमता, घूमता एक कसाई की दूकान पर पहुंचा, और दूकान के बाहर पड़ी हड्डियां चबाने लगा. दूकान बंद करते समय, कसाई ने मुझे देखा और अपने साथ ले गया.

"कसाई की लड़की जादूगरनी थी. उसने मुझे देखते ही बुरका ओढ़ लिया और कसाई से बोली, "जिस कुत्ते को आप अपने साथ लाये हैं, वह असल में एक इज्जतदार और अमीर आदमी है. उनकी कुल्टा बीवी ने उन्हें जादू के ज़ोर से कुत्ता बना दिया है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेर के सिर पर

बाई लैंग

जंगल का राजा शेर मक्खी की इस चापलूसी भरी प्रशंसा से बहुत खुश हुआ. उसे वह मक्खी काफी चतुर और समझदार लगी. वह उसकी योग्यता से बहुत प्रभावित हो उठा. उसने मक्खी से कहा, "हो तो तुम हमारे सामने मात्र एक मामूली-सी भुनगा! बहुत छोटी, तुक्ष्य और बेमानी. परंतु तुम में बातें बना सकने की अद्‌भुत कला है. तुम जानती हो कि किसी शक्तिशाली और साधन-संपन्न व वैभवशाली से कैसे बातें की जाती हैं. उसका कैसे सम्मान किया जाता है. मैं तुम्हारी बातों से बहुत खुश हुआ हूं. तुम मुझे अच्छी लगने लगी हो. अब से तुम मेरे पास ही रहो और ऐसी ही प्यारी-प्यारी बातें मुझसे करती रहा करो! मेरा जी बहलता रहेगा. वर्ना मैं अकेला बहुत बोर होता रहता हूं. ऊब होती रहती है."

...और तब वह मक्खी शेर की विशेष सलाहकार हो गयी. शेर की नाक की बाल हो गयी. उसकी सर्वप्रिय जीव!

नतीजा हुआ, सब जानवर अब उस मक्खी से भी बुरी तरह डरने लगे. शेर तो शेर, अब तो किसी में मक्खी को भी नाराज करने की हिम्मत नहीं रही! अब वह कोई साधारण, गंदी-गलीज और आवारा मक्खी नहीं रह गयी थी, जिससे सब लोग नफरत किया करते थे और कोई अपने पास फटकने तक नहीं देता था.

अब तो वह शेर के सिर पर ही सवार रहती.

कसाई ने कहा, "या खुदा! कैसी कैसी कमीनी औरतें हैं इस दुनिया में. बेटी, तू अपने जादू के ज़ोर से इसे फिर आदमी बना दे. यह आदमी तुझे दुआ देगा." लड़की ने एक बर्तन में पानी लिया, और उस पर कुछ बुदबुदाने के बाद वह पानी कुत्ते पर छिड़क दिया. इस छिड़काव ने उसे कुत्ते से दुबारा आदमी बना दिया.

"जब मैं कुत्ते से आदमी बन गया, तो मैंने कसाई और उसकी बेटी का शुक्रिया अदा किया और घर जाने लगा. मगर, कसाई की बेटी ने मुझे आदर से रोकते हुए कहा, "आपकी बीवी ने आपके साथ निहायत गंदा सुलूक किया था. क्या आप उससे उसका बदला लेना चाहते हैं?" मैंने कहा, "बेशक!" उसने एक बर्तन में कुछ और पानी भरा और उस पर कुछ बुदबुदाने के बाद वह बर्तन मेरे हाथ में देते हुए कहा, "जाकर इस पानी को अपनी बीवी पर जब छिड़कियेगा, जब वह सो रही हो. इस पानी के जादू के असर से आप जिस शक्ल में उसे चाहेंगे वह आ जायेगी." मैं वह बर्तन लेकर जब अपने घर पहुंचा, तो मेरी खुशकिस्मती से वह सो रही थी. मैंने उस पर बर्तन का पानी छिड़कते हुए कहा, "जा, मादा-खच्चर बन जा." और, देखते ही देखते, वह औरत से मादा-खच्चर बन गयी."

जिन्न ने मादा-खच्चर से पूछा, "क्या शेख साहब जो कह रहे हैं, वह सच है?"

मादा-खच्चर ने सर हिलाकर कहा, "जी हां, एकदम सच है."

यह सुनकर, जिन्न को इतनी ज्यादा खुशी और उत्तेजना महसूस हुई कि वह खुशी और उत्तेजना की वजह से कांपने लगा...

तीसरी रात को

कहानी यहां तक पहुंची कि सुबह होने के असार दिखाई देने लगे. शहरज़ाद ने समझदारी से काम लिया और चुप हो गयी.

दुन्याज़ाद ने अपनी बहन से कहा, "जी चाहता है कि आपके मुंह से कहानियां सुनती ही जाऊं. हम तो बड़े शौक से सुन रहे थे मगर आपने कहानी अधूरी ही छोड़ दी..."

शहरज़ाद ने कहा, "यह कहानी आगे चलकर और भी ज्यादा दिलचस्प हो जाती है. लेकिन आगे की कहानी मैं तभी सुना सकूंगी, जब सुबह होने पर जिंदा रहूंगी. यानी, बादशाह-सलामत ने तब मेरा कत्ल नहीं करवाया तो."

यह सुनकर, शहरयार ने मन ही मन कहा, "अल्लाह की कसम, जब तक मैं यह कहानी पूरी नहीं सुन लेता, शहरज़ाद को मरवाने का सवाल ही पैदा नहीं होता."

बादशाह शहरयार का सारा दिन दरबार में लोगों की फ़र्याद सुनते हुए और उन पर फैसले देते हुए बीता. शाम को वे महल में लौटे.

रात होने पर दुन्याज़ाद ने अपनी बहन से कहा, "बहन! मैं कल की अधूरी कहानी सुनने के लिए बहुत बेताब हूं."

"मैं अभी कहानी पूरी करके तुम्हारी बेताबी दूर करती हूं." शहरज़ाद ने कहा.

११ किस्सा-मछुए और जिन्न का

कल मैंने बताया था," शहरज़ाद ने अधूरी कहानी को आगे बढ़ाते हुए कहा, "कि मादा-खच्चर की 'हां' सुनकर इतनी ज्यादा खुशी और उत्तेजना महसूस हुई कि वह कांपने लगा. उसने तीसरे शेख से कहा, "शेख साहब, आपकी कहानी, बिला शक, सबसे अच्छी थी. मैं अब वायदे के मुताबिक आपके दोस्त व्यापारी को पूरी तरह आज़ाद कर, आपके हवाले करता हूं." कहकर जिन्न चला गया. व्यापारी भी तीनों शेखों का शुक्रिया अदा कर अपने घर वापस चला गया. तो व्यापारी और जिन्न का किस्सा तो ख़त्म हुआ, अब शुरू होता है, उससे भी ज्यादा दिलचस्प किस्सा—मछुए और जिन्न का. इस कहानी का मछुआ एक बूढ़ा, गरीब मगर खुदा से ख़ौफ खाने वाला इंसान था. उसके तीन बच्चे थे. वह दिन में चार बार अपना जाल पानी में डालता था. एक दिन, उसने दपहर के वक्त, अपना जाल पानी में डाला तो उसकी बास्केट इतनी भारी हो गयी कि जाल को खींचना उसके लिए मुश्किल हो गया. अंत में यह देखने के लिए कि बास्केट में कौन सी भारी चीज़ या मछली आ गयी है, वह पानी में कूद पड़ा. बमुश्किलतमाम, वह उस भारी बोझ को किनारे पर ला सका. उसने मोटे और भारी बोरे को देखकर सोचा, आज ज़रूर कोई बेशकीमती ख़जाना हाथ लग गया है. मगर, बोरे को खोला तो, अपना सर पीटकर, रह गया. बोरे में एक मरा हुआ गधा था." जैसी अल्लाह की मर्जी, "कहकर वह अपना जाल साफ़ करने लगा." □

अगले अंक में

मछुआ और जिन्न... यानी दिलचस्प दास्तानों का रोमांचक सिलसिला.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1964, पटना.
मंचीय नाटकों की प्रस्तुति के अतिरिक्त रेडियो व टेलीविजन के जरिये नाटक गीत, ग़ज़ल व भजनों का प्रसारण.
संपर्क : 15 यू.एफ. तानसेन मार्ग, नई दिल्ली.

□ संगीता सिंह

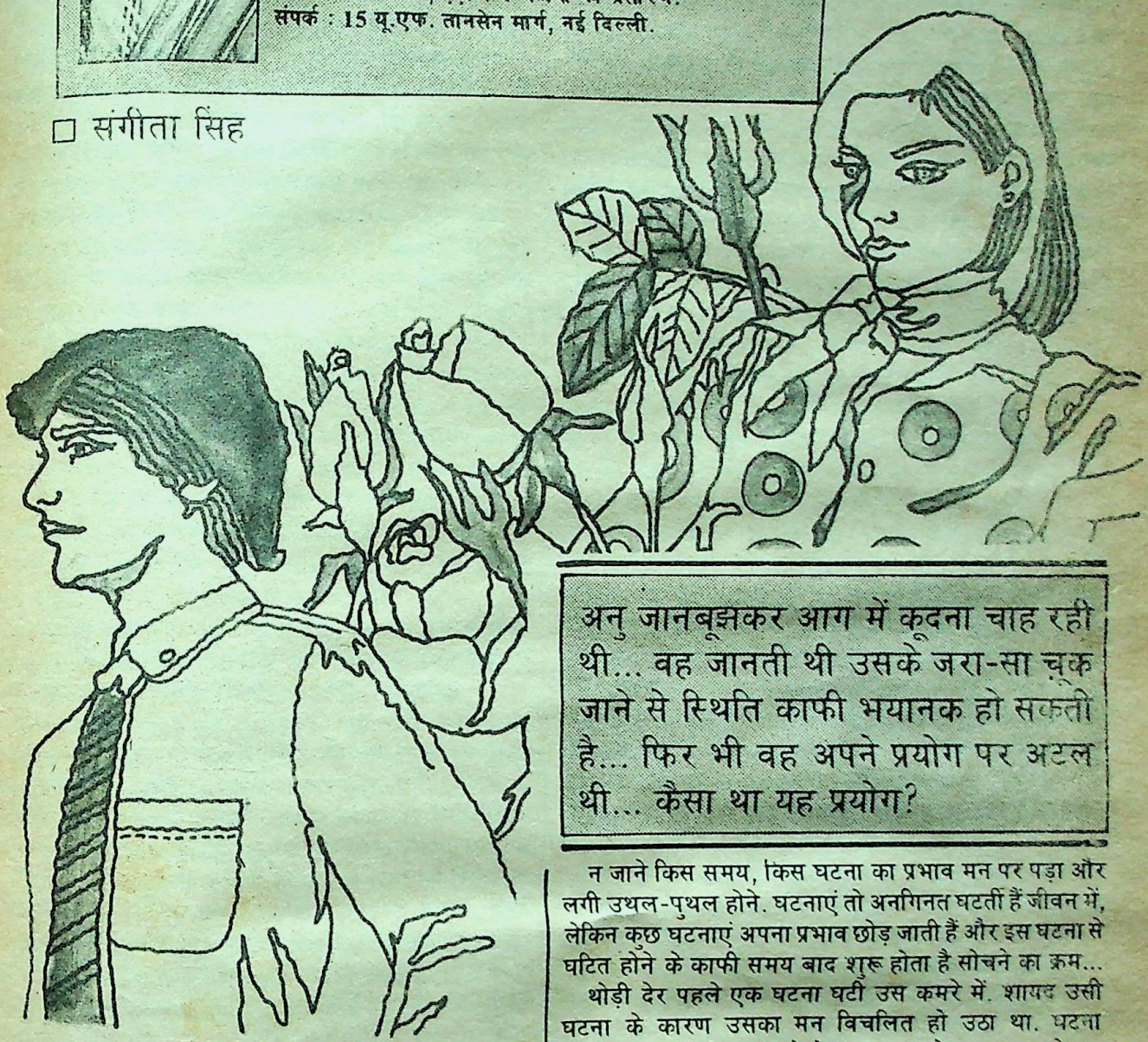

अनुभूति

अनु जानबूझकर आग में कूदना चाह रही थी... वह जानती थी उसके जरा-सा चूक जाने से स्थिति काफी भयानक हो सकती है.... फिर भी वह अपने प्रयोग पर अटल थी... कैसा था यह प्रयोग?

उसने आज से सोचना बंद कर दिया है. कुछ देर पहले तक वह सोचती रही है. काफी दूर तक की सोचती रही है. इसके बारे में, उसके बारे में, शायद संबंके बारे में... बड़ा उबाऊ-सा लग रहा था सोचना. या ऐसा लग रहा था मानों सोचने को कुछ बचा ही नहीं हो... या वह थक गई थी सोंचते-सोचते. यही सोच कर छोड़ दिया है सोचना.

न जाने किस समय, किस घटना का प्रभाव मन पर पड़ा और लगी उथल-पुथल होने. घटनाएं तो अनगिनत घटतीं हैं जीवन में, लेकिन कुछ घटनाएं अपना प्रभाव छोड़ जाती हैं और इस घटना से घटित होने के काफी समय बाद शुरू होता है सोचने का क्रम...

थोड़ी देर पहले एक घटना घटी उस कमरे में. शायद उसी घटना के कारण उसका मन विचलित हो उठा था. घटना अप्रत्याशित थी कि अनु को ऐसा महसूस हो रहा था मानो वह शून्य में भटक-सी गई हो. उस घटना का जिक्र वह किसी से कर भी नहीं सकती थी. उसे चुपचाप इस जहर को पीना था...

मन के इंद्र को बिल्कुल भूलने के लिए उस बात या घटना को मन से निकालना पड़ता है, जो कारण हैं हम अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं को तत्काल महत्व नहीं देते हैं. फलतः बाद में उसे गंभीर रूप में लेना पड़ता है.

उस व्यक्ति के अनु के घर आने से भला अनु को क्या इतराज हो सकता था? चलो नई जगह है—नया परिवेश है, उसका साथ रहेगा तो नई जगह से तालमेल बिठाने में आसानी होगी. शायद यही सोचकर उसे प्रश्रम दिया था. शुद्ध गृहस्थ व्यक्ति; एक पत्नी तथा दो फूल जैसे बच्चे. वाह, बड़ा मजा आया सुनकर. चलो, एक अच्छे परिवार से मुलाकात तो हुई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिवारिक मित्रता बढ़ती गई.

अनु की रुचियों और पसंद को महत्वपूर्ण समझकर धीरे-धीरे वह व्यक्ति उसके दिल और दिमाग पर छा रहा था. अनु उसके साथ घंटों बातें करती—विषयहीन. कभी-कभी ऐसा महसूस होने लगता जैसे वह काफी अकेला है—थका हुआ और हारा हुआ. बस यहीं गलती हो गई अनु से. शायद, यह बहुत बड़ा मकड़ी का जाला उसके सामने आ गया. नहीं चाहकर भी अनु उलझती चली गई. उसके कोमल मन पर धीरे-धीरे असर होता गया.

उस व्यक्ति का अनु के जीवन में आना अपने आप में कोई मायने रखता हो—ऐसा उसने तब महसूस किया, जब पहली बार उसकी हरकतों को ध्यान से देखा. अनु ने सोचा था, वह व्यक्ति शादी-शुदा है, आम लड़कों से अलग होगा. उसकी जिम्मेदारियां भिन्न होंगी, एक कुंवारे लड़के की जिम्मेदरियों से. लेकिन, अनु के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही—जब उसकी वह खास हरकत अनु के सामने आयी. वह व्यक्ति उसे अकेला समझकर गलतियों पर गलतियां करता चला गया. धीरे-धीरे, उसका असली रूप अनु के सामने आया. वह बौखला उठी. अब उसकी नजरों में एक अजीब घिनौनापन दिख रहा था. होंठों की मुस्कान कितनी कुटिल और भयावह थी. उफ... ब्यान करना तो दूर की बात, इस विषय में सोचना भी अनु के लिए मुश्किल हो रहा था.

बडी ही खूबसूरत शाम थी. वह काफी खुश थी. घर में अकेली और अपने खयालों की भीड़ में खोई बैठी थी. अचानक उसकी तंद्रा टूटी. घंटी बजी. यंत्रवत उसने दरवाजा खोल दिया—बिना कुछ पूछे कि कौन है...

वह आया था. अनु के चेहरे पर मुस्कान थी. शायद वह उसके चेहरे पर खेलती उस मुस्कान का अर्थ नहीं समझ पाई. वह पुरुष था उस वक्त और अनु एक स्त्री. उस समय अनु के मन में उसके प्रति कोई भाव नहीं था. बिल्कुल सपाट था उसका मन. सामान्य होने के लिए अनु ने "हैलो" कहा और उसे बैठने के लिए कहा. वह बैठ गया और धीमे-धीमे कुछ गुनगुनाने लगा. वह अब तक कुछ समय नहीं पाई थी. वे दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे. जैसे ही बातचीत शुरू होने वाली थी कि वह अचानक उठ खड़ा हुआ. वह धीरे-धीरे अपनी जगह से चलता हुआ अनु के समीप आ गया. ऐसा लग रहा था मानो, अनु के शरीर का सारा रक्त किसी ने निचोड़ लिया हो और उसकी टांगें थर-थर कांपने लगी. चाहकर भी वह उठ नहीं पाई. अचानक उसके फौलादी हाथ अनु के कंधों पर आ टिके. एक भयानक शिकारी कुत्ते के पंजे मानो किसी मालूम मेमने को खाल समेत जकड़े हुए हों.

अनु की आंखें विस्मय से फट पड़ीं. गले से कोई आवाज नहीं निकल पा रही थी. पूरा बदन पसीने में सनता चला जा रहा था... पूरा जोर लगाकर अनु ने उसके हाथों को झटकाने की कोशिश की. लेकिन वह हार गई. अनु के असफल प्रतिरोध के साथ-साथ हौसला भी बढ़ता चला जा रहा था. अनु समझ नहीं पा रही थी कि और किस प्रकार से वह प्रतिरोध करे...

"देखो अनु," अचानक उसका फटा स्वर अनु के कानों से टकराया... "मुझे गलत मत समझो. मुझे तुम बहत अच्छी लगती हो... इसलिए मैं चाहता हूं... तुम मुझे और भी अच्छी लगो." कहता हुआ अनु पर झुकने की कोशिश करने लगा...

"लेकिन आप तो शादी-शुदा हैं—और इतनी अच्छी है आपकी पत्नी." "पुरुष और नारी सिर्फ पुरुष और नारी ही हैं. वह सभी अपनी ही जगह पर हैं. इसके लिए तुम इतनी भोली और मासूम हो... तुम्हें तो..." कहता हुआ वह और भी झुकता चला गया.

अचानक न जाने कहां से अनोखी शक्ति अनु के जिस्म में आ गयी और उसने पूरी ताकत लगाकर उसे झटक दिया. वह हड़बड़ा गया. बस वही अवसर अनु के हाथ आया और वह दरवाज़ा खोलने में कामयाब हो गई.

उसके बाल बिखरे हुए थे. चेहरा सुर्ख हो गया था... बिल्कुल बौखलायी हुई अनु सीढ़ियों से नीचे उतरी और गेट खोलकर बाहर सड़क पर आ गई... स्थिति को सामान्य होने में काफी देर लग गई. अनु कुछ समझ नहीं पा रही थी... और उस कमरे में घटित उस घटना का सीधा प्रभाव पड़ रहा था अनु के मन पर...

अनु, धीरे-धीरे विश्वास करती जा रही थी कि चाहे कुछ भी हो... सभी पुरुष एक जैसे होते हैं... ऑल मेन आर एलाइक... क्या पुरुषों ने शुरू से ही नारी को त्रिया-चरित्र नहीं कहा है?... एक मापदंड दे दिया है—शायद उसी प्रकार अनु ने भी दे दी एक परिभाषा पुरुष वर्ग की. सभी पुरुष मौका मिलने पर नीच से नीच हरकत पर उतर आते हैं... उनके मन का शैतान हर वक्त मौके की तलाश में रहता है. वह न जात देखता है, न देश-काल, न ही दुनिया. बस अवसर हाथ आते ही उस मौके का नाजायज फायदा उठाकर चलता बनता है...

अनु की सोच कुछ दूर तक जाकर रुक गई थी. अनु, जो कि जीवन में प्रवेश करने वाली थी... जीवन के पहले कदम पर ही घबरा गई. उसके अनुसार उसका अनुभव ही सब कुछ है.

धीरे-धीरे वक्त बीतता गया और सब कुछ सामान्य होता गया. अनु, वह बड़ी-बड़ी हंसती आंखोंवाली अनु... अब काफी चुप-सी रहने लगी थी. आंखों के कोर अब न जाने किस चीज की तलाश में रहते थे. रह-रहकर न जाने कहां खो जाती थी अनु अंदर-बाहर से बिल्कुल उदास और तन्हा...

आखिर ऐसा कब तक चलेगा... नहीं, मुझे अपनी इस मानसिकता को बदलना होगा... अनु ने निश्चय किया. शाम का वक्त था. ड्राईंगरूम में घर के लोग बैठे थे. शायद कोई आया था. बातचीत की आवाज आ रही थी कि अचानक अनु का बुलावा आया. अपने खयालों में खोई-सी अनु पहुंची. सामने साधारण व्यक्तित्ववाला एक औसत व्यक्ति बैठा था.

अनु... यह नवल है... अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है और अब रिसर्च कर रहे हैं. "हैलो"... बातचीत का सिलसिला बढ़ता चला गया.

अनु ने सोचना शुरू कर दिया. पूरी रात इस उधेड़बुन में काट दी कि क्या इस व्यक्ति पर प्रयोग किया जा सकता है. पढ़ा-लिखा, मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ और सबसे बड़ी बात, जिन-जिन चीजों में अनु की रुचि थी, उसमें नवल दक्ष था, निपुण था. बस फिर क्या था... अनु ने पहन ली केंचुली और निकल पड़ी उस प्रयोगात्मक यात्रा पर.

धीरे-धीरे मुलाकातों का सिलसिला बढ़ता चला गया. मानसिक रूप से अनु निश्चित थी... वह जानती थी चाहे कुछ हो वह इस व्यक्ति से भावानात्मक संबंध नहीं रखेगी. उसे तो बस एक प्रयोग करना था, वह कुछ खोज रही थी उसी साधारण व्यक्तित्व में...

"आपको मेरी सबसे अच्छी चीज क्या लगती है?"... अनु ने बड़े प्यार से उसकी आंखों में झांकते हुए कहा... नवल की आंखें अनु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चेहरे के मुखौटे को नहीं देख पा रही थी... बस तरंग में नवल कहता चला जा रहा था... "अनु, तुम्हारी आंखें बहुत ही खूबसूरत हैं... और तुम्हारे हाथ... क्या बात है... तुम इतना अच्छा खाना बना लेती हो... आज के युग में ऐसा मिलना नामुमकिन है... तुमसे मिलकर ऐसा विश्वास होने लगता है कि आज की लड़कियां भी काफी रुचि रखती हैं गृहस्थी में...नहीं तो न जाने किस दिशा में भाग रही हैं... ये नारी-मुक्ति की बातें करनेवाली स्त्रियां?

बड़ा अच्छा लगा अनु को यह सब सुनकर—लेकिन कोई नयापन नहीं था इन बातों में. अनु इस सत्य को समझती थी, पुरुष चाहे कितने भी अपटुडेट हो, पढ़े-लिखे हों—औरत की परिभाषा उनके जबान से होकर सीधे पेट में उतरती है. घरेलू लड़कियां हर पुरुष की कमजोरी हैं शायद... साथ ही जरूरत भी...

अनु उससे प्रभावित हो रही थी. वह चाहती थी, नवल के करीब आए... उसे आजमाये. मुलाकातों का सिलसिला बढ़ाने के लिए अनु ने नवल से एक आग्रह किया.

"मैं आपसे अकेले में कुछ बातें करना चाहती हूं..."

"क्यों..." नवल ने पूछा...

"ऐसा ही..." अनु को कुछ नहीं सूझा... उसने झूठ का सहारा लिया... मैं कुछ लिखना चाहती हूं... वही कि मनुष्य समाज में रहकर भी क्या कुछ क्षण अकेले रह सकता है..."

"मतलब?"—नवल समझ नहीं पाया... अनु बातों को अलंकृत करती गई... "क्या मन का रिश्ता अनाम नहीं हो सकता है... क्या पत्नी, प्रेमिका, बहू-बेटी, बहन... यहां तक की दोस्त... सभी मान्य रिश्तों को समाज में रखता है? क्या ऐसा संबंध नहीं हो सकता है जो अपने-आप में महज दो व्यक्तियों तक ही अपने औचित्य और अनौचित्य के साथ परम गोपन हो". शायद अनु नवल को समझा नहीं पाई.

अनु जानबूझकर बेवकूफियां करती रही नवल के सामने. बच्चों की तरह हरकत... दो चुटिया बना कर, इतरा कर, नवल के सामने, कभी-कभी तो उसके कुछ-एक दोस्तों के सामने भी चली जाती. वह महसूस करती-नवल के आंखों में नफरत के भाव उतर आते बड़े ही दार्शनिक भाव में-नवल कह उठता... यू आर स्टिल ग्रोइंग..." अनु मन ही मन हंस पड़ती. उसका मुखौटा असर कर रहा था...

नवल का दोस्त शिवा आया था. बहुत ही अच्छा गाने वाला... काफी चर्चित. नवल को यकीन हो जाये कि अनु को गलतफहमी हो गई है... यानि अनु उसके प्रति आकर्षित हो चुकी है... काफी दूर तक...

"आप, अपने दोस्त को मेरे पास क्यों नहीं भेजते है?"... अनु ने शिवा से कहा... शिवा की समझ में शायद कुछ नहीं आया. "आपके मित्र के पास दुनिया के लिए वक्त है लेकिन मेरे लिए जरा-सा भी नहीं... हमेशा मुझे टाल जाते हैं" अनु की आंखों में शरारत थी... वह जानती थी कि इसके बाद उसे बड़े ही गलत ढंग से लिया जाएगा... शायद नवल और शिवा आपस में बातें करें, उसकी बखिया उधेड़े... अनु ने इसकी परवाह नहीं की. नवल और शिवा की स्थिति में कोई भी ऐसा कर सकता था... यदि उसकी मानसिकता स्वस्थ होती तो...

आज अनु ने तय कर लिया था. उसकी आंखों में दृढ़ निश्चय के भाव झलक रहे थे. न ही उसकी टांगें कांप रही थी... न ही बदन पसीनों से सना था.

दिल धड़क रहा था...अनु जानबूझ कर आग में कूदना चाह रही थी... वह जानती थी, उसके जरा-सा चूक जाने से स्थिति काफी भयानक हो सकती है... अर्थ का अनर्थ हो सकता है... फिर भी वह अपने प्रयोग पर अटल थी.

बड़ी ही खूबसूरत शाम थी. आज अनु अपने घर में अकेली थी. वातावरण शांत था. अनु ने अपने आप को पूरी तरह से तैयार कर लिया था. साथ ही अपने इर्द-गिर्द जाल भी बुन लिया था...

नवल आया. अनु पूरी तरह से सतर्क हो उठी. उसके चेहरे पर मुस्कान थी शायद वक्त अनु एक स्त्री थी, नवल एक पुरुष. नवल शायद स्थिति को समझ नहीं पाया. सामान्य होने के लिए उसने "हैलो" कहा. दोनों चुपचाप खड़े थे. धीरे-धीरे अनु नवल के समीप आ गई. नवल इस अप्रत्याशिप हरकत से चौंक उठा. फिर भी वह मुस्कुराने की कोशिश करने लगा. लेकिन वह पसीने से लथ-पथ हो गया... अनुउस पर झुकती चली गई और पूरे वेग से उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया. नवल बिल्कुल बौखला उठा. उसका दिल पूरे रफ्तार से धड़क रहा था... अनु के दिल की रफ्तार से कहीं ज्यादा...

अनु की आंखें नवल के चेहरे पर जा टिकी. नवल की आंखों में अजीब से भाव थे... आश्चर्य और पिपासा एक साथ झलक रहे थे. मानो इच्छा और मर्यादा में एक भयानक अंतर्द्वंद्व चल रहा हो... अचानक उसके फौलादी हाथ अनु के कंधों पर जा टिके... और पूरे वेग से नवल ने अनु को झटक दिया...

"आपके पास अवसर है... आप इस मौके का नाजायज फायदा क्यों नहीं उठाते हैं... क्यों नहीं वैसा करते है जो कि एक पुरुष ऐसे अवसर पाने का करता है?"... अनु ने अपनी तरंग में पूछा...

नवल के अधरों पर एक विचित्र-सी मुस्कान आई... आंखों में एक अजीब-सी चमक... "पुरुष सिर्फ अवसर और संवेग मात्र नही है—वह समाज का नियामक भी है, और रिश्ते हमेशा सामाजिक न्याय के लिए प्राथमिक सूत्र हैं. इसलिए अनु... तुम यह सोचो कि मेरा और तुम्हारा यहा होना, एक एकांत, एक संवेग क्या दो प्राणियों के मनोविकारों की लीला मात्र है... या कि इसकी कोई महती मानवीय ऐतिहासिक प्रक्रिया होनी चाहिए... तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो और मैं चाहता हूं कि तुम मेरे मन में निरंतर ऊंची उठो... ऊंची उठो... समझी अनु!" उसने होंठों पर निश्छल हंसी उभर आई थी... जैसे लहरों के निरंतर संघर्ष से समुद्र के होंठों पर दूधिया फेन उभर आता है.

.....चूल्हे पर उबलते हुए चावल के बर्तन में से एक चावल को देखकर पूरे पकने वाले चावल की स्थिति का अंदाजा हो जाता है... लेकिन अनु ने अनुभव किया कि वह मुहावरा मनुष्य के लिए अक्षम है, क्योंकि पुरुष पतीले का उबलता हुआ मात्र एक चावल तो नहीं... उसकी अपनी अनुभूति भी तो होती है. □

चलते-चलते

प्रसिद्ध हास्य-अभिनेता जैक ल्योनार्ड बहुत मोटा है. एक दिन उसे, अपनी कार न होने पर, किसी जरूरी काम से टैक्सी में जाना पड़ा. वह घर से निकला ही था कि सामने सड़क पर एक छोटी टैक्सी देख कर जल्दी से उसके पास गया, और बड़ी कठिनाई से उसमें दाखिल हो कर सिमट कर बैठ गया.

"कहां जाना है?" टैक्सी-ड्राइवर ने पूछा.

"किसी बड़ी टैक्सी के पास, जैक ल्योनार्ड ने कहा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश फाइलों का दर्पण है!

उसने ले जाकर मुझे एक अंधेरे कमरे में खड़ा कर दिया. वहां दिन में बत्तियां जल रही थीं और फर्श से छत तक फाइलें ही फाइलें अंटी थीं.

"ढूंढ लो अपने चाचा को," उसने कहा और जाने लगा.

"पर मेरे चाचा तो जबलपुर में हैं," मैंने उसे सूचित किया.

"तुमने ही तो बताया था कि तुम्हारे चाचा इसी विभाग से रिटायर हुये हैं. सरकार में पहले दिन से हर कर्मचारी फाइल बन जाता है. एक बार फाइल खुली तो उसके मरने के बाद ही बंद होती है. तुम्हें और तुम्हारे चाचा को यही शिकायत है न कि उनकी फाइल गुम होने से उन्हें पेंशन कम मिल रही है. यह रिकार्ड रूम 'कान्फिडैन्शियल' स्थान है. प्रशासन ने यहां आने की इजाजत देकर तुम्हारे साथ खास रियायत बरती है. अब तलाशो अपने चाचा को!" कहकर चला गया.

इतने में पास के रैक से दो चमकती आंखों ने मुझे घूरा. मेरी चीख निकल गई. चार-पांच लोग सुनकर दौड़े आये. एक ने टार्च उधर फेंकी. रैक के ऊपर एक तख्ते पर लिखा था 'योजनाबद्ध विकास'. दिलासे का स्वर गूंजा, "डरिये नहीं. चूहे नियोजित विकास को कुतर रहे हैं. आपको नहीं काटेंगे, बस आप चीखें-चिल्लायें नहीं आप अपना काम करिये, उन्हें उनका करने दीजिये."

मेरे चेहरे की निराशा को पढ़कर फाइल-खोजू-टोली के एक युवक ने मुझसे हमदर्दी जताई– "आप बेकार परेशान हैं. आपको चाचा की फाइल मिले न मिले, उन्हें पेंशन तो मिल रही है. मेरे पिताजी इसी रिकार्ड रूम में काम करते थे. एक बार बाढ़ आयी तो अंग्रेज़ों के वक्त अपनाये गये राहत के उपायों की फाइल की खोज शुरू हुई. वह सीढ़ी लगाकर रैक के ऊपरी शैल्फ तक पहुंचे ही थे कि पैर फिसल गया. बस ऐसा गिरे कि फिर उठे ही नहीं. तब मैं सोलह साल का था. उसी समय यह निर्णय हुआ कि दो साल बाद करुणामूलक आधार पर मेरी नियुक्ति कर दी जायेगी. अठारह वर्ष की आयु से अपनी फाइल की मृग-मरीचिका में उलझे-उलझे अब मेरी चौबीसवीं वर्षगांठ होने को है. कई अर्जियां दीं. अधिकारियों से मिला. पता लगा कि सरकार में एक ही विषय पर दो फाइलें नहीं खुलतीं, जब तक कि कोई खास बात न हो. बड़े बाबू का कहना है कि मेरी बेरोजगारी, मेरी मां-बहन का रो-धोकर गुजारा करना, हमारी गरीबी, ऐसी विशेष परिस्थितियां नहीं हैं कि दूसरी फाइल खुलने की छूट मिल सके. उनके अनुसार आज के आम हालात ही ऐसे हैं."

इस फाइल-गाथा को सुनकर मुझे अंदर से खुशी हुई. यहां अपने पैर में तो सिर्फ कांटा चुभा था. इस असहाय के तो पैर ही गायब थे. ज़ाहिरा तौर पर सबने उसके साथ सहानुभूति जताई. तय हुआ कि टार्च की बैटरी चुकने के पहले अपनी-अपनी फाइल की सम्मिलित तलाश की जाये. रिकार्ड रूम से पुश्तैनी ताल्लुकात रखने वाले नौजवान ने बताया कि एक विषय की फाइलों को एक ही जगह रखा जाता है, "व्यक्तिगत मिसिलों में आपके मतलब की फाइलें होंगी." टार्च की रोशनी दुर्घटनावश एक रैक पर पड़ी. वहां लिखा था 'सर्विस रिकार्ड.'

नयी खोज के उल्लास में आशा और उत्साह से सब लोग उधर दौड़े. हर रैक में चूहों की बीट, दीमक चटे कागज और उल्टे टंगे चमगादड़ नजर आये. "क्या यही सरकार के सेवकों का भविष्य है! भैया प्रत्याशी! आप क्यों इस दशा को प्राप्त होने के लिये रात-दिन एक कर रहे हैं," हममें से किसी ने युवक को चेताया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप अपने नहीं, अपने रिश्तेदारों के कागज खोज रहे हैं. कुछ न होने की दिक्कत आप क्या समझें! दीमक-चटे कागज बनने के लिये लाखों-करोड़ों का क्यू है. एक बार अंदर घुसकर अधिकार की कुर्सी पर उल्टे टंगने के इच्छुक हजारों प्रतियोगी हैं. आप जाना चाहें तो जायें. मैं तो अपनी फाइल ढूंढकर ही दम लूंगा."

हमने उसे सुझाया कि वह पान की दूकान खोल ले. कागजों पर बीट करने से ग्राहकों के चूना लगाना कहीं बेहतर है. वर्ना पंप खरीदकर साईकिल के पंक्चर जोड़े, उनमें हवा भरे. कम से कम खुली हवा में तो रहेगा. उसने हमारी एक न सुनी. अपने हित-अहित का सवाल न हो तो बौद्धिक बहस अकसर रोचक और लंबी हो जाती है. उसने झल्लाकर मुझे बताया कि पान खाना देश के हित में नहीं है. सिगरेट से फेफड़ों का और पान से मुंह के कैंसर का खतरा है. सरकार की नौकरी करके वह अपने मुल्क, जनता की खिदमत करना चाहता है. "इनका इरादा व्यापक स्तर पर कैंसर फैलाने का है," किसी ने चोट की. चर्चा के दौरान टार्च की बैटरी चल बसी. कमरे के बाहर दोपहरी की धूप चढ़ी थी और अंदर ट्यूब लाइटों के प्रकाश के बावजूद अंधेरा. हम लोगों के पास वहां से कूच करने के अलावा कोई चारा न था.

"हमें यहां के अधिकारी से मिलकर शिकायत करनी चाहिए." एक सुझाव आया.

"साहब के यहां जरूरी मीटिंग चल रही है. उनकी मेम साब उनके पास बैठी हैं," चपरासी ने हमें इंतजार करने की सलाह दी और कमरे के बाहर जलती हुई बत्ती की ओर इशारा किया. हमने देखा कि पूरे बरामदे में कतार से अफसरों के कमरे थे और पूरा बरामदा 'रेड-लाइट एरिया' बना हुआ था. "क्या ये सारे अधिकारी ऐसी ही मीटिंगों में व्यस्त हैं," मैंने जानना चाहा. "और नहीं तो क्या! अभी मीटिंगें चल रही हैं और फिर लंच चलेगा. फिर मीटिंगें," उसने सिलसिला बताया.

उसने खैनी पीटी. "और आप लोग क्या करते हैं," मैंने इस अनंत कार्य-व्यस्तता की प्रक्रिया में उसकी भूमिका दरयाफ्त की. "हम भी सेवा करते हैं. कागज इधर-उधर ले जाते हैं ओवर-टाइम कमाते हैं. कभी चाय का इंतजाम कभी कॉफी का. आप लोगों को साहब से मिलना है न," उसने विषय बदला. हम सबने कोरस में कहा "हां."

"हमें क्या मिलेगा",

"कितना चलेगा," मैंने रेट पूछा. "जो भी हुजूर दे दें. हम तो बस ईनाम के भूखे हैं घूस-कमीशन तो हमारे बड़े खाते हैं," उसने अपनी नैतिक-श्रेष्ठता बयान की. सौदा पांच रुपये में पटा. कुछ देर बाद हम सब साहब के मंदिर में हाथ जोड़े खड़े थे.

"देखिये! आप लोग बिना पूर्व सूचना के आये हैं. अपनी बात जरा जल्दी कहिये. हम जनता के सेवक हैं इसलिये आपसे मिल लिये. आप जितना वक्त लेंगे, देश का उतना काम रुकेगा. हां, तो बताइए क्या बात है," अफसर ने तकरीर की. कमरे में अब तक विदेशी फरफ्यूम गमक रही थी. "मैं अपनी फाइल खोज रहा हूं," बेरोजगार युवक बोला. "हम लोग अपने

फाइलों की इफरात हो और स्टाफ की कमी तो रिकार्ड रूम जैसे गोपनीय कक्ष में जनता को ले जाये बगैर काम कैसे हो सकता है...?

रिश्तेदारों की," हम सब बोले, "तो मैं क्या करूं. आप लोग रिकार्ड के अनुभाग अधिकारी से मिलें. उसके अफसर से मिलें. अंडर-सैक्रेट्री से बात करें. मेरे पास क्यों आये हैं," साहब ने हमें हड़काया.

"हम सबके चक्कर काट चुके हैं. अंडर सैक्रेट्री ने हमें खुद रिकार्ड रूम जाकर फाइल तलाश करने की अनुमति तो दे दी पर वहां न काफी रोशनी है, न कोई बताने वाला कि कहां क्या है," युवक ने वस्तुस्थिति बताई.

"यहां कौन-सा उजाला है," साहब ने दीवाली से जगमग अपने बातानुकूलित कक्ष का रोना रोया. "हमारे यहां फाइलों की इफरात है और स्टाफ की कमी. वर्ना रिकार्ड रूम ऐसे गोपनीय कक्ष में आपका जाना कतई गैर-कानूनी है."

नवयुवक ने उन्हें बीच में टोका, "सर! स्टाफ कम है तो मुझे ले लें. रिकार्ड की सेवा तो हमारा खानदानी पेशा है."

"आपको कैसे ले लूं! वैकेंसी नहीं है, नये पद बन नहीं पा रहे फायनेंसवाले मानें तब न. अब दस फाइलों पर एक कर्मचारी होना चाहिये. हमारे यहां हजारों पर एक है. वह तो हमारे कर्मचारी मेहनती और निष्ठावान हैं और मुझे अपना आदर्श मानते हैं, इस कारण काम चल रहा है नहीं तो सब ठप्प हो जाता," साहब अपने को शाबाशी दे रहे थे कि उनका ड्राइवर आ गया. उसने बताया कि वह मेमसाब को सकुशल घर पहुंचा आया है और अब 'बाबा' को क्रिकेट प्रैक्टिस के लिये ले जायेगा.

मैंने मौके का फायदा उठाकर साहब को फाइलें कम करने की सलाह दी. "यही देखने मैं हारवर्ड गया और फिर टोकियो. उनसे हमारी व्यवस्था किसी मायने में कम नहीं है. बस उनकी आबादी कम है तो फाइलें भी कम हैं. अब अपना प्रशासन कोई एक-तंत्र का फ्यूडल शासन तो है नहीं. हम लोग आपके सेवक हैं. आप एक पत्र लिखते हैं तो एक फाइल खुल जाती है. करोड़ों लोग हैं और फिर सबको शिकायती चिट्ठियां लिखने की बुरी आदत है. रोज सैकड़ों फाइलें खुलती हैं. आप ही बताइये हम क्या करें. आप यों समझिये कि देश की तरक्की फाइलों से जुड़ी है. अब अगर झुमरी तलैया में लगा नलकूप काम नहीं करता या भौंगांव में बनी पुलिया टूट गयी है तो निर्णय तो फाइल पर ही लेना पड़ेगा," साहब कुछ और प्रवचन करते कि उनके अवसर सचिव पधारे

"सर! डिस्कशन के केस हैं."

"आप देखते नहीं कि हम पब्लिक की शिकायतें सुन रहे हैं. ऐसे आपने इन लोगों की रिकार्ड-रूम में जाने की 'परमीशन' देकर ठीक नहीं किया पर हम आपके खिलाफ 'एक्शन' नहीं लेंगे. प्रशासन में जनता का प्रवेश यों ही संभव है." साहब हमारी तरफ मुखातिब हुये, "देखिये! हम यहां निर्णय लेने के लिये हैं, फाइल तलाशने के लिये नहीं. आप लोग फाइल खोज निकालिये, हम तत्काल निर्णय ले लेंगे. क्यों वर्मा?"

अवर सचिव अब तक भीगी बिल्ली बन चुके थे. उन्होंने हां में हां मिलाई, "बिल्कुल सर! अपने यहां तो 'डिले' का सवाल ही नहीं है. फाइल आयी और उसे दूसरी मिनिस्ट्री को 'रैफर' किया."

"पर सर! फाइलों में तो दीमक लग गई है," नवयुवक ने एतराज किया. "आप बहुत बोलते हैं," साहब ने डांटा. "जब देश में दीमक लग रही है तो फाइलों में क्या चंदन लगेगा. आखिर देश फाइलों का ही तो दर्पण है," साहब बोल गये! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाही उपन्यास

तीसरी किस्त

□ दास्तोयेव्स्की

रुपहली रातें

मैं उसके बगल में बैठा था. यथासंभव गंभीर मुद्रा बनाकर मैंने धीरे-धीरे कहना शुरू किया जैसे कोई रटा-रटाया पाठ सुना रहा होऊं.

"शायद तुम्हें ज्ञात न हो नास्तेंका, लेकिन इस पीटर्सबर्ग में कुछ अंधियारे कोने भी हैं. सारे नगर को प्रकाशित करने वाला यह सूरज इन कोनों तक कभी नहीं पहुंचता. वहां तो एक दूसरा सूरज अपना प्रकाश लुटाता है, जो विशेषत: इन कोनों के लिए ही बना है और जो प्रत्येक वस्तु को एक बिल्कुल ही अलग और विशेष प्रकार की रोशनी में रंग देता है. इन दूरस्थ कोनों का जीवन, एक दूसरी ही दुनिया है. जिसकी नगरवासियों की इस व्यापक और सामान्य जिंदगी से कोई समता नहीं. उसे देखकर लगता है कि ऐसा जीवन हमारी इस धरती के गंभीर और बोझिल जीवन से कहीं दूर किसी सुंदर और रहस्यमय लोक में ही होना संभव है. और यह जीवन आदर्श और कल्पना का एक अद्‌भुत मिश्रण है. लेकिन दूसरी ओर यह जीवन बिल्कुल साधारण, महत्वहीन और अनाकर्षक भी है."

"ओ हो, हे ईश्वर, क्या भूमिका बांधी है. मैं तो चकित हूं कि मैं कथा सुनने जा रही हूं?"

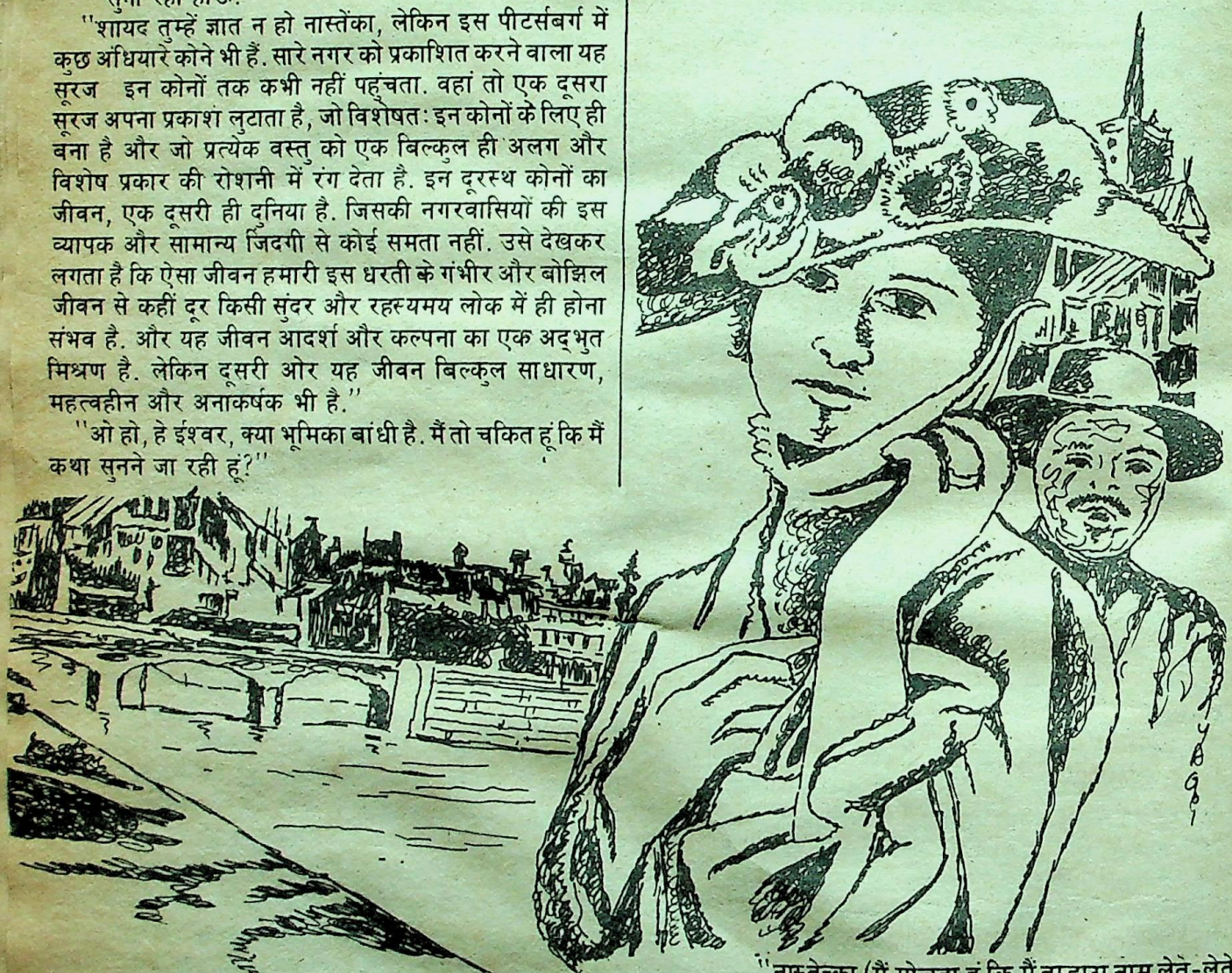

"नास्तेन्का (मैं सोचता हूं कि मैं तुम्हारा नाम लेते-लेते कभी न थकूंगा) नास्तेंका, तुमने सुना हो या न सुना हो, कि इस घनी बस्ती से दूर इन कोलाहल शून्य कोनों में एक अजीब किस्म के लोग रहा करते हैं— स्वप्नदर्शी. अगर तुम इस शब्द की ठीक-ठीक परिभाषा जानती हो— तो तुम्हें यह भी ज्ञात होगा यह स्वप्नदर्शी मनुष्य नहीं मनुष्येतर प्राणी होता है. यह प्राणी अधिकतर किसी ऐसे कोने को अपना नीड़ बनाता है, जहां कोई न पहुंच सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है कि अपने को दिन के प्रकाश से बचाना चाहता हो. और जैसे ही एक बार उसने अपने इस खोल में प्रवेश किया कि वह घोंघे की तरह चिपक जाता है. और इस दृष्टि से वह मजेदार प्राणी कछुए से बहुत कुछ मिलता-जुलता है जो एक ही साथ स्वयं जीव और घर दोनों है. क्या तुम बता सकती हो कि वह अपने कमरे की चार-दीवारों को जिनका रंग अक्सर हरा होता है और बरसों की धूल और धुएं से जो धुंधली और बेरौनक हो गयी होती हैं— क्यों इतना चाहता है? ऐसा क्यों होता है कि एक-एक करके उसके सारे दोस्त उससे नाता तोड़ लेते हैं? क्यों ऐसा होता है कि जब कभी इसका कोई दोस्त उसे आकर पुकारता है, तो यह उपहासास्पद व्यक्ति बदहवास और घबड़ायी हुई हालत में उसका स्वागत करता है और उस समय उसके चेहरे पर उड़ती हुई हवाइयों को देखकर लगता है कि गोया कभी-कभी उसने इस कमरे की चार दीवारों के अंदर कोई जघन्य अपराध कर डाला हो, या वह जाली नोट बनाते हुए पकड़ लिया गया हो, या वह कोई कविता रच रहा

...पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह नायक और नायिका में परस्पर संवाद ने संकोच की जंजीरें तोड़ी और वे उन्मुक्त होकर देर तक बातचीत करते रहे... इस बार पढ़िये संवाद की अगली कड़ी जो कहीं गहरें में दोनों को और करीब ला खड़ा करती है.

हो, जिसे वह एक गुमनाम पत्र द्वारा किसी पत्रिका में प्रकाशित होने के लिए डरते-डरते भेजेगा और उस पत्र में कहेगा कि इस कविता का प्रणेता कवि मर चुका है लेकिन चूंकि वह उसका मित्र था इसलिए उसकी उस रचना को मरणोपरांत प्रकाशित कराना अपना पुनीत कर्तव्य समझता है, इसलिए उसने इसे भेजा है? बताओ नास्तेंका कि उन दोनों दोस्तों के बीच होनेवाली बातचीत इतनी औपचारिक और नीरस क्यों होती है. क्यों वह विस्मयविमूढ़ आगंतुक न तो कोई मजाकिया फिकरा कसता है और न उसकी अट्टहासी हंसी सुनायी पड़ती है जबकि स्वभाव में वह खासा हंसोड़ और मन मौजी आदमी है और अगर कोई दूसरा मौका होता तो वह स्त्रियों के बारे में या किसी और दूसरे हल्के-फुल्के विषय की चर्चा जरूर छेड़ बैठता? आखिर क्यों, उसका नया दिखायी पड़ने वाला यह दोस्त, जो कि पहली बार उससे घर पर मिलने आया था, इतना सकते में आया हुआ और अवाक् होकर रह जाता है और अपने स्वागतकर्ता के परीशांहाल चेहरे को देखकर अपनी सारी वाक्पटुता भूल जाता है? और इधर दूसरी ओर उसका मेजबान बिल्कुल बदहवास-सा बड़ी कोशिशों के बाद इस मौन को तोड़ने का प्रयास करता है और बातचीत का रंग जमाने के लिए अपनी प्रवृत्ति से कोसों दूर, स्त्रियों के बारे में कोई चलती-फिरती राय पेश करके यह दिखाने का दावा करता है कि सामाजिक आचार-व्यवहार में वह मंजा हुआ है, और इस तरह अपने आफत के मारे गलती से भटककर अचानक मिलने चले आने वाले दोस्त को खुश करने की नाकाम कोशिश कर रहा होता है? ऐसा क्यों होता है की आगंतुक को सहसा ही कोई काल्पनिक अत्यावश्यक काम याद आ जाता है और जबकि उसका मेजबान यह दिखाने की हरचंद कोशिश कर रहा होता है कि वह लज्जित है और स्थिति को सुधारने के प्रयत्न में है— वह उसके कांपते हाथों में से अपना हाथ मुक्त करके, झटके से अपना टोप उठाकर धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियां उतरकर सीधे सड़क पर पहुंच जाता है? किस लिए कमरे से बाहर निकलते ही आगंतुक ही रुकी हुई हंसी फूट पड़ती है और वह वहीं और उसी जगह कसम खाता है कि अब कभी इस विचित्र प्राणी से मिलने न आयेगा, जबकि सही बात यह है कि वह विचित्र प्राणी बहुत ही भला और निश्छल व्यक्ति है? लेकिन आगंतुक दोस्त को इतने ही से संतोष नहीं होता. इसके साथ ही वह अपनी कल्पना की दौड़ रोकने में भी स्वयं को असमर्थ पाता है. उसे अपने दोस्त के मुख की बिल्ली के उस नन्हे और मासूम बच्चे से तुलना करने के मुख की बिल्ली के उमड़ आती है, जिसे कुछ शरारती बालकों ने चालाकी से बंद करके हर तरह से सताया, डराया और पीड़ित किया हो, और वहां भयाक्रांत और रोमांचित खड़े हुए हांफते-हांफते दोनों पंजों से अपना चोट खाया हुआ मुख सहलाते हुए उसे घंटा भर रहना पड़ा हो. इसके बाद कहीं देर हो जाने पर बाहर निकल कर वह डरते-डरते चारों तरफ देखता है और साहस करके अपने मालिक की मेज पर रखे हुए रोटी के टुकड़ों पर निगाह डालता है जिन्हें घर की दयालु नौकरानी ने उसके लिए बचा रखा था."

नास्तेंका, जो अभी तक आश्चर्य में डूबी हुई खुले हुए होंठों ओर विस्फारित नेत्रों से मुझे सुन रही थी, फूट पड़ी, "मैं कहती हूं, मैं कहती हूं कि मेरी तो खाक भी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर, ऐसे हास्यास्पद प्रश्न तुम क्यों मुझसे पूछ रहे हो, और यह सब क्यों घटित हुआ? लेकिन इतना निश्चित जानती हूं कि शुरू से लेकर-आखिर तक ये सारी बातें तुम्हारे साथ ही हुई हैं."

"निःसंदेह," मैंने अत्यंत गंभीर स्वर में उत्तर दिया. "अगर यही बात है तो फिर आगे बताओ, क्योंकि मुझे सबसे ज्यादा उत्कंठा तो इस बात की है कि इसका उपसंहार क्या होगा."

"तो तुम जानना चाहती हो नास्तेंका कि नायक, अथवा मैं, क्योंकि इस कहानी का नायक, मैं, मैं बदनसीब ही था— अपने इस एकांत कोने में कया कर रहा था? जानना चाहती हो कि अपने दोस्त के अप्रत्याशित आगमन ने मुझे क्यों असंतुलित करके विक्षिप्त-सा बना दिया? तुम जानना चाहती हो कि सहसा दरवाजा खुलते ही मैं इस कदर चौंककर इतना बदहवास क्यों हो गया? क्यों अतिथि सत्कार की इस पशोपेश के नीचे दबा होने पर भी मैं अपने आगंतुक दोस्त का स्वागत सत्कार करने में असफल हुआ और बिल्कुल दयनीय बनकर रह गया?"

"हां, हां, यही तो," नास्तेंका ने उत्तर दिया, "यही तो मैं जानना चाहती हूं. देखो, तुम बड़े सुंदर ढंग से यह वर्णन कर रहे हो, लेकिन क्या तुम इसे कुछ कम सुंदर नहीं बना सकते क्योंकि तुम्हारी बातें सुनकर आभास होता है कि तुम कोई पुस्तक मुझे पढ़कर सुना रहे हो."

मैंने बड़ी कठिनाई से अपनी हंस पड़ने की इच्छा को दबाया और यथासंभव गंभीर स्वर में उत्तर दिया, "मेरी अच्छी नास्तेंका, मैं जानता हूं मेरा संभाषण मनमोहक है, लेकिन दुख है कि और किसी ढंग से मैं बोल भी नहीं सकता. इस समय तो, नास्तेंका प्रिये, मैं सम्राट सोलोमन के उस प्रेत की तरह हूं जिसे सात ताले जड़कर संदूक में बंद कर दिया गया हो. और आखिरकार उसने वे सातों ताले तोड़ लेने में सफलता प्राप्त कर ली हो. नास्तेंका मैं तुम्हें युग-युगांतर से जानता हूं, और तुम्हारी तलाश में भटक रहा हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

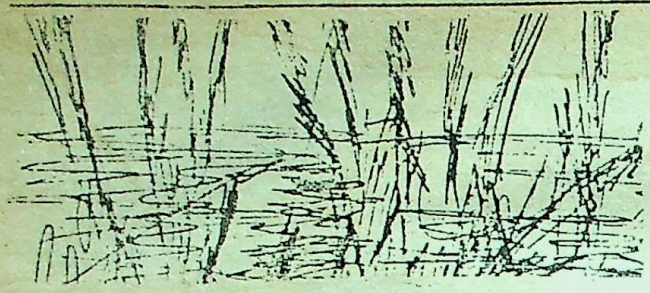

और तुम मेरी परिचिता हो, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हमारा तुम्हारा यह मिलन एक पूर्वनिश्चित संयोग है— और जब इतने लंबे अर्से के वियोग के बाद हमारी भेंट हुई है तो लगता है कि मेरे मस्तिष्क के हजारों स्रोतों के द्वार एक साथ खुल गये हैं और अगर मैं उन्हें अभिव्यक्ति नहीं देता तो वे मुझे समूचा डूबो देंगे और सांस घुटने-घुटने से मैं मर जाऊंगा. इसीलिए नास्तेंका, मैं तुमसे याचना करता हूं कि मुझे बीच में रोको मत, बल्कि गंभीरतापूर्वक और ध्यान देकर मेरी बातों को सुनो, नहीं तो मैं बस अभी चुप हो जाऊंगा."

"नहीं, नहीं, नहीं, ओह, नहीं तुम बोलो. मैं एक भी शब्द नहीं कहूंगी."

"अच्छा, तो आरंभ करूं. मेरी प्यारी मित्र नास्तेंका, दिन भर में एक समय ऐसा होता है जिसे मैं असाधारण रूप से पसंद करता हूं. यह विशेष समय तब होता है, जब सारा काम काम, नौकरी-नौकरी और व्यापार-धंधे से छुटकारा पाकर हर आदमी सायंकालीन भोजन, एक मीठी नींद, किसी सुहानी जगह संध्या बिताने, रात्रि में आमोद-प्रमोद करने और अपना बाकी समय तरह-तरह के शुगलों में गुजारने के बाद में सोचता हुआ घर की तरफ जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता जाता है. इसी समय हमारा नायक भी (नास्तेंका, मुझे अनुमति दो कि मैं यह सारी कथा तृतीय पुरुष के माध्यम से सुनाऊं, क्योंकि अगर मैंने प्रथम पुरुष का प्रयोग किया तो मारे संकोच के मैं यही गड़ कर रह जाऊंगा) इसीलिए, हां तो हमारा नायक भी, जो निश्चय ही कोई नाकारा नहीं, सबसे साथ जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता है. लेकिन उसके पीले और बीमार से दिखायी देने वाले चेहरे पर इस समय एक अद्भुत आनंद की छटा झलक रही होती है. वह सेंट पीटर्सबर्ग के शीतल आकाश के सागर में धीरे-धीरे डूबते हुए सूरज को औरों की तरह निरपेक्ष भाव से नहीं देखता है. परंतु, जब मैं कहता हूं कि वह देखता है तो यह झूठ होता है. दरअसल वह उसे देखता नहीं, बल्कि जैसे किसी बड़े आकर्षण में डूबा हुआ वह अनायास और असंपृक्त भाव से उस पर दृष्टि डालता है, क्योंकि इस समय वह संसार को केवल एक उड़ती हुई निगाह से एक क्षण को देखने की फुरसत भर में ही है. वह इसलिए खुश है कि अपने नीरस और उबा देने वाले काम काज से कल तक के लिए वह मुक्त हो गया है. वह इस समय उस स्कूली लड़के की तरह महसूस कर रहा है जिसे अपने मनचाहे खेल खेलने और शरारतें करने के लिए कक्षा से छुट्टी दे दी गयी हो. जरा उसकी ओर देखो तो नास्तेंका, तुम्हें तुरंत मालूम हो जायेगा कि इस खुशी ने उसके सुकोमल भाव-तंतुओं और संवेदनशील कल्पनाशक्ति पर कितना अच्छा प्रभाव डाला है. देखो, अब यह विचारों में खो गया है. क्या तुम समझती हो वह रात के डिनर के बारे में सोच रहा है? या संध्याकालीन मनोरंजन के? वह इस तरह निमग्न होकर किसकी तरफ देख रहा है? क्या उस आकर्षक व्यक्तित्व वाले संभ्रांत व्यक्ति की तरफ, जिसने हवा से बात कर रहे घोड़ों वाली विक्टोरिया पर सवार उस महिला को देखकर बड़े नाटकीय ढंग से सिर झुकाकर अभिवादन किया है? नहीं नास्तेंका, ये सब छोटी-मोटी बातें भला अब उसके आगे क्या अर्थ रखेंगी? वह तो अपने उस विशिष्ट संसार की उपलब्धियों से भरा-पूरा है, जिसका बोध यकायक उसे उस समय हुआ जब अस्ताचलगामी सूर्य की विदा लेती हुई किरणें उसके सम्मुख एक अनोखी प्रसन्नता से थिरक उठीं और उसके सुप्त हृदय में अनगिनत कल्पनाओं की लहरें आलोड़ित कर दीं. सामने वाला वह रास्ता, जहां क्षण भर पहले कोई छोटी-सी बात भी उसे चौंका देने के लिए पर्याप्त थी. अब उसके आगे से लुप्त हो गया है. ऐसा इसलिए हुआ कि कल्पना देवी ने (तुमने अगर जुकोव्स्की को पढ़ा है तो तुम समझ लोगी नास्तेंका) उन्मन होकर अपना सुनहरा धागा उठा लिया है और उसके लिए स्वप्नों के झीने लहराते हुए आंचल बुनने लगी है. एक कल्पना प्रसूत सतरंगे जीवन के सपने और कौन जानता है कि उसी ने हमारे नायक को अपने जादुई हाथ के स्पर्श से पत्थर की उस पटरी से उठाकर नक्षत्र-जटिल सातवें आसमान पर पहुंचा दिया हो— जिस पर होकर वह घर की ओर जा रहा था. अगर तुमने इस समय उसे टोककर अचानक यह सवाल पूछा होता कि इस समय वह किस स्थान पर है और इस सड़क का क्या नाम है, तो शायद वह कुछ भी न बता पाता और अपनी परेशानी से झेंपता हुआ लाज बचाने के लिए कोई न कोई कथानक गढ़कर सुना देता. और यही कारण है कि जब सड़क के बीचोंबीच एक सम्मानित वृद्ध महिला ने सहसा उसे रोककर रास्ता पूछा तो वह घबराकर लगभग चीख पड़ा और विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर सशंकित होकर देखने लगा. क्षुब्ध होकर झुंझलाता हुआ अब वह लंबे-लंबे डग भर रहा है. उसे इस बात का जरा भी ध्यान नहीं है कि लोग उसे मुड़-मुड़ कर देख रहे हैं या उस पर व्यंग्यभरी मुस्कानें फेंक रहे हैं. और न उसका ध्यान उस छोटी-सी बालिका की ओर जाता है जो डरते-डरते उसका रास्ता काटती है. और फिर उसके फड़कते हुए हाथ और किसी अज्ञात कारण से आयी हुई हंसी से खुल गये होंठों को देखकर हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाती है. लेकिन तब तक कल्पना की देवी ने उसे इन उत्सुक राहगीरों, वृद्ध महिला, हंसी से लोटपोट होती बालिका और फोन्तेन्का के तट पर बिखरे हुए शाम के भोजन में मस्त मछुआरों के बीच से उठाकर पुनः अपने चमकीले पंख पर बैठा लिया है. और उसे उड़ाकर ले चली है. उसने हर किसी व्यक्ति और हर किसी वस्तु को अपना जादू फेरकर एक सुनहरे जाल में इस तरह से बुन दिया है कि जो कुछ भी है, कीड़े-पतंगों की तरह इसमें फंसता ही चला जाता है, और हमारा नायक कल्पना की इस दुनिया को संजोये हुए अपने छोटे से नीड़ में प्रवेश करता है. वह बैठ गया है. मेज पर रखा हुआ रात का भोजन भी वह अनमने भाव से जैसे-तैसे निगल लेता है, और जब सदा गंभीर और उदास दिखने वाली नौकरानी मात्रयोना उसके हाथ में पाइप थमाती है तब वह इन सपनों से जाग उठता है. वह अपने सामने चैतन्य होकर देखता है और तब उसे यह तथ्य मालूम होता है कि बिना भोजन-क्रिया को महसूस किये ही उसने अपना रात का भोजन कभी का समाप्त कर डाला है. □

अगले अंक में

किस तरह स्वप्नदर्शी नायक की कल्पना पुनः खड़ी होकर नयी उड़ान भरती है... और सहसा एक बिल्कुल नया संसार उसकी आंखों के सामने कौंध जाता है... कैसा है यह संसार?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपन के दिन

28 वर्षों तक धर्मयुग का संपादन करके डा. धर्मवीर भारती ने हिंदी की साप्ताहिक पत्रकारिता को नया स्वरूप और दिशा प्रदान की. उनकी अगुवाई में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने लाखों नये पाठक बनाये, उनमें पढ़ने की आदत डाली. लेकिन इस भागीरथी प्रयास में हमने कथाकार भारती को लगभग खो दिया. 'यह मेरे लिए नहीं' और 'बंद गली का आखिरी मकान' के लेखक को हम जैसे कुछ लोग बराबर ढूंढते रहे. पिछले वर्ष वे संपादन कार्य से मुक्त हुए तो उम्मीद बंधी कि अब ये लिखेंगे. एक नया दौर शुरू होगा, चर्चा-सराहना-विवाद-कटु आलोचना, याने गतिविधियां बढ़ेंगी. भारती लिखें और पाठकों में हलचल न मचे, ऐसा कैसे हो सकता है. लेकिन प्रतीक्षा लंबी होती गयी, कोई खबर नहीं, रचना नहीं. ताज्जुब यही होता है कि सेवा निवृत्ति तो संपादक की होती है, लेखक की नहीं, फिर यह सन्नाटा क्यों?

अब खबर आयी है, भारती लिखने का इरादा बना रहे हैं. हाल ही में रविवार को दिये गये साक्षात्कार में उन्होंने कहा है, "वैसे इरादा मेरा यह है कि पहले एक उपन्यास—अपने मुहल्ले में, जो बचपन बिताया है, उसमें जो लोग मिले हैं, उनकी जो यादें छूट गई हैं, उस समय की जो मूल्य मर्यादाएं थीं, इन्सानी रिश्ते थे, उनको लेकर एक उपन्यास, एक छंदबद्ध नाटक, ये दो चीजें पहले लिखने की इच्छा है."

उम्मीद है कि जो साहित्यकार संपादक भारती से नाराज हो गये थे, वह भी लेखक भारती की वापसी पर प्रसन्न होंगे. हो सकता है इस बार वे प्रगतिशील या जनवादी या कोई ऐसी ही चीज के रूप में नजर आयें.

बचपन के दिन-2

नहीं लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं—ज्ञान रंजन. 'पहल' का संपादन शायद लिखने में आड़े आता हो. उनके न लिखने पर सदके जाते हुए स्वयंप्रकाश ने लिखा है, "जिनके लिए भांग के नियमित सेवन में और कहानी लिखने में कोई फर्क नहीं है, वे लिख ही रहे हैं, लेकिन हर कहानी जिसके लिए एक आविष्कार है-उससे हमें ऐसी गैर साहित्यिक अपेक्षा क्यों करनी चाहिए? और नहीं लिखकर भी क्या वह शख्स चुप है? निष्क्रिय है? चुक या बुझ गया है?" यह भक्तिभाव अपनी जगह. लेकिन ज्ञानरंजन ने नवभारत टाइम्स में संस्मरणात्मक लेख लिखकर कसम तोड़ ही दी है. अपने बचपन के बारे में लिखते हुए उन्होंने जरा भी बचपने से काम नहीं लिया है. बंगलों और बंगालियों की स्मृति वाले अपने इलाहाबाद के बारे में आग्रहपूर्वक कहा है कि, " इसमें पेरिस जैसी अकड़ और गरीबी थी. उत्तर भारत में वह एक सबसे आधुनिक दरवाजा था... साहित्य की जितनी बड़ी आधुनिक कशमकश और हलचल इलाहाबाद में पैदा हुई, वैसी पहले या बाद में कभी नहीं रही. यह दूसरी बात है कि इलाहाबाद अपनी कब्र में सो गया, लेकिन कब्र में सोता हुआ इलाहाबाद दिल्ली, भोपाल, लखनऊ, पटना की खिलंदरी से आज भी ज्यादा सुंदर है."

देखा आपने अद्‌भुत साम्य! भारती और ज्ञानरंजन दोनों इलाहाबाद में बीते अपने बचपन को कितना याद करते हैं! (संदर्भ : कथानक अंक 11 और रविवार्ता 28.8.88)

बोल मेरी मछली, कित्ता पानी

जनसत्ता ने खबर दी है, हिंदी कहानी के सौ वर्ष पूरे हो गये हैं. इस शुभ अवसर पर उसने हिंदी कहानी की खबर भी ली है. भारतीय रेल के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में एक शताब्दि एक्सप्रेस चलायी गयी, जो कि दिल्ली से मंत्री जी के गृहनगर तक जाती है. जनसत्ता की कहानी शताब्दि एक्सप्रेस दिल्ली से शुरू होकर दिल्ली में ही रुक गयी है. अमरेंद्र मिश्र ने दिल्ली के प्रयाग शुक्ल, उदयप्रकाश, रमेश उपाध्याय, रमेश बक्षी वगैरह से सरसरी तौर पर जो बातचीत की होगी उसके टुकड़े पैराग्राफों के रूप में गाड़ी के डिब्बों से जुड़े हैं. रामदरश मिश्र, बक्षी और गंगाप्रसाद विमल को छोड़ दिया जाये तो मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि सौ बरस की हिंदी कहानी में परंपरा प्रेमचंद की, जिससे जुड़े मुक्तिबोध, यशपाल, रेणु, ज्ञानरंजन, उदयप्रकाश और उपर्युक्त महानुभावों को समर्थन देने वाले दिल्लीवासी सभी मित्र. हमें इस तरह के निष्कर्षों पर टिप्पणी करने का भला क्या अधिकार है लेकिन कोई हमें समझाये कि प्रेमचंद की कौन-सी परंपरा है जिसे मुक्तिबोध, यशपाल और रेणु में खोजा जा सकता है. ज्ञानरंजन और उदयप्रकाश जैसी कहानियां लिखते हैं (घंटा, बहिर्गमन, राम सजीवन की प्रेमकथा, तिरिछ) वैसी कहानियां प्रेमचंद के 'हंस' में तो शायद ही स्थान पातीं, राजेंद्र यादव का 'हंस' उनके लिए अधिक अनुकूल है लेकिन किसी माई के लाल ने राजेंद्र यादव का नाम नहीं लिया. अब चूंकि प्रयाग शुक्ल ने हिम्मत जुटाकर कृष्णा सोबती, विजय चौहान, प्रबोध कुमार, विद्यासागर नौटियाल, जितेंद्र और मधुसूदन आनंद जैसे कुछ नाम ले लिये हैं इसलिए उन्हें बधाई देने को जी चाहता है हालांकि इनमें से अधिकतर दिल्ली के ही हैं.

तीन नयी कहानियां

संजय की अद्‌भुत कथारचना 'भगदत्त का हाथी' पढ़कर आनंद की जो अनुभूति हुई थी उसकी पुनरावृत्ति संजय चौहान की 'एक सिरफिरे की दो कहानियां, (कहानियां : जुलाई 88) को पढ़कर हुई. संजय चौहान की भाषा में जो ताजगी है वह दिनोंदिन लिखी जा रही भरती की कहानियों में दुर्लभ होती जा रही है. उन्होंने इस रचना में शिल्पगत प्रयोग के नाम पर कुछ लटके-झटके ज्यादा ही दिखाये हैं परंतु प्रस्तुतीकरण निर्दोष और युक्तिपूर्ण होने से यह बांकपन अच्छा लगता है. इन दोनों कहानियों से सूरत और सीरत में एकदम अलग एक उल्लेखनीय कहानी है 'त्यौहार' (हंस-संयुक्तांक) □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1 फरवरी, सन् 1930
प्रमुख कृतियां : 'धुल पार का आदमी', 'आता हुआ कल' (कहानी संग्रह)
संपर्क : गेल, गेस्ट हाउस, बी/184, निराला नगर, लखनऊ

□ हरिहर द्विवेदी

निर्णय

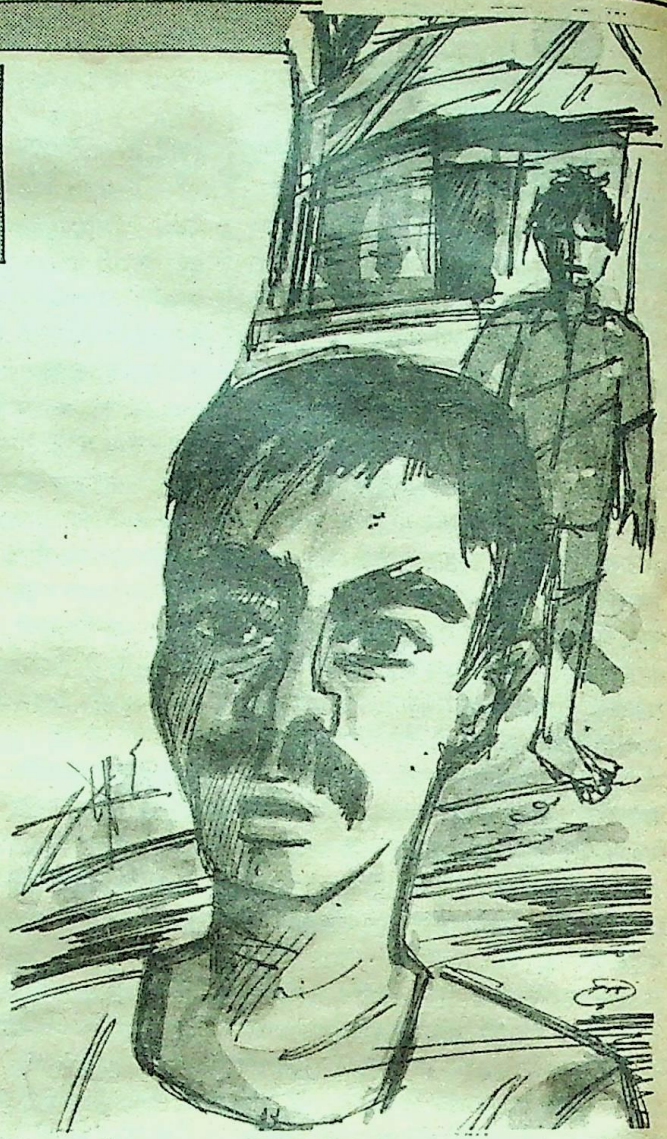

कोई आठ-दस वर्ष के और आज के बचई में इतना अंतर आ गया था कि देखकर पहचान ही नहीं पाया और उसके याद दिलाने पर, "पालागी, बाबा! बचई." मैं अवाक् रह गया था.

बचई जगदीशपुर गांव का सबसे मेहनती, ईमानदार और हंसमुख खेतिहर मजदूर था. जिन लोगों को मजदूरों से काम नहीं कराना पड़ता और जो अपनी खेतीबारी का काम खुद कर लेते हैं, वे भी चाहते, बचई कोई न कोई काम उनके यहां जरूर करे. किंतु अकेला बचई—एक अदद बीवी, दमे की मरीज, एक लड़का जिआवन उम्र पांच वर्ष और एक साल भर की लड़की रमरतिया, यही आठ-दस वर्ष पहले उसका परिवार था. पूछने पर बचई ने कहा, "बस! यही चार परानी हुजूर."

बात-बात पर बाबा, हुजूर, मालिक जैसे शब्दों की अदायगी उसकी मेहनत, ईमानदारी और शख्सियत को कई गुना और बढ़ा देते. कहते हैं कभी किसी से बचई का कोई बिगाड़ तो दूर, कहा-सुनी भी नहीं हुई. जो चार पैसे कम अथवा मरा हुआ अनाज मजदूरी में दे देता उसका भी वह अपनी जुबान से भला ही मनाता.

मैंने पूछा, "बचई काका! इस तरह आपकी कमर झुक गई. चेहरे का रोब जाता रहा, आखिर बात क्या है, कोई रोग तो...?" अभी वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि उसने कहा, "बाबा! हम मजूरों के लिए सबसे बड़ा रोग ज़िनगी खुद है. हमारी चाहत, हमारा विश्वास, हमारी हंसी, हमारा मुस्कराना. सब का सब कोई न कोई रोग ही है. आपसे क्या छिपा है, भगवान ने चार पैसे दिए थे, सोचा थोड़ी जमीन खरीद लूं. कोई बुरा सोचा क्या बाबू?"

"नहीं तो!"

"पहले तो हरिजन को कोई जमीन बेचने को तैयार ही नहीं हुआ. जहां-तहां यह भी सुना कि यह जमीन ले लेगा तो गांव को ऐसा मेहनती मजूर कहां से मिलेगा! खैर! भला हो करीम भाई का कि उन्होंने तीन हजार में दस बिस्वा जमीन दे दी. जमीन उसने दी, पैसा मेरा लग रहा था पर जाने क्या था कि कइयों की आंखें बदगुमा हो गईं. आपसे क्या छिपा है, केवल घिरहुआ ने कुछ पैसे दिए किसी तरह 'रजेस्टली' हो गयी." घिरहुआ का नाम सुनते ही उसका पूरा हुलिया-भरा-भरा चेहरा, चौड़ा सीना, उसके दोष-पाप सभी मेरी आंखों में नाचने लगे. अजीब जीवट का आदमी घिरहुआ, कहे-सुने का कोई असर नहीं. मुझे अब भी याद है कि राप्ती-गौरा के बीच के कछार के अपने गावों की जिंदगी बाढ़ आयी तो चांदनी रात में नाव पर मजा लिया, फसल गयी तो चार दिन गम भी मना लिए. पर साल माथ पर मई-जून में अगर खेतों से दूब कोड़कर न निकाली जाए तो बरसात के साथ सभी खेतों में जंगल उग जाता है. इसलिए जो खुद कुदाल चला सकता है तो खुद, नहीं तो मजदूर रखकर गोड़ाई जरूर करवाता है. मुझ याद है बचपन मे घिरहुआ, बचई, बलेसर आदि मेरे खेतों में दूब की गोड़ाई के लिये रखे जाते. घिराहू कतार में सबसे आगे रहता. गौर से देखने पर पता चला कि वह दूबों को ऊपर से ही काटकर आगे बढ़ जाता है, उनकी जड़ें नहीं खोदता. एक बार टोकने पर बोला, "हुजुर! यह अन्याय मुझसे न कराइए. आप जानते हैं कि हम आपके ताबेदार हैं. यही हमारी रोजी-रोटी है. यदि दूब महारानी का सर्वनाश कर दूं तो वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा सत्यानाश कर देंगी. कौन देगा नौकरी? सच मानिए, हमारा वंश भूखों मर जायेगा.''

मुझे उसकी इस बेबाक टिप्पणी पर गुस्सा आने के बदले मन ही मन हंसी आ गयी. उन दिनों इस इलाके में सोशलिस्ट पार्टी का बड़ा जोर था. मेरे जैसे पढ़े-लिखे नवयुवक 'धन और धरती बंट के रहेगी' जैसे नारों से बहुत प्रभावित थे. सोचा घिराहू कायदन तो गलती कर रहा है पर आखिर ईमानदारी इन्हें दे क्या रही है! लगा, शायद इनकी गरीबी का कारण इनकी ईमानदारी ही है. इसका कतई मतलब यह नहीं कि घिराहू की इस बेईमानी को मैं शह देना चाहता था. कुछ बोलता, इसके पहले ही वह जोर-जोर से कुदाल चलाने लगा और दूब की जड़ें खोदने लगा. ऐसा करते समय वह कहता, ''दूब महारानी, मेरे बाल बच्चों पर किरपा रखना, मैं नहीं, मालिक तुम्हारा वंश उजड़ाने पर लगे हुए हैं. मैं ठहरा हुकुमी, कोई रकमी थोड़े ही हूं, 'जय दूब महरानी की'' और दूब की पीली अंइठी जड़ें बाहर निकल पड़तीं.

इतना सब जल्दी-जल्दी रील की तरह दिमाग में घूम गया और बचई अपनी सुनाने को आतुर मेरा मुंह जोहता रहा कि पूछा, ''घिराहू कैसे हैं!''

''उसके पांचों लड़के कोइलरी में चले गये. कुछ न कुछ हर मास जरूर भेजते हैं. दोनों लड़कियों का हाथ भी पीला कर दिया और हुजूर! अब तो एक बखरी भी बनवा लिया है. अब छप्पर के घर में नहीं रहता साहब! छप्पर के घर में रहता था तो मजूरी के लिए जो भी अढ़ाने आता तो दो लट्ठ छप्पर पर जमा देता और आप तो सब जानते हैं, घासफूस की कालिख में नहाया घिराहू आंखें बचाकर बाहर आकर कहता, ''एक ही जान है, मेहरी को चेचक मइया ले गयी. किसके-किसके यहां चाकरी करने जाऊं? और फिर हौले से कहता लाठी नहीं सरकार गंडासा लेकर आइये और अलगा दीजिए मूंड, बांह, पांव. सभी अलग-अलग एक-एक सबके यहां चल देंगे.''... और लोग बड़बड़ाते हुए चले जाते.

''अच्छा! समझा, इसलिए उसने जमीन लेने के लिए पैसे दिए.''

''जी हुजूर! किसी की नेकी-बदी भला कभी भूली जाती है! साहब, थोड़ी खेती लथ्थक जमीन हो जाने पर सोचा चकबंदी में ग्राम समाज की जो जमीन हरिजनों को मकान बनाने के लिए छोड़ी गयी है उसमें मैं भी बच्चों के सिर छुपाने के लिए एक बखरी बना लूं. आपसे क्या छिपा है सास-ससुर, बेटी-दामाद और जहां-तहां के हितर-मितर से कुछ ले देकर पिछले साल तीन कमरों की खपरैलों की एक बखरी भी छवा लिया. सोचा, बाबू लोगन की किरपा हुई तो पंचन के बीच हमारे बच्चे भी मनई की तरह रह लेंगे. लेकिन बाबू! आप तो जानते हैं किसका बिगाड़ा है हमने. लइका परानी लेकर सबकी सेवा में जुटा रहता हूं. हां, पहले की तरह जरा फुरसत कम है. अपनी भी जमीन है, पर किसी को निराश नहीं किया. ऊपर से तो कुछ नहीं कहा, मगर लगता है कुछ लोग मन ही मन कुढ़ने लगे. अब नाम किसका लूं साहब! किसी ने माचिस खरच दी. बखरी

पोंछने के लिए जब आंसू तक न बचे... तब? कितना असहाय बेचारा और रीता हो जाता है आदमी...?

धू-धू कर स्वाहा हो गयी. चौधुरी ने आग बुझाने के लिए अपने कुएं से पानी भी नहीं लेने दिया. उधर गौर्रा का बंधा टूटा कि खेत बालू हो गया. तभी से बाबा बचई मन ही मन टूट गया. कमरा क्या पूरा जिनगी ही झुककर कमान हो गयी है.''

वह हांफने की स्थिति तक आ गया था. थोड़ी देर तक उसके चुप रहने के बाद मैंने पूछा, ''और बच्चे?''

''जिआवन नौंवी में पढ़ता था. यह सब देख-सुन तीन महीने हुए जाने कहां चला गया, न चिट्ठी न पतरी. उसकी मां के भीतर अइसा लुक्क समाया कि बिस्तर पर पड़ी तो फिर उठी ही नहीं. रमरतिया अब दस बरस की हो गयी है. जूठ-पानी दे देती है.वह भी कब तक रहेगी, परायी संपत्ति.''

इतना कहते-कहते उसकी आंखों से जहर बुझे आंसू रिसने लगे. बीच-बीच में हाथ उठाकर पोंछता और कहता, ''साहब आंसू हों तो पोछना ही पड़ता है पर मेरे जिम्मे तो अब वे भी नहीं बचे, महज हाथ उठाकर फर्ज अदायगी कर लेता हूं, नहीं तो लोग मगरूर कहेंगे न बाबू!''

इसके साथ ही मुझे लगा अपनी सारी व्यथा, सारी उम्मीदें उड़ेलते हुए वह जोर-जोर से बिलखता हुआ मेरे पैरों पर गिर पड़ना चाह रहा है कि उठाकर बाहों में भर लिया. पहली बार एक पराए कंधे का सहारा पाकर उसकी सारी अंतर्वेदना भभक उठी. न जाने कहां से, कब से पथरा गयी उसकी पुतलियों सें आंसू छलछला आये. मेरे कंधों पर वह इस तरह अहक रहा था जिस तरह छोटे बच्चे बाहर मार खाकर मां के आंचल में मुंह छिपाकर बिलख उठते हैं.

इतने में देखा कि पीछे से घिराहू आकर सामने खड़ा हो गया है.

''खैर! करना तो यहीं और तुम्हीं लोगों को पड़ेगा. ऐसा नहीं कि आज शहर में जाकर भी कोई चैन की बंसी बजा पाएगा.''

''ठीक महाराज! मेरे एक बेटे ढेलारू को कोइलरी में खाली पांच रुपया खातिर जान से मार दिया ठेकेदार के गुंडों ने.'' घिराहू ने भी मेरी बातों का समर्थन करते हुए कहा किंतु आगे कुछ सुझा नहीं सका.

''ठीक है देखा जाएगा,'' कहकर गांव घर की बातें करते-करते गांव की तरफ हम तीनों आगे बढ़े. उनका रास्ता अलग होते देख मैंने कहा, ''अब मैं शहर नहीं जाऊंगा. सोचता हूं अपने लोगों के बीच यहीं रह कर जिंदगी के शेष दिन काट दूं.''

''मेरा चोकट भी आ रहा है. जरा देश-परदेश की खबर जानने लगा है, आप के साथ लगा दूंगा.'' घिराहू ने बीच में कहा.

मैंने कहा, ''और बहुत से लड़के हैं. बहुत अच्छा काम कर रहे हैं. उनसे बात कीजिए तो हर बात का दूध का दूध पानी का पानी आपके सामने बिलगा के रख देंगे. बी.ए.एम.ए. तक पढ़े हैं पर देखोगे तो लगेगा, बिल्कुल गंवई घर का अनपढ़ किसान खैर! अब तो रहना ही है.'' यह सुनकर दोनों के होंठों पर मुस्कराहट दौड़ गयी थी. वे आपस में कुछ गुपचुप बातें करते अपने अपने घरों की ओर चले गये.

मैंने गांव में रहने की बात महज फर्ज अदायगी के लिए नहीं कही थी किंतु अब लगता है कि निर्णय ने गांव घर के सारे हल्के-फुल्के प्रसंगों को गुरु-गंभीर गट्ठर की तरह बांधकर मेरी आंखों के सामने पहाड़-सा टिका दिया है जिसे हटाने के लिये लोगों के बीच जाना ही होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रहसन

महाराज कृष्ण काव

नियम नहीं है

(साहब घंटी बजाते हैं)

साहब : परसराम?

(साहब फिर घंटी बजाते हैं)

साहब : (चिल्लाकर) परसराम? कहां चले गये? (बार बार घंटी बजाते हैं. दरवाजा खुलता है)

दरसराम : यस सर?

साहब : दरसराम, परसराम कहां है?

दरसराम : सर, अभी-अभी गया है.

साहब : कहां गया है?

दरसराम : सर, बाथरूम गया है.

साहब : अच्छा, अच्छा. आये तो भेज देना.

दरसराम : जी, बेहतर.

साहब : ज़रा सुपरेंडेंट साब को बुलाओ.

दरसराम : जी अच्छा.

(दरवाजा बंद होता है. फिर धीरे-धीरे खुलता है)

युवती : (मिठास से) क्या मैं अंदर आ सकती हूं?

साहब : हां, हां, हां, आइये, तशरीफ रखिए, कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?

युवती : सर, मेरा नाम कमलेश है. आपके विभाग में जिला स्तर पर काम करती हूं. मेरा केस पांच साल पहले यहां भेजा गया था.

साहब : पांच साल पहले?

कमलेश : जनाब, तबसे मैं पचास चक्कर काट चुकी हूं, मगर बेकार.

साहब : पचास चक्कर?

कमलेश : बिल्कुल, सर. मेरा केस सुलझने की बजाए उलझता हो जा रहा है.

(दरवाजा खुलता है. दरसराम अंदर आता है)

साहब : कहां गये थे?

दरसराम : सर, चाय पीने.

साहब : चाय? लेकिन मुझे तो बताया गया कि कैंटीन में आज चाय नहीं मिल रही.

दरसराम : यह ठीक है सर. पानी नहीं है.

साहब : तो सुपरेंडेंट साहब कहां गये हैं?

दरसराम : सर, अशोक होटल.

साहब : अशोक होटल? कहां? दिल्ली?

दरसराम : नहीं सर. दफ्तर के बाहर एक ढाबे का नाम है, सर.

साहब : अच्छा, ऐसा करो, चौहान को बुलाओ.

दरसराम : जनाब.

(जाता है)

साहब : अच्छा तो कमलेश जी, आपका केस है क्या?

कमलेश : सर, मैं पहाड़ी चशमा सुपरवाइजर हूं. मेरे वेतनमान का झगड़ा है. मुझे 400-15-600 दिया गया है जबकि मैं 450-25-650 मांग रही हूं.

(दरवाजा खुलता है. चौहान अंदर आता है)

चौहान : सर, आपने बुलाया?

साहब : हां, देखो चौहान, यह मिस कमलेश हैं. इनके वेतनमान का केस है.

चौहान : यस सर.

साहब : आप डील कर रहे हो?

चौहान : यस सर.

साहब : तो पांच साल से उसका फैसला क्यों नहीं हो रहा?

चौहान : सर, यह बहुत पेचीदा केस है.

साहब : क्या पेचीदा है इसमें?

चौहान : सर, यह दस बार फाइनांस को गया है. वह मानते ही नहीं.

साहब : क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौहान : सर, यह तो मुझे याद नहीं है. मैं फाइल लाता हूं.

साहब : जल्दी लाओ.

(दरवाजा बंद होता है)

कमलेश : सर, मैं आपको तकलीफ दे रही हूं.

साहब : नहीं, कोई बात नहीं. यह तो हमारा काम है. अब देखना, मैं इस दफ्तर में क्या काया पलट करता हूं.

कमलेश : सर, आप तो अभी आये हैं.

साहब : जी हां, दो महीने पहले. मैं इस सारे विभाग को कंप्यूटरायज करना चाहता हूं. फिर कोई केस पांच साल तक नहीं रूकेगा.

कमलेश : ओह, यू आर ग्रेट.

(दरवाजा खुलता है)

सुपरेंडेंट : सर, आई एम सॉरी. मैं जरा बाथरूम तक गया था.

साहब : आइये सुपरेंडेंट साहब. लेकिन दरसराम तो कह रहा था आप चाय पीने गये हैं.

सुपरेंडेंट : (हकलाकर) हां, हां, सर. उधर से ही मैं फिर चाय पीने भी चला गया था. मेरे सर में दर्द होता है सर. डाक्टर ने एडवाइज किया है कि दो-दो घंटे के बाद चाय पिया करूं. यह मेडिकल सर्टिफिकेट है, सर....

साहब : रहने दीजिए. सर्टिफिकेट देखकर क्या करूंगा? आप कह रहे हैं तो ठीक ही कह रहे होंगे. यह मिस कमलेश हैं.

कमलेश : नमस्कार.

सुपरेंडेंट : नमस्ते. आप यहां क्यों आयी हैं? चलिए,मैं आपका केस देखता हूं.

साहब : नहीं, नहीं, सुपरेंडेंट साहब. यह बहुत पुराना केस है. पांच साल पुराना केस. मैं सारी बात खुद सुनना चाहता हूं. चौहान फाइल लाने गया है. आप बैठिए.

(चौहान अंदर आता है)

चौहान : सर, यह फाइल है.

साहब : कहां?

चौहान : वह परसराम और दरसराम दोनों उठाकर ला रहे हैं, सर पांच साल में फाइल थोड़ी भारी हो जाती है.

(दरवाजा खुलता है. दरसराम अंदर आते हैं)

चौहान : हां भई ले आओ. धीरे-धीरे, शाबाश, आराम से. यहां टेबल पर रखो. ध्यान से रखना, चोट न आए.

कमलेश : यह मेरी फाइल है?

चौहान : जी हां, कमलेश जी. यह आपकी ही फाइल है. देखिए ना, आपके केस पर कितना विचार हुआ है?

कमलेश : लेकिन फैसला नहीं हुआ.

चौहान : फैसला? हं हं हं, फैसला अगर आसान होता तो इतनी देर क्यों लगती? लेकिन विचार तो बराबर हो रहा है.

साहब : चौहान, अब बताओ, इस केस में पेचीदगी क्या है?

चौहान : सर, यह केस अपनी किस्म का पहला केस है. इसके बारे में कोई नियम नहीं है.

साहब : क्या कहा? नियम नहीं है?

सुपरेंडेंट : जी, ठीक कह रहा है, सर. इसके बारे में कोई नियम नहीं है.

साहब : क्या कह रहे हैं, सुपरेंडेंट साहब? क्या कोई नियम नहीं है?

सुपरेंडेंट : जी नहीं, सर.

साहब : जी.आर.,सी.आर.,टी.आर.,पी. आर.,एफ.आर., किसी में नहीं?

अगर सरकारी काम में भी दिमाग का इस्तेमाल होने लगे तो...? इस बार पढ़िए सरकारी काम-काज में कर्मचारियों का हाल-बेहाल...

सुपरेंडेंट : जनाब. जनाब. ए.आर.,बी. आर.,एक्स.आर. और वाई.आर. में भी नहीं, सर.

साहब : यह तो बहुत अजीब केस है. ऐसा क्यों है?

चौहान : सर, इस किस्म का यह पहला पद है. इससे पहले पहाड़ी चश्मा सुपरवाइजर का कोई पद नहीं था.

साहब : ओ. ऐसा कोई पद नहीं था. इसलिए कोई नियम नहीं है. हूं. लेकिन फिर ऐसे केस में क्या करना चाहिए?

सुपरेंडेंट : सर, ऐसे केस में जहां नियम नहीं हो वहां हम प्रीसीडेंट ढूंढते हैं.

साहब : हां, हां, प्रीसीडेंट. तो इस केस में प्रीसीडेंट क्यों नहीं ढूंढा?

सुपरेंडेंट : ढूंढा, सर, ढूंढा. दस साल पहले एक पहाड़ी कुआं सुपरवाइजर का केस हुआ था.

साहब : अच्छा, अच्छा. फिर?

चौहान : फिर सर केस फाइनांस को गया.

साहब : तो?

सुपरेंडेंट : उन्होंने 6 महीने के बाद वापिस कर दिया.

कमलेश : मगर क्यों?

चौहान : बहिनजी, उन्होंने बहुत सारे सवाल पूछे. कुआं सुपरवाइजर क्या काम करता है और चश्मा सुपरवाइजर क्या? कहीं ऐसा तो नहीं कि कुआं सुपरवाइजर गहराई में जाकर सुपरवाइज करता है और चश्मा सुपरवाइजर का निरीक्षण उथला और सतही रह जाता है? इस पद को सृजित क्यों किया गया? क्या यह सही नहीं कि पहाड़ी चश्में सूखते जा रहे हैं? यदि उनकी संख्या कम होती जा रही है तो इसकी जिम्मेदारी किस पर है? सुपरवाइजर के नियुक्त होने से तो कम नहीं हो रहे? और अगर उनकी संख्या घट रही है तो सुपरवाइजर के पद की आवश्यकता क्या है.

कमलेश : हे भगवान! वेतनमान देना तो अलग रहा, यह तो मेरे पद के पीछे ही पड़ गये.

साहब : घबराइए नहीं. पद सृजित करना जितना आसान होता है उसे खत्म करना उतना ही कठिन.

सुपरेंडेंट : सर, ख़त्म हम कहां होने देंगे? हमने तो अलग से दस ऐसे पद और मांगे हैं.

साहब : आपने फाइनांस के सवालों का जवाब दे दिया?

चौहान : यस, सर. चार साल पहले.

कमलेश : तो फिर क्यों नहीं हुआ?

सुपरेंडेंट : काफी हुज्जत के बाद वह यह तो मान गए कि पद को रहने दिया जाए. फिर उन्होंने पूछा कि पंजाब पैटर्न क्या है? वहां ऐसे पद का वेतनमान क्या है?

साहब : तो आपको पता करके बताना चाहिए था.

चौहान : सर, यही तो किया. हमने पंजाब सरकार को चिट्ठियां लिखीं, तारें भेजीं, फोन किए, वहां आदमी भेजे.

कमलेश : उन्होंने क्या कहा?

सुपरेंडेंट : उन्होंने जवाब ही नहीं दिया. फिर एक बार मैं गया. पता चला वह सारे पत्र अभी सचिवालय में एक शाखा से दूसरी शाखा को आ जा रहे थे.

साहब : क्यों?

सुपरेंडेंट : सर, वहां किसी को पता ही नहीं चल रहा था कि पहाड़ी चश्मा सुपरवाइजर का पत्र किस शाखा में डील होना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहब : फिर?

सुपरेंडेंट : सर, बड़ी मुश्किल से मैंने उनको समझाया कि यह पानी के चश्मे की बात हो रही है और आकाशवाणी व जन स्वास्थ्य ब्रांच में केस पहुंचाया. मगर वहां जब कागज डील हुआ तो एक और गुल खिला.

कमलेश : अब क्या हुआ?

सुपरेंडेंट : मिस, पता चला कि पूरे पंजाब में अब कोई पहाड़ी चश्मा ही नहीं रहा. इसलिए पहाड़ी चश्मा सुपरवाइजर का वहां बहुत ढूंढने पर भी कोई पद नहीं मिला.

साहब : तो आप उनसे यह लिखवा लाये?

सुपरेंडेंट : जनाब, वह लिखवा लाया और केस फिर फाइनांस को भेजा.

कमलेश : तब तो उन्होंने कर दिया होगा.

चौहान : कहां मिस? उन्होंने कहा पंजाब में न सही तो क्या, आस-पास के अन्य प्रदेशों से पूछो.

कमलेश : तो.

चौहान : हमने पूछा. कहीं ऐसा पद न था. एक साल के बाद केस फिर फाइनांस को गया.

साहब : अब के क्या बोले वह?

चौहान : सर, फिर उन्होंने कहा कि देश के किसी भी राज्य से पता करो. हमने यह भी कर देखा. पूरे भारतवर्ष में यह अपने किस्म का एक ही पद है.

साहब : अच्छा? हूं. तो अब आप क्या कर रहे हो?

सुपरेंडेंट : सर, हमने फिर फाइल फाइनांस को भेजी. अब उन्होंने पूछा है कि विश्व में कहीं से भी ऐसे पद का वेतनमान ढूंढकर बताओ.

कमलेश : हे भगवान.

सुपरेंडेंट : तो आपने क्या किया है?

चौहान : जनाब पूरा एक्शन लिया है. दुनिया में जिस भी देश में भारत का दूतावास है उन सबको पत्र जा चुके हैं. 165 में से 53 के तो जवाब भी आ गये हैं.

साहब : क्या कहते हैं वे तिरपन जवाब?

सुपरेंडेंट : वही कहानी, सर. मुझे तो सर इस केस से डर लगने लगा है. अगर 3-4 साल में यह पता चला कि दुनिया के किसी भी मुल्क में ऐसा पद नहीं है तो कहीं फाइनांस यह न पूछ बैठे कि ग्रहों और उपग्रहों की जानकारी लाओ.

साहब : तो क्या हुआ? तब तक तो चांद को पैसींजर सर्विस शुरू हो चुकेगी. अगर जवाब नहीं आया तो मैं एक टूर लगा आऊंगा.

चौहान : वैसे जनाब, मौका तो इस वक्त भी बुरा नहीं है. जिस-जिस देश के दूतावास से उत्तर नहीं आया है, उनके उत्तर वहां जाकर भी तो लाये जा सकते हैं. आखिर मिस कमलेश का केस है. इतनी देर हो गई है. अब तो कुछ अर्जेंट एक्शन लेने से ही काम चलेगा.

साहब : तुम ठीक कहते हो. मैं आज ही अपना टूर प्रोग्राम भिजवाता हूं.

कमलेश : सर, एक गुजारिश है.

साहब : मिस कमलेश, आप देख रहीं हैं कितनी इन लोगों ने आपके केस पर मेहनत की है, कितनी मोटी फाइल है आपकी, कितनी बार इस पर विचार हुआ है. आपको तो संतोष होना चाहिए कि इस कार्यालय ने पूरी कोशिश की है.

कमलेश : सर, मैं आप सबकी बहुत मशकूर हूं. लेकिन सर, एक छोटी-सी बात है. मेरे केस का सर फैसला तो नहीं हुआ ना?

चौहान : फैसला? वह तो नियम के अनुसार ही होगा ना?

सुपरेंडेंट : नियम नहीं होगा तो प्रीसीडेंट के आधार पर.

साहब : और उस प्रीसीडेंट को हम सारे विश्व में तलाश कर ही रहे हैं.

कमलेश : सर, एक मिनट लूंगी. मेरा एक तुच्छ-सा सुझाव है. अगर गलत कह रही हूं तो माफ कर दीजिएगा.

साहब : हां, हां, कहो, कहो.

कमलेश : सर, क्या यह नहीं हो सकता कि जब नियम नहीं है, प्रीसीडेंट नहीं है तो आप लोग स्वयं ही अपने मस्तिष्क का प्रयोग करके कोई फैसला ले लें

चौहान : क्या? स्वयं फैसला ले लें? वह तो गैरकानूनी होगा.

सुपरेंडेंट : अपने मस्तिष्क का प्रयोग करें? पे-फिक्शन के केस में? हमने मरना है?

साहब : मेरा खयाल है कि आप अपना केस होने के कारण कुछ भावुक हो रही हैं. सरकारी काम अपने मस्तिष्क का प्रयोग करके नहीं होता. अगर हम यह करने लगे, फिर तो हर एक अफसर अपनी ही ढफली बजाएगा. अच्छा मिस कमलेश, आप चलें. आप इत्मीनान रखें, आपका केस बहुत जल्दी हो जाएगा (घंटी बजाता है)

दरसराम : यस सर?

साहब : देखो, जरा पी.ए. साहब को बुलाओ. मैंने अपना टूर प्रोग्राम डिक्टेट करवाना है.

कमलेश : सर, मैं फिर अपने केस के बारे में कब पता करूं?

साहब : अरे आप क्यों तकलीफ करती हैं? हम आपको बहुत जल्द खबर कर देंगे, बहुत जल्द, बहुत जल्द.... □

सर, क्या आप हरामी हैं?

प्रस्तुति : हंस

घोटालों का पर्दाफाश करने वाले एक भारतीय समाचार-साप्ताहिक ने एक समाचार प्रकाशित किया कि उस काल के एक प्रमुख दैनिक के मुख्य संपादक ने, अपनी जवानी के दिनों में, जब वे पेरिस में पढ़ते थे, उस रकम में से थोड़ी अपने पास रख ली थी, जो एक नामी राष्ट्रीय नेता ने विदेशों में भारतीय क्रांतिकारियों की सहायतार्थ दी थी. नेता को चूंकि भारत वापस लौटने में विलंब होने वाला था, इसलिए यह रकम इस विद्यार्थी को, जो शीघ्र ही भारत छुट्टियों में लौटने वाला था, दे दी थी और कहा कि वह एक क्रांतिकारी नेता को दिये हुए पते पर दे दें.

भारत आने पर जब राष्ट्रीय नेता को मालूम पड़ा कि क्रांतिकारी नेता को पूरी रकम नहीं मिली तो वे उस छात्र पर, जो भारत के एक नामी व्यक्ति का बेटा था, बहुत नाराज हुए. लेकिन बाद में बात आयी गयी हो गयी.

जब समाचार-साप्ताहिक ने वर्षों पूर्व घटी इस घटना को संबंधित व्यक्ति के नाम के साथ प्रकाशित किया, तो उन्होंने साप्ताहिक पर मानहानि का मुकद्दमा ठोक दिया, और अपनी याचिका में कहा कि उन्होंने रकम में कोई हेराफेरी नहीं की थी.

मुकद्दमा शुरू हुआ और साप्ताहिक के वकील के पहला प्रश्न पूछने के साथ ही समाप्त भी हो गया. उनका प्रश्न था, "सर, क्या आप हरामी हैं?" संपादक महोदय ने फौरन अपने वकील से मुकद्दमा वापस लेने को कहा. हकीकत यह थी कि वे एक ऐसी फ्रेंच महिला की संतान थे, जिसके साथ उनके पिता ने बाकायदा विवाह नहीं किया था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वय लेखक बनना चाहते हैं... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत. ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो 'नयी पौद' की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित 300 शब्दों में लिख भेजिए. लिफाफे पर यह कूपन चिपकाना न भूलें.

'नयी पौद' स्तंभ
सारिका
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

यथार्थ जरूरी है

प्रकाश शेंडे, उज्जैन

आज दृष्टि उठाकर देखें तो पायेंगे कि चारों ओर अराजकता और शोषण का साम्राज्य है. पग दर पग भ्रष्टाचार का बोलबाला है. आतंक मानवता को सुईयां चुभोकर लहूलुहान कर रहा है. और फिर जहां संवेदना का प्रश्न आता है; लेखक खून को स्याही बनाकर कागज पर निचोड़ देना चाहता है. आज का युवा किस-किस शोषण चक्र से नहीं गुजरता! लेखक हुआ तो आज सौंदर्य, प्रेम और विरह जैसे विषयों को कोसों दूर छोड़ आता है. त्याग और आदर्श जैसे शब्द सिर्फ किताबी लगने लगते हैं. एक चित्रकार होने के नाते ये विषय महज अय्याशी लगने लगते हैं मुझे. उसी को कागज पर लिखना चाहता हूं. उसी को कैनवस पर बनाना चाहता हूं जो कुछ कदम-दर-कदम भोगते आये हैं... एक दम कटु सत्य के रूप में... यथार्थ को नग्न स्वरूप में... ताकि अर्थ, सत्ता और विलासिता के मोह में हमने मानवता की जो झूठी परतें ओढ़ रखी हैं, उसमें हमारा नंगा रूप दिख सके.

आज मुझे शैली से ज्यादा 'यथार्थ' जरूरी लगता है. मैं कुछ भी लिखूं, चाहे वह कविता हो, कहानी हो या समाचार-पत्र में छपने वाला संपादक के नाम वाला ही क्यों न हो...

अवरोध आता है उस 'अवस्था' का जो हर किसी के हाथों में खेल रही है. आवाज उठाने के लिए सैकड़ों मंच हैं, पर पुख्ता हैं या नहीं? पता नहीं. लेखक को अपना नाम 'लेबल' बनाने में कितना लंबा रास्ता और क्या-क्या पापड़ बेलने लगते हैं. उस पर सही चीज की उपेक्षा हो जाए तो कुंठित होने का भय अलग सा लगता है. 'मंच' अपना अस्तित्व क्रूर व्यवस्था से, बचाने के लिए लेखक को उसके शब्दों में नहीं बोलने देता. जरूरी है कि उसकी भाषा छंद-अलंकार के घटरस से युक्त हो ताकि मंच की भी कुछ प्रतिष्ठा हो सके.

जीवन का ध्येय

निशीथ बोस, इलाहाबाद

हिंदी भाषा व साहित्य के प्रति मेरा रुझान, बंगाली परिवेश में पालन-पोषण होने पर भी, बाल्यकाल से ही विकसित हुआ, जिसका श्रेय मेरे पिता को है. एक लेखक बनने की तीव्र अभिलाषा को प्रोत्साहन मुझे किशोरावस्था में 'नंदन' पत्रिका के 'बड़े भैया' द्वारा प्राप्त हुआ. मेरी पहली रचना प्रकाशित हुई. परंतु जीवन के महत्वपूर्ण उद्देश्य अर्थात एक अदद नौकरी के लिये आवश्यक शैक्षणिक योग्यताओं की पूर्ति के लिये मुझे लेखन छोड़ पठन-पाठन से समझौता करना पड़ा, साथ ही छूट गयी कुछ 'अलग से कर दिखाने की तमन्ना.' सोचा था नौकरी मिलने के पश्चात खूब लिखूंगा और 'लेखक' बन कर रहूंगा, परंतु अच्छी रचनाओं और साहित्य के अध्ययन के अतिरिक्त और कुछ न कर सका. अपने समस्तरीय रचनाओं के प्रकाशित होने पर उत्साहित तो होता हूं, परंतु यह सोच कर निराश हो जाता हूं कि क्या कोई पत्रिका मेरी रचना का आदर भी करेगी?

प्रश्नों में उलझी मैं

नीला प्रसाद, रांची

कभी अचानक मेरी उंगली पकड़कर चल रही, एक नटखट- बच्ची, जो अपनी कौतुहलपूर्ण आंखों से दुनिया को निहार रही होती है, और-और जिंदगियों की भीड़ में गुम हो जाती है... तब, उस गुमशुदा बच्ची को ढूंढ निकालने को, मुझे बहुत सारा श्रम, परेशानियां और तनाव झेलना पड़ता है.फिर एक दिन, वह मुझे मिलती है और किस्से सुनाती है. दूसरे नजरिए से ये किस्से आसानी से मानव मनों,संबंधों की टकराहटों, परेशानियों, अनुभूतियों की बारीकियों और तनावों में परिवर्तित हो जाते हैं. यह बच्ची मेरे मन-मस्तिष्क का एक हिस्सा है. और कभी-कभी, उम्र की तीन-चौथाई दहलीजें पार कर चुकी, एक निर्विकार प्रौढ़ा मुझे दुनिया को दार्शनिक लहजे में देखने की तहजीब सिखाती है. यह प्रौढ़ा मेरे मन-मस्तिष्क का दूसरा हिस्सा है. मेरी भौतिक उम्र से जुड़ा मेरे मन का तीसरा हिस्सा, बाकी दो हिस्सों से तारतम्य बिठाने की कोशिश में, पेंडुलम-सा गतिमान रहता है... पर कभी ये तीनों मिल नहीं पाते.

नाकामयाबी के ये तनाव भरे क्षण मुझसे अभिव्यक्ति मांगते हैं.

अभिव्यक्ति की कोशिश में, मैं किसी समस्या पर सोचना शुरू करती हूं कि तभी मुझे घर-परिवार, ऑफिस और समाज की दूसरी समस्याएं आ-आकर घेरने लगती हैं. तब, इसी समस्या पर क्यों, किसी दूसरी पर लिखना क्यों जरूरी नहीं? जैसे प्रश्नों के जाल में कहानी उलझ कर रह जाती है.

कभी सारे प्रश्नों को जबरन ठेलकर मैं अपनी बात कहने को कुछ पात्र, घटनाएं और एक वक्तव्य तलाश लेती हूं. लिखना शुरू कर देती हूं कि पाती हूं कि...

– कहानी का वक्तव्य अधिक सुस्पष्ट हो सकने के लिए और आर्थिक विश्लेषण-चिंतन मांगता है.

– भाषा धोखा दे रही है.

– मूलभूत प्रश्न यह है कि लिखना जरूरी ही क्यों है? लेखन से होने वाले सामाजिक-मानसिक परिवर्तनों की बेहद धीमी प्रक्रिया को देखकर, एक जागरूक युवा को लिखने की बात सोच कर भी शर्म आनी चाहिए. और मानव-संबंधों की उलझनें? अहंकारों की टकराहट? लेखन इन्हें शिद्दत से महसूस करा सकता है पर क्या सुलझा सकता है?

प्रश्नों में उलझी मैं, खिलौने वाली रेल-सी अनुभूतियों की वृत्ताकार पटरी पर भटकती रह जाती हूं... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : सितंबर, 1938 (श्रीनगर)
प्रमुख कृतियां : 'ऐलान गली ज़िंदा है', 'अर्थांतर' (उपन्यास) व 'सलीबों के पीछे' (कहानी संग्रह).
संपर्क : 93, सूर्यनगर, भुवनेश्वर-751 003 (उड़ीसा)

□ चंद्रकांता

यहां वितस्ता बहती है

राजनाथ ने कुछ शौक पाल रखे थे. गुल काका से तो हमने सुना ही है कि "राजा साहब बड़े यारबाश थे." शंकरलाल भी अकसर कहा करते, "अपने राजभाई शौकीन तबीयत के आदमी रहे हैं," अब 'यारबाश' या 'शौकीन तबीयत' से आप कोई चालू-सा गूढ़-सा अर्थ निकालें तो यह आपकी मर्जी है. पर 'यारबाश' से गुल काका का मतलब जो था सो यह कि उनके कई चेहते दोस्त थे. जिनके साथ उठना-बैठना, खेलना-खाना उन्हें प्रिय था. दावतें खिलाने का जिक्र भी हम सुन चुके हैं. इसके अलावा उनके खास शौकों में था संगीत सुनने का शौक. यों रेडियो पर बजते फिल्मी गाने वे कम ही सुना करते थे. फालतू वक़्त भी कहां था उनके पास? फिर वे 'आये भी वो गये भी वो खत्म फसाना हो गया' गाने उन्हें छूते भी न थे. पर वह कुंदनलाल सहगल की गूंजती आवाज, बेगम अख्तर की सोज़ भरी गज़लें, ठुमरियां मल्का पुखराज की नगमा—अभी तो मैं जवान हूं...

जनाबे हफीज़ जालंधरी भी क्या लिख गये कि मल्का पुखराज ने एक एक लफ्ज़ को ज़िंदा कर दिया. 'ये काली-काली बदलियां/उफक पे हों गयी अयां/वो इक हुजूमे मयकशां/है सूए मयकदा रखां/ये क्या गुमां है बदगुमां/समझ न मुझको नातवां/खयाले जुहद अभी कहां/अभी तो मैं जवान हूं...'

भाई नित्यानंद तो इस नगमे पर, नगमे वाली की आवाज़ पर और नगमे वाली के रूप-सौंदर्य पर कुछ इस कदर फिदा थे कि राजनाथ उनकी हालत देख तरस खा जाते.

यों सूफियाना कलाम सुनते राजनाथ भी किसी दूसरी दुनिया में पहुंच जाते. संतूर के सौ तारों पर गूंजते कलाम पूरे माहौल को संगीत से भर देते. "बेदर्द दादे चानि, सूर हो सपदान..." (ओ बेदर्द! तेरे दर्द के कारण राख हुए जा रहे हैं...) सूफी संतों ने प्रेम को ऊंचाइयों तक ले जाकर उस दर्द की इंतहा तक पहुंचा दिया था, वो दर्द जो दिलों को बेआवाज आरे की तरह चीरता लहूलुहान कर देता है. पर वह दर्द कमबख्त है ऐसा ज्यों अफीम का नशा हो, बूंद-बूंद पीने को मन ललचता रहे.

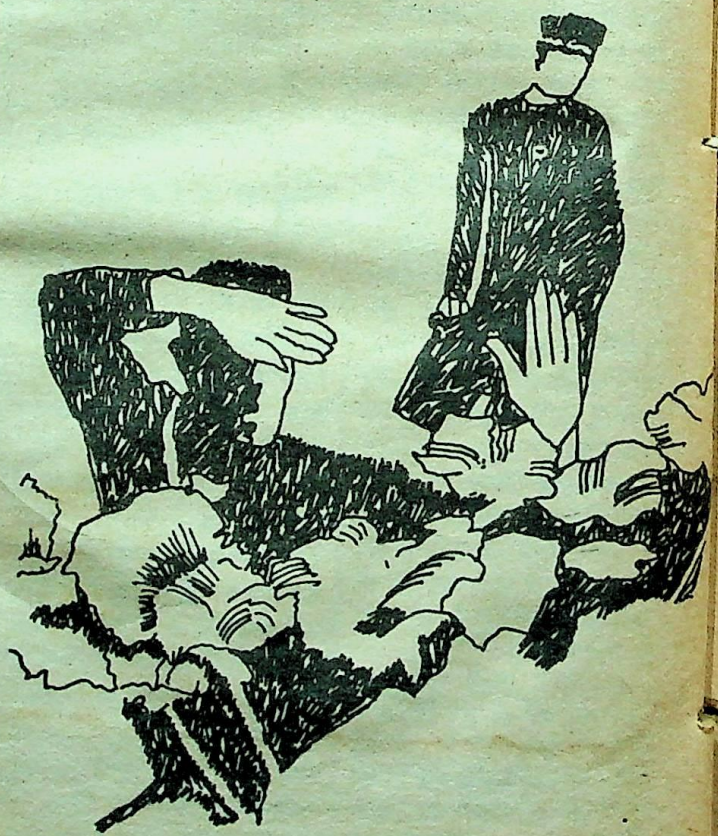

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलते हुए हालात में लोग देश के बारे में किस तरह सोचते हैं... समय, इंसान और परिवेश की आत्मीय छुअन से सराबोर चंद्रकांता के नये उपन्यास का एक अंश—

वह स्वरों की जादू भरी नगरी थी, जिसमें प्रवेश कर आदमी मैं-तू भूल जाता है. जहां तेरा-मेरा कुछ नहीं रहता. अहं ब्रह्मास्मि! आत्मा-परमात्मा का विलय हो जाता है. चर-अचर एक रूप. एक तान, एक लय हो जाता है. क्या मालूम कैसी स्थिति थी वह, जहां बोल, लहजा तो शुरुआत में याद रहते हैं और फिर केवल संगीत के सात सुरों का गुंफन नस-नस में गूंजता है, अनहद नाद सा!

बात शायद कुछ ऊंची हो गयी. पर राजनाथ दीवाने थे संगीत के, इसमें दो राय नहीं. शास्त्रीय संगीत उन्हें पसंद था, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, सिद्धेश्वरी, बेगम अख्तर को वे शौक से सुना करते. जब कभी दोस्तों के साथ पिकनिक का प्रोग्राम बनता, मुहम्मद वली को मय कारिंदों न्यौता दे आते, "उस्ताद! आज चिनारबाग में आपका कलाम सुनने की ख्वाहिश है. आपको जहमत देने आया हूं."

सच्चे उस्ताद को दाद देने वाले शागिर्द मिल जायें तो और क्या चाहिये? यों उस्ताद भी जानते थे कि 'सजे-धजे ढोगे में झीलों की बहार का सुख लूटने का मजा तो मिलेगा ही, साथ में शाही रोगनजोश और लजीज यखनी का स्वाद भी भरपूर मिलेगा. ऐसी पिकनिकें राजनाथ निशात-शालामार में नहीं मनाते थे, वहां चहल-पहल ज्यादा रहती थी और इर्द-गिर्द मजमा इकट्ठा करना उन्हें पसंद नहीं था. हां, हारवन, गांधरबल में सिंध के किनारे, मानसबल में, या बादाम आड़ू की बरजस्त बौरों की महक तले, हवा से सर-गोशियां करते चिनारों के साये में ऐसी महफिलें सजतीं. दरियां बिछतीं, तकिये सजते, चमचमाते हुक्के ताज़ा होते, गरम-गरम रोगनजोश और खस्ता बाकर खानियों और सीक कबाब के दौर चलते. गला खुलने के लिए गरम कहवा तो चाहिए ही तलख़! उस पर मिसरी कालीमिर्च भी हाज़िर रहती. ऐसे में वली जू को सूफियाना कलाम सुनाने का मूड़ बन जाता. ऊंची आवाज़ में से सुर उठाते, दूर पहाड़ों से टकराकर आवाज़ लौट आती, ज्यों गुंबद में आवाज गूंज उठे—हो! हा! पोश फलि बागस, पोश तय बेली. यंबरजल अज़ यियि, सैलिये...

राजनाथ रस ममर्ज्ञ न भी हों पर रस का आस्वादन करना वे हर आदमी का हक समझते थे. ज़िंदगी को बेहतर ढंग से जीने, भोगने में जो भी शौक साथ दे, उसे बाहें फैलाकर अंकोर लेते. हां, ऐसे शौक उन्होंने नहीं पाले, जिनसे दूसरों का ख़ामख़ाह परेशानी हो.

आत्मा तक उतरनेवाली ठुमरियां और दादरे सुनने के लिए वे घर में ग्रामोफोन भी लाये. गुल काका के शब्दों में "मेड इन इंग्लैंड-जर्मनी-जापान रेडियो भी राजा साहब के ही घर में आया शहर में सबसे पहले. ग्रामोफून में रिकार्ड के ऊपर सुई घूमना चालू करती तो किसिम-किसिम के गाने सुनने को मिलते. राजा साहब बच्चों को भी सुनवाते ग्रामोफून."

गुल काका तो बच्चों की भीड़ में ही निवास करता था. जाहिर है, वह बच्चा नहीं था, पर रहता उनके बीच इसलिए था कि राजा साहब अकसर सुई चालू कर आराम फरमाते और गुल काका का जिम्मा होता, रिकार्ड पूरा होने पर सुई वाला हैंडल उठाकर स्टैंड पर रख देना, यह ज़िम्मेदारी का काम गुल काका बड़ी शान और अकड़ से निभाता. और बच्चो को ग्रामोफोन से दस-पंद्रह कदम दूर बिठाकर एहतियात बरतता, कहीं चुन्नी-मुन्नी सुई में हाथ न लगायें. बच्चों का क्या, छू-छूकर देखेंगे आवाज कहां से आ रही है. लाऊड स्पीकर के बीच मुंह आंख घुसाकर गानेवाले को बिला वजह ढूंढ निकालने की कोशिश करेंगे और सुई से छेड़छाड़ कर आवाज को लंबा खिचायेंगे. अच्छा भला गाना—"ऐ क़ातबे तकदीर..." खिचकर तक.. तक.. दी.. SSS र... में खिचकर टूटता जायेगा तो नन्हें शैतान ताली पीट-पीटकर मज़ा लेंगे. अब एक-दो बार तो राजनाथ बच्चों का खिलंदड़ापन सह भी लेते. क्या करते, बड़ी उम्र में बच्चों का मुंह देखा था सो वे कुछ ज़्यादा ही लाड़ के हकदार बन गये थे. पर संगीत तो बच्चों का खेल नहीं है न? इसीलिए गुल काका बाज बनकर मंडराया करता इस काली चिड़िया पर.

संगीत से भी ज्यादा मज़ेदार शौक था राजनाथ का, इतवारोंवाला ताश-पार्टी का शौक. लगभग हर रविवार, उनके यहां ताश की चौकड़ी इकट्ठा होती. एंथोनी साहब कहते हैं, "राजभाई की डायवर्स हॉबीज हैं. रमी खेलना उन्हें न सुहाता था. वैसे लगातार खेलने की लत उन्हें बुरी लगती थी. पर चार दोस्तों के साथ दो-तीन घंटा छुट्टी के दिन, वे ट्रंप या ब्रिज खेला करते. रमी के बारे में कहते कि यह तो शोहदों का खेल है." पर ब्रिज में थोड़ी दिमागी कसरत का आनंद आता. ताराचंद वकील के हाथ में तीन इक्के और एकाध बादशाह आता तो वे लिटिल स्लैम से कम तक बिड छोड़ते नहीं. राजनाथ के पार्टनर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनते तो वे ताराचंद के उचकने-चहकने का अर्थ पंद्रह-सोलह पांइट से ज़्यादा न गिनते. खासकर जब दूसरे लोग भी बिड दे रहे होते. ताराचंद झल्लाते, कुढ़ते, खीजते, पर राजनाथ शांति-पूर्ण मुद्रा बनाये गेम बिड पर सिलसिला बंद कर देते. बाद में ताराचंद उलहाना देते, "राजभाई, यों तो बड़ी हिम्मत है आप में, पर ताश खेलते जरा डरते हैं."

"डरता हूं? मेरा हाथ देखा है? दो गुलाम हाथ में लिये बैठा हूं. बस! ये तुम्हें ग्रैंड स्लैम तक तो नहीं पहुंचा सकते!"

"पहुंचा तो सकते हैं भाई साहब! बशर्ते आदमी में थोड़ा 'नेक' हो. काउंट्स को मारिये गोली, दुश्मनों को थोड़ा ब्लफ कर चारों खाने चित्त तो किया जा सकता है, इसी में अपना काम बन जाता है..."

राजनाथ ताराचंद खिलाड़ी से ज़्यादा ताराचंद वकील को समझते थे. खेल में भी अपने पेशे की चतुराई छोड़ न पाते. वही वकीलोंवाली बहसें! स्याह को सफेद सिद्ध करने के लिए कोई न कोई दलील, कोई न कोई पेंच ढूंढ निकालेंगे. पर राजनाथ जब ताराचंद के विरोध में खेलते तो उनके स्लैम पर जरूर डबल-रि-डबल होता. शंकरलाल, नित्यानंद, एंथोनी, जो भी पास होते, चमकती आंखों से देखते और ठहाके लगाते. आवेर बिड करने पर पार्टनर से सवाल-जवाब होते. एक-दूसरे को कठघरे में खड़ा कर दिया जाता. दोषी पार्टनर किसी न किसी नियम की दरार से निकल भागने की कोशिश करता.

ताश पार्टियों के अलावा फुरसत के वक्त गप्प-बाजी भी होती. गप्पें ऐसी नहीं की मरी नूरा तो अंतःपुर की नायिका होनी चाहिए. क्या मेनका-रंभा लगती है... भय्या! क्या नूर बख्शा है देनेवाले ने कि देखनेवाला नजर भर देखे तो फ्लैट हो जाये... वो चलायें नजर के तीर तो खादिम जख्मी हुए बिना कैसे रहे...? वगैरह-वगैरह! नहीं भई! राजनाथ की मजलिस में ऐसे छिछोरे संवाद नहीं बोले जाते.

मिजाज उनका बड़ा शाइस्ता था. औरतों के बारे में बेहूदा बातें वे नहीं करते. कभी कोई हादसा हुआ भी हो किसी औरत को लेकर, पर यार-दोस्तों में बैठकर उसे रस ले-लेकर बयान करना उन्हें गैरमर्दाना बात लगती. फूहड़पन से उन्हें नफरत थी. यह अपने श्याम भाई की ही खूबी थी कि चार महिलाओं में घुसकर उनके बनाये पकवानों की प्रशंसा से शुरू कर उनके नखशिख वर्णन तक पहुंचकर, कईयों के दिलोदिमाग जीतने की कोशिश करते. राजनाथ को यह कला आती नहीं थी.

"लीलावती! ये तुम्हारी मंझली बहू, क्या नाम, तुलसी, क्या खस्ता रोगनजोश पकाती है. मैं तो दंग रह गया देखकर!"

"आपने चखा तो नहीं होगा!" लीलावती शर्मिंदा हो जाती. बहू के हाथ का पकाया खाना अभी कहां खिलाया है उन्हें!

"अरे, वो खाने की क्या जरूरत है, खुश्बु से ही मेरा दिमाग तर हो गया. वाह! वह रंग रूप, शाही मसालों की महक! क्या कहने? चीज अपनी तारीफ आप ही कराती है. ये दीनू, सीता क्या बनायेंगे वैसा खस्ता रोगनजोश! और वह संदली रंग का दानेदार केसरगंध वाला पुलाव. एक-एक दाना ज्यों पुकार!' अब रोगनजोश, कबर गाह को जाने भी दें तो वह कनिनिका-निका 'वोस्तहाख'. हरा-हरियाला, जो परसों तुमने खिलाया. मैं तो इसका स्वाद भूलूंगा नहीं उम्र भर!"

गरज कि महिलाओं पर अमृत वर्षा करने में कुशल श्याम भाई अपने इर्द-गिर्द महिला मंडल को मंडराता पाते और उनके नरम-गरम हाथों से मनचाहे पकवानों का सेवन करते. लेकिन श्याम भाई को मुस्करा-इतराकर, मना-मनाकर खिलानेवालियां भी राजनाथ से चार कदम का फासला रखतीं. लिहाज-शर्म का परदा करतीं. राजनाथ भी इसी में खुश थे. एक वृहत्त परिवार का अनुशासन रखने में इससे मदद मिलती. और कम से कम उलझनें पैदा होतीं.

श्याम भाई की अपनी जिंदगी थी. राजनाथ इसमें दखल नहीं देते थे. अब यह उनकी खुशकिस्मती थी या कमनसीबी. इस पचड़े में हम नहीं पड़ेंगे क्योंकि गौरी जैसी खूबसूरत प्रेमिका-पत्नी पानेवाले राजनाथ को भृकुटि-कटाक्षों की जरूरत महसूस होती होगी. इसमें हमें जरा शक ही है. बहरहाल!

दोस्तों के साथ करने को तो हजार किस्म की बातें थीं. कई तरह के दोस्त थे, स्वभाव, संस्कार और व्यक्तिगत रुझान के अनुरूप वार्ताएं चलतीं. नित्यानंद वक़्त के बदलाव से चिंतित थे. जमाने के दौर के साथ पर्दे में ढकी औरतें, नादिम आदि कवियों के प्रेम गीत यों तो शादियों में छकरियों, तुंबकनारियों पर गाये जाते थे. उसे सुनना अच्छा भी लगता था पर अब आज़ाद साहब का—'त्रावी प्रेनी किस्से तस अफसानय, थावी जेल्य-ज़ेल्य पंजरे तै जोलानय...' (पुरानी कहानियां और अफसाने छोड़ दे सखी. अपने पिंजरे और बेड़ियों को जलाकर बाहर आ) जैसे नगमों पर लड़कियां अमल भी करने लगी थीं. नादिम साहब ने भी औरतों के दिमाग को कम हवा न दी. इधर प्रदेश सहशिक्षा ने सबसे ज़ोर पकड़ा था, नये-नये हादसे होते रहते थे. वे उदाहरण पेश करने में सबसे आगे रहते. राजनाथ-एंथोनी कॉलेजों में पढ़ने के बावजूद इन बातों की उतनी खोज-ख़बर न रखते जितनी नित्यानंद!

उम्र

गुरमेल सिविया

शाम का समय था. गुलाबी ठंड पड़ रही थी. जंगल का एक चूहा मौसम की रंगीनी का आनंद उठाने के लिए अपने बिल से निकला और इधर-उधर टहलने लगा. कुछ ही देर के बाद उसे हाथी का एक बच्चा दिखायी दिया. उसे देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया. फिर, वह उसका जायजा लेने के लिए उसके गिर्द चक्कर लगाने लगा. आखिर उसने उसके सामने आकर मुंह ऊपर उठाते हुए पूछा, "भला तुम्हारी उम्र कितनी होगी?"

"दो साल," हाथी के बच्चे ने कहा और सिर झुकाकर चूहे को बड़े ध्यान से देखने लगा. तब उसने पूछा, "और तुम्हारी उम्र?"

चूहे ने मुंह मसोसकर उदासी भरे लहजे में कहा, "उम्र तो हमारी भी दो साल ही है, पर हम कुछ बीमार रहते हैं."

□

अनुवाद : ब.स.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यानंद भी अपनी जगह अपनी सोच से मजबूर थे. उनके खानदान में पीढ़ियों से औरत को कोमलांगी, अंकशायिनी, लाज के पर्दे में ढकी असूर्यपश्या ही माना गया था. अब वे बाजार में सिर उघाड़े, पुरुषों हास-परिहास और मुक्त वार्तालाप करते कैसे देख सकते थे. सदियों से औरत पुरुष को रिझानेवाली सामग्री रही है. पुरुष को अपने नाज़ी अदाओं से रिझती, लुभाती वही तस्वीर नित्यानंद के ज़ेहन में चिपक गयी थी. पुरुष आशिक, स्त्री माशूका-वेमज़ाज को कोट करके कहा भी करते– 'इश्क का जौके नज़ारा मुफ़्त में बदनाम है, हुस्न खुद बेताब है जलवे दिखाने के लिए.' सो इन ढके-छिपे जलवों तक ही वह औरत को महदूद रखना चाहते थे. सह शिक्षा में ही उन्हें घोर अनैतिकता. नजर आती. वे दुःखी थे कि अंग्रेजी शिक्षा ने नारी की लाज का पर्दा उठाकर उसे मर्द जात से रूबरू होना सिखा दिया. राजनाथ उन्हें शांत करते. इतिहास, पुराणों से उदाहरण देकर समझाते कि हमारी नारी असूर्यपश्या नहीं रही है. नैतिकता के मानदंड भी समय के अनुरूप बदलते रहे हैं.

"तुमने तो भैया सुना होगा लीलावती का नाम. विद्याधरी ने तो आदि शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में हरा दिया था. मंडन मिश्र की यह विदुषी पत्नी क्या 'असूर्यपश्या' थी? और वह गार्गी, मैत्रेयी..."

शंकरलाल जोड़ देते. "चारित्रिक कुत्साओं की बात करें तो वे घर के अंधेरे बंद कमरों में ज्यादा पनपती हैं. वह चंद्रधर के घर का किस्सा, उधर लड़कियां पर्दों में ही रहती हैं पर हकीम-दाइयों हम भी बहू-बेटी वाले हैं, पर आपकी बात का जवाब है उस घर का किस्सा, उधर लड़कियों पर्दों में ही रहती हैं पर हकीम-दाइयों का आना-जाना बराबर जारी रहता है..."

राजनाथ बात का समापन करते. "चारित्रिक पतन को सह शिक्षा के साथ जोड़ना ठीक नहीं है नित्या भाई. इसके कारण तो आर्थिक संकट और सामाजिक वर्गभेद हैं. छुप्पन-छुप्पी खेल में पुरुष-स्त्री की एक दूसरे के प्रति अतिरिक्त उत्सुकता बनी रहती है. खुलकर बातचीत करने से एक दूसरे का स्वभाव समझने का मौक़ा मिलता है. एक साफ-सही रिश्ता बनाता है. आपके सामने प्रमाण हैं. भारत कोकिला सरोजनी नायडू को देखिए. स्वतंत्रता संग्राम में वे पुरुषों के साथ बराबर लगी रहीं. गांधीजी भी उनसे प्रभावित हुए, बल्कि गांधीजी ने नारी शक्ति का आवाहन किया स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए. जवाहरलाल के साथ कमला नेहरू ने भी आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लिया.

नित्यानंद का सोच कितना बदला, कितना बिगड़ा, हम नहीं जानते पर राजनाथ की गोष्ठियां उनके तंग सोच के बाहर जगह पाती रहीं. राष्ट्र की बदलती स्थिति के अनुरूप बातों के मुद्दे बदलते रहते थे. जब दूसरा महायुद्ध जोरों पर था. विश्व के कई देश संकट के दौर से गुज़र रहे थे. बात-बात में राजनीति बहस का विषय बनती. शंकर लाल कहते हैं कि राजनाथ भले ही आज़ादी की लड़ाई में शामिल न हुए हों पर उन दिनों उनके दिलोदिमाग पर मुल्क ही छाया रहता था. ताश-पार्टियां, पिकनिकें वगैरह जैसे एकदम छूट गयीं थीं. चार जने मिलते तो अखबारों की बातें करते. रेडियो पर कान लगे रहते. इंगलैंड ने जर्मनी पर हमला कर दिया था और भारत की अंग्रेजी सरकार युद्ध में शामिल हो गयी थी कांग्रेस से पूछे बिना.

हितैषी

एक बादशाह के वजीर ने एक दिन अपने एक कर्मचारी को कहा, "उन सब लेखकों के नामों की सूची बनाओ, जिन्होंने समाचार-पत्रों में मेरे खिलाफ लिखा हो."

सूची तैयार करके उसे दी गयी, जिसमें कई सौ लेखकों के नाम थे.

तब वजीर ने कहा, "अब इनमें से उन लेखकों के नाम चुनो, जिन्होंने मेरी सबसे सख्त आलोचना की हो."

उन लेखकों के नाम पेश करने पर कर्मचारी ने पूछा, "अब इन्हें क्या सजा दी जायेगी?"

"सजा? सजा क्यों?" वजीर ने कहा, "अब मैं इनमें से खुद अपने सबसे कठोर आलोचक को चुनूंगा और उसे अपने समाचार-पत्र का मुख्य संपादक बनाऊंगा. अनुभव ने मुझे सिखाया है कि मनुष्य का सबसे कठोर आलोचक उसका सच्चा हितैषी होता है." □

अनुवाद : ब.स.

राजनाथ उन दिनों बेचैन नज़र आते. तानाशाह हिटलर और मुसोलिनी की महत्वाकांक्षाओं के कारण लाखों जानें कागजी पुतलों की तरह होम हो गयी थीं. रूसियों ने नाजी फौजों का जिस बहादुरी से सामना किया, वह विश्व के इतिहास में एक बेजोड़ घटना थी. लेनिनग्राद में रूसियों का मुकाबला उनके अपार साहस, शौर्य और आत्मशक्ति की बेजोड़े मिसाल थी. उधर अमरीका ने नागासाकी, हिरोशिमा पर अणुबम गिराकर नये आतंक की सृष्टि कर दी थी.

राजनाथ एंथोनी से कहते, "सब तानाशाही दिमागों का फितूर है भाई. उसी का नतीजा भुगत रही है दुनिया. हिटलर को विश्व विजेता बनने का भूत सवार न होता तो लाखों निर्दोष जर्मन युद्ध में भूने न जाते. महत्वकांक्षाओं की लगाम ढीली छोड़ दी तो यही अंज़ाम होता है. सर्वनाश!

"मगर रूस ने भी सबक सिखाया ज़ालिमों को!" एंथोनी जोड़ देते, "मरते-कटते भी जो रूसी फौज़ें डटी रहीं, उनके पास क्या था? आत्मशक्ति ही न? अपने पर विश्वास लड़ो या मरो! राशन के अभाव में भूख, सर्दी और बीमारी से घिरे, उन्होंने क्या न सहा? आदमियों को छोड़कर सब कुछ खाया. भूख कितनी भयंकर चीज़ है, ये वही जान सकते हैं जिन्होंने राशन न मिलने पर चमड़े के जूते तक चबा डाले."

"वे लोग हार स्वीकार नहीं चाहते थे. उन्होंने हिटलर को बता दिया कि रूस पर आक्रमण कर उसने ज़िदगी की भारी भूल की है, जिसका नतीजा नाजियों के सर्वनाश में सामने आया.

इस विषय पर ताराचंद थोड़ी बहस ज़रूर कर लेते, इससे विषयांतर हो जाता और कुछ समय के लिए बात का माहौल बदल जाता. लेकिन फिर भी अपने देश की आंतरिक अशांति इस मित्र मंडली को चैन से बैठने न देती.

वर्षों से घर में रोज़ शाम वे लोग झुंडों में इकट्ठा होकर सरकार से रवैये की टीका-टिप्पणी करते रहे, अंग्रेज व्यापारियों के भारत आने से लेकर आज़ादी प्राप्त करने तक अनेकों मुद्दों का विश्लेषण होता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह जो अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस को पूछे बिना हिंदुस्तानी फौज को लड़ाई में झोंक दिया था, इसका नतीजा अच्छा नहीं निकलनेवाला था." एक आदमी बात की शुरूआत करता.

"अच्छा क्या निकलना था भैया, कांग्रेस मंत्रियों ने त्यागपत्र दिये. उन्हें बंदी बनाया गया." राजनाथ सुधारते.

"अंग्रेज जान गये कि कांग्रेसियों को अब गोलमेज कांफ्रेंस के फैसलों से फुसलाया-बलहाया नहीं जा सकेगा."

"तीसरी गोलमेज कांफ्रेंस में हिस्सा भी न लिया.

"1935 में गवरमेंट ऑफ इंडिया एक्ट पास करके, सरकार ने प्रांतों को ऑटोनोमी दी. पर भारतीय इन भीख के टुकड़ों से खुश होने वाले न थे. गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्र में चेतना की नयी लहर जो दौड़ी थी."

गरज यह कि राजनाथ का घर राजनीति की प्रयोगशाला बनी रहती. उन दिनों बच्चे राजनाथ से खेलने को तरसते. ग्रामोफोन किसी कोने में पड़ा धूल चाटता रहता. रेडियो का भाव बढ़ गया था. अखबार तो वेद मंत्रों की तरह नियमित पढ़े जाते. कभी रात के नौ बजे या सुबह आठ बजे के समाचार के वक्त कोई बच्चा या महिला गलती से ऊंची आवाज निकालकर समाचार सुनने में बाधा डालते तो बच्चों को तो डांट पड़ती ही पड़ती, उनकी मांओं को भी दो-चार कड़े बोल सुनने का हक़दार होना पड़ता, "कम से कम बच्चों को तो सम्हाला करो भागवंतियो!"

गौरी भी पति से उन दिनों डरी-डरी-सी रहती. वह क्विट इंडिया मूवमेंट, होम रूल या पूर्ण स्वराज की पेचीदगियां नहीं जानती थी. इंग्लैंड ने जर्मनी पर आक्रमण क्यों किया, जापान जर्मनी से किसलिए मिला? पर क्विट इंडिया मूवमेंट में हजारों लोगों की मृत्यु उसे अवसाद से घेर लेती. गांधीजी की वह परम भक्त थी. तभी तो जब गांधीजी बाबा शीतलनाथ में पधारे थे वह राजनाथ की मनाही के बावजूद ठट्ट के ठट्ट लोगों बीच, बचते-बचाती उनके दर्शन को पहुंच गयी थी. यह दीगर बात है कि वहां भीड़ में उनके कंधे छिल गये, किसी का डेजहोरु कट गया, किसी का दुपट्टा छिन गया, यहां-वहां नोचने-मसलने की दास्तानें हुईं जैसा कि भीड़-भड़क्के में होना लाजिमी था, पर गौरी खुद को बचाती गांधी के दर्शन कर आयी. उसकी उम्र भर की हौंस पूरी हो गयी. कई न समझ में आनेवाली बातें सुनते एक दिन उसने घर भर की चहक के बीच सुना कि देश स्वतंत्र हो गया था.

आज़ादी का दिन उसे यों भी याद रहता. पर उस दिन ऋचा का जन्म हुआ इसलिए वह दिन और भी अहम् बन गया.

देश की आजादी में राजनाथ ने कितना योगदान दिया, यह हम नहीं जानते, क्योंकि वे अपने कॉलेज में बराबर पढ़ाते रहे, जेल जाने का मौका उन्हें न मिला. यों वह देश-प्रेमियों की बातें अक्सर किया करते. उन्होंने कोट-पैंट पहनना छोड़ दिया था. विदेशी वस्त्रों का यों भी उन्हें ज़्यादा मोह न था. गो कि अब उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर थी. चाहते तो शौक पूरा कर सकते थे. जैसा कि उनके दोस्त किया करते थे, पर उन्होंने सूती कपड़े पहनना ही पसंद किया. गर्मियों में कुरता-पाजामा और नेहरूजी से प्रभावित होकर जवाहर जैकेट पहनना उनका शौक बन गया था. एक गुलाब जेब में रखते तो बिल्कुल नेहरू जी लगते सूरत-सीरत से भी उनकी फोटोकॉपी लगते थे.

राजनाथ ने अपने बच्चों को भी सादगी से रहने का चलन सिखाया. वे मानते थे कि यदि देश का हर नागरिक अपना कर्तव्य ईमानदारी से करे तो वही देशसेवा होगी. हरेक नागरिक को युद्धक्षेत्र में जाकर लड़ मरने या जेल जाने का अवसर नहीं मिलता.

लेकिन देश को आजादी मिलने के साथ-साथ जो सदमा पहुंचा, जो खून-खराबा हुआ, उसने राजनाथ के मर्म पर चोट कर दी. उनके कई संगी-साथी लाहौर में या तो मारे गये या बेघरबार होकर शहर-शहर भटकते रहे.

बंटवारे के तुरंत बाद कश्मीर पर कबाइली आक्रमण से काफी लोग बेघर हो गये. एक तरफ कबाइली बारामूला दूसरी तरफ शालटेंग तक आ पहुंचे. ये तो वे बेवकूफ जर, जेवर और जोरू के चक्कर में मार खा गये. नहीं तो सीधे दनदनाते हुए राजधानी पर धावा बोल सकते थे. इतना अचानक हमला था वह. प्रदेश के महाराजा ने प्रदेश का भारत से इलहाक करा दिया और स्वयं प्रदेश की सीमा से बाहर चले गये. यह तो शेरे-काश्मीर शेख अब्दुल्ला की सूझ-बूझ, समझदारी व लोगों के प्रति वफादारी थी जो रातों-रात उन्होंने जनता का नेतृत्व किया और भारतीय सेना की सहायता से कबालियों को मुज्जफादाबाद तक पीछे वापस धकेला गया. जिस दिन श्रीनगर वासियों ने बारामूला तक कबालियों के आने की बात सुनी, वह रात पूरे शहर के लिए मौत के सन्नाटे की रात थी. राजा के पलायन के बाद लोग भय और त्रास से घिरे वक्त के पल पल को अपनी छाती पर गुजरते महसूस कर रहे थे. क्या होगा? कैसे होगा? बहू-बेटियों का हश्र क्या अपनी आंखों देख पायेंगे? कई लोगों ने घरों में जेवर, रुपये की पोटलियां बांध रखी थीं. कईयों ने जहर की पुड़िया तैयार रखी थी, घर में जो तीर-तलवार-चाकू-बल्लम थे, उन्हें इकट्ठा कर खुद दो को मारकर मरेंगे, पर बहनों-मांओं को जहर देकर पहले सुला देंगे. लेकिन राजनाथ ने ऐसा कुछ भी न किया. वे बच्चों को दिलासा देते रहे, "सब ठीक होगा." शायद सोचते थे, मरने से पहले क्यों उन्हें मार दें? अगले दिन जब हिंदुस्तान के वमवर्षक विमान शालटेंग तक आये कबाइलियों पर बमबारी कर रहे थे. राजनाथ का पूरा परिवार पांचवीं मंजिल के टॉवर से आग और धुएं की लपटें देख रहा था. राजनाथ बच्चों-बड़ों को समझा रहे थे—"अब तो घबराने की कोई बात नहीं है न? शेख साहब मसीहा बनकर हमारे लिए आ गये हैं!" □

चलते-चलते

फिल्म-निर्देशक एक दृश्य की शूटिंग करते हुए अभिनेता को कई बार बता चुका था कि उसे सीढ़ियों पर से किस प्रकार गिरना चाहिए, लेकिन वह अभिनेता उस प्रकार गिर नहीं पा रहा था.

आखिर निर्देशक ने तंग होकर कहा, "बुजदिल हो तुम तो. मैं खुद गिरकर बताता हूं कि यह कितना आसान काम है."

जब उसने गिरकर बताया, तो फर्श पर लेटे हुए ही अभिनेता को कहा, "अब पता लगा?"

"हां."

"तो फिर गिरकर बताओ. लेकिन उसके पहले किसी आदमी को डाक्टर लाने के लिए भेजो; मेरी टांग टूट गयी है, और मैं उठ नहीं सकता." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

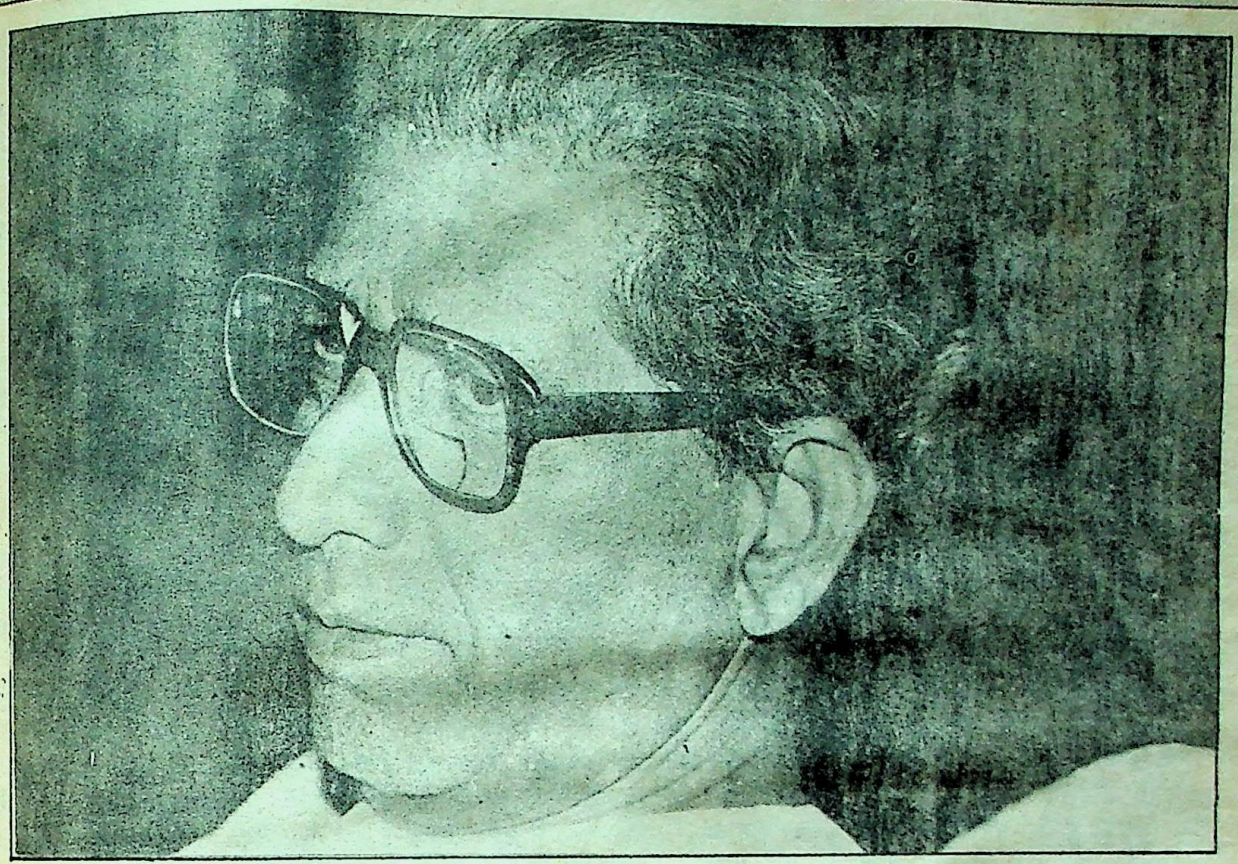

छाया : पवन महेंदू

निर्मल वर्मा 'बाबा वाद' के शिकार हैं

डॉ. नामवर सिंह से उदयप्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत की

पिछले अंक से प्रारंभ इस लंबे साक्षात्कार में इस बार पढ़िये 'परिंदे' से लेकर 'सूखा' तक निर्मल वर्मा की कथायात्रा और गोर्बाचौफ की पेरेस्त्रोइका और भारतीय वामपंथी लेखकों की समस्याओं पर बेबाक बात-चीत...

□ चलिए इस बार शुरुआत फिर निर्मल वर्मा की कहानी 'सूखा' से ही करते हैं. आपने निर्मल वर्मा की ही कहानी 'परिंदे' को पहली नयी कहानी कहा था. अब क्या आपको उन्हीं की कहानी 'सूखा' अंतिम नयी कहानी नहीं लगती? यानी क्या 'सूखा' नयी कहानी का अंतिम जलार्पण नहीं है? और चूंकि राजेंद्र यादव ने अपनी कहानी संबंधी रूढ़ समझ के अनुसार उसे एक श्रेष्ठ कहानी माना था, तो क्या 'सूखा' राजेंद्र यादव की भी कथा संबंधी समझ का अंतिम जलार्पण नहीं है?

देखिए, राजेंद्र यादव ने इस दौरान स्वयंप्रकाश जैसे कई युवा कहानीकारों द्वारा लिखी गयी अच्छी कहानियों पर कोई परिसंवाद आयोजित कराने के बजाय, 'सूखा' पर ही क्यों परिचर्चा आयोजित की, इसके पीछे के उनके इरादे के बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा. यह अवश्य है कि जिस तरह की टिप्पणी के साथ उन्होंने उस कहानी को प्रकाशित किया था, उससे साफ था कि उनके मानदंडों में 'सूखा' कहानी श्रेष्ठ ठहरती थी. अब 'हंस' में जो चार टिप्पणियां 'सूखा' पर छपी हैं और चारों में जिस तरह आलोचना का तीव्र स्वर है, तो अगर राजेंद्र यादव सचमुच अपनी मान्यता के प्रति ईमानदार थे तो उनको चाहिए था कि वे स्वयं अंत में 'सूखा' कहानी पर टिप्पणी लिखते. एक संपादक की हैसियत से नहीं, बल्कि एक कहानीकार की हैसियत से. बहरहाल, इन चारों टिप्पणियों ने राजेंद्र यादव की कहानी संबंधी समझ पर प्रश्नचिन्ह तो लगाया ही है स्वयं निर्मल वर्मा की कहानी के लटके, फार्मूले और उनकी तथाकथित जादुई भाषा की कलई भी खोली है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ लेकिन एक जमाने में तो आप खुद निर्मल वर्मा की इसी जादुई भाषा के बड़े प्रशंसक रहे हैं, यह तब और अब में भेद क्यों?

ठहरिए, देखिए अब हमारी कहानी संबंधी चर्चा फिर एक गैरजरूरी चीज पर भटक जायेगी... एक काम तो राजेंद्र यादव ने कर दिया 'सूखा' पर चर्चा करवाकर, अब वही गलती हम लोग फिर दुहरायें...

□ कुछ अर्सा पहले आपने निर्मल वर्मा की कहानी 'कौवे और कालापानी' के बारे में कहा था कि एक छोटी-सी बात को कहने के लिए निर्मल वर्मा ने अनावश्यक विस्तार और रहस्यात्मकता का सहारा लिया है.

हां, मैंने कहा था. देखिए निर्मल वर्मा की रचनाशीलता, संवेदनशीलता और विचारधारा में सन् 1967-68 से बहुत निर्णायक मोड़ आया है. मुख्यतः चेकोस्लोवाकिया में उनका प्रवास और वहां 'प्राग का बसंत (प्राग स्प्रिंग) का उन पर पड़ने वाला प्रभाव इसका कारण है. यह प्रभाव इतना त्रासद, इतना गहरा था कि उसके बाद उनकी जीवनदृष्टि भी बदली और इसका प्रभाव उनकी परवर्ती कहानियों पर पड़ा. उसी असर का परिणाम है कि निर्मल वर्मा तब से अब तक बार-बार वही अनुभव कहानी में दोहराने लगते हैं. अब अगर कोई एक ही जादू बार-बार दोहराये तो वह पहले वाली बात नहीं रहती. कहावत है—'वहि अर्जुन, वहि बाण'. यानी गांडीव धनुष भी वही है, अर्जुन भी वही है, लेकिन वह पहलेवाली बात नहीं रही. चमकीली धूप, नवंबर का कुहासा, कब्र और गिरजाघर की घंटियां यह सब बहुत दिन नहीं चल सकता. अज्ञेय के साथ नहीं चला तो निर्मल वर्मा के साथ कैसे चल सकता है.

□ क्या इसकी वजह यह है कि अब वक्त बदल गया है और अब यह भाषा पहले की तरह संप्रेषणीय नहीं रही?

नहीं, सिर्फ वक्त की बात ही नहीं है. एक लेखक जीवन भर अपनी भाषा को गढ़ता है, बनाता है और फिर वह उससे लंबे समय तक काम भी ले सकता है. लेकिन तब होना यह चाहिए कि अपनी अंतर्वस्तु के अनुरूप वह अपनी भाषा में वैविध्य, सान्निध्य और नवीनता लाने की कोशिश करे. वैसे निर्मल वर्मा ने इस दौर में भी कुछ अच्छी कहानियां लिखीं हैं, जहां उनकी

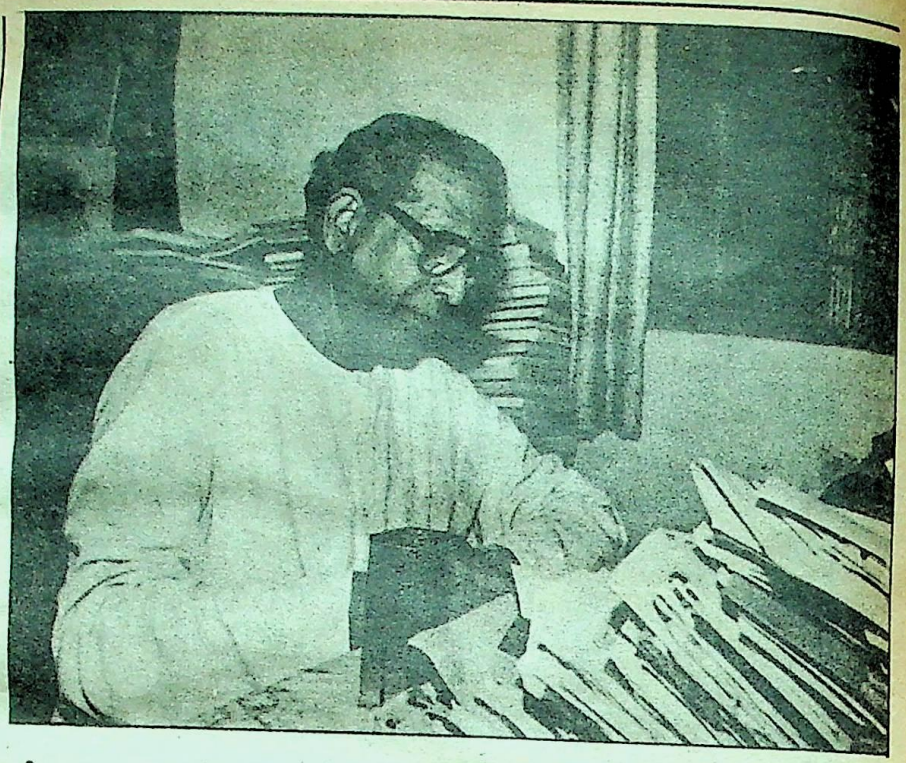

यही भाषा उनका संबल बनती है. मसलन **'एक दिन का मेहमान'** बहुत अच्छी कहानी है. **'बीच बहस में'** भी एक अच्छी कहानी है. लेकिन यह एक संयोग या विडंबना ही है कि निर्मल की वही जादुई भाषा **'सूखा'** में बिल्कुल निष्प्रभावी हो जाती है. डा. देव के चारो ओर एक प्रभामंडल बनाने के लिए वे जितना ज्यादा अपनी जादुई भाषा का इस्तेमाल करते हैं, वहां कहानी और भाषा उतनी ही कमजोर होती जाती है. मुझे तो लगता है कि अगर कोई 'डिकांस्ट्रक्शन' वाला लेखक **'सूखा'** कहानी को उठा ले तो अकेले इस कहानी के जरिये निर्मल वर्मा की समूची जीवन दृष्टि को तार-तार करके रखा जा सकता है. यानी अकेली **'सूखा'** कहानी निर्मल वर्मा के विरुद्ध अनेक प्रमाणों से भरा दस्तावेज बन सकती है. अपनी टिप्पणी में वीरभारत तलवार और उदयप्रकाश ने ऐसा किया था. एक प्रवासी भारतीय के जिस चरित्र को कथानक का मुख्य पात्र बनाया गया है, उसकी स्थिति हमारे भारतीय यथार्थ में हमेशा हाशिये पर है. हाशिये के जीवन और चरित्र को लेकर भी बहुत महत्वपूर्ण कहानियां लिखी गयी हैं. सवाल है 'अप्रोच' का. आपकी सहानुभूति कहां है? आप जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं, उसके लिए 'ऑब्जेक्टिव कोरिलेटिव' कहानी में मौजूद है कि नहीं है? अंग्रेजी पढ़े-लिखे एक नितांत भद्र आदमी की छद्म चेतना पर चोट करनेवाली एक बहुत मार्मिक कहानी भी लिखी जा सकती है. ऐसी चेतनावाले चरित्रों पर कुछ कहानियां लिखी भी गयी हैं. असगर वजाहत की कहानी है—'केक'.

□ क्या निर्मल वर्मा की इस असफलता के पीछे उनकी जीवन दृष्टि के बदलाव का ही हाथ है?

हां, जीवन दृष्टि का यह परिवर्तन निर्मल की कहानियों में ही नहीं, उनके निबंधों में भी दिखाई पड़ता है. **'कौवे और कालापानी'** के बारे में तो मैंने कहा भी था कि एक नये तरह का 'बाबावाद' उसमें है. एक प्रकार के नये रहस्यवाद और धार्मिक चेतना का प्रभाव उनके कई निबंधों और कहानियों में है.

□ आपने 'प्राग के वसंत' की चर्चा की है. जब निर्मल वर्मा चेकोस्लोवाकिया में थे और जब 'प्राग का वसंत' वहां फलफूल रहा था तब चेकोस्लोवाकिया की कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष दुबचेक थे. 1968 में सोवियत संघ के हस्तक्षेप से दुबचेक को हटना पड़ा था और इसी घटना क निर्णायक असर आपके अनुसार निर्मल वर्मा पर पड़ा. लेकिन अभी पिछले दिनों सोवियत संघ में गोर्बाचौफ ने जो ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका की शुरुआत की है, उसका समर्थन तो चेकोस्लोवाकिया के सत्ताच्युत दुबचेक ने भी किया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

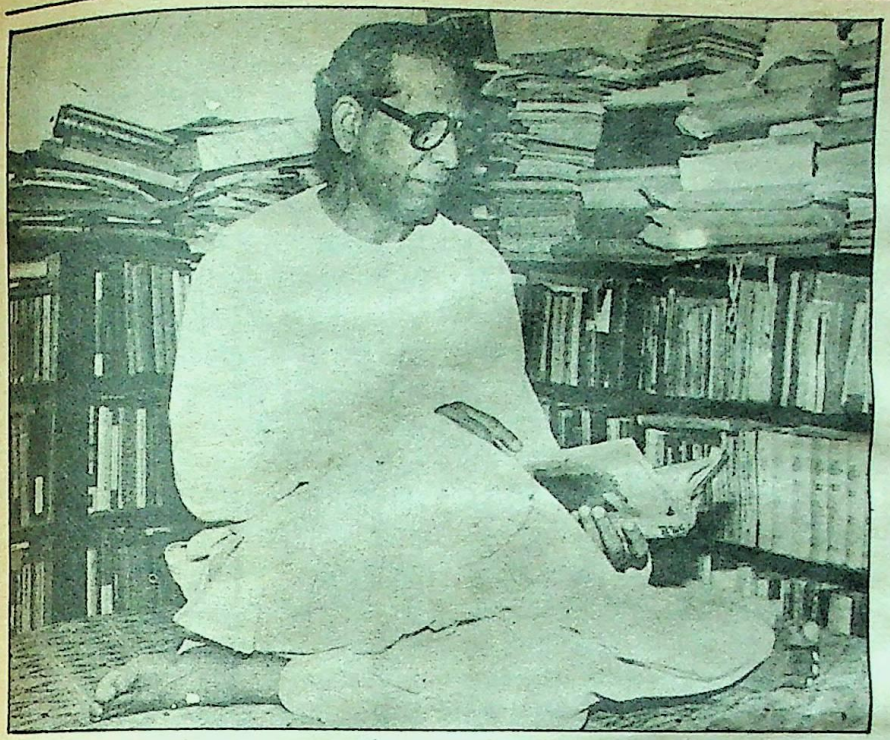

बल्कि दुबचेक ने तो यह कहा है कि 20 साल पहले वे चेकोस्लोवाकिया में वही काम कर रहे थे, जो अब गोर्बाचौफ कर रहे हैं. तो, जो ये नये बदलाव हो रहे हैं, क्या उसमें यह मुमकिन है कि उस समय की घटनाओं से समाजवाद से खिन्न और विक्षुब्ध हो उठे निर्मल वर्मा या मिलान कुंडेरा टाइप के लेखकों में कोई हृदय परिवर्तन होगा? क्या पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त का कोई असर निर्मल वर्मा जैसे साम्यवाद से मोहभंग वाले लेखकों पर पड़ेगा? दूसरी तरफ कहीं ऐसा तो नहीं कि इससे 'नीम वामपंथी' लेखकों में समाजवाद के प्रति एक और बड़ा मोहभंग पैदा हो, क्योंकि शीत युद्धवादियों की भाषा में निर्मल वर्मा जैसे लेखक पिछले डेढ़-दो दशकों से समाजवाद के बारे में जो भविष्यवाणियां कर रहे थे, उन्हें इस ग्लासनोस्त से बल नहीं मिलता?

यह तो ठीक है कि निर्मल वर्मा 'आई टोल्ड यू सो' वाली शैली में आज यह कह सकते हैं कि दुबचेक ने चेकास्लोवाकिया में जिस 'मानवीय चेहरे वाले समाजवाद' की स्थापना की कोशिश की थी और जिसे 1968 में ब्रेझनेव ने कुचल दिया था, आज गोर्बाचौफ वही कर रहे हैं, वे तो यह भी कह सकते हैं कि अफगानिस्तान में रूस के हस्तक्षेप का मैंने विरोध किया था, उसके विरुद्ध लेख भी लिखा था, जिसमें मैंने कहा था कि खुद रूसी समाज में इसके विरुद्ध गहरी प्रतिक्रिया है. उस समय भारत के कम्युनिस्ट, जनवादी या प्रगतिशील लेखक मेरी आलोचना करते थे, लेकिन आज उन्हीं बातों को खुद सोवियत संघ ने मान लिया है. यानी इस तरह निर्मल वर्मा कह सकते हैं कि मेरी आलोचनाएं सही थीं. सवाल यह है कि समाजवाद की आलोचना करते हुए निर्मल वर्मा ने रास्ता कौन-सा अपनाया? आज जब गोर्बाचौफ ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका की बात करते हैं तो वे स्वयं और सोवियत समाज भी समाजवाद को तिलांजलि नहीं दे रहा है. गोर्बाचौफ तो स्पष्ट कहते हैं कि हम दरअसल 'ज्यादा समाजवाद' चाहते हैं, 'ज्यादा लोकतंत्र' चाहते हैं. यानी ऐसा कोई नहीं कहता कि समाजवाद अपने आप में बुरा है और उसमें अंतर्निहित खामियां ही ऐसी हैं कि उसमें लोकतंत्र आ ही नहीं सकता, मानवीय समाज बन ही नहीं सकता. निर्मल जी की प्रतिक्रिया यही थी. वे समाजवाद और मार्क्सवाद की बुनियादी मान्यताओं को ही गलत ठहराते हुए आध्यात्मिकता की, एक विशेष प्रकार के रहस्यवाद की, धार्मिकता की, व्यक्तिवादिता की, अंतर्मुखी प्रवृत्ति की तरफदारी करने लगे थे. यही नहीं एक छद्म और प्रतिक्रियावादी तथाकथित भारतीयता की वकालत भी उन्होंने शुरू की और इस छद्म भारतीयता की नींव उन्होंने गांधीवाद के नितांत लोकविरोधी तत्व पर रखी. गांधीवाद का जो क्रांतिकारी चरित्र था, उससे बचते हुए वे 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' वाले गांधीवाद के प्रवक्ता बने. इसीलिए गोर्बाचौफ द्वारा स्तालिनकाल की समाजवादी व्यवस्था की आलोचना की दिशा कुछ और है और निर्मल जी की दिशा शीतयुद्ध की. कम्युनिस्ट विरोध की प्रतिक्रियावादी दिशा है.

□ खैर निर्मल जी को छोड़िए. लेकिन रूस में आज जो बदलाव हो रहे हैं, उनका असर हमारे यहां की परंपरागत प्रगतिशीलता पर कुछ न कुछ तो पड़ेगा? पिछले बीस सालों से जनवाद विरोधी या प्रगतिवाद विरोधी खेमा समाजवाद के विरुद्ध यही तर्क तो दे रहा था कि समाजवाद एक लोकतंत्र विरोधी तानाशाही व्यवस्था है, कि स्तालिन काल में सोवियत जनता और बुद्धिजीवियों का भयावह दमन हुआ. डा. धर्मवीर भारती की किताब 'मानव मूल्य और साहित्य' तो ऐसे कथनों से भरी पड़ी है. ऐसे दौर में डा. रामविलास शर्मा और स्वयं आपकी जो स्थिति और भूमिका थी, क्या आज वह संदिग्ध और भ्रामक नहीं हो उठी है? क्योंकि आज तो पश्चिम का पूंजीवादी प्रचारतंत्र ही नहीं, स्वयं सोवियत रूस का प्रेस कह रहा है कि स्तालिन युग में दमन हुआ, लोग मारे गये, तानाशाही पनपी. क्या नहीं लगता कि एक विभ्रम की स्थिति, एक 'कनफ्यूजन' की स्थिति आज तीसरी दुनिया के तमाम वामपंथी संगठनों और लेखकों-बुद्धिजीवियों के बीच फैल सकती है?

जून के अंत में जब सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 19वीं कांग्रेस मास्को में हुई, संयोग से 10-15 दिन पहले मैं मास्को में मौजूद था. वहां के लेखकों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों से बातचीत करके, वहां वे जिस अनुभव से गुजर रहे हैं, उसकी एक झलक मुझे भी मिली. उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि स्तालिनवाद और स्तालिन पर बहस तो पेरेस्त्रोइका का सिर्फ एक अंग है. वह लक्ष्य नहीं है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन है, उसके द्वारा मानसिक मुक्ति का जो एहसास आया है....

□ यानी इसके पहले सोवियत समाज में 'मानसिक मुक्ति' नहीं थी? यानी वे आरोप जो लगाये जा रहे थे, वे सही थे?

हां, वे आरोप सही थे. उस समाज में लोकतंत्र की कमी थी. उस समाज में व्यवस्था की मुक्त आलोचना के प्रति एक झिझक थी... दबाव थे...

□ लेकिन प्रगतिशील चिंतकों, लेखकों, आलोचकों ने तो पिछले कई दशकों से लगातार ऐसे आरोपों के विरुद्ध सोवियत संघ को 'डिफेंड' ही किया था. क्या वे सब गलत थे?

यह एक अलग ब्यौरा है. मैं उस पर भी बात करूंगा. लेकिन आप सोचिए कि जिस देश में इतनी बड़ी समाजवादी क्रांति हुई हो, जहां शिक्षा और साक्षरता शत-प्रतिशत हो, जहां राजनैतिक चेतना अत्यधिक हो... यह आप मत भूलिए कि सोवियत जनता के पास सूचनाओं की कमी नहीं थी...

□ सूचनाओं की कमी क्यों नहीं थीं? उसे तो एक लोहे के पर्दों वाला बंद समाज कहा जाता था?

नहीं. सोवियत समाज व्यवस्था कोई ऐसी 'टोटैलिटेरियन' व्यवस्था नहीं थी, जहां सारी जनता को कैद में रखा गया हो? लोगों के पास सूचना हासिल करने के अनेक स्रोत और माध्यम थे.

□ यानी कम से कम विरोधियों का यह आरोप तो गलत था...

लेकिन जिस तरीके से वे ये सूचनाएं हासिल करते थे, वह बहुत खुला तरीका नहीं था. इसके बावजूद विदेशी पुस्तकें पहुंचती थीं उनके पास. लोगों का बाहर आना-जाना लगा रहता था. विश्व साहित्य से भी उनका संपर्क था. लोहे की वह दीवार इतनी सख्त और अभेद्य नहीं थी, जैसा कि प्रचारित किया जाता है. मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि एक ऐसी समाज व्यवस्था, जो क्रांति के बाद 70 वर्षों में परिपक्व हुई हो, उसमें ऐसी चेतना और संवेदनशीलता थी जो किसी दूसरे गैर समाजवादी समाज से कम नहीं थी. इसका प्रमाण तो वहां का साहित्य ही है जो इन 70 वर्षों में रचा गया, तमाम दबावों के बीच, मेरा तो मानना है कि जब कि राष्ट्र, जाति या देश में एक गहरा आत्मविश्वास पैदा होता है, तभी आत्मालोचना और आत्मसमीक्षा की शक्ति भी पैदा होती है. अपने अतीत की भूलों को निडर होकर स्वीकार करना कोई साधारण काम नहीं है. अब साहित्य की ओर देखें. एक जमाने में 'समाजवादी यथार्थवाद' वहां की सरकारी सौंदर्य-शास्त्रीय जरूरत था. कुछ लोग हिंदी में भी उसकी लीक पीट रहे थे. आज भी पीट रहे हैं. जब उस दौर में सोवियत लेखकों से पूछा जाता था, तो वे हंसते थे और कहते थे कि 'क्या आप सचमुच इस विषय को बातचीत के लायक समझते हैं? बताइए वासीलेई शुक्सिन... मिखाइल बुल्गाकोव जैसे लेखक जिस भाषा में रहे हों, जो 'समाजवादी यथार्थवाद' के शिकंजे के बाहर थे... आज ऐसे लेखकों, नाटककारों को पहचाना जा रहा है. हम लोग तो सिर्फ वोज्नेसेंस्की और येव्तुशेंको जैसे एक-दो कवियों का नाम लेकर रुक जाते थे. लेकिन यह तो आइसबर्ग का सिर्फ एक टिप था. बहरहाल, इस बीच जो चीजें सामने आ रही हैं, उनसे लगता है कि साहित्यिक सृजनशीलता के रास्ते में जो अवरोध अब तक पड़ा हुआ था, वह हट गया है. तारकोव्स्की का ही उदाहरण लीजिए. उसी देश का इतना महान फिल्मकार जो विदेश जाकर मरा, आज सोवियत समाज में उसी तारकोव्स्की को लेकर एक गहरा पछतावा और सम्मान है. वैसे यह भी नहीं है कि इन रचनाकारों की रचनाओं को सार्वजनिक रूप से सुलभ करके वे सिर्फ उनका गुणगान ही कर रहे हैं, बल्कि वे इन रचनाकारों के प्रति एक गहरी आलोचनात्मक दृष्टि भी प्रकट कर रहे हैं. सिर्फ 'वाह-वाह' का मामला नहीं है.

□ लेकिन इस ग्लासनोस्त और पेरोस्त्रोइका के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसका संबंध सिर्फ सोवियत संघ के अंदरूनी बदलावों से ही नहीं है, इसकी अंतरराष्ट्रीय परिणतियां भी हैं, साम्राज्यवाद और समाजवाद के बीच के अंतर्विरोध बुनियादी अंतर्विरोध भी रहे हैं. इसी अंतर्विरोध के चलते सोवियत संघ ने अंगोला, मोजांबीक, विएतनाम, क्यूबा, निकारागुआ जैसे देशों में वहां की साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों को सहायता दी. क्या बिना समाजवाद की मदद से विएतनाम जैसा छोटा-सा देश 15 साल तक अमेरिका के खिलाफ लड़कर अंत में विजयी हो सकता था. पर आज इस ग्लासनोस्त के दौर में साम्राज्यवाद और समाजवाद के बुनियादी अंतर्विरोधों पर ही पानी डाला जाने लगा है. अफगानिस्तान से रूस हटा. अंगोला से क्यूबा हट रहा है. कल निकारागुआ को मदद बंद की जा सकती है. आप क्या सोचते हैं?

देखिए, मैं एक बात कहूंगा कि जो सोच का यह तरीका है, उसे बदलने की जरूरत है. हमारी जो पिटी-पिटायी धारणाएं हैं, हम अगर उनकी ऐतिहासिक सीमाओं को नजरंदाज करके उन्हीं के जरिये सारी नयी स्थितियों की व्याख्या करने लगेंगे तो क्या होगा? उदाहरण के लिए हमारे कई मार्क्सवादी आलोचक जब हमारे देश की आज की स्थितियों की व्याख्या करने लगते हैं कि आज भी तो हमारा मुख्य संघर्ष साम्राज्यवाद विरोध और सामंतवाद विरोध है. यानी एक नुस्खा बना हुआ है, जो पिछले 100 साल से चल रहा है. सन 1857 में यही था. 1957 में यही था, 1987 में भी यही था. भगवान जाने यह नुस्खा कब तक चलेगा. इसी नुस्खे से प्रेमचंद को भी ये आलोचक जांचते हैं और इसी नुस्खे से उदयप्रकाश को भी जांचते हैं. हमें ऐसे सुविधाजनक नुस्खे छोड़ने पड़ेंगे. देखिए गोर्बाचौफ ने एक महत्वपूर्ण बात कही है कि नयी प्रविधि के बाद, यानी 'थर्ड टेक्नोलॉजिकल रिवाल्यूशन' के बाद वे सारे राजनैतिक पद, जो 19वीं शताब्दी में बने थे, उनमें संशोधन की जरूरत है. यानी आज साम्राज्यवाद वही साम्राज्यवाद नहीं है, जो तीसरी प्राविधिक क्रांति के पहले था. कुछ लोगों ने इस परिवर्तित साम्राज्यवाद को परिभाषित करने के लिए उसके पहले 'न्यू' या 'नियो' प्रत्यय लगा दिया. लेकिन इससे कोई बात बनती नहीं है. इसीलिए तीसरी तकनीकी क्रांति के बाद, जब एक तरफ स्टारवार का खतरा है और दूसरी तरफ तमाम पूंजीवादी देशों में भी शांति आंदोलन चल रहे हैं—ऐसे में हमारी विश्व प्रणाली वही नहीं रह गयी है, जो पहले थी. 'ग्लासनोस्त' इसी बदली हुई विश्वप्रणाली की एक जरूरत है. □

और अगली किस्त में

अगली किस्त में भारत भवन, अशोक बाजपेयी, अपना उत्सव और सरकारी संस्कृति से जुड़े विवादास्पद और विचारोत्तेजक सवाल-जवाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

'दहेज' पर एक कहानी लिखो

दहेज एक बड़ी सामाजिक समस्या है. सिर्फ दिल्ली में और सिर्फ सन् सतासी में 1500 औरतें दहेज के लिए मार दी गयीं. कस्बे-कस्बे, शहर-शहर दहेज के लिए मारी जा रही या सताई जा रही औरतों का आंकड़ा नहीं मिलता. बहुत पहले दहेज और उसके कारण अनमेल विवाह की समस्या को लेकर प्रेमचंद ने 'निर्मला' लिखा था. कहते हैं कि जब निर्मला उपन्यास धारावाहिक रूप में छपा तो उसकी प्रशंसा करनेवाले– खासकर औरतों की संख्या लगातार बढ़ती गयी. अनेक लोगों ने उसे पढ़कर दहेज के प्रति आलोचनात्मक रवैया अपनाया. ऐसे लोगों ने संपादक को अपने विचार परिवर्तन के बारे में लिखा. पता नहीं क्यों समीक्षकों की नजर में 'निर्मला' एक उपन्यास के रूप में कभी नहीं चढ़ा मगर पाठकों ने हमेशा उसे हाथों हाथ लिया.

आज दहेज की समस्या और भी विकराल रूप धारण कर चुकी है. मगर प्रेमचंद की परंपरा की सौगंध खानेवाले या उनके नाम के प्रभामंडल में चमकने की कोशिश करनेवाले यश:प्रार्थियों की रचना (या समीक्षा) में दहेज अब कोई समस्या नहीं रह गयी है. बड़े से बड़े रचनाकार की बड़ी से बड़ी रचना उठा लीजिए, ऐसा लगता है कि दहेज की समस्या 'निर्मला' के साथ ही समाप्त हो गयी. पता नहीं क्यों मगर यह अजीब-सी सच्चाई है कि हमने जितनी ही यथार्थवाद की बातें कीं, उतना ही वह रचना की आत्मा से गायब होता गया.

यह सच है कि एक जन माध्यम के रूप में दूरदर्शन इस समस्या के प्रति पर्याप्त जागरूकता और समझदारी का परिचय नहीं देता. मगर यह एक 'कष्टकर' सच्चाई है कि जो काम हमारा साहित्य नहीं कर रहा, जो काम हमारा कथाकार नहीं कर रहा, वह (भले ही ऊपरी मन से) काम दूरदर्शन कर रहा है. (ऐसा कथन दूरदर्शन के चरित्रवान होने का सर्टिफिकेट नहीं है.) 'निर्मला' सीरियल और 'बंद फाइल' नामक फीचर कार्यक्रम दोनों ही दहेज पर केंद्रित कार्यक्रम रहे हैं जो हमें एक सामाजिक समस्या के सांस्कृतिक प्रतिफलनों के अध्ययन का मौका देते हैं. यह अध्ययन कथाकार के लिए भी उपयोगी है क्योंकि यहीं से उसकी कथा प्रकृति की नयी चुनौतियां भी निकलती हैं.

दहेज पर लिखने का, सोचने का एक ही तरीका तो नहीं हो सकता. निर्मला सीरियल एक तरीका है तो 'बंद फाइल' दूसरा तरीका है और कई मायनों में निर्मला का पूरक भी. 'बंद फाइल' ने कानपुर की तीन बहिनों की आत्महत्या को दहेज तथा अन्य सामाजिक स्थितियों से जोड़कर इस विषय को न केवल नये ढंग से देखा बल्कि नये सिरे से प्रस्तुत भी किया है. 'बंद फाइल' पर आयी प्रतिक्रियायें बताती हैं कि इस एक कार्यक्रम ने अनेक विज्ञापनों तथा सीरियलों से भी अधिक प्रभाव डाला है और लोगों के सोये हुए विवेक एवं मनुष्यता को जगाया है और दहेज का सवाल एक बड़े फलक पर फिर से उठा है.

यद्यपि यह बहुत मास्टराना लगता है मगर कहा जाना चाहिए कि जब भी हम साहित्य संस्कृति को समाज के प्रति जिम्मेदार बनाने की बात कहते हैं तो मूलत: उसमें समाज की समस्याओं को ही देखते हैं. दहेज एक समस्या नहीं, अभिशाप है. साहित्य में खासकर कथा साहित्य में– और सब कुछ हो और इस अभिशाप का स्पर्श न हो तो हम किस मुंह से कहेंगे कि वह साहित्य है? तमाम तरह के कुलीन लेखक इसे अपनी रचना का हिस्सा नहीं बना पाते तो इसीलिए कि उनकी रचना की भूमिका की मूल समझ समाज निरपेक्ष ही होती है भले ही वे मार्क्सवाद या प्रगतिशीलता का चंदन माथे पर लगाकर घूमते फिरें. ध्यान दें तो ऐसे कुलशील और जन्मना कुलीन लोग जब 'निर्मला' देखते हैं या 'बंद फाइल' देखते हैं तो उन्हें 'निर्मला' का संदेश या 'बंद फाइल' का संदेश नजर नहीं आता. वे उसे बातों-बातों में दो कौड़ी का कह सकते हैं या अपने-अपने ईर्ष्या-द्वेष पाल सकते हैं.

निर्मला की खूबी सीरियल में उभरती है. आज से पचास वर्ष पहले की पीढ़ी को आंदोलित करनेवाला यह अनमोल उपन्यास अगर आज दिखाया जाता है तो दूरदर्शन के जरिए तत्काल लाखों के बीच 'निर्मला' का संदेश पहुंचता है. निर्मला का संदेश यह है कि आप कितने भी आदर्शवादी हों, भले हों, मगर जब तक आप जीवन में कोई भला काम नहीं कर सकते, आप आदर्शवादी नहीं हो सकते.

'बंद फाइल' इससे आगे की कहानी है. वह उस यथार्थ का तीखा बयान है जिसमें 'हृदय परिवर्तन' यथार्थ नहीं रह गया वह अति नाटकीय बन जाता है. या धोखा नजर आता है. यह कार्यक्रम सन् 88 का सच कहता है जिसमें लगातार तिरस्कृत हुई लड़कियां आत्म हत्या करती हैं. वे अपने परिवारों के परंपरागत संस्कारों, उनके सामंतीय ढांचों का शिकार होती हैं. वे दहेज के लिए अपमानित हैं और जला दी जाती हैं, ऐसी परिस्थितियों में 'निर्मला' पैदा नहीं की जा सकती, न ऐसे डाक्टर ही मिल सकते हैं जो बिना दहेज के छोटे भाई की शादी करायें और यों अपने अपराध को परिमार्जित करें. आज के दहेजवादियों को शर्म-हया नहीं, कोई अपराध बोध नहीं. वे ठंडे मिजाज के कसाई बन गये हैं. निर्मला के जमाने की 'दहेज प्रथा' आज के पूंजीवादी संकट में और भी संहारक बन गयी है. अब 'निर्मला' बूढ़े के साथ रहने को राजी नहीं मगर उसके पास दहेज भी नहीं है. अब वह आधी शिक्षित, आधी आधुनिक बन गयी है, 'बंद फाइल' की 'सीमा' की तरह प्रेम विवाह को ठीक नहीं समझती मगर परंपरागत दहेज को भी ठीक नहीं समझती. वह इसी दुविधा में विश्वास करती है.

'दूरदर्शन' को धिक्कारनेवालों का ऐसे कार्यक्रमों के बारे में क्या कहना है? □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाला दुबे

इश्क की पुरवाइयां

इश्क की हदें भी बांधी जा सकती हैं भला? किस्मत जब प्रेमियों पर मुस्कराने लगे तो फिर एक-लौ होने में क्या देर लगती है?

निजाम हैदराबाद का दीवान महाराजा सर किशन परशाद बंहादुर, जी. सी.आई.ई. यामीन उस्सल्तनत. उसके वंश-वृक्ष में शायद सभी वजीर बने थे—उसके पूर्वज राजा टोडर मल बादशाह अकबर पर छाये रहे. और जब हैदराबाद की रियासत तराशने आसफ जाह प्रथम दिल्ली से चले थे तब उनके साथ भी इसी वंश-वृक्ष का एक वजीर आया था—राय मूल चंद. फिर महाराजा सर चंदू लाल सन् 1809 से 1842 तक हैदराबाद के पेशकार रहे. वैसे महाराजा सर किशन प्रसाद महाराजा चंदूलाल के पौत्र महाराजा नरेंद्र परशाद के पौत्र थे. और सर सालार जंग ने ही तो महाराजा किशन प्रसाद को अनुशासन एवं विदेशी शिक्षा-प्रणाली की छेनी-हथौड़ी से तराश्रा था. फिर महाराजा किशन प्रसाद निजाम हैदराबाद महबूब अली पाशा के दाहिने हाथ बने थे. अजीब जोड़ी बन गयी थी दोनों की—नौकर वफदार था तो मालिक कद्रनशां मानो काबा और कलीसा एक ही चहारदीवारी में पनप रहे हों.

महाराजा किशन प्रसाद हरफन मौला थे—संस्कृत, फारसी, उर्दू, हिंदी, संगीत, चित्रकला, शायरी सब में दखल था. यहां तक कि वे जब मचलकर कुम्हार का चाक चलाने लगते तो इतनी खूबसूरत मिट्टी के बरतन बनाते कि कुम्हार चकरा जाता. और रही बात खाना बनाने की—इस फन में वे इतने मजे हुए थे कि एक तरह की दाल को बावन तरीकों से बना सकते थे. और उम्र की दहलीज लांघकर जब वे जवानी के आंगन में आये तब उन्हें एहसास होने लगा कि इश्क की पुरवाइयां धीमे-धीमे चलने लगी हैं जो उन्हें कुदरत अपनी शराब पीने को उकसा रही है. वैसे उनके बुजुर्ग गधा-पच्चीसी की बदमस्तियों से वाकिफ थे और तभी तो उन्होंने किशन प्रसाद को दांपत्य के खूंटे से फौरन ही बांध दिया था. पर भला एक ही खूंटे से हैदराबाद जैसी रियासत का दीवान बांधा जा सकता था. देखते ही देखते उनकी कई रानियां बन गयीं. पर 'बड़ी रानी' के रुतबे की लाज उन्होंने हमेशा रखी.

जब वे शिमला 'जी.सी.आई.ई.' का खिताब लेने गये थे तब वे अपनी कार में 'बड़ी रानी' और उनके बच्चों के साथ बैठे थे. बाकी की रानियां अन्य कारों में पीछे-पीछे चली थीं. सलीका उनकी जिंदगी का उसूल था. अकसर 'मीर' का शेर भी दोहराया करते थे:—

शर्त सलीका है हर इक अम्र में
ऐब भी करने को हुनर चाहिये

वैसे तो वे स्वयं भी एक मजे हुए शायर थे— फारसी और उर्दू दोनों के. तखल्लुस (उपनाम) था 'शाद'. उन्होंने एक उर्दू की पत्रिका भी निकाली थी 'महबूब उल कलाम' जिसकी पहली गजल स्वयं निजाम हैदराबाद महबूब अली पाशा की होती और फिर शाद एवं अन्य शायरों की. उनकी शायराना तबीयत ने जब उड़ान भरी तो उनकी जिंदगी एक जलसे की तरह गुजरने लगी. और फिर इश्क की पुरवाइयां भी तो धीमे-धीमे चलकर उन्हें एक उद्दंड प्रेमी बनाए डाल रही थीं. लिहाजा उन्होंने हिंदू रानियों के अतिरिक्त मुसलमान बेगमें बनायीं पर उनके नाम नहीं बदले और उन्हें हरेक मुस्लिम त्यौहार मनाने की छूट ही नहीं दी बल्कि थैलियों में अशर्फियां भी दी जातीं. उस त्यौहार में वे स्वयं शिरकत करते और उनकी मुसलमान रानियां एक क्षण को भूल जातीं कि महाराजा किशन प्रसाद हिंदू हैं.

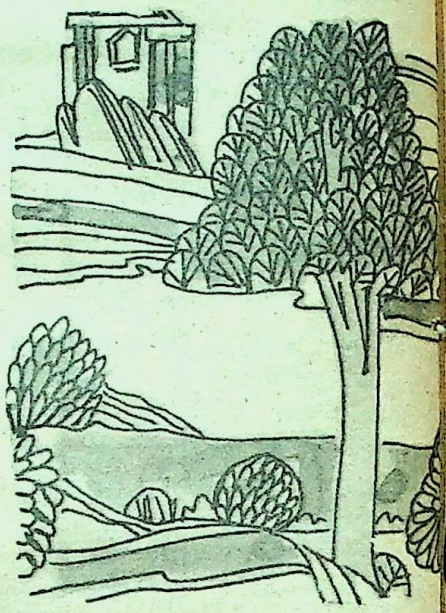

सबसे पहले महाराजा किशन प्रसाद को अपने मालिक निजाम हैदराबाद महबूब अली पाशा की दरिया दिली का तब पता चला जब वे एक मुसलमान जागीरदार की लड़की पर रीझे थे. उस दिन महबूब अली पाशा के हरम के खेमे बागे-आम में लगे हुए थे. जब महाराजा किशन प्रसाद उधर से गुजरे तो एक खेमे से शायद उस दिन भी इश्क की पुरवाई चल रही थी जो हवा ने एक पल को बारीक चिलमन को पलट दिया और दूसरी तरफ खड़ी वह जागीरदार की लड़की एक झलक दे गयी मानो बिजली कड़ककर काले बादलों में समा जाये. किशन प्रसाद के दिल पर यकीनन उस दिन गाज पड़ी और उन्होंने उसे फिर देखने की इच्छा प्रकट की. इसका मतलब समझते हुए उस जागीरदार को देर नहीं लगी और उसने बाकायदा उनसे लिखत-पढ़त करवा ली कि शादी होने पर उस लड़की के नाम कितनी जायदाद कर दी जायेगी. शर्त-नामा लेकर वह जागीरदार फिर निजाम हैदराबाद की मां के पास पहुंचा था—शिकायत करने और उस कागज को देखकर निजाम की मां भी भड़क गयीं और अपने बेटे को फटकारा 'ऐसे फिसलती तबियत के शख्स को नौकरी पर क्यों रखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो.' हैदराबाद में अफवाहों के बादल जगह-जगह छा गये. 'दीवान को निकाला जायेगा', 'दीवान को बरख्वास्त करा जा रहा है.'' सबसे पहले उस अंग्रेज कर्नल रेजीडेंट ने भविष्यवाणी की थी 'उसको निजाम नहीं निकालेगा क्योंकि किशन प्रसाद से बढ़कर काबिल दीवान और वफादार दोस्त उसे कहीं भी ढूंढे नहीं मिलेगा'. और वही हुआ. निजाम ने अपनी मां के रूबरू 'हूं हां' तो की पर किया कुछ भी नहीं.

महाराजा किशन प्रसाद ने एक बार फिर इश्क के आसमान में उड़ान भरी और अब की बार तो वे स्वयं नीम बिस्मिल हो गये. हैदराबाद के एक दकियानूसी मुसलमान खानदान का ही चिराग थी गौसिया बेगम. बेले जैसा रंग, गजल जैसी आंखें, मोरछली जैसा कद—गौसिया चलती फिरती कयामत जैसी थी. और भला इश्क की हदें भी किसने बांधी हैं. जब किस्मत उन पर मुस्करायी तो दोनों तरफ एक लौ उठी और फिर धीरे-धीरे वे एक-लौ हो गये. हद तो तब हुई जब वे दोनों ही आग के दरिया में तैरने की जुरअत करने लगे. छुप के किशन प्रसाद गौसिया के यहां जाते, मिलते, और लौट आते. और कभी स्वयं गौसिया पर्दे की कैद से भागकर अपने 'किशन' के पास आती. इश्क की बेल जब बढ़ी तो समाज की दीवार पर भी चढ़ने लगी. बात खुली. पहले दबी जुबान चर्चे हुए और फिर दुनिया वालों ने अपना मोहरा भी बढ़ाया. बात गंभीर थी क्योंकि गौसिया अच्छे खानदान की लड़की थी और एक हिंदू से गठ-बंधन होना भी टेढ़ी खीर था.

अब? अब क्या हो.

फिर मश्विरे आये. दीवान बहादुर की हालत देखकर उन्हें भरोसा हो चुका था कि किशन प्रसाद अब 'मन-जुनून' हो गये हैं, उनके जुनून ही हदें बहुत बढ़ चुकी हैं. पर गौसिया? उसके सर भी तो कोई मीठा जादू चढ़ गया था जो लाख उतारे नहीं उतर रहा था. और तभी किशन प्रसाद ने फैसला कर डाला 'गौसिया एक शरीफ मुसलमान की बेटी है. उसकी बदनामी मैं बरदाश्त नहीं कर सकता और ना ही उसके बगैर मैं रह सकता हूं. बस अब तो एक ही घर बचा है शह बचाने के लिये. मैं मुसलमान हो जाऊंगा.' इस खबर ने हैदराबाद को चौंका दिया. जिधर देखो उधर ही चर्चे—'दीवान बहादुर महाराजा सर किशन प्रसाद 'शाद' मुसलमान बन रहे हैं—गौसिया की खातिर.'

और जब गौसिया के खानदान ने भी यह बात सुनी तो वे खुश हुए. 'अब हमें गौसिया को सौंपने में कोई उज्र नहीं.' वे जानते थे कि दीवान बहादुर कोई ऐरे-गैरे तो हैं नहीं. लाखों की जायदाद, पदवी, शानो-शौकत-क्या नहीं था उनके पास. जब दीवान बहादुर अपनी कार से बाजार से गुजरते तो एक प्यादा रास्ते भर चांदी के रुपये लुटाता चलता था. उस दीवान बहादुर के घर का चरण बनने जा रही थी गौसिया. और गौसिया पर क्या बीती? उसे इस अफवाह में अपनी शिकस्त का एहसास हुआ. उसका 'किशन' उसके लिये 'करीम' हो जायेगा— सिर्फ उसकी आबरू के लिये, उसकी मुहब्बत के लिये.

बात फैलते ही दोनों का ही मिलना बंद हो गया था. अब तो तोड़-फैसले के इंतजार था सबको. और तभी यह बात निजाम महबूब अली पाशा के कानों में भी जा पड़ी. वे मुस्कराये 'शाबास किशन प्रसाद, तुम गौसिया की आबरू रखना चाहते हो—इतनी बड़ी कीमत अदा करके.' बात सच थी. चकबस्त ने बहुत बाद में इसी आबरू के नुक्ते को कैसा उभारा है:

'आबरू क्या है—तमन्ना-ए-वफा में मर जाना'

किशन प्रसाद की वफा ने निजाम महबूब अली पाशा को मुअत्तर कर दिया. और फिर दोनों दीवान बहादुर को तलब किया. इश्क का गुनहगार उनके सामने सर झुकाकर खड़ा हो गया. निजाम बोले 'हम तुम्हारे हौसले की कद्र करते हैं किशन प्रसाद. पर एक बात समझ लो. सदियों से इस रियासत का पेशकार एक हिंदू होता आया है और होता रहेगा. मैं तुम्हें सोचने के लिये वक्त देता हूं. गौसिया या पेशकारी— किसी एक राय को चुन सकते हो.'

एक लंबी सांस भरकर दीवान बहादुर सोच-विचार करने चल दिये. सबसे पहले उन्होंने गौसिया की सहेली निकहत को अपना फैसला सुनाया था 'मैं गौसिया लूंगा.' और जब गौसिया को दीवान बहादुर का फैसला निकहत ने बतलाया तब उसी दिन निकहत ने देखा कि जब हुस्न बगावत करता है तो आगा-पीछा कुछ भी नहीं सोचता. घर के सब बंधन और थोथी आबरू के अंबार छोड़कर गौसिया उस रात भागी थी—अपने किशन प्रसाद के पास. और जब इसकी खबर निजाम को लगी तो वे एक बार फिर मुस्कराये 'शाबाश गौसिया मैंने पहली बार दरे इश्क पर हुस्न को सर झुकाते हुए देखा है.'

और उन्होंने फौरन ही गौसिया के चचा को बुलवाया. उनके साथ एक काजी भेजते हुए हुक्म दिया 'जाओ, गौसिया का निकाह मेरे हिंदू दीवान और दोस्त के साथ पढ़वा दो. और दीवान से कहना कि शादी के बाद मैं दावत खाने आ रहा हूं.' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

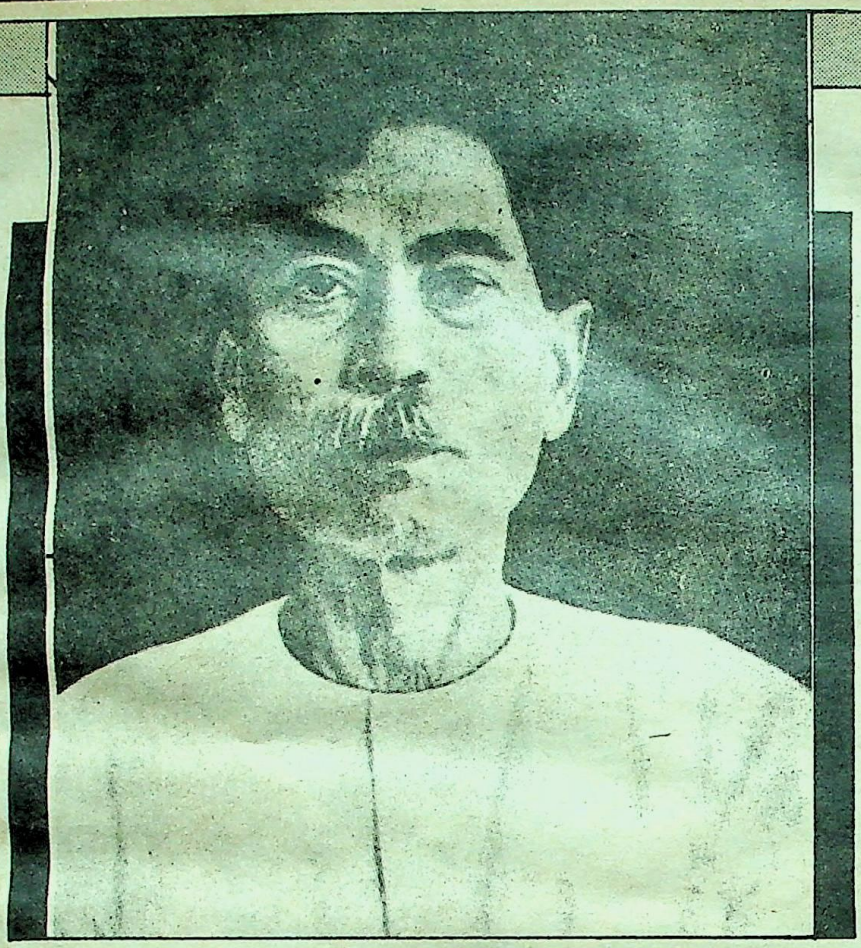

प्रेमचंद

आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकार प्रेमचंद विश्व के उन बहुत कम रचनाकारों में एक हैं जिनका विश्व की सभी भाषाओं में समान रूप से सम्मान होता है. कहानीकार के रूप में प्रेमचंद शोधार्थियों के लिए आकर्षण का विषय इसलिए अधिक रहे हैं कि उर्दू और हिंदी दोनों ही भाषाओं में उन्होंने कहानियां लिखीं. हिंदी में अब तक अनुपलब्ध उनकी कुछ रचनाएं प्रेमचंद-साहित्य के विशेषज्ञ डा. कमल किशोर गोयनका ने 'सारिका' के लिए खास तौर पर जुटायी हैं. प्रेमचंद के पुण्यतिथि माह के अवसर पर प्रस्तुत है कथा-रचना 'दरवाजा' और एक दुर्लभ लेख जो तालस्तोय के उपन्यास 'अन्ना' पर आधारित है.

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाजा

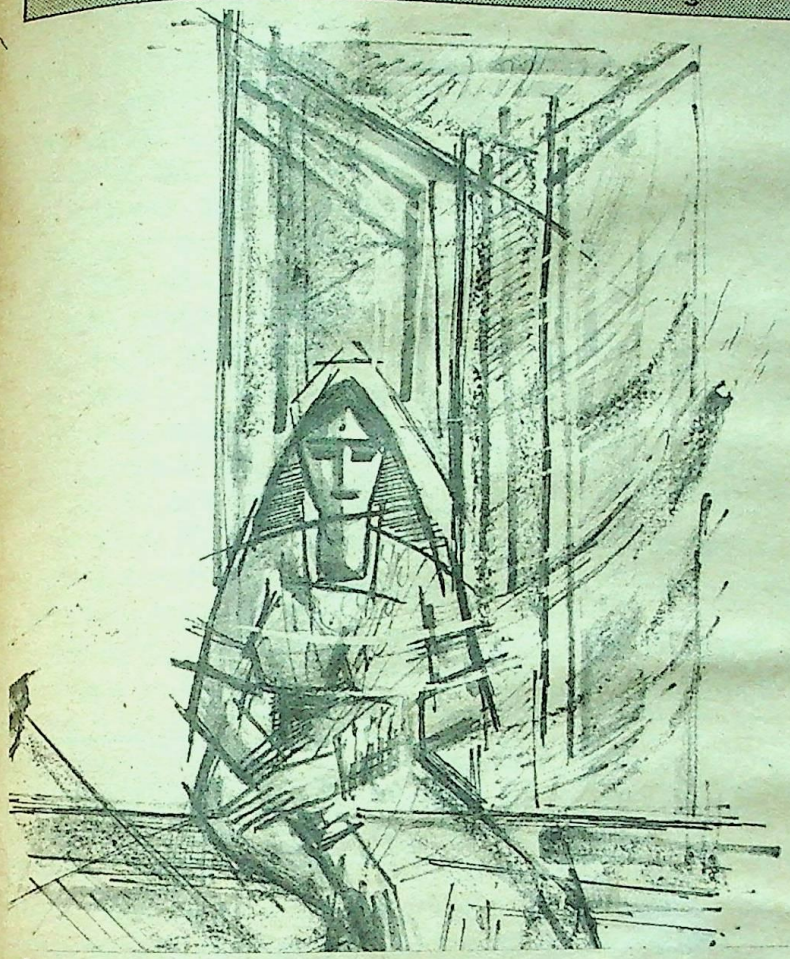

मेरी जान हमेशा आफत में रहती है. अव्वल तो घर के लड़के दम नहीं लेने देते. मेरे दोनों पट्टों को जोर से टकराना उनका खेल है. मेरी पसलियां चूर हो जाती हैं. दूसरे हवा के तेज झोंके और भी बलाये जां इस बेरहमी से मुझे जेरोजबर (अस्त-व्यस्त) करते हैं कि अलामान (परमात्मा खैर करे). इस पर तुर्रा ये कि मेरी फुगाने दर्द (दुःखभरी चीख) पर साहबेखाना (गृहस्वामी) को भी तरस नहीं आता. वह उल्टे मुझी पर नाराज होते हैं. मैं घर का राजदार हूं और जाहिरदारी (दिखावा) को निभाना मेरा काम है. अक्सर घर में साहबेखाना के मौजूद होने पर भी मुझे बंद कर दिया जाता है. खासकर किसी चंदे की वसूलियां, बजाज के तकाजे के दिन मुझे बंद कर दिया जाता है और वे अपना-सा मुंह लेकर लौट जाते हैं. मैं सीनासिपर (छाती तानकर) अपने आका को नक़ामत (लज्जा) और हीलासाजी (चालबाजी) से बचा लेता हूं मगर पिछले दिनों जब मुझे बंद देखकर डाकिया मनीआर्डर वापिस ले गया तो साहबेखाना मुझी को कोसने लगे. मेरी नेकियों का नाम कोई भी नहीं लेता. मगर बुराइयों पर सबके सब बरहम (क्रोधित) हो जाते हैं.

जमाने का अजब ढंग है. मुझे अपने फराहिजे मंसबी (कर्त्तव्यों का पालन) देने में कितनी गालियां खानी पड़ती हैं. मुझे बंद पाकर लुक्माये लजीज (स्वादिष्ट भोजन) की ख्वाहिश से बेताब कुत्ते कितने बरहम (क्रुद्ध) हो जाते हैं और कितने मायूस, और चोर तो मेरी जान के गाहक हैं. कभी बग़ली घूसे मारते हैं, कभी चूल खिसका देते हैं. कभी कुछ हत्ता (यथा) के गदागरों (भिखारियों) को भी मुझसे बुग्ज (अप्रकट द्वेष) है. मुझे बंद पाकर कोसते हैं और नाकाम वापिस लौट जाते हैं.

आह! उम्रे रफ्ता (व्यतीत आयु) की याद कितनी हसरतनाक (दुःखपूर्ण) है? मैंने कभी अच्छे दिन देखे हैं. वह दिन नहीं भूलता, जब मालिका नयी-नवेली दुल्हन बनी, गहनों से लदी, शर्म से सर झुकाये पालकी से उतरी थीं, उस वक्त पहले मैंने ही उनके रुखरोशन (मुख-दीप्ति) का नजारा किया था और उनके कमल के से नाजुक पैरों का बोसा लिया था. एक रोज जब बाबूजी शाम को किसी वजह से घर नहीं आये तो इंतजार में बैठे-बैठे उकताकर वह नवेली दुल्हन हया से गर्दन झुकाय दीवारों से लजाती मेरी गोद में आकर खड़ी हो गयी और कितनी देर तक मेरे पहलुओं में लिपटी हुई सामने के वसीह मैदान की तरफ ताकती रही. उसके दिल में उस वक्त कैसी धड़क थी और आंखों में कितना फिक्र आमेज इश्तियाक (चिंतापूर्ण उत्कंठा). बाबू साहब को आड़े से आते देखकर वह किस तरह खुशी से उमड़ी हुई जल्दी से घर में चली गयी, यह पुरमजा (आनंदपूर्ण) बातें कभी भूल सकती हैं. बाबूजी ज्यूं-ज्यूं बूढ़े होते जाते हैं, उन्हें मुझसे उनस होता जाता है. अब वह अक्सर मेरे पहलुओं में बैठे रहते हैं, शायद उन्हें मेरी जुदाई का गम सताया करता है. अभी जब वह बीमार थे तो मालिकन कितनी बार मुझसे लिपट-लिपटकर रोयी थीं. मालूम नहीं क्यों?

इस घर में कौन कदम रखेगा, अगर उसे मालूम हो जाये कि उसे कभी यहां से जाने का अख्तयार नहीं है. मैं घर और बाहर के बीच की कड़ी हूं. बाहर कितना वसीह (विस्तृत) मैदान है. कैसे सुहाने सब्जाजार (हरियाली ही हरियाली), कैसी मुस्कराती हुई आबादियां, कितनी वसीह दुनिया. घर महदूद है, बाहर की कोई इंतहा नहीं. महदूद (सीमित) और गैरमहदूद (असीमित) के दरमियान रिश्ता ए इत्तिसाल (मिलन का संबंध) हूं. कतरे को बहर से मिलाना मेरा काम है. मैं एक किश्ती हूं, फना (मृत्यु) से बका (जीवन) को ले जाने के लिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालस्तोय के विश्व प्रसिद्ध उपन्यास का पहला हिंदी अनुवाद पं. छविनाथ पांडेय ने किया था और उसे विनोदशंकर व्यास ने अपने प्रकाशन संस्थान पुस्तक मंदिर, काशी से सन् 1933 में प्रकाशित किया था. अब यह अनुवाद अनुपलब्ध है, पर यह सच है कि प्रेमचंद इस अनुवाद से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्होंने इस अनुवाद की भूमिका लिखी थी. प्रेमचंद ने लगभग 1913 में 'अन्ना' उपन्यास अंग्रेजी में पढ़ा था और वे चाहते थे कि वह हिंदी पाठकों को भी उपलब्ध हो सके. जब पं. छविनाथ पांडेय ने इसका अनुवाद किया और इसकी भूमिका लिखने का आग्रह किया तो उन्होंने सहर्ष इसकी भूमिका लिखी. यह अनुपलब्ध भूमिका यहां प्रस्तुत है. पाठक देखेंगे कि प्रेमचंद कितने तटस्थता एवं ईमानदारी से तालस्तोय एवं 'अन्ना' का मूल्यांकन करते हैं. प्रेमचंद रूसी साहित्य से प्रभावित ही नहीं थे, संसार के श्रेष्ठ साहित्य में भी उसकी गणना करते थे.

अद्‌भुत रचना-शक्ति के धनी : तालस्तोय

प्रेमचंद

तुर्गनेव ने एक बार काउंट तालस्तोय के विषय में अपनी स्वाभाविक उदारता के साथ कहा था, "मैं उनकी तुलना में क्या हूं? समकालीन योरोपियन साहित्य में उनका कोई जोड़ नहीं. उनकी कलम में यह जादू है कि वह जो लिखते हैं, वह जैसे जी उठता है. और उनकी रचना-शक्ति का क्षेत्र कितना विराट है. उसे देखकर आश्चर्य होता है."

और इस कथन में रत्ती भर भी अतिशयोक्ति नहीं है. तालस्तोय की रचना-शक्ति अद्‌भुत थी, कल्पना-शक्ति अलौकिक थी, जीवन का ऐसा कोई विभाग, ऐसा कोई अंग नहीं है, जिस पर उसकी तेज आंखें न पड़ी हों. और उसके मस्तिष्क में जो चीज एक बार पहुंच जाती थी, वह आलौकिक हो जाती थी. ऊंची से ऊंची या निकृष्ट से निकृष्ट सोसाइटी का चित्रण वह समान बारीकी और सच्चाई के साथ करता है. आपको कहीं कोई अस्वाभाविकता, कहीं कोई अनाड़ीपन न मिलेगा. अमीरों के नाच और दावतों में, सैनिकों की छावनियों और गरीबों की झोपड़ियों में, ऐयाशों के विलास और विहार में, त्यागियों की साधना और संयम में कहीं भी बंद नहीं है. कभी भी वह अजनबी नहीं है, कहीं भी वह भटकता नहीं, और मानव चरित्र का ऐसा वैचित्र्य तो आपको साहित्य में कहीं मिल ही नहीं सकता. उस 'वार एंड पीस' को ही लीजिए. हजारों चरित्र आये हैं, सब अपने व्यक्तित्व के साथ. बड़े से बड़ा वीर, बड़े से बड़ा कायर, सज्जन, दुर्जन, लुच्चे, शोहदे. साधु, सज्जन सभी उसकी कलम के नीचे आकर सजीव हो जाते हैं, बोलने लगते हैं. आपको उनसे इतनी दिलचस्पी हो जाती है, मानो वे आपके घनिष्ठ हों, आप सम्मोहित हो जाते हैं. उनकी पहली पुस्तक 1852 में और आखिरी पुस्तक 1910 में छपी. इस साठ वर्ष के साहित्यिक जीवन में उन्होंने क्या कुछ नहीं लिखा? उपन्यास, गल्प, आलोचना, ड्रामे, राजनीति, जीवन चरित्र सभी लिखा और जो कुछ लिखा, उस पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी. और हम उनकी रचनाओं में उनकी मनुष्यता का विकास स्पष्ट रूप से देखते हैं. क्रांति उनके रक्त में थी. वही क्रांति की भावना, उनकी रचनाओं की प्रेरक थी.

कुछ लोगों के संस्कार ऐसे होते हैं कि होश संभालते ही उनके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं. बुद्ध, शंकर, दयानंद, इसी श्रेणी के मनुष्यों में है. कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें साधना और तप से ज्ञान प्राप्त करना होता है. तालस्तोय इसी श्रेणी के मनुष्य थे. उनका ज्ञान, उनकी सेवा, उनका वैराग्य, संदेहों और विचारों और मानसिक द्वंद्व से होती है. तालस्तोय कभी इस द्वंद्व से खाली नहीं रहे. वह समय ही क्रांति का था. फ्रांस की क्रांति की ध्वनि उस वक्त तक हवा में गूंज रही थी. छात्रावस्था से ही तालस्तोय में नैतिक उत्थान की भावना प्रबल थी और इसके साथ ही नैतिक पतन का बीज अहंकार भी था. वह मान भी चाहता था, मनुष्यों पर अधिकार भी चाहता था. पर इसके साथ ही मानसिक निर्मलता और विनय की प्रबल आकांक्षा भी रखता था. और उसकी महत्ता का रहस्य यही मानसिक द्वंद्व था. जीवन के प्रलोभनों से वह सदैव भागना चाहता था. बार-बार प्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था कि भविष्य में सदाचार का पालन करूंगा. लेकिन इच्छा बार-बार प्रतिज्ञा को तोड़ने पर मजबूर कर देती थी और वह फिर नये सिरे से प्रतिज्ञा करता था. युवावस्था में ही उसकी आत्मा, धर्म और समाज और राष्ट्रीयता के मिथ्या, घातक, स्वार्थमय व्यापारों से विद्रोह करने लगी थी. धर्म में सेवा और त्याग और उपकार का भाव गायब होकर केवल अंध विश्वास और स्वार्थ-लिप्सा रह गयी थी. उसे मनुष्य के ऐहिक जीवन की परवाह न थी. वह केवल परलोक सुधारने का बीड़ा लिए हुए थे. मसीह ने जीवन का जो आदर्श सामने रखा था, उसका वह नये सिरे से उद्धार करना चाहता था. समाज में ऊंच-नीच का भेद, उस मातृभाव का अभाव, जो ईसा के उपदेशों का मूल तत्व था, और जिसने मुट्ठी भर धनियों और अधिकारियों को सारी जाति के भाग्य का विधाता बना दिया था, उसके लिए असहय था. उसके विचार में उपजीवी वर्ग समाज का सबसे बड़ा शत्रु था. इस विषय में उनके विचार संपूर्णतः सोशलिस्ट थे. जो स्वयं शारीरिक शस्त्र से अपनी जीविका न प्राप्त कर सके, उसके लिये तालस्तोय की समाज-व्यवस्था में कोई स्थान न था. कलाकार और लेखक, वकील और डाक्टर, यह सब उनके विचार में समाज के अनावश्यक अंग थे. एक जुलाहे का, मोची का, लोहार का मूल्यक समाज में वकील या कलाकार से कहीं अधिक था. मोची या लोहार या जुलाहा मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं उनके न रहने से समाज को कष्ट होगा. चित्रकारों के मिट जाने से समाज को काई कष्ट होने की संभावना न थी. कला को भी वह सर्वग्राह्य बनाना चाहते थे. जिस कला का आनंद थोड़े-से शिक्षित लोग ही उठा सकें, यह उनके विचार में कला ही न थी. कला में मनुष्य-मात्र के हृदय पर असर, शक्ति न हो, तो वह समय और धन का अपव्यय है. इस दृष्टिकोण को सामने रखकर उन्होंने स्वयं कई कहानियां लिखीं और उनकी जिन पुस्तकों में मानव हृदय का चित्रण मात्र था बाद में उनकी निंदा की.

आज भी संसार राष्ट्रों के संघर्ष की समस्या को हल करने का विफल प्रयत्न कर रहा है. आज भी इसी उद्देश्य से लड़ाइयों की भीषणता चित्रित की जा सकती है. उनका मनुष्य की मानसिक, बौद्धिक और चारित्रिक प्रवृत्तियों पर क्या

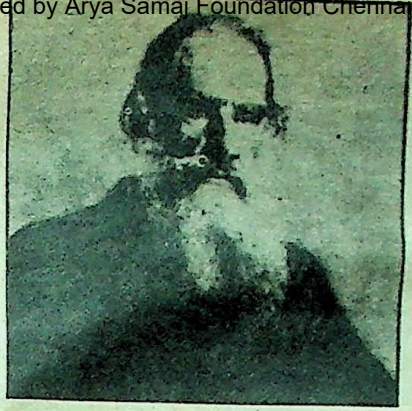

असर पड़ता है, यह दिखाया जा रहा है, पर इस विषय का जितना सुंदर, मार्मिक, यथार्थ चित्रण तालस्तोय ने किया है वह और किसी ने शायद ही किया हो. स्वयं पहले फौज में नौकर हुए और सेबास्टोपोल की लड़ाई में भी शरीक हुए, पर उन्हें बहुत जल्द इस हत्याकारी व्यापार से घृणा हो गयी. यहां उन्हें फौजी अफसरों के मनोभावों को अध्ययन करने का जो असवर मिला, वह शायद कहीं न मिलता. 'वार एंड पीस' के बाद तालस्तोय ने 'अन्ना करे निन' की रचना की और हमारे विचार में उनकी रचनाओं में इसका स्थान अगर कम है, तो 'वार एंड पीस' से हो. और वह भी केवल इस दृष्टि से कि इसका क्षेत्र उतना फैला हुआ नहीं है. लेकिन फैलाव में जो कमी है, वह उसकी गहराई ने पूरी कर दी है. 'अन्ना' तालस्तोय की सृष्टि में ही नहीं, संसार साहित्य की सृष्टि में बेजोड़ है, अद्वितीय है. इंग्लैंड के प्रसिद्ध उपन्यासकार मेरेडिथ का कथन है कि "अन्ना उपन्यास संसार का सबसे संपूर्ण और सजीव स्त्री पात्र है." इस रचना में तालस्तोय ने सामाजिक समस्याओं को ऐसा वास्तविक, ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, मन के गुप्त से गुप्त रहस्यों पर ऐसा प्रकाश डाला है कि उसे पढ़कर हम आश्चर्य चकित हो जाते हैं. पुस्तक का पहला ही वाक्य इतना गहरा और भावपूर्ण है कि हमारे ऊपर जादू का-सा असर हो जाता है. ऐसा जान पड़ता है, वह सारे दृश्य हमारी आंखों के सामने हो रहे हैं, मानो हम दूरबीन लगाये सब कुछ देख रहे हैं. ऐसा कोई स्थल नहीं है, जहां चतुर कलाकार को भ्रम या कठिनाई का सामना करना पड़ा हो. वह स्त्री का चित्रण पुरुष की आंखों नहीं, स्त्री की आंखों से करता है. एक स्त्री दूसरी स्त्री के विषय में कैसे भाव रखती है, स्त्री के मनोभाव में कैसे परिवर्तन होते हैं, वह पुरुष की किन बातों से दुखित होती है, और एक ही परिस्थिति, भिन्न-भिन्न स्त्रियों पर क्या भिन्न-भिन्न प्रभाव डालती है, इसका दिग्दर्शन तालस्तोय से उत्तम शायद ही किसी ने किया हो. ऐसा जान पड़ता है, उसके पास कोई ऐसा गुप्त साधन है, जिससे मन में उठने वाले भावों को खुली किताब की तरह पढ़ लेता है.

अन्ना विलासिनी स्त्री है जो पुरुष का संपूर्ण हृदय पाकर प्रसन्न हो सकती है. उसका पति शीतल प्रकृति का मनुष्य है, जिसके लिये स्त्री केवल गृह स्वामिनी है. वह राजनीति में इतना व्यस्त रहता है कि अन्ना समझती है, उसे उससे प्रेम नहीं है. वह रंकी की ओर आकर्षित हो जाती है, लेकिन वह माता हो चुकी है और बालक का प्यार उसे बेचैन करता रहता है और अंत में उसकी वही अधिकार लालसा उसकी आत्महत्या का कारण बन जाती है. रूसी साहित्य में अन्ना एक पहेली है और उसको समझने-समझाने की बहुतों ने कोशिश की है. कुछ लोगों का ख्याल है कि अन्ना का अंत तालस्तोय की दंड भावना का परिचायक है. उस का आदर्शवाद, ऐसी स्त्री का पश्चातापपूर्ण अंत दिखाये बगैर संतुष्ट न हो सकता था. कुछ लोगों का कहना है कि वह सामाजिक चित्रण है. पति-व्रता स्त्री भी मानसिक विफलता से आत्म हत्या कर सकती है. पुस्तक में 'डाली' का चरित्र बहुत ही सुंदर है, जो गृहस्थी के जंजाल, बच्चों के पालन-पोषण और पति के व्यभिचार से दुखी रह कर भी संतुष्ट है. पर ऐसी स्त्री के मन में भी कभी-कभी अन्ना के विलास और यौवन को देखकर एक प्रकार की लालसा आये बिना नहीं रहती. लेविन के चरित्र में कदाचित टालसटांय ने अपना ही चित्र खींचा है. इन्हीं दिनों देहात सुधार की ओर उनका झुकाब हो रहा था.

मैंने आज लगभग 20 साल हुए, जब यह पुस्तक पढ़ी थी. जो कुछ याद था, उसी के आधार पर मैंने ये दो शब्द लिखे हैं. पढ़ते समय मेरे मन में यह इच्छा हुई कि इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद हो सकता, तो बड़ी अच्छी बात होती. हर्ष की बात है कि आज श्री छविनाथ जी और विनोदशंकर जी व्यास के सहयोग से मेरी वह इच्छा पूर्ण हुई. □

(अन्ना : मूल लेखक तालस्तोय, अनुवादक—पं. छविनाथ पांडेय, प्रकाशक-पुस्तक मंदिर, काशी प्रथम संस्करण 1933)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन लेखन की एक बानगी

प्रभाकर श्रोत्रिय

तीन युवा कथाकारों—बलराम, राजकुमार गौतम और धीरेंद्र अस्थाना का समवेत संकलन 'सामना' समकालीन रचना-मानस की कुछ झलक देता है. यों, तीन कहानी के आधार पर किसी भी लेखक के बारे में, खासकर उस लेखक के बारे में जो अन्वेषण और संभावना के दौर से गुजर रहा हो, कुछ भी प्रामाणिक कह पाना संभव नहीं है, परंतु ये तीनों एक अर्से से परिचित हैं, इसलिए इन कहानियों के पीछे इन्हें व्यक्त करती अन्य कहानियां भी हैं.

बलराम की तीन कहानियां यहां हैं— 'सामना', 'निर्वासन' और 'अभिलाषा'. 'सामना' में सोमनाथ अपने जैसे खस्ताहाल दोस्त शंभू के द्वारा नौकरी दिलाने के लालच और सहज विश्वास में उसकी गिरफ्त में फंसता चला जाता है जो अंत में उसके एक हजार रुपए लेकर चंपत हो जाता है. सारे प्रसंग विवरण और प्रक्रिया यद्यपि बहुत सधी हुई और विश्वसनीय है— जैसे मशीन में फंसे एक पैर को निकालने के लिए कोई बाकी हिस्से भी उसमें फंसाता चले, इस कदर कि अंत में जीवन से ही हाथ धो बैठे! फिर भी यह कहानी, इसी तरह की पचासों कहानियों जैसी साधारण बनकर रह जाती, अगर उसमें एक अंतिम स्पर्श नहीं होता. शंभू से ठगे जाने के बाद सोमनाथ पराजित, संतप्त और अपराध-भावना से ग्रस्त होकर अपने गांव—घर पहुंचता है. वह साल भर खाने के लिए रखा अनाज, नौकरी के खातिर बिकवाकर पैसा देने और नौकरी पाने बाहर गया था. हताश स्थिति में वह कुछ कह भी नहीं पाता कि घर वाले अपने सहज विश्वास के कारण समझ लेते हैं कि वह नौकरी पाकर लौटा है. सारा घर उत्साह और आनंद से भर उठता है. मां असीसती है और बहन देवी मां को प्रसाद चढ़ाकर पूरे गांव में बांटने को दौड़ पड़ती है. पात्रों के लिए परस्पर अनखुले, मगर पाठक के सामने खुले पहलुओं के कारण त्रासदी और विश्वासघात की अमानवीयता घनीभूत हो उठती है. गांव और शहर के चरित्रों के बीच की खाई ज्यादा गहरी और और भयावह हो जाती है. प्रतिभा का यह स्पर्श पूरी कहानी की साधारणतया को विशिष्टता में बदल देता है.

एक तो यह अंत है जो कहानी को पचासों कहानियों से अलग खड़ा कर देता है; लेकिन एक अंत वह भी है जो पूरी कहानी की विशिष्टता को भोंथरा बना देता है. इसका उदाहरण भी यहीं, दूसरी कहानी 'निर्वासन' में मौजूद है, जो बलराम की विशिष्ट कहानी है— कथ्य, संरचना, चरित्रांकन, मनोविज्ञान, परिवेश सभी दृष्टियों से. परंतु अंत ने इस कहानी का कद छोटा कर दिया है. पूरे प्रसंग का बलराम ने अत्यंत रोमांचक और दारुण वर्णन किया है, वह अपूर्व है.

परंतु अंत में बलराम ने युवा सत्ती के साथ अजयप्रकाश का क्रूर बर्ताव, उसे विरासत से वंचित करने की घोषणा आदि का ब्यौरा देकर इस कहानी की धार को कुंठित कर दिया, और शिखर पर चढ़ी कहानी को बेवजह लुढ़का दिया. वह तो पूरी संरचना, एक सधा हुआ वर्णन, चरित्रांकन कथ्य और मनोविज्ञान की जीवंतता, सार्थक बुनावट, मुर्री-का दारूण प्रसंग और सोद्देश्यता थी, जिसने कहानी को फिर भी लुढ़कने नहीं दिया. तीसरी कहानी 'अभिलाषा' लघुकथा है जो अक्सर वेदना और निराशा में बुझी बलराम की कहानियों से हटकर है. यहां नयी पीढ़ी की समझ, आत्म-निर्भरता और आत्म विश्वास को थोड़े में अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है. बलराम की सामान्य विशेषता यानी सहजता और अनलंकृतता में सर्जनात्मकता इन कहानियों में भी है.

राजकुमार गौतम की तीन कहानियां हैं— 'आक्रमण', 'आदमी आत्महत्या करेगा' और 'एक प्रायोगिक हत्या'. राजकुमार की कहानियों में पहले भी मैंने अनुभव किया था कि वे घटना या संवेदना से विचार निथारने की अपेक्षा विचार-केंद्र से घटना और संवेदना निचोड़ने की कोशिश करते हैं जो कथा के स्वभाव के प्रतिकूल है. नतीजे में या तो घटना औपचारिक हो जाती है या अनुपस्थित. (घटना यानी स्थूल घटना नहीं; चरित्र, बिंब, कार्यव्यापार, स्थिति आदि) मुझे लगता है (वह गलत भी हो सकता है, पर लगता है) कि राजकुमार का मूल व्यक्तित्व निबंधकार और आलोचक का है. इसीलिए कहानी लिखते हुए भी वे विचारपरक और संजीदा बने रहते हैं. इतनी संजीदगी कथा सर्जक के मन से ज्यादा ही है! लगता है गौतम के पास 'कथ्य' विचार के रूप में आता है घटना या बिंब के रूप में नहीं (इसलिए भाषा का वे रचना-भाषा में कम रूपांतरण कर पाते हैं). इसी का नतीजा है कि वे 'आदमी आत्महत्या करेगा' जैसी कथित कहानी लिखते हैं, जो आदमी के अकेलेपन को तरह-तरह से विचार की शक्ल में प्रस्तुत करती है; और जब अपने व्यक्तित्व-मूल से विचलित होने की कोशिश करते हैं तो 'एक प्रायोगिक हत्या' जैसी अतिरंजित कहानी लिखते हैं! जिसके नाम अस्पताल का बेड अलाट हो, एक्सरे और आपरेशन होने वाला हो, वह युवती 'भाई' के साथ अस्पताल के बाहर होटलों में ऐसे घूमती, खाना खाती है गोया ये लोग पिकनिक मना रहे हों! मूल कथ्य से भटक कर 'भाई'-'बहिन' का संदिग्ध मामला उठाना, या रात सोने के लिए भटकते हुए परिचितों की बखिया उधेड़ना वगैरह ऐसा है जो केंद्रीय समस्या से पाठक का ध्यान हटाता है. लेखक यह बात गले नहीं उतार पाया कि जब एक्सरे वगैरह में कुछ नहीं निकला था तो नाहक डॉक्टर ने ऑपरेशन की जिद क्यों की? वे लोग पैसे वाले भी नहीं थे, जिनसे इस बहाने कुछ झटका जा सकता था! अस्पताल में ऐसा हो सकता है, पर असल मुद्दा यह नहीं है; वह है लेखक द्वारा सच की प्रतीति कराना.

लेकिन जहां राजकुमार अपनी निबंधपरक आत्मा को कथाकार के स्वभाव में समोते हैं, वहां वे नवें दशक की प्रतिनिधि रचना-प्रवृत्ति के साथ खड़े होते हैं और कुल मिलाकर दोनों साथी कलाकारों के पीछे से निकल कर आगे पहुंच जाते हैं. 'आक्रमण' ऐसी ही कहानी है जिसकी प्रमुख-विशेषता है आवेगहीन, आत्म-परता के भीतर सर्जनात्मक धैर्य और संजीदगी से, सशक्त कथा रचना. नवें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशक का यह विशिष्ट कथा-चरित्र है जो पिछले दशक से उसे अलग करता है. पूरी कहानी लेखक ने इतने सलीके से, बिना कथ्यात्मक विचलन के, आत्म-निरपेक्ष शिल्प में रची है, गोया वह इस कथा का भोक्ता न होकर प्रेक्षक हो; या ऐसा समाचार वाचक जो एक ही स्वर और भाव से मौत, युद्ध और दीपावली के त्यौहार की खबरें पढ़ता है. लेकिन प्रभाव के स्तर पर पाठक व्याकुल हो उठता है, भाई सा. के प्रति उसमें हिकारत और गुस्सा तथा युवक के प्रति कोफ्त, झुंझलाहट पैदा होती है. बूर्ज्वा मानसिकता, काइयांपन, स्वार्थपरता, मसखरापन आदि के प्रति पाठक में गुस्सा और घृणा आपो-आप रिसती है. एक अच्छी कहानी को प्रभाव के स्तर पर और क्या पाना होता है?

काले चश्मे में से झांकती धीरेंद्र अस्थाना की अय्यार और जादूगर आंखें ही मानो उनकी कहानी रचती हैं. इस संग्रह में उनकी लंबी कहानी 'खुल जा सिमसिम' और दो छोटी कहानियां– 'और आदमी रोया' तथा 'किस्सा एक त्रासद फंतासी का'– यथानाम तथा रूप हैं. धीरेंद्र की कहानी के केंद्र में 'रोचकता' है, वही उनके कथ्य और शिल्प को संचालित करती है.

संपूर्ण सर्जना का रहस्य है रूप को छिपाकर कथ्य को प्रकट करना, तभी रूप भी द्विपदिपाता है. जादूगरी और अय्यारी के सारे सरंजामों के साथ अभिव्यक्ति विस्मयकारी मार्ग क्यों चुना होगा धीरेंद्र ने? क्या इसलिए कि समाज परक, यथार्थ रचनाओं में ठहरा हुआ शिल्प उन्हें बेहद खफा कर गया? क्या इसलिए कि पारंपरिक अनुभव और संबंधों के बचे हुए संस्कार को वे किसी विस्फोट के जरिए उड़ा कर उसका जर्रा-जर्रा बिखेरना चाहते हैं? क्या यथार्थ की दुनिया को विस्मय की दुनिया में प्रतिस्थापित कर वे पाठक को एक अलग तरह का झटका देना चाहते हैं? या सिर्फ इसलिए कि अलग, चर्चित, लोकप्रिय या विवादास्पद बनें? मेरा ख्याल है कि एक प्रखर, संवेदनशील नए लेखक को जो रचना के मकसद को तरजीह देता हो, जिसके पास एक धारदार भाषा हो, रचने की क्षमता हो– ये उद्देश्य ज्यादा दिन तक जिंदा नहीं रख सकेंगे!

यहां संग्रहीत तीन कहानियों में दो तो छोटी कहानियां हैं– 'और आदमी रोया' तथा 'किस्सा एक त्रासद फंतासी का' शिल्प यहां भी बहुत आक्रामक है, परंतु इसके पीछे व्यक्तिगत और सामाजिक

प्राचीन भारतीय संस्कृति की पहचान

"सामाजिक परंपरा से प्राप्त संस्कार और व्यवहार. संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत और समृद्ध बनाती है, अथवा संस्कृति चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएं हैं, जो मानव जीवन और मानव-व्यक्तित्व के लिए साक्षात उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाती हैं." 'संस्कृति' पर यह टिप्पणी डा. हरदेव बाहरी ने हाल ही में प्रकाशित अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ–'प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश' में की है. अपनी तरह का यह पहला कोश है जिसमें वैदिक काल से 12 वीं शताब्दी तक की भारतीय संस्कृति के बिखेर पड़े मूल स्वरों का संचित करने का एक अद्भुत प्रयास किया गया है. कोशकार डा. हरदेव बाहरी वैदिक काल की संस्कृति को मूल (भारतीय) और बहुमूल्य धरोहर के रूप में देखते हैं. उनका कहना है कि रामायण काल से लेकर पौराणिक काल तक, विशेषतः गुप्त राजाओं के राज्यकाल में भारतीय संस्कृति पर गहरे प्रभाव पड़े. यह वह समय था जब वैदिक देवता बदले, पूजन-विधियां बदलीं... और न केवल विष्णु के, वरन् अनेक देवताओं, नागों और राक्षसों तक के अवतार माने जाने लगे. साहित्य और कला भी अप्रभावित न रहे. बाहर से आने वाली अनेक जातियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था. बावजूद इसके, भारतीय संस्कृति की मूल धारा का निजी प्रवाह बना रहा.

मुझे लगता है, इस दृष्टि से डा. बाहरी की इस बात से सभी सहमत होंगे कि भारतीय संस्कृति के इतिहास में बारहवीं शताब्दी तक का काल प्राचीन काल माना जाना चाहिए क्योंकि इसके बाद यह कहा जा सकना संभव नहीं है कि भारतीय संस्कृति अपने मौलिक स्वरूप को बनाये रख सकी. यह एक ऐतिहासिक सत्य है, जिसे इतिहास की जानकार आंखें सहज ही स्वीकार करेंगी... क्योंकि इस्लाम और पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ते प्रभाव के आगे उक्त मौलिकता का बना रह सकना लगभग असंभव ही था. बहरहाल, यह कोश समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, पर्व, कला, संगीत, साहित्य और तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान पर लगभग बीस हजार प्रविष्टियों को हमारे सामने रखता है. विषय को आगे बढ़ाने की दृष्टि से भी इस कोश में किये गये कई प्रयोग उल्लेखनीय हैं. उदाहरण के लिए 'संस्कृति' पर की गयी टिप्पणी के बाद कोशकार को यह जरूरी लगता है कि संस्कृति के अंगों पर भी ध्यान दिया जाए. अतः वे स्पष्ट करते हैं कि संस्कृति के आठ अंग होते हैं–मानवी परिश्रम, शासन संस्था, नीति, धर्म, शास्त्र, तत्वज्ञान, वाङ्गमय और कला. इसके तुरंत बाद संस्कृति के प्रतीकों का विवरण आता है. संस्कृति को पांच प्रतीक, डा. बाहरी के अनुसार हैं–दीप–ज्ञान प्रतीक, कमल–जन्म स्थान प्रतीक, वटवृक्ष–औदार्य प्रतीक, स्वस्तिक–कल्याण प्रतीक, ॐ–ध्वनि उद्गम का प्रतीक. संस्कृति, संस्कृति के अंग और फिर संस्कृति के प्रतीकों के बाद कोशकार संस्कृति के प्राण–विचार, भावना, कल्पना, कला और नीति का संकेत देने के साथ-साथ पुरुषार्थ के अनुसार भारतीय संस्कृति के पांच–वेद, उपनिषद, श्रीमदभगवतगीता, रामायण और महाभारत को भी नहीं छोड़ता. यह उसकी वैज्ञानिक और ऐतिहासिक समझ का परिणाम है.

युद्ध से उत्पन्न क्षत्रिय वंश 'हैहय' हो या देवासुर संग्राम के समय समुद्रमंथन से निकले चौदह रत्नों में से एक रत्न–'हलाहल', मध्य प्रदेश की रियासत बिजावर में एक गांव 'सेंदप्पा' हो या पाणिनि द्वारा प्रयुक्त एक विकरण– 'शप' जो भ्वादिगण में प्रयुक्त होता है, यक्षप्रश्न की संदर्भकथा हो या राजा इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में से एक – 'निमि', घोड़ों की वह जाति जो केल देवताओं और गंधर्वों की सवारी रहती हैं– 'दानवज्र' हो या फलित ज्योतिष का शुभदायक योग– 'अमृत योग'... यह कोश पूरी गंभीरता से प्रायः समूचे प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक तत्वों को प्रस्तुत करता है. □

–महेश दर्पण

प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश : डा हरदेव बाहरी, प्रकाशक : विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली-2 मूल्य : 225 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के तल्ख संकेत हैं– व्यंग्य तथा कथा की मिलीजुली शैली से रोचकता के बावजूद टूटे हुए, पराजित, मनुष्य की विस्थापित दुनिया का सपना और चाह है: छोटी विसंगति के भीतर से छूटी दूरगामी मिसाइलें-भी खोजी जा सकती हैं. परंतु लंबी (लगभग 35 पृष्ठों की) कहानी 'खुल जा सिमसिम' में तो तरह-तरह की चकाचौंध में पता ही नहीं चलता कि सिरा कहां है? (निर्मला जी से उधार जुमला) यह एक किस्म की प्रेम-कहानी है. कहां तो प्रेम का ऊंचा दर्शन, कहां आत्मा की गहराइयों में झांकने की बात; कहां अनुभूति को पर्त दर पर्त छील कर निकाले जाने वाले संकेत और कहां बाथरूम-संभोग में अंत! खतों ही खतों में कथा-प्रेमिका, कथाकार की प्रेमिका बन जाती है! और खत ऐसे जिनमें पंक्चुएशन नहीं. (जैसे इस कहानी और स्वयं 'प्रेमी' के जीवन में पंक्चुएशन हो) प्रेमिका लेखक से मिलने उसके शहर आती है, पांच सितारा होटल में ठहरती है और पति के साथ! पति से जैसा बर्ताव किया गया उसे देखते हुए उसे न लाना, क्या लाने से बुरा था? इधर प्रेमिका और पत्नी में पत्राचार! पत्नी जब अपने को समूचा बदलने को तैयार तब लेखक महोदय उसके प्रति अपने भावों तक में तब्दीली को तैयार नहीं! लेकिन जब प्रेमिका शादी को तैयार तो प्रेमी, पत्नी-बेटे को (खासकर बेटे को) छोड़ने को तैयार नहीं. प्रेमिका का सवाल कि क्या रखैल समझ रखा है? (कहानी की संरचना में वह रखैल से बेहतर है ही कहां? जब कहे तब हाजिर होगी) दोनों पति-पत्नी जारी, दोनों प्रेमी-प्रेमिका जारी! फ्री सेक्स! वहां संभोग में समाधि उतर आती है! मगर उसके साथ यह नतीजा भी निकालना था प्रेमी को, कि फाइव स्टार का खाना और वैसा बाथरूम अगर वह अपने घर में मुहैया कर सका होता तो– शायद प्रेम की ऐसी समाधि अवस्था पत्नी के साथ भी प्राप्त की जा सकती है!

हो सकता है कि कहानी के जरिए धीरेंद्र आधुनिक जीवन के रिश्तों के बारे में कुछ खास कहना चाहते हों (जो बीच बीच में दिखाई भी पड़ता है) परंतु तमाम तरह की मिलावटों, विसंगतियों और चकाचौंध के चलते (जिसमें बुढ़िया जुमले, विचारपूर्ण उद्धरण, सात्विक आवेश वगैरह भी शामिल है) यह कहानी नए, तेज-तर्रार लेखक की कहानी की बजाए किसी सेठ की नवरस फिल्म बन गयी है. □

मराठी कवि कुसुमाग्रज को 23वां ज्ञानपीठ पुरस्कार

वर्ष 1987 के लिए डेढ़ लाख रूपये का 23वां पीठ पुरस्कार श्री पी.वी. नरसिंह राव की अध्यक्षता में हुई प्रवर परिषद की बैठक के उपरांत मराठी के सुप्रसिद्ध सहित्यकार वी.वी. शिखाडकर कुसुमाग्रज को देने की घोषणा पिछले दिनों की गयी.

ज्ञानपीठ पुरस्कार भारतीय साहित्यकार वी.वी. शिखाडकर ख्याति प्राप्त सम्मान है. यह पुरस्कार किसी भी भाषा में उत्कृष्ट लेखन के लिए प्रतिवर्ष किसी भारतीय नागरिक को दिया जाता है. इस वर्ष यह पुरस्कार 1967-82 की अवधि में प्रकाशित साहित्य पर विचार करके दिया गया.

अन्य विधाओं में उल्लेखनीय उपलब्धियों के बावजूद कुसुमाग्रज मूलतः कवि और नाटककार हैं. स्वाधीनता संघर्ष के दौरान 1942 में प्रकाशित कविता संग्रह 'विशाखा' ने उन्हें रातोंरात प्रसिद्ध कर दिया. अनेक काव्य संग्रहों, नाटकों, कहानी संग्रहों, उपन्यासों, एकांकी संग्रहों, बालकहानी संग्रहों और आलोचनात्मक निबंधों के प्रणेता कुसुमाग्रज के इस अवधि में तीन महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाशित हुए. इनके लेखन की विषय परिधि विस्तृत है. उनकी कविताएं समुद्र की लहरों के समान हैं जो धरती पर प्रवाहित होते हुए भी क्षितिज को छूती रहती हैं. उनकी रचनाओं में एक ओर आत्मकि निर्द्वंद्वता का संतोष है और दूसरी ओर अन्याय और विषमता के प्रति आक्रोश. लोक-मानस से अत्यंत निकटता उनके साहित्य की उल्लेखनीय विशेषता है.

वी.वी. शिखाडकर 'कुसुमाग्रज' अपने उपनाम से अधिक लोकप्रिय हैं और आज के मराठी साहित्य जगत की सर्वाधिक प्रतिष्ठित हस्ती हैं. 1942 में प्रकाशित 'विशाखा' काव्य संग्रह की अनेक कविताओं में आपने स्वाधीनता संघर्ष की आत्मा को मुखरतापूर्वक अभिव्यक्त किया है. इस वर्ष ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए निर्धारित अवधि (1967-82) में उनके तीन महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाशित हुए हैं—वाडालवल, रशयात्रा और छंदोमयी.

कुसुमाग्रज की कविता आदर्शपरक आत्मा का उत्सव मनाती है जो जीवन में आलोक की खोज में रत है. वे सदैव अपने सहजनों के सामूहिक मस्तिष्क से एकाकार होने के लिए लालायित रहते हैं. उनका आदर्शवाद जीवन के अंधेरे और निराशापूर्ण पक्ष की अवहेलना नहीं करता, किंतु वह इस अंधकार पर विजय प्राप्त करनेवाली मानव शक्ति के प्रति आसक्ति पूर्वक सचेत हैं. इस प्रकार इनकी कविता गीतात्मक और चिंतनात्मक दोनों ही हैं.

कुसुमाग्रज के नाटक गडकरी की नाटकीय प्रस्तुतियों की काव्यात्मक शैली की परंपरा में हैं, तब भी ययाति, नटसम्राट आदि नाटक उनकी मौलिक प्रतिभा का प्रमाण हैं. वह वर्तमान में अतीत को ढूंढ निकालने या अतीत में वर्तमान को ढूंढ निकालने के लिए इतिहास अथवा पुराण का अन्वेषण नहीं करते. वरन् मनुष्य जीवन की शाश्वत विविधताओं को खोजने का प्रयास करते हैं. उनके नाटकों में भाषा का ओज और सौंदर्य एक महत्वपूर्ण तत्व है.

इस पुरस्कार की घोषणा के पूर्व यह पुरस्कार हिंदी और कन्नड को चार-चार बार, बांग्ला और मलयालम को तीन-तीन बार, गुजराती और उड़िया को दो-दो बार और असमिया, मराठी, तमिल, तेलुगु, पंजाबी तथा उर्दू को एक-एक बार प्राप्त हो चुका है. दो बार यह पुरस्कार दो-दो भाषाओं को एक साथ प्रदान किया गया है.

पुरस्कार के लिए लेखक चयन का दायित्व प्रवर परिषद का है. इस परिषद के सदस्य साहित्य जगत के ऐसे विद्वान व लेखक होते हैं जिनकी निष्ठा और निष्पक्षता निर्विवाद होती है. डा. राजेंद्र प्रसाद प्रवर परिषद के प्रथम अध्यक्ष थे.

इस पुरस्कार की प्रवर्तिका देश की अग्रणी साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था भारतीय ज्ञानपीठ है. स्व. साहू शांतिप्रसाद जैन और उनकी धर्मपत्नी स्व. श्रीमती रमाजैन ने सन् 1944 में इस संस्था की स्थापना द्विमुखी उद्देश्यों से की थी. प्राचीन ज्ञान भंडार का प्रकाशन और आधुनिक भारतीय भाषाओं के समसामयिक महत्वपूर्ण साहित्य को प्रोत्साहन. □

बीथिका जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

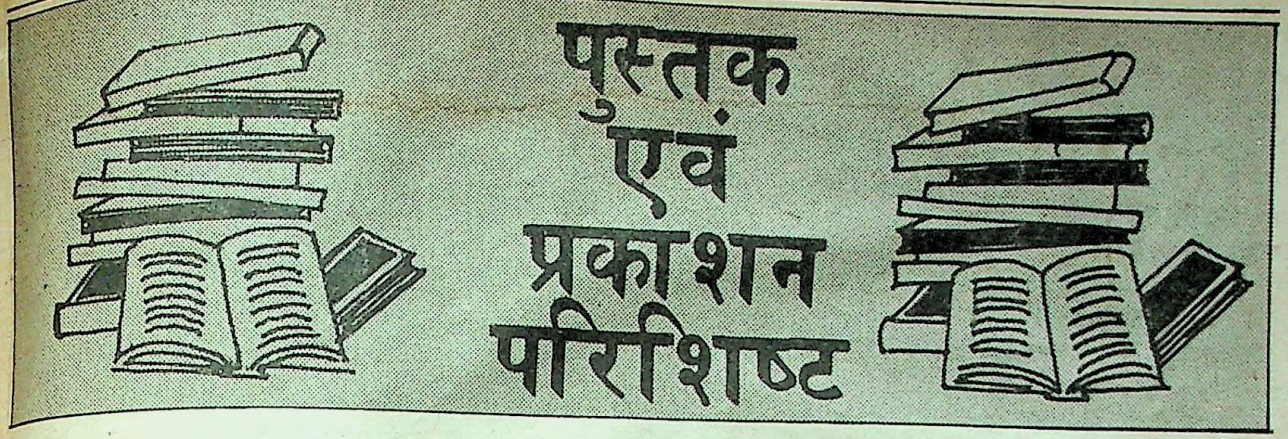

एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए यह निहायत जरूरी है कि हम देखें कि हमारा प्रकाशन-जगत किस दिशा की ओर अग्रसर है!

पुस्तकों से रिश्ता बढ़ रहा है

हिंदी प्रकाशन उद्योग एक अर्से से स्पष्टतः तीन खेमों में बंटा हुआ नजर आता है. साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक, पापुलर पुस्तकों के प्रकाशक और सरकारी प्रकाशन संस्थाएं. तीनों लगातार कई वर्षों से समानांतर काम कर रही हैं. आज जबकि जरूरत इन तीनों को एक करने की है, यह रहा है कि तीनों की दूरी निरंतर बढ़ रही है. सरकारी पुस्तकें या तो सरकारी लाइब्रेरियों की शोभा बढ़ा रही हैं, या गोदाम की.

इधर के कुछ वर्षों में डायमंड और अन्य प्रकाशकों ने जो महत्वपूर्ण साहित्य, वह भी किसी अन्य प्रकाशक से कम कीमत पर छाप कर जन-जन को सुलभ कराया है, उसने उनके विरोधियों के मुंह पर ताला जड़ दिया है!

हिंदी से जो लोकप्रिय उपन्यास लिखे जाते हैं उनमें भारत के स्वतंत्रता संग्राम और सशस्त्र क्रांतिकारियों पर दर्जनों मोटे-मोटे काल्पनिक उपन्यास लिखे गये हैं. ये उपन्यास कई सवाल उठाते हैं. जैसे कि इन उपन्यासों का तिरस्कार करके क्या हम सही काम कर रहे हैं? एक बहुत बड़े वर्ग की छपे हुए शब्द के प्रति जबरदस्त भूख का अनादर करना कहां तक उचित है? साफ जाहिर है कि लोग स्वतंत्रता संग्राम के बारे पढ़ना चाहते हैं और उन्हें लगातार गलत सूचनाएं दी जा रही हैं.

हमारे यहां रोमांटिक कहे जाने वाले लोकप्रिय उपन्यासों की भी परंपरा रही है. मगर ये भी सतही और फूहड़ जैसे विशेषणों के हकदार बने.

इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए क्या किया जा सकता है? साक्षरता में वृद्धि, पुस्तकालयों का जाल, सस्ती किताबें उपलब्ध कराना आदि सभी प्रस्ताव बहुत घिस गये हैं. छपे हुए शब्द को, यानी छपे हुए उपन्यासों, कहानियों और वैज्ञानिक जानकारियों को प्रसार देने के लिए और बिरादरी बाहर कर दी गयी अस्सी प्रतिशत जनसंख्या को भी इस अनुभव में शामिल कर लेने के लिए एक ऐसी तकनीक का सहारा लिया जा सकता है जिसे छपे हुए शब्द का शत्रु समझा जा रहा है.

हमें एक खास तरह की किताबों में सिकुड़ते जाने की बजाय, विस्तार देने और हर तरह के ज्ञान के द्वार खोलने का रास्ता अपनाना होगा. जो समाज विविध प्रकार की कथाओं से उत्साह और उर्जा नहीं पाता उसका जड़ और निष्क्रिय हो जाना स्वाभाविक है.

जहां तक पुस्तकों की प्रामाणिकता और मूल्य का सवाल है. प्रकाशन विभाग भारत सरकार, साहित्य अकादमी की पुस्तकें सबसे आगे हैं. प्रकाशन की दृष्टि से प्रकाशन विभाग देश का महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा प्रकाशन संस्थान है.

इसने 6200 पुस्तकें प्रकाशित की हैं. यहां से न केवल हिंदी और अंग्रेजी में बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित होती हैं. पुस्तकों की संख्या में तो नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करने और उनकी स्तरीयता भी बनाये रखने में साहित्य अकादमी भी अग्रणी संस्था गिनी जाती है. दिल्ली प्रशासन की संस्था हिंदी अकादमी पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में तो कोई दखल नहीं रखती मगर अपने अन्य क्रियाकलापों से विशेषकर इंद्रप्रस्थ भारती जैसी साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से हिंदी प्रकाशन और मुख्यतः साहित्यकारों, पाठकों, नवोदितों की जो सेवा कर रही है वह प्रशंसनीय है. ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रप्रस्थ भारती

हिन्दी अकादमी की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

संपादक : डा. नारायणदत्त पालीवाल

यदि आप चाहते हैं कि बेहतर पढ़ने को मिले तो आपकी इस जरूरत को

इन्द्रप्रस्थ भारती

हिन्दी अकादमी की साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका पूरा करती है, जो महज़ एक पत्रिका नहीं पूरी किताब है.

जिसमें वर्ष भर में छः सौ पृष्ठों की साहित्यिक सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी.

जिसमें देश के जिम्मेदार लेखक हिस्सेदारी करेंगे.

यह पत्रिका समकालीन साहित्य का रचनात्मक मूल्यांकन और गतिविधियों को प्रस्तुत करती है. एक सौ बावन से अधिक पृष्ठ की इस पत्रिका के एक अंक का मूल्य पांच रुपये, वार्षिक बीस रुपये. आपका सहयोग हमें बेहतर सेवा के लिए और अधिक प्रोत्साहित करेगा.

वार्षिक शुल्क मनीआर्डर/बैंक/ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर द्वारा इस पते पर भेजें :–

सचिव,
हिन्दी अकादमी, दिल्ली
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरैंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

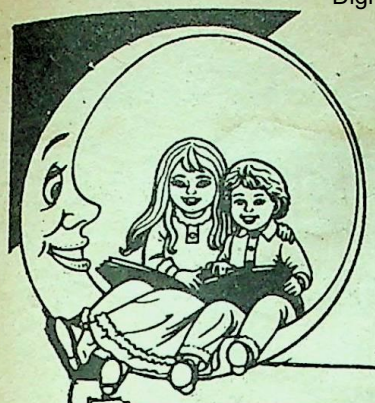

बच्चों की कहानियों की सुन्दर पुस्तकें

*मनभावन, कल्पनाशील, शिक्षाप्रद, आकर्षक, रंगीन सचित्र पुस्तकें। अब नई साज-सज्जा के साथ। हर उम्र के बच्चों का भरपूर मनोरंजन करती हैं।

रामायण

१२ पुस्तकों का सैट
बढ़िया डिजाइनिंग
वाला सैट ऐसा
पहले कभी नहीं छपा

ईसप की कहानियां

महान संत ईसप की शिक्षाप्रद
प्रेरणादायक कहानियों का संग्रह
१० पुस्तकों का सैट

विक्रम और बेताल

२५ कहानियाँ जो बेताल
राजा विक्रमादित्य को
सुनाता है शिक्षात्मक
और दिलचस्प ५ भागों
में प्रकाशित

सिंहासन बत्तीसी

३२ प्रसिद्ध कहानियाँ
जो राजा विक्रमादित्य
के सिंहासन की
पुतलियां राजा भोज
को सुनाती है। ६ पुस्तकों का सैट

पंचतत्र

पक्षियों और जानवरों की
मशहूर पौराणिक, शिक्षात्मक
कहानियाँ ६ भागों में प्रकाशित

बाईबल की कहानियाँ

प्रभु ईसामसीह
की, शिक्षाप्रद
कहानियों का संग्रह

कृष्णलीला

भगवान कृष्ण के
बचपन की लीलाओं
का सजीव सचित्र वर्णन
आकर्षक रंगीन चित्र
४ पुस्तकों का सैट

९५ पुस्तकों का सैट उपलब्ध है।

मूल्य 6/- रुपये प्रत्येक

सूचीपत्र के लिये लिखें।

Rashtriya

अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता अथवा समाचार पत्र विक्रेता से खरीदें या लिखें:

ड्रीमलैंड पब्लिकेशन्स, 4425 नई सडक दिल्ली- 6 फोन : 2915831

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास कीजिए यह
सत्य है

सौ रुपये में तीन ग्रंथावलियाँ

लगभग उन्नीस सौ रुपये की पुस्तकें मात्र सौ रुपये में तीन महान रचनाकारों की तीन ग्रंथावलियाँ असंक्षिप्त सम्पूर्ण आकर्षक साज-सज्जा के साथ डिमाई आकार में फोटो कंपोजिंग से आफसेट पर छपे करीब ३५०० पृष्ठ।

भारतेन्दु समग्र	–	सं० हेमन्त शर्मा
बंकिम समग्र (उपन्यास)	–	सं० निहालचन्द्र वर्मा
देवकीनन्दन खत्री समग्र	–	सं० डा० युगेश्वर

सौ रुपये अग्रिम भेजकर ग्राहक बनें। डाक से मंगाने वालों को रु. १३० देना होगा।

स्थानीय पुस्तक विक्रेता से सम्पर्क करें:–

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान पो० बा० नं० ११०६
पिशाच मोचन, वाराणसी-२२१००१ दूरभाष-६२११४, ६२८६७

adEnvoys

इच्छुक व्यक्ति अपने स्थानीय विक्रेता के यहां १३० रुपया जमा कर ग्राहक बन सकते हैं।

कुछ भी जो पढ़ने के लिए हो

कुछ भी पढ़ने की धुन थी उन्हें. रेलवे स्टेशनों से बहुत दूर की बस्तियों के लिए. छपे हुए पृष्ठ का कोई भी टुकड़ा. बसंत की हवा के झोंके के साथ बह आये पत्ते की तरह था. फाड़ा हुआ समाचार पत्र जिस में शहर से आया फेरीवाला साप्ताहिक बाजार में सामान बांधकर देता था, तेल लगा और मुचड़ा हुआ कागज, यूं ही जला नहीं दिया जाता. एक आधा पैराग्राफ, कोई रोचक सूचना, इन टुकड़ों को जोड़कर पढ़ ली जाती. हलवाहा उस अखबारी कागज को पढ़ता था जिसमें उसके लिए दोपहर का भोजन आता था. मर्द अखबार के उस टुकड़े को पढ़ते थे जिसमें तंबाकू लिपटा होता था. इस तरह एक पंक्ति यहां से, एक वहां से का जोड़ उनके लिये पुस्तक का काम करता था.

–द लाइफ ऑफ द फील्ड्स
रिचर्ड जैफरीस, प्रकाशन सन् 1884

हिंदी में पाठक

साहित्य और लोकप्रिय साहित्य का अंतर पश्चिम में पुराना है, कम से कम सौ साल पुराना, लेकिन हिंदुस्तान में ही नहीं-- यह फर्क पिछले बीस पच्चीस सालों में ही ज्यादा उभरा है.

दिनमान के प्रतिनिधि को कुछ लोगों के बातचीत करने पर प्रश्नों के जो उत्तर मिले, वे यकीनन दिलचस्प थे, जो आश्चर्यजनक नहीं, उत्तर देने वाले थे छह शिक्षक (विश्व विद्यालय से लेकर प्राथमिक कक्षाओं तक के) सात छात्र-छात्राएं, एक किरानी, एक दूकानदार, एक मिस्त्री, एक पुस्तक विक्रेता, एक सार्वजनिक पुस्तकालय के अधिकारी, एक पत्रकार और एक ऐसे दूकानदार जो बस बारह पैसे प्रतिदिन किराये पर पुस्तकें देते हैं. इन में अठारह व्यक्ति ऐसे थे जो साल में चार पांच से लेकर चालीस-पचास तक पुस्तकें पढ़ते हैं.....

इन उत्तरों से प्रकट होने वाले तथ्य हैं.---

हिंदी की पुस्तकों के अधिकतर पाठक सत्तरह-अठारह से लेकर चौबीस पच्चीस वर्ष तक की आयु के लोग होते हैं-- युवक और युवतियां दोनों ही.

इनमें से अधिकतर अविवाहित होते हैं. युवतियां अधिकतर छात्राएं या अध्यापिकाएं. युवकों में छात्रों के अतिरिक्त दफ्तरों के बाबू और छोटे-छोटे दूकानदार भी.

अधिकतर पाठक पुस्तकें खरीदते बहुत कम हैं. पुस्तकालयों से, दूकानों से किराये पर लेकर या मांगकर पढ़ते हैं.

अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ने के साथ वय और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों जुड़े हैं. कुछ लोगों ने कहा कि अब उन्होंने हिंदी की पुस्तकें पढ़ना बंद कर दिया है. क्योंकि हिंदी के जासूसी उपन्यास अविश्वासनीय होते हैं, और सामाजिक सतही और बचकाने.

दिनमान 7, जनवरी, 1966

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के प्रकाशन

रा. शि. अनु. एवं प्र. परि. देश के प्रमुख प्रकाशकों में से एक है. इसके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग २८० शीर्षकों वाली कुल लगभग एक करोड़ ९० लाख प्रतियां तैयार की जाती हैं.

स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें, कार्य पुस्तकें शिक्षक गाइडें एवं अन्य निर्देशात्मक सामग्री इस प्रकाशन कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण भाग है.

हालांकि सभी पाठ्य पुस्तकें, कार्य पुस्तकें इत्यादि प्रकाशित कर दी गई हैं तथा बिक्री के लिए जारी की दी गई है, फिर भी इन पुस्तकों की अन उपलब्धता के बारे में हमें कुछ शिकायतें प्राप्त हुई हैं.

हमारी पुस्तकों के लिए राष्ट्रीय वितरक हैं:

बिक्री एंपोरियम
प्रकाशन प्रभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार के

बंबई :
द्वितीय तल, कामर्स हाऊस
करीम भाई रोड़
बेलार्ड पायर
बंबई-४०००३८

पटना :
बिहार स्टेट कोआपरेटिव
बैंक बिल्डिंग,
अशोक राजपथ रोड़,
पटना-८००००४

हैदराबाद :
राज्य पुरात्वत म्यूज़ियम
बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन
हैदराबाद-५००००४

कलकत्ता :
८ एस्प्लेनेड ईस्ट
कलकत्ता-७०००००६९

मद्रास :
७३६, अन्ना सलई
मद्रास-६००००२

लखनऊ :
१०-बी, स्टेशन रोड़
लखनऊ-२२६००१

त्रिवेंद्रम :
प्रेस रोड़
त्रिवेंद्रम-६९५००१

नई दिल्ली :
सुपर बाजार
कनाट प्लेस
नई दिल्ली-११०००१

पुस्तकें दिल्ली के रा. शि. अनु. एवं प्र. परि. कैंपस के बिक्री काउंटर पर भी उपलब्ध हैं तथा दिल्ली क्षेत्र के रा. शि. अनु. एवं प्र. परि. के थोक वितरकों के द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है. स्कूल/संस्थान, अपनी आवश्यकताओं को, पक्का आर्डर देकर तथा अग्रिम धन राशि भेजकर अथवा अपने बैंक का नाम तथा पता देकर पूरा कर सकते हैं जिससे कि प्रपत्रों को बैंक द्वारा भी भेजा जा सके.

व्यक्तिगत रूप से इन प्रकाशकों को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति वी.पी.पी. द्वारा मंगाने हेतु लिखें, इस पर भी यदि कोई कठिनाई हो तो कृपया निम्न से संपर्क करें.

मुख्य वाणिज्यिक प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं
प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.)
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली-११००१६
दूरभाष : ६६२७०८
तार : ई.डी.यू.पी.आर.इंट
टेलेक्स-३१-६२८१४

एन सी ई आर टी
NCERT

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन विभाग

नवीन संग्रहणीय प्रकाशन

क्रांतिकारी महिलाएं ले. आशा रानी व्होरा	४.५०	एकता की बोलती तस्वीरें ले. व्यथित हृदय	७.५०
रोचक ऐतिहासिक कहानियां (भाग-१) ले. केदारनाथ कोमल	८.००	भारत के लोक गाथा गीत ले. उर्मिला वाजपेयी	२५.००
रोचक ऐतिहासिक कहानियां (भाग-२) ले. श्री नारायण	१५.००	भारतीय कला और कलाकार ले. ई. कुमारिल स्वामी	२१.००
सन सतावन के भूले-बिसरे शहीद ले. उषा चन्द्रा	२०.००	बाल स्वास्थ्य और बाल शिक्षा ले. सत्यपाल रूहेला	१३.००
नये दशक में महिलाओं का स्थान ले. महादेवी शर्मा	४.५०	चुनौती भरे वर्ष श्रीमती इंदिरा गांधी के भाषण (१९६६-६९)	साधारण १५.००,
नहीं रुकती है नदी डा. हीरालाल बाघोतिया	८.००	प्रगति की ओर	(साजिल्द) ६५.००
देश विदेश के महापुरुष ले. अक्षय कुमार जैन	१५.००	श्रीमती इंदिरा गांधी के भाषण (१९६९-७२)	साधारण ६०.००
भारतीय संस्कृति की समग्ररूपता ले. विश्वंभरनाथ पांडे	६.००	जंगल में मोर नाचा ले. डा. श्याम सिंह शशि	८.००
कविवर संत रज्जब ले. डा. ब्रजलाल वर्मा	१६.००	भारतीय हरिण राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह	७.००
हमारे स्काउट गाइड ले. रमाशंकर मिश्र	७.००	सचित्र रामचरित मानस कथा डा. रत्नाकर पाण्डेय	१२५.००
श्राद्ध की दक्षिणा तथा अन्य हास्य कथाएं ले. वल्लभ डोभाल	१४.००	महिलायें और स्वराज्य आशारानी व्होरा	४०.००

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने पर समस्त प्रकाशनों (५ रु. अथवा अधिक के मूल्य पर) की खरीद पर १० प्रतिशत की छूट. विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं. नि:शुल्क सूची-पत्र मंगाइए. ४०/- रु. से कम आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रजिस्ट्रेशन फी) अतिरिक्त भेजना होगा. पुस्तकें स्थानीय पुस्तक विक्रेता से लें अथवा सीधे लिखें :—

व्यापार व्यवस्थापक
विक्रय केंद्र
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-११० ००१

★ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल) कनाट सर्कस, नई दिल्ली-११० ००१
★ बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ-पटना-८०० ००४
★ कामर्स हाउस (दूसरी मंजिल) करीम भाई रोड बेलार्ड पियर, बंबई-४०० ०३८
★ एल. एल. ए. आडिटोरियम, अन्ना सलाई, मद्रास- ६०० ००२
★ १० बी स्टेशन रोड. लखनऊ-२२६ ०१९
★ ८ एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-७०० ०६९
★ स्टेट आर्कीआलाइजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद-५०० ००४
★ प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-६९५ ००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

सस्पैंस, थ्रिल व इन्वेस्टीगेशन
के जादूगर

एहुल का नया सामाजिक थ्रिलर

ट्रिपल क्रास

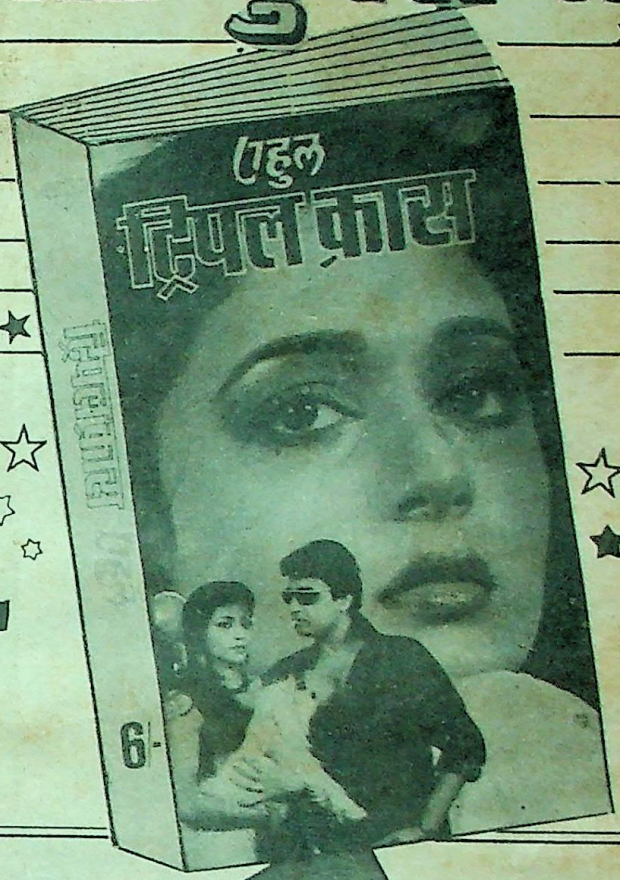

लाखों पाठकों के प्रिय उपन्यासकार

एमी२ का नया उपन्यास

दूर के राही

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

सच क्या वही होता है जो आंखों के आगे घट जाये ... या आंखों के परे भी कुछ घटता है जिसे हम झूठ नहीं कह सकते ...

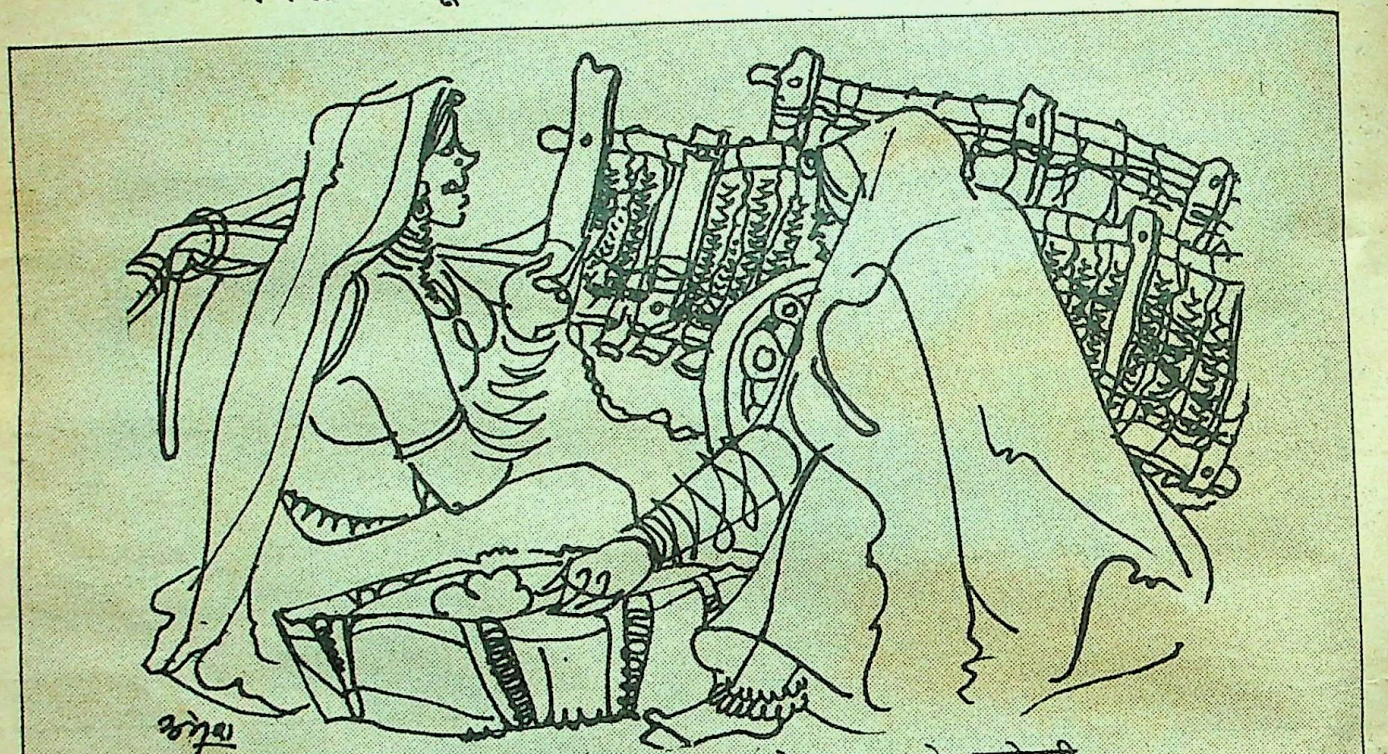

जिंदगी के अनुभव और अनुभव के सच को उकेरती ताजातरीन कहानियों के रचनाकार हैं—

हंसराज रहबर, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, मुद्राराक्षस, ममता कालिया, गोविंद मिश्र, से. रा. यात्री, रमेश गुप्त, सुभाष पंत, मिथिलेश्वर.

...और साथ में

लंबी कहानी, लघुकथाएं, अनजानी प्रेमकथाएं, ग़ज़लें, फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, कथादर्शन, धारा के विरुद्ध, कथा पहेली, नयी पोद, आपकी बात और चलते-चलते.

हर महीने एक बेहतर मुलाकात, सारिका जिंदगी की जरूरी किताब

सारिका

दिसंबर :1988

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का
एक अनूठा प्रोजेक्ट

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें मंगाने पर डाकखर्च माफ

■ प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री ■ प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित ■ सरस कथा शैली ■ फोटोटाइप सैट ■ बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई ■ वाजिब दाम

इस शृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय जगत से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

उदाहरणार्थ 'रोमांचक कारनामे' में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो 'खोजें' में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। 'अनसुलझे रहस्य' में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो 'खेल और खिलाड़ी' व 'वैज्ञानिक' क्रमशः जीवनी प्रधान पुस्तकें हैं। 'विनाश-लीलाएं' में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण है तो 'दुर्घटनाएं' में मानवीय भूलों से हुई मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। 'गुप्तचर संस्थाएं' तथा 'जासूस' में मकड़ी के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो 'प्रेरक-प्रसंग' किसी भी जहाज की तरह भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को पूर्ण रूप से उजागर करने वाला एक सचित्र 'मिनि एनसाइक्लोपीडिया' है।

इस शृंखला में प्रकाशित पुस्तकें:

विश्व-प्रसिद्ध.... 1. खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल और खिलाड़ी 8. रिकॉर्ड्स-I 9. रिकॉर्ड्स-II 10. वैज्ञानिक 11. विनाश-लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग 16. चिकित्सा-पद्धतियां 17. जासूसी-कांड 18. बैंक डकैतियां एवं जालसाजियां 19. क्रूर हत्यारे 20. सभ्यताएं 21. अनमोल खजाने।

तैयारी में/प्रेस में

• रोमांस-कथाएं • भूत-प्रेत • दुस्साहसिक खोज यात्राएं • राजनैतिक हत्याएं • क्रांतियां

आमंत्रण:—

प्रोजेक्ट के लिए विद्वान लेखकों व अनुवादकों का सहयोग अपेक्षित है।

अपने निकट के बुकस्टॉल एवं रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुकस्टॉलों पर मांग करें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता:—

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006.
शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.
ब्रांच आफिस: 22-2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलौर-560027

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

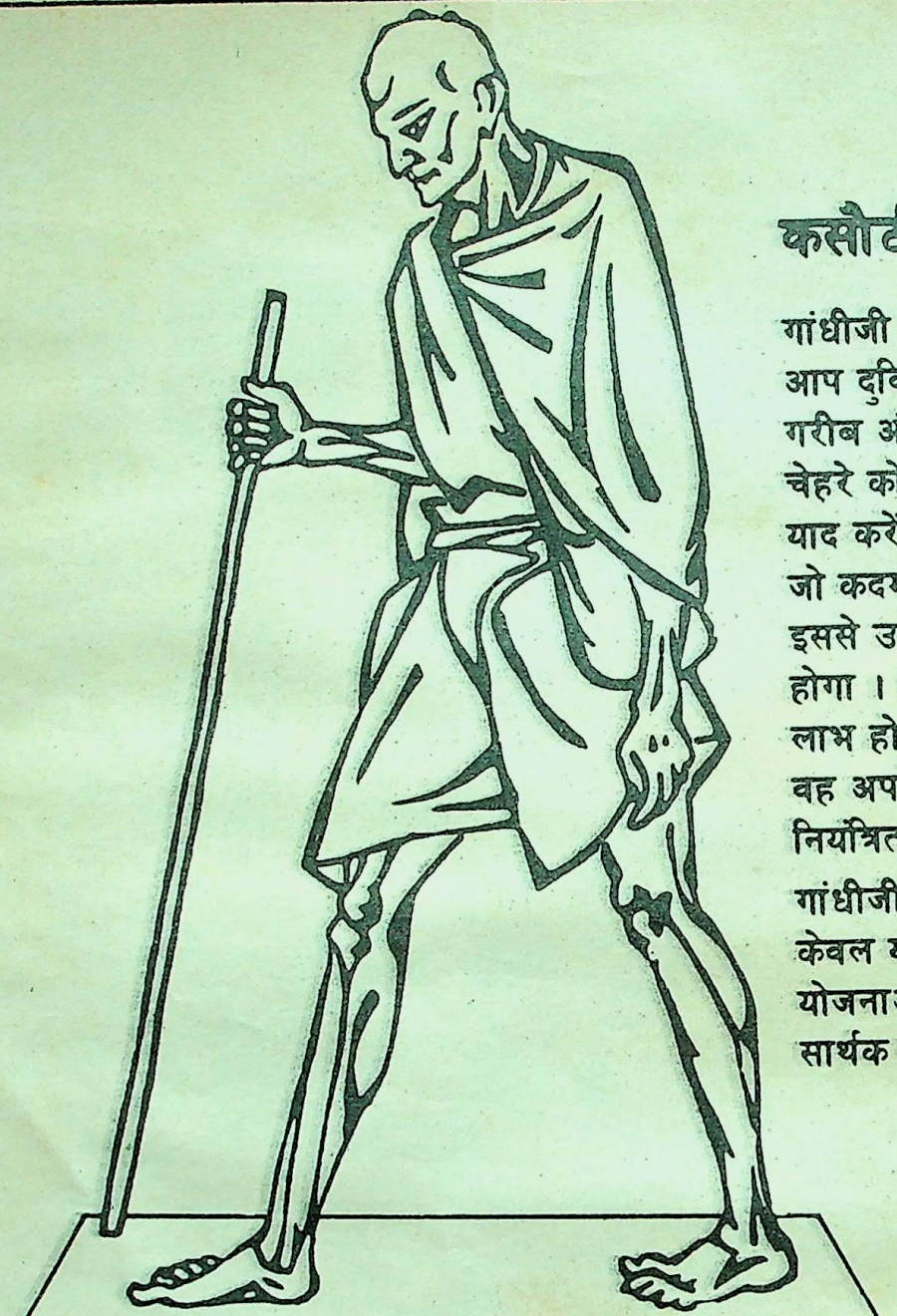

कसौटी

गांधीजी कहते थे : "जब कभी आप दुविधा में हों..... सबसे गरीब और कमजोर आदमी के चेहरे को, जिसे आपने देखा हो, याद करें और स्वयं से पूछें कि जो कदम आप उठाने जा रहे हैं इससे उस आदमी का कुछ भला होगा । क्या इससे उसे कुछ लाभ होगा? क्या इस कार्य से वह अपने जीवन और भाग्य को नियंत्रित कर सकेगा?"

गांधीजी ने महसूस किया कि केवल यही कसौटी हमारी योजनाओं और कार्यक्रमों को सार्थक बना सकती है ।

यह केवल
कसौटी ही नहीं, बल्कि
युग-युगांतर के लिये
सुरक्षा कवच है।

davp 88/364

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28; अंक : 439; नवंबर, 88

The Times of India — One Hundred and Fifty Years

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
मदेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

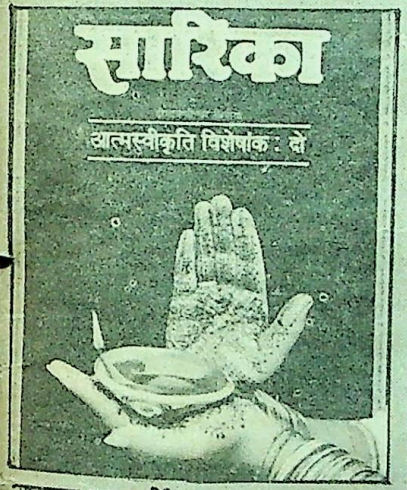

आवरण पारदर्शी
भगवानदास रूपानी
आवरण एवं अंक सज्जा
हरिप्रकाश त्यागी

आत्मस्वीकृति विशेषांक : दो

आत्मस्वीकृति खंड

34 और खुदा खामोश है :
अमृता प्रीतम
36 आतंक :
जान ओ' डारा
41 खुद से फरार होकर कहां जायेंगे हम? :
तालस्तोय, टैगोर, नेहरू, दिनकर
43 गांधीजी से पार पाना... :
चार्ली चैप्लिन
44 असत्य रूपी विष :
मो. क. गांधी
47 मृत्यु से साक्षात्कार :
सोफिया लारां
49 उस हरकत पर मैं शर्मिंदा हूं :
बलराज साहनी
51 हर दुर्व्यवहार के बाद... :
रूसो
53 इसे जल्दी से गुड़ खिला दो :
अमीर अली
55 मैं स्तालिन की मुलजिमान
नीतियों का गवाह रहा :
ख्रुश्चेव
57 जीवनभर मैं जिनसे प्रभावित रहा :
चर्चिल
59 गिरफ्त:
बाला दुबे

लंबी कहानी

8 देहगाथा :
रामेश्वर शुक्ल अंचल

अन्य कथा-रचनाएं

26 कुछ डायरियां :
ज्योतींद्र हरिहरशंकर दवे
28 हड़ताल :
मधुरिमा कोहली
31 अपराधी के अंतिम क्षण :
आल्बेयर कामू
45 चार लघुकथाएं

धारावाही आयोजन

62 खेल :
प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाएं : दो
66 दास्ताने अलफ लैला...
68 रुपहली रातें :
दास्तोयेव्स्की
71 डा. नामवर सिंह से उदयप्रकाश
और सुधीश पचौरी की बातचीत

विशिष्ट आयोजन

23 रचनाकार का आत्मसंघर्ष :
डा. लक्ष्मीनारायण लाल
39 रचना की जन्मभूमि :
धीरेंद्र अस्थाना

स्थायी स्तंभ

25 कथा दर्शन
35 धारा के विरुद्ध
61 नयी पौद
65 कथा पहेली
75 कृतियां
79 हलचल
80 आपकी बात

कापीराइट © 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित. बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय, विज्ञापन,
प्रसार एवं व्यवस्था :
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

टाइम्स हाउस
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष :3312277 (20लाइनें)

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

'35 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैवले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1915
प्रमुख : कहानी-संग्रह : 'तारे', 'ये वे बहुतेरे', 'कुंवर की दुलहिन'
संपर्क : दक्षिणी सिविल लाइंस, पचपेड़ी, जबलपुर, (म.प्र.)

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

देहगाथा

फिर सूखी घास अंकुरायेगी... फसल लहलहायेगी... किस लुभावनी माटी की कोरी अनलिखी, कुंई के फूलों-सी क्वारी गंध ने इतने दिन तक दुनिया से विरक्त बूढ़े को पुकारा है...?

लंबी कहानियों के सिलसिले की पहली कड़ी में आपने पढ़ी थी द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी– 'सरस्वती'... इसी सिलसिले को आगे बढ़ा रही है वरिष्ठ कवि-कथाकार की यह कहानी–

बलई मिसिर त्रेसठ साल की उमर में विवाह करने की ठान ठाने हैं, यह समाचार पूरे गांव में फूस की आग की तरह फैल गया. नींद से जागे हुए की तरह प्रत्येक व्यक्ति जैसे अपने से ही पूछता– "क्या यह भी संभव है! इतने दिन का पूजा-पाठ, ज्ञान-ध्यान, नेम-व्रत क्या दिखावा ही था! फिर सूखी घास अंकुरायी, फसल लहलहायी! किस लुभावनी माटी की कोरी अनलिखी, कुंई के फूलों-सी क्वारी गंध ने इतने दिन तक दुनिया से विरक्त बूढ़े को पुकारा है? बलई मिसिर का यह नया मनसूबा सभी को किसी अबूझ पहेली से कम न लगता. ऐसा था तो भरी जवानी में चंदू की मां के मरने के बाद मौर बांध लेता. नाते-रिश्तेदारों ने तब उसे कितना नहीं समझाया. उनका यही कहना रहा– चंदू को पालपोसकर घरवाली सोहागवती स्वर्ग सिधारी है. विवाह अब किसलिए? धोयी-धायी मछली कहीं फिर कीच-कादों में गिरती है!

कहानी वहां से शुरू करनी होगी जहां से उसका बचपन, जवानी की रंगीन छायाओं का लहराता समूह बनता है. बलई मिसिर का अपना घर, द्वार पर पक्का कुआं और पचीस एकड़ उपजाऊ जमीन थी. दो जोड़ी बैल थे– घर की अपनी गाड़ी थी जो गांव के साधारण खेतिहरों के बीच बड़ी बात मानी जाती थी. कुलीनता के नील रक्त से भव्य उनका युवा रूप लोगों को भूला नहीं है. कुएं के बगल में उनके बाबा का बनवाया मंदिर आज भी साल में एक बार पुताई से सजीव हो उठता है. परिवार का ही व्यक्ति रोज तीन पीढ़ी पहले स्थापित शंकर की पूजा करता है– बिल्व-पत्र, पुष्प, नैवेद्य चढ़ाता है. आती-जाती कुल-वधुएं, गांव की बेटियां, प्रौढ़ाएं शीश नवाती हैं. बाबा के बाद उसके पिता, पिता के बाद स्वयं बलई मिसिर नियम से पूजा करते हैं– संध्या-दीप जलाते हैं. शिवरात्रि को विशेष आयोजन होता है. भांग बूटी छनती है– प्रसाद बंटता है, रतजगा होता है. बलई मिसिर

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परिवार भले ही सूखता, सिकुड़ता, छोटा होता चला गया हो पर गांव में उनकी प्रतिष्ठा है. आपसी झगड़ों में जो निर्णय वे अपनी अधपढ़ी सहज बुद्धि और सद्भावी मानसिकता से दे देते हैं, वह प्रायः स्वीकार किया जाता है.

बलई मिसिर का लड़का चंदू इकलौता था. बहू का असमय देहांत पिता-पुत्र दोनों के लिए आघातकारी था. चंदू ने समीपवर्ती नगर के कालेज में इंटर तक शिक्षा पायी थी. स्वभाव से भावुक, कुछ-कुछ कवि-हृदय चंदू अपनी पत्नी को बेहद चाहता था. बलई मिश्र संध्या-पूजन के बाद व्यालू करके गांव की ओर चले जाते थे. जहां बैठते थे, वहीं गोष्ठी जमा लेते थे. पर चंदू शाम से 'किशोरी' के नवयौवन से

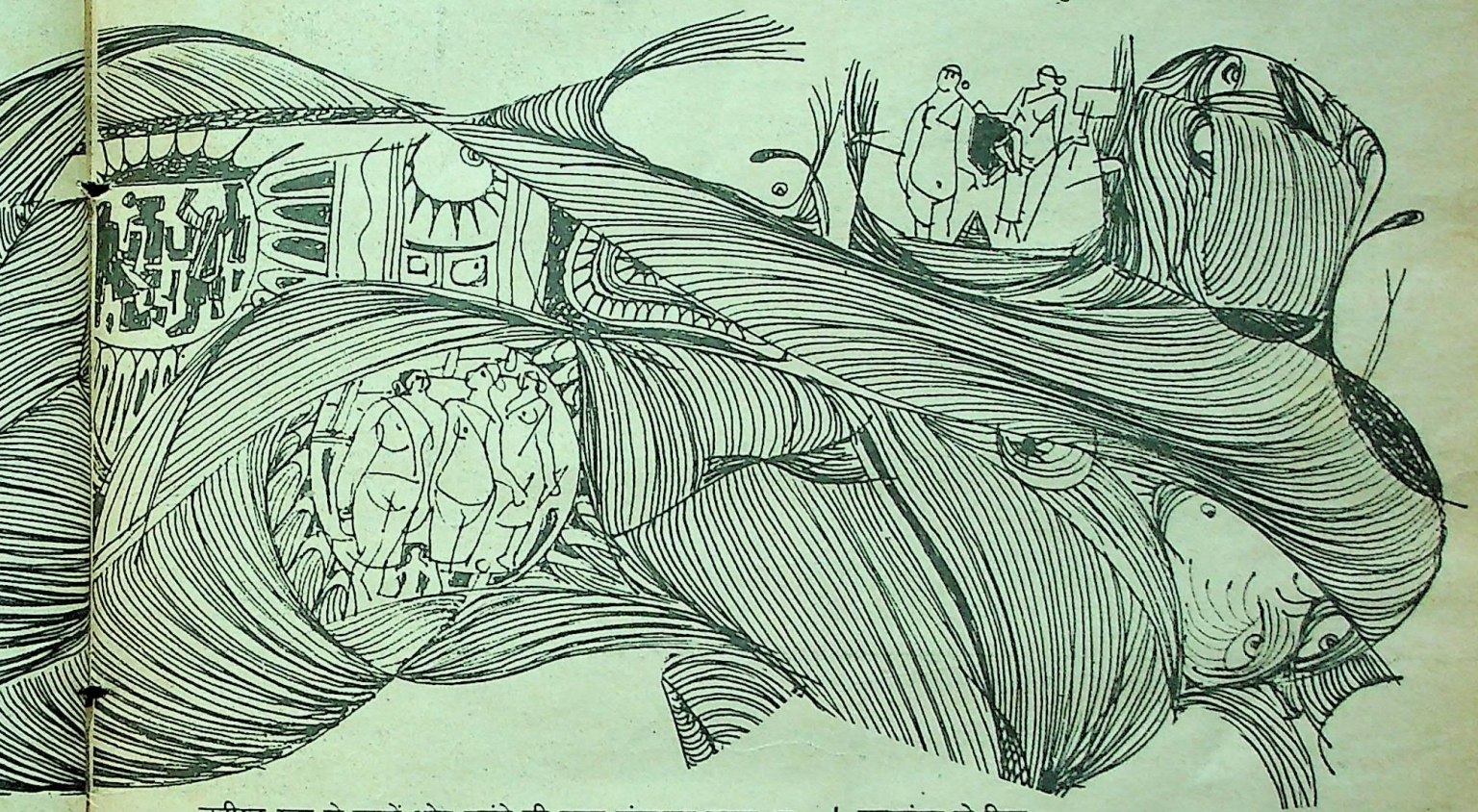

उदीप्त रूप के चारों ओर पतंगे की तरह मंडराता रहता था. किशोरी को मन ही मन शमा मानकर वह उसकी लौ से जैसे अघाता ही न था. पिता डेढ़ पहर रात बीते कब आकर ओसारे में लगे अपने बिस्तर पर लेट जाते, यह उनके नियमित चलते घुर्राटों से ही वह जान पाता था. किशोरी का अपने हाथ से वह श्रृंगार करता तो वह भीतर-भीतर न जाने किस भाव-लोक में पहुंच जाती— केलि-कुसुमों में गुंथी-रची रूप-प्रतिमा बन जाती. गांव भर में उसके सुख-सौभाग्य की चर्चा चलती. मुग्धाएं चंदू जैसा प्रणय-स्वप्न-विभोर पति पाने की कामना करतीं. बड़ी-बूढ़ी इस बेहयाई पर नाक-भौं सिकोड़तीं.

भगवान से किशोरी का वह सुख देखा न गया. न जाने कैसा प्राणघाती रोग था जो तेज बुखार की शक्ल में आया और पूस की अधेड़ सरदी उसके फेफड़ों में सन्निपात बनकर जमाता हुआ उसे इस लोक से उठा ले गया. सारे गांव में शोक की लहर दौड़ गयी. सोहागिनों ने रच-रचकर शव का सिंगार किया और एक धंसी कराह समय की सांस-सांस में भरती किशोरी की अर्थी उठी. चंदू जैसे किसी हृदयबेधक दुखांत उपन्यास में जी रहा था. उसके प्यार की प्रतिमा, अगाध प्रेम की अंतर्लक्ष्मी और पूरे घर की उजास अपनी मोहक मदालस छवि लिये उसे छोड़कर चली जा रही है. यह उसे जिया-जिया नहीं वरन् पढ़ा-पढ़ा जैसा लग रहा था. किताब की गहन विषाद-कथा के समाप्त होते ही सब कुछ पहले-सा हो जायेगा. वह मिलन के पहले दिन से ही पूजित अपनी देव-प्रतिमा को फिर पा जायेगा. पर ऐसा कुछ न हुआ. न जाने कौन सपनों के ज्वार-फेनिल समुद्र के उस पार खड़ा किशोरी को बुला रहा था जो वह चली गयी— जन्म जन्मांतर के लिए

चंदू (चंद्रकांत मिसिर) ने छाती पर पत्थर रखकर प्रिया का दाह-संस्कार किया. कलेजा मुंह को आ रहा था, पर बड़े-बूढ़ों के सामने युवा पति को लोक-लाजवश अपनी मर्मबिद्धता दबानी पड़ी. धीरे-धीरे सब ज्यों का त्यों हो गया. तेरही के बाद सारा वातावरण जैसे दिवंगता को भूलकर अपने सामान्य दैनिक क्रम पर चल पड़ा. पर चंदू किशोरी को न भूल सका. उसे वह घर के लोगों से छिपाकर प्यार से 'चांदनी' कहकर संबोधित करता था. प्यार का यह नाम सोते-जागते प्रकाश के स्थान पर उसके मन में तमिश्रा की कालिमा भर देता, निराशा की ऐसी घनी अंधेरी जो उसका साथ कभी छोड़ती ही न थी. उसने बाल बढ़ा लिये और खोया-खोया-सा जब भी गांव में कहीं आता जाता तो वियोगी यक्ष-सा सबका ध्यान खींचता. चेहरे की कांति खो गयी थी. हृदय जैसे अपने सतत उद्वेलन को भूलने का नाम न लेता था. पहले की तरह अब भी घर से कम निकलता. गांव का सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-व्यवहार बलई मिसिर निभाते. लड़के की करुण दशा देखकर यही सोचते— धीरे-धीरे मन शांत होगा. नया पत्नी-विछोह है. कोई बच्चा भी नहीं है जिससे मन का दुख बंटता-भूलता. वे दुनिया देखे हुए थे. पहले सभी की यही स्थिति होती है. बाद में रास्ते पर आ जाते हैं. नयी बहू आकर सब ठीक कर लेती है. दुनिया का यही चलन है. बेटा किस प्रेमाकुल चेतना में तैरता-उतराता है, इसे समझना बलई मिसिर जैसे भावनाविहीन, जड़ संस्कारों में पले, दुनियादारी में आजीवन रमें पूजा-पाठी ब्राह्मण के लिए संभव न था. वे पहले की तरह सारे काम करते. चंदू से कुछ न बोलते. देखना है, कब तक घर-गृहस्थी की ओर नहीं लौटता. यह प्रेम सुमिरनी कितने दिन चलती है.

दो साल बीत गये. ऐसे खाते-पीते घर का ब्राह्मण लड़का— संतानहीन विधुर किस लड़कीवाले का ध्यान नहीं खींचता? कोई न कोई आता ही रहता और बलई मिसिर प्रायः देखुओं से घिरे रहते. अच्छे कुलीन घर, कामकाज में निपुण कही जाने वाली सुशील लड़कियों— चाहे तो मिसिरजी देख लें. रूप-गुण और सुमति में साक्षात् देवी. सुपात्र की तलाश में ही जैसे अब तक कुंआरी बैठी रह गयी हो. बलई मिसिर भी अब कितने दिन रास्ता

> देखो बेटा! बात दो टूक होती है. तुम ब्याह करोगे नहीं. वंश डूबने मैं दूंगा नहीं. ब्याह होकर रहेगा... तुम्हारा नहीं तो मेरा... वंश चलाने के लिए मैं सब करूंगा— जग हसाई होती है, हो ले.

देखे लड़के के मन के लौटने का. पराये हाथ की रोटी खाते-खाते ऊब गये थे. बिरादरी की एक आश्रयहीन विधवा दोनों जून खाना बना जाती है. जैसा बनता है, थोपकर रख देती है. बुढ़ापे में अफ़ीम के आदी बलई मिसिर गोरसी के अधऔटे गाढ़े दूध से ही काम चला लेते हैं— छककर पीते हैं. पर एक जून तो कच्ची रसोई जीमनी ही पड़ती है. बहू आवे तो मन का भोजन बने— चौका जब-तब सुस्वादु व्यंजनों से भरे-पूरे. अब कितने दिन रुका जाये आखिर! बिना चंदू से स्वीकृति लिये उनकी सहज बुद्धि भी बाला-बाला संबंध तय कर लेने से उन्हें रोकती.

एक दिन बलई मिसिर ने चंदू को बाहर चौपाल में बुलाया. दोपहर में अक्सर कोई न कोई एक-दो मेल-व्यवहारी बैठे ही रहते थे. उस दिन कोई न था. चंदू आया और पिता की पूरी बात सुनकर बोला, "दादा, मैंने तय कर लिया है— विवाह नहीं करूंगा. आप देख रहे हैं, जैसी जिंदगी मैं जी रहा हूं उसमें किसी को भागीदार बनना मुझे मंजूर नहीं. भगवान ने जो किया, ठीक किया."

बलई मिसिर ने अपने आश्चर्य को भीतर ही भीतर पूरा छिपाते हुए कहा, "ऐसा नहीं हो सकता. बिना गृहिणी घर भूत का डेरा. खाऊ-मारू लोगों के लिए रास्ता साफ. मैं अब घर की घुटन नहीं सह सकता. तुम चाहो तो लड़की देख लो. वैसे गांव में यह चलन रहा नहीं है, पर तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे लड़के के लिए मैं इतना कर दूंगा... ब्याह तुम्हें करना होगा."

भग्न प्रेम, छायावादी नैराश्य, वियोग और गता पत्नी में खोये मन ने चंद्रकांत को सर्वाभिभूत कर रखा था. पत्र-पत्रिकाओं के साहित्यिक रस में दिन-रात डूबा युवा विधुर प्रतिज्ञा किये बैठा था कि अपना दुबारा ब्याह न रचायेगा. उसने दृढ़तापूर्वक कहा, "आप मुझे मजबूर न कीजिये. ब्याह एक बार होता है— बाकी अपने साथ और जो सदा को छोड़ गयी है, उसके साथ छल है. मुझे ऐसा नहीं करना... मैं जानता हूं लोग आपको घेरे हैं... पूरा गांव यही दिन-रात आपको सुनाता है. आप मेरी ओर से सबको यह बता दें..."

पिता-पुत्र दोनों अपनी जिद पर कायम रहे. बलई मिसिर को सबसे बड़ी चिंता वंश चलने की थी. यों भी वे घर में दुबारा बहू लाना चाहते थे. भगवान ने सब कुछ दिया है. थोड़ा बहुत लेन-देन भी कर लेते हैं. सूदखोरों की तरह कर्जदारों से उनकी जरूरतमंदी का नाजायज फायदा उठाने की उनकी प्रवृत्ति नहीं. उचित ब्याज लेते हैं— विश्वास वालों को ही देते हैं. किसी का गहना-गुरिया नहीं रखते. इसलिए सभी उनको समय पर पैसा दे जाते हैं, सहर्ष ब्याज पटाते हैं. चंदू कुछ नहीं करता— न करे. उनकी नेकदिली के कारण खेतिहर मजदूर उनके यहां काम पाने के लिए उत्सुक रहते हैं. किसी को कभी कोई अपशब्द नहीं— देर-सबेर काम पर आने-जाने की डाट-फटकार नहीं. सभी को मजदूरी से अधिक ही मिलता है. बलई मिसिर सबके सुख-दुख में काम आते हैं. सारा गांव उनका अनुरोध मानता है— उनकी बात टाली नहीं जा सकती. वे कुछ अनुचित कभी कहते भी तो नहीं. उन्हीं का लड़का उनकी ऐसी सुभेषणा स्वीकार नहीं कर रहा! बलई मिसिर के मन का क्लेश बढ़ता जाता है. वे चंदू से अधिक बात करना छोड़कर अब कुछ और संकल्प बांधने लगे हैं. चंदू ने अपने को समझ क्या रखा है. गांव का उज्ज्वल ब्राह्मण मिसिर बंस डूबने न पायेगा.

बलई मिसिर ने अंतिम निश्चय कर लिया. चंदू को बुलाकर निर्णायक स्वर में कहा, "देखो बेटा! बात दो टूक होती है. तुम ब्याह करोगे नहीं. वंश डूबने मैं दूंगा नहीं. ब्याह होकर रहेगा. तुम्हारा नहीं तो मेरा..." कहते-कहते उनके मुख पर पौरुष की सोयी दीप्ति जाग उठी. चंदू विस्मय-विमूढ़ उनकी ओर देखता रहा. बलई मिसिर फ़िर बोले, "मैं विवाह करूंगा. बच्चा पैदा करने की कूबत रखता हूं. करके दिखा दूंगा. पर जवान बेटे के रहते बाप इस उमर में विवाह करे यह जग-हंसाई की बात हो जायेगी. मुझे शोभा न देगा. मेरी यह उमर ब्याह करने की नहीं— चारों धाम करने की है. तुम दोनों को घर सौंपकर दो-चार महीने तीरथ करूंगा, ऐसा सोच रखा था. लेकिन वंश चलाने के लिए मैं सब करूंगा— जग हंसाई होती है तो हो ले."

हठात् आयी इस स्थिति के बीच चंदू गूंगा-सा खड़ा था क्या जवाब दे, समझ न आता था. पर अपने निश्चय पर अडिग रहा और बोला, "आप मुझे यह धमकी दे रहे हैं— सबक सिखा रहे हैं. आपके घर-द्वार, जमीन, रुपये-पैसे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे परवाह नहीं. मैं स्वयं अपने से बेजार हू. आप शौक से ब्याह कीजिये. भगवान आपकी अभिलाषा पूरी करे.''

बलई मिसिर के पास वंशारोपण के लिए फिर से शादी करने के योग्य दूसरा रास्ता ही न बचा. एक सामान्य गृहस्थ की छब्बीस वर्ष तक विवाह की राह देखती बैठी लड़की ब्याह कर वे ले आये. लड़की के स्वभाव, चरित्र और परिवार के संबंध में उन्होंने खोजबीन कर ली थी. पुरानी नातेदारी का घर था, उनकी ननिहाल का निकटवर्ती रिश्ता. सारा गांव इस विचित्र घटना पर तरह-तरह की बातें कर रहा था. उपहास से हटकर बूढ़े पिता की सनातन चाहना की आपूर्ति की दयनीय दशा पर लोगों का ध्यान न जाता हो, ऐसा न था. पर संतान-प्राप्ति में जिद्दी असहाय वृद्ध को निराशा भी तो हाथ लग सकती है. घर में एक विषवृक्ष सदा के लिए लगा दिया. मूक अभिनयहीन दर्शक की तरह चंद्रकांत ने सब देखा— जो हो सका, यशाशक्ति अपने को संयत रखकर किया. विधिवत् विवाह हुआ. बलई मिश्र ने श्वेत केश-मंडित सिर पर मोर रखा— सारी रीति रस्में निबाहीं. थोड़े से चुने हुए रिश्तेदारों को बारात में ले गये. छोटे-बड़े, गांव के सभी लोगों ने निमंत्रण की आशा बांधी थी. पर बिरादरी का एक साधारण भोज होकर रह गया. न अधिक लोगों का आवागमन, न कोई धूमधाम, न कोई तंबू-शामियाना. बलई मिसिर, जितना नितांत आवश्यक था, उतना ही कर रहे थे. चंदू के दिल से जैसे कोई भार उतर गया हो, इस तरह के एक अपूर्व हलकेपन का अनुभव करता हुआ वह लगातार बिना बुलाये भी आते-जाते लोगों का सत्कार कर रहा था. चेहरे पर विकार की कहीं कोई रेखा नहीं. विधुर लड़के को संसारी बनाने में असफल वृद्ध पिता जिस परिहास-जन्य मनोदशा से होकर गुजर रहे थे, वे ही जानते थे. पर नकद वर्तमान के आगे वे संदिग्ध, उधार भवितव्य का कोई उज्र अब सुनने को तैयार न थे. शिवबालक सुकुल ने सिर्फ इतना ही कहा था, ''सभी कुछ ठीक चल रहा था, कहां तुमने इस उमर में यह सब किया! साल दो साल में चंदू का मन बदलता ही. शादी करने का यह शौक क्यों चढ़ा? बुढ़ापे का इतने दिनों से छूटा मन क्या घर-गृहस्थी में रम पायेगा?''

आहत अभिमान से क्षुब्ध बलई मिसिर बोले, ''क्यों नहीं रमेगा? मेरे भीतर भी मर्द का हौसला है. चंदू की नयी मां सब संभाल लेगी. उस घर की लड़कियां जहां जाती हैं, फलती-फूलती हैं. मुझे केवल वंश की रक्षा चाहिए. चंदू समझदार है, सुशील है, उसे पूरा मान देगा.''

ब्याह का पहला साल बीतते-बीतते पत्नी के पैर भारी हैं, यह जानकर वृद्ध बलई मिश्र ने पतिजनोजित संतोष की सांस ली. लहलहा तो शिवा आने के बाद ही उठी थी पर इस उभार, देह के इस लहराते और अपने में न समाते भराव की छवि ही दूसरी थी. वे अब बाहर से जल्दी— घड़ी दो घड़ी सांझ बीतते ही आ जाते और खुली आंखों दिये की लौ तेज कर शिवा की गर्भवती कमनीयता को देख-देखकर न अघाते. सरसों की कोपलों और मटर की ओसभीगी फलियों को देखकर; गेहूं, धान की नयी बालों की सिहरन को छूकर

भूखे लोग

रॉबर्ट शरवुड नाइट-क्लबों में गानेवाली बहुत मशहूर स्त्री है, जो एक रात गाने के हज़ारों डालर लेती है.

कुछ वर्ष पहले वह बहुत ही साधारण क़िस्म के होटलों में गा कर गुजारा किया करती थी.

एक बार उससे पूछा गया कि वह उन होटलों में रोज दे कितने पैसे कमाया करती थी.

''कई बार तो रात भर गा कर दर डालर भी नहीं कमा पाती थी.''

''भला वे कैसे लोग होंगे, जो दस डालर के बदले में सारी रात गाने का साहस कर सकते हैं?'' प्रश्न पूछनेवाले ने हैरानी प्रकट की.

''भूखे लोग.'' शरवुड ने सहज भाव से कहा. □

जीवन का जो उन्मेष जागता है, वह बलई मिसिर को शिवा की पोर-पोर अंकुरायी देह में मिलता.

पूरे दिनों में शिवा के जब लड़की हुई तब बलई मिसिर को धक्का लगा. नाउन उन्हें शिवा के लक्षणों से लड़का होने का विश्वास दिलाये थी. उन्होंने उसे मुंहमांगा नेग देने का वचन दिया था. फिर भी यह सोचकर मन का समाधान करते रहे कि बिना लड़की के पांव पूजे मुक्ति नहीं मिलती. इस बात की ओर ध्यान भी न जाता कि क्या उसके पैर पूजने तक वे जीते रहेंगे? सोवर के भीतर शिवा अपनी दृष्टि में आप ही गिरी नहीं, जमीन में गड़ी जा रही थी. पति के इतनी उम्र में उस जैसी अधेड़ से विवाह करने का कारण उसे साफ मालूम था. तरह-तरह की मानता उसने मान रक्खी थीं. भगवान शिव का ध्यान उठते-बैठते करती हुई वह अपनी कोख से जनमने वाले पुत्र की कल्पना में विभोर रहती थी. प्रथम प्रसव का सारा चाव, आनंद जैसे आत्म-ग्लानि में डूबा पड़ा था. स्वस्थ सुंदर लड़की भी उसे मातृत्व के उस बोध से वंचित किये थी जो नवप्रसूता में उल्लास भर देता है— उसे अपनी उर्वरता का गर्वीला मान देता है.

विवाह के बाद पांच वर्षों में लंगोट के सच्चे बलई मिसिर के जब एक के बाद एक चार लड़कियां ही हुईं तो उनका दम इतना छूट गया कि वे सहन न कर पाये. उनके अंतर की आशा-अभिलाषा लगातार चार बार मरी. इस बार वे स्वयं उसकी विदीर्णता के शिकार होते गये.

शिवा ने जिस आखिरी लड़की को जन्म दिया था वह विकलांग थी. बलई मिसिर की एक भूल से शुरू हुआ सारा कांड अंत में एक अबोध, फूहड़ संतान पर आ टिकेगा, इसे कौन जानता था! उस कन्या की आकृति अष्टावक्र थी. बात को समझने की हरकत से वंचित केवल भयभीत टकटकी से सबकी ओर देखती रह जाती थी. कंपन की लहरें उसके अस्थिपंजर को झकझोर देतीं पर वह कुछ भी न चल पाती. एक विचित्र आदिम आवेग से उसका गला दबा का दबा रह जाता. सामने भाग जाना चाहती पर पैरों में न कोई शक्ति थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न शैशव की चपल गति का उन्मेष. मां के द्वारा निर्दयता के साथ एक ओर पटक दिये जाने पर उसके रोने की धारा कटती नाड़ी के बह उठते खून के आवेग-सी फूट पड़ती.

बलई मिश्र इस 'गों गों' करती अपनी चौथी कन्याकृति को देखते तो उनके हृदय की गति रुकने लगती. अपनी ही संतान उन्हें जलती रस्सी के ऐसे निदारुण फंदे जैसी लगती जो उन पर और पूरे घर पर जीवन भर पड़ा रहेगा. वे एक भयावह आतंक में बर्फ की तरह जमने लगते. लड़की की पंगु टांगें उनकी सांसों की गति रोक देतीं. शिवा जब उसे कोसती हुई अपशब्दों की झड़ी लगाती, निश्चेष्ट, निष्प्राण हो उठते उनके भय से पीले पड़े चेहरे पर पसीना बहने लगता.

बलई मिसिर ने मौत का 'रिहर्सल' करते हुए तीन साल गुजार दिये. उन्हें शिवा का शरीर छूने तक से विरक्ति हो गयी थी. चंदू को लड़की की दुबली-पतली देह को उठाकर एक स्थान से दूसरे पर रखते वे देखते तो अपनी विकृत मुद्रा लिये पास ही खड़ी शिवा उन्हें प्रेतिनी-जैसी लगने लगती. सारा दोष उसी की करमजली कोख का है जो अपनी खिसियाहट को, अपराध-बोध को अपनी कटु झुंझलाहट और तिरस्कार द्वारा उठते-बैठते जाहिर करती रहती है. पहले की तरह दालान में अपनी खटिया उन्होंने डाल दी थी.

आज मुझसे तुम्हारा एक भाई भी होता तो मैं न कहती. पर ये लड़कियों ही लड़कियां... तुम्हारे दंदू की आत्मा मुझे धिक्कारा करती है. मुझे इस धिक्कार से बचा लो...

मरने के पहले असहाय करुण दृष्टि से शिवा और उससे पैदा की गयी अपनी चार कन्याओं की ओर देखते हुए हृत्शूल की छटपटाहट में उन्होंने चंदू को तलाशा. वह पिता के पास आया और मृत्यु की भयावहता से घिरी उनकी मुखाकृति को देखकर अवसन्न रह गया. बलई मिसिर बोले, "चंदू, मैं चला विधवा विमाता और चार अबोध-अपंग बहनें तुम्हारे माथे छोड़कर, मन की मन में ही रह गयी. हे भगवान... हे भगवान! क्या सोचा था... क्या हुआ..." कहते हुए उनके प्राण पखेरू उड़ गये. शिवा ने दहाड़ मारकर चारपाई की पाटी पर जोर से हाथ पटकते हुए अपनी चूड़ियां फोड़ डालीं.

बलई मिसिर का दाह संस्कार, दसवां, तेरही सब ऐसी धूम से हुए कि लोग चंदू की पितृभक्ति और मर्यादापालन की प्रशंसा कर उठे. पूजा-पाठ, दान-पुण्य और भागवत पुराण की जैसे झड़ी लगी हो. दरवाजे पर विशाल शामियाना लगाकर ब्रह्मभोज हुआ— गांव भर का ही नहीं आसपास के व्यवहारी अभ्यागतों का विधिवत् भोजन हुआ. शिवा इस बीच में यह सब देखकर संभल चुकी थी. मन के भीतर परिचित आतंक का सांप अपना फन उठाये न जाने किस ओर सरसराता हुआ निकल गया था. चंदू हर बात उससे इस प्रकार पूछता जैसे वही उसकी पुरखिन मा हो. उसके मायके के लोगों को सम्मान देते हुए भी चंदू ने शिवा को ऐसा लगने ही न दिया कि वह उनकी किसी भी प्रकार की विषाक्त हितैषिता की मोहताज हो, तेरही के बाद घर लौटने के पहले शिवा के पिता और बड़े भाई एकांत में उससे बोले, "हम आते रहेंगे. लड़के पर ज्यादा भरोसा न करना. भले कानूनी हक उसका बनता हो पर तुम्हारी ये चार लड़कियां... इनका पालन-पोषण, ब्याह उसे करना होगा. अगर कहीं अपना ब्याह कर बैठा तो तुम्हीं मारी जाओगी. सारा अधिकार छिन जायेगा— तुम्हारा... इन लड़कियों का..."

एक अजीब-सा करुणा मिश्रित तेज शिवा के झुके चेहरे पर झलक आया. जिन्हें ऐसे में हिम्मत बंधानी चाहिए, वे भविष्य का भय दिलाते जा रहे हैं. मन में फूटते ज्वार को वश में करके बोली, "चंदू पर मुझे भरोसा है. वह मुझे और इन चारों को पार लगा देगा. मैं और घटनाओं को गोद नहीं लेना चाहती."

चंदू कामकाज खत्म होते ही लगभग पहले जैसा हो गया. वही क्लांति, वही शून्यता जीवन में फिर उतर आयी. तूफान जैसा कुछ आया था— पिता की मृत्यु और उनके द्वारा छोड़ी गयी निविड़ भावार्द्र करुण छायाएं उसमें जो इतने दिनों का भूला-बिसरा, खोया जीवन लौटा लायी थीं वे फिर उसके एकांत विषाद में डूब गयीं. मां से बोलता, छोटी बहनों से भी प्यार जताता पर अपने से जैसे कहीं दूर, किसी गहन तमिश्रा में खोया-खोया. शिवा का ध्यान अपनी छोटी बड़ी लड़कियों को संभालने में— लंगड़ी की देखभाल में निकल जाता— फिर भी चंदू पर उसकी पूरी दृष्टि रहती. मरकर बलई मिसिर उसे जिसके संरक्षण में छोड़ गये हैं, वह तो जीवन-मृत्यु, हंसी-खुशी, घर-संसार, मां-बहन सबको भूलकर न जाने किस अनदेखे छुटकारे के लिए बेसुध बना रहता है! कोई बात पूछो या काम बताओ तो समाधि टूटने के-से भाव में बोलता है.

शिवा को पति के अभाव में घर सूना ही नहीं अतृप्ति और अभाव की विकरालता में समाया लगता. पिछले वर्षों से उससे कोई सरोकार की छुअन तक छोड़े, घर के बाहर रहकर जब वृद्ध पति उसके मन को इतना संवारता रहता था, तब निकट की मगनमन प्रतीति की बात ही क्या! जीवन भर के अभेद्य कुंआरेपन से उबारकर जिसने उसकी मांग भरी, उसके तन की तरंगहीनता को हिल्लोलित किया— चार बार उसे गर्भवती बनाकर उसके नारीत्व को सफल बनाया, अपना वही भर्ता उसे जब याद आता तो वह भी जीवन से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करती. पर गले का कांटा बन गयी ये चार लड़कियां जिनमें एक अपंग, एक अविकसित. एक के बाद एक जवान होकर शादी की दरकार का चिंता भार ढोती मां की इन बैरिनों का सोच! शिवा तत्क्षण अपने में लौटकर भूत जैसे भयावने भविष्य की बात सोचने लगती. घर-द्वार सब कुछ होते हुए भी उसे कोई कूल किनारा न सूझता. उसने जो सहा है— कर्म-भोग भोगा है, ये करम जली वैसा कुछ न झेलें. एक-एक कर ठिकाने लगती जायें. चंदू घर का मालिक है. भगवान उसके मन में इनके प्रति दया-माया जगाये रहे— इन्हें कभी पराया न माने.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब चंदू ही कुलदीपक है. उसे पानफूल की तरह सहेज कर रखना है. चंदू यदि विवाह कर ले और वंश चलाये तो बलई मिसिर की आत्मा की लालसा पूरी हो. पर चंदू से वह कैसे कहे? जिसने जन्मदाता पिता की बात नहीं मानी– उन्हें इतना मजबूर किया वह अभागिन विमाता की कैसे सुनेगा! कहीं सनक गया तो और मुसीबत खड़ी होगी. पुत्र पैदा न कर स्वर्गीय पति के प्रति उसने ज़ो पाप किया है उससे प्राण पाने के लिये शिवा की दोषी आत्मा चीत्कार करती. अक्सर रात को नींद खुलने पर वह बाकी रात जागती रह जाती. मां खेती बाड़ी देखती है– घर का पूरा प्रबंध रखती है, यह देखकर चंदू और भी बेफिक्र होता. सारी व्यवस्था उसे पहले से अच्छी नजर आती. अधिया पर न देकर शिवा अब बीच बीच में निर्भीक मन बाहर निकलकर खेती खुद देखती है. मां के इस नये रूप की कर्मठता उनके वैधव्य की सारी मलिनता के बावजूद चंदू से छिपी न रहती.

चार बहनों के भरण-पोषण, जीवन-यापन, विवाह का कर्ज उस पर चढ़ाकर पिता इस संसार से सदा के लिए विदा ले गये हैं, यह सोचकर अब चंदू के विचारों की धारा दूसरी ओर बह चलती. पिता के प्रति क़ठोरता और क्षमाहीनता का स्थान अब प्यार-ममता स्नेह सहानुभूति की पात्र बनी छोटी बहनों ने ले लिया. सारी रुलाई को सोखकर मन में पिता की छोड़ी अभिशप्त गृहस्थी घूमती रहती जो उसे पार लगानी है. एक नये बंधन में उसका खोया-खोया व्यक्तित्व लौटने लगा. उसे आत्ममर्यादा की करुणा और पितृहीन कन्याओं की विडंबना से घिरा मां का दुख सालता. बहनों की भोली, अनमनी उदासी उसे पुकारा करती.

कमला सबसे बड़ी थी, उसके बाद विमला, फिर सीता और सबसे छोटी जो अब चार वर्ष की थी, उमा. चंदू ने एक दिन मां से दो सौ रुपये की मांग की. शिवा ने ही इधर सब कुछ संभाल रखा है. कारण पूछने का साहस होता भी कैसे. घर के मालिक लड़के ने पहली बार मां से कहा था. निकालकर चुपचाप बेटे के हाथ पर रख दिये. चंदू शिवा की बड़ी बेटी कमला को लेकर घर के बाहर निकला. घंटे भर बाद नये कपड़ों का बंडल लिये लौटा– कमला का हाथ पकड़े. उसके पीछे रामप्रसाद दर्जी था जो गांव में अच्छा कारीगर माना जाता था. चंदू ने चारों बहनों के कपड़े नपवाये– फ्राक, चड्डी, पैजामे.

रामप्रसाद तीन दिन में तैयार कर ले आने को कहकर चला गया. शिवा चौके के काम पूरे कर बाहर बैठी गेहूं बीन रही थी. चुपचाप सब देखती रही. दरजी के आने पर बोली, "इतना कपड़ा ले आये– सिलाई भी कम न लगेगी?"

चंदू ने कहा, "कपड़े उनके पास हैं कहां? अभी और लाऊंगा. तुम घर-बाहर के कामों में फंसी रहती हो. लड़कियों के खाने-पहनने की ओर भी ध्यान रखा करो. जब देखो, उन्हें धिक्कारती रहती हो. उन्हें मां का पूरा प्यार-दुलार चाहिए."

उमर में अपने से बड़े सौतेले बेटे की बात शिवा ने सुनी. चंदू के स्वर में निष्कंप आग्रह था. हंसी-खुशी में

पत्नी

चार्ल्स लाफ्टन अपनी पत्नी के साथ एक बार किसी जलसे में बैठा हुआ था. उसके पास बैठा एक व्यक्ति उसे सुनाकर उसकी निंदा करने लगा और उसके मुकाबले में एक दूसरे अभिनेता की प्रशंसा के पुल बांधने लगा.

लाफ्टन के लिए यह असह्य था. उसका चेहरा तमतमा उठा. इससे पहले कि वह उस व्यक्ति पर हाथ उठाता, उस की पत्नी ने बड़े प्यार से उसका हाथ पकड़ कर दबाया और होंठों पर बड़ी मीठी मुस्कराहट लाकर उसकी ओर देखा, जैसे कहा हो, इसमें गुस्सा करने की कोई बात नहीं है.

लाफ्टन शांत हो गया और उस व्यक्ति की ओर मुस्करा कर कहा, "हो सकता है कि मेरे प्रतिद्वंद्वी अभिनेता के पास सभी गुण हों, पर क्या उसके पास मेरी पत्नी जैसे जादूगरनी पत्नी भी है?" □

फलती-फूलती, महुए के फूल जैसी बेटियों की रसीली कोमलता उसकी आंखों के आगे घूम गयी. चंदू की निष्कपट भावना उसे अपने कर्तव्य का बोध करा गयी. पहन-ओढ़कर ये ही साधारण रूप-रंगवाली लड़कियां सुंदर लगेंगी. उनका लंगड़ा लूलापन, दिमाग की अपंगता इतनी कुत्सित न लगेगी. सिर नीचा किये अपना काम करती रही.

चंदू ने खेती-बाड़ी का काम देखना शुरू कर दिया. अधिक से अधिक फसलें हों और पैसा घर में बढ़े इसको लेकर शिवा से अक्सर बातें करता. शिवा ने बिना पूछे कमला को गांव के लड़कियों के स्कूल में भरती करा दिया पर शिवा ने बुरा न माना. अपनी बच्चियों का बदला हुआ मधुराया रूप उसे अच्छा लगता. चंदू कुछ पूछता तो कहती, "तुम जो ठीक समझो, करो. मुझसे बड़ी समझवाले हो. मैं और ये चार बहनें तुम्हारे ही सहारे हैं... निबाह देना."

गांव के लोग कहते, "सिर पर जब पड़ती है, तब सारी कविता भूल जाती है. चंदू कितना बदल गया है! पुराना बगीचा नया हो गया है. पहले कोई देखरेख न थी. अब आम की फसल में हजारों देगा. बहनों का कितना ध्यान रखता है!"

शिवा का टीसता मन औरतों-मर्दों की ऐसी बातें सुन-सुनकर अपनी सहजता में लौट आता. पति के साथ ही चली गयी जिजीविषा बड़ी होती जा रही लड़कियों के भविष्य की चिंता में प्रबल हो जाती. चंदू अनाज की बिक्री का हिसाब, पिता के समय से चले आ रहे लेन-देन के धंधे की रकम, बाग-बगीचे की आमदनी, पूरी की पूरी शिवा को देता. जरूरत पड़ने पर उसी से मांगता. रहन-सहन, बात-व्यवहार में अपनी लड़कियों को घर के काम से विमुख पाकर वह अब भी झुंझलाती– भला-बुरा कहती. उनके द्वारा अपने काम में बाधा पड़ते देखकर मार बैठती. तीसरी लड़की सीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक विक्षेप से पीड़ित थी— उसमें उमर के साथ समझदारी का विकास न हुआ था. उसके प्रति शिवा की झुंझलाहट की सीमा न थी. चंदू घर के बाहर रहता. नौकरों के काम की देखरेख करनी पड़ती थी. पर सब से छोटी उमा को वह घर में स्वयं उठा कर यहां से वहां ले जाता.

बाहर से आकर चंदू अपने कमरे में था. शिवा ने चावल बीनकर मटके में भरने को रक्खे ही थे कि सीता ने बिने और अनबिने मिलाकर एक कर दिये. तब तक नाउन किसी घर का बायना ले आयी थी. उसे विदाकर शिवा अब अपनी जगह पर आयी तो उसने यह कांड देखा. सीता ने उसकी तीन घंटे की मेहनत बेकार कर दी थी. क्रोध में आकर शिवा ने 'नासकाटी जब देखो इसी तरह किया करती है!' कहते हुए उसे तीन-चार भरपूर तमाचे लगा दिये. थप्पड़ों से लाल मुंह लिये सीता आर्तनाद करती हुई 'भैया', 'भैया' की करुण पुकार लगाती चंदू के कमरे में दौड़ी आयी. चंदू का अपनी इस मनोविचलन से विकलांग बहन के प्रति विशेष स्नेह था. लंगड़ी उमा करुणा जगाती थी. पर उसके मन को भावार्द्र कर देती थी गों गों करती, भली भांति बोलने को तरसती यही सीता. जो भली प्रकार रो भी न पाकर चोट की पीड़ा से फूल-फूल कर पीड़ित पशु की भांति रिरियाती थी.

साफ बता क्यों नहीं देते, 'हमें अभी दो को पार लगाना है. हम इतना ही दे सकते हैं... बारात की खातिरदारी में कम खर्च होता है...? न मानें, दूसरा घर देखो.'

उमा को असाध्य मानकर चदू सीता को लखनऊ ले जाकर डाक्टरों को दिखाने की जिद कर रहा था. मां से बोला, "मुझे ज्यादा दिन लग जायें तो तुम घबराना मत. हर रोग की दवा होती है— इसकी क्यों न होगी. साथ में किसे ले जाऊं... एक समझदार आदमी को जो सीता को संभाल सके...

शिवा ने अपनी कुढ़न को दबाते हुए कहा, "छोड़ो, इस अभागिन को कहीं नहीं ले जाना, छोड़ो डाक्टर वैद-हकीम को दिखाना. मेरे पिछले जनम के पाप का फरा मुझे भोगवाने को जन्मी हैं ये दोनों. तुम कहां हलकान होते फिरोगे— वहां नाक में दम कर देगी. उमा की तरह इसे भी भाग्य पर छोड़ दो."

चंदू ने शिवा के दुख की गहराई समझी. साधारण मनस्ताप में मां अपनी कोखजायियों के प्रति इतनी निर्मम नहीं होती. लड़की के जीवन का मामला है. पहले ही यह काम करना था. बोला, "ऐसा कुछ नहीं. हफ्ते दो हफ्ते जांच करके डाक्टर दवा लिख देगा. यहां खाती रहेगी. पंद्रह दिन— महीने में जब भी बुलायेगा, हम जांच करा आयेंगे. लखनऊ की दूरी भी क्या है. वहां ठहरने के ठीहे हैं. मेरे साथ... ऊबे-रोयेगी नहीं."

चंदू सीता को नौकरानी के साथ लेकर लखनऊ चला ही गया. शिवा को भीतर-भीतर उस दिन अपना सारा अस्तित्व मृत पति की याद और भविष्य के असाधारण माध्यम में तैरता दीता.

एक सप्ताह बाद लौटकर बेटे ने मां को सब बताया. सीता के अच्छे होकर औरों जैसे हो जाने की आशा है. दवा बराबर चलेगी. हर महीने जाकर जांच करानी होगी.

शिवा ने सहानुभूति से भीगी-भीगी चंदू की आंखों का संतोष देखा. झुंझलायी कटुता लिये वर्तमान की चेतना में लौटती बोली, "कितनी बार इसे ले-ले कर शहर दौड़ोगे? कितना पैसा खर्च करोगे इस करमजली पर! दिन में तीन-तीन बार दवा खायेगी— किसे याद रहेगी..."

चंदू ने कहा, "मैं नियम से दूंगा. तुम सीता को मुझ पर छोड़ दो मां! भगवान ने चाहा तो..."

सीता की दशा में सुधार हुआ. मां को अब पहले की तरह हलकान नहीं करती.

एक दिन चंदू कमला के मिडिल पास होने की बात जब मां से कर रहा था और कक्षा में उसके प्रथम आने की खुशी में मग्न था, न जाने कैसे कमला को आगे पढ़ाने का, अच्छा वर पाने की उसकी पात्रता बढ़ाने का जिक्र कर बैठा. शिवा ने साहस बांधकर कहा, "वह बाद की बात है. पहले भाई का ब्याह होगा... बाद में बहन का."

चंदू ने पहली बार मां के मुख पर उभरे दरिद्र आग्रह को देखा. उसकी धुंधले अंधेरे जैसी मलीनता को पहली बार बिलकुल नये, अचीन्हें स्वर और भाव में मुखरित पाया. मां से कुछ न बोलकर तब तक पास आ गयी विमला के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला, "तू भी अब पढ़ने जायेगी— कमला से कम तेज नहीं निकलेगी."

दो वर्ष हो जाने पर भी सीता का इलाज चला जा रहा था. उसकी बुद्धि का विकास हो चला था— लगभग अपनी आयु जैसा आ गया था. शिवा के मन में आज चंदू से खुलकर बात करने का निश्चय बन चुका था. बोली, "इन लड़कियों की पढ़ाई से ज्यादा जरूरी बात तुम्हारे ब्याह की है. कमला को अब आगे नहीं पढ़ाना. आठवीं पास हो गयी, बहुत है. जो कमी होगी, घर में पूरी कर लेगी. पहले तुम्हारा ब्याह हो जाये तब इसकी बात सोचूं..."

चंदू ने हंसकर कहा, "तर्पण खोजते पुरखों की आत्माएं तुम्हें भी पुकारने लगीं क्या? मैं अब ब्याह करूंगा? आज कैसी बात बोल रही हो मां. मुझे जो सुनना भी गवारा नहीं..."

संकोच त्यागकर शिवा ने कहा, "आज मुझसे तुम्हारा एक भाई भी होता तो मैं न कहती. पर ये लड़कियां ही लड़कियां... तुम्हारे दद्दू की आत्मा मुझे धिक्कारा करती है. मुझे इस धिक्कार से बचा लो. उनकी जो साध मुझसे नहीं पूरी हुई वह तुम्हारी बहू से हो जाये!... मेरी इतनी पत रखी है... बस इतनी और रख लो... तुम सुखी रहो... वंश न डूबे."

चंदू को अडिग पाकर शिवा ने आगे भी बारंबार कहा. उसका साहस एक बार खुला तो खुलता चला गया. पर चंदू ने जब जवाब में कुछ कहना ही छोड़ दिया तो शिवा उसकी दृढ़ता जान गयी. भरी जवानी में जिसने दूसरी जीवन-संगिनी नहीं चाही उसे अब इस आयु में विचलित कर द्विपरिणीता के लिये तैयार करना संभव नहीं. भगवान से प्रार्थना करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती— देवी देवताओं की मानताएं मानी कि चंदू को वे सुमति दें. मां की सारी बातें जानसुनकर भैया की मुंह लगी कमला ने भी भाई से भौजी लाने को कई बार कहा पर चंदू ने बातों में बहला दिया. एक बार कमला को पीछे पड़ते देखकर उसने कड़े स्वर में डांटकर कहा, "क्या चाहती हो, मैं यहां से चला ही जाऊं? तुम अपने पढ़ने पर ध्यान दो. प्राइवेट परीक्षा देनी है." तो कमला के साथ-साथ मां शिवा भी बिना बेटी के बताये सब समझ गयी. चंदू की बात ने दोनों को इस संबंध में खामोश कर दिया.

शिवा ने कमला के विवाह की जल्दी मचाना शुरू कर दिया. चंदू कहता, "प्राइवेट मैट्रिक करा लेने दो मां. आजकल अच्छे घरों में लड़की के पढ़े-लिखे होने की बात सबसे पहले पूछी जाती है... कमला पढ़ने में तेज है. पहली बार में पास हो जायेगी तब विवाह की चर्चा चलाना."

शिवा देखती, पगली कही जाकर बराबर घर-बाहर तिरस्कार पाने वाली सीता अब स्कूल में भरती कर ली गयी है. कमला को चंदू से पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती. सारा दिन खुद ही पढ़ा करती है. शिवा घर का काम न करने— रोटी-पानी में भली प्रकार रुचि न रखने के लिए बड़बड़ाती है. दूसरी बहनें भी पढ़ने में ही लगी रहती हैं. घर के कामों से जैसे सरोकार ही नहीं. शिवा अकेले सुबह से रात गये तक खटती है. पैसा आता है, फुर्र से उड़ जाता है. शिवा चंदू पर झींखती है जिसने इतना खर्च बढ़ा रखा है. किताबें चली आ रही हैं. सीता की दवा का लंबा बोझा ढोया जा रहा है. पर जिसे सब झेलना पड़ता है, वह निर्द्वंद्व है. खेती की उपज बढ़ गयी है. किसान बीज के लिए दो मन ले जाते हैं— अन्न आने पर खुशी-खुशी चार मन दे जाते हैं. नकद रुपये का ब्याज खुद दे देते हैं. चंदू अक्सर उनके दिये से कुछ लौटा देता है. गहना-गुरिया रखना महाजनों के यहां होता है. खुशहाल ब्राह्मण काश्तकार हंसी-खुशी कर्ज देता है— जरूरतमंद मूल और ब्याज पटाता है. जो कम दे पाते हैं, उनके लिए भी चंदू के मुंह पर फैली तरल सहानुभूति— आंखों के रास्ते सब के सुख-दुख की बातें पीते जानेवाली मुद्रा शिवा देखती है तो कहते-कहते रुक जाती है— कम लेकर ब्याज का पैसा लौटा क्यों देते हो? न हो तो बदले में खेत, बारी, किसानी के काम ही ले लिया करो. चंदू के उसे घर की मालकिन मानने पर भी उसका दासी-भाव उससे छुड़ाये नहीं छूटता. दूसरों के घर में रार-तकरार मचती है. सगे भाई लाठी भांजते हैं, एक दूसरे का हिस्सा हड़पने में नहीं हिचकिचाते. सगी मां को भला-बुरा कहते हैं— लांछन लगाते हैं. उनके बीच बलई मिसिर का घर कच्चे नारियल जैसा दूधिया पवित्र लगता है.

रोज रात को दिन भर का किया चंदू का सत्व्यवहार और अपनत्व उसकी वैधव्य की वर्जना को ठेल-ठेलकर उसका पूरा मन घेर लेता. मरते समय इतने करुण निरीह नयनों से उसे देखकर सदा को आंखें बंद कर लेने वाले उसके अंतःकरण के स्वामी क्या जानते होंगे— कैसे दाता के चरणों पर उसे डाल गये हैं. वे दुश्चिंताग्रस्त मरे— दवा-दारू भी न हो पायी. शायद बच ही जाते. पर न बचकर भी बुढ़ापे में मुझसे जन्मी इन चार अभागिनों को जिसके अधीन छोड़ गये थे वह तो पति, पुत्र, पिता, भाई सभी का प्यार समेटे विधवा विमाता को, उसकी पितृहीन बेटियों को सुख से मढ़ देना चाहता है. जिसको केंद्रित कर आशंकादग्ध चिंताओं का पार न था. वह विश्वास और परिवार-पालन की देवमूर्ति निकला. मां से कभी किसी काम के लिए नहीं कहता. उसी की सेवा करने, उसी चंदू के लिए कल्याण का मंगल कवच बनने की कामना शिवा की सांस-सांस में लहरती है. वह मृत स्वामी की प्रतिमूर्ति उसमें पाती रहती है. चंदू के मुंह पर थकावट या फिक्र का चिन्ह पाते ही अकुला कर पूछती है, "क्या बात है भैया? किस सोच में डूबे हो? मैं चौका लिये बैठी हूं."

चंदू हड़बड़ा उठता. अतीत के मटमैले जल में अपनी ही अस्पष्ट छाया देखना तत्क्षण बंद कर मिनटों में नहाकर चौके में बैठ जाता, "परोसो, मैं आ गया."

गरम-गरम रोटियां निकालकर देती शिवा कृतार्थ आनंद में डूबकर न जाने कहां अंतर्हित हो जाती. चंदू कहता, "कमला के लिए लड़का देख आया हूं. बी.ए. पास है— घर भी खुशहाल है. तुम पसंद कर लो... देख लो."

शिवा कहती, "मुझे नहीं देखना है, तुम्हें पसंद है तो मुझे भी है. रुपये-पैसे की बात जरूर साफ कर लेना. एक नहीं तीन हैं, पूरी तीन. चौथी इसी घर में अनब्याही मरेगी. मेरे आगे चली जाये तो अच्छा, तुम्हें सालने को न बचे."

चंदू कुछ न कहता. बीच-बीच में निश्छल-निढाल, पर परोसने में तत्पर मां की ओर देख लेता जिसके शब्दों की सच्चाई मुख की प्रत्येक कठोर रेखा आंकती थी.

अंत में वही बी.ए. पास लड़का तय हुआ. नकद दो हजार का फलदान गया— साथ में एक हजार रुपये का सामान. गहने, कपड़े, बरतन सब मिलाकर कहां तक पहुंच जायेगा, शिवा की बुद्धि में न अंटता. कमला की खुशी

अभिनेता

एक अभिनेता का कद बहुत लंबा था और कुछ अरसे से उसे कहीं काम नहीं मिल रहा था—न नाटकों में, न फिल्मों में.

एक दिन उसे किसी ने कहा, "ईलिया कज़ान अपने एक नाटक में अब्राहम लिंकन के रोल के लिए कोई उपयुक्त व्यक्ति ढूंढ रहे हैं. आप उनसे जाकर मिलिये."

सुनकर अभिनेता बहुत खुश हुआ.

"उनसे मिलने जायें तो बेहतर यह होगा कि पूरी तरह लिंकन बन कर जाइये. यानी मेक-अप, वेश-भूषा, चाल ढाल हर एक चीज़ लिंकन जैसी हो. उस हालत में आप के चुन जाने की अधिक संभावना है."

अभिनेता जब कजान से मिलने गया तो वह सचमुच लिंकन प्रतीत हो रहा था. वह अभी कुछ ही दूर गया था कि एक गोली उसके सिर में आकर लगी. दूसरे ही क्षण वह सड़क पर लेटा पड़ा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाये न समाती. गांव की कोई लड़की बी.ए. पास लड़के के साथ न ब्याही थी. पिता गांव के सरपंच हैं, चाहते हैं लड़का वकालत करे. चंदू ने सहर्ष सब किया. शिवा कन्यादान देने के लिए तैयार नहीं हुई. चंदू ने बड़े भाई का वह दायित्व भी पूरा किया. मां और मां से ज्यादा भाई से लिपट-लिपटकर रोती कमला ससुराल गयी. शिवा के बार-बार कहने पर भी चंदू से उस दिन खाया न गया.

शिवा लड़की के वियोग से जल्द उबरकर विमला की बात सोचा करती. भैया ने उसे भी पढ़ा-पढ़ाकर प्राइवेट मैट्रिक करा दिया था. शिवा अंधेरे में पड़ी पति की बूढ़ी और निरीह याद के पीछे चंदू के अनेक रूपों को चित्रित करती— मन ही मन. उसकी नींद भाग जाती. अंधकार को देखते-देखते उसकी आंखें अंधेरे को इस कदर पहचान गयी थी कि उसके अंधेरे कमरे में पूरा घर घूम जाता. अतीत और भविष्य की बेपहचान आशंकाएं, विडंबनाएं घूम जातीं.

कमला पति-गृह से लौटकर उदास और फीकी-फीकी रहती. मां को यह विचित्र लगा. चंदू ने तो विवाह के बाद

वे एक भयावह आतंक में बर्फ की तरह जमने लगते. लड़की की पंगु टांगें उनकी सांसों की गति रोक देतीं. शिवा जब उसे कोसती हुई अपशब्दों की झड़ी लगाती... उनके भय से पीले पड़े चेहरे पर पसीना बहने लगता.

सयानी लड़की में आयी संयत गंभीरता समझकर उधर ध्यान न दिया. यों भी उसे घर के भीतर की ओर देखने और उसकी किसी भी कही-अनकही भाषा का अर्थ निकालने की फुरसत न थी. कैसे आमदनी बढ़े, खर्च जुटाकर विमला का ब्याह किया जाये— लड़का तलाशा जाये इसी की कोशिश में लगा रहता. शिवा के खोद-खोद कर पूछने पर कमला ने अंसुआये स्वर से जो कहा उसे सुनकर शिवा सन्न रह गयी. कमला की ससुराल में मां के और भैया के संबंध में गर्हित बातें की जाती हैं. सभी में न जाने कैसे, कहां से यह विश्वास भरा संदेह घर किये है कि मां-बेटे में कुत्सित संबंध हैं. उसे सुनाकर बराबर कहा जाता है— बेटा सौतेली मां को रखे है... कहते-कहते कमला की रुलाई रोके न रुकी.

शिवा ने कानों में ही नहीं सीप की तरह स्नायु, स्नायु से यह बात सुनी. किसी विदारक माध्यम में तैरते हुए भी उसकी चेतना ने अपने को खोया न था. पूछा, "ऐसी पापी बातें क्यों करते हैं? देनी में तो हमने कोई कसर नहीं रक्खी. सास का संदूक भैया ने कितनी महंगी-महंगी साड़ियों, चादरों, ब्लाउजों से भरा था. दामाद कुछ नहीं बोलता? एक जबान किसी को ऐसी निषिद्ध बात कहने से नहीं रोकता?"

"नहीं मां. वे रोज रात में मुझे सताते हैं— तरह-तरह से यही बात कबुलवाते हैं, जैसे अपराधी से अपराध स्वीकार कराने पर तुले हों. मैं सब सहती हूं— सुनती हूं."

शिवा ने अपने अंतस्तल को हर प्रकार टटोला— चंदू से संपृक्त कर उसमें कहीं भी कोई खोट पाने की हरचंद चेष्टा की है. पर उसे देखकर— उसकी करुणामयी निष्ठा की उष्माहट से पति की मूर्ति यदि गोपन, निभृत, मीठी भाषा में उसके पोर-पोर से बोलने लगती है तो कोई पाप है क्या? बेटा बाप की प्रतिमूर्ति मां को लगता ही है— चाहे अपनी कोख का हो, चाहे अपने से पहलीवाली का जाया हो. मां की, बोझिल, आत्मस्थ, स्थिर भंगिमा की वेदना बेटी को और दुख देने लगी. शिवा ने समझाकर कहा, "मेरा दुर्भाग्य है बिटिया! खैर पाप को लगना होता है तो खुद लगता है— किसी के लगाये नहीं. तुम कभी इस बात को लेकर किसी से झगड़ना मत. भैया से तो जिकर तक न हो. भूलकर उसके कान में यह बात न पड़े. मुझसे कह दिया— ठीक किया. मां से छिपाना क्या..."

शिवा को रात भर नींद न आयी. आंखें खोलते, मूंदते, मलते-मलते उसने भोर का पहला स्वर सुना. जागरण की कड़ुआहटभरी उसकी आंखें धूप की तरह उसी के चेहरे को भेद रही थीं. फिर भी घर के कामों में नित्य की तरह लग गयी. कमला की बात में अंर्तग्लानि के साथ भविष्य का भय भी कम न था. भरी जवानी और हर प्रकार चंदू पर ही आश्रित होने की विवशता में भी उसके नारी जीव ने जो बात कभी नहीं सोची वही उसके संबंधियों, इतने पढ़े-लिखे दामाद द्वारा ही उस पर थोपी जा रही है. कमला को रोज-रोज सुनकर कैसा लगता होगा यह सब! रोज-रोज सुनाया जाकर तो झूठ भी सच लगने लगता है. कहीं भैया के प्रति अपार भक्ति-प्यार में पली पनपी उसकी जीभ खुल पड़ी— ससुराल के लोगों से विकट कलह कर बैठी तो... कैसी छिः छिः होगी. मन ही मन चंदू की आत्मा की पीड़ा की कल्पना पर वह सिहर उठी.

दौड़ धूपकर विमला के लिए लड़का तय हुआ. इंटर तक पढ़ा है. घर का काम देखता है. खासी संपत्ति है— जमीन है. चंदू के बार-बार कहने पर इस बार भी शिवा ने यही उत्तर दिया, "तुमने देखा है, पसंद किया है तो मेरा देखना क्या? उनके न रहने पर तुम्हीं ने मां-बाप दोनों का धर्म निबाहा है. मुझे घर की दासी ही मानो. तुम्हारी हर मरजी में मेरी पूजा है. खर्च का खयाल जरूर रखना. कहां तक मैं निकाल-निकालकर दूंगी— कहां तक तुम बाहर से लाओगे."

चंदू ने मां की असमय बूढ़ी और चिंताग्रस्त हो गयी मानसिकता समझी. बोला, "पैसा तो खर्च होगा ही. लड़की के पिता नहीं है— सौतेला बड़ा भाई विवाह कर रहा है— लड़की मैट्रिक पास है, यही सुनकर लोगों के कान खड़े हो जाते हैं. कितने खर्च का मेरा संकल्प है— बराबर पूछते हैं."

शिवा ने पूछा, "तुम क्या जवाब देते हो भैया?"

चंदू कहता, "मैं उन्हीं पर छोड़ देता हूं. हमारे पास कुश और कन्या है. लड़की रूप, गुण, पढ़ाई-लिखाई में शहर की लड़की से कम नहीं है. मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है. बहनों को ब्याह दूं, उऋण हो जाऊं."

"साफ बता क्यों नहीं देते. हमें अभी दो को पार लगाना है. हम इतना ही दे सकते हैं. शादी में खिलौने-पिलाने, गांव, घर, बरात की खातिरदारी में कम खर्च होता है? न मानें दूसरा घर देखो. तुमने इन्हें पढ़ाकर, पास कराकर भूल की. मैं मना करती रही, तुमने नहीं सुना. सिर पर चढ़ा-चढ़ाकर इनके हौसले बढ़ा दिये. साधारण घर-वर देखो— दाल-रोटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती जाये. सब कुछ लुटाकर फकीर नहीं बनना है. अभी इस पगलौट को ब्याहना है— लंगड़ी उमा की जिंदगी पार लगानी है. तुम कितना करोगे..."

विमला का ब्याह उसी धूमधाम से हुआ. दूसरा दामाद शिवा को पहले से ज्यादा शांत स्वभाव का लगा.

उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी. मां का अकेला बेटा था. शिवा को संतोष हुआ विमला जैसी दुर्मुख को निभा लेगा. सास भी इकलौती बहू को पूरा प्यार देगी.

सब को आश्चर्य था— कमला के यहां से विवाह में कोई न आया था. कमला को तो चंदू विदा करा लाया था पर इस बार उसकी ससुराल के लोगों का व्यवहार उसे अपमानजनक लगा था. कमला से वहां से चलते समय जो बातें कही गयी थीं, वे कम अपमानजनक न थीं. उसे पूरी शंका थी कि उसकी बहन के विवाह में पति, ससुर, देवर आदि कोई न आयेंगे. यही हुआ भी. पर इसके बाद जब महीनों कमला को कोई लेने न आया— न उसके पति का उसके नाम या घर के नाम कोई पत्र तब वह शंका से भर गया. चलते समय सास ने सबको सुनाकर कहा था, "ऐसे घर से हमें नाता नहीं रखना जहां कि बहू की मां अपने सौतेले बेटे की रखैल हो." भैया को घर की कलह विदित न हो, यह सोचकर कमला खून के घूंट पीकर रह गयी थी. एकांत पा पति से उसने स्वाभिमान से रुंधे कंठ से पूछा था, "क्या तुम भी औरों जैसा सोचते हो..."

पति ने कहा था, "बिलकुल. जिसने सौतेली मां को नहीं छोड़ा, वह जवान सौतेली बहनों को छोड़ेगा...?"

कमला रोम-रोम में बिच्छू के डंक की पीड़ा लिये भाई के साथ चली तो आयी थी पर बहन के विवाह का उल्लास ससुरालवालों के इस कलंक-व्यवहार ने भाप की तरह उड़ा दिया था. छाती पर बोझ रखे उसने विवाह में पूरा योग दिया— सारे काम किये. मां को कोई भनक तक न लगने दी. उसकी उदासी चंदू से छिपी न रही. विवाह की हलचल और कामकाज की भीड़-भाड़ में तो सबका ध्यान उसी ओर था. सब कुछ निपट जाने, विमला की पहली विदा करा लाने के बाद भी कमला को वैसा ही विषण्य और किसी अदेखे अंधकार में अंतर्धान जैसा लगातार पाकर एक दिन चंदू ने पूछा, "क्या बात है, जब से तुम यहां आयी, एक बार भी हंसी नहीं. वे लोग कोई न आये. रज्जन (कमला का पति) से आते-आते मैं आग्रह कर आया था. पिताजी से भी... क्यों नहीं आये आखिर! पांच महीने हो गये. कोई पत्र नहीं— तुम्हें विदा कराने की चर्चा नहीं."

कमला का हृदय उमड़ पड़ा. मां की सारी हिदायत एक तरफ पड़ी रह गयी. उदासी भरी ग्लानि से रोने को आ गये स्वर से उसने भैया को सब बताया. सुनकर चंदू पहले तो सन्न रह गया— लकवा मारे अंग की तरह. फिर धीरे-धीरे अपने को समेट-सहेजकर बाहर चला गया. युवती विमाता को लेकर उसके सगे-संबंधी उसके प्रति ऐसी गर्हित, पापिष्ठ धारणा बना कर उसकी निरपराध बहन को इस प्रकार प्रताड़ित कर सकते हैं— यह उसकी समूची भावना को खून से तर-बतर कर रहा था. शिवा ने कमला द्वारा चंदू से कही पूरी बात बेटी के मुंह से सुनकर केवल इतना कहा था, "अच्छा हुआ भैया ने तुमसे सब सुन लिया. सच्चे कलंक से जल्दी झूठा कलंक फैलता है... मेरी देह को लेकर उन्हें यह सुनना बदा था... क्या सोचते होंगे?"

पर सारा संवाद सोचने तक ही रह गया. चंदू ने न मां से कुछ कहा, न शिवा ने बेटे से. भीतर-भीतर दोनों का अंतर्मंथन चाहे जितना तीव्र रहा हो, ऊपर से सब वैसा ही प्रकृतिस्थ रहा. कमला पूरे घर पर छाये विषाद का कारण अपने को मानकर जितनी कुंठित रहती, विमला उतनी ही निद्वंद्व और हंसती-बोलती, नवयौवना जैसी प्रगल्भ बातें करती. लंगड़ी उमा घर भर की उपेक्षा का पात्र बनी थी. चंदू का जितना भी ध्यान होता उसकी ओर आ जाकर पछाड़ें खाता. घर भर में उड़ने-फिरने, फुदकने को जन्मी चिड़िया के चंचल परों को किसी ने काटकर जैसे उसे कठोर धरती पर पटक दिया हो जिसकी घिसटन देखकर चंदू के मन में स्नेहिल करुणा ही उमड़ती. कमला के इस दुखद अपवाद के साथ चंदू इतने घृणित रूप में लिपटा था यह सोच सोचकर शिवा अकेले में ग्लानि और भय से रोती रहती. ससुराल वालों ने उसे त्याग ही रखा है— कमला भी वहां की बात चलते ही घृणा से कंटकित हो उठती है. उसके होंठ किसी अनहोनी क्रूरता से भिच जाते हैं. उसके तन-मन का मोहक नारीत्व इस बाहर से न दिखाई देनेवाली आग में दह-दहकर रक्तहीन, मज्जाहीन होता जाता है.

जो न होना था, वही हुआ. कमला को उसके पति-परिवार ने सदा के लिए छोड़ दिया. कलंक की सारी अकथनीय लज्जा को छोड़कर शिवा ने चंदू की बात सुनी. वह कमला के ससुराल के लोगों से बात करने गया. उसके सुशिक्षित पति से तरह-तरह से आरजू-मिन्नतें कीं. पर वे लोग तनिक न पसीजे. कमला को बुलाने के लिए— अपने घर में स्थान देने

ओहदा

संत चुआंग त्सू मछलियां पकड़ रहे थे कि च्यू राज्य के बादशाह ने अपने दो उच्चाधिकारी उनके पास संदेश देकर भेजे कि वे उसके मुख्य मंत्री बनकर च्यू राज्य की जिम्मेदारी संभालें.

सुनकर चुआंग त्सू उसी प्रकार मछलियां पकड़ने में व्यस्त रहे और अधिकारियों की ओर मुंह मोड़े बिना उन्होंने कहा, "मैंने सुना है कि च्यू राज्य में एक बहुत बड़ा पवित्र कछुआ पिछले तीन हजार साल से मरा पड़ा है और बादशाह ने उसे बड़ी सावधानी से एक संदूक में बंद करके अपने पूर्वजों के मंदिर की बलिवेदी पर रखा हुआ है. क्या वह कछुआ यह चाहेगा कि उसके अवशेषों को सुरक्षित रखा जाये, या चाहेगा कि वह जीवित रहे और किसी पोखर के कीचड़ में अपनी दुम हिलाये?"

"बेशक वह जीवित रहना पसंद करेगा," अधिकारियों ने कहा, "और चाहेगा कि कीचड़ में अपनी दुम हिलाये."

"तो फिर जाओ!" चुआंग त्सू ने कहा, "मैं भी कीचड़ में अपनी दुम हिलाना चाहता हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी से पहले और बाद ताकत व जवानी के लिए मिलें या लिखें

मिलने का समय :
सुबह 11 से 1, शाम 6 से 7.30
रविवार सुबह 11 से 1 (केवल)

कीमती पुस्तक पत्र लिखकर मुफ्त मंगवाएं

अगर आप कई जगह से इलाज करवाकर भटक चुके हैं तो आईए, हम आपको ताकत व जवानी की दौलत से मालामाल कर दें। हमारे खानदानी शफ़ाख़ाना के चार पुश्तों से चले आ रहे कीमती नुस्ख़े जो किसी ज़माने में सिर्फ राजे-महाराजे, खान, नवाब व रईस-लोग ही इस्तेमाल कर सकते थे, अब आप भी हमारे उन कीमती शक्तिवर्धक खानदानी नुस्ख़ों को इस्तेमाल करके अपनी खोई हुई सेहत, ताकत व जवानी फिर से प्राप्त करके दीर्घायु तक सुखी विवाहित जीवन का भरपूर लुत्फ उठा सकते हैं। अगर आप बचपन की गलतकारियों की वजह से अपनी ताकत व जवानी खत्म कर चुके हैं, तो परेशान न हों। हमारे सैक्स स्पैशलिस्ट (Sex Specialist) से जल्द मिलकर या लिखकर जल्द लाभ उठाएँ। अपने दिल की बात आज ही डॉक्टर साहब से स्वयं बता दें या लिख दें। अधिकतर पुरुष शर्म, संकोच या अपनी कमजोरी छिपाकर विवाहित जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा करने से आपका जीवन नष्ट हो सकता है। लेकिन समय पर सही सलाह और सही इलाज से दुख को सुख में बदला जा सकता है। खानदानी शफ़ाख़ाना दिल्ली में कई मरीज आकर दिल की मुराद पाते हैं।

Note: पत्र व्यवहार से भी इलाज होता है। जो लोग नहीं आ सकते, पत्र में पूरी तफसील लिखकर घर बैठे मशवरा व दवाएँ प्राप्त कर सकते हैं। पत्र व्यवहार गुप्त रखा जाता है। दुनिया के कोने-कोने से खानदानी शफ़ाख़ाना के इलाजों के लिए मनी आर्डर, ड्राफ्ट, पौंड, डालर इत्यादि आते हैं

Note: विदेशों के लिए जरूरी सूचना

हमारे इलाज भारत के इलावा विदेशों के हर मुल्क में भी जाते हैं। विदेशी भाई रकम एडवांस में भेजें। दवाएँ हवाई जहाज से भेजी जाती हैं।

खानदानी शफ़ाख़ाना

4/12, पहली मंजिल (नज़दीक ब्राडवे होटल)
आसफ अली रोड़, नई दिल्ली -110 002
फोन : 267709, 269650

को तैयार न हुए. चंदू को उसके मुंह पर बदचलन और सीता की मां को छिनाल कहा. चंदू से अधिक न सुना गया. वह उमा जैसा अपाहिज मन लिये ग्लानि की कालिमा में डूबा लौट आया. मां को सब बताते समय उसका मुंह विदीर्ण हुआ जा रहा था. शिवा ने उसकी इतनी छलछलायी आंखें आज तक न देखी थीं. पर उसके चेहरे पर अद्‌भुत शांति थी जो उसके तेज से झुलस-झुलसकर भी स्थिर, अकंप थी. बोली, "तुम देखना भैया! इन पापियों का पाप इन्हें खा जायेगा. भगवान अभी मरा नहीं है." चंदू को लगा जैसे वह अपनी शील-शुचिता के चीर-हरण जैसी अपमान-पीड़िता मां के सामने अपना अभिशप्त विधुर मुख किसी प्रकार नहीं उठा पा रहा है.

कमला ने गांव की प्राथमिक कन्याशाला में नौकरी कर ली. मां ने वंश-परंपरा— घर की, पुरखों की दुहाई दे-देकर उसे बारहा रोका पर चंदू ने मां को शांत कर बहन को नौकरी करने दी. इसी में वह अपना विषम दुख दाह भूल सकेगी. उमा को किसी मृतक की भांति बिस्तर पर छोड़कर घर बाहर का काम संभालने का शिवा का वही क्रम चलता रहा. सीता यों तो बिलकुल ठीक थी पर आठवीं कक्षा के आगे न बढ़ पायी. छाती की किसी मुंदी चोट की तरह अपनी और माता की सारी अंतर्ग्लानि को सहन करता हुआ चंदू सीता के ब्याह की चिंता में डूब गया. वह सोलह वर्ष की ही थी पर शरीर के उभार चढ़ाव में बीस से कम न लगती थी. शिवा उसे देखकर कभी-कभी दहल जाती थी. उसके विषाद की रेखाएं बेटी के पास बैठते ही और गहरी हो जाती थीं.

चंदू के अनेक बार मना करने पर भी शिवा का सीता की चढ़ती जवानी को कोसना कम न होता था.

दोनों लड़कियों के प्रति तिक्त घृणा से भरपूर होने पर भी शिवा का मन आत्मा के छोर तक अंसुआ उठा जो न जाने कैसे बहुत दूर परलोक में बलई मिसिर की मूर्तिमान आत्मा के पास जा पहुंचा था.

सीता के लिए एक दुहाजू लड़का तय हुआ. चंदू तो हिचक रहा था— यद्यपि पत्नी ने कोई संतान न छोड़ी थी. पर 23-24 वर्ष का दोहरे बदन का स्वस्थ तैयार युवक था और सीता जैसी भरी-पूरी के लिए ऐसी ही जोड़ी ठीक रहेगी, इसे भी भली भांति अनुभव करता था. शिवा ने पहले ही कुंवारे और दुहाजू का भेद न मानकर हामी भर दी थी. पैसे की मांग कुंआरे वर से कम न थी. मां को बिना बताये दो बहनों के ब्याह में आधी जमीन बेची जा चुकी थी. इस बार बात शिवा से कैसे छिपती? चंदू उसी दौड़-धूप में लगा है— जमीन न बेचकर इस बार आम का बगीचा बेच रहा है, यह जानकर उसके नीचे से जमीन खिसक गयी. बोली, "बगीचा नहीं बिकेगा! तुम्हारे दद्दू ने दीदी (चंदू की मां) के सामने उसे लगाया था. दोनों की निशानी मैं गैर के हाथ न जाने दूंगी. उनका, मेरा, बहुरिया का जेवर मेरे पास रखा है. क्या होगा इस सबका! इसे बेचकर नकदी की मांग पूरी कर दो. सोने का भाव भी पहले से बढ़ा-चढ़ा है. उमा के ब्याह के लिए भी बचा लेना."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने कैसे विकलांग उमा के शरीर की सारी करुण असमर्थता और फूटी किस्मत को जानकर भी शिवा उसके विवाह की बात जाने-अनजाने बोल ही जाती थी. मां का आखिरी प्रजनन के प्रति अवचेतन स्नेह था यह, या उसी से जन्मे चिर सेवित स्वप्न का मोह जो उसके प्रति धुंधुआती कर्कश घृणा में भी उभर आता था.

और भी दो-तीन लड़के चंदू की दृष्टि में थे पर लड़की से जोड़ी न मिलती थी. कुंडली भी इसी से अच्छी बन रही थी. कमला की कुंडली भी तो अच्छी मिली थी पर अंत में कैसी अपमानभरी वेदना उसे बदी थी. चंदू का विश्वास इस ढकोसले से हट चुका था. पर शिवा का अंध विश्वास उसे पकड़े बैठा था. चंदू मां से सारे गुणदोष बताकर ही तय करता था— यद्यपि अपने में खोयी-खोयी और चंदू के बैठने पर अपने को ढूंढ पानेवाली शिवा ने उसी पर सब छोड़ दिया था. जीवन के रंगमंच पर वह पति के समय जैसी-ही विश्वास में डूबी अधीनता की भूमिका निभा रही थी.

. कमला, विमला की तरह सीता का ब्याह भी धूमधाम से हुआ. मोटी-ताजी सीता को अधिक से अधिक सिकोड़-सिमटा कर मंडप में बैठाये कमला का मन अपने ब्याह की बात बिसूर-बिसूरकर व्याकुल हो उठता था. इसी छोटी बहन को भैया ने बीसों बार शहर ले जा-जाकर हजारों रुपये का इलाज कर और मां से बराबर उसका पक्ष ले-लेकर झगड़ा कर अच्छा किया है— आठवीं तक पढ़ने की बुद्धि— सब ठीक-ठाक समझने बूझने का भावबोध उन्हीं के उपचार-सेवा से उसे मिला है. उसका ब्याह हो रहा है— ससुराल जाने लायक हो पायी है, क्या कम भाग्य की बात है. अभागिन उम्मी वैसी की वैसी रह गयी. भैया तो उसके इलाज के लिए भी वैसे ही तत्पर थे पर खंडित अंग कहां से लाये जाते? कमला शिवा की तरह भाई के प्रति भक्ति-भाव से भर गयी. मां के किसी प्रकार तैयार न होने पर आज तीसरी बार वे कन्यादान कर रहे हैं. दूर ओसारे में लगभग अर्धमूर्छित मां को संभाले विमला बैठी है. सारा घर औरत, मर्द, रिश्तेदारों से भरा है. यौवन के प्रथम चरण में ही लगे आघात के फल-स्वरूप अपनी आयु से लगभग दूनी समझदार हो आयी कमला को मां की, भाई की और अपनी जीवनशून्यता आछन्न किये है. गुड़मुड़ी-सी बहन को भली भांति संभाले वह पत्थर-सी भावहीन बैठी है.

सीता चली गयी. विमला भी गयी. शिवा का मन जितना तीन बेटियों को ब्याह कर हलका हुआ था उतना उमा की चिंता से अब उठते-बैठते घिरा रहता. चंदू का स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि उसका श्रीहीन चेहरा और नीली पड़ती जाती आकृति शिवा से देखी न जाती थी. प्रबल पुरुष-सत्ता की सारी सजीव झलक जैसे सदा को तिरोहित हो गयी थी. जिस कमनीय कांति की ओर पति के जीवन काल में एक बार नजर पड़ जाने पर विमाता शिवा की दृष्टि मुश्किल से हटती थी उसे देखकर आज रुलाई आ जाती है. शरीर से पंगु पर बड़ी हो आयी उमा को अब भैया उठा कर ले जाना भूल जाते हैं तब वह किसी न किसी प्रकार घिसटकर उनके पास पहुंच जाती है, जहां वे अवसन्न पड़े रहते हैं. कुछ देर तक भैया को वैसा ही शिथिल आंख मूंदे निश्चेष्ट पड़ा रहते देखकर वह उसी कठिनता से घिसटकर रसोई बनाती मां के पास आती है,

"अम्मा, भैया को क्या हो गया है? मुर्दा जैसे पड़े हैं."

"चुप अभागिन— कैसा अमंगल बोलती है"— कहती हुई झपटकर शिवा लड़के के कमरे में आती है. तवे पर सिकती रोटी पड़ी रह जाती है. पीछे-पीछे घसिटती उमा फिर उसी ओर बढ़ती है. मां उसे कभी कहीं उठाकर ले जाना जानती नहीं.

शिवा अब बिलकुल बदल गयी है. चंदू के सिर पर हाथ फेरने में, उसे छूने में कोई संकोच नहीं होता. जब छोटा रहा होगा तब ब्याह कर बलई मिसिर ले आते तो जैसा करती वैसा करती है. चंदू की देह हिलाकर कहती है, "भैया भैया! इतने निढाल लेटे हो, क्या बात है?"

चंदू शिवा का स्पर्श पाते ही आंखें खोलता हुआ उठ बैठता है. मां के हाथ की गरमी बता रही है वे चूल्हे के सामने से उठकर आयी हैं. उनके मुख पर वही निरीहता, वही दरिद्र आग्रह, वही विकलता छायी है जो एक मात्र पुत्र की जननी मां के सगेपन में होती है, "तुम चौके में जाओ मां. मैं थोड़ा थक गया था. तंद्रा छा गयी थी. तुम्हें कैसे..."

"उमा तुम्हारे पास आयी थी. कमला तो घंटे भर पहले स्कूल गयी. उसी ने जाकर मुझे डरा दिया. तुम तो जाओगे नहीं, मैं वैद्य जी को बुला लाऊंगी. अब तो गांव में डाक्टर भी है... लगता है महीनों की बीमारी तुममें उतर आयी है..."

उम्मी को तो चंदू उठाकर लाया नहीं. वही घिसटती हुई आयी होगी. वैसे ही पूरा ओसारा, आंगन पार कर मां से कहने लगी. वैसी ही कढ़िलती जरूर आ रही होगी. यही सोचकर चंदू चारपाई से उठकर ओसारे की ओर बढ़ा जिसे उमा ने अभी आधा ही पार किया था. झपटकर उसे प्यार से गोद में उठाये शिवा से बोला, "तुम चौके जाओ. कमला दोपहर की छुट्टी में खाने आयेगी. बारह बज गया है."

शिवा ने अपने को सर्वथा भूलकर कहा, "नाश हो इन अभागिनों का! तुम्हारी ऐसी गति बना रखी है." कहते-कहते उसकी दृष्टि चंदू के विदीर्णता-कातर मुंह पर गयी तो वह अवाक् चौके लौट आयी. बिना लड़के के कुछ कहे शिवा को अपने कहे भर्त्सना के शब्द आरे की तरह काटते रहे. आज पहली बार उसकी आत्मा क्षत-विक्षत हुई थी. स्कूल से आने पर कमला को यह सब बताये बिना उससे न रहा गया. कमला ने डूबते कंठ से केवल इतना कहा, "भैया उम्मी को बेहद चाहते हैं. हम सबमें वही सबसे... तुम उसे कुछ न कहा करो. वे और दुखी हो जाते हैं."

मां-बेटी एक दूसरे का मुंह ताकती रहीं. कुछ देर मरघट की सी चुप्पी दोनों की विषादाहत मुद्रा पर छायी रही.

तीसरे पहर कमला को घर पर छोड़कर शिवा सचमुच वैद्य जी के घर पहुंच गयी. इतने दिनों में सभी उसके खुले निर्भीक स्वभाव की चर्चा सुन चुके थे, यद्यपि वह आज शायद पहली बार गांव में किसी के द्वारे आयी थी. वैद्य जी उसे घर चलने को कहकर पास बैठे मरीजों के जाते ही आने को बोले. शिवा ने देखा— चंदू सुबह जैसा ही निढाल पड़ा था. बीच-बीच में आंख खोलकर एक ओर शांत उदास बैठी उमा को देख लेता था जो दिन भर घिसट-घिसटकर उसके पास आती रहती थी. मां के वैद्य को बुलाने जाने की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी से सुनकर चंदू अचकचा रहा था, तब तक शिवा आ पहुंची. उमा को गोद में लेकर चंदू इधर-उधर की बातें कर रहा था. शिवा की आंखों में संयम से काम लेने पर भी घृणा की लौ लहक उठी. बोली, "तुम्हारा पीछा क्यों नहीं छोड़ती यह अपाहिज! इतना बड़ा घर पड़ा है, इसे कहीं ठिकाना नहीं!" पर चंदू के मुंह पर उमड़ आये याचना के असह्य ज्वार को देखते ही उसने फौरन बात बदल दी. "वैदराज आ रहे हैं. जैसा वे कहेंगे तुम्हें वैसे चलना होगा... कौन बीमारी सी बीमारी है यह! सारा खून सोखे बैठी है."

चंदू के कुछ कहने तक वैदराज आ गये. पहली बार उमा को गोद में उठाकर शिवा ने सामने जमीन पर रख दिया. वैद जी नाड़ी को ध्यान से देखकर तरह-तरह के प्रश्न करने लगे चंदू को जैसे इस संबंध में कोई रुचि ही न थी. शिवा ही सिरहाने खड़ी बीच बीच में बोल देती थी. अनुभवी वृद्ध वैद्य के मुख पर गंभीरता बढ़ती पाकर शिवा शंकित हो उठी. मंदज्वर का प्रकोप— पित्त निष्क्रिय और शक्तिहीनता का प्रतिदिन बढ़ता वेग. वैदजी ने कहा, "महीनों का मर्ज मालूम पड़ता है. खैर असाध्य तो नहीं पर कष्टसाध्य है. जीवन के प्रति घोर अरुचि ऐसी जो नाड़ी तक से साफ झलकती है..."

शिवा की आंखें गीली हो गयीं. बोली, "आपसे क्या, पूरे गांव से कुछ नहीं छिपा है. घर फूंक तमाशा देखकर तीन-तीन को क्या ब्याहा. मेरी कोख भैया के लिए काल हो गयी. यह छाती का पीपल अभी बैठी है. आप ऊंची से ऊंची दवा दें... पैसे का खयाल न करें. सेवा में कमी न होगी."

बलई मिसिर की अधबूढ़ी विधवा गृहिणी को आज पहली बार वैद्यजी ने सिर से पैर तक देखा— उनकी मनोव्यथा जानी. बोले, "मैं तो सब करूंगा ही पर इन्हें शरीर और मन का पूरा आराम चाहिए. शक्ति बढ़ते ही सुबह वायु-सेवन— फिर दिन-रात पूरा विश्राम. कोई उत्तेजना या तनाव इन्हें न हो. आप लोग इनके मन को कण भर न दुखने दें. राजयक्ष्मा होते देर न लगेगी. भगवान की दया से कफ अभी शुद्ध है पर पित्त-वायु दोनों बिगड़े हुये हैं. चंदू भैया, तुम खुद पढ़े-लिखे समझदार हो. मां का संताप समझो. नियम से दवा खाओ. सारी चिंता छोड़ दो."

चंदू का इलाज शुरू हो गया. शिवा की रुलाई उसे चारपाई पर पड़े रहने, समय पर दवा खाने और हर प्रकार के पौष्टिक खान-पान के लिए मजबूर किये थी. दिन में बार-बार शिवा आकर देख जाती. उमा को नीचे बिछे बोरे पर शांत निश्चेष्ट पड़े चंदू को दयनीय दृष्टि से देखते पाकर मन ही मन न जाने क्या क्या सोचती घर के काम में लग जाती. सीता भी स्कूल के घंटे छोड़कर भैया के पास ही रहती. चंदू झल्लाकर कहता, "मुझे कमरे में कैदी बना रखा है! मुझे हुआ क्या है जो यह सब किया जा रहा है? बाहर निकलूं— तो बाग बगीचे का जो बचा हुआ है उसे संभालूं."

प्रत्येक बीमारी अपने में एक अराजकता होती है. अस्वीकृति और विरोध की मानसिकता. चंदू ने शिवा के रोने-धोने पर ध्यान न देकर घर-बाहर का काम पूरे श्रम के साथ देखना शुरू कर दिया. भैया की गोद में जाकर, उनके द्वारा ढोयी जाकर इतने दिनों की अवसन्न उमा निहाल हो उठी. दवा खाने में भी लापरवाही हो चली. असहाय शिवा रोकर रह गयी.

उमा की औसत बुद्धि में कमी न थी. शरीर की कुरूप विछिन्नता ने मस्तिष्क को क्षति नहीं पहुंचायी थी. उसका स्कूल जाना संभव नहीं है, यह सोचकर चंदू ने उसे घर पर पढ़ाना शुरू कर दिया. लड़की का हीनता का भाव कुछ तो कम होगा और उसे जीवन इतना भूभार न लगेगा. प्रत्येक वार्तालाप को भांपने की उसकी क्षमता शिवा को पसंद न आती थी. अब चंदू का अपना इलाज भूलकर घंटों बाहर मेहनत करना और घर में उमा को इतना सिर चढ़ाना उसे बिलकुल न भाया. उसका श्रीहत प्रौढ़त्व अब बराबर के सगे लड़के के सामने जैसा चंदू के सामने भी संकोच त्याग चुका था, जो लड़कियां जनते-जनते और पालते-पोसते अधेड़ खुलेपन का रूप ले चुका था. झल्लाकार बोली, "इस नासकोटी को तुमने फिर लपेटना शुरू कर दिया! गोद में लादे इस कमजोरी में भी गांव में घूमते हो! क्या कहते होंगे इस फूहड़ को तुम्हें ढोते देखकर?" कहते-कहते शिवा सचमुच भूल जाती कि उमा के लिए उसकी या बहिन द्वारा

जवानी का जोश

सत्यजीत राय

फिल्म सोसायटी प्रारंभ करने के दो वर्ष पूर्व मैंने 'पथेर पंचाली' के एक संक्षिप्त संस्करण के लिए विवरणात्मक चित्र बनाये थे. उस समय मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर एक फिल्म है. यह एक उड़ता-सा खयाल था. लेकिन उसके बाद जब भी मैं कोई बंगला कहानी या उपन्यास पढ़ता तो मेरा दिमाग उसमें सिनेमा की संभावनाएं खोजता.

ऐसा ही एक उपन्यास रवींद्रनाथ का 'घरे-बाइरे' था. उन दिनों मैं एक ब्रितानी विज्ञापन एजेंसी में कलाकार के रूप में नौकरी कर रहा था. अपने खाली वक्त में शौक के तौर पर कभी-कभी फिल्म की पटकथा लिखता था. इसी तरह 1948 के करीब कभी मैंने 'घरे-बाइरे' की पटकथा लिखी. जब एक निर्माता को यह पसंद आ गयी तो वह एक खास तरह का अनुभव था. उनके साथ एक अनुबंध पर हस्ताक्षर भी हुए. तय हुआ कि मेरे मित्र हरिसाधन दास गुप्ता (प्रसिद्ध लघुचित्र व वृत्तचित्र निर्देशक) इसका निर्देशन करेंगे. मेरा काम पटकथा लिखकर समाप्त हो गया था.

निर्माता ने बाद में पटकथा पर पुनर्विचार कर उसमें कुछ परिवर्तन करने का सुझाव दिया. जवानी के जोश में मुझे यह बर्दाश्त नहीं हुआ. फिल्म क्षेत्र में पहले ही अवदान पर ऐसा समझौता कर अपने आपको कलंकित कैसे कर सकता था! बात बढ़कर अटक गयी. और योजना खत्म हो गयी. तब भले ही दिल डूब गया था, किंतु आज पैंतीस वर्षों बाद यह कह सकता हूं कि उस फिल्म का नहीं बन पाना एक सौभाग्य की बात थी. अब उस पटकथा को पढ़ने पर लगता है कि वह कितनी सतही और हालीवुड से प्रभावित थी. □

(आत्मकथा से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कही गयी कोई भी अपमानकर बात चंदू को बिद्ध कर देती है. न जाने कहां की कैसी ममता है इस बूढ़े हो आये भाई की उसके प्रति! मां का अपनी जायी असहाय, असमर्थ संतान के प्रति ऐसा विवेकहीन प्रतिरोध चंदू को अमानवीय लगता—वह स्तब्ध रह जाता. कभी-कभी मां की पूरी जिंदगी उसकी आंखों के सामने घूम जाती है तो वह भीतर उमड़े जल से भीग जाता.

चंदू की बीमारी बढ़ती चली जाती थी. शिवा जब तब डाक्टरी इलाज कराने की ज़िद करती. वैद की दवा से फायदा न होगा. सीता को लेकर इतनी बार लखनऊ गये थे. जाकर अपने को दिखाओ—कमला को साथ ले लो. गांव का डाक्टर तो ऐसा ही है. तभी तो वैदजी के सामने उसकी नहीं चलती. पर पूरा शहर एक से एक बढ़कर डाक्टरों से भरा पड़ा है. मैं बगीचा बेच दूंगी. तुम खर्च के खयाल से नहीं जाते.

चंदू कठोरता के साथ नाहीं कर देता. शिवा के हठ करने पर झुंझलाता—कभी कभी आवेश में कांपने लगता. उमा मां और भाई का यह रूप देखकर रोने लगती. चंदू उसे उठाकर दूसरी ओर चला जाता. शिवा रोकर रह जाती.

बलई मिसिर के साथ ब्याह कर आने के बाद शिवा एक बार भी मायके न गयी थी. पिता की मृत्यु तक में नहीं. पर चंदू ने औचित्य की मर्यादा पालन की थी. तेरही-बरखी दोनों में गया था. इधर चंदू की निर्बलता बढ़ती जाती थी. खांसी आती तो छाती में जैसे सूखा पड़ गया हो. कफ न निकलता—दर्द होता. कमला मना करने पर भी छाती में वैद जी का दिया लेप गाय के ताजे घी के साथ मलती.

शिवा की मां के देहांत का समाचार आया तो वह शोक विह्वल हो कर देर तक रोती रही. चंदू इधर चार-पांच दिन से ज्यादा बेहाल था. बुखार बराबर बना रहता था. मां से बोला, तुम्हें जाना चाहिए. नाना के मरने पर नहीं गयी. लोग क्या कहेंगे. पिछली बार मामा मामी सभी कह रहे थे. हमारे यहां सभी अवसरों पर वे लोग आये... संबंध निबाहा.

शिवा न गयी. चंदू को इस दशा में वह छोड़ न सकी. कमला को भेज दिया जो भैया को ऐसी गंभीर बीमारी में पाकर बेमन गयी. चंदू का कहना कैसे टालती. मैं जाने में सर्वथा अशक्त... मा जा नहीं रही... तुमको जाना होगा. शिवा की लड़कियों में किसी ने ननिहाल का मुंह न देखा था. मां ने वहां से जैसे कोई रिश्ता रखा ही न था. कमला को नानी के दुख से अधिक भैया की चिंता सता रही थी. पर भैया ने तेरही तक वहां रहने को कहा है. मजबूरी है—स्कूल से छुट्टी ले ली है.

उमा बड़ी होकर भी वैसी ही चलने-फिरने में हाथों के संचालन में अक्षम घर के किसी काम की नहीं. उसके सोच में शिवा का दुख दूना हो जाता. परित्यक्ता कमला का दुख तो समय ने धीरे-धीरे भुला-सा दिया था पर उमा तो छाती पर शिला जैसी जमी थी. चंदू से उसके बारे में कुछ भी बात करने में उसे अमानवीयता लगती. उसका नारी जीव जानता था कि इसी अभागिन के प्रति प्यार और उसी को लेकर दुश्चिंता ने गृहस्थी के भार से टूटते गये बेटे को इतना ढहा दिया है कि अब तो उसके उठ खड़े होने में भी संदेह होता है.

साहित्य अकादेमी

द्वारा

प्रकाशित कुछ नयी पुस्तकें

10% की छूट

आजादी	लेखक	: चमन नाहल	१९८८	रु. ६०
हिंदी कहानी-संग्रह	संपादक	: भीष्म साहनी	१९८८	रु. ५०
कन्नड़ लोक कथाएं	संपादक	: सिपी लिंगण एवं जी. एस. परमाशिवय्या	१९८८	रु. ५०
रामचंद्र शुक्ल संचयन	संपादक	: नामवर सिंह	१९८८	रु. ४०
ग्यारह तुर्की कहानियां	अनुवादक	: मस्तराम कपूर	१९८८	रु. २०
अबुल कलाम आजाद	लेखक	: अब्दुल कवी दस्नवी	१९८८	रु. १५
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'	लेखक	: नरेशचंद्र चतुर्वेदी	१९८८	रु. ५
परमानंद अलमस्त	लेखक	: ओम गोस्वामी	१९८८	रु. ५

डाक व्यय नि:शुल्क

शुल्क मनीआर्डर/बैंक-ड्राफ्ट द्वारा सचिव, साहित्य अकादेमी के नाम भेजें.
अधिक जानकारी और नि:शुल्क सूचीपत्र के लिये लिखें :

बिक्री प्रबंधक :

साहित्य अकादेमी,

'स्वाति', मंदिर मार्ग,
नई दिल्ली-११० ००१
दूरभाष : ३५३२९७

रवींद्र भवन	२९, एल्डाम्स रोड	१७२ मुंबई मराठी ग्रंथ	ब्लॉक V-बी
३५, फीरोज़शाह मार्ग,	तेनाम पेठ	संग्रहालय मार्ग, दादर,	रवींद्र सरोवर स्टेडियम
नई दिल्ली-११० ००१	मद्रास-६०० ०१८	बंबई-४०० ०१४	कलकत्ता-७०० ०२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिंदगी और सच

सर्वश्रेष्ठ हास्य अभिनेता, चार्ली चैपलिन का पुत्र बीमार पड़ा तो डाक्टर ने कहा कि इलाज के अलावा उसे हर समय प्रसन्न रखना जरूरी है. उसके पास कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो उसे ऐसी बातें सुनाये कि वह सुनकर हंसे और खुश रहे.

चैपलिन ने अपने एक मित्र को बुला भेजा, जो खुद अच्छा हास्य अभिनेता था और उसे पुत्र के पास रहने के लिए कहा.

किसी ने चैपलिन से पूछा, "पुत्र के खुश रखने के लिए अपने मित्र को बुलाने की क्या जरूरत थी?"

चैपलिन ने कहा, "मेरी एक दिन की शूटिंग की कीमत हजारों डालर हैं. मैं अपना इतना नुक्सान क्यों करूं, जबकि मेरा मित्र सिर्फ मित्रता के नाते मेरे पुत्र को खुश रख रहा है?" □

हे भगवान! जीवन का यह सहारा भी छीन लोगे तो यह निपूती कहां रहेगी? कमला की पूरी जवानी उसे जीवित वैधव्य को कैसे काटेगी? उमा का क्या होगा... क्या होगा इस भूत जैसी घर की प्रेतनी बनी उसका. अकारथ ही रह गयी वह... पति परिवार के लिये बेकार गयी.

शिवा को आंगन पर टंगा पूरा आसमान काली काली छायाओं से ढका लगता.

कमला को ननिहाल गये अभी तीन ही दिन हुए थे. चंदू सहसा बुरी तरह बीमार हो गया. क्या हो गया था उसे जो कुछ भी ख़ा न पाता. खांसते-खांसते न जाने कितना बड़ा बलगम का लौंदा गले में अटक जाता तो श्वासावरोध होने लगता. शिवा को पहली बार ध्यान देने पर लगा कि सिर के घुंघराले बाल इतने सफेद हो गये हैं. न जाने क्यों उसकी आंखों से झरझर आंसू गिर चलते. धोती के छोर से उन्हें पोंछते पाकर भी चंदू अक्सर एक-आधा शब्द ही बोल पाता—सिर्फ आंखें फाड़े ताकता रहता. न जाने इतनी शक्ति कहां से आ जाती जो नीचे बोरे पर बैठी अपनी ओर आंखें गड़ाये उमा की ओर अपना शरीर मोड़कर दोनों बाहें फैला देता. उमा पंगु कसमसाहट के फड़फड़ाहट चारपाई की पाटी पकड़ने को अकुला उठती.

ऐसी असहाय, निखलंब शून्यता शिवा को कभी नहीं लगी. पति के मरने के बाद भी नहीं. किसी काम में मन लगाये न लगता. घूम फिर कर वैदजी को बुला लाती जो रोगी की एकाएक इतनी बिगड़ गयी हालत पर स्वयं हैरान थे. बदल-बदलकर रस देते पर जैसे मरीज की कंठनलिका के पार ही न उतरते. जीवित व्यक्ति की नाड़ी उतार-चढ़ाव की ऐसी भंगिमाओं में डूबती-उतराती कि उसका छंद छूट टूट-टूट जाता. उमा भी मां की तरह शिथिल पड़ती जाती भयभीत निराशा से वैदजी की आंखों में तैरती किंकर्तव्यविमूढ़ता को देखती जो रोगी के वाकाबंद होने पर हैरान थे. अब तो वे शिवा के बिना बुलाये भी आ जाते थे.

उमा का भूख से मुरझाया चेहरा देखकर मां की ममता जाग उठी. कभी चित, कभी उलटी, कभी पेट के बल लेट कर भी बोरे पर छटपट करती लड़की को गोद में उठाकर खाने को ले जाते शिवा ने कहा, "अभी आती हूं भैया! अपने मुंह से यह खाना मांगेगी नहीं... यहीं बैठी भूखों मर जाएगी... मेरे जी की हत्या है यह."

चंदू की आंखों में आंसू के बूंद बनते बनते रह गये, मानो वहां का भी सारा जल सूख चुका हो.

उमा को खिलाकर—चार कौर खुद खाकर शिवा ने अस्तव्यस्त चौके को संभालना शुरू किया. एक तरफ अरबी, आलू बिखरे पड़े थे. बरतन भांड़े, खेत से कटकर आया नाज, आम का चूरा, दूध-दही के अधभरे खाली बरतन जहां तहां पड़े थे. तालाब से आये सिंघाड़े सूखने को डालने थे. कमला अपनी पहनने-ओढ़ने की चीज वस्तु जहां जैसी थी वैसी छोड़ गयी थी. दो दिन से शिवा को ध्यान देने का समय ही न मिला था. सारे गांव के स्त्री-पुरुष भैया की तबियत पूछने आते. शिवा को उन्हें भी देखना रहता था. उमा तेजी से घिसटती हुई भैया के पास चली गयी. तब तक पास पड़ोस की औरतें आ गयीं. चंदू के एकाएक मरणासन्न हो जाने की बात किसी से छिपी न थी. सीता की ससुराल-वालों द्वारा चंदू और शिवा को लेकर लगाये गये अवैध अपवाद में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने ज्यादा रस लिया था. चंदू की एकाएक हो गयी असाध्य बीमारी में अधेड़ विमाता की मनोदशा भांपने का प्रपंच भाव अधिक था—संवेदना कम. सहन-प्रति सहन की मूर्ति बन गयी शिवा इस सबकी आदी हो चुकी थी. औरतों का मन समझना औरतों के लिए आसान होता है.

उमा भाई की चारपाई के नीचे उसी बोरे पर फिर जाकर बैठ गयी. कमरे की ऊंची देहरी से उसने भैया की ओर देखा—कुछ देर वहीं से उनकी बिलकुल फीकी पड़ी आकृति निहारती रही. उसके देखते-देखते एक मक्खी न जाने कहां से आकर उनकी नाक पर बैठ गयी. भैया को उसे उड़ाते न पाकर उसने वहीं से किसी प्रकार ताली बजाकर उसे उड़ाना चाहा. टेढ़े पड़ गये होंठों से भैया की पुकार उसने सुनी, "उम्मी!"

तेजी से बिना पैर की बछिया की तरह घसिटती वह चारपाई के निकट आकर अपने को ही उठाने लगी. कैसी उछाल उसने अपनी पंगुता के भीतर से निकाली जो दूसरे क्षण वह उनकी चारपाई पर थी.

रोगी में आखरी समय कैसी शक्ति आ गयी जो उसके हाथ आप से आप उमा के घबराहट से अचकचाये मुख पर फिरने लगे. मां की सारी डांट-फटकार भूलकर उसने अपना सिर भैया की तृषित गोद में रख दिया. फिर एकाएक भैया के सिर को निष्प्राण लटक जाते देखकर वह जोर से आर्तनाद कर बैठी. तब तक उनकी पुतलियां उलटते भी अकेले उसी ने देखा.

बाहर उमा की आर्त पुकार को सुनकर मां एकदम चंदू के कमरे की ओर भागी. बीस वर्ष पहले मरे पति का चेहरा आंखों के आगे झूल गया. चंदू की मृत गरदन में दोनों तुड़े-मुड़े हाथ डाले उसकी छाती से सटी अर्धविसंज्ञ उमा मां को अपने पास पत्थर-सी निस्पंद खड़ी पाकर उसकी वेदनाविदीर्ण आंखों से आंख न मिला सकी. चंदू के सर्द शव पर फिर अपना भयाकुल मुंह छिपाकर रह गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. लक्ष्मीनारायण लाल

रचनाकार का आत्म संघर्ष

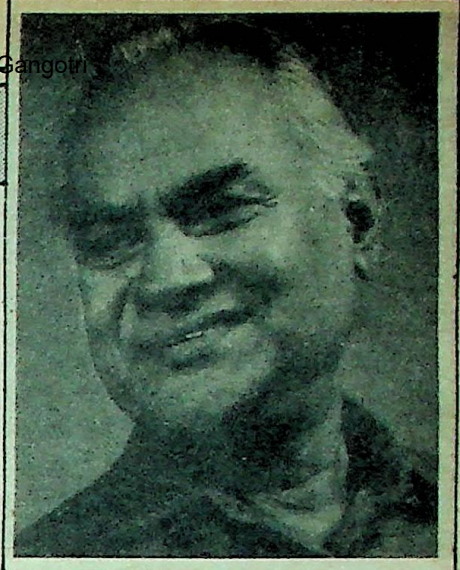

सुप्रसिद्ध कथाकार-नाटककार डा. लक्ष्मीनारायण लाल की पुण्यतिथि (20 नवंबर) के अवसर पर प्रस्तुत है उनके रचनाकार के आत्मसंघर्ष को सामने रखता विशिष्ट आलेख... जो सृजन की प्रक्रिया से गहरे में साक्षात कराता है.

अपने आप से अपना और मनुष्य-मनुष्य में आत्मीय संबंध स्थापित करना और संबंधों को सतत 'देखना', 'रचना' यही है अस्मिता मेरे रचनाकार की. रचनाकार की यह पहचान कोई मेरी नयी पहचान नहीं है. दरसल यही भारतवर्ष के रचनाकार चित्र की पहचान चिरकाल से रही है. जो कुछ भी मैं हूं– जितना जो कुछ मेरे संबंधों के दायरे में आता है– उनसे मेरा संबंध कभी शिथिल न हो, यही मेरे रचनाकार का संकल्प है. रचनाकार के संदर्भ में यह संकल्प विशिष्ट है. क्योंकि यह केवल शास्त्रोक्त नैतिक संबंध नहीं, ये हृदय के संबंध हैं, इसीलिए किसी भी अवस्था में हम रचनाकार स्वयं अपने आप को और मनुष्य मात्र को अपने कार्य साधन के लिए उपयुक्त मशीन या मशीन का एक अंग नहीं समझते. इस बात के अच्छे बुरे दोनों ही पक्ष हो सकते हैं, पर यह हमारी जातीय परंपरा है– भारत की ही नहीं, यह सारे पूर्वी देशों, जगत की पहचान है. मतलब हृदय संबंध के द्वारा हम रचनाकार, नियोजन संबंध को संशोधित कर लेते हैं, तभी हम रचना कर पाते हैं. इसी में हमें विशेष दायित्व भी ग्रहण करना पड़ता है. संबंधबोध के इसी विशेष दायित्व से हमारा संघर्ष शुरू होता है. इस संघर्ष के दोनों पक्ष–बाहरी बुनियादी और भीतरी रचनाधर्मी– इतने प्रबल हैं कि उन्हें शब्दों में बताया नहीं जाता. आप इसी एक ही उदाहरण से मेरे रचनाकार के उस संघर्ष का अंदाजा लगा सकते हैं कि जब भी मैं कुछ लिखने बैठता हूं, तब भी मानव संबंधों के माधुर्य और विष को भूल नहीं पाता. और अपने जीवन के सारे अमृत-विष, जय-पराजय, माधुर्य-अपमान का पूरा दायित्व मेरा रचनाकार स्वीकार करता है. इसी स्वीकृति को अपने आचरण में ढालना और लगातार ढालते रहना, यही है बुनियाद मेरे रचनाकार के सारे संघर्षों की.

मैं एक भारतीय हिंदू रचनाकार हूं– इसे कभी नहीं भूलता न कभी भूलना चाहता हूं. इस भूल विस्मृति को ही मैं अपनी मृत्यु मानूंगा. तभी मेरे भीतर-बाहर का संघर्ष इतना प्रबल है. मुझे ज्ञान है कि सृष्टि के कण-कण में परमेश्वर का अंश देखनेवाले हिंदू समाज ने वर्ण या वर्ग के आधार पर किसी का भी निषेध करने की कभी अनुमति नहीं दी. हिंदू जीवन दर्शन की मान्यताओं और मर्यादाओं ने कभी इतिहास और अखबारों, प्रचार साधनों में से जीवन नहीं पाया. यह अनुभूत जीवन दर्शन है, एक संपूर्ण जिंदगी का– ऐसी संपूर्ण जिंदगी जिसे जानकर, लिखकर, रचनाकार ही नहीं– जिसे पूरी तरह से जी कर एक संश्लिष्ट समाज का निर्माण, इस उद्देश्य से किया था कि वह संपूर्ण सृष्टि-वसुधा को अपना घर, अपना परिवार माने–ऐसा हिंदू मानस और चित्त आज अपने आप में इस कदर सिमट-सिकुड़ क्यों गया. मेरी भीतरी संघर्ष यह है कि मेरा रचनाकार सत्य देखने कहने को प्रकट करने का साहस क्यों नहीं कर रहा. मेरे इस 'क्यों' की धार मेरे अपने ही अज्ञान, भ्रम स्वार्थ, भय, मोह और मजबूरियों को क्यों नहीं काट पाती.

मेरा यह संघर्ष पूर्ण प्रश्न तब पक्ष प्रश्न हो जाता है जब मैं यह देखता हूं कि इस 'क्यों' से लापरवाह अनुत्तरदायी व्यक्ति पूजा जाता है. इस 'क्यों' से जुड़े उत्तरदायी मनुष्य को समय धिक्कारता है. क्यों? और आज मेरे भीतर और बाहर इतना शोर सुनाई देता है कि समय बहुत बुरा है, सुंदर और सत्य की कहीं कोई जगह नहीं है. इस भयंकर शोर से मेरा रचनाकार अपने भीतर बाहर से इस कदर डरने लगा है कि कहीं स्पष्ट नहीं सूझता. ऐसे अंधकार में बहुत आंख गड़ाकर देखने से एक सच्चाई दिखती है कि कहीं 'संबंध', 'रिश्ते' घायल हो गया–और जब तक यह खंडित रहेगा है–उसी में से पैदा हो रहे हैं वे असंख्य कीटाणु जिनसे वैयक्तिक, सामाजिक तनाव पैदा हो रहे हैं.

मैं देखता हूं–देख रहा हूं कि जिस दिन मैंने अपने आप से, दूसरों से अपना रागात्मक संबंध तोड़ा, उसी दिन मेरा सामाजिक मन, चित्त टूट गया. मेरे नाटक 'व्यक्तिगत' में मेरा 'मैं' पात्र 'वह' के साथ एक खेल कर रहा होता है. उस दृश्य में 'वह' कहती है– "मैं देख रही हूं, एक संपूर्ण आइना था, जो टूटकर असंख्य टुकड़ों में बिखर गया. अब उसके हर टुकड़े में वही मैं दिखता है और अपने आप को संपूर्ण कहता है..."

जब संबंधों का एक संपूर्ण भाव खंडित हो गया–और जब तक यह खंडित रहेगा' तब तक यह टूटन टुकड़े दर टुकड़े बनाती' जायेगी, हमें और हमारे जगत को. यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक उसी भाव को पुनः उसी संवेदनात्मक, रागात्मक जमीन पर ले जाकर भारतीय हिंदू चित्र से नहीं जोड़ा जायेगा, जहां रिश्तों की अनुभूति होती है, जहां रिश्ते जिये जाते हैं, यही जीना जहां रचना हो जाता है.

मैं इसी महाभाव को जी नहीं पा रहा हूं– यही मैं मेरे रचनाकार की तड़पन. संबंधों की घायल अवस्थाओं में से जो रिस रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—उसका भयंकर दर्द मैं भोग रहा हूं. इसे कैसे कहूं, किससे कहूं, किस विद्या और भाषा में अभिव्यक्त करूं—कुछ समझ में नहीं आता. बस, तड़पता हूं और चुपचाप देखता रह जाता हूं. मुंह से कभी-कभार राम-राम कह उठता हूं और राम ध्वनि से कांप जाता हूं.

अक्सर मेरा रचनाकार मुझसे पूछता है कि आज क्या संभव नहीं कि उसी भाव के संबंधबोध से प्रत्येक व्यक्ति का सारे देश और परिवेश के साथ रागात्मक संबंध स्थापित किया जाये. हमारा सारा भक्ति काव्य, हमारी सारी संतवाणी, हमारे सारे देवी-देवता, मंगल कर्म, पर्व आदि में वह प्रभाव कहां गया जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण हम सबको इस भारत के साथ भक्ति के बंधन से बांधता था. अपने और दूसरों के साथ वह मंगलमय संबंध क्या फिर प्रत्येक व्यक्ति की अपनी चीज नहीं हो सकती. अपना रचना कर्म, अपनी विधा, अपना स्वभाव, अपना, आत्मगौरव पश्चिमी सोच, विचार, जीवन दृष्टि के हाथ में सौंपकर हम अपने ही जीवन मूल्यों के प्रति अपने प्रयास, अपनी चिंता और अपने हृदय से बिल्कुल ही विच्छिन्न कर देंगे. यह प्रश्न मेरा रचनाकार मुझसे सदा पूछता रहता है और मैं देखता रह जाता हूं—यह कैसे आत्म संघर्ष है मेरा!

मेरा बुद्धिजीवी मानस कभी-कभी मुझे समझाने की चेष्टा करता है कि व्यक्तिगत हृदय का संबंध एक विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त नहीं हो सकता—उसके लिए मशीन की, औद्योगिकीकरण की, पश्चिमी जीवन दृष्टि और साधनों की आवश्यकता होगी और वह पुरानी हिंदू दृष्टि छोड़नी होगी. यह बात असंगत नहीं लगती ऊपर से. पर भीतर से असंगत है यह.

भारतवर्ष केवल यंत्र से, पश्चिम के द्रव्य, वस्तु-बोध और पदार्थ ज्ञान से नहीं चल सकता. यह चलेगा भाव से, भाव, संबंध-बोध से. मेरा रचनाकार अपने पूरे संघर्षों के बीच हाथ उठाकर कहता है कि जहां हमारे व्यक्तिगत हृदय संबंध का हमें प्रत्यक्ष रूप से अनुभव न मिले वहां हमारा चित्र स्वभाव हमारी प्रकृति आकर्षित नही हो सकती. अगर मैं संबंधित नहीं हूं तो जीवन जी नहीं सकता, बिना जिये अनुभव और भाव कहां से आयेगा. अनुभव और भाव बिना और सब कुछ हो सकता है पर रचना नहीं होती. □

पांच साल की उम्र

एरिक हॉफर

बचपन में मैं जब कभी रोता था— वैसे, मैं ज्यादा नहीं रोता था... तो मेरे माता-पिता मुझे एक मेज पर लिटा देते और मेज को धकेल कर एक अलमारी के साथ लगा देते, जिसके कांच के दरवाजे थे. उस अलमारी में पुस्तकें होती थीं. मेरे पिता छोटे शहर के नास्तिक थे—यानी कि वे छोटे शहर में बुद्धिजीवी थे. वे शांत व्यक्ति थे, बहुत ही शांत, और हम दोनों आपस में शायद ही कभी बोलते होंगे. उनके पास वे सभी पुस्तकें थीं, जो एक जर्मन बुद्धिजीवी को अपने पास रखनी चाहिये—विश्वकोश, शब्दकोश, और अन्य कई प्रकार की पुस्तकें. मुझे याद है, वे कहा करते थे, "इस अलमारी में दौलत है." और मैं घंटों उन पुस्तकों से खेला करता, उन्हें करीने से सजाता, आकार या रंगों के हिसाब से उन्हें सिलसिलेवार रखता. मुझे लगता है कि सामान्यीकरण की मेरी योग्यता वहीं से शुरू हुई थी. और क्या आप जानते हैं कि मैंने पांच साल की उम्र में ही अंग्रेजी और जर्मन भाषायें पढ़नी सीख ली थीं? शायद मेरी मां ने इसमें मेरी सहायता की थी, पर मुझे ठीक से याद नहीं. पर मैं दोनों ही भाषाएं आसानी से पढ़ सकता था.

पांच साल की उम्र मेरी नजर में बहुत ही महत्वपूर्ण है. मेरा विश्वास है कि वास्तव में प्रौढ़ बनने के लिए मनुष्य को पांच साल की उम्र की ओर लौटना चाहिये—चीजों को देखने-समझने और सीखने की योग्यता फिर से पैदा करने के लिए. मैं कह सकता हूं अगर पांच साल की उम्र में सारा गणित और भौतिक विज्ञान मेरे कानों में डाला गया होता, तो हमने वहां अपना स्थान बना लिया होता. मैं हमेशा महसूस करता हूं कि पांच साल की उम्र में मैं प्रतिभाशाली बच्चा था, और तब से आज तक मेरा ह्रास होता आया है. □

मुझे सिर्फ विचार विचलित करते हैं...

फिदेल कास्त्रो

सबसे पहले मैं स्पष्ट कर दूं कि कौन-कौन-सी चीजें मुझे विचलित नहीं करतीं. भौतिक सुख सुविधाएं मुझे कतई विचलित नहीं करतीं. दौलत तो किसी कीमत पर विचलित नहीं करती. सम्मान, प्रसिद्धि और ऐश्वर्य की वासना मुझे विचलित नहीं करती. वास्तव में मुझे सिर्फ विचार ही विचलित करते हैं.

अब मेरी स्थिति का विश्लेषण करें. मैं व्यक्तिगत निर्णय कभी नहीं लेता. मैं अपनी भूमिका एक दल के भीतर बतौर एक नेता तय करता हूं. हमारे देश में अमरीका के राष्ट्रपति प्रणाली जैसी कोई संस्था नहीं है. सारे आधारभूत निर्णय-सारे प्रमुख निर्णय-विश्लेषित किये जाते हैं उन पर बहसें होती हैं सारे फिर सामूहिक तौर पर अपनाये जाते हैं. मैं मंत्री या राजदूत नियुक्त नहीं करता. देश के निम्नतम स्तर के सरकारी कर्मचारी को भी मैं नियुक्त नहीं करता. इस कार्य के लिए एक पूरा तंत्र है. जनता की ताकत पर निर्भर राष्ट्रपति कहीं भी व्यक्तिगत निर्णय नहीं ले सकता. न केंद्रीय कार्यकारिणी में और न ही म्यूनिसिपैलिटी और राज्यों में. वास्तव में मेरे पास यही ताकत है. मैं प्रभावशाली हूं पर मेरे पास उस प्रस्ताव की महक भर है. मैं आदेश नहीं देता, मैं तर्क करता हूं. मैं राजाज्ञा से शासन नहीं करता और न ही मैं कर सकता हूं.

(क्यूबा इंटरनेशनल (मार्च, 86) में प्रकाशित एक साक्षात्कार से.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

लौट आइए साहित्य में

मित्रों की प्रतिक्रियाएं मिली हैं. कुछ ने पत्र लिखकर तो कुछ ने मौलिक होकर मुझे उलाहना दिया है कि समीक्षा छोड़कर लेखकों को सीरियलों के लिये लिखने के वास्ते उकसा रहा हूं. मैं उन्हें साधना के कठिन-कठोर मार्ग से हटाकर 'धंधई' के मार्ग पर लाने की जोरजार वकालत कर रहा हूं. 'कथादर्शन' का मूल दर्शन हिंदी के लेखकों को व्यावसायिकता का औचित्य प्रदान करता है. यह शालीन भाषा है. भद्र जन ऐसा ही बोलते हैं. अन्यथा भावार्थ यही है कि बंदा लेखकों को धंधेबाज, और बिकाऊ बनाने पर तुला हुआ है.

एक लेखक मिले. कथाकार हैं. बोले. अरे अब तो 'साहित्य' में लौट आइए. मैंने कहा: 'आपको फलां कवि के दरबार में देखा था. टी.वी. पर रिपोर्ट आयी थी. अच्छा कार्यक्रम था.' सकुचा गये. शरमा गये. मैं उनकी शर्म समझता हूं. बोले, "मैं तो फलां के साथ गया था. पता ही नहीं था कि टी.वी. वाले भी आयेंगे." मैं समझ गया. बोला, "जब कैमरा आया तो हट गये होते." वे बोले, "ऐसा कैसे करते." मैं जानता हूं कैमरे के सामने से हटना कितना कठिन है. वे नहीं हटे. अच्छा किया वरना जीवन भर कोसते रहते कि क्यों हटा. बच्चों से पूछा होगा, "कैसा लगा?" मित्रों से उम्मीद की होगी कि वे बोले, 'अरे भई मिश्र जी! आपको देखा था.' कल्पना की होगी. मित्र जल रहे हैं. साले जानबूझकर नहीं बोलते कि देखा है. मेरे मित्र का ऐसा ही पारदर्शी मनोलोक है.

एक-एक करके दर्जनों मित्र कह चुके हैं कि साहित्य में लौट आइए. वे साहित्य के भीतर खड़े हैं. मुझे हाथ देकर बुलाना चाहते हैं कि आ जा. अभी जगह है. चाहे जहां खड़ा हो जा. साहित्य को तेरी बहुत जरूरत है. साहित्य को यानी हमको. हमें एक समीक्षक चाहिए जो अपना हो. हम लिखें. वह हमें बढ़ाये. ये साला लिखता था. अब जबसे दूरदर्शन के चक्कर में फंसा है. तब से किताबें तो पढ़ता ही नहीं. सिर्फ देखता है. वह भी दूरदर्शन. साहित्य की बात करो. दूरदर्शन की करेगा. अभी लौट आ! यह सेवा का भाव है. ये सब सेवक हैं. साहित्य की साधना कर रहे हैं और समाज की सेवा. वे एक बिछुड़े सेवक को और ले आना चाहते हैं. ऐसे मित्र जब कथारीति पढ़ते हैं तो उन्हें हार्दिक पीड़ा पहुंचती है. हर महीने. मैं जब ऐसों से मिलता हैं तो मुझे पीड़ा होती है.

मेरी पीड़ा के कारण उनकी से भिन्न हैं. जमाना आगे जा रहा है मगर मीगल की तरह सदा आगे रहने वाला लेखक आजकल पीछे जा रहा है. लिखने का माहौल बदल रहा है. यहां तक कि फांउटेन पैन की जगह बॉल पांइट ने कब्जा कर लिया है. कागज महंगा कर दिया गया है. कुछ पहले तक कस्बों से युवा साहित्यकारों के जत्थे अपनी बगल में एक अदद लघु पत्रिका दबाकर साहित्य में घुस आते थे. अब वह चलन बंद हो चला है. बड़ी-बड़ी पत्रिकाएं संकट में हैं. माध्यम संकट में हैं. पुस्तक प्रकाशन संकट में है. क्या कभी कल्पना की थी कि राधाकृष्ण बिक जायेगा?

दो युवा कवियों का काव्य पाठ था. दोनों ही इस वक्त के अच्छे कवि कहे जा सकते हैं. दो-दो संकलन प्रकाशित हैं. काव्यपाठ के बाद हठात् काव्य चर्चा शुरू हो गयी. यहीं दृश्य बदल गया. अचानक 'जनता' की तलवार चली और कविता समेत कवि जमीन पर तड़पने लगे. कहा किसी ने कि यह कविता जनता से जुड़ी नहीं है. इससे समाज बदलेगा कैसे. पचास लोगों के बीच यह बहस पिछले पचास वर्षों से हो रही है. मगर जनता और कविता जहां की तहां सोयी पड़ी है. न जाने कितने कवि, कितनी कविता इस युद्ध में खेत रही है. चूंकि कवि और जीवन में मूलतः गहरी अंतक्रिया की कमी होती गयी है. अतः दोनों में रुचियों, प्राथमिकताओं और ज्ञान का पार्थक्य होता गया है. विकसित समाज में यह बढ़ा है. हम इसे समझने की जगह सिर्फ जुड़ने की भद्र मनोवांछाओं का हर महीने ज्ञापन देते रहते हैं.

रचना और जनता के बीच माध्यम आ गये हैं. पहले भी थे मगर इतने विकट और आत्यंतिक नहीं थे. पूंजीवाद में वे अत्यंत निर्णायक हैं. वे ही जनता तक पहुंच रखते हैं. यह पूंजीवाद की शक्ति है. जो लेखक इससे लड़ने को कृत संकल्प हैं, वे इस मामूली से तथ्य को प्रायः भूल जाते हैं. पूंजीवाद ने माध्यम क्रांति के साथ, पैसे के जोर-जबर को बढ़ाया है. यह हिंदी के लिए अभूतपूर्व स्थिति है. इससे पहले तक साहित्य के 'हेतु' 'गैर-भौतिक' (आधुनिक अर्थों में) संभव थे. ऐसा कल तक संभव था. माध्यम और उससे जुड़ी व्यावसायिक ताकतों का दबदबा न था. ऐसे में, शुद्ध काव्यशास्त्र अवश्य विकसित हो सकता था, अर्थशास्त्र नहीं. माध्यम का दबाव इसी अर्थशास्त्र का दबाव है.

उस दबाव ने परंपरागत नैतिकता में पाखंड की सृष्टि कर दी है. आज का लेखक इसी दबाव में लिखता है. वह जाने न जाने. यही आधुनिकता का दबाव है. आधुनिकता का अर्थ सिर्फ दृष्टिकोण की आधुनिकता ही नहीं, एक नये अर्थशास्त्र का स्वीकार भी है.प्रकट-अप्रकट सब इसकी ज़द में हैं. पूंजी के इस व्यापक प्रभाव से कोई भी मुक्त नहीं है. लेखक को तो छोड़िये, स्वयं भगवान भी आज इसके मोहताज हैं. जो लेखक कहीं छप नहीं रहा है, वह चाहता है कि छपे, तनखा से गुजर नहीं हो रही तो चाहता है कि पारिश्रमिक मिले. ईमानदार है, श्रमशील है, अतः रिश्वत नहीं लेता मगर मेहनत का पैसा अवश्य चाहता है वह. लेखक बनने में यह प्रक्रिया जबर्दस्त दबाब पैदा करती है. यही व्यावसायिकता है. मगर यह शर्म की बात क्यों हो? जब नौकरी करना शर्म की बात नहीं तो पारिश्रमिक चाहना की शर्म की बात क्यों? यहां से अनेक नये और जटिल सवाल शुरू हो जाते हैं मसलन व्यावसायिक जगत के साथ बनने वाले संबंधों के सवाल. व्यावसायिकता के इस्तेमाल के सवाल. ये नये प्रश्न हैं हिंदी में, भारतीय भाषाओं में. साहित्य के नये समाज शास्त्र के लिए निर्णायक. ये लेखन कर्म को नये संदर्भ देते हैं.

एक मित्र और थे. कभी व्यावसायिक पत्रिकाओं में लिखना पाप समझते थे...

आज देखता हूं तो हंसी आती है. जो सबसे अधिक व्यावसायिकता को कोस रहा होता है, वह मूलतः उसी रास्ते की तलाश में रहता है, जिसमें हमारे उपरोक्त मित्र गये. अपने नैतिक पाखंड को मौके के पहले झटके में ही तोड़ लेता है मगर फिर ओढ़ लेता है. पूंजीवाद से उसकी रस्सा कशी चलती रहती है.

मैं कहता हूं कि इस चुनौती को स्वीकार करो तो इसीलिए कि इससे नजात नहीं है. इसमें से गुजर कर ही, इससे मुक्ति मिलेगी, रास्ते मिलेंगे: ये इश्क नहीं आसां, इतना तो समझ लीजै.

इक आग का दरिया है और...□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ डायरियां

ज्योतींद्र हरिहरशंकर दवे

डायरियां किसिम-किसिम की होती हैं... पर क्या यह सच नहीं है कि कुछ डायरियां दरअसल डायरियां ही नहीं होतीं... पेश है, एक डायरी-विशेषज्ञ की खोजी नजर का कमाल जिनकी कलम मूलतः गुजराती में चलती है...

डायरी रखने की प्रथा पहले-पहल किसने शुरू की और उसका विकास किस प्रकार हुआ, इसकी संक्षिप्त-सी रूपरेखा भी प्रस्तुत करना यहां अप्रासंगिक है. लेकिन इतना तो निश्चित है कि यह प्रथा आजकल सर्वमान्य हो चुकी है और इसका सबसे अधिक उपयोग खुद को साहित्यकार माननेवाले लोग करते हैं.

डायरी में क्या लिखा जाये, इसका कोई सर्वमान्य सिद्धांत अभी निश्चित नहीं हो पाया है. इसलिए जिसे जो अच्छा लगता है, वही अपनी डायरी में लिख लेता है. यदि इन सब डायरियों को इकट्ठा करके उनमें लिखा विवरण प्रकाशित किया जाये तो उसका पठन-पाठन उपन्यास से भी अधिक रसपूर्ण सिद्ध होगा, इसमें कोई संदेह नहीं.

कितनी ही डायरियां तो पुराने दस्तावेजों के समान मूल्यवान हो चुकी हैं और कितनी ही खुद लिखनेवाले के लिए भी निरर्थक सिद्ध हुई हैं. उदाहरण के लिए, हमारे एक मित्र की डायरी में से नीचे का ब्योरा देखिये :

शुक्रवार : ता. पहली जनवरी...

सात बजे उठा. थोड़ी देर आलस में अंगड़ाई तोड़ता रहा. सवा सात बजे दातुन की. साढ़े सात बजे स्टोव जला चाय का पानी रखा. चायवाली पतीली आज न मिलने के कारण दाल बनाने की पतीली में ही चाय बनायी. कोई बात नहीं, बाद में दाल बनाने के वक्त मांज लेंगे. आठ बजे चाय पी. एक कप नौकर के लिए रहने दी. साढ़े आठ बजे नहाया. फिर रसोई बनाने में जुट गया. आज छोटे बैंगन और तोरी का साग बनाया. साढ़े दस बजे जीमने बैठा. ग्यारह बजे जीमकर निबटा. फिर आफिस गया. साढ़े ग्यारह से पांच मिनट ऊपर पहुंचा.

ट्राम अभी भरी हुई थीं, इसलिए जिस ट्राम पर भी चढ़ने को लपकता उसी पर से "दूसरी गाड़ी पकड़ो" कहकर झिड़क दिया जाता. इसी कारण लौटने में देरी हो गयी. छह बजे घर वापस आया. रास्ते से आलू लेता आया था. उन्हें उबलने रख दिया. सात बजे आलू तैयार हो गये. फिर चाय बना कर पी. एक कप नौकर के लिए रख दी. साढ़े सात बजे अंगीठी सुलगाकर रोटी बनाने लगा. साढ़े आठ बजे रोटी और आलू का साग बनाकर खाया. नौ बजे नौकर को झाड़ू-बुहारी लगाने में जुटाकर बराबर के कमरे में नवनीत राय के यहां पत्ते खेलने चला गया. आज मैं सात बार जीता. परसों नौ बार जीता था. अब से पत्ते खेलने पर ज्यादा ध्यान दूंगा. ग्यारह बजे आकर सो गया. कल से साढ़े दस बजे सोना है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो घटना घटे वही डायरी में लिखी जाये, ऐसा भी नहीं है. कुछेक तो डायरी लिखनेवाले की अपनी मन-घडंत ही होती हैं. हम को जो साधारण लगता है उसमें असाधारणता उत्पन्न करने के लिए वे कल्पना से उसे पूरा कर डालते हैं. हमारे एक युवा विद्वान मित्र की डायरी (जो केमिस्ट के सर्टिफिकेट की तरह सबके लिए देखने को खुली है) ऐसी घटनाओं से भरी पड़ी है. इस डायरी का एक ही दिन देखिये :

ता० 18वीं जुलाई...

सवेरे आठ बजे साग लेने गया. सिर नंगा, रेशमी कुर्ता, पैरों में चप्पल, एक हाथ में नाजुक-सी ताकिश स्टिक, दूसरे हाथ में साग का झोला— चार आनेवाला, बाल बिखरे हुए— बिन-संवारे, रास्ते में 'गुडलक रेस्तरां' के आगे मिस पी. मिल गयी. "मुझे बहुत काम हैं," ऐसा कहकर भी लगभग घंटे भर— डेढ़ घंटा भी हो सकता है— मेरे साथ ऐसी बातें कीं कि पूछो मत.

इतने में रेस्तरां में से मिस डी. आ गयी. उसकी आंखों में ईर्ष्या झलक रही थी. मिस पी. के बाहर निकलने के बाद मिस डी. बाट जोहती बैठी थी. उसे कोई खास बात करनी थी.

आज कालेज में प्रीवियस की मिस टी. स्पेशल क्लास में आयी थी. किस कारण प्रोफेसर के लेक्चर में उसका ध्यान नहीं था. यह मैं अच्छी तरह जानता हूं. घंटे भर में 49 बार उसने मेरी तरफ देखा था. कहती है कि वह टेनिस बहुत अच्छा खेलती है. खेलती होगी, मुझे क्या?

शाम को मेवालाल के यहां टी-पार्टी थी. वहां वह नयी छात्रा आयी थी. उसका काका मेरे बड़े भैया के साथ पढ़ा हुआ है. इस जान-पहचान का लाभ उठाकर वह मेरे साथ इस तरह बातचीत करती रही मानो पूरे कमरे में मेरे सिवाय कोई दूसरा न हो— दीज गर्ल्स आर दी लिमिट.

किसी मिस जी. एन. डी. का एक बड़ा ही करुण और आग्रहपूर्ण पत्र परसों मेरे पास आया था. उसमें लिखे अनुसार आज मुझे उससे मिलने हेंगिंग गार्डन में जाना था. वहां मैं वक्त पर पहुंचा. पंद्रह के करीब चक्कर लगाये, पर कोई दिखायी नहीं दिया. मैंने सोचा कि वह भूरी जार्जेट की साड़ीवाली छोकरी ही होगी. उसका भाई साथ था, इसलिए उनसे कोई बातचीत नहीं हुई. यों जब-जब मैं उस तरफ जाता तो उसके मुख पर कुछ कहने की अधीरता स्पष्ट दिखायी पड़ती.

खैर, चलो, अब मुझे सो जाना चाहिए. नहीं तो कल छह बजे मिस दस्तूर आनेवाली है, उस समय कहीं टायलेट में न होऊं. अरे हां, उसे जरा जल्दी खिसकाना पड़ेगा. क्योंकि साढ़े सात बजे तो मिस पंड्या पधारनेवाली है और इन दोनों का यहीं आमना-सामना होना ठीक नहीं. कोई बात नहीं, ऐसी-ऐसी तो कई सिचुएशन संभाली हैं. होगा सो देखा जायेगा.

पर अब तो सो जाऊं. सबेरे जल्दी नहीं उठूंगा तो छह बजते ही वह मिस दस्तूर— ओ माई गाड. आज चैन से सो भी नहीं पाऊंगा.

इस डायरी के आधार पर कोई इनका जीवन चरित्र लिखने बैठे तो उन्हें अर्वाचीन कृष्ण के अवतार के रूप में चित्रित करना पड़ेगा. पर मुझे पक्का पता है, लोक-भाषा में कहूं तो यह महज अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना है.

लेकिन सबसे मजेदार डायरी रखनेवाले तो मेरे दूर के एक काका हैं. इस समय उनकी उम्र 66 वर्ष की है. ठीक 16 वर्ष की उम्र से उन्होंने डायरी में अपनी दिनचर्या लिखने की शुरुआत कर दी थी. अपने जीवन में घटी छोटी से छोटी बात भी उन्होंने बड़ी कुशलता से चित्रित की है. जिन-जिन के संपर्क में आये, उन सबका नाम-ठिकाना, उनका हुलिया, उनके साथ क्या बात हुई, उनके बारे में उनकी अपनी क्या राय बनी— वगैरा उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है. उनके द्वारा प्रयुक्त उपमाएं सरल, सटीक और मौलिक हैं. नमक लगे आम जैसे मुंहवाला मंगल, घोड़ामुखी वामन, पकौड़ी जैसी नाक, तरबूज जैसे लाल गाल, हंडिया जैसी खोपड़ी, टीले जैसा माथा, भींचे गये पके अमरूद जैसा मुंह-फट— आदि उपमाएं बड़ी सटीक हैं— ऐसी सटीक कि उन्हें जिनके लिए इस्तेमाल किया गया है, उन्हें भी स्वीकार करते वक्त सोचना पड़े.

एक बार बातचीत में एक गृहस्थ ने कहा, "चालीस वर्ष पहले हमारे पिताजी बंबई में माणिक महल नाम के मकान में मालाबार हिल पर रहते थे..."

बात बीच में ही काटकर काका बोल उठे, "गलत बात है, चालीस साल पहले तुम्हारा बाप मालाबार हिल पर नहीं रहता था."

"तो फिर किसी दूसरी जगह रहता होगा." कहकर उस सद्गृहस्थ ने बात वहीं खत्म कर दी. परंतु उसे अगले दिन ही काका की तरफ से निम्नलिखित आशय का एक पत्र मिला—

आज से चालीस वर्ष पहले मैं बंबई में तुम्हारे बाप से चौपाटी के मकान में पहले-पहल मिला था. इसके बारे में मेरी डायरी में इस प्रकार लिखा है :

आज चौपाटी के मैदान में सेवकलाल ने नगीनदास तौलाट से परिचय कराया. देखने में सद्गृहस्थ जैसा लगा. उसका पता है— होरां की चाल. रूम नं. 6, कांदावाड़ी, मुंबई.

इसे पढ़कर तुम्हें पता चल जायेगा कि तुम्हारा बाप जिस मकान में रहता था, उस मकान का नाम-महल नहीं, होरा की चाल था और जिस जगह पर यह मकान था उस जगह का नाम मालाबार हिल नहीं, कांदाबाड़ी था.

उनकी डायरी से अकेले उनका ही नहीं बल्कि अन्य तीन-चार व्यक्तियों का जीवन-चरित्र भी सांगोपांग लिखा जा सकता है. परंतु मुझे मालूम है कि ऐसा प्रयत्न कोई नहीं करेगा □

कृश्नचंदर की दुआ

मैं दुआ बहुत कम करता हूं, क्योंकि खुदा मेरी बहुत कम सुनता है और मैं भी उनकी कम सुनता हूं.

मगर जब डाक्टर जवाब देने लगे तो एक रात मैंने उससे कहा, "मेरी जिंदगी के पांच साल ले ले, और श्याम को अच्छा कर दे!"

करना खुदा का क्या हुआ कि श्याम उसी दिन से अच्छा होने लगा. इस तरह के सौदे मैंने उसके साथ अक्सर किये हैं... इसी तरह बांटते-बांटते शायद मैं अपनी जिंदगी के सारे साल खत्म कर चुका हूं... जो दूसरों ने मुझे दिये हैं. इस दुनिया में इसी तरह दुआ से दुआ चलती है और चिराग से चिराग जलता है.

('आधे सफर की पूरी कहानी' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : पटियाला में.
सर्जना, आलोचना से समान लगाव.
संप्रति : कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली में अध्यापन

हड़ताल

मधुरिमा कोहली

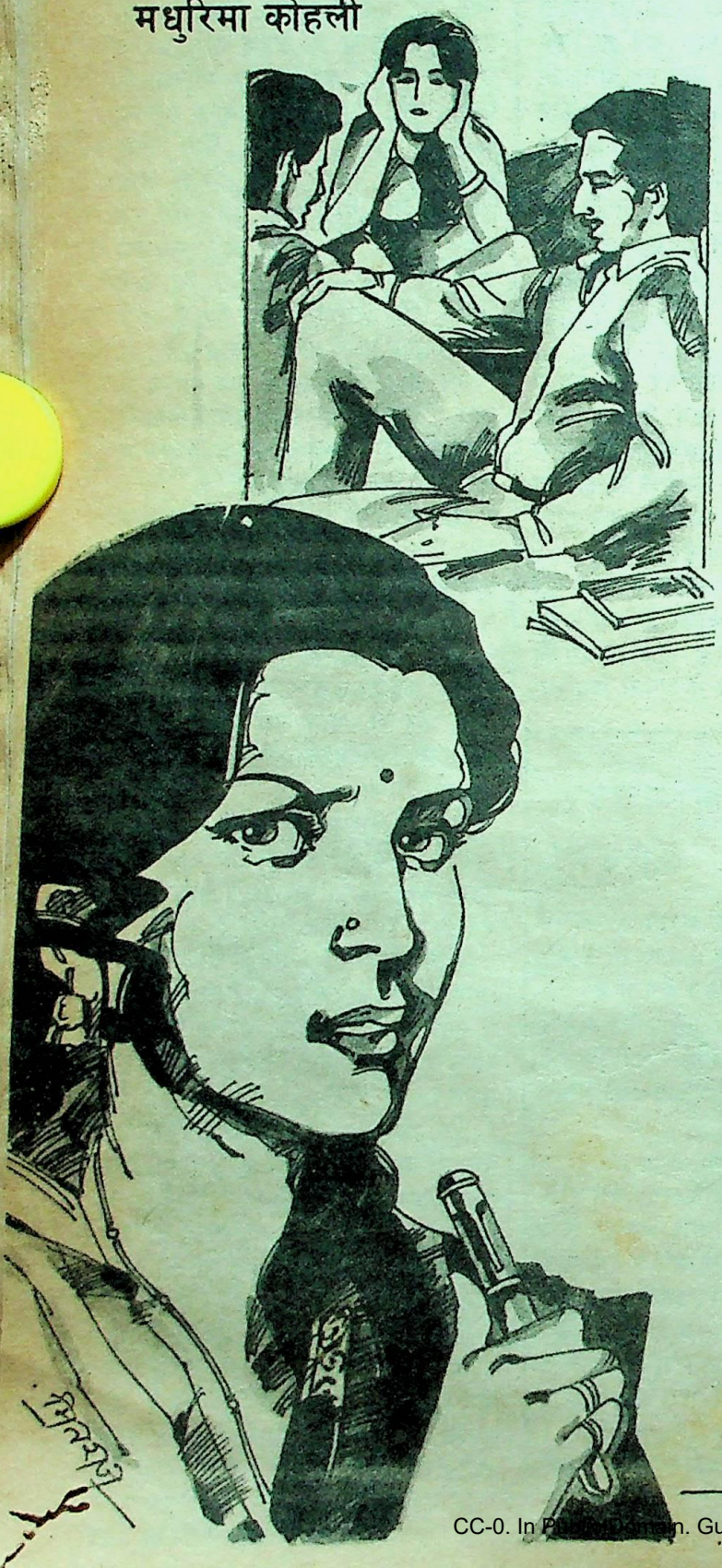

इस बार तो हड़ताल मानो समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही थी. यूं तो हड़ताल के अंतिम दिनों में हर बार यही होता है, पर इस बार तो कुछ इस तरह के गंभीर निष्कर्ष भी निकाले जा रहे थे कि प्राध्यापकों की यह हड़ताल हर वर्ष न होकर तीन वर्षों में एक बार होनी चाहिए. ऐसे निष्कर्षों से ऋता को लगता कि मानो हड़ताल के लिए किसी तरह के कोई बाहरी दबाव बिल्कुल अपेक्षित नहीं हैं, मानो यह कोई सैंक्शंड छुट्टी है जिसकी केवल अवधि तय की जानी है कि कितने वर्षों बाद कितने दिनों की हो. तीन वर्षों के लिए पढ़ने आये छात्रों को कम से कम एक बार तो हड़ताल का अनुभव होना ही चाहिए, जैसे यह भी उनके पाठ्यक्रम का ही एक अनिवार्य अंग हो.

ये सब बातें ऋता सबके साथ हंसकर ही लेती, पर वह केवल हंस कर ही नहीं रह पाती, भीतर तक कहीं बहुत गहरे में वह आहत हो उठती. यह हड़ताल उसके सारें आदर्शों और सोच के लिए चुनौती बन उठ खड़ी होती है. काम को उसने सदा पूजा माना है, काम न करने का संकल्प उसके गले के नीचे ही नहीं उतरता. पर यह हड़ताल तो बस जैसे सामने बीच मार्ग में आ ही खड़ी होती है, उससे बचकर निकलने का रास्ता ही नहीं रहता, बचना भी चाहो तो टकराना तो होगा ही.

ऋता ने सोचा था अनिश्चित काल के लिए तो उसे छुट्टी नहीं चाहिए, हां दो-तीन सप्ताह भी यदि यह खिंच गयी तो वह अपने इस लघु उपन्यास का प्रथम प्रारूप पूरा कर उसे कोई आकार अवश्य दे देगी. इसलिए उसने हड़ताल के मसले को अपने मस्तिष्क में प्रवेश ही नहीं पाने दिया था. सोचने के लिए प्रश्न तो अनेक थे, कि हड़ताल किन मसलों पर हो रही है, कि क्या ये मसले इतने महत्वपूर्ण हैं कि इनके लिए अनिश्चित-कालीन का संकल्प कर लिया जाये और सबसे जरूरी प्रश्न तो वह था जो पिछली हड़ताल के दिनों में ऋता को काफी परेशान करता रहा था. हड़ताल के अंतिम दिनों में जब अधिकारी-वर्ग की ओर से धमकियां आने लगती हैं, अनेक लोगों के घबरा जाने से जब हड़ताल की दृढ़ स्थिति डगमगा उठती है, हड़ताल टूटने लगती है, हर व्यक्ति उस समय छात्रों के प्रति अपने दायित्व और उच्च नैतिक मूल्यों की सच्ची या झूठी दुहाई देने लगता है तो कर्तव्याकर्तव्य की दुविधा.हर व्यक्ति के सामने आ खड़ी होती है.. अतः अनिश्चितकालीन हड़ताल पर जाने से पूर्व इस संदर्भ में अपनी शक्ति और सामर्थ्य का आकलन बहुत जरूरी ही नहीं, अनिवार्य हो उठता है. पर यदि इन प्रश्नों में ऋता उलझ जाती तो वह अपने उस काम के साथ न्याय कर पाती जो इन दिनों उसके लिए भीतरी विवशता बना हुआ था.

स्वयं को इन प्रश्न-वाणों की बौछार से बचाने के लिए ऋता ने एक बहुत ही समर्थ बहाने का रक्षा-कवच ढूंढ़ा था. यह हड़ताल तो संयोग से आ गयी है, हड़ताल न आती तो वह कालेज से छुट्टियां लेकर भी अपना काम पूरा करती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह नहीं चाहती थी कि हड़ताल ऐसे समाप्त हो... पर क्या संभव हो सका ऐसा...?

पर कहां कर पायी ऋता कुछ भी! अगली ही सुबह प्रभा के फोन ने उसे चौंका ही नहीं पूरी तरह झकझोर कर रख दिया था. उनकी सहयोगी मित्र नीरजा की. छोटी बहन प्रतिभा ने आत्महत्या कर ली थी. तत्काल ही वहा पहुंचना अनिवार्य हो उठा. कितने वर्षों से जानती आयी है वह नीरजा और उसके परिवार को. अत्यंत मेधावी और परिश्रमी ये बहनें अपने माता-पिता को कभी पुत्र के अभाव का दुःख महसूस ही नहीं होने देती थीं. पर ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयीं. नियति इनके साथ विचित्र ही खेल खेलती चली गयी. नीरजा अपने पति के साथ प्रसन्न नहीं रह सकी और अपनी छोटी-सी बिटिया को ले अलग रहने पर विवश हो गयी थी. यह आघात प्रतिभा के लिए नीरजा से भी अधिक घातक सिद्ध हुआ था. भौतिक विज्ञान में डाक्टरेट कर लेने और अच्छी नौकरी पा लेने पर भी वह विवाह करने को तैयार न थी. उसके इस निर्णय को माता-पिता ने भी कुछ विवशता और कुछ स्वार्थवश स्वीकार कर लिया था.

माता-पिता दोनों का ही स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहा था. प्रतिभा ही उनकी पूरी देखभाल करती. प्रतिभा के बिना तो अब वे अपना जीवन ही संभव नहीं मानते थे, यह तथ्य प्रतिभा से छुपा हुआ था?

फिर कैसे प्रतिभा ने अपने जीवन का यह आकस्मिक अंत कर डाला! मां ने ही रोते-रोते बताया था कि पिछले कुछ दिनों से बहुत परेशान थी, कहती थी कि उसे मालूम हुआ है कि उसके बॉस ने उसकी सी.आर. में उसके विरुद्ध कुछ लिख दिया है और इस आशंका मात्र से कि निकट भविष्य में होनेवाली पदोन्नति के समय उसकी यह सी.आर. समस्या बन जायेगी, उसका मन काम से उचट गया था, सारा आत्मविश्वास ही जैसे चुक गया था. उसे निरंतर यही लगता रहता कि उससे कुछ न कुछ गलत हो जायेगा जो उसी सी.आर. की पुष्टि करेगा. मां ने उसे समझाया था, "कोई बात नहीं, नहीं मिलती तरक्की तो न सही, हम तो इतने में ही संतुष्ट हैं." पर प्रतिभा को यह संतोष नहीं, असम्मान से समझौता लगता. वह कहती, "मैंने अपनी जिंदगी के महत्वपूर्ण निर्णय एक सम्मानपूर्वक जीवन जीने की इच्छा के अनुरूप लिये हैं, मैं असम्मान के जीवन से समझौता नहीं करूंगी." जीवन में तो समझौता नहीं किया था प्रतिभा ने पर असहाय होकर किन्हीं दुर्बल क्षणों में मृत्यु से समझौता कर लिया था.

प्रतिभा की इस समस्या और ऐसे पीड़ादायक अंत ने ऋता को कालेज की हड़ताल से सीधे ही जोड़ दिया था. यही तो थी उनकी मुख्य मांग कि पदोन्नति के समय हमारे काम और योग्यता की परख की जाये, प्राचार्य या प्रवर-समिति के सदस्यों के हाथ में ऐसा अधिकार न दिया जाये कि हमारी निष्ठा अपने काम से अधिक उन्हें प्रसन्न करने में हो जाये. तो फिर ऐसे निष्ठा में उपन्यास लिखते रहना कितना निरर्थक है—ऋता ने सोचा था, और वह अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए हो रहे इस आंदोलन में पूरे उत्साह से कूद पड़ी थी.

हड़ताल के आरंभिक दिन तो होते ही हैं जोश और उत्साह से भरे. युद्ध-अभियान में जूझते जोशीले सेनानियों की तरह, अधिकारियों को नारों की ललकार देते हुए, 'होश में आओ, होश में आओ, होश में आओ, होश में आकर बात करो', 'होश में तुमको आना होगा, बात तो तुमको करनी होगी,' और एकता की भावना को बुलंद करते समूह गान, 'वक्त की पुकार है मिल के चलो,' इन सबमें समय कैसे निकलता गया पता ही न चला.

अब आ पहुंचा था वही समय जब अधिकारियों की ओर से 'काम नहीं तो दाम नहीं' जैसे हथकंडों से सारी एकता छिन्न-भिन्न हो गयी थी. अनेक लोग काम कर लौटने को बेताब हो उठे थे. कुछ लोग शुद्ध भौतिक धरातल पर 'वेतन के बिना हम नहीं रह सकते' का सहारा ले रहे थे, और कुछ अचानक ही छात्रों के भविष्य के प्रति अपने दायित्व के लिए सजग हो उठे थे. प्रतिक्रिया में कुछ लोगों में हड़ताल के प्रति निष्ठा और उग्र हो उठी थी. वे लोग इस असमय उठ आये दायित्व बोध को ढोंग और पाखंड समझते, गद्दारी कहते और देखते-देखते कालेज का वातावरण विषाक्त हो गया था. ऐसा लगता मानो सारा कालेज दो विरोधी दलों में विभाजित है जिनके हित एक दूसरे से नितांत भिन्न थे, सोच अलग थी, नैतिक मूल्य अलग थे, मानों वे एक वर्ग के न होकर, वर्ग-चरित्र की दृष्टि से वे दो विरोधी शिविरों में विभाजित हो गये थे.

ऋता बहुत उद्विग्न हो उठी थी. वह साफ देख रही थी कि दोनों दलों में कितनी समानता है. भीतर तक असुरक्षा की भावना के शिकार, अपने को इस भीड़ भरे समाज में घिरे होने पर भी नितांत अकेला महसूस करनेवाले ये दुर्बल चरित्र अपने नग्न रूप में कैसे एक से थे. सुरक्षा और सहारे के नाम पर एक वर्ग अधिकारियों की शरण में चला गया था और दूसरा यूनियन के नेताओं की. अधिकारी वर्ग के पक्ष में लोगों को न बहुमत की चिंता थी, न एकता की. वे संख्या में कम होने पर भी अपने को सर्वथा सुरक्षित महसूस करते और सबसे बड़ी बात तो यह कि वे यह समझने लगे थे कि सही मार्ग पर वे ही हैं, शेष लोग आलसी, निकम्मे और कामचोर. दूसरी ओर से हड़ताली निरंतर यह आवाज देते कि देखो अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का एकमात्र रास्ता है एकजुट होकर चलो. अपने अधिकारों के लिए संघर्ष न्याय का संघर्ष है और इसके लिए चाहिए साहस, दूर तक जोखिम झेलने का संकल्प. वे धरनों पर बैठते, अनशन करते, विरोध-प्रदर्शन के लिए जुलूस निकालते, सभाएं करते और गिरफ्तारियां देने में भी पीछे न रहते.

ऋता की सक्रियता इन दिनों बाहर से भीतर की ओर हो गयी है. उसने तो शुरू में ही चाहा था कि हड़ताल पर जाने से पूर्व इन स्थितियों पर अच्छी तरह विचार कर लिया जाए पर मात्र चाहना और सोचना क्या सचमुच कुछ अर्थ रखता है? ऋता सोचती है, हड़ताल का निर्णय क्या मेरा व्यक्तिगत निजी निर्णय था? यहीं तो वह नियति को मनाने लगती है, वह तो कभी हड़ताल के पक्ष में नहीं रही पर उस समय उसने हड़ताल का कैसा तो स्वागत किया था, और हड़ताल के पक्ष में बहुत सक्रिय हो उठने के पीछे भी क्या प्रतिभा की आत्महत्या के क्षोभ से उत्पन्न आकस्मिक आवेश ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल

एक आदमी बंदरों का पालक था.

एक बार बुरे दिन आये, तो उस आदमी ने बंदरों से कहा, "मुझे तुम्हारी खुराक कम करनी पड़ रही है. अब तुम्हें सुबह तीन केले मिला करेंगे, और शाम को चार."

सुनते ही बंदरों ने शोर मचाकर अपनी नाराजगी प्रकट की.

तब उस आदमी ने कहा, "अगर यह मंजूर नहीं, तो फिर तुम्हें सुबह चार केले मिला करेंगे, और शाम को तीन."

बंदर खुश हो बैठे. □

नहीं था, और अब हड़ताल को बनाए रखने के लिए जिस एकता की पुकार मची थी, क्या उसके भीतर के खोखलेपन को वह सर्वथा नजरंदाज कर दे सकती है? सबके अपने-अपने स्वार्थ हैं, अपने अपने दबाव, कहीं संबंधों का आग्रह और कहीं सुविधा का दर्शन और क्या-क्या नहीं है इस बाहरी एकता के भीतरी खोल में.

इन सब स्थितियों से अवसन्न ऋता का मन कछुए के समान अपने को समेट अपने उसी संसार में लौट आने को आतुर हो उठा था जहां उसे सचमुच कुछ करने का सुख मिल सके, कुछ कहने का संतोष.

ऋता लौट आयी थी अपने उस संसार में, पर पेन हाथ में रह जाता, कागज कोरा और रह-रहकर साकार हो उठते दृश्य, एक ओर स्टाफ-रूम में भी मीटिंग हो रही है हड़ताली प्राध्यापकों की, पूरी तरह असहयोग आंदोलन का रवैया, और दूसरी ओर काउंसिल-रूम में प्राचार्य के साथ उन प्राध्यापकों की जो हड़ताल परन्नहीं हैं. कालेज का वार्षिकोत्सव होगा, मानो यह उत्सव सारे कालेज का नहीं है बस प्राचार्य और उन मुट्ठी भर प्राध्यापकों का है, वे कालेज का काम नहीं कर रहे मानो प्राचार्य को उनके किसी निजी काम में सहयोग देकर उन्हें कृतार्थ कर रहे हैं. चाहे पुस्तकालय-समिति की बैठक हो, चाहे कैंटीन-समिति की, सब जगह वे ही लोग हैं, वही निर्णय हो रहे हैं जो प्राचार्य चाहते हैं, यह सहयोग आंदोलन का एक नया ही रूप था जो कालेज के इतने वर्षों में ऋता ने न देखा था. फिर धुंधली-धुंधली उभरती हैं छोटे-छोटे दृश्यों की वह अवलि... पास से निकल गयी हैं मीनाक्षी और सुप्रिया. एक दूसरे से नजरें मिलाने का साहस नहीं. दोनों अत्यंत घनिष्ठ सखियां आज अलग-अलग गुट में होने के कारण कट गयी हैं एक दूसरे से... सक्सेना, श्रीवास्तव और आहूजा की बातचीत, मानो सहकर्मियों की बातचीत न हो, तीन राजनीतिक दलों के राजनीतिक मतवाद की स्थापना और उसी के अनुरूप एक-दूसरे के प्रति सदाशयता और सद्भावना का रवैया... अत्यंत फूहड़ अभिव्यक्ति वाली डा. विद्या जैन का अत्यंत सौम्य शेफाली से गठबंधन... दृश्यों का अस्त-व्यस्त हड़कंप. मानव-संबंधों की व्याख्या करता ऋता का वह पुराना उपन्यास तो अवचेतन के किसी अन्य स्तर पर गुम हो गया था, पूरी तरह मस्तिष्क पर छाया यह हड़कंप व्यवस्था ग्रहण कर मानस पर लिखा चला जा रहा था...

चिंतन के धरातल पर तो बात अत्यंत स्पष्ट थी, अन्याय के विरोध के लिए संगठित और अलग जनशक्ति के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही क्या था और जब अन्यायी द्वार पर ललकारता आपको समूचा निगल जाने को तत्पर हो तो आपद् धर्म के रूप में प्रहार मारक तो होना ही चाहिए, अनिश्चितकालीन हड़ताल कोई आकांक्षित निर्णय नहीं था, यह तो विकल्पहीन मार्ग था पर उपन्यास शुद्ध चिंतन ही तो नहीं होता. उसमें जो रंग भर गये थे, वे जीवन के थे. जीवन इतना स्पष्ट और सटीक नहीं था जितना चिंतन. इस जीवन में ऊपर का शांत नीला जल ही नहीं था, आलोड़ित हो उठने पर नीचे का सारा कीचड़ भी ऊपर आ गया था, फोड़े फट गये थे, मवाद बह निकला था, पैबंदों की सीवन उधड़ गयी थी, उसके नीचे की फटेहाली झांक उठी थी. कितना तो सहा था स्वयं ऋता ने जीते समय, लिखते समय. मानसिक रोगी की-सी अवस्था ऋता जब डाक्टर के पास गयी थी तो वह भी और अधिक क्या कह सका था, "आप अत्यधिक संवेदनशील हैं, आपके आसपास बहुत कुछ अप्रियघटित हुआ है, उससे अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करें, पढ़ने-लिखने का काम स्थगित कर अपने स्नायुओं को विश्राम दें."

ऋता डाक्टर की दी दवाई खाती, उसी प्रभाव में गहरी नींद सोती रहती, उठकर कुछ स्वस्थ महसूस करती तो मानस पर लिखे जाते उपन्यास का कोई अध्याय फिर उस पर छा जाता. इस हड़ताल ने उसे सबसे जुड़ना सिखाया था, इसलिए सबकी पीड़ा झेलती भी ऋता सुख का अनुभव करती.

पिछले तीन महीनों से वेतन नहीं मिला था. सर्जक मन की भावुक ऊहापोह के बावजूद इस दबाव को ऋता निरंतर महसूस कर रही थी. जिनसे जीवन में सदा स्नेह और सहयोग मिला था, वे चिरमित्र इस हड़ताल के कारण शत्रु हो गये थे. जिस कालेज में प्रवेश करना उल्लसित परिवार की बाहों में लौटने जैसा सुखद था, वहां पग-पग पर बिच्छू का दंश था. हड़ताल खिंचते-खिंचते जब स्वयं ही टूटने पर आ जाये तो अधिकारी वर्ग शेष मांगें तो नहीं ही मानते, यह भी मान लें कि चलो काम पर लौट आओ, किसी प्रकार का दंड नहीं दिया जायेगा और हड़ताल के दिनों का वेतन दे दिया जायेगा तो भी हड़ताली खुशी-खुशी हड़ताल समाप्त कर दिया करते हैं... पर यहां तो सम्मान बचाने के लिए कोई ब्याज भी नहीं था...

ऋता नहीं चाहती थी कि हड़ताल ऐसे समाप्त हो. उसके उपन्यास के पात्र असुरक्षा की भावना में प्रतिभा की मौत मरें यह उसे स्वीकार नहीं था.

कमरे में बिस्तर पर पड़ी असहाय, नितांत अकेली रोगिणी ऋता जानती थी कि इस हड़ताल का अंत दुखद ही होगा, किंतु उसे रोकना उसके वश में नहीं था. संभावना यह भी थी कि अंततः यह हड़ताल भी किसी न किसी उपलब्धि के रूप में ही याद रखी जाये. इस सबको वह नियति पर छोड़ देना चाहती है. पर जहां उसका अपना वश चलता है, जहां वह नियति को उसके नियमों से अपदस्थ कर अपनी इच्छानुसार चला सकती है, जो उसकी अपनी रचना है, वहां उसकी नायिका सृष्टि अपने ढेर सारे साथियों के साथ देश के चिंतकों, प्रबुद्ध राजनीतिज्ञों, न्यायविदों, पत्रकारों और विशाल छात्र-समूह के सहयोग के आधार पर अपनी उस न्यायसंगत मांग की रक्षा में संघर्षरत है जिसमें सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार सुरक्षित रहे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामू

अपराधी के अंतिम क्षण

जेल के पादरी ने आज तीसरी बार मुझसे मिलने की कोशिश की लेकिन मैंने उससे मिलने से साफ इंकार कर दिया. मैं किसी से मिलना नहीं चाहता. मैं सब प्रक्रियाओं की प्रवंचना कर अपने बचाव का रास्ता खोजना चाहता हूं. इस समस्या ने मुझे बुरी तरह त्रस्त और ग्रस्त कर रखा है. मैं सदा मृत्यु-दंड पाने वाले उन अपराधियों के बारे में सोचता रहता हूं जो न्याय की क्रूर यंत्रणा से मुक्त होने में सफल हो सके, पुलिस को चकमा दे सके और फांसी देनेवाले यंत्र के नीचे आने से पहले कहीं गायब हो गये. काश! अपनी आजादी के दिनों में ऐसे लोगों के समाचारों को ध्यान से पढ़ा होता तो यह जानकारी आज मेरे बहुत काम आती. यह जानकारी मेरे लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती.

लेकिन न मालूम क्यों यह विचार कि मैं अपना प्राणोद्धार करने में कभी नहीं सफल हो सकूंगा, मेरे मन में घर कर गया था. जिस घटना-चक्र पर अदालत ने अपना निर्णय दिया था, उसमें और

हर क्षण कोई समझदार कैसे रह सकता...? मैं कभी-कभी अपनी कल्पना की दुनिया में प्रवेश करके नये-नये कानूनों और नयी नयी सजाओं के बारे में सोचने लगता हूं...

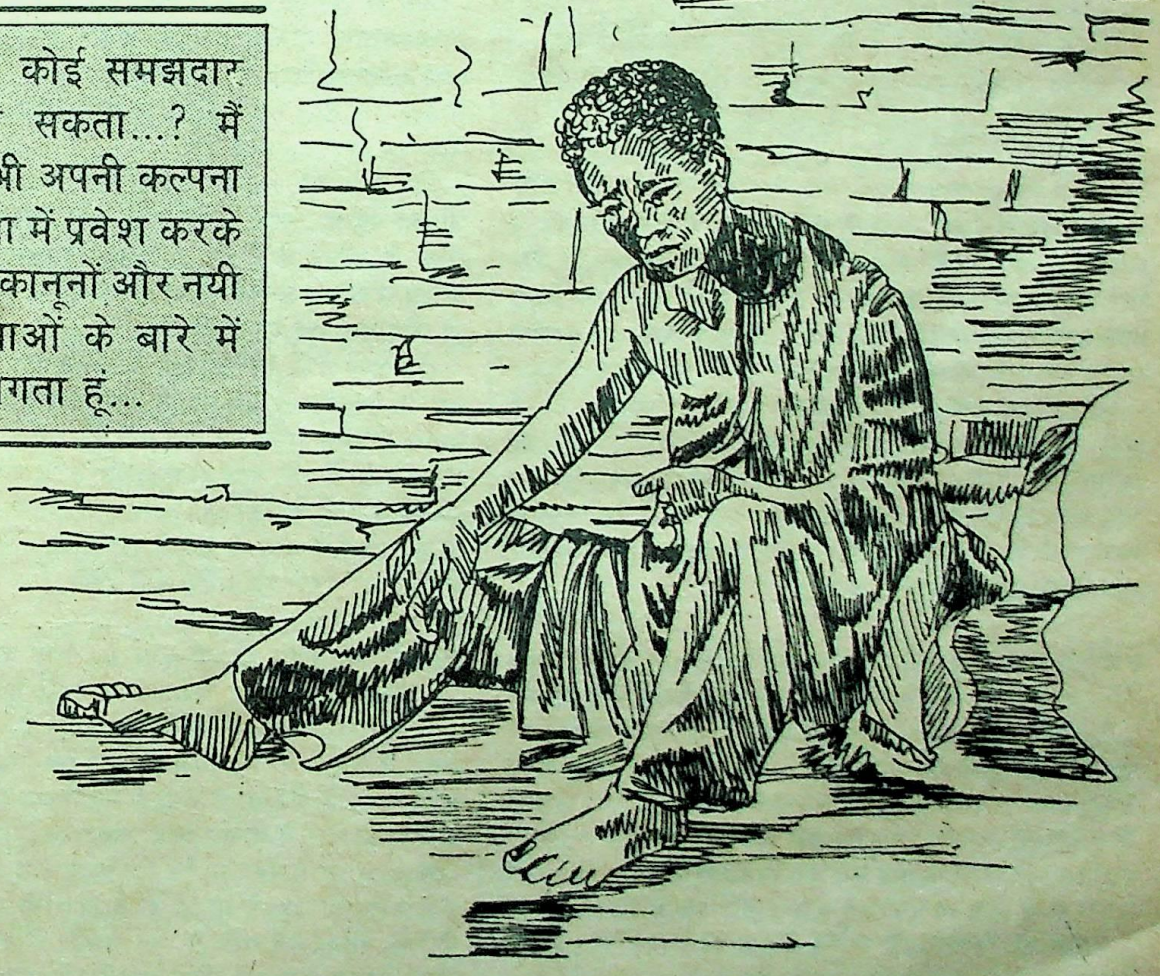

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय में मेरे विचार से काफी असंगति थी. मुझे लगता था कि निर्णय देते समय, अदालत ने गंभीरता से काम नहीं लिया है और यह निर्णय उस निर्णय से बहुत भिन्न था जो वास्तव में अदालत को देना चाहिए था. जज ने यह निर्णय फ्रांस की जनता की ओर से सुनाया था, चीन और जर्मनी की जनता की ओर से क्यों नही सुनाया? जो भी हो, इस क्षण वह वैसा ही ठोस और अकाट्य हो गया है, जैसी यह दीवार जो फिलहाल मेरी कमर को सहारा दे रही है और उसे दबा भी रही थी.

अपनी होने वाली फांसी के बारे में सोचते-सोचते, न जाने कब और कैसे मुझे अपने मां-बाप की याद आ गयी. मुझे याद आया कि मेरी मां मुझे अकसर एक कहानी सुनाया करती थी, जो मेरे पिता के फांसी की सजा-भुगतने वाले व्यक्ति की फांसी के दर्शन से संबंधित थी. फांसी-दर्शन के बाद जब वे घर लौटे, तो उन्होंने उसका जो वर्णन मुझे सुनाया था, वह मुझे तब जुगुप्सापूर्ण लगा था, पर अब स्वाभाविक लगता था. मैं तब से मानता आया हूं कि प्राण दंड से बढ़कर कोई और महत्वपूर्ण बात नहीं हो सकती, और यही एक घटना है, जिसमें आदमी की वास्तविक रुचि हो सकती है. और, मैंने तभी फैसला किया कि यदि मुझे फांसी नहीं हुई और जेल से बाहर जाने का मौका भी मिल गया, तो मैं हर फांसी को जरूर देखूंगा.

काफी दिनों से उसका कोई पत्र नहीं आया था. जाहिर है वह किसी ऐसे आदमी की प्रेमिका नहीं कहलाना चाहती थी जो जल्दी ही फांसी पर चढ़ने पर वाला हो...

क्षण भर के लिए, कल्पना की निगाहों से मैंने देखा कि मैं आजाद हूं और किसी अभागे को फांसी लगते देखा रहा हूं और फिर घर आकर वमन कर रहा हूं, तो मेरा मन एक बहशी, बेहूदा हर्षोन्माद से भर आया. किंतु अगले ही क्षण, मुझे यह कल्पना मूर्खतापूर्ण लगी और डर के मारे मेरे दांत किटकिटाने लगे.

लेकिन हर क्षण कोई समझदार कैसे रह सकता है? मैं कभी-कभी अपनी कल्पना की दुनिया में प्रवेश करके, नये-नये कानूनों और नयी-नयी सजाओं के बारे में सोचने लगता हूं. इन सब नये कानूनों और नयी सजाओं की कल्पना के पीछे एक ही भाव रहता है— हर अपराधी को सजा से बचने का कम से कम एक मौका अवश्य मिलना चाहिए.

मैं सोचता—क्या ऐसी दवा ईजाद नहीं हो सकती जो एक हजार अपराधियों को पिलायी जाये तो उसे पीकर 999 तो मरे जायें, और एक जीवित रह जाये? फांसी या गिलोटिन की व्यवस्था अपराधी को कोई मौका नहीं देती. इस व्यवस्था में अपराधी अवश्य मरेगा, यह एक अटल सत्य है. एक तरह से देखा जाये तो यह व्यवस्था सजायाफता अपराधी के हित में भी है, क्योंकि सजा सुनने के बाद उसे पूरा विश्वास हो जाता है कि उसे मरना ही है. मेरी कल्पना उसे कम से कम एक आशा तो देती है.

फांसी और गिलोटिन के बारे में मैंने काफी विचार किया है. एक विचार-कण का जायजा लें. "फांसी आदमी की कल्पना की उड़ान को तेज और बहुआयामी बनाने में सहायक होती है. किंतु इसके विपरीत, गिलोटिन बड़ी दक्षता मगर निर्लज्जता के साथ आदमी को खत्म कर देती है, और कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ती."

सुबह कब होगी और मेरी अपील का क्या होगा, ये दोनों अहम सवाल भी मुझे हरदम परेशान किये रहते थे. मेरे बहुत कोशिश करने पर भी, मेरे दिमाग में बर्रों की तरह भनभनाते रहते. इन दुष्प्रभावी विचारों की एकरसता-भंग करने के लिये मैं अपने दिल की धड़कनों को गिनना आरंभ कर देता. मेरे लिए यह कल्पना करना कठिन था कि ये धड़कनें, जिन्हें मैं वर्षों से सुनता आ रहा था, कभी अचानक बंद हो जायेंगी. बहुत कोशिश करने पर भी, मैं यह कल्पना करने में असमर्थ था कि एक क्षण ऐसा भी आयेगा, जब मैं (अर्थात्, मेरा मृत शरीर) तो होगा लेकिन उसमें उसके दिल की धड़कनें नहीं होंगी.

सुबह के बारे में मेरी ग्रस्तता का एक कारण यह था कि मैंने सुन रखा था कि फांसी सुबह को ही दी जाती है. अप्रत्याशित घटनाओं में मैं विश्वास नहीं करता, किंतु होने या हो सकने वाली घटनाओं के लिए मैं अपने को सदा तैयार रखता हूं. इसी कारण, मैंने दिन भर सोने और रात भर जागकर सुबह की प्रतीक्षा करने की आदत डाल रखी है. रात्रि के अंतिम प्रहर के उस अंतिम क्षण से मेरा परिचय बढ़ता जा रहा है, जब 'वे' आयेंगे, और मुझे गिलोटिन पर ले जायेंगे.

जब हर रात को वह क्षण आता और बीत जाता, तो मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानकर कृतज्ञता से भर आता. मां मुझसे अक्सर कहा करती थी कि आदमी कितना भी दुख में क्यों न घिरा हो, कोई न कोई ऐसी बात उसके जीवन में अवश्य शेष रह जाती, जिसके लिए वह कृतज्ञ अनुभव रहे.

दिन भर, जब तक मैं जागता, अपनी अपील के बारे में ही सोचता रहता. उससे अपने लिए अधिकाधिक सांत्वना प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं पूरी गहनता से सोचता. मैं हमेशा अपने खराब से खराब क्षणों में सोचा करता था कि मेरी अपील खारिज हो और तब मुझे मरना ही होगा.

ऐसे क्षणों में मैं अपने को याद दिलाने लगता कि जीने में आखिर रखा ही क्या है और जब आदमी को एक दिन मरना ही है तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि वह तीस वर्ष की आयु में मरे, या सत्तर वर्ष की आयु में. मैं यदि आज ही मर जाता हूं तो कम से कम, रोज की इस चिंता से तो बच जाऊंगा कि न जाने मौत कब आयेगी? दुनिया तो मेरे मरने के बाद भी चलती रहेगी और मेरे बाद जो लोग रह जायेंगे, वे पहले की भांति जीते रहेंगे.

गर्मी की शाम थी. मैं फर्श पर लेटा आसमान पर छायी सुनहरी आभा को देख रहा था. तभी मुझे बताया गया कि जेल का पादरी मुझसे मिलने आया है. बतानेवाले से मैंने कहा, मैं पादरी से नहीं मिलूंगा. और यह निश्चय करके मैं वह करने लगा जो मैंने बहुत दिनों से नहीं किया था—अपनी भूतपूर्व प्रेमिका के बारे में सोचने लगा. काफी दिनों से उसका कोई पत्र नहीं आया था. जाहिर था कि वह किसी ऐसे आदमी की प्रेमिका नहीं कहलाना चाहती थी जो जल्दी ही फांसी पर चढ़ने वाला हो. या, वह शायद मर गयी हो. मृत लड़की में किसकी रुचि होगी? मरने के बाद तो मैं सबके लिए अर्थहीन हो जाऊंगा. कोई मुझे याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाला भी नहीं रहेगा.

...तभी, पादरी बिना किसी पूर्व-सूचना के मेरी कोठरी में आ गया. मेरे बिस्तर पर बैठकर, वह मुझसे पूछने लगा, "तुम मुझसे मिलने से मना क्यों करते हो?"

"इसलिए कि मैं किसी भगवान में विश्वास नहीं करता. मैं इस व्यर्थ की कल्पना को लेकर अपना सर नहीं खपाना चाहता."

"मगर भगवान से अधिक महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं है."

"हो सकता है. मगर, मैं उसके बारे में कुछ जानना नहीं चाहता."

"मेरी बात मानो, भगवान की शरण में आओ. तुम्हें अपने सब भयों और संशयों से मुक्ति मिल जायेगी. तुम प्राणदंड के भय से ग्रस्त हो, किंतु यह मत भूल जाओ कि दुनिया के हर इंसान को प्राणदंड मिला हुआ है. एक न एक दिन यह दंड सबको मिलना है."

"मगर मेरे प्राणदंड और उनके प्राणदंड में बड़ा अंतर है. और फिर मुझे आपकी बात से कोई सांत्वना नहीं मिलती."

"मैं सांत्वना की बात नहीं कर रहा हूं. तुम्हें मौत के उस क्षण के लिए तैयार करना चाहता हूं, जिसका सामना अनिवार्य रूप से तुम्हें कभी न कभी करना ही होगा."

"मैं उसका सामना उसी तरह करूंगा, जैसे अब कर रहा हूं."

पादरी कुछ देर तक सधी हुई आंखों से मुझे घूरने के बाद बोला, "यदि तुम यह विश्वास कर लो कि मरने के बाद भी आदमी का एक अमर-अमिट सूक्ष्म अंश शेष रह जाता है, तो तुम्हें अपने लिए एक आशा दिखाई देने लगेगी."

"मैं ऐसा विश्वास करने में असमर्थ हूं."

"विश्वास करो, और तब तुम्हारे लिए जीवन सहय हो जायेगा. मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारी अपील अवश्य स्वीकार हो जायेगी, लेकिन, जिस अपराध-भावना से तुम ग्रस्त हो, उससे तुम्हें अवश्य मुक्त होना चाहिए. आदमी के न्याय का कोई महत्व नहीं है, असली महत्व है भगवान के न्याय का."

"मुझे प्राणदंड दिलाने की जिम्मेदारी आपके भगवान की ही है."

"मानता हूं, लेकिन जिस अपराध के लिए तुम्हें प्राणदंड मिला है, वह तो तुम ही ने किया, भगवान ने नहीं."

"मैंने कोई अपराध नहीं किया. यदि किया भी है, तो उसकी सजा भुगत तो रहा हूं. फिर, मुझे भगवान की क्या जरूरत?"

"है. इस कोठरी में रहनेवाले दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को मैंने भगवान का दयालु चेहरा दिखलाया है. वही मैं तुम्हें भी दिखाना चाहता हूं. इस कोठरी की कठोर दीवारों में ही तुम्हें वह चेहरा दिखाई देगा."

मैं उत्तेजित हो आया. मैंने कहा, "मैं महीनों से इन दीवारों को देखता आ रहा हूं और मुझे उनमें न कभी भगवान का चेहरा दिखाई दिया, न दुनिया की किसी हस्ती का. उन दीवारों में भगवान का कृपालु चेहरा दिखाने की आपकी कोशिश बेकार होगी, पादरी साहब!"

पादरी ने अपनी नजरें मेरी ओर से मोड़ लीं. मगर, वह कोठरी से बाहर जाने को तैयार दिखाई नहीं दिया. मैंने उसके पास जाकर उसे समझाया, "अब आप जाइये. मेरे पास ज्यादा वक्त नहीं है, और मैं उसे आपके भगवान पर बर्बाद नहीं करना चाहता. अल्विदा!"

"बच्चे! समझने की कोशिश करो, मैं तुम्हारा शुभचिंतक हूं. मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करके ही यहां से जाऊंगा."

यह सुनकर, पता नहीं क्या हुआ, मैं जोर-जोर से चिल्लाने लगा और उसके लिए अपमानजनक बातें बोलने लगा. मैंने पादरी को अपनी बाहों में ले लिया था और उसे छोड़ नहीं रहा था. चिल्लाते-चिल्लाते, मुझे लगा, मेरी सांस चलनी बंद हो गयी है. तभी संतरी दौड़े-दौड़े आये और उन्होंने पादरी को मेरी गिरफ्त से छुड़ाया. उनमें से एक मुझे मारना भी चाहता था लेकिन पादरी ने उसे ऐसा करने से रोक दिया. इसके बाद वह एक क्षण के लिए मुझे देखते हुए, सजल नेत्रों के साथ मेरी कोठरी से चला गया.

उसके जाने के बाद मैं पूरी तरह शांत हो गया. लेकिन इस कांड की उत्तेजना ने मुझे बुरी तरह थका दिया था और मैं सोने चला गया. जब, कई घंटे बाद उठा तो पाया कि आसमान से चांद-सितारे मुझे देख रहे हैं. यह इस बात का प्रमाण था कि रात को नींद लंबी और गहरी आयी. रात की मिट्टी और नमक की मिली जुली गंध वाली शीतल समीर मेरे गालों को दुलार रही थी. रात की वही अद्भूत शांति मेरे अंतर में ज्वार की भांति प्रवेश करती जा रही थी.

जब सुबह होने को हुई तो मुझे दूर से आते किसी स्टीमर की सीटी सुनाई दी. लोग उस स्टीमर में बैठकर उस दुनिया के बंदरगाहों की ओर जा रहे थे, जो मेरे लिए अर्थहीन हो चुके थे. पहली बार, महीनों बाद, मुझे अपनी मां की याद आयी. और अब मेरी समझ में आया कि क्यों उसने अपने जीवन के अंतिम दिनों में एक नये प्रेमी से प्रेम करना आरंभ कर दिया था जैसे वे जीवन की एक नयी शुरुआत करने जा रही हों.

मुझे याद आया कि उस घर में भी, जहां जीवन-ज्योतियां एक के बाद बुझती जा रही थीं, शोकार्तफुटफुटा राहत का संदेश लेकर आता था. मौत की कगार पर खड़ी मां को मेरी भांति ही लगता रहा होगा कि परम स्वतंत्रता कितनी निकट है, और एक नये, अपरिचित जीवन की शुरुआत करने का अवसर कितना समीप. मेरे मत से, मेरी मां के बारे में रोने का अधिकार किसी को नहीं है, किसी को भी नहीं.

मुझे भी लग रहा था कि मैं भी अपने नये जीवन की शुरुआत शीघ्र ही कर सकूंगा. मुझे लग रहा था, जैसे मेरे आक्रोश ने मेरे मन को सब आशाओं से रहित करके, मुझे पूर्णतया स्वच्छ और निर्मल कर दिया है. आकाश में टिमटमाते असंख्य तारों को देखकर मुझे लग रहा था जैसे मैं ब्रह्मांड की अनुग्रहशील उदासीनता के सामने बिछा हूं और सब कुछ के प्रति अपनी स्नेहपूर्ण उदासीनता के कारण ही सुखी हूं. □

प्रस्तुति : हरिमोहन शर्मा

चलते-चलते

एक विलायती मंदिर में, एक विदेशी भक्त ने भगवान राम की मूर्ति के सम्मुख अश्रुपूर्ण प्रार्थना की, "मेरी बीवी वापस ला दो, राम!"

विलायती पुजारी ने हनुमान की मूर्ति की ओर इंगित करके कहा, "बीवियां वह वापस लाता है, भक्त!"

— उर्वशीकेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और खुदा खामोश है

किसी पादरी के पास जाकर अपने गुनाहों का इकबाल करना क्रिश्चियन नजरिया है. और मैं क्रिश्चियन नहीं हूं. अगर होती भी तो यह नजरिया मेरा नहीं हो सकता था. जानती हूं– कि कोई पादरी मुझे इस काबिल नहीं लग सकता था कि आंखों में आंसू लिये, मैं उनके सामने भरी-सी आवाज में अपने गुनाहों का इकबाल करती...

मेरा रिश्ता सीधा खुदा के साथ है. जो लोग यह रिश्ता नहीं बना पाते, उनकी मजबूरी होगा कोई पादरी, मेरी मजबूरी नहीं है...

कुछ लोग पादरी की जगह कोई और माध्यम तलाश करते हैं. उन्होंने इसके लिए साईको एनेलेसिस का रास्ता खोज लिया है. इस पर बर्ट्रेंड रसेल ने एक पेशीनगोई की थी कि आने वाले वक्त में हर इंसान को साइकेट्रिस्ट की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि किसी को कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिल पायेगा, जो इतने सब्र से उनकी बात सुन सके. इसलिए लोग जब चाहेंगे, एक घंटे के लिए एक सुननेवाले को खरीद लेंगे...

और मैं समझती हूं कि इस मामले में शायर और अदीब लोग बहुत हद तक खुशनसीब होते हैं कि उनके किरदार, उनके मन की बात कहने का माध्यम बन जाते हैं, और हजारों पाठक उन्हें सुनते रहते हैं...

अब 'रसीदी टिकट' लिखने के बाद भी जब 'सारिका' ने तकाजा किया कि मैं कुछ और लिखूं तो कुछ भी मेरी पकड़ में नहीं आया, कि आखिर वो कौन-सी बात है, जो मैंने अपने दिल के कोने में कहीं किसी गांठ में बांधकर रखी हुई है...

और कह सकती हूं कि कुछ भी मेरे हाथ में नहीं आया...

जो हाथ में आता है, वो अपनी ही एक हैरानी है. और एक व्यथा, लेकिन जानती हूं कि वो मेरा गुनाह नहीं है.

हां, एक सवाल है, जो हाथ में आता है कि अगर मेरा कोई गुनाह नहीं है, तो फिर यह हैरानी और यह पीड़ा मेरे किस गुनाह का सिला है?

यह सवाल बरसों से मेरे सामने था, इसलिए सोचती हूं– किसी दिन तो कहना ही था, आज ही कह देती हूं कि अपने इस सवाल का कुछ जवाब मैंने पाया है. और देखा है कि यह मेरा ही गुनाह था, जिसके दंड स्वरूप मुझे यह व्यथा मिली है...

मानना होगा कि कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं, जिनमें समय और स्थान अपना दखल नहीं रखते– बीयोड टाईम एंड स्पेस...

एक दिन यह काल-गणना मेरे हाथ से छूट गयी थी तो देखा कि कोई मठ-सा है, कोई ऋषि आश्रम–सा, जहां मैं भी रहती हूं, कुछ और लोग भी... और फिर देखा–

कि हमारे उस आश्रम में एक स्त्री ने एक बच्चे को जन्म दिया है और इस वाकये को ऋषि की नजर से छुपा लिया जाता है. आश्रम में किसी को पता नहीं चलता. सिर्फ दो-एक लोग हैं जो जानते हैं, और बच्चे को वहां से कहीं ले जाते हैं...

देखती हूं– वह स्त्री पीली-सी हुई, एक अंधेरे कमरे में एक चारपाई पर पड़ी है...

उस वक्त मैं उसे एक खत लिखती हूं, बड़े ही खूबसूरत फिकरे तराशती हूं, जिनमें एक फिकरा था– "कुदरत का दिया हुआ यह कैसा वक्त है, जब अपने ही बदन में से एक प्राप्ति का एहसास भी है और अपने ही भीतर से कुछ खो जाने का एहसास भी..."

अमृता प्रीतम : गुनाहों का इकबाल

और देखती हूं– यह खत लिखते समय मेरा मन निर्मल नहीं है. सोच रही हूं– मेरा यह खत वक्त का एक दस्तावेज होना चाहिए, जिसे गौर से पढ़ने पर यह सारा रहस्य सबके सामने आ जाये और इस मठ के सारे लोग इस वाकया को जान लें. मठ के ऋषि भी...

यह 31 जुलाई, 1986 की रात थी और उस खत के फिकरे तराशते हुए जब मेरी नींद टूट गयी, तो एहसास हुआ कि मैंने अपने ही किसी गुनाह का पता पाया है, जो जाने किस काल में किया था...

मैं जानती हूं, कि यह मेरा गुनाह था, जिसे मैंने एक दर्शन की तरह देखा.

दूसरे लफजों में यह कहती हूं कि यह मेरा 'मैं' था, जिसने मेरे सामने गुनाह का इकबाल किया...

गुनाह तो गुनाह है– चाहे वो किसी भी जन्म में किया हो...

मेरे गुनाह का यह बीज कहां तक पनप पाया था, मैं नहीं जानती. नहीं जानती कि जो खत मैंने लिखा था, वो किस तरह सबके सामने आया होगा. उस मठ के ऋषि ने उसे कैसे लिया होगा, और उस स्त्री ने मुझे कैसा श्राप दिया होगा...

लेकिन– इसका एहसास मेरी रगों में खून की तरह चलता है और कभी-कभी तड़प-सी जाती हूं कि अपने इस गुनाह की मैं तलाफी कैसे करूं?

जानती हूं अपनी नजर में उसका इकबाल करना है, लेकिन कुछ सुकून का इकबाल करना है, लेकिन कुछ सकून का एहसास होने पर भी इसकी पीड़ा नहीं जाती...

मैं कई बार हैरान-सी खुदा से पूछती हूं... अब क्या मुझे श्राप मुक्त नहीं करोगे?

और लगता है– वो जवाब में मुस्करा-सा देता है और कुछ नहीं कहता... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

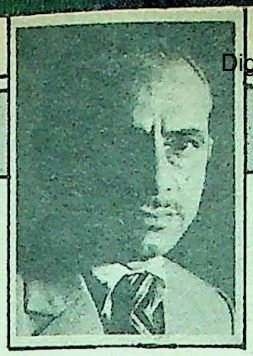

राजेंद्र राव

महरबां कैसे-कैसे

गर फिरदौस बररूए

वर्ष भर में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली चुनी हुई कहानियों का संकलन प्रकाशित करने की परंपरा डा. महीप सिंह और देवेश ठाकुर ने डाली. बाद में बहुत से लोगों को यह काम जरूरी लगने लगा और प्रतिवर्ष प्रतिनिधि संकलन प्रकाशित होने लगे. यह काम अर्थात् प्रतिनिधि कहानियों का चयन और संपादन उतना आसान नहीं जितना दिखाई देता है. इसका ज्वलंत उदाहरण है डा. हेतु भारद्वाज द्वारा संपादित 'प्रतिनिधि हिंदी कहानियां 1987' की भूमिका. भूमिका के प्रथम वाक्य में ही 'रविवार' के वर्षांत अक (27 दिसंबर 87) से वरिष्ठ कथाकार श्री श्रीलाल शुक्ल के लेख का एक 'तकलीफदेह' उद्धरण दिया गया है. चौथे पैराग्राफ में तीन बार फिर श्रीलाल शुक्ल के उक्त लेख के उद्धरण प्रस्तुत करके कुछ स्थापनाएं जोरदार ढंग से की गई हैं.

यहां हम यह पूछना चाहते हैं कि रविवार के वर्षांत अंक में 'हिंदी कहानी मुख्य धारा से कट गई है' लेख क्या सचमुच श्रीलाल शुक्ल का लिखा हुआ है? हेतु भारद्वाज हिंदी कथा साहित्य के गंभीर अध्येता हैं और संपादकीय कर्म में उतकी निष्ठा संदेह से परे है परंतु यह भूल लगभग अक्षम्य है. हुआ यह है कि उक्त लेख में 1987 में प्रकाशित श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'पहला पड़ाव' की सराहना की गई थी अतः संपादकीय विभाग ने उनका चित्र लेख के बीच में देकर उन्हें वर्ष का सफलतम उपन्यासकार जताना चाहा. लेख के साथ लेखक का नाम बाकायदा दिया गया था फिर भी हेतु भारद्वाज जैसे विद्वान से ऐसी चूक हुई. हिंदी कथा साहित्य में जो आपाधापी चल रही है उसे देखते हुए यह भी नहीं लगता कि एक प्रतिनिधिसंलकन की भूमिका में हुए गलत उल्लेख का किसी को पता भी चल पाता—महज संयोग है कि लेख इन्हीं पंक्तियों के लेखक का लिखा हुआ है.

इंद्रप्रस्थ भारती के अंदरूनी आवरण पृष्ठों में हिंदी अकादमी, दिल्ली की योजनाओं को कार्यक्रमों की लंबी सूची दी गयी है जिसमें 60 सूत्र हैं. इन्हें पढ़ना शुरू किया तो पढ़ते चले गये. अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि अपने देश में कोई जगह ऐसी भी है जहां साहित्य और साहित्यकारों के हिलचिंतन में गहरे डूबे रहने वाले लोग कुर्सियों को सुशोभित कर रहे हैं. इस सूची का पारायण करके मन हुआ कि बांधें बोरिया बिस्तर और पहुंच जायें दिल्ली, वहां अकादमी वाले सब संभाल लेंगे. फिर संशय हुआ कि यह भी सरकारी योजनाओं की तरह गूलर का फूल ही साबित न हो. इस घोषणापत्र में साहित्यकारों को सम्मान, आर्थिक अनुदान, आर्थिक सहयोग, वित्तीय अनुदान तो होंगे ही रचनात्मक लेखन और प्रकाशन के लिये भी आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाएगी. नवोदित लेखकों को पुरस्कार-प्रोत्साहन और लघु पत्रिकाओं को वित्तीय अनुदान, आर्थिक सहायता मिलेगी. छात्रों के लिये अलग से पुरस्कार और छात्रवृत्तियां. लेखकों के, कवियों के विशिष्ट तथा बड़े सम्मेलन, मासिक साहित्यिक कार्यक्रम, रेडियो—टी.वी. पर प्रायोजित कार्यक्रम, हिंदी फिल्म योजना और प्रतिभाओं की खोज... गर फिरदौस बररूए जमी अस्त, हमी अस्तो.

मार्क्सवाद और भारतीय यथार्थ

ज्ञानरंजन भले ही इलाहाबाद के मकाबले लखनऊ-भोपाल-पटना को कुछ न समझते-गिनते हो परंतु लखनऊ का अपना अलग ठाठ है. साहित्य और संस्कृति के मामले में यह भोपाल का निर्धन संस्करण तो है ही, पं. अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल, शिवानी, कुंवर नारायण, कामतानाथ, मद्राराक्षस और के.पी. सक्सेना जैसे लेखकों से गुलजार इस शहर में जो नयी प्रतिभा चर्चित हो रही हैं, उसे पदमनाभ प्रभास के नाम या उपनाम से जाना जाता है. आप भारतीय प्रशासनिक सेवा की साहित्य को देन हैं. एक दोपहर श्रीलाल शुक्ल के साथ पद्मनाभ प्रभास की रचनाएं सुन कर हमें लगा कि लीलाधर जगूड़ी को अपना जोड़ीदार मिल गया. लखनऊ के जिक्र के साथ गोपाल उपाध्याय और उनकी पत्रिका 'उत्कर्ष' का जिक्र न हो यह कैसे संभव है. 'उत्कर्ष' के नये अंक में पद्मनाभ ने 'मार्क्सवादी आलोचना : एक परिप्रेक्ष्य' में लिखा है कि, "दुर्भाग्य यह है कि यहां मार्क्सवाद और भारतीय यथार्थ के बीच एक विचित्र प्रकार की दूरी पैदा हो गई है. यही कारण है कि मार्क्सवाद शोषण से मुक्ति और नये समाज के निर्माण की राजनीति का अगुआ रहने के बजाए बहुत पीछे छूट गया है. यह रूप की सार तत्व पर विजय है; यह आवरण की देह पर जकड़ का सूचक है और अंततः यथार्थ के युद्ध की पराजय का संकेत. इसलिये सही मार्क्सवादी दृष्टि वह होगी जहां वह सही भारतीय दृष्टि में बदल जायेगी और मार्क्सवाद यह कार्य करता लुप्त हो जायेगा. यह भारतीय समाज की विजय की पहल होगी"

केवल आंतरिक आनंद के लिए

मनेंद्रगढ़ (सरगुजा) म.प्र. से प्रकाशित लघु पत्रिका 'शुरुआत' में संबोध प्रकाशन योजना का विज्ञापन कुछ इस तरह छपा है, "आपकी कृतिया भी प्रकाशित हो सकती हैं—(1) पांडुलिपि स्पष्ट लिख कर या टंकित करवाकर भेजें. (2) अधिकतम पृष्ठ संख्या 100 फुलस्केप पेज तक ही सीमित रखें. (3) आंशिक आर्थिक सहयोग रचनाकार द्वारा अपेक्षित है. (4) प्रकाशन द्वारा सहयोग राशि के आधार पर प्रकाशित प्रतियां निःशुल्क दी जा सकेंगी. (5) प्रकाशन द्वारा प्रथम संस्करण पर कोई रायल्टी देय नहीं होगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान ओ' हारा

आतंक

पुलिस चीफ ब्रेडले ने मार्विन नाम के एक जुआरी की फाइल अपने दायीं ओर सरकाते हुए अपने सहकारी से कहा, "हवालात में मार्विन नाम का एक कैदी बंद है. उसे यहां ले आओ." मार्विन के आने पर पुलिस चीफ ने उसे सर से पांव तक गौर से देखा और कहा, "देखो, मार्विन! तुम्हें एक मार्च तक यह शहर छोड़कर चले जाना है. उसके पहले, तीस दिन तक तुम्हें काउंटी जेल में रहना पड़ेगा. वहां रहने में तुम्हें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए क्योंकि तुम्हें काउंटी जेल में रहने का अभ्यास है, अनुभव है."

"जी हां, काउंटी जेलों में रहने का मैं इतना आदी हो गया हूं कि तीस दिन एक पांव पर खड़ा होकर भी बिता सकता हूं." उसने धीर-गंभीर शब्दों में कहा, ताकि इन शब्दों के पीछे का व्यंग्य पुलिस चीफ़ की समझ में न आ सके. वैसे, वह जानता था कि काउंटी जेल में बिताये गये तीस दिन किस सीमा तक आदमी का मानसिक संतुलन बिगाड़ सकते हैं. जेल का खराब, सड़ा हुआ खाना... जेल की दुर्गंध,... और कैदियों के दीवानगी भरे एहसास और विलाप!...

"यह तो मेयर साहब की मेहरबानी है कि तुम्हें तीन महीने की जगह सिर्फ एक महीने जेल में रहना पड़ेगा. वे चाहते हैं कि तुम अब जुआ खेलना बंद करो, और इज्जत की जिंदगी बिताओ... तुम्हारे इरादे क्या है?" ब्रेडले ने पूछा.

"अभी कुछ सोचा नहीं है. आपकी ओर से कोई सुझाव!"

"सुझाव तो यही है कि जुए की लत से आजाद होकर कोई अच्छी नौकरी ढूंढ़ो, मगर वह सुझाव तुम्हें शायद स्वीकार्य न हो."

"मेरी मुसीबत यह है, चीफ़ महोदय, कि मैं सिर्फ एक ही काम जानता हूं—जुआ खेलना. दूसरा और कोई काम मुझे आता ही नहीं है."

"लेकिन तुम्हारे इस काम से तुम्हें क्या लाभ हुआ है? कभी सोचा है? साल में छः महीने अपने इसी काम की वजह से जेल में रहते हो. खैर, इस बार जेल से छूटकर कहां जाने का इरादा है? इस शहर में तो मैं तुम्हें आने नहीं दूंगा."

"मैं सीधा मियामी जाऊंगा. वहां मेरे

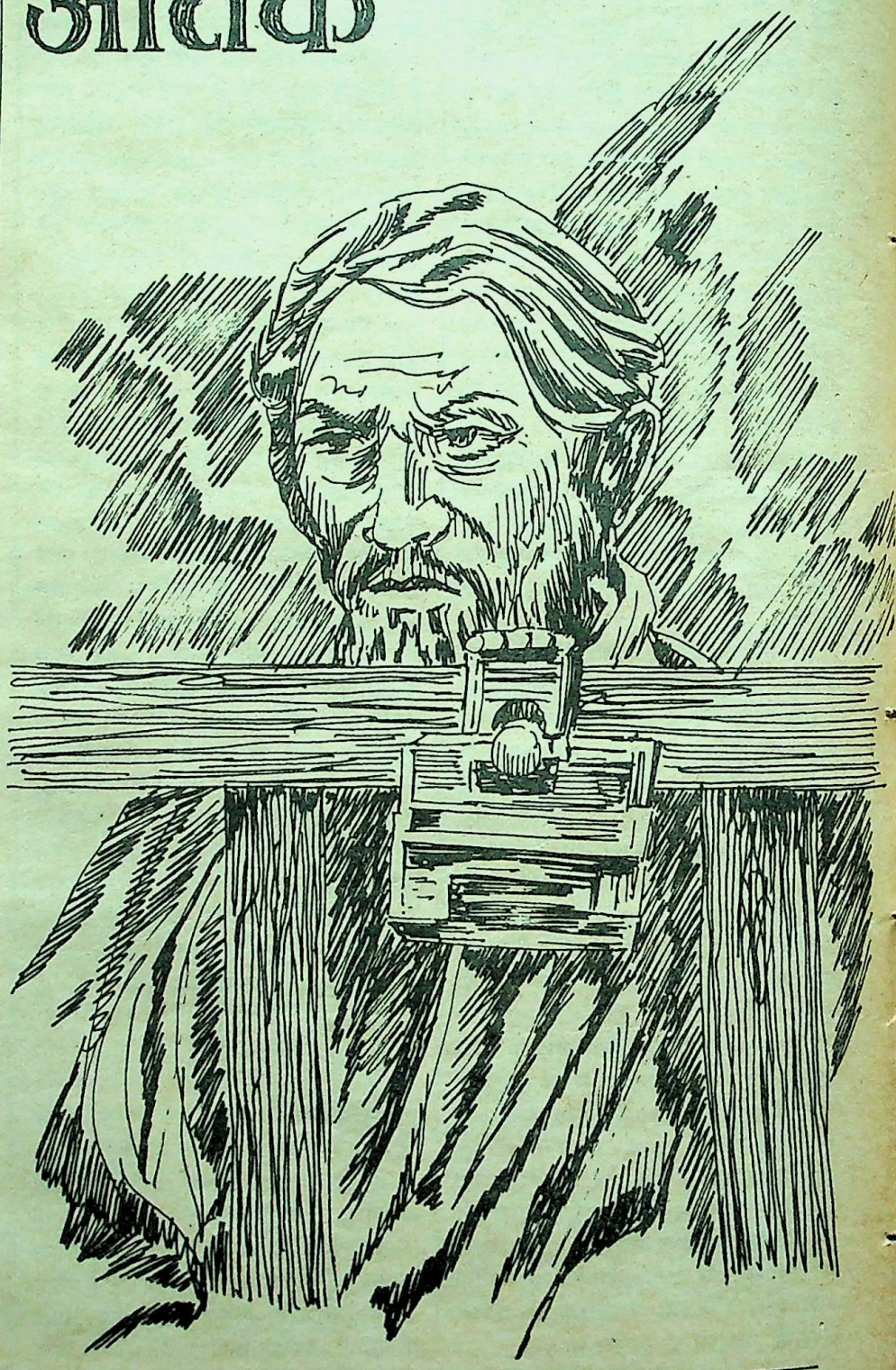

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीवी, बच्चे होंगे.''

''लेकिन जब तक तुम मयामी पहुंचोगे तब तक तो वहां जुए का मौसम खत्म हो चुका होगा.''

''असल में हुआ यह, सर, कि यह निर्णय मेरे वकील ने बिना मुझसे पूछे मेयर के सामने ले लिया था. मेयर मुझे 90 दिनों तक जेल में रखना चाहते थे, मगर मेरे वकील ने उन्हें आश्वासन दिया कि यदि मुझे 30 दिन बाद जेल से मुक्त कर दिया गया तो मैं तीस दिन बाद यह शहर हमेशा के लिए छोड़कर मियामी चला जाऊंगा. मियामी का नाम उसके जहन में कैसे आया, मैं नहीं, जानता, मगर अब उसकी बात रखने के लिए मुझे मियामी जाना ही पड़ेगा. अन्य कोई विकल्प नहीं है.''

''मैं यह सब नहीं जानता. मैं सिर्फ इतना जानता हूं कि यदि मैंने कभी तुम्हें इस शहर में जुआ खलते देखा तो खुदा की कसम, इस बार तुम्हें लंबी सजा दिलवाये बिना नही मानूंगा... अच्छा, एक बात पूछने को मन हो रहा है, तुम्हारे वकील ने तुम पर इतनी मेहरबानी क्यों दिखायी? क्या उसने बदले में कुछ मांगा था?''

''उसने मुझसे बदले में कुछ नहीं मांगा और जिसे आप उसकी मेहरबानी कह रहे हैं वह उसने क्यों दिखायी, यह भी मैं नही जानता. हां, एक सवाल मुझेभी कुरेद रहा है. वह यह कि मेयर साहब तो काफी सख्त अफसर माने जाते हैं, फिर उन्होंने मुझे तीन महीने के स्थान पर एक महीने की सजा देनी क्यों स्वीकार की?''

''मेयर साहब ने जो कुछ किया, सोच-विचार कर ही किया होगा. वे बहुत समझदार और दूरंदेश आदमी हैं.''

''हां, मैं आपकी इस बात से सहमत हूं कि वे काफी समझदार ओर दूरंदेश आदमी हैं. ऐसे आदमी ही षड्यंत्र बनाने में उस्ताद होते हैं.''

''षड्यंत्र? क्या मतलब?''

''न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता है कि मेयर साहब और मेरे वकील ने मिलकर मेरी सजा के मामले में कोई षड्यंत्र रचा है.''

''मैं ऐसे किसी षड्यंत्र की कल्पना नहीं कर सकता. लेकिन, तुम्हें इस डेफी नाम के आदमी को अपना वकील नहीं बनाना चाहिए था.''

''क्यों?''

''वह औरतों के मामले में जरा... और तुम्हारी बीवी काफी सुंदर है, यह बात किसी से छिपी नहीं है.''

''सर, मेरी बीवी को चौथा महीना चल रहा है. उसकी ओर से मुझे कभी कोई चिंता नहीं रही.''

''तो फिर ठीक है. मगर तुमने जिस षड्यंत्र की तरफ इशारा किया है, मैं उसके बारे में सोच रहा था. मेयर साहब के मन में आखिर क्या है?''

''शायद वे मुझसे कुछ कराना चाहते हैं.''

''मगर क्या?''

''काश! मुझे कुछ पता होता. और मैं जानने की कोशिश भी नहीं करना चाहता. इसलिए कि मैं एक जुआरी हूं और जुआरी का मन निश्चित होने के स्थान पर सदा अधीर और कुतूहली ही रहना चाहता है.''

''हूं.''

''जुआरी को जीत में नहीं, अपना सब कुछ दांव पर लगाकर, यह इंतजार करने में ही मजा आता है कि अब क्या होगा?''

''हां, सब जुआरियों का मनोविज्ञान शायद ऐसा ही होता है.''

''क्या आप मेरे अलावा किसी और जुआरी से भी परिचित हैं?''

''हां. कुछ से मेरा साबका पड़ा है. मैंने उन सबका सोच तुम्हारे जैसा पाया. तुम सच कहते हो कि जुआरी, जो पुलिस की निगाह में एक अपराधी ही है उत्तेजना में ही जीना चाहता है. सफलता को वह अपना लक्ष्य नहीं समझता क्योंकि सफलता मिली कि उत्तेजना खत्म! मेरा एक परिचित है, जिसे जुआ खेलते-खेलते पच्चीस साल हो चुके हैं. एक बार वह जुए में पचास हजार डॉलर जीत गया, लेकिन मैंने देखा कि वह खुश होने के स्थान पर घबराया हुआ था. जीत ने उसकी उत्तेजना खत्म करके रख दी थी. जिस उत्तेजना को वह इस शानदार जीत से गंवा चुका था, उसे दुबारा पाने के लिए उसने वे पूरे के पूरे पचास हजार डॉलर दांव पर लगा दिये. इस दांव में वह पूरी रकम हार गया, लेकिन वह हार कर खुश था, क्योंकि हार ने उसे उसकी खोयी हुई उत्तेजना वापस दिला दी थी.''

''शायद आप ठीक कह रहे हैं. वैसे, मुझे भी अन्य जुआरियों की भांति जीतने में उतना मजा नहीं आता, जितना इस आशा से खेलते रहने में कि एक बार 'जैक पॉट' लग गया तो बीवी की सारी परेशानियां एक ही बार में दूर हो जायेंगी.''

''क्या तुम्हारी पत्नी को भी जुए का शौक है?''

''तोबा कीजिये, चीफ साहब! वह जुए की जानी दुश्मन और काफी किफायशार और दानिशमंद औरत है. जब मैं रात को घर लौटता हूं तो जीत की आधी रकम कही छिपाकर आता हूं. क्योंकि मुझे मालूम है कि बीवी मेरी जेब में एक पैसा भी नहीं छोड़ेगी, और सब कुछ निकाल लेगी. और क्यों न निकाले? उसे आखिर मेरे अलावा दो बच्चों का पेट भी पालना पड़ता है. वह भी जुआ खेलने लगे तो हम चारों भूखे मर जायें.''

''क्या तुम जुए से इतना कमा लेते हो कि अपना और अपने परिवार का पेट पाल सको?''

''बस, यूं समझ लीजिये कि हम लोग मजे में रहते हैं और काफी बचा भी लेते हैं. यह सब मेरी जुए की कमाई से पूरा नहीं होता क्योंकि मैं जीतता कम और हारता ज्यादा हूं. मगर, मेरी आमदनी का एक जरिया और भी है.''

''वह कौन-सा जरिया है?''

''मेयर साहब उस तरीके के बारे में बखूबी जानते हैं.''

''अच्छा! मगर वह धंधा आखिर है क्या?''

''उसे धंधा कहना तो ठीक न होगा, फिर भी...''

''फिर भी कया?''

मार्विन ने कुछ क्षण तक सोचने के बाद कहा, ''धंधा यह है, चीफ साहब, कि जुआघर के मालिक का नौकर बनकर, जुआघर के ग्राहकों के साथ बेईमानी करके उन्हें हराओ, और जीती हुई रकम का एक तिहाई हिस्सा, बतौर बोनस के, मालिक से अगले दिन ले लो. इसी तरह महीने में हजारों की आमदनी हो जाती है. इसीलिए, इस धंधे को मैंने अपनाया है.''

ब्रेडले का मुंह मार्विन की यह बात सुनकर, गुस्से से लाल हो गया. पता नहीं, ईर्ष्या से या और किसी कारण से. उसने उठकर मार्विन से कहा, ''आओ चलें.''

रास्ते भर ब्रेडले मार्विन को समझाता आया कि जुआरी कभी सुखी नहीं रह सकता. ''अब तुम्हें जुए का धंधा छोड़कर कोई ईमानदारी की कमाई वाला धंधा अपना लेना चाहिए. अभी तक हम पुलिसवाले तुम्हें एक मामूली जुआरी समझकर, अदालत से कम सजा दिलवाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे. लेकिन, अगर हमें कभी ऐसा सबूत मिल गया कि तुम जुए में बेईमानी भी करते हो, तो तुम हमारी नजर में एक सामान्य अपराधी से महापराधी बन जाओगे और तुम्हारी जिंदगी पर एक अमिट ठप्पा लग जायेगा, बदमाश होने का. तब तुम्हें न कहीं कोई काम मिल सकेगा, न कोई नौकरी."

मार्विन ने मुस्कराकर कहा, "महापराधियों और बदमाशों को भी नौकरी मिल जाती है, चीफ साहब!"

"ऐसे लोगों को कौन काम देगा?"

"वे लोग, जो उनसे भी ज्यादा बदमाश और महापराधी हैं और जो हम जैसे मामूली अपराधियों को नौकर रखकर उनका शोषण करते हैं, उनकी कमाई पर धन्ना-सेठ बन बैठे हैं. समाज में बड़े प्रतिष्ठित माने जाते हैं."

"तुम्हारा मतलब...?"

"...आपके उन मेयर साहब से भी है. जिन्हें सारा शहर बड़ा ईमानदार और इज्जतदार मानता है. अब मैं आपको बता ही दूं कि उन्होंने मुझे मियामी भेजने की व्यवस्था क्यों की है. वैसे यह बड़ा राज है, और आप भी उसे राज ही समझें."

"ठीक है. यह राज मुझ तक ही सीमित रहेगा. मैं जानने को बहुत उत्सुक हूं कि उन्होंने तुम्हें मियामी भेजने की व्यवस्था क्यों की है?"

"मियामी में उनके अनेक परिचित हैं जो उन जैसे 'माफिया बॉस' हैं."

"क्या बकवास कर रहे हो? मेयर और माफिया बॉस?"

"जी हां, वे एक माफिया बॉस हैं, भले ही आप इस बात पर विश्वास करें या नहीं. खैर. वे चाहते हैं कि अपने जुआघर की एक बड़ी शाखा मियामी में भी खोलें और मैं थोड़ी ज्यादा तनख्वाह पर वही काम करूं जो अब तक उनके निर्देशानुसार मैं यहां कर रहा था."

जो सुना, उस पर, ब्रेडले को विश्वास नहीं हो रहा था. कुछ देर तक चुप रहने के बाद आखिर, उसने पूछ ही लिया, "मगर यहां... यहां उन्हें क्या कठिनाई हो रही थी?"

"वह कठिनाई... आप थे."

"मैं?" हैरत से ब्रेडले ने पूछा.

"जी हां, आप. वेअदबी माफ हो."

"मगर मैंने क्या किया है कि वह मुझे कठिनाई मानते हैं?"

"शायद आपको यह पता नहीं है, चीफ साहब कि आपने स्थानीय जुआरियों के खिलाफ एक मुहिम छेड़कर, उनका धंधा काफी हद तक चौपट कर दिया था. इस कारण, मेयर आप से बहुत नाराज हैं."

ब्रेडले आश्चर्य से मार्विन को देख रहा था.

मार्विन ने आगे कहा, "इसलिए यदि कुछ ही दिनों में आपके खिलाफ भी कोई साजिश हो जाये तो आपको ताज्जुब करने की जरूरत नहीं होनी चाहिए."

"साजिश?"

"हां, पहले आपको भ्रष्टाचार के जाल में फांसा जायेगा, और फिर आपका बेइज्जती के साथ यहां से कहीं और तबादला कर दिया जायेगा. मैं इस साजिश के बारे में जानता हूं, इसलिए आपका शुभचिंतक होने के नाते आपको उसकी पूर्व-सूचना दे रहा हूं. अब बताइये, निश्चित कौन है? मुझ जैसा जुआरी या आप जैसा जुआ-विरोधी ईमानदार पुलिस अफसर?" □

WISHING ALL OUR CLIENTS WELL WISHERS & FRIENDS
A JOYOUS DIWALI & PROSPERIOUS NEW YEAR

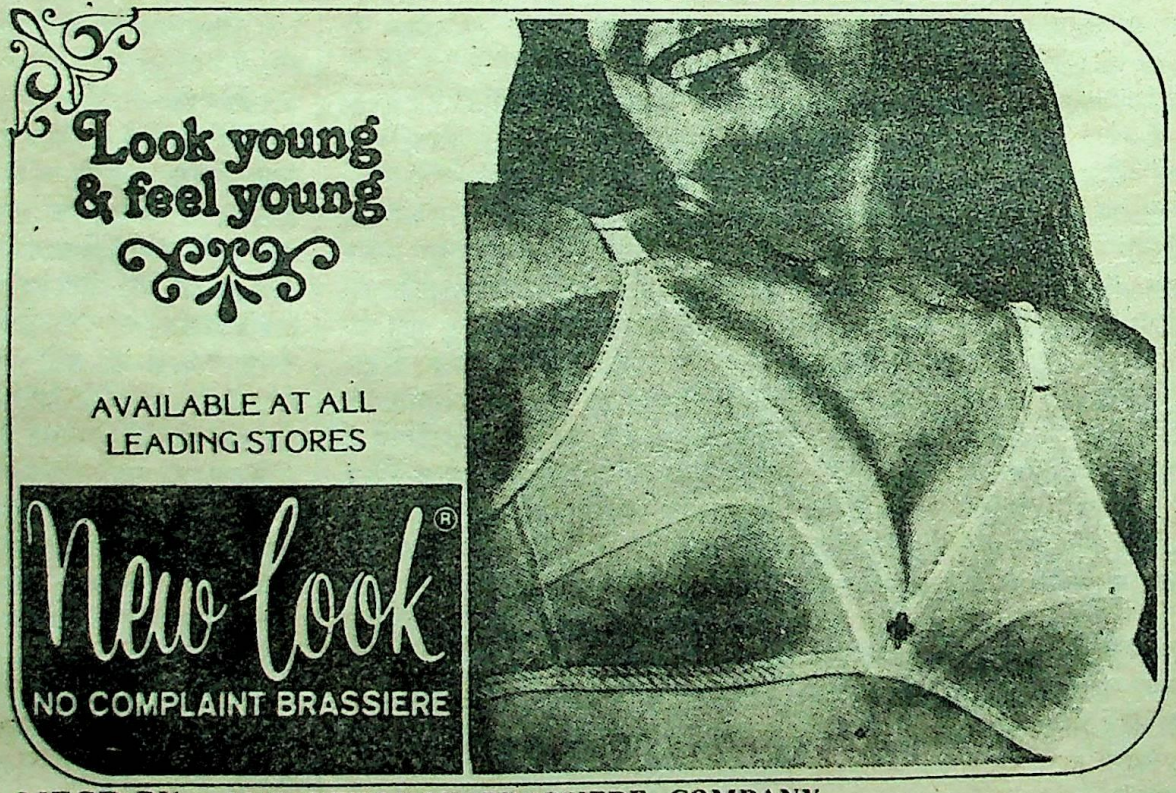

MFGD BY:— M/S NEWLOOK BRASSIERE COMPANY
204, J Shankar Sheth Road, Girgaon Near Gaiwadi, Bombay-400 004 Tel: 356583

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरेंद्र अस्थाना

पूछती है सैयदा इस जिंदगी का क्या किया!

चित्रांकन : हरिप्रकाश त्यागी

आठवें दशक के कथाकारों में धीरेंद्र अस्थाना के कथाकार ने एक अलग ही पहचान बनायी है... जिंदगी को लेकर खास खुलापन उनकी जीवन-शैली का एक हिस्सा है! आइए देखें, भीतर की गांठों को वे किस हद तक खोल सकते हैं...!

जब मैं वयस्क नहीं था, शहर (मुजफ्फरनगर) की हर सुंदर लड़की से प्रेम करने को व्याकुल रहता था. 'सारिका' नामक पत्रिका को एक आतंक की तरह देखता-छूता था और अपने सबसे पुराने दोस्त राजकुमार गौतम के साथ लेखक बनने के ख्वाब देखा करता था—नरक ने उससे पहले ही मेरे जीवन में प्रवेश कर लिया था.

डैडी पहाड़ पर थे—जोशीमठ में, हम मुजफ्फरनगर के एक ऐसे तंग और सीलन भरे कमरे में, जिसके बाहर नाली में कीचड़ और मल-मूत्र बहता रहता था और हमें हर समय दुखी और पीड़ित रखता था. उस कमरे में हम सोते भी थे, रसोई भी करते थे, नहाते भी थे, कपड़े भी धोते थे और पढ़ते भी थे. मैं परिवार के सबसे बड़े बेटे होने का अभिशाप लिये डैडी द्वारा भेजे पैसों से घर का खर्च भी चलाता था, अपनी पढ़ाई भी करता था, अपने छोटे भाइयों को अपनी पीठ पर लादकर बड़ा करते-करते मैदान में खेलते अपने हमउम्र साथियों को क्रिकेट भी खेलते देखा करता था और उनके तथा मां के लिए खाना भी पकाया करता था. खाना यानी सबके लिए दो-दो पराठे और एक चाय, या खिचड़ी या गुड़ और चना. मां स्थायी रूप से बीमार रहती थी. अपाहिज थी.

फिर मैं देहरादून आ गया—कुछ अधिक यथार्थवादी दृष्टि और अध्ययन की अपेक्षाकृत अधिक संपन्न पूंजी के साथ. इस बार डैडी भी साथ थे. यहां जिस रात थाली में मुर्गा होता था, उसके अगले दो रोज तक सिर्फ चने भी हो सकते थे. यहां फिल्म देखने के लिए जिस दिन पांच-दस रुपये मिल सकते थे, उसके अगले कई दिनों तक घर से कॉलेज की दूरी के लिए बस का टिकट खरीदने की चवन्नी अपने एक पानवाले दोस्त ब्रह्मप्रकाश से मांगनी पड़ सकती थी. यहां बाप और दादा में मल्ल युद्ध होते देखा, यहीं मां को मार खाते देखा और यहीं पिता के विरुद्ध एक बेचैनी, एक प्रतिवाद, एक प्रतिकार और एक अवज्ञा को मन में आकार लेते भी पाया. पिता के विरुद्ध पहला प्रतिवाद मैंने यह किया कि चार मीनार की सिगरेट फूंकते हुए पूरे प्रेम नगर (देहरादून की एक बस्ती) के चक्कर काट आया ताकि शाम तक उनके पास यह खबर पहुंच जाये. खबर उन तक पहुंची लेकिन वे उसे पचा गये, तो मैं एक रात, पहली बार शराब पी आया और घर में आकर उल्टी कर दी. इसका भी कोई असर नहीं हुआ, तो मैंने रातों को अक्सर घर से बाहर बिताना शुरू कर दिया.

मुजफ्फरनगर में मेरा आर्थिक, मानसिक और भावनात्मक आधार राजकुमार गौतम था, तो देहरादून में यह दायित्व संभाला देशबंधु ने. देशबंधु एक असंभव, जटिल लेकिन मूलतः भावुकता की हद तक संवेदनशील व्यक्ति था. उससे दोस्ती बढ़ी तो मैं सर्वांग उसका हो लिया.

मेरी सबसे चर्चित और पहली कहानी 'लोग/हाशिए पर' का 'कोरिलेटिव' देशबंधु ही है. मेरी विवादास्पद कहानी—'जन्मभूमि' उसके चरित्र के माध्यम से ही मेरी अपनी जटिलताओं को मूर्त कर सकी है. केवल बत्तीस वर्ष की उम्र में ही शराब से जर्जर हो जाने वाले मेरे तन-मन के पीछे देशबंधु की ही उपस्थिति जिम्मेदार है. उसके साथ मैं रोजाना देहरादून के विभिन्न शराबघरों में रात के बारह-बारह बजे तक शराब पीता था, दो-दो बजे तक सड़कों पर घूमता-फिरता था और सैकड़ों शराबियों, गुंडों, बदमाशों गरीबों, क्रांतिकारियों, दूकानदारों और सिनेमाहॉल के गेटकीपरों के मनोलोक, स्वप्नलोक और जीवन स्थितियों में तैरता-उतरता और उनसे टकराता जूझता था. वह न होता तो जीवन की तलछट अनजानी-अनपहचानी रह जाती.

बहरहाल. देहरादून में डा. आर. के. वर्मा के साप्ताहिक अखबार '1970' में 50 रुपये माहवार पर सहायक संपादकी (जिसमें मेहमानों के आने पर सड़क पार की चाय की दूकान से चाय लाना भी शामिल था) करने के लेकर 'वेनगार्ड' साप्ताहिक में 75 रुपये महीने पर प्रूफ पढ़ने तक (जिसमें कभी-कभी मशीन मैन का सहायक बनकर छपा हुआ पेज मशीन के दो जबड़ों से बाहर निकालने का काम भी शामिल था) और घरेलू स्थितियों की असहनीयता से ऊबकर लखनऊ भाग जाने का और फुटपाथ पर रातें बिताने के बाद मित्र कौशल किशोर के कमरे में शरण पाने से लेकर वापस देहरादून लौटकर वामपंथी छात्र राजनीति में सक्रिय होने तक एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जिसने मेरे रचनात्मक संसार में काफी कुछ जोड़ा.

अप्रैल, 1975 में मेरी पहली मैच्योर कहानी 'लोग/हाशिए पर' देहरादून की 'सिलसिला' त्रैमासिक पत्रिका में छपी और देश भर के लेखकों-पाठकों के खेतों से मेरा झोला भर गया. बलराम का खत भी उन्हीं दिनों मिला. 'लोग/हाशिए पर' छपते ही मुझे बतौर साहित्यकार स्वीकार कर लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया. तब तक मेरा परिचय राज शर्मा, मिकी, शशि गुप्ता, आलोक उपाध्याय, वेद उनियाल, पवन शर्मा और करनैल सिंह जैसे स्थानीय मार्क्सवादी नक्सली छात्र-नेताओं से हो चुका था और मैं पेशेवर क्रांतिकारी बनने के ख्वाब और जूनून से जुड़ चुका था. पहले मैं मार्क्सवादियों के छात्र संगठन एस.एफ.आई. का जिला अध्यक्ष रहा और फिर नक्सलियों से जुड़ गया. इन्हीं दिनों देहरादून से मैंने क्रमशः 'शाश्वत' और 'दस्तक' नाम से वामपंथी चेतना की लघु पत्रिकाएं भी संपादित कीं 26 जून, 1975 को लगे बर्बर आपातकाल के वक्त का कुछ समय मैंने भूमिगत होकर कलकत्ता में गुजारा.

इससे पहले 1977 में 'सारिका' में मेरी एक कहानी छपी थी 'आयाम'. कहानी पढ़कर हलद्वानी से किसी ललिता बिष्ट ने एक भावुक-सा खत मुझे लिखा, प्रेम का इतने दिनों से बाधित सोता जैसे भल-भल कर फूट पड़ा. दोनों तरफ के पत्र लंबे होते चले गये और अंततः 13 जून, 1978 की एक सुबह मैंने पाया कि ललिता मुझे सोते से जगा रही है और सूचित कर रही है कि वह अपने पिता के घर को छोड़ आयी है और अब कभी वापस नहीं जायेगी. हमने उसी दिन विवाह किया और अगले रोज पिता से सुना कि अगर जरा भी शराफत बाकी है तो 24 घंटे के भीतर घर छोड़ दो.

यानी संघर्ष फिर सामने था. पहले से कहीं अधिक मारक और हाहाकार भरा. ललिता ने कहा, "प्याज रोटी भी खिलायेगा, तो जीवन गुजार लूंगी." उसे सुन मैं लगभग रो ही पड़ा.

करीब पंद्रह दिन हमने राजपुर रोड स्थित भीमसेन त्यागी के मकान में गुजारे. वह सुदर्शन चोपड़ा के देहांत पर सपरिवार दिल्ली चले गये थे. काफी समय बाद लौटे, तो साथ में संदेश भी लाये कि फौरन दिल्ली जाकर राजकमल प्रकाशन ज्वाइन कर लूं. और इस तरह मैं दिल्ली आ गया... राजकमल की साढ़े तीन सौ रुपये महीने की नौकरी पर. ललिता कुछ दिन मां के साथ रही फिर अपनी मां के पास चली गयी, नवंबर 1979 में मैं उसे भी दिल्ली ले आया. दिल्ली में शुरू के काफी समय तक सुरेश उनियाल की छत, संरक्षण और भावनात्मक सुरक्षा मिली जिसने लड़ने और जीने के हौसले को जिलाये रखा.

लेकिन दिल्ली में लड़ने, जीने, बचे, रहने, बनने और सवरने का अध्याय अगर किसी ने लिखा है तो केवल ललिता ने. आज जो यह थोड़ी बहुत रचनात्मक उलपब्धियां दिख रही हैं, इनके पीछे की संघर्षशीलता, यातना, हताशा और अंधेरे को उसने बूंद-बूंद पिया है.

यह एक तल्ख स्वीकार है कि अगर 1977 के अंतिम समय में मेरा-उसका परिचय न हुआ होता और 13 जून, 1978 के रोज वह सहसा मेरे सामने आकर खड़ी न हो गयी होती तो मैं अब तक या तो देहरादून के किसी शराब के ठेके पर मर-मरा चुका होता या आत्महत्या कर चुका होता.

31 मार्च, 1981 को कुछ मतभेदों के चलते, आवेश में आकर मैंने राजकमल छोड़ दिया. तब हम दक्षिण दिल्ली के राजनगर इलाके में आठ बाई आठ फुट के एक तंग कमरे में रहते थे. हम यानी मैं, ललिता, मेरा बेटा आशू और ललिता के गर्भ में उपस्थित दूसरा बेटा. मैं दिन भर यूं ही भटकता रहा और शाम को सीमापुरी के ठेके पर चला गया. वहां मैं रात के ग्यारह बजे तक शराब पीता रहा और इतना भावुक होने के लिए खुद को लगातार कोसता रहा. रात को बारह साढ़े बारह बजे मैं घर में घुसा. टूटा, क्षत-विक्षत और शराब के नशे में आक्रांत. वह रात मेरे जीवन की बहुत गलीज, नारकीय और भीतर तक हिला देने वाली रात है. मैंने ललिता को बताया कि मैंने नौकरी छोड़ दी है. पहली बार वह डर गयी. असुरक्षा, अभाव और भटकाव का जो दर्द उसके सीने में उठा उसने सहसा ही उसे एक आम भारतीय स्त्री में बदल दिया और वह मेरी उस भावुकता, जिसे वह प्यार करती थी, को कोसने लगी. बात बढ़ती गयी और एक-दूसरे के प्रति विरोध, अविश्वास और अवज्ञा का भाव भी उग्र होता गया. नतीजा संहार में निकला. आज भी मैं इस अपराध-बोध से अपना पीछा नहीं छुड़ा पाया हूं कि उस रात मैं ललिता को तब तक मारता रहा जब तक कि बेहोश नहीं हो गया.

एक अप्रैल को मैं बेरोजगार रहा. मेरा उपन्यास राधाकृष्ण से छप रहा था— 'समय एक शब्द भर नहीं है.' उसी की प्रगति को जानने मैं राधाकृष्ण के मालिक अरविंद कुमार से मिलने गया. बातचीत में यह बात खुल गयी कि मैं राजकमल से इस्तीफा दे चुका हूं. अरविंद जी ने कहा, "हमारे यहां ज्वाइन कर लो." मैंने पूछा, "कब से." उन्होंने कहा, "आज से." मैंने कहा, "कल से आ जाऊंगा." और 2 अप्रैल, 1981 से मैं 'राधाकृष्ण' का मुलाजिम हो गया— नौ सौ रुपये महीने पर.

4 अगस्त को ललिता सफदरजंग अस्पताल में एडमिट हुई. दूसरी संतान को जन्म देने के लिए. उसे भर्ती करा कर मैं घर लौटा, तो 'दिनमान' से नंदन जी का खत आया मिला कि तत्काल मिलो. मैं उल्टे पांव 'दिनमान' पहुंचा.

नंदन जी बोले, "सात अगस्त से 'दिनमान' ज्वाइन कर लो. फिलहाल 'प्रूफरीडर' का पद है. बाद में उपसंपादक के लिए प्रयत्न करूंगा." मैं उनका आभारी होता हुआ घर लौटा और अस्पताल पहुंचा. तब तक ललिता दूसरे बेटे राहुल को जन्म दे चुकी थी.

दिल्ली आने के शुरुआती समय और बाद में जो मित्र मेरे जीवन में आये उनकी संख्या बहुत अधिक है. लेकिन जिनकी वजह से मेरे इमोशनल और क्रिएटिव संसार में एक समृद्धि आयी उनमें कन्हैयालाल नंदन, राजेंद्र यादव, हरिप्रकाश त्यागी, हरिनारायण, रामकुमार कृषक, वीरेंद्र जैन, उदय प्रकाश, महेश्वर दयालु गंगवार, डा. जगदीश चंद्रिकेश आदि प्रमुख हैं.

तो इस तरह मैं शराबी-कबाबी दोस्तों के साथ गुजारी, आबाद-बरबाद रातों, छात्रों की हड़तालों, मजदूरों के जुलूसों, बौद्धिकों के स्वप्नों, क्रांतिकारियों के भाषणों, अभावों के दुखों, दुखों की भाषा और भाषा के आंदोलनों से होकर लेखन को छोड़ता क्रांति को अपनाता, क्रांति को छोड़ता प्रेम को पकड़ता, प्रेम से मुक्त होता शराब में डूबता, शराब से निकलता थियेटर में घुसता, थियेटर से भागता नौकरी को ढूंढता, नौकरी को छोड़ता, शहरों में भटकता, लोगों में जाता, लोगों से आता, हजार-हजार लगावों, परेशानियों और कुंठा में डूबता-उतराता हुआ अंततः राजधानी में हूं— पांच कहानी संग्रहों, दो उपन्यासों, एक नाटक, एक इंटरव्यू की किताब और कुछेक समीक्षाओं की बहुत थोड़ी-सी पूंजी के साथ. श्रीकांत वर्मा की तरह अपने से यह कहता हुआ— "पूछती है सैयदा, इस जिंदगी का क्या किया?" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालस्तोय

सार्वजनिक रूप से अपनी कमजोरियों, भूलों को स्वीकार कर लेने वाले विश्वप्रसिद्ध व्यक्तियों में तालस्तोय, रवींद्रनाथ, नेहरू और दिनकर का अंदाज अपनी ही तरह का था. यहां प्रस्तुत हैं इनकी आत्मस्वीकृतियां...

खुद से फरार होकर कहां जायेंगे हम...?

उन दिनों की याद मुझमें भय पीड़ा और तकलीफ पैदा करती है जब मैंने युद्ध में सैनिकों को मारा... लोगों को खत्म कर देने के लिए द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारा... खेतिहार मजदूरों को अकारण दंडित किया... यह वे दिन थे जब मैं अय्याशी तो करता ही था लोगों को धोखा भी देता था. झूठ, राहजनी और नशे से लेकर व्यभिचार तक ऐसा कोई अपराध न था, जो मुझसे अछूता रहा हो. तकलीफ इस बात की थी कि इस सबके बावजूद लोग मुझे भला और नैतिक आदमी मानते थे. यह जीवन मुझे करीब दस साल तक जीना पड़ा... इसी दौरान मैंने लिखना शुरू किया. मेरे लेखन में सब कुछ वैसा ही था जैसा आचरण में. मैं चूंकि मशहूरी और पैसा कमाने के लिए लिख रहा था इसलिए यह जरूरी था कि अच्छाई को छिपाकर बुराईयां सामने रखी जायें. मैंने ऐसा ही किया...

स्वदेश लौटकर मैंने खुद को किसानों के स्कूल से जोड़ लिया. यह काम मुझे अच्छा इसलिए लगा कि मुझे वहां झूठ का सामना नहीं करना पड़ता था... झूठ, जो निश्चित रूप से मुझमें विद्यमान था. अक्सर यह झूठ तब मेरे चेहरे पर उभर आता था जब मैं लोगों को साहित्यिक तरीके से पढ़ाने की कोशिश करता. सच यह था कि मैं अपने आप में यह सोचता रहता कि क्या खुद जाने बिना किसी को कुछ पढ़ाया भी जा सकता है! मैं अपनी आत्मा की गहराइयों तक यह महसूस करता कि मैं कुछ भी ऐसा नहीं बता सकता जो उद्देश्यपूर्ण हो. और इसका कारण भी था कि मैं खुद उद्देश्य की समझ नहीं रखता था... और तब मैं दूसरी बार खुद कुछ जानने के लिए विदेश गया.

...अचानक मुझे भयानक खालीपन ने घेर लिया. कुछ क्षण तो ऐसे भी आये जब मुझे लगा कि मैं टूट गया हूं. मैं समझ नहीं पा रहा था कि मुझे कैसे जीना है और क्या करना है. मैं निराशाजनक स्थितियों में जी रहा था. टूटन के ऐसे क्षण निश्चित अंतराल के बाद आने लगे. जैसे किसी लिखे कागज पर स्याही गिर पड़े, ठीक इसी तरह मेरे दिमाग में अंधेरा छा गया था... अब मैं समझ गया था कि यह सब अकारण नहीं है. उभरते हुए सवालों का जवाब देना जरूरी है. क्योंकि जिस तरह अब तक मैं इन सवालों को लेता रहा था उससे तो संभवतः मैं पूरी जिंदगी कुहासे से उभर नहीं पाता. मुझे लगा, अगर इन सवालों का जवाब मैं नहीं खोज पाया तो ये सवाल ज्यादा इंतजार नहीं करेंगे. ...लेकिन उत्तर सचमुच मेरे पास नहीं थे. मुझे लगा कि पैरों तले की जमीन खिसक रही है. अपने अंत को करीब आता देख मैं घबराते हुए यह महसूस कर रहा था कि सच यही है, जो आंखों के सामने है. बाकी सब छलावा. मेरा जीवन विराम-चिन्ह पर आकर रुक गया था और मैं अपने आप को खत्म कर देना चाहता था. लग रहा था जैसे लोग जीवन के अर्थ जानने की घोषणा करते हुए जी रहे हैं... अपना अंत कर देने का विचार आते ही मैं गहरे दुख से भर जाता. यह मेरे लिए ईश्वर की खोज थी. दरअसल, यह दृश्य से उठी भावना थी. अचानक मैंने अपने आप से कहा, ठीक है... भगवान नहीं है और ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो मेरी कल्पना से परे हो. बल्कि यह सब मेरी जिंदगी की हकीकत है. मेरे अंदर से आवाज आयी. और तुम क्या पाना चाहते हो. यह वही है. जिसके बिना कोई नहीं जी सकता. ईश्वर को जानना और जीना एक ही है.

रवींद्रनाथ ठाकुर

मां से जब मैंने कहा कि मैं पिता के पास वाल्मीकिकृत मूल रामायण पढ़ा करता था जिसमें संस्कृत ही संस्कृत है, मां इस समाचार से मुझे कर्तव्यशील बताते हुए खुद को धन्य समझती और कहती, "अरे उस रामायण में से मुझे भी कुछ सुना :"

दरअसल उस रामायण का वाचन मैंने नाममात्र को ही किया था. संस्कृत पुस्तक में दिये गये रामायण के उद्धरण ही मैंने पढ़े थे. जिन्हें मैं ठीक तरह से समझ भी नहीं पाया था. मां के कहने पर जब मैंने इस भाग को फिर से देखा तो लगा जैसे मैं थोड़ा-बहुत जाना-समझा भी भूल गया हूं. मैं इस भ्रम में था कि मुझे सब कुछ याद है पर स्थिति एकदम विपरीत थी. और मैं अद्वितीय पुत्र की बुद्धि का पराक्रम देखने की इच्छुक मां से यह कहने का साहस नहीं जुटा पा रहा था कि उसका पुत्र पढ़ा-पढ़ाया सब भूल गया है... मां को जो कुछ मैंने सुनाया और जैसी व्याख्या की वह दरअसल महर्षि वाल्मीकि के अर्थों से एकदम हट कर थी. मैं समझता हूं कि माता से प्रशंसा पा लेने की महत्वाकांक्षा रखनेवाले बालक के साहस पर कोमल हृदय वाल्मीकि ने अवश्य कृपा की होगी. उसे क्षमा किया होगा. किंतु गर्व परिहार करनेवाले मधुसूदन ने क्षमा नहीं किया...

मैं कुछ बड़ा हो गया था. और मुझे जमींदारी की देखरेख के लिए नियुक्त किया गया. पिताजी की आंखें कुछ कमजोर हो चली थीं. इसलिए हर महीने दूसरी और तीसरी तारीख को मुझे जमा खर्च का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंकड़ा पिता जी को पढ़कर सुनाना होता था. पहले तो मैं हर खाते की जोड़ की रकम सुनाता था फिर जिस कलम पर उन्हें शंका होती उसकी तालीम पढ़ने का मुझे आदेश मिलता. इस समय मैं उन्हें वही खर्च बतलाया करता था जो उन्हें ठीक लगते थे. नापसंद खर्चों को टालकर झट से दूसरी कलम पढ़ने लगता... पर यह बात उनकी आंख से छुपी न रहती और मुझे महीने की शुरूआत के दिन परेशानी में बिताने पड़ते...

अब मैं साहित्य समालोचकों के बीच तालसुर के परंपरागत नियमों को दरकिनार कर नये नियमों को चलाने और तोतले गानेवाले के रूप में प्रसिद्ध हो गया था. मुझ पर यह आरोप था कि मेरे लेख स्पष्ट नहीं होते. उस वक्त भले ही यह आरोप मुझे अच्छा न लगा हो पर लगता है कि वह निराधार तो नहीं ही था. दरअसल, कवित्व के जगत के अनुभव की शक्ति नहीं थी.

और मिलती भी कैसे, जबकि बचपन में मेरी हालत अकेले में बंदी बनाकर रखे गये इंसान जैसी थी.

जवाहर लाल नेहरू

मेरी उम्र तकरीबन पांच-छः साल की रही होगी. एक रोज पिताजी की मेज पर मैंने दो पैन रखे हुए देखे. पैन सुंदर थे और मैं ललचा गया. यह सोचकर कि पिताजी का काम तो एक ही पैन से चल जायेगा मैंने उन का एक पैन उठा लिया. अगले दिन जब पैन की खोज शुरू हुई तो मैं चुप्पी साध गया. पर पैन छुपाता कहां? मेरे पास से आखिरकार पैन बरामद किया गया. और पिताजी का एक झन्नाटेदार थप्पड़ मेरे गाल पर पड़ा. मैं रोता हुआ मां के पास चला गया. हालांकि मैं जानता था कि मुझे गलती के लिए दंडित किया गया है. बावजूद इसके मेरे भीतर पिता को लेकर डर की एक भावना घर कर गयी. जबकि मां के प्रति मेरे मन में हमेशा प्यार गहराता रहा...

...हम लोगों का जुलूस अभी सौ गज ही गया था कि पीछे से घोड़ों की टापें सुनाई दीं. हम लोग कुछ समझते, इससे पहले ही पुलिसवालों ने हमें घेर लिया और प्रदर्शनकारियों पर डंडे बरसने लगे. लोग तितर-बितर हो गये लेकिन पुलिस पीछा करते हुए इन्हें तब तक मारती रही जब तक वे जमीन पर नहीं गिर पड़े. दैवयोग से अब तक मुझ पर लाठी न पड़ी थी और मैं भौंचक-सा सारा नजारा देख रहा था. अचानक मुझे खुद को बचाने की चिंता हुई. और मैं सड़क के किनारे-किनारे बढ़ने लगा... दूसरे ही क्षण मुझे लगा कि यह कायरता होगी. और मैं वापस अपनी जगह लौट आया. मैंने देखा कि एक पुलिसवाला लाठी ताने हुए मेरी ओर बढ़ रहा है. सर को बचाने की गरज से मैं घूम गया. और दूसरे ही क्षण मुझे अपनी पीठ पर लाठी के जबरदस्त प्रहार महसूस होने लगे. मुझे लगा कि मेरी चेतना खत्म हो रही है...

अपने जीवन में मैं अनेक लोगों से मिला किंतु बौद्धिक रूप से दो लोगों ने मुझे खासा प्रभावित किया. बी. चट्टोपाध्याय और एम.एन. राय. एम.एन. राय से मैं मास्को में मिला था... बहरहाल, मैं कांग्रेस अधिवेशन के लिए जरूरी दस्तावेज तैयार कर रहा था. मेरा आदेश था कि मिलने के लिए आने वाले से कह दिया जाये कि मैं नहीं हूं. कुछ देर बाद ही चौकीदार आकर बोला कि उसने यही कहा था लेकिन आगंतुक नहीं मान रहा और उसने कहा कि मैं जानता हूं कि नेहरूजी अंदर हैं. चौकीदार ने जो हुलिया बताया उससे मुझे लगा कि निश्चित रूप से यह व्यक्ति एम.एन. राय ही होंगे. मैं समझ गया कि राय अंदर आयेंगे और जो कुछ मैंने अभी तक लिखा है, उसे उठाकर पढ़ेंगे और हंसते हुए लौट जायेंगे. फिर उसके बाद मैं दिन भर कुछ भी नहीं लिख पाऊंगा... और सचमुच वैसा ही हुआ. □

रामधारीसिंह दिनकर

रामसेवक पहले मेरे पुत्र थे. जब घर का बोझ संभालकर उन्होंने मुझे निश्चित कर दिया, वे मेरे पिता हो गये और उन्हीं के भरोसे मैं देश-विदेश घूमता रहा. फिर जून 63 से 66 के दिसंबर तक उन्होंने मुझे घोर कष्ट दिया. तब वे 66 के दिसंबर में फिर मेरे पुत्र हो गये और मेरी गोद में आकर बैठ गये. जब तक कलह था, वे जीवित रहे. कलह शांत हुआ कि वे चल बसे.

मृत्यु के बाद रामसेवक की आंखें खुली हुई थीं, मुख भी खुला हुआ था, मगर चेहरे पर शांति थी. मानो भीतर की सारी दुर्भावना शांत हो गयी हो और वह भगवान के दरबार में निर्दोष होकर पहुंचा हो. इधर हाल से उसकी देह और खाट पर पक्षी बैठने लगे थे जो पूर्ण अहिंसामयता का प्रमाण है.

रामसेवक बड़े ही तेजस्वी और वीर्यवान थे. भगवान ने मुझे दंडित करने को उन्हें मुझसे छीन लिया. अब विधवा पतोहू और पांच अनाथ बच्चों का भार मेरी दुर्बल पीठ को ढोना पड़ेगा. जवानी भाईयों की सेवा में गयी. बुढ़ापा पोते और पोतियों की सेवा में जायेगा. मेरी जिंदगी आरंभ से अंत तक संघर्षों की कड़ी बन गयी.

कल से यशपाल जी का 'सिंहावलोकन' पढ़ रहा हूं. सिंहावलोकन यानी सशस्त्र क्रांति की कहानी. कितनी अच्छी पुस्तक है. मगर मैंने अब तक पढ़ी नहीं थी. गरचे किताब मैंने 1961 ई. में ही खरीद ली थी. इस पुस्तक से यशपाल जी का जो रूप प्रकट होता है, वह प्रशंसनीय है, श्रद्धेय है. एक बार यशपालजी मन्मथ बाबू के घर गये थे. उस रोज मन्मथ बाबू ने मुझे यह कहकर बुलाया था कि "आ जाइये. आज हिंदी के सबसे बड़े लेखक और सबसे बड़े कवि एक साथ भोजन करेंगे." मैं विवशता के कारण उस दिन उनके घर नहीं जा सका. मगर बातें उनकी याद हैं. मैं हिंदी का सबसे बड़ा कवि हूं या नहीं यह अलग बात है, लेकिन यशपाल शायद हिंदी लेखकों मे एकाध दृष्टि से, सबसे बड़े आदमी हैं. उनके समान तपे तपाये मनुष्य का जो आदर हिंदी में होना चाहिए था, वह शायद नहीं हुआ है. आज मैं भी अपने को थोड़ा दोषी अनुभव कर रहा हूं. □

प्रस्तुति : राजेश कालिया एवं दीपिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजी से पार पाना मुमकिन नहीं

विश्वविख्यात हास्य अभिनेता चार्ली चैप्लिन का बाल्यकाल और किशोरावस्था बेहद गरीबी और पारिवारिक कलह के दुःखों से भरे रहे. उनका कहना है कि होश संभालते ही जो बात मुझे पहले-पहल मालूम हुई थी, वह थी– मेरी अभिनेत्री मां द्वारा पिता पर अपने बच्चे की उपेक्षा के लिए चलाया जा रहा मुकद्दमा.

दरअसल, चार्ली के पिता शराबी, गर्ममिजाज और गैर जिम्मेदार आदमी थे. बावजूद इसके चार्ली की मां ने उन्हें कभी अपशब्द नहीं कहे. बड़े होने पर चार्ली मां को ठीक से समझ सके, "मुझे विश्वास हो गया कि मां जीवन के प्रति अपने बौद्धिक दृष्टिकोण के कारण पति या किसी अन्य पुरुष को कभी गहरा प्रेम नहीं कर सकती थी. यही उनके दुख का सबसे बड़ा कारण भी था. मां की विक्षिप्तता का कारण उनकी लगातार गरीबी और अपमानजनक जिंदगी थी."

हास्य फिल्मों के निर्माता और सफल अभिनेता के रूप में खुद के प्रतिष्ठित होने का सारा श्रेय चार्ली अपने गुरू द्वारा जीवन में उठाये गये दुखों को देते हैं. "यह एक मार्के की बात है कि हास्य के मूल में दुख होता है. विश्व में अनेक हास्य अभिनेता हुए हैं जिन्होंने आत्महत्या करके अपने जीवन के दुखों से छुटकारा पाया है." चार्ली चैप्लिन ने अनेक फिल्में बनायीं जो अपनी कला के लिए उल्लेखनीय थीं. किंतु सर्वाधिक लोकप्रिय रही– 'द गोल्ड रश', 'सिटी लाइट्स', और 'द ग्रेट डिक्टेटर'. चार्ली का कहना है– "मेरी कामेडी फिल्मों के मूल में कोई न कोई त्रासदी रही. 'गोल्ड रश' की प्रेरणा मुझे एक दुर्घटना से मिली. जिसमें कुछ लोग बर्फीले पहाड़ों के बीच फंस गये थे. और जीवन रक्षा के लिए उन्होंने अपने मृत साथियों का मांस खाया था." संभवतः 'गोल्ड रश' में जूते को उबालकर खाने का आइडिया चार्ली को इसीलिए आया होगा. पारिवारिक जीवन की दृष्टि से चार्ली कभी सुखी नहीं रहे– "जब मैं 'गोल्ड रश' बना रहा था तब मैंने दूसरी शादी की. जो दो वर्ष बाद अपने पीछे भयानक कटुता की कहानी छोड़कर समाप्त हुई."

> यह एक मार्के की बात है कि हास्य के मूल में दुख होता है... आभा मिश्र बता रही हैं... प्रख्यात हास्य अभिनेता चार्ली चैप्लिन इस सच का खुलासा किस तरह करते हैं.

चार्ली ने आत्मकथा में अनेक कलाकारों का जिक्र किया है. बेरीमोर, जिनकी हेलेमेट की भूमिका ने उन्हें विश्व व्यापी कीर्ति दी थी, चार्ली को सख्त नापसंद थे– "बेरीमोर बहुत घमंडी, नकचढ़े और प्रदर्शनवादी स्वभाव के थे." अन्यत्र अप्रत्यक्ष रूप से चार्ली यह स्वीकार करते हुए भी पाये जाते हैं कि दरअसल बेरीमोर के प्रति उनकी अरुचि का कारण बेरीमोर की असीम शोहरत थी.

कुछ लोग ऐसे भी थे जिनकी शोहरत से चार्ली को कभी ईर्ष्या नहीं हुई. एक वाकये का जिक्र करते हुए वे कहते हैं– "सन् 1931 में मैंने महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइंसटीन को अपनी फिल्म 'सिटी लाईट्स' देखाने के लिए आमंत्रित किया. जब हम दोनों स्टूडियो जा रहे थे... सड़क पर आते-जाते लोगों ने उनका अभिवादन किया. मैंने आइंसटीन की ओर मुड़कर कहा, 'ये लोग आपकी वाह-वाही इसलिए कर रहे हैं कि ये आपको समझते नहीं हैं और मेरी इसलिए कि मुझे समझते हैं.' दरअसल, आइंसटीन एक ऐसे व्यक्ति थे. जिनकी महानता से मुझे कभी ईर्ष्या नहीं हुई."

विंसटन चर्चिल से मिलने पर चार्ली को इसलिए अच्छा नहीं लगा कि उनके विचार गांधी के बारे में चार्ली से मेल नहीं खाते थे– "चर्चिल ने मुझसे कहा कि इस आदमी (गांधी) को अब ज्यादा बर्दाश्त नहीं किया जा सकता. मैं इसे जेल में डाल दूंगा. चाहे यह खाये या भूखा मरे. मैंने कहा, यदि आपने एक गांधी को जेल में डाला तो भारत दस गांधी और पैदा करेगा. इस बातचीत के कुछ दिनों बाद ही मेरी मुलाकात गांधीजी से हुई. गांधी एक बहुत चतुर और फौलादी इच्छा शक्तिवाले आदमी थे. दरअसल उन्हें लंदन नहीं आना चाहिए था. क्योंकि वहां के लोगों के मन में उनके प्रति कल्पित महानता का जो भाव या वह उनकी शक्लोसूरत और वेश-भूषा को देखकर गायब हो गया. पूरे इंग्लैंड में उनका मजाक उड़ाया जाने लगा. यह सब देखकर मैं सचमुच बहुत दुखी हुआ. क्योंकि जब महात्मा गांधी को लंदन में (वेशभूषा के लिहाज से) मैंने एक व्यंग्यचित्र की तरह टैक्सी से बाहर निकलते देखा तो मुझे लगा जैसे वे मेरी किसी हास्य फिल्म में अभिनय करने के लिए आये हैं... वैसे मैं गांधीजी पर एक महान फिल्म बना सकता हूं. लेकिन इस बात का मौका मिल पाना असंभव है.

"लंदन के एक कमरे में गांधीजी के दाहिने हाथ पर मैं बैठा हुआ था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचासों कैमरे हमारी तस्वीर ले रहे थे. लोगों को उम्मीद थी कि मैं गांधीजी से कुछ कहूंगा पर यह क्षण मुझे इतना विस्मित कर गया था कि कहने के लिए मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था... कुछ देर बाद मैंने गांधीजी से ऐसे सवाल किये जो इंग्लैंड के बुद्धिजीवी आमतौर पर गांधीजी के संदर्भ में उठाया करते थे. इन तमाम सवालों का जवाब गांधीजी ने इतनी होशियारी से दिया कि मैं सन्नाटे में रह गया. बुद्धि और तर्क के मामले में गांधीजी से पार पाना किसी के लिए भी मुमकिन नहीं है.''

दोस्त और दोस्ती को लेकर चार्ली के विचार एकदम साफ हैं, ''मुझे ज्यादा मित्रों की जरूरत कभी महसूस नहीं हुई. मैं जानता हूं कि अधिकांश मित्र मेरी प्रसिद्धि के कारण मेरी ओर खिंचे चले आते हैं. मैं यह भी जानता हूं कि प्रसिद्धि हमेशा बनी नहीं रहती. जाहिर है ऐसी दोस्ती बेमानी है...''

'चेप्लिन के प्रकट उल्लास के पीछे विशाद था और अपने महान वैभव के बीच में वे अपनी झुग्गी-झोपड़ी के दिनों को याद करके आह भरते थे...' सामरसेट मॉम के ये शब्द पढ़कर चार्ली को बहुत गुस्सा आया. और उन्होंने मॉम को गरीबी को गलत तरीके से प्रस्तुत करने के लिए दोषी ठहराया. ''दरअसल गरीबी के माहौल से मुझे किसी भी तरह का बौद्धिक या आध्यात्मिक लाभ हुआ है मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं.''

जिंदगी भर अमरीका में रहने के बावजूद चार्ली इस देश को कभी पूरी तरह स्वीकार न कर सके. यहां की खुफिया पुलिस उनके पीछे लगातार पड़ी रही और साम्यवाद के प्रति उनकी सहानुभूति के कारण उन पर शक किया जाता रहा. अंतिम दिनों के बारे में चार्ली ने लिखा है, 'मेरा बुढ़ापा जवानी से ज्यादा अच्छा है क्योंकि अब मैं राग-द्वेष से अपेक्षाकृत मुक्ति पा चुका हूं. मुझमें अब कोई भी महत्वाकांक्षा शेष नहीं रह गयी है.' □

गांधी जी का पत्र और उसका जवाब

असत्य रूपी विष

मो. क. गांधी

यह पत्र और उसका उत्तर जीवन की एक ऐसी स्थिति से साक्षात कराता है जहां इंसान असत्य के विष से छुटकारा तो पाता ही है अपनी गलती को स्वीकार करते हुए अपना कद और भी बड़ा कर लेता है...

जब से हम ब्राइटन में मिले, आप मुझ पर प्रेम रखती रही हैं. मां जिस तरह अपने बेटे की चिंता रखती है, उसी तरह आप मेरी चिंता रखती हैं. आप तो यह भी मानती हैं कि मुझे ब्याह करना चाहिए, और इसी खयाल से आप मेरा परिचय युवतियों से कराती हैं. ऐसे संबंध के अधिक आगे बढ़ने से पहले ही मुझे आपसे यह कहना चाहिए कि मैं आपके प्रेम के योग्य नहीं हूं. मैं आपके घर आने लगा तभी मुझे आपसे यह कह देना चाहिए था कि मैं विवाहित हूं. मैं जानता हूं कि हिंदुस्तान के जो विद्यार्थी विवाहित होते हैं, वे इस देश में अपने ब्याह की बात प्रकट नहीं करते. मैंने भी उस रिवाज का अनुकरण किया. पर अब मैं देखता हूं कि मुझे अपने विवाह की बात बिलकुल छिपानी नहीं चाहिए थी. मुझे साथ में यह भी कह देना चाहिए कि मेरा ब्याह बचपन में हुआ है. और मेरे एक लड़का भी है. आपसे इस बात को छिपाने का अब मुझे बहुत दुःख होता है, पर अब भगवान ने सच कह देने की हिम्मत दी है, इससे मुझे आनंद होता है. क्या आप मुझे माफ करेंगी? जिस बहन के साथ आपने मेरा परिचय कराया है, उसके साथ मैंने कोई अनुचित छूट नहीं ली, इसका विश्वास मैं आपको दिलाता हूं. मुझे इस बात का पूरा-पूरा खयाल है कि मुझे ऐसी छूट नहीं लेनी चाहिए. पर आप तो स्वाभाविक रूप से यह चाहती हैं कि किसी के साथ मेरा संबंध जुड़ जाये. आपके मन में यह बात आगे न बढ़े, इसके लिए भी मुझे आपके सामने सत्य प्रकट कर देना चाहिए.

''यदि इस पत्र के मिलने पर आप मुझे अपने यहां आने के लिए अयोग्य समझेंगी तो मुझे उससे जरा भी बुरा नहीं लगेगा. आपकी ममता के लिए तो मैं आपका चिरऋणी बन चुका हूं. मुझे स्वीकार करना चाहिए कि अगर आप मेरा त्याग न करेंगी तो मुझे खुशी होगी. यदि अब भी आप मुझे अपने घर आने योग्य मानेंगी तो उसे मैं आपके प्रेम की एक नयी निशानी समझूंगा और उस प्रेम के योग्य बनने का सदा प्रयत्न करता रहूंगा.''

पाठक समझ लें कि यह पत्र मैंने क्षण भर में नहीं लिख डाला था. न जाने कितने मसविदे तैयार किये होंगे. पर यह पत्र भेजकर मैंने अपने सिर का एक बड़ा बोझ उतार डाला.

लगभग लौटती डाक से मुझे उस विधवा बहन का उत्तर मिला. उसने लिखा था:

''खुले दिल से लिखा तुम्हार पत्र मिला. हम दोनों खुश हुईं और खूब हंसीं. तुमने जिस असत्य से काम लिया, वह तो क्षमा के योग्य ही है. पर तुमने अपनी सही स्थिति प्रकट कर दी, यह अच्छा ही हुआ. मेरा न्योता कायम है. अगले रविवार को हम अवश्य तुम्हारी राह देखेंगीं, तुम्हारे बाल-विवाह की बातें सुनेंगी और तुम्हारा मजाक उड़ाने का आनंद भी लूटेंगीं. विश्वास रखो कि हमारी मित्रता तो जैसी थी वैसी ही रहेगी.''

इस प्रकार मैंने अपने अंदर घुसे हुए असत्य के विष को बाहर निकाल दिया और फिर तो अपने विवाह आदि की बात करने में मुझे कहीं घबराहट नहीं हुई. □

(संदर्भ : 'सत्य के प्रयोग')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधी का मन

विला कॉथर

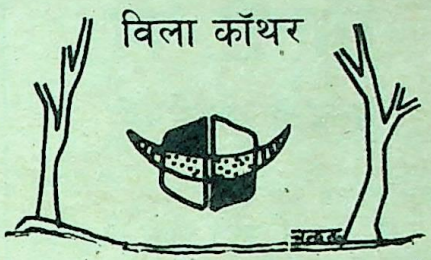

शुरू से ही यॉल बड़ा कमजोर था– शारीरिक दृष्टि से भी और मानसिक दृष्टि से भी. और, उसकी आंखों में न जाने क्या था कि उन्हें देखते ही, देखनेवाले को उससे विरक्ति हो जाती थी. उससे न घरवाले खुश थे, न बाहर वाले. जब स्कूल के प्रिंसीपल ने उसे स्कूल से निकालने की सूचना उसके पिता को दी तो उसके पिता ने प्रिंसीपल से कहा, "मैं खुद उसके आचरण से परेशान हूं और समझ नहीं पा रहा हूं कि उसे सुधारने के लिए क्या करूं."

वह स्कूल में पढ़ने के साथ-साथ, एक सिनेमा हॉल में 'अशर' (प्रवेशक) की पार्ट-टाइम नौकरी भी करता था. मगर, जब प्रिंसीपल की शिकायत पर सिनेमा के मैनेजर ने भी उसे इस नौकरी से निकाल दिया तो उसका सर चकराने लगा.

उसे डर था कि उसके पिता उसे घर में रखना तो दूर शायद उसका मुंह भी नहीं देखेंगे, मगर उन्होंने उसे शीघ्र ही डेनी एंड कार्सन नाम की एक फर्म में चपरासी की नौकरी दिलवा दी. पहले ही दिन फर्म के मैनेजर ने उससे बैंक में कुछ चैक और हजार डालर जमा करने को कहा, उसने चैक तो जमा कर दिये लेकिन एक हजार डॉलर के नोट लेकर, उसी रात अपने सपनों की नगरी न्यूयार्क रवाना हो गया. अब वह अपने सभी परिचितों की पहुंच से बाहर था, और मना रहा था कि अभी उनके चंगुल में न आये.

न्यूयार्क के अपने होटल के कमरे से वह रात को देर तक रोशनियों के बीच गिरती बर्फ के सुहाने नजारे को देखता रहा. अपनी सुखानुभूति के कारण वह धीरे-धीरे अपनी पिछली सब तकलीफों और निराशाओं को भूलता जा रहा था. इस होटल में कुछ दिन बितानें पर उसे लगा, जैसे वह अब एक नयी दुनिया का वासी है जो पुरानी, नीरस दुनिया की अपेक्षा अधिक वास्तविक है. लेकिन, कुछ दिन बाद, जब उसकी निगाह अपने शहर पिट्सवर्ग के एक समाचारपत्र में अपने बारे में छपे एक समाचार पर पड़ी तो उसका दिल बैठ गया. सारी खुशियां काफूर हो गयीं. समाचार में कहा गया था कि डेनी एंड कार्सन नामक फर्म ने उसके एक हजार डॉलर लेकर चंपत हो जाने वाले नये चपरासी के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करने का निश्चय किया है, क्योंकि उसी फर्म में काम करने वाले चपरासी के पिता ने उस रकम की भरपाई कर दी है. समाचार में आगे कहा गया था कि उसका पिता शीघ्र ही अपने पुत्र को खोजने न्यूयार्क आ रहा है. क्योंकि उसे पता चला है कि उसका पुत्र न्यूयार्क के किसी होटल में रंगरेलियां मना रहा है. वह जानता था कि उसके पिता उसे आज या कल में खोज निकालेंगे. और दुबारा उसे उस अंधेरी दुनिया में ले जायेंगे- जिससे निकलकर वह अभी अभी आया था और जिसमें दुबारा जाने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी.

मन में एक निश्चय करके वह होटल के बाहर आया और एक टैक्सी करके नगर से काफी दूर आ गया और टैक्सी को छोड़कर रेल की पटरियों के सहारे-सहारे आगे बढ़ने लगा. ...दूर से एक एंजिन को आते देख, वह पटरी से हटकर खड़ा हो गया, मगर जैसे ही एंजिन उसके बिल्कुल पास आया, वह उसके सामने कूद पड़ा. □

अपने-पराये

हरमॅन हुम्मेर

इतनी परेशानी फ्रायद्रिख ब्लॉख को पहले कभी महसूस नहीं हुई थी.

फर्म में लगातार नुकसान हो रहा था. पिछले सब ऑर्डर रद्द हो चुके थे और नये ऑर्डर मिलने बंद हो गये थे. फर्म की ऐसी हालत देखकर उसके भागीदार फ्रिज कून ने अलग होने का फैसला कर लिया था और कई दिन से लगातार अपने हिस्से की रकम की मांग कर रहा था. ब्लॉख के पास देने के लिए वह पूरी रकम क्या, उसका सौवां हिस्सा भी न था.

घर पर वह पहले ही बीबी की कूटक्तियों से परेशान था. वह परेशानी अब उसकी सास के आ जाने से और ज्यादा बढ़ गयी थी. उसकी सास को वही बातें नासपंद थीं जो फ्रायद्रिख को पसंद थीं. इसलिए उनके आ जाने पर उसका डाक्टरों और दवाइयों के बिलों का खर्चा भी बढ़ गया था. कारण कोई न कोई अज्ञात रोग उसे लगा ही रहता था. और सास महोदया पहले आयी थीं एकाध महीने रहने के लिए लेकिन बाद में उनका इरादा न-मालूम-कब-तक-रहने का हो गया था.

फ्रिज कून को कुछ दिन तक और भागीदार बनाये रखने के उद्देश्य से, ब्लॉख ने एक दिन उसे अपने घर पर डिनर के लिए आमंत्रित किया. डिनर के दौरान, कून ने ब्लॉख से कहा, "मेरे खयाल से जब तक फर्म के मैनेजर को नहीं बदला जाता, तब तक न तो फर्म की हालत सुधरेगी, न मेरे फर्म में भागीदार बने रहने की आशा है." ब्लॉख ने कहा, "मैनेजर को आसानी से अलग किया जा सकता है." तभी दूसरे कमरे में बैठी उसकी सास महोदया ने आकर उससे कहा, "मैनेजर अच्छा आदमी है और भगवान सब कुछ देखता है." फ्रिज कून पर इस बात का बहुत असर पड़ा. उसने ब्लॉख से कहा, "भई मैंने अलग होने का आखिरी फैसला कर लिया है. तुम जल्दी से मेरी रकम का इंतजाम कर लो."

तभी, ब्लॉख ने चीते जैसी फुर्ती के साथ कून की गर्दन पकड़ ली. एक जोर का हाथ का दबाव... और फिर सब कुछ खत्म! कून फर्श पर मृत पड़ा था.

"अरे, अरे, यह क्या किया, बेटा? कून तो शरीफ आदमी था," कमरे में प्रवेश करती हुई ब्लॉख की सास ने कहा.

"अब आप क्या करेंगी मां जी! आपने मुझे कून की गर्दन दबाते देख लिया है."

"गलती सबसे होती है. फिर तुम जैसे भी हो, अपने हो, कून कैसा भी था, पराया था. जब तक तुम मेरे जाने की बात नहीं उठाते, मैं तुम्हारी इस बात पर पर्दा डाले रहूंगी. यह शर्त मंजूर हो तो, चलो. इस लाश को ठिकाने लगाएं." सास ने कहा.□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौत किसी न किसी की

अल्बर्तो मोराविया

उसने लड़की की तरफ देखा. उस लड़की का मुंह रुमाल से बंद था और आंखें डरी हुई थीं. दोनों हाथ पीठ के पीछे बंधे थे. इस हालत में वह कोई खास अच्छी नहीं लग रही थी, पर कोई खास बुरी भी नहीं लग रही थी. लड़कियां उसे अच्छी लगती थीं पर तब नहीं जब पुलिस उसके पीछे पड़ी हो. उसने परेशान स्वर में साथी से कहा, "इसे छोड़ ही देना चाहिए था. इसकी कार ले लेते, बस!"

जो कार उन्होंने चुरायी थी, वह बीच में ही खराब हो गयी थी और तब कार की मालकिन उस लड़की ने उन दोनों को आकर दबोच लिया था. साथी ने उससे कहा, "इतना दरिया-दिल मत बन. अकल से काम ले. अगर हम इसे पकड़ कर न रखते तो वह पुलिस के पास जाती हमारा और कार का हुलिया उन्हें बताने. पुलिस को फिलहाल इतना पता है कि तनख्वाहों की रकम चुराने के लिए चोरी की एक कार का इस्तेमाल किया गया है. हम पुलिस का काम आसान क्यों करें?"

जिस चोर ने अपने साथी के सामने लड़की को छोड़ देने का प्रस्ताव रखा था, उसे लड़की से डर लगने लगा था. वह काफी कुछ जानती है. उसे मार देना ही ठीक होगा.

लड़की की कार झड़ियों में छिपी थी. उसने कार का 'बूट' खोलकर उसमें से एक 'टायर लीवर' निकाला. उसे लेकर वह वहां आया, जहां लड़की बंधी पड़ी थी. उसने लड़की को उठाया और कहा, "मरने को तैयार हो जाओ. तुम ज़िंदा रहीं, तो हम मर जायेंगे."

"मुझे क्यों मारते हो? मेरा भी वही धंधा है, जो तुम्हारा है. और कार मेरी नहीं है, हालांकि कुछ महीनों से मेरे नाम से रजिस्टर्ड है. हम दोनों बे खौफ कहीं भी जा सकते हैं, उस रकम के साथ जो इस वक्त तुम्हारे साथी के पास है. कैसी रहेगी हम दोनों की जोड़ी?"

"बहुत जमेगी. अच्छा, मैं अभी आया."

घर के दूसरे कमरे के एक कोने में उसका साथी आराम कर रहा था. उसने चुपके से आगे बढ़कर, 'टायर लीवर' उसकी पीठ में दे मारा. उसका साथी इस मार से वहीं का वहीं ढेर हो गया. उसने आकर लड़की से कहा, "मैंने अपने साथी को खत्म कर दिया. अब हम दोनों आजाद हैं, कहीं भी जाने के लिए, कुछ भी करने के लिए."

"किसी न किसी को तो मरना ही था." लड़की ने कहा, "आओ, अब मुझे खोल दो. फिर जल्दी से यहां से भाग चलेंगे." □

नाटक का अंत

एम. देलारु

बोरिस ने अपना ऊबड़-खाबड़ चेहरा दर्पण में देखा और सोचा कोई कुछ भी कहता रहे, उसका चेहरा है दिलचस्प. ऐसा चेहरा, जिसने काफी उतार-चढ़ाव देखे हैं, जो स्टेज पर कभी नायक का चेहरा बनकर दिखाई दिया है तो कभी खलनायक का.

...मगर, आज? आज कोई उसका नाम भी नहीं जानता. वह गुस्से से तमतमाता हुआ, मार्शील के बैडरूम से बाहर निकला. अब लोग उसे मार्शील एक्ट्रैस के सैक्रेटरी के रूप में ही जानते थे और वह यह भूल गये थे कि वह कभी फ्रांस का सबसे लोकप्रिय हीरो था.

वह डाइनिंग रूम में आया, जहां नौकरानी ने दोनों के नाश्ते का सामान मेज पर सजा दिया था. इतवार का दिन था और दोनों की छुट्टी थी.

नाश्ता करते करते मार्शील ने नफरत से बुझे स्वर में कहा, "कल तुम्हारी भूतपूर्व हीरोइन इविच दिखाई दी थी. बुरा हाल था बेचारी का. तुम्हारे मौजूदा हाल से भी गया बीता. मैंने अपने एजेंट से कहा, दिलवा दो बेचारी को किसी फिल्म में छोटा-मोटा काम. तो वह बोला, मैं तो बोरिस और इविच दोनों के लिए ही कोशिश करता रहता हूं. मगर दोनों की किस्मत ही खराब है, तो मैं क्या करूं?"

"इविच तुमसे बेहतर एक्ट्रैस है—आज भी."

"उस चुड़ैल की बात छोड़ो, डियर! और तुम्हारा भरम भी दूर कर दूं. यह वह कि मैं तुम्हें कभी तलाक नहीं दूंगी. किसी भी हालत में नहीं. और मेरे पति होकर तुम्हें मेरे साथ वैसे ही पेश आना होगा जैसे मैं तुम्हारी मालकिन हूं जो मैं असल में हूं भी."

मगर बोरिस का ध्यान अपनी बीबी की बातों की ओर न था. वह 'आधी रात में हत्या' नामक उस फिल्म के बारे में सोच रहा था जिसमें उसने इविच के साथ काम किया था. उसने चुपके से अपनी जेब टटोली. हत्या का हथियार वहां मौजूद था. अब उसे जरूरत थी, सिर्फ एक मौके की. जो दुपहर को मार्शील के सो जाने पर उसे मिल गया. उसने तब सोती हुई मार्शील की बाहों में इन्जैक्शन की एक सुई घुसा दी. अब वह एक घंटे में मर जायेगी. बोरिस ने राहत की सांस लेते हुए सोचा, कितनी त्रुटिहीन हत्या की है मैंने! शव-परीक्षा में किसी को कुछ मालूम नहीं पड़ेगा. जैसे नाटक के कोरोनर को भी कुछ मालूम नहीं पड़ा था. वह सोने चला गया.

मगर कुछ देर बाद वह अचानक जग गया. मार्शील ने, जो उसके पास खड़ी थी, कहा, "तुम्हारी जेब में इंजैक्शन की सुई देखकर मैं सब समझ गयी थी. तुम्हें शायद मालूम न होगा कि 'आधी रात में हत्या' फिल्म दुबारा बन रही है और मैं उसमें काम कर रही हूं, बतौर हीरोइन. मैंने तुम्हारी जेब से असली सुई निकाल कर वह नकली सुई रख दी, जो फिल्म में काम आ रही है. और, तुम्हारे सो जाने पर तुम्हारा असली इंजैक्शन तुम्हें ही लगा दिया. देखो, अपनी बांह पर निशान. अच्छा, अल्विदा बोरिस!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु से साक्षात्कार

हमारा विमान पैरिस से उड़ा. मुश्किल से दस मिनट हुए होंगे कि सहसा किसी चीज से टकराया और तेजी से चक्कर खाता हुआ धरती की ओर जाने लगा. विमान के जबरदस्त झटकों से यात्री अपनी-अपनी सीटों से उछल रहे थे, लुढ़क रहे थे. एक दूसरे पर गिर रहे थे. तकिये और कंबल यात्रियों के सिरों पर यों गिर रहे थे, जैसे स्वयं विमान का ढांचा टूट रहा हो, और उसके परखचे उड़ रहे हों. एक-एक चूल से चटकने की भयंकर आवाजें आ रही थीं. पुरुषों की आंखों में दहशत बैठ गयी थी. चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं. स्त्रियां भयानक तरीके से चिल्ला रही थीं. मृत्यु के भय से चीखें मेरे कंठ से भी निकल रही थीं. मेरे हाथ मजबूती से सीट के बाजुओं में गड़े हुए थे. विमान के कर्मचारी यात्रियों की सहायता करने में असमर्थ थे, क्योंकि उन्हें अपने प्राणों के लाले पड़े हुए थे. प्रलय की अफरा-तफरी मची हुई थी. वह भयानक घड़ी सिर पर थी. विमान अभी गिरकर टुकड़े-टुकड़े होनेवाला था.

मुझे क्या पता था, कि मई की उन्नीस तारीख होगी और मैं पैरिस से प्रातःकाल की फ्लाइट पर केवल एक घंटे की यात्रा पर नाईस नगर जा रही होऊंगी कि यमदूत इस निर्दयता से मुझे दबोच लेगा. गंतव्य अभी पचास मिनट की दूरी पर है और यह संभव नहीं है कि इन पचास मिनटों में कोई चमत्कार घटित हो और यह विमान प्राणघातक दुर्घटना से बच सके. यहीं कहीं खेतों में, चट्टानों में इसके मलबे से मेरी लाश निकाली जाएगी. मेरे पति कार्लो अब तक मुझे लेने के लिए एयर-पोर्ट पर पहुंच चुके होंगे. जब मलबे से लाश निकलेगी तो बस वही मुझे पहचान सकेंगे. मैं बैल्ट में कसी हुई अपनी सीट में धंसी हुई मिलूंगी. मेरा मस्तिष्क बिलकुल स्पष्ट है. मैं आतंकित तो हूं, किंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि कुछ मिनटों के अंदर-अंदर मृत्यु निश्चित है.

'हे ईश्वर! हे भगवान!' मेरे मुख से बरबस निकलता है. मैं प्रार्थना नहीं करती, क्योंकि मैं उन अर्थों में अब धार्मिक नहीं रही हूं, किंतु मैंने ईश्वर के सर्वशक्तिमान, सार्वभौम होने की कल्पना करके अनुभव किया, जैसे अब सुरक्षित हो गयी हूं.

इन प्रलयंकारी क्षणों में मुझे सबसे पहले अपने दो छोटे-छोटे बच्चों का खयाल आया. मेरे मरने के बाद उनका क्या बनेगा? मेरे बिना वे कैसे जियेंगे? कौन उनकी देखभाल करेगा? मैंने जिन संकटों में उनका पालन-पोषण किया है, उनकी खातिर कौन वैसे संकट मोल लेगा? मेरे पति कार्लो का क्या बनेगा? वह क्या करेंगे? कहां जायेंगे? मानो एक फिल्म-सी चल पड़ी और मेरे जीवन की झलकियां तेजी से मेरी आंखों के सामने घूम गयीं. मेरी मां, जिसने मेरी खातिर मातृत्व और त्याग का अविस्मरणीय उदाहरण स्थापित किया, मेरी बहन-आयु भर की मित्र और हमदर्द, यातनाजनक स्मृतियों, भूली-बिसरी स्मृतियों का एक तांता बंध गया, जिसे विमान के झटकों ने निर्ममता से तोड़-फोड़ दिया. मैंने खिड़की से बाहर झांका. धरती पर ऊंचे-नीचे टीले निकट, और निकट आ रहे थे. दुर्घटना निश्चित थी और मृत्यु दुर्घटना से भी पूर्ण निश्चित.

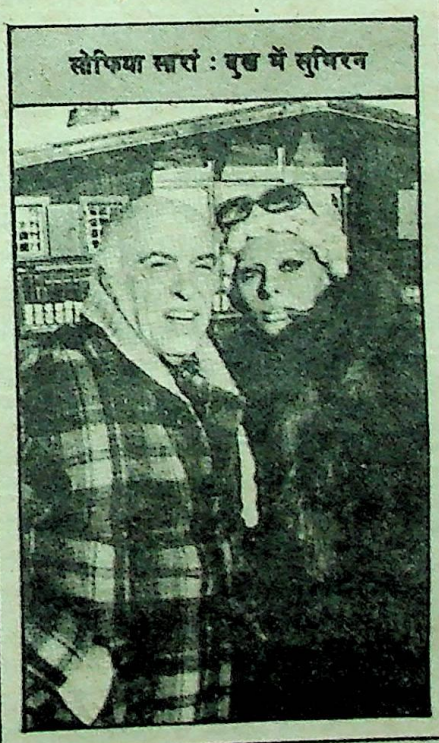

सोफिया लारां : बुक में सुशिरन

किंतु यह विचित्र बात हुई कि चमत्कार घटित हो गया और विमान दुर्घटना से बाल-बाल बच गया. अब हम सुरक्षापूर्वक एयर-पोर्ट पर उतर चुके हैं. कार्लो प्यार से मेरा हाथ थामते हैं और एयरपोर्ट के कोलाहाल से साफ बचा ले जाते हैं. इस मानसिक अवस्था में बस इतना याद रहा कि किसी ने लाल फूलों का एक गुलदस्ता पेश किया. हालांकि मैं पूरी तरह से चेतन नहीं थी, फिर भी, क्योंकि फोटोग्राफरों का हुजूम था, और क्लिक-क्लिक की आवाजें थीं और फ्लैश के झपाकों से तेज प्रकाश की एक मेहराब-सी बन गयी थी, जिस से मुझे गुजरना था. इसलिए विवशतः मुझे अपने चेहरे पर मुस्कराहट आच्छादित करनी पड़ी. मैंने कार्लो को इस भयानक फ्लाइट के बारे में कुछ नहीं बताया था, कि उन्हें सब कुछ पता था. कार्लो भी बहुत गजब के आदमी हैं. उनकी भावनाएं और संज्ञाएं बहुत शक्तिशाली हैं. अपने इर्द-गिर्द उनके हाथ को अनुभव करते हुए यों महसूस हो रहा था, जैसे सुरक्षा के आकाश ने मुझे अपनी भुजाओं में समेट लिया हो. उनकी निर्दोष और निश्छल मुस्कराहट वैसे ही दूसरे व्यक्ति को अपने भीतर समेट लिया करती है. विशेष रूप में मुझे कभी उनकी इतनी आवश्यकता... हां, इतनी आवश्यकता न पड़ी थी, जितनी उन क्षणों में, जब मुझे दोबारा जीवन प्राप्त हो रहा था, मानो नवजीवन के द्वार पर भी स्वागत करनेवाला कार्लो ही था.

कल ही एक कृपालु मित्र ने एक पत्रिका पढ़ने को दी थी, जिसमें हम दोनों पर एक लेख प्रकाशित हुआ था. मुखपृष्ठ पर कार्लो और मेरी साझी तसवीर थी. नीचे वाक्य लिखा था, "यह कब अलग होंगे?" लेख में विस्तारपूर्वक पाठकों को बताया गया था कि हमारा तलाक होनेवाला है. पृथकता तो पहले ही हो चुकी थी. अब वकील हमारे तलाक की अन्य बातें और शर्तें आदि तय कर रहे हैं. शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता होगा, जब हमारी शादी के टूटने की या मौत का समाचार विश्वस्त सूत्रों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित न किया जाता हो और शोक प्रकट करने के लिए एक शोकपूर्ण निबंध न लिखा जाता हो. यह देखकर पत्रकारों को कष्ट होता है कि फिल्मी-जगत में जहां परस्पर संबंध बड़े दुर्बल, कोमल और अस्थायी होते हैं, विश्वविख्यात एक जोड़ा पच्चीस-तीस वर्ष के बाद भी सही-सलामत चला आ रहा है. जब कार्लो से मेरी पहली मुलाकात हुई तो मैं पंद्रह वर्ष की थी. जब उनसे प्रेम हुआ, तो उन्नीस वर्ष की थी. अब चवालीस वर्ष की हूं, तब भी मेरे लिए सब कुछ वही हैं. हमने बड़े कठिन दिन इकट्ठे बिताये हैं. वह दिन जब चर्च का प्रकोप हम दोनों पर टूटा था, वह दिन जब इतालवी सरकार ने बहुविवाह या बहुपत्नी के अभियोग में हम पर मुकद्दमा चलाया... किंतु यह प्रकोप और यह संकट हमारे प्रेम के लिए एक ऐसी अग्नि सिद्ध हुआ जिसने हमारे सांसारिक शरीरों को फौलाद और फौलाद को सोना बनाया.

कार्लो ने अपने हाथ की पकड़ मज़बूत करते हुए मेरे कान में कहा, "तुम कुशलतापूर्वक पहुंच गयी हो. सामने हमारी कार खड़ी है." कार्लो चाहनेवाला, रक्षा करने वाला, मित्र, स्नेहशील, भावुक, जिम्मेदार, सृजनकार, मेरे लिए पिता के, हां, पिता के स्थान पर, पिता जो मुझे नसीब न हो सका. हां, आज चवालीस वर्ष की आयु में भी वह मेरी दृष्टि में पिता के स्थान पर हैं. वह नन्हीं-सी, शर्मीली, नाजायज, बिना पिता की बच्ची, आज भी मेरे भीतर है, जिसे पिता के स्नेह की आवश्यकता पग-पग पर रहती है.

मैं इस समय होटल के शानदार कमरे में हूं. दस मिनट के बाद हम यहां से चलने वाले हैं. मेरी फिल्म 'ए स्पेशल डे' का प्रीमियर-शो होनेवाला है. विमान का भयानक अनुभव अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था. मैं प्रसन्न हूं. इसलिए कि अपनी एक बेहद महत्वपूर्ण फिल्म स्वयं देख सकूंगी. यह फिल्म मेरी ख्याति को चार चांद भी लगा सकती है और उसकी अर्थी भी निकाल सकती है. मैंने मेकअप के बिना मुसौलिनी के शासनकाल में रोम की एक फूहड़, उजड्ड, विवश, संकटग्रस्त, घरेलू स्त्री की भूमिका अदा की है. देखना चाहती हूं कि यह कठिन भूमिका मैंने कैसे अदा की है, लेकिन इस समय स्थितियां बिलकुल प्रतिकूल हैं. प्रीमियर शो है और हीरोइन ने तथा गायक, समलैंगिकों की बेतरह भीड़ पहन रखी है. अदा की गयी भूमिका और अदा करनेवाली की भूमिका में धरती-आकाश का अंतर है. यह विरोधाभास मुझे खाये जाय रहा है कि लोग सिने-पट पर मेरा एक रूप देखेंगे, और मंच पर दूसरा रूप. कैसी अजीब लगूंगी!

मार्सलो कमरे में प्रवेश करता है. सुंदर, जवान, सदा-बहार, मुस्कराता हुआ. जासूस अपनी समस्याएं दुहराते हैं. वह बेपरवाही से कंधे झटकाता है. मेरे निकट आता है. मेरी गरदन पर उचटता हुआ चुंबन लेता है और गहरी सहृदयपूर्ण मुस्कराहट उपहार में देता है. मार्सलो मेरी प्रसिद्ध फिल्मों का हीरो है. आज जिस फिल्म का प्रीमियर शो होने वाला है, वह हमारी आठवीं सांझी फिल्म है अर्थात वह हीरो और मैं हीरोइन हूं. इस हिसाब से भी देखा जाये, तो लगता है जैसे मार्सलो से मेरी मित्रता सदा कायम रहनेवाली चीज है. मार्सलो और मैं एक दूसरे का आदर करते हैं. एक दूसरे से स्नेह करते हैं और सेट पर तो वह कमाल का आदमी होता है, लेकिन जब कोई फिल्म न बन रही हो तो हम आपस में कम ही मिलते हैं. मार्सलो हर समय समस्याओं में घिरा रहता है. एक का समाधान होता है तो दूसरी पैदा हो जाती है. कोई समस्या पैदा न हो तो वह स्वयं पैदा कर लेता है. समस्याएं भी ऐसी जिनका प्रकट में कोई समाधान नजर न आये. पच्चीस वर्ष से यही देख रही हूं. उसके जीवन में कितने ही लोग आये और चले गये, किंतु समस्याएं ज्यों की त्यों कायम हैं. मानो समस्याओं से निपटने में उसे एक आनंद मिलता है. मैंने देखा है कि वह जितनी बड़ी समस्या से दो-चार होता है, उतना ही उदासपूर्ण और उल्लसित होता है. उसमें गजब की हास्य-भावना है. अपने ऊपर स्वयं ही हंसता है और दूसरों को हंसाता है.

मुझे विश्वास है किसी ने मार्सलो को निराश और चिंतातुर नहीं देखा होगा. अपनी बच्ची से बहुत प्यार करता है, जो कैथरीन के गर्भ से पैदा हुई थी. स्वयं इटली में रहता है. पत्नी पैरिस में. मिलना-जुलना समाप्त हो गया है. बच्ची मां के पास है. बच्ची के ख्याल से कभी-कभी उदासीन हो जाता है.

पैलेस थियेटर में लोगों का हुजूम और शोर अधिक था. नारों की गूंज में कान पड़ी आवाज सुनाई न देती थी. धक्कापेल हो रही थी. एक रेला दायें से आता था. दूसरा बायें से. ऐसे अवसरों पर समझ में नहीं आता कि मुझे भयभीत होना चाहिए या स्वयं पर गर्व होना चाहिए, क्योंकि लोग एक ऐसी भावना को प्रकट करते हैं जो आदमी को विशिष्ट और महान बना देती है. मैंने सोचा कि शायद यह भावना और उसकी अभिव्यक्ति मेरे लिए भावी जीवन में फिर कभी हो या न हो, इसलिए मैंने उसे तीव्रता से अनुभव करने का प्रयास किया.

जब कभी ऐसा अवसर आता है तो मुझे यों लगता है जैसे स्वप्न देख रही हूं. उस समय मैं सोफिया लारां के भीतर से निकलकर बाहर खड़ी हो जाती हूं, जैसे मैं अपने आप को टेलीविजन पर देख रही हूं. अपने आप से बाहर निकलकर स्वयं को निष्पक्षता से देखना मेरी बहुत पुरानी आदत है, जिससे अपने आप पर काबू पाने और स्वयं को संतुलित रखने में मुझे बड़ी सहायता मिली है.

सबसे सुखदायक अनुभूति यह होती है कि ये लोग मनुष्य के रूप में मुझे पसंद करते हैं और कलाकार के रूप में मुझे चाहते हैं और अपनी इस पसंद और चाहत की अभिव्यक्ति खुल्लम-खुल्ला सामूहिक रूप में करते हैं. पुलिस के डंडे खाकर भी करते हैं. पुलिस का घेरा तोड़कर सामने आते हैं. यह मानो प्रदर्शन कर रहे हैं कि उन्हें अतीत की मेरी भूमिका और मेरी पिछली फिल्में पसंद हैं.

फिल्म 'ए स्पेशल डे' का टाइटल ज्यों ही आया उन्होंने बड़े स्नेह से तालियां बजा-बजाकर आग्रह किया कि सोफिया, सामने आओ. मैं और मार्सलो उठे. मंच पर आये और उनकी प्रशंसा और बधाई को मन-प्राण से स्वीकार किया, यह मेरे जीवन का बेहद सच्चा, खरा और संतोषपूर्ण क्षण था.

'ए स्पेशल डे' बड़ी कलात्मक और कठिन फिल्म थी. उसका बनाना बेहद मुश्किल था. अब तक मैंने जितनी भी भूमिकाएं की थीं, उनमें सबसे कठिन भूमिका यही थी और यों आज का दिन मेरे जीवन का अद्भुत दिन था. आरंभ विमान की दुर्घटना से हुआ. मृत्यु के मुख तक हो आयी और अंत यों हुआ, जैसे दोबारा जीवन मिल गया हो. □

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उस हरकत पर मैं कितना शर्मिंदा हूं'

बलराज साहनी ने जितना नाम 'तमाशे की दुनिया' यानी फिल्मों मे कमाया, उसकी सही-सही 'कीमत' उन्हें क्या चुकानी पड़ी थी—इस ईमानदार खुलासे को उन्होंने बजरिये अपनी फिल्मी आत्मकथा बयां किया है. निजी जीवन की ही तरह से वे इस आत्मकथा को लिखाकर स्वयं को बहुत सारे संघर्षशील लेखकों, वाम वैचारिक समर्थकों और मंचीय कलाकारों की भीड़ का एक हिस्सा मात्र ही साबित करना चाहते हैं. अपनी कमजोरियों को उन्होंने छिपाया या दुलराया नहीं, बल्कि उन्हें कसकर दुत्कारा है; स्वीकार किया है. यह सच चाहे "**आधे बाल तो फिल्मों में आने से पहले ही सफेद हो चुके थे**"— स्तर का हो या फिर जीवन के दूसरे पहलू के रूप में 'जादू की कुरसी' नाटक के लेखन को लेकर इस स्तर पर कि: "**जिन लोगों ने यह नाटक देखा है, मुझसे बार-बार उसकी पांडुलिपि मांगते हैं. पर मैं उन्हें बता नहीं सकता कि अपनी उस गलत हरकत पर मैं कितना शर्मिंदा हूं. मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति ने नेहरू जैसे महान व्यक्ति का मजाक उड़ाने की कोशिश की, यह सोचकर मैं शर्म से पानी-पानी हो जाता हूं. उस मनहूस नाटक की सभी कापियां मैंने आग लगाकर नष्ट कर दी थीं.**"

यहां प्रश्न यह नहीं है कि नेहरू महान व्यक्ति थे या नहीं, प्रश्न एक कलाकार के आत्मस्वीकार का है, उसके विरोधाभासों का है, इन विरोधाभासों का डटकर सामना करने का है, इसके विपरीत उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता के साक्ष्य में एक उद्धरण देना उपयुक्त होगा: "**दम्मो (दमयंती, लेखक की पहली पत्नी तथा प्रसिद्ध अभिनेत्री) के शव को लाल झंडे से ढककर दाह-संस्कार किया गया था. पार्टी मेरे जीवन का अभिन्न अंग बनी हुई थी.**" जबकि उन्हीं दमयंती के प्रति बलराजजी का मानना कुछ और भी था जिसे उन्होंने बेहिचक यूं स्वीकार किया है: "**अमीर घरों के लोग भी हमारे साथ दोस्ती करने के लिए बेचैन रहते थे. फिल्म-स्टार के साथ उठने-बैठने से उनकी इज्जत बढ़ती थी. जब हम उनकी घटिया पार्टियों से उकताकर पीछा छुड़ाते, तो वे इप्टा या कम्युनिस्ट पार्टी को चंदा देकर हमें ललचाते. अभिनेता और खासकर अभिनेत्री 'बूर्ज्वा' समाज के लिए एक खिलौना है—इस तथ्य का हमें बिल्कुल ज्ञान नहीं था. अभिनेत्री को दिये जानेवाले सम्मान में बहुत-सा तिरस्कार का भी अंश होता है, यह भी मुझे नहीं पता था. एक बार जब अखबार में पढ़ा कि रेस में दौड़नेवाली घोड़ियों के नाम बेगम पाश, नर्गिस, दमयंती आदि रखे गये हैं तो मुझे बहुत गुस्सा आया.**"

बलराजजी आगे लिखते हैं कि: "**मेरा कर्तव्य था कि उस समय अपनी पत्नी की ढाल बनता, उसके कलात्मक जीवन की कद्र करता, रक्षा करता, उसे फिजूल के झमेलों से बचाता, और पारिवारिक जीवन की जिम्मेदारियां अपने ऊपर लेता. पर मैं अपनी संकीर्णता के कारण मन ही मन में दम्मो की प्रसिद्धि और सफलता से ईर्ष्या करने लगा था. वह स्टूडियो से थकी-हारी हुई आती तो मैं उससे ऐसा सलूक करता जैसे वह कोई गलती करके आयी हो. मैं चाहता कि वह आते ही घर के काम-काज में लग जाये, जो कि मेरी नजर में उसका असली काम था. अपने बड़प्पन का दिखावा करने के लिए मैं इप्टा और कम्युनिष्ट पार्टी के अनावश्यक काम भी करने लग जाता. मैं मर्द था. जिन संस्कारों में मैं पला था, उनके अनुसार मर्द हर हालत में ऊंचा था. और जिन संस्कारों में दम्मो पली थी, उनके अनुसार पतिपरायणता उसका पहला कर्तव्य था. बेचारी बिना किसी शिकायत के वह सारा भार उठाती गयी, जिसे उठाने की उसमें सामर्थ्य नहीं थी. इन बातों को याद करके मेरे दिल में टीस उठती है. दम्मो एक अमूल्य हीरा था, जो उसके माता-पिता ने एक ऐसे व्यक्ति को सौंप दिया था जिसके दिल में उसकी कद्र थी, न ही कोई कृतज्ञता का भाव था.**"

आदमी के अंतरतम में छिपे ऐसे भयानक सच को स्वीकार करने का यह दुस्साहस बलराज साहनी ने वैयक्तिक जीवन में ही नहीं, अपने 'वैचारिक जीवन' में भी किया है. अपनी एक ऐसी कमजोरी को भी उन्होंने लिखाकर बताया था कि जिसे जानकर हम क्षुब्ध नहीं होते, भयभीत हो जाते हैं. फणी मजुमदार की एक फिल्म में बलराजजी ने स्क्रिप्ट की अनभिज्ञता से जूझते, उन आरंभिक दिनों की 'विवशता', जो उनके फिल्मों में प्रवेश का पहला ही प्रयास था, का वर्णन किया है, वह वास्तव में हमें हिला देता है. वे लिखते हैं, "**फिर मेरे सामने, मेज पर, भुना हुआ एक पूरा मुर्गा लाकर रखा गया. फणी-दा ने समझाया कि क्लैप बजने के बाद, कैमरे के पास खड़ा असिस्टैंट ऊंची आवाज में कहेगा, 'लेनिन!' और मैं उसकी ओर हंसकर देखता हुआ, मुर्गे को दोनों हाथों से उठा लूंगा, और मुर्गे की ओर देखकर कहूंगा, 'जानवर!'... लेनिन जैसे महान व्यक्ति के नाम के साथ जानवर शब्द जोड़ना मुझे बहुत भद्दा लगा. पर इस बारे में सवाल-जवाब कैसे कर सकता था, जबकि शॉट लिया जाने वाला था? शायद 'लेनिन' शब्द हीरो की ओर से बोला जा रहा था, जिसे कम्युनिस्ट विचारों का दिखाया गया होगा. उन दिनों कम्युनिस्ट लड़ाई को 'लोक-युद्ध' कहते थे और रूस-अमरीका-इंग्लैंड पक्ष का समर्थन**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे. इसके अलावा सुभाषचंद्र बोस के अनुयायी जर्मनी-जापान के पक्ष का समर्थन करते थे और कम्युनिस्टों को गद्दार कहते थे. कांग्रेस दोनों ओर कदम रखती थी. वह लड़ाई को 'लोक-युद्ध' कहती थी, पर कम्युनिस्टों को गद्दार घोषित करती थी. क्या पता, फणी-दा सुभाषवादी हों, और इप्टा के एक मेंबर से, जिसे कि आमतौर पर कम्युनिस्ट समझा जाता था, लेनिन के बारे में अपमान-भरा शब्द कहलवाकर खुश होना चाहते हों या फिल्म के शुरू में हीरो के कम्युनिस्ट विचारों का मजाक उड़ाकर, अंत में उसे ठीक साबित करना चाहते हों, क्योंकि हीरो तो आखिर हीरो होता है.... ज्यादा सोचने का समय नहीं था. एक रास्ता था. शॉट देने से साफ इंकार कर देना. दूसरा रास्ता था, इन बातों की ओर से ध्यान हटाकर काम में लग जाना. दूसरा रास्ता आसान था. मैं उसी रास्ते पर चला. पर इस बात का मुझे आज तक अफसोस है. मुझे किसी हालत में भी ऐसा शब्द बोलने के लिए मानना नहीं चाहिए था, जिससे कि एक महापुरुष का अपमान होने की संभावना हो, यह मेरी नैतिक कमजोरी थी."

दिल तथा दिमाग का अद्‌भुत संतुलन ही किसी व्यक्ति को अद्वितीय बनाता है. अपनी दुर्बलताओं का वर्णन करके बलराजजी ने अपनी महानता को ही उद्‌घाटित किया है. वे माफी नहीं मांगते, प्रायश्चित नहीं करते, बल्कि उसे स्वीकार करते हैं जो संभवतः इन दोनों गुणों का वास्तविक मूल है. मीनाकुमारी के साथ मिलकर की गयी एक कोशिश जो अभिनय को यथार्थ के चरम तक पहुंचाने से ताल्लुक रखती है, ऐसे 'निगेटिव अटेंप्ट' का वर्णन भी बलराजजी बड़े दिलचस्प तरीके से करते हैं. उन्हीं के शब्दों में : "खंडाला में 'पिंजरे के पंछी' की आउट डोर शूटिंग. शॉट है : मीनाकुमारी आत्महत्या करने के लिए रेल की पटरी पर चली जा रही हैं. मैं उनके पीछे "बहू!... बहू!" पुकारता हुआ भाग रहा हूं, और ऐन वक्त पर उन्हें गाड़ी के नीचे आने से बचा लेता हूं. हम दोनों रेलवे-लाइन से बाहर गिर पड़ते हैं, और हमारे बीच में बड़ा जजबाती झगड़ा होने लगता है.

"सलिल चौधरी सिर्फ हमारे भागने और रेलवे-लाइन से बाहर गिरने का शॉट लेना चाहते थे. गाड़ी के आने और हमारे झगड़े के शॉट वे बाद में बैक-प्रोजेक्शन की मदद से ले सकते थे. अचानक मुझे खयाल आया कि 'डेक्कन क्वीन' के आने का समय हो रहा है. वह खंडाला पर नहीं रुकती थी. अगर कैमरामैन जल्दी-जल्दी लाइटें फिक्स कर लें, तो सारा सीन एक ही शॉट में हो सकता है. मैंने सलिल चौधरी से बात की तो उन्होंने मीनाकुमारी से पूछा, वे झट मान गयीं. सो, जल्दी-जल्दी सारी तैयारी कर ली गयी. तब मुझे खयाल आया कि मीनाकुमारी को तो सिर्फ एक बार सुनकर संवाद याद हो जाते हैं, लेकिन मेरा क्या बनेगा? काफी लंबे संवाद थे ये. पर उस समय सोचने का समय नहीं था. मैं संवाद अभी पूरी तरह सुन भी नहीं पाया था कि सामने से गाड़ी आ गयी—बड़ी तेज रफ्तार के साथ. ड्राइवर ने हमें लाइन पर भगाते हुए देखकर लंबी-लंबी सीटियां बजानी शुरू कर दीं. मुझे खीझ होने लगी. अगर वह इसी तरह सीटियां बजाता गया, तो हमारे संवाद कैसे रिकार्ड होंगे? मुश्किल से दस गज का फासला रह गया होगा, जब मैं मीनाकुमारी को बाहों में भरकर लाइन के बाहर गिर पड़ा. गाड़ी के पहिये हमारे पीछे खड़-खड़ करते हुए गुजर रहे थे. लाइटें ठीक हमारे चेहरों पर पड़ रही थीं. सब काम बड़ी खूबसूरती से हो गया. हमने खुशी-खुशी पेक-अप किया और होटल में पहुंचे. मेरा सारा शरीर दुख रहा था. थकावट से अंग-अंग चूर था. मैं गर्म पानी का टब भरकर उसमें लेट गया. एकाएक मुझे अपनी थकावट का कारण समझ में आया. कितना खतरनाक काम मोल लिया था हमने! अगर हममें से किसी का भी पांव लड़खड़ा जाता तो? कितनी मूर्खतापूर्ण तजवीज पेश की थी मैंने! किसी दूसरे की जान खतरे में डालने का क्या हक था मुझे? मुझे बेहद पछतावा होने लगा.

"नहाकर मैं कमरे से बाहर निकला. मीनाकुमारी अपनी कॉटेज के बाहर बरामदे की सीढ़ियों पर बांहों में सिर दिये बैठी हुई थीं. मुझे देखकर उन्होंने कहा, 'आपने यह क्या किया बलराजजी, जिंदगी से तंग आये हुए हैं क्या?'

"यही सोच-सोचकर तो मेरी जान निकली जा रही है. मैं तो बेवकूफी कर ही रहा था, पर तुमने क्यों नहीं रोका?' वे हंस दीं. वही हंसी, जो आदमी एक बार सुनकर कभी भुला नहीं सकता.' 'आप शॉट जो उस तरह लेना चाहते थे. भला मैं आपको कैसे रोकती?"

बलराज साहनी यह किताब तथा अन्य लेखन ऐसे ही अनेक विस्फोटक आत्म सत्यों के हमारा परिचय कराता है. 'दो बीघा जमीन' की शूटिंग के वक्त जब मजदूर उन्हें 'असली गरीब' नहीं पाते तो उनकी आंखों में बलराज जी पढ़ ही लेते हैं कि उन्होंने मजदूर का भेस बनाकर उनके साथ क्रूर मजाक किया था. इसी क्रम में वे किशोरावस्था में देखी गयी सेक्सप्रधान फिल्मों के प्रभाव का भी वर्णन करते हैं और बी.बी.सी. (इंग्लैंड) में रहे एक सामान्य जन जैसे स्वाभाविक 'गर्व' पर भी वे कई बार व्यंग्य करते हैं. संक्षिप्ततः यह कि बलराजजी की अनेकानेक आत्म-स्वीकृतियां ही उनके लेखन की मुख्य आत्मा है □

('मेरी फिल्मी आत्मकथा' से)

मतलब

फिल्म निर्माता स्पाइरोस स्कूरास यूनानी लहजे में अंग्रेजी बोलता था. उस के सहायक उल्रिक बैल को उस की बातें सुनने में हमेशा कठिनाई होती थी और उसे अपने कानों पर विशेष जोर देना पड़ता था.

एक दिन स्कूरास ने उसे कहा कि वह ऊंचा सुनाई देनेवाला यंत्र कान में लगवाये.

जब बैल यंत्र लगवाकर उसके पास आया तो स्कूरास ने पूछा, "क्या अब मेरी बातें सुनायी देती हैं?"

"हां, बहुत साफ सुनायी देती हैं, पर अब उनका मतलब समझ में नहीं आता." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं जो काम शुरू कर रहा हूं... वह दरअसल ऐसा काम है जो मुझसे पहले किसी ने नहीं किया और मेरे बाद भी कोई नहीं कर सकेगा. मैं दुनिया के सामने अपने बारे में सौ फीसदी सच खोलकर रख देना चाहता हूं. मैं खुद को तो अच्छी तरह जानता ही हूं... दूसरे आदमियों को भी खूब पहचानता हूं." यह

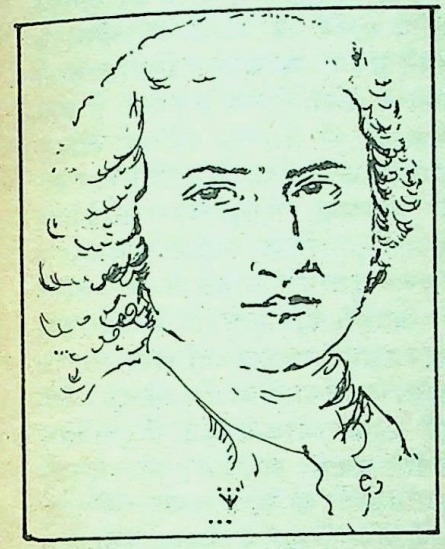

रूसो की आत्मकथा का प्रारंभिक अंश है, "जब तक आप खुद को अच्छी तरह से नहीं समझते तब तक दूसरों को भी नहीं समझ सकते. और इसकी विपरीत स्थिति भी इतनी ही सही है. खुद को समझ पाने के लिए दूसरों को समझना भी जरूरी है."

रूसो को आत्मकथा की सच्चाई पर इतना यकीन था कि 'कनफैशंस' के पहले पृष्ठ पर ही लिखा है– "क्यामत के दिन का बिगुल कभी भी बजे... मैं भगवान के सामने अपनी यह किताब पेश कर बूंगा और उससे कहूंगा– लो, इसे पढ़ लो! जान लो कि मैंने जिंदगी में क्या किया है! क्या सोचा है, और मैं किस तरह का आदमी हूं. मैंने अपनी अच्छाईयां और बुराईयां बिना किसी खौफ के लिखी हैं." घटनापूर्ण होते हुए भी यह पुस्तक रूसो की भावनाओं का स्पष्ट प्रतिबिंब है. संवेदनशीलता के स्तर पर इस आदमी का कोई सानी नहीं... अपने गिरेबान में झांककर बात करना इसकी आदत में शुमार था. आत्मरागी तो वह था ही... कई तरह के भय भी उसे सताते रहते थे. ईर्ष्या आक्रोश और संदेह उसे हरदम मथते रहते थे. अंतिम दिनों में बीमारी की हालत ने उसकी भावनाओं को और अधिक गहरा दिया था. उसने जो कुछ भी लिखा है, वह इसी आवेश के तहत लिखा है– "मुझे हमेशा विचार के पहले अनुभूति होती है. ऐसा कुछ हद तक हर एक मनुष्य के साथ होता है. पर मेरी अनुभूतियां दूसरों से कुछ ज्यादा ही गहरी होती हैं." रूसो की इस अप्रतिम पुस्तक का आनंद उसी के शब्दों में लिया जा सकता है–

"हर दुर्व्यवहार के बाद चोरी करना और झूठ बोलना वाजिब है..."

"मेरे पैदा होने के साथ ही मां की मृत्यु हो गयी. यह मेरा पहला दुर्भाग्य था. मेरे पिता हमेशा मुझमें मेरी मां को देखते थे. वे कभी यह बात अपने दिमाग से नहीं निकाल सके कि मैं उनकी प्रिय पत्नी की मौत का कारण बना. वे मुझे जब कभी प्यार करते... वह मां की मौत की दुखभरी याद से जहर में तब्दील हो जाता. चालीस साल बाद भी जब उनकी मौत हुई... दूसरी पत्नी के होते हुए भी वे मेरी मां को अंतिम क्षणों तक याद कर रहे थे."

कुछ बड़ा होने पर रूसो को वकालत का काम सीखने के लिए एक वकील के पास भेजा गया. रूसो को इस पेशे से बेहद चिढ़ थी. उसके आत्म-सम्मान को धक्का लगना स्वाभाविक था– "यह वकील भी अजीबोगरीब इंसान था. हमेशा डांटता फटकारता रहता मुझे. कहता, 'तुम निरे गधे हो... और तुम्हारे चाचा ने यह कहकर कि तुम चतुर इंसान हो... मेरे गले मढ़ दिया है.' इस वकील से ज्यादा दिन तक कैसे पट सकती थी? मैं नक्काशी करने वाले एक आदमी के साथ रहने लगा. बाद में पाया कि यह भी निहायत जाहिल और नृशंस प्रकृति का इंसान था.

> जब तक आप खुद को अच्छी तरह से नहीं समझ सकते... तब तक दूसरों को भी नहीं समझा जा सकता...! क्या यह सही है कि खुद को समझने के लिए पहले दूसरों को समझने की कोशिश की जाए?

मुझे नक्काश से ही नहीं उसके पेशे से नफरत हो गयी. उससे जान बचाने के लिए मैं झूठ बोलने, मटरगश्ती और चोरी भी करने लगा. मैंने जल्द ही सीख लिया कि चोरी करना कोई बड़ी बात नहीं है. मैं सोचता रहता और जो चीज मुझे पसंद आ जाती... वह सुरक्षित न रहती. मेरा नक्काश मालिक जब कभी कोई बढ़िया चीज खा रहा होता, जानबूझकर मुझे वहां से चले जाने को कहता ताकि मैं अंदर ही अंदर किलसता रहूं. इसका उलटा असर यह हुआ कि मैं पेटू हो गया. मालिक की रसोई से बढ़िया चीजें उड़ाकर खाने लगा. मैं सोचता कि चोरी में मुझे जो माल मिलता है, वह एक तरह से दुर्व्यवहार का मुआवजा है. और इसलिए हर दुर्व्यवहार के बाद चोरी करना और झूठ बोलना वाजिब है. यदि मेरी शराफत के बावजूद मुझे बदमाश बताते हुए सजा दी जाती है तो फिर मुझे भी बदमाश की तरह व्यवहार करने का पूरा हक है! मालिक अपना काम करे, मैं अपना काम करूंगा."

रूसो ने माल उड़ाने का अपना काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीता कौन?

(पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' कृत 'अपनी खबर' से... संदर्भ : कमलापति त्रिपाठी)

सो, तुम जीते-कमला, और बहुत खूब जीते. अभी गत कल ही की तो बात है. तुम प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष बने थे. (सन 1948-49). उन्हीं दिनों लखनऊ में मैं भी मोहक मिनिस्टर श्री केशवदेव मालवीय का मेहमान था. अतः, सहज ही, उस जलसे में हाजिर था जिसके तुम जनाबे-सद्र थे. पहले दिन की कार्रवाई खत्म होने के बाद ही मंच से दर्शकों के बीच में आने पर मुझे पहचान तुमने मेरे कंधे पर परिचित हाथ रखा था और—परिचित ही सदा में—मैंने गुजारिश की थी हि.सा. सम्मेलन के अध्यक्ष से कि आगामी कल के जलसे में मुझे भी चंद अल्फाज बोलने की इजाजत दें. लेकिन तुमने तड़ुन ना कर दिया था, "तुम न जाने क्या बोलो—मैं तुम्हें बोलने नहीं दूंगा." तब तुम मिनिस्टर नहीं—महज एम.एल.ए. थे, लेकिन तब भी तपना तुमने प्रायः मिनिस्टरों की तरह ही शुरू कर दिया था. मैं रहता था मिर्जापुर तथा 'मतवाला' वाले महादेवप्रसाद सेठ के योग्य-पुत्र के करते फिर से प्रकाशित 'मतवाला' का संपादक था. दूसरे दिन तुमने सभा में मुझे बोलने नहीं दिया था. पांचवे दिन अपने पेपर में मैंने तुम्हारे दर्शन की, भाषण की, हिन्दी-साहित्यिक-आसन पर से पालिटीशियन मुख्यमंत्री पंत के पद-पल्लव पकड़ने के आचरण की भर्त्सना की था—जरा भी अपनत्व दिखाये बगैर. इसके बाद मिर्जा पुर से बनारसा जाने पर, जान-बूझकर, तुम्हारी प्रतिक्रिया ताड़ने के लिए मैं तुम्हारे घर गया था. दरबार तुम्हारा भरा था, मैंने देखा. मुझे देखते ही चेहरे पर अहंकार तुम्हारा उभरा था. मेरी तरफ से पीठ हटा, पीठ दिखाते तीव्र-तिरस्कार से तुमने कहा था, "कोई मुझसे पॉलिटिक्स में भिड़ावे (फिर देखे...)." उस समय मैंने नहीं समझा था कि तुम्हारे इस पॉलिटिक्स-परिज्ञान-अहंकार के पीछे इतना कूट-प्रभुत्वपूर्ण 'पावर' था. तुम सिंचाई मंत्री बन गए जब तब भी मैंने अंहकार योग्य कोई खुसूसियत तुममें नहीं देखी थी. लेकिन जब कमल ने तुम्हारे पक्ष में 'किक' मार सी.बी. गुप्त को पाताल पठाया और संपूर्णानन्द को प्रान्तीय प्रभुत्व के आकाश की तरफ उछला तब जैसे रातोंरात तुम्हारा साइज यू.पी. के पाताल से (नक्षत्र-ग्रह-चन्द्रार्क-मण्डित) आकाश तक विराट हो गया था. तुम्हारा यह विराट रूप मुझे बहुत ही भाया. जीवन में जीवट से डटने की क्षमता, बल, 'पावर' मुझे बहुत ही सुहाते हैं. मैंने कहा, 'भाते हैं', 'सुहाते हैं. 'लुभाते' ये मुझे उतना नहीं. देखो तुम, जब से तुम 'पावर में हो मेरी-तुम्हारी भेंट तक नहीं. लखनऊ तो दूर मैं बनारस भी नहीं गया, मिर्जापुर नहीं आया. तब से जब से तुम वैसे शक्तिशाली बने जिसकी कल्पना तक मैं न कर पा सका था. वैसे ही-ठीक वैसे ही कमला-जैसे अलिफ लैला के दीन अलादीन को अपने ही हाथ के चिराग में प्रचंड शक्तिशाली 'जिन' के होने की कल्पना तक नहीं थी. विश्वास रखो, मैं तुम पर एक अक्षर भी न लिखता-यह सब तो अपना अहंकार प्रकट करने के लिए लिखा है—खासकर प्रांत के उन साहित्यिकों, कलम-बाजों, आचार्यों, तथाकथित प्रतिभाशालियों पर जो आज तुम्हारे प्रसाद से प्रसादीलाल बने हुए हैं. मेरा वादा है आज यू.पी. के जो भी तुम्हारे सामने झुककर सम्पूर्णानंदित हैं वे सभी मेरे सामने भी सरासर झुके हुए हैं. याद तो करो सन् 1921 ई. की घटना. गांधीजी काशी आये हुए थे और टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के दुमंजिले पर हिंदूविश्वविद्यालय के एक-से-एक विवेकी आचार्य को असहयोग का प्रोग्राम सुतर्कित रीति से समझा रहे थे. और तुम थे. और मैं था. हमने तय किया कि महात्माजी जब गोष्ठी वाले कमरे के बाहर निकलें तब अचानक लपक-कर पावन चरण-स्पर्श किया जाए. और हम कर गुजरे लड़कपन. बड़े-बड़ों के आगे-आगे आते गांधीजी के गतिवान चरण एक ओर से तुमने और एक ओर से मैंने पकड़ ही लिए थे. गांधीजी चमककर शांत रह गए थे. मुझे याद है—मेरे हाथ में उनका दाहिना चरण आया था और तुम्हारे बायां. □

इतना तेज कर दिया कि मालिक का दीवाला ही निकल गया. आखिरकार उसने रूसो को लात मारकर बाहर कर दिया. दरअसल, यह रूसो की प्रतिशोधात्मक कार्रवाई का जवाब था. रूसो ने लिखा है—**"पैसे के प्रति मेरे मन में कोई चाह नहीं. वह सब मैं लालच के बजाय प्रतिशोधवश करता था. पैसे के प्रति अनिच्छा-भाव मेरे आलस्य की वजह से है. जिस तरह कष्ट सहकर पैसा अर्जित किया जाता है उसकी तुलना में पैसा मिलने का आनंद उसका आधा भी नहीं."**

रूसो की जिंदगी में वारेंस की भूमिका केंद्रीय महत्व की रही है. इस औरत से अपने संबंधों का खुलासा जिस तरह से रूसो ने किया है, वह अभूतपूर्व ही नहीं बेमिसाल भी है. उसे वह मां कहकर संबोधित करता रहा और उसी से फिर प्रेम भी करने लगा... पर मां कहना उसने फिर भी न छोड़ा. रूसो के शब्दों में— **"वह बेहद दयालु, खुशमिजाज, सीधी और सहज थी. बड़ी से बड़ी मुसीबतों में भी उसके इस स्वभाव में बदलाव नहीं आया. खुद पर कलंक लगाने वालों के प्रति भी वह उदार बनी रहती. आखिरी दिनों में एक साथ आयी तमाम मुसीबतें भी उसकी खुशमिजाजी को खत्म न कर सकीं."**

वाल्तेयर के बारे में भी रूसो इसी तरह खुलकर अपने विचार रखते हैं— **"उसके व्यक्तित्व की कुंजी इस तथ्य में थी कि उसमें किसी भी तरह सुखी रहने की सलाहियत नहीं थी. पर मैं शुरू में उसके विचारों और लेखन से काफी प्रभावित था."**

जीवन के अंतिम दिनों में रूसो को यह यकीन हो चला था कि उसके समकालीन लेखकों-बुद्धिजीवियों ने उसके खिलाफ षड्यंत्र किया है. अंततः वह दार्शनिक ह्यूम के आमंत्रण पर इंग्लैंड जाकर रहने लगा. यहां उसकी मुलाकात डा. सैमुअल जानसन और एडमंड बर्क से हुई. रूसो के बारे में इन दोनों के विचार अच्छे नहीं थे. कुछ ही दिनों में रूसों का ह्यूम से झगड़ा हो गया. रूसो को इसमें भी ह्यूम की साजिश नजर आयी, **"इस साजिश से मैं इतना भयभीत हुआ कि भागकर एक प्रिंस के घर नाम बदलकर रहने लगा. मुझे डर था कि यहां भी ह्यूम मेरा पीछा करेगा."** उधर ह्यूम ने भी नाराज होकर यह प्रचारित कर दिया कि रूसो एक भयंकर दुष्टात्मा है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमीर अली

इसे जल्दी से गुड़ खिला दिया जाये

सन् 1831. 66वीं बंगाल नेटिव इंफेंट्री में जगह-जगह चर्चा हो रही थी. सिपाही मातादीन पांडे छुट्टी काटकर वापस क्यों नहीं आया. इससे पहले 34वीं और 12वीं बटालियन के सिपाही मुहम्मद खां और कामेश्वर सिंह भी छुट्टी काटकर नहीं लौटे थे. मेजर जनरल हर्सी के हुक्म से ही कर्नल मेकडॉनल्ड ने अवध से तहकीकात-रपट मंगवायी थी. पता चला कि ये तीनों सिपाही अपने घर तो गये ही नहीं थे. और तभी सूबेदार सुरजन तिवारी ने साहब को बतलाया था, "सर, हो न हो, हमारे ये जवान ठगों के जाल में फंसकर मारे गये हों." उन दिनों भारत में ठगों का जाल सब जगह फैला था– विशेषकर दमोह, सुजाना, नरसिंहपुर और उत्तराखंड के क्षेत्र में. ठगों की जमात में हिंदू, मुसलमान दोनों ही थे. इटावा जिले में कहारों ने अपना जाल फैला रखा था. वहां के मेघपूनिया ठग बच्चों को उठाने के लिए माता-पिता को मार डालते थे.

वैसे ठग शब्द संस्कृत 'स्ठग' से बना है और ठग सोलहवीं शताब्दी से सक्रिय थे. इसमें मुसलमानों की सात कौमें और हिंदुओं की अनेक जातियां मिली थीं. ठगों का आतंक इस प्रकार छाया था कि यात्रा करना जोखिम का काम बन गया था. ठगों से निबटने के लिए गवर्नर जनरल लार्ड बैंटिक ने ही बीड़ा उठाया और 'ऐंटी-ठगी ऑर्गनाइजेशन' तैयार किया जिसमें सिविल सर्विस और मिलिटरी के अफसर चुने गये. इनमें एफ.सी. स्मिथ, मार्टिन, जार्ज स्टॉकवैल, चार्ल्स फ्रेजर, जार्ज क्लार्क, विलकिनसन और बैक्स उल्लेखनीय हैं. पर विशेष तौर पर फौजी अफसरों ने ही ईंट का जवाब पत्थर से दिया था जिसका चीफ एजेंट मेजर विलियम स्लीमैन और उसका साथी कैप्टिन मीडोज टेलर था. मेजर जनरल कबन और फ्रेजर हैडक्वार्टर में बैठे थे. इनके अतिरिक्त कर्नल लो, स्टयूबर्ट, ऐलविस स्पायर्स, कॉलफील्ड, सदरलैंड और वेड भी थे.

इस दल ने सन 1831 से 1837 तक जी जान से ठगों से लोहा लिया और परिणाम स्वरूप 3266 ठग पकड़े गये जिनमें से 412 को फांसी दी गयी और 483 सरकारी गवाह बन गये जिन्हें आजन्म कारावास दिया गया.

ठगों के संसार में घिरंगिया बामन और अमीर अली, ठगों के रीति-रिवाज का सूक्ष्म अध्ययन किया और फिर मेजर स्लीमेन से परामर्श लिया था. ठगों को ठगने का जाल बिछाया और फिर एक दिन अमीर अली जैसे जाने-माने उस्ताद को धर लिया. समझाने-बुझाने पर ही अमीर अली 'सरकारी-गवाह' बन गया और वह स्वीकारोक्ति के लिए तैयार हो गया. कैप्टिन मीडोज टेलर ने बाकायदा अमीर अली से उनका 'ठग पुराण' एवं 'ठग विद्या' के हथकंडों को जाना और एक पुस्तक लिख डाली– 'कनफैशंस ऑफ ए ठग'. इस आत्म-स्वीकारोक्ति के अनुसार अमीर अली ने अपनी जो दास्तान सुनायी उसका संक्षिप्त-सारांश इस प्रकार है.

'मेरा जन्म मध्य भारत में हुआ. मेरे माता-पिता कौन थे, मैं नहीं जानता. मुझे इतना याद है कि मेरी देखरेख के लिए एक नौकरानी तैनात थी और मैं सोने-चांदी के जेवर पहनता था जिसका मतलब हुआ कि मैं किसी अमीर बाप का बेटा था. मुझे वह हादसा आज भी याद है जब मैं अपने परिवार के साथ किसी यात्रा पर जा रहा था और ठगों के जाल में हम फंस चुके थे. तब एक नदी के किनारे मेरे परिवार और नौकरों की हत्या कर दी गयी पर मैं बच गया या कहिये मुझे बचा लिया गया. मैंने तब उन लोगों को गालियां दी थी जिससे क्रुद्ध होकर एक ठग, जिसका नाम गनेशा था, मुझे मारने को फिर से तैयार हो गय. पर दूसरे ठग इस्माइल ने मुझे बचा लिया. बाद में इसी इस्माइल ने मुझे गोद ले लिया और मैं उसकी बीवी को अम्मीं और उसे अब्बा कहने लगा. इस्माइल कपड़े की दूकान भी करता था. थोड़े अर्से बाद 'अम्मीं' का देहांत हो गया. इस्माइल ने तभी जगह बदल डाली और हम सब मुरैना आ गये जो सिंधिया के आधीन था. वहीं पर मुझे बाकायदा तालीम दी गयी. एक बुजुर्ग मुझे फारसी भी पढ़ाया करते थे. मैं देखता था कि शाम के घर पर बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और किसी अजीब भाषा में बातें करते हैं. मैं सोने का बहाना करके लेट जाता और उनकी भाषा समझने की कोशिश करता. एक दिन मैंने चुपचाप कमरे की अलमारी में बंद एक बक्सा खोला जिसमें तरह-तरह के सोने के जेवर, मोतियों की लड़ियां और जवाहरात थे.

...और फिर एक दिन उनमें से एक

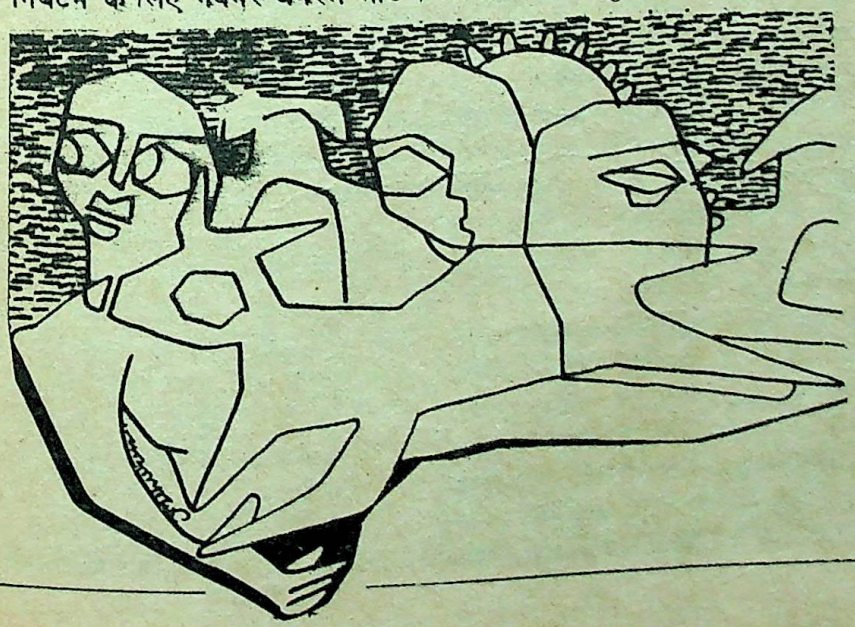

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी बोला, "तुम्हारा अमीर अली के बारे में क्या इरादा है. अब यह जवान हो गया है और समझदार भी. इसे जल्दी से 'गुड़' खिला दिया जाये जिससे कि यह हमारे धंधे में शरीक हो जाये और इसे चटखारा लग जाये वर्ना तो यह खतरनाक भी साबित हो सकता है."

सबकी यही राय हुई कि मुझे शीघ्र ही 'गुड़' खिला दिया जाये.

मेरे अब्बा इस्माइल ने एक दिन मुझे अपने पास बैठाकर सब कुछ बतला दिया कि वे एक ठग हैं. उन्होंने कहा कि इस पेशे में हिंदू मुसलमान दोनों ही मां जाये भाइयों की भांति काम करते हैं. एक दूसरे को पहचानने के लिए हमने कुछ इशारे बना रखे हैं. फिर अब्बा ने बतलाया कि उत्तर भारत के सभी ठग उनके हुक्म के गुलाम हैं और एक हफ्ते के नोटिस पर हजारों ठग इकट्ठे होकर उनके आदेशों का पालन करेंगे. अब्बा ने फिर कहा कि मुझे कल शिवपुर चलना है जहां पर मुझे ठगी की दीक्षा दी जानी थी. दशहरे के दो दिन बाकी थे. वहां इकट्ठे हुए ठगों ने मेरे अब्बा की बड़ी आवभगत की. दशहरे को बहुत महत्व दिया जा रहा था लिहाजा मैंने अब्बा से पूछा कि इसका क्या कारण है. अब्बा बोले, "पहले तो यह समझ लो कि यह ठग विद्या हमने हिंदुओं से सीखी है. दशहरा ही एक ऐसा हिंदू त्यौहार है जिसे हम मानते हैं. हिंदुओं के मुताबिक सृष्टि के आरंभ में दुनिया में दो शक्तियां थीं– एक निर्माण करनेवाली और दूसरी विनाश करने वाली. जब जनसंख्या ज्यादा बढ़ने लगी तो विनाश करनेवाली शक्ति पिछड़ गयी. तभी भवानी या काली मां ने एक पुतला बनाया और फिर उसमें जान डाल दी. जान डालते ही उसने बहुत से भक्त इकट्ठे कर लिये जिन्हें 'ठग' का नाम दिया. देवी ने उन्हें ठग-विद्या सिखायी और फिर प्रदर्शन के हेतु उस पुतले की हत्या अपने हाथ से कर दी. उसी हत्या के ढंग को हमने अपना लिया है जो हम आज भी काम में लाते हैं. हत्या के बाद मरनेवाले का माल-मता हम छीन लेते हैं और उसे जमीन में गाड़ देते हैं."

दशहरे के दिन ही मुझे ठग-विद्या की दीक्षा दी गयी, नहलाकर नये कपड़े पहनाये गये और फिर ठग भाइयों के साथ एक खुले मैदान में लाकर अब्बा आकाश की ओर देखकर जोर से बोले, "ओ भवानी! ओ जगत जननी! इस पर्व को अपनी सेवा में ले!" तभी पेड़ की शाख पर बैठा एक घुरघू बोल उठा जो शुभ सगुन माना गया और जिसे सुनकर सब ठग बोल उठे, "जय भवानी! जय भवानी!" फिर मेरी हथेली पर एक रूमाल रखा गया और धंधे का प्रतीक कुदाल रख दी गयी. फिर मैंने बांया हाथ उठाकर शपथ ली और उसके बाद मुझे गुड़ की डली खाने को दी गयी.

सबने अब्बा को बधाई दी. फिर अब्बा ने हिदायत दी, "याद रखना, धोबी, भाट, तेली, लुहार, बढ़ई, सिख, नानकशाही, मदारी, फकीर, नर्तक, संगीतज्ञ, भंगी, और अपंग या कोढ़ी को कभी मत मारना."

फिर अभियान शुरू होना था. उस समय हमारे गिरोह में कुल एक सौ पैंतीस ठग थे. इनमें से 60 हमारी टुकड़ी में, 45 हुसैन की टुकड़ी में और 30 गयासखां की टुकड़ी में थे. कूच करने से पहले सगुन विचारा गया. क्योंकि मेरे अब्बा समूचे गिरोह के नेता थे, लिहाजा उन्होंने एक पानी भरे लोटे की रस्सी अपने दांत से दबायी थी. लोटे का गिरना भयंकर अपशकुन हो सकता था लिहाजा वे सतर्क थे. कुछ देर चलने के बाद उन्होंने रुककर अपना बायां हाथ छाती पर रखा और पूरे सम्मान के साथ आकाश की ओर आंखें उठाकर कहा, "जगतजननी, हमारी व्यवस्था की संरक्षिका, मां भवानी, अगर इस अभियान से प्रसन्न है तो कुछ शगुन दिखा." और तभी बायीं ओर से एक गीदड़ बोल उठा जो कि एक बढ़िया शगुन था.

अमीर अली ठग ने हुक्के का कश खींचकर फिर कैप्टिन मीडोज टेलर को बतलाया कि ठगों के नियम एवं अनुशासन किस प्रकार का था. ठगों की भाषा 'रामसी' कहलाती थी जिसे वे ही आपस में समझते थे. उनके कई इशारे भी थे जिन्हें 'झिरनी' कहते थे. दल का अनुशासन कंपनी बहादुर की फौज के बराबर ही था. अलग-अलग काम के लिए अलग ठग बंटे थे. सबसे पहले 'सोठा' लोग यात्री दल के पास बहूरूप भरकर जाते, उनका विश्वास जीतते और उन्हें फंसाकर लाते. मुख्य दल भांति-भांति से यानी दल का दिल मोह लेता और पड़ावों पर आमोद-प्रमोद का प्रबंध करते. राग-रंग, शराब के दौर, दावत, मुजरे– सब ही हथकंडे-प्रयोग में लाते. जिस पड़ाव पर उन्हें ठिकाने लगाने का निर्णय किया जाता, उस दिन 'लुग्घा' (कबरखोदे) पहले से ही जितने यात्री मारकर दबाने होते उनकी ही कब्र खोदकर तैयार रखते. काम खत्म होते ही वह सरदार के पास आते और सरदार उनसे 'झिरनी' (इशारे) में पूछता 'बिल मांजेह' यानी बिल (कब्र) तैयार हो गयीं कि नहीं. तसल्ली बख्श जवाब पाने पर फिर जश्न मनाया जाता. ज्यादातर आटे में धतूरे का चूर्ण मिला दिया जाता. जब महफिल रंग पर आ जाती और यात्री सुध-बुध भूलकर नाच-गाने में मग्न हो जाते तभी सरदार के इशारे पर हरेक यात्री के ऐन पीछे एक 'भटोट' (गला घोंट कर मारनेवाला) बैठ जाता जो अपने रूमाल के छोर पर चांदी का रुपया बांधे उससे खेलता रहता. और फिर ठीक माहौल देखकर सरदार चिल्लाता 'तंबाकू लाओ' यात्री समझते कि हुक्कों के लिये तंबाकू मंगायी जा रही है और उसी समय हरेक 'भटोट' अपना रूमाल सामने बैठे यात्री के गले में इस खूबी से डालता कि चांदी का रुपया उसके कंठ पर आ जाता. और फिर फुर्ती से वह रूमाल को अपने हाथ से ऐंठ देता कि आनन-फानन ही में उस यात्री के प्राण-पखेरू उड़ जाते. सब यात्री एक झटके में खत्म कर दिये जाते. फिर ठग उनके जेवर और माल-मता इकट्ठा करते. तब तक 'लुग्घा' लोग (कबखोदे) लाशों को घसीटकर कब्रों में डाल देते और जल्दी से पाट देते. दबाने से पहले वे हरेक लाश के पेट में बड़े-बड़े सूराख कर देते जिससे कि लाश फूले नहीं. अक्सर कब्र एक बड़ा-सा गड्ढा होती थी जिसमें आठ-आठ लाशें एक साथ दबा दी जातीं. यह गड्ढा इतना गहरा होता जिसमें वे गीदड़ लाश खोद नहीं पाते. जहां से लाश घसीटी जाती, वहां पेड़ों की डाल जमीन पर खींच देते जिससे खींचने के निशान मिट जाते. कब्र खोदने की कुदाल को 'खुस्सी' कहते थे और इस कुदाल की बाकायदा पूजा की जाती थी. मुसलमान हो या हिंदू, हरेक के माथे पर सिंदूर का टीका लगाया जाता जो भवानी का प्रतीक माना जाता.

अमीर अली ने बाद में कैप्टिन मीडोज टेलर और उसके दल को ले जाकर कई जगहें बतायीं जहां लाशों दबायी गयी थीं. खोदने पर किसी गड्ढे से आठ-आठ और किसी से दस-दस कंकाल निकाले गये.

प्रस्तुति : बाला दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अब मैं एक आजाद सिपाही हूं. मेरे पास करने को कुछ भी नहीं है. सेवानिवृत्त आदमी अपनी मौत का इंतजार भर करता रहता है. बुढ़ापे में अगर आदमी के पास करने को काम न हो तो जिंदगी काटनी भी मुश्किल हो जाती है... खासतौर पर मेरे जैसे आदमी के लिए जो हरदम हलचलों के बीच रहा हो. बावजूद इसके, मुझे कोई शिकायत नहीं है क्योंकि कभी न कभी ऐसा समय तो आता ही है कि आदमी का शरीर जवाब देने लग जाये... मैं स्तालिन का नजदीकी आदमी था. मैं उसकी विश्वासघाती और मुजरिमाना नीतियों का गवाह रहा था."

अक्तूबर 1964 में खुश्चेव को जबरदस्ती अवकाश देने के बाद मास्को से 20 किलोमीटर दूर एक घर में नजरबंद कर दिया गया था. हालांकि उन्हें लोगों से मिलने की आजादी थी पर उन पर पुलिस बराबर नजर रखती थी. सन् 1967 से सन् 1971 तक वे एक टेपरिकार्डर में अपने संस्मरण रिकार्ड करते रहे. जाहिर है, कि इस टेप में बहुतेरी बातें ऐसी रही होंगी जो क्रेमलिन के नेताओं को नापसंद होतीं. यही वजह थी कि उनके संस्मरणों का कुछ भाग प्रकाशित होने से रोका भी गया. स्टालिन के बारे में खुश्चेव कहते हैं– "**स्तालिन बेहद पढ़ा-लिखा था और वह लेखकों के साथ भी अच्छा बर्ताव करता था, बशर्ते वे उसकी तारीफ करते रहें...**" पर 'डा. जिवागो' जैसे उपन्यास के बारे में उसकी राय अच्छी नहीं थी. इस रूप में वे पास्तरनाक के मुकाबले इलिया एहरनबर्ग को ज्यादा तरजीह देते थे.

लगातार तीन चीन-यात्राओं के बावजूद, खुश्चेव के समय में रूस-चीन संबंध बिगड़ते ही चले गये. और अंततः खुश्चेव माओ से नफरत ही करने लगे. माओ और स्तालिन की तुलना करते हुए उनकी टिप्पणी गौरतलब है– "**स्तालिन अपने ज्यादा नजदीकी कामरेडों की बहुत निर्ममता से हत्या करवाता था... तो माओ अपने कामरेडों की हत्या करने के बजाय**

क्या माओ का यह कहना पागलपन की मिशाल है कि तीसरे विश्वयुद्ध में पूंजीवादी देशों का नाश हो जायेगा... और समाजवादी देश बचे रह जायेंगे...?

"मैं स्तालिन की मुजरिमाना नीतियों का गवाह रहा"

खुश्चेव

स्तालिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोध-कथा

सब से बड़ा नाम

इदरीस शाह

अनुवाद : सुदीप

भारत के एक फकीर ने एक बार एक सूफी से पूछा कि क्या वह उसे अल्लाह का सौवां नाम बतायेगा, जिसे सबसे बड़ा नाम कहा गया है? जिन्हें इस नाम की खबर है, वे चमत्कार कर सकते हैं और जीवन तथा इतिहास का रास्ता बदल सकते हैं. जब तक कोई व्यक्ति इसके योग्य नहीं होता, तब तक वह इसे जान भी नहीं सकता.

सूफी ने कहा, "परंपरा के अनुसार मुझे पहले तुम्हारी परीक्षा लेनी होगी ताकि तुम्हारी योग्यता का पता चल सके. तुम इस शहर के मुख्य द्वार पर जाओगे और रात होने तक वहां रहोगे. फिर लौट कर तुम मुझे बताओगे कि तुमने वहां क्या देखा."

फकीर को जैसा कहा गया था, उसने वैसा ही किया. रात होने के बाद वह लौट आया और उसने इन शब्दों में अपनी रपट दी, "जैसा कि मुझे निर्देश दिया गया था, मैं शहर के मुख्यद्वार के पास जा कर रुका. मैं चौकन्ना रहा. दिन में घटी जिस घटना ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया, उसका संबंध एक बूढ़े आदमी से है. अपनी पीठ पर लकड़ियों का बड़ा-सा गट्ठर लादे वह हमारे शहर में घुसना चाहता था.

"द्वारपाल ने उससे कहा कि वह पहले अपने माल की कीमत के अनुरूप कर अदा करे. बूढ़े ने कहा कि उसके पास एक कमड़ी भी नहीं है, पहले उसे लकड़ियां बेच लेने दिया जाये फिर वह कर अदा कर देगा. यह देखकर कि बूढ़ा भिन्नहीन और असहाय है, द्वारपाल ने उसकी सारी लकड़ियां रखवा लीं और उन्हें अपने घर भिजवा दिया. फिर बूढ़े आदमी को मार-मार कर भगा दिया गया."

सूफी ने कहा, "जब तुमने यह सब देखा, तब तुम्हें कैसा लगा?"

फकीर ने उत्तर दिया, "सबसे बड़ा नाम जानने की मेरी इच्छा और भी बलवती हो उठी. मुझे मालूम होता, तो उस बदनसीब और निर्दोष लकड़हारे की हालत ऐसी न होती."

सूफी ने कहा, "ऐ खुदा के बंदे! मैंने खुद अपने गुरु से सौवां नाम तब सीखा था, जब उन्होंने मेरे दृढ़ निश्चय को जान लिया और उन्हें यकीन हो गया कि मैं शासक नहीं, आदमी का सेवक हूं. उन्होंने मुझे ऐसे अनुभव कराये, जिन्होंने मुझे मेरे अपने विचारों और व्यवहार को समझने का अवसर दिया. मनुष्य मात्र की सेवा ही सौवां नाम है. मेरे गुरु और कोई नहीं, वही लकड़हारा थे, जिन्हें तुम शहर के मुख्यद्वार पर मिले थे." □

उन्हें औपचारिक रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी ऐसे पदों पर नियुक्ति कर देता था जो करीब-करीब अर्थहीन होते थे."

विश्व के तमाम बड़े नेताओं पर टिप्पणी करते हुए भी दरअसल खुश्चेव आत्मस्वीकार के गलियारे में भटकते प्रतीत होते हैं. पं. नेहरू के बारे में वे कहते हैं– "वे एक शांति प्रिय और शरीफ इंसान थे... और रूस को यह यकीन था कि वे चीन के साथ अपने संबंधों को सुधारने के लिए हर वाजिब तरीके का इस्तेमाल करेंगे. जब चीन ने भारत पर हमला किया और रूस की ओर से एक तटस्थ बयान जारी कर दिया गया तो माओ ने (खुश्चेव से) नाराजी जाहिर करते हुए कहा, 'आप इस तरह का बयान कैसे जारी कर सकते हैं... क्या आप नहीं जानते कि वह अमरीकी एजेंट हैं.' ...तब मेरा जवाब था– 'नेहरू भारत के एक महान प्रगतिशील नेता हैं... और अगर कम्यूनिस्ट पार्टी को छोड़ दिया जाये तो उनसे ज्यादा स्वीकार्य नेता और कोई नहीं होगा. यही नहीं, मैं चेतावनी देता हूं कि नेहरू यदि खत्म हो जाते तो उनकी जगह कोई प्रतिक्रियावादी ले लेगा... जो न तो भारत के हित में होगा और न ही चीन या रूस के. मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि आप भारत के साथ अपने रिश्ते युद्ध के बजाय कूटनीति के जरिये सुलझाइये!'

द गाल के संदर्भ में भी इसी तरह एकदम साफ वक्तव्य देखने को मिलता है– "द गाल कम्यूनिस्ट पार्टी को पूरी तरह ध्वस्त करने के लिए कृतसंकल्प थे... किंतु मैं उनसे राजनीतिक बातचीत करने से बच नहीं सकता था... हालांकि मैं जानता था कि उससे कोई लाभ नहीं होगा. द गाल की कैथोलिक पत्नी भी घोर कम्यूनिस्ट विरोधी थीं."

खुश्चेव जहां अमरीकी राष्ट्रपति आइजनहावर को बुद्धिमान मानते थे वहीं निक्सन को बेहद अविश्वसनीय और विक्षिप्त किस्म का इंसान.

यह यह अजीब स्थिति है कि खुश्चेव विश्वयुद्ध के लिए पूरी तरह से सहमत थे– "विश्व के सभी नेताओं को हर हालत में तीसरे विश्वयुद्ध को होने देना चाहिए. माओ का यह कहना पागलपन ही है कि तीसरे विश्वयुद्ध में पूंजीवादी देशों का नाश हो जायेगा और समाजवादी देश अपने क्षेत्रफल और जनसंख्या के कारण बचे रह जायेंगे."

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि खुश्चेव अपने उदार व्यक्तित्व के बावजूद समाजवादी सिद्धांतों को दुनिया के सभी देशों पर लागू करने के मामले में समझौता करने को तैयार नहीं थे. यानी वे गोर्बाचोफ की तुलना में रूढ़िवादी कहे जायेंगे... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिंदगी भर मैं जिनसे प्रभावित रहा

वह पहली घटना थी, जिससे मैं बेहद प्रभावित था और जिसे मैं याद करने लायक पहली घटना मानता हूं, मेरे दादा (जो वायसराय थे) द्वारा लार्ड गोह की प्रतिमा का अनावरण. वह घटना 1878 की है. लोगों की काफी भीड़ थी. सजी-संवरी वर्दियों में सैकड़ों सैनिक थे. अपने दादा की रौबीली आवाज में कहा गया वाक्य भी मुझे याद है. उन्होंने कहा था, "और बिजली जैसी तेजी से उसने दुश्मनों को ध्वस्त कर दिया."

इसी घर 'द लिटिल लाज' में ही पढ़ाई-लिखाई से भी मेरा पहला साबका हुआ. एक दिन घोषणा की गयी कि एक महिला मुझे पढ़ाने आया करेंगी. उनके आने का एक दिन भी निश्चित था. पढ़ाई की तैयारियों के सिलसिले में मेरी आया श्रीमती एवरेस्ट ने काफी मशक्कत की. वह एक किताब 'रीडिंग विदाऊट टीयर्स' (बिना आंसू के पढ़ाई) भी लायी.

पर मेरे मामले में शर्तिया यह पुस्तक अपना नाम सार्थक न कर सकी. श्रीमती एवरेस्ट और मैंने कई-कई दिनों तक जबरदस्त मेहनत की पर सब व्यर्थ रहा. अंततः शिक्षिका ने' आना बंद कर दिया. ऐसे में एक बच्चा अपने दिमाग के हिसाब से जो कर सकता है, वही मैंने किया. अर्थात भागकर मैं झाड़ियों में छुप गया... पर कब तक छुपा रहता? अंततः पकड़ा गया और उस 'जालिम' के सामने पेश कर दिया गया. उन्होंने भी मुझे पढ़ाने में काफी मेहनत की. न सिर्फ अक्षर बताये बल्कि शब्द भी सिखाये.

अभी मैं बमुश्किल 12 वर्ष का ही हुआ था कि मुझे 'इम्तहानों' की जालिम दुनिया से जूझना पड़ा और यह सिलसिला अगले सात वर्षों तक चलता रहा. ये मेरे लिए हमेशा मुसीबत भरे दिन रहे.

क्योंकि परीक्षकों को जो प्रश्न या विषय प्रिय थे मेरी रुचियां बिलकुल उसके विपरीत थीं. मैं चाहता था कि मेरा इम्तहान इतिहास, कविता और निबंध लेखन में हो, पर वे लैटिन और हिसाब पसंद करते थे. यही नहीं इन विषयों में प्रश्न भी वे वही पूछते थे, जिनका संतोषजनक उत्तर देने में मैं असफल रहता. मैं चाहता था कि मुझसे वह चीज पूछी जाये जो मैं जानता हूं पर वे वही पूछते थे जो मैं नहीं जानता था. नतीजा यह रहा कि इम्तहानों में मैं कभी अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सका.

'हैरो' में दाखिले के लिए हुए इम्तहानों में भी यही हुआ. पर हेडमास्टर श्री वेलडन की कृपा से मुझे वहां दाखिला मिल गया. घटिया छात्र होने का मुझे एक फायदा यह मिला कि मुझे अंग्रेजी पढ़ायी गयी. अन्य अच्छे छात्र जब लैटिन, ग्रीक और ऐसी ही अन्य चीजें पढ़ रहे थे, हमें सिर्फ अंग्रेजी पढ़ायी जा रही थी.

श्री सोमरवेल को हम जैसे मूर्ख छात्रों को सिर्फ अंग्रेजी पढ़ाने का जिम्मा सौंपा गया. उन्हें मैं हमेशा आदर से याद करूंगा... क्योंकि वह जानते थे पढ़ाया कैसे जाए. मैंने उनके शिक्षण में अच्छी तरह अंग्रेजी सीखी.

अभी मुझे स्कूल में दाखिल हुए एक महीने से अधिक नहीं हुआ था कि एक दिन मैंने तौलिये में जा लिपटे एकदम किनारे खड़े एक लड़के को देखा. मैं चुपचाप उसके पीछे जा पहुंचा और उसे पानी में धकेल दिया. हां, उसका तौलिया मैंने भलमनसहती में पकड़ लिया कि गीला न हो जाये.

क्षण भर बाद ही मैंने गुस्से से तमतमाये एक ताकतवर लड़के को तैरकर अपनी ओर आते देखा. मैं सर पर पैर रखकर भागा, पर अब यह सब करना बेकार था. थोड़ी ही देर बाद उसने मुझे पकड़कर सबसे गहरे हिस्से में फेंक दिया.

चर्चिल : जिंदगी भर सीखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मैं बाहर निकला तो हमारे बच्चों ने बताया कि वह छठी क्लास का छात्र एमरी है. वह जिमनेजियम का चैंपियन है और फुटबाल का अच्छा खिलाड़ी भी. उससे ऐसा मजाक करने की हिम्मत कोई नहीं करता. अब मैं उन्हें कैसे बताता कि तौलिये में लिपटे बच्चे की क्लास का अंदाजा लगाना कितना मुश्किल है!

बहरहाल, मैं उसके पास पहुंचा और यह कहा कि आप इतने छोटे कद के हैं कि अंतर करना मुश्किल है कि आप चौथी कक्षा के छात्र हैं या छठी के. मैंने माफी भी मांगी पर वह 'इतने छोटे हैं' सुनकर शायद और भी खीझ गया. उसकी यह नाराजगी तब दूर हुई जब मैंने उससे कहा कि मेरे पापा भी छोटे कद के हैं.

बाद में हम अच्छे दोस्त बने और मंत्रिमंडल में भी वह मेरा साथी रहा.

1896 की सर्दियों में, जब मैंने 22 वर्ष पूरे कर लिये तो कुछ सीखने की इच्छा मुझमें जागृत हुई. इतिहास मेरा प्रिय विषय था. इसी में कुछ जानने की लालसा हुई. मैंने अपनी मां को इतिहास, दर्शन और अर्थशास्त्र आदि पर किताबें भेजने को लिखा. उन्होंने तुरत-फुरत कई किताबें भेज दीं. इतिहास में मैंने गिब्बन की किताब से पढ़ने की शुरुआत की. क्योंकि किसी ने मुझसे कहा था कि मेरे पिताजी भी गिब्बन के प्रशंसक थे और उन्होंने उसे पूरा पढ़ा हुआ था.

मैंने डीन मिलसन द्वारा आठ खंडों में प्रस्तुत गिब्बन की पुस्तक 'डिकलाइन एंड फौल ऑफ द रोमन एंपायर' पढ़ने की शुरुआत की. जल्द ही मैं उसकी शैली और कहानी से मोहित हो गया. हर दोपहर को, खाने के बाद और शाम को बाहर निकलने से पहले मैं किताबें पढ़ता. 'डिकलाइन एंड फॉल' से मैं इतना प्रभावित हुआ कि मैंने तुरंत ही गिब्बन की आत्मकथा भी पढ़ डाली.

गिब्बन के बाद मैंने मैसले का साहित्य पढ़ा. नवंबर से मई तक हर रोज दोपहर को मैं चार-पांच घंटे पढ़ता. प्लैटो की 'रिपब्लिक' पढ़ी. अरस्तू, माल्थस, डार्विन– सभी का साहित्य पढ़ डाला.

इन सबका मुझ पर गहरा असर पड़ा और इन्होंने बाद में मेरी जिंदगी के अहम क्षणों में मुझे काफी मदद भी पहुंचायी. □

प्रस्तुति : निशा श्रीवास्तव

लघुकथा

घंटी की आवाज

निरंजन

हम घर से लौट रहे थे. बरौनी से उतरकर, रिक्शे से गढ़हरा आये. पहुंचने पर रिक्शेवाले को पहचत्तर पैसे किराये के दिये. पैसे गिनकर उसने कहा, "बाबू जी! पचीस पैसे और दीजिये!"

"पैसे गिन लो! पूरा किराया दे दिया है!"

"नहीं बाबू जी!" उसने कहा, "आपने पचहत्तर पैसे ही तो दिये हैं!"

"हां, तो तुम्हें कितना चाहिए?"

"एक रुपया."

"एक रुपया?" मैं बुदबुदा उठा, "बरौनी से गढ़हरा का किराया तो पचहत्तर पैसे है."

"नहीं, बाबू जी," उसने अपनी आवाज को तेज करके कहा, "बाबू जी! आपलोग पढ़े-लिखे हैं. यह तो जानते ही होंगे कि बाजार में किसी चीज की कीमत एक जैसी नहीं रहती है. सभी चीजों की कीमत बढ़ती ही जाती है. इसलिये किराया भी हम लोगों को मजबूरन बढ़ाना पड़ा है."

मैंने बिगड़कर कहा, "रिक्शे पर बैठने से पहले ही तुमको कह देना चाहिए था कि एक रुपये में चलूंगा. कीमत बढ़ रही है तो सरकार का घेराव करो. नेता बन जाओ."

"नेतागिरी तो आप पढ़े-लिखे लोगों के लिये है. हम गरीब लोग हैं. मेहनत-मजदूरी करते हैं और रिक्शा चलाते हैं. महंगी के हिसाब से मैं ठीक ही तो मांग रहा हूं!" वह विनम्र, पर दृढ़ता के साथ बोला, "मेहनत की है, बाबू जी! रुपया पूरा कर दीजिये!"

वह मेरे सामने रास्ता रोककर जैसे खड़ा हो गया था. मैं तेज आवाज में बोला, "तुम रिक्शा तो बेकार चलाते हो. डकैती करो..."

"नहीं बाबू जी!" उसने दृढ़ता के साथ कहा, "डकैती क्यों करूंगा? मेहनत करता हूं और मेहनत का पैसा खाता हूं."

"मैंने ठीक किराया दिया है." यह कहकर मैं आगे डेरे की ओर बढ़ा और जाकर दरवाजे का किवाड़ बन्द कर दिया.

दरवाजे पर दस्तक की आवाज सुनकर पत्नी बोली, "कौन है?"

दरवाजे पर रिक्शेवाला ही था.

पत्नी ने पूछा, "क्या बात है?"

"मुझे पचीस पैसे और चाहिए."

"क्यों पचीस पैसे के लिये मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गये हो?" मैंने फिर बिगड़कर कहा.

वह फिर विनम्रता पूर्वक बोला, "ऐसी बातें क्यों बोलते हैं? बाबू जी! मैं मेहनत के पैसे ही तो मांग रहा हूं. हम मेहनत करके जीना चाहते हैं. आप से कोई भीख नहीं मांग रहा हूं."

पत्नी ने बीच-बचाव करते हुए कहा, "पचीस पैसे ही तो अधिक मांग रहा है, न? दे दीजिये..." उसने अपने बटुए से पचीस पैसे का एक सिक्का निकाल कर रिक्शेवाले को दे दिया.

हम मेहनत करके जीना चाहते हैं साहब." कहता हुआ रिक्शेवाला तो रिक्शे पर चढ़कर घंटी टनटनाते हुए चला गया. लेकिन, जब तब मेरे कानों में उसके रिक्शे की घंटी की टनटन की आवाजें गूंजने लगती हैं– हम मेहनत करके जीना चाहते हैं... हम मेहनत करके जीना चाहते हैं... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरफ्त

बाला दुबे

वह एक छोटा-सा ही कब्रिस्तान था. कोई चार मील होगा लंदन से. पीटर को सब कुछ नजर आ रहा था. जिस पेड़ पर वह बैठा था, वह खूब घना था. कोई दस मिनट बाद ही पादरी ने क्रिया समाप्त की और लोग लाश के बक्से को कब्र में उतारने लगे. लगभग सभी ने अपने हाथ से मिट्टी डाली और कुछ सिसकते हुए और नजदीकी रिश्तेदार आंसू पोंछते हुए चल दिये.

झुटपुटा होने लगा था. आकाश की ओर मानो रंग-बिरंगी कब्र खुद गयी हो, उसी में लाल-पीला सूरज उतर रहा था. थोड़ी देर बेसब्री से और इंतजार करके ही पीटर पेड़ से उतरा. पास की झाड़ी से उसने छुपाया हुआ फावड़ा उठाया और ताजा पटी कब्र को जल्दी-जल्दी खोदने लगा. मुश्किल से उसे पांच मिनट लगे होंगे कि उसका फावड़ा खट्ट से लाश के बक्से में लगा. और फिर पीटर ने इधर-उधर देखा. लाश का बक्शा कीलों से जड़ा हुआ था. उसका भी इंतजाम पीटर के पास था. उसने अपने हथोड़े के दूसरे सिरे से कीलें उठा दीं और आसानी से ढक्कन खोल डाला. बक्से में लिटशायर गांव का दूकानदार डेविड रूपर्ट निर्जीव पड़ा था. उसके दायें हाथ की उंगली में पुखराज की अंगूठी अब भी मौजूद थी. पीटर ने अंगूठी उतारकर अपनी जेब में डाली और कांख-कूंखकर लाश बाहर निकाल ली. फिर उसने जल्दी-जल्दी खाली बक्से की कीलों को फिर से जड़ दिया और फिर कब्र के इधर-उधर बिखरी मिट्टी को कब्र में बिछाकर चौरस कर दिया.

कोई तीस गज दूर उसकी काले रंग की बंद बग्घी खड़ी थी. पास ही पेड़ से घोड़ा बंधा खड़ा था. उसने जल्दी से बग्घी जोती और लाश को खींचकर उसमें डाल दिया. फिर उसने चाबुक फटकारकर जोर से कहा था, "वोS हा. रन मैक्सी, रन."

अपना नाम सुनकर घोड़ा हवा से बातें करने लगा. बिखरते अंधेरे में काले लिबास में पीटर और उसकी काली बग्घी ऐसी लगती मानो शैतान हवाखोरी को निकला हो.

अठारहवीं शताब्दी का लंदन. गलियों और सड़कों पर लैंप की रोशनी हल्की-हल्की हल्दी, छाये हुए अंधेरे पर फैला रही थी. पास की फैक्टरी और मकान की चिमनियों का धुआं काली रात को सुरमई चादर-सी उढ़ा देता जिससे आठ बजे तक तो शरीफ आदमी घर से निकलना बंद कर देते थे. पीटर की गाड़ी पत्थर से पटी सड़क पर खड़खड़ाकर भागी जा रही थी.

कुछ देर बाद गाड़ी एक ऊंची-सी इमारत पर जाकर रुकी. पीटर ने चैन की सांस ली. उसकी मंजिल आ चुकी थी ना. 'ओक' की लकड़ी के भारी दरवाजे पर लटका लोहे का कुंडा खटखटाते ही किसी ने दरवाजे पर लगी छोटी खिड़की से देखा और पीटर को पहचानते हुए कहा, "ले आये?"

"हां, बिल्कुल ताजा है बिल. यह समझ लो कि इसके घरवाले अभी शायद अपने घर भी नहीं पहुंच पाये होंगे."

चरमराकर दरवाजा खुला. पीटर ने बग्घी से लाश को खींचा. बिल ने भी हाथ लगाया और लाश को अंदर ले आये.

"हूं. लगती तो ताजा ही है." बिल बोला.

"मैंने झूठ तो नहीं कहा था," पीटर हंसकर बोला, "देखो, अभी तक गर्म है."

बिल ने जेब से पांच पाउंड निकालकर पीटर की फैली हुई हथेली पर रख दिये. "गॉड ब्लैस यू, बिल. तो चलता हूं, गुड नाइट."

"हां, एक बात तो कहना भूल ही गया." बिल बोला, " अगले सोमवार को औरत की लाश चाहिए. बोलो, ला सकोगे."

"औरत की? कितनी उम्र की औरत की?" पीटर बोला.

"अरे, जवान हो तो अच्छा है. जवान औरत की लाश पर चाकू ठीक चलता है. समझे?"

"कोशिश करूंगा," पीटर बोला. और फिर सीटी बजाता हुआ चल दिया.

रायल कालेज आफ सर्जंस एंड बारबर्स!

इस बड़ी इमारत का यही नाम था. शल्य-चिकित्सा प्रगति की ओर बढ़ रही थी. नये सिखाड़ी डाक्टर चीर-फाड़ की शैली का सूक्ष्म अध्ययन कर रहे थे. उन दिनों वहां भी भारत की भांति नाई एवं जरहि ही काटा-पीटी का काम अपने-अपने उस्तरों से करते थे. तभी तो लंदन के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायल कालेज आफ सर्जन के साथ 'बारबर्स' शब्द भी जुड़ा था. 'ऐनोटमी' का ज्ञान होना जरूरी था. कौन-सा हिस्सा शरीर में किस जगह है, कौन-सी नस से खून का प्रवाह कहां पहुंचता है. और यह सब क्रिया मनुष्य की लाश पर ही होती थी—लावारिस लाश पर.

लावारिश लाश को लंदन के लावारिश ही ला सकते थे. और पीटर भी एक ऐसा ही जाना-पहचाना लाश-चोर था. शाम को लाश बेचकर नक्की कर देता और शराब पीकर स्वयं को सांत्वना देता, "पीटर, तू कितना बड़ा पुण्य कर रहा है रे. मिट्टी में दबी लाश महीने भर में वाकई मिट्टी हो जायेगी. लेकिन ये नये उभरते हुए डाक्टर इन लाशों पर हाथ रवां करके ही सैंकड़ों रोगियों को बचायेंगे."

"और वह नशे में स्वयं ही अपनी अदालत का जज बनकर फैसला सुना देता, "पीटर इज नॉट गिल्टी."

लगभग तीन साल तक पीटर का 'बिजनेस' खूब धड़ल्ले से चलता रहा. और फिर न जाने कैसी हवा चली कि दस-दस मील तक के कब्रस्तान सुनसान पड़े रहने लगे, मानो सभी ने कौओं की जबान खा ली हो. तब पीटर विचलित हुआ था. अब? अब शराब और गोश्त की जुगाड़ कैसे होगी?

तभी मैडीकल संसार में प्रगति हुई और न जाने कैसे यह निर्णय ले लिया गया कि नीम-हकीम नाइयों और जर्राहों को कालेज से अलग कर दिया जाये. बात भी ठीक थी. धारणा और यथार्थ में बहुत फर्क होता ही है. नाई लोग धारणा के बूते पर उल्टे-सीधे उस्तरे चलाते थे पर जब आदमी की लाश को चीर-फाड़ कर देखा गया तो बात ही कुछ और निकली. फिर कालेज पर टंगा हुआ साइन बोर्ड बदल दिया गया और वहां अब लिखा था 'रायल कालेज आफ सर्जंस'.

नतीजा यह हुआ कि लाशों की मांग बढ़ गयी. पर लाश आये कहां से—पीटर ने सिर खुझलाया.

जब वह टेम्स नदी के सुनसान किनारे पर इसी सोच में घूम रहा था, तब उसे चिथड़ों में लिपटा एक भिखारी दिखाई दिया. पीटर ने गौर से देखा. फिर उसे उस दिन उन डाक्टर-लड़कों को पढ़ाते हुए उस बूढ़े डाक्टर के शब्द याद हो आये—'हवा जीवनदायिनी है. अगर नाक और मुंह से हवा अंदर जाना बंद हो जाये तो आदमी एक मिनट में मर सकता है.' पीटर के चेहरे पर पसीने के मोती टंक गये हों जैसे. उसकी सांस गर्म हो उठी. पांच दिन बीत गये थे उसे शराब और गर्म-गर्म गोश्त खाये हुए.

सहसा पीटर को एहसास हुआ कि शैतान उसके जमीर में घुसकर हंस रहा है. पीटर ने घूर कर फकीर को देखा और फिर उसने उसे दबोच लिया. अंगूठे और तर्जनी उंगुली से उसकी नाक बंद कर दी और बाकी के हाथ और हथेली से उसका मुंह बंद कर दिया. फकीर फड़फड़ाया और फिर भारी-भरकम पीटर की शक्ति के आगे हार गया.

पीटर ने आंखें चौड़ाकर आश्चर्य से कहा, "वह डाक्टर ठीक कहता था. वह डाक्टर ठीक कहता था."

फिर अपनी बग्घी में उस निर्जीव फकीर को उठाकर वह कालेज जा पहुंचा. आज की रात उसे शराब और गर्म-गर्म गोश्त में आनंद ही कुछ और आया. सहसा वह हंसा, "अब पीटर की शाम कभी भूख से नहीं कटेगी." और उस दिन से लाश-चोर एक निर्मम हत्यारा बन गया.

लंदन के 'स्कॉटलेंड यार्ड' पुलिस थाने में बड़ी सरगर्मी थी. आसपास के इलाके के पांच आदमी गायब हो चुके थे. जनता की खामोश आवाज उनके मन को झकझोर देती. आखिर ये लोग गायब कहां हो जाते हैं?

शायद उन्हें अंधेरी कोठरी में बैठे पीटर के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था. और पता भी लगता तो कैसे? पीटर भी तो मंजा हुआ हत्यारा बन गया था. अब तो उसने बिल को भी पटा लिया था और चुपचाप उन नये डाक्टरों को दिये जाते 'लैक्चर' भी सुनने लगा था. मनुष्य के जीवन के नये-नये रहस्य—मौत के नये-नये कारण. पीटर को उस बूढ़े डाक्टर का लैक्चर बहुत अच्छा लगता था. क्या-क्या बात बतलाता है जालिम और मजा यह कि हरेक बात पते की होती है.

उस दिन पीटर एक बीस वर्षीय महिला की लाश बेचकर गया था. और जब उस लाश की चीर-फाड़ अंदर होनी शुरू हो गयी तब वह नया लड़का चौंक पड़ा था—जोजफीन! यह तो उसके पड़ोसी जैक विल्सन की बेटी है.

उसी ने फिर बावेला उठाया. और जब बात की डोर पकड़ी गयी तो सहमते हुए बिल ने हकलाकर बतला दिया कि उसने लाश पांच पाउंड में लाशों के पुराने व्यापारी पीटर से खरीदी है.

वह डाक्टर फिर बिल को पकड़कर सीधा स्कॉटलैंड यार्ड थाने पहुंचा था. और वहां से पुलिस पीटर को सूंघती हुई उसके मकान पर जा पहुंची. पीटर की पड़ोसिन ने ही बतलाया था कि पीटर अपनी बग्घी लेकर 'धंधे' पर गया है. अब उसका क्या धंधा है, उसे नहीं मालूम.

पुलिस ने फिर हाइड पार्क में रंगे-हाथों पीटर को पकड़ लिया. उस समय वह एक बैंच पर बैठे 'पेंशनर' पर अपना हथकंडा आजमा रहा था.

पीटर ने फिर सब कुछ उगल दिय था. लाशों को चुराना, फिर हत्या करना. लंदन में बड़ी सनसनी फैली थी उस दिन. कुछ ने रायल कालेज आफ सर्जंस को 'हत्या-घर' कहना शुरू कर दिया तो कुछ उसकी हिमायत में भी बोले. बहरहाल पीटर के गले में 'ऐग्डन हीच' में फांसी का फंदा पहना दिया गया. □

असलियत

संत चुआंग त्सू ने सपने में देखा कि वे एक तितली है, जो इधर-उधर उड़ रही है.

उस समय वे अपने मनुष्य होने के बारे में बिलकुल अचेत थे.

अचानक उनकी आंख खुल गई और उन्हें अपने मनुष्य होने का अहसास हुआ.

तब उन्होंने सोचा : क्या मैं उस समय मनुष्य था, जब सपने में खुद को तितली के रूप में देख रहा था? या अब तितली हूं, जब सपने में खुद को मनुष्य के रूप में देख रहा हूं? □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी मछलियों का दर्द

मीनाक्षी शर्मा, नई दिल्ली

मैं जिस मध्यवर्गीय माहौल में पली, बढ़ी उसमें रहते हुए अगर कोई भी कलम उठाएगा तो उसे पात्रों की कमी नहीं खलेगी. बचपन से ही मुझे पढ़ने के साथ-साथ लिखने का भी शौक था. इसलिए आस-पास के हर इंसान को मैं अपनी कहानियों का पात्र ही समझती थी. तब सोचती थी, बड़ी होकर जरूर लिखूंगी इन सबके बारे में. और मैंने लिखा भी बहुत-कुछ. कहानियां, कविताएं,

संस्मरण लिख कर बहुत कागज काले किए. लेकिन प्रकाशित कुछ भी नहीं हुआ, अतः घोर निराशा में डूब कर जब मैंने पत्र-पत्रिकाओं में छपे स्थापित लेखकों के लेखों पर चार छः लाइनों की टिपण्णीयां भेजीं तो आश्चर्य कि वे छपी ही नहीं, उन्होंने मेरे लिए प्रशंसक भी बटोरे. किसी के लिए भी इससे बड़ा दुःख क्या होगा कि उसकी मेहनत या तमाम दर्दों, सपनों से संचित रचनाएं घर के कोने में दुबकी सुबकती रहें और 'बस यूं ही' की तर्ज पर छपी चार पंक्तियां छपती रहें. बहुत मन चाहता है सब को अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में बताने का. खासकर उन नारी पात्रों के बारे में जो आज के युग में भी असीम वेदना को अपने में समेटे आस-पास की परिस्थितियों से लड़ रही हैं. कोशिश जारी है, हमेशा रहेगी शायद. खुद को स्थापित करने की ललक है और आशा है जिस पर टिक कर मैं लिख रही हूं.

आत्मविश्वासी प्रयास

संतोष परिहार, बुरहानपुर

"सफलता एक सामूहिक उत्सव है तो विफलता निजी मातम" इस कथन की सत्यता से खेद सहित लौटकर आती रचनाओं ने परिचित करवाया. एक नये रचनाकार के लिये रचना का लौट आना किसी मातम से कम नहीं होता. कारण उसका दर्द कोई समझ नहीं पाता. विपरीत परिस्थितियों से गुजर कर भी मन, मस्तिष्क में जन्मी रचना से जूझता रहता है.

आंगन में आम के पेड़ के नीचे बैठा. वापस आयी एक रचना की कमियां निकालने का यत्न कर रहा था. दूसरों की आलोचना करना जितना सहज है, खुद की कमियां निकालना उतना ही कठिन कार्य है. उसी समय पेड़ पर से एक चिड़िया का बच्चा नीचे गिरा. गिर कर फड़फड़ाने लगा. उसके नये-नये पंख निकले थे. उड़ने की कोशिश में ऊपर उठता फिर नीचे गिर जाता. इसी प्रयास में पास खड़ी खाट पर जा बैठा, फिर थोड़ी उड़ान भर खपरैल पर जा बैठा. खपरैल से आम की नीची डाल पर और उस नीची डाल से वह धीरे-धीरे एकदम ऊंची डाली पर जा कर बैठ गया.

साधारण होते हुए भी उसका यह कर्म मेरे लिये असाधारण प्रेरक प्रसंग था. एक यथार्थ का ज्ञान हुआ. मैं आरंभ से ही बहुत अधिक उच्चता की प्राप्ति में प्रयत्नशील था. जबकि आरम्भ से कोई भी प्रेमचंद, अमृतलाल नागर या धर्मवीर भारती नहीं बन सकता, लघु एवं स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं से लेखन यात्रा आरंभ की जाये तो समय के साथ-साथ बढ़ता अनुभव, आत्म विश्वास और प्रयास निःसंदेह सफलता का सूत्र है. लेखन एक आत्मविश्वासी प्रयास है. इसी विश्वास के साथ मनभावों को अभिव्यक्ति देने लगता हूं.

प्रेम संबंधों पर...

□ अशोक प्रियदर्शी

मेरे लिए जीवन वरदान है. मेरी अपनी दृष्टि में जीवन ही परमात्मा है. क्योंकि जीवन ही सत्य और सत्व को जानने का माध्यम है. अपने

आसपास धर्म, संप्रदाय, वाद, परंपराओं के नाम पर हो रहे अन्याय को देखकर अचेतन सहज ही चीत्कार कर उठता है. मैं इसी आवाज को अपनी लेखनी के माध्यम से अंजाम देना चाहता हूं. धर्म के नाम पर कटते रू-ब-रू आदमी, गांधीवाद के नाम पर पनपती भ्रष्ट राजनीति, आदमी का असंवेदनशील रवैया मेरे लेखक मन के प्रेरणा स्रोत रहे हैं. टूटते हुए जीवन मूल्य और ढहते हुए चिंतन दर्शन को देखकर गहरी निराशा होती है.

भावों की अराजक अभिव्यक्ति मेरे लिए समस्या पैदा करती है. फिर भी इसकी चिंता किये बगैर सहज भाव से अपनी अनुभूतियों को कागज के कैनवास पर उतारना चाहता हूं. स्त्री-पुरुषों के मध्य दुविधाग्रस्त सेक्स संबंध, विवाहेतर प्रेम संबंध तथा प्रेम पर अधारित सभी संबंधों की जटिलताओं में मेरी गहरी अभिरूचि रही है तथा मैं इसे अपने लेखन का मूल बिंदु बनाना चाहता हूं. □

सामाजिकता का द्वंद्व

सुनीता आदित्य

लिखूं, पर किस लिए? स्वांतः सुखीय या परजन हिताय? अक्सर होता है कि अनुभूति के तीव्रतम क्षणों में विचार शब्दों का और शब्द किसी रचना का रूप ले लेते हैं किंतु सार्थक लेखन कर पाना बेहद मुश्किल-सा बन जाता है क्योंकि उलझन की एक नयी स्थिति सामने आ खड़ी होती है—क्या यह जन सामान्य की पीड़ा है जो बालपीड़ा बन मेरी रचना में मुखरित हुई है या महज

एक नितांत वैयक्तिक अनुभव जो वायवी सृजनात्मकता का उदाहरण तो हो सकता है पर सामाजिक यथार्थ का वाहक नहीं. यहीं लेखन की सार्थकता और उद्देश्य पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है. यही उलझन अभिव्यक्ति की कसमसाहट को कभी-कभी घोंट-सा देती है, आड़ी-तिरछी लाइनें लगने लगती हैं. अपने विचार, अपने ही लिखे शब्द. उन्हें डायरी के पन्नों की कैद से छुड़ाकर जनसामान्य के बीच ले जाने का साहस यदा-कदा ही जुट पाता है. सच पूछो तो यह झटकाव और गिरता आत्मविश्वास ही हम युवाओं की अभिव्यक्ति को कुंठित करता लगता है. पर इतना अवश्य है कि सागर की उद्दाम लहरों के बीच तटबंधों को यदि मजबूती से संयोजित न किया जाय तो वे कट-कट कर गिरने लगते हैं. हमारे वैचारिक तटबंधों को संयोजित करने का लेखन से अच्छा और सशक्त माध्यम दूसरा क्या हो सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुति : डॉ कमलकिशोर गोयनका

खेल

प्रेमचंद के अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की खोज में उनकी जो उर्दू-हिंदी कहानियां मिलीं, उनमें 'खेल' सबसे अधिक कलात्मक कहानी है. इस कहानी की सहज यथार्थता, ग्रामीण परिवेश, कृषक-बालकों का मनोविज्ञान तथा खोंमचे वाले का अभिनय इस कहानी को कलात्मक ऊंचाइयों तक ले जाता है. प्रेमचंद की खूबी यह है कि ग्रामीण बच्चे की एक अत्यंत सहज घटना को उन्होंने कहानी की रोचकता, आकर्षण तथा हृदयस्पर्शिता से पूर्ण कर दिया है. आश्चर्य यही होता है कि प्रेमचंद ने इस कहानी को अपने संकलनों में क्यों स्थान नहीं दिया और यह पाठकों से 50-55 वर्षों तक ओझल बनी रही.

'खेल' कहानी उर्दू मासिक पत्रिका 'चंदन' के अप्रैल, 1931 के अंक में प्रकाशित हुई थी. पं. सुदर्शन इस पत्रिका के संपादक थे और प्रेमचंद से उनका यह समझौता था कि वे अपनी कहानियां 'चंदन' में प्रकाशनार्थ देंगे और सुदर्शन अपनी हिंदी कहानियां, 'हंस' में. इसी कारण 'चंदन' में प्रेमचंद की कई उर्दू कहानियां प्रकाशित हुईं, जिनमें 'खेल' भी शामिल थी, किंतु– 'खेल' के अतिरिक्त शेष कहानियां उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं के संकलनों में मिलती हैं. इसकी अभी खोज होनी है कि 'खेल' कहानी का हिंदी रूपांतर क्या प्रेमचंद ने किया और क्या वह किसी हिंदी पत्रिका में प्रकाशित हुई? इस तथ्य की जानकारी तो तत्कालीन हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की गहरी खोजबीन के बाद ही हो सकती है.

हिंदी पाठकों के सम्मुख यह 'खेल' कहानी पहली बार आ रही है. इस प्रकार उनके लिए यह प्रेमचंद की सर्वथा नयी कहानी है. पाठकों ने प्रेमचंद की 'ईदगाह' कहानी पढ़ी है, जिसका बाल चरित्र हामिद हमें भाव-विभोर करता है और वह हमारे मानस में छाया रहता है. मेरा विश्वास है कि 'खेल' कहानी पढ़ने के बाद पाठकों को कहानी का बाल पात्र फुंदन किसी भी दृष्टि से, हामिद की तुलना में, कम वजनदार प्रतीत नहीं होगा. फुंदन की बाल-क्रीड़ा कैसे एक अविस्मरणीय कलात्मक कहानी बन जाती है, यह प्रेमचंद की कलम का ही कमाल है.

तीसरा पहर हो गया था. किसान अपने खेतों में पहुंच चुके थे. दरख्तों के साये झुक चले थे. ऊख के हरे-भरे खेतों में जाबजा (जगह-जगह) सारस आ बैठे थे. फिर भी धूप तेज थी और हवा गर्म. बच्चे अभी तक लू के खौफ से घरों से न निकलने पाये थे कि यकायक एक झोंपड़े का दरवाजा खुला और एक चार-पांच साल के लड़के ने दरवाजे से झांका. झोंपड़े के सामने नीम के साये में एक बुढ़िया बैठी अपनी कमजोर आंखों पर जोर डाल-डालकर एक टोकरी बुन रही थी. बच्चे को देखते ही उसने पुकारा, "कहां जाते हो फुंदन. जाकर अंदर सोओ, धूप बहुत कड़ी है. अभी तो सब लड़के सो रहे हैं."

फुंदन ने ठनककर कहा, "अम्मां तो खेत गोणाने गयीं. मुझे अकेले घर में डर लगता है."

बुढ़िया गांव भर के बच्चों की दादी थी, जिसका काम बच्चों की आजादी में मुखिल (बाधक) होना था. गढ़िया के किनारे अमियां गिरी हुई थीं, लेकिन कोई बच्चा उधर नहीं जा सकता. गढ़िया में गिर पड़ेगा. बेरों का दरख्त सुर्ख व जर्द (लाल और पीले) बेरों से लदा हुआ है. कोई लड़का उस पर चढ़ नहीं सकता, फिसल पड़ेगा. तालाब में कितना साफ पानी भरा हुआ है, मछलियां उसमें फुदक रही हैं. कमल खिले हुए हैं, पर कोई लड़का तालाब के किनारे नहीं जा सकता, डूब जायेगा. इसलिए बच्चे उसकी सूरत से बेजार (विमुख अप्रसन्न) थे. उसकी आंखें बचाकर सरक जाने की हिकमतें (युक्तियां) सोचा करते थे. मगर बुढ़िया अपने हश्ताद साला (अस्सी वर्ष के) तजुर्बे से उनकी हर एक नकल व हरकत को ताड़ जाती थी और कोई-न-कोई पेशबंदी कर लेती थी.

बुढ़िया ने डांटा, "मैं तो बैठी हूं. डर किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात का है? जा सो रह, नहीं उठती हूं.

लड़के ने दरवाजे के बाहर आकर कहा, "अब तो निकलने की बेला हो गयी."

"अभी से निकल के कहां जाओगे?"

"कहीं नहीं जाता हूं दादी."

वह दस कदम और आगे बढ़ा. दादी ने टोकरी और सूजा रख दिया और उठना ही चाहती थी कि फुंदन ने छलांग मारी और सौ गज के फासले पर था. बुढ़िया ने अब सख्ती से काम न चलते देखकर नरमी से पुकारा, "अभी कहीं मत जा बेटा."

फुंदन ने वहीं खड़े-खड़े कहा, "जतीन को देखने जाते हैं," और भागता हुआ गांव के बाहर निकल गया.

जतीन एक खोंमचेवाले का नाम था. इधर कुछ दिनों से उसने गांव का चक्कर लगाना शुरू किया था. हर रोज शाम को जरूर आ जाता. गांव में पैसों की जगह अनाज मिल जाता था और अनाज असल कीमत से कुछ ज्यादा होता था. किसानों का अंदाज हमेशा फैयाजी (दानशीलता) की अनिब (और) मायल (उन्मुख) होता है. इसीलिए जतीन करीब के कस्बे से तीन-चार मील की मसाफत (फासिला) तय करके आता था. उसके खोंचे में मीठे और नमकीन सेव, तिल या राम दाने के लड्डू, कुछ बताशे और खुट्टियां, कुछ पट्टी होती थीं. उस पर एक मैला-सा बोसीदा (फटा-पुराना) कपड़ा होता था. मगर गांव के बच्चों के लिए वह ख्वान-ए-नेमत (अच्छी-अच्छी खाने की चीजों से भरा थाल) था, जिसे खड़े होकर देखने के लिए सारे बच्चे बेताब रहते थे. इनकी तिफलाना (बालोचित) सरगर्मियों (संलग्नता, तत्परता) में यह एक दिलचस्प इजाफा हो गया था. सबके-सब तीसरे पहर ही से जतीन का इंतिजार करने लगते थे. हालांकि ऐसे खुशनसीब लड़के कम थे, जिन्हें इस ख्वान-ए-नेमत से हकाइकी (यथार्थ में) फैज (लाभ) पहुंचता हो. मगर खोंचे के गिर्द (निकट) जमा होकर ख्वानपोश (थाल पर ढंके कपड़े) को आहिस्ता से उठते और उन नेमतों को रानियों की तरह अपनी-अपनी जगह तकल्लुफ (संकोच) से बैठे देखना बजायेखुद (स्वयं) बेहद दिलआवेज (प्रियदर्शन, खुशनुमा) था. हालांकि जतीन का आना हर एक घर में कुहराम मचा देता था और आध घंटे सारे गांव में हंगामा-सा बरपा (उपस्थिति) हो जाता था. मगर बच्चे इसका खैरमक्दम (स्वागत) करने को मुज्तरिब (अधीर) रहते थे. यह जानते हुए भी कि जतीन की आमद (आगमन) उनके लिए हंसी का नहीं, रोने का मौका है. सबके सब बड़ी बेसब्री से उसके मुंतजिर (प्रतीक्षा में) रहते थे, क्योंकि मिठाईयों के दर्शन से चाहे जबान आसूदा (संतुष्ट) न हो, रूहानी तक्वियत (तसल्ली, सांत्वना) जरूर होती थी. फुंदन भी इन्हीं गरीब लड़कों में था. और रूठने, तिफलाना (बालोचित) मिन्नत गरसना (भूखी) निगाहों से देखता था. रोने और रुठने, तिफलाना (बालोचित) मिन्नत और खुशामद एक से भी उसकी मक्सद बरारी (उद्देश्य पूर्ति) न होती थी. गोया नाकामी ही उसकी तकदीर में लिखी हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर इन नाकामियों के बावजूद उसका हौसला पस्त न होता था.

आज फुंदन दोपहर को न सोया. जतीन ने आज कच्ची गरी और इमर्तियां लाने का जिक्र किया था. यह खबर लड़कों की उस दुनिया में किसी अहमे (महत्वपूर्ण) तारीखी वाकए (ऐतिहासिक घटना) से कम न थी. सुबह से ही जतीन की तरफ दिल लगा हुआ था. ऐसी आंखों में नींद कहां से आती?

फुंदन ने बाग में पहुंचकर सोचा— क्या अभी सबेरा है? इस वक्त तो जतीन आ जाता था, मगर नहीं अभी सबेर है. चुन्नू और सोहन और कल्लू एक भी तो नहीं उठे. जतीन सड़क पर पहुंच गया होगा. इमर्तियां जरूर लायेगा, सुर्ख और चिकनी होंगी. एक बार न जाने कब... हां दसहरे के मेले में एक इमर्ती खायी थी. कितनी मज़ेदार थी. उस जायके को याद कर के उसके मुंह में पानी भर आया. इश्तियाक (उत्कंठा, लालसा) और भी तेज हो गया. वह बाग के आगे निकल गया. अब सड़क तक हमवार (समतल) मैदान था, लेकिन जतीन का कहीं पता न था.

कुछ देर तक फुंदन गांव के निकस पर खड़ा जतीन की राह देखता रहा. उसके दिल में एक गुदगुदी उठी— आज मैं सबसे पहिले जतीन को पुकारूंगा. मैं जतीन के साथ-साथ गांव में पहुंचूंगा. तब लोग कितना चकरायेंगे? इस खयाल ने उसके इश्तियाक में बेसब्र का इजाफा कर दिया. वह तालियां बजा-बजाकर दिल ही दिल में चहकता हुआ सड़क की तरफ चला.

इत्तिफाक (संयोग) से उसी वक्त गेंदा आ गया. यह गांव का पंचायती कुत्ता था—चौकादीर का चौकीदार, खिलौने का खिलौना. हस्बे मामूल (नित्य नियमानुसार) तीसरे पहर का गश्त लगाने निकला था. इसी वक्त सांड और बैल खेतों में घुसते थे. यहां पहुंचा तो फुंदन को देखकर रुक गया और दुम हिलाकर गोया पूछा— 'तुम आज यहां क्यूं आये!' फुंदन ने उसके सिर पर थपकियां दीं, मगर गेंदा को ज्यादा बातचीत करने की मुहलत (फुर्सत) न थी. वह आगे बढ़ा तो फुंदन भी उसके पीछे दौड़ा. अब उसके दिल में एक ताजा उमंग पैदा हो रही थी. वह तनहा (अकेला) न था. उसका रफीक (दोस्त) भी साथ था. वह अब कच्ची सड़क पर जतीन का खैरमक्दम

रफ्ता रफ्ता साया लंबा हो गया. धूप थके हुए मुसाफिर की तरह पांव फैलाकर सोती हुई मालूम हुई. अब तक जतीन के आने की उम्मीद रही. उम्मीद में वक्त उड़ता चला जाता था...

(स्वागत) करना चाहता था. सड़क पर पहुंचकर उसने दूर तक निगाह दौड़ायी. जतीन का कहीं निशान नहीं था. कई बार उसे वहम हुआ वह जतीन आ रहा है, मगर एक लम्हे में उसका इजाला (निवारण) हो गया. सड़क पर नाजिरी (दर्शनीय) दिलचस्पियों की कमी न थी. बैल-गाड़ियों की कतारें थीं. कभी-कभी एक्के और पैर-गाड़ियां भी निकल जाती थीं. एक बार एक ऊंट भी नजर आया, जिसके पीछे वह कई सौ कदम तालियां बजाता गया, मगर इन सरीउस्सैर (शीघ्रगामी) दिलचस्पियों में वह इश्तियाक (लालसा) किसी मीनार की तरह खड़ा था.

सड़क के किनारे दो रोया (आमने-सामने) दरख्त खड़े थे. उनमें आम के दरख्त भी थे. इस इश्तियाक (उत्कंठा, लालसा) में उसे आमों पर निशाने मारने का एक दिलचस्प मशगला (काम) हाथ आया, मगर आंखें जतीन के लिए बरसरे-राह (ठीक रास्ते पर) थीं. यह बात क्या है, आज वह आ क्यूं नहीं रहा है?

रफ्ता-रफ्ता (धीरे-धीरे) साया लंबा हो गया. धूप किसी थके हुए मुसाफिर की तरह पांव फैलाकर सोती हुई मालूम हुई. अब तक जतीन के आने की उम्मीद रही. उम्मीद में वक्त उड़ता चला जाता था. मायूसी में वह गोया घुटने तोड़कर बैठ गया. फुंदन की आंखों से बेअख्तियार उम्मीद-ए-शिकस्ता (भग्न आशा) के आंसू बहने लगे. हिचकियां बंध गयीं. जतीन कितना बेरहम है. रोज आप ही दौड़ा आता था. आज जब मैं दौड़ा आया तो घर बैठ रहा. कल आयेगा तो गांव में घुसने न दूंगा. उसकी तिफलाना (बालोचित) आरजूएं (उत्साह) के साथ उसके दिल को मसारने (मथने) लगीं.

दफअतन (सहसा) उसे जमीन पर एक टूटा हुआ झब्बा नजर आया. इस यास-व-नाकामी फितरी (नैसर्गिक) खुश बासी (निश्चितता) ने अनदोह रूबाई (दुःख दूर करने) का सामान पैदा कर दिया. कुछ पत्तियां चुनकर झब्बे में बिछाईं. उसमें कुछ बजरियां और कंकड चुनकर रखे. अपना कुर्ता उतारकर उसको ढका और उसे सिर पर रखकर गांव की तरफ चला. अब वह जतीन का मुतलाशी (ढूंढनेवाला) लड़का न था, खुद जतीन था. वही ख्वान-ए-नेमत (अच्छी-अच्छी खाने की चीजों से भरा थाल) सिर पर रखे उसी तरह मुहमल (अर्थहीन) सदा (आवाज) लगाता हुआ, रफ्तार भी वही, तर्जेकलाम (बात करने का ढंग) भी वही. जतीन के आगे-आगे चलकर क्या उसे वह मुसर्रत (खुशी) हो सकती थी जो इस वक्त जतीन बनकर हो रही थी? वह हवा में उड़ा जा रहा था— सराब (मृगतृष्णा) में हकीकत का मजा लेता हुआ, नकल में अस्ल की सूरत देखता हुआ. खुशी अस्बाब (कारण) से किस कदर बेनियाज (निःस्पृह, आजाद) है. इसकी चाल कितनी मस्ताना थी? गुरूर से उसका सिर कितना उठा हुआ था?

वाकेइयत (यथार्थतः) का उसका तिफलाना (बालोचित) चेहरे पर ऐसा मुलम्मा था कि क्या मजाल जरा भी हंसी आ जाये. इस शान से वह गांव में दाखिल हुआ. लड़कों ने उसकी आवाज सुनी, "रेवड़ी कड़ाकेदार!" और सब-के-सब दौड़े आन की आन में. फुंदन मुशताक (उत्सुक) सूरतों से महसूर (घिरा हुआ) हो गया, उसी तरह जैसा जतीन हो जाता था. किसी ने न पूछा यह क्या स्वांग है? दिल ने दिल की बात समझी. मिठाईयों की खरीद होने लगी. ठीकरों के पैसे थे, कंकड़ और बजरियों की मिठाई. इस खेल में लुत्फ कहीं ज्यादा था. माद्दियत (भौतिकता) में रूहानियत (आध्यात्मिकता) का अंदाज कहां, मुसर्रत कहां, एहसास-ए-परवाज (उड़ने का अनुभव) कहां?

मुन्नू ने एक ठीकरा देकर कहा, "जतीन, एक पैसे की खट्टियां दे दो."

जतीन ने एक पत्ते में तीन-चार कंकड़ रखकर दे दिये.

खट्टियों में इतनी शारीनी (मिठास), इतनी लज्जत (आनंद, स्वाद) कब हासिल हुई थी? □

('चंदन' उर्दू मासिक पत्रिका के अप्रैल 1931 में प्रकाशित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : अगस्त 1988 के पुररस्कार विजेता तथा सर्वशुद्ध हल

इस बार अधिकांश प्रतियोगियों की पूर्तियां यह आभास दे रही थीं कि वे पत्रिका पूरे मनोयोग से पढ़ रहे हैं. बावजूद इसके, आठ हज़ार प्रतियोगियों में आठ प्रतियोगी ही ऐसे रहे जिनके हल पूरी तरह सही हैं.

इस बार के पुरस्कार विजेता

1. आनंद शर्मा, अनुभागीय अधिकारी, खेंगरगढ़, राजानंद गांव (म.प्र.) 491445
2. सुनील माथुर, द्वारा श्री गोपाल मोहन माथुर, जी-276, शास्त्री नगर, जोधपुर-342001
3. रमा कश्यप, द्वारा ई.एन. सिंह, अशोकनगर, सराय तलफी डाकखाना, बरेली-243004
4. दिनेश कुमार शर्मा, शर्मा भवन-नीलकमल के पास, बी-14, नई बस्ती, बिजनौर-246701
5. निशिकांत भारद्वाज 'निशि' एन.जी.-14, आजाद भवन, रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की (उ.प्र.)
6. निशा निशांत, 139-एफ, लोको शेड, रेलवे कालोनी, दिल्ली 110006
7. सुरेंद्र प्रताप सिंह, प्रताप विद्युत संस्थान, गुड़ मंडी, परीक्षित गढ़ (मेरठ)-250406
8. मोना नेमा, विद्या विहार 77-डी, पिलानी, राजस्थान.

कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. 'रूप के अमृत में घुला ज़हर'
2. 'अलिप्त नायिका' की हैजल स्मिथ
3. पतिव्रता, संकेत कन्या, खबर, हनीफा, सैली वाटसन.
4. एक्टेयॉन
5. शूद्रक, नार्मन मेलर, विशाख दत्त, आचार्य क्षेमेंद्र, रामकुमार वर्मा
6. 'अलिप्त नायिका' में डा. गोयरलिज
7. 'एक कवि की प्रार्थना और नरककाल पर खड़ी सभ्यता' में 'अरब डैथ'
8. जर्मन से कभी प्रेम न मिल पाने के कारण
9. मार्सेल
10. गुलाम रब्बानी ताबां

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' सितंबर, 1988 अंक पर आधारित है. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 अक्तूबर, 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नाम दिसंबर, 1988 के अंक में प्रकाशित किए जायेंगे.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पाठकों तक 'सारिका' देर से पहुंचती है वे 'सारिका कथा पहेली' में अपनी पूर्तियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. पूर्तियां भेजते समय यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि 'सारिका' आप तक देर से पहुंची.

सारिका कथा पहेली : अक्तूबर, 1988

1. ..... लेख में जानापहचाना मुहावरा चरितार्थ हुआ है.
2. बछड़े को देख रोना और हंसना साथ-साथ संभव इसलिए हुआ क्योंकि .....
3. लिंकन की दुखद हत्या के बाद ..... को राष्ट्रपति बनाया गया.
4. मां-बेटे के संवाद में बेटे का उत्तर ..... रचना में निरुत्तर कर देने वाला है.
5. 'हथियारों के हरम' का संदर्भ ..... रचना के संबंध में आया है.
6. अपने मित्र ..... के मुसीबत के दिनों में रॉबर्ट फ्रॉस्ट ने सबसे ज्यादा मदद की.
7. यह पुस्तकें जिन लेखकों की हैं, उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
   1. 'आज की कहानी' ( )
   2. 'ग्रयलॉग ऑफ टू सिटीज' ( )
   3. 'भविष्यत् चित्रपट्म' ( )
   4. 'और कब तक' ( )
8. 'मुकदमे का फैसला हो जाने के बावजूद पत्नी फिर पति के साथ रहने लगी' यह वास्तान ..... से संबंधित है.
9. "औरत ललसायी होती है ..... तो पिघलती है." यह प्रसंग ..... कहानी में आया है.
10. अपने-अपने कमंडलों में वक्त की सच्चाइयां संकलित करना ..... पुस्तक के संदर्भ में आया है.

नाम .....

पता .....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मछुआ और जिन्न

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि मछुआ 'अल्लाह की मर्जी' कहकर अपना जाल साफ करने लगा... अल्लाहताला से दुआ करते हुए जब वह जाल निचोड़ सागर में उतरा

जब मछुए ने जाल को निचोड़ा और उसे लेकर फिर सागर में उतरा तो वह अल्लाहताला से दुआ कर रहा था कि वह उसे सागर से कोई कीमती उपहार दिलवाये. जब लाल तल तक पहुंच गया तो उसने उसे खींचा. इस बार वह पहले से भी ज्यादा भारी लग रहा था. मछुए को विश्वास हो गया कि इस बार जरूर कोई बड़ी मछली उसके जाल में फंसी है.

लेकिन, जब उसने जाल को किनारे पर खाली किया तो उसे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि जाल में मिट्टी का एक बड़ा घड़ा फंसा है. ऐसा घड़ा, जिसमें मिट्टी और रेत के अलावा कुछ और नहीं है. उसने घड़ा फेंक दिया और तीसरी बार अपना जाल सागर में फेंका. इस बार फिर उसे महसूस हुआ कि कोई भारी वस्तु जाल में अटकी है. उसने जाल को फिर ऊपर खींचा लेकिन उसमें टूटे कांच से भरे मिट्टी के बर्तनों के अलावा कुछ और न था. उसे फिर बड़ी निराशा हुई.

फिर भी, उसने हिम्मत न हारी. उसने अल्लाहताला को पुकारते हुए कहा, "या खुदा! तुझे मालूम है कि मैं हर रोज चार बार सागर में जाल डालता हूं. आज तीन बार डाल चुका हूं लेकिन कोई सफलता नहीं मिली. अब तेरा नाम लेकर चौथी और आखिरी बार जाल सागर में डाल रहा हूं. उम्मीद है, इस बार तू मुझ पर जरूर मेहरबान होगा."

यही दुआ मांगकर, उसने चौथी बार जाल सागर में डाला. इस बार जाल में इतनी भारी चीज आयी कि वह बहुत जोर लगाने के बावजूद, उसे एक इंच भी नहीं हिला सका. 'देखें, इस बार अल्लाह की मर्जी क्या है.' वह एड़ी चोटी का जोर लगाकर जाल को ऊपर खींचने की कोशिश करने लगा.

जब मुश्किलतमाम, जाल ऊपर आया तो उसने बड़ी बेताबी के साथ जाल को खोलकर उसका मुआयना किया, इस बार उसे पीले तांबे का एक भारी मर्तबान दिखाई दिया. उसने देखा कि मर्तबान को देखकर मछुए को बड़ी खुशी हुई. उसने सोचा, 'अकेले मर्तबान के बदले में ही मुझे सोने की दस दीनारें मिल जायेंगी."

मर्तबान चूंकि भारी था, इसलिए उसने सोचा कि मैं पहले उसे खाली करूंगा और जो कुछ उसके अंदर होगा, उसे अपनी टोकरी में छिपाकर इस मर्तबान को बेचने के लिए बाजार ले जाऊंगा. यह निश्चय करके उसने मर्तबान को खोलना आरंभ किया. मगर, सीलबंद मर्तबान के खुलते ही, वह फिर निराश हो गया, कारण मर्तबान में घनीभूत धुएं के अलावा कुछ और न था. सिर्फ धुएं से मर्तबान इतना भारी कैसे हो गया, वह चकित होकर सोच रहा था. धुएं में तो कोई वजन नहीं होता.

उसकी हैरानी तब और बढ़ गयी, जब यह धुआं एक दैत्याकार जिन्न की शक्ल अख्तियार करने लगा. जैसे-जैसे, जिन्न का आकार बढ़ता जा रहा था, वैसे-वैसे मछुआ डर के मारे आधा हुआ जा रहा था.

जब जिन्न ने अपनी पूरी शक्ल अख्तियार कर ली तो मछुए ने भयभीत नेत्रों से उसकी ओर देखा. गुंबद की शक्ल का उसका सिर बादलों को छू रहा था. हाथ दो विशालकाय कांटे जैसे लग रहे थे. पांव-जहाज की मस्तूलों जैसे थे. गुफा के आकार जैसे उसके मुंह में, उसके दांत सफेद चट्टान के टुकड़ों जैसे दिखाई दे रहे थे. आंखें मशाल की तरह चमक रही थीं. नथुने खुले मर्तबान जैसे और बाल सन जैसे प्रतीत हो रहे थे.

जिन्न ने भयभीत मछुए को आश्वस्त करते हुए कहा, "इस दुनिया में अल्लाह से बढ़कर कोई नहीं है और सुलेमान अल्लाहताला के नबी हैं. मैं कसम खाकर कहता हूं कि मैं कभी उनकी मर्जी के खिलाफ कोई काम नहीं करूंगा. आप मुझे मारें नहीं. माफ़ कर दें."

जिन्न को इतना विनम्र देखकर मछुए की हिम्मत बढ़ी और उसने जिन्न से कहा, "क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि हजरत सुलेमान को गुजरे अट्ठारह सौ साल हो चुके हैं. तुम अब किससे माफी मांग रहे हो? अपने बारे में बताओ. तुम मर्तबान में आये कैसे?"

इन प्रश्नों के उत्तर में जिन्न ने मछुए से कहा, "इस दुनिया में अल्लाह से बढ़कर और कोई नहीं है. ओ, मछुए सुन! मैं तेरे लिए अच्छी और खुशखबर लेकर आया हूं."

"कैसी खबर?" मछुए ने पूछा.

"तेरी मौत की खबर! मौत जो फौरन होगी और बहुत ज्यादा भयानक होगी."

"मगर मैंने ऐसा कौन-सी जुर्म किया जिसके बदले में तुम मुझे यह भीषण सज़ा दे रहे हो. जिन अल्लाहताला को तुमने दो बार याद किया, वे और उनके नबी सुलेमान तो बहुत रहमदिल हैं. तुम्हें तो मेरा शुक्रगुजार होना चाहिए कि मैंने तुम्हें मर्तबान की लंबी कैद से आजाद किया."

"मगर जिन्न पर मछुए की बात का कोई असर नहीं हुआ. उसने मछुए से कहा, "मैं तुम्हें एक ही रियायत दे सकता हूं और वह यह कि मैं तुम्हें उसी ढंग से मारूंगा, जो तुम्हें पसंद होगा."

"लेकिन, मेरा कसूर क्या है, यह तो बताओ!"

"मेरी कहानी सुनागे तो पता चल जायेगा!"

"तो फिर जल्दी से सुनाओ अपनी कहानी."

"मेरा नाम सख-अल-जिन है," जिन्न ने अपनी कहानी शुरू की. "मैंने नबी सुलेमान के खिलाफ बगावत की थी. सुलेमान ने अपने वजीर आसिफ-बिन-बराख्या को मुझसे लड़ने के लिए भेजा. ताकत और डील-डौल में मुझसे कम होते हुए भी वजीर ने मुझे अपनी अक्ल के सहारे आसानी से हरा दिया और पकड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलेमान के पास ले गया. नबी ने मुझसे कहा, 'अगर तुम अल्लाह को सबसे बड़ा मानने तथा उसका हुक्म बजा लाने का बायदा करो तो मैं तुम्हें माफ करके रिहा कर सकता हूं.'

"लेकिन, मैं ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया.

"मेरे बार-बार मना करने पर, उन्होंने यह मर्तबान मंगाया और उसमें मुझे बंद कर दिया. बाद में उन्होंने मर्तबान पर अपने नाम की सील लगा दी और मुझे सागर के बीचोंबीच फिकवा दिया. मैं सागर में सौ वर्ष तक रहा और लगातार यही कहता रहा, 'जो भी मुझे इस जेल से रिहा कर देगा, मैं उसे मालोमाल कर दूंगा.' जब दो सौ साल की बंदी के बाद भी किसी ने मुझे मर्तबान से रिहा नहीं किया, तो मैंने कहा, 'जो मुझे इस मर्तबान से मुक्ति दिलायेगा, मैं उसे पृथ्वी की सारी धन-दौलत दे दूंगा.' लेकिन, कोई मुझे रिहा करने नहीं आया और इसी प्रकार चार सौ वर्ष बीत गये. तब मैंने घोषणा की, 'जो मुझे रिहा करेगा, मैं उसकी तीन इच्छाएं पूरी करूंगा.' मगर, जब इस घोषणा के बाद भी किसी का ध्यान मुझे मुक्त करने की ओर नहीं गया, तो मैंने गुस्से में भरकर निश्चय किया कि अब जो भी मुक्त करेगा, मैं उसे फौरन मार डालूंगा, मगर उसी ढंग से, जिससे वह मरना चाहे. अपने इस निश्चय के अनुसार ही, मैं तुझे तेरी पसंद के ढंग से मारने वाला हूं."

मछुए ने कहा, "ओ जिन्न! तुम्हारे पहले तीन निश्चयों और चौथे निश्चय में कितना फर्क है! मैं हाथ जोड़कर तुमसे इल्तिजा करता हूं कि मुझे मार मत. यदि तुमने मुझ बेकसूर को मारा तो अल्लाहताला तुम्हें भी जिंदा नहीं छोड़ेंगे वह मेरी मौत का बदला तुमसे जरूर लेंगे."

"मुझे तुम्हें मारना ही पड़ेगा. मैं अपने से यह वायदा कर चुका हू."

"ओ, जिन्न-श्रेष्ठ! क्या तुम भलाई का बदला लोगों को जान से मारकर देने के ही आदी हो?"

"बस, बकवास बंद करो और मरने के लिए तैयार हो जाओ."

मछुए ने सोचा कि वह ताकत के सहारे तो जिन्न को हरा नहीं सकता लेकिन अक्ल के इस्तेमाल से जरूर उसे हराकर अपनी जान बचा सकता है. तभी उसके मन में एक विचार आया और उसने जिन्न से कहा, "तुमने एक वायदा किया था कि तुम मुझे मेरी पसंद के अनुसार, मारोगे."

"हां, अपनी वह शर्त मुझे याद है."

"तो मैं मरने से पहले तुमसे अपने एक सवाल का जवाब चाहता हूं. उस सवाल का सही और खरा जवाब मिलने पर मैं तुम्हारे हाथों, जिस ढंग से तुम चाहो, मरने को तैयार हो जाऊंगा. क्या कहते हो?"

"जिन्न ने कुछ सोचकर कहा, "अच्छा! पूछो, क्या पूछना है. मैं तुम्हारे सिर्फ एक ही सवाल का जवाब दूंगा."

"मंजूर है! मुझे सिर्फ यह पूछना है कि तुम जैसा दैत्याकार जिन्न इस छोटे से मर्तबान में कैसे समा गया? यह असंभव लगता है."

"मगर, तुमने खुद ही तो मुझे इसमें से निकाला था."

"हां, मगर बिना खुद अपनी आंखों से यह देखे कि तुम इस मर्तबान में सचमुच घुसे थे, मुझे यकीन नहीं आयेगा."

मगर तभी, सुबह होने को हुई और शहरजाद चुप हो गयी. मछुए और जिन्न की कहानी अधूरी रह गयी.

चौथी रात को शहरजाद ने अपनी कहानी ऐसे आगे बढ़ायी :

"तुझे यकीन दिलाने के लिए, मैं पुनः इस मर्तबान में प्रवेश करके दिखाता हूं." यह कहकर जिन्न ने अपना शरीर हिलाया और धुआं बनने लगा. यह गाढ़ा हुआ धुआं धीरे-धीरे मर्तबान में प्रवेश करने लगा और अंत में पूरा का पूरा उसमें समा गया. जैसे ही वह मर्तबान में समाया, वैसे ही मछुए ने फुर्ती से आगे बढ़कर, उसका ढक्कन बंदकर दिया, और उस पर नबी सुलेमान की मुहर लगा दी. फिर उसने जिन्न से कहा, "अब तू बता, तू कैसे मरना चाहता है? जल्दी जवाब दे, नहीं तो मैं तुझे सागर में उसी स्थान पर फेंक दूंगा, जहां से मैंने तेरा उद्धार किया थ. फिर वहां किनारे पर एक मकान बनाकर रहने लगूंगा और जो भी यहां मछली मारने आयेगा, उससे कहूंगा, कहीं और जाकर मछलियां मारो. यहां एक मर्तबान में एक खतरनाक जिन्न बंद है. अगर तुमने गलती से भी उसे बचाया तो वह तुम्हारी जान लिये बिना नहीं रहेगा.' तुम फिर यहां कयामत के दिन तक वैसे ही पड़े रहोगे, जैसे पिछले 1800 सालों से पड़े थे." यह कहकर वह मर्तबान को सागर की ओर ले जाने लगा.

मर्तबान के अंदर से जिन्न चिल्लाया, "नहीं, नहीं, नहीं, मुझे सागर में मत फेंको." मछुए ने कहा, "हां, हां, हां, मैं जरूर फेंकूंगा. तूने मेरी कोई बात नहीं मानी तो मैं क्यों तेरी बात मानूं?"

जिन्न ने कहा, "मुझे माफ कर दो. मैं वायदा करता हूं कि आजाद होते ही मैं तुम्हें मालामाल कर दूंगा, तुम्हारी सारी इच्छाएं पूरी कर दूंगा."

"मुझे तुम पर विश्वास नहीं है. तुम मुझे फिर मार सकते हो. मेरे और तुम्हारे बीच वैसी ही स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जो राजा यूनान और रय्यन हकीम के बीच पैदा हो गयी थी."

"मुझे इन दोनों की कहानी सुनाओ, तब कुछ समझ में आयेगा." जिन्न ने कहा.

अगले अंक में

कहानी राजा यूनान के वजीर और रय्यन हकीम की...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपहली रातें

दास्तोयेव्स्की

कमरे का अंधकार बढ़ने लगा है और उसके साथ ही हृदय में अभाव और उदासी की अनुभूति भी. कल्पना के तानों-बानों से बुना हुआ वह संसार, जिसमें अभी तक वह विचार रहा था सहसा धराशायी होने लगता है. उसके नष्ट होने से कोई आवाज नहीं होती, और जब वह सपनीला संसार बिखरकर अस्तित्वहीन हो चुका होता है, तो उसे यह भी याद नहीं रह पाता कि उसका वह सपना क्या और कैसा था... लेकिन अब एक नयी कामना, किसी धुंधले से संवेग को लेकर उसके हृदय की धड़कन बढ़ाकर अपनी चुभन से अनायास उसे उत्तेजित करते हुए, उसकी कल्पना की तितली को शरारत से अपने पंख फैलाने के लिए उत्साहित करती हुई नये-नये दृश्यों से उसके मानस पट पर छाने लगती है... छोटे से इस कमरे में निस्तब्धता का साम्राज्य है. अवसाद और एकांतिकता में कल्पना की दुलार भरी बाहों की ऊष्मा भर गयी है जो अब फासफोरस की तरह जल उठती है. और दीन-दुनिया से बेखबर मात्रयोना कमरे से सटे हुए बगल के रसोई-घर में काफी बना रही है और बर्तन में रखा हुआ पानी आंच पाकर उबलने लगा है. तभी कल्पना की यह फासफोरस सी लौ धीरे-धीरे रंग-बिरंगे प्रकाश की फुलझड़ियों में परिवर्तित हो जाती है और निरुद्देश्य भाव से हाथ में ली हुई पुस्तक—जिसके केवल एक या दो पृष्ठ ही उसने मुश्किल से पढ़ पाये होंगे, सहसा हमारे स्वप्नदर्शी नायक के हाथ से फिसलकर गिर जाती है... उसकी कल्पना पुनः खड़ी होकर नयी उड़ान भरने के लिए तैयार अपने पंख फड़फड़ाने लगी है और सहसा एक नया, बिल्कुल नया संसार अपनी सारी जगमगाती हुई संभावनाओं सहित उसकी आंखों के सामने कौंध जाता है. एक नया सपना—एक नयी स्वप्नदर्शी संवेदनाओं को छूनेवाला, धीरे-धीरे घुलता हुआ मीठे विष का एक नया घूंट. हमारी इस वास्तविकता की दुनिया की भला इस स्वप्नदर्शी को क्या परवाह. उसके उन्मादित दृष्टिकोण के अनुसार, मैं और तुम और बाकी सब लोग एक घिसटती हुई और सतही जिंदगी जी रहे हैं. नास्तेंका, उसका विचार है कि हम लोग अपने आप से इस कदर ऊब चुके हैं कि हमें अपनी जिंदगी विवशता का एक भार बनकर रह गयी लगती है. और अगर सचमुच देखें तो हम लोग एक दूसरे के प्रति कितने संवेदनशून्य, उदासीन और ईर्ष्यालु दिखाई देते हैं.

स्वप्नदर्शी हमें देखकर करुणासिक्त स्वर में बोल उठता है—बेचारे दयनीय लोग. और अगर वह ऐसा सोचता है तो इसमें आश्चर्य क्या. देखो तो, कल्पना रश्मियों ने कितनी कुशलता, प्रचुरता और मुक्त भावना से वह आकर्षक तस्वीर उसके सामने बुनकर रख दी है जिसका सबसे महत्वपूर्ण अंग और केंद्रबिंदु हमारा यह स्वप्नदर्शी खुद है. जरा उसके विभिन्न अनोखे कार्यकलापों को देखो, जरा नैसर्गिक आनंद से अभिभूत उसके स्वप्नों की निरंतर प्रवहमान लहरों को देखो. शायद

पिछले अंक में आप पढ़ चुके है कि नायक बिना महसूसे ही किस तरह तमाम क्रिया कलापों से गुज़रता रहा...! अब देखिए, किस तरह इस स्वप्नदर्शी नायक की कल्पना पुनः खड़ी होकर एक नयी उड़ान भर रही हैं...?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम पूछो कि वह इन सपनों में क्या देखता है? अरे, यह भी कोई प्रश्न हुआ भला? क्या-क्या नहीं देखता है वह. कभी वह अपने को एक कवि के रूप में देखता है, जिसे पहले कोई मान्यता नहीं मिलती लेकिन बाद में उसे कीर्ति के शिखर पर बिठाया जाता है. कभी किसी सच्चे मित्र के रूप में प्राणों की बाजी लगाते हुए, कभी मधुऋतु की किसी रतनारी सांझ में गुलमुहरतले—किसी की प्रतीक्षा करते हुए, कभी महान जार इवान की सेवा में कजान पर चढ़ाई के समय अद्भुत प्रदर्शित करते हुए, कभी 'रोबर्ता' जैसे गीतिनाट्य में मर्मस्पर्शी संगीत के बीच ईसामसीह की तरह पुनर्जीवित होते हुए, कभी द्वंद्वयुद्ध में अपने प्रतिद्वंद्वी को यमलोक पहुंचाते हुए, कभी अनिंद्य सौंदर्य की प्रतिमा काउंटेस 'क' के शयनकक्ष के अघनीले प्रकाश में अपनी कविताएं सुनाते हुए, कभी विश्वमोहिनी क्लियोपेट्रा के प्रेमी के स्थान पर, और कभी वह देखता है कि जाड़े की एक सुहावनी रात

को अपने छोटे से नीड़ में शिशु-सुलभ स्वभाववाली अपनी भोली प्रियतमा की वह कोई अनूठी कथा सुना रहा है और उसकी वह मुग्धाप्रिय अधखुले होंठ और विस्फारित नेत्रों से उसका संभाषण सुन रही है... जैसे कि मेरी नन्हीं देवकन्या, इस समय तुम मुझे सुन रही हो. नहीं नास्तेंका, वह संवेदनशील लज्जालु एकांत प्रेमी इस जिंदगी की जरा भी परवाह नहीं करता जिसका स्वाद लेने के लिए हम-तुम इस कदर बेचैन हैं. वह सोचता है कि हम लोगों का जीवन निरर्थक और दयनीय है. वह यह नहीं जानता कि एक दिन मंदिर के संध्याकालीन घंटों की करुण ध्वनि उसकी प्रस्थान-बेला की सूचना देगी, और तब पीड़ा, अनुताप और अथाह दुख के उस क्षण में यदि वह अपने सारे स्वप्न वर्ष देकर भी इस निरर्थक और दयनीय जीवन का एक पल और मांगेगा, तो उसे इतनी भी रिआयत न मिलेगी. लेकिन, लेकिन जब तक वह क्रूर निर्दय क्षण नहीं आता, तब तक उसे कोई कामना नहीं है, क्योंकि वह कामनाओं से परे है, क्योंकि उसके पास सब कुछ है. वह परितृप्त है, क्योंकि वह अपने आप में एक सृष्टा है और जब कोई नयी उमंग उसे अनुप्रेरित करती है तो वह अपने लिए नये-नये संसार रच लेता है. और तब हमें ज्ञात होता है कि यह गंधर्व-लोक, कल्पना का संसार इतनी आसानी से और इतनी स्वाभाविकता से सृजित हो सकता है, जैसे वास्तव में वह कल्पना प्रसून है ही नहीं— सच, कई बार मुझे आभास होता है कि यह संसार भ्रम नहीं है, मेरी भावनाओं की उड़ान नहीं छल, कल्पना द्वारा रचा गया एक छल नहीं है वरन वास्तव में वह यथार्थ है, स्थूल और उसका भी अस्तित्व है. लेकिन यह बताओ नास्तेंका कि ऐसे अवसर पर मेरी भावना दर्द में क्यों डूब जाती है? उस समय कौन से चमत्कार और कौन-सी रहस्यमय शक्ति के वशीभूत होकर उस स्वप्नदर्शी के दिल की धड़कन कई गुना बढ़ जाती है और उसकी आंखों में आंसू छलक आते हैं, फिर उसके पीले आंसू भीगे गालों पर गुलाब से दहकने लगते हैं और उसके मन-प्राण एक नैसर्गिक उल्लास से प्रकाशित हो उठते हैं? क्यों उसे ये अनिद्रा की रातें केवल अनंत उल्लास और हर्ष के अनुक्षणों जैसी मालूम होती हैं? और जब उषा की पहली गुलाबी किरण उसकी खिड़की पर दस्तक देती है और भोर का रहस्यमय धुंधला-सा प्रकाश उसके कमरे में बिखर जाता है तो उस समय थका-हारा हमारा स्वप्नदर्शी अपने को बिस्तर पर निढाल फेंककर अपनी रोगी और विश्रृंखल चेतना को इस अनिर्वचनीय सुख के नशे में सराबोर कर और, इस असहनीय मधुर पीड़ा को हृदय में संजोये हुए सो जाता है. हां नास्तेंका, यह भ्रम हमें छलता है और हम हैं कि विवेकहीन होकर यह विश्वास कर बैठते हैं कि इन झूठे सपनों में सचमुच कुछ न कुछ गेय और संजीव और जीवंत है. जरा इस विभ्रम पर तो गौर करो. उदाहरण के लिए, जब कभी उसका हृदय अपनी समस्त नैसर्गिक और दुखद पीड़ा लिये हुए प्यार से भर उठता है, उस समय एक नजर देखने भर से तुम्हें विश्वास हो जायेगा कि इस समय वह किसी के प्यार में खोया हुआ है. नास्तेंका प्रिये, क्या तुम उसे देखकर विश्वास कर सकोगी कि जिससे वह अपने इन मदहोश सपनों में अनहद प्रेम करता है, उस प्रियतमा को यथार्थ में उसने कभी देखा ही नहीं? भला यह कैसे हो सकता है कि केवल अपनी भ्रामक कल्पनाओं में ही उसे देखकर वह इस मधुर-आवेग का सपना देख रहा हो? क्या ऐसा भी हो सकता है कि वास्तव में इन दोनों प्रेमियों ने पूरे जमाने को ठुकराकर, अपने दो संसार जोड़कर एक नयी तकदीर बनाने के प्रयत्न में एक दूसरे की बांह थामे हुए अनेक वर्ष साथ-साथ न गुजारे हों? तब जुदाई की उस रात को गहन काले आकाश के नीचे अंधियारे में गर्जन-तर्जन करते लहराते हुए तूफान से बेखबर उसके सीने पर सिर टिकाये रोती और सिसकियां भरती हुई वह कौन थी? अपनी सुरमीली आंखों की कोर से ढुलकते हुए आंसुओं को एक थपेड़े से उछालकर किसी दूर देश में ले जाती हुई हवा की क्रूरता से अविचलित रहनेवाली वह क्या उसकी प्रेमिका न थी? नहीं, यह सब स्वप्न तो नहीं हो सकता. वह उजाड़ और उपेक्षित, पदचापों की आहट से सूना उपवन, वह उदास और एकाकी उपवन जिस पर वे जाने कितनी बार, हर्षित, उदास, और प्यार करते हुए, देर तक... हां, देर तक एक दूसरे को प्यार करते हुए जाने कितने घंटों तक एक सुकोमल भावना में आकंठ डूबे हुए टहला करते थे? और उसका वह अजीब-सा पैतृक मकान, जिसमें अपने क्रूर, सदा चुप रहनेवाले और क्रोधी पति के साथ उसने जीवन के इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वष बिना किसी हलचल के उदासी में डूबे हुए बिताये थे... और कितनी यंत्रणा और विकलता के थे वे दिन जब उस बूढ़े क्रोधी पति की आशंका से सहमे हुए वे इतने लंबे समय तक एक दूसरे से अपना प्यार छुपाये रहे थे? उन्होंने कितनी पीड़ा झेली थी, कितने भयतीत थे वे, कितना पवित्र और अबोध था उनका प्यार, और लोग कितने दुष्ट थे : यह तो हम बिना कहे ही जानते हैं, नास्तेंका, लेकिन ईश्वर को धन्यवाद. परदेश की धरती पर, एक विदेशी आकाश, देवताओं की उस सुंदर नगरी के झुके हुए गरमाते आकाश के नीचे, अपनी मातृभूमि के इस छोर से बहुत दूर, काफी लंबे समय के बाद, प्रकाश से जगमगाते हुए पलाजो में आरकेस्ट्रा की मधुर दिलकश गूंजती हुई स्वर लहरियों के वातावरण में क्या वही उसकी प्रेमिका नहीं मिली थी? क्या लता और गुलाब से ढके हुए उस बारजे पर उसने किसी और को ही देखा था?—वहां जैसे ही उसने उसे देखा, अपना अवगुंठन उठाकर अस्फुट कंठ से बोली, "अब मैं आजाद हूं." और कांपती हुई कपोती की तरह उसकी बाहों से गिर पड़ी. उनकी आंखों में हर्ष के आंसू थे और वे एक दूसरे को जकड़े हुए खड़े रहे, और दूसरे ही क्षण मानापनाम, अनुपात, भय और आशंका से भरे हुए पल उनकी स्मृति से लुप्त हो गये—वे सारी पीड़ाएं और वह दर्द में डूबी हुई विदाई की घड़ी, वह उदास और जर्जर मकान, वह बूढ़ा और क्रूर पति, अपने दूर देश का वह मुस्कान रहित उपवन, और उस उपवन की वह बेंच जहां उन्होंने भावावेश में डूबे हुए विदाई के उत्तप्त चुंबन के साथ एक दूसरे से अपने को अलग किया था. और उसकी बाहों से छूटकर विषाद की पीड़ा से बेसुध वह भागती हुई चली गयी थी. ओह नास्तेंका, तुम मानोगी कि इस अनंत विहारिणी कल्पना के पंखों पर सवार उड़ते समय यदि तुम्हारा अनामंत्रित मित्र अप्रत्याशित और अचानक धड़ाम से दरवाजे खोलकर तुम्हारे सामने आ खड़ा होता और अपने लंबे तगड़े शरीर और मनमौजी स्वभाव को दर्शाता चीखता हुआ, जैसे कुछ भी असाधारण बात न हो, कहता, "अबे पुराने घोंचू, मैं अभी-अभी पाव्लोस्क से लौट रहा हूं"... तुम्हें मानना पड़ेगा कि उस समय तुम सकपका जातीं और तुम्हारे चेहरे से उस स्कूली बालक जैसा आतंक प्रकट होता, जिसने अपने पड़ोसी के बगीचे में घुसकर सेब चुराकर जेब में रखा ही था कि माली ने धर दबाया. हे भगवान् कहां तो वह बूढ़ा काउंट मर चुका था, अनंत सुख का वह क्षण इतने निकट था, और यहां पर सहसा एक साहब फट पड़े जो अभी-अभी पाव्लोस्क से तशरीफ लिये चले आ रहे हैं.

अपनी करुण कथा सुनाकर मैं स्वयं भी अवसाद में डूबकर निःशब्द हो गया.

मुझे याद है कि मैंने कितनी कठिनाई से अपने पर काबू पाकर मुस्कराने की कोशिश की थी. क्योंकि उस समय मेरा कंठ अवरुद्ध हो गया था, मेरी वाणी हिमशीतल हो रही थी, जैसे कोई शरारती बालक मेरे दिल की धड़कन बंद करने की कोशिश कर रहा हो, ऐसा लग रहा था. मेरी आंखें बार-बार भर आती थीं. मुझे आशंका थी कि मेरी दुखद कथा सुनने के बाद कहीं ऐसा न हो कि नास्तेंका अपनी नटखट आंखों को अविश्वास से फैलाकर अपनी बाल-सुलभ हंसी से खिलखिलाती हुई फूट पड़े और फिर रुकने का नाम ही न ले... और तब मुझे पश्चात्ताप हुआ कि मैं अकारण ही अपने हृदय पर पत्थर रखकर भावुकता की रौ में बहकर इतनी दूर चला आया वरना एक रटे-रटाये टुकड़े की तरह मैं उसे अपनी बात सुना सकता था. इसलिए कि, मैं बहुत पहले ही अपने बारे में राय बना चुका था जो मुझे इसको सुना देनी चाहिए थी. यहां पर मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझे इस बात की जरा भी उम्मीद न थी कि नास्तेंका मुझे समझ पायेगी. लेकिन आश्चर्य! वह गुमसुम बैठी रही और कुछ देर बाद मेरे हाथों को अपने फूल जैसे हाथों से दबाकर हौले से बोली, "क्या सचमुच अभी तक ऐसी ही रही है तुम्हारी जिंदगी?"

"ऐसी ही नास्तेंका," मैंने उत्तर दिया, "हमेशा ऐसी ही, और मैं सोचता हूं कि मुझे मृत्यु पर्यंत ऐसा ही जीवन जीना पड़ेगा."

"नहीं-नहीं तुम ऐसे नहीं रह सकते," उसने भावावेश में कहा, "ऐसा नहीं होगा, क्योंकि तब मुझे भी जीवन भर अपनी नानी के बगल में बैठकर दिन काटना होगा. सुनो, क्या तुम नहीं जानते कि इस तरह से जीवन बिताना कोई गर्व की बात नहीं है.

मैं अपनी भावनाओं के ज्वार को संयमित रखने में असमर्थ होकर चीख पड़ा, "जानता हूं नास्तेंका, मैं यह बात जानता हूं. मुझे अब महसूस हो रहा है कि मैंने अपने जीवन के सुनहरे दिन व्यर्थ में गंवा दिये. मुझे अब इस बात का अनुभव होता है और यह आभास मेरी पीड़ा को और भी बढ़ा देता है क्योंकि मेरी दयालु देवदूत, तुम्हें स्वयं ईश्वर ने मुझे यह सब बात याद दिलाने और महसूस कराने के लिए ही मेरे पास भेजा है. तुम्हारे साथ इस समय यहां बैठकर बात करते समय भविष्य के ध्यान से मैं सिहर उठा हूं... क्योंकि मेरे लिए भविष्य में केवल उस चिरस्थायी एकाकीपन के सिवा, इस निरुद्देश्य और जंग लगी हुई जिंदगी के सिवा कुछ नहीं है. और जब वास्तविकता में तुम्हारे साथ यहां इस समय बैठा हुआ इतना सुखी हूं, तब मैं और सपना भी क्या देख सकता हूं. ओह, मेरी नन्हीं-सी परी, मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं क्योंकि तुमने मेरा तिरस्कार नहीं किया, क्योंकि अब मैं यह तो कहने लायक हूं कि मैंने कम से कम जीवन की दो संध्याएं तो जीकर बितायीं.

अगले अंक में

क्या वे इतनी आसानी से जुदा हो सके...?

लघुकथा

कटु सत्य

वर्षों से परिवार से उपेक्षित पं. लक्ष्मी प्रसाद जी आज एकाएक सभी परिवारी जनों में जागे स्नेह को देख कुछ तय नहीं कर पा रहे थे, कोई नया कुरता पायजामा लाया तो कोई शाल और चप्पल.

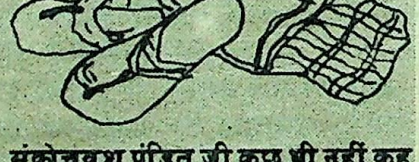

संकोचवश पंडित जी कुछ भी नहीं कह पा रहे थे कि बड़ी लड़की ने नया बैग देते हुए कहा, "पिताजी तैयार हो जाइये. कल आपको राजधानी जाना है."

"क्यों...?"

"कल आपको 50 हजार का पुरस्कार जो मिलना है."

पंडित जी ने एक निर्विकार हंसी के साथ सोचा—कितना कटु है जीवन!

राजेश शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. नामवर सिंह के साथ
उदय प्रकाश और सुधीश
पचौरी की बातचीत

भारत भवन कूट संस्कृति का अखाड़ा है...

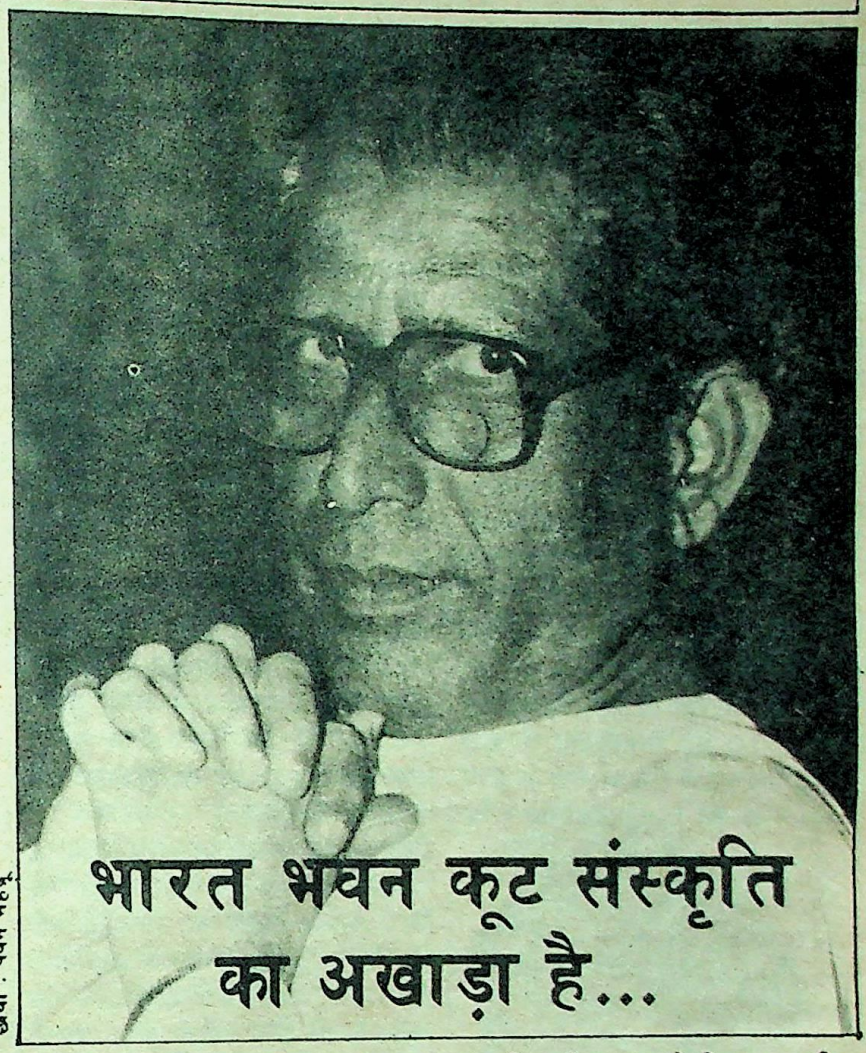

छाया : पवन मेहंदू

□ पिछले कुछ सालों से सरकार संस्कृति और कलाओं की ओर कुछ ज्यादा ही ध्यान दे रही है. अपना उत्सव, विदेशों में भारत महोत्सव, क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्रों का निर्माण– इसके उदाहरण हैं. प्रख्यात समाजशास्त्री पी.सी. जोशी का कहना है कि राजनीतिक स्तर पर आज देश बिखराव और अंतर्विरोधों के दौर से गुजर रहा है और इसे सुलझाने का कोई रास्ता सत्ताधारी वर्ग के पास है नहीं, इसीलिए उसे संस्कृति की शरण लेनी पड़ रही है. वहीं उसे अखंड भारत, विविधताओं के बावजूद एकीकृत भारत की छवि दिखायी देती है. आप क्या सोचते हैं?

यह सही है कि स्वाधीन भारत में पिछले चालीस वर्षों से सरकारी स्तर पर संस्कृति के क्षेत्र में जो काम हुए हैं, उन्हें देखा जाये तो दिलचस्प बातें सामने आयेंगी. पं. जवाहरलाल नेहरू ने तीन केंद्रीय अकादमियां स्थापित करके यह सोचा था कि इनके द्वारा सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की दिशा में कुछ काम किया जा सकता है. अब उन अकादमियों के लिए जो योजना बनायी गयी और जो काम उन्होंने वास्तव में किया, उन दोनों को एक साथ सामने रखें तो एक स्थिति सामने आयेगी. नेहरू के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी के जमाने में भी संस्कृति के क्षेत्र में कुछ काम हुए. अपने अंतिम दिनों में उन्होंने एक 'आर्ट कौंसिल' भी बनायी थी, जो बहुत सक्रिय नहीं हो पायी. श्रीमती गांधी के कुछ सांस्कृतिक सलाहकार भी थे. केंद्र के स्तर पर न सही, राज्यों के स्तर पर– उदाहरण के लिए भोपाल में उन्होंने **'भारत भवन'** का उद्घाटन किया और भोपाल को देश की सांस्कृतिक राजधानी का दर्जा दिया. परोक्षतः यह श्रीमती गांधी के शासनकाल की एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक घटना थी. तीसरा दौर श्री राजीव गांधी के जमाने का है. इस दौर में विभिन्न क्षेत्रों में पांच या छह क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र स्थापित किये गये. इसी दौर में अमरीका, रूस, जापान, फ्रांस में 'भारत महोत्सव' बड़े पैमाने पर मनाये गये. यह एक नयी घटना थी, जो न पं. नेहरू के जमाने में हुई थी, न श्रीमती गांधी के. इन सारी बातों को जोड़कर इनका तुलनात्मक विश्लेषण करें तो कुछ स्पष्ट चीजें उभर कर हमारे सामने आयेंगी. एक सबसे स्पष्ट बात तो यह है कि इन सबके पीछे सरकार की संस्कृति-नीति का मूल ढांचा लगभग एक जैसा दिखायी देता है. देखने की बात यह है कि यह सारे सरकारी प्रयत्न अपनी सांस्कृतिक विरासत को कितना सुरक्षित रखते हैं, संचार माध्यमों समेत अपने अन्य कार्यक्रमों के द्वारा किस हद तक आम जनता को उसे सुलभ करा पाते हैं और इस सबके पीछे मूल दृष्टि क्या है? मुझे बार-बार लगता है कि इस उपक्रम के पीछे भद्र वर्गीय दृष्टि है– अंग्रेजी में जिसे 'एलिटिस्ट' कहते हैं. स्वाधीन भारत की अपेक्षाओं के बरक्स यह दृष्टि गलत मालूम पड़ती है. स्वाधीनता आंदोलन के दौरान सांस्कृतिक स्तर पर दो दृष्टियां साथ-साथ थीं– एक गांधी की, दूसरी नेहरू की. गांधी की नजर गांव पर थी. गांधी के लिए संस्कृति एक भारतीय साधारण जन की संपूर्ण जीवन पद्धति थी. इसमें नैतिक मूल्यों से लेकर संगीत-नाटक सब कुछ शामिल था और उसे वे साधारण जनता की संपूर्ण जीवन पद्धति के रूप में देखते थे. पं. नेहरू की उदारवादी, मानववादी, और बूर्जुवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि में संस्कृति के संदर्भ में आदर्श रवींद्रनाथ टैगोर थे. आकस्मिक नहीं है कि उन्होंने जो अकादमियां कायम कीं, वे रवींद्र भवन में कायम कीं. नहीं भूलना चाहिए कि सन 1924 में संस्कृति के प्रति दृष्टि को लेकर टैगोर और गांधी में विवाद हो चुका था. नेहरू को शायद गांधी की दृष्टि में संस्कृति दिखायी ही नहीं पड़ती. इसीलिए उन्होंने उस गांधीवादी जनसाधारणवादी संस्कृति नीति का विकास ही नहीं किया. नेहरू की दृष्टि में संस्कृति एक 'एलिटिस्ट' अवधारणा थी और उन्होंने रवींद्रनाथ की परंपरा में ही भद्रवर्गोचित अकादमियों की स्थापना की.

□ समाजवादी रुझानों के बावजूद नेहरूकाल में ही पश्चिमी सभ्यता और टेक्नोलॉजी का प्रभाव सबसे ज्यादा देश पर पड़ा. अब राजीव गांधी के सत्तासीन होने की घटना को बहुत से समाजविद् देश के नव अभिजन वर्ग का सत्तासीन होना मानते हैं. देश का यह वर्ग तो पहले से ही पश्चिमीकृत है. भले ही वह भारतीयता की बात करे. इस वर्ग के एक प्रवक्ता आशीष नंदी ने तो घोषित ही कर दिया है कि भारत एक पश्चिमी समाज बन चुका है. यह चीन और जापान आदि की तरह 'ओरिएंटल सोसायटी' है ही नहीं.

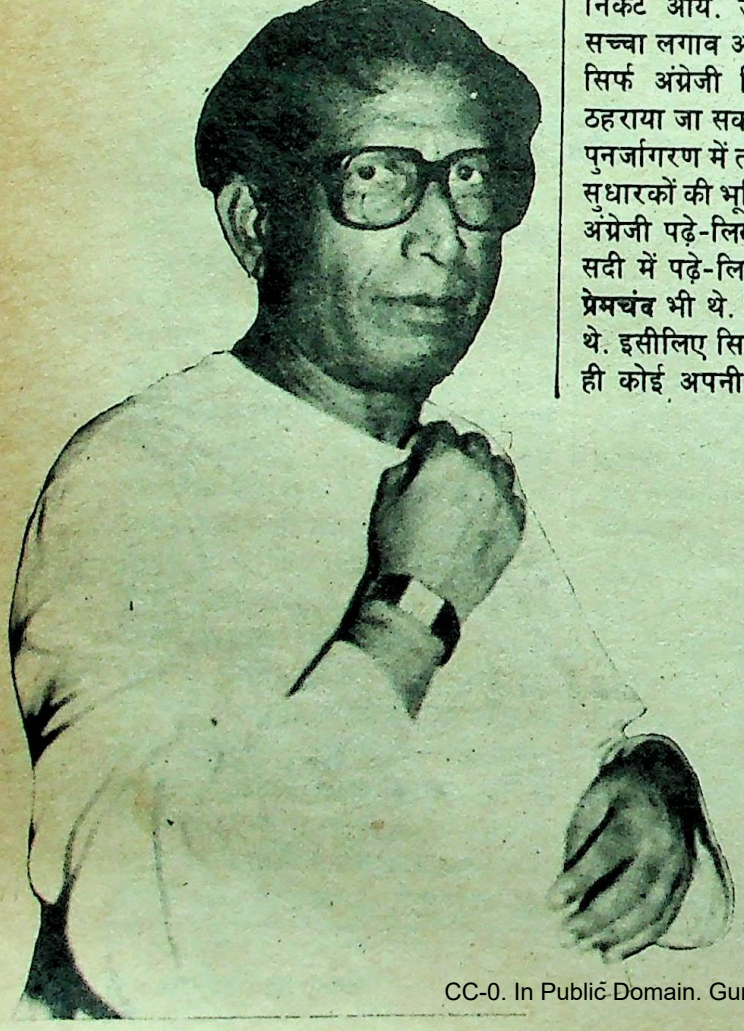

बिल्कुल ठीक कह रहे होंगे यह लोग. आप नेहरू और राजीव गांधी के शासनकाल की सांस्कृतिक दृष्टि की तुलना करें तो एक बुनियादी अंतर दिखायी पड़ेगा. अगर नेहरू की संस्कृति के मूल में **'आक्सफोर्ड'** और **'कैंब्रिज'** था तो इनकी संस्कृति के मूल में **'दून स्कूल'** है. यह आक्सफोर्ड, कैंब्रिज से ज्यादा बुरा इस मायने में है कि यह एक उपनिवेशवादी दृष्टि है. औपनिवेशिक दासता के युग से पब्लिक स्कूलों और कानवेंटों की जो विरासत भारत ने पायी, उसका नतीजा है यह दृष्टि. आक्सफोर्ड, कैंब्रिज की परंपराओं में तो रेडिकल परंपराएं भी थीं. लेकिन वह परंपरा तो दून स्कूलों वालों में आयी नहीं. पश्चिम के अभिजन वर्ग की नकल करने में यह 'दून स्कूलवादी' वर्ग और भी घटिया और नकलची साबित हुआ. पं. नेहरू की शिक्षा-दीक्षा भले ही आक्सफोर्ड में हुई हो, लेकिन स्वाधीनता आंदोलन के दौरान वे भारतीय जनता के निकट आये. उसके प्रति उनके मन में सच्चा लगाव और प्रेम पैदा हुआ. इसलिए सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता. उन्नीसवीं शताब्दी के पुनर्जागरण में तो अंग्रेजी पढ़े-लिखे समाज सुधारकों की भूमिका थी ही. **बंकिमचंद्र** भी अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में से थे. बीसवीं सदी में पढ़े-लिखे लोगों में से एक **मुंशी प्रेमचंद** भी थे. **निराला** भी अंग्रेजी जानते थे. इसीलिए सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा के कारण ही कोई अपनी जड़ों से नहीं कट जाता. लेकिन यह जो 'दून स्कूल दृष्टि' पनपी है, इसकी जड़ें न तो अपनी संस्कृति में हैं, न परंपरा में हैं, न जनता में हैं, न चिंतन में हैं, यही नहीं, बल्कि पश्चिम का भी जो सबसे सतही और सबसे उच्छिष्ट कचरा है, यह उसकी भी तीसरे दर्जे की भद्दी नकल है. यह जड़-मूल से उखड़े-कटे लोगों की सांस्कृतिक समझ का दौर है. वे समझते हैं, संस्कृति का मतलब है— टेक्नोलॉजी या उपभोक्तावाद. ऐसे व्यक्तियों से किसी नयी सांस्कृतिक नीति की तो उम्मीद की ही नहीं जा सकती. आप देखिए, जो क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र इस बीच बने हैं, वे सरकारी नौकरशाहों के हाथ में हैं, वे दूसरे सरकारी दफ्तरों की तरह इन केंद्रों को भी चला रहे हैं. और ये सारे केंद्र सरकार के 'सूचना प्रकाशन विभाग' या 'सांग एंड ड्रामा डिवीजन' की तरह काम कर रहे हैं. इसी बीच तथाकथित महोत्सव संस्कृति का भी विकास हुआ है. जिस निर्यात तंत्र के तहत देश का माल विदेशों को निर्यात किया जाता है, संस्कृति भी उसी तंत्र के तहत निर्यात हो रही है. हमारी संस्कृति और हमारी प्राचीन कलाओं को मेलों और प्रदर्शनियों की चीज बनाकर पेश किया जा रहा है. खुद सोचिए कि बीसवीं शताब्दी के इन ढलते वर्षों में, आजादी के इकतालीस सालों के बाद, भला भारत को यह बताने की क्या जरूरत है कि हम एक सुसंस्कृत और कला संपन्न देश हैं. मैं उत्सवों का विरोधी नहीं हूं. उत्सव तो पारंपरिक भारतीय जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं. तीज-त्यौहार और उत्सव तो वर्ष भर हमारे यहां चलते हैं. होली, दशहरा, जन्माष्टमी, ईद, मुहर्रम यहां के विविध धर्मों के सामुदायिक जीवन के अंग हैं. हमारे सामुदायिक जीवन में चलने वाले उत्सवों के पीछे हमारे लोक जीवन और साधारण जनता की जो आत्मा और दृष्टि है, उसे सांस्कृतिक स्तर पर ऊपर उठाना एक बात है और उसे मेले या प्रदर्शनी में माल की तरह प्रदर्शित करना बिल्कुल दूसरी बात है. यह संस्कृति के क्षेत्र में नव उपभोक्तावादी रुझान का उदाहरण है.

□ यह माना जाता है कि कला और संस्कृति हमारे सामुदायिक जीवन का एक अभिन्न अंग रही हैं और उनमें उत्पादक और उपभोक्ता या कलाकार और दर्शक जैसा विभाजन नहीं रहा है. हर व्यक्ति उस संस्कृति का हिस्सेदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है. क्या आपको नहीं लगता कि अब ऐसे लोक कलाकारों को एक पेशेवर वर्ग के रूप में बदलकर उन्हें अलग से दूरदर्शन और उत्सवों में प्रस्तुत करके शेष समुदाय को अपनी ही संस्कृति के दर्शक के रूप में विभाजित किया जा रहा है?

ऐसा है कि संस्कृति और कला के क्षेत्र में 'प्रोफेशनलाइजेशन' तो होगा ही. यह अनिवार्य है क्योंकि जब उत्पादन की पद्धति में श्रम विभाजन है तो संस्कृति के क्षेत्र में यह 'पेशेवरीकरण' तो होगा ही. स्वयं लोककलाओं में भी 'प्रोफेशनलाइजेशन' है, लेकिन वह अपने सामुदायिक जीवन से पूरी तरह जुड़ा हुआ है. लोक कलाकार 'प्रोफेशनल' होते हैं. कुछ कलाएं तो कुछ जातियों के पेशे में ही सीमित रह जाती है. वह पुश्तैनी धंधा बन जाती है. लेकिन वे इसका निकास भी करते रहते हैं. किसी हुनर की तरह. वह हुनर उस पूरे लोक समाज का एक हिस्सा हुआ करता था. लेकिन अब तो उस हुनर को उसकी जमीन और उसके परिवेश से उखाड़कर उसे एक उपभोक्ता माल की तरह प्रस्तुत किया जा रहा है. यानी सवाल 'अप्रोच' का है. सरकारी स्तर पर जो तमाम संस्थान बने, उनकी भूमिका इस संस्कृति और इन कलाओं के विकास में अब तक क्या रही? उनकी दिशा क्या रही? क्या उन्होंने कोई 'अवांगार्द' भूमिका निभायी? जांच इसकी की जानी चाहिए, मोटे तौर पर पिछले कुछ दशकों में इन्होंने चित्रकला, नृत्य, संगीत और साहित्य की विविध विधाओं– जैसे कविता, कहानी, उपन्यास में किन प्रवृत्तियों और कलाकारों की पहचान की है और उनके विकास के लिए क्या कदम उठाये हैं? देखें तो घोर निराशा होती है. मैं तो यह तक कहूंगा कि इन कलाओं में बहुत से नये प्रयास तो इन संस्थाओं के विरुद्ध संघर्ष करके उभरे हैं, उनसे सहयोग पाकर नहीं. इन कलाओं में जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ है, वह इन संस्थाओं के बावजूद है, उनकी वजह से नहीं.

□ अभी एक नाटककार से बात हो रही थी. उनका कहना था कि पिछले कुछ सालों से संस्कृति के प्रति जो सरकारी नीति अपनायी गयी है, उसके चलते अब स्थिति यह पैदा हो गयी है कि देश के जो समकालीन आधुनिक कला रूप हैं, उनको बचाने और उनके संरक्षण की ज्यादा जरूरत पैदा हो गयी है. दिल्ली के मंडी हाउस में या दूरदर्शन और महोत्सवों में तो यक्षगान, भरतनाट्यम, कथकलि या करमा, धांगड़ और रामलीला को बार-बार सरकारी समर्थन और सहयोग दिया जा रहा है. यानी एक तरफ क्लासिक कला रूपों को सहायता दूसरी तरफ 'फोक' को समर्थन, लेकिन जो समकालीन आधुनिक लेखक-कलाकार हैं उनको तो कोई नहीं पूछता... आज समकालीन हिंदी रंगमंच की क्या हालत है, पंडवानी और यक्षगान के सामने?

बिल्कुल सही कहना है उस नाटककार का. आज तो नवधनाढ्य भद्रवर्ग सरकार और उसकी संस्कृति का मुख्य नियंता है, जरा उसकी ओर गौर से देखिए. उनकी रुचि और अभिरुचि, उसकी जीवन पद्धति की ओर ध्यान दें. आधुनिक टेक्नालॉजी के विलासिता के उपकरणों से उनका और उनके परिवार का जीवन लदा-फंदा है. लेकिन वे अपने आपको भारतीय संस्कृति से संपन्न व्यक्ति दिखाने के लिए हजार-दो हजार रुपयों का टिक्ट खरीदकर पंडित भीमसेन जोशी का गाना सुनने जरूर पहुंच जायेंगे. समझ में आये या न आये. दूसरी ओर कोई 'लोकनृत्य' हो रहा हो, तो वहां भी वे पहुंच जायेंगे. आप दिल्ली के सबसे आधुनिक बाजार कनाट प्लेस के जनपथ में देखिए. वहां तिब्बतियों की भी दूकानें हैं. अब इस नवधनाढ्य वर्ग की लड़कियों को देखिए. एक तरफ पेरिस का सबसे नया और ताजा विदेशी 'परफ्यूम' और दूसरी तरफ तिब्बती कंगन. इसके बाद फिर भीमसेन जोशी या कुमार गंधर्व का गायन. इस सबके पीछे कौन-सी दृष्टि है? जाहिर है इस दृष्टि के सामने जो समकालीन कला है, वह तो 'सबवर्सिव' है. क्योंकि उसमें आज के समाज का यथार्थ है. चाहे वह कविता हो, कहानी हो या चित्रकला हो. अभी मैंने **विवान सुंदरम** के चित्र देखे. अगर ये नवधनाढ्य भद्र वर्ग के लोग विवान के चित्रों में से उभरते आज के पंजाब के यथार्थ को देखेंगे, तो उनकी तो सारी अभिरुचि ही नष्ट हो जायेगी. वे लोग तो 'क्लासिक' और 'फोक' के बीच रमने वाले फैशनपरस्त लोग हैं.

स्थिति यह है कि संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में जो कुछ कभी नया हुआ है वह सरकार और संस्थाओं द्वारा नहीं, सर्जकों

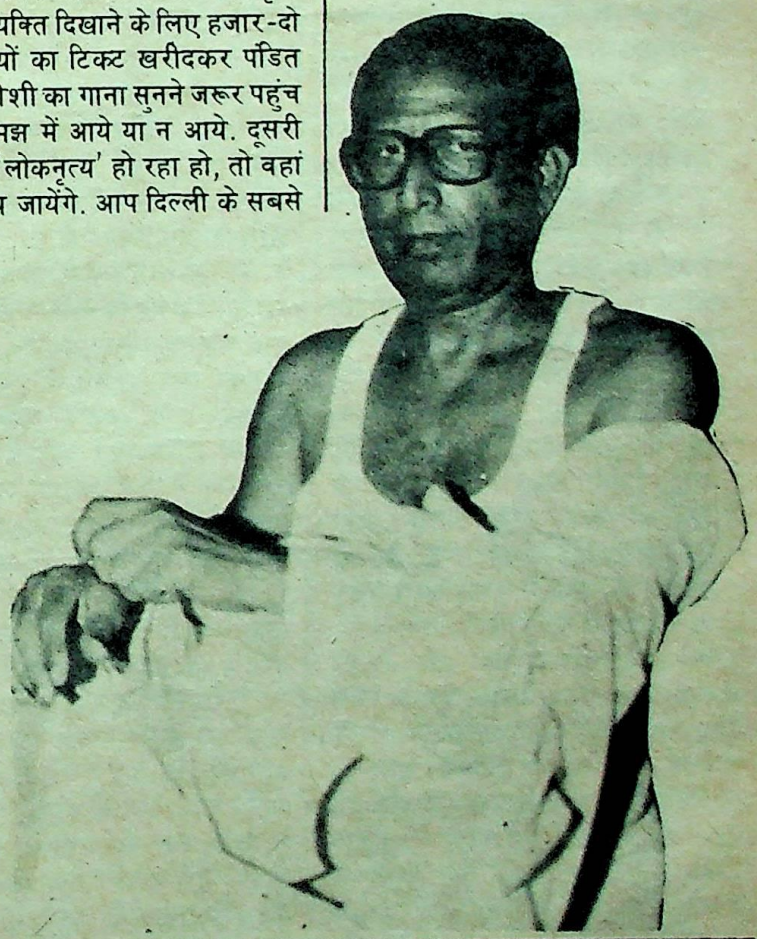

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा हुआ है. इसका एक महान उदाहरण है शेक्सपियर. उसने अपने नाटकों में क्लासिकी विरासत और नितांत लोकतत्व को मिलाकर एक नयी रचना प्रस्तुत की. ऐसा ही तुलसीदास ने किया. रामचरित मानस में संस्कृति की क्लासिकी विरासत और अवध की ठेठ लोक परंपरा को ऐसे रूप में उन्होंने ढाला कि एक महान कलाकृति की रचना संभव हुई. आधुनिक काल में कविता के क्षेत्र में यही काम निराला ने किया. सर्जक और सरकार, व्यापारी या फैशनपरस्त वर्ग की दृष्टि में यही अंतर है.

□ अब सरकारी संस्थाओं और सांस्कृतिक केंद्रों की बात हो रही है तो श्रीमती गांधी की सांस्कृतिक राजधानी भोपाल के भारत भवन की भी बात कर लें. भारत भवन में पिछले कुछ वर्षों से कला और साहित्य का प्रस्तुतीकरण ही नहीं, उनकी एक खास तरह की व्याख्या की भी चेष्टा हो रही है. एक भद्रवर्गीय सरकारी सौंदर्यशास्त्र वहां रचा जा रहा है. पिछले दिनों अशोक वाजपेयी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'पूर्वग्रह' और उसकी अनुषंग पुस्तिका के जरिये ऐसी कविता और ऐसे साहित्य को स्थापित करने की कोशिश हो रही है जिसमें समाज और इस देश के जीवन के यथार्थ से ज्यादा निषेध हो. बल्कि भारत भवन से प्रकाशित एक किताब में तो कविता को अर्थ और यथार्थ से काटकर उसे एक ध्वन्यात्मक 'वरबल आर्ट' में बदलने की खासी कसरत की गयी है. क्या आपको नहीं लगता कि साहित्य को भी नृत्य और सितारवादन की तरह किसी 'प्रदर्शनकारी कला' में तब्दील करने के पीछे वही नवधनाढ्यवर्गीय भद्र दृष्टि है, जो सुंदरम के चित्रों में पंजाब को देखकर बिगड़ उठती है?

मैंने अभी जिस सरकारी सांस्कृति ढर्रे और ढांचे का जिक्र किया, भारत भवन उसी का एक अंग है. अपेक्षाकृत अधिक चतुराई से किया जानेवाला वैसा ही सांस्कृतिक प्रयत्न है. आपको स्मरण होगा, बहुत पहले स्वर्गीय **मलयज** ने आचार्य शुक्ल पर लिखे अपने लेख **'मिथ में बदलता आदमी'** में इस तरफ इशारा किया था. मलयज ने कहा था कि यह एक 'भोगवादी' या 'उपभोगवादी' दृष्टि है. भारत भवन दिखाना तो यह चाहता है जैसे वह कोई 'अवांगार्द' की भूमिका निभा रहा है, लेकिन सच्चाई यह है कि उसके पीछे भोगवादी, 'हेडोनिस्ट' के अर्थ में, दृष्टि काम कर रही है. इस दृष्टि की आलोचना बहुत पहले मलयज ने की थी. कुछ लोग बहुत दिनों तक इस रुझान को 'रूपवादी' या 'कलावादी' कहते-समझते रहे. लेकिन मुझे लगता है कि इसे रूपवादी या कलावादी कहना, इसे ज्यादा गौरवान्वित करना हो जायेगा. यह तो वह भी नहीं है. 'रूपवाद' और 'फार्मलिज्म' भी बहुत उच्च स्तर का होता है. हिंदी की प्रयोगवादी कविता में उसका एक रूप दिखायी देता है. लेकिन यह तो वह भी नहीं है. अगर कोई यह समझ रहा हो कि 'पूर्वग्रह' या 'भारत भवन' कविता और कला का कोई शास्त्र रच रहे हैं, तो यह भी मुगालता ही है. जरा इस 'शास्त्र' की अंतर्वस्तु की ओर देखें. जिस तरह धर्म के भीतर कई अंधविश्वास भी शामिल रहते हैं, उसी तरह कला या कविता की व्याख्या के लिए 'पूर्वग्रह' कुछ अमूर्त अंधविश्वासों, नये तरह के रहस्यवादों को जोड़ रहा है. और इसका सबसे बड़ा प्रमाण है 'पूर्वग्रह' की भाषा. 'पूर्वग्रह' के अंकों में आपको एक ऐसी 'कूट भाषा' दिखायी देगी, जिसकी जड़ें ही हिंदी में नहीं हैं. नकली किसिम के साधू-तांत्रिक एक ऐसी कूट भाषा बोलते हैं, जिसकी सार्थकता ही इस बात पर निर्भर रहती है कि वह किसी की समझ में न आये. एक अद्भुत किस्म का छद्म रहस्यवाद आपको वहां कविता की व्याख्या में भी दिखायी देगा. महर्षि रमण का जिक्र आपको समकालीन कविता की चर्चा के सिलसिले में मिल जायेगा. गांधी की भी वे बात करेंगे तो गांधीवाद का जो क्रांतिकारी चरित्र है, जो उनकी हरिजनों के प्रति, गरीबों के प्रति, दीनों के प्रति और साम्राज्यवादी औपनिवेशिकता के प्रति दृष्टि है, वह उन्हें नहीं दिखायी देगी. हद तो यह है कि संस्कृत जैसी गंभीर और महान भाषा को बोलने-समझने के लिए जिनके पास न्यूनतम तमीज नहीं है, वे संस्कृत में शास्त्र रचते दिखायी पड़ेंगे. वेद, उपनिषद न जाने क्या-क्या गलत-गलत उद्धृत करते हुए वे तमाम 'आब्स्क्योर' चीजें पेश करते दिखायी पड़ेंगे. यानी एक 'कूट कला' और 'कूट संस्कृति' के निर्माण की कोशिश हो रही है. कुमार गंधर्व, नागार्जुन जैसी विभूतियों को पुरस्कार और सम्मान देकर वे यह दिखाने की कोशिश कर रहे हैं कि इस देश में जो कुछ भी महिमामय है, हम उसका सम्मान करते हैं. लेकिन ये हाथी के दिखाने के दांत हैं. इन सारे प्रयत्नों के पीछे जो असली 'खानेवाले दांत' हैं, हमारा ध्यान उनकी ओर जाना चाहिए.

□ अभी नागार्जुन को 'मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' देना भी क्या इसी उपक्रम की एक कड़ी है?

बिल्कुल, नागार्जुन को पुरस्कार इन्होंने बाध्य होकर दिया. एक दिन आप देखेंगे कि पुरस्कार देने के लिए भी इनके पास कोई नहीं बचेगा. शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन जैसी विभूतियों की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती. इसलिए ऐसे लोगों का सम्मान करके वे अपने असली चरित्र को ढकना चाहते हैं. मेरा कहना है कि इस सांस्कृतिक भोगवाद के पीछे के तानाशाह को पहचानना चाहिए. **वाल्टर बेंजामिन** ने कहा था कि जर्मन नात्शीवाद के पीछे जो सबसे खतरनाक पक्ष था वह था– राजनीति का सौंदर्यीकरण– 'एस्थिटिसाइजेशन आफ पॉलिटिक्स'. ये लोग सौंदर्य-सौंदर्य, कला-कला पर इतना बल देकर मनुष्य विरोधी राजनीति का सौंदर्यीकरण कर रहे हैं. लेकिन धीरे-धीरे इनके समारोहों, उत्सवों और आयोजनों में इस संस्थान का असली चेहरा उद्घाटित होता जा रहा है. मैं तो खैर एक मामूली आदमी हूं. लेकिन उनके असली चेहरे को जब मैंने देखा तो मैंने घोषित रूप से अपने संबंध विच्छेद कर लिये.

अगले अंक में

"अगर मैंने कहा था कि अशोक वाजपेयी रेमंड विलियम्स की परंपरा के आलोचक हैं तो वह गलत था..." अगली किस्त में फोर्ड फाउंडेशन, सी.आई.ए. और सांप्रदायिक पुनरुत्थानवाद के साथ भारत भवन के रिश्तों पर विचारोत्तेजक बातचीत. "एशियाई कविता और विश्व कविता का आयोजन एक नये तरह का सांस्कृतिक आतंकवाद है."

–बातचीत की ऐसी कड़ी, जिसे आप जरूर पढ़ना चाहेंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव की आंच से खौलता सृजन

चित्रा मुद्गल के इस कहानी-संग्रह पर नजर डालने से यह विचार जरूरी तौर पर महसूस होता है कि इसी बीच उनके रचना-कर्म में अनुभव को संश्लिष्टता में रचने और संवारने का हुनर पैदा हुआ है. अनुभव-अनुभूति का सृर्जनात्मक नुकीलापन बहुत ही मामूली इंसानों की जिंदगी के नरक को न केवल व्यक्त भर करता है– बल्कि स्थिति-परिस्थिति से उत्पन्न एक ऐसे तनाव और द्वंद्व को निष्पन्न करता है कि पाठकीय-संवेदना में गंभीर हलचल हो और वह सोचने की विवशता के दौर से गुजर उठे. अधिकांश कहानियों में उनकी रचनात्मक संवेदना मामूली आदमी के आर्थिक-सामाजिक वेदन-तंत्र के इर्द-गिर्द किसी न किसी रूप में जुड़ी मनःस्थितियों और उनके घात-प्रतिघात की बारीकियों से टकराती हैं. इस टकराहट का नतीजा यह होता है कि ये कहानियां मानव के शोषण से न्याय की स्थिति को बेचैनी से उजागर करती हैं. संग्रह की प्रथम कहानी 'भूख' यातना, अवमानवीकरण और शोषणजन्य हत्या की एक ऐसी चीख है– जो हमें भीतर तक हिला देती है. भूख से मरता हुआ बच्चा उस व्यवस्था के कलंक का प्रतीक बनकर आंखों को नम कर देता है.

'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती' जैसी कहानी की जमीन पर मानवीय यथार्थ के बीच अनुभव की एक ऐसी खोज का बिंदु है जहां आलोचनात्मक आत्म-चेतना पछाड़ खाकर रो पड़ती है. यहां न मानव के आदर्शीकरण की गुंजाइश है न उसे लांघ कर जीवन का भीतरी सच झेलने का साहस. पूरा समाज जैसे जुल्मों की संडास में बदबू फेंकने लगता है. जहां आदमी की सारी विपन्नता, सारी देहगाथा, सारी हाय-हाय, सारी धोखाधड़ी साफ-साफ नजर आती है. कहानी का कथ्य और रूपबंध विश्वसनीय भाषा की चतुर वनाबट से जीवंत हो उठा है. भीतर तक टूटी फातिमाबाई समाज की अदालत में एक बयान फेंकना चाहती है, "बाकी सब तो खैरियत है, पन में बोलती कि सरकार हमारी इमारत भी दुरुस्त कराये. पानी हफ्ते-हफ्ते ऊपर नहीं चढ़ता... संडास भर रहे हैं. टूटे पाइप से अक्खा दिन मैला रिसता रहता है. बदबूके मारे-गिराक ऊपर नहीं चढ़ता... धंधे का खोटी कैस सहन करें... आप ही बोलो?" (पृ. 31) इस तरह के कथन या इस अन्दाज के अनेक बयान हमारी सुअर-संस्कृति का आईना बन जाते हैं– जिनसे हमें अपना चेहरा बदसूरत लगता है. किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर की मानसिकता का कारण-कार्य संबंध भीतर के दरवाजे जोर से खोल देता है. चित्रा मुद्गल का नारी-मन वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक भावभूमि पर आकर समाज के 'कीचड़' को दिखाने लगता है. जयशंकर प्रसाद जी से शब्द लेकर कहें तो नारी की कथा नारी ही समझ सकती है, समझा सकती है. कहानी को निहायत मामूली ढंग से कहते-कहते चित्रा-मुद्गल यथार्थ-प्रतीकों के जंगल में उतार देती हैं और कहानी हमारे भीतर सामाजिक अपमान यातना विद्रूपता ओर विडंबना को लेकर गुर्राने लगती है. संवाद करने लगती है. यहां आर्थिक विषमताओं के वृक्ष हृदय को झटका देने लगते हैं.

संग्रह की नौ कहानियों से गुजरने के बाद यह तथ्य कुरेदने लगता है कि सामाजिक-आर्थिक विद्रूपताओं के ये बिंब इतिवृत्त में क्यों जकड़ दिए गए हैं. विवरण, वर्णन, इतिवृत्त, टिप्पणी, स्मृति-प्रसंग आदि अपनी संरचनात्मक अन्विति में भावुकतावाद का शिकार क्यों हो गए हैं. बेशक, यहां इतिवृत्त के रोमाँटिक अवयव शेष नहीं हैं पर मनःस्थितियों के उपद्रव अनगढ़ता पैदा करते हैं. भाषा में पात्र की बोली पर अनुकरण होने के कारण अनगढ़पन जरूर है पर चालू आधुनिकता के मुकाबले वह ताजी और सच्ची लगती है. बल्कि इन कहानियों की भाषा में एक धारदार 'आयरनी' का इस्तेमाल है जो इधर की कहानियों में बहुत कम देखने को मिलता है. इन में सपाटबयानी के साथ स्थिति की नाटकीयता काफी प्रभावी ढंग से उपजती है. एक उदाहरण 'इस हमाम में' कहानी का देखिए– "एक शख्स के इतने हिस्से कैसे कर दिए जाते हैं? –बेटी, बहू, पत्नी, मां नारी... पैदा होते ही उसे समझाना शुरू कर दिया जाता है कि उम्र के हर टुकड़े को दूसरों की सुविधाओं के अनुकूल अत्मसात कर जीने में ही उसका जीना है– एक निर्धारित स्वीकार... क्यों... आखिर क्यों?" (पृ. 94) पूरी कहानी में परिवेश पुकारने लगता है या फिर परिवेश ही कहानी में ढल जाता है. जब होता यह है कि कहानी अपनी अर्थापत्ति में सार्थक व्यंजनाओं से बजने लगती है. साधारण-सी कहानी असाधारण स्थितियों में पाठक को धकियाकर ले जाती है– "परंतु मैं हंस न सकी. शून्य दृष्टि में उसके कचरे के झाबे को घूरती भर रही." (पृ. 95) हमें भी अंजा की बात पर गंभीर होना पड़ता है.

'होना संपादक की पत्नी-एक लेखिका का', 'लेन' जैसी कहानियों में अन्तर्योजना की कमी है. फिर भी ये कहानियां कमजोर होते आत्मविश्वास को ललकार कर जगाती हैं और प्रश्नाकुलता से रौंदकर ही आगे बढ़ती हैं. कारण "उसके घर एक वक्त से दूसरे वक्त अंगीठी नहीं सुलगती. वह भला लेन लेने का मंसूबा बांधे भी तो किस बिनाह पर." (164) दरअसल इन कहानियों में समस्या की सीटी बजती रहती है. भीतर का ताप अपनी ताकत से थर्राहट भरता रहता है. कहना न होगा कि ये रुपवाद-कलावाद के सांचे में ढली कहानियां नहीं हैं. आर्थिक संघर्षों की मार से बेहोश जिंदगी की भरोसे से भरी आकृतियां, स्थितियां और गतिविधियां इन कहानियों की वैचारिक मुद्राएं हैं. सामाजिकता के गहरे सरोकारों से इन कहानियों का कथ्य फूटकर निकला है. आदमी के, समाज के दर्द से साक्षात्कार करानेवाली इन कहानियों से हिंदी कहानी समृद्ध हुई है और नए सर्जन की संभावनापूर्ण जमीन का संकेत भी इनमें मौजूद है. □

डा. कृष्णदत्त पालीवाल

इस हमाम में : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 6 मूल्य-पैंतीस रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी कहानियां का बड़ा बात

रमेश उपाध्याय अपनी लंबी कहानियां के लिए चर्चित (या बदनाम) रहे हैं. तीन चार साल पहले 'सारिका' में ही उनकी कुछ छोटी कहानियां प्रकाशित हुई. सभी कहानियों की शुरुआत **'किसी देश के किसी शहर में...'** से होती थी. ये कहानियां आकार के अलावा भी रमेश उपाध्याय के शेष लेखन से भिन्न तर्ज की थीं. इनका फार्म भी फंतासी कहानी का था. फंतासी चूंकि मेरा भी क्षेत्र रहा है तो इन कहानियों ने मेरा ध्यान आकर्षित किया. अब इन सब कहानियों का संग्रह **'किसी देश के किसी शहर में'** नाम से प्रकाशित हो चुका है, इसलिए इन कहानियों पर बात की जा सकती है.

आम धारणा रही है (हालांकि मैं इस धारणा से कतई सहमत नहीं हूं) कि फंतासी शैली में जनवादी कहानियां नहीं लिखी जा सकतीं. रमेश उपाध्याय ने इसे तोड़ा है. इन कहानियों को ध्यान से पढ़ने पर हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि इस फंतासी का यथार्थ के साथ किसी प्रकार का विरोध नहीं है बल्कि वास्तव में फंतासी यथार्थ का ही विस्तार है. इसके माध्यम से हम अपनी बात ज्यादा सुविधा से कह सकते हैं और जिस तरह जहां हमें चोट करनी हो वहां और अधिक ताकत से चोट कर सकते हैं. ये सारी कहानियां राजनीति के भ्रष्टाचार (**बोझ, समय**) दफ्तरशाही के पैंतरों, (**रोशनी, आग**), पूंजीवाद के शिकंजे (**हवा, मिट्टी**) आदि की ही कहानियां हैं.

यथार्थवादी और फंतासी के फार्म के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में उन्होंने एक ही पात्र को लेकर दो कहानियां लिखी हैं—**नशा** और **प्यास**. रमेश फंतासी शब्द का प्रयोग करने से गुरेज करते रहे हैं इसकी जगह उन्होंने शब्द दिया है 'यथार्थवादी रचना प्रक्रिया'. इन दोनों कहानियों के बारे में वे कहते हैं— "**नशा में कहानी का वह प्रचलित 'यथार्थवादी रूप' अपनाया गया है, जिसमें कहानी के 'सच', 'सहज' 'विश्वसनीय' तथा 'प्रामाणिक' दिखाई देने पर जोर दिया जाता है, जबकि 'प्यास— में वह यथार्थवादी रचना प्रक्रिया अपनायी गयी है, जिससे कहानी में समाज की एक तस्वीर पेश करने के साथ-साथ समाज के मूल ढांचे को दिखाना भी संभव होता है.**" इनमें नशा जहां केवल एक ऐसे नलसाज की कहानी बनकर रह जाती है जो अपना स्वतंत्र धंधा छोड़कर एक दफ्तर बन जाता है और करता अब भी वही काम है (अफसरों और उनके दोस्तों के घरों में नलों की मरम्मत) पर अब उसे यह काम बेगारी में करना पड़ता है, पहले जहां वह घर का खर्च और अपने शाम के नशे के लिए ठीक ठाक कमा लेता था अब उतनी ही मेहनत के बावजूद उसकी तनख्वाह आठ-दस दिन चल पाती है और नशे के लिए उसे अपनी पत्नी से पैसे मांगने पड़ते थे, यानि यह एक व्यक्ति विशेष की कहानी बनकर रह जाती है. अफसरशाही के शोषण की ओर केवल हल्का-सा संकेत ही इसमें है. इसके विपरीत **प्यास** कहानी में उस नलसाज का एक सेठ नौकरी देता है ओर कहता है कि सारे शहर के नलों के जाल का नक्शा बनाकर उसे दे. इन नक्शों का उपयोग करके सेठ शहर के पूरे पानी को अपनी निजी गुप्त टंकियों में भर देता है और नलों से पानी की जगह आवाज आने लगती है.

अंग्रेजी में एक कहावत है जिसे हिंदी में कहा जा सकता है—'अध्यापक हमेशा अध्यापक ही रहता है' रमेश उपाध्याय के साथ भी यह समस्या है. कारण चाहे जो भी रहे हों पर 83 पृष्ठों की कहानियों के साथ इस पुस्तक में 48 पृष्ठों की भारी-भरकम भूमिका है. इसके बिना काम चल सकता था क्योंकि जो बातें वे इस भूमिका में कहते हैं वे ये कहानियां ज्यादा बेहतर ढंग से कहती हैं.

सुरेश उनियाल

□ **किसी देश के किसी शहर में (कहानी संग्रह) : रमेश उपाध्याय, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली-2 मूल्य : 30 रुपये**

आधुनिक होने की विडंबना

अर्धपूंजीवादी-अर्धसामंती आर्थिक संरचना द्वारा परंपरागत जीवन और मूल्यविधान पर पड़ने वाले दबावों को झेलना और नये जीवन-संदर्भों में उन्हें अर्थ देना आधुनिकता का तकाजा है. भारत में पूंजीवादी विकास के बाधित होने से भारतीय समाज और भारतीय मानस में एक नयी तथा अभूतपूर्व जटिलता का समावेश हुआ है, जिसे समझने और व्याख्यायित करने की लगातार, कोशिशें की जा रही हैं. बटरोही की कहानियों में भी इसकी एक शिद्दत से की गयी (पर नाकाम) कोशिश हमें दिखाई देती है. पर यह नाकाम कोशिश ही उनकी रचनात्मक ऊर्जा का स्रोत है. (वैसे भी कामयाबी या नाकामयाबी से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है—लगातार कोशिश) सामंती संस्कारों से मुक्त हुए बिना पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक-मानवी संबंधों को समझ पाना संभव भी नहीं है. अतएव ऊपरी या फौरी या कलात्मक तौर पर आधुनिकता का लहजा अपनाने से चिंतन और रचना का द्वैत उभर कर सामने आता है और चिंतन की धुंध के भीतर से रचना को देखने की मजबूरी यथार्थ को उसकी पूरी जटिलता और समूचे आयामों में उभरने नहीं देती. हालांकि कई स्तरों पर टटोलते रहने की एक व्यग्रता का साफ पता भी चलता है. बटरोही के इस दूसरे कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियां इस प्रवृत्ति का शिकार हैं. इस तरह की रचनाओं का असर बहुत गहरा और सुदूरप्रसारी नहीं होता. इकहरा और सामयिक होता है. "हस्तांतरण", 'नेक आदमी', 'प्रेत', 'किम्पुरुष', 'प्रतीपगामी', 'कटखने', 'काना लैम्पपोस्ट, 'सूराख' और 'कनकटा चश्मा' इसी तरह की कहानियां हैं. 'सड़क का भूगोल' और 'मन नाहीं दस बीस' ऐसी कहानियां हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न शिल्प और वाचनशैली का प्रयोग करके कथाकार कलात्मक संतुलन पाने की तरफ कदम आगे बढ़ाता है और 'सड़क का भूगोल' में काफी हद तक कामयाब भी होता है. 'मन नाहीं दस-बीस' में यह संतुलन अपेक्षाकृत असहज तथा अतिरिक्त आयासों पर टिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ और यह अतिरिक्त आयास पाठ के रचना के बीच एक पैबंद की तरह लगता है. (इस कहानी में 'निवेदन' शीर्षक से कहानीकार द्वारा शीर्षक में निहित अर्थवत्ता को कहानी के बाहर प्रतिपादित करना इतना जरूरी तो न था). 'सड़क का भूगोल' में भी कथाकार मौजूद है, पर यहां वह 'उत्तम पुरुष' – वाचक के रूप में कथासूत्र में बंधा हुआ आता है–एक अलग इकाई की तरह या बाहर से हस्तक्षेप करता हुआ नहीं. इसलिए इस कहानी का कलात्मक संतुलन बिखरने नहीं पाया है. कथाकार न केवल यहां मौजूद है बल्कि वह रचना-प्रक्रिया के ऊपरी विवरणों का आवरण हटाकर बार-बार पाठक को वस्तुगत यथार्थ को उसके निजी अनुभवों से जोड़ने की कोशिश भी करता है. इस प्रकार वह पाठक का आत्मीय हो कर उसे लेखक की विवशताओं और सीमाओं से भी परिचित कराता चलता है. जबकि कहानी में उठाये गये कथानक और उसके भीतर से उभरते प्रश्नों को वह कहीं भी नजर-अंदाज नहीं कर रहा होता है. प्रयोगधर्मी कहानियों में 'सड़क का भूगोल' इस संकलन की सबसे मजबूत कहानी है–सबसे ज्यादा पारदर्शी फिर भी 'कुछ घंटे', 'क्यों' और 'घर कहां हैं?' जैसी कहानियों में संवेदना और वस्तुगत यथार्थ का केंद्रीय बिंदु जितनी सफाई और बेबाकी से उभरा है, उतना इस कहानी में नहीं.

वस्तुतः 'कुछ घंटे', 'क्यों' और 'घर कहां है?' का परिवेश और संवेदना रचनाकार की अपनी मानसिकता और मूल्यों के बहुत निकट और नितांत परिचित हैं.

इन कहानियों में मानवीय त्रासदी की तीक्ष्णता इनके पात्रों की असहायता के द्वारा और गहरी होती हैं. 'क्यों' और घर कहां है?' में (खासकर 'घर कहां है?' में) गहरे मानवी सरोकारों और अपनी असहायता के बावजूद मानवीय मूल्यों के लिए समाजविरोधी ताकतों का प्रतिरोध करने की भी एक तीखी ललक चित्रित हुई है. ये कहानियां कथाकार बटरोही की अपनी दुनिया और एक कथाकार के रूप में उनकी ताकत का परिचय कराती हैं. □

डा. माहेश्वर

'सड़क का भूगोल' : बटरोही, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-110002
मूल्य : तीस रुपये

यांत्रिक दुनिया में मानवीय संवेदना की तलाश

अमर गोस्वामी की ग्यारह कहानियों का संकलन 'हिमायती' वर्तमान परिस्थितियों में टूटते हुए मूल्यों और आम आदमी के जीवन में आ रहे बदलाव को लेकर यांत्रिक जीवन में मानवीय संवेदना की तलाश का एक सफल प्रयास है.

अमर गोस्वामी अपनी कहानियों के माध्यम से कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से उन समस्त परिस्थितियों का विवेचन करने की कोशिश करते हैं जहां पर इंसान की सुप्त भावनायें दिख सकें. 'एक शाम' कहानी के माध्यम से वह शहरी अपंग मानसिकता को सफलता-पूर्वक प्रस्तुत करते हैं, जहां प्रतिवाद तो है, लेकिन प्रतिरोध नहीं है. पुलिस वाला बेबस रिक्शेवाले पर डंडे बरसा रहा है. लेकिन किसी में भी हिम्मत नहीं है कि पुलिस वाले को रोक सकें. लोगों की नपुंसक प्रतिक्रियाओं से यहां से अपरिचित आदमी अपमान और शर्म की अनुभूति से केवल झुक ही सकता है. इसी प्रकार 'लाचारी' कहानी में भी केवल एक तकनीकी भूल से विवश आदमी को टी.टी. द्वारा निरंतर अपमानित किए जाने के बावजूद उसे या तो लोगों से कोरी सहानुभूति मिल रही है या फिर वह लोगों के मनोरंजन का साधन बन रहा है. और यहां फिर वही अपरिचित व्यक्ति बाबू हरपाल सिंह के रूप में उसका साथ देता है. जानते हुए भी कि अगर उसने वे दो रुपये दे दिये तो उसे अपने गांव तक पैदल जाना पड़ेगा.

इस संकलन की सबसे महत्वपूर्ण कहानी है– 'पतझर का चेहरा'. मध्यमवर्गीय अभिजात्य परिवार सामाजिक और आर्थिक स्थिति के दबाव में किस प्रकार बिखर जाता है, 'पतझर का चेहरा' कहानी में खुलकर सामने आया है. समाज में दादू की स्थिति सम्मानजनक है लेकिन आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि अपनी सांवली बेटी के लिए वर खरीद सके. कई बार मासी मां को सजा-संवार कर लड़के और उसके साथ आए सम्मानित रिश्तेदारों के सामने लाया-जाता रहा, जहां लंबे साक्षात्कार के बाद उन्हें वापस अपने कमरे में भेज दिया जाता था. मासी मां के पास अपनी व्यथा कहने के लिए भी तो कोई नहीं था, किससे वह अपनी निराशा कहतीं. परिणाम वही हुआ पहले मिर्गी के दौरे और फिर बाद में पूर्णाहुति. 'गुड़ियों की कहानी' भी कुछ इसी विषय पर लिखी अच्छी कहानी है. दहेज के कारण दिदिया पर उसकी ससुराल में अत्याचार हो रहे हैं, लेकिन उसके आदर्श भारतीय माता-पिता उसका सुख उसके ससुराल में ही मानते हैं और ससुराल वालों की धन की मांग जमीन बेच कर पूरी कर देते हैं और अंत में दिदिया की खाना बनाते हुए स्टोव से जल जाने की मौत को भी स्वीकार कर लेते हैं.

संग्रह की शीर्षक कहानी 'हिमायती' आज की शोषित व्यवस्था की परिचायक बनी है, तो मेहनतकश की भावनाओं का भी प्रतीक है.

गरीबी, बीमारी से अपंग हुए रिक्शे वाले चिराग सिंह के लिए उसके साथी हर संभव सेवा करने के लिए तत्पर हैं. लेकिन चिराग सिंह शायद अपने समाज की असमर्थता को समझता है, इसलिए वह अपनी दुनिया में सीमित रहना चाहता है. अन्य रिक्शे वाले उसकी मदद के लिए यूनियन के नेता लाल बाबू से प्रार्थना करते हैं जिसे लाल बाबू रुखाई के साथ ठुकरा देते हैं, लेकिन जब वह मर जाता है तो लाल बाबू उसकी अर्थी धूम-धाम से उठवा कर लोगों की सहानुभूति बटोरने में सफल रहते हैं.

इस संग्रह की अन्य कहानियां 'चीरघर', 'दिल्ली दूर है', 'फूल का नाम इतिहास', 'हमदर्दी', 'सुदामा की मुक्ति', 'बहंगिया', भी रोजमर्रा के इंसान की दास्तान हैं जहां पर कहीं आज की यांत्रिक दुनिया उसके भोलेपन पर हंस रही है.

अमर गोस्वामी का यह पहला संकलन है. हालांकि कहीं-कहीं पर अंत नाटकीय और उपदेशात्मक हो गए हैं, लेकिन फिर भी कहा जा सकता है कि इधर लिखी जा रही कहानियों की अपेक्षा उनमें शिल्प का कलात्मक संयम अधिक है.

राजेश कालिया

□ 'हिमायती' अमर गोस्वामी
वर्तिका प्रकाशन, मालवीय नगर, सतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एड्स इससे कैसे बचें

एड्स एक खतरनाक रोग है और यह अभी तक ला-इलाज है। बहुत सी जनता इससे भयभीत है तथा इसके बारे में बहुत सी अफवाहें हैं। लेकिन कोई भी स्वयं को इससे बड़ी आसानी से बचा सकता है। इसलिए आइए, हम कुछ आधारभूत बातों पर गौर करें।

एड्स क्या है?

एड्स "एक्वायर्ड ईम्यूनो-डेफिसिएन्सी सिन्ड्रोम" का संक्षिप्त शब्द है। यह विषाणुओं से होता है जो शरीर की स्वाभाविक सुरक्षा प्रणाली को नष्ट कर देते हैं।

यह रोग कैसे फैलता है?

एड्स के विषाणु इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति के रक्त या वीर्य के जरिए किसी व्यक्ति के शरीर में पहुंच सकते हैं।

अधिकांश मनुष्यों को एड्स के विषाणु इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करने से लग जाते हैं। शेष व्यक्तियों को नशीली दवाओं के सेवन करने वाले व्यक्तियों को लगी सुई से ही प्रायः इंजेक्शन लगवाने के जरिए एड्स रोग लगता है। केवल कुछ थोड़े से ही मामलों में इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति के रक्त-आधान (ट्रासफ्यूजन) के माध्यम से यह रोग फैलता है।

जो व्यक्ति विषाणु ले आते हैं, वास्तव में वे सभी एड्स रोग के शिकार नहीं होते। बल्कि जिस किसी व्यक्ति के विषाणु हैं वह उन्हें दूसरों पर छोड़ सकता है। फिर भी वे पूर्णतया स्वस्थ अनुभव करते हैं।

इन कामों से आपको एड्स नहीं होता

- सामान्य सम्पर्क जैसे हाथ-मिलाने, छूने और गले मिलने से।
- तरण-तालों में स्नान करने, जल-पान गृहों और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर बैठकर खाने-पीने से।
- खांसने, छींकने और थूकने से।
- वस्त्र पहनने से।
- संडास पर बैठने, द्वार-दस्ता पकड़ने, भोजन, गिलासों और प्यालों का प्रयोग करने से।

आप एड्स के शिकार नहीं होते जब आप

- रक्त-दान करते हैं।
- अपने डाक्टर, दंत चिकित्सक या किसी अन्य स्वास्थ्य रक्षक कार्यकर्ता से इंजेक्शन लगवाते हैं या अन्य किसी प्रकार का उपचार कराते हैं।

आपको बचने के लिए क्या करना चाहिए?

- अजनबी के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित न करें क्योंकि इसमें सदैव जोखिम बना रहता है। आपको मालूम नहीं कि शायद अजनबी इस रोग से पीड़ित हो।
- गुदा मैथुन (अप्राकृतिक यौन-सम्बन्ध)-इसमें अत्याधिक जोखिम होता है और इससे बचना चाहिए।
- जितने अधिक लोगों से यौन-सम्बन्ध स्थापित करेंगे, उतना अधिक जोखिम होगा।
- नशाखोरों की इंजेक्शन सुइयों का इस्तेमाल न करें। जो नशाखोर नशीली दवाओं के आदी हो जाते हैं और इसे नहीं त्याग सकते, उन्हें इसे ध्यानपूर्वक नोट कर लेना चाहिए।

याद रखें

एड्स एक ऐसा रोग है जिसके बारे में जोखिम नहीं उठाना चाहिए। यह ला-इलाज है। एड्स पर नियंत्रण पाना स्वयं व्यक्ति पर निर्भर करता है।

अधिक जानकारी के लिए

आप सहायक महानिदेशक (एड्स), स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, निर्माण भवन, नई दिल्ली- 110 011 को लिख सकते हैं।

आप एड्स का उपचार नहीं कर सकते।
लेकिन आप इससे निश्चित रूप से बच सकते हैं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो,
स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, कोटला रोड,
नई दिल्ली- 2 द्वारा जारी

davp 88/349 Hindi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी का विकास चाहता कौन है?

हिंदी दिवस' के अवसर पर पटना में राजभाषा विभाग, बिहार सरकार की ओर से 13 एवं 14 सितंबर, 1988 को संगोष्ठी का आयोजन किया गया. संगोष्ठी में विचार्य विषय 'राजभाषा : पूर्ण प्रतिष्ठा, कब और कैसे' का प्रवर्तन करते हुए विभाग के निदेशक डा. भगवती शरण मिश्र ने राजभाषा हिंदी को राष्ट्र की अस्मिता बताते हुए कहा कि हिंदी पर ही देश की सांस्कृतिक समृद्धि का भविष्य अवलंबित है. यह अतीव खेद की बात है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के चार दशकों की दीर्घ अवधि के पश्चात् भी राजभाषा हिंदी पूर्णरूपेण सुप्रतिष्ठित नहीं हो पायी है. हिंदी के मार्ग में एक बड़ी बाधा यह भी है कि चिकित्सा, अभियंत्रण, विज्ञान आदि के लिए हम सुगम शब्दावली नहीं गढ़ पाए हैं.

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक डा. बैकुंठ नाथ ठकुर ने संगोष्ठी की स्तुत्य प्रयास बताते हुए कहा कि राजभाषा की प्रतिष्ठा का प्रश्न बहुत ही गंभीर है. इसकी प्रतिष्ठा तब तक नहीं होगी, जब तक हमारी मानसिकता में बदलाव नहीं आयेगा. तकनीकी ग्रंथों का हिंदी में अभाव है, यह कहना हकीकत से परे है. लोग हिंदी की दुरूहता की बात तो करते हैं, लेकिन अंग्रेजी की नहीं. हिंदी में गढ़े गये पांच लाख शब्द प्रयोग की प्रतीक्षा में हैं. आज के संदर्भ में राजभाषा का प्रश्न रोजी-रोटी से जुड़ा है.

वयोवृद्ध साहित्यकार डा. महोश्वरी सिंह 'महेश' ने कहा कि हिंदी की पूर्ण प्रतिष्ठा के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा हिंदी की क्षमता के प्रति हमारा निराधार अविश्वास भी है

दूसरे दिन 14 सितंबर को आयोजित संगोष्ठी की अध्यक्षता बिहार के पूर्व सचिव एवं केंद्रीय राजभाषा सचिव श्री कृष्ण कुमार श्रीवास्तव ने की. संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए लोकप्रिय कथा-मासिकी 'सारिका' के संपादक श्री अवधनारायण मुद्गल ने कहा कि सांस्कृतिक धरातल पर हम अधिक गुलाम हो गये हैं. हिंदी के आधिपत्य की बात इसलिए की जाती है कि अंग्रेजीवाले हिंदी का विकास तहेदिल से नहीं चाहते. भाषाई खतरे अंग्रेजी के चलते पैदा हुए हैं. राजभाषा हिंदी को पूर्ण प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अंग्रेजी को हटाना बहुत जरूरी है. अंग्रेजी चतुर चालाक राजनीतिज्ञों और प्रशासकों की भाषा रही है. जिन्हें अपने सारे स्वार्थ अंग्रेजी में ही निहित नजर आते हैं. इस दृष्टि से देशी अंग्रेज बरतानी अंग्रेजों से ज्यादा खतरनाक हैं.

अपने अध्यक्षीय व्याख्यान में श्री श्रीवास्तव ने कहा कि हिंदी से ही देश का व्यक्तित्व उभरेगा. हिंदी के विकास में बाधक निहित स्वार्थी तत्वों की हम पहचान करें तथा उन्हें दूर करने की चेष्टा करें. जिस राष्ट्र की अपनी कोई भाषा नहीं होती, उसकी आवाज अनसुनी रह जाती है.

प्रस्तुति : सुरेंद्र प्रसाद जमुआर

हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा संयोजित

हिंदी दिवस पखवाड़ा

दिल्ली की हिंदी अकादमी ने गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी हिंदी दिवस समारोह पूर्वक मनाया. 14 से 29 सितंबर तक चलने वाले इस पखवाड़े में 'साहित्यकार निर्देशिका विमोचन,' 'उभरते स्वर काव्य गोष्ठी', 'प्रसाद जन्म शती गोष्ठी,' 'माखनलाल जन्म शती संगोष्ठी' तथा 'हिंदी संकल्प समारोह' का आयोजन किया. हिंदी दिवस का उद्घाटन उपराज्यपाल रोमेश भंडारी ने किया, मुख्य अतिथि जगप्रवेश चंद्र तथा विशिष्ट अतिथि कुलानंद भारतीय थे. अकादमी सचिव डॉ. नारायणदत्त पालीवाल के प्रयत्नों से हिंदी दिवस पखवाड़ा सफलता पूर्वक संपन्न हुआ

प्रस्तुति : वीथिका

पुरस्कार वितरण समारोह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी परिषद, बस्ती के तत्वावधान में आयोजित 'स्व. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, स्मृति कहानी प्रतियोगिता' का पुरस्कार वितरण समारोह स्थानीय शिवहर्ष किसान महाविद्यालय, बस्ती में संपन्न हुआ. इस अवसर पर नगर के प्रबुद्ध नागरिक, साहित्यकार पत्रकार एवं साहित्यानुरागी उपस्थित थे.

कार्यक्रम के प्रथम सत्र में 'आधुनिक हिंदी कहानी : चुनौतियां और अपेक्षाएं' विषय पर व्यापक चर्चा और बहस हुई.

कार्यक्रम के दूसरे सत्र में कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत कहानियों का संक्षिप्त परिचय स्वयं कथाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया. कहानी प्रतियोगिता के निर्णायकों संजीव तथा डा. आनंद अस्थाना ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया.

इस अवसर पर परिषद् ने जनपथ के ख्यातिनामा रचनाकार स्व. पं. माता दीन त्रिपाठी 'दीन' की स्मृति में भी जनपथ के छः नवोदित कथाकारों को भी क्षेत्रीय प्रतिभा प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत सम्मानित किया. सत्र के अंत में संजीव और डा. आनंद अस्थाना ने पुरस्कार वितरण किया

प्रस्तुति : संजय द्विवेदी

पत्रकारिता और साहित्य का संबंध-संगोष्ठी

स्वर्गीय विद्यासागर वसिष्ठ की पांचवी पुण्य तिथि पर 'अग्रसर' द्वारा आयोजित पत्रकारिता विमर्श गोष्ठी में पूर्व निर्धारित प्रस्तावित विषय 'पत्रकारिता और साहित्य का संबंध' पर सर्वश्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, शोभा लाल गुप्त, अयोध्यानाथ बल, दिनेश निर्मल, अशोक लव, नरेंद्र लाहड़ु ने सार्थक बहस में हिस्सा लिया. संचालन डा. सुभाष वसिष्ठ ने किया.

प्रस्तुति : सतीश सागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न है, न होगी

डा. पालीवाल के लेख 'भाषा : अस्मिता की पहचान' पर कुछ कहना जरूरी है, क्योंकि यह भ्रमित करने वाला है. पहली बात, 'हिंदी दिवस' मनाना ही अप्रासंगिक है. इसका एकमात्र उद्देश्य हिंदी संबंधी सरकारी पाखंड को फैलाना है. तर्क यह दिया जाता है कि 14 सितंबर, 1948 को संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा (या राजभाषा) मान्य किया गया था. तब इसे 'राष्ट्रभाषा' (या राजभाषा) दिवस' की जगह 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाने की क्या तुक है? क्या 14 सितंबर को, संविधान में, हिंदी को 'हिंदी भाषा' का दर्जा दिया गया था?

'हिंदी दिवस' के लिये तेरहवीं शताब्दी में जाना होगा और अगर 'हिंदी' नामांकन की निश्चित तिथि नहीं मिले, तो इसे हिंदी के पितामह अमीर खुसरो के नाम पर मनाना ही विवेक का सूचक होगा. 14 सितंबर को सिर्फ और सिर्फ 'राजभाषा दिवस' के रूप में मनाने का ही कोई औचित्य हो सकता है. क्योंकि इस दिन ही हिंदी को यह शर्मनाक—और राष्ट्रहित की दृष्टि से खतरनाक संवैधानिक झांसा दिया गया था कि— **'देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी!'**

खुद भारत सरकार ही इस दिन को 'राजभाषा दिवस' के रूप में नहीं मनाती. इसके दो स्पष्ट कारण हैं. एक, इससे हिंदी के 'राजभाषा' होने पर जोर पड़ने का खतरा है. दो, चूंकि संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा कहीं नहीं और कतई नहीं दिया गया है. संविधान में हिंदी को डंके की चोट पर मूर्खों की भाषा का दर्जा दिया गया है, क्योंकि सिर्फ मूर्ख ही दावा रख सकते हैं, कि हिंदी को संविधान में राजभाषा का गौरवपूर्ण दर्जा दिया जा चुका है.

डा. पालीवाल की हिंदीनिष्ठा असिद्ध हो सकती है, लेकिन भाषा के लिये सिर्फ निष्ठा ही नहीं, बल्कि यह ज्ञान भी जरूरी है कि शब्द को उसके अर्थ के विपरीत चलाना झूठ रचना है. 'होगी' का मतलब होगी ही होता है— 'है' या 'हो चुकी' नहीं. हिंदी, संविधान चलन में आने के चार दशक बाद भी, 'होगी' के ही हवाले है- 'हुई' नहीं है!... और अब आगे कभी होने की गुंजाइश ही हमेशा-हमेशा के लिये समाप्त की जा चुकी है.

'जब तक एक भी अहिंदी भाषी प्रांत असहमत होगा' की संवैधानिक घोषणा के बाद, भारत सरकार और सर्वोच्च न्यायालय दोनों ही हिंदी के राजभाषा होने के सवाल से पूरी तरह (और अपनी तरफ से सदा-सर्वदा के लिये) पल्ला झाड़कर अलग हो चुके हैं. अब अगर अगले सौ-पचास सालों के बाद कभी तमिलनाडु समेत बाकी के सारे हिंदीतरभाषी प्रांत स्वानुराग से सहमत हो भी गये, तो सिर्फ एक मिजोरम या नागालैंड की असहमति हिंदी को 'फिर बैतलवा डाल पर' की इसी हास्यास्पद तथा शर्मनाक नियति में ला पटकेगी, जहां कि उसे पिछले चालीस सालों से अंग्रेजी की जूठन पर रखा जा रहा है. बहुमत की संसदीय प्रणाली के दावेदारों की तथाकथित लोकतांत्रिकता का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि 'अल्पतम मत' को (भी) बाकायदे संवैधानिक मान्यता 'बख्शीश' की तरह दी गई हो. जहां एक भी सासंद के असहमत होने पर राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री को पद से बर्खास्त करने की व्यवस्था नहीं हो, वहां एक भी अहिंदीभाषी प्रांत की असहमति के संवैधानिक झांसे का क्या होगा?

डा. पालीवाल ने संविधान के जिस अनुच्छेद 343 का गद्‌गद् भाव से उल्लेख किया है, उसमें हिंदी के साथ सिवा धोखाधड़ी के और कुछ नहीं किया गया है. यह एक सामान्य नियम है कि पद से पात्रता निबद्ध होती है और पात्रता होने (वांछित अर्हताएं पूरी हो जाने) पर ही नियुक्ति की घोषणा की जा सकती है. लेकिन हिंदी के साथ यह हद दर्जे की शर्मनाक संवैधानिक धोखाधड़ी की गई कि 'राजभाषा होगी' घोषित करने के बाद, भारत सरकार को यह काम सौंपा गया कि वह हिंदी को 'राजभाषा' पद के योग्य बनाये. फिर चाहे इसमें दस-बीस-तीस-चालीस-सौ-पचास-हजार-बीस-हजार साल ही क्यों नहीं लगें.

भारत सरकार और सर्वोच्च न्यायालय, इन दोनों से यह सवाल बिलकुल किया जाना चाहिये कि जब हिंदी में पात्रता थी ही नहीं, तब उसे 'राजभाषा' घोषित किये जाने को सिवा संवैधानिक धोखाधड़ी के और क्या माना जाय? पात्रता घोषणा के बाद अर्जित करने की वस्तु नहीं हुआ करती है.

हिंदी के लिये भारत सरकार-द्वारा किये गये जिन कारनामों का जिक्र **डा. पालीवाल** ने किया है, वो पाखंड के अपरिहार्य अंग हैं. **अंग्रेजी को भारत की राजभाषा बनाये रखने के लिये हिंदी के नाम पर कुछ-न-कुछ कर्मकांड करते रहना भारत सरकार की बाध्यता है. हिंदी अंग्रेजी को कायम रख सकने का सर्वोच्च साधन है, क्योंकि अन्य किसी भी भारतीय भाषा में अस्तर बन सकने की क्षमता नहीं है.**

डा. पालीवाल क्षमा करेंगे कहने को कि हिंदी को सरकार ने विकसित नहीं, बल्कि विरूपित तथा विकृत किया है. भारत सरकार ने जो हिंदी तैयार की है, वह पत्थर का अचार है और उसे समझना हिंदी के बड़े-से-बड़े विद्वानों के लिये भी असंभव है. यह 'सरकारी हिंदी' दरअसल हिंदी की उस सहज तथा सर्वग्राही प्रकृति को नष्ट करके तैयार करायी गई है, जिसके आधार पर हिंदी राष्ट्रभाषा बनी थी और आज भी बनी हुई है. राष्ट्र के पैमाने पर देश के अट्ठानवे प्रतिशत लोगों के संवाद की भाषा कल भी हिंदी थी और आज भी हिंदी ही है. इस महादेश की जनता को राष्ट्रीय स्तर पर संबोधित अथवा आंदोलित कर सकने की क्षमता सिर्फ एक ही भाषा में है—**हिंदी में!** हिंदी की यह विराट अभिव्यक्ति-क्षमता ही भारत सरकार की राह का रोड़ा है, क्योंकि उसका सारा संवैधानिक तथा प्रशासकीय ढांचा ब्रिटिश हुकूमत के नुस्खों पर टिका है और इसे कायम रखने को ब्रिटिश रॉयल लैंग्वेज अंग्रेजी जरूरी है.

डॉ. पालीवाल एक अनुभवसंपन्न सरकारी अधिकारी हैं. उनसे बेहतर कौन जानेगा कि **सिर्फ वही सरकार अपने सारे केंद्रीय काम-काज सामान्य जनता की समझ में नहीं आने वाली भाषा में चलाती है, जिसे जनता को अंधेरे में रखकर राष्ट्र की संपदा की मनमानी लूट-खसोट कायम रखनी हो. अंग्रेजी इसी औपनिवेशिक लूट-खसोट का माध्यम है.**

जहां तक हिंदी में बच्चों को शिक्षा देने में झिझकने का प्रश्न है, भारत सरकार हिंदी को विकसित करते हुए जिस मुकाम तक पहुंचा चुकी है, उससे लोगों में यह दहशत छा गई है कि **हिंदी माध्यम से बच्चों को पढ़ाना उनका भविष्य नष्ट करने के सिवा और कुछ नहीं होगा.**

अंग्रेजी को इस देश के लोग अंग्रेजी साहित्य या ज्ञान-विज्ञान से प्रेम में गले नहीं लगाये बैठे हैं. भारत सरकार ने ऊंचे प्रशासकीय ही नहीं, अपने केंद्रीय संस्थानों के हिंदी अधिकारी के पदों तक के लिये अंग्रेजी को अपरिहार्य बना रखा है. भारत सरकार को 'अंग्रेजी दिवस' या 'अंग्रेजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...खवाड़ा' मनाने की कोई जरूरत' नहीं. उसने अंग्रेजी को सारे केंद्रीय महत्व के राजकीय अप्रतिष्ठानों तथा कार्य-कलापों में अमरबेलि की तरह छा रखा है. 'पार्लियामेंट ऑफ इंडिया' से लेकर 'सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया' तक अंग्रेजी का एकाधिपत्य है. हिंदी 'सड़क की भाषा' है, संसद की नहीं. चूंकि संविधान में अंग्रेजी को घोषित रूप से राजभाषा का दर्जा देने की गुंजाइश नहीं, इसलिये नाना प्रकार के चोर-दरवाजे कायम किये गए हैं—हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिये गए होने का संवैधानिक झांसा सबसे मुख्य चोर-दरवाजा है!

भारत सरकार ने, आजादी के इन चालीस वर्षों में, हमें फिर उसी मनोदशा में पहुंचा दिया है, जहां हम 'इंडियंस एंड डौग्स आर नॉट एलाउड' के दौर में थे! सुप्रीम कोर्ट, पार्लियामेंट और पी.एम. सेक्रेटरियेट-जैसे न जाने कितने प्रभुसत्तावर्गीय प्रतिष्ठान हैं, जहां हिंदी हिकारत और प्रताड़ना की वस्तु है. जहां अंग्रेजी नहीं जाननेवालों के पास जानवरों की तरह मारे-मारे फिरने के और कोई रास्ता नहीं.

हिंदी दिवस, हिंदी पखवाड़े या विश्व हिंदी सम्मेलन हमारी राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक अस्मिता पर अंग्रेजी के कोड़ों की फटकार को नैपथ्य में रखने के साधन-मात्र हैं. **ये एक संघातक छलावा हैं, क्योंकि इनकी आड़ में अंग्रेजी के प्रभुत्व के प्रति संभावित विद्रोह को सिर नहीं उठाने देने की कूटनीति खेली जाती है.** भारत सरकार ने निजी संस्थानों के द्वारा सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनों स्तरों पर अंग्रेजी को हटाने तथा हिंदी के प्रचार प्रसार की दिशा में लगातार चालीस सालों तक किस तरह कदम पर कदम उठाये हैं, यह तो हमें जरूर बताया है **डा. पालीवाल** ने, लेकिन मंत्रालयों, न्यायालयों तथा केंद्रीय सरकार के अन्य प्रमुख कार्यालयों में हिंदी वालों पर पड़ने वाली उन लातों का जिक्र छिपा लिया है, जिनकी छाप हमारी पीठ पर साफ देखी जा सकती है!

जहां तक अंग्रेजी से जुड़े रहने के 'राजनीतिक कारणों' या 'अन्य विवशताओं' का सवाल है, हम फिर कहेंगे कि इसका एकमात्र कारण अंग्रेजी का भारत सरकार के केंद्रीय प्रतिष्ठानों तथा देश के बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के काम-काज की सर्वप्रभुत्व-संपन्न भाषा होना है और इसके पीछे विवशता नहीं, बल्कि देश के अट्ठानबे प्रतिशत सामान्य जनों को अंधेरे में रखने तथा उनकी स्वाधीनता, अस्मिता और आकांक्षाओं को कुचलने का इरादा मौजूद है.

हिंदी के मामले में भारत सरकार का रुख चोर से चोरी करने और साहूकार से जागते रहने को कहने के दोमुंहेपन के सिवा और कुछ नहीं. इधर तो वह हिंदी को प्रेम की भाषा बनाने का मधुर राग अलापती है, उधर 'हिंदी के खतरे से सावधान रहो' का मृदंगम् बजाये जाने का बंदोबस्त करती है.

डा. पालीवाल इस सच्चाई पर क्यों पर्दा तानना चाहते हैं कि मौजूदा संविधान में हिंदी देश की 'राजभाषा' न है और न ही निकट भविष्य में होगी!

□ **शैलेश मटियानी, इलाहाबाद, (उ.प्र.)**

इतिहास से छेड़छाड़

'बहादुर शाह जफर पर चलाया गया मुकदमा न्याय के साथ खिलवाड़' में हंस जी ने लिखा है कि "विजेता हमेशा विकसित लोगों को बदनाम करने के लिये उनके नेताओं पर झूठे मुकदमें चलाकर, न्याय का नाटक करके उन्हें सजा देता चला आ रहा है." दूसरे विश्व युद्ध में जर्मनी को हराने के बाद, ऐसा ही एक नाटक अमरीकियों और अंग्रेजों द्वारा न्यूरेमबर्ग के मुकदमें में किया था और इसकी तुलना अंग्रेजों द्वारा चलाये गये बहादुरशाह जफर पर झूठे मुकदमे से की है. हंस जी की इतिहास को देखने की समझ पर तो सब को अफसोस होगा ही, साथ ही सारिका जैसी जन चेतना की पत्रिका का संपादक मंडल मानवता के विरुद्ध गंभीर अपराध करनेवाले नाजियों पर चलाये गये न्यूरेमबर्ग ट्रायल का जफर पर चलाये गये पाखंड पूर्ण मुकदमें से तुलना को किस रूप में देखता है यह चिंता का विषय है.

हाल ही में भोपाल में ऐसी ही एक बेहूदा तुलना पर भारी हंगामा हो गया था, जिसमें एक अधकचरे ज्ञानी ने राजा महेंद्रप्रताप सिंह और बरकतउल्ला भोपाली के नेतृत्व में बनी पहली निर्वासित सरकार की तुलना जगजीतसिंह चौहान की खालिस्तान निर्वासित सरकार से कर दी थी. सारिका जैसी राष्ट्रीय पत्रिका में इस प्रकार की अमानवीय तुलना पर 'हंस' के 'झाड़ूवाद' पर हमारा विरोध दर्ज करें. साथ ही सारिका को चाहिये कि यदि वह मानवता, शांति और युद्ध विरोध के प्रति प्रतिबद्ध है तो न्यूरेमबर्ग ट्रायल को विस्तार से छापे जिससे कि यह बताया जा सके कि मित्र राष्ट्रों द्वारा जर्मनी पर चलाया गया मुकदमा विजेता द्वारा विजित को बदनाम करने के लिये नाटक नहीं था बल्कि मानवता और शांति के विरुद्ध अपराध का पर्दाफाश करने का छोटा प्रयास था. यह नाजीवाद का खतरा आज भी नस्लवाद और रंगभेद के रूप में मौजूद है.

□ **लाखन सिंह भोपाल (म.प्र.)**

हमारी बातचीत

'सारिका' के नये अंक में डा. नामवर सिंह के साथ हुई 'हमारी बातचीत' 'कहानी खुराफात की जड़ है' में प्रूफ की अशुद्धियां देखकर आश्चर्य और क्षोभ दोनों हुआ. गलतियां ऐसी हैं, जिनसे अर्थ का अनर्थ होता है. कहीं पर लाइनें गायब हैं और कहीं पर एक ही पंक्ति दो अलग-अलग स्थानों पर सर्वव्यापी ईश्वर की तरह विद्यमान है. 'धर्मयुग' तो अपने परिवार की ही पत्रिका है. फिर भी उसकी जगह उसी परिवार की एक साहित्यिक मासिक पत्रिका उसका नाम 'धर्मयुद्ध' छापे,

इसी तरह कहानी की पत्रिका अगर 'कहानीकार' की जगह 'उम्मीदवार' छापने लगे तो इसे क्या कहना चाहिए?

बहरहाल, प्रूफ की ऐसी भयावह और दुर्दांत गलतियां देखकर मैं तो सन्न हूं. शायद आप भी कम दुःखी नहीं होंगे. गनीमत हो कि डा. नामवर सिंह अपने मुंह से ऐसे शब्द और ऐसे वाक्य निकलते देखकर लज्जित न हों.

□ **उदय प्रकाश, नयी दिल्ली**

बधाई

कथाकार-पत्रकार हरीश पाठक को उत्तर प्रदेश पत्रकारिता संस्थान के गणेश शंकर अभिव्यक्ति पुरस्कार-87 से सम्मानित किया गया है. इस अवसर पर 'सारिका-परिवार' की ओर से हार्दिक बधाई!

हिन्दी मे पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एव हॉबी कोर्स)

- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करे
- संविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
- आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- महगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नही
- कोर्स फीस का आसान किस्तों में भुगतान
- कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं

विवरण के लिए डबाबी लिफाफ भेजे -

एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन

AID 10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कोई बलवान मर्द खुद पीछे हट कर औरत को भार उठाने के लिए आगे करेगा?

एक समझदार, जिम्मेदार मर्द, हर काम में अपनी पत्नी का हाथ बटाता है। संसार की हर खुशी उसके कदमों में डालता है। और जब परिवार सीमित करने का आता है सवाल, वह समझता है कि स्त्रियों के मुकाबले, पुरुषों की नसबंदी है बहुत आसान।

इतनी आसान कि इसे आप्रेशन भी नहीं कहा जा सकता चंद मिन्टों में हो जाता।

आप्रेशन मेज से ही चल कर,
आध घंटे में घर वापिस।
हफ्ता दस दिन करें हल्का काम,
और फिर आराम ही आराम।

यह सुरक्षित साधन है। इससे अनचाहे गर्भ का डर हमेशा के लिए खत्म हो जाता है। इसमें पुरुष की काम ग्रंथियों को बिल्कुल नहीं छेड़ा जाता है। वह पहले की ही तरह शारीरिक सुख का भोग कर सकता है। बल्कि, अब बेफ़िक्र होकर ज़्यादा आनन्द से । इसमें न कोई परेशानी और न ही कोई झंझट।

फिर जो मर्द सचमुच करते अपनी पत्नी से प्यार, वो कैसे करें नसबंदी से इन्कार?

याद रखें–
जरा सी सावधानी,
जिन्दगी भर आसानी।

अपना परिवार सीमित रखें, इसका निर्णय आपके हाथ में।

डी.ए.वी.पी. ८८/३४४

परिवार कल्याण से सम्बन्धित सूचना और सलाह के लिए दिल्ली में 3016731 पर टेलिफोन करें।
(सभी कार्य दिवस सुबह 9.00 से साय 5.30 बजे)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

महिलाओं के लिये

एक सुनहरा अवसर हाथ से न जाने दें

डायमंड कुकरी गाइड

मुफ्त

मुफ्त प्राप्त करने के लिये

अपने घर में अपनी लायब्रेरी योजना के सदस्य बनिये!

और 24/- की पुस्तकें 20/- में घर बैठे प्राप्त करें और पहली वी०पी० में 10/- की पुस्तक "डायमंड कुकरी गाइड" मुफ्त पायें। तरीका बहुत आसान है। 5/- सदस्यता शुल्क मनीआर्डर व डाक टिकट से भेजकर नीचे लिखा फार्म हमें भेज दें। हम आपको सदस्य बना लेंगे और 24/- की पुस्तकें 20/- की हर माह वी०पी० द्वारा भेजते रहेंगे।

इस माह के नये उपन्यास

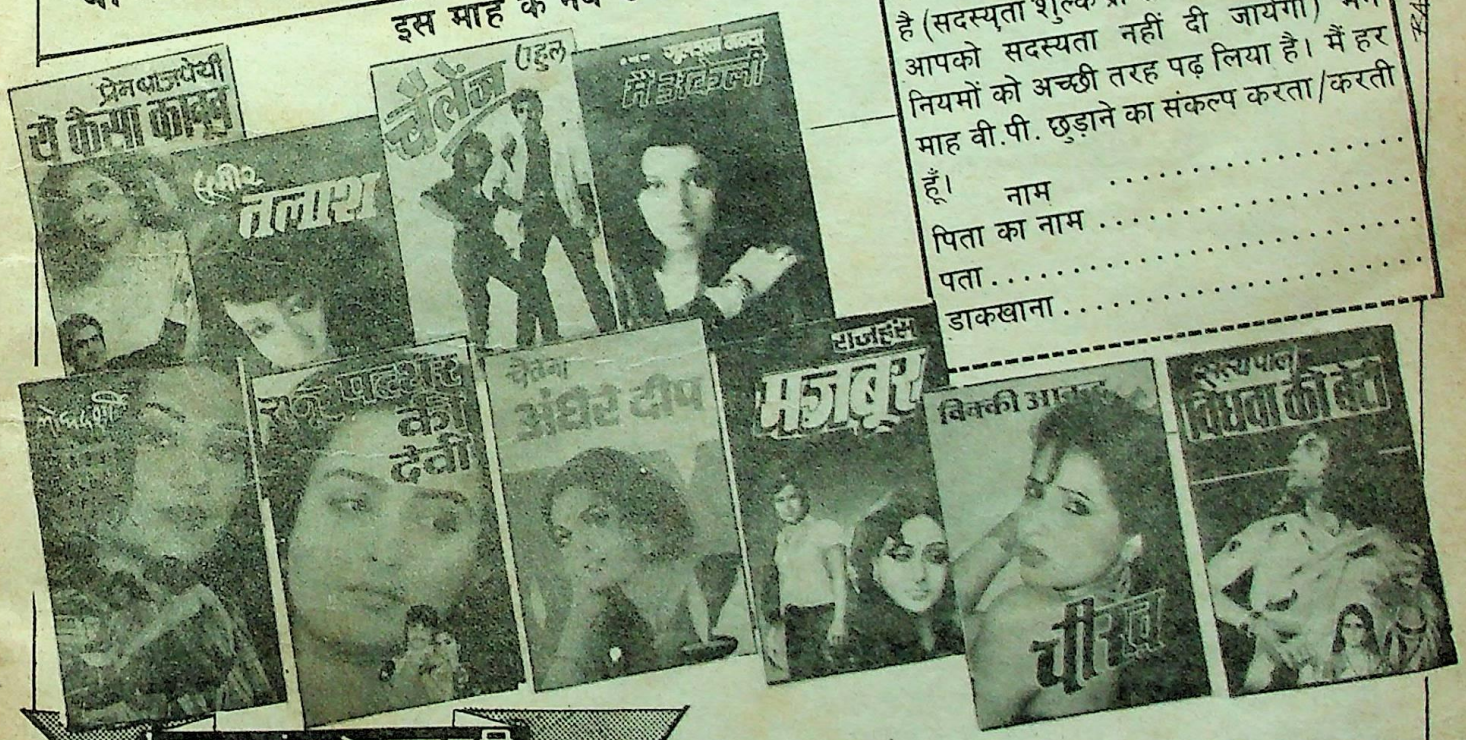

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

---------- सदस्यता कूपन ----------

मुझे अपने घर में अपनी लाइब्रेरी योजना का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनीआर्डर/डाक टिकट के साथ भेजा जा रहा है (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम .....

पिता का नाम .....

पता .....

डाकखाना .....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

उपहार अंक : दो

जैनेंद्रकुमार विशेषांक

कालजयी रचनाओं की संपूर्ण रचनाधर्मिता को समझने के संदर्भ में प्रकाशित 'सारिका' के गौरवशाली विशेषांकों की परंपरा में एक संग्रहणीय आयोजना...

कहानियां, उपन्यास, पत्र, संस्मरण, वक्तव्य, भाषण, और टिप्पणियां

- जैनेंद्र कुमार की अप्रकाशित, अल्पप्रसारित व प्रतिनिधि कथा-रचनाएं.
- दस्तावेजी पत्र जो पहली बार सार्वजनिक होंगे.
- जैनेंद्र जी का अब तक का अंतिम भाषण: राष्ट्र जीवन को मानव-नीति पर रखना सर्वथा असंभव है.
- जैनेंद्र के कथा-पात्रों का जीवंत संसार.
- संस्मरण : पचास साल पहले भी तस्वीर का कागज पर उतरना.
- वरिष्ठ कथाकार विष्णु प्रभाकर द्वारा चुनी गयी जैनेंद्र जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी.
- अपनी नजर में जैनेंद्र कुमार.

इंसान और रचनाकार
जैनेंद कुमार

विचारक, दार्शनिक और
खिलाड़ी जैनेंद्र कुमार

नव-वर्ष पर पाठकों, छात्रों, शोधार्थियों, अध्यापकों और रचनाकारों के लिए विशेष रूप से आयोजित एक अभूतपूर्व विशेषांक

- ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार 'अज्ञेय' द्वारा जैनेंद्र कुमार से की गयी लंबी बातचीत... जो अपने आप में एक धरोहर है.
- 'त्यागपत्र' के संदर्भ में रचनाकार से कमल किशोर गोयनका की बातचीत.
- मेरे पिता जैनेंद्र : प्रदीप कुमार का आलेख.
- ऐसे हैं हमारे दादा जी. जैनेंद्र जी के पौत्र व पौत्री के अनुभव.
- जैनेंद्र कुमार का कथाकार: क्या कहते हैं बाद की पीढ़ी के कथाकार...?: परिचर्चा, जिसमें भाग ले रहे हैं कई महत्वपूर्ण कथाकार.
- जब जैनेंद्र मैथिलीशरण गुप्त से मिले.
- द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण', भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, यशपाल और नरेंद्र कोहली के संस्मरण.

जैनेंद्र कुमार विशेषांक

साहित्य के अध्येताओं के लिए सहज, आत्मीय और अनिवार्य दस्तावेज.

सारिका

जनवरी : 1989

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का
एक अनूठा प्रोजेक्ट

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित
- सरस कथा शैली
- फोटोटाइप सैट
- बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई
- बहुरंगी आवरण
- वाजिब दाम

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें मंगाने पर डाकखर्च माफ

इस शृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

उदाहरणार्थ **रोमांचक कारनामे** में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो **खोजें** में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। **अनसुलझे रहस्य** में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो **खेल और खिलाड़ी, 101 व्यक्तित्व** व **वैज्ञानिक** क्रमशः जीवनी-प्रधान पुस्तकें हैं। **विनाश-लीलाएं** में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण है तो **दुर्घटनाएं** में मानवीय भूलों से हुई मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। **गुप्तचर संस्थाएं, जासूस** व **जासूसी कांड** में मकड़े के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो **प्रेरक-प्रसंग** किसी भी जहाज की तरह भटके मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक सचित्र **मिनि एनसाइक्लोपीडिया** है।

इस शृंखला में प्रकाशित पुस्तकें:

विश्व-प्रसिद्ध.... 1. खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल और खिलाड़ी 8. रिकॉर्ड्स-I 9. रिकॉर्ड्स-II 10. वैज्ञानिक 11. विनाश-लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग 16. चिकित्सा-पद्धतियां 17. बैंक डकैतियां एवं जालसाजियां 18. जासूसी-कांड 19. क्रूर हत्यारे 20. सभ्यताएं।

तैयारी में/प्रैस में

- रोमांस कथाएं
- अनमोल खजाने
- दुस्साहसिक खोज-यात्राएं
- राजनैतिक स्कैण्डल्स
- राजनैतिक हत्याएं
- भूत-प्रेत घटनाएं
- सैनिक क्रांतियां
- कुख्यात महिलाएं
- अय्याश
- महान क्रांतियां।

English versions available.
WORLD FAMOUS.... 1. Discoveries 2. Unsolved Mysteries 3. Adventures 4. Wars & Battles 5. 101 Great Lives 6. Religions, Doctrine & Sects 7. Disasters 8. Accidents 9. Civilizations 10. Scientists 11. Spies 12. Intelligence Agencies 13. Spy-Scandals

रेलवे, बस अड्डों व निकट के बुकस्टॉलों पर मांग करें। वी.पी.पी. से मंगाने के पते:—

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006.
शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.
ब्रांच आफिस: 22-2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलौर-560027

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ?
'पराग ज्ञान कोश' !

एक ही पत्रिका में मनोरंजन और ज्ञानवर्धन भी ! अरे वाह!

हां...हां...हॉकर से कह दो— पराग हर महीने जरूर देकर जाए.

पराग

बच्चों का सच्चा साथी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका
वर्ष : 28 अंक : 440, दिसंबर, 88

The Times of India
One Hundred and Fifty Years

उपहार अंक : एक

प्रकाशक :
रमेशचंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी
बिमला रानी
ज्ञान सिंह

प्रोडक्शन :
हरेंद्रसिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

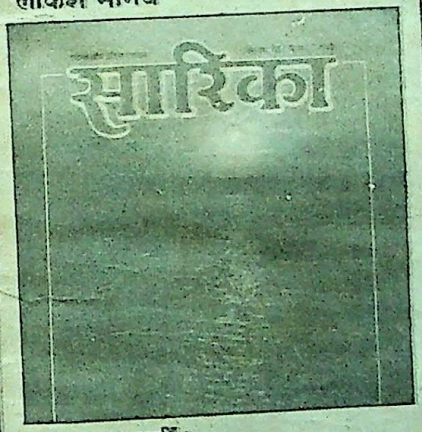

आवरण पारदर्शी :
फाल. एस. गिरोटा

आवरण एवं अंक सज्जा :
हरिप्रकाश त्यागी

कथा रचनाएं

12. आवाज के हाथ : हंसराज रहबर
18. जाहिल : चंद्रकिरण सोनरेक्सा
24. एहसास : मुद्राराक्षस
34. धुंधलका : गोविंद मिश्र
40. सूनी : ममता कालिया
46. एवजी में : से. रा. यात्री
52. इंतजार : सुभाष पंत
56. मालगाड़ी का सफर : रमेश गुप्त
60. पापा : सुशील श्रीवास्तव

धारावाही आयोजन

62. प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाएं : तीन धोके की टट्टी
66. दास्ताने अलफ लैला उर्फ किस्सा हजार रातें....
69. रुपहली रातें : दास्तोयेव्स्की

विशिष्ट आयोजन

8. टाइम्स के डेढ़ सौ वर्ष
11. सामयिक संदर्भ नोबेल पुरस्कार

साक्षात्कार

75. डा. नामवरसिंह से बातचीत की अंतिम कड़ी

स्थायी स्तंभ

10. सारिका कथा पहेली
38. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ : गोपाल चतुर्वेदी
45. नयी पौद
51. कथादर्शन : सुधीश पचौरी
71. धारा के विरुद्ध : राजेंद्र राव
72. कृतियां : राजकुमार सैनी
79. हलचल
80. आपकी बात

लघु कथा रचनाएं

21. निली : इदरीस शाह
30. ननद भौजाई : राजकमल चौधरी
42. किताब, कंघी और गंजे : तालस्तोय
48. सागर कन्याएं : खलील जिब्रान
54. पहाड़ी औरत : नरेंद्र प्रताप सिंह
58. तकिया : सुनील हबोला

कापीराइट © 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था :
10 दरियागंज नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

टाइम्स हाउस
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष :3312277 (20लाइनें)

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स टाक रोड
जयपुर

33 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-B/2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88 महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंवले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

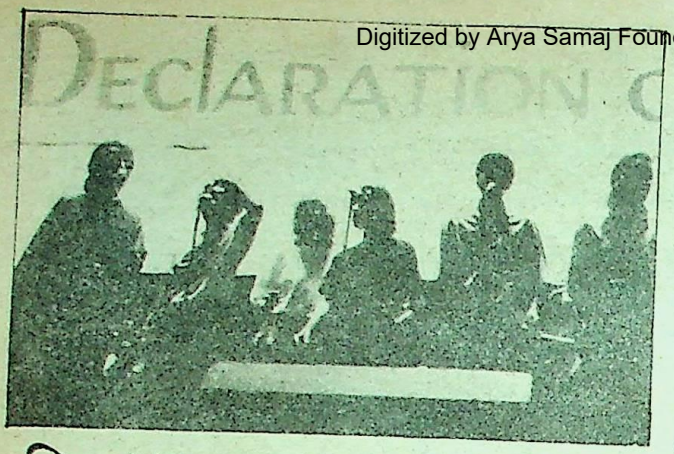

युवा वर्ग के नैतिक और चारित्रिक उत्थान के साथ-साथ मनोरंजन के यादगार अवसर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के डेढ़ सौ वर्ष

विश्व में ऐसे समाचार पत्रों की संख्या बहुत कम है जो १५० वर्षों तक बने रहे हों. 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ऐसे ही उल्लेखनीय समाचार पत्रों में एक है. भारत का तो यह ऐसा एक मात्र समाचार पत्र है. पिछले दिनों डेढ़ सौ वर्ष पूरे होने के इस महत्वपूर्ण अवसर पर टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह की ओर से समारोहों की एक वृहत श्रृंखला प्रारंभ हुई. २८ अक्तूबर को इस आयोजन श्रृंखला का औपचारिक उद्घाटन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने किया. उन्होंने कहा— 'टाइम्स ऑफ इंडिया ने पिछले चालीस सालों में पत्रकारिता के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित किये हैं... अखबारों को स्वस्थ और रचनात्मक आलोचना ही करनी चाहिए. अखबार द्वारा विरोधी या प्रतिद्वंद्वी की भूमिका में उतर आने से होता यह है कि जिसकी आलोचना की जा रही होती है, वह कान बंद करके अपने मन की करने में लगा रहता है.'. इस

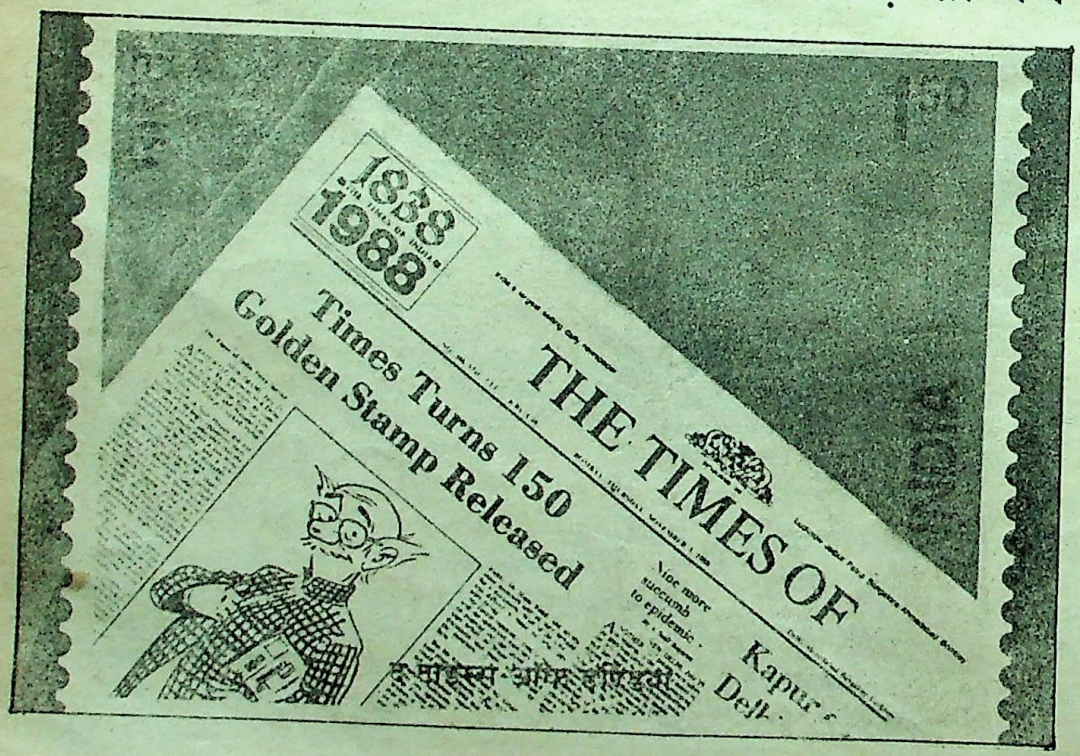

The Times of India
One Hundred and Fifty Year
SESQUICENTENNIAL

ऊपर बायें : रॉक शो.
ऊपर : प्रभात राग, शिवकुमार शर्मा.
बायें : टाइम्स ऑफ इंडिया के डेढ़ सौ वर्ष के उपलक्ष्य में जारी डाक टिकट
दायें ऊपर : आर. के. लक्ष्मण की पुस्तक का विमोचन करते हुए प्रधानमंत्री राजीव गांधी. साथ में हैं श्री अशोक जैन और आर. के. लक्ष्मण.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर पर उन्होंने टाइम्स ऑफ इंडिया के दो प्रकाशनों का विमोचन भी किया.

प्रधानमंत्री के इस उद्घाटन भाषण के पूर्व टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह के अध्यक्ष अशोक जैन ने प्रधानमंत्री व अन्य अतिथियों का स्वागत किया. श्रोताओं ने प्रकाशन समूह के अध्यक्ष की इस घोषणा का करतल ध्वनि से स्वागत किया कि पाठकों की शिकायतों पर विचार करने के लिए टाइम्स ऑफ इंडिया एक लोकपाल को नियुक्त करेगा. भारत में ऐसा पहली बार ही होगा. उन्होंने अखबारी कागज पर सरकारी नियंत्रण से पैदा होने वाली कठिनाई की चर्चा भी की. वर्तमान संपादक गिरिलाल जैन की प्रशंसा में उनकी टिप्पणी थी कि इन्होंने समसामयिक विषयों पर धारदार और संतुलित टिप्पणियां लिखकर टाइम्स की परंपरा को आगे बढ़ाया है. 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के वर्तमान संपादक गिरिलाल जैन संपादकीय स्वाधीनता और अखबार की नीति पर केंद्रित रहे.

दरअसल, यह आयोजन-श्रृंखला युवकों के नैतिक और चारित्रिक उत्थान के साथ-साथ मनोरंजन की दृष्टि से एक ऐसा विविधरंगी आयोजन भी है जो अपने प्रारंभिक चरण से ही देश भर में चर्चा का केंद्र बना हुआ है. क्रमिक तौर पर देखें तो इसकी शुरुआत ३० सितंबर को ही राजधानी स्थित जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम से हो गयी थी. यह एक ऐसा अवसर था जब भारत में पहली बार विश्व-स्तरीय रॉक-सितारे—ब्रूस स्प्रिंगस्टीन, स्टिंग, पीटर गैब्रियल, ट्रेसी चैपमैन और यूसून दूर अपनी स्वर लहरी का जादू फैलाने आये थे. लंबे समय तक दम साधे, समय-समय पर इन गायकों की धुन पर थिरकते युवा अपने जीवन का अविस्मरणीय अनुभव बटोरते रहे. मानवाधिकारों के लिए विश्व भर में लड़ी जा रही लड़ाई का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनते यह कलाकार स्वाभाविक तौर पर श्रोताओं के चहेते बन बैठे. यह यादगार आयोजन टाइम्स ऑफ इंडिया ने एमनेस्टी इंटरनेशनल के सहयोग से आयोजित किया जो सौभाग्य से इसका प्रवेश-पत्र पा सके थे.

इस विशिष्ट अवसर पर डाक विभाग ने भी अपनी हिस्सेदारी निभाते हुए डेढ़ रुपये का एक सुनहरी डाक टिकट जारी किया. ३ नवंबर को बंबई में आयोजित एक समारोह में संचार राज्य मंत्री गिरधर गोमांगो ने यह विशेष डाक टिकट जारी करते हुए देश के लिए टाइम्स ऑफ इंडिया द्वारा किये गये महत्वपूर्ण योगदान की सराहना की. यह दिन इस वजह से और भी यादगार बन गया कि ठीक इसी दिन टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के जैन परिवार के वरिष्ठतम सदस्य श्रेयांस प्रसाद जैन ने अपने जीवन के ८० वर्ष पूरे किये. संचार राज्य मंत्री ने उन्हें इस अवसर पर डाक टिकटों का एक एलबम भी भेंट किया. इस अवसर पर प्रकाशन समूह के अध्यक्ष अशोक जैन ने टाइम्स ऑफ इंडिया और भारत की नियति को एक-दूसरे से जुड़ा बताया.

आयोजनों की इस श्रृंखला में ११ नवंबर से 'प्रभात राग महोत्सव' का आरंभ होना राजधानी के संगीत प्रेमियों के लिए एक सुखद अनुभव रहा. प्रभाकर कोरकर, किशोरी अमोनकर, शिवकुमार शर्मा, सी.आर.व्यास, हरिप्रसाद चौरसिया, भीमसेन जोशी, गंगूबाई हंगल, मल्लिकार्जुन मंसूर जैसे शीर्षस्थ कलाकारों की कला का आनंद उपलब्ध कराने वाला ऐसा अवसर कभी-कभी ही मिलता है.

बहरहाल यह एक ऐतिहासिक अवसर है जब टाइम्स ऑफ इंडिया के डेढ़ सौ वर्षों के बहाने संपूर्ण भारतीय पत्रकारिता के इतिहास को परखा जा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली

सितंबर 1988

कथापहेली का सर्वशुद्ध हल

1. अन्नपूर्णा.
2. बेचारे लोग.
3. रस्किन बांड और गेटे.
4. 'अरेबियन नाइट्स'
5. □ 'त्यों-त्यों प्रकट होत उर अंतर कांच कलस जल झांई.'
   □ 'बेचारे लोग'.
   □ 'खूबसूरत मगर मजदूर.'
   □ 'दास्ताने अलफ लैला उर्फ किस्सा हजार रातें.'
6. ख्वाजा अहमद अब्बास.
7. पिछले डेढ़-दो दशकों में विशेष सक्रिय लेखकों को यथोचित महत्व प्राप्त हो सकेगा.
8. वहां न कला के लिए संदेश को तिलांजलि दी जा सकती है और न संदेश के लिए कलात्मकता की.
9. मेरी
10. धीरेंद्र अस्थाना द्वारा लिखित 'सुपारियां'.

इस बार 6000 प्रतियोगियों में केवल छः प्रतियोगी ही सर्वशुद्ध हल भेज सके हैं इन प्रतियोगियों में पुरस्कार राशि बराबर-बराबर वितरित कर दी जायगी.

इस बार के पुरस्कार विजेता

1. राजेंद्र मिश्र, 22/73, महावीर नगर, लंगड़े की चौकी रोड, आगरा.
2. रवींद्र कुमार निगम, 2/86, मेडिकल कॉलेज हॉस्टल, जबलपुर, (मध्यप्रदेश)-482003.
3. रमाकांत अग्रवाल, 176, इंदिरा कालोनी, बनी पार्क, जयपुर (राज.)
4. सुनील कुमार व्यास, 9-बी, जयश्री अपार्टमेंट, दीवान मेन, नवयुग नगर, बसई रोड (पश्चिमी) बंबई-809202.
5. महेश कुमार भाटी, मोहकमपुर, लिसाड़ी, मेरठ-250002
6. डा सुमित्रा गुप्ता, 73/6, गांधी नगर, जींद, हरियाणा.

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

सारिका कथा पहेली में भाग लेने के लिए आप भी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा पहेली के सभी प्रश्न सारिका : नवंबर 1988 पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 दिसंबर 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा फरवरी, 1989 के अंक में की जाएगी.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पत्रिका पाठकों तक देर से पहुंचती है वे पूर्तियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. अक्तूबर : 1988 की कथा-पहेली का निर्णय जनवरी : 1989 के अंक में प्रकाशित होगा. पूर्व घोषणा के मुताबिक यह निर्णय पहले दिसंबर : 1988 के अंक में प्रकाशित होना था.

सारिका कथा पहेली : दिसंबर, 1988

रिक्त स्थान भरिये

1. जर्मन नात्शीवाद के पीछे सबसे खतरनाक पक्ष था. .....
2. लक्ष्मीप्रसाद जी के प्रति परिवार के सदस्यों के एकाएक बदले व्यवहार का कारण था. .....
   .....
3. 'ए स्पेशल डे' का उल्लेख ..... के संदर्भ में आया है.
4. "एक शख्स के इतने हिस्से कर दिये जाते हैं?—बेटी, बहू, पत्नी, मां, नारी... पैदा होते ही उसे समझाना शुरू कर दिया जाता है कि उम्र के हर टुकड़े के दूसरों की सुविधाओं के अनुकूल आत्मसात कर जीने में ही उसका जीना है—एक निर्धारित स्वीकार..."
   यह कथांश ..... की ..... कहानी का है.
5. अपराधी द्वारा आत्म हत्या का संदर्भ ..... रचना में आया है.
6. अभिनय के चक्कर में जान से हाथ धो बैठने का वाकया ..... से संबंधित है.
7. अधोलिखित पुस्तकों के लेखकों के नाम कोष्ठक में लिखें—
   'सिंहावलोकन' ( ), 'सत्य के प्रयोग' ( ), 'समय एक शब्द भर नहीं है' ( ), 'रसीदी टिकट' ( ), 'अबुल कलाम आजाद' ( ).
8. 'गोल्ड रश' की प्रेरणा चार्ली चैप्लिन को कैसी मिली? .....
   .....
   .....
9. ..... के प्रकट उल्लास के पीछे विशाद था और अपने महान वैभव के बीच वे अपनी झुग्गी-झोंपड़ी के दिनों को याद करके आह भरते थे.
10. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ लघु रचना ..... है.

नाम .....

पता .....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच दशक का जिम्मेदार लेखन : महफूज

ज्यां पाल सार्त्र, सैमुअल बैकेट, सॉल बैलो, ग्राबिएल गार्सिया मार्केज, जॉन स्टेन बेक, अल्बेयर कामू, अर्नेस्ट हैमिंग्वे, पर्ल एस. बक, जॉन गाल्सवर्दी, अनातोले फ्रांस और भारत में जन्मे ब्रिटिश साहित्यकार रुडयार्ड किर्पलिंग जैसे लोगों को नोबेल पुरस्कार मिलते. समय यह स्थिति नहीं थी कि साहित्य के पाठक इनका नाम सुनकर चौंक उठें और पूछें कि यह रचनाकार अब तक अपनी दुनिया के घेरे से बाहर चर्चा में क्यों नहीं आ सका...? हमने आज तक इसकी कोई भी रचना क्यों नहीं पढ़ी... या इसका साहित्य हमारी भाषा में अब तक क्यों न आ सका था? मुझे लगता है कि हाल ही में नगीब महफूज को लेकर यदि इस तरह के सवाल बार-बार उठाए जा रहे हैं या लोग अचरज भरी नजर से महफूज के देश मिस्र की ओर देख रहे हैं तो यह एक अच्छी स्थिति ही है. ऐसे पुरस्कारों का काम ही यह होना चाहिए कि समय की चकाचौंध और प्रचार के शोर-गुल के बीच से ऐसे साहित्यकर्मी की खोज कर सके जो कहीं इन सबसे अप्रभावित अपने सृजन कर्म में लगा है. निश्चित रूप से नगीब महफूज इसी श्रेणी के रचनाकार हैं. मिस्र के प्राचीन वैभव के बारे में हम यदि इतिहास के माध्यम से जानकारी रखते हैं तो वर्तमान मिस्र के बारे में विश्व-प्रेस के माध्यम से ही हमारी जानकारी की भूख मिट पाती है... बावजूद इसके, यदि हमें वहां के इतिहास और वर्तमान संदर्भ में जीवन की धड़कन और जमीन की गंध पानी है तो नगीब महफूज को पढ़ाना जरूरी होगा.

नोबेल पुरस्कार तो एक जरिया भर है... जिससे नगीब-साहित्य के लिए विश्वभर की भाषाओं में अनुवाद के द्वार खुलेंगे... पर यह सच है कि अपने 32 उपन्यासों, 13 कहानी संग्रहों और 30 स्क्रीन प्ले के कारण यह रचनाकार अपने देश का एकमात्र प्रतिनिधि है. उसकी इस प्रतिष्ठा के पीछे भी एक लंबी कहानी छिपी है जिसकी शुरुआत होती है सन् 1911 से. काहिरा में 77 वर्ष पूर्व जन्मे महफूज की शुरुआती जिंदगी मध्यवर्गीय उपनगर में कटी. तकरीबन 23 साल की उम्र में काहिरा विश्वविद्यालय से दर्शन विषय में स्नातक हो जाने के साथ-साथ महफूज विश्व-साहित्य के भी अच्छे अध्येता हो गए थे. दास्तोयेव्स्की, ताल्स्तोय, कामू, एमिल जोला, बालजाक और फ्लाबेयर सरीखे रचनाकार उन्हें बहुत भाये थे. इन सभी को महफूज ने फ्रांसीसी माध्यम से पढ़ा. इस वक्त तक मुहम्मद हुस्सैन हैंकल की कृति 'जैनाब' को छोड़कर अरबी में विशेष सम्मानित लेखन नहीं आ सका था. 'उपन्यास' विधा तो एक तरह से इस देश के साहित्यकारों के लिए अपरिचित ही थी.

महफूज इसी परिवेश में रहते हुए पश्चिम की कथा-विधा 'उपन्यास' से परिचित हो रहे थे. करीब पांच साल के भीतर (1939) इनकी पहली पुस्तक प्रकाशित होकर आयी– 'ए गेम ऑफ फेट्स'. यह लगभग उपन्यास की शक्ल की एक गद्यरचना थी जिसमें लेखक के साहित्य-संबंधी आदर्श उद्देश्यों की पहचान तो खूब हो रही थी पर विधागत शिल्प चेतना का सर्वथा अभाव था. इसके बाद महफूज की कलम ने प्रयोग प्रारंभ कर दिए. ऐतिहासिक उपन्यासों के रास्ते होते हुए वे अपने लेखन का एक दशक पूरा करते-करते उस निर्णयात्मक मोड़ तक आ पहुंचे जहां से उनके लेखन की एक खास पहचान ही बननी शुरू हो गयी. शहरी जिंदगी की यथार्थपरक नजर से पड़ताल करती उनकी कृति 'ए न्यू काहिरा' क्या छपी कि फिर तो एक सिलसिला ही बन गया. महफूज ने सामाजिक विसंगतियों को पूरी गंभीरता के साथ समझते हुए तीन और उपन्यास लिख डाले. यह दरअसल, उनके उपन्यासकार के लिए वह 'होमवर्क' था जिसके बाद उनकी पहचान देश के प्रतिनिधि रचनाकार के तौर पर होने लगी. इधर महफूज की उपन्यासत्रयी पूरी हुई और उधर मिस्र में क्रांति हो गयी. यह सन् 1952 का समय था.

राजनीतिक व धार्मिक मसलों पर नयी नजर से देखने की यह ऐसी शुरुआत थी, जो अब तक मिस्र के लिए कल्पनातीत थी. महफूज अब साहित्य जगत के सिरमौर हो गए थे. फिर पांच-सात साल तक महफूज की कलम खामोश हो गयी और नजर अपना काम करती रही. प्रतीक कथा के रूप में 'द चिल्ड्रन ऑफ गैबेलावी' राष्ट्रीय दैनिक में छपी.

बहरहाल, यह मौका ऐसा है जब हमें नगीब महफूज के साथ-साथ उनके पहले अनुवादक स्टेवर्ट को भी बधाई देनी चाहिए जिसके जरिए महफूज को उनके मुल्क के बाहर भी जाना गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख कृतियां : 'विरासतहीन', 'बिना रीढ़ का आदमी', 'आंके बांके', (उपन्यास), 'मेरे सात जन्म' (आत्मकथा), 'वर्षगांठ' (कहानी-संग्रह).
संपर्क : एस-16, नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

□ हंसराज रहबर

आवाज के हाथ

तुम्हारा विश्वास झूठ है. झूठ में विश्वास अपराध है. मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो."

एक भारी और मजबूत आवाज सुनायी पड़ी. वे सभी चौंके और एक दूसरे के मुह की ओर देखने लगे. आवाज साफ थी. एक-एक शब्द दिल में उतरता चला गया था. सभी ने इधर-उधर देखा, दूर-दूर तक नजर दौड़ायी, पर कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ा. आवाज किधर से आयी? आकाश से उतरी या धरती से उगी? सभी हैरान थे और प्रश्नचिन्ह बन एक दूसरे के मुह की ओर देख रहे थे.

वे लोग थाने के पीछे तिकोने पार्क में बैठे धूप सेक रहे थे और अखबार बांच रहे थे. एक भरे शरीर का अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति पढ़ रहा था और दूसरे सुन रहे थे. अखबार पढ़ना और सुनना उनका रोज का मामूल था. पिछले चार-पांच साल में माहौल कुछ ऐसा बन गया था कि लोग-बाग खबरें रेडियो पर कान लगाकर सुनते थे. रात को आखिरी खबरें सुन लेते तभी नींद आती. सुबह उठते तो सबसे पहले अखबार पढ़ते. नाश्ता करना अथवा कोई दूसरा काम भले ही भूल जायें, पर अखबार पढ़ना नहीं भूलते. बिना अखबार पढ़े उन्हें चैन नहीं पड़ता. अधिकांश लोग जो अनपढ़ थे, अखबार और राजनीति में जिनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी, वे भी अब दिलचस्पी ले रहे थे. जिज्ञासा बढ़ रही थी. जैसे गर्मियों के महीने उपकारी जन प्यासों के लिए प्याऊ लगाते हैं, बढ़ती हुई जिज्ञासा को देखकर इस अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति ने पार्क में बैठकर सार्वजनिक रूप से अखबार पढ़ने-सुनाने का यह सिलसिला शुरू किया था. जो लोग अखबार पढ़ नहीं सकते, अखबार खरीद नहीं सकते, वे सब इस तिकोने पार्क में इकट्ठे होते थे. अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति पहले खबरें बांचता और फिर संपादकीय पढ़ता. सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो सुनते रहते और बीच-बीच में चौंक-चौंककर एक दूसरे का मुंह ताकते. आपस में बोलते, बतियाते. जो कुछ हो रहा था, उस पर आश्चर्य व्यक्त करते. बात जब चल निकलती तो चलती रहती. वे देर तक बोलते-बतियाते रहते और सोचते रहते, सोचते रहते, और बतियाते रहते. ये वे दिन थे, जब अनहोनी होनी बन गयी थी. अनहोनी ने होनी बनकर जो उत्पात मचा रखा था, वह बहुत ही भयंकर था. भेड़ियों, चीतों और आदमखोरों को भी शरमा देने वाला था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

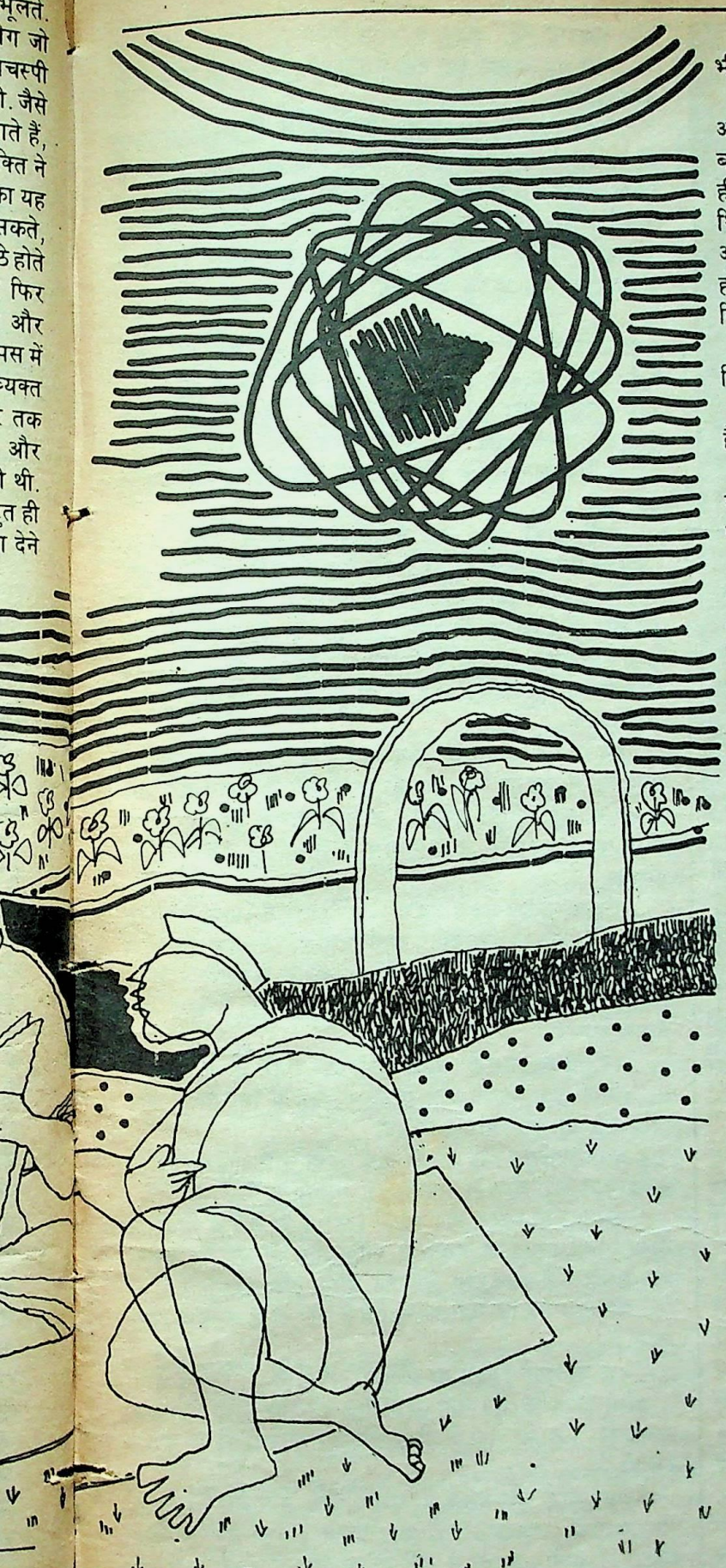

"जैसे आज अनहोनी होनी बन गयी है, क्या इतिहास में पहले भी कभी बनी होगी?" श्रोताओं में से एक स्वर उठा.

"क्यों नहीं? अनहोनी को होनी बनाने वाले जैसे आज हैं, वैसे अतीत में भी होते आये हैं. लेकिन इतिहास भी अनहोनी को होनी बनाने वाले ही लिखते हैं और वे इसे छिपा लेते हैं. इतिहास में आने ही नहीं देते." अधेड़ उम्र प्रबुद्ध व्यक्ति ने उत्तर दिया और गंभीर थिर स्वर में बात जारी रखी, "बुद्ध की अहिंसा से देश के दरवाजे आक्रमणकारियों के लिए खुल गये थे. परिणाम यह कि अनहोनी होनी बनी. हमारी बहू-बेटियां गजनी के बाजार में टके-टके बिकीं.

कुछ क्षण मौन के बीते. श्रोताओं के मुख से दुख भरी सांसें निकलीं.

"लेकिन आज अनहोनी ने होनी बनकर जो उत्पात मचा रखा है, उसे हम प्रत्यक्ष देख-सुन रहे हैं. इसे कोई कैसे छिपायेगा?"

"होनी बनाने वाले आज भी छिपाते हैं." कई स्वर एक साथ उठे, "बहुत-सी बातें जो हमें अखबार से मालूम होती हैं, वे रेडियो पर नहीं कही जातीं."

"उन लोगों ने यह भी तो कहा है कि लोग-बाग अखबार न पढ़ें. अखबार उन्हें बहकाते-बरगलाते हैं."

> यह किसी व्यक्ति विशेष की आवाज नहीं, हम, तुम सबकी पूरे राष्ट्र की आवाज है. यह आवाज हमारी और उन सबकी सम्मिलित सोच से पैदा हुई है. यह किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, पूरे राष्ट्र की आवाज है.

वाकई उन्होंने यह बात कही थी, पर इसका उल्टा असर यह हुआ कि अखबार में लोगों की दिलचस्पी और बढ़ी. पहले अखबार अपने-अपने घर में अथवा लायब्रेरी में पढ़ा जाता था, पार्क में बैठकर सार्वजनिक रूप से पढ़ने-सुनने का यह सिलसिला उसके बाद ही शुरू हुआ.

आज अखबार के मुखपृष्ठ पर पहली खबर की सुर्खी थी, 'पंजाब में तेरह मरे, जिनमें दो आतंकवादी भी थे.' पिछले पांच बरस में कोई दिन ऐसा नहीं था, जिस दिन पंजाब की हत्याओं की खबर न हो. पंजाब, जो कभी पंचनद कहलाता था, जहां नदियां कल-कल करती हैं, पंजाब जहां शर्बती रंग की दूधिया गेहूं उगती है, पंजाब, जहां लोग भांगड़ा नाचते और माहिया गाते हैं, पंजाब, जिसके कण-कण में हीर रांझा, मिर्जा-साहबां और सोहणी-महीवाल का रोमांस यों रच-बस गया है... कि पंजाब का हर युवक रांझा और युवती हीर कहलाने में गर्व महसूस करती है. वहां अब मौत मंडरा रही है और मनुष्य के हाथों मनुष्य का खून बह रहा है. आतंकवाद ने ऐसी विकट समस्या का रूप धारण कर लिया है, जो पूरे देश के लिए चिंता का कारण बनी हुई है."

अधेड़ उम्र के प्रबुद्ध व्यक्ति ने सबसे पहले यही खबर पढ़ी. वह पढ़ता रहा और श्रोतागण दम साधे सुनते रहे. फिर संपादकीय पृष्ठ पर एक लेख था– 'समाधान से और ज्यादा दूर' सुननेवालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिव्रता

उदय भानु पांडेय

प्रसिद्ध साहित्यकार विलियम सामरसेट मॉम के माता-पिता की जोड़ी इतनी बेमेल थी कि पेरिस में लोग इसे 'बिउटी एंड द बीस्ट' कहने लगे थे. मॉम की मां न केवल अनिंद्य सुंदरी थीं अपितु वे अपने पति से लगभग इक्कीस वर्ष छोटी भी थीं. लंबी भूरी आंखों, और ललछौंहे—सुनहरे रंगवाली लंबी-घनी केशराशि से मंडित उनका व्यक्तित्व प्रशंसा और चर्चा का विषय बन गया था. जिस व्यक्ति को इस रूपवती महिला का स्वामी होने का सौभाग्य मिला था वह अध्ययनशील और रोमैंटिक तबियत का होने के बावजूद एक निहायत भद्दा, नाटा और कुरूप आदमी था. फिर भी यह दंपति इतना सुखी और अनुरूप था कि पूरे पेरिस में लोग इसकी सफलता पर आश्चर्य-चकित थे. एक दिन लेडी ऐंगलेसी नाम भी एक अमरीकी महिला ने मॉम की मां से पूछ ही डाला, "तुम इतनी सुंदर महिला हो और ढेर-सारे पुरुष तुम्हें सर आंखों पर बिठाना चाहते हैं तब भी भला तुम इस नाटे और कुरूप पति के प्रति इतनी वफादार क्यों हो?"

सौंदर्य ने बड़ी शालीनता से उत्तर दिया, "वे कभी भी मेरी भावनाओं को आहत नहीं करते." □

में उत्सुकता जागी और उन्होंने लेख सुनाने का आग्रह किया. सुनानेवाले ने दृढ़ स्थिर स्वर में लेख पढ़ना शुरू किया :

"आज पंजाब में हर तरफ गोलियां चल रही हैं. इस साल के पहले महीने में अब तक लगभग 175 लोग मारे जा चुके हैं. इनमें पुलिस अफसर भी हैं, पुलिसवालों के हाथों सच्ची-झूठी मुठभेड़ में मारे जाने वाले आतंकवादी भी हैं. आतंकवादियों के हाथों खत्म होनेवाले तथा कथित पुलिस मुखबिरों के पूरे के पूरे परिवार भी हैं और सुबह-सवेरे सैर-व्यायाम के लिए निकलनेवाले बेकसूर आम लोग भी हैं. असल में आज पंजाब में यह मालूम करना मुश्किल है कि कौन किसको मार या मरवा रहा है. साफ सिर्फ यह है कि चारों तरफ चलती गोलियों में भूने जाने वाले लगभग सभी पंजाबी हैं और उनमें ज्यादातर का किसी तरह के राजनीतिक या आतंकवादी गुट से कुछ लेना देना नहीं."

प्रबुद्ध ने पहला ही पैरा खत्म किया था कि कुछ धीर-गंभीर आज सुनाई दी... "मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो."

लोग पहले खबरें सुनकर चौंकते थे, आज यह आवाज सुनकर चौंके, और पहले से कुछ अधिक चौंके. काफी देर इधर-उधर देखते रहे, पर कोई व्यक्ति नजर नहीं आया.

"क्या यह देववाणी थी?" श्रोताओं में से चार-पांच ने एक साथ पूछा.

"देववाणी नहीं, यह तो मनुष्य की वाणी थी. एक मनुष्य अपने ही देश के लोगों से मुखातिब था. उसके स्वर में मनुष्योचित व्यथा और संवेदना थी." प्रबुद्ध ने उत्तर दिया.

"फिर वह दिखाई क्यों नहीं दे रहा? मनुष्य था तो दिखाई भी देना चाहिए."

"यह बेशक अचरज की बात है. मनुष्य है तो उसे दिखाई देना ही चाहिए." प्रबुद्ध ने अपनी ऐनक उतारकर उसे रूमाल से पोंछा, सोचा और ऐनक दोबारा कान पर रखते हुए बोला, "हवा तेज है. पेड़ों के पत्ते सरसरा रहे हैं. हो न हो, यह सरसराहट ही वातावरण में गूंज उठी हो और हमारी अपनी मनोभावनाओं ने ही आवाज का रूप धारण कर लिया हो."

सुननेवालों की पूरी तसल्ली चाहे नहीं हुई, फिर भी उत्तर काफी हद तक तर्कसंगत था और वे आश्वस्त हुए.

प्रबुद्ध ने लेख पूरा पढ़ा. उसके बाद जो दूसरी खबर पढ़नी शुरू की, उसकी सुर्खी थी— 'वे सियाचिन में जोखिम से खेलते हैं.'

"ये सियाचिन क्या है और कहां है?" चार-पांच व्यक्तियों ने एक साथ पूछा.

"सुनो. अभी पता चल जायेगा." प्रबुद्ध ने उत्तर दिया, "बर्फीले मैदानों के आर-पार वे दो-दो दुश्मनों से लड़ रहे हैं. बर्फ गिरने पर उन्हें जिंदा दफन हो जाना पड़ता है. लेकिन कड़ाके की ठंड और ऊंचाईयों पर हो जानेवाली जान लेवा बीमारियां भी उन्हें डिगा नहीं पातीं. अपने मोर्चे पर डटे रहने वाले ये लोग— भारतीय सशस्त्र सेना के जवान हैं और उनका रण क्षेत्र है दुनिया की सबसे ऊंची जगह.

"इन सैनिक जवानों की आन का सवाल है भारत के जबर्दस्त सामरिक महत्व की बिलकुल की ढलवानवाली वीरान और उस ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी तलहटी. यानी हिमालय की दूर उत्तरी सीमा पर स्थित साल तोरा पर्वतमाला सियाचिन ग्लेशियर का इलाका."

एशिया के इस सबसे बड़े दूसरे ग्लेशियर में 1984 से भारत और पाकिस्तान के बीच झड़पें होती रहती हैं. कराबोस श्रृंखला में स्थित इस पर्वतमाला की कुछ चोटियां दुनिया में सबसे ऊंची हैं, जैसे के गैशरबुम, मिशरबुम, माल्तोरो कांगड़ी, अप्सरा और तेशम कांगड़ी."

"बड़े विचित्र नाम हैं. आज पहली बार सुनने में आ रहे हैं."

"हमारे इस महान और विशाल देश में विचित्रता और विविधता का कोई ओर-छोर नहीं."

"जब सियाचिन और उसकी ऊंची ऊंची चोटियां हमारी हैं तो पाकिस्तान क्यों बीच में अपनी टांग अड़ाता है."

"कल तक तो भारत और पाकिस्तान एक ही देश थे. दोनों की सीमा सियाचिन से जा लगती है. पाकिस्तान भी उस पर अपना हक समझता है और टांग अड़ाकर अपना हक जमाता है."

"परिणाम यह कि गोलियां चलती हैं और दोनों तरफ के लोग मरते हैं."

"जब गोलियां चलेंगी तो लोग तो मरेंगे ही."

इससे पहले कि बात आगे बढ़ती फिर वही धीर-गंभीर आवाज सुनाई दी. "... मेरे देश के लोगो, तुम उस अपराध का दंड भुगत रहे हो."

वे फिर चौंके और पहले से अधिक चौंके. हवा अब थम चुकी थी. पत्तों में सरसराहट नहीं थी लेकिन आवाज कहां से और किधर से आयी? धरती से उगी या आकाश से उतरी, कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं चल रहा था. इधर-उधर देखा, लेकिन आस-पास क्या दूर तक कोई भी व्यक्ति नजर नहीं आया.

"अगर यह देव वाणी नहीं, मनुष्य की वाणी है तो मनुष्य नजर क्यों नहीं आता? क्या हम इसे अपने मन का भ्रम मानें?"

"भ्रम कैसे मानें? यह मनुष्य की वाणी है. मनुष्य नजर भले ही न आये पर वह अपने देश के लोगों से मुखातिब है और बात जो कह रहा है, वह भी देश की, इस धरती की बात है, और सही है."

"बेशक बात बिल्कुल सही है और सोचने पर बाध्य करती है. आखिर एक ही देश के लोग एक दूसरे के दुश्मन क्यों बन गये? गोलियां क्यों चलती हैं? दोनों तरफ के लोग क्यों मरते हैं?" सात-आठ व्यक्ति एक साथ बोल रहे थे.

"पहले एक देश के दो और फिर दो के तीन बने. जिधर देखो, उधर सीमा, सीमा ही सीमा. सीमाओं की गिनती नहीं. हर सीमा पर गोलियां चलती हैं." एक साथ बोलनेवालों की तादाद दस-बारह थी, लेकिन स्वर एक सिर्फ एक था.

"निस्संदेह यह झूठ में विश्वास के अपराध का दंड है." इस बार एक साथ बोलनेवालों की संख्या पच्चीस-तीस तक पहुंच गयी थी. उनकी सम्मिलित आवाज दो बार सुनी गयी.

पच्चीस-तीस व्यक्तियों के सम्मिलित स्वर से प्रबुद्ध के मन में एक विचार अकस्मात कौंध गया. उसने अपना घुटना थपथपाया, आंखें चमक उठीं और एक मधुर मुस्कान होंठों पर तिर आयी. "सुनो! सुनो!!" उसने खुला पंजा ऊपर उठाया.

सभी की नजरें उस पर केंद्रित थीं. सभी आश्चर्यचकित से उसकी ओर देख रहे थे.

"मैंने इस आवाज का भेद पा लिया है." प्रबुद्ध ने गंभीर स्थिर स्वर में बोलना शुरू किया और बोलता चला गया. "यह किसी व्यक्ति विशेष की आवाज नहीं, हम, तुम, सबकी, पूरे राष्ट्र की आवाज है. जैसे हम-तुम यहां बैठे सोच रहे हैं कि ये घटनाएं क्यों घट रहीं हैं. उससे वह कैसे उबरेगा? वैसे ही देश और देश की जनता से प्यार करनेवाले पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्खन के सभी लोग सोच रहे हैं. यह आवाज हमारी और उन सबकी सम्मिलित सोच से पैदा हुई है. यह किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, पूरे राष्ट्र की आवाज है.

प्रबुद्ध की आवाज भी धीर-गंभीर थी. उसका एक-एक शब्द श्रोताओं के मन में उतरता चला गया. उन सबकी आंखें चमक उठीं. प्रबुद्ध की तरह उन सबने महसूस किया कि यह आवाज हमारी अपनी आवाज है और हमारी ही सोच से उत्पन्न हुई है. उन सबकी छातियां तन गयीं, मुट्ठियां भिंच गयीं और उन सबने हाथ ऊपर उठाकर इस मजबूत आवाज को समवेत स्वर में दोहराया, "तुम्हारा विश्वास झूठ है, झूठ में विश्वास अपराध है. मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगतन रहे हो."

तिकोने पार्क में उठी यह आवाज हवा के कंधों पर सवार होकर यत्रतत्र फैल गयी. हर जगह और हर क्षेत्र में सुनी जाने लगी. 'देश बचाओ' दिवस पर राज्य-राज्य, शहर-शहर और कस्बे-कस्बे में सभाएं आयोजित की गयीं. यह आवाज हर राज्य, हर शहर और हर कस्बे की हर सभा में सुनाई दी. संसद में त्रिपुरा के चुनाव का सवाल उठा. विपक्ष ने सत्ता पक्ष पर आरोप लगाया कि मतदान से तीन दिन पहले पूरे त्रिपुरा को अशांत राज्य घोषित करके फौज भेजना और मतदान से दो दिन

यातना

सुभाष राय

कमर से नीचे छींट का घाघरा. पैरों में घुंघरू, सिर पर बनावटी जटाजूट. ललाट पर त्रिपुंड. गठीला खुला हुआ बदन और कंधे पर लटकता सर्पाकार कोड़ा. साथ में मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटी नगाड़ा सम्हाले एक महिला बस इतना रतन को पहचान लेने के लिए काफी है.

वह सप्ताह में एक बार कटरा बाजार में निकलता है, दुकान-दुकान जाता है और भीख मांगता है. उसकी याचना का तरीका अन्य भिखमंगों से कुछ भिन्न है, जब पहली बार वह शहर में निकला था, तो मुहल्ले का मुहल्ला उसके पीछे चल पड़ा था लेकिन अब ऐसा नहीं होता. प्रायः सभी दुकानदार जानते हैं उसे. वे यह भी जानते हैं कि रतन चवन्नी से कम नहीं लेता. अगर कोई दुकानदार चवन्नी से छोटा सिक्का निकालता है तो पहले रतन की गर्दन हिलती है और फिर उसके हाथ कंधे पर लटके कोड़े की ओर बढ़ जाते हैं.

शनिवार, रतन बाजार में भीख मांगने में निकला था. उसके साथ उसकी बीवी भी थी, जिसके दोनों बाजू नगाड़े पर यंत्रवत् धमक रहे थे. कुछ-कुछ मारू जैसी आवाज. वह एक दुकान से दूसरी और दूसरी से तीसरी की ओर बढ़ता जा रहा था. पीछे-पीछे लड़कों का झुंड. सेठ रामदास की दुकान पर पहुंचकर वह खड़ा ले गया. दर्शकों का हुजूम उसे घेरे था. एक बार उसने अपनी मरियल-सी बीवी की ओर निहारा. नगाड़े पर चोट पड़ने लगी और रतन ठुमकने लगा. दाहिनी बांह पर उसने मोटी पट्टी बांध रखी थी, जिससे नीचे का हिस्सा कुछ सूज-सा गया था. पीठ का आधा भाग और पूरी बांह जगह-जगह फट गयी थी और चमड़ी के ऊपर गाढ़ा खून करिया गया था.

एक क्षण के लिए उसने अपनी खून से लथपथ बांह सेठ रामदास को दिखायी और फिर ठुमकने लगा. छम, छम, छम, नगाड़े की आवाज तेज हो गयी. सेठ आगे बढ़ा और दस पैसे का सिक्का रतन की ओर बढ़ा दिया. रतन की गर्दन नकारात्मक मुद्रा में हिली और फिर छम, छम, छम सेठ वही सिक्का लिए पड़ा था. अचानक नगाड़े की आवाज ठंडी पड़ी और रतन ने हाथ फैलाकर भीड़ को दूर करने हटने का इशारा किया. जगह मिलते ही रतन के कंधे पर लटका कोड़ा उसके हाथ में लहरा उठा. वह एक पैर पर चक्कर काट गया—छम, छमाछम—और दूसरे क्षण उसके हाथ में लपलपाता हुआ कोड़ा उसके शरीर पर बैठ गया. सटाक, सटाक, सटाक. देखते ही देखते उसने कई कोड़े अपनी खुली पीठ पर जड़ दिये. छरछराता हुआ ताजा खून जमीन पर फैल गया. सेठ ने चवन्नी उछाल दी और रतन दूसरी दुकान की ओर बढ़ गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले सवा सौ से अधिक व्यक्तियों की हत्या करवाकर ट्राइवल नेशनल वालंटीयर्स के आतंक का हौवा खड़ा करना खुली धांधली थी. यह चुनाव, चुनाव नहीं दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्रत की नृशंस हत्या है. तब संसद में भी यह आवाज सुनाई दी "..... देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो." सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों चौंके. दोनों की कुर्सियां डगमगयीं. दोनों परेशान थे और दोनों इस बात पर एकमत थे कि हो न हो, यह आतंकवादियों की आवाज है. आतंकवादियों को विदेश से कोई ऐसा यंत्र मिल गया है, जो इस आवाज को दूर-दूर फैलाता है. वरना उसका संसद में पहुंच जाना मुमकिन नहीं था. चुनाव में धांधली की जगह संसद की मर्यादा और लोकतंत्र की रक्षा का सवाल उठ खड़ा हुआ. इस सवाल को लेकर सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों चिंतित थे. कुर्सियां दोनों की डगमगाइयी थीं.

सी.बी.आई. को सतर्क किया गया. भेदिये इधर-उधर दौड़ाये गये कि वे इस आवाज के स्रोत का पता लगायें, उस स्थान का पता लगायें, जहां इस आवाज को फैलानेवाला विदेशी यंत्र लगा हुआ है भेदिये इधर-उधर दौड़ रहे थे. उन्हें यह आवाज सर्वत्र सुनाई पड़ी रही थी. लेकिन कहां से आती है, यह पता नहीं चलता था. वे नगर-नगर, गांव-गांव घूमते रहे, सुनसान स्थानों और बेकार पड़े अंधे कुओं तक में झांकते रहे. महीनों गुजर गये, लेकिन स्रोत का पता नहीं चला. आखिर एक भेदिया एक ऐसे व्यक्ति से अचानक टकरा गया, जो तिकोने पार्क में जाया करता था और जिसने यह आवाज वहां पहली बार सुनी थी.

सुराग मिला. खुफिया विभाग के उच्चाधिकारयों ने अखबार बांचनेवाले प्रबुद्ध व्यक्ति को तलब किया और पूछताछ शुरू हुई:

"तुमने यह आवाज सुनी."

"जी हां. सुनी."

"किसी व्यक्ति को देखा."

"जी, नहीं देखा."

"फिर तुम्हारे खयाल में यह आवाज किसकी है और कहां से आती है?"

"सच कहूं तो क्या सच कहने का कसूर माफ होगा?"

"हां! माफ होगा."

"श्रीमान, यह किसी व्यक्ति विशेष की आवाज नहीं, समूचे राष्ट्र की आवाज है और जन जन की सामूहिक सोच से पैदा हुई है."

"तुम सच नहीं, झूठ कह रहे हो. तुमने आवाज की यह व्याख्या करके लोगों को गुमराह किया है. राजद्रोह और आतंक फैलाया है."

प्रबुद्ध व्यक्ति को राजद्रोह फैलाने का आरोप लगाकर जेल में डाल दिया गया और एक अध्यादेश निकालकर सार्वजनिक रूप से अखबार बांचने और सुनने का पाबंदी लगा दी गयी. अध्यादेश में कहा गया था– "जिन लोगों को सोचने की तमीज नहीं, उन्हें सोचने का अधिकार नहीं. वे गलत सोचने हैं. अपनी इस ग़लत सोच से खुद भी गुमराह होते हैं और दूसरों को भी गुमराह करते हैं. यह आवाज जो जहां-तहां सुनी जा रही है, इसी गलत सोच में पैदा हुई है. यह आवाज हमारे राष्ट्रीय विश्वास को खंडित करती है. दिन-दिन बढ़ रहा आतंकवाद इसी गलत सोच का नतीजा है. यह

कच्चे मन का विद्रूप

अरविंद शर्मा

उसकी उम्र इस समय आठ वर्ष की है. अमर टी स्टाल पर काम करते हुए उसे पूरा एक वर्ष हो गया है. टी स्टाल व्यापारिक क्षेत्र है. वह अधिकांश दूकानों से, उनके मालिकों से, उनके ग्राहकों से परिचित हो चुका है. उसकी काम करने की क्षमता से प्रभावित होकर टी स्टाल वाला उसे शाम को खाने को टोस्ट भी देने लगा है. शुरू-शुरू में जब वह दूकानों में चाय पहुंचाकर देर से लौटता था तब अक्सर उसकी पिटाई हो जाया करती थी. पहले-पहल जब खाली ग्लासों में दो की तीन और तीन की पांच चाय उसे करनी पड़ती थी तो चाय गिर जाया करती थी, तब ग्राहकों के थप्पड़ भी उसे पड़ जाया करते थे. लेकिन अब वह 'ट्रेंड' हो गया है.

रोजवारी पर उसके मां-बाप ने उसे यहां लगा रखा है. अब वह साफ-सुथरा भी रहने लगा है. चोरी से खाने की उसकी आदत भी छूट चुकी है. मालिक भी बिना नागा एक पांच का नोट उसे पकड़ा देता है, जिसे उसका बाप अपनी अंटी में खोंस लेता है. रात को जब वह नौ बजे के लगभग घर पहुंचता है तब उसकी घर पर बड़ी बेसब्री से प्रतीक्षा की जाती है.

बहुत दिनों बाद आज उसकी पिटाई हुई थी, घर से बाप को भी साथ लाने को कहा गया था. मालिक ने यह भी कहा कि साढ़े चार रुपये में कई छोकरे चक्कर लगा रहे हैं. हुआ यह कि वह तीन दूकानों पर चाय पहुंचाने गया था. यह उसका सुबह का नियमित क्रम था. वह पहले जहां चाय देता था वहीं से खाली गिलास लेना शुरू करता था. लेकिन आज सुबह से ही बरसात की झड़ी लगी हुई थी और दूसरी दूकान पर जब वह पहुंचा तो बाजू से बहने वाले नाले में दूकानदार के बच्चे बीच बहाव में कागज की नाव बना-बना कर डाल रहे थे. बहाव के साथ नावें बह जाती थीं. उससे न रहा गया और वह उनके साथ बैठकर नाव बना-बना कर किनारे से छोड़ने लगा. दूर तक नावें बहने लगीं. सभी बच्चों ने हर्षित होकर तालियां बजाईं, उसके नेतृत्व को इस समय स्वीकार कर लिया गया. वह उन्हें नाव बहाने का अंदाज सिखाने लगा.

एक-डेढ़ घंटे तक जब वह स्टाल पर नहीं लौटा तो मालिक स्वयं उसे ढूंढने निकल पड़ा. वह अपने घुटनों पर एक कागज की तहें जमाने में तल्लीन था. मालिक ने खाली गिलासों को एक तरफ रखा और उस पर लात-घूंसे बरसाने लगा. उसके कच्चे मन में उस समय उसके बाप की तस्वीर उभर रही थी. जिसे ऐसे अवसरों पर उसे गेंद की तरह उठा-उठा कर दीवार पर दे पटकने में आनंद आता था.

इस अप्रत्याशित मार का उस पर अधिक असर नहीं हो रहा था. उसे लगा कि वह एक गेंद है और यह स्टालवाला उसमें उग आये अनावश्यक हाथ-पैरों को निकाल कर खेलने लायक बना रहा है. जो कुछ शेष रह जायेगा, उसका बाप उसे तराश कर गोलाकार रूप दे देगा और फिर ये दोनों मिलकर जमकर उससे खेलेंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम

श्यामसुंदर चौधरी

पिताजी को हिदायत के अनुसार मां दरोगा राम प्रसाद से अन्दर बैठने के लिए कहती हुई बोली,– "... वह आध-एक घंटे में लौटेंगे. जरा साइकिल ठीक करवाने गये हैं. आपको बैठने के लिए कह गये हैं...' और फिर मां रसोई में चली गयी, दरोगा कमरे में बैठकर एक पत्रिका के पन्ने उलटने लगा.

रग्घु उस वक्त दूसरे कमरे में अध्ययन कर रहा था. उसे दरोगा की पीठ दिखायी दे रही थी. उसके सीधे-सादे पिताजी के परिचय की वजह से शहर के सबसे अच्छे स्कूल में पिछले साल दरोगा की बच्ची की एडमिशन हो गया था. तब से उसका यहां आना-जाना शुरू हो गया था. रग्घु को वह कतई पसंद नहीं था. जब-तक शराब पीकर चला आता. पिताजी अपनी सिधाई के कारण उसे मना नहीं कर पाते. वह घंटों इधर-उधर की हांकता रहता. बात-बात पर भद्दी गालियों का प्रयोग करना उसके लिए बहुत जरूरी था. उसकी मां तो चुपचाप अपना काम करती रहती, पर दरोगा कितनी बुरी तरह उसे घूरता रहता.

एकाएक मेज पर चाय रखने की आवाज से रग्घु के विचार टूटे. लेकिन जैसे ही मां वापस जाने लगी, दरोगा एकदम से उस पर टूट पड़ा. मां के लाख प्रतिरोध करने पर भी वह उसे छोड़ नहीं रहा था. मुंह से गालियां भी बक रहा था. अंततः मां गिड़गिड़ाने लगी. दरोगा उसे निर्वस्त्र करने की चेष्टा कर रहा था.

रग्घु अचम्मित-सा सब कुछ देख रहा था. उसकी नसें जैसे फट जाना चाहती थीं. आंखों में खून दकहने लगा. उसकी समझ में नहीं आया, क्या करें. एकाएक उसकी दृष्टि चाय के भरे हुए कप पर पड़ी. दौड़के उसने कप उठाया. एक ही झटके में सारी चाय उसने दरोगा की आंखों में झोंक दिया. दरोगा घुटी-घुटी चीख के साथ वहीं बैठ गया.

पंद्रह दिन बाद जब एक रोज रग्घु स्कूल से नहीं लौटा तो उसके पिता परेशान हो उठे. रात भर जहां कहीं सम्भावना थी, एक आध रिश्तेदारों के साथ ढूंढ़ते रहे. अंत में निर्णय लिया गया कि सवेरे पुलिस में रिपोर्ट लिखाने जायेगा. पर सवेरे स्थानीय समाचार के उस विशेष कालम पर नजर पड़ते ही स्तब्ध रह गये– "तेरह वर्षीय रग्घु नाम का बालक कल शाम पुलिस की जीप से टकराकर घायल हो गया था. दरोगा रामप्रसाद जीप चला रहे थे. पुलिस सूत्रों के अुसार रग्घु तेज चलती हुई जीप के सामने से एकाएक दौड़कर सड़क पार करना चाहता था. हड़बड़ाहट में टकरा गया. मुख्य अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी..." □

आवाज उसे फैलाने में मदद करती है. जो कोई यह आवाज सुनेगा, उसे सही बतायेगा और उसे दोहरायेगा, देशहित और जनहित के लिए उसे सख्ती से कुचल दिया जायेगा."

इस अध्यादेश को ब्रोडकास्ट और टेलीकास्ट किया गया, अखबारों के जरिए प्रचारित-प्रसारित किया गया और पोस्टर छपवाकर दीवारों पर चिपकाये गये.

यह अध्यादेश जिस खतरे को टालने के लिए बनाया गया था. वह उल्टा और बढ़ा. लोग-बाग रेडियो सुनने और पोस्टर पढ़ने के लिए जगह-जगह इकट्ठे होते थे और जगह-जगह यह सवाल उठता था 'यह कैसा लोकतंत्र है, जिसने हमसे सोचने और बोलने का अधिकार भी छीन लिया?'

इस सवाल का उत्तर वही धीर-गंभीर आवाज देती थी– "मेरे देश के लोगो, तुम इस अपराध का दंड भुगत रहे हो."

लोग-बाग इस आवाज को न सिर्फ सुनते थे, बल्कि मुट्ठियां तानकर जोर-जोर से दोहराते भी थे. पुलिस आती थी, गोली चलती थी और बोलनेवाले हताहत होकर गिरते थे. लेकिन आवाज बंद नहीं होती थी. दोहरानेवाले उसे अधिक जोश से दोहराते थे. उन्हें पकड़कर जेल में बंद कर दिया जाता था.

अध्यादेश के विरोध ने कुछ ही दिनों में राष्ट्रव्यापी रूप धारण कर लिया. प्रबुद्ध व्यक्ति जो कल एक साधारण नागरिक था, पार्क में बैठकर अखबार पढ़ता था. जिसकी बात कोई सुनता, कोई नहीं सुनता था और जिसे बहुत कम लोग जानते थे, वह यकायक हीरो बन गया, उसका नाम कश्मीर से कन्या कुमारी तक गूंज उठा और उसकी रिहाई की मांग दिन-ब-दिन बढ़ने लगी.

युवक-युवतियों का एक विशाल जुलूस निकला. उनकी छातियां तनी हुई थीं और उनका जोश-खरोश देखते ही बनता थ. वे "हमारे साथी रिहा करो, रिहा करो." के नारे लगा रहे थे और मजबूत आवाज को समवेत स्वर में दोहरा रहे थे. पुलिस ने जुलूस को रोका. ऐलान किया– "दस मिनट के भीतर-भीतर तितर-बितर हो जाओ. यह आवाज गलत है. इसे दोहराने में देश की हानि है. तुम्हारी अपनी हानि है."

अध्यादेश विरोधियों ने इस चेतावनी का उत्तर नारे लगाकर दिया और उस मजबूत आवाज को दोहराकर दिया और दृढ़ स्थिर स्वर में कहा : "यह आवाज सही है. आज की हकीकत है. बिना तेग बिना ढाल का राग अलापने वाले चलायें गोलियां आतंकवादी हम नहीं वे हैं. वे जो इक्कीसवीं सदी के सपने दिखाते हैं. वे इस हकीकत को झुठला नहीं सकते. इस आवाज को दबा नहीं सकते."

दस मिनट तक नारे लगते रहे, अध्यादेश विरोधी युवक उस मजबूत आवाज को समेवत स्वर में दोहराते रहे. इसके बाद धांय धांय गोलियां चलीं. जुलूसवाले और जुलूस को रोकनेवाले आपस में गुत्थम-गुत्था हो गये. गोलियां चल रही थीं. हताहत धरती पर गिर रहे थे. लेकिन किसकी बंदूक किसके हाथ में है? कौन किस पर गोली चला रहा है और कौन मर रहा है, यह पता लगाना मुश्किल था. आखिर गोली चलनी बंद हुई. फिर से नारे लगने शुरू हुए. युवक-युवतियों का जुलूस आगे बढ़ा. उन्होंने जेल के दरवाजे पर जाकर दस्तक दी– "हमारे साथी रिहा करो!" दरवाजा खुला नहीं चरमराकर टूट गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ चंद्रकिरण सौनरेक्सा

जाहिल

सरकारी किरायेवाली इस पॉश कालोनी के आगे-पीछे टूटी-फूटी झोपड़ियों और कोठरियों, नीम बरगद के छतनार पेड़ों और शहर के बड़े गंदे नाले के पास दो हाते बसे हैं– छंगामल का हाता और डिप्टी साहब का हाता.

बढ़िया मखमली रजाई में लगी काली, मामूली गोट की भांति यह हाते की बस्तियां कालोनीवालों की पसंद भले ही न हों, पर उनके बिना भी उनकी गृहणियों को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता, ये भी वे सब जानते हैं. छंगामल हाते में अधिकतर चपरासी, ड्राइवर या माली, धोबी, बारी बसते हैं. वे कालोनी के साहबों के घरेलू लान या हाट बाजार का काम कर देते हैं और डिप्टी साहब के हाते में बसे गरीब मजदूरों की पत्नियां व बच्चे उन साहबी कोठियों में चौका-बासन, झाड़ू-पोंछा या बच्चे खिलाने का काम करती हैं.

शहर से दूर बसी इस कालोनी में यदि आस-पास में गरीब न बसे होते तो इस महंगाई के जमाने में कालोनी के साहब व मेम साहबों की साहबी काफी परेशानी में पड़ जाती. इसीलिये बहुत से साहबों ने अपने-अपने गैराजों में मोटर के साथ-साथ उनके ड्राइवरों या सरकारी चपरासियों को भी रहने की इजाजत दे रखी है.

कितनों ने कोठियों के आगे बाढ़ लगा के, जमीन घेर के लॉन बना लिये हैं? किसी को तो सरकार रोकने नहीं आयी. हम छह-सात फुट की एक कोठरी इस पीछे के मैदान के किनारे मूर्ति रखने को बना लेंगे तो कौन गजब हो जायेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवदत्त पांडे भी गन्ना विभाग में चपरासी है और डाक्टर भाटिया के गैराज में पत्नी व दो बच्चों सहित रहता है. इधर दो दिन से डाक्टर साहब की झाड़ू-बर्तन वाली नौकरानी बीमार पड़ी है, तो शिवदत्त ही किसी तरह घर की गाड़ी खींच रहा है, अर्थात झाड़ू-सफाई भी करता है और जूठे बर्तनों के अतिरिक्त (ब्राह्मणपन की रक्षा करते हुए) बनाने-पकाने के बर्तन भी साफ कर रहा है.

आज मिसेज भाटिया ने डाक्टर साहब से कहा, "भई रज्जो तो लंबी पड़ गयी है. किसी और नौकर-नौकरानी का प्रबंध करो ना, प्लेटें, प्याले और बर्तन धोते-धोते मेरे तो हाथों में लकीरें पड़ गयी हैं."

"अरे? इसके लिए, मैं या करूं." डाक्टर भन्नाये, "क्यों नहीं शिवदत्त से कहती कि अपनी बीवी को यहां काम पर लगाये—उसे अलग से पैसे दे देंगे."

"कहा तो था. पर वो बोला—मेमसाब मैं चोरी-छिपे आपके बर्तन धो देता हूं. बिरादरी में पता चले तो हमारा पानी बंद हो जाये, हम भी तो पहाड़ी बामन हैं."

"डैम साला बामन!" भाटिया ने मुंह चढ़ाकर कुछ सोचते हुए कहा, "खैर मैं उसी से पूछूंगा. वह तो हाते के बहुत से लोगों को जानता है."

"अजी मैंने कहा था किसी और को ढूंढ ला, पर वो तो बातें बनाने लगा कि मेमसाब डेढ़ सौ कोठियों की कालोनी है. कोई तैयार ही नहीं होती. फिर दो दिन काम करेगी. तीसरे दिन नागा. कहिये तो डिप्टी के हाते में गरीब मुसलमानों के घर हैं, वहां कोशिश करूं."

"अरे तो वही सही," भाटिया ने ऊंचे स्वर में उत्तर दिया, "रज्जो कौन असल महरी थी, सुना है, वो चमारिन है. पांडे से कहो जो भी मिले उसे ले आये. बस चोर न हो."

और शिवदत्त जब डिप्टी के हाते में नौकरानी ढूंढने पहुंचा, तो वहां रमजान अली की दुकान पर भीड़ जमा थी. रमजान की दुकान भी क्या है, अपनी रहने की कोठरी में ही उसकी छोटी सी—परचून की दुकान है. एक-दो बोरी आटा, चावल, थोड़ी घटिया किस्म की दालें, मसाले और नमक-तेल. हाते के अपने जैसे गरीबों को बेचता है, पर दुकानदार होने के नाते हाते में उसकी इज्जत है. शिवदत्त ने भीड़ में घुसकर देखा—रमजान अली सौदा बेचना छोड़, हामिद फल वाले के बेटे से उलझा हुआ था. अपनी मूंछ, पकी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए वो चिल्ला रहा था, "तुम साले मेरी दुकान में जूते पहनकर घुस आये? साथ में कुत्ता लिये हो. कित्ता नजिन जिनावर है. आने दे तेरे अब्बा को, तेरी हड्डी-पसली तुड़वाऊंगा."

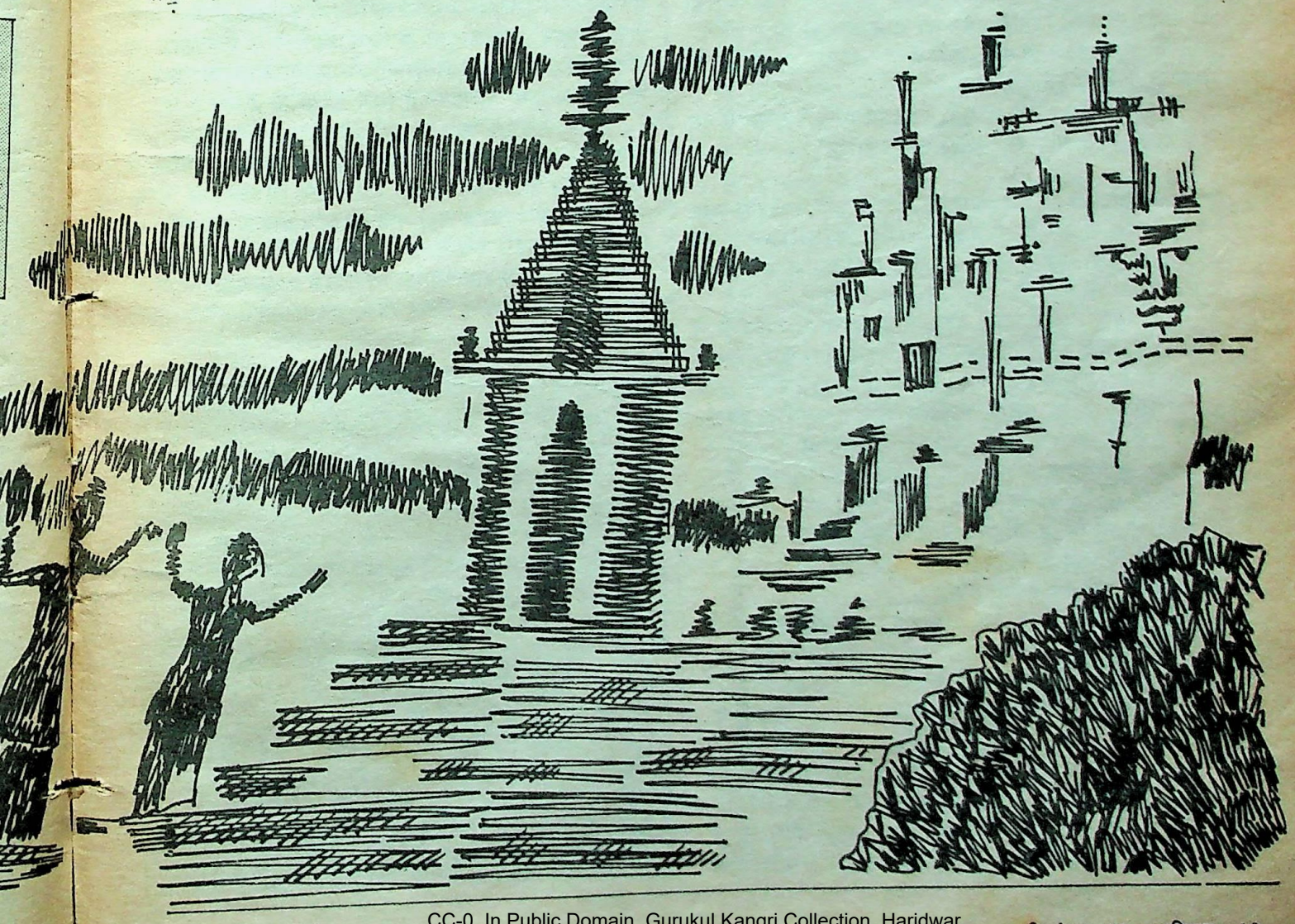

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे चचा, अब गुस्सा थूक दो, दो सौ गिराम दाल तोलो न. कुत्ता पीछे-पीछे चला आया तो मैं क्या करूं?"

"हूं. और तेरे जूते भी तेरे पीछे-पीछे चले आये. सब जानते हैं, मेरी दुकान की चौखट के भीतर जूता लाना मना है. तू जानबूझ के मुझे परेशान करने को जूता पहने घुसा है. जा भाग मैं नहीं दूंगा दाल-वाल."

लड़के ने झटका देकर रमजान से अपनी कमीज का पल्लू छुड़ा लिया, और बड़बड़ाता हुआ कालोनी की केंटीनवाली बड़ी दुकानों की तरफ चल पड़ा. "मत दो दाल. क्या तुम्हारी दाल में सोना जड़ा है. हम बिहारी की दुकान से ले आयेंगे."

"ले आ, ले आ." रमजानी चीखा, "पांच के दस लगायेगा बिहारी. डेढ़ पाव दाल लेने बिहारी की दुकान जा रहे हैं साले..."

"अरे चचा जाने भी दो– गुस्सा थूक दो." बशीर ने भीड़ में से कहा, "जल्दी से आधा किलो आटा तोल दो."

पर रमजानी ने तराजू उठाने की बजाय, पास पड़े मग से चौखट के आसपास पानी बखेर दिया, फिर झाड़ू से उसे फैलाते हुए बड़बड़ाया, "ठैर जा, भइये. पहले ये जूते, कुत्ते की नाजिसकारी मेट दूं. अरे. मैं इसी कुठरिया में पांचों टैम निवाज पढ़ता हूं. यहां जूतों का क्या काम. अल्ला को भी मूं दिखाना है." पांडे को देखते ही उसने समर्थन के लिए स्वर ऊंचा किया, "क्यों पांडे, क्या मैं गलत कहता हूं? तुम हिंदू लोग पूजाघर में गंगा जल छिड़कते हो तो क्या हम अपने निवाज पढ़ने की जगा पानी से भी न धोयें?"

"जरूर धोओ चचा, पर जल्दी करो," बशीर ने अपना थैला दिखाया, "आधा किलो आटा."

रमजानी ने झाड़ू किनारे रखी, फिर सामनेवाले सरकारी नल पर जाकर हाथ धोये और आटा तोलने लगा.

कई ग्राहक निबट गये, भीड़ छंट गयी तो पांडे ने धीरे से पूछा, "चचा. ये बसंती, साजिद की अम्मा और (नूरी) वगैरह सब लोग कहां गयी हैं? मैंने बसंती के लिए एक काम ढूंढा था. हमारे साहब के यहां नौकरानी की जगा खाली है."

"पांडे भाई. बसंती अब काम नहीं करेगी." रमजानी ने आकाश की ओर उंगली उठाकर कहा, "उस ऊपरवाले ने उसके बेटे की नौकरी लगवा दी. मोटर कंपनी में लग गया है कहीं. पहली तनख्वा मिली थी सो बसंती अलीगंज वाले महाबली पे परसाद चढ़ाने गयी है. साथ में नूरी, फहमिन सब गयी हैं."

"अरे!" शिवदत्त अचकचाया, "उन्हें क्यों ले गयी वा?"

"साजिद की मां उसकी धरम बहन बनी है. और नूरी उसके बेटे को राखी बांधती है. सो वो सबको ले गयी. फहमिन को काली माई की कढ़ाई चढ़ानी थी. वहीं पास में ही तो है काली माई का मंदर– बसंती वो भी चढ़वा देगी."

छोटी जातों के इस हेल-मेल से शिवदत्त खास परिचित नहीं है. क्योंकि कुछ भी हो वो ब्राह्मण है. पहाड़ी है तो क्या?

"चचा, तुम लोग काली माई मानते हो?"

"मानना पड़ता है भइया. फहमिन के बेटे को माता निकली थी. जब कढ़ाई बोली तब ठीक हुआ."

"अच्छा चचा. बसंती न मंडी, आपकी नजर में कोई और कामवाली है तो बताओ. हमारी मेमसाब बड़ी परेसानी में है."

रमजान अली ने सिर खुजाया. क्षण भर सोचा, फिर बोला, "पांडे, हाते में कुल चार घर हिंदू हैं, सो हरिया और मुंदर तो धोबी हैं– उनपे धुलाई का काम बहोत है, उनकी घरवाली चौका-बासन काहे करेंगी. बसंती तो अब कमाऊ पूत की अम्मा है और कलुवा तो तुम जानो, भंगी होगा."

"चचा. तुम्हारी बिरादरी में कोई करे तो बताओ. मेम साब उसे भी रख लेगी."

"तो भईये नूरी से पूछूंगा. आजकल बड़ी तंगी में है. माचिस बनाने का काम भी बंद है आजकल."

"जरूर जरूर भेज देना चचा." पांडे ने चेताया, "आज ही दोपहर से काम पर आ जाये," फिर धीरे से फुसफुसाया, "ढंग से सब काम करेगी तो मेमसाब सौ रुपया तक दे देंगी..."

मित्रों को विदा करके डा. भाटिया ड्राइंग रूम में लौटे तो शिवदत्त ने साहस जुटाकर अपनी बात रखी. "साब जी. हम लोग कालोनी में एक छोटा-सा मंदिर बनाने की सोच रहे हैं. आप बड़े साब लोग भी कुछ-कुछ सहायता कर दें."

"क्या?" भाटिया एकदम भड़क उठे, "शहर में क्या मंदिरों की कमी है. हर सड़क पर तो एक छोटा-मोटा मंदिर-शिवाला बना पड़ा है. कोई मंदिर-वंदिर नहीं बनेगा कालोनी में."

शिवदत्त को निराशा तो हुई, पर उसने फिर हिम्मत करके बात बढ़ायी, "साब जी, शहर में तो अनेकों मंदिर हैं. पर हाते में हम सब पचीस-पचीस घरों की गरीब औरतें उतनी दूर कैसे जायें. तीज-त्यौहार, मन्नत-पूजा के लिए कालोनी में एक छोटा-सा मंदिर बन जाये तो सबको सुभीता हो जायेगा. मेमसाब लोगों को भी कभी न कभी तो मंदिर से काम पड़ता ही है."

"तो वे अलीगंज चली जाती हैं. देखो शिवदत्त, यह सरकारी जमीन पर बनी कालोनी है. यहां जमीन कहां लोगे? कारपोरेशन तुम्हें जमीन देगी नहीं, समझे. इस बेकार के झंझट में, मैं या कालोनी के और साहब लोग नहीं पड़ेंगे. न कोई चंदा देगा. पूजा करनी है तो अपने घरों में मंदिर बनाओ."

शिवदत्त चुप हो गया. साहब को नमस्ते करके बाहर आया तो सड़क पर प्रतीक्षा करते उसके साथी चपरासियों ने पूछा, "क्या कहा साहब ने?"

वह महिला

विवेकानंद

उन दिनों जब मैं कलकत्ता में ही अध्ययन हेतु एक छोटे से मुहल्ले में रहा करता था तीन चार कमरे छोड़ सामने वह रहा करती थी. अक्सर पानी आदि भरने में सहायता भी करती थी.

उस दिन न जाने क्या जुनून था उसके ऊपर सीधे मेरे कमरे में आयी. मैं खाना बनाने में तल्लीन था. नजदीक आ बैठ गयी. अनाप-सनाप प्रसंग छेड़ बाहुपाश में जकड़ने का प्रयास करने लगी. काफी विरोध के बाद भी जब न मानी मुझे याद है कि वह तीव्र जलन उसे तबे की, जिस पर रोटियां सेक रहा था, मेरा बैठना और उस महिला का चमत्कृत हो देखना. उसके बाद वह मुझे दिखी भी नहीं. जाने कहां गयी. उसकी पश्चाताप से भरी आंखों की आज तक तलाश है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवदत्त ने उदास स्वर में उत्तर दिया, "साब कहते हैं हम कोई चंदा-वंदा नहीं देंगे. और यहां की जमीन सरकारी है, हमें नहीं मिलेगी."

"हूं," उमेदसिंह ने मुंह बिगाड़ा, "सरकारी जमीन! इस कालोनी के कितने साहबों ने बिना पूछे मोटर गिराज खड़े कर लिये हैं? कितनों ने कोठियों के आगे बाढ़ लगा के जमीन घेर के लान बना लिये हैं? किसी को तो सरकार रोकने नहीं आयी. हम छः-सात फुट की एक कोठरी इस पीछे के मैदान के किनारे मूर्ति रखने को बना लेंगे तो कौन गजब हो जायेगा?"

उमेदसिंह ठेले पर सब्जी बेचता है, देह से तगड़ा और स्वभाव से अक्खड़ है. पर बात वजनदार करता है. उसकी राह पर रामचरन माली ने भी टीप लगाई, "रही चंदे की बात. न दें साब लोग, हम सब मिलके दो-तीन हजार ईंटा और दस बोरा सीमेंट जुटा लेंगे. खुद दीवार उठा लेंगे."

"हां-हां हम कोई मिट्टी के बने हैं," उमेद बोला, "मंदिर तो बनेगा, धरम के काम में ये बड़े लोग चंदा न देंगे तो क्या— दोनों हाते वाले हिंदू-मुसलमान सब देंगे. यह मेरे जिम्मे छोड़ो."

और फिर तय पाया कि मंदिर जरूर बनेगा.

इस कालोनी में साहब लोग उचित-अनुचित निर्माण अपनी सुविधा और पैसे की अधिकता के अनुसार करते ही रहते हैं. फ्लैटों के भीतर तो लोगों ने कमरे, दालान, बाथरूम इत्यादि बनाये ही हैं, बाहर भी कुछ न कुछ किसी का बनता ही रहता है. ऐसे में किसी कोठीवाले को यह पता ही नहीं चला कि विमलाजी के स्कूल के पीछेवाले खाली मैदान के किनारे धीरे-धीरे छः-सात महीने में एक कोठरीनुमा मंदिर भी तैयार हो गया और उसमें मूर्ति की स्थापना भी हो गयी. पता चला तब, जब स्थापनावाले दिन पूरी रात भर शिवदत्त पांडे एंड कंपनी के लोगों ने रामायण का सुरदार और बेसुरा पाठ किया. हाते के नंग-धड़ंग बच्चे आधी रात तक 'बजरंग बली की जय' और 'राजा रामचंद्र की जय' के नारों से कालोनी के साहबों की नींद में विघ्न डालते रहे. रातभर के जागरण से बोझिल आंखें और रामायण पाठ के कारण भर्राये कंठवाले शिवदत्त ने जब एक दोने में चार बताशे व एक केले का प्रसाद मेमसाहब को थमाकर कहा, "मेमसाहब जी, ये अपने मंदिर का परसाद है. कल मूरत की स्थापना हुई थी," कि बाथरूम से निकलते भाटिया साहब ने शिवदत्त को घूर कर कहा, "ओह, तो ये रात भर उसी बात का होहल्ला मच रहा था!"

"जी साब जी." शिवदत्त ने विनीत स्वर में उत्तर दिया, "बस वो तो कल भर की बात थी. अब तो बस सबेरे-सांझ आरती करके पट बंद कर देंगे."

"हूं." भाटिया ने गुर्राकर कहा, "बड़ी जल्दी मंदिर बना डाला. सरकार से इजाजत ले ली थी?"

शिवदत्त ने सिर झुका लिया, तो उन्होंने धमकी के स्वर में कहा, "किसी ने शिकायत कर दी तो मंदिर-वंदिर सब धरा रह जायेगा. खिचे-खिचे फिरोगे. तुम लोग भी अजब औंधी खोपड़ी के लोग हो."

शिवदत्त नतमस्तक चुपचाप बाहर चला आया. उसे अभी बहुत से घरों में परसाद बांटना था. डिप्टी साहब के हाते के सभी हिंदू-मुसलमान घरों में, उसने दोनों में रखी चुटकी-चुटकी भर पंजीरी और चार-चार बताशों का प्रसाद दिया. रमजान अली ने

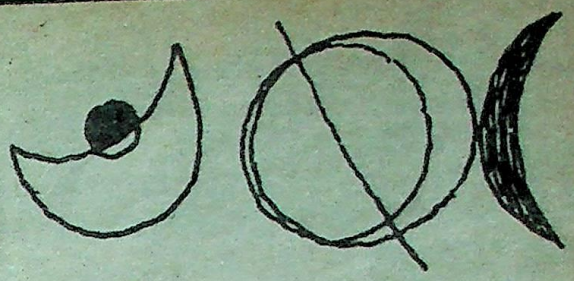

निली

इदरीस शाह

किसी व्यक्ति को पता चला कि निली अपने अनुयायियों को संगीत और मनोरंजन का अभ्यास करने को कहते हैं, साथ ही उन्हें किताबें पढ़ने और अजीब-अजीब जगहों में मिलने को प्रोत्साहित करते हैं.

यह व्यक्ति उनके पास पहुंचा और बोला, "मुझे तो अब याद भी नहीं है कि आप कितने बरसों से इन्हीं चीजों के खिलाफ काम करते आ रहे हैं. और अब मैं सुनता हूं कि आप-अपनी झूठी शिक्षा में इन्हीं का इस्तेमाल कर रहे हैं. या तो इस अभ्यास को छोड़ दीजिए या फिर बताइए कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं."

निली ने कहा, "न मुझे छोड़ने की जरूरत है, न कारण बताने की, फिर भी आपको बताकर मुझे खुशी होगी. कारण यह है, मैं उन लोगों को यह बातें करने को कहता हूं जो यह समझते हैं कि उन्हें क्या करना है. अधिकतर लोग नहीं समझते, और वे उस व्यक्ति की तरह हैं, जो किसी रेस्तरां में जाते हैं और सूप को पीने के बजाय, उसको बनानेवाले से प्यार करने लगते हैं. लोग गलत कान से संगीत सुनते हैं, इसलिए मैं तब तक उन्हें संगीत से दूर रहने के लिए कहता हूं, जब तक वे उसका लाभ उठाने के योग्य नहीं हो जाते, कि वे संगीत को खेल न समझें. जब तक वे नहीं समझते कि संगीत किस लिए है, वे इसका उपभोग वैसे ही करते रहते हैं जैसे कुछ लोग आग पर हाथ सेंकते रहते हैं, जबकि आग पर कोई चीज पक रही होती है. जहां तक माहौल का संबंध है, कुछ वातावरणों का निर्माण सौंदर्यवादियों द्वारा किया जाता है, जो अपनी कीमत को बढ़ने से रोक देते हैं और दूसरों को भी कुछ बहुमूल्य प्राप्त करने से पहले रोक देते हैं. वे उन लोगों की तरह हैं, जो तीर्थ यात्रा को जाते हैं और केवल यही सोच पाते हैं कि उन्होंने कितने कदम चला था!

"जहां तक अभ्यासों का संबंध है, मैं उन्हें वहीं तक अनुमति दे सकता हूं, जहां तक वे यह न समझ लें कि उन्हें छिछलेपन के बजाय गहराई में उतरना है, कि फल की सुगंध भले ही बहुत अच्छी हो, वह सूंघने के लिए नहीं, खाने के लिए है. सुगंध पर किसको आपत्ति हो सकती है? लेकिन अगर लोग खाना बंद कर देंगे, तो जल्दी ही इनसानियत का अंत हो जायेगा." □

अनुवाद : सुदीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी से पहले और बाद ताकत व जवानी के लिए मिलें या लिखें

मिलने का समय :
सुबह 11 से 1, शाम 6 से 7.30
रविवार सुबह 11 से 1 (केवल)

कीमती पुस्तक पत्र लिखकर मुफ्त मंगवाएं

अगर आप कई जगह से इलाज करवाकर भटक चुके हैं तो आईए, हम आपको ताकत व जवानी की दौलत से मालामाल कर दें। हमारे खानदानी शफ़ाख़ाना के चार पुश्तों से चले आ रहे कीमती नुस्ख़े जो किसी ज़माने में सिर्फ राजे-महाराजे, खान, नवाब व रईस-लोग ही इस्तेमाल कर सकते थे, अब आप भी हमारे उन कीमती शक्तिवर्धक खानदानी नुस्ख़ों को इस्तेमाल करके अपनी खोई हुई सेहत, ताकत व जवानी फिर से प्राप्त करके दीर्घायु तक सुखी विवाहित जीवन का भरपूर लुत्फ उठा सकते हैं। अगर आप बचपन की गलतकारियों की वजह से अपनी ताकत व जवानी खत्म कर चुके हैं, तो परेशान न हों। हमारे सैक्स स्पैशलिस्ट (Sex Specialist) से जल्द मिलकर या लिखकर जल्द लाभ उठाएँ। अपने दिल की बात आज ही डॉक्टर साहब से स्वयं बता दें या लिख दें। अधिकतर पुरुष शर्म, संकोच या अपनी कमजोरी छिपाकर विवाहित जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा करने से आपका जीवन नष्ट हो सकता है। लेकिन समय पर सही सलाह और सही इलाज से दुख को सुख में बदला जा सकता है। खानदानी शफ़ाख़ाना दिल्ली में कई मरीज आकर दिल की मुराद पाते हैं।

Note : पत्र व्यवहार से भी इलाज होता है। जो लोग नहीं आ सकते, पत्र में पूरी तफसील लिखकर घर बैठे मशवरा व दवाएँ प्राप्त कर सकते हैं। पत्र व्यवहार गुप्त रखा जाता है। दुनिया के कोने-कोने से खानदानी शफ़ाख़ाना के इलाजों के लिए मनी आर्डर, ड्राफ्ट, पौंड, डालर इत्यादि आते हैं

Note : विदेशों के लिए जरूरी सूचना

हमारे इलाज भारत के इलावा विदेशों के हर मुल्क में भी जाते हैं। विदेशी भाई रकम एडवांस में भेजें। दवाएँ हवाई जहाज से भेजी जाती हैं।

खानदानी शफ़ाख़ाना

4/12, पहली मंजिल (नज़दीक ब्राडवे होटल)
आसफ अली रोड़, नई दिल्ली -110 002
फोन : 267709, 269650

भी प्रसाद माथे से लगाते हुए कहा, "पांडे, अब तो पूजा-पाठ का भौत सुभीता हो गया ना. महजिद, मंदर बिना भी कोई जिनगानी है. पर खर्चा तो बहुत ढेर हुआ होगा?"

"हां, चचा. हम सबने मिलजुलकर मंदिर का खर्चा तो उठा लिया था. बस मूरत की परेसानी थी, पर वो बिहारी है न कालोनी का बड़ा परचूनिया, वो चीनी की गड़बड़ी में जेहल जाते-जाते बचा, तो उसने झट से जैपुर से मूरत मंगवा के मंदिर को भेंट कर दी."

"अच्छा! मैंने भी कल दूर से मूरत देखी थी. संगमरमर की है. और जमीन कित्ते की मिली?"

"जमीन." शिवदत्त ने सिर खुजाया, "चचा. जमीन तो मुंसपालटी की ही है. यूं ये पूरी कालोनी ही उसकी है. हमने वहां जाकर पूछा तो किलार्क बोला, 'अबे यहां कौन पूछता है. हाफिज जी ने दो सौ गज में अपनी भैंसों की डेरी बना ली. विमला जी ने स्कूल खोला... दसियों साल हो गये.' सो चचा सौ रुपये हमने उसे थमा दिये बस. वैसे मंदिर तो मैदान के एक कोने में बनाया है."

"खैर वो तुम जानो." रमजानी ने बे मुरब्बीपन छांटा, "पर हमारी कौम में तो महजिद जभी बन सकती है, जब वो जमीन मोल ली जाये या कोई बकफ कर दे."

"बकफ क्या होता है, चचा?"

"लो बकफ नहीं समझे– मतलब कोई बड़ा आदमी अपनी जगा दान में दे दे."

"अब चचा ये तो न कहो," शिवदत्त ने विरोध किया. "हम साहब के साथ दिल्ली घूमे, मथुरा भी गये. वहां हमने कई महजिद देखीं, तो बादशाहों ने मंदिर तोड़ के बनवा डालीं, तो क्या वहां जमीन का दाम दिया होगा?"

"अरे भइये," रमजानी ने पंजीरी फांक दोना फेंकते हुए कहा, "अब बास्साह तो बास्साह ठैरा, वो तो तलवार के जोर पे लोगों की जोरू भी भी ले लेते थे. उनकी भली चलाई."

ग्राहक आ गया और रमजान अली सौदा तोलने में व्यस्त हो गया.

पांडे भी प्रसाद की थाली लेकर दूसरी ओर चल पड़ा. रमजान ने आवाज लगाई, "पांडे अलगे महीने अजमेर सरीफ जा रिया हूं, कुछ मंगाना हो तो बताना."

पूरे हाते में सनसनी फैल गयी थी. औरतें बच्चे सभी दौड़कर मंदिर के आस-पास जमा हो गये थे. हाते के सभी पुरुष अपने-अपने रोजगारों और धंधे पर गये हुए थे, इसलिये शिवदत्त और उमेद की पत्नियां रमजान अली की दुकान पर पहुंची.

"चचा, चच्चा, गजब हुई गवा," उमेद की पत्नी ने घबड़ाये स्वर में पुकारा, "कालोनी में थानेदार आवा है. संग में चार सिपाही भी हैं."

"कोई बारदात हो गयी क्या?" रमजान दोपहर की नमाज को जाने ही वाला था. दुकान बंद करते-करते बोला, "किसी कोठी में चोरी हो गयी होगी."

"अरे नाहि चचा. उन तौ मंदिर तोड़ै के बदे आवा है. कहि रहा है कालोनी से सिकायत गयी है कि सरकारी जमीन पे नाजायज़ तौर से मंदिर बनावा है. ये भी घर नई है. पांडे दफ्तर गये हैं. हम जुनानी लोगा का करीं..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा यह बात है." रमजान चौंके, "कालोनी से किस ससुर ने सिकायत की होगी. हुआं तो सारी कोठियों में हिंदू बसते हैं? बहू. तू घबड़ावे मत, मैं कासिम को सैकल पै पांडे को बुलाने भेजता हूं. मैं भी निवाज पढ़के अभी हाल आया. घबड़ाओ मती. मंदिर तोड़ेगा! कोई अंधेर मचा है क्या?"

नमाज पढ़कर रमजान अली जब कालोनी के मैदान में पहुंचा तो शिवदत्त और बंसी नाई आ चुके थे. थानेदार उन्हें धमका रहा था, "अबे तुम लोगों के बड़े पर निकल आये हैं. सरकारी जमीन पे मंदिर बना डाला. अपनी मूर्ति-बूर्ती उठा लो. यह कमरा कल गिरा दिया जायेगा."

"साब? थानेदार साब. ऐसा जुलुम मत कीजिए. साब," शिवदत्त ने खुशामद की, "आप भी हिंदू हैं साब. आप मंदिर तोड़ेंगे तो पाप लगेगा."

"हूं. पाप लगेगा? हम तो अपनी सरकारी ड्यूटी पूरी करेंगे. यह कालोनी की जमीन कारपोरेशन की है. यहां कोई प्राइवेट आदमी कुछ नहीं बना सकता. क्यों बनाया तुमने मंदिर?"

"पर... पर साब," बंसी ने शिकायती स्वर में कहा, "कालोनी में तो कई साहबों ने कोठियों के बगल में गिराज बना लिये. ये जो इस्कूल आप देख रये हैं, ये भी मुन्सपालटी की जमीन पे बना है. दस बरसे हो गये इसे."

"और बो हाफिज जी की डेरी," शिवदत्त ने दिखाया. डेढ़ सौ गज जमीन घिरी है भैंसों से, चार दीवारी है– टीन छाया है. इसे तो कोई तोड़ने नहीं आया."

थानेदार ने झल्लाकर उत्तर दिया, "ठीक है– ठीक है, बने होंगे. पर जब तक हमें शिकायत नहीं पहुंचे, हम लोग क्यों तोड़-फोड़ करेंगे. मंदिर की तो ऊपर शिकायत पहुंची है. और बात सही भी है. यह आठ फुट जमीन जिस पर मंदिर बना है, सरकारी है."

शिवदत्त व बंसी का मुंह धुआं हो गया. गरीब आदमी थानेदार से क्या बहस करें. फिर भी पांडे ने कहा, "साब, सौ रुपये तो हमने वहां दफ्तर में भी दिये थे."

"अच्छा– रिश्वत देकर आये थे? ये दूसरा जुर्म है." थानेदार ने एक बार वहां जमा नंग-धड़ंग बच्चों व मैली-कुचैली धोतियों में लिपटी हाते की स्त्रियों पर रोबदार दृष्टि डाली– फिर जोर से कहा, "ये लोहे का फाटक और मूर्ति कल तक हटा दो. कोठरी दो दिन बाद गिरा दी जायेगी."

"मंदिर नहीं गिराया जा सकता थानेदार साब," भीड़ में से आगे बढ़ते रमजान अली ने कहा, "ये मंदिर का कमरा पूरे साल भर में बन पाया है. जित्ता चंदा हो जाता था उतनी दीवार उठ जाती थी. तब तो कालोनी के साहबों ने सिकायत नहीं की. दस महीने ये मंदिर बिना मूरत खड़ा रहा, तब तो आप गिराने नई आये."

"अरे मियां भाई. तुम काहे को इस मामले में टांग फंसा रहे हो," थानेदार ने मजाक में कहा, "तुमने कौन पूजा करनी है."

"वाह साहब वाह. खुदा का घर ठैरा, वो मंदर हो या महजिद. इज्जत तो दोनों की बराबर है. जब तक इस कोठरी में मूरत की स्थापना नहीं हुई थी– आप तोड़ जाते ये कोठरी. पर अब जब इनके भगवान यां पर बिठा दिये गये, तब बात और है. ये मंदिर नहीं टूटेगा साब. हम सब हाते वाले सत्तियागिरै कर देंगे–जान दे देंगे या पर..."

मेरी टाइलर उवाच

जहां तक मेरी बात है, मैं नक्सलवादी आंदोलन के बारे में किसी व्यापक जानकारी का दावा नहीं कर सकती. जो कुछ मैं जान सकी हूं, उसका एक काफी बड़ा हिस्सा मैंने जेल में रहकर ही जाना है. जिन नक्सलवादियों के संपर्क में मैं आयी, उनकी निष्ठा और ईमानदारी ने, भारतीय जनता की चिंता के लिए उनकी सच्ची चिंता ने, उनकी देशभक्ति ने और आत्म-बलिदान के लिए हमेशा तैयार रहनेवाली प्रवृत्ति ने मुझे बेहद प्रभावित किया. मैंने जेल के कर्मचारियों और कैदियों को समान रूप से उनकी प्रशंसा करते सुना– वे उनके साहस, व्यापक भ्रष्टाचार के प्रति प्रतिरोध, निस्वार्थता और बेहद दलित, पीड़ित तबके के साथ भी पूरी तरह से घुल-मिल जाने की उनकी क्षमता की प्रशंसा करते थे. सरकार के जबरदस्त दमन के बावजूद नक्सलवादी आंदोलन का बने रहना ही इस बात का संकेत है कि भारतीय जनता की आवश्यकताओं के संदर्भ में इस राजनीति का कितना ज्यादा औचित्य है. भारत के संसदीय जनतंत्र को उन्होंने एक धोखा कहकर नामंजूर किया और 26 जून 1975 की घटनाओं ने तथा अब संसदीय प्रणाली द्वारा किसी कारगर रूप से काम कर सकने में विपक्षी दलों की पूर्ण असमर्थता ने इसे साबित कर दिखाया है, आंतरिक आपात स्थिति की घोषणा के कुछ ही दिनों बाद कांग्रेस सरकार ने नक्सलवादी गुटों पर आधिकारिक रूप से प्रतिबंध लगा दिया. लेकिन वे काफी पहले से गुप्त संगठन के रूप में काम करने के आदी थे इसलिए वे पहले की तरह काम करते रहे. अंततः समय की बता पायेगा कि भारत की समस्याओं के समाधान के लिए नक्सलवादी कोई राजनीतिक नेतृत्व दे सकेंगे या नहीं... □

('भारतीय जेलों में पांच वर्ष' से)

वहां जमा भीड़ में जैसे बिजली-सी कौंध गयी. शिवदत्त के साथ-साथ हिंदू-मुसलमान, स्त्री-बच्चे सभी चीखने लगे, "सतियाग्रह करेंगे. इस मंदिर पे जान दे देंगे– जैय बजरंग बली की जै."

थानेदार अचकचा गया. वो फसाद नहीं चाहता था. उसे रमजान अली पर गुस्सा आया, पर करे क्या– भीड़ बढ़ती जा रही थी.

"अच्छा-अच्छा. बंद करो ये बकवास." वो जोर से डंडा हिलाकर बोला, "तुम जाहिलों के मूं कौन लगे. ठीक है–ठीक है. नहीं तोड़ेंगे हम मंदिर. पर अब कोई शिकायत-विकायत नहीं पहुंचनी चाहिये," फिर वो रमजान की तरफ मुड़ा, "वाह मियां, तुम्हारा भी जवाब नहीं. तुम्हीं इनके बजरंग बली बन गये वरना..."

और "जै बजरंग बली की जै." "राजा रामचंद्र की जै" के नारों के साथ "थानेदार साब की जै" के बीच थानेदार साहब अपने फौज-फाटे सहित बिदा हो गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 21 जून 1933. बेहटा, लखनऊ.
प्रमुख कृतियां : 'प्रपंच तंत्र', 'दंडविधान' (उपन्यास), 'मेरी कहानियां' (कहानी संग्रह), 'तेंदुआ', 'आला अफसर' (नाटक)

लंबी कहानियों का यह सिलसिला प्रारंभ हुआ था द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी 'सरस्वती' से. पिछले अंक में दूसरी कड़ी के रूप में प्रकाशित हुई थी कवि-कथाकार रामेश्वर शुक्ल अंचल की कहानी—'देहगाथा'. अब प्रस्तुत है, इसी क्रम को आगे बढ़ाती कहानी—

□ मुद्राराक्षस

एहसास

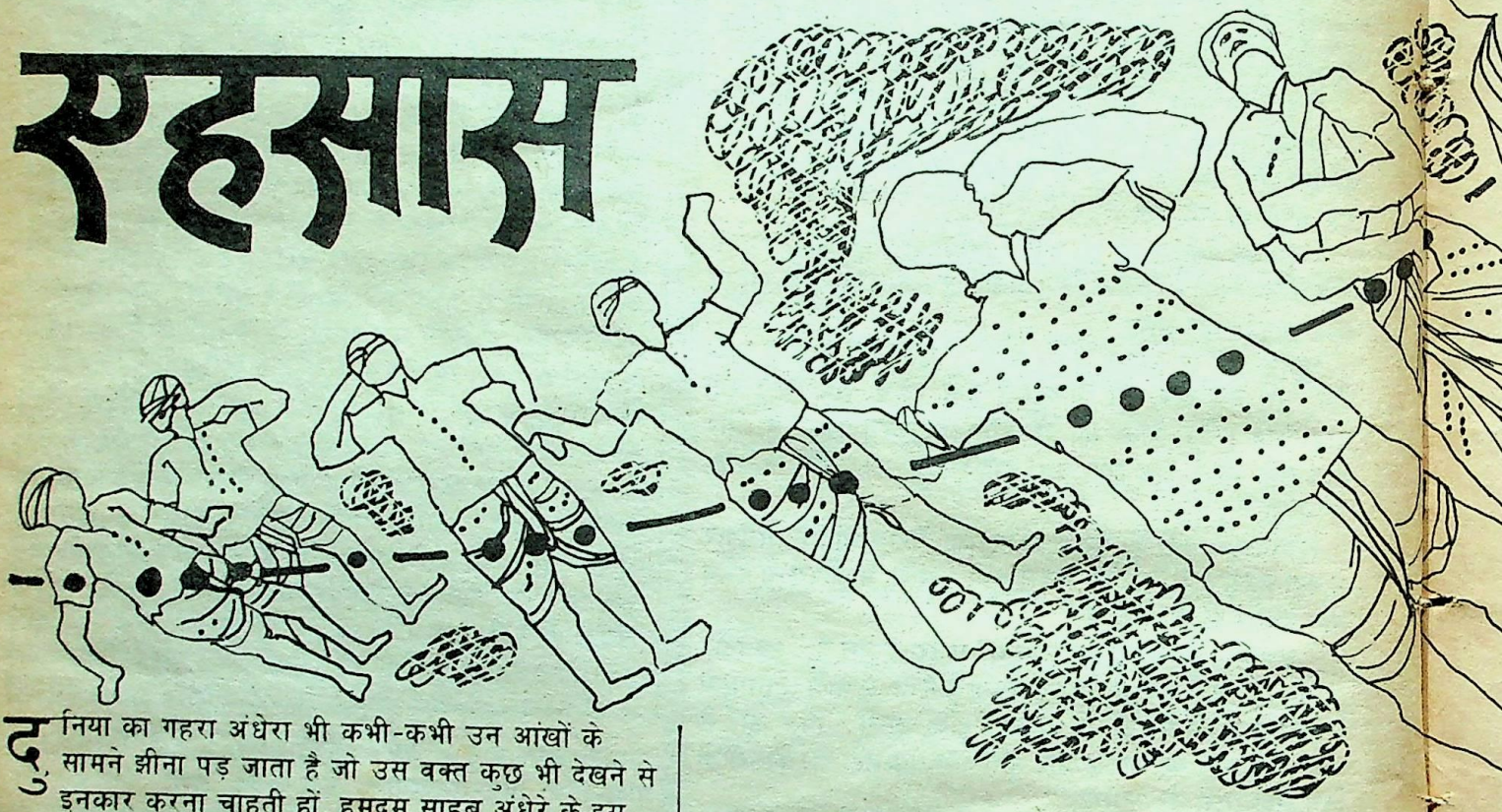

दुनिया का गहरा अंधेरा भी कभी-कभी उन आंखों के सामने झीना पड़ जाता है जो उस वक्त कुछ भी देखने से इनकार करना चाहती हों, हमदम साहब अंधेरे के इस झीनेपन से डर रहे थे. अब उन्हें मृत्यु का नहीं रोशनी का भय था.

रात अभी मुश्किल से आधी बीती थी. नहर के किनारे उगे पतावर की लंबी धनुषाकार पत्तियों का बड़ा गुच्छा उनकी आंखों और आकाश के बीच बहुत साफ उभर आया था जैसे काली रोशनीवाला कोई अनार छूटकर ठहर गया हो.

हवा एकदम ठहरी हुई थी और हमदम साहब की निगाहें सिर्फ दो चीजें देख पा रही थीं, बारीक लंबी तलवारों जैसी पतावर की काली पत्तियां और उनकी पीछे किसी खाली पड़े सिनेमाघर के ढके परदे की तरह खिंचा हुआ आसमान.

अब उनका ध्यान गया, नीचे पानी है, टखने से ऊपर तक, उनके पांव भिगोता हुआ.

बहुत देर से ठहरी हुई या घुटी हुई सांस सहसा उनके फेफड़ों ने इस तरह खींची जैसे पानी में लंबी डुबकी लगाकर आये हों और इसी सांस के साथ एक मितली उठी. इस बार पसलियों के दर्द से नहीं, न खौफ से. मितली एक दुर्गंध से उठी, खून की दुर्गंध, अपने खून की या दूसरों के खून की.

इस बीच शायद वे बेहोश हो गये थे क्योंकि अपनी पसलियों से लेकर कंधे और कान तक आग से जलाये जाने की जैसी तकलीफ वे फिर महसूस करने लगे. यह गनीमत थी कि अब वहां सिर्फ वह असहय जलन ही थी वरना जिस वक्त उन्हें गोली लगी थी उस वक्त उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी ने बहुत वजनी कुल्हाड़ी से उनका आधा हिस्सा चीर दिया हो और चीरने के बाद उनकी पसलियां मरोड़ रहा हो. तभी वे चीखे थे. बेसाख्ता. बहुत दर्दभरी आवाज में.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

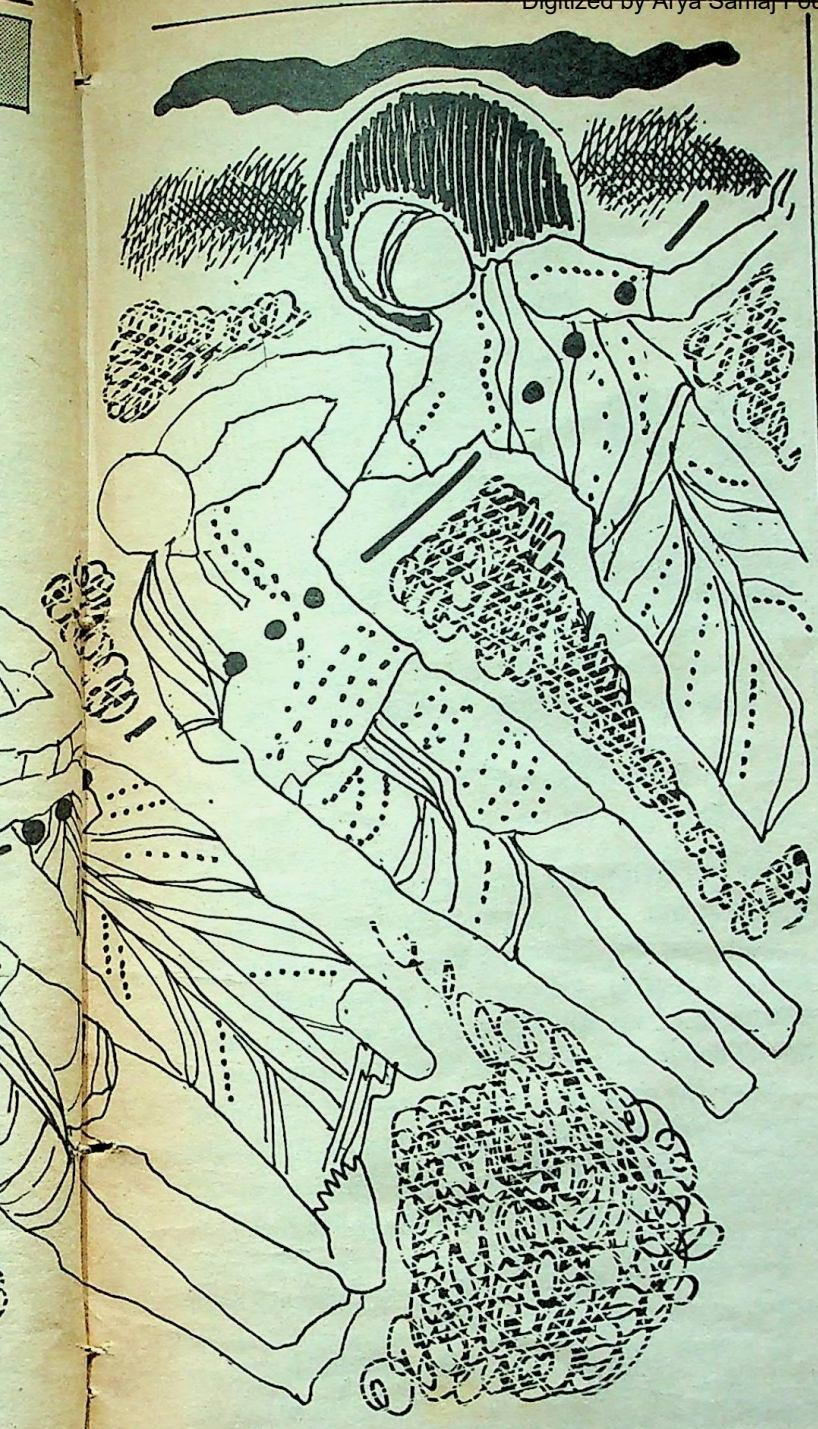

अब उन्होंने गौर किया, क्या वे अकेले ही चीखे थे? वहां तो बहुत लोग थे. अंधेरे में सही तादाद वे नहीं जान पाये थे लेकिन सौ एक लोग तो रहे ही होंगे.

मौत से पहले आदमी के शरीर में शायद बहुत कुछ बदल जाता है जैसे उसकी आवाज. वह अपनी बोली बिल्कुल भूल जाता है. कोई शब्द उसे याद नहीं रहता. कान सुनना बंद कर देते हैं. दहशत से थमकर खून इस कदर जोर से चीखता है कि कान बहरे हो जाते हैं. शायद यही कुछ हुआ हो. हमदम साहब के अलावा और लोग भी चीखे होंगे. पर उनकी आवाजें सुनाई नहीं दीं. याद नहीं पड़ता कि गोली की आवाज भी उन्होंने साफ-साफ सुनी हो.

उन्होंने हिलना चाहा. हिले नहीं. हिल नहीं पाये. लेकिन इतना सोचने भर से उन्हें लगा उनकी पसलियां कोई फिर मरोड़ रहा है, मरोड़ कर उस जख्म से खिलवाड़ कर रहा है. एक दबी हुई कराह उनके गले से निकली लेकिन वे फौरन ही खामोश हो गये. थोड़े पल के खौफनाक सन्नाटे के बाद एक चीख और उभरी जैसे किसी का गला दबाया जा रहा हो. हमदम साहब इस बार और ज्यादा डर गये. उन्होंने ही कराहकर गलती की थी और अब अगर कोई और भी वहां जिंदा है तो इस बुरी तरह चीखकर उसने तो कयामत ही बुला ली है. वे लौटेंगे और खोज-खोजकर गोली मारेंगे. हमदम साहब सांस रोककर दहशत से आंखें मूंदे देर तक इंतजार करते रहे लेकिन गनीमत है कि दुबारा वहां कोई नहीं आया. खौफ फिर भी कम नहीं हुआ. वहां अंधेरा भी तो काफी नहीं था. अगर वे दुबारा आयें और थोड़ा-सा गौर करें तो हमदम या उस चीखनेवाले दूसरे आदमी को खोज सकते हैं. मगर इससे ज्यादा भयावह स्थिति तो चार-पांच घंटे बाद

> देखिए इस वक्त हमारे मुल्क के वजीरे आजम जनाब राजीव गांधी साहब पर चारों तरफ से हमले हो रहे हैं. अपोजीशन जनाब बदेशी ताकतों की कठपुतली बनकर हमारे वजीरे आजम को हटाना चाहता है. उनकी कोशिशें हैं जनाब कि मुल्क टूट जाये.

आनेवाली थी. पर क्या तब तक जिंदा रह पाना मुमकिन होगा? उन्होंने मायूस होकर गर्दन नीचे झुकायी और तीखी धारवाले पतावर की पत्तियों पर माथा टिका लिया. उनके दोनों बाजू सलीब पर लटकाए आदमी की तरह पतावर पर लंबे होकर उलझे हुए थे.

पतावर में माथा टिकाए हुए उन पर अब एक गहरी मायूसी छाने लगी. या शायद नींद या नीम बेहोशी. खून की दुर्गंध अब इतनी तीखी और असह्य हो गयी थी कि उन्हें लग रहा था जैसे वे लहू के दरिया के किनारे डाल दिये गये हों. अपनी लाचारी पर उन्हें यकायक रोना आ गया पर वे रो नहीं पाये. खुश्क हो गये. गले में लकड़ी की फांसें-सी चुभीं और आंखों में जलन होने लगी. न हिचकी आयी न आंसू.

खुदाया, ये क्या हुआ? आखिर मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था? होश में आने के बाद उनके कलेजे में पहली बार यह इबारत उभरी कि तभी वह आदमी फिर कराहा, ठीक उसी तरह जैसे उसका गला दबाया जा रहा हो.

खून की तीखी बदबू के बीच यह आवाज—हमदम साहब को लगा जैसे उनके कानों के पास अपने बदबूदार दांत चमकाती हुई मौत गुर्रा रही हो. अगर उनकी पसलियों की तकलीफ फिर न उभर आयी होती तो जरूर वे मौत के उस दुर्गंध युक्त काल्पनिक जबड़े से बचने के लिए पतावर से नीचे फिसल जाते. उन्होंने अपने दांत सख्ती से भींचकर माथा पतावर पर और ज्यादा गड़ा दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौत के दांतों की वह दुर्गंध दारोगा श्याम लाल को भी महसूस हुई. दो सिपाहियों के साथ वह साइकिल पर नहर के किनारे-किनारे चला आ रहा था. सिपाही आपस में ऊंची आवाज में बातें कर रहे थे. दारोगा ने दुबारा लंबी सांस खींची. इस बार वह दुर्गंध महसूस नहीं हुई. उसे लगा यह वहम था. पर तभी एक सिपाही ने बातों का सिलसिला तोड़ दिया, "अबे ये बदबू काहे की है बे?"

इसी वक्त दारोगा ने वह गंध फिर महसूस की. इस बार पहले से ज्यादा.

"मरा जानवर कोई नहर में धकेल गया है." मगर यह कहते-कहते दूसरा सिपाही भी सहम गया. तीनों को लगा यह दुर्गंध मरे जानवर की नहीं, ताजे खून की है. इसी बीच दूसरे आदमी के कराहने की आवाज आ गयी. दारोगा को रात के उस सन्नाटे में झुरझुरी हो आयी. तीनों ही सहसा साइकिलें रोककर उतर पड़े.

दारोगा ने कड़कती आवाज लगायी, "कौन है बे वहां? कौन है बे."

जवाब में पहले से भी ज्यादा सहमा हुआ सन्नाटा छा गया.

"अबे कौन है, बोलता क्यों नहीं?" एक सिपाही ने टार्च जला दी.

"साहब, आवाज इधर नहर के किनारे से आती लगीं थीं," दूसरा सिपाही बोला.

अब उन्होंने महसूस किया, बदबू बहुत तेज है और उनके पैरों के करीब ही कहीं है. उन्हें यह भी लगा, जमीन आसपास खासी भीगी है. तभी पहला सिपाही लगभग चीख पड़ा, "साहब, लाश, लाशें!"

दारोगा ने अपनी टार्च की रोशनी नहर के ढाल पर घुमायी. उस बेहद तीखी रोशनी में नहर के पानी तक बहे खून में लिथड़ी हुई लाशें एक दूसरे से उलझी हुई पड़ी थीं—दस, बीस, पचीस, पचास, सौ—इतनी लाशें और इतना खून दारोगा ने जिंदगी में कभी नहीं देखा था.

दारोगा झटके से पलटा. लगा वह चीखेगा. पर बगैर कोई आवाज निकाले वह ढाल से कूदकर ऊपर सड़क पर आ गया और तेजी से शहर की तरफ पैदल दौड़ पड़ा. वह इस तरह बेतहाशा दौड़ रहा था जैसे लाशों से हटकर मौत अपने खौफनाक पंजे उसकी तरफ उठाए हुए पीछे झपटती आ रही हो.

नहर के आरपार बने पुल से गुजरने वाली चौड़ी सड़क पर आकर दौड़ने में उसे कुछ ज्यादा आसानी हुई. गोल चक्करवाले बड़े चौराहे से सीधे आगे बढ़कर उसकी चौकी थी. पर वह उधर नहीं गया. दाहिने मुड़कर दुबारा बायें एक पतली सड़क पर उतरकर वह उसी तरह दौड़ता रहा.

इसी सड़क के छोर पर पुलिस कप्तान का बड़ा-सा मकान था. मकान के फाटक के बाहर एक छोटी गुमटी थी पहरेदारों के लिए.

और कोई दिन होता तो दारोगा गुमटी पर खड़े संतरी से जरूर बात करता. उसे खुश करने के बाद वह कप्तान साहब के बारे में पूछता. लेकिन आज सहसा वहां अंधेरे को

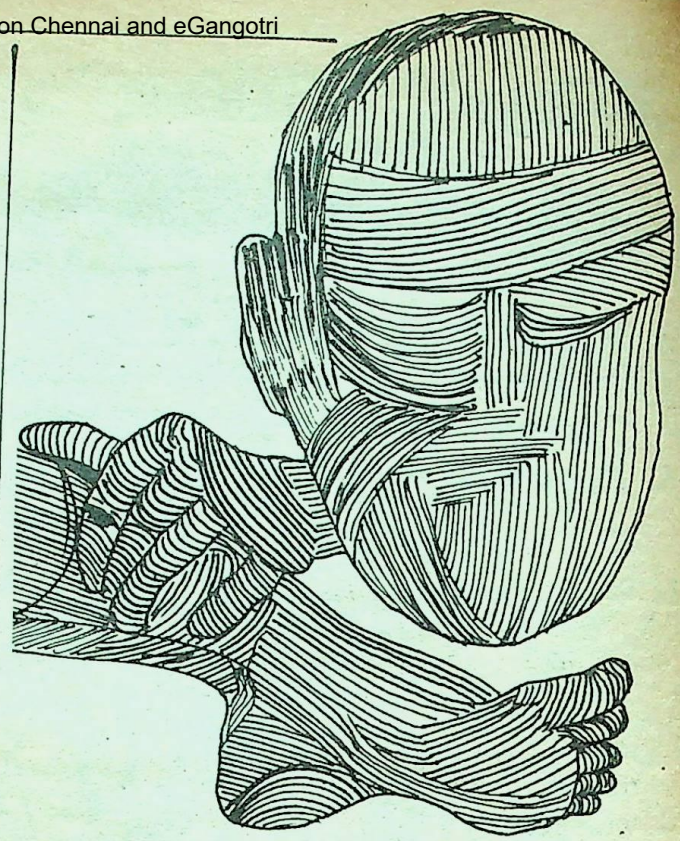

फाड़ता हुआ दारोगा प्रकट हुआ और छलांग लगाकर फाटक के अंदर हो गया. बौखलाया हुआ संतरी चीखा, "अरे ए..."

कप्तान उस वक्त गाजियाबाद कला मंडल के एक नाटक समारोह से लौटा था. अभी उसने जीप से एक पैर बाहर लटकाया था कि वह अर्ध विक्षिप्त दारोगा वहां पहुंच गया. जीप का सिपाही उछलकर दारोगा के पीछे आ खड़ा हुआ.

दारोगा कुछ बोला नहीं. उसने सिर्फ इस तरह एक यांत्रिक अभिवादन किया जैसे हथेली के पीछे से माथे का पसीना पोंछ रहा हो. हाथ सीधा नीचे नहीं आया. लगा उसका जोड़ उखड़ गया हो. वह झूल-सा गया है. कप्तान ने उसे निगाह गड़ाकर घूरा, "क्या है?"

बहुत कोशिश के बाद दारोगा के गले से दो बार अस्पष्ट-सा एक शब्द निकला, "श्रीमान..."

यह संबोधन इतना टूटा-फूटा था जैसे बहुत देर से वह अपनी पसीजी हथेली में मुठ्ठी बांधकर दबाये रहा हो.

कप्तान बहुत जल्दी उस घबराहट को समझ गया. चौकी पर कोई हवालाती उसके हाथों मर गया है. थोड़ी सख्त लेकिन आश्वासन देती आवाज में उसने कहा, "ठीक से बोलो, क्या बात है?"

वह एक शब्द 'श्रीमान' भी इस बार साफ नहीं निकला. वह कुछ इस तरह हिलने लगा जैसे उस पर कोई दौरा पड़नेवाला हो.

"हुआ क्या है, आराम से बताओ. तमाशा मत करो..." कप्तान ने कहा, "पानी पियोगे? पानी लाओ."

सिपाही अंदर की तरफ दौड़ गया. लेकिन संतरी उससे पहले ही एक पीतल का गिलास भर लाया.

दारोगा को संभलने में ज्यादा ही वक्त लगा. तब तक दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही भी दारोगा की साइकिल लिये हुए फाटक पर आ खड़े हुए.

दारोगा ने लाशों का जो ब्योरा दिया उस पर कप्तान सहसा विश्वास नहीं कर पाया. उसने दारोगा को एक बार फिर गौर से देखा. दारोगा ने शराब नहीं पी हुई थी. भंग पीकर भी यह हालत नहीं हो सकती थी.

देर बाद दारोगा ने जो कुछ बताया उस पर कप्तान को सहसा विश्वास नहीं हुआ, "इतनी लाशें..."

"हां श्रीमान, सैकड़ों..."

"कहां? कहां हैं लाशें..."

"बार्डर पर श्रीमान, मेरठ-गाजियाबाद बार्डर पर नहर के अंदर..."

"नहर के अंदर? गाजियाबाद में?"

"हां सर."

कप्तान झपटकर दफ्तर वाले कमरे में आया. उसके वायरलेस से शांय शांय की कर्कश ध्वनि के साथ लगातार किसी को कोई सूचना भेजी जा रही थी. बहुत ऊंची आवाज में. कप्तान ने नियंत्रण कक्ष को लाशों की सूचनी दी और लड़खड़ाते दारोगा को साथ लेकर नहर के किनारे चल दिया.

घबराहट में दारोगा उस जगह की शिनाख्त करना भूल गया था, अंदाज से उसने जीप जहां रुकवायी वहां नहर के किनारे कुछ नहीं था. बहुत दूर तक फ़ैले अंधेरे में झींगुरों की तीखी आवाज के अलावा और सब कुछ शांत था. नहर में पानी बहुत थोड़ा और चुपचाप बह रहा था.

क्या उसने ख्वाब देखा था? वह भ्रम था? दारोगा बौखाला गया. उसकी आवाज एक बार फिर गायब हो गयी. इस दूसरे धक्के से वह बेहोश ही हो जाता कि वह कराह कहीं दूर से आती हुई फिर सुनाई दी. इस बार जैसे कोई उल्टी कर रहा हो.

उल्टी हमदम साहब ही कर रहे थे. बहुत देर से घुटी हुई मितली उनके सूखे कंठ को चरचराहट के साथ फाड़कर अनायास बाहर आ गयी थी. भयानक दुर्गंध और अपनी दुर्दशा की बेबसी के बाद इस घिनौनी प्रतिक्रिया के लिए वे कतई तैयार नहीं थे पर इसे भी उन्होंने स्वीकार कर लिया. मरोड़ के साथ पसलियों से लेकर कंधों तक बढ़ गये दर्द से लड़ते हुए उन्होंने दुबारा स्वेच्छा से वमन करना चाहा. पर इस बार बहुत डरावनी गों-गों और बेबसी भरी रिरियाहट के अलावा गले से कुछ भी बाहर न आया.

इसके बाद जिसका उन्हें डर था वही हुआ. बहुत से भारी कदम दौड़ते हुए करीब आये. उनके साथ ही तुरंत एक गाड़ी भी आ गयी. कई टार्चों और जीप की बत्तियों से नहर के उस अंधेरे किनारे पर तेज और चकाचौंध दिलानेवाली रोशनी का जैसे एक विस्फोट-सा हुआ. पुलिस की वर्दियों की एक झलक-सी उन्हें दिखाई दी. गंदगी को भूलकर उन्होंने दांत भींचे और माथा दुबारा पतावर में गड़ा लिया. लेकिन वे ज्यादा देर उस हालत में अपने को रख नहीं पाये. इस बार वे अपनी मृत्यु के समूचे आयोजन को ठीक से देख लेना चाहते थे.

"जिंदा है!" एक आवाज आयी. आवाज सुनकर सर्द पानी में और ज्यादा सर्द पड़े टखनों में एक थरथराहट हुई. मगर आंखें उन्होंने बंद नहीं कीं. टार्च की रोशनी में बहुत फटी हुई उन आंखों को देखकर कप्तान उस तरफ झुका, "डरो नहीं, बाहर आओ..."

उसकी इस आवाज पर भी वे हिले नहीं. पलक तक नहीं झपकायी. उन्हें और नजदीक से देखने के लिए कप्तान ने पैर नहर के अंदर के ढाल पर उतारा. पैर टिका नहीं. जैसे वहां चिकनी कीचड़ हो, इस तरह फिसल गया. कठिनाई से संभलकर जब वह खड़ा हुआ तो उसने पाया उसकी वर्दी, जूतों और हथेलियों पर जो लिपट गया है वह आधा, जमा, गाढ़ा, सुर्ख और कहीं-कहीं मिट्टी में मिलकर काला पड़ा खून है. और अब जीप की रोशनी में उसने देखा, नहर के जल से लेकर पानी तक बहुत-सी लाशें एक दूसरे में उलझी पड़ी हैं.

"ये हुआ क्या है?"

"श्रीमान गोलियां. इन्हें गोलियां लगीं हैं..." एक सिपाही ने कहा.

वहां कुल अठहत्तर लाशें थीं. या छियत्तर. दो अभी जिंदा थे. उठाये जाते वक्त भी वे इन सिपाहियों को वैसे ही अविश्वास से आंखें फाड़कर घूर रहे थे. कप्तान को खून की दुर्गंध लाशों और घायलों को अस्पताल पहुंचाने के बाद महसूस हुई. दो बड़े दारोगा वहीं छोड़कर कप्तान घर लौट आया. वह जल्दी से जल्दी नहा लेना चाहता था. जिंदगी में पहली बार वह पूरी वर्दी में नहाया. फव्वारे की बारीक तेज धारों में वर्दी के वे लाल काले दाग देर तक कट-कटकर गिरते हुए वह देखता रहा. जिस वक्त नहाकर वह बाहर आया उसने महसूस किया उसे एक असाधारण सर्दी लग रही है.

जिंदा बच गये दोनों आदमियों के जख्म ज्यादा घातक नहीं थे. हमदम साहब की ऊपर से दूसरी पसली और कंधे के बीच गोली लगकर तिरछा निकल गयी थी. वह दूसरी पसली बुरी तरह टूट गयी थी और बगल में बांह के नीचे मांस पेशियां फटकर लटक गयी थीं. खून जरूर ज्यादा बह गया था पर फेफड़े सही-सलामत थे. दूसरे आदमी के कूल्हे और जांघ में दो गोलियां लगी थीं. दोनों को आपरेशन के बाद दूसरे दिन दोपहर तक होश आ गया.

कप्तान ने खुद बयान लिया. पहले दूसरे आदमी का. तकलीफ काफी कम हो गयी थी पर बोलने में सांस थोड़ी उखड़ती थी, पर वह जोश के साथ बयान देता रहा, "साहब, अल्लाह मालिक है. उसकी कसम खाकर कहता हूं अगर मैंने कभी कोई असलाहा जमा किया हो या—या दंगे-फसाद में हिस्सा लिया हो..."

"ठीक है, वो बाद की बात है. पहले यह बताओ नाम क्या है और कहां के रहनेवाले हो?" कप्तान ने पूछा.

"साहब, वही तो बताया. साहब, मैं तो गरीब आदमी, हमेशा अपने काम से काम रखता हूं. उन्होंने बेकुसूर हमको गोली मारी..."

"भई नाम बताओ, नाम."

"अबदुल रऊफ."

"कहां रहते हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मलियाना में. सब्जी बाजार में साहब, मैं वहां. पंचर जोड़ता हूं."

"हुआ क्या था?"

"साहब खुदा गवाह..."

"है यार, तुम बात तो बताओ," कप्तान थोड़ा अधीर होने लगा, "तुम नहर तक कैसे पहुंचे. किसने गोली मारी?"

"पी.ए.सी. ने साहब. पी.ए.सी. ने गोलियां मारकर बिछा दिया. मेरा कोई कुसूर नहीं था साहब, मगर उन लोगों ने हमको घेर लिया. सबको घेर लिया."

"कहां घेर लिया?"

हमारे घरों में. हजारों सिपाही थे पी.ए.सी.के. हमारा सारा सामान सड़क पर फेंक दिया. औरतों, बच्चों को बंदूक के कुंदों से मारने लगे, तब हम बकसों के ढेर के पीछे से निकल आये. सब लोगों को बाहर इकट्ठा कर लिया. सारे मुहल्ले के जितने मर्द थे– बूढ़े, जवान, किसी को नहीं छोड़ा, सबको ले के शहर से बाहर आ गये. तब उनका अफसर बोला, 'यहां नहीं, गाजियाबाद ले चलो.' बस साहब, नहर तक लाये, फिर सबको लाइन से खड़ा कर दिया और तड़ातड़ गोलियां चलाने लगे, साहब, एक-एक को भून दिया. एक-एक को. एक-एक को मार दिया साहब..." वह आदमी रोने लगा. कप्तान ने धीरे से उसका हाथ दबाया.

पूरा वाकया खौफनाक भी था और उलझन में डालनेवाला भी. सरेशाम लोगों को मलियाना में घरों से निकाला गया और गाजियाबाद की सीमा में लाकर पी.ए.सी. ने उन्हें गोलियों से उड़ा दिया. अब्दुल रऊफ तादाद तीन-चार-सौ बताता है पर अगर लाशें नहर में बही नहीं थीं तो दो घायलों सहित उनकी तादाद अठहत्तर थी.

दूसरा ब्यान हमदम साहब का था. पर देर तक वे कुछ नहीं बोले. कई बार पूछने पर अपना नाम और पता बता दिया और फिर चुप हो गये.

"क्या बहुत तकलीफ है?" हारकर कप्तान ने पूछा.

"नहीं हुजूर. अब तो काफी ठीक हूं. बहुत बेहतर हूं." कहकर वे फिर चुप हो गये. अब वे कप्तान को नहीं छत को घूर रहे थे. जब शायद उनकी आंखें थक गयीं तो उन्होंने पलकें मूंद लीं और बहुत धीरे से एक शेर पढ़ा: दुनिया में ऐ जबां, रविशे सुलहे कुल न छेड़. जिससे किसी को रंज हो ऐसा बयां न छेड़.

यह शेर पढ़ने के बाद वे काफी खामोश हो गये. बहुत-बहुत कोशिश करने के बाद भी वे नहीं बोले तो कप्तान निराश होकर उठ पड़ा. जब वह बाहर जाने लगा तो हमदम साहब ने दायां हाथ थोड़ा-सा उठाया और धीरे से आवाज दी, "सुनिए..."

कप्तान फौरन वापस आया, "कहिए?"

"आप तशरीफ रखें."

"ठीक है. बैठ जाऊंगा. मैं चाहता हूं आप बयान दे दें. क्या बहुत तकलीफ है?" कप्तान ने पूछा.

"हां. दिल में." हमदम साहब धीरे से बोले, "जनाब, मैं अर्ज करूं. इस मुल्क को किसी बहुत बड़ी साजिश का शिकार बनाया जा रहा है. मैं जानता हूं, आप एक ईमानदार और सच्चे अफसर हैं. आप खुद जानते होंगे. इसी की तकलीफ है मेरे दिल में."

"वो ठीक है, मगर इस गोलीकांड के बारे में आप तफसील में हमें बताएं..."

गोलीकांड. जी हां. देखिए इस वक्त हमारे मुल्क के वजीरे आजम जनाब राजीव गांधी साहब पर चारों तरफ से हमले हो रहे हैं. अपोजीशन जनाब बदेशी ताकतों की कठपुतली बनकर हमारे वजीरे आजम को हटाना चाहता है. उनकी कोशिशें हैं जनाब कि मुल्क टूट जाये. इसीलिए उन्होंने राजीव गांधी पर गंदे-गंदे इल्जामात लगाना शुरू कर दिया है. जनाब आप तो जानते हैं. इतने बड़े खानदान के वारिस और सारे मुल्क के मालिक हैं वों, भला तोपों, पनडुब्बियों के कमीशन से उनका क्या बनना है जनाब..."

"सही है जनाब, लेकिन मैं जानना चाहता हूं कि आप लोगों को गोलियां किसने मारीं?" कप्तान ने अपने धीरज को बटोरकर फिर पूछा.

"अल्लाह की मर्जी हुजूर. आप जैसा नेकदिल इंसान बखूबी जानता है." हमदम साहब ने थोड़ी सांस लेकर कमजोर आवाज में अपनी बात फिर शुरू की, "जनाब, लोग कहते हैं कि सूबए उत्तर पर देश के वजीरे आला जनाब वीर

मेरी तरह की फिल्में

ख्वाजा अहमद अब्बास

एक फिल्मकार के रूप में राज की जो बात मुझे पसंद आयी है, वह यह है कि वह ऐसे शख्स हैं जो दूसरों की फिल्मों की प्रशंसा करते हैं. विमल राय की 'दो बीघा जमीन' देखने के बाद राज ने रेडियो सीलोन को दिये गये एक इंटरव्यू में बहुत बढ़ा-चढ़ाकर विमल राय की बधाई दी थी. इसमें उन्होंने कहा था कि 'दो बीघा जमीन' के बाद भारतीय सिनेमा में एक क्रांति आ गयी है. लेकिन बाद में जब हम सब राजकपूर, विमल राय और हृषिकेश मुखर्जी–मास्को फिल्म फेस्टिवल में हिस्सा लेने साथ-साथ गये, तो रूसियों ने हमसे कहा कि हम भारतीय प्रतिनिधि मंडल का एक नेता चुन लें. मैंने विमल राय का नाम सुझाया. राजकपूर ने तुरंत इसकी मुखालफत की. विमल राय ने, जो इस मुद्दे को लेकर बेवजह झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहते थे. मेरा नाम सुझाया और राजकपूर ने प्रतिनिधि मंडल ने नेता के रूप में मेरा नाम स्वीकार कर लिया. राज कपूर यह नहीं चाहते थे कि मैं फिल्मकार बनूं. दरअसल, यह उनके अहम् का सवाल था. एक बार कुछ रूसियों से मेरा तआर्रुफ अपने लेखक के रूप में कराया. तो मैंने जवाब दिया, "नहीं, मैं इनका लेखक नहीं हूं, मैंने तो इनकी दो ही फिल्में लिखी हैं." राज मुझे अपनी रोसेलिनी कहते लेकिन जब मैं यह कहता कि मैं निर्देशक बनना चाहता हूं और अपने ढंग की फिल्में बनाना चाहता हूं तो उनका जवाब होता था कि वह आखिर मेरी तरह की ही फिल्में तो बना रहे हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहादुर सिंह साहब ने, खुदा उन्हें लंबी उम्र दे, मेरठ में दंगे करवा दिये. वो भी इसलिए कि बोफोर्स की तरफ से लोगों का ध्यान हट जाये और अम्नो–कानून के नाम पर विशनाथ परताप सिंह के बाकी जलसे रोके जा सकें. मैं पूछता हूं हुजूर कि इसमें बुरा क्या है? आखिर ये सियासत है जनाब, कोई हंसी खेल नहीं है. अगर इस मुल्क को टुकड़े होने से बचाने के लिए और अपने हरदिल अजीज राजीव गांधी के हाथ मजबूत करने के लिए मेरठ से चंद कुर्बानियां मांगी गयीं तो बुरा क्या था? रिआया का फर्ज है वतन के लिए कुर्बानी देना. जनाब शायर ने कहा है. सबसे पहले मर्द बन..."

कप्तान ने बेचैनी से बालों में उंगलियां घुसायीं और सिर को इस तरह झटका दिया जैसे बालों की गर्द झाड़ रहा हो. फिर हल्की खीज के साथ बोला, "देखिए भाई, मैं जो पूछ रहा हूं. बताइए..."

"जी? बेहतर है. बेहतर है हुजूर." हमदम साहब खासे ही निराश हो गये.

"क्या यह सच है कि आप लोगों को यहां लाकर पी.ए.सी. वालों के गोली मारी?"

"जनाब, फिरकापरस्त और मुल्क को तोड़नेवाली ताकतें कहां नहीं हैं हुजूर. मैं अर्ज करना चाहता हूं..."

कप्तान ने बहुत लंबी सांस खींचकर कहा, "हमदम साहब, मेरा ख्याल है अब आप आराम करिये..."

"जी? जी हां, जी हां. शुक्रिया." हमदम साहब के चेहरे पर मायूसी और गहरी हो गयी.

अस्पताल में उन्हें ज्यादा दिन नहीं लगे. कंधे से लेकर पसलियों के नीचे तक पलस्तर में लिपटे हुए वे बाहर आये और मेरठ जानेवाली बस पर बैठ गये. मलियाना तक पहुंचते-पहुंचते उन्होंने यह फैसला कर लिया था कि मलियाना में बीवी-बच्चों से मिलने के बाद वे जल्दी से जल्दी जनाब गर्वनर साहब से मुलाकात करेंगे. पी.ए.सी. के द्वारा छियत्तर आदमियों की गाजियाबाद सीमा में हत्या को लेकर बहुत से अखबारों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था. इस मामले में उन्हें पहल करनी होगी, यह उनकी जिम्मेदारी है.

मलियाना वैसा ही नहीं था जैसा उन्होंने छोड़ा था, बल्कि कहना चाहिए जैसा मलियाना उन्होंने जिया था. मलियाना की मुख्य सड़क पर सीमा के पासवाली पुलिया के ऊपर दोनों तरफ पी.ए.सी. के कुछ सिपाही बैठे थे. खड़खड़ेवाले ने उन्हें मलियाना से थोड़ा पहले दाहिनी ओर मुड़नेवाली सड़क के मोड़ पर उतार दिया था. वहां से पैदल रास्ता ज्यादा नहीं था. उन्हें कतई उम्मीद नहीं थी कि इस तरह कस्बा शुरू होते ही ये सिपाही उन्हें मिल जायेंगे. अनचाहे ही वे सहम गये. लेकिन अब पीछे लौटना भी मुमकिन नहीं था. उन्होंने अपने कलेजे को मजबूत किया और सधे कदम पुलिया की तरफ बढ़ चले.

वे अजब बदइख्लाक किस्म के सिपाही थे. बजाय इसके कि वे अपने काम से काम रखते, उन्होंने हमदम साहब को घूरना शुरू कर दिया. उन निगाहों से बिंधे हुए चलना ऐसा लगा जैसे उन्हें किसी ने तीरों से बेधकर उठा लिया हो. सिपाही शायद कौतुक के लिए ज्यादा उत्सुक थे. जब वे ठीक उनके बीचों-बीच पहुंच गये तब एक सिपाही ने बेहद अभद्र लहजे में आवाज दी, "एई मियां जी!"

"मुल्लाजी कहो मुल्लाजी. कहां चले?"

"आपने कुछ फर्माया?" हमदम साहब ने रुककर बेहद संजीदगी से पूछा.

सिपाही हंसने लगे, "अब, शायरी बोलता है."

हंस चुकने के बाद एक सिपाही ने गंभीरता से पूछा, "कहां जा रहे हो?"

"जी? घर जा रहा हूं. जनाब."

"कहां से आये हो?"

"अस्पताल से. चोट लग गयी थी."

"हूं. तभी. तुम्हें मालूम नहीं है कि यहां कर्फ्यू लगा है?"

"जी कर्फ्यू? मगर मैं तो अपने घर ही जा रहा हूं, बंदापरवर."

"कहा न कर्फ्यू लगा है? जाओगे कैसे? पास है कर्फ्यू का?" सिपाही ने पूछा.

"जी पास तो नहीं है. मगर मैं तो..."

"मियां जी, मेरी सलाह मानो, यहीं से वापस हो लो. मुसीबत में पड़ जाओगे. हम तो भलमंसाहत से पेश आ रहे हैं, आगे डंडे से ही बात होगी."

"जी." हमदम साहब परेशान हो आये, "अगर मैं यहां... मेरा मतलब है कर्फ्यू पास तो बनता होगा? देखिए मैं..."

हमदम साहब ने चाहा कि वे बता दें कि वे एक मशहूर कौमी शायर हैं, यहां तक कि उन्होंने खुद गवर्नर साहब बहादुर के रूबरू बैठकर अपनी नज्में सुनायी हैं, पर वे रुक गये.

मार्क ट्वेन की हाजिर जवाबी

अमरीकी लेखक मार्कट्वेन प्रसिद्धी प्राप्त लेखक थे. वे लिखते समय पूर्ण विराम, अर्ध विराम, कॉमा का जरा भी ध्यान नहीं रखते थे. एक बार किसी प्रकाशक ने परेशान होकर उनकी पुस्तक की पांडुलिपि वापस भेजकर यह पत्र लिखा कि आपके लेख में पूर्णविराम, अर्धविराम आदि की भूलें ठीक करने में बहुत कष्ट होता है अंतः आगे से लिखते समय इस ओर ध्यान देकर भूलों को ठीक करें.

मार्कट्वेन ने पत्र मिलते ही एक कोरे कागज पर पूर्ण-विराम, अर्ध विराम, कॉमा आदि के बहुत सारे चिन्ह बना दिये और प्रकाशक के नाम पत्र में लिखा, "आपके आदेशानुसार ढेर सारे पूर्ण विराम, अर्धविराम भेज रहा हूं. इनका पूरी उदारता से उपयोग करें, बचे हुए वापस भेजने का कष्ट करें." □

इंदु महेंद्र जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही शायद उतना बुरा नहीं था. समझाता हुआ बोला, "मुल्ला जी, पहले बनता था, अब यहां नहीं बनता. अब मेरठ से ही बनवाना पड़ेगा. डी.एम. के यहां चले जाओ. बन जायेगा. तुम तो अस्पताल में थे इसलिए तुम्हारा केस मजबूत है..."

हमदम साहब ने सिपाहियों को एक बार फिर देखा. उन्हें लगा, जो कहा गया है उसे मान लेने के अलावा रास्ता नहीं है.

हालात मेरठ में बेहतर नहीं थे. बल्कि मेरठ-गाजियाबाद सड़क के बस अड्डे से बहुत पहले ही उन्हें रोक दिया गया, "कौन है? कहां जा रहा है? पास है?"

उन्हें शहर सीमा से बाहर ही इस तरह घेर लिया गया जैसे वे कोई भागे हुए मुजरिम हों.

बेहद हताशा और अपमान के साथ अपनी पसलियों पर चढ़ा पलस्तर कई बार प्रदर्शित करने के बाद सिर्फ इतना हुआ कि उन सिपाहियों ने उन्हें वापस जाने की इजाजत दे दी. वापस? लेकिन कहां?

वतन और कौमी फरायज के बाद पहली बार उन्हें अपने घर की याद आयी. इस साल चूने में पीली मिट्टी मिलाकर पुताई कराने के बाद दरवाजों पर तेलवाला नीला रंग उन्होंने खुद लगाया था. दरवाजे अच्छे चमकने लगे थे. उनकी चिड़चिड़ी बीवी उनसे चाहे जैसे पेश आती हो, पड़ोस की हर

मैथिल कहानी

ननद-भौजाई

राजकमल चौधरी

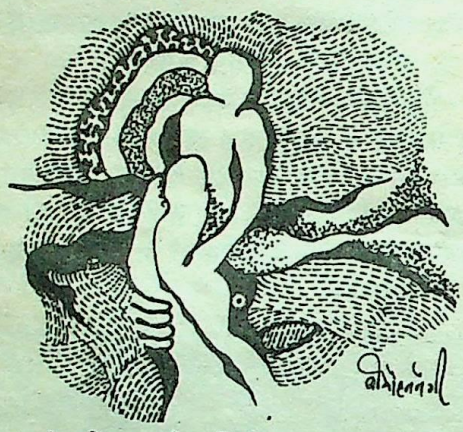

पदुमा अत्यंत खिन्न और चिंतित अवस्था में आंगन में आयी. आंखों में अपराध और पश्चाताप की सलज्ज रेखा थी. अपनी भौजाई से बगैर कुछ बोले पूरबवाले घर में घुस गयी. रसोई घर से भौजाई ने पूछा, "लाल दाइ हैं क्या?"

बिना कुछ उत्तर दिए, पदुमा आईना—कंघी लिए घर से बाहर आयी और आंगन में रखी खाट पर उदास-सी बैठ गयी.

पसीने से भीगे मुंह को आंचल से पोंछते हुए रामगंजवाली रसोईघर से बाहर निकली और ननद की उदास आंखें, शिथिल चेष्टा और झुके सिर को देखकर सन्न रह गयीं, "रुपये-आठ आने भी नहीं मिले क्या?"

पास आकर, बड़े स्नेह से पदुमा के सिर पर हाथ फेरते हुए रामगंजवाली बोली, "क्या बात है? मन क्यों ऐसे उतरा हुआ है? बंगट बाबू से भेंट नहीं हुई क्या?"

"नहीं भौजी, वह बात नहीं है! भेंट तो हुई थी, दो रुपये भी दिये हैं, लेकिन एक विचित्र बात हो गयी. बस, अनर्थ हो गया भौजी! मैं आपसे क्या कहूं?" सूखे होंठों पर जीभ फेरते हुए पदुमा ने कहा.

आंचल में बांधे एक रुपये के दो नोट निकालकर पदुमा ने भौजाई के हाथों में रख दिया. भौजाई की चिंता समाप्त हो गयी. अब कुछ भी हो! हाथ में दो रुपये हैं तो फिर क्या चिंता, किस बात की चिंता?

पदुमा और पदुमा की भौजाई दोनों विधवा हैं. पदुमा की उम्र तेईस-चौबीस साल और रामगंजवाली की बत्तीस-तैंतीस साल है. दोनों निस्संतान और स्वाधीन प्रकृति की हैं.

पदुमा का गांव, वनग्राम बहुत बड़ा गांव है. गांव में ही हाई स्कूल, थाना, पोस्ट आफिस, अस्पताल और हाट बाजार है. इसलिए, इन दोनों विधवा ब्राह्मणी का जीवन निर्वाह कोई कठिन चीज नहीं है. दो हजार घरों की बस्ती में दो सौ बंगट तो अवश्य ही हैं.

फिर भी आज रात में पदुमा बड़ी परेशान थी. भौजाई ने फिर पूछा, "लाल दाइ! आप तो बच्चों की तरह कर रही हैं. ऐसे थोड़े ही काम चलेगा. मुझसे कहिए, क्या हुआ है. कहीं रास्ते में थानेवाले ने तो नहीं पकड़ लिया था? आजकल पूरी रात सिपाही बाग-बगीचे में घूमते रहते हैं."

"किस सिपाही की हिम्मत है कि मुझे पकड़े. मुझे क्या दारोगा साहेब नहीं पहचानते हैं? मैं आपको कैसे बताऊं कि मुझे क्या हुआ है : बस यही समझिए कि मैं जिंदा नहीं हूं. मर चुकी हूं."

भौजाई हंसकर बोलीं, "यह तो समझी कि आप मर गयीं. लेकिन यह तो बताइए कि किसने मारा, कैसे मरीं."

तब पदुमा ने रात की कहानी बतायी, मंदिर के पास ही बंगट मिल गया. मंदिर के पिछवाड़े ले जाकर मैंने उससे कहा, "हे बंगट, पांच रुपये चाहिए."

उसने कहा, "तुम भूतहा बगीचे की तरफ चलो, मैं रुपये लेकर आता हूं."

मंदिर में और कुछ करने का साहस उसे नहीं हुआ. मैं भूतहा बगीचे में पाकड़ के पेड़ के नीचे खड़ी होकर उसका इंतजार करती रही. बड़ी देर के बाद बंगट आया. मेरे ब्लाउज में दो रुपये खोंसकर हाथ पकड़ते हुए बोला, "अभी दो ही रुपये हैं, बाकी तीन रुपये सुबह आकर दे जाऊंगा." और फिर थोड़ी देर तक चूमता-चाटता रहा. मैं परेशान थी कि देरी होने पर भौजाई बिगड़ेगी, लेकिन वह छोड़ता ही नहीं था. कभी सीने से चिपका ले और कभी और कुछ करे. मेरा भी मन इसके बाद काबू में नहीं रहा. लगा जैसे पूरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरत पर उसने उनकी शायरी और गवर्नर साहब से उनके ताल्लुकात का रौब गालिब कर रखा था.

पिछले बरस छब्बीस जनवरी के मौके पर उनकी बहुत कोशिशों के बाद गवर्नर की कोठी पर होनेवाले मुशायरे का निमंत्रण सूचना विभाग ने दे दिया था. मुशायरे वाले दिन शाम कोई चार बजे गवर्नर के यहां होनेवाली चायपार्टी में शिरकत का मौका भी उन्हें मिला था. इस चाय पार्टी में शामिल होने का गौरव वे कभी नहीं भूल सकते. कितने बड़े-बड़े लोग थे वहां, पुलिस के अफसर तमगे चमकाते हुए, बड़े-बड़े हाकिम, अदब से खड़े नौकर, बेहतरीन मेजपोशों पर सजी हुई उम्दा मिठाईयां. पैरों के नीचे मोटे कालीन जैसी घास....

हमदम साहब के बच्चों ने बहुत देर जिरह करके उनसे हर मिठाई की शक्ल और जायके का परिचय लिया था. इसके बाद बच्चे मिट्टी और पत्थर के टुकड़ों की मिठाई बना लेते और ईंटों पर कोई कागज बिछाकर उन्हें मेजें मान लेते. इस तरह गवर्नर के चाय-पान का खेल वे लोग बहुत दिन तक खेलते रहे थे.

गोश्त बेचनेवाला मुन्ना उन्हें इस दावत के बाद से बहुत महत्वपूर्ण और सम्मानित व्यक्ति मानने लग गया था. मक्खियों से भरे चबूतरे पर बैठाकर वह उन्हें चाय पीने को मजबूर कर देता था. जिस बनिये से वे राशन लाते थे, उसे भी बहाने-बहाने उन्होंने सब कुछ बता दिया था. वह राशन की दूकान का लाइसेंस चाहता था. उसने दो बार उन्हें रोककर ठंडे शरबत की बोतल पिलायी थी.

इस वक्त इससे ज्यादा कुछ उन्हें याद नहीं आया. लगा इस बीच घर से बाहर एक जमाना गुजर चुका है और याददाश्त में काफी धुंधलापन आ गया है. न चाहते हुए भी उन्होंने एक बड़ा फैसला कर लिया. वे गवर्नर साहब से मिलेंगे. हालांकि नंगे बदन पर चढ़े पलस्तर के ऊपर लटकाया कुर्ता बहुत बेढंगा लग रहा था, पर ऐसे ही सही. कप्तान ने यह एक मेहरबानी जरूर कर दी थी कि चलते वक्त उन्हें अपना कुर्ता और पायजामा भी दे दिया था. पता नहीं सरकारी खजाने से या अपनी तरफ से उसने जो सौ रुपये उन्हें दिये थे उसमें से अभी बहुत थोड़े ही खर्च हुए थे. अपनी इस वक्त की समस्या के लिए गवर्नर साहब से मुलाकात कुछ ऐसी थी जैसे चींटी मारने के लिए तोप का इस्तेमाल किया जाये, लेकिन इसके अलावा उन्हें और रास्ता दिखाई नहीं दिया.

इस बार गवर्नर साहब की कोठी उन्हें उतनी सुहानी नहीं लगी. बड़े फाटक के संतरी ने उन पर ध्यान भी नहीं दिया. पर आगे जहां एक छोटा सरोवर बना था उससे कुछ पहले ही दो आदमियों ने उन्हें टोका.

गनीमत ही है कि उन्होंने थोड़ी शिष्टता बरती और कोठी के स्वागत कक्ष की तरफ इशारा कर दिया. स्वागत कक्ष में चार-पांच लोग बहुत जोश के साथ किसी बात पर बहस कर रहे थे. हमदम साहब बहुत अदब से आदाब करके एक किनारे खड़े हो गये.

दरअसल मामला किसी की छुट्टी का था जिसकी फाइल गुम थी. जब वे लोग बहस से करीब-करीब थक गये तब उनमें से एक ने हमदम साहब की तरफ ध्यान दिया, "कहिए?"

"आदाब हुजूर, मुझे हमदम मलियानवी कहते हैं, पिछले बरस छब्बीस जनवरी के मुशायरे में हुजूर ने इस नाचीज को याद फर्माया था..."

"जी. अच्छा. बैठिए." उसने कहा.

हमदम साहब थोड़ा अटपटे ढंग से कुर्सी में धंसे और पसलियों में उभर आयी पीड़ा की वजह से थोड़ी-सी बिगड़ गयी मुस्कराहट के साथ बोले, "जनाब, अस्पताल से आ रहा हूं. एक अजब-सा हादसा हो गया था."

बगीचा झूला बन गया है और बंगट के साथ आकाश में उड़ रही हूं.

अचानक पदुमा को बाहों में कसते हुए रामगंजवाली ने कहा, "लाल दाइ! बात को इतना मत बिखराइए. यह बताइए कि तब क्या हुआ?"

पदुमा बोली, "तब बंगट ने मुझे निर्वस्त्र कर दिया. यूं समझिए, मैं होश में ही नहीं थी. लेकिन तभी, जोर-जोर से गीत गाते हुए एक सिपाही बगीचे में घुसा. सिपाही को देखते ही मुझे उसी अवस्था में छोड़कर बंगट भागा. मुझसे नहीं रहा गया. कैसा डरपोक था वह. मैं भी बंगट के पीछे-पीछे दौड़ी. लेकिन वह तो अंधेरे बगीचे में खो गया था. लाख खोजने पर नहीं मिला. एक-दो बार नाम लेकर भी चिल्लायी, कोई पता-ठिकाना नहीं. वह सिपाही तो अपने रास्ते जा चुका था, और मैं बगीचे में भटक रही थी. बड़ी देर के बाद कहीं से बंगट की आवाज आयी, "पदुमा! पदुमा रे!, दौड़ो!" जिधर से बंगट की आवाज आयी थी, उधर ही दौड़ी. देखती हूं तो एक पेड़ के नीचे बंगट नंगे पड़ा हुआ है और छटपटा रहा है. चिल्ला रहा है. लेकिन भौजी, मैं तो जैसे भांग के नशे में थी. चांदनी रात में बंगट की पूरी देह, सब अंग एक साथ देखने के बा नहीं रहा गया. फिर जरा भी होश नहीं रहा कि कहां हूं, क्या कर रही हूं, क्यों कर रही हूं? इससे ज्यादा क्या कहूं भौजी, इसके बाद क्या हुआ सो अब भी याद नहीं आता. लेकिन जब होश आया तो देखती हूं कि बंगट नहीं है, केवल उसका शरीर भर शेष है."

"बाप रे!" रामगंजवाली चिल्लायी.

पदुमा भी चिल्लायी, "भौजी, बंगट को सांप ने काट लिया था, इसलिए वह मेरा नाम लेकर चिल्लाया था. भौजी, मैं मुर्दा के साथ सोयी, अब कैसे बचूंगी?"

पदुमा रोने लगी. बड़ी देर तक रोती रही.

तब भौजाई ने कहा, "लाल दाई, जाइए, तालाब से नहा आइए और देह पर गंगाजल छींट लीजिए. और कर भी क्या सकती हैं. जब जिंदा पुरुष के साथ सोने में लाज ही नहीं है तो मुर्दा पुरुष के साथ कैसी लाज?" पदुमा उठकर नहाने चली गयी. □

□ अनुवाद : अजय ब्रह्मात्मज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्पताल के नाम पर वह आदमी थोड़ा संकुचित हो गया. "क्या हो गया था?"

"क्या बताऊं, हुजूर, बदकिस्मती मेरी कहिए? जनाब इसी सिलसिले में हजरत आरिफ साहब के नयाज हासिल करना चाहता था..."

"ओह..." वह आदमी समझा. हमदम साहब इलाज के लिए मदद मांगने आये हैं. उसने सहानुभूति दिखलाते हुए कहा, "गवर्नर साहब तो इस वक्त कहीं जा रहे हैं. आप स्वास्थ्य मंत्री जी से मिल लीजिए."

"जी?"

"चाहें तो मैं एक स्लिप दे देता हूं."

"जी शुक्रिया. मगर जिस काम से मैं जनाब गवर्नर साहब हुजूर से मिलना चाहता हूं... मेरा मतलब है मुझे दरअसल कुछ अर्ज करना है..."

"किस सिलसिले में? आप मुझे बतायें..." उस आदमी ने कहा.

हमदम साहब को थोड़ा संकोच हुआ. फिर वे धीरे-धीरे बताने लगे, "हुजूर, बात ये है कि मैं मलियाना का रहने वाला हूं. जी हां, वही मलियाना जहां आजकल कर्फ्यू लगा हुआ है. बल्कि जनाब मैं क्या कहूं मैं उन दो लोगों में से एक हूं जिन्हें बाकी सौ-डेढ़-सौ लोगों के साथ गाजियाबाद ले जाकर पी.ए.सी. ने गोली मार दी थी."

"क्या?" सहसा वह आदमी बौखला गया, "मतलब आप, यानी आपको, मेरा मतलब है..."

"हुजूर मैं उन्हीं लोगों में से एक हूं. अल्लाह का शुक्र है कि मैं बच गया."

मगर वह आदमी अब आगे की बात सुन नहीं रहा था. बेचैनी से करवट बदलकर उसने कहा, "सुनिए, आप जरा-सा इंतजार कर लें. मैं बस अभी हाजिर हुआ."

"बेहतर है हुजूर, बेहतर है."

"आपको चाय भिजवाता हूं."

"जी नहीं. शुक्रिया. एक गिलास पानी मिल जाता..."

"पानी?" उस आदमी ने किसी को बुलाकर उन्हें पानी और चाय देने को कहा और कोठी के अंदर चला गया.

दुबारा वह काफी देर में ही वापस आया. तब तक पानी तो आ गया था; चाय नहीं आयी थी. उस आदमी ने आते ही कहा, "महामहिम जाने वाले हैं लेकिन वे दो मिनट आपसे मिलना चाहते हैं."

"या खुदा..." हमदम साहब ने छत की तरफ देखकर कहा, "तेरी मेहरबानी."

गवर्नर साहब अपने दफ्तर में थे. उन्होंने हमदम साहब को बहुत इज्जत से अपने करीब की सेटी पर बैठा लिया. हमदम साहब का गला भर आया, "जिस सरकार के सबसे बड़े हाकिम ऐसे रहमदिल और मेहरबान हों उस सरकार के खिलाफ लोग ऐसी-ऐसी बातें करें?"

वे देर तक बिना कुछ बोले डबडबायी आंखों से गवर्नर साहब को घूरते रहे. गवर्नर उनकी मानसिक स्थिति समझ गये. थोड़े क्षणों के बाद बहुत नरमी से उन्होंने पूछा, "कैसे हैं?"

"जी आपकी दुआ है हुजूर, जिंदा हूं. वैसे हुजूर मैं इसे भी खुदा की मर्जी मानता हूं जनाब. उसने मुझे जिंदगी के चंद दिन और बख्शे हैं ताकि मैं फिरकापरस्तों और मुल्क के दुश्मनों के खिलाफ अपनी आवाज उठा सकूं. जनाब अब देखिए, यह जो गाजियाबादवाला हादसा हुआ है, इसकी जिम्मेदारी भी सरकार पर डाली जा रही है. जबकि सब जानते हैं कि इस वक्त हमारे वतन के लीडरान के खिलाफ खुलेआम साजिश हो रही है जनाब..."

गवर्नर ने उनके सामने धीरे से एक अखबार रख दिया. अखबार में गाजियाबाद के हादसे की सफाई में मुख्यमंत्री का बयान छपा था. उन का कहना था कि छयत्तर आदमियों का हत्या सरासर झूठ है—

पढ़ते-पढ़ते हमदम साहब जोश में आ गये, "ये ठीक किया जनाब. इस साजिश का ऐसे ही जवाब देना चाहिए था..."

हमदम बाकी खबर भी पढ़ने लगे. पढ़ते-पढ़ते वे बेचैन होने लगे. खबर पढ़ना खत्म करके वे फटी आंखों गवर्नर को घूरने लगे. देर बाद ही उनकी आवाज फटी, "जनाब, मैं... खुदा कसम जनाब... ये सब झूठ है, सफेद झूठ. मैं... मेरा मतलब दो बरस पहले पाकिस्तान से शोहरा आये थे उनसे जरूर मिला था, मगर खुदा गवाह है मेरा किसी पाकिस्तानी जासूस से ताल्लुक—मगर हुजूर, सुनिये, क्या आप भी इस बयान पर यकीन करते हैं? मैं तो जनाब रऊफ को भी खूब जानता हूं, वो साइकिल का पंचर ठीक नहीं बना पाता गैरकानूनी असलहे क्या बनायेगा... जनाब... मैं... ये तो हद है हुजूर, ये तो ठीक है कि मगर हुजूर, आप तो मुझे जानते हैं जनाब, कौमी यकजहती पर पिछले बरस मेरी नज्म पर आपने खुद दाद दी थी हुजूर, यकीन मानिये, ये सब झूठ है जनाब, सफेद झूठ..."

गवर्नर ने हाथ बढ़ाकर धीरे से उनका कंधा दबाया. और कोई वक्त होता तो हमदम साहब इस अनुग्रह से गद्‌गद् हो उठते और इस गौरव और सम्मान का बखान वे महीनों करते, पर इस वक्त वह हाथ वहीं पड़ा था जहां जख्म था और इस स्पर्श से उन्हें गौरव नहीं, एक गहरा दर्द महसूस हुआ जो उनके कलेजे तक उतर गया. □

क्या आप जानते हैं कि कालजयी कथाकार जैनेंद्र कुमार की सर्वश्रेष्ठ कहानी कौन सी है...?

वरिष्ठ कथाकार विष्णु प्रभाकर द्वारा चुनी गयी जैनेंद्र जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी और उस पर चयनकर्ता कथाकार की महत्वपूर्ण टिप्पणी सहित जैनेंद्र कुमार के संपूर्ण रचना-संसार को समझने का ऐतिहासिक आयोजन

जैनेंद्र कुमार विशेषांक

जनवरी, 1989

निराशा से बचने के लिए अपनी प्रति अभी से आरक्षित करा लें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वी आइ पी क्लब कार्ड – यह कार्ड आपकी प्रतिष्ठा बतलाता है – आपके पैसों का सही मूल्य चुकाता है.

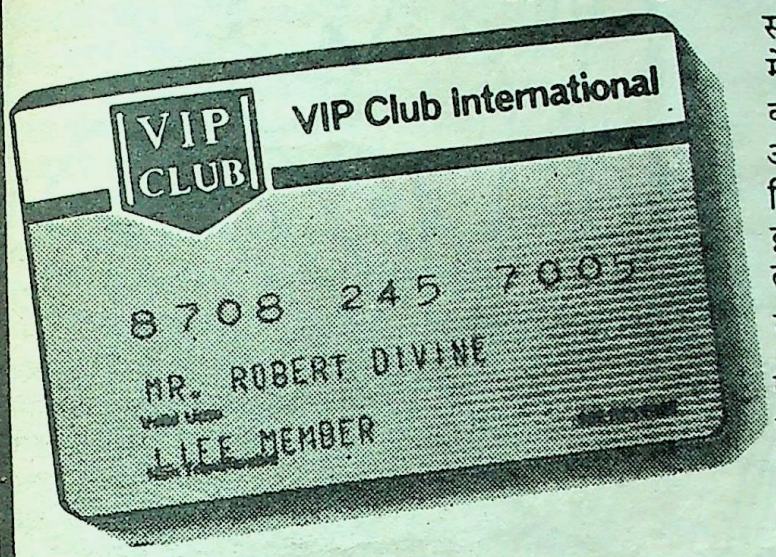

सभी संलग्न संस्थाओं द्वारा देश-विदेश में इसका स्वागत हुआ है. वी आइ पी क्लब इटरनैशनल की सदस्यता पाकर आपको सिर्फ़ एक और कार्ड नहीं मिलता बल्कि वी आइ पी क्लब कार्ड द्वारा आपको देश और विदेश में कई तरह की अनोखी सेवाए प्राप्त करने का सौभाग्य मिल जाता है.

वी आइ पी क्लब की सदस्यता आपकी एक और पहचान बनायेगी जो आपकी प्रतिष्ठा और समाज में आपकी उच्च जीवन पद्धति का प्रमाण होगी.

वी आय पी क्लब के सदस्यों को मिलनेवाले फायदों पर एक नज़र डालिए :

- देश-विदेश में आपके होटल बिलों पर ४०% तथा कार के किराये पर २०% तक की छूट.
- रेस्टॉरेंट तथा दुकानों से की गई खरीद प्र२ २०% तक की बचत.
- ५०,०००/- रु. तक का व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा.
- खोये हुए सामान की भरपाई
- वीआइपी क्लब समाचार, नामक मासिक पत्रिका सदस्यों को भेजी जाती है.

आपकी सदस्यता १५ दिन में

R.A. Advtg.

कृपया मुझे सदस्यता प्रदान करें. _____ रु. का चैक/डिमांड ड्राफ्ट संलग्न है.

नाम : _____ व्यवसाय : _____

फोन ऑफिस : _____ घर : _____

पता : _____ सही _____

सदस्यता शुल्क
१ वर्ष-५५०/-रु.
३ वर्ष-१२००/-रु.
वी आइ पी क्लब गोल्ड कार्ड (आजीवन सदस्यता)-५,०००/-रु.

वी आइ पी क्लब इंटरनेशनल
१०९, एम्बेसी सेंटर,
नरीमन प्वाइंट,
बम्बई :४०० ०२१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1 अगस्त 1939.
प्रमुख कृतियां : 'लाल पीली जमीन', 'हुजूर दरबार', 'वह अपना चेहरा', 'धीर समीरे', तुम्हारी रोशनी में' (उपन्यास) व 'अंतःपुर', 'खुद के खिलाफ', 'अपाहिज', 'पचला बाबा', 'खाक इतिहास' (कहानी संग्रह)

□ गोविंद मिश्र

धुंधलका

रुक्मिणी ने दरवाजा खोला तो छोटा भाई राहुल, भाभी और उनका सात-आठ साल का लड़का आलोक अटैची, बिस्तरबंद, डोल्चियां लिये खड़े थे. स्टेशन से सीधे चले आ रहे थे. सबने लपककर रुक्मिणी के पैर छुए. रुक्मिणी ने दूर-दूर के भाव से स्वीकार किया, पैर पीछे हटाते हुए, चेहरा खिचा हुआ. बाहर का कमरा दिखाते हुए बोलीं, "उस कोने में सामान रख लो."

राहुल स्वयं को एकदम आज्ञाकारी जताते हुए कोने में सामान इस तरह लगाने लगा जैसे कमरा नहीं, वह रेल का डिब्बा था... कभी इस तरह फिट करता, कभी उस तरह. एक-एच इंच जगह का इस्तेमाल, कम-से-कम जगह में गुजारा कर लेंगे वे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो स्वाग! कड़ुवाहट रुक्मिणी के मुंह तक आ गयी, "मैंने तो लिख दिया था कि यहां कुछ नहीं हो सकेगा. न हमारी डाक्टरों से जान-पहचान है, न कुछ!"

"अरे! आपनै लिखो हतो?" राहुल की पत्नी चौंकती हुई बोली, "अरे हमें देखो कि हम आपकी चिट्ठी खां तरस गये. फिर जौ सोचो कि राम जाने आपकी तबीयत खराब है कि का! लेव अब इतनी दूर नाहक आये, खर्चा-पानी भओ सो अलग. चिट्ठी मिल जाती तो काये खां आवनै हतो..."

रुक्मिणी भाभी को खूब जानती है. बोली में बुंदेली की पूरी मिठास, बच्चे जैसी निश्छलता घोल लेंगी. जो सुने वही रीझ जाये... पर भीतर वह पैंतरबाजी कि अच्छे-अच्छे नेताओं को भी पैर का धोवन पिला दे महारानी! वैसे आजकल यह बढ़िया है—उधर से कोई साफ शब्दों में मना भी कर दे, फिर भी पहुंच जाइए... चिट्ठी मिली ही नहीं!

बाथरूम दिखाकर रुक्मिणी चुपचाप अपने कमने में आ गयीं और ठाकुरजी की पोशाक सिलने में लग गयीं.

भोलेपन पर एक अजीब तरह की संजीदगी बिछी हुई थी...संजदगी जो दहशत पैदा करती थी— खुलते हुए जीवन में ऐसी संजीदगी! रुक्मिणी सहम गयीं. नमी की एक लहर उनकी आंखों में कथलने लगी... चुभती हुई...

ब्राह्म मुहूर्त में मंगला आरती से ठाकुर को जगाने से लेकर रात्रि उनके शयन तक अष्टयामी सेवा का अनुष्ठान ओढ़ रखा है रुक्मिणी ने. आठ बार की ये पूजा तो हुई रोज.... फिर अतरे चौथे रोज त्यौहार हैं. ठाकुर का मंदिर धोना-पोंछना है, पोशाकें सीना-पिरोना है. ठाकुर के लिए तरह-तरह के भोग बनाना-धरना है. वर्षों से यही जीवन-क्रम है. सोना-जागना सब प्रभु की छाया में हो, हर क्षण उन्हीं में डूबना-उतरना.... यह कोशिश करती हैं. और कुछ नहीं भाता. कभी ऐसे ही चौबीसों घंटे कन्हैया के इर्दगिर्द बुने हुए थे. शादी के छः साल बाद संतान का मुख देखा था तो दोनों पति-पत्नी प्यार-अनुराग में पिछले वर्षों की भी कमी पूरी कर लेना चाहते थे. सारा संसार उस बच्चे में ही सिमट आया था, उसके बाहर जैसे कुछ था ही नहीं. पर जिसे जीवन का केंद्र बनाया, वही चला गया देखते-देखते.... एक बुखार और बस! जैसे रुक्मिणी की जान से थक्का का थक्का किसी ने नोचा और खींचकर ले गया....

आसमान धू-धू करते जलता रहा था—कितने महीने, कितने साल. अनगिनत यात्रा और तीरथ कर डाले. तिल-तिल करके रुक्मिणी ने स्वयं को समेटा, समेटकर पूजा-पाठ में लगाया. दूसरी संतान नहीं हुई तो फिर संसार में लौटना नहीं हुआ एक तरह से. पूजा-पाठ की दुनिया ही रुक्मिणी की दुनिया हो गयी. अब दिन हो या रात, ठाकुर के आसपास गुंथा हुआ है.... पर कड़ुवाहट की एक गांठ जो तब पड़ गयी, वह आज तक घुली नहीं. बाहर की दुनिया उनकी दुनिया नहीं है, वे दूर-दूर रहना चाहती हैं.

कोई थोड़ी देर को भी आ जाये, उतने में ही रुक्मिणी उकता आती हैं, फिर किसी का आकर घर पर ठहरना, दिनों-दिन रहना? ऐसा तो नहीं कि कोई आता नहीं. पति के मेहमान आते हैं, रहते हैं.... पर बाहर-बाहर. कोई ऐसा नहीं जो रुक्मिणी की दिनचर्या में बाधा बने. रुक्मिणी ने किसी ने बनाया ही नहीं कि कोई उनके घर आये और ठहरे, उनके जीवन में दखल करे. वे एकदम सूखी हैं.... जैसे बाहर, वैसे भीतर. सब जानते भी हैं. अब कोई क्या करे खून के रिश्ते का भाई—राहुल, मना करने पर भी आ गया...जबर्दस्ती!

राहुल कस्बे में मां-बापवाले मकान में ही रहता है. वकालत है, खाने-पीने भर. रक्मिणी बड़े शहर में है, आर्थिक स्थिति राहुल से बहुत अच्छी है. इसलिए राहुल ने लिखा था—उनके लड़के आलोक को इस छोटी उम्र में ही मोतियाबिंद उतर आया है, आप लोग बड़े शहर में हैं, किसी अच्छे डाक्टर को दिखा दें तो अच्छा रहे. रुक्मिणी को दो मिनट नहीं लगे थे तय करने में—सगे भाई का मामला है तो क्या हुआ, वे नहीं पड़ेंगी इस पचड़े में. अपनी दिनचर्या बिगाड़ो, शांति भंग करो, किसके लिए? राहुल और भाभी ने खुद किसके लिए क्या किया? जब पिता बीमार थे तो ये दोनों उन्हें बड़े भाई की तरफ ढकेलते रहे. जब पिता का देहांत हुआ तो एक-एक पैसे का हिसाब बड़े भाई के सामने रखा कि आधा-आधा खर्चा बांटा जाये—अर्थी बांधने के लिए इतने की रस्सी, इतने का कफन, इतने के फूल.... छिः...

आदमियों की यह दुनिया! घिन छूटती है रुक्मिणी को. पिता... कन्हैया के अलावा दूसरा कोई, जिससे उनका लगाव था—उसके साथ यह हुआ... रुक्मिणी भी क्यों करें किसी का? संसार में आये हैं तो अपने हिस्से का थोड़ा-बहुत पति का कर दिया... बस! ईश्वर की कृपा से पति भी ऐसे कि दिन-रात दफ्तर के काम में डूबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना. वे फाइलों में डूबे रहते हैं, रुक्मिणी अपने ठाकुर में. पति को थोड़ा-बहुत समझाकर देखा... रुक्मिणी ने भी छोड़ दिया... अपनी-अपनी निर्यात! संसार असार है... माया, इसलिए छोड़ो. रुक्मिणी अपने को ही संभाले रहें—बहुत है. जब वे अपने भाई, भाभी, पति के मित्र, उनकी पत्नियां... उन जैसों को देखती है तो लगता है सबके सब जैसे कीचड़ में खदबदा रहे हैं, कीड़ों की तरह. रुक्मिणी पास जायेंगी तो छीटें उन पर भी पड़ेंगे. इसलिए दूर...दूर...

आने को मना कर दिया था, फिर भी राहुल परिवार समेत आ गया. रुक्मिणी ने अपने पति को समझा दिया, कुछ करने की जरूरत नहीं है इनके लिए. इतना बहुत है कि घर में ठहरा लिया. कुछ और किया तो ये पास पसर जायेंगे. घर में ठहराओ, उनका काम कराओ, उनकी सेवा करो और राहुल और भाभी जैसों से मिलना अपयश ही है. और यश भी मिले तो क्या... इनके पीछे-पीछे दूसरे चले आयेंगे, चलो बड़ा शहर है, खाने-पीने का इंतजाम फिट है, उपर से बैठे-बैठे बड़े डाक्टरों का इलाज. फिर रुक्मिणी और उसके पति दौड़ते रहे डाक्टरों के पीछे, करते रहे तीमारदारी... एक के बाद दूसरी टीम, दूसरी के बाद तीसरी. घर न हुआ, हस्पताल हो गया. अपनी दिनचर्या, अपना पूजा-पाठ, सब कुछ होम कर दो. सेवा ही करना है तो अपने ठाकुर की न करे कोई.

अलग एक पूरा कमरा दे दिया, पर नहीं, घर-भर में फैलेंगे. राहुल के बेटे आलोक ने तो आते ही ड्राइंगरूम को खेल का मैदान बना लिया. दीवान की तीनों गोल-गोल तकिया निकालकर पटकेगा. उन पर बैठकर घोड़ा-घोड़ा खेलेगा. सब तकिया टेढ़ी कर डाली. खाने की मेज पर मठरियों का मर्तबान रखा था तो उससे निकाल-निकालकर दिनभर मठरियां खाना. मुट्ठी में भरकर खायेगा, बराबरी से उचकेगा—आधा पेट में, तो आधा कार्पेट में. कार्पेट में इसी तरह तो कीड़े लगते हैं. रुक्मिणी ने मेज पर बैठकर खाने को कहा तो एक बार तो उसने माना, पर थोड़ी ही देर को. दूसरी बार से कहने का कोई असर नहीं. रुक्मिणी ने अपना सख्त चेहरा दिखाया तो कोई डर नहीं.... उल्टे हंसता चला गया, जैसे उनके उस विद्रूप चेहरे को देख कर हंसी आ रही हो. आखिर मर्तबान की मठरियां खत्म हुईं, पर इधर रुक्मिणी ने राहत की सांस ली, उधर आलोक रह-रहकर जिद्द करने लगा, "बुआजी! बुआजी! मठरी और बना दैहो!" कैसा बेशरम लड़का है!

राहुल और उसकी पत्नी दूसरे दिन भी बड़े आत्मविश्वास से निकले थे—जीजी-जीजाजी कुछ नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, वे स्वयं इधर-उधर से पता चला लेंगे, कुछ सिलसिला जमा लेंगे. प्राइवेट डाक्टरों से पूछा तो उन्होंने वह फीस बतायी कि मिजाज़ झक्क! तीसरे दिन शहर के उपनगरों में पूछताछ की. वहां फीस ज़रूर कम थी पर हस्पताल जैसा कोई इंतजाम नहीं... कस्बे के डाक्टरों से थोड़ा ही बेहतर. चौथे दिन बड़े हस्पताल में घूमे. पूरा दिन खप गया. डाक्टर न मिला, सिर्फ डाक्टर को दिखाने का एपाइंटमेंट मिला—वह भी दो दिन बाद का. दिखाने का तो हाल यह, आपरेशन का क्या होगा!

आलोक ने तो हद कर दी. रुक्मिणी नहा-धोकर पूजा के बर्तन शुद्ध करने रसोईघर गयी थीं. वहां से पूजा के बर्तन और फूलपत्ती लिये ठाकुर के अभिषेक में चित्त जमाये, वे पूजागृह की ओर जा रही थीं, होंठ भजन की लहरियों में ऊपर-नीचे होते हुए... कि एकाएक आलोक पीछे से आकर चिपक गया. घबराहट में रुक्मिणी के मुंह से चीख निकल गयी. वे लड़खड़ा गयीं, पूजा के बर्तन गिरते-गिरते बचे. ऐसा कभी नहीं हुआ था. पूजा-पाठ के उनके आग्रहों को सब जानते हैं, ये सब भी उन्हें इतने दिनों से पूजा करते देख रहे हैं. वैसे भी वे दूर-दूर रहती हैं, पूजा के लिए प्रस्तुत होने पर तो और भी फूंक-फूंक पग धरती हैं.... और यह छोकरा न नहाया, न धोया, सब अपवित्र कर दिया— वस्त्रों को, पूजा के सामान को, उन्हें. पाजी! बेशरम!! बदमाश!!!

रुक्मिणी ने आलोक को खूब डांटा. पीछे-पीछे उनकी आंखें छलछला आयीं.... कहां ठाकुर के प्रेम में विभोर मन, कहां गुस्से में तनतनाती ये नसें! कहां से कहां तो पटका इस छोकरे ने. इसीलिए उन्हें किसी का अपने घर रहना नहीं सुहाता.

आलोक डांट से सहमकर एक किनारे हो गया. अपने जबड़ों को चिपकाये रुक्मिणी पूजा के बर्तनों को वापस रसोइघर में रख आयीं और फिर से स्नान करने चली गयीं. कैसे मां-बाप हैं—धर्म-कर्म, आचार-विचार की कोई शिक्षा नहीं दी लड़के को. उस दिन रुक्मिणी ने भाभी को दो टूक शब्दों में कह दिया—उनका न निभेगा, बिल्कुल नहीं. जल्दी अपना कामकाज निपटाओ और अपने घर जाओ. अगर इस तरह उनकी पूजा में विघ्न हुआ तो एक दिन वे सामान उठाकर बाहर फेंक देंगी. पूजन-भजन भी मन लगाकर न कर पाये तो क्या फायदा जीवन का ही.

रुक्मिणी ने सोचा था कि उतनी डांट खाने के बाद आलोक अब उनसे दूर रहेगा... पर शाम को ही जब वे दीवान पर बैठी थीं तो वह उनके पास ऐसे चला आया जैसे कुछ हुआ ही नहीं था. बोला, "बुआजी! बुआजी! कविता सुनहौ?" रुक्मिणी न तो नहीं कर सकीं, चुप बनी रहीं. उधर आलोक चालू हो गया था—

तितली उड़ी
उड़ के चली
श्याम ने कहा
आजा मेरे पास,
तितली बोली—
हट बदमाश!

क्या मतलब? शायद कुछ नहीं, इन चीजों का क्या मतलब होता है. बच्चे हैं—इधर से यह सुना, उधर से वह. थोड़ा यह लगाया, थोड़ा वह जोड़ा. लेकिन 'हट बदमाश' में क्या सबेरे की डांट का कुछ.... रुक्मिणी कविता के मतलब में खोयी हुई थीं कि उधर आलोक "और सुनहौ?" कहकर दूसरी कविता सुनाने लगा था—

"बेसन की पकौड़ी
मूंग की मंगौड़ी
उड़द की कचौड़ी
खाक्रैं मुन्नी दौड़ी."

रुक्मिणी ने तरेरकर आलोक को देखा. वह उन्हें चिढ़ा रहा था— मुन्नी उनके बचपन का नाम है, मां-बाप से उसे पता चल गया होगा. आलोक के चेहरे से जरूर ऐसा नहीं लगता था कि वह कविता का मतलब भी जानता था. रुक्मिणी जानती थी क्या.... अगर कविता उनके लिए थी तो भी क्या मतलब था! आलोक कविता में मुन्नी मिलाकर या देखकर ही खुश था.... उन्हें खुश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहता था किसी तरह? रुक्मिणी कुछ न सोच पायीं, उठ जरूर गयीं.

अगले दिन जो आलोक रुक्मिणी को घेर पाया तो पहेली बुझाने का खेल खेलाने लगा—"बुआजी, बुआजी. बताइयो.... हरी डिबिया में सफेद मोती?"

रुक्मिणी ने कोई दिलचस्पी नहीं जतायी.

"हार गयीं? हार गयीं?" आलोक उन्हें झकझोर रहा था. तंग आकर रुक्मिणी ने हां कर दी. आलोक हंसकर बोला, "हरी मिर्च!"

तुरंत ही उसने दूसरी पहेली उठा ली थी—"बताइयो....

नांय गयीं, मांय गयीं
चोंखरो लटकाय गयीं."

रुक्मिणी अपनी तरफ की भाषा समझती हैं—माने कि इधर-उधर गयीं तो चूहा लटकाकर गयीं. चूहा.... रुक्मिणी के गले में माला तो है—वह चूहा? गंदगी और अपमान एक साथ महसूस होने लगा उन्हें, पर क्यों... पहेली कोई उनके लिए तो नहीं बनायी गयी थीं: उधर आलोक पूछने में लगा था, "हार गयीं? बुआजी हार गयीं?"

रुक्मिणी ने तंग आकर हां कर दिया, कौन खोपड़ा खपाये. आलोक ने खुश-खुश पहेली का उत्तर बताया-"ताला."

.राहुल और भाभी पस्त हो आये हैं. बड़े अस्पताल के डाक्टर से मिलना हुआ था. उसने आलोक को देखा और गंभीर हो गया, "अपने देर कर दी है, आंख के मामले में ऐसी लापरवाही नहीं करनी चाहिए. सारी जिंदगी का सवाल है. बच्चे का मामला है, इसलिए खतरा कतई नहीं लेना चाहिए. फौरन आपरेशन कराइए, वह भी प्राइवेट में.... सिर्फ डा. झाभवाला से."

आपरेशन यहीं.... माने रुक्मिणी के घर कम-से-कम एक महीना और रहना. रुक्मिणी का जो रुख है, वह किसी से छिपा नहीं. दूसरे, डाकटर झाभवाला—माने लंबी फीस! क्या वे दे सकते हैं? यहां भी रुक्मिणी की मदद चाहिए.

नहीं दे सकते तो ठीक तो है—बांधें अपना बिस्तर और घर जायें. ठस्सा तो था कि दोनों भाग-दौड़कर सब कर लेंगे. ऐसे टहलते हुए चले आये बड़े शहर जैसे अपने कस्बे से जिला जा रहे हों. फालतू में दस दिन निकाल दिये—खूब कचर-कटूट खाओ और डाक्टर-अस्पताल करते हुए पड़े रहो. जैसी मां फालतू, वैसे ही बाप-बेटा. अब जायेंगे ही... और क्या करेंगे? रुक्मिणी को तसल्ली हो रही थी.

कब आलोक आकर पूजागृह में रुक्मिणी के पीछे बैठ गया, उन्हें पता ही न चला. पूजा के बीच जब कुछ उठाने केलिए वे पीछे मुड़ीं तो दिखाई दिया—नहाया-धोया, साफ कपड़े, बाल खिचे हुए.... शालीनता से बैठा था. रुक्मिणी चौंक गयीं. मन हुआ कि उसे बाहर जाने को कह दें.... आलोक भी तो उसी दुनिया का है.... कीड़ों से बदबदाती दुनिया, जिसे बाहर कर रुक्मिणी ने अपने आपको ईश्वर से लगाया है. हटाओ... भगाओ इसे. पर ऐसा ही बैठा रहे तो क्या शिकायत हो सकती है. वे उसे पीठ दिये बैठी रहीं और पूजा में पूर्ववत् लग गयीं.

पूजागृह में जब वे पूजा कर रही हों... तब किसी अन्य की उपस्थिति? पति ने भी कभी हिम्मत नहीं की.... और आलोक पूरे आधा घंटे बैठा उन्हें विधि-विधान से पूजा-पाठ करते देखता रहा!

रुक्मिणी का हाथ दूर से प्रसाद छोड़ने की मुद्रा में झुका था, प्रसाद के लिए आलोक नीचे अंजुरी बनाये हुए.... पर ठीक रुक्मिणी के हाथ के नीचे नहीं, थोड़ा हटकर. प्रसाद छोड़ा तो जमीन में गिरेगा.... उतर आया न शरारत पर, कुत्ते की दुम टेढ़ी ही रहेगी, इतनी देर सीधा बहुत बैठ लिया. प्रसाद हाथ से लिये हुए ही रुक्मिणी ने डांटती हुई आंखों से आलोक की तरफ देखा. शरारत के चिह्न वहां दूर-दूर तक नहीं थे. वह गंभीर था, चुपचाप सामने देखे जा रहा था... उस तरफ, जहां देखने को कुछ खास न था. छोटी-छोटी खुली आंखों में पुतलियों के इर्दगिर्द गाढ़ी सफेदी... अरे! उसे तो पता ही न होगा कि अंजुरी इतना हटकर है, ठीक-ठीक कहां दिखता है.... और वह कहे भी कैसे....

भोलेपन पर एक अजीब तरह की संजीदगी बिछी हुई थी... संजीदगी जो दहशत पैदा करती थी—खुलते हुए जीवन में ऐसी संजीदगी! रुक्मिणी सहम गयीं. नमी की एक लहर उनकी आंखों में कलथने लगी... चुभती हुई, बाहर चू पड़ने की बजाय वह पलकों की कगार से भीतर लौट गयी, अपने उत्स की ओर.... और वहां एक भवंर की तरह चक्कर खाने लगी.... आलोक में भी तो वही ईश्वर है जो रुक्मिणी के भीतर बैठा है. आलोक में है तो संसार में है.... व्याप्त ईश्वर को अपने भावों से उतारे... उसकी जगह रुक्मिणी कैद हैं मात्र दिनचर्या में—मंगला से शयन, शयन से मंगला! उनका जीवन वीरान और सूखा तो सारे संसार को वैसा मानकर उन्होंने किवाड़ बंद कर दिये.... ताला लटका दिया. कन्हैया के लिए जो स्नेहधारा थी, उसे मोड़कर भीतर कड़ुवाहट के रेगिस्तान में ले गयीं और सुखा दिया. अगर वह बाहर की ओर बहती तो कैसी खेती लहलहाती, कैसा आलोक!

आलोक को मुट्ठी में प्रसाद पकड़वाकर रुक्मिणी ने थोड़ा चंदन अपनी उंगली में उठाया और आलोक के माथे पर बिंदी धर दी....

आलोक, राहुल और भाभी की संतान भर नहीं जो उनके कुकर्मों का बदला उसे मिला. वह है संसार में आया एक और जीव.... नया, पृथक! उसके वे ऊटपटांग खेल—कभी कविता, कभी पहेली... जैसा पालने का बच्चा रुक्मिणी की तरफ लपक रहा हो! उस जैसे कितने? उन पर सब रुक्मिणी बदली की तरह छा जायें!

पूजागृह के बाहर खुली छत थी जहां से भरे बादलों को छूती नम हवा सरसराती हुई गुजर रही थी... इस पार से उस पार. आलोक को साथ खचोरते हुए रुक्मिणी छत की तरफ करीब-करीब दौड़ गयीं. □

चलते-चलते

स्टेशन के पूछताछ कार्यालय की खिड़की पर जाकर एक सज्जन ने पूछा, "क्यों साहब, आसाम मेल कब आ रही है?"

तीन बजकर पंद्रह मिनट पर." जवाब मिला.

"प्लेटफार्म नंबर कितना है?"

"चार."

"चार पर ही आयेगी न?"

"जी हां, वैसे आप चाहें तो आपके घर भिजवा दी जायेगी."

— राजकुमार जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फाइल पढ़ि पढ़ि जग मुआ

गोपाल चतुर्वेदी

सरकार, रफ्तार और साईकिल

एक उम्र के बाद कुछ आदमी यौवन का भ्रम बनाए रखने के लिये कभी बाल रंगते हैं. कुछ विग लगाते हैं और सब नये फैशन के कपड़े पहनते हैं. जो व्यक्ति के लिये आसान है, सरकार के लिए मुश्किल है. वह अपनी कार्यकुशलता की छवि बनाने के लिये क्या करे! थोड़े दिनों इक्कीसवीं सदी की धूम मची. पे-कमीशन की आर्थिक रियायतों और महंगाई, याने इस हाथ दे, उस हाथ ले का दौर चला. कम्प्यूटर के झुनझुने बजे. विदेशी प्रशिक्षण की मदद से सोचा गया कि देसी समस्याएं सुलझेंगी. ऐसा नहीं कि कुछ भी नहीं हुआ. जो बाहर गये, उनकी उलझनें कुछ हद तक कम हुईं. चोरी-छिपे कलर-टी.वी., वी.सी.आर., नयी किस्म के फोन आदि आ गये. मुफ्त का सैर-सपाटा अलग. पर इस सबके बावजूद सरकार की रफ्तार नहीं बदली. गजगामिनी-सी चाल पर, पता नहीं अज्ञानी क्यों एतराज करते हैं. कागज सचिव या मंत्री के शिखर से टपकता है तो सहायक के खजूर तक अटकने में अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव, उप-सचिव, अवर सचिव, सैक्शन अधिकारी के माध्यम से गुजरने के दौरान वक्त लगना तो लाजमी है. ऊपर की वस्तु का नीचे आना तो न्यूटन के नियम के अनुसार स्वाभाविक है. इसी कागज का फिर से सचिव के पहाड़ तक का सफर समलैंगिक संबंधों के समान अप्राकृतिक और अस्वाभाविक है. लिहाजा कागजी घोड़े खा-पीकर मुटाते और सुस्ताते रहते हैं.

उन्नीसवीं-बीसवीं सदी तक चलन था कि कहीं कोई कमी दिखे तो कमेटी बना दो. जब तक रिपोर्ट आयेगी समस्या स्वयं ही चल बसेगी. ठीक उसी तरह जैसे शीत-लहर के शिकार सरकारी राहत के कंबल आने तक स्वर्ग सिधार जाते हैं. बीच में जब सरकार में जनता आयी तो उसने कमेटी कार्यप्रणाली से कमीशन तक तरक्की की. इस जनता अंतराल को अवकाश-निवृत अधिकारियों का स्वर्ग युग भी कहा जाता है. जैसे ही कोई अधिकारी सरकार से जुदा हुआ, किसी न किसी कमीशन से जुड़ गया. जन-कल्याण के नाम पर कुर्सी, कार, दफ्तर, स्टेनो आदि का सुखद सिलसिला अनंत काल तक जारी रहना था पर इस बीच सरकार ही बिखर गयी. अधिकारी तो हट गये पर कमीशन अपनी जगह अटल है. पहले बनते थे, अब 'मिलते' और 'बंटते' हैं. इतिहास गवाह है कि सरकार कोई भी हो. सचिवालय के संदर्भ में आम आदमी सिर्फ एक आंकड़ा होता है.

पर अच्छे प्रशासन की राह में कई रोड़े हैं. प्रजातंत्र की दुखद अनिवार्यता है कि किसी निश्चित अवधि के बाद चुनाव अवश्य हो जाते हैं. सरकार की तटस्थ, जन-निरपेक्ष और निस्पक्ष स्वाभाविक स्थिति वोट की भाग-दौड़ और जोड़-भाग से डांवाडोल हो उठती है. बांध, पुल, कारखाने, रोजगार और विकास के कार्यक्रमों का अस्तित्व अधिकतर सिर्फ नेताओं के भाषणों में होता है. इलैक्शन के समय इन्हें जमीन पर उगाने की कोशिश की जाती है. पुराने गड़े उद्घाटन के पत्थरों की तलाश की जाती हे. दफ्तरों में उनकी फाइलें भी या तो खुलकर बंद हो जाती हैं या गायब. सदियों बाद भी उसके राजनैतिक आका सरकार की असलियत की कलई से अपरिचित हैं. वह सवाल उठाते हैं कि जो कारखाना जलपाईगुड़ी या जोरहाट में स्वीकृत हुआ था उसका क्या हुआ! सच्चाई यह है कि सरकार ने अपना काम कर दिया. कागजों में कारखाना सिर्फ स्वीकृत ही नहीं चालू भी है. अब यह बात दीगर है कि उसका कारखाना बना या कमीशन.

ऐसी परिस्थितियों से प्रभावित होकर कई जन्मजात शिकायती आरोप लगाते हैं कि सरकार सदा कछुए की गति से क्यों काम करती है. कोई कैसे इनको समझाये कि फुदकते-उछलते खरगोश से धैर्यवान और लगनशील कछुआ हर हाल में बेहतर है. आखिर उसमें खराबी ही क्या है! ग्लैमर हो न हो, गरिमा तो है ही.

उदाहरण के लिये मान लीजिये आप सरकारी कर्मचारी हैं और शासकीय एडवांस से साईकिल खरीदना चाहते हैं. उसके लिये आपको अर्जी देनी पड़ती है. उसके बाद इसे फाइल पर लगाकर ऊपर भेजने के 'अप्राकृतिक' कृत्य के लिये आप संबद्ध बाबू के आगे-पीछे नाक रगड़ते घूमते हैं. तब कहीं जाकर वह चार-पांच बाधाओं को लांघती-फांदती निर्णय लेने वाली 'सरकार' के सामने पहुंचती है. अब उस पर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विचार प्रारंभ होता है. देश में कितने कर्महीनों को साईकिल की आवश्यकता है. इनमें से कौन वरीयता की श्रेणी में आते हैं अर्थात कितनी सिफारिशें किसके पक्ष में हैं! कहीं ऐसा तो नहीं कि बाढ़ या शांत राहत के चलते सरकार साईकिल लेने से कंगाली के कगार पर आ जायेगी. साईकिलों की संख्या बढ़ने से नगर-बस की आर्थिक स्थिति पर या भीड़ घटने से सवारियों के मनोरंजक कटीर उद्योगों जैसे जेबकतरी या महिलाओं को छेड़ने, चुटकी काटने आदि पर दुष्प्रभाव तो नहीं पड़ेगा. साईकिल और उसके चालक की सेहत और सुरक्षा के बारे में स्वास्थ्य और गृह मंत्रालय की राय लेना भी जरूरी है. साईकिलों की संख्या और बढ़ने से नगर-बस के सारथी सड़कों को महाभारत का कुरुक्षेत्र भी बना सकते हैं. क्या इस तरह से आबादी घटाना संविधान-संगत होगा. गटर बने शहर से मक्खी-मच्छरों का उन्मूलन अधिक आवश्यक और लाभप्रद है या साईकिल की खरीद. दफ्तर की मेज के पीछे कुर्सी में धंसे-फंसे व्यक्ति को हर मसले पर 'ग्लोबल' दृष्टिपात करना पड़ता है. यदि ऐसा करते-करते उसका सिर चकराने लगे या चश्मा गिर जाये तो वह सहानुभूति का पात्र है. पर होता यह है कि निर्णय की इस गंभीर प्रक्रिया को बिना समझे लोग उस पर फिजूल हर मसले को अटकाने की तोहमत लगाते हैं. हमारी वास्तविक राष्ट्रीय समस्या यही है कि सब अपने निजी हित की सोचते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस व्यापक संदर्भ में साईकिल की अर्जी पर विचार करता अधिकारी यदि यूरोप-अमरीका के दौरे पर निकल जाये तो क्या गलत होगा! लिहाजा वह देश हित को ध्यान में रख अपने मंत्री को यह सुझाव प्रस्तुत करता है कि तीन सदस्यीय विभिन्न मंत्रालयों की एक टीम अंतर्राष्ट्रीय दौरा कर साईकिलों के निर्यात की संभावनाओं की खोज कर ही डाले. मंत्री जी को इस प्रस्ताव में देशाटन की मुलायम हरी दूब नजर आती है. उनकी बांछें खिल जाती हैं. उनका निजी सचिव चहकता है, "सर! यह ट्रिप कोरी प्रशासनिक हो ही नहीं सकती. इसका नेतृत्व आपको ही करना चाहिए. अभी तक हम पारंपरिक रूप से चाय, कॉफी, कपड़ा आदि का निर्यात करते हैं. साईकिलों के निर्यात से एक नयी औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात होगा. इलैक्ट्रानिक सामग्री और चार-पहियों के वाहनों में जो स्थान जापान का है, दो पहियों की सवारी में हिंदुस्तान का होगा. यदि आपको सफलता मिली तो आपका राजनैतिक कद बढ़ेगा. भारत का भविष्य उज्जवल होगा."

मंत्री जी ने तत्काल संबद्ध अधिकारी को बुलाकर उसकी पीठ ठोंकी, "पार्थसारथी, आपने तो कमाल कर दिया. बड़ा सूझबूझवाला प्रस्ताव है आपका. यदि मैं इस दल का नेतृत्व करूं तो कैसा रहेगा?" पार्थसारथी ने यात्रा-रथ आगे बढ़ाया, "सर! मैं तो स्वयं आकर यही कहनेवाला था. आपके साथ रहने से कोई न कोई देश हमारी साईकिलों के निर्यात का प्रस्ताव शर्तिया मान लेगा."

"साईकिल के एडवांस पर रोक लगाकर उनका निर्यात करने की बात है तो स्टाफ कारों की खरीद भी रुकनी चाहिये. साथ ही कार एडवांस भी. कहीं कर्मचारियों की यूनियन उसका विरोध न करने लगे."

मंत्री जी के कान खड़े हुए, "राव की बात में भी दम है. अभी हमने सैकड़ों सरकारी गाड़ियां खरीदी हैं. कई अधिकारियों को कार खरीदने के लिये एडवांस दिया है. लोग हमारे राष्ट्रीय विकास के प्रयास को गलत न समझ बैठें."

"ऐसा नहीं है सर! संसार के किसी भी विकसित देश में कोई साईकिल से दफ्तर नहीं जाता. उनके समकक्ष आने के लिये जरूरी है कि हम साईकिल से कार्यालय आने-जाने पर रोक लगायें. कारों का प्रयोग सार्वजनिक हित का मामला है. इससे सरकार को फायदा ही फायदा है. पेट्रोल की बिक्री से सरकार को अतिरिक्त आय होती है. टायर घिसते हैं, बैटरी चुकती है तो इनके उद्योग पनपते हैं. सबसे बड़ी बात है कि प्रशासन गतिशील होता है. स्टाफ कार के बगैर अधिकारी कैसे समय से आयें-जायें. कैसे दूसरे मंत्रालयों के अपने मित्रों से संपर्क साधें.

बीच में मंत्री ने पार्थसारथी को टोका, "वह कैसे?" "पेट्रोल पंप पर कम उम्र के लड़कों को नौकरी मिलती है. सरकार के ड्राइवर ओवर-टाइम कमाकर अपना जीवन-स्तर सुधारते हैं. पेट्रोल बेचकर समाजवाद लाते हैं. साईकिल से सरकार को क्या लाभ. न पेट्रोल की जरूरत, न ड्राइवर की दरकार. हमें तो इसका निर्यात कर ही देना चाहिये," पार्थसारथी ने समझाया. पर इधर चुनाव की आशंका से मंत्री जी को 'बैलेटोरिया' हो गया था. इस बीमारी में अब्बल तो मरीज को नींद नहीं आती और यदि आयी भी तो चुनाव के बैलट में अपना डिब्बा गोल देखकर अचानक टूट जाती है. "जनता अकसर अपने हित के कामों को गलत समझती है. साईकिल के एडवांस पर रोक लगाने के पहले हमें सही जनमत तैयार रहना चाहिये." उन्होंने निर्देश दिया.

"आप सही फर्माते हैं सर! पर अभी तो सवाल साईकिलों के निर्यात के लिये विदेशों में बाजार की तलाश का है. यदि हम अपने 'मिशन' में सफल रहे तो सरकारी साईकिलों की खरीद के एडवांस पर रोक लगाने की नौबत आयेगी. तब हम 'भौंपू' का प्रयोग कर लेंगे,"

"यह भौंपू क्या बला है?" मंत्री जी चौंके. "भारत के भौंदू भौंपू से बड़े प्रभावित हैं. जो इससे सुनते हैं, सच समझते हैं. इसीलिये कुछ समझदारों ने मिलकर "भौंदू भारत प्रतिष्ठान बनाया है. यह भौंपू बजाकर, तस्वीरें दिखाकर जनमत तैयार करता है," अधिकारी ने मंत्री जी को ज्ञान दिया.

अब अनिवार्य था कि साईकिल की अर्जी इन सब अहम मसलों के बीच असहाय-सी दफन हो जाये. पार्थसारथी ने फिर भी हमदर्दी दिखायी और उसे जिंदा रखा, "हम साईकिलों के बारे में नीतिगत निर्णय लेने पर विचार कर रहे हैं. अभी इसे लंबित रखें," अर्जी ने नीचे जाने की स्वाभाविक यात्रा शुरू कर दी. तब से भौंपू का दृश्य-श्रव्य संगीत चालू है और साईकिल की सरकारी खरीद बंद है. □

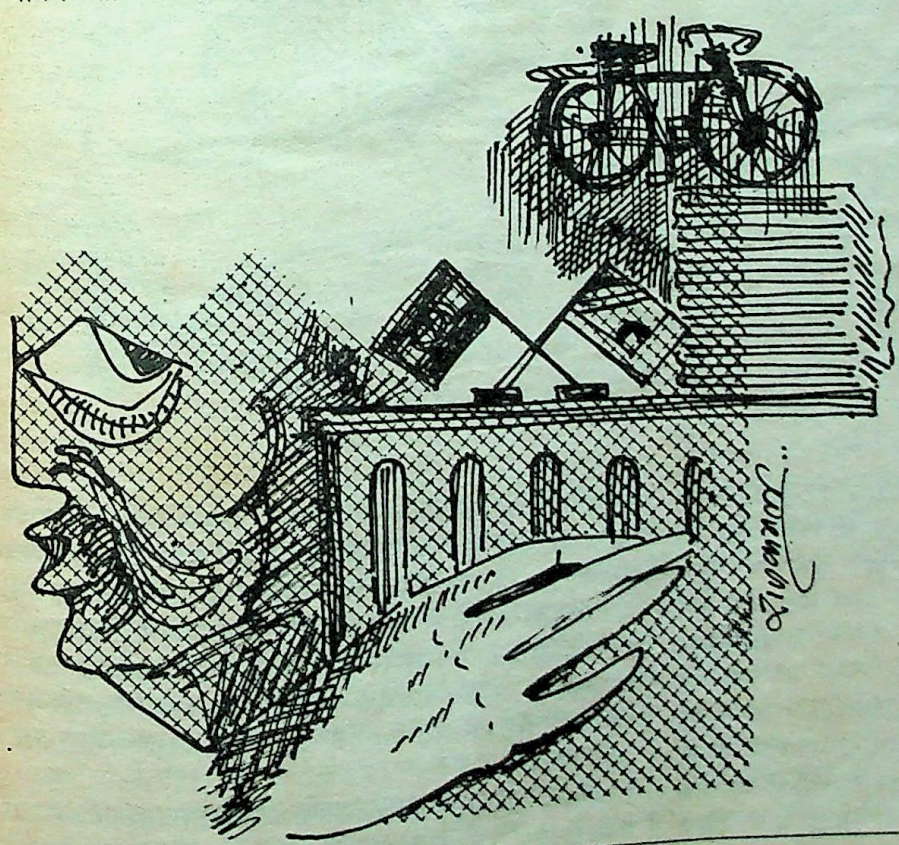

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 2 नवंबर, 1940 वृंदावन.
प्रमुख कृतियां : 'छुटकारा', 'एक अवद औरत', 'सीट नं. 6 (कहानी संग्रह), 'बेघर', 'नरक दर नरक', 'लड़कियां' (उपन्यास)
संपर्क : इलाहाबाद प्रेस, 370 रानी मंडी, इलाहाबाद.

□ ममता कालिया

सूनी

नाम था उसका सुनंदा, लेकिन उसे ज्यादातर लोग सुनी या सूनी कहते थे. शुरू में इस संबोधन की विशिष्टता उसे महसूस नहीं हुई लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे बरस खिसकते गये सुनंदा स्वयं अपना असली नाम भुला बैठी और अपने आप को सूनी ही समझने लगी. नाम, व्यक्तित्व और जीवन में ऐसा नहीं था कि वह कोई असफल जीवन जी रही थी. बाकायदा एम.ए. डी.फिल. तक की शिक्षा पाकर उसने इस महिला कॉलेज में प्राध्यापिका के पद पर ग्यारह साल बिताए थे. हिंदी विभाग में अब उसकी गिनती वरिष्ठ सदस्यों में थी. उसे बी.ए. आनर्स के लेक्चर भी मिले हुए थे जो एम.ए. से भी ज्यादा प्रतिष्ठित जिम्मेदारी माना जाता था. सूरत-शक्ल से वह औसत से ज्यादा सुंदर थी लेकिन उसके व्यक्तित्व में ग्लैमर का अभाव था. उसकी कपड़ों की पसंद भी कुछ ज्यादा गंभीर और सादी थी. लिहाजा जो उसे जानते थे वे सुंदर मानते थे लेकिन जो नहीं जानते थे, वे परिचय और संपर्क के लिए बेताब भी नहीं थे. वह क्लास लेती, स्टाफरूम में बैठकर चाय पीती, लायब्रेरी में कुछ वक्त बिताती और जब क्लास खत्म हो जाती तब भी घर जाना स्थगित करती रहती. जब से मां नहीं रही घर बेहद सुनसान हो गया था. कुछ महीने उसने मां से जुड़ी चीजें यादगार की तरह संभाल कर रखीं. फिर नये सिरे से जीने के इरादे से उसने वे सब चीजें अपने आत्मीयों में बांट दीं— पूजा की स्टील की चौकी, मखमल के जंपर, रुद्राक्ष की माला और चांदी का लोटा. मां की सफेद धोतियां उसने पहले ही फकीरों को दे दी थीं. अब उसके घर में गिना-चुना सामान था. एक अविवाहित लड़की जैसा घर बनाती है वैसा. यह दो कमरों का फ्लैट था. नंबर चार. इस इमारत में सिर्फ छह फ्लैट थे, नीचे के कुछ बड़े, बीच वाले दो कमरों के और सबसे ऊपर एक कमरे के साथ छत का हिस्सा. सूनी के घर में सबसे ज्यादा संख्या किताबों की थी. दोनों कमरों में किताबें ही किताबें नजर आती थीं, बेतरतीब, जगह-जगह. वह रोज सोचती इन्हें उठाकर रखेगी, ठीक से जमायेगी लेकिन रोज रात होते-होते तक वह ऐसी उदासी और जड़ता से जाम हो जाती कि यह काम कल पर टाल देती. अच्छे वेतन के बावजूद सूनी एक सन्यासी-सा जीवन व्यतीत कर रही थी. उसकी वार्डरोब में एक भी चटख रंग की साड़ी नहीं थी. उसे पसंद ही आते थे मटमैले, दबे रंग— काले, स्लेटी, भूरे, ऊदे, सफेद.

महिला कॉलेजों में जीवन कितना एकाकी हो सकता है यह वहां काम करनेवाले ही जान सकते हैं. छुट्टी की घंटी बजते ही मिनटों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कॉलेज खाली हो जाता. कहां कॉलेज के बाहर रिक्शों की कतार खड़ी होती, कहां सारी गायब हो जाती. जिस स्पीड से क्लासरूम खाली होते उसी स्पीड से चौकीदार उनमें ताला डालता रहता. देखते-देखते सब तरफ सन्नाटा छा जाता, बस पीछे के मैदान का एक नल पड़-पड़ आवाज करता अपनी मौजूदगी बताता रहता. माली अपनी कोठरी में पहुंचकर मगन हो जाता. थोड़ी देर में चौकीदार भी चाबियों का बड़ा-सा गोल तार झनझनाता हुआ मेनगेट बंद करने के लिए चल पड़ता. ऐसे में अगर कोई टीचर या लड़की घर जाने में देर लगाती तो चौकीदार, माली बड़ी हैरानी और बेसब्री से उसे देखने लगते.

सूनी के मन में मां की एक पारंपरिक तस्वीर थी लेकिन न जाने कितनी बार सूनी को अपनी मां ठीक इसके विपरीत लगी थी.

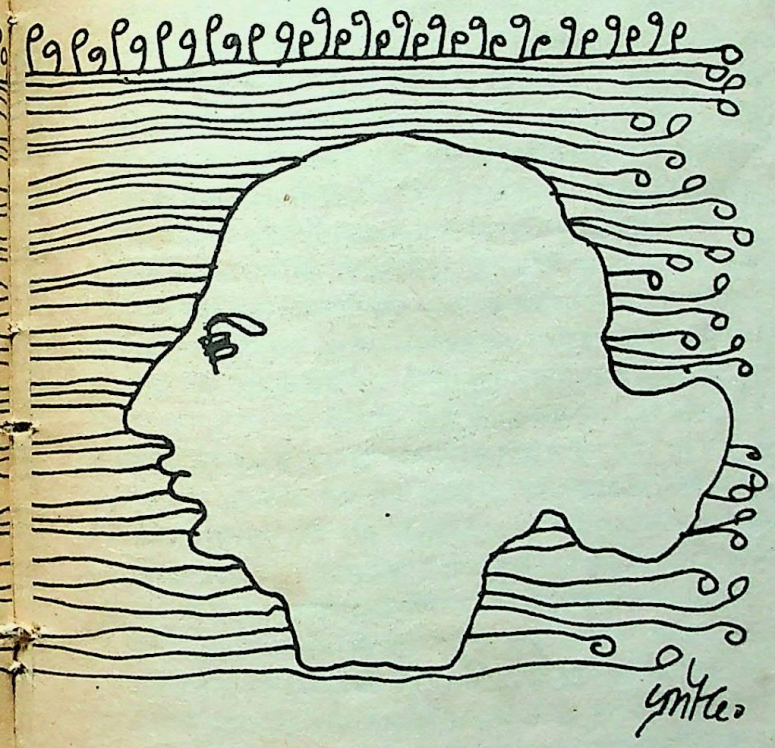

रिक्शे में घर की तरफ जाते-जाते सूनी सोचती-आज कौन दिन था— मंगल या बुध? कौन-सी तारीख थी— इक्कीस या बाईस? वह अपनी घड़ी देखती और पाती उस दिन न इक्कीस थी न बाईस, बल्कि तेईस तारीख थी, दिन था गुरुवार. सूनी को दुख होता, कैसे उसे इतनी मामूली बातें भी भूल जाती हैं जबकि जिन बातों को वह भूलना चाहती थी, वह बार-बार याद आतीं.

एक बार सूनी मां को लेकर हरिद्वार गयी थी. वहां मां बड़ी खुश और व्यस्त रहतीं. मुंह अंधेरे स्नान के बाद वे इस मंदिर से उस मंदिर पैदल जाती रहतीं. हरिद्वार उनका देखा-भाला था इसलिए सूनी को सोते से न जगाकर वे कई बार अकेले निकल जातीं. एक दिन सूनी धर्मशाला के चबूतरे पर बैठी पढ़ रही थी कि खी-खी की आवाज सुनकर उसने सिर ऊपर उठाया. धर्मशाला की मुंडेर पर एक बंदर बैठा गुस्से में खोंखिया रहा था. बंदर नीचे कुएं के पास आया, उसने इधर-उधर पानी टटोला. फिर वह हैंडपंप की तरफ कूद गया. वहां भी पानी नहीं था. बंदर फिर खोंखियाने लगा. सूनी ने उसकी दिक्कत समझी और पास जाकर हैंडपंप चला दिया. बंदर ने अपना मुंह पानी की बहती धार के नीचे लगा दिया और देर तक पानी पीता रहा. सूनी फिर पढ़ने बैठ गयी. इसके बाद वह बंदर जब-जब आता और अगर सूनी वहां होती तो पहले ही नल के नीचे मुंह खोलकर बैठ जाता. बंदर को पानी पिलाकर सूनी को बड़ा संतोष मिलता. दस दिन बाद जब उनके जाने का वक्त आया, सूनी ने मां से कहा, "मां हम लोग बंदर को भी ले चलें?"

"छिः" मां ने कहा, "इस गंदगी को कहां उठाए फिरेगी. बंदर किस काम का जानवर. बंदर जात को न डर न तमीज, फेंक इसे."

सूनी चुप हो गयी. वह मां से बहस नहीं करना चाहती थी. लेकिन कुछ महीने बाद जब वे दुबारा वहां गयीं तो सूनी को यह जानकर बेहद तकलीफ हुई कि उस बंदर को मदारी पकड़ कर ले गये. उसे लगा कि उस दिन अगर उसने बंदर को साथ ले लिया होता तो वह बच सकता था. सूनी ने एक कार्यक्रम में देखा था मदारी बंदरों को कितनी तकलीफें देते हैं.

बंदर तो महज एक प्रसंग था. असली कष्ट सूनी को मां की संवेदनहीनता से हुआ था. सूनी के मन में मां की एक पारंपरिक तस्वीर थी. मां के इस पारंपरिक रूप में उसके जेहन में एक त्यागमयी, करुणाशील और कोमल हृदय की स्त्री आती थी. लेकिन न जाने कितनी बार सूनी को अपनी मां ठीक इसके विपरीत लगी थी. जिस तरह वह घर की महरी को झिड़क देतीं, रिश्तेदारों को कड़वी चिट्ठियां लिखवातीं और छोटी-छोटी बातों में झूठ बोल देतीं, सूनी बेहद आहत हो जाती. जब वह विरोध करती मां अपना सबसे अचूक अस्त्र आंखों के रास्ते निकालतीं. और आंचल से पोंछ लेतीं. सूनी सब समझते हुए भी हारने और माफी मांगने में अपनी खैर समझती.

सही समय पर उसकी शादी न होने के पीछे भी मां की बड़ी अहम भूमिका थी. जब भी किसी ने सूनी में जरा ज्यादा दिलचस्पी ली और घर आना-जाना शुरू किया, मां ने अपनी शर्तें बताकर उसे इतना डरा दिया कि वह तभी भाग खड़ा हुआ. मां का कहना था कि वे सूनी के लिए ऐसा वर चाहती हैं जो उन्हीं के साथ आकर रहे, कभी ऊंची आवाज में न बोले, मां के लिए सेवा-भाव रखे और सूनी और मां के बीच में दीवार बनने की कोशिश न करे. कई बार तो यही समझ नहीं आता था कि मां वर सूनी के लिए खोज रही हैं या अपने लिए. सूनी को बड़ा बुरा लगता पर मां की खिलाफत का हश्र वह जानती थी, इसलिए चुप रहती. उसे लगता उसके सारे इरादों पर मां एक लाल बत्ती की तरह टिकी हुई हैं. इनके रहते उनसे मुक्त होना उसके बस की बात न थी.

अब अंततः जब सूनी वाकई सूनी रह गयी थी, उसने पाया एक-एक कर उसके सारे कुलीग शादी कर चुके थे. उसकी ज्यादातर दोस्तियां परिवारों से थीं. वहां प्रेम या विवाह की गुंजायश नहीं थी. सूनी विवाह को लेकर स्वयं सक्रिय होना हास्यास्पद मानती थी. पैंतीस की वह हो चुकी थी और अकेले जीने की काफी अभ्यस्त भी. ऐसे में कुछ बड़े ही दार्शनिक किस्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताब, कंघी और गंजे

तालस्तोय

राह से गुजरते दो मुसाफिरों को एक किताब पड़ी दिखायी दी. किताब देखते ही दोनों इस बात पर तकरार करने लगे कि किताब कौन लेगा!

ऐन इसी वक्त एक ओर राहगीर वहां आ पहुंचा. उसने दोनों को इस हालत में देखकर कहा, "भाई, यह बताओ, तुम दोनें में पढ़ना कौन जानता है?"

"पढ़ना तो किसी को नहीं आता." दोनों ने एक साथ जवाब दिया.

"फिर तुम इस किताब के लिए तकरार क्यों कर रहे हो...! तुम्हारी लड़ाई तो ठीक उन गंजों जैसी है जो कंघी हथियाने के लिए पुरजोर कोशिशों में लगे थे... जबकि कंघी फिराने के लिए उनके सिर पर बाल एक भी नहीं था." □

के प्रम उसके व्यक्तित्व में विकसित होने लगे थे. जैसे किसी साल उसे लायब्रेरी के एक खास कोने से लगाव हो जाता और वह वहीं बैठकर पढ़ती किसी साल कोई छात्रा उसे बेहद जहीन लगती और उस पर वह अपनी सारी शक्ति और समय खर्च कर पढ़ाती. किसी साल उसे घर के पास की कोई खास सड़क अच्छी लगने लगती. और तो और अपनी कालोनी में सामने के मकान का एक बेरोजगार नौजवान, जिसका नाम भी उसे नहीं मालूम था, उसे अच्छा लगने लगा था. वह रोज सुबह उसे अपने कमरे को ताला लगाकर फाइल हाथ में लेकर निकलते देखतीं और रोज शाम वापस आते भी. उसकी सुबह और शाम की चाल में काफी अंतर होता. कई बार ऐसा हुआ कि जिस वक्त सूनी लौटी उसी वक्त वह नौजवान भी लौटा. सुनंदा को अच्छा लगा. लेकिन ऐसे लमहे बहुत थोड़े थे. अक्सर समय के विस्तार और व्यूह के आगे वह अपने को परास्त खड़ा देखा करती और सोचती इस निराकार शत्रु से वह कैसा सलूक करे.

गर्मियों की छुट्टियों में सुनदा बाहर घूमने जाना चाहती थी पर कोई साथी नहीं मिल रहा था. उसकी उम्र की सभी महिलाएं घर गृहस्थी वाली थीं. उससे छोटी-उम्र की कुलीग अपनी चुहल में उसे शरीक करने में संकोच करती थीं. मई में लायब्रेरी खुली रही. सुनंदा ग्यारह बजे तक लायब्रेरी पहुंच जाती. कई पढ़ाकू किस्म के छात्र लायब्रेरी आबाद किये रहते. कई छात्राएं सुनंदा को घेर लेतीं और वह उन्हीं के साथ कैंटीन हो आती. पर जून आते-आते लायब्रेरी में भी छुट्टियां हो गयीं. सुनंदा की यह व्यस्तता भी अब समाप्त हो गयी. एक रात अपनी छोटी-सी रसोई में खाने के नाम पर मैगी पकाकर सुनंदा कमरे में आयी तो उसने पाया उसके बिस्तर पर एक बड़ा-सा कत्थई रंग का काक्रोच आराम से बीचों-बीच पड़ा है. काक्रोच निश्चल था पर उसकी मूछें सचल थीं. एक क्षण सूनी को हंसी आयी. उसके बिस्तर का यही हश्र होना था. एक अकेला बिस्तर, एक अकेला तकिया, एक अकेला कंबल कितना मनहूस होता है. क्यों जी, क्या सुहागरात मनाने आये हो तुम? मन ही मन सूनी ने कहा. फिर बिस्तर देखते-देखते उसे रुलाई आ गयी. उसे लगा यह भद्दा कत्थई कीड़ा उसकी नियति है, उसका भविष्य, उसका वर्तमान. सुनंदा ने अपने हाथ की प्लेट की तरफ देखा. मैगी उसे केंचुओं से भरी प्लेट लगी. वह घबराकर प्लेट रसोई में पटक आयी. काक्रोच और केंचुए, रात में यही जीव रह गये उसका साथ देने के लिये? उस रात बिना कुछ खाये देर तक सूनी बिस्तर पर पड़े-पड़े सोचती रही. इंसान कब कैसे अपनी जिंदगी का गलत नक्शा खींच लेता है, एक मंजिल से निकलते हुए दूसरी मंजिल में पड़ जाता है. उसके साथ भी यही हुआ था.

जब वह इंटरमीडिएट में थी, वह नहीं जानती थी उसे क्या बनना है. तब पिता जिंदा थे. भाई युनिवर्सिटी में एम.कॉम. के फाइनल में था. मां तब खुश और हंसमुख थी. सूनी हंसती-खिलखिलाती इंटर पास कर गयी. उसकी प्रथम श्रेणी से प्रेरित हो पिता ने उसे शहर के सबसे अच्छे कॉलेज में बी.ए. में प्रवेश दिला दिया. यहां एक से एक बुलंद हौसले और इरादेवाली लड़कियां थीं. किसी से पीछे न रहने की होड़ में सुनंदा के हौसले भी बुलंद हुए. उन दिनों उसे अपनी प्राध्यापिकाओं का जीवन बहुत आकर्षक लगता था. रोज उनका नयी कीमती साड़ियां पहनकर क्लास में आना, अपनी वक्तृता से छात्रों को उद्वेलित करना और खाली समय में स्टाफरूम से उनके खिलखिलाने का स्वर, सब मिलाकर सुनंदा के लिए एक स्वप्न-जाल की रचना करते. उसे लगता जीवन में अगर वह कुछ बनना चाहती है तो बस यही. इसी एक लक्ष्य की ओर वह बढ़ती गयी थी.

एम.ए. पूरा होते न होते उसके घर का नक्शा एकदम बदल गया. पिता यकायक हार्टअटैक में चल बसे और मां को एक बदहवास तनाव में छोड़ गये. भाई उसी वर्ष इंग्लैंड के एक प्रतिष्ठान में नौकरी पाकर चला गया. सुनंदा जीवन की समस्याओं के बीचों-बीच अकेली खड़ी रह गयी. पिता के चले जाने के बाद मां की बच्चों से अपेक्षाएं बहुत बढ़ गयी थीं. वे अपना अधिकतम भार सूनी पर डालकर भी अपने को हमेशा निरीह और निराश्रित दिखातीं. भाई घर की समस्याओं से बड़े आश्चर्यजनक ढंग से तटस्थ होता गया था, वह कभी-कभार खत भेजता और कभी-कभार पच्चीस-पचास पाउंड. इस सारे संघर्ष में भी सूनी ने रिसर्च किसी तरह पूरी की. मां की भूमिका इस दौरान निगेटिव ही रही. उनके लिए अपना वर्तमान ही महत्वपूर्ण था, सूनी को वह अपनी नर्स या नौकरानी की तरह मानती थीं. कभी उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरकर नहीं पूछा, "तुझे क्या चाहिए?" उनके प्यार का स्रोत ही मानो शुष्क हो गया था.

अब सुनंदा को करवटों के बीच यह खयाल आ रहा था कि अवसर आने का भी एक मौसम होता है. उसके जीवन में एक महत्वपूर्ण मौका रिसर्च के दौरान आया था. उस वर्ष एम.ए. में एक लड़का आया था गंभीर शुक्ला. उन दोनों की पहचान लायब्रेरी में ही फली-फूली और दोस्ती में बदल गयी. हालांकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंभीर सूनी से डेढ़ साल छोटा था, इसका कोई फक उनकी दोस्ती पर नहीं पड़ा था. काफी पास आ जाने के बाद एक दिन गंभीर उसके घर आया. पहली मुलाकात में ही मां ने उससे जैसा बर्ताव किया, वह मानो चौकन्ना हो गया. उसने बाद में सूनी से कहा, "तुम्हारी मां न्यूरॉटिक लगती हैं. इन्हें किसी क्लिनिक में क्यों नहीं डाल देतीं?" सुनंदा को बहुत बुरा लगा था यह सुनना. यों वह खुद मां के रवैये से क्षुब्ध रहती लेकिन गंभीर से ऐसा बेरहम कमेंट उसे बुरा लगा. उस एक दिन ने उनकी दोस्ती के शेष दिनों को जैसे पीछे खींच लिया. अंततः एक बात ऐसी हो गयी जिसने हमेशा के लिए उन दोनों को विमुख कर दिया.

एक सेमिनार के सिलसिले में सुनंदा और गंभीर दोनों को इलाहाबाद विश्वविद्यालय जाना था. उन्होंने बड़ी मेहनत से अपने पेपर लिखे और साथ जाने की योजना बनायी. मां को जब सुनंदा ने बताया, पहले तो उन्होंने उसे हतोत्साहित किया, "क्या करेगी जाकर इतनी दूर." जब सुनंदा नहीं मानी तो वे खुद साथ चलने को आमादा हो गयीं, "तू अपनी मीटिंग करना, मैं संगम नहा लूंगी," उन्होंने कहा.

इस अकाट्य सुझाव की कोई काट नहीं ढूंढ पायी सुनंदा.

वह गंभीर से भी खुलकर नहीं बता पायी कि मां उसके साथ चलेंगी.

यात्रा की रात जब वह मां को लेकर स्टेशन पहुंची, गंभीर का चेहरा उन दोनों को देखकर बेहद तन गया. मां का आरक्षण नहीं था. वे गंभीर की बर्थ पर लेट गयीं. गंभीर को अगले डिब्बे में जाना पड़ा. उसके चेहरे पर झुंझलाहट और खिंचाव था.

वापसी में उन तीनों का एक साथ ही आरक्षण था. मां और गंभीर के बीच अनबोला तनाव रहा. रात बीतने के बाद सुबह गाड़ी के रुकते ही मां ने शोर मचा दिया, "मेरे चार सौ रुपये कहां गये?" बहुत ढूंढा गया, ऊपर-नीचे यात्रियों से पूछा गया पर मां की तसल्ली नहीं हुई. वे कहने लगीं, "जरूर रात में किसी ने निकाल लिये, मैं तो ब्लाउज में रखकर सोयी थी."

जब यह चख-चख चल रही थी गंभीर ने इसमें कोई हिस्सा नहीं लिया और जल्द ही एक औपचारिक-सा नमस्कार कर चला गया. मां ने स्कूटर पर घर लौटते वक्त मुनादी कर दी, "रुपये तेरे उसी छोकरे ने निकाले हैं, बाकी तो सब शरीफ लग रहे थे. उसी को पता था बुढ़िया के पास रकम होगी."

"तुम तो बस मां ऐसा बतंगड़ बनाती हो, वह तुम्हारे चार सौ रुपल्ली का क्या करेगा. वह कोई चोर है?"

"तुझे क्या पता. अकेली औरत को सब लूटना चाहते हैं, मैं ऐसे लड़कों को अच्छी तरह जानती हूं, कहीं तुझे फांस लिया तो मुझे तो एक पंखिया थमाकर बाहर कर देगा."

सुनंदा को मां के शक्कीपन पर बहुत गुस्सा आया. गंभीर से अलग दरार पड़ गयी. अब उसकी कंपनी में उसके चेहरे पर ऊब के लक्षण आने लगे. एक दिन उसने साफ कह दिया, "मुझे बुद्धिजीवी लड़कियां बड़ी नागवार लगती हैं, उनसे अगर साबुन की भी बात करो तो पहले उसकी हिस्ट्री बताने लगती हैं. जीवन इतना बोर नहीं है जितना तुम इंटैलेक्चुअल्स ने बताना है."

सुनंदा आहत हुई और पीछे हट गयी. मां ने चैन की सांस ली. बाद के वर्षों में वे रुपये खोनेवाली घटना को नमक-मिर्च लगाकर सुनाती रहीं. इसी तरह मां ने हर अविवाहित मित्र के साथ सलूक किया. उन्होंने अपनी सुरक्षा की फिक्र में सूनी के जीवन को अकेला कर डाला.

अब सुनंदा को मां याद नहीं आती थी. संबंध की ऊष्मा उनके व्यवहार ने सुखा डाली. जीवन में सभी संबंधों के प्रति वह सशंकित रहने लगी.

जाड़ों की धूप में कॉलेज के लॉन में बैठना बहुत प्रिय लगता था. सूनी अपनी कुलीग के संग बैठी थी. उसकी कुलीग बुनाई जैसे कामों में भी लगी थीं. तभी नीम के पेड़ से एक गिलहरी उतरी और ऊन में उलझकर पलट गयी. एक नन्हीं हलचल मची. सूनी ने बड़े प्यार से गिलहरी के पांव ऊन से आजाद किये कि वह चपल गति से उड़न-छू हो गयी. सूनी को लगा उसने एक सार्थक काम किया. जीव-जंतुओं के प्रति उसकी चेतना हमेशा सजग रही थी, अब वह और ज्यादा हो गयी.

न मालूम वह वही गिलहरी थी या और, अब वह बरामदे तक में चक्कर काटने लगी थी. एक दिन सूनी ने उसे अपने आंचल में पकड़ लिया और सहलाया. फिर तो यह क्रम बन गया. अब जब सूनी लॉन में बैठती गिलहरी आकर उसके पैरों को गुदगुदा देती. कोई साथी प्राध्यापिका उसे देखती ही "श" कह देती तो गिलहरी फौरन भाग खड़ी होती लेकिन सूनी को अकेले देखकर वह देर तक खेलती.

जब दो बड़े रचनाकार मिलते हैं...

वरिष्ठतम कथाकार जैनेंद्र जी से ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि-कथाकार 'अज्ञेय' द्वारा की गयी लंबी बातचीत जो अपने आप में एक धरोहर है.

इस धरोहर के साथ ही जैनेंद्र जी पर केंद्रित ऐसी सामग्री जो 'सारिका' ही उपलब्ध करा सकती है...

जैनेंद्र कुमार विशेषांक

सारिका

जनवरी, 1989

अपनी प्रति अभी से बुक करा लें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे ज्यादा खुशनसीब और कौन होगा!

जिंदा रहने की स्वाभाविक लालसा मेरे भीतर भी होनी चाहिए. मैं इस पर आवरण नहीं रखना चाहता. पर मेरा बना रहना एक बात पर निर्भर करता है... मैं कारा या परतंत्रता में नहीं रहना चाहता. मेरा नाम भारतीय इनकलाब की निशानी बन चुका है क्रांतिकारी दल के त्याग और आदर्श मुझे एक बड़ा आकार दे चुके हैं. इतना बड़ा आकार कि जीवित रहते उससे बड़ा आकार बना पाना नामुमकिन है.

इस समय लोग मेरी कमजोरियों से अधिक वाकिफ नहीं हैं. फांसी से बच जाने पर वे निश्चित ही सामने आ जायेंगी... और इनकलाब की निशानी अपनी चमक खो बैठेगी, हो सकता है कि खत्म हो जाए! वीरता के साथ खुशी-खुशी फांसी के तख्ते पर चढ़ते ही मुल्क की माताएं यह आकांक्षा पालने लगेंगी कि काश उनका बच्चा भी भगत सिंह बने! ऐसे में मुल्क के लिए बलिदान हो जाने वालों की तादाद इतनी हो जाएगी कि साम्राज्यवाद की समूची ताकतें भी इनकलाब को रोक न सकेंगी.

यह भी एक विचार आता है कि मुल्क और इंसानियत की खातिर जो कुछ मैं करना चाहता था उसका छोटा-सा हिस्सा भी मैं नहीं कर सका. आजादी से रह पाता तो संभवतय यह सब और अपनी इच्छाएं पूरी कर सका होता. सिवा इसके और कोई लालसा मेरे मन में फांसी से बचने को नहीं हुई. मुझसे ज्यादा खुशनसीब कौन होगा. बेचैनी से आखिरी इम्तेहान का इंतजार है... मेरा मन है कि यह और करीब आ जाये! □

(फांसी से एक दिन पहले (22 मार्च, 1931) सेंट्रल जेल के बंदी क्रांतिकारियों के संदेश का उत्तर देते हुए भगत सिंह)

धीरे-धीरे सुनंदा उसे घर लाने लगी. बड़े मजे से उसके पर्स के सहारे लटककर वह रिक्शे में आ जाती. सुनंदा के घर में अखरोट रहने लगे, एक कटोरी में चुग्गा, दूसरी में पानी. सूनी ने उसे नाम भी दे डाला– 'कट्टो'. कट्टो अपनी झबरी दुम उठाकर जैसे पिछवाड़े से आदाब फरमाती.

जीवन का एक स्पंदन था जो घर में झंकृत होने लगा था. दिलचस्पी की एक हल्की शुरुआत. पड़ोस के फ्लैट के बच्चे कभी-कभी झांकने आते, "सूनी दीदी, अपनी कट्टो दिखा दो." एक कटोरी में मलायम-सी गद्दी रखकर सूनी ने कट्टो का बिस्तर बना दिया था. अब कट्टो रात में बाहर नहीं भागती, अपनी टोकरी में सो जाती, सुबह जैसे ही सूनी नहाकर कॉलेज के लिए तैयार होती, वह पर्स पकड़कर लटक जाती. बरसात में पेड़ों के नीचे काफी कुकुरमुत्ते उग आये थे. कुछ बड़े थे तो कुछ छोटे-छोटे. कट्टो कुकुरमत्तों की तलाश में भागती रहती. लगता तो ऐसा था उसे सूनी का टाइमटेबिल याद है. छुट्टी की घंटी बजते ही वह स्टाफरूम में दौड़ी आती और सूनी के पर्स के सहारे लटक जाती. सहेलियों के मजाक करने पर सूनी ने स्वयं कट्टो को नया नाम दे दिया था– 'जीवनसाथी'. शादी और परिवार से अघाई अधेड़ लेक्चरर कहतीं, "यह तुमने अच्छा जीवनसाथी ढूंढ निकाला, न कोई झंझट न कोई बंधन."

सूनी कट्टो ही क्यों जीव-मात्र में मानो विश्व का कोमल रूप देखती थी. पहले के वर्षों की उग्रता अब तक सौम्यता में परिमार्जित हो गयी थी. वह अपना हृदय करुणा से भरा महसूस करती. माली जिस तरह एक-एक पौधे को सींचता, पोसता, वह ध्यान से देखती और सोचती, जरूरी नहीं कि मनुष्य सिर्फ अपने बच्चे को पालकर बड़ा करे. पेड़-पौधे, फूल-फल किसी को भी पालापोसा जा सकता है. उसके बड़े होने पर कम खुशी नहीं होती.

रविवार की दोपहर सूनी ने एक अच्छी कन्नड़ फिल्म देखी, उसके बाद उसी फिल्म की मूलकथा 'घटश्राद्ध' पढ़ते-पढ़ते वह अलसा गयी. कट्टो भी कहीं गमलों के बीच में दुबकी पड़ी थी. जब सूनी की आंख खुली, शाम पूरी तरह झुक गयी थी. कमरे में हल्का अंधेरा था. बिजली जलायी, चाय बनायी और थोड़ी-सी चाय एक तश्तरी में डाल कट्टो के लिए ठंडी करने रख दी. तभी सुनंदा की नजर अपने बिस्तर पर गयी.

"आह." उसकी चीख निकल गयी. बिस्तर पर कट्टो बेजान पड़ी थी. सूनी ने उसे उलटा-पुलटा. उसकी झबरी दुम बिल्कुल लुंज हो चुकी थी, आंखें छोटी रोतियों की तरह निस्पंद थीं. सूनी ने साड़ी का पल्लू देखा, उस पर हमेशा की तरह कट्टो के रोयें चिपके थे. उसकी समझ में काफी कुछ आ गया. उसे सोता देख कट्टो जरूर उसके पास सरक आयी होगी. कुछ देर खेलकर वह वहीं सटकर सोयी होगी. सूनी की करवट में उसकी कोमल गर्दन दब गयी होगी. नन्हीं-सी जान निकलते देर क्या लगी होगी. सुनंदा फूट-फूटकर रोयी. उसे लगा उससे शिशु-हत्या हो गयी है. कमरा मनहूस हो उठा. बहुत देर तक निश्चल बैठी रही. नीचे के फ्लैट से काम करने के बाद उसकी नौकरानी शीला कमरे में आयी तो उसने पाया सूनी एक सफेद रूमाल में कट्टो को लपेट रही है.

"मर गयी आपकी कट्टो!" शीला ने कहा. एक आघात की तरह लगा शब्द 'मरना.'

"मैंने ऐसा जानबूझकर नहीं किया. यह अपने-आप दब गयी, मुझे सच कोई होश नहीं था." सूनी बार-बार अपना आंचल झाड़ रही थी.

"नहीं दीदी आप क्यों मारतीं इसे. चलिये इसे नीचे मिट्टी में दबा दें."

वे दोनों उस सफेद रूमाल को थामकर नीचे आयीं. सामने तिकोने पार्क में दो पेड़ थे. अंधेरा हो चुका था. शीला ने एक छोटा-सा गड्ढा बनाया, पतला, एक फुट के करीब और उथला. सूनी ने झुककर उसे कुछ गहरा किया, आहिस्ते से उसने रूमाल समेत मिलहरी को गड्ढे में लिटा दिया. एक क्षण जैसे वह प्रार्थना में झुकी रही. शीला ने धीरे से गड्ढा मिट्टी से ढक दिया.

पता नहीं, यह सुनंदा की कल्पना थी या सच, दूर कहीं शोक धुन-सी बजती सुनाई दे रही थी. ऊपर जाते हुए उसे लग रहा था वह वाकई एक शवयात्रा से लौट रही है. आज वह सचमुच सूनी थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरैवेति-चरैवेति

इंदू झा, लखनऊ

बचपन के सपने ना जाने क्या-क्या थे? नवीं कक्षा में थी तभी स्व. महादेवी वर्मा की 'यामा' की पंक्तियों 'मैं नीर भरी दुख की बदली...' ने साहित्य प्रेम को अंकुरित किया. लिखने की इच्छा प्रबल हुई, लिखने लगी. अकस्मात् 15 वर्ष की आयु में ही सन् 1977 में विवाह बंधन में बांध दी गयी. भारतीय संस्कार, मैथिल परिवेश ने मुझे शिक्षा के क्षेत्र से तोड़कर बहू, पत्नी और फिर मां का क्षेत्र प्रदान किया. फलस्वरूप छोटी-सी उम्र में खट्ठे-मीठे अनुभव, सांसारिक विसंगतियां और अपनी रुचियों का हनन होते देखना, कुंठा को जन्म देने लगी. मैं साहित्य प्रेम की दीवानगी में दर्द भरी कविताओं का सृजन करने लगी. तब से आज तक लिखती आ रही हूं, कहानियां-कवितायें. कहीं नारी का, कहीं पुरुष का, कहीं वृद्धों का तो कहीं मासूमों का शोषण और हृदयहीनता की बढ़ती रफ्तार, दौड़ती हुई जिंदगी, अपने में ही कैद इंसानियत जो दूसरों का हमदर्द नहीं हो सकती. कितने अनुभव बिखरे पड़े हैं इर्द-गिर्द. गृहस्थी की उलझनें, समयाभाव, शिक्षोपार्जन की कमी, सभी बाधक बनते हैं परंतु "संसार आशा से ही अनुप्राणित है." पति से यह प्रोत्साहन पाकर मैं पुनः रचनात्मक पथ पर चल पड़ती हूं. कानों में जैसे उद्घोषित होने लगता है चरैवेति-चरैवेति.

विसंगतियां प्रेरित करती हैं

अनुपमा भोंसले, तिल्दा, रायपुर

मेरी जिंदगी में कुछ क्षण ऐसे आयें जब मैं अपने मानसिक अंतर्द्वंद्व को लिखकर ही कम कर पायी. बाद में पाया कि आसपास के वातावरण से कुंठित मन सिर्फ साहित्य से ही जुड़कर अपने अस्तित्व की पहचान कर पाता है. इसके बाद मैंने जो कुछ रचा वह मात्र आत्मतुष्टि का साधन मात्र न होकर प्रेरणादायक भी बना. जिंदगी की इस छोटी-सी अवधि में मैंने अनेक विसंगतियों को देखा और झेला है. लेकिन कहीं कुछ ऐसा है जिसे या तो मैं समझ नहीं पा रही या अनुभवों की कमी मुझे पांव नहीं धरने दे रही. व्यथित मन इन विसंगतियों के प्रति प्रत्यक्षतः आक्रोश प्रकट करने में असमर्थ है तभी बेचारी निरीह कलम को मेरे तनाव तथा व्यग्रता का शिकार होना पड़ता है.

अनुभव के बिना संभव नहीं

विजय कुमार केशरी, पूर्णिया

अचानक आसपास घटी घटनायें मानस-पटल पर छा जाती हैं, हृदय तार को झकृत कर जाती हैं, चाहने लगता हूं कि क्यों न इस घटना के परिप्रेक्ष्य में एक कहानी का ताना-बाना बुना जाये. कहानी-रूप देने के लिये जिस काल्पनिकता की, चरित्रों को उभारने की आवश्यकता होती है जिससे कथा रोचक बन सके. और उसमें सरलता और सहजता भी बनी रहे. इन तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए मस्तिष्क में कहानी की रूपरेखा खींच डालता हूं. परंतु लिखते वक्त वे सभी कल्पनायें उसी रूप में नहीं उतर पाती हैं लगता है या तो भाषा के दृष्टिकोण से काफी सस्ती रचनाप्रक्रिया ने जन्म ले लिया है या मेरा स्वयं परिभाषित कथ्य कहीं खो सा गया है. बस वह कहानी जो खरीदा न जा सके. जिसका हर शब्द किसी पीड़ित व्यक्ति को एक क्षण भी राहत दिला सके. हर तरफ से स्वार्थ की एक गंध जो तेजाब की माफिक इंसान के ईमान, धर्म, इंसानियत की चिंदी-चिंदी करके गांधी के मुंह पर उछाल रही है. मैं उस गंध को अपनी सांस में रोकना चाहती हूं. उसी तेजाब से लोलुपता सत्ता, भ्रष्टाचार, अन्याय को काट देना चाहती हूं. पर ये सब नहीं लिख पाती. क्योंकि मैं कायर हूं. मैं इस समाज से डरकर इसके मुंह को नोचने में डरती हूं अंदर के दावानल को थपकियां देकर सुला देती हूं.

इंदू झा

अनुपमा भोंसले

विजय कुमार केशरी

निर्मला राजकिशोर

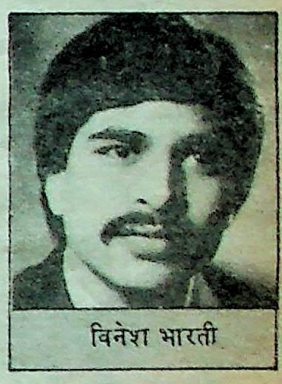

विनेश भारती

लेखन विवशता है

विनेश भारती, बंबई

लिखना आदत या शौक नहीं. पर कभी-कभी विवशता-सी बन जाती. ये क्या है और क्या होना चाहिए? इन्हीं जटिलताओं के बीच भटकता मेरा मैं जैसे कागजों पर उतर पड़ना चाहता है.

ये जिंदगी किसी रंगमंच से कम नहीं. नाटकों के पात्रों की तरह की जिंदगी में आदमी के अनेक संग-रिश्ते बनते रहते हैं और अपनी भूमिका का अभिनय कर समय के साथ ही खत्म होते जाते हैं. लेकिन कुछ रिश्ते जब खत्म होते हैं तो खलनायक अंदाज से. और छोड़ जाते हैं एक घुटन-भरा एहसास. इन्हीं बनते-बिगड़ते रिश्तों ने अपना पात्र निभाते-निभाते न जाने कितनी कहानियां जेहन में भर दी हैं. लेकिन जब भी अपनी बात कागजों पर कहने की कोशिश करता हूं तो लगता है कि जो कुछ भी लिख पाया हूं शायद मेरा आक्रोश है. किसी रिश्ते के प्रति और एक रिश्ते की लाश पाता हूं. □

अन्याय के विरुद्ध

निर्मला राजकिशोर, सिकंदराबाद

कुछ लड़ाईयां हाथों से कुछेक जुबान से अन्य कई बुद्धि से लड़ी जाती हैं. सभी का मकसद होता है किसी अन्याय के विरुद्ध अपनी जगह बनाना. अपने अंदर उबलते हुए विद्रोह को व्यक्त कर पाना. शायद मैं भी इसीलिए लेखनी उठाना चाहती हूं. जो कुछ अनचाहा घटित हो रहा है अखबारों की सुर्खियों में या न्यायालयों की दहलीज पर, जला दी जाती हैं एक ओर बेबस औरत ब्याह की कीमत न जुटा पाने पर.

मैं सच लिखना चाहती हूं वह सच आत्मसंतुष्टि के अभाव में अपने पास तक ही सीमित. रह जाती है. आशा है कालांतर में मेरी परिपक्व मानसिकता, कहानी प्रस्तुतिकरण का सही ढंग जानकर तमाम सामाजिक समस्याओं को उभारने में सहयोग करेगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1933, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
प्रमुख कृतियां : 'दूसरे बेहरे', 'केवल पिता', 'आहत वापसी' (कहानी संग्रह), 'लौटते हुए', 'कई अंधेरों के पार' (उपन्यास)
संपर्क : एफ/ई-7 नया कविनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

□ से.रा. यात्री

स्वजी में

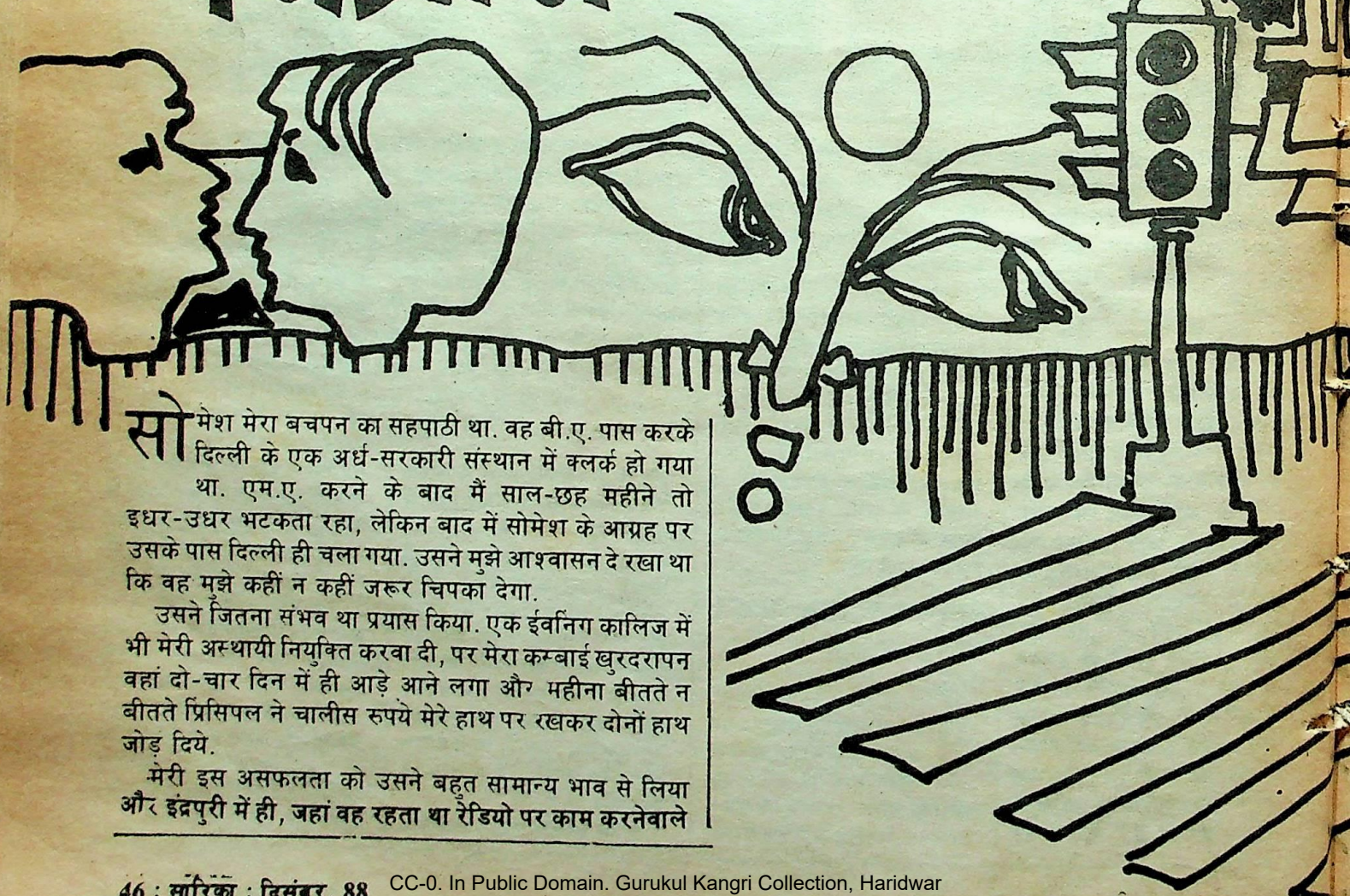

सोमेश मेरा बचपन का सहपाठी था. वह बी.ए. पास करके दिल्ली के एक अर्ध-सरकारी संस्थान में क्लर्क हो गया था. एम.ए. करने के बाद मैं साल-छह महीने तो इधर-उधर भटकता रहा, लेकिन बाद में सोमेश के आग्रह पर उसके पास दिल्ली ही चला गया. उसने मुझे आश्वासन दे रखा था कि वह मुझे कहीं न कहीं जरूर चिपका देगा.

उसने जितना संभव था प्रयास किया. एक ईवनिंग कालिज में भी मेरी अस्थायी नियुक्ति करवा दी, पर मेरा कम्बाई खुरदरापन वहां दो-चार दिन में ही आड़े आने लगा और महीना बीतते न बीतते प्रिंसिपल ने चालीस रुपये मेरे हाथ पर रखकर दोनों हाथ जोड़ दिये.

मेरी इस असफलता को उसने बहुत सामान्य भाव से लिया और इंद्रपुरी में ही, जहां वह रहता था रेडियो पर काम करनेवाले एक सज्जन गुप्ताजी के यहां ले गया. यह सज्जन ब्रजभाषा प्रोग्राम देखते थे. उन्हें सोमेश ने भैयाजी नाम से संबोधित किया और मेरा परिचय देकर कुछ काम देने की बात कही. वह बहुत ही भले आदमी थे. पति-पत्नी दोनों में ही ब्रज की मस्ती कूट-कूटकर भरी हुई थी. सोमेश का अनुरोध उन्होंने तत्काल स्वीकार कर लिया और अगले दिन आकाशवाणी पहुंचने के लिए कह दिया.

अगली सुबह मैं सोमेश के साथ उसके दफ्तर चला गया. मुझे अपनी विभागीय लायब्रेरी में बिठाकर वह जाते-जाते बोला, "तुम यहां बैठ कर कुछ पढ़ो, मैं लंच से पहले ही आ जाऊंगा और तुम्हारे साथ भैयाजी के पास चलूंगा."

सोमेश सवा बारह बजे आकर बोला, "मैंने सैक्शन अधिकारी से दो घंटे की छुट्टी ले ली है. तुम्हें भैयाजी के पास छोड़कर मैं आराम से लौट आऊंगा."

दफ्तर से थोड़ी दूर चलकर हमें बस मिल गयी. बस पार्लियामेंट स्ट्रीट की दिशा में ही जा रही थी इसलिए हमें बीच में कहीं उतरना भी नहीं पड़ा.

मैं सोमेश के साथ, सहमते हुए उस लंबी-चौड़ी तीन-तल्ला इमारत में घुसा. उसके पीछे-पीछे गोल दायरे में फैले शांत किंतु रौबीले बरांडों में कमरे के बाहर स्टैंड पर नामीय पट पढ़ते हुए मैं आगे बढ़ता रहा. वहां कमरों के बाहर जितनी भी तख्तियां लगी थीं मैं उन सभी नामों से परिचित था पर मैंने अपने रूबरू किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कभी नहीं देखा था.

पता नहीं मैं और सोमेश कब 'ब्रज माधुरी कक्ष' में पहुंच गये. पर वहां गुप्ताजी उर्फ 'भैयाजी' का कहीं पता नहीं था. कोई दूसरा आदमी भी वहां दिखाई नहीं पड़ा जिससे भैयाजी का अता-पता पूछा जा सकता. सोमेश बोला, "चलो कैंटीन में चलते हैं. तुम्हें भी तो भूख लग आयी होगी. पेट में कुछ डाल लो, नहीं तो तुम्हारी आवाज कमजोर आयेगी. हो सकता है भैयाजी भी वहीं नजर आ जायें."

दीवारों पर जगह-जगह गोल घड़ियों में सरकती सुइयों को देखते हुए मैं भीतर से आतंक अनुभव कर रहा था. शायद उस भवन में समय को महत्वपूर्ण बनाकर इतनी बार रेखांकित किया गया था कि वहां पहुंचनेवाला आदमी समय की मूल्यवत्ता को

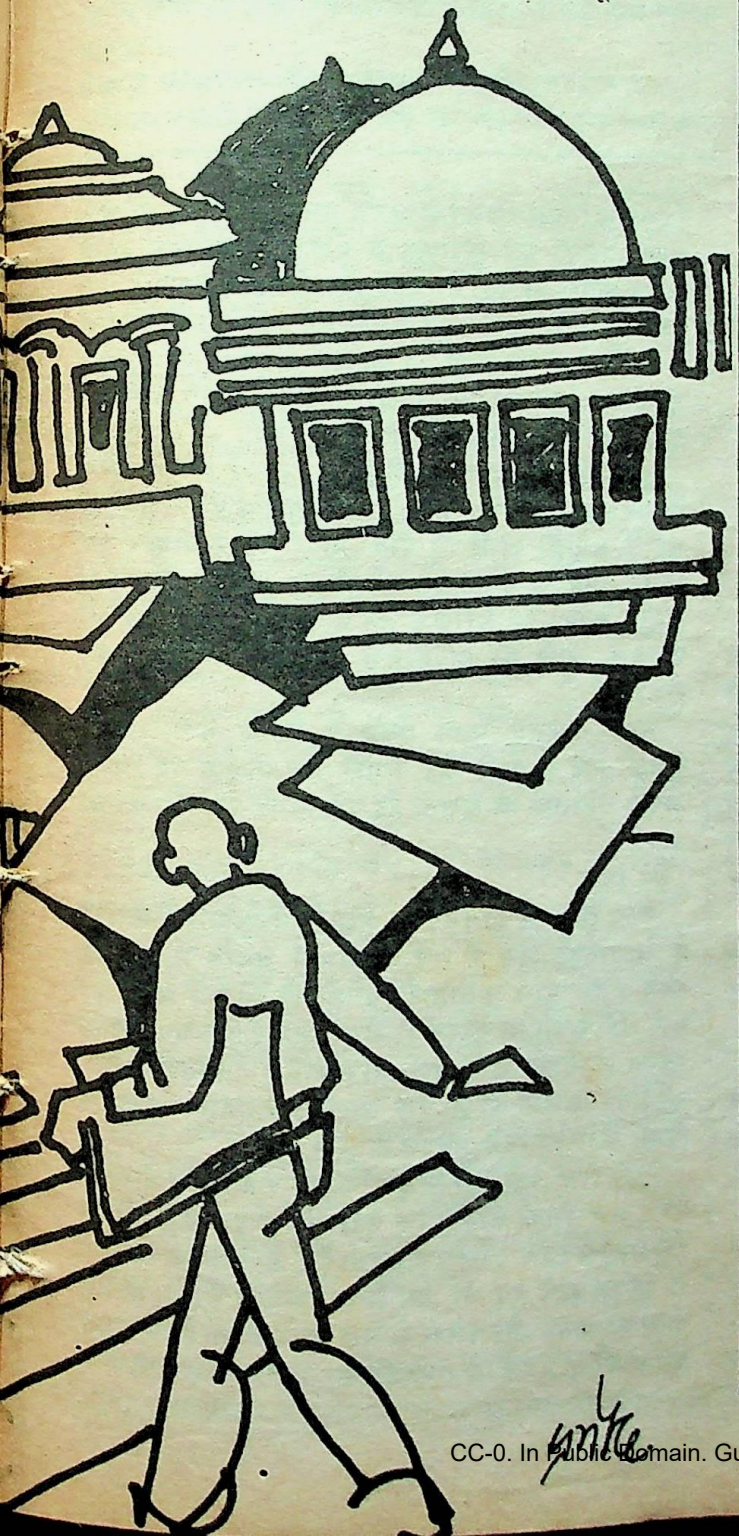

भीतर से स्वीकार करना सीख जाये. वहां क्षण-क्षण का हिसाब था और अपना क्षण देनेवालों को पूरा मूल्य चुकाया जाता था.

मैं सोमेश के साथ, लंबा गलियारा, जो काफी वक्राकार था, पार करते हुए भवन से बाहर आ गया और कैंटीन की तरफ चल दिया. कैंटीन में बेशुमार भीड़ थी और वहां जगह की भारी कमी थी. तरह-तरह के लिबास और हुलियों के लोग इधर-उधर आ-जा रहे थे और कान पड़ी आवाज सुनायी नहीं देती थी. उन प्राणियों के चेहरों पर कैसी भी उत्सुकता-आवेश अथवा घबराहट नजर नहीं आती थी. इधर मैं घबराते हुए अधमरा हो रहा था.

ज्यों-त्यों करके सोमेश ने मुझे एक खाली कुर्सी पर स्थापित किया और काउंटर से कूपन लेने चला गया. वह विचित्र कौशल से दो प्याले चाय और दो समोसे लेकर आया. पर अभी तक और कुर्सी कहीं खाली नहीं हो पायी थी. उसने मेज के कोने पर चाय और समोसे रखते हुए कहा, "अब तो यहीं खा-पी लें. तुम्हारा प्रोग्राम जल्दी ही हो गया तो मेरे साथ ही वापस चले चलना.

> मैं कुछ बोलता इससे पहले ही स्टुडियो की बत्ती बुझ गयी. भैयाजी मुझ से फुसफुसाकर बोले, "मेरो इसारो पाते ई बोलन लागियो— डाक-गाड़ी की अस्पीड में मत बोलियो-तेंक आस्ते आस्ते हां."

दफ्तर में तो मेरा लंच बाक्स रखा ही है. बाकी वहीं चलकर खा लेंगे."

चाय पीकर जब मैं और सोमेश फिर उसी भवन में दाखिल हुए तो सवा बज रहा था. सोमेश बोला, "भैयाजी शायद स्टुडियो में हैं. चलो पहले उनके कमरे में देखते हैं."

भैयाजी के कमरे में पहुंचे तो वह अब तक भी नहीं लौटे थे. सोमेश मुझे वहीं छोड़कर कहीं पूछताछ करने चला गया. मैंने अपने भीतर एक विचित्र खालीपन अनुभव किया. मैं ठीक से जानता भी नहीं था कि वहां उस भवन— कमरे या कि स्टुडियो में मेरी क्या उपयोगिता हो सकती थी. लोग वहां किसी न किसी तैयारी के साथ ही आते होंगे पर मेरे पास भरपूर हौल दिल के अलावा कोई ऐसी उल्लेखनीय पूंजी नहीं थी कि वहां आत्मविश्वास के साथ बैठा रह सकूं.

दसेक मिनट बाद सोमेश हाथ में एक पुर्जा लिये कमरे में दाखिल हुआ और व्यस्तता से बोला, "भैयाजी तीन नंबर के स्टुडियो में हैं. चलो तुम्हें उनके पास छोड़ देता हूं." यह कहने के बाद उसने दीवार घड़ी पर नजर डालकर कहा, "पौने दो बज रहे हैं. मुझे दफ्तर भी जाना है."

स्टुडियो में जाने के लिए एक परिचय-पत्र भी बनवाना पड़ा तब कहीं जाकर हमें स्टुडियो में घुसने की इजाजत मिली. जब मैं उधर जा रहा था तो मैंने स्टुडियो के दरवाजों के ऊपर दीवार पर महात्मा गांधी के सूत्र वाक्य न केवल उभरे हुए बल्कि प्रकाश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगमगाते देखे. मुझे यह देखकर बड़ी सांत्वना मिली कि अपने महात्मा गांधी को प्रचार प्रसार के केंद्र में कितनी अच्छी तरह पहचाना जा रहा है.

द्वार पर मुस्तैद खड़े गार्डों को सोमेश ने परिचय पत्र दिखाया और मुझे लेकर भीतर दाखिल हो गया. पूरे गोल दायरे में गलियारे के दोनों तरफ स्टुडियो थे और उन पर नंबर पड़े थे. कहीं-कहीं बार खुले थे तो वाद्यों के स्वर उभरकर कानों में पड़ रहे थे. वहां की सफाई और भव्यता दर्शनीय थी.

भारी द्वार धकेलकर सोमेश तीन नंबर के स्टुडियो में घुसा. मैं भी लपककर अंदर हो गया. वहां खासी गहमा-गहमी थी. कई लड़के-लड़कियां ब्रजभाषा में बोलकर रिहर्सल कर रहे थे. लेकिन उनके लिबास और शक्ल-सूरत में कतई ऐसा नहीं लगता था कि उन्होंने उस भाषा का स्टुडियो से बाहर कभी भी इस्तेमाल किया होगा. ले-देकर महज एक आदमी अपनी सूरत-शक्ल और पहनावे से देहाती लगता था. उसके पीठ तक फैले तेल में सराबोर बाल हठात ध्यान आकर्षित करते थे. उसकी धोती सफेद थी जिसे उसने चुन्नटदार ढंग से बांध रखा था. कुरता घुटनों तक फैला और जोगिया रंग का था. हमारे गांवों में उन दिनों सारंगी बजाकर भीख मांगनेवाले जोगी वैसा ही लिबास धारण करते थे. आधुनिक वेशभूषा में सजे उन लड़के-लड़कियों को देखकर मैं हैरान होता रहा और यह समझने की कोशिश करता रहा कि वह वहां ब्रजभाषा में क्या करने वाले हैं.

इसी क्षण भैया जी स्टुडियो का भारी-भरकम दरवाजा धकेलकर भीतर आये और मेरी और सोमेशजी की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले, "तो आप लोग आ गये?"

उन्होंने हमें उत्तर देने का अवसर नहीं दिया. सब की ओर व्यस्तता से देखकर बोले, "तो चलो आप लोग अपनी-अपनी स्क्रिप्ट संभालो और काम शुरू करो." इसके बाद उन्होंने अपनी कलाई घड़ी देखकर कहा, "तीन बजे हमें स्टुडियो खाली करना पड़ेगा."

नाटक में भाग लेनेवालों ने जल्दी-जल्दी अपने हाथ में थामे पन्ने उलटने-पलटने शुरू कर दिये. एक क्षण में ही सारा माहौल

सागर-कन्याएं

खलील जिबान

सूर्योदय (पूर्व) के समीपस्थ द्वीपों को सागर की गहनतम गहराई आवृत्त किए हैं. लंबे सुनहले बालों वाली सागर-कन्याओं से घिरा एक युवक का मृत शरीर मोतियों पर पड़ा था. संगीतमय माधुर्य के साथ आपस में वार्तालाप करती हुई वे कन्याएं अपनी नीलाभ पैनी दृष्टि से टकटकी लगाकर उस लाश को देख रही थीं. गहराइयों द्वारा सुने गये तथा लहरों द्वारा सागर-तट पर संप्रेषित यह वार्तालाप मंद वायु द्वारा मुझ तक पहुंचा.

उन सागर-कन्याओं में से एक ने कहा, "यह वही मानव है जिसका प्रवेश उस दिन हमारे सागर-संसार में हुआ था और उसके प्रवेश काल में हमारी जलधि ज्वारोद्वेलित थी."

दूसरी बोली, "जलधि ज्वारोद्वेलित नहीं थी. दृढ़ता-पूर्वक अपने को सुर-संतान कहने वाला मानव लौह-युद्ध कर रहा था और इस लौह-युद्ध के फलस्वरूप उसका लहू इस हद तक प्रवाहित हुआ कि सागर के जल का रंग लोहित हो गया. यह व्यक्ति मानव-युद्ध का शिकार है."

पूर्ण साहस के साथ तीसरी ने कहा, "युद्ध के विषय में मुझे कुछ नहीं मालूम, परंतु मुझे इतना मालूम है कि भूमि को विजित करने के बाद मानव की प्रवृत्ति आक्रामक हो गयी और अब वह सागर-विजय हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ है. अपने विलक्षण विषय-चिंतन के कारण उसका सागर पर पहुंचना हुआ. उसकी इस लोलुपता से हमारे प्रचंड समुद्र-देवता वरुण कुपित हो गए. वरुण के क्रोध को शांत करने के लिए (अर्थात् उन्हें प्रसन्न करने के लिए) मनुष्यों ने उन्हें उपहारों एवं वसिरानों का अहर्य देना प्रारंभ कर दिया, और हमारे बीच आज जो यह मृत-शरीर है, हमारे महान तथा उग्र वरुण देवता को मानव द्वारा समर्पित सद्यः उपहार है."

चौथी ने दृढ़तापूर्वक स्वीकारा, "हमारे वरुण देवता कितने महान हैं, परंतु उनका हृदय कितना कठोर है. मगर मैं सागर-सम्राज्ञी होती तो ऐसे उपहार को अस्वीकार कर देती... अब आओ, हम लोगों को इस भुगतान (बंदी का उद्धार मूल्य) का परीक्षण करना चाहिए. हम लोग भी संभवतः अपने को मानव-वंश के सदृश प्रकाशित कर सकती हैं."

सागर-कन्याएं मृतक युवक के निकट गयीं. उन्होंने उसकी जेबें तलाशीं और ऊपरी जेब में एक पत्र मिला. अपनी सहेलियों को सुनाती हुई एक सागर-कन्या ने पत्र को पढ़ा :

"मेरे प्रिय,

मध्य रात्रि का आगमन पुनः हुआ है. मेरे प्रवाहित आंसुओं के अतिरिक्त मुझ में धैर्य का सर्वथा अभाव है. युद्ध से रक्त-रंजत भूमि से तुम्हारी वापसी की जो मुझे आशा है, यही मेरी खुशी का कारण है. अपनी जुदाई के समय तुम्हारे व्यक्त शब्दोद्गार को मैं भूल नहीं सकता हूं—'प्रत्येक व्यक्ति को अपने आंसुओं का ही एक आलंबन है जिसका प्रत्यर्पण किसी न किसी दिन अवश्य होता है.

"मेरे प्रिय, मुझे नहीं मालूम कि मुझे क्या कहना चाहिए, परंतु मुझे इसका ज्ञान है कि मेरी आत्मा इस चर्म-चीरक (शरीर) में स्वतः निस्सरण करती है... मेरी आत्मा विघटन से पीड़ित होते हुए भी, प्रेम से आश्वासित हुई है जो प्रेम पीड़ा को आनंद और क्लेश को सुख प्रदान करता है और यही प्रेम हमारे दो हृदयों को एकीभूत करता है. जब हम लोगों नें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मप्रधान हो उठा. मैंने लड़के-लड़कियों को ब्रजभाषा में संवाद बोलते सुना तो मैं चकित रह गया.

भैयाजी मुझे और सोमेश को एक तरफ ले गये और बोले, "मैं इनके लैया कट्रेक्ट फारम मंगावत हूं अबई."

मैं उनका मुंह देखता रह गया. जरा देर पहले वह अच्छी-खासी शहराती भाषा बोल रहे थे पर अपने काम में लगते ही वह भी बाकी सब की तरह ब्रजभाषा बोलने लगे.

इसके बाद वह मेरी ओर मुखातिब हुए, "तो लल्ला, मेई सुनो तन्नक. या नाटिका को एक आहिस नाय आयो. सो मनसुका को डायलोग तुम कू बोलनो परैगो. कुल्ल जमा आधा मिट को कसालो है. तुम कू पच्चीस रुपैया को चैक मिल जायगो."

मनसुखा का डायलॉग बोलने की बात सुनकर मैं एकदम उखड़ गया. न तो मैंने ब्रजभाषा पहले कभी बोली थी और न कोई संवाद बोलकर देखा था.

गुप्ता जी उर्फ भैयाजी का प्रस्ताव सुनकर मैंने बेचैनी महसूस करते हुए इधर-उधर देखा. मुझे लगा कि मुझे पच्चीस रुपये मिलने की बात सुनकर सोमेश बहुत प्रसन्न और संतुष्ट है. वह मेरे कंधे पर हाथ रख कर सरपरस्ती के अंदाज में बोला, "लो भई हो गया बिसमिल्ला, अब तुम मनसुखा का संवाद बोलो मैं तो चलूं. लंच का टाइम तो निकल गया यहीं."

दरवाजे से बाहर जाते-जाते सोमेश मेरी ओर मुड़ा और बोला, "यहां का काम खत्म करके जी में आये तो घर चले जाना. नहीं तो मेरी तरफ चले आना."

मैं अभी तक मनसुखा का संवाद बोलने की बात तय नहीं कर पाया था कि सोमेश ने गुप्ताजी से कहा, "भैयाजी, आप इसका चैक अटेस्ट कर देना जिससे कि यह इसे आज ही कैश करा ले."

गुप्ताजी का चश्मा नाक के बांस पर नीचे लटक आया था. वह नीचे ही नीचे देखते हुए बोले, "फिकन्नाय लल्ला. वाय मैं कराय दंगो."

लगता था भैयाजी दिल्ली की आम बोलचाल की भाषा स्टूडियो में आकर पूरी तरह भूल गये थे. वह पूरी तरह ब्रज की बोली में रम गये थे.

जाते-जाते सोमेश ने गुप्ता जी से पूछा, "तो मैं चलूं. भैयाजी."

"लल्ला, तुम निसा खातर है के जावो," फिर मेरी और संकेत करके बोले, "जे आवत रंगे."

सोमेश चला गया तो भैयाजी ने इधर-उधर फैले कागजों में से एक कागज ढूंढकर निकाला और मेरी ओर बढ़ाकर बोले, "लेओ भैया पढ़ि लेवो तिहारो डॉलोग दो-ढाई लाइनन को है— नेक सुद्ध ते बोलियों."

मैंने कागज ले लिया और टाइप होने के बावजूद लाल पैंसिल से लिखे उस संवाद को पढ़ने की चेष्टा करने लगा जो मेरे लिए किसी अरबी-फारसी से कम नहीं था.

गुप्ताजी अपने दाहिने बैठी एक आधुनिका से बोले, "लल्ली नेक तू ललता को डॉलोग तो बोल."

गुप्ताजी ने अपनी आंखें एक कागज पर केंद्रित कर दीं और लल्ली इतराकर खड़ी हो गयी. उसने मुस्कराकर इधर-उधर देखा और ठस्से से बोली, "कन्हाई मोंय तिहारी जे छेर-छार ना भावे, जे नखरा राधा कूं दिखाय करो."

गुप्ताजी ने स्क्रिप्ट से आंखें हटाकर लड़की का चेहरा देखा और उसे आत्मविश्वास से लैस देखकर बोले, "ठीक ई है पर जामे नेंक गुस्सो बी तो उभन्नो चइये."

अपने हाथ के कागज पर मैंने नजर डालते हुए पाया कि उस पर अनेक पात्रों के संवाद भी टंकित हैं. मनसुखा का डायलाग मैंने मन ही मन दोहराया तो मेरे भीतर इतनी अटक पैदा हो गयी कि लगने लगा मैं मुखर रूप से कुछ नहीं बोल पाऊंगा. वह भाषा मेरे लिए पूरी तरह से बेगानी और अपरिचित-सी थी.

मुझे अजीब-सी अनुभूति हुई. मैं सोचने लगा कि थोड़े से रुपयों की खातिर मुझे अपने स्वभाव के विरुद्ध एक ऐसा काम करना पड़ेगा जिसमें न मेरी कोई गति थी न रुचि. लेकिन साथ ही यह ख्याल भी आया कि मुझे या मेरे जैसे लाखों युवकों को इस देश में अपनी रुचि का काम करने का अवसर ही कब मिलता है. हमारे लिए मुदर्रिसी क्लर्की को छोड़कर बाकी बचता ही क्या है? मेरे हाथ में थमा कागज मेरी लक्ष्य विहीन यात्रा का नमूना था.

मुझे सोच में डूबे देखकर भैयाजी ने शब्दों का टहोका दिया, "हां तो लल्ला, तुम नेंक अपनो डालोग बोल के दिखइयो."

उस दिन का चिंतन किया, जिस दिन सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर के सशक्त श्वास से हम दोनों के हृदय एकाकार हुए थे, तभी युद्ध की विकराल ज्वाला प्रज्वलित हुई और इस युद्ध-ज्वाला को और भी प्रज्वलित, नेताओं ने अपने वक्तव्य (भाषण) की आहुति देकर की और तुमने अपना कर्तव्य समझकर उस युद्ध का अनुगमन किया.

"यह कैसा कर्त्तव्य है कि दो प्रेमियों को पृथक करता है, स्त्रियों के अहिवात को वैधव्य में परिवर्तित कर देता है तथा बच्चों को यतीम बनाता है? यह कैसी देशभक्ति है कि युद्धों को उत्तेजित करती है और तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति के लिए राज्यों का विनाश करती है? यह कैसा कर्त्तव्य है कि आततायियों के यश हेतु निरीह व्यक्तियों को मरण-वरण हेतु आमंत्रित करता है जिन निरीह व्यक्तियों पर न समर्थ और न वंशागत अभिजात्यों की कृपा-दृष्टि ही पड़ती है. अगर कर्त्तव्य राष्ट्रों की संधि को भंग करता है तथा देशभक्ति प्रजा के शांतिमय जीवन में विघ्न डालती है, तब हम यह कहेंगे कि— 'कर्त्तव्य और देशभक्ति को शांति मिले.'

"नहीं, नहीं, मेरे प्रिय! मेरे शब्दों का ख्याल मत करो! अपने देश के प्रति बहादुर और वफादार बनो.... प्रेम में अंधा बनकर तथा जादुई और एकाकीपन से विकसित होकर मेरी (कुमारी) बातों पर ध्यान मत दो.... अगर मेरे इस जीवन में तुम्हें प्राप्त करने में प्रेम असमर्थ रहेगा, तब पुनर्जन्म में हम लोगों को प्रेम निश्चित रूप से प्राप्त होगा.

तुम्हारा सदैव"

सागर-कन्याओं ने पत्र पढ़कर उसे उस मृतक युवक की जेबी में पुनः रख दिया. मौन-स्तब्ध होकर सव्यथा वे सभी कन्याएं तैरती हुई उस स्थान से दूर चली गयीं और एकत्रित हुईं. उनमें से एक ने कहा, "वरुण देवता के संगदिल से कहीं अधिक प्रस्तर मानव का हृदय है." □

अनुवाद : हरिप्रसाद नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने मनसुखा का डायलोग फंसे हुए कंठ से बोला, "...गुपाल मेरी दाव देओ... तिहारो जे ई तो बुरो सुभाव है के अपनी बिरिया नाट जाय कत्तो. तुमन्ने जमना में नोंद फेंक दई हेते—तुमई ढूंढके लावो."

मेरी उखड़ती आवाज को लक्ष्य करके वहां एकत्र लड़के-लड़कियां भैयाजी का चेहरा देखने लगे.

गुप्ताजी ने अपने सिर पर अटकी गांधी टोपी को ढंग से जमाते हुए मेरे कान में कहा, "ज्या में नेंक रिस को भाव होनो चइये लल्ला. थोरो फिलो बी लावो."

वहां इकट्ठे लोगों में एक सुगबुगाहट दिखाई पड़ी. वे सब शायद आपस में परिचित थे. हो सकता है पहले भी साथ-साथ नाटक-नाटिकाओं में पार्ट करते रहे हों. पर मैं तो उनके बीच पूरी तरह अजनबी था.

गुप्ताजी ने लंबे बालों वाले से कहा, "परसा नेंक तू भैया कू बोलवे की परेक्टीस तो करवाय दे. उत कूं कुन्ने में चलो जा इंके संग." इसके बाद वह अपनी धोती संभालते हुए जाने लगे. वह जाते-जाते बोले, "रियरसल कत्ते रइयो—मैं अंबई आवत ऊं."

मैं एक विचित्र दबसट में पड़ गया. मेरे लेखे यह काम ऐसा था जैसे किसी अनाड़ी को सर्कस में करतब दिखाने के लिए धकेल दिया जाय.

मैं परसा के साथ उठकर एक कोने में चला गया. उसने मेरे हाथ से कागज ले लिया और मिनमिनाकर मनसुखा का डायलॉग पढ़ने लगा. उसके पढ़ने के ढंग से साफ मालूम होता था कि वह बहुत मालूमी पढ़ा लिखा आदमी था.

इसके बाद परसा ने उस संवाद को मन ही मन दुहराया और मुझसे बोला, "ज्याय न्यौं बोलनो चइये."

मैंने परसा के बताये हुए ढंग पर ही बोलने की कोशिश की. इतनी देर में भैयाजी लपक-झपक करते आये और झटके से बोले, "बई अब सुरूआत कद्दओ नाय तो स्टुडियो छीन जायगो हम लोगन तें."

तुरत-फुरत हम सब एक बड़ी अंडाकार मेज के चारों तरफ खड़े हो गये. बीच में तीन-चार माइक थे. उन्होंने हमें सतर्क किया, "नेंक माइकन को खियाल रखियो." इसके बाद उन्होंने कांच की दीवार की ओर संकेत किया और स्टुडियो की बत्ती जल उठी.

सबसे पहले ललता ने डायलाग बोला. फिर किसी और ने. इसके तुरंत बाद गुप्ताजी ने मेरी और उंगली उठा दी.

मैं कुछ बोलता इससे पहले ही स्टुडियो की बत्ती बुझ गयी. भैयाजी मुझ से फुसफुसा कर बोले, "मेरो इसारो पाते ई बोलन लागियो— डाक-गाड़ी की अस्पीड में मत बोलियो— नेंक आस्ते आस्ते हां."

फिर बत्ती जली तो मैं मुंह खोलने ही जा रहा था कि उन्होंने ललता की ओर संकेत कर दिया. ललता रटंतू तोते की मानिंद अपना संवाद उगलने लगी. इससे मैं एकदम गड़बड़ा गया और मुझे कागज पर लिखा डायलाग खोजने में दिक्कत होने लगी. ललता का संवाद खत्म होते ही कोई और बोलने लगा.

गुप्ताजी ने मेरी ओर आंखें उठाईं और मुझे तैयार रहने का इशारा किया. उनकी उंगली उठते ही मैं ताबड़-तोड़ कागज पर लिखी इबारत एक सांस में पढ़ गया और यह हिदायत पूरी तरह से भूल गया कि मुझे यानि मनसुखा को अपना डायलॉग एकदम आस्ते-आस्ते पढ़ना था.

अपने संवाद बोलकर मैं तो पूरी तरह अवसन्न हो गया. मुझे उस नाटक या नाटिका की समाप्ति का पता तब चला जब बत्ती बुझ गयी और स्टुडियो में चेंचें शुरू हो गयी.

मुझे पता नहीं चला कि मेरे बोलने से भैयाजी अथवा दूसरे सहयोगियों पर क्या प्रभाव पड़ा लेकिन प्रकट रूप में सबने मेरी प्रशंसा ही की.

गुप्ताजी बाद में सारे कलाकारों को लेकर ड्यूटी-रूम में पहुंचे और चैक दिलवाने लगे. लेकिन जब उन्होंने मेरा नाम लिया तो वहां कोई चैक तैयार नहीं था. मेरा कंट्रैक्ट फार्म अभी तक भरा ही नहीं गया था.

वह मुझे अपने साथ अपने कमरे ले गये और कुर्सी की ओर संकेत करके बोले, "का बताऊं भैया लपर-झपर में तिहारो कंटैक्ट फारम ससरो रै ई गयो." इसके बाद उन्होंने एक-दो जगह कंटैक्ट फार्म पर मेरे दस्तखत करवाये और बोले, "कल्ल-परसों में चैक बन जायेगो—दुपैरी में आय के ले जइयो काई बखत."

पता नहीं क्यों यह सारा कुछ मुझे घोर अपमानित करनेवाला किस्सा मालूम होने लगा. मेरे भीतर का खालीपन और भी बढ़ गया. वह चुपचाप मेरा कंटैक्ट फार्म भरते रहे.

वह कुर्सी से उठते हुए बोले, "तो फेर चलो चाह तो पीवें."

कैंटीन की ओर जाते हुए उन्होंने एक चपरासी के हाथ में मेरा कंटैक्ट फार्म थमाते हुए कहा, "दलपत नेंक याये जनेसर बाबू कूं पकरा दइयो. मेरो नाम ले दइयो."

इस वक्त भी कैंटीन में वही सुबह जैसी गहमा-गहमी थी. लोग बोल रहे थे. सुन कोई किसी की नहीं रहा था. भैयाजी सोमेश की तरह की काऊंटर पर गये और थोड़ी देर बाद हाथों में चाय के प्याले और पकौड़ियों की प्लेट थामे मेरी ओर आते दिखाई पड़े. उनकी धोती के चुन्नट फर्श पर लिथड़ रहे थे. आंखों पर से चश्मा हटकर नाक की चोंच पर अटक गया था और टोपी टेढ़ी टुपिया की धज में बदल गयी थी.

चाय खत्म करके भैयाजी ने बाहर निकलते हुए पूछा, "पान को सौख है का?"

मैंने सिर हिलाकर इंकार कर दिया तो वह गेट की ओर बढ़ते हुए बोले, "तो फेर अइयो सोम के संग चाये अकेले— काऊ और नाटक में बी थोरो-सो काम मिल जायेगो."

गेट से निकलते ही पनवाड़ी की दूकान थी. वह उधर चले तो उनके कई परिचित मिल गये. वह मेरी ओर हाथ हिलाकर बोले, "तो ठीक है— फिर कभी आना— चैक तो मैं बनवा ही दूंगा दो-चार रोज में."

मैं आश्चर्यचकित होकर गुप्ताजी का चेहरा देखता रह गया. जैसे कोई एवजी में आया हुआ आदमी यकायक गुम हो गया हो. मैं थोड़ी ही देर में यह सत्य पूरी तरह विस्मृत कर बैठा था कि गुप्ताजी इस माया नगरी से बाहर की दुनिया के आदमी नहीं हैं. उनकी नरम रसीली भाषा का मायादर्पण लुप्त हो चुका था. धूल चाटती धोती और सिर के एक ओर खिसकती टोपी के बावजूद इस बीच महानगर का लोक व्यवहार उन पर पूरी तरह हावी हो गया था.

मैं यानी मनसुखा महानगर के फुटपाथ पर बढ़ चला. सारा कुछ पहले जैसा-ही था, लेकिन भीतर का खालीपन और बाहर रेंगती असंप्रक्ति का कोई ओर-छोर नहीं था.

मैं पैदल ही सोमेश के दफ्तर की ओर चल पड़ा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

महाराज मनु का काव्यादर्श

अब तक तो कुछ कथाकार धर्म संकट में फंसे थे, अब कवि लोग भी धर्म संकट में फंस गये लगते हैं. संकट है कि दूरदर्शन पर कविता पढ़ें या न पढ़ें? शेक्सपीयर के हैमलेट बने हुए हैं, "करें कि न करें?"

जबसे साहित्य में चतुर्वर्णाश्रम की पुनर्स्थापना हुई है, तब से यह धर्म संकट और गहरा गया है. साहित्य में आधुनिक एक मनु महाराज ने इस वर्णाश्रम व्यवस्था को एक नयी व्याख्या दी है. कुछ ही दिन पहले उन्होंने दूरदर्शन महा निदेशक भास्कर घोष को एक कड़ा पत्र लिखा जिसमें वर्णव्यवस्था का कट्टरता के साथ पालन न किये जाने पर गहरा रोष व्यक्त किया था. यह प्रसंग था दिल्ली दूरदर्शन केंद्र द्वारा एक कविता गोष्ठी कराये जाने का. उसमें मंचों पर कविता पाठ करने वाले कवि भी थे. मनु महाराज को इस पर सख्त ऐतराज था कि इन भाड़े के टट्टुओं (?) के बीच इन गैर कवियों के बीच, उन्हें बुलाने की जुर्रत किसकी हुई? साहित्य की अलकापुरी के यक्ष का विरह. यों विघ्न को प्राप्त हुआ. क्रोध तो आता ही, सो आया. इन 'भाड़े के टट्टुओं' के बीच, इन तुकबदों के बीच, इन विदूषकों के के बीच उन्हें बुलाना? तौहीन की हद है. तो वे न गये. महानिदेशक को बोला कि देख लो! मैं भी तेरी टक्कर का अफसर हूं. साहित्यकार हूं. सर्वाधिक संवेदनशील मुख्यमंत्री का सर्वाधिक संवेदनशील अफसर हूं. तुम्हारी जुर्रत कैसे हुई मुझे बुलाने की?

कवि सम्मेलन हो गया. उसमें निर्मला गर्ग से लेकर त्रिनेत्र जोशी तक सब कवि थे. बीस-पच्चीस कवियों की छटा का वर्णन करने के लिए यह स्थान अत्यंत कम है. मगर उसमें नयी कविता के गिरिजा कुमार माथुर जैसे वरिष्ठ कवि भी थे और सर्वेश्वर, महादेवी, अज्ञेय की रिकार्डिंग भी थी. यानी समकालीन कविता के संबरंग और सब अंदाज जुटाए गये थे वहां. यही उसका दोष था. चारों वर्णों को अगल-बगल यों किस शास्त्र के अनुसार बिठाया जा सकता है? चतुर्वर्णाश्रम की पुनर्स्थापना में तल्लीन मनु को इस पर घोर आपत्ति थी. मगर उस त्रिनेश जोशी को क्या कहते जो वर्ण व्यवस्था का कायल न हुआ और बे-झिझक निर्मला गर्ग के साथ काव्य पाठ कर आया? यह पतन था. इसे रोकना था.

सो कुछ दिन बाद मनु महाराज गाव तकिया लगाये, डबल चित्र लिए लगभग शाश्वत मुस्कान सहित डिब्बे पर दिखे. वहां तमाम वे कवि थे जिनकी शक्ल तक मनु महाराज को पसंद नहीं थी. ये भी सब वर्णव्यवस्था के खिलाफ रहने वाले थे. अरुण कमल, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, असद जैदी, विष्णु नागर, कुमार विकल, विष्णु खरे और इनके कई अग्रज भी वहां थे. फिर भी मनु महाराज बेहद खुश से दिखते थे. ऐसा क्यों? इसमें मुस्कान मारने लायक क्या था? आखिर किस मजाक पर खुश रहे होंगे मनु महाराज? वही अजित कुमार यहां भी थे जो उन भाड़े के टट्टुओं के दिल्ली में संयोजक थे. फिर सर्वोपरि कवयित्री प्रभा ठाकुर भी थीं वहां. वही सभी वर्ण यहां भी थे. तब तकलीफ क्या थी जो दिल्ली में सालती रही और जयपुरी रंग में 'मुसकान' बन गयी.

दरअसल, जयपुर दिल्ली का जवाब देने के लिए जाया गया था. मनु महाराज दिखाना चाहते थे कि समकालीन कविता का असली संपादन संयोजन क्या होता है? मगर इन वर्ण विरोधी कवियों ने उन्हें संयोजन करने ही नहीं दिया. शाश्वत मुस्कान इसीलिए विराजी रही.

मगर मनु महाराज ठहरे मनु महाराज. इन शिशुओं से हार कैसे मान जायें? इस दूरदर्शन के प्रति भी तो उनका कुछ कर्त्तव्य है न! सो फिर पहुंचे लखनऊ. यहां उन्हें वर्णाश्रम के प्रदर्शन का पूरा मौका था. अपने द्विजत्व को वे संयोजित कर सकते थे. उन्होंने वही किया. अंततः मनु महाराज अपनी व्याख्या में कामयाब हो जाते, मगर यहां भी इब्बार रब्बी और अरुण कमल मौजूद.

यह वर्णन गंभीर नहीं है. हो भी नहीं सकता. कुछ स्थितियों में मजाक छिपे होते हैं. कुछ स्थितियां मात्र मजाक हुआ करती हैं. मनु महाराज की वर्ण प्रियता ऐसी ही स्थिति है. दिल्ली के दूरदर्शन पर जुटे कवियों के बीच बैठने से बदबू आती मनु महाराज को. जो कवि ही नहीं उनके बीच कवियों के कवि और प्रायोजक मनु कैसे बैठते? कैसे जिंदा रहते विश्व कविता तक? अपनी शुद्धता बनाये रखने के लिए बदबू से दूर तो रहना ही होगा. अब जरा उस नाक पर बलि-बलि जाइये जिन्हें त्रिनेत्र जोशी से दुर्गंध आती है मगर प्रभा ठाकुर या गगन गिल की कविता में से सुगंध? दिल्ली में अजित कुमार शूद्र हो जाते हैं और जयपुर पहुंचते ही कंठी डोरा पहनकर नाथद्वारा से लौटे ब्राह्मण.

मैं इन्हें साहित्य में वर्णवाद की पुनर्स्थापना कहता हूं. मनु महाराज उसे पहले भोपाल में स्थापित करते रहे. मगर इस वक्त के सबसे बड़े धनुर्धारी क्षत्रिय ने इस वर्णवाद को त्याग दिया. तब से विचलित हुए वे अलख जगाते घूम रहे हैं. कुछ दिनों तक उनके वर्णवाद के व्यामोह में बहुत से कवि आ गये थे, अब वे भी सचेत हो गये हैं.

दूरदर्शन पर कविता होगी तो यह ब्राह्मणवाद बहुत दिनों तक टिका नहीं रह सकता और न मनु महाराज की मुस्कान बहुत दिनों तक टिकी रह सकती है. दूरदर्शन सबसे बड़ी सांस्कृतिक मथानी है. या तो आप उस तक जाइये नहीं, उससे विराग रखिए (यद्यपि तब भी उसकी सफेदी की चमकार से आप बच नहीं सकते) या फिर अपने ब्राह्मणवाद का इलाज कीजिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 14 फरवरी, 1939 देहरादून.
प्रमुख कृतियां : 'चीफ के शाप की मौत', 'तपती हुई जमीन', 'समुद्र और पुल' (कहानी संग्रह) 'चिड़िया की आंख' (नाटक) और (उपन्यास)
संपर्क : 153, डेफाल वाला, देहरादून-248 001

□ सुभाष पंत

इंतजार

मुरली ने कमरे में झांका. पिता उसी तरह लेटे थे और मां सिर झुकाय उनके पैंदवाने बैठी थी. पिता की इकहरी सांस चल रही थी. धीमे-धीमे. बहुत गौर से देखने पर उनका सीना आहिस्ता-आहिस्ता हिलता हुआ महसूस होता था, जो इस बात का सबूत था कि उनकी जिंदगी का कच्चा धागा कहीं अटका हुआ है. अभी टूटा नहीं है.

"मां, क्या तुम रात भर ऐसे ही बैठी रहीं?" मुरली ने पूछा, "कुछ देर सो जातीं... हमें जगा दिया होता."

मां ने तनिक-सा सिर उठाया और उसके चेहरे की झुर्रियां थरथराने लगीं, "जरूरत पड़ी तो तुम्हें ही आवाज दूंगी. और कौन है मेरा."

मां रोज यही कहती थी लेकिन किसी को जगाती नहीं थी दरअसल पिता की इस अंतिम यात्रा में उनका आखरी हद तक साथ देना चाहती थी.

"पिताजी को रात भी कतई होश नहीं आया?"

"नहीं," उसकी आंखें डबडबा आयीं, "जब तक होश था तुम्हें ही याद करते रहते थे—मुरली और बहू-बच्चे नहीं आये. कैसा संजोग है, तुम आये और इनका होश जाता रहा. एक बार इन्हें होश आ जाता... और तुम्हें जी भरके देख लेते..." और कोरों से आंसुओं के कतरे फिसलने लगे.

"धीरज रखो मां, सब ठीक हो जायेगा." उसने कहा लेकिन अगले ही क्षण उसे अपने शब्दों के खोखलेपन का एहसास हो गया और वह घर की झिरती हुई दीवारें देखने लगा.

मां ने बात संभाल ली, "बच्चे उठ गये क्या?"

"शायद उठ गये हों."

"चाय बना देती हूं."

"तुम रहने दो, मंजु बना लेगी."

"दो दिन के लिए तो आयी है बहू. उसे तो यहां का ढंग भी नहीं आयेगा." मां घुटनों पर हाथ रखकर खड़ी हुई और रसवाड़े की ओर चली गयी.

मुरली को लगा जैसे वह इस घर का बेटा नहीं, मेहमान हो. इस बात से उसे परेशानी-सी हुई और शर्मिंदगी भी. वह कुर्सी खींचकर पिता की बगल में बैठ गया. वे एकदम शांत थे. कहीं कोई हरकत नहीं. सिर्फ इकहरी सांस चल रही थी जिसे बहुत गौर से देखने पर ही महसूस किया जा सकता था. चारों ओर बहुत ठंडे किस्म की शांति व्याप्त थी जो आत्मा पर कोहरे की तरह छा रही थी. मृत्यु पूर्व की खामोशी और मृत्यु की खामोश दस्तक. वह एकदम ऊब गया या फिर डर गया और पिता को उसी अवस्था में छोड़कर बाहर निकल गया. मंजु नहाकर निकली थी और बाल सुखाने के लिए धूप का इंतजार कर रही थी. मंजु को देखकर उसे थोड़ी राहत मिली जैसे घटाटोप अंधियारे में रोशनी की एक फांक हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने इशारे से पूछा, "पिता जी का क्या हाल है?"

मुरली ने भी उसी तरह जवाब दिया, "बस वैसा ही है."

मंजु के चेहरे पर अनिश्चय और चिंता की रेखाएं गहरी हो गयीं.

"कुछ समझ में नहीं आ रहा है." वह फुसफुसाया.

"लेकिन हम कर भी क्या सकते हैं सिवाय इंतजार के..." मंजु ने कहा और बाल झटकने लगी.

"मुझे तो छुट्टी भी सिर्फ पंद्रह दिन की मिली है, वह भी बड़ी मुश्किल से. चार दिन बीत गये हैं."

तभी चाय के गिलास थामे मां आ गयी. उसके हाथ डगमगा रहे थे और आंखें गहरायी में धंसी हुई थीं.

चाय पीते हुए मंजु ने कहा, "बच्चों की पढ़ाई का बहुत हर्ज हो रहा है. इम्तहान सिर पर हैं."

"सो तो है ही... बच्चों को अपनी किताबें लेकर आना चाहिए था."

"किताबें तो वे लेकर ही आये हैं लेकिन ऐसे माहौल में पढ़ाई कैसे हो सकती है?"

"उन्हें शहर में अकेले भी नहीं छोड़ा जा सकता था." मुरली ने कहा और खाली गिलास मंजु के हाथ में पकड़ा दिया.

"तुम बाहर जा रहे हो क्या?"

"थोड़ा घूम आऊं."

"जल्दी लौट आना... कहीं तुम्हारे पीछे..."

"जल्दी ही लौटूंगा." उसने कहा और बाहर निकल आया.

यूं उसकी तबीयत घूमने की नहीं थी लेकिन वह बुरी तरह ऊबा हुआ था और उसका ख़याल था कि बाहर निकलकर उसकी ऊब कुछ कम हो सकती है. हालांकि हवा बहुत ताजी थी, मुद्दत से जिसका स्वाद उसने नहीं चखा था, लेकिन उसकी ऊब में कोई कमी नहीं आयी. चौक उसे बहुत उखड़ा और उदास दिखाई पड़ा. समय की आंधी में वे लोग बिखर चुके थे जो इस चौक को जिंदा रखते थे. अब जो इस चौक के वारिस थे उनमें न वह हौसला था और न वह उत्साह. उसने अपने उन दोस्तों को याद करने की कोशिश की जिनके साथ इस चौक पर खेलते हुए उसने अपना बचपन गुजारा था... उसे कुछ याद नहीं आया. जब भी वह कोई चेहरा याद करने की कोशिश करता तो उसके दिमाग में फैक्टरी की धुआं उगलती चिमनियां कौंधने लगतीं.

चौक से निकलकर वह उस सड़क पर चलने लगा जो मंदिर और जोहड़ की ओर जाती है. एकाएक उसे अपने ऊपर भी शक होने लगा कि सड़क पर चलता वह वही है. या उसकी जगह ब्वायलर की ओर जाती कोयले से लदी ट्राली है.

जोहड़ का पानी सूख गया था और उसकी तलहटी में जमा कीचड़ तिड़क गया था. कभी यह जोहड़ पानी से लबालब भरा होता था जिस पर कमल खिले होते थे. जोहड़ से सटा मंदिर भी उसे बहुत उदास दिखाई पड़ा. उसके कंगूरे पर जहां कभी कपोत इतराया करते वहां एक कठवा बैठा था, जिसकी वजह से सारा वातावरण अजीब-सी मनहूसियत से भरा हुआ था.

बिरादरी के घरों में जल्दी-जल्दी खाना पकाया जा रहा था, पता नहीं किस छिन मृत्यु की सूचना आ जाये. वे मृत्यु समाचार सुनने से पहले खाने से फारिग हो जाना चाहते थे.

जब वह वापस लौटा, उस वक्त दिन सांप के फन-सा फैल गया था. नीलांबर काका सहन में बैठे बीड़ी का सुट्टा लगा रहे थे और उसका इंतजार कर रहे थे. वे अपने जमाने के उस्ताद पहलवान थे. मुरली ने लड़कपन में कुछ दिन अखाड़े में कुश्ती के दांव-पेंच सीखे थे. बहुत हसरत से. वे दांव-पेंच जिंदगी की लड़ाई में बहुत भोंथरे सिद्ध हुए थे. न वे नीलांबर काका के कुछ काम आ सके थे और न उसके.

काका उसे देखकर हड़बड़ाकर खड़े हो गये.

उनके इस तरह खड़े हो जाने से वह हतप्रभ रह गया.

"पाय लागू काका." उसने कहा और उनके पांवों पर झुकने का नाटक किया.

"जीते रहो, ईश्वर तुम्हें लंबी उमर दे," उन्होंने आशीर्वाद दिया.

"बैठिये न काका."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काका चारपाई पर बैठ गये. "सुना था, तुम आये हो... पहले आता पर बाई के इस दरद ने तो मुझे तोड़कर रख दिया है."

"तो तुम्हें भी बाई ने घेर लिया काका?"

काका कुछ और भी कहना चाहते थे पर इन दिनों वे बोलते हुए भी थकने लगे थे.

"और सुनाओ काका, घर के क्या हाल हैं."

"बस क्या हाल होने... कभी जीने का कोई मकसद था. अब तो जीना ही मकसद बन गया है. परमेश्वर जो दिन न दिखा दे." उनकी सांस फूलने लगी.

"दीनू, रग्घु कैसे हैं?"

"दीनू आबकारी में काम कर रहा है. देखो भई, हम तो जिंदगी भर नसाखोरी के खिलाफ लड़े, अब अपनी औलाद ही आबकारी में सराब बेच रही है."

"और रग्घु क्या कर रहा है?"

"उसकी पूछो ई मत... सांड की तरह दिन भर घूमता रहता है. करे भी क्या? काम-धाम तो कोई हियां है नहीं. भई तुम ही उसके लिए सहर में कोई काम ढूंढ़ दो. तुम्हारी फैक्ट्री में मजूर-वजूर की जगह निकलती रहती होगी. मजूर भी लग जायेगा फैक्ट्री में तो आदमी बन जायेगा. बड़ा एहसान होगा."

सहसा मुरली के सामने फैक्ट्री के दैत्याकार ब्वायलर, उनमें कोयला झोंकते हाथ और ब्वायलर की आंच में तपे चेहरे उभर आये जो दूर से ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे आग में दहकते हुए अंगारे हों.

फिर भी आदमी शहर की ओर ही दौड़ना चाहता है.

उसने काका की ओर देखा. उनकी आंखों में आशा की लौ कांप रही थी. उसमें इतना हौसला नहीं आया कि वह काका को बता सके कि असलियत क्या है.

"ठीक है काका, मैं खयाल रखूंगा," उसने कहा.

काका बहुत भयभीत हो गये और उनकी आंखें नम हो गयीं. "अच्छा, अब चलता हूं," उन्होंने कहा. वे घुटनों पर हाथ रखकर खड़े हुए और धीमे-धीमे चलने लगे. दरवाजे पर पहुंचकर रुके, मुड़े और फिर बोले, "भइया, तुम पर ही भरोसा है."

मुरली ने सिर हिलाया और आश्वस्त होकर चले गये.

उनके जाने के बाद वह भी पिता के कमरे में चला गया. वे अब भी उसी तरह लेटे थे. उसी हालत में. वह कुछ देर बैठा पिता को देखता रहा. फिर उठा और अलमारी टटोलने लगा. कोई किताब या पुरानी पत्रिका मिल जाये तो उसे पढ़ते हुए वक्त काटना आसान हो जायेगा. मंजु आंवले सुखा रही थी, जिन्हें वापसी मे शहर ले जा सके.

उसका गला सूखने लगा तो उसने मंजु को पानी के लिए आवाज दी.

वह पानी लेकर आयी और बोली, "हमारी वजह से मांजी को बहुत तंगी हो रही है."

यह बात वह खुद भी महसूस कर रहा था. चार-पांच सदस्यों का बोझ कुछ कम तो नहीं होता.

"मांजी आज कुछ बेच रही थीं..."

उसे लगा जैसे सहसा किसी ने उसके सीने में घूंसा मार दिया है.

"आपको पैसों का इंतजाम करके चलना चाहिए था."

"कोशिश तो की थी लेकिन सिर्फ चार सौ का ही इंतज़ाम हो सका था. वह भी किस-किस के सामने गिड़गिड़ाकर. नौकरी में तो ऐसा कोई लोन बचा नहीं है जो मैंने न ले रखा हो. फंड से कर्ज लेकर तुम्हारी बीमारी पर... सोसायटी से लोन लेकर बच्चों के इम्तिहान की फीसें. इस लोन से यह... उस लोन से वह... पता नहीं यह गाड़ी कैसे खिच रही है. हर आनेवाला दिन ज्यादा तकलीफ का दिन साबित होता है..."

"फिर भी..."

"तुम भी मेरी परेशानी नहीं समझ सकतीं... चार सौ रुपयों का मैंने कैसे इंतजाम, किया यह मेरी आत्मा ही जानती है. फिर तुम सब यहां आने को तैयार हो गये. डेढ़ सौ रुपये तो आने के किराये में ही फुक गया. इतना ही जाने के लिए चाहिए. तार से तो ऐसा लग रहा था कि हम शायद ही पिता जी के जिंदा रहते पहुंच पायेंगे. मुझे क्या मालूम था कि स्थिति ऐसी हो जायेगी... वाकई मां भी क्या करे, उसकी आमदनी का कोई जरिया नहीं है... और

पहाड़ी-औरत

नरेंद्र प्रताप सिंह

धारचूला स्वास्थ्य केंद्र पर एक दिन कुछ लोग एक औरत डोली में डालकर ले आये. पूछने पर पता चला घास काटते समय वह गिर गयी थी. उसकी कमर में बेहद दर्द था, दोनों पैर बिल्कुल काम नहीं कर रहे थे. परीक्षण के बाद मुझे लगा--उसकी रीढ़ की हड्डी टूट गयी थी या खिसक गयी थी. मैंने उन्हें समझाया, "आप इसे जिला अस्पताल पिथौरागढ़ ले जाइये. वहां एक्सरे करना पड़ेगा." पर वे बार-बार कहते रहे, "साहब, इलाज आप ही कर दीजिए." मैंने उसे भर्ती कर दिया.

एक हफ्ते बाद उसकी आदमी मेरे पास आकर बोला, "हमें इसे ले जाना मांगता है." मैंने पास जिला अस्पताल ले जाने के लिए कह रहे हैं मैंने सोचा जिला अस्पताल ले जाने के लिए कह रहे हैं मैंने कहा ठीक है--मैं जिला के लिए चिठ्ठी लिख देता हूं. पर वह मुझे रोककर बोला, "नहीं साहब आप दवा लिख दो, हम घर जायेगा.

मैंने समझाया, "इसमें दवा फायदा नहीं करेगी, पिथौरागढ़ ले जाओ, वहीं कुछ हो सकेगा." मैंने उसे अपने साथियों से फिर पूछकर आने को कहा.

थोड़ी देर में वह फिर आकर कहने लगा, "साहब वो कहती है आपकी दवा से फायदा है. आप दवा लिख दो, हम थोड़े दिन बाद आपको फिर दिखा देंगे.

आखिर मैंने दवा लिख दी. जब से चले गये तो मैंने अपने कंपाउंडर सिरोला से कहा, "वैसे तो पहाड़ पर औरतों की कद्र कम होती है. पर ये बेचारे इसकी खूब सेवा कर रहे हैं."

आखिर वह बोला, "कहां साहब, आप नहीं जानते ये आपस में क्या कह रहे थे.

उसकी बात सुनकर मैं सकते में आ गया. उसने बताया, "वो कह रहे थे औरत ही तो है. अब तो पैर काम पर नहीं रहे. पैसा खर्चने से पता नहीं कितना ठीक है. बेकार में उस पर क्यों पैसा बर्बाद करें. घर ले चलते हैं, थोड़े दिनों में खुद ही मर जायेगी." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं... ये चार सौ रुपये उतारने के लिए ओवर टाइम करना पड़ेगा. और जिस समय मैं ब्वायलर के सामने खड़ा होता हूं, उस समय मैं आदमी नहीं होता... बस एक धधकता हुआ अंगारा होता हूं... सिर्फ एक अंगारा..."

मंजु ने कुछ कहने के लिए अपने होंठ फड़फड़ाये फिर पता नहीं क्या सोचकर अपने को जज्ब कर लिया और उठकर सहन में चली गयी. मुरली उसी तरह औचक सन्नाटे में भरा खड़ा रह गया.

"खाना खा ले बेटा." मां थी. लेकिन बोल वह नहीं रही थी, उसकी झुर्रियां बोल रही थीं.

"इच्छा नहीं है मां." उसने कहा.

"ऐसे दिल छोटा नहीं करते बेटा." झुर्रियां फिर हिलने लगीं, "चल, तुम्हारे बहाने चौका-चूल्हा कर लेती हूं. नहीं तो कई-कई दिन चूल्हा भी नहीं जलता. ये तो इस हालत में हैं... अपने लिए, कौन टंटा करे."

वह चुपचाप रसोई में आकर पटरी पर बैठ गया.

मां ने खाना परसा तो वह चुपचाप खाने लगा. वह कौर चबाता, उसे निगलने की कोशिश करता तो कौर गले में फूल जाता. वह अपराध बोध से भरा हुआ था. वह खाना छोड़कर वैसे ही उठ जाना चाहता था लेकिन मां की आंखें एकटक उसी पर टिकी हुई थीं. आंखें, जिनकी पुतलियां ममता के समुद्र में तैर रही थीं. सहसा उसे याद आया—जब वह छोटा था तो पिता इसी पटरी पर बैठकर उसे अपने हाथ से खाना खिलाया करते थे.

वह खाना खाकर सहन में आया. मंजु चुपचाप बैठी कुछ सोच रही थी.

"मंजु सुनो, पैसों की तो जरूरत होगी ही. तुम्हारे पास कुछ हो तो..."

"मेरे पास अंगूठी है. वह तुम ले सकते हो. लेकिन थोड़ा इंतजार कर लेना ठीक होगा. वैसे तुम्हारी मर्जी..."

"मुरली को लगा, मंजु ठीक ही कह रही है. पिता के क्रिया-कर्म में पैसे की जरूरत पड़ेगी. रुपया अगर अभी हाथ में आ गया तो खर्च ही जायेगा.

वह सहन में बिछी चारपाई पर लेट गया. उसने सोने की कोशिश की पर उसे नींद नहीं आयी. बस ऐसे ही आंख मूंदे लेटा रहा.

"अरे तू ऐसे ही लेट गया, बिछावन तो बिछवा लेता." मां थी. वह बिछावन लिये उसके सिरहाने खड़ी थी.

"नहीं मां, कोई जरूरत नहीं. मैं तो वैसे ही..."

लेकिन मां नहीं मानी तो बिछावन बिछाने लगी. उसने बिस्तर लगा दिया तो वह फिर चुपचाप लेट गया और शाम ढले तक वैसे ही लेटा रहा.

मंजु चाय लेकर आयी तब भी वह लेटा हुआ था.

"तुम तो बहुत देर से लेटे हो. तबीयत तो ठीक है. उठो, चाय तो पी लो."

वह हड़बड़ाकर बैठ गया. उसका चेहरा अजनबी-सा दिखाई पड़ रहा था. "एक बात बताओ मंजु," उसने कहा, उसकी आवाज इतनी ठंडी थी जैसे किसी अंधे कुएं की अतल गहराई से निकली आवाज हो. सन्नाटे से भरी. "आखिर हम इतने कमीने क्यों हो गये हैं?"

मंजु इस अप्रत्याशित प्रश्न का कोई जवाब नहीं दे पायी. उसकी आंखें झुक गयीं.

सुबह से ही सब सन्नाटे से भरे हुए थे. शाम पिरथी चौधरी आये थे. पिता की हालत देखकर उन्होंने भविष्यवाणी कर दी थी कि अगला रोज मंगलवार बहुत कड़ा दिन है, पिता उसे झेल नहीं पायेंगे. सारा घर बहुत सुबह ही जाग गया था. पंडित को सूचना भिजवा दी गयी थी. भोला पांडे को भी अगम वाणी हो गयी थी, उसने भी तहसील से छुट्टी ले ली थी और अपने औजारों के बक्से में से आरी निकाल ली थी. गांव के लगभग सभी मुर्दों ने उसकी आरी से कटे बांसों पर अंतिम यात्रा की थी. बिहारी और जगधारी को भी रोक लिया गया था. वे मृतकों की अर्थी बनाने के विशेषज्ञ थे और उन्हें इस बात का गर्व भी था. जिगर में दर्द के बावजूद मंगल सैन भी पहुंच गये थे. उन्होंने कफन और अग्नि विसर्जन में काम आनेवाली चीजों की फेहरिश्त तैयार करवा दी थी. गांव के लोगों ने हल-बैल नहीं जोड़े थे और उनके कान चौकन्ने होकर इंतजार कर रहे थे. बिरादरी के घरों में जल्दी-जलदी खाना पकाया जा रहा था, पता नहीं किस छिन मृत्यु की सूचना आ जाये. वे मृत्यु समाचार सुनने से पहले खाने से फारिग हो जाना चाहते थे.

औरतें धीरे-धीरे जमा हो रही थीं और बालिश्त भर घूंघट काढ़े बतिया रही थीं. मां की हालत बहुत दयनीय थी. पिता को उससे छीन लिया गया था और वह कातर आंखों से लोगों के चेहरों पर मृत्यु का समाचार पढ़ रही थी. तुलसी और गंगाजल की बुग्गी सिरहाने रख दी गयी थी और सुमरु परधान पिता की नब्ज थामे हुए थे. सबकी निगाहें उस पर टिकी हुई थीं जैसे जीवन की बागडोर वे ही थामे हुए हों.

सुबह से दिन-चढ़ आया और फिर ढलने भी लगा. पिता की हालत में कोई परिवर्तन नहीं आया. लोगों का उत्साह फीका पड़ने लगा और वे बहाने बनाकर वापिस लौटने लगे. पिता मृत्यु की सारी संभावनाओं को नकारते हुए उसी डोर पर झूलते रहे जिस पर वे कई दिनों से झूल रहे थे.

उसी दिन नहीं, अगले दिन भी पिता उसी तरह झेलते चले गये. आस-पड़ोस और गांव के लोग सामान्य जिंदगी की ओर लौट गये. मुरली की छुट्टियां भी खत्म हो गयीं. उसके बच्चों का भी गांव घूमने का उत्साह पस्त पड़ चुका था. वे अब वापस जाना चाहते थे. उन्हें अपने शहर, पढ़ाई और साथियों की याद सता रही थी. मां भी गृहस्थी पर पड़े अतिरिक्त बोझ से टूटती जा रही थी. आखिर मुरली ने शहर वापस लौटने का फैसला ले लिया. दरअसल वापस लौटने के अलावा और कोई चारा ही नहीं रह गया था.

स्टेशन जाने के लिए तांगा आ गया और बच्चे अपना सामान लिये उस पर लद गये. मंजु ने मां के पैर छुए और मुरली ने मां का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "मां, तुम फिकर मत करना, मैं जल्दी ही आऊंगा. कोई बात होगी तो लिख देना."

मां ने कोई जवाब नहीं दिया. उसकी आंखें डबडबा रही थीं.

तांगा चला तो वह एकटक उसे निहारती रही, जब तक वह एक धब्बे में नहीं बदल गया.

फिर वह भारी मन से वापस लौट आयी. घर एकदम सूना था. और भांय-भांय कर रहा था. वह उनके पैरों में आकर बैठ गयी और सहसा बहुत देर का थमा ज्वार अपनी सीमाएं तोड़ गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शीशे की दीवार', 'कैदखाना' व 'रेतछाया' सहित पांच कथा-संग्रह. 'लौटते चरण', 'युद्धरत', व 'कठपुतली' सहित बारह उपन्यास.
संप्रति : सचिव : डाक सेवा बोर्ड, संचार मंत्रालय
संपर्क : १, जाबरप्लेस, नई दिल्ली-११०००१

मालगाड़ी का सफर

□ रमेश गुप्त

न जाने कितने वर्षों से वह गुड्स ट्रेन का चालक बना लोहे की पटरियों पर अपनी जिंदगी की गाड़ी को ढोता रहा है. इधर कुछ दिनों से उसे यह अनुभूति कुतरने लगी है जैसे उसकी खुद की जिंदगी एक मालगाड़ी बन गयी है— बिना यात्रियों के, पीड़ा के माल का भार ढोती हुई.

यह बदलाव अभी कुछ वर्ष पूर्व ही उसकी जिंदगी में आया था. इतनी तेजी से सब कुछ हुआ कि वह संज्ञाशून्य, हतप्रभ-सा ताकता रह गया— सामने तेज चाल से उड़ती, रनथ्रू मेल की तरह. सुखिया के जमाने में उसकी जिंदगी की गाड़ी राजधानी की रफ्तार से दौड़ती थी. पर अब? धीमी चाल से रेंगती, जीवन की भयावह त्रासदी-सी लंबी, यात्री विहीन, अकेलेपन के गुरुभार को ढोती, किसी लल्लूपंजू असिस्टैंट मास्टर द्वारा एक अनाम स्टेशन पर लूप लाइन पर डाल दी गयी है. मेल और पैसेंजर गाड़ियां दोनों दिशाओं से आ-जा रही हैं. पर वह अटका पड़ा है, बिना सिगनल के.

सुबह ढाई बजे उसकी ड्यूटी थी. वह डेढ़ बजे का ऐलार्म लगाकर सोया था. पर उसकी नींद ऐलार्म बजने से पूर्व ही खुल गयी. सुखिया उसका ऐलार्म थी. उसके जाने के बाद उसे कभी गहरी नींद नहीं आयी. वह उठा. हाथ मुंह धोये. ठंडेपानी से. जनवरी की कड़ाके की सर्दी के बावजूद. सुखिया होती तो उसके जागने से पहले चिलमची में गर्म पानी और प्याले में भाप उड़ती चाय तैयार कर लेती, मलाई मार के.

उसे आलस आता है. गर्म पानी बिना गुजारा हो जाता है. चाय जरूरी है. उसने चाय बनायी. पी. नित्य कर्म से निपटकर कपड़े पहने. खिड़की को थोड़ा-सा खोल बाहर के तापक्रम का जायजा लिया. हड्डियों को कंपकंपानेवाली सर्दी. उसने अपना ओवरकोट पहन लिया. काफी गंदा हो गया है. कोहनियों से फट गया है. फिर भी गर्म तो है ही. मंकी कैप सिर पर लगा ली. शंकर छाप दंत मंजन के टाट के थैले में उसने एक जोड़ी कपड़े, तौलिया और एक जासूसी उपन्यास ठूंस लिया. टिफिन?

सुखिया के जमाने में सफर का साथी टिफिन कैरियर होता था. कभी आलू के पराठे और पांच साल पुराना नींबू का अचार. किसी दिन दम आलू और दाल की कचौड़ी. तीज-त्यौहार पर मीठा हलवा और गुजराती चिवड़े. वह उसके खाने की तारीफ करता तो बीमारी से पीले पड़े सुखिया के चेहरे पर सूर्योदय की लालिमा बिखर जाती थी.

पर अब? स्टेशन पर बिकनेवाले सड़े तेल में तले समोसे या चमड़े की तरह चीचड़ पूड़ियों और अल्लमगल्लम सब्जी खाकर गुजारा करना पड़ता है. अक्सर उसे पेट की शिकायत रहती है. गैस. कब्ज. दस्त. एकदम ऐसे ही कि कई बार रनथ्रू आगरा से दिल्ली. कभी एक छोटे से स्टेशन पर अटके खड़े हो और सवारी गाड़ियां दौड़ती चली जा रही हैं— अंगूठा दिखाती, मुंह चिढ़ाती.

रेडियो के ऊपर रखी अपनी तीनों की संयुक्त फोटो को देखकर उसका कलेजा दरक गया. बीच में वह. अगल-बगल सुखिया और सुनीता. काश, सुखिया के बाद सुनीता बन पाती उसकी जिंदगी की मालगाड़ी की गार्ड! बड़े मियां सो बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्लाह!

उसने ओवरकोट के कॉलर को ऊंचा करके विषाद और कटुता की भावना के आक्रमण से बचाव की असफल चेष्टा की. जाफरी के जालीदार दरवाजे में ताला लगाकर वह बाहर निकला.

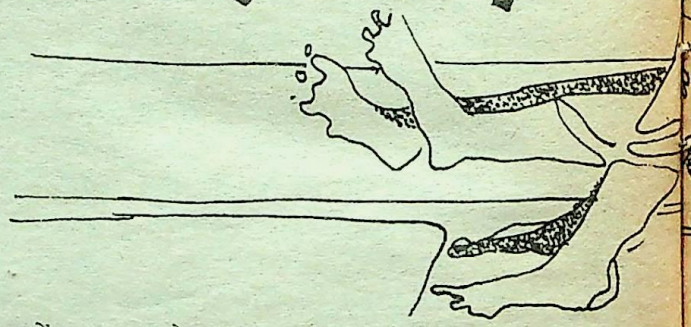

चारों तरफ कुहासे का सागर लहरा रहा था. मृतप्राय सन्नाटा खून को जमा देने वाली ठिठुरन. पूरी रेलवे कालोनी सोयी पड़ी थी सिर्फ दो तीन क्वार्टरों में बत्ती जल रही थी. ये लोग भी ड्यूटी पर जाने वाले होंगे या शायद वापस आये होंगे?

वह लोकोशेड की तरफ चल पड़ा. नीरव, सूनी, बर्फीली रात में भी कीड़ों का बेतरतीब संगीत गूंज रहा था. उसे सुखिया पर क्रोध आ रहा था. ऐसी भी क्या जल्दी पड़ी थी जाने की? कोई ट्रेन छूटी जा रही थी? अरे, वह तो गुड्स ट्रेन ड्राइवर की पत्नी थी? ट्रेन को रुकवा लेता. पर उसने तो अकेले ही जाना था. चली गयी कंबख्त ने कभी बताया ही नहीं कि अपने गर्भ में वह कौन-सा कैंसर पाल रही है! सोलह-सोलह दिन तक रक्त की धाराएं बहती रहतीं. कुछ नहीं कहती. पूरे जीवट से सह लेती रक्तपात को. पर अंत में उसे रेलवे अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा. पूरा यूटरस कैंसरग्रस्त हो चुका था. ऑपरेशन हुआ. मेज पर ही दम तोड़ दिया उसने.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑपरेशन थियेटर में जाने से पूर्व वह उससे कह गयी थी "अगर मुझे कुछ हो जाये तो सुनीता को मेरी जगह मत सौंपना उसे उसके घर भेज देना."

सुनीता की शादी उसके सामने ही तय हो गयी थी. लड़का टी.टी. था. झांसी में. धर्म के एक हजार. ऊपर के दो हजार अलग. मथुरा के श्याम चौबे भाई ने यह रिश्ता बताया था. लड़के के पिता झांसी में रहते थे. एक बस चलाते थे– झांसी खजुराहो के बीच.

अक्षय तीज की तारीख तय हुई थी. पर सुखिया के जाने के कारण लड़के वालों ने दो महीने के लिए तारीख आगे बढ़ा दी. 22 अक्तूबर को सुनीता भी चली गयी अपने घर. कितना अकेला पड़ गया था वह. तीन कमरों के क्वार्टर में अतृप्त प्रेत-सा वह एकाकी छटपटाता. उसकी जिंदगी की मालगाड़ी किसी वे-साइड स्टेशन पर रोक दी गयी थी. वहां न कोई मेल रुकती, न पैंसेजर. न पानी का इंतजाम. न कोई चाय, पान, बीड़ीवाला. चारों तरफ एक अभिशप्त, अपशकुनभरा सन्नाटा खिंचा था चारों ओर. शाश्वत लाल बत्ती. अपने लौहरथ के द्वार पर वह सिगनल डाउन होने की

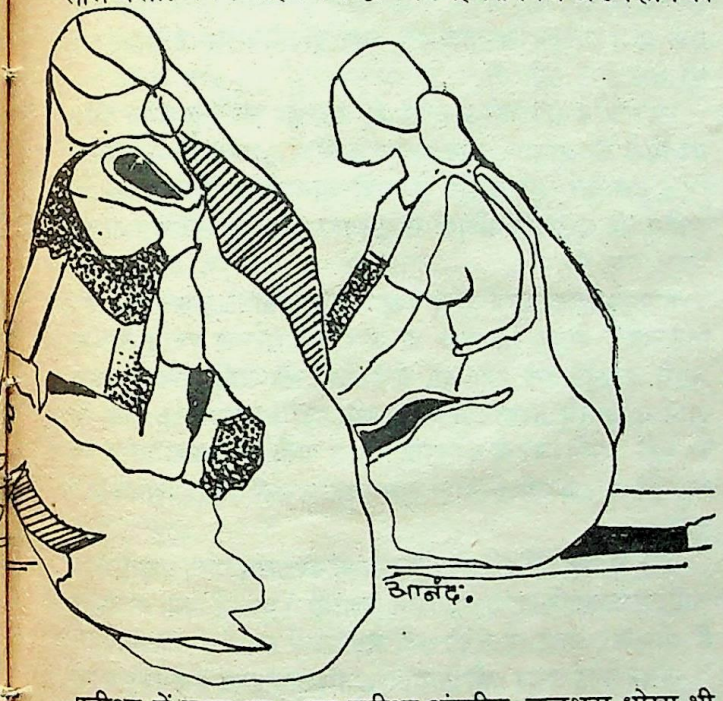

प्रतीक्षा में खड़ा था– वह प्रतीक्षा अंतहीन, ऊबभरा धोखा भी.

सिर पर लाख रूमाल बांधता वह. पर कोयलों की कालिमा से वह भूत बन कर घर लौटता था. सुखिया गर्म पानी करके उसे मलमल कर नहलाती थी. उसके जाने के बाद उसके शरीर पर कालिमा की कितनी की पर्तें चढ़ गयी हैं!

सुखिया के जाने की बाद की पीड़ा के विष को वह शिव की भांति पचा गया. सुनीता के जाने के बाद की रिक्ति से उसने शांतिपूर्ण, सम्मानजनक समझौता कर लिया. किंतु सुनीता की वापसी ने उसे एकदम तहसनहस कर दिया. जंगली सुअरों द्वारा रौंदी गयी खेती की भांति.

उस दिन अद्वावन डिब्बों के रैक को खींचकर वह नागपुर से झांसी लाया था. वहां से ड्यूटी ऑफ करके उसने जी.टी. पकड़ ली. सुबह करीब पांच बजे वह घर पहुंचा तो थकान से उसकी नस-नस चटक रही थी. कटी पतंग-सा वह पलंग पर पसर गया. जैसे ही उसकी आंख लगी, दरवाजे पर दस्तक हुई.

भ्रम हुआ है उसे, उसने सोचा. वह चारपाई पर पड़ा रहा. तीसरी बार जाफरी के दरवाजे जोर से भडभड़ाये तो वह उठा. दरवाजा खोला. सामने था एक दुखद आश्चर्य. यह वास्तविकता थी या कोई दुःस्वप्न? वह सुनीता थी अथवा उसका कंकाल? तीन चार महीने में ही वह अस्थिपंजर मात्र रह गयी थी.

"सुनीता, तू... इस समय... अकेली?"

वह अंदर आ गयी. दीवाल से सहारा लगाए, सिर झुकाए, वह सलीब पर लटके ईसा-सी मौजूद थी. उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी. सुनीता के पास उसके हर प्रश्न का एक ही उत्तर था. पांव के नीचे पिचे, आहत केंचुए जैसा छटपटाता मौन. उसके सूखे होंठों में कंपन होता. गले की उभरी हड्डियों में सिहरन होती. रोती आंखों में अभिव्यक्ति की कोशिश उजागर होती. इस सारे अथक प्रयास के बावजूद उसकी अनमापी व्यथा को वाणी नहीं मिल पाती.

कई दिन तक वह सुनीता को कुरेदता रहा. पर कुछ पल्ले नहीं पड़ा. सिर्फ सुनीता की आंखों से ढुलके कुछ अश्रुकणों के. ठीक है.

> उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि प्वांइटमैन ने कौन-सा कांटा घुमाया है और पता नहीं उसकी गाड़ी किस पटरी पर, कौन से स्टेशन की ओर दौड़ती जा रही है...?

वह सुनीता के पति कौशल से पतां करेगा. सुनीता के मामले में तो उसकी गाड़ी ठप्प हो गयी थी. एकदम कैंसिल ट्रिप की तरह. रैक साईडिंग में लगा दिया गया था.

अगली बार जब वह झांसी गया था तो उसे आधे घंटे का स्टॉप मिला था. उसने गाड़ी अपने असिस्टेंट को सौंपी. एस.एम. के पास गया कौशनल के घर जाने की इजाजत लेने. आधा घंटा ज्यादा भी लग गया तो क्या होगा! रेलवे अधिकारी जानते हैं कि जब शिवमूर्ति का मूड आता है तो भाप के इस दैत्य को वह ऐसे दाबता है कि झांसी और भोपाल के बीच आधा घंटा क्या, एक घंटा मेकअप कर लेता है, बस सिगनल बराबर मिलते रहने चाहिए.

एस.एम. से छुट्टी लेकर वह जैसे ही बाहर निकला, श्याम चौबे मिल गया. विचौलिया. कौशल का दोस्त. उसी से पता चल गया सारा रहस्य. कौशल दब्बू है. उसके मां-बाप कमीने हैं. उन लोगों ने सुनीता को दस दिन तक भूखा-प्यासा एक कमरे में बंद करके रखा. वे उसे मारकर, कौशल की दूसरी शादी करना चाहते थे. मौका पाकर सुनीता निकल भागी.

क्रोध और पीड़ा की मिलीजुली अनुभूति से उसके मस्तिष्क की शिराएं तन गयीं. वह बिगड़ा, "यह किस जन्म का बदला लिया श्याम? कहां फंसवा दिया मेरी इकलौती बेटी को?"

"अंकिल! मुझे नहीं मालूम था कि वे लोग इतने कमीने हैं."

वायलर के पानी की तरह उबलता हुआ वह इंजिन में लौट आया. खलासी को उसने हुक्म दिया कि भट्टी में और कोयले डाले.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

तकिया

सुनील हर्बोला

उसने अपने तकिये पर बेलबूटे काढ़ लिये, "उन्होंने लिख डाला अपने तकिये पर इसका नाम." कारण बतलाया गया– 'इससे संबंध मजबूत होते हैं, प्रेम बढ़ता है.' उन्होंने भावावेश में कल रात भींच डाला तकिये को अपने सीने में पूरी ताकत से, यहां तक कि बेचारे का दम घुट गया, आंखें बाहर को उबल पड़ीं."

उसने क्रोध में आकर घूंसे मारे तकिये की पीठ पर और शरीर पर यत्र-तत्र नाखून चुभोये दांत गड़ाये.

उन्होंने अस्त्र बनाकर दुश्मन पर दे फेंका तकिया.

उसने तकिये की ढाल बना ली और छिपा लिया खुद को उसकी आढ़ में सुरक्षित.

उन्होंने सिर रखकर तकिये के पेट पर पुल बनाए कई ख्वाबों के, और बनाते-बिगाड़ते रहे कई ताने-बाने....

बेचारा तकिया...

उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया.

किसी को इतना वक्त ही नहीं मिला.

गोया वो तकिया न हुआ आम नागरिक हो गया. □

भट्टी धधक रही थी. लाल लपटें बाहर तक लपक रही थीं. टंकी का पानी उबल रहा था. भाप मचल रही थी. उसका संपूर्ण अस्तित्व इंजिन बन चुका था. आवेग की भाप ऊर्जा बन उसे, उन सबको रौंदने के लिए उकसा रही थी. तिस पर भी निष्क्रियता, कुछ न कर पाने की असमर्थता.

पूरी शक्ति लगाकर उसने रेगुलेटर को खोल दिया. उसकी माल गाड़ी पटरियों को रौंदती हुई, जख्मी शेर-सी चीत्कार करती भागी जा रही थी. लोहे की ऊंची सीट पर वह जमा था. उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, केवल सुनीता के निर्जीव, रस निचुड़े मुख के अतिरिक्त.

जिंदगी की गाड़ी फिर उसी पुराने ढर्रे पर आ गयी थी. वह ड्यूटी करने जाता. लौटकर घर आता. सुखिया की अनुपस्थिति. सुनीता की उपस्थिति. दोनों स्थितियां उसे समान रूप से कोंचतीं.

सुनीता के होठों से चिपका शाश्वत मौन. आंखों में डेरा डाले स्थायी गीलापन. एक अव्यक्त छटपटाहट. बहुत कुछ घट रहा था अंदर ही अंदर.

पर बाहर भी बहुत कुछ अप्रिय घट रहा था. जितने मुंह उतनी बातें. कपूर साहब की बीवी कहती फिरती थी– सुनीता चरित्रहीन है. तभी तो उसके मियां ने उसे घर से निकाल दिया. बारह नंबर वाले गोस्वामी जी ने अफवाह उड़ा दी कि कौशल तो पहले से ही शादीशुदा था, शिवमूर्ति ने व्यर्थ में अपनी लड़की को नरक में झोंक दिया. अड़ोस-पड़ोस की महिलाएं ताने कसतीं. ससुराल में निभाना पड़ता है. यह थोड़े ही कि सा-ससुर ने कुछ कहा और घर छोड़ के भाग लिये. पीहर में तो राजामहाराजाओं की लड़की भी नहीं खपती.

मौहल्ले के आवारा लड़कों की भी पौ बाहर हो गयी थीं. उनके डर से सुनीता घर के बाहर नहीं निकलती. वह सुनीता की अनकही व्यथा का प्रत्यक्षदर्शी था. ऐसे कैसे रनथ्रू चलेगी गाड़ी? कहीं तो 'हाल्ट' करना ही होगा.

वह कोई दूरगामी निर्णय करने की सोच ही रहा था कि एक बार फिर उसकी जिंदगी की गाड़ी पटरी से उतर गयी. पड़ोस की लड़कियां जबर्दस्ती सुनीता को रामलीला दिखाने ले गयीं. रावण फुंक गया. रात को वे लौटीं तो सुनीता उनके साथ नहीं थी. कहने लगीं, वह भीड़ में बिछुड़ गयी.

सुनीता ऐसी गायब हुई कि उसका कोई पता ही नहीं चला. कितना तलाश किया उसने! अखबारों, रेडियो और टी.वी. पर गुमशुदा का विज्ञापन दिया. पर कोई सफलता नहीं मिली.

किसी के साथ भाग गयी? या आत्महत्या कर ली उसने? पड़ोसियों की शंका में उठी उंगलियां. मित्रों की उपहासभरी पूछताछ. सब कुछ इतना क्रूर और निर्मम था कि भट्टी का स्टापर खोलने के बाद भी, लपटों के रू-ब-रू वह कांपता रहता था. घर एक अभिशप्त कब्रिस्तान बन चुका था. दीवाल पर चढ़ाई चंपा की बेल सूख गयी थी.

लोकोशेड से आती रोशनी की शहतीर. शंटिंग करते इंजिन की सीटी की आवाज. भाप निकलने की सूंसूं. लोहे की पटरियों का भिच दब कर कूंकूं क्रंदन. ये सारी आवाजें जानी पहचानी थीं. अतीत की धूलभरी गलियों से गुजरता हुआ आखिर वह स्टेशन पहुंच गया था.

न जाने कितने वर्षों के बाद आज पहली बार वह अपने अंदर से निकलकर बाहर आ गया था और एक तटस्थ दर्शक-सा वह अपने आपको देख रहा था. बीते दिनों की उड़ी धूल ने उसकी दृष्टि के सामने अस्पष्टता का धुंधला पर्दा अवश्य टांक दिया था, पर वही अपनी जिंदगी की दुर्घटनाग्रस्त गाड़ी का मलवा स्पष्ट देख पा रहा था. काफी विनाश हुआ था, उसकी चतुर ड्राइवरी के बावजूद.

जैसे ही वह हाजिरी के रजिस्टर में दस्तखत कर, एस.एम. के आफिस के बाहर आया, रामधन खलासी ने पूछा, "क्या हालचाल हैं अंकिल? आज तो बड़ी सर्दी है!"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया. एक नंबर प्लेटफार्म जनशून्य था. उसने दूर तक दृष्टि पसारी. सात नंबर पर उसकी गाड़ी खड़ी थी.

"डिवीजनल आफिस से आपके लिए एक लैटर है," कहकर रामधन ने एक पीला लंबा लिफाफा उसे थमा दिया.

उसने पीला लिफाफा खोला. संदेश पढ़ा. प्रथम प्रतिक्रिया अतिरंजित थी. व्यक्त नहीं की. सिर्फ बुदबुदाया, 'बूढ़े तोतों को पढ़ायेंगे.. ऊंह.. देखा जाएगा.. नागपुर से लौटकर, मिल लूंगा.'

"क्या बात है?" रामधन ने उत्सुकतापूर्वक पूछा.

"कुछ नहीं," कहकर उसने स्टेशन की बड़ी घड़ी की ओर देखा और बोला, "चलो. डिपार्चर टाइम हो गया."

वे दोनों लोकोशेड की ओर बढ़ गये. उसने अनुराग भरी दृष्टि से अपने मित्र 'गुंजन' को देखा. फिर वह ऊपर चढ़ा. भाप चैक की. पानी स्तर और कोयले का स्टॉक जांचा. ब्रेक, इंजेक्टर्स तथा डेंपर्स की परीक्षा की. वह संतुष्ट हो गया. उसका साथी 'गुंजन' यात्रा के लिए चुस्त-दुरुस्त था. वह अपनी लोहे की सीट पर जम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया. खलासी भट्टी में कोयले झोंक रहा था.

असिस्टैंट ने सिगनल होने की सूचना दी तो यंत्रवत उसने सीटी के लीवर से बंधी डोरी खींच ली. एक लंबी सीटी बजी. गार्ड ने भी हरी बत्ती हिला दी. उसने एक संक्षिप्त-सी सीटी बजायी, हैंड ब्रेक को मुक्त किया और साथ ही रेगुलेटर को ऊपर उठा दिया. रैक्स की खटरपटर का तेज स्वर उठा और रात की नीरवता भंग हो गयी. आउटर से निकलते ही मालगाड़ी ने तेज रफ्तार पकड़ ली. साथ ही उसकी जिंदगी की उलटी हुई गाड़ी के मलबे से उसका कीमती सामान निकल आया.

एक सुबह वह जम्मू से गाड़ी लेकर लौटा था. वह घर पहुंचा तो देखा, बाहर, जाफरी से पीठ टिकाए सुनीता बैठी है. उसकी गोद में सात-आठमहीने का एक मरियल-सा बच्चा भी था. वह फ्रीज शाट-सा अचल रह गया.

उसने ताला खोला. सुनीता को अंदर किया. पीछे-पीछे वह था. बच्चे को चारपाई पर लिटा, उससे लिपट, सुनीता बुक्का मारकर रो पड़ी. एकदम जंगली जानवरों से संत्रस्त मृगशावक-सी.

"तू कहां चली गयी थी? कहां रही इतने दिन? किसका पाप लेकर आयी है तू?" उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी.

सुनीता के पास कोई उत्तर नहीं था. उसके प्रश्न सुनीता के आंसुओं की बाढ़ और हिचकियों के झंझावात में खो गये.

सलीब पर टांके जाने की वह एक और शुरुआत थी. सबकी नजरों में सुनीता कुलटा और कलंकिनी बन चुकी थी उसने अपनी चरित्रहीन बेटी को आश्रय देकर जनमत की अवमानना की थी. हरेक यही कहता— पाप की गठरी को लेकर बाप की छाती पर मूंग दलने से तो अच्छा था, कहीं कुआं जमुना में कूद जाती कुलच्छनी!

दहकते अंगारों से ये शब्द उसके अंतर को दग्ध करते. मूक साक्षी बने रहना उसकी नियति थी. गाड़ी को दबाकर चलाए रखना उसकी कला थी.

"इसका बाप कहां है, सुनीता?" जब मौका मिलता, वह यह प्रश्न पूछ लेता.

एक दिन सुनीता थोड़ी सामान्य थी. उसने अपना प्रश्न दोहराया तो उसके चेहरे पर घृणा के भाव तैर गये. वह बोली, "बापू, रामलीला मैदान में रावण फुंक रहा था. उधर, गिरजाघर से सटे कब्रिस्तान में दसमुखा एक और रावण मेरी पवित्रता की सीता का हरण कर रहा था. हां, वह एक सामूहिक कुकृत्य था. कई थे. किसकिस का नाम लूं? उससे क्या बनेगा? ऐसे कुकर्मियों का न नाम होता है, न हुलिया?"

"पर इत्ते दिन तक तू रही कहां?"

"खोटे सिक्के-सी एक हाथ से दूसरे हाथ में फिसलती रही..."

उसके सामने जीवंत पीड़ा उघड़ी पड़ी थी. बाप का घर ही ऐसी जगह होती है जहां जिंदगी की तमाम कटुताओं, पीड़ाओं और अपमानों को मुंह छिपाने की जगह मिल जाती है.

आगे कुछ करने के लिए बचा ही क्या था? अक्सर ही ऐसा होता है कि जिंदगी जो कुछ विषाक्त कड़वाहट देती है, उसे अंजुली में भरकर, गले के नीचे गटकने के अलावा और कोई चारा नहीं होता.

"ग्वालियर आउटर पर लाल सिगनल है!" असिस्टैंट ने कहा तो यंत्रवत् उसके हाथ ब्रेक पर पहुंच गये. गाड़ी की रफ्तार धीमी हो गयी. आउटर के पास पहुंच गाड़ी रुक गयी. देर तक खड़ी रही.

उसकी जिंदगी की गाड़ी भी तो वर्षों तक उसी आउटर पर खड़ी रही. वह सुनीता के बच्चे को देखता, उसके अंतर में वात्सल्य रस का संचार होता. उसे गोद में लेते ही उसे बड़ी लिजलिजी-सी अनुभूति होती. हरा सिगनल हुआ. उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी. पर एक बार पटरी पर फिर से चढ़ी उसकी जिंदगी की गाड़ी दूसरी या तीसरी बार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी. नियति का आतंकवाद. फिशप्लेटें निकाल दीं. गाड़ी उधर से गुजरी और उलट गयी. हेगमी के रंगीले दिनों में सुनीता अपने बच्चे को ले, के.के. ऐक्सप्रेस के सामने कूद गयी. कैसी विनाश की होली खेली थी कम्बख्त ने!

ग्वालियर पर एक घंटे रुकने के बाद वह अपने अगले सफर पर रवाना हो गया.

अगले दिन नागपुर से लौटता हुआ. वह झांसी पर रुका. दो घंटे का स्टाप था. इंजिन से निकालकर वह सीधा डिवीजनल सुपरिंटेंडेंट के दफ्तर में पहुंच गया.

सौभाग्यवश साहब मौजूद थे. वह बोला, "सर, यह कैसा आर्डर है? अब इस उम्र में डीजल इंजिन चला पाऊंगा मैं?"

"इसीलिए तुम्हें तीन हफ्ते की ट्रेनिंग के लिए बड़ोदरा भेजा जा रहा है. अब कोयलों की जगह बिजली तथा डीजल के इंजिन प्रयोग में लाये जायेंगे. समझे!"

वह सोचने लगा— भाप का इंजिन! दैत्य-सा शक्तिशाली होता है! उसके सामने डीजल या बिजली के इंजिन खिलौने हैं!

"साहब, मैं इस ट्रेनिंग पर नहीं जा सकूंगा," उसने शांत स्वर में कहा.

"शिवमूर्ति, तुम्हें बीस तारीख को रेलवे स्टॉफ कालिज में रिपोर्ट करना है. भाप का इंजिन आउट आफ डेट हो चुका है. अब हमें नयी टैक्नोलोजी को प्रयोग में लाना होगा."

सुपरिंटेंडेंट के निर्णायक स्वर ने उसे निरस्त्र कर दिया. लाचार-सा वह उनके कमरे से बाहर आ गया. उनका प्यारा 'गुंजन' 'आउट आफ डेट' हो चुका है तो वह कौन सा 'अप टू डेट' है? अब गुंजन भी बिगड़ जायेगा.

करीब एक बजे रात वह आगरा पहुंचा. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि पाइंटमैन ने कौन-सा कांटा घुमाया है और पता नहीं, उसकी गाड़ी किस पटरी पर, कौन से स्टेशन की ओर दौड़ती जा रही है? सर्पदंश से आहत-सा, वह सोच रहा था— वह इंजिन में सवार तो है. पर चालक वह नहीं, कोई और है. शायद यह चालक लापरवाह है. न पटरी की चिंता, न सिगनल की परवाह.

वह घर पहुंचा. कोयले की कालिमा से आवृत वह, बिना नहाए धोए, बिना रोटी खाए, चारपाई पर पसर गया. वह बड़ोदरा नहीं जायेगा, उसने फैसला कर लिया. मालगाड़ी का सफर कितना त्रासद होता है, बड़ी शिद्दत से उसने महसूस किया. भारहीन, उन्मुक्त-सा वह सो गया— गहरी नींद में.

अगले दिन सुबह-चटकीली धूप खिली. बर्तन मांजने वाली मांजी आयी. दरवाजा खटखटाया. कोई उत्तर नहीं मिला. पड़ोस में काम करने चली गयी. एक घंटे बाद लौटी. फिर दरवाजे पर दस्तक दी. इस बार भी कोई उत्तर नहीं निकला.

माई ने पड़ोसियों को सूचना दी. आशंका से आक्रांत पड़ोसियों ने दरवाजा तोड़ डाला. वे अंदर गये. शिवमूर्ति पलंग पर पड़ा गहरी नींद में सो रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ सुनील श्रीवास्तव

पापा

"पा पा! पापा!....." कानों में कोयल की कूक महसूस होती है.

नन्हें-नन्हें लबों पर थिरकते मासूम मुस्कान के बीच से निकले इस दो अक्षर के बोल सुनने के लिए मन कितना समय से तरस रहा था.

मैं खो जाता हूं, अपनी डेढ़ वर्ष की बेटी कीशू की मासूम छवि की कल्पना में—उस कल्पना में स्पष्ट दिख रहे निर्दोष आंखों की पुतली में.

इस पुतली में किसकी छवि कैद है? स्नेहासिक्त आंखें, मुस्कराते होंठ, अंक में लेने को आतुर फैले हुए दो हाथ—ये मैं हूं.

> ओह, यह लड़की भी अजंता की गुफा में चित्रित राजकुमारी जैसी ही है, लेकिन उस राजकुमारी जैसे मुख पर दुख, शोक, करुणा, निराशा की स्पष्ट छाया दिखती है... कैसी है यह लड़की...?

कीशू बेटे, डेढ़ महीने के अंतराल के बावजूद यह छाया तुम्हारी आंखों में समायी हुई है? जरा भी धूमिल नहीं हुई है यह? इन डेढ़ महीनों में तुम मुझे सारे घर में ढूंढती रही होगी, तुम्हारी आंखें जिस ओर भी उठती रही होंगी, मेरी ही आशा में. हर लम्हा तुम्हारे लब 'पापा' कहने का प्रयत्न करते रहे होंगे—लेकिन लब से फुसफुसाहट ही निकलती रही होगी और तब तुम झुंझलाकर उस एक अक्षर के शब्द बोल पड़ती रही होगी—जिसे तुम काफी पहले से बोलने में समर्थ थी-"मां!"

और फिर परसों तुम्हारे होंठ अपने प्रयत्न में सफल हो गये होंगे. 'पापा'-तुम्हारे लब से यह शब्द निकला होगा और इसे सुनकर अमिता झूम उठी होगी—"मेरी बेटी, मेरी लाड़ली कीशू. आज तूने 'पापा' कहा. 'पापा' की याद है तुझे! डेढ़ सौ मील दूर बैठे तेरे पापा भी हर समय तुझे ही याद करते रहते हैं.

देख, यह ढेर सारी चिट्ठियां— कीशू, कीशू, कीशू, कीशू..... हर जगह यही भरा रहता है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कीशू, कीशू, कीशू....." के स्वर मेरे होंठों से निकलने लगते हैं. मेरा स्वप्न भंग हो जाता है. मेरे सामने आज आया अमिता का पत्र पड़ा है.

यह स्वप्न हो सकता है, लेकिन कानों में गूंजे 'पापा' के मधुर बोल स्वप्न के स्वर कतई नहीं हो सकते. डेढ़ सौ मील दूर से निकली हुलास भरी यह पुकार अपनी पूरी मिठास के साथ मेरे कानों में तैर रही है—प्रकृति द्वारा निर्मित बेतार के तार से आयी है क्या ये आवाज?

यह लफ्ज केवल लफ्ज नहीं है—इसका एक जीवंत रूप भी है. मेरे मस्तिष्क की दीवारों से यह शब्द बार-बार आकर टकराता है और हर बार कीशू की नयी-नयी छवियां उत्पन्न करता है. एक-दो-नहीं, हजारों हजार, भिन्न-भिन्न रूपों में. यह रूप मुझे खयालों-ख्वाबों में डुबो देता है, वर्तमान के वजूद को भुला देता है.

"पापा!" तभी कान में एक तीखी आवाज गूंजी.

यह यतिभंग कैसे? सितार की झंकार से निकली मधुर सप्त स्वर लहरियों के बीच यह टूटे साज की बेसुरी आवाज कैसे?

मैंने देखा, एक छोटी-सी अपंग लड़की आयी और कीशू की निर्मल छवियों के मध्य खड़ी हो गयी.

छोटी-सी लड़की और इतना रुखा स्वर—चेहरे पर अबोधता नहीं, आंखों में मासूमियत नहीं.

"पापा!"

मनहूस लबों के बीच से निकले इस दो अक्षर के शब्द में एक झटके से उस कल्पना को झकझोर दिये, जिसे कुछ क्षणों पूर्व इस शब्द ने ही जगाये थे.

"खामोश!" मैं पूरी ताकत से चिल्लाया.

भिखमंगों की जमात में बैठी एक अपंग लड़की पर मैं दया दिखा सकता हूं. उसे अपने घर की देहली भी दिखा सकता हूं, परतु उस देहली पर खिंची लक्ष्मण-रेखा को पार करने का मंत्र उसे कतई नहीं दे सकता.

तो फिर यह यहां आकर कीशू के बगल में कैसे खड़ी हो गयी और मुझे उन शब्दों से पुकारने लगी जिन्हें कहने का हक केवल कीशू के नन्हे-नन्हें होंठों को है.

कहीं यह लड़की अपने घर का रास्ता भूलकर तो यहां नहीं आ गयी है—मैंने एक क्षण के लिए सोचा. लेकिन नहीं, चंद महीनों पहले खुली उसकी आंखें भले ही झोंपड़ी और भवन के मध्य भेद न स्थापित कर सकती हों, बंद आंखों से भी, केवल हाथ के स्पर्श से ही, वह अपने आत्मीय स्वजनों को लाखों की भीड़ में पहचान सकती है. इसके अलावा उसके चेहरे पर तनिक भी घबराहट न थी, बल्कि मुझे तो उसकी आंखों में वैसी ही निश्चितता की झलक दिखी, जैसे कि बहुत देर तक भुलाये रहने के बाद घर पहुंचने वाले बच्चे की आंखों में रहती है.

"पापा," उसके स्वर में एक विश्वास की झलक दिखी.

उसकी आंखों की निश्चितता व उसके स्वर में छिपे दृढ़ विश्वास ने मुझमें क्रोध की लहरें उत्पन्न कर दीं.

"खामोश लड़की! तेरी निगाहों में न जाने कैसा टोना है, दूर हो जा, नहीं तो तेरी निगाहों का सर्प मेरी कीशू की खुशी को डस लेगा."

जमदग्नि के क्रोध की जैसे पूरी उपेक्षा. उसकी आंखों में जैसे भय के स्थान पर दुख भरा विस्मय उत्पन्न हो गया.

कभी-कभी आंखों से भी शब्द निकलते हैं. मैंने स्पष्ट सुना.

"लेकिन मेरी खुशी को किसने डसा है?"

लेकिन उसके होंठ सिर्फ धीरे से हिलकर 'पापा' ही कह पाये थे.

आंखों के शब्दों ने होंठों के शब्दों की कड़ुवाहट को कुछ धीमा कर दिया.

दिन के तेज प्रकार में चौराहों पर लगी अनाथ बच्चों की भीड़ के समक्ष या संसद के सामने अपने अधिकार मांगते अनाथ बच्चों के जमाव के समक्ष मैं इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न कर सकता हूं, कम से कम उनके क्षीण स्वर में पूछे प्रश्न को मैं अपनी तेज आवाज से उद्घोषित कर चारों दिशाओं में गूंजा सकता हूं, परंतु रात के इस घटापोट अंधकार और निस्तब्ध एकांत में इस लड़की द्वारा पूछा गया यह निर्दोष प्रश्न समस्त संसार के आगे मुझे अविश्वासी बना देता है.

अत्यंत क्रोध से मैंने उन हाथों से, जिनसे मैं कुछ क्षणों पूर्व ही कीशू को उठाये था, उस लड़की को दूर धकेल दिया.

लड़की दूर जाकर गिर गयी, फिर संभल कर उठी. मैंने घृणा से उसकी आंखों में देखा. हठात् मैं स्तब्ध रह गया. उसकी पथरायी आंखों में जैसे एक प्रश्न जड़ हो गया था, "मैंने ऐसा क्या कह दिया है जिससे तुम इतना रंज हो गये हो. तुम सिर्फ कीशू के पापा ही हो सकते सही, लेकिन क्या तुम्हारा सारा प्यार, सारा स्नेह भी कीशू के इर्द-गिर्द ही संकुचित हो गया है."

पथरायी आंखों में स्थिर प्रश्न को मिटाने के लिए उसके मासूम हृदय ने मानो उसके आश्रुग्रंथियों को संकेत किया. लेकिन उसके आंखों से झरते आंसू की बूंदों ने उन प्रश्नों को आंख से मिटाने के स्थान पर उन्हें और भी अधिक स्पष्ट बना दिया. परंतु आंसुओं ने मेरी आंखों को स्वच्छ कर दिया.

मेरे दिल में यह एहसास होता है.

इसके बाल उलझे हैं, क्या इसीलिए कि कभी, किसी ने इसे प्यार से सहलाया नहीं हैं, भाल रुखड़े हैं, क्या इसलिए कि कभी इन पर स्नेहास्पर्श नहीं हुआ है, गाल धंसे हैं क्या इसलिए कि इस पर कभी पप्पी नहीं मिली है, आखें चमकविहीन हैं, क्या इसलिए कि किसी की आंखों में अपने लिए प्यार नहीं देखा है.

हां, इसीलिए.

इसके लब खामोश हैं, क्योंकि इससे कभी मुस्कान नहीं निकली है. जुबां शुष्क है, क्योंकि स्नेह संबोधन के लिए कोई अपना नही है, कान सुन्न हैं, किसी की चुमकार न सुनने के कारण, हाथ बेजान हैं, किसी के गले में झूल न पाने के कारण, पांव टेढ़े हैं, किसी को अपनी ठुमक न दिखा पाने के कारण!!

"ओफ ओह!" मेरे होंठों से निकला.

"पापा." उसके होंठ मानो धीरे से हिले.

"बेटे." मेरे हाथ अनायास उसकी ओर बढ़ गये.

लड़की के होंठों पर किलकारी गूंजी, लेकिन वह तुरंत वापस मुड़ गयी. लेकिन इस वापस मुड़ने मे उसके द्वारा मेरी उपेक्षा न थी क्योंकि जाती हुई लड़की की पदचापों में मुझे स्पष्ट सुनाई दे रहा था—"मैं कीशू का अधिकार मांगने नहीं आयी थी. तुम्हारी आंखों में हर समय उसके लिए वात्सलयता भरी रहे, मैं तो केवल यह चाहती हूं कि उन्हीं आखों से कभी एक बार. हमारी ओर भी देख लिया करो—हम उसी से निहाल हो जायेंगे."

ओह यह लड़की भी अजंता की गुफा में चित्रित राजकुमारी जैसी ही है, लेकिन उस राजकुमारी जैसी जिसके मुख पर दुख, शोक, करुणा, निराशा, की स्पष्ट छाया दिखती है.

पता नहीं कौन-सा कलाकार कब आकर अपनी कूची से दुख की इस छाया को खुशी के भावों में परिवर्तित करेगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोके की टट्टी

लाल मिर्च देखने में कैसी खूबसूरत होती है, मगर खाने में कैसी कड़वी. सुरिंदू की भी यही कैफियत थी, देखने में बहुत खुशवजा (परंपरा पर दृढ़), खुशलिबास (चारु वेष), जबान का बहुत मीठा, दोस्तों में बहुत हर दिल अजीज, मगर बला का नफ्सपरवर (विषय-लोलुप, ऐयाश), बदइख्लाक, शरीर (उपद्रवी). मदरसे की एंट्रेस जमात में पढ़ता था. सिन (आयु) 16 साल से जियादा न थी, मगर मिजाज में अभी से आवारगी का दखल हो चला था. शराब की लज्जतों (मजे, लुत्फ) से जबान मानूस) (भयमुक्त) हो चुकी थी और घर के संदूक खोलकर रुपये चुरा लेना तो एक मामूली बात थी. वाल्देन समझा-बुझाकर हार गये, स्कूल मास्टरों ने मारपीट, जुर्माना, सब कुछ अजमा देखा, मगर सुरिंदू ने जो रविश (चाल-चलन, आचार-व्यवहार) अख्तियार की थी, उसमें जरा भी न मुड़ा. शहर में कहीं बरात आये, कहीं नाच हो, कहीं ऐशो-तरब (भोग-विलास एवं आनंद) की महफिल सजे, सुरिंदू का वहां पहुंचना शर्ती अम्र (अनिवार्य कार्य) था. उसे कभी किसी ने किताब पढ़ते न देखा, मगर ताज्जुब यह था कि वह हर साल इम्तिहान में कामयाब हो जाता था. इसका राज वजज (अतिरिक्त) उसके खास दोस्तों के और कोई न जानता था. हां, इम्तिहान के दिनों में वह हेडमास्टर और दीगर मास्टरों के मुलाजिमों से जियादा रब्तोजब्त (मित्रता) कर लेता. आम वाल्देन उस वक्त तक लड़कों की तरफ से मायूस नहीं होते, जब तक वो एक ही दर्जे में बराबर फेल न हों. सुरिंदू ये नौबत नहीं आने देता था और इसलिए उसके वालिद, जो एक बहुत मुत्मइन (बेफिक्र) आदमी थे, उससे जियादा बाजपुर्स (पूछताछ) न करते. सुरिंदू में एक बड़ा वस्फ (गुण) यह था कि उसकी निगाह इंसान के कमजोर हिस्से पर बहुत जल्द आ पहुंचती थी और इस वस्फ से उसका बहुत काम निकलता. कोई स्कूल मास्टर ऐसा न था, जिसके दाग और धब्बे उस पर रोशन न हों. इस गुर ने उसे एंट्रेंस तक निभाहा. यहां तक कि एंट्रेंस का सालाना इम्तिहान आया, सुरिंदू ने उस मौके के लिए बड़े एहतिमाम (प्रबंध) किये थे. सब स्कूल मास्टर उसके खैर अंदेश (शुभचिंतक) बन गये थे. कामयाबी की सब सूरतें उसके मुआफिक (अनुकूल) थीं. मगर ऐन उस वक्त जबकि उसकी दुज्दीदी निगाहें (चुराई गई नजरें) दौड़-दौड़कर बरसों का काम लम्हों में पूरा किये देती थीं, एक गरजती हुई आवाज उसके कान में आयी, "सुरिंदू, कलम रख दो. तुम्हें अब लिखने की इजाजत नहीं है." सुरिंदू ने माथा पीट लिया. यह हेडमास्टर साहब थे.

प्रेमचंद के अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की खोज का कार्य तब आरंभ हुआ, जब मैंने 'प्रेमचंद विश्वकोश' पर काम शुरू किया. उस समय तक अमृतराय द्वारा खोजे गए अप्राप्य साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं. उन पुस्तकों में 'गुप्तधन' नाम से दो खंडों में प्रकाशित पुस्तक भी थी, जिसमें प्रेमचंद की 56 अज्ञात एवं अप्राप्य कहानियां संकलित थीं. इन कहानियों के बाद मैंने यह कल्पना नहीं की थी कि प्रेमचंद की कुछ कहानियां अमृतराय की दृष्टि से भी ओझल रह जायेंगी, परंतु जब मैंने खोज का काम पूर्ण किया तब तक मेरे हाथ में प्रेमचंद की 30 अज्ञात कहानियां आ चुकी थीं. इन कहानियों में से ही एक कहानी 'धोके की टट्टी' यहां प्रस्तुत की जा रही है.

प्रेमचंद की यह कहानी 'धोके की टट्टी' हिंदी पाठकों के लिए सर्वथा नयी कहानी है, क्योंकि इसका प्रकाशन उर्दू में हुआ था और प्रेमचंद ने इसका हिंदी रूप प्रकाशित किया या नहीं, इसका कोई प्रमाण अब उपलब्ध नहीं है. प्रेमचंद की बहुत-सी ऐसी कहानियां हैं जो केवल उर्दू में ही प्रकाशित हुई थीं. यह कहानी भी इसी प्रकार की हो सकती है कि प्रेमचंद को इसका हिंदी रूप तैयार करने का समय न मिला हो या उन्होंने इसका हिंदी पाठ तैयार करना उचित ही न समझा हो. बहरहाल, यह कहानी उर्दू की मासिक पत्रिका 'अदीब' के नवंबर, 1912 के अंक में प्रकाशित हुई थी और यहां इस उर्दू कहानी का हिंदी लिप्यंतर प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे कहानी के मूल पाठ को बनाये रखा जा सके.

कहानी कला की दृष्टि से चाहे उल्लेखनीय न हो, परंतु अपनी विषय-वस्तु के कारण यह ऐतिहासिक महत्व रखती है. कहानी इसका प्रमाण है कि स्कूल एवं कॉलेजों में लफंगों, शोहदों का छात्र वर्ग में प्रवेश हो गया था और वे यूनियन बनाकर अध्यापकों तथा परीक्षा-प्रणाली को भ्रष्ट करके अपने अनुकूल बना चुके थे. उस समय के छात्रों में शराब, जुआ, वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयां घर कर चुकी थीं और ऐसे छात्र अपने प्रेम-जाल में रोहिणी जैसी शिक्षिता को भी फंसाने में सफल हो गये थे. प्रस्तुत कहानी उस समय की युवा पीढ़ी तथा शिक्षा प्रणाली की अनजानी कहानी प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में रख देती है. आज देश के स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में जो यूनियनबाजी, छात्र एवं अध्यापकों का पतन, परीक्षा-प्रणाली में भ्रष्टाचार, छात्रों में शराब, जुआ आदि की जो भयावह बुराइयां दिखायी देती हैं, उसके इतिहास तथा उसके कारणों को जाने-समझने के लिए इस कहानी को आधार बनाया जा सकता है. □

प्रस्तुति : कमलकिशोर गोयनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इश्तहारी मुज्रिम गिरफ्तार हो गया और उसका नाम स्कूल से खारिज कर दिया गया.

सुरिंदू के लिए अब वजज (अतिरिक्त) इसके और कोई चारा न था कि कहीं और तालीम का सिलसिला कायम करे, मगर इस हादिसे ने उसके दिल पर कोई इस्लाह बख्श (सुधारपूर्ण) असर नहीं पैदा किया. इसने तो मुंह मांगी मुराद पायी. उसे अब नयी दुनिया देखने का, नयी दिलचस्पियों के लुत्फ उठाने का, नये दोस्तों की सोहबत का मौका हाथ आया. किसी दूसरी सूरत में ये आरज़ुएं मुश्किल से पूरी होतीं. अब वो खुद-ब-खुद उसके रूबरू दस्तबस्ता (हाथ बांधे हुए) खड़ीं थीं. वह जिस वक्त मदरसे से चला, उसका चेहरा कुछ तमतमाया हुआ था, मगर ये गुस्सा बहुत जल्द ठंडा हो गया. खुश होकर कहा, "मुल्क के खुदा तंगनेस्त (ईश्वर की सृष्टि इतनी संकुचित नहीं है)." लेकिन अब कलकत्ता यूनिवर्सिटी में दाखिला गैर-मुम्किन था और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में कोई सूरत न निकली, इसलिए सीधा लाहौर जा पहुंचा और वहां एक मदरसे में शरीक हो गया. क्रिकेट का जबरदस्त खिलाड़ी, फुटबॉल में मुशाक (सिद्धहस्त), शक्लो-सूरत का जेंटलमैन, फराखदिल (दिल खोलकर खर्च करने वाला), बुलंद हौसला. ऐसा तालिबे इल्म (विद्यार्थी) जहां जाये, उसे दोस्तों की कमी न रहेगी. लाहौर में बहुत जल्द दोस्तों की काफी तादाद हो गयी. और फिर वही चहचहे और कहकहे उड़ने लगे, मगर जरा एतिआत के साथ, शर्म का पर्दा रखे हुए. सुबह को बागों की सैर, शाम को क्रिकेट और फुटबॉल. रात को रिंदी-ओ-मेनोशी (शराब के दौर), फिर तरन्नुम परवाजियों के मश्गले (वेश्या-नृत्यों में तल्लीनता). कभी-कभी इन्हीं अश्गाल (धंधों) में रातें गुजर जातीं, मगर ये सब आजादियां और मस्तियां चंद वर्जिदा (अभ्यस्त) मोत्तेमद (विश्वासी) अहबाब (मित्रों) तक महदूद थीं, वरना आमतौर पर ये हजरत बहुत फिरिश्ता सिफ्त (दैवीय गुण संपन्न), मोहतात (संभलकर चलने वाला), हलीम-ओ-सलीम (सहनशील एवं शांतिप्रिय) मशहूर थे. यहां तक कि कॉलेज के प्रिंसिपल मि. काटन, जब कि लड़कियों के मदरसे का मुआइना करने जाते तो कभी-कभी, सुरिंदू को अपनी इम्दाद के लिए साथ ले जाते. मुबारक होता वो दिन जब बांका, सजीला सुरिंदू लड़कियों के मदरसे में दाखिल होता. हेड मिस्ट्रेस मिस गुप्ता का मुस्कराकर उससे हाथ मिलाना, आह! उस कफे बलोरीन (नर्म हथेलियों) का उसके हाथ में आना, आंखों में नशे के एक तूफान का आना था. उसका दिल उमंग से फूल उठता और दिल की फरहत (प्रसन्नता) और शिगुफ्तगी (खिलावट) उसकी सूरते जेबा (मनोरम आकृति) का रंग और भी चोखा कर देती. फिर ये एक कुदरती बात थी कि मिस गुप्ता को उसकी होनेवाली बीवी पर रश्क आता.

एक दिन सुरिंदू कॉलेज से आ रहा था कि कलकत्ता के एक पुराने रफीक (दोस्त) से आंखें चार हुईं. ये बाबू हरिमोहन थे. उन्हें देखते ही सुरिंदू का खून सर्द हो गया. हरिमोहन उसकी नाहमवारियों (आशिष्टताओं, उजड्डपन) के करिश्मे अपनी आंखों से देख चुके थे. बहुत घबराया, मगर तपाक से बढ़कर सलाम किया और खैरोआफियत पूछीं. हरिमोहन ने उसे सिर से पैर तक बगौर देखा. खाका वही था, मगर रंग नया. कुछ इधर-उधर की बातें हुईं. जब अलेहदा होने लगे तो सुरिंदू ने बहुत मिन्नत-आमेज लहजे में कहा, "भाई साहब, जिसे खुदा ने खराब बनाया है, वह कभी अच्छा नहीं हो सकता. मैंने बहुत कोशिश की कि नेकबख्त बन जाऊं, मगर ना बन सका. हां, नेकबाजी की शोहरत हासिल कर ली. यहां बजज आपके कोई दूसरा मेरे हालात से वाकिफ नहीं है. इसलिए मुझ गरीब पर नजरे इनायत रखियेगा. आप चाहें तो बात की बात में मेरा रंग फीका कर सकते हैं. मैं बिल्कुल आपके बस में हूं, मगर मुझे आप पर भरोसा है. आपको मैं हमेशा अपना बुजुर्ग और खैरअंदेश समझता रहा हूं."

सुरिंदू की बारीक निगाहें हरिमोहन के कमजोर हिस्से पर जा पहुंची. उनके चेहरे पर हमदर्दाना (सहानुभूतिपूर्ण) मुस्कराहट नजर आयी. बोले, "मुझे तुम हमेशा अपना दोस्त समझना."

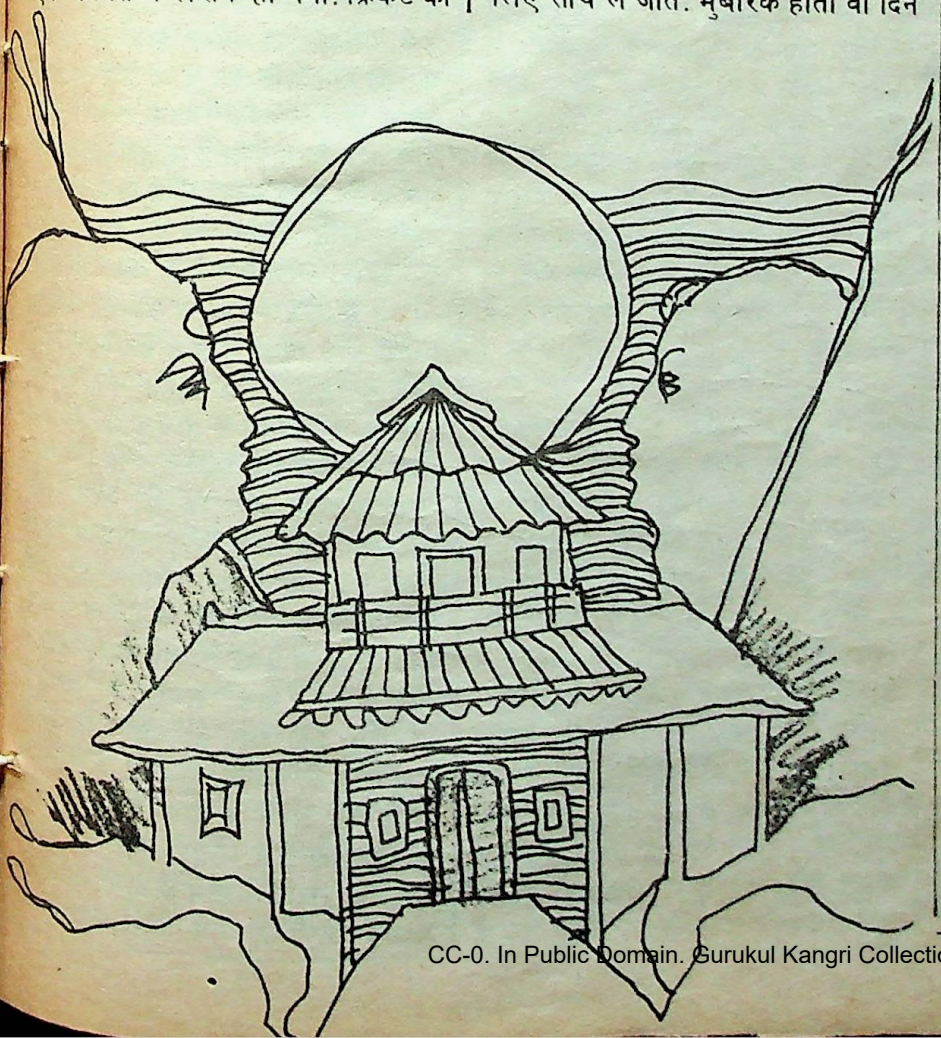

सुरिंदू ने लाहौर में एक बड़ा काम सर अंजाम दिया. उसने एक 'यंगमैन यूनियन' कायम कर ली और खुद उसका सेक्रेटरी बन बैठा इस यूनियन के मकासद (उद्देश्य) बहुत आला थे– नौजवानों के आदाब-ओ-इख्लाक की तहजीब, इल्मी और अमली तरक्की,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्तिफाके बाहमी (पारस्परिक एकता और मैत्री) की इशाअत (प्रचार-प्रसार) बगैरा. मेंबरों को कुछ माहवारी चंदा देना पड़ता और अज रुए हल्फ (शपथ के अनुसार) इकरार करना पड़ता कि मैं इस यूनियन के किसी मेंबर को किसी आफत में देखूंगा तो हर मुमकिन सूरत से उसकी मदद करूंगा. चंदा की रकम से चंद अखबार आते और जो कुछ बचता वो कारेखैर (भलाई के कामों) में सर्फ होता. इस काम में सुरिंद्रू को शानदार कामयाबी हासिल हुई. एक माह के अंदर यूनियन में से जियादा मेंबर हो गये. पच्चीस रुपये माहवार चंदा आने लगा. पांच यतीमों और कई बेवाओं की परवरिश होने लगी. इस कामयाबी का सेहरा मिस्टर सेक्रेटरी के सिर था, जिसकी शोहरत दिन दूनी और रात चौगुनी हुई जाती थी. प्रिंसिपल कॉटन उसे पहले ही से मानते थे, अब मुरीद (भक्त) हो गये. शहर में भी यूनियन का चर्चा होने लगा, मगर ये शानदार नाम का यूनियन बजज शोहदों की एक जमात के और कुछ नहीं था. मुख्तलिफ कॉलेजों के जितने औबाश (लंपट लोग, शोहदे), आवारा मिजाज, बदवजा (अशिष्ट शील-स्वभाव), बदकुमाश (दुराचारी), सैलानी तुलबा (विद्यार्थीगण) ये सब इसके मेंबर थे. यूनियन का कमरा उनकी दिलबस्तगियों (मनोरंजन) का अखाड़ा था. यहां वो गाते-बजाते और यहां ही रिंदाना मजलिसें आरास्ता होतीं, क्यूंकि फने-मौसीकी (संगीत-कला) की इशाअत में (प्रचार-प्रसार) भी यूनियन के सारे मेंबर सुरिंद्रू को अपना रहबर और पेशवा तस्लीम करते थे. उसने हरेक के दिल में यह बात जमा दी थी कि अगर तुम्हें बिला मेहनत और मशक्कत (कष्ट) के इम्तिहान पास करना चाहते हो तो वजज इसके कोई इलाज नहीं कि यूनियन के रुकन (सदस्य) बन जाओ. सुरिंद्रू इम्तहानी पर्चों की सुरागरसानी में यदेतूली (अत्यधिक कुशल) था और यही उसके असर और दबाव का राज था. कॉलेज में सुरिंद्रू की वही इज्जत थी जो किसी प्रोफेसर की. शहर में उसके आगे अच्छे-अच्छों के सिर झुक जाते थे, चूंकि कई बार उसे इस माकूला के अमली सबूत देने का मौका मिल चुका था कि इत्तफाक एक जबरदस्त ताकत है.

यूनियन के मेंबरों की जिंदगी वाकई काबिले रश्क थी. इम्तहान के दिन सिर पर आ गये थे. आम तुलबा (छात्रों) पर ख्वाबोखोर (गहरी नींद) हराम हो गया था. रात-की-रात और दिन-के-दिन मशक्क और मुताला (परिश्रम और अध्ययन) के सिवा कोई काम न था. वर्जिश का मैदान, क्लब, लाइब्रेरी सब विराना पड़े हुए थे. हर उम्मीदवार किसी सन्यासी की तरह मुराकबा (समाधि) में बैठा हुआ नजर आता था. जिसे देखिये अपनी कोठरी में समाधि लगाये बैठा है. इस शबानारोज (रात-दिन) की दीदारेजी (आंखों पर जोर डालना, बहुत सोच-विचार) और दिमागसोजी (माथा-पच्ची) ने दर्दे-सर, दर्दे-चश्म (आंखों में दर्द), शिकले हज्म (अपाचनता), बुखार और दीगर अवारिज (अन्य बीमारियां) का एक तूफान बरपा कर दिया है. आंखें फोड़े की तरह दुख रही हैं, मगर किताब हाथ में है. मारे दर्द के सिर फटा जाता है, मगर पेंसिल हाथ से नहीं छूटती. बुखार से बदन तवा हो रहा है, मगर जबान दर्द से मस्त्रूक है. इधर तो ये आफतें थीं, उधर यूनियन के मेंबर चैन की बांसुरी बजाते थे. कभी गाना हो रहा है, कभी चाय-पार्टी, कभी पिकनिक, जिसे देखिये बेगम और बेफिक्र गुल्छर्रे उड़ाता नजर आता है. किसी को इम्तहान की जर्रा बराबर फिक्र नहीं. यहां तक कि इम्तहान के दिन आये और यूनियन के भाग्य जाग उठे. कॉलेज के आम तुलब बमुश्किल बीस फी सदी कामयाब हुए. यूनियन के सो मेंबरों में सिर्फ 25 फेल थे. लोगों को अचंभा हो गया, मगर असल राज किसी की समझ में ना आया. वो सुरिंद्रू, जिसने ख्वाब में भी किताब की सूरत न देखी, अव्वल दर्जा में पास हुआ.

इसी अस्ना (बीच) में मिस गुप्ता का तबादला हुआ और मिस रोहिणी सरकार कलकत्ता से उनकी जगह पर मुकर्रर होकर आयीं. रोहिणी हुस्नोअदा में मिस गुप्ता की नेमल बदल (पूर्णतः अनुरूप) थी. उस पर तुर्रा ये कि दोशीजा (कुमारी)/सुरिंद्रू ने पहले ही निगाह से अपने शिकार को ताब लिया और रोहिणी भी पहली ही मुलाकात में उसकी मर्दाना वजा (ढंग), शरीफाना बशरा (चेहरा) और दिल फरेब, बेतकल्लफी से हद दर्जा मुतासिर (प्रभावित) हुई. मिस गुप्ता ने उससे सुरिंद्रू की बेइतिहा तारीफें की थीं और इस तज्करा (जिक्र) ने उसके दिल में सुरिंद्रू से एक लगाव-सा पैदा कर दिया था. उसने उसे उन तमाम औसाफ-ओ-कमालात (गुणों, खूबियों) से आरास्ता (विभूषित) पाया, जिनका अपने शोहर में मौजूद रहना वो जरूरी समझती थी. सर्वो नमाकूद (ऊंचा कद), छरेरा बदन, मुस्कराता हुआ चेहरा, खुश इख्लाक, खुशबयान (मधुर भावी), गो एक या दो मुलाकातें एक ऐसे अहम मामले में तस्फिया (निर्णय) करने के लिए काफी नहीं हो सकती, मगर सुरिंद्रू ने इतने दिनों भाड़ नहीं झोंकी थी. जब से होश संभाला, उसने इसी कूचे की खाक छानी. इसी बहर (ढंग) की ख्वाही की. उसने देख लिया कि मछली चारा कुतरने लगी, अब फंसने में देर नहीं है.

रोहिणी दिनभर सुरिंद्रू की तारीफें सुनती. यूनियन के एक सौ मेंबरों में से हरेक शख्स मौका और महल देखकर सुरिंद्रू का जिक्रे खैर उससे कर जाता. उनकी बीवियां, बहनें आतीं और उसका बखान करतीं. गर्ज सुबह से शाम तक इस तरह की बातें उसके कान में पड़ती रहतीं. यहां तक कि इन असलीयात ने उस सादा बेलौस लड़की को मोहब्बत से दीवाना बना दिया. ये बशीकरण मंतर अपना काम कर गया. अब रोहिणी को दर्दे-तन्हाई की कसक महसूस होने लगी. हर वक्त अकेलेपन का ख्याल दिल को सताने लगा. गकान और बाग और सैरगाहें सूनी मालूम होने लगीं. गर्ज आंखें आठों पहर सुरिंद्रू के इंतजार में रहने लगीं. एक भोला-भाला दिल नुमाइशात (छल कपट) के नजर हो गया.

जब ये मंजिल दुश्वार तय हो गयी तो मंगनी और ब्याह में क्या देर लगती? ये दोनों मरासम (रस्में) बहुत सादगी और मतानत (संजीदगी) के साथ अदा किये गये. जिस वक्त आचार्य रस्में-निकाह (विवाह-संस्कार) अदा कर रहे थे, सुरिंद्रू ऐसा मुताइयन (संजीदा) और मरऊब (दबा हुआ) नजर आता था, गोया वो इस नयी जिंदगी की जुम्मेदारियों के ख्याल से दबा जाता है. जब दुआ-निकाह खत्म हुई तो सारे मज्मा (भीड़, सभा) ने 'आमीन' (तथास्तु) कहा. सिर्फ हरिमोहन की जबान से ये दुआ न निकली. यूनियन के मेंबरों ने शादी की खुशी में एक जबर्दस्त और पुरशोर महफिल सजाई. रात भर हुंहक हुआ की. शराब के खुम के खुम (मटके पर मटके) खाली हो गये. खुशकिस्मती से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरिंदू इसी साल बी.ए. में कामयाब हो गया. यूनियन की हैरत अंग्रेज कामयाबी ने सब को हैरत में डाल दिया. एक मेंबर भी फेल न हुआ.

शादी हो गयी. दोस्तों ने खूब दिल खोलकर मुबारकबाद दी. किंतु खुसूस (मुख्यतः) मिस गुप्ता तो फूली न समायीं. वो देहली से इस तकरीब (विवाह) में शरीक होने के लिए आयीं. हफ्ता भर तक जश्न होते रहे. इसके बाद मियां-बीवी शिमला की सैर को रवाना हुए. यूनियन के मेंबर, गर्ल्स स्कूल का स्टाफ और दीगर अहबाब रुखसत करने के लिए स्टेशन तक आये. इसमें बाबू हरिमोहन भी थे. जब सब लोग रुखसत हो गये और इंजन ने चीखकर गाड़ी खींची तो हरिमोहन ने भी विदाई-मसाफा किया. उनकी आंखों में आंसू और दिल में अफसोसनाक ख्यालात भरे हुए थे. वो वहां खामोश गाड़ी की तरफ टिकटिकी लगाये देर तक खड़े रहे. यहां तक कि वो नजरों से ओझल हो गयी. उनका दिल कहता था कि ये मुसर्रत का सफर नहीं, रंजोगम का सफर है.

महीना भर तक रोहिणी और सुरिंदू शिमला में रहे और इस महीने भर में उन्हें एक-दूसरे की खू-ब-खू का पूरा तर्जुबा हो गया. शुरू में रोहिणी ने मिस गुप्ता को जो खतूत लिखे, वो इश्क-वो-मुहब्बत के जज्बात से भरे हुए थे. मिस गुप्ता इन खतूत को बार-बार पढ़तीं और रौर (संतुष्ट) ना होतीं, मगर रफ्ता-रफ्ता इन खतूत का रंग अंदो-वो-हसरत (क्लेह और निराशा) की तरफ माइल होने लगा. यहां तक कि आखिरी खत, जिसमें लिखा था, आज हम लोग यहां से लाहौर रवाना हो रहे हैं, बहुत पिलशिकन (हृदय द्रावक) था. उसमें आखिरी अल्फाज ये थे, "प्यारी बहन, मुझे ऐसा खौफ होता है कि इस ख्वाबे-मुसर्रत (आनंद के स्वप्न) से बहुत जल्द बेदार (जागना) पड़ेगा. जिस चीज को मैंने खालिस सोना समझा, वो महज चमकता हुआ पीतल निकला. अफसोस मैंने अपनी मुहब्बत की दीवार बालू पर खड़ी की थी. खुदा करे, मेरे सुब्हे गलत हों. खुदा न करे, मेरे ये बशोसे (निराशापूर्ण) शका सही हों, मगर प्यारी बहन, मेरा दिल बार-बार कहता है कि और कुराइन (हालात) उसकी तस्दीक (प्रमाणित) करते हैं कि हस्ती (अस्तित्व) का सर्माया खत्म हो गया. अब बकइया जिंदगी रोने में कटेगी."

मिस गुप्ता इस पुरदर्द खत को पढ़कर बहुत रोयीं. लाहौर में जब मालूम हुआ कि ये लोग वापस आ रहे हैं तो लोगों को ताज्जुब हुआ. दो महीने का सामान करके चले थे और कियास (अनुमान) से कहता था कि वहां की दिल फरेबियों से इतनी जल्दी तबीयत आसूदा (संतुष्ट) न हो, मगर इसके बरअक्स (प्रतिकूल) ये लोग एक ही माह में उक्ता गये. जरूर कोई-न-कोई बात है. आखिर मुकर्रा वक्त आया. अहबाब उनका खैर मकदम करने के लिए स्टेशन पर पहुंचे. गाड़ी आयी और मियां-बीवी उसमें से उतर पड़े। न कपड़ों का बक्स था, न ट्रंक, न बिस्तर. सुरिंदू की आंखें शराब से सुर्ख हो रही थीं और रोहिणी, आह! वो नौशुगुफ्ता (नया खिला) फूल अब मुझकिर जर्द (पीला) हो गया था. चेहरा ऐसा पसमुर्दा और अफ्सुर्दा (निचुड़ा हुआ) था, गोया (अतृप्ति और निराशा) की तस्वीर थी. बाद को मालूम हुआ कि सारा असबाब शराब की नजर हुआ और जेवर जुए के. कान के आवेजे (बुंदे) तक न बचे.

लाहौर में आकर रोहिणी तो अपने दर्सोतालीम (शिक्षा देने में) मस्रूफ हुई और सुरिंदू मएकसी (शराब पीने में) में. यूनियन का शीराजा (संगठन) अब बिखर गया था. इसलिए बजज शराब के दिलबस्तगी (मनोरंजन) का और कोई जरिया बाकी न रहा. अगर कभी रोहिणी समझाने की कोशिश करती तो सुरिंदू के तेवर बदल जाते. प्रिंसिपल काटन ने ये समझकर कि बेकारी ने उसकी ये गत बना रखी है, उसे अकाउंटेंट के दफ्तर में एक बहुत माकूल जगह दिला दी, मगर जिस शख्स की तहसील का जमाना (हासिल करने का समय) खरमस्तियों (गधे की तरह मस्तियों) में गुजरा हो, वो सुबह से शाम तक दफ्तर में खुश्क कागजों और रूहफूर्सा एदाद (आत्मा को तंग करने वाले हिसाब) के साथ क्यों कर सर मारता. एक रोज हेड क्लर्क ने उसे चंद एदाद (गिनतियों) का मिजान मरत्तब (तैयार) करने का हुक्म दिया. मिजान लाखों तक पहुंचता था. सुरिंदू एदादा की लामितनाही (अंतहीन) कतारों को देखकर ऐसा घबराया कि दफ्तर से बेतहाशा भागा कि घर पर आकर दम लिया. इसके बाद कई माह तक वो मुख्तलिफ दफातर (दफ्तरों) की खाक छानता रहा, मगर तलून और वहशत (अनिच्छा और मूर्खता) ने कहीं कदम न जमने दिया. यहां तक कि प्रिंसिपल साहब मायूस मायूस हो गये और जुमला दफातर (सभी दफ्तरों) के दरवाजे उसके लिए बंद हो गये.

गरीब, बेकस रोहिणी अब अपने किये पर पछताती थी, मगर दिल पर जो गुजरता खामोशी के साथ झेलती. कभी हर्फे शिकायत जबान पर ना लाती. जब उसने देखा कि सुरिंदू को समझाने-बुझाने की कोशिश हमेशा सख्त कलामियों (कठोर शब्दों) का बाइस होती है तो किस्मत पर शाकिर (ईश्वर को धन्यवाद देकर) होकर बैठ रही. किस्मत मायूसों की आड़ और बदनसीबों का सहारा है. अख्राजात (खर्चों) के बाइस मुलाजिमों को जवाब देना पड़ा.

बेचारी बेजबान औरत दिनभर लड़कियों को पढ़ाती और गिरस्ती का सारा काम करती. इन मुसीबतों ने इसकी सूरत को यहां तक भंसख (बिगाड़) कर दिया था कि बाबू हरिमोहन जब मद्रास से साल भर के बाद लौटे तो उसे मुश्किल से पहचान सके.

इसके बाद मालूम नहीं उन बदनसीबों पर क्या गुजरी. प्रिंसिपल काटन ने आये दिन की हुज्जत-ओ-तकरार से तंग आकर रोहिणी से इस्तीफा ले लिया और खुदा जाने किस-किस देश की खाक छानते हुए बाला आखिर वो काश्मीर पहुंची. वहां से रोहिणी ने मिस गुप्ता को जो खत लिखा वो निहायत दर्दनाक और जिगरदोज था, "बहन, मेरा हाल क्या पूछती हो? अब जिंदगी से जी भर गया. मुझे अपनी कुछ फिक्र नहीं, मगर तुम्हारे बहनोई साहब की हालत निहायत खराब है. खुदा गवाह है, मैं अब भी उनकी परस्तिश (पूजा) करती हूं. मैंने अपना सब कुछ उन पर निछावर कर दिया, मगर हाय! शराब तेरा सत्यानाश हो, हाय! जुआ तेरा बुरा हो. ये दो मर्ज उनकी जान के ग्राहक हो रहे हैं. बस और ज्यादा न कहूंगी. तुमसे कहते शर्म आती है और शर्म की तो इतनी परवाह नहीं, क्योंकि मुद्दत हुई इसे रुखसत कर चुकी, मगर तुम्हें सुनकर रंज होगा. बस यही समझ लो कि तुम्हारी भोली-भाली रोहिणी अब अपने किये पर पछताती और खून के आंसू रोती है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी राजा यूनान के वजीर और रय्यन हकीम की

मछुए ने कहा, सदियों पहले, रूस देश में फॉर्स नाम के शहर में यूनान नाम का राजा रहता था. वह एक अमीर और ताकतवर राजा था, जो एक कुशल योद्धा और सेनापति भी था. सब पड़ोसी राजा उसके मित्र थे. वह यदि चिंतित था, तो अपने कोढ़ के कारण, जिसका इलाज कोई हकीम नहीं कर पाया था.

एक दिन एक अन्य देश का एक नामी हकीम, जिसका नाम रय्यन था, फॉर्स शहर में आया. वह एक ज्ञानी हकीम था, जिसने ग्रीक, लेटिन, फारसी और अरबी भाषाओं में लिखी चिकित्सा-संबंधी पुस्तकों का अध्ययन किया था. वह सब रोगों के बारे में सब कुछ जानता था. उसे मालूम था कि वे रोग कैसे होते हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता था. वह हर प्रकार की वनस्पति के गुण-दोषों से भी परिचित था.

जब उसे राजा यूनान के रोग के बारे में पता चला तो अपने कोढ़ के बारे में नये सिरे से सब जानकारी प्राप्त की, और कीमती वस्त्र धारण कर, राजा यूनान के महल में पहुंचा.

राजा को अदब से सलाम करने के बाद, हकीम यूनानी ने अपना परिचय दिया, और फिर बोला, "हुजूरेआला, मैंने सुना है कि आपको कोढ़ की शिकायत है, और कोई भी हकीम उसे ठीक नहीं कर सका है. आप इजाजत दें, तो मैं आपका रोग बिना किसी पीने वाली दवा और शरीर पर लगाए जाने वाले मलहम के ठीक करूं."

"क्या तुम सफलतापूर्वक मेरा इलाज कर सकोगे? यदि तुम सचमुच मेरे इलाज में सफल हो गये, तो विश्वास मानो कि मैं तुम्हें इतना धन दूंगा कि तुम्हारी सात पीढ़ियां उसके सहारे आराम की जिंदगी बिता सकेंगी. मगर मेरी समझ में यह नहीं आता कि तुम बिना किसी दवा या मलहम के मेरा इलाज कैसे करोगे?"

"यह आप मुझ पर छोड़ दीजिए," हकीम ने बड़ी आजिजी से कहा. "मैं चौबीस घंटे के अंदर खेल-खेल में आपको ठीक कर दूंगा."

"खेल-खेल में? चौबीस घंटे में?"

"जी हां. मैं कल सुबह हाजिर हो जाऊंगा, और आते ही आपका इलाज शुरू कर दूंगा."

राजा यूनान के महल के सामने एक घर किराए पर लेकर हकीम रय्यन ने कई वनस्पतियों के रस निकालकर उसे एक खोखली मुंगरी में भरा, और उसमें एक हैंडिल लगाया. फिर, उसने एक खोखली गेंद में भी रस को ऐसा ठसाठस भरा कि लगता नहीं था कि खोखली गेंद में कुछ भरा गया है. अगले दिन सुबह, वह इन दोनों वस्तुओं को लेकर महल में गया, और राजा से कहा, "मैं जानता हूं कि आपको पोलो का बहुत शौक है. आज आप मेरे कहने से इस हैंडिल लगी मुंगरी और गेंद की मदद से पोलो खेलें, और तब तक खेलते रहें, जब तक आप पसीने से तरबतर न हो जाएं. मुंगरी और गेंद को जब भी पकड़ें, बहुत दबाकर जोर से पकड़ें. जैसे ही आपका पसीना इन दोनों वस्तुओं को छुएगा, आपके शरीर का कोढ़ अपने आप मिटना शुरू हो जायेगा."

राजा ने अपने साथी-खिलाड़ियों के साथ उसी ढंग से पोलो खेली, जैसी हकीम रय्यन ने बतायी थी. वे तब तक पोलो खेलते रहे, जब तक कि पसीने और वनस्पतियों के रस के मिले जुले प्रभाव से उसका कोढ़ दूर होना आरंभ नहीं हो गया.

जब खेल खत्म हुआ, तो हकीम ने कहा, "अब महल में जाते ही, आप सीधे हमाम में पहुंच जाइएगा. वहां जी भर के नहाइए, और बाद में बिना कुछ खाए-पिए सोने के लिए चले जाइएगा. कल सुबह मैं आपके दर्शन करूंगा."

राजा ने वैसा ही किया, जैसा हकीम रय्यन ने करने को कहा था.

जैसे ही वे स्नान करके हमाम से बाहर आने लगे, उन्होंने अपने शरीर की त्वचा को ध्यानपूर्वक देखा. कोढ़ के सब निशान गायब हो गये थे, और उनकी त्वचा एकदम साफ-सुथरी दिखायी दे रही थी. वे खुशी-खुशी सोने गये.

सुबह जब हकीम रय्यन साहब उनसे मिलने गये, तो उन्होंने अपने सिंहासन से उठकर, हकीम साहब को अपने गले लगा लिया, और कहा, "आपने अपना वायदा पूरा किया, अब मैं अपना वायदा पूरा करता हूं."

दुपहर का खाना राजा और हकीम ने एक साथ खाया. इसके बाद, राजा ने भरे दरबार में हकीम साहब का सम्मान किया, और उन्हें अनेक कीमती उपहारों के अलावा दो हजार स्वर्ण-मुद्राएं (दीनार) इनाम में दी. रय्यन खुशी-खुशी अपने निवास-स्थान को लौटे. लौटते समय उन्हें राजा का आदेश मिला था कि वे अगले दिन सुबह भी दरबार में मौजूद रहें.

अगले दिन भी, राजा ने हकीम का बड़े स्नेह और सम्मान से स्वागत किया, उसे अपने बगल में बैठाया, और उसके साथ ही खाना खाया. अपने दरबारियों से राजा ने हकीम रय्यन की बहुत प्रशंसा की, उसे अपना घनिष्ठतम मित्र और शुभचिंतक बताया, और कहा, "मैं हकीम साहब को कितने भी उपहार क्यों न दे दूं, उनके अहसानों का बदला कभी नहीं चुका सकूंगा."

राजा के दरबारियों में एक वजीर ऐसा था, जो दुष्ट प्रकृति और ईर्ष्यालु स्वभाव का था. उसे हकीम रय्यन के सौभाग्य से ईर्ष्या होने लगी. रय्यन के जाने के बाद, वह राजा के पास पहुंचा, और कहने लगा, "हुजूर ए आला! आप जानते ही हैं कि इस नाचीज ने जब भी आपको सलाह दी है, आपके कुशल-मंगल की खातिर दी है. आज चूंकि आपकी जान को और हमारे मुल्क की सुरक्षा को खतरा है, इसलिए आपसे तखलिए में यह नाचीज कुछ अर्ज करना चाहता है. मौका दें, बंदापरवर!"

राजा ने एकांत का आदेश दिया, और सबके चले जाने के बाद उस वजीर से कहा, "जो कहना चाहते हो, बेखौफ कहो."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वजीर ने राजा के कान भरते हुए कहा, "हुजूर, बेअदबी माफ हो, मगर जिन हकीम साहब पर आप इतने ज्यादा फिदा हो रहे हैं, वे हकीम तो आला दर्जे के हैं, मगर हैं असल में आपके जानी दुश्मन."

"जानी दुश्मन? यह क्या बक रहे हो तुम?"

"बक नहीं रहा हूं, बंदापरवर! हकीकत बयान कर रहा हूं. मुझे अपने जासूसों से पक्की और पूरी तरह विश्वसनीय खबर मिली है कि ये हकीम साहब आपके एक दुश्मन राजा के जासूस हैं. आपका सफल इलाज करके फिलहाल उन्होंने आपका विश्वास जीत लिया है, मगर बाद में मौका देखकर वह आपकी हत्या की कोशिश करेंगे. वह इसी उद्देश्य से यहां आये हैं."

राजा यूनान को अपने वजीर की बातों पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ. उन्होंने कहा, "वजीर, तुम जो कुछ कह रहे हो, ईर्ष्यावश कह रहे हो. तुम्हारी बातें सुनकर मुझे उस बाज की कहानी याद आ गयी, जो मैंने बहुत पहले सुनी थी, और इस वक्त मौजूं बैठ रही है."

सुबह होने वाली थी, इसलिए शहरजाद ने यह कहानी नहीं सुनायी. उसने बस इतना कहा कि बाज की कहानी और भी ज्यादा दिलचस्प है, इस पर शहरयार ने मन ही मन फैसला किया कि वह बिना यह कहानी सुने, शहरजाद की हत्या का आदेश नहीं देगा.

बाज और राजा सिंदबाद की कहानी

अगली रात को शहरजाद ने बाज और राजा सिंदबाद की कहानी इस प्रकार शुरू की:

राजा यूनान के अपने वजीर से कहा, "ईर्ष्या ने तुम्हारी आंखों पर परदा डाल दिया है, और इसलिए तुम भले-बुरे की तमीज नहीं कर पा रहे हो, और एक नेक इंसान को बदइंसान बता रहे हो. तुम चाहते हो कि मैं उसकी हत्या करवा दूं. मगर, उसके बाद क्या होगा, जानते हो? मुझे उसी तरह पछताना पड़ेगा, जैसा राजा सिंदबाद पछताये थे. लगे हाथ सुन लो उनकी भी कहानी. इसी फॉर्स नगर में कभी एक ऐसा राजा राज्य करता था, जिसे शिकार का बड़ा शौक था. राजा के जिसका नाम सिंदबाद था, पास एक बाज था, जो चौबीसों घंटे उसी के साथ रहता था. राजा ने उसे ऐसा प्रशिक्षित किया था कि शिकार के दौरान और अन्य अवसरों पर भी वह राजा के प्राणों की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को भी तैयार रहता था.

"एक दिन राजा सिंदबाद उस बाज को लेकर एक घाटी में शिकार करने गया. घाटी में उसने जो जाल फैलाये, उसमें चिकारा (कलपुंछ) जाति का एक पशु फंस गया. राजा ने अपने सभी सहायकों से कहा, "जो इसे जाने देगा, वह जिंदा नहीं बच पायेगा." मगर, संयोग ऐसा हुआ कि चिकारा स्वयं उन्हें ही चकमा देकर भाग गया. राजा उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे, अपने घोड़े पर बैठकर भागे. अंत में, वे उसे पकड़ने और मारने में सफल हो गये.

"चिकारा के पीछे भागते-भागते राजा बहुत थक गया था. घोड़ा भी बहुत प्यासा दिखायी दे रहा था. राजा ने जब देखा कि एक वृक्ष से गाढ़ा द्रव नीचे गिर रहा है, तो उसने बाज के गले में पड़े एक प्याले को वृक्ष के नीचे रखकर उस द्रव को जमा करना आरंभ कर दिया. लेकिन, उसे बाज से झपट कर नीचे जमीन पर गिरा दिया. जब बाज ने तीन बार ऐसा किया, तो राजा को बहुत गुस्सा आया, और उसने अपनी तलवार से उसके दोनों पंख काट दिये. तब बाज ने अपना सर उठकर पेड़ के ऊपरी भाग की ओर राजा का ध्यान आकर्षित किया. वहां एक भयानक दृश्य देखकर वह चकित रह गया. अनेक सांप, एक-दूसरे से लिपटे हुए, अपना जहर नीचे टपका रहे थे, और इसी द्रव को राजा प्याले में जमा करके उसे अपने घोड़े को पिलाने के बाद, स्वयं भी पीना चाहता था. वह घायल बाज को लेकर वापस महल में आया. मगर, महल में आते ही बाज की मृत्यु हो गयी, और राजा पश्चाताप की आग में जलने लगा. उसे पश्चाताप हो रहा था कि जिस स्वामीभक्त बाज ने उसके तथा उसके घोड़े के प्राण बचाने का प्रयास किया, उसने उसे ही मार डाला."

राजा यूनान की यह कहानी सुनकर दुष्ट वजीर ने कहा– "ह प्रतापी राजा! मैंने आपको जो परामर्श दिया, वह आपकी और राज्य की सुरक्षा की खातिर ही दिया. यदि आपको लगता है कि मैंने ऐसा ईर्ष्यावश किया, तो आप मुझे सहर्ष प्राण-दंड दे सकते हैं. लेकिन, तब आपको उसी भांति पछताना पड़ेगा, जिस प्रकार राजा सिंदबाद को बाज को मारने के बाद, पछताना पड़ा था. अतः आप जो कुछ करें, काफी सोचविचार कर ही करें. जहां तक हकीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सवाल है, यकीन मानें, वह आपको धोखा देगा ही.''

कहानी राजकुमार और नरभक्षी दानवी की

और, अपनी बात की समाप्ति कुटिल वजीर ने इन शब्दों में की, ''कहीं ऐसा न हो, अन्नदाता कि आपको मेरी हत्या करवाने के बाद, उसी तरह पछताना पड़े, जिस प्रकार उस धोखेबाज वजीर को पछताना पड़ा था, जिसने एक राजकुमार को हानि पहुंचायी थी.'' और, राजा के अनुरोध पर, उसने यह कहानी सुनायी :

एक रकाजा के पुत्र को शिकार करने का बड़ा शौक था. वह शिकारी कुत्तों को लेकर शिकार करने जाया करता था. राजा ने अपने एक वजीर को यह हुक्म दे रखा था कि जब भी राजकुमार शिकार पर जाये, वह भी उसके साथ जाये, ताकि उसकी देखभाल करता रहे.

एक दिन जब राजकुमार और वजीर दोनों साथ-साथ शिकार के लिए रवाना हुए, तो उन्होंने जंगल में एक विचित्र दृश्य देखा. एक विचित्र जानवर ने उनका रास्ता रोक रखा था. वजीर जानता था कि वह जानवर किस जाति का है, तो भी उसने राजकुमार से कहा, ''बढ़ो, आगे बढ़ो, और इस जानवर को पकड़ो.'' राजकुमार ने, जो घोड़े पर सवार था, उसका पीछा करना आरंभ किया. पीछा करते-करते वह एक रेगिस्तान में पहुंच गया, जहां वह रहस्यमय जानवर न जाने कहां खो गया, या गायब हो गया.

राजकुमार को अब चिंता हुई कि वापस कैसे लौटा जाये. तभी उसने एक सुंदर नवयुवती को एक कोने में बैठे रोते देखा. राजकुमार ने उससे पूछा कि वह कौन है. उसने उत्तर दिया कि वह हिंद के एक राजा की लड़की है. 'मैं एक कारवां के साथ यह रेगिस्तान पार कर रही थी कि मुझे नींद आ गयी, और मैं ऊंट के ऊपर से रेगिस्तान पर गिर पड़ी. अब मैं यहां अकेली और दुखी हूं. मैं नहीं जानती कि मैं कहां जाऊं और कैसे जाऊं.'

राजकुमार ने उसे अपना परिचय देकर, घोड़े पर अपने पीछे सवार होने को कहा. वे दोनों कुछ दूर ही गये थे कि एक खोह को देखकर, नवयुवती ने कहा, ''एक मिनट रुको. मैं इस खोह में पेशाब करके अभी वापस लौटती हूं.'' राजकुमार ने घोड़ा रोक लिया, और नवयुवती खोह के अंदर चली गयी. जब वह काफी देर तक खोह से बाहर नहीं आयी, तो राजकुमार उसे देखने के लिए खोह के अंदर गया, और उसने वहां जो दृश्य देखा, उसने उसे चकित कर दिया.

उसने देखा कि नवयुवती एक नरभक्षी दानवी के रूप में परिवर्तित हो गयी थी, और अपने बच्चों से यह कह रही थी, ''बच्चो! आज मैं तुम्हारे लिए एक स्वस्थ और जवान नौजवान लायी हूं, उसे खाकर तुम्हें बड़ा मजा आयेगा.'' यह सुनकर, बच्चे चिल्लाने लगे, ''तो फिर जल्दी उसे लेकर आओ, मां! हमें बहुत भूख लगी है. उसे खाकर हम अपनी कई दिनों की भूख मिटायेंगे.''

जब राजकुमार ने नरभक्षी दानवी और उसके बच्चों के बीच हुए वार्तालाप को सुना, तो वह डर के मारे कांपने लगा. उसे विश्वास हो गया कि अब उसकी मौत निकट है, और कोई भी उसे नियति से नहीं बचा सकता.

लेकिन तभी एक चमत्कार हुआ.

जब दानवी ने राजकुमार को देखा, तो वह डर के मारे कांप रहा था. दानवी ने पूछा, ''क्या बात है? तुम इतने डरे हुए क्यों हो?'' राजकुमार ने उत्तर दिया, ''मेरा एक शत्रु है, और मैं उससे डरता हूं.'' दानवी ने कहा, ''लेकिन, तुम तो राजकुमार हो. हो न?'' राजकुमार ने कहा, ''हां, मैं एक राजकुमार हूं.'' दानवी ने पूछा, ''तो फिर तुम अपने इस शत्रु को पैसा देकर शांत क्यों नहीं कर देते?'' राजकुमार ने कहा, ''उसे धन नहीं, मेरे प्राण चाहिए.''

दानवी ने कुछ सोचकर कहा, ''फिर तो तुम्हारे सामने एक ही विकल्प शेष रह जाता है. और, वह यह कि तुम अल्लाहताला से दुआ मांगो कि वह तुम्हारी प्राण-रक्षा करे, और तुम्हारे शत्रु के हाथों तुम्हारा कोई अहित न होने दे.'' राजकुमार ने दानवी के सुझाव का पालन किया, और सर झुकाकर अल्लाह से दुआ मांगने लगा कि वह उसके शत्रु का दमन करे. जैसे ही, दानवी ने राजकुमार की प्रार्थना सुनी, वह अंतर्धान हो गयी. अब राजकुमार आजाद था. वह वापस अपने महल में पहुंचा, और वहां अपने वालिद साहब को वजीर की काली करतूतों के बारे में बताया. राजा ने फौरन हुक्म दिया कि वजीर को फौरन जान से मार डाला जाये.

यह कहानी सुनाने के बाद, यूनान के राजा के वजीर ने इन शब्दों में अपनी बात जारी रखी : ''मुझे डर है, बंदापरवर कि अगर आपने इस हकीम पर अपना विश्वास जारी रखा, तो वह बड़ी बेरहमी के साथ आपकी जान ले लेगा. आप उसके साथ दोस्ताना तरीके से पेश आते हैं, और इतने तोहफे देते हैं, मगर वह अपनी कपट-योजना से आपके प्राण लेने पर तुला हुआ है. उसने आपके हाथ में एक चीज देकर आपको चंगा कर दिया. अब वह उसी तरीके से आपको बीमार कर, आपकी जान भी ले सकता है, और लेगा भी. मैंने, जो आपके हित में ठीक समझा, अर्ज कर दिया. आगे, जैसी आपकी मर्जी.''

राजा ने वजीर से कहा, ''आप जो कुछ कह रहे हैं, सही कह रहे हैं. मैं आगे आपकी सलाह के मुताबिक ही काम करूंगा. अब मुझे भी यह शक होता जा रहा है कि यह हकीम शायद मेरे दुश्मनों का जासूस है, और मुझे मारने के इरादे से यहां आया है. आपने मेरी आंख खोल दी हैं. अब मैं क्या करूं, आप ही बताएं.''

वजीर ने कहा, ''मेरी सलाह है कि इससे पहले कि वह आपको खत्म करे, आप उसे खत्म कर दें. आप उसे फौरन यहां आने को कहिए, और जैसे ही, वह यहां आये, उसकी गर्दन कटवा दें. न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी.''

राजा यूनान ने अपनी वजीर की सलाह मानकर, फौरन हकीम को उनके और वजीर के सामने पेश करने के लिए हुक्म जारी कर दिये. दो संतरी फौरन उसके निवास पर पहुंचे, और हकीम को पकड़ कर ले आये. उस बेचारे को कुछ पता न था कि उसके साथ राजा क्या सलूक करने वाला है. वह काफी खुश दिखायी देता था. □

अगले अंक में

कहानी एक रहस्यमयी किताब की...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाही उपन्यास

पांचवी किस्त

□ दास्तोयेव्स्की

रुपहली रातें

मैं अपनी पिछली भावुकताओं की वर्षगांठ मनाने जा रहा हूं उन संवेदनाओं की अनुभूति की वर्षगांठ जिनका कभी अस्तित्व ही नहीं था. और यह वर्षगांठ भी मैं उन्हीं बेवकूफी भरे अवास्तविक सपनों के माध्यम से मनाऊंगा.

ओह नहीं, नहीं!'' नास्तेंका रो पड़ी औ उसकी आंख की कोरों से आंसू टपकने लगे. ''नहीं, ऐसा नहीं होगा. हम इतनी आसानी से जुदा नहीं होंगे. दो संध्याओं की बात ही क्या है.''

''नास्तेंका, ओ नास्तेंका, क्या तुम जानती हो कि अब मैं लंबे अरसे तक अपने से घृणा नहीं करूंगा, तुमने मुझे अपने आपके प्रति संतुष्ट और आस्थावान बना दिया है? क्या तुम जानती हो कि अब मैं अपने को इतना अभिशप्त और अभागा नहीं मानूंगा जितना अभी तक समझता आया हूं. जानती हो, मैं अब अपने को अपराधी और पापी नहीं मानूंगा क्योंकि अभी तक मैंने जैसा जीवन जिया है उसे मैं एक पाप और अपराध ही समझता रहूंगा. तुम इसे अतिशयोक्ति न समझना. नास्तेंका, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं.

''भगवान के लिए ऐसा न सोचना नास्तेंका, क्योंकि कभी-कभी मुझ पर निराशा हावी हो जाती है, इतनी गहन निराशा कि– जब तक वह मुझ पर हावी रहती है, तो मैं सोचने लगता हूं कि अब मैं फिर से एक नयी जिंदगी, एक असली जिंदगी शुरू करने के लायक नहीं रहा, क्योंकि मैंने वास्तविकता को, यथार्थ को ग्रहण करने का माद्दा ही खो दिया है, क्योंकि मैंने अभी तक अपनी आत्मा को बेचा है. मेरी कल्पना में डूबी हुई रातों के बाद भयावह गंभीरता के क्षण भी आते हैं और उस समय भंवर की तरह चक्कर काटते द्रुतवेग से घूमते हुए कोलाहलमय जीवन का शोक मुझे अपने चारों ओर अधिक-स्पष्ट सुनाई देने लगता है. मैं देखता हूं, मुझे सुनाई देता है, मैं महसूस करता हूं कि लोग जी रहे हैं– वास्तविकता का जीवन जी रहे हैं. मैं साफ देखता हूं कि उनका जीवन किसी ऐसे तत्व का बना हुआ नहीं है जो कल्पना या स्वप्न की तरह छिन्न-भिन्न हो जाये. मैं देखता हूं कि उनके जीवन में यौवन का आवेग है. प्रत्येक पल नवीन उल्लसित और विगत पल से भिन्न है, और यहां मेरे पास केवल एक अशक्त कल्पना की विभ्रांति जो अंधियारी, उदास और ऊबाने वाली है, जिसमें सिर्फ एक बदहवासी है और जिसकी छायाकृतियों का मैं दास बना हुआ हूं. मैं बादल में उस प्रत्येक छोटे-से टुकड़े के आगे परास्त और हताश हो जाता हूं जो सूर्य के प्रकाश को रोक लेता है और इस नगर का हर आदमी जो सूर्य की ओर मेरी ही तरह जिजिविषा से देखता है, निराश हो जाता है, उदास और भारी दिल हो जाता है, उदास और भारी दिल हो जाता है, और दुख में वह इसके अलावा हो भी क्या सकता है? और फिर इन कल्पित भ्रांतियों की भी एक सीमा है.

''एक दिन यह तनाव घटने लगता है. अविनश्वर दिखायी देने वाली कल्पना जब लुप्त हो जाती है क्योंकि अब हम वयस्कता की देहरी पर आ चुके हैं और हमारे पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपनों और आदर्शों की चमक धुंधली पड़ गयी है. उनकी खंडित प्रतिमाएं धरती में गिरकर अब धूल चाट रही हैं. लेकिन, चूंकि हम और किसी तरह का जीवन जीने में असमर्थ हैं इसलिए उन्हीं टूटे-फूटे-प्रतिमा खण्डों को जोड़-जोड़ कर फिर वही प्रतिमाएं खड़ी करने लगते हैं. परन्तु इससे भी मन का असंतोष नहीं जाता, क्योंकि वह सब कुछ और ही मांग करने लगा है जो इस सबसे बिल्कुल अलग और अनोखा है. आह, बेचारी स्वपनदर्शी व्यर्थ मैं अपने मृत सपनों की अस्थियां संजोने का प्रयप्न करता है कि शायद किसी परमाणु में थोड़ा-सा भी स्पंदन दिखे तो उसे वह पुनर्जीवित कर सके और अपने दृश्य पर जमी हुई हिमशीतल निराशा को इस पुनर्जीवित लौ से पिघलाकर उन सारी भ्रांतियों को वापस ला सके जिनके वह पहले असीम प्यार करता था, जिनसे उसका रक्त एक अग्निधारा-सा उबलने लगता था, जिन्होंने उसके आंसुओं के मोती चुराकर इतना महान छल किया था.

"जानती हो नास्तेंका मैंने क्या निश्चय किया है? क्या तुम्हें मालूम है कि मैं अपनी पिछली भावुकताओं की वर्षगांठ मनाने जा रहा हूं. उन संवेदनाओं की अनुभूति की वर्षगांठ जिनका कभी अस्तित्व ही नहीं था. और यह वर्षगांठ भी मैं उन्हीं बेवकूफी भरे अवास्तविक सपनों के माध्यम से मनाऊंगा. ऐसा इसलिए कि ये बेवकूफी भरे सपने अब नहीं हैं, और मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो उन्हें फिर से लौटाकर ला सके. तुम जानती हो कि सपनों का भी एक जीवन होता है जिसे जिया जा सकता है. जानती हो तुम! मैं अब उन पुरानी जगहों पर बार-बार जाया करता हूं जहां कभी किसी दिन मैंने अपनी इस स्वप्नीली प्रसन्नता का क्षण जिया था. मैं अपने उस अतीत से फिर जुड़ना चाहता हूं और इसी कोशिश में अक्सर सेंट पीटर्सबर्ग की गलियों और सड़कों और कूचों में किसी प्रेतात्मा की तरह चक्कर लगाया करता हूं.

"आह! मेरी काल-जल में डूबी हुई यादगारें! इस समय मुझे याद आ रहा है कि ठीक एक साल पहले इसी समय मैं इसी रास्ते पर उसी उदासी और अकेलेपन का भार लिये घूम रहा था, जिसका मैं आज भी शिकार हूं. और मुझे याद आता है—मेरे सपने तब भी उतने ही उदास थे, और हालांकि उस समय मेरी मनोदशा आज से बेहतर न थी फिर भी लगता है कि जीवन तब कहीं सरल और शांत था. उस समय मुझे विकल करने वाली यह अंधकार की अनुभूति तो न थी. तब उदासी, दर्द और निराशा की ये चुभी हुई फासें तो न थीं जो आज बार-बार गड़कर मुझे दिन-रात चैन नहीं लेने देतीं. मैं अपने आप से प्रश्न करने लगता हूं—कहां गये तुम्हारे वे सपने? सिर हिलाकर मैं अपने आपको प्रत्युत्तर देता हूं—आह, ये वर्षों के साये कितने जल्दी-जल्दी ढलते जाते हैं? मैं फिर प्रश्न करता हूं—तुमने अपने जीवन का क्या किया? कहां दफना दिया उसके श्रेष्ठतम वर्षों को? क्या वास्तव में तुमने कोई जीवन जिया था? जरा अपनी तरफ देखकर जवाब दो कि तुम्हारें संसार पर हिमशीतल जड़ता की यह कैसी पर्त जमती जा रही है.

"और उत्तर में कोई मेरे अंदर से पुकार कर कहता है कि ये वर्ष इसी तरह गुजरते चले जायेंगे और साथ ही बढ़ती जायेगी उदास अकेलेपन की यह अनुभूति, और फिर लाठी टेकता हुआ श्लथ, जर्जर और कांपता हुआ बुढ़ापा आयेगा जिसके बाद केवल एक अंधकार है और बस बेचारी. तब तुम्हारे सपनों का प्रकाश क्षीण हो जायेगा और पतझर की पीली पत्तियों की तरह वे एक-एक टूट कर गिरने लगेंगे. ओह नास्तेंका इस तरह एकाकी, बिल्कुल अकेले बन रहना क्या दुख की बात नहीं है—जहां पश्चात्ताप करने के लिए भी कुछ न बाकी रहे—कुछ नहीं, कुछ भी नहीं—क्योंकि जो कुछ मैंने खोया है वह बेवकूफी भरी मात्र एक अवास्तविक कल्पना है, केवल कुछ सपने हैं."

"बस करो, मुझे और दुखी न बनाओ," नास्तेंका ने अपनी आंख की कोर से ढुलकता हुआ एक आंसू पोंछकर कहा. "अब यह सब समाप्त हो चुका. अब हम दोनों साथ-साथ रहेंगे. चाहे कुछ भी हो, हम कुछ भी हो, हम लोग अलग न होंगे. मैं एक सीधी-सादी मामूली लड़की हूं. हालांकि मेरी नानी ने मेरे लिए एक अध्यापक रख छोड़ा था फिर भी ज्यादा मैं पढ़-लिख न सकी, मैं तुम्हें पूरी तरह समझ गयी हूं. क्योंकि तुमने जो कुछ मुझे अभी बताया है वह मेरे साथ भी हुआ है जब मेरी नानी सेफ्टीपिन से बांधकर मुझे अपने पास बिठाये रहती थीं. हां, यह बात जरूर है कि मैं इतनी अच्छी तरह अपने को व्यक्त नहीं कर सकती क्योंकि मैं इतना पढ़ा-लिखा नहीं है", उसने लजाते हुए कहा.

मेरे वर्णन की भावुकता और दर्दीली आवाज ने उसके मन में मेरे लिए समादर पैदा कर दिया था." लेकिन में बहुत खुश हूं कि तुमने अपना दृश्य मेरे सामने खोलकर रख दिया. मैं तुम्हें जान गयी हूं. मैं तुम्हें अच्छी तरह समझ गयी हूं. और जानते हो, मैं भी तुमसे अपनी व्यथा-कथा कहना चाहती हूं, बिना कुछ छिपाये, और इसके बदले में कथा समाप्त हो जाने पर तुम मुझे अपनी सलाह देना. तुम बहुत बुद्धिमान हो. बोला, मेरी कहानी सुनकर तुम सलाह दोगे न?"

"आह नास्तेंका !" मैंने उत्तर दिया. "मैंने कभी किसी को सलाह नहीं दी, और न मैं उतना बुद्धिमान ही हूं जितना तुम मुझे समझती हो. लेकिन अगर हम इसी तरह एक दूसरे को अपना राजदार बना लें तो यह सबसे अच्छी बात होगी. अच्छा मेरी सुन्दर नास्तेंका, तुम क्या जानना जाहतीं हो? मुझसे साफ-साफ कहो. मैं इस समय इतना हर्षित और आनन्दित हूं, इतना सशक्त और विवेकवान हूं कि उत्तर देने में मुझे जरा भी देर न लगेगी."

"नहीं, नहीं." नास्तेंका ने हंसते हुए बाधा डालकर कहा, "मैं किसी विद्धान की सलाह नहीं चाहती, मुझे तो एक भाई जैसी गंभीर सलाह की जरूरत है, ठीक उसी तरह की जैसे कि यदि तुम आजीवन मुझे प्यार करते होते, तो अवश्य देते."

"बिल्कुल ठीक, बिल्कुल ठीक नास्तेंका." मैंने उत्तेजित होकर लगभग चीखते हुए कहा. "अगर मैं पिछले बीस साल से भी तुम्हें इतना प्यार न करता आ रहा होता, तो भी तुम्हें इतना प्यार न कर पाता, जितना इस समय तुम्हें प्रति मैं स्नेह से भर उठा हूं."

"तब फिर लाओ अपना हाथ!" नास्तेंका ने कहा.

"ये रहा!" मैं उसके हाथों में अपना हाथ दे दिया.

"अच्छा तो अब मेरी कहानी शुरू होती है." ▫

अगले अंक में

नास्तेंका की आपबीती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांधे पर सलीब और विरासत का सुख

अंग्रेजी की चिकनिया (ग्लौसी) मासिक पत्रिका 'सोसायटी' के अक्तूबर अंक में मुखपृष्ठ पर 'उन्हें मुंशी प्रेमचंद का पुत्र कहलाने से नफरत क्यों है' शीर्षक पढ़कर चौंक उठना स्वाभाविक था. अंदर के पृष्ठों पर अमृत राय से भेंटवार्ता पर आधारित एक दिलचस्प लेख पढ़ने को मिला. मानना पड़ा कि साक्षात्कार लेने और लिखने के मामले में अंग्रेजी पत्रकारिता हमसे कोसों आगे हैं. इस छोटे से लेख में कई नयी जानकारियां तो सामने आती ही हैं, अमृत राय की सोच का एक अचर्चित पहलू भी सामने आता है. पता लगता है कि अमृत राय लगभग तीन एकड़ भूमि पर बने खूबसूरत बंगले 'धूप छांव' में ठाठ से रहते हैं. उनकी पत्नी सुधाजी प्रख्यात लेखिका सुभद्रा कुमारी चौहान की पुत्री हैं. पुत्र आलोक ने अंग्रेजी साहित्य में पी-एच.डी. विदेशी विश्वविद्यालय से की है और उनकी रुचि आजकल कंप्यूटर में है. बंगले में 1951 मॉडल की हिंदुस्तान कार और नयी मारुति अगल बगल खड़ी हैं, वगैरह.

अमृत राय चूंकि स्वयं भी जाने-माने लेखक हैं इसलिए प्रेमचंद का पुत्र होना उनके लिए लिखित रूप से सुविधाजनक होने के साथ-साथ अपनी पहचान अलग से बनाने के मामले में दुविधाजनक भी रहा होगा. सोसायटी की संवाददाता से बातचीत करते हुए इस संदर्भ में उन्होंने लगभग कटु होकर कह डाला है, 'यह एक दुखती रग बन गया है. अपने (महान) पिता की बरगद छांव से बाहर आने में मुझे लगभग एक जीवनकाल लग गया. मेरा अपना कृतित्व (कम से कम) परिभाषा की दृष्टि से उनके कृतित्व से कम नहीं.' अमृत जी को शिकायत है कि पत्रकार अक्सर मुंशी प्रेमचंद के बारे में बात करने के लिए उनके पास आते हैं. महान पिता का पुत्र होने का यह खामियाजा भुगतना पड़ा है कि उनके अपने कृतित्व का मूल्यांकन समुचित रूप से नहीं हो सका.

'यह सलीब मुझे जिंदगी भर ढोना पड़ा है.' कहते हैं अमृतराय. उनके उच्चस्तरीय रहन-सहन और सुविधापूर्ण जीवन के बारे में प्रश्नकर्त्ता की सवालिया निगाह उठने पर उनकी प्रतिक्रिया है कि, 'प्रेमचंद का विश्वास था कि यदि सुख-सुविधाएं अपने आप बिना प्रयास किये जीवन में आयें तो हर्ज क्या है.' सचमुच प्रेमचंद की धरोहर अनमोल है. उन्होंने हमारे साहित्य को समृद्ध किया तो उनका परिवार समृद्धि में क्यों न जिये. सच्चाई तो यह है कि प्रेमचंद की परंपरा की दुहाई देने वाले ज्यादातर कथाकारों के मसीहा वैभवपूर्ण जीवन जीते-जीते जब मानसिक रूप से ऊब जाते हैं तो गरीब किसानों और मजदूरों को याद करने लगते हैं जिसे यकीन न आता हो खुद जाकर अपनी आंखों देख ले.

हिमाकत-कथकंडे-ब्लैकमेल उर्फ साहित्यिक पत्रकारिता

साहित्य और पत्रकारिता के अंतर्संबंधों के संदर्भ में आज की साहित्यिक पत्रकारिता की खबर लेना जरूरी है. समकालीन साहित्यिक पत्रकारिता की हालत पर विचार प्रगट करनेवालों में मैनेजर पांडेय, अशोक वाजपेई, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विष्णु नागर और शैलेश मटियानी जैसे नाम हैं. इनके विचारों में भिन्नता है परंतु सहमति इस बात पर कि आज की साहित्यिक पत्रकारिता पाठकोन्मुख नहीं है. अशोक बाजपेई का कहना है कि, "पहले के मुकाबले आज छोटी पत्रिकाओं की भरमार-सी है. उनमें से अनेक अपनी मित्र पत्रिकाओं की सूची भी छापती रहती हैं, हालांकि शत्रुओं का नामोल्लेख पता नहीं किस संकोच के कारण नहीं करती हैं. शायद इसी छोटे से लगभग अलक्षित जाने वाले तथ्य में आज की साहित्यिक पत्रकारिता का सबसे आपत्तिजनक पक्ष छिपा है. उसने साहित्य को, पत्रिकाओं और लेखकों को मित्रों और शत्रुओं में बांटने की हिमाकत की है और जब तब षड्यंत्र भी."

मैनेजेर पांडेय कौन कम दुखी हैं, "कुछ लोग साहित्य की दुनिया में नेता बनने या रचनात्मक स्तर पर चुक जाने के बावजूद पत्रिकाओं के संपादन का काम संभालते हैं. ऐसे लोग प्रायः साहित्यिक पत्रकारिता में तरह-तरह के हथकंडे अपनाते हैं. कभी विरोधी लेखकों के खिलाफ पत्रिका में छद्म नाम से पत्र छपवाते हैं तो कभी पत्रों को सेंसर भी करते हैं. दिल्ली के एकाध संपादकों के बारे में यह भी खबर है कि वे दूसरे लेखकों के समर्थन और विरोध में पत्र लिखवाकर ब्लैकमेल भी करते हैं.

(साभार : रविवार 16.10.88)

हम हशमत और समीक्षा

हिंदी कथा साहित्य की जड़ता से संत्रस्त पाठकों के लिए भीष्म साहनी के नये उपन्यास 'मैया दास की माड़ी' पर लिखी गयी कृष्णा सोबती की समीक्षा एक अच्छी खबर हो सकती है. उन्हें इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए आमंत्रित किया 'इंडिया टुडे' ने और कृष्णा जी ने भीष्म जी का जितना लिहाज किया जा सकता था, करते हुए जिस चतुराई और पैनेपन से उपन्यास की सीमाओं को उजागर किया है, वह हिंदी गद्य का एक बेहतरीन नमूना है—'खोयी हुई अस्मिता के लुटे-पुटे चिन्ह टट्टू और उन पर सवारी करते रखैलों के बेटे क्या सचमुच इतिहास की नियति के बाहर थे? पराजय की इतनी गहरी छटपटाहट में से सिर झुका देने के पहले स्वाभाविक साहसिकता की ओर क्यों न देख लिया गया? क्या तात्कालिक अनुभव के आतंक ने एक बुझती जीवन शैली के प्रामाणिक परिवेशों तक को नकार दिया.'

(इंडिया टुडे : 31.10.88) □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजादी के बाद की हिंदी कहानी

राजकुमार सैनी

महेश दर्पण द्वारा संपादित 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-कोश' कुछेक सीमाओं के बावजूद, एक महत्वपूर्ण संकलन है क्योंकि इसमें आजादी के बाद की डेढ़ सौ से भी अधिक कहानियों को एक गुलदस्ते के रूप में पेश किया गया है. पाठक इस एक ग्रंथ को पढ़ कर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के परिदृश्य को आंख-भर देख सकता है और अपने लिए उसकी एक पहचान बना सकता है. हालांकि यह बात खटकती है कि कुछ पुराने और नये कहानीकारों की कहानियां इसमें शामिल होने से रह गयीं और यह भी कि इतने वृहदाकार (2000 पृष्ठों से भी अधिक) ग्रंथ में संपादक महेश दर्पण को सिर्फ 40 पृष्ठ ही मिले. फलस्वरूप संपादक ने जो संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत किया वह पूरे चार दशकों की मुसलसल झांकी नहीं हो पाया. पहले दो-तीन पृष्ठ हिंदी कहानी की पृष्ठभूमि को मिले और एक-एक दशक के हिस्से दस-दस सफे भी न आए. शायद अव्याप्ति दोष के कारण ही ऐसा हुआ कि संपादकीय टिप्पणियों में अंतर्विरोध और विसंगतियां भी उभर आयीं. तथापि इस संकलन में जो कुछ समाकलित हो सका, जिस रूप में यह हमारे सामने है, कम महत्वपूर्ण नहीं है.

हिंदी कहानी विचार-मूल्य की दृष्टि से तीन तरह की कहानी है. एक : यथार्थवादी संकल्प की कहानी, दो : यथार्थवाद विरोधी विकल्प की कहानी और तीन : उक्त दोनों के बीच की कहानी. इस संकलन की यह विशेषता रेखांकित की जा सकती है कि इसमें तीनों तरह की अधिकांश कहानियां संकलित हो गई हैं, और इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह संकलन किसी भी दृष्टि से एकांगिता का शिकार नहीं हो पाया. आजादी के बाद लिखी गयी लगभग सभी तरह की महत्वपूर्ण कहानियां इस संकलन में शामिल की गयी हैं. आजादी के बाद की कहानी अपनी अंतर्वस्तु में **मोहभंग की कहानी है**. इस दृष्टि से वयोवृद्ध कथाकार विष्णु प्रभाकर ने 1947 में ही (आजादी के चंद महीनों बाद) एक कहानी 'सुराज' लिखी थी जो मोहभंग की प्रक्रिया के लिए एक 'ट्रेंड सैटर' कहानी कही जा सकती है. झगड़ू मिश्र की उल्लास भरी आशा के दुःखांत हताशा में विलीन हो जाने के सामाजिक कारणों को भी इस कहानी में इंगित किया गया है. यद्यपि कहानी में कलात्मक तराश की वह तुर्शी नहीं है जो कालांतर में आयी तथापि आजादी के बाद तत्काल प्रगट होने वाली मोहभंग की प्रक्रिया को उद्घाटित करने वाली इस कहानी को ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में देखा जा सकता है. इस दृष्टि से संपादक ने श्री विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है' जैसी बार-बार चर्चित कहानी को न लेकर, इस कहानी को लिया. लीक से हट कर चयन की यह मिसाल काबिले-तारीफ ही कही जाएगी. इसी प्रकार हंस राज 'रहबर' की 'गडोलना' कहानी (जो बराबर चर्चा का विषय बनी) को न लेकर महेश दर्पण ने 'रहबर' की 'वर्षगांठ' कहानी का चुनाव किया. रहबर जी की 'वर्षगांठ' कहानी फैंटेसी की शैली में सन् सैंतालिस के बाद की भारतीय जनता को (यानी आजादी के बाद की पीढ़ी को) यह ऐतिहासिक चेतावनी देती है कि भविष्य का निर्माण अपने इतिहास को भुला कर नहीं किया जा सकता.

यशपाल की कहानी 'उत्तराधिकारी' में कुशली नामक एक निम्न मध्यवर्गीय नारी संतान की आकांक्षा से उद्वेलित होती हुई अपने अपंग पति को छोड़ कर एक स्वस्थ युवक प्रेमी के साथ चली जाती है लेकिन जैसे न्याय-व्यवस्था इस प्रेम-प्रसंग की उपज 'संतान' को उसके पति के हवाले कर देती है तो कुशली भी गाय की तरह अपने बच्चे से बंधी चली आती है और पति उसे पुनः स्वीकार कर लेता है. यशपाल की कहानी यथार्थवादी कला के साथ यह संवेदनात्मक उद्देश्य संप्रेषित करती है कि नारीत्व और मातृत्व के द्वंद्व में अंततः मातृत्व निर्णायक सिद्ध होता है. अमृतराय की कहानी 'हजार मन राख और चिंगारी' में सरस, सहज और रोचक शैली में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि निम्नवर्गीय परिवारों के बच्चों के कोमल मन को गरचे यह व्यवस्था हजार मन राख से ढक रही है तथापि उन बच्चों के मन में सुलगती चिंगारी उस राख को चीर कर ऊपर आ रही है.

इसी संदर्भ में द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की 'बच्चे' शीर्षक लंबी कहानी भी एक महत्वपूर्ण रचना है. विधा की दृष्टि से निर्गुण जी की यह कहानी लघु उपन्यास और लंबी कहानी के बीच की संरचना है.

श्री अमृत लाल नागर की कहानी 'वंदिनी' में आदर्शवादी पिता की छत्रछाया में पली कुंती को अपने पति के हाथों, घर में बंदिनी हो कर उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है. दूसरी ओर एक आधुनिका किंतु मूल्यहंता नारी कामिनी अपने यौवन और प्रभुत्व के मद में कुंती के पति को अपने इशारों पर नचाती है. कामिनी अपनी बच्ची को भी प्यार नहीं देती और उसकी बच्ची कुंती के व्यवहार में मातृत्व की गंध पाकर उसे प्यार करने लगती है. कामिनी को कुंती का यह मातृत्व भरा प्यार भी आपत्तिजनक लगता है जबकि कुंती के पति के प्रति अपने कदाचार को वह आपत्तिजनक नहीं मानती. कहानी का अंत परंपरापरायण कुंती के मोहभंग से होता है. कुंती आदर्शवादी चोला उतार फेंकती है और अपने पति तथा कामिनी के कदाचारों और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार हो जाती है. कामिनी की बेटी को मां का प्यार देने के अपने नैतिक और मानवीय अधिकार की रक्षा के लिये भी वह अपने पति और कामिनी को चुनौती देती है.

जैनेंद्र कुमार और अज्ञेय की चर्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों (क्रमशः 'पाजेब' और 'रोज') के स्थान पर क्रमशः 'इनाम' और 'शरणदाता' को संकलन में शामिल किया गया है. कारण यह है कि येदोनों कहानियां आजादी के बाद लिखी गयी हैं.

अज्ञेय की 'शरणदाता', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है' और महीप सिंह की 'पानी और पुल' ये तीनों कहानियां आजादी के समय देश के सीने पर हो गए उस सांप्रदायिक जख्म (जो अब नासूर होता जा रहा है) के बारे में सार्थक टिप्पणियां करने वाली उल्लेखनीय कहानियां हैं.

संकलन में कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' कहानी ली गई. बहुचर्चित कहानी 'मांस का दरिया' को संपादक ने तरजीह नहीं दी और इस प्रकार महेश दर्पण ने इस बात का सबूत दिया कि वे कहानियों को, हिंदी कहानी की परंपरा और विकास की कड़ियों के रूप में ही देखना पसंद करते हैं. प्रेमचंद की 'कफन' कहानी की ही अगली कड़ी के रूप में कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' को देखा जा सकता है, जो मानव के संवेदनशून्य और अमानवीकृत होते जाने की ट्रेजेडी को और स्पष्ट कर देती है. इस क्रम में नए कहानीकार की एक कहानी 'कफन-84' (अरुण प्रकाश) का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा जो इस संकलन में संकलित होने से रह गयी.

राम नारायण शुक्ल की 'फिर' कहानी में बिना किसी बड़बोलेपन के मौजूदा समाज-कल्याण के उस भयावह शिकंजे की ओर उंगली उठाकर इशारा किया गया है जिसकी गिरफ्त में एक बार फंसने पर मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी जरायम पेशा हो जाने के लिए अभिशप्त हो जाता है. जीविकोपार्जन के तकाजे, बेरोजगारी, भुखमरी और बीमार कर देने वाली गरीबी से त्रस्त होकर, न चाहते हुए भी, पिता अपने बेटे को उसी अभिशप्त राह पर चलाने के लिए विवश हो जाता है जिस पर कि वह चलते-चलते बर्बाद हो चुका है. कला संबंधी कंटेंट और फार्म दोनों ही दृष्टियों से यह एक महत्वपूर्ण कहानी है.

इब्राहीम शरीफ की कहानी 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' भी वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर एक उल्लेखनीय कहानी है. सन सैंतालीस के बाद भारतीय किसान के कंगाल होते-जाने फिर मजदूरी के लिए दर-दर भटकने और पूरे परिवार के, ज़मीन के आखिरी टुकड़े से भी हाथ धो बैठने की दर्दनाक गाथा को गहरी शिद्दत और पूरी संजीदगी के साथ कलात्मक ढंग से चित्रित कर देने वाली यह एक अद्भुत कहानी है.

शेखर जोशी की कहानी 'बदबू' इस संकलन में शामिल है. यह कहानी निम्न मध्यवर्गीय मानसिकता के मोहभंग की कहानी है. जब निम्न मध्यवर्ग का बेकार नौजवान मजदूर होने के लिए विवश हो जाता है तो शुरू-शुरू में उसे अपने हाथों से बदबू आती है. लेकिन धीरे-धीरे यह बदबू कम होती जाती है. बाद में हाथों से बदबू का गायब हो जाना एक दहशत भरा अनुभव है लेकिन मध्यवर्गीय मानसिकता के प्रति यह मोहभंग भी है.

अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक', मन्नू भंडारी की 'त्रिशंकु', राजेंद्र यादव की 'जहां लक्ष्मी कैद है' बेहद चर्चित कहानियां हैं और अपने अपने ढंग से सामाजिक तथा पारिवारिक संबंधों और स्थितियों से मोहभंग कर देने वाली रचनाएं हैं और शायद इसीलिए इस संकलन में शामिल की गई हैं. भैरव प्रसाद गुप्त की 'हनुमान' कहानी व्यवस्था के प्रति सर्वहारा के मोहभंग को बड़ी शिद्दत के साथ चित्रित कर देती है और यह भी सुझाव देती है कि 'हनुमान' अब राम भक्त नहीं रहे, अपने हित-अहित को पहचानने लगे हैं. यह पहचान निष्क्रिय अहसास नहीं है, वह सक्रिय और क्रुद्ध कार्य में भी परिणत होने लगी है. इसी परंपरा में **इसराइल की 'दर्द का रिश्ता'** एक अन्य महत्वपूर्ण कहानी है जो इस तथ्य को रेखांकित कर देती है कि दर्द के रिश्ते खून पर आधारित रिश्तों का अतिक्रमण कर जाते हैं. इस क्रम में मुद्राराक्षस की कहानी 'फरार मल्लावां माई राजा से बदला लेगी' बरबस ध्यान आकर्षित करती है. सर्वहारा का चरित्र कितना गहन, गंभीर और समर्पित हो सकता है, इसका एक उदाहरण कहानी का प्रमुख पात्र रामेश्वर है. कर्मचारियों की एक यूनियन का प्रतिनिधि रामेश्वर अपने साथियों के साथ मौनभाव से कार्य करते हुए, प्रबंधकों के इशारे पर किए जाने वाले यातना-चक्र का शिकार होकर खत्म हो जाता है, लेकिन पाठकों के हृदय में एक सक्रिय सहानुभूति और बेचैनी का संचार करता है, कहानी की यही सार्थकता है.

इसी संदर्भ में चित्रा मुद्गल की कहानी 'मामला अभी आगे बढ़ेगा' कलात्मक किंतु सहज और सर्जनात्मक अंदाज में एक चेतावनी देती है कि मोट्या जैसे घरेलू नौकर-चाकर अब दब्बू नहीं बने रहेंगे, अपने लिए मानवोचित व्यवहार के लिए, अब वे भी, उतावले हो रहे हैं. यह ठीक है कि निर्णायक समय अभी नहीं आया है लेकिन उनका रोष-आक्रोश भी उफनने लगा है. मामला अब इसी स्थिति तक रुका नहीं रहेगा, मामला अब आगे बढ़ेगा. कहानी का अंत मार्मिक, सांकेतिक और गहरे अर्थ का व्यंजक है.

गरीबी की रेखा से निचले स्तर का जीवन जीने वाली जनता के बारे में लिखी प्रेमचंद की 'ईदगाह', 'पूस की रात' और 'सद्गति' जैसी कई कहानियों के अनुक्रम में अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक' कहानी का उल्लेख किया जा चुका है. इसी श्रृंखला में जगदंबा प्रसाद दीक्षित की कहानी 'मुहब्बत' ध्यान खींचती है. एक फुटपाथ पर भटकने वाली अधेड़ औरत और एक बेरोजगार युवक के बीच उमड़ उठे इंसानी लगाव को महानगर की फुटपाथी जबान में बयान करने वाली यह कहानी किस्सागोई की एक नई पेशकश है.

अवध नारायण मुद्गल की 'कबंध' आधुनिक ढंग के एक दब्बू चरित्र की दिनचर्या को खुलासा करती है. कहानी का शीर्षक 'कबंध' एक मौजूदा यथार्थ को मिथक के बहाने गहरी व्यंजना के साथ उद्घाटित कर देता है. समकालीन समाज में विद्रोही चरित्र हैं तो दब्बू चरित्र भी हैं. यह दब्बूपन मानव से उसकी पहचान ही छीन लेता है.

मध्यवित्त पारिवारिक परिदृश्यों को उभारने वाली कहानियों में ममता कालिया की कहानी 'आपकी छोटी लड़की' एक उल्लेखनीय कहानी है. बड़ी बेटी को 'लायक' समझकर सिर चढ़ाया जा रहा है और छोटी बेटी से कमर-तोड़ काम लिया जा रहा है. सुबह से शाम तक बेचारी टुनिया किसी न किसी काम में फंसी रहती है. तिसपर भी बेवकूफ और बुद्धू कहलाती है. बड़ी लड़की चालाक है, बुद्धू बनाना जानती है, सारे घर को अपने इशारे पर नचाती है. शोषण और प्रतियोगिता से ग्रस्त समाज में, आप परिवार को बचा कर नहीं रख सकते. जो जहर घर के बाहर की हवा में घुला है, घर के भीतर की हवा उससे अछूती रहे, यह कैसे हो सकता है? इसी संदर्भ में लक्ष्मीधर मालवीय की 'पिता मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा कर देना!' कहानी भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करेगी. चले-आते पारिवारिक संबंधों से मोहभंग, पूंजी पर आधारित समाज की परिवार-व्यवस्था में, एक अनिवार्य नियति का रूप ले लेता है

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सर्वत्र पारिवारिक संबंध निस्सार हो चुके हैं. इसके अपवाद भी हो सकते हैं. शैलेश मटियानी की कहानी 'अर्द्धांगिनी' ऐसे ही एक अपवाद का परिदृश्य उपस्थित करती है. सूबेदार नैना सिंह एक महीने की छुट्टी पर अमृतसर से उत्तर प्रदेश के पहाड़ की ओर लौटा है. महीना भर घर में गुजार कर वह फिर अमृतसर के लिए प्रस्थान करता है. देखने में कहानी बस इतनी-सी है. लेकिन शैलेश मटियानी ने अपनी अद्भुत वर्णन क्षमता, देशज संवेदना (नेटिव सेंसिबिलिटी) के सर्जनात्मक इस्तेमाल द्वारा इसे, जीवन-रस से सराबोर कर दिया है. 'अर्द्धांगिनी' कहानी एक प्रेमपूरित गार्हस्थ्य का परिदृश्य उभारती है लेकिन पूरी कठिनाइयों, परेशानियों और अभावों के अहसास के साथ. कोई रूमानी चित्रण यहां नहीं है. यथार्थपरक प्रेम और प्रेमपरक यथार्थ का जीता जागता हाड़-मांस वाला परिवेश यहां प्रतिबिंबित है. कहानी की भाषा कुछ अटपटी लग सकती है तथापि वह किताबी नहीं है और बोलचाल की प्रवाहपूर्ण शैली का मजा देती है

पारिवारिक परिदृश्यों को उभारते हुए मानवीय संबंधों पर टिप्पणी करने वाली कहानियों में रमाकांत की **'जिंदगी भर का झूठ'** कहानी मनुष्य के दोहरे मानदंडों पर आधारित जीवन, चिंतन और कर्म की विसंगतियों की ओर इशारा करती है रमाकांत पात्रों को व्यंग्य का विषय बनाते समय अपनी मूक किंतु अर्थ व्यंजक शैली में उनके समाजार्थिक अभावों को भी ध्वनित करते हैं और इस सारी प्रक्रिया में मनुष्य के प्रति अपनी करुणा का परिचय दे जाते हैं. **धर्मेंद्र गुप्त की 'स्थिति'** कहानी में एक सत्रह वर्षीय लड़की अपने गैर-जिम्मेदार शराबी पिता और लगातार झगड़ने के लिए तत्पर माता के संवेदन शून्य व्यवहार को झेलती है. ये दोनों कहानियां निम्न-मध्य-वित्त के परिवारों में व्याप्त विभीषिकाओं की झलक दे जाती हैं. इन पारिवारिक विभीषिकाओं का कारण आर्थिक अभाव, चरित्रगत विसंगतियां और जीवन के बढ़ते हुए तकाजे होते हैं और इस यातना-चक्र का शिकार या तो मासूम बच्चे होते हैं या फिर जवान होती हुई लड़कियां और 'घरेलू' पत्नियां होती हैं.

यादवेंद्र शर्मा चंद्र की कहानी 'चकवे-चकवी की बात' में कहानीकार पुरानी, परंपरागत किंतु रोचक शैली अपनाता है और इस सामाजिक निष्कर्ष को रेखांकित करता है कि मौजूदा पुरुष-प्रधान समाज में पुरुष अपने द्वारा नारी के प्रति किए गए स्वेच्छाचारी आचरण पर विश्वासघात को तो अपनी स्वतंत्रता के मूल्य के रूप में महिमामंडित करता है लेकिन जब प्रतिकार के रूप में नारी उसके विश्वास को ठेस पहुंचाती है तो वह 'त्राहि! त्राहि!!' कर उठता है.

ज्ञानरंजन की 'बहिर्गमन', काशीनाथ सिंह की 'अपना रास्ता लो बाबा' और रमेश उपाध्याय की 'पानी की लकीर' जैसी कहानियां भी विशिष्ट कलात्मक कथा-प्रयोगों के रूप में पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगी. ज्ञानरंजन की 'बहिर्गमन' एक बहुचर्चित कहानी है जो अपनी जमीन से नाता तोड़ कर 'महानगर' और 'विदेश-नगर' की ओर ललचाई दृष्टि से दौड़ने और सुख-सुविधा बटोरने वाली मानसिकता और यश-लोलुप बुद्धिजीविता को सर्जनात्मक भाषा और कलात्मक उन्मेष के साथ दिगंबर कर देती है.

मणिका मोहिनी की 'ढाई आखर प्रेम का' कहानी में दो पति-विहीन महिलाओं के साहचर्य की अंतरंगता को एक निहित उद्देश्य के साथ चित्रित किया गया है. एक नारी है जो पूरी स्वाधीनता के साथ फ्लर्टिंग करने को ही 'जीने का आनंद' मानती है और दूसरी नारी वह है जो पति, बच्चों और भरे पूरे घर के लिए तरसती हुई अपना एकांत और अध्ययन व लेखन के हवाले कर देती है.

समकालीन चर्चित कहानीकारों में पंकज बिष्ट, संजीव, उदय प्रकाश और ब्रजेश्वर मदान की कहानियों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है. पंकज बिष्ट की कहानी 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' एक प्रयोगधर्मी और फैंटेसीपरक कहानी है जो उपभोक्ता संस्कृति की चपेट में आ फंसे एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार के 'गम की कहानी' को 'मजे ले ले कर' कहती है. उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन' यद्यपि प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' और भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' की ही परपरा की याद दिलाती है तथापि यह कहानी अपने निर्वाह और व्यवहार (ट्रीटमेंट) में इतनी अति-कारुणिक (ओवर-पैथेटिक) हो गई है कि अति नाटकीय प्रयोग बन कर रह गई है. संजीव की कहानी 'ट्रैफिक जाम' मौजूदा व्यवस्था में आ गए गतिरोध पर व्यंग्य तो करती है लेकिन ऐसा करते-करते कहानी ही एक तरह के कथापरक गतिरोध का शिकार हो गयी है.

सुरेंद्र अरोड़ा की कहानी 'सर सुरेंद्र बहादुर सिंह आज जरूर जीतेगा' में एक निम्न मध्यवर्गीय युवक की जुआ खेलने की लत का मनोवैज्ञानिक किंतु सहानुभूति-परक चित्रण है.

कहानीकोश में नए कहानीकार हरि सुमन बिष्ट की 'मजदूरी' कहानी हरिजन-दाह जैसी भयावह और अमानुषिक घटनाओं की ओर उंगली उठाती है. उच्च वर्ण के सामंतों द्वारा हरिजनों के घर जलाने के बाद शासन-व्यवस्था द्वारा मुआवजा देने संबंधी घोषणाओं के अमली रूपों की विडंबनाओं पर भी यह कहानी अपना फोकस डालती है.

इस प्रकार, कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि महेश दर्पण ने इस कहानी कोश के संपादन में तथा कहानियों के चयन में एक उदार, व्यापक और विविधात्मक सामाजिक दृष्टि का परिचय दिया है. अधिकांश महत्वपूर्ण और चर्चित कहानियां इस संकलन में समाकलित हो गई हैं. फिर भी मोहन राकेश, हरि शंकर परसाई, धर्मवीर भारती, शिव नारायण श्रीवास्तव, मार्कंडेय, कामता नाथ, राजी सेठ, मधुकर सिंह, हरिवंश कश्यप, सच्चिदानंद धूमकेतु, अरुण प्रकाश, रामेश्वर उपाध्याय, मिथिलेश्वर, विजयकांत, शेखर, हरिहर प्रसाद और स्वयं महेश दर्पण की कहानियां भी शामिल हो पातीं तो यह परियोजना और अधिक विस्तृत हो व्यापक हो जाती. तथापि कितना भी समेटो, कुछ न कुछ फिर भी बच रहता है! □

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-कोश
संपादक : महेश दर्पण
प्रकाशक : सचिन प्रकाशन, 7/34 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
मूल्य : दोनों खंड (2400 पृष्ठ) : छः सौ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(डा. नामवर सिंह की बातचीत : अंतिम किस्त)

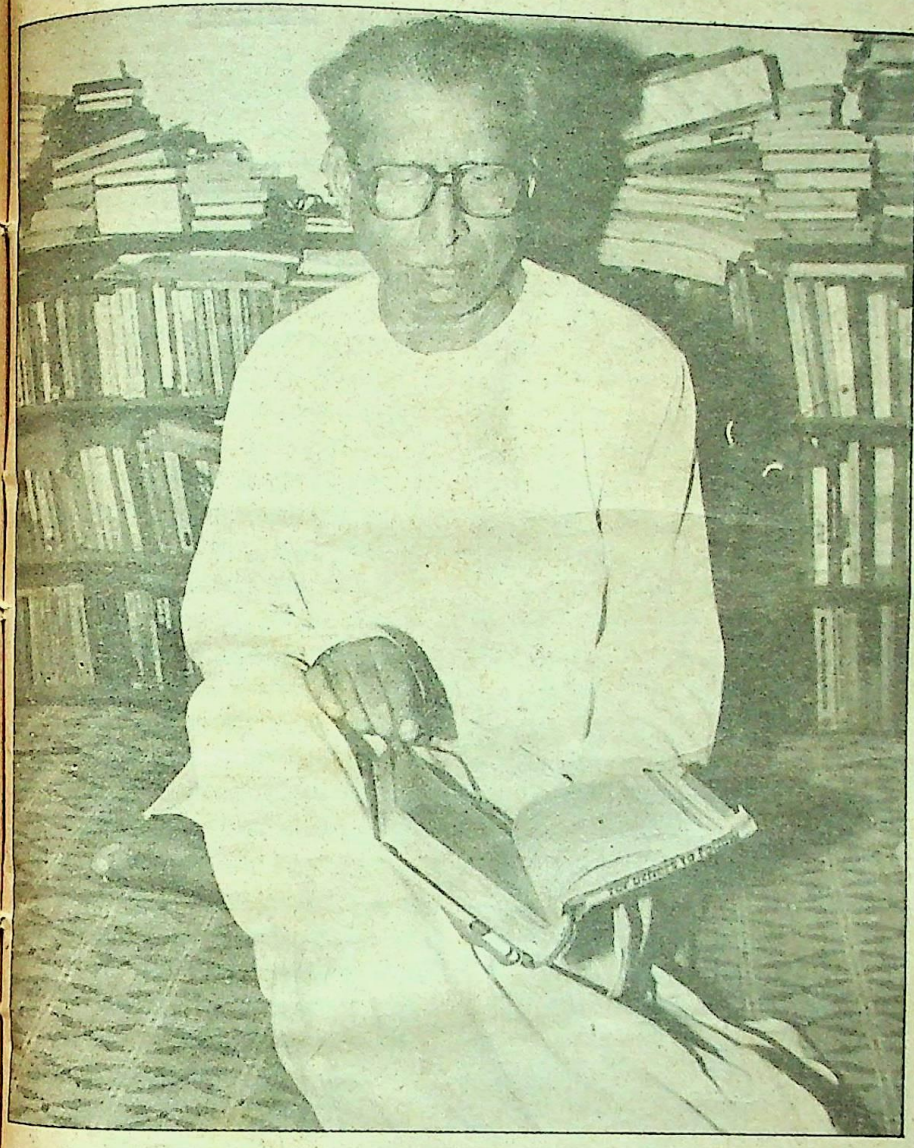

पार्टनर, तुम्हारी पालिटिक्स क्या है?

बातचीत का यह अंश डा. नामवर सिंह द्वारा स्वयं संपादित, परिवर्तित और पुनर्लिखित है. बातचीत के मूल रूप में उन्होंने कई महत्वपूर्ण और बुनियादी परिवर्तन किये हैं. संभवत: इसके पीछे उनके विचारों में पिछले दिनों आने वाले परिवर्तनों की भूमिका हो. बहरहाल, हमारे पास बातचीत का मूल रूप कैसेट्स में सुरक्षित है. पाठकों से आग्रह है कि बातचीत की इस किस्त को डा. नामवर सिंह के स्वतंत्र आलेख के रूप में पढ़ा जाये. और हमें इस अंश के आयोजन से मुक्त रखा जाये.

सुधीश पचौरी
उदय प्रकाश

☐ भारत भवन के साथ आपके पुराने संबंध रहे हैं. अचानक संबंध तोड़ने का फैसला आपने क्यों किया?

जनवरी ८७ में 'आलोचना समवाय' के अवसर पर विशेषत: 'आलोचना और राजनीति' शीर्षक गोष्ठी के बाद, जिसमें अशोक बाजपेयी की 'राजनीति' का असली चेहरा प्रकट हुआ. निश्चय ही मुखौटा लगाकर मुझे मुक्तिबोध का प्रसिद्ध वाक्य दुहराना पड़ा था : 'पार्टनर तुम्हारी पालिटिक्स क्या है?' जवाब तो खैर क्या आता! और संवाद खत्म हो गया.

☐ लेकिन भारत भवन के समारोहों में पहले आप लगातार जाते रहे हैं. 'पूर्वग्रह' के आयोजनों में आपने भाषण भी दिये हैं. तब आपने इसका विरोध क्यों नहीं किया? इतनी देर से विरोध का कारण?

बहिष्कार बेशक अब किया है, लेकिन 'पूर्वग्रह' से असहमति और विरोध का रिश्ता पहले से ही रहा है. तभी से जब भारत भवन का अस्तित्व भी न था. जब 'पूर्वग्रह' मध्यप्रदेश कला परिषद की पत्रिका थी. 'आलोचना और पूर्वग्रह' की नोंकझोंक तो एक अर्से से चली आ रही है. अभी 'पूर्वग्रह' की दसवीं वर्षगांठ पर सितंबर ८४ में 'जनतंत्र और आलोचना' पर जो संगोष्ठी हुई थी उसमें भी मैंने 'पूर्वग्रह' के सांस्थानिक आधार की स्पष्ट घोषणा की मांग करते हुए उसकी लोकतांत्रिक चिंता की असलियत को उद्घाटित करने का प्रयास किया था. इसके बाद 'आलोचना समवाय' में भी मैंने जो कुछ कहा, वह सबका सब 'पूर्वग्रह' में यद्यपि प्रकाशित नहीं हुआ है, फिर भी प्रकाशित गोष्ठी विवरण से मेरे पक्ष का बहुत कुछ आभास मिल जाता है. इसलिए विलंब विरोध में नहीं, बहिष्कार में हुआ और इस विलंब का एक निश्चित कारण है.

भारत भवन की स्थापना से पहले मध्यप्रदेश कला परिषद के तत्वावधान में जो सांस्कृतिक कार्यक्रम चल रहे थे उनकी प्रकृति काफी भिन्न थी. संप्रदायवादी शक्तियां सस्ते गीतकारों के साथ मिलकर 'कला परिषद', 'पूर्वग्रह' और अशोक बाजपेयी पर उन दिनों जिस तरह हमले कर रही थीं उससे 'पूर्वग्रह' की साहित्यिक-सांस्कृतिक दृष्टि का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है. उदयप्रकाश तो वहां काम भी कर चुके हैं. ये स्वयं गवाही दे सकते हैं. मंगलेश डबराल भी कुछ दिन वहां रह चुके हैं. आप चाहें तो उनसे भी पूछ सकते हैं. वह समय था जब 'पूर्वग्रह' मुक्तिबोध का झंडा उठाये फिरता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धर्मवीर भारती के 'धर्मयुग' का कोपभाजन था. अज्ञेय की ओर न उसने रुख किया, न अज्ञेय ने उसकी ओर. हरिशंकर परसाई, ज्ञानरंजन तथा मध्यप्रदेश के अन्य प्रगतिशील लेखक इस दौर में कुछ मुद्दों पर मतभेद के बावजूद सामान्य रूप से अशोक बाजपेयी के उस सांस्कृतिक अभियान में सहयोग कर रहे थे. स्वभावत: इस दौर के अन्य प्रगतिशील और जनवादी लेखकों की तरह हमने भी अपना सहयोग दिया और इसके लिए हमें आज कोई पछतावा भी नहीं है.

आगे चलकर जब पूर्वग्रह की दृष्टि बदली तो हमें भी स्वभावत: अपना रुख बदलना पडा. स्पष्ट हो गया कि अब संवाद संभव नहीं. संवाद तब संभव था क्योंकि असहमति के साथ सहमति का भी एक आधार था.

☐ भारत भवन और 'पूर्वग्रह' में जो यह बदलाव आया है, क्या आप यह ठीक-ठीक कह सकते हैं कि वह कब से आया है ? वैसे मुझे ध्यान आता है कि 'पूर्वग्रह' का एक अंक १९८३-८४ में 'काल और सृजन' पर केंद्रित था. उसमें ऐसे ही विचारकों और चिंतकों को बुलाया गया था, जिन्होंने पुनरुत्थानवादी किस्म की भारतीयता की बात की थी. इस मामले में वह अंक एक विभाजक अंक है. काल की भारतीय अवधारणा का रोग भी 'पूर्वग्रह' को तभी से लगा था. इतिहास और यथार्थ का विरोध और निषेध भी इसी अंक से स्पष्ट रूप से शुरू हुआ.

हो सकता है. मैंने इस पर कोई रिसर्च नहीं की है. 'पूर्वग्रह' के 'काल और सृजन' विषयक अंक की याद जरूर है. वह १९८३ के शुरू के महीनों का ही अंक होगा. जहां तक मुझे याद है उन दिनों 'पूर्वग्रह' कला परिषद से ही निकलता था. भारत भवन अस्तित्व में आ चुका था, लेकिन यह पत्रिका उसके दायरे में नहीं थी. 'पूर्वग्रह' भारत भवन के अधीन संभवत: १९८५ के मध्य में किसी समय आया. जो हो, यह तो औपचारिकता की बात हुई. संपादक तो वही थे. रही 'काल और सृजन' विषय पर गोष्ठी की बात. तो आपके ध्यान में यह भी होगा कि उस गोष्ठी के सूत्रधार निर्मल वर्मा थे जो उन दिनों भोपाल में 'निराला सृजनपीठ' पर आसीन थे. सृजन के संदर्भ में 'काल' पर चर्चा करने में कोई हर्ज नहीं है. देखना यह है कि वह चर्चा सृजन कर्म को किस दिशा की ओर ले जाती है. आपका यह कथन सच मालूम होता है कि वह काल चर्चा इतिहास और यथार्थ के निषेध की ओर उन्मुख थी. इस संदर्भ में इस तथ्य की याद दिलाना जरूरी है कि अज्ञेय भी कुछ समय पहले से काल चिंता में लगे हुए थे जिसका फल 'संवत्सर' के रूप में कुछ ही समय पहले आ चुका था. कालातीत लोगों की यह काल-चिंता हिंदी के औसत पाठकों के लिए काफी आतंककारी है.

जो हो, मेरी दृष्टि से 'पूर्वग्रह' के उस विशेष अंक की अपेक्षा १९८४ का वर्ष विशेष महत्व-पूर्ण है जब भोपाल की संस्कृति में परिवर्तन या अवसरण हुआ. इस परिवर्तन का संबंध मेरी दृष्टि में भारत भवन की स्थापना से जुड़ता है. भारत भवन के कारण भोपाल भारत की सांस्कृतिक राजधानी कहा गया. इस तरह संस्कृति एक 'सत्ता' बनी. सत्ता ने मद को जन्म दिया. और मद विनाश का मार्ग है.

☐ क्या यह कहना ज्यादा ठीन न होगा कि जबसे भारत भवन को फोर्ड फाउंडेशन की आर्थिक सहायता मिली, तबसे अशोक बाजपेयी के संस्कृति संबंधी नीतियों और कार्य-कलापों में परिवर्तन आया ?

मुझे ठीक-ठीक नहीं मालूम कि भारत भवन को फोर्ड फांउंडेशन की मदद कब मिली और मैं निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कह सकता कि यहां प्रत्यक्ष कारण-कार्य संबंध है. किंतु 'फोर्ड फाउंडेशन' की ओर से भारत के बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अब तक जिस तरह के हस्तक्षेप होते रहे हैं उससे भारत भवन की सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में संदेह तो पैदा होता ही है. कुछ दिन पहले मैंने जार्ज रोजेंन की पुस्तक 'वेस्टर्न एकानमिस्ट्स एंड ईस्टर्न सोसायटीज' 'पश्चिमी अर्थशास्त्री और पूर्वी समाज' नामक पुस्तक पढ़ी थी. यह पुस्तक अमरीका से ही प्रकाशित हुई है. इसमें 'फोर्ड फाउंडेशन' की गतिविधियों का कच्चा चिट्ठा दिया गया है. 'फोर्ड फाउंडेशन' ने भारत के आर्थिक विकास को विशेष दिशा में मोड़ने के लिए कितना ज़ोड़-तोड़ किया, यह बात इस पुस्तक से खुलकर सामने आ जाती है. इसी तरह अभी हाल में मैंने अमरीका से ही प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिका 'डेडलस' के एक अंक में 'फोर्ड फाउंडेशन' की सांस्कृतिक गतिविधियों का विवरण पढा. यह फाउंडेशन स्वाधीनता के बाद से ही भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप करता आ रहा है. आरंभ के दो दशकों में अमरीकी 'शीत युद्ध' की नीति के तहत वह भारत की उन साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को आर्थिक मदद देता रहा जो मार्क्सवाद और साम्यवाद के खिलाफ थी. वियतनाम युद्ध के बाद शीत युद्ध की विचारधारा के निस्सार साबित हो जाने के बाद अब 'फोर्ड फाउंडेशन' अन्य पूर्वी देशों के साथ-साथ भारत में 'सांस्कृतिक सापेक्षतावाद' की नीति को बढ़ावा देने में दिलचस्पी ले रहा है. इस नीति के तहत वह भाषाई अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता, अल्पसंख्यकों की धार्मिक अस्मिता आदि बातों पर बल देने वाली संस्थाओं को मदद देना अपना कर्तव्य समझता है. इस दौर में फोर्ड फाउंडेशन का बल आधुनिकता और आधुनिकी-करण से अधिक 'प्राचीन परंपरा' की रक्षा पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. इसके लिए वह ऐसे संग्रहालयों को विशेष रूप से अनुदान दे रहा है जो अपनी प्राचीन सांस्कृतिक निधि तथा विविध जनजातियों की कलाकृतियों को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहे हैं.

भारत भवन इस परंपरावाद की रक्षा में फोर्ड फाउंडेशन की नीति का अनुपालन कितनी दूर तक कर रहा है, इसका निर्णय विचक्षण जन ही कर सकते हैं. किंतु भारत भवन जो एक अतिरिक्त कार्य कर रहा है, वह भूलता है कि साहित्य में कम्युनिस्टों को मिटाने की कोशिश में इलाहाबाद का 'परिमल' स्वयं मिट गया. वैसे, भारत भवन के सारे कारनामों के लिए सिर्फ फोर्ड फाउंडेशन को दोष देना ठीक नहीं. भारत भवन फोर्ड फाउंडेशन का मोहताज नहीं. इस मदद के बिना भी वह वही करता जो कर रहा है.

☐ जब आपको 'फोर्ड फाउंडेशन' की बात मालूम थी तो भी आप भारत भवन के आयोजनों में भाग लेने क्यों जाते थे?

हो सकता है कि मेरा यह भ्रम हो, लेकिन मेरी यह धारणा है कि 'फोर्ड फाउंडेशन' या ऐसी ही किसी अन्य अमरीकी एजेंसी की आर्थिक सहायता मात्र किसी संस्था के बहिष्कार के लिए पर्याप्त कारण नहीं है. हमारे देश में न जाने कितने सरकारी, गैरसरकारी क्षेत्रों में अमरीकी सहायता मिल रही है—क्या हमें उन सबका पूरा पता है? किसका-किसका बहिष्कार करेंगे? बहिष्कार से एक नैतिक अहंकार की तुष्टि अवश्य होती है, लेकिन कर्तव्य की इतिश्री नहीं होती. असली काम तो संघर्ष का है. अवसर मिले और जब तक मिले तो अंदर से भी संघर्ष करें और यह संघर्ष कोई अनैतिक कार्य नहीं है. विचारों की दुनिया में तर्क का जवाब तर्क है, आरोप-प्रत्यारोप नहीं. 'फोर्ड फाउंडेशन' की मदद का आरोप लगाकर किसी संस्था को लांछित तो किया जा सकता है किंतु उसके विचारों का खंडन अपने आप नहीं हो जाता. विचार तो बेहतर विचार से कटते हैं. एक जमाने में इलाहाबाद की साहित्यिक संस्था 'परिमल' को 'कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम' जैसी सी. आई. ए. द्वारा स्थापित बदनाम संस्था का मंच कहा गया, किंतु इस आरोप के बावजूद हिंदी में लगभग एक दशक तक परिमलियों के साहित्यिक मत का असर रहा.

☐ पर आप 'पूर्वग्रह' के उस अंक की याद कीजिए जिसमें उन्होंने अपने आयोजन 'आलोचना समवाय' में भाग लेने के इच्छुक मूर्धन्य वामपंथी आलोचकों द्वारा अशोक बाजपेयी को लिखी चिट्ठियां छापी हैं. ये सारे आलोचक न सिर्फ वामपंथी, प्रगतिशील या मार्क्सवादी आलोचक

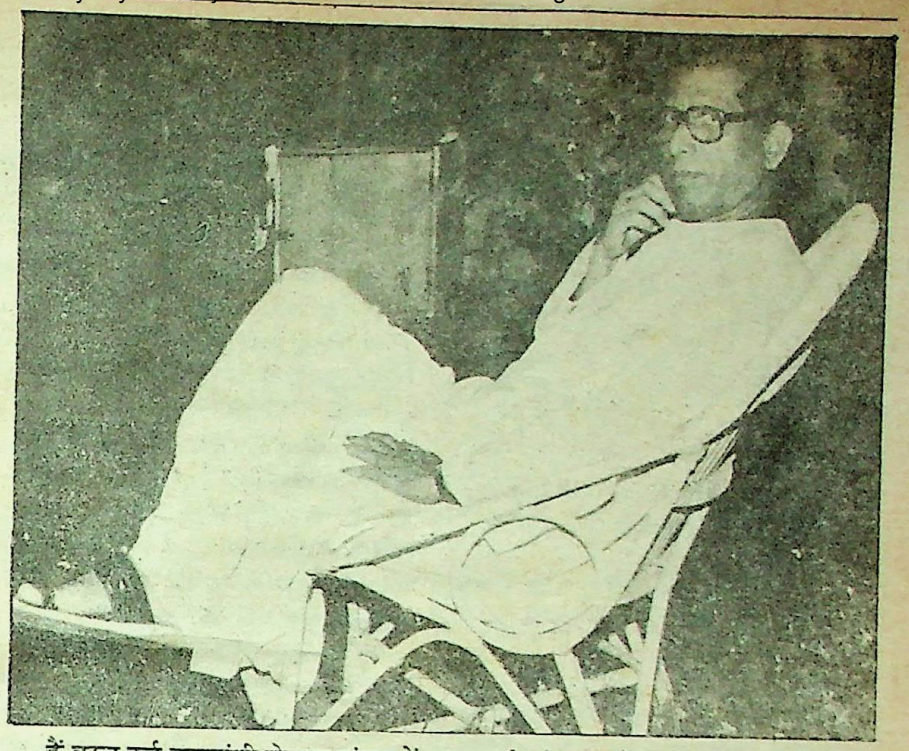

हैं वरन् कई वामपंथी लेखक संगठनों से जुड़े हुए हैं. उसी अंक में छपे अपने पत्र में डा. रामविलास शर्मा ने बिल्कुल स्पष्ट रूप से 'फोर्ड फाउंडेशन' और भारत भवन के संबंधों का सवाल उठाते हुए वहां आने से इंकार किया है. अब कैसे हो सकता है कि डा. रामविलास शर्मा को तो 'फोर्ड फाउंडेशन' के साथ भारत भवन के रिश्तों की बात मालूम रही हो और बाकी आलोचकों को न मालूम रही हो?

सवाल मालूम होने और न मालूम होने का नहीं, बल्कि फोर्ड फाउंडेशन की मदद को अनैतिक देने का है. फिर भी, बेहतर है आप यह सवाल, उन वामपंथी आलोचकों से ही पूछें. रहे रामविलास जी, तो वे अपने नैतिक बोध में शुद्ध ब्रह्म हैं—किसी गोष्ठी में जाते ही नहीं, उसमें भी नहीं जिसे 'फोर्ड फाउंडेशन' की मदद नहीं मिलती. ऐसी हालत में 'फोर्ड फाउंडेशन' के विशेष कारण का जिक्र कर देने से गांठ का क्या जाता है? उल्टे लाभ यह हुआ कि तुरंत 'पूर्वग्रह' ने रामविलास जी पर केंद्रित एक विशेषांक निकालने की घोषणा कर दी.

☐ वैसे 'पूर्वग्रह' ने आप पर भी केंद्रित एक अंक प्रकाशित किया था, लगभग पांच वर्ष पूर्व, आपके बहाने समूची प्रगतिशील चिंतनधारा के प्रति न सिर्फ विनम्रता, बल्कि अपनी सहमति भी प्रकट की थी. आपके सागर प्रवास का जिक्र करते हुए लगभग आपके शिष्यत्व की बात भी उन्होंने मानी थी. अब अचानक उसी 'पूर्वग्रह' और उन्हीं अशोक बाजपेयी द्वारा आपका विरोध कुछ आकस्मिक सा लगता है—आकस्मिक ही नहीं, नाटकीय भी.

'पूर्वग्रह' का नामवर सिंह पर केंद्रित अंक जरूर निकला है, लेकिन जहां तक मुझे याद है संपादकीय में वे बातें नहीं हैं जिनका जिक्र आपने किया है. यानी समूची प्रगतिशील चिंतनधारा के प्रति विनम्रता और सहमति आदि. सागर प्रवास और शिष्यत्व आदि की भी चर्चा संभवतः नहीं है. विनम्रता और सहमति से अशोक बाजपेयी वैसे भी परे हैं.

अच्छा हुआ जो आपने उस अंक का जिक्र कर दिया. उदयप्रकाश जी तो उस अंक के सहायक संपादक थे. साक्षात्कारों का संयोजन तथा अन्य सामग्रियों को जुटाने में उन्होंने काफी मेहनत की थी. बहुत-सी बातें मुझसे बेहतर वही जानते होंगे. फिर भी जाने कैसे उन्हें भ्रम हो गया कि मैंने अशोक बाजपेयी को रेमंड विलियम्स की परंपरा का आलोचक कहा था. यह बात उन्होंने इतने विश्वास से कही कि मुझे भी थोड़ी देर के लिए संदेह हो गया. बहरहाल, मैंने उस अंक में प्रकाशित बातचीत को दुबारा देखा तो पाया कि अशोक बाजपेयी को प्रारंभिक दिनों के रेमंड विलियम्स जैसा आलोचक स्वयं उदयप्रकाश जी ने ही कहा था. मैंने तो अपनी दृढ़ असहमति व्यक्त करते हुए कहा था कि 'यदि तुलनीय नाम देना ही हो तो तत्काल एक नाम मेरी जुबान पर आ रहा है—ए. अल्वारेज. यह बात रेकार्ड दुरुस्त रखने के लिए.'

जहां तक 'पूर्वग्रह' के बदले हुए रुख का ताल्लुक है, वह न आकस्मिक है और न नाटकीय ही. जानने वाले जानते हैं कि हमले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार-पांच साल से हो रहे हैं. ज्यादातर परदे के पीछे से. फर्क है तो यह कि अशोक बाजपेयी स्वयं अब सामने आये हैं. ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने मुख्य आधार अज्ञेय को बनाया. वही अज्ञेय जिनके बार में अशोक बाजपेयी ने कभी लिखा था : 'बूढ़ा गिद्ध क्यों पंख फैलाये?' उन्हीं की शिकायत है कि मैंने उन्हें 'चिपैजी' क्यों कहा, वह भी मृत्यु के ठीक बाद. अब तो वह रिकार्ड भी ठीक कर दिया गया है और इस आरोप की दोनों बातें निराधार हैं. बहरहाल, इस पूरे प्रसंग में यदि नाटकीयता है तो अज्ञेय का अवतरण. जिस 'आलोचना समवाय' में मैंने भारत भवन के बहिष्कार की घोषणा की थी उसी में अज्ञेय पहली बार भारत भवन आये थे, संयोग से. अब इसका आप जो भी अर्थ लगायें

प्रसंगवश अज्ञेय की 'वत्सलनिधि' को भी इसी बीच 'फोर्ड फाउंडेशन' की मदद मिली. 'पोएट्री एशिया' की योजना 'आलोचना समवाय' के ही समय बनी. जिसके पुरोधा अज्ञेय होने वाले थे. दुर्भाग्य से यह सुयोग घटित न हो पाया, लेकिन 'घृत-मधु' के दुर्लभ संयोग से कोई आंखें कैसे मूंद ले? मेरा अपराध इतना ही है कि मैंने बंबई के अंग्रेजी साप्ताहिक 'आब्जर्वर' के दिल्ली प्रतिनिधि से बातचीत करते हुए इस सच्चाई का जिक्र कर दिया.

मेरे लिए यह घटना इसलिए महत्वपूर्ण है कि सन पचास के दशक में इलाहाबाद के युवा कवियों के 'परिमल' के साथ अज्ञेय के संयोग ने प्रगतिशील चेतना वाली नयी कविता को जनविमुख किया था और दो दशकों के अंतराल के बाद एक बार फिर उसी इतिहास की आवृत्ति होती दिखायी पड़ रही थी— अशोक बाजपेयी के 'भारत भवन' के साथ अज्ञेय का पुनः संयोग और एक बार फिर राजनीतिक चेतना संपन्न आज की जीवंत कविता को जीवन की चुनौतियों से दूर ठेलने का खतरा! आज का मोर्चा यह है. दांव पर भविष्य है, अतीत नहीं.

☐ 'एशिया कविता' की चर्चा से याद आया कि अब तो 'भारत भवन' आगामी वर्ष विश्व कविता का आयोजन करने जा रहा है, जिसमें पश्चिमी देशों के विश्वविख्यात कवियों के अलावा समाजवादी देशों के भी बड़े-बड़े कवि आ रहे हैं और अफ्रीका-लैटिन अमरीका के भी क्रांतिकारी कवियों के भाग लेने की संभावना है. इस ऐतिहासिक पहल के लिए क्या भारत भवन प्रशंसा का अधिकारी नहीं?

आपको श्रीकांत वर्मा की कविता की वह पंक्ति याद होगी— 'कोसल में विचारों की कमी है. कोसल अधिक दिन टिक नहीं सकता.' जहां विचारों की कमी होती है वहां जोर उत्सवों पर होता है. जब कोई संस्था एक के बाद एक महोत्सव करने लगे तो समझ लीजिए कि विचारों की पूंजी चुक गयी है और इस कमी को उत्सवों से ढंकने की कोशिश हो रही है. उत्सव की भी राजनीति होती है. इससे एक फायदा यह भी है कि लोग राग-रंग में भूलें रहेंगे. हमारी सरकार भी कुछ दिनों से विदेशों में एक के बाद एक उत्सव किये जा रही है. पहले अमरीका में, फिर फ्रांस में, इसके बाद रूस में और साथ-साथ जापान में, भारत भवन एक अर्से से उत्सवों पर जी रहा है, जब स्थानीय उत्सवों से काम न चला तो क्षेत्र विस्तार किया गया जिसकी परिणति है विश्व कविता! लेकिन विश्व कविता तो क्या ब्रह्मांड कविता का आयोजन भी भारत भवन को नहीं बचा सकता. कोई संस्थान अमरबेल की तरह बहुत दिनों तक नहीं जी सकता.

आपको याद होगा, कुछ महीने पहले एम. एन. बुच ने 'टाइम्स आफ इंडिया' में भारत भवन की सबसे बड़ी कमजोरी यह बतायी थी कि उसकी जड़ें स्वयं उस शहर भोपाल में नहीं हैं जहां वह स्थित है और आम लोग उससे एकदम उदासीन हैं. श्री बुच बड़े अनुभव संपन्न और प्रबुद्ध सिविल सर्वेंट हैं, साथ ही अशोक बाजपेयी के प्रशंसक तथा समर्थक भी. श्री बुच के अनुसार अशोक बाजपेयी भारत भवन की इस कमी को स्वयं भी स्वीकार करते हैं : लेकिन कौन जाने यह सोचकर गर्व भी करते हों कि 'हम नदी के द्वीप हैं' और 'यह अपनी नियति है'

सच्चाई तो यह है कि स्वयं हिंदी साहित्य से भारत भवन की जड़ें उखड़ती जा रही हैं. उसकी जड़ें हिंदी में हैं ही नहीं. इस अभाव की पूर्ति अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों और विचारकों को बुलाकर की जा रही है. लेकिन कवियों-लेखकों की सूची देखिए तो अखिल भारतीय के नाम पर वही आधे दर्जन लोग हैं जो हर तीन महीने बाद भोपाल में दिखायी पड़ते हैं. विश्व कविता का महोत्सव इसी अभाव की पूर्ति का एक और प्रयास है. इस प्रयास के बावजूद यह नया 'आनंदमठ' जल्द ही बिखरेगा. शुरुआत हो चुकी है.

लेकिन एक अन्य कोण से देखें तो यह उत्सव-आयोजन एक नयी तरह का सांस्कृतिक 'आतंकवाद' हैं. ये विराट आयोजन हिंदी कवियों को आतंकित करने के लिए हैं. अशोक बाजपेयी गोया यह बताना चाहते हैं कि जब एज्रा पाउंडों, गिंसबर्ग, होलुब आदि कवि भारत भवन आ रहे हैं तो ऐ हिंदी के टुच्चे कवियो, तुम आओ न आओ क्या फर्क पड़ता है. लेकिन हर तानाशाही का यही चरित्र होता है. स्थानीय आधार नहीं होता, किंतु बाहरी तामझाम से वह अपनी जनता पर रौब डालकर वश में करना चाहता है. तानाशाह सारे विश्व का हो सकता है, लेकिन अपने घर का नहीं होता. मूलतः हर तानाशाह एक 'लघुमानव' होता है.

भारत भवन के संकुचित आधार पर एक प्रमाण तो यही है कि साहित्य में वह कविता तक ही सीमित है. बीसवीं सदी में यदि कोई सांस्कृतिक संस्था गद्य से एकदम मुंह मोड़ ले और फिर भी बात करे पूरी संस्कृति की तो उसकी 'संस्कृति' में शक होना स्वाभाविक है. यह गद्य की उपेक्षा नहीं, गद्य से भय है. 'कौन है जो गद्य से डरता है?' लोग यह पूछने के लिए विवश हो रहे हैं.

☐ अच्छा डाक्टर साहब, भारत भवन के बहिष्कार के प्रति आपके इस 'स्टैंड' के पीछे कहीं अशोक बाजपेयी के साथ आपके व्यक्तिगत संबंधों में बिगाड़ की तो कोई भूमिका नहीं है?

क्या मेरे स्वर से आपको ऐसा लगता है? अशोक से मेरे कम से कम पचीस साल के संबंध हैं. काफी निकट के. घरेलू भी. कम ही लोगों से ऐसे संबंध हैं. ऐसे संबंध जीवन की निधि होते हैं. मैं हर सूरत में उन्हें बचाकर रखने में विश्वास करता हूं. अशोक के लिए आज भी मेरे मन में वही स्नेह है और स्पष्ट कर दूं कि व्यक्तिगत रूप में उन्होंने मुझे कोई चोट नहीं पहुंचायी है— कम से कम मैं ऐसा ही महसूस करता हूं. ☐

गीदड़ की अकड़

"ए हाथी, मेरे रास्ते से हट... वरना मैं तुझे छोड़ूंगा नहीं!" गीदड़ ने हाथी से अकड़ते हुए कहा.

हाथी ने सोचा— 'इसके मुंह क्या लगूं!' वह कच्चे रास्ते से आगे बढ़ गया. इस पर गीदड़ को लगा कि हाथी सचमुच डर गया है... 'क्यों न इसे दूर तक खदेड़ ही आऊं?' वह हाथी के पीछे-पीछे उसे धुड़कता हुआ चल दिया. हाथी देखता रहा. जब गीदड़ अपनी अकड़ में चूर हाथी के ठीक पीछे आ पहुंचा तो हाथी ने पूरा जोर लगाकर लीद कर दी. देखते-देखते, उसी के नीचे दबकर गीदड़ की जान निकल गयी. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोह दिखाना ही प्रगतिशील समझ नहीं

प्रगतिशील लेखक संघ, दुर्ग इकाई द्वारा आयोजित 'कहानी शिविर' का उद्घाटन कहानीकार काशीनाथ सिंह ने किया और रमाकांत श्रीवास्तव ने शिविर का संचालन किया. शिविर में कहानी के कथ्य, कहानी का रचना-विधान, विषयवस्तु के चुनाव पर विस्तृत चर्चा हुई. उभरते हुए पांच कहानीकारों की ताजा कहानियों पर विस्तृत चर्चा हुई. काशीनाथ सिंह ने अपनी रचना प्रक्रिया के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए. कार्यक्रम का संचालन मुकुंद कौशल ने किया.

सचिव शरद कोकास ने शिविर का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए बताया— जिस प्रकार रोजमर्रा जीवन में वास्तुकार, डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापारी अपने पेशे में पारंगत होने के लिए प्रशिक्षण लेते हैं, उसी प्रकार कहानी लेखन के लिए विधिवत् प्रशिक्षण देना शिविर का उद्देश्य है.

रमाकांत श्रीवास्तव ने कहानी और जिंदगी का बड़ा आत्मीय व अटूट संबंध बताते हुए कहा, लंबे समय तक यह विचार प्रचलित रहा कि, रचना स्वतः स्फूर्त होती है. यह प्रतिभा जन्मजात होती है न कि अर्जित की जाती है. हम ऐसा मानते हैं कि विचार और भाषा का जन्म अकस्मात नहीं होता. विचार वास्तव में सामाजिक मनुष्य होने की पहचान है. हमारी प्रतिभा क्या है? हमारे साथ पुराने आचार्यों की तलदर्शी चिंतनधारा और परंपरा है साथ ही नया ज्ञान भी है. बाल्मीकि की रचना सामाजिक चिंतन द्वारा प्रस्फुटित हुई. हमें यह जानना चाहिए, निजी अनुभव कभी भी पूर्ण नहीं होता. सामाजिक व सामूहिक अनुभव के साथ हम सत्य के पास पहुंचते हैं. अनुभव का भरपूर सिंचना रचना में हो तभी वह समर्थ व सार्थक होगी. दूसरे सत्र में कहानी का रचना विधान और विषयवस्तु के चुनाव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए काशीनाथ सिंह ने कहा, कहानियों में ठोस विचार और सामाजिक संघर्ष का होना अच्छी बात है परंतु विषयों का सरलीकरण नहीं होना चाहिए. कथ्य के लिहाज से कहानी में मारक शक्ति के रूप में व्यंग्य का प्रयोग किया जाता है. स्थूल आदर्श या अमूर्त आदर्श से कहानी को मुक्त होना चाहिए.

तीसरे सत्र में पांच कहानियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई. प्रारंभ में विवेक गुप्ता (नया कोट), लोक बाबू (खुशी), कैलाश बनवासी (उमस), सहदेव (बिगड़ी बनी) और डॉ. सुरेंद्र दुबे (एक थी सुजाता) ने अपनी-अपनी कहानियों का पाठ किया. अधिकांश उपस्थित रचनाकारों ने इन कहानियों पर अपने विचार व्यक्त किए. काशीनाथ सिंह ने कहा सभी कहानीकार आलोचनात्मक टिप्पणी को अन्यथा न लें. □

महावीर अग्रवाल

'हलाहल' बीच बहस में

'नवभारत टाइम्स' के प्रधान संपादक राजेंद्र माथुर के मुख्य आतिथ्य और प्रख्यात कथाकार कमलेश्वर की अध्यक्षता में 25 अक्तूबर को राजधानी के कांस्टीट्यूशन क्लब में 'सचिन प्रकाशन' की तरफ से चर्चित युवा कथाकार धीरेंद्र अस्थाना के नये उपन्यास 'हलाहल' पर एक गोष्ठी आयोजित हुई.

गोष्ठी का आरंभ डा. माहेश्वर के आलेख से हुआ. उन्होंने इस उपन्यास को संवेदना की परतों में चाकू की तरह धंसती हुई 'इटेंस' कथा-रचना माना. दूसरा आलेख चर्चित कथा-लेखिका चित्रा मुद्गल का था. उनका मानना था कि उपन्यास के नायक सिद्धार्थ की सोच सामंतवादी मनोवृत्ति की है. लेकिन स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित उपन्यास की संशलिस्ट कथा-भूमि इन प्रश्नों को रौंदती हुई अमृता और सिद्धार्थ के माध्यम से पूरी सामाजिक संरचना को टटोलती हुई विसंगतियों का पर्दाफाश करती है.

राजेंद्र माथुर ने उपन्यास पर कम, उपन्यास पर वहां हुई समीक्षा की समीक्षा अधिक की. उन्होंने समीक्षक की तुलना उन सामंती लोगों से की जो लड़की की भ्रूण हत्या कर देते हैं. उन्होंने कहा कि लेखक और पाठक के बीच से समीक्षक को एकदम हटा देना चाहिए. गोष्ठी के अध्यक्ष पद से कमलेश्वर ने कहा कि यह एक बेहतरीन उपन्यास है. एक पतनशील समाज और खंडित जीवन मूल्यों के बीच रहकर प्रेम करने वाले किसी व्यक्ति के ऊपर ऐसा ही उपन्यास लिखा जा सकता था. कमलेश्वर ने माना कि यह उपन्यास पारंपरिक नैतिकता और तथाकथित मर्यादा पर सीधा हमला करता है. जिन लोगों ने इस उपन्यास पर होने वाली विचारोत्तेजक बहस में हिस्सा लिया, उनमें पुरुषोत्तम अग्रवाल, डा. गंगा प्रसाद विमल, डा. नफीस आफरीदी, राजकुमार गौतम, हरिप्रकाश त्यागी और अमेरिका से इन दिनों भारत आये हुए हिंदी कथाकार उमेश अग्निहोत्री प्रमुख थे. □

प्रकाश

समीक्षा-गोष्ठी

पिछले दिनों युवा रचनाकार रवींद्र कुमार की पुस्तक 'खिड़की से कूदता जंगल' पर एक समीक्षा-गोष्ठी दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलेज में कवि-चित्रकार हरिप्रकाश त्यागी की अध्यक्षता में संपन्न हुई. रवींद्र कुमार के रचना पाठ के बाद महेश दर्पण, प्रेम जनमेजय, दिनेश खन्ना, रेखा सक्सेना, हरीश नवल, सुशील कुमार सहित उपस्थित साहित्यिकों ने भी पुस्तक पर अपने विचार प्रकट करते हुए रवींद्र की रचनाओं में नजर आने वाले विविध आयामों पर विस्तार से बातचीत की: □

बीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

सरस्वती श्रेष्ठ कहानी

द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' द्वारा लिखी कहानी 'सरस्वती' को आधुनिक कथा साहित्य में श्रेष्ठ कहानी कहा जा सकता है. मैंने अपने विगत जीवन में आज तक ऐसी कहानी नहीं पढ़ी. इस कथा में मिश्र जी ने सरस्वती के रूप में एक ऐसे अनूठे चरित्र को अभिचित्रित किया है जिससे प्रत्येक पाठक जुड़ना चाहेगा और इस कथा के साथ हुआ भी यही. हम सभी कर्मचारीगण जो कि आपकी सारिका के नियमित पाठक हैं, इस चरित्र से प्रभावित हुए बगैर नहीं रहे हैं.

□ पं. बृजमोहन संज्ञया, राजघाट

यह भी सरस्वती, वह भी सरस्वती

पूरे अंक में यदि कोई कहानी ऐसी है जिसमें सिवाए कथोपकथन के कहानी का कोई तत्व नहीं है तो वह है 'सरस्वती' और पूरे विशेषांक में सबसे अधिक कोई कहानी दिल को छू जाती है तो वह भी है 'सरस्वती'. सारे कहानी तत्वों को ताक पर रखकर भी अद्वितीय को जिसने अपने कंधों पर लिया है, वह निसंदेह 'सवस्वती' कहानी है. श्री निसंदेह 'सरस्वती' कहानी है. श्री 'सरस्वती' को पढ़ते समय कहीं ऐसा नहीं लगा कि एक कहानी पढ़ रहा हूं. हमेशा यही प्रतीत हुआ जैसे सरस्वती साक्षात सामने बैठी बतिया रही है और मैं मंत्र-मुग्ध बस सुनता चला जा रहा हूं शिवशंकर की तरह, क्योंकि जिंदगी के किसी-किसी क्षण में केवल सुनना एक सुखद अनुभूति होती है. 'सरस्वती' वर्षों मेरे कानों में यूं ही बतियाती रहेगी, इसका लेशमात्र भी संदेह नहीं है मुझे.

□ राजेश श्रीवास्तव, दिल्ली

वर्तमान परिवेश का अभेद्य कवच

'सरस्वती' से हुई अचानक मुलाकात (इस संदर्भ में अचानक ही अधिक उपयुक्त है) अंतर्मन को सुरभित कर गयी. वर्तमान परिवेश के अभेद्य कवच को अपनी सुकोमल बेबाक भावनाओं के स्पर्श से खील-खील करती चली गयी. कहीं किसी स्थान पर बड़ा संयम और कहीं वाचालता, बचपन मिश्रित यौवन में वैचारिक प्रौढ़ता का सुमधुर संगम उसे दुर्लभ व्यक्तित्व दे गया. लेखक अपने उद्देश्य में सफल रहे हैं. सहर टौंकी के इस शेर की तरह: "थक के लेता हूं तेरी जुल्फ के साये में पनाह ताजा दम होने को फिर गर्दिशें दौरां के लिए."

□ राशित, बूंदी (राज.)

बर्बस आंसू छलक आये

'सरस्वती' काफी पसंद आयी. वास्तव में मैंने इससे अच्छी कहानी कभी नहीं पढ़ी और शायद न पढ़ पाऊं. कहानी में इतनी गतिशीलता अथवा उतार-चढ़ाव एक मजे हुए लेखक द्वारा ही संभव है. कहानी में काफी कुछ व्यावहारिकता का पुट है. यदि कुंआरी नवयुवतियां इस कहानी से कुछ सीख सकें तो कथाकार व 'सारिका' के लिये सौभाग्य की बात होगी.

कथा का अंत बिल्कुल गले नहीं उतरता यदि सरस्वती वास्तव में गूंगी हो जाती. नहीं, विधाता इतना क्रूर हो ही नहीं सकता. मिश्र जी से निवेदन है कि कृपया कहानी को उस मोड़ पर जबकि पाठक नायिका से भावनाओं/मानसिक रूप से जुड़ गया हो स्तब्ध कर देने वाला वाकिया नहीं देना था. मेरे तो बर्बस आंसू ही निकल पड़े और एक ही सांस में शेष कहानी पढ़ गया. जब अंत सही निकला तब राहत मिली.

□ लोकेश, विदिशा (म.प्र.)

विश्व साहित्य बनाम हिंदी साहित्य

'सरस्वती' को पढ़ने के उपरांत अपनी दीर्घसूत्रता के बावजूद बिना प्रतिक्रिया व्यक्त किए रहा न गया. कहानीकार ने कहानी के अंत में अपनी टिप्पणी में लिखा है कि इसमें सरस्वती की बक-बक के सिवाय कुछ नहीं है. यह आत्मस्वीकृति 'निर्गुण' के महत गुण को द्विगुणित कर देती है. सरस्वती की बक-बक के भीतर एक भारतीय सुशिक्षिता एवं सुसंस्कृता लड़की की व्यथा अंतःसलिला की भांति विद्यमान है. भारतीय समाज परंपराग्रस्त एवं सड़े-गले मूल्यों को अपने सीने से लगाये, नवीन प्रगतिशील मूल्यों से आंखें चुराये प्राचीन मान्यताओं के कूपमंडूक में सिसक रहा है और वह ऐसी मान्यता को खारिज कर देता है कि एक लड़की भी आजीवन अविवाहिता रह सकती है.

इस अंक की अधिकांश कहानियां एवं लघुकथायें उत्कृष्ट लगीं, परंतु चंद्रकांता की 'यहां वितस्ता बहती है' प्रभावित नहीं कर पायी.

संपादक महोदय? विश्व साहित्य से हिंदी पाठकवर्ग को परिचित कराने का आपका सार्थक प्रयास स्तुत्य है, परंतु अपने हिंदी-संसार में भी अनेक अमूल्य रचनायें विद्यमान हैं, और आप हैं कि विश्व-साहित्य के उद्धार में ही लीन हैं.

□ वीरेंद्र कुमार सिंह, मुजफ्फरपुर

सारिका अनुवादिका हो गयी है

इतने ढेर सारे अनुवाद पढ़कर लगा, 'सारिका' अब सारिका नहीं रही— वह अनुवादिका हो गयी है.

मेरे विचार से हिंदी भाषी पाठक जो साहित्य में रुचि रखते हैं वे 'अनुभूति' और 'निर्णय' जैसी रचना पढ़ना अधिक पसंद करेंगे. सच कहूं तो इस अंक में यही दो कहानी पढ़ने योग्य लगीं.

'निर्गुण' की 'सरस्वती' ने लंबी बक-बक के पश्चात जब स्वयं मान लिया निःस्तत्व और अच्छी कहानी न होना. फिर भी मजेदारी का लुआब लगाकर अपने को स्वीकार करवाना अच्छा नहीं लगा. वैसे आप के सामने परेशानी रही होगी इतने पुराने लेखक की रचना... और 'मंटोरबाई' पढ़कर लगा वर्षों पूर्व देखी फिल्म 'मधुमती' का नवीन संस्करण पढ़ रहा हूं.

□ जेम्स पीटर, आगरा

हिंदी देश की राजभाषा है

सारिका में प्रकाशित मेरे लेख 'भाषा अस्मिता की पहचान' के संदर्भ में श्री शैलेश मटियानी के विचार 'न है न होगी' पढ़े. मैं उनकी तरह न तो शब्दों का जादूगर हूं और न उनकी शैली और शब्दावली ही अपना सकता हूं. इस विषय को लंबी-चौड़ी बहस का मुद्दा बनाने की इच्छा भी मेरी नहीं है. परंतु इतना निवेदन कर दूं कि हिंदी इस देश की राजभाषा है और यह बात दिन के उजाले की तरह साफ है. यदि अपनी आंखों पर किसी विशेष रंग और नंबर का चश्मा चढ़ाकर हम इस तथ्य को नकारना ही चाहें और स्वयं भ्रम पाल लें तो दोष हमारा ही होगा.

संविधान निर्माताओं ने हिंदी की लोकप्रियता, सहजता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापकता तथा व्यवहार की स्थिति को देखते हुए पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक अंग्रेजी की जगह एक भारतीय भाषा को स्थापित करने के मंतव्य से हिंदी को संवैधानिक समर्थन दिया. इसके साथ ही देश की भाषायी और भावनात्मक एकता तथा सांस्कृतिक, वैचारिक एवं साहित्यिक आदान प्रदान एवं राजनीतिक परिपेक्ष्य के संदर्भ में संविधान की अष्टम अनुसूची में अन्य भारतीय भाषाओं को भी मान्यता दी.

संविधान निर्माता इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि हिंदी भारत के हृदय प्रदेश की भाषा है, जिसे किसी क्षेत्र या संप्रदाय की सीमा में नहीं बांधा जा सकता. यही वह भाषा है जो भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हो सकती है. यह तथ्य तो प्रतिक्रिया में भी स्वीकारा गया है. इस प्रकार हमारे संविधान ने हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करके उसकी उसी अखिल भारतीय क्षमता को विधिवत् मान्यता दी गयी जो संविधान बनने से भी पहले से इस देश को एकता की कड़ी में पिरोती आयी है. हिंदी इस देश में जन-जन की अभिव्यक्ति की संजीवनी तथा पारस्परिक संवाद की वाणी रही है. इसमें देश की आत्मा बोलती है, इतिहास बोलता है और हमारी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में इस देश की अधिसंख्य जनता की आशाओं और आकांक्षाओं को यह वाणी देती रही है. संविधान निर्माताओं ने सोच समझकर तथा समस्त भाषायी प्रश्नों की जटिलता और परिस्थितियों की गंभीरता को जांच-परखकर देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को भारत की राजभाषा स्वीकार किया जिसकी स्पष्ट व्यवस्था अनुच्छेद 343 में है. इतना ही नहीं अनुच्छेद 351 में यह स्पष्ट निर्देश है कि "हिंदी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक (कंपोजिट) संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक हो उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा."

संविधान निर्माताओं ने सभी भारतीय भाषाओं के सहयोग और आदान-प्रदान से भाषायी सौमनस्य के वातावरण में राजभाषा के विकास की नींव डाली जो ठीक उसी रूप में राष्ट्र की वाणी बनकर अपना स्वर्णिम इतिहास निर्मित करेगी जिस रूप में वह प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही है.

हिंदी की इसी भूमिका और योगदान से प्रभावित संविधान निर्माताओं ने अंग्रेजीमय वातावरण और अंतर्राष्ट्रीय भूमिकावाली अंग्रेजियत के माहौल और सुविधा के बावजूद हिंदी को राजभाषा स्वीकार करके इस देश, इस धरती और इस मिट्टी के प्रति अपनी आस्था का सबूत दिया. संविधान सभा में देश की ऐसी तपी तपाई विभूतियां थीं जिन्होंने गुलामी की पीड़ा भोगी थी और स्वतंत्रता के लिए अपना सब कुछ निछावर किया. उनकी इसी निष्ठा ने उन्हें राष्ट्र की अस्मिता की पहचान तथा भाषायी स्वाभिमान की रक्षा करने और विदेशी भाषा अंग्रेजी की मानसिक गुलामी से छुटकारा पाने के लिए हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के सम्मान और गरिमा की रक्षा की प्रेरणा दी. उनकी इस निष्ठा और विवेकपूर्ण निर्णय को 'धोखाधड़ी', 'झांसा' या पाखंड की संज्ञा देना स्वयं हमारे विवेक पर प्रश्न चिन्ह लगाता है.

यदि हम अपनी नासमझी और पूर्वाग्रहों से पीड़ित मानसिकता के कारण संविधान की उक्त व्यवस्था को नकारते हैं तो सहज ही यह प्रश्न उठता है कि संविधान लागू होने पर राष्ट्रपति के राजभाषा संबंधी आदेश, राजभाषा आयोग के गठन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना, राजभाषा (विधायी) आयोग का गठन, राजभाषा अधिनियम 1963 और संशोधन 1967 की धाराओं के कार्यान्वयन, 1968 के संकल्प, विधेयकों और अधिनियमों के हिंदी रूपांतर को प्रामाणिक रूप देने, केंद्रीय हिंदी समिति के गठन, हिंदी सलाहकार समितियों के गठन, 1976 के राजभाषा कानून आदि बनाने के पीछे कौन-सा सांविधिक और संवैधानिक प्राधिकार था? इसी प्रकार सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए जितने भी कार्यालय स्थापित किये गये हैं, पद सृजित किये गये हैं या राजभाषा विभाग स्थापित किए गये हैं उनके पीछे कौन-सी कानूनी शक्ति या सांविधिक प्राधिकार है?

इस संबंध में भारत सरकार के राजभाषा विभाग, हिंदी सलाहकार, राजभाषा (विधायी) आयोग, विधि तथा संविधान के विशेषज्ञों तथा अधिकारी विशेषज्ञों द्वारा स्थिति स्पष्ट की जानी चाहिए कि क्या सचमुच हिंदी भारत की राजभाषा नहीं है? इस स्पष्टीकरण से निश्चय ही भ्रम दूर हो सकेगा. जहां तक एक सामान्य व्यक्ति की समझ का प्रश्न है मेरी समझ में संविधान की व्यवस्था के अनुसार संविधान लागू होनें की तारीख से 15 वर्ष की निर्धारित तिथि अथवा अवधि अर्थात् 1965 से हिंदी भारत की राजभाषा है, विधिवत् हो चुकी है. अंग्रेजी को सह-भाषा के रूप में चलते रहने की मान्यता भी दी गयी है. सह-भाषा न कि राजभाषा, जैसा कि लोगों को भ्रम है. यह भ्रम अंग्रेजी के प्रयोग की सुविधा होने के कारण हैं. यह तथ्य स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं है सरकारी कामकाज में अंग्रेजी के व्यवहार की छूट होने के कारण हिंदी पूरी तरह से प्रतिष्ठित नहीं हो पायी है जो संविधान की व्यवस्था की कमी नहीं वरन हमारे कार्य व्यवहार की कमजोरी है जिससे राजभाषा होते हुए भी हिंदी को संविधान द्वारा प्रदत्त राजभाषा के गौरवपूर्ण पद की प्रतिष्ठा के अनुकूल प्रयोग में नहीं लाया गया है. इसके लिए हम सभी उत्तरदायी हैं और वे लोग भी जो वास्तविकता से दूर रहकर केवल मीन-मेख निकालने की पहल तो करते हैं परंतु 98% लोगों की आशाओं और

बधाई

वर्तमान साहित्य द्वारा आयोजित की गयी 'कृष्ण प्रताप कथा प्रतियोगिता'—1988 का प्रथम पुरस्कार युवा कथाकार संजय को उनकी कहानी 'तख्तोताब' पर प्राप्त हुआ है. (श्री संजय की पहली कहानी 'भगदत्त का हाथी' सारिका के जनवरी 88 अंक में प्रकाशित और प्रशंसित हुई थी.) यह पुरस्कार 2000 रुपये का है. पंद्रह सौ रुपये का द्वितीय पुरस्कार डा. ईश्वरदत्त वर्मा को उनकी कहानी 'कौतुक' पर तथा एक हजार रुपये का तृतीय पुरस्कार डा. शिवजी श्रीवास्तव को उनकी कहानी 'जाल' के लिए प्राप्त हुआ. इनके अतिरिक्त ग्यारह कहानियों को पांच-पांच सौ रुपये के प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किये गये. इस वर्ष निर्णायक मंडल में प्रख्यात कथाकार अमरकांत और शेखर जोशी तथा आलोचक सत्य प्रकाश मिश्र थे. सभी पुरस्कार विजेताओं को सारिका परिवार की ओर से बधाई.

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
- सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
- आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- महंगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
- कोर्स फीस का आसान किस्तों में भुगतान
- कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं

विवरण के लिए डबाबी लिफाफा भेजें –

AID एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकांक्षाओं के अनुकूल हिंदी को प्रतिष्ठित करने की दिशा में अपने स्तर पर कोई ठोस अथवा व्यावहारिक भूमिका अदा नहीं कर पाते हैं और 2% लोगों की मानसिकता को इतने वर्षों से ओढ़े हुए हैं.

जहां तक संविधान में 'होगी' शब्द के प्रयोग की बात कही गयी है निवेदन है कि संविधान, संविधि और कानून की भाषा और शब्दावली की विशेष शैली व स्वरूप होता है. उस 'होगी' शब्द का आशय है संविधान के प्रावधान लागू होने के दिन से होगी और वह 1965 से हो चुकी है. संविधान में भारत को राज्यों का संघ 'होगा' भी ठीक इसी तरह कहा गया है.

जहां तक हिंदी दिवस की बात है, यह हमारी अपनी भाषाओं की सेवा के संकल्प का दिन है. इससे हिंदी के अनुकूल वातावरण बनाने और भाषायी सौमनस्य की प्रेरणा मिलती है. यदि अंग्रेजी के अंधियारे वाली घोर अमावस्या की रात में हम हिंदी का एक दीप जलाकर थोड़ा भी अंधियारा दूर कर सकें तो इसमें क्या नुकसान है. क्या हम स्वतंत्रता दिवस मनाना इसलिए छोड़ दें कि अब हम गुलाम नहीं रहे?

□ **डा नारायण दत्त पालीवाल**

हिंदी है और रहेगी

जैसे हाथी के पांव में सब का पांव होता है उसी प्रकार हिंदी शब्द व्यापकता में राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, व्यवहार भाषादि अभिव्यंजित होती हैं. यानी 'हिंदी दिवस' में इनके दिवस का द्योतन होता है. मुझे हिंदी नाम अच्छा लगा, मैंने हिंदी दिवस मनाना आरंभ कर दिया, आपको राजभाषा या राष्ट्रभाषा का नाम अच्छा लगता है आप उसे मनाइए. इसमें नाराजी या अप्रासंगिकता का क्या प्रश्न है? सरकार ने कहा "सभी कार्यालय राजभाषा विभाग द्वारा जारी की गयी मार्गदर्शी रूपरेखा के अनुसार हर वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस तथा उस दिन से शुरू करके हिंदी सप्ताह मनायें" (राजभाषा हिंदी के प्रयोगसंबंधी नियम पुस्तक अध्याय 14 पृ. 42) मंत्रालय / विभाग / कार्यालय/ कंपनी/निगम/उद्यमादि मनाने लगे. इसमें व्यक्ति का क्या दोष? इसमें न कोई भ्रम है न कोई अप्रासंगिकता.

'दुआएं दो कि हमने तुम्हें कातिल बना दिया' हम थे तुम थे प्रसंग बन गया! फरवरी 48 में संविधान के प्रारूप में राजभाषा विधेयक की कोई धारा/अनुच्छेद नहीं था. इसके न होते हुए भी मात्र इतना उल्लेख था कि संसद की भाषा अंग्रेजी या हिंदी होगी. बस हो गया प्रसंग अवतरित. पंडित नेहरू ने एक अखिल भारतीय भाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए स्पष्ट किया था कि स्वतंत्र देश की अपनी ही भाषा में राज काज चलना चाहिए. पुनः प्रसंग आ गया. (8.11.48 की संविधान सभा की बहस) मत मतांतरों की संकरी गली में भैंस स्वरूपा भारी-भरकम बहस फंस गयी. निकले तो कैसे निकले? 'ज्यों ज्यों सुरझि भज्यौ चहति त्यों त्यों उरह्यो जाति' निकास ही न हो. 'आये धन आये छन आये के निकर गये' की भांति संशोधनों के संशोधन रूपी घन उमड़े, कभी कभार टपक गये, उनकी स्निग्धता ने बहस को पिलपिला दिया मुंशी-आयंगर फार्मूला के रूप में. यह प्रसंग था. यह निर्णय था हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठापित करने का (प्रतिफलन पुष्टि स्वरूप भारत के संविधान के अनुच्छेद 343-351 तथा 28.11.49 का पटेल का वह पत्र है जो उन्होंने मगन भाई देसाई को लिखा था. दो रुपये के स्टांप वाले जुडीशरी कागज पर लिखा पत्थर की लकीर बन जाता है. और यदि अपेक्षित टिकटें लगाकर उसकी रजिस्ट्री करवा दी जाये तो वह भगवानोवाच हो जाता है तो क्या भारत के संविधान में लिखा प्राधिकृत नहीं? इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा हिंदी के राजभाषा बनने का. संविधान की हिंदी संघ की राजभाषा है, संविधान की हिंदी सरकारी भाषा है, संविधान की हिंदी सरकारी कर्मचारियों की (के लिए) भाषा है. संविधान की हिंदी उन अधिकारियों की भाषा है जिन्हें पूर्ण योग्य निष्ठावान् बुद्धिमान और उत्तरदायित्वपूर्ण माना जाता है.

राजभाषा खंड, विधायी विभाग, भारत सरकार का 1984 का भारत का संविधान संस्करण (हिंदी) देखें तो पता चलता है कि उद्देशिका को छोड़कर (क्योंकि संविधान उसी दिन 26.11.49 को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं) जहां 'हैं' का प्रयोग है अन्य सभी स्थानों पर होगा/होगी/होंगे/होंगी ही प्रयुक्त हुए हैं क्योंकि प्रावधान भविष्य काल संदर्भित है तो क्या ये सब अर्थ/काल विपरीत हैं? फिर भी यदि राजभाषा के साथ 'है' देखना चाहते हैं लोग तो देखें राजभाषा हिंदी के प्रयोग संबंधी नियम पुस्तक का अध्याय 1 पृष्ठ1 "संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिंदी है."

जहां तक अहिंदी भाषी राज्य/ प्रांत की असहमति और भाषा का प्रश्न है, यह भी अन्य अनेक आश्वासनों की भांति राजनीतिक व्यवस्था प्रसूत आश्वासन है, जिसे उगले गति न निगले गति. जिनका यह आश्वासन है या तो वे पुनः धराधाम पर आयें या कोई उनसे भी वरिष्ठ अवतरित हो तभी इसका निस्तारण हो सकता है. ऐसी परिस्थिति में जो कुछ सरकार कर रही है उसके आदेशानुसार कर्मचारी कर रहे हैं वह कार्यान्वयन/क्रियान्वयन समीचीन है. वह झांसा या कर्मकांड नहीं. जो काम करता है वह गलती भी करता है. और जो केवल भाषा की दूरूहता का ढोल पीटकर केवल गाल बजाते हैं वे भंग के नशे में धुत्तशिव को प्रसन्न करने का ढोंग भले ही करते हों, अपनी मानसिकता का प्रदर्शन करते हैं मगर किसी का शिव नहीं करते. भाषा न कठिन होती है न सरल. भाषा की प्रयुक्तियां (रजिस्टर) इतनी विविध हैं कि एक दूसरे के समझने में कठिनाई होती है. डॉक्टर की प्रयुक्ति को कितना हृदय की प्रयुक्ति को कितना हृदय कर सकता है? वैज्ञानिक कवि भाषा/भाषा प्रतीकों को कि गले उतार सकता है? स किनारे बैठकर लोहा पीटने डाक्टर की प्रयुक्ति को कहां समझ सकता है या प्रयुक्त सकता है आदि आदि. इसी प्र राजभाषा सरकारी कार्यालयों प्रयुक्त भाषा की प्रयुक्ति है. उनके लिए है और उनसे संबं जनता से है. स्वर साधन क वाले संगीतज्ञ या ग अध्ययनकर्त्ता के लिए नहीं. द का उच्चतम पदासीन वि अधिकारी दफ्तर में कहता फाइल प्रस्तुत करो और जब घर जाता है तो अपनी संस्कृत पृष्ठभूमि होते हुए या अंग्रेजी पृष्ठभूमि होते हुए भी यह नहीं कहता कि भोजन प्र करो, सबमिट फूड. वहां वह कहता है कि कुछ खाने को खाना दे दो.

पात्रता और पद की भी आया जाये. हिंदी ने क्षमता, शक्ति, सामर्थ्य के क पद पाया है. एक हजार व अधिक की परंपरा है इसके विस्तृति है, संस्कृति है, प्रस्तु और है संस्तुति इसके प्रति. पद पर उसे प्रतिष्ठापित उत्तरदायित्व सौंपा गया है उसके लिए वह मानक अपनाये, ध्वनि भंडार को ब अभिव्यक्तियों को रचाये प आवश्यकता के अनुसार प और परिवार को उदार बना उसकी सरलता, सहजता स्वभाव/पद्धति में क्या जु होगा? परिवर्तन ही विकास यह इसकी विराट अभिव्य क्षमता को विश्व जनीन बनाने प्रयास है.

संविधिक स्थिति द्विभाषिक हिंदी के साथ अंग्रेजी इसी अपरिहार्य है. नहीं तो कर्म अधिकारी काम कैसे क

कोई माने या न माने हिं स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव पड़ता.

□ **डा. मोती लाल चतुर्वेदी,**
जैड-33, हौजखास, नयी दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112
27/9/94

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar